॥ श्रीः ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला

१८३

श्रीकाशीनाथोपाध्यायविरचितः

धर्मसिन्धुः

'धर्मदीपिका' विशदहिन्दीव्याख्यया

'सुधा'टिप्पण्या च समलङ्कृतः

धर्मदीपिकाकारः

श्रीवशिष्ठदत्तमिश्रः धर्मशास्त्राचार्यः

काशीहिन्दूविश्वविद्यालयस्य भूतपूर्वधर्मशास्त्रप्राध्यापकः



सुधाटिप्पणीकारः

श्रीसुदामामिश्रशास्त्री

प्रस्तावनालेखकः

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-धर्मशास्त्रकाननप्रचण्डपञ्चानन-धर्ममार्तण्ड-धर्मरत्न-शास्त्ररत्नाकर-

महामहोपाध्याय-श्रीसदाशिवशास्त्रिमुसलगांवकरः

गवालियर-राजकीयसंस्कृतमहाविद्यालयस्य भूतपूर्वाध्यक्षः ।



चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१

१९६८

प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

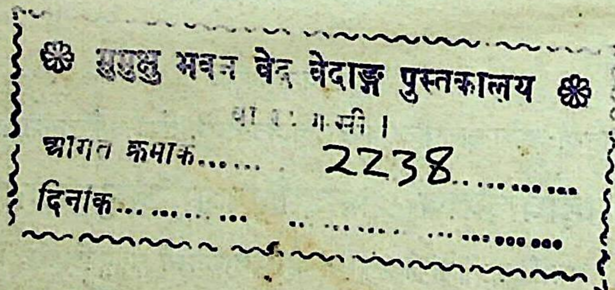
मुद्रक : विद्याविलास प्रेस, वाराणसी

संस्करण : प्रथम, सं० २०२५ वि०

मूल्य



Gopal Mandir Lane,
P. O. Chowkhamba, Post Box 8,
Varanasi-1 (India)
1968
Phone : 3145



प्रधान शाखा

चौखम्बा विद्याभवन

चौक, पो० बा० ६९, वाराणसी-१

फोन : ३०७६

THE

KASHI SANSKRIT SERIES

183



DHARMASINDHU

OF

ŚRĪ KĀŚĪNĀTHA UPĀDHYĀYA

With

The 'Dharmadīpikā' Hindī Commentary

By

PT. VAŚIṢṬHA DATTA MIŚRA

Ex-Professor, Sanskrit College, Banares Hindu University Varanasi.

And

The 'Sudhā' Gloss

By

Pt. SUDĀMĀ MIŚRA ŚĀSTRĪ

And

An Introduction by

MM. SRĪ SADĀŚIVA ŚĀSTRĪ MUSALGAONKAR,

Sarvatantrasvatantra, Dharmaśāstrakānanapracaṇḍapañcānana,

Dharmamārtaṇḍa, Dharmaratna, Shastraratnakara,

Ex-Principal : Govt. Sanskrit College, Gwalior.

THE

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE

VARANASI-1

1968

First Edition
1968
Price Rs. 25-00

Also can be had of
THE CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE
Publishers & Antiquarian Book-Sellers
P. O. Chowkhamba, Post Box 8, Varanasi-1 (India)
Phone : 3145

प्रास्ताविकम्

अचेतनापि चैतन्ययोगेन परमात्मनः ।
अकरोद् विश्वमखिलमनित्यं नाटकाकृतिः ॥

यह सम्पूर्ण विश्व प्रकृति का विस्तार है, जहाँ भी देखते हैं वहाँ उसी की प्रभा पाते हैं। प्रकृति ही विश्वोत्पत्ति की सामग्री है। प्रकृति गुणमयी है, उसके पाश से मुक्त होकर अपनी आत्मशक्ति को कैसे प्राप्त करें ? यह चिन्ता होने पर महर्षि वेदव्यास कहते हैं—

धर्मे मतिर्भवतु वः सततोत्थितानां
स ह्येक एव परलोकगतस्य बन्धुः ।
अर्थाः स्त्रियश्च निपुणैरपि सेव्यमाना
नैवाप्तभावमुपयान्ति कुतो वशित्वम् ॥

अभ्युदय के लिये सतत प्रयत्नशील लोगों की बुद्धि, धर्म में स्थित हो, परलोक में वही एक मात्र हितकारी सखा है। बड़े-बड़े चतुर कार्यकुशल लोगों की परिचर्या से भी धन और युवतियां अपनी आत्मीय नहीं बन पातीं, तब वह वशंगत कैसे हो सकती हैं। 'न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः। 'धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये' 'एक एव सुहृद् धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः। शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यत्तु गच्छति॥' एक धर्म ही ऐसा मित्र है, जो मरने पर भी जीव के साथ जाता है, और सब तो शरीर के नाश होते ही उसे छोड़कर चले जाते हैं। इत्यादि के द्वारा सभी के लिये धर्म की अत्यन्त आवश्यकता प्रकट की गई है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी भगवान् ने इसकी आवश्यकता बताई है—'स्वधर्मे निधनं श्रेयः' 'कुरु कर्मैव तस्मात्त्वम्' 'स्वे-स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः,' इत्यादि। एक बार अनेक मुनियों ने धर्म की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए सभी वर्णधर्मों की शिक्षा देने के लिये भगवान् मनु से प्रार्थना की थी। याज्ञवल्क्यस्मृति के आरम्भ में भी इसीप्रकार धर्म की आवश्यकता बताई गई है। तन्त्रवार्तिक के रचयिता भट्टपाद ने भी 'सर्वधर्मसूत्राणां वर्णाश्रमधर्मोपदेशित्वाद्' लिखकर वर्णाश्रमधर्म की शिक्षा देना ही धर्मसूत्रों का कार्य बताया है। धर्म से ही चित्तशुद्धि होती है। चित्तशुद्धि के विना भगवान् की ओर ले चलने वाले कर्मयोग, ध्यानयोग, भक्तियोग, और ज्ञानयोग के मार्ग पर कोई चल नहीं सकता। धर्म को आवश्यक समझ कर ही भगवती श्रुति आज्ञा देती है 'धर्मं-चर' 'धर्मेण सुखमासीत' धर्मान्न प्रमदितव्यम्'—धर्म करो, धर्म से सुख होता है, धर्म में प्रमाद (असावधानी) नहीं करना चाहिये। तात्पर्य यह है कि विश्व की सुस्थिति के लिये धर्म की अत्यन्त आवश्यकता है। अतएव कहागया है—'धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा। अतः तपः पूत एवं त्रिकालज्ञ- निर्मलहृदय, कर्मनिष्ठ तथा ब्रह्मनिष्ठ हितैषी अपने पूर्वज महर्षियों की दी हुई उपर्युक्त साक्ष्य को ध्यान में रखकर भारतीय जनता स्वयं विचार कर ले कि राष्ट्र को धर्मनिरपेक्ष रखना संगत है या धर्मसापेक्ष। अब प्रश्न यह उठता है कि वह धर्म क्या है ? जिसके बल पर विश्व की सुस्थिति निर्भर है। अतः सर्वप्रथम धर्म शब्द के अर्थ की ओर ध्यान दिया जाय।

'धर्म' शब्द 'धृञ्' धारणे धातु के आगे 'मन्' प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है। इसकी व्युत्पत्ति तीन प्रकार से हो सकती है—१ 'ध्रियते लोकः अनेन' इति। २ 'धरति धारयति वा लोकम्' इति। ३ 'ध्रियते यः स धर्मः' इति। पहिला—जिससे लोक धारण किया जाय, वह

धर्म है। दूसरा—जो लोक को धारण करे वह धर्म है। तीसरा—जो दूसरों से धारण किया जाय, वह धर्म है। महाभारतकार धर्म का लक्षण करते हैं—'धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः। यत्स्याद्धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः ॥' (कर्णप० ६९-५८)। धारण करने से लोग इसे धर्म कहते हैं। धर्म प्रजा को धारण करता है। जो धारण के साथ रहे वह धर्म है। इससे स्पष्ट है कि 'धर्म' शब्द बहुत व्यापक है। अमरकोषकार ने भी 'धर्म' शब्द के अनेक अर्थ बताए हैं—१ सुकृत या पुण्य, २ वैदिकविधि यागादि, ३ यमराज, ४ न्याय, ५ स्वभाव, ६ आचार, ७ सोमरस पीने वाला—'स्याद्धर्ममस्त्रियां पुण्यश्रेयसी सुकृतं वृषः, धर्मस्तु तद्विधिः' 'धर्माः पुण्ययम-न्यायस्वभावाचारसोमपाः इत्यादि। कोषान्तरों में अन्यान्य अर्थ भी उपलब्ध होते हैं—१ शास्त्रोक्त कर्म के अनुष्ठान से उत्पन्न होने वाले भावी फल का साधनस्वरूप शुभ अदृष्ट अथवा पुण्यापुण्यरूपभाग्य, २ श्रौत और स्मार्त धर्म, ३ विहित क्रिया से सिद्ध होनेवाला गुण या कर्मजन्य अदृष्ट, ४ आत्मा, ५ देह को धारण करने से जीवात्मा, आचार, ६ वस्त्र का गुण, ७ स्वभाव, ८ उपमा, ९ याग, १० अहिंसा, ११ न्याय, १२ उपनिषद्, १३ धर्मराज, १४ सोमा-ध्यायी, १५ सत्संग, १६ धनुष्, १७ भाग्यभवन, १८ दान आदि-तथापि व्याकरण की दृष्टि से धर्म शब्द का अर्थ तो धारण करना ही होता है। निरुक्त में 'धर्म' शब्द का अर्थ 'नियम' बताया है। दोनों को दृष्टिगत करते हुए धर्म शब्द का यही अर्थ प्रतीत होता है कि जिस नियम ने समस्त विश्व को धारण कर रक्खा है वही 'धर्म' है। अब देखें कि वह कौन सा नियम सूत्र है, जिसने इस विश्व को धारण कर रक्खा है, और किन नियमों के अनुसार चलने से सुख-शान्ति-सन्तोष आदि का लाभ होता है। 'धनाद्धर्मं ततः सुखम्' की उक्ति तो सर्वत्र प्रसिद्ध ही है। ऐहलौकिक और पारलौकिक भेद से सुख भी दो प्रकार का है। अतः कहना होगा कि जिससे दोनों प्रकार के सुखों की प्राप्ति हो सके वही 'धर्म' है। सभी लोग सुख की प्राप्ति के लिये ही प्रयत्नशील रहते हैं। अतएव वैशेषिक दर्शन के रचयिता महर्षि कणाद ने धर्म का यह लक्षण किया 'यतोऽभ्यु-दयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः' जिससे इह लोक में उन्नति और परलोक में कल्याण या मोक्ष की प्राप्ति हो वह धर्म है। श्रीमद्भागवत में भी—'वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः—(६-१-४४) वेद ने जिसका विधान किया हो वह धर्म और उसके विपरीत अधर्म है। मीमांसासूत्रकार महर्षि जैमिनि, धर्म का लक्षण कहते हैं—'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः,—वेद के विधानानुसार अनुष्ठेय कर्म ही 'धर्म' है। सम्राट् मनु अपने संविधान अर्थात् मनुस्मृति में धर्म का लक्षण बताते हैं—

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम् ॥ (२-१२)

वेद, स्मृति, सदाचार, और अपनी आत्मा की प्रसन्नता—ये चारों, धर्म के परिचायक हैं। 'श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितं यत् स धर्मः प्रकीर्तितः'—वेद तथा धर्मशास्त्र में जो बताया गया है उसे धर्म कहते हैं।

'श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन् हि मानवः।
इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् (२-९)

'श्रुति और स्मृति के द्वारा प्रतिपादित धर्म का अनुष्ठान करने वाला मनुष्य इस लोक में यश को पाता है और मृत्यु के पश्चात् परलोक में उत्तम सुख को पाता है।

'आचारः प्रथमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च।
तस्मादस्मिन् सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः ॥ (१-१०८)

श्रुति एवं स्मृतिप्रतिपादित सदाचार, श्रेष्ठ धर्म है, अतः आत्मज्ञानी द्विज सदैव सदाचार

से युक्त रहे। भगवती श्रुति ने धर्म के तीन स्कन्ध बताये हैं—'त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमस्तप एव द्वितीयो ब्रह्मचार्याचार्यकुलवासी तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्यकुलेऽवसादयन् सर्व एते पुण्यलोका भवन्ति ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति। (छा० उ० २-२३-१) धर्म के तीन आधार-स्तम्भ हैं—यज्ञ, अध्ययन और दान—यह प्रथम स्कन्ध है। तप ही—दूसरा स्कन्ध है। आचार्य कुल में रहनेवाला ब्रह्मचारी जो आचार्य कुल में अपने शरीर को अत्यन्त क्षीण कर लेता है—यह तीसरा स्कन्ध है। ये सभी पुण्य लोक के भागी होते हैं। और संन्यासी अमृतत्व को प्राप्त करता है। इस विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय हिन्दू जनता अपने धर्म को सदा से श्रुति-स्मृति-पुराणोक्त मानती चली आ रही है।

इसी 'धर्म' शब्द के पूर्व 'स्व' जोड़ने से 'स्वधर्म' शब्द बनता है, जिसका अर्थ 'अपना वर्णाश्रम धर्म' होता है। उसी के पूर्व 'पर' जोड़ने से 'परधर्म' शब्द बनता है; जिसका अर्थ अपने वर्णाश्रम धर्म को छोड़कर दूसरे का धर्म है। उसी के पहले 'वि' उपसर्ग लगाने से 'विधर्म' शब्द बनता है, जिसका अर्थ विगतः धर्माद् विधर्मः जो अपने धर्म से गिर जाय, अर्थात् धर्मान्तर का परिग्रह कर लेना। श्रुति, स्मृति, पुराणों में कहे हुए धर्मों के अतिरिक्त सभी धर्म, विधर्म हैं। इसलिए अपने धर्म को छोड़कर अन्य धर्म को स्वीकार करने वाले को विधर्मी कहा जाता है। उसीके पूर्व 'कु' उपसर्ग लगाने से 'कुधर्म' शब्द बनता है, जिसका अर्थ जिस धर्म की निन्दा की जाती है वह कुधर्म है। अर्थात् बुरे आचरण या पापाचरण को कुधर्म कहते हैं। 'कुधर्म शब्द का एक अन्य अर्थ भी है, तथाहि :—

धर्मं यो बाधते धर्मो न स धर्मः कुधर्म तत्।
अविरोधी तु यो धर्मः स धर्मः सत्यविक्रमः॥

जो धर्म, दूसरे धर्म में बाधा पाहुंचावे, वह धर्म ही नहीं है, किन्तु कुधर्म है; जो धर्म समस्त धर्मों का अविरोधी है वही यथार्थ धर्म है। धर्म के पहले 'नञ्, जोड़ने पर 'न धर्मः अधर्मः अधर्म शब्द बनता है, जिसका अर्थ है—जो धर्म से अत्यन्त विपरीत हो वह अधर्म है। इस अधर्म के पांच भेद हैं—१–विधर्म, १–परधर्म ३–धर्माभास, ३ उपधर्म, और ५ छल धर्म। दम्भ (ढोंग) को उपधर्म कहते हैं। अपने ही मन से किसी काम को धर्म समझ लेना और तदनुसार आचरण करना 'धर्माभास' है। परम्पराप्राप्त अर्थ को छोड़कर कुतर्क के सहारे अन्य अर्थ कर धर्म की व्याख्या करना 'छल धर्म' कहलाता है। अतः इन छहों प्रकार के अधर्मों का परित्याग करना ही धर्म है। अपना स्वधर्म ही शान्ति, सुख, सन्तोष को देता है। इसी बात को भगवान् कहते हैं—

'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः' स्वधर्म में मर जाना लाभप्रद है, किन्तु परधर्म का परिग्रह करना उचित नहीं क्योंकि वह भयप्रद है। इसी धर्म को लक्ष्य करके कहा गया है—

धर्मेण हन्यते व्याधिः धर्मेण हन्यते ग्रहः।
धर्मेण हन्यते शत्रुर्यतो धर्मस्ततो जयः॥

धर्म से रोग नष्ट होते हैं, धर्म से ग्रहों की पीडा नष्ट होती है, धर्म से ही शत्रुओं का विनाश होता है।, और जहां धर्म होता है वहां विजय होती है।

अब उस धर्मस्वरूप नियमसूत्र पर भी थोड़ा सा विचार कर लिया जाय, जिसका संकेत पहले किया गया है। यह सृष्टि त्रिगुणात्मिका है अर्थात् सृष्टि के तीन गुण हैं, जिन्हें सत्व, रज और तम कहते हैं। सृष्टि की सभी वस्तुओं में ये तीनों गुण उपलब्ध होते हैं। सृष्टि की उपत्ति, रजोगुण से होती है, सत्वगुण से उसकी स्थिति, और तमोगुण से उसका संहार (प्रलय) होता है। यह समस्त विश्व, इन तीन अवस्थाओं के वशीभूत है। इसी प्रकार यह जीव भी जन्म लेता है,

बढता है और मरता है। इसी अवस्था भेद से जीव की सृष्टि स्थिति और मुक्ति समझी जा सकती है। जैसे अहंकार से मोहित होकर जीव, कर्मप्रवाह में बहा अर्थात् उसकी उत्पत्ति हुई, पुनः वह कुछ समय तक इस सृष्टि के साथ बहता रहा अर्थात् कुछ समय तक उसकी स्थिति बनी रही और अन्त में अपने वास्तविक स्वरूप अर्थात् ब्रह्म को पहचान लेता है तो वह इस मायाप्रवाह से विरत हो जाता है अर्थात् उसका मोक्ष(ब्रह्मरूप)हो जाता है। यही तीन अवस्थाएँ प्रत्येक जीव की होती हैं। अतः धर्म वही है, जो इस सृष्टि क्रिया के स्वाभाविक नियम में बाधा न पहुचाता हो और अधर्म वह है जो इस नियम में बाधा पहुचावे। तात्पर्य यह है कि जीव सृष्टिप्रवाह में पड़ने के अनन्तर क्रमशः अपने गुणभेद के कारण उन्नत होता हुआ मुक्त होता है। इस क्रमोन्नति में जो कर्म सहायक हो, वह धर्म है, और इस क्रमोन्नति में जो कर्म बाधक हो वह अधर्म है इसीलिये भारतीय वर्णाश्रमधर्मियों के यहाँ खाना, पीना, सोना, जागना, उठना, बैठना, कहना, सुनना, पहनना, जाना, आना आदि प्रत्येक कर्म के साथ धर्माधर्म का दृढ सम्बन्ध माना गया है। जिस कर्म से तमोगुण और रजोगुण की निवृत्ति हो और सत्त्वगुण की वृद्धि हो वही धर्म है और जिस कर्म से सत्त्वगुण की हानि और रजोगुण, तमोगुण की वृद्धि हो वह अधर्म है। भगवान् स्वयं धर्मरूप हैं। वे स्वयं कहते हैं धर्मोहं वृषरूपधृक्, (भा. ११-१७-११) तप, शौच, दया, और सत्य नाम के चार पैरोंवाले वृषभ का रूप धारण करने वाला धर्म मैं (भगवान्) स्वयं हूँ।' विष्णुसहस्रनाम में भी 'धर्मगुब्धर्मकृद्धर्मी, धर्म की रक्षा करने वाले, धर्म को बनाने वाले और समस्त धर्मों के आधार स्वयं भगवान् हैं। इसीलिये कहा गया है 'धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः' धर्मका त्याग करने पर वह उस व्यक्ति का नाश कर देता है और पालन किया हुआ धर्म उस व्यक्ति की रक्षा करता है। 'आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः' धर्म आचार से उत्पन्न होता है और उस धर्म के अच्युत-भगवान् स्वयं रक्षक हैं। इसीलिये धर्म सदैव पालन करने योग्य है, वह उपहास की वस्तु नहीं है।

एक समय था जब कि धर्मजिज्ञासु लोग धर्म का ज्ञान वेदों से ही प्राप्त कर लिया करते थे। उस युग में चारो वेदों का अध्ययन-अध्यापन होता था। लोगों के आहार-विहार संयत थे जिससे पवित्र एवं स्वतंत्र विचारशक्तिसम्पन्न प्रतिभा दमकती चमकती रहती थी। धर्मानुष्ठान के समय जब कभी कोई समस्या उपस्थित होती थी तो तत्कालीन प्रतिभासम्पन्न ऋषिगण स्वयं ही अपनी प्रतिभा से तत्तद्विषयों की मीमांसा कर समस्या को सुलझा लेते थे। इस बात का प्रमाण आज हमें जैमिनि के सूत्रों से उपलब्ध होता है। जैमिनि ने अपने सूत्रों में तत्कालीन या पूर्ववर्ती स्वतन्त्रप्रज्ञ ऋषियों के नामों का निर्देश जहां तहां किया है। जैसे—१-१-५ में बादरायण ३-१-३ में बादरि, ३-२-४३ में ऐतिशायन, ६-१-२६ में आत्रेय, ६-७-३५ में कार्ष्णाजिनि, ६-७-३७ में लाबुकायन, ११-१-५७ में कायुकायन आदि।

इनके अतिरिक्त भी कितने ही ऋषि होंगे जिनका निर्देश जैमिनि ने न भी किया हो। तात्पर्य यह है कि उस युग का वातावरण, दिनचर्या,आहार-विहार, आयुर्मर्यादा, प्रतिभा की प्रगलभता, ज्ञान की गरिमा, तप की महिमा, शक्ति की विपुलता, आदि सभी बातों की अनुकूलता होने से चारों वेदों के अध्ययनाध्यापन की परिपाटी चल रही थी, जिससे तत्कालीन विद्वानों को धर्म का ज्ञान, वेदों से प्राप्त कर लेना, कोई कठिन कार्य प्रतीत नहीं होता था।

काल के साथ ही जब युग बीतने लगा और भावी प्रजा में शक्ति की क्षीणता प्रतीत होने लगी, वातावरण परिवर्तित हुआ सा दृष्टिगोचर होने लगा तब धर्मजिज्ञासुओं के अवलंबनार्थ धर्मसूत्र, गृह्यसूत्र, श्रौतसूत्रों की सृष्टि हुई जिसके सहारे धर्मानुष्ठान में विस्मृतिवश किसी प्रकार से वैगुण्य न होने पाये। उपलब्ध गौतम, बौधायन, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशि, वसिष्ठ, विष्णु, हारीत, शंख,-लिखित, मानव, वैखानस, अत्रि, उशना, कण्व, कश्यप, गार्ग्य, च्यवन, जातूकर्ण्य,

देवल, पैठीनसि, बुध, बृहस्पति, भरद्वाज, शातातप, सुमन्तु, आदि महर्षियों के सूत्रों में गौतम-धर्मसूत्र अत्यन्त प्राचीन माना जाता है। ये धर्मसूत्र गद्यमय या गद्यपद्यमिश्रित हैं।

पुनः कुछ समय व्यतीत होने पर वातावरण में बढ़ता हुआ परिवर्तन दिखाई दिया, साथ ही साथ भावी प्रजा में तपःशक्ति,विद्याशक्ति. शारीरिक शक्ति का ह्रास होता दीखने लगा तब तत्कालीन ऋषियों ने स्मृतियों की रचना करना आरम्भ किया। धर्मसूत्रों और स्मृतियों में अन्तर यह है कि धर्मसूत्रों की विषयवस्तु व्यवस्थितरूप से नहीं है जब कि स्मृतियों में ऐसी अव्यवस्था नहीं पाई जाती। स्मृतियों का विषय प्रायः आचार, व्यवहार, प्रायश्चित्त इन तीन प्रमुख शीर्षकों में होता है। स्मृति एवं धर्मशास्त्र का अर्थ एक ही है—श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः (मनु २-१०) मनु-बृहस्पति-दक्ष-गौतम-यम-अंगिरस-याज्ञवल्क्य-प्रचेतस्-शातातप-पराशर-संवर्त-उशना-शंख-लिखित-अत्रि-विष्णु-आपस्तंब-हारीत-आदि ये मुख्य स्मृतिकार हैं। इसके अतिरिक्त उपस्मृतिकार भी हैं तथा अन्य स्मृतिकार भी हैं। (वी. मि. परिभा. प्र. पृ. १८)

मनु (२०० ई० पू०—१०० ई० उ०)

मनु स्मृति के अनेक व्याख्याकार हो चुके हैं। मनु के विषय में तो यहां तक कहा गया है कि—"यत् किंचन मनुरवदत् तद् भेषजं भेषजतायाः।" (ताण्ड्य० २३.१६.१७)

मनुस्मृति में १२ अध्याय और २६९४ श्लोक हैं। मनुस्मृति सरल एवं धाराप्रवाह शैली में है। इसका व्याकरण प्रायः पाणिनिसम्मत है। इसके सिद्धान्त गौतम बौधायन, एवं आपस्तम्ब के धर्मसूत्रों से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। इसके बहुत से श्लोक वसिष्ठ एवं विष्णु के धर्मसूत्रों में भी पाये जाते हैं। मनुस्मृति में तीन वेदों के नाम आये हैं आयुर्वेद को अथर्वाङ्गिरसी श्रुति (११, ३३) कहा है। इसी प्रकार आरण्यक, छह वेदांगों, धर्मशास्त्रों की चर्चा आयी है। मनुने अत्रि, उतथ्यपुत्र (गौतम), भृगु शौनक, वसिष्ठ, वैखानस आदि धर्मशास्त्रकारों का तथा आख्या, इतिहास, पुराण और खिलों का उल्लेख किया है। मनु ने ब्रह्म का वर्णन कर उपनिषद् की ओर संकेत किया है एवं 'वेदबाह्याः स्मृतयः' की चर्चा कर जैन, बौद्धों की ओर संकेत किया हैं, उन्होंने धर्मविरोधियों और उनके व्यावसायिक श्रेणियों का उल्लेख किया है। अनेक प्रकार की बोलियों की चर्चा की है। 'केचित्', 'अपरे', 'अन्ये' कहकर अन्य मतों का उद्घाटन किया है। इसके व्याख्याकारों में मेधातिथि, गोविन्दराज और कुल्लूक बहुत प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त नारायण, राघवनन्द, नन्दन, रामचन्द्र, असहाय, उदयकर, भागुरि, भोजदेव, धरणीधर आदि भी इनके व्याख्याकार हुए हैं। मेधातिथि ने अपने पूर्ववर्ती भाष्यकारों की ओर संकेत किया है।

याज्ञवल्क्य (१०० ई० उ०—३०० ई० उ०)

याज्ञवल्क्यस्मृति मनुस्मृति की अपेक्षा सुव्यवस्थित है। इसके अनेक व्याख्या कार हो चुके हैं यह तीन भागों में विभक्त है, और तत्तद् विषयोंका उचितस्थान पर प्रतिपादन किया गया है। इसमें पुनरुक्तिदोष प्रायः नहीं है। मनु और याज्ञवल्क्यस्मृति के विषय अधिकांश समान रहने पर भी याज्ञवल्क्यस्मृति मनु की अपेक्षा संक्षिप्त है, किन्तु इसकी शैली सरल और धाराप्रवाही है। धर्मशास्त्र के इतिहास में म० म० काणे लिखते हैं—'याज्ञवल्क्य ने विष्णुधर्मसूत्र की बहुत सी बातें मान ली हैं। इनकी स्मृति एवं कौटिलीय में पर्याप्त समानता दिखाई पड़ती है। याज्ञवल्क्यस्मृति के बहुत से श्लोक मनु के कथन के मेल में बैठ जाते हैं। किन्तु याज्ञवल्क्य मनु की बहुत सी बातें नहीं मानते। जैसे—मनु ब्राह्मण को शूद्रकन्या से विवाह करने का आदेश देते हैं (३-१३), किन्तु याज्ञवल्क्य नहीं (१-५९)। मनु ने नियोग का वर्णन करके उसकी भर्त्सना की है (९,५९-६८) किन्तु याज्ञवल्क्य ने ऐसा नहीं किया (१, ६८-६९)। मनु ने १८ व्यवहारपदों के नाम लिये हैं, किन्तु याज्ञवल्क्य ने ऐसा

न करके केवल व्यवहारपद की परिभाषा की है और एक अन्य प्रकरण में व्यवहारपर विशिष्ट श्लोक जोड़ दिये हैं। मनु, पुत्रहीन पुरुष की विधवा पत्नी के दायभागपर मौन से हैं, किन्तु इस विषय में याज्ञवल्क्य बिलकुल स्पष्ट है। उन्होंने विधवा को सर्वोपरि स्थान रखा है। मनु ने जूए की भर्त्सना की है, किन्तु याज्ञवल्क्य ने उसे राज्य नियंत्रण में रखकर कर का एक उपादान बना डाला है। (२. २००-२०३)।

याज्ञवल्क्यस्मृति पर कई टीकायें हैं, जिनमें विश्वरूप, विज्ञानेश्वर अपरार्क एवं शूलपाणि अधिक प्रसिद्ध हैं। भारत में विज्ञानेश्वर विरचित मिताक्षरा पर आधारित व्यवहारों का अधिक प्रचलन है, इसकारण याज्ञवल्क्य को अधिक गौरव प्राप्त है।

पराशर (१–५ शताब्दी का मध्यकाल)

पराशरस्मृति में १२ अध्याय हैं। इसमें केवल आचार और प्रायश्चित्त पर चर्चा हुई है। इसके टीकाकार माधव ने अपनी ओर से व्यवहार संबन्धी विवेचन जोड़ दिया है। पराशर नाम बहुत प्राचीन है। तैत्तिरीय आरण्यक और बृहदारण्यक में क्रम से व्यासपाराशर्य एवं पाराशर्य नाम आए हैं। निरुक्त ने पराशर के मूलपर लिखा है। पाणिनि ने भी भिक्षुसूत्र नामक ग्रंथ को पाराशर्य माना है। पराशरस्मृति में अन्य १९ स्मृतियों के नाम आये हैं। महर्षि पराशर व्यास के पिता और शक्ति के पुत्र हैं।

नारद (१००–४०० ई० उ०)

नारदस्मृति के व्याख्याकार असहाय हैं। याज्ञवल्क्य एवं पराशर ने नारद को धर्मवक्ताओं में नहीं गिना। किन्तु वृद्ध याज्ञवल्क्य के एक उद्धरण के आधारपर विश्वरूप ने दिखलाया है कि नारद दश धर्म-शास्त्रकारों में एक थे। याज्ञवल्क्य में दिव्य के केवल पांच प्रकार पाये जाते हैं, किन्तु नारद में सात हैं। नारद में दीनार शब्द पाया जाता है। जिसका प्रचलन इस समय भी ईराक में है।

बृहस्पति (३००–५०० ई० उ०)

बृहस्पति धर्मसूत्रकार तथा स्मृतिकार भी हैं। दुर्भाग्यवश अभीतक बृहस्पतिस्मृति संपूर्ण रूपमें नहीं मिल सकी है। इसमें व्यवहार संबन्धी सिद्धान्त एवं परिभाषाएँ सुन्दर ढंग से दी हैं। बृहस्पति ने 'धन' एवं 'हिंसा' (सिविल एवं क्रिमिनल अथवा माल एवं फौजदारी) के व्यवहार संबन्धी अन्तर्भेद को प्रकट किया है। बृहस्पति ने युक्तिहीन न्याय की भर्त्सना की है।

कात्यायन (४००–६०० ई० उ०)

प्राचीन भारतीय व्यवहार एवं व्यवहारविधि के क्षेत्र में नारद, बृहस्पति एवं कात्यायन ये तीन रत्न गिने जाते हैं। कात्यायन ने स्त्रीधन की चर्चा की है। सर्वप्रथम अध्यग्नि, अध्यावहनिक, प्रीतिदत्त शुल्क, अन्वाधेय तथा सौदयिक नामक स्त्रीधन के कतिपय प्रकारों की चर्चा की है। कात्यायन ने व्यवहारसंबन्धी कुछ नई संज्ञाओं का प्रयोग किया है, जैसे—'पश्चात्कार' 'जयपत्र' आदि। पश्चात्कार वह निर्णय है जो वादी एवं प्रतिवादी के बीच गरमागरम विवाद के फलस्वरूप दिया जाता है और 'जयपत्र' वह है जो प्रतिवादी की स्वीकारोक्ति या अन्य कारणों से अभियोग के सिद्ध होने के फलस्वरूप दिया जाता है। इसी प्रकार अन्य कितने ही स्मृतिकार हैं जिनकी स्मृतियाँ दुभार्ग्यवश आज उपलब्ध नहीं हैं, उपलब्ध भी हैं तो खण्डित रूप में उपलब्ध हैं और कितने ही स्मृतिकारों के अन्यान्य स्मृतियों एवं निबंधों में उद्धरण मात्र उपलब्ध होते हैं जिससे उनके अस्तित्व का या स्वरूप का धुंधला-सा दर्शन हो पाता है।

व्याख्याकार तथा निबन्धकार

इसके अनन्तर व्याख्याकार एवं निबन्धकार उपस्थित होते हैं। इनकी उपस्थिति में भी हेतु भावी प्रजा की सर्वविध शक्तिक्षीणता-ही है जो पहिले बता चुके हैं। यह व्याख्याकारों का

और निवन्धकारों का युग प्रायः सातवीं शताब्दी से अठारवीं ई० तक माना जाता है। सत्रहवीं शताब्दी में नन्द पण्डित ने विष्णुधर्मसूत्र पर वैजयन्ती नामक व्याख्या लिखी। किन्तु बारहवीं शताब्दी से सूत्रों या स्मृतियों पर व्याख्यान या स्मृतियों के धर्मसम्बन्धी सिद्धान्तों को लेकर स्वतन्त्र रूप से निवन्ध लिखने की सामान्य प्रवृत्ति विद्वानों में जागरित हुई। धर्मशास्त्र की विविध शाखाओं पर कामधेनु नामक एक प्राचीन निबन्ध था, जिसका उल्लेख लक्ष्मीधर के कल्पतरु में, हारलता में, स्मृत्यर्थसार में, विवादरत्नाकर में, श्राद्धक्रियाकौमुदी में, श्राद्धविवेक में तथा समयप्रदीप में बार-बार किया गया है। चण्डेश्वर के व्यवहाररत्नाकर से कामधेनु के लेखक गोपाल प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार लक्ष्मीधर के कल्पतरु, चण्डेश्वर के विवादरत्नाकर, हरिनाथ के स्मृतिसार में हलायुध के मतों की चर्चा की गई है। विवादचिन्तामणि में रघुनन्दन ने दायतत्त्व, व्यवहारतत्त्व एवं दिव्यतत्त्व में, तथा वीरमित्र ने अपने वीरमित्रोदय में भी हलायुध के मतों का उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट है कि हलायुध के निवन्ध बड़े महत्त्व के एवं प्रामाणिक हैं।

भवदेव भट्ट (११०० ई० उ०)

रघुनन्दन के व्यवहारतत्त्व एवं वीरमित्रोदय से पता चलता है कि भवदेव भट्ट ने व्यवहारविधि पर व्यवहारतिलक नामक निवन्ध लिखा है। मिसरु मिश्र के विवादचन्द्र में भी भवदेव के विचारों की चर्चा की है।

आततायी के मारने के बारे में सुमन्तु के कथन पर भवदेव के मत की चर्चा वीरमित्रोदय ने की है। सरस्वतीविलास एवं नन्दपण्डित के वैजयन्ती व्याख्या में भी भवदेव के मतों की चर्चा की है। इससे स्पष्ट है कि भवदेव भट्ट का व्यवहारतिलक निबन्ध न्यायविधि पर बड़ा मूल्यवान् माना जाता रहा होगा।

'प्रकाश' (११२५ ई०)

प्रकाश नामक एक निवन्ध की चर्चा कतिपय निबन्धकारों ने की है। चण्डेश्वर ने अपने विवादरत्नाकर में प्रकाश के मतों की चर्चा अनेक बार की है।

गोविन्दराज (१०८०–११०० ई० उ०)

गोविन्दराज ने स्मृतिमञ्जरी नामक निबन्ध लिखा है। इसमें आन्ध्र जैसे देशों में यज्ञों का निषेध किया गया है। इन्होंने मेधातिथि के समान मोक्ष के लिये ज्ञान एवं कर्म का सामञ्जस्य वताया है। अनिरुद्ध की हारलता में गोविन्दराज की चर्चा की गई है।

लक्ष्मीधर का कल्पतरु (११००–११३० ई० उ०)

कल्पतरु ने मिथिला, बंगाल एवं सामान्यतः सम्पूर्ण उत्तर भारत को प्रभावित कर रखा है। इस निबन्ध के कई काण्ड हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ को कृत्यकल्पतरु, कल्पतरु, कल्पद्रुम या कल्पवृक्ष कहा जाता है। इस निवन्ध में धर्मशास्त्रसम्बन्धी सभी विषयों पर प्रकाश डाला गया है। बंगाल के अनिरुद्ध, वल्लाल सेन, शूलपाणि, रघुनन्दन आदि सभी प्रसिद्ध निबन्धकारों ने कल्पतरु की चर्चा की है। मिथिला में वे बंगाल से कहीं अधिक प्रसिद्ध थे। चण्डेश्वर ने अपने विवादरत्नाकर में सैकड़ों बार उनके विचारों को उद्धृत किया है। हेमाद्रि एवं सरस्वतीविलास ने बड़े आदर के साथ लक्ष्मीधर का उल्लेख किया है। यहां तक कि लक्ष्मीधर को भगवान् की उपाधि दे डाली है। जब अन्य संक्षिप्त निबन्धों का प्रणयन हुआ तब कल्पतरु अन्धकार में छिप गया किन्तु दत्तकमीमांसा, वीरमित्रोदय तथा टोडरानन्द ने कल्पतरु की विशेष चर्चा की है।

जीमूतवाहन (१०९०–११३० ई० उ०)

जीमूतवाहन, शूलपाणि एवं रघुनन्दन बंगाल के धर्मशास्त्रकारों के त्रिदेव हैं। इनमें जीमूतवाहन सर्वश्रेष्ठ हैं। इनका धर्मरत्न नाम का एक निबन्ध ग्रन्थ है, जिसके तीन अंग इस

समय प्राप्त होतेहैं—कालविवेक, व्यवहारमातृका और दायभाग। जीमूतवाहन के कालविवेक की चर्चा वाचस्पति के श्राद्धचिन्तामणि, गोविन्दचन्द्र की श्राद्धकौमुदी एवं वर्षक्रियाकौमुदी में और रघुनन्दन के स्मृतितत्त्व के तत्त्वों में बहुत की गई है। जीमूतवाहन का दायभाग सर्वप्रसिद्ध ग्रन्थ है। हिन्दूकानूनों में विशेषतः रिक्थविभाजन, स्त्रीधन, पुनर्मिलन आदि में इसका विशेष उपयोग किया जाता है। बंगाल में मिताक्षरा का इतना प्रभाव नहीं है रघुनन्दन के जितना दायभाग का है। इसके अनेक भाष्यकार हो गये हैं। दायभाग और मिताक्षरा के विचारों में भेद हैं—दायभाग में पुत्रों को जन्म से पैतृक संपत्ति में अधिकार नहीं है बल्कि पिता के स्वत्त्व के विनाश पर ही (पिता की मृत्यु होने पर, पतित होने पर, संन्यासी होने पर ही) पुत्र दायपर अधिकार पा सकते हैं। या पिता की इच्छा पर उसमें और पुत्रों में विभाजन हो सकता है। पति के अधिकार पर विधवा का अधिकार हो जाता है, भले ही पति एवं उसके भाई का संयुक्त धन हो। रिक्थाधिकार मृतव्यक्ति के पिण्डदान करने पर निर्भर है। मिताक्षरा के अनुसार सगोत्रता पर निर्भर नहीं है।

अपरार्क (१११५–११३०ई०उ०)

अपरादित्य ने याज्ञवल्क्यस्मृति पर अत्यन्त विस्तृत व्याख्या के रूप में एक महान् निबन्ध ही लिख डाला, जो अपरार्क नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस निबन्ध के अन्त में लेखक विद्याधरवंश के जीमूतवाहन के कुल में उत्पन्न राजा शिलाहार अपरादित्य कहे गये हैं। इनका निबन्ध मिताक्षरा से कई बातों में भिन्न है। अपरादित्य जीमूतवाहन वंश के शिलाहार राजकुमार थे। शिलाहारों के अभिलेखों से पता चलता है कि उनकी तीन शाखाएँ थीं, जिनमें एक उत्तरी कोंकण के थाणा नामक स्थान में, दूसरी दक्षिणी कोंकण में तथा तीसरी कोल्हापुर में थी।

श्रीधर (११५० ई० उ०)

श्रीधर का स्मृत्यर्थसार नामक निबन्ध प्रसिद्ध है। इसमें पूर्वयुगादेशित एवं कलियुगवर्जित कर्म, संस्कारसंख्या, उपनयन का विस्तृत वर्णन, ब्रह्मचारी के कर्तव्य, अनध्याय, विवाह, विवाहप्रकार, सपिण्डता के कारण निषेध, गोत्रप्रवरविवेचन, आह्निककर्म, श्राद्ध का विस्तृत वर्णन, मलमास आदि अनेक विषय बताये गये हैं। श्रीधर विश्वामित्र गोत्र के विष्णुभट्ट के पुत्र थे।

अनिरुद्ध (११६८ ई० उ०)

ये बंगाल के प्राचीन एवं प्रसिद्ध धर्मशास्त्रकार हैं। इनके दो ग्रन्थ हारलता एवं पितृदायिता अथवा कर्मोपदेशिनी पद्धति अतिप्रसिद्ध हैं। इन दोनों ग्रंथों में आचारसंबन्धी बातों पर प्रकाश डाला गया है। बल्लालसेन के दानसागर से पता चलता है कि अनिरुद्ध बंगाल के राजा वल्लालसेन के गुरु थे।

वल्लालसेन (१०९० १०९१ ई० उ०)

बंगाल के राजा वल्लालसेन ने चार ग्रन्थों का संपादन किया है। वेदाचार्य के स्मृतिरत्नाकर में एवं मदनपारिजात में बल्लालसेन के आचारसागर का वर्णन है। इनकी दूसरी कृति प्रतिष्ठासागर है। तीसरी कृति दानसागर है। चण्डेश्वर के दानरत्नाकर में एवं निर्णयसिन्धु में दानसागर का उल्लेख आया है। बल्लालसेन की चौथी कृति अद्‌भुतसागर का उल्लेख टोडरानन्द संहिता-सौख्य एवं निर्णयसिन्धु में हुआ है। रघुनन्दन के कथनानुसार दानसागर अनिरुद्ध भट्ट के द्वारा लिखा गया है। किन्तु बात ऐसी नहीं है, क्योंकि दानसागर में स्वयं बल्लालसेन ने लिखा है कि यह ग्रन्थ उन्होंने अपने गुरु (अनिरुद्ध) की देखरेख में लिखा है।

देवण भट्ट (१२००–१२२५ ई० उ०)

देवण भट्ट की स्मृतिचन्द्रिका धर्मशास्त्र का अतिप्रसिद्ध निबन्ध ग्रन्थ है। ये केशवादित्य भट्ट के पुत्र एवं सोमयाजी भी कहे गये हैं। स्मृतिचन्द्रिका में अनेक स्मृतिकारों का उल्लेख है। दक्षिण में इनकी स्मृतिचन्द्रिका व्यवहारसंबन्धी एवं न्यायसम्बन्धी बातों में प्रामाणिक मानी जाती है। स्मृतिचन्द्रिका में विज्ञानेश्वर का नाम बड़े आदर से लिया गया है। किन्तु कई स्थानों पर मिताक्षरासे विरोध भी प्रकट किया गया है। वीरमित्रोदय ने हरदत्त एवं देवण भट्ट (स्मृतिचन्द्रिकाकार) को दक्षिणी निबन्धकार कहा है।

हेमाद्रि (१२६०–१२७० ई० उ०)

दाक्षिणात्य धर्मशास्त्रकारों में हेमाद्रि एवं माधव के नाम अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। हेमाद्रि ने एक विपुलकाय निबन्ध का प्रणयन किया, जिसको चतुर्वर्गचिन्तामणि कहते हैं। यह धर्मकृत्यों का विश्वकोष ही है। व्रत, दान, श्राद्ध, काल आदि इस महानिबन्ध के प्रकरण हैं। पूर्वमीमांसा के कतिपय न्यायों को विना जाने इस निबन्ध के श्राद्ध-काल विषयक विवेचनों को समझना कठिन है। हेमाद्रि ने अपरार्क, आपस्तम्बधर्मसूत्र, कर्कोपाध्याय, गोविन्दराज, गोविन्दोपाध्याय, त्रिकाण्डमण्डन, देवस्वामी, निर्णयामृत, न्यायमञ्जरी, पण्डितपरितोष, पृथ्वीचन्द्रोदय, बृहत्कथा, बृहद्वार्तिक, भवदेव, मदननिघन्टु मधुशर्मा, मेधातिथि, वामदेव, विधिरत्न, विश्वप्रकाश, विश्वरूप, विश्वादर्श, शंखधर, शंभु, वृद्धशातातप, भाष्यकार, शिवदत्त, श्रीधर, सोमदत्त, स्मृतिचन्द्रिका आदि कितने ही धर्मशास्त्रों के नाम उद्धृत किए हैं। किन्तु आश्चर्य है कि हेमाद्रि ने विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा का नाम भी कहीं नहीं लिया है। हेमाद्रि ने अपने को देवगिरि के यादवराज महादेव का मंत्री लिखा है।

कुल्लूक भट्ट (११५० १३०० ई० उ०)

इन्होंने मनुस्मृति की व्याख्या के अतिरिक्त स्मृतिसागर नामक एक निबन्ध भी लिखा है, जिसके केवल अशौचसागर, विवादसागर एवं श्राद्धसागर नामक प्रकरणों के अंश अभी तक प्राप्त हो सके हैं। श्राद्धसागर में पूर्व मीमांसासम्बन्धी विवेचन भी है। कुल्लुक भट्ट ने लिखा है कि उन्होंने अपने पिता के आदेश से ही विवादसागर, अशौचसागर एवं श्राद्धसागर ग्रन्थ लिखे हैं।

श्रीदत्त उपाध्याय (१२७५–१३१० ई० उ०)

याज्ञवल्क्य से लेकर आधुनिक काल तक मिथिला ने महत्त्वपूर्ण लेखकों को पैदा किया है। मध्ययुगीन मैथिल निबन्धकारों में श्रीदत्त उपाध्याय अतिप्राचीन हैं। इन्होंने आचारादर्श नामक निबन्ध के अतिरिक्त भी अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया है। आचारादर्श शुक्लयजुर्वेद की वाजसनेयी शाखावालों के लिये है। इसमें आह्निक धार्मिक कृत्यों का वर्णन है। इस ग्रन्थ पर दामोदर मैथिल द्वारा लिखित आचारादर्शबोधिनी नामक टीका भी है। सामवेदियों के लिये उन्होंने छान्दोगाह्निक नामक आचार पुस्तक लिखी है। इसका उल्लेख उनकी समयप्रदीप एवं पितृभक्ति नामक ग्रन्थों में हुआ है। यजुर्वेदियों के लिये पितृभक्ति नामक श्राद्धसम्बन्धी पुस्तक है। रुद्रधर के श्राद्धविवेक में इस ग्रन्थ की चर्चा की गई है।

चण्डेश्वर (१३००–१३७० ई० उ०)

मिथिला के धर्मशास्त्रीय निबन्धकारों में चण्डेश्वर श्रेष्ठ माने जाते हैं। इनका स्मृतिरत्नाकर एक विस्तृत निबन्ध है। इसमें कृत्य, दान, व्यवहार, शुद्धि, पूजा, विवाद, एवं गृहस्थ नामक सात अध्याय हैं। तिरहुत में हिन्दू व्यवहारों (कानूनों) के लिये चण्डेश्वर का विवादरत्नाकर एवं वाचस्पति का विवादचिन्तामणि प्रामाणिक ग्रन्थ माने जाते हैं। स्मार्त विषयों के अतिरिक्त चण्डेश्वर ने कृत्यचिन्तामणि, राजनीतिरत्नाकर आदि कई ग्रन्थ लिखे हैं। चण्डेश्वर राजमन्त्री थे।

मैथिल और बंगाली लेखकों पर चण्डेश्वर का बहुत प्रभाव है। वीरमित्रोदय ने रत्नाकर को पौरस्त्यनिबन्ध (पूर्वी निबन्ध) कहा है।

माधवाचार्य (१३३०–१३८५ ई०)

धर्मशास्त्र के दाक्षिणात्य निबन्धकार माधवाचार्य की सर्वमान्यता आद्य शंकराचार्य के समान ही है। ये प्रकाण्ड विद्वान्, दूरदर्शी, राजनीतिज्ञ और विजयनगर के राजा-बुक्क के प्रधान मंत्री थे। वृद्धावस्था में वास्तविक संन्यासी के रूप में दिखलाई पड़ते हैं। इनकी अनेक कृतियां हैं उनमें भी पराशरमाधवीय और कालमाधव अत्यन्त प्रसिद्ध है। यह केवल पराशरस्मृति की व्याख्या ही नहीं प्रत्युत आचार सम्बन्धी एक महान निबन्ध भी है। दक्षिण भारत के व्यवहारों में पराशरमाधवीय का विशेष महत्त्व है। इसकी शैली सरल और मधुर है। इसी प्रकार कालमाधव के पांच प्रकरण हैं—उपोद्घात, वत्सर, प्रतिपत्प्रकरण, द्वितीयादि तिथिप्रकरण, प्रकीर्णक। प्रथम प्रकरण में काल और उसके स्वरूप का विवेचन, दूसरे प्रकरण में वर्ष एवं उसके चान्द्र, सावन या सौर, दो अयनों, ऋतुओं एवं उनकी संख्या, चान्द्र, एवं सौर मासों मलमासों, दोनों पक्षों आदि भागों का विवेचन है। तीसरे प्रकरण में तिथि शब्द के अर्थ, तिथि-अवधि, एक पक्ष की पन्द्रह तिथियों, शुद्धा एवं विद्धा नाम के उसके दो प्रकार, तिथियों पर क्रिया करने के नियमादि, रात और दिन के १५ मुहूर्तों आदि की चर्चा है। चौथे प्रकरण में प्रतिपत् से समस्त तिथियों तक के नियम प्रयोग हैं। पांचवे प्रकरण में विभिन्न प्रकार के कार्यों के नक्षत्रनिर्णय के विषय में नियमों का प्रतिपादन किया गया है। ये यजुर्वेद की बौधायनशाखा एवं भारद्वाज गोत्र के ब्राह्मण थे। वृद्धावस्था में संन्यास लेने पर ये विद्यारण्य नाम से प्रसिद्ध हुए। १३७७ ई० में इन्होंने संन्यास ग्रहण किया था। किंवदन्तियों से ज्ञात होता है कि ९० वर्ष की अवस्था में ये समाधिस्थ हुए।

मदनपाल एवं विश्वेश्वर भट्ट १३६०–१३९० (ई० उ०)

मदनपाल के आश्रय में विश्वेश्वर भट्ट ने मदनपारिजात नामक एक निबन्ध लिखा। मदनपाल राजाभोज के समान ही एक विद्याव्यसनी राजा थे। इनके राज्यकाल में मदनपारिजात, स्मृतिमहार्णव (मदनमहार्णव), तिथिनिर्णयसार एवं स्मृतिकौमुदी नामक चार ग्रन्थ लिखे गये। विश्वेश्वर भट्ट ने धर्मशास्त्र सम्बन्धी सुबोधिनी नामक एक अन्य ग्रन्थ भी लिखा है। यह सुबोधिनी, विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा की एक व्याख्या है। विश्वेश्वर भट्ट द्रविड देश के निवासी थे।

मदनरत्न (१३५०–१५०० ई०)

मदनरत्न (मदनरत्नप्रदीप या मदनप्रदीप) एक विशाल निबन्ध है। इसमें सात उद्योत हैं। काल, आचार, व्यवहार, प्रायश्चित्त, दान, शुद्धि एवं शान्ति। राजा मदन सिंह ने रत्नाकर, गोपीनाथ, विश्वनाथ एवं गंगाधर को बुलाकर इस निबन्ध के प्रणयन का भार उन पर सौंप दिया था।

शूलपाणि (१३७५–१४६० ई०)

बंगाल के धर्मशास्त्रकारों में जीमूतवाहन के पश्चात् शूलपाणि का ही नाम आता है। धर्मशास्त्रसम्बन्धित विभिन्न विषयों पर इन्होंने अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि सबको मिलाकर स्मृतिविवेक यह एक नामकरण कर दिया होगा। इनके विभिन्न ग्रन्थ—एकादशीविवेक, दुर्गोत्सवप्रयोगविवेक, दुर्गोत्सवविवेक, दोलायात्राविवेक, प्रतिष्ठाविवेक, प्रायश्चित्तविवेक, व्रतकालविवेक, शुद्धिविवेक, श्राद्धविवेक, संक्रान्तिविवेक तथा सम्बन्धविवेक उपलब्ध होते हैं। शूलपाणि की श्राद्धविवेक नामक कृति अत्यन्त प्रसिद्ध है। इस पर अनेक भाष्य हैं, जिनमें श्रीनाथ, आचार्यचूडामणि एवं गोविन्दानन्द के भाष्य अति प्रसिद्ध हैं।

रुद्रधरोपाध्याय (१४२५–१४६० ई०)

रुद्रधरोपाध्याय, मैथिल धर्मशास्त्रकार थे। ये अनेक ग्रन्थों के लेखक हैं। इनका शुद्धिविवेक नामक निवन्ध अत्यन्त विख्यात है। इसमें तीन परिच्छेद हैं। इनका एक श्राद्धविवेक भी है जो चार परिच्छेदों में विभक्त है।

मिसरूमिश्र (१४००–१४५० ई० उ०)

इन्होंने विवादचन्द्र नामक निबन्ध लिखा है जिसमें ऋणादान, न्यास, अस्वामिविक्रय, संभूय-समुत्थान (साझा), दायविभाग, स्त्रीधन, अभियोग, उत्तरप्रमाण, साक्षी आदिपरक व्यवहार-पद हैं। विवादचन्द्र, मिथिला में व्यवहारसम्बन्धी प्रमाणिक ग्रन्थ माना जाता है।

वाचस्पति मिश्र (१४२५–१४९० ई० उ०)

मिथिला के सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार वाचस्पतिमिश्र ने व्यवहार (कानून) पर विवाद-चिन्तामणि नामक निबन्ध लिखा है, जो संसार में अत्यन्त प्रसिद्ध है। चिन्तामणि नाम से इनके (११) ग्यारह ग्रन्थों का पता चल सका है। आचारचिन्तामणि में वाजसनेयियों के आन्हिककृत्यों का उल्लेख है। इसी प्रकार शुद्धि चिन्तामणि, कृत्यचिन्तामणि, तीर्थचिन्तामणि, आन्हिकचिन्ता-मणि, द्वैतचिन्तामणि, नीतिचिन्तामणि, व्यवहारचिन्तामणि, शूद्राचारचिन्तामणि आदि। इसके अतिरिक्त कतिपय निर्णयों का भी इन्होंने प्रणयन किया, जैसे—तिथिनिर्णय, द्वैतनिर्णय महादान-निर्णय, शुद्धिनिर्णय, आदि। इसी प्रकार इन्होंने सात महार्णवों का भी निर्माण किया है, जैसे कृत्य, आचार-विवाद, व्यवहार, दान, शुद्धि एवं पितृयज्ञ। वाचस्पतिमिश्र धर्मशास्त्रकार होने के अतिरिक्त दार्शनिक भी थे। ये महाराजाधिराज हरिनारायण के पारिषद (सलाहकार) भी थे।

नृसिंहप्रसाद (१४९०–१५१५ ई० उ०)

इनके रचित निबन्ध को धर्मशास्त्रसम्बन्धी विश्वकोष ही कहना चाहिये। इनके निबन्ध बारह भागों में विभक्त है, जैसे—संस्कार, अह्निक, श्राद्ध, काल, व्यवहार, प्रायश्चित्त, कर्मविपाक, व्रत, दान, शांति, तीर्थ एवं प्रतिष्ठा। प्रत्येक विभाग के अंत में नृसिंह भगवान् की प्रार्थना की गई है। लेखक ने स्वयं अपने को शुक्लयजुर्वेदी, भारद्वाजगोत्रोत्पन्न, वल्लभ का पुत्र दलपति कहा है। शंकरभट्ट के द्वैतनिर्णय में एवं नीलकण्ठ के मयूखों में इसका उल्लेख किया गया है।

प्रतापरुद्र देव (१५००–१५२५ ई० उ०)

उड़ीसा में (कटक) कटक नगरी के गजपतिकुल के राजा प्रतापरुद्रदेव ने सरस्वती-विलास नामक निबंध का प्रणयन किया है। दक्षिण में यद्यपि सरस्वतीविलास का बहुत महत्त्व है। तथापि इनका स्थान मिताक्षरा से नीचे है। प्रतापरुद्र देव ने १४९७ ई० से १५३९ ई० तक राज्य किया। अतः सरस्वती विलास की रचना १६वीं शताब्दी के प्रथम चरण में हुई होगी।

गोविन्दानन्द (१५००–१५४० ई० उ०)

गोविंदानंद के अनेक ग्रंथ हैं जिनमें दानकौमुदी, शुद्धिकौमुदी, श्राद्धकौमुदी, वर्षक्रिया-कौमुदी, अतिप्रसिद्ध हैं। ये गणपतिभट्ट के पुत्र थे, इनकी पदवी कविकङ्कणाचार्य थी। ये बंगाल के मिदनापुर जिले के बाग्री स्थान के निवासी थे। इनके साहित्यिक रचनाकाल १५०० से १५४० माना गया है।

रघुनन्दन १५२०–१५७५ ई. उ.)

ये बङ्गाल के अन्तिम और अत्यन्त प्रसिद्ध धर्मशास्त्रकार थे। इन्होंने स्मृतितत्त्व नामक विशाल निबन्ध का प्रणयन किया है, जिसमें २८ तत्त्व है। इन्होंने अपने विशाल निबन्ध में लगभग ३०० ग्रन्थों का उल्लेख किया है। अपने पाण्डित्य के कारण कालान्तर से स्मार्तभट्टाचार्य नाम से ये विख्यात हुए। वीरमित्रोदय एवं नीलकण्ठ ने इनका स्मार्त नाम से उल्लेख किया

हैं। स्मृतितत्त्व के अतिरिक्त रघुनंदन ने अन्य ग्रंथ भी लिखे हैं। बंगाल में रघुनंदन के ग्रंथों का अधिकतर प्रचार है। रघुनंदन एवं वैष्णव संत चैतन्य महाप्रभु दोनों वासुदेव सार्वभौम के शिष्य थे।

नारायण भट्ट (१५१३ १५८० ई० उ०)

नारायण भट्ट वाराणसी के प्रसिद्ध भट्टकुल के श्रेष्ठतम निबन्धकार माने जाते हैं। नारायण भट्ट ने धर्मशास्त्र पर अनेक ग्रंथ लिखे हैं, जिनमें अन्त्येष्टिपद्धति, त्रिस्थलीसेतु एवं प्रयोगरत्न बहुत प्रसिद्ध हैं। नारायण भट्ट के पिता रामेश्वर भट्ट पैठण (प्रतिष्ठान) से वाराणसी आये थे। उनके पण्डित्य से आकृष्ट होकर दूर-दूर से छात्रगण आया करते थे। नारायण भट्ट के पुत्र शंकर भट्ट ने अपने पिता का जीवनचरित्र लिखा है। जिसके अनुसार उनका जन्म १५१३ ई०में हुआ था। अपने पिता रामेश्वर भट्ट के समान ही नारायण भट्ट महापण्डित थे। वाराणसी में नारायण भट्ट को जगद्गुरु की पदवी से अलंकृत किया गया था।

टोडरानन्द (१५२०–१५८९ ई० उ०)

अकबर के वित्तमंत्री राजा टोडरमल ने एक बृहद् ग्रंथ लिखा, जिसे विश्वकोष भी कह सकते हैं। इसके कतिपय भाग आचार, व्यवहार, दान, श्राद्ध, विवेक, प्रायश्चित्त, समय आदि सौख्य के नाम से विख्यात हैं। ग्रन्थ के कतिपय प्रकरण हर्ष कहे गये हैं। टोडरानंद निबन्धकार होने के साथ ही कुशल सेनापति, मंत्री एवं राजनीतिज्ञ भी थे। ये जाति के खत्री थे।

नन्दन (नन्द) पंडित (१५९०–१६३० ई० उ०)

ये धर्मशास्त्र पर विस्तार से लिखनेवाले धुरंधर लेखक थे। इन्होंने पराशरस्मृति पर विद्वन्मनोहरा नामक व्याख्या लिखी है। इन्होंने विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा पर संक्षिप्त भाष्य लिखा है, जिसे प्रमिताक्षरा या प्रतीताक्षरा कहा जाता है। स्मृतियों पर इनका एक स्मृति-सिन्धु नामक निबन्ध भी है, जिसपर इन्होंने स्वयं ही तत्त्वमुक्तावलि नामक टीका भी लिखी है।

वैजयन्ती या केशववैजयन्ती नामक ग्रन्थ नन्दपण्डित का बहुत प्रसिद्ध है। यह विष्णु-धर्मसूत्र का भाष्य है। यह भाष्य इन्होंने अपने आश्रयदाता केशव नायक के आग्रह पर लिखा है। इसीलिये इसे केशववैजयन्ती नाम से कहा जाता है। आधुनिक हिंदू कानून की वाराणसी-शाखा में वैजययंती का प्रमुख योग रहा है। वैजयन्ती में लेखक ने अपनी अन्य कृतियों प्रमिताक्षरा, श्राद्धकल्पलता, शुद्धिचन्द्रिका, दत्तकमीमांसा का उल्लेख किया है। नन्दपण्डित ने यद्यपि मिताक्षरा का अनुसरण किया है तथापि स्थान स्थान पर उसके लेखक विज्ञानेश्वर का खण्डन भी किया है। दत्तकमीमांसा नन्दपण्डित की बहुत प्रसिद्ध पुस्तक है। जिसमें गोद लेने के विषय (एड़ाप्शन) पर पूर्णरूप से विवेचन किया गया है। अंग्रेजी राज्य में प्रिवीकौंसिल तक इसका हवाला दिया जाता रहा है। नन्दपंडित दाक्षिणात्य महाराष्ट्रीय पण्डित थे। इनका उपनाम धर्माधिकारी था। इनके पूर्वज वाराणसी में आये। नन्दपण्डित अनेक आश्रयदाताओं के यहाँ जाते आते थे। इनके वंश के लोग आज भी वाराणसी में हैं। माण्डलिक के मतानुसार नन्द-पण्डित ने १३ पुस्तकें लिखी हैं। इनकी कृतियों का काल १५९५ ई० से १६३० ई० है।

कमलाकर भट्ट (१६१०–१६४० ई० उ०)

कमलाकर भट्ट वाराणसी के भट्टकुल के प्रसिद्ध भट्टों में गिने जाते हैं। ये नारायण-भट्ट के पौत्र और रामकृष्ण भट्ट के पुत्र थे। कमलाकर भट्ट ने सभी शास्त्रों पर अपनी सिद्ध-लेखनी का उपयोग किया है। ये न्याय-व्याकरण-मीमांसा-वेदान्त-साहित्य-धर्मशास्त्र एवं वैदिक यज्ञों के मर्मज्ञ थे। इन्होंने विवादताण्डव नामक अपने ग्रन्थ में अपनी २१ ग्रन्थों की कृतियों

का भी उल्लेख किया है। मीमांसावार्तिक (तंत्रवार्तिक) एवं शास्त्रदीपिका पर व्याख्या भी लिखी है। इनका शूद्रकमलाकर, विवादताण्डव, निर्णयकमलाकर या निर्णयसिंधु तो बहुत ही प्रसिद्ध हैं। इनमें भी निर्णयसिन्धु सबसे अधिक प्रसिद्ध है। निर्णयसिन्धु की रचना १६१२ ई० में हुई थी।

नीलकण्ठ भट्ट (१६१०–१६४५ ई० उ०)

नीलकण्ठ भट्ट नारायण भट्ट के पौत्र और शङ्कर भट्ट के कनिष्ठ पुत्र थे। शङ्कर भट्ट एक उद्‌भट मीमांसक थे। उन्होंने मीमांसा में शास्त्रदीपिका-व्याख्या, विधिरसायनदूषण, मीमांसाबालप्रकाश तथा धर्मशास्त्र में द्वैतनिर्णय, धर्मप्रकाश या सर्वधर्मप्रकाश नामक ग्रन्थ लिखे। नीलकण्ठ ने यमुना और चम्बल के संगम के भरेह नामक स्थान के सेंगर वंशी बुंदेल सरदार भगवन्त देवके सम्मान में भगवन्त भास्कर नाम का धर्मशास्त्रसम्बन्धी निबन्ध भी लिखा, जो १२ मयूखों (संस्कार, आचार काल, श्राद्ध, नीति, व्यवहार, दान, उत्सर्ग, प्रतिष्ठा, प्रायश्चित्त, शुद्धि, शान्ति) प्रकरणों में है। पश्चिमी भारत के कानून में उनका व्यवहारमयूख प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है।

मित्रमिश्र का वीरमित्रोदय (१६१०–१६४० ई० उ०)

वीरमित्रोदय धर्मशास्त्र के विषयों पर चतुर्वर्गचिन्तामणि के समान एक विशाल निबन्ध है। इसका व्यवहारविवेचन बहुत ही उपयुक्त है। यह कई प्रकाशों में विभाजित है। मित्रमिश्र वादविवाद में नीलकण्ठ से बहुत आगे बढ़े चढ़े हैं। हिन्दू कानून की वाराणसी शाखा में वीरमित्रोदय का बड़ा महत्त्व रहा है। ये हंसपण्डित के पौत्र और परशुराम पण्डित के पुत्र थे। हंसपण्डित गवालियर के निवासी थे।

अनन्तदेव (१६५०–१६८० ई० उ०)

अनन्तदेव ने धर्मशास्त्र पर स्मृतिकौस्तुभ नामक एक निबन्ध लिखा, जिसमें संस्कार, आचार, राजधर्म, दान, उत्सर्ग, प्रतिष्ठा, तिथि और संवत्सर नाम के सात प्रकरण हैं। इसका आधुनिक न्यायालयों में पर्याप्त आदर रहा है। ये महाराष्ट्र सन्त एकनाथ के वंशज थे। बाजबहादुर उनके आश्रयदाता थे।

नागोजि भट्ट १७००–१७५० (ई० उ०)

नागोजि भट्ट एक अद्‌भुत उत्कृष्ट कोटि के विद्वान थे। यद्यपि उनकी अत्यन्त प्रसिद्धि व्याकरण में है, तथापि उन्होंने साहित्य, धर्मशास्त्र, योग तथा अन्य शास्त्रों पर भी अधिकारपूर्ण लिखा है। उनके आचारेन्दुशेखर, अशौचनिर्णय, तिथीन्दुशेखर, तीर्थेन्दुशेखर, प्रायश्चित्तेन्दुशेखर, श्राद्धेन्दुशेखर, सपिण्डीमञ्जरी, सापिण्ड्यदीपक नाम के धर्मशास्त्रपरक ग्रन्थ हैं। नागोजि भट्ट महाराष्ट्र ब्राह्मण थे। उनका उपनाम 'काले' था। वे प्रसिद्ध वैयाकरण भट्टोजिदीक्षित की परम्परा में हुए थे। वे भट्टोजिदीक्षित के पौत्र के शिष्य थे।

बालंभट्ट (१७३०–१८२० ई० उ०)

लक्ष्मी व्याख्या या बालंभट्टी नाम का मिताक्षरा पर भाष्य है। कहा जाता है कि यह लक्ष्मी देवी नामक स्त्री के द्वारा प्रणीत है। बालंभट्टी के प्रारम्भ में विदित होता है कि लक्ष्मी पायगुण्डे की पत्नी थी और मुद्‌गल गोत्र के खेरडा उपनामक महादेव की पुत्री थी। लक्ष्मी का दूसरा नाम उमा भी था। आचार भाग के अन्त में लिखा है कि इसकी लेखिका लक्ष्मी महादेव और उमा की पुत्री है तथा वैद्यनाथ पायगुण्डे की पत्नी और बालकृष्ण की माता है। लक्ष्मी ने नारियों के स्वत्व की रक्षा करने का खूब प्रयत्न किया है।

काशीनाथोपाध्याय (१७९० ई० उ०)

प्रस्तुत धर्मसिन्धुग्रन्थ काशीनाथोपाध्याय रचित है। इसे धर्मसिन्धुसार या धर्माब्धिसार भी कहते हैं। इसकी रचना १७९० में की गई है। यह निबन्ध दक्षिण भारत में परम प्रामाणिक माना जाता है। काशीनाथोपाध्याय ने मंगलाचरण के बाद स्वयं लिखा है कि उन्होंने अपने पूर्ववर्ती निबन्धों को पढ़कर निर्णयसिन्धु में वर्णित विषयों के आधार पर ही इस ग्रन्थ में केवल सारतत्त्व का ही संकलन किया है जिसमें सर्वसाधारण धर्मजिज्ञासु संस्कृतज्ञसमुदाय धर्मनिर्णय कर सकें। सम्पूर्ण ग्रन्थ तीन परिच्छेदों में विभक्त है जिसमें तीसरा बृहत् है और दो भागों में विभाजित है।

काशीनाथोपाध्याय उद्भट विद्वान थे। वे सोलापुर जिले के पंढरपुर के देवता पाण्डुरङ्ग (विठोबा या विट्ठल) के परम भक्त थे। उन्होंने धर्मसिन्धु के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थ भी लिखे हैं। जैसे—प्रायश्चित्तशेखर, विट्ठल-ऋङ्मन्त्रसारभाष्य, वैष्णवतोषणी, वेदस्तुति पर व्याख्या आदि। मराठीकवि मोरोपन्त ने इनका जीवनचरित्र लिखा है। ये महाराष्ट्र ब्राह्मण थे और रत्नागिरि जिले के गोलाकी ग्राम के निवासी थे। ये कवि मोरोपन्त के सम्बन्धी थे। उनकी कन्या आवडी का विवाह कवि मोरोपन्त के द्वितीय पुत्र से हुआ था। अन्त में उन्होंने चतुर्थाश्रम स्वीकार किया और वे सन् १८०५-६ ई० में समाधिस्थ हुए, अस्तु।

इन्हीं का दूसरा नाम बाबा पाध्ये भी था। इनकी विद्वत्ता एवं आचरण की समाज पर बड़ी छाप थी। समाज इन पर पूर्ण विश्वास रखता था और इन्हें अत्यन्त श्रद्धा की दृष्टि से देखता था, जिसके फलस्वरूप 'बाबावाक्यं प्रमाणम्' यह कहावत प्रचलित हो गई, अस्तु।

यहां तक कतिपय स्मृतिकार, उनके व्याख्याकार एवं निबन्धकारों के प्राप्त संक्षिप्त परिचय लिख कर अब धर्मशास्त्र की महत्त्वपूर्ण काल गणना पर भी थोड़ा सा विचार पाठकों के सामने रखता हूं—

काल-गणना में मन्वन्तर, युगादि के पश्चात् संवत्सर (संवत्) का नाम आता है। युग-भेद से सत्ययुग में ब्रह्म-संवत्, त्रेता में वामन संवत्, परशुराम संवत् तथा श्रीरामसंवत्, द्वापर में युधिष्ठिर संवत् और कलि में विक्रम, विजय, नागार्जुन और कल्कि के संवत् प्रचलित हैं। इनके अतिरिक्त अनेक राजाओं तथा सम्प्रदायाचार्यों के नाम पर संवत् चलाये गये हैं। भारतीय-संवतों के अतिरिक्त विश्व में अन्यान्य धर्मों के भी संवत् हैं। फिर भी भारतीय संवत् इन सब से अत्यन्त प्राचीन है। भारतीय संवत् गणित की दृष्टि से निश्चित किये गये हैं। संवत् चलाने की भारतीय विधि यह रही है कि जिसे अपना संवत् चलवाना हो उसका कर्तव्य होता है कि बहुत पहिले अपने राष्ट्र तथा राष्ट्रवासियों में से प्रत्येक का ऋण अपनी ओर से चुकता करे, जिससे राष्ट्र तथा राष्ट्र का कोई भी नागरिक किसी का ऋणी न रहे। भारत का सर्वमान्य संवत् विक्रम संवत् है। उज्जैन के सम्राट् महाराज विक्रम के इस वैज्ञानिक संवत् के साथ विश्व में प्रचलित ईस्वी-सन पर भी ध्यान देना चाहिये। ईस्वी सन् का मूल रोमन संवत् है। पहिले यूनान में ओलिम्पियद् संवत् था, जिसमें ३६० दिन का वर्ष माना जाता था। रोमनगर की प्रतिष्ठा के दिन से वही रोमन संवत् कहलाने लगा। ईस्वी सन् की गणना ईसामसीह के जन्म के तीन वर्ष बाद से की जाती है। रोमन सम्राट् जूलियस सीजर ने ३६० दिन के बदले ३६५½ दिन के वर्ष को प्रचलित किया। छठी शताब्दी में डायोनिसीयस ने इस सन् में फिर संशोधन किया, किन्तु फिर भी प्रतिवर्ष २७ पल, ५५ विपल का अन्तर पड़ता ही रहा। सन् १७३९ में यह अन्तर बढ़ते बढ़ते ११ दिन का हो गया। तब पोप ग्रेगरीने आज्ञा निकाली कि 'इस वर्ष २ सितम्बर के पश्चात् ३ सितम्बर को

१४ सितम्बर कहा जाय और जो ईस्वी सन् ४ की संख्या से विभाजित हो सके, उसका फरवरी मास २९ दिन का हो। वर्ष का प्रारम्भ २५ मार्च के स्थान पर १ जनवरी से माना जाय।' इस आज्ञा को इटली, डेनमार्क, हालैण्ड ने उसी वर्ष स्वीकार कर लिया। जर्मनी और स्विजरलैण्ड ने सन् १७५९ में, इंगलैण्ड ने सन् १८०९ में, प्रशिया ने सन् १८३५ में, आयरलैण्ड ने सन् १८३९ में और रूस ने सन् १८५९ में इसे स्वीकार किया।

इतना संशोधन होने पर भी इस ईस्वी सन् में सूर्य की गति के अनुसार प्रतिवर्ष एक पल का अन्तर पड़ता है। सामान्य दृष्टि से यह बहुत थोड़ा अन्तर है, पर गणित के लिये यह एक बड़ी भूल है। ३६०० वर्षों के बाद यही अन्तर एक दिन का हो जायगा और ३६,००० वर्षों के बाद दस दिन का और इस प्रकार यह चालू रहा तो किसी दिन जून का महीना वर्तमान अक्तूबर के शीतल समय में पड़ने लगेगा। ऐसा होने पर गणित की दृष्टि से एक बड़ी भूल होगी। भारत का राष्ट्रीय संवत् तो केवल विक्रम संवत् ही हो सकता है, जिसमें आज तक कोई अन्तर नहीं पड़ा और न आगे पड़ने की संभावना है।

संवत्सर की उत्पत्ति वर्ष गणना के लिये ही होती है। ऋतु, मास, तिथि आदि सब वर्ष के ही अंग हैं, ब्राह्म, पित्र्य, दैव, प्राजापत्य, गौरव, सौर, सावन, चान्द्र और नाक्षत्र—इन भेदों से नौ प्रकार की वर्ष-गणना होती है। इनमें ब्राह्म, दैव, पित्र्य और प्राजापत्य—ये चारों वर्ष कल्प तथा युग संबधी लंबी गणना के काम में प्रयुक्त होते हैं। शेष गौरव (बार्हस्पत्य), सौर, सावन, चान्द्र और नाक्षत्र वर्ष साधारण व्यवहार के लिये हैं। भारत को छोड़ अन्य देशों में प्रायः मुस्लिम देशों में चान्द्रवर्ष तथा दूसरों में सौर और सावन वर्षों से कालगणना की जाती है। भारत में पांचों प्रकार की लौकिक वर्षगणना का सामञ्जस्य सौर वर्ष में क्षय-वृद्धि करके बनाये रखते हैं। इस प्रकार लौकिक वर्ष गणना सौर वर्ष से होती है। इस सौर के दो भेद हैं सायन और निरयण। इनमें निरयण वर्ष गणना केवल भारत में प्रचलित है। सभी देशों में सायनमत एक-सा माना जाता है। क्योंकि सायनमान दृश्य गणित पर निर्भर है। निरयण गणना केवल यंत्रों के द्वारा ही संभव है; अतः निरयण वर्ष के मान में मतभेद है। विभिन्न ज्योतिषाचार्यों के मतानुसार विभिन्त वर्षों के कालमान की नीचे एक तालिका दी जा रही है। इससे वर्षों का अन्तर समझ में आ सकेगा—

सिद्धान्त	कालमान				
१ सूर्यसिद्धान्त—	वर्ष······३६५ दिन,	१५ घटी,	३१ पल,	३१ विपल,	२४ प्रतिविपल
२ वेदाङ्गज्योतिष	,,·· ··· ३६६ ,,	० ,,	० ,,	० ,,	० ,,
३ आर्य भट्ट	,,······ ३६५ ,,	१५ ,,	३१ ,,	१५ ,,	० ,,
४ ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त	,,······ ३६५ ,,	१५ ,,	३० ,,	२२ ,,	३० ,,
५ पितामह सिद्धान्त	,,······ ३६५ ,,	२१ ,,	१५ ,,	० ,,	० ,,
६ ग्रहलाघव	,,······ ३६५ ,,	१५ ,,	३१ ,,	३० ,,	० ,,
७ ज्योतिर्गणित (केतकर)	,,······ ३६५ ,,	१५ ,,	२२ ,,	५७ ,,	० ,,
८ लॉकियर (नाक्षत्र)	,,······ ३६५ ,,	१५ ,,	२२ ,,	५२ ,,	९ ,,
९ लॉकियर (मन्द्रकेन्द्र)	,,······ ३६५ ,,	१५ ,,	३४ ,,	३४ ,,	० ,,
१० लॉकियर (सायन)	,,······ ३६५ ,,	१४ ,,	३१ ,,	५६ ,,	० ,,
११ टालमी (सायन)	,,···— ३६५ ,,	१४ ,,	३७ ,,	० ,,	० ,,
१२ कोपरनिकस (सायन)	,,······ ३६५ ,,	१४ ,,	३९ ,,	५५ ,,	० ,,

सिद्धान्त		कालमान				
१३ मटन (नाक्षत्र)	,,......	३६५ ,,	१५ ,,	४७ ,,	२ ,,	१० ,,
१४ वेबोलियन (नाक्षत्र)	,,......	३६५ ,,	१५ ,,	३३ ,,	७ ,,	४० ,,
१५ खियोनिद	,,......	३६५ ,,	१४ ,,	३३ ,,	३२ ,,	४५ ,,
१६ येषित	,,......	३६५ ,,	१५ ,,	२२ ,,	५७ ,,	३० ,,
१७ गोविन्द सदाशिव आपटे	,,......	३६५ ,,	१५ ,,	२२ ,,	५८ ,,	० ,,
१८ विष्णु गोपाल नवाथे	,,......	३६५ ,,	१४ ,,	३१ ,,	५३ ,,	२५ ,,
१९ आधुनिक यूरोपियन	,,......	३६५ ,,	१५ ,,	२२ ,,	५६ ,,	५२ ,,
२० चान्द्र	,,......	३५४ ,,	२२ ,,	१ ,,	२३ ,,	० ,,
२१ सावन	,,......	३६० ,,	० ,,	० ,,	० ,,	० ,,
२२ बार्हस्पत्य	,,......	३६१ ,,	१ ,,	३६ ,,	११ ,,	० ,,
२३ नाक्षत्र	,,......	३७१ ,,	३ ,,	५२ ,,	३० ,,	० ,,
२४ सौर (जो प्रचलित है)	,,......	३६५ ,,	१५ ,,	३१ ,,	३० ,,	० ,,

तालिका के वर्षों का यदि कल्पों तक की गणना में उपयोग किया जाय तो उनमें से सूर्यसिद्धान्त का मान ही भ्रमहीन एवं सर्वश्रेष्ठ प्रमाणित होता है। सृष्टिसंवत् के प्रारम्भ से यदि आजतक का गणित किया जाय तो सूर्यसिद्धान्त के अनुसार एक दिन का भी अन्तर नहीं पड़ता। चैत्र शुक्ल प्रतिपत संवत् २००२ (१३ अप्रैल सन् १९४५) को लेकर गणित किया गया तो सूर्यसिद्धान्त के अनुसार उस दिन शुक्रवार आता है, और यही दिन है भी; किन्तु यदि प्रचलित आधुनिक यूरोपियन गणना से इतना लम्बा गणित हो तो ४,५०,००० दिनों का अन्तर पड़ेगा। क्योंकि सूर्यसिद्धान्त से प्रतिवर्ष इस गणना में साढे आठ पल से भी अधिक का अन्तर है। सूर्यसिद्धान्त के प्राचीन मान से आधुनिक मान का अन्तर ८ पल ३४ विपल का होता है। प्राचीन अयनगति ६० पल और आधुनिक अयनगति ५० पल, २६ विपल होने से गति का अन्तर ९ पल ३४ विपल होता है। इस प्रकार ९ पल ३४ विपल तथा ८ पल, ३४ विपल में केवल १ पल का अन्तर होता है। इस प्रकार सूर्यसिद्धान्त के मान में एक पल कम करके गणित करने से ५०००वर्ष तक के दिनादि सब ठीक मिलते हैं। भारतीय सूर्यसिद्धान्त की पूर्णता सिद्ध करने के लिये इतना ही पर्याप्त है। अतः भारतीय वर्ष गणना के लिये यह अभ्रान्त सिद्धान्त ही प्रयुक्त होना चाहिये।

जब मैं गवालियर दरबार में था तब ई० १९२४ में गणकभास्कर विष्णुगोपाल नवाथे वहाँ पधारे थे और इसी विषय पर उनसे मेरा शास्त्रार्थ तीन दिन तक राज्य के अनेक अधिकारी, मंत्री, अनेक गणितज्ञ, ज्योतिषाचार्यों एवं विभिन्न शास्त्रज्ञों की उपस्थिति में हुआ था, जिसमें सूर्य सिद्धान्त पक्ष की ही विजय सभी ने स्वीकार की थी। आज मेरी अवस्था ९० तक आ पहुंची है, कभी-कभी प्राचीन घटनाओं का स्मरण हो आता है। सभी शारीरिक शक्तियों ने साथ छोड़ दिया है फिर भी प्राचीनता के गुण गौरव के प्रति आकर्षण, शास्त्रप्रामाण्य के प्रति विश्वास और विद्वानों के प्रति श्रद्धा बढ़ती ही जा रही है।

अन्त में हम उन महामहिमशाली धर्मशास्त्र धुरन्धर विद्वान–भारतरत्न महामहोपाध्याय पी० व्ही० काणे महोदय तथा ज्योतिषशास्त्रधुरन्धर विद्वान् गणितज्ञप्रवर श्री देवकीनन्दन जी खेडवाल महोदय तथा पण्डितप्रवर श्री गोविन्दनारायणजी आसोपा महोदय को भूरि-भूरि हार्दिक धन्यवाद देते हुए सदैव उनकी आयुरारोग्य प्राप्ति के लिये परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ, इन विद्वत्प्रवरों ने केवल धार्मिक समाज को ही नहीं, विद्यारसिक एवं धर्मशास्त्र के अभ्यासी तथा अनुसन्धाताओं के

लिये भी ऐसा प्रशस्त मार्ग बना दिया है जिसे देखकर गुणग्राही किस विद्वान् का हृदय गद्गद न हो उठेगा। इन विद्वानों ने अपने-अपने क्षेत्र में श्लाघनीय घोर परिश्रम किया है। सचमुच धर्मशास्त्र का इतिहास एवं विक्रमसंवत् पर कल्याण में प्रकाशित लेख तथा धर्मलक्षण और रहस्य आदि लेख पठनीय एवं मननीय हैं। बार-बार पढ़ने और सुनने से संस्कार सुदृढ़ होते हैं पश्चात् वे कृति में उतरते हैं इसलिये प्रचार-प्रसार की आवश्यकता होती है। धर्मशास्त्र का इतिहास निर्धनता के कारण जनसाधारण को सुलभ नहीं है, इसी प्रकार मासिक पत्रिका में एक बार प्रकाशित हुए लेख से भी समाज उतना लाभान्वित नहीं हो पाता जितना होना चाहिये। इन सब बातों की ओर ध्यान देकर सर्वसाधारण विद्वानों में उसके प्रचारार्थ प्रस्तुत ग्रन्थोपकारक अंश को यथावस्थित रूप में दे दिया है, जिससे विद्यारसिक समाज लाभान्वित हो सके। 'स तु तत्र विशेषदुर्लभः सदुपन्यस्यति कृत्यवर्त्म यः' भारवि की इस उक्ति के अनुसार भारतरत्न म० म० पाण्डुरंग वामन काणे और ज्योतिर्विद्याधुरंधर पण्डितप्रवर श्री देवकीनन्दन जी खेडवाल एवं पं. प्र. श्री गोविन्दनारायण जी आसोपा को पुनः पुनः धन्यवाद अर्पण कर अपनी कृतज्ञता प्रकट कर रहा हूँ।

प्रस्तुत ग्रन्थ के व्याख्याकार, 'देवरिया' मण्डलान्तर्गत 'मध्यपल्ली' के राज-गुरु तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के भूतपूर्व धर्मशास्त्राध्यापक बलियामण्डलान्तर्गत 'मुनि छपरा' ग्रामनिवासी काशी के सुप्रतिष्ठित कर्मठ विद्वान् धर्मशास्त्राचार्य श्री वसिष्ठदत्त जी मिश्र बहुशः धन्यवादार्ह हैं, जिन्होंने इस महान् लोकप्रिय धर्मशास्त्र की सरल सुबोध हिन्दी व्याख्या लिखकर जनसाधारण का बड़ा ही उपकार किया है। तथा पं. श्री सुदामा मिश्रजी के द्वारा लिखी गई 'सुधा' नामक टिप्पणी भी प्रशंसनीय है।

चौखम्बा संस्कृत सीरीज तथा चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी के अधिकारी वर्ग ने अनेक प्रकार की असुविधाओं के होते हुए भी इस श्रेष्ठ निबन्ध ग्रन्थ की सर्वाङ्गपूर्णता के लिये जो श्रम एवं व्यय किया है, वह स्मरण की वस्तु है और वे बहुशः धन्यवाद के पात्र हैं।

इस प्रस्तावना के लेखन में मेरे चि० पुत्र गजाननशास्त्री, मुसलगांवकर, प्राध्यापक : संस्कृत कालेज, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी ने जो मेरे वचनों को राष्ट्रभाषा हिन्दी में सुलेखबद्ध किया है, उसके लिये वह भी आशीर्वाद का भाजन है, काशीपति भगवान् शंकर उसे सर्व सौख्य प्रदान कर चिरंजीवी रखें, यही हार्दिक अभिलाषा है। इति शम्।

वाराणसी,
श्रीगणेश चतुर्थी
वि० सं० २०२४

शुभेच्छु—
सदाशिवशास्त्री मुसलगाँवकर

परिच्छेद-सूची



विषय-सूची

विषय	पृष्ठांक

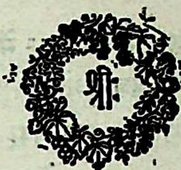
द्वितीय परिच्छेद

चैत्र मास

भाद्रपद मास

संस्कार प्रकरण

आह्निक प्रकरण



धर्मसिन्धुः

'धर्मदीपिका' विशदहिन्दीव्याख्योपेतः

'सुधा' टिप्पण्या च विभूषितः



प्रथमः परिच्छेदः

श्रीविट्ठलं सुकरुणार्णवमाशुतोषं दीनेष्टपोषमघसंहतिसिन्धुशोषम् ।
श्रीरुक्मिणीमतिमुषं पुरुषं परं तं वन्दे दुरन्तचरितं हृदि संचरन्तम् ॥१॥

मेशमुमेशमहंपतिमम्बां दुर्गां गुरुं गिरामधिष्ठात्रीम् ।
पितरौ मरुत्तनूजं दुरितघ्नं श्रीगजाननं वन्दे ॥
धर्मसिन्धोरियं टीका शुभा राष्ट्रगिरा मया ।
वशिष्ठदत्तमिश्रेण सुखबोधाय निर्मिता ॥

धर्मसिन्धु के रचयिता श्री काशीनाथ जी भगवान् कृष्ण के द्वितीय रूप विठ्ठल भगवान् को नमस्कारात्मक मंगलाचरण द्वारा प्रणति-निवेदन करते हुए कहते हैं कि श्री विट्ठल भगवान् कृपा के समुद्र शीघ्र प्रसन्न होने, दीन जनों की इच्छा पूर्ण करने, पापसमूह रूप समुद्र को सुखाने श्री रुक्मिणी के बुद्धि को चुराने, परम पुरुष और सबके हृदय में निवास करने वाले हैं। ऐसे अनन्त चरित भगवान् विठ्ठल की मैं वन्दना करता हूँ ॥ १ ॥

वन्दे प्रतिघ्नन्तमघानि शङ्करं धत्तां स मे मूर्ध्नि दिवानिशं करम् ।
शिवां च विघ्नेशमथो पितामहं सरस्वतीमाशु भजेऽपि तामहम् ॥ २ ॥
श्रीलक्ष्मीं गरुडं सहस्रशिरशं प्रद्युम्नमीशं कपिं
श्रीसूर्यं विधुभौमविद्गुरुकविच्छायासुतान् षण्मुखम् ।
इन्द्राद्यान् विबुधान् गुरूंश्च जननीं तातं त्वनन्ताभिधं
नत्वार्यान् वितनोमि माधवमुखान् धर्माब्धिसारं मितम् ॥ ३ ॥

श्रीशङ्कर भगवान् को प्रणाम करता हूँ जो पापों को दूर करने वाले हैं। वह मेरे मस्तक पर रात दिन अपना वरद हाथ रखें। पार्वती, गणेश, ब्रह्मा तथा सरस्वती की मैं आराधना करता हूँ। (मैं ग्रन्थकार) श्री लक्ष्मी, गरुड़, सहस्र शिर वाले शेष, कामदेव. शंकर हनुमान, सूर्य. चन्द्र, मंगल, बुध. बृहस्पति. शुक्र, शनि, कार्तिकेय, इन्द्र, आदि देवता, गुरु, माता और अनन्त नाम के पिता तथा माधव आदि आचार्यों को प्रणाम करके इस धर्मसिन्धु-सार नामक ग्रंथ का विस्तार से वर्णन करता हूँ ॥ २-३ ॥

दृष्ट्वा पूर्वनिबन्धान्निर्णयसिन्धुक्रमेण सिद्धार्थान् ।
प्रायेण मूलवचनान्युज्झित्य लिखामि बालबोधाय ॥ ४ ॥

अपने से पूर्ववर्ती निबन्धों को पढ़ कर निर्णयसिन्धु में वर्णित विषयों के आधार पर प्रायः मूल-वचनों का उल्लेख किये बिना ही इस ग्रन्थ में जिज्ञासुओं के लिए केवल सारतत्त्व ही लिख रहा हूँ ।।४।।

तत्र [1]कालः षड्विधः—वत्सरः अयनम् ऋतुः मासः पक्षो दिवस इति । [2]वत्सरः पञ्चधा—चान्द्रः सौरः सावनो नाक्षत्रो बार्हस्पत्य इति । शुक्लप्रतिपदादिदर्शान्तैः चैत्रादिसंज्ञैर्द्वादशभिर्मासैः चतुःपञ्चाशदधिकशतत्रयदिनैः, सति मलमासे त्रयोदशभिर्मासैश्चान्द्रो वत्सरः । चान्द्रस्यैव प्रभवो विभवः शुक्ल इत्यादयः [3]षष्टिसंज्ञाः । मेषादिषु द्वादशराशिषु रविभुक्तेषु पञ्चषष्ट्यधिकशतत्रयदिनैः सौरो वत्सरः संपद्यते । षष्ट्युत्तरशतत्रयदिनैः सावनः । वक्ष्यमाणैर्द्वादशभिर्नाक्षत्रमासैर्नाक्षत्रो वत्सरः । स च चतुर्विंशत्यधिकशतत्रयदिनैः स्यात् । मेषाद्यन्यतमराशौ बृहस्पतिना भुक्ते बार्हस्पत्यः स च एकषष्ट्यधिकशतत्रयसङ्ख्यदिनैर्भवति । कर्मादौ संकल्पे [4]चान्द्रवत्सर एव स्मर्तव्यो नान्यः ।

काल ६ प्रकार का है—वत्सर, अयन, ऋतु, मास, पक्ष और दिवस ।

---

१. काल दो प्रकार का है— नित्य और जन्य । इनमें नित्य काल परमेश्वर है—

नित्यो जन्यश्च कालो द्वौ तदाद्यः परमेश्वरः ।
सोऽवाङ्मनसगम्योऽपि देही भक्तानुकम्पया ।।

इसका विवेचन विष्णुधर्मोत्तर में इस प्रकार किया गया है—

अनादिनिधनः कालो रुद्रः सङ्कर्षणः स्मृतः । कलनात् सर्वभूतानां स कालः परिकीर्तितः ।।
कर्षणात् सर्वभूतानां स तु सङ्कर्षणः स्मृतः । सर्वभूतशमित्वाच्च सः रुद्रः परिकीर्तितः ।।
अनादिनिधनत्वेन स महान् परमेश्वरः ।' इति ।

श्रौत-स्मार्त-कर्मोपयोगी वर्ष-मासादि रूप कालजन्य काल है । तैत्तिरीयशाखा के स्मृतिप्रामाण्याधिकरण में इस कालोत्पत्ति का वर्णन है—'सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि । कला मुहूर्ताः काष्ठाश्चाहोरात्राश्च सर्वशः ।। अर्धमासा मासा ऋतवः संवत्सरश्च कल्पन्ताम्' इति । यह जन्यकाल परमेश्वराख्य नित्य काल से उत्पन्न हुआ है । तथा हि मनुः—'कालं कालविभक्तिं च नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा । सृष्टिं ससर्ज चैवेमां स्रष्टुमिच्छन्निमाः प्रजाः ।।' इति ।

२. जिसमें अयन, ऋतु और मासादि हों वह काल-विशेष वत्सर (वर्ष) है । कालमाधव—'संवत्सरो' नाम अयनाद्यवयवयुतोऽवयवी कालविशेषः स सम्यग् वसन्त्यस्मिन् अयनर्तुमासादय इति व्युत्पत्तेः ।' चान्द्रवत्सर के अवान्तर पांच भेद हैं - संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर और इद्वत्सर । ब्रह्मवैवर्त—'संवत्सरस्तु प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः । इदावत्सरस्तृतीयश्चतुर्थश्चानुवत्सरः ।। इद्वत्सरः पञ्चमस्तु तत्संघो युगसंज्ञकः ।' इनके पूज्य अधिष्ठात्री देवता ये हैं—'संवत्सरः स्मृतो वह्निस्तथाऽर्कः परिवत्सरः । इदापूर्वस्तथा सोमो ह्यनुपूर्वः प्रजापतिः ।। इत्पूर्वश्च तथा प्रोक्तो देवदेवो महेश्वरः । तेषां मण्डलविन्यासः प्राग्वदेव विधीयते ।। प्राग्वत्स्यात्पूजनं कार्यं होमः कार्यो यथाविधि ।' इति । चान्द्र प्रभवादि क्षयान्त साठ वर्षों में बारह पंचक होते हैं और पाँच-पाँच का एक युग होता है—'चान्द्राणां प्रभवादीनां पञ्चके पञ्चके युगे ।' 'ब्रह्मसिद्धान्त में तीन ही प्रकार का संवत्सर कहा है – चान्द्रसावनसौराणां मासानां तु प्रभेदतः 'चान्द्रसावनसौराः स्युस्त्रयः संवत्सरा अमी ।।' इति ।

३. प्रभव आदि संवत्सरों के साठ नाम द्वितीयपरिच्छेद के अंक में अंकित हैं ।

४. सभी श्रौत-स्मार्त-कर्मों में चान्द्रवर्ष का ही प्रयोग करना चाहिये । आर्ष्टिषेण—'स्मरेत् सर्वत्र कर्मादौ चान्द्रं संवत्सरं सदा । नान्यं यस्माद् वत्सरादौ प्रवृत्तिस्तस्य कीर्तिता ।।' इति ।

इनमें वर्ष पाँच प्रकार का है—चान्द्र, सौर, सावन, नाक्षत्र और बार्हस्पत्य। चान्द्रवर्ष—शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से आरम्भ होकर अमावस्या तक, चैत्र आदि नाम वाले बारह महीनों के तीन सौ चौवन दिनों का, मलमास होने पर तेरह महीने का होता है। चान्द्रवर्ष का ही प्रभव विभव शुक्ल इत्यादि साठ नाम हैं। सौरवत्सर—मेष आदि बारह राशियों को सूर्य भोग चुके हों तब तीन सौ पैंसठ दिनों का होता है। सावन वर्ष—तीन सौ साठ दिनों का होता है। नाक्षत्रवर्ष—आगे कहे जाने वाले बारह नाक्षत्र मास का, वह तीन सौ चौबीस दिन का होता है। बार्हस्पत्यवर्ष—मध्यम राशि में बृहस्पति से भोग करने पर, वह तीन सौ एकसठ दिन का होता है। कर्म के आदि में संकल्प में चान्द्रवर्ष का ही स्मरण करना चाहिए अन्य का नहीं।

[1]अयनं द्विविधम्—दक्षिणमुत्तरं च। सूर्यस्य कर्कसंक्रान्तिमारभ्य षड्राशिभोगेन दक्षिणम्। मकरसंक्रान्तिमारभ्य राशिषट्कभोगेनोत्तरायणम्।

अयन दो प्रकार का है—दक्षिण और उत्तर। सूर्य की कर्क संक्रान्ति से छ राशि के भोग से दक्षिणायन और मकर संक्रान्ति से छ राशि के भोग से उत्तरायण होता है।

[2]ऋतुर्द्विविधः—सौरश्चान्द्रश्च। मीनारम्भो मेषारम्भो वा। सूर्यस्य राशिद्वयभोगात्मको वसन्तादिषट्संज्ञकः सौरऋतुः। चैत्रमारभ्य मासद्वयात्मको वसन्तादिषट्संज्ञकश्चान्द्रः। मलमासे तु किंचिदूननवतिसंख्यैर्दिनैश्चान्द्रऋतुः। श्रौतस्मार्तादौ [3]चान्द्रर्तुस्मरणं प्रशस्तम्।

ऋतु दो प्रकार का है—सौर और चान्द्र। मीन तथा मेष से आरम्भ करके सूर्य को दो राशि भोग करने पर वसन्त आदि नामक छ सौरऋतु होता है। चैत से लेकर दो-दो महीने का वसन्त आदि छ चान्द्रऋतु होता है। मलमास में तो कुछ कम नब्बे दिन का चान्द्रऋतु होता है। श्रौत स्मार्त कर्मों में चान्द्रऋतु का कथन उत्तम होता है।

[4]मासश्चतुर्धा—चान्द्रः सौरः सावनो नाक्षत्र इति। शुक्लप्रतिपदादिर-

---

१. सूर्य का तीन तीन ऋतुओं पर दक्षिण और उत्तर दिशाओं की ओर जाना 'अयन' है—अयते यात्यनेन ऋतुत्रयेण सूर्यो दक्षिणाशामुत्तराशाञ्चेति ऋतुत्रयम् अयनम्।' तैत्तिरेयश्रुतिः—'तस्मादादित्यः षण्मासान् दक्षिणेनैति षडुत्तरेण" इति। उत्तरायण और दक्षिणायन में सत्यव्रतने देवताओं की प्रतिष्ठा का विधान और निषेध बतलाया—'देवतारामवाप्यादिप्रतिष्ठोदङ्मुखे रवौ। दक्षिणाशामुखे कुर्वन् न तत्फलमवाप्नुयात्॥' वैखानससंहिता में दक्षिणायन में भी उग्रदेवताओं की प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में कहा—'मातृभैरववाराहनरसिंहत्रिविक्रमाः। महिषासुरहन्त्री च स्थाप्या वै दक्षिणायने॥' इति।

२. जो 'अशोकपुष्पविकासादि असाधारण चिह्न को प्राप्त करे वह दोमासका कालविशेष वसन्तादि ऋतु है—'इयर्ति गच्छति अशोकपुष्पविकासाद्यसाधारणलिङ्गमिति वसन्तादिकालविशेष-ऋतु।' इति माधवः। वसन्तादि-ऋतु अनुक्रम से चैत्रादि-मास-द्वयात्मक होता है—'द्वन्द्वमुपदधाति तस्माद् द्वन्द्वमृतवः।' 'मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू, नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू, इषश्चोर्जश्च शारदावृतू, सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू, तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू।" इति।

३. श्रौत-स्मार्त-सम्बन्धी कार्यों में चान्द्रऋतु का ग्रहण करना चाहिये। त्रिकाण्डमण्डन—'श्रौतस्मार्तक्रियाः सर्वाः कुर्याच्चान्द्रमसर्तुषु। तदभावे तु सौरर्तुष्विति ज्योतिर्विदां मतम्॥' इति।

४. चन्द्रमा के वृद्धि-क्षय से जो परिमित हो उसे मास कहते हैं। 'मस परिमाणे' इति धातु से मासशब्द निष्पन्न हुआ। 'मस्यन्ते परिमीयन्ते स्वकालाः वृद्धिहानितः। मासा एते स्मृता मासा-

मान्तः कृष्णप्रतिपदादिः पूर्णिमान्तो वा चान्द्रो मासः। तत्रापि शुक्लादिर्मुख्यः कृष्णादिर्विन्ध्योत्तर एव ग्राह्यः। अयमेव चैत्रादिसंज्ञकः कर्मादौ स्मर्तव्यः। केचिन्मीनराशिमारभ्य सौराणां चैत्रादिसंज्ञामाहुः। अर्कसंक्रान्तिमारभ्योत्तर-संक्रान्त्यवधिः सौरो मासः। त्रिंशद्दिनैः सावनः। चन्द्रस्याश्विन्यादिसप्तविंशति-नक्षत्रभोगेन नाक्षत्रो मासः। प्रतिपदादिपौर्णिमान्तः शुक्लपक्षः। प्रतिपदादि-दर्शान्तः कृष्णपक्षः। दिवसः षष्टिघटिकात्मकः। इति कालनिर्णयोद्देशः॥ १॥

मास चार प्रकार का है—चान्द्र सौर सावन और नाक्षत्र। शुक्ल प्रतिपदा से अमावस्या तक या कृष्ण प्रतिपदा से पूर्णिमा तक चान्द्रमास होता है। उसमें भी शुक्लादि मास मुख्य हैं। कृष्णादि मास तो विन्ध्य से उत्तर ही ग्रहण योग्य है। यही चैत्रादि नामक मास कर्मादि में स्मरणीय है। कुछ लोग मीन राशि से प्रारम्भ कर सौरमासों की चैत्रादि संज्ञा कहते हैं। सूर्य की संक्रान्ति से दूसरी संक्रान्ति तक सौरमास होता है। तीस दिन का सावनमास होता है। अश्विनी आदि सत्ताइस नक्षत्र चन्द्रमा के भोग से नाक्षत्रमास होता है। प्रतिपदा से अमावस्या पर्यन्त कृष्णपक्ष होता है। दिन साठ घड़ी का होता है। कालनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ संक्रान्तिनिर्णयः

मेषे सूर्यसंक्रान्तौ[१] प्रागूर्ध्वं च पञ्चदश पञ्चदश घटिकाः पुण्यकालः। दश

त्रिंशत्तिथिसमन्विताः॥' इसी प्रकार 'सूर्यस्य राशिगतिर्यत्र परिमीयते स सौरः। अहोरात्राणां त्रिंशत्संख्या परिमीयते यत्र स सावनः। सप्तविंशतिसंख्या परिमीयते अनेनेति नाक्षत्रः।'

कर्मविशेष में ज्योतिर्गार्ग्योक्त मास-विशेष—'सौरो मासो विवाहादौ यज्ञादौ सावनः स्मृतः। आब्दिके पितृकार्ये च चान्द्रो मासः प्रशस्यते॥' यहां 'पितृकार्ये च' में चशब्द से देवकार्य में भी इसकी प्रशस्ति है—'दैवे कर्मणि पित्र्ये च मासश्चान्द्रमसः स्मृतः।' इति।

दर्शान्त और पूर्णिमान्त विकल्प से दो प्रकार का मास है। ब्रह्मसिद्धान्त—'अमावास्यापरि-च्छिन्नो मासः स्याद् ब्राह्मणस्य तु। संक्रान्तिपौर्णमासीभ्यां तथैव नृपवैश्ययोः।' इति।

धर्मसिन्धुकार ने पक्ष का विवेचन नहीं किया फिर भी ग्रन्थान्तर में इसका विवेचन यों है—'देवकार्यार्थं पितृकार्यार्थं वा पद्यते परिगृह्यते यः कालविशेषः स पक्षः। अथवा चन्द्रस्य पञ्च-दशानां कलानामापूरणं क्षयो वा यस्मिन् परिगृह्यते स पक्षः।' 'पक्ष परिग्रहे' इस धातुसे पक्षशब्द निष्पन्न हुआ है। वह पक्ष दो प्रकार का है—शुक्ल और कृष्ण। जिसमें चन्द्रमा की कला की वृद्धि हो वह शुक्लपक्ष और जिसमें चन्द्रकलाका क्षय हो वह कृष्णपक्ष। इसका उपयोग तैत्तरीयहोतृब्राह्मण में बतलाया—'शुभाशुभत्वहेतुत्वबोधनादाभ्युदयिकदेवकार्यादौ शुक्लपक्षः प्रशस्तः। आभिचारिके कर्मणि पित्र्ये कर्मणि च कृष्णपक्षः प्रशस्तः।

१. मेषादि बारह राशियों में सूर्य का क्रम से मेषादि-पूर्व-राशि से दूसरे राशि में प्रवेश करना ही संक्रान्ति कहलाती है 'मेषादिषु द्वादशराशिषु क्रमेण संचरतः सूर्यस्य पूर्वास्माद्राशेरुत्तरराशौ संक्रमणं प्रवेशः संक्रान्तिः। उन उन राशियों के नाम से संक्रान्ति के नाम हैं। वे बारह राशियां हैं—मेष वृष मिथुन कर्क सिंह कन्या तुला वृश्चिक धन मकर कुम्भ और मीन। एक राशि से दूसरे राशि में सूर्य का प्रवेशकाल अतिसूक्ष्म है। इतने अल्प समय में स्नान-दानादि-विधान का अनुष्ठान असम्भव है अतः कर्तव्य कर्म के अनुष्ठानार्थ तत्सन्निहित पूर्वोत्तरकाल पुण्य-जनक होने के कारण ग्राह्य है। इसका स्पष्टीकरण देवलने किया है—'संक्रान्तिसमयः सूक्ष्मो दुर्ज्ञेयः पिशितेक्षणैः। मुख्यालाभे तु गौणेऽपि कार्या दानादिकाः क्रियाः॥' 'मुख्यालाभे तु गौणेऽपि कार्या दानादिकाः क्रिया' इसका पाठा-न्तर कालमाधव में यों है—'तद्योगादप्यधश्चोर्ध्वं त्रिंशन्नाड्यः पवित्रिताः।' महर्षि मरीचि ने बतलाया

दशेत्येके। वृषे पूर्वाः षोडश, मिथुने पराः षोडश, कर्के पूर्वास्त्रिंशत्, सिंहे पूर्वाः षोडश, कन्यायां पराः षोडश, तुलायां प्रागूर्ध्वं च पञ्चदश पञ्चदश, दश दशेत्येके; वृश्चिके पूर्वाः षोडश, धनुषि पराः षोडश, मकरे पराश्चत्वारिंशत्, कुम्भे पूर्वाः षोडश, मीने पराः षोडश। घटिकाद्वयाद्यल्पदिनशेषे मिथुनकन्याधनुर्मीनेष्वपि मकरेऽपि पूर्वा एव पुण्याः।

मेष की संक्रान्ति में पहले और पीछे पन्द्रह-पन्द्रह घड़ी का पुण्यकाल होता है। कुछ लोग दश-दश घड़ी का पुण्यकाल कहते हैं। वृष की संक्रान्ति में पहले की सोलह घड़ियाँ, पुण्यकाल होती हैं। मिथुन में बाद की सोलह घड़ियाँ, कर्क में पहले की तीस घड़ियाँ, सिंहमें पहले की सोलह घड़ियाँ, कन्या में बाद की सोलह घड़ियाँ, तुला में पहले और पीछे की पन्द्रह-पन्द्रह घड़ियाँ, पुण्यकाल है। कुछ लोग पहले पीछे दश-दश घड़ी का पुण्यकाल मानते हैं। वृश्चिक में पहले की सोलह घड़ी, धनुष में बाद की सोलह घड़ी, मकर में बाद की चालीस घड़ी, कुम्भ में पहली सोलह घड़ी और मीन में अन्त की सोलह घड़ी पुण्यकाल है। दो घड़ी आदि से कम दिन रहने पर मिथुन, कन्या, मीन और धनुष की संक्रान्ति में तथा मकर में भी पहले ही पुण्यकाल होता है।

प्रभाते घटिकाद्वयाद्यल्पकाले वृषसिंहवृश्चिककुम्भेष्वपि कर्केऽपि परा एव पुण्याः। प्रभाते कर्कसंक्रान्तौ पूर्वदिने पुण्यमित्येके।

प्रातःकाल दो घड़ी आदि से कम समय में वृष सिंह वृश्चिक और कुम्भ में तथा कर्क में भी अन्त की घड़ियाँ ही पुण्यकाल हैं। प्रातःकाल में कर्कसंक्रान्ति होने पर कोई पहले दिन पुण्यकाल कहते हैं।

[1]रात्रौ संक्रमे मध्यरात्रादर्वाक् संक्रान्तौ पूर्वदिनोत्तरार्धं पुण्यम्। मध्यरात्रात्परतः संक्रान्तौ परदिनस्य पूर्वार्धं पुण्यम्। निशीथमध्य एव संक्रान्तौ दिनद्वयेपि पूर्वदिनोत्तरार्धं परदिनपूर्वार्धं च पुण्यम्। इदं मकरकर्कातिरिक्ते सर्वत्र रात्रिसंक्रमे ज्ञेयम्।

रात में संक्रान्ति होने पर मध्यरात्रि से पहले पूर्वदिन के उत्तरार्द्ध में पुण्य होता है। मध्यरात्रि के बाद संक्रान्ति होने पर दूसरे दिन के पूर्वार्द्ध में पुण्य होता है। ठीक आधी रात में संक्रान्ति होने पर पहले दिन का उत्तरार्द्ध और परदिनका पूर्वार्द्ध पुण्य होता है। यह बात मकर और कर्क को छोड़कर सब रात्रि के संक्रान्ति में जानना चाहिए।

अयने तु मकरे रात्रिसंक्रमे सर्वत्र परदिनमेव पुण्यम्। रात्रौ कर्कसंक्रान्तौ पूर्वदिनमेव पुण्यम्। सूर्यास्तोत्तरं घटिकात्रयं सायंसंध्या। तत्र मकरसंक्रमे

कि उस सूक्ष्म संक्रमणकाल के पूर्व और उत्तर सोलह सोलह घड़ी साधारणतः पुण्यकाल होता है—'नाड्यः षोडश पूर्वेण संक्रान्तेरुत्तरेण च। राहोर्दर्शनमात्रेण पुण्यकालः प्रकीर्तितः॥' इति।

१. वृद्धवसिष्ठः—'अह्नि संक्रमणे पुण्यमहः कृत्स्नं प्रकीर्तितम्। रात्रौ संक्रमणे भानोर्दिनार्धं स्नानदानयोः॥ अर्धरात्रादधस्तस्मिन् मध्याह्नस्योपरि क्रिया। ऊर्ध्वं संक्रमणे चोर्ध्वमुदयात् प्रहरद्वयम्। पूर्णे चेदर्धरात्रे तु यदा संक्रमते रविः। प्राहुर्दिनद्वयं पुण्यं मुक्त्वा मकरकर्कटौ॥' इति। वृद्धगार्ग्य ने मकर में भिन्न नियम सूचित किया—'यदाऽस्तमनवेलायां मकरं याति भास्करः। प्रदोषे चार्धरात्रे वा स्नानं दानं परेऽहनि॥ अर्धरात्रे तदूर्ध्वे वा संक्रान्तौ दक्षिणायने। पूर्वमेव दिनं ग्राह्यं यावन्नोदयते रविः॥' अर्थात् रात्रि के किसी भी अंश में कर्क संक्रान्ति हो तो पूर्वदिन और रात्रि के किसी भी अंश में मकरसंक्रान्ति हो तो परदिन में पुण्य काल होता है।

पूर्वदिनं पुण्यम् । सूर्योदयात् प्राक् घटिकात्रयं प्रातःसंध्या । तत्र कर्कसंक्रान्तौ पर-दिनं पुण्यमिति संध्याकाले विशेषो ज्योतिःशास्त्रे प्रसिद्धः ।

अयन में तो मकर की संक्रान्ति रात में हो तो सब जगह दूसरे ही दिन पुण्य होता है। सूर्यास्त के बाद तीन घड़ी की सायंसन्ध्या होती है। मकर की संक्रान्ति होने पर पहले दिन पुण्य होता है। सूर्योदय से पहले तीन घड़ी की प्रातःसन्ध्या होती है। इसमें कर्कसंक्रान्ति होने पर दूसरे दिन पुण्य होता है। संन्ध्याकाल की संक्रान्ति में विशेष बातें ज्यौतिषशास्त्र में प्रसिद्ध है।

अथ दानम्—[1]'मेषे मेषदानम्, वृषे गोदानम्, मिथुने वस्त्रान्नादि देयम्, कर्के घृतधेनुः, छत्रं सुवर्णं च सिंहे, कन्यायां गृहं वस्त्रं च, तुलायां तिला गोरसाश्च देयाः, वृश्चिके दीपः, धनुषि वस्त्रं यानं च, मकरे काष्ठानि अग्निश्च, कुम्भे गौर्जलं तृणं च, मीने भूमिर्मालाश्च देयाः । एवमन्यान्यपि दानानि द्रष्टव्यानि[2] ।

मेष की संक्रान्ति में मेड़ों का दान, वृष में गोदान, मिथुन में वस्त्र अन्न आदि का दान, कर्क में घृतधेनु का दान, सिंह में छाता और सुवर्ण का दान, कन्या में घर और वस्त्र का दान, तुला में तिल और गाय के दूध दही घी आदि का दान, वृश्चिक में दीपदान, धनु में वस्त्र और सवारी का दान, मकर में लकड़ी और अग्नि का दान, कुम्भ में गाय के लिए जल और तृण का दान, मीन में भूमिदान और माला का दान करना चाहिए। इसी प्रकार और दान भी होते हैं।

अयनसंक्रान्तौ मेषतुलासंक्रान्तौ च पूर्वं त्रिरात्रमेकरात्रं वोपोष्य स्नान-दानादि कार्यम् । चरमोपोषणं संक्रान्तिमत्यहोरात्रे पुण्यकालवत्यहोरात्रे वा यथा पतेत्तथा कार्यम् । अयमुपवासः पुत्रवद्गृहस्थभिन्नेन पापक्षयकामेन कार्यः काम्यो न तु नित्यः ।

अयन संक्रान्ति में तथा मेष और तुलासंक्रान्ति में भी संक्रान्ति से पहले तीन रात्रि या एक रात्रि उपवास करके दान आदि करना चाहिए। अन्तिम उपवास संक्रान्ति वाले दिन रात में या पुण्यकाल वाले दिन रात में जैसे पड़े वैसा करना चाहिए। यह उपवास पुत्र वाले गृहस्थ को छोड़कर पाप के नाश की इच्छा से करना चाहिए, यह काम्य है नित्य नहीं है।

सर्वसंक्रान्तिषु पिण्डरहितं [3]श्राद्धं कार्यम् । अयने तु नित्यं यथाव-वत्तत्तत्संक्रान्तिषु दानादिकं कर्तव्यम् । तथैव ताभ्यः पूर्वमयनांशप्रवृत्तौ तत्तत्संक्रा-न्त्युचितस्नानदानादिकं कर्तव्यम् । अयनांशा ज्योतिःशास्त्रे प्रसिद्धाः । ते चेदानीं द्वादशाधिकसप्तदशशतसंख्याके शालिवाहनशके एकविंशतिरयनांशा

---

१. शातातपः—'संक्रान्तौ यानि दत्तानि हव्यकव्यानि दातृभिः । तानि नित्यं ददात्यर्कः पुनर्जन्मनि जन्मनि ।। रविसंक्रमणे पुण्ये न स्नायाद्यदि मानवः । सप्तजन्मसु रोगी स्याद् दुःखभागीह जायते ।।' इति ।

२. मत्कृत दानदीपिका में अन्यान्य दान तथा मेष-मकर-संक्रान्ति की तरह अवशिष्ट दस संक्रान्तियों में किन-किन अन्नों का दान करना चाहिये इसका विवेचन वहां देखे ।

३. हेमाद्रौ—'श्राद्धं संक्रमणे भानोः प्रशस्तं पृथिवीपते ।' अपरार्के—'आदित्यसंक्रमश्चैव विशेषेणायनद्वयम् । व्यतीपातोऽथ जन्मर्क्षं चन्द्रसूर्यग्रहस्तथा ।। एतांस्तु श्राद्धकालान् वै काम्यानाह प्रजापतिः ।' इति ।

इत्येकविंशतितमे दिने पूर्वमयनांशपर्वकाल इति पर्यवसन्नोऽर्थः। एवं न्यूनाधिकशके ऊह्यम्।

सब संक्रान्तियों में पिण्ड रहित श्राद्ध करना चाहिए। दोनों अयनों में तो नित्यश्राद्ध कर्त्तव्य है और सभी दानादि भी कर्त्तव्य है। उसी प्रकार संक्रान्ति से पहले अयनांश के प्रवृत होने पर उन उन संक्रातियों के योग्य स्नान दान आदि करना चाहिए। अयनांश ज्योतिषशास्त्र में प्रसिद्ध है। वे अयनांश इस समय सत्रह सौ बारह शालिवाहन शक में इक्कीस अयनांश हैं। इसलिए इक्कीसवें दिन के पहले अयनांश पर्वकाल है यह स्पष्ट हुआ। इसी प्रकार कम अधिक की कल्पना शक में करनी चाहिए।

वृषसिंहवृश्चिककुम्भेषु संक्रान्तिर्विष्णुपदसंज्ञा[1]। मिथुनकन्याधनुर्मीनेषु संक्रान्तिः षडशीतिसंज्ञा। मेषतुलयोर्विषुवसंज्ञा। कर्कमकरयोरयनसंज्ञा। एतासु चतुर्विधासु उत्तरोत्तरं पुण्याधिक्यम्।

वृष सिंह वृश्चिक और कुम्भ की संक्रान्तियों का विष्णुपद नाम है। मिथुन, कन्या, धनु और मीन की संक्रान्तियों की षडशीति संज्ञा है। मेष और तुला की संक्रान्ति का विषुव नाम है। कर्क और मकर की संक्रान्ति का अयन नाम है। इन चारों प्रकार की संक्रान्तियों में उत्तरोत्तर अधिक पुण्य है।

मङ्गलकृत्येषु सर्वसंक्रान्तिष्वविशेषेण पूर्वतः परतश्च षोडशघटिकास्त्याज्याः। चन्द्रादिसंक्रान्तिषु तु पूर्वत्र परत्र च मिलित्वा क्रमेण द्वे नव द्वे चतुरशीतिः षट्सार्धशतं च घटिकास्त्याज्याः।

मंगलकार्यों में सभी संक्रान्तियों में पहले और वाद की सोलह घड़ियाँ वर्ज्य हैं। चन्द्रादि संक्रान्तियों में तो पहले और दूसरे दिन मिल कर क्रम से दो नव दो चौरासी और छ एक सौ पचास घड़ियां छोड़ने योग्य हैं।

रात्रौ संक्रमणे ग्रहणवद्रात्रावेव स्नानदानादिकं कर्तव्यमिति केचित्। रात्रौ संक्रमणेपि दिवैव स्नानादिकं न तु रात्राविति तु सर्वसंमतम्। बहुदेशाचारश्चैवम्।

---

१. मेषादि बारह राशियों में चार त्रिक हैं। उनमें एक एक में क्रम से चर-स्थिर-द्विस्वभावसंज्ञक तीन राशियां हैं। जैसे चारो त्रिकों में जो मध्यम—वृष-सिंह-वृश्चिक कुम्भ नाम के चार राशि हैं, वे स्थिर संज्ञक हैं और इन चारों की संज्ञा 'विष्णुपद' या 'विष्णुपदी' है। जो अन्तिम—मिथुन, कन्या-धनु मीन नाम के चार राशि हैं, वे द्विस्वभाव संज्ञक हैं और इन चारों की संज्ञा 'षडशीतिमुख' है। और जो प्रथम—मेष-कर्क तुला-मकर नाम के चार राशि हैं, वे चल संज्ञक हैं इनमें मेष-तुला की संज्ञा 'विषुव' तथा कर्क-मकर की संज्ञा 'अयन' है। इसका स्पष्टीकरण वृद्धवसिष्ठ ने किया—'अयने द्वे विषुवे द्वे चतस्रः षडशीतयः। चतस्रो विष्णुपद्यश्च संक्रान्त्यो द्वादश स्मृताः॥ झषकर्कटसंक्रान्ती द्वे तूदग्दक्षिणायने। विषुवे तु तुलामेषौ गोलमध्ये ततोऽपराः॥ कन्यायां मिथुने मीने धनुष्यपि रवेर्गतिः। षडशीतिमुखाः प्रोक्ताः षडशीतिगुणाः फलैः॥ वृषवृश्चिकसिंहेषु कुम्भे चैव रवेर्गतिः। एतद्विष्णुपदं नाम विषुवादधिकं फलैः॥' इति। इस उद्धृत वचन में 'गोल' शब्द का अर्थ है विषुव और अयन से युक्त चार राशि। इनमें मेष विषुव और कर्क अयन के मध्य में विष्णुपद-संज्ञक वृष और षडशीतिमुख-संज्ञक मिथुन रहता है। कर्क अयन और तुला विषुव के मध्य में विष्णुपद-संज्ञक सिंह तथा षडशीतिमुख-संज्ञक कन्या रहता है। तुला मकर के मध्य में वृश्चिक धनु। इसी प्रकार अन्य का उदाहरण जान लेना चाहिये।

यस्य जन्मर्क्षे रविसंक्रमस्तस्य धनक्षयादिपीडा। तत्परिहारार्थं पद्मपत्रादियुक्त-जलेन स्नानम्। विषुवायनयोरह्नि संक्रमे पूर्वापररात्रौ तदह्नि चाध्यापनाध्ययने वर्जयेत्। रात्रिसंक्रमे पूर्वापरदिनयोस्तद्रात्रौ च वर्जयेत्। एवं पक्षिणी संक्रान्तिः द्वादशप्रहरपर्यन्तमनध्यायादिकमिति तात्पर्यम्। अन्योपि विशेषोऽयनसंक्रान्तौ वक्ष्यते। इति संक्रान्तिनिर्णयोद्देशः॥ २॥

रात में संक्रान्ति होने पर ग्रहण की तरह रात ही में स्नान दान आदि करना चाहिए ऐसा किसी का मत है। रात में संक्रान्ति होने पर दिन ही में स्नान दान आदि करना चाहिए रात में नहीं यह सर्व सम्मत निर्णय है। इसी प्रकार का आचार अधिक देशों में है। जिसके जन्मनक्षत्र में सूर्य संक्रान्ति हो उसको धन का नाश आदि का फल है। उसके हटाने के लिए कमल के पत्ते आदि से युक्त जल से स्नान करना चाहिए। विषुव और अयन में दिन में संक्रान्ति हो तो पहली और दूसरी रात में और उस दिन में भी पढ़ना पढ़ाना छोड़ दे। इसी तरह पक्षिणी संक्रान्ति में बारह पहर तक पठन-पाठन न करे। और भी विशेष बातें अयनसंक्रान्ति में कहेंगे। संक्रान्तिनिर्णयोद्देश समाप्त।

मलमासः (अधिमासः क्षयमासश्च)

स द्विविधः—'अधिमासः क्षयमासश्च। संक्रान्तिरहितो मासोऽधिमासः। संक्रान्तिद्वययुक्तो मासः क्षयमासः। पूर्वाधिमासादुत्तरोऽधिमासस्त्रिंशत्तममास-

---

१. जो चान्द्रमास संक्रान्ति से रहित हो वह 'अधिमास' और जो दो संक्रान्तियों से युक्त हो वह 'क्षयमास'। इस प्रकार मलमास का दो भेद है। काठकगृह्य—'यस्मिन् मासे न संक्रान्तिः संक्रान्तिद्वयमेव वा। मलमासः स विज्ञेयो मासे त्रिंशत्तमे भवेत्॥' इति। वृद्धवसिष्ठने अधिमास होने के समय की संभावना बतलायी—'द्वात्रिंशद्भिर्गतैर्मासैर्दिनैः षोडशभिस्तथा। घटिकानां चतुष्केण पतत्यधिकमासकः॥' इति। 'यस्मिन् मासे न' और 'द्वात्रिंशद्भिर्दिनैः' इन दोनों वचनों का भिन्न विषय होने के कारण परस्पर में विरोध नहीं है। ज्योतिषशास्त्र-प्रसिद्ध मध्यममान का आश्रयण करके 'द्वात्रिंशद्भिः' और स्फुटमान का आश्रयण करके 'यस्मिन् मासे' ये दोनों वचन मननीय हैं।

दो संक्रान्तियों से युक्त क्षयमास—कार्तिक-मार्गशीर्ष-पौष इन तीनों मासों में से एक किसी का होता है, शेष माघ आदि नव मासों में नहीं होता। ऐसे क्षयमास युक्त वर्ष में क्षयमास के पूर्व महीनों में कोई अधिमास और क्षयमास के बाद तीन महीने के मध्य में दूसरा अधिमास होता है—ज्योतिःसिद्धान्ते-'असंक्रान्तमासोऽधिमासः स्फुटः स्याद् द्विसंक्रान्तमासः क्षयाख्यः कदाचित्। क्षयः कार्तिकादित्रये नान्यदा स्यात् तदा वर्षमध्येऽधिमासद्वयं स्यात्॥' इति।

इस प्रकार एक वर्ष में होने वाला तीन मलमास बहुत वर्षों बाद यदा कदा आता है अधिमास की भाँति बार बार नहीं आता है। सिद्धान्तशिरोमणि में तीनों मलमास का आगमन काल कहा—'गतोऽब्ध्यद्रिनन्दैर्मिते शाककाले तिथीशैर्भविष्यत्यथाङ्गाक्षसूर्यैः। गजाद्र्यग्निभूमिस्तथा प्रायशोऽयं कुवेदेन्दुवर्षैः क्वचिद् गोकुभिश्च॥' इति। अर्थात् ९७४ शकवर्षमें कोई क्षयमास हो चुका। १११५, १२५६ और १३७८ शकवर्ष में कोई क्षयमास होगा। प्रायः १४१ वर्षों में पहला क्षयमास से दूसरा क्षयमास होता है। पूर्वोक्त प्रतिपादित संख्या व्यवधानकाल की बोधिका है। अर्थात् कहीं १४१ वर्षों से और कहीं १२२ वर्षों से व्यवधान होता है। तब पूर्वोक्त ९७४ संख्या में १४१ संख्या को मिलाने पर १११५ हुआ। इसमें पुनः १४१ को मिलाने पर १२५६ हुआ, फिर इसमें १२२ संख्या को मिलाने पर १३७८ होता है।

क्षयमास होने के वर्ष के मतभेद पर अपना विचार प्रगट करते हुये पुरुषार्थचिन्ता-

मारभ्याष्टसु नवसु वा मासेष्वन्यतमो भवति । क्षयमासस्तु एकचत्वारिंशदधिकशतसंख्यैर्वर्षैरेकोनविंशतिसंख्यैर्वा वर्षैर्भवति, नत्वधिकमासवदल्पकालेन । क्षयमासः कार्तिकमार्गशीर्षपौषेष्वन्यतमो भवति नेतरः । यस्मिन्वर्षे क्षयमासस्तस्मिन्वर्षेऽधिकमासद्वयम् । क्षयमासात्पूर्वमेकोऽधिमासः क्षयमासानन्तरमेकोऽधिमास इति ।

मलमास दो प्रकार का है—अधिकमास और क्षयमास। जिसमें संक्रान्ति न हो उसे अधिकमास और जिस महीने में दो संक्रान्ति हो उसे क्षयमास कहते हैं। पहले अधिकमास से दूसरा अधिकमास तीसवें महीने से लेकर आठवें या नवें महीने में से कोई एक होता है। क्षयमास तो एक सौ एकतालिस वर्षों पर होता है न कि अधिकमास की तरह थोड़े समय पर। क्षयमास—कार्तिक अगहन और पौष में से एक कोई होता है अन्य नहीं। जिस वर्ष क्षयमास होता हैं उस वर्ष में दो अधिकमास होते हैं। एक क्षयमास से पहले और दूसरा क्षयमास के बाद।

अधिकमासोदाहरणम्

चैत्रामावास्यायां मेषसंक्रान्तिः। ततः शुक्लप्रतिपदमारभ्यामावास्यापर्यन्तं संक्रान्तिर्नास्ति । ततः शुक्लप्रतिपदि वृषभसंक्रान्तिरिति । पूर्वः संक्रान्तिरहितो मासोऽधिकवैशाखसंज्ञः । वृषभसंक्रान्तियुतस्तु शुद्धवैशाखसंज्ञः ।

चैत की अमावस्या को मेष की संक्रान्ति हो तो उसके बाद शुक्ल प्रतिपदा से लेकर अमावस्यातक संक्रान्ति न हो। तदनन्तर शुक्ल प्रतिपदा में वृष की संक्रान्ति हो तब पहली संक्रान्ति से रहित मास अधिकमास वैशाख नामक है। वृषसंक्रान्ति से युक्त तो शुद्ध वैशाख कहलाता है।

क्षयमासोदाहरणम्

भाद्रपदकृष्णामावास्यायां कन्यासंक्रान्तिः ततः आश्विनोऽधिमासः। शुद्धाश्विनप्रतिपदि तुलासंक्रान्तिः । कार्तिकशुक्लप्रतिपदि वृश्चिकसंक्रान्तिः । ततो मार्गशीर्षशुद्धप्रतिपदि धनुःसंक्रान्तिः । तस्मिन्नेव मासेऽमावास्यायां मकरसंक्रान्तिरिति धनुर्मकरसंक्रान्तिद्वययुक्त एको मासः क्षयमाससंज्ञकः। सच मार्गशीर्षपौषाख्यमासद्वयात्मक एको मासो ज्ञेयः। तस्य प्रतिपदादितिथीनां पूर्वार्धे मार्गशीर्ष उत्तरार्धे पौष इत्येवं सर्वतिथीनां मासद्वयात्मकत्वात् ।

मणिकार ने लिखा—'सिद्धान्तशिरोमणिकृतापि मिताक्षरायां कुवेदेन्दुवर्षैरित्यादि स्ववाक्यं कालावधिद्वयपरतयैव व्याख्यातम्। तद् दृष्ट्वा माधवमदनरत्नादिभिः पूर्वस्मात् क्षयमासात् कुवेदेन्दुगिरिमितैर्वर्षैर्द्वितीयः क्षयमासो भवति। क्वचिद् गोकुभिः एकोनविंशतिपरिमितैर्वर्षैर्भवतीत्युक्तम्। तथापि शिरोमण्युदाहृतचतुर्थक्षयमासस्य तृतीयात् क्षयमासाद् द्वाविंशत्यधिकशत वर्षैः (१२२) जातत्वेन नियमद्वयस्यापि व्यभिचारात् । अतएव मणिमरीचाख्यशिरोमणिटीकायां गोकुभिर्न्यूनैः कुवेदेन्दुवर्षैश्चतुर्थः क्षयमास इति तृतीयावधिस्वीकारेण समाहितम्। किंच वर्षत्रयाधिकषोडशशतवर्षपरिमितशककालेऽस्मदादिभिः स्मर्यमाणः क्षयमासः शिरोमण्युदाहृतचतुर्थक्षयमासात् सपादशतद्वयवर्षैः (२२५) जातः। तत्र पूर्वोक्तनियमस्य कथमप्युक्तिसम्भवाभावात् ।

तस्माद् ग्रहगतिविशेषाद् यदा यस्मिन् दर्शान्तचान्द्रमासे संक्रान्तिद्वयं भवति तदा स क्षयमास इत्येव वक्तव्यमिति बोध्यम्। अर्थात् उपर्युक्त अनेक मतभेदों को देखते हुये यही कहना ठीक है कि ग्रहों के गतिविशेष से जब जिस दर्शान्त चान्द्रमास में दो संक्रान्ति हों तब क्षयमास होता है।

भाद्रपद कृष्ण अमावस्या में कन्या की संक्रान्ति और उसके बाद आश्विन अधिकमास हो। शुद्ध आश्विन प्रतिपदा में तुलासंक्रान्ति हो, कार्तिक में शुक्ल प्रतिपदा में वृश्चिक की संक्रान्ति हो। उसके बाद अगहन की शुक्ल प्रतिपदा में धनु की संक्रान्ति हो। उसी महीने में अमावस्या को मकरसंक्रान्ति हो इस प्रकार धनु मकर दोनों संक्रान्तियों से युक्त एक महीना क्षयमास होता है। उसे अगहन पौष नाम के दो महीने का एक महीना जानना चाहिए। उसकी प्रतिपदा आदि तिथियों के पूर्वार्द्ध में अगहन और उत्तरार्द्ध में पौष, इस प्रकार सब तिथियां दो महीनों की होती हैं।

अत्र तिथिपूर्वार्धे मृतस्य मार्गशीर्षे प्रत्यब्दश्राद्धम्। उत्तरार्धमृतस्य तु पौषे एवं जनने वर्धापनादिविधिरपि। तत ऊर्ध्वं माघामावास्यायां कुम्भसंक्रान्तिः। ततः फाल्गुनोऽधिमासः, शुद्धफाल्गुनशुक्लप्रतिपदि मीनसंक्रान्तिः। एवं पूर्वापराधिमासद्वययुक्तः क्षयमासो यस्मिन्वर्षे तत्र त्रयोदशमासात्मकं किञ्चिदूननवत्यधिकशतत्रयदिनैर्वर्षम्।

इसमें तिथि के पूर्वार्द्ध में मरे हुए का अगहन में वार्षिक श्राद्ध होगा। उत्तरार्द्ध में मरने वाले का पौष में वार्षिक श्राद्ध होगा। इसी तरह पैदा होने में और वर्षगांठ में भी। इसके बाद माघ की अमावस्या में कुम्भ की संक्रान्ति हो। तदनन्तर फाल्गुन अधिकमास हो और शुद्ध फाल्गुन की शुक्ल प्रतिपदा में मीन की संक्रान्ति हो। इस प्रकार पहले और पीछे दो अधिकमासों से युक्त क्षयमास यह जिस वर्ष में होता है उसमें तेरह महीने से कुछ कम तीन सौ नब्बे दिन का वर्ष होता है।

तत्र क्षयमासात्पूर्वोऽधिमासः [1]संसर्पसंज्ञः सर्वकर्मार्हः शुभकर्मणि न त्याज्यः। अंहस्पतिसंज्ञः क्षयमासस्तदुत्तरभाव्यधिकमासश्च सर्वकर्मसु वर्ज्यः। एवं त्रिवत्सरान्तरस्थः केवलोऽधिकमासोऽपि वर्ज्यः।

इसमें क्षयमास के पहले जो अधिकमास होता है उसका नाम संसर्प है। इसमें सभी काम होते हैं शुभकर्म में वर्जित नहीं है। क्षयमास के बाद जो अंहस्पति नाम का क्षयमास के बाद होने वाला अधिकमास है वह सभी कर्मों में त्याज्य है। इसी तरह तीन वर्ष के मध्य में जो केवल अधिकमास होता है वह भी त्याज्य है।

अधिमासक्षयमासयोर्वर्ज्यावर्ज्यनिर्णयः

अनन्यगतिकं नित्यं नैमित्तिकं काम्यं च अधिकमासक्षयमासयोः कर्तव्यम्। सगतिकं नित्यं नैमित्तिकं काम्यं च वर्ज्यम्। तथाहि-संध्याग्निहोत्रादि नित्यं ग्रहणस्नानादि नैमित्तिकं कारीर्यादिकं रक्षोगृहीतजीवनार्थं रक्षोघ्नेष्ट्यादिकं च काम्यं मलमासेऽपि कार्यम्।

---

१. 'असंक्रान्तत्वेन अधिमासवत्कर्मानर्हतायां प्राप्तायां तदपवादेन कर्मार्हः सन् सम्यक् सर्पतीति संसर्पः। एकमासप्राप्तित्वाद् अंहसः पापस्य पतिरिति अंहस्पतिः। क्षयमासस्य पूर्वभाविनोऽधिमासस्य संसर्पसंज्ञत्वं तदुत्तरभाविनः अंहस्पतिसंज्ञत्वं चोक्तं बार्हस्पत्यसंहितायाम्—'यस्मिन् मासे न संक्रान्तिः संक्रान्तिद्वयमेव वा। संसर्पांहस्पती एतत्त्वधिमासश्च निन्दितः॥' इति। जाबालिः—'एकस्मिन्नपि वर्षे चेद् द्वौ मासावधिमासकौ। पूर्वो मासः प्रशस्तः स्यादुत्तरस्तु मलिम्लुचः॥' क्षयमास के पूर्व और उत्तर के दोनों अधिमास एवं क्षयमास इन तीनों को ज्योतिषशास्त्र में त्याज्य कहा—'यद्वर्षमध्येऽधिकमासयुग्मं तत्कार्तिकादित्रितये क्षयाख्यम्। मासत्रयं त्याज्यमिदं प्रयत्नाद् विवाहयज्ञोत्सवमङ्गलेषु॥' इति।

जिसकी कोई गति न हो ऐसा नित्य नैमित्तिक और काम्य कर्म अधिकमास और क्षयमास में करना चाहिए। सगतिक नित्य नैमितिक और काम्य कर्म का वर्जन करे। जैसे संध्या अग्निहोत्र आदि नित्य कर्म, ग्रहण स्नान आदि नैमित्तिक कर्म और कारीरी आदि काम्य कर्म जो भूत बाधा के हटाने के लिए और राक्षसों के हनन के लिए जो इष्टि आदि हैं उन्हें मलमास में भी करना चाहिए।

ज्योतिष्टोमादि नित्यं जातेष्ट्यादि नैमित्तिकं पुत्रकामेष्ट्यादि काम्यं च मलमासोत्तरं शुद्धमास्येव कर्तव्यम्। आरब्धकाम्यस्य मलमासेप्यनुष्ठानम्। नूतनारम्भः समाप्तिश्च न कर्तव्या। तथा पूजालोपादिनिमित्तकपुनर्मूर्तिप्रतिष्ठां गर्भाधानाद्यन्नप्राशनान्तसंस्कारान्प्राप्तकालाननन्यगतिकान् ज्वरादिरोगशान्तिमलभ्ययोगे श्राद्धव्रतादिकं नैमित्तिकप्रायश्चित्तं नित्यश्राद्धमूनमासिकादिश्राद्धानि दर्शश्राद्धं च मलेऽपि कुर्यात्। चैत्रादौ मलमासे मृतानां कदाचिद्बहुकालेन तस्मिन्नेव चैत्रादौ मलमासे प्राप्ते मलमास एव प्रतिसांवत्सरिकं श्राद्धं कर्तव्यम्।

ज्योतिष्टोम आदि नित्यकर्म और जातेष्टि आदि नैमित्तिक कर्म और पुत्रोत्पत्ति के लिए पुत्रकामेष्टि आदि काम्यकर्म को मलमास के बाद शुद्ध मास में ही करना चाहिए। पहले से जिस काम्यकर्म का आरम्भ कर चुके हैं उसका मलमास में भी अनुष्ठान होता रहेगा। नवीन कर्म का आरम्भ और समाप्ति मलमास में नहीं करनी चाहिए। इसी तरह जिस मूर्ति की पूजा न होने से दुबारा प्रतिष्ठा करने में, गर्भाधान से लेकर अन्नप्राशन पर्यन्त संस्कारों अनन्यगतिक (जिसकी कोई दूसरी गति नहीं है) ज्वर आदि रोग की शान्ति अलभ्य योग में श्राद्ध व्रत आदि और नैमित्तिक प्रायश्चित नित्यश्राद्ध ऊनमासिकादि श्राद्ध तथा अमावस्या श्राद्ध भी मलमास में करें। चैत आदि के मलमास होने में मरे हुओं का कभी बहुत काल के बाद उसी चैत आदि में मलमास पड़ने पर मलमास में ही प्रतिवर्ष का वार्षिक श्राद्ध करना चाहिए।

चैत्रादौ शुद्धमासे मृतानां तु प्रत्याब्दिकं श्राद्धं मलमासे न कर्तव्यम्, शुद्धे एव चैत्रादौ कर्तव्यम्। शुद्धमासे मृतानां तु प्रथमाब्दिकं मलमास एव कार्यं न शुद्धे। द्वितीयाब्दिकं तु शुद्धे एव एकादशाहान्तकर्म सपिण्डीकर्म च मलेपि कार्यम्। द्वितीयमासिकादिश्राद्धं तु मले शुद्धे चावृत्त्या द्विवारं कर्तव्यम्। एवं च यत्र द्वादशमासिकमधिकमासे प्राप्तं तस्य मले शुद्धे च द्विरावृत्तिं कृत्वा ऊनाब्दकाले ऊनाब्दिकं च कृत्वा चतुर्दशे मासे प्रथमाब्दिकं कार्यम्।

चैत आदि शुद्धमास में मरे हुओं का तो वार्षिक श्राद्ध शुद्ध मलमास में नहीं करना शुद्ध मास में ही करना चाहिए। शुद्धमास में मरे हुओं का पहला वार्षिक श्राद्ध तो मलमास में ही करना चाहिए न कि शुद्धमास में। दूसरा वार्षिक श्राद्ध तो शुद्ध मास में ही होता है। एकादशाह पर्यन्त कर्म और सपिण्डीकरण मलमास में भी करना चाहिए। दूसरे आदि महीनों के मासिक श्राद्ध तो मलमास और शुद्ध मास दोनों में दो बार करना चाहिए। इसी प्रकार जहाँ अधिकमास में द्वादश मासिक श्राद्ध पड़ता हो उसे मलमास में और शुद्ध मास में भी दो बार करके ऊनाब्द काल में ऊनाब्दिक श्राद्ध करके चौदहवें महीने में पहला वार्षिक श्राद्ध करना चाहिए।

यस्मिन्वर्षे क्षयमासाव्यवहितोऽधिकमासः। यथा कार्तिकोऽधिमासस्तदुत्तरो मासो वृश्चिकधनुः संक्रान्तियुक्तत्वात्क्षयसंज्ञकस्तत्र कार्तिकमासस्थं प्रत्याब्दिकं पूर्वेऽधिमासे उत्तरे क्षयमासे च कार्यम्।

जिस वर्ष में क्षयमास के बाद अधिकमास है। जैसे कार्तिक अधिकमास है उसके बाद

भाद्रपद कृष्ण अमावस्या में कन्या की संक्रान्ति और उसके बाद आश्विन अधिकमास हो। शुद्ध आश्विन प्रतिपदा में तुलासंक्रान्ति हो, कार्तिक में शुक्ल प्रतिपदा में वृश्चिक की संक्रान्ति हो। उसके बाद अगहन की शुक्ल प्रतिपदा में धनु की संक्रान्ति हो। उसी महीने में अमावस्या को मकरसंक्रान्ति हो इस प्रकार धनु मकर दोनों संक्रान्तियों से युक्त एक महीना क्षयमास होता है। उसे अगहन पौष नाम के दो महीने का एक महीना जानना चाहिए। उसकी प्रतिपदा आदि तिथियों के पूर्वार्द्ध में अगहन और उत्तरार्द्ध में पौष, इस प्रकार सब तिथियां दो महीनों की होती हैं।

अत्र तिथिपूर्वार्धे मृतस्य मार्गशीर्षे प्रत्यब्दश्राद्धम्। उत्तरार्धमृतस्य तु पौषे एवं जनने वर्धापनादिविधिरपि। तत ऊर्ध्वं माघामावास्यायां कुम्भसंक्रान्तिः। ततः फाल्गुनोऽधिमासः, शुद्धफाल्गुनशुक्लप्रतिपदि मीनसंक्रान्तिः। एवं पूर्वापराधिमासद्वययुक्तः क्षयमासो यस्मिन्वर्षे तत्र त्रयोदशमासात्मकं किञ्चिदूननवत्यधिकशतत्रयदिनैर्वर्षम्।

इसमें तिथि के पूर्वार्द्ध में मरे हुए का अगहन में वार्षिक श्राद्ध होगा। उत्तरार्द्ध में मरने वाले का पौष में वार्षिक श्राद्ध होगा। इसी तरह पैदा होने में और वर्षगांठ में भी। इसके बाद माघ की अमावस्या में कुम्भ की संक्रान्ति हो। तदनन्तर फाल्गुन अधिकमास हो और शुद्ध फाल्गुन की शुक्ल प्रतिपदा में मीन की संक्रान्ति हो। इस प्रकार पहले और पीछे दो अधिकमासों से युक्त क्षयमास यह जिस वर्ष में होता है उसमें तेरह महीने से कुछ कम तीन सौ नब्बे दिन का वर्ष होता है।

तत्र क्षयमासात्पूर्वोऽधिमासः [1]संसर्पसंज्ञः सर्वकर्मार्हः शुभकर्मणि न त्याज्यः। अंहस्पतिसंज्ञः क्षयमासस्तदुत्तरभाव्यधिकमासश्च सर्वकर्मसु वर्ज्यः। एवं त्रिवत्सरान्तरस्थः केवलोऽधिकमासोऽपि वर्ज्यः।

इसमें क्षयमास के पहले जो अधिकमास होता है उसका नाम संसर्प है। इसमें सभी काम होते है शुभकर्म में वर्जित नहीं है। क्षयमास के बाद जो अंहस्पति नाम का क्षयमास के बाद होने वाला अधिकमास है वह सभी कर्मों में त्याज्य है। इसी तरह तीन वर्ष के मध्य में जो केवल अधिकमास होता है वह भी त्याज्य है।

अधिमासक्षयमासयोर्वर्ज्यावर्ज्यनिर्णयः

अनन्यगतिकं नित्यं नैमित्तिकं काम्यं च अधिकमासक्षयमासयोः कर्तव्यम्। सगतिकं नित्यं नैमित्तिकं काम्यं च वर्ज्यम्। तथाहि-संध्याग्निहोत्रादि नित्यं ग्रहणस्नानादि नैमित्तिकं कारीर्यादिकं रक्षोगृहीतजीवनार्थं रक्षोघ्नेष्ट्यादिकं च काम्यं मलमासेऽपि कार्यम्।

---

१. 'असंक्रान्तत्वेन अधिमासवत्कर्मानर्हतायां प्राप्तायां तदपवादेन कर्मार्हः सन् सम्यक् सर्पतीति संसर्पः। एकमासग्रासित्वाद् अंहसः पापस्य पतिरिति अंहस्पतिः। क्षयमासस्य पूर्वभाविनोऽधिमासस्य संसर्पसंज्ञत्वं तदुत्तरभाविनः अंहस्पतिसंज्ञत्वं चोक्तं बार्हस्पत्यसंहितायाम्—'यस्मिन् मासे न संक्रान्तिः संक्रान्तिद्वयमेव वा। संसर्पांहस्पती एतत्त्वधिमासश्च निन्दितः॥' इति। जाबालिः—'एकस्मिन्नपि वर्षे चेद् द्वौ मासावधिमासकौ। पूर्वो मासः प्रशस्तः स्यादुत्तरस्तु मलिम्लुचः॥' क्षयमास के पूर्व और उत्तर के दोनों अधिमास एवं क्षयमास इन तीनों को ज्योतिषशास्त्र में त्याज्य कहा—'यद्वर्षमध्येऽधिकमासयुग्मं तत्कार्तिकादित्रितये क्षयाख्यम्। मासत्रयं त्याज्यमिदं प्रयत्नाद् विवाहयज्ञोत्सवमङ्गलेषु॥' इति।

जिसकी कोई गति न हो ऐसा नित्य नैमित्तिक और काम्य कर्म अधिकमास और क्षयमास में करना चाहिए। सगतिक नित्य नैमितिक और काम्य कर्म का वर्जन करे। जैसे संध्या अग्निहोत्र आदि नित्य कर्म, ग्रहण स्नान आदि नैमित्तिक कर्म और कारीरी आदि काम्य कर्म जो भूत बाधा के हटाने के लिए और राक्षसों के हनन के लिए जो इष्टि आदि हैं उन्हें मलमास में भी करना चाहिए।

ज्योतिष्टोमादि नित्यं जातेष्ट्यादि नैमित्तिकं पुत्रकामेष्ट्यादि काम्यं च मलमासोत्तरं शुद्धमास्येव कर्तव्यम्। आरब्धकाम्यस्य मलमासेऽप्यनुष्ठानम्। नूतनारम्भः समाप्तिश्च न कर्तव्या। तथा पूजालोपादिनिमित्तकपुनर्मूर्तिप्रतिष्ठां गर्भाधानाद्यन्नप्राशनान्तसंस्कारान्प्राप्तकालानानन्यगतिकान् ज्वरादिरोगशान्तिमलभ्ययोगे श्राद्धव्रतादिकं नैमित्तिकप्रायश्चित्तं नित्यश्राद्धमूनमासिकादिश्राद्धानि दर्शश्राद्धं च मलेऽपि कुर्यात्। चैत्रादौ मलमासे मृतानां कदाचिद्बहुकालेन तस्मिन्नेव चैत्रादौ मलमासे प्राप्ते मलमास एव प्रतिसांवत्सरिकं श्राद्धं कर्तव्यम्।

ज्योतिष्टोम आदि नित्यकर्म और जातेष्टि आदि नैमित्तिक कर्म और पुत्रोत्पत्ति के लिए पुत्रकामेष्टि आदि काम्यकर्म को मलमास के बाद शुद्ध मास में ही करना चाहिए। पहले से जिस काम्यकर्म का आरम्भ कर चुके हैं उसका मलमास में भी अनुष्ठान होता रहेगा। नवीन कर्म का आरम्भ और समाप्ति मलमास में नहीं करनी चाहिए। इसी तरह जिस मूर्ति की पूजा न होने से दुबारा प्रतिष्ठा करने में, गर्भाधान से लेकर अन्नप्राशन पर्यन्त संस्कारों अनन्यगतिक (जिसकी कोई दूसरी गति नहीं है) ज्वर आदि रोग की शान्ति अलभ्य योग में श्राद्ध व्रत आदि और नैमित्तिक प्रायश्चित नित्यश्राद्ध ऊनमासिकादि श्राद्ध तथा अमावस्या श्राद्ध भी मलमास में करें। चैत आदि के मलमास होने में मरे हुओं का कभी बहुत काल के बाद उसी चैत आदि में मलमास पड़ने पर मलमास में ही प्रतिवर्ष का वार्षिक श्राद्ध करना चाहिए।

चैत्रादौ शुद्धमासे मृतानां तु प्रत्याब्दिकं श्राद्धं मलमासे न कर्तव्यम्, शुद्धे एव चैत्रादौ कर्तव्यम्। शुद्धमासे मृतानां तु प्रथमाब्दिकं मलमास एव कार्यं न शुद्धे। द्वितीयाब्दिकं तु शुद्धे एव एकादशाहान्तकर्म सपिण्डीकर्म च मलेपि कार्यम्। द्वितीयमासिकादिश्राद्धं तु मले शुद्धे चावृत्त्या द्विवारं कर्तव्यम्। एवं च यत्र द्वादशमासिकमधिकमासे प्राप्तं तस्य मले शुद्धे च द्विरावृत्तिं कृत्वा ऊनाब्दकाले ऊनाब्दिकं च कृत्वा चतुर्दशे मासे प्रथमाब्दिकं कार्यम्।

चैत आदि शुद्धमास में मरे हुओं का तो वार्षिक श्राद्ध शुद्ध मलमास में नहीं करना शुद्ध मास में ही करना चाहिए। शुद्धमास में मरे हुओं का पहला वार्षिक श्राद्ध तो मलमास में ही करना चाहिए न कि शुद्धमास में। दूसरा वार्षिक श्राद्ध तो शुद्ध मास में ही होता है। एकादशाह पर्यन्त कर्म और सपिण्डीकरण मलमास में भी करना चाहिए। दूसरे आदि महीनों के मासिक श्राद्ध तो मलमास और शुद्ध मास दोनों में दो बार करना चाहिए। इसी प्रकार जहाँ अधिकमास में द्वादश मासिक श्राद्ध पड़ता हो उसे मलमास में और शुद्ध मास में भी दो बार करके ऊनाब्द काल में ऊनाब्दिक श्राद्ध करके चौदहवें महीने में पहला वार्षिक श्राद्ध करना चाहिए।

यस्मिन्वर्षे क्षयमासाव्यवहितोऽधिकमासः। यथा कार्तिकोऽधिमासस्तदुत्तरो मासो वृश्चिकधनुः संक्रान्तियुक्तत्वात्क्षयसंज्ञकस्तत्र कार्तिकमासस्थं प्रत्याब्दिकं पूर्वेऽधिमासे उत्तरे क्षयमासे च कार्यम्।

जिस वर्ष में क्षयमास के बाद अधिकमास है। जैसे कार्तिक अधिकमास है उसके बाद

वाला महीना वृश्चिक और धनु संक्रान्ति से युक्त होने से क्षयमास है उसमें कार्तिक महीने के वार्षिक श्राद्ध को पहले अधिकमास में और दूसरे क्षयमास में भी करना चाहिए।

यत्रापि क्षयाव्यवहितपूर्वोऽधिमासो यथाऽऽश्विनोऽधिमासो मार्गशीर्षः क्षयस्तत्रापि आश्विनमासगतं श्राद्धमधिके शुद्धे च आश्विने कार्यं, द्वयोरपि कर्मार्हत्वादिति भाति। व्यवहितक्षयमासगतं त्वाब्दिकं क्षयमास एव कार्यम्। तथा च पूर्वोक्ते मार्गशीर्षक्षयोदाहरणे मार्गशीर्षगतं पौषगतं चाब्दिकमेकस्मिन्नेव मासे तिथिपूर्वार्धादिविभागं विनैव कार्यमिति फलितम्।

जहां क्षयमास से अव्यवहित पहला महीना जैसे आश्विन अधिकमास है और अगहन क्षयमास है उसमें भी आश्विन महीने वाला श्राद्ध अधिकमास में और शुद्ध आश्विन में भी करना दोनों ही कर्म के योग्य मास हैं। क्षयमास व्यवधान वाले वार्षिक श्राद्ध को क्षयमास में ही करना। उसी तरह पहले के कहे हुए अगहनमास के और पौषमास के वार्षिक श्राद्ध को एक ही महीने में तिथि के पूर्वार्द्ध आदि भाग के विना ही करना चाहिए।

मलमासे वर्ज्यानि

उपाकर्मोत्सर्जने अष्टकाश्राद्धानि अधिके वर्ज्यानि। चूडामौञ्जीबन्धविवाहास्तीर्थादियात्रा वास्तुकर्म गृहप्रवेशदेवप्रतिष्ठाकूपारामाद्युत्सर्गो नूतनवस्त्रालंकारधारणं तुलापुरुषादिमहादानानि यज्ञकर्माधानमपूर्वतीर्थदेवदर्शनं संन्यासः काम्यवृषोत्सर्गो राजाभिषेको व्रतानि सगतिकमन्नप्राशनं समावर्तनमतिक्रान्तनामकर्मादिसंस्काराः पवित्रारोपणदमनार्पणे श्रवणाकर्म सर्पबल्यादिपाकसंस्थाः शयनपरिवर्तनाद्युत्सवः शपथदिव्यादिकर्म एतानि मलमासे वर्ज्यानि।

मलमासमें उपाकर्म, उत्सर्जन अष्टकाश्राद्ध, गृहप्रवेश, चूड़ाकरण, यज्ञोपवीत, विवाह, तीर्थ आदि की यात्रा और मकान बनाना, गृहप्रवेश, किसी देवता की प्रतिष्ठा, कुआँ और बगीचे का उत्सर्ग, नये वस्त्र और अलंकार का पहनना, तुला-पुरुष आदि महादान, यज्ञ कर्म, आधान अपूर्व देवता और अपूर्व तीर्थ का दर्शन, संन्यास, काम्य, वृषोत्सर्ग, राजाभिषेक व्रत मलमास के अनन्तर हो सकने वाला अन्नप्राशन, समावर्तन छूटे हुए नामकर्म आदि संस्कार, पवित्रारोपण, दमनार्पण, श्रवणाकर्म, सर्पबलि आदि पाक संस्थाएँ, शयन और परिवर्तन आदि का उत्सव, शपथ और दिव्यादि कर्म मलमास में नही करना चाहिए।

नैमित्तिकानि रजोदर्शनशान्तिविच्छिन्नाधानपुनःप्रतिष्ठादीनि यदि निमित्तानन्तरमेव क्रियन्ते तदा न मलमासादिदोषः। कालातिपत्तौ तु शुद्धे एव कर्तव्यानि। आग्रयणं दुर्भिक्षसंकटे मलमासे कार्यम् अन्यथा शुद्धे एव। युगादिमन्वादिश्राद्धानां मासद्वयेप्यावृत्तिः। क्षयात्पूर्वोऽधिमासः संसर्पसंज्ञकः पूर्वमुक्तः। तत्र चूडाकर्मव्रतबंधविवाहाग्न्याधानयज्ञोत्सवमहालयराजाभिषेका एव वर्ज्याः नान्यानि कर्माणि।

नैमित्तिक रजोदर्शन शान्ति अतिक्रान्त आधान और पुनः प्रतिष्ठा आदि यदि निमित्त के तुरत बाद ही करते हैं तब मलमास आदि का दोष नही होता। देर हो जाने पर तो शुद्ध में ही करना चाहिए। आग्रयणेष्टि तो दुर्भिक्ष संकट में मलमास में करना चाहिए नही तो शुद्ध में ही। और मन्वादिश्राद्धों को दोनों में करना चाहिए। क्षयमास से पहले के अधिकमास को संसर्प कहते हैं यह पहले कह चुके हैं। उसमें चूड़ाकर्म यज्ञोपवीत, विवाह, अग्न्याधान, यज्ञ का उत्सव, महालय और राजाभिषेक भी वर्जित है, अन्य कोई कर्म वर्जित नही है।

अपूर्वव्रतारंभो व्रतसमाप्तिश्च मलमासे न भवति। सपूर्वमाघस्नानादेः क्षयमासेप्यारम्भसमाप्ती इति मकरसंक्रान्तियुक्तक्षयमासगतपौर्णमास्यां माघस्नानमारभ्य कुम्भसंक्रान्तियुतमाघपौर्णमास्यां समापनीयम्। एवं कार्तिकेऽप्यूह्यम्। यत्र वैशाखादिरधिकस्तत्र वैशाखस्नानादिमासव्रतानां चैत्रपूर्णिमायामारब्धानां शुद्धवैशाखपौर्णमास्यां समाप्तिरिति तेषां मासद्वयमनुष्ठानम्।

नये व्रत का प्रारम्भ और व्रत की समाप्ति भी मलमास में नहीं होती। पहले से नहाते आये माघस्नानादि का आरम्भ और समाप्ति क्षयमास में भी होता है। इस प्रकार मकरसंक्रान्ति युक्त क्षयमास की पूर्णिमा में माघस्नान का प्रारंभ करके संक्रान्ति युक्त माघ की पूर्णिमा को समाप्त करना चाहिए। इसी प्रकार कार्तिक में भी समझना चाहिए। जहाँ वैशाख आदि अधिक मास हो वहाँ वैशाखस्नान आदि मासव्रतों को चैत की पूर्णिमा से आरम्भ करके शुद्ध वैशाख पूर्णिमा में समाप्ति करनी चाहिए। इनका दो महीने तक स्नान होना चाहिए।

शुक्रास्तादिषु वर्ज्यानि

यन्मलमासे वर्ज्यमुक्तं तद् [1]गुरुशुक्रास्तबाल्यवार्धकेष्वपि ज्ञेयम्। तत्रास्तात्प्राक् सप्ताहं वार्धकमुदयानन्तरं सप्ताहं बाल्यमिति मध्यमः पक्षः। पञ्चदशाहपञ्चाहत्र्यहादिपक्षा आपदनापदादिविषयतया देशविशेषपरतया च योज्या।

जो मलमास में वर्जित है उसे बृहस्पति और शुक्र के अस्त बाल्य बार्धक में भी जानना चाहिए। उसमें अस्त के पहले सात दिन वार्धक और उदय के बाद सात दिन बाल्य होता है। यह मध्यम पक्ष है। पन्द्रह दिन दस दिन पाँच दिन और तीन दिन के पक्ष आपत्ति और सम्पत्ति विषय परक होने से और देश काल की विशेषता से उसकी योजना करनी चाहिए।

सिंहस्थे गुरौ वर्ज्यानि

अयं वर्ज्यावर्ज्यनिर्णयः [2]सिंहस्थे गुरावपि ज्ञेयः। तत्र विशेष उच्यते कर्णवेधचौलमौञ्जीबन्धविवाहदेवयात्राव्रतवास्तुकर्मदेवप्रतिष्ठासंन्यासा विशेषतो वर्ज्या इति।

यह वर्ज्य अवर्ज्य बृहस्पति में भी ज्ञातव्य है इसमें जो विशेष है उसको कहते हैं। कर्णवेध, मुण्डन, यज्ञोपवीत, विवाह, देवयात्रा, व्रत, मकान बनाना, देवता की प्रतिष्ठा और संन्यास ये विशेषतः करना चाहिए।

अथ सिंहस्थापवादः

मघानक्षत्रगते सिंहांशगते च गुरौ सर्वदेशेषु सर्वमाङ्गलिककर्मणां निषेधः।

---

१. बृहस्पतिः—'बाले वा यदि वा वृद्धे शुक्रे वाऽस्तंगते गुरौ। मलमास इवैतानि वर्जयेद् देवदर्शनम्॥' वृत्तशत में गुरु शुक्र के बाल्य और वृद्धत्व का विचार—'बालः शुक्रो दिवसदशकं पंचकं चैव वृद्धः पश्चादह्नां त्रितयमुदितः पक्षमैन्द्र्यां क्रमेण। जीवो वृद्धः शिशुरपि तथा पक्षमन्यैः शिशू तौ वृद्धौ प्रोक्तौ दिवसदशकं चापरैः सप्तरात्रम्॥' गुरु शुक्र के देशभेद से बाल्यत्व वृद्धत्व की व्यवस्था। गार्ग्य—'शुक्रो गुरुः प्राक्च पराक्च बालो विन्ध्ये दशावन्तिषु सप्तरात्रम्। वङ्गेषु हूणेषु च षट् च पञ्च शेषे च देशे त्रिदिनं वदन्ति॥' इति।

२. लल्लः—'नीचस्थे वक्रसंस्थेऽप्यतिचरणगते बाल वृद्धास्तगे वा संन्यासो देवयात्राव्रतनियमविधिः कर्णवेधस्तु दीक्षा। मौञ्जीबन्धोऽङ्गनानां परिणयनविधिर्वास्तुदेवप्रतिष्ठा वर्ज्याः सद्भिः प्रयत्नात् त्रिदशपतिगुरौ सिंहराशिस्थिते च॥" इति।

सिंहांशोत्तरं गोदादक्षिणे भागीरथ्युत्तरे सिंहस्थदोषो नास्ति । गङ्गागोदामध्य-देशे तु सर्वसिंहस्थे विवाहव्रतबन्धयोर्दोषः । अन्यकर्माणि सिंहांशोत्तरं सर्वदेशेषु कर्तव्यानि । मेषस्थे सूर्ये सर्वदेशेषु सर्वमाङ्गलिककर्मणां सर्वसिंहस्थे न दोषः । क्वचिद् वृषस्थितेऽर्केपि दोषाभाव उक्तः ।

मघा नक्षत्र में सिंहस्थ बृहस्पति के हों तो सब देशों में सम्पूर्ण मांगलिक कार्यों का निषेध है । सिंहस्थके बाद गोदावरी के दक्षिण भाग में और भागीरथी गंगा के उत्तर देश में सिंहस्थ बृहस्पति का दोष नही लगता । गंगा गोदावरी के मध्यदेश में सिंहस्थ बृहस्पति का विवाह और यज्ञोपवीत में दोष होता है । अन्य कर्म सिंहस्थ के बाद सब देशों में किया जाता है । मेष के सूर्य में सब देशों में सम्पूर्ण मांगलिक कार्यों का, सम्पूर्ण सिंहस्थ गुरु में दोष नहीं होता है । कहीं वृष के सूर्य में भी दोष न होने की बात कही है ।

अत्र सिंहस्थे गुरौ गोदावरीस्नानं कन्यागते कृष्णास्नानं महापुण्यम् । गोदावर्यां यात्रिकाणां मुण्डनोपवासावावश्यकौ नतु तत्तीरवासिनाम् । गर्भिण्यामपि भार्यायां विवाहादिमङ्गलोत्तरमपि गोदावर्यां मुण्डने दोषो नास्ति । गया-गोदावरीयात्रायां मलमासगुरुशुक्रास्तादिदोषो नास्ति । मलमासे व्रतविशेषोऽन्यत्र ज्ञेयः । इति मलमासगुरुशुक्रास्तसिंहस्थगुरुवर्ज्यविवर्ज्यनिर्णयोद्देशः ॥ ३ ॥

इस सिंहस्थ बृहस्पति में गोदावरी में स्नान और कन्या में कृष्णानदी का स्नान अधिक पुण्यदायक है । गोदावरी यात्रा करने वालों को मुण्डन और उपवास आवश्यक है । गोदावरी के तीर पर रहने वालों को आवश्यक नहीं है । स्त्री के गर्भिणी रहने पर और विवाह आदि मंगल के अनन्तर भी गोदावरी में मुण्डन का दोष नहीं है । गंगा गोदावरी की यात्रा में मलमास गुरु शुक्र का अस्त आदि दोष नही है । मलमास में विशेष व्रत दूसरे ग्रन्थों से जानना चाहिए । मलमास-गुरु-शुक्रास्त-सिंहस्थ-गुरुवर्ज्यावर्ज्यनिर्णयोद्देश समाप्त ।

अथ तिथिनिर्णये सामान्यपरिभाषा

'तिथिर्द्विविधा-पूर्णा सखण्डा च । सूर्योदयमारभ्य षष्टिनाडिकाव्याप्ता पूर्णा,

---

१. जो काल विशेष वर्धमान या क्षीयमाण एक चन्द्रकाल को बढावे उसे तिथि कहते हैं— तनोति विस्तारयति वर्द्धमानां क्षीयमाणां वा चन्द्रकलामेकां यः कालविशेषः, सा तिथिः ।

अथवा सिद्धान्तशिरोमणिके—'तन्यते कलया यस्मात् तस्मात्तास्तिथयः स्मृताः' इस वचन के अनुसार यथोक्तकलया तन्यये इति तिथिः । यह तिथि सामान्य-विशेष-रूप से दो प्रकार की है । जो क्षयोदयरहित षोडश कलायुक्त काल वाली है वह सामान्य और जो वृद्धिक्षय सहित पंचदश कला विशिष्ट काल विभागवाली है वह विशेष ।

अग्नि आदि देवता प्रतिदिन चन्द्रमा के पन्द्रह कलाओं में से एक एक कला को पीते हैं । अग्नि देव प्रथम कला को पीते हैं उससे युक्त कालविशेष प्राथम्यवाची होने से प्रतिपद् शब्द से अभिहित हुआ । इसी प्रकार द्वितीया से अमापर्यन्त तिथियों के नाम जानना चाहिये । ये तिथियां कृष्ण पक्ष की हुई ।

फिर वे पीत कलायें क्रम से पीने वाले उन उन अग्नि आदि देवताओं से निकल कर चन्द्रमण्डल को पूर्ण करती हैं अतः उन कलाओं से युक्त कालविशेष शुक्ल पक्ष गत प्रतिपदादि तिथियों के शब्द से व्यवहृत होते हैं । सामोत्पत्ति में वह्न्यादि देवताओं के कला पान का वर्णन यों हैं 'प्रथमां पिबते वह्निर्द्वितीयां पिबते रविः । विश्वेदेवास्तृतीयां तु चतुर्थीं सलिलाधिपः ॥ पंचमी

एतदन्या सखण्डा । सखण्डाऽपि द्विविधा-शुद्धा विद्धा च । सूर्योदयमारभ्य अस्तमयपर्यन्तं विद्यमाना शिवरात्र्यादौ निशीथपर्यन्तं विद्यमाना च शुद्धा, तदन्या विद्धा ।

तिथि दो प्रकार की होती है—पूर्णा और सखण्डा । सूर्योदय से लेकर साठ घड़ी तक रहनेवाली पूर्णा तिथि कहलाती है । इससे भिन्न सखण्डा होती है । सखण्डा भी दो प्रकार की है—शुद्धा और विद्धा । सूर्योदय से लेकर सूर्यास्तपर्यन्त रहने वाली और शिवरात्रि आदि में आधी रात तक रहनेवाली तिथि शुद्धा कहलाती है । इससे भिन्न विद्धा होती है ।

वेधोऽपि द्विविधः—प्रातर्वेधः सायंवेधश्च । सूर्योदयोत्तरं षड्घटिकापरिमिततिथ्यन्तरस्पर्शात्मकः प्रातर्वेधः । सूर्यास्तात्प्राक् षड्घटीमिततिथ्यन्तरस्पर्शः सायंवेधः । एकादशीव्रतविषये तु वेधो वक्ष्यते । क्वचित्तिथिविशेषे वेधाधिक्यम् । पञ्चमी द्वादशनाडीभिः षष्ठीं विद्धां करोति । दशमी पञ्चदशभिरेकादशीवेधकृत् । चतुर्दशी अष्टादशनाडीभिः पञ्चदशीं विध्यति । विद्धाश्च तिथयः क्वचित्कर्मणि ग्राह्याः कुत्रचित्त्याज्याश्च भवन्ति । तत्र संपूर्णा शुद्धा च तिथिः प्रायेण निर्णयं नापेक्षते संदेहाभावात् । निषेधविषये सखण्डापि न निर्णयार्हा । निषेधस्तु 'निवृत्त्यात्मा कालमात्रमपेक्षते' इति वचनेन अष्टम्यादिषु नारिकेलादिभक्षणनिषेधादेस्तत्कालमात्रमात्रव्याप्ततिथ्यपेक्षणात् ।

वेध भी दो प्रकार का है—प्रातर्वेध और सायंवेध । सूर्योदय के बाद छः घड़ी तक दूसरी तिथि का स्पर्श होने से प्रातर्वेध होता है । सूर्यास्त से पहले छ घड़ी तक दूसरे तिथि के स्पर्श होने

तु वषट्कारः षष्ठीं पिबति वासवः । सप्तमीमृषयो दिव्या अष्टमीमज एकपात् ॥ नवमीं कृष्णपक्षस्य यमः प्राश्नाति वै कलाम् । दशमीं पिबते वायुः पिबत्येकादशीमुमा ॥ द्वादशीं पितरः सर्वे समं प्राश्नाति भागशः । त्रयोदशीं धनाध्यक्षः कुबेरः पिबते कलाम् ॥ चतुर्दशीं पशुपतिः पञ्चदशीं प्रजापतिः । निष्पीतश्च कलाशेषश्चन्द्रमा न प्रकाशते ॥ कला षोडशिका या तु अपः प्रविशते सदा । अमायां तु सदा सोम ओषधीः प्रतिपद्यते ॥ तमोषधिगतं गावः पिबन्त्यम्बुगतं च यत् । तत्क्षीरममृतं भूत्वा मन्त्रपूतं द्विजातिभिः ॥ हुतमग्निषु यज्ञेषु पुनराप्यायते शशी । दिने दिने कलावृद्धिः पौर्णिमास्यां तु पूर्यते ॥' इति ।

ज्योतिषशास्त्र में प्रतिपदादि तिथियों का वर्णन भिन्न प्रकार से हैं, सिद्धान्तशिरोमणि—'अर्काद्विनिसृतः प्राचीं यद्यात्यहरहः शशी । तच्चान्द्रमानमंशैस्तु ज्ञेया द्वादशभिस्तिथिः ॥' अयमर्थः—ऊर्ध्वप्रदेशवर्तिनो मन्दगामिनः सूर्यस्य अधःप्रदेशवर्ती शीघ्रगामी चन्द्रः, तयोर्गतिविशेषवशाद् दर्शे सूर्यमण्डलस्याधोभागे एव चन्द्रस्य अवस्थितिर्भवति तदा सूर्यरश्मिभिः अभिभूतत्वात् चन्द्रमण्डलमीषदपि न प्रकाशते, ततो दर्शोत्तरकाले शीघ्रगामीत्वात् त्रिंशदंशोपेतराशौ सूर्याधिकरणराश्यंशं त्यक्त्वा अग्रिमांशं गच्छति । एवं क्रमेण त्रयोदशांशप्रवेशक्षणे चन्द्रस्य प्रथमा कला दर्शनयोग्या भवति । सूर्याधिकरणराश्यंशाद् अग्रिमत्रयोदशांशप्रवेशस्तु अतिशीघ्रगतौ चतुःपञ्चाशता घटिकाभिर्भवति । अतिमन्दगतौ पंचषष्ट्या घटिकाभिर्भवति । ततश्च प्रथमकलया स्वदर्शनयोग्यत्वसम्पत्त्यर्थं यावान् कालोऽपेक्ष्यते स कालः प्रतिपच्छब्दाभिधेयः । एवं द्वितीयादिपौर्णमासीपर्यन्तास्तिथयो बोध्याः ।

माधवीय में सामान्यतः पैठीनसीने वेध बतलाया—'पक्षद्वयेऽपि तिथयस्तिथिं पूर्वां तयोत्तराम् । त्रिभिर्मुहूर्तैर्विध्यन्ति सामान्योऽयं विधिः स्मृतः ॥' मदनरत्नादि में द्विमुहूर्त का भी वेध माना है, पर वह प्रातःकाल में ही मान्य है । सायंकाल तो त्रिमुहूर्त का ही वेध है । स्कन्दपुराण—'यां तिथिं समनुप्राप्य यात्यस्तं पद्मिनीपतिः । सा तिथिस्तद्दिने प्रोक्ता त्रिमुहूर्तैव या भवेत् ॥' इति ।

से सायंवेध होता है। एकादशी व्रत के विषय में तो वेध आगे कहेंगे। कहीं तिथि विशेष में वेध का आधिक्य होता है। पंचमी बारह घड़ी से षष्ठी को विद्धा करती है। दशमी पन्द्रह घड़ी से एकादशी का वेध करती है। चतुर्दशी अठारह घड़ी से पूर्णिमा का वेध करती है। विद्ध तिथियाँ किसी काम में लेने योग्य होती हैं और कहीं पर त्याज्य भी होती हैं। उनमें सम्पूर्ण और शुद्धा तिथि के सन्देह न होने से निर्णय की प्रायः आवश्यकता नहीं होती। निषेध के विषय में सखण्ड भी तिथि निर्णय के योग्य नहीं है। निषेध तो निवारण मात्र होने से केवल काल की अपेक्षा करता है। इस वचन से अष्टमी आदि में नारियल खाने का निषेध है। वह जब तक अष्टमी रहेगी तब तक उसके त्याग की अपेक्षा है।

विहितव्रतादिविषये तु निर्णय उच्यते। तत्र 'कर्मणो यस्य यः कालस्तत्कालव्यापिनी तिथिर्ग्राह्या[1]। यथा विनायकादिव्रते मध्याह्नादौ पूजनादिविधानान्मध्याह्नादिव्यापिनी। दिनद्वये कर्मकाले व्याप्तावव्याप्तौ तदेकदेशव्याप्तौ वा युग्मवाक्यादिना पूर्वविद्धायाः परविद्धाया वा तिथेर्ग्राह्यत्वम्[2]।

विहित व्रतादि के विषय में निर्णय कहते हैं। उसमें जिस कर्म का जो काल विहित है, उसमें तत्कालव्यापिनी तिथि को ही लेनी चाहिए। जैसे विनायक आदि के व्रत में मध्याह्न आदि में पूजा का विधान है। इस लिये वहाँ मध्याह्न व्यापिनी तिथि ग्राह्य है। कर्मकाल दो दिन पड़ता हो या दोनों दिन नहीं पड़ता हो अथवा एक देश में पड़ता हो तो, युग्म वाक्यादि से पूर्वविद्धा या परविद्धा तिथि ग्राह्य है।

युग्मवाक्यं तु—युग्माग्नियुगभूतानां षण्मुन्योर्वसुरन्ध्रयोः।
रुद्रेण द्वादशी युक्ता चतुर्दश्या च पूर्णिमा॥
प्रतिपद्यप्यमावास्यातिथ्योर्युग्मं महाफलम्। इति।

युग्मं द्वितीया अग्निस्तृतीया द्वितीया तृतीयाविद्धा ग्राह्या। तृतीया द्वितीयाविद्धा ग्राह्येत्येवं द्वितीयातृतीययोर्युग्मम्, चतुर्थीपञ्चम्योर्युग्मम्, षष्ठीसप्तम्योर्युग्मम्, अष्टमीनवम्योर्युग्मम्, एकादशीद्वादश्योर्युग्मम्, चतुर्दशीपौर्णमास्योर्युग्मम्, अमावास्याप्रतिपदोर्युग्ममित्यर्थः। क्वचित् 'चतुर्थी गणनाथस्य मातृविद्धा प्रशस्यते' इत्यादिविशेषवाक्यैर्ग्राह्यत्वनिर्णयः।

'युग्माग्नियुग' यह युग्मवाक्य है अर्थात् युग्म द्वितीया और अग्नि तृतीया, इस तरह द्वितीया तृतीया का वेध ग्राह्य है। और तृतीया द्वितीया विद्धा ग्राह्य है। इस प्रकार द्वितीया तृतीया का चतुर्थी पंचमी का, षष्ठी सप्तमी का, अष्टमी नवमी का, एकादशी द्वादशी का, चतुर्दशी पूर्णिमा का तथा अमावस्या प्रतिपदा का युग्म होता है। कहीं पर गणेशव्रत में तृतीया विद्धा चतुर्थी विशेष वाक्यों से ग्राह्य है।

वचनवशेन ग्राह्यायास्तिथेः कर्मकाले सत्त्वाभावे साकल्यवचनैः सत्त्वं भावनीयम्। तानि च—

---

१. विष्णुधर्मोत्तरे—'कर्मणो यस्य यः कालस्तत्कालव्यापिनी तिथिः। तया कर्माणि कुर्वीत ह्रासवृद्धी न कारणम्॥' इति।

२. तत्तत्तिथिनिमित्तकतत्तत्कर्मं विधिबोधिततत्तत्फलदातृमहाफलरूपस्तुत्या युग्मगता पूर्वा तिथिरुत्तरविद्धा ग्राह्या, उत्तरा तिथिः पूर्वविद्धा ग्राह्येत्याशयः।

यां तिथिं समनुप्राप्य उदयं याति भास्करः ।
सा तिथिः सकला ज्ञेया स्नानदानजपादिषु ॥

इत्यादीनि । इति सामान्यनिर्णयोद्देशः ॥ ४ ॥

वचन से ग्राह्य तिथि का कर्मकाल में नहीं होने पर भी उसकी सम्पूर्णता वचनों से उसका रहना माना जाता है । वे वचन ये हैं—जिस तिथि में सूर्य का उदय होता है वह तिथि स्नान, दान और जपादि कार्यों में सम्पूर्ण मानी जाती है। जिस तिथि में चन्द्रमा अस्त होते हैं, वह तिथि स्नान दानादि कर्मों में सम्पूर्ण मानी जाती है । उदय के बाद दो मुहूर्त अधिक का और अस्त के पहले तीन मुहूर्त अधिक का होना प्रायः इस तरह दो प्रकार की तिथि की सम्पूर्णता जाननी चाहिये । सामान्य-निर्णयोद्देश समाप्त ।

अथ कर्मविशेषे निर्णयः

कर्माणि द्विविधानि—दैवानि पित्र्याणि च । दैवानि षड्विधानि-एकभक्तनक्ता-याचितोपवासव्रतदानाख्यानि । मध्याह्ने एकवारमेकान्नभोजनमेकभक्तम्[1] । रात्रावेव प्रदोषकाले भोजनं नक्तम्[2] । याचनां विना तद्दिने लब्धस्यान्नादेर्भोजनमयाचितम्[3] । दिनान्तरलब्धस्यापि पाचकं स्त्रीपुत्रादिकं प्रति याचनमन्तरेण भोजन-मयाचितमिति केचित् । अहोरात्रभोजनाभाव उपवासः । पूजाद्यात्मकः कर्म-विशेषो व्रतम् ।

कर्म दो प्रकार का होता है—दैव और पित्र्य । दैव कर्म छ प्रकार का है—एकभक्त, नक्त, अयाचित, उपवास, व्रत और दान । मध्याह्न के समय एकबार एक अन्न का भोजन करना, इसे एकभक्त कहते हैं । रात में प्रदोषकाल में भोजन करने को नक्त कहते हैं । बिना माँगे उस दिन जो अन्न मिल जाय उसीका भोजन करने को अयाचित कहते हैं । दूसरे दिन का मिला हुआ भी पकाने वाले स्त्री पुत्र से बिना माँगे जो भोजन है, उसे भी कुछ लोग अयाचित कहते हैं । दिन-रात में भोजन के अभाव को उपवास कहते हैं । पूजा आदि कर्मविशेष जिसमें किया जाय उसे व्रत कहते है ।

स्वस्वत्वनिवृत्तिपूर्वकं परस्वत्वापादनं दानम् । तानि चैकभक्तादीनि क्वचिद् व्रताद्यङ्गतया विहितानि क्वचिदेकादश्याद्युपवासप्रतिनिधितया विहितानि क्वचित्स्वतन्त्राणीति त्रिविधानि । तत्रान्याङ्गानां प्रतिनिधिभूतानां च तत्त-त्प्रधानवशेन निर्णयः ।

---

१. द्वितीय बार भोजन की निवृत्ति 'एकभक्त' शब्द का यौगिक अर्थ है—द्वितीयभोजनाभाव-सहकृतं दिवाभोजनम् एकभक्तम् ।

२. दिन में भोजन नहीं करके रात्रि में भोजन करना 'नक्त' है—दिवाभोजनाभावविशिष्ट-रात्रिभोजनरूपं नक्तम् ।

३. याचना के बिना प्राप्त अन्न को एक ही बार खाना 'अयाचित' कहलाता है—याञ्च्या-राहित्येन लब्धस्य सकृद् भोजनम् अयाचितम् । अयाचितान्नभोजनं तु यदेव लभ्यते तदैव दिवा रात्रं वा अनिषिद्धकाले सकृदेव कार्यम् । कोई याञ्च्या नहीं करने का संकल्प ही 'अयाचित' है—ऐसा कहते हैं ।

अपने स्वामित्व को निवृत्त करके दूसरे का स्वामित्व प्रदान करना दान कहलाता है। ये एकभक्त आदि कहीं पर व्रत के अंग से विहित कहीं एकादशी आदि उपवास के प्रतिनिधिरूप में और कहीं स्वतन्त्र हैं। इस तरह तीन प्रकार के हैं। जो अन्य के अंग प्रतिनिधिस्वरूप हैं; उनका निर्णय प्रधान के अधीन है।

स्वतन्त्राणां निर्णय उच्यते। तत्र दिनं पञ्चधा[1] विभज्य प्रथमभागः प्रातः-कालो ज्ञेयः, द्वितीयः सङ्गवः, तृतीयो मध्याह्नः, चतुर्थो भागोऽपराह्णः, पञ्चमः सायाह्नः। सूर्यास्तोत्तरं त्रिमुहूर्तः प्रदोषः।

स्वतन्त्रों के निर्णय में दिन का पाँच विभाग करके प्रथम भाग को प्रातःकाल, द्वितीय को संगव, तृतीय को मध्याह्न, चतुर्थ को अपराह्न और पंचम को सायाह्न कहते हैं। सूर्यास्त के अनन्तर तीन मुहूर्त का प्रदोष होता है।

अथ एकभक्ते तिथिनिर्णयः

तत्रैकभक्ते मध्याह्नव्यापिनी तिथिर्ग्राह्या। तत्रापि दिनार्धसमयेऽतीते त्रिंश-द्घटिकात्मकमध्यमदिनमानेन षोडशादिघटीत्रयं मुख्यो भोजनकालः। तत ऊर्ध्वं-मासायं गौणकालः। अत्र पूर्वेद्युरेव मुख्यकाले व्याप्तिः, परेद्युरेव व्याप्तिः, उभयेद्यु-र्व्याप्तिः, उभयत्रापि व्याप्त्यभावः, उभयत्र साम्येनैकदेशव्याप्तिः, वैषम्येनैकदेश-व्याप्तिः, इति षट् पक्षा भवन्ति।

एकभक्त में मध्याह्नव्यापिनी तिथि ग्राह्य है। उसमें भी तीस घड़ी के मध्यम दिनमान से आधा दिन बीत जाने पर सोलह आदि तीन घड़ी भोजन का मुख्य समय है। उसके बाद सायं पर्यन्त गौण काल है। यहाँ पहले ही दिन मुख्य समय में तिथि का होना, दूसरे ही दिन मुख्य काल में तिथि का होना अथवा दोनों दिन तिथि का होना वा दोनों दिन तिथि का मुख्य काल में न रहना या दोनों दिन समानता से एकदेश में तिथि का रहना या विषमता से एकदेश में रहना इस प्रकार छ पक्ष होते हैं।

तत्र पूर्वेद्युरेव मुख्यकाले ग्राह्यतिथिसत्त्वे पूर्वैव, परत्रैव सत्त्वे परैवेत्यसंदेहः। उभयत्रापि पूर्णव्यापित्वे युग्मवाक्यान्निर्णयः। उभयत्र व्याप्त्यभावे पूर्वैव, गौणकालव्याप्तिसत्त्वात्। साम्येनैकदेशव्याप्तौ पूर्वा, वैषम्ये-णैकदेशव्याप्तौ दिनद्वयेऽपि कर्मपर्याप्ततिथिलाभे युग्मवाक्यान्निर्णयः। कर्मपर्याप्त-तिथ्यलाभे पूर्वैवेति। इति एकभक्तम्।

मुख्यकाल में पहले ही दिन ग्राह्य तिथि के रहने पर पहले ही दिन एकभक्त होगा। दूसरे ही दिन ग्राह्य तिथि के मुख्यकाल में रहने से दूसरे ही दिन होगा इसमें कोई संदेह नहीं है। दोनों दिन तिथि के पूर्णव्याप्ति होने पर युग्मवाक्य से निर्णय करना। दोनों दिन तिथि के न रहने पर पूर्वा ही लेना, गौणकाल व्याप्ति होने के कारण। समता से एकदेश में रहने वाली

---

१. व्यासः—'रेखाप्रभृत्यथादित्या मुहूर्तास्त्रय एव तु। प्रातस्तु सस्मृतः कालो भागश्चाह्नः स पंचमः॥ संगवस्त्रिमुहूर्तोऽथ मध्याह्नस्तु समः स्मृतः। ततस्त्रयो मुहूर्ताश्च अपराह्णो विधीयते॥ पंचमोऽथ दिनांशो यः स सायाह्न इति स्मृतः। यद्यदेतेषु विहितं तत्तत्कुर्याद्विचक्षणः॥' इति। दिन का विभाग गोभिलने चार, अन्य ने तीन और स्कान्द ने दो ही बतलाया।

तिथि में पूर्वा ली जाती है। विषमता से दोनों दिन एकदेश में रहने वाली और कर्म के पर्याप्त तिथि मिलने पर युग्मवाक्य से निर्णय होगा। यदि कर्म के लिये पर्याप्त तिथि न मिले तो पहले ही दिन करना यह एकभक्त का निर्णय समाप्त हुआ।

अथ नक्तम्

तत्र सूर्यास्तोत्तरत्रिमुहूर्तात्मकप्रदोषव्यापिनी तिथिर्नक्ते ग्राह्या। अन्यतरदिने तद्व्याप्तौ तदेकदेशस्पर्शे वा सैव ग्राह्या। भोजनं तु अस्तोत्तरं घटिकात्रयसंध्याकालं त्यक्त्वा कार्यम्। संध्याकाले भोजननिद्रामैथुनाध्ययनवर्जनात्। यतिभिरपुत्रविधुरैर्विधवाभिश्च नक्तं सायाह्नव्यापिन्यां दिनाष्टमभागे कार्यम्। रात्रौ तेषां भोजननिषेधात्। एवं सौरनक्तमपि सायाह्नव्यापिन्यां दिवैव कार्यम्। दिनद्वये प्रदोषव्याप्तौ परा।

नक्तव्रत में सूर्यास्त के बाद तीन मुहूर्त प्रदोषवाली तिथि को लेना। दूसरे दिन यदि तीन मुहूर्त वाली प्रदोषव्यापिनी तिथि मिलती है वा एकदेश में स्पर्श करती है तो वही ग्राह्य है। घटिकात्रयात्मक संध्याकाल को छोड़ कर सूर्यास्त के बाद भोजन करना, संध्याकाल में भोजन, निद्रा, मैथुन और पढ़ना वर्जित होने से। यति, पुत्ररहित, मृत-पत्नीक और विधवाओं को सायाह्नव्यापिनी तिथि में दिन के आठवें भाग में भोजन करना, क्योंकि इन सबको रात्रि में भोजन करने का निषेध है। इसी प्रकार सूर्य सम्बन्धी नक्त भी सायाह्नव्यापिनी तिथि में दिन में ही भोजन करना। यदि दोनों दिन प्रदोष में तिथि मिलती है तो परतिथि में नक्त करना।

दिनद्वये प्रदोषव्याप्त्यभावे परत्रैव। सायाह्ने दिनाष्टमभागे नक्तं कार्यं न तु रात्रौ। साम्येनैकदेशव्याप्तौ परैव। वैषम्येण प्रदोषैकदेशव्याप्तौ तदाधिक्यवती पूर्वापि ग्राह्या। यदि पूजाभोजनपर्याप्तं तदाधिक्यं लभ्यते। नोचेत्साम्यपक्षवदुत्तरैव, न त्वाधिक्यवशात्पूर्वेति।

दोनों दिन प्रदोषव्यापिनी तिथि के अभाव में भी पर तिथि में करना। सायंकाल दिन के अष्टम भाग में नक्त करना, रात को नहीं। समता से एकदेश में व्याप्त तिथि में परा लेना। वैषम्य से प्रदोष के एकदेश में व्याप्त होने वाली तिथि में यदि पूर्वा तिथि अधिक हो तो पूर्वा भी ग्राह्य है। यहाँ पूजा और भोजन के लिये पर्याप्त तिथि का रहना ही आधिक्य कहलाता है। नहीं तो समता से पक्ष की तरह परा तिथि लेना, आधिक्यवश पूर्वा न लेना।

अथ नक्तव्रते रविवारादिदोषाभावः

नक्तव्रतभोजनं वैधत्वाद्रविवासरसंक्रान्त्यादावपि रात्रावेव कार्यम्। रविवारादौ रात्रिभोजननिषेधस्य रागप्राप्तभोजनपरत्वात्। एकादश्याद्युपवासप्रत्याम्नायभूतं नक्तं तूपवासनिर्णीतदिने एवेति।

नक्तव्रत का भोजन वैध है अतः सामान्य रविवार संक्रान्ति आदि में भी रात में ही करना। रविवार आदि में रात के भोजन का निषेध तो रागप्राप्त भोजन के लिये है। एकादशी के उपवास के बदले में जो नक्त व्रत है उसे जिस दिन उपवास का निर्णय है उसी दिन करना।

अथ अयाचिते निर्णयः

अयाचितस्य त्वहोरात्रसाध्यत्वादुपवासवन्निर्णयः। पित्र्याणामपराह्णादि-

व्यापित्वेन निर्णयस्तत्तत्प्रकरणे वक्ष्यते । एकभक्तनक्तायाचितोपवासानां पूर्वतिथावनुष्ठितानां परेद्युस्तिथ्यन्ते पारणम् । यामत्रयोर्ध्वगामिन्यां तिथौ प्रातःपारणमिति सर्वत्र ज्ञेयमिति माधवः । इति एकभक्तादिनिर्णयोद्देशः ॥ ५ ॥

दिन-रात में होने वाले 'अयाचित' का उपवास ही की तरह निर्णय है । पितृसंबन्धी अपराह्णादिव्याप्ति का निर्णय उन-उन प्रकरणों में कहेंगे । एकभक्त, नक्त, अयाचित और उपवास की पारणा पहली तिथि में किये हुओं का पारण दूसरे दिन तिथि के अन्त में पारण करना । तीन प्रहर से आगे जाने वाली तिथि में प्रातःकाल ही पारणा होती है, ऐसा माधव का मत है । एकभक्तादि निर्णयोद्देश समाप्त ।

अथ व्रतपरिभाषा

तत्र स्त्रीशूद्राणां द्विरात्राधिकोपवासे नाधिकारः । स्त्रीणामपि भर्त्रनुज्ञां विना व्रतोपवासादौ नाधिकारः । उपवासदिने श्राद्धदिने च काष्ठेन दन्तधावनं न कार्यं पर्णादिना द्वादशगण्डूषैर्वा कार्यम् । जलपूर्णं ताम्रपात्रं गृहीत्वोदङ्मुखः प्रातरुपवासादिव्रतं संकल्पयेत् ।

स्त्री और शूद्रों को दो रात्रि से अधिक के उपवास करने का अधिकार नहीं है । पति की आज्ञा विना स्त्रियों को व्रत और उपवास का अधिकार नहीं है । उपवास के दिन काठ से दाँत को न धोना । पत्ते आदि से अथवा बारह कुल्ला जल से दन्तधावन करना । उपवास आदि व्रतों का संकल्प जल से भरे ताम्रपात्र को लेकर उत्तराभिमुख हो प्रातः करे ।

अपूर्वव्रतारम्भो व्रतोद्यापनं च मलमासे गुर्वाद्यस्ते वैधृतिव्यतीपातादिदुर्योगे विष्टौ क्रूरवारे निषिद्धे दर्शादितिथौ न भवति । एवं खण्डतिथावपि न भवति ।

उदयस्था तिथिर्याहि न भवेद्दिनमध्यभाक् ।
सा खण्डा न व्रतानां स्यादारम्भश्च समापनम् ॥ इति सत्यव्रतोक्तेः ।

नवीन व्रत का आरम्भ, विहित व्रत का उद्यापन मलमास में, गुरु आदि के अस्त होने पर, वैधृति व्यतिपात आदि दुर्योग में भद्रा में क्रूरवार और अमावास्यादि तिथि में नहीं होता । इसी प्रकार खण्ड तिथि में भी नहीं होता । जो उदया तिथि मध्यदिन में नहीं होती, उसी को खण्डा तिथि कहते हैं । ऐसे में व्रतों का आरम्भ और समाप्ति नहीं होती ऐसा सत्यव्रत का कहना है ।

अथ सामान्यतो व्रतधर्माः

क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
देवपूजा च हवनं सन्तोषः स्तेयवर्जनम् ॥
सर्वव्रतेष्वयं धर्मः .... ।

अत्र होमो व्याहृतिभिः काम्यव्रतविशेषे ज्ञेयः । यद्देवताया उपोषणव्रतं तद्देवताजपस्तद्ध्यानं तत्कथाश्रवणं तदर्चनं तन्नामश्रवणकीर्तनादिकं कार्यम् । उपवासेऽन्नावलोकनगन्धादिकमभ्यङ्गं ताम्बूलमनुलेपनं च त्यजेत् ।

क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रियनिग्रह, देवपूजा हवन, संतोष, और चोरी न करना यही सब व्रतों का सामान्यधर्म है । यहाँ होम व्याहृतियों से किया जाता है. विशेषतः काम्यव्रत

में। जिस देवता का उपवास, व्रत करते हैं उस देवता के मंत्र का जप, उस देवता का ध्यान, उसी की कथा सुनना, उसकी पूजा करना, उसके नाम का कीर्तन और उसका श्रवण आदि करना। उपवास में अन्न का देखना, गन्धयुक्त तैल मर्दनादिक, पान खाना, सुगंधित उबटन लगाना मना है।

सभर्तृकस्त्रीणां सौभाग्यव्रतेऽभ्यङ्ग[१]ताम्बूलादि न वर्ज्यम्।

अष्टैतान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः।

हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम्।

सौभाग्यवती स्त्रियों को सौभाग्यव्रत में उबटन, तेल, पान आदि वर्जित नहीं है। जल, मूल, फल, दूध, हविष्य, ब्राह्मण की इच्छा, गुरुका वचन और औषध इन आठ से व्रत का भंग नहीं होता।

अथ व्रतनियमादिभङ्गे प्रायश्चित्तम्।

प्रमादादिना व्रतभङ्गे दिनत्रयमुपोष्य क्षौरं कृत्वा पुनर्व्रतं कुर्यात्। अशक्तस्योपवासप्रतिनिधिरेकब्राह्मणभोजनं तावद्धनादिदानं वा सहस्रगायत्रीजपो वा द्वादशप्राणायामा वा प्रायश्चित्तम्।

भूल से व्रतभंग होने पर मुंडन करा के तीन दिन का उपवास करके फिर व्रत करना चाहिये। तीन दिन के उपवास में असमर्थ व्यक्ति को एक ब्राह्मण का भोजन या उसका मूल्य देना अथवा सहस्र गायत्री जप या बारह प्राणायाम प्रायश्चित्त है।

स्वीकृतं व्रतं कर्तुमशक्तः प्रतिनिधिना कारयेत्। पुत्रः पत्नी भर्ता भ्राता पुरोहितः सखा चेति [२]प्रतिनिधयः। पुत्रादिः पित्राद्युद्देशेन व्रतं कुर्वन् स्वयमपि व्रतफलं लभते।

स्वीकार किये हुए व्रत को करने में असमर्थ व्यक्ति को चाहिए कि पुत्र, पत्नी, पति, भाई, पुरोहित और मित्र से उस व्रत को करावे। पुत्र का पिता आदि के उद्देश्य से व्रत करता हुआ स्वयं भी व्रत का फल पाता है।

अथ उपवास-नाशकानि

असकृज्जलपानाच्च सकृत्ताम्बूलचर्वणात्।

उपवासः प्रणश्येत दिवास्वापाच्च मैथुनात्॥

स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।

संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च॥

इत्यष्टविधं मैथुनम्।

उपवास में बार-बार जल पीना, एक बार ताम्बूल चबाना, दिन में सोना, अष्टविध मैथुन

---

१. गारुडे—'गन्धालङ्कारताम्बूलपुष्पमालाऽनुलेपनम्। उपवासे न दुष्यन्ति दन्तधावनमञ्जनम्॥' इति।

२. निर्णयामृते प्रतिनिधयः—'भार्या पत्युर्व्रतं कुर्याद् भार्यायाश्च पतिर्व्रतम्। असामर्थ्ये परस्ताभ्यां व्रतभङ्गो न जायते॥' स्कान्दे—'पुत्रं वा विनयोपेतं भगिनीं भ्रातरं तथा। एषामभाव एवान्यं ब्राह्मणं वा नियोजयेद्॥' मदनरत्ने प्रभासखण्डे—'भर्ता पुत्रः पुरोधाश्च भ्राता पत्नी सखाऽपि च। यात्रायां धर्मकार्येषु जायन्ते प्रतिहस्तकाः। एभिः कृतं महादेवि स्वयमेव कृतं भवेत्॥' इति।

वर्जित है। अष्टविध मैथुन—स्मरण, कीर्तन, केलिप्रेक्षण, गुप्तकथन, संकल्प, अध्यवसाय (निश्चय) और क्रिया की पूर्वि।

प्राणसंकटेष्वसकृज्जलपाने दोषो नास्ति। चर्मस्थं जलं गोभिन्नक्षीरं मसूरं जम्बीरफलं शुक्तिचूर्णमित्यामिषगणो व्रते वर्ज्यः। अश्रुपातक्रोधादिना सद्यो व्रतनाशः। परान्नभोजने चापि यस्यान्नं तस्य तत्फलम्।

एक से अधिक बार जल न पीने से प्राण संकट में हो तो दुबारा जल पीने में कोई दोष नहीं है। मशक का जल, गाय से भिन्न पशुओं का दूध, मसूर, जँभीरी नीबू, सितुही का चूना यह मांसगण व्रत में वर्जित है। आँसू गिराने से क्रोधादि से, तुरत व्रत का नाश हो जाता है। जिसका अन्न होता है उसीको फल भी मिलता है।

हविष्याणि—तिलमुद्गभिन्नचणकादिकोशीधान्यंमाषादिकं मूलकं चेत्येवमादि क्षारगणं लवणमधुमांसादिकं च वर्जयेत्। श्यामाकाश्चैव नीवारा गोधूमाश्च व्रते हिताः। व्रीहिमुद्गयवतिलकङ्गुकलायादिधान्यं रक्तेतरमूलकं सूरणादिकन्दः सैन्धव-सामुद्रलवणे गव्यदधिसर्पिर्दुग्धानि पनसफलमाम्रफलं नारीकेलं हरीतकी पिप्पली जीरकं शुण्ठी तिन्तिणीकदलीलवलीधात्रीफलानि गुडेतरेक्षुविकार इत्येतानि अतैलपक्वानि हविष्याणि। गव्यं तक्रं माहिषं घृतमपि क्वचित्।

तिल मूंग को छोड़कर चना आदि जो छिलका युक्त उड़द इत्यादि और मूली आदि क्षारवस्तु, लवण, मधु, मांस आदि को त्याग दे। साँवाँ, नीवार, गेहूँ व्रत में हितकर है। धान, मूँग, जव, तिल, कंगुनी, कुलथी आदि धान्य, लाल से भिन्न वर्ण वाली मूली, सूरण आदि कन्द, सेंधा सामुद्रनमक, गाय का दही, घी, दूध, कटहल और आम का फल, नारियल, हर्रे, पीपल, जीरा, सोंठ, इमली, केला, बड़हर और आँवला, गुड़ को छोड़कर ईख का विकार यदि तेल में न पके हों तो इसे हविष्य कहते हैं। कहीं पर गाय का मट्ठा और भैंस का घी भी हविष्य है।

अथ अनुक्तव्रत विधौ विधानम्।

अनुक्तव्रतविधिस्थले माषादिपरिमितसुवर्णरजतादिप्रतिमा पूज्या। द्रव्यानुक्ता-वाज्यहोमः। देवतानुक्तौ प्रजापतिः। मन्त्रानुक्तौ समस्तव्याहृतयः। संख्यानुक्ता-वष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिरष्टौ वा होमसंख्या। उपवासे कृते ब्राह्मणभोजनं तत्साङ्गतार्थम्।

जिस व्रत में कोई विधि नहीं कही गई है, उसमें मासे आदि तौल के सोने अथवा चाँदी की प्रतिमा पूजी जाती है। होम में द्रव्य के नाम न होने पर घृत से हवन होता है। जहाँ देवता का नाम नहीं कहा गया है वहाँ प्रजापतिदेवता होते हैं। मंत्र नहीं कहने पर सम्पूर्ण व्याहृति ही मंत्र है। जहाँ संख्या नहीं बतलायी गयी है, वहाँ १०८,२८ या ८ बार होम करना चाहिए। उपवास करने पर उसकी सफलता के लिये ब्राह्मण भोजन होता है।

उद्यापनानुक्तौ गां सुवर्णं वा दद्यात्। विप्रवचनाद् व्रतसाङ्गता विप्रवचनं च दक्षिणां दत्त्वैव ग्राह्यम् सर्वत्र गृहीतव्रतत्यागे चाण्डालतुल्यत्वम्। विधवाभिर्व्रतादौ चित्ररक्तादिवस्त्रं न धार्यं श्वेतमेव धार्यम्।

जिसका उद्यापन नहीं कहा गया है उस स्थान पर गोदान या सुवर्णदान करना चाहिए। ब्राह्मण के वचन से व्रत सम्पूर्ण होता है। दक्षिणा देकर ही ब्राह्मण से वचन ग्रहण करना चाहिए। स्वीकृत व्रत के त्याग करने पर चाण्डाल तुल्य होता है। व्रत की अवस्था में विधवा को श्वेत वस्त्र पहनना चाहिए, रंगा हुआ वस्त्र नहीं पहने।

[1]सूतकादौ स्त्रीणां रजोदोषादौ ज्वरादौ च गृहीतव्रतादौ शारीरनियमान् स्वयं कुर्यात्। पूजादिकमन्यद्वारा कारयेत्। अपूर्वारम्भस्तु सूतकादौ न भवति।

काम्ये प्रतिनिधिर्नास्ति नित्ये नैमित्तिके च सः।
काम्येप्युपक्रमादूर्ध्वं केचित्प्रतिनिधिं विदुः॥
न स्यात् प्रतिनिधिर्मन्त्रस्वामिदेवाग्निकर्मसु।
नापि प्रतिनिधातव्यं निषिद्धं वस्तु कुत्रचित्॥

स्त्रियों का व्रत में सूतक या अशौच प्राप्त होने पर या रजस्वला होने पर तथा ज्वरादि रोग होने पर शरीर के नियमों को स्वयं करे। पूजा आदि दूसरे से करावे। नवीन व्रतारम्भ, सूतक और रजोधर्मादि में नहीं होता। काम्यकर्म में प्रतिनिधि नहीं होता। प्रतिनिधि तो नित्य और नैमित्तिककर्म में होता है। काम्यकर्म में भी आरम्भ के अनन्तर कुछ लोग प्रतिनिधि मानते हैं। मंत्र का, स्वामी का, देवता का और अग्निकर्म का प्रतिनिधि नहीं होता। निसिद्ध वस्तु का भी प्रतिनिधि नहीं होता

अथ व्रतादीनां सन्निपाते

व्रतादिसन्निपाते दानहोमाद्यविरुद्धं क्रमेण कार्यम्। विरुद्धे तु नक्तभोजनोपवासादावेकं स्वयं कृत्वाऽन्यत्पुत्रभार्याऽऽदिना कारयेत्। यत्र चतुर्दश्यष्टम्यादौ दिवाभोजननिषेधो व्रतान्तरपारणा च प्राप्ता तत्र भोजनमेव कार्यम्। पारणाया विधिप्राप्तत्वात्। निषेधस्तु रागप्राप्तभोजनपरः। एवं रविवारादौ संकष्टचतुर्थ्यादिव्रते रात्रिभोजनमेव कार्यम्।

कई व्रतों के एक साथ पड़ने पर दान होम आदि अविरुद्धकर्म क्रम से करे। जो विरोधी नक्त उपवास आदि हैं एक स्वयं करे, दूसरे व्रतों को पुत्रादि से करावे। जिस स्थल में चतुर्दशी, अष्टमी आदि में दिन में भोजन का निषेध है तथा उसी समय व्रतान्तर की पारणा भी प्रस्तुत है, ऐसे स्थल में भोजन ही करे। पारणाविधि से प्राप्त है क्योंकि निषेध तो रागप्राप्त भोजनपरक है। इसी तरह रविवार आदि संकष्ट चतुर्थी आदि व्रत में रात्रिभोजन करना ही प्रशस्त है।

यत्राष्टम्यादौ दिवाभोजननिषेधो रात्रौ तु रविवारादिप्रयुक्तभोजननिषेधस्तत्रार्थप्राप्त उपवासः। यत्र तु पुत्रवद्गृहस्थस्य संक्रान्त्यादावुपवासोऽपि निषिद्धो भोजनस्याप्यष्टम्यादिप्रयुक्तनिषेधस्तत्र किंचिद्भक्ष्यं प्रकल्प्योपवास एव कार्यः। चान्द्रायणमध्ये एकादश्यादिप्राप्तौ ग्राससंख्यानियमेन भोजनमेव कार्यम्। एवं कृच्छ्रादिव्रतेऽपि।

---

१. हेमाद्रौ पाद्मे—'गर्भिणी सूतिकादिश्च कुमारी वाऽथ रोगिणी। यदाऽशुद्धा तदाऽन्येन कारयेत् प्रयता स्वयम्॥' इति।

जहाँ अष्टमी आदि में दिवा भोजन वर्जित है और रात में तो रविवार होने के कारण से भोजन वर्जित है वहाँ तो उपवास ही करना चाहिए। तथा जहाँ पुत्रवाले गृहस्थ को संक्रान्ति आदि में उपवास भी निषेध है और अष्टमी आदि प्रयुक्त भोजन का भी निषेध है वहाँ कुछ भक्ष्य की कल्पना करके उपवास ही करना चाहिए। चान्द्रायण आदि व्रतों में तो एकादशी के होने पर ग्रास संख्या के नियम से भोजन ही करना इष्ट है। इसी तरह कृच्छ्रादि व्रतों में भी।

अथ एकादश्यां पारणायाः प्राप्तौ

एवमेकादश्यामेकान्तरोपवासादिप्रयुक्तपारणायां प्राप्तायां जलपारणं कृत्वोपवसेत्। एवं द्वादश्यां मासोपवासश्राद्धप्रदोषादिप्रयुक्तपारणप्रतिबन्धे जलपारणं कार्यम्। एकादश्यादौ संक्रमे पुत्रवद्गृहस्थस्योपवासनिषेध एकादश्युपवासश्च प्राप्तस्तत्रापि किंचिदापो मूलं फलं पयो वा भक्ष्यं कल्प्यम्।

इसी प्रकार एक दिन बीच देकर उपवास करने वालों को उसकी पारणा के दिन एकादशी उपस्थित होने पर जल से पारणा कर उपवास करे। एवं द्वादशी में, महीने भर के उपवास में, श्राद्ध में, प्रदोष आदि की पारणा की रुकावट होने पर जल से ही पारण कर लेना चाहिये। एकादशी आदि व्रत में संक्रान्ति हो तो पुत्रवाले गृहस्थों को उपवास निषेध होने के कारण और एकादशी में उपवास प्राप्त होता हो तो ऐसे अवसर में कुछ जल, फल, मूल और दूध से उपवास का निषेध और एकादशी का उपवास भी सम्पन्न होता है।

द्वयोरुपवासयोर्नक्तयोरेकभक्तयोर्वैकस्मिन्दिने प्राप्तौ अमुकोपवासममुकोपवासं चोभयं तन्त्रेण करिष्य इत्यादि सङ्कल्प्य सहैवोपवासपूजाहोमानामनुष्ठानम्। यत्रोपवासैकभक्तयोरेकदिने प्राप्तिस्तत्र तिथिद्वैधे गौणकालव्याप्तिमाश्रित्य एकं पूर्वतिथौ द्वितीयं शेषतिथौ कार्यम्। अखण्डतिथावेकं पुत्रादिना कारयेदित्युक्तम्।

एक ही दिन दो उपवास, दो नक्त, दो एकभक्त प्राप्त होने पर "अमुक उपवास और अमुक उपवास हम तन्त्र से करेंगे" ऐसा संकल्प कर साथ ही उपवास, पूजा, होमों का अनुष्ठान होता है। जहाँ उपवास और एकभक्त एक दिन पड़ते हों और तिथि भिन्न हो वहाँ गौणकाल मानकर एक को पहली तिथि में, दूसरे को शेष तिथि में करना। यदि तिथि सम्पूर्ण हो तो एक को पुत्रादि से करावे और एक स्वयं करे।

एवं 'काम्यं नित्यस्य बाधकम्' इत्यादिवाक्यैः काम्यनित्यादिबलाबलबाधाबाधसंभवासंभवादि विचार्यानुष्ठानमूह्यम्। इति सामान्यव्रतपरिभाषोद्देशः ॥ ६ ॥

इसी तरह "काम्य नित्य का बाधक होता है" इत्यादि वचनों से काम्य नित्य का बलाबल, बाधाबाध, संभवासंभव आदि का विचार करके इसके अनुष्ठान की कल्पना करे। सामान्य व्रतपरिभाषोद्देश समाप्त।

अथ प्रतिपदादिनिर्णयः

तत्र प्रतिपन्निर्णयः—शुक्लप्रतिपत्[1] पूजाव्रतादावपराह्णव्याप्तिसत्त्वे पूर्वविद्धा

१. शुक्लपक्ष में चन्द्रकलाओं के क्रमशः प्रथम द्वितीय आदि कलाओं के बढ़ने और कृष्णपक्ष में क्रमशः प्रथम द्वितीय आदि कलाओं के क्षीण होने से तिथियों के प्रतिपदा द्वितीया तृतीया आदि नाम हुये। पंचदशी के पूर्णिमा अमावास्या ये दो नाम भेद की विशेषता पूर्णिमामावस्या निर्णय में देखें।

ग्राह्या । सायाह्नव्यापित्वेपि पूर्वैवेति माधवाचार्याः । अन्यथा द्वितीयायुता ग्राह्या। कृष्णप्रतिपत्सर्वापि द्वितीयायुतैव ग्राह्या । उपवासे तु पक्षद्वयेपि प्रतिपत्पूर्वविद्धैव ग्राह्य । अपराह्णव्यापिन्यां प्रतिपदि करणीयस्योपवासादेःसङ्कल्पं प्रातरेव कुर्यात् ।

शुक्लपक्ष की प्रतिपदा पूजा व्रत आदि में अपराह्न में व्याप्त हो तो पूर्वविद्धा ग्राह्य है। माधवाचार्य का मत है कि सायाह्न में रहनेवाली शुक्लपक्ष की प्रतिपदा भी पूर्वा ही लेना। इसके विपरीत द्वितीयायुक्त लेना। सभी कृष्णपक्ष की प्रतिपदा द्वितीयायुक्त ही लेना। उपवास में तो प्रतिपदा दोनों पक्षों में पूर्वविद्धा ही ग्रहण करना। अपराह्णव्यापिनी प्रतिपदा में करने वाले उपवास आदि का संकल्प प्रातःकाल ही करे।

सङ्कल्पकाले प्रतिपदादितिथ्यभावेपि सङ्कल्पे प्रतिपदादिरेव वक्तव्यो न त्वमावास्यादिः । एवमुपोष्या द्वादशी शुद्धेत्यादिस्थले एकादशीव्रतप्रयुक्तसङ्कल्पपूजादावेकादश्येव कीर्तनीया नतु द्वादशी । सन्ध्याग्निहोत्रादिकर्मान्तरेषु तत्तत्कालव्यापिनी द्वादश्यादिरेवेति मम प्रतिभाति। संकल्पश्च सूर्योदयात्प्रागुषःकाले सूर्योदयोत्तरं प्रातःकालाख्यत्रिमुहूर्तस्याद्यमुहूर्तद्वये प्रशस्तः, तृतीयो मुहूर्तस्तु निषिद्धः । इति प्रतिपन्निर्णयोद्देशः ॥ ७ ॥

संकल्प के समय में, प्रतिपदा तिथि न रहने पर भी संकल्प में प्रतिपदा तिथि ही कहना अमावास्या तिथि नहीं कहना। इसी तरह शुद्धा द्वादशी में उपवास आदि करने वाले एकादशी व्रत प्रयुक्त पूजा संकल्पादिक में एकादशी ही कहना द्वादशी नहीं कहना। संध्या, अग्निहोत्र आदि दूसरे कर्मों में उस काल वाली द्वादशी आदि तिथि को ही कहना। संकल्प तो सूर्योदय से पहले उषा काल में और सूर्योदय के बाद त्रिमुहूर्तात्मक प्रातःकाल में पहले दो मुहूर्त में उत्तम है। तीसरा मुहूर्त का निषेध है। प्रतिपन्निर्णयोद्देश समाप्त।

अथ द्वितीयानिर्णयः

द्वितीया शुक्लपक्षे परविद्धा ग्राह्या । कृष्णपक्षे तु द्वेधा विभक्तदिनपूर्वभागात्मकपूर्वाह्णप्रविष्टा चेत्पूर्वा ग्राह्या । अन्यथा तु कृष्णपक्षेपि द्वितीया परविद्धैव । इति द्वितीयानिर्णयोद्देशः ॥ ८ ॥

द्वितीया शुक्लपक्ष में तृतीया विद्धा ग्राह्य है। कृष्णपक्ष में दिन का दो भाग करने पर पूर्वाह्न में यदि द्वितीया प्रवेश करती हो तो पूर्वा लेना। इसके विपरीत कृष्णपक्ष में भी परविद्धा लेना। द्वितीयानिर्णयोद्देशसमाप्त।

अथ तृतीयानिर्णयः

तृतीया रम्भाव्रते पूर्वविद्धा ग्राह्या । रम्भाव्यतिरिक्तव्रतेषु त्रिमुहूर्तद्वितीयाविद्धां पूर्वां त्यक्त्वा परदिने त्रिमुहूर्तव्यापिनी ग्राह्या । पूर्वदिने त्रिमुहूर्तन्यूनद्वितीयावेधे परदिने त्रिमुहूर्तव्याप्त्यभावे पूर्वा ग्राह्या । पूर्वदिने त्रिमुहूर्तद्वितीयावेधे परदिने त्रिमुहूर्तन्यूनापि ग्राह्या। गौरीव्रते तु कलाकाष्ठादिपरिमितस्वल्पद्वितीयायुक्तापि निषिद्धा । परदिने कलाकाष्ठादिपरिमिता स्वल्पापि तृतीया परिग्राह्या ।

तृतीया रम्भा व्रत में पूर्वविद्धा ग्राह्य है। रम्भा को छोड़कर अन्य व्रतों में तीन मुहूर्त द्वितीया

विद्धा पूर्वा को छोड़कर दूसरे दिन त्रिमुहूर्तव्यापिनी तृतीया लेना। यदि पहले दिन तीन मुहूर्त से न्यून द्वितीया के वेध हो और दूसरे दिन तीन मुहूर्त न रहने पर पूर्वा लेना। पहले दिन तीन मुहूर्त द्वितीया वेध होने पर दूसरे दिन त्रिमुहूर्त से कम होने पर भी तृतीया ग्राह्य है। गौरीव्रत में कलाकाष्ठा आदि स्वल्प द्वितीया युक्त भी तृतीया निषिद्ध है। दूसरे दिन कला-काष्ठादि स्वल्प भी तृतीया ग्राह्य है।

यदा तु दिनक्षयवशात्परदिने स्वल्पापि चतुर्थीयुता तृतीया न लभ्यते, पूर्वदिने च द्वितीयाविद्धा तदा द्वितीयाविद्धैव ग्राह्या। यदा च दिनवृद्धिवशात्पूर्वदिने षष्टिघटिका तृतीया परदिने च घटिकादिशेषव्रती, तदा पूर्वां शुद्धां षष्टिघटिकामपि त्यक्त्वा चतुर्थीयुतैव गौरीव्रते ग्राह्या। इति तृतीयानिर्णयोद्देशः ॥ ९ ॥

जब दिन के क्षय होने से दूसरे दिन थोड़ी भी चतुर्थीयुता तृतीया नहीं मिलती और पूर्व दिन में द्वितीयाविद्धा मिलती है तो द्वितीयाविद्धा ही लेना। जब दिन वृद्धि के कारण पहले दिन ६० घड़ी तृतीया हो और दूसरे दिन घड़ी दो घड़ी तृतीया हो तब साठ घड़ी वाली शुद्धा तृतीया को छोड़कर चतुर्थीयुक्त तृतीया गौरी व्रत में लेना। तृतीयानिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ चतुर्थीनिर्णयः

चतुर्थी गणेशव्रतातिरिक्तोपवासकार्ये पञ्चमीयुता ग्राह्या। गौरीविनायकव्रतयोस्तु मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या। परदिन एव मध्याह्नव्यापिनी चेत्परैव। दिनद्वये मध्याह्नव्यापित्वे दिनद्वये मध्याह्नव्याप्त्यभावे साम्येन वैषम्येण वैकदेशव्याप्तौ च पूर्वैव, तृतीयायोगप्राशस्त्यात्।

गणेश व्रत के अतिरिक्त उपवास में पचमीयुक्त चतुर्थी लेना। गौरी और विनायक व्रत में तो मध्याह्न में रहनेवाली चतुर्थी लेना। दूसरे दिन यदि मध्याह्न में हो तो दूसरी ही लेना। दो दिन मध्याह्न में चतुर्थी हो या दोनों दिन मध्याह्न में न हो अथवा समता-विषमता से एकदेश में हो तो पूर्वा ही लेना, तृतीया योग के प्रशस्त होने से।

नागव्रते तु पूर्वदिन एव मध्याह्नव्यापिनी चेत्पूर्वैव। उभयदिनमध्याह्नव्याप्त्यादिपक्षचतुष्टये पञ्चमीयुतैव ग्राह्या। संकष्टचतुर्थी तु चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्या। परदिने चन्द्रोदयव्याप्तौ परैव। उभयदिने चन्द्रोदयव्यापित्वे तृतीयायुतैव ग्राह्या। दिनद्वये चन्द्रोदयव्याप्त्यभावे परैव। इति चतुर्थीनिर्णयोद्देशः ॥ १० ॥

नागव्रत में तो पूर्व दिन में ही मध्याह्न में हो तो पूर्वा ही लेना। दोनों दिन मध्याह्न में हो, दोनों दिन मध्याह्न में न हो, समता से विषमता से एकदेश में हो तो पंचमीयुक्त ही लेना। संकष्टचतुर्थी तो चन्द्रोदयव्यापिनी लेना। दूसरे दिन चन्द्रोदय में हो तो दूसरे ही दिन और दोनों दिन चन्द्रोदय में हो तो तृतीयायुक्त लेना। अगर दोनों दिन चन्द्रोदयकाल में न हो तो परा चतुर्थी ही ग्राह्य है। चतुर्थीनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ पञ्चमीनिर्णयः

पञ्चमी शुक्लपक्षे कृष्णपक्षे च कर्ममात्रेपि चतुर्थीविद्धा ग्राह्या। स्कन्दोपवासे तु षष्ठीयुता ग्राह्या। नागव्रते पञ्चमी परविद्धा ग्राह्या। परेद्युस्त्रिमुहूर्तन्यूना

पञ्चमी पूर्वेद्युस्त्रिमुहूर्तन्यूनचतुर्थ्या विद्धा तदा पूर्वैव। त्रिमुहूर्ताधिकचतुर्थीवेधे द्विमुहूर्तापि परैव। इति पञ्चमीनिर्णयोद्देशः ॥ ११ ॥

शुक्ल या कृष्णपक्ष में पंचमी कर्ममात्र में चतुर्थीविद्धा ग्राह्य है। स्कन्दोपवास में तो षष्ठी-युक्त लेना। नागव्रत में परविद्धा पंचमी लेना। दूसरे दिन तीन मुहूर्त से अल्प पंचमी पहले दिन तीन मुहूर्त से कम चतुर्थी से वेध होने पर पूर्वा ही लेना। तीन मुहूर्त से अधिक चतुर्थी वेध होने पर दो मुहूर्तवाली परा ही लेना। पंचमीनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ षष्ठीनिर्णयः

षष्ठी स्कन्दव्रते पूर्वविद्धा ग्राह्या। अन्यव्रतेषु परविद्धैव। पूर्वेद्युः षण्मुहूर्तन्यून-पञ्चम्या वेधे पूर्वापि। षष्ठीसप्तम्यो रविवासरयोगे पद्मकयोगः। इति षष्ठीनिर्णयोद्देशः ॥ १२ ॥

षष्ठी स्कन्दव्रत में पूर्वविद्धा और अन्य व्रतों में परविद्धा ही ग्राह्य है। पहले दिन ६ मुहूर्त से कम पंचमी वेध होने पर पूर्वा भी लेना। रविवार को षष्ठी-सप्तमी से योग होने पर पद्मकयोग होता है। षष्ठीनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ सप्तमीनिर्णयः

सप्तमी कर्ममात्रे षष्ठीयुतैव ग्राह्या। यदा पूर्वेद्युरस्तमयपर्यन्ता षष्ठीति दिवा षष्ठीविद्धा न लभ्यते परेद्युश्चाष्टमीविद्धा तदा चागत्या परैव। एवं तिथ्यन्तरनिर्णये-ष्वप्यूहयम्। इति सप्तमीनिर्णयोद्देशः ॥ १३ ॥

सम्पूर्ण कर्म में षष्ठीयुक्त ही सप्तमी ग्राह्य है। जब पहले दिन सूर्यास्त तक षष्ठी हो दिन में षष्ठी वेध न हो और दूसरे दिन अष्टमी विद्धा हो तब अगत्या पर ही लेना। इसी तरह और तिथियों के निर्णय में भी कल्पना करना। सप्तमीनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथाष्टमीनिर्णयः

व्रतमात्रेऽष्टमी शुक्लपक्षे परा कृष्णपक्षे पूर्वा। मिलितशिवशक्त्योरुत्सवे कृष्णापि परा। बुधाष्टमी शुक्लपक्षे प्रातःकालमारभ्यापराह्णपर्यन्तं यद्दिने मुहूर्त-मात्रोपि बुधवासरयोगः सा ग्राह्या। सायाह्नकाले चैत्रमासे श्रावणादिमास-चतुष्टये कृष्णपक्षे च न ग्राह्या।

व्रतमात्र में शुक्लपक्ष की अष्टमी परा और कृष्णपक्ष की पूर्वा विहित है। सम्मिलित शिव और शक्ति के उत्सव में, कृष्णाष्टमी भी परा होती है। शुक्लपक्ष में प्रातःकाल से लेकर अपराह्ण तक जिस दिन मुहूर्तमात्र भी बुधवार का योग हो तो उसे बुधाष्टमी कहते हैं। सायंकाल में चैत्र मास में श्रावण आदि चार महीनों में और कृष्णपक्ष में भी बुधाष्टमी नहीं मानना।

सर्वकृष्णाष्टमीषु कालभैरवोद्देशेन केचिदुपवसन्ति। तत्र मार्गशीर्षकृष्णाष्टम्यां भैरवजयन्तीत्वात्तद्वन्निर्णयौचित्येन मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या। दिनद्वये मध्याह्नव्याप्तौ पूर्वैव। प्रदोषव्यापिनीति कौस्तुभे। अत उभयदिने प्रदोषव्याप्तौ द्विविधवाक्या-विरोधाय परैव। पूर्वत्र प्रदोषव्याप्तिरेव परत्र मध्याह्न एव तदा बहुशिष्टाचारा-नुरोधात्प्रदोषगा पूर्वैव।

सब महीनों के कृष्णाष्टमी में कालभैरव के उद्देश्य से कुछ लोग उपवास करते हैं। वहाँ मार्ग-शीर्ष कृष्णाष्टमी में भैरव-जयन्ती होने से वैसा ही निर्णय उचित होगा अतः मध्याह्नव्यापिनी अष्टमी

ग्राह्य है। दोनों दिन मध्याह्न में होने पर पूर्वा लेना। कौस्तुभ में प्रदोषव्यापिनी अष्टमी माननीय है। इसलिये दोनों दिन प्रदोष में होने पर दोनों प्रकार के वाक्यों के अविरोध से परा ही ग्रहण करना। पहले दिन प्रदोष में अष्टमी हो, दूसरे दिन मध्याह्न में हो, ऐसी स्थिति में अधिक शिष्टाचार के अनुरोध से प्रदोषवाली अष्टमी पूर्वा ही लेना।

यत्तु 'अर्कपर्वद्वये रात्रौ चतुर्दश्यष्टमीं दिवा' इति वचनाद्दिवाभोजननिषेधमात्र-परिपालनं न तु किंचिद् व्रतम्। तत्र 'निषेधस्तु निवृत्त्यात्मा कालमात्रमपेक्षते' इति वचनाद्भोजनकालव्यापिनीमष्टमीं त्यक्त्वा नवम्यां सप्तम्यां वा भोक्तव्यमिति भाति। युक्तमयुक्तं वा सद्भिर्विचारणीयम्। इत्यष्टमीनिर्णयोद्देशः ॥ १४ ॥

यह जो कहा है द्वादशी, पूर्णिमा, अमावस्या की रात में और चतुर्दशी और अष्टमी में दिन में भोजन नहीं करना यह निषेध का पालनमात्र है कोई व्रत नहीं है। क्योंकि निषेध तो निवृत्तिस्वरूप है। "निवृत्तिस्वरूप होने से काल की अपेक्षा करता है।" इस वचन से भोजनकाल-व्यापिनी अष्टमी को छोड़कर नवमी या सप्तमी में भोजन करना ऐसा मुझे प्रतीत होता है। युक्त-अयुक्त का सज्जन लोग विचार करें। अष्टमीनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ नवमीनिर्णयः

नवमी सर्वत्राष्टमीविद्धैव ग्राह्या। इति नवमीनिर्णयोद्देशः ॥ १५ ॥

नवमी शुक्ल वा कृष्णपक्ष में अष्टमीविद्धा ही ग्राह्य है। नवमीनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ दशमीनिर्णयः

दशमी तूपवासादौ नवमीयुतैव ग्राह्या। पूर्वविद्धाया अलाभे उत्तरविद्धाऽपि ग्राह्या। इति दशमीनिर्णयोद्देशः ॥ १६ ॥

दशमी उपवास आदि में नवमीयुक्त लेना। नवमीयुक्त न मिलने पर परविद्धा भी ग्राह्य है। दशमीनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथैकादशीनिर्णयः

तत्रैकादश्युपवासो द्वेधा-भोजननिषेधपरिपालनात्मको व्रतात्मकश्च। आद्ये पुत्रवद्गृहस्थादीनां कृष्णपक्षेप्यधिकारः। व्रतात्मकोपवासस्तु अपत्ययुक्तैर्गृहस्थैश्च कृष्णपक्षे न कार्यः। किंतु समन्त्रकं व्रतसङ्कल्पमकृत्वा यथाशक्ति नियमयुतं भोजन-वर्जनमेव कार्यम्। एवं तिथिक्षये शुक्लैकादश्यामपि ज्ञेयम्।

एकादशी का उपवास दो प्रकार का होता है—एक भोजन न करना मात्र और दूसरा व्रतस्वरूप। पहले में पुत्रवाले गृहस्थों का कृष्णपक्ष में भी अधिकार है। दूसरा व्रतस्वरूप उपवास तो सन्तानवाले गृहस्थों को कृष्णपक्ष में नहीं करना चाहिए। मंत्र के सहित व्रत का संकल्प न करके शक्त्यनुसार नियमपूर्वक भोजन का वर्जन ही करना। इसी प्रकार शुक्लपक्ष की एकादशी में भी तिथि के क्षय होने पर पूर्ववत् भोजन का वर्जन करना।

शयनीबोधिनीमध्यवर्तिकृष्णैकादशीषु सापत्यगृहस्थादीनां सर्वेषामधिकारः। विष्णुसायुज्यकामैरायुःपुत्रकामैश्च काम्यव्रतं पक्षद्वयेपि कार्यं तत्र न कोपि निषेधः। वैष्णवगृहिणां कृष्णैकादश्यपि नित्योपोष्या। इदमेकादशीव्रतं शैववैष्णवसौरादीनां सर्वेषां नित्यम्। अकरणे प्रत्यवायश्रवणात्। संपत्त्यादिफलश्रवणात्काम्यं च भवति।

पुत्रवाले गृहस्थों को आषाढशुक्ल एकादशी (शयनी), कार्तिक शुक्ल एकादशी (बोधिनी), इनके बीच पड़नेवाली कृष्ण एकादशी में सबका अधिकार है। जो मोक्ष आयु और पुत्र की कामना से एकादशी व्रत करते हैं उनको दोनों पक्षों की एकादशी करनी चाहिए इसका कोई निषेध नहीं है। वैष्णव-गृहस्थों को कृष्णपक्ष की एकादशी भी नित्य उपवास योग्य है। यह एकादशी व्रत शैव, वैष्णव और सूर्योपासकादिकों का नित्य है। नहीं करने से प्रायश्चित्त होता है। एकादशी व्रत करने से सम्पत्ति आदि का जो फल सुना जाता है, अतः काम्य भी है।

केचिन्मुहूर्तादिमितदशमीसत्त्वे दशम्यामेव भोजनं कर्तव्यम्। सूर्योदयात्पूर्वमेव प्रवृत्तायां शुद्धाधिकाधिकद्वादशिकायां तु नैरन्तर्येणोपवासद्वयं कार्यमिति तिथिपालनमपि वदन्ति तन्न युक्तम्।

कुछ लोग मुहूर्त आदि मित दशमी के होने पर दशमी के होने पर दशमी में ही भोजन करना और सूर्योदय से पहले ही शुद्धा अधिका और अधिकद्वादशिका एकादशी में दो उपवास निरन्तर करना। यह तिथि का पालन भी कहते हैं यह ठीक नहीं है।

अथ एकादशीव्रताधिकारी

अष्टमवर्षादूर्ध्वमशीतितमवर्षपर्यन्तमेकादशीव्रताधिकारः। शक्तस्य तु अशीतेरूर्ध्वमप्यधिकारः। सभर्तृकाणां स्त्रीणां भर्त्रनुज्ञां पित्राद्यनुज्ञां वा विनोपवासव्रताद्याचरणे व्रतवैफल्यं भर्त्रायुःक्षयो नरकश्च। अशक्तानां तु—

नक्तं हविष्यान्नमनोदनं वा फलं तिलाः क्षीरमथाम्बु चाज्यम्।
यत्पञ्चगव्यं यदि वापि वायुः प्रशस्तमत्रोत्तरमुत्तरं च॥

इति पक्षेषु शक्तितारतम्येनैकपक्षाश्रयणं न त्वेकादशीत्यागः।

आठ वर्ष से ८० वर्ष पर्यन्त का व्यक्ति एकादशी व्रत का अधिकारी है। जो शक्ति-सम्पन्न हैं उन्हें ८० वर्ष से आगे भी अधिकार है। सौभाग्यवती स्त्रियों के पति और पिता आदि की आज्ञा बिना उपवास व्रत आदि करने से व्रत विफल, पति के आयु का नाश और नरक भी होता है। जो लोग एकादशी करने में असमर्थ हैं उनको एकादशी के स्थान पर नक्तव्रत भात को छोड़कर "हविष्य अन्न, फल, तिल, दूध, जल, घी, पंचगव्य और वायु इनमें से उत्तरोत्तर अपनी शक्ति के तारतम्य से एक पक्ष को स्वीकार करना चाहिए। किन्तु एकादशी का त्याग नहीं करना।

प्रमादादिनैकादश्यामुपोषणाद्यकरणे द्वादश्यामपि व्रतं कार्यम्। द्वादश्यामप्यकरणे यवमध्यचान्द्रायणं प्रायश्चित्तम्। नास्तिक्यादकरणे पिपीलिकामध्यचान्द्रायणम्। अशक्तपतिपित्राद्युद्देशेन स्त्रीपुत्रभगिनीभ्रात्रादिभिरेकादशीव्रताचरणे क्रतुशतजं पुण्यम्।

भूल से एकादशी में उपवास आदि न करने पर द्वादशी में भी व्रत किया जा सकता है। द्वादशी में भी व्रत नहीं करने से यवमध्य चान्द्रायण उसके लिये प्रायश्चित्त है। नास्तिक्य के कारण एकादशी व्रत न करने से पिपीलिकामध्य चान्द्रायण व्रत प्रायश्चित्त करना चाहिए। शक्तिहीन पति पुत्रादि के लिये स्त्री, पुत्र, बहन, भाई आदि के द्वारा एकादशी व्रत करने से सौ यज्ञों का पुण्य होता है।

अथ द्वादशीव्रतदिननिर्णयः

तत्र व्रताधिकारिणो द्विविधाः—वैष्णवाः स्मार्ताश्च। तत्र यद्यपि 'यस्य दीक्षास्ति वैष्णवी' इत्यादिलक्षणयुक्ता वैष्णवास्तद्भिन्नाः स्मार्ता इति महानिबन्धे-

षूक्तम्। तथापि स्वपारंपर्यप्रसिद्धमेव वैष्णवत्वं स्मार्तत्वं च वृद्धा मन्यन्ते इति सिन्धूक्तमेव सर्वदेशे सर्वशिष्टपरिगृहीतं प्रचरति।

एकादशी व्रत के अधिकारी दो प्रकार के होते हैं—वैष्णव और स्मार्त। जिसको वैष्णवी दीक्षा दी गयी है ऐसे लक्षणों से युक्त वैष्णव कहलाते हैं उससे भिन्न स्मार्त हैं ऐसा बड़े निबन्धों में कहा है। तब भी वैष्णवत्व स्मार्तत्व अपनी परम्परा से प्रसिद्ध ही वृद्ध लोग मानते हैं ऐसा 'निर्णयसिन्धु' में कहा है और सर्वत्र सकलशिष्ट परिगृहीत माना है।

वेधोपि द्विविधः—अरुणोदये दशमीवेधः सूर्योदये तद्वेधश्च। सूर्योदयात्प्राक् चतुर्घटिकात्मकोऽरुणोदयः। सूर्योदयस्तु स्पष्टः। तेन षट्पञ्चाशद्घटिकानन्तरं पलादिमात्रदशमीप्रवेशेऽरुणोदयवेधो वैष्णवविषयः। षष्टिघटिकात्मकसूर्योदयोत्तरं पलादिमात्रदशमीसत्त्वे सूर्योदयवेधः स्मार्तविषयः। ज्योतिर्विदादिविवादेन वेधादिसंदेहे तु—

बहुवाक्यविरोधेन ब्राह्मणेषु विवादिषु।
एकादशीं परित्यज्य द्वादशीं समुपोषयेत्॥

वेध दो प्रकार का होता है—अरुणोदय में दशमी वेध और सूर्योदय में दशमी वेध। सूर्योदय से पहले चार घड़ी के समय को अरुणोदय कहते हैं। सूर्योदय तो स्पष्ट ही है। इससे ५६ घड़ी के कलामात्र भी दशमी का प्रवेश हो यह अरुणोदयवेध कहलाता है यह वैष्णवों के लिये है। ६० घड़ी स्वरूप सूर्योदय के बाद पलमात्र भी दशमी हो तो यह स्मार्तों का सूर्योदय वेध है। ज्योतिषियों के विवाद से यदि वेध का संदेह हो तो बहुत वाक्यों के विरोध से ब्राह्मणों में विवाद उत्पन्न हो तो एकादशी का त्याग कर द्वादशी में व्रत करे।

तथाचैकादशी द्विविधा—शुद्धाविद्धा च। अरुणोदयवेधवती विद्धा तां त्यक्त्वा वैष्णवैर्द्वादश्येवोपोष्या। अरुणोदयवेधरहिता शुद्धा। सा च चतुर्विधा—एकादशीमात्राधिक्यवती द्वादशीमात्राधिक्यवती उभयाधिक्यवती अनुभयाधिक्यवती चेति। अत्राधिक्यं सूर्योदयोत्तरं सत्त्वम् [वैष्णवानाम्]

एकादशी दो प्रकार की होती है—एक विद्धा और दूसरी शुद्धा। अरुणोदय वेधवाली विद्धा कहलाती है उसको छोड़कर वैष्णवों को द्वादशी ही उपवास योग्य है। अरुणोदय वेध से भिन्न एकादशी शुद्धा कहलाती है। वह चार प्रकार की है—अधिक एकादशी वाली (१) अधिक द्वादशी वाली (२) दोनों अधिकवाली (३) दोनों नहीं अधिक वाली (४)। यहाँ अधिकता सूर्योदय बाद एकादशी द्वादशी का होना कहा गया है।

तत्रोदाहरणम्—दशमीनाड्यः ५५ एकादशी ६०–१ द्वादश्याः क्षयः ५८ इयमेकादशीमात्राधिक्यवती शुद्धा। वैष्णवैः परोपोष्या स्मार्तगृहस्थैः पूर्वा। अथ दशमी ५५ एकादशी ५८ द्वादशी ६०–१ इयं शुद्धा द्वादशीमात्राधिक्यवती। अत्र वैष्णवानां द्वादश्यामुपोषणं स्मार्तानां पूर्वा। अथ दशमी ५५ एकादशी ६०–१ द्वादशी ५ इयं शुद्धा उभयाधिक्यवती। अत्र सर्वैर्वैष्णवैः स्मार्तैश्च परैवोपोष्या। अथ दशमी ५५ एकादशी ५७ द्वादशी ५८ इयमनुभयाधिक्यवती शुद्धा। वैष्णवैः स्मार्तैश्च पूर्वैवोपोष्या। इति संक्षेपतो वैष्णवनिर्णयः।

इसके ये उदाहरण हैं–दशमी ५५ घड़ी, एकादशी ६० घड़ी १ पल और द्वादशी क्षय होने से ५८है यह उदाहरण अधिक एकादशी वाली का है। ऐसी स्थिति में अरुणोदय में दशमीवेध होने से वैष्णवगण परा द्वादशी और स्मार्त लोग पूर्वा एकादशी में उपवास करेंगे। दशमी ५५ घड़ी एकादशी ५८ घड़ी और द्वादशी ६० घड़ी १पल यह शुद्धा द्वादशी अधिकवाली हुई। इसमें वैष्णवों को द्वादशी और स्मार्तों को पूर्वा एकादशी में व्रत करना चाहिए। दशमी ५५, एकादशी ६० घड़ी १ पल और द्वादशी ५ घड़ी यह शुद्धा एकादशी, दशमी और एकादशी दोनों द्वादशी की अपेक्षा अधिक है। यह वैष्णव स्मार्त दोनों को परा ही उपवास के योग्य है। दशमी ५५ घड़ी, एकादशी ५७, और द्वादशी ५८ यह शुद्धा एकादशी दोनों में से कोई अधिकवाली नहीं है। अतः वैष्णव स्मार्त दोनों पूर्वा ही में उपवास करें। यह संक्षेप से वैष्णवों का निर्णय है।

अथ स्मार्तनिर्णयः

तत्र सूर्योदयवेधवती विद्धा तद्रहिता शुद्धा चेति। द्विविधापि प्रत्येकं चतुर्धा-एकादशीमात्राधिक्यती उभयाधिक्यवती द्वादशीमात्राधिक्यवती अनुभयाधिक्य-वतीत्येवमष्टभेदा भवन्ति।

सूर्योदय में दशमी वेध वाली विद्धा एकादशी, उससे भिन्न शुद्धा होती है। यह दोनों प्रकार की एकादशी प्रत्येक चार प्रकार की होती है। अधिक एकादशीवाली (१) दोनों अधिक-वाली (२) केवल अधिक द्वादशीवाली (३) दोनों नहीं अधिकवाली (४) इस प्रकार से दोनों ८ प्रकार की होती है। इसके उदाहरण निम्नलिखित हैं—

अत्रोदाहरणानि—दशमी ५८ एकादशी ६०–१ द्वादश्याः क्षयः ५८ इयं शुद्धा एकादशीमात्राधिक्यवती। दशमी ४ एकादशी २ द्वादश्याः क्षयः ५८ इयं विद्धा एकादशीमात्राधिक्यवती।

दशमी ५८ एकादशी ६० घड़ी १ पल, क्षययुक्त द्वादशी ५८ घड़ी, यह शुद्धा एकादशी मात्र अधिक वाली है। दशमी ४, एकादशी २, द्वादशी का क्षय ५८ घड़ी, इस प्रकार विद्धा एकादशी-मात्र अधिक वाली है।

अत्रोभयत्रापि स्मार्तानां गृहिणां पूर्वोपोष्या। यतिभिर्निष्कामगृहिभिर्वनस्थैर्वि-धवाभिर्वैष्णवैश्च परैवोपोष्या। विष्णुप्रीतिकामैः स्मार्तैरुपवासद्वयं कार्यमिति केचित्।

यहाँ स्मार्त गृहस्थगण को दोनों में पूर्वा ही उपवास योग्य है। और संन्यासी, निष्कामी, गृहस्थ, वनस्थ, विधवा और वैष्णव पर में ही उपवास करें। विष्णु की प्रसन्नता चाहने वाले स्मार्तों को दोनों दिन उपवास करना—ऐसा किसी का कहना है।

उभयाधिक्यवती शुद्धा यथा—दशमी ५८ एकादशी ६०–१ द्वादशी ४ उभयाधिक्यवती विद्धा, यथा—दशमी २ एकादशी ३ द्वादशी ४ अत्रोभयत्रापि सर्वैः स्मार्तैर्वैष्णवैश्चाविशिष्टा परवैकादशी उपोष्या।

दशमी एकादशी दोनों अधिकवाली शुद्धा एकादशी जैसे—दशमी ५८, एकादशी ६० घड़ी १ पल, द्वादशी ४ घड़ी, और दोनों अधिकवाली विद्धा, जैसे—दशमी २, एकादशी ३, द्वादशी ४ घड़ी, इन दोनों शुद्धा-विद्धा एकादशी में स्मार्त वैष्णव सबको परा एकादशी में उपवास करना चाहिए।

द्वादशीमात्राधिक्यवतीशुद्धा यथा–दशमी ५८ एकादशी ५९ द्वादशी ६०–१ अत्र शुद्धत्वात्स्मार्तानामेकादश्यामेवोपवासो न द्वादश्यामिति माधवमतम्। हेमाद्रि-मते तु सर्वैः परा द्वादश्येवोपोष्या। केचित्तु मुमुक्षुभिः स्मार्तैः परोपोष्येत्याहुः।

केवल द्वादशी अधिकवाली शुद्धा, जैसे दशमी ५८, एकादशी ५९, और द्वादशी ६० घड़ी १ पल। यहाँ शुद्ध होने से स्मार्तों को एकादशी में ही उपवास करना न कि द्वादशी में, ऐसा आचार्य माधव का मत है। हेमाद्रि के मत में तो सबको परा द्वादशी ही में उपवास करना चाहिए। मोक्ष चाहने वाले स्मार्तों को कुछ लोग परा का उपवास करने को कहते हैं।

द्वादशीमात्राधिका विद्धा, यथा—दशमी १ एकादशी क्षयगामिनी ५८ द्वादश्या वृद्धिः ६०–१ अत्रैकादश्या विद्धत्वाद् द्वादश्यामेव स्मार्तानामप्युपवासः। एवं चोभयाधिक्ये द्वादशीमात्राधिक्ये च स्मार्तानां विद्धायास्त्यागो नान्यत्र। वैष्णवानां तु षड्विधामप्याधिक्यवतीं त्यक्त्वा द्वादश्युपोष्या।

केवल अधिक द्वादशी वाली विद्धा, जैसे—दशमी १, क्षयवश एकादशी ५८, वृद्धिवश द्वादशी ६० घड़ी १ पल। इस परिस्थिति में विद्धा एकादशी होने से द्वादशी में ही स्मार्तों का उपवास होगा। इस प्रकार अधिक दशमी एकादशी वाली और केवल अधिक द्वादशी वाली में स्मार्तों को विद्धा का त्याग करना है अन्यत्र नहीं। वैष्णवों को तो छः प्रकार से अधिक एकादशी वाली का त्याग कर द्वादशी में ही उपवास करना चाहिये।

अनुभयाधिक्यवती शुद्धा, यथा—दशमी ५७ एकादशी ५८ द्वादशी ५९ स्मार्तानामेकादश्यामेवोपवासो न द्वादश्याम्। वैष्णवानां तु विद्धत्वाद् द्वादश्यामुपवासः।

नहीं अधिकवाली दशमी एकादशी शुद्धा, जैसे—दशमी ५७, एकादशी ५८ और द्वादशी ५९ घड़ी, इस परिस्थिति में स्मार्तों को एकादशी ही में उपवास होगा; न कि द्वादशी में। वैष्णवों को वेध होने से द्वादशी ही में उपवास होगा।

अनुभयाधिक्यवती विद्धा, यथा—दशमी २ एकादश्याः क्षयः ५६ द्वादशी ५५ अत्रापि स्मार्तानामेकादश्यामुपवासः। वैष्णवानां द्वादश्यामुपवासः। अस्मिन्नुभयानाधिक्यवती विद्धा चरमभेदे प्रथमभेदद्वये इव यतिभिर्मुमुक्षुभिर्विधवाभिः परोपोष्या। विष्णुप्रीतिकामैरुपवासद्वयं कार्यमिति तुल्ययुक्त्या प्रतिभाति।

दशमी एकादशी दोनों नहीं अधिकवाली विद्धा, जैसे—दशमी २, क्षयवश एकादशी ५६, द्वादशी ५५, यहाँ भी स्मार्तों का एकादशी में और वैष्णवों का द्वादशी में उपवास होगा। इन दोनों अधिकवाली विद्धा एकादशी अन्तिम भेद में प्रथम दो भेद की तरह संन्यासी, मोक्ष चाहनेवाले और विधवाओं को परा द्वादशी में उपवास करना। विष्णु की प्रसन्नता चाहनेवालों को तुल्य युक्ति से दोनों दिन उपवास करना ऐसा प्रतीत होता है।

इदानीं शिष्टास्तु हेमाद्रिमतं निष्कामत्वादिकं चानादृत्य माधवमतेनैव सर्वस्मार्तनिर्णयमविशेषेण वदन्ति न तु क्वचिदुपवासद्वयं, शुद्धाधिकद्वादशिकायां सर्वेषामेकं परोपवासं वा वदन्ति इति सर्वं देशेषुत्र प्रायो माधवोक्तानुसार एव प्रचार इति बोध्यम्।

इस समय शिष्टगण निष्कामत्वादिक हेमाद्रि के मत का अनादर कर माधव के मत से ही साधारणतया सम्पूर्ण स्मार्तों का निर्णय कहते हैं कहीं दो उपवास नहीं, शुद्धा अधिक द्वादशी में स्मार्त वैष्णव दोनों का केवल द्वादशी में उपवास कहते हैं। अतः सम्पूर्ण देश में माधवाचार्य के कहने के अनुसार ही व्यवहार होता है यह जानना चाहिये।

एतेन वैष्णवाष्टादशभेदानां[1] स्मार्ताष्टादशभेदानां च निर्णयः सर्वोऽपि गतार्थो

१. हेमाद्रिमते—'शुद्धा विद्धा द्वयी नन्दा त्रेधा न्यूनसमाधिकैः। षट्प्रकाराः पुनस्त्रेधा द्वादश्यूनसमाधिकैः ॥' इत्यष्टादशैकादशीभेदाः। तद्यथा—शुद्धन्यूना न्यूनद्वादशिका १, शुद्धन्यूना, समद्वादशिका २, शुद्धन्यूना अधिकद्वादशिका ३, शुद्धसमा न्यूनद्वादशिका ४, शुद्धसमा समद्वादशिका ५, शुद्धसमा अधिकद्वादशिका ६, शुद्धाधिका न्यूनद्वादशिका ७, शुद्धाधिका समद्वादशिका ८, शुद्धाधिका अधिकद्वादशिका ९, इति शुद्धाया नव भेदाः। विद्धन्यूना न्यूनद्वादशिका १, विद्ध न्यूना समद्वादशिका २, विद्धन्यूना अधिकद्वादशिका ३, विद्धसमा न्यूनद्वादशिका ४, विद्धसमा समद्वादशिका ५, विद्धसमा अधिकद्वादशिका ६, विद्धाधिका न्यूनद्वादशिका ७, विद्धाधिका समद्वादशिका ८, विद्धाधिका अधिकद्वादशिका ९, इति विद्धाया नव भेदाः। सर्वं मिलित्वाऽष्टादश भेदाः। अत्र षष्टिघटीभ्यः किञ्चिदूनत्वम् अर्थात् सूर्योदयात् प्राक् समाप्तिमत्वं न्यूनत्वम्। पूर्णषष्टिघटीत्वम् अर्थात् सूर्योदयसमकालिकसमाप्तिमत्वं समत्वम्। षष्टिघटीभ्योऽधिकत्वम् अर्थात् सूर्योदयानन्तरं विद्यमानत्वम् आधिक्यम् इति बोध्यम्।

वैष्णवों के अरुणोदय वेधरहित शुद्ध एकादशी के ९ भेद

यहां साठ घड़ी से कुछ कम होना न्यून, पूर्ण साठ घड़ी का होना सम और साठ घड़ी से अधिक होना अधिक यह न्यून-सम-अधिक पद का अर्थ है।

सं.	शुद्ध भेद	दशमी		एकाद०		द्वादशी		व्रत निर्णय
		घटी	पल	घटी	पल	घटी	पल	
१	जब एकादशी और द्वादशी दोनों न्यून हों	५५	५५	५९	५९	५९	५९	यहाँ एकादशी एवं द्वादशी दोनों अधिक नहीं है अतः वैष्णव और स्मार्त एकादशी में ही व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५५	०	५७	०	५८	०	
२	जब एकादशी न्यून और द्वादशी सम हो	५५	५९	५९	५९	६०	०	पूर्वोक्त-निर्णय की भाँति समान.
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५५	०	५७	०	५८	०	
३	जब एकादशी न्यून और द्वादशी अधिक हो	५५	५९	५९	५९	६०	१	यहाँ द्वादशी अधिक है। इसमें वैष्णव द्वादशी और स्मार्त पूर्व में व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५५	०	५८	०	६०	१	
४	जब एकादशी सम और द्वादशी न्यून हो	५५	५९	६०	०	५९	५९	यहाँ एकादशी और द्वादशी दोनों अधिक नहीं है अतः दोनों एकादशी में ही व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५५	०	५७	०	५८	०	
५	जब एकादशी और द्वादशी दोनों सम हों	५५	५०	६०	०	६०	०	पूर्वोक्त-निर्णय की भाँति समान-
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५५	०	५७	०	५८	०	
६	जब एकादशी सम और द्वादशी अधिक हो	५५	५९	६०	०	६०	१	यहाँ द्वादशी ही अधिक है अतः वैष्णव द्वादशी और स्मार्त एकादशी में व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५५	०	५८	०	६०	१	
७	जब एकादशी अधिक और द्वादशी न्यून हों	५५	५९	६०	१	५९	५८	यहाँ एकादशी की ही अधिकता है अतः वैष्णव पर और स्मार्त गृहस्थ पूर्व में व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५५	०	६०	१	५८	क्षय	
८	जब एकादशी अधिक और द्वादशी सम हों	५५	५९	६०	१	५९	५९	पूर्वोक्त-निर्णय की भाँति समान
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५५	०	६०	१	५८	क्षय	
९	जब एकादशी और द्वादशी दोनों अधिक हों	५५	५९	६०	१	६०	१	यहाँ एकादशी और द्वादशी दोनों की ही अधिकता है अतः दोनों पर ही में व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५५	०	६०	१	५	१	

भवतीति विभावनीयम् । विस्तरस्तु महाग्रन्थेष्वनुसंधेयः । अत्राष्टादशभेदानां पृथक् पृथगुदाहरणकथने तन्निर्णयकथने च बालानां व्यामोहमात्रं स्यादिति स निर्णयः पृथदेग पट्टे लिखित्वा स्थापितोऽनुसंधेयः ।

इससे वैष्णवों के १८ भेदों और स्मार्तों के १८ भेदों का भी सम्पूर्ण गतार्थ होता है। इसका विस्तृत-निर्णय बड़े ग्रन्थों से ज्ञेय है। इन १८ भेदों को अलग-अलग उदाहरण और उसके निर्णय कहने में बालकों को व्यामोह होने के भय से उस निर्णय को अलग ही पट्ट पर लिखकर उसका अनुसन्धान करना चाहिये।

वैष्णवों के अरुणोदय में दशमी विद्ध एकादशी के ६ भेद

सं.	विद्ध भेद	दशमी		एकाद०		द्वादशी		व्रत निर्णय
		घटी	पल	घटी	पल	घटी	पल	
१	जब एकादशी और द्वादशी दोनों न्यून हों	५६	१	५९	५९	५९	५९	यहाँ एकादशी एवं द्वादशी दोनों अधिक नहीं हैं अतः स्मार्त एकादशी और वैष्णव द्वादशी में व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५७	०	५८	०	५९	०	
२	जब एकादशी न्यून और द्वादशी सम हो	५६	१	५९	५९	६०	०	पूर्वोक्त-निर्णय की भाँति समान
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५८	०	५९	०	६०	०	
३	जब एकादशी न्यून और द्वादशी अधिक हो	५६	१	५९	५९	६०	१	यहाँ द्वादशी अधिक है अतः माधवमत से स्मार्त एकादशी और हेमाद्रिमत से दोनों द्वादशी में ही व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५८	०	५९	०	६०	१	
४	जब एकादशी सम और द्वादशी न्यून हो	५६	१	६०	०	५९	५९	यहाँ एकादशी और द्वादशी दोनों अधिक नहीं है अतः स्मार्त एकादशी और वैष्णव द्वादशी में व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५७	०	५८	०	५९	०	
५	जब एकादशी और द्वादशी दोनों सम हों	५६	१	६०	०	६०	०	पूर्वोक्त-निर्णय की भाँति समान
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५७	०	५८	०	५९	०	
६	जब एकादशी सम और द्वादशी अधिक हो	५६	१	६०	०	६०	१	यहाँ द्वादशी ही अधिक है अतः माधवमत से स्मार्त एकादशी और हेमाद्रिमत से दोनों द्वादशी में ही व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५८	०	५९	०	६०	१	
७	जब एकादशी अधिक और द्वादशी न्यून हो	५६	१	६०	१	५९	५८	यहाँ एकादशी मात्र की अधिकता है अतः स्मार्त पूर्व तथा यति-निष्काम गृहस्थ-वनस्थ-विधवा और वैष्णव पर में व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५८	०	६०	१	५८	क्षय	
८	जब एकादशी अधिक और द्वादशी सम हो	५६	१	६०	१	५९	५९	पूर्वोक्त-निर्णय की भाँति समान
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५८	०	६०	१	५८	क्षय	
९	जब एकादशी और द्वादशी दोनों अधिक हों	५६	१	६०	१	६०	१	यहाँ एकादशी और द्वादशी दोनों की ही अधिकता है अतः वैष्णव और स्मार्त पर में ही व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५८	०	६०	१	४	०	

इस प्रकार वैष्णवों के एकादशी व्रत के शुद्ध ९ और विद्ध ९ भेदों को मिलाकर अट्ठारह भेद हुए।

अथ संक्षेपतो वैष्णवानां व्रतदिननिर्णयः

जयंतीव्रतवन्नित्यं काम्यं चैकादशीव्रतम् ।
अरुणोदयवेधोऽत्र वेधः सूर्योदये तथा ॥
उक्तौ द्वौ दशमीवेधौ वैष्णवस्मार्तयोः क्रमात् ।
विद्धा त्याज्या वैष्णवेन शुद्धाप्याधिक्यसंभवे ॥
एकादशी द्वादशी वाऽधिका चेत्त्यज्यतां दिनम् ।
पूर्वं ग्राह्यं तूत्तरं स्यादिति वैष्णवनिर्णयः ॥

जयन्तीव्रत के समान एकादशी व्रत नित्य और काम्य भी है। इसमें अरुणोदय वेध और

स्मार्तों के सूर्योदय में दशमी रहित शुद्ध एकादशी के ६ भेद

सं.	शुद्ध भेद	दशमी		एकाद०		द्वादशी		व्रत निर्णय
		घटी	पल	घटी	पल	घटी	पल	
१	जब एकादशी और द्वादशी दोनों न्यून हों	५९	५९	५९	५९	५९	५९	यहाँ एकादशी और द्वादशी दोनों अधिक नहीं है अतः स्मार्त एकादशी और वैष्णव द्वादशी में व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५७	०	५८	०	५९	०	
२	जब एकादशी न्यून और द्वादशी सम हो	५९	५९	५९	५९	६०	१	पूर्वोक्त-निर्णय की भाँति समान
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५७	०	५८	०	५९	०	
३	जब एकादशी न्यून और द्वादशी अधिक हो	५९	५९	५९	५९	६०	१	यहाँ द्वादशी अधिक है अतः स्मार्त माधवमत से एकादशी और हेमाद्रिमत से द्वादशी में ही व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५८	०	५९	०	६०	१	
४	जब एकादशी सम और द्वादशी न्यून हो	५९	५९	६०	०	५९	५९	यहाँ एकादशी और द्वादशी दोनों अधिक नहीं हैं अतः स्मार्त एकादशी और वैष्णव द्वादशी में व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५७	०	५८	०	५९	०	
५	जब एकादशी और द्वादशी दोनों सम हों	५९	५९	६०	०	६०	०	पूर्वोक्त-निर्णय की भाँति समान
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५७	०	५८	०	५९	०	
६	जब एकादशी सम और द्वादशी अधिक हो	५९	५९	६०	०	६०	१	यहाँ द्वादशी मात्र की अधिकता है अतः स्मार्त माधवमत से एकादशी और हेमाद्रिमत से दोनों द्वादशी में ही व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५८	०	५९	०	६०	०	
७	जब एकादशी अधिक और द्वादशी न्यून हो	५९	५९	६०	१	५९	५९	यहाँ एकादशी ही की अधिकता है अतः स्मार्त एकादशी और यति वैष्णवादि द्वादशी में व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५८	०	६०	१	५८	क्षय	
८	जब एकादशी अधिक और द्वादशी सम हो	५९	५९	६०	१	५९	५९	पूर्वोक्त-निर्णय की भाँति समान
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५८	०	६०	१	५८	क्षय	
९	जब एकादशी और द्वादशी दोनों अधिक हों	५९	५९	६०	१	६०	१	यहाँ एकादशी और द्वादशी दोनों की अधिकता है अतः स्मार्त और वैष्णव पर में ही व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	५८	०	६०	१	४	०	

सूर्योदयवेध दशमी का क्रमसे वैष्णव और स्मार्त के लिये दो वेध कहे हैं। जिसमें वैष्णव विद्धा का त्याग करें और शुद्धा भी अधिक की सम्भावना होने पर एकादशी द्वादशी दोनों को छोड़ दें।

अस्यार्थः—जयन्तीव्रतवद् अकरणे प्रत्यवायश्रवणान्नित्यं संपत्त्यादिफलश्रवणात्काम्यं चैकादशीव्रतम्। तत्रैकादश्यां द्वौ दशमीवेधौ—अरुणोदये दशमीवेधः सूर्योदये दशमीवेधश्च। क्रमाद्वैष्णवस्मार्तयोः वैष्णवानामरुणोदये दशमीवेधः स्मार्तानां सूर्योदये दशमीवेध इत्यर्थः। षट्पञ्चाशद्घटीमिते अरुणोदयः सूर्योदयश्च स्पष्टः। अत्र स्वपारंपर्यप्रसिद्धमेव वैष्णवत्वं स्मार्तत्वं च वृद्धा मन्यन्ते तदेव ग्राह्यम्।

स्मार्तों के सूर्योदय में दशमी विद्ध एकादशी के ६ भेद

सं.	विद्ध भेद	दशमी		एकाद०		द्वादशी		व्रत निर्णय
		घटी	पल	घटी	पल	घटी	पल	
१	जब एकादशी और द्वादशी दोनों न्यून हों	६०	१	५९	५८	५९	५९	यहाँ एकादशी और द्वादशी दोनों अधिक नहीं है अतः स्मार्तों का एकादशी और वैष्णवों का द्वादशी में व्रत हुआ।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	२	०	५६	क्षय	५५	०	
२	जब एकादशी न्यून द्वादशी सम हो	६०	१	५९	५८	६०	०	पूर्वोक्त-निर्णय की भाँति समान
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	२	०	५६	क्षय	५५	०	
३	जब एकादशी न्यून और द्वादशी अधिक हो	६०	१	५९	५८	६०	१	यहाँ द्वादशी अधिक है अतः माधव मत से स्मार्तों का एकादशी और हेमाद्रि मत से वैष्णवों का द्वादशी में ही व्रत हुआ।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	१	०	५८	क्षय	६०	१	
४	जब एकादशी सम और द्वादशी न्यून हो	६०	१	५९	५९	५९	५९	यहाँ एकादशी और द्वादशी दोनों अधिक नहीं हैं अतः स्मार्त एकादशी और वैष्णव द्वादशी में व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	२	०	५६	क्षय	५५	०	
५	जब एकादशी और द्वादशी दोनों सम हों	६०	१	५९	५९	६०	०	पूर्वोक्त-निर्णय की भाँति समान
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	२	०	५६	क्षय	५५	०	
६	जब एकादशी सम और द्वादशी अधिक हो	६०	१	५९	५९	६०	१	यहाँ द्वादशी मात्र का आधिक्य है अतः स्मार्त एकादशी में व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	१	०	५८	क्षय	६०	१	
७	जब एकादशी अधिक और द्वादशी न्यून हो	६०	१	६०	०	५९	५८	यहाँ एकादशी मात्र की अधिकता है अतः स्मार्त एकादशी और यति-वैष्णवादि द्वादशी में व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	४	०	२	०	५८	क्षय	
८	जब एकादशी अधिक और द्वादशी सम हो	६०	१	६०	१	५९	५९	पूर्वोक्त-निर्णय की भाँति समान
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	४	०	२	०	५८	क्षय	
९	जब एकादशी और द्वादशी दोनों अधिक हों	६०	१	६०	१	६०	१	यहाँ एकादशी और द्वादशी दोनों की अधिकता है अतः स्मार्त और वैष्णव पर में ही व्रत करें।
	धर्मसिन्धु का उदाहरण	२	०	३	०	४	०	

इस प्रकार स्मार्त के एकादशी व्रत के शुद्ध ९ और विद्ध ९ भेदों को मिलाकर अट्ठारह भेद हुये

इसका स्पष्ट अर्थ इस प्रकार है—जयन्ती व्रत की तरह नहीं करने पर प्रत्यवाय होने से नित्य और करने पर सम्पत्ति आदि फल मिलता है, इससे काम्य भी है। उसमें एकादशी के दो दशमीवेध हैं—अरुणोदय में दशमीवेध और सूर्योदयमें दशमीवेध। क्रम से वैष्णव और स्मार्त के लिये, अर्थात् वैष्णवों के लिये अरुणोदय में दशमीवेध और स्मार्तों के लिये सूर्योदय में दशमीवेध। ५६ घड़ी पर अरुणोदय होता है और सूर्योदय स्पष्ट ही है। इसमें अपनी परम्परा प्रसिद्ध ही वैष्णवत्व और स्मार्तत्व को वृद्धजन मानते हैं वही ग्रहण के योग्य है।

वैष्णवेन विद्धैकादशी अरुणोदये वेधवती एकादशी त्याज्या द्वादश्युपोष्या। आधिक्यसंभवे एकादशीद्वादश्योरुभयोराधिक्ये सूर्योदयोत्तरसत्त्वे शुद्धापि त्याज्या परैवैकादशी उपोष्या। तथा एकादश्या एवाधिक्ये शुद्धमपि पूर्वं दिनं त्याज्यं परं ग्राह्यम्। तथैव द्वादश्या एवाधिक्येऽपि पूर्वं दिनं त्याज्यं परदिनं ग्राह्यमित्यर्थः। इति वैष्णवनिर्णयः।

वैष्णवों को विद्धा एकादशी अरुणोदय में वेधवाली एकादशी त्याज्य है अतः द्वादशी उपवासके योग्य है। आधिक्य की सम्भावना में एकादशी द्वादशी दोनों के आधिक्य सूर्योदय के अनन्तर रहने पर शुद्धा भी वर्जित है परा एकादशी ही उपवास के योग्य है। इसी प्रकार केवल एकादशी ही अधिक हो तो शुद्धा भी पहिला दिन त्याग के योग्य है दूसरा दिन ग्रहण के योग्य है। द्वादशी के हो अधिक होने पर पूर्वदिन छोड़कर परदिन ग्रहण योग्य है। यह वैष्णवों के एकादशीव्रत का संक्षिप्त निर्णय है।

अथ स्मार्तानां निर्णय उच्यते

एकादशी द्वादशी चेत्युभयं वर्धते यदा।
तदा पूर्वं दिनं त्याज्यं स्मार्तैर्ग्राह्यं परं दिनम्॥
एकादशीमात्रवृद्धौ गृहियत्योर्व्यवस्थितिः।
उपोष्या गृहिभिः पूर्वा यतिभिश्चोत्तरा तिथिः॥
द्वादशीमात्रवृद्धौ तु शुद्धाविद्धे व्यवस्थिते।
शुद्धा पूर्वोत्तराविद्धा स्मार्तनिर्णय ईदृशः॥

यदि एकादशी और द्वादशी दोनों बढ़ती हैं, तब पूर्वदिन स्मार्तों को त्याज्य और परदिन ग्राह्य है। केवल एकादशी के बढ़ने पर गृहस्थ और संन्यासियों के लिये यह व्यवस्था है कि गृहस्थ पूर्व-दिन और संन्यासी दूसरे दिन में उपवास करें। केवल द्वादशी की वृद्धि में तो शुद्धा विद्धा की ऐसी व्यवस्था है कि शुद्धा एकादशी पूर्वा ओर विद्धा होने पर दूसरे दिन उपवास करे। यही स्मार्तों का निर्णय है।

अस्यार्थः—एकादशीद्वादश्योर्यदा वृद्धिः। सूर्योदयोत्तरं विद्यमानत्वं तदा पूर्वैकादशी शुद्धापि स्मार्तैस्त्याज्या परैवोपोष्या। एकादश्या एव वृद्धौ तु गृहिभिः पूर्वोपोष्या यत्यादिभिरुत्तरा। द्वादश्या एव वृद्धौ तु शुद्धाविद्धयो-र्व्यवस्था। एकादशी शुद्धा चेत्सा उपोष्या। एकादशीविद्धा चेद् द्वादश्येवो-

पोष्या। एवं चोभयाधिक्ये द्वादशीमात्राधिक्ये च स्मार्तानां विद्धैकादशीत्यागो[१] नान्यत्रेत्यर्थः। इति स्मार्तनिर्णयः।

इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—यदि एकादशी और द्वादशी सूर्योदयानन्तर बढ़ती हैं तब पूर्वा एकादशी शुद्धा भी हो तो स्मार्तों को त्याज्य है परा एकादशी उपवास योग्य है। केवल एकादशी के बढ़नेपर गृहस्थ स्मार्त पूर्वा और संन्यासी आदि को उत्तरा एकादशी उपवास योग्य है। द्वादशी केवल बढ़ने पर एकादशी शुद्धा हो तो इसी में उपवास करे और विद्धा एकादशी हो तो द्वादशी में ही उपवास करे। इसी प्रकार एकादशी द्वादशी दोनों के बढ़ने पर अथवा केवल द्वादशी के बढ़ने पर स्मार्तों को विद्धा एकादशी का त्याग करना योग्य है अन्यत्र नहीं। यह स्मार्तों के एकादशीव्रत का संक्षिप्त निर्णय है।

अथ वेधभेदाः

अत्रार्धरात्रोत्तरं दशमीसत्त्वे कपालवेधो द्विपञ्चाशद्घटिकादशमीसत्त्वे छायावेधस्त्रिपञ्चाशद्घटीत्वे दशम्या ग्रस्ताख्यो वेधश्चतुःपञ्चाशत्त्वे संपूर्णाख्यः पञ्चपञ्चाशत्त्वेऽतिवेधः षट्पञ्चाशत्त्वे महावेधः सप्तपञ्चाशत्त्वे प्रलयाख्योऽष्टपञ्चाशत्त्वे महाप्रलयः एकोनषष्टित्वे घोराख्यः षष्टिघटित्वे राक्षसाख्य इति वेधभेदा नारदेनोक्ताः।

आधीरात के बाद दशमीवेध होने पर कपालवेध, ५२ घड़ी दशमी होनेपर छाया-वेध, ५३ घड़ी दशमी होने पर ग्रस्तवेध, ५४ घड़ी वेध होने पर सम्पूर्णवेध, ५५ घड़ी दशमी होने पर अतिवेध, ५६ घड़ी पर महावेध, ५७ घड़ी पर प्रलय नाम का वेध, ५८ घड़ी पर महाप्रलय, ५९ घड़ी दशमी रहने पर घोर नामक वेध और ६० घड़ी दशमी रहने पर राक्षस नाम का वेध, इस प्रकार वेधों के भेद नारद ने कहा है।

मध्वादिमतानुसारिभिः कैश्चिदेव केचिदेवानुसृताः। माधवाचार्यादिसर्वसंमतस्तु षट्पञ्चाशद्घटीवेध एवेति ज्ञेयम्। दशमी पञ्चदशघटीभिरेकादशी दूषिकेति तूपवासातिरिक्तव्रते व्रताङ्गे संकल्पार्चनादौ। तत्रापि तद्दोषेण न सर्वथा त्यागः किंतु प्रातः कर्तव्यं संकल्पार्चनादि मध्याह्नोत्तरं कार्यमिति ध्येयम्।

मध्वादि मत के माननेवालोंने इन में से कुछ ही वेधों का अनुसरण किया है। माधवाचार्यादि सर्वसम्मत तो ५६ घड़ी का वेध ही जानना चाहिये। दशमी १५ घड़ियों से एकादशी को दूषित करती है यह उपवासातिरिक्त व्रतों के लिये है। वहां उस दोष से सर्वथा त्याग नहीं किन्तु प्रातः कर्तव्य संकल्पार्चनादि मध्याह्नोत्तर में करें।

---

१. एकादशीव्रत के सम्बन्ध में स्मार्तों के लिये विशेष वचन ध्यान देने योग्य हैं। मत्स्यपुराण—'विद्धाऽप्येकादशी कार्या परतो द्वादशी न चेत्।' अर्थात् पर में द्वादशी न मिले तो दशमी से विद्ध भी एकादशी करनी चाहिये। कूर्मपुराण—'मुहूर्ता द्वादशी न स्यात् त्रयोदश्यां महामुने। उपोष्या दशमीविद्धा सदैवैकादशी तदा॥' ऋष्यश्रृङ्ग—'पारणाहे न लभ्येत द्वादशी कलयाऽपि चेत्। तदानीं दशमीविद्धाऽप्युपोष्यैकादशी तिथिः॥' यदि एकादशी दशमी ही से युक्त है द्वादशी से युक्त नहीं है तो यति और गृहस्थ दशमी से विद्ध एकादशी करें।' ऋष्यश्रृङ्ग—'एकादशी न लभते सकला द्वादशी भवेत्। उपोष्या दशमीविद्धा यतिभिर्गृहिभिस्तदा॥' यदि दो दिन एकादशी मिल रही है तो दशमीविद्धा एकादशी नहीं करनी चाहिये—'एकादशी दशाविद्धा गान्धार्या समुपोषिता। तस्याः पुत्रशतं नष्टं तस्मात्तां परिवर्जयेत्॥' इति। विशेष जानकारी के लिये हेमाद्रि वीरमित्रोदय-कृत्यकल्पतरु प्रभृति महानिबन्धों का अवलोकन एवं विवेचन करें।

अथ व्रतप्रयोगः

उपवासात्पूर्वदिने प्रातः कृतनित्यक्रियः ।
दशमीदिनमारभ्य करिष्येहं व्रतं तव ।
त्रिदिनं देवदेवेश निर्विघ्नं कुरु केशव ॥

इति संकल्प्य मध्याह्ने एकभक्तं कुर्यात् ।

उपवास के पहले दिन प्रातः नित्यक्रिया करके "हे देवेश ! दशमी से लेकर तीन दिन का आपका व्रत हम करेंगे । हे केशव ! विघ्नरहित यह व्रत हो ऐसी अनुकम्पा कीजिए ।" ऐसा संकल्प करके दशमी के दिन एकभक्त करे ।

तत्र नियमाः—कांस्यमांसमसूरदिवास्वापातिभोजनात्यम्बुपानपुनर्भोजनमैथुनक्षौद्रानृतभाषणचणककोद्रवशाकपरान्नद्यूततैलतिलपिष्टताम्बूलवर्जनादयः । एकभक्तानन्तरं काष्ठेन दन्तधावनं कुर्यात् । निशि भूतल्पे शयित्वा प्रातरेकादश्यां पर्णादिना 'दन्तधावनं कार्यं नतु काष्ठेन । स्नानादिनित्यक्रियान्ते पवित्रपाणिरुदङ्मुखो वारिपूर्णं ताम्रपात्रमादाय संकल्पं कुर्यात् ।

एकादश्यां निराहारो भूत्वाहमपरेहनि ।
भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत ॥

इत्यनेन मन्त्रेण पुष्पाञ्जलिं वा हरौ दद्यात् ।

उसके नियम ये हैं—कांस, मांस, मसूर, दिन का सोना, अतिभोजन, अत्यम्बुपान (अधिक बार जल पीना) दो बार भोजन करना, मैथुन, मधु खाना, असत्य-भाषण, चना, कोदो, शाक, दूसरे का अन्न, जूआ, तेल, तिल की खलि, पान आदि वर्जित है । एकभक्त के बाद काष्ठ से दन्तधावन करे । रात में जमीन पर सोकर प्रातःकाल एकादशी में पत्ते आदि से दांतों को साफ करे, काष्ठ से नहीं । स्नान संध्यादि नित्यक्रिया के अनन्तर हाँथ धोकर उत्तर की ओर मुख करके जल से भरा ताम्रकलश लेकर संकल्प करे । "हे पुण्डरीकाक्ष ! मैं एकादशी में निराहार रहकर दूसरे दिन भोजन करूँगा । हे अच्युत ! आप मेरे रक्षक हो" इस मन्त्र से भगवान् को पुष्पाञ्जलि दे ।

अशक्तस्य तु एकादश्यां जलाहार–एकादश्यां क्षीरभक्ष एकादश्यां फलहार-एकादश्यां नक्तभोजीत्याद्यूहेन शक्त्यनुसारेण संकल्पः । शैवानां रुद्रगायत्र्या संकल्पः । सौराणां नित्यगायत्र्या नाम्ना वा संकल्पः ।

असमर्थ पुरुष एकादशी में जल का आहार, दुग्धपान, फलाहार, नक्त के द्वारा जैसा कर सके, संकल्प में उसकी योजना कर ले । शैवों को रुद्र गायत्री से, सूर्यभक्तों को नित्य गायत्री से या सूर्यनाम से संकल्प करना चाहिये ।

अयं संकल्पः सूर्योदयोत्तरं दशमीसत्त्वे स्मार्तैरेकादश्यां रात्रौ कार्यः । अर्धरात्रादुपरि दशम्यनुवृत्तौ सर्वैरेवैकादश्यां मध्याह्नोत्तरं कार्यः । संकल्पोत्तर-

---

१. 'श्राद्धे जन्मदिने चैव विवाहे जीर्णसम्भवे । व्रते चैवोपवासे च वर्जयेद्दन्तधावनम् ॥' पैठीनसिः—'अलाभे वा निषेधे वा काष्ठानां दन्तधावने । पर्णादिना विशुध्येत जिह्वोल्लेखं सदैव च ॥' काष्ठग्रहणान्मृल्लोष्ठाद्यनिषेध इति हेमाद्रिः । व्यासः—'अलाभे दन्तकाष्ठानां निषिद्धायां तिथौ तथा । अपां द्वादशगण्डूषैर्विदध्याद् दन्तधावनम् ॥' इति ।

मष्टाक्षरमन्त्रेण त्रिरभिमन्त्रितं तज्जलं पिबेत् । ततः पुष्पमण्डपं कृत्वा तत्र—

पुष्पैर्गन्धैस्तथा धूपैर्दीपैर्नैवेद्यकैः परैः ।
स्तोत्रैर्नानाविधैर्दिव्यैर्गीतवाद्यैर्मनोहरैः ॥
दण्डवत्प्रणिपातैश्च जयशब्दैस्तथोत्तमैः ।
हरिं संपूज्य विधिवद्रात्रौ कुर्यात्प्रजागरम् ॥

यह संकल्प सूर्योदय के बाद दशमी रहने पर स्मार्तगण एकादशी की रात में करें। आधीरात से ऊपर दशमी होने पर सब लोग एकादशी में दोपहर के बाद करें। संकल्प के बाद 'ओम् नमो नारायणाय, इस अष्टाक्षर मंत्र से तीन बार अभिमंत्रित करके जल को पीये। इसके अनन्तर पुष्प-मंडप बनाकर पुष्प गंध धूप दीप नैवेद्य अनेक प्रकार के स्तोत्रों मनोहर गाने-बाजे से दंडवत् प्रणामों और उत्तम जय शब्द से विधि पूर्वक भगवान् की पूजा कर रात में जागरण करे।

एकादश्यां नियमाः—पाखण्डिसंभाषणस्पर्शदर्शनवर्जनब्रह्मचर्यसत्यभाषण-दिवास्वापवर्जनादयः परिभाषोक्ताश्च ज्ञेयाः ।

पाखण्डिदर्शनादौ तु सूर्यं पश्येत्ततः शुचिः ।
संस्पर्शे तु बुधः स्नायाच्छुचिरादित्यदर्शनात् ॥
संभाष्य तान् शुचिषदं चिन्तयेदच्युतं बुधः । इत्यादिप्रायश्चित्तम् ।

एकादशी दिन के नियम—पाखण्डी से बोलना, स्पर्श करना, दर्शन करना वर्जन करे। ब्रह्मचर्य सत्यभाषण करते हुए दिन में न सोये। यदि पाखण्डी का दर्शनादि हो जाय तो पवित्र होकर सूर्य का दर्शन करे। स्पर्श होने पर स्नान करके सूर्य का दर्शन करे। सम्भाषण करके भगवान् अच्युत का स्मरण करे।

अथ उपवासदिने श्राद्धप्राप्तौ

श्राद्धशेषसर्वान्नेनैकं पात्रं परिविष्य तत्सर्वान्नावघ्राणं कृत्वा पात्रं गवादिभ्यो देयम्। कन्दमूलफलाहाराद्यनुकल्पेनोपवासकर्त्रा तु स्वभक्ष्यस्यैव फलादेः पितृब्राह्मणपात्रेषु परिवेषणपूर्वकं तच्छेषभक्षणं कार्यम् ।

एकादश्यां यदा भूप मृताहः स्यात्कदाचन ।
तद्दिनं तु परित्यज्य द्वादश्यामेव कारयेत् ।

इत्यादिवचनानि यथाचारं वैष्णवपराणि । वैष्णवैः षोडशमहालयकरणपक्षे एकादश्यधिकरणकं द्वादश्यधिकरणकं च महालयं तन्त्रेण करिष्य इति संकल्प्य महालयद्वयं द्वादश्यां कार्यम् ।

उपवास के दिन श्राद्ध पड़ जाय तो श्राद्ध से बचे सम्पूर्ण अन्न को एक पात्रमें परोसकर उन सम्पूर्ण अन्नों को सूंघ कर वह पात्र गाय आदि को दे दे। कन्द मूल और फलाहारादि से उपवास करनेवाला पुरुष अपना भक्ष्य जो फलादिक है उसे पितृस्थानीय ब्राह्मणपात्रों में परोस कर उससे बचे हुए फल आदि का स्वयं भोजन करे। एकादशी में यदि मृताह पड़ जाय तो उस दिन व्रत न कर द्वादशी में करे। यह सब वचन आचार के अनुसार वैष्णवों के लिये हैं। वैष्णवों को सोलह दिन के महालय श्राद्ध करने में 'एकादशी का श्राद्ध और द्वादशी का श्राद्ध तन्त्र से करूँगा' ऐसा संकल्प करके एकादशी द्वादशी दोनों का श्राद्ध द्वादशी में करे।

अथ काम्योपवासे सूतकप्राप्तौ

शारीरनियमान्स्वयं कृत्वा सूतकान्ते पूजादानब्राह्मणभोजनादिकं कार्यम्। नित्योपवासे सूतकादिप्राप्तौ स्नात्वा हरिं प्रणम्य निराहारादिकं स्वयं कृत्वा पूजादिकं ब्राह्मणद्वारा कार्यम्। दानादेर्लोपो न सूतकान्तेऽनुष्ठानावश्यकत्वम्। एवं रजस्वलादिदोषेऽपि द्वादश्यां प्रातर्नित्यपूजां विधाय भगवते व्रतमर्पयेत्।

अज्ञानतिमिरान्धस्य व्रतेनानेन केशव।
प्रसीद सुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टिप्रदो भव॥ इति तत्र मन्त्रः।

काम्य उपवास व्रत में सूतक की प्राप्ति हो जाय तो शरीर के नियमों को स्वयं करके सूतक की समाप्ति पर पूजा दान और ब्राह्मण भोजनादिक कृत्य करे। नित्य उपवास में यदि सूतक आदि पड़े तब स्नान करके भगवान् को प्रणाम कर आर्रात आदि स्वयं करके पूजा आदि ब्राह्मण से करावे। दान आदि का लोप न हो इसलिये सूतक के अन्त में दान को भी करे। रजस्वला आदि दोष में भी इसी प्रकार का आचरण करे। द्वादशी को प्रातःकाल नित्यपूजा करके भगवान को व्रत का समर्पण करे और यह मन्त्र कहे—"हे केशव! इस व्रत से आप प्रसन्न हों। अज्ञान के अन्धकार से अन्धे मुझको ज्ञानदृष्टि दें।"

अथ व्रतनियमभङ्गे प्रायश्चित्तम्

दशम्यादिषूक्तानां नियमानां भङ्गे दिवास्वापे बहुशो जलपाने मिथ्याभाषणे वा तत्तन्नियमभङ्गानुद्दिश्य नारायणाष्टाक्षरमन्त्रजपमष्टोत्तरशतसंख्यया कुर्यात्। अल्पदोषे नामशतत्रयजपः। रजस्वलाचाण्डालरजकसूतिकादिशब्दस्य व्रतमध्ये श्रवणेऽष्टोत्तरसहस्रगायत्रीजपः। ततो नैवेद्यतुलसीमिश्रितान्नेन पारणं कार्यम्। आमलकीफलस्य पारणायां भक्षणेऽसंभाष्यभाषणादिदोषनाशः।

दशमी आदि में कहे गये नियमों के भंग होने पर, दिन के सोने वा अनेक बार जलपीने से,) जिन-जिन नियमों का भंग किया हो उसी उद्देश्य से प्रत्येक के लिये अष्टाक्षर नारायण के मंत्र का जप १०८ बार करे। थोड़े दोष में भगवन्नाम का तीन सौ जप करे। व्रत में रजस्वला चाण्डाल रजक स्त्री और सौरी में प्रसव करने वाली का शब्द सुन ले तो १००८ बार गायत्री जप करे तदनंतर नैवेद्य तुलसी मिले हुए अन्न से पारण करे। आँवले के फल की पारणा असंभाष्य में खाने से भाषणा के दोषों से मुक्ति हो जाती है।

अथ पारणाकालः

पारणं च द्वादश्युल्लङ्घने महादोषाद् द्वादशीमध्ये एव कार्यम्। स्वल्पद्वादशीसत्त्वे रात्रिशेषे आमध्याह्नान्ताः क्रियाः सर्वा अपकृष्य कार्याः। अग्निहोत्रहोमस्य नापकर्ष इति केचित्। एवं श्राद्धस्यापि नापकर्षो रात्रौ श्राद्धनिषेधात्। अतिसंकटे श्राद्धे प्रदोषादिव्रते च तीर्थजलेन पारणं कार्यम्। द्वादशीभूयस्त्वे द्वादशीप्रथमपादं [1]हरिवासरसंज्ञकमुल्लङ्घ्य पारणं कार्यम्।

---

१. स्मृत्यन्तर में वार और नक्षत्र के योग से हरिवासर—'आभाकासितपक्षेषु मैत्रश्रवणरेवती। द्वादशी बुधवारेण हरिवासर उच्यते॥' अर्थात् आषाढशुक्ल द्वादशी बुधवार और अनुराधा

द्वादशी में पारण के उल्लंघन होने पर महादोष होता है। अतः द्वादशी के मध्य में ही पारण करे। रात बीतने पर थोड़ी द्वादशी के रहने पर मध्याह्न पर्यन्त के कर्मों को प्रातः ही करके अग्नि-होत्र होम को समय से पहले नहीं करे ऐसा किसी का कहना है। इसी प्रकार श्राद्ध को भी समय से पूर्व नहीं करे, रात्रि में श्राद्ध निषेध होने से। अत्यन्त संकटमें श्राद्धमें और प्रदोषादि व्रत में तीर्थ जल से पारण करे। द्वादशी यदि पर्याप्त हो तो द्वादशी के प्रथम चरण जिसे हरिवासर कहते हैं उसका उल्लंघन कर पारण करना चाहिए।

कलामात्राया अपि द्वादश्या अभावे त्रयोदश्यां पारणम्। द्वादश्या मध्याह्नोर्ध्वं सत्त्वे प्रातर्मुहूर्तत्रयमध्ये एव पारणं नं मध्याह्नादौ इति बहवः। बहूनां कर्मकालानां बाधापत्तेरपराह्ण एवेति केचित्।

कलामात्र भी यदि द्वादशी न हो तब त्रयोदशी में पारण करे। द्वादशी से मध्याह्नोत्तर होने पर प्रातःकाल तीन मुहूर्त के भीतर ही पारण करे मध्याह्नादिक में नहीं करना चाहिये ऐसा बहुत से लोग कहते हैं। कुछ तो यह कहते हैं—बहुत से कर्मकालों की बाधा होने के कारण अपराह्न में ही पारण करे।

अथ श्रवणद्वादशी

द्वादश्यां सर्वमासेषु शुक्लायां कृष्णायां वा श्रवणयोगे शक्तेनैकादशीद्वादश्यो-र्द्वयोरप्युपवासः कार्यः। अशक्तेनैकादश्यां फलाहाराद्यनुकल्पं कृत्वा श्रवण-द्वादश्यामुपवासः कार्यः।

सब महीनों के शुक्ल अथवा कृष्णपक्ष की द्वादशी में श्रवण नक्षत्र हो तो सामर्थ्यवान को एकादशी द्वादशी दोनों दिन उपवास करना चाहिए। असमर्थ पुरुष एकादशी में फलाहारादि कर के श्रवण युक्त द्वादशी में उपवास करे।

विष्णुश्रृङ्खलयोगसत्त्वे तु एकादश्यामेव श्रवणद्वादशीप्रयुक्तमप्युपवासं कृत्वा द्वादश्यां श्रवणयोगरहितायां पारणं कार्यम्। द्वादश्याः श्रवणतो न्यूनत्वे श्रवण-युक्तायामपि द्वादश्यामेव पारणम्। द्वादश्युल्लङ्घने दोषात्। विष्णुश्रृङ्खलयोगादि-निर्णयो भाद्रपदमासगतश्रवणद्वादशीप्रकरणे वक्ष्यते।

यदि विष्णुश्रृङ्खलयोग हो तो एकादशी में ही श्रवण द्वादशी का उपवास करके श्रवण-योग रहित द्वादशी के दिन पारण करे। यदि श्रवण नक्षत्र से कम द्वादशी हो तो श्रवणयुक्त द्वादशी में ही पारण करे। द्वादशी के उल्लंघन में ही दोष कहा है। विष्णुश्रृङ्खलयोग आदि का निर्णय भाद्रपदमासस्थित श्रवणद्वादशी प्रकरण में कहेंगे।

नक्षत्र से, भाद्रशुक्ल द्वादशी बुधवार और श्रवण नक्षत्र से, कार्तिक शुक्ल द्वादशी बुधवार और रेवती नक्षत्र से युक्त हो तो 'हरिवासर' कहलाता है।

द्वादशी पारण में मार्गादिमास के क्रम से भिन्न भिन्न वस्तुओं का निर्देश—'गोमूत्रेण च गोमयेन पयसा दध्ना गवां सर्पिषा सद्दर्भोदककार्तवीर्ययवजैश्चूर्णैस्तथा दूर्वया। कूष्माण्डेन गुडेन बिल्व-तुलसीपत्रेण वा पारणं द्वादश्यां गदितं क्रमान्मुनिवरैर्मार्गादितस्तत्फलम् ॥' अर्थात् अगहन में गोमूत्र पूस में गोमय माघ में दूध फाल्गुन में दही चैत्र में गोघृत वैशाख में कुशोदक ज्येष्ठ में तिल आषाढ़ में यवका आंटा श्रावण में दूभी भाद्र में कोंहड़ा आश्विन में गुड़ और कार्तिक में बेल या तुलसी-पत्र से द्वादशी का पारण करना मुनिवरों ने कहा है।

अथ द्वादश्यां नियमाः

दिवानिद्रां परान्नं च पुनर्भोजनमैथुने ।
क्षौद्रं कांस्यामिषं तैलं द्वादश्यामष्ट वर्जयेत् ॥

द्यूतक्रोधचणककोद्रवमाषतिलपिष्टमसूरनेत्राञ्जनमिथ्याभाषणलोभायासप्रवासभारवहनाध्ययनताम्बूलादीनि वर्जयेत् । एते च नियमाः काम्यव्रते आवश्यकाः ।

दिन का सोना, दूसरे का अन्न खाना, दोबारा भोजन करना, स्त्री सहवास, शहद, कांस पात्र में भोजन, मांस और तैल इन आठ चीजों का त्याग करे । जूआ, क्रोध, चना, कोदो, उरद, तिल की खली, मसूर, आँखों में आंजन करना, असत्यभाषण, लोभ, परिश्रम, परदेशयात्रा, बोझा ढोना, पढ़ना, ताम्बूल आदि का वर्जन करे । ये सब नियम काम्यव्रत में आवश्यक है ।

नित्यव्रते तु—

शक्तिमांस्तु पुमान्कुर्यान्नियमं सविशेषणम् ।
विशेषनियमाशक्तोऽहोरात्रं भुजिवर्जितः ॥
निगृहीतेन्द्रियः श्रद्धासहायो विष्णुतत्परः ।
उपोष्यैकादशीं पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥
अन्यं भुङ्क्ष्वेति यो ब्रूयाद्भुङ्क्ते वा यः स नारकी ।
एकादशीव्रताद्विष्णुसायुज्यं लभते श्रियम् ॥ इत्येकादशीव्रतनिर्णयः ।

कार्यान्तरेष्वेकादशी द्वादशीयुतैव ग्राह्या । इत्येकादशीव्रतनिर्णयोद्देशः॥१७॥

नित्यव्रत में तो समर्थ पुरुष नियमों का आचरण करे । विशेष नियम में असमर्थ पुरुष दिन रात भोजन न करे । इन्द्रियों का निग्रह श्रद्धायुक्त भगवान् में लीन हो एकादशी का उपवास करके पापों से रहित होता है इसमें संदेह नहीं है । जो एकादशी में अन्न खाने को कहे या स्वयं खाये वह नरकगामी होता है । एकादशी व्रत करने से मोक्ष एवं लक्ष्मी की प्राप्त होती है । व्रत के अतिरिक्त एकादशी द्वादशीयुक्त ही ले । एकादशीव्रतनिर्णयोद्देश समाप्त ।

अथ द्वादशीनिर्णयः

द्वादशी त्वेकादशीविद्धा ग्राह्या । अथ अष्टौ महाद्वादश्यः—शुद्धाधिकैकादशीयुक्ता द्वादशी उन्मीलनीसंज्ञा । द्वादश्येव शुद्धाधिका वर्धते सा वञ्जुली । सूर्योदये एकादशी ततः क्षयगामिनी द्वादशी द्वितीयसूर्योदये त्रयोदशी एवमेकाहोरात्रे तिथित्रयस्पर्शात् त्रिस्पर्शा संज्ञा द्वादशी । दर्शस्य पौर्णमास्या वा यदा दिनवृद्धिस्तदा पक्षवर्धिनीसंज्ञा । पुष्यर्क्षयुता जया । श्रवणयुता विजया । पुनर्वसुयुता जयन्ती । रोहिणीयुता पापनाशिनी । एताः पापक्षयमुक्तिकाम उपवसेत् । श्रवणयुता तु एकादशीवन्नित्या ।

द्वादशी एकादशी से विद्ध होनी चाहिए । आठ महाद्वादशी को कहते हैं—शुद्ध अधिक एकादशीयुक्त द्वादशी को उन्मीलनी कहते हैं । द्वादशी ही शुद्धा और अधिक होते हुए बढ़ती है उसे वंजुली कहते हैं । सूर्योदय में एकादशी हो उसके बाद क्षययुक्त द्वादशी

हो दूसरे सूर्योदय में त्रयोदशी हो इस प्रकार एक दिन में तीन तिथियों के स्पर्श होने से उसे त्रिस्पर्शा द्वादशी कहते हैं। अमावास्या अथवा पूर्णिमा के दिन की वृद्धि होने से पक्षवर्द्धिनी नाम होता है। पुष्यनक्षत्रयुक्ता द्वादशी का जया नाम है। श्रवणनक्षत्रवाली द्वादशी को विजया कहते हैं। पुनर्वसु वाली द्वादशी का नाम जयन्ती है। रोहिणीनक्षत्र से युक्त द्वादशी पापनाशिनी कहलाती है। पाप का नाश और मुक्ति चाहनेवाले इन आठ द्वादशियों में उपवास करें। श्रवणनक्षत्र वाली विजया तो एकादशी की तरह नित्य है।

एतास्वष्टसु एकादशीद्वादश्योरेकत्वे तन्त्रेणोपवासः। पार्थक्ये शक्तस्योपवासद्वयम्। यस्त्वारब्धव्रतद्वय उपवासद्वयाशक्तश्च। तस्य द्वादशीसमुपोषणाद् व्रतद्वयपुण्यलाभः। तत्र श्रवणर्क्षयोगो मुहूर्तमात्रोऽपि ग्राह्यः। पुष्यादियोगः सूर्योदयमारभ्यास्तमयपर्यन्तश्चेदुपवासः। पारणं तु तिथिनक्षत्रसंयोगोपोषणे उभयान्तेऽन्यतरान्ते वेति सर्वसामान्यनिर्णयः। इति द्वादशीनिर्णयोद्देशः ॥ १८ ॥

इन आठों एकादशी और द्वादशी के एक दिन पड़ जाने से तन्त्र से उपवास करे। अलग होने पर शक्तिसम्पन्न पुरुष दो उपवास करे। जिसने दोनों व्रतों को आरम्भ किया है और दो उपवास करने में समर्थ नहीं हैं। उसको केवल द्वादशी के उपवास से दोनों व्रतों के पुण्य की प्राप्ति होती है। श्रवणनक्षत्र का योग मुहूर्तमात्र का भी ग्राह्य है। पुष्यादिनक्षत्रों का योग सूर्योदय से सूर्यास्तपर्यन्त रहने पर ही उपवास के योग्य होता है। पारणा तो तिथि नक्षत्र के संयोग के उपवास में दोनों के अन्त अथवा एक किसी के अन्त में करे यह सर्व-सामान्यनिर्णय है। द्वादशीनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ त्रयोदशीनिर्णयः

त्रयोदशी[1] शुक्ला पूर्वा कृष्णोत्तरा। शनिवारादियुक्तां काञ्चिच्छुक्लत्रयोदशी-

---

१. त्रयोदशी में प्रदोषव्रत एवं प्रदोषकाल में शिवपूजा करनी चाहिये। ब्रह्मोत्तरखण्ड— 'पक्षद्वये त्रयोदश्यां निराहारो भवेद् दिवा। घटीत्रयादस्तमयात्पूर्वं स्नानं समाचरेत्॥ शुक्लाम्बरधरो भूत्वा वाग्यतो नियमान्वितः। कृतसन्ध्याजपविधिः शिवपूजां समाचरेत्॥ एवमाराधयेद् देवं प्रदोषे गिरिजापतिम्। ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चाद् दक्षिणाभिश्च तोषयेत्॥ सर्वपापक्षयकरी सर्वदारिद्र्यनाशिनी। शिवपूजेयमाख्याता सर्वाभीष्टफलप्रदा॥ बहुनाऽत्र किमुक्तेन श्लोकार्धेन ब्रवीम्यहम्। ब्रह्महत्याशतं वाऽपि शिवपूजा विनाशयेत्। मया कथितमेतत्ते प्रदोषे शिवपूजनम्। रहस्यं सर्वजन्तूनामत्र नास्त्येव संशयः॥' सुमन्तुः—'त्रयोदशी तु कर्तव्या द्वादशीसहिता मुने।' इति। यह कृष्णपक्ष और शनिवार में अत्यन्त प्रशस्त है—'मन्दवारे प्रदोषोऽयं दुर्लभः सर्वदेहिनाम्। तत्रापि दुर्लभस्तस्मिन् कृष्णपक्षे समागते॥' इति।

जिस दिन शनिवार को प्रदोष पड़े उसी दिन इस व्रत का आरम्भ करना चाहिये—'यदा त्रयोदशी शुक्ला मन्दवारेण संयुता। आरभेत व्रतं तत्र सन्तानफलसिद्धये॥ 'ततस्तु लोहिते भानौ स्नातः सुनियतो व्रती। पूजास्थानं ततो गत्वा प्रदोषे शिवमर्चयेत्॥' इति। प्रदोषकाल का महत्त्व— कैलाशशैलभवने त्रिजगज्जनित्रीं गौरीं निवेश्य कनकाचितपीठमध्ये। नृत्यं विधातुमभिवाञ्छति शूलपाणौ देवाः प्रदोषसमयेऽनुभजन्ति सर्वे॥ वाग्देवी धृतवल्लकी शतमखो वेणुं कणन् पद्मजस्तालोन्निद्रकरी रमा भगवती गेयप्रयोगान्विता। विष्णुः सान्द्रमृदङ्गलम्बनपटुर्देवाः समन्तात् स्थिताः सेवन्ते तमनु प्रदोषसमये देवं मृडानीपतिम्॥ गन्धर्वयक्षपतगोरगसिद्धसाध्यविद्याधरामरवराप्सरसां गणाश्च। येऽन्ये त्रिलोकनिलयाः सहभूतवर्गाः प्राप्ते प्रदोषसमये हरपार्श्वसंस्थाः॥ अतः प्रदोषे शिव एक एव पूज्योऽथ नान्ये हरिपद्मजाद्याः। तस्मिन् महेशे विधिनेज्यमाने सर्वे प्रसीदन्ति सुराधिनाथाः॥' इति।

मारभ्य संवत्सरपर्यन्तं प्रतिपक्षं त्रयोदशीषु शनिवारयुक्तास्वेव चतुर्विंशतिशुक्लत्रयोदशीषु वा कर्तव्यम्। यत्प्रदोषसमये शिवपूजानक्तभोजनात्मकं प्रदोषव्रतं तत्र सूर्यास्तमयोत्तरत्रिमुहूर्तात्मकप्रदोषव्यापिनी त्रयोदशी ग्राह्या। दिनद्वये प्रदोषव्याप्तौ साम्येन तदेकदेशस्पर्शे वा उत्तरा। वैषम्येणैकदेशस्पर्शे तदाधिक्यवती पूर्वापि ग्राह्या, यदि देवपूजाभोजनपर्याप्तं तदाधिक्यं लभ्येत। नो चेत्साम्यपक्षवदुत्तरैव। उभयत्र सर्वथा व्याप्त्यभावेऽपि परैव। इति त्रयोदशीनिर्णयोद्देशः ॥ १९ ॥

त्रयोदशी शुक्ल पक्ष में पूर्वा और कृष्णपक्ष में परा ग्राह्य है। शनिवार आदि वाली किसी शुक्ला त्रयोदशी से आरम्भ कर साल भर तक प्रत्येक पक्ष की शनिवार वाली त्रयोदशी अथवा चौबीस शुक्लपक्ष की त्रयोदशी में कर्तव्य प्रदोषसमय में शिवपूजन, नक्तभोजन वाला प्रदोषव्रत है उसमें सूर्यास्त के तीन मुहूर्त वाली त्रयोदशी ग्राह्य है। दो दिन में प्रदोषवाली त्रयोदशी समता या एकदेश में स्पर्श होने पर परा त्रयोदशी ग्राह्य है। वैषम्य से एकदेश में स्पर्श होने पर अधिका पूर्वा ही ग्राह्य है, यदि देवपूजा और भोजन के लिये पर्याप्त त्रयोदशी मिले। नहीं तो काम्यपक्ष की तरह परा ही ले। यदि दोनों दिन सर्वथा व्याप्ति का अभाव हो तो परा ही ले। त्रयोदशीनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ चतुर्दशीनिर्णयः

चतुर्दशी तु शुक्ला परा कृष्णा पूर्वा। यत्तु प्रतिमासं कृष्णचतुर्दश्यां शिवरात्रिव्रतं काम्यमनुष्ठीयते। तत्र महाशिवरात्रिवन्निशीथव्यापिन्येव ग्राह्या। उभयत्र निशीथव्याप्तौ परा, प्रदोषव्याप्तेराधिक्यात्। कैश्चित्प्रदोषमात्रव्यापिनी गृह्यते तत्र मूलं चिन्त्यम्। यत्तु चतुर्दश्यां दिवाभोजननिषेध एव नित्यत्वात्पाल्यते तत्र भोजनकालव्यापिनीं चतुर्दशीं त्यक्त्वा त्रयोदश्यां पञ्चदश्यां भोक्तव्यम्। शिवरात्रिव्रतिभिस्तु चतुर्दश्यामेव पारणा कर्तव्या। न तत्र 'चतुर्दश्यष्टमी दिवा' इति भोजननिषेधप्राप्तिः' विधिप्राप्ते निषेधाप्रवेशात्। इति चतुर्दशीनिर्णयोद्देशः ॥ २० ॥

चतुर्दशी शुक्लपक्ष की परा और कृष्णपक्ष की पूर्वा ग्राह्य है। जो प्रत्येक मास में कृष्णपक्ष की चतुर्दशी में काम्य शिवरात्रिव्रत करते हैं। इसमें महाशिवरात्रि व्रत की तरह अर्धरात्रव्यापिनी ही चतुर्दशी युक्त है। दोनों दिन अर्द्धरात्रव्यापिनी चतुर्दशी होने पर दूसरे दिन प्रदोष के मिल जाने से परा ही ग्राह्य है। कुछ लोग केवल प्रदोषयुक्त चतुर्दशी में ही शिवरात्रिव्रत करते हैं। इसमें कोई प्रमाण नहीं है। जो चतुर्दशी में दिन का भोजन निषेध नित्य होने से उसी का पालन करते हैं उन्हें भोजनकाल में रहने वाली चतुर्दशी को छोड़कर त्रयोदशी या पूर्णिमा में भोजन करना चाहिए। शिवरात्रिव्रत करने वाले को तो चतुर्दशी में ही पारणा करनी चाहिए। उसमें चतुर्दशी अष्टमी में दिन के भोजन का निषेध नहीं लगता। विधि में निषेध की प्राप्ति नहीं होती। चतुर्दशीनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ पूर्णिमामावास्ययोर्निर्णयः

पूर्णिमामावास्ये तु सावित्रीव्रतं विना परे ग्राह्ये। यत्तु कैश्चिच्छ्रावणी-

हुताशनीपूर्णिमयोः कुलधर्मादौ पूर्वविद्धयोर्ग्राह्यत्वोक्तेः सर्वा पौर्णमासी कुलधर्मादौ पूर्वा गृह्यते तत्र मूलं मृग्यम्। अष्टादशनाडिकातो न्यूनचतुर्दशीसत्त्वे तादृशचतुर्दशीवेधस्य 'भूतोष्टादशनाडीभिः' इति वचनाददूषकत्वप्रतीतेः। अस्तु वा तादृशस्थले कुलधर्मे पूर्वत्र ग्राह्यत्वम्। अष्टादशनाडिकाधिकचतुर्दशीवेधे तु पूर्वविद्धा पौर्णमासी न ग्राह्येति मे प्रतिभाति।

सावित्रीव्रत को छोड़कर पूर्णिमा अमावस्या परा ली जाती है। जो कोई श्रवण की पूर्णिमा और फाल्गुन की पूर्णिमा कुलधर्म आदि में पूर्वविद्धा के ग्राह्य होने से सभी पूर्णिमा पूर्वा ही मानते हैं, इसमें प्रमाण नहीं मिलता। १८ घड़ी से कम चतुर्दशी के होने पर वैसे चतुर्दशी वेध को "१८ घड़ी से चतुर्दशी वेध करती है" इस प्रकार वचन से भले ही दोष न हो किन्तु ऐसी स्थिति में कुलधर्म में पूर्वा ग्राह्य है। मुझे तो यह अच्छा लगता है कि १८ घड़ी से अधिक चतुर्दशी के वेध होने पर पूर्वविद्धा पूर्णिमा नहीं ग्राह्य करे।

अमावास्या [1]भौमसोमवारयुता स्नानदानादौ महापुण्या। एवं भानुयुता सप्तमी भौमयुता चतुर्थी। यत्तु सोमयुताऽमावास्यायामश्वत्थपूजाद्यात्मकं [2]सोमवतीव्रतमनुष्ठीयते तत्रापराह्णपर्यन्तं मुहूर्तमात्रयोगेऽपि व्रतं कार्यम्। दिनान्त्यषड्घटिकात्मकसायाह्ने योगे रात्रियोगे च न कार्यमिति शिष्टाचारः। यतीनां क्षौरादौ उदये त्रिमुहूर्तव्यापिनी पौर्णमासी ग्राह्या। तृतीयमुहूर्तस्पर्शाभावे चतुर्दशीयुता। इति पञ्चदशीनिर्णयोद्देशः॥ २१॥

भौमवती सोमवती अमावास्या स्नान दानादिक में अधिक पुण्य देनेवाली है। इसी प्रकार रविवार वाली सप्तमी और मंगलवार वाली चतुर्थी भी। जो सोमवती अमावस्या में अश्वत्थपूजन आदि सोमवती का व्रत करते हैं उसमें अपराह्ण तक मुहूर्त मात्र के योग में भी व्रत करना चाहिए। शिष्टाचार तो यह है कि सायंकाल छः घड़ी का जो होता है उसमें या रात्रि में भी सोम के योग से अमावस्या प्रयुक्त सोमवती करे। संन्यासी के क्षौरकर्म में उदयकाल में तीन मुहूर्तवाली पूर्णिमा ले। तीसरे मुहूर्त के स्पर्श न होने पर चतुर्दशीयुक्त पूर्णिमा ग्राह्य है। पंचदशीनिर्णयोद्देश समाप्त।

---

१. महाभारते—'अमा सोमे तथा भौमे गुरुवारे यदा भवेत्। तत्तीर्थं पुष्करं नाम सूर्यपर्वशताधिकम्॥ श्रवणाश्विधनिष्ठार्द्रानागदैवतमस्तकैः। अमा चेद्रविवारेण व्यतीपातः स उच्यते॥ तत्र दत्तं हुतं जप्तं सर्वं कोटिगुणं भवेत्।' इति। शङ्खः—'अमावास्या तु सोमेन सप्तमी भानुना सह। चतुर्थी भूमिपुत्रेण सोमपुत्रेण चाष्टमी। चतस्रस्तिथयस्त्वेताः सूर्यग्रहणसन्निभाः। स्नानं दानं तथा श्राद्धं सर्वं तत्राक्षयं भवेत्॥' इति।

२. कृत्यशिरोमणि उद्धृत भारत में सोमवतीव्रत—'अमावास्या यदा पार्थ सोमवारसमन्विता। तस्यामश्वत्थमागत्य पूजयित्वा जनार्दनम्॥ अष्टोत्तरशतं कृत्वा तस्मिन् वृक्षे प्रदक्षिणम्। तावत्संख्यानुपादाय रत्नधातुफलानि च। व्रतराजमिदं राजन् विष्णोः प्रीतिकरं परम्॥' इति। अपि च—'सोमवत्या अमायास्तु व्रतं कृत्वा सती भवेत्। पतिपुत्रधनैः पूर्णा जन्मजन्मनि निश्चितम्॥ विधवा चेत्करोतीदं न पुनर्विधवा क्वचित्। तस्मात् स्त्रिया सुभगया कर्तव्यं खलु तद्व्रतम्॥' मत्स्यपुराण में प्रदोषव्रत की भाँति सोमवार व्रत का विधान—'सोमवारे विशेषेण प्रदोषादिगुणैर्युते। केवलं वापि ये कुर्युः सोमवारे शिवार्चनम्॥ न तेषां विद्यते किंचिदिहामुत्र च दुर्लभम्। उपोषितः शुचिर्भूत्वा सोमवारे जितेन्द्रियः॥ वैदिकैर्लौकिकैर्वापि विधिवत्पूजयेच्छिवम्। ब्रह्मचारी गृहस्थो वा कन्या वापि सभर्तृका। विभर्तृका वा सम्पूज्य लभते वरमीप्सितम्॥' इति।

अथेष्टिकालः

पक्षान्ता[1] उपवस्तव्याः पक्षाद्या यष्टव्याः । उपवासोऽन्वाधानाख्यं कर्म ।
पर्वणो[2] यश्चतुर्थांश आद्याः प्रतिपदस्त्रयः ।
यागकालः स विज्ञेयः प्रातरुक्तो मनीषिभिः ॥

प्रतिपत्तुर्यचरणे न यष्टव्यमिति स्थितिः । तत्र पर्वप्रतिपदोः पूर्णत्वे संदेहाभावः । पर्वण्यन्वाधानस्योत्तरदिने यागस्य यथोक्तकाललाभात् ।

पक्षान्त तिथि में उपवास और पक्ष के आदि की तिथि में यज्ञ करे। यहाँ उपवास से 'अन्वाधान' नामक कर्म ग्राह्य है। अमावास्या पूर्णिमा को पर्व कहते हैं। पूर्णिमा अमावास्या का चौथा और प्रतिपदा के आद्य तीन अंश ये तीन तिथियाँ यज्ञकाल कहलाती हैं। यह प्रातः यज्ञकाल है। प्रतिपदा के चतुर्थचरण में यज्ञ न करे। उसमें पूर्णिमा अमावास्या और प्रतिपदा के

---

१. पक्षाणामन्ता अवसानतिथयः उपवस्तव्याः पक्षाणामादयः प्रतिपदश्च अभियष्टव्याः इत्यर्थः । पक्षान्ता तिथिश्च द्वयी पौर्णमासी अमावास्या च । पक्षान्तं कर्म अन्वाधानम् । अन्वाधानं नाम इध्माबर्हिःसम्पादनम् अग्निपरिग्रहः उपस्तरणं चेत्येवमादिः प्रयोगारम्भः । सः पूर्वेद्युः कर्तव्यः । शतपथे—'पूर्वेद्युरग्निं गृह्णात्युत्तरमहर्यजति' इति । अत्र अग्निग्रहणं नाम अध्वर्युणा आहवनीयगार्हपत्यदक्षिणाग्निषु 'ममाग्ने वर्च' इत्यादृग्भिः समिदाधानलक्षणेऽन्वाधाने क्रियमाणे पार्श्ववर्तिना यजमानेन 'अग्निं गृह्णामि' इत्यादिमन्त्रपठनम् । तदिदं पर्वदिने क्रियते । प्रतिपद्दिने तु 'कर्मणे वां देवेभ्यः शकेयम्' इत्यादिभिः अध्वर्युः हस्तप्रक्षालन-तण्डुलनिर्वाप-पुरोडाशप्रदानादिलक्षणं प्रयोगं करोति । तदिदं यजनम् ।

२. पर्व दो प्रकार का है—पौर्णमासी और अमावास्या । गोभिल ने इन दोनों का स्वरूप दिखलाया—'यः परमो विप्रकर्षः सूर्याचन्द्रमसोः सा पौर्णमासी, यः परमः सन्निकर्षः सा अमावास्या' इति । मत्स्यपुराणादि में पूर्णिमा का निर्वचन—'कलाक्षये व्यतिक्रान्ते दिवा पूर्णौ परस्परम् । चन्द्रादित्यौ पराह्णे तु पूर्णत्वात्पूर्णिमा स्मृता ॥' अमावास्या का निर्वचन—'अमा वसेतामृक्षेषु यदा चन्द्रदिवाकरौ । एषा पंचदशी रात्रिरमावास्या ततस्तु सा ॥' इति ।

दोनों पक्षों की अन्तिम तिथि 'पंचदशी' कहलाती है। शुक्लपक्ष की पञ्चदशी में चन्द्रमण्डल अपनी सभी कलाओं से पूर्ण हो जाता है या मास पूर्ण होता है इसलिये इस (पंचदशी) का नाम 'पूर्णिमा' पड़ा। ब्रह्माण्डपुराण में कहा—'कलाक्षये व्यतिक्रान्ते दिवा पूर्णौ परस्परम् । चन्द्रादित्यौ पराह्णे तु पूर्णत्वात् पूर्णिमा स्मृता ॥' भविष्योत्तरे—'पौर्णमासी महाराज सोमस्य दयिता तिथिः । पूर्णो मासो भवेद्यस्मात् पौर्णमासी ततः स्मृता ॥' इति ।

कृष्णपक्ष की पंचदशी का नाम 'अमावास्या' पड़ा। कालमाधव में अमाशब्द के चार अर्थ दिखलाये हैं—सहभाव, कन्या, सूर्यरश्मि, और चन्द्रकला। अमाशब्द का चन्द्रकला अर्थ मानकर भगवतीपुराण में इसका निर्वचन किया—'कलाऽवशेषो निष्क्रान्तः प्रविष्टः सूर्यमण्डलम् । अमायां विशते यस्माद् अमावास्या ततः स्मृता ॥' इति । अमाशब्द के शेष अर्थों का निर्वचन कालमाधव में देखें। विस्तार के भय से नहीं लिखा जा रहा है।

पूर्णिमा और अमावास्या के दो भेद हैं, उसका स्वरूप ऐतरेय ब्राह्मण में यों है—'या पूर्वा पौर्णमासी सानुमतिर्योत्तरा सा राका या पूर्वाऽमावास्या सा सिनीवाली योत्तरा सा कुहूः ।' इति । उनका लक्षण वृद्धवसिष्ठ ने बतलाया—'राका सम्पूर्णचन्द्रा स्यात्कलोनानुमतिः स्मृता । पौर्णमासी दिवादृष्टे शशिन्यनुमतिः स्मृता । रात्रिदृष्टे पुनस्तस्मिन् सैव राकेति कीर्तिता ॥ दृष्टचन्द्राममावास्यां सिनीवालीं प्रचक्षते । एवामेव कुहूमाहुर्नष्टचन्द्रां महर्षयः ॥' इति ।

पूर्ण होने पर संदेह का अभाव है। क्योंकि पर्व में अन्वाधान के दूसरे दिन यज्ञ का उचित काल मिल जायगा।

पर्वप्रतिपदोः संधिनिर्णयः—पर्वणः खण्डत्वे तु पर्वापेक्षया प्रतिपदो ह्रासवृद्धिघटिका गणयित्वा तदर्धं ह्रासे पर्वणि वियोज्य वृद्धौ संयोज्य [1]संधिकालं ज्ञात्वाऽन्वाधानादिकालो निर्णेतव्यः। यत्र ह्रासवृद्धी न स्तस्तत्र यथास्थितः स्पष्ट एव संधिः।

पर्व के खंड होने पर पर्व की अपेक्षा प्रतिपदा की कमी और वृद्धि की घड़ियाँ गिनकर उसका आधा घटा कर पर्व से निकाल कर वृद्धि होने पर जोड़ कर सन्धिकालका ज्ञानकर अन्वाधानादिकाल का निर्णय करे। जहाँ ह्रास-वृद्धि न हो वहाँ जैसा हो स्पष्ट सन्धिज्ञान करे।

तत्र संधिश्चतुर्विधः—पूर्वाह्णसंधिर्मध्याह्नसंधिरपराह्णसंधिरात्रिसंधिश्चेति। द्वेधा विभक्तदिनस्य पूर्वार्धं पूर्वाह्णः अपरार्धम् अपराह्णः। पूर्वाह्णापराह्णसंधिभूतो घटिकाद्वयात्मको मुहूर्तो मध्याह्नः, आवर्तनापरपर्याय इति कौस्तुभे। उभयसंधिरेकपलात्मक एव मध्याह्नो नतु घटिकाद्वयात्मक इति प्रायेणेदानीं शिष्टाचारः। तत्रोक्तरीत्या ह्रासवृद्ध्यर्धवियोजनसंयोजनेन निर्णीतः पर्वप्रतिपदोः संधिर्यदि पूर्वाह्णे मध्याह्ने वा भवति, तदा संधिदिनात्पूर्वदिनेऽन्वाधानं संधिदिने यागः। यद्यपराह्णे रात्रौ वा संधिस्तदा संधिदिनेऽन्वाधानं तत्परदिने यागः।

सन्धि चार प्रकार की होती है—पूर्वाह्णसन्धि मध्याह्नसन्धि अपराह्णसन्धि और रात्रिसन्धि के भेद से। दिन के दो भाग करने पर पहले आधा पूर्वाह्ण दूसरा आधा अपराह्ण। पूर्वाह्ण अपराह्ण के सन्धि में दो घड़ी का जो मुहूर्त होता है उसे मध्याह्न कहते हैं। जिसका दूसरा नाम आवर्तन है ऐसा कौस्तुभ में लिखा है। आजकल शिष्टों का प्रायः यह आचार है कि दोनों सन्धि एक पल की होती है न कि दो घड़ी की। उक्त रीति से ह्रास-वृद्धि के लिये घटाने-जोड़ने का निर्णय किया। पर्व और प्रतिपदा की सन्धि यदि पूर्वाह्ण या मध्याह्न में होती है, तब सन्धिदिन से पहले अन्वाधान होता है और सन्धिदिन में यज्ञ होता है। अगर अपराह्ण और रात्रि में प्रतिपदा की सन्धि होती है तो सन्धिदिन में अन्वाधान और दूसरे दिन यज्ञ होता है।

---

१. कुहूभिन्नानां तिसृणां लघ्वक्षरोच्चारणपरिमितः कालः सन्धिरित्युच्यते। कुहास्तु अक्षरद्वयपरिमितः कालः। तदुक्तं हेमाद्रौ भगवतीपुराणे—'अनुमत्याश्च राकायाः सिनीवाल्याः कुहूं विना। एतासां द्विलवः कालः कुहूमात्रा कुहूः स्मृता॥' इति। लवस्वरूपं स्मृत्यन्तरे—'लघ्वक्षरचतुर्भागस्त्रुटिरित्यभिधीयते। त्रुटिद्वयं लवः प्रोक्तो निमेषस्तु लवद्वयम्॥' तथा च लवद्वयं लघ्वक्षरं भवतीति लघ्वक्षरपरिमिते काले एकः पर्वणो भागो द्वितीयः प्रतिपदः, तदुभयं मिलितं सन्धिर्भवति। कुहूप्रतिपदोः सन्धिस्तु द्विगुणः। कुहूस्वरूपं मत्स्यपुराणादौ—'कुह्विति कोकिलेनोक्ते यावान् कालः समाप्यते। तत्कालसंज्ञिता चैषा अमावास्या कुहूः स्मृता॥' इति। सन्धिस्वरूपे ज्ञाते 'सन्धौ यजेत' इति श्रुतेः सन्धौ यागः कर्तव्यः। सन्धेश्चातिसूक्ष्मत्वेन कर्मानुष्ठानायोग्यत्वात् सन्धिशब्दः सन्धिपार्श्वद्वयं लक्षयति। तथा च सन्धिपार्श्वद्वये 'सन्धौ यजेत' इति श्रुतिः यागं विधत्ते। हेमाद्रौ बौधायनः—'सूक्ष्मत्वात्संधिकालस्य सन्धेर्विषय उच्यते। सामीप्यं विषयं प्राहुः पूर्वेणाथ परेण वा॥' इति। अत्र पूर्वापरशब्दाभ्यां सन्धेः प्राचीनं पूर्वदिनमुत्तरं प्रतिपद्दिनं चाभिधीयते। तत्र व्यवस्था—'पूर्वेद्युरिध्मावर्हिः करोति यज्ञमेवारभ्य गृहीत्वोपवसति' इति श्रुतौ।

अथोदाहरणम्

पर्व सप्तदशघटीमितं प्रतिपदेकादशघटीमिता तत्र षड्घटीमितः प्रतिपत्क्षयस्तदर्धं घटीत्रयं पर्वणि वियोजितं जातः संधिश्चतुर्दशघटीमितः। अयं त्रिंशद्घटीमिते दिनमाने पूर्वाह्णसंधिः। अष्टाविंशतिघटीमिते तु दिनमानेऽयमेव मध्याह्नसंधिः। अत्र संधिदिने यागः पूर्वदिनेऽन्वाधानम्। पर्व १४ प्रतिपत् १९ अत्र पञ्चघटिकावृद्धिः। तदर्धं सार्धघटीद्वयं पर्वणि संयोजितं जातः संधिः सार्धषोडशघटीमितः। अयम् अपराह्णसंधिः। अत्र संधिदिनेऽन्वाधानं परेद्युर्यागः।

इसका उदाहरण यह है कि—पर्व १७ घड़ी और प्रतिपदा ११ घड़ी है तो पर्व से ६ घड़ी प्रतिपद् कम है। उसका तीन घड़ी पर्व में निकाल देने से १४ घड़ी पर सन्धि हुई। यह तीस घड़ी के दिनमान होने से पूर्वाह्न सन्धि हुई। २८ घड़ी के दिनमान होने से यही मध्याह्न सन्धि हुई। इसी सन्धि में यज्ञ और पहले अन्वाधान होगा। अब दूसरा उदाहरण—पर्व १४ घ० और प्रतिपद् १९ घ० तो ५ घ० पर्व से प्रतिपत् में वृद्धि हुई। उसका २॥ घ० पर्व में जोड़ने से १६॥ घ० पर सन्धि हुई। यह अपराह्न सन्धि हुई। इसीमें अन्वाधान कर्म और दूसरे दिन यज्ञ होगा।

अथात्र बालबोधनार्थं प्रकारान्तरम्

सूर्योदयोत्तरं विद्यमानाः पर्वनाडिकाः प्रतिपन्नाडिकाश्चैकीकृताः सत्यो यदि दिनमानतो न्यूनास्तदा पूर्वाह्णसंधिः। यदि दिनमानसमास्तदा मध्याह्नसंधिः। यदि दिनमानादधिकास्तदाऽपराह्णसंधिरिति। इत्थं सूर्योदयोत्तरमनुवर्तमानपर्वप्रतिपदोः क्षयवृद्धिभ्यामेव संध्यवलोकनमिदानीं सर्वत्र शिष्टाचारेषु प्रसिद्धम्।

बालबोधार्थ दूसरे प्रकार का उदाहरण है कि—सूर्योदय के बाद की पर्व की घड़ियों और प्रतिपदा की घड़ियों को इकट्ठा करने पर यदि दिनमानसे कम होता है तो पूर्वाह्न सन्धि होगी। यदि दिनमान के बराबर होता है तो मध्याह्न सन्धि और यदि दिनमान से अधिक होता है तो अपराह्नसन्धि होती है। इस प्रकार सूर्योदय के बाद अनुवृत्तपर्वप्रतिपत्ति की क्षय और वृद्धि से ही संधि का अवलोकन इस समय सर्वत्र शिष्टाचार में प्रसिद्ध है।

कौस्तुभादौ तु चतुर्दशीदिनस्था उदयात्पूर्वं पर्वणो गतघटिका उदयादेष्यघटिकाश्चैकीकृत्यैवं प्रतिपदः पूर्वदिनस्था उत्तरदिनस्थाश्च घटिका एकीकृत्य पर्वापेक्षया प्रतिपदो वृद्धिक्षयौ ज्ञेयौ। तद्यथा—चतुर्दशी २२ पर्व १७ चतुर्दशीदिनस्थाः पर्वनाडिकाः ३८ उत्तरदिनस्थाः १७ एकीकृत्य जाताः ५५। पर्वदिनस्थाः प्रतिपन्नाड्यः ४३ उत्तरदिनस्थाः ११ एकीकृत्य जाताः ५४। अत्रैका घटी प्रतिपत्क्षयस्तदर्धमर्धघटीपर्वणि वियोजिता जातः संधिः सार्धषोडशनाड्यः। अयमपराह्णसंधिः।

कौस्तुभ आदि में तो दिन की चतुर्दशी उदय से पहले पर्व की गत घटिका उदय के बाद की आने वाली घड़ियों को एक में करके इसी तरह प्रतिपदा और पर्व दिन के उत्तर दिन की घड़ियों को एक कर पर्व की अपेक्षा प्रतिपदा की वृद्धि और क्षय का ज्ञान करे। जैसे—चतुर्दशी २२, पर्व १७, चतुर्दशी के दिन की पर्व की घड़ियां ३८, दूसरे दिन की १७, जोड़ने पर ५५ हुआ। पर्व के दिन

की प्रतिपदा की घड़ियाँ ४३ दूसरे दिन की ११ जोड़ने पर ५४ हुआ। इसमें १ घड़ी प्रतिपदा का क्षय हुआ उसका आधा आधी घड़ी, पर्व की घड़ियों में से निकालने पर १६॥ घ० पर संधि हुई। यह अपराह्ण संधि है।

प्रथममते त्वत्र पूर्वाह्णसंधिः स्थितः। तथा चतुर्दशी २४ पर्व १७ पूर्वं गतनाड्यः ३६ एष्ययोगे जाताः ५३। प्रतिपत् ११ गतैष्ययोगे जाताः ५४। अत्र पूर्वोक्तरीत्या क्षयोदाहरणे एवैका घटी वृद्धिस्तदर्धसंयोजने सार्धसप्तदशनाडीमितोऽपराह्णसंधिः।

पहले मत में तो यहाँ पूर्वाह्णसंधि है। उसी तरह चतुर्दशी २४, पर्व १७, पहले की बीती घड़ियाँ ३६, और आने वाली घड़ियों के योग से ५३ घ० हुई और प्रतिपदा ११, तो बीती हुई और आनेवाली घड़ियों के जोड़ने से ५४ हुआ। यहाँ पूर्वोक्त रीति से क्षय के उदाहरण में ही एक घड़ी की वृद्धि हुई और उसका आधा जोड़ने पर १७॥ घ० होने से अपराह्ण सन्धि हुई।

एवं च पूर्वमतैतन्मतयोरत्यन्तं विरोधः, वृद्धिक्षयादिसर्ववैपरीत्यात्। अत्र मते घटीद्वयाधिका वृद्धिः क्षयो वा न संभवतीति 'परेह्नि घटिकान्यूनास्तथैवाभ्यधिकाश्च या' इति बहुवचनमसंगतमिति दूषणं पुरुषार्थचिंतामणौ द्रष्टव्यम्।

इस प्रकार पहले मत से इस मत में अत्यन्त विरोध है। वृद्धि और क्षय आदि सब उलटे हैं। इस मत में दो घड़ी से अधिक की वृद्धि वा क्षय नहीं संभव है। इसलिये दूसरे दिन "परेह्नि घटिका न्यूना तथैवाभ्यधिकाश्च याः" यह जो बहुवचन है वह संगत नहीं होता यही दोष है, इसे पुरुषार्थचिन्तामणि में देखना चाहिये।

अथ पौर्णमास्यां विशेषः

सङ्गवकालादूर्ध्वं त्रयोदशादिघटीमारभ्यार्धाह्नात्पूर्वं संधौ सद्यस्काला पौर्णमासी तस्यां संधिदिने एवान्वाधानं यागश्च सद्योऽनुष्ठेयः। इदं पौर्णमास्यां सद्यस्कालत्वं वैकल्पिकमिति केचित्। अमावास्यायां सर्वत्र द्व्यहकालतैव न कदाचिदपि सद्यस्कालता। पौर्णमास्याममायां चापराह्णसंधौ प्रतिपच्चतुर्थपादे यागो न दोषाय।

संगवकाल के बाद १३ आदि घटी से लेकर आधे दिन के पूर्व संधि होने पर सद्यःकाला पूर्णिमा होती है। उसके सन्धि के दिन में ही अन्वाधान और यज्ञ तुरत करना चाहिए। इस पूर्णिमा में सद्यः अन्वाधान और याग वैकल्पिक है, यह किसी का मत है। अमावास्या में सदा दो दिन का समय लगता है, कभी भी सद्यः नहीं होवा। पूर्णिमा अथवा अमावास्या में अपराह्ण संधि होने पर प्रतिपदा के चौथे चरण में यज्ञ करने से दोष नहीं है।

अमावास्यायामपराह्णसंधावपि प्रतिपदि त्रिमुहूर्ताधिकद्वितीयाप्रवेशे चन्द्रदर्शनसंभवेन चन्द्रदर्शने यागनिषेधादमावास्यायामेवेष्टिश्चतुर्दश्यामन्वाधानं बौधायनादीनाम्। अमावास्यायां सप्तघटीमितप्रतिपदभावे चन्द्रदर्शनेऽपि प्रतिपद्येव बौधायनैरिष्टिः कार्या। आश्वलायनापस्तम्बादीनां तु चन्द्रदर्शननिषेधो नास्तीति प्रतिपद्येवेष्टिः।

अमावास्या में अपराह्ण संधि में भी प्रतिपदा में तीन मुहूर्त से अधिक द्वितीया का प्रवेश होने पर चंद्रदर्शन की संभावना के कारण चन्द्रदर्शन में यज्ञ का निषेध है अतः अमावास्या में याग

चतुर्दशी में अन्वाधान, बौधायन आदि के लिये है। अमावास्या में सात घड़ी तक प्रतिपदा न हो तो चन्द्रदर्शन होने पर भी प्रतिपदा में ही बौधायन यज्ञ करें। आश्वलायन आपस्तम्ब आदि का तो चन्द्रदर्शन निषेध नहीं है, इससे वे प्रतिपदा में ही इष्टि (याग) करें।

यत्र संधिदिने इष्टिस्तत्र सा प्रतिपद्येव समापनीया न तु पर्वणि पर्वणि यागसमाप्तौ पुनर्यागः कर्तव्यः। एवमेव स्मार्ते पार्वणस्थालीपाकनिर्णयः। केचित्तु स्मार्ते स्थालीपाकः प्रतिपद्येव समापनीय इति नियमो नास्ति। पूर्वाह्ण एव स्थालीपाकं समाप्य संधेरूर्ध्वं प्रतिपदि ब्राह्मणभोजनमात्रं कार्यम्। जयन्तोऽपि संधिसन्निकृष्टे प्रातःकाले एव स्थालीपाकमाहेति विशेषमाहुः।

जहाँ संधि के दिन में यज्ञ हो वहाँ यज्ञ को प्रतिपदा में ही समाप्त करे न कि पर्व में। पर्व में यज्ञ समाप्त होने पर दुबारा यज्ञ करना चाहिए। इसी तरह स्मार्तकर्म में भी पार्वण और स्थालीपाक का निर्णय होता है। कुछ लोग स्मार्तकर्म में स्थालीपाक प्रतिपदा में ही समाप्त करे, यह नियम नहीं मानते। पूर्वाह्ण में स्थालीपाक को समाप्त कर संधि के अनन्तर प्रतिपदा में केवल ब्राह्मणभोजन कराना उचित है। जयन्त भी संधि के निकट प्रातःकाल में ही स्थालीपाक कहते हैं, यह उनकी विशेषता है।

श्रौतेऽपि ब्राह्मणभोजनमात्रं प्रतिपदि कार्यमन्यत्तन्त्रं पूर्वाह्ण एव समापनीयं न प्रतिपदपेक्षेति पुरुषार्थचिन्तामणावुक्तम्। कात्यायनानां पौर्णमासेष्टिनिर्णयः पूर्वोक्तः सर्वसाधारण एव न तत्र कश्चिद्विशेषः, इति सिन्ध्वादिबहुग्रन्थसंमतम्। अन्ये तु पूर्वाह्णसंधौ संधिदिनेऽन्वाधानं परेह्नि याग इति पौर्णमासीविषये कातीयानां विशेषमाहुः।

वैदिककर्म में भी केवल ब्राह्मणभोजन प्रतिपदा में कराना चाहिए। अन्य कर्म पूर्वाह्ण में ही समाप्त करे। उसमें प्रतिपदा की अपेक्षा नहीं है ऐसा पुरुषार्थचिन्तामणि में कहा है। कात्यायनवालों के लिये पूर्णिमा के याग का निर्णय पहले ही केसदृश सर्वसाधारण है उसमें कोई विशेष नहीं, ऐसा सिन्धु आदि बहुत से ग्रन्थों ने माना है। अन्य लोग तो पूर्वाह्णसंधि होने पर संधि-दिन में अन्वाधान और दूसरे दिन यज्ञ ऐसा पूर्णिमा के विषय में कात्यायनवालों का विशेष कहते हैं।

अथामावास्यायां कातीयानां विशेषः

अमाविषये त्रेधा विभक्तदिनस्य प्रथमो भागः पूर्वाह्णः, द्वितीयो भागो मध्याह्नः, तृतीयभागोऽपराह्णः। तत्र रात्रिसंधौ प्रतिपद्दिने चन्द्रदर्शने सत्यपि परेषामिव कातीयानामपि संधिदिने पिण्डपितृयज्ञोऽन्वाधानं च परदिने चेष्टिरिति निर्विवादम्।

अमावास्या में कात्यायनवालों की विशेषता है कि अमावस्या के सम्बन्ध में दिन को तीन भाग में विभाग करने पर पहला भाग पूर्वाह्ण, दूसरा भाग मध्याह्न और तीसरा भाग अपराह्ण होता है। उसमें रात्रि की संधि में प्रतिपदा के दिन चन्द्रदर्शन होने पर भी दूसरों की तरह कात्यायन वालों का भी संधि के दिन पिण्ड-पितृयज्ञ तथा अन्वाधान और दूसरे इष्टि होगी, यह विवाद शून्य है।

पूर्वाह्णे दिनद्वितीयभागाख्यमध्याह्ने च संधौ संधिपूर्वदिनेऽन्वाधानपिण्डपितृयज्ञौ संधिदिने चेष्टिः। तदा चतुर्दशीदिनेऽमावास्याया दिनतृतीयभागाख्यापराह्णे यदि पूर्णव्याप्तिस्तर्हि अमायुक्तेऽपराह्णे पिण्डपितृयज्ञ इति न संदेहः।

पूर्वाह्ण में दिन के दूसरे भाग नामक मध्याह्न में भी संधि होने पर, संधि के पहले दिन अन्वाधान और पिण्ड-पितृयज्ञ इष्टि संधिदिन में करते हैं। तब चतुर्दशी में अमावास्या के दिन के तीसरे भाग अपराह्ण में यदि पूर्ण रहे तो अमावास्या युक्त अपराह्ण में पिण्डपितृयज्ञ होता है, यह संशयरहित है।

यदि तृतीयभागाख्यापराह्णान्त्यभागेऽपराह्णैकदेशेऽमावास्याव्याप्तिस्तर्ह्यमावास्यायां प्राप्तायां पिण्डपितृयज्ञो न चतुर्दश्यामित्येकः पक्षः। चतुर्दश्यन्त्ये भागे पिण्डपितृयज्ञश्चन्द्रस्य परमक्षीणत्वादित्यपरः पक्षः।

यदि तीसरे भाग अपराह्ण के अंत्य भाग में अपराह्ण के एकदेश में अमावास्या हो तब अमावास्या में पिण्ड-पितृयज्ञ करे चतुर्दशी में नहीं, यह एक पक्ष है। चतुर्दशी के अन्त्यभाग में चन्द्रमा के अतिशय क्षीण होने से पिण्ड-पितृयज्ञ करे, ऐसा दूसरा पक्ष है।

अथापराह्णसंधौ चत्वारः पक्षाः

संधिदिने एव दिनतृतीयभागाख्यापराह्णेऽमायाः पूर्णव्याप्तिरिति प्रथमः पक्षः। यथा—चतुर्दशी २९ अमा ३० प्रतिपत् २९ दिनमानं च त्रिंशत् ३०। अत्र संधिदिनेऽन्वाधानपितृयज्ञौ परदिने यागः।

अपराह्ण सन्धि के चार पक्षों में पहला पक्ष यह है कि संधि के दिन ही दिन के तीसरे भाग अपराह्ण में अमावास्या की पूर्ण व्याप्ति हो। जैसे—चतुर्दशी २९, अमावास्या ३०, प्रतिपद् २९ और दिनमान ३०। ऐसी स्थिति में संधिदिन में अन्वाधान और पिण्ड-पितृयज्ञ, दूसरे दिन याग करे।

संधिपूर्वदिने एवोक्तापराह्णेऽमायाः पूर्णव्याप्तिरिति द्वितीयः पक्षः। यथा—चतुर्दशी २० अमा २२ प्रतिपत् २४ दिनं ३०। अत्र संधिदिनात्परदिने मुहूर्तत्रयात्मकप्रातःकाले प्रतिपत्पादत्रयावच्छिन्नयागकाललाभात्संधिदिनेऽन्वाधानपितृयागौ प्रतिपदि चेष्टिरिति कौस्तुभमतम्।

दूसरा पक्ष यह है कि—संधि के प्रथम दिन में ही पूर्वोक्त अपराह्ण में अमावास्या पूर्ण हो। जैसे—चतुर्दशी २०, अमावास्या २२, प्रतिपदा २४, दिनमान ३०। यहाँ संधिदिन से दूसरे दिन में त्रिमुहूर्त रूप प्रातःकाल में प्रतिपदा के तीनों चरण में यागकाल के मिलने से संधिदिन में अन्वाधान पितृयज्ञ तथा प्रतिपदा में इष्टि, ऐसा कौस्तुभ का मत है।

त्रिमुहूर्ता द्वितीया चेत्प्रतिपच्चापराह्णिकी।
अन्वाधानं चतुर्दश्यां परतः सोमदर्शनात्॥

इति वचनाच्चतुर्दश्यां पिण्डपितृयज्ञोपवासौ संधिदिने चेष्टिरिति परमतम्।

दूसरों का मत यह है कि—यदि तीन मुहूर्त द्वितीया और अपराह्ण व्यापिनी प्रतिपदा हो तो चतुर्दशी में अन्वाधान करे क्योंकि उसके बाद चन्द्रदर्शन होता है। इस वचन से चतुर्दशी में पिण्डपितृयज्ञ तथा उपवास और संधिदिन में इष्टि होगी।

अथापरं द्वितीयपक्षोदाहरणम्

चतुर्दशी १८ अमा १८ प्रतिपत् १९ दिनम् २७। अत्र प्रतिपद्दिने प्रातःपादत्रयावच्छिन्नयागकालाभावात्संधिदिने एव सर्वमते कात्यायनानामिष्टिः, पूर्वदिने पिण्डपितृयज्ञोपवासौ।

जैसे—चतुर्दशी १८, अमावास्या १८, प्रतिपदा १९, दिनमान २७, यहाँ पर प्रतिपदा के दिन प्रातःकालीन तीन चरणात्मक यागकाल के अभाव होने से संधि ही के दिन सबके मत में कात्यायन वालों की इष्टि और पहले पिण्ड-पितृयज्ञ और उपवास होगा।

अथ दिनद्वये साम्येन वैषम्येण वैकदेशव्याप्तिरिति तृतीयः पक्षः। यथा—चतुर्दशी २५ अमा २५ प्रतिपत् २४ दिनमानं ३०। इयं साम्येनापराह्णव्याप्तिः। अत्र कौस्तुभमतपरमतोक्तरीत्या द्वेधा निर्णयः। यथा वा—चतुर्दशी २५ अमा २० प्रतिपत् १७ दिनं २७। इयमपि साम्येनैकदेशव्याप्तिः।

तीसरा पक्ष यह है कि—दोनों दिन समता से वा वैषम्य से एकदेश में व्याप्ति हो। जैसे—चतुर्दशी २५, अमावास्या २५, प्रतिपदा २४, दिनमान ३०। यह समत्व अपराह्ण व्याप्ति है। यहाँ कौस्तुभमत और परमत से दो प्रकार का निर्णय है। जैसे—चतुर्दशी २५, अमावास्या २०, प्रतिपदा १७, दिनमान २७। यह भी समता से एकदेश व्याप्ति है।

अत्र सर्वमते संधिदिने एव कातीयेष्टिः पूर्वदिने च पिण्डपितृयज्ञोपवासौ। अथ वैषम्येणैकदेशव्याप्तिः। चतुर्दशी २५ अमा २३ प्रतिपत् २३ दिनं ३०। अत्रापि पूर्वोक्तमतद्वयेन द्वेधा निर्णयो ज्ञेयः। यथा वा—चतुर्दशी २५ अमा २२ प्रतिपत् १८ दिनं ३०। इयमपि वैषम्येणैकदेशव्याप्तिः।

यहाँ सब के मत में कातीयों की इष्टि संधि के दिन में ही पहले दिन में पिण्ड-पितृयज्ञ और उपवास होता है। अब विषमता एकदेश व्याप्ति का उदाहरण, जैसे—चतुर्दशी २५, अमावास्या २३, प्रतिपद २३, दिनमान ३०। यहाँ भी पहले कहे हुए दोनों मत से दो प्रकार का निर्णय जानें। अथवा जैसे—चतुर्दशी २५, अमावास्या २२ और प्रतिपदा १८, दिनमान ३०। यह भी वैषम्य से एकदेश व्याप्ति है।

अत्रापि सर्वमते संधिदिने कातीयेष्टिश्चतुर्दश्यामुपवासपिण्डपितृयज्ञौ। यथा वा—चतुर्दशी २५ अमा २७ प्रतिपत् २९ दिनं ३०। अत्र संधिदिनेऽन्वाधानयागौ प्रतिपदीष्टिः।

यहाँ पर भी सबके मत में सन्धिदिन में कात्यायन वालों की इष्टि चतुर्दशी में उपवास और पिंड-पितृयज्ञ। दूसरा उदाहरण—चतुर्दशी २५, अमावास्या २७, प्रतिपद २९ और दिनमान ३०। ऐसी जगह सन्धि के दिन में अन्वाधान और याग तथा प्रतिपदा में इष्टि होगी।

संधिदिने एवैकदेशव्याप्तिरिति चतुर्थः पक्षः। यथा—चतुर्दशी ३१ अमा २६ प्रतिपत् २३ दिनं ३०। यथा वा—चतुर्दशी २८ अमा २२ प्रतिपत् १७ दिनं २७। अत्रोभयत्रापि संधिदिने एव पिण्डपितृयज्ञान्वाधाने यागस्तु परेह्नि प्रतिपदि।

अब चौथा पक्ष यह है कि—संधिदिन में ही एकदेश में व्याप्ति, जैसे—चतुर्दशी ३१, अमावस्या २६, प्रतिपदा २३, दिनमान ३०; अथवा चतुर्दशी २८, अमावस्या २२, प्रतिपदा १७, दिनमान २७। इन दोनों उदाहरण में भी संधि के दिन ही पिण्ड-पितृयज्ञ और अन्वाधान। याग तो दूसरे दिन प्रतिपदा में होता है।

एवं च कात्यायनमतेऽपि सर्वत्रोदाहरणे चन्द्रदर्शननिषेधप्रतिपालनं न संभवति। किंतु कुत्रचिन्निषेधादरात्पूर्वत्र यागादिकम्। कचित्तु चन्द्रदर्शनवत्येव दिने।

एवं पिण्डपितृयज्ञोऽपीति ध्येयम् । दर्शश्राद्धार्थममावास्यादिनिर्णयः सर्वसाधारणोऽग्रे पृथगेव वक्ष्यते ।

इस प्रकार कात्यायन के मत में भी सब जगह उदाहरण में चन्द्रदर्शन निषेध का पालन संभव नहीं है । किन्तु कहीं निषेध को मान कर याग आदि पहले और कहीं चन्द्रदर्शन वाले दिन में ही होगा इस प्रकार पिण्ड-पितृयज्ञ भी जाने । अमावास्या के श्राद्ध के लिये सर्वसाधारण अमावास्या का निर्णय अलग ही कहेंगे ।

अथ सामगानामिष्टेर्निर्णयः

तत्र पौर्णमासी सर्वसाधारणा पूर्वोक्तैव । अमावास्यायां तु रात्रिसंधौ प्रतिपद्येव चन्द्रदर्शनेऽपि यागः । अपराह्णसंधौ तु प्रातः षड्घटिकात्मकप्रतिपदाद्यपादत्रयरूपयागकाललाभे प्रतिपदि चन्द्रदर्शनेऽपीष्टिः संधिदिने चोपवासपितृयज्ञौ । उक्तयागकालालाभे संधिदिने यागः । पूर्वदिने चतुर्दश्यां पितृयज्ञोपवासौ । एवं च सामगैरपि चन्द्रदर्शननिषेधः कात्यायनवदेव यथासंभवं पालनीयः । इति सामगनिर्णयः । इति यागकालनिर्णयोद्देशः ॥ २२ ॥

सामवेदियों की इष्टि के निर्णय में सर्वसाधारण पूर्णिमा पहले कही हुई ही है उसीका ग्रहण करना चाहिए । अमावास्या में तो रात में संधि होने पर प्रतिपदा में ही चन्द्र-दर्शन होने पर भी याग होता है । अपराह्ण संधि में तो प्रातःकाल छ घड़ी की प्रतिपदा के पहले तीन चरण रूप यागकाल के न मिलने पर प्रतिपदा में चन्द्रदर्शन में भी इष्टि होती है और संधिदिन में उपवास तथा पितृयज्ञ होता है । पूर्वोक्त यागकाल के न मिलने पर संधि के ही दिन याग होता है । पहले दिन चतुर्दशी में पितृयज्ञ और उपवास होता है । इस प्रकार सामवेदी लोग भी चन्द्र-दर्शन का निषेध कात्यायन वालों की तरह यथासंभव पालन करें । यागकाल निर्णयोद्देश समाप्त ।

अथ पिण्डपितृयज्ञकालः

तत्राश्वलायनानां यस्मिन्नहोरात्रे अमावास्याप्रतिपदोः संधिस्तद्दिनापराह्णे पञ्चधाविभक्तदिनचतुर्थभागरूपे पिण्डपितृयज्ञः । स चापराह्णसंधावन्वाधानदिने भवति । मध्याह्ने पूर्वाह्णे वा संधौ यागदिने यागोत्तरमपराह्णे भवति । यदाहोरात्रसंधौ तिथिसंधिस्तदाऽन्वाधानदिने एव पिण्डपितृयज्ञः ।

यहाँ आश्वलायनों की जिस दिन-रात में अमावास्या प्रतिपदा की संधि होती है उस दिन अपराह्ण में (दिन को पांचभाग विभक्त करने पर चतुर्थभाग रूप में) पिण्ड पितृयज्ञ होता है । वह अपराह्ण संधि होने पर अन्वाधान के दिन मध्याह्ण तथा पूर्वाह्ण संधि होने पर याग के दिन याग के बाद अपराह्ण में होता है । जब अहोरात्र संधि में तिथि संधि पड़े तब अन्वाधान के दिन पिण्ड-पितृयज्ञ होता है ।

---

१. मनुः—'पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य विप्रश्चेन्दुक्षयेऽग्निमान् । पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यान्मासानुमासिकम् ॥' अत्र कूल्लूकभट्टः—'साग्निरमावास्यायां पिण्डपितृयज्ञाख्यं कर्म कृत्वा श्राद्धं कुर्यात् । पितृयज्ञपिण्डानामनु पश्चादाह्रियत पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धम् । मासानुमासिकं मासश्चानुमासश्च तयोर्भवं, प्रतिमासं कर्तव्यमित्यर्थः । अनेनास्य नित्यत्वमुक्तम् । विप्रग्रहण द्विजातिपरम्, त्रयाणां प्रकृतत्वात् ।' इति व्याख्यातवान् ।

एवमापस्तम्बहिरण्यकेशिमतानुसारिणामपि संधिदिने एव पितृयज्ञः। स चापराह्णेऽधिवृक्षसूर्ये वा कार्यः। अपराह्णश्च पञ्चधाविभक्तदिनचतुर्थभागो नवधाविभक्तदिनसप्तमभागो वा। सांख्यायनकात्यायनसामगानामन्वाधानदिने एव पिण्डपितृयज्ञः पूर्वमेवोक्तः। स च त्रेधाविभक्तदिनतृतीयभागरूपेऽपराह्णे कार्यः।

इसी प्रकार आपस्तम्ब और हिरण्यकेशी मतावलम्बियों का भी संधिदिन में पितृयज्ञ होता है। वह अपराह्ण में या जब पेड़ के ठीक ऊपर सूर्य रहें तब करे। अपराह्ण दिन को पाँच भाग में बाँटने पर चतुर्थभाग अथवा नवभाग करने पर सातवाँ भाग होता है। सांख्यायन, कात्यायन और सामवेदियों का पिण्ड-पितृयज्ञ अन्वाधान के ही दिन पहले ही कहा है। उसे तो दिन के तीन भाग करने पर तृतीयभाग रूप अपराह्ण में करे।

गृह्याग्निमतां बह्वृचानां दर्शश्राद्धपिण्डपितृयज्ञयोरेकस्मिन्दिने प्राप्तौ व्यतिषङ्गेणानुष्ठानम्। व्यतिषङ्गो नामोभयोः सहप्रयोगः। खण्डपर्वणि तु पूर्वेद्युः केवलदर्शश्राद्धमुत्तरेऽह्नि केवलः पिण्डपितृयज्ञः।

जो बह्वृच गृह्य अग्नि वाले हैं उनका दर्शश्राद्ध और पिण्ड-पितृयज्ञ एक ही दिन पड़ने पर दोनों को व्यतिषंग से करे। दोनों का एक साथ प्रयोग करना ही व्यतिषंग कहलाता है। खण्ड अमावास्या में तो पहले दिन केवल दर्शश्राद्ध होता है दूसरे दिन पिण्ड-पितृयज्ञ मात्र।

श्रौताग्निमतां तु केवलः पिण्डपितृयज्ञ एव दक्षिणाग्नौ कार्यो न व्यतिषङ्गेण। श्रौताग्निमतां सम्पूर्णे दर्शे इत्थं क्रमः। आदावन्वाधानं ततो वैश्वदेवस्ततः पिण्डपितृयज्ञस्ततो दर्शश्राद्धमिति। अस्मिन्नेव काले जीवत्पितृकेण साग्निकेन होमान्ते वा पितुः पित्रादित्रयोद्देशेन पिण्डसहितो वा पिण्डपितृयज्ञः कार्यः। यद्वा पिण्डपितृयज्ञो नैवारब्धव्यः।

श्रौताग्नि वालों को तो केवल पिण्डपितृयज्ञ ही दक्षिणाग्नि में करना चाहिए। दोनों को एक साथ प्रयोग नहीं करे। श्रौताग्निवालों का पूर्ण अमावास्या होने पर यह क्रम है। प्रारम्भ में अन्वाधान तदनन्तर वैश्वदेव उसके बाद पिण्ड-पितृयज्ञ होने पर दर्श-श्राद्ध करे। अथवा इसी समय में जिसके पिता जीते हैं ऐसे साग्निक पुरुष को होम के अन्त में पित्रादि तीन के उद्देश्य से पिण्डसहित या पिण्डरहित पितृयज्ञ करना चाहिये। अथवा पिण्ड-पितृयज्ञ का आरम्भ ही नहीं करे।

इष्टिलोपे पादकृच्छ्रं प्रायश्चित्तम्, इष्टिद्वयलोपेऽर्धकृच्छ्रम्, इष्टित्रयलोपेऽग्निनाशात्पुनराधानम्, पिण्डपितृयज्ञलोपे वैश्वानरेष्टिः प्रायश्चित्तम्, इष्टिस्थाने सप्त होतारं होष्यामीति संकल्प्य तन्मन्त्रेण चतुर्गृहीताज्येन पूर्णाहुतिर्वा कार्या। इति पिण्डपितृयज्ञोद्देशः॥ २३॥

इष्टि न करने पर पादकृच्छ्र और दो इष्टि के न होने पर अर्द्धकृच्छ्र प्रायश्चित्त है। तीन इष्टि के न होने में अग्नि के नाश होने से पुनः आधान करना चाहिए। पिण्ड-पितृयज्ञ न होने पर वैश्वानरेष्टि प्रायश्चित्त है। अथवा "इष्टि के स्थान में अग्नि में होम करेंगे" ऐसा संकल्प करके उसी के मंत्र से चार बार ग्रहण किये हुए घी से पूर्णाहुति करनी चाहिए। पिण्ड-पितृयज्ञोद्देश समाप्त।

अथ श्राद्धेऽमावास्या निर्णीयते

पञ्चधाविभक्तदिनचतुर्थभागाख्यापराह्णव्यापिन्यमावास्या [1]दर्शश्राद्धे ग्राह्या। पूर्वेद्युरेव परेद्युरेव वाऽपराह्णे कात्स्न्र्येनैकदेशेन वा व्यापित्वे सैव ग्राह्या। उभयदिनेऽप्यपराह्णे वैषम्येणैकदेशव्यापित्वे याऽधिकव्यापिनी सा ग्राह्या। दिनद्वये साम्येनैकदेशव्याप्तौ तिथिक्षये पूर्वा, तिथिवृद्धौ तिथिसाम्ये च परा।

श्राद्ध में दिन का पाँच भाग करके चौथे भाग अपराह्ण व्यापिनी अमावास्या ग्राह्य है। पहले दिन या दूसरे ही दिन अपराह्ण में सम्पूर्णतया या एकदेश व्यापिनी होने पर जो अमावास्या अधिक व्यापिनी हो तो श्राद्ध में वही ग्राह्य है। यदि दोनों दिन समता से एकदेश में हो तो तिथिक्षय होने से पूर्वा ग्राह्य है। तिथि वृद्धि होने पर और सम तिथि होने पर परा लेना चाहिये।

तत्र समव्याप्तौ तिथिवृद्धिक्षयसाम्योदाहरणानि—चतुर्दशी १९ अमा २३ दिनम् ३०। अत्र दिनद्वयेऽपि समापञ्चघटिकैकदेशव्याप्तिश्चतुर्दश्यपेक्षया चतुर्घटिकाभिरमाया वृद्धिसत्त्वादुत्तरा ग्राह्या। तथा—चतुर्दशी २३ अमा १९। अत्रैका घटिका समा व्याप्तिर्घटिकाचतुष्टयेन तिथिक्षयात्पूर्वा ग्राह्या। अथ चतुर्दशी २१ अमा २१। अत्र घटीत्रयेण दिनद्वयेंऽशतः समा व्याप्तिस्तिथेस्तु वृद्धिक्षयाभावेन समत्वात्परा ग्राह्या।

तिथि वृद्धि में या समता में अथवा क्षय होने पर उदाहरण कहते हैं—जैसे चतुर्दशी १९, अमावास्या २३ दिनमान ३०। ऐसे स्थल में दोनों दिन में समता से पाँच घड़ी से अमावास्या की वृद्धि होने से परा ग्राह्य है, यह तिथि वृद्धि का उदाहरण है। तिथिक्षय में—जैसे चतुर्दशी २३, अमावास्या १९। यहां एक घड़ी से समता और चार घड़ियों से तिथिक्षय है, अतः पूर्वा ग्राह्य है। चतुर्दशी २१, अमावास्या २१। यहां तीन घड़ी से अंशतः दोनों दिन सम व्याप्ति है। तिथिवृद्धि या क्षय न होने से सम है, अतः परा ग्राह्य है।

दिनद्वये पूर्णापराह्णव्याप्तौ तिथिवृद्धित्वात्परा ग्राह्या। यदा दिनद्वयेऽप्यपराह्णस्पर्शाभावस्तदा गृह्याग्निमद्भिः श्रौताग्निमद्भिश्च सिनीवालीसंज्ञिका चतुर्दशीमिश्रा पूर्वा ग्राह्या। निरग्निकैः [2]स्त्रीशूद्रादिभिश्च कुहूसंज्ञिका प्रतिपन्मिश्रा परा ग्राह्येति माधवाचार्यसंमतो दर्शनिर्णयः प्रायः सर्वत्र शिष्टैराद्रियते।

दोनों दिन में पूर्ण अपराह्ण में रहने के कारण तिथि वृद्धि होने से परा ग्राह्य है। जब दोनों दिन अपराह्ण में स्पर्श का अभाव है तब गृह्य अग्नि वाले और श्रौत अग्नि वाले को सिनीवाली (जिसमें चन्द्रमा दिखाई दें) नामकी अमावास्या चतुर्दशी से मिली हुई पूर्वा को ले। निरग्निकों और स्त्री-शूद्रादिकों को कुहू (जिसमें चन्द्रमा न दिखाई पड़े) नाम की प्रतिपद से मिली

---

१. शातातपः—'दर्शश्राद्धं तु यत्प्रोक्तं पार्वणं तत्प्रकीर्तितम्। अपराह्णे पितॄणां तु तत्प्रदानं प्रशस्यते॥' इति। व्याघ्रः—'न निर्वपति यः श्राद्धं प्रमीतपितृको द्विजः। इन्दुक्षये मासि मासि प्रायश्चित्तीयते हि सः॥' इदं च आहिताग्निभिरिष्टिदिनात् पूर्वदिने कार्यम्, 'तस्मात् पूर्वेद्युः पितृभ्यः क्रियत उत्तरमहर्देवान् यजन्ते' इति श्रुतेः।

२. मात्स्ये—'एतच्चानुपनीतोऽपि कुर्यात् सर्वेषु पर्वसु। श्राद्धं साधारणं नाम सर्वकर्मफलप्रदम्॥ भार्याविरहितोऽप्येतत्प्रवासस्थोऽपि नित्यशः। शूद्रोऽप्यमन्त्रवत् कुर्यादनेन विधिना बुधः॥' इति।

परा ग्राह्य है। यह श्राद्धीय अमावास्या का निर्णय माधवाचार्य से सम्मत प्रायः सर्वत्र शिष्टों द्वारा आदृत है।

पुरुषार्थचिन्तामणौ तु—बह्वृचैस्तैत्तिरीयैश्च साग्निकैरपराह्णव्याप्त्यसत्त्वेऽपि इष्टिदिनात्पूर्वदिने एव दर्शश्राद्धं कार्यम्। तथाच दिनद्वये कात्स्न्र्येनापराह्ण-व्याप्तौ परत्रैव दर्शः। एकदेशेनापराह्णव्याप्तौ प्रतिपद्वृद्धया प्रतिपदीष्टावुत्तरत्रैव दर्शः। द्वितीयदिने एवापराह्णव्याप्तौ तु यदि प्रतिपत्क्षयवशाद्दर्शदिन एव इष्टि-प्राप्तिस्तदा बह्वृचानां सिनीवाली तैत्तिरीयाणां कुहूर्ग्राह्या।

पुरुषार्थचिन्तामणि में तो बह्वृच और तैत्तिरीय साग्निकों से अपराह्ण व्याप्ति के न होने पर भी पहले ही दिन दर्शश्राद्ध किया जाता है। उसी तरह दोनों दिन में सम्पूर्णतया अपराह्णव्यापिनी अमावास्या में दर्शश्राद्ध होता है। यदि अपराह्ण के एकदेश में अमावास्या हो तो प्रतिपदा की वृद्धि से प्रतिपदा में ही इष्टि हो तो उसके बाद ही दर्श-श्राद्ध होगा। दूसरे दिन में ही अपराह्णव्यापिनी अमावस्या में यदि प्रतिपदा का क्षय होने से दर्श ही के दिन इष्टि की प्राप्ति हो तब बह्वृचों को सिनीवाली और तैत्तिरीय वालों को कुहू ग्रहण करना चाहिए।

सामगानां विकल्पेन द्वयम्। यदा पूर्वदिनेऽपराह्णेऽधिका व्याप्तिः परदिनेऽल्पा तदा सामगानां पूर्वा तैत्तिरीयाणां उत्तरा। उभयत्रापराह्णस्पर्शाभावेऽपि साम-गानां पूर्वा तैत्तिरीयाणां परेत्याद्युक्तम्। दर्शे दर्शश्राद्धवर्षश्राद्धयोर्दर्शमासिक-योर्दर्शश्राद्धोदकुम्भश्राद्धयोश्च संपाते देवताभेदाच्छ्राद्धद्वयं कार्यम्। तत्रादौ मासिकाब्दिकादिश्राद्धं कृत्वा पाकान्तरेण दर्शश्राद्धं कार्यम्। वैश्वदेव आब्दि-कादिश्राद्धशेषेण पृथक्पाकेन वा दर्शश्राद्धात्प्राग्भवति।

सामवेदियों को विकल्प से दोनों ग्राह्य है। यदि पहले दिन अपराह्ण में अधिक अमावास्या हो और पर दिन में थोड़ी हो तब सामवेदियों के लिये पूर्वा और तैत्तिरीयों के लिये परा ग्राह्य है। दोनों दिन अपराह्ण में स्पर्श न होने पर भी सामवेदियों को पूर्वा और तैत्तिरीयों को परा करने को कहते हैं। अमावास्या में अमावास्याश्राद्ध और वर्षश्राद्ध तथा दर्शश्राद्ध और मासिकश्राद्ध एवं दर्शश्राद्ध और उदकुम्भश्राद्ध एक ही दिन आ पड़े तो देवता के भेद से दो श्राद्ध करना चाहिए। उसमें पहले मासिक और आब्दिक श्राद्ध करके दूसरे पाक से अमावास्या का श्राद्ध करे। वैश्वदेव, आब्दिकादि श्राद्ध के शेष से अथवा पृथक्-पाक के द्वारा दर्शश्राद्ध से पहले होता है।

आहिताग्निस्तु वैश्वदेवं पिण्डपितृयज्ञं च कृत्वाऽऽब्दिकं कुर्यात्। दर्शश्राद्धमनु-पनीतविधुरप्रवासस्थैरपि कार्यम्। अमाश्राद्धातिक्रमे 'न्यूषुवाचम्'[1] इति ऋचं शतवारं जपेत्। इति दर्शनिर्णयोद्देशः॥ २४॥

अग्निहोत्री को वैश्वदेव और पिण्ड-पितृ-यज्ञ करके वार्षिक श्राद्ध करना चाहिए। अमावास्या

---

१. ऋग्विधाने—'न्यूषुवाचं जपेन्मन्त्रं शतवारं दिने दिने। अमाश्राद्धं यदा नास्ति तदा सम्पूर्णमेति तत्॥' इति। अयं मन्त्रः ऋग्वेदसंहितायां प्रथमेऽष्टके चतुर्थाध्याये—न्यू षु वाचं प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः नू चिद्धि रत्नं ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते॥' इति।

श्राद्ध, असंस्कृत विधुर और प्रवास में रहने वालों को भी करना चाहिए। अमाश्राद्ध न होने पर "न्यूषुवाचं" इस ऋचा को सौ बार जपे। दर्शनिर्णयोद्देश समाप्त।

इष्ट्याद्दिप्रारम्भनिर्णयः

इष्टिस्थालीपाकौ पौर्णमास्यामारब्धव्यौ नतु दर्शे। आधानगृहप्रवेशनीयहोमानन्तरमेव पौर्णमास्यां यदि दर्शपौर्णमासारम्भः क्रियते तदा मलमासपौषमासशुक्रास्तादिदोषो नास्ति। तत्रातिक्रमे तु शुद्धमासादिप्रतीक्षेत्येके। सर्वथा शुद्धकाले एवारम्भ इत्यपरे। इतीष्ट्याद्दिप्रारम्भनिर्णयोद्देशः॥ २५॥

इष्टि और स्थालीपाक का प्रारम्भ पौर्णमासी में करे, न कि अमावास्या में। आधान और गृहप्रवेश होम के बाद ही पौर्णमासी में यदि दर्श और पौर्णमास का आरम्भ करते हैं तब मलमास पौषमास और शुक्रास्तादि का दोष नहीं होता। कोई कहते हैं कि दर्शपौर्णमासारम्भ आधान गृहप्रवेश होम के बाद ही पूर्णिमा में यदि नहीं करे तो शुद्धमास की प्रतीक्षा करनी चाहिए। दूसरे कहते हैं कि सब प्रकार से शुद्धकाल में पर्वारम्भ करे। इष्ट्याद्दिप्रारम्भनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ विकृतिकालः

तास्त्रिविधाः—नित्या आग्रयणचातुर्मास्याद्याः, नैमित्तिक्यो जातेष्ट्यादयः, काम्याः सौर्यादयः, एताः पुरुषार्थाः। एवं क्रत्वङ्गभूता अपि द्विविधाः—नित्या नैमित्तिकाश्च। तत्र विकृतिषु सद्यस्कालत्वद्व्यहकालत्वयोर्विकल्पः। एवं पर्वणि शुक्लपक्षगतदेवनक्षत्रेषु वा कर्तव्या इति विकल्पः।

विकृति तीन प्रकार की होती है—नित्य, आग्रयण, चातुर्मास्य आदि। नैमित्तिकी विकृति जातेष्टि आदि, काम्य सौर्य आदि, ये सब पुरुषार्थ हैं। इसी प्रकार यज्ञांग विकृति दो प्रकार की है—नित्य और नैमित्तिक। उसमें विकृतियों में तत्काल और द्विदिन साध्यकाल में विकल्प है। इसी तरह शुक्लपक्ष के नक्षत्रों में भी कर्तव्य है।

तत्र पर्वणि करणपक्षे अपराह्णादिसंधौ संधिदिने सद्यस्कालां द्व्यहकालां वा विकृतिं कृत्वा प्रकृतेरन्वाधानम्। मध्याह्ने पूर्वाह्णे वा संधौ संधिदिने प्रकृतिं समाप्य सद्यस्कालैव विकृतिः कार्या। कृत्तिकादीनि विशाखान्तानि चतुर्दशनक्षत्राणि देवनक्षत्राणीत्युच्यन्ते। आग्रयणे विशेषो द्वितीयपरिच्छेदे वक्ष्यते। अन्वारम्भणीयेष्टिश्चतुर्दश्यां कार्या। इति विकृतिसामान्यनिर्णयोद्देशः॥ २६॥

अमावस्या में करने के पक्ष में अपराह्ण आदि सन्धि में सन्धि के दिन तात्कालिक या दिनद्वय कालसाध्य विकृति करके प्रकृति का अन्वाधान करे। मध्याह्न या पूर्वाह्ण में सन्धि हो तो सन्धिदिन में प्रकृति को समाप्त कर तुरत ही विकृति करे। कृत्तिकानक्षत्र से लेकर विशाखा पर्यन्त १४ नक्षत्र देवनक्षत्र कहलाते हैं। आग्रयण में विशेष दूसरे परिच्छेद में कहेंगे। अन्वारम्भणीय इष्टि चतुर्दशी में करनी चाहिए। विकृतिसामान्यनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ पशुयागकालः

पशुयागस्तु वर्षर्तौ श्रावण्यादिचतुर्णां पर्वणामन्यतमे पर्वणि दक्षिणायनदिने उत्तरायणदिने वा कार्यः। तत्र खण्डपर्वणि विकृतिसामान्योक्तपर्वनिर्णयः। इति पशुयागोद्देशः॥ २७॥

पशुयाग तो वर्षाकाल में श्रावणी आदि चारों पर्वों में से किसी एक पर्व में दक्षिणायन या उत्तरायण में करना चाहिए। उसमें खण्ड पर्व में विकृति के सामान्य उक्त पर्व का निर्णय करे। पशुयागोद्देश समाप्त।

अथ चातुर्मास्यकालः

तत्प्रयोगे चत्वारः पक्षाः—फाल्गुन्यां चैत्र्यां वा पौर्णमास्यां वैश्वदेवपर्व कृत्वा चतुर्षु चतुर्षु मासेष्वाषाढ्यादिष्वेकैकं पर्वेत्येवं यावज्जीवमनुष्ठानमिति यावज्जीवपक्षः। उक्तरीत्या संवत्सरपर्यन्तमनुष्ठाय सवनेष्ट्या पशुयागेन वा सोमयागेन वा समापनं सांवत्सरपक्षः। प्रथमेऽहनि वैश्वदेवपर्व, चतुर्थे वरुणप्रघासपर्व, अष्टमनवमयोः साकमेधपर्व, द्वादशे शुनासीरीयपर्वेति द्वादशाहपक्षः। पञ्चभिर्दिनैः समाप्तौ यथाप्रयोगपक्षः।

चातुर्मास्य के प्रयोग में चार पक्ष हैं—फाल्गुन की पूर्णिमा में अथवा चैत्र की पूर्णिमा में वैश्वदेव पर्व करके आषाढ़ आदि चार-चार महीनों में एक-एक पर्व करते हुये जीवन भर अनुष्ठान करे, यह जीवन पर्यन्त करने का पक्ष है। कथित रीति से एक वर्ष तक सवनइष्टि करके अथवा पशुयाग करके या सोमयाग से समाप्त करे, यह सांवत्सरपक्ष है। पहले दिन वैश्वदेव पर्व चौथे दिन वरुणप्रघास-पर्व आठवें और नौवें में साकमेध-पर्व बारहवें दिन शुनासीरीय-पर्व करे, इस तरह का द्वादशदिनसाध्य पक्ष है। पाँच दिन में समाप्त करने पर यथाप्रयोग पक्ष होता है।

द्वादशाहयथाप्रयोगपक्षयोरुदगयने शुक्लपक्षे देवनक्षत्रेष्वारभ्य शुक्लपक्ष एव समाप्तिरिति बहवः। कृष्णपक्षे वा समाप्तिरिति केचित्। द्वादशाहपञ्चाहपक्षयोरपि सवनेष्ट्यादिना समापने कृते सकृत्करणम्। तदभावे प्रतिवत्सरमनुष्ठानम्। क्वचिदैकाहिकप्रयोगपक्षोऽप्युक्तः। स च चैत्र्यादिषु चतसृषु पौर्णमासीष्वेकस्यां कस्याञ्चिद्भवति।

बहुतों का कहना तो यह है कि द्वादशाह पक्ष और यथाप्रयोग पक्ष में उत्तरायण शुक्लपक्ष देवनक्षत्रों में आरम्भ करके शुक्लपक्ष ही में समाप्त करे। कुछ लोग तो कृष्णपक्ष ही में समाप्त करने को कहते हैं। द्वादशाह और पञ्चाह पक्ष में भी सवनेष्टि आदि से समाप्त करने पर एकबार करना चाहिये। इसके न होने पर प्रतिवर्ष अनुष्ठान करे। कहीं तो एकदिन के प्रयोग का भी पक्ष कहा है, वह चैत्री आदि चारों पूर्णिमाओं में किसी एक में होता है।

क्वचित्तु सप्ताहपक्षः। स यथा—द्व्यहे वैश्वदेवपर्व, तृतीयदिने वरुणप्रघासः, चतुर्थे ग्रहमेधीया, पञ्चमे महाहवींषि, षष्ठे पितृयज्ञादिसाकमेधपर्वशेषः, सप्तमे शुनासीरीयपर्वेति। अत्र शुक्लपक्षादिः पञ्चाहपक्षोक्तः कालः। इति चातुर्मास्यकालनिर्णयोद्देशः॥ २८॥

कहीं तो सप्तदिनसाध्य पक्ष भी है। वह इस प्रकार—दो दिन में वैश्वदेव पर्व, तृतीय दिन वरुणप्रघास, चौथे दिन गृहमेधीय, पञ्चम दिन महाहविष, छठें दिन पितृयज्ञ आदि साकमेध पर्व का अवशिष्ट करके सप्तम दिन शुनासीरीय पर्व का अनुष्ठान करे। इसमें शुक्लपक्ष आदि का समय पूर्वोक्त पञ्चाहपक्ष की तरह है। चातुर्मास्यकालनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ काम्यनैमित्तिकादीष्टिनिर्णयः

काम्येष्टीनां विकृतिसामान्यनिर्णयानुसारेण पर्वण्यनुष्ठानं शुक्लपक्षस्थदेवनक्षत्रे वा। जातेष्टिस्तु पत्न्यां विंशतिरात्र्यात्मककर्मानधिकाराख्यजननाशौचनिवृत्तौ सत्यां पर्वणि कार्या। गृहदाहेष्ट्यादिनैमित्तिकेष्टीनां निमित्तानन्तरमनुष्ठाने पर्वाद्यपेक्षा नास्ति। तदसंभवे पर्वापेक्षा।

काम्य इष्टियों को सामान्यविकृति के निर्णय के अनुसार पर्व में करे, अथवा शुक्लपक्ष के देवनक्षत्र में। जातेष्टि तो स्त्री के बीस दिन के जननाशौच निवृत्त होने पर ही पूर्व में करना चाहिये। गृहदाहेष्टि-आदि नैमित्तिक इष्टियों को निमित्त के ठीक बाद ही करने पर पर्व आदि की अपेक्षा करे। उसके अभाव में पर्व की अपेक्षा करनी चाहिये।

क्रत्वर्थानां नित्यानां क्रतुना सहैवानुष्ठानं न तत्र पृथक्कालापेक्षा। हविर्दोषोद्देशादिनिमित्तकक्रत्वर्थेष्टयस्तु स्विष्टकृदुत्तरं समिष्टयजुषः प्राक्निमित्तस्मरणे तदानीमेव तदीयतन्त्रोपजीवनेन निर्वापप्रभृति कार्याः। तदनन्तरं स्मरणे तत्प्रयोगं समाप्य पुनरन्वाधानादिविधिना कार्याः। इति काम्यनैमित्तिकादीष्टीनां निर्णयोद्देशः॥ २९॥

यज्ञार्थ नित्यकर्मों का यज्ञ के साथ ही अनुष्ठान होगा, उसमें पृथक् समय की अपेक्षा नहीं है। हविष्य के दोष के उद्देश्य से जो नैमित्तिक क्रत्वर्थ इष्टियाँ की जाती हैं, वे स्विष्टकृत् के अनन्तर तथा समिष्टयजु के पहले निमित्त के स्मरण होने पर, उसी समय करे। उसी के तन्त्रोपजीवन से निर्वापादि-कृत्य करे और उसके स्मरण होने पर उस प्रयोग को समाप्त कर पुनः उसे अन्वाधान आदि विधि से करना चाहिये। काम्यनैमित्तिकादि इष्टिनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथाधानकालः

आधानं तु पर्वणि नक्षत्रे चोक्तम्। तत्र संकल्पप्रभृतिपूर्णाहुतिपर्यन्तप्रयोगपर्याप्तं पर्व ग्राह्यम्। तदसंभवे गार्हपत्याधानाद्याहवनीयाधानपर्यन्तं विद्यमानं ग्राह्यम्। एवं नक्षत्रस्यापि निर्णयः। दिनद्वये कर्मकालव्याप्तपर्वसत्त्वे यत्रोक्तनक्षत्रयोगस्तद्ग्राह्यम्। वसन्तऋतुपर्वोक्तनक्षत्रेत्येतत्त्रितयसन्निपाते प्रशस्ततमम्। ऋत्वभावे मध्यमम्। केवले पर्वणि नक्षत्रे वाऽधमम्।

आधान तो पर्व और नक्षत्र में कह चुके हैं। उसमें सङ्कल्प से लेकर पूर्णाहुति तक प्रयोग-पर्याप्त पर्व ग्राह्य है। ऐसा न होने पर गार्हपत्याधान आदि आहवनीयाधान पर्यन्त विद्यमान पर्व ले। ऐसा ही निर्णय नक्षत्र का भी है। कर्मकाल में पर्व दो दिन हो और दोनों दिन कथित नक्षत्र का योग हो तो उसे ही ग्रहण करे। वसन्तऋतु पर्व और नक्षत्र इन तीनों के रहने पर अत्यन्त प्रशस्त है। ऋतु के न रहने पर मध्यम है। पर्व में केवल पर्व या नक्षत्र होने पर अधम है।

नक्षत्राणि तु—कृत्तिकारोहिणीविशाखापूर्वाफल्गुन्युत्तराफल्गुनीमृगोत्तराभाद्रपदेतिसप्ताश्वलायनसूत्रोक्तानि। कृत्तिकारोहिणीत्र्युत्तरामृगपुनर्वसुपुष्यपूर्वाफल्गुनीपूर्वाषाढाहस्तचित्राविशाखानुराधाश्रवणज्येष्ठारेवतीतिसूत्रान्तरोक्तानि। सोम-

पूर्वाधाने तु नर्तुं पृच्छेन्न नक्षत्रमिति वचनात्सोमकालानुरोधेनैवाधानं न तत्र पृथक्कालविचारः । इत्याधानकालोद्देशः ॥ ३० ॥

आश्वलायनसूत्रोक्त नक्षत्र तो—कृत्तिका, रोहिणी, विशाखा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, मृगशिर, और उत्तराभाद्रपदा ये सात हैं। दूसरे सूत्रों के कहे हुए कृत्तिका, रोहिणी तीनों उत्तरा, मृगशिर, पुनर्वसु, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, हस्त, चित्रा, विशाखा, अनुराधा, श्रवण, ज्येष्ठा और रेवती हैं। सोमपूर्वाधान में तो "न ऋतु और न नक्षत्र को पूछे" इस वचन से सोम के समय में ही आधान करे उसमें अलग से विचार नहीं करे। आधानकालोद्देश समाप्त।

अथ ग्रहणनिर्णयः

चन्द्रसूर्यग्रहणं[1] यावच्चाक्षुषदर्शनयोग्यं तावान् पुण्यकालः। अतो ग्रस्तास्तस्थलेऽस्तोत्तरं द्वीपान्तरे ग्रहणसत्त्वेऽपि दर्शनयोग्यत्वाभावान्न पुण्यकालः। एवं ग्रस्तोदये उदयात्पूर्वं न पुण्यकालः। मेघादिप्रतिबन्धेन चाक्षुषदर्शनासंभवे शास्त्रादिना स्पर्शमोक्षकालौ ज्ञात्वा स्नानदानाद्याचरेत्।

चन्द्र और सूर्य का ग्रहण जब तक आँखों से देखने योग्य हो, उतने काल तक पुण्यकाल होता है। इस लिये अस्तोत्तर ग्रस्तास्त स्थल में द्वीपान्तर में ग्रहण होते हुये भी दर्शनाभाव से पुण्यकाल नहीं होता। इसी प्रकार ग्रस्तोदय में उदय से पहले पुण्यकाल नहीं होता। बादल आदि के आँखों से न देखे जाने पर ज्योतिषशास्त्र आदि से ग्रहणस्पर्श और ग्रहणमोक्ष जान कर स्नानादि करे।

रविवारे सूर्यग्रहश्चन्द्रवारे चन्द्रग्रहश्चूडामणिसंज्ञः[2], तत्र दानादिकमनन्तफलम्।

---

१. वृद्धगार्ग्यः—'पूर्णिमाप्रतिपत्सन्धौ राहुः सम्पूर्णमण्डलम्। ग्रसते चन्द्रमर्कञ्च दर्शप्रतिपदन्तरे॥' ग्रहण में पर्व (अमावास्या-पूर्णिमा) का अन्तभाग स्पर्शकाल और प्रतिपदा का प्रथमभाग मोक्षकाल होता है, ब्रह्मसिद्धान्त—'यावान् कालः पर्वणोऽन्ते तावान् प्रतिपदादिभिः। रवीन्दुग्रहणानेहा स पुण्यो मिश्रणाद् भवेत्॥' स्पर्शकाल से मोक्षकाल तक ग्रहणकाल है। ग्रहण का पुण्यकाल—'संक्रान्तौ पुण्यकालस्तु षोडशोभयतः कलाः। चन्द्रसूर्योपरागे तु यावद्दर्शनगोचरे॥' इति जाबालिः। 'यावद्दर्शनगोचरे' का अर्थ हुआ—'यावति काले चाक्षुषज्ञानयोग्य उपरागः तावान् कालः पुण्यकालः।'

२. व्यास—'रविग्रहः सूर्यवारे सोमे सोमग्रहस्तथा। चूडामणिरिति ख्यातस्तदानन्तफलं भवेत्॥ वारेष्वन्येषु यत्पुण्यं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। तत्पुण्यं कोटिगुणितं ग्रासे चूडामणौ स्मृतम्॥' इति। महाभारते—'गङ्गास्नानं प्रकुर्वीत ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। महानदीषु वाऽन्यासु स्नानं कुर्याद्यथाविधि॥' ब्रह्मपुराण में महानदियां—'गोदावरी भीमरथी तुङ्गभद्रा च वेणिका। तापी पयोष्णी विन्ध्यस्य दक्षिणे तु प्रकीर्तिताः। भागीरथी नर्मदा च यमुना च सरस्वती। विशोका च वितस्ता च विन्ध्यस्योत्तरतस्तथा॥' इसके असंभव में, शंख—'वापीकूपतडागेषु गिरिप्रस्रवणेऽपि च। नद्यां नदे देवखाते सरसीषूद्धृताम्बुनि। उष्णोदकेन वा स्नायाद् ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः॥' इति। ग्रहण के आदि अन्त में स्नान का विधान—'ग्रस्यमाने भवेत्स्नानं ग्रस्ते होमो विधीयते। मुच्यमाने भवेद्दानं मुक्ते स्नानं विधीयते॥' दोनों स्नान के मध्य में होम दान की भांति देवपूजन भी करना चाहिये, ब्रह्मवैवर्त—'स्नानं स्यादुपरागादौ मध्ये होमः सुरार्चनम्।' लिङ्गपुराण में ग्रहण में श्राद्ध का विधान—'व्यतीपातक्षणो यावान् चन्द्रसूर्यग्रहक्षणः। गजच्छाया तु सा प्रोक्ता पितृणां दत्तमक्षयम्॥' ऋष्यशृङ्गः—'चन्द्रसूर्यग्रहे यस्तु श्राद्धं विधिवदाचरेत्। तेनैव सकला पृथ्वी दत्ता विप्रस्य वै करे॥' इति।

ग्रहस्पर्शकाले स्नानं मध्ये होमः सुरार्चनं श्राद्धं च मुच्यमाने दानं मुक्ते स्नानमिति क्रमः । तत्र स्नानजलेषु तारतम्यम्—

शीतमुष्णोदकात्[1] पुण्यमपारक्यं परोदकात् ।
भूमिष्ठमुद्धृतात्पुण्यं ततः प्रस्रवणोदकम् ॥
ततोऽपि सारसं पुण्यं ततः पुण्यं नदीजलम् ।
ततस्तीर्थनदी गङ्गा पुण्या पुण्यस्ततोऽम्बुधिः ॥ इति ।

रविवार को सूर्यग्रहण और सोमवार को चन्द्रग्रहण होने से चूडामणि नामक योग होता है। इसमें दानादिक करना अनन्त फलदायक है। ग्रहणस्पर्श समय में स्नान, मध्यकाल में होम, देवपूजन और श्राद्ध, मुक्त होते समय दान, मुक्त हो जाने पर पुनः स्नान, यही क्रम है। उसमें स्नान के जलों का तारतम्य कहते हैं:—गरम जल से ठंढा जल पुण्यदायक है। दूसरे के जल से अपना जल पुण्यप्रद है। कूपादिक से खींचे हुये जल से भूमि-स्थित जल श्रेष्ठ है। उससे उत्तम झरने का जल है और झरने के जल से भी तालाब का जल पुण्यप्रद है। तालाब के जल से भी नदी का जल श्रेष्ठ है। नदी जल से भी तीर्थ नदीजल प्रशस्त है। तीर्थ नदीजल से भी प्रशस्ततर गङ्गाजल है। इससे भी प्रशस्ततम समुद्रजल है।

ग्रहणे स्नानं च सचैलं कार्यम्। सचैलत्वं मुक्तिस्नानपरमिति केचित्। मुक्तिस्नानाभावे सूतकित्वानपगमः। ग्रहणे स्नानममन्त्रकम्। सुवासिनीभिः स्त्रीभिरशिरःस्नानं कार्यम्। शिष्टस्त्रियस्तु ग्रहणेषु शिरःस्नानं कुर्वन्ति।

ग्रहण में सवस्त्र-स्नान करे। सचैलस्नान मुक्तिस्नान के लिये है, यह किसी का मत है। मुक्ति-स्नान करने पर ग्रहणाशौच से मुक्ति नहीं होती है। ग्रहण में स्नान मन्त्र-रहित होता है। सौभाग्यवती स्त्रियाँ शिर को छोड़कर स्नान करें। शिष्टों की स्त्रियाँ तो ग्रहण में शिर-सहित स्नान करती हैं।

जाताशौचे[2] मृताशौचे च ग्रहणनिमित्तं स्नानदानश्राद्धादिकं कार्यमेव।

स्नाने नैमित्तिके प्राप्ते नारी यदि रजस्वला ।
पात्रान्तरिततोयेन स्नानं कृत्वा व्रतं चरेत् ॥
न वस्त्रपीडनं कुर्यान्नान्यद्वासश्च धारयेत् ।

ग्रहण-निमित्तक स्नान, दान और श्राद्धादि जननाशौच तथा मरणाशौच में भी करना ही चाहिये। रजस्वला स्त्री को ग्रहणादि नैमित्तिक-स्नान में साक्षान्नदी जल में न नहा कर, उसी जल को दूसरे पात्र में रखकर उससे स्नान कर व्रतादि का अनुष्ठान करना चाहिये। पहने हुये वस्त्र को निचोड़े नहीं और न दूसरा वस्त्र पहने।

त्रिरात्रमेकरात्रं वा समुपोष्य ग्रहणे स्नानदानाद्यनुष्ठाने महाफलम्। एकरात्रपक्षे ग्रहणदिनात्पूर्वदिने उपवास इति केचित्। ग्रहणसंबद्धाहोरात्र उपवास

---

१. उष्ण-जल से रोगी को ग्रहण में स्नान करना चाहिये—'आदित्यकिरणैः पूतं पुनः पूतं च वह्निना। अतो व्याध्यातुरः स्नायाद् ग्रहणेऽप्युष्णवारिणा ॥' इति व्याघ्रः।

२. जननाशौच मरणाशौच के रहने पर भी ग्रहण में स्नानादि निषिद्ध नहीं है। वृद्ध वसिष्ठः—'सूतके मृतके चैव न दोषो राहुदर्शने। तावदेव भवेच्छुद्धिर्यावन्मुक्तिर्न दृश्यते ॥' अङ्गिराः—'सर्वे वर्णाः सूतकेऽपि मृतके राहुदर्शने। स्नात्वा श्राद्धं प्रकुर्वीरन् दानं शाठ्यविवर्जितम् ॥' इति।

इत्यपरे। पुत्रवद्गृहिणो ग्रहणसंक्रान्त्यादौ नोपवासः। पुत्रवत्पदेन कन्यावानपि ग्राह्य इति केचित्। ग्रहणे देवपितृतर्पणं कार्यमिति केचित्। सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने। तेन ग्रहणकाले स्पृष्टवस्त्रादेः क्षालनादिना शुद्धिः कार्या।

ग्रहण में तीन दिन या एक दिन का उपवास करके स्नान दानादि करने में बड़ा फल है। एक दिन के उपवास पक्ष में ग्रहण के दिन से पहले दिन उपवास करना कोई कहते हैं। दूसरे—ग्रहण वाले ही अहोरात्र में उपवास कहते हैं। पुत्र वाले गृहस्थ को ग्रहण और संक्रान्ति आदि में उपवास नहीं करना चाहिये। कोई तो कन्या वाले गृहस्थ को भी उपवास का निषेध कहते हैं। ग्रहण में देव-तर्पण पितृ-तर्पण करना चाहिये, यह भी किसी का मत है। ग्रहणकाल में सभी वर्णों को सूतक होता है। इस से ग्रहणसमय में स्पर्श किये हुये वस्त्र आदि की शुद्धि जल में प्रक्षालन कर करना चाहिये।

अथ दानपात्रादिविचारः

अत्र गोभूहिरण्यधान्यादिदानं महाफलम्। तपोविद्योभययुक्तं मुख्यं दानपात्रम्[1]। सत्पात्रे दानात्पुण्यातिशयः।

सर्वं गङ्गासमं तोयं सर्वे व्याससमा द्विजाः।
सर्वं भूमिसमं दानं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः॥

इत्युक्तिः पुण्यसामान्याभिप्राया। अत एव—

सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे।
श्रोत्रिये शतसाहस्रं पात्रे त्वानन्त्यमश्नुते॥ इति तारतम्यमुक्तम्।

ग्रहण में गोदान, भूमिदान, सुवर्णदान और धान्यादिदान महाफल देने वाला है। तपस्या और विद्या दोनों से युक्त पात्र मुख्य दानपात्र होता है। सत्पात्र में दान करने से अधिक पुण्य होता है। चन्द्रमा सूर्य के ग्रहण में सभी जल गङ्गाजल के समान होता है। सभी ब्राह्मण व्यास के समान और सभी दान भूमिदान के समान होते हैं। यह कहना सामान्य पुण्य के अभिप्राय से है। इसलिये ब्राह्मण से भिन्न को दान देने में तुल्य फल होता है। ब्राह्मण नामधारी मूर्ख को दान देने से द्विगुण फल होता है। वेदपाठी ब्राह्मण को देने से लक्षगुण फल होता है। और विद्या तपोयुक्त पात्र में तो अनन्त-फल होता है, ऐसा तारतम्य कहा है।

अब्राह्मणे संस्कारादिरहिते जातिमात्रे ब्राह्मणे दानं यथोक्तफलम्। गर्भाधानादिसंस्कारयुतो वेदाध्ययनाध्यापनरहितो [2]ब्राह्मणब्रुवस्तत्र दानमुक्तं द्विगुणफलम्।

---

१. महाभारते—'अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। पात्रभूताय विप्राय भूमिं दद्यात्सदक्षिणाम्॥' सुपात्रके अभाव में अनुकल्प—'श्रोत्रियोऽश्रोत्रियो वाऽपि पात्रं वाऽपात्रमेव वा। विप्रब्रुवोऽपि वा विप्रो ग्रहणे दानमर्हति॥' इति बौधायनः।

२. षड्त्रिंशन्मत में ब्राह्मणब्रुव का लक्षण—'गर्भाधानादिसंस्कारवेदोपनयनैर्युतः। नाध्यापयति नाधीते स भवेद् ब्राह्मणब्रुवः॥' अपि च—'धर्मकर्मविहीनश्च ब्राह्मैर्लिङ्गैर्विवर्जितः। ब्रवीति ब्राह्मणश्चाहं स ज्ञेयो ब्राह्मणब्रुवः॥' इति। वह्निपुराण में ब्राह्मण का लक्षण—'सत्यं दमस्तपोदानमहिंसेन्द्रियनिग्रहः। दृश्यन्ते यत्र राजेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतः॥' श्रोत्रिय का लक्षण—'ओंकारपूर्विकास्तिस्रः सावित्रीर्यश्च विन्दति। चरितब्रह्मचर्यश्च स श्रोत्रिय उच्यते॥' इति यमः। पात्र का लक्षण—'न विद्यया केवलया तपसा वाऽपि पात्रता। यत्र वृत्तमिमे चोभे तद्धि पात्रं प्रकीर्तितम्॥' इति याज्ञवल्क्यः। प्रतिग्रहीता के भेद से फल का तारतम्य—'सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे। श्रोत्रिये शतसाहस्रं पात्रे त्वानन्त्यमश्नुते॥' इति यमः।

वेदाध्ययनादियुते श्रोत्रिये सहस्रफलम्। विद्यासदाचरणादियुते पात्रेऽनन्तफलमित्येतद्वाक्यार्थः।

अब्राह्मण शब्द से संस्कारादिरहित जाति मात्र का ग्रहण है। ब्राह्मणब्रुव गर्भाधानादि संस्कार सम्पन्न होता हुआ भी वेद के पढ़ने-पढ़ाने से रहित को कहते हैं, इसको दान देने से दूना फल मिलता है। वेद-पठन आदि से युक्त श्रोत्रिय को देने से हजार गुना फल मिलता है। विद्या उत्तम आचरण आदि से युक्त पात्र में दान करने से अनन्त-फल मिलता है।

अथ ग्रहणकाले श्राद्धविचारः

ग्रहणे श्राद्धमामेन[1] हेम्ना वा कार्यम्। संपन्नश्चेत्पक्वान्नेन कुर्यात्। सूर्यग्रहणे तीर्थयात्राङ्गश्राद्धवद् घृतप्रधानान्नेन श्राद्धं कार्यम्। ग्रहणे [2]श्राद्धभोक्तुर्महादोषः। ग्रहणे तुलादानादिकं संपन्नेन कार्यम्।

ग्रहण में श्राद्ध कच्चे अन्न से या सुवर्ण से करे यदि सम्पन्न हो तो पक्वान्न से भी करे। तीर्थयात्रा के अङ्गश्राद्ध की तरह घृतप्रधान अन्न से श्राद्ध करे. । ग्रहण में श्राद्धभोजी को महादोष होता है। ग्रहण में तुलादानादि धनी लोगों को करना चाहिये।

अथ मन्त्रोपदेशादिविचारः

चन्द्रसूर्यग्रहे तीर्थे महापर्वादिके तथा।
मन्त्रदीक्षां प्रकुर्वाणो मासर्क्षादीन्न शोधयेत्॥

मन्त्रदीक्षाप्रकारस्तन्त्रे द्रष्टव्यः। दीक्षाग्रहणमुपदेशस्याप्युपलक्षणम्।

युगे युगे तु दीक्षासीदुपदेशः कलौ युगे।
चन्द्रसूर्यग्रहे तीर्थे सिद्धक्षेत्रे शिवालये॥

मन्त्रमात्रप्रकथनमुपदेशः स उच्यते। मन्त्रग्रहणे सूर्यग्रहणमेव मुख्यम्, चन्द्रग्रहणे दारिद्र्यादिदोषोक्तेरिति केचित्।

ग्रहण, तीर्थ और महापर्वादि में मन्त्र की दीक्षा देने वाला महीना, नक्षत्र आदि का विचार न करे। मन्त्र की दीक्षा का प्रकार तन्त्रग्रन्थों में देखना चाहिये। दीक्षा से उपदेश का भी ग्रहण है। प्रत्येक युग में दीक्षा होती थी। उपदेश तो केवल कलि में ही होता है। ग्रहण, तीर्थ, सिद्धक्षेत्र और शिवमन्दिर में केवल मन्त्र के कहने को उपदेश कहते हैं। मन्त्रग्रहण करने में सूर्यग्रहण ही मुख्य समय है, चन्द्रग्रहण में दारिद्र्य आदि दोषों के कहने से, ऐसा कोई कहते हैं।

चन्द्रसूर्योपरागे च स्नात्वा पूर्वमुपोषितः।
स्पर्शादिमोक्षपर्यन्तं जपेन्मन्त्रं समाहितः॥
जपाद्दशांशतो होमस्तथा होमाच्च तर्पणम्।
होमाशक्तौ जपं कुर्याद्धोमसंख्याचतुर्गुणम्॥

---

१. गोभिलः—'दर्शे रविग्रहे पित्रोः प्रत्याब्दिकमुपस्थितम्। अन्नेनासम्भवे हेम्ना कुर्यादामेन वा सुतः॥' शातातपः—'आपद्यनग्नौ तीर्थे च चन्द्रसूर्यग्रहे तथा। आमश्राद्धं द्विजो दद्याच्छूद्रो दद्यात्सदैव हि॥' इति।

२. 'ग्रहणे श्राद्धे भोक्तुर्दोषः, दातुस्त्वभ्युदयः' इति विज्ञानेश्वरः। आपस्तम्बः—'सूतके मृतके भुङ्क्ते गृहीते शशिभास्करे। छायायां हस्तिनश्चैव न भूयः पुरुषो भवेत्॥' इति।

चन्द्र और सूर्य के ग्रहण में पहले दिन उपवास करके स्नान के अनन्तर ग्रहण के स्पर्श मध्य और मोक्ष तक सावधान चित्त होकर मन्त्र का जप करे। जप का दशांश होम, उसी तरह होम का दशांश तर्पण करे। होम न करने पर होम की संख्या से चौगुना जप करे।

अथ ग्रहणे पुरश्चरणविधिः

मूलमन्त्रमुच्चार्य तदन्ते द्वितीयान्तं मन्त्रदेवतानामोच्चार्य 'अमुकां देवतामहं तर्पयामि नम' इति यवादियुक्तजलाञ्जलिभिस्तर्पणं होमदशांशेन कार्यम्। एवं नमोन्तं मूलमन्त्रमुक्त्वा 'अमुकां देवतामहमभिषिञ्चाम्यनेन' इत्युच्चार्य जलेन स्वमूर्ध्नि अभिषिञ्चेदिति मार्जनं तर्पणदशांशेन कार्यम्। मार्जनदशांशेन ब्राह्मणभोजनम्। एवं जपहोमतर्पणमार्जनविप्रभोजनात्मकपञ्चप्रकारं पुरश्चरणम्।

तदनन्तर मूलमन्त्र द्वितीयान्त मन्त्रदेवता का नाम तथा अमुक देवता को तृप्त करता हूँ ऐसा कहकर यव आदि से युक्त जल की अञ्जलियों से होम का दशांश तर्पण करना चाहिये। मूल मन्त्र के अन्त में 'नमः' ऐसा कहकर 'अमुक देवता का मैं अभिषेचन करता हूँ' ऐसा उच्चारण करके जल से अपने शिर पर अभिषेचन करे। इसी प्रकार तर्पण का दशांश मार्जन करना चाहिये। मार्जन के दशांश संख्या से ब्राह्मणभोजन करावे। इसी तरह जप, होम, तर्पण, मार्जन और ब्राह्मण भोजनात्मक पाँच प्रकार का पुरश्चरण होता है।

तर्पणाद्यसंभवे तत्तत्संख्याचतुर्गुणो जप एव कार्यः। अयं च ग्रहणे पुरश्चरणप्रकारो ग्रस्तोदये ग्रस्तास्ते च न संभवति। पुरश्चरणाङ्गोपवासः पुत्रवद्गृहिणापि कार्यः। पुरश्चरणकर्तुः स्नानदानादिनैमित्तिककर्मलोपे प्रत्यवायप्रसङ्गान्नैमित्तिकं स्नानदानादिकं भार्यापुत्रादिप्रतिनिधिद्वारा कार्यम्।

तर्पण आदि के न करने पर उसकी संख्या का चौगुना जप ही कर्तव्य है। यह पुरश्चरण का प्रकार ग्रस्तोदय तथा ग्रस्तास्त में संभव नहीं है। पुरश्चरण का अंग उपवास पुत्रवाले गृहस्थ का भी कर्तव्य है। पुरश्चरण करनेवाले का स्नान-दान आदि नैमित्तिक कर्म न होने पर प्रत्यवाय होने से नैमित्तिक स्नान-दान आदि स्त्री-पुत्र आदि प्रतिनिधियों के द्वारा कराना चाहिये।

अथ ग्रहणे कर्तव्यविधानम्

अत्रेत्थमितिकर्तव्यता—स्पर्शकालात्पूर्वं स्नात्वा 'अमुकगोत्रोऽमुकशर्माहं राहुग्रस्ते दिवाकरे निशाकरे वा अमुकदेवताया अमुकमन्त्रसिद्धिकामो ग्रासादिमुक्तिपर्यन्तममुकमन्त्रस्य जपरूपं पुरश्चरणं करिष्ये' इति संकल्पं च कृत्वाऽऽसनबन्धन्यासादिकं च स्पर्शात्पूर्वमेव विधाय स्पर्शादिमोक्षपर्यन्तं 'मूलमन्त्रजपं कुर्यात्।

ग्रहण के स्पर्शकाल से पहले स्नान करके 'अमुकगोत्र अमुकशर्मा मैं राहु से ग्रस्त सूर्य वा चन्द्रमा के समय में अमुकदेवता के अमुकमन्त्र की सिद्धि के लिये ग्रास आदि से मुक्ति तक अमुकमन्त्र का जपस्वरूप पुरश्चरण करूँगा' ऐसा संकल्प करके आसनबन्ध न्यास आदि ग्रहणस्पर्श से पूर्व ही करके स्पर्शादि मोक्षपर्यन्त मूलमन्त्र का जप करे।

ततः परदिने स्नानादिनित्यकृत्यं विधाय 'अमुकमन्त्रस्य कृतैतद्ग्रहण-

१. पद्मपुराण में मूलमंत्र का स्वरूप—'प्रणवादि नमोऽन्तं तच्चतुर्थ्यन्तं च सत्तम। देवतायाः स्वकं नाम मूलमन्त्रः प्रकीर्तितः॥' इति। जैसे—'ॐ रामाय नमः' 'ॐ कृष्णाय नमः' इत्यादि।

कालिकामुकसंख्याकपुरश्चरणजपसाङ्गतार्थं तद्दशांशहोमतद्दशांशतर्पणतद्दशांशमार्जनतद्दशांशब्राह्मणभोजनानि करिष्ये' इति संकल्प्य होमादिकं तत्तच्चतुर्गुणद्विगुणान्यतरजपं वा कुर्यात्।

इसके बाद दूसरे दिन स्नान आदि नित्यकृत्य करके 'अमुक मन्त्र का ग्रहणकाल में किया हुआ अमुक संख्याक पुरश्चरण-जप की सफलता के लिये किये हुए जप का दशांश होम, होम का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश मार्जन और मार्जन का दशांश ब्राह्मणभोजन करूँगा' ऐसा संकल्प करके अथवा होम आदि के चतुर्गुणित या द्विगुणित जप करे।

ग्रहणकाले च तत्प्रेरितः पुत्रादिः 'अमुकशर्मणोऽमुकगोत्रस्यामुकग्रहणस्पर्शस्नानजनितश्रेयःप्राप्त्यर्थं स्पर्शस्नानं करिष्ये' इत्यादिसंकल्पपूर्वकं तदीयस्नानदानादिकं कुर्यात्। पुरश्चरणमकुर्वद्भिरपि गुरूपदिष्टः स्वस्वेष्टदेवतामन्त्रजपो गायत्रीजपश्चावश्यं ग्रहणे कार्योऽन्यथा मन्त्रमालिन्यम्।

ग्रहणसमय में स्वयं नहीं किये नैमित्तिक कर्मों के लिये पुरश्चरण-कर्ता की प्रेरणा से पुत्र आदि प्रतिनिधि 'अमुकशर्मा अमुकगोत्र का अमुक ग्रहण के स्पर्श में स्नानजन्य कल्याणप्राप्ति के लिए ग्रहण स्पर्श का स्नान करूँगा' ऐसा पहले ही संकल्प करके पुरश्चरणकर्ता के स्नान-दान आदि को करे। पुरश्चरण नहीं करने वाले भी गुरु से उपदिष्ट अपने अपने इष्टदेवता के मन्त्र का जप, या गायत्री का जप अवश्य करे। ऐसा न करने से मन्त्र में मालिन्य आता है।

अथ ग्रहणे शयनादिकृते दोषः

ग्रहणकाले [1]शयने कृते रोगो मूत्रे दारिद्र्यं पुरीषे कृमिर्मैथुने ग्रामसूकरोऽभ्यङ्गे कुष्ठी भोजने नरक इति।

ग्रहणसमय में सोने से रोग लघुशंका करने से दरिद्रता, पाखाना करने से कीडा, स्त्रीप्रसंग करने से ग्राम्य सूकर, उबटन लगाने से कोढ़ी और भोजन करने से नरक होता है।

अथ ग्रहणे त्याज्यानि

पूर्वंपकमन्नं ग्रहणोत्तरं [2]त्याज्यम्। एवं ग्रहणकालस्थितजलपाने पादकृच्छ्राभिधानाज्जलमपि त्याज्यम्। काञ्जिकं तक्रं घृततैलपाचितमन्नं क्षीरं च पूर्वसिद्धं ग्रहणोत्तरं ग्राह्यम्। घृते संधिते गोरसेषु ग्रहणकाले कुशान्तरायं कुर्यात्।

ग्रहण से पहले का बनाया हुआ अन्न ग्रहण के बाद ग्राह्य नहीं है। इसी तरह ग्रहणकाल का जल भी नहीं पीना चाहिये। क्योंकि ग्रहण जल पीने वाले को पादकृच्छ्र व्रत रूप प्रायश्चित्त करने को कहा है। काँजी मट्ठा घी अथवा तैल से पकाया हुआ अन्न और दुग्ध, ग्रहण के पहले बनाये हुये ये सब ग्रहण के बाद भी भक्ष्य हैं। घी या गोरस में सिद्ध किये हुये वस्तुओं में ग्रहण के समय कुश डाल दे।

---

१. शिवरहस्ये—'सूर्येन्दुग्रहणं यावत्तावत्कुर्याज्जपादिकम्। न स्वपेन्न च भुञ्जीत स्नात्वा भुञ्जीव मुक्तयोः॥' इति।

२ मिताक्षरायाम्—'नवश्राद्धेषु यच्छिष्टं ग्रहपर्युषितं च यत्।' षट्त्रिंशन्मते—'सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने। स्नात्वा कर्माणि कुर्वीत शृतमन्नं विवर्जयेत्॥' मेधातिथिः—'आरनालं पयस्तक्रं कीलाटं घृतसक्तवः। स्नेहपक्वं च तैलं च न कदाचित् प्रदुष्यति॥' अपि च—'आरनालं च तक्रं च ह्यादेयं घृतपाचितम्। उदकं च कुशच्छन्नं न दुष्येद् राहुदर्शने॥' इति।

अथ वेधविचारः

[1]सूर्यग्रहे ग्रहणप्रहरांदर्वाक् यामचतुष्टयं वेधः। चन्द्रग्रहे तु प्रहरत्रयम्। तथा च दिनप्रथमप्रहरे सूर्यग्रहे पूर्वरात्रिप्रहरचतुष्टये न भोक्तव्यम्। द्वितीये यामे ग्रहणे रात्रिद्वितीययामादौ न भोक्तव्यम्। एवं रात्रिप्रथमप्रहरे चन्द्रग्रहें दिन-द्वितीययामादौ न भुञ्जीत। रात्रिद्वितीययामादौ ग्रहणे दिनतृतीययामादौ न भुञ्जीत। बालवृद्धातुरविषये तु सार्धप्रहरात्मको मुहूर्तत्रयात्मको वा वेधः।

सूर्यग्रहण में जिस प्रहर में ग्रहण लगे उस से पहले चार प्रहर तक वेध होता है। चन्द्रग्रहण में तो तीन ही प्रहर तक होता है। इस प्रकार यदि दिन के पहले प्रहर में सूर्यग्रहण हो तो पहली रात्रि के चार प्रहर के भीतर भोजन नही करना चाहिये। दूसरे प्रहर में ग्रहण होने पर रात के दूसरे प्रहर आदि में भोजन नहीं करे। इसी प्रकार चन्द्रग्रहण यदि रात के पहले प्रहर में हो तो दिन के द्वितीय प्रहर आदि में भोजन न करे। रात के दूसरे आदि प्रहरों में ग्रहणके होने पर दिन के तीसरे प्रहरादि में भोजन न करे। बालक, वृद्ध और बीमार के विषय में तो डेढ़ प्रहर का या तीन मुहूर्त का वेध होता है।

[2]शक्तस्य वेधकाले भोजने त्रिदिनमुपोषणं प्रायश्चित्तम्। ग्रहणकाले भोजने प्राजापत्यं प्रायश्चित्तम्। चन्द्रस्य ग्रस्तोदये तु यामचतुष्टयवेधात्तत्पूर्वं दिवा न भुञ्जीत। केचित्तु चन्द्रपूर्णमण्डलग्रासे यामचतुष्टयं वेध एकदेशग्रासे यामत्रय-मित्याहुः।

समर्थ को वेधकाल में भोजन करने पर तीन दिन का उपवास रूप प्रायश्चित है। ग्रहण के समय में भोजन करने पर प्राजापत्यव्रत प्रायश्चित कर्तव्य है। चन्द्रमा के ग्रस्तोदय ग्रहण में तो चार प्रहर वेध होने से उसके पहले दिन में भोजन न करे। कोई तो चन्द्रमा के सम्पूर्णमण्डल में ग्रहण लगने पर चार प्रहर का वेध और खण्डग्रहण में तीन प्रहर का ही वेध कहते हैं।

ग्रस्तास्ते तु—

> ग्रस्तावेवास्तमानं तु रवीन्दू प्राप्नुतो यदि।
> परेद्युरुदये स्नात्वा शुद्धोऽभ्यवहरेन्नरः॥

अत्र स्नात्वा शुद्ध इत्युक्त्या शुद्धमण्डलदर्शनकालिकस्नानात्पूर्वमशुद्धिप्रति-पादनाज्जलाहरणपाकादिकं शुद्धबिम्बोदयकालिकस्नानात्पूर्वं न कार्यमिति भाति।

ग्रस्तास्त में तो चन्द्र सूर्य के ग्रहणकाल में ही अस्त हो जाने पर दूसरे दिन उदयकाल में

---

१. वृद्धगौतमः—'सूर्यग्रहे तु नाश्नीयात् पूर्वं यामचतुष्टयम्। चन्द्रग्रहे तु यामांस्त्रीन् बाल-वृद्धातुरैर्विना॥' बालक, वृद्ध और रोगियों के लिये तो ग्रहण के याम से पूर्व एक याम (तीन घंटा) ही भोजन का निषेध है। मार्कण्डेयः—'सायाह्ने ग्रहणं चेत् स्यादपराह्ने न भोजनम्। अपराह्ने न मध्याह्ने, मध्याह्ने न तु सङ्गवे॥ भुञ्जीत सङ्गवे चेत्स्यान्न पूर्वं भोजनक्रिया।' इति।

२. पुत्रवान् समर्थ गृहस्थ उपवास करें। यथा लिङ्गपुराणे—'एकरात्रमुपोष्यैव स्नात्वा दत्त्वा च शक्तितः। कञ्चुकादिव सर्पस्य निवृत्तिः पापकोशतः॥ त्रिरात्रं समुपोष्यैवं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। स्नात्वा दत्त्वा च विधिवन्मोदते ब्रह्मणा सह॥' इति। कात्यायनः—'चन्द्रसूर्यग्रहे भुक्त्वा प्राजापत्येन शुद्धयति। तस्मिन्नेव दिने भुक्त्वा त्रिरात्रेणैव शुद्धयति॥' इति।

स्नान करके शुद्ध हो भोजन करे। इस वचन में 'स्नान से शुद्ध हुआ' इस कथन से शुद्धमण्डल दर्शन समय के स्नान से पहले अशुद्धि रहती है इस कथन से शुद्ध बिम्बोदयकालिक स्नान से पहले जल का लाना रसोइ आदि का बनाना ठीक नहीं है, ऐसी मेरी धारणा है।

सूर्यग्रस्तास्तादौ पुत्रवद्गृहिण उपवासनिषेधात्तेन षण्मुहूर्तात्मकं वेधं त्यक्त्वा ग्रहणात्पूर्वं भोक्तव्यमिति केचित्। पुत्रवद्गृहिणामपि तत्रोपवास एव कार्यं इति [1]माधवमतमेव तु शिष्टाचारानुसृतं युक्तम्। सूर्यग्रस्तास्ते चन्द्रग्रस्तोदये चाहिताग्निनाऽन्वाधानं विधाय जलेन व्रतं कार्यं नतु भोजनम्।

सूर्य ग्रस्तास्त आदि में पुत्र वाले गृहस्थ को उपवास के निषेध से छ मुहूर्त के वेध को छोड़ कर ग्रहण से पहले भोजन कर लेना चाहिये, यह किसी का मत है। किन्तु माधव के मत से पुत्र वाले गृहस्थ को भी ग्रहण में उपवास करना शिष्टाचार के अनुसार ठीक है। अग्निहोत्री को सूर्य के ग्रस्तास्त ग्रहण में और चन्द्रमा के ग्रस्तोदय में अन्वाधान करके जल से व्रत करना न कि भोजन करना चाहिए।

चन्द्रग्रस्तास्ते उत्तरदिने संध्याहोमादौ न दोषः। तत्राल्पकालेन शास्त्रतो मुक्तिनिश्चये मुक्त्यनन्तरं स्नात्वा होमादिकं कर्तव्यम्। चिरकालेन मुक्तौ होमकालातिक्रमप्रसङ्गाद् ग्रस्तोदय इव ग्रहणमध्ये एव संध्यां होमं च कृत्वा शास्त्रतो मुक्तिकाले स्नात्वा ब्रह्मयज्ञादिनित्यकर्म कर्तव्यमिति भाति।

चन्द्रमा के ग्रस्तास्त ग्रहण में दूसरे दिन संध्या होम आदि करने में कोई दोष नहीं है। शास्त्र से थोड़े समय में मुक्ति का निश्चय करके मुक्ति के बाद स्नान करके होमादिक कर्त्तव्य है। देर से मुक्ति होने पर होमकाल का अतिक्रमण होगा तो ग्रस्तोदय की तरह ग्रहण के मध्य में संध्या और होम करके शास्त्रानुसार मुक्तिसमय में स्नान करके ब्रह्मयज्ञ आदि नित्यकर्म करे ऐसा मुझे प्रतीत होता है।

दर्शे ग्रहणनिमित्तकश्राद्धेनैव दर्शश्राद्धसंक्रान्तिश्राद्धानां प्रसङ्गसिद्धिर्भवति। ग्रहणदिने पित्रादेर्वार्षिकश्राद्धप्राप्तौ सति संभवेऽन्नेन कार्यम्। [2]ब्राह्मणाद्यलाभेनाऽसंभवे तु आमेन हेम्ना वा कार्यम्।

अमावस्या में ग्रहणनिमित्तक श्राद्ध से ही अमावास्याश्राद्ध और संक्रान्तिश्राद्धों की सिद्धि होती है। ग्रहण के दिन पिता आदि के वार्षिकश्राद्ध आ पड़ने पर यदि संभव हो तो आमान्न (कच्चा अन्न) या सुवर्ण से करे।

---

१. माधवः—'ग्रस्तास्तमये तु पुत्रिणोऽप्युपवास एव। अहोरात्रं न भोक्तव्यं चन्द्रसूर्यग्रहो यदा। मुक्तिं दृष्ट्वा तु भोक्तव्यं स्नानं कृत्वा ततः परम्॥' इति भोजनप्रतिषेधात्।' जैमिनि के वचनानुसार पुत्रवान् गृहस्थ के लिये उपवास का निषेध है—'आदित्येऽहनि संक्रान्तौ ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। पारणं चोपवासं च न कुर्यात् पुत्रवान् गृही॥' इति।

२. बौधायनः—'अन्नाभावे द्विजाभावे प्रवासे पुत्रजन्मनि। हेमश्राद्धं सग्रहे च कुर्याच्छूद्रः सदैव हि॥' तथा—'दर्शे रविग्रहे पित्रोः प्रत्याब्दिकमुपस्थितम्। अन्नेनासम्भवे कुर्याद्धेम्ना वाऽऽमेन वा पुनः॥' शातातपः—'आपद्यनग्नौ तीर्थे च चन्द्रसूर्यग्रहे तथा। आमश्राद्धं द्विजो दद्याच्छूद्रो दद्यात्सदैव हि॥' इति।

अथ जन्मराशेर्ग्रहणशुभाशुभविचारः

स्वजन्मराशेस्तृतीयषष्ठैकादशदशमराशिस्थितं ग्रहणं [1]शुभप्रदम्। द्वितीय-सप्तमनवमपञ्चमस्थानेषु मध्यमम्। जन्मचतुर्थाष्टमद्वादशराशिस्थितमनिष्टप्रदम्।

अपनी जन्मराशि से तीसरे, छठें, ग्यारहवें और दशम राशि में ग्रहण हो तो शुभ होता है। दूसरे, सातवें, नवें और पाचवें स्थानों में हो तो मध्यम होता है। जन्म से चौथे, आठवें और बारहवीं राशि पर ग्रहण हो तो अनिष्ट फल देने वाला होता है।

अथ जन्मराशौ ग्रहणे दानविधिः

यस्य जन्मराशौ जन्मनक्षत्रे वा ग्रहणं तस्य विशेषतोऽनिष्टप्रदं तेन गर्गाद्युक्ता [2]शान्तिः कार्या। अथवा बिम्बदानं कार्यम्। तद्यथा—

जिसकी जन्मराशि या जन्मनक्षत्र में ग्रहण हो उसको अधिक अनिष्ट होता है। उस पुरुष को गर्गाचार्यादि की कही शान्ति करनी चाहिए या बिम्बदान करना चाहिये। वह इस तरह है :—

चन्द्रग्रहे रजतमयं चन्द्रबिम्बं सुवर्णमयं नागबिम्बं च कृत्वा सूर्यग्रहे सौवर्णं सूर्यबिम्बं नागबिम्बं च कृत्वा घृतपूर्णताम्रपात्रे वा निधाय तिलवस्त्र-दक्षिणासाहित्यं संपाद्य 'मम जन्मराशिजन्मनक्षत्रस्थितामुकग्रहणसूचितसर्वानिष्ट-प्रशान्तिपूर्वकम् एकादशस्थानस्थितग्रहणसूचितशुभफलावाप्तये बिम्बदानं करिष्ये' इति संकल्प्य सूर्यं चन्द्रं राहुं च ध्यात्वा नमस्कृत्य—

तमोमय महाभीम सोमसूर्यविमर्दन।
हेमताराप्रदानेन मम शान्तिप्रदो भव॥
विधुंतुद नमस्तुभ्यं सिंहिकानन्दनाच्युत।
दानेनानेन नागस्य रक्ष मां वेधजाद्भयात्॥

चन्द्रग्रहण में चान्दी का चन्द्रबिम्ब, सोने का सूर्यबिम्ब और नागबिम्ब बनाकर घी से भरे हुये ताँबे के या कांस्य के पात्र में रख कर तिल-वस्त्र-दक्षिणा से युक्त 'मेरे जन्मराशि जन्मनक्षत्र स्थित अमुकग्रह से सूचित समग्र अनिष्टों की विशेष शान्तिपूर्वक एकादश स्थानस्थित ग्रहण सूचित शुभफल प्राप्ति के लिये बिम्बदान करूँगा' ऐसा संकल्प करके सूर्य,चन्द्र और राहु का ध्यान कर नमस्कार करके हे अन्धकारमय। महाभयङ्कर! चन्द्र सूर्य के मर्दन करने वाले! सोने चाँदी के देने से मेरे लिये आप शान्तिप्रद हों। हे चन्द्रमा को व्यथित करने वाले! सिंहिका को आनन्ददेने वाले पुत्र! अच्युत! इस नागबिम्ब के दान से ग्रहणवेध के भय से मेरी रक्षा करो आपको नमस्कार है।

---

१. ज्योतिषे—'त्रिषड्दशायोपगतं नराणां शुभप्रदं स्याद् ग्रहणं रवीन्द्वोः। द्विसप्तनन्देषुषु मध्यमं स्याच्छेषेष्वनिष्टं कथितं मुनीन्द्रैः॥' इति।

२. विष्णुधर्मे—'यन्नक्षत्रगतो राहुर्ग्रसते शशिभास्करौ। तज्जातानां भवेत् पीडा ये नराः शान्तिवर्जिताः॥' तत्रैव—'सूर्यस्य संक्रमो वाऽपि ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः। यस्य त्रिजन्मनक्षत्रे तस्य रोगोऽथवा मृतिः॥ तस्य दानं च होमं च देवार्चनजपौ तथा। उपरागाभिषेकं च कुर्याच्छान्तिर्भ-विष्यति॥ स्वर्णेन वाऽथ पिष्टेन कृत्वा सर्पस्य चाकृतिम्। ब्राह्मणाय ददेत्तस्य न रोगादिश्च तत्कृतः॥' अत्र सर्पस्य तदाकारस्य राहोरित्यर्थः। 'शान्तिसार' आदि ग्रन्थों में शान्तिविधि देखे।

इति मन्त्रमुच्चार्य 'इदं सौवर्णं राहुबिम्बं नागं सौवर्णं रविबिम्बं राजतं चन्द्रबिम्बं वा घृतपूर्णकांस्यपात्रनिहितं यथाशक्ति तिलवस्त्रदक्षिणासहितं ग्रहणसूचितारिष्टविनाशार्थं शुभफलप्राप्त्यर्थं च तुभ्यमहं संप्रददे' इति दानवाक्येन पूजितब्राह्मणाय दद्यात्। एवं चतुर्थाद्यनिष्टस्थानेष्वपि दानं कार्यमिति भाति।

इस मन्त्र को कहकर इस सोने के बने राहुबिम्ब तथा नागबिम्ब और सुवर्णनिमित सूर्यबिम्ब अथवा घी भरे कांस्यपात्र में स्थित चाँदी का चन्द्रबिम्ब शक्ति के अनुसार तिल वस्त्र दक्षिणा से युक्त ग्रहणसूचित अनिष्ट के विनाश के लिए आपको मैं दे रहा हूँ ऐसे दान वाक्य से पूजित ब्राह्मण को देवे। इसी प्रकार चतुर्थ आदि अनिष्ट स्थानों के लिये भी दान करना चाहिये ऐसा मुझे भाता है।

यस्य जन्मराश्यादिग्रहणं तेन राहुग्रस्तरवीन्दुबिम्बं नावलोकनीयम्। इतरजनैरपि [1]पटजलादिव्यवधानेनैव ग्रस्तबिम्बं द्रष्टव्यं न साक्षात्।

जिसकी जन्मराशि पर ग्रहण हो उसे राहु से ग्रस्त सूर्यचन्द्रमण्डल को देखना नहीं चाहिये। अन्य लोगों को भी वस्त्र या जल के सहारे ही ग्रस्तबिम्ब को देखना चाहिये, न कि साक्षात्।

मङ्गलकार्येषु पूर्णग्रासे चन्द्रग्रहे [2] द्वादश्यादितृतीयान्तं दिनसप्तकं वर्ज्यम्। सूर्यपूर्णग्रासे एकादश्यादिचतुर्थ्यन्तदिनानि वर्ज्यानि। खण्डग्रहणे तु चतुर्दश्यादिदिनत्रयं वर्ज्यम्। ज्योतिर्निबन्धेषु ग्रासपादतारतम्येन दिनाधिक्योनत्वं तारतम्येन योजितम्। ग्रस्तास्ते पूर्वं दिनत्रयं वर्ज्यम्। ग्रस्तोदये परं दिनत्रयं वर्ज्यम्। ग्रहणनक्षत्रं षण्मासं पूर्णग्रासे वर्ज्यम्। पादादिग्रासे सार्धमासादितारतम्येन योज्यम्। पूर्वसंकल्पितस्य द्रव्यस्य ग्रहणोत्तरं दाने तद्द्विगुणं देयं भवति। इति ग्रहणनिर्णयोद्देशः ॥ ३१ ॥

चन्द्रमा के सर्वग्रास में द्वादशी से तृतीयापर्यन्त ७ दिन मङ्गल कार्यों में वर्जित हैं। और सूर्य के पूर्णग्रास में एकादशी से लेकर चतुर्थीपर्यन्त मङ्गलकार्य में वर्जित है। खण्डग्रहण में चतुर्दशी से तीन दिन वर्जित है। ज्योतिर्निबन्धों में ग्रास और पाद के तारतम्य से अधिक दिन या कम तारतम्य से योजना की है। ग्रस्तास्त में पहले के तीन दिन और ग्रस्तोदय में बाद के तीन दिन वर्जित है। पूर्णग्रास में ग्रहणनक्षत्र छ महीने तक वर्जित है। खण्डग्रास में डेढ़ महीने वर्ज्य है। पहले के सङ्कल्प किये हुये द्रव्य को ग्रहण के बाद देने पर दूना करके देना चाहिये। ग्रहणनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ समुद्रस्नाननिर्णयः

समुद्रे पौर्णमास्यमावास्यादिपर्वसु स्नायात्। भृगुभौमदिने स्नानं वर्जयेत्।

अश्वत्थसागरौ सेव्यौ न स्पर्शस्तु कदाचन।
अश्वत्थं मन्दवारे च सागरं पर्वणि स्पृशेत् ॥

---

१. ब्रह्मसिद्धान्ते—'सर्वैः पटस्थितं वीक्ष्यं स्वस्थं तैलाम्बुदर्पणैः। ग्रहणं गुर्विणी जातु न पश्येत पटं विना ॥' इति।

२. पूर्णग्रासे हेमाद्रिः—'द्वादश्यादितृतीयान्तो वेध इन्दुग्रहे स्मृतः। एकादश्यादिकः सौरे चतुर्थ्यन्तः प्रकीर्तितः ॥ खण्डग्रासे तु—'त्र्यहं खण्डग्रहे तयोः' इति तत्रैव।

न कालनियमः सेतौ समुद्रस्नानकर्मणि ।
समुद्रस्नानप्रयोगोऽन्यत्र[1] ज्ञेयः । इति समुद्रस्नानोद्देशः ॥ ३२ ॥

समुद्र में पूर्णिमा अमावास्या आदि पर्वों में स्नान करना चाहिये । शुक्र और मङ्गलवार को समुद्रस्नान वर्जित है । पीपल और समुद्र की स्पर्शरहित सेवा करे, यदि स्पर्श करे तो शनिवार को पीपल का और पर्वों में समुद्र का । रामेश्वर और तीर्थस्नान कर्म में काल का कोई नियम नहीं है । समुद्रस्नान की विधि दूसरे ग्रन्थों से जानें । समुद्रस्नानोद्देश समाप्त ।

अथ तिथिविशेषे नक्षत्रविशेषे वारादौ च विधिनिषेधाः

सप्तम्यां न स्पृशेत्तैलं नीलवस्त्रं न धारयेत् ।
नचाप्यामलकैः स्नानं न कुर्यात्कलहं नरः ॥
सप्तम्यां नैव कुर्वीत ताम्रपात्रेण भोजनम् ।

नन्दातिथिष्वभ्यंगो वर्ज्यः । रिक्तासु क्षौरं वर्ज्यम् । जयासु मांसं शूद्राद्यैर्वर्ज्यम् । पूर्णासु स्त्री वर्ज्या । रविवारेऽभ्यङ्गो भौमवारे क्षौरं बुधे योषिच्च वर्ज्या । चित्राहस्तश्रवणेषु तैलं वर्ज्यम् । विशाखाप्रतिपत्सु क्षौरं वर्ज्यम् । मघाकृत्तिकात्र्युत्तरासु स्त्री न सेव्या । तिलभक्षणं तिलतर्पणं च सप्तम्यां न । नारीकेलमष्टम्यामलाबु नवम्यां पटोलं दशम्यां निष्पावमेकादश्यां मसूरं द्वादश्यां वार्ताकं त्रयोदश्यां वर्ज्यम् ।

सप्तमी को तेल का स्पर्श न करे, नीले वस्त्र को न पहने और न आंवलों से स्नान करे, किसी से झगड़ा न करे और तांबे के पात्र में भोजन न करे । प्रतिपत्, षष्ठी, एकादशी को उबटन लगाना वर्जित है । चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी को हजामत न बनावे । तृतीया, अष्टमी और त्रयोदशी तिथि में शूद्र आदि को मांसाहार वर्ज्य है । पञ्चमी, दशमी, पूर्णिमा में स्त्रीसंगम निषिद्ध है । रविवार को उबटन, मंगल को क्षौर और बुध को स्त्रीप्रसंग वर्जित है । चित्रा, हस्त और श्रवण में तैल लगाना वर्जित है । विशाखायुक्त प्रतिपदा में क्षौर वर्जित है । मघा, कृत्तिका और तीनों उत्तरा में स्त्रीसेवन नहीं करे । सप्तमी को तिल से तर्पण और तिलका खाना वर्जित है । अष्टमी में नारियल, नवमी में तुम्बीलौकी, दशमी में परोरा, एकादशी में निष्पाव, द्वादशी में मसूर, त्रयोदशी में बैंगन वर्जित है ।

पूर्णिमादर्शसंक्रान्तिचतुर्दश्यष्टमीषु च ।
नरश्चण्डालयोनौ स्यात्तैलस्त्रीमांससेवनात् ॥

पूर्णिमादर्शसंक्रान्तिद्वादशीषु श्राद्धदिने च वस्त्रं न पीडयेत् । रात्रौ मृदं गोमयमुदकं च नाहरेत् । गोमूत्रं प्रदोषकाले न गृह्णीयात् । अमादिपर्वस्ववश्यं शान्त्यर्थं तिलहोमी स्यात् । आत्मरक्षणाय दानादिकं च कुर्यात् ।

पूर्णिमा, अमावास्या, संक्रान्ति, चतुर्दशी और अष्टमी में तैल तथा मांस के सेवन से मनुष्य चाण्डालयोनि में जन्म लेता है । पूर्णिमा, अमावास्या, संक्रान्ति, द्वादशी और श्राद्ध के दिन वस्त्र को न निचोड़े । रात में मिट्टी, गोबर और जल को न लावे । प्रदोषकाल में गोमूत्र ग्रहण

---

१. समुद्रस्नानार्थी समुद्रस्नान का सविधि-वर्णन निर्णयसिन्धु एवं महाभारत में देखें ।

इति सुधा-विवृतौ प्रथमः परिच्छेदः समाप्तः ।

नहीं करना चाहिये। अमावास्या आदि पर्वों में शान्ति के लिये तिल का होम अवश्य करे तथा आत्मरक्षा के लिये दान आदि भी करे।

पर्वसु नाधीयीत। शौचाचमनब्रह्मचर्यादिसेवी स्यात्। प्रतिपद्दर्शषष्ठीनवमीतिथिषु श्राद्धदिने जन्मदिने व्रते चोपवासे च रविवारे मध्याह्नस्नानसमये च काष्ठेन दन्तधावनं वर्ज्यम्।

पर्व की तिथियों में अध्ययन न करे। शौच, आचमन और ब्रह्मचर्य आदि का सेवन करे। प्रतिपदा अमावास्या षष्ठी और नवमी तिथियों में, श्राद्धदिन जन्मदिन व्रत उपवास रविवार और मध्याह्नस्नान के समय में काष्ठ से दन्तधावन न करे।

अलाभे दन्तकाष्ठानां निषिद्धेपि दिने तथा।
अपां द्वादशगण्डूषैः पत्रैर्वा शोधयेन्मुखम्॥

अत्र सर्वत्र निषेधेषु तिथ्यादिकं तत्कालव्यापि ग्राह्यम्। इति तिथ्यादौ विधिनिषेधसंग्रहोद्देशः॥ ३३॥

दतुअन के न मिलने पर तथा निषिद्धदिन में १२ कुल्ला जल या पत्तों से मुखशुद्धि करे। इस निषेधप्रकरण में सर्वत्र तिथि आदि तत्कालव्यापिनी ग्रहण करना चाहिये। विधिनिषेधसंग्रहोद्देश समाप्त।

मीमांसाधर्मशास्त्रज्ञाः सुधियोऽनलसा बुधाः।
कृतकार्याः प्राङ्निबन्धैस्तदर्थं नायमुद्यमः॥
ये पुनर्मन्दमतयोऽलसा अज्ञाश्च निर्णयम्।
धर्मे वेदितुमिच्छन्ति रचितस्तदपेक्षया॥
निबन्धोऽयं धर्मसिन्धुसारनामा सुबोधनः।
अमुना प्रीयतां श्रीमद्विठ्ठलो भक्तवत्सलः॥
सर्वत्र मूलवचनानीह ज्ञेयानि तद्विचारश्च।
कौस्तुभनिर्णयसिन्धुश्रीमाधवकृतनिबन्धेभ्यः॥
प्रेम्णा सद्भिर्ग्रन्थः सेव्यः शब्दार्थतः सदोषोऽपि।
संशोध्य वापि हरिणा सुदाममुनिसतुषपृथुकमुष्टिरिव॥

इति श्रीमदनन्तोपाध्यायसूनुकाशीनाथोपाध्यायविरचिते धर्मसिन्धुसारे
प्रथमः परिच्छेदः समाप्तः।

मीमांसा धर्मशास्त्र के जानने वाले आलस्यरहित सुबुद्धि विद्वान् लोग पहले के निबन्धों से कृतकृत्य हैं, अतः उनके लिये यह मेरा परिश्रम नहीं है। आलसी, मतिमन्द, मूर्ख जो धर्म का निर्णय जानना चाहते हैं, उनके सुखपूर्वक ज्ञान के लिये धर्मसिन्धुसारनाम का निबन्ध मैंने बनाया। इस कृति से भक्तप्रिय विट्ठल भगवान् प्रसन्न हों। स्मृतिकौस्तुभ, निर्णयसिन्धु और माधव के बनाये निबन्धों से मूलवचन और उनके विचार भी शब्द और अर्थ से दोषयुक्त भी यह ग्रन्थ प्रेम से सज्जनों का सेव्य है। जैसे श्रीसुदामा के छिलके के सहित एक मुट्ठी चिउड़े को स्वच्छ करके भगवान् कृष्ण ने ग्रहण किया॥ १–५॥

प्रथम परिच्छेद समाप्त।

द्वितीयः परिच्छेदः

श्रीपाण्डुरङ्गं[1] विबुधान्तरङ्गं नौमीन्दिरां माधवमन्दिरां च।
सतामनन्तं हितमामनन्तं गुरुं गरिष्ठं जननीं वरिष्ठाम्॥ १॥
काशीनाथाभिधेयेनात्रानन्तोपाध्यायसूनुना।
सामान्यं निर्णयं प्रोच्य विशेषेण विनिर्णयः॥ २॥
संगृह्यते धर्मसिन्धुसाराख्ये कालगोचरे।
ग्रन्थे प्रस्फुटबोधाय पुनरुक्तिर्न दूषणम॥ ३॥

देवताओं के अन्तरङ्ग श्री पाण्डुरङ्ग भगवान् और माधव के सहित लक्ष्मी तथा सज्जनों के हितचिन्तक गुरु अनन्त जी एवं माता को मैं प्रणाम करता हूँ। अनन्तोपाध्याय के पुत्र काशीनाथ नामक मैंने सामान्यनिर्णय कहकर विशेषतः निर्णय इस कालबोधक धर्मसिन्धुसार नामक ग्रन्थ में संग्रह किया। स्पष्टज्ञान के लिये ग्रन्थ में पुनरुक्ति दूषण नहीं होती॥ १-३॥

प्रथमपरिच्छेदे मासविशेषानपेक्षं सामान्यतस्तिथ्यादिनिर्णयमभिधायास्मिन्द्वितीयपरिच्छेदे चैत्रादिमासविशेषोपादानेन प्रतिपदादितिथिषु विहितसंवत्सरकृत्यनिर्णयसारं संगृह्णीमः। अत्र शुक्लप्रतिपदादिरमान्त एव मासः प्रायेण दाक्षिणात्यैराद्रियते इति तमेवाश्रित्य निर्णय उच्यते। अत्र किंचित्पूर्वपरिच्छेदोक्तमपि पुनर्विशेषोक्तिभिर्दृढीक्रियत इति पुनरुक्तिर्न दोषाय।

प्रथमपरिच्छेद में मास विशेष की अपेक्षा न कर सामान्यतया तिथि आदि का निर्णय कहकर इस दूसरे परिच्छेद में चैत्र आदि मासविशेष का ग्रहण कर प्रतिपदा आदि तिथियों में विहित वार्षिक कृत्य के निर्णय के सार को संग्रह करते हैं। इसमें शुक्ल प्रतिपदा से अमावास्यान्त ही मास को प्रायः दक्षिण देश वाले आदर करते हैं। अतः उसी का आश्रयण कर निर्णय हम कहते हैं। दूसरे परिच्छेद में कुछ पूर्व परिच्छेद का कहा हुआ भी पुनः विशेषोक्तियों से दृढ किया गया है, इसलिये पुनरुक्ति दोष के लिये नहीं है।

अथ चैत्रकृत्ये मेषसंक्रान्तिः

तत्र मेषसंक्रान्तौ पूर्वाः पराश्च दश दश नाड्यः पुण्यकालः। रात्रौ त्वर्धरात्रात्प्राक् संक्रमे पूर्वदिनोत्तरार्धं पुण्यम्। अर्धरात्रात्परतः संक्रमे उत्तरदिनस्य पूर्वार्धं पुण्यम्। अर्धरात्रे संक्रमे दिनद्वये पुण्यम्।

मेष संक्रान्ति में पहली और पिछली दस दस घड़ियां पुण्यकाल है। रात में आधी रात से पहले संक्रमण हो तो पहले दिन का उत्तरार्ध पुण्यकाल होता है। आधीरात के बाद संक्रान्ति होने पर दूसरे दिन का पूर्वार्ध पुण्यप्रद है। आधीरात में संक्रान्ति होने पर दोनों दिन पुण्यकाल होता है।

---

१. विबुधा देवाः 'अमरा निर्जरा देवास्त्रिदशा विबुधाः सुराः' इत्यमरः। तेषु अन्तरंगं श्रेष्ठं विबुधान्तरङ्गं, श्रीपाण्डुरङ्गं स्वेष्टदेवमित्यर्थः।

अथ वत्सरारम्भस्तिथिनिर्णयश्च

तत्र चैत्रशुक्लप्रतिपदि [1]वत्सरारम्भः—तत्रौदयिकी प्रतिपत् ग्राह्या। दिनद्वये उदयव्याप्तौ अव्याप्तौ वा पूर्वा। चैत्रस्य मलमासत्वे वत्सरारम्भनिमित्तकं तैलाभ्यङ्गं संकल्पादौ नूतनवत्सरनामकीर्तनाद्यारम्भं च मलमासप्रतिपद्येव कुर्यात्। प्रतिगृहं ध्वजारोपणं निम्बपत्राशनं वत्सरादिफलश्रवणं नवरात्रारम्भो नवरात्रोत्सवादि-निमित्ताभ्यङ्गादिश्च शुद्धमासप्रतिपदि कार्यः। वत्सरारम्भनिमित्तकोऽपि तैला-भ्यङ्गः शुद्धप्रतिपद्येवेति मयूखे उक्तम्। अस्यां तैलाभ्यङ्गो नित्यः अकरणे [2]प्रत्यवायोक्तेः।

वर्ष का आरम्भ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा में होता है। उसमें उदयव्यापिनी प्रतिपदा ग्राह्य है। दोनों दिन उदयव्यापिनी होने पर, या दोनों दिन उदयव्यापिनी न होने पर पूर्वा ग्राह्य है। यदि चैत्र मलमास हो तो वर्षारम्भ के निमित्त तैलाभ्यङ्ग का सङ्कल्प आदि में नये वर्ष का नाम-कीर्तनादि प्रारम्भ मलमास की प्रतिपदा में ही करे। प्रत्येक घर में ध्वजारोपण नीम के पत्तों को खाना, वर्ष आदि का फल सुनना, नवरात्र का प्रारम्भ, नवरात्र के उत्सव आदि के निमित्त से उबटन आदि का लगाना, शुद्धमास के प्रतिपदा में करे। वत्सरारंभ निमित्तक तैलाभ्यंग भी शुद्ध प्रतिपदा में ही करे, ऐसा मयूख में कहा है। इसमें तैलाभ्यङ्ग नित्यकर्म है। इसके नहीं करने से प्रायश्चित्ती होता है, ऐसा कहा है।

अथ चैत्रनवरात्रारम्भः

अस्यामेव प्रतिपदि देवीनवरात्रारम्भः। अत्र [3]परयुता मुहूर्तमात्रापि प्रति-पत् ग्राह्या। अत्र मुहूर्तपरिमाणम्-'मुहूर्तमह्नो रात्रेश्च प्रोचुः पञ्चदशं लवम्' इत्युक्तं सर्वत्र ज्ञेयम्। पारणादिविशेषनिर्णयः [4]शारदनवरात्रवद् बोध्यः।

इसी प्रतिपदा में देवी का नवरात्र प्रारम्भ होता है। इसमें मुहूर्तमात्र भी द्वितीयायुक्त प्रति-

---

१. चैत्रशुक्लप्रतिपदा से चान्द्रवर्ष का आरम्भ होता है। यथा ब्रह्मपुराणे—'चैत्रे मासि जगद् ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि। शुक्लपक्षे समग्रं तु तदा सूर्योदये सति॥ प्रवर्तयामास तदा कालस्य गणना-मपि। ग्रहान्नागानृतून् मासान् वत्सरान् वत्सराधिपान्॥' इति।

वृद्धवसिष्ठ ने इसमें प्रतिपदा को पूर्वविद्धा ग्राह्य बतलाया—'वत्सरादौ वसन्तादौ बलिराज्ये तथैव च। पूर्वविद्धैव कर्तव्या प्रतिपत् सर्वदा बुधैः॥' इसमें वत्सराधिप की पूजा करनी चाहिये। ज्योतिर्निबन्धे—'यश्चैत्रशुक्लप्रतिपद्दिनवारो नृपो हि सः। तस्य पूजा विधातव्या पताकातोरणादिभिः। प्रतिगृहं ध्वजाः कार्याः शक्त्या ब्राह्मणतर्पणम्। निरीक्षणं च कर्तव्यं शकुनानां फलेप्सुभिः॥' इति।

२. वृद्धवसिष्ठः-'वत्सरादौ वसन्तादौ बलिराज्ये तथैव च। तैलाभ्यङ्गमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते॥'

३. देवीपुराणे—'अमायुक्ता न कर्तव्या प्रतिपच्चण्डिकार्चने। मुहूर्तमात्रा कर्तव्या द्वितीया-दिगुणान्विता॥' ब्रह्मपुराणे—'तिस्रो ह्येताः परा प्रोक्तास्तिथयः कुरुनन्दन। कार्तिकाश्वयुजोर्मासोश्चैत्रे मासि च भारत॥' इति।

४. चैत्र नवरात्र में—'आश्विने वाऽथवा माघे चैत्रे वा श्रावणेऽपि वा।' इस देवीपुराण-के वचनानुसार आश्विन नवरात्र की भांति इस तिथि में कलशस्थापन तथा पराम्बा के प्रीणनार्थ सप्तशती पाठारम्भ आदि सभी नवरात्रकृत्य सम्पन्न करना चाहिये। इस नवरात्र में कलश के नीचे यवारोपण की जगह धान्यारोपण की विशेषता है। विशेष विवेचन आश्विन नवरात्र में देखें।

पदा ग्राह्य है। दिन रात का १५ पल मुहूर्त कहलाता है, यही सर्वत्र जानना चाहिये। पारणा आदि का निर्णय शारद नवरात्र की तरह जानें।

अत्रैव प्रपादानम्। तत्र मन्त्रः—

प्रपेयं सर्वसामान्या भूतेभ्यः प्रतिपादिता।
अस्याः प्रदानात्पितरस्तृप्यन्तु हि पितामहाः॥
अनिवार्यं ततो देयं जलं मासचतुष्टयम्।

प्रपां दातुमशक्तेन प्रत्यहमुदकुम्भो द्विजगृहे देयः। तत्र मन्त्रः—

एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः।
अस्य प्रदानात्सकला मम सन्तु मनोरथाः॥

यहीं पर प्रपा (पौसला) का दान होता है। उसके मन्त्र का अर्थ यह है:—सर्वसाधारण जीवों के पीने के लिये यह पौसले का दान किया जाता है। इसके दान से पितृ-पितामह आदि तृप्त हों। अतः चार महीने अनिवारित जल देना चाहिये। प्रपादान में असमर्थ व्यक्ति को प्रतिदिन जल से भरा घड़ा ब्राह्मण को देना चाहिये। उसका मन्त्रार्थ यह है—यह ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मक धर्मघट को देने से मेरे सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण हों।

इयमेव प्रतिपत्कल्पादिरपि। एवं वैशाखशुक्लतृतीया फाल्गुनकृष्णतृतीया शुक्ला चैत्रपंचमी माघे त्रयोदशी कार्तिके सप्तमी मार्गशीर्षे नवमी इत्यपि [1]कल्पादयो बोध्याः। आसु श्राद्धात्पितृतृप्तिः।

यही प्रतिपदा कल्प की आदि तिथि भी है। इसी प्रकार वैशाखशुक्ल तृतीया, फाल्गुनकृष्ण तृतीया, चैत्रशुक्ल पञ्चमी, माघ की त्रयोदशी, कार्तिक की सप्तमी, अगहन की नवमी ये भी कल्पादि तिथियाँ हैं। इनमें श्राद्ध करने से पितृगण तृप्त होते हैं।

अथ मत्स्यजयन्ती

चैत्रशुक्लप्रतिपन्मत्स्यजयन्तीत्येके।

कोई चैत्रशुक्ल प्रतिपदा में मत्स्यजयन्ती कहते हैं।

अथ गौरीव्रतम्

चैत्रे दधिक्षीरघृतमधुवर्जनदंपतीपूजनात्मकं गौरीव्रतं कार्यम्।

चैत्र में दही, दूध, घी और शहद को त्याग दे तथा दम्पति (स्त्री पुरुष) का पूजन स्वरूप गौरीव्रत करना चाहिये।

अथ चन्द्रव्रतम्

चैत्रशुक्लद्वितीयायां निशामुखे बालेन्दुपूजनात्मकं चन्द्रव्रतम्।

चैत्र शुक्ल द्वितीया सायंकाल में बालेन्दुपूजनात्मक चन्द्रव्रत करना चाहिये।

---

१. मत्स्यपुराण में—'ब्रह्मणो या दिनस्यादिः कल्पादिः सा प्रकीर्तिता। वैशाखस्य तृतीया या कृष्णा या फाल्गुनस्य च॥ पञ्चमी चैत्रमासस्य तथैवान्त्या तथा परा। शुक्ला त्रयोदशी माघे कार्तिकस्य तु सप्तमी॥ नवमी मार्गशीर्षस्य सप्तैताः संस्मराम्यहम्। कल्पानामादयो ह्येता दत्तस्याक्षयकारकाः॥' इसके सभी निर्णय मन्वादि में कहे जाने वाले निर्णय के अनुसार हैं।

अथ आन्दोलनगौरीव्रतम्

अस्यामेव दमनकेन गौरीशिवपूजनम्। चैत्रशुक्लतृतीयायां गौरीं शिवयुतां संपूज्यान्दोलनव्रतं मासपर्यन्तं कार्यम्। अत्र तृतीया मुहूर्तमात्रापि परा ग्राह्या, द्वितीयायुक्ता न कार्या। चतुर्थीयुतायां वैधृत्यादियोगेऽपि सैव कार्या, द्वितीयायोगनिषेधस्य बलवत्त्वात्।

इसी में दवने से गौरी-शिव का पूजन होता है। चैत्रशुक्ल तृतीया में शिवसहित गौरी का पूजन कर एक महीने तक आन्दोलन (झूला) व्रत करना चाहिये। आन्दोलनव्रत में मुहूर्त मात्रा भी तृतीया परा ग्राह्य है, द्वितीया से युक्त ग्रहण न करे। चतुर्थीयुक्त तृतीया और वैधृति आदि योग में भी वही करे, द्वितीयायुक्त निषेध के बलवान् होने से।

अथ रामान्दोलनव्रतम्

अस्यामेव तृतीयायां श्रीरामचन्द्रस्य दोलोत्सवमारभ्य मासपर्यन्तं पूजापूर्वकमान्दोलनं कार्यम्। एवं देवतान्तराणामपि।

इसी तृतीया में श्रीरामचन्द्र का झूला उत्सव प्रारम्भ करके महीने भर पूजनपूर्वक झुलावे। इसी प्रकार और देवताओं का भी।

इयमेव तृतीया मन्वादिरपि। अत्रैव सर्वमन्वादिनिर्णय उच्यते—तत्र मन्वादयश्चैत्रे शुक्लतृतीया पौर्णमासी च श्रावणस्य कृष्णाष्टमी भाद्रपदस्य शुक्लतृतीया आश्विनस्य शुक्लनवमी कार्तिकस्य शुक्लद्वादशी पौर्णमासी च पौषे शुक्लैकादशी माघे शुक्लसप्तमी फाल्गुनस्य पौर्णमास्यमावास्या चेति चतुर्दश ज्ञेयाः। एतास्तु मन्वादयः शुक्लपक्षस्था दैवे पित्र्ये कर्मणि [1]पूर्वाह्णव्यापिन्यो ग्राह्याः। पूर्वाह्णोऽत्र द्वेधाविभक्तदिनपूर्वोभागस्तत्रैव श्राद्धादिविधानात्।

यही तृतीया मन्वादि तिथि भी है। यहीं पर सम्पूर्ण मन्वादि तिथियों का निर्णय कहते हैं— चैत्र में शुक्लपक्ष की तृतीया और पूर्णिमा मन्वादि-तिथि हैं। ज्येष्ठ में पूर्णिमा, आषाढ़ शुक्लपक्ष की दशमी और पौर्णमासी, श्रावणकृष्ण की अष्टमी, भाद्रपद शुक्लपक्ष की तृतीया, आश्विन शुक्ल की नवमी, कार्तिक की शुक्ल द्वादशी और पूर्णिमा, पौष में शुक्ल एकादशी, माघ में शुक्ला सप्तमी, फाल्गुन की पूर्णिमा और अमावास्या, ये १४ मन्वादि तिथियां हैं। ये मन्वादि तिथियां शुक्लपक्ष की दैव और पित्र्य कर्म में पूर्वाह्णव्यापिनी ग्राह्य हैं। यहाँ पूर्वाह्ण दिन का दो भाग करने पर पहला भाग पूर्वाह्ण, इसी में श्राद्ध आदि कर्म होते हैं।

दैवान्मानुषाद्वापराधात्पूर्वाह्णे श्राद्धाद्यनुष्ठानासंभवेऽपराह्णव्यापिन्यो ग्राह्याः। दिनपूर्वार्धेऽपराह्णे वा श्राद्धाद्यनुष्ठेयम्। नतु दिनोत्तरार्धगतमध्याह्नभागे इति तात्पर्यम्। कृष्णपक्षस्थास्तु दैवे पित्र्ये च कर्मणि पञ्चधा विभक्तदिनचतुर्थभागा-

---

१. गरुडपुराण में शुक्लपक्ष की मन्वादितिथियां पूर्वाह्णव्यापिनी और कृष्णपक्ष की अपराह्णव्यापिनी ग्राह्य बतलाया—'पूर्वाह्णे तु सदा ग्राह्याः शुक्ला मनुयुगादयः। दैवे कर्मणि पित्र्ये च कृष्णे चैवापराह्णिकाः॥' इति।

ख्यापराह्णव्यापिन्यो ग्राह्याः । मन्वादिषु पिण्डरहितं [1]श्राद्धं कार्यम् । अत्र श्राद्धे द्विसहस्रवर्षं पितृणां तृप्तिः । मन्वादिश्राद्धं च नित्यम् । एतदकरणे [2]"त्वंभुवः प्रतिमानम्' इति ऋङ्मन्त्रस्य शतवारं जले जपः प्रायश्चित्तं कार्यम् ।

मनुष्य के अपराध से या दैवात् पूर्वाह्न में श्राद्ध आदि न हो सके तो अपराह्णव्यापिनी तिथियाँ लेनी चाहिये । दिन के पूर्वाह्न या अपराह्न में श्राद्धादि करे न कि दिन के उत्तरार्धगत मध्याह्न भाग में, यह तात्पर्य है । कृष्णपक्ष की मन्वादि तिथियां तो दैव और पित्र्य कर्म में दिन का पाँच भाग करने पर चौथे भाग रूपी अपराह्णव्यापिनी ग्राह्य है । मन्वादि तिथियों में बिना पिण्ड का श्राद्ध करना चाहिये । मन्वादि तिथियों में श्राद्ध करने से दो हजार वर्षों तक पितरों की तृप्ति होती है । मन्वादिश्राद्ध नित्य है इसीलिये उसके न करने से 'त्वं भुवः प्रतिमानम्" इस ऋग्वेद के मन्त्र का १०० वार जल में खड़ा होकर जपरूप प्रायश्चित्त करना चाहिये ।

अथ षण्णवतिश्राद्धसंख्या

एवं षण्णवतिश्राद्धान्यपि नित्यानि । तानि च—

अमा१२युग४मनु१४क्रान्ति१२धृति१२पात१२महालयाः१५ ।

अष्टका५ऽन्वष्टका५पूर्वेद्युः५श्राद्धैर्नवतिश्च षट् ॥ इति ज्ञेयानि ।

मन्वादि श्राद्ध की तरह छयानवे श्राद्ध भी नित्य हैं । वे बारह अमावस्यायें, चार युगादि तिथि, चौदह मन्वादि तिथि, बारह संक्रान्ति, बारह वैधृति, बारह व्यतिपात, पन्द्रह महालय, पाँच अष्टका, पाँच अन्वष्टका और पाँच पूर्वेद्युः श्राद्धों से छयानवे श्राद्धों को जानना चाहिये ।

अथ दशावतारजयन्त्यः

चैत्रशुक्लतृतीयायामपराह्णे [3]मत्स्योत्पत्तिः । वैशाखपूर्णिमायां सायं कूर्मोत्पत्तिः । भाद्रपदशुक्लतृतीयायामपराह्णे वराहोत्पत्तिः । वैशाखशुक्लचतुर्दश्यां सायं नारसिंहावतारः । भाद्रपदशुक्लद्वादश्यां मध्याह्ने वामनप्रादुर्भावः । वैशाखशुक्लतृतीयायां मध्याह्ने परशुरामोद्भवः । प्रदोषे इति बहवः । चैत्रशुक्लनवम्यां मध्याह्ने दाशरथिरामव्यक्तिः । श्रावणकृष्णाष्टम्यां निशीथे श्रीकृष्णाविर्भावः । आश्विनशुक्लदशम्यां सायं बुद्धोऽभूत् । श्रावणशुक्लषष्ठ्यां सायं कल्किर्जात इति तत्तत्कालव्यापिन्यो ग्राह्याः ।

---

१. स्मृतिचन्द्रिका में मलमास होने पर दोनों मास में मन्वादिश्राद्ध करने के लिये कहा— 'मन्वादिकं तैर्थिकं च कुर्यान्मासद्वयेऽपि च ।' इति ।

२. ऋग्वेदसंहिता के प्रथमाष्टक चतुर्थाध्याय में संपूर्ण मंत्र यों है—'त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिर्भूः । विश्वमाप्रा अन्तरिक्षं महित्वा सत्यमद्धा न किरन्यस्त्वावान् ॥' इति ।

३. पुराणसमुच्चय में दशावतार के जयन्तीनिर्णय के मूलवचन यों हैं—'मत्स्योऽभूद् हुतभुग्दिने मधुसिते कूर्मो विधौ माधवे वाराहो गिरिजासुते नभसि यद् भूते सिते माधवे । सिंहो भाद्रपदे सिते हरितिथौ श्रीवामनो माधवे रामो गौरितिथावतः परमभूद् रामो नवम्यां मधोः ॥ कृष्णोऽष्टम्यां नभसि सितपरे चाश्विने यद्दशम्यां बुद्धः कल्की नभसि समभूच्छुक्लषष्ठ्यां क्रमेण । अह्नो मध्ये वामनो रामरामौ मत्स्यः क्रोडश्चापराह्णे विभागे । कूर्मः सिंहो बौद्धकल्की च सायं कृष्णो रात्रौ कालसाम्ये च पूर्वे ॥' इति ।

चैत्रशुक्ल तृतीया अपराह्न में मत्स्य भगवान् अवतीर्ण हुये। वैशाख पूर्णिमा में सायंकाल भगवान् कूर्म उत्पन्न हुये। भाद्रपदशुक्ल तृतीया अपराह्न में वराह भगवान् का उद्भव हुआ। वैशाख शुक्लपक्ष चतुर्दशी सायंकाल में नरसिंह भगवान का अवतार हुआ। भाद्रपद शुक्ल द्वादशी मध्याह्न में वामन भगवान् की उत्पत्ति हुई। वैशाखशुक्ल तृतीया मध्याह्न में परशुराम भगवान् का अवतार हुआ। बहुत लोग प्रदोष में इनका जन्म कहते हैं। चैत्रशुक्ल नवमी मध्याह्न में दशरथ के पुत्र श्रीरामचन्द्र प्रकट हुये। श्रावण कृष्णाष्टमी आधी रात में भगवान् कृष्णचन्द्र का आविर्भाव हुआ। आश्विनशुक्ल दशमी में बुद्ध पैदा हुये। श्रावण शुक्ल षष्ठी सायंकाल कल्कि भगवान् का जन्म हुआ। इस प्रकार जिस काल में जिनका जन्म हुआ तत्कालव्यापिनी तिथियाँ उन उनके जयन्ती में ले।

अत्र मत्स्यकूर्मवराहबुद्धकल्कीनामाषाढादिमासान्तराणि एकादश्यादितिथ्यन्तराणि प्रातरादिकालान्तराणि च वचनान्तरानुसारेणोक्तानि कल्पभेदेन व्यवस्थापनीयानि स्वस्वपरिगृहीतपक्षानुसारेण तत्तदुपासकैरुपोष्याणि। श्रीरामकृष्णनृसिंहजयन्त्य एव नित्याः सर्वैरुपोष्याः।

यहाँ मत्स्य, कूर्म, वराह, बुद्ध और कल्कि भगवान् का जन्म-दिन आषाढ़ आदि दूसरे महीने, एकादशी आदि दूसरी तिथियाँ, प्रातः आदि काल दूसरे वचनों के अनुसार कहे हैं। इनकी व्यवस्था कल्पभेद से करें। अपने ग्रहण किये पक्ष के अनुसार उन-उन देवताओं के उपासक लोग उपवास करें। श्रीराम कृष्ण और नरसिंह की जयन्तियाँ ही नित्य हैं। अतः उस दिन सबको उपवास करना चाहिये।

अथ गणेशदमनकचतुर्थी

चैत्रशुक्लचतुर्थ्यां मध्याह्नव्यापिन्यां लड्डुकादिभिः श्रीगणेशमर्चयित्वा दमनकारोपणं कुर्यात्। विघ्ननाशं सर्वान्कामान्प्राप्नुयात्।

मध्याह्नव्यापिनी चैत्रशुक्ल चतुर्थी में लड्डुओं से श्री गणेश का पूजन कर दमनक चढ़ावे। ऐसा करने से सम्पूर्ण मनोरथ की सिद्धि और विघ्ननाश होता है।

अथ पञ्चम्यां व्रतानि

चैत्रशुक्लपञ्चम्यामनन्तादिनागान्पूजयित्वा क्षीरसर्पिर्नैवेद्यं दद्यात्। अस्यामेव पञ्चम्यां लक्ष्मीपूजनम्। अत्रैव चोच्चैःश्रवादिपूजनात्मकं हयव्रतमुक्तम्। अत्र सर्वत्र पञ्चमी सामान्यनिर्णयानुसारेण ग्राह्या। एवमग्रेऽपि यत्र विशेषनिर्णयो नोच्यते तत्र प्रथमपरिच्छेदोक्त एव निर्णयोऽनुसंधेयः। षष्ठ्यां स्कन्दस्य दमनकारोपणम्। सप्तम्यां भास्करस्य दमनकपूजा नवम्यां देव्याः सर्वदेवानां पौर्णमास्यामित्यन्यत्र विस्तरः।

चैत्रशुक्ल पञ्चमी में अनन्त प्रभृति नागों की पूजा करके नैवेद्य में दूध, घी देवे। इसी पञ्चमी में लक्ष्मी पूजन होता है। इसी दिन उच्चैःश्रवादि का पूजनात्मक हयव्रत कहा है। इन सब जगहों में सामान्य निर्णय के अनुसार पञ्चमी ग्राह्य है। इसी प्रकार आगे भी जहां विशेष निर्णय नहीं कहा गया है वहाँ प्रथमपरिच्छेद का कहा हुआ निर्णय ही समझना चाहिये। स्कन्द भगवान् को दमनक (दवना) चढ़ाना षष्ठी में, सूर्यनारायण का दवने से पूजन सप्तमी में और देवी का नवमी में करे। सब देवताओं का पूर्णिमा में दमनक से पूजन करना चाहिये। यह बात दूसरे ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक कहा है।

चैत्रशुक्लाष्टम्यां भवान्या[1] उत्पत्तिः। तत्र नवमीयुता ग्राह्या। अत्र पुनर्वसु-युताष्टम्याम् अष्टाशोककलिकाप्राशनम्। तत्र मन्त्रः—

त्वामशोकनराभीष्ट मधुमाससमुद्भव।
पिबामि शोकसंतप्तो मामशोकं सदा कुरु॥ इति।

श्रीभवानी की उत्पत्ति चैत्रशुक्ल अष्टमी में है। उसमें नवमीयुक्त अष्टमी ग्राह्य है। इसमें पुनर्वसु नक्षत्रयुक्त अष्टमी में आठ अशोक की कलियों का भक्षण करना चाहिये। उसके मन्त्र का अर्थ यह है—हे अशोक! चैत्रमास में उत्पन्न होने वाले! आपको शोक से सन्तप्त होकर, हे मनुष्यों के अभीष्ट सिद्धि देने वाले मुझे सर्वदा शोक रहित करें।

अथ वाजपेयफलस्नानयोगः

अत्रैव योगविशेषे कृत्यम्—

पुनर्वसुबुधोपेता चैत्रे मासि सिताष्टमी।
प्रातस्तु विधिवत्स्नात्वा वाजपेयफलं लभेत्॥ इति।

यहीं पर योग विशेष होने से कृत्य कहते हैं—चैत्रमास के शुक्ल अष्टमी में पुनर्वसु नक्षत्र और बुधवार हो तो प्रातःकाल सविधि स्नान करने से वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त होता है।

अथ रामनवमीनिर्णयः

चैत्रशुक्लनवमी [2]रामनवमी, चैत्रशुक्लनवम्यां पुनर्वसुयुतायां मध्याह्ने

---

१. चैत्रशुक्ल अष्टमी में दुर्गा की १०८ बार प्रदक्षिणा करने की विधि स्कन्दपुराण में है—'चैत्राष्टम्यां महायात्रां भवान्याः कारयेत् सुधीः। अष्टाधिकाः प्रकर्तव्याः शतकृत्वः प्रदक्षिणाः॥ प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपवती मही। सशैला ससमुद्रा च साश्रमा च सकानना॥ कुर्याज्जागरणं रात्रौ महाष्टम्यां व्रती नरः। प्रातर्भवानीमभ्यर्च्य प्राप्नुयाद् वाञ्छितं फलम्॥' इति।

काशीखण्ड में भवानी अन्नपूर्णा का दर्शन एवं यात्रा का वर्णन है—'भवानीं यश्च पश्येत् शुक्लाष्टम्यां मधौ नरः। न जातु शोकं लभते सदानन्दमयो भवेत्॥' ब्रह्मवैवर्तके—'अष्टमी नवमीयुक्ता नवमी चाष्टमीयुता।' इस वचन से अष्टमी नवमीयुता होनी चाहिये। लिङ्गपुराण का वचन है कि अष्टमी में अशोककलिका का प्राशन करे—'अशोककलिकाश्चाष्टौ ये पिबन्ति पुनर्वसौ। चैत्रे मासि सिताष्टम्यां न ते शोकमवाप्नुयुः॥' इति।

कालिकापुराण में ब्रह्मपुत्रनद में स्नान का विधान कहा—'चैत्रे मासि सिताष्टम्यां यो नरो नियतेन्द्रियः। स्नायाल्लौहित्यतोयेषु स याति ब्रह्मणः पदम्॥ चैत्रं तु सकलं मासं शुचिः प्रयतमानसः। लौहित्यतोये यः स्नायात् स कैवल्यमवाप्नुयात्॥' स्नानमन्त्रः—'ब्रह्मपुत्र महाभाग शन्तनोः कुलसम्भव। अमोघागर्भसम्भूत पापं लौहित्य मे हर॥' लौहित्य ब्रह्मपुत्र का नाम है। कालिकापुराण में—'लोहितात्सरसो जातो लौहित्याख्यस्ततोऽर्थवत्।' इति।

२. अगस्त्यसंहिता में भगवान् श्रीराम के जन्म का वर्णन—"चैत्रे नवम्यां प्राक्पक्षे दिवा पुण्ये पुनर्वसौ। उदये गुरुगौरांश्वोः स्वोच्चस्थे ग्रहपञ्चके॥ मेषं पूषणि सम्प्राप्ते लग्ने कर्कटकाह्वये। आविरासीत् स कलया कौसल्यायां परः पुमान्॥ तस्मिन् दिने तु कर्तव्यमुपवासव्रतं सदा। तत्र जागरणं कुर्याद् रघुनाथपरो भुवि॥ प्रातर्दशम्यां कृत्वा तु सन्ध्याद्याः कालिकाः क्रियाः। सम्पूज्य विधिवद्रामं भक्त्या वित्तानुसारतः॥ ब्राह्मणान् भोजयेद् हुत्वा दक्षिणाभिश्च तोषयेत्। रामभक्तान् प्रयत्नेन प्रीणयेत् परया मुदा॥ एवं यः कुरुते भक्त्या श्रीरामनवमीव्रतम्। अनेकजन्मसिद्धानि पातकानि दहत्यपि॥ भस्मीकृत्य व्रजन्त्येव तद्विष्णोः परमं पदम्। सर्वेषामप्ययं धर्मो भुक्तिमुक्त्यैकसाधनम्। यस्तु रामनवम्यां तु भुङ्क्ते स च नराधमः॥ कुम्भीपाकेषु घोरेषु पच्यते नात्र संशयः।" इति। विशिष्टपूजा अन्यत्र देखें।

कर्कलग्ने मेषस्थे सूर्ये उच्चस्थे ग्रहपञ्चके श्रीरामजन्मश्रवणात् । अस्यां मध्याह्नव्यापिन्यामुपोषणं कार्यम् । पूर्वेद्युरेव मध्याह्ने सत्त्वे सैव ग्राह्या । दिनद्वये मध्याह्नव्याप्तौ वा परा, [1]अष्टमीविद्धाया निषेधात् । अतः पूर्वेद्युः सकलमध्याह्नव्यापिनीमपि त्यक्त्वा मध्याह्नैकदेशव्यापिन्यपि परैव ग्राह्या ।

चैत्रशुक्ल नवमी में रामनवमी होती है, पुनर्वसुनक्षत्र युक्त चैत्रशुक्ल नवमी के मध्याह्न कर्कलग्न और मेष के सूर्य में उच्च के पांच ग्रह के होने पर श्रीरामचन्द्र के जन्म श्रवण से। इसी मध्याह्नव्यापिनी नवमी में उपवास करना चाहिये । पहले ही दिन मध्याह्न में यदि नवमी हो तो उसी का ग्रहण करे । दो दिन में मध्याह्नव्यापिनी नवमी हो अथवा दोनों दिन मध्याह्न में नवमी न हो तो अष्टमी विद्धा के निषेध के कारण परा नवमी लेनी चाहिये। इसलिये पहले दिन सम्पूर्ण मध्याह्नव्यापिनी नवमी को छोड़कर मध्याह्न के एकदेश में रहने वाली परा नवमी ग्राह्य है ।

केचित्त्वष्टमीविद्धां मध्याह्नव्यापिनीं पुनर्वसुयुतामपि त्यक्त्वा परेद्युस्त्रिमुहूर्तापि नवमी सर्वैरप्युपोष्या । यदि तु दशम्या ह्रासवशेन पारणादिने स्मार्तानामेकादशीव्रतप्राप्तिस्तदा स्मार्तैरष्टमीविद्धोपोष्या, वैष्णवैर्मुहूर्तत्रययुता परैवोपोष्या । शुद्धाया नवम्या अलाभे मुहूर्तत्रयन्यूनत्वे वा सर्वैरपि अष्टमीविद्धैवोपोष्येत्याहुः । इदं व्रतं नित्यं काम्यं च ।

कोई तो अष्टमीविद्धा मध्याह्नव्यापिनी पुनर्वसुनक्षत्रयुक्ता को भी छोड़कर दूसरे दिन त्रिमुहूर्ता भी नवमी सब लोगों के उपवासयोग्या है । यदि दशमी के क्षीण होने से पारणा के दिन स्मार्तों की एकादशी पड़ती हो तो स्मार्तों को अष्टमीविद्धा में ही उपवास करना चाहिये । वैष्णवों को तीन मुहूर्त युक्त परा नवमी में उपवास करना चाहिये । शुद्धा नवमी के न मिलने पर या तीन मुहूर्त से कम होने पर सबको अष्टमीविद्धा में ही उपवास करना चाहिये, ऐसा कहते हैं । यह व्रत नित्य और काम्य भी है ।

अथ व्रतप्रयोगः

अष्टम्यामाचार्यं संपूज्य—

श्रीरामप्रतिमादानं करिष्येऽहं द्विजोत्तम ।
तत्राचार्यो भव प्रीतः श्रीरामोसि त्वमेव मे ॥ इति प्रार्थ्य,
नवम्या अङ्गभूतेन एकभक्तेन राघव ।
इक्ष्वाकुवंशतिलक प्रीतो भव भवप्रिय ॥

इत्येकभक्तं संकल्प्य साचार्यो हविष्यं भुञ्जीत । पूजामण्डपं तत्र वेदिं च कृत्वा नवम्यां प्रातः—

उपोष्य नवमीं त्वद्य यामेष्वष्टसु राघव ।
तेन प्रीतो भव त्वं मे संसारात् त्राहि मां हरे ॥ इत्युपोषणं संकल्प्य,

---

१. अगस्त्यसंहितायाम्—'नवमी चाष्टमीविद्धा त्याज्या विष्णुपरायणैः । उपोषणं नवम्यां च दशम्यां चैव पारणम् ॥' इति ।

अष्टमी के दिन आचार्य की पूजा करके आचार्य से प्रार्थना करे-'हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! मैं श्रीरामचन्द्र की प्रतिमा का दान करूँगा, उसमें आप प्रसन्नतापूर्वक आचार्य हों। मेरे आप ही श्रीराम हैं।' ऐसी प्रार्थना कर, नवमी के अङ्ग एकभक्त से 'हे इक्ष्वाकुवंशतिलक ! हे संसार के प्रिय रामचन्द्र ! आप प्रसन्न हों' इस प्रकार एकभक्त का सङ्कल्प करके, आचार्य के सहित अष्टमी हविष्य का भोजन करे। पूजा के मण्डप में वेदी बनाकर नवमी के प्रातःकाल—'हे राघवेन्द्र ! आज किये हुये आठों प्रहर के उपवासव्रत से मेरे ऊपर प्रसन्न हों तथा संसार से मेरी रक्षा करें' इस प्रकार उपवास का संकल्प करके।

इमां स्वर्णमयीं राम प्रतिमां स्वां प्रयत्नतः।
श्रीरामप्रीतये दास्ये रामभक्ताय धीमते॥

इति प्रतिमादानं संकल्पयेत्। 'श्रीरामनवमीव्रताङ्गभूतां षोडशोपचारैः श्रीरामपूजां करिष्ये, इति संकल्प्य वेदिकायां सर्वतोभद्रे कलशं संस्थाप्य तत्र पूर्णपात्रे सवस्त्रेऽग्न्युत्तारणादिविधिना प्रतिमायां श्रीरामं प्रतिष्ठाप्य पुरुषसूक्तेन षोडशोपचारैः संपूज्य पूजान्ते—

रामस्य जननी चासि रामात्मकमिदं जगत्।
अतस्त्वां पूजयिष्यामि लोकमातर्नमोस्तु ते॥

इति कौसल्यां संपूज्य 'ॐ नमो दशरथाय' इति दशरथं संपूज्य सर्वपूजां समाप्य मध्याह्ने फलपुष्पजलादिपूर्णेन शङ्खेनार्घ्यं दद्यात्। तत्र मन्त्रः—

दशाननवधार्थाय धर्मसंस्थापनाय च।
दानवानां विनाशाय दैत्यानां निधनाय च॥
परित्राणाय साधूनां जातो रामः स्वयं हरिः।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं भ्रातृभिः सहितोऽनघ॥ इति।

'इस सोने की राम प्रतिमा को राम की प्रसन्नता के लिये बुद्धिमान् राम भक्त को दूँगा' ऐसा कहकर, राम की मूर्तिके दान का संकल्प करे—'श्रीरामनवमी व्रतकी अङ्गस्वरूप श्रीरामकी पूजा सोलहों उपचारों से करूँगा' ऐसा संकल्पकर सर्वतोभद्रवेदी पर कलश की स्थापना करे। उसमें वस्त्रसहित पूर्ण पात्रमें अग्न्युत्तारण विधि से प्रतिमा में श्रीराम की प्रतिष्ठा करके पुरुषसूक्त की मंत्रों से षोडशोपचारों से अच्छी तरह पूजा करके पुष्पपूजा के अन्त में यह कहे कि-'यह संसार राममय है और आप रामकी माता हैं इसीलिये मैं आप की पूजा करूँगा। हे संसार की माँ कौसल्या जी आपको नमस्कार है' इ मन्त्र से कौसल्या की अच्छी तरह पूजा कर 'ओं नमो दशरथाय' यह कहकर दशरथ की पूजा कर, सब पूजा समाप्त करके मध्याह्न में फल पुष्प जलादि से पूर्ण शंख से अर्घ्य देवे। अर्घ्य देने में यह मन्त्र कहे—'रावण को मारने के लिये, धर्म की स्थापना के लिये, दानवों के विनाश के लिये तथा दैत्यों को मारने के लिये और साधुओं के रक्षार्थ स्वयं विष्णु राम रूप से उत्पन्न हुये। ऐसे आप भाइयों के सहित मेरे दिये हुए अर्घ्य को ग्रहण करें।'

रात्रौ जागरणं कृत्वा प्रातर्नित्यपूजां विधाय मूलमन्त्रेण पायसाष्टोत्तरशताहुतीर्हुत्वा पूजां विसृज्याचार्याय प्रतिमां दद्यात्—

इमां स्वर्णमयीं राम प्रतिमां समलंकृताम्।
शुचिवस्त्रयुगच्छन्नां रामोऽहं राघवाय ते॥

श्रीरामप्रीतये दास्ये तुष्टो भवतु राघवः। इति मन्त्रः।
तव प्रसादं स्वीकृत्य क्रियते पारणा मया।
व्रतेनानेन संतुष्टः स्वामिन् भक्ति प्रयच्छ मे ॥

इति प्रार्थ्य नवम्यन्ते पारणां कुर्यात्। इदं व्रतं मलमासे न कार्यम्। एवं जन्माष्टम्यादिव्रतमपि न कार्यम्। अस्यामेव [1]नवम्यां देवीनवरात्रसमाप्तिः कार्या। एतन्निर्णय [2]आश्विनवरात्रनवमीवत्।

रात्रि-जागरण करके प्रातःकाल मूलमन्त्र से नित्य पूजा करके खीर की १०८ आहुति का हवन कर पूजा का विसर्जन करके आचार्य को श्रीराम-प्रतिमा इस मंत्र से दे देवे—'इस सोने की पूर्ण अलंकृत राम-प्रतिमा शुद्ध दो वस्त्रों से ढकी हुई को श्रीराम की प्रसन्नता के लिये स्वयं रामरूप मैं राघवस्वरूप आप (आचार्य) को दूंगा, इससे रामचन्द्र प्रसन्न हों आपके प्रसाद को स्वीकार कर मैं पारणा करता हूँ। हे नाथ ! इस व्रत से प्रसन्न होकर अपनी भक्ति मुझे दो' ऐसी प्रार्थना करके नवमी के अन्त में पारण करे। इस व्रत को मलमास में नहीं करना चाहिये। इसी तरह से जन्माष्टमी आदि व्रत भी मलमास में नहीं करे। इस नवमी में देवी नवरात्र की समाप्ति करनी चाहिये। इसका निर्णय आश्विन के नवरात्र की नवमी की तरह है।

अथ श्रीकृष्णान्दोलनोत्सवः

चैत्रशुक्लैकादश्यां श्रीकृष्णस्यान्दोलनोत्सवः[3]—

दोलारूढं प्रपश्यन्ति कृष्णं कलिमलापहम्।
अपराधसहस्रैस्तु मुक्तास्ते धूनने कृते ॥
तावत्तिष्ठन्ति पापानि जन्मकोटिकृतान्यपि।
क्रीडन्ते विष्णुना सार्धं वैकुण्ठे देवपूजिताः ॥

इत्यादिकस्तन्महिमा चैत्रशुक्लद्वादश्यां विष्णोर्दमनोत्सवः[4]। स च पारणाहे।

पारणाहे न लभ्येत द्वादशी घटिकापि चेत्।
तदा त्रयोदशी ग्राह्या पवित्रदमनार्पणे ॥ इत्युक्तेः।

शिवस्य[5] तु चतुर्दश्यां कार्यः।

---

१. देवीपुराण के—'आश्विने वाऽथवा माघे चैत्रे वा श्रावणेऽपि वा' इस वचन से इन चार मास में नवरात्रव्रत कर्तव्य है इसलिये चैत्र नवरात्र नवमी में भी भगवती की पूजा आदि सभी कार्य आश्विन नवरात्र की तरह करें। ब्रह्मपुराणे—'चैत्रशुक्लनवम्यां च भद्रकाली महाबला। योगिनीनां तु सर्वासामाधिपत्ये विनिश्चिता ॥ तस्मात्तां पूजयेत्तत्र सोपवासो जितेन्द्रियः। विचित्रैर्बलिभिर्भक्त्या सर्वासु नवमीषु च ॥' इति।

२. मार्कण्डेयपुराणे—'शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी। वसन्तकाले सा प्रोक्ता कार्या सर्वैः शुभार्थिभिः ॥' इति।

३. ब्राह्म में दोलोत्सव—'चैत्रमासस्य शुक्लायामेकादश्यां तु वैष्णवैः। आन्दोलनीयो देवेशः सलक्ष्मीको महोत्सवैः ॥' इति।

४. 'दवना' इस नाम की प्रसिद्ध वनौषधि। ५. श्रीशिवस्य दमनोत्सवश्चतुर्दश्यां विधेय इत्यर्थः।

चैत्रशुक्ल एकादशी में श्रीकृष्ण भगवान् के झूले का उत्सव होता है। झूले पर चढ़े हुए कलिमलापहारी श्रीकृष्ण भगवान् को जो देखते हैं तथा झूलाते है वे हजारों अपराधों से छूट जाते हैं। करोड़ों जन्म के किये पाप तभी तक रहते हैं जब तक झूने पर चढ़े हुए भगवान् को नहीं देखते और वैकुण्ठ में देवताओं से पूजित होते हुए भगवान् विष्णु के साथ क्रीड़ा करते हैं। इत्यादि उसका माहात्म्य कहा गया है। चैत्रशुक्ल द्वादशी में विष्णु भगवान् का दमनोत्सव होता है, वह भी पारणा के दिन। पारणा के दिन यदि द्वादशी घड़ी भर भी न मिले तभी पवित्रार्पण तथा दमनार्पण के लिये त्रयोदशी ग्राह्य है। शिव जी का दमनोत्सव तो चतुर्दशी में करना चाहिये।

अथ दमनारोपणप्रयोगः

उपवासदिने नित्यपूजां कृत्वा दमनकस्थानं गत्वा क्रयेण तमादाय चन्दनादिना संपूज्य 'श्रीकृष्णपूजार्थं त्वां नेष्ये' इति प्रार्थ्य प्रणमेत्। अन्यदेवतासु यथादैवतमूहः। ततो दमनकं गृहमानीय पञ्चगव्येन शुद्धोदकेन च प्रक्षाल्य देवाग्रे स्थापयित्वा तस्मिन् दमनके अशोककालवसन्तकामान् काममात्रं वा गन्धादिभिः पूजयेत्। तत्र—

नमोस्तु पुष्पबाणाय जगदाह्लादकारिणे।
मन्मथाय जगन्नेत्रे रतिप्रीतिप्रियाय ते॥ इति कामावाहनमन्त्रः।
कामभस्मसमुद्भूत रतिबाष्पपरिप्लुत।
ऋषिगन्धर्वदेवादिविमोहक नमोस्तुते॥

इति दमनकमुपस्थाय 'ॐकामाय नम' इति मन्त्रेण सपरिवाराय कामरूपिणे दमनकाय गन्धाद्युपचारान् दद्यात्।

उपवास के दिन नित्य पूजा करके दवने की जगह जाकर या खरीद कर उसे लाकर चन्दन आदि से पूजा करके 'श्रीकृष्ण की पूजा के लिये तुमको ले चलते हैं' ऐसी प्रार्थना कर दवने को प्रणाम करे। अन्य देवताओं को चढ़ाना हो तो उनके नाम की कल्पना करे। इसके बाद दवने को घर लाकर पञ्चगव्य और शुद्धजल से धोकर, देवता के आगे रखकर, उसी दवने में अशोक, काल, वसन्त, कामदेव या केवल कामदेव का गन्ध आदि से पूजन करे। काम के आवाहन का—'नमोऽस्तु पुष्पबाणाय' इत्यादि मन्त्र है। 'कामभस्म समुद्भूत' इस मन्त्र से दमनकका उपस्थान करके 'ओं कामाय नम.' इस मन्त्र से सपरिवार कामरूपी दवने को गन्धादि उपचार देवे।

ततो रात्रौ देवं संपूज्याधिवासनं कुर्यात्। तदित्थम्—देवाग्रे सर्वतोभद्रं संपाद्य तत्र कलशं संस्थाप्य तत्र धौतवस्त्राच्छन्नं दमनकं वैणवपटले स्थापितं निधाय—

पूजार्थं देवदेवस्य विष्णोर्लक्ष्मीपतेः प्रभोः।
दमन त्वमिहागच्छ सांनिध्यं कुरु ते नमः॥

इति दमनकदेवतामावाह्य प्रागाद्यष्टदिक्षु क्लीं कामदेवाय नमो ह्रीं रत्यै नमः १ क्लीं भस्मशरीराय नमो ह्रीं रत्यैनमः २ क्लीं अनङ्गाय नमो ह्रीं रत्यै० ३ क्लीं मन्मथाय नमो ह्रीं रत्यै० ४ क्लीं वसन्तसखाय नमो ह्रीं रत्यै० ५ क्लीं स्म-

राय नमो ह्रीं रत्यै० ६ क्लीं इक्षुचापाय नमो ह्रीं रत्यै० ७ क्लीं पुष्पबाणास्त्राय नमो ह्रीं रत्यै० ८ इति पूजयेत्। तत्पुरुषाय विद्महे कामदेवाय धीमहि। तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात्। इति गायत्र्या दमनकमष्टोत्तरशतमभिमन्त्र्य गन्धादिभिः संपूज्य ह्रीं नम इति पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा 'नमोस्तु पुष्पबाणाय' इति पूर्वोक्तावाहन-मन्त्रेण नमेत्।

उसके बाद रात में देवता की पूजा करके अधिवासन करे। वह इस तरह करे—देवताके आगे सर्वतोभद्र बनाकर, उस पर कलशस्थापित करके उसपर धुले हुए वस्त्र से ढके और बाँस के पत्ते पर रखे हुये दवने को रख कर 'देवदेव लक्ष्मीपति प्रभु विष्णु के सन्निधि में हे दमनक ! तुम यहाँ आओ तुमको नमस्कार है।' इससे दमनक देवता का आवाहन करके पूर्व आदि आठ दिशाओं में 'क्लीं कामदेवाय नमो ह्रीं रत्यै नमः' इत्यादि मूल में उल्लिखित इन आठ मन्त्रों से पूजा करे। 'तत्पुरुषाय विद्महे' इत्यादि गायत्री से दमनक को १०८ बार अभिमन्त्रित करके और गन्धादि से पूजन कर 'ह्रीं नमः' इस मन्त्र से पुष्पाञ्जलि देकर 'नमोऽस्तु पुष्पबाणाय' पूर्वोक्त इस आवाहन मन्त्र से प्रणाम करे।

क्षीरोदधिमहानाग शय्याऽवस्थितविग्रह।
प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सन्निधौ भव ते नमः॥

इति देवं प्रार्थ्य पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा तस्यामेकादश्यां रात्रौ जागरणं कुर्यात्। प्रातर्नित्यपूजां कृत्वा पुनर्देवं संपूज्य दूर्वागन्धाक्षतयुतां दमनकमञ्जरीमादाय मूलमन्त्रं पठित्वा।

देवदेव जगन्नाथ वाञ्छितार्थप्रदायक।
हृत्स्थान्पूरय मे विष्णो कामान् कामेश्वरीप्रिय॥
इदं दमनकं देव गृहाण मदनुग्रहात्।
इमां सांवत्सरीपूजां भगवन्परिपूरय॥

'क्षीरोदधि' इत्यादि मन्त्र से देवता की प्रार्थना करके पुष्पाञ्जलि देकर, उस एकादशी की रात में जागरण करे। प्रातःकाल नित्यपूजा करके फिर देवता की पूजा कर दूब, गन्ध और अक्षत से युक्त दमनक की मञ्जरी को लेकर मूलमन्त्र पढ़ कर 'देव देव जगन्नाथ' इत्यादि श्लोकों को पढ़े।

पुनर्मूलं जप्त्वा देवे दमनमर्पयेत्। ततो यथाशोभं दत्त्वाऽङ्गदेवताभ्यो देवं प्रार्थयेत्—

मणिविद्रुममालाभिर्मन्दारकुसुमादिभिः।
इयं सांवत्सरीपूजा तवास्तु गरुडध्वज॥
वनमालां यथादेव कौस्तुभं सततं हृदि।
तद्वद्दामनकीं मालां पूजां च हृदये वह॥
जानताऽजानता वापि न कृतं यत्तवार्चनम्।
तत्सर्वं पूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाद्रमापते॥

जितं ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन ।
हृषीकेश नमस्तेऽस्तु महापुरुषपूर्वज ॥

मन्त्रहीनं क्रियाहीनमित्यादि च संप्रार्थ्य पञ्चोपचारैर्देवं संपूज्य नीराज्य ब्राह्मणेभ्यो दमनं दत्त्वा स्वयं शेषं संधार्य सुहृद्युतः पारणां कुर्यात् ।

पुनः मूलमन्त्र का जप करके देवता पर दमनक को अर्पण करे। तदनन्तर शोभानुसार अङ्ग-देवताओं को देकर प्रार्थना करे—'मणि मूँगा की मालाओं और मन्दार के पुष्पों से हे गरुडध्वज ! यह वार्षिकी पूजा आप की हो। हे देव ! जैसे आप वनमाला और कौस्तुभमणि को निरन्तर हृदय में धारण करते हैं उसी प्रकार दवने की माला और पूजा को हृदय में रखें। हे रमापते ! मैंने जानकर या विना जाने आप का पूजन नहीं किया हो वह सब आप की प्रसन्नता से पूर्ण हो। हे पुण्डरीकाक्ष ! आप की जय हो। हे विश्वभावन ! आप को नमस्कार है। हे महापुरुष ! हे पूर्वज ! हे हृषीकेश ! आप को नमस्कार है।' इससे तथा 'मंत्रहीनं क्रियाहीनम्' इत्यादि मन्त्र से प्रार्थना कर पञ्चोपचार से देवता की पूजा कर आरती उतार ब्राह्मणों को दमनक देकर बचे हुये दमनक को मित्रों से युक्त स्वयं धारण कर पारण करे।

मन्त्रदीक्षारहितैर्नाम्नाऽर्पणीयम् । अस्य गौणकालः श्रावणमासावधिः । नेदं मलमासे भवति । [1]शुक्रास्तादौ तु कर्तव्यम् । इति दमनारोपणविधिः ।

अस्यामेव भारते—

अहोरात्रेण द्वादश्यां चैत्रे विष्णुरिति स्मरन् ।
पौण्डरीकमवाप्नोति देवलोकं च गच्छति ॥ इति ।

मन्त्रदीक्षा से रहित लोगों को नाम से अर्पण करना चाहिये। इसका गौण-समय श्रावण-मास तक है। यह मलमास में नहीं होता। शुक्रास्त आदि में तो करना चाहिये। इसी में भारत में—'चैत्र द्वादशी में दिनरात विष्णु का स्मरण करते हुये विष्णु को पाता है और देव लोक को जाता है।'

अथ अनङ्गपूजनव्रतम्

चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां अनङ्गपूजनव्रतम् । तत्र त्रयोदशी पूर्वविद्धा ग्राह्या ।

इसी प्रकार चैत्रशुक्ल त्रयोदशी में अनङ्गपूजनव्रत होता है। उसमें पूर्वविद्धा त्रयोदशी ग्राह्य है।

अथ नृसिंहदोलोत्सवः

अथ चतुर्दश्यां नृसिंहस्य दोलोत्सवः । अत्रैव श्रीशिवस्यैकवीराया भैरवस्य च दमनकैः पूजनम । अत्र च चतुर्दशी पूर्वविद्धाऽपराह्णव्यापिनी ग्राह्या । अपराह्णव्याप्त्यभावेऽपराह्णस्पर्शिन्यपि पूर्वा ग्राह्या । तदभावे परा ग्राह्या । चैत्रपौर्णमासी सामान्यनिर्णयात्परा ग्राह्या । पूर्वोक्ततत्तत्तिथौ दमनकपूजनाकरणेऽस्यामेव सर्वदेवानां दमनपूजनम् । चैत्र्यां चित्रायुतायां चित्रवस्त्रदानं सौभाग्यदम् । रविगुरु-मन्दवारयुतचैत्र्यां स्नानश्राद्धादिभिरश्वमेधपुण्यम् ।

---

१. ज्योतिर्निबन्ध में वृद्धगार्ग्य—'उपाकर्मोत्सर्जनं च पवित्रदमनार्पणम् । ईशानस्य बलिं विष्णोः शयनं परिवर्तनम् । कुर्याच्छुक्रस्य च गुरोर्मौढ्येऽपीति विनिश्चयः ॥' इति ।

चतुर्दशी में नृसिंह का झूलोत्सव होता है। इसीमें श्रीशिव की एकवीरा और भैरव की दमनक से पूजा होती है। इसमें चतुर्दशी अपराह्णव्यापिनी पूर्वविद्धा लेनी चाहिये। अपराह्ण में न मिलने पर अपराह्ण को स्पर्श करने वाली भी पूर्वा ग्राह्य है। अन्यथा परा लेनी चाहिये। चैत्र की पूणिमा सामान्यनिर्णय से परा ग्राह्य है। पहले कही हुई उन-उन तिथियों में दमनक की पूजा न करने पर इसी चैत्रपूर्णिमा में सभी देवताओं की पूजा दमनक से होती है। चित्रानक्षत्र युक्त चैत्र की पूर्णिमा में चितकबरे वस्त्र का दान सौभाग्यदायक होता है। रवि, गुरु और शनिवार युक्त चैत्रपूर्णिमा में स्नान श्राद्धादि करने से अश्वमेध यज्ञ करने का फल होता है।

अथ वैशाखस्नानविधिः

चैत्रस्य शुक्लैकादश्यां पौर्णमास्यां वा [1]मेषसंक्रान्तिमारभ्य वा वैशाखस्नानारम्भः। तत्र मन्त्रः—

वैशाखं सकलं मासं मेषसंक्रमणे रवेः।
प्रातः सनियमः स्नास्ये प्रीयतां मधुसूदनः॥
मधुहन्तुः प्रसादेन ब्राह्मणानामनुग्रहात्।
निर्विघ्नमस्तु मे पुण्यं वैशाखस्नानमन्वहम्॥
माधवे मेषगे भानौ मुरारे मधुसूदन।
प्रातः स्नानेन मे नाथ फलदो भव पापहन्॥ इति।

अत्र हविष्याशनब्रह्मचर्यादयो नियमाः। एवं संपूर्णस्नानाशक्तौ त्रयोदश्यादिदिनत्रयमन्ते स्नायात्। इयं पौर्णमासी मन्वादिः पूर्वमुक्ता।

वैशाख स्नान का प्रारम्भ चैत्रशुक्ल एकादशी, पूर्णिमा अथवा मेष-संक्रान्ति से होता है। स्नान का मन्त्रार्थ यह है—'सम्पूर्ण वैशाखमास जिसमें मेष की संक्रान्ति हो, नियम के सहित प्रातः स्नान करूँगा इससे मधुसूदन भगवान् प्रसन्न हों। मधुसूदन भगवान के प्रसाद से ब्राह्मणों की दया से मेरा प्रतिदिन वैशाखस्नान का पुण्य निर्विघ्न हो। हे पापहन्ता! हे मुरारे! मेषगत सूर्य में प्रातः-स्नान से हे नाथ! आप फल देने वाले हों। इसमें हविष्य-भोजन और ब्रह्मचर्य आदि नियम हैं। इसीप्रकार सम्पूर्ण वैशाख-स्नान में असमर्थ पुरुष वैशाखशुक्ल त्रयोदशी से पूर्णिमापर्यन्त स्नान करे। यह पूर्णिमा मन्वादि है, यह पहले कह चुके हैं।

अथ वारुणीयोगः

चैत्रकृष्णत्रयोदशी शततारकानक्षत्रयुता [2]वारुणीसंज्ञका स्नानादिना ग्रहणादि-

---

[1]. इस विकल्प के वचन पद्मपुराण में—'मधुमासस्य शुक्लायामेकादश्यामुपोषितः। पञ्चदश्यां च भो वीर मेषसंक्रमणे तु वा। वैशाखस्नाननियमं ब्राह्मणानामनुज्ञया। मधुसूदनमभ्यर्च्य कुर्यात् संकल्पपूर्वकम्॥' इति।

[2]. स्कान्द में वारुणी-महावारुणी-महामहावारुणी का योग—'वारुणेन समायुक्ता मधौ कृष्णा त्रयोदशी। गङ्गायां यदि लभ्येत सूर्यग्रहशतैः समा॥ शनिवारसमायुक्ता सा महावारुणी स्मृता। गङ्गायां यदि लभ्येत कोटिसूर्यग्रहैः समा॥ शुभयोगसमायुक्ता शनौ शतभिषा यदि। महामहेति विख्याता त्रिकोटिकुलमुद्धरेत्॥' इति।

पर्वतुल्यफलदा। शनिवारयुक्ता महावारुणी। शुभयोगशनिवारशततारकायुक्ता महामहावारुणी। वारुणीयोगे कृष्णादिः पौर्णमास्यन्तो मासस्तेनामान्तमासे फाल्गुनकृष्णत्रयोदशी ग्राह्येति बोध्यम्। चैत्रकृष्णचतुर्दश्यां 'शिवसन्निधौ स्नानेन भौमवारयुतायां गङ्गायां स्नानेन पिशाचत्वाभावः फलम्। इति चैत्रमासकृत्य-निर्णयोद्देशः।

चैत्रकृष्ण त्रयोदशी में शतभिषानक्षत्र के योग से वारुणी नाम है। इसमें स्नान करने से ग्रहणादि पर्व के समान फल होता है। इसमें शनिवार के योग होने से महावारुणी, शुभयोग शनिवार और शतभिषा के साथ हो तो महामहावारुणी कहलाती है। इस योग में कृष्णपक्ष से पौर्णमासी पर्यन्त मास है। इससे अमावास्यान्त मास में फाल्गुनकृष्ण त्रयोदशी ग्राह्य है, ऐसा जानना चाहिये। चैत्रकृष्णपक्ष की चतुर्दशी भौमवार से युक्त हो तो शङ्कर की सन्निधि में गङ्गास्नान से पिशाचत्व से निवृत्ति होना फल है। चैत्रमासकृत्यनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ वैशाखकृत्ये वृषसंक्रान्तिः

अत्र वृषसंक्रमे पूर्वाः षोडशनाडिकाः पुण्यकालः। रात्रौ च प्रागुक्तम्। अत्र प्रातःस्नानं[2] तिलैः पितृतर्पणं धर्मघटदानं च कार्यम्।

वैशाख में वृष संक्रान्ति के होने पर पहली सोलह घड़ियाँ पुण्यकाल है। रात्रि में संक्रान्ति का पुण्यकाल पहले कह चुके हैं। इसमें प्रातःस्नान, तिलों से पितरों का तर्पण और धर्मघट का दान करना चाहिये।

अथ वसन्तपूजनम्

अत्र ब्राह्मणानां गन्धमाल्यपानककदलीफलादिभिर्वसन्तपूजा कार्या।

इसमें ब्राह्मणों की गन्ध, पेय और केले के फलों से वसन्तपूजा करनी चाहिये।

अथ विष्णुजलाधिवासविधिः

वैशाखे ज्येष्ठे वा यत्र मासे ऊष्मबाहुल्यं तत्र प्रातर्नित्यपूजां कृत्वा गन्धोदकपूर्णे पात्रे विष्णुं संस्थाप्य पञ्चोपचारैः संपूज्य तत्रैव जले सूर्यास्तपर्यन्तमधिवास्य रात्रौ स्वस्थाने स्थापयित्वा पञ्चोपचारैः पूजयेत्तेन तीर्थोदकेन गृहदारादियुतमात्मानं पावयेत्। एतच्च द्वादश्यां दिवा न कार्यम्। रात्रौ किंचित्कालं जलस्थं पूजयित्वा स्वस्थाने स्थापयेत्।

वैशाख या ज्येष्ठ में जब गर्मी अधिक पड़े तो उसमें प्रातः नित्यपूजा करके गन्धजल से पूर्ण-

---

महाभारत में वारुणीयोग को दिन में ही प्रशस्त बतलाया इसलिये उसका स्नान रात्रि में न करे—'दिवैव योगः शस्तोऽयं न तु रात्रौ कदाचन।' इति।

१. पुलस्त्यः—'चैत्रकृष्णचतुर्दश्यां यः स्नायाच्छिवसन्निधौ। न प्रेतत्वमवाप्नोति गङ्गायां तु विशेषतः॥' इति।

२. पद्मपुराण में वैशाखस्नान के लिये विशेष तीर्थ—'मेषसंक्रमणे भानोर्माधवे मासि यत्नतः। महानद्यां नदीतीर्थे नदे सरसि निर्झरे॥ देवखातेऽथवा स्नायाद्यथाप्राप्ते जलाशये। दीर्घिकाकूलवापीषु नियतात्मा हरिं स्मरन्॥' इति।

पात्र में विष्णु को रख कर पञ्चोपचार से पूजन कर उसी जल में सूर्यास्त तक अधिवासन करे। उसके बाद रात में विष्णुदेव को अपने स्थान पर रख कर पञ्चोपचार से पूजा करे। उस तीर्थजल से घर, पत्नी आदि से युक्त अपने को पवित्र करे। यह अधिवासन द्वादशी के दिन में न करे। रात में कुछ समय जल में स्थित भगवान् का पूजन कर अपने स्थान में स्थापित करे।

अथ तुलसीभिः पूजने मुक्तिः

अत्र मासे [1]कृष्णगौराख्यतुलसीभिर्विष्णुं त्रिकालमर्चयेन्मुक्तिः फलम्।

इस वैशाख मास में काली और गौर तुलसी से तीनों काल विष्णु की पूजा करे। उस का फल मुक्ति है।

अथ अश्वत्थमूलसिञ्चनम्

प्रातः स्नात्वा बहुतोयेनाश्वत्थमूलं सिञ्चेत् प्रदक्षिणाश्च कुर्यात्। अनेककुलतारणं फलम्। एवं गवां कण्डूयनेऽपि।

प्रातःस्नान करके अधिक जल से पीपल की जड़ों को सींचे और प्रदक्षिणायें करे। इसका फल अनेक कुल का तर जाना है। उसी तरह गाय के खुजलाने में भी जानना चाहिये।

अथ मासव्रतम्

अत्र मासे एकभक्तं नक्तमयाचितं वा सर्वेप्सितफलप्रदम्।

इस मास में एकभक्त नक्तव्रत या अयाचित भोजन से सम्पूर्ण मनोरथ सिद्धिरूप-फल की प्राप्ति होती है।

अथ प्रपादानादि

अत्र मासे [2]प्रपादानं देवे गलन्तिकाबन्धनं व्यजनच्छत्रोपानच्चन्दनादिदानं महाफलम्।

इस महीने में प्रपादान और देवता को गलन्तिका, जलधारा तथा पंखा, छाता, जूता और चन्दन आदि के दान देने से बड़ा फल होता है।

---

१. वैशाखमास में तुलसी का पूजन, अश्वत्थमूल का सिञ्चन और गोकण्डूयन का महत्त्व पद्मपुराण में यों है—'तुलसी कृष्णगौराख्या तयाऽभ्यर्च्य मधुद्विषम्। विशेषेण तु वैशाखे नरो नारायणो भवेत्॥ माधवं सकलं मासं तुलस्या योऽर्चयेन्नरः। त्रिसन्ध्यं मधुहन्तारं नास्ति तस्य पुनर्भवः॥ प्रातः स्नात्वा विधानेन माधवं माधवप्रियम्। योऽश्वत्थमूलमासिञ्चेत्तोयेन बहुना सदा॥ कुर्यात् प्रदक्षिणं तं तु सर्वदेवमयं ततः। पितृदेवमनुष्यांश्च तर्पयेत् स चराचरम्॥ योऽश्वत्थमर्चयेद्देवमुदकेन समन्ततः। कुलानामयुतं तेन तारितं स्यान्न संशयः॥ कण्डूय पृष्ठतो गां तु स्नात्वा पिप्पलतर्पणम्। कृत्वा गोविन्दमभ्यर्च्य न दुर्गतिमवाप्नुयात्॥' इति।

२. इन देय द्रव्यों के सम्बन्ध में स्कन्दपुराण के मूलवचन—'प्रपा कार्या च वैशाखे देवे देया गलन्तिका। उपानद्व्यजनच्छत्रसूक्ष्मवासांसि चन्दनम्॥ जलपात्राणि देयानि तथा पुष्पगृहाणि च। पानकानि च चित्राणि द्राक्षारम्भाफलान्यपि॥' इति। तिथितत्त्वे—'ददाति यो हि मेषादौ सक्तूनम्बुघटान्वितान्। पितॄनुद्दिश्य विप्रेभ्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥' इति। प्रपा—पौसला। गलन्तिका—गलति जलं यस्याः सा, निरन्तर जल गिरने के लिये छिद्रयुक्त ताम्र मृन्मयादि का घड़ा, जो शिवलिंग के ऊपर त्रिपदिका आदि आधार पर स्थापित किये जाते हैं। तथा—'वैशाखे यो घटं पूर्णं सभोज्यं वै द्विजन्मने। ददाति सुरराजेन्द्र स याति परमां गतिम्। मेषादौ सक्तवो देया वारिपूर्णा च गर्गरी॥' उपर्युक्त देय द्रव्यों के दानमन्त्र दानसंग्रह आदि ग्रन्थों में देखें।

अथ वैशाखस्य मलमासे मासद्वयं स्नानादि

यदा वैशाखो [1]मलमासो भवति तदा काम्यानां तत्र समाप्तिनिषेधान्मासद्वयं वैशाखस्नानहविष्याशनादिनियमा अनुष्ठेयाः। चान्द्रायणादिकं तु मलेऽपि समापनीयम्।

जब वैशाख मलमास हो तो उसमें काम्य कर्मों की समाप्ति के निषेध से दोनों महीनों में प्रातःस्नान हविष्य-भोजन आदि नियम का पालन करे। चान्द्रायण आदि व्रतों का तो समापन मलमास में भी करना चाहिये।

अथ तृतीयायां यवहोमादि चन्दनपूजा च

वैशाखशुक्लतृतीयायां गङ्गास्नानं यवहोमो यवदानं यवाशनं च सर्वपापहम्।

यः करोति तृतीयायां कृष्णं चन्दनभूषितम्।
वैशाखस्य सिते पक्षे स यात्यच्युतमन्दिरम्॥

वैशाखशुक्ल तृतीया में गङ्गास्नान, यव से होम, यव का दान, स्वयं यव का खाना, सम्पूर्ण पापों का नाश करता है। 'जो वैशाख शुक्लपक्ष की तृतीया में भगवान् कृष्ण को चन्दन से अलंकृत करता है, वह वैकुण्ठ जाता है।'

अथ अक्षय्यतृतीया

इयं [2]अक्षय्यतृतीयासंज्ञिका। अस्यां यत्किंचिज्जपहोमपितृतर्पणदानादि क्रियते

कृत्यचिन्तामणि में मसूर निम्बपत्र-भक्षण की महत्ता—'मसूरं निम्बपत्रं च योऽत्ति मेषगते रवौ। अपि रोषान्वितस्तस्य तक्षकः किं करिष्यति॥' इति।

१. वैशाख में मलमास हो तो 'वृषादित्ये न कारयेत्' इस निषेधक वचन के अनुसार वृष के सूर्य में रविव्रत के निषेध होने से मलमास में हो रवि का व्रत करना चाहिये। क्योंकि शुद्ध वैशाख शुक्लपक्ष में वृष के सूर्य होना संभव है।

२. नारदीय में अक्षयतृतीया के योग का वर्णन—'वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीया रोहिणी युता। दुर्लभा बुधवारेण सोमेनापि युता तथा॥ रोहिणी बुधयुक्ताऽपि पूर्वविद्धा विवर्जिता। भक्त्या कृताऽपि मान्द्यातः पुण्यं हन्ति पुराकृतम्॥ गौरी विनायकोपेता रोहिणीबुधसंयुता। विनाऽपि रोहिणी योगात् पुण्यकोटिप्रदा सदा॥' इति।

गोभिल ने पूर्वविद्धा का दोष बतलाया—'वैशाखस्य तृतीयां तु पूर्वविद्धां करोति यः। हव्यं देवा न गृह्णन्ति कव्यं च पितरस्तथा॥' ब्रह्मवैवर्त में चतुर्थीविद्धा को प्रशस्त बतलाया—'रम्भाख्यां वर्जयित्वा तु तृतीयां द्विजसत्तम। अन्येषु सर्वकार्येषु गणयुक्ता प्रशस्यते॥' इति।

चतुर्थीयुता तृतीया के न मिलने पर पूर्वविद्धा (द्वितीया से युत) ही ग्राह्य है। ब्रह्मवैवर्त—'एकादशी तृतीया च षष्ठी चैव त्रयोदशी। पूर्वविद्धाऽपि कर्तव्या यदि न स्यात् परेऽहनि॥' इति। इसकी अन्य तिथियों की युगादिसंज्ञा रत्नमाला में—'माघे पंचदशी कृष्णा नभस्ये च त्रयोदशी। तृतीया माधवे शुक्ला नवम्यूर्जे युगादयः॥' इति।

ऋष्यशृंग ने वैशाख के मलमास होने पर मलमास में ही युगादि करने के लिये कहा—'दशहरासु नोत्कर्षश्चतुर्ष्वपि युगादिषु। उपाकर्मणि चोत्सर्गे ह्येतदिष्टं वृषादितः॥' इति।

तत्सर्वमक्षयम् । इयं रोहिणीबुधयोगे महापुण्या । अस्यां जपहोमादिकृत्येऽपि वक्ष्यमाणयुगादिवन्निर्णयः । इयं कृतयुगस्यादिः ।

यह तृतीया अक्षयतृतीया है । इसमें जो कुछ जप, होम, पितृतर्पण, दान आदि करता है, वह सब नष्ट नहीं होता । यह रोहिणीनक्षत्र और बुधवार के योग होने से महापुण्यप्रदा है । इसमें जप होम आदि कृत्य में भी आगे कहे जाने वाले युगादि-तिथि के समान निर्णय है । यह सत्ययुग की आदि तिथि है ।

अत्र युगादिश्राद्धमपिण्डकमनुष्ठेयम् । श्राद्धासंभवे तिलतर्पणमप्यत्र कार्यम् । अत्र शुक्लयुगादिकृत्यं पूर्वाह्णे कार्यम् । तत्रासंभवेऽपराह्णेऽपि । कृष्णयुगादिकार्यं त्वपराह्णे इत्यादिमन्वादिप्रकरणोक्तो निर्णयः । द्वेधाविभक्तदिनपूर्वार्धैकदेशव्यापिनी दिनद्वये चेत् त्रिमुहूर्ताधिकव्याप्तिसत्त्वे परा, त्रिमुहूर्तन्यूनत्वे पूर्वा ।

मन्वादौ च युगादौ च ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
व्यतीपाते वैधृतौ च तत्कालव्यापिनी क्रिया ॥

इति वचनेन साकल्यव्याप्तिवाक्यानामपवादात् श्राद्धादिकं तृतीयामध्ये एव कर्तव्यम् ।

इसमें पिण्डरहित युगादिश्राद्ध करे । श्राद्ध न करने पर तिल से तर्पण करना चाहिये । इसमें शुक्ल युगादिकार्य पूर्वाह्ण में करना चाहिये । पूर्वाह्ण में न हो सके तो अपराह्ण में भी करे । कृष्ण युगादिकार्य तो अपराह्ण में करे । ये सब बातें मन्वादि प्रकरण में निर्णीत हैं । दिन के दो भाग करने पर पूर्वार्ध के एकदेश में दो दिन में रहने वाली हो तो तीन मुहूर्त से अधिक व्यापिनी होने पर परा और तीन मुहूर्त से कम होने पर पूर्वा ग्राह्य है । 'मन्वादि, युगादि, सूर्य चन्द्रमा के ग्रहण और व्यतिपात एवं वैधृति में उसी समय में रहने वाली तिथि में करे, इस वचन से सम्पूर्णता वाक्यों के अपवाद होने से श्राद्ध आदि तृतीया के मध्य में ही करे ।

पुरुषार्थचिन्तामणौ तु सप्तमाष्टमनवममुहूर्तानां गान्धर्वकुतुपरौहिणसंज्ञकानां युगादिश्राद्धकालत्वाच्छुक्ले मध्यमदिनमाने त्रयोदश्यादिपञ्चदश्यन्तघटीत्रयव्यापिन्यां श्राद्धम् । कृष्णे तु षोडशीमारभ्य घटीत्रये । उभयत्र तादृशघटीत्रयव्याप्तौ सत्यामसत्यां वा शुक्ला परा । यदा तु परेद्युस्त्रयोदशघटीतः पूर्वं समाप्ता पूर्वेद्युस्त्रयोदश्यादिघटीत्रये तदेकदेशे वा विद्यते तदा कर्मकालशास्त्रबाहुल्यात्पूर्वैव ग्राह्येत्युक्तम् । इदमेव युक्तमिति भाति ।

पुरुषार्थचिन्तामणि में तो गान्धर्व, कुतुप, रौहिण नाम वाले मुहूर्तों में युगादिश्राद्ध काल होने से शुक्लपक्ष में मध्यम दिनमान में त्रयोदशी से पूर्णिमा तक तीन घड़ी रहने वाली में श्राद्ध हो । कृष्णपक्ष में तो सोलहवीं से तीन घड़ी के मध्य में । दोनों दिन वैसे ही तीन घड़ी रहने पर, अथवा न रहने पर शुक्ला परा ग्राह्य है । जब दूसरे दिन तेरह घड़ी से पहले ही समाप्त होती हो और पहले दिन त्रयोदश्यादि तीन घड़ी में या उसके एकदेश में रहे तब कर्मकाल शास्त्र बाहुल्य से पूर्वा ही ग्रहण करे ऐसा कहा है । वस्तुतः यही ठीक भी है ऐसी मेरी धारणा है ।

अथ जलकुम्भदानविधिः

अत्र देवतोद्देशेन पित्रुद्देशेन [1]चोदकुम्भदानमुक्तम्। तत्र 'श्रीपरमेश्वरप्रीतिद्वारा उदकुम्भदानकल्पोक्तफलावाप्त्यर्थं ब्राह्मणायोदकुम्भदानं करिष्ये' इति संकल्प्य सूत्रवेष्टितं गन्धफलयवाद्युपेतं कलशं पञ्चोपचारैर्ब्राह्मणं च सम्पूज्य—

एष धर्मंघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः।
अस्य प्रदानात्सकला मम सन्तु मनोरथाः॥ इति मन्त्रेण दद्यात्।

इसमें देवता के उद्देश्य से अथवा पितरों के उद्देश्य से जल-कुम्भ-दान कहा है। उसमें 'परमेश्वर की प्रसन्नता द्वारा जलकुम्भ-दान-कल्प में कहे हुये फल की प्राप्ति के लिये ब्राह्मण को जलकुम्भदान करूँगा' ऐसा सङ्कल्प करके सूत्रसे वेष्टित गन्धफल यव आदि से युक्त कलश और ब्राह्मण को पूजित कर 'यह ब्रह्मविष्णुशिवात्मक घर्मघट जो दिया है, इसके देने से मेरे सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण हो' इस आशय के मन्त्र से दे।

पित्रुद्देशे तु 'पितॄणामक्षय्यतृप्त्यर्थम् उदकुम्भदानं करिष्ये' इति संकल्प्य पूर्ववत्कुम्भब्राह्मणौ संपूज्योदकुम्भे गन्धतिलफलादि निक्षिप्य—

एष धर्मंघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः।
अस्य प्रदानात्तृप्यन्तु पितरोपि पितामहाः॥
गन्धोदकतिलैर्मिश्रं सान्नं कुम्भं फलान्वितम्।
पितृभ्यः संप्रदास्यामि अक्षय्यमुपतिष्ठतु॥ इति मन्त्रेण दद्यात्।

पितरों के उद्देश्य से घर्मघटदान करे तो 'पितरों की अक्षय-तृप्ति के लिये जलकुम्भ दान करूँगा' ऐसा सङ्कल्प करके पहले की तरह कुम्भ और ब्राह्मण की पूजा कर जलकुम्भ में गन्ध, फल, तिल, आदि छोड़कर, 'यह ब्रह्मविष्णुशिवात्मक घर्मघट दिया है, इससे पितृपितामहगण तृप्त हों, गन्ध तिल जल से मिले हुये अन्न के सहित तथा फल से युक्त कुम्भ को पितरों के लिये देता हूँ यह अक्षय उपस्थित हो' इस आशय के मन्त्र से दे।

युगादौ समुद्रस्नानं महाफलम्। वैशाखस्याधिमासत्वे युगादिश्राद्धं मासद्वयेपि कार्यम्। युगादिषूपवासो महाफलः। युगादिमन्वादौ रात्रिभोजने 'अभिस्ववृष्टिम्' इति मन्त्रजपः। युगादिश्राद्धलोपे 'युगादिश्राद्धलोपजन्यप्रत्यवायपरिहारार्थमृग्विधानोक्तं प्रायश्चित्तं करिष्ये' इति संकल्प्य [2]'न यस्यद्यावा' इति ऋचं शतवारं जपेत्। अयं निर्णयः सर्वयुगादौ ज्ञेयः। इति अक्षय्यतृतीयानिर्णयः।

युगादि में समुद्र-स्नान से महाफल होता है। वैशाख यदि अधिमास होता है तो उसमें दोनों महीनों में युगादि श्राद्ध करना चाहिये। युगादि तिथियों में उपवास करने से अधिक फ़ल मिलता है। युगादि मन्वादि तिथियों में रात में भोजन करने पर 'अभिस्ववृष्टिम्' इस मन्त्र का जप करे।

---

१. भविष्ये—'उदकुम्भान् सकनकान् सान्नान् सर्वरसैः सह। यवगोधूमचणकान् सक्तुदध्योदनं तथा। ग्रैष्मिकं सर्वमेवात्र सस्यं दाने प्रशस्यते॥' इति।

२. ऋग्वेद प्रथमाष्टक चतुर्थाध्याय में मन्त्र—'न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः। नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक्॥'

युगादिश्राद्ध न करने पर 'युगादि-श्राद्ध-लोपजन्य-पाप के परिहार के लिये ऋग्विधान का कहा हुआ प्रायश्चित्त करूँगा' ऐसा संकल्प करके 'न यस्वद्यावा' ऋचा को १०० बार जपे। यह निर्णय सम्पूर्ण युगादि तिथियों का जानना चाहिये।

अथ परशुरामजयन्ती

इयमेव तृतीया [1]परशुरामजयन्ती। इयं रात्रिप्रथमयामव्यापिनी ग्राह्या। पूर्वेद्युरेव प्रथमयामव्याप्तौ पूर्वा। दिनद्वये रात्रिप्रथमयामे साम्येन वैषम्येण वैकदेशव्याप्तौ परा। अत्र प्रदोषे परशुरामं संपूज्यार्घ्यं दद्यात्। तत्र मन्त्रः—

जमदग्निसुतो वीर क्षत्रियान्तकर प्रभो।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं कृपया परमेश्वर॥ इति।

यही तृतीया परशुराम की जयन्ती (जन्मदिन) है। यह रात के प्रथम प्रहर में रहने वाली ग्राह्य है। पहले ही दिन पहले प्रहर में हो तो पूर्वा ग्राह्य है। दोनों दिन रात के पहले प्रहर में साम्य या वैषम्य से एकदेश में हो वो परा ग्राह्य है। उसमें प्रदोषकाल में परशुराम भगवान् को पूजनकर अर्घ्य देवे। उसमें मन्त्र है—'हे जमदग्नि के पुत्र! वीर! क्षत्रियों के नाशक! हे प्रभो! हे परमेश्वर! मेरा दिया हुआ अर्घ्य ग्रहण कीजिये।'

अथ गङ्गापूजनम्

वैशाखशुक्लसप्तम्यां [2]गङ्गोत्पत्तिस्तस्यां मध्याह्नव्यापिन्यां गङ्गापूजनं कार्यम्। दिनद्वये तद्व्याप्तौ [3]पूर्वा।

वैशाखशुक्ल सप्तमी में गङ्गा की उत्पत्ति है उस दिन मध्याह्नव्यापिनी सप्तमी में गङ्गा का पूजन करना चाहिये। दोनों दिन मध्याह्नव्यापिनी हो तो पूर्वा ग्राह्य है।

अथाग्निष्टोमफलकपूजनम्

वैशाखमासे [4]द्वादश्यां पूजयेन्मधुसूदनम्।
अग्निष्टोममवाप्नोति सोमलोकं च गच्छति॥

वैशाख की द्वादशी में भगवान् की पूजा करने से अग्निष्टोम यज्ञ का फल मिलता है और वह सोमलोक में भी जाता है।

---

१. भविष्यपुराण में परशुराम के जन्मदिन का वर्णन—'वैशाखस्य सिते पक्षे तृतीयायां पुनर्वसौ। निशायाः प्रथमे यामे रामाख्यः समये हरिः॥ स्वोच्चगैः षड्ग्रहैर्युक्ते मिथुने राहुसंस्थिते। रेणुकायास्तु यो गर्भादवतीर्णो हरिः स्वयम्॥' इति।

२. ब्राह्मे—'वैशाखे शुक्लसप्तम्यां जह्नुना जाह्नवी पुरा। क्रोधात् पीता पुनस्त्यक्ता कर्णरन्ध्रात्तु दक्षिणात्॥ तां तत्र पूजयेद्देवीं गङ्गां गगनमेखलाम्॥' इति।

३. निर्णयसिन्धौ—'अत्र शिष्टाचारान्मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या। दिनद्वये तद्व्याप्तावव्याप्तौ वैकदेशव्याप्तौ वा पूर्वा, युग्मवाक्यात्' इति।

४. वैशाखशुक्लद्वादश्यां योगविशेषो हेमाद्रौ—'पञ्चाननस्थौ गुरुभूमिपुत्रौ मेषे रविः स्याद्यदि शुक्लपक्षे। पाशाभिधाना करभेण युक्ता तिथिर्व्यतीपात इतीह योगः॥ अस्मिंस्तु गोभूमिहिरण्यवस्त्रदानेन सर्वं परिहाय पापम्। सुरत्वमिन्द्रत्वमनामयत्वं मर्त्याधिपत्यं लभते मनुष्यः॥' अत्र पंचाननः = सिंहः, पाशाभिधाना तिथिः = द्वादशी, करभः = हस्तः इति।

अथ नृसिंहजयन्ती

वैशाखशुक्लचतुर्दशी 'नृसिंहजयन्ती । सा सूर्यास्तसमयकालव्यापिनी ग्राह्या । दिनद्वये तद्व्याप्तौ तदव्याप्तौ वा परैव । स्वातीनक्षत्रशनिवारादियोगे साऽति प्रशस्ता ।

वैशाखशुक्ल चतुर्दशी नृसिंह जयन्ती कहलाती है । चतुर्दशी सूर्यास्तकालपर्यन्त रहने वाली इसमें ग्राह्य है । दो दिन में रहने वाली या न रहनेवाली चतुर्दशी परा ग्राह्य है । स्वातीनक्षत्र शनिवार आदि के योग से यह अत्युत्तम मानी जाती है ।

अथ व्रतप्रयोगः

त्रयोदश्यां कृतैकभक्तश्चतुर्दश्यां मध्याह्ने तिलामलकैः स्नात्वा—

उपोष्येहं नारसिंह भुक्तिमुक्तिफलप्रद ।
शरणं त्वां प्रपन्नोऽस्मि भक्तिं मे नृहरे दिश ॥

इति मन्त्रेण व्रतं संकल्प्याचार्यं वृत्वा सायंकाले धान्यस्थोदकुम्भे पूर्णपात्रे सौवर्णप्रतिमायां षोडशोपचारैर्देवं संपूज्यार्घ्यं दद्यात् । तत्र मन्त्रः—

त्रयोदशी में एकभक्त करके चतुर्दशी के मध्याह्न में तिल और आँवले से नहा कर 'भुक्ति मुक्ति को देने वाले नृसिंह देव! मैं आप की शरण में प्राप्त हूँ, मुझे अपनी भक्ति दीजिये' इस मन्त्र से व्रत का सङ्कल्प तथा आचार्य का वरण कर, सायंकाल में धान पर रक्खे हुये जलकुम्भ पर पूर्णपात्र में सोने की प्रतिमा में षोडशोपचार से भगवान की पूजा कर अर्घ्य दे । अर्घ्य का मन्त्रार्थ—

परित्राणाय साधूनां जातो विष्णो नृकेसरी ।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं सलक्ष्मीर्नृहरिः स्वयम् ॥

रात्रौ जागरणं कृत्वा प्रातर्देवं संपूज्य विसृज्याचार्याय धेनुयुतां प्रतिमां दद्यात् । तत्र मन्त्रः—

नृसिंहाच्युत गोविन्द लक्ष्मीकान्त जगत्पते ।
अनेनार्चाप्रदानेन सफलाः स्युर्मनोरथाः ॥ अथ प्रार्थना—

'साधुओं की रक्षा के लिये उत्पन्न मनुष्य और सिंह के रूप वाले विष्णुलक्ष्मी के सहित मेरे दिये हुये अर्घ्य को स्वयं ग्रहण करें ।' रात में जागरण करके प्रातःकाल देवता का पूजन और विसर्जन कर आचार्य को धेनु से युक्त प्रतिमा देवे । 'हे नृसिंह ! अच्युत ! गोविन्द ! लक्ष्मीकान्त ! हे जगत्पते ! मेरी इस पूजा के करने से मेरे मनोरथ सफल हों ।' प्रार्थना—

मद्वंशे ये नरा जाता ये जनिष्यन्ति चापरे ।
तांस्त्वमुद्धर देवेश दुःसहाद्भवसागरात् ॥
पातकार्णवमग्नस्य व्याधिदुःखाम्बुवारिधेः ।
नीचैश्च परिभूतस्य महादुःखागतस्य मे ॥

---

१. नृसिंहपुराण में इस योग का महत्त्व—'स्वातीनक्षत्रयोगे च शनिवारे च मद्व्रतम् । सिद्धयोगस्य संयोगे वणिजे करणे तथा ॥ पुंसां सौभाग्ययोगेन लभ्यते दैवयोगतः । एभिर्योगैर्विनाऽपि स्यान्मद्दिनं पापनाशनम् ॥ सर्वेषामेव वर्णानामधिकारोऽस्ति मद्व्रते । मद्भक्तैस्तु विशेषेण कर्तव्यं मत्परायणैः ॥' इति ।

करावलम्बनं देहि शेषशायिन् जगत्पते ।
श्रीनृसिंह रमाकान्त भक्तानां भयनाशन ॥
क्षीराम्बुधिनिवासस्त्वं चक्रपाणे जनार्दन ।
व्रतेनानेन देवेश भुक्तिमुक्तिप्रदो भव ॥ इति ।

ततो ब्राह्मणैः सह तिथ्यन्ते पारणं कार्यम् । यामत्रयोर्ध्वगामिन्यां चतुर्दश्यां तु पूर्वाह्णे एव पारणम् ।

'मेरे वंश में जो जो लोग जन्म लिये हैं और जो भविष्य में जन्म लेगें हे देवदेवेश ! उनका असह्य संसार-समुद्र से आप उद्धार करें । पातकरूपी समुद्र में डुबे हुये मुझको व्याधि-दुःख-समुद्र से, नीचों से तिरस्कृत महादुःख में पड़े हुये मुझको हे शेषशायी ! हे जगत्पति ! अपने हाथ का अवलम्ब दीजिये । हे नृसिंह ! भक्तों के भय के नाश करने वाले हे रमाकान्त ! हे जनार्दन ! क्षीर समुद्र के निवासी आप हे देवेश ! इस व्रत के करने से आप भुक्ति मुक्ति के देनेवाले हों ।' उसके बाद ब्राह्मणों के साथ तिथि के अन्त में पारण करे । तीन प्रहर से अधिकऊर्ध्वगामिनी (ऊपर जाने वाली) चतुर्दशी में तो पूर्वाह्ण ही में पारण करना चाहिये ।

अथ पौर्णमास्यां दानानि

पौर्णमास्यां शृतान्नसहितोदकुम्भदाने गोदानफलम् । स्वर्णतिलयुक्तद्वादशोदकुम्भदाने ब्रह्महत्यापापान्मुक्तिः । अत्र यथाविधि कृष्णाजिनदाने पृथ्वीदानफलम् । स्वर्णमधुतिलसर्पिर्युतकृष्णाजिनदाने सर्वपापनाशः । अत्र तिलस्नानं तिलहोमस्तिलपात्रदानं तिलतैलेन दीपदानं तिलैः पितृतर्पणं मधुयुक्ततिलदानं च महाफलम् । तत्र तिलदानमन्त्रः—

तिला वै सोमदैवत्याः सुरैः सृष्टास्तु गोसवे ।
स्वर्गप्रदाः स्वतन्त्राश्च ते मां रक्षन्तु नित्यशः ॥

पूर्णिमा में पक्वान्न के साथ जल-कुम्भ-दान करने से गोदान का फल होता है । सोना तिल से युक्त १२ जल-कुम्भ-दान से ब्रह्महत्या के पास से छूट जाता है । इसमें सविधि काले मृगचर्म के दान से पृथिवीदान का फल होता है । सोना, शहद और घी से युक्त काले मृगचर्म के दान से सम्पूर्ण पापों का नाश होता है । इसमें तिल से नहाना, तिल से होम, तिल पात्र का दान, तिल तेल से दीपदान, तिलों से पितरों का तर्पण, शहद मिले तिल का दान, महाफलप्रद है । तिल पात्र दान का मन्त्र—'देवताओं ने सोमदेवतावाले तिलों को यज्ञ के लिये बनाये हैं, वे स्वर्ग देने वाले मेरी सदा रक्षा करें ।'

अथ वैशाखस्नानोद्यापनादि

वैशाखशुक्लद्वादश्यां पौर्णमास्यां वा वैशाखस्नानोद्यापनम् । एकादश्यां पौर्णमास्यां वोपोष्य कलशे सुवर्णप्रतिमायां सलक्ष्मीकं विष्णुं संपूज्य रात्रौ जागरणं कृत्वा प्रातर्ग्रहपूजनपूर्वकं पायसेन तिलाज्यैर्वा यवैर्वा अष्टोत्तरशतं होमः प्रतद्विष्णुरिति वा इदंविष्णुरिति वा मन्त्रेण कार्यः । सांगतार्थं गोदानं पादुकोपानच्छत्रव्यजनोदकुम्भदानं शय्यादिदानं च कार्यम् । अशक्तेन कृसराद्यन्नैर्दश-

ब्राह्मणभोजनं कार्यम्। एतत्पौर्णमासीमारभ्य ज्येष्ठशुक्लैकादशीपर्यन्तं जलस्थ-विष्णुपूजोत्सवः कार्यः।

वैशाख शुक्ल द्वादशी या पूर्णिमा में वैशाखस्नान का उद्यापन होता है। इसमें एकादशी या पूर्णिमा में उपवास करके कलश पर सोने की लक्ष्मीसहित विष्णु की प्रतिमा का पूजन कर, रात में जागरण करके प्रातःकाल ग्रहों का पूजनपूर्वक खीर से या तिलघृत से अथवा यवों से १०८ बार होम करे। अथवा 'प्रतद्विष्णुः, अथवा 'इदं विष्णुः' इत्यादि मन्त्रों से होम करे। व्रतसाफल्य के लिये गोदान खड़ाऊँ, जूता, छाता, पंखा और जलकुम्भ तथा शय्या आदि का दान करे। इन दानों में असमर्थ को चाहिये कि खिचड़ी आदि अन्नों से १० ब्राह्मणों को भोजन करावे। पौर्णमासी से ज्येष्ठ-शुक्ल एकादशीपर्यन्त जल-स्थित विष्णु की पूजा का उत्सव करे।

अथ वैशाखामावास्या भावुककरिसंज्ञिका

वैशाखामावास्या भावुकाख्यदिनं तत्परं करिसंज्ञकदिनं च शुभेषु वर्ज्यम्। इति वैशाखमासकृत्यनिर्णयोद्देशः।

वैशाख की अमावास्या भावुक नामका दिन है उसके बाद करिसंज्ञक दिन है, ये दोनों दिन शुभकृत्य में त्याज्य हैं। वैशाखकृत्यनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ ज्येष्ठकृत्ये मिथुनसंक्रान्तिः

मिथुनसंक्रान्तौ पराः षोडश नाड्यः पुण्यकालः। रात्रौ तु प्रागुक्तम्।

मिथुन की संक्रान्ति में पर १६ घड़ियाँ पुण्यकाल है। रात में संक्रान्ति होने पर पुण्यकाल पहले कह चुके हैं।

अथ ब्रह्ममूर्तिपूजनम्

ज्येष्ठमासे पिष्टेन ब्रह्ममूर्तिं कृत्वा वस्त्राद्यैः पूजयेत्सूर्यलोकप्राप्तिः। अत्र मासे जलधेनुदानमुक्तम्।

ज्येष्ठमास में आंटा से ब्रह्मा की प्रतिमा बनाकर, वस्त्र आदि से पूजा करे इससे सूर्यलोक की प्राप्ति होती है। इस महीने में जलधेनु का दान पहले कहे हैं।

अथ करवीरव्रतम्

ज्येष्ठशुक्लप्रतिपदि करवीरव्रतमुक्तम्।

ज्येष्ठशुक्ल प्रतिपदा में करवीरव्रत होता है।

अथ रम्भाव्रतम्

ज्येष्ठशुक्लतृतीयायां रम्भाव्रतम्। सा [1]पूर्वविद्धा ग्राह्या। यत्र पूर्वविद्धा ग्राह्य-तयोच्यते तत्रास्तात्पूर्वं द्विमुहूर्ताधिकाया ग्राह्यत्वं ज्ञेयं न न्यूनायाः। तत्रापि यदि परेद्युः सूर्यास्तमपर्यन्तं पूर्वविद्धायास्तिथेः सत्त्वं तदा सत्यपि पूर्वविद्धाग्राह्यत्व-वचने पूर्वविद्धां त्यक्त्वा अखण्डत्वाच्छुद्धत्वात्परैव ग्राह्या।

---

१ स्कान्दे तु—'बृहत्तपा तथा रम्भा सावित्री वटपैतृकी। कृष्णाष्टमी च भूता च कर्तव्या सम्मुखी तिथिः॥' संमुखी = सायाह्नव्यापिनी। बृहत्तपा=श्रावणकृष्णद्वितीया। सावित्री—इस व्रत को की जाने वाली पूर्णिमा। वटपैतृकी—इस व्रत को की जानेवाली अमावास्या।

ज्येष्ठ सुदी तृतीया में रम्भाव्रत होता है। वह पूर्वविद्धा ग्राह्य है। जहाँ पूर्वविद्धा की ग्राह्यता कही गयी है, वहाँ अस्त से पहले दो मुहूर्त से अधिक की ग्राह्यता है, काम की नहीं। उसमें भी यदि दूसरे दिन सूर्यास्त तक पूर्व विद्धा तिथि रहे तब पूर्वविद्धा की ग्राह्यता होने पर भी पूर्वविद्धा को छोड़ कर, अखण्ड और शुद्ध होने के कारण परा का ही ग्रहण करे।

यदा तु ग्राह्यायाः पूर्वविद्धायाः पूर्वेद्युर्मुहूर्तद्वयान्न्यूनत्वं परेद्युश्चास्तमयात्प्राक् समाप्तत्वं तदापि परैव ग्राह्या। एवं सर्वत्रोह्यम्। रम्भाव्रते पञ्चाग्नितपनपरा स्त्री पुमान्वा भवानीं स्वर्णप्रतिमायां संपूज्य यथोक्तविधि होमादि कृत्वा सपत्नीकाय गृहं सोपस्करं दद्यात्। दांपत्यानि भोजयेत्। विशेषविधिर्व्रतग्रन्थे ज्ञेयः।

जब ग्राह्य-पूर्वविद्धा तिथि पहले दिन दो मुहूर्त से कम है और दूसरे दिन सूर्यास्त से पहले समाप्त होती है, तब भी परा का ही ग्रहण उचित है। इसी प्रकार सर्वत्र कल्पना करनी चाहिये। रम्भाव्रत में पञ्चाग्निताप करने वाले स्त्री अथवा पुरुष सोने की प्रतिमा में भवानी की पूजा कर उक्त विधि से होम आदि करके पत्नीसहित ब्राह्मण को घर की सामग्रियों के सहित गृह का दान करे। पुरुषस्त्री सहित ब्राह्मणों को भोजन करावे। विशेष-विधि व्रत ग्रन्थों से जानना चाहिये।

अथ उमापूजनव्रतम्

चतुर्थ्यामुमावतारस्तत्रोमापूजनव्रतम्। अष्टम्यां शुक्लादेवी पूज्या। नवम्यामुपोष्य देवीं पूजयेत्।

चतुर्थी में उमा का अवतार हुआ। उसमें उमा का पूजनात्मक व्रत होता है। अष्टमी में शुक्ला देवी की पूजा होती है। नवमी में उपवास कर देवी का पूजन करे।

अथ गङ्गावतारः (दशहरा)

ज्येष्ठशुक्लदशम्यां गङ्गावतारः। इयं [१]दशहरासंज्ञिका। अत्र दश योगा उक्ताः—

ज्येष्ठमासि सितपक्षे दशम्यां बुधहस्तयोः।
व्यतीपाते गरानन्दे कन्याचन्द्रे वृषे रवौ॥ इति।

गराख्यं करणम्। बुधवारहस्तयोगे आनन्दाख्यो योगः। अत्र दशमी—व्यतीपातयोर्मुख्यत्वम्। तेन यस्मिन्दिने कतिपययोगवती दशमी पूर्वाह्णे लभ्यते तत्र दशहराव्रतं कार्यम्। दिनद्वये पूर्वाह्णे तत्सत्त्वे यत्र बहूनां योगः सा ग्राह्या।

---

१. दशविध पापों को हरण करने से इसका नाम 'दशहरा' पड़ा। ब्राह्मे-'ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशमी हस्तसंयुता। हरते दश पापानि तस्माद्दशहरा स्मृता॥' राजमार्तण्ड में दशविध पापों का निर्देश यों है—'पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चापि सर्वतः। असम्बद्धप्रलापं च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम्॥ अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः। परदारोपसेवा च कायिकं त्रिविधं मतम्॥ परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसाऽनिष्टचिन्तनम्। वितथाभिनिवेशश्च मानसं त्रिविधं स्मृतम्॥' इति। यहाँ ज्येष्ठमास चान्द्रमान से ग्राह्य है, सौरमान से नहीं।

ज्येष्ठे मलमासे सति तत्रैव दशहरा कार्या न तु [1]शुद्धे। 'दशहरासु नोत्कर्षश्चतुर्ष्वपि युगादिषु' इति हेमाद्रौ ऋष्यशृङ्गोक्तेः। अत्र काशीवासिभिर्दशाश्वमेधतीर्थे स्नात्वा गङ्गापूजनं कार्यम्। इतरदेशस्थैः स्वसंनिहितनद्यां स्नात्वा गङ्गापूजनादिकं कार्यम्।

ज्येष्ठशुक्ल दशमी में गङ्गा का अवतार हुआ। यह दशहरा नाम की है। इसमें १० योग कहे हैं—ज्येष्ठ महीना, शुक्लपक्ष, दशमी तिथि, बुधवार, हस्तनक्षत्र, व्यतिपात, गरकरण, आनन्दयोग, कन्या के चन्द्रमा और वृष के सूर्य, इस प्रकार दस योग होते हैं। हस्तनक्षत्र में बुधवार होने से आनन्द नाम का योग होता है। इन योगों में दशमी और व्यतिपात का होना मुख्य है। इससे जिस दिन कई योग वाली दशमी पूर्वाह्ण में मिले तो उसमें दशहराव्रत करना चाहिये। पूर्वाह्ण में दो दिन दशमी होने पर, जहाँ अधिक योग मिले उसी का ग्रहण करे। ज्येष्ठ में मलमास होने पर उसी में दशहरा करे, शुद्ध में नहीं। दशहरा में चारों युगादितिथियों में कोई उत्कर्ष नहीं होता, यह हेमाद्रि में ऋष्यशृङ्ग का वचन है। इस दिन काशी के रहनेवाले दशाश्वमेघ तीर्थ में नहा कर, गङ्गा का पूजन आदि करें। दूसरे देश के लोग अपने समीप की नदी में स्नान कर गङ्गा-पूजनादि करें।

अथ दशहराव्रतविधिः

देशकालौ संकीर्त्य 'ममैतज्जन्मजन्मान्तरसमुद्भूतत्रिविधकायिकचतुर्विधवाचिकत्रिविधमानसेति स्कान्दोक्तदशविधपापनिरासत्रयस्त्रिंशच्छतपितृद्धारब्रह्मलोकावाप्त्यादिफलप्राप्त्यर्थं ज्येष्ठमाससितपक्षदशमीबुधवारहस्तताराकागरकरणव्यतीपातानन्दयोगकन्यास्थचन्द्रवृषस्थसूर्येति दशयोगपर्वण्यस्यां महानद्यां स्नानं तीर्थपूजनं प्रतिमायां जाह्नवीपूजां तिलादिदानं मूलमन्त्रजपमाज्यहोमं च यथाशक्ति करिष्ये' यथाविधि स्नानं दशवारं कृत्वा जले स्थितो दशवारं सकृद्वा वक्ष्यमाणं स्तोत्रं पठित्वा वासःपरिधानादिपितृतर्पणान्तं नित्यं विधाय तीर्थे पूजां विधाय सर्पिर्मिश्रान् दशप्रसृतिकृष्णतिलान् तीर्थेऽञ्जलिना प्रक्षिप्य गुडमिश्रान्सक्तुपिण्डान् दश प्रक्षिपेत्।

देशकाल का कीर्तन करके, 'मेरे इस जन्म अथवा दूसरे जन्म में उत्पन्न तीन प्रकार के शारीरिक, चार प्रकार के वाचिक और तीन प्रकार के मानसिक, स्कन्दपुराण के कहे हुये दस प्रकार के पापों को हटाने के लिये ३३०० सौ पितरों के उद्धार तथा ब्रह्मलोक आदि फल की प्राप्ति के लिये ज्येष्ठ महीना, शुक्लपक्ष, दशमी तिथि, बुधवार, हस्तनक्षत्र, गरकरण, व्यतिपात और आनन्द-योग, कन्या में स्थित चन्द्रमा तथा वृष के सूर्य इस प्रकार दस योग के पर्व में इस महानदी में स्नान, तीर्थपूजन, मूर्ति में गङ्गा की पूजा, तिल आदि का दान, मूलमन्त्र का जप और घी से होम शक्ति के अनुसार करूँगा' ऐसा सङ्कल्प कर सविधि दस बार स्नान करके, जल में रहते हुये दस बार या एकबार आगे कहे जानेवाले स्तोत्र को पढ़कर, वस्त्र पहनने से लेकर पितृतर्पणान्त नित्यकर्म और तीर्थपूजा करके घी मिले हुये दस पसर काले तिलों को तीर्थ में अंजुरी से अर्पित कर गुड मिले हुये सतुआ के पिण्डों को अर्पित करे।

---

१. कृत्यरत्नावली में—'शुद्धेऽपि कार्या' अर्थात् शुद्ध ज्येष्ठमास में भी दशहरा का कृत्य सम्पन्न करना चाहिये, ऐसा लिखा।

ततो गङ्गातटे ताम्रे मृन्मये वा स्थापिते कलशे सौवर्णादिप्रतिमायां गङ्गा-मावाहयेत् । तत्र मन्त्रः—

'नमो भगवत्यै दशपापहरायै गङ्गायै नारायण्यै रेवत्यै शिवायै दक्षायै अमृतायै विश्वरूपिण्यै नन्दिन्यै ते नमोनमः।' अयं स्त्र्यादिसाधारणः। द्विजमात्र-विषयोक विंशत्यक्षरो यथा—

ॐ नमः शिवायै नारायण्यै दशहरायै गङ्गायै स्वाहा' इति ।

एवं गङ्गामावाह्य नारायणं रुद्रं ब्रह्माणं सूर्यं भगीरथं हिमाचलं च नाम-मन्त्रेण तत्रैवावाह्य उक्तमूलमन्त्रमुच्चार्य श्रीगङ्गायै नारायणरुद्रब्रह्मसूर्यभगीरथ-हिमवत्सहितायै आसनं समर्पयामीत्येवमासनाद्युपचारैः पूजयेत् ।

तदनन्तर गङ्गातीर पर स्थापित ताँबे या मिट्टी के कलश में सोने आदि की प्रतिमा में गङ्गा का आवाहन करे । 'नमो भगवत्यै दशपापहरायै' इत्यादि मन्त्र, स्त्री आदि सर्वसाधारण के लिये है । द्विजमात्र के लिये 'ॐ नमः शिवायै नारायण्यै' इत्यादि २० अक्षर का मन्त्र है । इसी प्रकार गङ्गा का आवाहन कर नारायण, रुद्र, ब्रह्मा, सूर्य, भगीरथ और हिमाचल को भी नाममन्त्र से वहीं आवाहन करके मूलमन्त्र का उच्चारण कर श्रीगङ्गा को, नारायण-रुद्र-ब्रह्म-सूर्य-भगीरथ और हिमवान पर्वत के सहित आप को आसन समर्पण करता हूँ, इस प्रकार आसन आदि उपचारों से पूजा करे ।

दशविधैः पुष्पैः संपूज्य दशाङ्गधूपं दत्त्वा दशविधनैवेद्यान्ते ताम्बूलं दक्षिणां दत्त्वा दश फलान्यर्पयेत् । दश दीपान्दत्त्वा पूजां समापयेत् । दश विप्रेभ्यः प्रत्येकं षोडश षोडश मुष्टितिलान् सदक्षिणान्दद्यात् । एवं यवानपि । ततो दश गा एकां वा गां दद्यात् । मत्स्यकच्छपमण्डूकान्सौवर्णान् राजतान् पिष्टमयान् वा संपूज्य तीर्थे क्षिपेत् । एवं दीपान्प्रवाहयेत् ।

दस प्रकार के फूलों से पूजा करके दशांग धूप देकर दस प्रकार के नैवेद्य के अंत में पान और दक्षिणा देकर, दस प्रकार के फलों का समर्पण करे तथा दस दीपों को देकर, पूजा समाप्त करे । दस ब्राह्मणों को प्रत्येक को सोलह-सोलह मुट्ठी तिल दक्षिणा के सहित दे । इसी प्रकार यव भी देवे । तदनन्तर दस या एक गोदान करे । मछली कछुआ और मेढ़क सोने या चाँदी के अथवा आंटा के बनाकर पूजे और तीर्थ में प्रक्षेप करे । इसी तरह दीपों को प्रवाह में बहावे ।

अथ दशहराङ्गहोमप्रयोगः

जपहोमचिकीर्षायां पूर्वोक्तमूलमन्त्रस्य[1] पञ्चसहस्रसंख्यो जपो दशांशेन होमः, यथाशक्ति वा जपहोमौ । तत्र 'दशहराव्रताङ्गत्वेन होमं करिष्ये' इति संकल्प्य स्थण्डिलेऽग्निं प्रतिष्ठाप्यान्वाधाने चक्षुषी आज्येनेत्यन्ते श्रीगङ्गाममुकसंख्ययाज्येन नारायणादिषड्देवता एकैकयाज्याहुत्या । शेषेण स्विष्टकृतमित्यादिप्रोक्षण्यादिषट्-पात्राण्यासाद्याज्यं संस्कृत्य यथान्वाधानं जुहुयात् । दश ब्राह्मणान् सुवासिनीश्च भोजयेत् । प्रतिपद्दिनमारभ्य स्नानादिपूजान्तो विधिः कार्यं इति केचित् ।

१. पाद्मे—'प्रणवादिनमोऽन्तं तच्चतुर्थ्यन्तं च सत्तम । देवतायाः स्वकं नाम मूलमन्त्र उदाहृतः ॥' इति । जैसे—'ॐ कृष्णाय नमः' 'ॐ शिवाय नमः' इत्यादि ।

होम करने की इच्छा होने पर पहले के कहे हुये मूलमन्त्र का पाँच हजार जप और उसके दशांश से होम करे, अथवा अपने सामर्थ्य के अनुसार जप और होम करे। उसमें 'दशहरा व्रत के अङ्ग होने से होम करूँगा' ऐसा संकल्प करके वेदी पर अग्नि को 'अन्वाधाने चक्षुषि आज्येन' इस मंत्र से स्थापित कर अन्त में गङ्गा को अमुक संख्याकघृत की आहुति से, और नारायण आदि छ देवताओं को एक-एक घृत की आहुति से और बचे हुये घृत से स्विष्टकृत् होम करे। प्रोक्षणी आदि छ पात्रों को रख घी का संस्कार कर, अन्वाधान के अनुसार होम करे। दस ब्राह्मणों और सौभाग्यवती स्त्रियों को भोजन करावे। कोई यह कहते हैं कि—प्रतिपदा से आरम्भ कर स्नान आदि पूजा तक जो विधि है उसे करना चाहिये।

अथ स्कन्दपुराणोक्त-गङ्गास्तोत्रम्

ब्रह्मोवाच—

नमः शिवायै गङ्गायै शिवदायै नमोनमः।
नमस्ते रुद्ररूपिण्य शाङ्कर्यै ते नमोनमः॥ १॥
नमस्ते विश्वरूपिण्यै ब्रह्ममूर्त्यै नमोनमः।
सर्वदेवस्वरूपिण्यै नमो भेषजमूर्तये॥ २॥
सर्वस्य सर्वव्याधीनां भिषक्श्रेष्ठ्यै नमोस्तु ते।
स्थाणुजङ्गमसंभूतविषहन्त्र्यै नमोनमः॥ ३॥
भोगोपभोगदायिन्यै भोगवत्यै नमोनमः।
मन्दाकिन्यै नमस्तेस्तु स्वर्गदायै नमः सदा॥ ४॥
नमस्त्रैलोक्यभूषायै जगद्धात्र्यै नमोनमः।
नमस्त्रिशुक्लसंस्थायै तेजोवत्यै नमोनमः॥ ५॥
नन्दायै लिङ्गधारिण्यै नारायण्यै नमोनमः।
नमस्ते विश्वमुख्यायै रेवत्यै ते नमोनमः॥ ६॥
बृहत्यै ते नमस्तेस्तु लोकधात्र्यै नमोनमः।
नमस्ते विश्वमित्रायै नन्दिन्यै ते नमोनमः॥ ७॥
पृथ्व्यै शिवामृतायै च सुवृषायै नमोनमः।
शान्तायै च वरिष्ठायै वरदायै नमोनमः॥ ८॥
उस्रायै सुखदोग्ध्र्यै च संजीविन्यै नमोनमः।
ब्रह्मिष्ठायै ब्रह्मदायै दुरितघ्न्यै नमोनमः॥ ९॥

ब्रह्मा जी कहते हैं—'कल्याणस्वरूपिणी कल्याण देनेवाली गङ्गा को नमस्कार है। रुद्ररूपिणी तुझे नमस्कार है। शाङ्करी आपको नमस्कार है। विष्णुरूपिणी आपको नमस्कार है। ब्रह्ममूर्ति आपको नमस्कार है। सर्वदेवस्वरूपिणी और औषधमूर्ति आपको नमस्कार है। सब के सम्पूर्ण रोगों की श्रेष्ठ औषधवाली आपको नमस्कार है। स्थावर जङ्गम से उत्पन्न विष को मारनेवाली आपको नमस्कार है। भोग-उपभोग को देनेवाली और भोगवाली आपको नमस्कार है। मन्दाकिनी आपको नमस्कार है। स्वर्ग देनेवाली आपको प्रणाम है। तीनों लोक के भूषणवाली आपको नमस्कार है। संसार को धारण करनेवाली आपको नमस्कार है। त्रिशुक्लसंस्था आपको नमस्कार है।

तेजवाली आपको नमस्कार है। लिङ्गधारिणी नन्दा आपको नमस्कार है। नारायणी आपको नमस्कार है। विश्व में मुख्या आपको नमस्कार है। रेवतीरूपिणी आपको नमस्कार है। वृत्तिरूपिणी आपको नमस्कार है। भुवनधारिणी आपको नमस्कार है। विश्वमित्रा आपको नमस्कार है। नन्दिनी आपको नमस्कार है। पृथ्वीरूपिणी आपको नमस्कार है। कल्याण अमृतरूपिणी आपको नमस्कार है। सुन्दरवृषवाली आपको नमस्कार है। शान्ता अतिश्रेष्ठा वर देनेवाली आपको नमस्कार है। सुख को दुहनेवाली सञ्जीविनी (सबको जिलानेवाली) आपको नमस्कार है। ब्रह्म में निष्ठावाली वेद देनेवाली और पाप का नाश करनेवाली आपको नमस्कार है।

प्रणतार्तिप्रभञ्जिन्यै जगन्मात्रे नमोस्तु ते।
सर्वापत्प्रतिपक्षायै : मङ्गलायै नमोनमः॥ १०॥
शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोस्तु ते॥ ११॥
निर्लेपायै दुर्गहन्त्र्यै दक्षायै ते नमोनमः।
परात्परतरे तुभ्यं नमस्ते मोक्षदे सदा॥ १२॥
गङ्गे ममाग्रतो भूया गङ्गे मे देवि पृष्ठतः।
गङ्गे मे पार्श्वयोरेहि त्वयि गङ्गेऽस्तु मे स्थितिः॥ १३॥
आदौ त्वमन्ते मध्ये च सर्वं त्वं गां गते शिवे।
त्वमेव मूलप्रकृतिस्त्वं हि नारायणः परः॥ १४॥
गङ्गे त्वं परमात्मा च शिवस्तुभ्यं नमः शिवे॥ १५॥
य इदं पठति स्तोत्रं भक्त्या नित्यं नरोऽपि यः।
शृणुयाच्छ्रद्धया युक्तः कायवाक्चित्तसंभवैः॥ १६॥
दशधा संस्थितैर्दोषैः सर्वैरेव प्रमुच्यते।
सर्वान्कामानवाप्नोति प्रेत्य ब्रह्मणि लीयते॥ १७॥

प्रणतजनों के कष्ट को हटानेवाली संसार की माता आपको नमस्कार है। सबकी आपत्ति को नाश करनेवाली मङ्गलस्वरूपिणी आपको नमस्कार है। शरण में आये हुये दुःखीजनों के रक्षा में श्रेष्ठ सबके कष्ट को हरण करनेवाली हे नारायणी देवी! आपको नमस्कार है। पापपुण्यरहित रूपवाली दुर्गति को हनन करनेवाली कुशलरूपिणी आपको नमस्कार है। सदा मोक्ष देनेवाली पर से भी परतरा आपको नमस्कार है। हे गङ्गे! आप मेरे आगे रहें मेरे पीछे रहें मेरे दाहिने एवं बायें रहें तथा आप ही में मैं रहूँ। आदि मध्य और अन्त में पृथ्वी पर आने वाली आप ही हैं। आप ही मूलप्रकृति हैं। आप ही श्रेष्ठ नारायण हैं। हे गङ्गे! आप ही परमात्मा और शंकर हैं आपको नमस्कार है। जो पुरुष इस स्तोत्र को प्रतिदिन भक्तिपूर्वक पढ़ता है श्रद्धायुक्त शरीर वाणी और मन से सुनता है, वह दस प्रकार के दोषों से छूट जाता है। सभी इच्छायें पूर्ण होती हैं। मरने पर ब्रह्म में लीन होता है।

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे दशमी हस्तसंयुता।
तस्यां दशम्यामेतच्च स्तोत्रं गङ्गाजले स्थितः॥ १८॥
यः पठेद्दशकृत्वस्तु दरिद्रो वापि चाक्षमः।

सोपि तत्फलमाप्नोति गङ्गां संपूज्य यत्नतः ॥ १९ ॥
अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः ।
परदारोपसेवा च कायिकं त्रिविधं स्मृतम् ॥ २० ॥
पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चापि सर्वशः ।
असंबद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् ॥ २१ ॥
परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसाऽनिष्टचिन्तनम् ।
वितथाभिनिवेशश्च मानसं त्रिविधं स्मृतम् ॥ २२ ॥
एतानि दश पापानि हर त्वं मम जाह्नवि ।
दशपापहरा यस्मात्तस्माद्दशहरा स्मृता ॥ २३ ॥
त्रयस्त्रिंशच्छतं पूर्वान्पितॄनथ पितामहान् ।
उद्धरत्येव संसारान्मन्त्रेणानेन पूजिता ॥ २४ ॥

ज्येष्ठ शुक्लपक्ष हस्तनक्षत्रयुक्त दशमी में गङ्गाजल में खड़े होकर इस स्तोत्र को जो दसबार पढ़ता है वह दरिद्र हो या असमर्थ हो, वह भी यत्नपूर्वक गङ्गा का पूजन कर उसका फल पाता है। नहीं दी हुई वस्तु का ग्रहण, शास्त्रीय विधानरहित हिंसा और परस्त्रीगमन, ये तीन प्रकार के शारीरिक पाप हैं। परुषवचन बोलना, झूठ बोलना, सब प्रकार की चुगली, बकवाद करना; ये चार प्रकार के वाणी के पाप हैं। दूसरे के द्रव्य को लेने की इच्छा से ध्यान करना, किसी की बुराई सोचना, झूठा आग्रह, यह तीन प्रकार का मानस-पाप है। हे जह्नुसुते गङ्गे! इन मेरे दस पापों को आप हरण करें। ३३०० पहले के पितृ पितामह गणों की इस मन्त्र से पूजा करने पर आप संसार से उद्धार करती हैं।

नमो भगवत्यै दशपापहरायै गङ्गायै नारायण्यै रेवत्यै शिवायै दक्षायै अमृतायै विश्वरूपिण्यै नन्दिन्यै ते नमोनमः ।

सितमकरनिषण्णां शुभ्रवर्णां त्रिनेत्रां करधृतकलशोद्यत्सोत्पलामत्यभीष्टाम् ।
विधिहरिहररूपां सेन्दुकोटीरजुष्टां कलितसितदुकूलां जाह्नवीं तां नमामि ॥२५॥

आदावादिपितामहस्य निगमव्यापारपात्रे जलं
पश्चात्पन्नगशायिनो भगवतः पादोदकं पावनम् ।
भूयः शंभुजटाविभूषणमणिर्जह्नोर्महर्षेरियं
देवीकल्मषनाशिनी भगवती भागीरथी दृश्यते ॥ २६ ॥

गङ्गागङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ २७ ॥

इति स्तोत्रेण स्तुत्वा होमान्ते प्रतिमोत्तरपूजां कृत्वा विसृज्याचार्याय मूलमन्त्रेण दद्यात् । इति दशहराविधिः ।

दसपाप के हरण करनेवाली भगवती, नारायणी, रेवती, शिव, दक्षा, अमृता, विश्वरूपिणी नन्दिनी, गङ्गाजी को नमस्कार है। सफेद घड़ियाल पर बैठी हुई शुभ्रवर्ण तीन नेत्रोंवाली कमल के सहित कलश को हाथ में धारण करनेवाली ब्रह्म-विष्णु-शिव-स्वरूपिणी करोड़ों चन्द्रमाओं से युक्त

श्वेतवस्त्र धारण करनेवाली जह्नुसुता गङ्गा को प्रणाम करता हूं। सृष्टि के आदि में आदि पितामह के वेदव्यापार पात्र में जलस्वरूपिणी पश्चात् शेषशायी भगवान के पवित्र पादोदक रूप, फिर शङ्कर की जटा को भूषित करनेवाली मणिरूप और महर्षिजह्नु की पापनाशिनी यह भगवती भागीरथी दीखती हैं। जो मनुष्य सौ योजना के दूर से भी गङ्गा-गङ्गा ऐसा कहता है, वह सभी पापों में छूट जाता है तथा विष्णुलोक जाता है। इस स्तोत्र से स्तुति कर होम के अन्त में प्रतिमा की उत्तरपूजा करके विसर्जन कर, मूलमन्त्र से आचार्य को दे। दशहराविधि समाप्त।

अथ निर्जलैकादशी

ज्येष्ठशुक्लैकादशी निर्जला। अस्यां नित्याचमनादिव्यतिरिक्तजलपानवर्जने-नोपवासे कृते द्वादशैकादश्युपवासफलम्। 'द्वादश्यां च निर्जलोपोषितैकादशीव्रता-ङ्गत्वेन सहिरण्यसशर्करोदकुम्भदानं करिष्ये' इति संकल्प्य,

देवदेव हृषीकेश संसारार्णवतारक।
उदकुम्भप्रदानेन यास्यामि परमां गतिम्॥

इति मन्त्रेण शर्करायुतं सहिरण्यमुदकुम्भं[1] दद्यात्।

ज्येष्ठशुक्ल एकादशी निर्जला एकादशी है। इसमें नित्य आचमन को छोड़ कर जलपान-वर्जनपूर्वक उपवास करने से बारह एकादशी के उपवास का फल होता है। 'द्वादशी के दिन निर्जल उपवास की हुई एकादशी व्रत के अङ्गरूप सोना और चीनी के साथ जलकुम्भदान करूँगा' ऐसा सङ्कल्प कर, हे हृषीकेश! संसाररूपी समुद्र से पार करनेवाले जलकुम्भदान से परमगति को प्राप्त करूँ, इस मन्त्र से चीनी से युक्त सोने के साथ जलकुम्भ का दान करे।

अथ त्रिविक्रमपूजनम्

ज्येष्ठमाससितद्वादश्यामहोरात्रं त्रिविक्रमपूजनाद् गवामयनाख्यक्रतुफलसिद्धिः।

ज्येष्ठमास के शुक्लद्वादशी में त्रिविक्रमदेव की दिनरात पूजा करने से गायों के अयन नामक यज्ञ की फलसिद्धि होती है।

अथ ज्येष्ठपूर्णिमायां दानानि बिल्वत्रिरात्रव्रतं च

ज्येष्ठपौर्णमास्यां तिलदानादश्वमेधफलम्। ज्येष्ठानक्षत्रयुतायां ज्यैष्ठ्यां छत्रोपा-नहदानान्नराधिपत्यप्राप्तिः। ज्येष्ठपूर्णिमायां बिल्वत्रिरात्रव्रतमुक्तम्। अत्र सा परविद्धा ग्राह्या।

ज्येष्ठ की पूर्णिमा में तिलदान से अश्वमेधयज्ञ का फल मिलता है। ज्येष्ठा नक्षत्र से युक्त ज्येष्ठपूर्णिमा में छाता और जूता के दान से नृपत्व की प्राप्ति होती है। ज्येष्ठपूर्णिमा में बिल्वत्रिरात्रव्रत होता है। इसमें पूर्णिमा परविद्धा ग्राह्य है।

अथ वटसावित्रीव्रतम्

अस्यामेव [2]वटसावित्रीव्रतम्। अत्र व्रते त्रयोदश्यादिदिनत्रयमुपवासः। अशक्तौ

---

१. स्कान्दे—'ज्येष्ठे मासि नृपश्रेष्ठ या शुक्लैकादशी शुभा। निर्जलं समुपोष्यात्र जलकुम्भान् सशर्करान्। प्रदाय विप्रमुख्येभ्यो मोदते विष्णुसन्निधौ॥' इति।

२. स्कन्दपुराण के—'ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे पूर्णिमायां तथा व्रतम्। चीर्णं पुरा महाभक्त्या कथितं ते मया नृप॥' इस वचन के अनुसार—

तु त्रयोदश्यां नक्तं चतुर्दश्यामयाचितं पौर्णमास्यामुपोषणम्। अत्र पौर्णमासीनिर्णयानुसारेण यथा त्रिरात्रं भवेत्तथा त्रयोदश्यादिदिनत्रयं ग्राह्यम्। तत्र पौर्णिमा सूर्यास्तमयात्पूर्वं त्रिमुहूर्ताधिकव्यापिनी चतुर्दशीविद्धा ग्राह्या, त्रिमुहूर्तन्यूनत्वे परैव। 'भूतोऽष्टादशनाडीभिर्दूषयत्युत्तरां तिथिम्' इति वचनं सावित्रीव्रतातिरिक्ते ज्ञेयम्। सावित्रीव्रतोपवासेऽष्टादशनाडीविद्धाया अपि ग्राह्यत्वात्।

ज्येष्ठपूर्णिमा में वटसावित्रीव्रत होता है। इस व्रत में त्रयोदशी से तीन दिन का उपवास होता है। असमर्थ को तो त्रयोदशी में नक्तव्रत, चतुर्दशी में अयाचितव्रत और पूर्णिमा में उपवासव्रत होता है। यहाँ पूर्णिमा निर्णय के अनुसार जैसे तीन रात हो उसी प्रकार त्रयोदशी आदि तीन दिन ग्रहण करना चाहिये। उसमें पूर्णिमा, सूर्यास्त के पहले तीन मुहूर्त से अधिक होनेवाली चतुर्दशीविद्धा और तीन मुहूर्त से कम होने पर परा ग्राह्य है। 'चतुर्दशी १८ घड़ियों से परतिथि को दूषित करती है' यह वचन सावित्रीव्रत को छोड़ कर, अन्य व्रतों के लिये जानना चाहिये। सावित्रीव्रत के उपवास में १८ घड़ी से विद्धा का भी ग्राह्य है।

यत्तु केवलपूजनात्मकमुपवासरहितं सावित्रीव्रतं सर्वत्र स्त्रियोऽनुतिष्ठन्ति तत्र भूतोष्टादशेति वेधो व्रतदानादिपरो न तूपवासपर इति निर्णयसिन्धुलिखितमाधवाशयानुसारेणाष्टादशनाडी चतुर्दशीसत्त्वे परैव पूजाव्रते ग्राह्या। उपवासव्रते तु पूर्वेति मम प्रतिभाति। अत्र पारणं पूर्णिमान्ते कर्तव्यम्।

जो कि उपवास के विना केवल पूजनमात्र सावित्री व्रत स्त्रियां करती हैं, उसमें चतुर्दशी १८ दण्ड से पूर्णिमा को विद्ध करती है। यह वेध व्रत और दानपरक है उपवासपरक नहीं, ऐसे निर्णयसिन्धु में लिखे हुये माधव के आशय के अनुसार १८ घड़ी चतुर्दशी रहने से परा ही पूजाव्रत में ग्राह्य है। उपवासव्रत में तो पूर्वा मुझे अच्छी लगती है। इसमें पारण पूर्णिमा के अन्त में करना चाहिये।

अत्र रजस्वलादिदोषे पूजादि ब्राह्मणद्वारा कार्यम्। स्वयमुपवासादिकं कार्यमित्यादयः स्त्रीव्रते विशेषाः प्रथमपरिच्छेदे ज्ञेयाः। अत्र पूजोद्यापनादिविधिर्व्रतग्रन्थे प्रसिद्धः।

यह वटसावित्री व्रत कहीं ज्येष्ठपूर्णिमा में और भविष्यपुराण के—'अमायां च तथा ज्येष्ठे वटमूले तथा सती। त्रिरात्रोपोषिता नारी विधिनाऽनेन पूजयेत्॥' इस वचन के अनुसार कहीं ज्येष्ठ की अमावास्या में प्रचलित है। हेमाद्रिने भाद्रपद की पूर्णिमा और कुछ निबन्धकार ज्येष्ठकृष्ण चतुर्दशी में इस व्रत को करने के लिये लिखा, किन्तु ज्येष्ठ-अमा और ज्येष्ठ की पूर्णिमा ये दोनों तिथियां मुख्य हैं। इन्हीं दोनों तिथियों के उद्देश्य से वीरमित्रोदयकार ने लिखा—'ज्येष्ठपञ्चदश्योर्वटसावित्रीव्रतम्'। पूर्वविद्धा ग्रहण करने का मूलवचन निगम में—'कृष्णाष्टमी बृहत्तपा सावित्री वटपैतृकी। अनङ्गत्रयोदशी रम्भा उपोष्याः पूर्वसंयुताः॥' इति।

भविष्यपुराण में व्रत की विशेषता—'गृहीत्वा वालुकां पात्रे प्रस्थमात्रां युधिष्ठिर। ततो वंशमये पात्रे वस्त्रयुग्मेन वेष्टिते॥ सावित्रीप्रतिमां कुर्यात् सौवर्णी वाऽपि मृन्मयीम्। सार्धं सत्यवता साध्वीं फलनैवेद्यदीपकैः॥ रजन्या कण्ठसूत्रैश्च शुभैः कुङ्कुमकेसरैः।' 'पूजयेत्' यह शब्द यहां शेष है। रजनी=हरिद्रा। कण्ठसूत्रं = सौभाग्यसूत्र। 'सावित्र्याख्यानकं वाऽपि वाचयीत द्विजोत्तमैः। रात्रौ जागरणं कृत्वा प्रभाते विमले ततः। तामपि ब्राह्मणे दत्त्वा प्रणिपत्य क्षमापयेत्।' दानमन्त्रः—'सावित्रीयं मया दत्ता सहिरण्या महासती। ब्रह्मणः प्रीणनार्थाय ब्राह्मण! प्रतिगृह्यताम्।' इति।

इसमें रजस्वला आदि दोष के होने पर पूजा आदि ब्राह्मण के द्वारा कराना चाहिये। उपवास आदि स्वयं करे। इत्यादि स्त्रीव्रत में यही विशेष बातें प्रथमपरिच्छेद से जानना चाहिये। इसमें पूजा, उद्यापन आदि की विधि व्रतग्रन्थों में प्रसिद्ध है।

अथ महाज्यैष्ठीयोगः

अत्र ज्येष्ठपौर्णिमायां ज्येष्ठानक्षत्रे बृहस्पतिश्चन्द्रश्च रोहिणीनक्षत्रे तु सूर्यस्तदा महाज्यैष्ठीति योगस्तत्र स्नानदानादिकं कार्यम्। अस्याः पौर्णमास्या मन्वादित्वादत्र पिण्डरहितं श्राद्धमुक्तम्। एतन्निर्णयश्चैत्रे उक्तः। अत्र मासे विप्रेभ्यश्चन्दनव्यजनोदकुम्भादिकं[1] त्रिविक्रमप्रीतये देयम्। इति ज्येष्ठमासनिर्णयोद्देशः।

ज्येष्ठ की पूर्णिमा को ज्येष्ठानक्षत्र में बृहस्पति और चन्द्रमा हों और रोहिणीनक्षत्र में सूर्य हों तो महाज्येष्ठीयोग होता है। इसमें स्नान-दान आदि करना चाहिये। इस पूर्णिमा के मन्वादि तिथि होने से इसमें पिण्डरहित श्राद्ध कहा है। उसका निर्णय चैत्र में कह चुके हैं। इस महीने में त्रिविक्रम भगवान् की प्रसन्नता के लिये ब्राह्मणों को चन्दन, पंखा, जलकुम्भ आदि का दान करना चाहिये। ज्येष्ठमासनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ आषाढकृत्ये कर्कसंक्रान्तिः

अथाषाढे दक्षिणायनसंज्ञा कर्कसंक्रान्तिः। कर्कसंक्रान्तौ पूर्वं त्रिंशन्नाड्यः पुण्यकालः। तत्रापि संक्रान्तिसन्निहिता नाड्यः पुण्यतमाः। रात्रावर्धरात्रात्प्राक् परतश्च संक्रमेपि पूर्वदिने पुण्यकालः। तत्रापि मध्याह्नात्परतः पुण्यतमत्वम्। सूर्योदयोत्तरं घटीद्वयात्प्राक् संक्रमे परत एव पुण्यम्। ज्योतिर्ग्रन्थे तु सूर्योदयात् प्राक् घटीत्रयात्मकसंध्यासमयेऽपि कर्कसंक्रमे परदिने एव पुण्यमित्युक्तम्। अत्र दानोपवासादि प्रथमपरिच्छेदे उक्तम्। कर्ककन्याधनुःकुम्भस्थे रवौ केशकर्तनादिकं निषिद्धम्।

आषाढ़ में दक्षिणायन संज्ञा की कर्कसंक्रान्ति होती है। कर्कसंक्रान्ति में पहली ३० घड़ियाँ पुण्यकाल हैं। उसमें भी संक्रान्ति की समीपवाली घड़ियां अतिशय पुण्यजनक हैं। रात में आधीरात के पहले अथवा बाद में संक्रमण होने पर पूर्वदिन में पुण्यकाल होता है। इसमें भी मध्याह्न के अनन्तर अतिशय पुण्य होता है। सूर्योदय के बाद दो घड़ी से पहले संक्रान्ति होने पर परकाल ही में पुण्यकाल होता है। ज्यौतिष के ग्रन्थों में तो सूर्योदय से पहले तीन घड़ीस्वरूप संध्यासमय में भी कर्क की संक्रान्ति होने पर, परदिन में ही पुण्य है—ऐसा कहा है। इसमें दान उपवास आदि प्रथमपरिच्छेद में कह चुके हैं। कर्क, कन्या, धनु और कुम्भ के सूर्य में बाल कटाना आदि वर्जित है।

अथ मासव्रतदानादिकम्

आषाढे मासमेकभक्तव्रते कृते बहुधनधान्यपुत्रप्राप्तिः। अत्र मासे उपानच्छत्रलवणामलकानि वामनप्रीत्यै देयानि।

आषाढ़मास में एकभक्त व्रत करने से अधिक धन-धान्य और पुत्र की प्राप्ति होती है। इस महीने में भगवान् वामन की प्रसन्नता के लिये जूता, छाता, नमक और आँवले का दान करे।

---

१. वामनपुराण में इन दानवस्तुओं का मूलवचन—'उदकुम्भाम्बुदानं च तालवृन्तं सचन्दनम्। त्रिविक्रमस्य प्रीत्यर्थं दातव्यं ज्येष्ठमासि तु॥' इति।

अथ रामरथोत्सवः

आषाढशुक्लद्वितीयायां पुष्यनक्षत्रयुतायां केवलायां वा श्रीरामस्य [1]रथोत्सवः। आषाढशुक्लपक्षे दशमी पौर्णमासी च मन्वादिः । तन्निर्णयस्तूक्तः ।

आषाढ़शुक्ल द्वितीया में पुष्यनक्षत्र से योग होने पर अथवा पुष्यनक्षत्ररहित द्वितीया में श्रीरामचन्द्रजी का रथोत्सव होता है । आषाढ़ शुक्लपक्ष में दशमी और पूर्णिमा, ये दो मन्वादितिथि हैं । इनका निर्णय कह चुके हैं ।

अथ विष्णुशयनोत्सवः

अथैकादश्यां [2]विष्णुशयनोत्सवः। तत्र सोपस्करे मञ्चके सुप्तां श्रीविष्णुप्रतिमां शङ्खादिचतुरायुधां लक्ष्मीसंवाहितचरणां नानाविधोपचारैः संपूजयेत् ।

सुप्ते त्वयि जगन्नाथे जगत्सुप्तं भवेदिदम् ।
विबुद्धे त्वयि बुध्येत तत्सर्वं सचराचरम् ॥

इति प्रार्थ्य उपोष्य जागरं कृत्वा द्वादश्यां पुनः संपूज्य त्रयोदश्यां गीतनृत्यवाद्यादिकं निवेदयेत् । एवमिदं त्रिदिनसाध्यं व्रतम् । तत्र स्मार्तैर्वैष्णवैश्च स्वस्वैकादशीव्रतदिने शयनीव्रतमारब्धव्यम्। रात्रौ शयनोत्सवः। दिवाप्रबोधोत्सवः । द्वादश्यां पारणाहे शयनप्रबोधोत्सवाविति केचित् । अत्र देशाचाराद् व्यवस्था । नेदं मलमासे कार्यम्।

एकादशी में विष्णुशयनोत्सव होता है । तोसक, तकिया, बिछे हुये मंच पर शंख, चक्र, गदा, पद्म, इन चार शस्त्रवाली लक्ष्मी द्वारा चरणसेवा की जाती हुई श्री विष्णु की प्रतिमा की अनेक प्रकार के उपचारों से सम्यक् पूजा करे । 'आप जगन्नाथ के सोने पर यह जगत् सो जाता है और आपके जग जाने पर यह चराचर जगत् जगता है'—ऐसी प्रार्थना कर, उपवास और रात्रि जागरण करके पुनः सम्यक् पूजा कर त्रयोदशी में गाना बजाना नाचना आदि उनके सामने करे । इस प्रकार यह व्रत तीन दिन में होता है । उसमें स्मार्त और वैष्णव अपनी एकादशीव्रत के दिन शयनव्रतका आरम्भ करे । रात में शयन और दिन में जागरण का उत्सव होता है । कोई कहते हैं द्वादशी में पारणा के दिन शयन और जागरण का उत्सव करे । देशाचार से इसकी व्यवस्था करनी चाहिये । इस व्रत को मलमास में नहीं करे ।

---

१. स्कन्दपुराण में रथयात्रा—'आषाढस्य सिते पक्षे द्वितीया पुष्यसंयुता । तस्यां रथे समारोप्य रामं वै भद्रया सह ॥ यात्रोत्सवं प्रवर्त्याथ प्रीणयेत द्विजान् बहून् ।' पुष्यनक्षत्र उस तिथि में न हो तो तिथि में ही रथयात्रोत्सव करे—'ऋक्षाभावे तिथौ कार्या यात्राऽसौ प्रीतये मम ।' इति ।

२. एकादशी में विष्णुशयनोत्सव करने का मूलवचन ब्रह्मपुराण में—'एकादश्यां तु शुक्लायामाषाढे भगवान् हरिः । भुजङ्गशयने शेते क्षीरार्णवजले सदा ॥' इति । द्वादशी में करने का मूलवचन भविष्यपुराण में—'आभाकासितपक्षेषु मैत्रश्रवणरेवती । आदिमध्यावसानेषु प्रस्वापावर्तनोत्सवाः ॥ निशि स्वापो दिवोत्थानं सन्ध्यायां परिवर्तनम् । अन्यत्र पादयोगेऽपि द्वादश्यामेव कारयेत् ॥ अभाकाद्येषु मासेषु मिथुने माधवस्य च । द्वादश्यां शुक्लपक्षे च प्रस्वापावर्तनोत्सवाः ॥' इति । इसकी व्यवस्था देश भेद से अथवा वैष्णव और स्मार्त अपने एकादशीव्रत दिन के अनुसार करें ।

अथाषाढद्वादशीपारणानिर्णयः

आषाढशुक्लद्वादश्यामनुराधायोगरहितायां पारणं कार्यम्। तत्रापि अनुराधायोग एव वर्ज्यः। यदा तु द्वादशी स्वल्पा वर्ज्यनक्षत्रभागो द्वादशीमतिक्रम्य विद्यते, तदा निषेधमनादृत्य द्वादश्यामेव पारणं कार्यमिति कौस्तुभे उक्तम्। सङ्गवकालभागं त्यक्त्वा प्रातर्मध्याह्नभागे वा भोक्तव्यमिति पुरुषार्थचिन्तामणौ।

आषाढ़शुक्ल द्वादशी में अनुराधानक्षत्र के न रहने पर पारणा करनी चाहिये। इसमें भी अनुराधा के प्रथम चरण का योग ही वर्जित है। जब द्वादशी बहुत थोड़ी हो, वर्जित नक्षत्र का योग द्वादशी के आगे हो तो निषेध का अनादर कर द्वादशी में ही पारणा करें—ऐसा कौस्तुभ में कहा है। पुरुषार्थचिन्तामणि में संगवकाल छोड़कर प्रातःकाल अथवा मध्याह्नकाल में पारणा करे, ऐसा लिखा है।

अथ चातुर्मास्यव्रतम्

द्वादश्यां पारणोत्तरं सायं पूजां कृत्वा चातुर्मास्यव्रतसंकल्पं कुर्यादिति कौस्तुभे। एकादश्यामेवेति निर्णयसिन्धुः।

[1]चातुर्मास्यव्रतप्रथमारम्भो गुरुशुक्रास्तादावाशौचादौ च न भवति। द्वितीयाद्यारम्भस्तु अस्तादौ आशौचादौ च भवत्येव। चातुर्मास्यव्रतं च शैवादिभिरपि कार्यम्। व्रतग्रहणप्रकारस्तु भगवतो जातीपुष्पादिभिर्महापूजां कृत्वा—

सुप्ते त्वयि जगन्नाथ जगत्सुप्तं भवेदिदम्।
विबुद्धे त्वयि बुध्येत प्रसन्नो मे भवाच्युत॥

इति प्रार्थ्य अग्रे कृताञ्जलिः—

कौस्तुभकार के मत में द्वादशी में पारणा के बाद सायंकाल की पूजा करके चातुर्मास्य व्रत का संकल्प करे। निर्णयसिन्धुकार तो एकादशी में ही संकल्प करने को कहते हैं। पहले पहल चातुर्मास्यव्रत आरम्भ करने पर वह गुरु शुक्र के अस्त आदि और अशौच आदि में नहीं होता है। द्वितीय आरम्भ में तो गुरुशुक्रास्तादि और अशौच आदि में होता ही है। चातुर्मास्यव्रत शैव आदि को भी करना चाहिये। व्रत के ग्रहण का विधान तो यह है—भगवान की जूही आदि के फूलों से महती पूजा करके 'भगवान् जगन्नाथ के सो जाने पर यह संसार सो जाता है, उनके जगने पर जगता है, हे अच्युत भगवान्! मुझ पर प्रसन्न हों' इस प्रकार आगे अञ्जलि बनाकर प्रार्थना करे।

चतुरो वार्षिकान्मासान्देवस्योत्थापनावधि।
श्रावणे वर्जये शाकं दधि भाद्रपदे तथा॥
दुग्धमाश्वयुजे मासि कार्तिके द्विदलं तथा।
इमं करिष्ये नियमं निर्विघ्नं कुरु मेऽच्युत॥

---

१. महाभारते—'आषाढे तु सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः। चातुर्मासव्रतं कुर्याद्यत्किंचिन्नियतो नरः॥' वार्षिकांश्चतुरो मासान् वाहयेत् केनचिन्नरः। व्रतेन नोचेदाप्नोति किल्बिषं वत्सरोद्भवम्॥' इति। वृद्धगार्ग्य ने शुक्रास्तादि में भी इसका आरम्भ करना बतलाया—'न शैशवं न मौढ्यं च शुक्रगुर्वोर्न वा तिथेः। खण्डत्वं चिन्तयेदादौ चातुर्मास्यविधौ नरः॥' इति।

इदं व्रतं मया देव गृहीतं पुरतस्तव ।
निर्विघ्नं सिद्धिमायातु प्रसादात्ते रमापते ॥
गृहीतेऽस्मिन्व्रते देव पंचत्वं यदि मे भवेत् ।
तदा भवतु संपूर्णं प्रसादात्ते जनार्दन ॥

इति प्रार्थ्य देवाय शङ्खेनार्घ्यं निवेदयेत् । एतानि व्रतानि नित्यानि ।

वर्ष के चारों महीने भगवान् के जगने से लेकर श्रावण में शाक त्याग दे । भादों में दही न खाय । आश्विन में दूध सेवन न करे और कार्तिक में दाल न खाय । इस नियम को श्रावण से कार्तिक तक मैं करूँगा । हे अच्युत भगवान् ! इस मेरे नियम को विघ्नरहित कीजिये । हे देव-देव ! इस व्रत को आपके सामने मैंने ग्रहण किया है । हे लक्ष्मीपते । आपके प्रसाद से मुझे इससे विघ्नरहित सिद्धि प्राप्त हो । हे देव ! इस व्रत के ग्रहण करने पर यदि मेरा मरण हो जाय तो आप के प्रसाद से हे जनार्दन ! यह व्रत पूरा हो, ऐसी प्रार्थना करके भगवान् को शंख से अर्घ्य निवेदन करे । ये व्रत नित्य हैं ।

हविष्यभक्षणादिव्रतान्तरचिकीर्षायां 'श्रावणे वर्जये शाकम्' इति श्लोकस्थाने 'हविष्यान्नं भक्षयिष्ये देवाहं प्रीतये तव' इत्यूहः कार्यः। शाकव्रते व्रतान्तरे च समुच्चयेन कर्तव्ये तं श्लोकं पठित्वा व्रतान्तरमन्त्रं वदेत् । एवं गुडवर्जनादिधारणापारणादिव्रतेषु—

वर्जयिष्ये गुडं देव मधुरस्वरसिद्धये ।
वर्जयिष्ये तैलमहं सुन्दराङ्गत्वसिद्धये ॥
योगाभ्यासी भविष्यामि प्राप्तुं ब्रह्मपदं परम् ।
मौनव्रती भविष्यामि स्वाज्ञापालनसिद्धये ॥
एकान्तरोपवासी च प्राप्तुं ब्रह्मपुरं परम् ।

इत्यादिरीत्योहः कार्यः । निषिद्धमात्रवर्जनेच्छायां 'वृन्ताकादिनिषिद्धानि हरे सर्वाणि वर्जये' इति संकल्पः ।

हविष्यभक्षण आदि दूसरे व्रतों के करने की इच्छा में 'श्रावण में शाक वर्जन करूँगा' इसकी जगह 'हे देव ! आप की प्रीति के लिये मैं हविष्यान्नभक्षण करूँगा' ऐसी कल्पना करनी चाहिये । शाकव्रत और दूसरे व्रतों में भी दोनों का फल प्राप्त करना हो तो शाकव्रत की बात को कह कर दूसरे व्रत का मन्त्र कहे । इसी प्रकार गुडवर्जन आदि की धारणा और पारणा आदि व्रतों में । 'अपनी आवाज को मधुर बनाने के लिये हे देव ! मैं गुड का वर्जन करूँगा' 'सुन्दर अंग होने के लिये मैं तैल का त्याग करूँगा' 'ब्रह्मपद प्राप्त करने के लिये योगाभ्यासी होऊँगा' 'अपनी आज्ञापालन-सिद्धि के लिये मौनव्रती होऊँगा । और 'एक दिन छोड़कर दूसरे दिन उपवास करके श्रेष्ठ ब्रह्मपद प्राप्त करूँगा' इत्यादि रीति से जैसा करना हो वैसी कल्पना करे । यदि ऐसी इच्छा हो कि शास्त्र से निषिद्धमात्र का वर्जन करूँ तो 'हे हरे ! बैगन आदि निषिद्ध सभी चीजों का मैं त्याग करूँगा' ऐसा संकल्प करे ।

अथ चातुर्मास्ये निषिद्धानि

प्राण्यङ्गचूर्णं चर्मस्थोदकं जम्बीरं यज्ञशेषभिन्नं विष्ण्वनिवेदितान्नं दग्धान्नं

मसूरं मांसं चेत्यष्टविधमामिषं वर्जयेत् । निष्पावराजमाषधान्ये लवणशाकं वृन्ताकं कलिङ्गफलम् अनेकबीजफलं निर्बीजं मूलकं कूष्माण्डम् इक्षुदण्डं नूतनबदरीधात्रीफलानि चिञ्चां मञ्चकादिशयनमनृतुकाले भार्यां परान्नं मधुपटोलं माषकुलित्थसितसर्षपांश्च वर्जयेत् । वृन्ताकबिल्वोदुम्बरकलिङ्गभिस्सटास्तु वैष्णवैः सर्वमासेषु वर्ज्याः । अन्यत्र तु गोच्छागीमहिष्यन्यदुग्धं पर्युषितान्नं द्विजेभ्यः क्रीतारसाभूमिजलवणं ताम्रपात्रस्थं गव्यं पल्वलजलं स्वार्थपक्वमन्नमित्यामिषगण उक्तः । चतुर्ष्वपि हि मासेषु हविष्याशी न पापभाक् ।

किसी जीव के अंग का चूर्ण, चमड़े के पात्र का जल, जम्बीरी नीबू, बीजपूर, यज्ञ के बचे हुये अन्न, भगवान् को निवेदन न किया हुआ अन्न, मसूर और मांस, ये आठ प्रकार के मांसगण है । ये आठों चातुर्मास्यव्रत में त्याज्य हैं । निष्पाव, बोड़ा, नमक, शाक, बैगन, कलिंगफल, बहुत बीजवाला फल, निर्बीजफल, मूली, कुम्हड़ा, ऊँख का डंडा, नया बेर, आँवले का फल, इमली, पलंग पर सोना, ऋतुभिन्न काल में स्त्रीगमन, दूसरे का अन्न, शहद, परोरा, उर्द कुर्थी, और सफेद सरसो का वर्जन करे । बैगन, बेल, गूलर, कलिङ्ग और भिस्सटा तो वैष्णवों को सभी महीनों में त्याज्य हैं । अन्य ग्रन्थों में तो गाय, बकरी, भैंस से भिन्न का दूध, बासी अन्न, ब्राह्मणों से खरीदे हुये रस, बनाया हुआ मिट्टी का लवण, ताँबे के पात्र में स्थित गाय का दूध, दही एवं घी, गड्ढे का जल और अपने लिये पकाया हुआ अन्न, इन्हें मांसगण कहा है । चारों ही महीनों में हविष्यभोजन करने वाला पापभागी नहीं होता ।

अथ हविष्याणि

व्रीहिमुद्गयवतिलकङ्गुकलायश्यामाकगोधूमधान्यानि रक्तभिन्नमूलकं सूरणादिकन्दः सैन्धवसामुद्रलवणं गव्यानि दधिसर्पिर्दुग्धानि पनसाम्रनारीकेलफलानि हरीतकीपिप्पलीजीरकशुण्ठीचिञ्चाकदलीलवलीधात्रीफलानि गुडेतरेक्षुविकार इत्येतानि [1]अतैलपक्वानि गव्यं तक्रं माहिषं घृतं क्वचित् ।

धान, यव, मूँग, तिल, कँगुनी, कलाय, साँवाँ, गेहूँ, लाल रंग को छोड़ कर मूली, सूरण आदि कन्द, सेंधा और समुद्र का नमक, गाय का दही, दूध और घी, कटहल, आम, नारियल के फल, हर्रे, पीपल, जीरा, सोंठ, इमली, केला, बड़हर और आँवले का फल, गुड़ को छोड़ कर ऊँख से बने चीनी आदि ये सब चीजें तेल में पकी न हों, गाय का मठ्ठा और भैंस के घी को भी कहीं पर हविष्य कहा है ।

अथ काम्यव्रतानि

गुडवर्जनान्मधुरस्वरता । तैलवर्जनात्सुन्दराङ्गता । योगाभ्यासी ब्रह्मपदमाप्नोति । ताम्बूलत्यागाद्भोगी मधुरकण्ठश्च । घृतत्यागीस्निग्धतनुः । शाकत्यागी पक्वान्न-

---

१. भविष्यपुराणमें हविष्यद्रव्यों का निर्देश–'हैमन्तिकं सितास्विन्नं धान्यं मुद्गा यवास्तिलाः । कलायकङ्गुनीवारा वास्तुकं हिलमोचिका ॥ षष्टिकाः कालशाकं च मूलकं केमुकेतरत् । कन्दः सैन्धवसामुद्रे गव्ये च दधिसर्पिषी ॥ पयोऽनुद्धृतसारं च पनसाम्रहरीतकी । तिन्तिडी जीरकं चैव नागरं नागपिप्पली ॥ कदली लवली धात्री फलान्यगुडमैक्षवम् । अतैलपक्वं मुनयो हविष्याणि प्रचक्षते ॥' इति ।

भुक्। पादाभ्यङ्गत्यागाद्वपुःसौगन्धम्। दधिदुग्धतक्रत्यागाद्विष्णुलोकः। स्थालीपाचितान्नत्यागाद्दीर्घसन्ततिः। भूमौ दर्भशायी विष्णुदासः। भूमिभोजनान्नृपत्वम्। मधुमांसत्यागान्मुनिः। एकान्तरोपवासाद् ब्रह्मलोकः। नखकेशधारणाद्दिने दिने गङ्गास्नानम्। मौनादस्खलिताज्ञा। विष्णुवन्दनाद् गोदानफलम्।

गुड़ के न खाने से मीठा स्वर होता है। तेल छोड़ देने से सुन्दर अंग होते हैं। योग के अभ्यास से ब्रह्मपद पाता है। पान छोड़ देने से भोगवाला और मीठा गला होता है। घृत के छोड़ने से चिकना शरीर होता है। शाक छोड़ने से पक्वान्न खाने वाला होता है। पैर में उबटन न लगाने से शरीर में सुगन्ध होती है। दही, दूध और मट्ठे को छोड़ देने से विष्णुलोक पाता है। बटुली में पकाये अन्न के त्याग से सन्तानवृद्धि होती है। जमीन में कुश पर सोनेवाला भगवान् का दास होता है। भूमि पर भोजन करने से राजत्वकी प्राप्ति होती है। मधु मांस छोड़ देने से मुनि होता है। एक दिन बीच देकर उपवास करने से ब्रह्मलोक पाता है। नख केश के रखने से प्रतिदिन गङ्गास्नान का फल होता है। मौन रहने से कोई आज्ञा स्खलित नहीं होती। भगवान् को प्रणाम करने से गोदान का फल होता है।

विष्णुपादस्पर्शात्कृतकृत्यता। हरेरालये संमार्जनादिना नृपत्वम्। शतप्रदक्षिणाकरणाद्विष्णुलोकः। एकभक्ताशनादग्निहोत्रफलम्। अयाचितेन वापीकूपोत्सर्गादिपूर्तफलम्। षष्ठाहःकालभोजनाच्चिरस्वर्गः। पर्णेषु भोजनात्कुरुक्षेत्रवासफलम्। शिलाभोजनात्प्रयागस्नानफलम्। एवं मासचतुष्टयसाध्यानां व्रतानां संकल्पमेकादश्यां द्वादश्यां वा कृत्वा श्रावणमासव्रतविशेषसंकल्प इहैव कार्यः।

भगवान् के पैर छूने से कृतार्थ हो जाता है। भगवान् के मन्दिर में झाड़ू बहारू आदि सफाई करने पर राजत्व की प्राप्ति होती है। एक सौ प्रदक्षिणा करने से वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है। एकभक्त भोजन से अग्निहोत्र का फल होता है। अयाचितव्रत से बावली, कुआँ आदि के बनाने का फल होता है। दिन में छठें काल के भोजन से बहुत दिन तक स्वर्ग होता है। पत्ते पर भोजन करने से कुरुक्षेत्रवास का फल होता है। पत्थर पर भोजन से प्रयागस्नान का फल होता है। इसी तरह चार महीने में होने योग्य व्रतों का एकादशी या द्वादशी में सङ्कल्प करके सावन महीने में विशेष व्रतों का सङ्कल्प यहीं कर लेना चाहिये।

अथ शाकव्रतनिर्णयः

'अहं शाकं वर्जयिष्ये श्रावणे मासि माधव' इत्यत्र शाकशब्देन लोके प्रसिद्धाः फलमूलपुष्पपत्राङ्कुरकाण्डत्वगादिरूपा वर्ज्या, न तु व्यञ्जनमात्रम्। शुण्ठीहरिद्राजीरकादिकमपि वर्ज्यम्। तत्र तत्कालोद्भवानामातपादिशोषितकालान्तरोद्भवानां च सर्वशाकानां वर्जनं कार्यम्। अथैषां चातुर्मास्यव्रतानां समाप्तौ कार्तिक्यां दानानि तत्रैव वक्ष्यन्ते।

'मैं सावन के महीने में शाक का त्याग करूँगा' इस वचन में शाकशब्द से संसार में प्रसिद्ध फल, मूल, फूल, अङ्कुर, डण्ठल, छाल आदि का त्याग करे, न कि व्यञ्जनमात्र का। सोंठ, जीरा, हल्दी आदि भी छोड़ दे। इसमें सामयिक शाकों को घाम में सुखा कर दूसरे समय में भी होने वाले शाकों को छोड़ देना चाहिये। चातुर्मास्यव्रतों के समाप्त होने पर कार्तिक पूर्णिमा के दानों को वहीं कहेंगे।

अथ तप्तमुद्राधारणनिर्णयः

शयनोबोधिन्योस्तप्तमुद्राधारणमुक्तं रामार्चनचन्द्रिकायाम्। अत्र तप्तमुद्राधारणे विधायकानि प्रशंसावचनानि[1] निषेधकानि निन्दावचनानि च बहुतराण्युपलभ्यन्ते, तेषां शिष्टाचाराद् व्यवस्था। येषां कुले पितृपितामहादिभिस्तप्तमुद्राधारणादिधर्मोऽनुष्ठितस्तैस्तथैवानुष्ठेयः। येषां तु कुलेषु न केनाप्यनुष्ठितस्तैर्न स्वमतिविलसितश्रद्धया तद्धर्मोऽनुष्ठेयो दोषश्रवणादिति तात्पर्यम्।

हरिशयनी और हरिप्रबोधिनी एकादशी में रामार्चनचन्द्रिका में तप्तमुद्राधारण करना कहा है। इसमें तप्तमुद्राधारण के विषय में प्रशंसा, और निषेधक निन्दा के वचन बहुत से मिलते हैं। उन वचनों की व्यवस्था शिष्टाचार से करनी चाहिये। जिसके कुल में बाप दादों से तप्तमुद्राधारण आदि का अनुष्ठान होता आया है, वे लोग वैसा ही करें। और जिनके कुलों में किसी ने ऐसा नहीं किया, वे अपनी बुद्धि विलसित श्रद्धा से दोषश्रवण के कारण उस धर्म को न करें, यही तात्पर्य है।

अथ द्वादश्यां वामनपूजनम्

आषाढशुक्लद्वादश्यां वामनपूजनेन नरमेधफलम्।

आषाढशुक्ल द्वादशी में वामन भगवान् की पूजा करने से नरमेध का फल होता है।

अथ पूर्णिमायामन्नादिदानम्

पूर्वाषाढायुतायां पौर्णमास्यामन्नपानादिदानादक्षय्यान्नादिप्राप्तिः।

पूर्वाषाढा नक्षत्रयुक्त पूर्णिमा में अन्नपान आदि के दान करने से अक्षय अन्न की प्राप्ति होती है।

अथ शिवशयनोत्सवः कोकिलाव्रतं च

अस्यामेव पौर्णमास्यां प्रदोषव्यापिन्यां श्रीशिवस्य [2]शयनोत्सवः। अस्यामेव कोकिलाव्रतम्। तत्र—

---

१. पद्मपुराण में प्रशंसा का वचन—'अग्निहोत्रं यथा नित्यं वेदस्याध्ययनं यथा। ब्राह्मणस्य तथैवेदं तप्तमुद्रादिधारणम्॥' काशीखण्ड में भी—'ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा यदि वेतरः। शङ्खचक्राङ्कितवनुस्तुलसीमञ्जरीधरः॥ गोपीचन्दनलिप्ताङ्गो दृष्टश्चेत्तदघं कुतः।' इति।

बृहन्नारदीय में तप्तमुद्रानिषेध का वचन—'यस्तु संतप्तशङ्खादिलिङ्गचिह्नतनुर्नरः। स सर्वयातनाभोगी चण्डालो जन्मकोटिषु॥ द्विजं तु तप्तशङ्खादिलिङ्गाङ्किततनुर्नरः। संभाष्य रौरवं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥' और भी—'शङ्खचक्राद्यङ्कनं च गीतनृत्यादिकं तथा। एकजातेरयं धर्मो न जातु स्याद् द्विजन्मनः॥ शङ्खचक्रे मृदा यस्तु कुर्यात्तप्तायसेन वा। स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥ यथा श्मशानजं काष्ठमनर्हं सर्वकर्मसु। तथा चक्राङ्कितो विप्रः सर्वकर्मसु गर्हितः॥' इति।

२. वामनपुराण में शिवशयनोत्सव—'पौर्णमास्यामुमानाथः स्वपते चर्मसंस्तरे। वैयाघ्रे च जटाभारं समुद्ग्रथ्याहिवर्ष्मणा॥' इति।

यही आषाढपूर्णिमा 'गुरुपूर्णिमा' है। इसमें गुरु और व्यास की पूजा की जाती है। अपरार्कमें गुरुका माहात्म्य—'विना तु गुरुणा सम्यग्बोधकेन विपश्चिता। नैव विद्याफलप्राप्तिर्गुरुं तस्मात्तु पूजयेत्॥ अज्ञानदुःखशमनं नरकोद्धारणं तथा। कुतो माता पिता वाऽपि बान्धवोऽपि महागुणः॥ तादृगभ्युदयं कुर्याद्यादृक् कुर्याद् गुरुर्महत्। कोऽन्यो ज्ञानेन दुःखौघादुद्धरेद् भवबन्धनात्॥ सम्यक् शास्त्रार्थबोद्धारं महादेववदर्चयेत्।'

स्नानं करिष्ये नियता ब्रह्मचर्ये स्थिता सती।
भोक्ष्यामि नक्तं भूशय्यां करिष्ये प्राणिनां दयाम् ॥ १ ॥

इति मासव्रतं संकल्प्य कोकिलारूपिणीं शिवां प्रत्यहं संपूज्य नक्तभोजनम्। यस्मिन्वर्षेऽधिकाषाढस्तस्मिन्नेव वर्षे [१]शुद्धाषाढे व्रतं कार्यमित्याचारः स निर्मूलः। आषाढस्य श्रावणस्य वा पौर्णमास्यां चतुर्दश्यामष्टम्यां वा शिवपवित्रारोपणमुक्तम्।

इसी प्रदोषव्यापिनी पूर्णिमा में श्रीशंकर जी का शयनोत्सव और इसी में कोकिलाव्रत होता है इसमें 'ब्रह्मचर्य में नियत रहती हुई स्नान करूँगी रात में भोजन करूँगी, पृथ्वी पर सोऊँगी, और जीवों पर दया करूँगी' ऐसा महीने भर के व्रत का संकल्प कर कोकिलारूप वाली शिवशक्ति का प्रतिदिन पूजन करके रात्रिभोजन करे। जिस साल में अधिक आषाढ़ हो, उसी साल में शुद्ध आषाढ़ में व्रत करना चाहिये, इस आचार में कोई प्रमाण नहीं है। आषाढ़ अथवा श्रावण की पूर्णिमा, चतुर्दशी अथवा अष्टमी में भगवान् शंकर पर पवित्रारोपण कह चुके हैं।

अथ संन्यासिनां व्यासपूजादि

अस्यां पौर्णमास्यां संन्यासिनां चातुर्मास्यावाससंकल्पाङ्गत्वेन क्षौरव्यासपूजादिकं विहितम्। अत्र कर्मणि औदयिकी त्रिमुहूर्ता पौर्णमासी ग्राह्या।

चातुर्मासस्य मध्ये तु वपनं वर्जयेद्यतिः।
चातुर्मासं द्विमासं वा सदैकत्रैव संवसेत् ॥ १ ॥

तत्रादौ क्षौरं विधाय द्वादशमृत्तिकास्नानानि प्राणायामादिविधिंच कृत्वा व्यासपूजां कुर्यात्।

इस पूर्णिमा में संन्यासियों के चातुर्मास्यवाससंकल्प के अङ्ग से क्षौर और व्यासपूजन आदिका विधान है। इस कर्म में सूर्योदयव्यापिनी और तीन मुहूर्तवाली पूर्णिमा का ग्रहण करना चाहिये। चातुर्मास्य के बीच में संन्यासी क्षौर न करावे। चार महीने या दो महीने तक एक स्थानपर वास करे। उसमें प्रथमतः क्षौर करा कर बारह बार मृत्तिकास्नान और प्राणायाम आदि विधि को करके व्यासपूजा करे।

अथ संक्षेपेण तद्विधिः—देशकालौ संकीर्त्य 'चातुर्मास्यावासं कर्तुं श्रीकृष्ण-

---

चिदम्बररहस्यमें—'गुरुभक्तिविहीनाय तपोविद्याव्रतं कुलम्। निष्फलं हि महेशानि केवलं लोकरञ्जनम् ॥ नारायणे महादेवे मातापित्रोश्च राजनि। यथा भक्तिर्भवेद् देवि तथा कार्या निजे गुरौ ॥ लक्ष्मीनारायणौ वाणीधातारौ गिरिजाशिवौ। श्रीगुरुंगुरु पत्नीं च पितराविति चिन्तयेत् ॥ गुरौ मनुष्यबुद्धिं तु मन्त्रे चाक्षरबुद्धिताम्। यन्त्रे मूर्त्यां शिलाबुद्धिं कुर्वाणो नरकं व्रजेत् ॥ गुरुः पिता गुरुर्माता गुरुर्देवो गुरुर्गतिः। शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन ॥' इत्यादि गुरु का महात्म्य देखें।

१. आषाढ में मलमास पड़ने पर शुद्ध आषाढ़पूर्णिमा में ही कोकिलाव्रत कर्तव्य है। वाराहपुराणे—'आषाढौ द्वौ यदा स्यातां कोकिलायास्तदार्चनम्। तथा या कुरुते नारी न सा वैधव्यमाप्नुयात् ॥ शृणु देवि प्रवक्ष्यामि मन्त्रैः पौराणिकैर्युतम्। मलमासे त्वतिक्रान्ते शुद्धाषाढे समागते ॥' इति।

व्यासभाष्यकाराणां सपरिवाराणां पूजनं करिष्ये' इति संकल्प्य मध्ये श्रीकृष्णं तत्पूर्वतः प्रादक्षिण्येन वासुदेवसंकर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धानावाह्य श्रीकृष्णपञ्चकदक्षिणभागे व्यासं तत्पूर्वतः प्रादक्षिण्येन सुमन्तुजैमिनिवैशंपायनपैलानिति व्यासपञ्चकमावाह्य श्रीकृष्णादिवामे भाष्यकारं श्रीशंकरं तत्पूर्वतः प्रादक्षिण्येन पद्मपादविश्वरूपत्रोटकहस्तामलकाचार्यानावाह्य श्रीकृष्णपञ्चके श्रीकृष्णपार्श्वयोर्ब्रह्मरुद्रौ पूर्वादिचतुर्दिक्षु सनकादीन् श्रीकृष्णपञ्चकात्पुरतः गुरुपरमगुरुपरमेष्ठिगुरुपरात्परगुरून् ब्रह्मवसिष्ठशक्तिपराशरव्यासशुकगौडपादगोविन्दपादशंकराचार्यान् ब्रह्मनिष्ठांश्चावाह्य पञ्चकत्रयस्याग्नेये गणेशम् ईशान्ये क्षेत्रपालं वायव्ये दुर्गां नैर्ऋत्ये सरस्वतीं प्रागाद्यष्टदिक्षु इन्द्रादिलोकपालांश्चावाह्य पूजयेत् ।

उसकी संक्षिप्त विधि है—देशकाल को कहकर 'चातुर्मास्यवास करने लिये सपरिवार श्रीकृष्ण, व्यास और भाष्यकारका पूजन करूँगा' ऐसा संकल्प कर बीच में श्रीकृष्ण, उनके पूर्व की ओर प्रदक्षिणक्रम से वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध का आवाहन कर इस कृष्णपञ्चक के दाहिने भागमें व्यास जी और उनके पूर्व की ओर प्रदक्षिणक्रम से सुमन्तु, जैमिनि, वैशम्पायन और पैल, इस व्यासपञ्चक का आवाहन करके श्रीकृष्णपञ्चक के बायीं ओर भाष्यकार, श्रीशङ्कराचार्य, इनके पूर्व की ओर प्रदक्षिणक्रम से पद्मपाद, विश्वरूप, त्रोटक और हस्तामलक, इन आचार्यों का आवाहन करके, श्रीकृष्णपञ्चक में श्रीकृष्ण के दाहिने एवं बायें ब्रह्मा और शंकर जी, पूर्व आदि चारों दिशाओं में सनकादिकों को, कृष्णपञ्चक के आगे गुरु, परमगुरु, परमेष्ठी गुरु एवं परात्परतर गुरुओं को तथा ब्रह्मा, वसिष्ठ, शक्ति, पराशर, व्यास, शुक, गौडपाद, गोविन्दपाद और ब्रह्मनिष्ठ शंकराचार्य का आवाहन कर इन पञ्चकत्रय के आग्नेयकोण में गणेश, ईशान में क्षेत्रपाल, वायव्य में दुर्गा और नैर्ऋत्य में सरस्वती तथा पूरब आदि आठ दिशाओं में इन्द्र आदि लोकपालों का भी आवाहन कर पूजा करे।

तत्र नारायणाष्टाक्षरेण श्रीकृष्णपूजा। अन्येषां प्रणवादिनमोन्तैस्तन्नाममन्त्रैः पूजा कार्या। पूजान्ते असतिप्रतिबन्धे 'चतुरो वार्षिकान्मासानिह वसामि' इति मनसा संकल्प्य—

अहं तावन्निवत्स्यामि सर्वभूतहिताय वै ।
प्रायेण प्रावृषि प्राणिसंकुलं वर्त्म दृश्यते ॥
अतस्तेषामहिंसार्थं पक्षान्वै श्रुतिसंश्रयान् ।
स्थास्यामश्चतुरो मासानत्रैवासति बाधके ॥

इति वाचिकसंकल्पं कुर्यात्। ततो गृहस्थाः प्रतिब्रूयुः—

निवसन्तु सुखेनात्र गमिष्यामः कृतार्थताम् ।
यथाशक्ति च शुश्रूषां करिष्यामो वयं मुदा ॥

ततो वृद्धानुक्रमेण यतीन् गृहस्थाः यतयश्चान्योन्यं नमस्कुर्युः। एतद्विधिः पौर्णमास्यामसम्भवे द्वादश्यां वा कार्यः।

उसमें नारायण के अष्टाक्षरमंत्र से श्रीकृष्ण की पूजा करे। अन्य लोगों का आदि में प्रणव और अन्त में नमः लगाकर, उन-उनके नाममन्त्रों से पूजा करनी चाहिये। पूजा के अन्त में

'कोई प्रतिबन्ध न होने पर वर्ष के चारो महीने यहाँ पर मैं वास करूँगा' ऐसा मनमें संकल्प कर, 'मैं सब जीवों के हित के लिये प्रायः वर्षाकाल में जीवों से व्याप्त मार्ग दिखाई पड़ते हैं, अतः उनकी हिंसा न होने पावे इसलिये चार पक्ष अथवा बाधक न 'होने पर चार महीने यहीं ठहरूँगा' ऐसा वाचिक संकल्प करे। इसके बाद गृहस्थलोग संन्यासियों से कहें—'आप लोग सुखपूर्वक यहाँ निवास करें, हम लोग कृतकृत्य हो जायेंगे। अपनी शक्ति के अनुसार हम लोग प्रसन्नता से सेवा करेंगे।' इसके बाद वृद्धों के क्रम से गृहस्थ लोग संन्यासियों को प्रणाम करें और संन्यासीगण भी परस्पर नमस्कार करें। यह विधि पौर्णमासी में न हो सके तो द्वादशी में करे।

अथ अशून्यशयनव्रतम्

आषाढकृष्णद्वितीयायामशून्यशयनं[1] व्रतम्। अत्र लक्ष्मीयुतं विष्णुं पर्यङ्के संपूज्य,

पत्नी भर्तुर्वियोगं च भर्ता भार्यासमुद्भवम्।
नाप्नुवन्ति यथा दुःखं दंपत्यानि तथा कुरु॥

इत्यादिभिर्दंपत्याभङ्गप्रार्थनार्थैर्मन्त्रैः प्रार्थयेत्। ततश्चन्द्रायार्घ्यं दत्त्वा नक्तभोजनं कार्यम्। एवं मासचतुष्टये कृष्णद्वितीयासु संपूज्य सपत्नीकाय शय्यादानं कृत्वा तां प्रतिमां च सोपस्करां दद्यात्। अस्मिन् व्रते अक्षय्यं दांपत्यसुखं पुत्रधनाद्यवियोगो गार्हस्थ्यावियोगः सप्तजन्मनि भवति। अत्र व्रते चन्द्रोदयव्यापिनी तिथिर्ग्राह्या, चन्द्रोदये पूजाद्युक्तेः। दिनद्वये सत्त्वेऽसत्त्वे वा परैव। इति आषाढमासनिर्णयोद्देशः।

आषाढकृष्ण द्वितीया में अशून्यशयन व्रत होता है। इस दिन लक्ष्मीसहित विष्णु भगवान् को पलंग पर सम्यक् पूजन कर कहे कि—'पत्नी पति का और पति पत्नी का वियोग से जिस प्रकार दुःख न पावे ऐसे अवियुक्त पतिपत्नी हमको करें' इत्यादि पतिपत्नी सदा साथ रहने वाले प्रार्थना-मन्त्रों से प्रार्थना करें। उसके बाद चन्द्रमा को अर्घ्य देकर रात में भोजन करें। इसी प्रकार चारो महीने की कृष्णद्वितीया को पूजा करके पत्नीसहित पति को शय्यादान करके सामग्रीयुक्त लक्ष्मीसहित विष्णु की प्रतिमा देवे। इस व्रत के करने से अक्षय पतिपत्नी को सुख एवं पुत्रधन की प्राप्ति और गृहस्थाश्रम से संयोग सात जन्मों तक होता है। इस व्रत में चन्द्रोदय में ही पूजा के विधान होने से चन्द्रोदयव्यापिनी द्वितीया ग्राह्य है। दो दिन चन्द्रोदयव्यापिनी हो अथवा दोनों दिन न हो तो परा द्वितीया ग्राह्य है। आषाढमासनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ श्रावणकृत्ये सिंहसंक्रान्तिः

[2]सिंहे पराः षोडश नाड्यः पुण्यकालः। रात्रौ तूक्तमेव। अत्र मासे एकभक्तव्रतं नक्तव्रतं विष्णुशिवाद्यभिषेकश्चोक्तः।

---

१. यस्य व्रतस्य आचरणेन शून्यं शयनं पर्यङ्को न भवतीति तद् अशून्यशयनव्रतमित्यर्थः।

२. सिंह और कर्क के सूर्य में सभी नदियां रजोदोष से दूषित रहती हैं इसीलिए अत्रि ने उनमें स्नान का निषेध किया—'सिंहकर्कटयोर्मध्ये सर्वा नद्यो रजस्वलाः। न स्नानादीनि कर्माणि ता कुर्वीत मानवः॥' 'स्नानादीनि' में आदि शब्द से तर्पण-सन्ध्यावन्दनादि का भी निषेध है—'रजोदुष्टेऽम्भसि स्नानं वर्ज्यं नद्यादिषु द्विजैः। कदर्थितं रजस्तेषां सन्ध्योपास्तिश्च तर्पणम्॥' इति।

सिंह की संक्रान्ति में बाद की १६ घड़ियाँ पुण्यकाल है। रात्रि में संक्रमण होने पर कह चुके हैं। इस श्रावणमास में एकभक्तव्रत, नक्तव्रत और विष्णु शिव आदि देवताओं का अभिषेक ही कहा है।

अथ सिंहे गोः प्रसवे क्रन्दने च

सिंहराशिगते सूर्ये यस्य गौः 'प्रसूयते, तेन व्याहृतिभिर्घृताक्तायुतसंख्यसर्षपहोमं कृत्वा सा गौर्ब्राह्मणाय देया। एवं निशीथे गोः क्रन्दनेपि मृत्युंजयमन्त्रेण होमादिरूपा शान्तिः कार्या।

सिंहराशि के सूर्य में जिसकी गाय प्रसव करे वह घी मिले सरसों का व्याहृतियों से दस हजार होम करके वह गाय ब्राह्मण को दे देवे। इसी प्रकार आधी रात में गौ के क्रन्दन करने पर भी मृत्युञ्जय-मन्त्र से होम आदि रूप शान्ति करनी चाहिये।

अथ वडवामहिष्योः प्रसवे

एवं श्रावणमासे दिवाऽश्विनीप्रसवोऽपि निषिद्धः।

व्याघ्र के वचनानुसार गंगानदी तो रजोदोष से दूषित नहीं होती—'सिंहकर्कटयोर्मध्ये सर्वा नद्यो रजस्वलाः। तासु स्नानं न कुर्वीत वर्जयित्वा समुद्रगाः॥' इति। समुद्रगाः = गङ्गादिनद्यः।

गंगाजल के योग से अन्य नदियों का रजोदोष-दुष्ट-जल भी पवित्र हो जाता है, ऐसा मत्स्यपुराण में कहा—'गङ्गाम्भसा समायोगाद् दुष्टमप्यम्बु पावनम्।' इति।

स्मृतिसंग्रह में नदी का लक्षण—'धनुःसहस्राण्यष्टौ च गतिर्यासां न विद्यते। न ता नदीशब्दवहा गर्तास्ताः परिकीर्तिताः॥' विष्णुधर्मोत्तर में धनु का प्रमाण—'द्वादशाङ्गुलिकः शंकुस्तद् द्वयं तु शयः स्मृतः। तच्चतुष्कं धनुः प्रोक्तं क्रोशो धनुःसहस्रिकः॥' इति।

शिष्टों ने समुद्रगामिनी ग्यारह नदियों का नाम निर्दिष्ट किया—'गंगा-महानदी-तापी-कृष्णावेणी-गोदावरी-तुङ्गभद्रा-ताम्रपर्णी-कावेरी-रेवा-गोमती। देवल ने बतलाया—'गङ्गा च यमुना चैव प्लक्षजाता सरस्वती। रजसा नाभिभूयन्ते ये चान्ये नदसंज्ञिताः॥ शोणसिन्धुहिरण्याख्याः कोकलोहितघर्घराः। शतद्रुश्च नदाः सप्त पावनाः परिकीर्तिताः॥' इति।

वसिष्ठ ने कालविशेष में रजोदोषाभाव बतलाया—'उपाकर्मणि चोत्सर्गे प्रेतस्नाने तथैव च। चन्द्रसूर्यग्रहे चैव रजोदोषो न विद्यते॥' इसी प्रकार निगमने नदीतीरवासियों के लिये दोषाभाव कहा—'न तु तत्तीरवासिनाम्'। व्याघ्रपादः—'अभावे कूपवापीनामनपायिपयोभृताम्। रजोदुष्टेऽपि पयसि ग्रामभोगो न दुष्यति॥' इति।

१. नारदः—'भानौ सिंहगते चैव यस्य गौः सम्प्रसूयते। मरणं तस्य निर्दिष्टं षड्भिर्मासैर्न संशयः॥ तत्र शांतिं प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्। प्रसूतां तत्क्षणादेव तां गां विप्राय दापयेत्॥ ततो होमं प्रकुर्वीत घृताक्तै राजसर्षपैः। आहुतीनां घृताक्तानामयुतं जुहुयात्ततः॥ सोपवासः प्रयत्नेन दद्याद् विप्राय दक्षिणाम्। वस्त्रयुग्मं यवं चैव समवर्णं प्रदापयेत्॥ इष्टदैवतमन्त्रेण ततः शान्तिर्भवेद् द्विजः। यहां अयुत (१००००) होम व्याहृति से करना चाहिये।

तथा—'सिंहराशौ गते सूर्ये गोप्रसूतिर्यदा भवेत्। पौषे च महिषी सूते दिवैवाश्वतरी तथा॥ तदाऽनिष्टं भवेत् किंचित्तच्छान्त्यै शान्तिकं चरेत्। अस्य वामेति सूक्तेन तद्विष्णोरिति मन्त्रतः॥ जुहुयाच्च तिलाज्येन शतमष्टोत्तराधिकम्। मृत्युञ्जयविधानेन जुहुयाच्च तथाऽयुतम्॥ श्रीसूक्तेन तथा स्नायाच्छान्तिसूक्तेन वा पुनः। मध्यरात्रे निशीथे वा यदा गौः क्रन्दते सदा॥ ग्रामे वा स्वगृहे वाऽपि शान्तिकं पूर्ववद्विशेत्।' इति।

माघे बुधे च महिषी श्रावणे वडवा दिवा ।
सिंहे गावः प्रसूयन्ते स्वामिनो मृत्युदायकाः ॥

इत्युक्तेरत्रापि शान्तिः शान्तिग्रन्थतो ज्ञेया ।

इसी प्रकार श्रावण के महीने में दिन में घोड़ी का प्रसव भी निषिद्ध है। कहा है कि—'बुध के दिन माघ में भैंस, सावन में दिन में घोड़ी और सिंह की संक्रान्ति में गाय के प्रसव होने पर उसके स्वामी की मृत्यु होती है। अतः शान्तिग्रन्थों से इसमें भी शान्ति करनी चाहिये।

अथ सोमभौमवारव्रतम्

[1]सोमवारव्रतं कार्यं श्रावणे वै यथाविधि ।
शक्तेनोपोषणं कार्यमथवा निशि भोजनम् ॥

एवं श्रावणे भौमवारे गौरीपूजाप्युक्ता । [2]श्रावणशुक्लचतुर्थी मध्याह्न-व्यापिनी पूर्वयुता ग्राह्या ।

श्रावण में सविधि सोमवार का व्रत करे। भरसक समर्थ को उपवास करना चाहिये। अन्यथा रात्रि भोजन करे। इसी प्रकार सावन में मंगलवार को गौरीपूजा भी कही है। श्रावणशुक्ल चतुर्थी मध्याह्नव्यापिनी तृतीयाविद्धा ग्राह्य है।

अथ नागपञ्चमी

श्रावणशुक्लपञ्चमी [3]नागपंचमी । इयमुदये त्रिमुहूर्तव्यापिनी परविद्धा

१. सोमवारव्रत की विधि प्रदोषव्रत की तरह है। प्रदोषव्रत में 'निराहारी भवेद्दिवा' इस वचन के अनुसार दिवाभोजनाभाव-विशिष्ट-रात्रिभोजनरूप नक्तव्रत किया जाता है। इसमें सायंकाल शिवपूजा का महत्त्व स्कन्दपुराण में निर्दिष्ट है—'सोमवारे विशेषेण प्रदोषादिगुणैर्युते। केवलं वाऽपि ये कुर्युः सोमवारे शिवार्चनम् ॥ न तेषां विद्यते किञ्चिदिहामुत्र च दुर्लभम्। उपोषितः शुचिर्भूत्वा सोमवारे जितेन्द्रियः ॥ वैदिकैर्लौकिकैर्वापि विधिवत् पूजयेच्छिवम्। ब्रह्मचारी गृहस्थो वा कन्या वापि सभर्तृका ॥ विभर्तृका वा सम्पूज्य लभते वरमीप्सितम् ॥ इति।

२. श्रावणशुक्ल चतुर्थी गणेशचतुर्थी है, यह पूर्वविद्धा ही ग्राह्य है–'तृतीया संयुता या तु सा चतुर्थी फलप्रदा। कर्तव्या व्रतिभिस्तात गणनाथसुतोषिणी ॥' श्रावणशुक्लतृतीया में गुर्जरदेश में प्रसिद्ध मधुस्रवा या मधुस्रावणीव्रत होता है—'तृतीया नभसः शुक्ला मधुश्रावणिका स्मृता।' यह चतुर्थी-विद्धा ग्राह्य है—'आद्या मधुश्रावणिका कज्जली हरितालिका। चतुर्थीमिश्रिता स्त्रीभिर्दिवानक्ते विधीयते ॥' इति।

३. देवीपुराण में नागपूजा का विधान—'पञ्चम्यां पूजयेन्नागाननन्ताद्यान् महोरगान्। क्षीरं सर्पिस्तु नैवेद्यं देयं सर्वसुखावहम् ॥' भविष्यपुराणे–'श्रावणे मासि पञ्चम्यां शुक्लपक्षे नराधिप। द्वारस्योभयतो लेख्या गोमयेन विषोल्बणाः ॥ पूजयेद् विधिवद् वीर दधिदूर्वाङ्कुरैः कुशैः। गन्धपुष्पो-पहारैश्च ब्राह्मणानां च तर्पणैः ॥ ये तस्यां पूजयन्तीह नागान् भक्तिपुरस्सराः। न तेषां सर्पतो वीर भयं भवति कुत्रचित्। तथा भाद्रपदे मासि पंचम्यां श्रद्धयाऽन्वितः ॥ समालेख्य नरो नागान् शुक्ल-कृष्णादिवर्णकैः। पूजयेद् गन्धपुष्पैश्च सर्पिर्गुग्गुलुपायसैः ॥ तस्य तुष्टिं प्रयान्त्याशु पन्नगास्तक्षकादयः आसप्तमात्कुलात्तस्य न भयं सर्पतो भवेत् ॥' इति।

चमत्कारचिन्तामणिः—'पञ्चमी नागपूजायां कार्या षष्ठीसमन्विता। तस्यां तु तुषिता नागा इतरा सचतुर्थिका ॥' मदनरत्ने—'श्रावणे पंचमी शुक्ला संप्रोक्ता नागपञ्चमी। तां परित्यज्य पञ्चम्यश्चतुर्थी-सहिता हिताः ॥' इति।

ग्राह्या । परेद्युस्त्रिमुहूर्तन्यूना पञ्चमी पूर्वेद्युस्त्रिमुहूर्तन्यूनचतुर्थ्या विद्धा तदा पूर्वैव । त्रिमुहूर्ताधिकचतुर्थीवेधे द्विमुहूर्तापि परैव । मुहूर्तमात्रा तु न ग्राह्येति मम प्रतिभाति । अस्यां भित्त्यादिलिखिता मृन्मया वा यथाचारं नागाः पूज्याः ।

श्रावणशुक्ल पंचमी नागपंचमी है। यह पंचमी सूर्योदय में तीन मुहूर्त रहने वाली षष्ठीविद्धा लेनी चाहिये। यदि दूसरे दिन तीन मुहूर्त से कम पंचमी हो और पहले दिन तीन मुहूर्त से कम चतुर्थी से वेध हो, तो पूर्वा लेनी चाहिये। तीन मुहूर्त से अधिक चतुर्थी के वेध होने पर, दो मुहूर्त वाली ही परा ग्राह्य है। एक मुहूर्त वाली की तो नहीं ग्रहण करनी चाहिये, ऐसा हमारी बुद्धि में आता है। इसमें दीवार आदि पर लिखित सर्प की आकृति अथवा मिट्टी के बने सर्प की, जैसा आचार हो पूजा करे ।

अथ शाकदानम्

'श्रावणशुक्लद्वादश्यां मासं कृतस्य शाकवर्जनव्रतस्य साङ्गतार्थं ब्राह्मणाय शाकदानं करिष्ये' इति संकल्प्य ब्राह्मणं संपूज्य,

उपायनमिदं देव व्रतसंपूर्णहेतवे ।
शाकं तु द्विजवर्याय सहिरण्यं ददाम्यहम् ॥

इत्यादिमन्त्रेण पक्वमामं वा शाकं दद्यात् । ततो 'दधि भाद्रपदे मासे वर्जयिष्ये सदा हरे' इति दधिव्रतं संकल्पयेत् । अत्र दधिमात्रं वर्ज्यं तक्रादीनामनिषेधः ।

श्रावणशुक्ल द्वादशी में 'महीने भर किये हुये शाकत्याग व्रत की सिद्धि के लिये ब्राह्मण को शाकदान करूँगा'— ऐसा संकल्प कर ब्राह्मण की पूजा करके 'हे देव ! व्रत की सम्पूर्णता के लिये यह शाक की भेंट सोने के सहित हे द्विजश्रेष्ठ ! आप को देता हूँ' इस आशय के मंत्र से पकाया हुआ या कच्चा शाक देवे। इसके बाद 'हे हरे ! भाद्रपदमास में मैं दही का त्याग करूँगा' इस प्रकार दधिव्रत का संकल्प करे। इसमें केवल दधि ही त्याज्य है मट्ठे आदि का निषेध नहीं है।

अथ विष्णोः पवित्रारोपणम्

अथ पारणाहे द्वादश्यां विष्णोः [1]पवित्रारोपणम् । पारणाहे द्वादश्यसत्त्वे त्रयोदश्यां पारणाहे तत्रासंभवे श्रवणर्क्षपूर्णिमायां वा कार्यम् । शिवपवित्रं चतुर्दश्यामष्टम्यां वा पौर्णमास्यां वा कार्यम् । एवं देवीगणेशदुर्गादीनां चतुर्दशीचतुर्थीतृतीयानवम्यादयो यथाकुलाचारं तिथयः । तत्तत्तिथिष्वसंभवे सर्वदेवानां

---

१. विष्णुरहस्य में पवित्रनिर्माण के द्रव्य और निर्माणप्रकार—'हैमरौप्यताम्रक्षौमैः सूत्रैः कौशेयपद्मजैः । कुशैः काशैश्च कार्पासैर्ब्राह्मण्या कर्तितैः शुभैः ॥ कृत्वा त्रिगुणितं सूत्रं त्रिगुणीकृत्य शोधयेत् । तत्रोत्तमपवित्रं तु षष्ट्या सह शतैस्त्रिभिः ॥ सप्तत्या सहितं द्वाभ्यां शताभ्यां मध्यमं स्मृतम् । साशीतिना शतेनैव कनिष्ठं तत्समाचरेत् ॥ साधारणपवित्राणि त्रिभिः सूत्रैः समाचरेत् । उत्तम तु शतग्रन्थि पञ्चाशद्ग्रन्थि मध्यमम् ॥ कनिष्ठं तु पवित्रं स्यात् षट्त्रिंशद्ग्रन्थि शोभनम् । षट्त्रिंशच्च चतुर्विंशद् द्वादशेति च केचन । चतुर्विंशद्द्वादशाष्टावित्येके मुनयो विदुः ॥' इति ।

श्रावणपौर्णमास्यां कार्यम् । तत्राप्यसंभवे कार्तिक्यवधिर्गौणकालः । इदं नित्यम्, 'अकुर्वाणो व्रजत्यधः, तस्य सांवत्सरी पूजा 'निष्फला' इत्याद्युक्तेः ।

द्वादशी में पारणा के दिन भगवान् विष्णु पर पवित्रारोपण किया जाता है । पारणा के दिन द्वादशी न रहने पर संभव हो तो त्रयोदशी में पारणा के दिन अथवा पूर्णिमा में श्रावणनक्षत्र में करे । श्रीशंकर पर पवित्रारोपण चतुर्दशी अष्टमी या पूर्णिमा में करे । इसी प्रकार देवी गणेश और दुर्गा आदि का पवित्रारोपण चतुर्दशी चतुर्थी तृतीया और नवमी आदि में जैसा अपना कुलाचार हो करे । उन-उन तिथियों में संभव न होने पर सभी देवताओं का पवित्रारोपण श्रावणपूर्णिमा में करना चाहिये । श्रावणपूर्णिमा में संभव न होने पर कार्तिकपूर्णिमापर्यन्त गौण समय है । यह पवित्रारोपण नित्यकृत्य है । क्योंकि पवित्रारोपण नहीं करनेवाला नरकगामी होता है । उसकी वार्षिकी पूजा निष्फल होती है इत्यादि कहा है ।

गौणकालेप्यकरणे 'तदायुतं जपेन्मन्त्रस्तोत्रं वापि समाहितः' इत्युक्तेरयुत-संख्याकतद्देवतामूलमन्त्रजपः प्रायश्चित्तम् । तत्र पूर्वेद्युरधिवासनं परेह्नि पवित्रा-रोपणम् । द्व्यहकालासंभवे सद्योधिवासनपूर्वकं तत्कार्यम् ।

गौणकाल में भी न करने वाले दत्तचित्त होकर उस देवता का मूलमन्त्र दस हजार जपे, अथवा उसके स्तोत्र का पाठ करे, इस आशय की उक्ति से उस देवता का जप और स्तोत्रपाठ ही प्रायश्चित है । इसमें पहले दिन अधिवासन होता है और दूसरे दिन पवित्रारोपण । दो दिन का समय न मिलने पर तुरत अधिवासन कर पवित्रारोपण करे ।

अथ संक्षेपतः पवित्रकरणप्रयोगः

कार्पाससूत्रस्य नवसूत्रीं विधाय अष्टोत्तरशतनवसूत्र्या देवजानुपर्यन्तं चतुर्विं-शतिग्रन्थिकमुत्तमपवित्रम्, चतुःपञ्चाशन्नवसूत्र्या ऊरुलम्बिद्वादशग्रंथिकं मध्यमम्, सप्तविंशतिनवसूत्र्या अष्टग्रन्थिकं नाभिपर्यन्तकं कनिष्ठं पवित्रं च कृत्वा विंशत्यु-त्तरशतेन सप्तत्या वा नवसूत्र्या पादलम्बिनीं वनमालामष्टोत्तरशतचतुर्विंशत्यन्यतर-ग्रन्थिकां कृत्वा द्वादशनवसूत्र्या द्वादशग्रन्थिकं गन्धपवित्रं सप्तविंशतिनवसूत्र्या गुरुपवित्रं त्रिसूत्र्याङ्गदेवतापवित्राणि कुर्यात् ।

कपास के सूत को नव-गुण करके १०८ नवगुने सूत से देवता के घुटने तक चौबीस गाँठ वाला उत्तम, ५४ नवगुने सूत से जंघे तक १२ गाँठवाला मध्यम और २७ नवगुने सूत्र से आठ गाँठवाला नाभि तक कनिष्ठ, पवित्र बनाकर १२० या सत्तर नवगुने सूत से चरण तक लटकने वाली वनमाला को १०८ या २४ गाँठ डाल कर १२ नवगुने सूत से १२ गाँठ वाला गन्धपवित्र और २७ नवगुने सूत से गुरुपवित्र तथा तिगुने सूत से अङ्गदेवताओं का पवित्र बनावे ।

शिवपवित्राणि लिङ्गविस्तारानुसारेण कुर्यात् । सर्वाणि पवित्राणि पञ्चगव्येन प्रोक्ष्य प्रणवेन प्रक्षाल्य मूलेनाष्टोत्तरशतमभिमन्त्र्य ग्रन्थीन्कुङ्कुमेन रञ्जयित्वा सर्वपवित्राणि वंशपात्रे संस्थाप्य वस्त्रेण पिधाय देवपुरतो न्यस्य,

---

१ विष्णुरहस्य में नित्यत्वबोधकपूर्ण श्लोक ऐसा है—'न करोति विधानेन पवित्रारोपणं तु यः । तस्य सांवत्सरी पूजा निष्फला मुनिसत्तम ॥ तस्माद् भक्तिसमायुक्तैर्नरो विष्णुपरायणैः । वर्षे वर्षे प्रकर्तव्यं पवित्रारोपणं हरेः ॥' इति ।

क्रियालोपविधानार्थं यत्त्वया विहितं प्रभो।
मयैतत्क्रियते देव तव तुष्ट्यै पवित्रकम् ॥
न मे विघ्नो भवेद्देव कुरु नाथ दयां मयि।
सर्वथा सर्वदा विष्णो मम त्वं परमा गतिः ॥

इति प्रार्थ्याधिवासनं कुर्यात्।

शंकर के पवित्रों को लिङ्ग के विस्तार के अनुसार बनावे। सभी पवित्रों को पञ्चगव्य से प्रोक्षण, प्रणव से प्रक्षालन और १०८ मूलमन्त्र से अभिमन्त्रित कर रोली से गाँठों को रंग करके सभी पवित्रों को बाँस के पात्र में रख वस्त्र से ढँक कर देवता के सामने रख करके हे प्रभो! क्रियालोप विधानार्थ आप की प्रसन्नता के लिये यह पवित्रक बनाता हूँ, आप मेरे ऊपर ऐसी दया करें कि पवित्रक बनाने में विघ्न न हो। हे विष्णु आप सब तरह से सब काल मेरे परम गति हों, ऐसी प्रार्थना कर के अधिवासन करे।

तत्र देशकालौ संकीर्त्य 'संवत्सरकृतपूजाफलावाप्त्यर्थम् अमुकदेवताप्रीत्यर्थम् अधिवासनविधिपूर्वकं पवित्रारोपणं करिष्ये' इति संकल्प्य देवपुरतः सर्वतोभद्रे जलपूर्णं कुम्भं संस्थाप्य कुम्भे वंशपात्रं तत्र तानि पवित्राणि विधाय तेषु,

संवत्सरस्य यागस्य पवित्रीकरणाय भोः।
विष्णुलोकात्पवित्राद्य आगच्छेह नमोऽस्तुते ॥

इति मन्त्रेण मूलमन्त्रेण चावाह्य त्रिसूत्र्यां ब्रह्मविष्णुरुद्रान्नवसूत्र्यां ॐकारसोमवह्निब्रह्मनागेशसूर्यशिवविश्वेदेवानुत्तममध्यमकनिष्ठपवित्रेषु ब्रह्मविष्णुरुद्रान्सत्त्वरजस्तमांस्यावाह्य वनमालायां प्रकृतिं चावाह्य मूलमन्त्रेण 'श्रीपवित्राद्यावाहितदेवताभ्यो नम' इत्यनेन गन्धाद्युपचारैः पूजयेत्।

इस में देश काल को कह कर 'मेरी वर्ष पर्यन्त की हुई पूजा के फलप्राप्ति के लिये अधिवासन विधि पहले करके पवित्रारोपण करूँगा' ऐसा संकल्प करके देवता के आगे सर्वतोभद्र पर जल से भरा हुआ घड़ा रखकर, घड़े में बाँस के पात्र में उन पवित्रों को रखकर साल भर के यज्ञ को पवित्र करने के लिये हे पवित्र! आज विष्णुलोक से आइये आप को नमस्कार है, इस आशय के मन्त्र या मूलमन्त्र से आवाहन कर त्रिसूत्री में ब्रह्म विष्णु रुद्रों को नवसूत्रों में ओंकार सोम अग्नि नागेश सूर्य शिव और विश्वेदेवों को उत्तम मध्यम कनिष्ठ पवित्रों में विष्णु ब्रह्मा और रुद्रों तथा सत्त्व रज तम का और वनमाला में प्रकृति का आवाहन कर मूलमन्त्र से 'श्रीपवित्र आदि देवताओं को नमस्कार है' इससे सब की गन्धादि उपचारों से पूजा करे।

ततः पूर्वसंपादितं वितस्तिमात्रं द्वादशग्रन्थिकं गन्धपवित्रमादाय,

विष्णुतेजोद्भवं रम्यं सर्वपातकनाशनम्।
सर्वकामप्रदं देव तवाङ्गे धारयाम्यहम् ॥

इति मन्त्रेण मूलसंपुटितेन देवपादयोः समर्पयेत्। देवस्य करे बध्नीयादित्यन्ये। ततो देवं पञ्चोपचारैः संपूज्य प्रार्थयेत्—

आमन्त्रितोसि देवेश पुराणपुरुषोत्तम ।
प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सान्निध्यं कुरु केशव ॥
क्षीरोदधिमहानागशय्यावस्थितविग्रह ।
प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सन्निधौ भव ते नमः ॥

ततः साष्टाङ्गं प्रणम्य पुष्पाञ्जलिं दद्यात् । इत्यधिवासनम् ।

पहले के बनाये हुये बित्ते भर के बारह गाँठवाले गन्धपवित्र को लेकर, हे भगवन् ! विष्णु तेज से उत्पन्न सुन्दर सभी मनोरथों को देने और सभी पातकों के नाश करने वाले पवित्र आप के अंगों में धारण कराता हूँ, मूलमन्त्र से सम्पुटित इस मन्त्र से देवता के चरणों में समर्पण करे । देवता के हाथ में पवित्र बाँधे–ऐसा अन्य लोग कहते हैं । इसके बाद पञ्चोपचार से देवता की पूजा कर प्रार्थना करे—हे पुराणपुरुषोत्तम ! हे देवेश ! आप मुझसे आमन्त्रित किये गये हैं, हे केशव ! आप हमारे निकट आवें, प्रातः आप की पूजा करूँगा । दूध के समुद्र में शेषनाग की शय्या पर सोने वाले मेरे निकट हों प्रातः आप की पूजा करूँगा, आप को नमस्कार है । इसके बाद साष्टाङ्ग प्रणाम करके पुष्पाञ्जलि अर्पण करे । अधिवासन समाप्त ।

अथ पवित्रारोपणमन्त्रादिः

अत्र सर्वत्र मूलमन्त्रो गुरूपदिष्टस्तान्त्रिको वैदिको वा देवगायत्रीरूपो वा ग्राह्यः । ततो रात्रिं सत्कथाजागरेणातिवाह्य प्रातःकाले सद्योधिवासने गोदोहान्तरिते वा काले 'पवित्रारोपणाङ्गभूतं देवपूजनं च करिष्ये' इति संकल्प्य देवं पवित्राणि च फलाद्युपनैवेद्यान्तगन्धाद्युपचारैः संपूज्य गन्धदूर्वाक्षतयुतं कनिष्ठं पवित्रमादाय,

देवदेव नमस्तुभ्यं गृहाणेदं पवित्रकम् ।
पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् ॥
पवित्रकं कुरुष्वाद्य यन्मया दुष्कृतं कृतम् ।
शुद्धो भवाम्यहं देव त्वत्प्रसादात्सुरेश्वर ॥

इति मन्त्रेण मूलसंपुटितेन दत्त्वा मध्यमोत्तमपवित्रे वनमालां चैवमेवैतन्मंत्रावृत्त्या दद्यात् । अंगदेवताभ्यो नाम्ना समर्प्य महानैवेद्यं दत्त्वा नीराज्य प्रार्थयेत्—

यहाँ सर्वत्र मूलमन्त्र तान्त्रिक या वैदिक गुरु द्वारा उपदिष्ट, अथवा देवगायत्रीरूप का ग्रहण करे । इसके बाद सुन्दर कथाओं और जागरण से रात बिता कर प्रातःकाल में सद्यः अधिवासन में या गोदोहन समय के अन्त में 'पवित्रारोपण का अंगभूत देवपूजन और पवित्रपूजन करूँगा' यह संकल्प कर देवता और पवित्रों को फल आदि नैवेद्यान्त गन्ध आदि उपचारों से पूजन कर गन्ध-दूब-अक्षत-सहित कनिष्ठ पवित्र को लेकर हे देवदेव ! वार्षिकी पूजा के फल देने और पवित्र करने के लिये इस पवित्रक को आप ग्रहण करें आप को नमस्कार है । हे सुरेश्वर ! जो कुछ मैंने पाप किये हैं, आप की प्रसन्नता से मैं शुद्ध हो जाऊँ, ऐसे पवित्रक को करें । इस मूल संपुटित मन्त्र से पवित्रक देकर मध्यम और उत्तम पवित्रक तथा वनमाला को मूलमन्त्र की आवृत्ति कर देवता को पवित्रक को देवे । अङ्ग देवताओं को नाम से समर्पण कर महानैवेद्य देकर आरती उतार प्रार्थना करेः—

मणिविद्रुममालाभिर्मन्दारकुसुमादिभिः ।
इयं सांवत्सरी पूजा तवास्तु गरुडध्वज ॥
'वनमालां यथा देव कौस्तुभं सततं हृदि ।
तद्वत्पवित्रतंतूंस्त्वं पूजां च हृदये वह ॥
जानताऽज्ञानता वापि यत्कृतं न तवार्चनम् ।
केनचिद्विघ्नदोषेण परिपूर्णं तदस्तु मे ॥
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वर ।
यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥
अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया ।
दासोऽयमिति मां मत्वा क्षमस्व परमेश्वर ॥ इति ।

अत्र शिवादौ गरुडध्वजेत्यादौ वृषवाहनेत्यूहः । वनमालामिति श्लोकस्य तु लोपः । देव्यां तु देवदेव सुरेश्वरेत्यादौ देविदेवि सुरेश्वरीत्यादिस्त्रीप्रत्ययांतपदोहः कार्यः । शेषं समानम् ।

मणि और मूँगे की मालाओं से मन्दार आदि के पुष्पों से हे गरुड़ध्वज ! यह आप की वार्षिकी पूजा हो । हे देव ! वनमाला और कौस्तुभमणि को जैसे सदा हृदय में स्थान देते हैं उसी प्रकार पवित्र के तन्तुओं और पूजा को हृदय में स्थान दें । जाने या अनजाने किसी विघ्न के दोष से मैंने आप का पूजन नहीं किया हो तो हे देव ! वह परिपूर्ण हो । मन्त्र से हीन क्रिया से हीन और भक्ति से हीन जो मैंने पूजन किया हो वह पूरा हो । दिन रात हजारों अपराध मुझ से हो जाते हैं हे परमेश्वर अपना दास जानकर क्षमा करें । इस आशय के मन्त्र में शिव आदि की पूजा करने के समय गरुडध्वज के स्थान पर वृषवाहन शब्द की कल्पना करे । वनमाला वाले श्लोक को न कहे । देवीके पूजन में तो 'देवदेव सुरेश्वर' के स्थान पर 'देविदेवि सुरेश्वरि' इत्यादि स्त्रीप्रत्ययान्तपद की कल्पना करे । शेष सभी कर्म समान हैं ।

ततो गुरुं संपूज्य पवित्रं दत्त्वान्यब्राह्मणेभ्यः सुवासिनीभ्यश्चान्यानि दत्त्वा स्वयमपि सकुटुम्बो धारयेत् । ततो ब्राह्मणैः सह भुक्त्वा त्रिरात्रं ब्रह्मचर्यादिनियमवान् देवे पवित्राणि धारयेत् । देवस्य स्नानादिकोपचारान् पवित्राणि उत्तार्य कारयेत् । त्रिरात्रान्ते देवं सम्पूज्य पवित्राणि विसर्जयेत् । अत्र शिवादिपवित्रारोपणे चतुर्दशी पूर्वविद्धा ग्राह्या । एवं पूर्णिमापि त्रिमुहूर्तसायाह्नव्यापा पूर्वविद्धैव ग्राह्या । अष्टम्यादितिथ्यन्तराण्यपि पवित्रारोपणे प्रथमपरिच्छेदोक्तसामान्यतिथिनिर्णयानुसारेण ग्राह्याणि । इति पवित्रारोपणविधिः ।

तदनन्तर गुरु की पूजा करके गुरु को, ब्राह्मणों को और सौभाग्यवती स्त्रियों को पवित्रक देकर सकुटुम्ब स्वयं भी धारण करे । अनन्तर ब्राह्मणों के साथ भोजन करके तीन रात ब्रह्मचर्य आदि

१. वनमाला का लक्षण—'आरभ्य मुकुटं यावत् सूत्रैर्विरचिता शुभा । आपादलम्बिनी माला वनमाला प्रकीर्तिता ॥' दूसरा लक्षण—'तुलसीकुन्दमन्दारपारिजाताम्बुजैस्तु या । पञ्चभिर्ग्रथिता माला वनमाला प्रकीर्तिता ॥' इति ।

नियमयुक्त होकर शरीर में पवित्रों को धारण करे। देवता के स्नानादिक उपचारों और पवित्रों को उतार कर करावे। त्रिरात्र के अन्त में देवता की पूजा करके पवित्रों का विसर्जन करे। इस पवित्रारोपणमें पूर्वविद्धा पूर्णिमा ग्राह्य है। शिव आदि देवताओं के पवित्रारोपण में पूर्वविद्धा चतुर्दशी ग्राह्य है। इसी प्रकार पूर्णिमा भी तीन मुहूर्त सायाह्न में रहे तब पूर्वविद्धा ही लेनी चाहिये। पवित्रारोपण में अष्टमी आदि दूसरी तिथियाँ भी प्रथमपरिच्छेद में कहे हुए सामान्य तिथिनिर्णय के अनुसार लेनी चाहिये। पवित्रारोपण समाप्त।

अथ बह्वृचानामुपाकर्मनिर्णयः

तत्र बह्वृचानां श्रावणशुक्लपक्षे श्रवणनक्षत्रं पञ्चमी हस्त इति कालत्रयम्। तत्र श्रवणं मुख्यकालस्तदलाभे पञ्चम्यादिः। तथा च कालतत्त्वविवेचने संग्रहकारिकायाम्—

पर्वणि श्रवणे कार्यं ग्रहसंक्रान्त्यदूषिते।
अध्वर्युभिर्बह्वृचैश्च कथंचित्तदसंभवे॥

तत्रैव हस्तपञ्चम्यां तयोः केवलयोरपि। तत्र दिनद्वये श्रवणसत्त्वे यदि पूर्वसूर्योदयमारभ्य प्रवृत्तं श्रवणं द्वितीयदिने सूर्योदयोत्तरं त्रिमुहूर्तं वर्तते तदा परदिन एवोपाकर्म[1], धनिष्ठायोगप्राशस्त्यात्। यदि त्रिमुहूर्तन्यूनं तदा पूर्वदिने एव संपूर्णव्याप्तेः। यदि पूर्वदिने सूर्योदये नास्ति परदिने सूर्योदयोत्तरं मुहूर्तद्वयं वर्तते तदोत्तरदिने एव, उत्तराषाढावेधनिषेधात्। यदि परदिने मुहूर्तद्वयन्यूनं पूर्वदिने चोत्तराषाढाविद्धं तदा पञ्चम्यादिकालो ग्राह्यः। पञ्चमी हस्त इति कालद्वयं तु औदयिकं मुहूर्तत्रयव्यापि मुख्यम्। तदलाभे पूर्वविद्धमपि। एवं भाद्रपदशुक्लपक्षेपि श्रवणपञ्चमीहस्तकालत्रयनिर्णयो ज्ञेयः। एतद्बह्वृचैः पूर्वाह्णे कार्यम्।

इस में बह्वृचों का श्रावण शुक्लपक्ष में श्रवणनक्षत्र, पञ्चमी और हस्त, ये तीन काल हैं। इनमें श्रवण मुख्यकाल है। श्रवण के न मिलने पर पञ्चमी आदि है। यह कालतत्त्वविवेचन में संग्रहकारिका से स्पष्ट है। ग्रहण और संक्रान्ति से दूषित न होने पर पूर्णिमा में श्रवणनक्षत्र में अध्वर्यु और बह्वृचों के द्वारा उपाकर्म कर्तव्य है। किसी प्रकार से ऐसा न होने पर पूर्णिमा में ही हस्त पंचमी अथवा केवल हस्त और पंचमी में करना चाहिये। दोनों दिन में यदि श्रवण हो तो पहले दिन सूर्योदय से लगकर श्रवण दूसरे दिन सूर्योदय के बाद तीन मुहूर्त हो तब दूसरे ही दिन धनिष्ठायोग के उत्तम होने से उपाकर्म कर्त्तव्य है। यदि तीन मुहूर्त से कम हो तब सम्पूर्ण व्याप्ति के होने से पहले ही दिन करे। यदि पहले दिन सूर्योदय में न हो दूसरे दिन सूर्योदय के अनन्तर दो मुहूर्त हो, तब दूसरे दिन ही करना चाहिये, उत्तराषाढ़ावेध के निषेध से। यदि दूसरे दिन दो मुहूर्त कम हो, उत्तराषढ़ा से वेध हो तो पञ्चमी आदि काल ग्रहण करे। पञ्चमी और हस्त यह दो काल तो उदयकालीन तीन

---

१. विधिपूर्वक वेदादि के प्रारम्भ कर्म का नाम 'उपाकर्म' है। उपाकर्म = उपाकरणमुपक्रमः। मनुः—'श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां वाऽप्युपाकृत्य यथाविधि। युक्तश्छन्दांस्यधीयीत मासान् विप्रोऽर्धपञ्चमान्॥' भविष्यपुराणे—'संप्राप्ते श्रावणस्यान्ते पौर्णमास्यां दिनोदये। स्नानं कुर्वीत मतिमान् श्रुतिस्मृतिविधानतः॥ उपाकर्मादिकं प्रोक्तमृषीणां चैव तर्पणम्। शूद्राणां मन्त्ररहितं स्नानं दानं च शस्यते॥ उपाकर्मणि कर्तव्यमृषीणां चैव पूजनम्।' इति।

मुहूर्तव्यापिनी मुख्य है। ऐसा न होने पर पूर्वविद्धा भी ग्राह्य है। इसी प्रकार भाद्रपद शुक्लपक्ष में भी श्रवण, पञ्चमी, हस्त, इन तीनो कालों का निर्णय जानना चाहिये। यह उपाकर्म बह्वृचों के द्वारा पूर्वाह्ण में कर्त्तव्य है ।

अथ यजुर्वेद्युपाकर्मनिर्णयः

तत्र बह्वृचानां श्रवणवत्सर्वयजुर्वेदिनां श्रावणपौर्णमासी मुख्यः कालः। पौर्णमास्याः खण्डत्वे यदा पूर्णिमा पूर्वदिने मुहूर्ताद्यनन्तरं प्रवृत्ता द्वितीयदिने षण्मुहूर्तव्यापिनी तदा सर्वयाजुषाणामुत्तरैव। यदा शुद्धाधिकतया दिनद्वयेपि सूर्योदयव्यापिनी तदा सर्वयाजुषाणां पूर्वैव। पूर्वदिने मुहूर्ताद्यनन्तरं प्रवृत्ता द्वितीयदिने मुहूर्तद्वयत्रयादिव्यापिनी षण्मुहूर्तन्यूना तदा तैत्तिरीयैरुत्तरा ग्राह्या, तैत्तिरीयभिन्नयाजुषैः पूर्वा ग्राह्या। यदा पूर्वदिने मुहूर्ताद्यनन्तरं प्रवृत्ता द्वितीयदिने मुहूर्तद्वयन्यूना भवति क्षयवशान्नास्त्येव वा तदा सर्वयाजुषाणां पूर्वैव।

बह्वृचों के श्रवण की तरह यजुर्वेदियों का श्रावणपूर्णिमा मुख्यकाल है। खण्डपूर्णिमा के रहने पर जब पहले दिन मुहूर्त आदि के अनन्तर प्रवृत्त होकर दूसरे दिन छ मुहूर्त तक रहती हो तब सभी यजुर्वेदियों की परा ग्राह्य है। जब शुद्ध और अधिकता से दोनों दिन में भी सूर्योदयव्यापिनी हो तब सब यजुर्वेदियों को पूर्वा ही लेनी चाहिये। पहले दिन मुहूर्त आदि के बाद लगी पूर्णिमा दूसरे दिन दो मुहूर्त या तीन मुहूर्त तक रहती है और छः मुहूर्त से कम है तब तैत्तिरीयों के द्वारा उत्तरा पूर्णिमा उपाकर्म के योग्य है। तैत्तिरीय से भिन्न यजुर्वेदियों की पूर्वा ग्राह्य है। जब पहले दिन मुहूर्त आदि के बाद लगकर दूसरे दिन क्षय के कारण दो मुहूर्त से न्यून होती है या नहीं मिलती है तो सभी यजुर्वेदियों को पूर्वा ही ग्राह्य है।

अथ हिरण्यकेशीयोपाकर्मनिर्णयः

हिरण्यकेशीतैत्तिरीयाणां श्रावणीपौर्णमासी मुख्यः कालः, तदभावे श्रावणे हस्तः। श्रावणशुक्लपञ्चमी तु तत्तत्सूत्रेऽनुक्तेर्न ग्राह्या। एतदेव भाद्रपदेपि कालद्वयमिति विशेषः। खण्डतिथित्वे निर्णयः पूर्वोक्त एव। हस्तनक्षत्रमपि औदयिकं [1]सङ्गवस्पर्शि ग्राह्यमन्यथा पूर्वविद्धमेव।

हिरण्यकेशीय तैत्तिरीयों का श्रावणीपूर्णिमा मुख्यकाल है। इसके अभाव में श्रावण में हस्तनक्षत्र है। श्रावणशुक्ल पञ्चमी तो उनके सूत्र में नहीं कहने से ग्राह्य नहीं है। यही दो काल भाद्रपद में भी है, यह विशेषता है। खण्डतिथि होने पर निर्णय पहले ही कह चुके हैं। हस्तनक्षत्र भी उदय से संगव काल स्पर्श करने वाला ही ग्राह्य है। नहीं तो पूर्वविद्ध ही लेना चाहिये।

अथापस्तम्बोपाकर्मनिर्णयः

आपस्तम्बानां श्रावणी पौर्णमासी मुख्या, तदभावे भाद्रपदीति विशेषः।

आपस्तम्बों के उपाकर्म में श्रावणीपूर्णिमा मुख्य है। ऐसा न होने पर भाद्रपद की पूर्णिमा ग्राह्य है, यह विशेष है।

अथ बौधायनोपाकर्मनिर्णयः

बौधायनानां श्रावणी पौर्णमासी मुख्या, दोषसंभावनया तदभावे आषाढीति विशेषः। एतेषामपि खण्डतिथित्वे पूर्वोक्त एव निर्णयः।

---

[1] सङ्गता गावो दोहनाय यत्र सः। सङ्गवः = प्रातःस्नान के तीन मुहूर्त बाद का समय।

बौधायनों की श्रावणपूर्णिमा मुख्य है। दोष की सम्भावना से उसके न होने पर आषाढ़ी पूर्णिमा ले, यह विशेष है। ये सब भी खण्ड तिथि हो तो पहले का ही निर्णय स्वीकार्य है।

अथ काण्वमाध्यन्दिनोपाकर्मनिर्णयः

अथ काण्वमाध्यन्दिनादिकात्यायनानां श्रवणयुता श्रावणपूर्णिमा केवला वा हस्तयुक्ता पञ्चमी केवला वा मुख्यः कालः। अतः केवलश्रवणे केवलहस्ते च तैर्न कार्यम्। श्रावणमासे विघ्नदोषे भाद्रपदगतपूर्णिमापञ्चम्योः कार्यम्। तिथेः खण्डत्वे षण्मुहूर्ताधिक्ये उत्तरा। षण्मुहूर्तन्यूनत्वे पूर्वा ग्राह्येत्यादिः पूर्वोक्त एव निर्णयः।

काण्वमाध्यन्दिन आदि कात्यायनों की श्रवणयोगसहिता पूर्णिमा अथवा केवल पूर्णिमा, हस्तयुक्ता पञ्चमी या पञ्चमीमात्र मुख्य काल है। इस लिये केवल श्रवण तथा केवल हस्त में इन लोगों को उपाकर्म नहीं कर्त्तव्य है। श्रावण के महीने में विघ्न हो जाने पर भाद्रपद की पूर्णिमा या पञ्चमी में करना चाहिये। खण्डतिथि के होने पर छ मुहूर्त से अधिक में परा। और छ मुहूर्तसे कम में पूर्वा ग्राह्य है, यह पहले का कहा हुआ निर्णय है।

अथ सामवेद्युपाकर्मनिर्णयः

अथ सामवेदिनां भाद्रपदशुक्ले हस्तनक्षत्रं मुख्यः कालः। संक्रान्त्यादिदोषेण तत्रासंभवे श्रावणमासे हस्तो ग्राह्य इति निर्णयसिन्धुः। अन्ये तु भाद्रपदहस्ते दोषसम्भवे श्रावणपौर्णमास्यामुपाकर्म कृत्वा भाद्रपदस्य हस्तपर्यन्तं न पठनीयं ततः परं पठनीयमित्याहुः। हस्तस्य खण्डत्वे दिनद्वयेऽपराह्णपूर्णव्याप्तौ अपराह्णैकदेशस्पर्शे वा परदिने एवोपाकर्म। पूर्वदिन एवापराह्णपूर्णव्याप्तौ पूर्वत्रैव, सर्वत्र सामगानामपराह्णस्यैवोपाकर्मकालत्वेनोक्तेः। पूर्वदिन एवापराह्णैकदेशस्पर्शे दिनद्वयेप्यपराह्णस्पर्शाभावे वा परत्रैव।

सामवेदियों को उपाकर्म में भाद्रपद शुक्लपक्ष में हस्तनक्षत्र मुख्य काल है। संक्रान्ति आदि के दोष से उसमें न होने पर श्रावणमास में हस्तनक्षत्र ग्राह्य है, ऐसा निर्णयसिन्धुकार कहते हैं। अन्य लोग तो भाद्रपद हस्त में दोष की सम्भावना होने पर श्रावण की पर्णिमा में उपाकर्म करके भाद्रपदीय हस्तनक्षत्र पर्यन्त नहीं पढ़े। इसके बाद पढ़ना चाहिये, ऐसा कहते हैं। खण्ड हस्त के होने पर दो दिन अपराह्न में पूर्ण व्याप्ति होने से अथवा अपराह्न के एकदेश में स्पर्श होने से पर दिन ही उपाकर्म होगा। पहले ही दिन अपराह्न में पूर्णव्याप्ति होने से पहले ही दिन होगा। सामवेदियों का सर्वत्र अपराह्न ही में उपाकर्मकाल कहा गया है। पहले ही दिन अपराह्न के एकदेश में स्पर्श होने अथवा दोनों दिन अपराह्न में स्पर्श न होने पर परदिन में उपाकर्म होगा।

येषां सामवेदिनां प्रातःसङ्गवौ कर्मकालत्वेनोक्तौ तेषां पूर्वत्रापराह्णव्याप्तिं त्यक्त्वा परदिने सङ्गवोर्ध्वं वर्तमानहस्तग्रहणम्। सिंहस्थे सूर्ये उपाकर्मविधानं तु यदि श्रावणे हस्तः पूर्णिमा वा सिंहस्थे सूर्ये भवति तदा तत्रोपाकर्म न कर्कस्थे इति सामगानां श्रावणमासगतहस्तपर्वणोर्व्यवस्थापरम्। अन्यशाखिनां सिंहस्थरवेर्विधिर्निषेधो वा नास्ति।

जिन सामवेदियों का प्रातःकाल और संगवकाल कर्मकाल कहा गया है, उनका पहले दिन अपराह्णव्याप्ति को छोड़कर दूसरे दिन संगवकाल के अनन्तर वर्तमान हस्तनक्षत्र का ग्रहण करना चाहिये।

सिंह के सूर्य में उपाकर्म का विधान तो यदि श्रावण में हस्त अथवा पूर्णिमा, सिंह के सूर्य में हो तब उसमें उपाकर्म कर्तव्य है कर्क के सूर्य में नहीं, ऐसी सामवेदियों की श्रावणमास के हस्त और पूर्णिमा की व्यवस्था है। अन्य शाखा वालों के लिये सिंह के सूर्य का न तो विधि है और न निषेध।

अथ अथर्ववेद्युपाकर्मनिर्णयः

अथर्ववेदिनां तु श्रावण्यां भाद्रपदगतायां वा पौर्णमास्यामुपाकर्म। तिथिखण्डे औदयिकसङ्गवकालव्यापिनी तिथिर्ग्राह्येति।

अथर्ववेदियों का तो श्रावण की पूर्णिमा में वा भाद्रपद की पूर्णिमा में उपाकर्म होता है। खण्ड तिथि में उदयकाल अथवा संगवकालव्यापिनी तिथि ग्राह्य है।

अथ सर्वशाखिनां साधारणोपाकर्मनिर्णयः

सर्वशाखिनां श्रावणभाद्रपदमासगतस्वस्वगृह्योक्तकालेषु ग्रहणसंक्रान्त्या शौचादिदोषसंभावनायां सर्वथा कर्मलोपप्राप्तौ शाखान्तरोक्तकालानां ग्राह्यत्वमावश्यकम्। तत्रापस्तम्बबौधायनसामगादीनां श्रावणभाद्रपदगतपञ्चमीपूर्णिमादेरप्यविशेषेण ग्राह्यत्वप्राप्तौ नर्मदोत्तरदेशे सिंहगते सूर्ये पञ्चम्यादेर्ग्रहणम्। नर्मदादक्षिणभागे कर्कटस्थे सूर्ये श्रावणपञ्चम्यादेर्ग्रहणमिति व्यवस्थेति कौस्तुभे उक्तम्।

सभी शाखावालों को श्रावण या भाद्रपद में, अपने-अपने गृह्यसूत्रों के कहे हुये काल में उपाकर्म करना चाहिये। ग्रहण संक्रान्ति और आशौच आदि दोष की संभावना में सब तरह से कर्मलोप की प्राप्ति होने पर दूसरे शाखावालों के कहे हुये समय में उपाकर्म करना आवश्यक है, उसमें आपस्तम्ब, बौधायन, सामवेदियों का श्रावण भाद्रपद की पञ्चमी और पूर्णिमा आदि की सामान्यतः ग्राह्यता प्राप्त होने पर नर्मदा से उत्तर में रहने वालों को सिंह के सूर्य में पंचमी आदि के लेने एवं नर्मदा के दक्षिण भागवालों को कर्क के सूर्य में श्रावण पंचमी आदि के लेने की व्यवस्था कौस्तुभ में कही है।

तेन ऋग्वेदिनामपि सर्वथा कर्मलोपप्रसक्तौ पूर्णिमापि सिंहस्थकर्कटस्थादिव्यवस्थया ग्राह्येति मम भाति। सर्वशाखिभिः श्रावणमासे मुख्यकाले पर्जन्याभावेन व्रीह्याद्यौषधिप्रादुर्भावाभावे आशौचादौ वा भाद्रपदश्रवणादौ कार्यम्।

इससे ऋग्वेदियों को भी सब प्रकार से कर्मलोप की स्थिति में पूर्णिमा भी सिंहस्थ कर्कटस्थ आदि की व्यवस्था से ग्राह्य है, ऐसा हमको भासता है। सभी शाखा वाले श्रावणमास के मुख्य समय में मेघों के अभाव से धान आदि औषध के पैदा न होने पर अथवा आशौच आदि के होने पर भाद्रपद श्रवण आदि में उपाकर्म करना चाहिये।

औषधिप्रादुर्भावाभावेपि श्रावणमासे कार्यमिति कर्कादिमतम्। सर्वशाखिनां गृह्योक्तमुख्यकालत्वेन निर्णीते दिने [1]ग्रहणस्य संक्रान्तेर्वा सत्त्वे संक्रान्तिरहिताः पञ्चम्यादयो ग्राह्याः।

---

१. पूर्णिमा में संक्रान्ति या ग्रहण पड़ने पर स्मृतिमहार्णव—'संक्रान्तिर्ग्रहणं वाऽपि यदि पर्वणि जायते। तन्मासे हस्तयुक्तायां पंचम्यां वा तदिष्यते॥' वृद्धमनु और कात्यायन ने विशेष कहा—'अर्धरात्रादधस्ताच्चेत्संक्रान्तिर्ग्रहणं यदा। उपाकर्म न कुर्वीत परतश्चेन्न दोषकृत्॥' गार्ग्यने भी इसी विषय को कहा—'यद्यर्धरात्रादर्वाक्तु ग्रहः संक्रम एव वा। नोपाकर्म तदा कुर्याच्छ्रावण्यां श्रवणेऽपि वा॥' इति।

कर्काचार्य आदि का मत तो यह है कि औषधियों के नहीं पैदा होने पर भी श्रावणमास में उपाकर्म करे। सब शाखावालों को अपने गृह्य में कहे मुख्यकाल रूप से निर्णीत दिन में ग्रहण या संक्रान्ति के होने पर संक्रान्ति से रहित पंचमी आदि का ग्रहण करना चाहिये।

अथ ग्रहणसंक्रान्त्यावुपाकर्मनिर्णयः

ग्रहणसंक्रान्तियोगश्चोपाकर्मसंबन्धिन्यहोरात्रे भविष्यन्मध्यरात्रात्पूर्वमतीत-मध्यरात्रादूर्ध्वं चेति यामाष्टके विद्यमानश्रवणनक्षत्रपूर्णिमादितिथ्यस्पृष्टोप्युपाक-र्मदूषकः। केचित्तूक्तयामाष्टकादन्यत्रापि विद्यमानो ग्राह्यश्रवणादिनक्षत्रपर्वादि-तिथिस्पर्शी चेत्सोपि दूषक इत्याहुः।

ग्रहण और संक्रान्ति का योग उपाकर्म सम्बन्धी दिन रात में तथा आगे आने वाले दिन रात से पीछे तक हो चाहे श्रवणनक्षत्र पूर्णिमा आदि में न भी हो तब भी उपाकर्म को दूषित करता है। कोई तो—उक्त आठ पहर से अन्यत्र रहने वाला ग्रहण संक्रान्ति के योग का ग्रहण करने वाला श्रवण आदि नक्षत्र पूर्णिमा आदि तिथि में स्पर्श हो वह भी उपाकर्म का दूषक है—ऐसा कहते हैं।

अथ नूतनोपनीतानामुपाकर्मनिर्णयः

नूतनोपनीतानां प्रथमोपाकर्म [1]गुरुशुक्रास्तादौ मलमासादौ सिंहस्थे गुरौ च न कार्यम्। द्वितीयाद्युपाकर्म तु अस्तादावपि कार्यम्। मलमासे तु द्वितीयाद्यपि न कार्यम्। प्रथमोपाकर्म स्वस्तिवाचननान्दीश्राद्धादि कृत्वा कार्यम्। नूतनोपनी-तानां श्रावणमासगतपञ्चमीहस्तश्रवणादिकालेषु गुरुशुक्रास्तादिप्रतिबन्धेनोपाकर्मा-रम्भाभावे भाद्रमासगतपञ्चमीश्रवणादयो ग्राह्याः।

मौञ्जीं यज्ञोपवीतं च नवं दण्डं च धारयेत्।
अजिनं कटिसूत्रं च नवं वस्त्रं तथैव च॥

इति ब्रह्मचारिणो विशेषः प्रतिवर्षं ज्ञेयः।

नये यज्ञोपवीत वाले को पहिला उपाकर्म गुरु शुक्र के अस्त आदि मलमास आदि और सिंह में गुरु के रहने पर नहीं करना चाहिए। दूसरा उपाकर्म अस्त आदि में भी करना चाहिये। मलमास में नहीं, करना चाहिए। पहला उपाकर्म स्वस्तिवाचन नान्दीश्राद्धादि करके करे। जिनका नया उपवीत हुआ है वे श्रावणमास की पञ्चमी हस्तनक्षत्र श्रवण आदि समयों में गुरु शुक्र आदि के अस्त होने से उपाकर्म का आरम्भ न हो तो भाद्रमास की पंचमी श्रवणनक्षत्र आदि में करें। मूँज की मेखला, यज्ञोपवीत, नया दण्ड, मृगचर्म, कटिसूत्र और नये वस्त्र को धारण करें। यह ब्रह्मचारी के लिए वार्षिक विशेषता है।

उपाकर्मोत्सर्जने ब्रह्मचारिसमावृतगृहस्थवानप्रस्थैः सर्वैः कर्तव्ये। उत्सर्जनका-लस्तु नेह प्रपञ्च्यते। उपाकर्मदिनेऽथवेति वचनानुसारेण सर्वशिष्टानामिदानीमु-पाकर्मदिने एवोत्सर्जनकर्मानुष्ठानाचारेणैतन्निर्णयस्यानुपयोगात्। एते उपाकर्मो-त्सर्जने यदि अन्यैर्द्विजैः सह करोति तदा लौकिकाग्नौ कुर्यात्। यद्येकः करोति

---

१. कश्यपोक्त मूलवचन—'गुरुभार्गवयोर्मौढ्ये बाल्ये वा वार्धकेऽपि वा। अथाधिमासे संक्रान्तौ मलमासादिषु द्विजः॥ प्रथमोपाकृतिर्न स्यात् कृतं कर्म विनाशकृत्।' इति।

तदा स्वगृह्याग्नौ कुर्यात्। कात्यायनैस्तु औपवसथ्य अग्नावेव होतव्यं न लौकिकाग्नौ।

उपाकर्म और उत्सर्जन ब्रह्मचारी समावृत-गृहस्थ और वानप्रस्थ सबको करना चाहिए। उत्सर्जन के काल का यहाँ प्रपञ्च नहीं कर रहे हैं। 'उपाकर्मदिनेऽथवा' इस वचन के अनुसार इस समय उपाकर्म के दिन ही उत्सर्जन कर्म का अनुष्ठान सब शिष्टजनों का आचार है इससे उसके निर्णय की कोई उपयोगिता नहीं है। उपाकर्म और उत्सर्जन यदि दूसरे द्विजों के साथ करता है तब लौकिक अग्नि में करे। यदि अकेले करता है तो अपनी गृह्य अग्नि में करे। कात्यायन शाखा वाले को तो औपवसथ्य अग्नि में ही होम करना चाहिए, लौकिकाग्नि में नहीं।

अथ पञ्चावत्तिवादिविचारः

बह्वृचादिः स्वयं चतुरवत्ती[1] बहुभिश्चतुरवत्तिभिरुपाकर्मादिकं कुर्वन्नेकस्यापि जामदग्न्यादेः पञ्चावत्तिनः सत्वे तदनुरोधेन पञ्चावत्तमेव कुर्यात्। चतुरवत्तिनामपि पञ्चावत्तित्वस्य वैकल्पिकत्वोक्त्या तेषामपि कर्मवैगुण्याभावात्।

बह्वृच आदि चतुरवत्ती स्वयं बहुत से चतुरवत्तियों के साथ उपाकर्म आदि करते हुए एक भी जामदग्न्य आदि पंचावत्ती के रहने पर उसके अनुरोध से पंचावत्ती उपाकर्म करे। चतुरवत्तियों को पंचावत्तित्व भी वैकल्पिक है, अतः पंचावत्ती करने से कर्म का वैगुण्य नहीं है।

अथ अकरणे प्रायश्चित्तम्

अकरणे दोषश्रवणेन प्रत्यब्दमेते कर्तव्ये। क्वचित्पुस्तके निर्णयसिन्धावेतदकरणे प्राजापत्यकृच्छ्रमुपवासो वा प्रायश्चितं दृश्यते न सर्वत्र। उपाकर्मोत्सर्जनयोरुभयोरपि ऋषिपूजनमुक्तम्। ऋष्यादितर्पणं तूत्सर्जन एव। अत्र विवाहोत्तरं तिलतर्पणे न दोषः।

उपाकर्म और उत्सर्जन नहीं करने से दोषश्रुति के कारण इन दोनों को प्रतिवर्ष करना चाहिये। किसी निर्णयसिन्धु की पुस्तक में उपाकर्म उत्सर्जन के न करने पर प्राजापत्य कृच्छ्र अथवा उपवास प्रायश्चित्त दिखाई देता है, सब पुस्तकों में ऐसा नहीं है। उपाकर्म और उत्सर्जन दोनों में ऋषिपूजन कहा है। ऋषि आदि का तर्पण तो उत्सर्जन में ही होता है। इसमें विवाह के बाद तिल से तर्पण करने में कोई दोष नहीं है।

अत्र संकल्पे 'अधीतानां छन्दसामाप्यायनद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थमुपाकर्मदिने अद्योत्सर्जनाख्यं कर्म करिष्ये' इति। उपाकर्मणि तु 'अधीतानामध्येष्यमाणानां च छन्दसां यातयामतानिरासेनाप्यायनद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थम्' इति विशेषः। अवशिष्टः सर्वोपि प्रयोगविशेषः स्वस्वगृह्यानुसारेण ज्ञेयः। अत्र नदीनां [2]रजोदोषो न। ब्रह्मादिदेवऋष्यादीनां जले सान्निध्यं तेन स्नानात्सर्वदोषक्षयः। ऋषिपूजनस्थानस्थितजलस्पर्शनपानाभ्यां सर्वकामावाप्तिः। इति सर्वशाखिसाधारणनिर्णयः।

---

१. अवत्ती—अव + दो + इन, विभाजन करनेवाला। चतुरवत्ती = ४ भागों में बाँटने वाला।
२. वसिष्ठः—'उपाकर्मणि चोत्सर्गे प्रेतस्नाने तथैव च। चन्द्रसूर्यग्रहे चैव रजोदोषो न विद्यते ॥'

यहाँ उत्सर्जन के संकल्प में 'पढ़े हुए वेदों के तृप्ति के द्वारा परमेश्वर की प्रीति के लिए उपाकर्म के दिन आज उत्सर्जन नाम का कर्म करूँगा' यह और उपाकर्म के संकल्प में तो 'पढे हुए और आगे पढ़े जानेवाले वेदों की यातयामता को दूर करते हुए और उसके शक्ति-वर्धन के द्वारा परमेश्वर कीप्रसन्नता के लिए' इतना विशेष वाक्य होगा। बाकी सब प्रयोग अपने अपने गृह्यसूत्र के अनुसार हीजानना चाहिये। इस कर्म में नदियों का रजोदोष नहीं होता। ब्रह्मा आदि देवता और ऋषि आदि की जल में सन्निधि रहती है, इसलिये स्नान से सब दोषों का विनाश होता है। ऋषिपूजन के स्थान में रखे हुए जल के स्पर्श करने और पीने से सम्पूर्ण मनोरथ की सिद्धि होती है। यह सभी शाखा वालों के लिये साधारण निर्णय है।

अथ रक्षाबन्धनम्

अथ [1]'रक्षाबन्धनमस्यामेव पूर्णिमायां भद्रारहितायां त्रिमुहूर्ताधिकोदयव्यापिन्यामपराह्णे प्रदोषे वा कार्यम्। उदये त्रिमुहूर्तन्यूनत्वे पूर्वेद्युर्भद्रारहिते प्रदोषादिकाले कार्यम्। इदं ग्रहणसंक्रान्तिदिनेपि कर्तव्यम्। मन्त्रस्तु—

येन बद्धो बली राजा दानवेंद्रो महाबलः।
तेन त्वामभिबध्नामि रक्षे मा चल मा चल॥ इति।

इसी पूर्णिमा में उदयकाल में तीन मुहूर्त से अधिक रहने वाली भद्रा जब न रहे तब अपराह्ण में अथवा प्रदोष में रक्षाबन्धन करना चाहिए। उदयकाल में तीन मुहूर्त से कम पूर्णिमा के रहते पहले दिन भद्रा के न रहने पर प्रदोष आदि काल में करे। इसे ग्रहण और संक्रान्ति के दिन में भी करना चाहिए। मन्त्र का आशय है—'जिससे दानवश्रेष्ठ महाबलवान राजा बली बाँधा गया इससे तुमको बाँधता हूँ, हे रक्षे! तुम चलायमान न हो'।

अथ हयग्रीवोत्पत्तिः

अत्रैव पूर्णिमायां [2]हयग्रीवोत्पत्तिः। श्रावणपूर्णिमा कुलधर्मादौ त्रिमुहूर्तसायाह्णव्याप्ता पूर्वविद्धैव ग्राह्या। त्रिमुहूर्तन्यूनत्वे परा।

इसी पूर्णिमा में हयग्रीव भगवान् का जन्म भी हुआ है। कुल धर्म आदि कर्मों में सायाह्न में तीन मुहूर्त रहने वाली यह पूर्वविद्धा और यदि सायाह्न में तीन मुहूर्त से कम हो तो परा पूर्णिमा ग्राह्य है।

अथ श्रवणाकर्मादि

अस्यामेव पौर्णमास्यामाश्वलायनानां श्रवणाकर्म सर्पबलिश्च रात्रावुक्तः। तैत्तिरीयाणां तु सर्पबलिरेवोक्तः। कात्यायनानां सामगानां च श्रवणाकर्मसर्पबली द्वाव-

१. भविष्यपुराणे—'ततोऽपराह्णसमये रक्षापोटलिकां शुभाम्। कारयेदक्षतैः शस्तैः सिद्धार्थैर्हेमभूषितैः॥' यहाँ 'ततः' शब्द से उपाकर्मानन्तरम् अर्थात् उपाकर्म के बाद अर्थ है। रक्षाबन्धन भद्रा में न करे। संग्रहे—'भद्रायां द्वे न कर्तव्ये श्रावणी फाल्गुनी तथा। श्रावणी नृपतिं हन्ति ग्रामं दहति फाल्गुनी॥' इति।

इस दिन ग्रहण हो तो भद्रारहित समय में प्रदोष या रात्रि में भी रक्षा बाँधे। निर्णयसिन्धौ—'नित्ये नैमित्तिके जप्ये होमे यज्ञक्रियासु च। उपाकर्मणि चोत्सर्गे ग्रहदोषो न विद्यते॥' यहाँ 'ग्रह' का अर्थ है 'ग्रहण'।

२. कल्पतरुः—'श्रावण्यां श्रवणे जातः पूर्वं हयशिरा हरिः। जगाद सामवेदं तु सर्वकल्मषनाशनम्॥ स्नात्वा सम्पूजयेत्तं तु शंखचक्रगदाधरम्।' इति।

प्युक्तौ। श्रवणाकर्मसर्पबल्याश्वयुजीप्रत्यवरोहणादिपाकसंस्थानां स्वस्वकालेष्वकरणे प्राजापत्यं प्रायश्चित्तं कार्यं न तु कालान्तरे तदनुष्ठानम्। श्रवणाकर्मादिसंस्थाः पत्न्यामृतुमत्यामपि कार्याः। प्रथमारम्भस्तु न भवति। अत्र पौर्णमासी अस्तमयप्रभृतिप्रवृत्तकर्मपर्याप्तकालव्यापिनी चेत् पूर्वैव ग्राह्या। दिनद्वये तत्सम्बन्धस्य सत्त्वे असत्त्वे वा परैव। प्रयोगस्तु स्वस्वसूत्रेषु ज्ञेयः।

इसी पूर्णिमा में आश्वलायनों का श्रवणाकर्म और सर्पबलि भी रात्रि में कही है। तैत्तिरीयों की तो सर्पबलि ही कही है। कात्यायनों और सामवेदियों के श्रवणाकर्म और सर्पबलि दोनों कहे गये हैं। श्रवणाकर्म, सर्पबलि, आश्वयुजी और प्रत्यवरोहण पाकसंस्थाओं के अपने अपने समय में नहीं करने पर उसे प्राजापत्य प्रायश्चित्त करना चाहिए, न कि दूसरे समय में उसका प्रयोग करे। श्रवणाकर्मादि संस्थायें स्त्री के रजस्वला रहने पर भी करे। पहले पहले इसका आरम्भ तो स्त्री के रजस्वला होने पर नहीं करना चाहिए। इस पूर्णिमा में अस्त के समय से रहकर कर्म के लिए पर्याप्त काल तक रहने वाली हो तो पूर्वा ग्राह्य है। दो दिन में पूर्णिमा का सम्बन्ध होने या न होने पर परा ही लेनी चाहिए। इसका प्रयोग तो अपने अपने सूत्र ग्रन्थों से जानना चाहिए।

अथ संकष्टचतुर्थीनिर्णयः

श्रावणकृष्णचतुर्थ्यां प्रारभ्य कृष्णचतुर्थीषु यावज्जीवमेकविंशतिवर्षाणि वा एकवर्षं वा संकष्टचतुर्थीव्रतं कार्यम्। अशक्तौ प्रतिवर्षं श्रावणचतुर्थ्यामेव कार्यम्। अत्र चन्द्रोदयव्याप्त्यातिथिनिर्णयः प्रथमपरिच्छेदे उक्तः। सोद्यापनव्रतप्रयोगः कौस्तुभादौ ज्ञेयः।

श्रावणकृष्ण चतुर्थी से आरम्भ कर जीवन पर्यन्त या इक्कीस वर्ष तक अथवा एक वर्ष तक प्रत्येक मास की कृष्ण चतुर्थी में संकटचतुर्थी का व्रत करना चाहिए। असमर्थावस्था में प्रतिवर्ष श्रावणकृष्ण चतुर्थी में ही करे। यहाँ चन्द्रोदयकाल में रहने वाली तिथि का निर्णय प्रथमपरिच्छेद में कह चुके हैं। उद्यापनसहित व्रत की समाप्ति का विधान कौस्तुभ आदि से जानना चाहिए।

अथ जन्माष्टमीव्रतनिर्णयः

तत्राष्टमी [1]द्विविधा—शुद्धा विद्धा च। दिवा रात्रौ वा सप्तमीयोगरहिता यत्र दिने यावती तत्र तावती शुद्धा। दिवा रात्रौ वा सप्तमीयोगवती यस्मिन्न-

---

१. जन्माष्टमीव्रत के निर्णायकवचनों में कहीं भाद्रपद कृष्णपक्ष की अष्टमी और कहीं श्रावण कृष्णपक्ष की अष्टमी का उल्लेख मिलता है। जैसे ब्रह्मपुराण में—'तथा भाद्रपदे मासि कृष्णाष्टम्यां कलौ युगे। अष्टविंशतिमे जातः कृष्णोऽसौ देवकीसुतः॥' तथा भविष्योत्तर में—'मासि भाद्रपदेऽष्टम्यां निशीथे कृष्णपक्षगे। शशाङ्के वृषराशिस्थे ऋक्षे रोहिणीसंज्ञके योगेऽस्मिन् वसुदेवाद्धि देवकी मामजीजनत्। तस्मान्मां पूजयेत्तत्र शुचिः सम्यगुपोषितः॥' इत्यादि वचनों में भाद्रपद मास का निर्देश है।

भविष्यपुराण में ही—'श्रावणे बहुले पक्षे कृष्णजन्माष्टमीव्रतम्। न करोति नरो यस्तु भवति क्रूरराक्षसः॥' पद्मपुराण में—'प्रेतयोनिगतानां तु प्रेतत्वं नाशितं तु तैः। यैः कृता श्रावणे मासि अष्टमी रोहिणीयुता॥ किं पुनर्बुधवारेण सोमेनापि विशेषतः। किं पुनर्नवमीयुक्ता कुलकोट्यास्तु मुक्तिदा॥' वसिष्ठसंहिता में दोनों मास का नाम निर्देश है–'श्रावणे वा नभस्ये वा रोहिणीसहिताऽष्टमी।

होरात्रे यावती तत्र तावती विद्धा। सा पुनर्द्विविधा—रोहिणीयुता रोहिणीयोग-रहिता चेति। तत्र रोहिणीयोगरहितकेवलाष्टमीभेदाः—सप्तमीनाड्यः ५९ पलानि ५९ अष्टमी ५८।५ अस्यां शुद्धायां संदेहो नास्ति, द्वितीयकोटयभावात्। सप्तमी २ अष्टमी ५५ अस्यां विद्धायाप्यसंदेहः, दिनान्तरे अभावेन द्वितीयकोटय-भावात्।

अष्टमी दो प्रकार की होती है—शुद्धा और विद्धा। दिन रात में या सप्तमीयोग से शून्य जिस दिन जितनी हो उतनी ही शुद्ध है। दिन रात में सप्तमी से युक्त जिस अहोरात्र में जितनी अष्टमी हो उसमें उतनी विद्धा जाननी चाहिए। फिर वह दो प्रकार की है—रोहिणीनक्षत्र से युक्त और रोहिणीयोग से रहित। उसमें रोहिणीयोग से रहित केवल अष्टमी के भेद हैं, जैसे—सप्तमी ५९ घड़ी ५९ पल और अष्टमी ५८ घड़ी ५ पल इसमें दूसरी कोटि के अभाव से शुद्धा में संदेह नहीं है। सप्तमी २ घड़ी, अष्टमी ५५ घड़ी, यहाँ दूसरे दिन न होने से द्वितीय कोटि के अभाव के कारण इस विद्धा में भी संदेह नहीं है।

यदा दिनद्वये केवलाष्टमी वर्तते तदा चत्वारः पक्षाः—पूर्वेद्युरेव निशीथव्या-पिनी, परेद्युरेव निशीथव्यापिनी, दिनद्वयेऽपि निशीथव्यापिनी, दिनद्वयेऽपि निशीथव्याप्त्यभाव इति। रात्र्यर्धं निशीथपदार्थः। स्थूलसूक्ष्मदृष्ट्या त्वष्टमो मुहूर्तो निशीथः। तत्र पूर्वेद्युरेव निशीथव्यापिनी यथा—सप्तमी ४० अष्टमी ४२। अत्र सप्तमीयुता पूर्वविद्धैवाष्टम्युपोष्या। यथा वा—अष्टमी ६०।४ इयं शुद्धाधिकापि पूर्ववं। परेद्युरेव निशीथे यथा—सप्तमी ४७ अष्टमी ४६ अत्र परैवाष्टम्युपोष्या। उभयत्र निशीथे यथा—सप्तमी ४२ अष्टमी ४६ अत्रापि परैवाष्टमी ग्राह्या। दिनद्वये निशीथव्याप्त्यभावो यथा—सप्तमी ४७ अष्टमी ४२ अत्रापि परैवाष्टमी ग्राह्या।

यदा कृष्णा नरैर्लब्धा सा जयन्तीति कीर्तिता॥' इन वचनों में श्रावण कृष्णाष्टमी शुक्लादि अमान्त-मास के अभिप्राय से और भाद्रपद कृष्णाष्टमी कृष्णादि पूर्णिमान्तमास के अभिप्राय से है। ऐसा जानकर जन्माष्टमीव्रत का निर्णय समझना चाहिये।

जन्माष्टमीव्रत में अष्टमी चन्द्रोदयव्यापिनी होनी चाहिये। दो दिन चन्द्रोदयव्यापिनी हो तो दूसरे दिन व्रत करे। सप्तमीविद्धा अष्टमी ग्राह्य नहीं है। यथा अग्निपुराणे—'वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तम्या संयुताऽष्टमी। सऋक्षाऽपि न कर्तव्या सप्तम्या संयुता यदि॥' पद्मपुराणे—'पञ्चगव्यं यथा शुद्धं न ग्राह्यं मद्यदूषितम्। रविविद्धा तथा त्याज्या रोहिण्याऽपि युताष्टमी॥' रविविद्धा अर्थात् सप्तमीविद्धा।

यदि दूसरे दिन अष्टमी चन्द्रोदयव्यापिनी न हो तो सप्तमी से युत अष्टमी ग्राह्य है। विष्णु-पुराणे—'कार्या विद्धाऽपि सप्तम्या रोहिणीसंयुताष्टमी। जयन्ती शिवरात्रिश्च कार्ये भद्राजयान्विते॥'

ब्रह्मवैवर्ते—'सप्तमी नाष्टमीयुक्ता न सप्तम्या युताष्टमी। सर्वेषु व्रतकल्पेषु अष्टमी परतः शुभा॥' इन वचनों में सप्तमीविद्धा अष्टमी का निषेध निगमवाक्य की एकवाक्यता से शुक्लपक्ष की अष्टमी के लिये है। निगमवाक्य यह है—'शुक्लपक्षेऽष्टमी चैव शुक्लपक्षे चतुर्दशी। पूर्वविद्धा न कर्तव्या कर्तव्या परसंयुता॥ उपवासादिकार्येषु एष धर्मः सनातनः।' स्मार्तगृहस्थ अर्धरात्रि में जिस दिन अष्टमी हो और वह सप्तमीविद्धा भी हो तो उसी दिन जन्माष्टमीव्रत करते हैं।

श्रीरामानुजसम्प्रदाय के जन्माष्टमीव्रत का विशिष्ट निर्णय इस ग्रन्थ के परिशिष्ट में देखें।

जब दो दिन केवल अष्टमी है तब चार पक्ष उपस्थित होते हैं—पहले ही दिन अर्धरात्रिव्यापिनी, दूसरे ही दिन अर्द्धरात्रिव्यापिनी, दोनों दिन अर्द्धरात्रिव्यापिनी, दोनों दिन अर्द्धरात्रि में अष्टमी का अभाव। निशीथ पदार्थ रात का आधा होता है। स्थूल और सूक्ष्म दृष्टि से आठवाँ मुहूर्त निशीथ (अर्द्धरात्रि) कहलाता है। उसमें पहले ही दिन अर्द्धरात्रिव्यापिनी, जैसे—सप्तमी ४० अष्टमी ४२, इस स्थिति में सप्तमी से युक्त पूर्वविद्धा ही अष्टमी में उपवास करे, जैसे—अष्टमी ६० घड़ी ४ पल, यह शुद्धा और अधिका भी है तो पूर्वा ही ग्राह्य है। दूसरे ही दिन अर्द्धरात्रि में, जैसे—सप्तमी ४७ अष्टमी ४६, यहाँ भी परा ही अष्टमी उपवास योग्य है। दोनों दिन अर्द्धरात्रि में, जैसे—सप्तमी ४२ अष्टमी ४६, यहाँ भी परा ही अष्टमी ग्रहण के योग्य है। दोनों ही दिन अर्द्धरात्रिव्यापिनी न होने से, जैसे—सप्तमी ४७ अष्टमी ४१, यहाँ भी परा अष्टमी ग्राह्य है।

अत्र सर्वत्र सप्तमीयुक्तायां रात्रिपूर्वार्धावसाने कलयाप्यष्टम्याः सत्त्वे एव निशीथव्यापित्वं नवमीयुक्तायां रात्र्युत्तरार्धादिभागे सत्त्व एवोत्तरत्र निशीथव्यापित्वं सप्तमीदिने उत्तरभागे एव सत्त्वे नवमीयुतदिने पूर्वभाग एव सत्त्वे निशीथाव्यापित्वपक्ष एव मन्तव्यः। एवं वक्ष्यमाणरोहिणीयुक्तभेदेष्वपि ज्ञेयम्।

यहाँ सब जगह सप्तमीयुक्त रात्रि के पूर्वार्द्ध बीतने पर एक कला भी यदि अष्टमी है तो अर्द्धरात्रिव्यापिनी है। रात के उत्तरार्द्ध आदि भाग में नवमीयुता होने से ही दूसरे दिन अर्धरात्रिव्यापिनी होती है। सप्तमी के दिन उत्तर भाग में ही होने से और नवमीयुक्त दिन के पूर्वभाग में ही रहने पर दोनों दिन अर्धरात्रि में व्याप्ति नहीं माननी चाहिए। इसी प्रकार आगे कहे जाने वाले रोहिणी के भेदों में भी ज्ञातव्य है।

रोहिणीयुक्ताष्टमीभेदाः—रोहिणीयुताष्टम्यामपि पूर्वदिन एव निशीथेऽष्टमीरोहिण्योर्योगः, परदिन एव निशीथे योगः, दिनद्वये निशीथे योग इति पक्षत्रयम्। पूर्वेद्युरेव निशीथे योगो यथा—सप्तमी ४० तद्दिने कृत्तिका ३५ अष्टमी ४६ तद्दिने रोहिणी ३६ अत्र पूर्वविद्धैवाष्टम्युपोष्या। परदिने एव निशीथयोगो यथा—सप्तमी ४२ तद्दिने कृत्तिका ५० अष्टमी ४७ रोहिणी ४६ अत्र परैवाष्टमी ग्राह्या। दिनद्वये निशीथेऽष्टमीरोहिण्योर्योगो यथा—सप्तमी ४२ कृत्तिका ४३ अष्टमी ४७ रोहिणी ४८ अत्र परैवाष्टमी ग्राह्या।

रोहिणीयुक्त अष्टमी के भेद—रोहिणीयुक्त अष्टमी में भी पहले ही दिन अर्द्धरात्रि में अष्टमी और रोहिणी का योग, दूसरे ही दिन अर्धरात्रि में अष्टमी रोहिणी का रहना और दोनों दिन अर्द्धरात्रि में अष्टमी रोहिणी का योग, इस प्रकार तीन पक्ष होते हैं। पहले ही दिन आधी रात में योग, जैसे—सप्तमी ४० और उसदिन कृत्तिका ३५ अष्टमी ४६, और उस दिन रोहिणी ३६ इसमें पूर्वविद्धा ही अष्टमी उपवास योग्य है। दूसरे ही दिन अर्द्धरात्रि का योग जैसे—सप्तमी ४२ उस दिन कृत्तिका ५० अष्टमी ४७ रोहिणी ४६ इस स्थिति में परा ही अष्टमी ग्रहण योग्य है। दोनों दिन अर्द्धरात्रि में अष्टमी और रोहिणी का मिलन, जैसे—सप्तमी ४२ कृत्तिका ४३ अष्टमी ४७ रोहिणी ४८ ऐसे स्थल में परा अष्टमी ही ग्राह्य हैं।

अथ रोहिणीयुताष्टम्यामेव दिनद्वयेपि निशीथे रोहिणीयोगाभावो बहुधा संभवति। परेद्युरेव निशीथव्यापिनी अष्टमी परेद्युरेव निशीथादन्यत्र रोहिणीयुक्ता चेत्येकः पक्षः। यथा—सप्तमी ४७ अष्टमी ५० अष्टमीदिने कृत्तिका ४६ अत्र पक्षे

परैवाष्टमी ग्राह्या। एतत्तुल्ययुक्त्या पूर्वेद्युरेव निशीथव्यापिनी पूर्वेद्युरेव निशीथादन्यत्र रोहिणीयुतेति पक्षेपि पूर्वैव ग्राह्या। दिनद्वयेपि निशीथादन्यत्र रोहिणीयुता परेद्युरेव निशीथव्यापिनीति द्वितीयः पक्षः। सप्तमी ४८ तद्दिने कृत्तिका ३० अष्टमी ४८ रोहिणी २५ अत्रापि परैव ग्राह्या।

रोहिणीयुक्त अष्टमी में ही दो दिन आधीरात में रोहिणीयोगका न होना बहुत संभव होता है। दूसरे ही दिन अर्द्धरात्रिव्यापिनी अष्टमी और दूसरे ही दिन अर्द्धरात्रि से अन्यत्र रोहिणी का योग यह एक पक्ष है, जैसे—सप्तमी ४७ अष्टमी ५० अष्टमी के दिन कृत्तिका ४६ इस पक्ष में परा ही अष्टमी ग्राह्य है। इस समान युक्ति से पहले ही दिन अर्द्धरात्रिव्यापिनी पहले ही दिन आधीरात से अन्यत्र रोहिणी का योग, इस पक्ष में भी पूर्वा हो ग्राह्य है। दो दिन में भी अर्द्धरात्रि से अन्यत्र रोहिणी के योग होने पर दूसरे ही दिन अर्द्धरात्रिव्यापिनी यह दूसरा पक्ष है, जैसे—सप्तमी ४८ उस दिन कृत्तिका ३० अष्टमी ४८ रोहिणी २५ यहाँ भी परा ही ग्राह्य है।

दिनद्वये निशीथादन्यत्र रोहिणीयुक्ता पूर्वेद्युरेव निशीथव्यापिनीति तृतीयो यथा—सप्तमी २५ कृत्तिका ४८ अष्टमी २० रोहिणी ४३ अत्रापि परैव। रोहिणीयोगसाम्येपि पूर्वत्र सप्तमीविद्धत्वात्, यथा वा—अष्टमी ६०।४ कृत्तिका ५० अत्र पूर्वैव ग्राह्या। अहोरात्रद्वये रोहिणीयोगसाम्येपि पूर्वस्याः शुद्धत्वात् पूर्णव्याप्तेश्च।

दो दिन में भी अर्द्धरात्रि से अन्यत्र रोहिणीयुक्त और पहले ही दिन अर्द्धरात्रिव्यापिनी का होना यह तीसरा पक्ष है, जैसे—सप्तमी २५ कृत्तिका ४८ अष्टमी २० रोहिणी ४३ यहाँ भी परा ही लेना चाहिए। रोहिणी का योग तुल्य होने पर भी पहले दिन सप्तमी के वेध होने से, जैसे—अष्टमी ६० घड़ी ४ पल, कृत्तिका ५०, यहाँ पूर्वा ही लेना चाहिए, क्योंकि दो अहोरात्र में समता से रोहिणीयोग में भी पहली की शुद्धता और पूर्ण व्याप्ति है।

दिनद्वयेपि निशीथव्यापिनी परेद्युरेव निशीथादन्यत्र रोहिणीयुतेति चतुर्थः। यथा—सप्तमी ४३ अष्टमी ४९ कृत्तिका ४६ अत्र परैवाष्टमी। एवं दिनद्वयेपि निशीथव्यापिनी पूर्वत्रैव निशीथादन्यत्र रोहिणीयुतेति पंचमो यथा—सप्तमी ४१ तद्दिने रोहिणी ४३ अष्टमी ४७ अत्र पूर्वैवाष्टम्युपोष्या। दिनद्वयेपि निशीथव्यापिनीदिनद्वये निशीथादन्यत्र रोहिणीयुतेति षष्ठो यथा—सप्तमी ४२ कृत्तिका ४८ अष्टमी ४८ रोहिणी ४२ अत्र परैव।

दोनों दिन अर्द्धरात्रिव्यापिनी हो और दूसरे ही दिन अर्द्धरात्रि के अन्यत्र रोहिणीयोग का होना यह चौथा पक्ष है, जैसे—सप्तमी ४३ अष्टमी ४९ कृत्तिका ४६ यहाँ परा ही अष्टमी ग्राह्य है। इसी तरह दो दिन में अर्द्धरात्रि में अष्टमी हो तो पहले ही दिन निशीथ के बाद अर्द्धरात्रि के अनन्तर रोहिणी का योग होना यह पाचवाँ पक्ष है, जैसे—सप्तमी ४१ उस दिन रोहिणी ४३ और अष्टमी ४७ यहाँ पूर्वा अष्टमी ही उपवास योग्य है। दोनों दिन में अर्द्धरात्रिव्यापिनी और दोनों दिन में ही अर्द्धरात्रि से भिन्न काल में रोहिणीसहित अष्टमी का होना यह छठाँ पक्ष है, जैसे—सप्तमी ४२ कृत्तिका ४८ अष्टमी ४८ रोहिणी ४२ इसमें परा ग्राह्य है।

दिनद्वयेपि निशीथव्यापिनी पूर्वेद्युरेव निशीथादन्यत्र रोहिणीयुतेति सप्तमो

यथा—सप्तमी ४८ तद्दिने रोहिणी ५८ अष्टमी ४२ अत्र परैवाष्टमी ग्राह्या। अत्रैव पक्षे परेद्युरेव उभयत्र वा निशीथादन्यत्र रोहिणीयोगेपि परैवेति कैमुत्येन सिद्धम्।

दोनों दिन में ही अर्द्धरात्रिव्यापिनी और दोनों ही दिन अर्द्धरात्रि से भिन्न समय में रोहिणी-योग का होना यह सातवाँ पक्ष है, जैसे—सप्तमी ४८ उस दिन रोहिणी ५८ अष्टमी ४२ यहाँ परा अष्टमी ही ग्राह्य है। इसी पक्ष में दूसरे ही दिन अथवा दोनों दिन आधीरात से अन्यत्र रोहिणी के योग में भी अष्टमी परा ही ग्राह्य है, यह कैमुतिक न्याय से सिद्ध है।

पूर्वेद्युरेव निशीथव्यापिनी परेद्युरेव निशीथादन्यत्र रोहिणी युतेति चरमः पक्षः। यथा—सप्तमी ३० अष्टमी २५ तद्दिने कृत्तिका ५ यथा वाष्टमी ६०।४ अष्टमीशेषदिने कृत्तिका १ अत्रोदाहरणद्वयेपि परैवाष्टमी ग्राह्या। स्वल्पस्यापि रोहिणीयोगस्य प्राशस्त्येन मुहूर्तमात्राया अपि परस्याग्राह्यतया पूर्वत्र विद्यमा-नाया निशीथव्याप्तेरनादरात्।

पहले ही दिन अर्द्धरात्रिव्यापिनी हो और दूसरे ही दिन अर्द्धरात्रि से अन्यत्र रोहिणी का योग हो यह अन्तिम पक्ष है, जैसे—सप्तमी ३० अष्टमी २५ उस दिन कृत्तिका ५ अथवा अष्टमी ६० घड़ी ४ पल, अष्टमी के शेष दिन में कृत्तिका १ इन दोनों उदाहरणों में भी परा अष्टमी ग्राह्य है। स्वल्प भी रोहिणीयोग के प्रशस्त होने, मुहूर्तमात्र भी परा की अग्राह्यता होने और पहले दिन अर्द्धरात्रि में विद्यमान अष्टमी के अनादर होने से।

सर्वपक्षेषु यदि परदिने मुहूर्तन्यूना वर्तते तदा सा न ग्राह्या। किंतु पूर्वैवेति तु पुरुषार्थचिन्तामणावुक्तम्। परेद्युरेव निशीथव्यापिनी पूर्वेद्युरेव निशीथादन्यत्र रोहिणीयुता यथा—सप्तमी ४८ रोहिणी ५५ अष्टमी ४८ अत्र परैव। विद्धायां निशीथोत्तरं रोहिणीयोगस्याप्रयोजकत्वात्।

सभी पक्षों में यदि दूसरे दिन मुहूर्त से कम अष्टमी हो तब उसे नहीं ग्रहण करना चाहिए। किन्तु पुरुषार्थचिन्तामणि में पूर्वा ही लेना कहा है। दूसरे दिन ही अर्द्धरात्रिव्यापिनी हो तथा पहले ही दिन अर्द्धरात्रि से भिन्न समय में रोहिणी का योग हो, जैसे—सप्तमी ४८ रोहिणी ५५ अष्टमी ४८ इस स्थिति में परा ही ग्राह्य है। विद्धा तिथि में अर्द्धरात्रि के बाद रोहिणी का योग निरर्थक है।

अथ जन्माष्टमीनिर्णयसंग्रहः

अत्र विस्तरेणोक्तानां बहुपक्षाणां संक्षेपेण निर्णयसंग्रहः पुरुषार्थचिन्तामणौ। शुद्धसमायां शुद्धन्यूनायां वा विद्धसमायां विद्धन्यूनायां वा केवलाष्टम्यां संदेह एव नास्ति। शुद्धाधिकाऽपि केवलाष्टमी पूर्वैव। विद्धाधिका तु पूर्वदिन एव निशीथ-व्याप्तौ पूर्वा। दिनद्वये निशीथव्याप्तावव्याप्तौ वा परैवेति। अथ रोहिणीयोगे यदि शुद्धसमायां शुद्धन्यूनायां वा ईषदपि रोहिणीयोगस्तदा न संदेहः। शुद्धाधिकायां पूर्वदिने दिनद्वयेपि वा रोहिणीयोगे पूर्वैव। शुद्धाधिकायामुत्तरदिने एव रोहिणी-योगे मुहूर्तमात्राप्युत्तरैव। विद्धाधिकायां पूर्वदिन एव निशीथात्पूर्वं निशीथे वा

रोहिणीयोगे पूर्वा । दिनद्वयेपि परत्रैव वा निशीथे निशीथं विहाय वा रोहिणी-योगे परैवेति संक्षेपेण निर्णयसंग्रहः ।

यहां विस्तार से कहे हुए बहुत से पक्षों के संक्षिप्त निर्णय का संग्रह पुरुषार्थचिन्तामणि में है। शुद्ध तुल्या में अथवा शुद्ध न्यूना में और विद्ध तुल्या में विद्ध न्यूना केवल अष्टमी में तो संदेह ही कहीं है। शुद्धा और अधिका भी केवल अष्टमी पूर्वा ही है। विद्धा अधिका अष्टमी तो यदि पहले ही दिन अर्द्धरात्रिव्यापिनी हो तो पहले को करे। दो दिनों में अर्द्धरात्रिव्यापिनी होने पर या न होने पर परा ही ग्राह्य है। रोहिणी के योग में यदि शुद्ध-समा में अथवा शुद्ध-न्यूना में किञ्चित् मात्र भी रोहिणी का योग हो तब तो संदेह का अवसर ही नहीं है। शुद्ध अधिका अष्टमी में पहले दिन अथवा दोनों दिन में रोहिणी के योग में पूर्वा ग्राह्य है। शुद्धा अधिका अष्टमी में दूसरे ही दिन रोहिणी के योग होने पर मुहूर्तमात्रा परा अष्टमी ग्रहण योग्य है। पहले दिन ही विद्धा अधिका अष्टमी में अर्द्धरात्रि के पहले या अर्द्धरात्रि ही में रोहिणी मिले तो पूर्वा ग्राह्य है। दोनों में ही दूसरे ही दिन अर्द्धरात्रि में या अर्द्धरात्रि को छोड़कर रोहिणी प्राप्त हो तो परा ही अष्टमी ग्राह्य है। यह संक्षेप से निर्णय का संग्रह है।

एवं कौस्तुभादिनवीनग्रन्थानुसृतमाधवमतानुसारेण जन्माष्टमी निर्णीता मत-भेदाः—अत्र केचित्केवलाष्टमी जन्माष्टमी सैव रोहिणीयुता [1]जयन्तीसंज्ञकेति जयन्त्यष्टम्योर्व्रतैक्यमाहुः । अन्ये तु जन्माष्टमीव्रतं जयन्तीव्रतं च भिन्नं रोहिणी-योगाभावे जयन्तीव्रतलोपाज्जन्माष्टमीव्रतमेव कार्यम् । यस्मिन्वर्षे जयन्त्याख्ययोगो जन्माष्टमी तदा अन्तर्भूता जयन्त्यां स्यादिति जयन्तीदिने निशीथाख्यकर्मकालेऽष्ट-म्याद्यभावेपि साकल्यवचनापादितकर्मकालव्याप्तिमादाय व्रतद्वयमपि जयन्तीदिन एव तन्त्रेणानुष्ठेयम् । व्रतद्वयस्याप्यकरणे महादोषश्रवणेन फलश्रवणेन च नित्यका-म्योभयरूपत्वात् । न तु निशीथव्याप्तायां पूर्वाष्टम्यां जन्माष्टमीव्रतं कृत्वा जयन्ती-दिने पारणमनुष्ठेयम् । नित्यव्रतलोपे प्रत्यवायापातादित्याहुः ।

---

१. विष्णुरहस्य में जयन्ती योग— 'अष्टमी कृष्णपक्षस्य रोहिणीऋक्षसंयुता । भवेत् प्रौष्ठपदे मासि जयन्ती नाम सा स्मृता ॥' सनत्कुमारसंहितायाम्—' श्रावणस्य च मासस्य कृष्णाष्टम्यां नराधिप । रोहिणी यदि लभ्येत जयन्ती नाम सा तिथिः ॥' वह्निपुराणे—कृष्णाष्टम्यां भवेद्यत्र कलैका रोहिणी यदि । जयन्ती नाम सा प्रोक्ता उपोष्या सा प्रयत्नतः ॥' जयन्तीयोग के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न मत हैं । जैसे वसिष्ठसंहिता में—'अहोरात्रं तयोर्योगो ह्यसम्पूर्णो भवेद्यदि । मुहूर्तमप्यहोरात्रे योगश्चे-त्तमुपोषयेत् ॥' विष्णुधर्मः-'अर्धरात्रे तु योगोऽयं तारामभ्युदये सति । नियतात्मा शुचिः स्नातः पूजां तत्र प्रवर्तयेत् ॥' पुराणान्तरं—' वासरे वा निशायां वा यत्र स्वल्पाऽपि रोहिणी । विशेषेण नभोमासे सैवोपोष्या मनीषिभिः ॥' इति ।

इन वचनों की व्यवस्था मुख्यमध्यमाधमरूप से करनी चाहिये अर्थात् अहोरात्र रोहिणी का योग 'मुख्य' अर्धरात्रिमात्र में रोहिणी का योग 'मध्यम' और दिनादि में रोहिणी का योग 'अधम' है ।

यदि पूर्व दिन अर्धरात्रि में केवल अष्टमी हो और दूसरे दिन रोहिणीयुत अष्टमी अर्धरात्रि को स्पर्श न करती हो तो पूर्व दिन में ही व्रत करना चाहिये । क्योंकि नवमी बुधादि योग की तरह रोहिणी का योग फलातिशय बोध के लिये है ।

इसी प्रकार कौस्तुभ आदि नवीन ग्रन्थानुसृत माधवमत के अनुसार जन्माष्टमीनिर्णय में मतभेद हैं। इसमें कोई लोग कहते हैं कि जो केवलाष्टमी है वही जन्माष्टमी है और वही रोहिणीयुक्त जयन्ती नाम की है। इस प्रकार जयन्ती और अष्टमी दोनों एक ही व्रत है। दूसरे कहते हैं—जन्माष्टमीव्रत से जयन्तीव्रत भिन्न है। रोहिणी का योग न होने पर जयन्तीव्रत के लोप होने से जन्माष्टमीव्रत ही करना चाहिए। जिस वर्ष में जयन्ती नामक योग हो उस वर्ष में जन्माष्टमी जयन्ती में ही हो जाती है। इस प्रकार जयन्ती के दिन अर्द्धरात्रि नामक कर्मकाल में अष्टमी आदि के न होने पर भी सम्पूर्णता-बोधक-वचनों से कर्मकाल-व्याप्ति लेकर दोनों व्रतों को जयन्ती के ही दिन तन्त्र से करना चाहिए। दोनों व्रत के नहीं करने से बहुत दोष श्रवण और करने से फलश्रुति के कारण दोनों नित्य और काम्य भी हैं। न कि अर्द्धरात्रिव्यापिनी पहली अष्टमी में जन्माष्टमी व्रत करके जयन्ती के दिन पारण करे। नित्य व्रत के लोप होने से प्रत्यवाय होता है।

निर्णयसिन्धौ तु उक्तरीत्या [1]माधवमतमुपपाद्य हेमाद्रिमते जन्माष्टमीव्रतमेव नित्यम्। जयन्तीव्रतं तु नित्यमपि कलियुगे लुप्तमिति केचिन्नानुतिष्ठन्ति इत्युक्त्वा स्वमतेन यस्मिन्वर्षे पूर्वदिने एव निशीथेऽष्टमी परदिने एव निशीथादन्यत्र जयन्त्याख्ययोगस्तत्रोपोषणद्वयं कार्यम्। व्रतद्वयस्यापि नित्यत्वेनाकरणे दोषात्। जयन्त्यामष्टम्यन्तर्भावोक्तिस्तु मूर्खप्रतारणामात्रमिति प्रतिपादितम्।

निर्णयसिंधु में तो कथित रीति से माधवमत का उपपादन कर हेमाद्रिमत से जन्माष्टमीव्रत ही नित्य है। जयन्तीव्रत तो नित्य होते हुए भी कलियुग में लुप्त है इसी से इसे कोई नहीं करते। ऐसा कह कर अपने मत से जिस वर्ष में पहले ही दिन अर्द्धरात्रि में अष्टमी हो और दूसरे दिन ही अर्द्धरात्रि से भिन्न समय में जयन्ती नामक योग हो वहाँ दो उपवास करना चाहिए, क्योंकि दोनों व्रतों के नित्य होने से न करने पर दोष है। जयन्ती में अष्टमी के अन्तर्भाव वाली बात तो मूर्खों की प्रतारणामात्र है, ऐसा प्रतिपादन किया है।

मम तु कौस्तुभादिनवीनपरिगृहीतमाधवमतरीत्या जयन्त्यन्तर्भावेनाष्टमीव्रतानुष्ठानमेव युक्तं प्रतिभाति। अत्र व्रते बुधसोमवारयोगः प्राशस्त्यविधायको न तु रोहिणीवन्निर्णायकः।

मेरे मत में तो कौस्तुभ आदि नवीन ग्रन्थ सम्मत, माधव के मत से अष्टमी में जयन्ती का अन्तर्भाव करके अष्टमीव्रत का करना ही ठीक प्रतीत होता है। इस व्रत में बुध और सोमवार का योग प्राशस्त्यबोधक है, न कि रोहिणी की तरह निर्णायक है।

अथात्र पारणानिर्णयः

अथ द्वितीयदिने भोजनरूपं पारणं व्रताङ्गं विहितं तत्कालो निर्णीयते। केवलतिथ्युपवासे तिथ्यन्ते नक्षत्रयुक्ततिथ्युपवासे उभयान्ते पारणं कार्यम्। यदि तिथिनक्षत्रयोरेकतरान्तो दिने लभ्यते उभयान्तस्तु रात्रौ तदा दिवैवान्यतरान्ते पारणम्। यदा दिवा नैकस्याप्यन्तस्तदा निशीथादर्वागन्यतरान्ते उभयान्ते वा पारणम्। यदा तु निशीथाव्यवहितपूर्वक्षणे एकतरान्त उभयान्तो वा तदा निशीथेपि पारणं कार्यम्।

---

१. कालमाधव में माधव ने नामभेद, निमित्तभेद, रूपभेद, शुद्ध-मिश्र-भेद और निर्देशभेद से जन्माष्टमी तथा जयन्ती को दो व्रत सिद्ध किया।

जन्माष्टमीव्रत के दूसरे दिन भोजन-रूप-पारण व्रत का अङ्ग है। अतः उसके काल का निर्णय कहते हैं। केवल तिथि के उपवास करने पर तिथि के अन्त में और नक्षत्रसहित तिथि के उपवास करने पर नक्षत्र और तिथि दोनों के अन्त में पारण करना चाहिए। यदि दिन में तिथि और नक्षत्र में से एक का अन्त होता है और रात में नक्षत्र तिथि दोनों का अन्त मिलता है तो दिन में ही तिथि नक्षत्र में से किसी एक के अन्त में पारण करना चाहिए। यदि दिन में दो में से किसी एक का अन्त नहीं होता हो तो अर्द्धरात्रि से पहले तिथि नक्षत्र दोनों में से किसी एक के अन्त होने पर अथवा दोनों के अन्त में पारण करे। जब की अर्द्धरात्रि से अव्यवहित पूर्व क्षण में किसी एक का अथवा दोनों का अन्त होता हो तब अर्द्धरात्रि में भी पारण करना चाहिए।

भोजना संभवे पारणासंपत्त्यर्थं फलाद्याहारो विधेयः। केचित्तूक्तविषये निशीथे पारणं न कार्यं किंतूपवासात्तृतीयेह्नि दिवा कार्यमित्याहुः, तन्न युक्तम्; [1]अशक्तस्तु एकतरान्ताभावेपि उत्सवान्ते प्रातरेव देवपूजाविसर्जनादि कृत्वा पारणं कुर्यात्।

भोजन की संभावना न होने पर पारण की पूर्ति के लिए फल आदि खाना चाहिए। कुछ लोग तो इस विषय में अर्द्धरात्रि में पारण नहीं करे किन्तु उपवास के तीसरे दिन दिन में करे, ऐसा कहते हैं यह ठीक नहीं है। असमर्थ को तो तिथि नक्षत्र में से किसी एक के अन्त न होने पर उत्सव के अन्त में देवता का पूजन विसर्जन करके प्रातःकाल ही पारण करना चाहिये।

अथ संक्षेपेण व्रतविधिः

प्रातः [2]कृतनित्यक्रियः प्राङ्मुखो देशादि संकीर्त्य तत्तत्काले सप्तम्यादिसत्त्वेपि प्रधानभूतामष्टमीमेव संकीर्त्य 'श्रीकृष्णप्रीत्यर्थं जन्माष्टमीव्रतं करिष्ये' जयन्तीयोग-सत्त्वे 'जन्माष्टमीव्रतं जयन्तीव्रतं च तन्त्रेण करिष्ये' इति संकल्पयेत्। ताम्रपात्रे जलं गृहीत्वा,

वासुदेवं समुद्दिश्य सर्वपापप्रशान्तये।
उपवासं करिष्यामि कृष्णाष्टम्यां नभस्यहम्॥

अशक्तौ 'फलानि भक्षयिष्यामि' इत्याद्यूहः।

आजन्ममरणं यावद्यन्मया दुष्कृतं कृतम्।
तत्प्रणाशय गोविन्द प्रसीद पुरुषोत्तम॥

इति पात्रस्थं जलं क्षिपेत्।

प्रातःकाल नित्य क्रिया कर पूर्वमुख होकर देश आदि का नाम लेकर उस समय में सप्तमी आदि के रहने पर भी प्रधान अष्टमी को ही कह कर 'श्री कृष्ण की प्रीति के लिए जन्माष्टमीव्रत

---

१. अशक्तता में पारणा काल—'तिथ्यन्ते तिथिभान्ते वा पारणं यत्र चोदितम्। यामत्रयोर्ध्वगामिन्यां प्रातरेव हि पारणा॥' गरुडपुराणे—'जयन्त्यां पूर्वविद्धायामुपवासं समाचरेत्। तिथ्यन्ते वोत्सवान्ते वा व्रती कुर्वीत पारणम्॥' इति।

२. वाराहे—'सुस्नातः सम्यगाचान्तः कृतसन्ध्यादिकक्रियः। कामक्रोधविहीनश्च पाखण्ड-स्पर्शवर्जितः॥ जितेन्द्रियः सत्यवादी सर्वकर्मसु शस्यते।' इति।

करूँगा' ऐसे संकल्प करे। जयन्तीयोग के रहने पर 'जन्माष्टमीव्रत और जयन्तीव्रत तन्त्र से करूँगा' ऐसा संकल्प करे। ताम्र के पात्र में जल लेकर संपूर्ण पाप के नाश के लिए श्री भगवान् के उद्देश्य से 'जन्माष्टमी श्रावणमास में उपवास करूँगा' असमर्थ होने पर 'फलाहार करूँगा' आदि कहना चाहिए। जन्म से लेकर मरणपर्यन्त जो दुष्कर्म मैंने किया है उसके नाश के लिए हे पुरुषोत्तम हे गोविन्द! आप प्रसन्न हों, ऐसा कहकर पात्र स्थित जल को गिरा देवे।

ततः सुवर्णरजतादिमय्यो मृन्मय्यो वा भित्तिलिखिता वा [१]प्रतिमा यथाकुलाचारं कार्याः। ता यथा पर्यङ्के प्रसुप्तदेवक्याः स्तनं पिबन्तीं श्रीकृष्णप्रतिमां निधाय जयन्तीसत्त्वे त्वन्यदेवक्या उत्सङ्गे द्वितीयां श्रीकृष्णमूर्तिं निधाय पर्यङ्कस्थदेवकीचरणसंवाहनपरां लक्ष्मीं निधाय भित्त्यादौ खड्गधरं वसुदेवं नन्दगोपीगोपांश्लिखित्वा प्रदेशान्तरे मञ्चके प्रसूतकन्यया सह यशोदाप्रतिमां पीठान्तरे वसुदेवदेवकीनन्दयशोदाश्रीकृष्णरामचण्डिका इति सप्त प्रतिमाः स्थापयेत्। एतावत्प्रतिमाकरणाशक्तौ वसुदेवादिचण्डिकान्ताः सप्त वा यथाचारं यथाशक्ति वा कृत्वा अन्याः सर्वा यथायथं ध्यायेदिति भाति।

तदनन्त सोने और चाँदी आदि की या मिट्टी या भीत पर लिखी हुई प्रतिमा अपने कुलाचार के अनुसार बनावे। वह इस प्रकार बनावे—पलंग पर सोई हुई देवकी के स्तनों को पीती हुई श्रीकृष्ण की प्रतिमा को रख कर जयन्ती होने पर तो दूसरी देवकी के गोद में दूसरी श्रीकृष्णमूर्ति को रख कर पलंग पर बैठी देवकी के चरण को दबाती हुई लक्ष्मी को रख कर दिवाल आदि में तलवार लिए वसुदेव,नन्द, गोपी और गोपों को बनाकर दूसरी जगह पलंग पर उत्पन्न कन्या के साथ यशोदा की प्रतिमा और दूसरे आसन पर वसुदेव, देवकी, नन्द, यशोदा, श्रीकृष्ण, बलराम और चण्डिका की सात प्रतिमा का स्थापन करे। इतनी प्रतिमा बनाने में असमर्थ व्यक्ति को वसुदेव आदि चण्डिका पर्यन्त सात प्रतिमा अथवा आचार के अनुसार यथाशक्ति प्रतिमा बनाकर सबका ध्यान करे। यह प्रतीत होता है।

निशीथासन्नप्राक्काले स्नात्वा 'श्रीकृष्णप्रीत्यर्थं सपरिवारश्रीकृष्णपूजां करिष्ये' इति संकल्प्य न्यासान् शङ्खादिपूजान्तं नित्यवत्कृत्वा,

पर्यङ्कस्थां किन्नराद्यैर्युतां ध्यायेत्तु देवकीम्।
श्रीकृष्णं बालकं ध्यायेत्पर्यङ्के स्तनपायिनम्॥
श्रीवत्सवक्षसं शान्तं नीलोत्पलदलच्छविम्।
संवाहयन्तीं देवक्याः पादौ ध्यायेच्च तां श्रियम्॥

एवं ध्यात्वा देवक्यै नमः इति देवकीमावाह्य मूलमन्त्रेण पुरुषसूक्तऋचा वा श्रीकृष्णाय नमः श्रीकृष्णमावाहयामीति आवाह्य लक्ष्मीं चावाह्य देवक्यै वसुदेवाय यशोदायै नन्दाय कृष्णाय रामाय चण्डिकायै इति नाम्नावाह्य

१. भविष्यपुराण में प्रतिमानिर्माण के द्रव्य—'अनुक्तद्रव्यतत्संख्यादेवताप्रतिमा नृप। सौवर्णी राजती ताम्री वृक्षजा मार्त्तिका तथा॥ चित्रजा पिष्टलेपोत्था निजवित्तानुरूपतः। आमाषात् पलपर्यन्ता कर्तव्या शाठ्यवर्जितैः॥' अपि च—'प्रतिमासु च शुभ्रासु लिखित्वा वा पटादिषु। अपि वाक्षतपुञ्जेषु नैवेद्यैश्च पृथक्पृथक्॥' इति।

लिखितादिदेवताः सकलपरिवारदेवताभ्यो नम इत्यावाह्य मूलमन्त्रेण सूक्तऋचा वा अत्रावाहितदेवक्यादिपरिवारदेवतासहितश्रीकृष्णाय नम इत्यासनपाद्यार्घ्याचमनीयाभ्यङ्गस्नानानि दत्त्वा पञ्चामृतस्नानान्ते चन्दनेनानुलेपयेत्।

अर्द्धरात्रि के निकट समय में स्नान करके 'श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिए परिवार के सहित श्रीकृष्णकी पूजा करूँगा' ऐसा संकल्प करके न्यास शंख आदि की पूजा रोज की तरह करके किन्नर आदि से युक्त पलंग पर बैठी हुई देवकी का ध्यान करे। पलंग पर माता का स्तन पीते हुए छाती पर श्रीवत्स धारण किये नीले कमल के पत्ते के समान कान्ति वाले बालक श्रीकृष्ण का देवकी के पैर दबाती हुई उस लक्ष्मी का भी ध्यान करे। इस प्रकार ध्यान करके देवकी को नमस्कार है ऐसा कह कर देवकी का आवाहन कर मूलमंत्र से या पुरुषसूक्त की ऋचा से या 'श्रीकृष्णाय नमः श्रीकृष्णमावा०' इससे आवाहन करके और लक्ष्मी का भी आवाहन कर देवकी वसुदेव, यशोदा, नन्द, श्रीकृष्ण, बलराम और चण्डिका के नाम से आवाहन कर दीवार पर लिखी हुई सकल परिवार देवताओं को नमस्कार है ऐसा कह कर मूलमन्त्र से अथवा सूक्त की ऋचा से आवाहित देवकी आदि परिवारसहित श्रीकृष्ण को नमस्कार है ऐसा कह के आसन पाद्य अर्घ्य आचमनीय उबटन स्नान आदि समर्पण कर पंचामृतस्नान के अन्त में चन्दन का लेपन करे।

शुद्धोदकाभिषेकान्ते वस्त्रयज्ञोपवीतगन्धपुष्पाणि धूपदीपौ च।

विश्वेश्वराय विश्वाय तथा विश्वोद्भवाय च।
विश्वस्य पतये तुभ्यं गोविन्दाय नमोनमः॥
यज्ञेश्वराय देवाय तथा यज्ञोद्भवाय च।
यज्ञानां पतये नाथ गोविन्दाय नमोनमः॥

इति मन्त्राभ्यां मूलमन्त्रादिसमुच्चिताभ्यां दद्यात्।

जगन्नाथ नमस्तुभ्यं संसारभयनाशन।
जगदीश्वराय देवाय भूतानां पतये नमः॥

इति नैवेद्यम्। मूलमन्त्रादिकं सर्वत्र योज्यम्। ताम्बूलादिनमस्कारप्रदक्षिणापुष्पाञ्जल्यन्तं कार्यम्।

तदनन्तर शुद्ध जल से स्नान कराकर वस्त्र यज्ञोपवीत गन्ध पुष्प और धूप दीप को समर्पित करे। विश्व के प्रभु विश्व के उत्पादक संसार के पति आप गोविन्द को नमस्कार है। यज्ञ के प्रभुदेव यज्ञ के जन्म देने वाले यज्ञ के पति हे नाथ! गोविन्द! आप को नमस्कार है। इस मूलमन्त्र सहित दोनों मन्त्रों से वस्त्रादि चढ़ावे। हे जगन्नाथ! संसार के भय नष्ट करनेवाले जगत के प्रभु जीवों के पति आप को नमस्कार है, ऐसा कह कर नैवेद्य का निवेदन करे। सब जगह मूलमन्त्र आदि की योजना करे। ताम्बूल आदि नमस्कार प्रदक्षिणा पुष्पाञ्जलि पर्यन्त सब पूजन करे।

अथवोद्यापनप्रकरणोक्तविधिना पूजा। सा यथा—उक्तप्रकारेण ध्यानावाहने[1] कृत्वा,

---

१. पुरश्चर्यार्णवे—'हस्ताभ्यामञ्जलिं बध्वाऽनामिकामूलपर्वणि। अङ्गुष्ठौ निक्षिपेत् सेयं मुद्रा त्वावाहनी मता। अधोमुखी त्वियं चैव स्थापनीति निगद्यते। आकर्मकाण्डपर्यन्तं सान्निध्यं हि विभावयेत्॥ ततः संस्थापनं कुर्यादिह तिष्ठेह तिष्ठ च। वाचस्पतौ—'कुर्यादावाहनं मूर्तौ मृन्मय्यां सर्वदैव हि। प्रतिमायां जले वह्नौ नावाहनविसर्जने॥' इति।

अथवा उद्यापन प्रकरण में कही हुई विधि से पूजा करे। वह इस प्रकार है–कही हुई विधि से ध्यान और आवाहन करके,

देवा ब्रह्मादयो येन स्वरूपं न विदुस्तव।
अतस्त्वां पूजयिष्यामि मातुरुत्सङ्गवासिनम्॥

पुरुष एवेदमासनम्[1]।

ब्रह्मादिक देवता जो आप के स्वरूप को नहीं जानते हैं इस लिए माँ के गोद में रहने वाले आप की पूजा करूँगा। 'पुरुष एवेदं' इस पुरुषसूक्त मन्त्र से आसन दे।

अवतारसहस्राणि करोषि मधुसूदन।
न ते संख्यावताराणां कश्चिज्जानाति तत्त्वतः॥

एतावानस्येति पाद्यम्[2]।

हे मधुसूदन! आप हजारों अवतार धारण करते हैं आप के अवतारों की गणना वस्तुतः कोई नहीं जानता। 'एतावानस्य' इस मन्त्र से पाद्य दे।

जातः कंसवधार्थाय भूभारोत्तारणाय च।
देवानां च हितार्थाय धर्मसंस्थापनाय च॥
कौरवाणां विनाशाय पाण्डवानां हिताय च।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं देवक्या सहितो हरे॥

त्रिपाद्० अर्घ्यम्[3]।

पृथ्वी के भार को उतारने और धर्म की स्थापना, पाण्डवों के हित, कौरवों के नाश, कंस को मारने और देवताओं के हित के लिए आप पैदा हुए हैं। देवकी के सहित हे भगवान्! मेरे दिये हुए अर्घ्य को स्वीकार करें। 'त्रिपादूर्ध्व' इत्यादि वैदिक मन्त्र से अर्घ्य दे।

सुरासुरनरेशाय क्षीराब्धिशयनाय च।
कृष्णाय वासुदेवाय ददाम्याचमनं शुभम्॥

तस्मा० [4]आच०।

देवता दैत्य और मनुष्यों के ईश क्षीरसमुद्र में सोने वाले वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण जी को शुभ आचमन देता हूं। 'तस्माद् विराट्' इत्यादि मन्त्र से आचमनीय देवे।

---

१. पुरश्चर्यार्णवे—'देवस्य वाममार्गे तु दद्यान्मूलेन चासनम्। पौर्णं दारुमयं वास्त्रमाक्षतं कौशतैजसम्॥ षड्विधं चासनं प्रोक्तं देवताप्रीतिकारकम्।' इति।

२. पाद्य में प्रक्षेप की औषधियाँ—'पाद्यं श्यामाकदूर्वाब्जविष्णुक्रान्ताभिरुच्यते।' इति।

३. अर्घ्य में प्रक्षेप की वस्तु—'आपः क्षीरं कुशाग्राणि दधि दूर्वाऽक्षतास्तथा। फलं सिद्धार्थकश्चैव अर्घोऽष्टाङ्गः प्रकीर्तितः॥' 'अर्घो मूर्ध्नि प्रदातव्यः' इस वचन से अर्घ्य शिर पर चढ़ाना चाहिये और अर्घ्य के पश्चात् आचमन के लिये जल दे—'अर्घे स्नाने तथा वस्त्रे उपवीतोपहारयोः। ततो विराडित्यनया दद्यादाचमनीयकम्॥' इति।

४. आचमनीय में प्रक्षेप के द्रव्य—'कर्पूरमगुरुं पुष्पं दद्याज्जातीफलं मुने। लवङ्गमपि कङ्कोलं शस्तमाचमनीयके। मूलमन्त्रेण वदने दद्यादाचमनीयकम्।' इति।

नारायण नमस्तेऽस्तु नरकार्णवतारक ।
गङ्गोदकं समानीतं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

यत्पुरुषे० [1]स्नानम् ।

नरक-समुद्र से पार करने वाले हे नारायण ! आप को नमस्कार है। आप के स्नान के लिए गंगाजल लाया हूँ इसे ग्रहण करें। 'यत्पुरुषेण' इत्यादि मन्त्र से स्नान करावे।

पयोदधिघृतक्षौद्रशर्करास्नानमुत्तमम् ।
तृप्त्यर्थं देवदेवेश गृह्यतां देवकीसुत ॥

इति [2]पञ्चामृतम् । शुद्धोदकस्नानमाचमनम् ।

दूध, दही, घी, मधु, चीनी से बने पंचामृत से उत्तम स्नान आप की तृप्ति के लिए है। हे देवकीपुत्र ! आप इसे स्वीकार करें। फिर शुद्ध जल से स्नान और आचमन करावे।

क्षौमं च पट्टसूत्राढ्यं मया नीतांशुकं शुभम् ।
गृह्यतां देवदेवेश मया दत्तं सुरोत्तम ॥

तं यज्ञं० [3]वस्त्रम् ।

हे देवश्रेष्ठ ! मैंने रेशमी और ऊनीवस्त्र आपके धारण के लिए अर्पित किया है उसे स्वीकार करें। 'तं यज्ञं' इत्यादि मन्त्र से वस्त्र चढावे।

नमः कृष्णाय देवाय शङ्खचक्रधराय च ।
ब्रह्मसूत्रं जगन्नाथ गृहाण परमेश्वर ॥

तस्माद्यज्ञा० [4]यज्ञोप० ।

शंख चक्र धारण करने वाले देवाधिदेव श्रीकृष्ण को नमस्कार है। हे जगन्नाथ ! हे परमेश्वर ! इस यज्ञोपवीत को ग्रहण करें। 'तस्माद्यज्ञात्' इत्यादि मन्त्र से यज्ञोपवीत समर्पण करे।

नानागन्धसमायुक्तं चन्दनं चारुचर्चितम् ।
कुङ्कुमाक्ताक्षतैर्युक्तं गृह्यतां परमेश्वर ॥

तस्माद्यज्ञा० [5]गन्धम् ।

---

१. 'अन्यानिवेदितं तोयं प्रकृतिस्थं सुशीतलम् । हेमादिकुम्भपात्रस्थं स्नानीयं जलमुच्यते ॥' स्नान कराते समय घण्टावादन करना चाहिये—'स्नाने धूपे तथा दीपे नैवेद्ये भूषणे तथा। घण्टानादं प्रकुर्वीत तथा नीराजनेऽपि च ॥' इति।

२. दुग्धादिमिलित पञ्चामृत से स्नान कराने के धन्वन्तरिका वचन—'गव्यमाज्यं दधि क्षीरं माक्षिकं शर्कराऽन्वितम् । एकत्र मिलितं ज्ञेयं दिव्यं पञ्चामृतं परम् ॥' पृथक् पृथक् दुग्धादि से स्नान कराने का वचन—'दुग्धं दधि क्षीरमाज्यं शर्करा च तथैव हि । तस्य तस्य च मन्त्रेण तत्तद् द्रव्यं समर्पयेत् ॥' इति।

३. आह्निककारिका में वस्त्र का विचार—'नानारङ्गविराजितं गतदश कोशोद्भवं वासितं नीलीरङ्गसमन्वितं च समलं नैवायतं चास्ति यत् । दग्धं चैव च खण्डितं च बहुधा युद्धादिकैश्चित्रितं तद्वर्ज्यं खलु देवपूजनविधौ वस्त्रं कुसुम्भारुणम् ॥' इति।

४. 'स्नानान्ते चार्पयेद्वस्त्रं देवानां प्रीतये सदा । ब्रह्मसूत्रं च दातव्यं पूजाफलमभीप्सुना ॥' यज्ञोपवीत का विचार तृतीयपरिच्छेद के पूर्वार्द्ध में यज्ञोपवीतनिर्णय में देखें।

५. 'कालिकापुराणे—'सर्वेषु गन्धजातेषु प्रशस्तो मलयोद्भवः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन दद्यान्म-

अनेक गन्धों से युक्त सुन्दर चन्दन कुँकुम अक्षत से युक्त चन्दन स्वीकार करें। 'तस्माद्य-ज्ञात् सर्व हुवऋच' इस मन्त्र से गन्ध चढ़ावे।

पुष्पाणि यानि दिव्यानि पारिजातोद्भवानि च।
मालतीकेसरादीनि पूजार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

तस्माद० [1]पुष्पाणि।

जो पुष्प दिव्य कल्पवृक्ष से उत्पन्न हुए हैं तथा मालती-केसर आदि के फूल पूजा के लिए हैं, इन्हें स्वीकार करें। 'तस्मादश्वा' इस मन्त्र से फूल चढ़ावे।

अथाङ्गपूजा[2]—श्रीकृष्णाय नमः पादौ पूजयामि। संकर्षणाय नमः गुल्फौ० कालात्मने न० जानुनी पू०। विश्वकर्मणे न० जङ्घे पू०। विश्वनेत्राय० कटी पू०। विश्वकर्त्रे न० मेढ्रं पू०। पद्मनाभाय न० नाभि पू०। परमात्मने न० हृदयं पू०। श्रीकण्ठाय न० कण्ठं पू०। सर्वास्त्रधारिणे न० बाहू पू०। वाचस्पतये न० मुखं पू०। केशवाय न० ललाटं पू०। सर्वात्मने न० शिरः पू०। विश्वरूपिणे नारायणाय नमः सर्वाङ्गं पूजयामि।

तदनन्तर 'श्रीकृष्णाय नमः' इत्यादि मन्त्रों को कहकर अंगों की पूजा करे। श्री कृष्णाय नमः से दोनों पैरों की संकर्षणाय नमः से घुट्टों (गुल्फ) की कलात्मने नमः से जानु (ठेहुनी) की विश्वकर्मणे नमः से दोनों जंघा की विश्वनेत्राय नमः से कटि की विश्वकर्त्रे नमः से लिंग की श्री पद्मनाभाय नमः से नाभि की परमात्मने नमः से हृदय की श्रीकंठाय नमः से कंठ की सर्वास्त्रधारिणे नमः से दोनों बाहु की वाचस्पतये नमः से भगवान् के मुख की केशवाय नमः से ललाट की सर्वात्मने नमः से शिर की और विश्वरूपिणे नारायणाय नमः से सम्पूर्ण अंग की पूजा करे।

वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

यत्पुरुषं० [3]धूपम्०।

लयजं सदा ॥ कृष्णागुरुः सकर्पूरः सहितो मलयोद्भवैः। वैष्णवप्रीतिदो गन्धः कामाख्यायाश्च भैरवौ ॥ कुङ्कुमागरुकस्तूरीचन्द्रभागैः समीकृतैः। त्रिदशप्रीतिदो गन्धस्तथा चण्ड्याश्च शम्भुना ॥ गन्धेन लभते कामं गन्धो धर्मप्रदः सदा। अर्थानां साधको गन्धो गन्धे मोक्षः प्रतिष्ठितः ॥' इति।

१. कालिकापुराण में पुष्पार्पण का प्रकार—'पत्रं वा यदि वा पुष्पं फलं वाऽपि तथैव च। केशवार्थे शिवार्थे च यथोत्पन्नं तथाऽर्पयेत् ॥ मध्यमाऽनामिकामध्ये पुष्पं संगृह्य पूजयेत्। अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां तु निर्माल्यमपनोदयेत् ॥' संग्रहे—'पत्रं वा यदि वा पुष्पं फलं नेष्टमधोमुखम्। यथोत्पन्नं तथा देयं बिल्वपत्रमधोमुखम्। पुष्पं चाधोमुखं नेष्टं तुलसीबिल्ववर्जितम्। तस्माच्चाधोमुखं देयं बिल्वपत्रं च शङ्करे ॥ पुष्पमूर्ध्वमुखं योज्यं पत्रं योज्यं त्वधोमुखम्। फलं तु सम्मुखं योज्यं यथोत्पन्नं तथाऽर्पयेत् ॥' भविष्य में पुष्पाभाव में—'अलाभे तु सुपुष्पाणां पत्राण्यपि निवेदयेत्। पत्राणामप्यलाभे तु तृणगुल्मौषधीरपि ॥ औषधीनामलाभे तु भक्त्या भवति पूजनम्। यत्पुण्यं प्रतिपुष्पे तद्दशा स्वर्णविनिर्मिते।' इति।

२. अङ्गपूजा = आवरणपूजा। पुरश्चर्यार्णव में पुष्पार्पण के अनन्तर आवरणपूजा करके धूप दीप निवेदन का विधान है—'कृत्वाऽऽवरणपूजां तु धूपदीपौ निवेदयेत्।' इति।

३. तन्त्रसारे—'मध्यमानामिकाङ्गुल्योर्मध्यपर्वणि दैशिकः। अङ्गुष्ठाग्रेण देवेशि धृत्वा धूपं

वनस्पतियों के रस से उत्पन्न गन्धों में श्रेष्ठ सभी देवताओं के आघ्राण के योग्य इस धूप को ग्रहण करें। 'यत्पुरुषं' इत्यादि वैदिक मंत्र से धूप देवे।

त्वं ज्योतिः सर्वदेवानां तेजस्त्वं तेजसां परम्।
आत्मज्योतिर्नमस्तुभ्यं दीपोयं प्रतिगृह्यताम्॥

ब्राह्मणो० 'दीपम्०।

आप सब देवताओं की ज्योति हैं और तेजों के परमतेज है। आत्मज्योति! आपको नमस्कार है इस दीप को आप ग्रहण करें। 'ब्राह्मणोस्य' इत्यादि मंत्र से दीप दिखावे।

नानागन्धसमायुक्तं भक्ष्यं भोज्यं चतुर्विधम्।
नैवेद्यार्थं मया दत्तं गृहाण परमेश्वर॥

चन्द्रमा मनसो० [2]नैवेद्यम्। आचमनं [3]करोद्वर्तनम्०।

अनेक नैवेद्य के लिए मुझसे अर्पित गन्धयुक्त चार प्रकार के भक्ष्य भोज्य हे परमेश्वर! आप स्वीकार करें। 'चन्द्रमा मनसो' इस वैदिक मंत्र से नैवेद्य दे। भगवान को आचमन तथा करोद्वर्त्तन करावे।

निवेदयेत्॥ ततः समर्पयेद् धूपं घण्टावाद्यजयस्वनैः। न धूपं वितरेद् भूमौ नासने व घटे तथा॥ यथा तथाऽऽधारगतं कृत्वा तं विनिवेदयेत्। वामतस्तु तथा धूपमग्रे वा न तु दक्षिणे॥ धूपदीपौ सुभोज्यं च देवताग्रे निवेदयेत्।' 'धूताशेषमहादोषपूतिगन्धप्रहारितः। परमामोदजननाद् धूप इत्यभिधीयते॥'

आयुर्वेद में दशाङ्गधूप—'घृतगुग्गुलुपाटीरहेगरुक्षीरचन्दनम्। धनं लाक्षाकुष्ठनखं दशाङ्गः प्रोच्यते बुधैः॥' शारदातिलक में षोडशाङ्गधूप—'गुग्गुलुं सरलं दारु पत्रं मलयसम्भवम्। ह्रीवेरमगरुं कुष्ठं गुडं सर्जरसं घनम्॥ हरीतकीं नखीं लाक्षां जटामासीं च शैलजाम्। षोडशाङ्गं विदुर्धूपं दैवे पित्र्ये च कर्मणि॥ यथा गन्धं तथा देवि धूपं दद्याद् विचक्षणः।' इति।

१. पुरश्चर्यार्णवे—'दीर्घाज्ञानमहाध्वान्ताहङ्कारपरिवर्जनात्। परतत्त्वप्रकाशाच्च दीप इत्यभिधीयते॥ तैजसं राजसं लौहं मार्तिक्यं नारिकेलजम्। तृणराजोद्भवं वापि दीपपात्रं प्रशस्यते॥ वर्तिः श्वेताथवा रक्ता न पीता नासिताऽपि च। पटो वा नूतनः शुक्लो वर्तिकायां प्रशस्यते॥ वर्त्या कर्पूरगर्भिण्या सर्पिषा तिलजेन वा। आरोप्य दर्शयेद्दीपानुच्चैः सौरभशालिनः॥ दीपं दक्षिणतो दद्यात्पुरतो वा न वामतः। सर्वंसहा वसुमती सहते न द्वयं त्विदम्॥ अकार्ये पादघातं च दीपतापं तथैव च। कृत्वा तु पृथिवीतापं दीपमुत्सृजते नरः॥ स तापपापं नरकं प्राप्नोत्येव शतं समाः। लभ्यते यस्य तापस्तु दीपस्य चतुरङ्गुलात्॥ न स दीप इति ख्यातो ह्यधो वह्निस्तु स स्मृतः। नैव निर्वापयेद्दीपं देवार्थमुपकल्पितम्॥ दीपहर्ता भवेदन्धः काणो निर्वापको भवेत्। दीपनिर्वापणात्पुंसः कूष्माण्डच्छेदनात् स्त्रियः। अचिरेणैव कालेन पिण्डनाशो भवेद् ध्रुवम्। नैव निर्वापयेद्दीपं लक्ष्मीनाशकरो यतः॥' कालिकापुराणे—'न मिश्रीकृत्य दद्यात्तु दीपं स्नेहे घृतादिकम्। घृतेन दीपकं नित्यं तिलतैलेन वा पुनः॥ ज्वालयेन्मुनिशार्दूल सन्निधौ जगदीशितुः। कार्पासवर्तिका ग्राह्या न दीर्घा न च सूक्ष्मका॥' इति।

२. पद्मपुराणे—'हैरण्यं राजतं कांस्यं ताम्रं मृन्मयमेव च। पालाशं पद्मपत्रं वा पात्रं विष्णोरतिप्रियम्॥ 'हविः शाल्योदनं दिव्यमाज्ययुक्तं च शर्कराम्। नैवेद्यं देवदेवाय यावकं पायसं तथा॥ नैवेद्यवस्त्वलाभे तु फलानि च निवेदयेत्। फलानामप्यलाभे तु तोयान्यपि निवेदयेत्॥' अपि च—'नैवेद्यं दक्षिणे भागे पुरतो वा न पृष्ठतः। भक्ष्यं भोज्यं च लेह्यं च पेयं चोष्यं च पञ्चमम्॥ सर्वत्र चैव नैवेद्यमाराध्यास्मै निवेदयेत्।' इति।

३. नारदीये—'पुनराचमनं दद्यात् करोद्वर्तनमेव च।' इनमें नैवेद्य के अनन्तर आचमनी-

'ताम्बूलं च सकर्पूरं पूगीफलसमन्वितम् ।
मुखवासकरं रम्यं प्रीतिदं प्रतिगृह्यताम् ॥

इति ताम्बूलम्० ।

सौवर्णं राजतं ताम्रं नानारत्नसमन्वितम् ।
कर्मसाद्गुण्यसिद्ध्यर्थं दक्षिणा प्रतिगृह्यताम् ॥

इति दक्षिणाम्० ।

रम्भाफलं नारिकेलं तथैवाम्रफलानि च ।
पूजितोसि सुरश्रेष्ठ गृह्यतां कंससूदन ॥

इति फलम्० । नाभ्या आ० [2]नीराजनम्० ।

कपूर और सुपारी से युक्त मुख को सुगन्धित करने वाले ताम्बूल को स्वीकार करें । यह कह, लगाया हुआ पान अर्पण करे । अनेक रत्नों से युक्त सोने चांदी की दक्षिणा कर्म की सफलता के लिए स्वीकार कीजिये । इससे दक्षिणा देवे । केला, नारियल तथा आम के फलों को हे कँस के मारनेवाले देववर । मेरी पूजा आप स्वीकार करें । इससे फल देवे । 'नाभ्या आसीद०' इस मन्त्र से आरती उतारे ।

यानि कानि० सप्तास्या० [3]प्रदक्षिणाम् । यज्ञेनेत्यादिवेदमन्त्रैः पुष्पाञ्जलिं[4] नमस्कारान्[5] । अपराधस० पूजां निवेदयेत् ।

यादि—'भोजनानन्तरं देयमद्भिः कर्पूरवासितैः । मध्यमाचमनं मध्ये पानीयं करमार्जनम् ॥ गाण्डूषिकं जलं दत्त्वा दद्यादाचमनं ततः । हस्तवासं सकर्पूरं मुकुटं भूषणानि च ॥' चन्दनानुलेपन का समर्पण करोद्वर्तन है ।

१. पाद्मे—'सुपूगं च सुपत्रं च चूर्णेन च समन्वितम् । दद्यात्तु द्विजदेवेभ्यस्ताम्बूलं प्रीतिपूर्वकम् ।' अन्यत्र—'लवङ्गजातिकङ्कोलचूर्णक्रमुकखादिरम् । कर्पूरसहितं पत्रं ताम्बूलं च समर्पयेत् ॥' अपि च—'फलं ताम्बूलसहितं दक्षिणां कनकान्विताम् । पुष्पाञ्जलिं ततः कुर्याद् भक्त्याऽऽदर्शं प्रकल्पयेत् ॥ नीराजनं ततः कुर्यात् कर्पूरं विभवे सति । समर्प्यं मुकुटादीनि भूषणं छत्रचामरे ॥ प्रसादसुमुखं ध्यात्वा कुर्याच्चैव प्रदक्षिणाम् । नमस्कारं ततः कुर्यात् साष्टाङ्गं भक्तिपूर्वकम ॥' इति ।

२. हरिभक्तिविलास में पांच नीराजन—'पञ्च नीराजनान् कुर्यात् प्रथमं दीपमालया । द्वितीयं सोदकाब्जेन तृतीयं धौतवाससा ॥ चूताश्वत्थादिपत्रैश्च चतुर्थं परिकीर्तितम् । पञ्चमं प्रणिपातेन साष्टाङ्गेन यथाविधि ॥ आदौ चतुष्पादतले च विष्णोर्द्वौ नाभिदेशे च मुखे तथैकम् । सर्वेषु चाङ्गेष्वपि सप्तवारानारार्तिकं भक्तजनस्तु कुर्यात् ॥' इति ।

३. बह्वृचपरिशिष्टे—'एकां विनायके कुर्याद् द्वे सूर्ये तिस्र ईश्वरे । चतस्रः केशवे कुर्यात् सप्ताश्वत्थे प्रदक्षिणाः ॥' अन्यत्र—'एका चण्ड्या रवेः सप्त तिस्रः कार्या विनायके । हरेश्चतस्रः कर्तव्याः शिवस्यार्धं प्रदक्षिणाः ॥' इति ।

४. देवपूजाविधौ—'नानासुगन्धिपुष्पाणि यथाकालोद्भवानि च । पुष्पाञ्जलिः शुभा देया देवताप्रीतये सदा ॥' रामार्चनचन्द्रिकायाम्—'वैदिकं मन्त्रमुच्चार्य दद्यात् पुष्पाञ्जलिं ततः ।' इति ।

५. अष्टाङ्गप्रणाम—'उरसा शिरसा दृष्ट्या मनसा वचसा तथा । पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यां प्रणामोऽष्टाङ्ग उच्यते ॥' पञ्चाङ्गप्रणाम—'बाहुभ्यां चैव जानुभ्यां वचसा शिरसा दृशा । पञ्चाङ्गोऽयं प्रणामः स्यात् पूजासु प्रवराविमौ ॥' इति ।

दूसरे जन्मों के जो मेरे पाप हैं वह प्रदक्षिणा करने से नष्ट हो जाय। 'यज्ञेन यज्ञमयजन्त' इस वेदमंत्र से पुष्पाञ्जलि-समर्पण करे। नमस्कार के बाद 'अपराधसहस्राणि क्रियन्ते' इत्यादि मंत्र से पूजन को निवेदन करे।

सर्वोपचारपूजनसमाप्तौ द्वादशाङ्गुलविस्तारं रौप्यमयं स्थण्डिलादिलिखितं वा रोहिणीयुतं चन्द्रम्,

सोमेश्वराय सोमाय तथा सोमोद्भवाय च।
सोमस्य पतये नित्यं तुभ्यं सोमाय वै नमः॥

इति संपूज्य सपुष्पकुशचन्दनं तोयं शङ्खेनादाय,

क्षीरोदार्णवसंभूत अत्रिगोत्रसमुद्भव।
गृहाणार्घ्यं शशाङ्केश रोहिणीसहितो मम॥
ज्योत्स्नापते नमस्तुभ्यं ज्योतिषां पतये नमः।
नमस्ते रोहिणीकान्त अर्घ्यं नः प्रतिगृह्यताम्॥

इति मन्त्राभ्यां चन्द्रायार्घ्यं दद्यात्। ततः श्रीकृष्णायार्घ्यं दद्यात्। तत्र मन्त्रः—

जातः कंसवधार्थाय भूभारोत्तारणाय च।
पाण्डवानां हितार्थाय धर्मसंस्थापनाय च॥
कौरवाणां विनाशाय दैत्यानां निधनाय च।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं देवक्या सहितो हरे॥ इति।

सम्पूर्ण उपचार से पूजन करने के अन्त में १२ अंगुल का चौड़ा चाँदी का अथवा स्थण्डिल आदि में रोहिणीसहित चन्द्रमा बनावे। सोम के ईश्वर सोम से उत्पन्न सोम के पति हे चन्द्रदेव! आपको नमस्कार है। इस तरह पूजा करके पुष्प कुश चन्दन और जल शंख में लेकर हे क्षीरसमुद्र से उत्पन्न अत्रिगोत्र वाले चन्द्रदेव! रोहिणीसहित हे चन्द्रदेव मेरा दिया हुआ अर्घ्य स्वीकार करें। हे ज्योत्स्नापते! हे ज्योतिपति! हे रोहिणीकान्त! आपको नमस्कार है। हमारे अर्घ्य को स्वीकार करें इन दो मंत्रो से चन्द्रमा को अर्घ्य देवे। तदनन्तर श्रीकृष्णचन्द्र को अर्घ्य दे। उसके मंत्र का अर्थ—कंस के मारने, भूमि के भार हटाने, पाण्डवों के हित, धर्म के स्थापना, कौरवों के नाशऔर दैत्यों के मारने के लिए हे देवकीसहित भगवन्! मेरा दिया हुआ अर्घ्य स्वीकार करें।

ततः प्रार्थयेत्—

त्राहि मां सर्वलोकेश हरे संसारसागरात्।
त्राहि मां सर्वपापघ्न दुःखशोकार्णवात्प्रभो॥
सर्वलोकेश्वर त्राहि पतितं मां भवार्णवे।
त्राहि मां सर्वदुःखघ्न रोगशोकार्णवाद्धरे॥
दुर्गतांस्त्रायसे विष्णो ये स्मरन्ति सकृत्सकृत्।
त्राहि मां देवदेवेश त्वत्तो नान्योस्ति रक्षिता॥

यद्वा क्वचन कौमारे यौवने यच्च वार्धके ।
तत्पुण्यं वृद्धिमायातु पापं दह हलायुध ॥ इति ।

इसके बाद प्रार्थना करे—सम्पूर्ण पापों को हनन करने वाले हे सर्वलोक के प्रभु ! दुःख और शोक के समुद्र से मेरी रक्षा कीजिये । संसार-समुद्र में पड़े हुए मुझको हे हरि ! रोग, शोक के समुद्र से मेरी रक्षा कीजिये । मेरी दुर्गति से मुझे बचाइये । बार बार आपके स्मरण करने से दुर्गति दूर होती है । हे देवदेवेश ! आपको छोड़ दूसरा मेरा रक्षक नहीं है । मैं बचपन जवानी अथवा वृद्धावस्था में जो पुण्य किया है वह बढ़े, हे हलायुध ! मेरे पापों को जला दीजिये ।

अथ पूजानन्तरं कृत्यं अग्निपुराणे—

इत्येवं पूजयित्वा तु पुरुषसूक्तैः सवैष्णवैः ।
स्तुत्वा वादित्रनिर्घोषैर्गीतवादित्रमङ्गलैः ॥
सुकथाभिर्विचित्राभिस्तथा प्रेक्षणकैरपि ।
पूर्वेतिहासैः पौराणैः क्षिपेत्तां शर्वरीं नृप ॥ इति ।

अत्र कथासु वैचित्र्यं देशभाषाकाव्यकृतं सूक्तानां प्रागुक्तेः पुराणकथानामन्तेभिधानात् । प्रेक्षणकानि नृत्यादीनि । तथा च वैदिकसूत्रकरणकस्तुतिविशिष्टः पौराणेतिहासमिश्रितो गीतनृत्ययुतदेशभाषाकाव्यप्रमुखकथाकरणकोजागरो विप्रादिवर्णत्रयस्य विधीयते । शूद्रादीन्प्रति एतादृशजागरस्य विधातुमयोग्यत्वात् । वचनान्तरेण तु सूक्तादिरहितगीतादिविशिष्टो वर्णचतुष्टयसाधारणो विधीयते । गोकुलस्थजन्मलीलादिश्रवणोत्तरं वैष्णवैः परस्परं दध्यादिभिः सेचनं कार्यं दधिक्षीरघृताम्बुभिः । 'आसिञ्चन्तो विलिम्पन्त' इत्यादिभागवतवचनेन तथा विधिकल्पनात् ।

अग्निपुराण में पूजा के बाद का कर्त्तव्य—इस प्रकार पूजा करने के बाद वैष्णवों के साथ पुरुषसूक्त से स्तुति करके बाजा गाना आदि मंगल के द्वारा भगवान् की विचित्र कथाओं झांकी पुराणों एवं इतिहासों से उस रात को बितावे । इस कथा में विचित्रता देश की भाषा में काव्य करना कहा है सूक्त पहले ही कह चुके हैं । अन्त में पुराण की कथा कहे । झांकी से नृत्य आदि भी जानना चाहिये । पुराण-इतिहास-मिश्रित-वैदिकसूत्र द्वारा स्तुतिसहित गाना नाचना देशभाषाके काव्यों की कथा के द्वारा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य का जागरण कहा है । शूद्रों के लिए इस प्रकार जागरण योग्य नहीं होने से दूसरे वचन से सूक्त आदि से रहित गीत आदि के द्वारा भगवान् का कीर्तन चारो वर्णों के लिए साधारण कहा है । गोकुल की भगवत् जन्मलीला आदि सुनने के बाद आपस में दही आदि से वैष्णवगण सिंचन करें । 'भागवत के आसिंचन्तो विलिंपन्त' इस वचन से दही दूध और जल से परस्पर लेपन करें ।

अयमुत्सवोऽधुना महाराष्ट्रदेशे गोपालकालेति व्यवह्रियत इति मे भाति । एतत्सर्वं कौस्तुभे श्रीमदनन्तदेवैः स्पष्टीकृतमस्तीति न मह्यमसूया कार्या । एतादृशकथायुतो जागरोन्यत्र रामनवम्येकादश्याद्युत्सवेष्वप्यूह्यः । पूजाजागरादिविशिष्टव्रतोत्सवसाम्यात्, महाराष्ट्रीयेषु तथाचाराच्च । भगवत्प्रेमादिभाग्यशालिनस्तु

'पर्वणि स्युरुतान्वहम्' इति न्यायेन प्रत्यहमेवोक्तविधकथोत्सवं कुर्वन्तीति भाति। ततो नवम्यां ब्राह्मणान् भोजनदक्षिणादिभिः सन्तोष्योक्तपारणानिर्णीते काले भोजनं कुर्यात्।

यह उत्सव आज कल महाराष्ट्र देश में कृष्ण के समय से व्यवहार में है यह मुझे प्रतीत होता है। इसे कौस्तुभ में श्रीमान् अनन्तदेव ने स्पष्ट किया है। इस लिये हमारी निन्दा कोई न करे। इस प्रकार की कथा के साथ जागरण रामनवमी एकादशी आदि दूसरे उत्सवों में भी कल्प्य है। पूजा जागरण आदि विशिष्ट व्रत और उत्सव में होते हैं। महाराष्ट्र देश वालों में ऐसा आचार भी है। भगवान् में प्रेम करने वाले भाग्यशाली लोग तो रोज-रोज या पर्व में इस प्रकार के कथा का उत्सव करते हैं। इसके अनन्तर नवमी में ब्राह्मणों को भोजन दक्षिणा आदि से सन्तुष्ट कर कहे हुए पारणाकाल में भोजन करे।

अस्यैव जयन्तीव्रतस्य संवत्सरसाध्यः प्रयोगः श्रावणकृष्णाष्टमीमारभ्य प्रतिमासं कृष्णाष्टम्यामुक्तविधिना पूजादिरूपः पुराणान्तरे उक्तः। अत्रोद्यापनविधिर्ग्रन्थान्तरे ज्ञेयः। इति जन्माष्टमीनिर्णयः।

इसी जयन्तीव्रत में साल भर में होने वाला प्रयोग श्रावणकृष्णाष्टमी से प्रारम्भ कर प्रतिमास में कृष्णाष्टमी में कही हुई विधि से पूजा आदिका रूप दूसरे पुराणों में कहा है। इसके उद्यापन की विधि दूसरे ग्रन्थों से जाननी चाहिए। जन्माष्टमीनिर्णय समाप्त।

अथ दर्भाहरणम्

[1]नभोमासस्य दर्शे तु शुचिर्दर्भान्समाहरेत्।
अयातयामास्ते दर्भा विनियोज्याः पुनः पुनः॥

केचिद्भाद्रामायां दर्भग्रहणमाहुः।

कुशाः काशा यवा दूर्वा उशीराश्च सकुन्दकाः।
गोधूमा व्रीहयो मौञ्जा दश दर्भाः सबल्वजाः॥
विरिञ्चिना सहोत्पन्न परमेष्ठिनिसर्गज।
नुद सर्वाणि पापानि दर्भ स्वस्तिकरो भव॥
एवं मन्त्रं समुच्चार्य ततः पूर्वोत्तरामुखः।
हुंफट्कारेण मन्त्रेण सकृच्छित्त्वा समुद्धरेत्॥

---

१. नभोमासस्य दर्शे = श्रावणमास की अमावस्या में। यहाँ भी शुक्लादि अमान्त मास से श्रावण की अमावस्या जन्माष्टमी के बाद भाद्रपदमास की अमावस्या ही हुई। इस तिथि में उखाड़े गये कुश वर्षपर्यन्त देव-पितृ-कर्म के योग्य रहते हैं—'मासे नभस्यामावास्यां तस्यां दर्भोच्चयो मतः। अयातयामास्ते दर्भाः सन्नियोज्याः पुनः पुनः॥' कुशोत्पाटन का अन्य मन्त्र—'कुशाग्रे वसते रुद्रः कुशमध्ये तु केशवः। कुशमूले वसेद् ब्रह्मा कुशान्मे देहि मेदिनि॥' इति।

लघुहारीतने निषिद्ध कुश का निर्देश किया—'चितिदर्भाः पथि दर्भा ये दर्भा यज्ञभूमिषु। स्तरणासनपिण्डेषु षट् कुशान् परिवर्जयेत्॥ पिण्डार्थं ये स्तृता दर्भा यैः कृतं पितृतर्पणम्। मूत्रोच्छिष्टे धृता ये च तेषां त्यागो विधीयते॥ कातीयसूत्रभाष्ये—'कुशाभावे तु काशाः स्युः काशाः कुशसमाः स्मृताः। काशाभावे गृहीतव्या अन्ये दर्भा यथोचिताः॥ कुशाः काशाः शरा दूर्वा यवगोधूमबल्वजाः। सुवर्णं राजतं ताम्रं दश दर्भाः प्रकीर्तिताः॥' इति। बल्वजः = सावय, एक प्रकार का मोटा घास।

चतुर्भिर्दर्भैर्विप्रस्य पवित्रं क्षत्रियादेरेकैकन्यूनम्। सर्वेषां वा भवेद् द्वाभ्यां पवित्रं ग्रंथितं न वा। इति श्रावणमासनिर्णयोद्देशः।

श्रावण महीने की अमावस्या में पवित्र होकर कुश ग्रहण करे। वे कुश अयातयाम कहलाते हैं। उनका बार-बार कर्म में विनियोग किया जा सकता है। कोई भाद्र के अमावस्या में कुश ग्रहण करना कहते हैं। कुश काश जौ दूब खश कुन्द गेहूँ धान मूँज और बल्वज, ये दश प्रकार के कुश हैं। ब्रह्मा के साथ उत्पन्न हुए हे कुश! हमारे सभी पापों को दूर तथा हमारा कल्याण कीजिये। इस आशय के मन्त्र का उच्चारण करके पूर्व अथवा उत्तर मुख होकर 'हुम् फट् स्वाहा' ऐसा एक बार मन्त्र कहकर कुश काटकर उखाड़ ले। ब्राह्मण का पवित्रक चार कुश का होता है। क्षत्रिय के तीन और वैश्य के दो कुश का पवित्रक होता है। अथवा सब का दो कुश का ही पवित्रक (पैंती) होता है। चाहे गाँठ दिया हो अथवा न दिया हो। श्रावणमासनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ भाद्रपदकृत्ये कन्यासंक्रान्तिः

तत्र कन्यासंक्रान्तौ पराः षोडश नाड्यः पुण्यकालः। भाद्रपदमासे एकान्नाहारव्रताद्धनारोग्यादिफलम्। अत्र मासे हृषीकेशप्रीत्यर्थं पायसगुडौदनलवणादेर्दानम्।

कन्यासंक्रान्ति में परकी षोडश घड़ियाँ पुण्यकाल है। भाद्रपद महीने में एक अन्न भोजनरूपी व्रत से धन और आरोग्य आदि का फल होता है। इस महीने में भगवान् की प्रसन्नता के लिये पायस, गुड़, भात और लवण आदि का दान करना चाहिए।

अथ हरितालिकानिर्णयः

भाद्रपदशुक्लतृतीयायां [1]हरितालिकाव्रतम्। तत्र मुहूर्तमात्रा ततो न्यूनापि परा ग्राह्या। यदा क्षयवशात्परदिने नास्ति तदा द्वितीयायुतापि ग्राह्या। यदा शुद्धाधिका तदा पूर्वदिने षष्टिघटीमितामपि त्यक्त्वा परदिने स्वल्पापि चतुर्थीयुतैव ग्राह्या, [2]गणयोगप्राशस्त्यात्। अत्र व्रते भवानीशिवयोः पूजनमुपवासश्च स्त्रीणां नित्यः। तत्र—

मन्दारमालाकुलितालकायै कपालमालाङ्कितशेखराय।
दिव्याम्बरायै च दिगम्बराय नमः शिवायै च नमः शिवाय॥

इत्यादयः पूजामन्त्रा ज्ञेयाः।

---

१. दिवोदासोदाहृतवचन से भाद्रशुक्ल तृतीया हरितालिका व्रत है—'भाद्रस्य कज्जली कृष्णा शुक्ला च हरितालिका।' इसका अन्वर्थनाम—'आलिभिर्हरिता हरितालिकाव्रत कथा के यस्मात्तस्मात् सा हरितालिका।' इस वचन से ज्ञातव्य है।

२. माधवः—'मुहूर्तमात्रसत्त्वेऽपि दिने गौरीव्रतं प्रिये। शुद्धाधिकायामप्येवं गणयोगप्रशंसनात्॥' स्कान्दे—कला काष्ठा मुहूर्ताऽपि द्वितीया यदि दृश्यते। सा तृतीया न कर्तव्या कर्तव्या गणसंयुता॥' माधव ने चतुर्थीयुक्त तृतीया में फलाधिक्य कहा, आपस्तम्बः—'चतुर्थीसहिता या तु सा तृतीया फलप्रदा। अवैधव्यकरा स्त्रीणां पुत्रपौत्रप्रवर्धिनी॥' द्वितीयायुक्त तृतीया में दोष का निर्देश—'द्वितीयाशेषसंयुक्ता या करोति विमोहिता। सा वैधव्यमवाप्नोति प्रवदन्ति मनीषिणः॥' इति।

भाद्रपदशुक्ल तृतीया में हरितालिकाव्रत होता है। यह तृतीया मुहूर्तमात्र या उससे कम भी हो तो परा लेनी चाहिए। जब तिथिक्षय के कारण पर दिन में तृतीया नहीं हो तब द्वितीयासहित का भी ग्रहण करे। जब शुद्धा तृतीया बढ़े तब पहले दिन साठ घड़ी वाली को भी छोड़कर दूसरे दिन थोड़ी भी चतुर्थीयुक्त हो तो उसे ही लेनी चाहिए। गण-योग के प्राशस्त्य से इस व्रत में पार्वती शंकर का का पूजन और उपवास भी स्त्रियों के लिये नित्य है। इसमें जिसके बालों में मन्दार की पुष्पमाला है और जो दिव्य वस्त्र धारण किये हुई हैं ऐसी पार्वती को और खोपड़ियों की माला से जिनका शिर चिह्नित है, ऐसे नंगे शंकर जी को प्रणाम है। इत्यादि पूजा के मंत्र हैं।

अथ गणेशचतुर्थीनिर्णयः

शुक्लचतुर्थ्यां सिद्धिविनायकव्रतम्। सा मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या। दिनद्वये साकल्येन मध्याह्ने व्याप्तावव्याप्तौ वा पूर्वा। दिनद्वये साम्येन वैषम्येण वैकदेशव्याप्तावपि पूर्वैव। वैषम्येण व्याप्तावधिकव्यापिनी चेत्परेति केचित्। पूर्वदिने सर्वथा मध्याह्नस्पर्शो नास्त्येव परदिने एव मध्याह्नस्पर्शिनी तदैव परा। पूर्वदिने एकदेशेन मध्याह्नव्यापिनी परदिने संपूर्णमध्याह्नव्यापिनी तदापि परैव। एवं मासान्तरेपि निर्णयः। इयं [१]रविभौमवारयोगे प्रशस्ता।

भाद्रपदशुक्ल चतुर्थी में सिद्धविनायकका व्रत होता है। यह चतुर्थी मध्याह्न में रहने वाली ग्राह्य है। दो दिन में सम्पूर्णता से मध्याह्न में रहने वाली या नहीं रहने वाली हो तो पूर्वा का ग्रहण करना चाहिए। दो दिन में समता से या वैषम्य से एकदेशव्यापिनी हो तब भी पूर्वा का ही ग्रहण करना चाहिए। कोई तो कहते हैं—वैषम्य से रहने पर अधिक समयव्यापिनी हो तो परा ही ले। पहले दिन मध्याह्न का स्पर्श नहीं हो दूसरे दिन ही मध्याह्नस्पर्शिनी हो तब परा चतुर्थी ग्राह्य है। पहले दिन एकदेश में मध्याह्नव्यापिनी हो, दूसरे दिन सम्पूर्ण मध्याह्न तक हो तब भी परा ही ले। इसी तरह से दूसरे महीने में भी निर्णय करना चाहिए। यह चतुर्थी रविवार और भौमवार से युक्त हो तो उत्तम होती है।

अथात्र चन्द्रदर्शननिषेधः

अत्र चतुर्थ्यां चन्द्रदर्शने [२]मिथ्याभिदूषणदोषस्तेन चतुर्थ्यामुदितस्य पञ्चम्यां दर्शनं विनायकव्रतदिनेपि न दोषाय। पूर्वदिने सायाह्नमारभ्य प्रवृत्तायां चतुर्थ्यां विनायकव्रताभावेपि पूर्वेद्युरेव चन्द्रदर्शने दोष इति सिध्यति। चतुर्थ्यामुदितस्य न दर्शनमिति पक्षे तु अवशिष्टपञ्चषणमुहूर्तमात्रचतुर्थीदिनेपि निषेधापत्तिः। इदानीं लोकास्तु एकतरपक्षाश्रयेण विनायकव्रतदिने एव चन्द्रं न पश्यन्ति न

---

१. गणेशचतुर्थी रवि और भौमवार में पड़ जाय तो अत्यन्त प्रशस्त है। वाराहः—'भाद्रशुक्लचतुर्थी या भौमेनार्केण वा युता। महती साऽत्र विघ्नेशमर्चित्वेष्टं लभेन्नरः ॥' इति।

२. मार्कण्डेयः—'सिंहादित्ये शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां चन्द्रदर्शनम्। मिथ्याभिदूषणं कुर्यात्तस्मात् पश्येन्न तं सदा ॥' जब भाद्रपद में मलमास होगा तब सिंह के सूर्य मलमास में गत हो जायेंगे, ऐसी स्थिति में पराशर ने शुद्धभाद्रपदशुक्ल चतुर्थी में चन्द्रदर्शन निषिद्ध बतलाया—'कन्यादित्ये चतुर्थ्यां तु शुक्ले चन्द्रस्य दर्शनम्। मिथ्याभिदूषणं कुर्यात्तस्मात् पश्येन्न तं तदा ॥' चन्द्रदर्शन हो जाने पर उस दोष की शान्ति के लिये मूलोक्त 'सिंहः प्रसेनमवधीत्' इत्यादि मन्त्र को पढ़े अथवा भागवत के स्यमन्तक मणि का कथा श्रवण करे।

तूदयकाले दर्शनकाले वा चतुर्थीसत्त्वासत्त्वे नियमेनाश्रयन्ति। दर्शने जाते तद्दोषशान्तये—

> सिंहः प्रसेनमवधीत्सिंहो जाम्बवता हतः।
> सुकुमारकमारोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः॥ इति श्लोकजपः कार्यः।

इस चतुर्थी में चन्द्रदर्शन होने पर झूठा कलंक लगने का दोष होता है। इससे चतुर्थी में चन्द्रोदय होने पर पञ्चमी में दर्शन करने से विनायकव्रत के दिन भी दोष नहीं होता। पहले दिन सायंकाल से चतुर्थी लगी हो तो विनायकव्रत के न होने पर भी पहले दिन ही चन्द्रदर्शन से दोष होता है, यह सिद्ध होताहै। चतुर्थी में उदय लेने वाले चन्द्रमा का दर्शन न करे इस पक्ष में बचे हुए पाँच छः मुहूर्त वाली चतुर्थी के दिन भी निषेध की आपत्ति है। आज-कल लोग तो किसी एक पक्ष को लेकर विनायकव्रत के दिन ही चन्द्रमा को नहीं देखते, न कि उदयकाल या देखने के समय में चतुर्थी है या नहीं है इसका विचार नहीं करते। चन्द्रदर्शन हो जाने पर उस दोष की शान्ति के लिए 'सिंह ने प्रसेन को और सिंह को जाम्बवान ने मारा। हे कुमार! तुम मत रोओ यह स्यमन्तकमणि तुम्हारी है।' इस आशय के श्लोक का जप करे।

तत्र मृन्मयादिमूर्तौ प्राणप्रतिष्ठापूर्वकं विनायकं षोडशोपचारैः सपूज्यैकमोदकेन नैवेद्यं दत्त्वा सगन्धा एकविंशतिदूर्वा गृहीत्वा 'गणाधिपायोमापुत्रायाघनाशनाय विनायकायेशपुत्राय सर्वसिद्धिप्रदायैकदन्तायेभवक्त्राय मूषकवाहनाय कुमारगुरवे' इति दशनामभिर्दूर्वयोर्द्वयं द्वयं समर्प्यावशिष्टामेकां दूर्वाम् उक्तदशनामभिः समर्पयेत्। दश मोदकान् विप्राय दत्त्वा दश स्वयं भुञ्जीतेति संक्षेपः।

मिट्टी आदि के गणेश की मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा करके सोलहो उपचार से पूजा कर एक लड्डू नैवेद्य देकर गन्धसहित इक्कीस दूब लेकर गणाधिप, उमापुत्र, अघनाशक, विनायक, ईशपुत्र, सर्व-सिद्धि-प्रदायक, एकदंत, हस्तिमुख, मूषकवाहन, कुमारगुरु, इन दश नामों से दो-दो दूब लेकर चढ़ावे। बचे हुए एक दूब को कहे हुये दश नामों से समर्पण करे। दस लड्डू ब्राह्मण को देकर दस लड्डू स्वयं भक्षण करे।

अथ ऋषिपंचमीनिर्णयः

भाद्रशुक्लपञ्चमी ऋषिपञ्चमी। सा [1]मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या। दिनद्वये मध्याह्नव्याप्तौ तदव्याप्तौ च पूर्वैव। अत्र ऋषीन्पूजयित्वा कर्षणरहितभूमिजन्यशाकाहारं कुर्यात्।

> शुक्ले भाद्रपदे षष्ठ्यां स्नानं भास्करपूजनम्।
> प्राशनं पञ्चगव्यस्य अश्वमेधफलाधिकम्॥

इयं सूर्यषष्ठी सप्तमीयुता ग्राह्या। अस्यामेव [2]स्वामिकार्तिकेयदर्शनाद् ब्रह्महत्यादिपापनाशः।

---

१. कालमाधवे हारीतः—'पूजाव्रतेषु सर्वेषु मध्याह्नव्यापिनी तिथिः।' अतः मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्य है।

२. भविष्ये—'येयं भाद्रपदे मासि षष्ठी स्याद्भरतर्षभ। योऽस्यां पश्यति गाङ्गेयं दक्षिणापथवासिनम्। ब्रह्महत्यादिपापैस्तु मुच्यते नात्र संशयः॥' गाङ्गेयः—स्वामी कार्तिकेय। इससे इस षष्ठी को कोई स्कन्दषष्ठी भी कहते हैं।

भाद्रपदशुक्ल पंचमी में ऋषिपंचमी होती है। वह मध्याह्नव्यापिनी पंचमी ग्राह्य है। दो दिन मध्याह्न में रहने वाली पंचमी हो तो पूर्वा ग्राह्य है। इसमें ऋषियों का पूजन करके बिना जोती हुई भूमि में उत्पन्न होने वाले करेमू साग का भोजन करे। भाद्रपदशुक्ल में षष्ठी के दिन स्नान करके सूर्य का पूजन कर और पञ्चगव्य का प्राशन करे तो अश्वमेध से भी बढ़कर फल मिलता है। यह सूर्यषष्ठी सप्तमीयुक्त लेनी चाहिए। इसी षष्ठी में स्वामी कार्तिकेय के दर्शन से ब्रह्महत्या आदि के पाप नष्ट होते हैं।

अथ दूर्वाष्टमीव्रतम्

भाद्रपदशुक्लाष्टमी दूर्वाष्टमी। सा [1]पूर्वा ग्राह्या। इयं ज्येष्ठामूलर्क्षयुता त्याज्या। अलाभे तद्युक्तापि ग्राह्या। इदं [2]दूर्वापूजनव्रतं कन्यार्केऽगस्त्योदये च वर्ज्यम्। इदं स्त्रीणां नित्यम्। अत्र ज्येष्ठादेवीपूजनव्रतं केवलाष्टमीप्राधान्येन केवलज्येष्ठानक्षत्रप्राधान्येन चोक्तम्। तत्र दाक्षिणात्याः केवलज्येष्ठानक्षत्र एव कुर्वन्ति। तच्चानुराधायामावाहनं ज्येष्ठायां पूजनं मूले विसर्जनमिति त्रिदिनं ज्ञेयम्।

भाद्रपदशुक्ल अष्टमी में दूर्वाष्टमीव्रत होता है। वह पूर्वविद्धा ग्राह्य है। यह ज्येष्ठा-मूल-नक्षत्र-सहित हो तो इसका त्याग करना चाहिए। यदि मूलनक्षत्र से रहित न मिले तो मूलनक्षत्र युक्ता भी लेनी चाहिए। यह दूर्वापूजनव्रत कन्या के सूर्य में और अगस्त्य के उदय होने पर वर्जनीय है। यह व्रत स्त्रियों के लिए नित्य है। इसमें ज्येष्ठादेवी की पूजा का व्रत केवल अष्टमी और केवल ज्येष्ठा-नक्षत्र को प्रधान मानकर कहा है। इसमें दक्षिणदेश के लोग केवल ज्येष्ठानक्षत्र में ही व्रत करते हैं। वे अनुराधा में आवाहन, ज्येष्ठा में पूजन और मूलनक्षत्र में विसर्जन करते हैं। इस प्रकार इस व्रत को तीन दिन का जानना चाहिए।

आवाहनविसर्जनदिनयोः पूजनादिनानुरोधेन निर्णयः। तत्र यदा पूर्वंमध्याह्नमारभ्य प्रवृत्ता ज्येष्ठा द्वितीयदिने मध्याह्ने मध्याह्नात्पूर्वं वा समाप्यते तदा पूर्वदिने एव पूजनम्। यदा पूर्वदिने मध्याह्नोत्तरं प्रवृत्ता परदिने मध्याह्ने समाप्ता तदाष्टमीयोगवशेन पूर्वा परा वा ग्राह्या। उभयत्राष्टमीयोगे पूर्वैव। यदा पूर्वत्र मध्याह्नमारभ्य मध्याह्नोत्तरं वा प्रवृत्ता परदिने मध्याह्नोत्तरमपराह्णं स्पृशति तदाष्टमीयोगाभावेपि परैव।

---

१. बृहद्यमः—'श्रावणी दुर्गनवमी दूर्वा चैव हुताशनी। पूर्वविद्धा तु कर्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम्॥' पुराणसमुच्चये-'शुक्लाष्टमी तिथिर्या तु मासि भाद्रपदे भवेत्। दूर्वाष्टमी तु सा ज्ञेया नोत्तरा सा विधीयते॥' इति।

२. भविष्य में दूर्वाव्रत की विधि—'शुचौ देशे प्रजातायां दूर्वायां ब्राह्मणोत्तम। स्थाप्य लिङ्गं ततो गन्धैः पुष्पैर्धूपैः समर्चयेत्॥ दध्यक्षतैर्द्विजश्रेष्ठ अर्घ्यं दद्यात् त्रिलोचने। दूर्वांशमीभ्यां विधिवत् पूजयेच्छ्रद्धयाऽन्वितः॥ मन्त्रः—'त्वं दूर्वेऽमृतजन्मासि वन्दितासि सुरासुरैः। सौभाग्यं सन्ततिं देहि सर्वकार्यकरी भव॥ यथा शाखाप्रशाखाभिर्विस्तृतासि महीतले। तथा ममापि सन्तानं देहि त्वमजरामरम्॥' इस व्रत में अनग्निपक्व अन्नादि का भोजन करे। भविष्ये—'अनग्निपक्वमश्नीयाद्दन्नं दधि फलं तथा। अक्षारलवणं ब्रह्मन्नश्नीयान्मधुनान्वितम्॥' इति।

आवाहन और विसर्जन के दिन का निर्णय पूजनदिन के अनुरोध से करे। उसमें जब पहले दिन मध्याह्न से आरंभ होकर ज्येष्ठा दूसरे दिन मध्याह्न में या मध्याह्न से पहले समाप्त होती हो तब अष्टमीयोग के कारण पूर्वा या परा का ग्रहण करना चाहिए। दोनों दिन अष्टमी के योग होने पर पहले ही दिन ग्रहण करे। जब पहले दिन मध्याह्न से आरम्भ होकर अथवा मध्याह्न के बाद से अष्टमीतिथि लगे और दूसरे दिन मध्याह्न के बाद अपराह्न को स्पर्श करती हो तब अष्टमी के न रहने पर भी परा का ही ग्रहण करे।

अथ विष्णुपरिवर्तनोत्सवः

भाद्रपदशुक्लैकादश्यां द्वादश्यां वा पारणोत्तरं विष्णुपरिवर्तनोत्सवः। तत्र 'श्रुतेश्च मध्ये परिवर्तमेति' इति वचनात् त्रेधाविभक्तश्रवणमध्यभागयोगस्यैकादश्यां सत्त्वे तत्रैव द्वादश्यां सत्त्वे द्वादश्यामेवोभयत्र नक्षत्रयोगाभावे द्वादश्यामेवेत्यादि व्यवस्था ज्ञेया। तत्र संध्यायां विष्णुं संपूज्य—

वासुदेव जगन्नाथ प्राप्तेयं द्वादशी तव।
पार्श्वेन परिवर्तस्व सुखं स्वपिहि माधव॥

इति मन्त्रेण प्रार्थयेत्।

भाद्रपदशुक्ल एकादशी या द्वादशी को पारण के बाद विष्णुपरिवर्तनोत्सव (करवट लेने का उत्सव) होता है। इसमें श्रवण के मध्य में भगवान् करवट लेते हैं। इस आशय के वचन से श्रवण का तीन भाग कर उसका मध्यभाग एकादशी में पड़े तो उसीमें या द्वादशी में श्रवण मध्यभाग में पड़े तो द्वादशी में ही, दोनों दिन नक्षत्र का योग न हो तो द्वादशी में ही परिवर्तनोत्सव करे, इत्यादि व्यवस्था जाननी चाहिये। उस दिन संध्या में विष्णु की पूजा करके हे वासुदेव! हे जगन्नाथ! आपकी द्वादशी प्राप्त है। आप करवट लेकर सुख पूर्वक सोवें। इस आशय के मंत्र से प्रार्थना करे।

अथ श्रवणद्वादशीव्रतनिर्णयः

तत्र यत्र दिने मुहूर्तमात्रादिः स्वल्पोपि द्वादश्याः श्रवणयोगस्तत्रोपोषणम्। उत्तराषाढाविद्धश्रवणनिषेधवाक्यानि तु निर्मूलानि। यदा पूर्वदिने एकादशीविद्धा द्वादशी परदिनेऽनुवर्तते दिनद्वयेपि च श्रवणयोगस्तदा पूर्वदिने एकादशी-द्वादशी-श्रवणेतित्रितययोगरूपविष्णुशृङ्खलयोगात्पूर्वैवोपोष्या। तत्रोदाहरणम्—एकादशी १८ उत्तराषाढा ६ द्वादशी २० श्रवणं १२, यथा वा—एकादशी १८ उत्तराषाढा २५ द्वादशी २० श्रवणं १८ अत्र द्वितीयोदाहरणे एकादश्याः श्रवणयोगाभावेऽपि श्रवणयुक्तद्वादशीस्पर्शमात्रेण विष्णुश्रृंखलयोगः।

श्रवणद्वादशीव्रत जिस दिन मुहूर्तमात्र आदि थोड़ी भी द्वादशी का श्रवणनक्षत्र से योग हो तो उसी दिन उपवास करना चाहिए। उत्तराषाढ़ा से विद्ध श्रवण के निषेध वचन तो प्रमाणशून्य हैं। जब पहले दिन एकादशीविद्धा द्वादशी हो और दूसरे दिन भी द्वादशी बढ़ती हो और दोनों दिन श्रवण का योग हो तब पहले दिन एकादशी, द्वादशी और श्रवण, इन तीन के योग से विष्णु-शृंखलयोग होने से पहले ही दिन उपवास करना चाहिए। इसका उदाहरण, जैसे—एकादशी १८ घड़ी, उत्तराषाढ़ा ६ घड़ी, द्वादशी २० घड़ी, श्रवण १२ घड़ी अथवा एकादशी १८, उत्तराषाढ़ा २५

द्वादशी २० श्रवण १८ इस दूसरे उदाहरण में एकादशी में श्रवणयोग के न होने पर भी श्रवण-युक्तद्वादशी के स्पर्शमात्र से विष्णुश्रृंखलयोग होता है।

द्विविधोप्ययं योगो दिवैव ग्राहयो न रात्रौ इति पुरुषार्थचिन्तामणौ। रात्रावपि निशीथोत्तरमपि योगो ग्राह्य इति निर्णयसिन्धुः। रात्रेः प्रथमप्रहरपर्यन्तं तिथ्योः श्रवणयोगो ग्राहयो न द्वितीयप्रहरादावित्यपरे। अत्र चरमपक्ष एव युक्तो भाति। अत्र विष्णुश्रृङ्खलयोगे व्रतद्वयोपोषणं तन्त्रेणैकादश्यामेव कृत्वा द्वादश्यां वक्ष्यमाणपारणानिर्णयानुसारेण पारणं कार्यम्। यदोक्तविष्णुश्रृङ्खलयोगो नास्ति तदा यदि शुद्धाधिका द्वादशी दिनद्वयेपि श्रवणयोगः पूर्वदिने चोदये श्रवणाभावस्तदोत्तरैव ग्राहया।

दोनों प्रकार का यह योग दिन में ही ग्राह्य है रात में नहीं, ऐसा पुरुषार्थचिन्तामणि में कहा है। रात में भी आधी रात के बाद भी श्रवणयोग हो तो ग्राह्य है, ऐसा निर्णयसिन्धु का कहना है। दूसरे लोग कहते हैं—रात के पहले पहर तक एकादशी द्वादशी में श्रवण का योग हो तो इसे ग्रहण करना चाहिए, दूसरे पहर आदि में नहीं। इसमें अन्तिम पक्ष ही ठीक प्रतीत होता है। इस विष्णुश्रृङ्खलयोग में दोनों व्रतों का उपवास तंत्र से एकादशी में करके द्वादशी में आगे कहे जाने वाले पारणा के निर्णय के अनुसार पारणा करनी चाहिए। जब कहा हुआ विष्णुश्रृङ्खलयोग नहीं हो तब यदि शुद्ध अधिका द्वादशी दोनों दिन में श्रवण से युक्त हो और पहले दिन उदयकाल में श्रवण न हो तो दूसरी ही ग्रहण करने योग्य है।

यदोभयदिने सूर्योदये द्वादश्यां श्रवणयोगस्तदा पूर्वैव। विद्धाधिकायामपि परत्रैवोदये उदयोत्तरं वा श्रवणयोगे परैवेति निर्विवादम्। उभयत्र श्रवणयोगे उक्तविधविष्णुश्रृङ्खलयोगे पूर्वा, अन्यथा परैवेति विज्ञेयम्। एवं यत्रैकादशीश्रवणद्वादश्योर्नैरन्तर्येणोपवासप्राप्तिस्तत्र शक्तेनोपवासद्वयं कार्यम्। व्रतद्वयस्यापि नित्यत्वात्, व्रतद्वयस्यैकदैवतत्वान्न पारणलोपदोषः।

जब दोनों दिन सूर्योदयकाल में द्वादशी में श्रवणयोग हो तब पहली का ही ग्रहण करे। विद्धा अधिका में भी दूसरे ही दिन उदयकाल में या उदय के बाद श्रवण का योग हो तो परा ही लेनी चाहिए यह विवादरहित है। दोनों दिन श्रवण के योग होने पर पूर्वोक्त विष्णुश्रृंखलयोग में पूर्वा, नहीं तो परा ही जानना चाहिए। इसी प्रकार एकादशी और श्रवणद्वादशी का इन दोनों में निरन्तर उपवास प्राप्त हो तो शक्तिशाली पुरुष दो दिन उपवास करे। दोनों व्रत के नित्य और एक देवता होने से पारणा नहीं करने का दोष नहीं होता।

यस्तूपवासद्वयासमर्थ एकादशीव्रतसंकल्पात्पूर्वं च निजासामर्थ्यं निश्चिनोति तेनैकादश्यां फलाद्याहारं कृत्वा द्वादश्यां निरशनं कार्यम्, नचैकादशीव्रतलोपः।

उपोष्य द्वादशीं पुण्यां विष्णुऋक्षेण संयुताम्।
एकादश्युद्भवं पुण्यं नरः प्राप्नोत्यसंशयम्॥

इति नारदोक्तेः।

श्रवणेन युता चेत्स्याद् द्वादशी सा हि वैष्णवैः।
स्मार्तैश्चोपोषणीया स्यात्त्यजेदेकादशी तदा॥

इति माधवोक्तेश्च।

अत्रैकादशीत्यागपदेन फलाहारो बोध्यते न तु भोजनम्। यस्तूपवासद्वय-शक्तिभ्रमेण कृतैकादशीव्रतसंकल्पः। संकल्पोत्तरं च द्वितीयोपवासासामर्थ्यमनुभवति तदा तेनैकादश्यामुपोष्य द्वादश्यां विष्णुपूजनं कृत्वा पारणं कार्यम्।

जो पुरुष दो दिन के उपवास में समर्थ नहीं हैं, एकादशीव्रत के संकल्प से पहले ही अपने सामर्थ्य का निश्चय कर ले। वे एकादशी में फलाहार करके द्वादशी में उपवास करें। इससे एकादशीव्रत का लोप नहीं होता। यही बात नारदस्मृति में कही है। विष्णुनक्षत्र (श्रवण) से युक्त द्वादशी में उपवास करके एकादशी से उत्पन्न होने वाले पुण्य को मनुष्य पाता है, इसमें सन्देह नहीं है। माधव ने भी कहा है कि यदि श्रवण वाली द्वादशी हो, वही वैष्णव स्मार्तों के उपवास योग्य है। ऐसी स्थिति में एकादशी का त्याग कर दे। यहाँ एकादशी त्याग का अर्थ फलाहार करने से है, न कि एकादशी में भोजन करने से। जो कि दोनों उपवास करने के शक्तिभ्रम से अपने में समझ कर एकादशीव्रत का संकल्प करता है और संकल्प के बाद दूसरे उपवास करने का अपने में समर्थ नहीं पाता, तब वह एकादशी में उपवास करके द्वादशी में विष्णु की पूजा कर पारण करे।

अत्र व्रताङ्गपूजनं कृत्वोपवासासमर्थं 'उपवासप्रतिनिधिरूपं विष्णुपूजनं करिष्ये' इति संकल्प्य पुनः पूजनं कुर्यात्। अत्र द्वादश्यां श्रवणयोगाभावे एकादश्यां श्रवणयोगे तत्रैव श्रवणद्वादशीव्रतं कार्यम्। विद्धैकादश्यां श्रवणयोगे तु येषां तत्रैकादशीव्रतप्राप्तिस्तेषां तन्त्रेणोपवासद्वयसिद्धिः। अन्येषां गृहीतश्रवणद्वादशीव्रता-नामुपवासद्वयम्। तत्राशक्तानां तु पूर्वेह्नि फलाहारः परेह्नि निरशन-मिति भाति।

इसमें दो उपवास करने में असमर्थ पुरुष 'उपवास के प्रतिनिधिस्वरूप विष्णुपूजन करूँगा' ऐसा संकल्प करके पुनः विष्णुपूजन करे। यहाँ द्वादशी में श्रवणयोग न होने पर एकादशी में श्रवण के योग होने पर उसी में श्रवणद्वादशीव्रत करे। विद्धा एकादशी में श्रवणयोग होने पर तो जिनको जिस एकादशीव्रत की प्राप्ति हो उनको तंत्र से दो उपवास की सिद्धि होती है। अन्य का जिन्होंने श्रवणद्वादशीव्रत को स्वीकार किया है उन्हें दो उपवास करना चाहिए। इसमें अशक्त जन पहले दिन फलाहार और दूसरे दिन उपवास करें यह ठीक मालूम होता है।

अथ पारणानिर्णयः

उभयान्ते पारणं मुख्यः पक्षः। अन्यतरान्ते गौणःपक्षः। तत्र विष्णुशृङ्खला-भावे त्रयोदश्यामुभयान्ते पारणम्। विष्णुशृङ्खलयोगे तु पूर्वदिने तन्त्रेण कृतोप-वासद्वयस्य परदिने श्रवणर्क्षाद् द्वादश्याधिक्ये श्रवणमतिक्रम्य द्वादश्यां पारणम्। यदि च द्वादश्यपेक्षया श्रवणाधिक्यं पारणादिने भवति तदा एकादशीव्रतपार-णायां द्वादश्युल्लङ्घने दोषोक्तेर्द्वादश्यामेव पारणं न त्वन्यतरान्तापेक्षा। तत्र सति संभवे श्रवणमध्यभागं विंशत्यादिघटिकात्मकं त्यक्त्वा पारणम्। यथैकादशी ३० उत्तराषाढा २९ द्वादशी २५ श्रवणं २९, अत्र पूर्वेद्युस्तन्त्रेणोपवासद्वयं कृत्वा परेह्नि श्रवणमध्यभागमवशिष्टं नवघटिकात्मकं त्यक्त्वा द्वादश्यां चरमे विंशति-घटिकारूपे श्रवणभागे पारणम्।

तिथि नक्षत्र दोनों के अन्त में पारण करना मुख्य पक्ष है। दोनों में किसी एक के अंत में पारण करना यह गौण पक्ष है। विष्णुशृङ्खलयोग के न रहने पर तिथि नक्षत्र दोनों के अन्त में त्रयोदशी में पारण करे। विष्णुशृङ्खलयोग होने पर तो पहले दिन तन्त्र से दो उपवास कर दूसरे दिन श्रवणनक्षत्र से द्वादशी के अधिक होने पर श्रवण को बिता कर द्वादशी में पारण करे। यदि द्वादशी को अपेक्षा श्रवण ही अधिक पारणा के दिन होता है तो एकादशीव्रत की पारणा में द्वादशी के उल्लंघन में दोष होने से द्वादशी में ही पारण करे। इसमें किसी एक की अपेक्षा नहीं है। सम्भव हो तो २० घड़ी श्रवण के मध्यभाग को छोड़कर पारण करे। जैसे–एकादशी ३० और उत्तराषाढ़ा २९ द्वादशी २५ श्रवण २९ इसमें पहले दिन तन्त्र से दो उपवास करके दूसरे दिन श्रवण का बचा हुआ मध्यभाग नव घड़ी छोड़कर द्वादशी में अन्तिम २० घड़ी श्रवण में पारण करे।

एवमुक्तोदाहरणे एव एकादश्याः दशनाडिकात्वे द्वादश्या अष्टनाडिकात्वे द्वादशीश्रवणयोः पञ्चदशचत्वारिंशन्नाडीत्वे वा श्रवणमध्यभागत्यागे द्वादश्युल्लंघनापत्तौ [1]सङ्गवकालं त्यक्त्वा मुहूर्तत्रयपर्यन्तं सप्तमुहूर्तादौ वा ऋक्षमध्यभागे एव भोक्तव्यम्। अयं मध्यभागत्यागो भाद्रगतश्रवणद्वादशीव्रत एव, न तु माघफाल्गुनमासकृष्णपक्षगतश्रवणद्वादशीव्रतपारणायाम्। मासान्तरगतश्रवणभागे विष्णुपरिवर्तनाभावात्।

इस कहे हुए उदाहरण में ही एकादशी के १० घड़ी, द्वादशी के ८ घड़ी, द्वादशी और श्रवण के १५ या ४० घड़ी होने पर श्रवण के मध्यभाग के त्याग से द्वादशी के उल्लंघन की आपत्ति में संगवकाल को छोड़कर तीन मुहूर्त तक या सातवें मुहूर्त के आदि में नक्षत्र के मध्यभाग में ही भोजन करना चाहिए। यहाँ मध्यम भागका त्याग भाद्रपद की श्रवणद्वादशी के व्रत में ही है, न कि माघ फागुन मास के कृष्णपक्ष वाली श्रवणद्वादशीव्रत की पारणा में। दूसरे मासों के श्रवण भाग में विष्णुपरिवर्तन होता ही नहीं। माघ फाल्गुन मास के कृष्णपक्ष की श्रवणद्वादशी व्रत की पारणा में नहीं है, क्योंकि दूसरे महीनों के श्रवण भाग में विष्णुपरिवर्तन नहीं होता है।

ये तु भाद्रे श्रवणमध्यवर्जनमात्रेण निषेधचारितार्थ्यं मन्यमाना विष्णुशृङ्खलयोगाभावेपि श्रवणमध्यमात्रं त्यक्त्वा भुञ्जन्ते ते नित्यश्रवणद्वादशीव्रतमाहात्म्यानभिज्ञा भ्रान्ता एव। अयं सर्वोपि निर्णयो मासान्तरगतश्रवणद्वादशीव्रतेप्यूह्यः।

जो लोग भाद्रपद में श्रवण मध्य के त्याग मात्र से निषेध को चरितार्थ मानने वाले विष्णुशृङ्खलयोग के न होने पर भी श्रवण के मध्यभाग का त्याग करके भोजन करते हैं, वे नित्य श्रवणद्वादशीव्रत के माहात्म्य के जानकार नहीं है इसी लिए भ्रम में है। यह सब निर्णय दूसरे महीनों के श्रवणद्वादशीव्रत में भी कल्पना करनी चाहिए।

श्रवणद्वादशीव्रते नदीसंगमे स्नात्वा कलशे स्वर्णमयं जनार्दननामानं विष्णुं संपूज्य वस्त्रयज्ञोपवीतोपानच्छत्रादिसमर्प्योपोष्य पारणदिने दध्योदनयुतं वस्त्रवेष्टितं जलपूर्णघटं छत्रादियुतां पूजितां सपरिवारां तां प्रतिमां च दद्यात्। तत्र मन्त्रः—

---

१. सङ्गता गावो दोहनाय यत्र सः। सङ्गवः=प्रातःस्नान के तीन मुहूर्त बाद का समय जो दिन के पांच भागों में से दूसरा है।

नमो नमस्ते गोविन्द बुधश्रवणसंज्ञक ।
अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव ॥ इति ।

श्रवणद्वादशीव्रत में नदी के संगम में नहाकर कलश में सोने के जनार्दन नाम वाले विष्णु की पूजा कर वस्त्र, यज्ञोपवीत, जूता और छाता आदि अर्पण कर उपवास करके पारणा के दिन दही भाव सहित वस्त्र में वेष्टित जल से भरे घड़े को छाता आदि से युक्त सपरिवार पूजित उस प्रतिमा को दान करें। उसका मंत्रार्थ यह है—हे गोविन्द ! बुध श्रवण नामक आप को बार-बार नमस्कार है। पाप समूह का नाश करके सम्पूर्ण सुख देने वाले आप हों।

अथ वामनजयन्ती

भाद्रशुक्लद्वादश्यां श्रवणयुतायां मध्याह्ने [1]वामनोत्पत्तिः। अतो मध्याह्नव्यापिनी द्वादशी मध्याह्ने ततोन्यत्र काले वा श्रवणयुता ग्राह्या। उभयदिने श्रवणयोगे पूर्वैव। सर्वथा द्वादश्याः श्रवणयोगाभावे एकादश्यामेव श्रवणसत्त्वे मध्याह्नव्यापिनीमपि द्वादशीं विहायैकादश्यामेव व्रतं कार्यम्। शुद्धैकादश्यां श्रवणाभावे दशमीविद्धैकादश्यामपि श्रवणयुतायां व्रतम्। पूर्वदिन एव मध्याह्नव्यापिनी द्वादशी परदिने मध्याह्नादन्यत्र काले श्रवणयुता तदा पूर्वैव। तिथिद्वयेपि श्रवणयोगाभावे द्वादश्यामेव मध्याह्नव्यापिन्यां व्रतम्।

श्रवणयुक्त भाद्रपदशुक्ल द्वादशी के मध्याह्न में वामन भगवान् की उत्पत्ति है। इस लिए मध्याह्नव्यापिनी द्वादशी मध्याह्न में अथवा इससे भिन्न काल में जब श्रवणनक्षत्र का योग हो तो ग्रहण करना चाहिए। दोनों दिन श्रवणयोग होने पर पूर्वा ही ग्राह्य है। सब प्रकार से द्वादशी में श्रवणयोग न होने पर एकादशी में ही श्रवणयोग होने पर मध्याह्नव्यापिनी द्वादशी को छोड़कर एकादशी में ही व्रत करे। शुद्ध एकादशी में श्रवणयोग न होने पर दशमीविद्धा एकादशी में भी श्रवणयोग होने से व्रत करना चाहिए। पहले ही दिन मध्याह्नव्यापिनी द्वादशी हो और दूसरे दिन मध्याह्न से भिन्न काल में श्रवणयोग हो तब पूर्वा ही में व्रत करे। दोनों तिथियों में श्रवणयोग न होने पर मध्याह्नव्यापिनी द्वादशी में ही व्रत करे।

दिनद्वये मध्याह्नव्याप्तौ तदव्याप्तौ चैकादशीयुक्तैव ग्राह्या। पारणा तु पूर्वोक्तरीत्योभयान्तेऽन्यतरान्ते वा कार्या। अत्र मध्याह्ने नदीसंगमे स्नात्वा सौवर्णं वामनं संपूज्यार्घ्यं सौवर्णपात्रेण दद्यात्। तत्र पूजामन्त्रः—

देवेश्वराय देवाय देवसंभूतिकारिणे।
प्रभवे सर्वदेवानां वामनाय नमो नमः ॥

अथार्घ्यमन्त्रः—

नमस्ते पद्मनाभाय नमस्ते जलशायिने।
तुभ्यमर्घ्यं प्रयच्छामि बालवामनरूपिणे ॥

---

१. भागवत अष्टमस्कन्ध में वामन की उत्पत्ति का वर्णन—'श्रोणायां श्रवणद्वादश्यां मुहूर्तेऽभिजिति प्रभुः। ग्रहनक्षत्रताराद्याश्चक्रुस्तज्जन्म दक्षिणम् ॥ द्वादश्यां सविता तिष्ठन् मध्यन्दिनगतो नृप। विजया नाम सा प्रोक्ता यस्यां जन्म विदुर्हरेः ॥' श्रोणा—चन्द्र अर्थात् श्रवणस्थ-चन्द्र में।

नमः शार्ङ्गधनुर्बाणपाणये वामनाय च ।
यज्ञभुक्फलदात्रे च वामनाय नमो नमः ॥

ततः परदिने सपरिवारं वामनं द्विजाय दद्यात्—

वामनः प्रतिगृह्णाति वामनोहं ददामि ते ।
वामनं सर्वतोभद्रं द्विजाय प्रतिपादये ॥ इति दानमन्त्रः ।

दोनों दिन मध्याह्न में द्वादशी हो या दोनों दिन मध्याह्न में न हो तो एकादशीयुक्त का ग्रहण करे । पारणा तो पहले कहे हुए प्रकार से तिथि नक्षत्र के अन्त में अथवा किसी एक के अन्त में करना चाहिए । इस दिन मध्याह्न में नदीसंगम में स्नान कर सोने के पात्र से अर्घ्य देवे । वामन की पूजा के मंत्रार्थ यह है—देवताओं को उत्पन्न करने वाले, देवताओं के स्वामी, सब देवों के ईश्वर भगवान् वामन को प्रणाम है । अर्घ्य का मन्त्रार्थ—जल में सोने वाले पद्मनाभ भगवान् को नमस्कार है । बाल वामन रूपी आप को मैं अर्घ्य देता हूँ । शृङ्ग के धनुष और बाण को हाथ में धारण करने, यज्ञ में खाने और फल देने वाले वामन भगवान् को नमस्कार है । इसके बाद दूसरे दिन सपरिवार वामन भगवान् की प्रतिमा ब्राह्मण को दे दे । दान का मन्त्रार्थ—वामन ही लेने वाले और वामन ही देने वाले हैं ऐसे वामन भगवान् सब तरह से कल्याण करें । मैं ब्राह्मण को वामन की प्रतिमा देता हूँ ।

अथ दधिव्रतत्यागपूर्वकं पयोव्रतम्

अस्यामेव द्वादश्यां रात्रौ देवपूजां कृत्वा तत्रासंभवे दिवैव वा दधिव्रतं निवेद्य दधिदानं कृत्वा दुग्धव्रतसंकल्पं कुर्यात् । अत्र पयोव्रते पयोविकारस्य पायसादेः दुग्धपाचितान्नस्य च वर्जनम् । दध्यादेः पयोविकारस्यापि न वर्जनम् । एवं दधिव्रते तक्रादेर्न वर्जनम् । यत्र प्रसूताया गोर्दशदिनेषु संधिन्यादेश्च क्षीरनिषेधस्तत्र क्षीरविकारस्य दधितक्रादेः सर्वस्यैव वर्जनम् ।

इसी द्वादशी की रात में देवपूजा करके यदि रात में सम्भव नहीं हो तो दिन में ही दधिव्रत को निवेदन कर दही दान करके दुग्धव्रत का संकल्प करे । इस पयोव्रत में दूध के विकार पायस आदि, दूध में पकाये हुए अन्न का भी त्याग करना चाहिए । दधि आदि दूध के विकार का त्याग नहीं है । इसी तरह दधिव्रत में मट्ठे का त्याग नहीं है । जहाँ व्यायी हुई गाय के दश दिनों में और गर्भिणी होने पर उसके दूध का निषेध है वहाँ इसके दूध के विकार दही मट्ठा आदि सबका त्याग है ।

अथ अनन्तव्रतनिर्णयः

अथ भाद्रपदशुक्लचतुर्दश्यामनन्तव्रतम्[1] । तत्रोदये त्रिमुहूर्तव्यापिनी चतुर्दशी ग्राह्येति मुख्यः पक्षः । तदभावे द्विमुहूर्ता ग्राह्येत्यनुकल्पः । द्विमुहूर्तन्यूना तु पूर्वैव ग्राह्या । दिनद्वये सूर्योदयव्यापित्वे संपूर्णत्वात्पूर्वैव । अत्र पूर्वाह्णो मुख्यः

---

१. माधवः—'उदये त्रिमुहूर्ताऽपि ग्राह्याऽनन्तव्रते तिथिः । स्कान्दे—'मुहूर्तमपि चेद् भाद्रे पूर्णिमायां चतुर्दशी । सम्पूर्णां तां विजानीयात् पूजयेद् विष्णुमव्ययम् ॥' तत्रैव—'अनन्तस्य व्रते राजन् घटिकैका चतुर्दशी । उदये घटिकाऽर्धं वा सैव ग्राह्या महाफला ॥' दिवोदासः—'चतुर्दश्युदये किञ्चित् पूर्णिमा सकला यदि । तत्र कुर्यादनन्तस्य महाविष्णोः प्रपूजनम् ॥' इति ।

कर्मकालः तदभावे[1] मध्याह्नोपि। अत्र व्रते सुवर्णप्रतिमायां चतुर्दशग्रन्थियुतदोरके चानन्तपूजनादिविधिस्तदुद्यापनविधिश्च कौस्तुभादौ ज्ञेयः। पूजितदोरकनाशे तु गुरुं वृत्वा तदनुज्ञया यथाशक्ति कृच्छ्रादिप्रायश्चित्तं विधायाष्टोत्तरशतमाज्येन द्वादशाक्षरवासुदेवमन्त्रेण हुत्वा केशवादिचतुर्विंशतिनामभिः सकृत्सकृद्धुत्वा होमशेषं समाप्य नूतनदोरके पूर्ववत्पूजनादि चरेत्।

भाद्रशुक्ल चतुर्दशी में अनन्तव्रत होता है। उदय में तीन मुहूर्त रहने वाली चतुर्दशी ग्राह्य है, यह मुख्य पक्ष है। ऐसा न होने पर दो मुहूर्त रहने वाली चतुर्दशी भी ग्राह्य है, यह अनुकल्प है। दो मुहूर्त से कम होने पर तो पूर्वा ही लेनी चाहिए। दो दिन में सूर्योदयव्यापिनी चतुर्दशी के होनेपर सम्पूर्ण होने से पूर्वा ही लेनी चाहिए। इसका मुख्य कर्मकाल पूर्वाह्ण है, इसके न रहनेपर मध्याह्न भी है। इस व्रत में चौदह गाँठ की डोरे में अनन्त भगवान् के और उसके उद्यापन की विधि भी कौस्तुभ आदि ग्रन्थों से जानना चाहिए। अनन्त भगवान् का पूजन किया हुआ चौदह गाँठ के डोरे के नष्ट होने पर गुरु को वरण करके उनकी आज्ञा से यथाशक्ति कृच्छ्र आदि प्रायश्चित्त करके एक सौ आठ बार द्वादशाक्षर वासुदेव के मंत्र से केशव आदि चौबीस नामों से एक-एक बार होम करके और होम को समाप्त कर नये डोरे में पहले की तरह पूजन आदि करे।

अथ अगस्त्योदयः

सूर्यस्य वृषसंक्रमोत्तरं सप्तमदिनेऽगस्त्योऽस्तं प्रयाति। सिंहसंक्रान्त्युत्तरमेकविंशतितमे दिने उदयमेति। तत्र कन्यासंक्रान्तेः पूर्वं [2]सप्तदिनमध्येऽगस्त्यपूजनं तदर्घ्यादिकं कार्यम्।

सूर्य के वृषसंक्रान्ति के बाद सातवें दिन अगस्त्य जी का अस्त होता है। सिंहसंक्रान्ति के बाद इक्कीसवें दिन अगस्त का उदय होता है। कन्यासंक्रान्ति के पहले सात दिन के बीच में अगस्त्य का पूजन और उन्हें अर्घ्य आदि देना चाहिए।

अथ प्रोष्ठपदीश्राद्धम्

भाद्रपदपौर्णमास्यां प्रपितामहात् परान् [3]पित्रादींस्त्रीन्सपत्नीकान् वसुरुद्रादित्यस्वरूपान् मातामहादित्रयं च सपत्नीकमुद्दिश्य श्राद्धं कार्यम्। इदं पार्वणत्वादपराह्णे पुरूरवार्द्रवदेवयुक्तं सपिण्डकं कार्यम्।

---

१. माधवीय में—'पूजाव्रतेषु सर्वेषु मध्याह्नव्यापिनी तिथिः।' इस सामान्यवचन से मध्याह्न भी कर्मकाल है।

२. अगस्त्य की पूजाविधि निर्णयसिन्धु आदि ग्रन्थोंमें देखें। ऋग्वेद के द्वितीयाष्टकचतुर्थाध्याय में अर्घ्य का मन्त्र—'अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः प्रजामपत्यं बलमिच्छमानः। उभौ वर्णावृषिरुग्रः पुपोष सत्या देवेष्वाशिषो जगाम॥' इति।

३ हेमाद्रि में मार्कण्डेय—'नान्दीमुखानां प्रत्यब्दं कन्याराशिगते रवौ। पौर्णमास्यां तु कर्तव्यं वराहवचनं यथा॥' ब्राह्म में इन्हें नान्दीमुखत्व प्रतिपादित किया—'पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः। त्रयो ह्यश्रुमुखा ह्येते पितरः परिकीर्तिताः॥ तेभ्यः पूर्वतरा ये च प्रजावन्तः सुखैधिताः। ते तु नान्दीमुखाः, नान्दी समृद्धिरिति कथ्यते॥' धौम्य के—'पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा अपि।' इस उक्ति से मातामहादिका भी श्राद्ध कर्तव्य है।

भाद्रपद की पूर्णिमा में सपत्नीक प्रपितामह के बाद के पिता-पितामह-प्रपितामहों को जो वसु-रुद्र-आदित्य स्वरूप हैं और सपत्नीक मातामह, प्रमातामह और वृद्धप्रमातामह, इन तीनों के उद्देश्य से श्राद्ध करना चाहिए। यह पुरूरव पार्वण श्राद्ध होने से अपराह्णकाल में और आर्द्रव देवताओं के साथ पिण्डसहित करना चाहिए।

केचित्तु प्रपितामहस्य पित्रादित्रयमात्रमुद्दिश्य नान्दीश्राद्धधर्मेण सत्यवसुदेवयुक्तं श्राद्धं कार्यं नात्र मातामहाद्युद्देश इत्याहुः। इदं प्रोष्ठपदीश्राद्धं सकृन्महालयपक्षे सकलकृष्णपक्षव्यापिमहालयपक्षे चावश्यकम्। पञ्चम्यादिमहालयपक्षेषु कृताकृतम्।

कोई तो कहते हैं प्रपितामह के पिता आदि तीन के उद्देश्य से नान्दीश्राद्ध के द्वारा सत्य-वसु-विश्वे-देवसहित श्राद्ध करना चाहिए। इसमें मातामह के उद्देश्य से श्राद्ध न करे। यह भाद्रपद पूर्णिमाका श्राद्ध एक बार महालय के पक्ष में या और सम्पूर्ण-कृष्णपक्षव्यापी-महालयपक्ष में भी आवश्यक है। पंचमी आदि महालय पक्षों में कृताकृत है।

अथ महालयः

तत्र शक्तेन भाद्रपदापरपक्षे प्रतिपदमारभ्य दर्शान्तं तिथिवृद्धौ 'षोडश महालयाः कर्तव्याः। वृद्धिक्षयाभावे पञ्चदशैव महालयाः। तिथिक्षये चतुर्दशैव। अशक्तेन तु पञ्चम्यादिषु षष्ठ्यादिष्वष्टम्यादिषु दशम्यादिष्वेकादश्यादिषु दर्शान्ततिथिषु कार्याः। अत्राप्यशक्तेनानिषिद्धे कस्मिंश्चिदेकस्मिन्दिने सकृन्महालयः

---

१. शाट्यायनिः—'नभस्यस्यापरे पक्षे तिथिषोडशकस्तु यः। कन्यागतान्वितश्चेत्स्यात् स कालः श्राद्धकर्मणि ॥' षोडशत्व की पूर्ति—कोई तिथि की वृद्धि से, कोई भाद्रपद की पूर्णिमा को साथ करके और कोई आश्विनशुक्ल प्रतिपदा को लेकर—करते हैं। यथा हलायुधः—'नान्दीमुखानां प्रत्यब्दं कन्याराशिगते रवौ। पौर्णमास्यां तु कुर्वीत वराहवचनं यथा ॥' देवलः—'अहःषोडशिकं यत्तु शुक्लप्रतिपदा सह।' ब्राह्मे—'आश्वयुक्कृष्णपक्षे तु श्राद्धं कार्यं दिने दिने। त्रिभागहीनं पक्षं वा त्रिभागं त्वर्धमेव वा ॥' इति।

यहाँ चार पक्ष हैं—दिने दिने अर्थात् प्रतिपदा से अमावास्यापर्यन्त १, पञ्चमी से अमावास्यापर्यन्त २, अष्टमी से अमावास्यापर्यन्त ३, एवं दशमी से अमावास्यापर्यन्त ४, इन चारों पक्षों में किसी एक का आश्रयण सामर्थ्यानुसार करे। इसका स्पष्टीकरण कालादर्श में—'पक्षाद्यदि च दर्शान्तं पञ्चम्यादि दिगादि च। अष्टम्यादि यथाशक्ति कुर्यादापरपक्षिकम् ॥' इति।

इन चारों पक्षों में से किसी एक का भी आश्रयण अशक्तवश नहीं कर सके तो एक ही दिन करे। यथा नागरखण्डे—'आषाढ्याः पञ्चमे पक्षे कन्यासंस्थे दिवाकरे। यो वै श्राद्धं नरः कुर्यादेकस्मिन्नपि वासरे। तस्य संवत्सरं यावत् संतृप्ताः पितरो ध्रुवम् ॥'

पितृपक्ष में एक ही दिन श्राद्ध करना हो तो मृताह तिथि में ही करे। यथा कात्यायनः—'या तिथिर्यस्य मासस्य मृताहे तु प्रवर्तते। सा तिथिः पितृपक्षे तु पूजनीया प्रयत्नतः ॥ तिथिच्छेदो न कर्तव्यो विनाऽशौचं यदृच्छया। पिण्डश्राद्धं च कर्तव्यं विच्छित्तिं नैव कारयेत् ॥ अशक्तः पक्षमध्ये तु करोत्येकदिने यदा। निषिद्धेऽपि दिने कुर्यात् पिण्डदानं यथाविधि ॥'

इसमें प्रतिपदा से अमावास्यापर्यन्त पार्वणश्राद्ध की ही मुख्यता है। यथा मार्कण्डेयः—'कन्यागते सवितरि दिनानि दश पञ्च च। पार्वणेनेह विधिना श्राद्धं तत्र विधीयते ॥' इति।

कर्तव्यः। प्रतिपदादिदर्शान्तपक्षे चतुर्दशी न वर्ज्या। पञ्चम्यादिदर्शान्तादिपञ्च-पक्षेषु चतुर्दशीं वर्जयित्वाऽन्यतिथिषु महालयाः। सकृन्महालयेपि चतुर्दशी वर्जनीया।

इसमें समर्थ-पुरुष को भाद्रपद के कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से आरम्भ करके अमावास्या तक तिथि-वृद्धि होने पर सोलह महालय करना चाहिए। तिथि-वृद्धि या तिथि-क्षय न होने पर पन्द्रह ही महालय होते हैं। तिथि-क्षय में तो चौदह ही होते हैं। असमर्थ तो पंचमी आदि, षष्ठी आदि, अष्टमी आदि, दशमी आदि और एकादशी आदि में अमावास्या तक करे। इसमें भी जो असमर्थ हों उनको अनिषिद्ध किसी एक दिन में एक बार महालय करना चाहिये। प्रतिपदा से अमावास्या तक के पक्ष में चतुर्दशी में नहीं छोड़ना चाहिए। पंचमी आदि से अमावास्या तक के पाँच पक्षों में चतुर्दशी को छोड़कर अन्य तिथियों में महालय श्राद्ध करे। एक वार के महालय में भी चतुर्दशी छोड़ देनी चाहिए।

सकृन्महालये प्रतिपदा षष्ठी एकादशी चतुर्दशी शुक्रवारो जन्मनक्षत्रं जन्म-नक्षत्राद्दशममेकोनविंशं नक्षत्रं च रोहिणी मघा रेवती चेति [1]वर्ज्यानि। क्वचित् त्रयोदशी सप्तमी रविवारोपि वर्ज्य उक्तः। पितृमृततिथौ सकृन्महालयकरणे नन्दादिनिषेधो नास्ति।

> अशक्तः पितृपक्षे तु करोत्येकदिने यतः।
> निषिद्धेऽपि दिने कुर्यात्पिण्डदानं यथाविधि॥ इत्यादिवचनात्।

मृततिथौ श्राद्धासंभवे निषिद्धतिथ्यादिदिनं वर्जयित्वा महालयः। तत्रापि द्वादश्यमावास्याष्टमीभरणीव्यतीपातेषु मृततिथ्यभावेपि सकृन्महालये कोपि तिथ्यादिनिषेधो नास्ति।

एक वार के महालयश्राद्ध में प्रतिपदा, षष्ठी, एकादशी, चतुर्दशी, और शुक्रवार जन्मनक्षत्र से दसवां और उन्नीसवाँ नक्षत्र तथा रोहिणी, मघा और रेवती त्याज्य है। कहीं पर त्रयोदशी, सप्तमी, रविवार और मंगलवार को भी छोड़ना कहा गया है। पिता के मृत तिथि में एक बार महालय करने में नन्दा आदि का निषेध नहीं होता। असमर्थ-पुरुष पितृपक्ष में एक दिन महालय करता है तो निषिद्ध दिन में भी सविधि पिण्डदान करे, इस आशय के वचनानुसार करना चाहिए। मृत तिथि में श्राद्ध न होने पर निषिद्ध तिथि आदि को छोड़कर महालय श्राद्ध करे। उसमें भी द्वादशी, अमावास्या, भरणी और व्यतिपात में मृत तिथि के न होने पर भी एक बार महालय करने में कोई तिथि आदि का कोई निषेध नहीं लगता।

संन्यासिनां महालयस्तु अपराह्णव्यापिन्यां द्वादश्यामेव सपिण्डकः कार्यो

---

१. वसिष्ठः—'नन्दायां भार्गवदिने चतुर्दश्यां त्रिजन्मसु। एषु श्राद्धं न कुर्वीत गृही पुत्रधन-क्षयात्॥' वृद्धगार्ग्यः—'प्राजापत्ये च पौष्णे च पित्र्यें भार्गवे तथा। यस्तु श्राद्धं प्रकुर्वीत तस्य पुत्रो विनश्यति॥' इति। इसका अपवाद हेमाद्रि में यों है—'अमापाते भरण्यां च द्वादश्यां पक्षमध्यके। तथा तिथिं च नक्षत्रं वारं च न विचारयेत्॥' कार्ष्णाजिनिः—'नभस्यस्यापरे पक्षे श्राद्धं कार्यं दिने दिने। नैव नन्दादि वर्ज्यं स्यान्नैव निन्द्या चतुर्दशी॥" इति।

नान्यतिथौ। चतुर्दश्यां मृतस्यापि महालयश्चतुर्दश्यां न भवति। 'श्राद्धं 'शस्त्रहतस्यैव चतुर्दश्यां प्रकीर्तितम्' इति नियमेन सर्वतो बलिष्ठेन प्रतिवार्षिकश्राद्धातिरिक्तश्राद्धस्य चतुर्दश्यां निषेधात्। एवं पौर्णमासीमृतस्यापि महालयः पौर्णमास्यां न कार्यः। अपरपक्षत्वाभावेन तस्यां महालयाप्राप्तेः। तेन चतुर्दशीमृतस्य पौर्णमासीमृतस्य वा महालयो द्वादश्यमावास्यादितिथिषु कार्यः।

संन्यासियों का महालय तो अपराह्णव्यापिनी द्वादशी में ही पिण्डसहित करना चाहिए अन्य तिथियों में नहीं। चतुर्दशी में मरे हुए का महालय चतुर्दशी में नहीं होता। 'चतुर्दशी में श्राद्ध उन्हीं का होता है जो शस्त्र से मारे गये हों' सबसे बलिष्ठ इस नियम से वार्षिक श्राद्ध के अतिरिक्त श्राद्ध का चतुर्दशी के निषेध होने से पूर्णिमा में मरे हुए का महालय पूर्णिमा में करना चाहिए। कृष्णपक्ष के होने से पूर्णिमा में महालय न होने के कारण चतुर्दशी या पूर्णिमा में मरे हुए का महालय श्राद्ध द्वादशी अमावास्या आदि तिथियों में करना चाहिए।

अत्र कन्यार्कः प्राशस्त्यसंपादको न तु निमित्तम्।

आदौ मध्येऽवसाने वा यत्र कन्यां व्रजेद्रविः।
स पक्षः सकलः पूज्यः श्राद्धषोडशकं प्रति ॥

इत्यादिस्मृतेः। अमावास्यापर्यन्ततिथावसंभवे आश्विनशुक्लपञ्चमीपर्यन्तं यस्मिन्कस्मिंश्चित्तिथौ महालयः। तत्रासंभवे यावद्वृश्चिकदर्शनं व्यतीपातद्वादश्यादिपर्वणि कार्यः। मृताहे महालये च श्राद्धं पक्वान्नेनैव कार्यं न त्वामान्नादिना।

महालये गयाश्राद्धे मातापित्रोर्मृतेऽहनि।
कृतोद्वाहोपि कुर्वीत पिण्डदानं यथाविधि ॥

यहाँ कन्या की संक्रान्ति में महालय करना प्रशस्त बोधक है, निमित्त नहीं। कन्यासंक्रान्ति के आदि मध्य अथवा अन्त में जब कन्या के सूर्य हों वह सम्पूर्ण कृष्णपक्ष महालयश्राद्ध के लिए उत्तम है, ऐसा श्रुतियों में कहा है। अमावास्या तक तिथियों में महालयश्राद्ध न करने पर आश्विनशुक्ल पंचमी तक जिस किसी तिथि में महालय करना चाहिए। इसमें भी न हो सके तो जब तक वृश्चिक के सूर्य हों तो व्यतिपात और द्वादशी आदि पर्व में महालय करे। मृत तिथि और महालय में भी पक्वान्न से ही श्राद्ध करना चाहिए, कच्चे अन्न से नहीं। इसमें पिण्डदान करना चाहिए। महालय में, गयाश्राद्ध में, मातापिता के मृत तिथि और विवाह करने परभी यथा विधि पिण्डदान करना चाहिए।

अथ महालये देवताः

पक्षश्राद्धे पित्रादिपार्वणत्रयपत्न्याद्येकोद्दिष्टपितृगणसहितसर्वपित्रुद्देशेन सपत्नीकपित्रादित्रयसपत्नीकमातामहादित्रयेति षड्दैवतमात्रोद्देशेन वा षड्दैवतैकोद्दिष्टगणोद्देशेन वा प्रत्यहं महालय इति पक्षत्रयम्। एवं पञ्चम्यादिपक्षेष्वपि। सकृन्महा-

---

१. नागरखण्डे—'अपमृत्युर्भवेद्येषां शस्त्रमृत्युरथापि वा॥ उपसर्गमृतानां च विषमृत्युमुपेयुषाम्। वह्निना च प्रदग्धानां जलमृत्युमुपेयुषाम्। श्राद्धं तेषां प्रकर्तव्यं चतुर्दश्यां नराधिप॥' इति।

लये तु सर्वपित्रुद्देशेनैव। तत्र 'देवतासंकल्पः—'पितृपितामहप्रपितामहानां मातृतत्सपत्नीपितामहीतत्सपत्नीप्रपितामहीतत्सपत्नीनां, यद्वाऽस्मत्सापत्नमातुरिति पृथगुद्देशः। मातामहमातृपितामहमातृप्रपितामहानां सपत्नीकानां यथानामगोत्राणां वस्वादिरूपाणां पार्वणविधिना पत्न्याः पुत्रस्य कन्यकायाः पितृव्यस्य मातुलस्य भ्रातुः पितृष्वसुर्मातृष्वसुरात्मभगिन्याः पितृव्यपुत्रस्य जामातुर्भागिनेयस्य श्वशुरस्य श्वश्र्वा आचार्यस्योपाध्यायस्य गुरोः सख्युः शिष्यस्य एतेषां यथानामगोत्ररूपाणां पुरुषविषये सपत्नीकानां स्त्रीविषये सभर्तृकसापत्यानामेकोद्दिष्टविधिना महालयापरपक्षश्राद्धमथवा सकृन्महालयापरपक्षश्राद्धं सदैवं सद्यः करिष्ये' इति।

पन्द्रह दिन के महालय पक्ष में पिता आदि तीन का पार्वण, पत्नी आदि का एकोद्दिष्ट, पितृगण-सहित सम्पूर्ण पितरों के उद्देश्य से अथवा पत्नीसहित पिता आदि तीन तथा पत्नीसहित मातामह आदि तीन का छ देवता मात्र के उद्देश्य से छ देवता वाले एकोद्दिष्ट गण के उद्देश्य से प्रतिदिन महालय होता है, यह तीन पक्ष है। इसी तरह पंचमी आदि पक्ष में भी। एक बार महालय करने में तो सम्पूर्ण पितरों के उद्देश्य से ही होता है। देवताका संकल्प यह है—'पिता पितामह और प्रपितामहका, माता माता की सौत माता की सास और उनकी सौत का, परदादी और उनकी सौतका, अथवा हमारी सौतेली माँ का यह अलग करे। सपत्नीक मातामह और माता के पितामह. माता के प्रपितामहों का नामगोत्रसहित वसु आदि रूप वालों का पार्वणविधि से पत्नी-पुत्र-कन्या-चाचा-मामा-भाई-फुआ मौसी-बहन-चचेरे-भाई-दामाद-भांजे-स्वसुर-सास-आचार्य-उपाध्याय-गुरु-मित्र और शिष्य यथानाम गोत्र-रूप वालों का, पुरुष के विषय में सपत्नीक और स्त्री के विषय में पति सन्तान के सहित का, एकोद्दिष्टविधि से महालयश्राद्ध अथवा एक बार महालयश्राद्ध देवसहित तुरन्त करूँगा' ऐसा संकल्प करे।

एतेषां मध्ये ये केचिज्जीवन्ति तान्विहाय इतरेषामुद्देशः। मातामहादिषु पत्न्या जीवने सपत्नीकेत्यस्य स्त्रीषु च भर्त्रादेरनुचारः।

महालये गयाश्राद्धे वृद्धौ चान्वष्टकासु च।
नवदैवतमत्रेष्टं शेषं षाट्पौरुषं विदुः॥
अन्वष्टकासु वृद्धौ च प्रतिसंवत्सरे तथा।
महालये गयायां च सपिण्डीकरणात्पुरा॥
मातुः श्राद्धं पृथक्कार्यमन्यत्र पतिना सह।

इत्यादिस्मृत्यनुसारात्पार्वणत्रयमेवोक्तम्।

---

१. संग्रहे—'तातान्बात्रितयं, सपत्नजननी, मातामहादित्रयं, सस्त्रि, स्त्रीतनयादि, तातजननी-स्वभ्रातरः सस्त्रियः। तातान्बात्मभगिन्यपत्यधवयुक्, जाया पिता, सद्गुरुः, शिष्याप्ताः पितरो महालयविधौ, तीर्थे तथा तर्पणे॥' इति।

पुराणान्तर में पार्वण एकोद्दिष्ट की व्यवस्था—'उपाध्यायगुरुश्वश्रूपितृव्याचार्यमातुलाः। श्वशुरभ्रातृतत्पुत्रपुत्रर्त्विक्शिष्यपोषकाः॥ भगिनीस्वामिदुहितृजामातृभगिनीसुताः। पितरौ पितृपत्नीनां पितुर्मातुश्च या स्वसा॥ सखिद्रव्यदशिष्याद्यास्तीर्थे चैव महालये। एकोद्दिष्टविधानेन पूजनीयाः प्रयत्नतः॥' इति।

इनमें से जो कोई जीते हों उनको छोड़ करके अन्य के उद्देश्य से महालय करना चाहिए। मातामह आदि में स्त्री के जीते रहने पर सपत्नीक शब्द का उच्चारण न करे। और स्त्रियों के श्राद्ध में पति के जीते रहने पर पति-पुत्रादि का उच्चारण न करे। महालय, गयाश्राद्ध, वृद्धिश्राद्ध तथा अन्वष्टकाश्राद्ध में नव देवता होते हैं। बाकी में छ होते हैं। अन्वष्टका, वृद्धिश्राद्ध, वार्षिक-श्राद्ध, महालय तथा गया में सपिण्डीकरण के पहले माता का श्राद्ध अलग और इसके अतिरिक्त श्राद्ध में पति के साथ करना चाहिए। इस आशय के श्रुतियों के अनुसार पार्वणत्रय ही कहा है।

केचित्तु मातामह्यादित्रयं पृथगुचार्य द्वादशदेवताकं पार्वणचतुष्टयमाहुः। एता एव देवता गयायां तीर्थश्राद्धे नित्यतर्पणे च ज्ञेयाः। महालये धूरिलोचन-संज्ञका विश्वेदेवाः।

कोई तो मातामही आदि तीन का अलग उच्चारण करके बारह देवता वाले चार पार्वण करने को कहते हैं। इतने ही देवता गया, तीर्थश्राद्ध और नित्य तर्पण में जानना चाहिए। महालय में धूरिलोचन नामक विश्वेदेव होते हैं।

अथ ब्राह्मणविभागः

अत्र सति संभवे देवार्थं द्वौ विप्रौ पार्वणत्रयार्थं प्रतिपार्वणं त्रीनित्येवं [1]नव। पत्न्याद्येकोद्दिष्टगणे प्रतिदैवतमेकैकमेवं विप्रान्निमन्त्रयेत्।

श्राद्ध में यदि धन हो तो देवता के लिए दो और तीन पार्वण के लिए प्रतिपार्वण तीन, इस प्रकार नव ब्राह्मण हुए। पत्नी आदि एकोद्दिष्टगण में प्रतिदैवत एक-एक ब्राह्मण को निमंत्रण देवे।

अशक्तौ देवार्थमेकं प्रतिपार्वणमेकमिति पार्वणत्रये त्रीन् सर्वैकोद्दिष्टगणार्थमेक-मिति निमन्त्रयेत्। देवार्थं विप्रद्वयपक्षे प्रतिपार्वणे त्रय एव कार्याः। न तु देवार्थं द्वौ प्रतिपार्वणमेक इति वा प्रतिपार्वणं त्रीन् देवार्थमेक इति वा वैषम्यं कार्यम्। एवं सर्वत्र अमावास्यादिश्राद्धेष्वपि ज्ञेयम्।

शक्ति न रहने पर देवता के लिए प्रतिपार्वण एक और तीन पार्वण में तीन और एकोदिष्ट गण के लिए एक का निमंत्रण करे। जब देवता के लिए दो ब्राह्मणों का निमन्त्रण हो तो पक्ष में प्रति-पार्वण में तीन ही का निमन्त्रण करे, न कि देवता के लिए दो और पार्वण के एक अथवा प्रति-पार्वण तीन और देवता के लिए एक ब्राह्मण का निमन्त्रण, इस प्रकार वैषम्य नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार अमावस्या आदि सभी श्राद्धों में जानना चाहिए।

अत्यशक्तौ पार्वणद्वयार्थमेकोपि कार्यः। महालये अन्ते महाविष्णवर्थं विप्रोऽ-वश्यं निमन्त्रयितव्य इति विशेषः कौस्तुभे।

अत्यन्त अशक्त तो दो पार्वण के लिए एक ब्राह्मण का भी निमन्त्रण कर सकता है। महालय के अन्त में महाविष्णु के लिए ब्राह्मण का निमन्त्रण अवश्य करना चाहिए, ऐसा कौस्तुभ में विशेष लिखा है।

---

१. हेमाद्रि में विष्णुधर्मे—'महालये गयाश्राद्धे वृद्धौ चान्वष्टकासु च। नवदैवत्यमत्रेष्टं शेषं षाट्पौरुषं विदुः॥' निगम के मत में तो—'महालये गयाश्राद्धे वृद्धौ चान्वष्टकासु च। ज्ञेयं द्वादश-दैवत्यं तीर्थे प्रौष्ठे मघासु च॥' इति।

अथ सापत्नमातृनिर्णयः

जीवन्मातृकः सापत्नमातुरेकोद्दिष्टं[1] कुर्यान्न पार्वणम्। अनेकाः सापत्नमातरो यस्य तेन सर्वमात्रुद्देशेनैक एव विप्रः पिण्डश्च कार्योऽर्घ्यपात्रं पृथक्। स्वजनन्या सहानेकमातृत्वे स्वजनन्या सह सर्वमात्रर्थमेको विप्रः पिण्डोऽर्घ्यश्चेति पार्वणमेव न पृथक् सापत्नमात्रैकोद्दिष्टमिति वा सर्वसापत्नमातॄणां पृथगेवैकोद्दिष्टमिति वा पक्षः।

जिसकी माँ जीती हो वह सौतेली माँ का एकोद्दिष्ट करे, पार्वण न करे। जिसकी बहुत सी सौतेली माँ हो वह सब माताओं के उद्देश्य से एक ही ब्राह्मण और एक पिण्ड करे तथा अर्घ्यपात्र अलग करे। अपनी माँ के साथ अनेक माताओं के होने पर अपनी माता के साथ सब माताओं के लिए एक ब्राह्मण एक पिण्ड और एक ही अर्घ्यपात्र करे इस प्रकार पार्वण ही करे, न कि सौतेली माँ का पृथक् एकोद्दिष्ट करे, अथवा सब सौतेली माँ के लिए अलग ही एकोद्दिष्ट करे, यह भी पक्ष है।

अथाग्नौकरणबर्हिर्निर्णयः

महालये पार्वणार्थे अग्नौकरणमेकोद्दिष्टगणार्थं त्वग्नौकरणं कृताकृतम्। करणपक्षे एकोद्दिष्टगणार्थमग्नौकरणान्नं पृथक् पात्रे ग्राह्यम्। महालये सर्वपार्वणार्थमेकोद्दिष्टार्थं च सकृदाच्छिन्नं बर्हिरेकमेव। दर्शादौ तु प्रतिपार्वणं बर्हिर्भिन्नमेव। अवशिष्टः श्राद्धप्रयोगोऽनेकमातृत्वेऽभ्यञ्जनादिमन्त्रोहश्च श्राद्धसागरे स्वस्वशाखोक्तप्रयोगग्रन्थेषु च ज्ञेयः।

महालय में पार्वण के लिए अग्नौकरण करे। एकोद्दिष्टगण के लिए तो अग्नौकरण करना न करना बराबर है। करने के पक्ष में एकोद्दिष्ट गण के लिये अग्नौकरण का अन्न दूसरे पात्र में ग्रहण करे। महालय में सब पार्वणों और एकोद्दिष्ट के लिए एक बार काटा हुआ कुश एक ही रहता है। अमावास्या आदि के श्राद्ध में तो प्रत्येक पार्वण के लिए कुश दूसरा ही रहता है। अवशिष्ट श्राद्ध-प्रयोग अनेक माताओं के रहते अभ्यञ्जन आदि मन्त्र की कल्पना श्राद्धसागर और अपनी-अपनी शाखा के कहे हुए प्रयोग ग्रन्थों से जाननी चाहिए।

अथ सकृन्महालये परदिने तर्पणादि

सकृन्महालये श्राद्धाङ्गतिलतर्पणं परेह्न्येव। सर्वपित्रुद्देशेन प्रातःसंध्यायाः पूर्वमेव प्रातःसंध्योत्तरं वा ब्रह्मयज्ञाङ्गतर्पणाद्भिन्नमेव कार्यम्। प्रतिपदादिपञ्चम्यादिपक्षेषु विप्रविसर्जनान्ते एव श्राद्धपूजितपित्रुद्देशेन तर्पणं कार्यम्।

सकृन्महालय के पक्ष में श्राद्ध का अंग तिलतर्पण सब पितरों के उद्देश्य से दूसरे ही दिन करे। सभी पितरों के उद्देश्य में प्रातः सन्ध्या के पूर्व ही या प्रातः सन्ध्या के बाद उस ब्रह्मयज्ञांग तर्पण से अलग ही करना चाहिए। प्रतिपदा से लेकर पञ्चमी आदि पक्षों में ब्राह्मणविसर्जन के बाद ही श्राद्ध-पूजित-पितरों के उद्देश्य से तर्पण करे।

---

१. याज्ञवल्क्योक्त एकोद्दिष्ट का स्वरूप—'एकोद्दिष्टं देवहीनमेकार्घ्यैकपवित्रकम्। आवाहनाग्नौकरणरहितं त्वपसव्यवत्॥' वृहन्मनु के वचन से श्राद्धदीपकलिका में पार्वण का ही निर्देश है—'आन्वष्टक्यं च यन्मातुर्गयाश्राद्धं महालयम्। पितृपत्नीषु च श्राद्धं कार्यं पार्वणवद् भवेत्॥' इति।

अथ महालये पत्न्यां रजसि निर्णयः

पत्न्यां रजस्वलायां सकृन्महालयो न कार्यः, कालान्तराणां सत्त्वात्। अमायां रजोदोषे आश्विनशुक्लपञ्चमीपर्यन्तं गौणकाले महालयः। प्रतिपदादिष्वन्येषु पक्षेषु प्रारंभदिने पाकात्पूर्वं पत्नी रजस्वला चेदुत्तरोत्तरपक्षस्वीकारः पाकारम्भोत्तरं चेत्तां गृहान्तरेऽवरुध्य महालयः कर्तव्यः। एवं विधवाकर्तृकश्राद्धेऽपि ज्ञेयम्। भ्रात्रादिमहालयश्च तत्रैवोत्तरार्धे ज्ञेयः।

पत्नी के रजस्वला होने पर सकृन्महालय नहीं करे क्योंकि उसका दूसरा काल भी है। अमावास्या में पत्नी के रजस्वला होने पर आश्विनशुक्ल पञ्चमी तक गौणकाल में महालय करना चाहिए। प्रतिपदा आदि दूसरे पक्षों में आरम्भ के दिन पाक से पहले यदि स्त्री रजस्वला हो तो उसके बाद वाले पक्ष को स्वीकार कर महालय करे। पाकारम्भ के बाद यदि रजस्वला हो तो उसे दूसरे घर में बन्द करके महालय करे। इसी प्रकार विधवा द्वारा किये गये श्राद्ध में जानना चाहिए। और भाई आदि का महालय भी वहीं उत्तरार्द्ध में जानना चाहिए।

अथ सूत्रकप्राप्तौ निर्णयः

अत्रापुत्रा विधवा[1] 'मम भर्तृतत्पितृपितामहानां भर्तुर्मातृपितामहीप्रपितामहीनां मम पितृपितामहप्रपितामहानां मम मातृपितामहीप्रपितामहीनां मम मातामहमातृपितामहमातृप्रपितामहानां मम मातामहीमातृपितामहीमातृप्रपितामहीनां तृप्त्यर्थं सकृन्महालयापरपक्षश्राद्धं करिष्ये' इति स्वयं संकल्प्य ब्राह्मणद्वारा अग्नौकरणादिसहितं सर्वमविकृतं प्रयोगं कारयेत्। ब्राह्मणस्त्वमुकनाम्न्या यजमानाया भर्तृतत्पितृपितामहेत्याद्युच्चार्य प्रयोगं कुर्यात्।

विना पुत्र वाली विधवा 'मेरे पति उनके पिता पितामह की, पति के माता पितामही प्रपितामही की, मेरे पिता पितामह प्रपितामह की, मेरी माता पितामही प्रपितामही की, मेरी मातामह माता के पितामह और माता के प्रपितामह की, मेरी मातामही माता की पितामही और माता की प्रपितामही की तृप्ति के लिए सकृन्महालय सम्बन्धी कृष्णपक्ष का श्राद्ध करूँगी' ऐसा स्वयं संकल्प करके ब्राह्मण के द्वारा अग्नौकरण आदि सहित जैसा का तैसा सब प्रयोग करावे। ब्राह्मण तो अमुक नाम की यजमानी के पति उनके पिता और पितामह आदि का उच्चारण करके प्रयोग करे।

[2]अशक्तौ भर्त्रादित्रयं स्वपित्रादित्रयं स्वमात्रादित्रयं स्वमातामहादित्रयं सपत्नीकमिति पार्वणचतुष्टयोद्देशेन महालयः। अत्यशक्तौ स्वभर्त्रादित्रयं स्वपित्रादित्रयं चेति पार्वणद्वयमेव कार्यम्।

शक्ति न रहने पर पति आदि तीन अपने पिता आदि तीन अपने माता आदि तीन और

---

१. स्मृतिसंग्रह में विधवा के लिये विशेषोक्ति—'चत्वारः पार्वणाः प्रोक्ता विधवायाः सदैव हि। स्वभर्तृश्वशुरादीनां मातापित्रोस्तथैव च॥ ततो मातामहानां च श्राद्धदानमुपक्रमेत्।' तथा—श्वश्रूणां तु विशेषेण मातामह्यास्तथैव च।' इति।

२. अशक्तों के लिये स्मृतिरत्नावलि में निर्देश—'स्वभर्तृप्रभृतित्रिभ्यः स्वपितृभ्यस्तथैव च। विधवा कारयेच्छ्राद्धं यथाकालमतन्द्रिता॥' प्रयोगपारिजात में—'ब्राह्मणद्वारा कारयेत्' ऐसा कहा।

मातामह आदि सपत्नीक तीन के चार पार्वण के उद्देश्य से महालय करे। अत्यन्त अशक्तावस्था में अपने पति आदि तीन और अपने पिता आदि तीन का, इस प्रकार दो ही पार्वण करे।

अथ पितरि संन्यस्ते जीवति सांकल्पविधिः

महालयः पितरि संन्यस्ते पातित्यादियुते वा जीवत्पितृकेणापि पुत्रेण पितुः पित्रादिसर्वपित्रुद्देशेन पिण्डदानरहितः सांकल्पविधिना कार्यः।

वृद्धौ तीर्थे च संन्यस्ते ताते च पतिते सति।
येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यो दद्यात्स्वयं सुतः॥
मुण्डनं पिण्डदानं च प्रेतकर्म च सर्वशः।
न जीवत्पितृकः कुर्याद् गुर्विणीपतिरेव च॥ इत्यादिवचनात्।

पिण्डदानादिविस्तरं कर्तुमशक्तेनापि सांकल्पविधिः कार्यः। सांकल्पिकविधावर्घ्यदानं समंत्रकावाहनमग्नौकरणं पिण्डदानं विकिरदानं स्वधां वाचयिष्ये। ॐ स्वधोच्यतामित्यादिस्वधावाचनप्रयोगं च वर्जयेत्।

महालयश्राद्ध पिता के संन्यासी होने पर या पातित्य आदि से युक्त होने पर जिसके पिता जीते हों ऐसे पुत्र को भी पिता के पिता आदि सब पितरों के उद्देश्य से पिण्ड के विना सांकल्प-विधि से करना चाहिए। वृद्धि में तीर्थ में पिता के संन्यासी या पतित होने पर जिन पितरों को पिता पिण्ड देता है उनको स्वयं पुत्र देवे। मुण्डन पिण्डदान सब प्रकार का प्रेतकर्म जिसका पिता जीवित हों अथवा जिसकी स्त्री गर्भिणी हो इसमें 'वृद्धौ तीर्थे च' इत्यादि वचनों के प्रमाण से पिण्डदान आदि का विस्तार करने में असमर्थ भी सांकल्प-विधि से महालयश्राद्ध करे। सांकल्प-विधि में अर्घ्यदान मंत्र के सहित आवाहन, अग्नौकरण, पिण्डदान, विकिरदान और स्वधावाचन आदि का प्रयोग वर्जित करे।

अथ ब्राह्मणालाभे निर्णयः

अनेकब्राह्मणालाभे देवस्थाने शालग्रामादिदेवमूर्तिं संस्थाप्य श्राद्धं कार्यम्। सर्वथा विप्रालाभे [1]दर्भवटुविधिना श्राद्धम्।

अनेक ब्राह्मणों के न मिलने पर देवता के स्थान में शालग्राम आदि देव-मूर्ति को स्थापित कर श्राद्ध करे। सर्वथा ब्राह्मण के न मिलने पर वो कुश का वटु बनाकर उस विधि से श्राद्ध करना चाहिए।

अथ प्रतिवार्षिकादिप्राप्तौ महालयनिर्णयः

पित्रोर्मरणे प्रथमाब्दे महालयः कृताकृतः। महालयो [2]मलमासे न कार्यः।

---

१. भविष्ये—'ब्राह्मणानामसम्पत्तौ कृत्वा दर्भमयान् वटून्।' देवलः—'निधाय वा दर्भवटूनासनेषु समाहितः। प्रैषानुप्रैषसंयुक्तं विधानं प्रतिपादयेत्॥' कुशसमूह को वटु कहते हैं। यद्यपि कुशवटु में हस्त-पादादि अवयव नहीं होता तथापि कर्मकाल में स्मृति के लिये उल्लेख है। रुद्रकल्पद्रुम के—'प्राङ्मुखान्यासनान्येषां द्विदर्भोपहितानि च' इस वचन से कुश के अग्रभाग से मुख की कल्पना करके देव में पूर्वमुख और पितृकर्म में उत्तरमुख स्थापित करे। प्रैषानुप्रैषादिकाण्ड की पूर्ति स्वयं करे।

२. भृगु ने मलमास में महालयश्राद्धादिका निषेध किया—'वृद्धिश्राद्धं तथा सोममग्न्याधेयं महालयम्। राजाभिषेकं काम्यं च न कुर्यात् भानुलङ्घिते॥' इति।

अपरपक्षे प्रतिवार्षिकप्राप्तौ मृततिथौ वार्षिकं कृत्वा तिथ्यन्तरे सकृन्महालयः कार्यः। प्रतिपदादिदर्शान्तादिपक्षेषु मृततिथौ वार्षिकं कृत्वा पाकान्तरेण महालयः। अमायां प्रतिवार्षिकसकृन्महालयप्राप्तौ पूर्वं वार्षिकं ततो महालयस्ततो दर्शश्राद्धमिति त्रयं पाकभेदेन महालयमात्रप्राप्तावपि पूर्वं महालयस्ततो दर्शः। मृततिथौ सकृन्महालयपक्षे तत्तत्तिथेर्ग्राह्यत्वनिर्णयोऽपराह्णव्याप्त्या दर्शवदिति भाति।

पिता माता के मरने पर पहले वर्ष में महालय श्राद्ध करना या न करना बराबर है। मलमास में महालय नहीं करना चाहिए। महालय में वार्षिक श्राद्ध आ पड़े तो मृत-तिथि में वार्षिकश्राद्ध करके दूसरी तिथि में सकृन्महालय करना चाहिए। प्रतिपदा आदि अमावास्यान्त आदि पक्षों में मृत तिथि में वार्षिक श्राद्ध करके दूसरे पाक से महालय श्राद्ध करे। अमावास्या के श्राद्ध के दिन महालय और वार्षिक श्राद्ध पड़ने पर अमावास्या में वार्षिक श्राद्ध या एक बार का महालय श्राद्ध आ पड़े तो पहले वार्षिक श्राद्ध करके उसके बाद महालय करे। तदनन्तर अमावास्या का श्राद्ध करे तीनों के पाक-भेद से महालय केवल पड़ने पर पहले महालय करे उसके बाद अमावास्या का श्राद्ध करे। सकृन्महालय के पक्ष में मृत-तिथि के ग्राह्यत्व का निर्णय अपराह्णव्यापिनी तिथि से अमावास्या की तरह करे, ऐसा प्रतीत होता है।

अथ भरणीश्राद्धनिर्णयः

अत्रापरपक्षे 'भरणीश्राद्धाद्गयाश्राद्धफलप्राप्तिः। भरणीश्राद्धमपिण्डकं षड्दैवतं सांकल्पविधिना कार्यम्। देवा धूरिलोचनौ पुरूरवार्द्रवौ वा। भरणीश्राद्धं काम्यम्। गयाश्राद्धफलकामेन प्रतिवर्षं कार्यम्। केचित्पित्रादिमरणोत्तरं प्रथमवर्षे एव कुर्वन्ति द्वितीयादिवर्षे न कुर्वन्ति तत्र मूलं चिन्त्यम्। मम तु 'न दैवं नापि वा पित्र्यं यावत्पूर्णो न वत्सरः' इत्यादिवचनेन सर्वस्यापि दर्शादिश्राद्धस्य प्रथमाब्दे निषेधाद्वर्षान्ते एव पितृत्वप्राप्तेश्च द्वितीयादिवर्षे एव कर्तुं युक्तमिति भाति।

महालय में भरणी श्राद्ध करने से गयाश्राद्ध के फल की प्राप्ति होती है। भरणी का श्राद्ध बिना पिण्ड के छ देवताओं के उद्देश्य से सांकल्पिकविधि से करना चाहिए। इसके देवता धूरिलोचन या पुरुरवा और आर्द्रव हैं। भरणी श्राद्ध काम्य है। गयाश्राद्ध फल की इच्छा से प्रतिवर्ष करना चाहिए। कुछ लोग पिता आदि के मरने के बाद पहले वर्ष में ही गयाश्राद्ध करते हैं, दूसरे आदि वर्षों में नहीं करते, इसमें प्रमाण चिन्त्य है। मुझे तो —जब तक पूरा साल बीत नहीं जाता तब तक देव या पितृ का श्राद्ध नहीं करना चाहिए। 'न दैवं नापि' इत्यादि वचन के अनुसार सभी अमावास्या आदि श्राद्ध का प्रथम वर्ष में निषेध है, क्योंकि वर्ष के अन्त में ही पितृत्व की प्राप्ति होती है इसलिये— द्वितीय आदि वर्ष में करना ठीक मालूम होता है।

यत्तु पितृभिन्नोपि यो यो म्रियते तस्य तस्य प्रथमाब्दे भरणीश्राद्धं क्रियते तत्रापि मूलं न पश्यामः। गयाश्राद्धफलार्थमाचारमनुसृत्य क्रियते चेन्मृताद्येकमेव पार्वणमुद्दिश्य सदैवं कार्यम्। अत्र सपिण्डत्वाचारोपि चिन्त्यः।

कोई कहते हैं पिता से भिन्न भी जो-जो मरते हैं उन-उन का प्रथम वर्ष में भरणीश्राद्ध

---

१. मत्स्यपुराणमें भरणीश्राद्ध की प्रशंसा—'भरणी पितृपक्षे तु महती परिकीर्तिता। अस्यां श्राद्धं कृतं येन स गयाश्राद्धकृद् भवेत्॥' इति।

करे उसमें भी हम प्रमाण नहीं देखते। गयाश्राद्ध फल के लिए सदाचार का अनुसरण करके यदि करते हैं तो मृत आदि के एक ही पार्वण के उद्देश्य से दैवसहित श्राद्ध करना चाहिए। इसमें सपिण्डत्व का आचार भी शोचनीय है।

अथ माघ्यवर्षश्राद्धनिर्णयः

अत्रापरपक्षे सप्तम्यादिदिनत्रये 'माघ्यावर्षश्राद्धं कर्तुं 'पूर्वेद्युः श्राद्धं करिष्ये माघ्यावर्षश्राद्धं करिष्येऽन्वष्टक्यश्राद्धं करिष्ये' इति क्रमेण संकल्पं कृत्वा सर्वोप्यष्टकाविधिराश्वलायनैः कार्यः। इदमाश्वलायनानामष्टकाविकृतिरूपमेकाष्टकाकरणपक्षेपि कार्यम्। इतरशाखिनां त्वष्टकारूपमेवेति पञ्चाष्टकाकरणपक्षेऽष्टकाश्राद्धं करिष्य इति संकल्प्य कार्यम्, एकाष्टकापक्षे तु न कार्यम्।

इस महालय पक्ष में सप्तमी आदि तीन दिनों में, माघी का वर्ष श्राद्ध करने के लिए 'पहले दिन श्राद्ध करूँगा, माघी का वर्षश्राद्ध करूँगा, अन्वष्टका श्राद्ध करूँगा' इस क्रम से संकल्प करके सम्पूर्ण अष्टकाविधि आश्वलायनों को करना चाहिए। यह आश्वलायनों की अष्टका के विकृति रूप

---

१. आश्विनकृष्णाष्टमी में आश्वलायनोक्त-मघावर्षसंज्ञकश्राद्ध—'एतेन माघ्यावर्षं प्रौष्ठपद्या अपरपक्षे।' इसकी नारायणवृत्ति है—'इदं सप्तम्यादिषु त्रिष्वहःसु कार्यम्' इति।

आश्विन कृष्णाष्टमी में महालक्ष्मी का पूजन और व्रत। इसे भाद्रशुक्लाष्टमी से आश्विन कृष्णाष्टमीपर्यन्त करना चाहिये। पुराणसमुच्चये—'श्रियोऽर्चनं भाद्रपदे सिताऽष्टमीं प्रारभ्य कन्यागते च सूर्ये। समापयेत्तत्र तिथौ च यावत् सूर्यस्तु पूर्वार्धगतो युवत्याः॥' यह अष्टमी चन्द्रोदयव्यापिनीग्राह्य है।

दूसरे दिन चन्द्रोदय के बाद तीन मुहूर्त तक यदि अष्टमी हो तो दूसरे ही दिन ग्राह्य है, अन्यथा पूर्व ही दिन। मदनरत्नमें संग्रह—'पूर्वा वा परविद्धा वा ग्राह्या चन्द्रोदये सदा। त्रिमुहूर्ताऽपि सा पूज्या परतश्चोर्ध्वगामिनी॥' तथा—'अर्धरात्रमतिक्रम्य वर्तते योत्तरा तिथिः। तदा तस्यां तिथौ कार्यं महालक्ष्मीव्रतं सदा॥' इति।

भविष्यपुराणे में आश्विनकृष्ण अष्टमी जीवत्पुत्रिका—'इषे मास्यसिते पक्षे चाष्टमी या तिथिर्भवेत्। पुत्रसौभाग्यदा स्त्रीणां ख्याता सा जीवपुत्रिका। शालिवाहनराजस्य पुत्रो जीमूतवाहनः। तस्यां पूज्यः स नारीभिः पुत्रसौभाग्यलिप्सया॥' यह अष्टमी प्रदोषव्यापिनी ग्राह्य है। भविष्यपुराणे—'प्रदोषसमये स्त्रीभिः पूज्यो जीमूतवाहनः। पुष्करिणीं विधायाथ प्राङ्गणे चतुरस्रिकाम्॥' यदि अष्टमी प्रदोष में दो दिन हो तो काल की प्रधानता और नवमी में पारणा के अनुरोध से दूसरे ही दिन व्रत करे।

पूर्व दिन व्रत करने पर अष्टमी में पारणा करनी पड़ेगी, जो दूषित है। अष्टमी के समाप्त होने पर रात्रि में पारणा करनी होगी, रात्रि में पारणा निषिद्ध है इस लिये दो उपवास करना पड़ेगा। यदि अष्टमी पूर्व दिन प्रदोष में रहे, दूसरे दिन न रहे तो विष्णुधर्मोत्तर के वचनानुसार पूर्व दिन ही व्रत करे—'पूर्वेद्युरपरेद्युर्वा प्रदोषे यत्र चाष्टमी। तत्र पूज्यः सदा स्त्रीभी राजा जीमूतवाहनः॥' अष्टमी के समाप्त होने पर पारणा नवमी में करे। भविष्यपुराण में अष्टमी में पारणा का निषेध किया—'आश्विनस्यासिताष्टम्यां याः स्त्रियोऽन्नं च भुञ्जते। मृतवत्सा भवेयुस्ता विधवा दुर्भगा ध्रुवम्॥' विष्णुधर्मोत्तर में नवमी में ही पारणा विहित बतलाया।

दोनों दिन प्रदोष में अष्टमी न हो तो जिस दिन अष्टमी में सूर्य उदित हुये हों उस दिन व्रत करना चाहिये—'लक्ष्मीव्रतं चाभ्युदिते शशाङ्के यत्राष्टमी चाश्विनकृष्णपक्षे। यत्रोदयं वै कुरुते दिनेशस्तदा भवेज्जीवितपुत्रिका सा॥' विहार में इस व्रतको 'जिउतिया' कहते हैं।

एक अष्टका करने के पक्ष में भी करना चाहिए। दूसरी शाखा वालों को तो अष्टकारूप ही है। इस प्रकार पंचाष्टका करने के पक्ष में अष्टका श्राद्ध करूँगा, ऐसा संकल्प करके करना चाहिए। जब एकाष्टका पक्ष हो तो नहीं करना चाहिए।

अथ अन्वष्टक्यादिश्राद्धम्

नवम्यामन्वष्टक्यश्राद्धं[1] नवदैवतं सर्वशाखिभिरष्टम्यामष्टकाश्राद्धाकरणेपि गृह्याग्नौ यथोक्तविधिना कार्यम्। अस्यामन्वष्टक्यस्य मुख्यत्वात्। गृह्याग्निरहितैस्तु येषां पूर्वं माता मृता पश्चात्पिता मृतस्तैर्मृतमातापितृकैः पाणिहोमादिविधिना नवदैवत्यं कार्यम्।

नवमी के दिन नव देवता वाला अन्वष्टका श्राद्ध सब शाखा वाले अष्टमी में अष्टका श्राद्ध करने में भी गृह्य अग्नि में जैसी विधि कही गयी है करना चाहिए, क्योंकि इस दिन अन्वष्टका श्राद्ध मुख्य है। गृह्य अग्नि से रहित व्यक्ति तो पहले जिसकी माता मर गई हो और पिता बाद में मरे हों, ऐसे मृत माता पिता वाले पाणिहोम आदि विधि से नव देवताओं के उद्देश्य से श्राद्ध करें।

जीवत्पितृकेण मृतमातृकेणानुपनीतेनापि मात्रादित्रितयमात्रोद्देशेनैकपार्वणकं पुरूरवार्द्रवदेवसहितं सपिण्डकं श्राद्धं कार्यम्। स्वमातरि जीवन्त्यां मृतसापत्नमात्रादित्रयोद्देशेन कार्यम्। स्वमातृसापत्नमात्रोर्मृतौ द्विवचनप्रयोगेण सापत्नमात्रनेकत्वे च मात्रा सह बहुवचनप्रयोगेण एकस्मिन् विप्रे एक एव क्षणोऽर्घ्यः पिण्डश्चैक एव देयः। पितामहीप्रपितामह्योर्द्वौ विप्रौ पिण्डौ चेत्येवं पार्वणमावश्यकम्।

जिसके पिता जीते हों और माता मर गई हों, ऐसे यज्ञोपवीत रहित को भी माता आदि तीन के उद्देश्य से एक पार्वण पुरूरवा आर्द्रव देवसहित पिण्डश्राद्ध करना चाहिए। अपनी माता जीती हो तो मरी हुई सौतेली माता आदि तीन के उद्देश्य से करना चाहिए। अपनी माता और सौतेली माँ के मरने पर द्विवचन के प्रयोग से अनेक सौतेली माँ के मरने पर माता के साथ बहुवचन के प्रयोग से एक ब्राह्मण में एक ही क्षण अर्घ्य और एक ही पिण्ड देना चाहिए। पितामही प्रपितामही के लिए दो ब्राह्मण, दो पिण्ड, इस प्रकार पार्वण श्राद्ध आवश्यक है।

केचिन्मातृबहुत्वे विप्रपिण्डादिभेदमाहुः। स्वमातृसापत्नमातृजीवने तु गृह्याग्निरहितेन मृतपितृकेणापि न कार्यम्। अन्वष्टक्ये मातृयजनस्य मुख्यत्वादत एवात्र कैश्चिन्मातृपार्वणस्यैव प्राथम्यमुक्तमिति भाति। पूर्वं पितृमृतौ पश्चान्मातृमृतावपि गृह्याग्निमतामस्यां नवम्यामन्वष्टक्यमावश्यकं नित्यत्वात्। अन्येषां पश्चान्मातृमृतौ नावश्यकम्। केचिन्नवम्यां पूर्वमृतमातृश्राद्धं 'मृते भर्तरि लुप्यते' इति वचनप्रामाण्यमाश्रित्य पितृमरणोत्तरं न कुर्वन्ति।

कोई तो बहुत माताओं के होने पर ब्राह्मण और पिण्ड आदि का भेद कहते हैं। अपनी

---

१. कात्यायन—'अन्वष्टकासु नवभिः पिण्डैः श्राद्धमुदाहृतम्। पित्रादिमातृमध्यं च ततो मातामहान्तकम्॥' ब्रह्माण्डपुराणे—'पितॄणां प्रथमं दद्यान्मातॄणां तदनन्तरम्। ततो मातामहानां च अन्वष्टक्ये क्रमः स्मृतः॥' ब्राह्म में तो माता का श्राद्ध आदि में कहा—'अन्वष्टकासु क्रमशो मातृपूर्वं तदिष्यते।' पृथ्वीचन्द्रोदय में इन वचनों के मतभेद की व्यवस्था शाखाभेद और निर्णयदीप में जीवत्पितृविषयक मान कर की है।

माता और सौतेली माता के जीते रहने पर तो गृह्य अग्नि रहित को पिता जिसके मर गये हों उसे नहीं करना चाहिए, क्योंकि अन्वष्टका में मातृपूजन मुख्य है। इसी लिए इस सम्बन्ध में किसी ने मातृपार्वण को भी प्राथम्य कहा है, यही ठीक है। पहले पिता के मरने और पीछे माता के मरने पर भी गृह्य अग्नि वालों को इस नवमी में अन्वष्टका श्राद्ध नित्य होने से आवश्यक है अन्य (गृह्याग्नि-रहित) माता के पीछे मरने पर अन्वष्टका आवश्यक नहीं है। कुछ लोग नवमी में पहले मरी माता का श्राद्ध 'पति के मरने पर नहीं होता' इस आशय के वचन को प्रमाण मानकर पिता के मरने के बाद माता का श्राद्ध नहीं करते हैं।

अथ अविधवानवमीश्राद्धम्

भर्तुरग्रे सह दाहेन वा मृतानां मातामहीभगिनीदुहितृमातृष्वसृपितृष्वस्रादीनामपुत्राणां पितृमात्रादिकुलोत्पन्नानां सर्वासामेव सौभाग्यवतीनामस्यां नवम्यां श्राद्धं कार्यम्। भर्तुरग्रे मृतानां तत्तद्भर्तृमरणोत्तरं च न कार्यम्। अत एवास्या अविधवानवमीत्वप्रसिद्धिः। अतः पत्न्या अपि नवमीश्राद्धं कार्यम्। अस्याविधवानवमीश्राद्धस्य महालयवद्यावद्वृश्चिकदर्शनं गौणकालः। एवं दौहित्रप्रतिपच्छ्राद्धस्यापीति कालतत्त्वविवेचने।

पति के आगे या पति के साथ ही दाह होने पर मरी हुई नानी, बहन, लड़की, मौसी, फुआ आदि के जो पुत्ररहित हैं और जो पिता माता आदि के कुल में उत्पन्न है उन सब सुहागिनों का इसी नवमी में श्राद्ध करना चाहिए। पति के सामने मृत-स्त्रियों का उनके पति के मरने के बाद भी नवमी में श्राद्ध नहीं करना चाहिए। इसी लिए इसका नाम अविधवा नवमी प्रसिद्ध है इसलिये पत्नी का भी नवमी श्राद्ध करना चाहिए। इस अविधवा नवमी श्राद्ध का महालय की तरह वृश्चिक की संक्रान्ति तक गौणकाल कहा है। इसी प्रकार दौहित्र के प्रतिपदा श्राद्ध का भी समय जानना चाहिए, ऐसा कालतत्त्वविवेचन ग्रन्थ में लिखा है।

अथाविधवानवमीश्राद्धे सुवासिनीनां प्रतिसांवत्सरिकश्राद्धादौ च सुवासिनीभोजनमपि कार्यम्।

> भर्तुरग्रे मृता नारी सह दाहेन वा मृता।
> तस्याः स्थाने नियुञ्जीत विप्रैः सह 'सुवासिनीम्॥

इत्यादिमार्कण्डेयवचनात्।

अस्यां नवम्यां पिण्डदानं जीवत्पितृकेणापि गर्भिणीपतिना चापि कार्यम्। नवमीश्राद्धासंभवे 'ममान्वष्टक्याकरणजनितप्रत्यवायपरिहारार्थं शतवारमेभिर्द्युभिः सुमना इति मन्त्रजपं करिष्ये' इति संकल्प्य तज्जपं कुर्यात्। अन्वष्टक्ये सामवेदिभिः पितृपार्वणमेव कार्यं मातृमातामहपार्वणे न कार्ये इति सिन्धुः।

इस अविधवा नवमी श्राद्ध में प्रतिवर्ष श्राद्ध आदि में सौभाग्यवती को भोजन भी कराना चाहिए। पति के रहते जो स्त्री मर गई है या पति के दाह के साथ मर गई है उसके श्राद्ध में ब्राह्मणों के साथ सोहागिन को भी भोजन कराना चाहिए, यह मार्कण्डेय का वचन है। इस नवमी

१. मार्कण्डेयपुराण में इसके पहले का श्लोक है—'मातुः श्राद्धे तु सम्प्राप्ते ब्राह्मणैः सह भोजनम्। सुवासिन्यै प्रदातव्यमिति धातातपोऽब्रवीत्॥' इति।

में जिसके पिता जीते हैं या जिसकी स्त्री गर्भवती है उनको भी पिण्डदान करना चाहिए। नवमी श्राद्ध के न होने पर 'मेरे अन्वष्टका श्राद्ध न करने से जो पाप हुआ है उसके परिहार के लिए 'एभिर्द्युभिः सुमना' इस मन्त्र का जप सौ बार करूँगा' ऐसा संकल्प करके इसका जप करे। अन्वष्टका श्राद्ध में सामवेदी लोग पितृपार्वण ही करें माता और नाना का पार्वण न करें, ऐसा निर्णयसिन्धुकार कहते हैं।

अथात्र द्वादश्यां संन्यासिनां महालयः

स चापराह्णव्यापिन्यामित्युक्तम्। तत्र वैष्णवा अपराह्णव्यापिन्या द्वादश्या एकादशीव्रतदिने सत्त्वे स्वल्पायामपि 'द्वादश्यां शुद्धत्रयोदश्यां वैकादशीपारणादिने एव संन्यासिदैवत्यं श्राद्धं कुर्वन्ति। मम त्वीदृशे विषये वैष्णवैः संन्यासिमहालयो दर्शे कार्य इति भाति।

अपराह्णव्यापिनी द्वादशी में संन्यासियों का महालय कह चुके हैं। उसमें वैष्णव-जन अपराह्णव्यापिनी द्वादशी में यदि उस दिन एकादशीव्रत हो तो थोड़ी भी द्वादशी में या शुद्ध त्रयोदशी में एकादशी पारणा के दिन में ही सन्यासी सम्बन्धी श्राद्ध करे। मुझे तो इस विषय में वैष्णवों को संन्यासी का महालय अमावास्या में करना चाहिये, ऐसा ठीक मालूम होता है।

अथ मघात्रयोदशीश्राद्धम्

अत्र त्रयोदश्यां मघायुतायां केवलायां वा श्राद्धं नित्यम्। केवलमघायामपि श्राद्धं कार्यम्। अत्र श्राद्धविधौ बहुग्रन्थेषु बहवः पक्षाः। अपुत्रेण पुत्रिणा वा गृहिणा सपत्नीकपितृपार्वणमातामहपार्वणाभ्यां पितृव्यभ्रातृमातुलपितृष्वसृमातृष्वसृभगिनीश्वशुरादिपार्वणैश्च सहितमपिण्डकं सांकल्पविधिना श्राद्धं कार्यम्। अथवा पित्रादिपार्वणद्वयं महालयवत् पितृव्याद्येकोद्दिष्टगणांश्चोद्दिश्य सांकल्पविधिना श्राद्धं कार्यम्। यद्वा दर्शवत् षड्दैवतं श्राद्धमपिण्डकं कार्यम्।

मघानक्षत्रयुक्त त्रयोदशी अथवा केवल त्रयोदशी या केवल मघा में भी श्राद्ध करना चाहिए। यह श्राद्ध नित्य है। इस श्राद्ध की विधि में बहुत ग्रन्थों में बहुत पक्ष हैं, यह कहते हैं। जिसको पुत्र नहीं है अथवा पुत्रवान् गृहस्थ को सपत्नीक पितृपार्वण और मातामह पार्वण के साथ चाचा, भाई, मामा, बुआ, मौसी, बहिन, श्वशुर आदि का पार्वण बिना पिण्ड के सांकल्प-विधि से करना चाहिए। अथवा पिता आदि के दो पार्वण महालय की तरह पितृव्य आदि एकोद्दिष्ट गणों के उद्देश्य से सांकल्प विधि से श्राद्ध करना चाहिए या अमावास्या की तरह छ देवता वाला बिना पिण्ड का श्राद्ध करना चाहिए।

अथवा निष्कामेन पुत्रिणा श्राद्धविधिना श्राद्धं नानुष्ठेयं किंतु पित्रादिपार्वणद्वयं केवलं पितृव्यादिसहितं वोद्दिश्य 'एतेषां तृप्त्यर्थं ब्राह्मणभोजनं करिष्ये' इति संकल्प्य पितृरूपिणे ब्राह्मणाय गन्धं समर्पयामीत्येवं पञ्चोपचारान्समर्प्य ब्रह्मार्पणमित्यादि पठित्वानेन ब्राह्मणभोजनेन पित्रादिरूपीश्वरः प्रीयतामित्यन्नमुत्सृज्य पायसादिमधुरान्नेन विप्रान् भोजयित्वा दक्षिणाभिः संतोष्य स्वयं भुञ्जीतेत्येतावदेव कर्तव्यम्।

---

१. पृथ्वीचन्द्रोदये—'यतीनां च वनस्थानां वैष्णवानां विशेषतः। द्वादश्यां विहितं श्राद्धं कृष्णपक्षे विशेषतः॥' इति।

अथवा निष्काम पुत्र वाले को श्राद्ध की विधि से श्राद्ध नहीं करना चाहिए किन्तु पिता आदि के दो पार्वण या केवल पितृव्य आदि के सहित 'इन लोगों की तृप्ति के लिए ब्राह्मणभोजन कराऊँगा' ऐसा संकल्प करके पितृरूपी ब्राह्मण को गन्धसमर्पण करता हूँ इस प्रकार पंचोपचारों का समर्पण कर 'ब्रह्मार्पणम्' इत्यादि पढ़ कर इस ब्राह्मणभोजन से पित्रादि रूपी भगवान् प्रसन्न हों यह कह कर अन्न का त्याग करके खीर आदि मीठे अन्नों से ब्राह्मणों को तृप्त और दक्षिणा से संतुष्ट कर स्वयं भोजन करे। इतना ही कर्तव्य है।

[1]अपुत्रिणः सकामस्य च पिण्डदानरहितश्राद्धविधिना श्राद्धं न दोषाय। क्वचिदपुत्रिणः पिण्डदानमप्युक्तम्। एवमुक्तपक्षेष्वन्यतमपक्षेण मघात्रयोदशीश्राद्धमवश्यानुष्ठेयम्, अकरणे दोषोक्तेर्नित्यत्वात्।

सकाम और पुत्ररहित को भी पिण्डरहित श्राद्ध-विधि से श्राद्ध करने में दोष नहीं है। कहीं पर पुत्ररहित को भी पिण्डदान करना कहा है। इस प्रकार कहे हुए पक्षों में किसी एक पक्ष को लेकर मघा त्रयोदशी का श्राद्ध अवश्य करना चाहिए। इस श्राद्ध के नित्य होने से नहीं करने में दोष कहा है।

अथ गजच्छाया

हस्तनक्षत्रस्थे सूर्ये मघायुता त्रयोदशी [2]गजच्छाया संज्ञिता। अस्यां श्राद्धेन फलभूयस्त्वम्।

हस्तनक्षत्र के सूर्य में मघायुक्त त्रयोदशी का गजच्छाया नाम है। इसमें श्राद्ध करने से विशेष फल होता है।

अथ युगादिप्राप्तौ निर्णयः

अत्र महालयस्य युगादेश्च प्राप्तौ 'मघात्रयोदशीमहालययुगादिश्राद्धानि तन्त्रेण करिष्ये' इति संकल्प्य तन्त्रेण कुर्यात्। न तु दर्शन नित्यश्राद्धस्येव कस्यचित्प्रसङ्गसिद्धिः। अत्रैवं भाति—अङ्गानामैक्यं प्रधानमात्रभेदस्तन्त्रम्। तेन विश्वेदेवपाकाद्यङ्गानामैक्यं विप्रार्घ्यपिण्डादेर्भेद एव। प्रसङ्गसिद्धिस्थले तु प्रधानमपि न

---

१. हेमाद्रौ—'असन्तानस्तु यस्तस्य श्राद्धे प्रोक्ता त्रयोदशी। सन्तानयुक्तो यः कुर्यात्तस्य वंशक्षयो भवेत् ॥' बृहत्पराशरः—'मघायुक्तत्रयोदश्यां पिण्डनिर्वपणं द्विजः। ससन्तानो नैव कुर्यान्नित्यं ते कवयो विदुः ॥' अङ्गिराः—'त्रयोदश्यां कृष्णपक्षे यः श्राद्धं कुरुते नरः। पञ्चत्वं तस्य जानीयाज्ज्येष्ठपुत्रस्य निश्चितम् ॥' इति।

२. कृष्णपक्षकी त्रयोदशी यदि मघानक्षत्र से युक्त हो और हस्तनक्षत्रगत सूर्य हों तो गजच्छाया होती है। वायुपुराणे—'हस्ते सूर्यस्थिते या तु मघायुक्ता त्रयोदशी। तिथिर्वैवस्वती नाम सा छाया कुञ्जरस्य तु ॥' अन्यवचन—'कृष्णपक्षे त्रयोदश्यां मघास्विन्दुः करे रविः। यदा तदा गजच्छाया श्राद्धं पुण्यमवाप्यते ॥' दिन में ही ऐसे योग के पड़ने पर गजच्छाया होती है, रात्रि में पड़ने पर नहीं। महाभारते—'दिवैव योगः शस्तोऽयं न तु रात्रौ कदाचन।' इति। इसमें श्राद्ध करने का महत्त्व है। यथा वायुपुराणे—'अपि नः स कुले भूयाद्यो नो दद्यात् त्रयोदशीम्। पायसं मधुसर्पिर्भ्यां प्राक्छाये कुञ्जरस्य च ॥' शंखः—'प्रौष्ठपद्यामतीतायां मघायुक्तां त्रयोदशीम्। प्राप्य श्राद्धं तु कर्तव्यं मधुना पायसेन च ॥ प्रजामिष्टां यशः स्वर्गमारोग्यं च धनं तथा। नृणां श्राद्धे सदा प्रीताः प्रयच्छन्ति पितामहाः ॥' इति।

भिद्यत इति त्रयोदशीश्राद्धेऽपरपक्षत्वाद् धूरिलोचना विश्वेदेवाः श्राद्धसागरे उक्ताः। अविभक्तैरपि भ्रातृभिर्मघात्रयोदशीश्राद्धं पृथक्कार्यमिति सिन्धुकौस्तुभादौ। विभक्तैरपि सहैवेति श्राद्धसागरे।

महालय में युगादि-तिथियों के पड़ने पर 'मघा त्रयोदशी में महालय युगादि श्राद्धों को तंत्र से करूँगा' ऐसा संकल्प करके तंत्र से करे, न कि अमावस्या से नित्य श्राद्ध की तरह किसी के प्रसंग की सिद्धि होती है। यहाँ पर ऐसा ठीक मालूम होता है कि केवल प्रधान भिन्न हो और अंग एक ही हो उसको तंत्र कहते हैं। इससे विश्वेदेव और पाक आदि अंगों का ऐक्य है। किन्तु ब्राह्मण अर्घ्य और पिण्ड आदि का भेद ही है। प्रसंग-सिद्धि के स्थल में तो प्रधान का भी भेद नहीं होता। त्रयोदशी श्राद्ध में महालय होने से धूरिलोचन विश्वेदेव श्राद्धसागर में कहा है। इकट्ठे भाई लोग भी मघा त्रयोदशी का श्राद्ध अलग-अलग करें, ऐसा निर्णयसिन्धु और कौस्तुभ आदि ग्रन्थों में कहा है। श्राद्धसागर में अलग हुए भाई भी साथ ही करे, ऐसा कहा।

अथ चतुर्दश्यां शस्त्रादिहतश्राद्धम्

अथात्र चतुर्दश्यां पित्रादित्रयमध्ये एकस्यापि [1]शस्त्रविषाग्निजलादिशृङ्गिव्याघ्रसर्पादिनिमित्तेन दुर्मरणेन मृतस्य [2]एकोद्दिष्टविधिना श्राद्धं कार्यम्। पित्रादिद्वयोः शस्त्रादिहतत्वे द्वे एकोद्दिष्टे कार्ये। पित्रादीनां त्रयाणां शस्त्रादिहतत्वे पार्वणमेव कार्यम्। केचिदेकोद्दिष्टत्रयं कार्यमित्याहुः। सहगमने प्रयागादौ च विधिप्राप्तेऽग्निजलादिमरणे चतुर्दशीश्राद्धं न कार्यम्। युद्धप्रायोपवेशनयोर्वैधत्वेपीदं कार्यम्। अत्र शस्त्रादिहतपितृव्यभ्रात्रादेरप्यपुत्रस्यैकोद्दिष्टं कार्यम्। इदं धूरिलोचनसंज्ञकदेवसहितं कार्यम्। अत्र संबंधगोत्रनामाद्युच्चार्य 'अमुकनिमित्तेन मृतस्य चतुर्दशीनिमित्तमेकोद्दिष्टं श्राद्धं सदैवं सपिण्डं करिष्ये' इति संकल्प्य प्रत्येकोद्दिष्टमेकार्घ्यैकपवित्रमेकपिण्डयुतं श्राद्धं कार्यम्।

इस चतुर्दशी में पिता आदि तीन में से एक का भी शस्त्र, विष, अग्नि, जल, सींग वाले पशु, बाघ, सर्प आदि के द्वारा दुर्मरण हुआ हो तो एकोद्दिष्ट-विधि से श्राद्ध करना चाहिए। पिता आदि दो के शस्त्रादि से मरने पर दोनों का दो एकोद्दिष्ट करना चाहिए। पिता आदि तीन के शस्त्र आदि से मरने पर पार्वण ही करना चाहिए। कुछ लोग तो तीन एकोद्दिष्ट करने को कहते हैं। पति पत्नी के एक चिता पर मरने पर प्रयाग आदि में वैध अग्नि जल आदि से मरने पर चतुर्दशी

---

१. प्रचेताः—'वृक्षारोहणलोहाद्यैर्विद्युज्जलविषाग्निभिः। नखिदंष्ट्रिविपन्ना ये तेषां शस्ता चतुर्दशी॥' ब्राह्मे—'युवानः पितरो यस्य मृताः शस्त्रेण वा हताः। तेन कार्यं चतुर्दश्यां तेषां तृप्तिमभीप्सता॥' नागरखण्डे—'अपमृत्युर्भवेद्येषां शस्त्रमृत्युरथापि वा। श्राद्धं तेषां प्रकर्तव्यं चतुर्दश्यां नराधिप॥' इति।

२. भविष्यपुराणे—'समत्वमागतस्यापि पितुः शस्त्रहतस्य च। चतुर्दश्यां तु कर्तव्यमेकोद्दिष्टं महालये॥ चतुर्दश्यां तु यच्छ्राद्धं सपिण्डीकरणे कृते। एकोद्दिष्टविधानेन तत्कार्यं शस्त्रघातिनः॥ प्रयोगपारिजात में इस एकोद्दिष्ट को विश्वेदेवयुक्त करने का निर्देश किया—'प्रेतपक्षे चतुर्दश्यामेकोद्दिष्टं विधानतः। दैवयुक्तं तु तच्छ्राद्धं पितृणामक्षयं भवेत्॥ तच्छ्राद्धं दैवहीनं चेत्पुत्रदारधनक्षयः। एकोद्दिष्टं दैवयुक्तमित्येवं मनुरब्रवीत्॥' संवत्सरप्रदीप में हारीत—'विश्वेदेवांश्च तत्रापि पूजयेदवादितोऽमरान्। ये वै शस्त्रहतास्तेषां श्राद्धं कुर्यादतन्द्रितः॥' इति।'

श्राद्ध नहीं करना चाहिए। युद्ध में और उपवास के द्वारा मरने पर वैध होने पर भी चतुर्दशी श्राद्ध करे। अपुत्र चचेरे भाई आदि का शस्त्र आदि से मरने पर एकोद्दिष्ट करे। यह श्राद्ध धूरिलोचन नामक देवता के सहित करे। इसमें सम्बन्ध गोत्र और नामादि का उच्चारण करके 'अमुक 'निमित्त से मरे का चतुर्दशीनिमित्तक एकोद्दिष्ट श्राद्ध देवता के सहित और पिण्ड के सहित करूँगा' ऐसा संकल्प करके प्रत्येक एकोद्दिष्ट एक अर्घ्य एक पवित्र और एक पिण्ड से युक्त श्राद्ध करना चाहिए।

पित्रादेर्भ्रात्रादेश्च शस्त्रहतत्वे पृथक्पाकादिना महालयवत् सह तन्त्रेण वैकोद्दिष्टद्वयादि। एवं चतुर्दश्यामेकोद्दिष्टं कृत्वा पित्रादिसर्वपितृगणोद्देशेन सकृन्महालयस्तिथ्यन्तरेऽवश्यं कार्यः। अस्यां चतुर्दश्यां यदि शस्त्रादिमृतयोर्मातापित्रोर्मृताहस्तदा चतुर्दशीनिमित्तमेकोद्दिष्टं कृत्वा पुनस्तदैव मृतादित्रयोद्देशेन सांवत्सरिकं पार्वणविधिना कार्यमिति श्राद्धसागरे।

पिता आदि और भाई आदि भी शस्त्र से मरे हों तो अलग पाक आदि के द्वारा महालय की तरह तंत्र से या दो एकोद्दिष्ट करे। इसी प्रकार चतुर्दशी में एकोद्दिष्ट करके पिता आदि सब पितरों के उद्देश्य से एक बार महालय के पक्ष को दूसरी तिथि में अवश्य करना चाहिए। श्राद्धसागर में लिखा है कि इस चतुर्दशी में जब शस्त्रादि से मरे हुए माता पिता की मृत तिथि पड़े तो चतुर्दशी के निमित्त एकोद्दिष्ट करके फिर उसी समय मृत आदि तीन के उद्देश्य से वार्षिक श्राद्ध पार्वण विधि से करे।

कौस्तुभादौ तु सांवत्सरिकपार्वणेनैव चतुर्दशीश्राद्धसिद्धिर्न पृथक्कार्यमित्युक्तम्। दिनान्तरे च सकृन्महालयः कार्यः। अत्र चतुर्दशीश्राद्धस्य कथंचिद्विघ्ने तु अत्रैव पक्षेऽग्रिमपक्षे वा दिनान्तरे तत्पार्वणविधिनैव कार्यं न त्वेकोद्दिष्टम्। अत्रैकोद्दिष्टेऽपराह्णव्यापिन्येव चतुर्दशी ग्राह्या न त्वितरैकोद्दिष्टतिथिवन्मध्याह्नव्यापिनीति कौस्तुभे।

कौस्तुभ आदि में तो वार्षिक पार्वण से ही चतुर्दशी श्राद्ध हो जाता है। इस लिए पृथक् नहीं करे। और दूसरे दिन एक बार का महालय करना चाहिए। इसमें चतुर्दशी में किसी तरह विघ्न हो जाने पर इसी पक्ष में श्राद्ध या दूसरे दिन उसको पार्वण की श्राद्ध-विधि से ही करे, न कि एकोद्दिष्ट से। इसमें इस एकोद्दिष्ट में अपराह्न में रहने वाली चतुर्दशी का ग्रहण करना चाहिए, न कि एकोद्दिष्ट तिथि की तरह मध्याह्नव्यापिनी, ऐसा कौस्तुभ में लिखा है।

अथ अमायां गजच्छाया

हस्तनक्षत्रे सूर्ये सति चान्द्रहस्तनक्षत्रयुतामावास्या [1]गजच्छाया। तस्यां श्राद्धदानादि कार्यम्। इत्यमायां गजच्छाया।

हस्तनक्षत्र के सूर्य के रहते चान्द्र-हस्त-नक्षत्र से युक्त अमावास्या का नाम गजच्छाया है। उस दिन श्राद्ध और दान आदि करना चाहिए। यह अमावास्या की गजच्छाया है।

---

१. यमः—'हंसे करस्थिते या तु अमावास्या करान्विता। सा ज्ञेया कुञ्जरच्छाया इति बौधायनोऽब्रवीत्॥ वनस्पतिगते सोमे छाया या प्राङ्मुखी भवेत्। गजच्छाया तु सा प्रोक्ता तस्यां श्राद्धं प्रकल्पयेत्॥' इति। इसके पूर्व मघात्रयोदशी श्राद्ध में लिखित गजच्छाया योग को देखें।

अथ दौहित्रप्रतिपच्छ्राद्धम्

आश्विनशुक्लप्रतिपदि[1] दौहित्रेणानुपनीतेनापि सपत्नीकमातामहस्य पार्वणं मातुले सत्यपि अवश्यं कार्यम्। मातामहीसत्त्वे केवलमातामहपार्वणम्। इदं जीवत्पितृकेणापि कार्यम्। इदं सपिण्डकमपिण्डकं[2] वा। अत्र पुरूरवार्द्रवसंज्ञका विश्वेदेवाः धूरिलोचना इति केचित्। इयं प्रतिपदपराह्णव्यापिनी ग्राह्येति बहवः। संगवव्यापिनीति केचित्। अस्य श्राद्धस्य यावद्वृश्चिकदर्शनं गौणकाल इति कालतत्त्वविवेचने। इति महालयादिनिर्णयोद्देशः।

आश्विनशुक्ल प्रतिपदा में विना यज्ञोपवीत के, लड़की के लड़के द्वारा नानी-नाना-सहित का पार्वण, मामा के रहते हुए भी अवश्य करना चाहिए। नानी के रहने पर केवल नाना का पार्वण श्राद्ध करे। यह श्राद्ध जिसके पिता जीते हों उसको भी करना चाहिए। यह पिण्ड के साथ या पिण्ड के विना भी होता है। इसमें पुरूरवा और आर्द्रव नामक विश्वेदेवा होते हैं। कोई धूरिलोचन देवता भी कहते हैं। यह प्रतिपदा अपराह्णव्यापिनी ग्राह्य है, ऐसा बहुत से लोग कहते है। कोई संगवव्यापिनी कहते हैं। इस श्राद्ध का वृश्चिक के संक्रान्तिपर्यन्त गौणकाल है, ऐसा कालतत्त्व-विवेचन में लिखा है। महालयादिनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ कपिलाषष्ठीनिर्णयः

भाद्रपदकृष्णपक्षे भौमवारव्यतीपातरोहिणीयुता षष्ठी [3]कपिलाषष्ठी। अत्र हस्तस्थे सूर्ये फलातिशयः। अयं योगो दिवैव ग्राह्यो न रात्रौ सूर्यपर्वत्वादिति भाति। 'अस्यां हुतं च दत्तं च सर्वं कोटिगुणं भवेत्।' अत्र श्राद्धं कार्यमिति विशेषवचनं नोपलभ्यते तथापि अलभ्ययोगे श्राद्धविधानाद्दर्शवत् षड्दैवतं कार्यम्।

भाद्रपद कृष्णपक्ष में मंगलवार व्यतिपात और रोहिणीनक्षत्र से युक्त षष्ठी को कपिला षष्ठी कहते हैं। इसमें हस्त के सूर्य होने पर अधिक फल होता है। यह पूर्वोक्त योग दिन ही में

---

१. निर्णयदीपे—'प्रतिपद्याश्विने शुक्ले दौहित्रस्त्वेकपार्वणम्। श्राद्धं मातामहं कुर्यात् सपिता संगवे सदा॥ जातमात्रोऽपि दौहित्रो जीवत्यपि च मातुले। प्रातःसंगवयोर्मध्ये आर्यस्य प्रतिपद् भवेत्॥' हेमाद्रौ—'जातमात्रोऽपि दौहित्रो विद्यमानेऽपि मातुले। कुर्यान्मातामहश्राद्धं प्रतिपद्याश्विने सिते॥' प्रातःस्नान के तीन मुहूर्त बाद का समय जो दिन के पाँच भागों में से दूसरा है उसे संगव कहते हैं।

२. जीवत्पितृक को पिण्डरहित श्राद्ध करना ही उचित है, क्योंकि दक्ष ने उसे पिण्डदान करना निषिद्ध कहा—'मुण्डनं पिण्डदानं च प्रेतकर्म च सर्वशः। न जीवत्पितृकः कुर्याद् गुर्विणीपतिरेव च॥'

३. योगविशेष से यह षष्ठी कपिलाषष्ठी है। पुराणसमुच्चये—'भाद्रमास्यसिते पक्षे भानौ चैव करे स्थिते। पाते कुजे च रोहिण्यां सा षष्ठी कपिला भवेत्॥' यहाँ भाद्रपद कृष्णपक्ष का उल्लेख शुक्लप्रतिपदा से अमान्तमास मानकर यह आश्विनकृष्ण षष्ठी ही हुई। वाराहपुराणे—'नभस्यकृष्णपक्षे तु रोहिणीपातभूसुतैः। युक्ता षष्ठी पुराणज्ञैः कपिला परिकीर्तिता॥ व्रतोपवासनियमैर्भास्करं तत्र पूजयेत्। कपिलां च द्विजाग्र्याय दत्वा क्रतुफलं लभेत्॥' इति।

अत्र निर्णयसिन्धौ—'इयमेव चन्द्रषष्ठी। सा चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्या। उभयत्र तथात्वे पूर्वा। तदुक्तं भविष्ये—'तद्वद् भाद्रपदे मासि षष्ठ्यां पक्षे सितेतरे। चन्द्रषष्ठीव्रतं कुर्यात् पूर्वविद्धः प्रशस्यते॥ चन्द्रोदये यदा षष्ठी पूर्वाह्णे चापरेऽहनि। चन्द्रषष्ठ्यसिते पक्षे सैवोपोष्या प्रयत्नतः॥' इति विशेष उक्तः।

ग्रहण करने योग्य है न कि रात्रि में, क्योंकि यह सूर्यपर्व है यह युक्त प्रतीत होता है। कपिला षष्ठी में होम और दान करने से कोटि-गुण-फल होता है। इसमें श्राद्ध करना चाहिए ऐसा विशेष वचन नहीं मिलता तथापि अलभ्य योग में श्राद्ध के विधान होने से अमावास्या की तरह षड्दैवत श्राद्ध करना चाहिए।

अथात्र संक्षेपतो व्रतविधिः

सूर्योद्देशेनोपवासं संकल्प्य देवदारूशीरकुंकुमैलामनःशिलापद्मकाष्ठतण्डुलान् मधुगव्याभ्यां पेषयित्वा क्षीरालोडितेन कल्केनाङ्गं विलिप्य स्नायात्। तत्र मन्त्रः—

आपस्त्वमसि देवेश ज्योतिषां पतिरेव च।
पापं नाशय मे देव वाङ्मनःकायकर्मजम्॥

सूर्य के उद्देश्य से उपवास का संकल्प करके देवदारु, खश, रोरी, इलायची, मैनसिल, पद्मकाष्ठ और चावलको मधु तथा गाय के घी से पीस करके दूध से आलोडित-कल्क से शरीर में लेप करके स्नान करे। इसका मंत्रार्थ यह है—हे देवेश ! हे ज्योतियों के पति ! आप जल-रूप हैं। मेरे वाणी मन और शरीर से जो पाप हुये हों उनका नाश करें।

ततः पञ्चगव्येन स्नात्वा पञ्चपल्लवैर्मार्जयित्वा मृत्तिकास्नानं कुर्यात्। तर्पणादि नित्यविधिं कृत्वा वरुणं पूजयित्वा सर्वतोभद्रमध्ये कलशोपरि तण्डुलादौ पद्मं लिखित्वा तस्याष्टसु पत्रेषु पूर्वादौ सूर्यं तपनं स्वर्णरेतसं रविमादित्यं दिवाकरं प्रभाकरं सूर्यमित्यावाह्य मध्ये सौवर्णरथे सूर्यमग्रेऽरुणं चावाह्य करवीरार्कादि-पुष्पैर्धूपादिभिः संपूजयेत्। दिक्पालादिदेवताः संपूज्य द्वादशार्घ्यान्सूर्याय दद्यात्। सविस्तरः पूजाविधिर्द्वादशार्घ्यमन्त्राश्च कौस्तुभे ज्ञेयाः। सूर्याग्रे—

प्रभाकर नमस्तुभ्यं संसारान्मां समुद्धर।
भुक्तिमुक्तिप्रदो यस्मात्तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे॥
नमो नमस्ते वरद ऋक्सामयजुषां पते।
नमोस्तु विश्वरूपाय विश्वधात्रे नमोस्तु ते॥

इसके बाद पंचगव्य से नहाकर पंचपल्लवों से मार्जन करके मिट्टी से स्नान करे। तर्पण आदि नित्य विधि करके वरुण का पूजन कर सर्वतोभद्र के बीच में कलश के ऊपर चावल आदि से कमल बनाकर उसके आठों पत्तों में पूर्व में आदित्य दिवाकर प्रभाकर और सूर्य को आवाहन करके बीच में सोने के रथ पर सूर्य के आगे अरुण को भी आवाहन कर करवीर आक आदि के फूलों और धूप आदि से पूजन करे। दिक्पाल आदि देवताओं की पूजा कर बारह अर्घ्य सूर्य को देवे। विस्तार पूर्वक पूजा आदि की विधि और बारह सूर्यार्घ्य के मंत्र भी कौस्तुभ-ग्रन्थ से जानना चाहिए। सूर्य के आगे हे प्रभाकर ! आपको नमस्कार है। संसार से मेरा उद्धार कीजिये, जिस लिए कि आप भुक्ति और मुक्ति देने वाले हैं इस लिए हमें शान्ति प्रदान करें। हे वर देने वाले ! ऋग्वेद सामवेद और यजुर्वेद के पति ! आप को बार बार नमस्कार है। विश्व के धारण करने वाले ! आपको नमस्कार है।

इति प्रार्थ्य उदुत्यमित्यादिसौरसूक्तानि जपित्वा रात्रौ जागरणं कृत्वा प्रातराकृष्णेनेति मन्त्रेणार्कसमिच्चर्वाज्यतिलैः प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशतं हुत्वा घण्टादि-

सर्वालंकारयुतां कपिलां गां मन्त्रैः संपूज्य विप्राय दद्यात्। गोपूजामन्त्राः कौस्तुभे। दानमन्त्रस्तु—

नमस्ते कपिले देवि सर्वँपापप्रणाशिनि।
संसारार्णवमग्नं मां गोमातस्त्रातुमर्हसि॥

वस्त्रयुगच्छन्नां सघण्टामित्यादिविशेषणान्युक्त्वा 'इमां गां तुभ्यमहं संप्रददे' इति दत्त्वा सुवर्णदक्षिणां दद्यात्। ततस्तस्मै विप्राय रथं सूर्यप्रतिमां च दद्यात्। तत्र मन्त्रः—

दिव्यमूर्तिर्जगच्चक्षुर्द्वादशात्मा दिवाकरः।
कपिलासहितो देवो मम मुक्तिं प्रयच्छतु॥
यथा त्वं कपिले पुण्या सर्वलोकस्य पावनी।
प्रदत्ता सह सूर्येण मम मुक्तिप्रदा भव॥ इत्यादि।

ऐसी प्रार्थनाकर 'उदुत्यम्' इत्यादि सूर्य के सूक्तों को जप कर रात्रि में जागरण करके प्रातः-काल 'आकृष्णेन' इत्यादि मंत्र से आक की समिधा और घी तेल से प्रत्येक द्रव्य का एक सौ आठ होम करके घंटा आदि संपूर्ण अलंकारोंसे युक्त कपिला गौ का मंत्रोंसे पूजन कर उसे ब्राह्मण को दे दे। गो-पूजा के मंत्र कौस्तुभमें लिखे हैं। दान के मंत्र का भाव तो यह है—हे कपिले देवि! पापों को नाश करने वाली आप को नमस्कार है। संसार-समुद्र में डूबे हुए मुझको हे गो-माता! आप रक्षा करने के योग्य हैं। दो वस्त्रों से ढकी हुई घंटा आदि विशेषणों को कहकर 'इस गौ को आप को मैं देता हूँ' ऐसा संकल्प कहकर गौ देकर सोने की दक्षिणा देवे। इसके बाद उस ब्राह्मण को रथ और सूर्य की प्रतिमा भी देवे। उसमें मंत्र यह है—हे दिव्य-मूर्ति! हे जगत् के नेत्र! हे द्वादशात्मा दिवाकर! कपिला के सहित मुझे मुक्ति दें हे कपिले! जैसे तुम पुण्यप्रदा और सब लोगों को पवित्र करने वाली हो सूर्य के सहित तुम्हारे दान से मुझे मुक्ति देने वाली हो, इत्यादि।

ततः कपिलाप्रार्थनादिविस्तारः कौस्तुभे। अथवोपोषणजागरहोमादिविधिम-कृत्वा षष्ठ्यामेव स्नानरथादिपूजनकपिलादानादि कार्यम्। इति संक्षेपतः कपिला-षष्ठीव्रतविधिः। इति भाद्रपदमासकृत्यनिर्णयोद्देशः।

तदनन्तर कपिलाके प्रार्थनादिका विस्तार कौस्तुभ ग्रन्थ से जानना चाहिए। अथवा उपवास जागरण और होम आदि विधि न करके भी षष्ठी में ही स्तन रथ आदि का पूजन और कपिला का दान आदि करना चाहिए। यह संक्षेप से कपिलाषष्ठीव्रत की विधि है। भाद्रपदमासकृत्य-निर्णयोद्देश समाप्त।

अथाश्विनकृत्ये तुलासंक्रान्तिः

तुलामेषसंक्रान्तिर्विषुवसंज्ञा। तस्याः पूर्वाः पराश्च पञ्चदशपञ्चदश नाड्यः पुण्य[illegible]लः। विशेषः प्रागुक्त एव।

तुला और मेष की संक्रान्ति का नाम विषुव है। उसकी पहली और बाद की पन्द्रह-पन्द्रह [illegible]ड़ियाँ पुण्यकाल है। विशेष पहले कहा ही है।

अथ देवोनवरात्रारम्भः

आश्विनशुक्लप्रतिपदि देवीनवरात्रारम्भः[१]। नवरात्रशब्दः आश्विनशुक्लप्रतिपदमारभ्य महानवमीपर्यन्तं क्रियमाणकर्मनामधेयम्। तत्र कर्मणि पूजैव प्रधानम् उपवासादिकं स्तोत्रजपादिकं चांगम्। तथा च यथाकुलाचारमुपवासैकभक्तनक्तायाचितान्यतमव्रतयुक्तं यथाकुलाचारं [२]सप्तशतीलक्ष्मीहृदयादिस्तोत्रजपसहितं प्रतिपदादिनवम्यन्तनवतिथ्यधिकरणकपूजाख्यं कर्म नवरात्रशब्दवाच्यम्। पूजाप्राधान्योक्तेरेव क्वचित्कुले जपोपवासादिनियमस्य व्यतिरेक उपलभ्यते। पूजायास्तु न क्वापि कुले नवरात्रकर्मण्यभावो दृश्यते। यत्कुले नवरात्रमेव नानुष्ठीयते तत्र नवरात्रपूजादेरप्यभाव आस्तां नाम।

आश्विनशुक्ल प्रतिपदा में देवी का नवरात्र आरम्भ होता है। नवरात्रशब्द आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से आरम्भ कर महानवमी तक किये जाने वाले कर्म का नाम है। उस कर्म में पूजा ही प्रधान है। उपवास आदि स्तोत्र जप आदि उसके अंग हैं। अपने कुलाचार के अनुसार उपवास, एकभक्त, नक्त और अयाचित में से किसी एक का व्रत से युक्त कुलाचार के अनुसार सप्तशती, लक्ष्मीहृदय आदि स्तोत्र के जपके साथ प्रतिपदा से आरम्भ करके नवमी के अन्त तक नव तिथियों में पूजनरूप कर्म को नवरात्र कहते हैं। इसमें पूजा ही को प्रधान कहा है। किसी कुल में जप और उपवास

---

१. मार्कण्डेयपुराण में नवरात्र—'शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी। वसन्तकाले सा प्रोक्ता कार्या सर्वैः शुभार्थिभिः॥'

ज्योतिष में देवी के आगमन के यान का विचार—'शशिसूर्ये गजारूढा शनिभौमे तुरङ्गमा। गुरौ शुक्रे च दोलायां बुधे नौका प्रकीर्तिता।' इसका फल—'गजे च जलदा देवी छत्रभङ्गस्तुरङ्गमे। नौकायां सर्वसिद्धिः स्याद् दोलायां मरणं ध्रुवम्॥ इस उत्तरार्ध का कहीं 'दोलायां बहुसस्यानि नौकायां मरणं ध्रुवम्' ऐसा पाठान्तर है।

विजयादशमी में देवी के यान का फल—'शशिसूर्यदिने यदि सा विजया महिषागमने रुजदैवकरी। शनिभौमदिने यदि सा विजया चरणायुधयानकरी विकला। बुधशुक्रदिने यदि सा विजया गजवाहनदैविसुवृष्टिकरी। सुरराजगुरौ यदि सा विजया नरवाहनदैविकरी शुभदा॥' इति।

२. आदिपद से श्रीदेवीभागवतादिका पाठ भी ग्राह्य है। देवीभागवत पारायण पाठ की नवाहविधि यों है—प्रथम दिन-३५ अध्याय आरम्भ से तृतीयस्कन्ध के तृतीयाध्यायपर्यन्त, द्वि० दिन-३५अ०, चतुर्थाध्याय के अष्टमाध्यायपर्यन्त, तृ दि०-३५ अ० पंचमस्कन्धके १८ अध्यायपर्यन्त, च० दि०—३५अ०, षष्ठमस्कन्ध के १८ अध्यायपर्यन्त, पं० दि०-३१ अ०, सप्तमस्कन्ध के १८ अध्यायपर्यन्त, ष० दि०-३९ अ०, अष्टमस्कन्ध के १७ अध्यायपर्यन्त, स० दि०-३५ अ०, नवमस्कन्ध के २८ अध्यायपर्यन्त, अ० दि०-३५अ०, दशमस्कन्धके १३ अध्यायपर्यन्त, न० दि०-३८ अ०, दशमस्कन्धके १४ अध्याय से द्वादशस्कन्धके समाप्तिपर्यन्त।

देवीपुराणे—'कन्यासंस्थे रवौ शक्र शुक्लामारभ्य नन्दिकाम्। अयाची ह्यथवैकाशी नक्ताशी वाथवाऽब्वदः। भूमौ शयीत चामन्त्र्य कुमारीर्भोजयेन्मुदा। वस्त्रालङ्कारदानैश्च सन्तोष्याः प्रतिवासरम्॥ बलिं च प्रत्यहं दद्यादोदनं मांसमाषवत्। त्रिकालं पूजयेद्देवीं जपस्तोत्रपरायणः॥' रुद्रयामले—'स्नानं माङ्गलिकं कृत्वा ततो देवीं प्रपूजयेत्। शुभाभिर्मृत्तिकाभिश्च पूर्वं कृत्वा तु वेदिकाम्॥ यवान् वै वापयेत्तत्र विधिना मन्त्रपूर्वकम्। सौवर्णं राजतं वापि ताम्रं मृन्मयजं तु वा॥' मत्स्यपुराण में रात्रि में कलशस्थापन का निषेध—'न रात्रौ स्थापनं कार्यं न च कुम्भाभिषेचनम्।' इति।

आदि नियम का आधिक्य उपलब्ध होता है। पूजा का तो किसी भी कुल में नवरात्रकर्म में अभाव नहीं दिखाई देता। जिस कुल में नवरात्र का अनुष्ठान नहीं होता उसमें नवरात्र आदि के पूजा का अभाव भी हो सकता है।

अथ नवरात्रारम्भनिर्णयः

स च नवरात्रारम्भः सूर्योदयोत्तरं त्रिमुहूर्तव्यापिन्यां प्रतिपदि कार्यः। तदभावे द्विमुहूर्तव्यापिन्यामपि। क्वचिन्मुहूर्तमात्रव्यापिन्यामप्युक्तः। सर्वथा दर्शयुक्तप्रतिपदि न कार्यं इति [1]बहुग्रन्थसंमतम्। मुहूर्तन्यूनव्याप्तौ सूर्योदयास्पर्शे वा दर्शयुतापि ग्राह्या। प्रथमदिने षष्टिघटिका प्रतिपद् द्वितीयदिने मुहूर्तद्वयादिपरिमिता वर्धते तदा पूर्णत्वात्पूर्वैव ग्राह्या। द्वितीयावेधनिषेधोपि एतत्पक्षद्वये एव योज्यः।

नवरात्र का आरम्भ सूर्योदय के बाद तीन मुहूर्त रहने वाली प्रतिपदा में करना चाहिए। ऐसा न मिलने पर दो मुहूर्त रहने वाली प्रतिपदा में भी होता है। कहीं पर तो मुहूर्तमात्रव्यापिनी में भी कहा है। सब प्रकार से अमावास्यायुक्त प्रतिपदा में नवरात्रारम्भ नहीं करे। यह बहुत ग्रन्थों से सम्मत है। मुहूर्त से कम रहने वाली प्रतिपदा में अथवा सूर्योदय के स्पर्श न होने पर अमावास्यायुक्त प्रतिपदा भी ग्रहण योग्य होती है। पहले दिन साठ घड़ी प्रतिपदा हो और दूसरे दिन दो मुहूर्त आदि हो तब पूर्ण होने से पहले ही दिन ग्राह्य है। इन दोनों पक्षों में द्वितीयावेध का निषेध भी जोड़ना चाहिए।

पुरुषार्थचिन्तामणौ तु पूर्वदिने मुहूर्तचतुष्टयोत्तरं मुहूर्तपञ्चकोत्तरं वा प्रवृत्ता द्वितीयदिने मुहूर्तद्वयादिपरिमिता प्रतिपत् तदा परस्याः क्षयगामितया निषिद्धत्वादमायुक्तापि पूर्वैव ग्राह्येत्युक्तम्। तत्र सूर्योदयोत्तरं दशघटीमध्ये तत्रासंभवे मध्याह्नेऽभिजिन्मुहूर्ते प्रारम्भः कार्यो न त्वपराह्णे। एवं च प्रतिपद आद्यषोडशनाडीनिषेधश्चित्रावैधृतियोगनिषेधश्चोक्तकालानुरोधेन सति संभवे पालनीयो न तु निषेधानुरोधेन पूर्वाह्णः प्रारम्भकालः प्रतिपत्तिथिर्वाऽतिक्रमणीयः।

पुरुषार्थचिन्तामणि में तो पहले दिन चार मुहूर्त के बाद या पांच मुहूर्त के बाद और दूसरे दिन दो मुहूर्त आदि रहने वाली प्रतिपदा हो तब दूसरी के क्षयके कारण निषेध होने से अमावास्यायुक्ता भी पहली ही प्रतिपदा ग्राह्य है, ऐसा कहा है। उसमें सूर्योदय के बाद

---

१. देवीपुराण में देवी का वचन—'अमायुक्ता न कर्तव्या प्रतिपत्पूजने मम। मुहूर्तमात्रा कर्तव्या द्वितीयादिगुणान्विता ॥ आद्याः षोडश नाडीस्तु लब्ध्वा यः कुरुते नरः। कलशस्थापनं तत्र ह्यरिष्टं जायते ध्रुवम् ॥' देवीपुराणे—'अमायुक्ता न कर्तव्या प्रतिपच्चण्डिकाऽर्चने। धनार्थिभिविशेषेण वंशहानिश्च जायते ॥ न दर्शकलया युक्ता प्रतिपच्चण्डिकाऽर्चने। उदये त्रिमुहूर्ताऽपि ग्राह्या सोदयदायिनी ॥' रुद्रयामले—'अमायुक्ता सदा चैत्र प्रतिपन्निन्दिता मता। तत्र चेत्स्थापयेत्कुम्भं दुर्भिक्षं जायते ध्रुवम्। प्रतिपत् सद्द्वितीया तु कुम्भारोपणकर्मणि ॥' कात्यायनः—'प्रतिपद्याश्विने मासि भवेद् वैधृतिचित्रयोः। आद्यपादौ परित्यज्य प्रारभेन्नवरात्रकम् ॥' भविष्ये—'चित्रावैधृतिसम्पूर्णा प्रतिपच्चेद् भवेन्नृप। त्याज्या ह्यंशास्त्रयस्त्वाद्यास्तुरीयांशे तु पूजनम् ॥' रुद्रयामले—वैधृतौ पुत्रनाशः स्याच्चित्रायां धननाशनम्। तस्मान्न स्थापयेत् कुम्भं चित्रायां वैधृतौ तथा ॥ सम्पूर्णा प्रतिपदेव चित्रायुक्ता यदा भवेत्। वैधृत्या वापि युक्ता स्यात्तदा मध्यं दिने रवौ ॥ अभिजित्तु मुहूर्तं यत्तत्र स्थापनमिष्यते।' इति।

दस घड़ी के मध्य में उसमें न होने पर मध्याह्न में अभिजित् मुहूर्त में नवरात्र का प्रारम्भ करना चाहिए, अपराह्न में नहीं। इस प्रकार प्रतिपदा के आरम्भ की सोलह घड़ी और चित्रा-वैधृति-योग का निषेध पूर्वोक्त काल के अनुरोध से सम्भव हो तो उसका पालन करे, निषेध के अनुरोध से नहीं। प्रारम्भ का समय पूर्वाह्न है भले ही प्रतिपदा तिथि का अतिक्रमण हो जाय।

अथ पूजाद्यधिकारनिर्णयः

अत्र कर्मणि ब्राह्मणादिचतुर्वर्णस्य [1]म्लेच्छादेश्चाधिकारः। तत्र विप्रेण जपहोमान्नबलिनैवेद्यैः सात्त्विकी पूजा कार्या। 'नैवेद्यैश्च निरामिषैः। मद्यं दत्त्वा ब्राह्मणस्तु ब्राह्मण्यादेव हीयते। मद्यमपेयमदेयम्' इत्यादिनिषेधान्मांसमद्यादियुतराजसपूजायां ब्राह्मणस्य नाधिकारः। मद्यपाने मरणान्तप्रायश्चित्तोक्तेः। स्पर्शे तदङ्गच्छेदोक्तेश्चाल्पप्रायश्चित्तेन दोषानपगमेन पातित्यापातात्। इत्थमेव सर्वे प्राचीना नवीनाश्च निबन्धकारा निर्बन्धेन लिखन्ति।

इस कर्म में ब्राह्मण आदि चारो वर्णों और म्लेच्छ आदि का भी अधिकार है। उसमें ब्राह्मणों को जप, होम, अन्न, बलि, नैवेद्य से पूजा और निरामिष नैवेद्य से सात्विकी पूजा करनी चाहिए। मांस मद्य आदि से युक्त राजसी पूजा करे तो ब्राह्मणत्व से हीन हो जाता है। 'ब्राह्मणों के लिए मद्य अपेय और अदेय है' इत्यादि निषेध से मांस मद्य आदि से युक्त राजसी पूजा में ब्राह्मण का अधिकार नहीं है। मद्य पीने पर ब्राह्मण का मरणान्त प्रायश्चित्त कहा है। मद्य का जिस अंग से स्पर्श हो उस अंग को काट देना कहा है। इस प्रकार थोड़े प्रायश्चित्त से दोष के नहीं हटने पर पातित्य आता है। ऐसा ही सभी प्राचीन और नवीन निबन्धकारों ने लिखा है।

नवीनतरा भास्कररायप्रभृतयोपि सप्तशतीटीकादौ प्राचीनग्रन्थानुसृत्यैवमेव परिष्कुर्वन्ति सभायां चैतन्मतमेव श्लाघन्ते च आचरणं त्वन्यथा कुर्वन्ति। तत्किं स्वयं दुर्दैववशेन ब्राह्मण्यभ्रष्टोभूवमन्येप्येवं माभूवन्निति भूतदयया वा स्वपातित्यगोपनाय वान्येषां कलियुगस्थविप्राणामधिकाराभावालोचनया वेति न वयं तत्त्वं जानीमः।

सबसे नवीन भास्करराय आदि ने भी सप्तशती की टीका के प्रारम्भ में प्राचीन ग्रन्थों का अनुसरण बिना किये ही इसी तरह लिखते और सभा में इसी मत को पसन्द करते हैं किन्तु इसके विरुद्ध आचरण करते हैं। वह क्या स्वयं दुर्दैव के कारण ब्राह्मणत्व से भ्रष्ट हुए दूसरे भी ब्राह्मणत्व से भ्रष्ट न हों अथवा जीवदया से या अपने पाप को छिपाने से अथवा कलियुग के ब्राह्मणों के अधिकारभाव के आलोचन से ऐसा कहते हैं, इसके तत्त्व को मैं नहीं जानता।

क्षत्रियवैश्ययोर्मांसादियुतजपहोमसहितराजसपूजायामप्यधिकारः। स च केवलं काम्य एव न तु नित्यः। निष्कामक्षत्रियादेः सात्त्विकपूजाकरणे मोक्षादिफलातिशयः। एवं शूद्रादेरपि। शूद्रादेर्मन्त्रहीना जपादिरहिता मांसादिद्रव्यका तामसपूजापि विहिता। शूद्रेण सप्तशत्यादिजपहोमसहिता सात्त्विकीपूजा ब्राह्मणद्वारा कार्या।

---

१. भविष्यपुराणे—'पूजनीया जनैर्देवी स्थाने स्थाने पुरे पुरे। गृहे गृहे शक्तिपरैर्ग्रामे ग्रामे वने वने॥ स्नातैः प्रमुदितैर्हृष्टैर्ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्नृपैः। वैश्यैः शूद्रैर्भक्तियुक्तैर्म्लेच्छैरन्यैश्च मानवैः॥' इति।

क्षत्रिय वैश्य का मांस आदि से युक्त जप-होम-सहित राजसी पूजा में भी अधिकार है। वह केवल ऐच्छिक है, नित्य नहीं। निष्काम क्षत्रिय आदि को सात्त्विकी पूजा करने से वह मोक्ष आदि विशिष्ट-फल देने वाली है। उसी प्रकार शूद्र आदि के लिए भी है। शूद्र आदि को मन्त्ररहित जप और मांस आदि द्रव्यवाली तामसी पूजा भी विहित है। शूद्र को सप्तशती का जप आदि और होम सहित सात्त्विकी पूजा ब्राह्मण के द्वारा करानी चाहिए।

स्त्रीशूद्रादेः स्वतः पौराणमन्त्रपाठेऽपि नाधिकारः। अत एव 'शूद्रः सुखमवाप्नुयात्' इत्यत्र भाष्ये स्त्रीशूद्रयोः श्रवणादेव फलं न तु पाठादित्युक्तम्। एतेन स्त्रीशूद्रयोर्गीताविष्णुसहस्रनामपाठो दोषायैवेति ज्ञेयम्। क्वचित्पौराणमन्त्रयुक्तपूजायां स्त्रीशूद्रयोः स्वतोप्यधिकार उक्तः। जपहोमादौ विप्रद्वारैव।

स्त्री और शूद्र आदि को स्वयं पुराण के मन्त्रों को भी पढ़ने का अधिकार नहीं है। इसी लिए भाष्यकार ने—स्त्री शूद्र को सुनने से ही फल मिलता है, न कि पाठ करने से—ऐसा कहा है। इससे स्त्री और शूद्र को गीता और विष्णुसहस्र नाम का पाठ करना भी दोष ही के लिए होता है। कहीं पुराण के मन्त्रों से युक्त पूजा में स्त्री और शूद्र का स्वयं भी अधिकार कहा है। जप और होमादि तो ब्राह्मण के द्वारा ही होता है।

म्लेच्छादीनां तु ब्राह्मणद्वारापि जपहोमे समन्त्रकपूजायां नाधिकारः। किन्तु तैस्तत्तदुपचाराणां देवीमुद्दिश्य मनसोत्सर्गमात्रं वा कर्तव्यम्।

म्लेच्छ आदि को तो ब्राह्मण के द्वारा भी जप होम तथा मन्त्रसहित पूजा में अधिकार नहीं है। किन्तु उन लोगों को देवी के उद्देश्य से उन-उन उपचारों का मन से केवल उत्सर्गमात्र कर्तव्य है।

अथ नवरात्रेऽनुकल्पाः

तृतीयादिनवम्यन्तं सप्तरात्रं वा कर्तव्यम्। पञ्चम्यादिपञ्चरात्रं वा सप्तम्यादित्रिरात्रं वा अष्टम्यादिद्विरात्रं वा एकाहपक्षे केवलाष्टम्यां केवलनवम्यां वा। एषां पक्षाणां स्वस्वकुलाचारानुसारेण प्रतिबन्धादिना पूर्वपूर्वपक्षासंभवानुसारेण वा व्यवस्था। तत्र तृतीयापञ्चम्योर्निर्णयः प्रतिपदादिवत्। सप्तम्यादेस्तु निर्णयो वक्ष्यते।

तृतीया से नवमीपर्यन्त सात रात का भी किया जाता है। अथवा पंचमी से पंचरात्र, सप्तमी से त्रिरात्र और अष्टमी से नवमी तक द्विरात्र का भी होता है। एक दिन का भी पक्ष है, उसमें केवल अष्टमी में अथवा केवल नवमी में होता है। इन पक्षों में अपने-अपने कुलाचार के अनुसार अथवा किसी प्रतिबन्ध आदि से पूर्व पक्षों के न होने पर व्यवस्था कर लेनी चाहिए। उसमें तृतीया और पंचमी का निर्णय प्रतिपदा आदि के तुल्य है। सप्तमी आदि का निर्णय तो आगे कहेंगे।

नवरात्रादिपक्षेषु क्षयवृद्धिवशेन दिनाधिक्यन्यूनत्वे पूजाद्यावृत्तिः[1] कार्या। केचित्तु दिनक्षयेऽष्टावेव पूजाश्चण्डीपाठांश्च कुर्वन्ति। इदं देवीपूजनात्मकं नवरात्रकर्म नित्यम् अकरणे दोषश्रवणात्। फलश्रवणात्काम्यं च।

नवरात्र आदि पक्षों में तिथि-क्षय और तिथि-वृद्धि के कारण दिनों की अधिकता और कमी होने पर पूजा आदि की आवृत्ति करनी चाहिए। कोई तो तिथिक्षय में आठ ही पूजा और आठ ही चण्डी-

---

१. तिथि के क्षय होने पर दोनों तिथियों का पूजा-पाठ एक तिथि में दो बार कर लेना पूजाद्यावृत्ति का अभिप्राय है।

पाठ भी करते हैं। यह देवीपूजनात्मक नवरात्र कर्म नित्य है क्योंकि नहीं करने से दोष की श्रुति है। फल-श्रुति से काम्य भी है।

अथ नवरात्रे कर्तव्यानि

अत्र नवरात्रे घटस्थापनं 'प्रातर्मध्याह्ने प्रदोषकाले चेति त्रिकालं द्विकालमेककालं वा स्वस्वकुलदेवतापूजनं सप्तशत्यादिजपोऽखण्डदीपः आचारप्राप्तमालाबन्धनम् उपवासनक्तैकभक्तादिनियमः सुवासिनीभोजनं कुमारीभोजनपूजनादि अन्ते सप्तशत्यादिस्तोत्रमन्त्रहोमादि इत्येतानि विहितानि।

इस नवरात्र में घटस्थापन—प्रातः, मध्याह्न और प्रदोष, इस प्रकार तीन काल, दो काल या एक काल में अपने-अपने कुलदेवता का पूजन, सप्तशती आदि का जप, अखण्ड दीप, आचार के अनुसार मालाबन्धन, उपवास, नक्त और एकभक्त आदि का नियम, सौभाग्यवती-भोजन और कुमारीभोजन आदि, अन्त में सप्तशती आदि स्तोत्र के मंत्रों से होम आदि, ये विहित हैं।

एतेषां मध्ये क्वचित्कुले घटस्थापनादीनि द्वित्रादीन्येवानुष्ठीयन्ते न सर्वाणि। क्वचिद् घटस्थापनादिरहितानि कानिचित्क्वचित्सर्वाण्येवेत्येतेषां समुच्चयविकल्पौ कुलाचारानुसारेण व्यवस्थितौ ज्ञेयौ। कुलपरंपराप्राप्तादधिकं शक्तिसत्त्वेऽपि नानुष्ठेयमिति शिष्टाचारः। फलकामनया प्रार्थितमुपवासादिकं कुलाचाराभावेऽपि कुर्वन्ति।

इनमें से किसी कुल में घटस्थापन आदि दो तीन आदि का ही अनुष्ठान करते हैं, सम्पूर्ण नहीं करते। कहीं घटस्थापन के विना ही कुछ और कहीं सभी का अनुष्ठान करते हैं। इस प्रकार कुलाचार के अनुसार व्यवस्थित विकल्प जानना चाहिए। कुल परम्परा से शक्ति रहने पर भी नहीं करना चाहिए, ऐसा शिष्टाचार है। फल की कामना से उपवास आदि मनौती कुलाचार के न होने पर भी लोग करते हैं।

इदं कलशस्थापनं रात्रौ न[2] कार्यम्। तत्र कलशस्थापनार्थं शुद्धमृदा वेदिकां कृत्वा पञ्चपल्लवदूर्वाफलताम्बूलकुङ्कुमधूपादिसंभारान्संपादयेत्।

यह कलशस्थापन रात में नहीं करना चाहिए। कलशस्थापन के लिए शुद्ध मिट्टी से वेदी बनाकर पंचपल्लव, दूब, फल, पान, कुंकुम और धूप आदि सामग्री का सम्पादन करे।

अथ संक्षेपतो नवरात्रारम्भप्रयोगः

प्रतिपदि प्रातः कृताभ्यङ्गस्नानः[3] कुंकुमचन्दनादिकृतपुण्ड्रो धृतपवित्रः सप-

---

१. देवीपुराणे—'प्रातरावाहयेद्देवीं प्रातरेव प्रवेशयेत्। प्रातः प्रातश्च सम्पूज्य प्रातरेव विसर्जयेत् ॥' विष्णुधर्मोक्त-प्रातःकाल—'भास्करोदयमारभ्य यावत्तु दशनाडिकाः। प्रातःकाल इति प्रोक्तः स्थापनारोपणादिषु ॥' इति।

२. मत्स्यपुराणे—'न रात्रौ स्थापनं कार्यं न च कुम्भाभिषेचनम्।' इति।

३. परशुरामः—'पावादिवर्जिते प्रातर्नित्यं कर्म समाचरेत्। नद्यां वाऽथ तडागे वा देवखाते ह्रदेऽथवा ॥ सूत्रोक्तविधिना शौचपूर्वं स्नानं समाचरेत्। ततः स्वगृहमागत्य मङ्गलस्नानमाचरेत् ॥ सर्वौषधीगन्धचूर्णयुतैः कृष्णतिलामलैः। उद्वर्त्याङ्गानि तैलेन चम्पकादिसुगन्धिना ॥' इति।

त्नीको दशघटिकामध्येऽभिजिन्मुहूर्ते वा देशकालौ संकीर्त्य 'मम सकुटुम्बस्यामुकदेवताप्रीतिद्वारा सर्वापच्छान्तिपूर्वकदीर्घायुर्धनपुत्रादिवृद्धिशत्रुजयकीर्तिलाभप्रमुखचतुर्विधपुरुषार्थसिद्धयर्थमद्यप्रभृति महानवमीपर्यन्तं प्रत्यहं त्रिकालमेककालं वामुकदेवतापूजामुपवासनक्तैकभक्तान्यतमनियमसहितामखण्डदीपप्रज्वालनं कुमारीपूजनं चण्डीसप्तशतीपाठं सुवासिन्यादिभोजनमित्यादि यावत्कुलाचारप्राप्तमनूद्य एवमादिरूपं शारदनवरात्रोत्सवाख्यं कर्म करिष्ये, देवतापूजाङ्गत्वेन घटस्थापनं च करिष्ये, 'तदादौ निर्विघ्नतासिद्धयर्थं गणपतिपूजनं पुण्याहवाचनं चण्डीसप्तशतीजपाद्यर्थं ब्राह्मणवरणं च करिष्ये ।'

प्रतिपदा में प्रातःकाल तेल लगाकर स्नान करे। कुंकुम चन्दन आदि लगाकर पवित्री धारण करके पत्नी के सहित दस घड़ी के मध्य में या अभिजित् मुहूर्त में देश काल को कहकर 'कुटुम्बसहित मेरे अमुक देवता की प्रसन्नता के द्वारा सम्पूर्ण आपत्ति के शान्त्यर्थ अधिक आयु धन और पुत्रादि की वृद्धि, शत्रु को जीतने और कीर्ति-प्राप्त करनेके लिए तथा चारो प्रकार के पुरुषार्थ की सिद्धिके लिए आज से महानवमी तक प्रतिदिन तीन काल या एक काल में अमुक देवता की पूजा, उपवास, नक्त और एकभक्त में से किसी एक का, नियमसहित अखण्ड-द्वीप, कुमारीपूजन, चण्डी-सप्तशती-पाठ और सौभाग्यवती-भोजन आदि कुलाचार से प्राप्त शारदीय नवरात्रोत्सव नामक कर्म करूँगा, देवता की पूजा का अंग होने से घटस्थापन भी करूँगा, उसके आरम्भ में निर्विघ्नता सिद्धि के लिए गणेशपूजन, पुण्याहवाचन, चण्डी-सप्तशती-जप आदि के लिए ब्राह्मणों का वरण करूँगा' ऐसा संकल्प करें।

एतानि कृत्वा घटस्थापनसत्त्रे महीद्यौरिति भूमिं स्पृष्ट्वा, तस्यां भुवि अङ्कुरारोपणार्थं शुद्धमृदं प्रक्षिप्य, ओषधयः समिति तस्यां मृदि यवादीन्प्रक्षिप्य, आकलशेष्विति कुम्भं निधाय, इमं मे गंगे इति जलेनापूर्य, गन्धद्वारामिति गन्धं, या ओषधीरिति सर्वा ओषधीः, काण्डात्काण्डादिति दूर्वाः, अश्वत्थे व इति पञ्चपल्लवान्, स्योनापृथिवीति मृदः, याः फलिनीरिति फलं, सहिरत्नानि हिरण्यरूप इति रत्नहिरण्ये प्रक्षिप्य, युवासुवासा इति सूत्रेणावेष्ट्य, पूर्णादर्वीति पूर्णपात्रं निधाय, तत्त्वायामीति वरुणं संपूज्य, तत्कलशोपरि कुलदेवताप्रतिमां संस्थाप्य पूजयेत्। स्वस्थाने एव वा संस्थाप्य पूजयेत्। तद्यथा—

जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोस्तु ते ॥
आगच्छ वरदे देवि दैत्यदर्पनिषूदिनि।
पूजां गृहाण सुमुखि नमस्ते शंकरप्रिये ॥

यह सब करके घटस्थापन करने पर 'महीद्यौः' इस मंत्र से प्रार्थना कर और उसका स्पर्श कर उस भूमि में अंकुररोपण के लिए शुद्ध मिट्टी को डालकर 'ओषधयः सम' इस मंत्र से उस मिट्टी में

१. लिंगपुराणे—'सर्वकामसमृध्यर्थमादौ पूज्यो विनायकः।' प्रभासखण्डे—'सर्वकार्येषु ये मर्त्याः पूर्वमेनं गणाधिपम्। स्मरिष्यन्ति न वै तेषां कार्यहानिर्भविष्यति ॥' पद्मपुराणे—'नार्चितो हि गणाध्यक्षो यज्ञादौ यस्सुरोत्तमाः। तस्माद् विघ्नं समुत्पन्नमाकस्मिकमिदं खलु ॥' इति।

जौ आदि को छोड़कर 'आकलशेषु' इस मंत्र से मिट्टी पर कुम्भ रख 'इमं मे गंगे' इन मंत्र से घड़े को जल से भरकर 'गंधद्वाराम्' इस मंत्र से गंध, 'ओषधी' इस मंत्र से सर्वोषधि 'काण्डात् काण्डात्' इस मंत्र से दूब, 'अश्वत्थेव' इस मत्र से पंचपल्लव, 'स्योना पृथिवि' इस मंत्र से मिट्टी, 'याः फलिनी' इस मंत्र से फल, 'सहरत्नानि हिरण्यरूप' इस मंत्र से घड़े में रत्न और सुवर्ण छोड़ कर 'युवासुवासा' इस मंत्र से सूत्र से वेष्टन करके 'पूर्णादर्वी' इस मंत्र से घड़े पर पूर्णपात्र रख कर 'तत्वायामि' इस मंत्र से वरुण की पूजा कर उस कलश के ऊपर कुलदेवता की प्रतिमा स्थापित कर अथवा अपने स्थान पर ही स्थापित कर पूजन करे। वह इस प्रकार है—

अनेन पुरुषसूक्तश्रीसूक्तप्रथमऋग्भ्यां चावाह्य जयन्ती मङ्गला कालीति मन्त्रेण सूक्तऋग्भिश्चासनादिषोडशोपचारैः संपूजयेत्। सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये इत्यादिभिः संप्रार्थ्य प्रत्यहं बलिदानपक्षे माषभक्तेन कूष्माण्डेन वा बलिं दद्यात्। अन्ते एव वा बलिदानं न वा बलिदानम्। ततः—

अखण्डदीपकं देव्याः प्रीतये नवरात्रकम्।
उज्ज्वालये अहोरात्रमेकचित्तो धृतव्रतः॥ इत्यखण्डदीपंप्रतिष्ठापयेत्।

'जयन्ती मङ्गला' इत्यादि प्रथम दो मन्त्रों और पुरुषसूक्त श्रीसूक्त की ऋचाओं से आवाहन करके 'जयन्ती मंगला काली' इस मंत्र से और सूक्त की ऋचाओं से आसन आदि सोलह उपचारों से पूजा करे। 'सर्वमंगलमांगल्ये' इत्यादि से प्रार्थना करके प्रतिदिन बलिदान के पक्ष में उड़द-भात या कूष्माण्ड से बलि देवे। अन्त में ही बलि दे या न दे। इसके बाद देवी की प्रसन्नता के लिए 'अखण्डदीपकं' इस मंत्र से नवरात्र में अखण्डदीप स्थापित करे।

अथ चण्डीपाठप्रकारः

'यजमानेन वृतोऽहं चण्डीसप्तशतीपाठं नारायणहृदयलक्ष्मीहृदयपाठं वा करिष्ये' इत्यादि संकल्प्य आसनादि विधाय आधारे अन्यहस्तलिखितं पुस्तकं स्थापयित्वा नारायणं नमस्कृत्येति वचनात् ॐनारायणाय नमः, नराय नरोत्तमाय नमः, देव्यै सरस्वत्यै नमः, व्यासाय नमः, इति नमस्कृत्य प्रणवमुच्चार्य सर्वपाठान्ते [१]प्रणवं पठेत्।

'यजमान से वृत होकर मैं चण्डी-सप्तशती, नारायणहृदय अथवा लक्ष्मीहृदय का पाठ करूँगा' इत्यादि संकल्प कर आसन आदि रखकर दूसरे के हाथ से लिखी पुस्तक की स्थापना करके 'नारायणं नमस्कृत्य' इस वचन से 'ॐ नारायणाय नमः' आदि मूलोक्त मंत्रों से नमस्कार करके 'ॐ' का उच्चारण कर पूरे पाठ के अन्त में प्रणव (ॐ) को कहे।

हस्ते पुस्तकं न धारयेत्। स्वयं ब्राह्मणभिन्नेन च लिखितं विफलम्।
अध्यायं प्राप्य विरमेन्न तु मध्ये कदाचन।
कृते विरामे मध्ये तु अध्यायादि पठेत्पुनः॥
ग्रन्थार्थं बुध्यमानः स्पष्टाक्षरं नातिशीघ्रं नातिमन्दं रसभावस्वरयुतं वाचयेत्।

---

१. मत्स्यसूक्ते—'प्रणवं चादितो जप्त्वा स्तोत्रं वा संहितां पठेत्। अन्ते च प्रणवं दद्यादित्युवाचादिपूरुषः। आधारे स्थापयित्वा तु पुस्तकं वाचयेत् सुधीः। हस्तसंस्थापने चैव यस्मादल्पं फलं भवेत्॥'--------- इत्यादि विचार अन्यत्र देखें।

हाथ में पुस्तक धारण न करे अपने तथा ब्राह्मणेतर से लिखी पुस्तक द्वारा पाठ करने से फल नहीं मिलता। अध्याय बिना समाप्त किये बीच में विराम न करे। अगर बीच में विराम करे तो पुनः अध्याय के आरम्भ से पढ़े। ग्रन्थ के अर्थ को जानता हुआ अक्षरोच्चारण स्पष्ट करे। बहुत जल्दी न पढे। अत्यन्त मंद भी न बाँचे। रस भाव और स्वरयुक्त बाँचे।

अथ काम्यपाठः

त्रिवर्गफलकामेन चण्डीपाठः सदैव कर्तव्यः। 'तस्मान्ममैतन्माहात्म्यं पठितव्यं समाहितैः। श्रोतव्यं च सदा भक्त्या' इत्यादिवचनात्। नैमित्तिकपाठोप्युक्तः—

शान्तिकर्मणि सर्वत्र तथा दुःस्वप्नदर्शने।
ग्रहपीडासु चोग्रासु माहात्म्यं शृणुयान्मम॥ इत्यादि। तथा—
अरण्ये प्रान्तरे वापि दावाग्निपरिवारितः।
दस्युभिर्वा वृतः शून्ये गृहीतो वापि शत्रुभिः॥

इत्यादिसंकटान्युद्दिश्य,

सर्वबाधासु चोग्रासु वेदनाभ्यर्दितोऽपि वा।
स्मरन्ममैतन्माहात्म्यं नरो मुच्येत संकटात्॥ इत्युक्तम्।

धर्म और कामना की इच्छा से चण्डीपाठ सर्वदा करना चाहिए। इसलिए मेरे माहात्म्य को समाहित चित्त से भक्तिपूर्वक सुने। इस आशय के वचन से। नैमित्तिक पाठ भी कहा है—शान्तिकर्म में, बुरे स्वप्न देखने, भयानक ग्रह-पीड़ा होने पर माहात्म्य को सुने, इत्यादि। इसी प्रकार जंगल की आग से घिरे हुए, डाकुओं से अकेले पकड़े गये या शत्रुओं से पकड़े जाने आदि संकट के उद्देश्य से सम्पूर्ण उग्र बाधाओं में अथवा वेदना से कष्ट पाकर मेरे इस माहात्म्य को स्मरण करने से मनुष्य संकट से मुक्त हो जाता है, ऐसा कहा है।

अथ कामनार्थे पाठसंख्या

उपसर्गोपशान्त्यर्थं त्रयः पाठाः कार्याः। ग्रहपीडाशान्तये पञ्च, महाभये सप्त, शान्त्यर्थं वाजपेयफलार्थं च नव, राजवश्यार्थमेकादश, वैरनाशार्थं द्वादश, स्त्रीपुंसवश्यतार्थं चतुर्दश, सौख्याय लक्ष्म्यर्थं च पञ्चदश, पुत्रपौत्रधनधान्यार्थं षोडश, राजभयनाशाय सप्तदश, उच्चाटनायाष्टादश, वनभये विंशतिः, बन्धमोचनाय पञ्चविंशतिः, दुश्चिकित्स्यरोगकुलोच्छेदायुर्नाशवैरिवृद्धिव्याधिवृद्धित्रिविधोत्पातादिमहासंकटनाशो राज्यवृद्धिश्च शतावृत्तिभिः, सहस्रावर्तनैः शताश्वमेधफलं सर्वमनोरथावाप्तिर्मोक्षश्चेति [1]वाराहीतन्त्रे उक्तम्।

---

१. वाराहीतन्त्र में चण्डीपाठ का फल—'ईश्वर उवाच, चण्डीपाठफलं देवि शृणुष्व गदतो मम। ग्रहोपशान्त्यै कर्तव्यं पञ्चावृत्तं वरानने॥ महाभये समुत्पन्ने सप्तावृत्तमुदीरयेत्। अर्कावृत्तेः काम्यसिद्धिर्वैरिहानिश्च जायते॥ मन्वावृत्त्या रिपुर्वश्यस्तथा स्त्रीवश्यतामियात्। सौख्यं पञ्चदशावृत्त्याच्छ्रियमाप्नोति मानवः॥ कलावृत्त्यात् पुत्रपौत्रधनधान्यादिकं विदुः। राज्ञां भीतिविमोक्षाय वैरस्योच्चाटनाय च॥ कुर्यात् सप्तदशावृत्तं तथाऽष्टादशकं प्रिये। महाव्रणविमोक्षाय विंशावृत्तं पठेन्नरः॥ पञ्चविंशावर्तनाच्च भवेद् बन्धविमोक्षणम्। सङ्कटे समनुप्राप्ते दुश्चिकित्स्यामये

उपसर्ग की शान्ति के लिए तीन पाठ करना चाहिए। ग्रह-पीड़ा-शान्ति के लिए पाँच, बड़े उग्र-भय होने पर सात, शान्ति और वाजपेययज्ञ के फल के लिए नव, राजा को वश में करने के लिए ग्यारह, वैरनाश के लिए बारह, स्त्री-पुरुष को वश में करने के लिये चौदह, सुख और लक्ष्मी-प्राप्ति के लिए पन्द्रह, पुत्र-पौत्र-धन-धान्य के लिए सोलह, राजभय-नाश के लिए सत्रह, उच्चाटन के लिए अठ्ठारह, वन में भय होने पर बीस और जेल से छूटने के लिए पच्चीस पाठ करे। कठिनता से चिकित्सा-योग्य रोगसमूह के उच्छेद, आयु के नाश, शत्रु की वृद्धि, व्याधि-वृद्धि तीनों प्रकार के उत्पात आदि बड़े संकट के नाश और राज्य-वृद्धि के लिए सौ बार पाठ करने से सिद्धि होती है। हजार पाठ करने से सौ अश्वमेध का फल, सम्पूर्ण मनोरथ की प्राप्ति तथा मोक्ष होता है यह वाराहीतंत्र में कहा है।

सर्वत्र काम्यपाठे आदौ संकल्पपूर्वकं पूजनमन्ते बलिदानं च कार्यम्। अत्राचाराद्वेदपारायणमपि कार्यम्। तद्विधिर्बौधायनोक्तः कौस्तुभे ज्ञेयः।

सब जगह काम्य-पाठ में आरम्भ में संकल्पपूर्वक पूजन करके अन्त में बलिदान भी करे। यहाँ पर आचार से वेद का पारायण भी करे। इसकी विधि बौधायन में कही हुई कौस्तुभ से जानना चाहिये।

अथ कुमारीपूजा

'एकवर्षा तु या कन्या पूजार्थं तां 'विवर्जयेत्'। द्विवर्षकन्यामारभ्य दशवर्षावधि कुमारीणां क्रमेण कुमारिका त्रिमूर्तिः कल्याणी रोहिणी काली चण्डिका शाम्भवी दुर्गा भद्रेति नामानि। आसां कुमारीणां प्रत्येकं पूजा मन्त्राः फलविशेषाः लक्षणानि चान्यत्र ज्ञेयानि। ब्राह्मणेन ब्राह्मणीत्येवं सवर्णा प्रशस्ता। विजातीयापि क्वचित्कामनाविशेषेणोक्ता। एकैकवृद्धया प्रत्यहमेका वा कुमारीपूजा।

मन्त्राक्षरमयीं लक्ष्मीं मातॄणां रूपधारिणीम्।
नवदुर्गात्मिकां साक्षात्कन्यामावाहयाम्यहम्॥
जगत्पूज्ये जगद्वन्द्ये सर्वशक्तिस्वरूपिणि।
पूजां गृहाण कौमारि जगन्मातर्नमोस्तु ते॥

इति मन्त्रेण पादक्षालनपूर्वकं वस्त्रकुङ्कुमगन्धधूपदीपभोजनैः पूजयेदिति

तथा॥ जातिध्वंसे कुलच्छेदे आयुषो नाश आगते। वैरिवृद्धौ व्याधिवृद्धौ धननाशे तथा क्षये॥ तथैव त्रिविधोत्पाते तथा चैवातिपातके। कुर्याद्यत्नाच्छतावृत्तं ततः सम्पद्यते शुभम्॥ श्रियो वृद्धिः शतावृत्ताद् राज्यवृद्धिस्तथा प्रिये। मनसा चिन्तितं देवि सिद्ध्येदष्टोत्तराच्छतात्॥ शताश्वमेधयज्ञानां फलमाप्नोति सुव्रते। सहस्रावर्तनाल्लक्ष्मीरावृणोति स्वयं स्थिरा॥ भुक्त्वा मनोरथान् सर्वान् नरो मोक्षमवाप्नुयात्। यथाऽश्वमेधः क्रतुराड् देवानां च यथा हरिः। स्तवानामपि सर्वेषां तथा सप्तशतीस्तवः॥ अथवा बहुनोक्तेन किमेतेन वरानने। चण्ड्याः शतावृत्तिपाठात् सर्वाः सिद्ध्यन्ति सिद्धयः॥' इति।

१. स्कन्दपुराण में त्याज्य कुमारियों का वर्णन—'हीनाधिकाङ्गीं कुष्ठादिविकारां कुनखां तथा। ग्रन्थिस्फुटितगर्भाङ्गीं रक्तपूयव्रणाङ्किताम्॥ जात्यन्धां केकरीं काणीं कुरूपां तनुरोमशाम्। संत्यजेद् रोगिणीं कन्यां दासीगर्भसमुद्भवाम्॥ एकवर्षा तु या कन्या पूजार्थं तां विवर्जयेत्। गन्धपुष्पफलादीनां प्रीतिस्तस्या न विद्यते॥' इति।

संक्षेपः। कुमारीपूजावद्देवीपूजाचण्डीपाठश्चैकोत्तरवृद्धचापि विहितः। भवानीसहस्रनामपाठोपि क्वचिदुक्तः।

एक वर्ष की कन्या का पूजन वर्जित करे। दो वर्ष से लेकर दश वर्ष की अवधि तक कुमारियों के क्रम से कुमारिका, त्रिमूर्ति, कल्याणी, रोहिणी, काली, चण्डिका, शाम्भवी, दुर्गा और भद्रा, ये नाम हैं। इन प्रत्येक कुमारियो की पूजा के मंत्र, विशेष-फल और लक्षण, दूसरे ग्रन्थ से जानना चाहिए। ब्राह्मण के लिए ब्राह्मण वर्ण कुमारी श्रेष्ठ होती है। कामना-विशेष से कहीं विजातीय कुमारी भी कही गई है। एक एक कुमारी प्रतिदिन बढ़ाकर अथवा प्रतिदिन एक ही कुमारी की पूजा करनी चाहिए। 'मंत्राक्षरमयीं लक्ष्मीं' इत्यादि मंत्र से कुमारी का पैर धोने के बाद वस्त्र, कुंकुम, गन्ध, धूप, दीप और भोजन से पूजा करे। कुमारी-पूजा की तरह देवी-पूजा और चण्डी-पाठ प्रतिदिन एक-एक बढ़ा करके करने का विधान है। कहीं पर भवानीसहस्रनाम का पाठ भी कहा है।

अयं शारदनवरात्रोत्सवो मलमासे निषिद्धः। [1]शुक्रास्तादौ तु भवति। प्रथमारम्भस्तु न कार्यः।

यह शारद नवरात्र का उत्सव मलमास में नहीं किया जाता। शुक्रास्त आदि में वो होता है। शुक्रास्त आदि में भी पहले-पहल आरम्भ करना हो तो न करे।

अथ आशौचादौ नवरात्रविधिः

शावाशौचजननाशौचयोस्तु सर्वोऽपि घटस्थापनादिविधिर्ब्राह्मणद्वारा कार्यः। केचिदारम्भोत्तरं मध्ये आशौचपाते स्वयमेवारब्धं पूजादिकं [2]कार्यमित्याहुः। शिष्टास्त्वाशौचे पूजादेवतास्पर्शादेर्लोकविद्विष्टत्वादन्येनैव कारयन्ति। अपरे तृतीयादिपञ्चम्यादिसप्तम्याद्यनुकल्पेन नवरात्रविधीनां सत्त्वात्प्रतिपद्याशौचे तृतीयाद्यनुकल्पाश्रयणं कुर्वन्ति। सर्वथा लोपप्रसक्तावेव ब्राह्मणद्वारा कुर्वन्ति। उपवासादिशारीरनियमः स्वयं कार्यः। एवं रजस्वलापि उपवासादिकं स्वयं कृत्वा पूजादिकमन्येन कारयेत्। अत्र सभर्तृकस्त्रीणां उपवासे गन्धताम्बूलादिग्रहणं न दोषायेत्याहुः।

मरणाशौच और जननाशौच में तो सम्पूर्ण घटस्थापन आदि विधि ब्राह्मण के द्वारा करानी चाहिए। कोई आरम्भ के बाद बीच में आशौच पड़ने पर अपने से आरम्भ किया हुआ पूजा आदि करना चाहिए, ऐसा कहते हैं। शिष्ट लोग तो आशौच में पूजा, देवता का स्पर्श, आदि, लोक में निन्दा होने से दूसरे से ही कराते हैं। अन्य लोग तो आशौच में तृतीया आदि पंचमी आदि और सप्तमी आदि अनुकल्पों से नवरात्र की विधियों के होने से प्रतिपदा में आशौच होने पर तृतीया आदि अनुकल्पों का आश्रयण करते हैं। इस प्रकार से पाठ न करने की स्थिति में ही

---

१. धर्मप्रदीपे—'नष्टे शुक्रे तथा जीवे सिंहस्थे च बृहस्पतौ। कार्या चैव स्वदेव्यर्चा प्रत्यब्दं कुलधर्मतः ॥' इति।

२. निर्णयामृत में विश्वरूपनिबन्ध—'आश्विने शुक्लपक्षे तु प्रारब्धे नवरात्रके। शावाशौचे समुत्पन्ने क्रिया कार्या कथं बुधैः ॥ सूतके वर्तमाने च तत्रोत्पन्ने सदा बुधैः ॥ देवीपूजा प्रकर्तव्या पशुयज्ञविधानतः ॥ सूतके पूजनं प्रोक्तं दानं चैव विशेषतः। देवीमुद्दिश्य कर्तव्यं तत्र दोषो न विद्यते।' विष्णुरहस्ये—'पूर्वसंकल्पितं यच्च व्रतं सुनियतव्रतैः। तत्कर्तव्यं नरैः शुद्धं दानार्चनविवर्जितम् ॥' इति।

ब्राह्मण के द्वारा कराते हैं। उपवास आदि शरीर के नियम स्वयं करना चाहिए। इसी प्रकार रजस्वला स्त्री भी उपवास आदि स्वयं करके पूजा आदि दूसरे से करावे। इसमें सौभाग्यवती स्त्रियों को उपवास में गन्ध ताम्बूल आदि का सेवन दोष-कारक नहीं होता, ऐसा कहते हैं।

अथ पञ्चम्यामुपाङ्गललिताव्रतम्

अत्र पञ्चमी अपराह्णव्यापिनी ग्राह्या। अपराह्णस्यैव तत्पूजाकालत्वोपपत्तेः। दिनद्वये कात्स्र्न्येनापराह्णव्याप्तौ साम्येन वैषम्येण वापराह्णैकदेशव्याप्तौ च पूर्वैव, युग्मवाक्यात्। परत्रैवापराह्णव्याप्तौ परैव। केचित्तु रात्रिव्यापिनीं गृह्णन्ति पूजादिकं च रात्रावेव कुर्वन्ति। तत्र मूलं चिन्त्यम्। अत्र पूजादिविधिर्ग्रन्थान्तरे प्रसिद्ध इति न लिख्यते।

इस व्रत में अपराह्णव्यापिनी पंचमी ग्राह्य है क्योंकि इसमें पूजा का काल अपराह्ण ही कहा है। दो दिन में सम्पूर्णतया अपराह्णव्यापिनी होने पर अथवा साम्य और वैषम्य से अपराह्ण के एकदेश में होने से पूर्वा ही युग्मवाक्य से स्वीकारयोग्य है। दूसरे ही दिन अपराह्णव्यापिनी होने पर दूसरे ही दिन करना चाहिए। कुछ लोग तो रात में रहने वाली पंचमी को ग्रहण करते हैं और पूजा आदि भी रात ही में करते हैं। यह प्रमाण से रहित है। इसमें पूजा आदि की विधि दूसरे ग्रन्थों में प्रसिद्ध है इस लिए नहीं लिखते है।

अथ सरस्वत्यावाहनादि

आश्विनशुक्लपक्षे मूलनक्षत्रे पुस्तकेषु सरस्वतीमावाह्य पूजयेत्।

मूलेषु स्थापनं देव्याः पूर्वाषाढासु पूजनम्।
उत्तरासु बलिं दद्याच्छ्रवणेन विसर्जयेत्॥ इति वचनात्।

अत्र पूजयेत्प्रत्यहमिति 'रुद्रयामलवचनात् 'मूले आवाहनं तदङ्गभूतं पूजनं करिष्ये' इत्यादि संकल्प्यावाहनपूजने कार्ये। 'पूर्वाषाढासु पूजनं करिष्ये'

---

१. रुद्रयामल में सम्पूर्ण वचन यों है—'मूलऋक्षे सुराधीश पूजनीया सरस्वती। पूजयेत्प्रत्यहं देव यावद् वैष्णवऋक्षकम्॥ नाध्यापयेन्न च लिखेन्नाधीयीत कदाचन। पुस्तके स्थापिते देव विद्याकामो द्विजोत्तमः॥' इति।

आश्विनशुक्ल षष्ठी में सायंकाल बिल्वाभिमन्त्रण करना चाहिये। यह सायन्तनव्यापिनी ग्राह्य है। यथा भविष्यपुराणे—'षष्ठ्यां बिल्वतरौ बोधं सायं सन्ध्यासु कारयेत्।' तिथितत्त्वे—'सायं षष्ठ्यां तु कर्तव्यं पार्वत्या अधिवासनम्। षष्ठ्य भावेऽपि कर्तव्यं सप्तम्यामपि मानद॥' यदि षष्ठी दो दिन सायन्तनव्यापिनी हो तो युग्मवाक्य के आदर से सप्तमीसे युक्त षष्ठी अर्थात् दूसरे दिन बिल्वाभिमन्त्रण करना चाहिये।

यदि पहले दिन सायंकाल के बाद षष्ठी की प्रवृत्ति होती हो और दूसरे दिन सायंकाल के पूर्व ही समाप्त हो जाती हो तो षष्ठी के अभाव में दूसरे दिन सप्तमीयुक्त षष्ठी में सायंकाल करना चाहिये। देवीपुराण का निर्णय भिन्न है—'ज्येष्ठानक्षत्रयुक्तायां षष्ठ्यां बिल्वाभिमन्त्रणम्। सप्तम्यां मूलयुक्तायां पत्रिकायाः प्रवेशनम्॥ पूर्वाषाढायुताष्टम्यां पूजाहोमाद्युपोषणम्। उत्तरेण नवम्यां तु बलिभिः पूजयेच्छिवाम्। श्रवणेन दशम्यां तु प्रणिपत्य विसर्जयेत्॥' कालिकापुराणे—'बोधयेद् बिल्वशाखायां षष्ठ्यां देवीं फलेषु च। सप्तम्यां बिल्वशाखां तामाहृत्य प्रतिपूजयेत्॥ पुनः पूजां तथाऽष्टम्यां विशेषेण समाचरेत्। जागरं च स्वयं कुर्याद् बलिदानं महानिशि॥ प्रभूतबलिदानं तु नवम्यां विधिवच्चरेत्। विसर्जनं दशम्यां तु कुर्याद् वै शाबरोत्सवैः॥ धूलिकर्दमनिक्षेपैः क्रीडा-

इति संकल्प्यावाहनरहितपूजैव केवलम्। 'उत्तराषाढासु बलिदानं तदङ्गभूतां पूजां च करिष्ये' इत्येवं ते कार्ये। श्रवणे विसर्जनं कर्तुं 'तदङ्गभूतां पूजां करिष्ये' इति संकल्प्य संपूज्य विसर्जयेदिति क्रमः।

आश्विन शुक्लपक्ष के मूलनक्षत्र में पुस्तकों में सरस्वती का आवाहन कर पूजा करे। वचनानुसार मूलनक्षत्र में सरस्वतीदेवी की स्थापना और पूर्वाषाढ़ा में पूजन करे। उत्तराषाढ़ा में बलि देकर श्रवणनक्षत्र में सरस्वती का विसर्जन करे। रुद्रयामल में लिखा है कि प्रतिदिन पूजा करे। 'मूल में आवाहन और उसका अंग पूजन भी करूँगा' इत्यादि संकल्प करके आवाहन और पूजन करे। 'पूर्वाषाढ़ा में पूजन करूँगा' ऐसा संकल्प करने पर आवाहन के बिना पूजा ही केवल करे। 'उत्तराषाढ़ा में बलिदान और उसकी अंगपूजा करूँगा' इस प्रकार दोनों को करे। श्रवण में विसर्जन करने के लिए 'उसकी अंगपूजा करूँगा' ऐसा संकल्प करके पूजा करके विसर्जन करे, यही क्रम है।

तत्र मूलस्य प्रथमे पादे सूर्यास्तात्प्राक् त्रिमुहूर्तव्यापिनि सरस्वत्यावाहनम्। त्रिमुहूर्तन्यूनत्वे रात्रौ वा प्रथमपादसत्त्वे तस्य विशेषवचनं विना ग्राह्यत्वाभावाद् द्वितीयादिपादे परदिन एवावाहनम्। एवं पूर्वाषाढादिनक्षत्रं पूजादौ दिनव्याप्येव ग्राह्यम्। विसर्जनं तु श्रवणप्रथमपादे रात्रिभागगतेऽपि कार्यम्, विशेषवचनात्। तच्च रात्रेः प्रथमप्रहरपर्यन्तमेवेति भाति।

उसमें मूलनक्षत्र के प्रथम चरण में सूर्यास्त के पहले तीन मुहूर्त रहने पर सरस्वती का आवाहन करे। तीन मुहूर्त से कम रहने अथवा रात में प्रथम चरण के होने पर उसके विशेष वचन के बिना ग्राह्यता न होने से द्वितीय आदि चरण में दूसरे दिन आवाहन करे। इसी प्रकार पूर्वाषाढ़ा आदि नक्षत्र, पूजा आदि दिनव्यापी ही ग्राह्य है। विशेषवचनानुसार विसर्जन तो श्रवण के प्रथम चरण में रात्रि में भी करना चाहिए। वह भी रात के पहले पहर तक ही, ऐसा युक्त प्रतीत होता है।

अथ सप्तम्यादौ पत्रिकापूजा

अथ सप्तम्यादिदिनत्रये पत्रिकापूजनं विहितम्। तत्र सप्तम्यादितिथित्रयं 'सूर्योदये मुहूर्तमात्रमपि ग्राह्यम्। तत्राधिवासनादिप्रयोगविस्तारः कौस्तुभा-

---

कौतुकमङ्गलैः।' यहां सभी जगह तिथि और नक्षत्र के योग का आदर मुख्य है। दोनों का संयोग न हो तो तिथि ही ग्राह्य है। देवलः—'तिथिनक्षत्रयोर्योगे द्वयोरेवानुपालनम्। योगाभावे तिथिर्ग्राह्या देव्याः पूजनकर्मणि ॥' इति।

१. धौम्यः—'आश्विने मासि शुक्ले तु कर्तव्यं नवरात्रकम्। प्रतिपदादिक्रमेणैव यावच्च नवमी भवेत् ॥ त्रिरात्रं वाऽपि कर्तव्यं सप्तम्यादि यथाक्रमम्।' देवीपुराणे—'नवरात्रव्रतेऽशक्तस्त्रिरात्रं चैकरात्रकम्। व्रतं चरति यो भक्तस्तस्मै दास्यामि वाञ्छितम् ॥' 'तिथितत्त्वे—'भगवत्याः प्रवेशादिविसर्गान्ताश्च याः क्रियाः। तिथावुदयगामिन्यां सर्वास्ताः कारयेद् बुधः ॥' कृत्यतत्त्वार्णव में नवपत्रिकायें—'रम्भा कची हरिद्रा च जयन्ती बिल्वदाडिमौ। अशोको मानवृक्षश्च धान्यादि नवपत्रिका ॥' इति।

भविष्यपुराण में देवीमूर्तिके निर्माण-द्रव्य—'तत्र देवी प्रकर्तव्या हैमी वा राजती तथा। मृद्वार्क्षी लक्षणोपेता खड्गशूले च पूजयेत् ॥' देवीपुराणे—'हैमराजतमृद्धातुशैलचित्रार्पिताऽपि वा। खड्गे शूलेऽर्चिता देवी सर्वकामफलप्रदा ॥' कालिकापुराणे—'लिङ्गस्थां पूजयेद्देवीं मण्डलस्थां तथैव

दौ ज्ञेयः। यत्तु सप्तमीप्रभृति त्रिरात्रं नवरात्रकर्म कुर्वन्ति तत्र सप्तमी सूर्योदयोत्तरं मुहूर्ताधिकव्यापिनी ग्राह्या। मुहूर्तन्यूनत्वे पूर्वा।

सप्तमी आदि तीन दिन में पत्रिकापूजन विहित है। उसमें सप्तमी आदि तीनों तिथियाँ सूर्योदय काल में मुहूर्त मात्र भी हो तो ग्राह्य है। इसमें अधिवासन आदि का विस्तृत प्रयोग कौस्तुभ आदि से जानना चाहिए। जो कि सप्तमी से तीन रात नवरात्र कर्म करते हैं उसमें सप्तमी सूर्योदय के बाद एक मुहूर्त से अधिक रहने वाली ग्राह्य है। मुहूर्त से कम होने पर पूर्वा ग्राह्य है।

अथ महाष्टमीनिर्णयः

अथ महाष्टमी घटिकामात्राप्यौदयिकी [1]नवमीयुता ग्राह्या। सप्तमी स्वल्पयुता सर्वथा त्याज्या। यदा तु पूर्वत्र सप्तमीयुता परत्रोदये नास्ति घटिकान्यूना वा वर्तते तदा पूर्वा [2]सप्तमीविद्धापि ग्राह्या। इयं भौमवारेऽतिप्रशस्ता। यदा च पूर्वदिने षष्टिघटिकाष्टमी परदिने मुहूर्तादिव्यापिनी तदा नवमीयुतामप्युत्तरां त्यक्त्वा संपूर्णत्वात्पूर्वैव ग्राह्या। एवं नवम्याः क्षयवशेन दशमीदिने सूर्योदयोत्तरमनुवृत्त्यभावेऽष्टमीं नवमीयुतामौदयिकीमपि त्यक्त्वा सप्तमीयुतैवाष्टमी ग्राह्या। अष्टम्यां [3]पुत्रवतोपवासो न कार्यः। कुलाचारप्राप्तौ किंचिद्भक्ष्यं प्रकल्प्य कार्यः।

अष्टमी घड़ी भर भी उदयकाल की नवमीयुक्त ग्राह्य है। थोड़ी सप्तमी से युक्त अष्टमी सर्वथा

च। पुस्तकस्थां महादेवीं पावके प्रतिमासु च॥ चित्रे च त्रिशिखे खड्गे जलस्थां वाऽपि पूजयेत्। बिल्वपत्रैर्यजेद्देवीं तथा जातीप्रसूनकैः॥ नानापिष्टकनैवेद्यैर्धूपदीपैर्मनोहरैः।' चित्रमृन्मयादि की मूर्ति में स्नानादि कराना सम्भव नहीं है इसलिये खड्ग या दर्पण को स्नान करावे—'अन्तिके स्थापिते खड्गे स्नापयेद्दर्पणेऽथवा।' इति।

१. निगम वाक्यानुसार उपवास पूजादि में नवमी से युक्त ही अष्टमी ग्राह्य है—'शुक्लपक्षेऽष्टमी चैव शुक्लपक्षे चतुर्दशी। पूर्वविद्धा न कर्तव्या कर्तव्या परसंयुता॥ उपवासादिकार्येषु एष धर्मः सनातनः।' स्मृतिसंग्रह में सप्तमीयुत अष्टमी का निषेध—'शरन्महाष्टमी पूज्या नवमीसंयुता सदा। सप्तमीसंयुता नित्यं शोकसन्तापकारिणी॥ जम्भेन सप्तमीयुक्ता पूजिता तु महाष्टमी। इन्द्रेण निहतो जम्भस्तस्माद्दानवपुङ्गवः॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सप्तमीमिश्रिताऽष्टमी। वर्जनीया प्रयत्नेन मनुजैः शुभकाङ्क्षिभिः॥ सप्तमीशल्यसंयुक्तां मोहादज्ञानतोऽपि वा। महाष्टमीं प्रकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते॥ सप्तमी कलया यत्र परतश्चाष्टमी भवेत्। तेन शल्यमिदं प्रोक्तं पुत्रपौत्रक्षयप्रदम्॥' तथा—'पुत्रान् हन्ति पशून् हन्ति हन्ति राष्ट्रं सराजकम्। हन्ति जातानजातांश्च सप्तमीसहिताऽष्टमी॥' इति।

किसी का विचार है कि निशापूजा में यह अष्टमी महानिशाव्यापिनी होनी चाहिये। यदि वह उभय दिन महानिशाव्यापिनी हो तो नवमीयोग की प्रशंसा से उत्तर दिन की अष्टमी को ग्रहण करे। जब अष्टमी पूर्व दिन में महानिशाव्यापिनी हो, पर दिन में न हो तो ऐसी स्थिति में पूर्व दिनवाली सप्तमीयुक्त अष्टमी को ग्रहण करे।

२. स्मृतिसंग्रहे—'यदा सूर्योदये न स्यान्नवमी चापरेऽहनि। तदाऽष्टमीं प्रकुर्वीत सप्तम्या सहितां नृप॥' विश्वरूपनिबन्धे—'सप्तम्यामुदिते सूर्ये परतो याऽष्टमी भवेत्। तत्र दुर्गोत्सवं कुर्यान्न कुर्यादपरेऽहनि॥' इति।

३. कालिकापुराणे—'उपवासं महाष्टम्यां पुत्रवान्न समाचरेत्। यथा तथा वा पूतात्मा व्रती देवीं प्रपूजयेत्॥' इति।

त्याज्य है। जब पहले दिन सप्तमीयुक्त हो दूसरे दिन उदय में नहीं हो, अथवा घड़ी भर से कम हो तब पूर्वा सप्तमीविद्धा भी ग्राह्य है। यह अष्टमी मंगलवार को हो तो बहुत उत्तम है। जब पहले दिन साठ घड़ी अष्टमी हो और दूसरे दिन मुहूर्त आदि व्यापिनी हो तब नवमीयुक्त भी दूसरी को छोड़कर सम्पूर्ण होने से पूर्वा ही ग्राह्य है। इसी प्रकार नवमी के क्षय होने से दशमी के दिन सूर्योदय के बाद नवमी के न रहने पर नवमीयुता उदयकालिकी सप्तमीयुक्ता ही अष्टमी लेनी चाहिए। पुत्रवान् अष्टमी में उपवास न करे। यदि उपवास का कुलाचार हो तो भी कुछ खा कर ही व्रत करे।

अथ महानवमीनिर्णयः

महानवमी तु बलिदानव्यतिरिक्तविषये पूजोपोषणादावष्टमीविद्धा[१] ग्राह्या। सा च यदि अष्टमीदिने सायं त्रिमुहूर्ता स्यात्तदैव ग्राह्या। त्रिमुहूर्तन्यूनत्वे परैव ग्राह्या। नवमीप्रयुक्तमहाबलिदाने तु दशमीविद्धा। यदा शुद्धाधिका नवमी तदा बलिदानमपि पूर्णत्वात् पूर्वत्रैव कार्यम्। अष्टमीनवम्योः संधौ पूजोक्ता। साष्टमीनवम्योः पृथक्त्वे दिवारात्रौ वाष्टम्यन्तनाडीनवम्याद्यनाड्योः कार्या।

महानवमी तो बलिदान को छोड़कर पूजा उपवासादि में अष्टमीविद्धा ही ली जानी चाहिए। वह भी यदि अष्टमी के दिन में सायंकाल तीन मुहूर्त हो तभी ग्रहण करे। तीन मुहूर्त से कम होने पर परा ही ग्राह्य है। नवमीप्रयुक्त महाबलिदान में तो दशमीविद्धा नवमी का ग्रहण करे। जब शुद्धा और अधिका नवमी हो तब बलिदान भी सम्पूर्णता के कारण पहले ही दिन करना चाहिए। अष्टमी और नवमी की सन्धि में पूजा कही गई है। वह अष्टमी नवमी के अलग रहने से दिन में या रात में अष्टमी की अंत वाली घड़ी या नवमी की आदि वाली घड़ी में करे।

यदि तु अष्टमीनवम्योर्मध्याह्नेऽपराह्णे वा योगस्तदाष्टमीनवमीपूजयोरप्येकदिने एव प्राप्तेः 'अष्टमीनवमीपूजां तत्सन्धिपूजां च तन्त्रेण करिष्ये' इति संकल्प्य तन्त्रेण पूजा कार्या। यदि शुद्धाधिकाष्टमी तदा पूर्वेद्युरष्टमीपूजा परेद्युः सन्धिपूजानवमीपूजयोस्तन्त्रम्।

यदि अष्टमी नवमी का मध्याह्न में या अपराह्नमें योग हो तब अष्टमी नवमी दोनों की पूजा एक ही दिन पड़े तो 'अष्टमी नवमी की पूजा और उसकी सन्धिपूजा को तन्त्र से करूँगा' ऐसा संकल्प कर तन्त्र से पूजा करे। जब शुद्धा और अधिका अष्टमी हो तो पहले दिन अष्टमी पूजा और दूसरे दिन तन्त्रसे सन्धिपूजा और नवमीपूजा करे।

अत्र नवरात्रे स्वयं पूजादिकं कर्तुमशक्तावन्येन कारयेत्। षोडशोपचारपूजाविस्तारं कर्तुमशक्तो गन्धादिपञ्चोपचारपूजां कुर्यात्।

---

१. पद्मपुराणे—'श्रावणी दुर्गनवमी दूर्वा चैव हुताशनी। पूर्वविद्धा प्रकर्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम्॥ न कुर्यान्नवमीं तात दशम्या तु कदाचन।' लिङ्गपुराणे—'दुर्गापूजासु नवमी मूलाद् ऋक्षत्रयान्विता। महती कीर्तिता तस्यां दुर्गां महिषमर्दिनीम्। चण्डिकामुपहारैस्तु पूजयेद् राज्यवृद्धये।' कामरूपनिबन्ध में सन्धिपूजा का महत्त्व—'अष्टम्याः शेषदण्डश्च नवम्याः पूर्व एव च। तत्र या क्रियते पूजा विज्ञेया सा महाफला॥' इति।

बलिदान में दशमीविद्धा नवमी ग्राह्य और अष्टमीविद्धा नवमी निषिद्ध है। देवीपुराणे—'सूर्योदये परं रिक्ता पूर्णा स्यादपरा यदि। बलिदानं प्रकर्तव्यं तत्र देशः शुभावहः॥ बलिदाने कृतेऽष्टम्यां राष्ट्रभङ्गो भवेन्नृप।' इति। विशेष मूलग्रंथ में ही स्पष्ट है। ग्रन्थान्तर में प्रमाण देखें।

इस नवरात्र में स्वयं पूजा आदि करने में असमर्थ हो तो दूसरे से पूजा करा ले। विस्तृत षोडशोपचार पूजा करने में असमर्थ व्यक्ति पंचोपचार पूजा ही करे।

अथ नवम्यां होमादि

नवम्यां पूजां विधाय होमः कार्यः। [1]केचिदष्टम्यामेव होम इत्याहुः। अन्ये तु अष्टम्यामुपक्रम्य नवम्यां होमः समापनीयः। स चारुणोदयमारभ्य सायंकालपर्यन्तमष्टमीनवम्योः संधौ संभवति। निशायां तत्सन्धौ तु रात्रौ होमादेरयोग्यत्वान्नवम्यामेव होमोपक्रमसमाप्ती कार्ये इत्याहुः। अत्र यथाकुलाचारं व्यवस्था।

नवमी में पूजा करके होम करना चाहिए। कुछ लोग अष्टमी में ही होम करे, ऐसा कहते हैं। दूसरे लोग अष्टमी में आरम्भ कर नवमी में होम समाप्त करे। वह भी अरुणोदय से आरम्भ करके सायंकाल तक अष्टमी नवमी की सन्धि में होता है। रात में और उसकी सन्धि में तो होम आदि कार्य की अयोग्यता से नवमी में ही होम का आरम्भ और समाप्ति करे, ऐसा कहते हैं। इसमें अपने कुलाचार के अनुसार व्यवस्था करे।

स च होमो नवार्णमन्त्रेण कार्यः। अथवा जयन्ती मङ्गला कालीति श्लोकेन। अथवा नमो देव्यै महा देव्यै इति श्लोकेन। अथवा सप्तशतीश्लोकैः। अथवा सप्तशतीस्तोत्रस्य सप्तशतमन्त्रैः कवचार्गलाकीलकरहस्यत्रयश्लोकसहितैर्होमः। सप्तशतमन्त्रविभागोऽन्यत्र ज्ञेयः। अत्रापि विकल्पेषु यथाकुलाचारं व्यवस्था।

वह होम नवार्ण के मन्त्र से करना चाहिए। अथवा 'जयन्ती मंगला काली' इस मन्त्र से या 'नमो देव्यै महादेव्यै' इस मन्त्र से या सप्तशती के श्लोकों से या सप्तशतीस्तोत्र के सात सौ मन्त्रों से कवच-अर्गला-कीलक और तीनों रहस्य के श्लोकों के सहित होम करे। सात सौ मन्त्रों का विभाग दूसरे ग्रन्थों से जानना चाहिए। इसमें भी विकल्प होने पर जैसा अपना कुलाचार हो वैसा ही व्यवस्था करे।

होमद्रव्यं च—सर्पिर्मिश्रितं शुक्लतिलमिश्रं च [2]पायसं केवलतिलैर्वा होमः। क्वचित्किंशुकपुष्पदूर्वासर्षपलाजपूगयवश्रीफलरक्तचन्दनखण्डनानाविधफलानामपि पायसे मिश्रणं कार्यमित्युक्तम्। होमश्च जपदशांशेन कार्यः। कुलाचारप्राप्तश्चेन्नृसिंहभैरवादिदैवत्यमन्त्रहोमोऽपि कार्यः। अत्र सविस्तरः सग्रहमखो होमप्रयोगः कौस्तुभे ज्ञेयः।

---

१. इनके मत में देवीपुराण का 'पूर्वाषाढायुताष्टम्यां पूजाहोमाद्युपोषणम्' यह वचन है।

२. डामरतन्त्रे—'पायसं सर्पिषा युक्तं तिलैः शुक्लैर्विमिश्रितम्। होमयेद् विधिवद् भक्त्या दशांशेन नृपोत्तम ॥' यामलतन्त्रे—'प्रधानद्रव्यमुद्दिष्टं पायसान्नं तिलास्तथा। किंशुकैः सर्षपैः पूगैर्लाजादूर्वाङ्कुरैरपि ॥ यवैर्वा श्रीफलैर्दिव्यैर्नानाविधफलैस्तथा। रक्तचन्दनखण्डैश्च गुग्गुलैश्च मनोहरैः ॥ प्रतिश्लोकं च जुहुयात्सर्वद्रव्याणि च क्रमात्। नवाक्षरेण वा हुत्वा नमो देव्या इतीति च ॥' इति।

तन्त्रान्तर में देवी-देवताओं के अन्य होमद्रव्य—'यवार्धं तण्डुलाः प्रोक्तास्तण्डुलार्धं तिलाः स्मृताः। तिलार्धं शर्करा प्रोक्ता आज्यं भागचतुष्टयम् ॥' आनन्दरामायण में इन द्रव्यों के भिन्न मान—'तिलार्धं तण्डुला देयास्तण्डुलार्धं यवास्तथा। यवार्धं शर्कराः प्रोक्ताः सर्वार्धं च घृतं स्मृतम् ॥' इति।

होमद्रव्य—घी और सफेद तिल से मिलाया हुआ खीर या तिल मात्र से होम करे। कहीं पर किंशुक का फूल, दूब, सरसो, लावा, सुपारी, जौ, बेल, रक्तचन्दन का टुकड़ा और नाना प्रकार के फलों को भी खीर में मिलाकर होम करे, ऐसा कहा है। जप के दशांश से होम करना चाहिए। कुलाचार हो तो नरसिंह भैरव आदि देवता के मन्त्र से भी होम करे। इसमें विस्तार के साथ ग्रहयज्ञसहित प्रयोग कौस्तुभ ग्रन्थ से जानना चाहिए।

अथ बलिदाननिर्णयः

ब्राह्मणेन माषादिमिश्रान्नेन 'कूष्माण्डेन वा कार्यम्। यद्वा घृतमयं यवपिष्टादिमयं वा सिंहव्याघ्रनरमेषादिकं कृत्वा खड्गेन घातयेत्। ब्राह्मणेन पशुमांसमद्यादिबलिदाने ब्राह्मण्यभ्रष्टता। सकामेन क्षत्रियादिना सिंहव्याघ्रनरमहिषछागसूकरमृगपक्षिमत्स्यनकुलगोधादिप्राणिस्वगात्ररुधिरादिमयो बलिर्देयः। कृष्णसारमृगः क्षत्रियादिभिरपि न देयः। अत्र बलिदानमन्त्रादिप्रकारः सिन्धौ ज्ञेयः। अत्र शतचण्डीसहस्रचण्डीप्रयोगः कौस्तुभादौ ज्ञेयः।

ब्राह्मण, उड़द आदि मिले अन्न से या कूष्माण्ड से बलि दे। अथवा घी का या घृत मिले हुए जव के आंटा से सिंह, व्याघ्र, नर और मेढ़े को बनाकर तलवार से मारे। ब्राह्मण, पशु-मांस-मद्य आदि से बलिदान करने पर ब्राह्मणत्व से भ्रष्ट होता है। सकाम क्षत्रिय आदि, सिंह-बाघ-नर-भेड़ा-बकरा-सूअर मृग-पक्षी-मछली-नेवला-गोह आदि प्राणी के शरीर से रुधिर की बलि दे। क्षत्रिय आदि को भी कृष्णसार मृग की बलि नहीं देनी चाहिए। इसमें बलिदान के मन्त्र आदि की विधि निर्णयसिन्धु से जानना चाहिए। इसमें शतचण्डी और सहस्रचण्डी का प्रयोग कौस्तुभ आदि ग्रन्थों से ज्ञातव्य है।

अथाशौचे समाप्तिनिर्णयः

द्विविधाशौचेऽपि नवम्यां होमं घटादिदेवतोत्थापनं च ब्राह्मणद्वारा कारयित्वा स्वयं पारणं[2] कृत्वाऽऽशौचान्ते ब्राह्मणभोजनं दक्षिणादिदानं च कार्यम्। एवं

---

१. कालिकापुराणे—'कूष्माण्डमिक्षुदण्डश्च मद्यमासव एव च। एते बलिसमा ज्ञेयास्तृप्तौ छागसमाः स्मृताः ॥' रुद्रयामले—'छागाभावे तु कूष्माण्डं श्रीफलं वा मनोहरम्। वस्त्रसंवेष्टितं कृत्वा छेदयेच्छुरिकादिना ॥' तथा—'ब्राह्मणेन सदा देयं कूष्माण्डं बलिकर्मणि। श्रीफलं वा सुराघोश छेदं नैव तु कारयेत् ॥' तथा—'माषान्नेन बलिर्देयो ब्राह्मणेन विजानता।' इति कूष्माण्डादि का छेदन विकल्प से है।

यदि छेदन करना हो तो कूष्माण्ड की प्रार्थना—'कूष्माण्डो बलिरूपेण मम भाग्यादुपस्थितः। प्रणमामि ततः सर्वरूपिणं बलिरूपिणम् ॥ चण्डिकाप्रीतिदानेन दातुरापद्विनाशनम्। चामुण्डाबलिरूपाय बले तुभ्यं नमोऽस्तु ते ॥' इस मन्त्र से खड्ग लेकर, 'यज्ञार्थं बलयः सृष्टाः स्वयमेव स्वयम्भुवा। अतस्त्वां घातयाम्यद्य यस्माद्यज्ञे वधोऽवधः ॥' इस मन्त्र से छेदन करे।

२. विष्णु के—'व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमेऽर्चने जपे। प्रारब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम् ॥ प्रारम्भो वरणं यज्ञे संकल्पो व्रतसत्रयोः। नान्दीमुखं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया ॥' इस वचन के अनुसार आशौच के मध्य में प्रारब्ध कार्य की पूर्ति अनिवार्य है इसलिये सूतक में होमपूर्वक पारणा करे। रुद्रयामले—'सूतके पारणं कुर्यान्नवम्यां होमपूर्वकम्। तदन्ते भोजयेद् विप्रान् दानं दद्याच्च शक्तितः ॥' कूर्मपुराणे—'काम्योपवासे प्रक्रान्ते त्वन्तरा मृतसूतके। तत्र काम्यं व्रतं कुर्याद्दानार्चनविवर्जितम् ॥' सत्यव्रतः—'प्रारब्धदीर्घतपसां नारीणां यद्रजो भवेत्। न तत्रापि व्रतस्य स्यादवरोधः कदाचन ॥' इति।

रजस्वलापि पारणाकाले पारणं कृत्वा शुद्धौ दानादिकं कुर्यात्। विधवायास्तु रजोदोषे भोजननिषेधात्पारणापि शुद्धयुत्तरमेव। एवं व्रतान्तरेप्यूह्यम्।

दोनों प्रकार के आशौच में भी नवमी में होम और घट आदि से देवतोत्थापन भी ब्राह्मण के द्वारा कराकर स्वयं पारणा करके आशौच से निवृत्त होने पर ब्राह्मणभोजन और दक्षिणा आदि देनी चाहिए। इसी तरह रजस्वला भी पारणा काल में पारणा करके शुद्ध होने पर दान आदि करे। विधवा के रजस्वला अवस्था में भोजन के निषेध होने से पारणा भी शुद्ध होने के बाद ही करे। इसी तरह दूसरे व्रतों में भी कल्पना करे।

अथ शस्त्रादिपूजा

प्रतिपदादियावदष्टमि 'लोहाभिसारिकं कर्म राज्ञां विहितम्। तत्र छत्रचामरादिराजचिह्नानां गजाश्वादीनां चापादिशस्त्राणां दुन्दुभ्यादीनां च पूजाहोमादिकं कार्यम्।

प्रतिपदा से अष्टमी तक लोहाभिसारिकाकर्म राजाओं के लिए विहित है। उसमें छत्र, चामर, आदि राज-चिह्नों का, हाथी घोड़ा आदि पशुओं का, धनुष आदि शस्त्रों और दुंदुभि आदि का पूजन होम आदि करना चाहिए।

अथ अश्वादिपूजा

ये हयान्पालयन्ति ते राजभिन्ना अपि स्वातीयुतामाश्विनप्रतिपदं द्वितीयां वारभ्य नवमीपर्यन्तं वाजिनीराजनाख्यं कर्म कुर्युः। तत्रोच्चैःश्रवःपूजा रैवतपूजा च प्रतिमायां कार्या। प्रत्यक्षमश्वपूजा नीराजनं च कार्यम्। कर्मद्वयेऽपि तत्पूजामन्त्रा होमादिमन्त्राः सविस्तरप्रयोगश्च कौस्तुभे।

राजा के अतिरिक्त भी जो घोड़े पालते हैं वे स्वातीनक्षत्रयुक्त आश्विन प्रतिपदा में या द्वितीया में आरम्भ करके नवमी तक घोड़े का नीराजन नामक कर्म करें। उसमें उच्चैःश्रवा और रैवत की पूजा प्रतिमा में करनी चाहिए। प्रत्यक्ष घोड़े की पूजा और आरती भी करनी चाहिए। दोनों कर्म में उसकी पूजा और होम आदि के मन्त्र तथा विस्तृत-प्रयोग कौस्तुभ में है।

इदानीमश्ववन्तः प्राकृतजनास्तु विजयादशम्यामश्वांस्तोयेऽवगाह्य पुष्पमालाभिर्विभूष्याश्वशालायां प्रवेशयन्ति। तत्र—

गन्धर्वकुलजातस्त्वं मा भूयाः कुलदूषकः।
ब्रह्मणः सत्यवाक्येन सोमस्य वरुणस्य च॥
प्रभावाच्च हुताशस्य वर्धय त्वं तुरंगमान्।
रिपून्विजित्य समरे सह भर्त्रा सुखी भव॥

इति मन्त्रेण केवलाश्वपूजापि कर्तुमुचिता।

आज कल घोड़े वाले पुराने लोग तो विजयादशमी में घोड़े को जल में नहला कर पुष्प मालाओं से भूषित कर घोड़सार में प्रवेश कराते हैं। उसमें—गन्धर्वकुल में उत्पन्न तुम कुलदूषक

---

१. लोहाभिसारिकं कर्म = नीराजन से मिलता जुलता एक सैनिक-संस्कार। 'लोहाभिसारोऽस्त्रभृतां राज्ञां नीराजनाविधिः' इत्यमरः। इसकी पूजनादि की विधि ग्रन्थान्तर में द्रष्टव्य है।

नहीं होना। ब्रह्मा के सत्य वचन से चन्द्रमा और वरुण तथा अग्नि के अभाव से तुम घोड़ों को बढाओ। संग्राम में शत्रुओं को पराजित कर मालिक के साथ सुखी हो।' इस आशय के मन्त्र से केवल घोड़े की पूजा ही करना उचित है।

अथ पारणाविसर्जनयोः कालः

तत्र विसर्जनं दशम्यां कार्यम्। दिनद्वये दशमीसत्त्वे पूर्वदशम्यां श्रवणान्त्यपादयोगे तत्रैव विसर्जनम्। तत्र तद्योगाभावे तु परदशम्यामेव। परत्र दशम्यभावे पूर्वदशम्यां नक्षत्रयोगे सत्यसति वा कार्यम्। नक्षत्रयोगानुरोधेन क्रियमाणं विसर्जनमपराह्णेऽपि भवति। अन्यथा प्रातरेव तत्र मृदादिप्रतिमाया[1] विसर्जनपूर्वकं जलादौ त्यागः।

उसमें विसर्जन दशमी में करना चाहिए। दो दिन दशमी हो तो पहली दशमी में श्रवण के अन्त्य चरण से योग होने पर उसी में विसर्जन करे। उसमें उस योग के न रहने पर तो दूसरी दशमी में ही विसर्जन करे। दूसरे दिन दशमी न हो तो पहली दशमी में नक्षत्र योग रहे या न रहे तो भी विसर्जन करना चाहिए। नक्षत्रयोग के अनुरोध से किया जाने वाला विसर्जन अपराह्ण में भी होता है। नहीं तो प्रातःकाल ही मिट्टी आदि की प्रतिमा का विसर्जनपूर्वक जल आदि में त्याग होता है।

परंपरया पूजिताया धातुप्रतिमायास्तु 'घटादिस्थानादुत्तिष्ठ' इत्यादिमन्त्रैरुत्थापनमात्रं कार्यं न तु विसर्जनम्। यद्दिने विसर्जनं तत्रैव नियमत्यागस्यौचित्यात्। विसर्जनोत्तरं तद्दिने एव पारणं कार्यम्। अन्ये तु सत्यपि दशम्यां विसर्जनविधौ नवम्यामेव पारणं कार्यम्। 'नवम्यां पारणं कुर्यात्। दशम्यामभिषेकं च कृत्वा मूर्तिं विसर्जयेत्' इत्यादिवचनादित्याहुः।

परम्परा से पूजी हुई धातु की प्रतिमा का तो 'घटादिस्थानादुत्तिष्ठ' इत्यादि मन्त्रों से उत्थापन मात्र करना चाहिए, विसर्जन नहीं। जिस दिन विसर्जन हो उसी दिन नवरात्र के नियम का त्याग भी उचित है। अतः विसर्जन के बाद उसी दिन पारणा करनी चाहिए। अन्य लोग तो—दशमी में विसर्जन विधि के होते हुये भी नवमी में ही पारणा करे। नवमी में पारण और दशमी में अभिषेक करके मूर्ति का विसर्जन करे। इस आशय के वचन से नवमी में पारण करने को कहते हैं।

---

१. विसर्जनकाल में देवी की उत्तरपूजा करके पुष्प लेकर अंजलि बांधकर—'रूपं देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे। पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वकामांश्च देहि मे॥ महिषघ्नि महामाये चामुण्डे मुण्डमालिनि। आयुरारोग्यमैश्वर्यं देहि देवि नमोऽस्तु ते॥' इन मन्त्रों से प्रार्थनापूर्वक पुष्पांजलि दे। पश्चात् अक्षत लेकर विसर्जन करे—'उत्तिष्ठ देवि चण्डेशि शुभां पूजां प्रगृह्य च। कुरुष्व मम कल्याणमष्टाभिः शक्तिभिः सह॥ गच्छ गच्छ परं स्थानं स्वस्थानं देवि चण्डिके। व्रज स्रोतोजलं वृद्ध्यै स्थीयतां च जले त्विह॥'

फिर देवी को उठाकर जल के निकट ले जाकर 'दुर्गे देवि जगन्मातः स्वस्थानं गच्छ पूजिते। संवत्सरे व्यतीते तु पुनरागमनाय वै॥ इमां पूजां मया देवि यथाशक्त्योपपादिताम्। रक्षार्थं त्वं समादाय व्रज स्वस्थानमुत्तमम्॥' इन मन्त्रों को पढ़कर जल में प्रवाहित करे।

अत्रैवं व्यवस्था—प्रथमदिने स्वल्पाष्टम्या युक्ता नवमी द्वितीयदिने पारणपर्याप्तनवम्या युक्ता दशमी तत्परदिने श्रवणयुक्ता विसर्जनार्हा दशमी। तत्राष्टमीनवम्युपवासयोः प्रथमदिने सिद्धत्वादवशिष्टनवम्यां पारणमवशिष्टदशम्यां विसर्जनम्। यदा तु अवशिष्टनवमीदिने एव दशमी श्रवणयुक्ता विसर्जनार्हा तदा विसर्जनोत्तरं पारणम्। यदा पूर्वदिने षष्टिदण्डाष्टमी परदिनेऽष्टमीशेषयुता नवमी तत्परदिने नवमीशेषयुता दशमी तदा नवम्या युक्तदशम्यामेव विसर्जनोत्तरं पारणा। अथ नवमी षष्टिदण्डा द्वितीयदिने नवमीशेषयुक्ता दशमी तत्रापि नवम्या युक्तदशम्यामेव विसर्जनपारणे। यदा तु अष्टमीनवमीदशम्यस्तिस्रोऽपि तिथयः सूर्योदयमारभ्यास्तमयपर्यन्तमखण्डास्तत्तत्कृत्यपर्याप्तास्तदा दाक्षिणात्यानां नवम्यामेव पारणाचारान्नवम्यामेव पारणविसर्जने। येषां दशम्यामेवाचारस्तेषां तदुभयं दशम्यामेव।

यहाँ ऐसी व्यवस्था है—पहले दिन थोड़ी अष्टमी से युक्त नवमी हो, दूसरे दिन पारणा के योग्य नवमीयुक्त दशमी हो, दशमी के दूसरे दिन श्रवणयुक्ता विसर्जन के योग्य दशमी हो तो इसमें नवमी दसमी में उपवास पहले दिन सिद्ध है। अतः अवशिष्ट नवमी में पारण और अवशिष्ट दशमी में विसर्जन करे। जब अवशिष्ट नवमी के दिन ही दशमी श्रवणयोग वाली विसर्जन के योग्य रहे तब विसर्जन के बाद पारण करे। जब पहले दिन साठ घड़ी अष्टमी हो, दूसरे दिन शेष अष्टमीयुक्त नवमी हो और उसके दूसरे दिन नवमी-शेष-युक्त दशमी हो तब नवमीयुक्त दशमी में ही विसर्जन के बाद पारण करे। यदि नवमी साठ घड़ी हो और दूसरे दिन नवमी-युक्त शेष दशमी हो तो उसमें भी नवमीयुक्त दशमी में ही विसर्जन और पारण करे। जब अष्टमी नवमी और दशमी तीनों तिथियाँ सूर्योदय से सूर्यास्त तक अखण्ड हों और उस कर्म के लिए पर्याप्त समय हो तब दाक्षिणात्यों के लिए नवमी में ही पारणा के आचार से नवमी में ही पारणा और विसर्जन कर्तव्य है। जिन लोगों का दशमीमें ही विसर्जन और पारणा का आचार हो उन लोगों को पारण और विसर्जन दोनों दशमी में ही करना चाहिए।

अथ विजयादशमीनिर्णयः

सा परदिने एवापराह्णव्याप्तौ परा। दिनद्वयेऽपराह्णव्याप्तौ दिनद्वयेपि श्रवणयोगे सत्यसति वा पूर्वा। एवं दिनद्वयेऽपराह्णव्याप्त्यभावेऽपि श्रवणयोगसत्त्वासत्त्वयोः पूर्वैव। दिनद्वयेऽपराह्णव्याप्त्यव्याप्त्योरेकतरदिने श्रवणयोगे यद्दिने श्रवणयोगः सैव ग्राह्या। एवमपराह्णैकदेशव्याप्तावूह्यम्। यदा पूर्वदिने एवापराह्णव्याप्तापरदिने च श्रवणयोगाभावः तदापि पूर्वैव[1]। यदा तु पूर्वदिने एवापराह्णव्यापिनी

१. दूसरे दिन श्रवणयोग के अभाव में विजयादशमी पूर्व दिन की ही ग्राह्य है। स्कन्दपुराणे—'दशम्यां तु नरैः सम्यक् पूजनीयाऽपराजिता। ऐशानीं दिशमाश्रित्य अपराह्णे प्रयत्नतः॥ या पूर्णा नवमीयुक्ता तस्यां पूज्याऽपराजिता। क्षेमार्थं विजयार्थं च पूर्वोक्तविधिना नरैः। नवमीशेषयुक्तायां दशम्यामपराजिता। ददाति विजयं देवी पूजिता जयवर्धिनी॥' शिवरहस्ये—'आश्विने शुक्लपक्षे तु दशम्यां पूजयेत्ततः। एकादश्यां न कुर्वीत पूजनं चापराजितम्॥' इति।

परदिने च मुहूर्तत्रयादिव्यापिनी अपराह्णात्पूर्वमेव समाप्ता परत्रैव श्रवणयोगवती तदा 'परैव । अपराह्णे दशम्यभावेऽपि 'यां तिथिं समनुप्राप्य उदयं याति भास्कर' इत्यादिसाकल्यवचनैः श्रवणयुक्ताया ग्राह्याया औदयिकस्वल्पदशम्याः कर्मकाले सत्त्वापादनात् ।

विजया दशमी पर दिन ही अपराह्णव्यापिनी हो तो परा लेनी चाहिए। दो दिन में अपराह्ण में रहने वाली दशमी दोनों दिन श्रवणयोग के रहने या न रहने पर पूर्वा ग्राह्य है। इसी तरह दोनों दिन में अपराह्णव्याप्ति के अभाव में भी श्रवणयोग के रहने या न रहने पर पूर्वा ही ग्राह्य है। दोनों दिन में अपराह्णव्यापिनी और अपराह्ण में न रहने वाली दशमी को किसी एक दिन जिस दिन श्रवण से योग हो ग्रहण करना चाहिए। इसी प्रकार अपराह्ण के एकदेश में दशमी के रहने पर कल्पना कर लें। जब पहले दिन ही अपराह्णव्यापिनी दशमी हो और दूसरे दिन श्रवणयोग न हो तब भी पूर्वा ही ग्राह्य है। जब पूर्व दिन में ही अपराह्णव्यापिनी दशमी हो और दूसरे दिन तीन मुहूर्त आदि में रहे और अपराह्ण के पहले ही समाप्त होती हो और दूसरे ही दिन श्रवणयोग वाली हो तब दूसरे ही दिन करना चाहिए। अपराह्ण में दशमी के न होने पर भी जिस तिथि में सूर्य नारायण उदय लें वह तिथि सम्पूर्ण दिन मानी जाती है। इस आशय के वचन से श्रवणयोग वाली दशमी के ग्राह्य होने से उदयकाल में थोड़ी भी दशमी रहे तो कर्मकाल में रहना सिद्ध होने से दूसरे दिन श्रवणयोग में करना चाहिए।

[2]सिन्धौ तु इदं परदिनेऽपराह्णकाले श्रवणसत्त्वे एव । श्रवणस्याप्यपराह्णात्पूर्वमेव समाप्तौ तु पूर्वैवेत्युक्तम् । युक्तं चैतत् । यदा परदिने एवापराह्णव्याप्तिः पूर्वदिने एवापराह्णात्परत्र सायाह्नादौ श्रवणयोगस्तदा तु परैव ग्राह्येति मम प्रतिभाति ।

निर्णयसिन्धु में—तो यह दूसरे दिन अपराह्णकाल में श्रवण होने पर ही करे। श्रवण यदि अपराह्ण के पहले ही समाप्त हो तो पूर्वा ही में करे—ऐसा कहा है। यह ठीक भी है। जब दूसरे ही दिन अपराह्णव्यापिनी दशमी हो और पहले दिन अपराह्ण के बाद सायाह्न आदि में श्रवणनक्षत्र आदि का योग हो तब तो परा ही का ग्रहण करना मुझे ठीक जँचता है।

---

१. पूर्व दिन में श्रवणयोग का अभाव और परदिन में स्वल्प भी श्रवण का योग हो तो पर दिन वाली ही ग्राह्य है। हेमाद्रि में कश्यप—'उदये दशमी किंचित् सम्पूर्णैकादशी यदि । श्रवणर्क्षं यदा काले सा तिथिर्विजयाभिधा ॥ श्रवणर्क्षे तु पूर्णायां काकुत्स्थः प्रस्थितो यतः । उल्लङ्घयेयुः सीमानं तद्दिनर्क्षे ततो नराः ॥' ज्योतिर्निबन्ध में नारद—'ईषत्सन्ध्यामतिक्रान्तः किञ्चिदुद्भिन्नतारकः । विजयो नाम कालोऽयं सर्वकार्यार्थसिद्धिदः । इषस्य दशमीं शुक्लां पूर्वविद्धां न कारयेत् । श्रवणेनापि संयुक्तां राज्ञां पट्टाभिषेचने ॥ सूर्योदये यदा राजन् दृश्यते दशमी तिथिः । आश्विने मासि शुक्ले तु विजयां तां विदुर्बुधाः ॥' इति ।

२. यहां निर्णयसिन्धुकार का निर्गलित अर्थ है—'अपराह्णो मुख्यः कर्मकालः, तत्रैव पूजाद्युक्तेः । प्रदोषो गौणः । तत्र दिनद्वयेऽपराह्णव्यापित्वे पूर्वा, प्रदोषव्याप्तेराधिक्यात् । दिनद्वये प्रदोषव्यापित्वे परा, अपराह्णव्याप्तेराधिक्यात् । श्रवणस्तु रोहिणीवदप्रयोजकः । दिनद्वयेऽपराह्णास्पर्शे तु पूर्वा । तत्रापि परदिनेऽपराह्णे श्रवणसत्त्वे परैवेति दिक् ।'

अथापराजितापूजनादि

अत्रापराजितापूजनं सीमोल्लङ्घनं शमीपूजनं देशान्तरयात्रार्थिनां प्रस्थानं च विहितम्। तत्पूजाप्रकारस्तु अपराह्णे ग्रामादीशान्यां दिशि गत्वा शुचिदेशे भुवमुपलिप्य चन्दनादिनाष्टदलमालिख्य 'मम कुटुम्बस्य क्षेमसिद्ध्यर्थम् अपराजितापूजनं करिष्ये' इति संकल्प्य मध्ये अपराजितायै नमः इत्यपराजितामावाह्य तद्दक्षिणे क्रियाशक्त्यै नम इति जयां वामतः उमायै नम इति विजयां चावाह्य अपराजितायै नमः जयायै नमः विजयायै नमः इति नाममन्त्रैः षोडशोपचारां पूजां कृत्वा प्रार्थयेत्—

इमां पूजां मया देवि यथाशक्ति निवेदिताम्।
रक्षार्थं तु समादाय व्रजस्व स्थानमुत्तमम्॥ इति।

अथ राज्ञः संकल्पे 'यात्रायां विजयसिद्ध्यर्थम्' इति विशेषः। पूजानमस्कारान्ते— हारेण तु विचित्रेण भास्वत्कनकमेखला।
अपराजिता भद्ररता करोतु विजयं मम॥

इत्यादिमन्त्रैर्विजयं प्रार्थ्य पूर्ववद्विसृजेदिति संक्षेपः।

इसी दशमी में अपराजिता की पूजा, सीमा का उल्लङ्घन, शमीपूजन और दूसरे देश में जाने वालों का प्रस्थान भी विहित है। अपराजिता के पूजा का प्रकार तो अपराह्ण में ग्राम से ईशान दिशा में जाकर पवित्र स्थान में जमीन को लीप कर उसमें चन्दन आदि से अष्टदल बनाकर 'मेरे कुटुम्बसहित की क्षेम-सिद्धि के लिए मैं अपराजिता का पूजन करूँगा' ऐसा संकल्प करके बीच में अपराजिता को नमस्कार है यह कह कर अपराजिता का आवाहन करके उससे दक्षिण दिशा में क्रिया शक्ति को नमस्कार है इससे जया का आवाहन और बायीं ओर उमा को नमस्कार है इससे विजया का आवाहन कर अपराजिता को नमस्कार है जया को नमस्कार है और विजया को नमस्कार है। इन नाम मंत्रों से षोडशोपचार पूजा करके प्रार्थना करे। हे देवि! मुझसे यथाशक्ति निवेदित की गयी इस पूजा को रक्षार्थ लेकर आप अपने उत्तम स्थान में जाइये। राजा की यात्रा के संकल्प में 'यात्रा में विजयसिद्धि के लिए' इतना विशेष जोड़ना चाहिए। पूजा और नमस्कार के अन्त में—विचित्र हार से चमकती हुई सोने की करधनी वाली कल्याणरत अपराजिता देवी मेरी विजय करें इस आशय के मंत्र से विजय की प्रार्थना करके पहले की तरह विसर्जन करे।

अथ शमीपूजनादि

ततः सर्वे जनाः ग्रामाद्बहिरीशानदिगवस्थितां शमीं गत्वा पूजयेयुः। सीमोल्लङ्घनं तु शमीपूजनात्पूर्वं पश्चाद्वा कार्यम्। राजा तु अश्वमारुह्य सह पुरोहितः सामात्यः शमीमूलं गत्वा वाहनादवरुह्य स्वस्तिवाचनपूर्वकं शमीं संपूज्य कार्योद्देशानमात्यैः सह संवदन्प्रदक्षिणां कुर्यात्।

इसके बाद सब लोग गाँव के बाहर ईशान दिशा में स्थित शमीवृक्ष के पास जाकर उसकी पूजा करें। सीमा का उल्लंघन तो शमी की पूजा के बाद या पहले करे। पूजा तो अपने मंत्री और पुरोहित के साथ घोड़े पर चढ़ कर शमी के पास जाकर सवारी से उत्तर कर स्वस्तिवाचनपूर्वक शमी की पूजा करके अपने कार्य के उद्देश्यों को मंत्रियों के साथ कहते हुए शमी की प्रदक्षिणा करे।

पूजाप्रकारस्तु 'मम दुष्कृतामङ्गलादिनिरासार्थं क्षेमार्थं यात्रायां विजयार्थं च शमीपूजां करिष्ये' शम्यलाभे 'अश्मन्तकवृक्षपूजां करिष्ये' इति संकल्पः। राजा तु शमीमूले दिक्पालपूजां वास्तुदेवतापूजां च कुर्यात्।

अमङ्गलानां शमनीं शमनीं दुष्कृतस्य च।
दुःखप्रणाशिनीं धन्यां प्रपद्येऽहं शमीं शुभाम्॥

इति पूजामन्त्रः। पूजान्ते—

शमी शमयते पापं शमी लोहितकण्टका।
धरित्र्यर्जुनबाणानां रामस्य प्रियवादिनी॥
करिष्यमाणा यात्रायां यथाकालं सुखं मया।
तत्र निर्विघ्नकर्त्री त्वं भव श्रीरामपूजिते॥ इति प्रार्थयेत्।

अश्मन्तकपूजने—

अश्मन्तक महावृक्ष महादोषनिवारण।
इष्टानां दर्शनं देहि शत्रूणां च विनाशनम्॥ इति प्रार्थयेत्।

राजा शत्रोर्मूर्तिंकृत्वा शस्त्रेण विध्येत्। प्राकृताः शमीशाखाश्छित्त्वा आनयन्ति, तन्निर्मूलम्।

गृहीत्वा साक्षतामार्द्रां शमीमूलगतां [1]मृदम्।
गीतवादित्रनिर्घोषैरानयेत्स्वगृहं प्रति॥
ततो भूषणवस्त्रादि धारयेत्स्वजनैः सह।
नीराज्यमानः पुण्याभिर्युवतीभिः सुमङ्गलम्॥ इति।

पूजा की विधि तो 'मेरे पाप अमंगल आदि के निवारण, कल्याण और यात्रा में विजय के लिए शमी की पूजा करूगा' ऐसा संकल्प करे। शमी के न मिलने पर 'अश्मन्तक वृक्ष की पूजा करूँगा' ऐसा संकल्प करे। राजा तो शमी के मूल में दिक्पाल और वास्तुदेवता की पूजा भी करे। अमंगलों और पाप का शमन तथा दुःख का नाश करने वाली शुभ धन्य शमी के शरण में प्रपन्न हूँ। इस आशय के मंत्र से पूजा करे। पूजा के अन्त में–शमी पाप को शान्त करती है, शमी लाल कांटेवाली

---

१. पूजा समाप्ति के बाद चलते समय शमीवृक्ष के जड़ की मिट्टी और अक्षत घर पर लाना चाहिये (और कोष में रख देना चाहिये) शमीवृक्ष रक्तपुष्प और कंटकयुक्त होता है। ज्योतिष में शमीवृक्ष को पूजा के अनन्तर खंजरीट दर्शन का फल—'कृत्वा नीराजनं राजा बलवृद्ध्यै यथाक्रमम्। शोभनं खञ्जनं पश्येज्जलगोगोष्ठसन्निधौ॥'

खञ्जरीट-दर्शन का मन्त्र—'नीलग्रीव शुभग्रीव सर्वकामफलप्रद। पृथिव्यामवतीर्णोऽसि खञ्जरीट नमोऽस्तु ते॥' तिथितत्त्व में दर्शन का फल—'अब्जेषु गोषु गजवाजिमहोरगेषु राज्यप्रदः कुशलदः शुचिशाद्वलेषु। भस्मास्थिकेशनखलोमतुषेषु दृष्टो दुःखं ददाति बहुशः खलु खञ्जरीटः॥ वित्तं ब्रह्मणि कार्यसिद्धिरतुला शक्रे हुताशे भयं याम्यामग्निभयं सुरद्विषकलिर्लाभः समुद्रालये। वायव्यां वरवस्त्रगन्धसलिलं दिव्याङ्गना चोत्तरे ऐशान्यां मरणं ध्रुवं निगदितं दिग्लक्षणं खञ्जने॥' इति।

और अर्जुन के बाणों को धारण करने वाली एवं रामचन्द्र से प्रिय बोलने वाली हे रामपूजिते! मेरी जो यात्रा होने वाली है उसमें यथासमय सुखदायक हो उस यात्रा को तुम निर्विघ्न करने वाली हो इस आशय के मंत्र से प्रार्थना करे। जब शमीवृक्ष न हो और अश्मन्तकवृक्ष का पूजन करना हो तो महादोष के निवारण करने वाले हे महावृक्ष अश्मन्तक! शत्रुओं को विनाश करो। अभीष्टजनों का दर्शन दो। इस आशय के मंत्र से प्रार्थना करे। राजा अपने शत्रु की मूर्ति बनाकर शस्त्र से वेधे। साधारण जन शमी की शाखा को तोड़ कर लाते हैं यह निर्मूल हैं, इसमें कोई प्रमाण नहीं हैं। लिखा है कि अक्षत के सहित गीली शमी के जड़ की मिट्टी को लेकर गाने बजाने के शब्दों के साथ अपने घर लावे। इसके बाद भूषण वस्त्र आदि को अपने आदमियों के साथ धारण करे और युवती स्त्रियों से मंगलदायक आरती करावे।

अथ देशान्तरं जिगमिषोर्यात्राकालः

अत्र देशान्तरं जिगमिषुभिर्विजयमुहूर्ते चन्द्राद्यानुकूल्याभावेऽपि प्रयाणं कार्यम्। तत्र विजयमुहूर्तो द्विविधः—

ईषत्संध्यामतिक्रम्य किंचिदुद्भिन्नतारकः।
विजयो नाम कालोयं सर्वकार्यार्थसाधकः॥ इत्येकः।
एकादशो मुहूर्तोऽपि विजयः परिकीर्तितः।
तस्मिन्सर्वैर्विधातव्या यात्रा विजयकांक्षिभिः॥ इत्यपरः।

उक्तद्वयान्यतरमुहूर्ते दशमीयुक्ते प्रस्थानं कार्यं न त्वेकादशीयुक्ते।

आश्वयुक्शुक्लदशमी विजयाख्याखिले शुभा।
प्रयाणे तु विशेषेण किं पुनः श्रवणान्विता॥

इति ज्योतिर्ग्रन्थोक्तेरन्यान्यपि कर्माणि मासविशेषनिरपेक्षाण्यत्र चन्द्राद्यानुकूल्याभावेप्यनुष्ठेयानि। मासविशेषे विहितानि तु चूडाकर्मविष्ण्वादिदेवताप्रतिष्ठादीनि न कुर्यात्। राज्ञां पट्टाभिषेके नवमीविद्धा दशमी श्रवणयुतापि न ग्राह्या किन्त्वौदयिक्येव ग्राह्या।

इस दिन दूसरे देश में जाने की इच्छा करने वालों को विजय मुहूर्त में चन्द्रमा आदि के अनुकूल न होने पर भी यात्रा करनी चाहिए। इसमें विजय मुहूर्त दो प्रकार का होता है। पहला—कुछ सन्ध्याकाल के बाद एकाध तारे निकल आये हों वही काल सब कार्य के लिए साधक विजय नाम का है। दूसरा—ग्यारहवाँ मुहूर्त भी विजय कहलाता है। उसमें विजय चाहने वाले यात्रा करें। इन दोनों में से किसी एक में दशमी के रहते ही प्रस्थान करे। एकादशी में नहीं। आश्विन शुक्लपक्ष की दशमी विजय नाम की सम्पूर्ण कार्य में शुभ करने वाली है। विशेषतः यात्रा में श्रवण से युक्त हो तो क्या पूछना है। इस ज्योतिष ग्रन्थ की उक्ति से मास विशेष की अपेक्षा नहीं करने वाले अन्यान्य कार्य चन्द्रमा आदि के अनुकूल न होने पर भी करना चाहिए। मास विशेष में विहित तो चूडाकर्म और विष्णु आदि देवता की प्रतिष्ठा आदि कर्म न करे। राजाओं के पट्टाभिषेक में नवमीविद्धा दशमी श्रवण के योग रहते भी नहीं ग्राह्य है किन्तु उदयकाल में रहने वाली दशमी ही ग्राह्य है।

अथ कार्तिकस्नानविधिः

आश्विनस्य शुक्लां दशमीमेकादशीं[1] पूर्णमासीं वारभ्य मुहूर्तावशिष्टायां रात्रौ तीर्थादौ गत्वा प्रत्यहं मासपर्यन्तं कार्तिकस्नानं कार्यम् । तत्प्रकारः—विष्णुं स्मृत्वा । देशकालौ संकीर्त्य,

नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने ।
नमस्तेऽस्तु हृषीकेश गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥ इत्यर्घ्यं दत्त्वा,
कार्तिकेऽहं करिष्यामि प्रातःस्नानं जनार्दन ।
प्रीत्यर्थं तव देवेश दामोदर मया सह ॥
ध्यात्वाहं त्वां च देवेश जलेस्मिन्स्नातुमुद्यतः ।
तव प्रसादात्पापं मे दामोदर विनश्यतु ॥

इति मन्त्राभ्यां स्नात्वा पुनरर्घ्यं द्विर्दद्यात् । तत्र मन्त्रौ—

नित्ये नैमित्तिके कृष्ण कार्तिके पापनाशने ।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे ॥
व्रतिनः कार्तिके मासि स्नातस्य विधिवन्मम ।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं राधया सहितो हरे ॥

आश्विनशुक्ल दशमी एकादशी या पूर्णमासी से आरम्भ करके एक मुहूर्त रात रहने पर तीर्थ आदि में जाकर प्रति दिन महीने भर तक कार्तिक स्नान करे । इसकी विधि यह है—विष्णु को स्मरण करके देश और काल को कहकर हे कमलनाभ ! जल में सोने वाले हे हृषीकेश ! भगवान् मेरे दिये हुए अर्घ्य को ग्रहण कीजिये । आप को नमस्कार है । इस आशय के मंत्र से अर्घ्य दे कर लक्ष्मी के सहित हे दामोदर ! हे देवेश ! आप की प्रसन्नता के लिए मैं कार्तिक में प्रातःस्नान करूँगा आप का ध्यान करके हे देवेश ! इस जल में स्नान करने को तत्पर हूँ । आपके प्रसाद से हे दामोदर ! मेरे पाप नष्ट हों । इस आशय के दोनों मन्त्रों से स्नान करके फिर दो बार अर्घ्य दे । उसके दो मंत्रों के आशय हैं—हे कृष्ण ! नित्य नैमितिक में पापनाशक कार्तिक में मेरा दिया हुआ अर्घ्य राधा के सहित आप ग्रहण करें । कार्तिकमास में विधिपूर्वक नहाये हुए मुझ व्रत वाले का दिया हुआ अर्घ्य राधा के सहित स्वीकार करें ।

कुरुक्षेत्रगङ्गापुष्करादितीर्थविशेषेण फलविशेषः । अथान्योऽपि विशेषः—

कार्तिकं सकल मासं नित्यस्नायी जितेन्द्रियः ।
जपन् हविष्यभुग्दान्तः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
स्मृत्वा भागीरथीं विष्णुं शिवं सूर्यं जले विशेत् ।
नाभिमात्रे जले तिष्ठन्व्रती स्नायाद्यथाविधि ॥

---

१. पद्मपुराणे—'आश्विनस्य तु मासस्य या शुक्लैकादशी भवेत् । कार्तिकस्य व्रतानीह तस्यां वै प्रारमेत् सुधीः ॥' विष्णुरहस्ये—'प्रारभ्यैकादशीं शुक्लामाश्विनस्य तु मानवः । प्रातःस्नानं प्रकुर्वीत यावत्कार्तिकभास्करः ॥' आदित्यपुराणे—'पूर्णं आश्वयुजे मासि पौर्णमास्यां समाहितः ।' काशीखण्डे—'वाराणस्यां पंचनदे त्र्यहं स्नातास्तु कार्तिके । अमी ते पुण्यवपुषः पुण्यभाजोऽतिनिर्मलाः ॥' इति ।

कुरुक्षेत्र, गंगा और पुष्कर आदि तीर्थों में कार्तिकस्नान करने से विशेष फल की प्राप्ति होती है। और भी विशेषता है। सम्पूर्ण कार्तिकमास में जितेन्द्रिय होकर नित्यस्नान, जप, हविष्य-भोजन और इन्द्रियों का दमन करने वाला सब पापों से छूट जाता है। भागीरथी गंगा, विष्णु, शिव और सूर्य्य को स्मरण करके नाभि-पर्यन्त जल में प्रवेश करे। उसीमें खड़े-खड़े यथाविधि स्नान करे।

इदं कार्तिकस्नानं प्रातःस्नानं प्रातःसंध्यां च कृत्वा कार्यम्। ताभ्यां विनेतरकर्मानधिकारात्। यद्यपि प्रातःसंध्यायाः सूर्योदये समाप्तिस्तथाप्यत्र वचनबलादुदयात्पूर्वं संध्यां समाप्य कार्तिकस्नानं कार्यमिति निर्णयसिन्धावुक्तम्। नैवं ग्रन्थान्तरे दृश्यते। एवं मासस्नानाशक्तौ त्र्यहं स्नायात्।

यह कार्तिकस्नान प्रातःस्नान और प्रातःसंध्या करके ही करना चाहिये, क्योंकि स्नान सन्ध्या के विना दूसरे कर्म में अधिकार नहीं होता। यद्यपि प्रातःसंध्या की समाप्ति सूर्योदय में होती है तथापि वचन बल से उदय के पूर्व ही संध्या समाप्त करके, कार्तिकस्नान करना चाहिए, यह निर्णयसिन्धु में कहा है। ऐसा दूसरे ग्रन्थों में नहीं देखा जाता है। पूरे महीने भर स्नान में असमर्थ को तीन दिन स्नान करना चाहिए।

अथ कार्तिकव्रतानि

अन्येषामपि कार्तिकमासव्रतानामत्रैवारम्भः। तानि यथा—

तुलसीदललक्षेण कार्तिके योऽर्चयेद्धरिम्।
पत्रे पत्रे मुनिश्रेष्ठ मौक्तिकं लभते फलम्॥

तुलसीमञ्जरीभिर्हरिहरार्चने मुक्तिः फलम्। रोपणपालनस्पर्शैः पापक्षयः। तुलसीछायायां श्राद्धात्पितृतृप्तिः। तुलसीशोभितगृहे तीर्थरूपे यमकिंकरा नायान्ति इत्यादितुलसीमाहात्म्यम्। एवं धात्रीमाहात्म्यमपि।

कार्तिके धात्रिवृक्षाधश्चित्रान्नैस्तोषयेद्धरिम्।
ब्राह्मणान् भोजयेद्भक्त्या स्वयं भुञ्जीत[1] बन्धुभिः॥ १॥

धात्रीछायासु श्राद्धं धात्रीपत्रैः फलैश्च हरिपूजनं च महाफलम्। देवर्षि-सर्वयज्ञतीर्थानां धात्रीवृक्षे निवासोक्तेः।

अन्य कार्तिकमास के व्रतों का आरम्भ इसी में करना चाहिए। वे व्रत ये हैं—कार्तिक में एक लाख तुलसीदल से जो भगवान् की पूजा करते हैं, वे पत्ते-पत्ते में मोती चढ़ाने का फल पाते हैं। तुलसी की मञ्जरी से विष्णु और शंकर की पूजा का फल मुक्ति की प्राप्ति है। तुलसी के रोपण पालन और स्पर्श से पाप का क्षय होता है। तुलसी की छाया में श्राद्ध करने से पितरों की तृप्ति होती है। तुलसी से शोभित तीर्थ रूप गृह में यमराज के दूत नहीं आते इत्यादि तुलसी का माहात्म्य है। इसी तरह आंवले का माहात्म्य भी है। कार्तिक में आंवले के पेड़ के नीचे अनेक अन्नों से भक्तिपूर्वक

---

१. कार्तिकमाहात्म्ये—'धात्रीच्छायां समाश्रित्य भुङ्क्ते योऽन्नं हि मानवः। ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु वार्षिकं किल्विषं हरेत्॥' स्कन्दपुराणे—'धात्रीच्छाये तु यः कुर्यात् पिण्डदानं महामुने। मुक्तिं प्रयान्ति पितरः प्रसादान्माधवस्य तु॥ धात्रीफलविलिप्ताङ्गो धात्रीफलविभूषितः। धात्रीफलकृताहारो नरो नारायणो भवेत्॥ धात्रीच्छायां समाश्रित्य योऽर्चयेच्चक्रधारिणम्। पुष्पे पुष्पेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥' इति।

ब्राह्मणों को भोजन करावे और बन्धु बान्धव सहित स्वयं भोजन करे। इससे भगवान् को तुष्ट करे। आंवले की छाया में श्राद्ध, आंवले के पत्तों और फलों से भगवान् का पूजन, महाफल देने वाला है। आंवले के वृक्ष में देवता, ऋषि, सभी यज्ञ और तीर्थों का निवास है।

अत्रैव हरिजागरविधिः

जागरं कार्तिके मासि यः कुर्यादरुणोदये।
दामोदराग्रे सेनानीर्गोसहस्रफलं लभेत्॥
शिवविष्णुगृहाभावे सर्वदेवालयेष्वपि।
कुर्यादश्वत्थमूलेषु तुलसीनां वनेष्वपि॥
विष्णुनामप्रबन्धानि यो गायेद्विष्णुसन्निधौ।
गोसहस्रप्रदानस्य फलमाप्नोति मानवः॥
वाद्यकृत्पुरुषश्चापि वाजपेयफलं लभेत्।
सर्वतीर्थावगाहोत्थं नर्तकः फलमाप्नुयात्॥
सर्वमेतल्लभेत्पुण्यं तेषां तु द्रव्यदः पुमान्।
अर्चनाद्दर्शनाद्वापि तत्षडंशमवाप्नुयात्॥ इति कौस्तुभे।

कार्तिक के महीने में भगवान् के आगे जो अरुणोदय में जागरण करता है वह हजार गोदान का फल पाता है। शिवमन्दिर और विष्णुमन्दिर के न होने पर सब देवताओं के मन्दिर में भी पीपल के जड़ों, तुलसी के वनों और विष्णु के निकट में विष्णु के नाम और उनकी कथाओं को जो गाता है वह मनुष्य हजार गोदान का फल पाता है। पूर्वोक्त देवताओं के सामने बाजा बजाने वाला भी वाजपेययज्ञ का फल पाता है। नाचने वाला सम्पूर्ण तीर्थों के स्नान का फल पाता है। यह सम्पूर्ण फल वह पाता है जो उनको द्रव्य देता है। पूजन और दर्शन से भी छठा अंश पाता है, ऐसा कौस्तुभ में लिखा है।

सर्वाभावे ब्राह्मणानां विष्णुभक्तानां वाश्वत्थवटयोर्वा सेवने कुर्यादिति तत्रैव।

सरोरुहाणि[1] तुलसीमालतीमुनिपुष्पकम्।
कार्तिके विहितान्येवं दीपदानं च पञ्चमम्॥

कार्तिके मासोपवासो वानप्रस्थयतिविधवाभिः कार्यः। गृहस्थैर्न कार्यः।

कृच्छ्रं वाप्यतिकृच्छ्रं वा प्राजापत्यमथापि वा।
एकरात्रं व्रतं कुर्यात्त्रिरात्रव्रतमेव वा॥

---

१. पद्मपुराणे—'कार्तिके नार्चितो यैस्तु कमलैः कमलेक्षणः। जन्मकोटिषु विप्रेन्द्र न तेषां कमला गृहे॥' 'तुलसीदललक्षेण कार्तिके योऽर्चयेद्धरिम्। पत्रे पत्रे मुनिश्रेष्ठ मौक्तिकं लभते फलम्॥' कार्तिकमाहात्म्ये—'मालतीमालया विष्णुः केतक्या चैव पूजितः। समाः सहस्रं सुप्रीतो भवेच्च मधुसूदनः॥' नृसिंहपुराणे—'अगस्तिकुसुमैर्देवं योऽर्चयेच्च जनार्दनम्। दर्शनात्तस्य देवर्षेर्नरकं नाश्नुते नरः॥ विहाय सर्वपुष्पाणि मुनिपुष्पेण केशवम्। कार्तिके योऽर्चयेद् भक्त्या वाजपेयफलं लभेत्॥' पुष्करपुराणे—'तुलायां तिलतैलेन सायंकाले समागते। आकाशदीपं यो दद्यान्मासमेकं हरिं प्रति॥ महतीं श्रियमाप्नोति रूपसौभाग्यसम्पदम्॥' नारदीये—'कार्तिके विष्णुमूर्त्यग्रे दीपदानाद्दिवं व्रजेत्॥' इति।

शाकाहारं पयोहारं फलाहारमथापि वा।
चरेद्यवान्नाहारं वा संप्राप्ते कार्तिके व्रती ॥

कुछ न करने पर विष्णुभक्त ब्राह्मणों की अथवा वटवृक्ष की सेवा करे, यह भी वहीं लिखा है कार्तिकमास में भगवान् पर कमल, तुलसी, मालती और अगस्त के पुष्प चढ़ाने चाहिए। इसी प्रकार दीपदान भी करना चाहिए। कार्तिक में एक महीने का उपवास वानप्रस्थ संन्यासी और विधवाओं का कर्तव्य है। गृहस्थ को मासोपवास नहीं करना चाहिए। कार्तिक में व्रत करने वाले कृच्छ्र व्रत करें या अतिकृच्छ्र अथवा प्राजापत्यव्रत करें। एक रात या तीन रात का व्रत करे। साग का आहार करे, दूध अथवा फल या जव का आहार करे।

अथ कार्तिके वर्ज्यानि

पलाण्डुलशुनहिङ्गुच्छत्राकगृञ्जनमूलकालाबुशिग्रुवृन्ताककूष्माण्डबृहतीफलकलिङ्गकपित्थतैललवणशाकद्विपाचितान्नपर्युषितान्नदग्धान्नानि माषमुद्गमसूरचणककुलित्थनिष्पावाढक्यादिद्विदलानि च वर्जयेत्। सप्तम्यां धात्रीफलं तिलाश्चाष्टम्यां नारिकेरं रविवारे[1] धात्रीफलं सर्वदा वर्ज्यम्।

प्याज, लहसुन, हींग, छत्राक, गृञ्जन, मूली, तुमड़ी लौकी, सहिजन, बैगन, कूष्माण्ड, बृहतीफल, कलिंग, कैत, तेल, नमक, साग, दो बार का पकाया अन्न, बासी अन्न, जले हुए अन्न, उड़द, मसूर, चना, कुर्थी और दाल का वर्जन करे। सप्तमी में आँवला, अष्टमी में तिल और नारियल तथा रविवार में आंवले का फल सदा त्यागना चाहिए।

अथ कार्तिकव्रते दानानि

कांस्यपात्रे भोजनवर्जनव्रते कांस्यपात्रं घृतपूर्णं दद्यात्। मधुत्यागे घृतपायसशर्करादानं समाप्तौ कार्यम्। तैलत्यागे तिलदानम्। कार्तिके मौनभोजी सतिलां घण्टां दद्यात्। स्वर्णयुतानि माषयुतानि त्रिंशत्कूष्माण्डान्यत्र मासे दद्यात्। कार्तिके कांस्यभोजी कृमिभुक्। फलवर्जने फलं रसत्यागे रसः धान्यत्यागे धान्यानि च देयानि सर्वत्र गोदानं वा।

एकतः सर्वदानानि दीपदानं तथैकतः।
कार्तिके दीपदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥

कांसे के पात्र में भोजन न करने के व्रत में कांसे के पात्र को घीसे भर कर दान करे। मधु के त्याग में घी, खीर और शक्कर का दान समाप्ति में करना चाहिए। तेल के त्याग में तिलदान करना चाहिए। कार्तिक में मौन भोजन करने वाला तेल और घंटा का दान करे। सोने से युक्त और उदड़ से युक्त तीस कूष्माण्ड इस माह में दान करे। कार्तिक में कांसे के पात्र में भोजन करने वाला कीड़ों का भोजन करने वाला होता है। फल का वर्जन करने वाला फल, रस का त्याग करने वाला रस और धान्य का त्याग करने वाला धान्य का दान करे अथवा सर्वत्र गोदान करे। एक तरफ सब दान और एक तरफ दीपदान है। कार्तिक में दीपदान की सोलहवीं कला भी दूसरे दान नहीं कर सकते।

---

१. पद्मपुराणे—'क्रमात् कूष्माण्डबृहतीं तरुणीं मूलकं तथा। श्रीफलं च कलिङ्गं च फलं धात्रीभवं तथा ॥ नारिकेलमलाबुं च पटोलं बदरीफलम्। चर्मवृन्ताकवल्लीशाकं तुलसिजं तथा ॥ शाकान्येतानि वर्ज्यानि क्रमात्प्रतिपदादिषु। धात्रीफलं रवौ तद्वद् वर्जयेत् सर्वदा व्रती ॥' इति।

एतावद्व्रतासंभवे चातुर्मास्यव्रतासंभवे वा कार्तिके किंचिद् व्रतमवश्यं कार्यम्।

अव्रतः कार्तिको येषां गतो मूढधियामिह।
तेषां पुण्यस्य लेशोऽपि न भवेत्सूकरात्मनाम्॥ इत्युक्तेः।

शालग्रामादिदेवताग्रे स्वस्तिकमण्डलादिकं रङ्गवल्ल्यादिना करोति स स्वर्गादिफलं भुक्त्वा सप्तजन्मसु वैधव्यं नाप्नोति।

इतने व्रतों के या चातुर्मास्यव्रत के न करने पर कार्तिक में कोई व्रत अवश्य करना चाहिए। जिन मूर्खों का कार्तिकमास विना व्रत का बीतता है उन सूकरात्माओं को पुण्य का लेश भी नहीं होता। शालग्राम आदि देवता के आगे स्वस्तिकमण्डल आदि को रंग भरके जो स्त्री रखती है वह स्वर्ग आदि का फल भोग कर सात जन्म तक विधवा नहीं होती।

अथ कार्तिके पुराणादिश्रवणम्

कार्तिके [1]पुराणेतिहासश्रवणारम्भसमाप्ती विहिते। तत्प्रकारस्तु:—

ब्राह्मणं वाचकं कुर्यान्नान्यवर्णजमादरात्।
श्रावयेच्चतुरो वर्णान् कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः॥

---

१. कार्तिक में अष्टादशपुराण, महाभारत और वाल्मीकीयरामायण आदि इतिहास का श्रवण करे। वाचस्पत्युक्त अष्टादश-पुराण—'ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा। तथाऽन्यन्नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम्॥ आग्नेयमष्टमं प्रोक्तं भविष्यं नवमं तथा। दशमं ब्रह्मवैवर्तं लिङ्गमेकादशं तथा॥ वाराहं द्वादशं प्रोक्तं स्कान्दं चात्र त्रयोदशम्। चतुर्दशं वामनं च कौर्मं पञ्चदशं तथा॥ मात्स्यं च गारुडं चैव ब्रह्माण्डमष्टादशं तथा।' इति।

प्रसङ्गतः प्रसिद्ध और प्रचलित होने से श्रीमद्भागवत के सप्ताहपारायण का विश्रामस्थल—'आद्ये हिरण्याक्षवधं द्वितीये भरतावधि। तृतीये त्वब्धिमथनं चतुर्थे कृष्णजन्म च॥ पञ्चमे रुक्मिणीग्राहं षष्ठे चोद्धववादकम्। सप्तमेऽह्नि समाप्तिः स्यात्सप्ताह मुनिरब्रवीत्॥' इसके अनुसार प्रतिदिन की अध्याय-संख्या—प्रथम दिन ४० अध्याय, द्वितीय दिन ६० अ०, तृ० दि० ५४ अ०, च० दि० ४२ अ०, पं० दि० ५० अ०, ष० दि० ४४ अ०, स० दि० ३७ अ०।

कौशिकसंहिता में सप्ताह का प्रकारान्तर—'मनुकर्दमसंवादपर्यन्तं प्रथमेऽहनि। ऋषभध्यानपर्यन्तं द्वितीये दिवसे वदेत्॥ तृतीये दिवसे कुर्यात् सप्तमस्कन्धपूरणम्। कृष्णाविर्भावपर्यन्तं चतुर्थेऽहनि वाचयेत्॥ रुक्मिण्युद्वाहपर्यन्तं पञ्चमेऽह्नि वदेत् सुधीः। श्रीहंसाख्यानपर्यन्तं षष्ठेऽह्नि वाचयेद् ध्रुवम्॥ सप्तमे दिवसे कुर्याद् श्रीभागवतपूरणम्।' इसके अनुसार अध्याय संख्या—प्र० दि० ५० अ०, द्वि० दि० ४९ अ०, तृ० दि० ५४ अ०, च० दि० ५१ अ०, पं० दि० ५१ अ०, ष० दि० ५० अ०, स० दि० ३१ अ०।

स्कन्दपुराणानुसार पाठ का विरामस्थल—प्र० दि० आरम्भ से तृतीयस्कन्ध के १९ अ० पर्यन्त, द्वि० दि० पञ्चमस्कन्ध के १५ अ० पर्यन्त, तृ० दि० अष्टमस्कन्ध के ९ अ० पर्यन्त, च० दि० दशमस्कन्ध पूर्वार्ध के ३ अ० पर्यन्त, पं० दि० दशमस्कन्ध के ५३ अ० पर्यन्त, ष० दि० एकादशस्कन्ध के ७ अ० पर्यन्त और स० दि० द्वादशस्कन्ध के समाप्तिपर्यन्त। विशेष 'कल्याण' के भागवताङ्क में देखें। पद्मपुराण में सप्ताहश्रवण का फल—'मनसश्चाजयाद्रोगात् पुंसां चैवायुषः क्षयात्। कलेर्दोषबहुत्वाच्च सप्ताहश्रवणं मतम्॥' इति।

विस्पष्टमद्रुतं शान्तं स्पष्टाक्षरपदं तथा ।
कलास्वरसमायुक्तं रसभावसमन्वितम् ॥
ब्राह्मणादिषु सर्वेषु ग्रन्थार्थं चार्पयेन्नृप ।
य एवं वाचयेद्राजन्स विप्रो व्यास उच्यते ॥
समाप्तेषु पुराणेषु शक्त्या तं तर्पयेन्नृपः ।
वाचकः पूजितो येन प्रसन्नास्तस्य देवताः ॥
श्राद्धे यस्य द्विजो भुङ्क्ते वाचकः श्रद्धयान्वितः ।
भवन्ति पितरस्तस्य तृप्ता वर्षशतं नृप ॥ इति ।

कार्तिक में पुराण-इतिहास-श्रवण का आरम्भ और समाप्ति विहित है। उसका यह प्रकार है। आदर पूर्वक ब्राह्मण को कथावाचक नियत करे। अन्य वर्ण को कथावाचक न बनावे। ब्राह्मण को आगे करके चारों वर्णों को पुराण इतिहास सुनावे। कथावाचक स्पष्ट और धीरे-धीरे पद अक्षरको कहे। कला और स्वर से युक्त रस भाव के सहित कथा कहे। ब्राह्मण आदि सब वर्णों को ग्रन्थ का अर्थ अर्पण करे। जो इस प्रकार कथा बांचे हे राजन्! वही ब्राह्मण व्यास कहलाता है। पुराणों के समाप्त होने पर राजा व्यास को शक्ति के अनुसार खुश करे। कथावाचक को पूजा से जो सन्तुष्ट करता है, उस पर सब देवता प्रसन्न होते हैं। जिसके यहाँ श्राद्ध में कथावाचक ब्राह्मण श्रद्धा से भोजन करता है उसके पितृगण सौ वर्ष तक तृप्त होते हैं।

कार्तिकस्नानकालेऽभिलाषाष्टकं[1] काशीखण्डोक्तं पुत्रकामेन पठितव्यम्। अत्रैव दुग्धव्रतं समर्प्य दुग्धदानं कृत्वा द्विदलव्रतं[2] संकल्पयेत्। अत्रोत्पत्तौ येषां दलद्वयं दृश्यते ते वर्जनीया इत्येके। अन्ये त्वेवं लक्षणायां वचनाभावात्स्वरूपतो येषां द्विदलं दृश्यते ते वर्ज्या न तु अन्येनापि पत्रपुष्पादिकमित्याहुः। एवमन्यान्यपि ताम्बूल-केशकर्तनादिवर्जनरूपाणि व्रतानि ज्ञेयानि।

वाल्मीकीयरामायण का नवाहपारायण—'उद्योगं रामराज्यस्य भरतोद्योगमेव च। मारीचस्य वधं यावत् सुग्रीवपुरवेशनम् ॥ लक्ष्मणस्य ततो यावत् त्रिजटास्वप्नदर्शनम्। रावणस्य ततो यात्रा जयार्थं देवसद्मसु ॥ समुद्रतरणं यावन्निकुम्भवधमेव च। ततः पूर्णकथां कुर्यान्नवमेऽहनि सर्वदा ॥' इसके अनुसार प्रथम दिन सर्गसंख्या ८२, आरम्भ से अयोध्याकाण्ड के ५ सर्गपर्यन्त। द्वि० दि० सर्ग संख्या ७७, अयोध्याकाण्ड के ८२ सर्गपर्यन्त। तृ० दि० सर्गसंख्या ८१, अरण्यकाण्ड के ४४ सर्गपर्यन्त। च० दि० सर्गसंख्या ७२, किष्किन्धाकाण्ड के ३१ सर्गपर्यन्त। पं० दि० सर्गसंख्या ६३, सुन्दरकाण्ड के २७ सर्गपर्यन्त। ष० दि० सर्गसंख्या ६३, लंकाकाण्ड के २२ सर्गपर्यन्त। स० दि० सर्गसंख्या ५५, लंकाकाण्ड के ७७ सर्गपर्यन्त। अ० दि० सर्गसंख्या ७७, उत्तरकाण्ड के २६ सर्गपर्यन्त। न० दि० सर्गसंख्या ८५, उत्तरकाण्ड के समाप्ति पर्यन्त।

स्वयं श्रीवाल्मीकि ने प्रतिदिन बीस बीस सर्ग के पाठ करने पर पच्चीस दिन में सुखसाध्य पाठ का प्रतिपादन किया है। विशेष अन्यत्र देखें।

१. काशीखण्डोक्त अभिलाषाष्टकस्तोत्र तृतीयपरिच्छेद के पूर्वार्द्ध में पुत्रप्राप्त्यर्थ विधानान्तर की सुधाविवृति में देखें।

२. स्कन्दपुराणे—'कार्तिके वर्जयेत्तद्वद् द्विदलं बहुबीजकम्। माषमुद्गमसूराश्च चणकाश्च कुलित्थकाः ॥ निष्पावा राजमाषाश्च आढक्यो द्विदलं स्मृतम्। नूतनान्यपि जीर्णानि सर्वाण्येतानि वर्जयेत् ॥' इति।

कार्तिकस्नान के समय में काशीखण्ड का अभिलाषाष्टकस्तोत्र पुत्र चाहनेवाले को पढ़ना चाहिए। इसीमें दुग्धव्रत को समर्पण कर दूध का दान करके द्विदल (दाल) व्रत का संकल्प करे। कोई कहते हैं कि पैदा होने पर जिस अन्न के दो दल दिखाई पड़ते हैं उसी दल का त्याग करे। अन्य लोग तो इस प्रकार के वचन के न मिलने से स्वरूप से ही जिनके दो दल दिखाई देते हों उन्हीं का त्याग करना चाहिए, अन्य पत्र पुष्प आदि का त्याग नहीं करे, ऐसा कहते हैं। इस प्रकार और भी पान, बालकटाना आदि वर्जन रूप व्रतों को जानना चाहिए।

अथाकाशदीपदानम्

अत्राकाशदीप उक्तः। सूर्यास्ते गृहाददूरे[1] पुरुषप्रमाणयज्ञियकाष्ठं भूमौ निखन्य तस्य मूर्ध्नि अष्टदलाद्याकृतिनिर्मिते दीपयन्त्रमध्ये मुख्यदीपं समन्ततोऽष्टाविति संस्थाप्य निवेदयेत्—

दामोदराय नभसि तुलायां दोलया सह।
प्रदीपं ते प्रयच्छामि नमोऽनन्ताय वेधसे ॥ इति मन्त्रः।

एवं मासमाकाशदीपदानान्महाश्रीप्राप्तिः।

कार्तिक में आकाशदीप कहा है। घर के समीप सूर्यास्त होने पर मनुष्य के नाप का यज्ञ सम्बन्धी काष्ठ को जमीन में गाड़ के उसके शिर पर आठ दल की आकृति बने हुए दीपयन्त्र के बीच में मुख्य दीप के चारो तरफ से आठ दीप रख कर तुला में झूले के साथ दामोदर भगवान् के लिए आकाश में दीप देता हूँ भगवान् अनन्त को नमस्कार है। इस आशय के मन्त्र से दीप निवेदन करे। इस प्रकार महीने भर आकाश-दीप देने से महालक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

अथ कोजागरव्रतम्

आश्विनपौर्णमास्यां [2]कोजागरव्रतम्। सा पूर्वत्रैव निशीथव्याप्तौ पूर्वा। उत्तरदिने एव दिनद्वयेऽपि वा निशीथव्याप्तौ दिनद्वये निशीथास्पर्शे वा उत्तरैव। केचित्पूर्वदिने निशीथव्याप्तिरेव परदिने प्रदोषव्याप्तिरेव तदा परेत्याहुः।

आश्विन पूर्णिमा में कोजागरव्रत होता है। वह पूर्णिमा पहले ही दिन अर्द्धरात्रिव्यापिनी हो तो पूर्वा में करे। दूसरे दिन ही या दो दिन में अर्द्धरात्रिव्यापिनी हो या दोनों दिन में अर्द्ध-रात्रि का स्पर्श न होने पर परा का ग्रहण करे। कुछ लोग—पहले दिन आधी रात में पूर्णिमा हो और दूसरे दिन प्रदोष में पूर्णिमा हो तब परा पूर्णिमा लेनी चाहिये—ऐसा कहते हैं।

अत्र लक्ष्मीन्द्रयोः पूजनं जागरणमक्षक्रीडा च विहिता। तत्र पद्मासनस्थां लक्ष्मीं ध्यात्वाऽक्षतपुञ्जे ॐलक्ष्म्यै नम इत्यावाहनादिषोडशोपचारैः संपूज्य,

---

१. आदित्यपुराणे—'दिवाकरेऽस्ताचलमौलिभूते गृहाददूरे पुरुषप्रमाणम्। यूपाकृतिं यज्ञियवृक्षदारुमारोप्य भूमावथ तस्य मूर्ध्नि। यवाङ्गुलच्छिद्रयुवास्तु मध्ये द्विहस्तदीर्घा अथ पट्टिकास्तु। कृत्वा चतस्रोऽष्टदलाकृतीस्तु याभिर्भवेदष्टदिशानुसारो। तत्कर्णिकायां तु महाप्रकाशो दीपः प्रदेयो दलगास्तथाऽष्टौ। निवेद्य धर्माय हराय भूम्यै दामोदरायाप्यथ धर्मराज॥ प्रजापतिभ्यस्त्वथ सत्पितृभ्यः प्रेतेभ्य एवाथ तमःस्थितेभ्यः।' इति।

२. लिङ्गपुराणे—'आश्विने पौर्णमास्यां तु चरेज्जागरणं निशि। कौमुदी सा समाख्याता कार्या लोकैर्विभूतये॥' 'कौमुद्यां पूजयेल्लक्ष्मीमिन्द्रमैरावतस्थितम्। सुगन्धिर्निशि सद्वेष अक्षैर्जागरणं चरेत्॥' इति।

नमस्ते सर्वदेवानां वरदासि हरिप्रिये ।
या गतिस्त्वत्प्रपन्नानां सा मे भूयात्त्वदर्चनात् ॥

इति पुष्पांजलिं दत्त्वा नमेत् ।

चतुर्दन्तसमारूढो वज्रपाणिः पुरन्दरः ।
शचीपतिश्च ध्यातव्यो नानाभरणभूषितः ॥

इति ध्यात्वाऽक्षतपुञ्जादाविन्द्राय नम इति संपूज्य,

विचित्रैरावतस्थाय भास्वत्कुलिशपाणये ।
पौलोम्यालिङ्गिताङ्गाय सहस्राक्षाय ते नमः ॥

इति पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा नमेत् ।

नारिकेलोदकं पीत्वा अक्षक्रीडां समारभेत् ।
निशीथे वरदा लक्ष्मीः को जागर्तीति भाषिणी ॥
तस्मै वित्तं प्रयच्छामि अक्षैः क्रीडां करोति यः ।

नारिकेलान्पृथुकांश्च देवेभ्यः पितृभ्यः समर्प्य बन्धुभिः सह स्वयं भक्षयेत् ।

इसमें लक्ष्मी और इन्द्र का पूजन, जागरण और जुआ खेलने का विधान है। उसमें कमल के आसन पर बैठी लक्ष्मी का ध्यान कर अक्षत के ढेर पर 'ॐ लक्ष्म्यै नमः' इस मन्त्र से आवाहन आदि सोलहों उपचारों से पूजा करके हे हरि-प्रिये ! आप सब देवताओं को वर देनेवाली हो, आप को नमस्कार है । आपके शरण में आनेवालों की जो गति होती है वह आपके पूजन से मेरी हो, इस आशय के मन्त्र से पुष्पाञ्जलि देकर नमस्कार करे। चार दाँतवाले हाथी पर हाथ में वज्र लिये हुए शची के पति इन्द्र महाराज को जो अनेक भूषणों से अलंकृत हैं, उनका ध्यान करना चाहिए। ध्यान करने के बाद अक्षत की ढेर पर 'इन्द्राय नमः' इस मन्त्र से पूजा करे। और विचित्र ऐरावत हाथी पर बैठे और चमकते हुए वज्र को हाथ में लिये इन्द्राणी से आलिंगित अंग और हजार आँखों वाले आपको नमस्कार है ।। इस आशय के मन्त्र से पुष्पाञ्जलि देकर नमस्कार करे। नारियल का जल पीकर जुआ खेलना प्रारम्भ करे। आधी रात में वर देनेवाली लक्ष्मी 'कौन जागता है' ऐसा कहती हुई उसको और जो जुआ खेलता है उसे भी मैं धन दूँगी। नारियल और चिउड़ा देवताओं और पितरों को समर्पण कर भाई-बन्धुओं के सहित स्वयं भक्षण करे।

अथाश्वयुजीकर्म

अस्यामेवाश्वयुजीकर्माश्वलायनैः कार्यम् । तच्च पर्वद्वैधे पूर्वाह्णसंधौ शेषपर्वणि प्रकृतीष्टिं कृत्वा कार्यम् । अपराह्णसंधौ विकृतिमिमां कृत्वा प्रकृतेरन्वाधानम् । तत्प्रयोगोऽन्यत्र ज्ञेयः ।

इसी पूर्णिमा में आश्वलायन शाखावाले आश्वयुजी कर्म करें। वह पूर्णिमा के सन्देह में पूर्वाह्ण सन्धि में शेष पर्व में प्रकृति इष्टि करके करें। अपराह्णसन्धि में इस विकृति को करके प्रकृति का अन्वाधान करे। उसका प्रयोग दूसरे ग्रन्थों से जानना चाहिए।

अथाग्रयणकालः

आश्विनकार्तिकयोः पौर्णमास्याममावास्यायां वा शुक्लपक्षगतकृत्तिकादिवि-

शाखान्तनक्षत्रेषु शुक्लपक्षस्थरेवत्यां वा [1]व्रीह्याग्रयणम्। एवं श्रावणभाद्रपदयोरुक्तेषु पर्वसु नक्षत्रेषु श्यामाकाग्रयणम्। चैत्रवैशाखयोः पर्वादिषु यवाग्रयणम्। तत्र पौर्णमासीपर्वणि संगवात्पूर्वसंधौ पूर्वदिने आग्रयणं कृत्वा प्रकृत्यन्वाधानम्। मध्याह्नात्परत्र संधौ संधिदिने आग्रयणं कृत्वा प्रकृत्यन्वाधानम्। मध्याह्ने संगवादूर्ध्वं मध्याह्नात्पूर्वत्र वा संधौ संधिदिने आग्रयणेष्टिं कृत्वा प्रकृतीष्टिः सद्यः परदिने वा कार्या।

आश्विन और कार्तिक की पूर्णिमा में या अमावास्या में शुक्लपक्ष की कृत्तिका से विशाखा पर्यन्त नक्षत्रों में शुक्लपक्ष की रेवतीनक्षत्र में धान का आग्रयण करे। इसी तरह श्रावण और भाद्रपद में कहे हुए पर्व और नक्षत्रों में सावांका आग्रयण करे। चैत और वैशाख के पर्व आदि में जौ का आग्रयण करे। उसमें पूर्णिमापर्व में संगव से पहली सन्धि में पहले दिन आग्रयण करके प्रकृति का अन्वाधान करे। मध्याह्न के बाद सन्धि होने पर सन्धि के दिन में आग्रयण करके प्रकृति का अन्वाधान करे। मध्याह्न में संगव के बाद या मध्याह्न से पहले दिन की सन्धि में सन्धि के दिन आग्रयणेष्टि करके प्रकृति की इष्टि तुरत अथवा दूसरे दिन करे।

दर्शे तु पूर्वाह्णेऽपराह्णे वा संधौ यथाकालं दर्शेष्टिं कृत्वा प्रतिपन्मध्ये आग्रयणेष्टिः कार्या। एवं नक्षत्राग्रयणपक्षेपि पौर्णमासेष्टेः प्राग्दर्शेष्टेः परं यथा भवेत्तथा आग्रयणं कार्यम्। तथा च दीपिका—'दर्शेष्ट्याः परमुक्तमाग्रयणकं प्राक्पौर्णमासाच्च तत्' इति। यद्यपि अथोपूर्वाह्णपर्वक्षय इत्युपक्रमात्पूर्वाह्णसंधावेवायं क्रम इति हेमाद्रिसिद्धान्तानुसारि दीपिकामतं तथापि सर्वावस्थे संधावित्थमेव क्रम इति कौस्तुभसिद्धान्तानुसार्यत्रत्यसिद्धान्तो ज्ञेयः।

अमावास्या में तो पूर्वाह्न या अपराह्न सन्धि में यथासमय अमावास्या की इष्टि करके प्रतिपदा के मध्य में आग्रयणेष्टि करनी चाहिए। इसी तरह नक्षत्र के आग्रयण के पक्ष में भी। पौर्णमासेष्टि के पहले दर्शेष्टि के बाद जैसे हो वैसे आग्रयण करे। इसमें दीपिका का प्रमाण कहते है—'दर्शेष्टि के अनन्तर उक्त आग्रयण पूर्णिमा के पहिले करना चाहिये।' यद्यपि अथोपूर्वाह्णपर्वक्षय इससे प्रारम्भ करके पूर्वाह्णसन्धि में ही यह क्रम है, यह हेमाद्रि के सिद्धान्तानुसारी दीपिका का मत है फिर भी सब अवस्था में सन्धि में यही क्रम है, यह कौस्तुभ-सिद्धान्त के अनुसार यहां का सिद्धान्त जानना चाहिए।

अत्र पक्षे अथोपदं चार्थे योज्यम्। पूर्वाह्णे पर्वक्षये चेत्यर्थः। इत्थं च कृष्णपक्षे

---

१. शौनक के—'शरद्याग्रयणं नाम पर्वणि स्यात्तदुच्यते' इस कथन से आग्रयण, पर्व में करना चाहिये। आग्रयण तीन प्रकार के होते हैं—व्रीह्याग्रयण, यवाग्रयण और श्यामाकाग्रयण। इनमें श्यामाकाग्रयण अनित्य है। शेष दो अनाहिताग्नियों के लिये नित्य और यवाग्रयण आहिताग्नियों के लिए अनित्य है। श्रुति में इनके कर्तव्यकाल का निर्देश—'गृहमेधी व्रीहियवाभ्यां शरद्वसन्तयोर्यजेत श्यामाकैर्नीवारैर्वर्षास्वापत्काले नान्येन पुराणैर्वा'। आपस्तम्बने भी कालका निर्देश किया—'वर्षासु श्यामाकैर्यजेत शरदि व्रीहिभिर्वसन्ते यवैर्यथर्तु वेणुयवैः' इति। कारिका में आग्रयण कर्म बिना किये नवान्नभक्षण का प्रायश्चित्त है—'अकृताग्रयणोऽश्नीयान्नवान्नं यदि वै नरः। वैश्वानराय कर्तव्यश्चरुः पूर्णाहुतिस्तु वा॥' इति। आग्रयण-प्रयोग प्रयोगरत्न में देखें।

न भवतीति सिद्धम्। एतद्दीपिकाकारमतममावास्यापर्वण्याग्रयणविधानस्याखण्डदर्शे वैयर्थ्यापत्त्या न युक्तमिति गृह्याग्निसागरोक्तिर्न समीचीना प्रतिभाति। विकृत्यन्तराणां खण्डपर्वणि प्रकृत्युत्तरं प्रतिपद्यनुष्ठानेपि पर्वानुग्रहसंमतिवदखण्डदर्शेपि प्रतिपदि क्रियमाणाग्रयणस्य दर्शपर्वानुगृहसंमतिसंभवात्। खण्डदर्शे दर्शपर्वविधानसार्थक्यसंभवाच्चेति दिक्।

इस पक्ष में 'अथो' पद को च के अर्थ में लगाना चाहिए। इससे पूर्वाह्ण में और पर्वक्षय में ऐसा अर्थ होता है। इस तरह कृष्णपक्ष में नहीं होता है यह सिद्ध हुआ। यह दीपिकाकार का मत अमावास्या में आग्रयण विधान का अखण्ड अमावास्या में व्यर्थ होने से ठीक नहीं है यह गृह्याग्निसागर की उक्ति ठीक नहीं मालूम होती। क्योंकि विकृतियों का खण्डपर्व में प्रकृति के बाद प्रतिपदा में करने पर भी पर्वानुग्रहसम्मति की तरह अखण्ड अमावास्या में भी प्रतिपदा में किया जानेवाला आग्रयण का दर्श-पर्वानुग्रह-सम्मति सम्भव है और खण्ड-दर्श में भी दर्शपर्व-विधान की सार्थकता की सम्भावना है।

श्रावणादौ श्यामाकाग्रयणं न कृतं चेच्छरदि व्रीह्याग्रयणेन समानतन्त्रं कार्यम्। तत्र 'स्मार्ते व्रीह्याग्रयणं श्यामाकाग्रयणं च तन्त्रेण करिष्ये' इति संकल्प्येन्द्राग्निविश्वेदेवार्थमष्टौ व्रीहिमुष्टीन्निरूप्य शूर्पान्तरे श्यामाकान्सोमाय नाम्ना निरूप्य पुनः प्रथमशूर्पे द्यावापृथिव्यर्थं व्रीहिनिर्वापः। एवं होमेपि विश्वेदेवहोमात्परं सौम्यश्यामाकचरुं हुत्वा द्यावापृथिवीहोमः।

श्रावण आदि में सावां का आग्रयण न किया हो तो शरद् ऋतु में धान के आग्रयण के साथ तन्त्र से करे। इसमें 'स्मार्तकर्म में धान के आग्रयण और सावां का आग्रयण तन्त्र से करूँगा' ऐसा संकल्प करके इन्द्र अग्नि और विश्वेदेवा के लिए आठ मुट्ठी धान रखके दूसरे सूप में सावां को चन्द्रमा के नाम से रखकर फिर पहले सूप में द्यावापृथ्वी के लिए धान रखे। इसी प्रकार होम में भी विश्वेदेवा के होम के बाद सोमदेवतावाले सावां के चरु का होम करके द्यावापृथ्वी का होम करे।

आश्विनपौर्णमास्यामपराह्णादिसंधावाग्रयणे क्रियमाणे आश्वयुजीकर्मणापि समानतन्त्रता कार्या। तथा च जीर्णव्रीहिचरुर्नववीहिचरुर्नवश्यामाकचरुश्चेति स्थालीत्रये चरुत्रयम्। पूर्वाह्णादिसंधौ तु संधिदिने प्रकृतियागोत्तरमाश्वयुजीपूर्वदिने संधिदिने वा प्रकृतियागात्पूर्वमाग्रयण इति कालैक्याभावान्नैकतन्त्रता। श्यामाकचर्वसंभवे श्यामाकतृणैः प्रस्तरं कृत्वा स्रुवादुत्तरत आस्तीर्य तत्र स्रुचो निधानं तावतैव श्यामाकाग्रयणसिद्धिरिति वृत्तिकृन्नारायणः।

आश्विन की पूर्णिमा में अपराह्ण आदि सन्धि में किया जाने वाला आग्रयण आश्वयुजी कर्म के साथ तन्त्र से करे। तथा पुराने धान का चरु और नये धान का चरु एवं नये सावां का चरु, ये तीन बटलोही में तीन चरु होते हैं। पूर्वाह्ण आदि की सन्धि में तो सन्धि के दिन प्रकृतियज्ञ के बाद आश्वयुजी कर्म के पहले दिन या सन्धि दिन में प्रकृति-याग के पहले आग्रयण होता है। इस प्रकार एक काल के न होने से एकतन्त्रता नहीं है। सावां के चरु न मिलने पर सावां के तृण से प्रस्तर बनाकर स्रुवा के उत्तर ओर बिछाकर उस पर स्रुवा को रक्खे, इतने ही से सावां की आग्रयणसिद्धि होती है ऐसा वृत्तिकार नारायण कहते हैं।

यवाग्रयणं तु कृताकृतम्। व्रीह्याग्रयणस्य वसन्तपर्यन्तं गौणकालः। यवाग्रयणस्य वर्षर्तुपर्यन्तम्। अनादिगौणकाले कुर्वन्कालातिपत्तिप्रायश्चित्तपूर्वकमाग्रयणं कुर्यात्। आपदि गौणकाले कुर्वन् प्रायश्चित्तं न कुर्यात्। गौणकालेऽप्यतिक्रान्ते वैश्वानरेष्टिं प्रायश्चित्तं कृत्वातिक्रान्ताग्रयणं कुर्यात्। स्मार्ते तु वैश्वानरदेवताकः स्थालीपाको ग्राह्यः। 'य एवाहिताग्नेः पुरोडाशास्त एवौवासनाग्निमतश्चरव' इत्युक्तेः।

जौ का आग्रयण तो कृताकृत है। धान के आग्रयण का वसन्तऋतु तक गौण काल है। जौ के आग्रयण का वर्षाऋतु तक गौण काल है। अनादि-गौण काल में करते हुए कालातिपत्ति प्रायश्चित्त पहले करके आग्रयण करना चाहिए। आपत्ति में गौण काल में करता हुआ प्रायश्चित्त न करे। गौणकाल के बीत जाने पर भी वैश्वानरेष्टि प्रायश्चित्त करके बीते हुए आग्रयण को करे। स्मार्त कर्म में तो वैश्वानर देवता वाला स्थालीपाक लेना चाहिए। क्योंकि जो आहिताग्नि का पुरोडाश होता है वही औपासन अग्निवाले का चरु है, यह वचन है।

प्रथमाग्रयणस्य शरदत्यये विभ्रष्टेष्टिं तद्देवताकस्थालीपाकं वा कृत्वाऽऽगामि-मुख्यकाले प्रथमाग्रयणं कार्यम्। गौणकाले प्रथमाग्रयणं न भवति। अनारब्धानां दर्शपूर्णमासाग्रयणादीनां प्रायश्चित्तविकल्पाद्विभ्रष्टेष्टिरपि विकल्पिता ज्ञेया। आग्र-यणमकृत्वा किमपि नवोत्पन्नं सस्यं न भक्षणीयम्।

अकृताग्रयणोऽश्नीयान्नवान्नं यदि वै नरः।
वैश्वानराय कर्तव्यश्चरुः पूर्णाहुतिस्तु वा।
यद्वा समिन्द्ररायेति शतवारं जपेन्मनुम्॥

पहले आग्रयण का शरदऋतु के बीतने पर विभ्रष्टेष्टि अथवा उस देवता का स्थालीपाक करके आने वाले मुख्य काल में आग्रयण करे। गौणकाल में पहला आग्रयण नहीं होता। नहीं आरम्भ किये गये अमावास्या, पूर्णमास और आग्रयण आदि का प्रायश्चित्त के विकल्प होने से विभ्रष्टेष्टि को भी विकल्प से जानना चाहिए। आग्रयण नहीं करके कोई नया पैदा हुआ धान्य नहीं खाना चाहिए। बिना आग्रयण किये जो मनुष्य नये अन्न को खाता है, उसे वैश्वानर के लिए चरु करना चाहिए। अथवा पूर्णाहुति करे। अथवा 'समिन्द्रराय' इस मन्त्र का सौ बार जप करे।

अथाग्रयणानुकल्पाः

पृथगाग्रयणप्रयोगाशक्तौ प्रकृतीष्टिसमानतन्त्राग्रयणप्रयोगः। तत्र पौर्णमासेष्ट्या समानतन्त्रत्वे आदावाग्रयणप्रधानं पश्चात्प्राकृतप्रधानम्। दर्शेष्ट्यैकतन्त्रत्वे पूर्वं दर्शेष्टिप्रधानयागः पश्चादाग्रयणप्रधानयागः। अन्यत्पूर्वोत्तराङ्गजातमाग्रयणं विकृति-संबन्ध्येव कार्यम्। विरोधे वैकृतं तन्त्रमिति सिद्धान्तात्।

अलग आग्रयण प्रयोग में असमर्थ व्यक्ति, प्रकृति इष्टि के समान तन्त्र से आग्रयण का प्रयोग करे। उसमें पौर्णमासी इष्टि के समान तन्त्र होने में पहले आग्रयण प्रधान और पीछे प्राकृत प्रधान है। अमावास्या इष्टि से एक तन्त्र करने पर पहले दर्शेष्टि प्रधान याग और पीछे आग्रयण प्रधान याग होता है। बाकी पूर्वाङ्ग उत्तराङ्ग आग्रयण विकृति सम्बन्धी ही करे। क्योंकि 'विरोध में वैकृत तन्त्र होता है' यह सिद्धान्त है।

एतदसंभवे नवश्यामाकव्रीहियवैः पुरोडाशं कृत्वा दर्शपूर्णमासौ कुर्यात्। यद्वा नवव्रीह्यादिभिरग्निहोत्रहोमं कुर्यात्। अथवा नवान्नान्यग्निहोत्र्या गवा खादयित्वा तस्याः पयसाग्निहोत्रं जुहुयात्। यद्वा नवान्नेन ब्राह्मणान्भोजयेदिति संक्षेपः। इदं मलमासे न कार्यम्। गुर्वाद्यस्तेपि न कार्यमिति केचित्। जीर्णधान्यालाभे तु मलमासादौ कार्यम्। अस्यामेव पौर्णमास्यां ज्येष्ठापत्यनीराजनादिकं परविद्धायां कार्यम्।

ऐसा न हो सके तो नया सावां नया धान और नया जव से पुरोडाश बना कर दर्श और पौर्णमास करे। अथवा नये धान आदि से अग्निहोत्र का होम करे। अथवा नये अन्नों को अग्निहोत्री की गाय को खिला कर उसके दूध से अग्निहोत्र-होम करे। अथवा नये अन्न से ब्राह्मणों को भोजन करावे, यही संक्षेप है। इसे मलमास में नहीं करना चाहिए। कोई कहते हैं बृहस्पति आदि के अस्त होने पर भी नहीं करे। पुराने धान के न मिलने पर तो मलमास आदि में करे। इसी पर-विद्धा पूर्णिमा में बड़े सन्तान का नीराजन आदि करना चाहिए।

अथ करकचतुर्थी

आश्विनकृष्णचतुर्थी करकचतुर्थी। सा चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्या। दिनद्वये तद्व्याप्त्यादौ संकष्टचतुर्थीवन्निर्णयः।

अश्विनकृष्ण करकचतुर्थी चन्द्रोदयव्यापिनी लेनी चाहिए। दो दिन में चन्द्रोदयव्यापिनी आदि में संकष्टचतुर्थी की तरह निर्णय है।

अथ राधाजयन्ती

कृष्णाष्टम्यां राधाकुण्डे स्नानं मथुरामण्डलवासिभिः कार्यम्। साऽरुणोदयव्यापिनी तदभावे सूर्योदयव्यापिनी ग्राह्या।

आश्विनकृष्ण अष्टमी में मथुरामण्डल में रहने वालों को राधाकुण्ड में स्नान करना चाहिए। अष्टमी अरुणोदयव्यापिनी होनी चाहिये। ऐसा न होने पर सूर्योदयव्यापिनी लेनी चाहिये।

अथ गोवत्सद्वादशी

आश्विनकृष्णद्वादशी गोवत्सद्वादशी। सा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या। दिनद्वये तद्व्याप्तौ परा। सायंकालाख्यगौणकाले सत्त्वात्। उभयत्र तद्व्याप्तौ पूर्वेति बहवः। परेति केचित्। अत्र वत्सतुल्यवर्णां सवत्सां पयस्विनीं गां[1] सम्पूज्य गोः पादे ताम्रपात्रेणार्घ्यं दद्यात्। तत्र मन्त्रः—

क्षीरोदार्णवसंभूते सुरासुरनमस्कृते।
सर्वदेवमये मातर्गृहाणार्घ्यं नमोस्तु ते॥

ततो माषादिवटकान् गोग्रासार्थं दत्त्वा प्रार्थयेत्—

---

१. भविष्यपुराणे—'सवत्सां तुल्यवर्णां च शीलिनीं गां पयस्विनीम्। चन्दनादिभिरालिप्य पुष्पमालाभिरर्चयेत्॥ अर्घ्यं ताम्रमये पात्रे कृत्वा पुष्पाक्षतैस्तिलैः। पादमूले तु दद्याद् वै मन्त्रेणानेन पाण्डव॥' इति।

सर्वदेवमये देवि सर्वदेवैरलंकृते ।
मातर्ममाभिलषितं सफलं कुरु नन्दिनि ॥

तद्दिने तैलपक्वं स्थालीपक्वं गोक्षीरं गोघृतं गोदधि तक्रं च वर्जयेत् । नक्तं माषान्नभोजनं भूशय्याब्रह्मचर्यं च कार्यम् ।

आश्विनकृष्ण द्वादशी को गोवत्सद्वादशी कहते हैं । यह प्रदोषव्यापिनी ग्राह्य है । दोनों दिन में प्रदोषव्यापिनी न हो तो परा लेनी चाहिए । सायंकाल नामक गौणकाल में होने से । दोनों दिन प्रदोषव्यापिनी होने पर पूर्वा का ग्रहण करे, यह बहुतों का कहना है । कोई परा को कहते हैं । इसमें बछड़े के समान वर्णवाली बछड़े सहित दूध देने वाली गाय का पूजन कर उसके पैर में ताम्बे के पात्र से अर्घ्य दे । उसके मन्त्र का यह आशय है—'क्षीर समुद्र से उत्पन्न देवता और दैत्य से नमस्कृत सर्वदेवमयी माँ आप को नमस्कार है । हमारे अर्घ्य को आप ग्रहण करे । इसके बाद गोग्रास के लिए उड़द के बड़े आदि देकर प्रार्थना करे—सर्वदेवमयी हे देवि ! सब देवताओं से अलंकृत माता हे नन्दिनि ! मेरे सभी मनोरथ को सफल करो । उस दिन तेल और बटलोही का पकाया गाय का दूध, घी, दही और मठा का वर्जन करे । रात को उड़द का भोजन, जमीन का सोना आदि ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए ।

अथ नीराजनविधिः

इमामेव द्वादशीमारभ्य पञ्चसु दिनेषु पूर्वरात्रं [1]नीराजनविधिर्नारदेनोक्तः ।

नीराजयेयुर्देवांश्च विप्रान् गाश्च तुरंगमान् ।
ज्येष्ठान् श्रेष्ठान् जघन्यांश्च मातृमुख्याश्च योषितः ॥ इति ।

इसी द्वादशी से आरम्भ कर पाँच दिनों में पूर्वरात्रि में नीराजनविधि नारद ने कही है । मातृ-प्रमुख स्त्रियां देवता, ब्राह्मण, गाय, घोड़े, जेठे, छोटे और श्रेष्ठों का नीराजन करे ।

अथ यमदीपदानम्

त्रयोदश्यामपमृत्युनाशार्थं यमाय[2] निशामुखे बहिर्दीपो देयः ।

त्रयोदशी में अपमृत्यु के नाश के लिये यमराज को घर से बाहर सायं-काल में दीप दे ।

अथ गोत्रिरात्रव्रतम्

इमामेव त्रयोदशीमारभ्य गोत्रिरात्रव्रतमुक्तम् । तत्प्रयोगः कौस्तुभे ।

इसी त्रयोदशी से आरम्भ कर गोत्रिरात्रव्रत कहा है । उसका प्रयोग कौस्तुभ-ग्रन्थ में है ।

अथ नरकचतुर्दशी

आश्विनकृष्णचतुर्दश्यां चन्द्रोदयव्यापिन्यां [3]नरकभीरुभिस्तिलतैलेनाभ्यङ्ग-

---

१. ज्योतिर्निबन्ध में कार्तिककृष्ण द्वादशी में नारदोक्त पांच दिन की नीराजनविधि—'आश्विने कृष्णपक्षे तु द्वादश्यादिषु पञ्चसु । तिथिषूक्तः पूर्वरात्रे नृणां नीराजनो विधिः ॥' यहाँ शुक्लप्रतिपदादि अमान्तमास से आश्विनकृष्ण द्वादशी कार्तिककृष्ण द्वादशी हुई ।

२. स्कन्दपुराणे—'कार्तिकस्यासिते पक्षे त्रयोदश्यां निशामुखे । यमदीपं बहिर्दद्यादपमृत्युर्विनश्यति ॥' दीपदान का मन्त्र—'मृत्युना पाशदण्डाभ्यां कालेन श्यामया सह । त्रयोदश्यां दीपदानात् सूर्यजः प्रीयतां मम ॥' इति ।

३. कार्तिककृष्ण त्रयोदशी में चन्द्रोदय होने पर अभ्यंगस्नान करना चाहिये । भविष्योत्तरे—'कार्तिके कृष्णपक्षे तु चतुर्दश्यामिनोदये । अवश्यमेव कर्तव्यं स्नानं नरकभीरुभिः ॥' तथा—'पूर्व-

स्नानं कार्यम्। अत्र रात्र्यन्त्ययाममारभ्यारुणोदयावधिस्ततश्चन्द्रोदयावधिस्ततः सूर्योदयावधिरिति कालत्रये पूर्वपूर्वो जघन्य उत्तरोत्तरः श्रेष्ठः। अतश्चन्द्रोदयोत्तरो मुख्यः कालः प्रातःकालो गौणः। तत्र पूर्वदिने एव चन्द्रोदयव्याप्तौ पूर्वा। परत्रैव तद्व्याप्तौ परा। अस्मिन्पक्षे तद्दिनेऽस्तमयादिकाले विहितमुल्कादानदीपदानादिकं तत्काले चतुर्दश्यभावेऽपि कार्यम्।

आश्विनकृष्ण चन्द्रोदयव्यापिनी चतुर्दशी में नरक से डरने वालों को तिल तैल लगाकर स्नान करना चाहिए। इसमें रातके अन्तिम प्रहर से आरम्भ कर अरुणोदय तक उसके बाद चन्द्रोदय तक और उसके बाद सूर्योदय तक की अवधि, इस प्रकार तीन काल में स्नान पूर्व-पूर्व अधम और उत्तरोत्तर श्रेष्ठ है। इस लिए चन्द्रोदय के बाद का काल मुख्य और प्रातःकाल का गौण है। इसमें पहले दिन ही चन्द्रोदयव्यापिनी हो तो पूर्वा और दूसरे ही दिन चन्द्रोदयव्यापिनी हो तो परा ग्राह्य है। इस पक्ष में उस दिन सूर्यास्त आदि काल में विहित उल्कादान दीपदान आदि, उस समय में चतुर्दशी न रहे तब भी करना चाहिए।

दिनद्वये चन्द्रोदयव्याप्तौ पूर्वा। दिनद्वये चन्द्रोदयाव्याप्तौ पक्षत्रयं सम्भवति—पूर्वत्र चन्द्रोदयोत्तरमुषःकालं सूर्योदयं च व्याप्य प्रवृत्ता चतुर्दशी परत्र चन्द्रोदयात्पूर्वं समाप्ता। यथा—त्रयोदशीघट्यः ५८ पलानि ५० चतुर्दशी ५७। अस्मिन्प्रथमपक्षे उषःकालैकदेशे चतुर्दशीयुक्तेऽभ्यङ्गस्नानं कार्यम्। अथ पूर्वत्र सूर्योदयमात्रं व्याप्य प्रवृत्ता परत्र चन्द्रोदयात्पूर्वं समाप्ता अथवा सूर्योदयास्पर्शेन क्षय एव चतुर्दश्याः। यथा—त्रयोदशी ५९ पलानि ५९ चतुर्दशी ५७ यथा वा त्रयोदशी २ तद्दिने चतुर्दशी ५४।

दोनों दिन चन्द्रोदयव्यापिनी होने पर पूर्वा का ग्रहण करे। दोनों दिन चन्द्रोदयव्यापिनी न रहने पर तीन पक्ष सम्भव है—पहले दिन चन्द्रोदय के बाद उषःकाल और सूर्योदय को लेकर प्रवृत्त होने वाली चतुर्दशी दूसरे दिन चन्द्रोदय से पहले समाप्त होने वाली चतुर्दशी। जैसे—त्रयोदशी ५८ घड़ी ५०पल, चतुर्दशी ५७ घड़ी। इस पहले पक्ष में उषःकाल के एकदेश में चतुर्दशीयुक्त होने से अभ्यंगस्नान करे। इसके बाद पहले दिन सूर्योदयमात्र में व्यापिनी और दूसरे दिन चन्द्रोदय से पहले समाप्त होने वाली अथवा सूर्योदय के स्पर्श न करने वाली चतुर्दशी का। जैसे—त्रयोदशी ५९ घड़ी ५९ पल, चतुर्दशी ५७ घड़ी अथवा त्रयोदशी २ घड़ी। उस दिन चतुर्दशी ५४ घड़ी।

विद्धचतुर्दश्यां कार्तिकस्य सितेतरे। पक्षे प्रत्यूषसमये स्नानं कुर्यात् प्रयत्नतः॥' स्मृतिदर्पणे—'चतुर्दशी चाश्वयुजस्य कृष्णा स्वात्यक्षयुक्ता च भवेत् प्रभाते। स्नानं समभ्यज्य नरैस्तु कार्यं सुगन्धतैलेन विभूतिकामैः॥' पद्मपुराणे—'आश्वयुक्कृष्णपक्षस्य चतुर्दश्यां विधूदये। तिलतैलेन कर्तव्यं स्नानं नरकभीरुणा॥' स्मृतिदर्पण और पद्मपुराण के दोनों वचनों में शुक्लादि अमान्तमास के अभिप्राय से आश्वयुक् शब्द का उल्लेख है अतः आश्विनकृष्ण चतुर्दशी कार्तिककृष्ण चतुर्दशी ही हुई।

वायुपुराण में कार्तिककृष्ण चतुर्दशी में श्री हनुमानजी के जन्म का उल्लेख है—'आश्विनस्यासिते पक्षे स्वात्यां भौमे चतुर्दशी। मेषलग्नेऽञ्जनीगर्भात्स्वयं जातो हरः शिवः॥' इति। यहाँ भी शुक्लादि अमान्तमासाभिप्राय से 'आश्विनस्यासिते' यह कथन है।

अत्र पक्षद्वये परत्र चन्द्रोदयेऽभ्यङ्गस्नानम्। चतुर्थयामादिजघन्यकाले चतुर्दशीव्याप्तिसत्त्वात्। एतत्पक्षद्वये केचिदरुणोदयात्पूर्वमपि चतुर्दशीमध्ये एव स्नानं कार्यमिति वदन्ति। अपरे त्वरुणोदयोत्तरं चन्द्रोदयादिकालेऽमावास्यादियुक्तेऽपि स्नानमिति वदन्ति। यत्तु चतुर्दशीक्षये पूर्वत्र त्रयोदश्यां चन्द्रोदये स्नानमित्याहुस्तदयुक्तम्। अत्राभ्यङ्गस्नाने विशेषः—

सीतालोष्ठसमायुक्तसकण्टकदलान्वित ।
हर पापमपामार्ग[1] भ्राम्यमाणः पुनः पुनः ॥

इति मन्त्रेण लाङ्गलोद्धृतलोष्ठयुतापामार्गतुम्बीचक्रमर्दनशाखानां स्नानमध्ये त्रिवारं भ्रामणं कार्यम्। अभ्यङ्गस्नानोत्तरं तिलकादि कृत्वा कार्तिकस्नानं कार्यम्। उक्तकालेषु स्नानासंभवे सूर्योदयोत्तरं गौणकालेऽपि यत्यादिभिरप्यवश्यमभ्यङ्गस्नानं कार्यम्।

यहाँ दोनों पक्ष में दूसरे दिन चन्द्रोदय में अभ्यंगस्नान है। क्योंकि चौथे पहर आदि निकृष्ट काल में चतुर्दशी की व्याप्ति है। इन दोनों पक्ष में कोई अरुणोदय से पहले भी चतुर्दशी के मध्य में ही स्नान करे, ऐसा कहते हैं। दूसरे तो अरुणोदय के बाद चन्द्रोदय के पहले काल अमावास्या आदि से युक्त में भी स्नान करे, ऐसा कहते हैं। जो कि चतुर्दशी-क्षय के होने पर पहले त्रयोदशी में चन्द्रोदय हो तो उसमें स्नान करे यह ठीक नहीं है, ऐसा कहते हैं। इसमें अभ्यंगस्नान में विशेषता है। जोते हुए खेत के ढेला से युक्त काँटे के पत्तों से युक्त हे अपामार्ग! बार-बार घुमाने से हमारे पापों को हरण करो। इस आशय के मंत्र से हल से निकली हुई ढेला से युक्त अपामार्ग, तुमड़ी और चक्रमर्द की शाखाओं से स्नान के मध्य में (शिर पर) तीन बार घुमावे। अभ्यंगस्नान के बाद तिलक आदि करके कार्तिक स्नान करे। उक्त समय में स्नान न हो सकने पर सूर्योदय के बाद गौण काल में भी संन्यासी आदि को अवश्य अभ्यंगस्नान करना चाहिए।

अथ यमतर्पणम्

कार्तिकस्नानोत्तरं[2] यमतर्पणं कार्यम्। तद्यथा—यमाय नमः यमं तर्पयामीत्युक्त्वा तिलमिश्रान् त्रीनञ्जलीन्सव्येनापसव्येन वा देवतीर्थेन पितृतीर्थेन वा दक्षिणामुखो दद्यात्। एवमग्रेऽपि—धर्मराजाय० मृत्यवे० अन्तकाय० वैवस्वताय० कालाय० सर्वभूतक्षयाय० औदुम्बराय० दध्नाय० नीलाय० परमेष्ठिने०

---

१. पद्मपुराण में अपामार्ग आदि को शिर पर घुमाने का निर्देश—'अपामार्गमथो तुम्बी प्रपुन्नाटमथापरम्। भ्रामयेत् स्नानमध्ये तु नरकस्य क्षयाय वै ॥' शिरसीति शेषः।

२. वृद्धमनुः—'दीपोत्सवचतुर्दश्यां कार्यं तु यमतर्पणम्।' ब्रह्मपुराणे—'अपामार्गस्य पत्राणि भ्रामयेच्छिरसोपरि ततश्च तर्पणं कार्यं धर्मराजस्य नामभिः ॥' हेमाद्रि में तर्पण प्रकार—'एकैकेन तिलैर्मिश्रान् दद्यात्त्रींस्त्रीन् जलाञ्जलीन्। संवत्सरकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥' स्कन्दपुराणे—'दक्षिणाभिमुखो भूत्वा तिलैः सव्यं समाहितः। देवतीर्थेन देवत्वात्तिलैः प्रेताधिपो यतः ॥ तथा—'यज्ञोपवीतिना कार्यं प्राचीनावीतिनाऽथवा।' इस तर्पण को जीवत्पितृक व्यक्ति भी करें। यथा पद्मपुराणे—'जीवत्पिताऽपि कुर्वीत तर्पणं यमभीष्मयोः।' इति।

वृकोदराय० चित्राय० चित्रगुप्ताय० । जीवत्पितृकस्तु यवैर्देवतीर्थेन सव्येन कुर्यात् ।

कार्तिकस्नान के बाद यमतर्पण करना चाहिए। वह जैसे—सव्य या अपसव्य से यमाय नमः इत्यादि कहकर तिल मिले हुए तीन अञ्जलि जल, सव्य देवतीर्थ या पितृतीर्थ से दक्षिण मुख होकर देवे। इसी प्रकार आगे भी धर्मराजाय नमः इत्यादि मन्त्रों से तीन तीन अञ्जलि तिल मिले हुए जल से तर्पण करे। जिसके पिता जीते हों वह जव से देवतीर्थ से सव्य होकर तर्पण करे।

अथ दीपप्रज्वालनम्

ततः प्रदोषसमये दीपान् दद्यान्मनोहरान् ।
देवालये मठे वापि प्राकारोद्यानवीथिषु ॥
गोवाजिहस्तिशालायामेवं घस्रत्रयेपि च ।
तुलासंस्थे सहस्रांशौ प्रदोषे भूतदर्शयोः ।
उल्काहस्ता नराः कुर्युः पितॄणां मार्गदर्शनम् ॥ तत्र दानमन्त्रः—

तदनन्तर प्रदोषकाल में सुन्दर दीपों को दे। देवता, मन्दिर, मठ, चहार दिवारी, बगीचे, गलियों, गोशाला, घोड़सार, हस्तिशाला, तुला के सूर्य, प्रदोषकाल और चतुर्दशी अमावस्या में तीन दिन हाथ में उल्का (लुकारी) लेकर पितरों का मार्ग-दर्शन करे। उसमें दान का मंत्राशय यह है—

अग्निदग्धाश्च ये जीवा येप्यदग्धाः कुले मम ।
उज्ज्वलज्योतिषा दग्धास्ते यान्तु परमां गतिम् ॥
यमलोकं परित्यज्य आगता ये महालये ।
उज्ज्वलज्योतिषा वर्त्म प्रपश्यन्तु व्रजन्तु ते ॥

अस्यां नक्तभोजनं महाफलम् ।

मेरे कुल में अग्नि से जले हुए या नहीं जले हुए जो उज्ज्वल ज्योति से जले हैं वे परमगति कोप्राप्त करें। यमलोक छोड़कर जो महालय में आये हों वे उज्ज्वल-ज्योति से रास्ता देखते हुए जाँय। इस दिन नक्तभोजन का बड़ा फल होता है।

अथ अमायां दीपदानलक्ष्मीपूजनादि (दीपावली)

अथाश्विनामावास्यायां प्रातरभ्यङ्गः [1]प्रदोषे दीपदानलक्ष्मीपूजनादि विहितम् । तत्र सूर्योदयं व्याप्यास्तोत्तरं घटिकाधिकरात्रिव्यापिनि दर्शे सति न सन्देहः ।

---

१. कालादर्शे—'प्रत्यूष आश्वयुग्दर्शे कृताभ्यङ्गादिमङ्गलः । भक्त्या प्रपूजयेद् देवीमलक्ष्मीविनिवृत्तये ।।' काश्यपसंहितायाम्—'इन्दुक्षयेऽपि संक्रान्तौ रवौ पाते दिनक्षये । तत्राभ्यङ्गो न दोषाय प्रातः पापापनुत्तये ।।' मत्स्यपुराणे—'दीपैर्नीराजनादत्र सैषा दीपावली स्मृता ।' हेमाद्रिः—'एवं प्रभातसमये त्वमावास्यां नराधिप । कृत्वा तु पार्वणश्राद्धं दधिक्षीरघृतादिभिः ।। दीपान् दत्त्वा प्रदोषे तु लक्ष्मीं पूज्य यथाविधि । स्वलंकृतेन भोक्तव्यं सितवस्त्रोपशोभिना ।।' तिथितत्त्वे—'दण्डैकरजनीयोगे दर्शः स्यात्तु परेऽहनि । तदा विहाय पूर्वेद्युः परेऽह्नि सुखरात्रिके ।।' ब्रह्मपुराणे—'अर्धरात्रे भ्रमत्येव लक्ष्मीराश्रयितुं गृहान् । अतः स्वलंकृता लिप्ता दीपैर्जाग्रज्जनोत्सवाः ।। सुधाधवलिताः कार्याः पुष्पमालोपशोभिताः ।' दीपमालिका दान का फल—'यः कुर्यात् कार्तिके मासे शोभनां दीपमालिकाम् । घृतेन च चतुर्दश्याममायां च विशेषतः ।। यावद्दीपप्रसंख्या तु घृतेनापूर्य बोधिता । यावद्युगसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।।' इति ।

अत्र प्रातरभ्यङ्गदेवपूजादिकं कृत्वापराह्णे पार्वणश्राद्धं कृत्वा प्रदोषसमये दीपदानोल्काप्रदर्शनलक्ष्मीपूजनानि कृत्वा भोजनं कार्यम्। अत्र दर्शे बालवृद्धादिभिन्नैर्दिवा न भोक्तव्यं, रात्रौ भोक्तव्यमिति विशेषो वाचनिकः। तथा च परदिने एव दिनद्वये वा प्रदोषव्याप्तौ परा। पूर्वत्रैव प्रदोषव्याप्तौ लक्ष्मीपूजादौ पूर्वा। अभ्यङ्गस्नानादौ परा। एवमुभयत्र प्रदोषव्याप्त्यभावेपि।

उसके बाद आश्विन की अमावास्या में प्रातःकाल अभ्यंगस्नान, प्रदोष में दीपदान और लक्ष्मीपूजन आदि कहा है। इसमें सूर्योदय से सूर्यास्त के बाद एक घड़ी से अधिक रात्रि में रहने वाली अमावास्या में कोई संदेह नहीं है। इसमें प्रातः अभ्यंगस्नान देवपूजा आदि करके अपराह्ण में पार्वणश्राद्ध, प्रदोषकाल में दीपदान, उल्का का प्रदर्शन और लक्ष्मीपूजन करके भोजन करे। इस अमावास्या में बाल वृद्ध आदि को छोड़कर शेष को दिन में भोजन नहीं करना चाहिये, रात में भोजन करना चाहिये, यह विशेषता वाचनिक है। दूसरे दिन ही या दोनों दिन प्रदोष में रहने वाली अमावास्या परा लेनी चाहिए। लक्ष्मीपूजा आदि में पहले ही दिन प्रदोष में अमावास्या रहने पर पहली का ग्रहण करे। अभ्यंग स्नान आदि में पूरा लेनी चाहिए। इस प्रकार दोनों दिन प्रदोष में नहीं रहने वाली अमावास्या में भी करना चाहिये।

पुरुषार्थचिन्तामणौ तु पूर्वत्रैव व्याप्तिरिति पक्षे परत्र यामत्रयाधिकव्यापिदर्शे दर्शापेक्षया प्रतिपद्वृद्धिसत्त्वे लक्ष्मीपूजादिकमपि परत्रैवेत्युक्तम्। एतन्मते उभयत्र प्रदोषाव्याप्तिपक्षेपि परत्र दर्शस्य सार्धयामत्रयाधिकव्यापित्वात्परैव युक्तेति भाति। चतुर्दश्यादिदिनत्रयेपि दीपावलिसंज्ञके यत्र यत्राह्नि स्वातीनक्षत्रयोगस्तस्य तस्य प्राशस्त्यातिशयः। अस्यामेव निशीथोत्तरं नगरस्त्रीभिः स्वगृहाङ्गणादलक्ष्मीनिःसारणं[1] कार्यम्। इति आश्विनमासकृत्यनिर्णयोद्देशः।

पुरुषार्थचिन्तामणि में तो पहले ही दिन प्रदोषव्यापिनी अमावास्या हो तो इस पक्ष में दूसरे दिन तीन पहर से अधिक रहने वाली अमावास्या में अमावास्या की अपेक्षा प्रतिपद् की वृद्धि होने पर

भविष्यपुराण में इसी दिन अर्धरात्रि में कालीपूजा—'प्रतिसंवत्सरं कुर्यात् कालिकाया महोत्सवम्। कार्तिके तु विशेषेण अमावास्यानिशार्धके॥ तस्यां संपूजयेद्देवीं भोगमोक्षप्रदायिनीम्।' इसी तरह कामाख्यातन्त्रादि में निशीथ में पूजा का विधान है। अमावास्या दो दिन निशीथव्यापिनी हो तो जिस दिन प्रदोष में रहे उसी दिन ग्रहण करे—'प्रदोषव्यापिनी यत्र महानिशि च सा भवेत्। तदैव कालिका पूज्या दक्षिणा मोक्षदायिनी॥' अमावास्या के दो दिन रहने पर चतुर्दशीयुक्त ग्राह्य है—'अर्धरात्रे महेशानि अमावास्या यदा भवेत्। चतुर्दशीयुता ग्राह्या चामुण्डापूजने सदा॥' शनिभौमवार के पड़ जाने से चतुर्दशी प्रदोषव्यापिनी भी हो तो अमावास्या निशीथव्यापिनी ही ग्राह्य है—'चतुर्दशी प्रदोषे तु अमावास्या महानिशि। शनिभौमदिने देवि निशायां सर्वथा यजेत्॥' शनिभौम दिन के अतिरिक्त दिन में पूर्व दिन प्रदोषव्यापिनी और पर दिन में प्रदोषनिशीथोभयव्यापिनी हो तो परदिन ही ग्राह्य है—'महानिशादिने देवि प्रतिपच्च यदा भवेत्। कालीकैवल्ययोगोऽयं तद्दिने कालिकाऽर्चनम्॥' इति।

१. भविष्यपुराणे—'एवं गते निशीथे तु जने निद्रार्धलोचने। तावन्नगरनारीभिः शूर्पडिण्डिमवादनैः॥ निष्कास्यते प्रहृष्टाभिरलक्ष्मीः स्वगृहाङ्गणात्।' इति।

लक्ष्मीपूजा आदिभी दूसरे ही अमावास्या में करें, ऐसा कहा है। इस मत में दोनों दिन प्रदोष में नहीं रहने वाली अमावास्या के पक्ष में भी दूसरे दिन साढ़े तीन पहर अमावास्या के अधिक रहने पर परा ही ठीक है। चतुर्दशी आदि तीन दिन में दीपावली होती है। इसमें जिस-जिस दिन स्वाती-नक्षत्र का योग हो वह-वह अत्यन्त प्रशस्त है। इसी अमावास्या में आधी रात के बाद नगर की स्त्रियाँ घर और आंगन से दरिद्रा का निष्कासन करें। आश्विनमासकृत्यनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ कार्तिककृत्ये वृश्चिकसंक्रान्तिः

वृश्चिकसंक्रान्तौ पूर्वाः षोडशनाड्यः पुण्याः। शेषं प्राग्वत्। अथ कार्तिकशुक्लप्रतिपत्कृत्यम्। अत्राभ्यङ्ग आवश्यकः। एवं च चतुर्दश्यादिदिनत्रयेऽभ्यङ्गाद्युत्सवस्याकरणे नरकादिदोषश्रवणात्करणे लक्ष्मीप्राप्त्यलक्ष्मीपरिहारादिफलश्रवणाच्च नित्यकाम्योभयरूपत्वम्।

वृश्चिक की संक्रान्ति में पहली सोलह घड़ियाँ पुण्यप्रद हैं। शेष पूर्ववत् जानें। कार्तिकशुक्ल प्रतिपदा के कृत्य ये हैं, इसमें अभ्यंगस्नान आवश्यक है। इस प्रकार चतुर्दशी आदि तीन दिनों में अभ्यंग आदि उत्सव के न करने पर नरक आदि दोष और करने पर लक्ष्मी-प्राप्ति और अलक्ष्मी के परिहार आदि फल होने से यह नित्य और काम्य दोनों है।

अथ बलिपूजननिर्णयः

अस्यां प्रतिपदि [1]बलिपूजा दीपोत्सवो गोक्रीडनं गोवर्धनपूजा मार्गपालीबन्धनं वष्टिकाकर्षणं नववस्त्रादिधारणाद्युत्सवो द्यूतं नारीकर्तृकनीराजनं मङ्गलमालिका

---

१. बलिपूजा में प्रतिपदा पूर्वविद्धा ग्राह्य है। यथा पद्मपुराणे—'पूर्वविद्धा प्रकर्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम्।' निर्णयामृत में रात्रि में बलिपूजा—'कृत्वैतत्सर्वमेवेह रात्रौ दैत्यपतेर्बलेः। पूजां कुर्यान्नृपः साक्षाद् भूमौ मण्डलके शुभे॥ बलिमालिख्य दैत्येन्द्रं वर्णकैः पञ्चरङ्गकैः। गृहस्य मध्ये शालायां विशालायां ततोऽर्चयेत्॥ लोकश्चापि गृहस्यान्तः शय्यायां शुक्लतण्डुलैः। संस्थाप्य बलिराजानं फलैः पुष्पैश्च पूजयेत्॥' इति।

निर्णयामृत में अमावास्या से युक्त प्रतिपदा में गोक्रीडा—'या कुहूः प्रतिपन्मिश्रा तत्र गाः पूजयेन्नृप। पूजनात् त्रीणि वर्धन्ते प्रजा गावो महीपतिः॥' देवलः—'प्रतिपद्दर्शसंयोगे क्रीडनं तु गवां मतम्। परविद्धेषु यः कुर्यात् पुत्रदारधनक्षयः॥' तथा—'प्रतिपद्यग्निकरणं द्वितीयायां तु गोऽर्चनम्। क्षेत्रच्छेदं करिष्येते वित्तनाशं कुलक्षयम्॥' तथा—'कार्तिकस्य सिते पक्षे प्रतिपच्छुभवासरे। हस्तस्वातौ च एतेषु गोपूजा शुभदा सदा॥'

पूर्व दिन प्रतिपदा सायाह्नव्यापिनी हो और द्वितीय दिन चन्द्रदर्शन की सम्भावना हो तभी पूर्वोक्त विधि-प्रतिषेध के ये सभी वचन हैं। पुराणसमुच्चये—'गवां क्रीडादिने यत्र रात्रौ दृश्येत चन्द्रमाः। सोमो राजा पशून् हन्ति सुरभिः पूजकांस्तथा॥' प्रतिपदा दोनों दिन सायाह्नव्यापिनी हो तो उत्तर दिन द्वितीया से युक्त ही ग्राह्य है—'वर्धमानतिथौ नन्दा यदा सार्धत्रियामिका। द्वितीया वृद्धिगामित्वादुत्तरा तत्र चोच्यते॥' दोनों दिन प्रतिपदा सायाह्नव्यापिनी न हो तो अमावास्या युक्त ही ग्राह्य है।

राजमार्तण्ड में गोपूजा का निषेध—'विशाखायाममावास्या विशाखा प्रतिपद्युता। आयुः पुत्रं धनं हन्ति सुरभीपूजकांस्तथा॥' तथा—'शनौ वारे तथाऽङ्गारे सूर्यवारे तथैव च। अन्यदृक्षगते चाऽपि गोपूजां नैव कारयेत्॥ यदि मोहात् कृता पूजा प्रायश्चित्तं भवेत्तदा। गवां नाशोऽर्थनाशश्च प्रजानाशो भवेद् ध्रुवम्॥ पापाहे च विशाखायां गोपूजां नैव कारयेत्।' इति।

चेत्येवमादीनि कृत्यानि । तत्र यदि उदयं व्याप्य दश मुहूर्ता प्रतिपत्तदा चन्द्रदर्शनाभावाचन्द्रदर्शनप्रयुक्तद्वितीयावेधनिषेधाप्रवृत्तेः सर्वकार्याणि परप्रतिपद्येव भवन्ति । इष्टिनिर्णयप्रकरणे त्रिमुहूर्तद्वितीयाप्रवेशमात्रेण चन्द्रदर्शनमुक्तं तत्सूक्ष्मदर्शनाभिप्रायम् । अत्र तु स्थूलदर्शनमेव निषेधप्रयोजकम् । तच्च षण्मुहूर्तद्वितीयाप्रवेश एवेति न विरोध इति भाति ।

इस प्रतिपदा में बलिपूजा, दीपोत्सव, गोक्रीडन, गोवर्धनपूजा, मार्गपालीबन्धन, वष्टिकाकर्षण, नववस्त्रादि का धारण आदि उत्सव, जुआ, स्त्रीद्वारा आरती और मंगलमालिका आदि कृत्य होते हैं । इसमें यदि उदय से दश मुहूर्त तक प्रतिपदा हो तो चन्द्रदर्शन के न होने से चन्द्रदर्शन-प्रयुक्त द्वितीयावेध निषेध की अप्रवृत्ति से सब कार्य दूसरी प्रतिपदा में ही होते हैं । इष्टि के निर्णय-प्रकरण में तीन मुहूर्त द्वितीया के प्रवेशमात्र से चन्द्रमा का दर्शन कहा है, वह सूक्ष्मदर्शन के अभिप्राय से है । यहाँ तो स्थूलदर्शन ही निषेध का प्रयोजक है । वह छ मुहूर्त द्वितीया प्रवेश में ही है इसलिए कोई विरोध नहीं है, ऐसा प्रतीत होता है ।

यदि नवमुहूर्ता नास्ति तदा बलिपूजागोक्रीडागोवर्धनपूजामार्गपालीबन्धनवष्टिकाकर्षणानि पूर्वविद्धप्रतिपदि कार्याणि । अभ्यङ्गनववस्त्रादिधारणद्यूतनारीकर्तृकनीराजनमङ्गलमालिकादीनि औदयिकमुहूर्तव्यापिन्यामपि कार्याणि । बलिपूजादेः केनचिन्निमित्तेन पूर्वविद्धायामनुष्ठानासंभवे परविद्धायामनुष्ठानं कार्यं न तु कर्मत्यागस्तिथ्यन्तरपरिग्रहो वा । यथा बौधायनीयाद्यैः स्वस्वसूत्रोक्तानुष्ठानासंभवे आपस्तम्बीयादिसूत्रोक्तानुष्ठानं कार्यं न तु कर्मलोपः शाखान्तरपरिग्रहो वा तद्वदिति माधवीये स्पष्टम् ।

यदि नव मुहूर्त द्वितीया नहीं है तब बलिपूजा, गोक्रीड़ा, गोवर्धनपूजा, मार्गपालीबन्धन, वष्टिकाकर्षण, पूर्वविद्धा प्रतिपदा में ही करे । अभ्यंग, नये वस्त्रादि का धारण, जुआ, स्त्रीद्वारा नीराजन, और मंगलमालिका आदि कृत्य उदयकालिक मुहूर्तव्यापिनी द्वितीया में भी करे । बलिपूजा आदि किसी कारण से पूर्वविद्धा में न कर सकने पर परविद्धा में करे कर्मकाल का त्याग नहीं करे, अथवा दूसरी तिथि में करे । जैसे—बौधायनीय आदि अपने-अपने सूत्र के कहे हुए कृत्य के न हो सकने पर आपस्तम्बीय आदि सूत्रों के कहने के अनुसार कृत्य करते हैं, कर्म का लोप नहीं करते, अथवा दूसरी शाखा का ग्रहण करते हैं, उसी तरह ग्रहण करे, यह माधवीय में स्पष्ट है ।

तत्र राजा पञ्चवर्णरंगैर्बलिं द्विभुजमालिख्य अन्यजनाः शुक्लतण्डुलैर्विरच्य पूजयेयुः । तत्र मन्त्रः—

बलिराज नमस्तुभ्यं विरोजनसुत प्रभो ।
भविष्येन्द्रसुराराते पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥

बलिमुद्दिश्य यत्किंचिद्दानकरणेऽक्षय्यं विष्णुप्रीतिकरं तत् ।

यो यादृशेन भावेन तिष्ठत्यस्यां मुनीश्वर ।
हर्षदैन्यादिरूपेण तस्य वर्षं प्रयाति हि ॥

इसमें राजा पाँच रंग से दो हाथ वाली बलि बनाकर अन्य लोग सफेद चावल से बनाकर पूजा करें । इसमें मंत्र का आशय यह है—हे विरोचन के पुत्र बलिराज ! आप को नमस्कार है । इन्द्र और

देवताओं के होने वाले प्रभु बलि महाराज ! मेरी इस पूजा को स्वीकार करें। बलि के उद्देश्य से जो कुछ भी दान करने पर वह अक्षय और विष्णु का प्रीति-कारक होता है। जो हर्ष या दैन्य आदि जिस भाव से इस दिन रहता है, उसका वर्ष वैसा ही बीतता है।

अथास्यां द्यूतविधिः

अस्यां द्यूतं प्रकर्तव्यं प्रभाते सर्वमानवैः।
तस्मिन्द्यूते जयो यस्य तस्य संवत्सरं जयः॥
विशेषवच्च भोक्तव्यं प्रशस्तैर्ब्राह्मणैः सह।
बलिराज्ये दीपदानात्सदा लक्ष्मीः स्थिरा भवेत्॥

इस दिन प्रातःकाल में सब मनुष्यों को जुआ खेलना चाहिए। उस जुए में जिसकी जीत होती है उसका साल भर तक जीत ही होती है। उत्तम ब्राह्मणों के साथ विशेष प्रकार का भोजन करे। बलिराज्य में दीप देने से लक्ष्मी स्थिर रहती हैं।

दीपैर्नीराजनादत्र सैषा दीपावली स्मृता।
बलिराज्यं समासाद्य यैर्न दीपावली कृता।
तेषां गृहे कथं दीपाः प्रज्वलिष्यन्ति केशव॥ इत्यादि।

अत्र लक्ष्मीपूजा कुबेरपूजा चोक्ता।

लक्ष्मीर्या लोकपालानां धेनुरूपेण संस्थिता।
घृतं वहति यज्ञार्थे मम पापं व्यपोहतु॥
अग्रतः सन्तु मे गावो गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥

इति मन्त्राभ्यां गवां सवत्सानां बलीवर्दानां च पूजनं विभूषणं च कृत्वा दोहनभारवहनादिकं वर्जयेत्।

दीपों के नीराजन से इसे दीपावली कहते हैं। बलिराज्य को पाकर जिसने दिवाली नहीं मनायी उसके घर में हे केशव ! कैसे दीप जलेंगे इत्यादि। इसमें लक्ष्मीपूजा और कुबेरपूजा भी कही है। जो लक्ष्मी लोकपालों की धेनुरूप से स्थित हैं और जो यज्ञ के लिए घी बहती है वह मेरे पापों को दूर करे। मेरे आगे मेरे पीछे मेरे हृदय में गाय रहें, गायों के बीच में मैं रहूँ, इस आशय के दो मंत्रों से बछड़े वाली गाय तथा बैलों का पूजन और उनका शृंगार करके गायों का दूहना और बैलों पर बोझा लादना आदि त्याग दे।

अथ गोवर्धनपूजा

मुख्यगोवर्धनसान्निध्ये तस्यैव [1]पूजा। तदसान्निध्ये गोमयेनान्नकूटेन वा गोवर्धनं कृत्वा तत्सहितगोपालपूजा कार्या। तत्र 'श्रीकृष्णप्रीत्यर्थं गोवर्धनपूजनगोपालपूजनात्मकं महोत्सवं करिष्ये' इति संकल्प्य,

---

१. स्कन्दपुराण में गोवर्धनपूजा—'प्रातर्गोवर्धनं पूज्य द्यूतं चापि समाचरेत्। भूषणीयास्तथा गावः पूज्याश्चावाहदोहनाः।' गोमय से गोवर्धन बनाकर पीतपुष्पाक्षतादि से पूजन करे।

बलिराज्ञो द्वारपालो भवानद्य भव प्रभो।
निजवाक्यार्थनार्थाय सगोवर्धन गोपते ॥

इति मन्त्रेण सगोवर्धनं गोपालमावाह्य स्थापयेत्। ततो—

गोपालमूर्ते विश्वेश शक्रोत्सवविभेदक।
गोवर्धनकृतच्छत्रपूजां मे हर गोपते ॥
गोवर्धन धराधार गोकुलत्राणकारक।
विष्णुबाहुकृतच्छाय गवां कोटिप्रदो भव ॥

इति मन्त्राभ्यां श्रीगोपालगोवर्धनौ षोडशोपचारैः पूजयेत्। तत्र यथावैभवं महानैवेद्यो देयः।

मुख्य गोवर्धन की सन्निधि में उन्हीं की पूजा करनी चाहिए। उनके सान्निध्य न होने पर गोबर अथवा अन्न के समूह से गोवर्धन बनाकर गोपाल की पूजा करे। उसमें 'श्रीकृष्ण की प्रीति के लिए गोवर्धनपूजा और गोपालपूजात्मक-महोत्सव करूँगा, ऐसा संकल्प करके हे प्रभो! आप आज बलिराजा के द्वारपाल हों। गोवर्धन के सहित अपने वाक्य की याचना कीजिए, इस आशय के मंत्रों से गोवर्धन के साथ गोपाल का आवाहन करके स्थापना करे। तदनन्तर हे विश्वेश्वर! इन्द्र के उत्सव के नष्ट करने और गोवर्धन को छाता बनाने वाले गोपालमूर्ति हे कृष्ण! मेरी पूजा को ग्रहण कीजिए। गोवर्धन के धारण करने वाले, गोकुल के रक्षक विष्णु के बाहु से जिनकी छाया की गई है ऐसे हे भगवान्! करोड़ों गायों के देने वाले हों इस आशय के दोनों मंत्रों से श्रीगोपाल और गोवर्द्धन की षोडशोपचार से पूजा करें। उसमें जितना धन हो उसके अनुसार महा नैवेद्य देवे।

ततः तदङ्गत्वेन प्रत्यक्षधेनौ मृद्धेनौ वा गोपूजां पूर्वोक्तमन्त्राभ्यां कृत्वा 'आगावो अग्मन्प्रैते वदन्तु' इति ऋग्भ्यां गृहसिद्धचरुहोमः कार्यः। ब्राह्मणेभ्यो-ऽन्नगवादिदानं गोभ्यस्तृणदानं गिरये बलिदानं च। ततो गोविप्रहोमाग्निगिरि-प्रदक्षिणासहचरीभिर्गोभिर्युतैः कार्या।

इसके बाद इसके अंगरूपी प्रत्यक्ष धेनु या मिट्टी की धेनु में गौ का पहले कहे दो मंत्रों से पूजन करके 'आ गावो अग्मन् प्रैते वदन्तु' इन दो ऋचाओं से घर में बनाये हुए चरु से होम करे। ब्राह्मणों को अन्न और गाय आदि का दान, गायों के लिये तृणदान और गोवर्धन को बलि-दान भी करे। इसके बाद गौ, ब्राह्मण, होम की अग्नि और पर्वत की प्रदक्षिणा, गायों के साथ करनी चाहिए।

अथापराह्णे मार्गपालीबन्धनम्

तत्र पूर्वस्यां दिशि कुशकाशमयरज्जुविशेषं यथाचारं कृत्वोच्चस्तम्भे वृक्षे च बध्वा,

[1]मार्गपालि नमस्तेऽस्तु सर्वलोकसुखप्रदे।
विधेयैः पुत्रदाराद्यैः पुनरेहि व्रतस्य मे ॥

---

१. स्कन्दपुराणे—'ततोऽपराह्णसमये पूर्वस्यां दिशि भारत। मार्गपालीं प्रबध्नीयाच्चुङ्गे स्तम्भेऽथ पादपे। कुशकाशमयीं दिव्यां लम्बकैर्बहुभिर्मुने। दर्शयित्वा गजानश्वान् सायमस्यास्तले नयेत्।

इति नमस्कृत्य प्रार्थ्यं तदधोमार्गेण गोगजादिसहिताः विप्रराजादयः सर्वे गच्छेयुः। एवं काशादिमयीं[1] वष्टिकां दृढां कृत्वा एकतो राजपुत्रा अन्यत्र हीनजातयो जयज्ञानार्थं कर्षयेयुः। अत्र हीनजातिजये राजजयः। प्रातर्द्यूतं कार्यमित्युक्तम्। एवं नारीभिर्नीराजनमपि[2] प्रातरेव कार्यम्। रात्रौ गीतवाद्याद्युत्सवः कार्यः। नवैर्वस्त्रैश्च संपूज्या द्विजसंबन्धिबान्धवा इति।

इसमें पूर्व दिशा में कुश काश की रस्सी अपने कुलाचार के अनुसार बनाकर ऊँचे खम्भे या वृक्ष में बाँध कर हे मार्गपाल ! आप को नमस्कार है। सब लोक को सुख देने वाली, पुत्र स्त्री के द्वारा पुनः मेरे व्रत में आइये, इस आशय के मंत्र से नमस्कार और प्रार्थना करके उसके नीचे के मार्ग से गौ हाथी आदि के साथ ब्राह्मण राजा आदि सब लोग चलें। इस प्रकार काश आदि की बनी हुई वष्टिका को मबबूत करके एक ओर राजपुत्र और दूसरी ओर नीच जाति के लोग विजय ज्ञान के लिये खींचे। इसमें नीच जाति के जीतने पर राजा का विजय होता है। प्रातःकाल में जुआ खेले यह कह चुके हैं। इसी प्रकार स्त्रियाँ नीराजन भी प्रातःकाल ही करें और रात में गाने बजाने आदि का उत्सव करें। नये वस्त्रों से ब्राह्मण तथा सम्बन्धी और बान्धवों का सत्कार करें।

अथ यमद्वितीया

यमो यमुनया पूर्वं भोजितः स्वगृहे स्वयम्।
अतो यमद्वितीया सा प्रोक्ता लोके युधिष्ठिर ॥

अस्यां निजगृहे न भोक्तव्यं यत्नेन भगिनीहस्ताद्भोक्तव्यम्। तेन धनधान्यसुखलाभः वस्त्रालंकरणैः सर्वा भगिन्यः पूज्याः। स्वभगिन्यभावे मित्रादिभगिन्यः पूज्याः। भगिन्या अपि भ्रातृपूजने अवैधव्यं[3] भ्रातुश्चिरजीवनं तदकरणे सप्तजन्मसु

कृतहोमे द्विजेन्द्रैस्तु बध्नीयान्मार्गपालिकाम्।। नमस्कारं ततः कुर्यान्मन्त्रेणानेन सुव्रत। नीराजनं च तत्रैव कार्यं राष्ट्रजयप्रदम् ॥ राजानो राजपुत्राश्च ब्राह्मणाः शूद्रजातयः। मार्गपालीं समुल्लङ्घ्य नीरुजः स्युः सुखान्विताः।' इति। गोवर्धन पूजा ही गोधनपूजा है।

१. आदित्यपुराणे—'कुशकाशमयीं कुर्याद् वष्टिकां सुदृढां नवाम्। तामेकतो राजपुत्रा हीनवर्णास्तथाऽन्यतः। गृहीत्वा कर्षयेयुस्तां यथासारं मुहुर्मुहुः। जयेऽत्र हीनजातीनां जयो राज्ञस्तु वत्सरम् ॥' इति। वष्टिका = पतली रस्सी।

२. मदनरत्न में ब्रह्मपुराणादि के वचनों के आधार पर नीराजन और मंगलमालिका का कर्तव्य उत्तर दिन में कहा है। ब्रह्मपुराणे—'कार्तिके शुक्लपक्षे तु विधानद्वितयं भवेत्। नारीनीराजनं प्रातः सायं मङ्गलमालिका ॥ यदा च प्रतिपत्स्वल्पा नारीनीराजनं भवेत्। द्वितीयायां तदा कुर्यात् सायं मङ्गलमालिकाम् ॥ भविष्यपुराणे—'लभ्यते यदि वा प्रातः प्रतिपद् घटिकाद्वयम्। तस्यां नीराजनं कार्यं सायं मङ्गलमालिका।'. देवीपुराणे—'प्रातर्वा यदि लभ्येत प्रतिपद् घटिका शुभा। द्वितीयायां तदा कुर्यात् सायं मङ्गलमालिकाम् ॥ कार्तिके शुक्लपक्षादौ त्वमावास्या घटीद्वयम्। देशभङ्गभयान्नैव कुर्यान्मङ्गलमालिकम् ॥' इति।

३. ब्रह्माण्डपुराणे—'या तु भोजयते नारी भ्रातरं युग्मके तिथौ। अर्चयेच्चापि ताम्बूलैर्न सा वैधव्यमाप्नुयात् ॥ भ्रातुरायुःक्षयो राजन् भवेत्तत्र कर्हिचित्।' युग्मके = कार्तिकशुक्ल द्वितीया में। इसमें चित्रगुप्तादि की पूजा होती है—'यमं च चित्रगुप्तं च यमदूतांश्च पूजयेत्। अर्घ्यश्चात्र प्रदातव्यो यमाय सहजद्वयैः ॥' स्कन्दपुराण में अपराह्न में इसके पूजन का विधान है—'ऊर्जशुक्ल-

भ्रातृनाशः । इयं पूर्वेद्युरेवापराह्णव्याप्तौ पूर्वा । उभयत्र व्याप्त्यव्याप्त्यादिपक्षान्तरेषु परैव । अस्यां यमुनास्नानमपराह्णे चित्रगुप्तयमदूतसहितयमजपूजनं यमायार्घ्यदानं च विहितम् ।

यमुना के द्वारा अपने घर में यमराज खिलाये गये इसीलिए उसे लोक में यमद्वितीया कहते हैं । इस द्वितीया में अपने घर में भोजन नहीं करना चाहिए । यत्न से बहन के हाथ से ही भोजन करे ऐसा करने से धन धान्य और सुख की प्राप्ति होती है । सभी बहनों को वस्त्र और आभूषण से पूजा करनी चाहिए । अपनी बहन के न रहने पर मित्रादि के बहनों को पूजे । बहन भी भाई के पूजन में विधवा नहीं होती और भाई बहुत दिन तक जीता है । ऐसा न करने पर सात जन्म तक भाई का सुख नहीं होता । यह द्वितीया पहले दिन ही अपराह्ण में रहने से पहले ही दिन करे । दोनों दिन में रहने न रहने आदि दूसरे पक्षों में परा द्वितीया लेनी चाहिए । इस द्वितीया में यमुना का स्नान, अपराह्ण में चित्रगुप्त और यमदूत के साथ यमराज का पूजन तथा यम को अर्घ्यदान विहित है ।

अथ वह्निषष्ठी (रविषष्ठी)

कार्तिकशुक्लषष्ठ्यां[1] भौमयुतायां वह्निं समभ्यर्च्य तत्प्रीत्यर्थं विप्रभोजनं कार्यम् ।

द्वितीयायामपराह्णेऽर्चयेद् यमम् । स्नानं कृत्वा भानुजायां यमलोकं न पश्यति ॥' भानुजायाम्= यमुनानदी में ।

१. मत्स्यपुराण में कार्तिकशुक्ल षष्ठी वह्निषष्ठी है—'वृश्चिकार्के शुक्लषष्ठी भौमवारेऽप्युपस्थिते । महाषष्ठीति सा प्रोक्ता सर्वपापहरा तिथिः ॥ तस्यां स्वपिति वै वह्निः पूर्वत्रोपोष्य वै दिने । षष्ठ्यां वह्निं समभ्यर्च्य कुर्याद् वह्निमहोत्सवम् ॥' 'षण्मुन्योः' इस वचन से यह सप्तमीविद्धा ग्राह्य है ।

कार्तिकशुक्ल षष्ठी रविषष्ठी (छठ)भी सप्तमीविद्धा ग्राह्य है । यथा ब्रह्मवैवर्ते—'न हि षष्ठी नागविद्धा कर्तव्या तु कदाचन । नागविद्धा तु या षष्ठी कृतपुण्यक्षया भवेत् । सप्तम्या सह कर्तव्या महापुण्यफलप्रदा ॥' स्कन्दपुराण में—'नागविद्धा न कर्तव्या षष्ठी चैव कदाचन । सप्तमीसंयुता कार्या षष्ठी धर्मार्थचिन्तकैः ॥' सौरपुराणे—'नागविद्धा तु या षष्ठी शिवविद्धा तु सप्तमी । दशम्येकादशीविद्धा नोपोष्या तु कथंचन ॥' विष्णुधर्मोत्तरे—'एकादश्यष्टमी षष्ठी पौर्णमासी चतुर्दशी । अमावास्या तृतीया च ता उपोष्याः परान्विताः ॥' तथा —'नागविद्धां तु ये षष्ठीमुपोष्यन्तीह मानवाः । वृद्धिः श्रेयश्च कल्याणं तेषां नश्यन्ति पूर्वजम् ॥ सगरेण कृता पूर्वं पञ्चम्या सह भारत । हतं पुत्रसहस्रं तु तस्माद् विद्वान्न कारयेत् ॥' कालमाधवोक्त-लिङ्गपुराणे—'षष्ठ्यामुपोष्य विधिवत् सप्तम्यामर्कमर्चयेत् । स द्रव्यभागरुक् चैव सम्प्राप्नोतीप्सितं फलम् ॥' द्वैतनिर्णये—'षष्ठीसमेता कर्तव्या सप्तमी नाष्टमीयुता । पतङ्गोपासनायाथ षष्ठ्यामाहुरुपोषणम् ॥' पतङ्गः = सूर्यः ।

इन अनेक वचनों से सिद्ध है कि सूर्यव्रत में षष्ठी सप्तमीयुता ही ग्राह्य है । यदि उदयकाल में षष्ठी थोड़ी हो उसके बाद सप्तमी हो तो वही ग्राह्य है और उसी दिन सायंकाल का प्रथम अर्घ विहित है । तिथिचन्द्रिकामें—'कलाकाष्ठानिमेषोऽपि यदि स्यादपरेऽहनि । षष्ठ्याः कथञ्चिद् विप्रेन्द्र सैवोपोष्या प्रयत्नतः ॥ द्वितीय अर्घ सप्तमीयुक्त सूर्योदय में मुख्य है । तिथिनिर्णय में श्रीराजनाथ मिश्र ने लिखा—'पूर्वदिने सायमर्घादिना पूजने षष्ठी वा सप्तमी ग्राह्येति न नियमः । प्रधानीभूतोत्तरत्रार्घदानस्य तदङ्गोपवासस्य वा अङ्गत्वयैव तदाचरणात् ।'

अत एव सप्तमी के क्षय होने पर पुराणान्तर में कहा—'षष्ठ्याश्चैका कला यत्र तत्र सप्त-

कार्तिक शुक्लपक्ष की षष्ठी में मंगलवार के योग होने पर अग्नि की पूजा करके उसकी प्रसन्नता के लिए ब्राह्मण-भोजन करावे।

अथ गोपाष्टमी

कार्तिकशुक्लाष्टमी गोपाष्टमी। अत्र गोपूजनगोप्रदक्षिणगवानुगमनैरिष्टकामावाप्तिः। कार्तिकशुक्लनवम्यां[1] मथुराप्रदक्षिणोक्ता। इयं युगादिरपि। अस्यां पूर्वाह्णव्यापिन्यामपिण्डकं श्राद्धमुक्तम्। अत्र विशेषो वैशाखप्रकरणे उक्तः।

कार्तिक शुक्लपक्ष की अष्टमी को गोपाष्टमी कहते हैं। इसमें गाय का पूजन, गाय की प्रदक्षिणा करने और गाय के पीछे-पीछे चलने से मनोरथ की सिद्धि होती है। कार्तिकशुक्ल नवमी में मथुरा की प्रदक्षिणा कही गई है। यह नवमी युगादि तिथि भी है। पूर्वाह्णव्यापिनी नवमी में विना पिण्ड का श्राद्ध कहा है। इसमें विशेष बातें वैशाख प्रकरण में कह चुके हैं।

अथ भीष्मपंचकव्रतम्

एकादश्यादिदिनपञ्चके [2]भीष्मपञ्चकव्रतमुक्तम्। तच्च शुद्धैकादश्यामारभ्य चतुर्दश्यविद्धौदयिकपौर्णमास्यां समापनीयम्। यदि शुद्धैकादश्यामारम्भे क्षयवशेन पौर्णमास्यां पञ्चदिनात्मकव्रतसमाप्तिर्न घटते तदा विद्धैकादश्यामप्यारम्भः। शुद्धैकादश्यामारम्भेपि दिनवृद्धिवशेन परविद्धपौर्णमास्यां समापने यदि षड्दिना-

---

हितो रविः। तत्र क्रतुशतं पुण्यमष्टम्यां पारणेन तु॥ षष्ठी च सप्तमी चैव रात्रिशेषे यदाऽष्टमी। त्रिस्पृशा नाम सा प्रोक्ता यथा चैकादशी पुनः। शुद्धैव सप्तमी ज्ञेया उपोष्या फलकाङ्क्षिभिः। अष्टम्यां पारणं कुर्याद् व्रतमेतन्नराधिप॥'

इसी प्रकार जिस दिन उदयकाल में षष्ठी और सायंकाल में षष्ठी न भी रहे फिर भी सप्तमी के अनुरोध से सायंकाल में प्रथम अर्घ देय है। जब पंचमी की वृद्धि और षष्ठी का क्षय हो तब जिस दिन षष्ठी का क्षय हो उसी दिन सायंकाल प्रथम अर्घ और द्वितीय दिन में द्वितीय अर्घ देना चाहिये, यह कृत्यशिरोमणि में स्पष्ट है। केवल स्कन्दव्रत में ही षष्ठी पूर्वयुता ग्राह्य है, जैसा कि वसिष्ठ ने कहा—'कृष्णाष्टमी स्कन्दषष्ठी शिवरात्रि-चतुर्दशी। एताः पूर्वयुताः कार्यास्तिथ्यन्ते पारणं भवेत्॥' इति।

१. यह अक्षय-नवमी नाम से प्रसिद्ध है। यथा पद्मपुराणे—'कार्तिके नवमी शुक्ला पितॄणामुत्सवाय च। तस्यां स्नातं हुतं दत्तमनन्तफलदं भवेत्॥' देवीपुराणे—'शुक्लपक्षे नवम्यां तु कार्तिकस्य समाहितः। स्नायाद् दद्यान्नमस्कुर्यादक्षयं लभते फलम्॥' इसमें कूष्माण्ड के भीतर रत्नादि रखकर दान आदि का महत्त्व है।

पद्मपुराण में इसी तिथि में विष्णु का त्रिरात्र व्रत कहा—'कार्तिके शुक्लनवमीमवाप्य विजितेन्द्रियः। हरिं विधाय सौवर्णं तुलस्या सहितं विभुम्॥ पूजयेद् विधिना भक्त्या व्रती तत्र दिनत्रयम्। एवं यथोक्तविधिना कुर्याद् वैवाहिकं विधिम्॥' इति।

२. नारदः—'अतो नरैः प्रयत्नेन कर्तव्यं भीष्मपञ्चकम्। कार्तिकस्यामले पक्षे स्नात्वा सम्यग् यतव्रतः॥ एकादश्यां तु गृह्णीयाद् व्रतं पञ्चदिनात्मकम्।' भविष्यपुराण में पांच दिन तक शाक या मुन्यन्न-सेवन का निर्देश है—'यद् भीष्मपञ्चकमिति प्रथितं पृथिव्यामेकादशीप्रभृतिपञ्चदशीनिरुद्धम्। मुन्यन्नभोजनपरस्य नरस्य तस्मिन्निष्टं फलं दिशति पाण्डव शार्ङ्गधन्वा॥' पद्मपुराणे—'पञ्चाहं पञ्चगव्याशी भीष्मायार्घ्यं च पञ्चसु। अहःस्वपि तथा दद्यान्मन्त्रेणानेन सुव्रत॥' मन्त्रः—'वैयाघ्रपदगोत्राय सांकृत्यप्रवराय च। गङ्गापुत्राय भीष्माय प्रदास्येऽहं तिलोदकम्॥ अपुत्राय ददाम्येतत्सलिलं भीष्मवर्मणे। वसूनामवताराय शन्तनोरात्मजाय च। अर्घ्यं ददामि भीष्माय सोमवंशोद्भवाय च॥' इति।

पत्तिस्तदा चतुर्दशीविद्धपूर्णिमायामपि समाप्तिः कार्या। व्रतप्रयोगः कौस्तुभादौ ज्ञेयः।

एकादशी से पाँच दिन तक भीष्मपञ्चकव्रत कहा है। इसे शुद्ध एकादशी से आरंभ करके चतुर्दशी से विद्ध न होने पर उदयकालिक पूर्णिमा में समाप्त करे। यदि शुद्ध एकादशी में आरम्भ करने पर क्षय के कारण पूर्णिमा में पाँच दिन का व्रत समाप्त नहीं होती हो तो विद्धा एकादशी से ही प्रारम्भ करे। शुद्ध एकादशी में आरम्भ करने पर भी तिथिवृद्धि के कारण परविद्धा पूर्णमासी में समाप्त करने से यदि छ दिन हो जाते हैं तो चतुर्दशीविद्धा पूर्णिमा में भी समाप्ति करे। व्रत का विधान कौस्तुभ आदि ग्रन्थों से जानना चाहिए।

अथैकादश्यां शिवविष्णुदीक्षा

कार्तिकमासे एकादश्यादिपर्वणि चन्द्रतारादिबलान्विते शिवविष्णुमन्त्रग्रहणादिरूपा 'दीक्षा कर्तव्या। 'कार्तिके तु कृता दीक्षा नृणां जन्मविमोचनी' इति नारदोक्तेः। तथात्र तुलसीकाष्ठमालाधारणमुक्तं स्कान्दद्वारकामाहात्म्ये विष्णुधर्मे च—

निवेद्य केशवे मालां तुलसीकाष्ठसंभवाम्।
वहते यो नरो भक्त्या तस्य नैवास्ति पातकम्॥
तुलसीकाष्ठसंभूते माले कृष्णजनप्रिये।
बिभर्मि त्वामहं कण्ठे कुरु मां कृष्णवल्लभम्॥
एवं संप्रार्थ्यविधिवन्मालां कृष्णगलेर्पिताम्।
धारयेत्कार्तिके यो वै स गच्छेद्वैष्णवं पदम्॥

इति निर्णयसिन्धौ स्पष्टम्।

कार्तिकमास में एकादशी आदि पर्व में चन्द्रमा, तारा आदि के बल-युक्त होने पर शिव और विष्णु की मन्त्र-दीक्षा लेनी चाहिए। नारद ने कहा है कि—कार्तिक मास की ली हुई दीक्षा मनुष्यों के जन्म छुड़ानेवाली है। इसी प्रकार इसमें तुलसी के काठ की माला का धारण करना कहा है। स्कन्दपुराण में द्वारका-माहात्म्य और विष्णुधर्म में भी जो भगवान् को तुलसी के काठ की माला का निवेदन करके धारण करता है उसको पातक नहीं होता। तुलसी-काठ की बनी कृष्णजन का प्रिय हे माले! मुझे कृष्ण का प्रिय करो इसलिए मैं तुम्हें कण्ठ में धारण करता हूँ। इस आशय के मंत्र से प्रार्थना करके जो कृष्ण के गले में अर्पित-माला को कार्तिक में धारण करता है वह वैष्णवपद को प्राप्त करता है। यह निर्णयसिंधु में स्पष्ट है।

---

१. यामलतन्त्र में दीक्षा शब्द की व्युत्पत्ति—'दिव्यं ज्ञानं यतो दद्यात् कुर्यात् पापस्य संक्षयम्। तस्माद्दीक्षेति सा प्रोक्ता मुनिभिस्तन्त्रवेदिभिः॥ दीक्षाग्रहण की आवश्यकता—'अदीक्षितानां मर्त्यानां दोषं शृण्वन्तु साधकाः। अन्नं विष्ठासमं ज्ञेयं जलं मूत्रसमं तथा॥ अदीक्षितकृतं श्राद्धं श्राद्धं चादीक्षितस्य च। गृहीत्वा पितरस्तस्य नरके चाशु दारुणे॥ पतन्त्येव न सन्देहो यावदिन्द्राश्चतुर्दश। तथाप्यदीक्षितस्यार्चां देवा गृह्णन्ति नैव हि॥' ताराकल्प में बतलाया कि किन से दीक्षा न लेनी चाहिये—'पितुर्दीक्षा यतेर्दीक्षा दीक्षा च वनवासिनः। अनाश्रमाणां या दीक्षा सा दीक्षा दुःखदायिनी॥' चिदम्बररहस्य में स्त्रियों के लिये कहा—'पतिव्रतानां सर्वासां पतिरेव गुरुः स्मृतः। तस्मादेव तु सा दीक्षां गृह्णीयाद् भक्तिसंयुता॥' इति। विशेष विवेचन तन्त्र-ग्रन्थों में देखें।

यत्तु तत्रैव मालाधारणप्रकरणान्ते सर्वपुस्तकेष्वदृश्यमानमपि 'अत्र मूलं चिन्त्यम्' इति वाक्यं क्वचिन्निर्णयसिन्धुपुस्तके दृश्यते तस्य मालाधारणविधिवाक्यानां नाप्रामाणिकत्वे तात्पर्यम्। स्वयमेव स्कन्दपुराणस्थविष्णुधर्मस्थत्वेनोक्तानां स्वयमेवाप्रामाणिकत्वोक्तौ व्याघातप्रसंगात्।

तुलसीकाष्ठघटितै रुद्राक्षाकारकारितैः।
निर्मितां मालिकां कण्ठे निधायार्चनमारभेत्॥
तुलसीकाष्ठमालाया भूषितः कर्म आचरन्।
पितॄणां देवतानां च कृतं कोटिगुणं भवेत्॥

जो कि निर्णयसिन्धु में ही मालाधारण-प्रकरण के अन्त में सब पुस्तकों में नहीं दिखाई पड़ने वाला भी 'यहाँ मूल चिन्त्य है' यह वाक्य किसी निर्णयसिन्धु की पुस्तक में दिखाई देता है। उसके मालाधारण-विधि-वाक्यों की अप्रामाणिकता में तात्पर्य नहीं है। स्वयं ही स्कन्दपुराण और विष्णुधर्म में स्थित विधि-वचनों को कहा है अतः स्वयं उसको अप्रामाणिक कहना ठीक नहीं है। तुलसी काठ की बनायी हुई रुद्राक्ष के आकार की माला को कण्ठ में पहनकर पूजन प्रारम्भ करे। तुलसी के काठ की माला से अलंकृत हो दैव-पित्र्य-कर्म कोटिगुण-फलदायक होता है।

इति पद्मपुराणे पातालखण्डे नवसप्ततितमाध्याये प्रत्यक्षोपलभ्यमानवचनविरोधाच्च। किंत्वाषाढमासप्रकरणे आषाढशुद्धद्वादश्यामनुराधायोगरहितायां पारणं कार्यमित्युक्त्वा तत्र प्रमाणत्वेन 'आभाकासितपक्षेषु' 'मैत्राद्यपादे स्वपितीह विष्णुः' इत्यादीनि भविष्यस्थविष्णुधर्मस्थानि वाक्यानि लिखित्वा यथान्ते 'इदं निर्मूलम्'इत्युक्तम्। एवं प्रकरणान्तरेपि तस्य च माधवादिमूलग्रन्थेषु नोपलभ्यत इत्येव तत्परिभाषातात्पर्यं न त्वप्रामाणिकत्वे।

इस प्रकार पद्मपुराण पातालखण्ड के ७९ अध्याय में प्रत्यक्ष-प्राप्त-वचन का विरोध भी है। किन्तु आषाढ़मास के प्रकरण में आषाढ़ शुद्ध द्वादशी में अनुराधा नक्षत्र का योग न होने पर पारण करना चाहिए, यह कह कर उसके प्रमाण में 'आभाकासितपक्षेषु' और 'मैत्राद्यपादे स्वपितीह विष्णुः' इत्यादि भविष्यपुराण और विष्णुधर्म के वाक्यों को लिखकर 'यह निर्मूल है' ऐसा कहा है। इसी प्रकार दूसरे प्रकरणों में भी कहा है उसको माधव आदि के मूलग्रन्थों में नहीं होने से इतना ही मात्र उस परिभाषा का तात्पर्य है, न कि उसकी अप्रामाणिकता में तात्पर्य है।

तथात्वे भाद्रकार्तिकयोस्तद्वाक्यानुसारेण पारणनिर्णयलेखनासाङ्गत्यप्रसंगात्। कौस्तुभादिसर्वनवीनग्रन्थेषु तद्वाक्यानुसारेणैव निर्णयस्यासंगत्यापाताच्च। सर्वशिष्टानां तदनुसारेणैव पारणाचरणस्याप्यप्रमाणत्वापत्तेश्च, तद्वदत्रापि ज्ञेयम्। एतेन माधवादिष्वनुपलम्भादेवाप्रामाण्यापत्तिरितिनिरस्तम्। बहूनां माधवाद्यलिखितानां वाक्यानामाचाराणां चाप्रामाण्यापत्तेः। यत्र तु यानि यत्तु इत्येवमादिरूपेण यत्पदोपक्रममनूद्य तानि निर्मूलानीत्येवमादिरीत्या दूष्यन्ते। यथा श्रवणद्वादशीप्रकरणे श्रवणस्योत्तराषाढावेधनिषेधकवाक्यानि तत्र तेषामप्रमाणत्व एव सर्वथा तात्पर्यमिति सूक्ष्मबुद्धयो विदांकुर्वन्तु।

ऐसा होने पर भाद्रपद और कार्तिक मास में उनके वाक्य के अनुसार पारण का निर्णय लिखना संगत नहीं होगा। क्योंकि कौस्तुभ आदि सब नवीन-ग्रन्थों में उनके वाक्य के अनुसार ही निर्णय की असंगति आ जायगी और सब शिष्ट-लोगों के उसी के अनुसार पारणा चरण के अप्रामाण्य की आपत्ति होगी, उसी तरह यहाँ भी जानना चाहिए। इससे माधव आदि के ग्रन्थों में नहीं मिलने से अप्रामाण्य है यह आपत्ति हट गयी। क्योंकि बहुत से माधव आदि के नहीं लिखे वाक्यों और आचारों की अप्रामाणिकता हो जायगी। जहाँ 'यानि' 'यत्तु' इस प्रकार के रूप से 'यत्पद' के आरम्भ का अनुवाद करके वे निर्मूल हैं इत्यादि रीति से दोष दिये जाते हैं। जैसे श्रवणद्वादशी प्रकरण में श्रवण का उत्तराषाढ़ावेध का निषेधक वचन, उसमें उनका सर्वथा अप्रामाण्य में ही तात्पर्य है, यह सूक्ष्म-बुद्धि वाले लोग जानें।

ननु माधवादिग्रन्थेष्वनुपलम्भान्न निर्मूलत्वमुच्यते किंतु काष्ठमालाधारण-निषेधवाक्यानां बाधकानामुपलम्भादिति चेत् ? किं तानि वाक्यानि सामान्यतः काष्ठमालाधारणनिषेधकानि दृश्यन्ते विशेषतस्तुलसीकाष्ठमालानिषेधकानि वा। आद्ये सामान्यतः काष्ठमालानिषेधकवाक्यानां विशेषरूपैस्तुलसीधात्रीकाष्ठमाला-धारणविधिवाक्यैर्बाधः स्पष्टः। द्वितीये [1]षोडशीग्रहणाग्रहणवद्विहितप्रतिषिद्धत्वेन विकल्पमवगच्छ। स च विकल्पो वैष्णवावैष्णवविषयतया व्यवस्थितो भविष्यति। मूलवाक्येषु विष्ण्वादिपदश्रवणादिति न निर्मूलत्वसंभवः। अत एवैतद्वाक्यानां माधवाद्यनुल्लेखस्याशयो हरिवासरलक्षणवाक्ये पुरुषार्थचिन्तामणौ वैष्णवानामे-वावश्यकत्वादेतदनुपन्यासेपि माधवादीनां न न्यूनतेत्युक्तया रीत्योहितुं शक्यः। एवं धात्रीकाष्ठमालाधारणविधिर्ज्ञेयः।

क्या माधव आदि ग्रन्थों में वचन न मिलने से निर्मूल नहीं है, किन्तु काष्ठमाला-धारण के निषेध वाक्यों के बाधकों की प्राप्ति से ऐसा कहो तो वे कौन वचन हैं क्या वे काष्ठमाला पहनने के निषेधक वचन हैं? या विशेषतः तुलसीकाष्ठ की माला के निषेध करने वाले हैं? पहले में सामान्यतः काष्ठमाला के निषेध करने वाले वाक्यों और विशेष रूप से तुलसी आँवला के काष्ठ-माला-धारण करने के विधि-वाक्यों से स्पष्ट ही बाध है। दूसरे षोड़शी ग्रहण और नहीं ग्रहण की तरह विहित और निषिद्ध होने से विकल्प जानो। वह भी वैष्णव और अवैष्णव के विषय में व्यवस्थित विकल्प होगा। क्योंकि मूलवाक्यों में विष्णु आदि पद के श्रवण से निर्मूलत्व सम्भव नहीं है। इसीलिए इन वाक्यों का माधव आदि के न लिखने का आशय हरिवासर-लक्षण-वाक्य में पुरुषार्थचिन्तामणि में वैष्णव का ही आवश्यक होने से इसके न लिखने से भी माधवादि की न्यूनता नहीं है, इस उक्त रीतिसे कल्पना कर सकते हैं। इसी तरह आँवला-काठ के माला-धारण की विधि जाननी चाहिए।

रामार्चनचन्द्रिकादौ तुलसीकाष्ठमालया जपविधिवाक्यानि तुलसीकाष्ठघटि-तैर्मणिभिर्जपमालिकेत्यादीनि स्पष्टानि। एवं ग्रन्थान्तरेषु बहूनि वाक्यान्यु-पलभ्यन्ते। तथा च प्रयोगपारिजाताह्निके पूजाप्रकरणे उक्तम्—आदौ देवपूजा-

---

१. विकल्प दो प्रकार का होता है व्यवस्थित-विकल्प और तुल्य-विकल्प। 'अतिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति। नातिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति' इत्यादि में षोडशी के ग्रहण तथा अग्रहण के विधान और प्रतिषेध की तरह यहाँ मूलोक्त-वाक्य वैष्णव अवैष्णव परक मानकर व्यवस्थित-विकल्प है।

साधनमग्रोदकगन्धपुष्पाक्षतादिकं संभृत्य पादौ पाणी प्रक्षाल्य यथाशक्ति धृतदुकूलादिशुद्धवस्त्रो भूषणभूषितो मुक्ताफलप्रवालपद्माक्षतुलसीमणिनिर्मितमालाः कण्ठे धृत्वा इति सर्वदेशीयवैष्णवेषु तुलसीकाष्ठमालाधारणजपाचारश्चोपलभ्यते। भस्मादिधारणद्वेषिवैष्णवस्पर्धया शैवागमाग्राहिभिः केवलं द्विष्यत इत्यलं बहुनेति दिक्।

रामार्चनचन्द्रिका आदि में तुलसी-काष्ठ की माला से जप करने के विधि-वाक्य, तुलसी के काठ की बनी हुई मनियों से जपमालिका होती है इत्यादि वचन स्पष्ट हैं। इस प्रकार दूसरे ग्रन्थों में भी बहुत से वचन मिलते हैं। जैसे प्रयोगपारिजात के आह्निकपूजा प्रकरण में कहा है। आरम्भ में देवपूजा का साधन अग्रोदक, गन्ध, पुष्प, अक्षत, आदि को इकट्ठा करके हाथ-पैर धो कर यथाशक्ति शुद्ध वस्त्र धारण कर अलंकरणों से अलंकृत मोती, मूंगा, कमल, तुलसी मणि से बनी हुई माला कण्ठ में धारण करके यह सम्पूर्ण देश के वैष्णवों में तुलसी काठ के माला का धारण और उसीसे जप करने का आचार मिलता है। भस्मादि धारण के विरोधी वैष्णवों की स्पर्धा से शैव आगम ग्रहण करने वाले केवल विरोध करते हैं। अब बहुत लिखने से क्या ?

अथ धात्रीमूले देवपूजाविधिः

'सर्वपापक्षयद्वारा श्रीदामोदरप्रीत्यर्थं धात्रीमूले श्रीदामोदरपूजां करिष्ये।' पुरुषसूक्तेन षोडशोपचारैः संपूज्य गन्धपुष्पफलयुतमर्घ्यं दद्यात्—

अर्घ्यं गृहाण भगवन्सर्वकामप्रदो भव।
अक्षया संततिर्मेस्तु दामोदर नमोस्तु ते॥

ततोऽपरासहस्राणीति प्रार्थ्यं धात्रीं कुंकुमगन्धादिनाभ्यर्च्यं पुष्पैः पूजयेत्। धात्र्यै नमः शान्त्यै न० मेधायै० प्रकृत्यै० विष्णुपत्न्यै० महालक्ष्म्यै० रमायै० कमलायै० इन्दिरायै० लोकमात्रे० कल्याण्यै० कमनीयायै० सावित्र्यै० जगद्धात्र्यै० गायत्र्यै० सुधृत्यै० अव्यक्तायै० विश्वरूपायै० सुरूपायै० अब्धिभवायै०।

'सब पापों के नाश के द्वारा दामोदर भगवान् की प्रसन्नता के लिए आँवले के नीचे जड़ में दामोदर भगवान् की पूजा करूँगा।' पुरुषसूक्त से षोडशोपचारपूजा करके गन्ध पुष्प फल से युक्त अर्घ्य देवे—हे भगवन्! हमारा अर्घ्य ग्रहण करके मनोरथ को पूर्ण कीजिए। मेरे सन्तान अक्षय हों, हे दामोदर! आपको नमस्कार है। इसके बाद 'अपराधसहस्राणि' इससे प्रार्थना करके आँवले के पेड़ को गन्धादि से पूजा करके फूलों से पूजा करें। पूजा के धात्र्यै नमः इत्यादि मंत्र मूल में अंकित हैं देखें।

ततो धात्रीमूले सव्येन तर्पणं कार्यम्—

पिता पितामहश्चान्ये अपुत्रा ये च गोत्रिणः।
ते पिबन्तु मया दत्तं धात्रीमूलेऽक्षयं पयः॥

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं०।

दामोदरनिवासायै धात्र्यै देव्यै नमोस्तु ते।
सूत्रेणानेन बध्नामि सर्वदेवनिवासिनीम्॥

इति सूत्रेण वेष्टयेत् । धात्र्यै नम इति चतुर्दिक्षु बलीन् दत्त्वाऽष्टदीपान्दद्यात् । अष्टकृत्वः प्रदक्षिणीकृत्य नमेत्—

धात्रीदेवि नमस्तुभ्यं सर्वपापक्षयंकरि ।
पुत्रान्देहि महाप्राज्ञे यशो देहि बलं च मे ॥
प्रज्ञां मेधां च सौभाग्यं विष्णुभक्तिं च शाश्वतीम् ।
नीरोगं कुरु मां नित्यं निष्पापं कुरु सर्वदा ॥

ततो घृतपूर्णं सहेमकांस्यपात्रं दद्यादिति संक्षेपः ।

अनन्तर आँवले की जड़ में सव्य से तर्पण करे । पिता, पितामह और जो पुत्र वाले नहीं हैं ऐसे हमारे गोत्र वाले आँवले की जड़ में दिया हुआ अक्षय जल पीवें, ब्रह्मा से लेकर स्तम्बपर्यन्त देवता ऋषि और मनुष्यादि आँवले की जड़ में दिये हुए अक्षय जल को पीवें, ऐसा कहे । दामोदर भगवान् के यहाँ रहने वाली धात्री देवी को नमस्कार है । सब देवताओं में निवास करने वाली आप को इस सूत से मैं बांधता हूँ । इस आशय के मंत्र से सूत लपेटे । धात्र्यै नमः ऐसा कहके चारों दिशाओं में बलि देकर आठ दीप देवे । आठ बार प्रदक्षिणा करके नमस्कार करे । हे धात्री देवी ! सब पापों को नाश करने वाली आपको नमस्कार है । हे महाप्राज्ञे ! पुत्र, यश, बल, बुद्धि, प्रज्ञा, मेधा, सौभाग्य और निरन्तर विष्णुभक्ति दीजिये । मुझे सदा नीरोग और सदा पापरहित कीजिये । इसके बाद काँसे के पात्र में घी भर कर सुवर्ण के सहित दान करे, यह संक्षेप से कहा है ।

अथ पारणानिर्णयः

कार्तिकशुक्लद्वादश्यां[1] रेवतीयोगरहितायां पारणम् । अपरिहार्ययोगे चतुर्थपादो वर्ज्य इत्यादिविशेषः श्रवणनिर्णयप्रकरणोक्तो द्रष्टव्यः ।

कार्तिकशुक्ल द्वादशी रेवतीनक्षत्ररहित में पारण करे । यदि रेवती के योग के विना द्वादशी न हो तो रेवती के चौथे पाद को छोड़कर पारण करे । इत्यादि विशेष, श्रवण-निर्णय प्रकरण में कहा हुआ देखना चाहिए ।

अथ प्रबोधोत्सवतुलसीविवाहौ

तत्र प्रबोधोत्सवः कार्तिकशुक्लैकादश्यां[2] क्वचिदुक्तः । रामार्चनचन्द्रिकादौ द्वादश्यामुक्तः । उत्थापनमन्त्रे द्वादशीग्रहणाद् द्वादश्यामेव युक्तः । तत्रापि द्वादश्यां रेवत्यन्त्यपादयोगो रात्रिप्रथमभागे प्रशस्तः । तदभावे तत्रैव रात्रौ रेवतीनक्षत्रमात्रयोगोऽपि । तदभावे रात्रिप्रथमभागे केवलद्वादश्यपि । एवं केवलरेवत्यपि द्वादशीरेवत्योरुभयोरपि रात्रावभावे दिवैव द्वादशीमध्ये कार्यं इति कौस्तुभे स्थितम् ।

---

१. आभाकासितपक्षेषु मैत्रश्रवणरेवती । संगमे न हि भोक्तव्यं द्वादश द्वादशी हरेत् ॥' अर्थात् आषाढ-भाद्रपद-कार्तिकमास के शुक्लपक्ष द्वादशी में अनुराधा-श्रवण-रेवतीनक्षत्र के योग होने पर पारणा न करे । विष्णुधर्मे—'मैत्राद्यपादे स्वपितीह विष्णुः पौष्णान्त्यपादे प्रतिबोधमेति । श्रुतेश्च मध्ये परिवर्तमेति सुप्तिप्रबोधपरिवर्तनमेव वर्ज्यम् ॥' इति ।

२. ब्रह्मपुराणे—'एकादश्यां च शुक्लायां कार्तिके मासि केशवम् । प्रसुप्तं बोधयेद् रात्रौ श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ॥' भविष्यपुराणे—'कार्तिके शुक्लपक्षे तु एकादश्यां पृथासुत । मन्त्रेणानेन राजेन्द्र देवमुत्थापयेद् द्विजः ॥' प्रबोधोत्सव शुक्रास्तादि में भी करे । इसकी विधि अन्यत्र देखें ।

तथापि 'पारणाहे पूर्वरात्रौ' इति वचनात्पारणाहे रात्रिपूर्वभागे द्वादश्यभावेपि त्रयोदश्यामेव पारणाहे प्रबोधोत्सव इति देशाचारः।

उसमें प्रबोध का उत्सव कार्तिकशुक्ल एकादशी में कहा है। रामार्चनचन्द्रिका आदि में द्वादशी में कहा है। उत्थापन के मंत्र में द्वादशी के ग्रहण से द्वादशी में ही ठीक है। उसमें भी द्वादशी में रेवती के चौथे पादका योग रात के प्रथम भाग में उत्तम है। उसके न रहने पर उसी रात में रेवतीनक्षत्र मात्र का योग भी ठीक है। ऐसा न होने पर रात के प्रथम भाग में केवल द्वादशी में भी प्रबोध का उत्सव करे। कौस्तुभ में लिखा है कि केवल रेवती भी द्वादशी और रेवती दोनों रात में न हों तो पर दिन में ही द्वादशी के मध्य में करे। फिर भी पारणा के दिन में पूर्व रात्रि में प्रबोध का उत्सव करे, इस वचन से पारणा के दिन रात्रि के पूर्व भाग में द्वादशी के न होने पर भी त्रयोदशी में ही पारणा के दिन प्रबोधोत्सव होता है, ऐसा देशाचार है।

अथ तुलसीविवाहकालः

एवं तुलसीविवाहस्य नवम्यादिदिनत्रये एकादश्यादिपूर्णिमान्ते यत्र क्वापि दिने कार्तिकशुक्लान्तर्गतविवाहनक्षत्रेषु वा विधानादनेककालत्वं तथापि पारणाहे प्रबोधोत्सवकर्मणा सहतन्त्रतयैव सर्वत्रानुष्ठीयते इति सोपि पारणाहे पूर्वरात्रे कार्यः। प्रबोधोत्सवात्पृथक्चिकीर्षायां कालान्तरे वा कार्यः। तत्र पुण्याहवाचन-नान्दीश्राद्धविवाहहोमाद्यङ्गसहितस्तुलसीविवाहप्रयोगः कौस्तुभादौ ज्ञेयः।

तुलसीविवाह का नवमी आदि तीन दिन में या एकादशी आदि पूर्णिमा तक जिस किसी दिन में कार्तिकशुक्ल के अन्तर्गत विवाहनक्षत्रों में विधान होने से अनेक समय हैं। तथापि पारणा के दिन प्रबोधोत्सवकर्म के साथ तंत्र ही से सर्वत्र किया जाता है। उसे भी पारणा के दिन पूर्वरात्रिमें करना चाहिए। प्रबोधोत्सव से अलग तुलसी-विवाह करने की इच्छा हो तो दूसरे समय में भी करे। उसमें पुण्याहवाचन, नान्दीश्राद्ध, विवाह और होम आदि अंग के सहित तुलसी-विवाह-प्रयोग कौस्तुभ आदि ग्रन्थों से जानना चाहिए।

संक्षेपतस्तु प्रबोधोत्सवेनैकतन्त्रतया शिष्टाचारमनुसृत्य लिख्यते। देशकालौ संकीर्त्य—'श्रीदामोदरप्रीत्यर्थं प्रबोधोत्सवं संक्षेपतस्तुलसीविवाहविधिं च तन्त्रेण करिष्ये, तदङ्गतया पुरुषसूक्तेन विधिना षोडशोपचारैस्तन्त्रेण श्रीमहाविष्णु-पूजां तुलसीपूजां च करिष्ये'।

संक्षेप से तो प्रबोधोत्सव के साथ एक तंत्र से तुलसी का विवाह शिष्टाचार का अनुसरण करके लिखते हैं। देशकाल को कहकर 'श्रीदामोदर की प्रीति के लिए प्रबोधोत्सव और संक्षेप से तुलसी की विवाह विधि भी तंत्र से करूँगा, उसके अंगस्वरूप पुरुषसूक्त की विधि से षोडशोपचार से तंत्र द्वारा श्रीमहाविष्णु की पूजा और तुलसी की पूजा करूँगा।'

न्यासादि विधाय श्रीविष्णुं तुलसीं च ध्यात्वा 'सहस्रशीर्षा' इति श्रीमहाविष्णुं तुलसीं चावाह्य 'पुरुष एव' इत्यादिभिः श्रीमहाविष्णवे दामोदराय श्रीदेव्यै तुलस्यै च नम आसनमित्यादिस्नानान्ते मङ्गलवाद्यैः सुगन्धितैलहरिद्राभ्यां नागवल्लीदल-गृहीताभ्यां उष्णोदकेन च मङ्गलस्नानं विष्णवे तुलस्यै च सुवासनीभिः कारयि-

त्वा स्वयं वा दत्वा पञ्चामृतस्नानं समर्प्य शुद्धोदकेनाभिषिच्य वस्त्रयज्ञोपवीत-चन्दनं दत्वा तुलस्यै हरिद्राकुंकुमकण्ठसूत्रमङ्गलालंकारान् दत्वा मन्त्रपुष्पान्त-पूजां समाप्य घण्टादिवाद्यघोषेण देवं प्रबोधयेत्। तत्र मन्त्राः—

न्यास आदि करके श्रीविष्णु और तुलसी का ध्यान कर 'सहस्रशीर्षा' इस मंत्र से महाविष्णु और तुलसी का आवाहन कर 'पुरुष एव' इत्यादि मंत्रों से आसन से लेकर स्नानपर्यन्त कर्म करे। मंगल के बाजों से सुगन्धित तेल हल्दी से पान के पत्ते पर लेकर गरम जल से विष्णु और तुलसी को सौभाग्यवती-स्त्रियों से मंगलस्नान कराकर या स्वयं देकर पंचामृतस्नान का समर्पण करके शुद्ध जल से नहला कर वस्त्र, यज्ञोपवीत और चन्दन चढ़ाकर तुलसी को हल्दी, कुंकुम, कण्ठसूत्र और मंगलदायक आभूषणों को देकर मंत्रपुष्पान्त-पूजा समाप्त कर घंटा आदि बाजों की ध्वनि से देवता को जगावे। उसमें मंत्र यह है—

इदं विष्णु० यो जागारेति तु आचारप्राप्तः।

ब्रह्मेन्द्ररुद्राग्निकुबेरसूर्यसोमादिभिर्वन्दितवन्दनीय।
बुध्यस्व देवेश जगन्निवास मन्त्रप्रभावेण सुखेन देव॥
इयं च द्वादशी देव प्रबोधार्थं तु निर्मिता।
त्वयैव सर्वलोकानां हितार्थं शेषशायिना॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द त्यज निद्रां जगत्पते।
त्वयि सुप्ते जगत्सुप्तमुत्थिते चोत्थितं जगत्॥

एवमुत्थाप्य चरणं पवित्रं०।

गता मेघा वियच्चैव निर्मलं निर्मला दिशः।
शारदानि च पुष्पाणि गृहाण मम केशव॥

इत्यादिमन्त्राभ्यां पुष्पाञ्जलिं दद्यात्।

'इदं विष्णुः' 'यो जागार' यह तो आचार से प्राप्त है। हे देवेश! हे जगन्निवास! ब्रह्मा, इन्द्र, शिव, अग्नि, कुबेर, सूर्य और चन्द्रमा आदि से वन्दित हे वन्दनीय! मंत्र के प्रभाव से सुखपूर्वक जागिये। यह द्वादशी आप के जागने के लिए ही बनायी गयी है। शेष पर शयन करने वाले आपने ही सम्पूर्ण लोकों के हित के लिए इस द्वादशी का निर्माण किया है। हे गोविन्द! हे जगत्पते! निद्रा त्यागिये उठिये उठिये आपके सोने पर सम्पूर्ण जगत् सोता है और आपके उठने पर उठता है। इस आशय के मंत्रों से भगवान् को उठाकर 'चरणं पवित्रं' इत्यादि से हे केशव! मेघ चले गये, आकाश निर्मल हो गया, दिशाएँ भी निर्मल हो गयीं, मेरे दिये हुए शरत्काल के पुष्पों को ग्रहण कीजिए। इन दो मंत्रों से पुष्पाञ्जलि दे।

अथाचारात्तुलसीसंमुखां श्रीकृष्णप्रतिमां कृत्वा मध्येऽन्तःपटं धृत्वा मंगलाष्टकपद्यानि पठित्वा अन्तःपटं विसृज्याक्षतप्रक्षेपं कृत्वा दामोदरहस्ते तुलसीदानं कुर्यात्—

देवीं कनकसंपन्नां कनकाभरणैर्युताम्।
दास्यामि विष्णवे तुभ्यं ब्रह्मलोकजिगीषया॥

आचार के अनुसार तुलसी के सामने श्रीकृष्ण की प्रतिमा करके बीच में पर्दा लगाकर आठ मंगल श्लोकों को पढ़कर पर्दा हटाकर अक्षत छीट कर भगवान् दामोदर के हाथ में तुलसी का दान करे। इसमें यह मंत्र पढ़े। ब्रह्मलोक के जीतने की इच्छा से सुवर्ण से सम्पन्न सुवर्ण के आभूषणों से युक्त तुलसी देवी को विष्णु के लिए देता हूँ।

'मया संवर्धितां यथाशक्त्यलंकृतामिमां तुलसीं देवीं दामोदराय श्रीधराय वराय तुभ्यमहं संप्रददे' देवपुरतः साक्षतजलं क्षिपेत्। श्रीमहाविष्णुः प्रीयतामित्युक्त्वा इमां देवीं प्रतिगृह्णातु भवान् इति वदेत्। ततो देवहस्तस्पर्शं तुलस्याः कृत्वा 'क इदं कस्मा अदात्कामः कामायादात्कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामं समुद्रमाविश कामेन त्वा प्रतिगृह्णामि कामैतत्ते वृष्टिरसि द्यौस्त्वा ददातु पृथिवी प्रतिगृह्णातु' इति मन्त्रमन्येन वाचयेत्। यजमानः—

'मुझसे बढ़ाई हुई यथाशक्ति अलंकृत इस तुलसीदेवी को दामोदर श्रीधर आप वर को मैं देता हूँ।' देवता के सामने अक्षतसहित जल छोड़े। श्रीमहाविष्णु प्रसन्न हों ऐसा कहके इस देवी को आप ग्रहण करे ऐसा कहे। इसके बाद देवता के हाथ को तुलसी का स्पर्श कराकर मूलोक्त 'क इदं कस्मा अदात्' इत्यादि मन्त्रों को दूसरे से कहलावे। यजमान कहे—

त्वं देवि मेऽग्रतो भूयास्तुलसीदेवि पार्श्वतः।
देवि त्वं पृष्ठतो भूयास्त्वद्दानान्मोक्षमाप्नुयाम् ॥

'दानस्य प्रतिष्ठासिद्ध्यर्थमिमां दक्षिणां तुभ्यमहं संप्रददे' देवपुरतो दक्षिणामर्पयेत्। ततः 'स्वस्तिनो मिमीता०' 'शं न' इत्यादिस्वस्वशाखोक्तानि शान्तिसूक्तानि विष्णुसूक्तानि च पठेयुः। तुलसीयुताय विष्णवे महानीराजनं कृत्वा मन्त्रपुष्पं दत्त्वा सपत्नीकः सगोत्रजः सामात्यो यजमानश्चतस्रः प्रदक्षिणाः कुर्वीत। ब्राह्मणेभ्यो दक्षिणां दत्त्वा यथाशक्ति ब्राह्मणभोजनं संकल्प्य कर्मेश्वरार्पणं कुर्यात्।

हे तुलसीदेवी! आप मेरे आगे मेरे बगल में और मेरे पीठ की ओर रहें। आप के दान से मैं मोक्ष पा जाऊँ। 'दान-प्रतिष्ठा-सिद्धि के लिए मैं इस दक्षिणा को दे रहा हूँ' ऐसा कहकर देवता के आगे दक्षिणा अर्पित करे। इसके बाद 'स्वस्तिनो मिमीता' और 'शंन' इत्यादि स्वशाखोक्त शान्ति-सूक्त और विष्णु-सूक्तों को भी पढ़े। तुलसीसहित विष्णु का महानीराजन करके मंत्र-पुष्प देकर अपनी पत्नी, गोत्र और अपने मंत्री के साथ यजमान चार प्रदक्षिणाएँ करे। ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर यथाशक्ति ब्राह्मणभोजन का संकल्प करके भगवान् को इस कर्म का अर्पण करे।

अथ व्रतोद्यापनम्

एवं देवं प्रबोध्य कार्तिके यद्यद्द्रव्यस्य वर्जनं कृतं तत्तद्द्रव्यमुक्तरीत्या द्रव्यान्तरं च ब्राह्मणेभ्यो दत्त्वा व्रतसंपूर्णतां प्रार्थयेत्—

इदं व्रतं मया देव कृतं प्रीत्यै तव प्रभो।
न्यूनं संपूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ॥ इति।

ततो व्रतं भगवदर्पणं कुर्यात्। 'चातुर्मास्यव्रतसमाप्तिरप्यत्रैवेति केचित्।

१. महाभारते—'चतुर्थो गृह्य वै चीर्णं चातुर्मास्यव्रतं नरः। कार्तिके शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां तत्समापयेत् ॥' लघुनारदीये—'चातुर्मास्यव्रतानां च समाप्तिः कार्तिके स्मृता ॥' इति।

कार्तिकमासव्रतोद्यापनं चातुर्मास्यव्रतोद्यापनं च चतुर्दश्यां पूर्णिमायां वेत्यपरे।

इसी प्रकार भगवान् को जगाकर कार्तिक में जिन-जिन द्रव्यों का वर्णन किया हो, उन-उन द्रव्यों और दूसरे भी द्रव्य को कही हुई विधि से ब्राह्मणों को देकर व्रत-सम्पूर्णता की प्रार्थना करे। पश्चात् हे देव! आप की प्रसन्नता के लिए इस व्रत को किया है। हे प्रभो! इसमें जो कुछ कमी हो वह आप के प्रसाद से हे जनार्दन! पूर्ण हो। इस आशय के मंत्र से व्रत को भगवान् को अर्पित करे। कोई लोग चातुर्मासव्रत की समाप्ति भी इसी दिन करते हैं। कार्तिकमासव्रत और चातुर्मासव्रत का उद्यापन भी चतुर्दशी या पूर्णिमा में करे ऐसा दूसरे कहते हैं।

अथ वैकुंठचतुर्दशी

पूर्वेद्युरुपवासं कृत्वारुऽणोदव्यापिन्यां चतुर्दश्यां [1]शिवं संपूज्य प्रातः पारणं कार्यम्। तथा च चतुर्दशीयुक्तारुणोदयवति अहोरात्रे उपवासः फलितः। उभयत्रारुणोदयव्याप्तौ परत्रारुणोदये पूजा पूर्वत्रोपवासश्च। केचित्तु विष्णुपूजायामियं निशीथव्यापिनी ग्राह्या। दिनद्वये तद्व्याप्तौ निशीथप्रदोषोभयव्यापिनी ग्राह्येत्याहुः।

पहले दिन उपवास करके अरुणोदय में रहने वाली चतुर्दशी में शिव की पूजा करके प्रातःकाल पारण करे। इससे चतुर्दशी से युक्त अरुणोदय वाले दिन रात में उपवास करना सिद्ध हुआ। दोनों दिन अरुणोदय में रहने वाली चतुर्दशी में दूसरे दिन अरुणोदय काल में पूजन और पहले दिन उपवास करे। कोई लोग तो विष्णुपूजा में चतुर्दशी अर्द्धरात्रिव्यापिनी लेते है। दोनों दिन चतुर्दशी के रहने पर अर्द्धरात्रि और प्रदोष में रहने वाली ग्राह्य है, ऐसा कहते हैं।

अस्यामेव चतुर्दश्यां परविद्धायां [2]कार्तिकमासव्रतोद्यापनाङ्गत्वेनोपवासं कृत्वाधिवासनं विधाय,

> रात्रौ जागरणं कुर्याद् गीतवाद्यादिमङ्गलैः।
> नराणां जागरे विष्णोर्गीतं नृत्यं च कुर्वताम्॥
> गोसहस्रं च ददतां फलं सममुदाहृतम्।

इत्यादिवाक्यैर्विहितं गीतनृत्यवाद्यविष्णुचरितपठनस्वेच्छालापलीलानुकारैर्ह-

---

१. सनत्कुमारसंहितायां—'वर्षे च हेमलम्बाख्ये मासे श्रीमति कार्तिके। शुक्लपक्षे चतुर्दश्यामरुणाभ्युदयं प्रति॥ महादेवविथौ ब्राह्मे मुहूर्ते मणिकर्णिके। स्नात्वा विश्वेश्वरो देव्या विश्वेश्वरमपूजयत्॥' तथा—'ततः प्रभाते विमले कृत्वा पूजां महाद्भुताम्। दण्डपाणेर्महाधाम्नि वनेऽस्मिन् कृतपारणः॥' भविष्यपुराणे—'कार्तिकस्य सिते पक्षे चतुर्दश्यां नराधिप। सोपवासस्तु सम्पूज्य हरिं रात्रौ जितेन्द्रियः॥' इति।

२. पद्मपुराण में कार्तिकव्रत का उद्यापन—'अथोर्जव्रतिनः सम्यगुद्यापनविधिं शृणु। ऊर्जशुक्लचतुर्दश्यां कुर्यादुद्यापनं व्रती। तुलस्या उपरिष्टात्तु कुर्यान्मण्डपिकां शुभाम्॥ तुलसीमूलदेशे च सर्वतोभद्रमेव च। तस्योपरिष्टात् कलशं पञ्चरत्नसमन्वितम्॥ पूजयेत्तत्र देवेशं सौवर्णं गुर्वनुज्ञया। रात्रौ जागरणं कुर्याद् गीतवाद्यादिमङ्गलैः॥ ततस्तु पौर्णमास्यां वै सपत्नीकान् द्विजोत्तमान्। त्रिंशन्मितानथैकं वा स्वशक्त्या वा निमन्त्रयेत्॥ अतो देवा इति द्वाभ्यां जुहुयात्तिलपायसम्। ततो गां कपिलां दद्यात् पूजयेद् विधिवद् गुरुम्॥' इति। विशेष अन्यत्र देखें।

रिजागरं कृत्वा परविद्धपौर्णमास्यां सपत्नीक आचार्यं वृत्वा 'अतो देवा' इति द्वाभ्यां तिलपायसं हुत्वा गोदानं कार्यमिति मासव्रतोद्यापनम्।

इसी परविद्धा चतुर्दशी में कार्तिकमास के व्रत के उद्यापन का अंगभूत उपवास करे। उपवास और अधिवासन करके रात में गाने बजाने आदि मंगल से जागरण करे। जागने वाले मनुष्य विष्णु का गाना नाचना करें। इससे हजार गौ देने का फल प्राप्त होता है। इन वाक्यों से गाना नाचना विष्णुचरित का पढ़ना अपनी इच्छा से भगवान् की लीला का अनुकरण करते हुए भगवान् के लिए जागरण करके परविद्धा पूर्णिमा में सपत्नीक आचार्य का वरण करके 'अतो देवा' इन दो मंत्रों से तिल और खीर का हवन करके गोदान करे। यह मासव्रत का उद्यापन समाप्त हुआ।

कार्तिकशुक्लद्वादशी पौर्णमासी च मन्वादिः। सा पौर्वाह्णिकी ग्राह्या। अन्यत्पूर्वमुक्तम्। अस्यां चातुर्मास्यव्रतसमाप्तिः।

कार्तिकशुक्ल द्वादशी और पौर्णमासी मन्वादि तिथि है। यह पूर्वाह्ण में रहने वाली ग्रहण के योग्य है। अन्य सब पहले कह चुके हैं। इसमें चातुर्मास्यव्रत की समाप्ति होती है।

अथ चातुर्मास्यव्रतानां समाप्तौ दानानि

तत्र नक्तव्रते वस्त्रयुग्मम्। एकान्तरोपवासे गौः। भूशयने शय्या। षष्ठकालभोजने गौः। व्रीहिगोधूमादिधान्यत्यागे सौवर्णव्रीहिगोधूमादिदानम्। कृच्छ्रव्रते गोयुग्मम्। शाकाहारे गौः। पयोमात्रभक्षणे पयोवर्जने च गौः। मधुदधिघृतवर्जने वस्त्रं गौश्च। ब्रह्मचर्ये स्वर्णम्। ताम्बूलवर्जने वस्त्रयुग्मम्। मौने घण्टा घृतकुम्भो वस्त्रद्वयं च। रङ्गवल्लीकरणे गौः सुवर्णपद्मं च। दीपदानव्रते दीपिका वस्त्रद्वयं च। भूमिभोजने कांस्यपात्रं गौश्च। गोग्रासे गोवृषौ। प्रदक्षिणाशते वस्त्रम्। अभ्यङ्गवर्जने तैलपूर्णघटः। नखकेशधारणे मधुसर्पिर्हेमदानम्। यत्र विशेषतो दानं नोक्तं तत्र स्वर्णं गौश्च। गुडवर्जने गुडपूर्णं ससुवर्णं ताम्रपात्रम्। एवं लवणवर्जने लवणपूर्णं ताम्रपात्रमिति क्वचित्।

नक्तव्रत करने पर एक जोड़ा वस्त्र का दान करे। एक दिन बीच देकर उपवास करने पर गौ देनी चाहिये। भूमिशयन करने पर शय्यादान करे। छठें काल में भोजन करने पर गौ देनी चाहिये। धान गेहूँ आदि अन्न वर्जन करने पर सोने का धान और गेहूं आदि देना चाहिये। कृच्छ्र व्रत में एक जोड़ी गाय देवे। सागमात्र खाने पर गौ दे। केवल दूध पीकर रहने पर अथवा दूध छोड़ देने पर भी गौ दे। शहद, दही और घी का त्याग करने पर वस्त्र और गौका दान करे। ब्रह्मचर्य से रहने पर सुवर्ण का दान करे। पान न खाने पर एक जोड़ा वस्त्र का दान करे। मौन रहने पर घंटा और घी भरा घड़ा तथा दोवस्त्र का दान कर्तव्य है। रंगवल्ली करने पर गौ और सोने के कमल का दान करे। दीपदानव्रत में दीप और दो वस्त्र देवे। भूमि पर भोजन के व्रत में कांसे का वर्तन और गौ दे। गोग्रास-व्रत में गौ और बैल का दान करे। सौ प्रदक्षिणारूप व्रत में वस्त्रदान करे। शरीर में तेल न लगाने रूप व्रत में तेल से भरे घड़े का दान हितकर है। नख-केश-धारण में शहद, घी और सुवर्ण का दान करे। जहां विशेष दान नहीं कहा है उसमें सोना और गौ देना चाहिये। गुडवर्जन व्रत में तामे के पात्र में गुड़ भरके सोनासहित दान करे। इसी प्रकार नमक के छोड़ने पर ताम्रपात्र में नमक भर कर दान करे, यह भी कहीं कहा है।

अथ लक्षप्रदक्षिणानमस्कारोद्यापनम्

अस्यामेव लक्षप्रदक्षिणालक्षनमस्काराणामाषाढ्यादावारब्धानामुद्यापनं कार्यम्।

इसी में लाख परिक्रमा और लाख प्रणामों का उद्यापन आषाढी पूर्णिमा में आरम्भ किये हुए का करना चाहिये।

अथ तुलसीलक्षपूजाफलादि

एवं तुलसीलक्षपूजां कार्तिके माघे वारभ्य प्रत्यहं सहस्रतुलसीसमर्पणेन लक्षं समाप्य माघ्यां वैशाख्यां वोद्यापनं कार्यम्। एवं पुष्पादिलक्षपूजा अपि। तत्र बिल्वपत्रलक्षेण लक्ष्मीप्राप्तिः फलम्। दूर्वालक्षेणारिष्टशान्तिः। चम्पकलक्षेणायुष्यम्। अतसीलक्षेण विद्या। तुलसीलक्षेण विष्णुप्रसादः। गोधूमतण्डुलादिप्रशस्तधान्यलक्षेण दुःखनाश। एवं सर्वपुष्पैः सर्वकामावाप्तिः।

कार्तिक या माघ में प्रारम्भ करके प्रतिदिन हजार तुलसी समर्पण करके लाख समाप्त कर माघ की पूर्णिमा या वैशाख की पूर्णिमा में उद्यापन करे। इसी तरह पुष्पादि से लक्षपूजा भी। इसमें लाख बेल पत्र से पूजा करने पर लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। लाख दूर्वा से अरिष्ट की शान्ति होती है। लाख चम्पा के पुष्प से आयु की वृद्धि होती है। तीसी के लाख पुष्पों से अर्चन करने पर विद्या की प्राप्ति होती है। लाख तुलसी से पूजन करने पर विष्णु की प्रसन्नता होती है। गेहूँ चावल आदि प्रशस्त धान्य की लाख संख्या से पूजन करने पर दुःख का नाश होता है। इसी प्रकार सब पुष्पों से सम्पूर्ण कामना का लाभ होता है।

एवं लक्षवर्तिव्रतमपि मासत्रयं कृत्वा कार्तिके माघे वैशाखे वा उत्तरोत्तरप्रशस्ते समापनीयम्। एवं धारणपारणव्रतोद्यापनमपि पौर्णमास्यामेव। कार्तिकमासव्रतानां मासोपवासादीनां द्वादश्यामेव समापनम्। तत्रासंभवे पौर्णमास्याम्। एवं गोपद्मव्रतमाषाढशुक्लैकादश्यादावारम्य प्रत्यहं त्रयस्त्रिंशद्गोपद्मानि विलिख्य गन्धपुष्पैः प्रपूज्य तावत्संख्याकार्घ्यनमस्कारप्रदक्षिणाः कृत्वा कार्तिकद्वादश्यां त्रयस्त्रिंशदपूपवायनं दद्यादेवं वत्सरपञ्चकमनुष्ठायोद्यापनं कुर्यात्। लक्षप्रदक्षिणादिगोपद्मपर्यन्तोद्यापनानामितिकर्तव्यताः कौस्तुभे द्रष्टव्याः।

इसी प्रकार लाख बत्ती के व्रत भी तीन महीना करके कार्तिक, माघ अथवा वैशाख में उत्तरोत्तर प्रशस्त समय में समाप्त करें। इसी तरह धारण पारण व्रत का उद्यापन भी पूर्णमासी में ही करे। कार्तिकमास के व्रतों को मासोपवास आदि की समाप्ति द्वादशी में ही करे। द्वादशी में न हो सकने पर पूर्णिमा में करे। इसी प्रकार गोपद्म-व्रत आषाढशुक्ल एकादशी से आरम्भ कर प्रतिदिन तैंतीसों गोपद्मों को बनाकर गन्ध पुष्पों से पूजा कर तैंतीस तैंतीस अर्घ्य, नमस्कार और प्रदक्षिणाएँ करके कार्तिक द्वादशी में तैंतीस पुआ वायन देवे। इस प्रकार पाँच वर्ष तक ऐसा करके उद्यापन करे। लक्ष प्रदक्षिणा आदि गोपद्मान्त उद्यापनों की विधि कौस्तुभ में देखना चाहिए।

कार्तिकपौर्णमास्याः [1]कृत्तिकानक्षत्रयोगे महापुण्यत्वम्। रोहिणीयोगे महा-

१. ब्रह्मपुराणे—'पुण्या महाकार्तिकी स्याज्जीवेन्द्वोः कृत्तिकासु च।' तथा—'आग्नेयं तु यदा ऋक्षं कार्तिक्यां भवति क्वचित्। महती सा तिथिर्ज्ञेया स्नानदानेषु चोत्तमा॥ यदा तु याम्यं

कार्तिकीत्वम्। कार्तिक्यां कृत्तिकायोगे यः कार्तिकेयदर्शनं करोति स सप्तसु जन्मसु धनाढ्यो वेदपारगो विप्रो भवेत्।

कार्तिकपौर्णमासी का कृत्तिकानक्षत्र के योग होने से अतिशय पुण्य होता है। रोहिणी के योग में महाकार्तिकी कहलाती है। कार्तिक की पूर्णिमा में कृत्तिकानक्षत्र के योग होने पर जो कार्तिकेय का दर्शन करता है वह सात जन्म तक धनाढ्य और वेद-पारग ब्राह्मण होता है।

अथ पद्मकयोगः

विशाखास्थे सूर्ये सति यद्दिने चन्द्रनक्षत्रं कृत्तिका तत्र पद्मकयोगः। अयं पुष्करतीर्थेऽतिप्रशस्तः। अस्यामेव [1]त्रिपुराख्यदीपदानमुक्तम्।

विशाखा के सूर्य में जिस दिन चन्द्रनक्षत्र कृत्तिका के हों उस दिन पद्मकयोग होता है। यह पुष्करतीर्थ में अत्यन्त उत्तम है। इसी में त्रिपुरानामक दीपदान कहा है।

अथ काम्यवृषोत्सर्गकालः

कार्तिके पौर्णमास्यां [2]काम्यवृषोत्सर्गोऽतिप्रशस्तः। एवं गजाश्वरथघृतधेन्वादिमहादानमपि प्रशस्तम्। वृषोत्सर्गस्याश्विनीपौर्णमासीग्रहणद्वयमयनद्वयं विषुवद्वयं चेति कालान्तराणि। अन्यत्र माघी चैत्री वैशाखी फाल्गुन्याषाढी चेति पौर्णमास्यो रेवतीनक्षत्रं वैधृतिव्यतीपातौ युगादिमन्वादिसूर्यसंक्रान्तिपितृक्षयाहाष्टका अपि काला उक्ताः। अत्र वृषोत्सर्गप्रयोगोऽतिविस्तृतो नानाशाखाभेदभिन्नः कौस्तुभे द्रष्टव्यः।

कार्तिक की पूर्णिमा में काम्य-वृषोत्सर्ग अत्यन्त प्रशस्त है। इसी प्रकार हाथी, घोड़ा, रथ और घृत धेनु आदि महादान अत्युत्तम है। वृषोत्सर्ग का समय आश्विन की पूर्णिमा चन्द्र-सूर्य-ग्रहण उत्तरायण, दक्षिणायन, दोनों विषुव, (मेष तुला की संक्रान्ति) ये भी हैं। दूसरे ग्रन्थों में माघ की पूर्णिमा, चैत्र, वैशाख, फाल्गुन और आषाढ़ की पूर्णिमा, रेवतीनक्षत्र, वैधृतियोग, व्यतीपात, युगादि मन्वादि तिथि, सूर्य की संक्रान्ति, पिता का मरण दिन और अष्टका भी ये काल कहे हैं। इसमें वृषोत्सर्ग का विधान जो अतिविस्तृत, अनेक शाखाओं के भेदों से भिन्न हैं, कौस्तुभ में देखना चाहिए।

भवति ऋक्षं तस्यां तिथौ क्वचित्। तिथिः साऽपि महापुण्या मुनिभिः परिकीर्तिता॥ प्राजापत्यं यदा ऋक्षं तिथौ तस्यां नराधिप। सा महाकार्तिकी प्रोक्ता देवानामपि दुर्लभा॥'

पद्मपुराणे—'विशाखासु यदा भानुः कृत्तिकासु च चन्द्रमाः। स योगः पद्मको नाम पुष्करेष्वतिदुर्लभः॥ पद्मकं पुष्करे प्राप्य कपिलां यः प्रयच्छति। स हित्वा सर्वपापानि वैष्णवं लभते पदम्॥' इति।

इसी तिथि में सायंकाल विष्णु का मत्स्यावतार हुआ है। यथा पद्मपुराणे—'वरान् दत्त्वा यतो विष्णुर्मत्स्यरूप्यभवत्ततः। तस्यां दत्तं हुतं जप्तं तदक्षय्यफलं स्मृतम्॥' इति।

१. निर्णयसिन्धौ—'पौर्णमास्यां तु सन्ध्यायां कर्तव्यस्त्रिपुरोत्सवः। दद्यादनेन मन्त्रेण प्रदीपांश्च सुरालये॥ कीटाः पतङ्गाः मशकाश्च वृक्षा जले स्थले ये विचरन्ति जीवाः। दृष्ट्वा प्रदीपं न च जन्मभागिनो भवन्ति नित्यं श्वपचा हि विप्राः॥' इति।

२. मत्स्यपुराणे—'कार्तिक्यां यो वृषोत्सर्गं कृत्वा नक्तं समाचरेत्। शैवं पदमवाप्नोति शिवव्रतमिदं स्मृतम्॥' इति।

अथ कालभैरवाष्टमीनिर्णयः

कार्तिककृष्णाष्टमी [1]कालाष्टमी । इयं पूर्णिमान्तमासपक्षे मार्गशीर्षे कृष्णाष्टमीत्युच्यते । सेयं मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या । दिनद्वये मध्याह्नव्याप्तौ पूर्वैवेति सिन्धौ स्थितम् । प्रदोषव्यापिनीति कौस्तुभे । उभयदिने प्रदोषव्याप्तौ तदेकदेशस्पर्शे वा परैव । यदा पूर्वत्र प्रदोषव्याप्तिरेव परत्र मध्याह्नव्याप्तिरेव तदा बहुशिष्टाचारानुरोधात्प्रदोषव्याप्त्यैव निर्णयो न मध्याह्नव्याप्त्येति भाति । अत्र कालभैरवपूजां कृत्वा त्रयोऽर्घ्या देयाः । उपवासो जागरश्च कार्यः । इति कार्तिकमासनिर्णयोद्देशः ।

कार्तिककृष्ण अष्टमी को कालाष्टमी कहते हैं । इसे पूर्णिमान्त मास के पक्ष में अगहन कृष्णाष्टमी कहते हैं । इसे मध्याह्नव्यापिनी लेनी चाहिए । दो दिन मध्याह्नव्यापिनी रहने पर पूर्वा ही ग्राह्य है ऐसा निर्णयसिन्धु में है । कौस्तुभ में प्रदोषव्यापिनी लिखा है । दो दिन प्रदोषव्यापिनी होने पर या एकदेश में स्पर्श होने पर परा ही लेनी चाहिए । जब पहले दिन प्रदोषव्याप्ति ही हो, दूसरे दिन मध्याह्न और प्रदोष दोनों में हो या उसके एकदेश में स्पर्श हो, तब भी परा ही ग्राह्य है । जब पहले दिन प्रदोषव्याप्ति ही हो और दूसरे दिन मध्याह्नव्याप्ति ही हो तब अधिक शिष्टाचार के अनुरोध से प्रदोषव्याप्ति से ही निर्णय करे मध्याह्नव्याप्ति से नहीं, ऐसा मुझे मालूम होता है । इसमें कालभैरव की पूजा करके तीन अर्घ्य देवे और उपवास तथा जागरण भी करे । कार्तिकमासकृत्यनिर्णयोद्देश समाप्त ।

अथ मार्गशीर्षमासे धनुःसंक्रान्तिः

धनुःसंक्रान्तौ पराः षोडशनाड्यः पुण्याः । अन्यत्प्रागुक्तम् ।

धनुष की संक्रान्ति में पर की सोलह घड़ियाँ पुण्यकाल है । बाकी पहले कह चुके हैं ।

अथ नागपूजापंचमी

मार्गशीर्षशुक्लपञ्चम्यां[2] नागपूजा दाक्षिणात्यानां प्रसिद्धा । इयं षष्ठीयुता ग्राह्येत्यादिविशेषः प्रथमपरिच्छेदे उक्तः ।

मार्गशीर्षशुक्ल पंचमी नागपूजा दाक्षिणात्यों प्रसिद्ध है । यह पंचमी, षष्ठीयुक्त ग्राह्य है यह सब विशेष प्रथमपरिच्छेद में कह चुके हैं ।

अथ चम्पाषष्ठी स्कन्दषष्ठी च

मार्गशीर्षशुक्लषष्ठी चम्पाषष्ठी महाराष्ट्रेषु प्रसिद्धा । अत्र तिथिद्वैधे यस्मिन्दिने रविवारभौमवारशततारकावैधृतीनां मध्येऽधिकैर्योगः सा पूर्वा परा वा मुहूर्तत्रय-

---

१. शिवरहस्ये—'नित्ययात्रादिकं कृत्वा मध्याह्ने संस्थिते रवौ । तदोग्ररूपादनघान्मत्तः श्रीकालभैरवः ॥ आविरासीत्तदा लोकान् भीषयन्नखिलानपि ।' इस वचन से कालभैरव की उत्पत्ति मध्याह्न में है । इसमें उपवास की ही मुख्यता कही गयी है—'उपोषणस्याङ्गभूतमर्घ्यदानमिह स्मृतम् । तथा जागरणं रात्रौ पूजा यामचतुष्टये ॥' त्रिस्थलीसेतौ—'कृत्वा च विविधां पूजां महासम्भारविस्तरैः । नरो मार्गासिताष्टम्यां वार्षिकं विघ्नमुत्सृजेत् ॥' इति ।

२. स्कन्दपुराणे—'शुक्ला मार्गशिरे पुण्या श्रावणे या च पञ्चमी । स्नानदानैर्बहुफला नागलोकप्रदायिनी ॥' यह षष्ठीयुता ग्राह्य है—'पञ्चमी नागपूजायां कार्या षष्ठीसमन्विता । तस्यां तु तषिता नागा इतरा सचतुर्थिका ॥' इति ।

व्यापिनी ग्राह्या। दिनद्वयेऽपि योगाभावे परैव त्रिमुहूर्ता ग्राह्या। इयमेव 'स्कन्द-षष्ठी'। सा पूर्वा ग्राह्या। अथ सप्तम्यां सूर्यव्रतं तद्विधिः कौस्तुभे। मृगयुतायां पौर्णमास्यां लवणदाने सुन्दररूपता।

मार्गशीर्षशुक्ल षष्ठी चम्पाषष्ठी नाम से महाराष्ट्रदेश में प्रसिद्ध है। इस तिथि के सन्देह में जिस दिन रविवार, मंगलवार, शततारका और वैधृति इनमें से जिस दिन अधिक योग मिले वह तीन मुहूर्त रहने वाली पूर्वा या परा षष्ठी लेनी चाहिए। दो दिन में भी योग के न होने पर तीन मुहूर्तवाली परा ही लेनी चाहिए। यही स्कन्द-षष्ठी है। यह पूर्वा ग्राह्य है। सप्तमी में सूर्य का व्रत होता है, इसकी विधि कौस्तुभ में है। मृगशिरायुक्त पूर्णिमा में लवण-दान करने से सुन्दर रूप होता है।

अथ दत्तात्रेयजयन्ती

मार्गशीर्षपौर्णमास्यां [2]दत्तात्रेयोत्पत्तिः। इयं प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या। मार्गशीर्षशुक्लचतुर्दश्यां पौर्णमास्यां वा प्रदोषे आश्वलायनैः प्रत्यवरोहणं कार्यम्। तत्र कर्मकालव्यापिनी तिथिः। तत्प्रयोगः प्रयोगरत्नकौस्तुभादौ ज्ञेयः।

अगहन की पूर्णिमा में दत्तात्रेय भगवान् की उत्पत्ति है। यह पूर्णिमा प्रदोषव्यापिनी ग्राह्य है। मार्गशीर्षशुक्ल चतुर्दशी या पूर्णिमा में आश्वलायन वालों को प्रत्यवरोहण करना चाहिए। उसमें कर्म के समय में रहने वाली तिथि ग्राह्य है। इसका विधान प्रयोगरत्न और कौस्तुभ आदि से जानना चाहिए।

अथान्वष्टकाः

मार्गशीर्षादिमासचतुष्टयस्य कृष्णाष्टमीष्वष्टकाश्राद्धानि[3]। तत्पूर्वसप्तमीषु पूर्वेद्युःश्राद्धानि तदुत्तरनवमीषु चान्वष्टक्यश्राद्धानि कर्तव्यानि। एवं भाद्रकृष्ण-पक्षेऽपि अष्टकादिश्राद्धानि कार्याणीति पञ्चाष्टकापक्ष आश्वलायनभिन्नशाखिनाम्। आश्वलायनानां तु मार्गादिचतुरष्टकापक्ष एव। भाद्रपदकृष्णाष्टम्यां तु 'माध्यावर्ष-

---

१. भृगुः—'कृष्णाष्टमी स्कन्दषष्ठी शिवरात्रिश्चतुर्दशी। एताः पूर्वयुताः कार्यास्तिथ्यन्ते पारणं भवेत्॥' योगविशेष से महाराष्ट्र में इसे चम्पाषष्ठी कहते हैं और यह पूर्वयुता या परयुता ग्राह्य है। ब्रह्माण्डपुराण के मल्लारिमाहात्म्य में इसका योगविशेष—'मार्गे भाद्रपदे शुक्ला षष्ठी वैधृतिसंयुता। रविवारेण संयुक्ता सा चम्पेतीह कीर्तिता॥' मदनरत्न में—'विशाखा भौमवारेण सा चम्पेतीह कीर्तिता' यह पाठ है। दिवोदासने—'चम्पाषष्ठी सप्तमीयुता' कहा है।

२. स्कन्दपुराण के सह्याद्रिखण्ड में—'मार्गशीर्षे तथा मासि दशमेऽह्नि मुनिर्मले। मृगशीर्षयुते पौर्णमास्यां ज्ञस्य च वासरे॥ जनयामास देदीप्यमानं पुत्रं सती शुभम्। तं विष्णुमागतं ज्ञात्वा अत्रिर्नामाकरोत्स्वयम्॥ दत्तवान् स्वस्य पुत्रत्वाद् दत्तात्रेय इतीश्वरः।' इति।

३. यहाँ अष्टकाशब्द कर्मवाचक होता हुआ भी काल का उपलक्षक है, जैसे—'वार्त्रघ्नी पौर्णमासी वृधन्वन्ती अमावास्या' यहाँ पर पौर्णमासी और अमावास्याशब्द कर्माभिधायक होते हुये काल के भी उपलक्षक हैं। अन्यथा 'आग्रहायण्या ऊर्ध्वं तिस्रोऽष्टकाः' इससे प्रतिपदा में ही अष्टकाकर्म की प्राप्ति होगी इसलिये अष्टकाशब्द से अष्टमी उपलक्षित होती है। जैसा कि आश्वलायन ने कहा—'हेमन्तशिशिरयोश्चतुर्णामपरपक्षाणामष्टमीष्वष्टका एकस्यां वा' इति।

श्राद्धं करिष्ये' इति संकल्प्य सर्वमष्टकाश्राद्धवत्कार्यम्। सप्तम्यां तु 'माघ्यावर्षश्राद्धं कर्तुं पूर्वेद्युःश्राद्धं करिष्ये' इति संकल्पः। नवम्याम् 'अन्वष्टकाश्राद्धं करिष्ये' इति संकल्प इति विशेषः।

अगहन से चार महीने की कृष्णाष्टमी में अष्टकाश्राद्ध होते हैं। इसके पूर्व की सप्तमी में पूर्वेद्युःश्राद्ध और इसके बाद वाली नवमी में अन्वष्टका श्राद्ध करे। इसी प्रकार भाद्रपद कृष्णपक्ष में भी अष्टकादि श्राद्ध करे। इस प्रकार पाँच अष्टका का पक्ष आश्वलायन शाखा से भिन्न शाखा वालों के लिए है। आश्वलायन वालों का तो अगहन आदि चार अष्टका का ही पक्ष है। भाद्रपद कृष्णाष्टमी में तो 'माघ्यावर्ष श्राद्ध करूँगा' ऐसा संकल्प करके अष्टका श्राद्ध की तरह सब करे। सप्तमी में तो 'माघ्यावर्ष श्राद्ध करने के लिए पूर्वेद्युःश्राद्ध करूँगा' ऐसा संकल्प है। और नवमी में 'अन्वष्टका श्राद्ध करूँगा' यह संकल्प में विशेषता होगी।

एवं भाद्रकृष्णाष्टमीश्राद्धस्य माघ्यावर्षसंज्ञकत्वादाश्वलायनानां चतुरष्टकापक्षः। अन्यशाखिनां पौषादित्र्यष्टकापक्षोऽपि। एवं सर्वा अष्टकाः कर्तुमशक्तेन एकैवाष्टका कार्या। सा च माघपौर्णमास्यनन्तरकृष्णपक्षस्य सप्तम्यामष्टम्यां नवम्यामिति दिनत्रये कार्या। दिनत्रये श्राद्धत्रयं कर्तुमशक्तेन माघकृष्णेऽष्टमीश्राद्धमेव कार्यम्।

एवं भाद्रपद कृष्णाष्टमी श्राद्ध का माघ्यावर्ष नाम होने से आश्वलायनों का चार अष्टका पक्ष है। अन्य शाखावालों के लिये पौष आदि से तीन अष्टकां का पक्ष भी है। इस प्रकार सब अष्टका जो नहीं कर सकते वे एक ही अष्टका-श्राद्ध करें। यह माघ की पूर्णिमा के बाद कृष्णपक्ष की सप्तमी, अष्टमी और नवमी इस प्रकार तीन दिन में करें। तीन दिन में तीन श्राद्ध करने में असमर्थ व्यक्ति को माघकृष्ण अष्टमी में ही श्राद्ध करना चाहिए।

तत्राष्टकाश्राद्धेऽपराह्णव्यापिन्यष्टमी ग्राह्या। दिनद्वये व्याप्त्यव्याप्त्यादौ दर्शवन्निर्णयः। अष्टम्यनुरोधेन पूर्वपरदिनयोः पूर्वेद्युःश्राद्धान्वष्टक्यश्राद्धे कार्ये न तु सप्तम्यादेरपराह्णव्याप्तिरपेक्षणीया। एकदिनेऽप्यशक्तस्य प्रत्याम्नायाः—अनडुहो यवसमाहरेत्, अग्निना वा कक्षं दहेत्, अपि वानूचानेभ्य उदकुम्भमाहरेत्, अपि वा श्राद्धमन्त्रानधीयीतेति। क्वचिदुपवासोऽप्युक्तः। एवं श्रवणाकर्मादिपाकसंस्थालोपे प्रतिपाकयज्ञं प्राजापत्यकृच्छ्रं प्रायश्चित्तमुक्तम्। मलमासेऽष्टकाश्राद्धानि न कार्याणीति नारायणवृत्तिः। अष्टकादिश्राद्धत्रयप्रयोगः कौस्तुभप्रयोगरत्नादौ।

इस अष्टकाश्राद्ध में अपराह्ण में रहनेवाली अष्टमी ग्रहण के योग्य है। दो दिन में अपराह्णव्यापिनी रहने या न रहने पर दर्श की तरह निर्णय करे। अष्टमी के अनुरोध से पहले दिन और दूसरे दिन में पूर्वेद्युःश्राद्ध और अन्वष्टकाश्राद्ध करे, सप्तमी आदि को अपराह्णव्यापिनी की अपेक्षा नहीं है। एक दिन में भी अष्टकाश्राद्ध में असमर्थ व्यक्ति श्राद्ध के स्थान में बैल को भूसा खिलावे, या अग्नि से तृण जलावे, अथवा अंगसहित वेद पढ़ने वालों को जल का घड़ा पहुँचावें, अथवा श्राद्ध के मंत्रों को पढ़े। कहीं पर उपवास भी कहा है। इसी तरह श्रवणाकर्म आदि पाकसंस्था के न करने पर प्रत्येक पाकयज्ञ के स्थान में प्राजापत्यकृच्छ्र प्रायश्चित-स्वरूप कहा है। नारायणवृत्ति में लिखा है कि मलमास में अष्टकाश्राद्ध नहीं करे। अष्टका आदि तीन श्राद्धों का विधान कौस्तुभ और प्रयोगरत्न आदि से जानना चाहिये।

अत्राष्टमीश्राद्धे कामकालसंज्ञकौ विश्वेदेवौ। सप्तमीनवम्योस्तु पुरूरवार्द्रवाविति। आहिताग्नेः पूर्वेद्युः श्राद्धाङ्गहोमोष्टकाङ्गहोमोन्वष्टकाग्नौकरणहोमो दिनत्रये हविःश्रपणं च दक्षिणाग्नौ भवतीति विशेषः। शेषमनाहिताग्निवत्। अष्टकालोपे प्राजापत्यमुपवासो वा प्रायश्चित्तम्। अन्वष्टक्यलोपे तद्दिने शतवारम् 'एभिर्द्युभिः सुमना' इति मन्त्रजपः।

इस अष्टकाश्राद्ध में काम-काल नाम के दो विश्वेदेवा होते हैं। सप्तमी नवमी के श्राद्ध में पुरूरव और आर्द्रव विश्वेदेवा होते हैं। अग्निहोत्री को पहले दिन श्राद्धाङ्गहोम अष्टकाङ्गहोम और अन्वष्टका-अग्नौकरण-होम और तीन दिन हविष्य का पकाना दक्षिणाग्नि में होता है, इतना विशेष है। बाकी सब अनाहिताग्नि की तरह होता है। अष्टका न करने पर प्राजापत्य अथवा उपवास प्रायश्चित होता है। अन्वष्टका न करने पर उस दिन 'एभिर्द्युभिः सुमना' इस मन्त्र का सौ बार जप करे।

अथ द्वादशमासेषु रविवारव्रतम्

मार्गशीर्षादिरविवारेषु काम्यं [1]सौरव्रतमुक्तम्। तत्र भक्ष्याणि—मार्गे तुलसीपत्रत्रयम्, पौषे त्रिपलं घृतम्, माघे तिलानां मुष्टित्रयम्, फाल्गुने त्रिपलं दधि, चैत्रे त्रिपलं दुग्धम्, वैशाखे गोमयम्, ज्येष्ठे तोयाञ्जलित्रयम्, आषाढे मरीचकत्रयम्, श्रावणे त्रिपलाः सक्तवः, भाद्रे गोमूत्रम्, आश्विने शर्करा, कार्तिके सद्धविरिति। इति मार्गशीर्षमासकृत्यनिर्णयोद्देशः।

अगहन आदि के रविवारों में काम्य सौरव्रत कहा है। उनमें भक्ष्य हैं—अगहन में तुलसी के तीन पत्ते, पौष के रविवार में तीन पल घी, माघ में तीन मुट्ठी तिल, फाल्गुन में तीन पल दही, चैत में

---

१. सूर्याब्याहस्कर में रविव्रत—'मार्गे मासि तथा माघे वैशाखाषाढयोरपि। शुक्लपक्षे व्रतं कुर्यात् सम्यग् देवस्य भास्वतः॥' रविव्रत का आरम्भ मार्गशीर्षमास शुक्लपक्ष के प्रथम रविवार और समाप्ति वैशाखमास शुक्लपक्ष के अन्तिम रविवार में करनी चाहिए—'आदौ वृश्चिकमेषान्ते रविवारो यदा भवेत्। तदा रविव्रतारम्भविसर्गौ शास्त्रसम्मतौ॥' साम्बपुराणे—'अलिमेषगते भानौ भगवत्यर्कवासरे। शुक्लपक्षे स विधिवद् व्रतं साम्ब समाचरेत्। धनुर्वृषगते भानौ यः कुर्यात् सवितुर्व्रतम्। सप्तजन्मनि कुष्ठी स्याद् दरिद्रश्चोपजायते॥ देवोत्थानात् परं ग्राह्यं व्रतं देवस्य भास्वतः। कदाचिदलिमेषार्के कृष्णपक्षे न कारयेत्॥

रविव्रत में नक्तव्रत की प्रशंसा। यथा विष्णुधर्मोत्तरे—'ये त्वादित्यदिनं प्राप्य नक्तं कुर्वन्ति मानवाः। सप्तजन्मनि ते प्राप्य सम्भवन्त्यवियोगिनः॥' नरसिंहपुराण में अन्य नक्तव्रतों से रविनक्तव्रत का भेद—'आत्मनो द्विगुणच्छायां यदा सन्तिष्ठते रविः। सौरं नक्तं विजानीयान्न नक्तं निशि भोजनम्॥' अर्थात् अपने शरीर की छाया मध्याह्न के बाद जब पूर्व की ओर द्विगुण हो जाय तब रविनक्त है। यथा अपरार्के—'यदा तु प्राङ्मुखी छाया पुरुषाद् द्विगुणा भवेत्। तदा नक्तं विजानीयादनक्तं त्वन्यथा भवेत्॥' भविष्यपुराणे—'ये त्वादित्यदिने ब्रह्मन्नक्तं कुर्वन्ति मानवाः। दिनान्ते ते तु सुखी रविषेधो रात्रिभोजने॥'

वैशाख में मलमास होने पर मलमासीय शुक्लपक्ष में ही रविव्रत करना चाहिये, क्योंकि शुद्ध वैशाखशुक्लपक्ष में वृष का सूर्य रहेगा, जो सांबपुराण के 'धनुर्वृषगते भानौ' इस वचन से दूषित है। सूर्याब्याहस्करे—'सूर्यव्रतं तु वैशाखे मलमासो यदा भवेत्। तदा तत्रैव कर्तव्यं वृषादित्ये न कारयेत्॥' इति। रविवार में क्षौर-तैल-मांस-गर्मजल-रात्रिभोजन-रति-मध्याह्नस्नान आदि निषिद्ध है।

तीन पल दूध, वैशाख में गोबर, जेठ में तीन अञ्जलि जल, आषाढ़ में तीन कालीमिर्च, श्रावण में तीन पल सत्तू, भाद्रपद में गोमूत्र, आश्विन में चीनी और कार्तिक में हविष्य। मार्गशीर्षमासकृत्यनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ पौषे मकरसंक्रान्तिनिर्णयः

दिवामकरसंक्रमे संक्रान्त्यनन्तरं [1]चत्वारिंशन्नाड्यः पुण्याः। घटिकाद्यल्पदिनशेषे मकरसंक्रान्तौ संक्रान्त्यासन्नपूर्वकाले दिवैव स्नानश्राद्धदानभोजनानि कार्याणि। रात्रौ श्राद्धदानादेर्निषेधात्स्वल्पदिनभागे स्नानश्राद्धस्वभोजनादेः कर्तुमशक्यत्वाद्रात्रौ भोजननिषेधात्पुत्रवद्गृहिण उपवासनिषेधाच्च। तस्मादीदृशे विषये परपुण्यकालत्वं बाधित्वा मकरसंक्रान्तेः पूर्वभाग एव पुण्यत्वं ज्ञेयम्।

दिन में मकरसंक्रान्ति होने पर संक्रान्ति के बाद ४० घड़ी पुण्यकाल होता है। घड़ी आदि से कम दिन बाकी रहते मकर-संक्रान्ति होने पर संक्रान्ति के समीप पूर्वकाल में दिन ही में स्नान, श्राद्ध, दान और भोजन करना चाहिये। क्योंकि रात में स्नान दान आदि के निषेध और अल्पतर समय में स्नान, श्राद्ध और भोजन की अशक्यता तथा रात में भोजन के निषेध और पुत्र वाले गृहस्थ को उपवास का निषेध है। ऐसी स्थिति में पर पुण्यसमय को बाध कर मकर-संक्रान्ति के पूर्व समय में ही पुण्य होता है, यह जानना चाहिये।

रात्रौ पूर्वभागे परभागे निशीथे वा मकरसंक्रमे उत्तरदिनं पुण्यम्। तत्राप्युत्तरदिनपूर्वार्धं पुण्यतरम्। तत्रापि सूर्योदयोत्तरं पञ्चनाड्यः पुण्यतमाः। एवं रात्रिसंक्रान्तिविषयेऽन्यत्रापि यत्र पूर्वदिनोत्तरार्धस्य पुण्यत्वं तत्र दिनान्ते पञ्चनाडीनां पुण्यतमत्वम्। यत्रोत्तरदिनपूर्वार्धस्य पुण्यत्वं तत्रोदयोत्तरं पञ्चनाडीनां पुण्यतमत्वम्।

रात में आधी रात के पूर्वभाग में अथवा परभाग वा ठीक अर्धरात्रि आदि में मकर संक्रान्ति हो तो दूसरे दिन में ही पुण्यकाल होता है। इसमें भी दूसरे दिन के पूर्वार्ध में अधिक पुण्य तथा सूर्योदय के अनन्तर पाँच घड़ी तक पूर्वार्ध भाग से भी अधिक पुण्य होता है। इसी प्रकार रात्रि संक्रान्ति के विषय में अन्य संक्रान्तियों में भी जहाँ पहिले दिन का उत्तरार्ध पुण्य बतलाया है वहाँ सायंकाल की ५ घड़ियों का अधिक पुण्य होता है। जहां उत्तर दिन का पूर्वार्ध पुण्यकाल कहा है, वहाँ सूर्योदय के बाद ५ घड़ी अत्यन्त पुण्यकाल होता है।

एवं दिवासंक्रमेऽपि संक्रान्तिसन्निहितनाडीनां मकरादिषूत्तरासां कर्कादिषु पूर्वासां पुण्यतमत्वं ज्ञेयम्। 'या याः सन्निहिता नाड्यस्तास्ताः पुण्यतमाः स्मृता' इत्युक्तेः। मुहूर्तचिन्तामण्यादौ तु सूर्यास्तादूर्ध्वं घटीत्रयं संध्याकालस्तत्र मकर-

१. धर्मसिन्धुकार का यह निर्णय हेमाद्रि में ब्रह्मवैवर्त के 'त्रिंशत्कर्कटके नाड्यो मकरे तु दशाधिकाः' इस वचन के अनुसार है। माधव ने वृद्धवसिष्ठ के 'त्रिंशत्कर्कटके पूर्वा मकरे विंशतिः परा' इस वचन से संक्रान्ति के अनन्तर बीस घड़ी पुण्यकाल कहा है। इसी प्रकार माधव ने वृद्धगार्ग्य के 'अर्धास्तमयवेलायां मकरं याति भास्करः। प्रदोषे वाऽर्धरात्रे वा स्नानं दानं परेऽहनि॥' और भविष्य के 'कार्मुकं तु परित्यज्य झषं संक्रमते रविः। प्रदोषे वार्धरात्रे वा स्नानं दानं परेऽहनि॥' इन वचनों से द्वितीय दिन पुण्यकाल कहा है। विशेष अन्य निबन्धों में देखें।

संक्रमे परदिने पुण्यत्वं बाधित्वा पूर्वदिने पुण्यत्वमुक्तम्। नेदं सर्वत्र धर्मशास्त्रग्रन्थेषु दृश्यते। शुक्लपक्षे तु सप्तम्यां संक्रान्तिर्ग्रहणाधिका।

इसी प्रकार दिन की संक्रान्ति में भी दिन की संक्रान्ति के समीप की घड़ियों का मकर आदि संक्रान्तियों में दूसरी और कर्क आदि संक्रान्तियों में पूर्वा का अतिशय पुण्य जानना चाहिये। क्योंकि 'या याः सन्निहिता नाड्यस्तास्ताः पुण्यफलाः स्मृताः' ऐसी उक्ति है। मुहूर्तचिन्तामणि आदि में तो सूर्यास्त के बाद तीन घड़ी का सन्ध्याकाल होता है, इसमें यदि संक्रान्ति मकर की हो तो पर दिन के पुण्यकाल को बाधकर पूर्व दिन में पुण्यकाल कहा है। यह बात सभी धर्मशास्त्रग्रन्थों में नहीं मिलती है। शुक्लपक्ष की सप्तमी में संक्रान्ति होने पर ग्रहण से भी अधिक पुण्य होता है।

अथ मकरसंक्रमणे कृत्यम्

रविसंक्रमणे प्राप्ते न स्नायाद्यस्तु मानवः।
सप्तजन्मनि रोगी स्यान्निर्धनश्चैव जायते॥

इति वचनान्मनुष्यमात्रस्य स्नानं नित्यम्। एवं श्राद्धमप्यधिकारिणो नित्यम्। तच्चापिण्डकम्।

संक्रान्तौ यानि दत्तानि हव्यकव्यानि दातृभिः।
तानि नित्यं ददात्यर्कः पुनर्जन्मनि जन्मनि॥

अयनसंक्रान्तौ त्रिदिनमुपवासः। यद्वा संक्रान्तिमत्यहोरात्रे पुण्यकालवत्यहोरात्रे वोपवासं कृत्वोक्तपुण्यकाले स्नानदानादि कार्यम्।

सूर्यसंक्रान्ति में जो मनुष्य नहीं नहाता वह सात जन्म तक धनहीन और रोगी होता है इस वचन से मनुष्यमात्र का स्नान संक्रान्ति में नित्य है। इसी प्रकार अधिकारी का संक्रान्ति में श्राद्ध भी नित्य है। श्राद्ध विना पिण्ड का होता है। संक्रान्ति में दाता लोग जो हव्य या कव्य देते हैं उन सबको भगवान् सूर्य जन्म-जन्मान्तर में अवश्य देते हैं। अयन की संक्रान्ति में तीन दिन का उपवास करे। अथवा संक्रान्तिवाले दिन रात में या पुण्यकाल वाले दिन रात में उपवास करके कहे हुए पुण्य काल में स्नान दान आदि करना चाहिये।

अयमुपवासः सापत्यगृहस्थेन न कार्यः।

धेनुं तिलमयीं राजन्दद्याच्चैवोत्तरायणे।
तिलतैलेन दीपाश्च देयाः शिवगृहे शुभाः॥
सतिलैस्तण्डुलैश्चैव पूजयेद्विधिवच्छिवम्।
तस्यां कृष्णतिलैः स्नानं कार्यं चोद्वर्तनं तिलैः॥
तिला देयाश्च होतव्या भक्ष्याश्चैवोत्तरायणे।

शुक्लतिलैर्देवादितर्पणं कृष्णतिलैः पितृतर्पणं च कार्यम्। अत्र शम्भौ घृताभिषेको महाफलः। अत्र सुवर्णयुततिलताम्रपात्रं देयम्। तत्प्रयोगो वक्ष्यते।

यह उपवास सन्तान वाले गृहस्थ को नहीं करना चाहिये। उत्तरायण संक्रान्ति में तिल की धेनु का दान करे और शिवमन्दिर में तिल के तेल का दीप जलाना शुभप्रद है। तिलसहित चावल से सविधि शङ्कर की पूजा करे। उत्तरायण संक्रान्ति में काले तिल से स्नान करना और तिल

का उबटन लगाना, तिल का दान करना, तिल से होम करना और तिलों का भक्षण करना चाहिए। सफेद तिलों से देवतर्पण और काले तिलों से पितृतर्पण भी करना धर्म है। इसमें शंकर भगवान् का घृत से अभिषेक करना महाफलदायक है। इस संक्रान्ति में ताम्रपात्र में सोने के साथ तिल का दान भी होता है, इसका विधान आगे कहेंगे।

अथ मकरसंक्रान्तौ शिवपूजाव्रतम्

पूर्वदिने उपोष्य संक्रान्तिदिने तिलोद्वर्तनतिलस्नानतिलतर्पणानि कृत्वा शिवं गव्येनाज्येन मर्दयित्वा शुद्धोदकेन प्रक्षाल्य वस्त्राद्युपचारैः पूजयित्वा सुवर्णहीरकनीलपद्मरागमौक्तिकमिति पञ्चरत्नानि कर्षार्धं सुवर्णं वा समर्प्य तिलदीपैः ससुवर्णैः साक्षतैस्तिलैः संपूज्य घृतकम्बलं दत्त्वा वितानचामरे समर्प्य विप्रेभ्यः ससुवर्णतिलान् दत्त्वा तिलान् हुत्वा विप्रान् यतींश्च संभोज्य दक्षिणां दत्त्वा सतिलं पञ्चगव्यं पीत्वा पारणं कुर्यादिति।

संक्रांति के पहले दिन उपवास करके संक्रान्ति के दिन तिल का उबटन लगाकर तिल से स्नान कर और तिल से तर्पण करके शङ्कर को गाय के घी से मर्दन कर शुद्धजल से नहला कर वस्त्र आदि उपचार से पूजन कर सुवर्ण, हीरा, नीलम, पद्मराग और मोती को समर्पण कर अथवा आधा कर्ष सुवर्ण चढ़ाकर तिल-दीप सुवर्ण-अक्षत-सहित-तिलों से पूजकर घृत कम्बल देकर चन्दवा तान कर चँवर को समर्पण कर ब्राह्मणों को सुवर्णसहित तिल देकर और तिलों से होमकर ब्राह्मण तथा संन्यासी को भोजन कराकर और उन्हें दक्षिणा देकर तिलसहित पञ्चगव्य पीकर पारण करे।

अत्र वस्त्रदानं महाफलम्। तिलपूर्वमनडवाहं दत्त्वा रोगैः प्रमुच्यते। अत्र क्षीरेण भास्करं स्नापयेत्सूर्यलोकप्राप्तिः। दिवा विषुवायनसंक्रान्तौ तस्मिन्दिने पूर्वरात्रौ आगामिरात्रौ चानध्यायः। रात्रौ तत्संक्रमे तस्यां रात्रौ पूर्वदिवसे आगामिदिवसे चेति पक्षिण्यनध्यायः। अत्र रात्रौ संक्रमे ग्रहणवद्रात्रावेव स्नानदानादीति पक्षः कैश्चिल्लिखितो न सर्वशिष्टसंमतः।

इसमें वस्त्रदेने का विशेष फल है। तिल पूर्वक बैल का दान करने से रोग से मुक्त होता है। इसमें दूध से सूर्य भगवान् को नहलाने से सूर्यलोक की प्राप्ति होती है। दिन में मेष और तुला की अयनसंक्रान्ति में उस दिन उससे पहिली रात्रि में तथा आने वाली रात में भी अनध्याय होता है। रात में विषुव (मेष तुला) की संक्रान्ति में उस रात में और संक्रान्ति से पहिले दिन तथा आने वाले दिन में इस प्रकार पक्षिणी अनध्याय होता है। यहाँ रात की संक्रान्ति होने पर ग्रहण के सदृश रात में ही स्नान दान आदि करने का पक्ष किसी ने लिखा है। यह पक्ष सम्पूर्ण-शिष्ट-सम्मत नहीं है।

अयनदिनं तत्परं करिसंज्ञकं च दिनं शुभेषु वर्ज्यमित्युक्तम्। तत्रार्धरात्रादर्वागयनसंक्रान्तौ तद्दिनं तत्परदिनं च वर्ज्यम्। निशीथात्परत्र निशीथे वा संक्रान्तौ परं तत्परं च वर्ज्यमिति भाति। एवं ग्रहणेऽप्यूह्यम्। पौषशुक्लाष्टम्यां बुधवासरयुतायां स्नानजपहोमतर्पणविप्रभोजनानि कार्याणि। अस्यां भरणीयोगे महापुण्यत्वमित्येके। रोहिण्यार्द्रायोग इति परे। पौषशुक्लैकादशी मन्वादिः, निर्णयः प्रागुक्तः।

अयन वाला दिन और उसके बाद करिसंज्ञकदिन शुभकर्म में वर्जित है, यह कह चुके हैं। आधी रात के पहिले अयनसंक्रान्ति में वह दिन और इसके बाद वाला दिन वर्जित है। आधी रात के बाद बाद या आधी रात में संक्रान्ति होने पर दिन तथा तृतीय दिन भी वर्ज्य है, यह युक्त है। इसी प्रकार ग्रहण में भी कल्पना कर लेनी चाहिए। बुधवारयुक्त पौषशुल्ल अष्टमी में स्नान, जप, होम, तर्पण और ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये। इसमें भरणी के योग होने से महापुण्य होता है, ऐसा कोई कहते हैं। दूसरे लोग रोहिणी और आर्द्रा के योग को अत्युत्तम कहते हैं। पौष-शुक्ल एकादशी मन्वादि तिथि है, इसका निर्णय पहिले कह चुके हैं।

अथ माघस्नानम्

तत्र [१]पौषस्य शुक्लैकादश्यां पौर्णमास्याममावास्यायां वा माघस्नानारम्भः। माघे द्वादशीपूर्णिमादौ समापनम्। यद्वा मकरसंक्रमणप्रभृतिकुम्भसंक्रमणपर्यन्तं स्नानं कार्यम्।

पौष की शुक्ला एकादशी या पूर्णिमा अथवा अमावास्या में माघस्नान प्रारम्भ करना चाहिये। माघ की द्वादशी या पूर्णिमा में समाप्त करे या मकर की संक्रान्ति से कुम्भ की संक्रान्ति तक स्नान करे।

अथ स्नानकालः—अरुणोदयमारभ्य प्रातःकालावधिः।

उत्तमं तु सनक्षत्रं लुप्ततारं च मध्यमम्।
सवितर्युदिते भूप ततो हीनं प्रकीर्तितम्॥
माघमासे रटन्त्यापः किंचिदभ्युदिते रवौ।
ब्रह्मघ्नं वा सुरापं वा कं पतन्तं पुनीमहे॥

माघस्नान, अरुणोदय से आरम्भ कर प्रातःकाल तक करे। उत्तम स्नान नक्षत्रों के दिखलाई पड़ने तक और मध्यम स्नान तारों के न होने तक और मध्यम से भी हीन सूर्योदय काल में होता है। कुछ कुछ सूर्योदय के होने पर माघमास में जल रटते हैं कि किस ब्राह्मणघाती, शराबी तथा पतित को हम पवित्र करें।

अत्राधिकारिणः—

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः।
बालवृद्धयुवानश्च नरनारीनपुंसकाः॥ इति।

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी तथा बाल, वृद्ध, जवान, स्त्री, पुरुष और नपुंसक भी माघस्नान के अधिकारी हैं।

अथ जलतारतम्येन फलम्—

तप्तेन वारिणा स्नानं यद्गृहे क्रियते नरैः।
षडब्दफलदं तद्धि मकरस्थे दिवाकरे॥

---

१. विष्णु ने सौरमास में माघस्नान कहा—'तुलामकरमेषेषु प्रातःस्नायी सदा भवेत्। हविष्यं ब्रह्मचर्यं च माघस्नाने महाफलम्॥' ब्रह्मपुराणे—'एकादश्यां शुक्लपक्षे पौषमासे समारभेत्। द्वादश्यां पौर्णमास्यां वा शुक्लपक्षे समापनम्॥' इस वचन से चान्द्रमास के अनुसार ही माघस्नानार्थी प्रायः स्नानारम्भ करते हैं।

वाप्यादौ द्वादशाब्दफलम्, तडागे तद्द्विगुणम्, नद्यां तच्चतुर्गुणम्, महानद्यां शतगुणम्, महानदीसंगमे तच्चतुर्गुणम्, गङ्गायां सहस्रगुणम्, गङ्गायमुनासङ्गमे एतच्छतगुणमिति यत्र कुत्रापि स्नाने 'प्रयागस्मरणं कार्यम्। इदं समुद्रेऽप्यतिप्रशस्तम्।

जो मनुष्य घर में गर्म जल से स्नान करते हैं, उनको मकर की संक्रान्ति में एक स्नान से छ वर्ष के स्नान का पुण्य-फल मिलता है। बावली आदि में बारह वर्ष का, बावली से द्विगुण तालाब के स्नान से, नदी में स्नान से चौगुना, महानदी में स्नान से सौगुना, महानदी-संगम में स्नान से चौगुना, गङ्गा में स्नान से हजार गुना, गङ्गा-यमुना केसंगम में स्नान से लाख गुना अधिक फल मकर संक्रान्ति में स्नान से मिलता है अतः जहां कहीं भी स्नान करते समय प्रयाग का स्मरण करना चाहिये। मकर संक्रान्ति का स्नान समुद्र में भी अत्यन्त प्रशस्त है।

अथ स्नानविधिः—

माघमासमिमं पूर्णं स्नास्येहं देव माधव।
तीर्थस्यास्य जले नित्यमिति संकल्प्य चेतसि॥ इत्येकतीर्थं परिगृह्य,
दुःखदारिद्र्यनाशाय श्रीविष्णोस्तोषणाय च।
प्रातःस्नानं करोम्यद्य माघे पापविनाशनम्॥
मकरस्थे रवौ माघे गोविन्दाच्युत माधव।
स्नानेनानेन मे देव यथोक्तफलदो भव।
इमौ मन्त्रौ समुच्चार्य स्नायान्मौनसमन्वितः॥

प्रत्यहं सूर्यार्घ्यमन्त्रः—

सवित्रे प्रसवित्रे च परं धाम जले मम।
त्वत्तेजसा परिभ्रष्टं पापं यातु सहस्रधा॥ इति।

पितृतर्पणादि नित्यं विधाय माधवं पूजयेत्।

भूमौ शयीत होतव्यमाज्यं तिलसमन्वितम्।
हविष्यं ब्रह्मचर्यं च माघमासे महाफलम्॥

अत्रेन्धनकम्बलवस्त्रोपानत्तैलघृततूलपूर्णपटीसुवर्णान्नदानानि महाफलानि।

हे माधवदेव! मैं पूरे माघ भर इस तीर्थ जल में नित्य स्नान करूँगा ऐसा मन में संकल्प कर किसी एक तीर्थ को स्वीकार कर 'माघ में दुःख दरिद्रता के नाशार्थ श्रीविष्णु की प्रीति के लिये पाप विनाशक माघ स्नान करता हूँ। मकर के सूर्य में माघ में हे गोविन्द हे अच्युत हे माधव! स्नान से जैसा फल कहा है उसे दीजिये'। इन दोनों मन्त्रों को कहकर मौन रहकर स्नान करे। प्रतिदिन सूर्यार्घ्य 'सवित्रे प्रसवित्रे च' इत्यादि मूलोक्त मन्त्र से देवे। पितृतर्पण आदि नित्य कर्म करके माधव की पूजा करे। भूमि पर सोवे, घृतमिश्रित तिल का होम करे हविष्य का भोजन करे ब्रह्मचर्य का पालन करे यह सब माघमास में विशेष फल-दायक है। माघमास में लकड़ी-कम्बल-वस्त्र-जूता-तेल-घी-रूई भरी तोसक-रजाई-सोना और अन्न-दान अत्यन्त फल देने वाले हैं।

---

१. ब्रह्मपुराणे—'यत्र कुत्रापि यो माघे प्रयागस्मरणान्वितः। करोति मज्जनं तीर्थे स लभेद् गाङ्गमज्जनम्॥' इति।

तन्नियमाः—

न वह्निं सेवयेत्स्नातो ह्यस्नातोपि वरानने।
होमार्थं सेवयेद्वह्निं शीतार्थे न कदाचन॥
अहन्यहनि दातव्यास्तिलाः शर्करयान्विताः।

त्रयो भागास्तिलानां चतुर्थः शर्करायाः। अत्राभ्यङ्गो वर्ज्यः।

माघे मास्युषसि स्नानं कृत्वा दांपत्यमर्चयेत्।
माघे यत्नेन संत्याज्यं मूलकं मदिरोपमम्॥
पितॄणां देवतानां च मूलकं नैव दापयेत्।

स्नान के नियम—अग्निसेवन स्नान के बाद और पहले भी न करे। होम के लिये अग्नि-सेवन करे। जाड़े के कारण अग्निसेवन न करे। चीनी मिले तिलका प्रतिदिन दान करे। तीन भाग तिल और एक भाग चीनी मिलाकर दान करे। इसमें शरीर में तेल न लगावे। माघ में उषा काल में स्नान करे और ब्राह्मण-स्त्री-पुरुष का पूजन करे। माघमास में मूली, मदिरा के समान है अतः उसका सेवन न करे। देवता और पितृगण को भी मूली न देवे।

अथ माघे मलमासे निर्णयः

यदा माघो मलमासो भवति तदा काम्यानां तत्र समाप्तिनिषेधान्मासद्वयं स्नानं तन्नियमाश्च कर्तव्याः। मासोपवासचान्द्रायणादिकं तु मलमास एव समापयेदित्युक्तम्। इदं माघस्नानं नित्यकाम्योभयरूपम्।

जब माघ मलमास हो तो उसमें काम्यकर्म की समाप्ति का निषेध होने से दोनों मास, स्नान और उसके नियमों का पालन करे। महीने भर उपवास वाले चान्द्रायण आदि तो मलमास में ही समाप्त किये जाते हैं, ऐसा कहा है। यह माघस्नान काम्य और नित्य दोनों है।

मासपर्यन्तं स्नानेप्यशक्तः 'त्र्यहमेकाहं वा स्नायात्। तत्राद्यं दिनत्रयमिति केचित्। त्रयोदश्यादिदिनत्रयमिति बहुसंमतम्। पौषपूर्णिमानन्तरासु अष्टमीसप्तमीनवमीष्वष्टकादिश्राद्धानि प्रागुक्तानि।

एक मास तक स्नान करने में असमर्थ को तीन दिन अथवा एक दिन स्नान करना चाहिये। इसमें कोई कहते हैं कि माघमास के आदि के तीन दिन का स्नान करे। बहुतों के संमत तो यह है कि अन्त के त्रयोदशी से पूर्णिमापर्यन्त तीन दिन स्नान करे। पौष पूर्णिमा के बाद वाली अष्टमी, सप्तमी और नवमी में अष्टकाश्राद्ध आदि पहले कह आये हैं।

अथ अर्धोदययोगनिर्णयः

पौषामावास्यायामर्धोदययोगः[२]।

अमार्कपातश्रवणैर्युक्ता चेत्पौषमाघयोः।
अर्धोदयः स विज्ञेयः कोटिसूर्यग्रहैः समः॥

---

१. पद्मपुराणे—'अस्मिन् योगे त्वशक्तोऽपि स्नायादपि दिनत्रयम्।' इति।

२. स्कन्दपुराण के नागरखण्ड में—'दिवैव योगः शस्तोऽयमुषःकालेऽपि वा यदि। न तु रात्रौ स विज्ञेयो नरैर्धर्मपरायणैः॥' अतः रात्रि में इस अर्धोदययोग को मानना निर्मूल है। जयसिंह-

'किंचिन्न्यूनं महोदयं' इति चतुर्थपादं केचित्पठन्ति। पौषमाघयोर्मध्यवर्तिनीत्यर्थं इत्येके। अमान्तमासे पौषस्य पूर्णिमान्तमासे माघस्य चेत्यर्थं इत्यपरे। सर्वथा पौषपौर्णमास्युत्तरामावास्येत्यर्थः।

दिवैव योगः शस्तोऽयं न तु रात्रौ कदाचन।
अर्धोदये तु संप्राप्ते सर्वं गङ्गासमं जलम्॥
शुद्धात्मानो द्विजाः सर्वे भवेयुर्ब्रह्मसन्निभाः।
यत्किंचिद्दीयते दानं तद्दानं मेरुसन्निभम्॥

पौष की अमावास्या में अर्धोदय योग होता है। पौष-माघ की अमावास्या, रविवार-व्यतीपात और श्रवणनक्षत्र से युक्त हो तो वह अर्धोदय योग करोड़ों ग्रहण के समान पुण्यदायक होता है। कोई लोग तो 'किञ्चिन्न्यूनो महोदयः' ऐसा चौथे पाद को पढ़ते हैं अर्थात् पूर्वोक्त योगों में से कुछ योग होने से महोदययोग होता है। अन्यजन तो पौष-माघ के बीच वाली अमावास्या, ऐसा अर्थ करते हैं। सर्वथा पौष-माघ की बाद वाली अमावास्या, यही अर्थ है। यह योग दिन में ही होने से अर्धोदय योग होता है, रात में योग होने से नहीं होता। अर्धोदययोग में सब जल, गङ्गाजल के समान होता है। सब ब्राह्मण, शुद्धात्मा और ब्रह्म के समान होते हैं। इस योग में जो भी दान किया जाता है, वह मेरुपर्वत के समान अधिकतम फल देता है।

अथ पात्रदानप्रयोगः

देशकालौ संकीर्त्य 'समुद्रमेखलायाः पृथ्व्याः सम्यग्दानफलकामोऽहमर्धोदयविहितामत्रदानं करिष्ये' इति संकल्प्योपलिप्ते देशे धौततण्डुलैरष्टदलं कृत्वा तत्र चतुःषष्टिपलं चत्वारिंशत्पलं वा पञ्चविंशतिपलं वा कांस्यपात्रं कृताग्न्युत्तारणं स्थापयेत्।

देशकाल-कथन-पूर्वक 'समुद्रमेखला-पृथिवी-दान का सम्यक् फलप्राप्ति की कामना से मैं अर्धोदय में विहित पात्रदान करूँगा' ऐसा संकल्प करके लीपी हुई भूमि में धोये हुए चावल से अष्टदल बनाकर चौंसठ पल या चालीस पल अथवा पचीस पल के काँसे का पात्र अग्न्युत्तारण किये हुए की स्थापना करे।

कल्पद्रुमे—'पातस्यान्तः पूर्वभागस्त्वमायाः श्रोणामध्यं भास्करस्योदये च। मानोर्वारे पुण्यमर्धोदयः स्यात् किञ्चिन्न्यूने तं महत्पूर्वमाहुः॥' अर्थात् योग-तिथि-नक्षत्रों के मान को तीन भाग करके पातयोग के तृतीय भाग, अमावास्या तिथि के पूर्व भाग और श्रवणनक्षत्र के मध्यभाग का सूर्योदय में रविवार को दिन में जब संयोग हो तब अर्धोदय योग होता है। अर्धोदय का यह लक्षण युक्त है।

प्रयाग में कुम्भ का योग—'माघामायां मृगे भानौ मेषराशिगते गुरौ। कुम्भयोगो भवेत्तत्र प्रयागे त्वतिदुर्लभः॥' इति।

हरिद्वार में कुम्भ का योग—'पद्मिनीनायके मेषे कुम्भराशिगते गुरौ। गङ्गाद्वारे भवेद्योगः कुम्भनामा तदोत्तमः॥' इति।

गोदावरी में कुम्भ का योग—'श्रावणमास की अमावास्या में तब होता है जब कर्क-राशि-स्थित गुरु हों—'कर्के गुरुस्तथा भानुश्चन्द्रश्चन्द्रक्षयस्तथा। गोदावर्यां तदा कुम्भो जायतेऽवनिमण्डले॥' इति।

गुञ्जादिप्रमाणानि—तत्राष्टगुञ्जात्मको माषः, चत्वारिंशन्माषाः कर्षः, पलं कर्षचतुष्टयम्। अमरसिंहमते तु अशीतिगुञ्जात्मकः कर्षः, पलं कर्षचतुष्टयम्। 'कांस्यपात्रे पायसं निक्षिप्य पायसेष्टदलं कृत्वा तत्कर्णिकायां कर्ष-तदर्ध-तदर्धान्यतमपरिमाणहेमलिङ्गं निधाय कांस्यपात्रे ब्रह्माणं पायसे विष्णुं लिङ्गे शिवं यथाधिकारं वैदिकैर्मन्त्रैर्नामभिर्वावाहनाद्युपचारैः संपूजयेत्। ततो विप्रं वस्त्रादिभिः पूजयेत्।

गुंजा आदि तौल का प्रमाण यह है—आठ घुंघुची का एक माशा होता है। चालीस माशे का एक कर्ष होता है। चार कर्ष का एक पल होता है। अमरसिंह के मत में तो अस्सी घुंघुची का एक कर्ष होता है, चार कर्ष का एक पल होता है। कांसे के पात्र में खीर रखके खीर में अष्टदल बनाकर उसकी कर्णिका में एक कर्ष, आधा कर्ष, चौथाई कर्ष, इन तौलों में से किसी एक तौल का सुवर्ण लिङ्ग रखकर कांसे के पात्र में ब्रह्मा, खीर में विष्णु, लिङ्ग में शिव, अपने अधिकार के अनुसार वैदिक मन्त्रों से या नाम मन्त्रों से आवाहन कर षोड़शोपचार से पूजा करे। तदनन्तर वस्त्र आदि से ब्राह्मण की पूजा करे।

सुवर्णपायसामत्रं यस्मादेतत्त्रयीमयम्।
आवयोस्तारकं यस्मात्तद् गृहाण द्विजोत्तम॥

'अमुकगोत्रायामुकशर्मणे तुभ्यमिदं सुवर्णलिंगपायसयुक्तममत्रं समुद्रमेखला-पृथ्वीदानफलकामोऽहं संप्रददे न मम' इति विप्रहस्ते जलं दद्यात्। विप्रः देवस्यत्वेति प्रतिगृह्णीयात्। दाता—'दानस्य संपूर्णतार्थमिमां दक्षिणां संप्रददे' इति यथाशक्ति हिरण्यं दद्यात्।

जिस लिये हे ब्राह्मणदेव! सोना, खीर और पात्र, ये तीनों हम दोनों को तारने वाले हैं, इस लिये इन्हें ग्रहण कीजिये। अमुकशर्मा मैं अमुकशर्मा आप को यह सुवर्णलिङ्गसहित पात्र समुद्रमेखला-पृथिवी-दान की फलकामना से दे रहा हूँ यह मेरा नहीं है, इस आशय का संकल्प कर ब्राह्मण के हाथ में जल दे दे। ब्राह्मण 'देवस्यत्वा' इत्यादि मन्त्र से प्रतिग्रहण करे। दाता 'दान की संपूर्णता के लिए इस दक्षिणा को देता हूँ' ऐसा कह कर यथाशक्ति सुवर्ण की दक्षिणा दे।

हेमाद्र्याद्युक्तः प्रकारान्तरेणार्धोदयव्रतप्रयोगो ब्रह्मादियुततिलपर्वतत्रयशय्या-त्रयगोत्रयदानहोमादिसहितः कौस्तुभे द्रष्टव्यः। इति पौषमासकृत्यनिर्णयोद्देशः।

हेमाद्रि आदि में कहा हुआ दूसरे प्रकार का अर्धोदय व्रत का प्रयोग—ब्रह्मा आदि से युक्त तीन तिलपर्वत तथा तीन शय्या और तीन गोदान होम आदि सहित कौस्तुभ आदि में देखना चाहिये। पौषमासकृत्यनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ माघमासे कुम्भसंक्रान्तिः

कुम्भसंक्रान्तौ पूर्वं षोडश नाड्यः पुण्याः। माघे वेणीस्नानमहिमा।

---

१. स्कन्दपुराणे—'एवं सुघटितं कार्यं कांस्यभाजनमुत्तमम्। निधाय पायसं तत्र पद्ममष्टदलं लिखेत्॥ पद्मस्य कर्णिकायां तु कर्षमात्रं सुवर्णकम्। तदभावे तदर्धं वा तदर्धं वापि कारयेत्॥ भूमौ तु तण्डुलैः शुद्धैः कृत्वाऽष्टदलमुत्तमम्। अमत्रं स्थापयेत्तत्र ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्॥ तेषां पूजा ततः कार्या श्वेतमाल्यैश्च शोभनैः। वस्त्रादिभिरलंकृत्य ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥' इति।

सितासिते तु यत्स्नानं माघमासे युधिष्ठिर ।
न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥
कुरुक्षेत्रसमा गङ्गा यत्र कुत्रावगाहिता ।
तस्माद्दशगुणा विन्ध्ये काश्यां शतगुणा ततः ॥
काश्याः शतगुणा प्रोक्ता गंगायमुनयाऽन्विता ।
सहस्रगुणिता सापि माघे पश्चिमवाहिनी ॥

कुम्भसंक्रान्ति में पहिले की सोलह घड़ियां पुण्यकाल होता है । माघ में प्रयाग में श्वेत कृष्ण गङ्गा यमुना के संगम में जो स्नान करते हैं उनका सैकड़ों करोड़ कल्प तक भी जन्म नहीं होता, ऐसा कृष्ण भगवान् ने युधिष्ठिर जी से कहा है । जहाँ कहीं माघ में गंगास्नान करने से कुरुक्षेत्र स्नान के समान पुण्य होता है, इससे दशगुणित फल विन्ध्यस्थित गंगास्नान से मिलता है तथा काशी में गंगास्नान से सौगुना फल प्राप्त होता है । काशी गंगास्नान से सौगुना फल, गङ्गा यमुना के संगम में स्नान करने से मिलता है । माघ में पश्चिमवाहिनी गंगा के स्नान से तो हजार गुना अधिक पुण्य लाभ होता है ।

अथ माघे तिलपात्रदानं प्रशस्तम् । तत्प्रयोगः—

ताम्रपात्रे तिलान्कृत्वा पलषोडशनिर्मिते ।
सहिरण्यं स्वशक्त्या वा विप्राय प्रतिपादयेत् ॥

'वाङ्मनःकायजत्रिविधपापनाशपूर्वकं ब्रह्मलोकप्राप्तिकामस्तिलपात्रदानं करिष्ये ।' उक्तपरिमाणे ताम्रपात्रे प्रस्थतिलान् कर्षसुवर्णयुतान् यथाशक्ति सुवर्ण-युतान् वा कृत्वा विप्रं संपूज्य,

देवदेव जगन्नाथ वाञ्छितार्थफलप्रद ।
तिलपात्रं प्रदास्यामि तवाग्रे संस्थितो ह्यहम् ॥ इति मन्त्रेण दद्यात् ।

माघ में तिलपात्र का दान अत्युत्तम है । इसका प्रयोग इस प्रकार है—सोलह पल के तौल से बनाये ताम्रपात्र में तिल रखके अपने सामर्थ्य के अनुसार सुवर्ण के साथ ब्राह्मण को देवे । इसमें 'वाणी, मन और शरीर से उत्पन्न तीन तरह के पाप-नाश-पूर्वक ब्रह्मलोक पाने की कामना से मैं तिलपात्र का दान करूँगा' ऐसा संकल्प कर पूर्वोक्त तौल वाले ताम्रपात्र में एक सेर तिल रखके एक सुवर्ण के साथ अथवा अपनी शक्ति के अनुसार सोना रखके ब्राह्मण की पूजा कर 'देवदेव जगन्नाथ' इत्यादि मन्त्र से देवे ।

कुडवादिधान्यमानानि—

धान्यमाने तु कुडवो मुष्टीनां स्याच्चतुष्टये ।
चत्वारः कुडवाः प्रस्थश्चतुःप्रस्थमथाढकम् ॥
अष्टाढको भवेद् द्रोणो द्विद्रोणः शूर्प उच्यते ।
सार्धशूर्पो भवेत् खारी, इत्युक्तरीत्या—
पलं सुवर्णाश्चत्वारः कुडवं प्रस्थमाढकम् ।
द्रोणं च खारिका चेति पूर्वंपूर्वाच्चतुर्गुणम् ॥

इत्युक्तरीत्या वा प्रस्थमानस्वरूपं ज्ञेयम्। यद्वा हिरण्यरहितांस्तिलांस्ताम्रपात्रे निधाय,

तिलाः पुण्याः पवित्राश्च सर्वपापहराः स्मृताः।
शुक्लाश्चैव तथा कृष्णा विष्णुगात्रसमुद्भवाः॥
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च।
तिलपात्रप्रदानेन तानि नश्यन्तु मे सदा॥

'इदं तिलपात्रं यथाशक्ति दक्षिणासहितं यमदैवतं ब्रह्मलोकप्राप्तिकामस्तुभ्यमहं संप्रददे' इति दद्यात्।

चार मुट्ठी धान्यका एक कुडव, चार कुडव का प्रस्थ (सेर), चार प्रस्थ का एक आढक, आठ आढक का एक द्रोण, दो द्रोण का एक सूप तथा डेढ़ सूप की एक खारी; इस रीति से अथवा चार सुवर्ण का एक पल, कुडव, प्रस्थ, आढक, द्रोण और खारी नाप है, जो पहले से दूसरे आदि चौगुने होते हैं इस रीति से प्रस्थ का मान और स्वरूप जानना चाहिये। या सोने के विना तिलों को ताम्रपात्र में रख कर 'तिलाः पुण्याः पवित्राश्च' इत्यादि मूलोक्त मन्त्रों को कह कर 'यमदेवता का यह तिलपात्र यथाशक्ति दक्षिणा के साथ ब्रह्मलोकप्राप्ति की कामना से आप को मैं देता हूँ' ऐसा संकल्प करके ब्राह्मण को देदे।

अथ हिरण्यतुलसीपत्रदानमन्त्रः—

सुवर्णतुलसीदानाद् ब्रह्मणः कार्यसंभवात्।
पापं प्रशममायातु सर्वे सन्तु मनोरथाः॥

अथ शालग्रामदानमन्त्रः—

शालग्रामशिला पुण्या भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी।
शालग्रामप्रदानेन मम सन्तु मनोरथाः॥
चक्राङ्कितसमायुक्ता शालग्रामशिला शुभा।
दानेनैव भवेत्तस्या उभयोर्वाञ्छितं फलम्॥

सुवर्ण-तुलसीपत्र-दान का मंत्रार्थ—सुवर्ण के तुलसीपत्र के दान से ब्रह्माके कार्य की सम्भावना से समग्र-पाप शान्त हों और सब मनोरथ पूर्ण हों। शालग्राम के दान का मन्त्रार्थ-पुण्यदायिका शालग्रामशिला जो भुक्ति और मुक्ति को देने वाली है, उसके दान से मेरे सकल मनोरथ पूर्ण हों। चक्र से चिह्नित शुभदा शालग्रामशिला के दान से दाता प्रतिग्रहीता दोनों की मनोवाञ्छित सिद्धि होती है।

अथ प्रयागे वेणीदानम्

तत्र सर्वेषां वपनविधिः—

ऊर्ध्वमब्दाद् द्विमासोनाद्यदा तीर्थं व्रजेन्नरः।
तदा तद्वपनं शस्तं प्रायश्चित्तमृते द्विज॥

प्रयागे तु योजनत्रयादागतस्य दशमासादर्वागपि प्रथमयात्रायां तु जीवत्पितृकगुर्विणीपतिकृतचूडबालानामपि सभर्तृकस्त्रीणामपि वपनमिति विशेषः। केचित्तु सभर्तृकस्त्रीणां 'सर्वान्केशान्समुद्धृत्य छेदयेदङ्गुलद्वयम्' इत्याहुः।

प्रयाग में वेणीदान दो महीने कम सालभर के बाद जब तीर्थ करने जाय तब प्रायश्चित के बिना बालों का मुण्डन प्रशस्त है। प्रयाग में तो तीन योजन से तीर्थ करने वालों को दस महीने के पहिले भी पहिली यात्रा में जिसके पिता जीते हों, गर्भवती स्त्री का पति, जिन बालकों का मुण्डन संस्कार हो गया हो और सौभाग्यवती स्त्रियों का भी क्षौर होता है, यही प्रयाग की विशेषता है। कुछ लोग तो सौभाग्यवती स्त्रियों के सब बाल इकट्ठा पकड़ कर केवल दो अंगुल काट दे, ऐसा कहते हैं।

तत्प्रयोगः—वेणीभूतकेशा कृतमाङ्गलिकवेषा स्त्री भर्तारं नत्वा तदाज्ञया सर्ववपनं द्वयङ्गुलकेशच्छेदं वा कृत्वा स्नात्वा त्रिवेणीपूजां कुर्याद् भर्त्रा वा कारयेत्। पूजान्ते पत्नी छिन्नवेणीयुक्तं वैणवपात्रमञ्जलौ धृत्वा तस्या हैमवेणीं मौक्तिकादिकं च निधाय,

वेण्यां वेणीप्रदानेन मम पापं व्यपोहतु।
जन्मान्तरेष्वपि सदा सौभाग्यं मम वर्धताम्॥ इति त्रिवेण्यां क्षिपेत्।

विप्राः सुमङ्गलीरियं वधूरिति पठेयुः। ततो विप्रान् सुवासिनीश्च वस्त्रादिना तोषयेत्।

केशों की वेणी बनाकर माङ्गलिक वेष धारण कर स्त्री अपने पति को प्रणाम करके पति की आज्ञा से सम्पूर्ण केशों को या दो अङ्गुल केश को काटकर स्नानकर त्रिवेणीकी पूजा करे। अथवा पति से पूजा करावे। पूजा के अनन्तर पत्नी कटे हुए केशोंको बांसके पात्र में अँजुरी में रखकर उसमें सुवर्ण या मोती आदि की वेणी रखकर 'वेण्यां वेणीप्रदानेन' इत्यादि मन्त्र को कहकर त्रिवेणी में फेंक दे। ब्राह्मणगण 'सुमङ्गलीरियं वधूः' यह मन्त्र पढ़े। तदनन्तर ब्राह्मण और सुहागिन स्त्रियों को वस्त्र आदि के दान से प्रसन्न करे।

अथ त्रिवेण्यां देहत्यागविधिः

'ये वै तन्वं विसृजन्ति धीरास्ते जनासो अमृतत्वं भजन्ते' इति श्रुतिर्माघमासविषया। 'तनुं त्यजति वै माघे तस्य मुक्तिर्न संशयः' इति ब्राह्मोक्तेः। अन्यमासे तनुत्यागात्स्वर्गप्राप्तिः। तत्र यथाशक्तिसर्वप्रायश्चित्तं कृत्वा श्राद्धाधिकार्यभावे स्वीयजीवच्छ्राद्धं सपिण्डनान्तं कृत्वा गोदानादि कृत्वा कृतोपवासः पारणाहे फलोल्लेखपूर्वकं संकल्प्य विष्णुं ध्यात्वा वेणीं प्रविशेदिति। जीवच्छ्राद्धप्रयोगः कौस्तुभे द्रष्टव्यः।

जो माघ में शरीर का त्याग प्रयाग में करते हैं उनकी मुक्ति निस्सन्देह होती है। दूसरे महीनों में शरीरत्याग से स्वर्ग पाता है। इसमें शक्ति के अनुसार सर्व-प्रायश्चित्त करके श्राद्ध करने वाला न हो तो अपना जीवितश्राद्ध सपिण्डनपर्यन्त करके गोदान आदि और उपवास करके पारणा के दिन फल का उल्लेखपूर्वक संकल्प करके विष्णु भगवान् का ध्यान कर त्रिवेणी में प्रवेश करे। जीवितश्राद्धका विधान, कौस्तुभ में देखना चाहिये।

अथ माघे तिलस्नानादि

माघं प्रकृत्य—

तिलस्नायी तिलोद्वर्ती तिलहोमी तिलोदकी।
तिलभुक् तिलदाता च षट् तिलाः पापनाशनाः॥

इत्युक्ते वाक्ये तिलस्नायिपदेन तिलयुक्तोदकेन स्नानम्। तिलहोमपदेनायुत-लक्षतिलहोमाद्यात्मकस्य ग्रहमखस्यापि संग्रहः। तिलोदकीति पदेन तिलयुक्तोदकेन देवपूजातर्पणसंध्यादिकं पानं च कार्यमित्यर्थः। स च होमस्त्रिधा—

प्रथमोऽयुतहोमः स्याल्लक्षहोमस्ततः परः।
कोटिहोमस्तृतीयस्तु सर्वकामफलप्रदः॥ इति।

लक्षहोमादिप्रयोगः कुण्डमण्डपनिर्माणादिसहितः कौस्तुभमयूखादौ ज्ञेयः।

माघ को लेकर—तिलसहित जल से स्नान, तिल का उबटन, तिलका होम, तिल से जल-दान, तिलका भोजन, तिल का दान, ये छ कर्म पाप का नाश करने वाले हैं। इस कहे हुए वाक्य में 'तिलस्नायी' इस पद से तिलयुक्त जल से स्नान यह अर्थ है। 'तिलहोम' पद से दस हजार अथवा लाख तिल का हवन वाला ग्रहयज्ञ का भी ग्रहण है। 'तिलोदकी' इस पद से तिलयुक्त जल से देवपूजा, तर्पण, संध्या आदि कर्म और पीने के जल के ग्रहण का तात्पर्य है। वह तिलका होम तीन प्रकार का होता है—पहिला दस हजार तिल का हवन, दूसरा लाख तिलका और तीसरा करोड़ तिल का होम, जो अखिल कामना के फल को देता है। कुण्ड-मण्डप-निर्माणादि सहित लाख होम आदि का विधान, कौस्तुभ और मयूख आदि से जानना चाहिये।

अथ माघशुक्लचतुर्थ्यां ढुण्ढिराजव्रतम्

माघशुक्लचतुर्थ्यां [1]ढुण्ढिराजोद्देशेन नक्तव्रतं तत्पूजा तिललड्डुकादिनैवेद्यं तिलभक्षणं चोक्तम्। अत्र प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या। अस्यामेव प्रदोषव्यापिन्यां कुन्द-पुष्पैः शिवं संपूज्योपवासं नक्तभोजनं वा कुर्यात्, श्रियं प्राप्नुयात्। अत्र [2]विना-यकव्रतस्य तु भाद्रशुक्लचतुर्थीवन्निर्णयः।

माघशुक्ल चतुर्थी में ढुण्ढिराज-गणेश के उद्देश से नक्तव्रत किया जाता है। श्रीढुण्ढिराज का पूजन तिलके लड्डु आदि का नैवेद्य और तिल का भोजन भी कहा है। इसमें प्रदोषव्यापिनी चतुर्थी ग्रहण-योग्य है। इसी प्रदोषव्यापिनी चतुर्थी में कुन्द के फूलों से श्रीशङ्कर जी का पूजन कर उपवास या नक्त (रात्रि) भोजन करे, इससे लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। इसमें विनायकव्रत का तो भाद्रशुक्ल चतुर्थी के तुल्य निर्णय है।

---

१. काशीखण्डे—'माघशुक्लचतुर्थ्यां तु नक्तव्रतपरायणाः। ये त्वां ढुण्ढेऽर्चयिष्यन्ति तेऽर्च्याः स्युरसुरद्रुहाम्॥' इस तिथि में तिल-भक्षण की महत्ता से इसका नाम तिलचतुर्थी है और इसमें कुन्द-पुष्पों से शिव की पूजा की जाती है इसलिये इसे कुन्दचतुर्थी भी कहते हैं। कूर्मपुराणे—'माघशुक्लचतुर्थ्यां तु कुन्दपुष्पैः सदाशिवम्। सम्पूज्य यो हि नक्ताशी स प्राप्नोति श्रियं नरः॥' इति।

२. माघकृष्ण चतुर्थी गणेशचतुर्थी में गणेश की उत्पत्ति शिवधर्म में वर्णित है—'सर्वदेव-मयः साक्षात् सर्वमङ्गलकारकः। माघकृष्णचतुर्थ्यां तु प्रादुर्भूतो गणाधिपः॥' यह तृतीयायुता ग्राह्य है। यथा बृहस्पतिः—'चतुर्थी गणनाथस्य मातृविद्धा प्रशस्यते।'

यदि उभय दिन मध्याह्नव्यापिनी हो तो तृतीया-विद्धत्व-गुण के सद्भाव से पूर्व दिन की और उत्तर-दिनमात्र में मध्याह्नव्यापिनी हो तो पंचमी से विद्ध भी उत्तर दिन की ही ग्राह्य है। स्मृत्यन्तरे—'मातृविद्धा प्रशस्ता स्याच्चतुर्थी गणनायके। मध्याह्ने परतश्चेत्स्यान्नागविद्धा प्रशस्यते॥' इति।

अथ वसन्तपंचमी

माघशुक्लपञ्चमी [1]वसन्तपञ्चमी। तस्यां वसन्तोत्सवारम्भः। अस्यां रतिकामयोः पूजोक्ता। इयं परत्रैव पूर्वाह्णव्याप्तौ परा, अन्यथा पूर्वैव।

माघशुक्ल पञ्चमी वसन्तपञ्चमी है, इसमें वसन्तोत्सव का आरम्भ होता है। इसमें रति और कामदेव का पूजन कहा है। यह दूसरे ही दिन पूर्वाह्णव्यापिनी हो तो परा ग्राह्य है, ऐसा न होने पर पूर्वा लेनी चाहिये।

अथ रथसप्तमी

माघशुक्लसप्तमी[2] रथसप्तमी। साऽरुणोदयव्यापिनी ग्राह्या। दिनद्वयेऽरुणोदयव्याप्तौ पूर्वा। यदा घटिकादिमात्रा षष्ठी सप्तमी च क्षयवशादरुणोदयात्पूर्वं समाप्यते तदा षष्ठीयुक्ता ग्राह्या। तत्र षष्ठ्यां सप्तमीक्षयघटीः प्रवेश्यारुणोदये स्नानं कार्यम्। अत्र व्रते षष्ठ्यामेकभक्तं कृत्वा सप्तम्यामरुणोदये स्नानं कार्यम्। तत्र मन्त्रः—

---

१. पुराणसमुच्चये—'माघमासे नृपश्रेष्ठ शुक्लायां पञ्चमीतिथौ। रतिकामौ तु सम्पूज्य कर्तव्यः सुमहोत्सवः॥ दानानि च प्रदेयानि तेन तुष्यति माधवः॥' यह हेमाद्रिमत से पर और माधवमत से पूर्व का ग्राह्य है।

इसका नाम श्रीपञ्चमी भी है। वाराहपुराणे—'माघशुक्लचतुर्थ्यां तु वरमाराध्य च श्रियः। पञ्चम्यां कुन्दकुसुमैः पूजां कुर्यात् समृद्धये॥' श्रीपंचमी में वाग्देवता श्रीसरस्वती की पुस्तक या मृन्मयादि-प्रतिमा में पूजा करनी चाहिये। भविष्यपुराण में प्रतिमा निर्माण के द्रव्य—'अनुक्तद्रव्यतत्संख्या देवताप्रतिमा नृप। सौवर्णी राजती ताम्री वृक्षजा मार्तिका तथा॥ चित्रजा पिष्टलेपोत्था निजवित्तानुरूपतः। आमाषात्पलपर्यन्ता कर्तव्या शाठ्यवर्जितैः॥' इति।

२. विष्णुः—'सूर्यग्रहणतुल्या तु शुक्ला माघस्य सप्तमी। अरुणोदयवेलायां तस्यां स्नानं महाफलम्॥ अरुणोदयवेलायां शुक्ला माघस्य सप्तमी। प्रयागे यदि लभ्येत कोटिसूर्यग्रहैः समा॥' इस तिथि में शिर पर सात अर्कपत्र (अकवन मदार के पत्ते) और बैर के पत्ते रखकर अरुणोदय में मूलोक्त-मन्त्र पढ़ कर स्नान करे।

इसमें रथवर (सूर्य) का पूजन आदि किया जाता है इसलिये इसे रथसप्तमी कहते हैं। भविष्योत्तरे—'एवंविधं रथवरं रथवाजियुक्तं हैमं च हैमगतदीधितिना समेतम्। दद्याच्च माघसितसप्तमिवासरे यः सोऽसङ्गचक्रगतिरेव महीं भुनक्ति॥' दिवोदास के—'अचला सप्तमी दुर्गा शिवरात्रिर्महाभरः। द्वादशी वत्सपूजायां सुखदा प्राग्युता सदा॥' इस वचन से इस तिथि का अचला सप्तमी नाम से निर्णय किया जाता है अतः इसे अचला-सप्तमी भी कहते हैं। स्वर्ण-निर्मित-सूर्य का पूजन, अर्घ्य और दान के मन्त्र अन्यत्र देखें।

जब इस तिथि में रविवार पड़ जाय तो यह विजया-सप्तमी या संक्रान्ति हो तो महाजया सप्तमी कहलाती है और दान का महाफल है। 'शुक्लपक्षस्य सप्तम्यां सूर्यवारो यदा भवेत्। सप्तमी विजया नाम तत्र दत्तं महाफलम्॥' भास्करपुराणे—'शुक्लपक्षस्य सप्तम्यां यदा संक्रमते रविः। तदा महाजया प्रोक्ता सप्तमी भास्करप्रिया॥ स्नानं दानं तपो होमः पितृदेवाभिपूजनम्। सर्वं कोटिगुणं प्रोक्तं भास्करस्य वचो यथा॥' इति। देवीपुराण में अरुणोदयादि-समय का निर्देश—'चतस्रो घटिकाः प्रातररुणोदय उच्यते।' 'पञ्च पञ्च उषःकालः सप्तपञ्चारुणोदयः। अष्ट पञ्च भवेत् प्रातः शेषः सूर्योदयो मतः॥' इति।

यदा जन्मकृतं पापं मया जन्मसु जन्मसु ।
तन्मे रोगं च शोकं च माकरी हंतु सप्तमी ॥
एतज्जन्मकृतं पापं यच्च जन्मान्तरार्जितम् ।
मनोवाक्कायजं यच्च ज्ञाताज्ञाते च ये पुनः ॥
इति सप्तविधं पापं स्नानान्मे सप्तसप्तिके ।
सप्तव्याधिसमायुक्तं हर माकरि सप्तमी ॥ अथार्घ्यमन्त्रः—
सप्तसप्तिवहप्रीत सप्तलोकप्रदीपन ।
सप्तमीसहितो देव गृहाणार्घ्यं दिवाकर ॥ इति ।

इयं च मन्वादिरपि । शुक्लपक्षमन्वादित्वात्पौर्वाह्णिकी ग्राह्येत्युक्तम् ।

माघशुक्ल सप्तमी रथसप्तमी कहलाती है। यह अरुणोदयव्यापिनी ग्राह्य है। दोनों दिन अरुणोदयव्यापिनी होने पर पूर्वा ग्रहणयोग्य है। जब एक घड़ी तक षष्ठी हो और सप्तमी क्षय के कारण अरुणोदय के पहिले ही समाप्त होती हो तो षष्ठीयुक्त लेनी चाहिये। इसमें षष्ठी में सप्तमी की क्षयघटी को प्रविष्ट कर अरुणोदय में स्नान कर्तव्य है। इस व्रत में षष्ठी में एकभक्तव्रत करके सप्तमी में अरुणोदय में स्नान करे। उसका मन्त्रार्थ यह है—जो जन्म से लेकर प्रत्येक जन्मों में पाप किये हैं, उससे जो रोग और शोक मेरे हों उसे मकर की सप्तमी नष्ट करे। इस जन्म का किया पाप और जो दूसरे जन्मों में मन से वाणी से और शरीर से पाप किये हों तथा जो जाना अनजाना पाप हो, इस प्रकार सात तरह के पापों को इस रथसप्तमी के स्नान से हे मकर की सप्तमी! तुम हरण करो। अर्घ्य का 'सप्तसप्तिवह' इत्यादि मन्त्र है। यह सप्तमी मन्वादि तिथि भी है। शुक्लपक्ष की मन्वादि-तिथि होने से यह पूर्वाह्णव्यापिनी ग्राह्य है, ऐसा कह चुके हैं।

माघशुक्लाष्टमी 'भीष्माष्टमी। अस्यां भीष्मोद्देशेन ये श्राद्धं कुर्वन्ति ते सन्ततिमन्तो भवन्ति। तत्र श्राद्धं काम्यं तर्पणं तु नित्यम्। तर्पणे कृते संवत्सरोपात्तदुरितनाशः, अकृते पुण्यनाश इत्युक्तेः। तत्र तर्पणमन्त्रः—

वैयाघ्रपद्यगोत्राय सांकृत्यप्रवराय च ।
गङ्गापुत्राय भीष्माय आजन्मब्रह्मचारिणे ॥
अपुत्राय जलं दद्मि नमो भीष्माय वर्मणे ।
भीष्मः शान्तनवो वीरः सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥
आभिरद्भिरवाप्नोतु पुत्रपौत्रोचितां क्रियाम्। इति ।

एवमपसव्येन तर्पणं कृत्वाचम्य सव्येनार्घ्यं दद्यात्—

---

१. पद्मपुराणे—'माघे मासि सिताष्टम्यां सतिलं भीष्मतर्पणम्। श्राद्धं च ये नराः कुर्युस्ते स्युः सन्ततिभागिनः ॥' महाभारते—'शुक्लाष्टम्यां तु माघस्य दद्याद् भीष्माय यो जलम्। संवत्सरकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥' इन वचनों से भीष्म के तर्पण में सभी वर्णों का अधिकार है। मदनरत्न में तर्पण नहीं करने से दोष कहा—'ब्राह्मणाद्याश्च ये वर्णा दद्युर्भीष्माय नो जलम्। संवत्सरकृतं तेषां पुण्यं नश्यति सत्तम ॥' इति।

वसूनामवताराय शन्तनोरात्मजाय च ।
अर्घ्यं ददामि भीष्माय आबाल्यब्रह्मचारिणे ॥ इति ।

अत्र जीवत्पितृकस्य नाधिकार इति कौस्तुभः । जीवत्पितृकस्याप्यधिकार इति बहवः । अत्र मध्याह्नव्यापिनी अष्टमी ग्राह्या, श्राद्धादेरेकोद्दिष्टत्वादिति ।

माघशुक्ल की अष्टमी भीष्माष्टमी होती है । इसमें श्रीभीष्म के उद्देश से जो श्राद्ध करते हैं वे सन्तान वाले होते है । इससे श्राद्ध काम्य है और तर्पण तो नित्य है । तर्पण करने से साल भरके पाप का नाश होता है । तर्पण नहीं करने से पुण्य का नाश होता है, ऐसा शास्त्रों का कथन है । इसमें तर्पण के 'वैयाघ्रपद्यगोत्राय' इत्यादि मूलोक्त मंत्र है । इनसे अपसव्य होकर तर्पण करके आचमन करके सव्य होकर अर्घ्य प्रदान करे । अर्घ्य का 'वसूनायमवताराय' इत्यादि मूलोक्त मंत्र है । इसमें जिसके पिता जीवित हों उसका अधिकार नहीं है, ऐसा कौस्तुभकार का मत है । जीवितपितृक का भी अधिकार है, ऐसा बहुतों का कहना है । एकोद्दिष्ट श्राद्ध आदि होने से इसमें मध्याह्नव्यापिनी अष्टमी ग्राह्य है ।

माघशुक्लद्वादश्यां[1] तिलोत्पत्तिरतोऽस्यामुपोष्य तिलस्नानं तिलैर्विष्णुपूजनं तिलनैवेद्यं तिलतैलेन दीपदानं तिलहोमस्तिलदानं तिलभक्षणं कार्यम् । माघी पूर्णिमा[2] परा । अत्र कृत्यम्—

एवं माघावसाने तु देयं भोज्यमवारितम् ।
भोजयेद् द्विजदांपत्यं भूषयेद्वस्त्रभूषणैः ॥

कम्बलाजिनरक्तवस्त्राणि तूलगर्भंचोलकानि उपानहौ प्रच्छादनपटाश्चैतानि माधवः प्रीयतामित्युक्त्वा देयानि ।

माघशुक्ल द्वादशी में तिलकी उत्पत्ति हुई है इसलिये इसमें उपवास करे और तिल से स्नान, तिलों से श्रीविष्णु का पूजन, तिलका नैवेद्य, तिलके तेल से दीपदान, तिलका दान और तिल खाना चाहिये । माघ की पूर्णिमा परा लेनी चाहिये । इसमें कृत्य हैं—इस प्रकार माघ की समाप्ति में भोज्य-वस्तु विना रुकावट के देना चाहिये । इसी तरह ब्राह्मण स्त्री-पुरुष के जोडे को खिलावे

---

१. माघशुक्ल द्वादशी भीष्मद्वादशी है । यथा पद्मपुराणे—'त्वया कृतमिदं वीर तव नाम्ना भविष्यति । सा भीष्मद्वादशीत्येषा सर्वपापहरा शुभा ।।' इसमें भीष्म के उद्देश से श्राद्ध एवं तर्पण करना चाहिये ।

२. ब्रह्मवैवर्ते—'भूतविद्धे न कर्तव्ये दर्शपूर्णे कदाचन ।' योगविशेष से माघ की पूर्णिमा कभी महामाघी हो जाती है । ब्रह्मपुराणे—'मघास्थयोश्च जीवेन्द्वोर्महामाघीति कथ्यते ।' ज्योतिषे—'मेषपृष्ठे तथा सौरिः सिंहे च गुरुचन्द्रमाः । भास्करः श्रवणर्क्षे च महामाघीति सा स्मृता ।।'

इसी प्रकार सिंहस्थ-गुरु में फाल्गुन की पूर्णिमा फाल्गुनीनक्षत्र से युक्त होने पर महाफाल्गुनी और सिंहस्थ-गुरु में चैत्र की पूर्णिमा चित्रानक्षत्र से युक्त होने सर महाचैत्री होती है ।

इसी तरह सभी मासों की पूर्णिमा माससंज्ञक नक्षत्र और गुरु के योग से महा हो जाती है । जैसा कि राजमार्तण्ड में कहा—'माससंज्ञे यदा ऋक्षे चन्द्रः सम्पूर्णमण्डलः । गुरुणा याति संयोगं सा तिथिर्महती स्मृता ॥'

भविष्यपुराण में—'वैशाखी कार्तिकी माघी तिथयोऽतीव पूजिताः । स्नानदानविहीनास्ता न नेयाः पाण्डुनन्दन ॥' तथा—'तिलपात्राणि देयानि कञ्चुकाः कम्बलास्तथा ।' इति ।

और भूषण वस्त्र से भूषित करे। कम्बल, मृगचर्म, लालरंग का वस्त्र, रूई, चोली, जूते, ओढ़ने का वस्त्र, सबको 'माधवः प्रीयताम्' ऐसा कहकर ब्राह्मण को देवे।

अथ माघस्नानोद्यापनम्

'अत्र कृतस्य माघस्नानस्य साङ्गतार्थमुद्यापनं करिष्ये' इति संकल्प्य,

सवित्रे प्रसवित्रे च परं धाम जले मम।
त्वत्तेजसा परिभ्रष्टं पापं या तु सहस्रधा॥
दिवाकर जगन्नाथ प्रभाकर नमोस्तु ते।
परिपूर्णं करिष्येऽहं माघस्नानं तवाज्ञया॥

इति मन्त्राभ्यामपि संकल्पः कार्यः। एवं चतुर्दश्यां संकल्पोपवासाधिवासनमाधवपूजनानि कृत्वा पूर्णिमायां तिलचर्वाज्यैरष्टोत्तरशतहोमं कृत्वा तिलशर्करागर्भत्रिंशन्मोदकात्मकं वायनं देयम्। तत्र मन्त्रौ—

सवितः प्रसवस्त्वं हि परं धाम जले मम।
त्वत्तेजसा परिभ्रष्टं पापं यातु सहस्रधा॥
दिवाकर जगन्नाथ प्रभाकर नमोस्तु ते।
परिपूर्णं कुरुष्वेह माघस्नानमुषःपते॥ इति।

यहाँ किये गये माघस्नान की सांगतासिद्धि के लिये उद्यापन करूँगा' ऐसा संकल्प करके "सवित्रे प्रसवित्रे च परं धाम' इत्यादि इन दोनों मन्त्रों से भी संकल्प करे। इसी प्रकार चतुर्दशी में संकल्प, उपवास, अधिवासन और माधव का पूजन करके पूर्णिमा में तिल चरु और घी से १०८ होम करके चीनी में तिल के लड्डू बनाकर वायन देवे। इसमें 'सवितः प्रसवस्त्वं हि' इत्यादि मूलोक्त दो मंत्र हैं।

ततो दम्पत्योः सूक्ष्मवाससी सप्तधान्यानि च दत्त्वा ब्राह्मणेभ्यो दाम्पत्याय च षड्रसभोजनं देयम्। तत्र मन्त्रः—

सूर्यो मे प्रीयतां देवो विष्णुमूर्तिर्निरञ्जनः। इति।
एवं माघप्लवी याति भित्त्वा देवं दिवाकरम्।
परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः॥ इति।

इसके बाद पति-पत्नी को महीन एक जोड़े वस्त्र और सप्तधान्य देकर ब्राह्मणों को तथा जोड़े स्त्री-पुरुषों को छः रस का भोजन करावे। इसमें 'सूर्यो मे प्रीयतां' इत्यादि मंत्रों का अर्थ है—इस प्रकार माघरूपी नौका पर चढ़कर सूर्यभगवान् को भेदन करके संन्यासी योगी और संग्राम में जो सामने मरता है, इस प्रकार माघ में नहाने वाले सब स्वर्गगामी होते हैं।

माघकृष्णाष्टम्यां चतुरष्टकाकरणाशक्त एकाष्टकां पूर्वेद्युःश्राद्धान्वष्टक्यश्राद्धसंहितां कुर्यात्। दिनत्रये कर्तुमशक्तोऽष्टम्यामेवैकामष्टकां कुर्यात्।

माघकृष्ण अष्टमी में चार अष्टका करने में असमर्थ व्यक्ति एक अष्टका, पूर्वेद्युःश्राद्ध और अन्वष्टकाश्राद्ध के साथ करे। तीन दिन में करने की शक्ति न हो तो एक दिन में केवल अष्टमी में ही करे।

अथ शिवरात्रिः

'सा निशीथव्यापिनी ग्राह्या। निशीथस्तु रात्रेरष्टमो मुहूर्त इत्युक्तम्। तत्र परदिन एवार्धरात्रौ परा। पूर्वत्रैव तद्व्याप्तौ पूर्वा। दिनद्वयेप्यर्धरात्रव्याप्त्यभावेऽपि परैव। दिनद्वये कार्त्स्न्येनैकदेशेन वार्धरात्रव्याप्तौ पूर्वेति हेमाद्र्याशयानुसारी कौस्तुभः। परैवेति माधवनिर्णयसिन्धुपुरुषार्थचिन्तामण्यादयो बहवः। परेद्युर्निशीथैकदेशव्याप्तौ पूर्वेद्युः संपूर्णतद्व्याप्तौ पूर्वैव। पूर्वदिने निशीथैकदेशव्याप्तौ परदिने संपूर्णतद्व्याप्तौ परैव। इदं व्रतं रविवारभौमवारयोगे शिवयोगयोगे चातिप्रशस्तम्[२]।

शिवरात्रि आधी रात में रहने वाली ग्राह्य है। निशीथ (आधी रात) तो रात के आठवें मुहूर्त को कह चुके हैं। इसमें यदि दूसरे दिन ही आधी रात में हो तो परा ही ग्रहण करे और यदि पूर्वदिन ही

---

१. लिङ्गपुराण में शिवरात्रिव्रत का महत्त्व—'फाल्गुनस्य चतुर्दश्यां कृष्णपक्षे समाहिताः। कृत्तिवासेश्वरं लिङ्गमर्चयन्ति शिवं शुभे॥ ते यान्ति परमं स्थानं सदाशिवमनामयम्।' ईश्वरसंहिता में यमराज से शिव का कथन—'वेदसारेण संपूज्य शिवरात्रौ महेश्वरम्। शिवरात्रिव्रतं कृत्वा ब्रह्मा ब्रह्मत्वमागतः॥ विद्यासारेण मन्त्रेण शिवरात्रौ महेश्वरम्। शिवरात्रिव्रतं कृत्वा विष्णुर्विष्णुत्वमागतः॥ शिवरात्रौ शिवं पूज्य मृत्युमोचनविद्यया। कल्पायुरभवत् पूर्वं मार्कण्डेयो महामुनिः॥ अष्टौ च वसवः पूर्वं रुद्रा एकादश स्मृताः। वेदसारेण मां पूज्य सर्वे देवत्वमागताः॥ बहुनाऽत्र किमुक्तेन सारभूतं वचः शृणु। आचाण्डालं मनुष्याणां पापसंदहनक्षमम्॥'

इस व्रत के निर्णायक वचनों में कहीं प्रदोषव्यापिनी और कहीं निशीथव्यापिनी चतुर्दशी को ग्राह्य कहा है। प्रदोषव्यापिनी के सम्बन्ध में माधवोदाहृत स्मृत्यन्तर—'प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रिचतुर्दशी। रात्रौ जागरणं यस्मात्तस्मात्तां समुपोषयेत्॥' 'रात्रौ जागरणं यस्मात्' इस हेतुवचन के वश से यहाँ प्रदोषशब्द रात्रिपरक है। तथा—'आदित्यास्तमये काले अस्ति चेद् या चतुर्दशी। तद्रात्रिः शिवरात्रिः स्यात्सा भवेदुत्तमोत्तमा॥' इति।

निशीथव्यापिनी के सम्बन्ध में नारदसंहिता का वचन—'अर्धरात्रियुता यत्र माघकृष्णचतुर्दशी। शिवरात्रिव्रतं तत्र सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥' ईशानसंहिता—'माघकृष्णचतुर्दश्यामादिदेवो महानिशि। शिवलिङ्गतयोद्भूतः कोटिसूर्यसमप्रभः॥ तत्कालव्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रिव्रते तिथिः।' इन वचनों में शुक्लप्रतिपदादि अमान्तमास के अनुसार फाल्गुनकृष्ण चतुर्दशी के अभिप्राय से माघकृष्ण चतुर्दशी का कथन किया है।

यह व्रत नित्य और काम्य दोनों है। नित्यत्व की पुष्टि में स्कन्दपुराण—'परात्परतरं नास्ति शिवरात्रिव्रतात्परम्। न पूजयति भक्त्येशं रुद्रं त्रिभुवनेश्वरम्॥ जन्तुर्जन्मसहस्रेषु भ्रमते नात्र संशयः। वर्षे वर्षे महादेवि नरो नारी पतिव्रता॥ शिवरात्रौ महादेवं कामं भक्त्या प्रपूजयेत्। अर्णवो यदि वा शुष्येत् क्षीयेत हिमवानपि॥ मेरुमन्दरलङ्काश्च श्रीशैलो विन्ध्य एव च। चलन्त्येते कदाचिद् वै निश्चलं हि शिवव्रतम्॥' काम्यत्व की पुष्टि में ईशानसंहिता—'एवमेतद् व्रतं कुर्यात् प्रतिसंवत्सरं व्रती। द्वादशाब्दिकमेव स्याच्चतुर्विंशाब्दिकं तु वा॥ सर्वान् कामानवाप्नोति प्रेत्य चेह च मानवः।' इति।

२. स्कन्दपुराण में रविवारादि के योग में इसका प्राशस्त्य—'माघकृष्णचतुर्दश्यां रविवारो भवेद्यदा। भौमो वापि भवेद्देवि कर्तव्यं व्रतमुत्तमम्॥ शिवयोगस्य योगे वै तद्भवेदुत्तमोत्तमम्।' इति। विशेष निर्णय मूल में और अन्यत्र देखें।

अर्धरात्रि में हो तो पूर्वदिन शिवरात्रि करे। दोनों दिन भी आधी रात में न हो तब भी दूसरे दिन करे। दोनों दिन सम्पूर्णतया अथवा एकदेश में आधी रात में हो तो पूर्वा लेनी चाहिये, यह हेमाद्रि के आशय का अनुसरण करने वाला कौस्तुभ का कहना है। परा में ही शिवरात्रि व्रत करे, यह माधव, निर्णयसिन्धु और पुरुषार्थचिन्तामणि आदि बहुतों का मत है। दूसरे दिन आधी रात के एकदेश में रहने पर और पहिले दिन आधी रात में सम्पूर्ण रहने पर तो पूर्व दिन में ही करना चाहिये। पहले दिन आधी रात के एकदेश व्याप्ति में और दूसरे दिन सम्पूर्णतया व्याप्ति में तो परा ही ग्राह्य है। यह व्रत रविवार भौमवार से युक्त तथा शिवयोग से युक्त होने पर अतिप्रशस्त है।

अथ शिवरात्रिपारणानिर्णयः

यामत्रयादर्वाक् चतुर्दशीसमाप्तौ [१]चतुर्दश्यन्ते पारणम्। यामत्रयोर्ध्वगामिन्यां चतुर्दश्यां प्रातश्चतुर्दशीमध्ये एव पारणमिति माधवादयः। निर्णयसिन्धौ तु यामत्रयादर्वाक् चतुर्दशीसमाप्तावपि चतुर्दशीमध्ये एव पारणं, न तु कदाचिदपि चतुर्दश्यन्ते।

उपोषणं चतुर्दश्यां चतुर्दश्यां च पारणम्।
कृतैः सुकृतलक्षैस्तु लभ्यते यदि वा न वा॥
सिक्थे सिक्थे फलं तस्य शक्तो वक्तुं न पार्वति।

इत्यादिना चतुर्दशीमध्ये पारणे पुण्यातिशयोक्तेरित्युक्तम्।

तीन पहर से पहिले चतुर्दशी समाप्त हो तो चतुर्दशी के अन्त मे पारण करे। तीन पहर से अधिक चतुर्दशी बढ़ने पर चतुर्दशी के मध्य में ही प्रातःकाल पारण कर ले, ऐसा माधव आदि का कहना है। निर्णयसिन्धु में तो तीन पहर से पहले चतुर्दशी समाप्त होती हो तब भी चतुर्दशी में ही पारण करे, चतुर्दशी के अन्त में पारण कभी न करे। चतुर्दशी में उपवास और चतुर्दशी में ही पारण करे। लाखों पुण्य करने पर भी मिले या नहीं मिले। हे पार्वति! उसकी सिक्थी सिक्थी में फल को कहा नहीं जा सकता, इत्यादि वचनों से चतुर्दशी के मध्य में पारण करने से अधिक पुण्य की प्राप्ति होना कहा है।

अत्रैवं व्यवस्था बोध्या—यदा नित्यकृत्यपूर्वकपारणपर्याप्ता चतुर्दशी नास्ति तदा वा येषां चतुर्दशीशेषदिने दर्शादिश्राद्धप्रसक्तिस्तैर्वा तिथ्यन्ते पारणम्। द्वादश्यामिवात्र नित्यकृत्यापकर्षकवाक्याभावात्। तिथ्यन्तपारणविधायकवाक्यसत्त्वेन संकटविषयकजलपारणविधिवाक्यानामत्राप्रवृत्तेश्च। कर्मपर्याप्तचतुर्दशीसत्त्वे श्राद्धप्रसक्त्यभावे च तिथिमध्य एव पारणमिति।

---

१. स्कन्दपुराण में तिथि के अन्त में पारण कहा—'कृष्णाष्टमी स्कन्दषष्ठी शिवरात्रिश्चतुर्दशी। एताः पूर्वयुता ग्राह्यास्तिथ्यन्ते पारणं भवेत्॥ जन्माष्टमी रोहिणी च शिवरात्रिस्तथैव च। पूर्वविद्धैव कर्तव्या तिथिभान्ते च पारणम्। स्कन्दपुराण में ही तिथि के मध्य में पारणा—'उपोषणं चतुर्दश्यां चतुर्दश्यां तु पारणम्। कृतैः सुकृतलक्षैश्च लभ्यते वाऽथवा न वा॥ ब्रह्माण्डोदरमध्ये तु यानि तीर्थानि सन्ति वै। संस्नातानि भवन्तीह भूतायां पारणे कृते॥ तिथीनामेव सर्वासामुपवासव्रतादिषु। तिथ्यन्ते पारणं कुर्याद् विना शिवचतुर्दशीम्॥' तिथितत्त्वोदाहृत-गौतम—'दिनमानप्रमाणेन या च रात्रौ चतुर्दशी। शिवरात्रिस्तु सा ज्ञेया चतुर्दश्यान्तु पारणम्॥' इति। विशेष अन्य निबन्धों में देखें।

इसमें ऐसी व्यवस्था ज्ञेय है। जब नित्यकृत्य करने योग्य पर्याप्त समय के बाद पारणा के लिये चतुर्दशी न रहे या जिन्हें चतुर्दशी के शेष दिन में अमावास्या श्राद्ध आदि करना हो वे चतुर्दशी के अन्त में पारण करें। क्योंकि द्वादशी के समान इसमें नित्य कृत्य का अपकर्ष करने वाले वचन नहीं हैं और तिथि के अन्त में पारणा के विधान करने वाले वाक्य के होने से संकट-समय में जल से पारणा के विधि-वाक्यों की यहां प्रवृत्ति नहीं है। कर्म के लिये पर्याप्त चतुर्दशी के रहने पर श्राद्ध की प्राप्ति न हो तो तिथि के मध्य में ही पारण होता है।

अथ शिवरात्रिव्रतप्रयोगः

त्रयोदश्यां कृतैकभक्तश्चतुर्दश्यां कृतनित्यक्रियः प्रातर्मन्त्रेण संकल्पं कुर्यात्—

शिवरात्रिव्रतं ह्येतत्करिष्येऽहं महाफलम्।
निर्विघ्नमस्तु मे चात्र त्वत्प्रसादाज्जगत्पते॥
चतुर्दश्यां निराहारो भूत्वा शंभो परेऽहनि।
भोक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्त्यर्थं शरणं मे भवेश्वर॥ इति।

द्विजस्तु 'रात्रीं प्रपद्ये जननीम्' इत्यृचावपि पठित्वा जलमुत्सृजेत्। ततः सायाह्ने कृष्णतिलैः स्नानं कृत्वा धृतभस्मत्रिपुण्ड्ररुद्राक्षो निशामुखे शिवायतनं गत्वा क्षालितपादः स्वाचान्त उदङ्मुखो देशकालौ संकीर्त्य 'शिवरात्रौ प्रथमयामपूजां करिष्ये' इति यामचतुष्टये पूजाचतुष्टयचिकीर्षायां संकल्पः। सकृत्पूजाचिकीर्षायां 'श्रीशिवप्रीत्यर्थं शिवरात्रौ श्रीशिवपूजां करिष्ये' इति संकल्पः। तत्रादौ सामान्यतः पूजाविधिरुच्यते। यामभेदेन विशेषस्तु वक्ष्यते।

त्रयोदशी में एकभक्त कर चतुर्दशी में नित्य कर्म से निवृत्त होकर प्रातःकाल 'शिवरात्रिव्रतं ह्येतत्' इत्यादिमन्त्र से संकल्प करे। द्विज तो 'रात्रीं प्रपद्ये जननीम्' इन दोनों ऋचाओं को पढ़कर जल छोड़े। इसके अनन्तर सायं समय में काले तिल से स्नान करके त्रिपुण्ड्र भस्म और रुद्राक्ष धारण कर प्रदोष में शिवमन्दिर में जाकर पैर धोकर आचमन कर उत्तरमुख हो देश काल कह कर 'शिवरात्रि में पहले पहर की पूजा करूँगा' ऐसा संकल्प चारो पहर को पूजा करने की इच्छा होने पर करे। एक बार पूजा करने की इच्छा हो तो 'श्रीशिव की प्रसन्नता के लिये शिवरात्रि में श्री शङ्कर की पूजा करूँगा' ऐसा संकल्प करे। आरम्भ में सामान्य पूजा की विधि कहता हूँ। प्रहरभेद से विशेष पूजा आगे कहूँगा।

अस्य श्रीशिवपञ्चाक्षरमन्त्रस्य वामदेवऋषिः अनुष्टुप्छंदः श्रीसदाशिवो देवता न्यासे पूजने च विनियोगः। वामदेवऋषये नमः शिरसि, अनुष्टुप्छन्दसे नमो मुखे, श्रीसदाशिवदेवतायै नमो हृदि, ॐ नं तत्पुरुषाय नमः हृदये, ॐ मं अघोराय नमः पादयोः, ॐ शिं सद्योजाताय नमो गुह्ये, ॐ वां वामदेवाय नमो मूर्ध्नि, ॐ यं ईशानाय नमो मुखे। ॐ ॐ हृदयाय नमः ॐ नं शिरसे स्वाहा, ॐ मं शिखायै वषट्, ॐ शिं कवचाय हुं, ॐ वां नेत्रत्रयाय वौषट्, ओं यं अस्त्राय फट्। कुंभपूजां विधाय—

इस शिवपञ्चाक्षर-मन्त्र का वामदेव-ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, श्रीसदाशिव-देवता, न्यास और पूजन में विनियोग है। 'वामदेवऋषये नमः' कहकर शिर का स्पर्श करे, 'अनुष्टुप्छन्दसे नमः' कहकर मुख का, 'श्रीसदाशिवदेवतायै नमः' कहकर हृदय का स्पर्श करे, 'ओं नं तत्पुरुषाय नमः' कहकर हृदय में, 'ओं मं अघोराय नमः' कहकर दोनों पैरों में, 'ओं शिं सद्योजाताय नमः' कहकर लिंग और गुदा में, 'ओं वां वामदेवाय नमः' कहकर शिर में, 'ओं यं ईशानाय नमः' कहकर मुख में, 'ओं ओं हृदयाय नमः' से हृदय में, 'ओं नं शिरसे स्वाहा' से शिर में, ओं मं शिखायै वषट् से शिर में, 'ओं शिं कवचाय हुं' से दोनों बाहुओं में, 'ओं वां नेत्रत्रयाय वौषट्' से नेत्रों में, 'ओं यं अस्त्राय फट्' से ताली बजावे, ऐसा न्यास करके कुम्भ की पूजा करके—

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात्स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्ववन्द्यं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्॥

इति ध्यात्वा प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा स्थाप्यलिङ्गं स्पृशन् ॐ भूः पुरुषं सांबसदाशिवमावाहयामि। ओं भुवः पुरुषं सांब० ओं स्वः पुरुषं सांब० ओं भूर्भुवः स्वः पुरुषं सांब० इत्यावाहयेत्।

स्वामिन्सर्वजगन्नाथ यावत्पूजावसानकम्।
तावत्त्वं प्रीतिभावेन लिङ्गेस्मिन्सन्निधो भव॥

इति पुष्पाञ्जलिं दद्यात्। स्थावरलिङ्गे पूर्वसंस्कृतचरलिङ्गे प्राणप्रतिष्ठाद्यावाहनान्तं न कार्यम्। ओं सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः ॐ नमः शिवाय श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः आसनं समर्पयामि।

'ओं ध्यायेन्नित्यं महेशं' इत्यादि मूलोक्त मन्त्र से ध्यान और प्राणप्रतिष्ठा करके स्थाप्य लिङ्ग का स्पर्श करते हुये 'ओं भूः पुरुषं साम्बसदाशिवमावाहयामि' इत्यादि मूलोक्त मन्त्रों को कहकर आवाहन करे। तदनन्तर 'स्वामिन्सर्वजगन्नाथ' इत्यादि मूलोक्त मन्त्र पढ़कर पुष्पाञ्जलि दे। स्थावर-लिङ्ग में और पहिले संस्कार किये हुए चल-लिङ्ग में भी प्राण-प्रतिष्ठा से लेकर आवाहन पर्यन्त पूजा नहीं करनी चाहिये। 'ओं सद्योजातं प्रपद्यामि' इत्यादि मूलोक्त मंत्र कहकर आसन दे।

स्त्रीशूद्रश्चेत्—ओं नमः शिवायेति पञ्चाक्षरीस्थाने श्रीशिवायनम इति नमोन्तमन्त्रेण पूजयेत्। ओं भवे भवे नातिभवे भवस्व मां ओं नमः शिवाय श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः पाद्यं समर्पयामि। ओं भवोद्भवाय नमः ओं नमः शिवाय श्रीसाम्बस० अर्घ्यं० ओं वामदेवाय नमः ओं नमःशिवाय श्रीसाम्ब० आचमनम् ओं ज्येष्ठाय नमः ओंनमः शिवाय० स्नानम्।

पूजक स्त्री या शूद्र हो तो—'ओं नमः शिवाय' इस पञ्चाक्षरी की जगह 'श्रीशिवाय नमः' इस नमोन्त मन्त्र से पूजा करे। 'ओं भवे भवे' इत्यादि मंत्र कहकर पाद्य का समर्पण करे। 'ॐ भवोद्भवाय नमः' इत्यादि मंत्र से अर्घ्य देवे। 'ॐ वामदेवाय नमः' इत्यादि मन्त्र कहकर आचमन दे, 'ॐ ज्येष्ठाय नमः' इत्यादि मंत्र कहकर स्नान करावे।

ततो मूलमन्त्रेण आप्यायस्वेत्यादिभिश्च पञ्चामृतैः संस्नाप्य आपोहिष्ठेति तिसृभिः शुद्धोदकेन प्रक्षाल्य एकादशावृत्त्यैकावृत्त्या वा रुद्रेण पुरुषसूक्तेन च चन्दनकुंकुमकर्पूरवासितजलेनाभिषेकं कृत्वा ओं नमः शिवायेति स्नानान्ते आचमनं दत्त्वा साक्षतजलेन तर्पणं कार्यम्। ओं भवं देवं तर्पयामि १, शर्वं देवं तर्पयामि २, ईशानं देवं तर्पयामि ३, पशुपतिदेवं तर्पयामि ४, उग्रं देवं त० ५, रुद्रं देवं त० ६, भीमं देवं त० ७, महान्तं देवं त० ८, भवस्य देवस्य पत्नीं तर्पयामि, शर्वस्य देवस्य पत्नीं तर्पयामि, ईशानस्य देवस्य पत्नीं त०, पशुपतेर्देवस्य प०, उग्रस्य देवस्य प०, रुद्रस्य देवस्य प०, भीमस्य देवस्य प०, महतो देवस्य प०८।

इसके अनन्तर मूलमन्त्र और 'आप्यायस्व' इत्यादि मंत्र से पञ्चामृत से नहलाकर 'आपोहिष्ठा' इत्यादि तीन ऋचाओं से शुद्ध जल से प्रक्षालन करके ग्यारह आवृत्ति या एक आवृत्ति रुद्रसूक्त और पुरुषसूक्त से चन्दन, कुंकुम और कपूर से वासित जलसे अभिषेक कर 'ॐ नमः शिवाय' इससे स्नानान्त में आचमन देकर अक्षतसहित जल से तर्पण करे। तर्पण के 'ॐ भवं देवं तर्पयामि' इत्यादि मूलोक्त आठ मंत्र हैं।

ओं ज्येष्ठाय नमः ओं नमः शिवाय श्रीसाम्ब० वस्त्रं० मूलेनाचमनम्, ओं रुद्राय नमः ओं नमः शिवाय० यज्ञोपवीतं०, मूलेनाचमनम्, ओं कालाय नमः ओं नमः शिवाय श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः चन्दनं०, ओं कलविकरणाय नमः ओं नमः शिवाय श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः पुष्पाणि०, सहस्रमष्टोत्तरशतं वा सहस्रादिनामभिर्मूलमन्त्रेण वा बिल्वपत्राणि दद्यात्। ओं बलाय नमः ओं नमः शिवाय श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः धूपं०, ओं बलप्रमथनाय नमः ओं नमः शिवाय श्री० दीपं० ओं सर्वभूतदमनाय नमः ओं नमः शिवाय० नैवेद्यं, मूलेनाचमनं फलं च०, ओं मनोन्मनाय नमः ओं नमः शिवाय० ताम्बूलं, मूलेन वैदिकैर्मन्त्रैश्च नीराजनं०, ओम् ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानां ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदा शिवोम्। ओं नमः शिवाय० मन्त्रपुष्पं०।

'ओं ज्येष्ठाय नमः' इत्यादि मंत्र से वस्त्र चढ़ावे। मूलमन्त्र से आचमन दे। 'ॐ रुद्रायनमः' इत्यादि मंत्र से यज्ञोपवीत चढ़ावे। मूलमन्त्र से आचमन दे। 'ओं कालाय नमः' इत्यादि मन्त्र से चन्दन चढ़ावे। 'ॐ कलविकरणाय नमः' इत्यादि मंत्र से अक्षत चढ़ावे। 'ॐ बलविकरणाय नमः' इत्यादि मंत्र से पुष्प चढ़ावे। एक हजार या एक सौ आठ विल्वपत्र भी शिव के सहस्र नाम से या मूलमन्त्र से शिवपर चढ़ावे। 'ॐ बलाय नमः' इत्यादि मंत्र से धूप दे। 'ॐ बलप्रमथनाय नमः' इत्यादि मंत्र से दीप दे। 'ॐ सर्वभूतदमनाय' इत्यादि मंत्र से नैवेद्य चढ़ावे। मूल मन्त्र से आचमन और फल चढ़ावे। ओं मनोन्मनाय नमः' इत्यादि मंत्र से ताम्बूल दे। मूलमन्त्र और वैदिक-मन्त्रों से आरती करे। 'ओं ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः' इत्यादि मंत्रों से मन्त्रपुष्पाञ्जलि देवे।

भवाय देवाय नमः शर्वाय देवायेत्याद्यष्टौ भवस्य देवस्य पत्न्यै इत्याद्यष्टौ च नमस्कारान्कृत्वा, शिवाय० रुद्राय० पशुपतये० नीलकण्ठाय० महेश्वराय० हरिके-

शाय० विरूपाक्षाय० पिनाकिने० त्रिपुरान्तकाय० शम्भवे० शूलिने० महादेवाय नम इति द्वादशनामभिर्द्वादशपुष्पाञ्जलीन् दत्त्वा मूलेन प्रदक्षिणानमस्कारान् कृत्वा मूलमन्त्रमष्टोत्तरशतं जप्त्वा क्षमापयित्वाऽनेन पूजनेन श्रीसाम्बसदाशिवः प्रीयतामिति निवेदयेत् ।

'भवाय देवाय नमः' इत्यादि आठ भवदेव की पत्नी के लिये आठ नमस्कार करके 'शिवाय नमः' इत्यादि बारह नामों से बारह पुष्पाञ्जलि देकर मूलमन्त्र से प्रदक्षिणा और नमस्कार करके एक सौ आठ मूलमन्त्र को जप कर क्षमा प्रार्थना करके इस पूजन से श्रीसाम्बसदाशिव प्रसन्न हों ऐसा निवेदन करे ।

अथ चतुर्षु यामेषु पूजाचतुष्टये विशेषः—तत्र प्रथमयामे मूलमन्त्रान्ते श्रीशिवायासनं समर्पयामीति शिवनाम्ना सर्वोपचारसमर्पणम् । 'द्वितीययामे शिवरात्रौ द्वितीययामपूजां करिष्ये' इति संकल्प्य श्रीशङ्करायासनमिति शङ्करनाम्ना । ततो 'महानिशि पूजां करिष्ये' इति संकल्प्य पूर्ववत्पूजा । ततः 'तृतीय यामपूजां करिष्ये' इत्युक्त्वा श्रीमहेश्वरायासनमित्यादि महेश्वरनाम्ना । एवमेव चतुर्थयामे श्रीरुद्रनाम्ना । प्रतियामं तैलाभ्यङ्गपञ्चामृतोष्णोदकशुद्धोदकगन्धोदकाभिषेकाः कार्याः ।

चारों पहर की चार पूजा में विशेषता यह है कि पहले पहर में मूलमन्त्रके अन्त में 'श्रीशिवायासनं समर्पयामि' इसी प्रकार शिव के नाम से सब उपचारों को समर्पण करे । दूसरे पहर में 'शिवरात्रि के दूसरे पहर की पूजा करूंगा' ऐसा संकल्प कर 'श्रीशङ्करायासनं' इस तरह शंकर के नाम से पूजा करे। तदनन्तर 'अर्धरात्रि में पूजा करूँगा' ऐसा संकल्प कर पहिले की तरह पूजा करे । इसके बाद 'तृतीय याम की पूजा करूँगा' ऐसा कहकर 'श्रीमहेश्वरायासनं' इत्यादि कह कर महेश्वर के नाम से पूजा करे । इसी प्रकार चौथे पहर में 'श्रीरुद्राय' ऐसा कहके रुद्र के नाम से पूजा करे । प्रत्येक पहर में तैलाभ्यङ्ग, पञ्चामृत, गर्मजल और शुद्ध जल से अभिषेक करे ।

यज्ञोपवीतान्ते गोरोचनकस्तूरीकुंकुमकर्पूरागरुचन्दनमिश्रितानुलेपेन लिङ्गं लेपयेत् । पञ्चविंशतिपलमितः सर्वोनुलेप इति अनुलेपपरिमाणं, यथाशक्ति वा । धत्तूरकरवीरकुसुमैर्बिल्वपत्रैश्च पूजनमतिप्रशस्तम् । पुष्पाभावे शालितण्डुलगोधूमयवैः पूजा । नैवेद्योत्तरं ताम्बूलमुखवासौ उक्तौ ।

यज्ञोपवीत चढ़ाने के बाद गोरोचन-कस्तूरी-कुंकुम कपूर-अगरु-चन्दन मिले हुए अनुलेपन का शिवलिङ्ग में लेपन करे । पहिले कही गोरोचन आदि पचीस परिमित अनुलेपन का परिमाण होता है । अथवा यथाशक्ति अनुलेपन है । धतूर तथा करवीर के फूलों और बिल्वपत्र से पूजन अत्यन्त उत्तम है । फूल न मिलने पर साठी का चावल, गेहूँ और जव से पूजा करे । नैवेद्य के बाद ताम्बूल और मुखवास देवे ।

अथ ताम्बूलमुखवासलक्षणम्

नागवल्लीपत्रक्रमुकफलशुक्त्यादिचूर्णेतित्रयं ताम्बूलसंज्ञम् । एतदेव नारिकेलकर्पूरैलाकङ्कोलैः सहितं मुखवाससंज्ञम् । एतेषामन्यतमद्रव्यालाभे तत्तद् द्रव्यं स्मरेद् बुधः । सर्वपूजान्ते प्रार्थना—

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं यत्कृतं तु मया शिव ।
तत्सर्वं परमेशान मया तुभ्यं समर्पितम् ॥ इति ।
शिवरात्रिव्रतं देव पूजाजपपरायणः ।
करोमि विधिवद्दत्तं गृहाणार्घ्यं नमोस्तु ते ॥ इत्यर्घ्यः ।

एवं यामचतुष्टयेऽर्घ्यभेदः कौस्तुभे ।

सुपारी, पान, सितुही का चूना, इन तीन का नाम ताम्बूल है । यही तीन में नारियल, कपूर, इलायची और कंकोल को मिला देने से यही मुखवास हो जाता है । इनमें से किसी एक द्रव्य के न मिलने पर उस द्रव्य का पण्डित स्मरण कर ले । सब पूजा के अन्त में 'नित्य नैमित्तिकं काम्यं' इत्यादि मूलोक्तमंत्र से प्रार्थना करे । 'शिवरात्रिव्रतं देव' इत्यादि मंत्र से अर्घ्य दे । इसी प्रकार चारो पहर की पूजा में अर्घ्यभेद कौस्तुभ में है ।

ततः प्रभाते स्नात्वा पुनः शिवं संपूज्य पूर्वोक्तद्वादशनामभिर्द्वादशब्राह्मणानशक्तावेकं वा संपूज्य तिलपक्वान्नपूर्णान् द्वादशकुम्भानेकं वा दत्त्वा व्रतमर्पयेत् ।

यन्मयाद्य कृतं पुण्यं तद्रुद्रस्य निवेदितम् ।
त्वत्प्रसादान्महादेव व्रतमद्य समर्पितम् ॥
प्रसन्नो भव मे श्रीमन्सद्गतिः प्रतिपाद्यताम् ।
त्वदालोकनमात्रेण पवित्रोऽस्मि न संशयः ॥ इति ।

इसके बाद प्रातःकाल स्नान कर शिवभगवान् की फिर पूजा करके पहले कहे हुए बारह नामों से बारह ब्राह्मणों की पूजा कर, शक्ति न हो तो एक ब्राह्मण की पूजाकर तिल को पकान्न से परिपूर्ण बारह कुम्भों या एक कुम्भ को ब्राह्मण को देकर 'यन्मयाऽद्य कृतं पुण्यं' इत्यादि मूलोक्त मंत्र पढ़कर व्रत अर्पण करे ।

ततो ब्राह्मणान् भोजयित्वा पूर्वनिर्णीते काले स्वजनैः सह पारणं कुर्यात् । तत्र मन्त्रः—

संसारक्लेशदग्धस्य व्रतेनानेन शङ्कर ।
प्रसीद सुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टिप्रदो भव ॥

इति शिवरात्रिव्रतविधिः ।

तदनन्तर ब्राह्मणों को भोजन कराके पहले निर्णय किये काल में अपने जनों के साथ पारण करे । पारण का 'संसार क्लेशदग्धस्य' इत्यादि मंत्र है । शिवरात्रि व्रतविधि समाप्त ।

अथ पार्थिवलिंगपूजा

अथ मृन्मयलिङ्गे शिवपूजाचिकीर्षायां तद्विधिः—ओं हराय नमः इति मृदमाहृत्य शोधितायां तस्यां जलप्रक्षेपेण संपीड्य तेन पिण्डेन ओं महेश्वराय नम इति लिङ्गं कुर्यात् । तच्च लिङ्गमशीतिगुञ्जात्मककर्षादधिकपरिमाणमङ्गुष्ठमात्रं ततोऽधिकं वा कार्यं न न्यूनम् । मृन्मयलिङ्गे पञ्चसूत्रसंपादनाभावेऽपि न दोषः । अत एव—

मिट्टी के लिङ्ग में शिवपूजा करने की इच्छा हो तो इसकी विधि यह है—'ओं हराय नमः' यह कहके मिट्टी ले आवे उसको संशोधन करके उसमें जल डाल कर मसल कर पिण्डी बनाकर 'ओं महेश्वराय नमः' इस मन्त्र से लिङ्ग बनावे। वह लिंग ८० गुंजा के १ कर्ष के परिमाण से अधिक तौल का अंगूठे के बराबर या अंगूठे से बड़ा बनावे, छोटा न हो। मिट्टी के लिङ्ग में पंचसूत्री बनाने में दोष नहीं है। इसलिये—

सप्तकृत्वस्तुलारूढं वृद्धिमेति न हीयते।
बाणलिङ्गमिति प्रोक्तं शेषं नार्मदमुच्यते॥

इत्युक्तलक्षणाद् बाणलिङ्गादतिदुर्लभाद् दुःसंपाद्य पञ्चसूत्रसंपादनात्सुवर्णादि-लिङ्गाच्च मृन्मयलिङ्गं[1] श्रेष्ठम्। 'द्वापरे पारदं श्रेष्ठं पार्थिवं तु कलौ युगे' इति वचनाच्च।

सात बार तराजू से तौलने पर जिसकी तौल कम न हो उसे बाणलिङ्ग कहते हैं, यह बढ़ता ही है घटता नहीं है। इसे बाणलिङ्ग कहते हैं। अतिरिक्त नार्मद लिङ्ग होता है। इस लक्षण वाला बाणलिङ्ग के अत्यन्त दुर्लभ होने से उसका पंचसूत्र सम्पादन के दुःसम्पाद्य होने से सुवर्ण आदि के लिङ्ग से मिट्टी का लिङ्ग श्रेष्ठ है। क्योंकि 'द्वापर में पारे का लिङ्ग श्रेष्ठ है। कलि में तो मिट्टी का सबसे श्रेष्ठ होता है' इस आशय का वचन प्रमाण है।

ततः ओं शूलपाणये नमः शिव इह प्रतिष्ठितो भवेति सबिल्वपत्रे पूजापीठे प्रतिष्ठाप्य ध्यायेन्नित्यं महेशमिति ध्यात्वा ओं पिनाकधृषे नमः श्रीसाम्बसदाशिव इहागच्छ इह प्रतिष्ठेह सन्निहितो भवेत्यावाहयेत्। इह द्विजानां सर्वत्र मूल-मन्त्रोपि ज्ञेयः।

तदनन्तर 'शूलपाणये नमः' कहकर बिल्वपत्रसहित पूजा के आसन पर स्थापित कर 'ध्यायेन्नित्यं महेशं' इससे ध्यान कर 'ओं पिनाकधृषे नमः' इत्यादि कहकर आवाहन करे। यहाँ द्विजों को सर्वत्र मूलमन्त्र को भी जानना चाहिये।

ततः ओं नमः शिवायेति मूलमन्त्रेण पाद्यमर्घ्यमाचमनं दत्त्वा पशुपतये नमः इति मूलेन च स्नानं वस्त्रमुपवीतं गन्धं पुष्पं धूपदीपनैवेद्यफलताम्बूलनीराजन-मन्त्रपुष्पाञ्जलीन्दत्त्वा शर्वाय क्षितिमूर्तये नमः इति प्राच्यां पूजयेत्। भवाय जलमूर्तये नमः ईशान्यां, रुद्रायाग्निमूर्तये० उदीच्याम्, उग्राय वायुमूर्तये नमः वायव्यां, भीमायाकाशमू० प्रतीच्यां, पशुपतये यजमानमूर्तये नमः इति नैर्ऋत्यां, महादेवाय सोममूर्तये नमः इति दक्षिणस्याम्, ईशानाय सूर्यमूर्तये नमः इत्याग्नेय्यां, ततः स्तुत्वा नमस्कृत्य महादेवाय नमः इति विसर्जयेदिति संक्षेपः।

इसके बाद 'ओं नमः शिवाय' इस मूलमन्त्र से पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय देकर 'पशुपतये नमः' इससे और मूलमंत्र से स्नान, वस्त्र, जनेऊ, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, फल, ताम्बूल, नीराजन और मन्त्रपुष्पाञ्जलि देकर 'शर्वाय क्षितिमूर्तये नमः' इससे पूर्व दिशा में पूजे। 'भवाय जलमूर्तये नम' इससे ईशान दिशा में, 'रुद्रायाग्निमूर्तये नमः' इससे उत्तर दिशा में, 'उग्राय वायुमूर्तये

१. नन्दिपुराण में पार्थिवलिङ्गका प्राशस्त्य-प्रतिपादन—'वरमि भवेल्लिङ्गं पार्थिवं यः समर्चयेत्। तस्मात्तु पार्थिवं लिङ्गं ज्ञेयं सर्वार्थसाधकम्॥' इति।

नमः' इससे वायव्य दिशा में, 'भीमायाकाशमूर्तये नमः' इसे कहकर पश्चिम दिशा में, 'पशुपतये यजमानमूर्तये नमः, इसे कहकर नैर्ऋत्य दिशा में, 'महादेवाय सोममूर्तये नमः' इससे दक्षिण दिशामें, 'ईशानाय-सूर्यमूर्तये नमः' इससे आग्नेय दिशा में पूजा करे। तदनन्तर स्तुति और नमस्कार करके 'महादेवाय नमः' कहकर विसर्जन करे, यह संक्षिप्त विधि है।

विस्तरस्तु पुरुषार्थचिन्तामणौ ज्ञेयः। शिवरात्रिश्चेत्पूर्वोक्तपूजाविधिः पार्थिव-लिङ्गेऽपि कार्यः। पार्थिवलिङ्गोद्यापनविधिः कौस्तुभादौ ज्ञेयः।

विस्तारपूर्वक तो पुरुषार्थचिन्तामणि से जानना चाहिये। यदि शिवरात्रि हो तो पहिले कही हुई पूजाविधि को पार्थिवलिङ्ग में भी करे। पार्थिवलिङ्ग के उद्यापन की विधि कौस्तुभ आदि से जानना चाहिये।

अथ लिङ्गविशेषेण फलविशेषः

आयुष्यं हीरजे लिङ्गे, मौक्तिके रोगनाशः, वैडूर्ये शत्रुनाशः, पद्मरागे लक्ष्मीः, पुष्परागजे सुखम्, ऐन्द्रनीले यशः, मारकते पुष्टिः, स्फाटिके सर्वकामाः, राजते राज्यं पितृमुक्तिः, हैमे सत्यलोकः, ताम्रे पुष्टिरायुश्च, पैत्तले तुष्टिः, कांस्ये कीर्तिः, लौहे शत्रुनाशः, सीसजे आयुष्यम्। मतान्तरे सौवर्णे ब्रह्मस्वपरिहारः स्थिरलक्ष्मीश्च। एवं गन्धमये सौभाग्यम्, हस्तिदन्तजे सेनापत्यम्, व्रीह्यादिधान्यपिष्टजे पुष्टिसुखरोगनाशादि, माषजे स्त्रीः, नावनीते सुखम्, गोमयजे रोगनाशः, गौडेऽन्नादि, वंशांकुरजे वंशवृद्धिरित्यन्यत्र विस्तरः।

हीरा के लिङ्ग से आयु, मोती के लिङ्ग से रोग का नाश, वैडूर्य के लिङ्ग से शत्रु का नाश, पद्मराग के लिङ्ग से लक्ष्मीप्राप्ति, पोखराज के लिङ्ग से सुख, इन्द्रनील के लिङ्ग से यश, मरकत के लिङ्ग से पुष्टि, स्फटिक के लिङ्ग से मनोरथसिद्धि, चांदी के लिङ्ग से राज्य और पिता की मुक्ति, सुवर्ण के लिङ्ग से सत्यलोक, ताम्बे के लिङ्ग से पुष्टि और आयु, पीतल के लिङ्ग से तुष्टि, कांसे के लिङ्ग से कीर्ति, लोहे के लिङ्ग से शत्रुनाश, सीसे के लिङ्ग से आयु। दूसरे मत से सुवर्ण लिङ्ग से ब्रह्मस्व का परिहार और लक्ष्मी स्थिर रहती है। इसी प्रकार गन्धमय लिङ्ग से सौभाग्य, हाथी दांत के लिङ्ग से सैनापत्य, धान आदि अन्न के आँटे के लिङ्ग से पुष्टि, सुख और रोगनाश आदि फल होता है। उर्द के आँटे के लिङ्ग से स्त्रीप्राप्ति, मक्खन के लिङ्ग से सुख, गोबर के लिङ्ग से रोगनाश, गुड के लिङ्ग से अन्न आदि की प्राप्ति, बांसके अङ्कुर से बने लिङ्ग से वंशवृद्धि होती है, ऐसा अन्य ग्रन्थों में विस्तृत-फल द्रष्टव्य है।

एवं लिङ्गसंख्याविशेषात्फलविशेषः कौस्तुभे। शिवनिर्माल्यग्रहणाग्रहणविचारस्तृतीयपरिच्छेदे ज्ञेयः। मासशिवरात्रिनिर्णयः प्रथमपरिच्छेदे उक्तः। शिवरात्रिव्रतोद्यापनं कौस्तुभादौ ज्ञेयम्। मासशिवरात्रिव्रतोद्यापनमपि कौस्तुभे स्पष्टम्। माघामावास्यायामपराह्णव्यापिन्यां युगादित्वादपिण्डकं[1] श्राद्धं

---

१. मनुः—'सहस्रगुणितं दानं भवेद्दत्तं युगादिषु। कर्म श्राद्धादिकं चैव तथा मन्वन्तरादिषु॥' विष्णुपुराण में विशेष—'माघासिते पञ्चदशी कदाचिदुपैति योगं यदि वारुणेन। ऋक्षेण कालः स परः पितॄणां न ह्यल्पपुण्यैर्नृप लभ्यतेऽसौ॥' माघ अमावास्या में कुम्भयोग का विवेचन पौषअमावस्या अर्धोदययोग में देखें।

कार्यम्। तच्च दर्शश्राद्धेन सह तन्त्रं कार्यम्। माघामावास्यायां शततारकायोगे परमः पुण्यकालस्तत्र श्राद्धात्परमा पितृतृप्तिः। इति माघमासकृत्यनिर्णयोद्देश।

इसी प्रकार लिङ्ग के संख्याविशेष से फलविशेष कौस्तुभ में है। शिवनिर्माल्य के ग्रहण करने और ग्रहण नहीं करने के सम्बन्ध में विचार तृतीयपरिच्छेद से जानना चाहिये। मास शिवरात्रि का निर्णय प्रथम परिच्छेद में कह चुका हूँ। शिवरात्रिव्रत का उद्यापन कौस्तुभ आदि से जानना चाहिये। मास शिवरात्रि व्रत का उद्यापन भी कौस्तुभ में स्पष्ट है। अपराह्णव्यापिनी माघ की अमावास्या युगादि तिथि होने से इस दिन विना पिण्ड का श्राद्ध करे। वह दर्शश्राद्ध के साथ तन्त्र से करे। माघ की अमावास्या शततारका के योग में अतिशय पुण्यसमय होता है इसमें श्राद्ध करने से पितरों की परम तृप्ति होती है। माघमासकृत्यनिर्णयोद्देश समाप्त।

अथ फाल्गुनमासे मीनसंक्रान्तिः

मीनसंक्रान्तौ पराः षोडश नाड्यः पुण्याः। रात्रौ तु प्रागुक्तम्। फाल्गुने गोव्रीहिवस्त्रदानं [1]गोविन्दप्रीतये कार्यम्। अथ फाल्गुनशुक्लप्रतिपदमारभ्य द्वादशदिनपर्यन्तं पयोव्रतं श्रीभागवते उक्तम्। तत्प्रयोगो मूलानुसारेणोह्यः।

मीन संक्रान्ति के पर की सोलह घड़ियाँ पुण्यकाल है। रात में तो पहलेकह चुके हैं। फाल्गुन में गौ, धान्य, अन्य वस्तु का दान भगवान् की प्रीति के लिये करना चाहिये। फाल्गुनशुक्ल प्रतिपदा से आरम्भ करके बारह दिन तक पयोव्रत श्रीमद्भागवत में कहा है। इसका विधान भागवत के मूल श्लोकों के अनुसार जानें।

अथ होलिकानिर्णयः

फाल्गुनीपौर्णमासी मन्वादिः। सा पौर्वाह्णिकी। इयमेव होलिका[2]। सा

---

१. फाल्गुनशुक्लद्वादशी में गोविन्दद्वादशी का योग कृत्यामृत में—'फाल्गुनस्य सिते पक्षे कुम्भस्थे दिवसाधिपे। जीवे धनुषि संस्थे च शोभने रविवासरे॥ पुष्यर्क्षेण च संयुक्ता गोविन्दद्वादशी मता।' तिथितत्त्वे—'फाल्गुने शुक्लपक्षस्य पुष्यर्क्षे द्वादशी यदि। गोविन्दद्वादशी नाम महापातकनाशिनी॥ गोविन्दद्वादशीं प्राप्य गच्छेच्छ्रीपुरुषोत्तमम्। विनाऽऽयासेन राजेन्द्र मुक्तः सायुज्यमाप्नुयात्॥'

कृत्यामृत में लक्षणान्तर—'यदा चापे जीवो भवति घटराशौ दिनमणिस्तथा तारानाथः स्वभवनगतः फाल्गुनसिते। यदाऽर्को द्वादश्यां यदि च गुरुभं शोभनयुतं तदा गोविन्दाख्यं हरिदिवसमस्मिन् भुवि तले॥ कदाचिद्योगोऽयं परमपुरुषार्थैकनिलये जगन्नाथक्षेत्रे मिलति यदि भाग्योदयवशात्। नरस्तत्र स्नात्वा सरसि सहसा कृष्णपदवीं सुरेन्द्रैर्दुष्प्रापां भजति बहुपापोऽपि नितराम्॥' पुष्यर्क्षे द्वादशी शुक्ला फाल्गुनस्य तु या भवेत्। गोविन्दद्वादशी नाम गंगायामतिदुर्लभा॥' पद्मपुराण में गंगास्नान का मन्त्र—'महापातकसंज्ञानि यानि पापानि सन्ति मे। गोविन्दद्वादशीं प्राप्य तानि मे हर जाह्नवि॥' इसमें गोविन्द (विष्णु) का पूजनादि करे।

व्रतरत्नाकर में नारद—'अन्ते सितायां द्वादश्यां सौवर्णीं प्रतिमां हरेः। अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्दद्याद् वेदविदे तथा॥ द्विषट्कसंख्यान् विप्रांश्च भोजयित्वा सदक्षिणान्। दत्त्वा विसर्जयेत्पश्चात्स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः॥ फाल्गुनी द्वादशी शुक्ला या पुष्यार्केण संयुता। गोविन्दद्वादशी नाम सा स्याद् गोविन्दभक्तिदा॥ तस्यामुपोष्य विधिना भगवन्तं प्रपूजयेत्।' इति।

२. भविष्यपुराण के अनुसार सत्ययुग में ढुंढा नाम की राक्षसी शंकर से वर पाकर प्रतिदिन बालकों को पीडित किया करती थी। भयभीत जनता ने राजा रघु से कहा। राजा ने जब पुरोहित से

प्रदोषव्यापिनी भद्रारहिता ग्राह्या। दिनद्वये प्रदोषव्याप्तौ परदिने प्रदोषकदेश-व्याप्तौ वा परैव, पूर्वदिने भद्रादोषात्। परदिने प्रदोषस्पर्शाभावे पूर्वदिने प्रदोषे भद्रासत्त्वे यदि पूर्णिमा परदिने सार्धत्रियामा ततोधिका वा तत्परदिने च प्रतिपद्वृद्धिगामिनी तदा परदिने प्रतिपदि प्रदोषव्यापिन्यां होलिका।

फाल्गुन की पूर्णिमा मन्वादि तिथि है। यह पूर्वाह्न में होने पर ग्राह्य है। यही होलिका कहलाती है। यह भद्रा से रहित प्रदोषव्यापिनी ग्राह्य है। दोनों दिन प्रदोष में रहने पर अथवा प्रदोष के एकदेश में रहने पर परा ही ग्राह्य है क्योंकि पहले दिन भद्रा का दोष है। दूसरे दिन प्रदोषस्पर्श

उसके नाश का उपाय पूछा तो पुरोहित ने कहा—'संचयं शुष्ककाष्ठानामुपलानां च कारयेत्। तत्राग्निं विधिवद् हुत्वा रक्षोघ्नैर्मन्त्रविस्तरैः॥ ततः किलकिलाशब्दैस्तालशब्दैर्मनोरमैः। तमग्निं त्रिः परिक्रम्य गायन्तु च हसन्तु च॥ तेन शब्देन सा पापा होमेन च निराकृता। भयेन तेन सा रण्डा पलायेल्लज्जिवा सती॥ मरिष्यति न सन्देहो भस्मीभूता तु पूतना। तस्य तद्वचनं श्रुत्वा स नृपः पाण्डुनन्दन॥ सर्वं चकार विधिवद् यदुक्तं तेन धीमता। गता सा राक्षसी नाशं तेन चोग्रेण कर्मणा॥

ततः प्रभृति लोकेऽस्मिन् होलिका ख्यातिमागता। सर्वदुष्टापहो होमः सर्वरोगोपशान्तिदः॥ क्रियतेऽस्यां द्विजैः पार्थ तेन सा होलिका स्मृता। अस्यां निशागमे पार्थ संरक्ष्याः शिशवो गृहे॥ गोमयेनोपलिप्ते च सुचतुष्के गृहाङ्गणे। आकारयेच्छिशुप्रायान् बहुव्यग्रकरान्नरान्॥ ते काष्ठखड्गैः संस्पृश्य गीतैर्हास्यकरैः शिशून्। रक्षन्ति तेभ्यो दातव्यं गुडपक्वान्नमेव च॥ एवं दुण्ढेति राक्षस्याः स दोषः प्रशमं व्रजेत्। बालानां रक्षणं कार्यं तस्मात्तस्मिन्निशागमे॥' सुचतुष्क का सुचतुरस्र और शिशुप्राय का शिशुबहुल अर्थ है।

ज्योतिर्निबन्ध में नारद—'प्रतिपद्भूतभद्रासु याऽर्चिता होलिका दिवा। संवत्सरं च तद्राष्ट्रं पुरं दहति साऽद्भुतम्॥ प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या पौर्णिमा फाल्गुनी सदा। तस्यां भद्रामुखं त्यक्त्वा पूज्या होला निशामुखे॥' यदि पूर्णिमा दो दिन प्रदोष में अथवा प्रदोष के एकदेश में व्याप्त हो तो पहले दिन भद्रा के रहने के कारण पर दिन को ही ग्रहण करे, जैसा कि पुराणसमुच्चय में कहा—'दिनार्धात् परतोऽपि स्यात् फाल्गुनी पूर्णिमा यदि। रात्रौ भद्रावसाने तु होलिका दीप्यते तदा॥'

जब पूर्व दिन चतुर्दशी प्रदोषव्यापिनी हो और दूसरे दिन क्षय होने के कारण पूर्णिमा सायाह्न के पूर्व ही समाप्त हो जाय तब पर दिन प्रतिपदा में ही करे क्योंकि पूर्व दिन सम्पूर्ण रात्रि में भद्रा रहेगी और भद्रा में होलिकादाह निषिद्ध है। यथा भविष्यपुराणे—'सार्धयामत्रयं वा स्याद् द्वितीयदिवसे यदा। प्रतिपद्वर्धमाना तु तदा सा होलिका स्मृता॥' तथा—'असत्यामपि पूर्णायां वृद्धित्वे होलिकार्चनम्। क्रियमाणं च नन्दायां शान्तिर्भवति नो क्षयः॥'

यदि प्रतिपदा का ह्रास हो तो पूर्व दिन भद्रामुख का त्याग कर भद्रापुच्छ में होलिकादाह करे, जैसा कि नारद ने कहा—'प्रदोषव्यापिनी चेत्स्याद्यदा पूर्वदिने तदा। भद्रामुखं वर्जयित्वा होलिकायाः प्रदीपनम्॥' विद्याविनोदे—'यामत्रयोर्ध्वंयुक्ता चेत् प्रतिपत्तु भवेत्तिथिः। भद्रामुखं परित्यज्य कार्या होला मनीषिभिः॥' दिवोदासीय वचन से दिन में होलिकादाह निषिद्ध है—'निशागमे प्रपूज्येत होलिका सर्वदा बुधैः। न दिवा पूजयेत् दुण्ढां पूजिता दुःखदा भवेत्॥'

होलिकादाह के समय का वायुफल—'पूर्वे वायौ होलिकायां प्रजाभूपालयोः सुखम्। पलायनं च दुर्भिक्षं दक्षिणे जायते ध्रुवम्॥ पश्चिमे तृणसम्पत्तिरुत्तरे धान्यसम्भवः। यदीशानेऽप्यनावृष्टिरूर्ध्वं राजा समाश्रयेत्॥' इति।

फाल्गुन पूर्णिमा मन्वादि है। यथा मत्स्यपुराणे—'कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्यैष्ठी पञ्चदशी तथा। मन्वन्तरादयस्त्वेता दत्तस्याक्षयकारकाः॥' इति। विशेष अन्य-निबन्धों में देखें।

के अभाव में और पहले दिन प्रदोष में भद्रा के होने पर यदि पूर्णिमा दूसरे दिन साढ़े तीन पहर या उससे अधिक हो और दूसरे दिन प्रतिपदा बढ़ती हो तो दूसरे दिन प्रदोषव्यापिनी प्रतिपदा में होलिका जलावे।

उक्तविषये यदि प्रतिपदो ह्रासस्तदा पूर्वदिने भद्रापुच्छे वा भद्रामुखमात्रं त्यक्त्वा भद्रायामेव वा होलिकादीपनम्। परदिने प्रदोषस्पर्शाभावे पूर्वदिने यदि निशीथात्प्राग्भद्रासमाप्तिस्तदा भद्रावसानोत्तरमेव होलिकादीपनम्। निशीथोत्तरं भद्रासमाप्तौ भद्रामुखं त्यक्त्वा भद्रायामेव। प्रदोषे भद्रामुखव्याप्ते भद्रोत्तरं प्रदोषोत्तरं वा। दिनद्वयेपि पूर्णिमायाः प्रदोषस्पर्शाभावे पूर्वदिन एव भद्रापुच्छे तदलाभे भद्रायामेव प्रदोषोत्तरमेव होलिका। रात्रौ पूर्वार्धभद्राया ग्राह्यत्वोक्तेः न तु पूर्वप्रदोषादौ चतुर्दश्यां न वा परत्र सायाह्नादौ। दिवा होलिकादीपनं तु सर्वग्रन्थविरुद्धम्।

ऐसे स्थल में यदि प्रतिपदा का ह्रास हो तब पहले दिन भद्रा के पुच्छ में या भद्रा के मुख मात्र को छोड़कर भद्रा में ही होली जलावे। दूसरे दिन प्रदोषस्पर्श के अभाव में पहिले दिन यदि आधी रात से पहले भद्रा की समाप्ति होती हो तो भद्रा के अन्त में होलिका जलावे। अर्द्धरात्रि के बाद भद्रा समाप्त होती हो तो भद्रामुख छोड़कर भद्रा में ही जलावे। प्रदोष में भद्रामुख हो तो भद्रा के बाद या प्रदोष के बाद जलावे। दोनों दिन में भी पूर्णिमा का प्रदोष से स्पर्श न हो तो पहले ही दिन भद्रापुच्छ में या भद्रापुच्छ न मिलने पर भद्रा में ही प्रदोष के अनन्तर होलिका का दीपन करे। क्योंकि रात में भद्रा के पूर्वार्द्ध के ग्रहण की उक्ति है, न कि पूर्व प्रदोष के आदि में या चतुर्दशी में और न दूसरे दिन सायंकाल में होली जलावे। दिन में होलिका दीपन तो सब ग्रन्थों के विरुद्ध है।

इदं होलिकापूजनं श्रवणाकर्मादिवद्भुक्त्वापि कुर्वन्ति। युक्तं चैतत्। केचिद्धोलिकापूजनं कृत्वा भुञ्जते तेषां भोजनस्य पूजनस्य वा न नियमेन शास्त्रविहितकाललाभः। इदं चन्द्रग्रहणसत्त्वे वेधमध्ये कार्यम्। ग्रस्तोदये परदिने प्रदोषे पूर्णिमासत्त्वे ग्रहणमध्य एव कार्यम्, अन्यथा पूर्वदिने।

यह होलिकापूजन श्रवणाकर्म की तरह भोजन करके भी करते हैं। यह ठीक भी है। कुछ लोग होलिका पूजन करके भोजन करते हैं, उन लोगों को भोजन और पूजन के नियम से शास्त्र-विहित भोजनकाल नहीं मिलता। इसे चन्द्र ग्रहण रहते वेध के मध्य में भी करना चाहिये। ग्रस्तोदय में दूसरे दिन प्रदोष में पूर्णिमा के रहने पर ग्रहण के मध्य में ही करे, नहीं तो पहिले दिन।

अथ भद्रामुखपुच्छलक्षणम्

पूर्णिमायां भद्रायास्तृतीयपादान्ते घटीत्रयं पुच्छम्। चतुर्थपादाद्यघटीपञ्चकं मुखम्। तथा च मध्यममानेन षष्टिघटीमितायां पूर्णिमायां पूर्णिमाप्रवृत्त्युत्तरं सार्धैकोनविंशतिघटिकोत्तरं घटीत्रयं पुच्छं सार्धद्वाविंशतिघटिकोत्तरं घटीपञ्चकं मुखम्[1]। तिथेश्चतुःषष्टिघटीमितत्वे पूर्णिमाया एकविंशतिघटिको-

---

[1] नारदसंहिता में मुख का परिमाण—'मुखे पञ्च गले त्वेका वक्षस्येकादश स्मृताः। नाभौ चतस्रः षट् कट्यां तिस्रः पुच्छाख्यनाडिकाः॥' निशामुख के साहचर्य से यहाँ आदि में पञ्च नाडी-परिमित मुख जानना चाहिये।

त्तरं पुच्छं चतुर्विंशतिघटिकोत्तरं मुखम् । एवं तिथेर्मानान्तरेप्यूह्यम् ।

पूर्णिमा में भद्रा के तृतीय चरण के अन्तमें ३ घटी भद्रापुच्छ होता है। चौथे चरण के आदि की ५ घटी भद्रामुख होता है। इस प्रकार मध्यमान से यदि पूर्णिमा ६० घड़ी हो तो पूर्णिमा की प्रवृत्ति के बाद साढे उन्नीस घड़ी के उत्तर तीन घड़ी पुच्छ और साढे बाइस घड़ी के बाद पांच घड़ी मुख होता है। पूर्णिमा तिथि ६४ घटी हो तो उसकी २१ घटी के बाद भद्रापुच्छ और २४ घटी के बाद भद्रामुख होता है। इसी प्रकार तिथि के दूसरे मानों में भी कल्पना कर लेनी चाहिये।

अथ होलिकापूजाविधिः

देशकालौ संकीर्त्य 'सकुटुम्बस्य मम ढुण्ढाराक्षसीप्रीत्यर्थं तत्पीडापरिहारार्थं होलिकापूजनमहं करिष्ये' इति संकल्प्य शुष्काणां काष्ठानां गोमयपिण्डानां च राशिं कृत्वा वह्निना प्रदीप्य तत्र—

अस्माभिर्भयसंत्रस्तैः कृता त्वं होलिके यतः ।
अतस्त्वां पूजयिष्यामि भूते भूतिप्रदा भव ॥

इति पूजामन्त्रेण श्रीहोलिकामावाहयामीत्यावाह्य होलिकायै नम इति मन्त्रेणासनपाद्यादिषोडशोपचारान् दत्त्वा,

तमग्निं त्रिः परिक्रम्य गायन्तु च हसन्तु च ।
जल्पन्तु स्वेच्छया लोका निःशङ्का यस्य यन्मतम् ॥

देश काल को कहकर 'सकुटुम्ब ढूंढा राक्षसी की प्रीति के लिये उसके द्वारा प्राप्त पीड़ा के हटाने के लिये मैं होलिकापूजन करूँगा' ऐसा संकल्प करके सूखे काष्ठ और गोबर के पिण्डों की राशि बनाकर अग्नि से जलाकर वहाँ 'अस्माभिर्भयसन्त्रस्तैः' इत्यादि पूजा-मन्त्र से 'श्रीहोलिकायै नमो होलिकामावाहयामि' इससे आवाहन करके 'होलिकायै नमः' इस मन्त्र से आसन पाद्य आदि षोडशोपचार से पूजन कर, उस अग्नि की तीन परिक्रमा करके स्वेच्छा से गावें हंसे निःशंक होकर जिसका जो मन हो कहे।

ज्योतिर्निबन्धे—

पञ्चमीप्रमुखास्तासु तिथयोऽनन्तपुण्यदाः ।
दश स्युः शोभनास्तासु काष्ठस्तेयं विधीयते ॥
चाण्डालसूतिकागेहाच्छिशुहारितवह्निना ।
प्राप्तायां पूर्णिमायां तु कुर्यात्तत्काष्ठदीपनम् ॥
ग्रामाद्बहिश्च मध्ये वा तूर्यनादसमन्वितः ।
स्नात्वा राजा शुचिर्भूत्वा स्वस्तिवाचनतत्परः ॥
दत्त्वा दानानि भूरीणि दीपयेद्धोलिकाचितिम् ।
ततोऽभ्युक्ष्य चितिं सर्वां साज्येन पयसा सुधीः ॥
नारिकेलानि देयानि बीजपूरफलानि च ।
गीतवाद्यैस्तथा नृत्यै रात्रिः सा नीयते जनैः ॥

तमग्निं त्रिः परिक्रम्य शब्दैर्लिङ्गभगाङ्कितैः ।
तेन शब्देन सा पापा राक्षसी तृप्तिमाप्नुयात् ॥

एवं रात्रौ होलिकोत्सवं कृत्वा प्रातः प्रतिदिनं यः श्वपचं दृष्ट्वा[1] स्नानं कुर्यात्,

न तस्य दुष्कृतं किंचिन्नाधयो व्याधयोपि च ।
कृत्वा चावश्यकार्याणि संतर्प्य पितृदेवताः ॥
वन्दयेद्धोलिकाभूतिं सर्वदुष्टोपशान्तये । वन्दने मन्त्रः—
वन्दितासि सुरेन्द्रेण ब्रह्मणा शंकरेण च ।
अतस्त्वं पाहि नो देवि भूते भूतिप्रदा भव ॥

ज्योतिर्निबन्ध में पंचमी आदि तिथियाँ अनन्त पुण्य देने वाली हैं। उनमें १० शोभन हैं। उनमें लकड़ी की चोरी का विधान है। चांडाल के घर और सूतिका के घर से लकड़ी की चोरी कर बच्चे से अग्नि मंगावे। पूर्णिमा के आने पर उस लकड़ी को जला दे। गांव के बाहर या बीच में तुरही बाजे की ध्वनि के साथ राजा स्नान करके पवित्र होकर स्वस्तिवाचन करे। बहुत से दान देने के बाद होलिका की चिता को जलावे। इसके बाद सम्पूर्ण चिता में घी दूध का छींटा डाले। नारियल, अनार के फल चढ़ावे। उस रात को गाने बजाने और नाच से बितावे। उस अग्नि की तीन परिक्रमा करके लिंग भग के शब्दोंसे उस पापा राक्षसी को तृप्त करे। इस प्रकार रात में होलिकोत्सव मनाकर प्रातःकाल प्रतिपदा में चांडाल को देखकर या स्पर्श कर स्नान करे। उसको कोई पाप नहीं होता। शारीरिक या मानसिक कोई व्यथा नहीं होती। आवश्यक कार्यों को करके देवपितृतर्पण करके सब दुष्टों की शान्ति के लिये होलिका के भस्म को प्रणाम करे। प्रणाम का मन्त्र 'वन्दितासि०' इत्यादि है।

अथ करिदिननिर्णयः

होलिकादिनं करिसंज्ञकतदुत्तरदिनं च शुभे वर्ज्यम् ।
होलिकाग्रहणभावुकायनं प्रेतदाहदिवसोत्र पञ्चमः ।
तत्परं च करिसंज्ञकं दिनं वर्जितं सकलकर्मसूभयम् ॥ इत्युक्तेः ।
ग्रहणायनप्रेतदाहेषु निशीथविभागेन पूर्वदिनकरिदिनयोर्निर्णयः ज्ञेयः ।
नरो दोलागतं दृष्ट्वा गोविन्दं पुरुषोत्तमम् ।
फाल्गुन्यां संयतो भूत्वा गोविन्दस्य पुरं व्रजेत् ॥

होली और उसके उत्तर के करिसंज्ञक दिन शुभकर्म में वर्जित है। होली का दिन, ग्रहण, उत्तरायण, दक्षिणायण, प्रेतदाह, उसके बाद करिसंज्ञक दिन प्रत्येक कर्म में वर्जित है। ग्रहण, अयन और प्रेतदाह में आधी रात के विभाग से पूर्व दिन और करि-दिन का निर्णय जानना चाहिये। झूले पर बैठे हुए पुरुषोत्तम भगवान् का फाल्गुन की पूर्णिमा में दर्शन करने से वैकुण्ठलोक प्राप्त होता है।

---

१. भविष्य में दृष्ट्वा की जगह स्पृष्ट्वा पाठ है और पूर्णश्लोक है—'चैत्रे मासि महाबाहो पुण्ये तु प्रतिपद्दिने। यस्तत्र श्वपचं स्पृष्ट्वा स्नानं कुर्यान्नरोत्तमः ॥' पद्मपुराणे—'चैत्रे मासि महापुण्या निर्मिता प्रतिपत् पुरा। तस्यां यः श्वपचं स्पृष्ट्वा स्नानं कुर्यात् सचैलकम् ॥ न तस्य दुरितं किञ्चिन्नाधयो व्याधयो न च। भवन्ति कुरुशार्दूल तस्मात्सम्यक् समाचरेत् ॥' इति ।

अथ वसन्तोत्सवः

फाल्गुनकृष्णप्रतिपदि वसन्तारम्भोत्सवः । सा चौदयिकी ग्राह्या । दिनद्वये सत्त्वे [1]पूर्वा । अत्र तैलाभ्यङ्ग उक्तः । अत्र प्रतिपदि चूतपुष्पप्राशनमुक्तम् । तत्प्रकारः-गोमयोपलिप्ते गृहाङ्गणे शुक्लवस्त्रासन उपविष्टः प्राङ्मुखः सुवासिन्या कृतचन्दनतिलकनीराजनः सचन्दनमाम्रकुसुमं[2] प्राश्नीयात् । तत्र मन्त्रः—

चूतमग्र्यं वसन्तस्य माकन्द कुसुमं तव ।
सचन्दनं पिबाम्यद्य सर्वकामार्थसिद्धये ॥ इति ।

फाल्गुनकृष्ण प्रतिपदा में वसन्तारम्भ का उत्सव होता है । वह प्रतिपदा उदयकालीन लेनी चाहिये । । दोनों दिन उदयकाल में रहने पर पूर्वा ग्राह्य है । इस दिन तैलाभ्यंग कहा है । इस प्रतिपदा में आम की बौर का भक्षण विहित है । उसका प्रकार यह है—घर के आंगन में गोबर से लिपी हुई भूमि में शुक्ल वस्त्र के आसन पर पूर्व मुंह बैठकर सौभाग्यवती स्त्री से चन्दन लगवा अपनी आरती कराकर चन्दनसहित आम की बौर का प्राशन करे । उसमें 'चूतमग्र्यं वसन्तस्य' इत्यादि मन्त्र है ।

कृष्णद्वितीयायां देशग्रामाधिपतिर्वितते वितानादिशोभिते देशे रम्यासने उपविश्य पौरजानपदान् लोकान् सिन्दूरादिक्षोदैः चन्दनादिभिः पट्टवासैश्च विकीर्य तेभ्यस्ताम्बूलादि दत्त्वा नृत्यगीतविनोदैर्महोत्सवं कुर्यात् । इदानीं प्राकृतजनास्तु कृष्णपञ्चमीपर्यन्तमेतमुत्सवं कुर्वन्ति । इति होलिकोत्सवः ।

कृष्णपक्ष की द्वितीया में देश या ग्राम के मालिक शामियाना आदि से सुशोभित विस्तृत स्थान में सुन्दर आसन पर बैठकर पुर और जनपद के लोगों को सिन्दूर चन्दन आदि से उनके वस्त्रों पर छोड़ कर उन लोगों को ताम्बूल आदि देकर नाच गाना आदि के विनोदों से वसन्त-महोत्सव मनावे । इस समय प्राकृत मनुष्य तो कृष्ण पंचमी तक ही इस उत्सव को करते हैं । होलिकोत्सव समाप्त ।

फाल्गुनामावास्या मन्वादिः । साऽपराह्णव्यापिनी ग्राह्या । इति फाल्गुनमासकृत्यनिर्णयोद्देशः समाप्तः ।

फाल्गुन की अमावास्या मन्वादि-तिथि है । इसे अपराह्णव्यापिनी लेनी चाहिये । फाल्गुनमासकृत्यनिर्णयोद्देश समाप्त ।

अथ परिच्छेदद्वयशेषाख्यं प्रकीर्णप्रकरणमुच्यते—द्वादशस्वपि मासेषु श्राद्धे व्यतीपातादियोगस्य भरण्यादिनक्षत्रस्य चापराह्णव्याप्त्या दर्शवन्निर्णयो ज्ञेयः । उपवासादौ प्रचुराचाराभावान्नोक्तः ।

---

१. वृद्धवसिष्ठ ने उदयकाल में दो दिन प्रतिपदा के रहने पर पूर्व दिन को ग्राह्य कहा—'वत्सरादौ वसन्तादौ बलिराज्ये तथैव च । पूर्वविद्धैव कर्तव्या प्रतिपत्सर्वदा बुधैः ॥' वृद्धवसिष्ठ ने इस तिथि में तैलाभ्यंग न करने पर दोष कहा—'वत्सरादौ वसन्तादौ बलिराज्ये तथैव च । तैलाभ्यङ्गमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ॥' इति ।

२. पुराणसमुच्चये—'वृत्ते तुषारसमये सितपञ्चदश्यां प्रातर्वसन्तसमये समुपस्थिते च । सम्प्राश्य चूतकुसुमं सह चन्दनेन सत्यं हि पार्थ पुरुषोऽथ समाः सुखी स्यात् ॥' इति ।

अब दोनों परिच्छेदों का बचा हुआ प्रकीर्णक प्रकरण कहता हूँ। बारहों महीनों के श्राद्ध में व्यतीपात आदि योगों और भरणी आदि नक्षत्रों का अपराह्णव्यापिनी होने से अमावास्या की तरह निर्णय जानना चाहिये। उपवास आदि में विशेष आचार के न होने से नहीं कहा।

अथ चन्द्रसांवत्सरभेदाः

प्रभवो विभवः शुक्लः प्रमोदोथ प्रजापतिः।
अङ्गिराः श्रीमुखो भावो युवा धाता तथैव च॥
ईश्वरो बहुधान्यश्च प्रमाथी विक्रमो वृषः।
चित्रभानुः सुभानुश्च तारणः पार्थिवोऽव्ययः॥
सर्वजित्सर्वधारी च विरोधी विकृतिः खरः।
नन्दनो विजयश्चैव जयो मन्मथदुर्मुखौ॥
हेमलम्बो विलम्बोथ विकारी शार्वरी प्लवः।
शुभकृच्छोभकृत्क्रोधी विश्वावसुपराभवौ॥
प्लवङ्गः कीलकः सौम्यः साधारणविरोधकृत्।
परिधावी प्रमादी च आनन्दो राक्षसोऽनलः॥
पिङ्गलः कालयुक्तश्च सिद्धार्थी रौद्रदुर्मती।
दुन्दुभी रुधिरोद्गारी रक्ताक्षो क्रोधनः क्षयः॥ इति।

प्रभव, विभव, शुक्ल, प्रमोद, प्रजापति, अंगिरा, श्रीमुख, भाव, युवा, धाता, ईश्वर, बहुधान्य, प्रमाथी, विक्रम, वृष, चित्रभानु, सुभानु, तारण, पार्थिव, अव्यय, सर्वजित्, सर्वधारी, विरोधी, विकृति, खर, नन्दन, विजय, जय, मन्मथ, दुर्मुख, हेमलम्ब, विलम्ब, विकारी, शार्वरी, प्लव, शुभकृत्, शोभकृत्, क्रोधी, विश्वावसु, पराभव, प्लवंग, कीलक, सौम्य, साधारण, विरोधकृत्, परिधावी, प्रमादी, आनन्द, राक्षस, अनल, पिंगल, कालयुक्त, सिद्धार्थी, रौद्र, दुर्मति, दुंदुभि, रुधिरोद्गारी, रक्ताक्षी, क्रोधन और क्षय, ये संवत्सर के साठ नाम है

रवेः राशिसंक्रमवन्नक्षत्रसंक्रमेऽपि षोडश नाड्यः पूर्वत्र परत्र च पुण्यकालः।

सूर्य-राशि की संक्रान्ति की तरह नक्षत्र-संक्रान्ति में भी सोलह घड़ियां पहिले और पीछे पुण्यकाल है।

अथ चन्द्रादीनां संक्रान्तौ पुण्यकालः

चन्द्रस्य संक्रान्तौ प्राक् परत्र च त्रयोदशपलाधिका घटी पुण्यकालः। भौमस्यैकपलाधिकाश्चतस्रो नाड्यः। बुधस्य चतुर्दशपलाधिकास्तिस्रः। गुरोः सप्तत्रिंशत्पलाधिकाश्चतस्रः। शुक्रस्यैकपलाधिकाश्चतस्रः। शनेः सप्तपलाधिकाः षोडश। एताः सर्वाः प्राक् परत्र च बोद्धव्याः। रात्रौ ग्रहान्तराणां संक्रमे रात्रावेव पुण्यकालः, सूर्यसंक्रान्तिवद्दिवापुण्यत्वविधायकाभावात्। चन्द्रादिसंक्रान्तिषु स्नानं काम्यं न तु नित्यम्।

चन्द्र की संक्रान्ति में पहिले और पीछे १३ पल-अधिक १ घटी पुण्यकाल होता है। मंगल का एक पल अधिक ४ घटी। बुध का ३ घटी १४ पल, बृहस्पति का ४ घटी ३७ पल, शुक्र

का ४ घटी १ पल, शनि का १६ घटी ७ पल, यह सब पहिले और बाद में भी जानना चाहिये। रात्रि में दूसरे ग्रहों की संक्रान्ति में रात में ही पुण्यकाल होता है, क्योंकि सूर्य-संक्रान्ति के समान दिन में पुण्य का विधान नहीं है। चन्द्रादि ग्रहों की संक्रान्तियों में स्नान काम्य है, नित्य नहीं।

अथ आदित्यादिसूचितपीडानिरासार्थं स्नानानि

मञ्जिष्ठागजमदकुङ्कुमरक्तचन्दनानि जलपूर्णे ताम्रपात्रे प्रक्षिप्य स्नानं 'सूर्यपीडाहरम्। उशीरशिरीषकुङ्कुमरक्तचन्दनयुतशंखतोयेन स्नानं चन्द्रदोषहरम्। खदिरदेवदारुतिलामलकयुतरौप्यपात्रजलेन स्नानं भौमे। गजमदयुतसङ्गमजलेन मृत्पात्रस्थेन स्नानं बुधे। औदुम्बरबिल्ववटामलकानां फलैर्युतसौवर्णपात्रजलेन स्नानं गुरौ। गोरोचनगजमदशतपुष्पाशतावरीयुतराजतपात्रजलेन स्नानं शुक्रे। तिलमाषप्रियङ्गुगन्धपुष्पयुतलोहपात्रस्थजलेन स्नानं शनौ। गुग्गुलुहिङ्गुहरितालमनःशिलायुतमहिषशृङ्गपात्रजलेन स्नानं राहौ। वराहोत्खातपर्वताग्रमृच्छागक्षीरयुतखड्गपात्रजलेन स्नानं केतौ।

सूर्य की पीड़ा हरण के लिये मजीठ, हाथी का मद, कुंकुम और रक्तचन्दन को जल से भरे ताम्बे के पात्र में छोड़कर स्नान करना चाहिये। खश, शिरीष, कुंकुम, रक्तचन्दन और शंखको जलमें डाल कर स्नान से चन्द्र-जन्य-पीड़ा की निवृत्ति होती है। खैर, देवदारु, तिल और आँवला को चाँदी के पात्र में भरे जल में स्नान करने से मंगल की बाधा दूर होती है। गजमद से युक्त संगम के मिट्टी के पात्र में स्थित जल द्वारा स्नान से बुध की पीड़ा का हरण होता है। गूलर, बेल, बैर और आँवला के फलों से जल भरे सोने के पात्र द्वारा स्नान से बृहस्पति की बाधा दूर होती है। शुक्र की बाधा हरण के लिये चाँदी के जल भरे पात्र में गोरोचन, गजमद, सौंफ और शतावरी डाल कर स्नान करना चाहिये। शनि की पीड़ा हरण के लिये तिल, ऊर्द, प्रियंगु और गन्ध पुष्प से युक्त जल भरे लोहपात्र से स्नान करे। राहु की पीड़ा हरण करने के लिये गुग्गुल, हींग, हरताल और मैनसिल से युक्त भैंस के सींग के पात्रस्थित जल से स्नान करना चाहिये। केतुजन्य-पीड़ा की निवृत्ति के लिये पर्वत के अग्रभाग से सूअर की खोदी हुई मिट्टी, बकरी का दूध मिले गैंडे के सींग के पात्र में जल से स्नान करना चाहिये।

अथ ग्रहप्रीत्यर्थं दानानि

माणिक्यगोधूमधेनुरक्तवस्त्रगुडहेमताम्ररक्तचन्दनकमलानि रवेः प्रीत्यर्थं 'दानानि। वंशपात्रस्थतण्डुलकर्पूरमौक्तिकश्वेतवस्त्रघृतपूर्णकुम्भवृषभाश्चन्द्रस्य। प्रबालगोधूम-

---

१. ज्योतिःप्रकाश में सूर्यादिग्रहों की पीड़ा के निराकरणार्थ तीन प्रकार की शान्ति—'यथोक्तमौषधीस्नानं ग्रहविप्रार्चनं तथा। ग्रहानुद्दिश्य होमो वा त्रिधा शान्तिर्बुधैः स्मृता॥' श्रीपतिः—'देवब्राह्मणवन्दनाद् गुरुवचःसम्पादनात्प्रत्यहं साधूनामपि भाषणाच्छ्रुतिरवोच्छ्रेयःकथाऽऽकर्णनात्। होमादध्वरदर्शनाच्छुचिमनोभावाज्जपाद्दानतो नो कुर्वन्ति कदाचिदेव पुरुषस्यैवं ग्रहाः पीडनम्॥' इति।

२. संहिताप्रदीप में सूर्यादिग्रहों के दोषशमनार्थ दानान्तर—'भानुस्ताम्बूलदानादपहरति नृणां वैकृतं वासरोत्थं सोमः श्रीखण्डदानादवनिजसुतो भोजनात् पुष्पदानात्। सौम्यः शक्रस्य मन्त्री हरिहरनमनाद् भार्गवः शुभ्रवस्त्रैस्तैलस्नानात् प्रभाते दिनकरतनयो ब्रह्मनत्या परे च॥' इति।

दान-प्रसङ्ग से दान-द्रव्यों के देवता, जैसा कि विष्णुधर्मोत्तर में कहा—'अभयं सर्वदैवत्यं भूमिर्वै विष्णुदेवता। कन्या दासस्तथा दासी प्राजापत्याः प्रकीर्तिताः॥ प्राजापत्यो गजः प्रोक्तस्तुरगो

मसूरिकारक्तवृषगुडसुवर्णरक्तवस्त्रताम्राणि भौमस्य । नीलवस्त्रसुवर्णकांस्यमुद्गगारुत्मतदासीहस्तिदन्तपुष्पाणि बुधस्य । पुष्परागमणिहरिद्राशर्कराश्वपीतधान्यपीतवस्त्रलवणसुवर्णानि सुरगुरोः । चित्रवस्त्रश्वेताश्वधेनुवज्रमणिसुवर्णरजतगन्धतण्डुलाः शुक्रस्य । इन्द्रनीलमाषतैलतिलकुलित्थमहिषीलोहकृष्णधेनवः शनेः । गोमेदाश्वनीलवस्त्रकम्बलतैलतिललोहानि राहोः । वैडूर्यतैलतिलकम्बलकस्तूरीच्छागवस्त्राणि केतोर्दानानि । शनिपीडापरिहारार्थं शनिवारे तैलाभ्यङ्गस्तैलदानं च ।

सूर्य की प्रीति के लिये माणिक, गेहूँ, नयी ब्यायी गाय, लाल वस्त्र, गुड़, सुवर्ण, ताम्र, रक्तचन्दन और कमल का दान करे । चन्द्रमा की प्रसन्नता के लिये बाँस के पात्र में चावल भर के कपूर, मोती, सफेद वस्त्र, घी से भरा घड़ा और बैल का दान करे । मंगल की प्रीति के लिये मूंगा, गेहूँ, मसूर, लाल बैल, गुड़, सुवर्ण, लाल वस्त्र और तांबे का दान करे । बुध को प्रसन्न करने के लिये नील रंग का वस्त्र, सुवर्ण, कांसा मूंग गारुत्मत, दासी, हाथी का दाँत और पुष्प का दान करे । बृहस्पति की प्रसन्नता के लिये पुखराज मणि, हल्दी, चीनी, घोड़ा, पीला अन्न, पीला वस्त्र, नमक और सुवर्ण का दान करे । शुक्र की अनुकूलता के लिये चित्र-वस्त्र, सफेद घोड़ा, नई ब्याई गाय, हीरा, सोना, चाँदी, सुगन्ध द्रव्य और चावल का दान करे । शनि महाराज की प्रसन्नता के लिये इन्द्रनील-मणि, ऊर्द, तेल, तिल, कुर्थी, भैंस, लोहा और काली ब्याई गाय का दान करे । राहु की प्रसन्नता के लिये गोमेद, घोड़ा, नीला वस्त्र, कम्बल, तेल, तिल और लोहा का दान करे । केतु के प्रसन्नार्थ वैदूर्य-मणि, तेल, तिल, कम्बल, कस्तूरी, बकरा और वस्त्र का दान करे । शनि की पीड़ा हरण के लिये शनिवार को तेल लगाना और तेल का दान करना चाहिये ।

अथ शनिव्रतम्

लोहमयं शनिं तैलकुम्भे लौहे मृन्मये वा निक्षिप्य कृष्णवस्त्राभ्यां कम्बलेन

यमदैवतः । तथा चैकशफं सर्वं कथितं यमदैवतम् ॥ महिषश्च तथा याम्य उष्ट्रो वै नैर्ऋतस्तथा । रौद्री धेनुर्विनिर्दिष्टा छाग आग्नेय उच्यते ॥ मेषं तु वारुणं विद्याद् वराहो वैष्णवः स्मृतः । आरण्याः पशवः सर्वे कथिता वायुदैवताः ॥ जलाशयानि सर्वाणि वारिधानि कमण्डलुः । कुम्भश्च करकं चैव वारुणानि विनिर्दिशेत् । समुद्रजानि रत्नानि सामुद्राणि तथैव च । आग्नेयं काञ्चनं प्रोक्तं सर्वलोहानि वाप्यथ ॥ प्राजापत्यानि सस्यानि पक्वान्नमपि च द्विजाः । ज्ञेयानि सर्वगन्धानि गान्धर्वाणि विचक्षणैः ॥ बार्हस्पत्यं स्मृतं वासः सौम्यान्यथ रसानि च । पक्षिणश्च तथा सर्वे वायव्याः परिकीर्तिताः ॥ विद्या ब्राह्मी विनिर्दिष्टा विद्योपकरणानि च । सारस्वतानि ज्ञेयानि पुस्तकाद्यानि पण्डितैः ॥ सर्वेषां शिल्पभाण्डानां विश्वकर्मा तु दैवतम् । द्रुमाणामथ पुष्पाणां शाखानां हरितैः सह ॥ फलानामपि सर्वेषां तथा ज्ञेयो वनस्पतिः । मत्स्यमांसं विनिर्दिष्टं प्राजापत्यं तथैव च ॥ छत्रं कृष्णाजिनं शय्या रथमासनमेव च । उपानहौ तथा यानं यच्चान्यत्प्राणवर्जितम् ॥ उत्तानाङ्गिरसं त्वेतत्प्रतिगृह्णीत मानवः । पर्जन्याय तथा सीरं शस्त्रवर्मध्वजादिकम् ॥ रथोपकरणं सर्वं कथितं शक्रदैवतम् । गृहं तु सर्वदैवत्यं यदनुक्तं द्विजोत्तमाः ॥ तज्ज्ञेयं विष्णुदैवत्यं सर्वं वा विष्णुदैवतम् ।' इति ।

१. शनिवार के दिन सायंकाल पीपलवृक्ष के मूल में घृत या तैल का दीप अक्षत पुंज पर रखकर प्रज्वलित करने से शनिदेव की तुष्टि होती है । दीप-दान के पश्चात् पीपल वृक्ष की एक परिक्रमा करके प्रणाम करना चाहिये । इस प्रकार शान्ति-पर्यन्त प्रति शनिवार में यह नियमतः कर्तव्य है ।

वा युतं कृष्णैः सुगन्धपुष्पैश्च कृसरान्नैस्तिलोदनैः पूजयित्वा कृष्णाय द्विजाय तदभावेऽन्यस्मै सशनिर्देयः। तत्र शन्नोदेवीरिति मन्त्रः। शूद्रादेस्तु—

यः पुनर्नष्टराज्याय नलाय परितोषितः।
स्वप्ने ददौ निजं राज्यं स मे सौरिः प्रसीदतु॥

नमोऽर्कपुत्राय शनैश्चराय नीहारवर्णाञ्जनमेचकाय।
श्रुत्वा रहस्यं भवकामदस्त्वं फलप्रदो मे भव सूर्यपुत्र॥ इत्यादयः।

एवं व्रतं प्रतिशनिवारं संवत्सरं कार्यम्।

कोणस्थः पिङ्गलो बभ्रुः कृष्णो रौद्रोऽन्तको यमः।
सौरिः शनैश्चरो मन्दः पिप्पलादेन संस्तुतः॥

इति दशनामानि वा नित्यं पठनीयानि।

लोहे के शनि को तेल भरे लोहे के घड़े या मिट्टी के घड़े में छोड़कर काले दो वस्त्रों से या कम्बल से युक्त काले सुगन्ध फूलों से खिचड़ी या तिल-भात से पूजा करके काले ब्राह्मण को, उसके न मिलने पर अन्य को शनि के साथ दे दे। उसमें 'शन्नो देवी' इत्यादि मन्त्र है। शूद्रादि के लिये तो 'यः पुनर्नष्टराज्याय' इत्यादि मन्त्र है। इस प्रकार सालभर तक प्रति शनिवार को करे। अथवा 'कोणस्थः पिंगलो बभ्रुः' इत्यादि श्लोकोक्त दश नामों को प्रतिदिन पढ़े।

अथ शनिस्तोत्रम्

पिप्पलाद उवाच—

नमस्ते कोणसंस्थाय पिङ्गलाय नमोस्तु ते।
नमस्ते बभ्रुरूपाय कृष्णाय च नमोस्तु ते॥ १॥
नमस्ते रौद्रदेहाय नमस्ते चान्तकाय च।
नमस्ते यमसंज्ञाय नमस्ते सौरये विभो॥ २॥
नमस्ते मन्दसंज्ञाय शनैश्चर नमोस्तु ते।
प्रसादं कुरु देवेश दीनस्य प्रणतस्य च॥ ३॥

अनेन स्तोत्रेण प्रत्यहं प्रातः शनिस्तवनेन सार्धसप्तवार्षिकशनिपीडानाशः। रविवारे सूर्यपूजोपवाससूर्यमन्त्रजपैः सर्वरोगनाशः। ह्रीं ह्रीं सः सूर्यायेति षडक्षरः सूर्यमन्त्रः। इति प्रकीर्णनिर्णयोद्देशः।

शनि का 'नमस्ते कोणसंस्थाय' इत्यादि स्तोत्र मूल में अंकित है। स्तोत्र का आशय है—कोणसंस्थ, पिंगल, बभ्रुस्वरूप, कृष्ण, रौद्र-देह, अन्तक, यम, सौरि, मन्द और शनैश्चर को प्रणाम करता हूं, हे देवेश! प्रणत इस दीन के ऊपर आप प्रसन्न हों। इस स्तोत्र से प्रतिदिन प्रातःकाल में शनि की स्तुति करने से साढ़े साती शनि की पीड़ा नष्ट होती है। रविवार को सूर्य की पूजा उपवास और सूर्य के मन्त्रों का जप करने से सब रोगों का नाश होता है। सूर्य का 'ह्रीं ह्रीं सः' इत्यादि मन्त्र है। प्रकीर्णनिर्णयोद्देश समाप्त।

उक्त आद्यपरिच्छेदे सामान्येन विनिर्णयः ।
द्वितीयेऽस्मिन्परिच्छेदे विशेषेण विनिर्णयः ॥ १ ॥
मीमांसाधर्मशास्त्रज्ञाः सुधियोऽनलसा नराः ।
कृतकार्याः प्राङ् निबन्धैस्तदर्थं नायमुद्यमः ॥ २ ॥
ये पुनर्मन्दमतयोऽलसा अज्ञाश्च निर्णयम् ।
धर्मे वेदितुमिच्छन्ति रचितस्तदपेक्षया ॥ ३ ॥
निबन्धोऽयं धर्मसिन्धुसारनामा सुबोधनः ।
अमुना प्रीयतां श्रीमद्विट्ठलो भक्तवत्सलः ॥ ४ ॥

पहले परिच्छेद में सामान्य निर्णय कहा है। विशेष निर्णय दूसरे परिच्छेद में कहा है। मीमांसा धर्मशास्त्र का ज्ञाता आलस्यरहित विद्वान् पुरुष पूर्व निबन्धों से कृतकृत्य हो चुके हैं, उनके लिये यह हमारा परिश्रम नहीं है। आलसी, मतिमन्द और अज्ञ, जो धर्म का निर्णय जानना चाहते हैं, उनकी अपेक्षा से धर्मसिन्धुसार नामक इस निबन्ध को सुखपूर्वक जानने के लिये बनाया है। इससे भक्त-प्रिय श्रीमान विट्ठल भगवान् प्रसन्न हों। ॥ १-४ ॥

सर्वत्र [1]मूलवचनानीह ज्ञेयानि तद्विचारश्च ।
कौस्तुभनिर्णयसिन्धुश्रीमाधवकृतनिबन्धेभ्यः ॥ ५ ॥
प्रेम्णा सद्भिर्ग्रन्थः सेव्यः शब्दार्थतः सदोषोऽपि ।
संशोध्य वापि हरिणा सुदाममुनिसतुषपृथुकमुष्टिरिव ॥ ६ ॥

इति द्वितीयः परिच्छेदः समाप्तः ।

सब जगह मूलवचन और उसका विचार कौस्तुभ, निर्णयसिन्धु और श्रीमाधव के निबन्धों से जानना चाहिये। सज्जनगण शब्द और अर्थ से दोषयुक्त होने पर भी प्रेम से इस ग्रन्थ को संशोधन कर अपनावें, जैसे सुदामा मुनि के भूसी के सहित एक मुट्ठी चिउड़ा को भगवान् ने अपनाया ॥५-६॥
अकीर्णनिर्णयोद्देश समाप्त।

द्वितीयपरिच्छेद समाप्त ।

---

१. धर्मसिन्धुकार ने निर्णयसिन्धु प्रभृति निबन्ध-ग्रन्थों के आधार पर उनके सिद्धार्थ का प्रतिपादन अल्पज्ञों को सरलता से बोध के लिये इस निबन्ध की रचना की किन्तु मूलवचन के जिज्ञासुओं की जिज्ञासा इससे पूर्ण नहीं होती इसलिये उन निबन्धों के विशिष्ट वचनों का यथास्थल विन्यास एवं अनुक्त-विषयों के निर्णय इस सुधाविवृति में किये गये हैं।

इति द्वितीयपरिच्छेदे सुधाविवृतिः समाप्ता ।

तृतीयः परिच्छेदः

पूर्वार्द्धम्

श्रीपाण्डुरङ्गमकलङ्ककलानिधानकान्ताननं यदबुधानमनं मुधा न।
श्रीवत्सकौस्तुभरमोल्लसितोरसं तं वन्दे पदाब्जभृतनन्ददुदारसन्तम् ॥ १ ॥

भीमाप्रियं सुकरुणार्णवमाशुतोषं दीनेष्टपोषमघसंहतिसिन्धुशोषम्।
श्रीरुक्मिणीमतिमुषं[1] पुरुषं परं तं वन्दे दुरन्तचरितं हृदि संचरन्तम् ॥ २ ॥

वन्दे प्रतिघ्नन्तमघानि शङ्करं धत्तां स मे मूर्ध्नि दिवानिशं करम्।
शिवां च विघ्नेशमथो पितामहं सरस्वतीमाशु भजेऽपि तामहम् ॥ ३ ॥

निष्कलंक कलानिधान श्रीपांडुरंग भगवान् का प्रिय मुख जो अपण्डितों को नहीं नवाता यह बात झूठ नहीं है। श्रीवत्स कौस्तुभमणि और लक्ष्मी से उल्लसित छाती वाले, चरण-कमल में बढ़ते हुए उदार सन्तों को धारण करने वाले, उस श्री पांडुरंग भगवान् को मैं बन्दना करता हूँ। भीमा के प्रिय, दया के समुद्र, शीघ्र प्रसन्न होने वाले दुःखी इष्टजनों के पोषक, पाप रूप समुद्र के शोषक, सबके हृदय में वसने और श्रीरुक्मिणी की बुद्धि को चुराने वाले उस दुरंत-चरित परम पुरुष को मैं प्रणाम करता हूँ। पापों को नाश करने वाले शंकर भगवान् की बन्दना करता हूँ। वे शंकरदेव मेरे सिर पर दिन रात अपना हाथ रक्खें। पार्वती, गणेश, ब्रह्मा और उस सरस्वती को मैं शीघ्र भजता हूँ ॥ १-३ ॥

श्रीलक्ष्मीं गरुडं सहस्रशिरसं प्रद्युम्नमीशं कपिं
श्रीसूर्यं विधुभौमविद्गुरुकविच्छायासुतान् षण्मुखम्।
इन्द्राद्यान्विबुधान् गुरूंश्च जननीं तातं त्वनन्ताभिधं
नत्वार्यान्वितनोमि माधवमुखान् धर्माब्धिसारं मितम् ॥ ४ ॥

दृष्ट्वा पूर्वनिबन्धान् प्राच्यांश्च नवांश्च तेषु सिद्धार्थान्।
प्रायेण मूलवचनान्युज्झित्य[2] लिखामि बालबोधाय ॥ ५ ॥

---

१. भीमायाः प्रियं सुकरुणायाः शोभनदयायाः अर्णवं समुद्रं दीनानां शरणागतानां प्रणतजनानामिष्टपोषं मनोरथपूरकम् अघसंहतिसिन्धुशोषं पापपुञ्जसरित्पतिशोषकं श्रीरुक्मिण्याः मतिमुषं बुद्धिचौरं दुरन्तचरितमनन्तचरित्रं हृदि मानसे सञ्चरन्तं विचरणशीलं तं पूर्वोक्तं परं परमपुरुषं श्रीपाण्डुरङ्गाभिधं श्रीकृष्णचन्द्रं वन्दे नमामि। श्रीकृष्णः श्रीरुक्मिण्यादिमतेरेव चौरो न किन्तु प्राणिनामनेकजन्मार्जितपापपुञ्जापहारकोऽप्यस्तीति।

२ उज्झित्य=त्यक्त्वा, 'उज्झ उत्सर्गे' इति धातोः क्त्वो ल्यपि, 'ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्' इति तुकि कृते उज्झित्येति। ग्रन्थकर्ता निर्णयसिन्ध्वादिनिबन्धस्थितमूलवचनानि त्यक्त्वा तत्तन्निबन्धग्रन्थेषु सिद्धान्तरूपेण प्रतिपादितानर्थात् अस्मिन् धर्मसिन्धुसारे विलिखति, किन्तु एतावता मूलवचनजिज्ञासूनां जिज्ञासा पूरिता न भवतीति अस्यां सुधा-विवृतौ यथास्थलमहं मूलवचनानि सङ्गृह्य विलिखामि।

श्रीलक्ष्मी, गरुड़, हजार फणा वाले शेष, प्रद्युम्न ईश, कपि, श्रीसूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, राहु, केतु और श्रीस्कन्द, इन्द्रादि देवता, गुरु, माता, अनन्त नामक पिता और माधव आदि श्रेष्ठों को नमस्कार करके संक्षिप्त धर्मसिन्धुसार को बनाता हूँ। प्राचीन और नवीन निबन्धों को देखकर उनके सिद्ध-अर्थ को बालकों के ज्ञान के लिये प्रायः मूलवचनों को छोड़कर लिखता हूँ ॥४-५॥

उक्त्वा धर्माब्धिसारेस्मिन्निर्णयं कालगोचरम्।
परिच्छेदे प्रथमजे द्वितीये च यथाक्रमम ॥ ६ ॥
अथ गर्भादिसंस्कारान्धर्मान्गृह्यादिसंमतान् ।
वक्ष्ये संक्षेपतः संतोऽनुगृह्णन्तु दयालवः ॥ ७ ॥
काशीनाथाभिधेनात्रानन्तोपाध्यायसूनुना ।
निर्णीयते यदेतत्तु शोधनीयं मनीषिभिः ॥ ८ ॥

इस धर्मसिन्धुसार में कालगोचर-निर्णय प्रथमपरिच्छेद में कहकर द्वितीयपरिच्छेद में क्रमानुसार गृह्यादि-सम्मत गर्भादि संस्कारों को संक्षेप से कहूँगा। कृपालु सज्जनगण मुझ पर अनुग्रह करें। श्री अनन्तोपाध्याय के पुत्र काशीनाथ ने जो यह निर्णय किया है, उनका विद्वज्जन शोधन करें ॥ ६-८ ॥

तत्रादौ गर्भाधानसंस्कार उच्यते

तदुपयोगितया प्रथमरजोदर्शने दुष्टमासादि निर्णीयते। तत्र चैत्रज्येष्ठाषाढभाद्रपदकार्तिकपौषमासा दुष्टाः । प्रतिपद्रिक्ताष्टमीषष्ठीद्वादशीपञ्चदश्योऽनिष्टफलास्तिथयः[1] । तथा रविभौममन्दवारेषु भरणीकृत्तिकार्द्राश्लेषामघापूर्वात्रयविशाखाज्येष्ठानक्षत्रेषु विष्कम्भगण्डातिगण्डशूलव्याघातवज्रपरिघपूर्वार्धव्यतीपातवैधृतियोगेषु विष्ट्यां ग्रहणे रात्रिसंध्यापराह्णकालेषु निद्रायां जीर्णरक्तनीलचित्र-

---

१. यहां पंचदशी से अमावास्या का ही ग्रहण है। क्योंकि मुहूर्तमार्तण्ड की टीका में पूर्णिमा में प्रथमरजोदर्शन का सुपुत्रिणी होना फल कहा है। प्रतिपदादि-तिथियों के क्रम से प्रथमरजोदर्शन का नारदोक्त फल—'वैधव्यं सुतलाभश्च मैत्रं शत्रुविवर्धनम्। मित्रलाभः शत्रुवृद्धिः कुलर्द्धिर्बन्धुनाशनम् ॥ मरणं वंशवृद्धिश्च निराहारः कुलक्षयः। तेजश्च सुतनाशश्च कुलहानिस्तिथिक्रमात् ॥' रविवारादि-दिन के क्रम से प्रथम रजोदर्शन का फल—'रोगी पतिव्रता दुःखी पुत्रिणी भोगभागिनी। पतिव्रता क्लेशभागी सूर्यवारादिषु क्रमात् ॥'

अश्विनी आदि क्रम से नक्षत्रों का गर्गोक्त फल—'सुभगा चैव दुःशीला वन्ध्या पुत्रसमन्विता। धर्मयुक्ता व्रतघ्नी च परसन्तानमोदिनी ॥ सुपुत्रा चैव दुःपुत्रा पितृवेश्मरता सदा। दीना प्रजावती चैव पुत्राढ्या चित्रकारिणी ॥ साध्वी पतिप्रिया नित्यं सुपुत्रा कष्टचारिणी। स्वकर्मनिरता हिंस्रा पुण्यपुत्रादिसंयुता ॥ नित्यं धनचयासक्ता पुत्रधान्यसमन्विता। मूर्खा चाज्ञा पुण्यवती दस्रभाद्दिः क्रमात्फलम् ॥' नारद ने शुभदायक राशियों का निर्देश किया—'कुलीरवृषचापान्त्यनृयुक्कन्यातुलाघटाः। राशयः शुभदा ज्ञेया नारीणां प्रथमार्तवे ॥'

निषिद्ध तिथिवारादि में प्रथम-रजोदर्शन-जन्य-अनिष्टफल के शमनार्थ वसिष्ठोक्त-शान्ति करनी चाहिये—'ईशानतो गोमयमण्डलेन परिसृतेऽग्नौ जुहुयात् सदूर्वाम्। युग्मां घृताक्तां च समित्प्रमाणां गायत्रिकां साष्टसहस्रसंख्याम्। शतप्रमाणामथवाऽघहन्त्रीं शुभैर्यवैर्व्याहृतिभिस्तिलैश्च। ततः सुरान् भूमिसुरान् पितृंश्च संतर्पयेदन्नसुवर्णवस्त्रैः ॥' इति।

वस्त्रेषु नग्नत्वे परगृहपरग्रामेषु अल्पाधिकनीलादिरक्तत्वे चानिष्टफलम्। [1]संमार्जनीकाष्ठतृणाग्निशूर्पान् हस्ते दधाना कुलटा स्यात्। वस्त्रे विषमा रक्तबिन्दवः पुत्रफलाः, समाः कन्याफलाः।

गर्भाधान में उपयोगी होने से प्रथम रजोदर्शन में दुष्ट आदि मास का निर्णय करता हूँ। इसमें चैत, ज्येष्ठ, आषाढ़, भाद्रपद, कार्तिक और पौषमास अशुभ हैं। प्रतिपदा, रिक्ता, अष्टमी, षष्ठी, द्वादशी और पूर्णिमा तिथियां अनिष्ट फल देने वाली हैं। उसीतरह रवि-मंगल-शनिवार में, भरणी-कृत्तिका-आर्द्रा-आश्लेषा-मघा-तीनों पूर्वा-विशाखा-ज्येष्ठा-नक्षत्रों में, विष्कम्भ-गण्ड-अतिगंड-शूल-व्याघात-परिघ-व्यतीपात का पूर्वार्द्ध और वैधृतियोगों में, भद्रा-ग्रहण-रात्रि-सन्ध्या में, अपराह्नकाल, निद्रावस्था में, पुराने-लाल-नील-चित्र-वस्त्रों में, नंगे रहने, दूसरे के घर और दूसरे गांव में, कम अधिक नील आदि रक्त होने पर अनिष्ट फल होता है। झाड़ू, लकड़ी, तृण, अग्नि और सूप हाथ में धारण करती हुई रजस्वला हो तो कुलटा होती है। कपड़े में विषम रक्तविन्दु दिखाई पड़े तो पुत्र-प्राप्ति होती है। सम रक्त विन्दुओं से कन्या होती है।

अथ प्रथमर्तौ विशेषः

अथ प्रथमर्तौ अक्षतैरासनं कृत्वा तत्र तामुपवेश्य पतिपुत्रवत्यः स्त्रियो हरिद्रा-कुङ्कुमगन्धपुष्पस्रक्ताम्बूलादि तस्यै दत्त्वा दीपैर्नीराज्य सदीपालंकृते गृहे तां वासयेयुः सुवासिनीभ्यो गन्धादिकं लवणमुद्गादि च दद्यात्।

प्रथम ऋतु में अक्षत से आसन बनाकर उसपर रजस्वलाको बैठाकर पति पुत्र वाली स्त्रियाँ हरदी, कुंकुम, गंध, पुष्पमाला और ताम्बूल आदि, रजस्वला को देकर दीपों से आरती उतार कर दीप से सुशोभित घर में उसे रक्खें। सौभाग्यवती स्त्रियोंको गन्ध आदि नमक और मूंग आदि भी दे।

अथ सर्वर्तुसाधारणनियमाः—त्रिरात्रमस्पृश्या भूत्वा [2]अभ्यङ्गाञ्जनस्नानदिवास्वापाग्निस्पर्शदन्तधावनमांसाशनसूर्याद्यवलोकान् भूमौ रेखाकरणं च वर्जयेद-

---

१. देवरातः—'सम्मार्जनीकाष्ठतृणाग्निशूर्पान् हस्ते दधाना कुलटा तदा स्यात्। तल्पोपभोगे तपसि स्थिता चेद् दृष्टं रजो भाग्यवती तदा स्यात्॥' वस्त्रधारण का गर्गोक्त फल-'सुभगा श्वेतवस्त्रा स्याद् दृढवस्त्रा पतिव्रता। क्षौमवस्त्रा क्षितीशा स्यान्नववस्त्रा सुखान्विता॥ दुर्भगा जीर्णवस्त्रा स्याद् रोगिणी रक्तवाससा। नीलाम्बरधरा नारी पुष्पिता विधवा ततः॥ वस्त्रे स्युर्विषमा रक्तबिन्दवः पुत्रमाप्नुयात्। समाश्चेत्कन्यकाश्चेति फलं स्यात् प्रथमार्तवे॥'

स्मृतिरत्न में पूर्वाह्णादि का फल—'शुभं चैव तु पूर्वाह्णे मध्याह्ने मध्यमं फलम्। अपराह्णे तु वैधव्यं पूर्वरात्रे शुभं भवेत्॥ मध्यरात्रे मध्यमं स्यात् परात्रे शुभान्विता।' इति।

२. रजस्वला का दक्षोक्त वर्जित-कर्म—'अञ्जनाभ्यञ्जने स्नानं प्रवासं दन्तधावनम्। न कुर्यात् सार्तवा नारी ग्रहाणामीक्षणं तथा॥' अत्रिः—वर्जयेन्मधु मांसं च पात्रे खर्वे च भोजनम्। गन्धमाल्ये दिवास्वापं ताम्बूलं चास्यशोधनम्॥ दग्धे शरावे भुञ्जीत पेयं चाञ्जलिना पिबेत्॥' हारीतः—'रजःप्रास्रावधः शयीत भूमौ, कार्ष्णायसे पाणौ मृन्मये वाऽश्नीयात्' विष्णुधर्मः—'आहारं गोरसानां च पुष्पालङ्कारधारणम्। अञ्जनं कङ्कतं गन्धान् पीठशय्याऽधिरोहणम्॥ अग्निसंस्पर्शनं चैव वर्जयेत्सा दिनत्रयम्।'

लिङ्गपुराणे—'स्नानं शौचं तथा गानं रोदनं हसनं तथा। यानमभ्यञ्जनं नारी द्यूतं चैवानुलेपनम्॥ दिवास्वापं विशेषेण तथा वै दन्तधावनम्। मैथुनं मानसं वाऽपि वाचिकं देवताऽर्चनम्॥ वर्जयेत् सर्वयत्नेन नमस्कारं रजस्वला।' स्मृत्यन्तर में विशेष—'स्त्रीधर्मिणी त्रिरात्रं तु स्वमुखं नैव दर्शयेत्। स्ववाक्यं श्रावयेन्नापि यावत्स्नाता न शुद्ध्यति॥ सुस्नाता भर्तृवदनमीक्षेनान्यस्य कस्यचित्। अथवा मनसि ध्यात्वा पतिं भानुं विलोकयेत्॥' इति।

धः शयीत । अञ्जलिना ताम्रलोहपात्रेण वा जलं न पिबेत् । या खर्वपात्रेण पिबति, तस्याः खर्वः पुत्रः । नखनिकृन्तने कुनखीपुत्रः, पर्णेन पाने उन्मत्त इति ।

सब ऋतुओं के साधारण नियम— तीन रात अस्पृश्य होकर तेल लगाना, आखों में काजल लगाना, स्नान करना, दिन का सोना, अग्नि-स्पर्श, दतुवन करना, मांस का खाना, सूर्य आदि का देखना और भूमि में लकीर खींचना, वर्जित करे । जमीन पर सोवे, अँजुरी से ताम्र या लोहे के पात्र से जल न पीवे । जो छोटे पात्र से जल पीती है, उसका पुत्र नाटे कद का होता है । नख काटने पर पुत्र कुनखी होता है । पत्ते से जल पीने पर पुत्र पागल होता है ।

अथ द्वितीयर्तौ नियमाः

द्वितीयादिषु ऋतुषु प्रवासगन्धमाल्यादिधारणताम्बूलगोरसभक्षणपीठाद्यारोहणं वर्जयेत् । मृन्मये आयसे भूमौ वा भुञ्जीत ।

दूसरी आदि ऋतुओं में परदेश जाना, गन्ध माला आदि का धारण करना, ताम्बूल और गोरस का भक्षण करना, पीढ़े आदि पर चढ़ना छोड़ दे । मिट्टी के पात्र में लोहे के पात्र में या भूमि पर भोजन करे ।

अथ रजस्वलायाः नैमित्तिकस्नाने विधिः

ग्रहणादिनिमित्तकस्नानप्राप्तौ नोदकमज्जनरूपं स्नानं किन्तु पात्रान्तरितजलेन स्नात्वा न वस्त्रपीडनं कुर्यान्नान्यद्वासश्च धारयेत् । एवं मृताशौचादिनिमित्तस्नानप्राप्तावपि ।

ग्रहण आदि नैमित्तिक स्नान प्राप्त होने पर डुबकी लगाकर स्नान नहीं करे, किन्तु किसी पात्र में जल रखकर उस जल से नहाकर वस्त्र को नहीं निचोड़े और दूसरा वस्त्र भी न पहने । इसी प्रकार मृताशौच आदि नैमित्तिक-स्नान में भी आचरण करे ।

अथ रजस्वलयोः स्पर्शादौ विधिः

सगोत्रयोर्योनिसम्बन्धिन्योर्वा ब्राह्मण्यो रजस्वलयोः परस्परं स्पर्शे उक्तरीत्या तदैव स्नानमात्रेण शुद्धिः । बुद्ध्या स्पर्शे एकरात्रमुपवासः । गोत्रादिसम्बन्धाभावे अबुद्ध्या स्पर्शे तस्मिन्दिने स्नात्वा न भुञ्जीत । मत्या स्पर्शे तु आशुद्धेर्न भुञ्जीत । भोजने तु शुद्ध्यनन्तरं तावद्दिनसंख्ययोपवसेत् । उपवासाशक्तौ तु तत्प्रत्याम्नायब्राह्मणभोजनादि कुर्यात् । सर्वत्र शुद्ध्युत्तरं पञ्चगव्याशनं ज्ञेयम् । शूद्रीब्राह्मण्यो रजस्वलयोः स्पर्शे आशुद्धेरभोजनम् । शुद्धौ कृच्छ्रप्रायश्चित्तं ब्राह्मण्याः । शूद्रयास्तु पादकृच्छ्रमात्रम् ।

अपने गोत्र की योनि सम्बन्धिनी या रजस्वला-ब्राह्मणी से परस्पर स्पर्श होने पर पूर्वोक्त विधि से उसी समय केवल स्नान से शुद्धि होती है । जानबूझ कर स्पर्श करने पर एक रात्रि उपवास करे । अपने गोत्र आदि का सम्बन्ध न होने पर विना जाने स्पर्श हो तो उस दिन नहाकर भोजन न करे । जानबूझ कर स्पर्श करने पर तो शुद्धि-पर्यन्त भोजन न करे । भोजन करे तो शुद्धि के बाद उतने ही दिन उपवास करे । उपवास में असमर्थ हो तो उसके बदले में ब्राह्मणभोजन आदि करावे । रजस्वला की शुद्धि के बाद पंचगव्य-प्राशन करना चाहिये । शूद्री-ब्राह्मणी-रजस्वला के परस्पर स्पर्श होने पर शुद्धि तक भोजन न करे । शुद्ध होने पर ब्राह्मणी कृच्छ्र-प्रायश्चित्त करे । शूद्री तो पादकृच्छ्र व्रत करे ।

अथ रजस्वलासूतिकयोश्चाण्डालादिस्पर्शे विधिः

रजस्वलायाः सूतिकाया वा चाण्डालादिस्पर्शे आशुद्धेर्न भोजनमतिकृच्छ्रं च। अमत्या स्पर्शे प्राजापत्यम्। दण्डादिपरंपरया चाण्डालादिस्पर्शे स्नानमात्रम्। भुञ्जानायाः स्पर्शे प्राजापत्यं द्वादशब्राह्मणभोजनं च। मिताक्षरायां तु पतितान्त्यजचाण्डालैः कामतः स्पर्शे आशुद्धेरभुक्त्वा शुद्ध्युत्तरं प्रथमेह्नि स्पर्शे त्र्यहमुपवासः द्वितीये द्व्यहं तृतीये एकाहः। अकामतस्तु आशुद्धेरभोजनमात्रम्। एवं ग्रामकुक्कुटसूकरश्ववायसरजकादिस्पर्शेपि।

रजस्वला या प्रसव करने वाली स्त्री का चांडाल आदि से स्पर्श होने पर शुद्धि तक भोजन न करे और अतिकृच्छ्र प्रायश्चित्त करे। अनजाने स्पर्श होने पर प्राजापत्यव्रत करे। छड़ी आदि की परंपरा से चांडाल आदि से स्पर्श होने पर केवल स्नान करे। भोजन करते हुए स्पर्श होने पर प्राजापत्यव्रत और १२ ब्राह्मणभोजन करावे। मिताक्षरा में तो पतित, अंत्यज और चाण्डाल से जानते हुए स्पर्श होने पर शुद्धि तक विना खाये शुद्धि के बाद पहिले दिन स्पर्श करने पर तीन दिन का उपवास करे, दूसरे दिन दो दिन और तीसरे दिन एक दिन का उपवास करे। विना जाने स्पर्श होने पर तो शुद्धि तक केवल भोजन न करे। इसी प्रकार मुर्गा, सूअर, कुत्ता, कौवा और रजक आदि से स्पर्श होने पर भी करे।

अशक्तौ तु स्नात्वा यावन्नक्षत्रदर्शनमभोजनम्। भुञ्जानायाः श्वचाण्डालादिस्पर्शे आशुद्धेरभोजनं षड्रात्रं गोमूत्रयावकाहारः। अशक्तौ सुवर्णदानं विप्रभोजनं वा। उच्छिष्टयो रजस्वलयोः स्पर्शे उच्छिष्टचाण्डालेन स्पर्शे वा कृच्छ्रेण शुद्धिः। उच्छिष्टद्विजस्पर्शे रजस्वलायास्त्र्यहमूर्ध्वोच्छिष्टे[1] अधरोच्छिष्टे त्वेकाहमुपवास इत्युक्तम्। उच्छिष्टशूद्रस्पर्शे अधिकं कल्प्यम्। पुष्पिण्याः सूतक्याद्यशुद्धनरस्पर्शे आशुद्धेरभोजनं, भोजने तु कृच्छ्रम्।

असमर्थ होने पर तो स्नान करके जब तक तारोंका दर्शन नहीं होता तब तक भोजन न करे। खाते समय कुत्ता चाण्डाल आदि से छू जाने पर शुद्धि-पर्यन्त भोजन करे और छ दिन तक गोमूत्र और जव का आहार करे। सामर्थ्य न रहने पर सोने का दान करे या ब्राह्मणभोजन करावे। उच्छिष्टावस्था में दो रजस्वलाओं का परस्पर स्पर्श होने पर अथवा उच्छिष्ट-चांडाल से स्पर्श होने पर कृच्छ्रव्रत से शुद्धि होती है। उच्छिष्ट-द्विज से स्पर्श पोने पर रजस्वला को भोजन के बाद विना कुल्ला किये को ऊर्ध्वोच्छिष्ट कहते हैं। पेशाब आदि करने के बाद शुद्धि न होने तक अधरोच्छिष्ट कहलाता है। इस प्रकार ऊर्ध्वोच्छिष्ट में तीन दिन का उपवास और अधरोच्छिष्ट में एक दिन का उपवास कहा है। उच्छिष्ट-शूद्र से स्पर्श होने पर अधिक की कल्पना करनी चाहिये। रजस्वला को सूतकी आदि अशुद्ध पुरुष से स्पर्श होने पर शुद्धि तक भोजन न करे, भोजन करने पर तो कृच्छ्रव्रत करे।

पञ्चनखद्विशफैकशफपशुस्पर्शे अण्डजस्पर्शे चाशुद्धेरभोजनम्। रजस्वलायाः श्वजम्बुकगर्दभदंशे आशुद्धेरभोजनम्। शुद्धौ पञ्चरात्रमुपवासः। नाभेरूर्ध्वं दंशे

---

१. भोजनोत्तरं मुखप्रक्षालनात् पूर्वावस्था ऊर्ध्वोच्छिष्टम्। मूत्रपुरीषोत्सर्गोत्तरमकृतशौचात्पूर्वावस्था अधरोच्छिष्टम्।

दशरात्रं मूर्ध्नि दंशे विंशतिरात्रम्। भुञ्जाना रजस्वला रजस्वलां पश्यति चेदाशुद्धेरभोजनम्। चाण्डालं पश्यति चेदुपवासत्रयमपि। कामतश्चाण्डालं पश्यति चेत्प्राजापत्यम्। रजस्वलायाः शवसूतिकाभ्यां स्पर्शे शुद्धचन्ते त्रिरात्रमुपवासः, आशुद्धेरभोजनं च। भोजने तु कृच्छ्रम्। सर्वत्र [1]ब्रह्मकूर्चविधिना पञ्चगव्याशनमुक्तमेव।

पांच नख दो खुर और एक खुर वाले पशु से स्पर्श होने पर तथा अण्डे से उत्पन्न होने वाले से स्पर्श होने पर शुद्धि तक भोजन न करे। रजस्वला को कुत्ता, सिआर और गदहा के काटने पर शुद्धि-पर्यन्त भोजन न करना चाहिये। शुद्धि होने पर पाँच दिन का उपवास करे। नाभि से ऊपर काटने पर दस दिन का, और सिर में काटने पर बीस दिन का उपवास है। रजस्वला भोजन करती हुई दूसरी रजस्वला को देखती है तो शुद्धि तक भोजन न करे। यदि चाण्डाल को देखती है तो ३ उपवास भी करे। जानबूझ का चाण्डाल को देखती है तो प्राजापत्यव्रत करे। रजस्वला को मुर्दे से और दस दिन के भीतर प्रसव करने वाली स्त्री से स्पर्श होने पर शुद्धि के अन्त में तीन दिन का उपवासऔर शुद्धि तक भोजन न करना चाहिये। भोजन करने पर तो कृच्छ्रव्रत करे। सब जगह ऐसे स्थल में ब्रह्मचर्य-विधि से पंचगव्य-प्राशन कहा ही है।

आशौचिभिः स्पर्शे स्नानात्प्राग्रजोदर्शने चतुर्थदिनपर्यन्तमभोजनम्। अशक्तौ तु सद्यः स्नात्वा भुञ्जीत। एवं बन्धुमरणश्रवणे स्नानात्प्राग्रजोदर्शनेऽपि। तथा रजोदर्शनोत्तरं बन्धुमरणश्रवणेपि शक्तायाः आशुद्धेरभोजनमशक्तायाः सद्यःस्नानेन भोजनम्। सर्वत्रास्पृश्यस्पर्शे अशक्तायाः स्नाने कृते भोजनं, शुद्धचन्ते अनशनप्रत्याम्नाय इति केचित्।

स्नान से पहिले रजोदर्शन होने पर आशौचियों से स्पर्श हो तो चार दिन तक भोजन न करे। अशक्त तो तुरत स्नान करके भोजन करे। इसी प्रकार स्नान के पहिले रजोदर्शन में भी भाई का मरण सुनने पर भी करे। ऐसे ही रजोदर्शन के बाद भाई का मरण सुनने पर भी शक्ता स्त्री शुद्धि तक उपवास और अशक्ता तुरत स्नान करके भोजन करे। कोई कहते हैं कि सब जगह अस्पृश्य का स्पर्श करने पर शक्तिहीना स्त्री का स्नान करके भोजन शुद्धि के अन्त में प्रायश्चित्त के बदले में है।

अथ रजसि जननमरणयोः प्रथमदिननिर्णयः

रजस्वलायाः [2]प्रथमदिननिर्णयस्तु रात्रेः पूर्वभागद्वये पूर्वदिनं प्रथमम्। तृतीये भागे रजोदर्शने उत्तरदिनं प्रथमम्। यद्वाऽर्धरात्रात्पूर्वं पूर्वदिनं प्रथमम्। अर्धरात्रादूर्ध्वमुत्तरदिनं प्रथमम्। एवं जननमरणाशौचेऽपि ज्ञेयम्।

---

१. पंचगव्यपान रूप व्रतविशेष को ब्रह्मकूर्च कहते हैं, जैसा कि जाबालि ने कहा है—'अहोरात्रोषितो भूत्वा पौर्णमास्यां विशेषतः। पंचगव्यं पिबेत् प्रातः ब्रह्मकूर्चविधिः स्मृतः ॥' आगे हरिवंशश्रवणविधि के प्रसंग में ब्रह्मकूर्च की विधि प्रतिपादित है।

२. पारिजात में प्रथमदिन का निर्णय—'पूर्वांशयोस्तु रात्रौ चेज्जननं मरणं रजः। दृष्टं पूर्वदिनादित्वं तृतीये तूत्तरेऽहनि ॥ केचिदेवोदिते सूर्ये जननं मरणं तथा। रजो वा दृश्यते स्त्रीणां यस्या दृस्तस्य शर्वरी ॥ अपरे त्वर्धरात्रात्प्राङ् मृतौ रजसि सूतके। पूर्वमेव दिनं प्राहुरूर्ध्वं चेदुत्तरेऽहनि ॥' इति। इस मतभेद की व्यवस्था अपने देश की प्रचलित-परम्परा अनुसार करनी चाहिये।

रजस्वला के प्रथम दिन का निर्णय तो रात के पहिले दो भाग में पहिला दिन प्रथम दिन रजस्वला का होता है। तीसरे भाग में रजोदर्शन होने पर दूसरा दिन पहिला कहलाता है। अथवा आधी रात के पहिले पहिला दिन रजस्वला का प्रथम होता है। आधी रात के बाद रजोदर्शन होने पर दूसरा दिन पहिला होता है। इसी प्रकार जननमरणाशौच में भी जानना चाहिये।

अथ सप्तदशाहादौ पुना रजोदर्शने विचारः

यस्याः प्रायेण मासे रजोदर्शनं तस्याः सप्तदशदिनपर्यन्तं पुना रजोदर्शने स्नानाच्छुद्धिः। अष्टादशाहे एकरात्रमशुचित्वम्, एकोनविंशे द्विरात्रं, विंशतिप्रभृतित्रिरात्रम्। यस्याः प्रायः पक्षे पक्षे रजोदर्शनं तस्याः दशदिनपर्यन्तं स्नानाच्छुद्धिः। एकादशाहे रजोदृष्टौ एकाहः। द्वादशे द्विरात्रमूर्ध्वं त्रिरात्रम्।

जिस स्त्री को महीने भरपर प्रायः रजोदर्शन होता है उसको सत्रह दिन में फिर रजोदर्शन हो तो उसकी स्नान से शुद्धि होती है। अठारहवें दिन में एक रात की, उन्नीसवें दिन में दो रात की और बीसवें आदि दिनों में रजोदर्शन से तीन रात की अशुद्धि होती है। जिस स्त्री को प्रत्येक पक्ष में प्रायः रजोदर्शन होता है उसको दस दिन में स्नान से शुद्धि होती है। ग्यारहवें दिन रजोदर्शन में एक दिन, बारहवें दिन में दो दिन, इसके बाद वाले दिनों में तीन दिन पर शुद्धि होती है।

अथ रोगजन्यरजसि निर्णयः

रोगेण यद्रजः स्त्रीणामन्वहं प्रतिवर्तते तत्र [1]नास्पृश्यत्वं किंतु रजोनिवृत्तिपर्यन्तं पाकदैवपित्र्यकर्मानधिकारमात्रम्।

जिन स्त्रियों को रोग से प्रतिदिन रज दिखाई पड़ता है वे स्पर्श के योग्य हैं, किन्तु रजोदर्शन के निवृत्त होने तक पाक बनाने में और दैव-पितृ-कर्म की अधिकारिणी नहीं होती।

अथ रोगजन्यरजोमध्ये मासजे विचारः

रोगजे वर्तमानेऽपि मासजं रजो निर्यात्येव तत्र सावधाना सती त्रिरात्रशुमचिर्भवेत्। यत्तु गर्भिण्याः प्राक्प्रसवाद्रोगजं रजोदर्शनं तत्र त्रिदिनमेवाशौचम्।

रोग-जन्य-रज के रहने पर भी महीने में निकलने वाला रज निकलता ही है उसमें सावधान रहकर तीन रात अशुचि रहे। जो कि गर्भिणी स्त्री को बच्चा पैदा होने के पहिले रोग से रजोदर्शन होता है उसमें तीन दिन का ही आशौच होता है।

अथ सूतिकाया उच्छिष्टायाश्च रजसि विधिः

प्रसूतिकायाः किंचिदूनमासात्पूर्वं रजोनुवृत्तौ स्नानमात्रं, पूर्णे मासे त्रिरात्रम्। उच्छिष्टा स्त्री यदि रजस्वला भवति तदा शुद्धचन्ते त्र्यहमधरोच्छिष्टे त्वेकाहमुपवासः।

प्रसूतिका को एक महीने से कुछ कम दिन के पहिले रज दिखाई दे तो स्नानमात्र से शुद्धि

---

१. संग्रहे—'रोगेण यद्रजः स्त्रीणामन्वहं हि प्रवर्तते। नाशुचिस्तु भवेत्तेन यस्माद्वैकारिकं मतम्॥' इति। रजकी निवृत्ति होने पर ही शंख ने कर्माधिकार का प्रतिपादन किया—'साध्वाचारा न तावत्स्यात्स्नाताऽपि स्त्री रजस्वला। यावत्प्रवर्तमानं हि रजो नैव निवर्तते॥' इति।

होती है। पूरे महीने पर तीन रात में शुद्धि होती है। उच्छिष्टा स्त्री यदि रजस्वला होती है तो शुद्धि के अन्त में तीन दिन उपवास करे और अधरोच्छिष्ट में तो एक दिन का उपवास करे।

अथ रजोदर्शनाज्ञाने विचारः

अविज्ञातरजोदोषा यदि गृहे व्यवहरति तदा तया स्पृष्टं गोरसमृद्भाण्डादिकं च न त्याज्यम्। सूतकवज्ज्ञानकालमारभ्यैव दोषात्। अशुचित्वं तु ज्ञानदिनमारभ्य त्रिदिनमिति केचित्। अन्ये तु द्वितीयादिदिने रजसि ज्ञाते सूतकवच्छेषदिनैरेव शुद्धिरित्याहुः।

रजोदोष को विना जाने जो घर में व्यवहार करती है तो उसका छुआ हुआ गोरस, मिट्टी का पात्र आदि और जल आदि का त्याग न करे। क्योंकि सूतक की तरह से ज्ञान होने पर ही दोष होता है। कोई कहते हैं कि आशौच के दिन का ज्ञान होने से तीन ही दिन तक अशुद्धि रहती है। अन्य लोग तो—दूसरे आदि दिन में रजोज्ञान होने पर सूतक की तरह ज्ञान के बाद वाले दिनों ही से शुद्धि होती है, ऐसा कहते हैं।

अथ रजस्वलायाः शुद्धिः

एवं त्रिदिनं स्थित्वा चतुर्थेऽहनि षष्टिवारं मृत्तिकाशौचेन मलं प्रक्षाल्य दन्तधावनपूर्वकं [1]संगवकाले स्नायात्। सूर्योदयात्प्राक् स्नानं त्वनाचारः।

इस प्रकार तीन दिन रजस्वला अवस्था में रहकर चौथे दिन साठ बार मिट्टी से मल का प्रक्षालन करके दन्तधावन कर संगवकाल में नहाये। सूर्योदय से पहिले स्नान करना तो आचारविरुद्ध है।

अथ चतुर्थेह्नि कार्याकार्यविचारः

चतुर्थेऽहनि रजोनिवृत्तौ भर्तृशुश्रूषणादौ शुद्धिः। पञ्चमेऽहनि [2]दैवपित्र्यकर्मणि शुद्धिः। कानिचिद्दिनानि रजो यद्यनुवर्तेत तदा तन्निवृत्तिपर्यन्तं दैवपित्र्ययोर्न शुद्धिः। रोगेण त्वनुवृत्तौ प्रागुक्तम्।

---

१. सङ्गता गावो दोहनाय यस्मिन् काले स संगवः। प्रातःस्नान के तीन मुहूर्त बाद का समय जो दिन के पांच भागों में से दूसरा है, उसे संगव कहते हैं।

२. भारद्वाजः—'प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी। तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुद्ध्यति॥ भर्तुः स्पृश्या चतुर्थेऽह्नि स्नानेन स्त्री रजस्वला। पञ्चमेऽहनि योग्या स्याद्दैवे पित्र्ये च कर्मणि॥' आपस्तम्बः—'स्नानं रजस्वलायास्तु चतुर्थेऽहनि शस्यते। गम्या निवृत्ते रजसि नानिवृत्ते कथंचन॥' इति।

देवयाज्ञिकभाष्य 'में देवता के उद्देश से द्रव्यत्यागपूर्वक होम का विधान—'आदौ द्रव्यपरित्यागः पश्चाद्धोमो विधीयते। प्रयोग इदमिन्द्राय न ममेति यथार्थतः॥ अवत्तं तु त्यजेदन्नं मनसा वचसाऽपि च। ततश्च प्रक्षिपेदग्नाविति धर्मः सनातनः॥ अकृत्वा जुहुयाद्यस्तु मोहेनान्वितमानसः। देवा हव्यं न गृह्णन्ति कव्यं च पितरस्तथा॥ यत्किञ्चिज्जुहुयादग्नौ तत्सर्वं त्यागपूर्वकम्। अन्यथा जुहुयाद्यस्तु नरकं स तु गच्छति॥' यज्ञपुरुष के जिह्वा में ही होम करना चाहिये—'यत्र काष्ठं तत्र कर्णौ हुवेच्चेद् व्याधिकृन्नरः। धूमस्थानं शिरः प्रोक्तं मनो दुःखं भवेदिह॥ यत्राल्पज्वलनं नेत्रं यजमानस्य नाशनम्। भस्मस्थाने तु क्लेशः स्यात्स्थाननाशो धनक्षयः॥ अङ्गारे नासिकां विद्यान्मनोदुःखं विदुर्बुधाः। यत्र प्रज्ज्वलनं तत्र जिह्वा चैव प्रकीर्तिता॥ गजवाजिप्रणादी तु वह्निः शुभफलप्रदः।' इति।

चौथे दिन रज के निवृत्त होने पर पति की सेवा आदि कार्य के लिये शुद्धि है। पाँचवें दिन देव-पितृ-कर्म के लिये शुद्धि है। कुछ दिनों तक यदि रज दिखाई दे तो जब तक वह निवृत्त नहीं हो जाय तब तक देव-पितृ-कर्म के लिये शुद्धि नहीं है। रोग से अधिक दिन तक रज के चलते रहने के विषय में पहले कहा जा चुका है।

केचित्तु चतुर्थदिवसे दर्शेष्ट्यादिश्रौतकर्माणि कर्तव्यानीत्याहुः। अपरे तु इतरदिनापेक्षया चतुर्थदिनस्यैवानुकूलत्वे तत्रैव गर्भाधानं रजोदर्शनशान्तिश्च कर्तव्या।

कुछ लोग यह कहते हैं कि चौथे दिन दर्शेष्टि आदि श्रौत-कर्म करना चाहिये। दूसरे तो अन्य दिनों की अपेक्षा चौथा दिन ही यदि अनुकूल हो तो उसीमें गर्भाधान और दुष्ट रजोदर्शन की शान्ति करनी चाहिये, ऐसा कहते हैं।

अथ महासंकटे ग्राह्याग्राह्यविचारः

महासंकटे श्रीसूक्तहोमपूर्वकाभिषेकेणोपनयनादिकमपि चतुर्थेऽह्नि कर्तव्यमित्याहुः। अयं चतुर्थेऽह्न्यधिकारनिर्णयः सर्वथा रजोनिवृत्तावेव ज्ञातव्यः।

कोई महासंकट में श्रीसूक्त से होम करके अभिषेक से उपनयनादिक भी चौथे दिन करे, ऐसा कहते हैं। यह चौथे दिन का अधिकार-निर्णय सर्वथा रज के निवृत्त होने ही में जानना चाहिये।

अथ रोगिण्याः स्नानविधिः

यदि ज्वरादिभिरातुरा[1] चतुर्थेहनि स्नातुं न शक्ता तदा तामन्या नारी नरो वा दशवारं स्पृष्ट्वा स्पृष्ट्वा स्नायादाचामेच्च। प्रतिस्नानमातुरस्य वस्त्रमन्यदन्यत्परिधापनीयम्। अन्ते स्पृष्टानां सर्ववस्त्राणां त्यागः। आर्द्रवस्त्रादिव्यवधानेन शुद्धवस्त्रग्रहणान्ते ब्राह्मणभोजनात्पुण्याहवाचनाच्च शुद्धिः। सर्वेषामप्यातुराणामेवं शुद्धिर्विधीयते। एवं शुद्ध्यन्ते शुभे दिने दुष्टरजोदर्शनप्रयुक्तां शौनकोक्तां भुवनेश्वरीशान्तिं ग्रन्थान्तरोक्तां वा शान्तिं विधाय गर्भाधानं कार्यम्।

यदि ज्वरादि से बीमार हो गई और चौथे दिन स्नान नहीं कर सकती है तब उसको दूसरी स्त्री या पुरुष दस बार स्पर्श कर स्नान और आचमन करे। प्रत्येक बार स्नान में बीमार को वस्त्र दूसरा पहिनाना चाहिये। अन्त में स्पर्श किये हुए सब वस्त्रों का त्याग कर दे। गीले वस्त्र आदि के व्यवधान से शुद्ध वस्त्र पहनने के बाद पुण्याहवाचन और ब्राह्मणभोजन से शुद्धि होती है। सब बीमारों का इसी प्रकार शुद्धि का विधान है। इस तरह शुद्धि के अन्त में शुभ दिन में दुष्ट रजोदर्शन के लिये शौनक की कही हुई भुवनेश्वरीशान्ति अथवा दूसरे ग्रन्थों की कही हुई शान्ति करके गर्भाधान करे।

---

१. उशनाः—'ज्वराभिभूता या नारी रजसा च परिप्लुता। कथं तस्या भवेच्छौचं शुद्धिः स्यात्केन कर्मणा॥ चतुर्थेऽनि सम्प्राप्ते स्पृशेदन्या तु तां स्त्रियम्। सा सचैलाऽवगाह्यापः स्नात्वा स्नात्वा पुनः स्पृशेत्॥ दश द्वादशकृत्वो वा आचामेच्च पुनः पुनः। अन्ते च वाससां त्यागस्ततः शुद्धा भवेत्तु सा॥ यह विधि पराशर के निर्देशानुसार आतुरमात्र के लिये है—'आतुरे स्नान उत्पन्ने दशकृत्वो ह्यनातुरः। स्नात्वा स्नात्वा स्पृशेदेनं ततः शुद्ध्येत्स आतुरः॥' इति।

अथ ग्रहणकाले रजसि विधिः

सूर्यग्रहे रजोदर्शने हैमं सूर्यबिम्बं तन्नक्षत्ररूपं च सीसेन राहुं च कृत्वा संपूज्यार्कसमिद्भिः सूर्यं नक्षत्रेशं प्लक्षै राहुं दूर्वाभिर्हुत्वाज्यचरुतिलैश्च जुहुयात्। चन्द्रग्रहे राजतं चन्द्रबिम्बं पालाश्यश्च समिध इति विशेषः। ग्रहणव्यतीपातादिबहुतरदोषे रजोदर्शने तु द्वितीयादिरजोदर्शने शान्तिपूर्वकं गर्भाधानं कार्यम्।

सूर्यग्रहण में रजोदर्शन होने पर सोने का सूर्यबिम्ब बनाकर उस नक्षत्र का रूप और शीशे से राहु बनाकर उसकी अच्छी तरह से पूजा करके आक की लकड़ी से सूर्य, पाकड़ की लकड़ी से नक्षत्रेश तथा दूब से राहु को होम करके घी, चरु और तिलों से भी होम करे। चन्द्रग्रहण में चान्दी का चन्द्रबिम्ब बनावे और पलाश की समिधा से होम करे, इतना विशेष है। ग्रहण, व्यतिपात आदि अधिकतर दोष में रजोदर्शन हो तो दूसरे आदि रजोदर्शन में शान्ति करके गर्भाधान करे।

अथ गर्भाधाने गुरुशुक्रास्तादिनिर्णयः

गर्भाधाने गुरुशुक्रास्ताधिकमासादिदोषो नास्ति। यदि तु प्रथमरजोदर्शने शान्तिर्न कृता द्वितीयादिरजोदर्शने शुक्रास्तादिदोषप्रसक्तिस्तदा निमित्तान्तरमेव यत्र नैमित्तिकानुष्ठानं तत्रास्तादिदोषाभावः। मुख्यकालातिक्रमे तु अस्तादिदोषोऽस्त्येवेति सामान्यनिर्णयानुसारेण ऋतुशान्तिरस्तादौ न कार्या। तदनुरोधेन गर्भाधानं च न कार्यमिति भाति।

गर्भाधान-कर्म में गुरु शुक्र का अस्त और अधिकमास आदि का दोष नहीं है। यदि पहिले रजोदर्शन में शान्ति नहीं किया हो तो द्वितीय आदि रजोदर्शन में शुक्रास्तादिका दोष पड़े तब निमित्त के बाद ही जहाँ नैमित्तिक का अनुष्ठान होता है वहाँ अस्तादि का दोष नहीं होता है। मुख्यकाल के बीतने पर तो अस्तादि का दोष है ही इस सामान्य-निर्णय के अनुसार ऋतुशान्ति अस्तादि में नहीं करनी चाहिये। इसके अनुरोध से गर्भाधान भी नहीं करे, ऐसा युक्त प्रतीत होता है।

अथ भुवनेश्वरीशान्तिः

शान्तिश्च सग्रहमखैव कार्या। शान्तौ भुवनेश्वरीप्रधानदेवता इन्द्रेन्द्राण्यौ पार्श्वदेवते। एवं कलशत्रयेपि प्रतिमात्रयस्थापनम्। 'ग्रहाणामर्कादिसमिधश्चरुराज्यं च द्रव्यम्। प्रधानदेवताया दूर्वास्तिलमिश्रगोधूमाः पायसमाज्यं चेति हविश्चतुष्टयम्। एवं पार्श्वदेवतयोरपि पायसस्य स्थण्डिलाग्नौ श्रपणमेव कार्यं न तु गृहसिद्धस्य ग्रहणम्। ग्रहहोमार्थं गृहसिद्धचरुः। पात्रासादनकाले पायसश्रपणार्थमेका स्थाली गृहसिद्धान्नसंस्कारार्थमपरेति स्थालीद्वयम्। अनेककर्तृकाज्यहोमप्रसक्तावनेकस्रुवासादनम्। आज्येन सह हविस्त्रयस्य गृहसिद्धान्नस्य च पर्यग्निकरणम्। स्रुवादिसंमार्गान्तेगृहसिद्धान्नमासादितचरुस्थाल्यामादायाग्नावधिश्रित्याभिघारणादिबर्हिरासादनान्तं कुर्यात्। ततः पायसाभिघारणाद्यासादनान्तम्।

---

१. बौधायनगृह्यपरिशिष्टे—'समिपदर्क मयी भानोः पालाशी शशिनस्तथा। खादिरी भूमिपुत्रस्य अपामार्गी बुधस्य च॥ शमीजा तु शनेः प्रोक्ता राहोर्दूर्वामयी तथा।' 'सर्वेषामभावे पालाशीर्या' इति।

शान्ति भी ग्रहयज्ञ के साथ ही करनी चाहिये। शान्ति में मुख्य देवता भुवनेश्वरी हैं। पार्श्व-देवता इन्द्र और इन्द्राणी हैं। इस प्रकार तीन कलशों में तीन प्रतिमा का स्थापन करे। ग्रहों के लिये अर्कादि की समिधा चरु और घी द्रव्य है। प्रधान देवता के लिये दूब-तिल से मिला गेहूँ और खीर तथा घी, यह चार हवि है। इसी प्रकार पार्श्व-देवता के लिये भी खीर को स्थण्डिल की अग्नि में ही केवल पकावे, घर का वना हुआ नहीं होना चाहिये। ग्रहहोम के लिये घर का बना चरु, पात्र रखने के समय में खीर बनाने के लिये एक बटुली, घर के बने अन्न के संस्कार के लिये दूसरी बटुली, इस प्रकार दो बटुली रहनी चाहिये। बहुत आदमी घृत होम करने वाले हों तो अनेक स्रुवास्थापन करे। घी के साथ तीनों हवि और घर के बने अन्न का भी पर्यग्निकरण होना चाहिये। स्रुवादि के संमार्जन के बाद घर के बने अन्न को चरुस्थाली में लेकर अग्नि पर गरम करके अभिघारणादि कुश आसादन तक करे। तदनन्तर खीर का अभिघारण आदि आसादन पर्यन्त करे।

अन्वाधाने हविस्त्यागे च प्रधानदेवताया भुवनेश्वरीपदेन सवितृपदेन वोच्चारः 'गायत्र्या होमोक्तेः। आज्यभागान्ते यजमानोऽन्वाधानानुसारेण प्रतिदैवतमष्टाविंशत्याहुतिपर्याप्तमर्कादिजातीयसमिच्चर्वाज्यात्मकं[2] हविस्त्रयं सूर्याय सोमाय भौमाय बुधाय बृहस्पतये शुक्राय शनये राहवे केतवे च न मम। अष्टाष्टसंख्यापर्याप्तं हविस्त्रयं तत्तदधिदेवताप्रत्यधिदेवताभ्यो न मम। चतुश्चतुःसंख्यापर्याप्तं तद्धविस्त्रयं विनायकादिभ्यः क्रतुसंरक्षकक्रतुसाद्गुण्यदेवताभ्यो न मम। अष्टोत्तरशतसंख्याकाहुतिपर्याप्तं दूर्वातिलगोधूमपायसाज्येति हविश्चतुष्टयं भुवनेश्वर्यै न मम। यद्वा सवित्रे न मम। एवमष्टाविंशतिसंख्यापर्याप्तं तच्चतुष्टयमिन्द्रेन्द्राणीभ्यां न ममेति त्यागं कुर्यात्।

अन्वाधान में और हवि के त्याग में भी प्रधानदेवता का भुवनेश्वरी-शब्द से अथवा सवितृपद से उच्चारण करे, क्योंकि गायत्री से होम कहा है। आज्यभाग के अन्त में यजमान अन्वाधान के अनुसार प्रत्येक देवता के लिये २८ आहुति के योग्य अर्कादि की समिधायें और चरुघृतात्मक तीनों हवि—सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु के लिये हैं, मेरे नहीं। आठ-आठ संख्या का पर्याप्त हवि—तीन अधिदेवता के लिये हैं, मेरे नहीं। चार चार आहुति के योग्य तीनों हवि—विनायकादि और यज्ञ-संरक्षक क्रतु साद्गुण्यदेवता के लिये हैं, मेरे नहीं। १०८ आहुति के लिये पर्याप्त—दूब, तिल, गेहूँ, खीर और घी ये चार हविष्य भुवनेश्वरी के लिये हैं, मेरे नहीं। इसी प्रकार २८ संख्या के पर्याप्त चार हवि—इन्द्र और इन्द्राणी देवता के लिये हैं मेरे नहीं, ऐसा कहकर त्याग करे।

बहुतरदोषेऽष्टोत्तरसहस्रसंख्याको होमो भुवनेश्वर्या इन्द्रेन्द्राण्योरष्टोत्तरशत-

---

१. नारदः—'तत्र शान्तिं प्रकुर्वीत घृतदूर्वातिलाक्षतैः। प्रत्येकाष्टशतं चैव गायत्र्या जुहुयात्ततः॥ स्वर्णगोभूतिलान् दद्यात् सर्वदोषापनुत्तये। शौनकः—'दूर्वाभिस्तिलगोधूमैः पायसेन घृतेन च। तिस्रभिश्चैव दूर्वाभिरेकैका चाहुतिर्भवेत्॥ अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा। गायत्र्यैव तु होतव्यं हविरत्र चतुष्टयम्॥' इति। विस्तृत शान्ति-विधि अन्यत्र देखें।

२. वायुपुराणे—'पलाशफल्गुन्यग्रोधाः प्लक्षाश्वत्थविकङ्कताः। उदुम्बरस्तथा बिल्वश्चन्दनो यज्ञियाश्च ये॥ सरलो देवदारुश्च शालश्च खदिरस्तथा। समिदर्थे प्रशस्ताः स्युरेते वृक्षा विशेषतः॥ ग्राह्याः कण्टकिनश्चैवं यज्ञिया एव केचन। पूजिताः समिदर्थेषु पितॄणां वचनं यथा॥' इति।

संख्याक इन्द्रेन्द्राण्योर्होमः कृताकृतः । होमान्ते ग्रहादिबलयः भुवनेश्वर्यादिबलयोऽभिषेकश्चेति संक्षेपः । समन्त्रकः सविस्तरः प्रयोगः [1]स्वस्वशाखीयानुसारेण ज्ञेयः ।

अधिकतर दोष में एक हजार आठ आहुति का होम भुवनेश्वरी और एक सौ आठ का होम इन्द्र तथा इन्द्राणी के लिये है। इन्द्र और इन्द्राणी का होम करना न करना समान है। होम के अन्त में ग्रहादि की बलि, भुवनेश्वरी आदि की बलि और अभिषेक करे, यह संक्षेप से कहा है। मन्त्र के सहित विस्तार-पूर्वक प्रयोग अपनी अपनी शाखा के अनुसार जानना चाहिये ।

अथ स्मार्तहोमकर्मपूर्वोत्तराङ्गक्रमौ

संकल्पः स्वस्तिवाग्विप्रवरणं भूतनिःसृतिः ।
पञ्चगव्यैर्भूमिशुद्धिर्मुख्यदैवतपूजनम् ॥ १ ॥
अग्निप्रतिष्ठासूर्यादिग्रहस्थापनपूजनम् ।
देवतान्वाहितिः पात्रासादनं हविषां कृतिः ॥ २ ॥
यथाक्रमं त्यागहोमाविति पौर्वाङ्गिकः क्रमः ।
पूजास्विष्टं नवाहुत्या बलिः पूर्णाहुतिस्तथा ॥ ३ ॥
पूर्णपात्रविमोकाद्यग्न्यर्चनान्तेऽभिषेचनम् ।
मानस्तोकेति भूतिश्च देवपूजाविसर्जने ॥ ४ ॥
श्रेयोग्रहो दक्षिणादिदानं कर्मेश्वरार्पणम् ।
क्रमोऽयमुत्तराङ्गानां प्रायः स्मार्तेष्विति स्थितिः ॥ ५ ॥

एवं मदनरत्नोक्ता बौधायनोक्ता च शान्तिः कौस्तुभे द्रष्टव्या ।

संकल्प, स्वस्तिवाचन, ब्राह्मणवरण, भूतनिस्सारण, पंचगव्य से भूमि की शुद्धि, मुख्य देवता का पूजन, अग्निस्थापन, सूर्यादि-ग्रहों का स्थापन और पूजन, देवता का अन्वाधान, पात्र का आसादन, हविष्य का बनाना, क्रम के अनुसार त्याग और होम, ये सब पूर्वांग क्रम हैं। पूजा में स्विष्ट, नव आहुति से बलि, पूर्णाहुति, पूर्णपात्र का दान, अग्निपूजन के अन्त में अभिषेचन, 'मानस्तोके' इस मन्त्र से देवता का पूजन और विसर्जन, आशीर्वादग्रहण, दक्षिणा आदि का देना, कृतकर्म का ईश्वरार्पण, यह क्रम प्रायः स्मार्तों के उत्तरांग का है। इसी प्रकार मदनरत्न और बौधायन की कही शान्ति भी कौस्तुभ में देखना चाहिये।

अथ पत्नीगमनविचारः

प्राग्रजोदर्शनात् पत्नीगमने ब्रह्महत्यादोषोक्तेः किञ्चित्प्रायश्चित्तं विधेयमिति भाति। ऋतौ तु गमनमावश्यकम् । अन्यथा [2]भ्रूणहत्यादोषः। अयं च मनसि कामे

---

१. छन्दोगपरिशिष्टे—'स्वशाखाश्रयमुत्सृज्य परशाखाश्रयं तु यः । कर्तुमिच्छति दुर्मेधा मोघं तत्तस्य चेष्टितम् ॥' इति ।

२. पराशरः—'ऋतुस्नातां तु यो भार्यां सन्निधौ नोपगच्छति। घोरायां भ्रूणहत्यायां पच्यते नात्र संशयः ॥' इसके अपवाद में व्यास की उक्ति—'व्याधितो बन्धनस्थो वा प्रवासेष्वथ पर्वसु । ऋतुकालेऽपि नारीणां भ्रूणहत्या प्रमुच्यते ॥ वृद्धां वन्ध्यामसद्वृत्तां मृतापत्यामपुष्पिणीम् । कन्यासूं बहुपुत्रां च वर्जयेन्मुच्यते भयात् ॥' इति ।

सति द्वेषादिना स्त्रियमनुपगच्छतो ज्ञेयः। विरक्तस्य न कोऽपि दोष इति श्रीभागवते लोके व्यवायेति पद्ये टीकायां च स्पष्टम्। ऋतुकालस्तु रजोदर्शनमारभ्य [1]षोडशदिनपर्यन्तं ज्ञेयः।

रजोदर्शन के पहिले स्त्री-प्रसंग करने से ब्रह्महत्या का दोष कहा है। इसलिये कुछ प्रायश्चित करना चाहिये, ऐसा युक्त प्रतीत होता है। ऋतु में तो स्त्री-सहवास आवश्यक है, नहीं तो गर्भहत्या का दोष लगता है। यह मन में इच्छा रहने पर भी द्वेषादि से स्त्रीगमन नहीं करने से भ्रूणहत्या का दोष जानना चाहिये। संसार से विरक्त पुरुष को तो कोई दोष नहीं है। यह बात भागवत में 'लोके व्यवायामिषमद्यसेवा' इस श्लोक की टीका में स्पष्ट किया है। ऋतुकाल तो रजोदर्शन से आरंभ करके सोलह दिन का जानना चाहिये।

तत्र प्रथमदिनचतुष्टयैकादशत्रयोदशदिनेषु गमनं वर्ज्यम्। अवशिष्टदिनेषु [2]पुत्रार्थिना समदिने, कन्यार्थिना विषमदिने गमनं कार्यम्। तत्राप्युत्तरोत्तररात्रीणां प्राशस्त्यम्। एकस्यां रात्रौ सकृदेव गमनं कार्यम्। सकृद्गमनं च युग्मासु सर्वासु आवश्यकमिति केचित्। अन्यकाले प्रतिबन्धादिना गमनासम्भवे श्राद्धैकादश्यादिदिनेऽपि ऋतुगमनं कार्यमिति केचित्।

इसमें प्रथम चारो दिन ग्यारहवें और तेरहवें दिन में स्त्रीगमन वर्जित है। शेष दस दिनों में पुत्र चाहने वाले सम-दिन और कन्या चाहने वाले विषम-दिन में गमन करें। इसमें भी आगे आगे वाली रातें स्त्री-गमन के लिये उत्तम हैं। एक रात में एक ही बार गमन करना चाहिये। एक बार स्त्री-गमन भी सब सम रातों में आवश्यक है, ऐसा कोई कहते हैं। दूसरे काल में प्रतिबन्ध आदि से गमन असंभव हो तो श्राद्ध के दिन एकादशी आदि दिन में भी ऋतुगमन करना चाहिये, यह भी कोई कहते हैं।

---

१. याज्ञवल्क्यः—'षोडशर्तु निशाः स्त्रीणां तस्मिन् युग्मासु संविशेत्। ब्रह्मचार्येव पर्वाण्याद्याश्चतस्रश्च वर्जयेत्॥' मनुः—'ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः। तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी तथा॥ त्रयोदशी च शेषाः स्युः प्रशस्ता दश रात्रयः।'इति।

भावप्रकाश में पुरुष के लिये स्त्रीगमन का विधान—'स्नातश्चन्दनलिप्ताङ्गः सुगन्धसुमनोऽर्चितः। भुक्तवृष्यः सुवसनः सुवेशः समलङ्कृतिः॥ ताम्बूलवदनस्तस्यामनुरक्तोऽधिकस्मरः। पुत्रार्थी पुरुषो नारीमुपेयाच्छयने शुभे॥' अर्थात् स्त्रीसम्भोगार्थी पुरुष पुत्रप्राप्ति की इच्छा से स्नान करके शरीर में चन्दन लगा, सुगन्धित फूलों की माला पहन, वीर्यवर्धक दुग्धघृतादि द्रव्यों का सेवन कर सुन्दर वस्त्र एवं सुन्दर वेश से अपने को अलंकृत कर मुख में पान रखकर अधिक कामान्वित तथा स्त्री में अनुरक्त होकर उत्तम शय्या पर स्त्री के पास जाय। स्त्री को भी इन्हीं गुणों से युक्त होना चाहिये।

२. शंखः—'युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु।' मिताक्षरा में विज्ञानेश्वर ने कहा—'यदा युग्मायामपि रात्रौ शोणिताधिक्यं तदा स्त्र्येव पुरुषाकृतिः। अयुग्मायामपि शुक्राधिक्ये पुमानेव स्त्र्याकृतिः, कालस्य निमित्तत्वात्; शुक्रशोणितयोश्च उपादानकारणत्वेन प्राबल्यात्। तस्मात् क्षामा कर्तव्या।' इति।

अथ अनृतौ गमनविचारः

स्त्रीणां [1]वरमनुस्मरन् पत्नीच्छयाऽनृतावपि गच्छन्न दोषभाक् किंतु ब्रह्मचर्य-हानिमात्रम् ।

ऋतौ गच्छति यो भार्यामनृतौ नैव गच्छति ।
यावज्जीवं ब्रह्मचारी मुनिभिः परिकीर्तितः ।

स्त्रियों के वर का स्मरण करते हुए पत्नी की इच्छा से ऋतुभिन्न काल में भी गमन करने में दोष नहीं है, किन्तु केवल ब्रह्मचर्य की हानि है । ऋतुकाल में जो स्त्री-गमन करता है और ऋतुभिन्न काल में नहीं गमन करता वह जीवनपर्यन्त ब्रह्मचारी कहलाता है, ऐसा मुनियों ने कहा है ।

अथ स्त्रीगमने निषिद्धकालः

अष्टमीचतुर्दशीपौर्णिमाऽमावास्यासूर्यसंक्रान्तिवैधृतिव्यतीपातपरिघपूर्वदलवि-ष्टिसंध्यासु मातापित्रोर्मृतदिने श्राद्धतत्प्राग्दिने जन्मनक्षत्रे [2]दिवा च स्त्रीगमनं वर्ज्यम् ।

अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावास्या, सूर्यसंक्रान्ति, वैधृति, व्यतीपात, परिघ का प्रथमभाग, भद्रा, सन्ध्या, मातापिता का मरणदिन, श्राद्धका पहला दिन और जन्मनक्षत्र, इनमें स्त्री-गमन वर्जित है ।

अथ गर्भाधानकालः

चतुर्थीषष्ठीचतुर्दश्यष्टमीपञ्चदशीरहितास्तिथयः प्रशस्ताः । चन्द्रबुधगुरुशुक्र-वाराः शुभाः । मूलमघारेवतीज्येष्ठानक्षत्राणि वर्ज्यानि । भरणीकृत्तिकार्द्राश्लेषा-पूर्वात्रयविशाखामध्यमानि । शेषाणि [3]शुभानि ।

---

१. इन्द्र ने स्त्रियों को वरदान दिया था कि 'भवतीनां कामविहन्ता पातकी स्यात्' यथा—'ता अब्रुवन् वरं वृणीमहा ऋत्वियात् प्रजां विन्दामहै काममाविजनितोः संभवामेति तस्माहत्वियात् स्त्रियः प्रजां विन्दते काममाविजनितोः सम्भवन्ति वारे वृत ँ ह्यासाम्' इति ।

इसलिये पत्नी के इच्छानुसार ऋतुभिन्न काल में भी पत्नीगमन में दोष नहीं है । याज्ञवल्क्य ने भी आदेश दिया है—'यथाकामी भवेद् वापि स्त्रीणां वरमनुस्मरन् । स्वदारनिरतश्चैव स्त्रियो रक्ष्या यतः स्मृताः ॥' इति ।

२. शिवारहस्ये—'दिवा जन्मदिने चैव न कुर्यान्मैथुनं व्रती । श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च श्रेयोऽर्थी न च पर्वसु ॥' याज्ञवल्क्य के—'ब्रह्मचार्येव पर्वाण्याद्याश्चतस्रश्च वर्जयेत्' इस वचन की मिता-क्षरा में लिखा कि 'यत्र श्राद्धादौ ब्रह्मचर्यं विहितं तत्राप्यृतौ गच्छतो न ब्रह्मचर्यस्खलनदोषः' इसलिये शिवरहस्य का निषेध-वचन ऋतुकाल से भिन्न काल के लिये है ।

३. श्रीधरः—'षष्ठ्यष्टमीं पञ्चदशीं चतुर्थीं चतुर्दशीमप्युभयत्र हित्वा । शेषाः शुभाः स्युस्तिथयो निषेके वाराः शशाङ्कार्यसितेन्दुजानाम् ॥' आर्यः=गुरुः, सितः=शुक्रः, इन्दुजः=बुधः । 'विष्णुप्रजेशरविमित्रसमीरपौष्णमूलोत्तरावरुणभानि निषेककार्ये । पूज्यानि पुष्यवसुशीतकराश्विचित्रा दित्याश्च मध्यमफलाः, विफलाः स्युरन्ये ॥'

रत्नमालामें विष्ण्वादिदैवत्यनक्षत्र—'भेशा दस्रयमाग्निधातृशशिनः शर्वोऽदितिर्वाक्पतिः कद्रूजाः पितरो भगोऽर्यमरवी त्वष्ट्राह्वयो मारुतः । शक्राग्नी त्वथ मित्र इन्द्रनिर्ऋती तोयं च विश्वे विधिर्गोविन्दो वसवोऽम्बुपाजचरणाहिर्बुध्न्यपूषाभिधाः ॥' इति ।

चौथी, छठीं, चौदहवीं, आठवीं और पन्द्रहवीं तिथियों को छोड़कर शेष तिथियाँ उत्तम हैं। सोमवार, बुधवार, गुरुवार और शुक्रवार शुभ है। मूल, मघा, रेवती, और ज्येष्ठानक्षत्र वर्जित हैं। भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, आश्लेषा, तीनों पूर्वा और विशाखा मध्यम हैं। शेष सब शुभ हैं।

अथ चन्द्रबलविचारः

सर्वकार्येषु गोचरे चन्द्रबलमावश्यकम्। तद्यथा—

चन्द्रोऽन्नमधनं सौख्यं रोगं कार्यक्षतिं श्रियम्।
स्त्रियं मृत्युं नृपभयं सुखमायं व्ययं क्रमात्॥
स्थानेषु द्वादशस्वेतज्जन्मराशेः प्रयच्छति।
शुक्लपक्षे शशी श्रेष्ठो द्विपञ्चनवमेष्वपि॥

अनेकभार्यस्य ऋतुयौगपद्ये विवाहक्रमेण ऋतुप्राप्तिक्रमेण वा गर्भाधानम्।

सब कामों में गोचर में चन्द्रबल आवश्यक है। जैसे—चन्द्रमा जन्मराशि से बारहों स्थानों में क्रम से अन्न, दरिद्रता, सुख, रोग, कार्य की हानि, लक्ष्मी, स्त्री, मृत्यु, राजभय, सुख, आय और व्यय देता है। शुक्लपक्ष में दूसरे, पाँचवें और नवें में भी चन्द्रमा श्रेष्ठ होता है। अनेक भार्या वाले को एक ही समय में दो ऋतु होने पर विवाह के क्रम से अथवा ऋतु-प्राप्ति के क्रम से गर्भाधान करना चाहिये।

अथ ऋतावप्यगमने दोषाभावविचारः

व्याधितो बन्धनस्थो वा प्रवासेष्वथ पर्वसु।
वृद्धां वंध्यामसद्वृत्तां मृतापत्यामपुष्पिणीम्॥
कन्यासूं बहुपुत्रां च अगच्छन्नैव दोषभाक्।

ऋतु में भी स्त्री-गमन न करने से विशेष अवस्था में दोष नहीं है। जैसे—बीमार, बन्धन और प्रवास में रहने पर, पर्वों में, स्त्री—वृद्धा, बन्ध्या, दुश्चरित्रा, मृतापत्या, अपुष्पिणी, केवल कन्या का प्रसव करने वाली और बहुत पुत्र वाली हो तो ऋतु में स्त्री-गमन नहीं करने पर दोष का भागी नही होता।

अथ गर्भाधाने होमः

तत्र प्रथमर्तुगमनं गर्भाधानहोमं गृह्याग्नौ कृत्वा कार्यम्। द्वितीयादिकऋतुगमने च न होमादिकम्। येषां सूत्रे होमो नोक्तस्तैर्होमवर्ज्यं मन्त्रपाठादिरूपो गर्भाधानसंस्कारः प्रथमगमने कार्यः। आहिताग्नेरर्धाधानिनोऽनाहिताग्नेश्चौपासनाग्निसिद्धिसत्त्वे तत्रैव होमः।

उसमें प्रथम ऋतु में गमन और गर्भाधान का होम, गृह्य अग्नि में करके करे। दूसरे आदि ऋतुगमन में होमादिक नहीं करे। जिनके सूत्र में होम नहीं कहा है वे होम को छोड़कर मन्त्रपाठ आदिरूप गर्भाधान-संस्कार प्रथम गमन में करें। आधा आधान करने वाले अग्निहोत्री को और नहीं अग्नि वाले को औपासनादि की सिद्धि होने पर उसी में होम करना चाहिये।

अथ होमार्थं गृह्याग्न्युत्पादनम्

औपासनाग्निविच्छेदे द्वादशदिनपर्यन्तमयाश्चेत्याज्याहुत्या तत ऊर्ध्वं प्रायश्चित्तपूर्वकं पुनःसंधानविधिनाग्निमुत्पाद्य तत्र कार्यः। तत्र प्रत्यब्दं प्राजापत्य-

कृच्छ्रप्रायश्चित्तम्। तत्रेत्थं संकल्पः—'मम गृह्याग्निविच्छेददिनादारभ्यैतावन्तं कालं गृह्याग्निविच्छेदजनितदोषपरिहारद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं गृह्याग्निविच्छेददिनादारभ्यैतावदब्दपर्यन्तं प्रत्यब्दमेकैककृच्छ्रान् यथाशक्ति तत्प्रत्याम्नायगोनिष्क्रयीभूतरजतनिष्कनिष्कार्धनिष्कपादनिष्कपादार्धान्यतमद्रव्यदानेनाहमाचरिष्ये, तथा एतावद्दिनेषु गृह्याग्निविच्छेदेन लुप्तसायंप्रातरौपासनहोमद्रव्यं लुप्तदर्शपौर्णमासस्थालीपाकादिकर्मपर्याप्तव्रीह्याद्याज्यद्रव्यं च तन्निष्क्रयं वा दातुमहमुत्सृज्ये।' कृच्छ्रप्रत्याम्नायान्तरचिकीर्षायां तथोहः कार्यः।

औपासन अग्नि के विच्छेद में बारह दिन तक 'अयाश्च' इस मन्त्र से घी की आहुति देकर उसके अनन्तर प्रायश्चित्त करके पुनःसंधानविधि से अग्नि पैदा कर उसमें होम करे। उसमें प्रतिवर्ष प्राजापत्यकृच्छ्र प्रायश्चित्त होता है। उसमें ऐसा संकल्प करे—'मेरे अग्निविच्छेद के दिन से आरंभ कर इतने काल तक गृह्य-अग्नि-विच्छेद-जन्य-दोष-परिहार के द्वारा श्रीपरमेश्वर की प्रीति के लिये गृह्याग्नि-विच्छेद के दिन से आरम्भ करके इतने वर्षपर्यन्त प्रत्येक वर्ष का एक एक कृच्छ्र यथाशक्ति या इसके बदले में गाय का निष्क्रय एक निष्क, आधा निष्क, चौथाई निष्क या निष्क का आठवाँ भाग, इनमें से मैं कोई एक रजत-द्रव्य देकर करूँगा, या इतने दिनों में गृह्याग्नि-विच्छेद से लुप्त सायंकाल प्रातःकाल के औपासन होम का द्रव्य दर्शपौर्णमास, स्थालीपाक आदि का कर्म जो नहीं हुआ उसके लिये धान्यादि और घी या उसका निष्क्रय देने को मैं त्याग करता हूँ।' कृच्छ्र के बदले में दूसरा कुछ करने की इच्छा हो तो वैसा ही संकल्प में योजना कर ले।

अशीतिगुञ्जात्मको निष्कपादः। अयं चतुर्गुणितो निष्कः। एवं संकल्प्य 'विच्छिन्नस्य गृह्याग्नेः पुनःसंधानं करिष्ये' इति संकल्पपूर्वकं स्वस्वसूत्रानुसारेण गृह्याग्निं संसाधयेत्।

अस्सी गुंजा का चौथाई निष्क होता है। इसको चौगुना करने पर पूरा निष्क होता है। ऐसा संकल्प करके 'विच्छिन्न गृह्याग्नि का पुनः संधान करूँगा' ऐसे संकल्प से अपने-अपने सूत्र के अनुसार अग्नि का साधन करे।

अथ सर्वाधान्यर्धाधानिनोर्गृह्याग्निसिद्धिनिर्णयः

सर्वाधानिनापि एवमेव पुनःसंधानेन गृह्याग्निमुत्पाद्य गर्भाधानपुंसवनादिहोमः कार्यः। तत्र कृच्छ्रसंकल्पो होमादिद्रव्यदानसंकल्पश्च न कार्यः। 'गर्भाधानहोमं कर्तुं गृह्यपुनःसंधानं करिष्ये' इत्येव संकल्पः। गर्भाधानान्तेऽग्नित्यागः। अर्धाधानिनामपि पक्षद्वयम्—गृह्याग्नौ सायंप्रातर्होमस्थालीपाकाः कार्या इत्येकः। गृह्याग्निः केवलं संरक्ष्यो नतु तत्र होमादिकार्यमित्यपरः। आद्यपक्षे पूर्वोक्तहोमादिद्रव्यदानं कार्यम्। होमाद्यकरणपक्षे प्रायश्चित्तमात्रं कार्यं न तु द्रव्यदानम्।

सर्वाधानी को भी पुनःसंधान से गृह्याग्नि का उत्पादन कर गर्भाधान और पुंसवन आदि का होम करना चाहिये। इसमें कृच्छ्र का संकल्प होमादि-द्रव्य-दान का संकल्प न करे। 'गर्भाधानहोमं कर्तुं गृह्यपुनःसंधानं करिष्ये' इतना ही संकल्प करे। गर्भाधान के अन्त में अग्नि का त्याग करे। अर्धाधानियों के भी दो पक्ष हैं, पहिला है—गृह्याग्नि में सायं प्रातः होम और स्थालीपाक करना।

दूसरा पक्ष है—गृह्याग्नि केवल रक्षा के योग्य है न कि उसमें होम आदि कार्य करना। पहिले पक्ष में पहिले कहा हुआ होम आदि द्रव्य का दान करना चाहिये। होम आदि न करने के पक्ष में केवल प्रायश्चित्त करे, द्रव्य दान नहीं।

अथ द्विभार्यस्याग्निद्वयसंसर्गः

द्विभार्यस्याग्निद्वयसंसर्गात्पूर्वमुभयाग्न्यनुगतौ उभयविच्छेददिनादब्दगणनया पृथक्पृथक् कृच्छ्रप्रायश्चित्तं पृथक्पृथक् होमद्रव्यदानं स्थालीपाकद्रव्यदानं च कृत्वा पुनःसंधानद्वयेनाग्निद्वयमुत्पाद्याग्निद्वयसंसर्गं विधाय तत्र गर्भाधानहोमः। अग्निद्वयसंसर्गात्पूर्वम् एकाग्न्यनुगतौ तन्मात्रप्रायश्चित्तं तद्धोमद्रव्यमात्रदानं च कार्यं न तु स्थालीपाकद्रव्यदानम्। भार्यान्तरस्यासन्निधाने यस्यां गर्भाधानं तदग्निविच्छेदप्रायश्चित्तादिना गृह्यमुत्पाद्य तत्र होमः। सर्वत्र पुनःसंधाने स्थालीपाकानारम्भे स्थालीपाकादिद्रव्यदानं कृताकृतम्।

दो भार्या वाले को दो अग्नि के संसर्ग से पहिले दोनों के अग्नि का जब से दोनों का विच्छेद हुआ उस दिन से वर्ष गणना करके अलग अलग कृच्छ्र प्रायश्चित्त और अलग अलग होम द्रव्य का दान तथा स्थालीपाक द्रव्य का दान करके दोनों अग्नि का पुनःसंधान और दोनों अग्नि का उत्पादन तथा दोनों अग्नि का संसर्ग करके उसमें गर्भाधान होम करे। दोनों अग्नि के संसर्ग से पहिले एक अग्नि के रहने पर उतनेमात्र का प्रायश्चित्त और केवल उस होमद्रव्य का दानमात्र करे, स्थालीपाक का द्रव्य दान न करे। दूसरी स्त्री के पास में न रहने पर जिस स्त्री में गर्भाधान हुआ है उसका अग्नि-विच्छेद होने पर प्रायश्चित्त आदि से गृह्य अग्नि का उत्पादन कर इसमें होम करे। सब जगह पुनःसंधान में और स्थालीपाक न करने पर स्थालीपाक आदि का द्रव्य दान करना न करना समान है।

अथ गर्भाधानसंकल्पादि

एवं यथायथं गृह्यसिद्धिं कृत्वा 'ममास्यां भार्यायां संस्कारातिशयद्वाराऽस्यां जनिष्यमाणसर्वगर्भाणां बीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं गर्भाधानाख्यं कर्म करिष्ये' तदङ्गत्वेन स्वस्तिवाचनेत्यादि संकल्प्य पुण्याहवाचनमातृकापूजननान्दीश्राद्धादि कृत्वा यथागृह्यं गर्भाधानसंस्कारः कार्यः। अत्र गर्भाधानकर्मणो ब्रह्मदेवताकत्वात्पुण्याहवाचनान्ते कर्माङ्गदेवता ब्रह्मा प्रीयतामिति वदेत्। औपासनाङ्गे स्वस्तिवाचने अग्निसूर्यप्रजापतयः प्रीयन्तां, स्थालीपाकारम्भे अग्निः प्रीयतामिति। एवमन्यत्र ग्रन्थान्तरादूह्यम्।

इस प्रकार गृह्य अग्नि की सिद्धि करके गर्भाधान आदि का संकल्प करे। संकल्प का स्वरूप यह है—'मेरी इस पत्नी में संस्कारातिशय द्वारा इस पत्नी में आगे उत्पन्न होने वाले सब गर्भों का बीजगर्भ से उत्पन्न पाप को हटाने और भगवान् की प्रसन्नता के लिये गर्भाधान नामक कर्म करूँगा' इसके अंग होने से स्वस्तिवाचन आदि का संकल्प करके पुण्याहवाचन, मातृकापूजन और नान्दीश्राद्ध आदि करके अपने गृह्यसूत्र के अनुसार गर्भाधान संस्कार करे। इस गर्भाधान कर्म के देवता ब्रह्मा हैं अतः पुण्याहवाचन के अन्त में कर्म के अंग देवता ब्रह्मा प्रसन्न हों ऐसा कहे। औपासन के अंग स्वस्तिवाचन में अग्नि, सूर्य और प्रजापति प्रसन्न हों, स्थालीपाक के आरंभ में अग्निदेव प्रसन्न हों ऐसा कहे। इसी प्रकार अन्यत्र दूसरे ग्रन्थों से कल्पना करनी चाहिये।

अथ नान्दीश्राद्धविचारः

गौर्यादिमातृकापूजनं[1] नान्दीश्राद्धाङ्गम्। यत्र नान्दीश्राद्धं न क्रियते तत्र मातृकापूजनमपि न कार्यम्। तत्र पूर्वं [2]मातृपार्वणं ततः पितृपार्वणं ततः सपत्नीकमातामहपार्वणमिति पार्वणत्रयात्मकं नान्दीश्राद्धम्। मातृजीवने सापत्नमातृमरणेऽपि न मातृपार्वणम्। एवं मातामह्या जीवने मातामहीसपत्न्या मरणेऽपि न मातामहादेः सपत्नीकत्वम्। एवं दर्शादावपि मातृजीवने सापत्नमातृमरणेऽपि न सपत्नीकत्वं पित्रादेः। अत्र स्वधाशब्दस्थाने स्वाहाशब्दः। सव्येनैव सर्वाः क्रियाः। प्रतिपार्वणं दैवे च युग्मा ब्राह्मणाः।

गौरी आदि मातृकापूजन नान्दीश्राद्ध का अंग है। जहाँ नान्दीश्राद्ध नहीं किया जाता, वहाँ मातृकापूजन भी नहीं करना चाहिये। उसमें पहिले मातृपार्वण होता है उसके बाद पितृपार्वण, अनन्तर पत्नीसहित नाना का पार्वण, इस प्रकार तीन पार्वण वाला नान्दीश्राद्ध होता है। माता के जीते सौतेली मां के मरने में भी मातृपार्वण नहीं होता। इसी तरह से नानी के जीते नानी के सौत के मरने में भी मातामहादिका सपत्नीकत्व नहीं होता। इस प्रकार दर्श आदि में भी माता के जीते सौतेली मां के मरने से भी पिता का सपत्नीकत्व नहीं होता। नान्दीश्राद्ध में स्वधाशब्द

---

१. शातातपः—'अनिष्ट्वा पितृयज्ञेन वैदिकं किंचिदाचरेत्। तत्रापि मातरः पूर्वं पूजनीयाः प्रयत्नतः॥ अकृत्वा मातृयागं तु यः श्राद्धं परिवेषयेत्। तस्य क्रोधसमाविष्टा हिंसामिच्छन्ति मातरः॥ कूर्मपुराणे—'पुष्पैर्धूपैः सनैवेद्यैर्गन्धाद्यैर्भूषणैरपि। पूजयित्वा मातृगणं कुर्याच्छ्राद्धत्रयं बुधः॥' अपि च—'यत्र यत्र भवेच्छ्राद्धं तत्र तत्र च मातरः' इति।

'कर्मादिषु तु सर्वेषु मातरः सगणाधिपाः। पूजनीयाः प्रयत्नेन पूजिताः पूजयन्ति ताः॥' इति कात्यायनेन साक्षात्कर्माङ्गत्वेन अवगताया एव मातृपूजाया 'दर्शपूर्णमासाभ्यामिष्ट्वाऽन्येन यजेत' इति वत् श्राद्धपूर्वकालतामात्रबोधनेन अङ्गाङ्गित्वे मानाभावं वदन्ति। अत एव श्राद्धरहितेष्वपि वर्धापनादिकर्मसु मातॄणां पूजनं दृश्यते इति केचित्। पूर्वोक्त शातातपादि के वचनों से गौर्यादिमातृपूजन आभ्युदिकश्राद्ध का पूर्वाङ्ग-कृत्य है।

भविष्यपुराण में गौर्यादिमातृकाओं का निरूपण—'गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया। देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः॥ धृतिः पुष्टिस्तथा तुष्टिरात्मदेवतया सह। गणेशेनाधिका ह्येता वृद्धौ पूज्यास्तु षोडश॥' नान्दीश्राद्ध पार्वणत्रयात्मक है—मात्रादित्रय, पित्रादित्रय और सपत्नीक-मातामहादित्रय। इसका कृत्य मातृपूर्वक है।

२. शाट्यायनः—'मातृश्राद्धं तु पूर्वं स्यात् पितॄणां तदनन्तरम्। ततो मातामहानां च वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम्॥' नान्दीश्राद्ध में पितर देवरूप हैं, जैसा स्मृति में लिखा है—'पितॄणां रूपमास्थाय देवा अन्नमदन्ति ते। तस्मात् सव्येन दातव्यं वृद्धिपूर्वेषु दातृभिः॥'

प्रचेताः—'अपसव्यं न कुर्वीत न कुर्यादप्रदक्षिणम्। प्राङ्मुखो दैवतीर्थेन क्षिप्रं देवविसर्जनम्॥ दक्षिणं पातयेज्जानु देवान् परिचरेत् सदा। निपातो न हि सव्यस्य जानुनो विद्यते क्वचित्॥ यथैवोच्चरेद्देवाँस्तथा वृद्धौ पितॄनपि। शातातपः—'सव्येन चोपवीतेन ऋजुदर्भैश्च धीमता। पितॄणां रूपमास्थाय देवा अन्नं समश्नुते॥ तस्मात्सव्येन दातव्यं वृद्धिश्राद्धेषु नित्यशः। यथैवोपचरेद्देवांस्तथा वृद्धौ पितॄनपि॥' पृथ्वीचन्द्रोदये—'अनस्मद्वृद्धशब्दानामरूपाणामगोत्रिणाम्। अनाम्नामतिलाद्यैश्च नान्दीश्राद्धं च सव्यवत्॥' पुराणसमुच्चये—'न स्वधाशर्मवर्मेति पितृनाम न चोच्चरेत्। न कर्म पितृतीर्थेन न कुशा द्विगुणीकृताः॥ न तिलैर्नापसव्येन पित्र्यमन्त्रविवर्जितम्। अस्मच्छब्दं न कुर्वीत श्राद्धे नान्दीमुखे क्वचित्॥' इति।

की जगह स्वाहाशब्द कहना चाहिये। सब क्रिया शब्द से ही होती है। प्रत्येक पार्वण के दैव में दो ब्राह्मण होते हैं।

[1]कुशस्थाने दूर्वाः, विवाहादिमङ्गलकर्माङ्गे वृद्धिश्राद्धे। यज्ञादिकर्माङ्गे तु अमूला दर्भा ग्राह्याः। दूर्वा दर्भाश्च युग्मा एव। [2]उदङ्मुखः कर्ता प्राङ्मुखा विप्राः। प्राङ्मुखो वा कर्ता उदङ्मुखा विप्राः। पूर्वाह्णकालः, प्रदक्षिणं कर्म। आधानाङ्गं त्वपराह्णे कार्यम्। पुत्रजन्मनिमित्तकं रात्रावपि।

कुश के स्थान में दूर्वा ग्राह्य है, विवाह आदि मांगलिककर्माङ्ग वृद्धिश्राद्ध में। यज्ञादिकर्मांग में तो बिना जड़ के कुश ग्राह्य है दूब या कुश जोड़े ही होने चाहिये। श्राद्धकर्ता उत्तर मुँह बैठे और ब्राह्मण पूरब मुंह बैठे। अथवा श्राद्धकर्त्ता पूरब मुंह बैठे और ब्राह्मण उत्तर मुंह बैठे। समय पूर्वाह्न का है, प्रदक्षिणक्रम से कर्म होते हैं। आधान का अंग नान्दीश्राद्ध हो तो अपराह्न में करना चाहिये। पुत्रजन्मनिमित्तक श्राद्ध रात में भी होता है।

एवं च विश्वदेवार्थविप्रसहिता अष्टौ विप्राः, अत्यशक्तौ चत्वारो वा। वृद्धि श्राद्धे विश्वेदेवाः सत्यवसुसंज्ञकाः। सोमयागगर्भाधानपुंसवनसीमन्तोन्नयनाधानादि-कर्माङ्गभूतवृद्धिश्राद्धे क्रतुदक्षसंज्ञकाः।

इस प्रकार विश्वेदेवा के ब्राह्मणसहित आठ ब्राह्मण होते हैं। अत्यन्त असमर्थ होने पर चार ब्राह्मण होना आवश्यक है। वृद्धिश्राद्ध में सत्यवसु नामक विश्वेदेवा होते हैं। सोमयाग, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, आधान आदि कर्मांगभूत वृद्धिश्राद्ध में क्रतुदक्ष नामक विश्वेदेवा होते हैं।

अथ नान्दीश्राद्धावश्यकत्वानावश्यकत्वनिर्णयः

[3]गर्भाधानादिसंस्कारेषु वापीदेवप्रतिष्ठादिपूर्तकर्मसु अपूर्वाधानादिषु संन्यासस्वीकारे काम्यवृषोत्सर्गे गृहप्रवेशे तीर्थयात्रायां श्रवणाकर्मसर्पबल्याश्वयुज्याग्रयणादिपाकसंस्थानां प्रथमारम्भे नान्दीश्राद्धमावश्यकम्। पुनराधाने सोमयागादिभिन्ने असकृत्क्रियमाणे कर्मणि अष्टकादिश्राद्धकर्मसु च नान्दीश्राद्धं न कार्यम्।

---

१. ब्रह्माण्डपुराणे—'स्वाहाशब्दं प्रयुञ्जीत स्वधास्थाने तु बुद्धिमान्। कुशस्थाने च दूर्वाः स्युर्मङ्गलस्याभिवृद्धये॥' इति। तेन संस्कारक-कर्माङ्गनान्दीश्राद्धे दर्भस्थाने दूर्वा वा कार्या इति।

२. मार्कण्डेयपुराणे—'उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा यजमानः समाहितः। वृद्धिश्राद्धं प्रकुर्वीत नान्यवक्त्रः कदाचन॥' आश्वलायनगृह्यपरिशिष्ट में उदङ्मुख और प्राङ्मुख की व्यवस्था—'अभ्युदये युग्मा ब्राह्मणाः, अमूला दर्भाः, प्राङ्मुखेभ्य उदङ्मुखो दद्यात्, उदङ्मुखेभ्यः प्राङ्मुखो द्वौ दर्भौ पवित्रं' इति।

३. शौनकसंहिता में आभ्युदयिक के निमित्त—'कार्यमभ्युदयं श्राद्धं श्रौते स्मार्ते च कर्मणि। यज्ञोद्वाहप्रतिष्ठासु मेखलाबन्धमोक्षयोः॥ पुत्रोत्पत्तौ वृषोत्सर्गे आश्रमस्वीकृतौ तथा। गर्भाधानादिसंस्कारे जातकर्मादिकेषु च॥ वापीकूपतडागादेरुत्सर्गे शान्तिपौष्टिके। राज्याभिषेके उत्सवादौ महादाने वास्तुकर्मणि॥ उपाकर्मोत्सर्जनयोः श्रवणागृह्यकर्मसु। वेदव्रतेषु सर्वेषु नवान्नस्य च भोजने॥ ऊढायाः प्रथमर्तौ च अन्नप्राशनके तथा। उद्यापनेऽग्न्याधानप्रभृतिश्रौतकर्मसु॥' निर्णयसिन्धौ—'एकविंशत्यहर्यज्ञे विवाहे दश वासराः। त्रिषट् चौलोपनयने नान्दीश्राद्धं विधीयते॥' वृद्धमनुः—'अलाभे भिन्नकालानां नान्दीश्राद्धत्रयं बुधः। पूर्वेद्युर्वै प्रकुर्वीत पूर्वाह्णे मातृपूर्वकम्॥' इति।

गर्भाधान आदि संस्कारों, बावली देवप्रतिष्ठा आदिपूर्त्त कर्म, अपूर्व आधान आदि, संन्यासाश्रम स्वीकार करने, काम्यवृषोत्सर्ग, गृहप्रवेश, तीर्थयात्रा, श्रवणा-कर्म, सर्पबलि, आश्वयुजी और आग्रयण आदि पाकसंस्थाओं के प्रथम आरंभ में, नान्दीश्राद्ध आवश्यक है। दुबारा आधान, सोम आदि से भिन्न बार बार किये जाने वाले कर्म और अष्टका आदि श्राद्ध में नान्दीश्राद्ध नहीं करे।

गर्भाधानपुंसवनसीमन्तचौलमौञ्जीविवाहातिरिक्तसंस्कारेषु श्रवणाकर्मादिषु च नान्दीश्राद्धं वैकल्पिकम्। जातकर्माङ्गं पुत्रजन्मनिमित्तकं च नान्दीश्राद्धं पृथगेव। जन्मकाले एव जातकर्मणि क्रियमाणे 'पुत्रजन्मनिमित्तकं जातकर्माङ्गं च वृद्धिश्राद्धं तन्त्रेण करिष्ये' इति संकल्प्य सकृदेव कार्यम्। नामकर्मणा सह जातकर्म चिकीर्षायां पुत्रजन्मनिमित्तकं जन्मकाले एव हेम्ना कृत्वा कर्माङ्गं नामकर्मकाले कार्यम्।

गर्भाधान, पुंसवव, सीमन्त, चौल, उपनयन और विवाह से अतिरिक्त संस्कारों तथा श्रवणाकर्म आदि में नान्दीश्राद्ध वैकल्पिक है। पुत्र-जन्म के निमित्त जातकर्म का अंग नान्दीश्राद्ध तो अलग ही है। जन्मकाल में ही जातकर्म करने में 'पुत्रजन्म-निमित्तक-जातकर्म का अंग वृद्धिश्राद्ध तन्त्र से करूंगा' ऐसा संकल्प करके एक ही बार करना चाहिये। नामकर्म के साथ जातकर्म करने की इच्छा होने पर पुत्र जन्म के निमित्त नान्दीश्राद्ध, जन्मकाल में ही सुवर्ण से करके कर्मांग नामकर्म, समय से करे।

तदा तदकरणे नामकर्म काले एव—'पुत्रजन्मनिमित्तकं जातकर्मनामकर्माङ्गं च नान्दीश्राद्धं तन्त्रेण करिष्ये' इति संकल्प्यैकमेव कार्यम्। एवं चौलादिकर्मणा सह जातकर्मादिषु क्रियमाणेषु 'पुत्रजन्मनिमित्तकं चौलान्तसंस्कारांगं च नान्दीश्राद्धं तन्त्रेण करिष्ये' इति संकल्पः। तथा च सहैव क्रियमाणेषु चौलादिष्वन्येषु च कर्मसु नान्दीश्राद्धस्य सकृदेवानुष्ठानं न तु प्रतिकर्म पृथगनुष्ठानम्। एवं यमलयोर्युगपदेकसंस्कारकरणेपि ज्ञेयम्।

उस समय उसके न करने पर नामकर्म के समय में ही 'पुत्रजन्म-निमित्तक जातकर्म और नामकर्म का अंग नान्दीश्राद्ध तन्त्र से करूंगा' ऐसा संकल्प करके एक ही नान्दीश्राद्ध करे। एवं चौल आदि कर्म के साथ जातकर्म आदि करने पर 'पुत्रजन्म-निमित्तक-चौलान्त-संस्कारों का अंग नान्दीश्राद्ध तन्त्र से करूंगा' ऐसा संकल्प करे। उसी तरह साथ ही किये जाने वाले चौल आदि संस्कारों में और अन्य कर्मों में भी नान्दीश्राद्ध का करना एकबार ही होता है। प्रत्येक कर्म में अलग-अलग नान्दीश्राद्ध नहीं होता। इसी तरह जोड़ुंवा संतान का एक काल में ही एक संस्कार करने में भी जानना चाहिये।

अथ नान्दीमुखपदविचारः

ऋक्शाखिभिः कात्यायनैश्च पितृपितामहप्रपितामहा इति पितृपूर्वक उच्चारः कार्यः। अन्यशाखिभिस्तु प्रपितामहपितामहपितरो नान्दीमुखा इति प्रपितामहपूर्वक उच्चारः। मातृपार्वणे नान्दीमुखशब्दे ङीष्विकल्पान्नान्दीमुख्य इति नान्दीमुखा इति पक्षद्वयमुच्चारे। अनादिसंज्ञात्वेन 'नखमुखात्संज्ञायाम्'इति निषेधानवतारादिति पुरुषार्थचिन्तामणिकारः।

ऋक्शाखा वाले और कात्यायनशाखा वाले भी 'पितृ-पितामह-प्रपितामहाः' इस प्रकार पितृ पूर्वक उच्चारण करें। अन्य शाखा वाले तो 'प्रपितामह-पितामह-पितरो नान्दीमुखाः' इस प्रकार प्रपितामह पूर्वक उच्चारण करें। मातृपार्वण में नान्दीमुख शब्द में ङीष्के विकल्प होने से नान्दीमुख्यः या नान्दीमुखाः यह उच्चारण में दो पक्ष हैं। अनादि संज्ञा होने से 'नखमुखात्संज्ञायाम्' इस निषेध के न होने से, ऐसा पुरुषार्थचिन्तामणिकार कहते हैं।

अथ वृद्धिश्राद्धकर्तुर्जीवत्पितृकत्वे निर्णयः

'जीवेत्तु यदि वर्गाद्यस्तं वर्गं तु परित्यजेत्' इति न्यायेन जीवत्पितृकः स्वापत्यसंस्कारेषु मातृमातामहपार्वणयुतं नान्दीश्राद्धं कुर्यात्। मातरि जीवत्यां मातामहपार्वणकमेव। मातामहे जीवति मातृपार्वणकमेव। केवलमातृपार्वणे विश्वेदेवा न कार्याः। वर्गत्रयाद्येषु मातृपितृमातामहेषु जीवत्सु नान्दीश्राद्धलोप एव सुतसंस्कारेषूचितः।

'जो वर्ग (पिता आदि) जीता हो उस वर्ग को त्याग दे' इस न्याय से जिसके पिता जीते हों वह अपनी सन्तानों के संस्कारों में माता और नाना के पार्वण के साथ नान्दीश्राद्ध करे। माता के जीते रहने पर नाना का पार्वण ही करे। नाना के जीते रहने पर मातृपार्वणक ही नान्दीश्राद्ध करे। केवल मातृपार्वण में विश्वेदेवा नहीं करना चाहिये। तीनों वर्गों में माता पिता और नाना के जीते रहने पर नान्दीश्राद्ध का लोप ही पुत्रसंस्कारों में उचित है।

द्वितीयविवाहाधानपुत्रेष्टिसोमयागादिषु स्वसंस्कारकर्मसु येभ्य एव पिता दद्यात्तेभ्यो दद्यात्। तथा च मृतमातृमातामहकोपि जीवत्पितृकः स्वसंस्कारे पितुर्मातृपितामहीप्रपितामह्यः, पितृपितामहप्रपितामहाः, पितुर्मातामहमातृपितामहमातृप्रपितामहाः इत्येव पार्वणत्रयमुद्दिश्य श्राद्धं कुर्यात्, न तु स्वमातृमातामहपार्वणोद्देशः।

दूसरे विवाह का आधान और पुत्रेष्टि तथा सोमयागादि अपने संस्कारकर्म में जिनको पिता देते हों उन्हें ही दे। इसलिये जिसके पिता जीवित हों माता और नाना मर गये हों, अपने संस्कार में पिता की माता, दादी, परदादी और पिता के पिता, पितामह, प्रपितामह, फिर पिता के नाना और माताके पितामह, प्रपितामह, इतने ही का तीन पार्वण के उद्देश से श्राद्ध करे, अपनी माता और नाना के पार्वण के उद्देश से न करे।

अथ पितरि पितामहे जीवति निर्णयः

पितरि पितामहे च जीवति स्वसंस्कारे पितामहस्य मातृपितामहीप्रपितामह्य इत्याद्युद्देशः। एवं प्रपितामहेऽपि योज्यम्। पितुर्मात्रादिजीवने तत्पार्वणलोप एव। तथा च येभ्य एव पिता दद्यादिति पक्षस्य वर्गाद्यजीवने तत्पार्वणलोप इति द्वारलोपपक्षस्य च स्वसंस्कारस्वापत्यसंस्कारभेदेन व्यवस्था सिद्धान्तितेति ज्ञेयम्। केचित्तु पक्षद्वयस्यैच्छिको विकल्पो न तु व्यवस्थित इत्याहुः। एवं मृतपितृकस्य जीवन्मातृमातामहस्य पितृपार्वणेनैव नान्दीश्राद्धसिद्धिर्ज्ञेया।

पिता और पितामह के जीते रहने पर अपने संस्कार में पितामह की माता, पितामही और प्रपितामही के उद्देश्य से पार्वण करे। इसी तरह से प्रपितामह में भी योजना कर ले। पिता के माता

आदि के जीते रहने पर उनके पार्वण का लोप ही होगा। इस प्रकार जीवितपितृक पिता जिनको देते हों उन्हीं को दे। इस पक्ष का वर्ग के आदि पुरुष के जीते रहने पर उसके पार्वण का लोप होगा इस द्वारलोप पक्ष का भी अपना संस्कार और अपनी सन्तान के संस्कार भेद से व्यवस्था का सिद्धान्त किया गया है, ऐसा जानना चाहिये। कुछ लोग तो दोनों पक्ष का ऐच्छिक विकल्प मानते हैं, व्यवस्थित विकल्प नहीं मानते, ऐसा कहते हैं। इसी प्रकार जिसके पिता मर गये हैं तथा माता और नाना जीवित हों, उनके पिता के पार्वण से ही नान्दीश्राद्ध की सिद्धि जाननी चाहिये।

अथ समावर्तने नान्दीश्राद्धकर्तुर्देवतायाश्च निर्णयः

समावर्तनस्य माणवककर्तृत्वेऽपि तदङ्गभूतनान्दीश्राद्धे पितुस्तदभावे ज्येष्ठ-भ्रात्रादेरधिकार इति केचित्। तत्र पिता पुत्रसमावर्तने स्वपितृभ्यो नान्दीश्राद्धं कुर्यात्। पिता जीवत्पितृकश्चेत्सुतसंस्कारत्वाद् द्वारलोपपक्षो युक्त इति भाति। माणवकपितुः प्रवासादिना असन्निधाने भ्रात्रादिर्माणवकस्य पितुर्मातृपितामही-प्रपितामह्य इत्याद्युच्चार्य श्राद्धं कुर्यात्। मृतपितृकमाणवकसमावर्तने पितृव्य-भ्रात्रादिरस्य माणवकस्य मातृपितामहीत्याद्युच्चारयेत्। भ्रात्रादेरभावे स्वय-मेव स्वपितृभ्यो दद्यात्।

यदि बालक समावर्तन स्वयं करता है तो उसके अंगभूत नान्दीश्राद्ध में बालक के पिता के न रहने पर जेठे आदि भाई का नान्दीश्राद्ध में अधिकार है, ऐसा कोई कहते हैं। उसमें पिता—पुत्र के समावर्तन में अपने पितरों का नान्दीश्राद्ध करे। यदि पिता जीवितपितृक हो तो अपने पुत्र के संस्कार होने से द्वारलोपपक्ष युक्त है, ऐसा ठीक मालूम पड़ता है। बालक के पिता के परदेश में रहने से सन्निधि में न रहें तो भाई आदि बालक के पिता की माता-पितामही-प्रपितामही इत्यादि उच्चारण कर श्राद्ध करे। जिस बालक का पिता मर गया हैं उसके समावर्तन में उसके चाचा या भाई आदि इस बालक की माता-पितामही-इत्यादि का नान्दीश्राद्ध में उच्चारण करे। भाई आदि के न होने पर स्वयं अपने पितरों का नान्दीश्राद्ध करे।

एवं जीवत्पितृकोऽपि पितुरसन्निधाने भ्रात्रादेरभावे पितुः पितृभ्यः स्वयमेव नान्दीमुखं कुर्यात्। उपनयनेन कर्माधिकारस्य जातत्वात्। एवं विवाहेऽपि द्रष्ट-व्यम्। मृतपितृकस्य चौलोपनयनादिकं पितृव्यमातुलादिः कुर्वन् अस्य संस्कार्य-स्य पितृपितामहेत्याद्युच्चार्य श्राद्धं कुर्यात्। जीवतः पितुरसन्निधानेन कुर्वन्मातु-लादिरस्य संस्कार्यस्य पितुर्जनकादीनुद्दिश्य कुर्यान्न तु संस्कार्यस्य मृतानपि मात्रा-दीनिति संक्षेपः।

इसी प्रकार जिसके पिता जीते हों वह भी पिता और भाई आदि के न रहने पर पिता के पितरों का स्वयं नान्दीमुख करे, क्योंकि उपनयन होने से कर्म करने का बालक को अधिकार प्राप्त है। ऐसे विवाह में भी देखना चाहिये। जिस बालक के पिता मर गये हैं, उसका चौल उपनयन आदि उसके चाचा या मामा आदि करें तो जिसका संस्कार करना है उसके पिता पितामह आदि का उच्चारण करके श्राद्ध करे। जिसके पिता जीते हों, दूर परदेश में हो, उसका संस्कार मामा आदि करें तो उस बालक के पिता के पिता आदि के उद्देश से श्राद्ध करें, न कि उस बालक की मरी हुई माता आदि के उद्देश से, यह संक्षेप से कहा है।

अथ वृद्धिश्राद्धे पिण्डादिनिर्णयः

नान्दीश्राद्धे पिण्डदानं कुलधर्मानुसारेण वैकल्पिकम्[१]। पिण्डेषु दधिमधुबदरद्राक्षामलकमिश्रणम्। दक्षिणायां द्राक्षामलकानि। प्रथमान्तेन संकल्पः। सर्वत्रोच्चारे संबन्धनामगोत्रं वर्जयेत्। [२]मालतीमल्लिकाकेतकीकमलानां माला देया, न तु रक्तपुष्पाणाम्। कुंकुमचन्दनाद्यलंकृताः सर्वे। नान्दीश्राद्धारम्भे पाकान्तरेण वैश्वदेवः साग्निकानग्निकैः सर्वशाखिभिः कार्यः।

नान्दीश्राद्ध में पिण्डदान करना अपने कुल धर्म के अनुसार वैकल्पिक है। पिण्डों में दही, मधु, बैर, दाख और आँवले का मिश्रण होता है। दक्षिणा में दाख और आँवला होता है। प्रथमान्त पद से संकल्प किया जाता है। सब जगह संकल्पादि के उच्चारण में सम्बन्ध, नाम और गोत्र का त्याग करे। मालती, मल्लिका, केवड़ा और कमल की माला दे, न कि लाल फूलों की। कुंकुम चन्दन आदि से सबका अलंकार करे। नान्दीश्राद्ध के आरम्भ में साग्निक निरग्निक सब शाखा वालों को दूसरे पाक से विश्वेदेव करना चाहिये।

द्वयोर्द्वयोर्विप्रयोर्युगपन्निमन्त्रणम्। भवद्भ्यां क्षणः क्रियतामों तथा प्राप्नुतां भवन्तौ प्राप्नुवावेत्युक्तिः। शंनो देवीरित्यनुमन्त्र्य यवानेव क्षिपेत्। 'यवोसि सोमदेवत्यो गोसवे देवनिर्मितः। प्रत्नवद्भिः प्रत्तः पुष्ट्या नान्दीमुखान्पितॄनिमांल्लोकान्प्रीणयाहि नः स्वाहा नम इति' पित्र्ये मन्त्रः। द्विर्द्विर्गन्धादिदानम्। पाणिहोमोऽग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहेति।

दो दो ब्राह्मणों को एक काल में निमंत्रण दे। ब्राह्मण से कहे कि आप दोनों नान्दीश्राद्ध में उत्सव करें। वे लोग स्वीकार करें। तथा आप लोग प्राप्त हों। ब्राह्मण कहें हम लोग प्राप्त रहेंगे। 'शन्नो देवी' इस मन्त्र से अनुमन्त्रण करके और जौ को ही छोड़े। 'यवोऽसि सोमदेवत्यो' यह मूलोक्त पितृकर्म का मन्त्र है। दो दो बार गंध आदि दे। पाणिहोम 'अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा' इत्यादि मूलोक्त मन्त्र से करे।

अत्र श्राद्धे नापसव्यं न तिलाः न च पितृतीर्थेन दानम्। पावमानी शंवतीः शकुनिसूक्तं स्वस्तिसूक्तं च श्रावयेत् मधुवाता इति त्र्यृचस्थाने उपास्मै गायेति

---

१. भविष्यपुराणे—'पिण्डनिर्वपणं कुर्यान्न वा कुर्यान्नराधिप। वृद्धिश्राद्धे महाबाहो कुलधर्मानवेक्ष्य तु ॥' 'पिण्डनिर्वपण पक्ष में पारस्करगृह्य के—'दधिबदराक्षतमिश्राः पिण्डाः' इस सूत्र के अनुसार दही, बैर और अक्षत मिले पिण्ड का विधान है। श्राद्धकाशिकाभाष्य में यहाँ अक्षत में यव लिया है। इसके प्रमाण में कात्यायन का वचन है—'सर्वस्मादन्नमुद्धृत्य व्यञ्जनैरुपसिच्य च। संयोज्य यवकर्कन्धुदधिभिः प्राङ्मुखस्ततः ॥'

अङ्गिराने पिण्ड में शाल्यन्न एवं मधुमिश्रण की विशेषता बतलायी है—'शाल्यन्नं मधुसंयुक्तं बदराणि यवास्तथा। मिश्राणि कृत्वा चत्वारि पिण्डाञ्छ्रीफलसम्मितान् ॥ दद्यात्' इति। नान्दीश्राद्ध में विश्वेदेव का नाम सत्य और वसु है। शंखः—'इष्टिश्राद्धे क्रतूदक्षौ सत्यौ नान्दीमुखे वसू। नैमित्तिके कामकालौ कामे च धुरिलोचनौ ॥ पुरूरवार्द्रवौ चैव पार्वणे समुदाहृतौ।' इति। विशेष वचन अन्य निबन्धों में देखें।

२. वृद्धपाराशरः—'मालत्या शतपत्र्या वा मल्लिकाकुब्जयोरपि। केतक्या पाटलाया वा देया मालानुलोहिताः ॥' तथा—'सुवेशभूषणैस्तत्र सालङ्कारैस्तथा नरैः। कुङ्कुमाद्यनुलिप्ताङ्गैर्माल्यं तु ब्राह्मणैः सह ॥ स्त्रियोऽपि स्युस्तथाभूता गीतनृत्यादिहर्षिताः ॥' इति।

पञ्चर्चं, अक्षं नमीमदंतेति च। तृप्तिप्रश्नस्थाने संपन्नमिति। दैवे रुचितमिति प्रश्नः।

इस श्राद्ध में अपसव्य, तिल का प्रयोग और पितृतीर्थ से पिण्डदान भी नहीं करे। पावमानी शंवतीः, शकुनिसूक्त और स्वस्तिसूक्त भी सुनावे। 'मधुव्वाता' इन तीन ऋचाओं के स्थान में 'उपास्मै गायता' यह पांच ऋचाएं कहे और 'अक्षन्नमीमदन्त' यह भी पढ़े। तृप्ति प्रश्न की जगह 'सम्पन्नम्' ऐसा कहे। दैवकर्म में 'रुचितम्' ऐसा प्रश्न कहे।

पूर्वाग्रेषु कुशेषु दूर्वासु वा एकस्य द्वौ द्वौ पिण्डौ। अक्षय्यस्थाने नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्ताम्। स्वधावाचनस्थाने नान्दीमुखान् पितॄन् वाचयिष्ये इत्यादि न स्वधां प्रयुञ्जीत। त्यमूषु वाजिनमिति विप्रविसर्जनम्। केचिन्नान्दीश्राद्धान्ते वैश्वदेवो बह्वृचानामित्याहुः।

पूर्वाग्र कुशों में या दूर्वाओं में एक के लिये दो दो पिण्ड, अक्षय्यस्थान में 'नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्ताम्' ऐसा कहे। स्वधावाचन की जगह 'नान्दीमुखान् पितन् वाचयिष्ये' इत्यादि स्वधा का प्रयोग न करे। 'त्यमूषु वाजिनं' इससे ब्राह्मण का विसर्जन करे। कुछ लोग बह्वृचों के लिये नान्दीश्राद्ध के अन्त में वैश्वदेव की बात कहते हैं।

नात्र श्राद्धाङ्गतर्पणम्। अत्राहिताग्निना पिण्डदानं कार्यम्। पितुर्मात्रादिवर्गत्रयोद्देशेन श्राद्धे पितुः 'माता पितामही चैव तथैव प्रपितामही' इत्यादिश्लोकपाठः। द्वारलोपपक्षे यत्पार्वणलोपस्तत्पार्वणविषयकश्लोकैकदेशलोपः। केवलमातृपार्वणे देवा न कार्याः, 'एता भवन्तु सुप्रीता' इत्यूहः कार्यः। सांकल्पविधिना संक्षिप्तनान्दीश्राद्धप्रयोगः प्रयोगरत्नादौ द्रष्टव्यः। इति नान्दीश्राद्धविचारः।

इसमें श्राद्धांग तर्पण नहीं होता। इसमें आहिताग्निक को पिण्डदान करना चाहिये। पिता के माता आदि तीन वर्ग के उद्देश्य से श्राद्ध में पिता का 'माता, पितामही और प्रपितामही' इत्यादि आशय के श्लोक का पाठ। द्वारलोपपक्ष में जिस पार्वण का लोप हो उस पार्वणविषयक श्लोक के एक देश का लोप होता है। केवल माता के पार्वण में देवता नहीं कहे, 'एता भवन्तु सुप्रीता' इसकी कल्पना करे। संकल्पविधि से संक्षिप्त नान्दीश्राद्ध का प्रयोग प्रयोगरत्न आदि में देखना चाहिये। नान्दीश्राद्ध विचार समाप्त।

अथ संकटे गर्भाधानप्रयोगः

एवं स्वस्तिवाचनं ऋतुदक्षसंज्ञकविश्वेदेवयुतं च नान्दीश्राद्धं गर्भाधानाङ्गं कृत्वा यथाशाखं गर्भाधानसंस्कारः कार्यः। आश्वलायनैः गृह्याग्नौ प्राजापत्यं चरुं हुत्वा विष्णुं षड्वारं सकृत्प्रजापतिं चान्येन हुत्वा जपोपस्थाने न स्तः करणादिकं च कार्यम्।

विष्णुर्योनिं जपेत्सूक्तं योनिं स्पृष्ट्वा त्रिभिर्व्रती।
गर्भाधानं ततः कुर्यात् सुपुत्रो जायते ध्रुवम्॥

इस प्रकार स्वस्तिवाचन और क्रतु-दक्ष-संज्ञक विश्वेदेव के साथ नान्दीश्राद्ध गर्भाधान का अंग है, उसे करके शाखानुसार गर्भाधान संस्कार करे। आश्वलायनशाखा वाले गृह्य अग्नि में प्राजापत्य चरु का होम करके और विष्णु को छ वार, प्रजापति को एक वार घृत की आहुति देकर जप उपस्थान नहीं होते करणादिक तो करना चाहिये। गर्भाधान करने वाला विष्णुयोनि सूक्त का जप करे। योनि का तीन वार स्पर्श करके तब गर्भाधान करे। इससे निश्चय सुपुत्र उत्पन्न होता है।

एवं नेजमेषेत्यादिजपोऽपि । सर्वथा होमासंभवे अश्वगन्धारसम् उदीर्ष्वात इति मन्त्रेण दक्षिणनासायामासिच्योपगमनं कार्यम् । एवं गर्भाधानसंस्कारमकृत्वा स्त्रीगमने गर्भोत्पत्तौ तत्प्रायश्चित्तं गोदानं कृत्वा पुंसवनं कार्यम् ।

इसी प्रकार 'नेजमेष' इत्यादि का जप भी करे । सर्वथा होम के असंभव होने पर 'उदीर्ष्वात' इस मन्त्र से दाहिनी नाक में असगन्ध के रस को डालकर तब गमन करे । इस प्रकार गर्भाधान संस्कार न करके स्त्री-गमन करे और गर्भ जब रह जाय तो उसका प्रायश्चित्त गोदान करके पुंसवन संस्कार करे ।

अथ मैथुनान्ते विचारः

ऋतौ तु गर्भशङ्कित्वात्स्नानं मैथुनिनः स्मृतम् ।
अनृतौ तु यदा गच्छेच्छौचं मूत्रपुरीषवत् ॥

इत्युक्तरीत्या शौचं कृत्वाऽऽचामेत् । आचमनं विना मूत्रपुरीषोत्सर्गे तु—

तैलाभ्यक्तस्त्वनाचान्तः श्मश्रुकर्मणि मैथुने ।
मूत्रोच्चारं यदा कुर्यादहोरात्रेण शुध्यति ॥

इत्येकाहोपवासः । स्त्रीणां तु न स्नानम्, 'शयनादुत्थिता नारी शुचिः स्यादशुचिः पुमान्' इत्युक्तेः । इति गर्भाधानाद्युपयोगिनिर्णयः ।

मैथुन के अन्त में ऋतु में तो गर्भ की शंका से मैथुन करने वाले को स्नान करना चाहिये । ऋतुभिन्न काल में यदि गमन करे तो मूत्र पुरीष की तरह शुद्धि करे । इसके बाद आचमन करे। आचमन के विना मूत्रपुरीषोत्सर्ग में तो विना आचमन के तैलाभ्यंग हजामत बनाने और मैथुन में यदि पेशाब पाखाना करता है तो एक दिन में शुद्ध होता है । इस प्रकार एक दिन का उपवास करना पड़ता है। मैथुन के बाद स्त्रियों को स्नान आवश्यक नहीं है, क्योंकि वचन है कि 'शयन से उठने पर नारी शुद्ध रहती है और पुरुष अशुद्ध' । गर्भाधान आदि के उपयोगी निर्णय समाप्त ।

अथ नारायणबलिः

एवं कृते गर्भाधाने यदि गर्भोत्पत्त्यभावो मृतापत्यता वा तदा प्रतिबन्धकप्रेतोपद्रवनिवृत्त्यर्थं नारायणबलिर्नागबलिश्च कार्यः । तत्र नारायणबलिः शुक्लैकादश्यां पञ्चम्यां श्रवणे वा, कालान्तरानुपलब्धेः । तत्प्रयोगः परिशिष्टस्मृत्यर्थसारानुसारी कौस्तुभे । शुक्लैकादश्यां नदीतीरे देवालयादौ तिथ्यादिकीर्तनान्ते 'मदीयकुलाभिवृद्धिप्रतिबन्धकप्रेतस्य प्रेतत्वनिवृत्त्यर्थं नारायणबलिं करिष्ये' । विधिना स्थापितकुम्भद्वये हेमादिप्रतिमयोर्विष्णुं वैवस्वतयमं चावाह्य पुरुषसूक्तेन यमाय सोममिति च षोडशोपचारैः संपूजयेत् ।

इस प्रकार गर्भाधान करने पर गर्भ नहीं रहे या मरे बच्चे होते हों तब गर्भ के न रहने देने वाले प्रेत के उपद्रव की निवृत्ति के लिये नारायणबलि और नागबलि करना चाहिये । उसमें दूसरे काल के न मिलने पर नारायणबलि शुक्ल एकादशी, पंचमी या श्रवण में करे । इसका प्रयोग परिशिष्ट स्मृत्यर्थसार के अनुसरण करने वाले कौस्तुभ में है । शुक्ल एकादशी में नदी के तट पर देवमन्दिर आदि में तिथि आदि कहकर 'मेरे कुल के वृद्धि-प्रतिबन्धक-प्रेतत्व की निवृत्ति के लिये नारायणबलि

करूँगा'। विधि से स्थापित दो कुम्भ में सोने आदि की प्रतिमा में विष्णु और वैवस्वत यम का आवाहन करके विष्णुसूक्त और 'यमाय सोमं' इस मन्त्र से षोडशोपचार पूजा करे।

अत्र केचित्कुम्भपञ्चके ब्रह्मविष्णुशिवयमप्रेतान् पूजयन्ति। तत्पूर्वभागे रेखायां दक्षिणाग्रकुशेषु शुन्धतां विष्णुरूपी प्रेत इति दशस्थानेषु दक्षिणसंस्थमपो निनीय मधुघृततिलयुतान् दशपिण्डान् काश्यपगोत्र देवदत्तप्रेत विष्णुदैवत अयं ते पिण्ड इति दक्षिणमुखः प्राचीनावीती वामं जान्वाच्य पितृतीर्थेन दद्यात्। गन्धादिभिरभ्यर्च्य प्रवाहणान्तं कृत्वा विसृजेत्। तस्यामेव रात्रौ श्वः करिष्यमाण-श्राद्धे क्षणः क्रियतामिति एकं त्रीन् पञ्च वा विप्रान्निमन्त्र्योपोषित जागरं कुर्यात्।

कोई इसमें पांच कुम्भ में ब्रह्मा, विष्णु, शिव, यम और प्रेत की पूजा करते हैं। उसके पूर्व भाग में रेखा करके उसमें दक्षिणाग्रकुश रखकर 'शुन्धन्तां विष्णुरूपी प्रेत' इससे दस स्थानों में दक्षिण में रखे हुए जल को लेकर मधु-तिल-युक्त दस पिण्डों को काश्यपगोत्र देवदत्तप्रेत विष्णुदैवत यह तुम्हारा पिण्ड है ऐसा कहकर दक्षिण मुख होते हुए प्राचीनावीती बाँएँ घुटने को नीचे टेककर पितृ-तीर्थ से पिण्ड दे। गन्ध आदि से पूजा कर नदी में बहाने तक कृत्य करके विसर्जन करे। उसी रात में एक, तीन या पांच ब्राह्मणों को उपवास करके कल होने वाले श्राद्ध में उत्सव करें, ऐसा कहकर रात में जागरण करे।

श्वोभूते मध्याह्ने विष्णुं संपूज्य विष्णुरूपं प्रेतं विष्णुब्रह्मशिवयमप्रेतान् वो-द्दिश्यैकोद्दिष्टविधिना पादक्षालनादितृप्तिप्रश्नान्तं कृत्वा रेखाकरणाद्यवनेजनान्तं तूष्णीं कृत्वा विष्णवे ब्रह्मणे शिवाय सपरिवाराय यमायेति चतुरः पिण्डान् नाममन्त्रै-र्दत्त्वा विष्णुरूपं प्रेतं ध्यायन् काश्यपगोत्र देवदत्त विष्णुरूपप्रेत अयं ते पिण्ड इति पञ्चमं पिण्डं दत्त्वा अर्चनादिप्रवाहणान्ते आचान्तान् दक्षिणादिभिः संतोष्य तेष्वेकस्मै गुणवते प्रेतबुद्ध्या वस्त्राभरणादि दत्त्वा विप्रान् वदेत्—भवन्तः प्रेताय तिलोदकाञ्जलिदानं कुर्वन्त्विति। ते च पवित्रपाणयः कुशतिलतुलसीयुततिलाञ्जलिं प्रेताय काश्यपगोत्राय विष्णुरूपिणे अयं तिलाञ्जलिरिति दद्युः।

दूसरे दिन मध्याह्न में विष्णु की पूजा करके विष्णुरूप प्रेत अथवा विष्णु, ब्रह्मा, शिव, यम और प्रेत के उद्देश से एकोदिष्टविधि से पैर धोने से तृप्तिप्रश्नपर्यन्त कर्म करके रेखाकरण से अवनेजन तक मौन होकर विष्णु, ब्रह्मा, शिव और सपरिवार यम को इस प्रकार चार पिण्डों को उन उनके नाम मन्त्रों से देकर विष्णुरूप प्रेत को ध्यान करके काश्यपगोत्र देवदत्त विष्णुरूप-प्रेत यह आप का पिण्ड है, ऐसा कहते हुए पाँचवाँ पिण्ड देकर पूजन आदि प्रवाहणपर्यन्त कृत्य करके आचमन किये हुए ब्राह्मणों को दक्षिणा आदि से संतुष्ट कर उनमें से एक गुणवान् ब्राह्मण को प्रेत मानकर वस्त्र, अलंकार आदि देकर ब्राह्मणों से कहे आप लोग प्रेत के लिये तिल जल से अंजलि दान करें। वे भी पवित्र हाथों से कुश तिल और तुलसीयुक्त काश्यपगोत्र विष्णुरूपी प्रेत के लिये यह तिलांजलि है, ऐसा कह कर दें।

विप्रान्वाचयेत्—अनेन नारायणबलिकर्मणा भगवान् विष्णुरिमं देवदत्तं प्रेतं शुद्धमपापमहं करोत्विति विसृज्य स्नात्वा भुञ्जीतेति। सिन्धौ तु कुम्भपञ्चके

विष्णुब्रह्मशिवयमप्रेतेति पञ्चकं पूजयेत्। [1]'स्वर्णरूप्यताम्रलौहमयाश्चत्वारः प्रेतो दर्भमयः। अग्निं प्रतिष्ठाप्य श्रपितचरुं नारायणाय पुरुषसूक्तेन षोडशाहुतिभिर्हुत्वा दशपिण्डान्ते पुरुषसूक्ताभिमन्त्रितशंखोदकेन प्रेतं प्रत्यृचं तर्पयेत्, विष्ण्वादिचतुर्भ्यो बलिं दद्यात्। श्वोभूते 'एकोद्दिष्टविधिना श्राद्धपञ्चकं करिष्ये' इति संकल्प्य विप्रपञ्चक पाद्यादिपिण्डदानान्ते तर्पणादीति विशेष उक्तः। शेषं पूर्ववत्।

ब्राह्मणों से कहवावे—इस नारायणबलि कर्म से भगवान् विष्णु इस देवदत्त प्रेत को निष्पाप शुद्ध करें, ऐसा कहकर विसर्जन और स्नान करके भोजन करे। निर्णयसिन्धु में तो पांच कलश में विष्णु, ब्रह्मा, शिव, यम और प्रेत, इन पांचों की पूजा कही है। विष्णु आदि यमपर्यन्त के सोना, चान्दी, ताम्र और लोहे की चार प्रतिमा क्रम से बनावे तथा प्रेत कुश का बनावे। अग्नि की स्थापना कर पकाए हुए चरु की १६ आहुति पुरुषसूक्त से नारायण को देकर दस पिण्ड के अन्त में पुरुषसूक्त से अभिमन्त्रित शंख के जल से पुरुषसूक्त की प्रत्येक ऋचाओं से प्रेत का तर्पण करे और विष्णु आदि चारों देवताओं को बलि दे। दूसरे दिन 'एकोद्दिष्ट विधि से पांच श्राद्ध करूँगा' यह संकल्प कर पांच ब्राह्मणों को पाद्य आदि पिण्डदान के अन्त में तर्पण आदि करे, इतना विशेष कहा है। शेष पहले ही की तरह से है।

अथ नागबलिः

स च दर्शे पौर्णमास्यां [2]पञ्चम्यामाश्लेषायुतनवम्यां वा कार्यः। तत्र पर्षदं प्रदक्षिणीकृत्य नत्वा तदग्रे गोवृषनिष्क्रयं निधाय सभार्यस्य ममेह जन्मनि जन्मान्तरे वा जातसर्पवधदोषपरिहारार्थं प्रायश्चित्तमुपदिशन्तु भवन्तः सर्वे धर्मविवेक्तार इत्यादि०। विप्रैश्चतुर्दशकृच्छ्रप्रायश्चित्तेन अमुकप्रत्याम्नायद्वारा पूर्वोत्तराङ्गसहितेनाचरितेन तव शुद्धिर्भविष्यतीत्युपदिष्टो देशकालौ संकीर्त्य 'पर्षदुपदिष्टं चतुर्दशकृच्छ्रप्रायश्चित्तममुकप्रत्याम्नायेनाहमाचरिष्ये' इति संकल्प्य वपनादिविधिना तदाचरेत्।

वह अमावास्या, पूर्णिमा और पंचमी में अथवा आश्लेषानक्षत्रयुक्त नवमी में करे। उसमें पर्षद् की प्रदक्षिणाकर नमस्कार करके उनके आगे गाय और बैल का मूल्य रखकर 'स्त्री के साथ मेरे इस जन्म या दूसरे जन्म में जो सर्पवध हुआ है उसको हटाने के लिये धर्म विवेचन करने वाले आप सब लोग प्रायश्चित्त का उपदेश करें।' ब्राह्मण लोग 'चौदह कृच्छ्रप्रायश्चित्त के या उसके बदले में अन्य व्रत द्वारा पूर्वांग उत्तरांग सहित के करने से तुम्हारी शुद्धि होगी' ऐसा उपदेश पाकर देश काल कहकर 'परिषद् का बतलाया हुआ चौदह कृच्छ्रप्रायश्चित्त उसके बदले में अन्य व्रत को मैं करूँगा' ऐसा संकल्प करके क्षौर आदि कराकर उसे करे।

वपनासंभवे द्विगुणः [3]कृच्छ्रप्रत्याम्नायः। 'सर्पवधदोषपरिहारार्थमिमं लोहदण्डं

---

१. गरुडपुराणे—'विष्णुः स्वर्णमयः कार्यो रुद्रस्ताम्रमयस्तथा। ब्रह्मा रौप्यमयस्तत्र यमो लोहमयो भवेत्॥ प्रेतो दर्भमयः कार्य इति देवप्रकल्पना॥' इति।

२. शौनकः—'अथ वक्ष्यामि सर्पस्य संस्कारविधिमुत्तमम्। सिनीवाल्यां पौर्णमास्यां पञ्चम्यां वापि कारयेत्॥' इति।

३. हारीतः—'राजा वा राजपुत्रो वा ब्राह्मणो वा बहुश्रुतः केशानां वपनं कृत्वा प्रायश्चित्तं समाचरेत्॥ केशानां रक्षणार्थं तु द्विगुणं व्रतमाचरेत्। द्विगुणे तु व्रते चीर्णे द्विगुणा दक्षिणा भवेत्॥'इति।

सदक्षिणं तुभ्यमहं संप्रददे इति दत्त्वा गुर्वनुज्ञां लब्ध्वा गोधूमव्रीहितिलान्यतमपिष्टेन सर्पाकृतिं कृत्वा शूर्पे निधाय सर्पं प्रार्थयेत्—

एहि पूर्वंमृतः सर्पं अस्मिन्पिष्टे समाविश ।
संस्कारार्थमहं भक्त्या प्रार्थयामि समाहितः ॥

आवाहनादिषोडशोपचारैः संपूज्य नत्वा 'भो सर्पं इमं बलिं गृहाण ममाभ्युदयं कुरु' इति बलिं दत्त्वा पादौ प्रक्षाल्याचामेत् ।

बाल मुड़ाना सम्भव न हो तो दूना कृच्छ्र करे । 'सर्पवध-दोष के परिहार के लिये दक्षिणा सहित लोहे का दंड आपको मैं देता हूँ' इस प्रकार देकर गुरु की आज्ञा प्राप्त कर गेहूँ, धान और तिल में से किसी एक के आँटा से सर्प की आकृति बनाकर सूप में रखकर सर्प से प्रार्थना करे और कहे—पहले मुझसे मारे हुए हे सर्प ! आइये, इस आँटे में प्रवेश कीजिये, समाहितचित्त होकर भक्ति से संस्कार के लिये मैं प्रार्थना करता हूँ । आवाहनादि सोलह उपचारों से पूजा और स्नान करके कहे कि हे सर्प ! इस बलि को ग्रहण कीजिये और मेरे अभ्युदय को कीजिये, ऐसा कह बलि देकर पैरों को धोकर आचमन करे ।

देशकालौ संकीर्त्य 'सभार्यस्य ममेह जन्मनि जन्मान्तरे वा ज्ञानादज्ञानाद्वा जातसर्पवधोत्थदोषपरिहारार्थं सर्पसंस्कारकर्म करिष्ये' इति संकल्प्य स्थण्डिलेऽग्निं प्रतिष्ठाप्य ध्यात्वा 'अस्मिन्सर्पसंस्कारहोमकर्मणि देवतापरिग्रहार्थमन्वाधानं करिष्ये' । चक्षुषी आज्येनेत्यन्ते अग्नौ अग्निं वायुं सूर्यम्, आज्येन सर्पमुखे प्रजापतिमाज्येन आज्यशेषेण सर्पं सद्यो यक्ष्ये इति समिधा वाधाय अग्नेराग्नेयदिशि प्रोक्षितभूमौ चितिं कृत्वा अग्निं चितिं च परिसमुह्याग्नेयाग्रदर्भैः परिस्तीर्य परिषिच्य षट्पात्रासादनादि चक्षुषी हुत्वा सर्पं चित्यामारोप्य जलं श्रोत्रं च स्पृष्ट्वा अग्नौ भूः स्वाहा अग्नय इदमित्यादिव्याहृतित्रयेणाज्याहुतीर्हुत्वा समस्तव्याहृतिभिश्चतुर्थीं सर्पमुखे जुहुयात् । आज्यशेषं स्रुवेणैव सर्पदेहे निषिञ्चेत् ।

देशकाल को कहकर 'सपत्नीक मेरे इस जन्म में या दूसरे जन्म में जानकर या बिना जाने हुए सर्पवध से उत्पन्न दोष के परिहार के लिये सर्पसंस्कार कर्म करूँगा' ऐसा संकल्प कर स्थण्डिल में अग्नि की स्थापना कर ध्यान करके 'इस सर्पसंस्कार होमकर्म में देवता के परिग्रह के लिये अन्वाधान करूँगा' । चक्षुषी इस मन्त्र के अन्त में घृत से, अग्नि में अग्नि, वायु और सूर्य को, घृत से सर्प के मुख में और प्रजापति को, शेष घृत से सर्प को तत्क्षण पूजा करूँगा' इससे समिवाधान कर अग्नि से आग्नेयदिशा में पवित्रित भूमि में चिता बनाकर अग्नि और चिता को परिसमूहन करके आग्नेय कोण में कुश के अग्रभाग को बिछाकर और जल से छींटा देकर छ पात्रासादनादि कर्म करके 'चक्षुषी' इससे होम करके सर्प को चिता पर रखकर अपने कान और जल का स्पर्शकर अग्नि में 'भूःस्वाहा' इत्यादि तीनों व्याहृति से घी की आहुति और समस्त व्याहृतियों से होम करके चौथी आहुति सर्प के मुंह में दे । बचे हुए घी को स्रुवा से सांप के देह में सिंचन करे ।

नात्र स्विष्टकृदादिशेषम् । चमसजलैः समस्तव्याहृत्या सर्पं पाणिना प्रोक्ष्य अग्नेरक्षाणो वसिष्ठोग्निर्गायत्री सर्पायाग्निदाने वि० । अग्नेरक्षाणो अंहस ऋक् ।

अथोपस्थानम्—

नमो अस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु ।
ये अंतरिक्षे ये दिवितेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥
ये दोरोचने दिवो ये वा सूर्यस्य रश्मिषु ।
येषामप्सु सदःस्कृतं तेभ्यः० ॥
या इषवो यातुधानानां ये वा वनस्पतीँ रनु ।
ये वावटेषु शेरते तेभ्यः० ॥
त्राहि त्राहि महाभोगिन् सर्पोपद्रवदुःखतः ।
संतति देहि मे पुण्यां निर्दुष्टां दीर्घजीविनीम् ॥
प्रपन्नं पाहि मां भक्त्या कृपालो दीनवत्सल ।
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि कृतः सर्पवधो मया ॥
जन्मान्तरे तथैतस्मिन्मत्पूर्वैरथवा विभो ।
तत्पापं नाशय क्षिप्रमपराधं क्षमस्व मे ॥

इति संप्रार्थ्य नागेन्द्रं स्नात्वागत्य ततः पुनः व्याहृतिभिः क्षीराज्येनाग्नि संप्रोक्ष्य हुते सर्पे जलेनाग्नि सिञ्चेत् ।

यहाँ स्विष्टकृत् आदि शेष कर्म नहीं किया जाता । सम्पूर्ण व्याहृति से चमस के जल से सर्प को हाथ से प्रोक्षण करके 'अग्ने रक्षाणोव शिष्ठोऽग्निः' इत्यादि विनियोग पढ़कर 'अग्ने रक्षाणो अंघस ऋक्' इत्यादि मन्त्र से अग्निदान दे । पश्चात् उपस्थान 'नमो अस्तु सर्पेभ्यो 'ये दोरोचने' 'या इषवो' इत्यादि मूलोक्त इन तीन मन्त्रों से करे । हे महाभोगिन् ! सर्पों के उपद्रवस्वरूप दुःख से मेरी रक्षा करें । दीर्घजीविनी पुण्य-सन्तति मुझे दें । शरणागत मुझे हे दीनवत्सल ! मेरी रक्षा करें । जानकर या बिना जाने मैंने या मेरे पूर्वजों ने इस जन्म में अथवा दूसरे जन्म में सर्पों का वध किया हो तो उन पापों का नाश कीजिये मेरे अपराधों को क्षमा कीजिये । ऐसी प्रार्थना करके नागेन्द्र को स्नान कराकर फिर वहाँ आकर व्याहृतियों से दूध और घी से अग्नि का संप्रोक्षण कर सर्प के होम हो जाने पर जल से अग्नि को सींचे ।

यज्ञोपवीतिना सर्वं सर्पसंस्कारकर्म तु ।
नास्थिसंचयनं कुर्यात्स्नात्वाचम्य गृहं व्रजेत् ॥

सभार्यस्य कर्तुस्त्रिरात्रमाशौचं ब्रह्मचर्यं च कार्यम् । चतुर्थेऽहनि सचैलं स्नात्वा घृतपायसभक्ष्यैरष्टौ विप्रान् भोजयेत् । तद्यथा—सर्पस्वरूपिणे ब्राह्मणाय इदं ते पाद्यम्—अनन्तस्वरूपिणे० शेषस्वरूपि० कपिलस्व० नागस्व० कालिकस्व० शंखपालस्व० भूधरस्व० इत्यष्टसु दत्त्वा स्वपादौ प्रक्षाल्याचम्य सर्पस्वरूपिणे ब्रा० इदमासनम् आस्यताम् । एवमनन्तादिषु । ततः सर्पस्थाने क्षणः क्रियतामित्यादि ओं तथा प्राप्नोतु भवान् प्राप्नवानि । भो सर्परूप इदं ते गन्धम् । एवमनन्तादिषु ।

सर्प के सम्पूर्ण संस्कारों में यज्ञोपवीती होकर करे । अस्थिसंचयन न करे । स्नान आचमन करके घर चला आवे । सपत्नीक कर्ता तीन रात का आशौच और ब्रह्मचर्य करे । चौथे दिन

सवस्त्र स्नान करके घी के बने भोज्यपदार्थों तथा खीर से आठ ब्राह्मणों को भोजन करावे। वह इस प्रकार है—सर्परूपवाले ब्राह्मण के लिये यह आपके लिये पाद्य है। अनन्तस्वरूपी, शेषस्वरूपी, कपिलस्वरूपी, नागस्वरूपी; कालिकस्वरूपी, शंखपालस्वरूपी और भूधरस्वरूपी ब्राह्मण को पाद्य देकर अपने पैरों को धोकर और आचमन करके सर्पस्वरूपी ब्राह्मण के लिये यह आसन है, इस पर आप बैठिये। इसी प्रकार अनन्तादिक में भी कहे। तदनन्तर सर्प के स्थान में 'क्षणः क्रियताम्' ऐसा कहकर वैसे आप प्राप्त करें। सर्पस्वरूपी ब्राह्मण कहे प्राप्त करूँगा। हे सर्परूप ब्राह्मण ! यह आप के लिये गन्ध है। इसी प्रकार अनन्तादिक को गन्धादिक का दान करे।

एवं पुष्पधूपदीपवस्त्रादि दत्त्वा अन्नं परिविष्य प्रोक्ष्य सर्पाय इदमन्नं परिविष्टं परिवेक्ष्यमाणं च दत्तं दास्यमानं चातृप्तेरमृतरूपेण स्वाहा संपद्यन्तां न मम। एवमनन्तादिभ्योपि। आचान्तेषु भो सर्प अयं ते बलिरित्यादिनाममन्त्रैर्बलिदानम्। तेषु पिण्डेषु वस्त्रादिपूजा च कार्या। इदमपि सर्वं सव्येनैव। विप्रेभ्यस्ताम्बूलदक्षिणादि दत्त्वा आचार्यं संपूज्य कलशे सुवर्णनागमावाहनादिषोडशोपचारैः संपूज्य प्रार्थयेत्—

इसी प्रकार पुष्प, धूप, दीप और वस्त्रादि देकर अन्न परोस कर उसका प्रोक्षण करके कहे—यह अन्न परोसा हुआ और परोसा जाने वाला, दिया हुआ और आगे दिया जाने वाला तृप्तिपर्यन्त अमृत रूप से स्वाहा सम्पन्न हो यह मेरा नहीं है। इसी प्रकार अनन्तादिक के लिये भी कहे। ब्राह्मणों को भोजन आचमन कर लेने के बाद हे सर्प ! यह तुम्हारी बलि है। इस प्रकार नाममन्त्रों से बलि दे। और उन पिण्डों पर वस्त्रादि से पूजा करे। यह सब कृत्य सव्य हो कर ही करे। ब्राह्मणों को ताम्बूल दक्षिणा आदि देकर आचार्य की सम्यक्पूजा करके कलशस्थित सुवर्णनाग को आवाहन आदि षोडशोचार से पूजाकर प्रार्थना करे—

ब्रह्मलोके च ये सर्पाः शेषनागपुरोगमाः।
नमोस्तु तेभ्यः सुप्रीताः प्रसन्नाः सन्तु मे सदा ॥
विष्णुलोके च ये सर्पा वासुकिप्रमुखाश्च ये। नमोस्तु० ॥
रुद्रलोके च ये सर्पास्तक्षकप्रमुखास्तथा। नमोस्तु० ॥
खाण्डवस्य तथा दाहे स्वर्गं ये च समाश्रिताः। नमोस्तु० ॥
सर्पसत्रे च ये सर्पा आस्तिकेन च रक्षिताः। नमोस्तु० ॥
मलये चैव ये सर्पाः कर्कोटप्रमुखाश्च ये। नमोस्तु० ॥
धर्मलोके च ये सर्पा वैतरण्यां समाश्रिताः। नमोस्तु० ॥
ये सर्पाः पार्वतीयेषु दरीसंधिषु संस्थिताः। नमोस्तु० ॥
ग्रामे वा यदि वारण्ये ये सर्पाः प्रचरन्ति हि। नमोस्तु० ॥
पृथिव्यां चैव ये सर्पा ये सर्पा बिलसंस्थिताः। नमोस्तु० ॥
रसातले च ये सर्पा अनन्ताद्या महाबलाः। नमोस्तु० ॥

शेषनाग आदि जो सांप ब्रह्मलोक में हैं उनको नमस्कार है, वे मुझपर सदा प्रसन्न रहें। वासुकि आदि जो सर्प विष्णुलोक में हैं उनको नमस्कार है, वे मेरे ऊपर सदा प्रसन्न रहें। तक्षक

आदि सर्प जो रुद्रलोक में हैं उनको नमस्कार है और वे सदा मुझपर प्रसन्न रहें। खाण्डव वन के जलने पर जो सर्प स्वर्ग का आश्रय लिये हैं उनको नमस्कार है वे मुझपर सदा प्रसन्न रहें। जो सर्प सर्पयज्ञ में आस्तिक से बचाये गये हैं उनको नमस्कार है वे सदा मुझपर प्रसन्न रहें। कर्कोट आदि प्रमुख सर्प जो मलय पर्वत पर हैं उनको मेरा नमस्कार है वे सदा मुझ पर प्रसन्न रहें। जो सर्प यम लोक में वैतरणी में रहते हैं उनको नमस्कार है वे सदा मुझपर प्रसन्न रहें। पर्वतों की कन्दरा की सन्धि में जो सर्प रहते हैं उन सर्पों को नमस्कार है वे मुझपर सदा प्रसन्न रहें। गांव में या जंगल में जो सर्प घूमते हैं उनको नमस्कार है वे मुझपर सदा प्रसन्न रहें। पृथिवी पर जो सर्प बिल में रहते हैं उनको नमस्कार है वे सदा मुझपर प्रसन्न रहें। महा बलवान् अनन्तादि सर्प जो रसातल में रहते हैं उनको मेरा नमस्कार है वे सदा मेरे ऊपर प्रसन्न रहें।

एवं स्तुत्वा देशकालौ संकीर्त्य 'कृतसर्पसंस्कारकर्मणः सांगतार्थमिमं हैमनागं सकलशं सवस्त्रं सदक्षिणं तुभ्यमहं संप्रददे नमम'। अनेन स्वर्णनागदानेनानन्तादयो नागदेवताः प्रीयन्ताम्। आचार्याय गोदानम्। यस्य स्मृत्या च०। मया कृतं सर्पसंस्काराख्यं कर्म तद्भवतां विप्राणां वचनात्परमेश्वरप्रसादात्सर्वं परिपूर्णमस्तु। तथास्त्विति ते ब्रूयुः। ब्राह्मणांस्तोषयेत्। सांगतार्थं ब्राह्मणान् भोजयेत्।

कृत्वा सर्पस्य संस्कारमनेन विधिना नरः।
विरोगो जायते क्षिप्रं संततिं लभते शुभाम्॥ इति सर्पबलिः।

ऐसी स्तुति कर देशकाल का नाम लेकर 'किये हुए सर्प-संस्कार कर्म की सांगता-सिद्धि के लिये इस सुवर्ण नाग को कलश वस्त्र और दक्षिणा के सहित आप को मैं दे रहा हूँ मेरा नहीं। इस सोने के सर्प दान से अनन्त आदि नाग देवता प्रसन्न हों। आचार्य को गोदान दे। 'यस्य स्मृत्या' इत्यादि मन्त्र पढ़कर मेरा किया हुआ सर्प-संस्कार नामक कर्म आप ब्राह्मणों के वचन और परमेश्वर के अनुग्रह से सब परिपूर्ण हो ऐसा कर्त्ता कहे। ब्राह्मण लोग 'ऐसा ही हो' ऐसा कहें। ब्राह्मणों को संतुष्ट करे। सांगता के लिये ब्राह्मणो को भोजन करावे। जो मनुष्य इस विधि से सर्प-संस्कार करता है वह रोगरहित होता है और शीघ्र शुभ-सन्तति पाता है।

अथ हरिवंशश्रवणविधिः

एवमपि पुत्रोत्पत्त्यसिद्धौ कर्मविपाकग्रन्थोक्तहरिवंशश्रवणादिविधानं[1] कुर्यात्। तच्च षडब्दं चतुरब्दं त्र्यब्दं सार्धाब्दमब्दं वा प्रायश्चित्तं कृत्वा कार्यम्।

---

१. भविष्यपुराणोक्त हरिवंश का नवाहपारायण विधान—'प्रथमे कृष्णजननं द्वितीये धेनुकार्दनम्। तृतीये कुण्डनपुरे रुक्मिणीहरणं तथा॥ चतुर्थे षट्पुरवधमार्यास्तोत्रं च पञ्चमे। मघोश्चरित्रं षष्ठे वै सप्तमे पावकस्तुतिः॥ अष्टमे पौण्ड्रकवधो नवमेऽह्नि समापयेत्। वाचयेदनया रीत्या हरिवंशं यथाक्रमम्॥'

प्रमाणान्तर—'प्रथमे यदुवंशस्य कीर्तनावधि कीर्तयेत्। अध्यायानां पञ्चत्रिंशत्कीर्तनीया हि तद्दिने॥ द्वितीयेऽह्नि पठेद् विद्वान् धेनुकस्य वधावधि। अध्यायानां त्रयस्त्रिंशत् पठितव्या हि तद्दिने॥ जरासन्धवधो युद्धे गोमन्तस्य च रोहणम्। तावत्प्रकीर्तयेद् धीमान् तृतीयेऽह्नि विचक्षणः॥ अध्यायानामूनत्रिंशत् कीर्तनीया हि तद्दिने। पारिजातस्य हरणं युद्धं कृष्णेन्द्रयोर्मिथः॥

प्रकीर्तयेच्चतुर्थेऽह्नि तावदेव नरः सुधीः। एकत्रिंशत्परिमितानध्यायान् समुदीरयेत्॥ सैन्यभङ्गः

नारायणबलि और नागबलि करने पर भी संतान-प्राप्ति न हो तो कर्मविपाकग्रन्थ का कहा हुआ हरिवंशश्रवण आदि विधान को करे। उसे छ वर्ष, चार वर्ष, तीन वर्ष, डेढ़ वर्ष, या एक वर्ष का प्रायश्चित्त करके करे।

अथ कृच्छ्रादिलक्षणम्

तत्र त्रिंशत्कृच्छ्रात्मकोऽब्दः। कृच्छ्रस्तु द्वादशदिनसाध्यः। तथा हि—प्रथम-दिने मध्याह्ने हविष्यस्यैकभक्तस्य षड्विंशतिर्ग्रासा भोक्तव्याः। द्वितीयेऽहनि नक्तं द्वाविंशतिर्ग्रासाः। तृतीये अयाचितस्य चतुर्विंशतिर्ग्रासाः। चतुर्थे निरशनम्। अयं [1]पादकृच्छ्रः। कथंचित् त्रिगुणीकृतोयं [2]प्राजापत्यः कृच्छ्रः। एकभक्तनक्तायाचित-द्वयोपवासद्वयैरर्धकृच्छ्रः। यद्वा त्र्यहमयाचितं त्र्यहमुपवास इत्यर्धकृच्छ्रः। एक-भक्तायाचितोपवासैः कथंचित् त्रिगुणैः पादोनकृच्छ्रः।

इसमें तीस कृच्छ्र का एक वर्ष होता है। बारह दिन में एक कृच्छ्र होता है। पहिले दिन मध्याह्न में हविष्य से एकभक्त का छब्बीस ग्रास भोजन करे। दूसरे दिन रात में बाईस ग्रास, तीसरे

शम्बरस्य वाक्यं श्रीनारदस्य च। तावत् प्रकीर्तयेद् विद्वान् पञ्चमेऽह्नि प्रयत्नतः॥ त्रयस्त्रिंशत्परिमिता अध्याया विहितास्तदा। जनमेजयवंशस्य भविष्यस्य च वर्णनम्॥ षष्ठेऽह्नि तावद्वक्तव्यं पारायणशुभे-च्छुना। अध्यायास्तु चतुस्त्रिंशन्मितास्तस्मिन् प्रकीर्तिताः॥

सप्तमे दैत्यसैन्यानां विस्तारो यावदेव हि। अध्यायाश्चाष्टचत्वारिंशन्मिता एव कीर्तिताः॥ यावद्धि घण्टाकर्णस्य समाधेर्वर्णनं भवेत्। तावदेव पठेद्धीमानष्टमेह्नि प्रयत्नतः॥ अस्मिंस्तु दिवसेऽध्यायाः कीर्तितास्त्रिंशदेव हि। समाप्त्यन्तं च नवमे धीरकण्ठः शुभेच्छुकः॥

अध्यायाः पञ्चपञ्चाशन्मितास्तु विहितास्तदा। हरिवंशनवाहस्य पारायण उदाहृतः॥ क्षणं विश्रम्य मध्याह्ने प्रपठेत्तु दिनावधि। गायत्र्या हवनं कुर्यादथवा विष्णुमन्त्रतः॥ भोजयेत् पायसैर्विप्रान् मधुरैश्च विशेषतः। दक्षिणा चात्र सामान्यान्निष्कत्रयमितोदिता॥ गोद्वयं चाथवैकां गां शय्यां वस्त्रं सुभूषणम्। दद्यात्पुत्रप्राप्तिकामो वित्तशाठ्यं न कारयेत्॥' इति।

हरिवंशनवाहपारायण के प्रतिदिन का अध्याय-संख्याक्रम।

प्रथम दिन	प्रारम्भ से	३४	अध्यायपर्यन्त	(३५ अध्याय)
द्वितीय दिन	विष्णु पर्व के	१३	,,	(३३ ,,)
तृतीय दिन	,, ,,	४२	,,	(२९ ,,)
चतुर्थ दिन	,, ,,	७३	,,	(३१ ,,)
पंचम दिन	,, ,,	१०६	,,	(३३ ,,)
षष्ठ दिन	भविष्य पर्व के	२	,,	(२४ ,,)
सप्तम दिन	,, ,,	५०	,,	(४८ ,,)
अष्टम दिन	,, ,,	८०	,,	(३० ,,)
नवम दिन	,, ,,	१३५	,,	(३५ ,,)

१. याज्ञवल्क्यने पादकृच्छ्र का लक्षण कहा है—'एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च। उपवासेन चैवायं पादकृच्छ्रः प्रकीर्तितः॥' इति। आपस्तम्बः—'त्र्यहमनक्ताश्यदिवाशी च ततस्त्र्यहम्। त्र्यहमयाचितव्रतस्त्र्यहं नाश्नाति किंचन॥' इति।

२. मनुने प्राजापत्यकृच्छ्र का लक्षण कहा है—'त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम्। त्र्यहं परं च नाश्नीयात् प्राजापत्यं चरन् द्विजः॥' इति।

दिन अयाचित का चौबीस ग्रास, चौथे दिन उपवास, यह पादकृच्छ्र है। इसी प्रकार तिगुना किया हुआ प्राजापत्यकृच्छ्र कहलाता है। एकभक्त, नक्त और अयाचित का दो उपवास करने से अर्धकृच्छ्र होता है। अथवा तीन दिन अयाचित करे और तीन दिन उपवास करे। इस प्रकार भी अर्धकृच्छ्र होता है। इसी प्रकार एकभक्त, अयाचित और उपवास को तिगुना करने पर एकपाद कम कृच्छ्र होता है।

येषु नवदिनेषु भोजनप्राप्तिस्तत्र ग्रासनियमं त्यक्त्वा पाणिपूरान्नभोजने [1]अतिकृच्छ्रः। एकग्रासपर्याप्तस्य प्राणधारणपर्याप्तस्य वा दुग्धस्य एकविंशतिदिनेषु भक्षणे कृच्छ्रातिकृच्छ्रः। एकदिने सकुशोदकमिश्रपञ्चगव्याशनमेक उपवास इति द्वैरात्रिकः [2]सान्तपनकृच्छ्रः। पञ्चगव्यकुशोदकानाममिश्राणामेकैकस्यैकैकदिनेऽशनमेक उपवास इति सप्ताहसाध्यो महासान्तपनः।

जिन नव दिनों में भोजन मिल जाय उसमें ग्रास का नियम छोड़कर पसर भर अन्न भोजन करने पर अतिकृच्छ्र होता है। एक ग्रास के बराबर जीवन धारण के योग्य दूध का इक्कीस दिन पीने पर कृच्छ्रातिकृच्छ्र होता है। एक दिन कुशोदक मिलाकर पञ्चगव्य ले और एक दिन उपवास करे यह दो रात का सान्तपनकृच्छ्र होता है। एक दिन पञ्चगव्य ले दूसरे दिन केवल कुशोदक ले इस प्रकार दो दिन का एक उपवास होता है। इसी को सात दिन में करे तो महासान्तपन होता है।

त्र्यहं मिश्रितपञ्चगव्याशने [3]यतिसान्तपनम्। तप्तानां दुग्धघृतजलानामेकैकस्य त्रिदिने पानमुपवासत्रयं चेति तप्तकृच्छ्रः। शीतानां पाने शीतकृच्छ्रः। यद्वा तप्तानां घृतादीनामेकैकदिनेऽशनं चतुर्थदिने उपवास इति दिनचतुष्टयसाध्यस्तप्तकृच्छ्रः। द्वादशाहोपवासेन पराककृच्छ्रः।

तीन दिन कुशोदक मिलाकर पञ्चगव्य पीने से यतिसान्तपन होता है। दूध, घी और जल गर्म करके एक एक को तीन दिन में पीने पर और तीन उपवास करने पर तप्तकृच्छ्र होता है। ठंडे दूध घी और जल पीने से तीन दिन में शीतकृच्छ्र होता है। अथवा गर्म घी, दूध और जल को एक एक दिन पीने पर तथा चौथे दिन उपवास करने पर यह चार दिन में होने वाला भी तप्तकृच्छ्र है। बारह दिन के उपवास से पराककृच्छ्र होता है।

शुक्लपक्षे प्रतिपदादितिथिषु मयूराण्डसमानैकैकग्रासान् वर्धयन् पूर्णिमायां पञ्चदशग्रासाः। क्षये चतुर्दशवृद्धौ षोडश सम्पद्यन्ते। कृष्णपक्षे एकैकग्रासह्रासेनामायामुपवास इति माससाध्यं यवमध्यसंज्ञं चान्द्रायणम्।

शुक्लपक्ष में प्रतिपदा आदि तिथियों में मोर के अंडे के समान एक एक ग्रास बढ़ाते हुए पूर्णिमा को पन्द्रह ग्रास होते हैं। तिथिक्षय में चौदह ग्रास होते हैं। तिथि वृद्धि में सोलह ग्रास

---

१. याज्ञवल्क्यने—'अयमेवातिकृच्छ्रः स्यात् पाणिपूरान्नभोजनः।' इससे अतिकृच्छ्र का और 'कृच्छ्रातिकृच्छ्रः पयसा दिवसानेकविंशतिम्।' इससे कृच्छ्रातिकृच्छ्र का लक्षण बतलाया।

२. याज्ञवल्क्य ने—'गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्। जग्ध्वा परेह्न्युपवसेत् कृच्छ्रं सान्तपनं चरन्॥' इससे सान्तपन का। और 'पृथक्सान्तपनद्रव्यैःषडहः सोपवासकः। सप्ताहेन तु कृच्छ्रोऽयं महासान्तपनः स्मृतः॥ इससे महासान्तपन का लक्षण बतलाया।

३. यतिसान्तपन-तप्तकृच्छ्र-शीतकृच्छ्र-तप्तकृच्छ्र-पराककृच्छ्र-यवमध्यचान्द्रायण-पिपीलिकामध्यचान्द्रायण-कृच्छ्रचान्द्रायण के मूलवचन धर्मशास्त्रग्रन्थों में देखिये।

सम्पन्न होते हैं। कृष्णपक्ष में एक एक ग्रास घटाने पर अमावास्या में उपवास होता है यह एक महीने में होने वाला यवमध्यनामक चान्द्रायण है।

कृष्णपक्षे प्रतिपदि चतुर्दशग्रासान् भुक्त्वा एकैकग्रासह्रासेन दर्शे अनशनं शुक्ले एकैकग्रासवृद्धिरिति कृष्णादिशुक्लान्तं पिपीलिकामध्यचान्द्रायणम्। कृच्छ्रचान्द्रायणादेः त्रिकालस्नानग्रासाभिमन्त्रणादिविधियुतः प्रयोगः प्रायश्चित्तप्रकरणे ज्ञेयः। अतिकृच्छ्रादिलक्षणं प्रसंगादत्रोक्तम्। अब्दगणना तु प्राजापत्यकृच्छ्रैरेव।

कृष्णपक्ष में प्रतिपदा को चौदह ग्रास खाकर एक एक ग्रास कम करने से अमावास्या को उपवास करे। शुक्लपक्ष में एक एक ग्रास बढ़ा करके इस प्रकार कृष्ण पक्ष से प्रारम्भ करकेशुक्लपक्ष तक एस मास में पिपीलिकामध्यचान्द्रायण होता है। कृच्छ्र चान्द्रायण आदि का तीनों समय में स्नान और ग्रास का अभिमन्त्रण आदि विधिसहित प्रयोग प्रायश्चित्त प्रकरण से जानना चाहिये। अतिकृच्छ्र आदि का लक्षण प्रसंग से यहां कहा है। वर्ष की गणना प्राजापत्यकृच्छ्र से करनी चाहिये।

अथ व्रताशक्तौ प्रत्याम्नायाः

तत्र प्राजापत्यप्रत्याम्नायाः दशसहस्रगायत्रीजपः, गायत्र्या सहस्रं तिलहोमः। क्वचित्सहस्रं व्याहृत्या तिलहोम उक्तः। शतद्वयं प्राणायामाः। द्वादशब्राह्मणभोजनम्। यावत्क्लेशशोषणं विरम्य तीर्थे द्वादशस्नानानि। वेदसंहितापारायणम्। योजनयात्रा। द्वादशसहस्रं नमस्काराः। द्वात्रिंशदुत्तरशतं प्राणायामान्कृत्वा अहोरात्रमुपोषितः प्राङ्मुखस्तिष्ठेत्। गोमूत्रेण यावकभक्षणे ऐकाहिककृच्छ्रम्। कश्चिद् रुद्रैकादशिनीजपात्कृच्छ्रमाह। पावकेष्टिः पावमानेष्टिः षड्उपवासाः प्राजापत्यप्रत्याम्नायाः। एकविप्रभोजनमुपवासस्य। अत्यशक्तौ सहस्रगायत्रीजपो द्वादशप्राणायामा वेति स्मृत्यर्थसारे।

इसमें प्राजापत्य व्रत करने में असमर्थ को बदले में दस हजार गायत्री का जप, एक हजार गायत्री से तिल का होम करना चाहिये। कहीं पर एक हजार व्याहृति से तिल का होम कहा है। दो सौ प्राणायाम, बारह ब्राह्मणों का भोजन, नहाने पर जब बाल सूख जाय तब तक ठहर के किसी तीर्थ में बारह स्नान, वेदसंहिता का पारायण, चार कोस की यात्रा, बारह हजार नमस्कार, एकसौ बत्तीस प्राणायामों को करके दिन रात उपवासकर पूरब मुख रहे। गोमूत्र से जव को भक्ष्य बनाकर खाय, यह एक दिन का कृच्छ्र है। कोई रुद्रैकादशिनी के जप से कृच्छ्र कहते हैं। पावकेष्टि, पावमानेष्टि, उपवास, प्राजापत्य के बदले में करे। एक उपवास के बदले में एक ब्राह्मण-भोजन होता है। अत्यन्त अशक्त होने पर एक हजार गायत्री का जप या बारह प्राणायाम ऐसा स्मृत्यर्थसारमें कहा है।

प्राजापत्येष्वशक्तस्तु धेनुं दद्यात्पयस्विनीम्।
धेनोरभावे निष्कं स्यात्तदर्धं पादमेव वा॥

अशीतिगुञ्जात्मकः कर्षः, चत्वारः कर्षा निष्कम्, निष्कनिष्कार्धनिष्कपादान्यतमप्रमाणं हेम रूप्यं वा धेनुमूल्यं देयम्। अत्यशक्तेन निष्कपादार्धरजतं तत्समं धान्यादि वा देयम् अतिकृच्छ्रे च गोद्वयम्। सांतपने गोद्वयम्। पराके तप्तकृच्छ्रे

च गोत्रयम्। कृच्छ्रातिकृच्छ्रे गोचतुष्टयं गोत्रयं वा। चान्द्रायणे अष्टौ पञ्च चतस्रस्तिस्रो वा गावः। मासं पयोव्रते यावकव्रते मासोपवासे च पञ्च गावः। मासं गोमूत्रयावकव्रते षड् गावः।

प्राजापत्य करने में असमर्थ तो दूध देने वाली गाय का दान करे। धेनु न मिलने पर एक निष्क, आधा निष्क या चौथाई निष्क सुवर्णदान करे। अस्सी गुंजे का एक कर्ष, चार कर्ष का एक निष्क होता है। एक निष्क आधा निष्क और चौथाई निष्क में से कोई एक सोने या चांदी का गोमूल्य दे। अत्यशक्त को चौथाई निष्क की आधी चांदी या उसके बराबर अन्नदानादि दे। अतिकृच्छ्र में दो गोदान, सान्तपन में भी दो गौ का दान, पराक और तप्तकृच्छ्र में भी दो गोदान, कृच्छ्रातिकृच्छ्र में चार गोदान या तीन गोदान, चान्द्रायण में आठ, पाँच, चार या तीन गोदान करे। महीने भर के पयोव्रत में या जव खाकर महीने भर उपवास करने पर भी पांच गोदान करे। महीने भर गोमूत्र से यावकव्रत में छ गोदान करे।

अथ प्रायश्चित्तप्रयोगः

सचैलं स्नात्वा शक्तौ क्लिन्नवासाः पर्षदग्रे गोवृषप्रत्याम्नायं निष्कादिप्रमाणं ब्रह्मदण्डं निधाय साष्टाङ्गं प्रणम्य पर्षदं प्रदक्षिणीकुर्यात्।

सर्वे धर्मविवेक्तारो गोप्तारः सकला द्विजाः।
मम देहस्य संशुद्धिं कुर्वन्तु द्विजसत्तमाः॥
मया कृतं महाघोरं ज्ञातमज्ञातकिल्बिषम्।
प्रसादः क्रियतां मह्यं शुभानुज्ञां प्रयच्छथ॥
पूज्यैः कृतपवित्रोऽहं भवेयं द्विजसत्तमाः।

मामनुगृह्णन्तु भवन्त इति वदेत्। विप्रः किं ते कार्यं मिथ्या मावादीः सत्यमेव वदेति पृष्टः स्वपापं ख्यापयेत्।

सचैल स्नान करके शक्ति हो तो गीले ही वस्त्र से परिषद के आगे गाय और बैल के बदले में निष्क आदि प्रमाण का ब्रह्मदण्ड रखकर साष्टांग प्रणाम करके प्रदक्षिणा करे। सब धर्म के विवेचन करने वाले सम्पूर्ण ब्राह्मण मेरे देह की शुद्धि करें। मैंने जो ज्ञान अज्ञान में महा घोर पाप किये हैं। मुझपर प्रसन्न होकर शुभ आज्ञा दें। आप पूज्य ब्राह्मणों से मैं तृप्त हो जाऊँगा आप लोग मुझपर अनुग्रह करें, ऐसा कहे। ब्राह्मण गण पूछें 'क्या तुम्हारा काम है, झूठ न बोलना सत्य ही कहो' धर्मवादियों के ऐसा पूछने पर अपने पापों को प्रकाशित करे।

मया मम पत्न्या वा इह जन्मनि जन्मान्तरे वा अनपत्यत्वमृतापत्यत्वादिनिदानभूतबालघातविप्ररत्नापहारादिदुरितं कृतं तस्य नाशाय करिष्यमाणे हरिवंशश्रवणादौ कर्मविपाकोक्ते विधानेऽधिकारार्थं दीर्घायुष्मत्पुत्रादिसंततिप्राप्तये प्रायश्चित्तमुपदिशन्तु भवन्त इति प्रार्थयेत्। ते च पापिना पूजितानुवादकाग्रे षडब्दत्र्यब्दसार्धाब्दान्यतमप्रायश्चित्तेन पूर्वोक्तराङ्गसहितेनाचरितेन तव शुद्धिर्भविष्यति तेन त्वं कृतार्थो भविष्यसीति वदेयुः। अनुवादकः पापिनं वदेत्।

मैंने या मेरी स्त्री ने इस जन्म में या दूसरे जन्म में संतान न होने पर या संतान होकर मर

जाने का कारणरूप बालघात ब्राह्मण का रत्न चुराना आदि पाप किया है, उसके नाश के लिये किये जाने वाले हरिवंशश्रवण आदि में कर्मविपाक के कहे हुए विधान के अधिकार के लिये बहुत दिनों तक जीने वाले पुत्र आदि संतति की प्राप्ति के लिये आप लोग प्रायश्चित्त का उपदेश करें, ऐसी प्रार्थना करे। वे लोग पापी से पूजित अनुवादक के आगे छ वर्ष, तीन वर्ष या डेढ़ वर्ष में से पूर्वांग उत्तरांग सहित किसी एक प्रायश्चित्त को करने से तुम्हारी शुद्धि होगी उससे तुम कृतार्थ हो जाओगे, ऐसा कहें। अनुवादक पापी से कहे।

ततः कर्ता ओमित्यङ्गीकृत्य पर्षदं विसृज्य देशकालौ संकीर्त्य 'सभार्यस्य ममैतज्जन्मजन्मातरार्जितानपत्यत्वमृतापत्यत्वादिनिदानभूतबालघातविप्ररत्नापहारादिजन्यदुरितसमूलनाशकर्मविपाकोक्तविधानाधिकारसिद्धिद्वारादीर्घायुष्मद्बहुपुत्रादिसंततिप्राप्तये षडब्दं त्र्यब्दं सार्धाब्दं वा प्रायश्चित्तं पूर्वोत्तराङ्गसहितममुकप्रत्याम्नायेनाहमाचरिष्ये' इति संकल्प्य दिनान्ते केशरोमनखादि वापयित्वा स्नात्वा,

आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशु वसूनि च ।
ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते ॥

इति विहितकाष्ठेन दन्तधावनं कुर्यात् ।

तब कर्त्ता 'हां' ऐसा स्वीकार कर परिषद् का विसर्जन करके देश काल को कहकर 'सपत्नीक मेरे इस जन्म या दूसरे जन्म के अनपत्यत्व मृतापत्यत्व आदि का कारण रूप बालघात और ब्राह्मण का रत्न चुराना आदि से उत्पन्न पाप का समूल नाश करने वाला कर्मविपाकोक्त-विधान के अधिकार की सिद्धि द्वारा और लम्बी आयु वाले बहुत पुत्र आदि संतति की प्राप्ति के लिये छ वर्ष, तीन वर्ष या डेढ़ वर्ष का पूर्वांग और उत्तरांगसहित प्रायश्चित्त के बदले में अमुक का आचरण करूँगा' ऐसा संकल्प करके सायंकाल में केश रोम नखों को कटवाकर स्नान करके हे वनस्पते ! आयु, बल, यश, तेज, सन्तान, पशु, धन, वेद और बुद्धि आप मुझे दें, इस आशय के मन्त्र से शास्त्रोक्त काठ से दतुवन करे।

अथ दशविधस्नानविधिः

ततो दशस्नानानि तत्र भस्मस्नानम्—ईशानाय नमः शिरसि, तत्पुरुषाय नमो मुखे, अघोराय नमो हृदये, वामदेवाय नमो गुह्ये, सद्योजाताय नमः पादयोः, प्रणवेन सर्वाङ्गेषु भस्म विलिम्पेत् । ईशानादिपदोपेतैर्मन्त्रैर्वा भस्मलेपः ।

तदनन्तर दशविध स्नान करे। पहले भस्म स्नान—भस्म हाथ में लेकर 'ईशानाय नमः' कह के सिर में, 'तत्पुरुषाय नमः' कह के मुंह में, 'अघोराय नमः' कहके हृदय में, 'वामदेवाय नमः' कहके पेशाब पाखाना करने के स्थान में, 'सद्योजाताय नमः' इससे दोनों पैरों में और प्रणव से सब अंगों में लेपन करे। अथवा ईशानादि पदों से युक्त मन्त्रों से भस्म का लेपन करे।

अथ गोमयस्नानम्—गोमयमादाय प्रणवेन दिक्षु दक्षिणभागं तीर्थे चोत्तरभागं प्रक्षिप्य शेषं मानस्तोक इत्यभिमन्त्र्य गन्धद्वारामिति सर्वाङ्गमालिप्य हिरण्यशृङ्गमिति द्वाभ्यां प्रार्थ्य याः प्रवत इति तीर्थमभिमृश्य स्नात्वा द्विराचामेत् ।

गोबर लेकर प्रणव से दिशाओं में दक्षिणभाग और तीर्थ में उत्तरभाग को छोड़कर शेषभाग को 'मान स्तोक' इस मन्त्र से अभिमन्त्रण करके 'गन्धद्वारां' इस मन्त्र से सर्वांग में लेपन करके 'हिरण्य शृंग' इन दो मन्त्रों से प्रार्थना करके 'याः प्रवत' इससे तीर्थ का स्पर्श और स्नान करके दो बार आचमन करे।

अथ मृत्तिकास्नानम्—

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे।
शिरसा धारयिष्यामि रक्षस्व मां पदे पदे॥

इति मृत्तिकामभिमन्त्र्य,

उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना।
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम्॥

इति तामादाय नमो मित्रस्येति सूर्याय प्रदर्श्य गन्धद्वारामिति मन्त्रेण स्योना पृथिवीति मन्त्रेण वा इदं विष्णुरिति वा शिरः प्रभृत्यङ्गानि विलिम्पेत्। द्विराचामेत्।

'अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते' इत्यादि मूलोक्त मंत्र से मिट्टी का अभिमन्त्रण करके 'उद्धृतासि वराहेण' इस मन्त्र से मिट्टी को लेकर 'नमो मित्रस्य' इससे सूर्य को दिखाकर 'गन्धद्वारां' इस मन्त्र से या 'स्योना पृथिवी' इस मन्त्र से अथवा 'इदं विष्णुः' इस मन्त्र से सिर आदि सब अंगों में लेपन करे। दो बार आचमन करे।

अथ वारिस्नानम्—आपो अस्मानित्युक्त्वा भास्कराभिमुखः स्थितः इदं विष्णुर्जपित्वा च प्रतिस्रोतो निमज्जति। ततः पञ्चगव्यकुशोदकैः समन्त्रकैः पृथक् पृथक् स्नात्वा स्नानाङ्ग तर्पणादि कुर्यात्। विष्णुश्राद्धं पूर्वाङ्गगोप्रदानं च कृत्वाऽग्निं प्रतिष्ठाप्य पञ्चगव्य होमं व्याहृतिभिरष्टोत्तरशतमष्टाविंशति वाऽऽज्यहोमं च कृत्वा व्रतं ग्रहीष्य इति विप्रान्प्रार्थ्य हुतशेषं पञ्चगव्यं प्रणवेन पिबेत्। मुख्यप्रायश्चित्तकृच्छ्रान् संकल्पानुसारेणानुष्ठाय व्याहृत्याज्यहोमविष्णुश्राद्धगोदानानि पूर्ववत्कुर्यात्। आज्यहोमे पञ्चगव्यहोमे च इध्माधानादिस्थालीपाकेतिकर्तव्यतां केचिन्नेच्छन्ति। व्याहृत्याज्यहोमे पापापहा महाविष्णुर्देवतेति केचित्।

सूर्य के सामने खड़ा हो करके 'आपो अस्मान्' इस मन्त्र को कह कर 'इदं विष्णुः' इत्यादि मन्त्र का जप करके डुबकी लगावे। तदनन्तर पञ्चगव्य और कुश के जल से मन्त्रसहित अलग अलग नहा कर स्नानांग तर्पण आदि करे। विष्णुश्राद्ध और पूर्वांग गोदान करके अग्निस्थापन कर व्याहृतियों से १०८ या २८ पञ्चगव्य और घृत से होम करके 'व्रत ग्रहण करूँगा' ऐसा ब्राह्मणों से प्रार्थना करके हवन से बचा हुआ पञ्चगव्य प्रणव से पीये। मुख्य प्रायश्चित्त कृच्छ्रों को संकल्प के अनुसार करके व्याहृति से घृतहोम विष्णुश्राद्ध और गोदान पहिले की तरह करे। कुछ लोग घृत होम तथा पञ्चगव्य के होम में भी समिदाधान आदि स्थालीपाकपर्यन्त कर्म नहीं चाहते। व्याहृति से घृतहोम में पाप को नष्ट करने वाले महाविष्णु देवता हैं, ऐसा कहते हैं।

अथ पञ्चगव्यविधिः

'पञ्चगव्यविधिस्तु—ताम्रे पालाशे वा पात्रे ताम्राया गोमूत्रमष्टमाषप्रमाणं गायत्र्यादाय, गन्धद्वारामिति श्वेतगोशकृत्षोडशमाषमादाय, आप्यायस्वेति पीतगोक्षीरं द्वादशमाषं, दधिक्राब्ण इति नीलगोर्दधि दशमाषं, तेजोसि शुक्रमसीति कृष्णगोघृतमष्टमाषमादाय, तत्र देवस्यत्वेति कुशोदकं चतुर्माषं प्रक्षिप्य प्रणवेनालोडयेत्। अत्र माषः पञ्चगुञ्जात्मकः। तत्सप्तपत्रैः साग्रैः कुशैर्जुहुयात्।

इरावतीति पृथ्वीं, इदंविष्णुरिति विष्णुं, मानस्तोक इति रुद्रं, शन्नोदेवीरित्यपः ब्रह्मयज्ञानमिति ब्रह्माणं वा, अग्निं सोमं च नाम्ना, गायत्र्या सूर्यं, प्रजापते नत्वदिति समस्तव्याहृतिभिर्वा प्रजापतिं, प्रणवेन प्रजापतिम् अग्निं स्विष्टकृतं च नाम्नेत्येताः पञ्चगव्येनाग्निं वायुं सूर्यं प्रजापतिं चेति वा महाविष्णुं वाऽऽज्येनाष्टाविंशतिसंख्याहुतिभिरित्यन्वाधानम्।

पञ्चगव्य की विधि तो—तामे या पलाश के पात्र में गायत्री मन्त्र से तामे के रंग वाली गाय का आठ माशा, 'गन्धद्वारां' इस मन्त्र से सफेद गाय का गोबर १६ माशा, 'आप्यायस्व' इस मन्त्र से पीली गाय का दूध १२ माशा, 'दधिक्राब्ण' इस मन्त्र से नीले रंग की गाय का दही १० माशा, 'तेजोसि शुक्रमसि' इस मन्त्र से काली गाय का घी ८ माशा और 'देवस्यत्वा' इस मन्त्र से ४ माशा कुश का जल लेकर प्रणव से मिलावे। यहां माशा ५ गुंजा का है। अग्रभागसहित कुश के सात पत्तों से होम करे। 'इरावती' इस मन्त्र से पृथिवी को, 'इदं विष्णुः' इससे विष्णु को, 'मानस्तोक' इस मन्त्र से रुद्र को, 'शन्नो देवी' इस मन्त्र से जल को, 'ब्रह्म यज्ञानं' इस मन्त्र से ब्रह्मा को, नाम मन्त्र से अग्नि और सोम को, गायत्री से सूर्य को, 'प्रजापते न त्वदे' इससे या समस्त व्याहृति से प्रजापति को, प्रणव से प्रजापति, अग्नि और स्विष्टकृत् इन सब को अथवा पञ्चगव्य से अग्नि, वायु, सूर्य और प्रजापति को या विष्णु को घी से २८ आहुतियों से अन्वाधान करे।

स्त्रीशूद्राणां होमो न कार्यः। केचिद्ब्राह्मणद्वारा होमः कार्य इत्याहुः। स्त्रीशूद्राणां पञ्चगव्यपाने विकल्प इति महार्णवः। स्त्रीशूद्रौ विप्रैः पञ्चगव्यं कारयित्वा तूष्णीं पिबत इति स्मृत्यर्थसारः। अयं प्रायश्चित्तविधिः कृच्छ्रन्यूनप्रायश्चित्तेषु न कार्यः। कृच्छ्रप्रभृतिषु सर्वत्र प्रायश्चित्तेष्वनुष्ठेयः।

---

१. अन्यत्र यही 'ब्रह्मकूर्च विधि' नाम से व्यवहृत है। जैसा पाराशरने कहा है—'गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्। निर्दिष्टं पंचगव्यं तु प्रत्येकं कायशोधनम्॥गोमूत्रं ताम्रवर्णायाः श्वेतायाश्चापि गोमयम्। पयः काञ्चनवर्णायाः नीलायाश्च तथा दधि॥घृतं च कृष्णवर्णायाः सर्वं कापिलमेव च। अलाभे सर्ववर्णानां पञ्चगव्येष्वयं विधिः॥ गोमूत्रं माषकास्त्वष्टौ गोमयस्य तु षोडश। क्षीरस्य द्वादश प्रोक्ता दध्नस्तु दश कीर्तिताः॥ गोमूत्रवद् घृतस्येष्टस्तदर्धं तु कुशोदकम्। गायत्र्यादाय गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम्॥आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राब्णेति वै दधि। तेजोसि शुक्रमित्याज्यं देवस्यत्वा कुशोदकम्॥पञ्चगव्यमृचा पूतं होमयेदग्निसन्निधौ। सप्तपत्राश्च ये दर्भा अच्छिन्नाग्राः शुचित्विषः॥एतैरुद्धृत्य होतव्यं पञ्चगव्यं यथाविधि। इरावती इदं विष्णुर्मानस्तोके च शंवती॥एताभिश्चैव होतव्यं हुतशेषं पिबेद् द्विजः। प्रणवेन समालोड्य प्रणवेनाभिमन्त्र्य च॥ प्रणवेन समुद्धृत्य पिबेत्तत्प्रणवेन तु। मध्यमेन पलाशस्य पद्मपत्रेण वा पिबेत्॥ स्वर्णपात्रेण रौप्येण ब्राह्मतीर्थेन वा पुनः। यत्त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति मानवे॥ ब्रह्मकूर्चोपवासस्तु दहत्यग्निरिवेन्धनम्।' इति।

स्त्री और शूद्र को हवन नहीं करना चाहिये। ब्राह्मण के द्वारा होम करे, ऐसा कुछ लोग कहते हैं। स्त्री और शूद्र को पञ्चगव्य पीने में विकल्प है, ऐसा महार्णव का मत है। स्त्री और शूद्र ब्राह्मण से पञ्चगव्य बनवाकर विना मन्त्र के चुपचाप पीयें, यह स्मृत्यर्थसार का कहना है। यह प्रायश्चित्त विधि कृच्छ्र से कम प्रायश्चित्तों में न करे। कृच्छ्र आदि सब प्रायश्चित्तों में करे।

एवं कृच्छ्राद्यनुष्ठाय सूर्यारुणसंवादमहार्णवादिकर्मविपाकग्रन्थोक्तं हरिवंश-श्रवणादिकर्म कुयात्।

तत्र शुभे दिने देशकालौ संकीर्त्य अनेकजन्मार्जितानपत्यत्वमृतापत्यत्वादि-निदानभूतबालघातनिक्षेपाहरणविप्ररत्नापहरणादिजन्यदुरितसमूलनाशद्वारा दीर्घा-युष्मद्बहुपुत्रादिसंततिप्राप्तिकामो हरिवंशं श्रोष्यामीत्येकस्य कर्तृत्वे दंपत्योः कर्तृत्वे श्रोष्याव इति संकल्प्य गणेशपूजनस्वस्तिवाचननान्दीश्राद्धानि विनायक-शान्तिं च कृत्वा हरिवंशश्रवणार्थं श्रावयितारं त्वां वृणे इति विप्रं वृत्वा वस्त्रालंकारैः पूजयेत्।

इस प्रकार कृच्छ्र आदि करके सूर्यारुणसंवाद, महार्णव आदि कर्मविपाक ग्रन्थ का कहा हुआ हरिवंशश्रवण आदि कर्म करे। उसमें शुभ दिन में देशकाल का उच्चारण कर 'अनेक जन्मों से अर्जित निस्सन्तानक मृतापत्यत्व आदि कारणों से बालघात, धरोहर का न देना, ब्राह्मण के रत्नों का चुराने आदि से उत्पन्न पाप का समूल नाश के द्वारा बहुत बड़ी आयु से युक्त बहु पुत्र आदि संतति-प्राप्ति की कामना से हरिवंश सुनूँगा'। एक श्रोता सुने तो ऐसा संकल्प कहे। पति पत्नी दोनों के सुनने में 'श्रोष्याव:' ऐसा संकल्प करके गणेशपूजन, स्वस्तिवाचन, नान्दीश्राद्ध और विनायकशान्ति करके 'हरिवंश सुनने के लिये सुनाने वाले आप को मैं वरण करता हूँ' इस प्रकार ब्राह्मण का वस्त्र अलंकारों से वरण करके उसकी पूजा करे।

वाचकं प्रत्यहं पायसादिना भोजयेत्। दंपती प्रतिदिनं त्रायन्तामित्यादि-वैदिकैः सुरास्त्वामिति पौराणैश्च मन्त्रैः सुस्नातावलंकृतौ तदेकचित्तौ शृण्वन्तौ तैलताम्बूलक्षौरमैथुनखट्वाशयनानि यावत्समाप्तिं वर्जयन्तौ हविष्यं भुञ्जीया-ताम्। अन्ते वाचकाय गां सुवर्णत्रयमेकं वा सुवर्णं दक्षिणां दत्त्वा प्रत्यवरोह-मन्त्रेण सहस्रं तिलाज्यं हुत्वा शतं विप्रान् चतुर्विंशतिमिथुनानि वा पायसेन भोजयेदिति हरिवंशश्रवणप्रयोगः।

बाचने वाले को प्रतिदिन खीर आदि का भोजन करावे। पति पत्नी प्रतिदिन 'त्रायन्तां' इत्यादि वैदिक मन्त्र 'सुरास्त्वा' इत्यादि पौराणिक मन्त्रों से नहा कर अलंकार करके एकचित्त होकर सुनते हुए तेल, ताम्बूल, क्षौर, मैथुन, खटिया पर सोना, समाप्ति तक वर्जित करते हुए हविष्य का भोजन करें। अन्त में कथा वाचने वाले को गाय, तीन सुवर्ण या एक सुवर्ण दक्षिणा देकर प्रत्य-वरोह मन्त्र से तिल घी की १००० आहुति होम करके १०० ब्राह्मण अथवा २४ जोड़े ब्राह्मण ब्राह्मणी को खीर से भोजन करावे। हरिवंशश्रवणप्रयोग समाप्त।

अथ विधानान्तराणि

सौवर्णं बालकं कृत्वा दद्याद्दोलासमन्वितम्।
अथवा वृषभं दद्याद्विप्रोद्वाहनमेव वा॥

[1]'महारुद्रजपो वापि लक्षपद्मैः शिवार्चनम्।
स्वर्णधेनुः प्रदातव्या सवत्सा वा यथाविधि ॥
घृतकुम्भप्रदानं वा संक्षेपादिदमीरितम्।

अथवा प्रत्यहं पार्थिवलिङ्गपूजां कृत्वा [2]अभिलाषाष्टकजपं संवत्सरं कुर्यात्। अभिलाषाष्टकस्तोत्रं कौस्तुभे ज्ञेयम्। एवमपि फलाप्राप्तौ दत्तकपुत्रो ग्राह्यः।

झूला पर बैठे हुए सुवर्ण का बालक बना कर झूला समेत उसको दान करें। या बैल का दान करे। अथवा महारुद्र का जप करे। अथवा लाख कमलों से शंकर जी की पूजा करे। या यथाविधि बछड़ा समेत सोने की गाय का दान करे। या घृतपूर्ण घड़ा ब्राह्मण को दे। यह संक्षेप से कहा है। अथवा प्रतिदिन पार्थिवलिंग की पूजा करके अभिलाषाष्टकस्तोत्र का पाठ साल भर तक करे। अभिलाषाष्टकस्तोत्र कौस्तुभ से जाने। ऐसा करने पर भी पुत्र की प्राप्ति न हो तो दत्तकपुत्र लेना चाहिये।

अथ दत्तके ग्राह्याग्राह्यविचारः

ब्राह्मणानां सोदरभ्रातृपुत्रो मुख्यत्वात्प्रथमं [3]ग्राह्यः। तदभावे सगोत्रसपिण्डो

---

१. स्कान्दे—'रुद्राध्यायजपं सम्यक् कुर्वन्तु विमलाशयाः। तेषां जपानुभावेन सद्यः श्रेयो भविष्यति।' महारुद्रजप ब्राह्मण के द्वारा कराने पर शौनकोक्त दक्षिणा—'धेनुं पयस्विनीं दद्यादाचार्याय च भूषणैः। सदक्षिणमनड्वाहं प्रदद्याद्रुद्रजापिने ॥' इति।

जाबालिः—'अहोरात्रोषितो भूत्वा पौर्णमास्यां विशेषतः। पञ्चगव्यं पिबेत्प्रातर्ब्रह्मकूर्चविधिः स्मृतः ॥' इति।

२. स्कन्दपुराण काशीखण्डोक्त अभिलाषाष्टकस्तोत्र—'विश्वानर उवाच—एकं ब्रह्मैवाद्वितीयं सत्यं सत्यं नेह नानास्ति किंचित्। एको रुद्रो न द्वितीयोऽवतस्थे तस्मादेकं त्वां प्रपद्ये महेशम् ॥ १ ॥ एकः कर्ता त्वं हि विश्वस्य शंभो नानारूपेष्वेकरूपोऽस्य रूपः। यद्वत्प्रत्यंब्वर्क एकोप्यनेकस्तस्मान्नान्यं त्वां विनेशं प्रपद्ये ॥ २ ॥ रज्जौ सर्पः शुक्तिकायां च रौप्यं नैरः पूरस्तन्मृगाख्ये मरीचौ। यद्वत्तद्वद्विष्वगेष प्रपञ्चो यस्मिन् ज्ञाते तं प्रपद्ये महेशम् ॥ ३ ॥ तोये शैत्यं दाहकत्वं च वह्नौ तापो भानौ शीतभानौ प्रसादः। पुष्पे गन्धो दुग्धमध्ये च सर्पिर्यत्तच्छम्भो त्वं ततस्त्वां प्रपद्ये ॥ ४ ॥ शब्दं गृह्णास्यश्रवास्त्वं हि जिघ्रेरघ्राणस्त्वं व्यंघ्रिरायासि दूरात्। व्यक्षः पश्येस्त्वं रसज्ञोप्यजिह्वः कस्त्वां सम्यग्वेत्त्यतस्त्वां प्रपद्ये ॥ ५ ॥ नो वेदस्त्वामीश साक्षाद्धि वेद नो वा विष्णुर्नो विधाताखिलस्य। नो योगीन्द्रानेन्द्रमुख्याश्च देवा भक्तो वेद त्वामतस्त्वां प्रपद्ये ॥ ६ ॥ नो ते गोत्रं नापि जन्मापि नाख्या नो वा रूपं नैव शीलं न देशः। इत्थं भूतोपीश्वरस्त्वं त्रिलोक्याः सर्वान्कामान्पूरयेस्तद्भजे त्वाम् ॥७॥ त्वत्तः सर्वं त्वं हि सर्वं स्मरारे त्वं गौरीशस्त्वं च नग्नोऽतिशान्तः। त्वं वै वृद्धस्त्वं युवा त्वं च बालस्तत्किं यत्त्वं नास्यतस्त्वां नतोस्मि ॥ ८ ॥ स्तुत्वेति भूमौ निपपात विप्रः सदण्डवद्यावदतीव हृष्टः। तावत्सबालोऽखिलवृद्धवृद्धः प्रोवाच भूदेव वरं वृणीहि ॥ ९ ॥ तत उत्थाय हृष्टात्मा मुनिर्विश्वानरः कृती। प्रत्यब्रवीत्किमज्ञातं सर्वज्ञस्य तव प्रभो ॥ १० ॥ सर्वान्तरात्मा भगवान् सर्वः सर्वप्रदो भवान्। याञ्चां प्रतिनियुङ्क्ते मां किमीशो दैन्यकारिणीम् ॥ ११ ॥ इति श्रुत्वा वचस्तस्य देवो विश्वानरस्य ह। शुचेः शुचिव्रतस्याथ शुचिस्मित्वाब्रवीच्छिशुः ॥ १२ ॥ बाल उवाच—त्वया शुचे शुचिष्मत्यां योऽभिलाषः कृतो हृदि। अचिरेणैव कालेन स भविष्यत्यसंशयः ॥ १३ ॥ तव पुत्रत्वमेष्यामि शुचिष्मत्यां महामते। ख्यातो गृहपतिर्नाम्ना शुचिः सर्वामरप्रियः ॥ १४ ॥ अभिलाषाष्टकं पुण्यं स्तोत्रमेतत्त्वयेरितम्। अब्दं त्रिकालपठनात्कामदं शिवसन्निधौ ॥ १५ ॥

३. व्यासः—'दद्यान्माता पिता वा यं स पुत्रो दत्रिमः स्मृतः।' मनुः—'माता पिता वा दद्यातां यमद्भिः पुत्रमापदि। सदृशं प्रीतिसंयुक्तौ स ज्ञेयो दत्तकः सुतः ॥' यहाँ प्रीतिसंयुक्तौ इस कथन से

यः कश्चित् सापत्नभ्रातृपुत्रो वा। तदभावे त्वसगोत्रसपिण्डो मातुलकुलजः पितृष्वस्रादिकुलजः। तदभावे त्वसपिण्डः समानगोत्रः। तदभावे त्वसपिण्डः पृथक्गोत्रोऽपि। असगोत्रसपिण्डेषु भागिनेयदौहित्रौ वर्ज्यौं। एवं विरुद्धसंबन्धापत्त्या पुत्रबुद्ध्यनर्हो मातुलोऽपि न ग्राह्यः। अत एव सगोत्रसपिण्डेषु भ्राता पितृव्यो वा न ग्राह्यः। विप्रादीनां वर्णानां समानवर्ण एव। तत्रापि देशभेदप्रयुक्तगुर्जरत्वान्ध्रत्वादिना समानजातीय एव। सर्वोपि सभ्रातृक एव ग्राह्यः। तत्रापि ज्येष्ठपुत्रो न ग्राह्यो न देयः। शूद्रस्य दौहित्रभागिनेयावपि ग्राह्यौ। अत्र मूलम्—

सहोदर भाई का पुत्र मुख्य होने से ब्राह्मण पहिले उसी को ग्रहण करे। उसके अभाव में सगोत्र और सपिण्ड जो कोई भी हो उसको दत्तक बनावे। अथवा सौतेला भाई का पुत्र ग्राह्य है। इन सबके अभाव में तो असगोत्र सपिण्ड मामा के कुल का फूआ आदि के कुल का लड़का ग्राह्य है। इसके अभाव में तो असपिण्ड समान गोत्र को दत्तक करे। इनके भी अभाव में तो असपिण्ड और भिन्न गोत्र का भी ग्राह्य है। असगोत्र सपिण्डों में बहिन का पुत्र और लड़की का पुत्र दोनों वर्जित हैं। एवं विरुद्ध सम्बन्ध की आपत्ति से पुत्र-बुद्धि के अयोग्य मामा को भी ग्रहण न करे। इसीलिये सगोत्र सपिण्डों में भाई या चाचा नहीं ग्राह्य है। ब्राह्मणादि वर्णों को समान वर्ण ही में दत्तक ग्राह्य है। उसमें भी देशभेद से प्रयुक्त गुर्जरत्व आन्ध्रत्वादि से समानजातीय ही ग्राह्य है। सभी दत्तक भाई वाले ही ग्राह्य हैं। उसमें ज्येष्ठ पुत्र को ग्रहण न करे और न देवे। शूद्र को तो लड़की का लड़का और बहिन का लड़का भी ग्राह्य है। इसमें प्रमाण है—

भ्रातृणामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान्भवेत्।
सर्वे ते तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत्॥

अनेन वचनेन 'नापुत्रस्य लोकोस्ति जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणवान् जायते' इत्यादिशास्त्रबोधितस्याप्रजत्वप्रयुक्तदोषस्य निवृत्तिर्विधिना अस्वीकृतेनापि भ्रातृपुत्रेण पितृव्यस्य भवतीति बोध्यते। अतः पुत्रसदृशत्वाद् ग्राह्येषु मुख्य इति ज्ञाप्यते। मुख्याभावे तत्सदृशः प्रतिनिधिरिति न्यायात्।

बहुत से भाइयों के बीच में एक भाई पुत्रवान् है तो उस पुत्र से सब भाई पुत्र वाले होते हैं, ऐसा मनु ने कहा है।' इस वचन से विना पुत्र वाले को स्वर्गादि लोक नहीं होते और ब्राह्मण उत्पन्न होते ही तीन ऋण से ऋणी होता है इत्यादि शास्त्र के बोधन से निस्संतानत्व प्रयुक्त दोष की निवृत्ति, विधि से स्वीकार नहीं करने पर भाई के पुत्र से चाचा का हो जाता है यह पूर्वोक्त मनुवचन

भयलोभ से नहीं किया गया किन्तु प्रेमपूर्वक किया गया यह अर्थ पर्यवसित हुआ। पति के रहने पर पति की आज्ञा से और न रहने पर स्त्री को स्वतः दान या प्रतिग्रह का अधिकार है। 'ब्राह्मणानां सपिण्डेषु कर्तव्यः पुत्रसंग्रहः। तदभावेऽसपिण्डो वा अन्यत्र तु न कारयेत्॥'

पुत्रग्रहण का प्रकार—'प्रथमं नित्यकर्म विधाय अग्निस्थापनं कृत्वा आधारावाज्यभागौ हुत्वा महाव्याहृति होमं पञ्चवारुणसर्वप्रायश्चित्तप्राजापत्यस्विष्टकृद्धोमं च कृत्वा व्याहृतिहोमं कुर्यात्। होमानन्तरं पूर्णाहुतिं दत्वा पुत्रं गृह्णीयात्।

दत्तकस्य जनकगोत्रं पिण्डदातृत्वं वा तद्धनहारित्वं न तिष्ठति। किन्तु येन गृहीतस्तस्यैव गोत्रं पिण्डदत्वं धनहारित्वं च दत्तकस्य। दत्तकग्रहणमुहूर्तः—'हस्तादिपञ्चकभिषग्वसुपुष्यमेषु सूर्यक्षमाजगुरुभार्गववासरेषु। रिक्ताविनार्जिततिथिष्वलिकुम्भलग्ने सिंहे वृषे भवति दत्तपरिग्रहोऽयम्॥' इति।

से बोधित होता है। इसलिये ग्राह्य पुत्रों में पुत्र के सादृश्य से भाई का पुत्र ही मुख्यतः ग्राह्य है। मुख्य के न होने पर मुख्य के सदृश प्रतिनिधि होता है यह न्याय है।

न चास्मादेव वाक्याद् विधिवत्प्रतिग्रहं विनैव तस्य पुत्रत्वमिति शंक्यम्। तथा सति औरसदत्तकादिद्वादशविधपुत्रवदेतस्य पत्नीतः पूर्वमेव धनहारित्वपिण्डदत्वौचित्येन 'पत्नी दुहितरश्चैव पितरौ भ्रातरस्तथा। तत्सुता गोत्रजा बन्धुः'इति तत्क्रमवाक्ये भ्रात्रनन्तरं भ्रातृसुतनिवेशानुपपत्तेः। तस्मात्पत्नीतः पूर्वं मदीयपिण्डदानधनग्रहणेऽधिकारी कश्चिद्भवत्विति कामनायां विधिवत्स्वीकृत एव तथाधिकारी भवति नान्यथा।

इसी वाक्य से विधिपूर्वक प्रतिग्रह के विना ही उसका पुत्रत्व है इसकी शंका नहीं करनी चाहिये। ऐसा होने पर औरस दत्तक आदि बारह प्रकार के पुत्रों की तरह इस भ्रातृ पुत्र की स्त्री से पहिले ही धन-हरण और पिण्डदान के औचित्य से 'पत्नी दुहितरश्चैव' इत्यादि मूलोक्त इस क्रम वाक्य में भाई के बाद भाई के पुत्र के निवेश होने की अनुपपत्ति होगी। इसलिये पत्नी से पहिले मेरे पिण्डदान और मेरे धन का ग्रहण करने वाला कोई अधिकारी हो इसी कामना से विधिवत् स्वीकृत ही वैसा अधिकारी होता है, अन्य प्रकार से नहीं।

तादृशकामनाया अभावे तु पितृऋणापाकरणादिपारलौकिकमात्रार्थं दत्तपुत्रो न ग्राह्यः। भ्रातृपुत्रेणैव तत्सिद्धेरित्येवं वचनतात्पर्यम्।

वैसी कामना के न होने पर तो पिता का ऋण आदि देकर परलोकमात्र ही के लिये दत्तक पुत्र नहीं लिया जाता, क्योंकि भतीजे से इन सब की सिद्धि हो जाती है, यही उस वचन का तात्पर्य है।

क्वचिद्देशे वैदिकविधिं विनापि दातृग्रहीतृसंमतिराजपुरुषाद्यनुमत्यादिलौकिकव्यापारमात्रेणोपनयनादिसंस्कारकरणमात्रेण च सगोत्रसपिण्डे पुत्रत्वसिद्धिव्यवहारो दृश्यते। तत्र मूलं नोपलभ्यते।

किसी देश में वैदिक विधि के विना भी देने लेने वाले की सम्मति राजपुरुषों की अनुमति आदि केवल लौकिक-व्यापार तथा उपनयन आदि संस्कार करने मात्र से सगोत्र और सपिण्ड में पुत्रत्व-सिद्धि का व्यवहार देखा जाता है। किन्तु इसमें प्रमाण नहीं पाया जाता।

अथ सपत्न्याः सपुत्रत्वे सपत्न्या अग्राह्यत्वम्

सर्वासामेकपत्नीनामेका चेत्पुत्रिणी भवेत्।
सर्वास्तास्तेन पुत्रेण पुत्रिण्यो मनुरब्रवीत्॥

इति वचनं तु सापत्नपुत्रस्यागृहीतस्यापि पुत्रत्वपिण्डदानाद्यधिकारित्वविधायकम्। तेनैकसपत्न्याः सपुत्रत्वेऽन्यसपत्न्या पुत्रो न ग्राह्यः।

दौहित्रो भागिनेयश्च शूद्राणां विहितः सुतः।
ब्राह्मणादित्रये नास्ति भागिनेयसुतः क्वचित्॥

न त्वेवैकं पुत्रं दद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वेति न ज्येष्ठं पुत्रं दद्यादिति च। अत्रौरसानेकपुत्रेण पुत्रदानं कार्यमिति विधीयते। तेन पूर्वं दत्तको गृहीतस्ततः औरसो जातस्तादृशानेकपुत्रेण दत्तक एकल औरसो वा न देयः।

'सर्वासामेकपत्नीनां' यह वचन तो अगृहीत सौतेले पुत्र को भी पुत्रत्व पिण्डदान आदि का अधिकारित्व का विधायक है। इससे एक सौत को लड़का होने पर दूसरी सौत को पुत्र का ग्रहण नहीं करना चाहिये। शूद्रों को लड़की के लड़के और बहिन के लड़के को दत्तक पुत्र लेना विहित है। ब्राह्मणादि तीनों वर्णों में बहिन का लड़का कहीं पुत्र नहीं माना जाता। केवल एक पुत्र हो तो न दे न ले और जेठे पुत्र को नहीं दे। इसमें जिसके अनेक औरस पुत्र हों वही पुत्रदान करे यही विधान है। इससे पहले दत्तक को ग्रहण कर लिया तदनन्तर औरस उत्पन्न हो गया वैसे अनेक पुत्र वाला दत्तक या अकेला औरस पुत्र न दे।

सधवया स्त्रिया पत्यनुज्ञया पुत्रो ग्रहीतव्यो दातव्यश्च। भर्त्रनुज्ञाभावे तु न ग्राह्यो न देयः। एवं विधवयापि स्त्रिया त्वया पुत्रः स्वीकार्यं इति उक्त्वा भर्तरि मृते ग्राह्यः। स्पष्टमीदृशानुज्ञाभावे भर्तृजीवनदशायां तन्मरणोत्तरमाप्त-मुखाद्वा पुत्रस्वीकारविषयकभर्त्रभिप्रायं ज्ञातवत्यापि ग्राह्य इति सर्वसंमतम्।

सधवा स्त्री को पति की आज्ञा से पुत्रग्रहण और पुत्रदान करना चाहिये। पति की अनुज्ञा के विना तो न लेना न देना चाहिये। इसी तरह विधवा स्त्री को भी 'तुम दत्तक पुत्र स्वीकार कर लेना' यह कहकर पति के मरने पर दत्तक लेने का अधिकार है। ऐसी स्पष्ट आज्ञा यदि पति से न मिली हो तो पति के जीवनावस्था में या उसके मरने के बाद या यथार्थवक्ता के द्वारा पुत्र स्वीकार विषयक पति के अभिप्राय को जानने वाली भी विधवा पुत्र-ग्रहण कर सकती है, यह सर्व-सम्मत है।

एतदुभयविधभर्त्रनुज्ञाभावेपि तत्तच्छास्त्रान्नित्यकाम्यव्रतादिधर्माचरण इव पुत्रप्रतिग्रहेपि नापुत्रस्य लोकोस्तीत्यादिसामान्यशास्त्रादेव विधवाया अधिकारः। 'न स्त्री पुत्रं दद्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वान्यत्र भर्त्रनुज्ञानात्'इति वसिष्ठवाक्यं तु भर्त्रनुज्ञा-रहितां प्रति पुत्रप्रतिग्रहाभ्यनुज्ञापरं न तु पुत्रप्रतिग्रहनिषेधपरम्, शास्त्रप्राप्तनिषे-धायोगात्। अतस्तादृशस्त्रियाः पुत्रप्रतिग्रहप्रतिबन्धेन वृत्तिलोपपिण्डविच्छेदादिकुर्व-न्नरकभाग्भवति। 'यो ब्राह्मणस्य वृत्तौ तु प्रतिकूलं समाचरेत्। विड्भुजां तु कृमीणां स्यात्' इति शास्त्रादिति कौस्तुभे विस्तरः।

इन दो प्रकार से पति की आज्ञा न होने पर भी उन-उन शास्त्रों से नित्य, काम्यव्रत आदि धर्माचरण की तरह पुत्रग्रहण में भी 'नापुत्रस्य लोकोऽस्ति' इत्यादि सामान्यशास्त्र ही से विधवा को पुत्रग्रहण का अधिकार है। 'न स्त्री पुत्रं दद्यात् प्रतिगृह्णीयाद्वा अन्यत्र भर्त्रनुज्ञानात्' यह वशिष्ठ वाक्य तो भर्ता की आज्ञा से रहित के प्रति, पुत्रग्रहण का आज्ञा-परक है, न कि पुत्र प्रतिग्रह का निषेधपरक, क्योंकि शास्त्र प्राप्त निषेध वचन का अयोग है। इसलिये ऐसी स्त्री का त्र प्रतिग्रह के प्रतिबन्ध होने से जीविका का नाश पिण्ड का विच्छेद करता हुआ नरकगामी होता है शास्त्र का वचन है कि जो आदमी ब्राह्मण की वृत्ति में बाधक होता है वह विष्ठाखाने वाले कृमियों में उत्पन्न होता है। यह कौस्तुभ में विस्तारपूर्वक लिखा है।

स्त्रीभिः पुत्रस्वीकारे व्रतादिवद्विप्रद्वारा होमादिकं कार्यम्, एवं शूद्रेणापि। विप्रः शूद्रदक्षिणामादाय वैदिकमन्त्रैस्तदीयहोमादि करोति तत्र शूद्रः पुण्यफलभा-ग्भवति किंतु विप्रस्यैव प्रत्यवायः। पुत्रं प्रतिगृह्य ग्रहीत्रा जातकर्माद्याश्चूडाद्या वा संस्काराः कार्या इति मुख्यः पक्षः। असंभवे सगोत्रसपिण्डेषु कृतोपनयनोपि

विवाहितोपि वा दत्तको भवति। असंजातपुत्र एव विवाहितो ग्राह्य इति मे भाति। सपिण्डसगोत्रेषु कृतोपनयन एवेत्यपि भाति। भिन्नगोत्रस्तु अकृतोपनयन एव ग्राह्यः। केचित्तु कृतोपनयनोपि भिन्नगोत्रो ग्राह्य इत्याहुः। इति ग्राह्याग्राह्यविवेकः।

स्त्रियों के द्वारा पुत्र स्वीकार करने में व्रत आदि की तरह ब्राह्मण द्वारा होमादि कराना चाहिये, इसी प्रकार शूद्र को भी। ब्राह्मण शूद्र से दक्षिणा लेकर वैदिक-मन्त्रों से उसका होम आदि करता है तो इसमें शूद्र पुण्य फल का भागी होता है, किन्तु ब्राह्मण ही प्रायश्चित्ती होता है। पुत्र का प्रतिग्रह लेकर ग्रहण करने वाला जातकर्म आदि या चूड़ा आदि संस्कारों को करे, यह मुख्य पक्ष है। ऐसा सम्भव न होने पर सगोत्र सपिण्ड में से उपनयन किया हुआ भी या विवाहित भी दत्तक होता है। विवाहित दत्तक विना पुत्र हुआ ही ग्रहण करना चाहिये, ऐसा मुझे अच्छा लगता है। असपिण्ड सगोत्रों में उपनयन किया हुआ ही ग्राह्य होता है, यह भी युक्त है। भिन्न गोत्र तो जिसका उपनयन नहीं हुआ है, ऐसे ही को ग्रहण करे। कोई तो उपनयन किया हुआ भी भिन्न गोत्र की ग्राह्यता है, ऐसा कहते हैं। ग्राह्या ग्राह्यविवेक समाप्त।

अथ ऋग्वेदिनां पुत्रप्रतिग्रहप्रयोगः

पूर्वेद्युः कृतोपवासः पवित्रपाणिः प्राणानायम्य देशकालौ संकीर्त्य 'ममाप्रजत्वप्रयुक्तपैतृकऋणापाकरणपुन्नामनरकत्राणद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं शौनकोक्तविधिना पुत्रप्रतिग्रहं करिष्ये, तदङ्गत्वेन स्वस्तिवाचनमाचार्यवरणं विष्णुपूजनमन्नदानं च करिष्ये।' आचार्यमधुपर्कान्ते विष्णुं संपूज्य ब्राह्मणादिभोजनं संकल्पयेत्।

पहिले दिन उपवास करके पवित्र हाथ से प्राणायाम करके देशकाल कह कर 'मेरे अप्रजत्व प्रयुक्त पितृ संबन्धी ऋण को हटाने के लिये पुम्नामक नरक से रक्षा द्वारा भगवान् की प्रसन्नता के लिये शौनक की कही विधि से पुत्र का प्रतिग्रह करूँगा और पुत्र प्रतिग्रह का अंग होने से स्वस्तिवाचन, आचार्यवरण, विष्णुपूजन और अन्नदान भी करूँगा' ऐसा संकल्प कर आचार्य के मधुपर्क के अन्त में विष्णु की सम्यक् पूजा करके ब्राह्मण आदि के भोजन का संकल्प करे।

आचार्यः 'यजमानानुज्ञया पुत्रप्रतिग्रहाङ्गत्वेन विहितं होमं करिष्ये' इति संकल्प्य अग्निं प्रतिष्ठाप्य चक्षुषी आज्येनेत्यन्ते सकृदग्निं सूर्यासावित्रीं षड्वारं चरुणा अग्निं वायुं सूर्यं प्रजापतिं चाज्येन शेषेण स्विष्टकृतमित्यादि अन्वाधाय अष्टाविंशतिमुष्टीस्तूष्णीं निरुप्य तथैव प्रोक्ष्याज्योत्पवनान्तं कुर्यात्। दातारं गत्वा एतस्मै पुत्रं देहीति याचयेत्।

आचार्य 'यजमान की आज्ञा से पुत्र प्रतिग्रह का अंग होने से विहित होम करूँगा' ऐसा संकल्प कर अग्नि की प्रतिष्ठा कर 'चक्षुषी आज्येन' इसके अन्त में एक बार अग्नि को सूर्य और सावित्री को छ बार चरु से, अग्नि, वायु, सूर्य और प्रजापति को घी से तथा बाकी बचे हुए घी से स्विष्टकृत् इत्यादि करके अट्ठाइस मुट्ठी रखकर और उसका प्रोक्षण और घी का उत्पवन कर्म करे। आचार्य—पुत्र-दाता के पास जाकर 'इनके लिये पुत्र दीजिये' ऐसी याचना करे।

दाता देशकालौ संकीर्त्य 'श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं पुत्रदानं करिष्ये' इति संकल्प्य गणपतिपूजनान्ते प्रतिग्रहीतारं यथाशक्ति संपूज्य ये यज्ञेनेति पञ्चानां नाभाने-

दिष्ठो मानवो विश्वेदेवास्त्रिष्टुप् पञ्चम्यनुष्टुप् पुत्रदाने विनियोगः। ये यज्ञेनेति ऋक्पञ्चकान्ते 'इमं पुत्रं तव पैतृकऋणापाकरणपुन्नामनरकत्राणसिद्धयर्थम् आत्मनः श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं तुभ्यमहं संप्रददे नमम प्रतिगृह्णातु पुत्रं भवान्' इति प्रतिग्रहीतृहस्ते जलं क्षिपेत्।

दाता, देश काल को कहकर 'भगवान् की प्रसन्नता के लिये पुत्रदान करूँगा' ऐसा संकल्प करके गणपति पूजन के बाद प्रतिग्रह करने वाले की यथाशक्ति पूजा करे 'ये यज्ञेन' इन पांच मन्त्रों का मूलोक्त विनियोग है। 'ये यज्ञेन' इन पांच ऋचा के अन्त में 'इस पुत्र को आपके पैतृक ऋण हटाने के लिये पुम् नामक नरक से रक्षा की सिद्धि और भगवान् की प्रीति के लिये आप को देता हूँ मेरा नहीं है आप पुत्र को ग्रहण करें, ऐसा कहकर प्रतिग्रहीता के हाथ में जल छोड़ दे।

ग्रहीता देवस्यत्वेपि हस्तद्वयेन प्रतिगृह्य स्वाङ्के उपवेश्य अङ्गादङ्गात्संभवसीति मन्त्रेण मूर्धनि जिघ्रेत्। वस्त्रकुण्डलाद्यलंकृतं गीतवाद्यैः स्वस्तिमन्त्रैश्च स्वगृहमानीय पादौ प्रक्षाल्याचम्याचार्यदक्षिणतः स्वयं स्वदक्षिणे भार्योत्सङ्गे पुत्र इत्युपविशेत्। आचार्यो बर्हिरासादनाद्याज्यभागान्ते चरुमवदाय यस्त्वाहृदेति द्वयोरात्रेयो वसुश्रुतोग्निस्त्रिष्टुप् पुत्रप्रतिग्रहाङ्गहोमे विनियोगः। यस्त्वाहृदेति ऋग्द्वयेनैकमेवावदानं जुहुयात्।

ग्रहण करने वाला 'देवस्यत्वा' इस मन्त्र से दोनों हाथों से ग्रहण करके अपनी गोद में बैठाकर 'अंगादंगात्सम्भवसि' इत्यादि मन्त्र से बालक का शिर सूंघे। वस्त्र कुण्डल आदि से अलंकृत और गाने बजाने के साथ स्वस्ति मन्त्रों के पाठ से अपने घर लाकर पैर धोकर आचमन करके स्वयं आचार्य के दाहिनी ओर और अपने दाहिनी ओर स्त्री के गोद में पुत्र रखकर बैठे। आचार्य कुशा आसादन आदि आज्यभाग के अन्त में चरु को लेकर 'यस्त्वाहृदा' इन दो मन्त्रों का 'आत्रेय वसुश्रुतोऽग्नि' विनियोग है। 'यस्त्वाहृदा' इन दो ऋचाओं से एक ही अवदान का होम करे।

यजमानः अग्नय इदं नमम तुभ्यमग्ने पर्यवहन्सूर्यासावित्री सूर्यासावित्र्यनुष्टुप् सूर्यासावित्र्या इदं०। सोमो ददिति पञ्चानां सूर्यासावित्री सूर्यासावित्री अनुष्टुभौ जगती त्रिष्टुबनुष्टुप्। पंचस्वपि सूर्यासावित्र्या इदं०। एवं सप्तचर्वाहुतीर्हुत्वाज्यं व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिर्हुत्वा स्विष्टकृदादिसमाप्याचार्याय धेनुं दत्त्वा विप्रान्भोजयेत्।

यजमान कहे 'अग्नये इदं न मम' 'तुभ्यमग्ने पर्यवहन् सूर्यासावित्री' इन पांचों ऋचाओं में भी सूर्यासावित्र्या इदं न मम। इसी प्रकार सात चरु आहुति का होम करके व्यस्त समस्त व्याहृतियों से होम करके स्विष्टकृत् आदि समाप्त कर आचार्य को ब्याई हुई गाय देकर ब्राह्मणों को भोजन करावे।

अथ यजुर्वेदिनां बौधायनोक्तरीत्या प्रयोगः

तत्र राज्ञः शिष्टानां बन्धूनां चानुमतिं लब्ध्वा संकल्पादि आचार्यपूजनान्तं प्राग्वत्कुर्यात्। ब्राह्मणभोजनसंकल्पान्ते आचार्यो देवयजनोल्लेखनादि आप्रणीताभ्यः कुर्यात्। ग्रहीता दातुः समक्षं गत्वा पुत्रं मे देहीति स्वयमेव भिक्षेत्।

दाता ददामीत्याह । ततो दातुः संकल्पादिपुत्रदानान्तं पूर्ववत् । ग्रहीता धर्मायत्वा गृह्णामि संतत्यै त्वा गृह्णामीति परिगृह्यचैनं पुत्रं वस्त्रकुण्डलाङ्गुलीयकैरलंकुर्यात् ।

राजा शिष्टों और बन्धुओं की अनुमति पाकर संकल्प से लेकर आचार्य पूजन तक पहिले की तरह करे । ब्राह्मणभोजन संकल्प के अन्त में आचार्य देवयजनोल्लेखनादि प्रणीतापर्यन्त कृत्य करे । पुत्र-प्रतिग्रह लेने वाला, पुत्र-दाता के सामने जाकर 'मुझे पुत्र दीजिये' स्वयं ऐसी याचना करे । दाता—'देता हूँ' ऐसा कहे । तदनन्तर दाता का संकल्प आदि पुत्र दानान्त कृत्य पहिले की तरह करे । पुत्र ग्रहण करने वाला कहे 'धर्म के लिये तुम्हें ग्रहण करता हूँ, सन्तति के लिये तुमको ग्रहण करता हूँ' ऐसा कहकर ग्रहण करे । पुत्र को वस्त्र कुण्डल और अंगूठी से अलंकृत करे ।

आचार्यः कुशमयं बर्हिः पालाशमयमिध्मं च संपाद्य परिधानप्रभृति अग्निमुखं कृत्वा चरुश्रपणासादनान्ते पूर्वाङ्गहोमं कृत्वा यस्त्वाहृदाकीरिणेति पुरोनुवाक्यामुक्त्वा यस्मै त्वं सुकृते इति याज्यया हुत्वा व्यस्तसमस्तव्याहृतीर्हुत्वा स्विष्टकृदादि कुर्यात् । आचार्याय दक्षिणावस्त्रकुण्डलाङ्गुलीयकं दद्यादिति ।

आचार्य कुशमय बर्हि और पालाशमय समिधा ठीक कर परिधान प्रभृति अग्निमुख करके चरु का श्रपण और आसादन के अन्त में पूर्वांग होम करके 'यस्त्वाहृदा कीरिण' इस पूरे अनुवाक्या को कहकर 'यस्मै त्वं सुकृते' इस याज्या से होम करके व्यस्त समस्त व्याहृति का होम करके स्विष्टकृत् आदि करे । आचार्य को दक्षिणा, वस्त्र, कुण्डल और अंगूठी देवे ।

अथ दत्तकस्य गोत्रसापिण्ड्यादिनिर्णयः

परगोत्रोत्पन्नदत्तकस्योपनयनमात्रे पालकगोत्रेण कृते उपनयनोत्तरं प्रतिग्रहे वा दत्तकेनाभिवादनश्राद्धादिकर्मसु गोत्रद्वयोच्चारः कार्यः । चूडादिसंस्कारे पालकेन कृते पालकैकगोत्र एव ।

दूसरे गोत्र में उत्पन्न दत्तक का केवल उपनयन में पालक-गोत्र से करने पर अथवा उपनयन के बाद प्रतिग्रह में दत्तक को अभिवादन श्राद्ध आदि कर्मों में दोनों गोत्र का उच्चारण करना चाहिये । पालक ने चूड़ा आदि संस्कार किया हो तो पालक का एक ही गोत्र का उच्चारण करना चाहिये ।

विवाहे तु सर्वदत्तकेन जनकपालकयोरुभयोरपि पित्रोर्गोत्रप्रवरसंबन्धिनी कन्या वर्जनीया । नात्र साप्तपुरुषं पाञ्चपुरुषमित्येवं पुरुषनियम उपलभ्यते ।

विवाह में तो सब दत्तक को जनक और पालक दोनों के गोत्र और प्रवर संबन्धिनी कन्या वर्ज्य है । इसमें सात पीढ़ी पांच पीढी इस प्रकार का पुरुष नियम नहीं मिलता है ।

सापिण्ड्यं तु जनकगोत्रेणोपनयने जनकमातृपित्रोः कुले साप्तपूरुषं पाञ्चपूरुषं, ग्रहीतृमातृपितृकुले त्रिपूरुषम् । ग्रहीतृगोत्रेणोपनयनमात्रे कृते उभयत्र पाञ्चपूरुषं, पितृकुले मातृकुले तु त्रिपूरुषम् । जातकर्माद्युपनयनान्तसंकारे ग्रहीत्रा कृते ग्रहीतृकुले साप्तपूरुषं, मातृतः पाञ्चपूरुषम् । अतो न्यूनं जनककुले कल्प्यम् ।

केचित्तु दत्तकप्रवेशे कुलद्वयेपि सर्वथा न्यूनमेव सापिण्डचमित्याहुः। एवं दत्तकसन्ततेरपि सापिण्डचं ज्ञेयम्।

सापिण्डय तो जनकगोत्र से उपनयन करने पर उत्पन्न करने वाले माता पिता के कुल में सात पुरुष, पांच पुरुष का और ग्रहण करने वाले माता पिता के कुल में तीन पुरुष का होता है। ग्रहीता के गोत्र से केवल उपनयन मात्र करने पर दोनों तरफ पितृकुल में पांच पुरुष मातृकुल में तीन पुरुष का होता है। जातकर्म से लेकर उपनयन पर्यन्त संस्कार ग्रहीता से किये जाने पर ग्रहीता के कुल में सात पुरुष और माता सेपांच पुरुष का होता है। इससे कम जनक कुल में सापिण्ड्य की कल्पना करनी चाहिये। कुछ लोग तो दत्तक के आने पर दोनों कुल में भी सब प्रकार से कम ही सापिण्ड्य होता है, ऐसा कहते हैं। इसी प्रकार दत्तक की संतति का भी सापिण्ड्य जानना चाहिये।

अथ दत्तकसूतकनिर्णयः

दत्तकस्य मरणे पूर्वापरपित्रोस्त्रिरात्रं सपिण्डानामेकाहमाशौचम्। उपनीतदत्तकमरणादौ पालकसपिण्डानां दशाहादीति नीलकण्ठीये दत्तकनिर्णये। एवं दत्तकेनापि पूर्वापरपित्रोर्मृतौ त्रिरात्रं पूर्वापरसपिण्डानां मरणे एकाहम्। पित्रोरौर्ध्वदेहिककरणे तु कर्माङ्गं दशाहमेव। दत्तकस्य पुत्रपौत्रादेर्जन्ममरणयोः सपिण्डानामेकाहः। सगोत्रसपिण्डे दत्तीकृते तु सर्वेषां दशरात्रमव।

दत्तक के मरने पर पहिले और पीछे के माता पिता को त्रिरात्राशौच और उनके सपिण्डों को एक दिन का आशौच होता है। उपनयन किये हुए दत्तक के मरण आदि में पालक के सपिण्डों को दस दिन का आशौच नीलकण्ठ के बनाये 'दत्तकनिर्णय' में कहा है। इसी प्रकार पहिले पीछे के माता पिता के मरने पर दत्तक को भी त्रिराशौच होता है। पहिले पीछे के पिता के सपिण्डों को मरने में एक दिन का आशौच होता है। पिता माता के और्ध्वदेहिक कर्म करने पर तो कर्मांग दस दिन का ही आशौच होता है। दत्तक के पुत्र पौत्र आदि के जन्म और मरण में सपिण्डों को एक दिन का ही आशौच होता है। सगोत्र सपिण्ड में से दत्तक करने पर तो सबको दस ही दिन का आशौच होता है।

अथ दत्तकधनभागकथनम्

पत्नीदुहित्रादिसत्त्वेपि दत्तक एव पितृधनभागी भवति। दत्तकग्रहणोत्तरमौरसे जाते दत्तकश्चतुर्थांशभागी न समभागी। केचित्तु प्रतिग्रहीत्रा जाताद्युपनयनान्तसंस्कारे विधाने च कृते औरससमानांशभागित्वम्। संस्कारमात्रकरणे विधानाभावे विवाहमात्रलाभो नान्यधनलाभः। कतिपयसंस्कारकरणे चतुर्थांशलाभ इत्याहुः।

पत्नी लड़की आदि के रहने पर भी दत्तक ही पितृ धन का अधिकारी होता है। दत्तक लेने के बाद औरस पुत्र होने पर दत्तक चौथाई भाग का अधिकारी होता है, बराबर हिस्सा नहीं पाता। कोई तो दत्तक लेने वाले के द्वारा जातकर्म से लेकर उपनयन पर्यन्त संस्कार करने और विधान के करने पर भी औरस के समान हिस्से का अधिकारी दत्तक होता है। केवल संस्कार करने पर और विधान नहीं करने पर केवल विवाह ही का लाभ होता है अन्य धन का लाभ नहीं होता। दो एक संस्कार करने पर चतुर्थांश धन पाता है, ऐसा कहते हैं।

अथ दत्तकौरसयोः सत्त्वे पिण्डदाननिर्णयः

दत्तकसत्त्वेप्यौरसस्यैव पित्रोः पिण्डदानेधिकारः। जनकस्य पिण्डदाभावे दत्तक एव जनकपालकयोरुभयोरपि श्राद्धं कुर्याद् धनं चोभयोर्गृह्णीयादिति नीलकण्ठीये।

दत्तक के रहने पर भी माता पिता के पिण्डदान में औरस पुत्र का ही अधिकार होता है। जनक को कोई पिण्ड देने वाला न हो तो दत्तक ही जनक और पालक दोनों का श्राद्ध करे और दोनों का धन ग्रहण करे, ऐसा नीलकण्ठ के दत्तकनिर्णय में है।

अथ दत्तककन्याविचारः

एवं दत्तकन्याया अपि स्वीकार उक्तविधिना कार्यः। तत्र परगोत्रोत्पन्नाया ग्रहणे विवाहे गोत्रद्वयवर्जनं प्राग्वत्। पुत्रपत्न्योरभावे दत्तकन्यैव पितृधनभागिनी। इति दत्तोपयोगिसर्वनिर्णयः।

जिस प्रकार पुत्र के न रहने पर दत्तकपुत्र का ग्रहण किया जाता है इसी प्रकार दत्तक कन्या को भी कही हुई विधि से स्वीकार कर लेना चाहिये। उसमें दूसरे गोत्र की उत्पन्न कन्या के ग्रहण करने पर विवाह में दोनों के गोत्र का वर्जन पहिले की तरह से करे। ग्रहीता के पुत्र और स्त्री के न रहने पर दत्त-कन्या पिता के धन की अधिकारिणी होती है। दत्तक के उपयोगी सब निर्णय समाप्त।

अथ कन्यानामेवोत्पत्तौ पुत्रार्थं पुत्रकामेष्टिः

ऋतुकालात्षष्ठे दिने सभार्यः कृताभ्यङ्गः प्राणानायम्य देशकालौ संकीर्त्य 'पुत्रकामः पुत्रकामेष्टिं करिष्ये' इति संकल्प्य स्वस्तिवाचनादिनान्दीश्राद्धान्तेऽग्निं प्रतिष्ठाप्य चक्षुषी आज्येनात्र प्रधानम् अग्निं पञ्चवारं वरुणं पञ्चवारं विष्णुं पृथ्वीं विष्णुं सोमं सूर्यासावित्रीं पायसेन शेषेण स्विष्टकृतमित्यादि। निर्वापकाले तूष्णीं षष्टिमुष्टीन्निरुप्य तथैव प्रोक्ष्य श्वेतवत्सश्वेतगोः क्षीरेण चरुं पक्त्वाज्यभागान्ते आते गर्भं इति अग्निरैतु इति सूक्तद्वयस्य हिरण्यगर्भऋषिः क्रमेणाग्नीवरुणौ देवते अनुष्टुप्जगत्यौ छन्दसी पायसचरुहोमे विनि०।

ऋतुकाल से छठे दिन पत्नी के साथ अभ्यंग स्नान करके प्राणायाम कर देशकाल को कहकर 'पुत्र की इच्छा से पुत्रकामेष्टि करूँगा' ऐसा संकल्प कर स्वस्तिवाचन से लेकर नान्दीश्राद्ध के अन्त में अग्निस्थापन कर 'चक्षुषी आज्येन' से यहां प्रधान अग्नि को पांच बार, वरुण को पांच बार, विष्णु पृथ्वी, विष्णु सोम, सूर्य और सावित्री को पायस से और शेष बचे हुए से स्विष्टकृत् इत्यादि करे। निर्वाप के समय में चुपचाप साठ मुट्ठी रखकर उसी तरह से साफ करके सफेद बछेवाली सफेद गाय के दूध से चरु पकाकर आज्यभाग के अन्त में 'आते गर्भः' 'अग्निरैतु' इन दोनों सूक्तों का 'हिरण्यगर्भ ऋषि' इत्यादि मूलोक्त विनियोग करके,

ॐ आते गर्भो योनिमैतु पुमान्बाण इवेषुधिम्।
आवीरो जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः स्वाहा॥ अग्नय इदं०।
करोमि ते प्राजापत्यमागर्भो योनिमैतु ते।
अनूनः पूर्णो जायतामश्लोणोऽपिशाचधीतः स्वाहा॥ अग्नय०।

पुमांस्ते पुत्रो नारितं पुमाननुजायताम् ।
तानि भद्राणि बीजान्यृषभा जनयन्तु नौ स्वाहा ॥ अग्नय० ।
यानि भद्राणि बीजान्यृषभा जनयन्ति नः ।
तैस्त्वं पुत्रान्विन्दस्व सा प्रसूर्धेनुका भव स्वाहा ॥ अग्नय० ।
कामः समृद्धयतां महद्यमपराजितमेव मे ।
यं कामं कामये देव तं मे वायो समर्धय स्वाहा ॥ अग्नय० ।
अग्निरैतु प्रथमो देवतानां सोस्यै प्रजां मुञ्चतु मृत्युपाशात् ।
तदयं राजा वरुणोनुमन्यतां यथेयं स्त्रीपौत्रमघं न रोदात्स्वाहा ॥
वरुणायेदं० ।
इमामग्निस्त्रायतां गार्हपत्यः प्रजामस्यै नयतु दीर्घमायुः ।
अशून्योपस्था जीवतामस्तु माता पौत्रमानन्दमभिप्रबुध्यतामियं स्वाहा ॥
वरु० ।
मा ते गृहे निशि घोष उत्थादन्यत्र त्वद्रुदत्यः संविशन्तु ।
मा त्वं विकेश्युर आवधिष्ठा जीवपत्नी पतिलोके
विराजपश्यन्ती प्रजां सुमनस्यमाना स्वाहा ॥ वरु० ।
अप्रजस्तां पौत्रमृत्युं पाप्मानमुतवाघम् ।
शीर्ष्णः स्रजमिवोन्मुच्यद्विषद्भ्यः प्रतिमुञ्चामि पाशं स्वाहा ॥ वरुणा० ।
देवकृतं ब्राह्मणं कल्पमानं तेन हन्मि योनिषदः पिशाचान् ।
क्रव्यादो मृत्यूनधरान्पातयामि दीर्घमायुस्तव जीवन्तु पुत्राः स्वाहा॥ वरु० ।
नेज मेषेति तिसृणां विष्णुस्त्वष्टागर्भकर्ताविष्णुपृथ्वीविष्णवोनुष्टुप् । नेज मेष० विष्णव० यथेयं पृथिवी० पृथिव्या इ० विष्णो श्रेष्ठन० विष्णव० सोमो धेनुं राहूगणो गौतमः सोमस्त्रिष्टुप् । सोमो धेनुं० सोमायेदं० तां पूषन् सूर्यासावित्री सूर्यासावित्री त्रिष्टुप् । पायसचरुहोमे वि० । तां पूषञ्छिव० सूर्यासावित्र्या इदं०

इति पञ्चदशाहुतीर्हुत्वा स्विष्टकृद्धोमं कृत्वा दंपती अपश्यंत्वेति द्वयोः प्रजावान्प्राजापत्यः प्रजापतिस्त्रिष्टुप् हुतशेषचरुप्राशने विनियोगः । अपश्यंत्वेति द्वाभ्यां प्राश्य पिशंगभृष्टिमित्यस्य दैवोदासिः पारुच्छेप इन्द्रो गायत्री नाभ्यालंभने वि० । पिशंगभृष्टि० इति दंपती नाभ्यालंभनं कुर्याताम् । यजमानः प्रायश्चित्तादिहोमशेषं समाप्य विप्रेभ्यो गां सुवर्णादिदक्षिणां च दत्त्वा रात्रौ दंपती दर्भास्तरणे शयीयाताम् । इति पुत्रकामेष्टिप्रयोगः ।

ॐ आते गर्भो० १, करोमि ते० २, पुमांस्ते पुत्रो ३, यानि भद्राणि० ४, कामः समृद्धयतां० ५, अग्निरैतु० ६, इमामग्निस्त्रायतां० ७, मा ते गृहे० ८, अप्रजस्तां० ९, देवकृतं

ब्राह्मणं० १०, नेजमेष० ११, यथेयं पृथिवी० १२, विष्णो श्रेष्ठेन० १३, सोमं धेनुं० १४, तां पूषञ्छिव० १५,

इन मूलोक्तमन्त्रों से १५ आहुति होम करके और स्विष्टकृत् होम करके 'अपश्यन्त्वा' इत्यादि दोनों मंत्रों के विनियोग के पश्चात् 'अपश्यन्त्वा' इन दो मन्त्रों के हवन से बचे हुए चरु का प्राशन और 'पिशंगभृष्टि' इत्यादि विनियोग करके 'पिशंगभृष्टि' इस मन्त्र से पति और पत्नी अपने नाभि का स्पर्श करे। यजमान प्रायश्चित्त आदि होम का अवशिष्ट कर्म समाप्त कर ब्राह्मणों को गाय सुवर्ण आदि दक्षिणा देकर रात में पति पत्नी कुश बिछाकर जमीन पर सोवें। पुत्रकामेष्टि प्रयोग समाप्त।

अथ पुंसवनम्

तत्र [1]पुंसवनं व्यक्ते गर्भे द्वितीये चतुर्थे षष्ठेऽष्टमे वा मासे सीमन्तेन सह वा कार्यम्। शुक्लपञ्चमीमारभ्य कृष्णपञ्चमीपर्यन्तं चतुर्थीनवमीचतुर्दशीपञ्चदशीवर्जिते तिथौ सूर्यभौमगुरुवारेषु प्रशस्तम्। क्वचिच्चन्द्रबुधशुक्रवारा उक्ताः। नक्षत्राणि तु पुन्नामकानि प्रशस्तानि। तानि च पुष्यश्रवणहस्तपुनर्वसुमृगाभिजिन्मूलानुराधाऽश्विनीत्येतानि। अत्र पुष्यो मुख्यः। तदभावे श्रवणस्तदभावे हस्तादीनि।

उसमें पुंसवनसंस्कार गर्भ के प्रकट होने पर दूसरे, चौथे, छठे और आठवें महीने में करे। अथवा सीमन्तसंस्कार के साथ ही करे। शुक्ल पञ्चमी से लेकर कृष्ण पञ्चमी तक चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी और पूर्णिमा को छोड़कर सूर्य भौम और गुरुवार को उत्तम होता है। कहीं पर चन्द्र, बुध और शुक्रवार भी कहा है। नक्षत्र तो पुन्नामक प्रशस्त होते हैं। पुंनामक नक्षत्र—पुष्य, श्रवण, हस्त, पुनर्वसु, मृगशिरा, अभिजित्, मूल, अनुराधा और अश्विनी, ये हैं। इनमें पुष्य मुख्य है। उसके न मिलने पर श्रवण, उसके अभाव में हस्तादि नक्षत्र हैं।

अयमेव [2]अनवलोभनस्यापि कालः, पुंसवनेन सह करणीयत्वविधानात्। पुंसवनानवलोभने प्रतिगर्भं कार्ये, गर्भसंस्कारत्वात्। गर्भाधानसीमन्तोन्नयने तु स्त्रीसंस्कारत्वात्प्रतिगर्भं नावर्तेते, किन्तु प्रथमगर्भे एव कार्ये। प्रथमगर्भे लोपे तु प्रतिगर्भं तयोर्लोपप्रायश्चित्तमावश्यकम्। न च प्रथमापत्ये तयोः प्रायश्चित्तेन द्वितीयादिगर्भाणां संस्कारसिद्धिर्भवति।

---

१. गर्भाधान से द्वितीयादि मास में जिस दिन पुंसंज्ञक नक्षत्र हो उस दिन स्त्री के दक्षिण नासिका पुट में सवन अर्थात् न्यग्रोधादि-औषधियों के रस का सविधि आसिंचन करना पुंसवन संस्कार कहलाता है। जातूकर्ण्यः—'द्वितीये वा तृतीये वा मासि पुंसवनं भवेत्। व्यक्ते गर्भे भवेत्कार्यं सीमन्तेन सहाथवा ॥' बृहस्पतिः—'तृतीये मासि कर्तव्यं गृष्टेरन्यत्र शोभनम्। गृष्टेश्चतुर्थे मासे तु षष्ठे मास्यथ वाष्टमे ॥' ज्योतिर्निबन्ध में वसिष्ठ—'मृत्युश्च सौरेस्तनुहानिरिन्दोर्मृतप्रजा पुंसवने बुधस्य। काकी च वन्ध्या भवतीह शुक्रे स्त्रीपुत्रलाभो रविभौमजीवैः ॥' गर्ग के मत में पुंसंज्ञक-नक्षत्र—'पुन्नामा श्रवणस्तिष्यो हस्तश्चैव पुनर्वसुः। अभिजित्प्रौष्ठपाच्चैव अनूराधास्तथाश्वयुक् ॥' मदनरत्न में—'मृतो देशान्तरगतो भर्ता स्त्री यद्यसंस्कृता। देवरो वा गुरुर्वापि वंश्यो वापि समाचरेत् ॥' इति।

२. गर्भ के तीसरे मास में किये जाने वाले संस्कार-विशेष का नाम अनवलोभन है।

ये ही अनवलोभन का भी काल हैं क्यों कि पुंसवन के साथ ही अनवलोभन करने का विधान है। गर्भ संस्कार होने से पुंसवन और अनवलोभन संस्कार प्रत्येक गर्भ में करना चाहिये। गर्भाधान और सीमन्तोन्नयन तो स्त्री-संस्कार है इसलिये प्रथम गर्भ के अतिरिक्त दूसरे आदि गर्भों में नहीं करे किन्तु प्रथम गर्भ में ही करे। प्रथम गर्भ में लोप होने पर प्रतिगर्भ में दोनों संस्कार का लोपजन्य प्रायश्चित्त आवश्यक है। प्रथम संतान में गर्भाधान सीमन्तोन्नयन के प्रायश्चित्त से द्वितीयादि गर्भों की संस्कार-सिद्धि नहीं होती है।

प्रायश्चित्तेन हि प्रत्यवायपरिहारमात्रं न त्वपूर्वाख्यातिशयोत्पादनम्। तत्तु संस्कारविधिनैवेति युक्तं प्रतिगर्भं प्रायश्चित्तम्। पुंसवनानवलोभनयोस्तु प्रथमगर्भेऽनुष्ठानेपि प्रतिगर्भं तयोर्लोपे प्रायश्चित्तम्। तच्च पादकृच्छ्रं प्रतिसंस्कारं कार्यम्। बुद्धिकृतलोपे द्विगुणम्। पुंसवने पतिः कर्ता तदभावे देवरादिः।

प्रायश्चित्त से केवल पाप दूर होता है, न कि अपूर्वाख्य अतिशय का उत्पादन होता है। वह तो संस्कार विधि से ही करने पर होता है। अतः प्रत्येक गर्भ में प्रायश्चित्त ठीक है। पुंसवन और अनवलोभन का तो पहिले गर्भ में उनके न करने से प्रायश्चित्त करना चाहिये। वह प्रायश्चित्त कृच्छ्र का चतुर्थांश प्रतिसंस्कार में कर्तव्य है, वह प्रायश्चित्त अज्ञान से नहीं करने पर है। जान बूझ कर नहीं करने से दूना करना चाहिये। पुंसवन संस्कार में पति संस्कारकर्ता है पति के न रहने पर देवर आदि कर्ता है।

अथ सीमन्तकालः

तच्चतुर्थेऽष्टमे षष्ठे पञ्चमे मासि वा हितम्।
नवमे मासि वा कुर्याद्यावद् गर्भविमोचनम्॥
स्त्री यद्यकृतसीमन्ता[1] प्रसूयेत कदाचन।
गृहीतपुत्रा विधिवत्सा तं संस्कारमर्हति॥

---

१ गर्भस्पन्दन होने पर पुंसवन कर्म की तरह चतुर्थादिमास एवं पुंसंज्ञक-नक्षत्र में गर्भिणी के सीमन्त को सविधि औदुम्बरादि पाँच द्रव्यों से ऊर्ध्व विनयन करना और औदुम्बरादिपञ्चक को नवगुणित सूत्र से बाँधना सीमन्तोन्नयन कर्म कहलाता है। विज्ञानेश्वर के मत में इसे एक ही बार करना चाहिये। हारीतः—'सकृत्संस्कृतसंस्काराः सीमन्तेन द्विजस्त्रियः। यं यं गर्भं प्रसूयन्ते स सर्वः संस्कृतो भवेत्॥'

हेमाद्रि के मत में इसे प्रत्येक गर्भ में करना चाहिये। हेमाद्रि और कारिका में विष्णु की उक्ति—'सीमन्तोन्नयनं कर्म न स्त्रीसंस्कार इष्यते। केचिद् गर्भस्य संस्कारात् प्रतिगर्भं प्रयुञ्जते॥' कार्ष्णाजिनिः—'गर्भलम्भनमारभ्य यावन्न प्रसवस्तदा। सीमन्तोन्नयनं कुर्याच्छङ्खस्य वचनं यथा॥' कालविधाने—'सीमन्ते तिष्यहस्तादितिहरिशशभृत्पौष्णविध्युत्तराख्याः पक्षच्छिद्रं च रिक्तां पितृतिथिमपहायापराः स्युः प्रशस्ताः।'

वसिष्ठ के मत में पक्षच्छिद्र—'चतुर्दशी चतुर्थी च अष्टमी नवमी तथा। षष्ठी च द्वादशी चैव पक्षच्छिद्राह्वयाः स्मृताः॥ क्रमादेतासु तिथिषु वर्जनीयाश्च नाडिकाः। भूता५वसु८मनु१४तत्त्वा२५ङ्क९दश१०शेषास्तु शोभनाः॥ मुहूर्तचिन्तामणिः—'वेदा४ङ्गा६ष्ट८नवा९र्क१२रन्ध्र१४-पक्षरन्ध्रतिथौ त्यजेत्। वस्व८ङ्क९मनु१४तत्त्वा२५शा१०शरा५नाडी परा शुभा॥' अर्थात् पर में शुभ और पूर्व में अशुभ है। नारदः—'विप्रक्षत्रिययोः कुर्याद्दिवा सीमन्तकर्म तत्। वैश्यशूद्रकयोरेतद्दिवा निश्यपि केचन॥' इति।

पक्षतिथिवारनक्षत्राणि पुंसवनोक्तान्येव प्रशस्तानि । क्वचिद्दशमीपर्यन्तं कृष्णोऽपि ग्राह्यः । षष्ठ्यष्टमीद्वादश्यो रिक्ताः पञ्चदशी च वर्ज्याः । तासु संकटे चतुर्थीचतुर्दशीपौर्णमास्यो ग्राह्याः । क्रमेणाष्टचतुर्दशदशनाडिका आद्यास्त्यक्त्वा षष्ठ्यष्टमीद्वादश्योपि ग्राह्याः । पुन्नक्षत्राणामलाभे रोहिणीरेवत्युत्तरात्रयाणि ग्राह्याणि । उक्तनक्षत्राणां प्रथमान्त्यपादौ त्यक्त्वा मध्यमपादद्वयं ग्राह्यमित्युक्तम् ।

वह सीमन्त चौथे, आठवें, छठे या पाँचवें मास में हितकर है । नवें महीने में भी तब तक किया जा सकता है जब तक गर्भ मुक्त नहीं होता । विना सीमन्त-संस्कार किये कदाचित् स्त्री प्रसव करे तो पुत्र को लेकर उस संस्कार को विधिवत् करे । इसमें पक्ष, तिथि, वार, नक्षत्र, पुंसवन की तरह ही प्रशस्त हैं । कहीं दशमी तक कृष्णपक्ष भी ग्रहीत है । षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी, रिक्ता तिथि और पूर्णिमा वर्जित है । संकट में चतुर्थी, चतुर्दशी और पूर्णिमा भी ग्राह्य है । क्रम से आठ, चौदह और दस घटी पहिली छोड़कर षष्ठी, अष्टमी और द्वादशी को भी ग्राह्य माना है । पुन्नामक नक्षत्र के न मिलनेपर रोहिणी, रेवती और तीनों उत्तरा ग्राह्य हैं । कहे हुए नक्षत्रों के प्रथम और चतुर्थ चरण को छोड़ कर बीच के दोनों चरण ग्राह्य हैं, ऐसा कहा है ।

अथ पुंसवनादिप्रयोगनिर्णयः

इदं कर्म सकृदेव कार्यमित्युक्तम् । कात्यायनानां तु गर्भसंस्कारत्वात्प्रतिगर्भमावर्तनीयम् । सीमन्तोन्नयने पतिरेव कर्ता । गर्भाधानलोपे तत्प्रायश्चित्तार्थं विप्राय गां दत्त्वा पुंसवनादि कार्यम् ।

इस पुंसवन कर्म को एक ही बार करना चाहिये, यह कह चुके हैं । किन्तु कात्यायन शाखावालों को तो गर्भसंस्कार होने से प्रतिगर्भ में करना चाहिये । सीमन्तोन्नयन में पति ही कर्ता होता है । गर्भाधान-संस्कार न करने पर उसके प्रायश्चित्त के लिये ब्राह्मण को गाय देकर पुंसवन आदि संस्कार करे ।

तत्राश्वलायनानां देशकालसंकीर्तनान्ते 'ममास्यां भार्यायामुत्पत्स्यमानगर्भस्य गार्भिकबैजिकदोषपरिहारपुंरूपतासिद्धिज्ञानोदयप्रतिरोधपरिहारद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं पुंसवनमनवलोभनं ममास्यां भार्यायां गर्भाभिवृद्धिपरिपन्थिपिशितरुधिरप्रियाऽलक्ष्मीभूतराक्षसीगणदूरनिरसनक्षमसकलसौभाग्यनिदानमहालक्ष्मीसमावेशनद्वारा प्रतिगर्भं बीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणद्वारा च श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं स्त्रीसंस्काररूपं सीमन्तोन्नयनाख्यं कर्म च तन्त्रेण करिष्ये' इति संकल्पः सीमन्तेन सह त्रयाणां करणे ज्ञेयः ।

उसमें आश्वलायनों को संकल्प में देशकाल कहने के अनन्तर 'मेरी इस भार्या में उत्पन्न होने वाले गर्भ के गर्भ सम्बन्धी और बीज सम्बन्धी दोष को हटाने के लिये तथा पुत्र-प्राप्ति की सिद्धि के लिये एवं ज्ञान-वृद्धि का प्रतिरोध-परिहार के लिये भगवान् की प्रसन्नता के लिये पुंसवन और अनवलोभन संस्कार मेरी इस पत्नी में गर्भवृद्धि को रोकने वाले मांस रुधिर जिनको प्रिय हैं ऐसे अलक्ष्मी बनी हुई राक्षसी समूह को दूर हटाने में योग्य मेरे सम्पूर्ण सौभाग्य के कारण महालक्ष्मी के समावेश द्वारा प्रतिगर्भ के बीज और गर्भ से उत्पन्न पाप को हटाने के लिये श्रीपरमेश्वर के प्रीत्यर्थ

स्त्री के संस्कार रूप सीमन्तोन्नयन नामक कर्म को तन्त्र से करूँगा' ऐसा संकल्प सीमन्त के साथ तीनों के करने में जानना चाहिये।

नान्दीश्राद्धे क्रतुदक्षसंज्ञका विश्वेदेवाः। पुंसवनस्य पृथक्त्वे पवमानसंज्ञकमौपासनाग्निं प्रतिष्ठापयेत्। त्रयाणां सहत्वे मङ्गलनामानं प्रतिष्ठापयेत्। गृह्याग्निविच्छेदे सर्वाधानिनश्चाग्न्युत्पत्तिः पूर्ववत्। पुंसवने प्रजापतिं चरुणा सीमन्ते धातारं द्विः राकां द्विः विष्णुं त्रिः प्रजापतिं सकृदाज्येन जुहुयात्। अवशिष्टः प्रयोगोऽन्यत्र ज्ञेयः। शाखान्तरेषु च तत्तद्ग्रन्थेभ्यो ज्ञेयः। अत्र प्रतिसंस्कारं दश दश त्रींस्त्रीन् वा ब्राह्मणान् भोजयेत्। शक्तेन शतं शतम्।

नान्दीश्राद्ध में क्रतुदक्ष नामक विश्वेदेवा होते हैं। पुंसवन कर्म अलग करने पर पवमान नामक औपासनाग्नि की स्थापना करे। तीनों को एक साथ करने पर मंगल नामक अग्नि की स्थापना करे। गृह्याग्नि के विच्छेद होने पर सर्वाधानी को भी पहिले की तरह अग्नि का उत्पादन करना चाहिये। पुंसवन में चरु से प्रजापति को सीमन्त में धाता को दो बार, राका को दो बार और विष्णु को तीन बार और प्रजापति को एक बार घृत की आहुति दे। बचा हुआ प्रयोग अन्य ग्रन्थों से जानें। दूसरी शाखाओं में भी उन-उन ग्रन्थों से जानना चाहिये। इसमें प्रत्येक संस्कार में दस दस या तीन तीन ब्राह्मण खिलावे। समर्थ तो सौ सौ ब्राह्मणों को भोजन करावे।

अथ सीमन्तान्नभुक्तौ प्रायश्चित्तम्

सीमन्तान्नभोजने प्रायश्चित्तं पारिजाते—

ब्रह्मौदने च सोमे च सीमन्तोन्नयने तथा।
जातश्राद्धे तथा भुक्त्वा भोक्ता चान्द्रायणं चरेत्॥

यद्वा 'अरा इवेति[1] मन्त्रस्य शतवारं जपः। एतच्च आधानाङ्गब्रह्मौदनाङ्गभोजन इव सीमन्ताङ्गभोजने ज्ञेयम्। न तु तद्दिने तद्गृहे भोक्तृमात्रस्येति पारिजातोक्तं युक्तम्।

सीमन्तांग ब्राह्मणभोजन में पारिजात-ग्रन्थ में प्रायश्चित्त कहा है। ब्रह्मौदन में, सोमयज्ञ में और सीमन्तोन्नयन में तथा जन्मश्राद्ध में खाने वाला दोषशान्ति के लिये चान्द्रायण व्रत करे। अथवा 'अरा इव' इस मन्त्र का सौवार जप करे। यह आधान और ब्रह्मौदन के अंग-भोजन की तरह सीमन्तांग भोजन में जानना चाहिये। न कि उस दिन उसके घर में भोजन करने वाले सभी प्रायश्चित्त करें, यह पारिजात का कहना ठीक है।

अथ गर्भिणीधर्माः

गर्भिणी [2]कुञ्जराश्वादिशैलहर्म्यादिरोहणम्।
व्यायामं शीघ्रगमनं शकटारोहणं त्यजेत्॥

---

१. ऋग्विधाने—'अरा इवे जपेन्मन्त्रं शतवारं न संशयः। सीमन्ते च यदा भुङ्क्ते मुच्यते किल्विषात्तदा॥' मन्त्रः—'अरा इवेदचरमा अहेव प्रप्रजायन्ते अकवा महोभिः। पृश्नेः पुत्रा उपमासो रभिष्ठाः स्वया मत्या सम्मिमिक्षुः॥' इति। (ऋ० सं० अ०४ अ० ३)

२. भावप्रकाशे—'आर्तवस्नानदिवसात् त्र्यहं सा ब्रह्मचारिणी। शयीत दर्भशय्यायां पश्येदपि पतिं न च॥ करे शरावे पर्णे वा हविष्यं त्र्यहमाचरेत्। अश्रुपातं नखच्छेदमभ्यङ्गमनुलेपनम्॥ नेत्र-

न भस्मादावुपविशेन्मुसलोलूखलादिषु ।
त्यजेज्जलावगाहं च शून्यं सद्म तरोस्तलम् ॥
कलहं गात्रभङ्गं च तीक्ष्णात्युष्णादिभक्षणम् ।
संध्यायामतिशीताम्लं गुर्वाहारं परित्यजेत् ॥
व्यवायशोकासृङ्मोक्षं दिवास्वापं निशि स्थितिम् ।
भस्माङ्गारनखैर्भूमिलेखनं शयनं सदा ॥

गर्भवती स्त्री हाथी, घोड़ा, पर्वत, मकान के छत पर न चढ़े । व्यायाम न करे । जल्दी जल्दी न चले । गाड़ी पर न चढ़े । भस्म पर न बैठे । मूसल और उखल आदि पर न बैठे । जल में नहाना, सूने घर में रहना, पेड़ के नीचे बैठना त्याग दे । झगड़ा न करे । शरीर को टेढ़ा मेढ़ा न करे । तीखे और बहुत गर्म भोजन न करे । शाम को बहुत ठंडा, खट्टा, गरिष्ठ आहार छोड़ दे । मैथुन, शोक, खून का गिरना, दिन में सोना, रात में बैठना, भस्म पर बैठना, कोयले पर बैठना, जमीन को नख से कुरेदना और सोना सदा छोड़ दे ।

त्यजेदमङ्गलं वाक्यं न च हास्याधिका भवेत् ।
न मुक्तकेशा नोद्विग्ना कुक्कुटासनगा न च ॥
गर्भरक्षा सदा कार्या नित्यं शौचनिषेवणात् ।
प्रशस्तमन्त्रलिखनाच्छस्तमाल्यानुलेपनात् ॥
विशुद्धगेहवसनाद्दानैः श्वश्र्वादिपूजनैः ।
हरिद्राकुंकुमं चैव सिन्दूरं कज्जलं तथा ।
केशसंस्कारताम्बूलं माङ्गल्याभरणं शुभम् ॥
चतुर्थे मासि षष्ठे वाप्यष्टमे गर्भिणीवधूः ।
यात्रां विवर्जयेन्नित्यमाषष्ठात्तु विशेषतः ॥

अमंगल वाक्य न बोलना, अधिक हँसना, बालों को खुला रखना, उद्विग्न होना, मुर्गे की तरह बैठना छोड़ दे । सर्वदा पवित्र रहकर गर्भ की रक्षा करे । पवित्र घर में रहना, दान करना, सास आदि का सत्कार करना, हल्दी, रोरी, सिन्दूर, काजल, बालों का संस्कार, पान खाना और शुभ मंगल करने वाले आभूषण का धारण करना गर्भिणी के लिये हितकर है । गर्भिणी स्त्री चौथे, छठें, आठवें महीने में देश विदेश की यात्रा विशेषतः छठे महीने ही से त्याग दे ।

योरञ्जनं स्नानं दिवास्वापं प्रधावनम् । अत्युच्चशब्दश्रवणं हसनं बहुभाषणम् । आयामं भूमिखननं प्रवातं च विवर्जयेत् । ततश्चतुर्थे दिवसे स्नात्वा सद्वसनादिभिः ॥ भूषिता सुमनाः पश्येद् भर्तारं समलङ्कृतम् । पूर्वं पश्येदृतुस्नाता यादृशं नरमङ्गना ॥ तादृशं जनयेत् पुत्रं ततः पश्येत् पतिं प्रियम् । अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा लौल्याद्वा दैवतेन या ॥ सा चेत् कुर्यान्निषिद्धानि गर्भदोषांस्तदाप्नुयात् ।

एतस्या रोदनाद् गर्भो भवेद् विकृतलोचनः ॥ नखच्छेदेन कुनखी कुष्ठी त्वभ्यङ्गतो भवेत् । अनुलेपात्तथा स्नानाद् दुःखशीलोऽञ्जनाददृक् ॥ स्वापशीला दिवास्वापाच्चञ्चलः स्यात् प्रधावनात् । अत्युच्चशब्दश्रवणाद् बधिरः खलु जायते ॥ तालुदन्तौष्ठजिह्वासु श्यावो हसनतो भवेत् । प्रलापी भूरिकथनादुन्मत्तस्तु परिश्रमात् ॥ खलतिर्भूमिखननादुन्मत्तो वातसेवनात् । शाकाहाराल्लोमपूर्णः श्वित्री दुग्धस्य सेवनात् ॥ शूरणाच्चर्मरोगी स्यान्नेत्रस्रावी कटूषणात् । अतिश्रमादङ्गहीनो गर्भबालोऽभिजायते ॥' इति ।

अथ गर्भिणीपतिधर्माः

गर्भिणीवाञ्छितं द्रव्यं तस्यै दद्याद्यथोचितम्।
सूते चिरायुषं पुत्रमन्यथा दोषमर्हति ॥
सिन्धुस्नानं द्रुमच्छेदं वपनं प्रेतवाहनम्।
विदेशगमनं चैव न कुर्याद् गर्भिणीपतिः ॥
वपनं मैथुनं तीर्थं श्राद्धभोजनमेव च।
वर्जयेत्सप्तमान्मासान्नाव आरोहणं तथा ॥
युद्धादि वास्तुकरणं नखकेशविकर्तनम्।
चौलं शवानुगमनं विवाहं च विवर्जयेत् ॥
मुण्डनं पिण्डदानं च प्रेतकर्म च सर्वशः।
न जीवत्पितृकः कुर्याद् गुर्विणीपतिरेव च ॥

गर्भवती स्त्री जिन चीजों को चाहे उसे यथोचित देवे। ऐसा करने से आयुष्मान् पुत्रका प्रसव करती है। ऐसा नहीं करने पर दोष होता है। समुद्र का स्नान, पेड़ का काटना, मुण्डन करना, मुर्दा ढोना और विदेश का जाना गर्भिणी का पति त्याग दे। गर्भ के सातवें महीने से मुंडन, मैथुन, तीर्थ, श्राद्ध का भोजन और नाव पर चढ़ना छोड़ दे। युद्ध आदि का गृहनिर्माण, नख केश का काटना, चूड़ासंस्कार, मुर्दे के साथ जाना और विवाह वर्जित है। मुंडन, पिण्डदान और सब प्रकार का प्रेतकर्म, गर्भिणी का पति और जिसके पिता जीते हों नहीं करे।

अत्र कर्तनमपि निषिध्यते। 'वपनस्य निषेधेपि कर्तनं तु विधीयते' इति वाक्यं तु जीवत्पितृकादीनां यो वपननिषेधस्तत्र कर्तनविधिपरम्। एतदपवादः—

क्षौरं नैमित्तिकं कुर्यान्निषेधे सत्यपि ध्रुवम्।
पित्रोः प्रेतविधानं च गर्भिणीपतिराचरेत् ॥

अन्वष्टक्याष्टकयोर्गर्भिणीपतिः पिण्डदानं कुर्यात्। केचित्पित्रोः प्रतिसांवत्सरिके पिण्डदानं कुर्वन्ति। दर्शमहालयादिषु नैव कार्यम्।

इसमें बालों का कटवाना भी निषिद्ध है 'मुंडन निषेध होने पर भी कर्तन का विधान है' यह वाक्य तो जिनके पिता जीते हों उनके जो वपन का निषेध है वह कर्तनविधि-परक है। इसका यह अपवाद है—निषेध होने पर भी गर्भिणी पति नैमित्तिक क्षौर अवश्य करावे और माता पिता का प्रेत-विधान करे। अष्टका और अन्वष्टका में पिण्डदान करे। कुछ लोग माता पिता के प्रत्येक सांवत्सरिक श्राद्ध में पिण्डदान करते हैं। दर्शश्राद्ध और महालय आदि में पिण्डदान नहीं करना चाहिये।

अथ गर्भस्रावहरदानम्।

अथ 'गर्भस्रावहरं काञ्चनयज्ञोपवीतदानं महार्णवे। इदं स्त्रीकर्तृकम्। शुभ-दिने स्त्री आचम्य देशकालौ संकीर्त्य 'मम गर्भस्रावनिदानसकलदोषपरिहारद्वारा

१. आयुर्वेदे गर्भपातनिवारणार्थं योगः—'मधुच्छागीपयः पीत्वा किं वा श्वेताद्रिकर्णिकाम्। शर्करां पद्मकन्देन तिलकं मधुकान्वितम् ॥ भक्षित्वा धारयेन्नित्यं पतन्तं गर्भमञ्जसा। सममागं सिता-युक्तं शालितण्डुलचूर्णितम्। उदुम्बरशिफाक्वाथं पीतो गर्भं न मुञ्चति ॥' इति।

श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं वायुपुराणोक्तं सुवर्णयज्ञोपवीतदानविधिं करिष्ये' इति संकल्प्य पलेन तदर्धेन तदर्धार्धेन यथाशक्ति वा हैमं यज्ञोपवीतं ग्रन्थिप्रदेशे मौक्तिकयुतं कृत्वा तथैव वज्रमणियुतं राजतमुत्तरीयं च कृत्वोभयं पञ्चगव्येन गायत्र्या प्रक्षाल्य ताम्रपात्रे द्रोणमितं दधि निक्षिप्य तन्मध्ये द्रोणमितमाज्यं निक्षिप्याज्योपरि तदुभयं संस्थाप्य भर्ता ब्राह्मणो वा गायत्रीमन्त्रेण गन्धादिभिः पूजयेत् ।

गर्भस्राव हटाने वाला सुवर्ण का यज्ञोपवीत दान महार्णव में कहा है । यह स्त्री को करना चाहिये । स्त्री किसी शुभ दिन में आचमन करके देशकाल को कहकर 'मेरे गर्भस्राव का आदि कारण सब दोष को हटाने के लिये श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं वायुपुराणोक्त सुवर्णयज्ञोपवीतदान-विधि करूँगी' ऐसा संकल्प कर एक पल आधे पल और चतुर्थांश पल से या यथाशक्ति सुवर्ण का यज्ञोपवीत जिसकी ग्रन्थि में मोती लगी हो ऐसा बनवाकर और हीरे से युक्त चांदी का दुपट्टा बनवाकर पंचगव्य और गायत्री मन्त्र से प्रक्षालन कर ताम्रपात्र में द्रोणपरिमित दही रख कर उसके बीच में उतना ही घी रखकर घी के ऊपर वे दोनों यज्ञोपवीत आदि रखकर पति या ब्राह्मण गायत्रीमन्त्र द्वारा गन्ध आदि से पूजा करे ।

अथ गुञ्जामाषादिमानानि

अष्टगुञ्जात्मको माषः दशमाषाः सुवर्णम् । पलकुडवप्रस्थाढकद्रोणाः सुवर्णादिपूर्वपूर्वंचतुर्गुणाः । दध्याज्ययोर्द्रोणपरिमाणाभावे शक्त्यनुसारि प्रमाणम् । ब्राह्मणद्वारा आज्यमधुमिश्रैस्तिलैरष्टोत्तरशतं गायत्र्या व्याहृतिभिर्वा होमं कारयेत् । त्यागं भर्ता वा स्त्री वा कुर्यात् । होमकर्तारं विप्रं वस्त्राद्यैः संपूज्य प्राङ्मुखाय तस्मै उदङ्मुखा स्त्री दानं कुर्यात् । तद्यथा—

उपवीतं परिमितं ब्रह्मणा विधृतं पुरा ।
भव नौकास्यदानेन गर्भं संधारये ह्यहम् ॥

इति मन्त्रेण विप्रस्य नामगोत्रे उच्चार्य ताम्रपात्रस्थदध्याज्यसंस्थं सुपूजितं सोत्तरीयकमिदं यज्ञोपवीतं गर्भस्रावनिदानदोषपरिहारद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं तुभ्यमहं संप्रददे नमम । प्रतिगृह्यताम् । विप्रः प्रतिगृह्णामीत्यादि । यथाशक्ति दक्षिणां दत्त्वाऽन्येभ्योपि यथाशक्ति दक्षिणां दत्त्वा प्रतिग्रहीतुरनुव्रज्य नमस्कारक्षमापनादि कृत्वा विप्रभोजनं संकल्प्य कर्मेश्वरायार्पयेत् ।

आठ रत्ती का एक माशा और दस माशे का सुवर्ण होता है । पल, कुडव, प्रस्थ, आढक और द्रोण, सुवर्ण आदि से पूर्व पूर्व चौगुने होते हैं । दही और घी का द्रोण परिमाण न होने पर शक्ति के अनुसार प्रमाण रक्खे । तिल में घी मधु मिलाकर गायत्रीमन्त्र से या व्याहृतियों से ब्राह्मण द्वारा एक सौ आठ आहुति होम करावे । त्याग पति या स्त्री करे । होम करने वाले ब्राह्मण को वस्त्र आदि से सम्मानित कर पूर्वमुख बैठे उस ब्राह्मण को उत्तरमुख बैठने वाली स्त्री दान करे । वह इस प्रकार है—पहिले काल में परिमित यज्ञोपवीत ब्रह्मा ने धारण किया इसके दान से आप इसकी नौका बनें जिससे मैं गर्भ को धारण कर सकूं । इस आशय के मन्त्र से ब्राह्मण का नाम गोत्र उच्चारण करके 'ताम्र के पात्र में स्थित दही घी पर रखा हुआ सुपूजित दुपट्टे के साथ यह यज्ञोपवीत गर्भस्राव के दोष को हटाने और भगवान् को प्रसन्न करने के लिये आप को मैं देती हूँ यह मेरा

नहीं है। इसे आप ग्रहण करें। ब्राह्मण कहे—'मैं ग्रहण करता हूँ'। इस प्रकार ब्राह्मण को और अन्य को भी यथाशक्ति दक्षिणा देकर दान लेने वाले के पीछे पीछे कुछ दूर चलकर नमस्कार अपराध क्षमापन इत्यादि करके ब्राह्मणभोजन का संकल्प कर इस कर्म को ईश्वरार्पण करे।

एतच्च 'स्रवद्गर्भा भवेत्सा तु बालकं हन्ति या विषैः' इत्युक्तेर्बालहत्याप्रायश्चित्तं कृत्वा कार्यम्। अन्यत्र तु स्वर्णधेनुदानहरिवंशश्रवणादीन्युक्त्वा घृतपूर्ण[1]ताम्रकलशदानादिविधानान्युक्तानि।

यह तो 'उस स्त्री को गर्भस्राव होता है जो विष से बालक को मारती है' इस उक्ति से बालहत्या का प्रायश्चित्त करके करना चाहिये। अन्य ग्रन्थों में तो स्वर्णधेनु का दान और हरिवंशश्रवण आदि कहकर घी से भरे ताम्रकलशदान का विधान कहा है।

अथ सूतिकागृहप्रवेशः

गृहनैर्ऋत्यां सूतिकागृहं कृत्वा तत्राश्विनीरोहिणीमृगपुनर्वसुपुष्यत्र्युत्तराहस्तचित्रास्वात्यनुराधाधनिष्ठाशततारकानक्षत्रेषु रिक्तादिवर्ज्यतिथौ चन्द्रानुकूल्ये शुभलग्ने सूतिकाप्रवेशो गोविप्रदेवपूजनं कृत्वा मन्त्रवाद्यघोषेण सापत्यस्त्रीभिः सह कार्यः। असंभवे [2]सद्यो वा।

घर के नैर्ऋत्य दिशा में सूतिका घर बनाकर उसमें अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, तीनों उत्तरा, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्रों में रिक्ता आदि से वर्जित तिथि में चन्द्रमा के अनुकूल रहने पर शुभ लग्न में गाय ब्राह्मण और देवता का पूजन करके मन्त्र और बाजे के शब्द से संतान वाली स्त्रियों के साथ उसमें प्रवेश करना चाहिये। यह संभव न हो तो तुरत प्रवेश करे।

अथ सुखप्रसवकरम्

प्रसवप्रतिबन्धे ऋग्विधाने प्रमंदिने इत्यृचं विजिहीष्वेति सूक्तं वा जपेत्। एताभ्यामभिमन्त्रितजलं वा पाययेत् तेन सुखप्रसवः। शीघ्रप्रसवमन्त्रस्तु—

हिमवत्युत्तरे पार्श्वे सुरथा नाम यक्षिणी।
तस्याः स्मरणमात्रेण विशल्या गर्भिणी भवेत्॥

ॐ क्षीं ॐ स्वाहेति मन्त्रेण दूर्वाङ्कुरेण तिलतैलं शतं सहस्रं वाऽभिमन्त्र्य किंचित्पाययेत्। किंचिन्मात्रस्य गर्भे लेपश्च। सम्यग्लेपे शीघ्रं सुखप्रसवः। अस्थिमात्रावशिष्टगोमस्तकस्य सूतिकागृहोपरि निधाने सुखप्रसवः। वंशनिम्बयोस्त्वक्तुलसीमूलं कपित्थपत्रं करवीरबीजं च समभागं महिषीदुग्धेन पेषयित्वा तेन सतैलेन योनिलेपे [3]सद्यःप्रसवः।

---

१. 'ताम्रकलशदानादि' इत्यत्र आदिपदेन कमलपुष्पादिभिः शिवपूजनं कुर्यात्।

२. वसिष्ठः—'प्रसूतिसमये काले सद्य एव प्रवेशयेत्। विष्णुधर्मः—'दशाहं सूतिकागारमायुधैश्च विशेषतः। वह्निना तिन्दुकालातैः पूर्णकुम्भैः प्रदीपकैः॥ मुसलेन तथा वारिवर्णकैश्चित्रितेन च।' इति।

३. आयुर्वेदे—'अपामार्गस्य मूलं च समुत्पाट्य शुभे दिने। अश्वलोम्ना च संवेष्ट्य शिरसा बन्धनात्ततः॥ क्षणमात्रेण सा नारी सुखेनैव प्रसूयते। श्वेतं पुनर्नवामूलचूर्णं योनौ प्रवेश-

प्रसव की रुकावट होने पर ऋग्विधान के 'प्रमंदिने' या 'विजिहीर्ष्व' इस सूक्त को जपे। या इन दोनों ऋचाओं से अभिमंत्रित जल पिलावे इससे सुखपूर्वक प्रसव होता है। शीघ्र प्रसव कराने का मंत्र तो 'हिमवत्युत्तरे पार्श्वे सुरथा नाम' से ॐ क्षीं ॐ स्वाहा पर्यन्त मूल में अंकित मन्त्र से दूब के अंकुर से तिल तैल को सौ या हजार बार अभिमन्त्रित करके थोड़ा पिला दे। और थोड़ा गर्भ में लेप भी कर दे। अच्छी तरह से लेप करने पर शीघ्र सुख-प्रसव होता है। हड्डी मात्र बचे हुए गोमस्तक को सूतिका के घर के ऊपर रखने से सुख-प्रसव होता है। बाँस और नीम की छाल, तुलसी की जड़, कैंत के पत्ते और करवीर के बीज समभाग, भैंस के दूध में पीस कर तेल के साथ योनि में लेप करने से सद्यः प्रसव होता है।

अथ जातकर्म

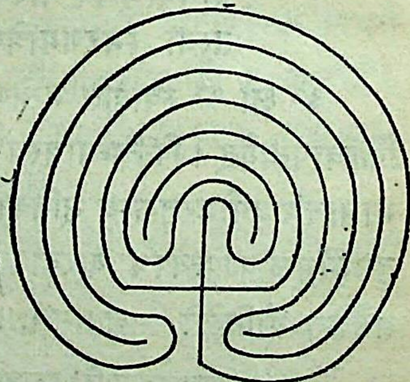
मूलज्येष्ठाव्यतीपातादावनुत्पन्नस्य जातमात्रस्य पुत्रस्य पिता मुखं कुलदेवतावृद्धप्रणामपूर्वकमवलोक्य नद्यादावुदङ्मुखः स्नायात्। तदसंभवे गृहे आनीताभिः शीताभिः स्वर्णयुताभिरद्भिः स्नायात्। एतच्च [1]रात्रावपि नद्यादौ कार्यम्। अशक्तो रात्रावग्निसन्निधौ स्वर्णयुतशीतोदकैः। मूलादिषु जनने तु मुखमदृष्ट्वैव स्नानम्। देशान्तरगते जनके पुत्रजन्मश्रवणोत्तरं स्नानम्। सर्वत्र स्नानात्प्रागस्पृश्य-

---

येत् ॥ क्षणात् प्रसूयते नारी गर्भेणातिप्रपीडिता। सबीजं तिन्तिणीवृक्षं समुत्पाट्य च यत्नतः ॥ केशेषु ग्रथितं कृत्वा नासाग्रं तत्प्रलम्बयेत्। घ्रात्वा तद् गर्भिणी सम्यक् शीघ्रमेव प्रसूयते ॥' भावप्रकाशे—'कृष्णा वचा चापि जलेन पिष्ट्वा सैरण्डतैला खलु नाभिलेपात्। सुखं प्रसूतिं कुरुतेऽङ्गनानां निपीडितानां बहुभिः प्रमादैः।' सुश्रुत की—'लाङ्गलीमूलकल्केन वाऽस्याः पाणिपादतलमालिम्पेत्' इस उक्ति के अनुसार हस्तपाद की तली में कलिहारीकन्द के लेप करने से भी शीघ्र प्रसव होता है।

गृह्यसूत्रों में प्रसव के पूर्व प्रसवजन्य पीड़ा वाली स्त्री के लिये सोष्यन्ती (सुखप्रसवार्थ) कर्म का सविधि वर्णन है। इस स्मार्तकर्म का अनुष्ठान कर्तव्य है।

चक्रव्यूह-यन्त्र



पूर्वोक्त औषधियों के व्यवहार के अतिरिक्त सुखपूर्वक शीघ्र प्रसव के लिये 'चक्रव्यूह-यन्त्र' का कुछ क्षण तक निरन्तर अवलोकन करने से अतिशीघ्र प्रसव होता है।

इस यन्त्र को अलग भोजपत्र या कागज पर बना लें। यन्त्र को केवल धूप दिखाकर उसे देखें। यन्त्र ठीक से नहीं बना सकें तो पुस्तक पर अङ्कित इसी यन्त्र को धूपित करके देखें।

१. यह स्नान नैमित्तिक है इसलिये यह रात्रि में भी कर्तव्य है। व्यासः—'रात्रौ स्नानं न कुर्वीत दानं चैव विशेषतः। नैमित्तिकं तु कुर्वीत स्नानं दानं च रात्रिषु ॥' कारिका—'जाते पुत्रे सचैलं स्यात् स्नानं नैमित्तिकं पितुः।' नैमित्तिकदान—'ग्रहणोद्वाहसंक्रान्तियात्रादौ प्रसवेषु च। दानं नैमित्तिकं ज्ञेयं रात्रावपि न दुष्यति ॥' जैमिनिः—'यावन्न छिद्यते नालं तावन्नाप्नोति सूतकम्। छिन्ने नाले ततः पश्चात् सूतकं तु विधीयते ॥' इति।

त्वम्। एवं कन्योत्पत्तावपि स्नानं तत्प्रागस्पृश्यत्वं च ज्ञेयम्। अन्यसपिण्डाशौचमध्ये जननेपि पितुस्तात्कालिकी स्नानदानादौ जातकर्मणि च शुद्धिः।

मूल, ज्येष्ठा और व्यतीपात आदि में जो नहीं उत्पन्न हुआ हो ऐसे तुरंत उत्पन्न हुए पुत्र का मुख कुल देवता और वृद्धों को प्रणाम करके पिता देखकर नदी आदि में उत्तरमुख होकर स्नान करे। नदी आदि के असंभव होने पर घर में लाए हुए स्वर्णयुक्त ठंढे जल से स्नान करे। यह स्नान तो रात्रि में भी नदी आदि में कर्तव्य है। असमर्थ रात में अग्नि के सामने सुवर्णयुक्त ठंडे जलसे करे। मूल आदि में जन्म होने पर तो बिना मुख देखे ही नहाये। पिता परदेश में हो तो पुत्र का जन्म सुनने के बाद नहावे। स्नान के पहले अस्पृश्यत्व होता है। इसी तरह कन्या की उत्पत्ति में भी स्नान और उसके पहिले अस्पृश्यत्व होता है, यह जानना चाहिये। दूसरे सपिण्ड के आशौच में जन्म होने पर भी पिता की स्नान दान आदि और जातकर्म आदि में भी तात्कालिक शुद्धि होती है।

केचिन्मृताशौचे पुत्रजनने जातकर्माशौचान्ते[1] कार्यमित्याहुः। नालच्छेदनात्पूर्वं संपूर्णसंध्यावन्दनादिकर्मणि नाशौचम्। प्रथमदिने पञ्चमषष्ठदशमदिने च दानप्रतिग्रहयोर्न[2] दोषः। शृतमन्नं न ग्राह्यम्। ज्योतिष्टोमादिदीक्षावता स्वयमन्येन वा जातकर्म न कार्यं किंतु अवभृथस्नानान्ते दीक्षां विसृज्य स्वयं कार्यम्। श्रेष्ठः कनिष्ठेन पुंसवनादिकं न कारयेत्, जातकर्म तु कारयेत्।

कुछ लोग मरणाशौच में पुत्रजन्म होने पर जननाशौच के अन्त में जातकर्म करे, ऐसा कहते हैं। नार काटने के पहले सम्पूर्ण सन्ध्यावंदन आदि कर्म में आशौच नहीं होता। पहिले पाचवें, छठे और दशमदिन में दान देने लेने में दोष नहीं है। पकाया हुआ अन्न नहीं लेना चाहिये। ज्योतिष्टोम आदि दीक्षा वाले स्वयं अथवा दूसरे से जातकर्म न करवावें किन्तु अवभृथस्नान के अन्त में दीक्षा का विसर्जन कर स्वयं करे। बड़ा छोटे भाई से पुंसवन आदि संस्कार न करावे, जातकर्म तो करावे।

अतिक्रान्तं तु स्वयमेव कुर्यात्। महारोगार्तो जातकर्म स्वयं न कुर्यात्। 'अच्छिन्ननाभि कर्तव्यं श्राद्धं वै पुत्रजन्मनि।' पुत्रपदेन कन्यापि गृह्यते। तथा च संस्काराङ्गभिन्नं कन्यापुत्रयोर्जन्मनिमित्तकं नान्दीश्राद्धं विधीयते। एतच्च रात्रावपि कार्यम्। तच्च [3]हेम्नैव कार्यं न त्वन्नादिना।

बीता हुआ तो स्वयं करे। महारोग से पीडित स्वयं जातकर्म न करे। जब तक नार नहीं कटा हो पुत्रजन्म में श्राद्ध करे। पुत्र पद से कन्या का भी ग्रहण होता है। इस तरह संस्कारांग से भिन्न कन्या और पुत्र के जन्मनिमित्तक नान्दीश्राद्ध किया जाता है। इस श्राद्ध को रात में भी करे। इसे सुवर्ण से ही करे अन्नादि से नहीं।

---

१. स्मृतिसंग्रहे—'मृताशौचस्य मध्ये तु पुत्रजन्म यदा भवेत्। आशौचापगमे कार्यं जातकर्म यथाविधि॥' इति।

२. इन दिनों में जन्म का सूतक नहीं लगता इसलिये दान प्रतिग्रह में दोष नहीं है, जैसा व्यास ने कहा है—'प्रथमे दिवसे षष्ठे दशमे चैव सर्वदा। त्रिष्वेतेषु न कुर्वीत सूतकं पुत्रजन्मनि॥' यहाँ पुत्रशब्द अपत्यमात्र परक है। ब्रह्मपुराणे—'देवाश्च पितरश्चैव पुत्रे जाते द्विजन्मनाम्। आयान्ति तस्मात्तदहः पुण्यं षष्ठं च सर्वदा॥' इति।

३. हेमाद्रि में संवर्त का वचन है—'पुत्रजन्मनि कुर्वीत श्राद्धं हेम्नैव बुद्धिमान्। न पक्वेन न चामेन कल्याणान्यभिकामयन्॥' इति।

अथ जातकर्मप्रयोगः

तथा च स्नातोऽलंकृतः पिता अकृतनालच्छेदमपीतस्तन्यमन्यैरस्पृष्टं प्रक्षालितं कुमारं मातुरुत्सङ्गे कारयित्वाचमनादिदेशकालादिकीर्तनान्ते—'अस्य कुमारस्य गर्भाम्बुपानजनितदोषनिबर्हणायुर्मेधाभिवृद्धिबीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं 'जातकर्म करिष्ये तदादौ स्वस्तिपुण्याहवाचनं च करिष्ये, हिरण्येन पुत्रजन्मनिमित्तकं जातकर्माङ्गं च नान्दीश्राद्धं तन्त्रेण करिष्ये' इति संकल्प्य यथागृह्यं कुर्यात्।

पिता स्नान करके अलंकृत हो जब तक नार न कटा हो और माता का स्तन नहीं पीया हो और दूसरों से बिना छुआ हुआ प्रक्षालित कुमार को माता की गोद में रखकर आचमन आदि देशकाल आदि के कहने के अन्त में 'इस कुमार का गर्भ के जल पीने से उत्पन्न दोष को हटाने के लिये आयु और मेधा का अभिवृद्धिपूर्वक बीज और गर्भ से उत्पन्न पापनिवृत्ति द्वारा श्रीपरमेश्वर के प्रीत्यर्थ जातकर्म करूँगा' उसके आदि में स्वस्तिवाचन, पुण्याहवाचन और मातृपूजन भी करूँगा, पुत्र जन्म निमित्तक जातकर्म का अंग नान्दीश्राद्ध तन्त्र से सुवर्ण द्वारा करूँगा' ऐसा संकल्प कर अपने गृह्य के अनुसार करे।

ततो दद्यात्सुवर्णं च भूमिं गां तुरगं रथम्।
छत्रं छागं च माल्यं च शयनं चासनं गृहम्॥
तिलपूर्णानि पात्राणि सहिरण्यानि चैव हि।
भक्षयित्वा तु पक्वान्नं द्विजश्चान्द्रायणं चरेत्॥
सूतके तु सकुल्यानां न दोषो मनुरब्रवीत्।

अथारिक्तपाणिर्ज्योतिर्विदं संपूज्य तस्माज्जन्मलग्नगतशुभाशुभग्रहनिर्णयं ज्ञात्वा प्रतिकूलग्रहानुकूल्यार्थं तत्तद्गृहप्रीत्यर्थं दानानि कुर्यात्। ग्रहमन्त्रजपादिशान्तिसूक्तजपादिकर्मणि विप्रान् वा नियोजयेत्। ततो नालच्छेदं कारयित्वा हिरण्योदकेन मातुर्दक्षिणस्तनं प्रक्षाल्य मात्रा कुमारं पाययेत्। तत्र इमां कुमार इत्यादिमन्त्रं विप्रादिः पठेत्। जातकर्माद्यन्नप्राशनान्तसंस्कारेषु आश्वलायनानां होमः कृताकृतः।

उसके बाद सोना, भूमि, गाय, घोड़ा, रथ, छाता, बकरा, माला, खटिया, आसन, घर और सुवर्णसहित तिल-पूर्ण-पात्र का दान करे। पक्वान्न भोजन करने पर तो द्विज चान्द्रायण करे। समान कुल वालों के सूतक में तो भोजन में दोष नहीं है, ऐसा मनु कहते हैं। इसके बाद विना खाली हाथ ज्योतिषी की पूजा कर उससे जन्म-लग्न-गत शुभ और अशुभ ग्रह का निर्णय जानकर प्रतिकूलग्रह को अनुकूल करने के लिए उन-उन ग्रहों के प्रसन्नता के लिये दान करे। अथवा ग्रहके मन्त्रों और शान्ति-

---

१. गृह्यसूत्रों में जातकर्म का दूसरा नाम 'मेधाजननायुष्यकर्म' है। हेमाद्रिः—'जन्मनोऽनन्तरं कार्यं जातकर्म यथाविधि। दैवादतीतकालं चेदतीते सूतके भवेत्॥' मनुः—'प्राङ् नाभिवर्धनात् पुंसो जातकर्म विधीयते।' यहाँ वर्धन का छेदन अर्थ है। कार्ष्णाजिनिः—'प्रादुर्भावे पुत्रपुत्र्योर्ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। स्नात्वाऽनन्तरमात्मीयान् पितॄन् श्राद्धे न तर्पयेत्॥'

सूक्त के जप आदि कर्म में ब्राह्मणों को नियुक्त करे। तदनन्तर नार कटवा कर सुवर्ण के जल से माता के दहिने स्तन को धोकर माता के द्वारा कुमार को स्तन पिलावे। उसमें 'इमां कुमार' इत्यादि मन्त्र को ब्राह्मण आदि पढ़ें। जातकर्म से लेकर अन्नप्राशनपर्यन्त संस्कारों में आश्वलायनों का होम वैकल्पिक है।

होमपक्षे 'नान्दीश्राद्धान्ते जातकर्माङ्गहोमं करिष्ये' इति संकल्प्य लौकिकाग्निं प्रतिष्ठाप्यान्वाधानाद्याज्यभागान्ते अग्निमिन्द्रं प्रजापतिं विश्वान्देवान्ब्रह्माणमाज्येन जुहुयात्। मधुसर्पिःप्राशनादिमूर्धावघ्राणान्ते स्विष्टकृदादिकुर्यादिति क्रमः। अन्येषां यथागृह्यं होमादि ज्ञेयम्। कुमार्या अपि जातकर्मादिसंस्काराश्चौलान्ताः सर्वे अमन्त्रकं कार्याः, विवाहस्तु समन्त्रकः। अतः कन्याया जातकर्मादिसंस्कारलोपे तत्तत्काले विवाहकाले वा प्रायश्चित्तं कृत्वा विवाहः कार्यः।

होम करने के पक्ष में 'नान्दीश्राद्ध के अन्त में जातकर्म का अंग होम करूँगा' ऐसा संकल्प कर लौकिक अग्नि की स्थापना कर अन्वाधान आदि आज्यभाग के अन्त में अग्नि, इन्द्र, प्रजापति, विश्वेदेवा और ब्रह्मा का घृत से होम करे। मधु घी चटाना आदि सिर सूंघना पर्यन्त कर्म करने पर स्विष्टकृत् आदि का प्रयोग करे, यही क्रम है। अन्य को अपने गृह्य के अनुसार होमादि जानना चाहिये। लड़की का भी जातकर्म-संस्कार से चूड़ाकरणपर्यन्त सब संस्कार बिना मन्त्र के करे, विवाह तो मन्त्र से। इसलिये कन्या के जातकर्म आदि संस्कार के लोप होने पर उस-उस काल में अथवा विवाह के समय प्रायश्चित्त करके विवाह करना चाहिये।

अत्र सर्वत्र जातकर्मनामकर्मादौ मुख्यकालातिक्रमे गुर्वाद्यस्तरहिते शुभनक्षत्रादौ जातकर्मादिकं कार्यम्। तत्र जातकर्मणि नक्षत्राणि रोहिणीत्युत्तराश्विनीहस्तपुष्यानुराधारेवतीमृगचित्राश्रवणादित्रयस्वातीपुनर्वसवः। रिक्तापर्वरहितास्तिथयः। भौमशनिभिन्नवाराः। भद्रावैधृत्यादिशून्ये सुकेन्द्रलग्ने शुभम्।

यहाँ सर्वत्र जातकर्म और नामकर्म आदि में मुख्य काल के बीत जाने पर गुरु आदि के अस्त रहित शुभनक्षत्र आदि में जातकर्म आदि करना चाहिये। जातकर्म के नक्षत्र ये हैं—रोहिणी, तीनों उत्तरा, अश्विनी, हस्त, पुष्य, अनुराधा, रेवती, मृगशिरा, श्रवण आदि तीन नक्षत्र, स्वाती और पुनर्वसु, रिक्ता तथा पर्व से रहित तिथियां, मंगल और शनि के अतिरिक्त वार, भद्रा वैधृति आदि से रहित समय में और केन्द्र लग्न में शुभ ग्रह हों तो शुभ है।

अथ षष्ठीपूजनम्

अथ पञ्चमषष्ठदिनयोर्जन्मदानां[1] पूजनम्। रात्रेः प्रथमयामे पित्रादिः स्नात्वाचम्य देशकालौ संकीर्त्य 'अस्य शिशोः समातृकस्यायुरारोग्यप्राप्तिसकलानिष्टशान्तिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं विघ्नेशस्य जन्मदानां जीवन्त्यपरनाम्न्याः षष्ठीदेव्याः शस्त्रगर्भाभगवत्याश्च पूजनं करिष्ये' इति संकल्प्य तण्डुलपुञ्जेषु विघ्नेशं जन्मदाश्च नाममन्त्रेणावाह्य—

१. मिताक्षरा में मार्कण्डेय की उक्ति—'रक्षणीया तथा षष्ठी निशा तत्र विशेषतः। रात्रौ जागरणं कार्यं जन्मदानां तथा बलिः॥ पुरुषाः शस्त्रहस्ताश्च नृत्यगीतैश्च योषितः। रात्रौ जागरणं कुर्युर्दशम्यां चैव सूतके॥ 'इति।

आयाहि वरदे देवि महाषष्ठीति विश्रुते ।
शक्तिभिः सह बालं मे रक्ष जागर वासरे ॥

इति षष्ठीदेवीमावाह्य नाम्ना भगवतीमावाह्य नामभिः,

शक्तिस्त्वं सर्वदेवानां लोकानां हितकारिणी ।
मातर्बालमिमं रक्ष महाषष्ठि नमोस्तु ते ॥

इति मन्त्रेण च षोडशोपचारैः संपूज्य प्रार्थयेत्—

लम्बोदर महाभाग सर्वोपद्रवनाशन ।
त्वत्प्रसादादविघ्नेश चिरं जीवतु बालकः ॥
जननीसर्वभूतानां बालानां च विशेषतः ।
नारायणीस्वरूपेण बालं मे रक्ष सर्वदा ॥
प्रेतभूतपिशाचेभ्यो शाकिनीडाकिनीषु च ।
मातेव रक्ष बालं मे श्वापदे पन्नगेषु च ॥
गौरीपुत्रो यथा स्कन्दः शिशुत्वे रक्षितः पुरा ।
तथा ममाप्ययं बालः षष्ठिके रक्ष्यतां नमः ॥ इति ।

विप्रेभ्यस्ताम्बूलदक्षिणादि दद्यात् । रात्रौ जागरणं कुर्यात् । पञ्चमषष्ठदिनयोर्दानप्रतिग्रहयोर्न[1] दोषः । दशमदिने बलिदानं स्वीयेभ्योऽन्नदानं च कार्यम् ।

पांचवें, छठे दिन जन्मदा देवता का पूजन करे । रात के पहिले प्रहर में पिता आदि स्नान आचमन करके देशकाल को कह कर 'माता के साथ इस बालक के आयु आरोग्य की प्राप्ति और संपूर्ण अनिष्ट की शान्ति द्वारा भगवान् की प्रसन्नता के लिए गणेश और जन्मदाओं का जिनका दूसरा नाम जीवन्ती है ऐसी षष्ठीदेवी का और शस्त्रगर्भा भगवती का पूजन करूंगा' ऐसा संकल्प कर चावल की राशि पर गणेश और जन्मदा का नाममन्त्र से आवाहनकर 'आयाहि वरदे देवि' इत्यादि मन्त्र से षष्ठीदेवी का आवाहन कर नाममन्त्र से भगवती का आवाहनकर 'शक्तिस्त्वं सर्वदेवानां' इस मन्त्र से षोडशोपचार से पूजन कर 'लम्बोदर महाभाग' इत्यादि मूलोक्त इन मंत्रों से प्रार्थना करे । ब्राह्मणों को ताम्बूल दक्षिणा आदि दे और रात में जागरण करे । पांचवें छठे दिन में दान करने और प्रतिग्रह लेने में दोष नहीं है । दसवें दिन बलिदान और अपने बन्धुजनों को अन्नदान करना चाहिये ।

अथाशौचे कर्तव्यनिर्णयः

सूतके मृतके कुर्यात्प्राणायाममममन्त्रकम्[2] ।
तथा मार्जनमन्त्रांश्च मनसोच्चार्य मार्जयेत् ॥

---

१. षष्ठीपूजननिमित्त ये दिन सूतकदोष से रहित एवं शुद्ध हैं जैसा व्यास ने कहा है—'सूतिकावासनिलया जन्मदा नाम देवताः । तासां यागनिमित्तं तु शुद्धिर्जन्मनि कीर्तिता ॥ प्रथमे दिवसे षष्ठे दशमे चैव सर्वदा । त्रिष्वेतेषु न कुर्वीत सूतकं पुत्रजन्मनि ॥' इति ।

२. अपरार्क में पुलस्त्य के वचन से प्राणायाम मन्त्र पढ़कर करे—'सन्ध्यामिष्टिं चरुं होमं यावज्जीवं समाचरेत् । न त्यजेत्सूतके वापि त्यजन् गच्छेदधो द्विजः ॥ सूतके मृतके चैव सन्ध्याकर्म समाचरेत् । मनसोच्चारयेन्मन्त्रान् प्राणायाममृते द्विजः ॥' इति ।

गायत्रीं सम्यगुच्चार्य सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत् ।
उपस्थानं नैव कार्यं मार्जनं तु कृताकृतम् ॥

सूर्यं ध्यायन्नमस्कुर्यात् । गायत्रीजपो न कार्यः । 'अर्घ्यान्ता मानसी संध्ये-त्युक्तेः[1] । केचिन्मनसा दशगायत्रीजपः कार्यं इत्याहुः । वैश्वदेवब्रह्मयज्ञादयः पञ्च महायज्ञा न कार्याः । वेदाभ्यासो न कार्यः । औपासनहोमपिण्डपितृयज्ञावसगोत्रेण कारयेत् ।

जननाशौच और मरणाशौच में विना मन्त्र के प्राणायाम करे तथा मार्जन के मन्त्रों का म से उच्चारण करके मार्जन करे । गायत्रीमन्त्र सम्यक् उच्चारण करके सूर्य को अर्घ्य देवे । सूर्योपस्थान करे । मार्जन तो करे, अथवा न करे । सूर्य का ध्यान करते हुए उनको नमस्कार करे । गायत्री का जप न करे, क्योंकि अर्घ्यान्त मानसिक सन्ध्या करे ऐसा वचन है । कुछ लोग मन से द९ बार गायत्री का जप करना चाहिये, ऐसा कहते हैं । बलिवैश्वदेव ब्रह्मयज्ञ आदि महायज्ञ न करे । वेदाभ्यास नहीं करे । औपासन होम और पिण्डपितृयज्ञ, दूसरे गोत्र से करावे ।

केचिच्छ्रौतकर्मणि सद्यः शुद्धयुक्तेरग्निहोमः स्नात्वाचम्य स्वयं कार्यं इत्याहुः । अपरे तु सर्वस्याप्याशौचापवादस्यानन्यगतिकत्वात्सति ब्राह्मणे ब्राह्मण-द्वारैव कार्यः, ब्राह्मणाभावे स्वयं कार्यं इत्याहुः । स्थालीपाको न कार्यः । आशौ-चान्ते कार्यः । सर्वथा लोपप्रसक्तौ स्थालीपाकोपि ब्राह्मणद्वारा कार्यः ।

कुछ लोग श्रौत कर्म में सद्यः शुद्धि के कहने से अग्निहोत्र का होम स्नान और आचमन स्वयं करे, ऐसा कहते हैं । दूसरे लोग तो सभी आशौचापवाद के अनन्यगतिक होने से ब्राह्मण के रहने पर ब्राह्मण द्वारा ही करावे ब्राह्मण के नही रहने पर स्वयं करे, ऐसा कहते हैं । स्थालीपाक न करे । आशौच के अन्त में करे । सब प्रकार से लोप की प्रसक्ति में स्थालीपाक भी ब्राह्मण के द्वारा करावे ।

अन्वाधानोत्तरं सूतकप्राप्तौ ब्राह्मणद्वारा श्रौतेष्टिस्थालीपाकौ होमादौ त्यागः स्नात्वा स्वयं कार्यः । दर्शादिश्राद्धस्य लोप एव । प्रतिसांवत्सरिकं श्राद्धमाशौ-चान्ते एकादशाहे कार्यम् । तत्रासंभवे दर्शव्यतीपातादिपर्वणि । एवं पत्न्यामृतुम-त्यामपि पिण्डयज्ञदर्शश्राद्धे कार्ये । अन्वाधानोत्तरं रजोदोषे इष्टिस्थालीपाकौ कार्यौ । अन्यथा कालान्तरे दानप्रतिग्रहाध्ययनानि वर्ज्यानि । आशौचेऽन्यस्यान्नं नाश्नीयात् ।

अन्वाधान के बाद सूतक होने पर ब्राह्मण के द्वारा श्रौतेष्टि और स्थालीपाक करे । होम आदि में आहुतित्याग स्नान करके स्वयं करे । दर्श आदि श्राद्ध का लोप ही होता है । प्रतिसांवत्सरिक श्राद्ध आशौच के अन्त में ग्यारहवें दिन करे । उसमें न होने पर दर्श व्यतीपात आदि पर्व में करे । एवं स्त्री के रजस्वला अवस्था में भी पिण्डयज्ञ और दर्शश्राद्ध करना चाहिये । अन्वाधान के बाद स्त्री के रजस्वला अवस्था में भी पिण्डयज्ञ और दर्श श्राद्ध करना चाहिये । अन्वाधान के बाद स्त्री के रजस्वला होने पर इष्टि और स्थालीपाक करे । नहीं तो दूसरे समय में करना चाहिये । दान, प्रतिग्रह और अध्य-यन का वर्जन करे । आशौच में दूसरे का अन्न न खाय ।

---

१. च्यवन ने कहा है—'अर्घ्यान्ता मानसी सन्ध्या कुशवारिविवर्जिता ।' इति ।

पितृयज्ञस्थालीपाकश्रवणाकर्मादिसंस्थानां प्रथमारम्भो ब्राह्मणद्वाराप्याशौच-योर्न भवति। प्रथमारम्भोत्तरं श्रवणाकर्मादिकं विप्रद्वाराऽऽशौचेपि पत्न्यार्तवेऽपि कार्यम्। आग्रयणं तु न भवति। अग्निसमारोपप्रत्यवरोहौ आशौचे न भवतः। तेन समारोपोत्तरमाशौचे तैत्तिरीयाणां त्रिदिनं होमलोपे बह्वृचादीनां द्वादशदिनं होमलोपेऽग्निनाशादाशौचान्ते श्रौतस्मार्तयोः पुनराधानमेव, समारोपप्रत्यवरोहयो-रन्यकर्तृकत्वाभावात्। अग्न्यनुगमे प्रायश्चित्तपूर्वकपुनरुत्पत्तिरन्यद्वारा भवति।

पितृयज्ञ, स्थालीपाक, श्रवणाकर्म आदि संस्थानों का पहिला आरंभ ब्राह्मण के द्वारा भी जनन-मरणाशौच में नहीं होता। प्रथमारंभ के बाद श्रवणाकर्म आदि ब्राह्मणके द्वारा आशौच तथा पत्नी के रजस्वला में भी करना चाहिये। आग्रयण तो नहीं होता। अग्नि का समारोप और प्रत्यवरोह आशौच में नहीं होता। इससे समारोप के बाद आशौच में तैत्तिरीयों को तीन दिन का होम-लोप होने और बह्वृचादि को बारह दिन का होम-लोप होने पर अग्नि के नाश से आशौच के अन्त में श्रौत स्मार्त का पुनः आधान ही होता है, क्योंकि समारोप और प्रत्यवरोह का दूसरे कर्ता के न होने पर अग्नि के अनुगमन में प्रायश्चित्तपूर्वक फिर से अग्नि की उत्पत्ति दूसरे के द्वारा होती है।

अथ भोजनकाले सूतकप्राप्तौ निर्णयः

भोजनकाले[1] आशौचप्राप्तौ मुखस्थं ग्रासं त्यक्त्वा स्नायात्। तद्ग्रासभक्षणे एकोपवासः। सर्वान्नभक्षणे त्रिरात्रोपवासः। 'सूतके मृतके चैव न दोषो राहुदर्शने' इत्युक्तेर्ग्रहणे स्नात्वा श्राद्धदानजपादिकमाशौचेपि कार्यम्। एवं संक्रान्तिस्नानदा-नादिकमपि। संकटे नान्दीश्राद्धोत्तरं मौञ्जीविवाहयोर्नाशौचम्[2]। संकटे मधुपर्को-त्तरमृत्विजां नाशौचम्। यजमानस्य दीक्षणीयोत्तरं प्रागवभृथान्नाशौचम्[3]। अव-भृथमाशौचोत्तरं कार्यम्।

भोजन करते हुए आशौच होने पर मुख का ग्रास त्याग कर स्नान करे। उस ग्रास को खा लेने पर एक उपवास करना पड़ता है। सम्पूर्ण अन्न खाने पर तीन रात का उपवास करना चाहिये। जननाशौच मरणाशौच में ग्रहण का दोष नहीं लगता इस वचन से ग्रहण में स्नान कर श्राद्ध दान और जप आदि आशौच में भी करे। इसी प्रकार संक्रान्ति का स्नान और दान भी करे। संकटकाल में नान्दीश्राद्ध के बाद यज्ञोपवीत और विवाह में आशौच नहीं होता। संकट में मधुपर्क के बाद ऋत्विजों को आशौच नहीं लगता। यजमान को दीक्षा लेने के बाद अवभृथस्नान के पहले तक आशौच नहीं होता। अवभृथस्नान आशौच के बाद करना चाहिये।

---

१. वृद्धशातातपः—'यदा भोजनकाले तु अशुचिर्भवति द्विजः। भूमौ निक्षिप्य तं ग्रासं स्नात्वा विप्रो विशुद्धयति॥ भक्षयित्वा तु तं ग्रासमहोरात्रेण शुद्धयति। अशित्वा सर्वमेवान्नं त्रिरात्रेण विशुद्धयति॥' इति।

२. लघुविष्णुः—'व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमेऽर्चने जपे। आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम्॥ प्रारम्भो वरणं यज्ञे संकल्पो व्रतसत्रयोः। नान्दीश्राद्धं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरि-क्रिया॥' इति।

३. ब्रह्मपुराणे—'तद्वद् गृहीतदीक्षस्य त्रैविद्यस्य महामखे। स्नानं त्ववभृथे यावत्तावत्तस्य न सूतकम्॥' इति।

अथ व्रतादिषु आशौचापवादः

व्रतेषु नाशौचमित्युक्तेरनन्तव्रतादिकमन्यैः[1] कारयेत्। प्रारब्धान्नसत्रस्यान्नदानादिषु नाशौचम्। पूर्वसंकल्पितान्नेषु न दोषः परिकीर्तितः।' उदकदुग्धदधिघृतलवणफलमूलभर्जिताद्यन्नानां सूतकिगृहस्थितानां स्वयं ग्रहणे दोषाभावः। सूतकिहस्तात्तु न ग्राह्यम्। केचित्तण्डुलादिकमपक्वमन्नं ग्राह्यमाहुः। इति संक्षेपेण निर्णयो विशेषस्तु वक्ष्यते।

व्रतों में आशौच नहीं होता इस कथन से अनन्तव्रत आदि को दूसरे से करावे। पहले से प्रारंभ किये हुए अन्न-सत्र का अन्नदान आदि में आशौच नहीं होता। पहले के संकल्प किये हुये अन्नों में दोष नहीं होता। आशौच वाले को घर में रखे हुए जल, दूध, दही, घी, नमक, फल, मूल और भुजाये हुए अन्न आदि का अपने से ग्रहण करने में दोष नहीं है। आशौची के हाथ से तो ग्रहण न करे। कोई लोग विना पके चावल आदि अन्न को ग्राह्य कहते हैं। यह संक्षेप से निर्णय है विशेष तो आगे कहेंगे।

अथ सूतिकाशुद्धिः

[2]दशाहान्ते सूतिकाया अस्पृश्यत्वनिवृत्तिर्नामकर्मजातकर्मादिप्राप्तकर्माधिकारश्च। जातेष्टिविवाहोपनयनादिकर्मसु तु पुत्रप्रसूनां विंशतिरात्रान्तेऽधिकारः। कन्याप्रसूनां मासान्तेऽधिकारः।

दस दिन के अन्त में प्रसूति की अस्पृश्यत्व-निवृत्ति और नामकरण, जातकर्म आदि का अधिकार भी प्राप्त हो जाता है। जातेष्टि, विवाह और उपनयन आदि कर्म में तो पुत्र उत्पन्न करने वाली का बीस रात के बाद अधिकार होता है। कन्या पैदा करने वाली को एक माह के बाद अधिकार होता है।

अथ जन्मनि दुष्टकालशान्तिनिर्णयः

अथ जन्मनि [3]दुष्टकालास्तच्छान्तयश्च निर्णीयन्ते—तत्रादौ गोप्रसवः। यत्र जन्मकाले पितुर्मातुः सुतस्य चारिष्टमुक्तं तत्र गोप्रसवशान्तिस्तत्तन्नक्षत्रादिशान्तिश्च

---

१. निर्णयामृते—'भार्या पत्युर्व्रतं कुर्याद् भार्यायाश्च पतिर्व्रतम्। असामर्थ्ये परस्ताभ्यां व्रतभङ्गो न जायते ॥' स्कान्दे—'पुत्रं वा विनयोपेतं भगिनीं भ्रातरं तथा। एषामभाव एवान्यं ब्राह्मणं वा नियोजयेत् ॥' इति।

२. मनुः—'माता शुद्ध्येद्दशाहेन उपस्पृश्य पिता शुचिः।' सूतिकास्नानमुहूर्तः—'करेन्द्रभाग्यानिलवासवान्त्यमैत्रेन्दवाश्विध्रुवभेऽह्नि पुंसाम्। तिथावरिक्ते शुभमामनन्ति प्रसूतिकास्नानविधिं मुनीन्द्राः ॥' अर्थात् हस्त ज्येष्ठा पूर्वाफाल्गुनी स्वाती धनिष्ठा रेवती अनुराधा मृगशिरा अश्विनी रोहिणी तीनों उत्तरा इन नक्षत्रों तथा रिक्ता भिन्न तिथियों में सूतिकास्नान शुभदायक है। स्नान में त्याज्य नक्षत्र—'पुनर्वसुद्वयं चित्रा विशाखा भरणीद्वयम्। मूलमार्द्रा मघा हेया श्रवणो दशमस्तथा ॥' इति।

३. दुष्टकालाः गण्डान्तः, स त्रिविधः। तदुक्तं—'गण्डान्तस्त्रिविधो ज्ञेयो नक्षत्रतिथिलग्नगः। नवपञ्चचतुर्थान्ये द्वयेकार्द्धात्परतोग्रगाः। अस्यार्थः—अश्विनीतो नवममाश्लेषा ततो ज्येष्ठा रेवती तदन्त्ये घटिके परतो दशमं मघा ततो मूलं ततोऽश्विनी तदादौ घटिके। एवं चतुर्धस्यो गण्डान्तः। एवं प्रतिपत्प्रभृतिपञ्चमान्ते षष्ठादौ चैकघटिका तिथिगण्डान्तः। एवं मेषप्रभृतिचतुर्थान्ते पञ्चमादौ च अर्द्धार्द्धघटिका लग्नगण्डान्तः।

कार्या। धनाद्यरिष्टेषु न कार्या। मूलाश्लेषाज्येष्ठामघानक्षत्रेषु जनने चतुर्थपादादिषु पित्राद्यरिष्टाभावेपि गोप्रसवः। अश्विनीरेवतीपुष्यचित्रासु नक्षत्रशान्त्यभावेपि गोप्रसवशान्तिरेव कार्या। तत्र 'अस्य शिशोरमुकदुष्टकालोत्पत्तिसूचितारिष्टनिवृत्त्यर्थं गोमुखप्रसवशान्तिं करिष्ये' इति संकल्प्य गणेशपूजनमात्रं[1] कृत्वा अङ्गादङ्गादिति मन्त्रेण शिशुमूर्धावघ्राणान्ते प्रयोगमध्य एव पुण्याहवाचनमिति कौस्तुभमयूखौ।

जन्मकाल में दुष्ट काल और उसकी शान्ति का निर्णय करते हैं—जहाँ जन्मकाल में पिता माता और पुत्र का अरिष्ट कहा है, वहाँ गोप्रसवशान्ति और उन-उन नक्षत्रों आदि की शान्ति भी करनी चाहिये। धन आदि के अरिष्टों में नहीं करे। मूल, आश्लेषा, ज्येष्ठा और मघा नक्षत्र में जन्म होने से चौथे पाद आदि में पिता आदि को अरिष्ट होने पर गोप्रसवशान्ति करनी चाहिये। अश्विनी, रेवती, पुष्य और चित्रा में नक्षत्र शान्ति न होने पर भी गोप्रसवशान्ति ही करे। उसमें 'इस बालक के अमुक दुष्टकाल में उत्पन्न होने से जो अरिष्ट हो उसकी निवृत्ति के लिये गोमुखप्रसवशान्ति करूँगा' ऐसा संकल्प करके केवल गणेशपूजन करके 'अंगादंगात्' इस मन्त्र से बच्चे के सिर सूंघने के बाद प्रयोग के बीच में ही पुण्याहवाचन करे, ऐसा कौस्तुभ और मयूख में कहा है।

पुण्याहवाचनं शाखोक्तं कृत्वा मूर्धावघ्राणान्ते अस्य गोमुखप्रसवस्य पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्त्वित्येकवाक्यमेव त्रिर्वदेत्। ऋत्विजश्च प्रतिब्रूयुर्न तु शाखोक्तमिति कमलाकरः। नान्दीश्राद्धं न कार्यम्। अग्निप्रतिष्ठान्ते कस्मिंश्चित्पीठे नवग्रहान् अधिदेवतादिरहितान् प्रतिष्ठाप्यान्वाधानं कुर्यात्। आज्यभागान्ते अपः आपोहिष्ठेति त्र्यृचेन अप्सु मे सोम इति गायत्र्या ऋचा च मिलितदधिमध्वाज्येन प्रत्यृचमष्टाष्टसंख्याहुतिभिर्विष्णुं तद्विष्णोरित्यृचा मिलितदधिमध्वाज्येनाष्टाहुतिभिः यक्ष्महणमक्षीभ्यामिति सूक्तेन प्रत्यृचमष्टा-

---

तदुक्तं रत्नमालायाम्—'पौष्णाश्विन्योः सार्पपित्र्यर्क्षयोश्च यच्च ज्येष्ठामूलयोरन्तरालम्। तद्गण्डान्तं स्याच्चतुर्नाडिकं हि यात्राजन्मोद्वाहकालेष्वनिष्टम् ॥' ज्योतिर्निबन्धे—'पूर्णानन्दाख्ययोस्तिथ्योः सन्धिनाडीद्वयं तथा। गण्डान्तं मृत्युदं जन्मयात्रोद्वाहव्रतादिषु ॥ कुलीरसिंहयोः कीटचापयोर्मीनमेषयोः। गण्डान्तमन्तरालं स्याद् घटिकार्धं मृतिप्रदम् ॥'

ज्योतिर्निबन्धे नक्षत्रगण्डान्तमन्यथोक्तम्—'सार्पेन्द्रपौष्णभेष्वन्त्यषडंशांशा भसन्धयः। तदग्रभेष्वाद्यपादा भानां गण्डान्तसंज्ञकाः ॥' षडंशा इत्यत्र षोडशांशा इति पाठान्तरम्।

गण्डान्तफलमुक्तं रत्नसंग्रहे—'सर्वेषां गण्डजातानां परित्यागो विधीयते। वर्जयेद्दर्शनं तेषां तच्च षाण्मासिकं भवेत्। तिथ्यर्क्षगण्डे पितृमातृनाशो लग्ने तु सन्धौ तनयस्य नाशः। सर्वेषु नो जीवति हन्ति बन्धून् जीवन् पुनः स्याद् बहुवारणाश्वः ॥'

उत्तरगार्ग्ये एषां दानमुक्तम्—'तिथिगण्डे त्वनड्वाहं नक्षत्रे धेनुरुच्यते। काञ्चनं लग्नगण्डे तु गण्डदोषो विनश्यति ॥ उत्तरे तिलपात्रं स्यात्पुष्ये गोदानमुच्यते। अजाप्रदानं त्वाष्ट्रे स्यात् पूर्वाषाढे च काञ्चनम् ॥ उत्तरापुष्यचित्रासु पूर्वाषाढोद्भवस्य च। कुर्याच्छान्तिं प्रयत्नेन नक्षत्राकारजं बुधः ॥' इति। गोप्रसवसंक्षिप्तशान्तिविधिः नक्षत्रशान्त्यन्तर्गतमूलशान्तौ वक्ष्यते।

१. गणेशपूजनादि आचार्यवरणान्तं सर्वं कृत्वेत्यर्थः।

ष्टमिलितदधिमध्वाज्याहुतिभिर्नवग्रहान् दधिमध्वाज्येन[1] अष्टाष्टसंख्याहुतिभिः शेषेणेत्यादि मयूखादयः।

अपनी शाखा का कहा हुआ पुण्याहवाचन करके सिर सूंघने के बाद इस गोमुखप्रसव का आप लोग पुण्याह कहें। इस एक वाक्य ही को तीन वार कहे। ऋत्विग् लोग भी पुण्याहं तीन वार कहें। शाखा में कहा हुआ न कहे ऐसा कमलाकर कहते हैं। नान्दीश्राद्ध नहीं करे। अग्नि-स्थापना के बाद किसी पीढ़े पर अधिदेवता आदि से रहित नवग्रहों को स्थापित करके अन्वाधान करे। आज्य-भाग के अन्त में 'आपोहिष्ठा' इन तीन ऋचाओं से 'अप्सु मे सोमः' इस मन्त्र से और गायत्री मन्त्र से दही, मधु और घी की आठ आहुतियों से जल का 'तद्विष्णोः' इस मंत्र से आठ-आठ आहुतियों से विष्णु का 'यक्ष्महणम् अक्षीभ्यां' इस सूक्त की प्रत्येक ऋचाओं से आठ आठ दही मधु घृतादि की आहुतियों से यक्ष्महा का और दही मधु घृत की आठ-आठ आहुतियों से नवग्रहों का होम करे। शेष दध्यादि से स्विष्टकृत् होम करे, ऐसा मयूख आदि में कहता है।

कमलाकरस्तु दधिमध्वाज्येनापश्चतुर्वारं विष्णुं सकृत् यक्ष्महणमक्षीभ्यामिति सूक्तेन प्रत्यृचमष्टाष्टसंख्याहुतिभिर्नवग्रहानेकैकयाहुत्या शेषेण स्विष्टकृतमित्याह। आज्यभागहोमान्ते एकस्मिन्कुम्भे विष्णुवरुणौ प्रतिमयोः संपूज्यौ। प्रतिमासु विष्णुवरुणयक्ष्महणः पूज्या इति मयूखे। ततो यथान्वाधानं होम इति संक्षेपः। अवशिष्टः प्रयोगः शान्तिग्रन्थेषु। एवमग्रेपि देवताद्रव्याहुतिसंख्यानिमित्तफलमात्रं लिख्यते, विस्तरोऽन्यत्र ज्ञेयः।

कमलाकर ने तो दही, मधु, घृत से जल को चार, विष्णु को एक और 'यक्ष्महणमक्षीभ्यां' इस सूक्त की प्रत्येक ऋचा से आठ आठ आहुतियां यक्ष्महा को और एक एक नवग्रहों को दे, बचे हुए से स्विष्टकृत् ऐसा कहा है। आज्यभाग के अन्त में एक कलश में विष्णु और गरुड़ की प्रतिमा की पूजा करे। प्रतिमा में विष्णु, वरुण और यक्ष्महा पूज्य हैं, ऐसा मयूख में कहा है। तदनन्तर अन्वाधान के अनुसार होम करे, यह संक्षेप से कहा है। बाकी प्रयोग शान्तिग्रन्थों से जानें। इसी प्रकार आगे भी देवता, द्रव्य और आहुति की संख्या के निमित्त केवल फल लिखते हैं। विस्तार अन्य ग्रन्थों से जानना चाहिये।

अथ कृष्णचतुर्दशीजननशान्तिः

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां प्रसूतेः षड्विधं फलम्।
चतुर्दशीं च षड्भागां कुर्यादादौ शुभं स्मृतम्॥
द्वितीये पितरं हन्ति तृतीये मातरं तथा।
चतुर्थे मातुलं हन्ति पञ्चमे वंशनाशनम्॥
षष्ठे तु धनहानिः स्यादात्मनो वंशनाशनम्।

तत्र चतुर्दश्याः षडंशानां मध्ये द्वितीयतृतीयषष्ठांशेषु जनने गोमुखप्रसव-पूर्वकं चतुर्दशीशान्तिः। अन्यभागे केवलचतुर्दशीशान्तिः। अस्य शिशोः कृष्ण-चतुर्दश्या अमुकांशजननसूचितसर्वारिष्टनिरासद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थमित्यादि-

१. मात्स्ये—'होमो ग्रहादिपूजायां शतमष्टोत्तरं भवेत्। अष्टाविंशतिरष्टौ वा यथाशक्ति विधीयते॥' इति।

संकल्पः । आग्नेय्यादिचतुर्दिक्षु चत्वारः कुम्भा मध्ये शतच्छिद्रकुम्भे प्रतिमायां रुद्रावाहनम् ।

कृष्णपक्ष की चतुर्दशी में प्रसव होने का फल छ प्रकार का है। चतुर्दशी को छ भाग कर दे। उसमें पहिला भाग शुभ होता है। दूसरे भाग में जन्म होने से पिता को मारता है। तीसरे में माता को, चौथे में मामा को, पाचवें में वंश का नाश, छठे में तो धन की हानि और अपने वंश का नाश कहा है। उसमें चतुर्दशी के छ अंशो में दूसरे तीसरे और छठे अंश में जन्म होने से पहले गोमुख-प्रसवशान्ति करके चतुर्दशी की शान्ति करे। अन्य भागों में केवल चतुर्दशी की शान्ति करे। इस बालक के कृष्ण चतुर्दशी के अमुक अंश में जन्म होने से सूचित सम्पूर्ण अरिष्ट को हटाने के लिये श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं इत्यादि संकल्प करे। आग्नेय आदि चारों दिशाओं में चार कलश स्थापित करे। बीच में सौ छेद वाले कलश में रुद्र की प्रतिमा में आवाहन करे।

मयूखे तु पीठादौ रुद्रप्रतिमां संपूज्य तत्प्राच्यामुदीच्यां वा शतच्छिद्रादि-पञ्चकलशस्थापनं पूजनम्। अन्वाधाने ग्रहानष्टाष्टसंख्यसमिदाज्यचरुभिरधिदेवता-दीन् एकैकसंख्यसमिच्चर्वाज्याहुतिभिः रुद्रम् अश्वत्थप्लक्षपलाशखदिरसमिद्भिश्च-र्वाहुतिभिराज्याहुतिभिर्माषस्तिलैः सर्षपैश्च प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशताष्टाविंशत्यन्यतर-संख्यया त्र्यंबकमिति मन्त्रेण, अग्निं वायुं सूर्यं प्रजापतिं च तिलाहुतिभिरमुकसं-ख्याभिः सकृद्वा व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिः यद्वा प्रजापतिमेव समस्तव्याहृतिभिस्ति-लैः शेषेणेत्यादि ।

मयूख में तो पीढ़े आदि पर रुद्र-प्रतिमा की पूजा कर उससे पूरब या उत्तर दिशा में सौ छेद आदि पांच कलशों की स्थापना और पूजन करे। अन्वाधान में ग्रहों को आठ आठ समिधा और घृत चरु से, अधिदेवता आदि को एक एक समिधा और चरु आज्याहुतियों से, रुद्र को 'त्र्यम्बकं' इस मन्त्र से पीपल, पकड़ो, पलाश और खैर की समिधाओं से और चरु की आहुतियों से घी की आहुतियों से उर्द, तिल और सरसों से प्रत्येक द्रव्य के १०८ या २८ में से किसी एक संख्या से होम करे। अग्नि, वायु, सूर्य और प्रजापति को तिलाहुतियों से व्यस्त समस्त व्याहृतियों से १०८ या २८ आहुति अथवा प्रजापति को ही समस्त व्याहृतियों से तिलों से होम करे शेष से स्विष्टकृत्।

अथ सिनीवालीकुहूजननशान्तिः

तत्रामावास्यायाः प्रथमो यामः सिनीवाली। अन्त्योपान्त्ययामौ कुहूः। मध्यवर्तिपञ्चयामा दर्श इति केचित्। अपरे तु चतुर्दशीमात्रयुतेऽहोरात्रे वर्तमाना अमावास्या सिनीवाली। प्रतिपन्मात्रयुतेऽहोरात्रे वर्तमाना कुहूः। तेनामाया वासरत्रयस्पर्शित्वलक्षणदिनवृद्ध्यभावे सूर्योदयस्पर्शत्वाभावलक्षणक्षयाभावे च दर्शो नास्त्येव। उदयात्पूर्वाहोरात्रे वर्तमानायाः सिनीवालीत्वात्। उदयोत्तरं वर्त-मानायाः कुहूत्वात्। दिनक्षये सर्वाप्यमा दर्शसंज्ञा, न तत्र सिनीवालीकुहूभागौ; केवलचतुर्दशीकेवलप्रतिपद्युक्तत्वाभावात्।

उसमें अमावास्या के प्रथम प्रहर को सिनीवाली कहते हैं। अन्त और अन्त के समीप पहर को कुहू कहते हैं। बीच वाले पांच पहरों को दर्श कहते हैं, यह किसी का कहना है। अन्य लोग तो केवल चतुर्दशीयुक्त अहोरात्र में रहने वाली अमावास्या को सिनीवाली कहते हैं और केवल प्रतिपदा

युक्त अहोरात्र में रहने वाली अमावास्या को सिनीवाली कहते हैं और केवल प्रतिपदायुक्त अहोरात्र में रहने वाली अमावास्या को कुहू कहते हैं। इससे अमावास्या को तीन दिन स्पर्श करने वाली दिन-वृद्धि के अभाव में सूर्योदय को स्पर्श न करने वाली क्षय के अभाव में दर्श नहीं है। उदय से पहिले दिन रात में रहने से सिनीवाली हो जाने और उदय के बाद वर्तमान रहने से कुहू होने के कारण। दिन क्षय में सम्पूर्ण अमावास्या का दर्श नाम है उसमें न सिनीवाली और न कुहू भाग होता है, क्योंकि केवल चतुर्दशी और केवल प्रतिपदा के योग का अभाव है।

एवं दिनवृद्धौ त्रिदिनस्पर्शे मध्यदिनस्था षष्टिनाडीमितामावास्या दर्शसंज्ञा, चतुर्दश्यादियोगाभावात् ; पूर्वोत्तरदिनस्थौ भागौ सिनीवालीकुहूसंज्ञावित्याहुः। इदं मयूखे स्पष्टम्।

सिनीवाल्यां प्रसूता स्याद्यस्य भार्या पशुस्तथा।
गजाश्वा महिषी चैव शक्रस्यापि श्रियं हरेत्॥
गोपक्षिमृगदासीनां प्रसूतिरपि वित्तहृत्।
कुहूप्रसूतिरत्यर्थं सर्वदोषकरी स्मृता॥
यस्य प्रसूतिरेतेषां तस्यायुर्धननाशनम्।
शान्त्यभावेऽर्हति त्यागमत्र जातो न संशयः॥
अत्यागे नाशयेत्किंचित्स्वयं वा नाशमाप्नुयात्।

सिनीवालीजननसूचितेत्यादिः कुहूजननसूचितारिष्टनाशेत्यादिश्च संकल्पः।

इस प्रकार दिनवृद्धि होने पर तीन दिन के स्पर्श होने पर मध्यदिन में रहने वाली साठ घड़ी वाली अमावास्या की दर्श संज्ञा है, चतुर्दशी आदि योग के अभाव से पहले दूसरे दिन के दो भागों को सिनीवाली और कुहू कह चुके हैं, यह मयूख में स्पष्ट किया है। जिसकी स्त्री या पशु सिनी-वाली में प्रसव की हो हथिनी, घोड़ी, भैंस, वह यदि इन्द्र भी हों तो उसकी लक्ष्मी का हरण हो जाता है। गाय, पक्षी और दासी का भी प्रसव धनहरण करने वाला होता है। कुहू अमावास्या का प्रसव अत्यन्त दोषकर कहा है। जिसके हाथी घोड़े आदि ये पशु हैं उस मालिक की आयु धन का नाश होता है। शान्ति न करने पर इसमें उत्पन्न संतति का त्याग कर दे इसमें संशय नहीं है। नहीं त्याग करने पर कुछ नाश करती है या स्वयं नाश हो जाती है। इसमें सिनीवाली-जनन-सूचित इत्यादि तथा कुहू-जनन-सूचितारिष्टनाश इत्यादि संकल्प है।

कुहूजनने गोप्रसवोपीति केचित्। अत्रोभयत्रापि चतुर्दशीशान्तिवच्छतच्छिद्र-कलशसहिताः पञ्चकलशाः। मध्ये रुद्रः प्रधानदेवता इन्द्रः पितरश्च पार्श्वदेवते इति प्रतिमात्रयम्। इन्द्रस्य पितॄणां च प्रधानरुद्रन्यूनसंख्यया प्रधानोक्तसर्वद्रव्यै[१]-र्होमः। अवशिष्टान्वाधानदेवतोहश्चतुर्दशीशान्तिवत्।

कुहू में जन्म लेने पर गोप्रसव भी करे, ऐसा कुछ लोग कहते हैं। इसमें दोनों जगह चतु-र्दशी शान्ति की तरह सौ छेद वाले कलश सहित पांच कलश होते हैं। मध्य में प्रधानदेवता रुद्र, पार्श्वदेवता इन्द्र और पितृगण हैं, इस प्रकार तीन प्रतिमा हैं। इन्द्र और पितरों को भी प्रधानरुद्र की न्यून संख्या से प्रधान के कहे गये सब द्रव्यों से होम करे। अवशिष्ट अन्वाधान के देवता की कल्पना चतुर्दशी शान्ति की तरह करे।

१. कौस्तुभोक्तैः अश्वत्थप्लक्षपालाशखदिरसमिद्भिः आज्यचरुसर्षपतिलमाषैश्च द्रव्यैरित्यर्थः।

अथ दशदानानां नामानि

प्रधानदेवतापूजोत्तरं गोवस्त्रस्वर्णदानानि कृत्वा,
गोभूतिलहिरण्याज्यवासोधान्यगुडानि च ।
रौप्यं लवणमित्येतद्दशदानानि दापयेत् ॥
क्षीराज्यगुडदानं च कृत्वा होमं समारभेत् ।

एतानि दानानि ऋत्विग्भ्यो देयानि । तेनान्ते पृथक् दक्षिणादानं न कार्यम् । अत एवात्र गवादेर्दक्षिणारूपत्वात्सदक्षिणं दानं न भवति । अन्यत्र दशदानादीनां सदक्षिणं दानं कार्यम् ।

प्रधानदेवता की पूजा के बाद गाय, वस्त्र और सुवर्ण दान करके गाय, भूमि, तिल, सुवर्ण, घृत, वस्त्र, धान्य, गुड़, चांदी और लवण,इस प्रकार दश दानों को दे । दूध, घी और गुड़ का दान करके होम प्रारंभ करे । इन दानों को ऋत्विजों को दे । इससे अन्त में अलग दक्षिणा न दे । इसलिये यहाँ गाय आदि का दक्षिणारूप से दक्षिणासहित दान नहीं होता । इससे भिन्न स्थल में दक्षिणा के सहित दस दान देना चाहिये ।

अथ दशदानद्रव्याणां मानम्

अथैतेषां मानम्—भुवो मानं गोचर्म, सप्तहस्तो दण्डः त्रिंशद्दण्डा वर्तनम्, दशवर्तनानि गोचर्म, तिलानां द्रोणः, सुवर्णरजतयोर्दशमाषतदर्धंतदर्धान्यतमम्, आज्यस्य चत्वारिंशत्पलानि, वाससस्त्रिहस्तत्वम्, धान्यस्य पञ्चद्रोणाः। एवं गुडलवणयोः।

अब इन दसों दानों का मान बताते हैं—पृथ्वी का मान गोचर्म है । ७ हाथ का दंड होता है और ३० दण्ड का वर्तन होता है । १० वर्तन का एक गोचर्म है । तिलों का मान द्रोण है, सोने चाँदी का मान १० माशा ५ माशा और २॥ माशा में से कोई एक । घी का ४० पल, वस्त्र ३ हाथ प्रमाण का, धान्य का ५ द्रोण, यही प्रमाण गुड़ और नमक का भी है ।

एतावत्प्रमाणाशक्तौ नित्यनैमित्तिके यथाशक्ति देयानि । यथाशक्ति हिरण्यं वा तत्तत्प्रतिनिधित्वेन हिरण्यगर्भेति मन्त्रेण देयम्, नैमित्तिकादेरकरणे प्रत्यवायात् । अभ्युदयादिफलार्थं तु दशदानानि शक्तिं विना न कार्याणीति भाति । होमान्ते बलिदानाभिषेकादि । इति सिनीवालीकुहूशान्तिः ।

इतने तौल नाप से देने में असमर्थ होने पर नित्य नैमित्तिक कर्म में यथाशक्ति दे । यथाशक्ति सोना या उसके एवज में दूसरी वस्तु 'हिरण्यगर्भ' इत्यादि मन्त्र से दे, क्योंकि नैमित्तिक आदि के न करने पर प्रायश्चित्त होता है । अभ्युदय आदि फल के लिये तो दस दानों को बिना शक्ति के न करे, ऐसा ठीक मालूम होता है । होम के अन्त में बलिदान अभिषेक आदि करे । सिनीवाली कुहू शान्ति समाप्त ।

अथ दर्शशान्तिः

अथातो दर्शजातानां मातापित्रोर्दरिद्रता ।
तद्दोषपरिहारार्थं शान्तिं वक्ष्यामि ते तदा ॥

अस्य० दर्शजननसूचितारिष्टनिरासार्थं शान्तिं करिष्ये इति संकल्पः । स्थ-

ण्डिलात्पूर्वदेशे कलशं प्रतिष्ठाप्य कलशाग्न्योर्मध्ये सर्वतोभद्रपीठे ब्रह्मादिमण्डल-देवता आवाह्य तन्मध्ये स्वर्णप्रतिमायां ये चेहेति मन्त्रेण पितॄनावाहयेत्। तद्द-क्षिणे रजतप्रतिमायामाप्यायस्वेति सोममुत्तरतस्ताम्रप्रतिमायां सवितापश्चाता-दिति सूर्यं चावाह्य संपूज्याग्निं प्रतिष्ठाप्य सर्वतोभद्रैशान्यां ग्रहस्थापनादि।

दर्श में जन्म लेने वाले बालकों के माता पिता को दरिद्रता होती है इस दोष के परिहार के लिये उसकी शान्ति कहेंगे। इसमें संकल्प ऐसा करे—'इस दर्शजनन सूचित अरिष्ट के निरासार्थ शान्ति करूँगा'। स्थंडिल से पूर्व देश में कलश की स्थापना कर कलश अग्नि के बीच से सर्वतोभद्र पीठ में ब्रह्मा आदि मण्डल देवताओं का आवाहन कर उसके बीच में सुवर्ण की प्रतिमा में 'ये चेह' इस मंत्र से पितरों का आवाहन करे। उसके दक्षिण में चांदी की प्रतिमा में 'आप्यायस्व' इस मन्त्र से चन्द्र-मा का आवाहन करे। उससे उत्तर दिशा में ताम्र प्रतिमा में 'सविता पश्चावात्' इस मन्त्र से सूर्य का आवाहन और पूजन करके अग्नि की स्थापना कर सर्वतोभद्र से ईशान दिशा में ग्रहों की स्थापना आदि करे।

अन्वाधाने आदित्यादिग्रहान् अमुकसंख्याभिः समिच्चर्वाज्याहुतिभिः पितॄन्। अष्टाविंशतिसंख्याकाभिः समिच्चरुभ्यां सोमं सूर्यं च प्रत्येकमष्टोत्तरशतसंख्यसमि-च्चर्वाज्याहुतिभिः शेषेण स्विष्टकृतमित्यादि। अत्र स्विष्टकृतः पूर्वं मातापितृशिशूनां कलशोदकेनाभिषेकस्ततः स्विष्टकृद्बलिदानादीति विशेषः। इति दर्शशान्तिः।

अन्वाधान में आदित्यादि ग्रहों को अमुक संख्या की समिधा चरु और आज्याहुतियों से पितरों को २८ संख्यावाली समिधा और चरु से चन्द्रमा और सूर्य प्रत्येक को १०८ संख्या की समिधा और चरु की आहुतियों से बाकी बचे हुए से स्विष्टकृत् इत्यादि करे। यहां पर स्विष्टकृत् के पहले माता पिता और बच्चों का कलश के जल से अभिषेक करे तदनन्तर स्विष्टकृत् और बलिदान आदि करे, इतना विशेष है। दर्शशान्ति समाप्त।

अथ नक्षत्रशान्तिः मूलादिजन्मफलं च

तत्र मूलनक्षत्रफलम्—

पिता म्रियेत मूलाद्ये पादे पुत्रजनिर्यदि।
द्वितीये जननीनाशो धननाशस्तृतीयके॥
चतुर्थे कुलनाशोऽतः शान्तिः कार्या प्रयत्नतः।
क्वचिच्चतुर्थचरणः शुभ उक्तो मनीषिभिः॥
एवं च दुहितुर्ज्ञेयं मूलजातफलं बुधैः।

इसमें मूलनक्षत्र का फल—मूल के प्रथम चरण में यदि पुत्र उत्पन्न हो तो पिता का मरण होता है। दूसरे चरण में माता, तीसरे चरण में धन और चौथे में कुल का नाश होता है इसलिये प्रयत्न पूर्वक शान्ति करनी चाहिये। कहीं मूल के चतुर्थ चरण को पण्डितों ने शुभ कहा है। इसी प्रकार मूलनक्षत्र में उत्पन्न हुई लड़की का फल भी पण्डितों ने कहा है।

केचित्तु—

न कन्या हन्ति मूलर्क्षे पितरं मातरं तथा।
मूलजा श्वशुरं हन्ति श्वश्रूमाश्लेषजा सुता॥

ज्येष्ठायां तु पतिज्येष्ठं विशाखोत्था तु देवरम्।
शान्तिर्वा पुष्कला स्याच्चेत्तर्हि दोषो न विद्यते ॥ इत्याहुः।

कोई तो—मूलनक्षत्र में उत्पन्न हुई कन्या माता और पिता का नाश नहीं करती, श्वशुर का नाश करती है। आश्लेषा में उत्पन्न कन्या सास का नाश करती है। ज्येष्ठा में उत्पन्न कन्या तो पति के जेठे भाई का नाश करती है। विशाखा में उत्पन्न कन्या देवर का नाश करती है। यदि बहुत बड़ी शान्ति की जाय तो दोष नहीं होता, ऐसा कहते हैं।

अभुक्तमूलसंभवं परित्यजेत्तु बालकम्।
समाष्टकं पिताथवा न तन्मुखं विलोकयेत्।
ज्येष्ठान्ते घटिका चैका मूलादौ घटिकाद्वयम्।
अभुक्तमूलमथवा संधिनाडीचतुष्टयम्॥
वृषालिसिंहेषु घटे च मूलं दिवि स्थितं युग्मतुलाङ्गनान्त्ये।
पातालगं मेषधनुःकुलीरनक्रेषु मर्त्येष्विति संस्मरन्ति॥ एतल्लग्नफलम्।

अभुक्तमूल में उत्पन्न बालक का परित्याग कर दे। अथवा पिता उस बालक का मुख ८ वर्ष तक न देखे। ज्येष्ठा के अन्तवाली एक घड़ी, मूल के आदि की दो घड़ी अभुक्तमूल कहलाता है। अथवा दोनों नक्षत्रों के संधि की ४ घड़ी को अभुक्तमूल कहते हैं। वृष, वृश्चिक, सिंह और कुम्भ में मूलनक्षत्र स्वर्ग में रहता है। मिथुन, तुला और कन्या के अन्त में पाताल में रहता है। मेष, धनु, कर्क और मकर में मर्त्यलोक में रहता है, ऐसा लोग कहते हैं। यह लग्न का फल है।

स्वर्गे मूले भवेद्राज्यं पाताले च धनागमः।
मृत्युलोके यदा मूलं तदा शून्यं समादिशेत्॥
नवमासं सार्पदोषो मूलदोषोऽष्टवर्षकम्।
ज्यैष्ठो मासान्पञ्चदश तावद्दर्शनवर्जनम्॥
व्यतीपातेऽङ्गहानिः स्यात्परिघे मृत्युमादिशेत्।
वैधृतौ पितृहानिः स्यान्नष्टेन्दावन्धतां व्रजेत्॥
मूले समूलनाशः स्यात्कुलनाशो धृतौ भवेत्।
विकृताङ्गश्च हीनश्च संध्ययोरुभयोरपि॥
तद्वत्सदन्तजातस्तु पादजातस्तथैव च।
तस्माच्छान्ति प्रकुर्वीत ग्रहाणां क्रूरचेतसाम्॥

व्यतीपातादौ ग्रहमखसहिता तत्तच्छान्तिरवश्यं कार्या। इतरशान्तिषु ग्रहमखो नावश्यक इत्यर्थः।

स्वर्गस्थ मूल में राज्य होता है। पाताल में रहने पर धन की प्राप्ति और मृत्युलोक में जब रहता है तब शून्य फल कहना चाहिये। आश्लेषा का दोष ९ मास, मूल का दोष ८ वर्ष, ज्येष्ठा का दोष १५ महीना तक होता है, तब तक बालक को देखना नहीं चाहिये। व्यतीपात में उत्पन्न बालक की अंग-हानि होती है। परिघ में उत्पन्न का मृत्यु-फल है। वैधृति में पिता की हानि, अमावास्या में अन्धा होता है। मूल में समूल नाश होता है। धृति में कुल का नाश होता है। दोनों

संध्याओं में उत्पन्न बालक विकृतांग और हीनांग होता है। उसी तरह दांत के साथ जन्म लेने वाला पैर की ओर से जन्म लेने वाला बालक अंगहीन होता है। इसलिये क्रूरचित्त वाले ग्रहों की शान्ति करनी चाहिये। व्यतीपात आदि में ग्रहयज्ञ के साथ उन सब की शान्ति अवश्य करे। अन्य शान्तियों में ग्रहयज्ञ आवश्यक नहीं है।

अथ शान्तिकालनिर्णयः

मुख्यकालं प्रवक्ष्यामि शान्तिहोमस्य यत्नतः।
जातस्य द्वादशाहे तु जन्मर्क्षे वा शुभे दिने॥

जननाद् द्वादशाहे शान्तिकरणे शान्त्युक्तनक्षत्राहुतिवह्निचक्रावलोकनादिकं नावश्यकम्। कालान्तरे आवश्यकम्। एवमन्यशान्तिष्वपि ज्ञेयम्।

यत्नपूर्वक शान्ति-होमका मुख्यकाल कहता हूँ। जन्मदिन से बारहवें दिन, जन्मनक्षत्र या शुभ दिन में शान्ति करे। जन्म से बारहवें दिन शान्ति करने में शान्ति में कहे नक्षत्राहुति और अग्नि-चक्र का अवलोकन आदि आवश्यक नहीं है। दूसरे समय में आवश्यक होता है। इसी प्रकार अन्य शान्तियों में भी जानना चाहिये।

अथ अग्निचक्रम्

तद्यथा—

शुक्लादितस्तिथिः सैका वारयुक्ताब्धिशेषिता।
खे गुणे भुवि वासोग्नेर्द्व्येकयोः स्यादधो दिवि॥ भूमावग्निः शुभः।
होमाहुतिः[1] सूर्यभतस्त्रिभं त्रिभं गण्यं मुहुस्तत्र च चन्द्रभावधि।
सूर्यज्ञशुक्रार्कजचन्द्रभूमिजा जीवस्तमः केतुरसत्यसन्मुखे॥

संस्कारनित्यकर्मसु निमित्ताव्यवहितनैमित्तिकेषु रोगातुरे च वह्निचक्रादिकं [2]नापेक्षितम्।

अग्नेः स्थापनवेलायां पूर्णाहुत्यामथापि वा।
आहुतिर्वह्निवासश्च विलोक्यौ शान्तिकर्मणि॥

---

१. सूर्याश्रित-नक्षत्र से चन्द्राश्रित-नक्षत्र-पर्यन्त तीन-तीन नक्षत्र के गिनने पर १, २ और ३ संख्या सूर्यभाग, तदनन्तर नक्षत्रत्रय की ४, ५ और ६ संख्या बुधभाग, पुनः नक्षत्रत्रय की ७,८ और ९ संख्या शुक्रभाग। इसी प्रकार १०, ११, १२ शनिभाग। १३, १४, १५ चन्द्रभाग। १६, १७, १८ भौमभाग। १९, २०, २१ गुरुभाग। २२, २३, २४ राहुभाग। २५, २६, २७ केतु-भाग। इनमें शुभग्रह—बुध, शुक्र, चन्द्र और गुरु के सूर्यनक्षत्र से ४, ५, ६, ७, ८, ९, १३, १४ १५, १९, २०, २१ एतदन्यतम चन्द्रनक्षत्र में होमाहुति शुभ है। अशुभग्रह—सूर्य, शनि, भौम, राहु और केतु के उपर्युक्त नक्षत्र की संख्या में होमाहुति न करे।

२. वह्निवास का अपवाद—'दुर्गाहोमविधौ विवाहसमये सीमन्तपुत्रोत्सवे गर्भाधानविधौ च वास्तुसमये विष्णोः प्रतिष्ठादिषु। मौञ्जीबन्धनवैश्वदेवकरणे संस्कारनैमित्तिके होमे नित्यमवे न दोषकथनं चक्रस्य वह्नेरपि॥' अपि च—'संस्कारेषु विचारोऽस्य न कार्यो नापि वैष्णवे। नित्ये नैमित्तिके कार्यो न चाब्दे मुनिभिः स्मृतः॥' इति। इसी प्रकार जपादि के अंग-होम में भी दिन शोधने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उसका स्वतन्त्रकाल नहीं होता।

वह इस प्रकार है—शुक्लादि तिथि जिसमें एक संख्या और वार का योग करने पर तथा चार से भाग देने पर शून्य एवं तीन शेष रहने पर अग्नि का पृथिवी पर वास होता है। तथा दो शेष रहने पर पाताल में और एक शेष रहने पर स्वर्ग में वास रहता है। भूमि में अग्नि का वास शुभ होता है। होम की आहुति सूर्यनक्षत्र से चन्द्रनक्षत्र तक तीन तीन नक्षत्र गिने। उसमें सूर्यनक्षत्र का आदि नक्षत्रत्रय सूर्य का, उसके बाद का तीन नक्षत्र बुध का। इस प्रकार गणना करने पर शुभग्रह का नक्षत्र होमाहुतिचक्र के मुख में हो तो ठीक है। संस्कार और नित्यकर्म में निमित्त से व्यवधानरहित नैमित्तिकों में और रोग से आतुर में भी अग्निचक्र आदि की अपेक्षा नहीं है। अग्निस्थापन के समय में अथवा पूर्णाहुति में, आहुति और वह्नि का वास शान्ति कर्म में देखना चाहिये।

अथ सर्वशान्त्युपयोगिशुभदिननिर्णयः

त्र्युत्तरारोहिणीश्रवणधनिष्ठाशततारकापुनर्वसुस्वातीमघाश्विनीहस्तपुष्यानुराधारेवतीनक्षत्रेषु गुरुशुक्रास्तमलमासरहिते शुभवारतिथ्यादौ शान्तिः कार्या। निमित्ताव्यवहितनमित्तिके रोगशान्तौ च अस्तादिविचारणा नास्ति। इति प्रसङ्गात्सर्वशान्त्युपयोगिशुभदिननिर्णयः।

तीनों उत्तरा, रोहिणी, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष, पुनर्वसु, स्वाती, मघा, अश्विनी, हस्त, पुष्य, अनुराधा और रेवती नक्षत्रों में बृहस्पति और शुक्र के अस्त में मलमास से रहित शुभवार तिथि आदि में शान्ति करनी चाहिये। निमित्त से व्यवधानरहित नैमित्तिक में और रोग शान्ति में भी अस्त आदि का विचार नहीं करना चाहिये। यह प्रसंग से सब शान्ति का उपयोगी शुभदिन का निर्णय किया।

अथ मूलशान्तिप्रयोगः

अभुक्तमूलोत्पत्तौ वर्षाष्टकं शिशुत्यागस्ततः शान्तिः। तदन्यमूलोत्पत्तौ द्वादशाहे अव्यवहितागामिमूलयुते शुभदिने वान्यत्र शुभदिने वा [1]गोप्रसवशान्तिं कृत्वास्य शिशोर्मूलप्रथमचरणोत्पत्तिसूचितारिष्टनिरासार्थं सग्रहमखां शान्तिं करिष्ये इति संकल्पयेत्। द्वितीयादिपादोत्पत्तौ संकल्पे तथोहः। ब्रह्मसदस्यौ कृताकृतौ। ऋत्विजोऽष्टौ चत्वारो वा। मध्यकलशे स्वर्णप्रतिमायां रुद्रावाहनादि। तस्य चतुर्दिक्षु कुम्भचतुष्टयेऽक्षतपुञ्जेषु वरुणपूजा। यद्वा—

---

१. गणेशपूजनाद्याचार्यवरणानि सर्वाणि कृत्यानि कृत्वा ईशानभागे श्वेतरजोभिः कर्णिकायुतं पद्मं रचयित्वा तत्र व्रीहौ शूर्पं स्थापयित्वा शूर्पे रक्तवस्त्रं प्रसार्य तत्र तिलान् विकीर्य तदुपरि प्राक्शिरसं पश्चिमपादं शिशुं निधाय शिशुसहितं शूर्पं सूत्रेण वेष्टयित्वा गोमुखसान्निध्यं नीत्वा विष्णुर्योनिमिति सूक्तेन शिशुजन्म भावयित्वा पञ्चगव्येन शिशुं स्नापयित्वा गवामङ्गेष्विति मन्त्रेण गोः सर्वाङ्गे वामाङ्गेषु वा स्पर्शं कारयित्वा आचार्यः शिशुं मात्रे दद्यात्।

माता शिशुं गोमुखसमीपे नीत्वा गोपुच्छदेशे पित्रे दद्यात्। तत आचार्यः पितृहस्तेन मात्रे दापयेत्। ततः पिता शिशुं नववस्त्रे संस्थाप्य आच्छादनमपसार्य पुत्रमुखेक्षणं कृत्वा आपोहिष्ठेति त्र्यृचेन पञ्चगव्येन शिशुं प्रोक्षेत्। ततः पिता हस्तद्वयेन परिग्रहपूर्वकं अङ्गादङ्गादिति मन्त्रेण मूर्धनि त्रिरवघ्राय स्वस्थाने पुण्याहवाचनं कृत्वा गोदानं वस्त्रस्वर्णधान्यदानं च कृत्वा होमं कुर्यादिति गोप्रसवशान्तेः संक्षिप्तविधिः। विस्तरेण शान्तिसारादिग्रन्थे द्रष्टव्यः।

अभुक्तमूल में उत्पन्न होने पर ८ वर्ष तक बच्चे का त्याग किया जाता है उसके बाद शान्ति की जाती है। अभुक्तमूल से अतिरिक्त मूल में जन्म लेने पर बारहवें दिन व्यवधान रहित आने वाले मूल से योग होने पर शुभ दिन में या किसी शुभ दिन में गोप्रसवशान्ति करके 'इस बालक का मूल के प्रथम चरण में उत्पन्न होने के कारण अरिष्ट निवारण के लिये ग्रहयज्ञ के साथ शान्ति करूँगा' ऐसा संकल्प करे। दूसरे आदि चरणों में उत्पन्न होने पर वैसा ही संकल्प करे। ब्रह्मा और सदस्य कृताकृत हैं। ऋत्विक् ८ या ४ होने चाहिये। बीच वाले कलश में सुवर्ण की प्रतिमा में रुद्र का आवाहन आदि करे। उसकी चारो दिशाओं के चारो कलशों में अक्षतसमूह पर वरुण की पूजा करे। अथवा—

मध्यकुम्भे प्रतिमायां रुद्रस्तदुत्तरकुम्भे वरुणः पूज्य इति। कुम्भद्वयं रुद्रकुंत्तरतः कुम्भे प्रतिमासु निर्ऋतिमिन्द्रमपश्चावाह्य पद्मस्य चतुर्विंशतिदलेषु उत्तराषाढ़ाद्यनूराधान्तचतुर्विंशतिनक्षत्राणां विश्वेदेवादिचतुर्विंशतिदेवतास्तण्डुलपुञ्जादिष्वावाह्य दिक्षुलोकपालांश्चावाह्य पूजयेत्। अग्निग्रहस्थापनाद्यन्तेऽन्वाधानेऽर्कादिग्रहान् समिच्चर्वाज्याहुतिभिः निर्ऋतिं प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशतसंख्याभिर्घृतमिश्रपायससमिदाज्यचर्वाहुतिभिः। यद्वा—

बीच वाले कलश में प्रतिमा में रुद्र, उसके बाद वाले कुम्भ में वरुण की पूजा करे। रुद्र कुंभ से उत्तर तरफ प्रतिमा में निर्ऋति इन्द्र और वरुण का आवाहन करके कमल के २४दलों पर उत्तराषाढ़ा से लेकर अनुराधा तक २४ नक्षत्रों को और विश्वेदेवा आदि २४ देवताओं को चावल की राशि पर आवाहन कर दिशाओं के लोकपालों का आवाहन करके पूजा करे। अग्नि और ग्रहस्थापन के अन्त में अन्वाधान में सूर्यादि ग्रहों को समिधा और चरु घी की आहुतियों से, निर्ऋति को प्रतिद्रव्य १०८ संख्या घृत मिलित चरु, समिधा घी चरुकी आहुतियों से, अथवा—

पायसेनाष्टोत्तरशतसंख्यया समिदाज्यचरुभिरष्टाविंशतिसंख्यया इन्द्रमपश्च प्रतिद्रव्यमष्टाविंशतिसंख्यया पायससमिदाज्यचर्वाहुतिभिर्विश्वेदेवादिचतुर्विंशतिदेवता अष्टाष्टपायसाहुतिभिः रक्षोहणमग्निं कृणुष्वपाजेति पञ्चदशऋग्भिः प्रत्यृचमष्टाष्टसंख्यकृसराहुतिभिः १२० सवितारं दुर्गां त्र्यंबकं कवीन् दुर्गां वास्तोष्पतिमग्निं क्षेत्रपालं मित्रावरुणावग्निं चाष्टाष्टकृसराहुतिभिः श्रियं हिरण्यवर्णामिति पञ्चदशऋग्भिः प्रत्यृचमष्टाष्टसमिदाज्यचर्वाहुतिभिः सोमं त्रयोदशपायसाहुतिभिः रुद्रं स्वराजं चतुर्गृहीताज्येनाग्निं वायुं सूर्यं प्रजापतिं चाज्येन शेषेण स्विष्टकृतमित्यादि। कवीनित्यत्र ऋत्विक्स्तुतिमित्युद्देशो मयूखादौ।

चरु से १०८ संख्या से, समिधा घी और चरु से २८ संख्या से, विश्वेदेवा आदि २४ देवताओं को आठ आठ खीर की आहुतियों से 'रक्षोहणं' 'अग्निं' 'कृणुष्वपाज' इन पन्द्रह ऋचाओं से प्रत्येक ऋचाओं से आठ आठ खिचड़ी की आहुति दे। सूर्य, दुर्गा, त्र्यम्बक, शुक्र, दुर्गा, इन्द्र, अग्नि, क्षेत्रपाल, मित्रावरुण और अग्नि को आठ आठ खिचड़ी की आहुतियों से तथा लक्ष्मी

---

१. याज्ञवल्क्यः—'एकैकस्यात्राष्टशतमष्टाविंशतिरेव वा। होतव्यां मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना क्षीरेण वा युताः॥' मात्स्ये—'होमो ग्रहादिपूजायां शतमष्टोत्तरं भवेत्। अष्टाविंशतिरष्टौ वा यथाशक्ति विधीयते॥' इति।

को 'हिरण्यवर्णा' इन पन्द्रह ऋचाओं से प्रत्येक ऋचा से आठ आठ समिधा घी और चरु की आहुतियों से चन्द्रमा को १३ खीर की आहुतियों से, रुद्र और स्वराज को चार बार ग्रहण किये घी से, अग्नि, वायु, सूर्य, और प्रजापति को घी से आहुति दे और बचे हुए से स्विष्टकृत् आदि करे। कवीन् जो पद है वह ऋत्विक्-स्तुति के उद्देश्य से है, ऐसा मयूख आदि में कहा है।

शूर्पत्रये निर्वापः। तत्र प्रथमे शूर्पे पायसार्थं तूष्णीं द्वादशमुष्टीन्निर्ऋतिमिन्द्रमपश्चोद्दिश्य निरुप्य द्वितीये चर्वर्थं तदेव त्रयमुद्दिश्य द्वादशमुष्टीन् पुनः प्रथमे षण्णवतिमुष्टीन् पायसार्थं तृतीये शूर्पे कृसरार्थं चतुश्चत्वारिंशन्मुष्टीन् द्वितीये पुनश्चतुरो मुष्टीन् प्रथमे पुनः सोमार्थं चतुर्मुष्टीन्निरुप्य ततः शूर्पत्रये आहुतिपर्याप्ततण्डुलान् गृहीत्वा निर्वापसंख्यया प्रोक्ष्यपात्रत्रये हविस्त्रयं श्रपयेत्।

तीन सूप में निर्वाप करे। पहिले सूप में पायस के लिये चुपचाप १२ मुट्ठी निर्ऋति, इन्द्र और जल के उद्देश्य से रखकर, दूसरे सूप में चरु के लिये पूर्वोक्त तीन के उद्देश्य से १२ मुट्ठी रखे फिर पहले सूप में ९६ मुट्ठियों को पायस के लिये और तीसरे सूप में खिचड़ी के लिये ४४ मुट्ठी रखे। दूसरे सूप में फिर ४ मुट्ठी रखे। पुनः पहिले सूप में चन्द्रमा के लिये ४ मुट्ठी रखकर तीनों सूप में से आहुति के लिये पर्याप्त चावल लेकर निर्वाप की संख्या के अनुसार प्रोक्षण करके ३ पात्र में तीनों हविष्य पकावे।

तिलमिश्रतण्डुलपाकेन 'कृसरो भवति ग्रहार्थं गृहसिद्धान्नं ग्राह्यम्। सर्वग्रन्थेषु निर्ऋत्याद्यर्थं निर्वापादिक्रमेण श्रपणमेवोक्तम्। अतो गृहसिद्धान्न एव तिलदुग्धमिश्रणेन कृसरादिसंपादनं प्रमादालस्यादिकृतकर्मभ्रंश एव। ततो होमकाले यजमानस्त्यागं कुर्यात्। तत्र एतावत्संख्याहुतिपर्याप्तं समिदाज्यचरुद्रव्यमादित्यादिनवग्रहेभ्यो न मम। एवमधिदेवतादिभ्यः।

तिल मिले हुए चावल को पका देने से कृसर (खिचड़ी) होता है। ग्रहों के लिये घर का बना हुआ अन्न ग्राह्य है। सब ग्रन्थों में निर्ऋति आदि के लिये निर्वाप आदि क्रम से पकाना ही कहा है। इसलिये घर के बनाये हुए अन्न ही में तिल दूध मिलाने से कृसर आदि सम्पन्न होता है, यह प्रमाद और आलस्य के कारण कर्म का भ्रंश ही है। तदनन्तर होम के समय यजमान त्याग करे। उसमें इतनी संख्या को आहुति के लिये पर्याप्त समिधा, घी और चरु द्रव्य आदित्यादि नवग्रहों के लिये है मेरा नहीं। इसी प्रकार अधिदेवता आदि को भी।

ततोऽष्टोत्तरशतसंख्याहुतिपर्याप्तं घृतमिश्रपायसमष्टोत्तरशताहुतीनामष्टाविंशत्याहुतीनां वा पर्याप्तं समिदाज्यचर्वात्मकद्रव्यत्रयमिदं निर्ऋतये न मम। अष्टाविंशत्याहुतिपर्याप्तं पायससमिच्चर्वाज्यमिन्द्राय न मम। एवमद्भ्यः अष्टाष्टाहुतिपर्याप्तं पायसं विश्वेभ्यो देवेभ्यो० १ विष्णवे २ वसुभ्यो ३ वरुणाय ४ अजायैकपदे ५ अहये बुध्न्याय ६ पूष्णे ७ अश्विभ्यां ८ यमाय ९ अग्नये १० प्रजापतये ११ सोमाय १२ रुद्राय १३ अदित्यै १४ बृहस्पतये १५ सर्पेभ्यः १६ पितृभ्यः १७

१. अन्यत्र—'ओदनस्तिलमिश्रस्तु कृसरः परिकीर्तितः। तिलकल्कान् विनिक्षिप्य शृतो वा कृसरो भवेत्॥' अथवा—'तिलतण्डुलसम्मिश्रः कृसरः सोऽभिधीयते।' दानसंग्रहे तु—'तण्डुलमुद्गसहितः कृसरः' इति।

भगाय १८ अर्यम्णे १९ सवित्रे २० त्वष्ट्रे २१ वायवे २२ इन्द्राग्निभ्यां २३ मित्राय २४ न मम

तदनन्तर १०८ आहुति के लिये पर्याप्त घी मिली हुई खीर और १०८ या २८ आहुति के लिये पर्याप्त समिधा, घी और चरुद्रव्य तीनों निर्ऋति के लिये है मेरा नहीं। २८ आहुति के लिये पर्याप्त खीर समिधा चरु और घी इन्द्र के लिये है मेरा नहीं। इसी प्रकार जल के लिये भी आहुति त्याग करें। आठ आठ आहुति के लिये पर्याप्त खीर विश्वेदेव के लिये है मेरा नहीं। विष्णु के लिये वसु के लिये, वरुण के लिये, अजैकपाद के लिये, अहिर्बुध्न्य के लिये, पूषा के लिये, अश्विनी कुमार के लिये, यम के लिये, अग्नि के लिये, प्रजापति के लिये, सोम के लिये, रुद्र के लिये, अदिति के लिये, बृहस्पति के लिये, सर्पों के लिये, पितरों के लिये, भग के लिये, अर्यमा के लिये, सविता के लिये, त्वष्टा के लिये, वायु के लिये, इन्द्राग्नि के लिये और मित्र के लिये है मेरा नहीं।

विंशत्यधिकशताहुतिपर्याप्तं कृसरं रक्षोऽग्नये न मम। अष्टाष्टाहुतिपर्याप्तं कृसरं सवित्रे दुर्गायै त्र्यम्बकाय कविभ्यो दुर्गायै वास्तोष्पतयेऽग्नये क्षेत्रपालाय मित्रावरुणाभ्यामग्नये च न मम। प्रतिद्रव्यं विंशत्यधिकशताहुतिपर्याप्तानि समिच्चर्वाज्यानि श्रियै न मम। त्रयोदशाहुतिपर्याप्तं पायसं सोमाय, चतुर्गृहीताज्यं रुद्राय स्वराजे, एकैकाहुतिपर्याप्तमाज्यमग्नये वायवे सूर्याय प्रजापतये च न मम। एवं सविस्तरं तत्तद् द्रव्यसंख्यादेवतोच्चारेण त्यागः सर्वत्र ज्ञेयः।

१२० आहुति के लिये पर्याप्त कृसर रक्षोहण अग्नि के लिये है मेरा नहीं। आठ-आठ आहुति के लिये पर्याप्त कृसर सविता, दुर्गा, त्र्यम्बक, कवि, दुर्गा, इन्द्र, अग्नि, क्षेत्रपाल, मित्रावरुण और अग्नि के लिये है मेरा नहीं। १३ आहुति के लिये पर्याप्त पायस सोम के लिये, ४ बार गृहीत घृत स्वराज रुद्र के लिये है। एक एक आहुति का पर्याप्त घृत अग्नि, वायु, सूर्य और प्रजापति के लिये है, मेरा नहीं। इसी प्रकार विस्तार के सहित उन-उन द्रव्यों की संख्या देवता के उच्चारण से त्याग करना सर्वत्र जानना चाहिये।

केचित्तु इदमुपकल्पितमन्वाधानोक्तद्रव्यजातमन्वाधानोक्ताहुतिसंख्यापर्याप्तमन्वाधानोक्ताभ्यो यक्ष्यमाणाभ्यो देवताभ्यो न ममेति संक्षेपेण त्यागं कुर्वन्ति। ततो ग्रहमन्त्रैर्निर्ऋत्यादिमन्त्रैश्च यथायथं होमान्ते ग्रहपूजास्विष्टकृन्नवाहुतिबलिदानपूर्णाहुतिपूर्णपात्रविमोकादिवह्निपूजान्ते यजमानाद्यभिषेके कृते धृतशुक्लवस्त्रगन्धो यजमानो मानस्तोक इति विभूतिं धृत्वा मुख्यदेवतापूजनविसर्जनश्रेयोग्रहणदक्षिणादानानि कुर्यात्। शतं तदर्धं दश वा ब्राह्मणान् भोजयेदिति संक्षेपः।

कुछ लोग तो यह उपकल्पित अन्वाधान में कहा हुआ द्रव्यसमूह अन्वाधान में कही हुई आहुति संख्या के लिये पर्याप्त अन्वाधान में कहे हुए देवताओं के लिये है, मेरा नहीं। इस प्रकार संक्षेप से त्याग करते हैं। तदनन्तर ग्रहों के मन्त्रों से निर्ऋत्यादि के मन्त्रों से भी यथायथ (जैसे-जैसे) होम के अन्त में ग्रहपूजा, स्विष्टकृत्, नवाहुति, बलिदान, पूर्णाहुति, पूर्ण पात्र का दान, आदि अग्नि पूजा के अन्त में यजमान आदि के अभिषेक करने पर यजमान सफेद वस्त्र पहन गन्धधारण कर 'मानस्तोक' इस मन्त्र से विभूति धारण कर मुख्यदेवता का पूजन, विसर्जन, श्रेयोग्रहण और दक्षिणादान करे। १०० या ५० या १० ब्राह्मणों को भोजन करावे। यह संक्षेप से कहा है।

अथाश्लेषाशान्तिः

तत्राश्लेषाफलम्[१]—आश्लेषायाः क्रमेण पञ्चसप्तद्वित्रिचतुरष्टैकादशषण्णवपञ्चे-ति दशधा विभक्तनाडीषु क्रमेण राज्यंपितृनाशो मातृनाशः कामभोगः पितृभक्तिर्बलं हिंसकत्वं त्यागो भोगो धनमिति फलानि। अथ पादविभागेन फलम्—तत्राद्य-पादः शुभः। द्वितीये पादे धनस्य नाशः। तृतीये मातुः चतुर्थे पितुः। आश्लेषान्त्य-पादत्रयजाता कन्या श्वश्रूं हन्ति। एवं वरोपि अन्त्यपादत्रयजः स्वश्वश्रूं हन्ति।

आश्लेषासर्वपादेषु शान्तिः कार्या प्रयत्नतः।
जातस्य द्वादशाहे तु शान्तिकर्म समाचरेत्॥
असंभवे तु जन्मर्क्षे अन्यस्मिन्वा शुभे दिने।

उसमें आश्लेषा का फल यह है—आश्लेषा को क्रम से पांच, सात, दो, तीन, चार, आठ, ग्यारह, छ, नव और पाँच इस प्रकार दस प्रकार से विभक्त घटी में क्रम से राज्य, पितृमरण, कालभोग, पितृभक्ति, बल, हिंसकत्व, त्याग, भोग और धन, ये फल हैं। चरण विभाग से आश्लेषा का फल—उसमें पहिला पाद शुभ है। दूसरे चरण में धन का नाश होता है। तीसरे में माता का और चौथे में पिता का नाश होता है। आश्लेषा के अन्त के तीन चरणों में उत्पन्न कन्या सास का नाश करती है। इसी प्रकार अन्त के तीन चरणों में वर भी अपनी सास का नाश करता है। आश्लेषा के सम्पूर्ण चरणों की शान्ति करनी चाहिये। उत्पन्न बालक का शान्ति-कर्म बारहवें दिन करे। यह न हो सकने पर जन्मनक्षत्र या दूसरे शुभ दिन में करे।

अथोक्तकाले गोमुखप्रसवं कृत्वा अस्य शिशोराश्लेषाजननसूचितसर्वारिष्टप-रिहारेत्यादि संकल्पं कृत्वा मूलशान्तिवत्कुम्भद्वये रुद्रवरुणौ द्वौ संपूज्य चतुर्विंश-तिदलपद्मस्थकुम्भे प्रतिमायामाश्लेषाधिपतीन् सर्पानावाह्य तद्दक्षिणे पुष्यदेवतां बृहस्पतिमुत्तरतो मघादेवतां पितॄंश्चावाह्य दलेषु पूर्वदलमारभ्य प्रादक्षिण्येन पूर्वाधिपतिभगादि पुनर्वसुदेवतादितिपर्यन्तचतुर्विंशतिदेवतावाहनादि कुर्यात्।

उक्त काल में गोमुखप्रसव करके इस बालक के आश्लेषा में जन्म से विहित सब अरिष्टों के परिहार के लिये संकल्प करके मूलशान्ति की तरह दो कलशों में रुद्र और वरुण की पूजा कर २४ दल वाले कमल-स्थित कलश पर प्रतिमा में आश्लेषा के अधिपति सांपों का आवाहन कर उसके दक्षिण में पुष्य-देवता और बृहस्पति का उससे उत्तर की ओर मघादेवता और पितरों का भी आवाहन कर बाहर के दलों में पूर्व के कमल-दलों को प्रारंभ कर प्रदक्षिण क्रम से पूर्व के अधिपति भग आदि पुनर्वसुदेवता अदिति तक २४ देवता का आवाहन आदि करे।

कौस्तुभे तु—तैत्तिरीयकमन्त्रैः पुष्यमघापूर्वादिनक्षत्राणामावाहनमुक्तं न तु नक्षत्रदेवतानाम्। ततो लोकपालानावाह्यावाहितसर्वदेवताः संपूज्याग्निं ग्रहांश्च प्रतिष्ठाप्यान्वादध्यात्। आदित्यादिग्रहाद्युद्देशान्ते प्रधानदेवताः सर्पान् प्रतिद्रव्य-

---

१. शान्तिसारे—'मूर्धास्यनेत्रगलकर्णयुतं च बाहू हृज्जानुगुह्यपदमित्यहिदेहभागाः। बाणा-द्रिनेत्रहुतभुक्श्रुतिनागरुद्रषण्नन्दपञ्चशिरसः क्रमशस्तु नाड्यः॥ राज्यं पितृक्षयो मातृनाशः काम-क्रिया रतिः। पितृभक्तो बली स्वघ्नस्त्यागी भोगी धनी क्रमात्॥' इति।

मष्टोत्तरशतसंख्यमष्टाविंशतिसंख्यं वा घृतमिश्रपायससमिदाज्यचर्वाहुतिभिः बृहस्पतिं पितॄंश्चाष्टाविंशतिसंख्यमष्टसंख्यं वा तैरेव द्रव्यैर्भगादिचतुर्विंशतिदेवता अष्टाष्टपायसाहुतिभिः रक्षोहणमित्यादिशेषदेवतानिर्देशो मूलशान्तिवत् । तद्वदेव पायसकृसरचरूणां श्रपणं हविस्त्यागश्च कार्यः । कौस्तुभोक्तप्रधानदेवतामन्त्रैस्तत्तद्धोमः । शेषं मूलशान्तिवत् ।

कौस्तुभ में तो तैत्तिरीयक मन्त्रों से पुष्य, मघा और पूर्वा आदि नक्षत्रों का ही आवाहन कहा है, नक्षत्र देवताओं का नहीं। तदनन्तर लोकपालों का आवाहन और आवाहित सब देवताओं का पूजन कर अग्नि और ग्रहों की स्थापना करके अन्वाधान करे। आदित्यादि ग्रहों के उद्देश के बाद प्रधानदेवता और सर्पों का प्रतिद्रव्य १०८ या २८ संख्या घी मिले पायस समिधा और घृत चरु की आहुतियों से, बृहस्पति और पितरों का २८ या ८ संख्या उन्हीं द्रव्यों से, और भग आदि २४ देवताओं का आठ आठ पायस की आहुतियों से होम करे। रक्षोहण इत्यादि शेष देवताओं का निर्देश मूलशान्ति की तरह से है। वैसे ही पायस कृसर (खिचड़ी) और चरुओं का पकाना हविष्यत्याग भी वैसा ही करे। कौस्तुभ में कहे हुए प्रधान देवता के मन्त्रों से उन-उन देवताओं का होम करे। शेष मूलशान्ति की तरह करे।

अथ ज्येष्ठानक्षत्रफलं शान्तिश्च

ज्येष्ठाया[1] दशभागेषु आद्ये मातामहीमृतिः ।
मातामहं द्वितीये च तृतीये हन्ति मातुलम् ॥
तुर्ये जातो मातरं च हन्त्यात्मानं तु पञ्चमे ।
गोत्रजान्षष्ठभागे च सप्तमे तूभयं कुलम् ॥
अष्टमे स्वाग्रजं हन्ति नवमे श्वशुरं तथा ।
दशमांशकजातस्तु सर्वं हन्ति शिशुर्ध्रुवम् ॥
ज्येष्ठर्क्षे तु पुमाञ्जातो ज्येष्ठभ्रातुर्विनाशकः ।
ज्येष्ठर्क्षे कन्यका जाता हन्ति शीघ्रं धवाग्रजम् ॥
पादत्रये जातनरो ज्येष्ठोप्यत्र प्रजायते ।
ज्येष्ठान्त्यपादजातस्तु पितुः स्वस्य च नाशकः ॥

ज्येष्ठा के दस भागों में पहिले में नानी का मरण, दूसरे में नाना का, तीसरे में मामा का, चौथे में अपनी माता का और पाचवें में अपना नाश करता है। छठे में गोत्रजों का, सातवें में दोनों कुल का, आठवें में अपने बड़े भाई का नवें में ससुर का और दसवें भाग में उत्पन्न बालक तो सबका विनाश करता है। ज्येष्ठा में उत्पन्न पुरुष जेठे भाई का विनाशक होता है। ज्येष्ठानक्षत्र में उत्पन्न कन्या पति के बड़े भाई का शीघ्र नाश करती है। ज्येष्ठा के तीन चरणों में उत्पन्न बालक अकेला ज्येष्ठ ही रहता है। ज्येष्ठा के अन्तिम चरण में उत्पन्न पिता का और अपना भी नाश करने वाला होता है।

---

१. ऐसा ही फल-निर्देश ब्रह्मयामल में है—'ज्येष्ठादौ जननीमाता द्वितीये जननीपिता । तृतीये जननीभ्राता स्वयं माता चतुर्थके ॥ आत्मानं पञ्चमे हन्ति षष्ठे गोत्रक्षयो भवेत् । सप्तमे चोभयकुलं ज्येष्ठभ्रातरमष्टमे ॥ नवमे श्वशुरं हन्ति सर्वं हन्ति दशांशके । इति । कौस्तुभे—'घटिकैका च मैत्रान्ते ज्येष्ठादौ घटिकाद्वयम् । तयोः सन्धिरिति ज्ञेयं शिशुगण्डं समीरितम् ॥' इति ।

द्वादशाहे शान्त्युक्तशुभदिने वा गोप्रसवशान्तिं कृत्वाऽस्य शिशोर्ज्येष्ठर्क्षजनन-सूचितसर्वारिष्टपरिहारद्वारेत्यादि संकल्प्य मध्यकलशे सुवर्णप्रतिमायां शचीसहित-मैरावतारूढमिन्द्रं लोकपालांश्चावाहय रक्तवस्त्रद्वयशष्कुलीनैवेद्यसहितषोडशोपचारैः पूजयेत्। तस्य चतुर्दिक्षु कुम्भचतुष्टयं तत्पूर्वंमध्यभागे शतच्छिद्रं च निधाय पूर्ण-पात्रयुतेषु चतुर्षु फलादौ वरुणावाहनपूजनादि।

बारहवें दिन या शान्ति में कहे हुए शुभ दिन में गोप्रसवशान्ति करके 'इस बालक का ज्येष्ठानक्षत्र में उत्पन्न होने से सूचित संपूर्ण अरिष्ट के अपहार द्वारा, इत्यादि संकल्प करके मध्य कलश पर स्थापित सुवर्ण प्रतिमा में इन्द्राणीसहित ऐरावत हाथी पर चढ़े हुए इन्द्र तथा लोकपालों का आवाहन करके लाल दो वस्त्रों में पूड़ी नैवेद्यसहित षोडशोपचार से इन्द्र की पूजा करे। इन्द्र के चारों दिशाओं के ४ कलशों में उनके पूर्व मध्य भाग में १०० छिद्र वाला कलश रखकर पूर्णपात्र युक्त ४ फलों आदि में वरुण का आवाहन पूजन करे।

अन्वाधाने ग्रहान्वाधानान्ते इन्द्रं पलाशसमिदाज्यचरुद्रव्यैः प्रतिद्रव्यमष्टोत्तर-शतसंख्यया इन्द्रायेन्दो मरुत्वत इति मन्त्रेण प्रजापतिमष्टोत्तरशततिलाहुतिभिः समस्तव्याहृतिमन्त्रेण शेषेण स्विष्टकृतमित्यादि। अष्टोत्तरशतं ब्राह्मणान् भोजयेत्। इति ज्येष्ठाशान्तिसंक्षेपप्रयोगः।

अन्वाधान में ग्रहों को या अन्वाधान के अन्त में इन्द्र को पलाश की समिधा, घृत और चरु द्रव्यों से प्रतिद्रव्य १०८ संख्या से 'इन्द्रायेन्दो मरुत्वत' इस मन्त्र से, प्रजापति को समस्त व्याहृति मन्त्र से १०८ तिल की आहुति देकर बाकी बचे द्रव्य से स्विष्टकृत् इत्यादि करे। १०८ ब्राह्मणों का भोजन करावे। संक्षिप्त ज्येष्ठानक्षत्रशान्ति समाप्त।

अथ चित्रादिनक्षत्रशान्तिः

चित्राद्येऽर्धे पुष्यमध्ये द्विपादे पूर्वाषाढाधिष्ण्यपादे तृतीये।
जातः पुत्रश्चोत्तराद्ये विधत्ते पित्रोर्भ्रातुः स्वस्य चापि प्रणाशम्॥

उत्तराफाल्गुन्याद्यपादे इत्यर्थः। अत्रेत्थं भाति—चित्रापूर्वार्धे जातस्य गोप्रसवं कृत्वा नक्षत्राधिपतिप्रतिमां संपूज्य अजादानं कार्यम्। एवं पुष्यद्वितीयतृतीयपा-दयोर्जनने गोप्रसवनक्षत्राधिपपूजागोदानानि कार्याणि। उत्तराफाल्गुनीप्रथमपादे जनने नक्षत्राधिपपूजां तिलपात्रदानं च कुर्यात्।

चित्रा के आदि के आधे पाद में, पुष्य के मध्य के दो पाद में, पूर्वाषाढा के तृतीय पाद में तथा उत्तरा के आदि चरण में उत्पन्न पुत्र माता पिता और अपने भाई का नाश करता है। उत्तरा फाल्गुनी के पहिले चरण में यह अर्थ है। यहाँ ऐसा ठीक मालूम पड़ता है कि चित्रा के पूर्वार्द्ध में उत्पन्न बालक का गोप्रसव और नक्षत्राधिपति की प्रतिमा का पूजा कर बकरी का दान करे। इसी प्रकार पुष्य के द्वितीय तृतीय चरण में उत्पन्न होने पर गोप्रसवशान्ति, नक्षत्राधिपतिपूजा और और गोदान करें। उत्तराफाल्गुनी के प्रथम चरण में जन्म होने से नक्षत्राधिपति की पूजा और तिल पात्र का दान करे।

एवं पूर्वाषाढातृतीयपादे जनने नक्षत्रेशपूजाकाञ्चनदानम्। मघाप्रथमपादजनने मलवत्फलम्। तत्र गोप्रसवनक्षत्रेशपूजनग्रहमखाः कार्याः। मघाया आद्यघटीद्वयज-

नने नक्षत्रगण्डान्तशान्तिरपि। रेवत्यन्त्यघटीद्वयेऽश्विन्याद्यद्वये जनने नक्षत्रगण्डान्त-शान्तिगोप्रसवग्रहमखाः कार्याः। रेवत्यश्विन्योरितरभागेषु मघान्तिमपादत्रये च दोषविशेषानुक्तेर्न शान्त्यादिकम्।

इसी प्रकार पूर्वाषाढ़ा के तृतीय चरण में जन्म होने से नक्षत्रेश की पूजा और सुवर्ण-दान करे। मघा के प्रथमपाद में जन्म होने से मूल की तरह फल जानना चाहिये। उसमें गोप्रसव नक्षत्रेश-पूजन और ग्रहयज्ञ करे। मघाकी पहिली दो घड़ी में जन्म होने पर नक्षत्र-गण्डान्त की शान्ति भी करे। रेवती की अन्त की दो घड़ियों और अश्विनी की पहली दो घड़ियों में जन्म होने पर नक्षत्र गण्डान्त शान्ति, गोप्रसव और ग्रहयज्ञ करे। रेवती अश्विनी के अन्य भागों और मघा के अन्तिम तीन चरणों में दोष-विशेष के नहीं कहने के कारण शान्ति आदि नहीं करनी चाहिए।

एवं विशाखाचतुर्थपादजनने शालकदेवरनाशादिदुष्टफलोक्तेर्ग्रहमखः कार्यः। यत्र काले दुष्टफलमात्रमुक्तं शान्तिर्नोक्ता तत्र ग्रहमख इति कमलाकरोक्तेः। एव-मितरत्राप्यूहचम्। इति नक्षत्रशान्तयः।

एवं विशाखा के चौथे चरण में जन्म होने पर साले और देवर का नाश आदि दुष्ट-फल के कथन से ग्रहयज्ञ करे। जिस काल में दुष्ट-फल-मात्र कहा हो उसमें शान्ति नहीं कही गई है वहाँ कमलाकर के कथन से ग्रहयज्ञ करे। इसी प्रकार अन्य जगह भी कल्पना कर लेनी चाहिये।

अथ व्यतीपातवैधृतिसंक्रान्तिशान्तिः

कुमारजन्मकाले तु व्यतीपातश्च वैधृतिः।
संक्रमश्च रवेस्तत्र जातो दारिद्र्यकारकः॥
अश्रियं मृत्युमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा।
स्त्रीणां च शोकं दुःखं च सर्वनाशकरो भवेत्॥
गोमुखप्रसवं कुर्याच्छान्तिं च सनवग्रहाम्।

उक्तकाले संकल्पादिकं कृत्वा पञ्चद्रोणपरिमितव्रीहिराशिं कृत्वा तदुपरि सार्धद्रोणद्वयमिततण्डुलराशिं तदुपरि सपादद्रोणपरिमिततिलराशिं च कृत्वा तिलराशौ विधिना स्थापितकुम्भे सौवर्णप्रतिमायां सूर्यमावाह्य तद्दक्षिणोत्तरयोरग्निरुद्रावावाह्य तिस्रो देवताः व्यतीपातशान्तौ संक्रान्तिशान्तौ च पूजयेत्।

बच्चे के जन्म-समय में व्यतीपात तथा वैधृति हो और उसी में सूर्य की संक्रान्ति हो जाय तो दरिद्र होता है और दरिद्र रहकर मृत्यु प्राप्त करता है, उसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है। स्त्रियों को शोक और दुःख देता है और सबका नाश करने वाला होता है। नवग्रह के सहित गोमुखप्रसव शान्ति करे। कहे हुए समय में संकल्प आदि करके ५ द्रोणपरिमित व्रीहि की ढेर करके उसके ऊपर २॥ द्रोण तण्डुल की राशि पर १। द्रोण परिमित तिल-राशि करके तिल की राशि में विधि से स्थापित कलश पर सोने की प्रतिमा में सूर्य का आवाहन कर उसके दक्षिण उत्तर में अग्नि और रुद्र का आवाहन कर तीनों देवताओं की व्यतिपात-शान्ति और संक्रान्ति-शान्ति में भी पूजा करे।

व्यतीपातसंक्रान्त्योर्जनने व्यतीपातसंक्रान्तिशान्तिं तन्त्रेण संकल्प्यैकैव शान्तिः कार्या। अत्र पूजाहोमादेः प्रसङ्गसिद्धिः द्विगुणो वा प्रधानहोम इति भाति। ग्रह-

पीठदेवतान्वाधानान्ते सूर्यम् उत्सूर्यो बृहदिति मन्त्रेण समिदाज्यचर्वाहुतिभिः प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशतसंख्याभिः अग्निं रुद्रं च तैरेव द्रव्यैः प्रत्येकमष्टाविंशतिसंख्याहुतिभिरग्निं दूतमिति त्र्यम्बकमिति मन्त्राभ्यां मृत्युंजयमष्टोत्तरशततिलाहुतिभिः शेषेणेत्यादि । अभिषेकान्ते गोवस्त्रस्वर्णादि दत्त्वा शतं ब्राह्मणान्भोजयेत् । इति व्यतीपातसंक्रान्तिशान्तिः ।

व्यतीपात और संक्रान्ति में उत्पन्न होने पर 'व्यतीपात संक्रान्ति शान्ति तंत्र से करूंगा' ऐसा संकल्प करके एक ही शान्ति करनी चाहिये। इसमें पूजा होम आदि की प्रसंग-सिद्धि या दूना प्रधान का होम, यह ठीक प्रतीत होता है। ग्रहपीठ देवता और अन्वाधान के अन्त में सूर्य का 'उत्सूर्यो बृहत्' इस मन्त्र से समिधा घृत चरु की आहुतियों से प्रतिद्रव्य १०८ संख्या से, अग्नि और रुद्र का उन्हीं द्रव्यों से प्रत्येक का २८ संख्या की आहुतियों से 'अग्निन्दूतं' और 'त्र्यम्बकं' इन दोनों मन्त्रोंसे और मृत्युञ्जय का १०८ तिलाहुतियों से होम करके शेष से स्विष्टकृत् होम करे। अभिषेक के अन्त में गौ, वस्त्र और सुवर्ण आदि देकर १०० ब्राह्मणों को भोजन करावे। व्यतीपात-संक्रान्ति-शान्ति समाप्त।

अथ वैधृतिशान्तौ विशेषः

पूर्ववद् व्रीहितण्डुलतिलराशौ स्थापितकुम्भे मध्ये त्र्यम्बकमिति मन्त्रेण रुद्रं दक्षिणतः उत्सूर्यं इति सूर्यमुत्तरतश्चाप्यायस्वेति सोममावाह्य पूजयेत् । अन्वाधाने रुद्रं समिच्चर्वाज्यैः प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशतसंख्याहुतिभिः सूर्यसोमौ प्रत्येकमष्टाविंशतिसंख्यैस्तैरेव द्रव्यैर्मृत्युंजयमष्टोत्तरसहस्रशतान्यतरसंख्यतिलाहुतिभिः शेषेणेत्यादि । अन्यत्पूर्ववत् । संक्रान्तिदिने वैधृतिसत्त्वे देवताभेदाच्छान्तिद्वयं पृथक्कार्यम् । इति वैधृतिशान्तिः ।

पहिले के समान व्रीहि चावल और तिल की राशि में स्थापित कलश के मध्य में 'त्र्यम्बकम्' इस मन्त्र से रुद्र का, दक्षिण में 'उत्सूर्य' इस मन्त्र से सूर्य का, उत्तर में 'आप्यायस्व' इस मन्त्र से सोम का आवाहन कर पूजन करे। अन्वाधान में रुद्र को समिधा चरु और घृत से प्रत्येक द्रव्य की एक सौ आठ आहुतियों से और सूर्य सोम प्रत्येक को अट्ठाइस आहुतियों से और उन्हीं द्रव्यों से मृत्युञ्जय को एक हजार आठ या एक सौ आठ तिल की आहुतियों से होम करके शेष द्रव्य से स्विष्टकृत् होम करे। अन्य कृत्य पूर्ववत् करे। संक्रान्ति के दिन वैधृति के योग में जन्म होने पर देवता-भेद से पृथक्पृथक् दोनों शान्ति करे। वैधृति-शान्ति समाप्त।

अथैकनक्षत्रजननशान्तिः

एकस्मिन्नेव नक्षत्रे भ्रात्रोर्वा पितृपुत्रयोः ।
प्रसूतिश्चेत्तयोर्मृत्युर्भवेदेकस्य निश्चितः ॥

पितृनक्षत्रे मातृनक्षत्रे वा कन्याया पुत्रस्य वोत्पत्तौ गोमुखप्रसवं कृत्वा शान्तिः कार्या । सोदरभ्रातृभगिन्योर्नक्षत्रे भ्रातुर्भगिन्या वोत्पत्तौ गोप्रसवमकृत्वैव शान्तिमात्रं कार्यम् । संकल्पे पित्रैकनक्षत्रोत्पत्तिसूचितसर्वारिष्टेत्याद्यूहः ।

एक ही नक्षत्र में भाई भाई का अथवा पितापुत्र का यदि जन्म हो तो एक का मरण निश्चित है। पिता के जन्म-नक्षत्र में अथवा माता के जन्म-नक्षत्रमें कन्या या पुत्र की उत्पत्ति हो तो गोमुखप्रसव करके शान्ति करनी चाहिए। सगे भाई बहिन के नक्षत्र में भाई या बहिन की उत्पति होने पर गोप्रसव

विना किये ही केवल शान्ति करनी चाहिए। संकल्प में 'पिता के नक्षत्र में उत्पन्न होने से सूचित अरिष्ट के निवृत्त्यर्थं' इत्यादि वाक्य की कल्पना कर ले।

कलशे रक्तवस्त्रे यस्मिन्नक्षत्रे जन्म तन्नक्षत्रप्रतिमां नक्षत्रदेवताप्रतिमां वा अग्निर्नः पातु कृत्तिका इत्यादि तैत्तिरीयमन्त्रैः पूजयेत्। अन्वाधाने इदं नक्षत्रम् अमुकां नक्षत्रदेवतां वा समिच्चर्वाज्यैः प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशतसंख्यं शेषेणेत्यादि। अन्ते ययोरेकनक्षत्रे जन्म तयोरभिषेकः। अत्र ग्रहमखो नावश्यकः। क्वचित्संपूजितहरिहरप्रतिमादानमप्युक्तम्।

कलश में लाल कपड़े में जिस नक्षत्र में जन्म हो उस नक्षत्र की प्रतिमा अथवा उस नक्षत्र के देवता की प्रतिमा का 'अग्निर्नः' इत्यादि तैत्तिरीय-मन्त्रों से पूजा करे। अन्वाधान में इस नक्षत्र या अमुक नक्षत्र-देवता को समिधा चरु और घृत, इन प्रतिद्रव्य की एक सौ आठ संख्या की आहुति दे और शेष से स्विष्टकृत् होम करे। अन्त में जिन दोनों का एक नक्षत्र में जन्म हो उन दोनों का अभिषेक करे। इसमें ग्रहयज्ञ आवश्यक नहीं है। कहीं पर सम्यक् पूजा करके विष्णु शिव की प्रतिमा का दान भी कहा है।

अथ ग्रहणशान्तिः

ग्रहणे चन्द्रसूर्यस्य प्रसूतिर्यदि जायते।
इत्थं संजायते यस्तु तस्य मृत्युर्न संशयः॥
व्याधिः पीडा च दारिद्र्यं शोकश्च कलहो भवेत्।

अत्र गोमुखप्रसवः कार्य इति भाति। ग्रहमखः कृताकृतः। संकल्पे सूर्यग्रहणकालिकप्रसूतिसूचितेत्याद्यूहः। ग्रहणकालिकनक्षत्रस्य नक्षत्रदेवताया वा हेमप्रतिमां सूर्यग्रहे सूर्यस्य हेमप्रतिमां चन्द्रग्रहे राजतं चन्द्रबिम्बं कृत्वोभयत्र सीसेन राहोर्नागाकृतिं कृत्वा गोमयोपलिप्ते शुचिदेशे श्वेतवस्त्रोपरि देवतात्रयपूजनम्। नात्र कलशस्थापनादि। तत्र मध्ये आकृष्णेनेति सूर्यं दक्षिणतः स्वर्भानोरध इति राहुमुत्तरतो नक्षत्रदेवतां च पूजयेत्।

यदि चन्द्र-सूर्य-ग्रहण में प्रसव हो तो इस प्रकार के उत्पन्न बालक की मृत्यु में सन्देह नहीं है। व्याधि, पीड़ा, दरिद्रता, शोक और कलह होता है। इसमें गोमुखप्रसव करना चाहिये, ऐसा युक्त प्रतीत होता है। ग्रहयज्ञ करे या न करे। संकल्प में सूर्यग्रहणमें जन्म से सूचित इत्यादि की कल्पना करे। ग्रहण का नक्षत्र या नक्षत्रदेवताकी सुवर्ण-प्रतिमा सूर्यग्रहण में, और चन्द्रग्रहण में चान्दी का चन्द्रबिम्ब बनाकर दोनों में सीसा से राहु के सर्प की आकृति बनाकर गोबर से लिपे हुए पवित्र-स्थान में सफेद कपड़े पर पूर्वोक्त तीनों देवता की पूजा करे। इसमें कलश-स्थापन आदि नहीं करे। वहाँ 'आकृष्णेन' इत्यादि मन्त्र से बीच से दक्षिण भाग में सूर्य को और 'स्वर्भानोरध' इससे राहु को, उत्तर भाग में नक्षत्र-देवता की पूजा करे।

चन्द्रग्रहे तु आप्यायस्वेति मध्ये चन्द्रः पूज्यः। पार्श्वयो राहुनक्षत्रदेवते पूर्ववत्। अन्वाधाने सूर्यग्रहे सूर्यमर्कसमिदाज्यचरुतिलैः प्रत्येकमष्टोत्तरशतसंख्यया राहुं दूर्वाज्यचरुतिलैस्तावत्संख्यैर्नक्षत्रदेवतां जलवृक्षसमिदाज्यचरुतिलैस्तावत्संख्यया शेषेणेत्यादि। चन्द्रग्रहे च चन्द्रं पालाशसमिदाज्यचरुतिलैः। शेषं पूर्ववत्। अन्ते

ग्रहकलशोदकेन पञ्चगव्यपञ्चत्वक्पल्लवादियुतलौकिकोदकेन च लौकिकेनैव वाभिषेकः। वेधकाले जन्मनि नैव शान्तिः। किंतु दुष्टकालत्वाद्रुद्राभिषेकः कार्यं इति भाति।

चन्द्रग्रहण में तो 'आप्यायस्व' इस मन्त्र से बीच में चन्द्रमा का पूजन करे। अगम बगल में राहु और नक्षत्र-देवता का पहिले की तरह। अन्वाधान में सूर्यग्रहण में सूर्य को अर्क की समिधा घृत चरु और तिल इन प्रत्येक की एक सौ आठ संख्या से राहु को दूब, घृत, चरु और तिल इन प्रत्येक की इतनी ही संख्या से, नक्षत्र-देवता को जलवृक्ष की समिधा घृत चरु और तिल की इतनी ही संख्या से, आहुति देकर शेष से स्विष्टकृत् होम करे। चन्द्रग्रहण में चन्द्रमा को पलाश की लकड़ी, घी, चरु और तिल की आहुति देकर शेष पहिले के समान करे। अन्त में ग्रह-कलश के जल से पञ्चगव्य पांच छाल और पञ्चपल्लव आदि से युक्त लौकिक-जल से अभिषेक करे। ग्रहण के वेध समय में जन्म हो तो शान्ति न करे, किन्तु दुष्टकाल होने से रुद्राभिषेक करे ऐसा युक्त प्रतीत होता है।

अथ नक्षत्रगण्डान्तशान्तिः

रेवत्याश्लेषाज्येष्ठानक्षत्राणामन्त्यघटीद्वयमश्विनीमघामूलानामाद्यघटीद्वयमिति घटिकाचतुष्टयमितं त्रिविधं नक्षत्रगण्डान्तम्।

अश्विनीमघामूलानां पूर्वार्धे बाध्यते पिता।
पूषाहिशक्रपरचार्धे जननी बाध्यते शिशोः॥
सर्वेषां गण्डजातानां परित्यागो विधीयते।
वर्जयेद्दर्शनं यावत्तस्य षाण्मासिकं भवेत्॥
शान्तिर्वा पुष्कला कार्या सोममन्त्रेण भक्तिमान्।

'अस्य शिशो रेवत्यश्विनीसंध्यात्मकगण्डान्तजननसूचितारिष्टनिरासार्थं नक्षत्रगण्डान्तशान्तिं करिष्ये' इत्यादिसंकल्पः।

रेवती आश्लेषा और ज्येष्ठा नक्षत्र के अन्त की दो घड़ी और अश्विनी मघा तथा मूल की आदि की दो घड़ी इस प्रकार चार घड़ी के तीन प्रकार का नक्षत्र-गण्डान्त होता है। अश्विनी मघा और मूल के पूर्वार्ध में उत्पन्न बालक पिता का बाधक होता है। पुष्य आश्लेषा और धनिष्ठा के उत्तरार्ध में उत्पन्न शिशु माता का बाधक होता है। गण्ड में उत्पन्न होने वाले सभी बालकों का परित्याग श्रेयस्कर है। जबतक बालक छ मास का न हो जाय तब तक उसका मुँह नहीं देखना चाहिये। भक्तिमान् पुरुष बड़ी शान्ति सोम के मन्त्र से करे। 'रेवती अश्विनी के सन्धि-गण्डान्त में उत्पन्न होने वाले इस बालक के तजन्य अरिष्ट की निवृत्ति के लिये नक्षत्र-गण्डान्त शान्ति करूँगा' इत्यादि संकल्प करे।

गोमुखप्रसवं कृत्वा षोडशपलमष्टपलं वा चतुःपलं वा कांस्यपात्रं विधाय तस्मिन्पायसं पयो वा निक्षिप्य तत्र नवनीतपूर्णं शंखं निधाय तस्मिन् राजतं चन्द्रबिम्बं संस्थाप्य सोमोऽयमिति ध्यानपूर्वकं चन्द्रमाप्यायस्वेति पूजयेत्। पूजान्ते आप्यायस्वेति मन्त्रस्य सहस्रं जपः। ग्रहमखहोमः कार्यः। नात्र प्रधानदेवता होमः।

गोमुखप्रसव करके सोलह पल, आठ पल या चार पल के कांसे का पात्र बनाकर उसमें खीर या दूध डाल कर उसमें मक्खन भरा शंख रखके उसमें चान्दी का चन्द्रबिम्ब स्थापित कर यह चन्द्रमा हैं ऐसा ध्यान कर 'आप्यायस्व' इस मन्त्र से चन्द्रमा की पूजा करे। पूजा के अन्त में 'आप्यायस्व' इस मन्त्र का एक हजार जप करे और ग्रहयज्ञ का होम करे। इसमें प्रधान देवता का होम नहीं होता।

ग्रन्थान्तरे तु ताम्रकलशे राजतप्रतिमायां बृहस्पतिमन्त्रेण वागीश्वरं संपूज्य तदुत्तरे कुम्भचतुष्टये पञ्चपल्लवादिकं कुंकुमचन्दनकुष्ठगोरोचनानि क्षिप्त्वा वरुणं पूजयेदित्युक्तम्। आचार्याय सशङ्खसमौक्तिकचन्द्रदानम्। ग्रन्थान्तरपक्षे ताम्रपात्रसहितवागीश्वरदानम्। आयुर्वृद्धयर्थं सहस्राक्षेणेति मन्त्रजपः। दशावर-ब्राह्मणभोजनं चेति।

दूसरे ग्रन्थों में तो ताम्र-कलश में चान्दी की प्रतिमा में बृहस्पति के मन्त्र से बृहस्पति की पूजा कर उसके उत्तर वाले चारो कलश में पञ्चपल्लव आदि कुंकुम-चन्दन-कूट-गोरोचन छोड़कर वरुण की पूजा करे, ऐसा कहा है। आचार्य को शंख और मोती के साथ चन्द्रमा का दान देवे। दूसरे ग्रन्थों में आयुष्यवृद्धि के लिये ताम्रपात्रसहित बृहस्पति का दान करे और 'सहस्राक्षेण' इस मन्त्र का जप करे तथा दशावर ब्राह्मणभोजन भी करावे, ऐसा लिखा है।

अथ तिथिगण्डान्तलग्नगण्डान्तशान्तिः

पञ्चमीषष्ठ्योर्दशम्येकादश्योः पञ्चदशीप्रतिपदोः संधिभूतं घटीद्वयं तिथिग-ण्डान्तम्। कर्कसिंहयोर्वृश्चिकधनुषोर्मीनमेषयोश्च लग्नयोः संधिभूतैका घटिका लग्नगण्डान्तम्। तत्र तिथिगण्डान्ते पूर्वार्धे जन्मनि तत्काले स्नात्वा वृषभदानं तन्मूल्यदानं वा कृत्वा सूतकान्ते शान्तिः कार्या।

पञ्चमी षष्ठी की दशमी एकादशी की और पूर्णिमा प्रतिपदा की सन्धि की दो घड़ी को तिथि-गण्डान्त कहते हैं। कर्क सिंह वृश्चिक धनु और मीन मेष लग्न की सन्धि की एक घड़ी को लग्न-गण्डान्त कहते हैं। उसमें तिथिगण्डान्त के पूर्वार्ध में जन्म हो तो उसी समय स्नान कर वृषभ का या उसके मूल्य का दान कर सूतक के अन्त में शान्ति करे।

उत्तरार्धे जन्मनि शान्तिमात्रम्। लग्नगण्डान्तपूर्वार्धजन्मनि काञ्चनदान-मुत्तरार्धे शान्तिमात्रम्। कुम्भे हेमप्रतिमायां वरुणं संपूज्य वरुणोद्देशेन प्रतिद्र-व्यमष्टोत्तरशतसंख्यया समिच्चर्वाज्यतिलयवानां होमः कार्यः। यवव्रीहिमाषतिल-मुद्गानां दक्षिणात्वेन दानमिति।

उत्तरार्द्ध में जन्म हो तो केवल शान्ति करे। लग्न-गण्डान्त के पूर्वार्ध में जन्म हो तो सुवर्ण-दान करे और उत्तरार्ध में केवल शान्ति करनी चाहिये। कलश पर सुवर्ण की प्रतिमा में वरुण की पूजा कर वरुण के उद्देश से एक सौ आठ समिधा चरु घृत और तिल जव से होम करना चाहिये। दक्षिणा के रूप में जव व्रीहि उर्द तिल और मूंग का दान करे।

अथ दिनक्षयादिशान्तिः

दिनक्षये च भद्रायां प्रसूतिर्यदि जायते।
यमघण्टे दग्धयोगे मृत्युयोगे च दारुणे॥

दुष्टयोगतिथीनां च निषिद्धांशेषु चेत्तदा ।
अतिदोषकरी प्रोक्ता तस्मिन्पापयुते सति ॥

यमघण्टादयो[1] ज्योतिर्ग्रन्थे प्रसिद्धाः । दुर्योगतिथीनां निषिद्धभागास्तु—

विष्कंभवज्रयोस्तिस्रः षट् च गण्डातिगण्डयोः ।
परिघार्धं पञ्च शूले व्याघातेऽङ्कघटीस्त्यजेत् ॥
चतुःषडष्टनिध्यर्कभूततिथ्याद्यनाडिकाः ।
अष्टाङ्कमनुतत्त्वाशाबाणसंख्या विवर्जयेत् ॥ इत्युक्ता ज्ञेयाः ।

दिनक्षय में या भद्रा में यदि प्रसव होता है तथा यमघण्ट में दग्धयोग में अथवा दारुण मृत्युयोग में दुष्टतिथि और योग नें तथा निषिद्ध भाग में उत्पन्न होने और उसके पापयुक्त होने पर अत्यन्त दोष करने वाला कहा गया है । यमघण्ट आदि ज्यौतिष-शास्त्र के ग्रन्थों में प्रसिद्ध है । दुर्योग तिथियों के निषिद्ध भाग तो—विष्कम्भ और वज्रयोग की तीन घड़ियाँ गण्ड और अतिगण्ड की छ घड़ियाँ परिघ की आधी घड़ी शूल की पांच घड़ी व्याघात की नौ घड़ी का त्याग करे । चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी, नवमी, द्वादशी और चतुर्दशी तिथियों की आदि की क्रम से आठ, नौ, चौदह, पचीस, दस, पांच घड़ियों का वर्जन करे ।

दिनक्षयादिदोषेष्वेकैकदोषदूषितकाले जनने शिवे रुद्रैकादशिन्यभिषेकः कार्यः । द्वित्रादिदोषसमुच्चये ग्रहयज्ञाश्वत्थप्रदक्षिणादिसमुच्चयः ।

दीपं शिवालये भक्त्या घृतेन परिदापयेत् ।
गाणपत्यं पुरुषसूक्तं सौरं मृत्युञ्जयं शुभम् ॥
शान्तिजाप्यं रुद्रजाप्यं कृत्वा मृत्युंजयी भवेत् ।

इति वाक्याद् बहुदोषे उक्तजपादिसमुच्चयोऽपि ।

दिनक्षय आदि दोषों में एक एक दोष से दूषित समय में जन्म होने पर शिवजी का रुद्रैकादशिनी से अभिषेक करना चाहिये । इकट्ठे दो तीन दोषों में ग्रहयज्ञ और पीपल की परिक्रमा आदि सब करे । तथा शिवमन्दिर में घृत से भक्तिपूर्वक दीप दे । गणपतिसूक्त पुरुषसूक्त सूर्य के मन्त्र मृत्युञ्जय का शान्तिजप और रुद्रजप मृत्यु को जीतने वाला होता है । इस वचन से बहुत दोष के इकट्ठा होने पर कहे हुए जप आदि इकट्ठा करावे ।

अथ विषघटीशान्तिः

तत्र कौस्तुभे तिथिवारनक्षत्राणां विषनाड्य उक्तास्तथापि ज्योतिर्ग्रन्थेषु [2] नक्ष-

---

१. आदिपदेन कालदण्डकण्टकाख्यदुर्योगौ ग्राह्यौ । यमघण्टः—'मघा विशाखा आर्द्रा च मूलवृक्षं च कृत्तिकाः । रोहिणी हस्त इत्येते यमघण्टाः क्रमाद्रवेः ॥' कालदण्डो रविभरणीयोगः । कंटकः—'अर्कारतमःसौम्यार्यमन्दा यद्येकराशिगाः । कण्टकाख्यो महादोषः सर्वकर्मविनाशकृत् ॥' अत्र तमो राहुः, आर्यो बृहस्पतिः, मन्दः शनि । विशेषः कौस्तुभे द्रष्टव्यः ।

२. नारदेन नक्षत्रविषनाड्य उक्ताः—'खमार्गणा[५०] वेदपक्षा[२४] खरामा[३०] व्योमसागराः[४०] । वार्धिचन्द्रा[१४] रूपदस्रा[२१] खरामा[३०] व्योमबाहवः[२०] ॥ द्विरामा[३२] खाग्नयः[३०] शून्यदस्राः[२०] कुञ्जरभूमयः[१८] । रूपपक्षा[२१] व्योमदस्रा[२०] [१४]वेदचन्द्राश्चतुर्दश[१४] ॥ शून्यचन्द्रा[१०] वेदचन्द्राः[१४] षडक्षा[५६] वेदबाहवः[२४] । शून्यदस्राः[२०] शून्यचन्द्राः[१०] पूर्णचन्द्रा[१०] गजेन्दवः[१८] ॥ तर्कचन्द्रा[१६] वेदपक्षा[२४] खरामा[30] अश्विनी-

त्रविषघटीनामेव महादोषत्वेनोक्तेर्नक्षत्रविषघटीष्वेव जनने उक्तशान्तिः कार्या। तिथ्यादिविषघटीनामुपदोषत्वाद्रुद्राभिषेकादिकं कार्यम्। विषघटीलक्षणं कौस्तुभादौ ज्ञेयम्।

कौस्तुभ में तिथि और नक्षत्रों की विष-घटी कही गई है। तब भी ज्यौतिष के ग्रन्थों में नक्षत्र-विषघटी को ही महादोषप्रद कहने से नक्षत्र-विषघटी में ही जन्म होने पर कही हुई शान्ति करे। तिथि आदि की विषघटी में दोष की न्यूनता से रुद्राभिषेक आदि करे। विषघटी का लक्षण कौस्तुभ आदि से जानना चाहिये।

विषनाडीषु संजातः पितृमातृधनात्मनाम्।
नाशकृद्विषशस्त्राद्यैः क्रूरे लग्नेंऽशकेऽपि च॥

एतद्विषनाडीषु शिशुजननसूचितारिष्टेत्यादिसंकल्पः। एककुम्भे प्रतिमाचतुष्टये रुद्रयमाग्निमृत्युदेवताः कद्रुद्राय यमाय सोममग्निर्मूर्धा परंमृत्यो इति मन्त्रैः संपूजयेत्। ग्रहान्वाधानान्ते रुद्रयमाग्निमृत्यून् समिच्चरुघृततिलाहुतिभिः प्रतिदैवतं प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशतसंख्याभिः शेषेणेत्यादि। गृहसिद्धान्नस्य होमः।

विषघटी में उत्पन्न शिशु पिता माता धन और अपना भी नाशक होता है। क्रूरलग्न और लग्नांश में भी विष तथा शस्त्र आदि से नाश होता है। 'अमुक विषघटी में जन्म से सूचित अरिष्ट निवारण के लिये' इत्यादि संकल्प करे। एक कलश पर चार प्रतिमा में रुद्र, यम, अग्नि और मृत्यु देवता को 'कद्रुद्राय, यमाय, सोममग्निर्मूर्द्धाय, परं मृत्यो, इन मन्त्रों से पूजा करे। ग्रहों के अन्वाधान के अन्त में रुद्र, यम, अग्नि और मृत्यु के समिधा, चरु, घृत और तिल की आहुतियों से प्रति देवता को प्रतिद्रव्य से एक सौ आठ संख्या से होम करके शेष से स्विष्टकृत्। गृह में बने अन्न से होम करे।

अथ यमलजननशान्तिः

तत्र श्रौताग्निमतः सोऽग्नये मरुत्वते त्रयोदशकपालं पुरोडाशं निर्वपेदिति ऋग्वेदब्राह्मणोक्तेष्टिः। यद्वा आश्वलायनसूत्रोक्तः केवलमारुतयागः। गृह्याग्निमत आश्वलायनस्य गृह्याग्नौ मारुतश्चरुः।

अथ यस्य वधूर्गौर्वा जनयेच्चेद्यमौ ततः।
स मरुद्भिश्चरुं कुर्यात्पूर्णाहुतिमथापि वा॥

क्रमात्। आम्यः पराः स्युर्घटिकाश्चतस्रो विषसंज्ञिताः॥' अत्रापि अश्विन्यां पञ्चाशद्घटिकोत्तरं चतस्रो भरण्यां चतुर्विंशतिघटिकोत्तरं चतस्रो घटिका विषनाड्य इत्येवं व्यवस्था संस्कारकौस्तुभादौ स्पष्टेति।

१. विधानमालायां काशीखण्डे स्मृत्युक्ता यमलजननशान्तिः—'त्रिविधा यमलोत्पत्तिर्जायते योषितामिह। सुतौ च सुतकन्ये च कन्ये एव तथा पुनः॥ एकलिङ्गौ विनाशाय द्विलिङ्गौ मध्यमौ स्मृतौ। पित्रोर्विघ्नकरौ ज्ञेयौ तत्र शान्तिर्विधीयते॥ हेममूर्ती विधातव्ये दस्रायोश्च द्विजोत्तम। पलेन वा तदर्धेन तदर्धार्धेन वा पुनः॥ ब्रह्मवृक्षस्य पट्टे च स्थापयेद्रक्तवाससी। स्वस्तिके तण्डुलानां च व्यस्ते पीठे द्विजोत्तम। पूजयेद्रक्तपुष्पैश्च चन्दनेनानुलेपयेत्। दशाङ्गेनैव धूपेन धूपयेत् प्रयतः पुमान्॥ दीपैर्नीराजयेच्चैव नैवेद्यं परिकल्पयेत्। यस्मै त्वं सुकृते जातवेद इति मन्त्रेणाक्षतैरर्चयेत्॥ अनेनैव तु मन्त्रेण होमं कुर्यादतन्द्रितः। अष्टोत्तरसहस्रं च पायसेन ससर्पिषा॥ शान्तिपाठं जपेद् विद्वान् सूर्यसूक्तं जपेत्ततः। विष्णुसूक्तं तथा गाथां वैश्वदेवीं जपेद् बुधः॥ अन्नदानं ततो

इति कारिकोक्तेः। गृह्याग्निशून्यबह्वृचः कात्यायनोक्तशान्तिं लौकिकाग्नौ कुर्यात्। 'मम भार्या यमलजननसूचितसर्वारिष्टपरिहारद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं मारुतेष्ट्या यक्ष्ये' इति संकल्पः श्रौताग्निमतः। स्मार्ताग्निमतस्तु 'मारुतस्थालीपाकेन यक्ष्ये' इति संकल्पः।

इसमें श्रौताग्नि वाले को 'सोमये मरुत्वते त्रयोदश कपालं पुरोडाशं निर्वपेत्' इस ऋग्वेद ब्राह्मण की कही इष्टि अथवा आश्वलायन सूत्र का कहा हुआ केवल मारुत-याग करे। गृह्याग्निवाले आश्वलायन गृह्याग्नि में मारुत चरु का होम करे। जिसकी स्त्री या गाय जोड़ुआ बच्चा उत्पन्न करे वह मरुत देवता का चरु पकावे और पूर्णाहुति दे, इस आशय की कारिका की उक्ति है। गृह्याग्निरहित बह्वृच कात्यायन की कही शान्ति लौकिकाग्नि में करे। इसमें 'मेरी स्त्री का यमल (जोड़ुआं) बच्चा उत्पन्न होने से सम्पूर्ण अरिष्ट के परिहारद्वारा श्रीपरमेश्वर की प्रसन्नता के लिये मारुतेष्टि यज्ञ करूँगा' यह संकल्प श्रौताग्नि वाले के लिये है। स्मार्ताग्नि वाले को तो 'मारुत स्थालपाक से यज्ञ करूँगा' ऐसा संकल्प करना चाहिये।

निरग्निस्तु 'सग्रहमखां कात्यायनोक्तां शान्तिं करिष्ये' इति संकल्प्य स्वस्तिवाचनादि आचार्यवरणान्तं कुर्यात्। अष्टकलशान् विधिना संस्थाप्य उदकपूरणादिसर्वौषधीप्रक्षेपान्ते वरुणं पूजयेत्। अष्टकलशोदकैर्दम्पत्योरभिषेकः। आपोहिष्ठेति तिसृभिः कया न इति द्वे आनः स्तुत इति पञ्चेति सप्तभिरैन्द्रीभिर्मोषु वरुण इति पञ्चभिरिदमाप इत्येकया अप न इत्यष्टाभिराग्नेयीभिर्ऋग्भिः कार्यः।

निरग्नि को तो 'ग्रहयज्ञसहित कात्यायन की कही शान्ति करूँगा' ऐसा संकल्प कर स्वस्तिवाचन आदि आचार्य वरण तक करे। आठ कलशों को आठों दिशा में विधि से स्थापित कर जल भरने से लेकर सर्वौषधि प्रक्षेप तक करके वरुण की पूजा करे। आठों कलशों के जल से पति-पत्नी का अभिषेक करे। 'आपोहिष्ठा' इन तीन ऋचाओं से 'कया न' इन दो ऋचाओं से 'आनः स्तुत' इन पांच ऋचाओं से 'ऐन्द्रीभिः' इन सात ऋचाओं से 'मोषु वरुण' इन पांच ऋचाओं से 'इदमाप' इस एक ऋचा से और 'अप न' इन आठ आग्नेयी-ऋचाओं से अभिषेक करना चाहिये।

अभिषिक्तौ दम्पती धृतश्वेतवस्त्रचन्दनौ उदङ्मुखौ तिष्ठेताम्। प्राङ्मुख आचार्योऽग्निग्रहस्थापनान्ते अपस्तिसृभिराज्याहुतिभिरिन्द्रं सप्तभिर्वरुणं पञ्चभिरप एकया-

---

दद्यादाचार्याय कुटुम्बिने। तयोर्मूर्ती प्रदातव्ये यजमानेन धीमता॥' दानमन्त्रः—'अश्वरूपौ महाबाहू अश्विनौ दिव्यचक्षुषौ। अनेन वाजिदानेन प्रीयेतां मे यशस्विनौ॥

मूर्तिदानमन्त्रः—'आचार्यः प्रथमो वेधा विष्णुस्तु सविता भगः। दस्रमूर्तिप्रदानेन प्रीयतामश्विनौ भगः॥ ततोऽभिषेचनं कार्यं दम्पत्योर्विधिवद् बुधैः। ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चाद्दक्षिणाभिश्च तोषयेत्॥ सालङ्कारैश्च वस्त्रैश्च प्रार्थयेद् वचनैः शुभैः। एवं कृते विधाने तु यमलोत्पत्तिशान्तिकम्॥ जायते नात्र संदेहः सत्यमेतद् ब्रवीमि ते।' इति।

यमलसन्तानों में जिसका पहले जन्म हो वह ज्येष्ठ और जिसका पीछे जन्म हो वह कनिष्ठ है—'जन्मजेष्ठेन चाह्वानं सुब्रह्मण्यास्वपि स्मृतम्। यमयोश्चैव गर्भेषु जन्मतो ज्येष्ठता मता॥' देवलः—'यस्य जातस्य यमयोः पश्यन्ति प्रथमं मुखम्। सन्तानः पितरश्चैव तस्मिन् ज्यैष्ठ्यं प्रतिष्ठितम्॥' भागवत में—'द्वौ तदा भवतो गर्भौ सूतिवेंशविपर्ययात्' इस उक्ति से पीछे उत्पन्न हुये सन्तान को ही ज्येष्ठ कहा। इसमें देशाचारतः व्यवस्था मान्य है। पूर्व में उत्पन्न हुये को ज्येष्ठ मानना युक्त है।

ग्निमष्टाभिराज्याहुतिभिः पूर्वत्राभिषेकार्थमुक्तैश्चतुर्विंशतिमन्त्रैरग्निं सोमं पवमानं पावकं मारुतं मरुतः यममन्तकं मृत्युं चैकैकया चर्वाहुत्या नाममन्त्रैः शेषेणेत्यादि अन्वादध्यात्। षट्त्रिंशद्वारं तूष्णीं निर्वापप्रोक्षणे। अन्ते ग्रहकलशोदकादिनाऽभिषेकः। दासीमहिषीवडवागोहस्तिनीनां यमलजननेऽपीयं शान्तिः कार्या।

अभिषिक्त पति-पत्नी सफेद वस्त्र चन्दन धारण किये हुए दोनों उत्तरमुख बैठें। आचार्य पूर्वमुख बैठ अग्निस्थापन तथा ग्रहस्थापन के अनन्तर वरुण को इन तीन घृत की आहुतिओं से इन्द्र को सात, वरुण को पांच, जल को एक और अग्नि को आठ घृताहुति देकर और पहिले अभिषेक के लिये कहे चौबीस मन्त्रों से अग्नि, सोम, पवमान, पावक, मारुत, मरुत्, यम, अन्तक और मृत्यु को एक एक चरु की आहुति नाममन्त्र से देकर शेष से स्विष्टकृत् अन्वाधान करे। छत्तीसवार चुपचाप निर्वाप तथा प्रोक्षण करे। अन्त में ग्रहकलश के जल आदि से अभिषेक करे। नौकरानी, भैंस, घोड़ी, गाय और हथिनी के यमल (जोड़ुआं) बच्चा उत्पन्न होने पर यही शान्ति करनी चाहिये।

अथ उत्पातादिशान्तिः

इयं शान्तिर्ग्रहोत्पातेषु उलूककपोतगृध्रश्येनानां गृहप्रवेशे स्तम्भप्ररोहे वल्मीकप्ररोहे मधुजनने आसनशयनयानभङ्गे पल्लीपतने सरटारोहणे छत्रध्वजविनाशेषु अन्येषूत्पातेषु च कार्येति च [1]कात्यायनमतम्। सा च साग्निकैः कात्यायनैः स्वगृह्याग्नौ कार्या। निरग्निकैस्तैरन्यैश्च लौकिकाग्नौ। इति यमलजननादिशान्तिः।

यह शान्ति—ग्रहों के उत्पातों में, उल्लू, कबूतर, गीध और श्येन (बाज) के घर में प्रवेश करने पर और खम्भों पर चढ़ने, वल्मीक (वांवड़ी) बनाने, शहद का छत्ता लगाने, आसन खटिया सवारी के टूटने पर छिपकली के गिरने पर गिरगिट चढ़ने पर छत्र और ध्वज के नष्ट होने पर तथा अन्य उत्पातों में भी करनी चाहिये, ऐसा कात्यायन का मत है। यह शान्ति साग्निक कात्यायन अपनी गृह्य-अग्नि में करें। निरग्निक तथा अन्यजन लौकिकाग्नि में करें। यमलजनन शान्ति समाप्त।

अथ त्रिकप्रसवशान्तिः

सुतत्रये सुता चेत्स्यात्तत्त्रये वा सुतो यदि।
मातापित्रोः कुलस्यापि तदानिष्टं महद्भवेत्॥
ज्येष्ठनाशो वित्तहानिर्दुःखं वा[2] सुमहद्भवेत्।

---

१. पारस्करगृह्यसूत्रस्य गदाधरकृतभाष्ये—'एतदेव ग्रहोत्पातनिमित्तेषूलूकः कङ्कः कपोतो गृध्रः श्येनो वा गृहं प्रविशेत् स्तम्भं प्ररोहेद् वल्मीकं मधुजालं वा मवेदुदकुम्भप्रज्वलनासनशयनयानभङ्गेषु गृहगोधिकाकृकलासशरीरसर्पणे छत्रध्वजविनाशे सार्पे नैर्ऋते गण्डयोगेष्वन्येष्वप्युत्पातेषु भूकम्पोल्कापातकाकसर्पसङ्गमप्रेक्षणादिष्वेतदेव प्रायश्चित्तं ग्रहशान्त्युक्तेन विधिना कृत्वा आचार्याय वरं दत्वा ब्राह्मणान् भोजयित्वा स्वस्तिवाच्याशिषः प्रतिगृह्य शान्तिर्भवति शान्तिर्भवतीति।'

२. गर्गसंहिता में—'दुःखं चैषु महद्भवेत्' ऐसा पाठ है और इसके आगे के श्लोक हैं—'तत्र शान्तिं प्रकुर्वीत वित्तशाठ्यविवर्जितः। जातस्यैकादशाहे वा द्वादशाहे शुभे दिने। आचार्यमृत्विजो वृत्वा ग्रहयज्ञपुरस्सरम्॥ ब्रह्मविष्णुमहेशेन्द्रप्रतिमाः स्वर्णतः कृताः। पूजयेद्धान्यराशिस्थकलशोपरि

गोप्रसवं कृत्वा मम सुतत्रयजन्मानन्तरं कन्याजननसूचितसर्वारिष्टेति वा कन्यात्रयजन्मानन्तरं पुत्रजननसूचितेति वा निमित्तानुसारेण संकल्पः।

स्थण्डिलपूर्वभागे ग्रहस्थापनान्ते तदुत्तरतः कलशपञ्चके स्वर्णप्रतिमासु ब्रह्मविष्णुमहेशेन्द्ररुद्रानावाह्य पूजयेत्। तत्र मन्त्राः—ब्रह्मजज्ञानं० इदं विष्णु० त्र्यंबकं० यत इन्द्र० कद्रुद्रायेति। ग्रहपीठदेवतान्वाधानान्ते ब्रह्माणं विष्णुं महेशम् इन्द्रं च प्रत्येकं समिदाज्यचरुतिलैः प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरसहस्राष्टोत्तरत्रिंश-ताष्टोत्तरशतान्यतमसंख्याहुतिभिः शेषेणेत्यादि।

यदि तीन लड़कों के जन्म होने पर कन्या का जन्म हो अथवा तीन कन्या होने पर पुत्र का जन्म हो तो माता पिता तथा कुल का बहुत बड़ा अनिष्ट होता है। ज्येष्ठ का नाश धन की हानि या बहुत भारी दुःख होता है। गोप्रसव करके मेरे तीन पुत्र के जन्म के बाद कन्या की उत्पत्ति होने से ज्ञात सब अरिष्ट अथवा तीन कन्या के अनन्तर पुत्र होने से विदित सम्पूर्ण अरिष्ट के शान्त्यर्थं जो भी निमित्त हो तदनुसार संकल्प करे। स्थण्डिल के पूर्वभाग में ग्रहस्थापन के अनन्तर उत्तर से पांच कलश में सुवर्ण की प्रतिमा में ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र और रुद्र का आवाहन कर पूजन करे। उसमें ये मन्त्र हैं—'ब्रह्मजज्ञानं०' 'इदं विष्णु०' 'त्र्यम्बकं०' 'यत इन्द्रः०' 'कद्रुद्राय०'। ग्रहपीठ देवता के अन्वाधान के पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश, और इन्द्र, प्रत्येक को समिधा, घृत, चरु और तिल से एक हजार आठ और एक सौ आठ इनमें किसी एक से आहुति देवे।

अथ दन्तजननशान्तिः

उपरि 'प्रथमं यस्य जायन्तेऽथ शिशोर्द्विजाः।
दन्तैर्वा सह यस्य स्याज्जन्म भार्गवसत्तम॥
द्वितीये च तृतीये च चतुर्थे पञ्चमे तथा।
यदा दन्ताश्च जायन्ते मासे चैव महद्भयम्॥

शक्तितः॥ पञ्चमे कलशे रुद्रं पूजयेद्रुद्रसंख्यया। रुद्रसूक्तानि चत्वारि शान्तिसूक्तानि सर्वशः॥ द्विज एको जपेद्धोमकाले शुचिसमाहितः। आचार्यो जुहुयात्तत्र समिदाज्यतिलांश्चरून्॥ अष्टोत्तरसहस्रं षट्शतं त्रिशतं तु वा। देवताभ्यश्चतुर्वक्त्रादिभ्यो ग्रहपुरस्सरम्। ब्रह्मादिमन्त्रैरिन्द्रस्य यत इन्द्रं भजामहे। ततः स्विष्टकृतं हुत्वा बलिं पूर्णाहुतिं ततः॥ अभिषेकं कुटुम्बस्य कृत्वाऽऽचार्यं प्रपूजयेत्। हिरण्यं धेनुरेका च ऋत्विजां दक्षिणा ततः॥ आज्यस्य वीक्षणं कृत्वा शान्तिपाठं तु कारयेत्। प्रतिमां गुरवे दत्त्वा उपस्करसमन्विताः॥ ब्राह्मणान् भोजयेच्छक्त्या दीनानाथांश्च तर्पयेत्। कृत्वैवं विधिना शान्तिं सर्वारिष्टाद्विमुच्यते॥' 'अष्टोत्तरसहस्रं तु षट्शतं' का निर्णयसिन्धु में 'अष्टोत्तरसहस्रं वा शतं वा' यह पाठान्तर है।

१. रुद्रयामले—'प्रथमं दन्तनिर्मुक्तिरूर्ध्वं बालस्य चेद् भवेत्। क्लेशाय मातुलस्येह तदा प्रोक्ता महर्षिभिः॥ सौवर्णं राजतं वापि ताम्रं कांस्यमयं तु वा। दध्योदनेन संपूर्णं पात्रं दद्याच्छिशोः करे॥ समन्त्रं भाजनं दत्त्वा स पश्येन्मातुलः शिशुम्। सालङ्कारं सवस्त्रं च शिशुमालिङ्ग्य सादरः॥'

तत्र मन्त्रः—'रक्ष मां भागिनेय त्वं रक्ष मे सकलं कुलम्। गृहीत्वा भाजनं सान्नं प्रसन्नो भव मे सदा॥ निर्विघ्नं कुरु कल्याणं निर्विघ्नां च स्वमातरम्। मय्यात्मानमधिष्ठाप्य चिरं जीव मया सह॥ ततोऽभिनन्दयेद्विद्वान् भगिनीं भगिनीपतिम्। होमं कृत्वा तिलाज्येन ब्राह्मणानपि पूजयेत्॥ एवं कृते विधाने तु विघ्नः कोऽपि न जायते॥' इति।

मातरं पितरं वाथ खादेदात्मानमेव च ॥
बालानामष्टमे मासि षष्ठे मासि ततः पुनः ॥
दन्ता यस्य च जायन्ते माता वा म्रियते पिता ।
बालकः पीडयते वात्र स्वयमेव न संशयः ॥

केचित्तु अष्टमे मासि दन्तजन्म शुभमाहुः ।

जिस बालक को पहले ऊपर के दांत निकलते हैं अथवा दांत के साथ बालक जन्म लेता है और दूसरे, तीसरे, चौथे और पांचवें मास में दांत पैदा होते हैं तो यह बहुत बड़ा भय देता है। माता पिता अथवा अपने को भी खा लेता है। जिस बालक को छठे और आठवें मास में दांत उत्पन्न होता है उसके माता अथवा पिता की मृत्यु होती है। अथवा बालक स्वयं पीड़ित होता है। कोई तो आठवें मास में दांत का निकलना शुभ कहते हैं।

तत्रास्य शिशोः प्रथममूर्ध्वदन्तजननसूचितसर्वारिष्टेत्यादि सदन्तजननसूचितेत्यादि वा द्वितीयमासे दन्तजननसूचितेत्यादि वा संकल्पं यथानिमित्तं योजयेत् । स्थण्डिलोत्तरभागे नौकायां स्वर्णपीठे वा स्वस्तिकयुते बालमुपवेश्य सर्वौषध्यादियुक्तजलैः स्नापयित्वा स्थण्डिलपूर्वतः कलशे प्रतिमासु धातारं वह्नि सोमं वायुं पर्वतान् केशवं चेति षड् देवताः संपूज्य ग्रहान्वाधानान्ते धातारं सकृच्चरुणा वह्न्यादिपञ्चदेवता एकैकयाज्याहुत्या शेषेणेत्यादि अन्वादध्यात् ।

इसमें इस बालक को पहिले ऊपर के दांत निकलने या दांत के साथ पैदा होने अथवा दूसरे आदि महीनों में दांत उत्पन्न होने से सब अरिष्ट आदि के निवृत्यर्थं संकल्प में निमित्त की योजना करे। स्थण्डिल के उत्तर भाग में नाव में या सोने के बने आसन पर जिसमें स्वस्तिक बना हो उसपर बालक को बैठाकर सर्वौषधि मिले जल से नहला कर स्थण्डिल के पूर्व की ओर कलश में प्रतिमाओं में धाता, अग्नि, सोम, वायु, पर्वतों और भगवान् केशव, इन छ देवताओं की पूजा कर ग्रहों के अन्वाधान के पश्चात् धाता को एकबार चरु से अग्नि आदि पांच देवताओं को एक एक घृत की आहुति देकर शेष से स्विष्टकृत् इत्यादि अन्वाधान करे।

धात्रे त्वा जुष्टं निर्वपामीत्यादिनिर्वापप्रोक्षणे। नाम्ना चरुहोमः। स्रुवेण वह्न्यादिभ्यः पञ्चाज्याहुतयोऽपि नाम्नैव । होमान्ते दक्षिणां दत्त्वा सप्ताहं यथाशक्ति ब्राह्मणान् भोजयेत् । अष्टमदिने काञ्चनादि दत्त्वा कर्मेश्वरार्पणं कुर्यात् । षष्ठाष्टममासयोर्दन्तजनने तु एकस्या बृहस्पतिदेवतायाः पूजनम् । दधिमधुघृताक्तानामश्वत्थसमिधामष्टोत्तरशतं बृहस्पतिमन्त्रेण होमः । आज्येन स्विष्टकृदादि । इति दन्तजननशान्तिः ।

'धात्रे त्वा जुष्टं निर्वपामि' इससे निर्वाप और प्रोक्षण करे। नाम से चरु का होम करे। स्रुवा से अग्नि आदि देवता को घृत की पांच आहुति नाम मन्त्र से दे। होम के अनन्तर दक्षिणा देकर सात दिनतक शक्ति के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन करावे। आठवें दिन सुवर्ण आदि देकर कर्म को ईश्वरार्पण करे। छठे और आठवें मास में दांत निकले तो एक बृहस्पति देवता का पूजन करे। दही, मधु और घृत पीपल की लकड़ी में मिलाकर एक सौ आठ आहुति बृहस्पति के मन्त्र से दे। घृत से स्विष्टकृत् आदि करे। दन्तजननशान्ति समाप्त।

अथ प्रसववैकृतशान्तिः

यत्र गर्भे विपर्यासो मानुषाणां गवामपि ।
अद्भुतानि [1]प्रसूयन्ते तत्र देशस्य विप्लवः ॥
मानुषामानुषाणां च गोऽजाश्वमृगपक्षिणाम् ।
जायन्ते जातिभेदाश्च सदन्ता विकृतास्तथा ॥
बहुशीर्षा अशीर्षा वा बहुकर्णा अकर्णकाः ।
एकशृङ्गा द्वित्रिशृङ्गास्तथैव त्रिचतुर्भुजाः ॥
दीर्घकर्णा महाकर्णा गजकर्णाश्च मानवाः ।
राजश्रेष्ठकुले नाशो धनस्य च कुलस्य च ॥
अष्टोत्तरसहस्राणि चरुं वै जुहुयाद्घृतम् ।
समिधां तु पलाशानां तर्पयेत्पूर्ववद् द्विजान् ॥
अशिरा जायते जन्तुस्तथा द्वित्रिशिरास्तथा ।
अत्र सूर्याद्भुते सूर्यं पूजयेज्जुहुयादपि ॥

जिस गर्भ में मनुष्यों और गायों का उलटफेर होता है तथा मनुष्य गौ आदि आश्चर्ययुक्त प्रसव करते हैं उस देश में विप्लव होता है। मनुष्य और मनुष्य भिन्न में गाय बकरा घोड़ा मृग और पक्षियों का स्वजाति से भिन्न जाति का पैदा होने लगता है। दांत के साथ विकृत रूप जन्म लेते हैं, बहुत सिर वाले, विना सिर वाले, अधिक कान वाले, विना कान के, एक सींग के, दो तीन सींग के और तीन भुजा चार भुजा के, लम्बे कान के, बड़े कान के, हाथी के समान कान वाले मनुष्य जन्म लेने लगते हैं, तब राजा का श्रेष्ठ कुल का और धन का नाश होता है। ऐसी स्थिति में एक हजार आठ चरु घृत से होम करे। पलाश की समिधा से होम और ब्राह्मणों को तृप्त करे। विना सिर का जीव पैदा ले, दो तीन सिर वाला जन्म ले तो इस स्थिति में सूर्य की पूजा और होम भी करे।

दध्याज्यमधुसंयुक्ताः समिधस्त्वर्कसंभवाः ।
मृगी जनयते सर्पान्मण्डूकांश्चैव मानुषान् ॥
अत्राद्भुते गीष्पतये पूजाहोमं च कारयेत् ।
औदुम्बरस्य समिधो दधिसर्पिःसमन्विताः ॥
स्त्रीगर्भपातो यमलं प्रसूयन्तेऽथवा स्त्रियः ।
सदन्ताश्चैव जायन्ते जातमात्रा हसन्ति च ॥
बुधाद्भुते बुधायात्र पूजाहोमौ समाचरेत् ।
संक्षेपेण यथाप्रज्ञमित्थं जननशान्तयः ॥
उक्ता जपाभिषेकार्थसूक्तादिबहुविस्तृताः ।

---

१. मत्स्यपुराणे—'अकालप्रसवा नार्यः कालातीतप्रजास्तथा। हीनाङ्गा अधिकाङ्गाश्च जायन्ते यदि वा स्त्रियः॥ पशवः पक्षिणश्चैव तथैव च सरीसृपाः। विनाशं तस्य देशस्य कुलस्य च विनिर्दिशेत्॥ निर्वासयेत्तां नगरात्ततः शान्तिं समाचरेत्।' इति।

प्रयोगाः कौस्तुभादौ च प्रसिद्धा बहुशः पराः ॥
अनेन प्रीयतां देवो भगवान् विट्ठलः प्रभुः ॥

आक की समिधा दही, मधु और घृत में मिलाकर होम करे। हरिणी सांप पैदा करे या मण्डूक (बेंग) मनुष्य उत्पन्न करे तो इस अद्भुत प्रसव में बृहस्पति की पूजा और होम करे और दही, घी के साथ उदुम्बर की समिधा की आहुति दे। जब स्त्रियों का अधिक संख्या में गर्भपात हो या यमल (जोड़ुआं) प्रसव हो, दांत के सहित बच्चे जन्म लें तथा पैदा होते ही हंसने लगें यह बुधाद्भुत है। इसमें बुध महाराज की पूजा और होम दोनों करे। इस प्रकार संक्षेप से अपनी बुद्धि के अनुसार जन्म की शान्तियां कही हैं। जप अभिषेक के लिये अतिविस्तृत सूक्त और प्रयोग कौस्तुभ में बहुत प्रसिद्ध हैं, इससे भगवान् विठ्ठल प्रसन्न हों।

अथ नामकरणम्

तत्र जन्मदिने जातकर्मानन्तरं तत्कालः। क्वचिद् एकादशाहे वा विप्रस्य नामकर्म। दशमदिने आशौचसत्त्वेपि वचनान्नामकर्म[1] कार्यमिति केचित्। क्षत्रियाणां त्रयोदशे षोडशे वा दिने। वैश्यानां षोडशे विंशतितमे वा दिने। द्वाविंशे मासान्ते वा शूद्राणाम्। मासान्ते शततमे दिने वत्सरान्ते वेति विप्रादीनां गौणकालः। मुख्यकाले कुर्वन् विप्रादिः पुण्यतिथिनक्षत्रचन्द्रानुकूल्यादिगुणादरं न कुर्यात्।

इसमें जन्मदिन में जातकर्म के बाद नामकर्म का समय है। कहीं ग्यारहवें दिन अथवा बारहवें दिन ब्राह्मण का नामकर्म होना कहा है। वचन से दसवें दिन आशौच के रहते हुए भी नामकर्म करना चाहिए, यह भी कुछ लोग कहते हैं। क्षत्रियों को नामकर्म तेरहवें या सोलहवें दिन वैश्यों को सोलहवें या बीसवें दिन शूद्रों को बाईसवें दिन या मास के अन्त में करना चाहिये। ब्राह्मणों के नामकर्म का गौणकाल मासके अन्तमें या सौवें दिन अथवा वर्ष के अन्त में कहा है। मुख्यकाल में नामकर्म करने वाला ब्राह्मण आदि पुण्यतिथि, नक्षत्र और चन्द्रमा की अनुकूलता आदि गुणों का आदर न करे।

उक्तमुख्यकालातिक्रमे[2] शुभनक्षत्रादिकमावश्यकम्। वैधृतिव्यतीपातसंक्रान्तिग्रहणदिनामावास्याभद्रासु प्राप्तकालेऽपि नामकर्मादि शुभकर्म न कार्यम्। अत्र

---

१. मनुः—'नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वाऽस्य कारयेत्। पुण्ये तिथौ मुहूर्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते ॥' विष्णुपुराणे—'शर्मवद् ब्राह्मणस्योक्तं वर्मेति क्षत्रसंयुतम्। गुप्तदासात्मकं नाम प्रशस्तं वैश्यशूद्रयोः ॥' यमः—'शर्मदेवश्च विप्रस्य वर्मत्राता च भूभुजः। भूतिर्दत्तश्च वैश्यस्य दासः शूद्रस्य कारयेत् ॥' इति। मदनरत्ने—'द्वादशे दशमे वाऽपि जन्मतोऽपि त्रयोदशे। षोडशे विंशतौ चैव द्वात्रिंशे वर्णतः क्रमात् ॥' याज्ञवल्क्यः—'अहन्येकादशे नाम' इति। गृह्यपरिशिष्टे—'जननाद्दशरात्रे व्युष्टे शतरात्रे संवत्सरे वा नामकरणम्' इति। व्युष्टे=अतीते। विष्णुः—'आशौचापगमे नामधेयम्' इति। वसिष्ठः—'उत्तरारेवतीहस्तमूलतिष्याः सवारुणाः। श्रवणादितिमैत्रे च स्वातीमृगशिरस्तथा ॥ प्राजापत्यं धनिष्ठा च प्रशस्ता नामकर्मणि। पक्षच्छिद्रां च नवमीं पञ्चमीं चैव वर्जयेत् ॥ शेषास्तु तिथयः सर्वाः प्रशस्ता नामकर्मणि।' इति।

१. कारिका—'मुख्यकाले यदा नामधेयं कर्तुं न शक्यते। उक्तानामन्यतमस्मिन् दिने स्यात्तु गुणान्विते ॥' गर्गः—'अमासंक्रान्तिविष्ट्यादौ प्राप्तकालेऽपि नाचरेत्।' इति।

मलमासगुरुशुक्रास्तादिदोषो नास्तीत्युक्तम् । अपराह्णे रात्रौ च नामकर्म वर्ज्यम् ।

कहे हुए मुख्यकाल के बीतने पर शुभनक्षत्र आदि आवश्यक है। वैधृति, व्यतीपात, संक्रान्ति, ग्रहणदिन, अमावास्या और भद्रा में प्राप्त समय में भी नामकर्म आदि शुभकर्म न करे। इसमें मलमास, गुरुशुक्रास्तादि का दोष नहीं होता है, ऐसा कह चुके हैं। अपराह्ण में तथा रात में नामकर्म वर्जित है।

अथोक्तकालातिक्रमेऽपेक्षितशुभतिथ्यादि—[1]'चतुर्थीषष्ठ्यष्टमीनवमीद्वादशीचतुर्दशीपञ्चदशीरहितास्तिथयः प्रशस्ताः । चन्द्रबुधगुरुशुक्रा वासराः । अश्विनीत्र्युत्तरारोहिणीमृगपुनर्वसुपुष्यहस्तस्वात्यनूराधाश्रवणधनिष्ठाशततारकारेवतीनक्षत्राणि । वृषभसिंहवृश्चिकलग्नानि प्रशस्तानि ।

उक्त समय बीत जाने पर चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी, नवमी, द्वादशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा से भिन्न तिथियां उत्तम हैं। सोम, बुध, बृहस्पति और शुक्रवार इसमें प्रशस्त हैं। अश्विनी, तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, स्वाती, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा और रेवती नक्षत्र तथा वृष सिंह और वृश्चिक लग्न उत्तम है।

अथ नामचतुष्टयनिर्णयः

तानि नामानि चतुर्विधानि—[2]'देवतानाम-मासनाम-नक्षत्रनाम-व्यावहारिकनामेति । तत्रामुकदेवताभक्त इत्याकारकं देवतानाम प्रथमम् ।

चैत्रादिमासनामानि वैकुण्ठोऽथ जनार्दनः ।
उपेन्द्रो यज्ञपुरुषो वासुदेवस्तथा हरिः ॥
योगीशः पुण्डरीकाक्षः कृष्णोऽनन्तोऽच्युतस्तथा ।
चक्रीति द्वादशैतानि क्रमादाहुर्मनीषिणः ॥

इत्यनुसारेण मासनाम द्वितीयकम् । मासाश्चात्र चान्द्राः । ते च शुक्लादिकृष्णान्ता एव ।

वे नाम चार प्रकार के होते हैं—देवतानाम, मासनाम, नक्षत्रनाम और व्यावहारिकनाम। उसमें अमुक देवता का भक्त इस तरह देवतानाम पहिला, चैत्र आदि मास के नाम—वैकुण्ठ, जनार्दन, उपेन्द्र, यज्ञपुरुष, वासुदेव, हरि, योगीश, पुण्डरीकाक्ष, कृष्ण, अनन्त, अच्युत और चक्री, इसप्रकार क्रम से बारह नाम विद्वान् लोग कहते हैं। इसके अनुसार मासनाम दूसरा है। इसमें मास चान्द्र है। वे शुक्लादि कृष्णान्त मास हैं।

---

१. श्रीधरः—'मित्रादित्यमघोत्तराशतभिषक्स्वातीधनिष्ठाच्युतप्राजेशाश्विशशाङ्कपौष्णदिनकृत्पुष्येषु राशौ स्थिरे। छिद्रां पञ्चदशीं विहाय नवमीं शुद्धेऽष्टमे भार्गवज्ञाचार्यामृतपादभागदिवसे नामानि कुर्याच्छिशोः ॥' इति ।

२. शंखः—'कुलदेवतानक्षत्राभिसम्बन्धं पिता नाम कुर्यादन्यो वा कुलवृद्धः' इति । मदनरत्न में नारदीय-वचन—'सूतकान्ते नामकर्म विधेयं स्वकुलोचितम् । नामपूर्वं तु मासस्य मङ्गलं सुसमाक्षरैः ॥' गार्ग्यः—'मासनाम गुरोर्नाम दद्याद् बालस्य वै पिता ।' स्मृतिसंग्रहे—'कृष्णोऽनन्तोऽच्युतश्चक्री वैकुण्ठोऽथ जनार्दनः । उपेन्द्रो यज्ञपुरुषो वासुदेवस्तथा हरिः ॥ योगीशः पुण्डरीकाक्षो मासनामान्यनुक्रमात् ।' यहाँ मार्गशीर्षादि या चैत्रादि मास-क्रम ग्राह्य है, ऐसा मदनरत्न में कहा है।

यस्मिन्नक्षत्रे जन्म तन्नक्षत्रवाचकशब्दात् 'तत्र जातः' इत्यधिकारविहिततद्धितप्रत्यये कृते निष्पन्नं नाक्षत्रं माम तृतीयम्। तद्यथा—अश्वयुक् आपभरणः कार्तिकः रौहिणः मार्गशीर्षः आर्द्रकः पुनर्वसुः पुष्यः आश्लेषः माघः पूर्वाफाल्गुनः उत्तराफाल्गुनः हस्तः चैत्रः स्वातिः विशाखः अनुराधः ज्यैष्ठः मूलकः पूर्वाषाढः उत्तराषाढः आभिजितः श्रावणः श्रविष्ठः शतभिषक् पूर्वाप्रोष्ठपादः उत्तराप्रोष्ठपादः रैवतः इति।

जिस नक्षत्र में जन्म हो उस नक्षत्र वाचक शब्द से 'तत्र जातः' इससे विहित तद्धितप्रत्यय करने पर संपन्न नाक्षत्र नाम तीसरा। वह इसतरह—अश्वयुक् आपभरण कार्तिक रौहिण मार्गशीर्ष आर्द्रक पुनर्वसु पुष्य आश्लेष माघ पूर्वाफाल्गुन उत्तराफाल्गुन हस्त चैत्र स्वाति विशाख अनूराध ज्यैष्ठ मूलक पूर्वाषाढ उत्तराषाढ आभिजित श्रावण श्रविष्ठ शतभिषक् पूर्वाप्रोष्ठपाद उत्तराप्रोष्ठपाद और रैवत।

केचित्तु—चूचेचोलाश्विनी प्रोक्तेत्यादिज्योतिर्ग्रन्थोक्तावकहडाचक्रानुसारेणाश्विन्यादेश्चतुर्षु चरणेषु चूडामणिश्चेदीशश्चोलेशो लक्ष्मण इत्यादिकानि नाक्षत्रनामानि कुर्वन्ति, तन्न श्रौतग्रन्थादिबहुसम्मतम्। सांख्यायनास्तु कृत्तिकोत्पन्नस्याग्निशर्मेति नक्षत्रदेवतासंबद्धनाक्षत्रं नाम कुर्वन्ति। एवं कातीया अपि। नाक्षत्रनामैवाभिवादनीयं गुप्तं चामौञ्जीबन्धनान्मातापितरावेव जानीयाताम्।

कुछ लोग तो 'चू चे चो ला अश्विनी' इत्यादि ज्योतिषग्रन्थ में कहे 'अवकहडा चक्र' के अनुसार अश्विनी आदि के चारो चरणों में चूडामणि चेदीश चोलेश लक्ष्मण इत्यादिक नाक्षत्र नाम रखते हैं, ये नाम श्रौतग्रन्थ आदि से बहुसम्मत नहीं हैं। सांख्यायन तो कृत्तिका में उत्पन्न का अग्निशर्मा ऐसा नक्षत्रदेवता से संबद्ध नाक्षत्र-नाम रखते हैं। इसी प्रकार कातीय भी। अभिवादन के योग्य नाक्षत्र नाम ही है यज्ञोपवीत तक गुप्त रखना चाहिये केवल माता-पिता ही इस नामको जानें।

व्यावहारिकं नाम चतुर्थम्। तच्च कवर्गादिषु तृतीयचतुर्थपञ्चमवर्णहकारान्ततमवर्णाद्यावयवकं यरलवान्यतममध्यमवर्णयुतम् ॠऌवर्णरहितं विसर्गान्तं पित्रादिपुरुषत्रयान्यतमवाचकं शत्रुवाचकभिन्नं तद्धितप्रत्ययरहितं कृत्प्रत्ययान्तं युग्माक्षरं पुंसामयुग्माक्षरं स्त्रीणां कार्यम्। यथा देव इति हरिरिति।

व्यावहारिक नाम चौथा होता है। वह नाम कवर्ग आदि में से तीसरा चौथा पांचवा वर्ण और हकार में से कोई एक नाम का पहला वर्ण हो और मध्यम यरलव इनमें से कोई एक रहे इसमें ॠऌ वर्ण न रहे विसर्ग अन्तमें हो पिता आदि तीन पुरुषों में से किसी एक का वाचक हो शत्रु वाचक न हो तद्धितप्रत्ययान्त न हो, कृत्प्रत्ययान्त हो जोड़े अक्षर वाला पुरुष का नाम रखना चाहिये और स्त्रियों के नाम में विषम अक्षर हो, जैसे देव, हरि।

उक्तसर्वलक्षणाभावे समाक्षरं पुंसामयुग्माक्षरं स्त्रीणामित्येकलक्षणयुतमेव। यथा रुद्र इति राजेत्यादि। अक्षरमत्र स्वरः, व्यञ्जनेषु न संख्यानियमः।

कहे हुए सब लक्षण न हो तो सम अक्षर का नाम पुरुष का और विषम अक्षर वाला स्त्रियों का नाम करे। जैसे रुद्र अथवा राजा इत्यादि। अक्षर यहां स्वर को कहते हैं, व्यञ्जनों में संख्या का नियम नहीं है।

अत्र विशेषः—'द्व्यक्षरं प्रतिष्ठाकामश्चतुरक्षरं ब्रह्मवर्चसकामः अन्त्यलकार-रेफं वर्जयेदिति। आपस्तंबहिरण्यकेशिसूत्रे तु प्रातिपदिकादिधात्वन्तं यथा हिरण्यदा इति उपसर्गयुतं वा सुश्रीरित्यादीति विशेष उक्तः। तच्च व्यावहारिकं नाम शर्मपदान्तं देवपदान्तं वा ब्राह्मणस्य। वर्मेति राजेति वा पदयुतं क्षत्रियस्य। गुप्तदत्तान्यतरान्तं वैश्यस्य। दासान्तं शूद्रस्य कार्यम्।

इसमें विशेष यह है—प्रतिष्ठा की इच्छा वाले दो अक्षर का और ब्रह्म-तेज की कामना से चार अक्षर का नाम करे। अन्त में रेफ और लकार को वर्जित कर दे। आपस्तम्ब हिरण्यकेशीय सूत्रमें तो आदि में प्रातिपदिक और अन्तमें धातु, जैसे–हिरण्यदा अथवा उपसर्गयुक्त अथवा सुश्री इत्यादि विशेष कहा है। वह व्यावहारिक नाम ब्राह्मण का शर्मा पद या देव पद अन्त में हो। क्षत्रिय का नाम वर्मा अथवा राजा ऐसा पद अन्त में रहे। वैश्य का गुप्त या दत्त पद में से कोई एक अन्त में रहना चाहिये। शूद्र का नाम अन्त में दास पद वाला करना चाहिये।

अथ देवालयादीनां नामविचारः

व्यावहारिकं नाम प्रासादादीनामपि कार्यम्।

देवालयगजाश्वानां वृक्षाणां वापि कूपयोः।
सर्वापणानां पण्यानां चिह्नानां योषितां नृणाम्॥
काव्यादीनां कवीनां च पश्वादीनां विशेषतः।
राजप्रासादयज्ञानां नामकर्म यथोदितम्॥

व्यावहारिक नाम धनिकों के मकान आदि का भी करना चाहिये। क्योंकि यह वचन है कि देवालय हाथी घोड़ा वृक्ष बावली कुआँ बाजार चिह्न स्त्री मनुष्य काव्य कवि विशेषतः पशु आदि का राजमहल और यज्ञों का यथोक्त नाम करना चाहिये।

अथ प्रयोगे विशेषः

गर्भाधानादिसंस्कारलोपे प्रत्येकं पादकृच्छ्रं बुद्धिपूर्वमकरणे प्रत्येकमर्धकृच्छ्रं प्रायश्चित्तं जातकर्मणः कालातिपत्तिनिमित्तकाज्यहोमपूर्वकं कार्यम्। तद्यथा—'जातकर्मणः कालातिपत्तिनिमित्तकदोषपरिहारद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं प्रायश्चित्तहोमं करिष्ये' इति संकल्प्याग्निस्थापनेध्माधानादिपाकयज्ञतन्त्रसहितं वह्निस्थापनाज्यसंस्कारपात्रसंस्कारमात्रसहितं वा ओं भूर्भुवः स्वः स्वाहेति समस्तव्याहृत्याज्यहोमं कुर्यात्।

गर्भाधान आदि संस्कार के न होने पर प्रत्येक संस्कार के निमित्त पादकृच्छ्र प्रायश्चित्त, जान बूझ के उक्त संस्कार न करने पर प्रत्येक के निमित्त अर्धकृच्छ्र प्रायश्चित्त और जातकर्म-संस्कार का समय बीत जाने पर उसके लिये घृत से होम करके नामकर्म करे। वह इस प्रकार करे—'जातकर्म का समय समाप्त हो जाने पर उससे उत्पन्न दोष के निवारणार्थ श्रीपरमेश्वर की प्रसन्नता की कामना से प्रायश्चित्त होम करूँगा' ऐसा संकल्प कर अग्निस्थापन समिधा का आधान आदि पाकयज्ञ तन्त्र-सहित अथवा अग्निस्थापन घृतसंस्कार-पात्रसंस्कारमात्र-सहित 'ओं भूर्भुवः स्वः स्वाहा' इस सम्पूर्ण व्याहृति से घृत से होम करे।

---

१. आश्वलायनः—'द्व्यक्षरं चतुरक्षरं वा, द्व्यक्षरं प्रतिष्ठाकामः, चतुरक्षरं ब्रह्मवर्चसकामः। युग्मानि त्वेव पुंसामयुजानि स्त्रीणाम्' इति।

होमं समाप्य 'गर्भाधानपुंसवनानवलोभनसीमन्तोन्नयनलोपजनितदोषपरिहारद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थम् एतावतः पादकृच्छ्रान् बुद्धिपूर्वकलोपेऽर्धकृच्छ्रांस्तत्प्रत्याम्नायगोनिष्क्रयीभूतयथाशक्तिरजतद्रव्यदानेनाहमाचरिष्ये' इति संकल्प्य द्रव्यं दद्यात् ।

होम समाप्त कर 'गर्भाधान पुंसवन अनवलोभन सीमन्तोन्नयन के न होने से उत्पन्न दोष को दूर करने के निमित्त तथा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं इतने पादकृच्छ्र ज्ञानपूर्वक न करने पर इतने अर्ध कृच्छ्र, इन सबके बदले में यथाशक्ति गौ का मूल्य चान्दी के दान से आचरण करूँगा' ऐसा संकल्प कर द्रव्य का दान करे ।

जातकर्मनाम्नोः सहचिकीर्षायां पूर्वोक्तजातकर्मसंकल्पवाक्यमुच्चार्य 'अस्य कुमारस्यायुरभिवृद्धिव्यवहारसिद्धिबीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं नामकर्म च तन्त्रेण करिष्ये' इति संकल्प्य स्वस्तिवाचनादि कुर्यात् । तत्र जातकर्मनामकर्मणोः पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्त्वित्युक्त्वा अस्य कुमारस्य जातकर्मणे एतन्नाम्ने अस्मै च स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्त्विति स्वस्तिपर्याये वदेत् । तदनुसारेणैव विप्रप्रतिवचनम् । केवलनामचिकीर्षायां नामकर्मणः पुण्याहमित्युक्त्वा स्वस्तिपर्याये अमुकनाम्ने अस्मै स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्त्विति वदेत् । विप्राश्चामुकनाम्ने अस्मै स्वस्तीति प्रतिब्रूयुः ।

जातकर्म नामकर्म साथ करने की इच्छा हो तो पहिले कहे हुए जातकर्म के संकल्प का उच्चारण कर 'इस बालक के आयुवृद्धि के लिये बीजगर्भ से उत्पन्न पाप के निवारणार्थ श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थ नामकर्म तन्त्र से करूँगा' ऐसा संकल्प कर स्वस्तिवाचन आदि करे । जातकर्म और नामकर्म में 'पुण्याहम्' ऐसा आप लोग कहें ऐसा कहकर इस कुमार के जातकर्म के लिये इस बालक के 'स्वस्ति' ऐसा आप लोग कहें । तदनुसार ब्राह्मण 'स्वस्ति' कहें । केवल नामकर्म करने की इच्छा हो तो नामकर्म का 'पुण्याहम्' ऐसा कह स्वस्ति के लिये अमुक नामवाले इस कुमार का 'स्वस्ति' ऐसा आप लोग कहें । ब्राह्मण लोग भी अमुक नामवाले इस बालक के लिये 'स्वस्ति' ऐसा कहें ।

लेखनादौ नामत्रयं शर्मादिपदरहितं कृत्वा व्यावहारिकं नाम शर्माद्यन्तं कुर्यात् । अभिवादने नाक्षत्रनामापि शर्माद्यन्तं सर्वत्रोच्चारणीयम् । अवशिष्टः प्रयोगः प्रयोगग्रन्थेषु ।

लिखने आदि में तीन प्रकार के नाम शर्मा आदि पद से रहित करके व्यावहारिक नाम के अन्त में शर्मा आदि कहे । अभिवादन में नाक्षत्र नाम के अन्त में शर्मा आदि सब जगह उच्चारण करे । बाकी प्रयोग प्रयोग-ग्रन्थों से जानना चाहिये ।

अथ स्त्रीणां नामकर्म

संकल्पे अस्याः कुमार्या इति विशेषः । स्वस्तिवाचने एतन्नाम्न्यै अस्यै स्वस्तीत्यादि । भक्तेत्याबन्तं देवतानाम मासनाम सुचक्रिणी वैकुण्ठी वासुदेवीति त्रीणि ङीबन्तानि हरिरित्यविकृतम् अवशिष्टानि अष्टावाबन्तानि रोहिणी कृत्तिकेत्येवं यथायथं नाक्षत्रनामेति मातृदत्तमते । आश्वलायनैर्नाक्षत्रनाम स्त्रीणां न

कार्यम्। व्यावहारिकं[1] यज्ञदा शर्मेति पुंवत्। पूजादिकं वैदिकमन्त्ररहितं पुंवत्कार्यम्। पितुरसन्निधौ स्त्रीपुंसयोर्नाम पितामहादिः कुर्यात्। इति नामकरणम्।

संकल्प में इस कुमारी का इतना विशेष है। स्वस्तिवाचन में इस नामवाली इसके लिये स्वस्ति इत्यादि कहे। भक्ता ऐसा टाप्प्रत्ययान्त, देवतानाम, मासनाम, सुचक्रिणी, वैकुण्ठी, वासुदेवी, ऐसा तीन नाम ङीप्प्रत्ययान्त, हरि ऐसा ङीप्टाप से रहित नाम, शेष आठ टाप्प्रत्ययान्त नाम, रोहिणी कृत्तिका इस प्रकार जैसे का तैसा नाक्षत्र नाम, यह मातृदत्त के मत में है। आश्वलायनों का मत है कि स्त्रियों का नाक्षत्रनाम नहीं करना चाहिये। व्यावहारिक नाम यज्ञदा शर्मा इस प्रकार पुरुषों के जैसा करे। पूजन आदि वैदिक-मन्त्रों से रहित पुरुष के सदृश करना चाहिये। पिता समीप में न रहें तो पुरुष या स्त्री का नामकर्म पितामह आदि करे।

अथान्दोलारोहणम्

आन्दोलाशयने पुंसो [2]द्वादशो दिवसः शुभः।
त्रयोदशस्तु कन्याया न नक्षत्रविचारणा॥
अन्यस्मिन्दिवसे चेत्स्याच्छुभकालं विचारयेत्।

उत्तरात्रयरोहिणीहस्ताश्विनीपुष्यरेवत्यनूराधामृगचित्रापुनर्वसुश्रवणस्वातीनक्षत्रेषु शुभवारे रिक्तातिरिक्ततिथौ चन्द्रतारावले कुलयोषिद्भिरान्दोलाशयनं कार्यम्।

पालने के शयनमें पुरुषके लिये बारहवाँ दिन शुभ है। कन्याका तेरहवाँ दिन शुभ है। इसमें नक्षत्र का विचार नहीं करे। इसके अतिरिक्त दिन में शुभ समय का विचार करना चाहिये। तीनों उत्तरा, रोहिणी, हस्त, अश्विनी, पुष्य, रेवती, अनुराधा, मृगशिरा, चित्रा, पुनर्वसु, श्रवण और स्वाती नक्षत्रों में रिक्तारहित तिथियों में तथा चन्द्रमा तारा के बल में अपने कुल की स्त्रियों द्वारा पालन में शयन कराना उत्तम है।

अथ दुग्धपानम्

[3]एकत्रिंशे दिने द्वितीयजन्मर्क्षे वा दोलारोहोक्तनक्षत्रैर्वा पूर्वाह्णमध्याह्नयोः कुलदेवताविप्रयोः पूजां विधाय शङ्खेन गोदुग्धं पाययेत्। इति दुग्धपानम्।

---

१. मनुः—'स्त्रीणां सुखोद्यमक्रूरं विस्पष्टार्थं मनोहरम्। मङ्गल्यं दीर्घवर्णान्तमाशीर्वादाभिधानवत्॥' इति। पारस्करगृह्यसूत्रे—'अयुजाक्षरमाकारान्तं स्त्रियै तद्धितम्'। अस्य भाष्ये—'अयुजानि विषमाणि त्र्यादीन्यक्षराणि यस्मिन्नाम्नि तत्, आकारान्तम्-आकारोऽन्ते यस्य तत्, तद्धितं तद्धितप्रत्ययान्तं च स्त्रियै स्त्रिया नाम कुर्यादित्यर्थः।

२. बृहस्पति ने दोलारोह या खट्वारोह का समय बतलाया—'दोलारोहस्तु कर्तव्यो दशमे द्वादशेऽपि वा। षोडशे दिवसे वापि द्वाविंशे दिवसेऽपि वा॥' गृह्यसूत्र के भाष्यादि में—'दोलारोहस्तु' के स्थान पर 'खट्वारोहस्तु' पाठान्तर है। कहीं इसे 'पर्यङ्कारोहण' नाम से समय का निर्देश किया है।

३. नृसिंहः—'एकत्रिंशद्दिने चैव पयः शङ्खेन पाययेत्। अन्नप्राशननक्षत्रे दिवसोदयराशिषु॥' राहु से वर्जित दिशा की ओर शिशु का मुख करके दूध पिलावे। कौस्तुभ में राहु का विचार है—'इन्द्रे वायौ यमे रौद्रे तोयाग्निशशिराक्षसे। यामार्धमुदयाद् राहुर्भ्रमत्येवं दिगष्टके॥' इति। निर्णयसिन्धु आदि में चण्डेश्वर के वचनानुसार दुग्धपानानन्तर ताम्बूल-भक्षण कराने की विधि—'सार्धमासद्वये दद्यात्ताम्बूलं प्रथमं शिशोः। कर्पूरादिकसंयुक्तं विलासाय हिताय च॥' मुहूर्तः—'मूलार्कचित्रकरतिष्य-

एकतीसवें दिन या दूसरे जन्मनक्षत्र में अथवा पालने में कहे नक्षत्रों में पूर्वाह्न या मध्याह्न में कुलदेवता और ब्राह्मण की पूजा कर शङ्ख से गाय का दूध पिलावे।

अथ जलपूजनम्

सूत्या मासोत्तरं बुधसोमगुरुवारेषु रिक्तान्यतिथौ श्रवणपुष्यपुनर्वसुमृगहस्तमूलानुराधानक्षत्रेषु जलस्थानं गत्वा जलपूजा कार्या। अत्र गुरुशुक्रास्तचैत्रपौषमासाधिमासा वर्ज्याः। इति जलपूजनम्।

प्रसूति को एक मास के अनन्तर बुध सोम और गुरुवार को तथा रिक्ता-भिन्न-तिथि में श्रवण, पुष्य, पुनर्वसु, मृगशिरा, हस्त, मूल और अनुराधा नक्षत्रों में जलस्थान में जाकर जलपूजन करना चाहिये। इसमें गुरु शुक्र का अस्त पौषमास और मलमास वर्जित है।

अथ सूर्यावलोकननिष्क्रमणे

तृतीये मासि सूर्यावलोकनं[1] चतुर्थे मासि अन्नप्राशनकाले वा निष्क्रमणम्। तत्र कालः—

शुक्लपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णश्चान्त्यत्रिकं विना।
रिक्ता षष्ठ्यष्टमी दर्शो द्वादशी च विवर्जिता॥

गुरुशुक्रबुधवाराः अश्विनीरोहिणीमृगपुष्योत्तरात्रयहस्तधनिष्ठाश्रवणरेवतीपुनर्वस्वनुराधानक्षत्राणि च शस्तानि। इदं निष्क्रमणं नित्यं काम्यम्। सूर्यावलोकननिष्क्रमणयोर्नान्दीश्राद्धं कृताकृतम्। इति सूर्यावलोकननिष्क्रमणे।

तीसरे मास में सूर्यका देखना चौथे महीने अथवा अन्नप्राशन के समय में निष्क्रमण (घर से बाहर निकालना) होता है। उसका समय—शुक्लपक्ष शुभ है। कृष्णपक्ष भी अन्त के तीन दिनों को छोड़कर शुभ है। रिक्ता तिथि, षष्ठी, अष्टमी, अमावास्या और द्वादशी वर्जित है। वृहस्पति, शुक्र और बुधवार, अश्विनी, रोहिणी, मृगशिर, तीनों उत्तरा, धनिष्ठा, श्रवण, रेवती, पुनर्वसु और अनुराधा नक्षत्र प्रशस्त है। यह निष्क्रमण-कर्म नित्य और काम्य है। सूर्यावलोकन और निष्क्रमण में नान्दीश्राद्ध करना न करना तुल्य है। सूर्यावलोकन और निष्क्रमण समाप्त।

अथ भूम्युपवेशनकालः

पञ्चममासे निष्क्रमोक्ततिथ्यादौ भौमबले सति [2]भूम्युपवेशनं कार्यम्। इति भूम्युपवेशनम्।

हरीन्द्रमेषु पौष्णे तथा मृगशिरोऽदितिवासवेषु। अर्केन्दुजीवभृगुबोधनवासरेषु ताम्बूलभक्षणविधिर्मुनिभिः प्रदिष्टः॥' इति।

१. शिशु को तीसरे मास में सूर्य और चौथे में चन्द्र का दर्शन कराना चाहिये। यमः—'ततस्तृतीये कर्तव्यं मासि सूर्यस्य दर्शनम्। चतुर्थे मासि कर्तव्यं शिशोश्चन्द्रस्य दर्शनम्॥' इति। ज्योतिर्निबन्ध में तीसरे या चौथे मास में निष्क्रमण का निर्देश किया है—'तृतीये वा चतुर्थे वा मासि निष्क्रमणं भवेत्।' व्यास ने मुहूर्त बतलाया है—'मैत्रे पुष्यपुनर्वसुप्रथमभे पौष्णेऽनुकूले विधौ हस्ते चैव सुरेश्वरे च मृगभे तारासु शस्तासु च। कुर्यान्निष्क्रमणं शिशोर्बुधगुरौ शुक्रे विरिक्ते तिथौ कन्याकुम्भतुलामृगारिभवने सौम्यग्रहालोकिते॥' इति।

२. प्रयोगपारिजाते—'पञ्चमे च तथा मासि भूमौ तमुपवेशयेत्। तत्र सर्वे ग्रहाः शस्ता भौ-

पंचममास में निष्क्रमण की कही हुई तिथियों में मंगल के बल रहते भूम्युपवेशन करना चाहिये। भूम्युपवेशन समाप्त।

अथान्नप्राशनकालः

षष्ठेऽष्टमे दशमे द्वादशे वा मासे पूर्णे वत्सरे वा पुंसोऽन्नप्राशनम्[1]। पञ्चमसप्तमनवममासेषु स्त्रीणाम्।

द्वितीया च तृतीया च पञ्चमी सप्तमी तथा।
त्रयोदशी च दशमी प्राशने तिथयः शुभाः॥

बुधशुक्रगुरुवाराः शुभाः, रविचन्द्रवारौ क्वचित्। अश्विनीरोहिणीमृगपुनर्वसुपुष्योत्तरात्रयहस्तचित्रास्वात्यनूराधाश्रवणधनिष्ठाशततारकारेवत्यः शुभाः। जन्मनक्षत्रमशुभमिति केचित्। भद्रावैधृतिव्यतीपातगण्डातिगण्डवज्रशूलपरिघा वर्ज्याः।

छठे आठवें दसवें या बारहवें महीने में या पूरे वर्ष भर पर पुरुष (शिशु) का अन्नप्राशन होता है। लड़कियों का अन्नप्राशन पाचवें, सातवें और नवें महीने में करना चाहिये। द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, त्रयोदशी और दशमी तिथि अन्नप्राशन में शुभ है। बुध, बृहस्पति और शुक्रवार शुभ है। कहीं रविवार और सोमवार भी कहा है। अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, तीनों उत्तरा, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष और रेवती नक्षत्र शुभ हैं। कोई जन्म-नक्षत्र को अशुभ कहते हैं। भद्रा, वैधृति, व्यतीपात, गण्ड, अतिगण्ड, वज्र, शूल और परिघ योग वर्जनीय हैं।

विष्णुशिवचन्द्रार्कदिक्पालभूमिदिशाब्राह्मणान् संपूज्य मातृत्सङ्गगतस्य शिशोः काञ्चने कांस्ये वा पात्रे स्थितं दधिमधुघृतमिश्रं पायसं सुवर्णयुतहस्तेन समन्त्रं प्राशयेत्। सूर्यावलोकनादीन्यन्नप्राशनान्तानि अन्नप्राशनकाले शिष्टाः सहैवानुतिष्ठन्ति। एतेषां सहप्रयोगसंकल्पादिकं कौस्तुभादौ ज्ञातव्यम्।

मोऽप्यत्र विशेषतः॥ उत्तरात्रितयं सौम्यं पुष्यर्क्षं शक्रदैवतम्। प्राजापत्यं च हस्तश्च शस्तमाश्विनमित्रमम्॥' भूम्युपवेशनविधि अन्यत्र देखें।

१. नारदः—'जन्मतो मासि षष्ठे स्यात् सौरेणान्नाशनं परम्। तदभावेऽष्टमे मासि नवमे दशमेऽपि वा॥ द्वादशे वाऽपि कुर्वीत प्रथमान्नाशनं परम्। संवत्सरे वा सम्पूर्णे केचिदिच्छन्ति पण्डिताः॥' लौगाक्षिः—'षष्ठेऽन्नप्राशनं जातेषु दन्तेषु वा'। ज्योतिर्निबन्धे—'षष्ठे वाऽप्यष्टमे मासि पुंसां, स्त्रीणां तु पञ्चमे। सप्तमे मासि वा कार्यं नवान्नप्राशनं शुभम्॥ रिक्तां दिनक्षयं नन्दां द्वादशीमष्टमीममाम्। त्यक्त्वाऽन्यतिथयः प्रोक्ताः सितजीवज्ञवासराः॥ चन्द्रवारं प्रशंसन्ति कृष्णे चान्त्यत्रिकं विना॥ श्रीधरः—'आदित्यतिष्यवसुसौम्यकरानिलाश्विचित्राजविष्णुवरुणोत्तरपौष्णमित्राः। बालान्नभोजनविधौ दशमे विशुद्धो छिद्रां विहाय नवमीं तिथयः शुभाः स्युः॥'

मार्कण्डेयः—'ब्रह्माणं शंकरं विष्णुं चन्द्रार्कौ च दिगीश्वरान्। भुवं दिशश्च सम्पूज्य हुत्वा वह्नौ तथा चरुम्॥ देवतापुरतस्तस्य धात्र्युत्सङ्गगतस्य च। अलंकृतस्य दातव्यमन्नं पात्रे सकाञ्चनम्॥ मध्वाज्यदधिसंयुक्तं प्राशयेत् पायसं तु वा।' प्राशनमन्त्रः—'अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः। प्र प्र दातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे॥' इति।

विष्णु, शिव, चन्द्रमा, सूर्य, दिक्पाल, भूमि, दिशा और ब्राह्मणों का पूजन करके माता के गोद में बैठे हुए बालक को सोने या कांसे के पात्र में रखा हुआ दही मधु-घी-मिलित पायस सुवर्णयुक्त हाथ से मन्त्र के साथ बालक को चटावे। कुछ शिष्ट सूर्यावलोकन से अन्नप्राशन पर्यन्त संस्कार अन्नप्राशन के समय में साथ ही कहते हैं। इन सबके सह-प्रयोग का संकल्पादि कौस्तुभादि से जानें।

अथ बालस्य जीविकापरीक्षा

अथान्नप्राशनान्ते कर्तव्यम्—

अग्रतोऽथ परिन्यस्य शिल्पवस्तूनि सर्वशः।
शस्त्राणि चैव वस्त्राणि ततः पश्येत्तु लक्षणम्॥
प्रथमं यत्स्पृशेद्बालः पुस्तकादि स्वयं तदा।
जीविका तस्य बालस्य तेनैव तु भविष्यति॥

अन्नप्राशनान्तसंस्कारेषु मलमासगुरुशुक्रास्तादिदोषो नास्ति इत्युक्तं तच्छुद्धकालेष्वसंभवे ज्ञेयम्। तेन षष्ठादिमासे अस्तादिदोषसत्त्वेऽष्टमादिमासे कार्यम्। इति अन्नप्राशनम्।

बालक के आगे शिल्प-वस्तुओं और शस्त्र तथा वस्त्र को रख कर उसका लक्षण देखे। पुस्तक आदि में से बालक स्वयं पहिले जिस वस्तु का स्पर्श करे उसी से बालक की जीविका होगी, ऐसा जानना चाहिये। अन्नप्राशन पर्यन्त संस्कारो में मलमास-गुर्वस्त और शुक्रास्त दोष नहीं होता, यह कह चुके हैं। इसे शुद्ध-काल के न मिलने पर जानना चाहिये। इससे छठे आदि मासमें अस्त आदि के दोष रहते आठवें आदि महीनों में करे। अन्नप्राशन समाप्त।

अथ कर्णवेधः

दशमे द्वादशे वाऽह्नि षोडशे कर्णवेधनम्।
मासे षष्ठे सप्तमे वा अष्टमे दशमेऽपि वा॥
द्वादशे वा ततोऽब्दे च प्रथमे वा तृतीयके।
न कर्तव्यं समे वर्षे स्त्रीपुंसश्रुतिवेधनम्॥

तृतीयादिवत्सरे मासाः—

कार्तिके पौषमासे वा चैत्रे वा फाल्गुनेऽपि वा।
शुक्लपक्षः शुभः प्रोक्तो जन्ममासो निषेधितः॥

दसवें, बारहवें या सोलहवें दिन अथवा छठे, सातवें या आठवें दसवें और बारहवें महीने में कर्णवेध करे। तदनन्तर पहिले और तीसरे वर्ष में कर्णवेध शुभ है। लड़की और लड़के का कर्णवेध सम वर्ष में नहीं करना चाहिये। तीसरे आदि वर्ष में कार्तिक, पौष अथवा चैत्र या फाल्गुन में भी करे। इनमें शुक्लपक्ष शुभ कहा है। जन्ममास का निषेध किया है।

भद्रायां विष्णुशयने कर्णवेधं विवर्जयेत्।

तेन कार्तिकमासविधिः शुक्लद्वादश्युत्तरं ज्ञेयः। केचिन्मीनस्थसूर्ये चैत्रं धनुःस्थे पौषं मासं वर्जयन्ति।

द्वितीया दशमी षष्ठी सप्तमी च त्रयोदशी।
द्वादशी पञ्चमी शस्ता तृतीया कर्णवेधने॥

चन्द्रबुधगुरुशुक्रवाराः 'पुष्यपुनर्वसुमृगोत्तरात्रयहस्तचित्राश्विनीश्रवणरेववतीधनिष्ठाः शुभाः। विष्णुरुद्रब्रह्मसूर्यचन्द्रदिक्पालनासत्यसरस्वतीगोब्राह्मणगुरुपूजां कृत्वालक्तकरसाङ्कितं कर्णं पुंसः पूर्वं दक्षिणं विध्येत् पश्चाद्वामम्। स्त्रीणां पूर्वं वामम्।

सौवर्णी राजपुत्रस्य राजती विप्रवैश्ययोः।
शूद्रस्य चायसी सूची बालकाष्टाङ्गुला मता॥
कर्णरन्ध्रे रवेश्छाया [2]प्रविशेद्वर्धयेत्तथा।
अन्यथा दर्शने तस्य पूर्वपुण्यविनाशनम्॥ इति कर्णवेधः।

भद्रा और हरिशयन में कर्णवेध न करे। इससे कार्तिकमास को भी शुक्लद्वादशी के बाद जानना चाहिये। कुछ लोग मीन के सूर्य में चैत्र और धनु के सूर्य में पौष को भी वर्जित करते हैं। द्वितीया, दशमी, षष्ठी, सप्तमी, त्रयोदशी, द्वादशी, पंचमी और तृतीया तिथि कर्णवेध में प्रशस्त है। चन्द्र, बुध, गुरु और शुक्रवार, तथा पुष्य, पुनर्वसु, मृगशिरा, तीनों उत्तरा, हस्त, चित्रा, अश्विनी, श्रवण, रेवती और धनिष्ठा नक्षत्र उत्तम है। विष्णु, शिव, ब्रह्मा, सूर्य, चन्द्रमा, दिक्पाल, अश्विनीकुमार, सरस्वती, गौ, ब्राह्मण और गुरु की पूजा करके महावर से कान को चिह्नित कर लड़के का पहिले दाहिना पीछे बायां और लड़कियों का पहिले बायां पीछे दाहिना कान छेदे। क्षत्रियबालक का कान सोने की आठ अंगुल की सूई से, ब्राह्मण और वैश्य बालक का उसी प्रमाण की चांदी की सूई से और शूद्र के बालक का आठ अंगुल के लोहे की सूई से छेदे। कान के छेद में सूर्य की छाया जितने में प्रवेश करे उतना बढ़ावे नहीं तो उसे देखने में पूर्व पुण्य का विनाश होता है। कर्णवेध समाप्त।

अथ बालस्य दृष्टिदोषादौ रक्षाविधिः

वासुदेवो जगन्नाथः पूतनातर्जनो हरिः।
रक्षतु त्वरितो बालं मुञ्च मुञ्च कुमारकम्॥
कृष्ण रक्ष शिशुं शङ्खमधुकैटभमर्दन।
प्रातःसङ्गवमध्याह्नसायाह्नेषु च संध्ययोः॥
महानिशि सदा रक्ष कंसारिष्टनिषूदन।
पद्गोरगपिशाचांश्च ग्रहान्मातृग्रहानपि॥
बालग्रहान् विशेषेण छिन्धि छिन्धि महाभयान्।
त्राहि त्राहि हरे नित्यं त्वद्रक्षाभूषितं शिशुम्॥

---

१. श्रीधरः—'हरिहयकरचित्रासौम्यपौष्णोत्तरार्यादितिवसुषु घटालीसिंहवर्ज्ये सुलग्ने। शशिगुरुबुधकाव्यानां दिने पर्वरिक्तारहिततिथिषु शुद्धे नैधने कर्णवेधः॥' कर्णवेधस्य संक्षिप्तविधिः—विहितसमये पूर्वाह्णे कुमारं स्नापयित्वा देशकालौ स्मृत्वा अस्य शिशोः कुमारस्य वा कर्णवेधं करिष्ये इति संकल्प्य प्रत्यङ्मुखोपविष्टाय कुमारस्य हस्ते मधुरं दत्त्वा भद्रं कर्णेभिरिति मन्त्रेण दक्षिणं, वक्ष्यन्ती व्वेदेति मन्त्रेण वामं च कर्णं यथास्थानं भिन्द्यात्। ततो ब्राह्मणभोजनम्।

२. विष्णुधर्मोक्ति के अनुसार कुण्डलादि आभरण-धारण के उपयुक्त छिद्रवर्धन करना चाहिये—'शिशोर्विवर्धनं कार्यं यावदाभरणक्षमम्' इति।

इति भस्माभिमन्त्र्यैव भूषयेत्तेन भस्मना ।
शिरोललाटाद्यङ्गेषु रक्षां कुर्याद्यथाविधि ॥ इति ।

वासुदेव जगन्नाथ पूतना को तर्जन करनेवाले हरि! बालक की शीघ्र ही रक्षा करें। इस कुमार छोडें छोडें। शंखासुर और मधुकैटभ के मर्दन करने वाले भगवान् कृष्ण इस बालक की रक्षा करें। कंस और अरिष्टासुर के मारने वाले हे भगवन्! प्रातः, संगव, मध्याह्न, सायाह्न, दोनों सन्ध्या एवं आधी रात में सदा रक्षा कीजिये। पादगामी सर्पादि, पिशाच, ग्रह, मातृग्रह और महाभयानक बालग्रहों को छेदन करें। हे हरे! आपकी रक्षा से भूषित जो यह बालक है इसकी आप रक्षा करें। इस आशय के मन्त्र से भस्म को अभिमन्त्रित कर उस भस्म से सिर और ललाट आदि अंगों को भूषित कर यथाविधि रक्षा करे।

प्रयोगसागरे—

रक्ष रक्ष महादेव नीलग्रीव जटाधर ।
ग्रहैस्तु सहितो रक्ष मुञ्च मुञ्च कुमारकम् ॥
अमुं मन्त्रं भूर्जपत्रे विलिख्य तत्पत्रं भुजे बध्नीयात् ।

प्रयोगसागर में लिखा है कि हे नीलकण्ठ जटाधारी महादेव! ग्रहों के सहित इस बालक की रक्षा करें और छोड़ दें। इस आशय के मन्त्र को भोजपत्र पर लिखकर उस पत्र को हाथ में बांध दे।

बालरोदनपरिहारार्थं यन्त्रमुक्तं मयूखे षडस्रमध्ये ह्रींकारस्तन्मध्ये शिशोर्नाम विलिख्य षट्कोणेषु ॐलुलुवस्वाहेति मन्त्रषडक्षराणि विलिख्य तद्बहिर्नेमिवद् वृत्तद्वयं विलिख्य तद्बहिरधोमुखैरर्धचन्द्रैरावेष्ट्य पञ्चोपचारैः सम्पूज्य बालहस्ते बध्नीयादिति । बालग्रहशान्त्यादिकं बालग्रहस्तवश्च शान्तिकमलाकरशान्तिमयूखयोर्द्रष्टव्यम् ।

बालक का रोदन हटाने के लिये मयूख में यंत्र कहा है। षट्कोण के बीच में 'ह्रीं' लिखे उसके बीच में बच्चे का नाम लिखकर कोणों में ॐ लुलुवस्वाहा इस मंत्र के छवों अक्षरों को लिखकर उसके बाहर बाहर नेमी की तरह दो गोल बनाकर उसके बाहर नीचे मुखवाले अर्धचन्द्रों से घेर कर उसकी पंचोपचार से पूजा कर बालक के हाथ में बांध दे। बालककी ग्रहशान्ति आदि और बालग्रहस्तव, शान्तिकमलाकर तथा शान्तिमयूख में देखें।

अथ वर्षापनविधिः

स च वर्षपर्यन्तं प्रतिमासं जन्मतिथौ कार्यः । वर्षोत्तरं प्रत्यब्दं 'जन्मतिथौ कार्यः । तिथिद्वैधे यत्र जन्मर्क्षयोगः सा ग्राह्या । दिनद्वये जन्मनक्षत्रयोगसत्त्वयोरौदयिकी द्विमुहूर्ताधिका ग्राह्या । द्विमुहूर्तन्यूनत्वे पूर्वा । जन्ममासस्य अधिमासत्वे शुद्धमासे प्रत्याब्दिकवर्धापनविधिर्न त्वधिके[2] ।

---

१. संस्कारप्रकाश में ब्रह्मपुराण का वचन है—'सर्वैः स्वजन्मदिवसे स्नातैर्मङ्गलवारिभिः । गुरुदेवाग्निविप्रांश्च पूजनीयाः प्रयत्नतः ।' यहां जन्मदिवसशब्द से जन्मतिथि ग्राह्य है। दो दिन जन्मतिथि पड़ने पर देवीपुराण में बतलाया—'घस्रद्वये जन्मतिथिर्यदि स्यात् कुर्यात्तदा जन्मभसंयुतां च । असङ्गता तेन दिनद्वयेऽपि पूज्या परा या भवतीह यत्नात् ॥' इति ।

२. मलमासस्य शुभकर्मानर्हत्वात् । तत्र यदि अधिकशुक्ले जन्म तदा न संशयः, शुक्लस्य गौणमुख्यचान्द्रयोरेकत्वात् । यदि अधिककृष्णे जन्म यथा वैशाखस्य आधिक्ये अधिकवैशाखकृष्णे जन्म

वर्धापनविधि जन्म से एक वर्ष तक प्रत्येक मास के जन्म-तिथि में करे। एक वर्ष के बाद प्रतिवर्ष जन्म-तिथि में करे। यदि दो तिथि हों तो जिसमें जन्म-तिथि और नक्षत्र का योग हो वही ग्राह्य है। दो दिन जन्म-तिथि और नक्षत्र के रहने और न रहने में, उदयकालीन दो मुहूर्त्त से अधिक रहने वाली जन्म-तिथि ग्राह्य है। दो मुहूर्त्त से कम होने पर पूर्वा लेनी चाहिये। जन्ममास के अधिमास होने पर शुद्ध मास में प्रतिवार्षिक वर्धापन-विधि करे, न कि अधिमास में।

अथ संक्षेपतः प्रयोगः

'आयुरभिवृद्धचर्थं वर्षवृद्धिकर्म करिष्ये' इति संकल्प्य तिलोद्वर्तनपूर्वकं तिलोदकेन स्नात्वा कृततिलकादिविधिर्गुरुं संपूज्याक्षतपुञ्जेषु देवताः पूजयेत्। तत्रादौ कुलदेवतायै नम इति कुलदेवतामावाह्य जन्मनक्षत्रं पितरौ प्रजापतिं भानुं विघ्नेशं मार्कण्डेयं व्यासं जामदग्न्यं रामम् अश्वत्थामानं कृपं बलिं प्रह्लादं हनूमन्तं विभीषणं षष्ठीं च नाम्नैवावाह्य पूजयेत्। षष्ठ्यै दधिभक्तनैवेद्यः। पूजान्ते प्रार्थना—

'आयुष्य की अभिवृद्धि के लिये वर्ष-विधि-कर्म करूँगा' ऐसा संकल्प करके तिल का उबटन लगाकर तिल जल से स्नान कर एवं तिलक आदि विधि करके गुरु का सम्यक् अर्चन कर अक्षत पुंज पर देवताओं का पूजन करे। उस अक्षत-पुंज पर पहले 'कुलदेवतायै नमः' इससे कुलदेवता का आवाहन कर जन्मनक्षत्र, पिता, माता, प्रजापति, सूर्य, गणेश, मार्कण्डेय, व्यास, परशुराम, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, बलि, प्रह्लाद, हनुमान, विभीषण और षष्ठी देवी का नाम ही से आवाहन करके पूजन करे। षष्ठी देवी का नैवेद्य दही भात है। पूजा के अन्त में इस तरह प्रार्थना करे—

चिरंजीवी यथा त्वं भो भविष्यामि तथा मुने।
रूपवान्वित्तवांश्चैव श्रिया युक्तश्च सर्वदा॥
मार्कण्डेय नमस्तेस्तु सप्तकल्पान्तजीवन।
आयुरारोग्यसिद्ध्यर्थं प्रसीद भगवन् मुने॥
चिरंजीवी यथा त्वं तु मुनीनां प्रवरो द्विज।
कुरुष्व मुनिशार्दूल तथा मां चिरजीविनम्॥
मार्कण्डेय महाभाग सप्तकल्पान्तजीवन।
आयुरारोग्यसिद्ध्यर्थमस्माकं वरदो भव॥ अथ षष्ठीप्रार्थना—

हे मार्कण्डेय मुने! जैसे आप चिरंजीवी हो वैसे मैं भी होऊँ। मैं सर्वदा सुन्दर रूप धन और लक्ष्मी से युक्त रहूं। सात कल्प पर्यन्त जीने वाले मार्कण्डेय जी आप को नमस्कार है। हे मुने! हे भगवन्! आयु और आरोग्य सिद्धि के लिये मुझपर आप प्रसन्न हों। जैसे मुनियों में श्रेष्ठ आप चिरंजीवी हैं, हे मुनिसिंह! वैसे मुझे भी चिरजीवी करें। सात कल्प तक जीने वाले हे मार्कण्डेय महाभाग! आयु और आरोग्य की सिद्धि के लिये आप हमें वर दें। पश्चात् षष्ठी की प्रार्थना करे—

तदा तस्याब्दिपूर्तिकृत्यं प्रतिवर्षं किं गौणचान्द्रवैशाखकृष्णे अर्थात् चैत्रपूर्णिमोत्तरकृष्णपक्षीयतिथौ कार्यम्?, अथवा मुख्यचान्द्रवैशाखकृष्णे अर्थात् वैशाखपूर्णिमोत्तरकृष्णपक्षीयतिथौ कार्यम्? इति संशये मुख्यचान्द्रवैशाखकृष्णपक्षीयतिथावेव कार्यमिति सर्वनिबन्धसिद्धान्तः। विस्तरस्तु कृष्णभट्टकृतायां निर्णयसिन्धुटीकायां श्राद्धप्रकरणान्तर्गते आब्दिकश्राद्धप्रकरणे, वाचस्पतिमिश्रकृते द्वैतनिर्णये, नरहरिमिश्रकृते द्वैतनिर्णये, विनायकशास्त्र्यादिकृते चैत्रादिमासनिर्णये च द्रष्टव्यः।

जय देवि जगन्मातर्जगदानन्दकारिणि ।
प्रसीद मम कल्याणि नमस्ते षष्ठिदेवते ॥
त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
ब्रह्मविष्णुशिवैः सार्धं रक्षां कुर्वन्तु तानि मे ॥

ततस्तिलगुडमिश्रं पयः पिबेत् । तत्र मन्त्रः —

सतिलं गुडसंमिश्रमञ्जल्यर्धमितं पयः ।
मार्कण्डेयाद्वरं लब्ध्वा पिबाम्यायुर्विवृद्धये ॥

हे षष्ठी-देवि ! जगत् की माता जगत् को आनन्द देने वाली हमारा कल्याण करने वाली आप को नमस्कार है । आप मुझपर प्रसन्न हों तीनों लोक में जो चर अचर जीव हैं वे ब्रह्मा विष्णु और शिव के साथ मेरी रक्षा करें । तदनन्तर तिल गुड़ मिला हुआ दूध पीये । उसके मन्त्र का आशय यह है—तिल गुड़ मिला हुआ आधी अंजुली दूध को मार्कण्डेय जी से वर पाकर मैं अपनी आयु-वृद्धि के लिये पीता हूँ ।

क्वचित्पूजितषोडशदेवताभ्यो नाम्ना प्रत्येकमष्टाविंशतिसंख्यतिलहोम उक्तः । ततोः विप्रभोजनम् । तद्दिने नियमाः—

खण्डनं नखकेशानां मैथुनाध्वागमौ तथा ।
आमिषं कलहं हिंसां वर्षवृद्धौ विवर्जयेत् ॥
मृते जन्मनि संक्रान्तौ श्राद्धे जन्मदिने तथा ।
अस्पृश्यस्पर्शने चैव न स्नायादुष्णवारिणा ॥

कहीं पर पूजे हुए सोलह देवताओं के नाम से प्रत्येक के लिये अट्ठाइस अट्ठाइस तिल का होम कहा है । इसके बाद ब्राह्मणभोजन करावे । जन्म-दिन के नियम ये हैं—नख केशों का कर्तन, मैथुन, रास्ता चलना, मांस, झगड़ा और हिंसा जन्मदिन में छोड़ दे । मरण, जन्म, संक्रान्ति, श्राद्ध तथा जन्मदिन में और अस्पृश्य के स्पर्श करने में गर्म जल से स्नान करे ।

अथ चूडाकरणम्

जन्मतो गर्भतो वाऽब्दे प्रथमेऽथ द्वितीयके ।
तृतीये पञ्चमे वापि चौलकर्म[1] शस्यते ॥
यद्वा सहोपनीत्यात्र कुलाचाराद्व्यवस्थितिः ।
माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठे मासि शुभं स्मृतम् ॥

---

१. प्रयोगपारिजातादि अनेक निबन्ध-ग्रन्थों में चूडाकरण संस्कार करने के लिये प्रथमवर्षादि उपनयन पर्यन्त कई वैकल्पिक काल का निर्देश है —'जाताधिकाराज्जन्मादितृतीयेऽब्दे तु चौलकम् । आद्येऽब्दे कुर्वते केचित् पञ्चमेऽब्दे द्वितीयके ॥ उपनीत्या सहैवेति विकल्पाः कुलधर्मतः ॥' नारद ने उत्तम मध्यम भेद से इस वैकल्पिककाल की व्यवस्था की है—'जन्मतस्तु तृतीयेऽब्दे श्रेष्ठमिच्छन्ति पण्डिताः । पञ्चमे सप्तमे वाऽपि जन्मतो मध्यमं भवेत् ॥ अधमं गर्भतः स्यात्तु नवमैकादशेऽपि वा ।' इति ।

फिर भी स्वकुलाचारानुसार जिसके कुल में जिस विकल्प-पक्ष का आश्रयण कर जिस काल में चूडाकरण-संस्कार होता है तदनुसार ही उसे उस काल में करना चाहिये ।

जन्ममासेऽधिमासे न ज्येष्ठ ज्येष्ठस्य नो भवेत् ।
शुक्लपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णश्चान्त्यत्रिकं विना ॥
द्वितीयाथ तृतीया च पञ्चमी सप्तमी शुभा ।
दशम्येकादशी वापि त्रयोदश्यपि शस्यते ॥
रविभौमार्किशनयो वारा विप्रादिवर्णतः ।
गुरुशुक्रबुधाः शुक्ले सोमः सर्वशुभावहः ॥

अश्विनीमृगपुनर्वसुपुष्यहस्तचित्रास्वातीज्येष्ठाश्रवणधनिष्ठाशततारकारेवत्यः शुभाः ।

क्षौरप्रयाणभैषज्ये जन्मर्क्षं वर्जयेत्सदा ।
[1]आयुःक्षयोनूराधाग्नित्र्युत्तरारोहिणीमघे ॥

जन्म से या गर्भ से पहिले, दूसरे, तीसरे और पाचवें में भी चौलकर्म प्रशस्त है । अथवा उपनयन के साथ, इसमें कुलाचार से व्यवस्था है । माघ, फाल्गुन, वैशाख और ज्येष्ठ मास में चौल शुभ है । जन्ममास और अधिमास में नहीं होता है और ज्येष्ठ बालक का ज्येष्ठमास में नहीं होता । शुक्लपक्ष शुभ है और अन्त का त्रिक (एकादशी से अमावास्या पर्यन्त) छोड़कर कृष्णपक्ष भी शुभप्रद है । तिथियों में द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी और त्रयोदशी भी प्रशस्त है। ब्राह्मण का चौल रविवार को क्षत्रिय का मंगल को और वैश्य का शनिवार को करे । शुक्लपक्ष में गुरु-शुक्र-बुधवार और सोमवार भी शुभदायक है । नक्षत्रों में अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाती, ज्येष्ठा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा और रेवती शुभ है । क्षौर, यात्रा और औषधि सेवन में जन्मनक्षत्र का सदा परित्याग करे । अनुराधा, कृत्तिका, तीनों उत्तरा, रोहिणी और मघा में चौल से आयु का क्षय होता है ।

अथ सिंहस्थे गुरौ चौलादिनिषेधः

सिंहस्थे गुरौ चौलादिशुभकर्म न कार्यम् ।

सूनोर्मातरि गर्भिण्यां चूडाकर्म न कारयेत् ।
पञ्चमाब्दात्प्रागूर्ध्वं तु गर्भिण्यामपि कारयेत् ॥
सहोपनीत्या कुर्याच्चेत्तदा दोषो न विद्यते ।

पृथक् चूडाकर्म पृथगुपनयनं च मातरि गर्भिण्यां न कार्यम् । उभयोः सहानुष्ठाने तु न दोषः । गर्भिण्यामपि पञ्चममासपर्यन्तं न दोषः । 'पञ्चममासादधः कुर्यादत ऊर्ध्वं न कारयेत्' इत्युक्तेः । ज्वरितस्य चौलादिमङ्गलं न कार्यम् ।

विवाहव्रतचूडासु माता यदि रजस्वला ।
तस्याः शुद्धेः परं कार्यं मङ्गलं मनुरब्रवीत् ॥

---

१. ज्यौतिषे—'क्षौरकर्म न कदाचिदाचरेद्भ्रातृमित्रपितृमार्यभागिनिभिः । नागरामशरवेदषण्मितावृत्तिभिस्तु मृतिरेकहायने ॥' अर्थात् रोहिणी अनुराधा मघा उत्तरा और कृत्तिका नक्षत्रों में क्षौरकर्म न करे, क्योंकि रोहिण्यादि इन नक्षत्रों में एक वर्ष में क्रमशः आठ तीन पांच चार और छ वार क्षौर कर्म की आवृत्ति से मरण होता है ।

सिंहस्थ गुरु में चौलादि शुभकर्म नहीं करे। बच्चे की मां गर्भिणी हो तो उसका चूड़ाकर्म न करावे। पांच वर्ष से अधिक का बालक हो तो माता के गर्भिणी रहने पर भी चौल कर्म करे। उपनयन के साथ यदि करे तो कोई दोष नहीं है। माता के गर्भावस्था में चूड़ाकर्म और उपनयन अलग अलग करना हो तो नहीं करे। दोनों एक साथ किये जायँ तो कोई दोष नहीं है। पांच महीने तक की गर्भ वाली माता के पुत्र का चौल में दोष नहीं है, क्योंकि ऐसा कहा है कि पांचवें महीने के पहिले करे, पांचवें महीने के बाद न करे। जिसको ज्वर हो उसका चौल आदि मंगल-कृत्य नहीं करे। यदि माता विवाह उपनयन और चूड़ा में रजस्वला होती है तब शुद्धि के बाद मंगल कार्य करे, ऐसा मनु कहते हैं।

नान्दीश्राद्धोत्तरं रजस्वलायां शान्तिं कृत्वा कार्यम्। केचित्तु मुहूर्तान्तराभावे प्रारम्भात्प्रागपि रजोदोषे श्रीपूजनादिविधिना शान्तिं कृत्वा कार्यमित्याहुः। मातुलपितृव्यादौ कर्तरि तत्पत्न्यां रजस्वलायामपि मङ्गलं नेति सिन्धुः। त्रिपुरुषात्मककुले षण्मासमध्ये मौञ्जीविवाहरूपमङ्गलोत्तरं मुण्डनाख्यं चूडाकर्मादि न कार्यम्। संकटे तु अब्दभेदे कार्यम्। चतुःपुरुषपर्यन्तं कुले सपिण्डीकरणमासिकश्राद्धान्तप्रेतकर्मसमाप्तेः प्राक् चूडाकर्मादिकमाभ्युदयिकं कर्म न कार्यम्।

एकमातृजयोरेकवत्सरेऽपत्ययोर्द्वयोः।
न संस्कारः समानः स्यान्मातृभेदे विधीयते ॥

नान्दीश्राद्ध के बाद रजस्वला होने पर तो शान्ति करके करे। कुछ लोग तो दूसरे मुहूर्त्त के न होने पर प्रारम्भ से पहिले भी रजोदोष में श्रीपूजन आदि विधि से शान्ति करके मंगल-कार्य करे, ऐसा कहते हैं। मामा और चाचा आदि के कर्ता होने पर उनकी पत्नी के रजस्वला होने पर भी मंगल-कार्य नहीं करे, ऐसा सिन्धुकार का मत है। तीन पुश्त के भीतर कुल में छ महीने के भीतर उपनयन विवाह-रूप-मंगल के बाद मुण्डन नामक चूड़ाकर्म आदि न करे। संकट में तो वर्ष के भेद से करे। चार पुरुष पर्यन्त कुल में सपिण्डीकरण-मासिक श्राद्धान्त-प्रेतकर्म की समाप्ति के पहिले चूड़ाकर्म आदि आभ्युदयिक कर्म न करे। एक माता से उत्पन्न सहोदर दो संतानों का एक वर्ष में समान संस्कार न करे। माता के भेद से करे।

अथ प्रारम्भोत्तरं चौलादिनिर्णयः

प्रारम्भोत्तरं सूतकप्राप्तौ कूष्माण्डीभिर्ऋग्भिर्घृतं हुत्वा गां दत्त्वा चूडोपनयनोद्वाहादिकमाचरेत्। अत्र विशेषो विवाहप्रकरणे वक्ष्यते।

आरंभ करने के बाद सूतक लग जाने पर कूष्माण्डी ऋचाओं से घृत से होम तथा गोदान करके चौल, उपनयन और विवाहादिक करे। इसमें विशेष विवाह-प्रकरण में कहेंगे।

अथ शिखास्थापनविचारः

मध्ये मुख्या एका शिखा अन्याश्च पार्श्वादिभागेष्विति 'यथाकुलाचारं प्रवरसंख्यया शिखाश्चूडासमये कार्याः। उपनयनकाले मध्यशिखेतरशिखानां

१. शिखा के स्थापन या उसके मुण्डन सम्बन्धी कुलाचार की व्यवस्था लौगाक्षिने गोत्र या शाखा के अनुसार स्वयं की है—'दक्षिणतः कम्बुजवसिष्ठानाम्, उभयोऽत्रिकश्यपानां, मुण्डा भृगवः,

वपनं कृत्वा मध्यभागे एवोपनयनोत्तरं शिखा धार्या । चौलकर्मणि जातकर्मणि च भोजने सांतपनकृच्छ्रं प्रायश्चित्तम्। अन्येषु संस्कारेषु उपवासेन शुद्धिः।

बीच में मुख्य एक शिखा और अन्य शिखायें पार्श्व आदि भागों में रखे। कुलाचार के अनुसार प्रवर की संख्या से चूड़ा के समय में शिखा रखनी चाहिये। उपनयन के समय बीच की शिखा को छोड़कर अन्य शिखाओं का वपन करके मध्य भाग में ही उपनयन के अनन्तर शिखा-धारण करना चाहिये। चौलकर्म और जातकर्म में भी भोजन करने पर सान्तपनकृच्छ्र प्रायश्चित्त करे। अन्य संस्कारों में भोजन करने पर उपवास से शुद्धि होती है।

अथ स्त्रीशूद्राणाममन्त्रकं चूडान्तं कर्म

चूडान्ताः सर्वे संस्काराः स्त्रीणाममन्त्रकाः कार्याः, होमस्तु समन्त्रकः। होमोऽप्यमन्त्रकः कार्यो न वा कार्यं इति वृत्तिकृदादिमतम्। एवं शूद्रस्याप्यमन्त्रकं चौलम्। इदानीं शिष्टेषु स्त्रीणां चूडादिसंस्कारकरणं न दृश्यते। विवाहकाले चूडादिलोपप्रायश्चित्तमात्रं कुर्वन्ति।

चूड़ापर्यन्त सभी संस्कार कन्याओं का मन्त्ररहित करे। होम तो मन्त्रसहित करना चाहिये। वृत्तिकार आदि का मत है कि होम भी मन्त्ररहित करे या न करे। इसी प्रकार शूद्र का भी मन्त्ररहित चौल होता है। इस समय शिष्टों के यहाँ कन्यायों का चूड़ा आदि संस्कार करना नहीं देखा जाता है। वे लोग विवाह के समय चूड़ा आदि के लोप का केवल प्रायश्चित्त कर देते हैं।

पञ्च चूडा आङ्गिरसः, वाजसनेयिनामेका मङ्गलार्थं शिखिनोऽन्ये।' इति। कारिका—'कम्बुजानां वसिष्ठानां दक्षिणे कारयेच्छिखाम्। द्विभागेऽत्रिकश्यपानां मुण्डाश्च भृगवो मताः॥ पञ्च चूडा अङ्गिरस एका वाजसनेयिनाम्। मङ्गलार्थं शिखिनोऽन्य उक्ता चूडाविधिः क्रमात्॥' इन वचनों से भृगुगोत्र वाले का ही शिखासहित सर्व मुण्डन विहित है। भृगुगोत्र से भिन्न गोत्र वाले का शिखासहित सर्वमुण्डन अविहित है।

यह चूडाकरण शिखास्थापन का कर्म है। आपस्तम्बगृह्यसूत्रे—'यथर्षि शिखा निदधाति'। पारस्करगृह्यसूत्रे—'यथामङ्गलं केशशेषकरणम्'। इसके हरिहरगदाधरादिभाष्य में लिखा—'केशानां शेषकरणं शिखास्थापनं यथाकुलाचारव्यवस्थापनम्' 'केशानां शेषकरणं शिखारक्षणं स्थापनं कर्तव्यम्' 'वपनं केशशेषरक्षणं करोति' 'यथामङ्गलं शिखास्थापनं नापितः करोति'। इन प्रमाणों से शिखा का स्थापन रक्षण ही शास्त्रसम्मत है, शिखा का समूलोन्मूलन वपन शास्त्रविरुद्ध है।

शिखा के विना अनुष्ठित सभी श्रौत-स्मार्त-कर्म विफल हो जाते हैं, जैसा लिखा है—'सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च। विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम्॥' इति।

यह शिखाकर्म केवल स्मार्त ही कर्म नहीं किन्तु श्रुतिप्रतिपादित-श्रेयःसम्पादन के लिये शिखा का धारण आवश्यक है—'यशसे श्रियै शिखा'। शुक्लयजुर्वेद के—'यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव' इस मन्त्र से भी शिखा की सत्ता प्रतिपादित होती है।

यहाँ भाष्यकारों के अनुसार 'विशिखा विविधशिखा विकीर्णशिखा वा' इस व्याख्या के अनुसार विशिख शब्द का शिखारहित अर्थ नहीं है।

संग्रह में शिखा के सर्ववपन का नहीं बल्कि अग्रभाग का ही छेदन कहा है—'उन्दनं केशमूले तु केशमध्ये विनीयनम्। छेदनं चैव केशाग्रे पाराशरवचो यथा॥' स्मृतियों में शिखाछेदन करने पर प्रायश्चित्त कहा है—'शिखां छिन्दन्ति ये मोहाद् द्वेषादज्ञानतोऽपि वा। तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यन्ति त्रयो

अथ चौलोत्तरं निषिद्धानि

चौलोत्तरं मासत्रयपर्यन्तं सपिण्डैः पिण्डदानं तिलतर्पणं च न कार्यम्। महालये गयायां पित्रोः प्रत्यब्दश्राद्धे च पिण्डदानादि कार्यम्।

चूड़ाकरण के बाद तीन महीने तक सपिण्डों द्वारा पिण्डदान एवं तिलतर्पण भी नहीं करे। महालय और गया में तथा माता पिता के वार्षिक श्राद्ध में पिण्डदान करना चाहिये।

अथ विद्यारम्भः

पञ्चमे वर्षे 'अक्षरलेखनारम्भ उत्तरायणे कार्यः। अत्र कुम्भस्थः सूर्यो वर्ज्यः। शुक्लपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णश्चान्त्यत्रिकं विना। द्वितीयातृतीयापञ्चमीदशम्येकादशीद्वादशीत्रयोदश्यः श्रेष्ठाः। अश्विनीमृगार्द्रापुनर्वसुपुष्यहस्तचित्रास्वात्यनूराधाश्रवणधनिष्ठाशततारकारेवत्यो भौमशनिभिन्नवाराश्च शुभाः।

पांचवें वर्ष में अक्षर लिखने का आरंभ कुम्भस्थ सूर्य को छोड़कर उत्तरायण में करना चाहिये। शुक्लपक्ष श्रेष्ठ है, कृष्णपक्ष भी अन्त के त्रिक को छोड़कर उत्तम है। द्वितीया, तृतीया, पंचमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी और त्रयोदशी तिथियां श्रेष्ठ हैं। अश्विनी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष और रेवती नक्षत्र तथा मंगल, शनि से भिन्नवार भी शुभ हैं।

विघ्नेशं लक्ष्मीनारायणौ सरस्वतीं स्ववेदं सूत्रकारं च पूजयित्वा गुरुं ब्राह्मणान् धात्रीं च संपूज्य नत्वा सर्वांस्त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणवपूर्वकमक्षरमारभेत्। ततो गुरुं नत्वा देवता विसर्जयेत्। ततः अत्र भुवनमातः सर्ववाङ्मयरूपेणागच्छागच्छेति सरस्वत्यावाहनमन्त्रः। प्रणवेन षोडशोपचारार्पणम्।

गणेश, विष्णु, लक्ष्मी, सरस्वती, अपनावेद और सूत्रकार का पूजन करके गुरु, ब्राह्मण और

वर्णा द्विजातयः ॥' और सशिखवपन से शिखानाश होने पर काठकगृह्य में—'अथ चेत्प्रमादान्निःशिखं शिखां ब्रह्मग्रन्थिसमन्वितां दक्षिणकर्णोपर्याशिखाबन्धाद्धत्तिष्ठेत्' इस प्रकार शिखा का प्रतिनिधि विधान से चौलप्रभृति यावज्जीवन शिखाधारण करना चाहिये, उसका सर्ववपन द्वारा समूलोन्मूलन वेदशास्त्र-विरुद्ध है।

१. नृसिंहः—'अक्षरस्वीकृतिं कुर्यात् प्राप्ते पञ्चमहायने। उत्तरायणगे सूर्ये कुम्भमासं विवर्जयेत् ॥' श्रीधरः—'हस्तादित्यसमीरमित्रपुरजित्पौष्णाश्विचित्राच्युतेष्वाराक्र्यंशदिनोदयादिरहिते राशौ स्थिरे चोभये। पक्षे पूर्णनिशाकरे प्रतिपदं रिक्तां विहायाष्टमीं षष्ठीमष्टमशुद्धभाजि भवने प्रोक्ताक्षरस्वीकृतिः। मार्कण्डेय ने उसका प्रकार बतलाया—'अभ्यङ्गस्नानपूर्वं तु गन्धाद्यैश्च विभूषितः। शुक्लवस्त्रं समास्तीर्य तण्डुलोपरि पूजयेत् ॥ पूजयित्वा हरिं लक्ष्मीं देवीं चैव सरस्वतीम्। स्वविद्यासूत्रकारांश्च स्वविद्याश्च विशेषतः ॥ एतेषामेव देवानां नाम्ना च जुहुयाद् घृतम्। दक्षिणाभिर्द्विजाग्र्याणां कर्तव्यं चात्र पूजनम् ॥ प्राङ्मुखो गुरुरासीनो वरुणाशामुखं शिशुम्।' इति।

तद्विधिः—अद्य अमुकोऽहं मम पुत्रस्य सकलविद्याविशारदत्वसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थम् अक्षरारम्भं विद्यारम्भं च करिष्ये इति संकल्प्य गणेशादीन् सम्पूज्य गुरुः सुवर्णशलाकया रौप्यशलाकया वा पट्टिकादौ ॐ नमः सिद्धमिति अकारादिक्षकारान्तान् वर्णांश्च विलिख्य सम्पूज्य प्राङ्मुखं कृत्वा अक्षराणि त्रिवारं वाचयित्वा विद्यारम्भं कारयेत्। गुरुं दक्षिणादिभिः सन्तोष्य भूयसीं दत्त्वा रक्षाबन्धनादिकं कृत्वा आवाहितदेवान् विसृज्य ब्राह्मणान् भोजयेदिति संक्षेपः।

धात्री की पूजा कर सबको नमस्कार कर तीन बार प्रदक्षिणा करके ॐ पूर्वक अक्षर का आरम्भ करे। तदनन्तर गुरु को नमस्कार करके देवता का विसर्जन करे। इसमें 'भुवन मातः सर्ववाङ्मयरूपेणागच्छागच्छ' यह सरस्वती के आवाहन का मन्त्र है। और प्रणव से सोलहों उपचारों का अर्पण करे।

अनुपनीतधर्माः

प्रागुपनयनात्कामचारकामवादकामभक्षाः। तेन मूत्रपुरीषोत्सर्गादावाचमनाद्याचारो नास्ति। लघुपातकहेतुलशुनपर्युषितोच्छिष्टादिभक्षणे दोषाभावः। एवमपेयपाने अनृतावाच्यभाषणेऽपि। महादोषहेतुमांसान्त्यजरजस्वलादिस्पृष्टान्नभक्षणे मद्यादिपाने च दोषोऽस्त्येव।

रजस्वलादिसंस्पर्शे स्नानमेव कुमारके।
शिशोरभ्युक्षणं प्रोक्तं बालस्याचमनं स्मृतम्[1]॥

तत्र प्रागन्नप्राशनाच्छिशुसंज्ञा। तत ऊर्ध्वं प्राक्चौलात् त्रिवर्षाद्वा बालसंज्ञा। तत आमौञ्जीबन्धनात् कुमारसंज्ञा। अत्राचमनमिति त्रिरुदकपानमेव न तु ओष्ठमार्जनादिकल्प इति ज्ञेयम्। न चानुपनीतो वेदमुच्चारयेत्।

उपनयन से पहिले जहां चाहे वहां जाय, जो चाहे सो बोले जो चाहे सो खाय इससे मल-मूत्र करने आदि में आचमन आदि का आचार नहीं है। छोटे पातक का कारण लहसुन, बासी और जूठा आदि खाने में दोष नहीं हैं। इस प्रकार अपेय के पीने में अवाच्य और असत्य भाषण में भी दोष नहीं है। महादोष के कारण मांस, अन्त्यज, रजस्वला आदि से छुए हुए अन्न के खाने और मद्य आदि के पीने में तो दोष है ही। रजस्वला आदि के स्पर्श में स्नानमात्र से शुद्धि होती है। यह कुमारावस्था के लिये है। शिशु का अभ्युक्षण और बालक का आचमन से शुद्धि करे। अन्नप्राशन के पहिले 'शिशु' इसके बाद चूड़ा के पहिले या तीनवर्ष पर्यन्त 'बालक' और इसके अनन्तर उपनयन से पहिले 'कुमार' कहलाता है। इसमें तीन बार जल पीने ही को आचमन कहते हैं न कि ओष्ठ आदि का मार्जन आदि कल्प को, ऐसा जाने। अनुपनीत वेद का उच्चारण न करे।

पित्रोरन्त्यक्रियायां त्वनुपनीतेनापि मन्त्रोच्चारः कार्यः। स च द्वित्रिवर्षयोः कृतचूडस्यैव। त्रिवर्षोर्ध्वं त्वकृतचूडस्यापि। एतच्चौरसपुत्रविषयम्।

पित्रोरनुपनीतोपि विदध्यादौरसः सुतः।
और्ध्वदेहिकमन्ये तु संस्कृताः श्राद्धकारकाः॥ इति स्कान्दात्।

बालानामपथ्यं पित्रादिभिर्निवारणीयम्। तस्मात्सर्वप्रयत्नेन बालानग्रे तु भोजयेत्। बालानां क्रीडनदाने स्वर्गसुखम्। तेषां भोज्यप्रदाने गोदानफलम्।

---

१. वृद्धशातातप के इस वचन के आगे का श्लोक है—'रजस्वलादिसंस्पर्शे स्नानमेव कुमारके॥ प्राक् चूडाकरणाद् बालः प्रागन्नप्राशनाच्छिशुः। कुमारकस्तु विज्ञेयो यावन्मौञ्जीनिबन्धनम्॥' स्मृत्यन्तरे—'ऊनैकादशवर्षस्य पञ्चवर्षात्परस्य च। चरेद् गुरुः सुहृच्चैव प्रायश्चित्तं विशुद्धये॥ अतो बालतरस्यास्य नापराधो न पातकम्।' ब्रह्मपुराणे—'मातापित्रोरथोच्छिष्टं बालो भुञ्जन् भवेत् सुखी।' इति।

माता पिताकी अन्त्येष्टि में तो अनुपनीत को भी मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये और वह जिसका दो तीन वर्ष में चूड़ाकरण हो गया हो वही उच्चारण करे। तीन वर्ष के बाद जिसका चूड़ाकरण हुआ हो तब भी करे। यह औरस-पुत्र के सम्बन्ध का है। क्योंकि स्कन्दपुराण का वचन है कि औरस-पुत्र अनुपनीत भी हो तो माता पिता का और्ध्वदेहिक श्राद्ध करे। अन्य पुत्र तो संस्कृत ही श्राद्ध करे। बालकों का अपथ्य-निवारण पिता आदि का कर्तव्य है। इसलिये सभी प्रयत्न से सबसे आगे बालकों को खिला दिया जाय। बालकों को खिलौना देने में स्वर्ग का सुख और उनको खाने की चीज देने में गोदान का फल होता है।

अथोपनयनम्

उपनयनं[1] नाम आचार्यसमीपनयनाङ्गको गायत्र्युपदेशप्रधानकः कर्मविशेषः। उपनयनपदस्य योगरूढत्वात्। तत्राधिकारिणः—

पितैवोपनयनेत्पुत्रं तदभावे पितुः पिता।
तदभावे पितुर्भ्राता तदभावे तु सोदरः॥

तदभावे सगोत्रसपिण्डाः, तदभावे मातुलादयोऽसगोत्रसपिण्डाः, तदभावे असपिण्डसगोत्रजाः। एते च कुमारापेक्षया वयोज्येष्ठा विवक्षिताः, कनिष्ठकर्तृकोपनयनस्य निषिद्धत्वात्। सर्वाभावे श्रोत्रियः।

जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते।
विद्वत्त्वाच्चापि विप्रत्वं त्रिभिः श्रोत्रिय उच्यते॥
कृच्छ्रत्रयं चोपनेता त्रीन् कृच्छ्रांश्च बटुश्चरेत्।

गायत्र्या द्वादशाधिकसहस्रजपश्चोपनेत्राऽधिकारसिद्ध्यर्थं कार्यः। केचिद् द्वादशसाहस्रीं जपन्ति।

आचार्य के समीप ले जाना गायत्री-उपदेश-प्रधान-कर्म विशेष को उपनयन कहते हैं। क्योंकि उपनयन-पद योगरूढ है। उसका अधिकारी—पुत्र का उपनयन पिता ही करे। पिता के अभाव में पितामह, पितामह के अभाव में चाचा, उसके अभाव में सहोदर भाई, उसके अभाव में सगोत्र सपिण्ड, इन सबके अभाव में मामा आदि असमान गोत्र सपिण्ड, इनके अभाव में असपिण्ड सगोत्र करे। ये सब कुमार की अपेक्षा अवस्था में ज्येष्ठ ही विवक्षित हैं। क्योंकि कनिष्ठ द्वारा उपनयन करना निषिद्ध है। सबके अभाव में श्रोत्रिय करे। जन्म से ब्राह्मण जानना चाहिये। संस्कारों से द्विज और विद्वान् होने से विप्रसंज्ञा होती है। इन तीनों के एकत्र होने पर श्रोत्रिय कहलाता है। उपनयनकर्ता तीन कृच्छ्र और बटु भी तीन कृच्छ्र करे। अधिकार सिद्धि के लिये यज्ञोपवीत कर्ता एक हजार बारह बार गायत्री का जप करे। कोई बारह हजार गायत्री जपते हैं।

अथोपनयनकालः

[2]गर्भतो जन्मतो वा पञ्चमेऽष्टमे वा वर्षे ब्राह्मणस्योपनयनम्। एकादशे द्वादशे वा क्षत्रियस्य। द्वादशे षोडशे वा वैश्यस्य।

---

१. आचार्य के समीप नयनपूर्वक बटुक का गायत्री से सम्बन्ध स्थापित करना उपनयन शब्द का अर्थ है—'गृह्योक्तकर्मणा येन समीपं नीयते गुरोः। बालो वेदाय तद्योगाद् बालस्योपनयं विदुः॥' इति।

२. आश्वलायन ने गर्भ से अथवा जन्मकाल से अष्टम वर्ष का निर्देश किया - 'गर्भाष्टमेऽष्टमे

षष्ठे तु धनकामस्य विद्याकामस्य सप्तमे।
अष्टमे सर्वकामस्य नवमे कान्तिमिच्छतः॥

केचित्तु विप्रस्य षष्ठं न मन्यन्ते। [1]'आषोडशादाद्वाविंशादाचतुर्विंशाच्च वर्षाद् ब्राह्मणादेर्गौणकालः।

ब्राह्मण का उपनयन गर्भ से या जन्म से पांचवें या आठवें वर्ष में होता है। ग्यारहवें या बारहवें में क्षत्रिय का और बारहवें या सोलहवें में वैश्य का होता है। धन चाहने वाले का छठे, विद्या चाहने वाले का सातवें, सम्पूर्ण कामनाओं को चाहने वाले का आठवें और कान्ति चाहने वाले का नवम में यज्ञोपवीत करना चाहिये। कोई तो ब्राह्मण का छठा वर्ष नहीं मानते। ब्राह्मण आदि के उपनयन का गौणकाल —क्रमसे सोलह, बाईस और चौबीस वर्ष है।

अत्र गर्भादिः संख्या। तथा च जन्मतः पञ्चदशवर्षपर्यन्तं विप्रस्य न विशेषतः प्रायश्चित्तम्। षोडशे वर्षे सशिखवपनमेकविंशतिरात्रं यावकाशनव्रतमन्ते सप्तब्राह्मणभोजनमिति प्रायश्चित्तम्। सप्तदशादिवर्षे कृच्छ्त्रयादिप्रायश्चित्तपूर्वकमुपनयनं बोध्यम्। विप्रक्षत्रिययोरुत्तरायणे मौञ्जीबन्धः। वैश्यस्य दक्षिणायनेऽपि।

यहां गर्भ आदि की संख्या है। इससे जन्म से पन्द्रह वर्ष तक ब्राह्मण का विशेषतः प्रायश्चित्त नहीं है। सोलहवें वर्ष में शिखा के सहित मुण्डन इक्कीस रात तक जौ का भोजन, व्रत और अन्त में सात ब्राह्मणों का भोजन कराना यही प्रायश्चित्त है। सत्रहवें आदि वर्षों में तीन कृच्छ्र आदि प्रायश्चित्त करके उपनयन करना चाहिये। ब्राह्मण क्षत्रिय का उपनयन उत्तरायण में होता है। वैश्य का दक्षिणायन में भी होता है।

'वसन्ते ब्राह्मणमुपनयीत ग्रीष्मे राजन्यं शरदि वैश्यम्। माघादिशुक्रान्तकपञ्चमासाः साधारणा वा सकलद्विजानाम्' इति गर्गोक्तेर्वसन्तालाभे शिशिरग्रीष्मावपि ग्राह्यौ। वसन्तविधिनोत्तरायणादिविधेः संकोचायोगात्। एवं च माघादिमासपञ्चकनियमात् पौषाषाढयोः सत्यप्युत्तरायणे उपनयनं न कार्यम्। तत्रापि मीनार्कमारभ्य यावन्मिथुनप्रवेशं प्रशस्तः कालः। मीनमेषयोस्तु प्रशस्ततरः। 'मकरकुम्भस्थेऽर्के मध्यमं मीनमेषस्थे उत्तमं वृषभमिथुनस्थेऽधममुपनयनम्' इत्यभिधानात्।

वसन्त में ब्राह्मण का, ग्रीष्म में क्षत्रिय का और शरद् ऋतु में वैश्य का उपनयन होता है। क्योंकि गर्ग की उक्ति है—'माघ से जेठ तक पांच महीने सब ब्राह्मणों के लिये साधारण हैं'। वसन्त न मिलने पर शिशिर और ग्रीष्म भी ग्राह्य है। वसन्त की विधि से उत्तरायण आदि विधि का संकोच नहीं करे। इसी प्रकार माघ आदि पांच महीनों के नियम से पूस और आषाढ़ में उत्तरायण

वाऽब्दे पञ्चमे सप्तमेऽपि वा। द्विजत्वं प्राप्नुयाद् विप्रो वर्षे त्वेकादशे नृपः॥' याज्ञवल्क्यः—'गर्भाष्टमेऽष्टमे वाऽब्दे ब्राह्मणस्योपनायनम्। राज्ञामेकादशे सैके विशामेके यथाकुलम्॥' मनु ने केवल गर्भ से अष्टमवर्ष कहा है—'गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्। गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः॥' इति।

१. मनु ने गौणकाल का निर्देश किया—'आषोडशाद् ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते। आद्वाविंशात् क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः॥' इति।

के रहते हुए भी उपनयन नहीं करें। उसमें मीन के सूर्य से आरंभ कर मिथुन के प्रवेश तक प्रशस्त समय है। मीन और मेष में तो प्रशस्ततर है। क्योंकि कहा है कि 'मकर और कुम्भ के सूर्य में मध्यम और मीन मेष के सूर्य में उत्तम एवं वृष और मिथुन के सूर्य में उपनयन अधम होता है।'

[1]मीनार्कविशिष्टश्चैत्रोऽनिष्टबृहस्पत्यादिबहुविधदोषापवादकतया प्रशस्ततमः।

जीवभार्गवयोरस्ते सिंहस्थे देवतागुरौ।
चन्द्रसूर्ये दुर्बलेपि गोचरेऽनिष्टदे गुरौ॥
मेखलाबन्धनं कार्यं चैत्रे मीनगते रवौ। इत्यर्थकस्मृतेः।

अत्र गुरुशुक्रास्तदोषापवादोऽतिमहासंकटविषयत्वान्न कथनीयः। मीनार्क-चैत्रे जन्ममासनक्षत्रदोषो नास्ति।

मीनार्क-विशिष्ट-चैत्र—अनिष्टकारक बृहस्पति आदि अनेक प्रकार के दोषों के अपवादक होने से प्रशस्ततम है। क्योंकि स्मृति की उक्ति है कि 'बृहस्पति और शुक्र के अस्त में, सिंहस्थ बृहस्पति में, चन्द्र सूर्य के दुर्बल होने पर और गोचर में अनिष्टप्रद बृहस्पति के रहते हुए भी मीनार्क चैत्र में यज्ञोपवीत करे। इसमें गुरुशुक्रास्त-दोष का अपवाद बहुत बड़े संकट के होने से नहीं कहना चाहिये। मीनार्क चैत्र में जन्ममास और जन्मनक्षत्र का दोष नहीं है।

[2]जन्ममासजन्मनक्षत्रजन्मतिथिजन्मलग्नराशिलग्नेषु विप्राणामुपनयनं न दोषाय। क्षत्रियवैश्ययोरप्रथमगर्भे दोषो न। ज्येष्ठापत्यस्य ज्येष्ठमासे मङ्गलं न। 'शुक्लपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णश्चान्त्यत्रिकं[3] विना' इति गुरूक्तेः 'कृष्णपक्षे दशमी-पर्यन्तं संकटे कार्यम्। शिष्टास्तु संकटेपि कृष्णपक्षे पञ्चमीपर्यन्तमेव कुर्वन्ति।

---

१. गुरु की शुद्धि न हो या गुरु और शुक्र अस्त हों फिर भी ब्राह्मणों के लिये मीनार्कयुत चैत्र अत्यन्त प्रशस्त है। ग्रन्थान्तरे—'शुद्धिर्नैव गुरोर्यस्य वर्षे प्राप्तेऽष्टमे यदि। चैत्रे मीनगते भानौ तस्योपनयनं शुभम्॥ जन्मभादष्टमे सिंहे नीचे वा शत्रुभे गुरौ। मौञ्जीबन्धः शुभः प्रोक्तश्चैत्रे मीनगते रवौ।' संस्कारचन्द्रोदय में वसिष्ठ ने कहा है—'गुरावस्ते भृगौ वापि शिशुत्वे वा मलिम्लुचे। व्रतस्य बन्धनं कार्यं विप्राणां मीनगे रवौ॥ संस्कारप्रदीप में देवल—'मीने स्थितेऽर्के द्विजपुङ्गवानां व्रतस्य बन्धः किल मासि चैत्रे। न शुक्रदोषो न गुरोश्च दोषो गलग्रहाब्दाध्ययनाद्यदोषः॥' स्मृत्यन्तरे—'चैत्रे मासे भास्करे मीनसंस्थे कुर्यान्मौञ्जीबन्धनं ब्राह्मणानाम्। शुक्रस्यास्तं वाक्पतेर्न विलोक्यं नैव ग्राह्या चन्द्रगुर्वोश्च शुद्धिः॥' इति।

२. जन्ममास का लक्षण—'आरभ्य जन्मदिवसं यावत्त्रिंशद्दिनं भवेत्। जन्ममासः स विज्ञेयो गर्हितः सर्वकर्मसु॥' राजमार्तण्डे—'जन्ममासे तिथौ भे च विपरीतदले सति। कार्यं मङ्गलमित्याहुर्गर्ग-भार्गवशौनकाः॥ जन्ममासनिषेधेऽपि दिनानि दश वर्जयेत्। आरभ्य जन्मदिवसाच्छुभाः स्युस्तिथयो-ऽपरे॥' शौनकः—'जन्मोदये जन्मसु तारकासु मासे तथा जन्मनि जन्मराशौ। व्रतेन विप्रो न बहुश्रु-तोऽपि प्रज्ञाविशेषैः प्रथितः पृथिव्याम्॥ गर्भाष्टमे गर्भपराशराद्यैः फलं यदुक्तं व्रतबन्धने तु। ततोऽ-धिकं जन्मसु तारकासु मासे तथा जन्मनि वाडवानाम्॥' इति। वाडवानां=ब्राह्मणानाम्।

३. स्मृतिकौस्तुभ में स्मृत्यन्तर—'शुक्लपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णपक्षे त्रिधा कृते। अन्त्यभागं विना यौ द्वौ गणितौ मध्यमाधमौ॥' अर्थात् उपनयन में शुक्लपक्ष शुभप्रद है। कृष्णपक्ष में प्रतिपदा से पंचमी, षष्ठी से दसमी और एकादशी से अमावास्या, इस प्रकार तीन भाग करके पंचमीपर्यन्त मध्यम और दशमीपर्यन्त अधम है। किसी प्रकार की अशक्तता रहने पर इनमें यज्ञोपवीत करे। अन्त्यभाग (एकादशी से अमावास्या पर्यन्त) में नहीं करे।

ब्राह्मणों के लिए जन्ममास, जन्मनक्षत्र, जन्मतिथि, जन्मलग्न और जन्मराशि लग्नों में उपनयन करने में दोष नहीं है। क्षत्रिय वैश्य को प्रथम गर्भ से भिन्न में दोषकारक नहीं है। ज्येष्ठ सन्तान का ज्येष्ठमास में मंगल-कृत्य नहीं करे। 'शुक्लपक्ष शुभप्रद है। अन्त के तीन तिथि छोड़कर कृष्णपक्ष भी शुभप्रद है' गुरु के इस कथन से कृष्णपक्ष में दशमीपर्यन्त संकट में उपनयन करे। शिष्ट लोग तो संकट में भी कृष्णपक्ष में पंचमी तक ही उपनयन करते हैं।

अथ तिथिविचारः

द्वितीयातृतीयापञ्चमीषष्ठीदशम्येकादशीद्वादश्यः प्रशस्ताः। क्वचित्सप्तमीत्रयोदशीकृष्णप्रतिपद्विधिः पुनरुपनयनमूकाद्युपनयनविषयः।

> तिथौ सोपपदाख्यायामनध्याये गलग्रहे।
> अपराह्णे[1] चोपनीतः पुनः संस्कारमर्हति॥
> सिता ज्येष्ठे द्वितीया च आश्विने दशमी सिता।
> चतुर्थी द्वादशी माघे एताः सोपपदाः स्मृताः॥
> अनध्यायाः पौर्णमासी चतुर्दश्यष्टमी अमा।
> प्रतिपत्सूर्यसंक्रान्तिर्मन्वाद्याश्च युगादयः॥
> कृष्णपक्षे द्वितीयाश्च कार्तिकाषाढफाल्गुने।

विषुवायनसंक्रान्त्योः पक्षिणी अनध्याय इति पूर्वपरिच्छेदे उक्तम्। सोपपदानामनध्यायतिथीनां च दिनद्वये सूर्योदयोत्तरं सूर्यास्तात्पूर्वं च त्रिमुहूर्तसत्त्वे दिनद्वयमनध्यायः।

द्वितीया, तृतीया, पंचमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी और द्वादशी तिथि प्रशस्त है। कहीं पर सप्तमी त्रयोदशी और कृष्ण प्रतिपदा की विधि पुनरुपनयन और गूंगे आदि के उपनयन के विषय में कहा है। सोपपदा नाम की तिथि, अनध्याय, गलग्रह और अपराह्ण में उपनयन किये हुए का पुनः उपनयन करना चाहिये। ज्येष्ठ में शुक्लपक्ष की द्वितीया, आश्विन में शुक्लपक्ष की दशमी और माघ की चतुर्थी तथा द्वादशी सोपपदा कहलाती है। पूर्णिमा, चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या, प्रतिपदा, सूर्य-संक्रान्ति, मन्वादि और युगादि तिथि, कार्तिक, आषाढ और फाल्गुन, कृष्णपक्ष की द्वितीया और अयन-संक्रान्ति में पक्षिणी का अनध्याय पूर्व परिच्छेद में कह चुके हैं। सोपपदा और अनध्याय-तिथियों के दो दिन में सूर्योदय के बाद और सूर्यास्त से पहिले तीन मुहूर्त रहने पर दोनों दिन अनध्याय होता है।

शिष्टास्तु प्रतिपच्छेषघटिकादिमात्रेपि व्रतबन्धेऽनध्यायं वदन्ति। विषुवायनेतरसंक्रान्तिमन्वादियुगादिषु तु प्रथमद्वितीयपरिच्छेदोक्तरीत्या यत्र दिने संक्रान्तिपुण्यकालो युगमन्वादिश्राद्धकालश्च तद्दिनेऽनध्यायः, न तु तेषामस्तादौ मुहूर्तत्रये सत्त्वमनध्यायहेतुः।

---

१. स्कन्दपुराणे—'ऊर्ध्वं सूर्योदयात् पूर्वं मुहूर्तानां तु पञ्चकम्। पूर्वाह्णः प्रथमः प्रोक्तो मध्याह्नस्तु ततः परम्। अपराह्णस्ततः प्रोक्तो मुहूर्तानां तु पञ्चकम्॥' इति।

त्रयोदश्यादिचत्वारि सप्तम्यादिदिनत्रयम् ।
चतुर्थी चैकतः प्रोक्ता अष्टावेते [1]गलग्रहाः ॥

अत्र चतुर्थीनवमी च व्रतकाले त्याज्येति भाति ।

शिष्ट तो प्रतिपदा का शेष एक घटी आदि मात्र में भी उपनयन में अनध्याय कहते हैं । विषुव और अयन-संक्रान्ति से भिन्न संक्रान्ति और मन्वादि युगादि में तो प्रथम-द्वितीय-परिच्छेद में कही हुई रीति से जिस दिन संक्रान्ति का पुण्यकाल और युगादि मन्वादि का श्राद्ध काल हो उस दिन अनध्याय है । उनके अस्तादि में तीन मुहूर्त्त का रहना अनध्याय का कारण नहीं है । त्रयोदशी से चार और सप्तमी से तीन तिथि तथा केवल चतुर्थी, ये आठ गलग्रह कहलाते हैं । यहाँ चतुर्थी और नवमी भी व्रत-काल में त्याज्य हैं, ऐसा ठीक मालूम होता है ।

केचिच्चतुर्थीशेषयुतपंचम्यां व्रतबन्धं न कुर्वन्ति । तत्र मूलं मृग्यम् । नवमीशेषयुतदशम्यां मौञ्जी न कार्येति मयूखे । अपराह्णस्त्रेधा विभक्तदिनतृतीयांशो व्रतबन्धे वर्ज्यः । दिनमध्यमभागो मध्यमः । प्रथमभागो मुख्यः । [2]मन्वादियुगादयो द्वितीयपरिच्छेदे दर्शिताः । तत्रोपनयने चैत्रशुक्लतृतीयायाः मन्वादेर्वैशाखशुक्लतृतीयाया युगादेश्च प्रसक्तिः । अन्येषां युगादिमन्वादितिथीनां प्रसक्तिर्नास्ति ।

कुछ लोग चतुर्थी-शेष-युक्त पंचमी में उपनयन नहीं करते हैं । उसका मूल अन्वेषणीय है । नवमी-शेष-युक्त दशमी में उपनयन नहीं करे, ऐसा मयूख में लिखा है । दिन का तीन भाग करने पर तृतीय भाग अपराह्ण उपनयन में वर्जित है । अन्य दिन का मध्यम भाग मध्यम है । प्रथम भाग मुख्य है । मन्वादि-युगादि-तिथियां द्वितीयपरिच्छेद में दिखाया है । उसमें उपनयन करने में चैत्रशुक्ल तृतीया का मन्वादि और वैशाखशुक्ल तृतीया का युगादि से सम्बन्ध है । अन्य युगादि-मन्वादि-तिथियों का सम्बन्ध नहीं है ।

अथ मन्वादियुगाद्योरपवादः

अनयोरपवादः सिन्धुकौस्तुभादौ स्मर्यते —
या चैत्रवैशाखसिता तृतीया माघस्य सप्तम्यथ फाल्गुनस्य ।
कृष्णे द्वितीयोपनये प्रशस्ता प्रोक्ता भरद्वाजमुनीन्द्रमुख्यैः ॥ इति ।

अत्र माघसप्तम्या मन्वादेरपवादः पुनरुपनयनादिविषयः । फाल्गुनकृष्णद्वितीयायाश्चातुर्मास्यद्वितीयात्वेनानध्यायत्वं प्राप्तं तस्यापवादोयम् । यत्तु—

---

१. यह गुरु का वचन है । वसिष्ठ के—'कृष्णपक्षे चतुर्थी च सप्तम्यादिदिनत्रयम् । त्रयोदशीचतुष्कं च अष्टावेते गलग्रहाः ॥' इस वचन में कृष्णपक्ष की चतुर्थी का ग्रहण दोषाधिक्य बोध के लिये है, न कि शुक्लपक्ष की चतुर्थी के ग्रहण के लिये । अन्यथा गुरु-वाक्य की वैयर्थ्यापत्ति होगी ।

२. मत्स्यपुराण में मन्वादिसंज्ञक-तिथियां—'अश्वयुक् शुक्लनवमी द्वादशी कार्तिकस्य तु । चैत्रस्य तु तृतीया या तथा भाद्रपदस्य च ॥ फाल्गुनस्य अमावास्या पौषस्यैकादशी सिता । श्रावणस्याष्टमी कृष्णा तथाऽऽषाढस्य पूर्णिमा ॥ आषाढशुक्लदशमी माघशुक्लस्य सप्तमी । कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्यैष्ठी पञ्चदशी तथा ॥ मन्वन्तरादयस्त्वेता दत्तस्याक्षय्यकारकाः ।'

भविष्यपुराण में युगादिसंज्ञक-तिथियां—'वैशाखस्य तृतीया या समा कृतयुगेन तु । नवमी कार्तिके या तु त्रेतायुगसमा स्मृता ॥ भाद्रे त्रयोदशी कृष्णा द्वापरेण समा तु सा ॥ एताश्चतस्रो राजेन्द्र युगानां प्रभवाः शुभाः । युगादयस्तु कथ्यन्ते तेनैताः पूर्वसूरिभिः ॥' इति ।

इन दोनों का अपवाद निर्णयसिन्धु और कौस्तुभ आदि में स्मरणीय है। जो चैत्र और वैशाख के शुक्लपक्ष की तृतीया, माघ और फाल्गुन की सप्तमी तथा कृष्णपक्ष की द्वितीया भरद्वाज आदि मुख्य-मुनीन्द्रों ने उपनयन में प्रशस्त कहा है। यहाँ माघ की सप्तमी का मन्वादि-अपवाद पुनरुपनयन आदि विषय का है। फाल्गुनकृष्ण द्वितीया का चातुर्मास्य-द्वितीया से जो अनध्याय प्राप्त है उसका यह अपवाद है। जो तो—

अनध्यायस्य पूर्वेद्युरनध्यायात्परेहनि ।
व्रतारम्भं विसर्गं च विद्यारम्भं च वर्जयेत् ॥

इति स्मृत्यन्तरम्, तद् द्वितीयाविध्यनुपपत्त्या गलग्रहत्वेन प्राप्तसप्तमीनवमी-त्रयोदशीनिषेधानुवादकमिति भाति । अप्राप्तनिषेधकत्वे मन्वादियुगादिसंक्रा-न्त्यादिप्रयुक्तानध्यायेभ्योपि पूर्वपरदिनयोर्निषेधापत्त्या चैत्रशुक्लद्वितीयादेरपि निषिद्धत्वापातान्न चेष्टापत्तिः । शिष्टाचारग्रन्थेषु चानुपलम्भात् ।

अनध्याय के पहिले दिन और दूसरे दिन में व्रत का आरंभ और विसर्जन तथा विद्यारम्भ न करे यह दूसरी स्मृति का वचन है। वह द्वितीया विधि की अनुपपत्ति से गलग्रहत्व से प्राप्त सप्तमी, नवमी और त्रयोदशी के निषेध का अनुवादक है, ऐसा ठीक प्रतीत होता है। निषेध के नहीं प्राप्त होने पर मन्वादि-युगादि-संक्रान्त्यादि-प्रयुक्त अनध्यायों से पूर्व और पर दिन के निषेध की आपत्ति से चैत्रशुक्ल द्वितीयादि का भी निषेध पड़ने से इष्टापत्ति नहीं है। क्योंकि शिष्टाचार ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं है।

मुहूर्तमार्तण्डोक्त्या माघे शुक्लद्वितीया कृष्णद्वितीया वैशाखकृष्णद्वितीया चेत्यनध्यायत्रयमुपनयनेऽधिकं प्राप्नोति । एतदपरे नाद्रियन्ते, बहुग्रन्थेषु मूलानुपलम्भात् । मौञ्जीप्रकरणे मुहूर्तचिन्तामण्यादिग्रन्थेषु क्वाप्यनुक्तेश्च । अतो मार्तण्डोक्तानामतिरिक्तानध्यायानामुपनिषत्पाठादिविषयत्वं, न तु मौञ्जी-विषयत्वमिति युक्तं भाति ।

मुहूर्तमार्तण्ड की उक्ति से माघ में शुक्ल-द्वितीया, कृष्ण-द्वितीया तथा वैशाखकृष्ण द्वितीया, ये तीन अनध्याय उपनयन में अधिक होते हैं। अन्य लोग इसका आदर नहीं करते, क्योंकि बहुत से ग्रन्थों में इसका मूल उपलब्ध नहीं है और मुहूर्त्तचिन्तामणि आदि ग्रन्थों में उपनयन-प्रकरण में कहीं भी नहीं कहा है। अतः मार्तण्ड के कहे हुए अतिरिक्त अनध्यायों का उपनिषद् पाठ आदि का विषय है उपनयन विषयक नहीं है, ऐसा युक्त प्रतीत होता है।

तत्र तृतीयाषष्ठीद्वादशीषु प्रदोषसत्त्वे मौञ्जी न कार्या । रात्रेः प्रथमयामे चतुर्थी सार्धयामे सप्तमी यामद्वये त्रयोदशी चेत्तदा प्रदोषः[1] । दिनद्वये प्रथम-

१. पीयूषधारा में प्रदोष का विचार—'चतुर्थी प्रथमे यामे सार्धयामे च सप्तमी । यामद्वये त्रयो-दश्यां प्रदोषः सर्वघातकः॥' गर्गः—'चतुर्थी याममेकं तु सार्धयामं तु सप्तमी । अर्धरात्रं त्रयोदश्यां प्रदोषो रजनीमुखम् ॥ अत्र नाध्यापयेद् वेदवेदाङ्गानि च सर्वथा । अत्राध्ययनशीलस्य प्रदोषः सर्वघातकः ॥' गोमिलने इस प्रकार कहा है—'षष्ठी च द्वादशी चैव अर्धरात्रोननाडिका । प्रदोषमिह कुर्वीत तृतीया नवनाडिका ॥' ब्रह्माण्डपुराणे—'रात्रौ यामद्वयादर्वाग् यदि पश्येत् त्रयोदशीम् । प्रदोषः स तु विज्ञेयः सर्वस्वाध्यायवर्जितः ॥ षष्ठी च द्वादशी चैव अर्धरात्रोननाडिका । प्रदोषे न त्वधीयीत तृतीया नवना-डिका ॥' हेमाद्रौ—'मेधाकामस्त्रयोदश्यां चतुर्थ्यां चैव सर्वदा । सप्तम्यां च प्रदोषे तु न स्मरेन्नापि कीर्तयेत् ॥ चतुर्थ्याः पूर्वरात्रे तु नवनाड्यु दर्शने । नाध्येयं पूर्वरात्रे स्यात्सप्तमी च त्रयोदशी ॥' इति ।

यामादिषु चतुर्थ्यादि व्याप्तौ पूर्वदिने प्रदोषो नोत्तरदिने इति कौस्तुभे। प्रदोषदिने मन्दवारे कृष्णपक्षान्त्यत्रिके[1] चोपनयने पुनरुपनयनमिति मयूखे । एते नित्यानध्यायाः ।

उसमें तृतीया, षष्ठी और द्वादशी में प्रदोष रहने से उपनयन नहीं करे। रात्रि के प्रथम प्रहर में चतुर्थी, डेढ़ प्रहर में सप्तमी और दोपहर में त्रयोदशी हो तब प्रदोष होता है। दो दिन में प्रथम प्रहर आदि में चतुर्थी आदि के रहने से पहिले दिन प्रदोष होता है दूसरे दिन नहीं होता, ऐसा कौस्तुभ में कहा है। प्रदोष के दिन शनिवार हो कृष्णपक्ष के अन्त के तीन दिनों में भी उपनयन करने पर पुनः उपनयन करे, ऐसा मयूख में है। ये सब नित्य अनध्याय हैं।

अथ नैमित्तिकाः

विवाहप्रतिष्ठोद्यापनादिष्वासमाप्तेः सगोत्राणामनध्याय इति स्मृत्यर्थसारोक्तेस्त्रिपुरुषसपिण्डेषु ब्रह्मयज्ञादिवर्जनाद् मौञ्जीविवाहादिनिमित्तकमण्डपप्रतिष्ठाद्युत्सवसमाप्तिपर्यन्तमुपनयनं न कार्यमिति भाति । विवाहादिमङ्गलकरणे दोषो न । शोभनदिने चानध्याय इत्युक्तेर्गर्भाधानादिशुभकार्यदिने एककुले एकगृहे वा व्रतबन्धो न कार्यं इति भाति ।

विवाह प्रतिष्ठा और उद्यापन आदि में इनकी समाप्ति तक सगोत्रों का अनध्याय होता है, ऐसा स्मृत्यर्थसार में कहने से तीन पुस्त के सपिण्डों में ब्रह्मयज्ञ आदि के त्याग से उपनयन विवाह आदि नैमित्तिक, मण्डप-प्रतिष्ठा आदि के उत्सव की समाप्ति तक उपनयन नहीं करना चाहिये, ऐसा मुझे ठीक प्रतीत होता है। विवाह आदि मंगल-कृत्य करने में दोष नहीं है। अच्छे दिन में भी अनध्याय है इस कथन से गर्भाधान आदि शुभ कार्य के दिन में एक कुल में या एक घर में उपनयन नहीं करे, ऐसा ठीक है।

[2]भूकम्पे भूविदारणे वज्रपात उल्कापाते धूमकेतूत्पत्तौ ग्रहणे च दशाहं सप्ताहं वा व्रतबन्धादि मङ्गलं न कार्यम्। केचित्संकटे त्रिदिनमनध्यायमाहुः । अकालवृष्टौ त्रिरात्रं पक्षिणी वाऽनध्यायः । पौषादिचैत्रान्तमकालवृष्टिः । केचिदा-

---

१. स्मृत्यन्तरे—'शुक्लपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णपक्षे त्रिधा कृते। अन्त्यभागं विना यौ द्वौ गणितौ मध्यमाधमौ ॥' गुरुः—'शुक्लपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णश्चान्त्यत्रिकं विना' इति ।

२. गर्गः—'ग्रहे रवीन्द्वोरवनिप्रकम्पे केतूद्गमोल्कापतनादिदोषे। व्रते दशाहानि वदन्ति तज्ज्ञास्त्रयोदशाहानि वदन्ति केचित् ॥' स्मृत्यन्तरे—'अरिष्टे त्रिविधोत्पाते सिंहिकासुनुदर्शने। सप्तरात्रं न कुर्वीत यज्ञोद्वाहादिमङ्गलम् ॥' चण्डेश्वरः—'दाहे दिशां चैव धराप्रकम्पे वज्रप्रपातेऽथ विदारणे च। केतौ तथोल्कांशुकणप्रपाते त्र्यहं न कुर्याद् व्रतमङ्गलानि ॥' स्मृत्यन्तरे—'यदाम्बुवृष्टिः कुलिशं पतत्यधो धराप्रकम्पोऽसुरकेतुदर्शनम्। तदा विवाहव्रतबन्धनेषु विवर्जयेत् सप्तदिनानि शास्त्रतः ॥' अम्बुवृष्टिः= निरन्तरदिनत्रयवृष्टिः। यदि निरन्तर तीन दिन वृष्टि नहीं हो एक या दो दिन वृष्टि हो तो स्मृति में विशेष वचन है—'एकेनैकदिनं त्याज्यं द्वितीयेन दिनत्रयम्। तृतीयेन तु सप्ताहं त्यजेदाकालवर्षणे ॥' पौष से चैत्रपर्यन्त की वृष्टि अकालवृष्टि है—'पौषादिचतुरो मासान् ज्ञेया वृष्टिरकालजा। व्रतयात्राविवाहादि वर्जयेत् सप्तवासरान् ॥' मुहूर्तचिन्तामणि में यात्रादि में अकालवृष्टि का दोषाभाव यावद्वसुधा बतलाया है—'यदि मास्सु चतुर्षु पौषमासादिषु वृष्टिर्हि भवेदकालवृष्टिः। पद्मुमर्त्यपदाङ्किता न स्यान्न हि तावदेव दोषः ॥' इति ।

र्द्रादिज्येष्ठान्तसूर्यनक्षत्रादन्यत्राकालवृष्टिरित्याहुः। यस्मिन् देशे यो वर्षाकालस्ततोऽन्यत्राकालवृष्टिरिति सिद्धान्तः।

भूकम्प में, भूमि फटने पर, वज्रपात, उल्कापात, धूमकेतु की उत्पत्ति देखने पर और ग्रहण में भी दस दिन या सात दिन यज्ञोपवीत आदि मंगल नहीं करना चाहिये। कुछ लोग संकट काल में तीन दिन का अनध्याय कहते हैं। अकालवृष्टि में तीन दिन या पक्षिणी अनध्याय है। पौष से चैत्र तक अकालवृष्टि होती है। कुछ लोग आर्द्रा आदि से ज्येष्ठा तक के सूर्य-नक्षत्र से भिन्न-काल की वृष्टि को अकालवृष्टि कहते हैं। जिस देश में वर्षा का जो काल है उससे अन्य काल में वृष्टि का होना अकालवृष्टि कहलाती है, यह सिद्धान्त है।

अतिवृष्टौ करकावृष्टौ रुधिरवृष्टौ च त्र्यहम्। प्रातःसंध्यागर्जने त्वहोरात्रम्। गुरुशिष्यर्त्विङ्मरणे त्र्यहम्। पशुमण्डूकनकुलश्वाहिमार्जारमूषकैरन्तरागमनेऽहोरात्रम्। आरण्यमार्जारादिगमने त्रिरात्रम्। सृगालवानरैर्द्वादशरात्रम्। श्रवणद्वादशीयमद्वितीयामहाभरण्यादयोऽन्येप्यनध्याया नित्या नैमित्तिकाश्च बहवो ग्रन्थेषूक्तास्तेषामुपनयने प्रसक्त्यभावादत्र नोक्ताः।

अतिवृष्टि होने पर ओला पड़ने पर और रक्त-वृष्टि होने पर तीन दिन का अनध्याय है। प्रातःसन्ध्या में मेघ-गर्जन होने पर दिन रात का अनध्याय होता है। गुरु, शिष्य और ऋत्विक् के मरने पर तीन दिन का अनध्याय है। पशु, मण्डूक, नेवला, कुत्ता, सांप, बिल्ली और चूहे के बीच में जाने से अहोरात्र का अनध्याय है। जंगली बिल्ली आदि के जाने में तीन रात का, सियार और बानर के बीच में जाने पर बारह रात का अनध्याय है। श्रवण-द्वादशी, यम-द्वियीया और महाभरणी आदि अन्य नित्य और नैमित्तिक बहुत से अनध्याय ग्रन्थों में कहे हैं, उनका उपनयन में सम्बन्ध नहीं होने से यहां नहीं कहे गये हैं।

अथ नान्दीश्राद्धोत्तरं नैमित्तिकानध्याये

व्रतबन्धे नान्दीश्राद्धोत्तरं पूर्वोक्तप्रातर्गर्जितादिनैमित्तिकानध्यायप्राप्तौ ज्योतिर्निबन्धे—

नान्दीश्राद्धं कृतं चेत्स्यादनध्यायस्त्वकालिकः।
तदोपनयनं कार्यं वेदारम्भं न कारयेत्॥ इति।

'वेदारम्भं न कारयेत्' इति निषेधो याजुषादिविषयः। बह्वृचानामुपाकर्मण्येव वेदारम्भोक्त्या मौञ्जीदिने वेदारम्भाप्रसक्तेः। तदोपनयनं कार्यमिति बह्वृचादिसर्वसाधारणः। याजुषादिभिर्मौञ्ज्युत्तरमपि अनध्यायप्राप्तौ वेदारम्भो वर्ज्यः। नान्दीश्राद्धात्प्राक् नैमित्तिकानध्याये मुहूर्तान्तरे कार्यम्। मौञ्ज्युत्तरमनुप्रवचनीयात्प्राग्गर्जने वक्ष्यते। इति अनध्यायादिनिर्णयः।

व्रतबन्ध में नान्दीश्राद्ध के बाद पहिले कहे हुए प्रातर्गर्जन आदि नैमित्तिक-अनध्याय प्राप्त होने पर कहा है कि यदि नान्दीश्राद्ध कर लेने पर असामयिक अनध्याय हो तब उपनयन करे और वेदारंभ न करे। वेदारम्भ का निषेध यजुर्वेदियों के विषय का है। क्योंकि बह्वृचोंका उपाकर्म में ही वेदारम्भ के कहने से उपनयन-दिन में वेदारम्भ का प्रसंग नहीं है। 'तदोपनयनं कार्यं' यह बह्वृच् आदि सभी के लिये है। यजुर्वेदी आदि के लिये उपनयन के बाद भी अनध्याय होने से वेदारंभ

त्याज्य है। नान्दीश्राद्ध से पहिले नैमित्तिक-अनध्याय के होने से दूसरे मुहूर्त्त में उपनयन करे। मौंजी के बाद अनुप्रवचनीय से पहिले गर्जन में कहेंगे। अनध्यायादि-निर्णय समाप्तः।

अथ वारविचारः

इत्थं तिथिं तत्प्रसङ्गप्राप्तमनध्यायादिकं च विचार्य [१]वारादि चिन्त्यते—गुरुशुक्रबुधवाराः श्रेष्ठाः, सूर्यवारो मध्यमः, भौममन्दवारौ निषिद्धौ। सामवेदिनां क्षत्रियाणां च भौमवारः प्रशस्तः।

इस प्रकार तिथि और उसके प्रसंग से अनध्यायादि का विचार करके वार आदि के सम्बन्ध में कहते हैं। बृहस्पति, शुक्र और बुधवार श्रेष्ठ है। सूर्यवार मध्यम और चन्द्रवार अधम है। मंगल और शनिवार निषिद्ध है। सामवेदी और क्षत्रियों का मंगलवार प्रशस्त है।

अथ वेदाधिपगुरुचन्द्रादिबलविचारः

शाखाधिपतिवारश्च　शाखाधिपबलं　तथा।
शाखाधिपतिलग्नं च दुर्लभं त्रितयं व्रते॥
गुरुशुक्रौ भौमबुधावृग्वेदाद्यधिपाः　स्मृताः।
पती सितेज्यौ विप्राणां नृपाणां कुजभास्करौ॥
वैश्यानां शशभृत्सौम्याविति वर्णाधिपाः स्मृताः।
पितुः सूर्यबलं श्रेष्ठं शाखावर्णेशयोर्बटोः॥
पितुर्बटोश्च सर्वेषां बलं वाक्पतिचन्द्रयोः।

बटुतत्पित्रोरुभयोर्गुरुचन्द्रबलालाभे बटोरुभयबलमावश्यकम्। तत्र चन्द्रबलं गर्भाधानप्रसङ्गे उक्तम्।

शाखाधिप का वार तथा शाखाधिप का बल एवं शाखाधिपति का लग्न ये तीनों उपनयन में दुर्लभ होते हैं। बृहस्पति, शुक्र और मंगल बुध ऋग्वेद आदि के अधिपति कहे गये हैं। बृहस्पति, शुक्र ब्राह्मणों के अधिपति हैं और क्षत्रियों के मंगल सूर्य तथा वैश्यों के चन्द्रमा और बुध, ये वर्णपरक अधिपति कहे गये हैं। पिता का सूर्य-बल और बटु के शाखा वर्णेश का बल श्रेष्ठ है। पिता और बटु सबका बृहस्पति और चन्द्रमा का बल श्रेष्ठ है। बटु और उसके माता पिता दोनों का गुरुबल और चन्द्रबल न मिलने पर बटु को दोनों का बल आवश्यक है। उसमें चन्द्रबल गर्भाधान के प्रसंग में कहा है।

द्विपञ्चसप्तनवैकादशस्थो गुरुः शुभफलप्रदः। जन्मतृतीयषष्ठदशमस्थानेषु पूजाहोमात्मकशान्त्या शुभः। चतुर्थाष्टमद्वादशस्थानेषु दुष्टफलः। कर्कधनुर्मीनराशिषु चतुर्थादिस्थानेपि न दोषः। अतिसंकटे चतुर्थद्वादशस्थो द्विगुणपूजाहोमादिना शुभः। अष्टमस्तु त्रिगुणपूजादिना शुभः।

---

१. नारदः—'सर्वेषां जीवशुक्रज्ञवाराः प्रोक्ता व्रते शुभाः। चन्द्रार्कौ मध्यमौ ज्ञेयौ सामबाहुजयोः कुजः॥' रत्नसंग्रह में शाखाधिपति का विवेचन—'ऋगथर्वसामयजुषामधिपा गुरुसौम्यभौमसिताः। जीवसितौ विप्राणां, क्षत्रियस्य चोष्णगुर्विशां चन्द्रः॥' राजमार्तण्ड में ब्राह्मण के लिये पुनर्वसु का निषेध है—'ताराचन्द्रानुकूलेषु ग्रहाब्देषु शुभेष्वपि। पुनर्वसौ कृतो विप्रः पुनः संस्कारमर्हति॥' इति।

केचिदनिष्टो [1]'वामवेधेन शुभ इत्याहुस्तन्नेति राजमार्तण्डः । अष्टमवर्षादिमुख्यकाले गुरुबलाभावेऽपि मीनगतरवियुतचैत्रे वा शान्त्या वा व्रतबन्धः कार्यो न तु मुख्यकालातिक्रमः, नित्यकालस्य बलीयस्त्वात् ।

दो, पांच, सात, नव और एकादश में गुरु शुभफल देने वाले हैं। जन्म-लग्न से तृतीय षष्ठ और दशम स्थान में पूजा तथा होम की शान्ति से शुभकारक होते हैं। चौथे, आठवें, बारहवें स्थान में दुष्ट-फल देते हैं। कर्क, धनु और मीन राशिमें चौथे आदि स्थानों में भी दोष नहीं होता। अतिसंकट में चौथे बारहवें स्थान में स्थित दूनी पूजा होम आदि से शुभप्रद होते हैं। आठवें स्थान का तो तिगुनी पूजा आदि से शुभकारक हैं। कुछ लोग कहते हैं कि -अनिष्ट-ग्रह वामवेध से शुभ होता है, उसे राजमार्तण्ड कहता है कि नहीं। अष्टम वर्ष आदि मुख्यकाल में गुरुबल के न होने पर भी मीनार्क चैत्र में अथवा शान्ति करके व्रतबन्ध कर देना चाहिये। नित्य-काल के बली होने से मुख्यकाल का अतिक्रमण नहीं करे।

अथ नक्षत्राणि

[2]पूर्वात्रयहस्तचित्रास्वातीमूलाश्लेषार्द्राश्रवणेषु ऋग्वेदिनां मौञ्जी शस्ता। रोहिणीमृगपुष्यपुनर्वसुत्र्युत्तराहस्तानूराधाचित्रारेवतीषु याजुषाणाम्। अश्विनीपुष्योत्तरात्रयार्द्राहस्तधनिष्ठाश्रवणेषु सामगानाम्। अश्विनीमृगानूराधाहस्तधनिष्ठापुनर्वसुरेवतीषु अथर्ववेदिनाम्।

तीनों पूर्वा, हस्त, चित्रा, स्वाती, मूल, आश्लेषा, आर्द्रा, और श्रवण नक्षत्रों में ऋग्वेदियों का व्रतबन्ध उत्तम है। रोहिणी, मृगशिरा, पुष्य, पुनर्वसु, तीनों उत्तरा, हस्त, अनुराधा, चित्रा और रेवती नक्षत्रों में यजुर्वेदियों का उपनयन प्रशस्त है। अश्विनी, पुष्य, तीनों उत्तरा, आर्द्रा, हस्त, धनिष्ठा और श्रवण नक्षत्रों में सामवेदियों का तथा अश्विनी, मृगशिरा, अनुराधा, हस्त, धनिष्ठा पुनर्वसु और रेवती नक्षत्रों में अथर्ववेदियों का उपनयन प्रशस्त है।

एषां नक्षत्राणामसंभवे भरणीकृत्तिकामघाविशाखाज्येष्ठाशततारका वर्जयित्वा सर्वाणि सर्वेषां ग्राह्याणि। रातमार्तण्डे पुनर्वसुनिषेधो[3] निर्मूल इति बहवः।

---

१. मुहूर्तमार्तण्ड में गुरु का वामवेध—'द्वीष्वायागाङ्कसंस्थो व्ययजलनिधनत्र्यग्गैश्चेन्न विद्धः। शस्तोऽनिष्टोऽपि वामं शुभ इह खचरैर्वेधितो नोऽष्टमस्थः॥' अर्थात् गुरु द्वितीय पंचम एकादश सप्तम नवम स्थान में स्थित हों और द्वादश चतुर्थ अष्टम तृतीय तथा दशम स्थान स्थित ग्रहों से विद्ध न हों तो शुभप्रद और विद्ध हों तो अशुभप्रद हैं।

अनिष्टकारकस्थान (१२, ४, ८, ३, १०) में स्थित गुरु वामविद्ध-(२, ५, ११, ७, ९ स्थान स्थित ग्रहों से विद्ध) हों तो व्रतबन्ध या विवाह में शुभकारक हैं। अष्टमस्थ विद्ध हों तो शुभदायक नहीं है। यहां तो त्रिगुण पूजा से शुभप्रद हैं, जैसा बृहस्पति ने कहा है—'रजस्वला यदा कन्या गुरुशुद्धिं न चिन्तयेत्। अष्टमेऽपि प्रकर्तव्यो विवाहस्त्रिगुणार्चनात्॥' ग्रन्थान्तरे—'व्रते जन्मत्रिखारिस्थो जीवोऽपीष्टोऽर्चनात् सकृत्। शुभोऽतिकाले तुर्याष्टव्ययस्थो द्विगुणार्चनात्॥' इति।

२. ज्योतिर्निबन्धे—'पूर्वाहस्तत्रये सार्पश्रुतिमूलेषु बह्वृचाम्। यजुषां पौष्णमैत्रार्कादित्यपुष्यमृदुध्रुवैः॥ सामगानां हरीशार्कवसुपुष्योत्तराश्विभैः। धनिष्ठादितिमैत्रार्केश्विन्दुपौष्णेष्वथर्वणाम्॥' इति।

३. बृहस्पति ने पुनर्वसुनक्षत्र को विहित कहा है—'त्रिषूत्तरेषु रोहिण्यां हस्ते मैत्रे च वासवे। त्वाष्ट्रे सौम्यपुनर्वस्वोरुत्तमं ह्युपनायनम्॥' इति। इसलिये राजमार्तण्ड का निषेध निर्मूल है।

केचिदृक्सामवेदविषयः पुनर्वसुनिषेध इत्याहुः । व्यतीपातवैधृतिपरिघार्धेषु विष्कम्भादीनां निषिद्धनाडीषु भद्रायां ग्रहणे च मौञ्जी वर्ज्या ।

इन नक्षत्रों के सम्भव न होने पर भरणी, कृत्तिका, मघा, विशाखा, ज्येष्ठा और शतभिषा को छोड़कर सबके लिये सभी नक्षत्र ग्राह्य हैं। राजमार्तण्ड में पुनर्वसु का निषेध निर्मूल है, ऐसा बहुत लोग कहते हैं। कोई पुनर्वसु का निषेध ऋगवेदी सामवेदियों के लिये कहते हैं। व्यतीपात, वैधृति और परिघ के आधे में विष्कुंभ आदि के निषिद्ध घड़ियों में, भद्रा तथा ग्रहण में मौञ्जी त्याज्य है।

अथ लग्ने ग्रहबलम्

व्रते ग्राह्या द्वादशाष्टषड्वर्ज्याः शुभखेचराः।
खलास्त्र्यायारिगाश्चन्द्रः शुक्ले गोकर्कगस्तनौ ॥
क्वचित्सूर्यस्तनौ श्रेष्ठोऽष्टमे वर्ज्योऽखिलो ग्रहः ।
लग्नेश. शुक्रचन्द्रौ च षष्ठे वर्ज्याः सितोऽन्त्यगः ॥
लग्ने चन्द्रखलाश्चैवेन्दुर्वर्ज्यो द्वादशाष्टमे ।
पञ्चेष्टग्रहहीनं च लग्नं सर्वत्र वर्जयेत् ॥
तुलामिथुनकन्याख्या धनुर्वृषझषाह्वयाः ।
नवमांशाः शुभाः प्रोक्ताः कर्कांशं वर्जयेद् व्रते ॥

षड्वर्गशुद्ध्यादिकमिष्टकालसाधनादिविचारश्च ज्योतिर्ग्रन्थेभ्यो ज्ञातव्यः ।

उपनयन में बारहवें, आठवें और छठें को छोड़कर शुभग्रह ग्राह्य है। पापग्रह तृतीया, एकादश षष्ठ स्थान में हों और शुक्लपक्ष में चन्द्रमा कर्क राशि अथवा लग्न में हों तो उत्तम है। कहीं सूर्य भी लग्न का श्रेष्ठ होता है। सभी ग्रह अष्टम में वर्जनीय हैं। लग्न का स्वामी शुक्लपक्ष का चन्द्रमा षष्ठ स्थान में वर्जनीय है। एवं शुक्र द्वादश स्थान का' चन्द्रमा और पापग्रह लग्न का एवं द्वादश तथा अष्टम स्थान का चन्द्रमा त्याज्य है। लग्न पांच शुभ-ग्रहों से हीन हो तो उसका सर्वत्र त्याग करे। तुला, मिथुन, कन्या, धनु, वृष और मीन का नवांश उत्तम होता है। तथा कर्क के नवांश को यज्ञोपवीत में सदैव त्याग करे। षड्वर्ग की शुद्धि आदि और इष्टकाल साधन आदि का विचार ज्योतिष के ग्रन्थों से जानना चाहिये।

अथ उपनयनकर्तुः पत्नीरजसि विचारः

मातरि रजस्वलायां मातुलज्येष्ठभ्रात्रादीनां पित्रसान्निध्यात् कर्तॄणां पत्न्यां [1]रजस्वलायां च मौञ्जीविवाहादि न कार्यम्। नान्दीश्राद्धोत्तरं मातृरजसि भ्रात्रादिकर्त्रन्तरसत्त्वेपि सन्निहितमुहूर्तान्तरालाभे शान्ति कृत्वा कार्यम्, अन्यथा मुहूर्तान्तरे एव नान्दीश्राद्धोत्तरं मातुलादिकर्तॄणां पत्नीरजोदोषे आरब्धत्वाच्छान्तिं विनैव कार्यम्। मौञ्जीविवाहोत्तरं मण्डपोद्वासनात्प्राक्

१. वृद्धमनुः—'विवाहव्रतचूडासु माता यदि रजस्वला। तदा न मङ्गलं कार्यं शुद्धौ कार्यं शुभेप्सुभिः ॥' गर्गः—'यस्योद्वाहादिमाङ्गल्ये माता यदि रजस्वला । तदा न तत्प्रकर्तव्यमायुःक्षयकरं यतः ॥' इति ।

मातृरजोदोषेऽपि शान्तिः कार्या मङ्गलस्यासमाप्तत्वादिति मुहूर्तचिन्तामणिटीकायाम्। प्रारम्भात्प्रागपि रजोदोषे मुहूर्तान्तरालाभे शान्तिं कृत्वाऽतिसंकटे व्रतबन्धादिकं कार्यमिति कौस्तुभे।

माता के रजस्वला होने पर मामा, जेठे भाई आदि तथा पिताके निकट न होने पर और उपनयनकर्ता की स्त्री के रजस्वला होने पर भी उपनयन विवाह आदि नहीं करना चाहिये। नान्दीश्राद्ध के बाद माता के रजस्वला होने में भाई आदि उपनयन करने वाले के रहते भी समीप में दूसरे मुहूर्त्त के नहीं मिलने पर शान्ति करके उपनयन करे नहीं तो दूसरे ही मुहूर्त्त में करे। नान्दीश्राद्ध के बाद मामा आदि उपनयन करने वालों की पत्नी के रजस्वला होने पर आरम्भ होने के कारण विना शान्ति के ही उपनयन करे। उपनयन और विवाह के बाद तथा मण्डपोद्वासन से पहिले माता के रजोदोष होने पर भी मंगल-समाप्त न होने के कारण शान्ति करे, ऐसा मुहूर्त्तचिन्तामणि की टीका में कहा है। प्रारंभ से पहिले भी रजोदोष होने और दूसरे मुहूर्त्त के नहीं मिलने पर अत्यन्त संकट में शान्ति करके उपनयन आदि कार्य करे, ऐसा कौस्तुभ में कहा है।

अथ संक्षिप्तरजोदोषशान्तिः

[1]शान्तिप्रकारश्च 'ममामुकमङ्गले संस्कार्यजननीरजोदोषजनिताशुभफलनिरासार्थं शुभफलावाप्त्यर्थं श्रीपूजनादिशान्तिं करिष्ये' इति संकल्प्य माषसुवर्णनिर्मितां लक्ष्मीं श्रीसूक्तेन षोडशोपचारैः संपूज्य स्वगृह्योक्तविधिना श्रीसूक्तेन प्रत्यृचं पायसं हुत्वा कलशोदकेनाभिषिच्य विष्णुं स्मृत्वा कर्मेश्वरार्पणं कुर्यादिति। प्रारम्भोत्तरं सूतकप्राप्तौ एकोदरयोः समानसंस्कारे प्रेतकर्मासमाप्तौ च चौलप्रकरणे उक्तम्। विशेषस्तु वक्ष्यते।

शान्ति का प्रकार यह है—'मेरे अमुक मंगल में संस्कार्य की माता के रजोदोष से उत्पन्न अशुभ फल को हटाने एवं शुभ-फल की प्राप्ति के लिये श्रीपूजन आदि शान्ति करूंगा' ऐसा संकल्प कर एक माशे सोने की बनी लक्ष्मी को श्रीसूक्त से षोडशोपचार से पूजा करके अपने गृह्य की कही हुई विधि से श्रीसूक्त की प्रत्येक ऋचा से खीर का होम करके कलश के जल से अभिषेक तथा विष्णु का स्मरण कर कर्म को ईश्वरार्पण करे। प्रारम्भ के बाद सूतक लगने पर सहोदर दो भाइयों का समान-संस्कार करने और प्रेतकर्म के समाप्त नहीं होने में चौल-प्रकरण में कहा है। विशेष तो आगे कहेंगे।

अथ पदार्थसंपादनम्

[2]कौपीनं प्रावारं च कार्पासजमहतं संपाद्य ईषद्धौतं नवं श्वतं सदशं वस्त्रमहतं संज्ञं [3]प्रावारार्थमजिनं वा। तच्च त्र्यङ्गुलं चतुरङ्गुलं वा बहिर्लोमाखण्डं त्रिखण्डं

१. कपर्दिकारिका में शान्ति-विधि का वचन है—'अलाभे सुमुहूर्तस्य रजोदोषे तु सङ्गते। श्रियं सम्पूज्य तत्कुर्यात् पाणिग्राहादिमङ्गलम्॥ हैमीं माषमितां पद्मां श्रीसूक्तविधिनाऽर्चयेत्॥ प्रत्यृचं पायसं हुत्वा अभिषेकं समाचरेत्॥' इति।

२. स्मृत्यर्थसारे—'कौपीनं कटिसूत्रं च यतेः स्याद् ब्रह्मचारिणः। ग्राह्यं नैव गृहस्थस्य श्रौते स्मार्ते च कर्मणि॥' इतिं।

३. प्रावारार्थम्=आच्छादनार्थम्। मूल में 'अजिनं वा' इस उक्ति से आच्छादन के लिये वस्त्र और अजिन का विकल्प है, जैसा गौतन ने कहाहै—'कार्पासं वाऽविकृतम्' इति। मनुः—'कार्ष्ण-

वाऽष्टचत्वारिंशदङ्गुलं धार्यम्। त्रिखण्डपक्षे चतुर्विंशत्यङ्गुलाष्टाङ्गुलषोडशाङ्गुलाः क्रमेण त्रयः खण्डाः।

कपास का विना फटा हुआ कौपीन और प्रावार सम्पादन करे। थोड़ा धोया हुआ नया सफेद किनारी के सहित वस्त्र को 'अहत' कहते हैं। या दुपट्टे के लिये अजिन वह तीन अंगुल या चार अंगुल का बाहर रोयें लगा हुआ या तीन खण्ड या अड़तालिस अंगुल का धारण करना चाहिये। तीन खण्ड के पक्ष में चौबीस अंगुल, आठ अंगुल और सोलह अंगुल का क्रम से तीन खण्ड का हो।

अथ यज्ञोपवीतनिर्णयः

कार्पासं 'यज्ञोपवीतम्। तन्निर्माणप्रकारः—ब्राह्मणेन ब्राह्मणस्त्रीभिर्विधवादिभिश्च निर्मितं सूत्रं ग्राह्यम्। संहतचतुरङ्गुलिमूलेषु षण्णवत्या सूत्रमावेष्ट्य तत् त्रिगुणीकृत्योर्ध्ववृत्तं वलितं कृत्वा पुनरधोवृत्तरीत्या त्रिगुणीकृतं तत्सूत्रं नवतन्तुकं संपद्यते। तत् त्रिरावेष्ट्य दृढग्रन्थिं कुर्यात्।

स्तनादूर्ध्वमधो नाभेर्न धार्यं तत्कथंचन।
विच्छिन्नं वाप्यधोयातं भुक्त्वा निर्मितमुत्सृजेत्॥

कपास का यज्ञोपवीत होना चाहिये। उसके बनाने का प्रकार यह है—ब्राह्मण या ब्राह्मणी से या विधवा आदि से काता हुआ सूत ले ले। सटी हुई चार अंगुली के मूल में छियानवे बार लपेट कर उसे तिगुना करके ऊपर से नीचे की ओर बट के फिर नीचे से ऊपर की ओर बट के तिगुना किया हुआ सूत नौ तागे का होता है। उसे तीन बार आवेष्टन करके दृढ-ग्रन्थिका बनावे। ऐसा यज्ञोपवीत जो स्तन से ऊपर और नाभि से नीचे न हो, धारण करना चाहिये। टूटा हुआ, नाभि से नीचे लटका हुआ और भोजन करके बनाये हुए यज्ञोपवीत का त्याग करे।

रौरववास्तानि चर्माणि ब्रह्मचारिणः। वसीरन्नानुपूर्व्येण शाणक्षौमाविकानि च॥' यहां 'वसीरन्' वस आच्छादने धातु से सिद्ध हुआ है। आच्छादन योग्य उत्तरीय अजिन के अलाभमें यज्ञोपवीतवत् धारण करना चाहिये—'तद् द्व्यङ्गुलं त्र्यङ्गुलं वा धार्यं यज्ञोपवीतवत्।' 'अखण्डं वा त्रिखण्डं वाऽष्टाचत्वारिंशदङ्गुलम्। चतुरङ्गुलविस्तीर्णं धारयेदजिनं सदा॥ त्र्यङ्गुलं तु बहिर्लोम यद्वा स्याच्चतुरङ्गुलम्। अजिनं धारयेद्द्विप्रश्चतुर्विंशाष्टषोडशैः॥' इति। उपर्युक्त मृगचर्म के अभाव में वस्त्र को उत्तरीय बनावे। ऐसी स्थिति में माणवक मन्त्र को न पढ़े या मन्त्र में अजिन-पद को छोड़ कर पढ़े।

१. मनुः—'कार्पासमुपवीतं स्याद् विप्रस्योर्ध्ववृतं त्रिवृत्। शणसूत्रमयं राज्ञो वैश्यस्याविकसौत्रिकम्॥' कात्यायनः—'पृष्ठदेशे च नाभ्यां च धृतं यद्विन्दते कटिम्। तद्धार्यमुपवीतं स्यान्नातिलम्बं न चोच्छ्रितम्॥' वामस्कन्धे धृते नाभिहृत्पृष्ठवंशयोर्धृतं यथा कटिपर्यंतं प्राप्नोति तावत्परिमाणं कर्तव्यमित्यर्थः। 'स्तनादूर्ध्वमधो नाभेर्न धार्यं तत्कथंचन। ब्रह्मचारिण एकं स्यात्स्नातस्य द्वे बहूनि च॥' देवलः—'शुचौ देशे शुचिः सूत्रं संहताङ्गुलिमूलके। आवृत्य षण्णवत्या तत् त्रिगुणीकृत्य यत्नतः॥ उपवीतं वटोरेकं द्वे तथेतरयोः स्मृते।' छन्दोगपरिशिष्टे—'त्रिवृदूर्ध्ववृतं कार्यं तन्तुत्रयमधोवृतम्। त्रिवृतं चोपवीतं स्यात्तस्यैको ग्रन्थिरिष्यते॥' वामावर्तं त्रिगुणं कृत्वा प्रदक्षिणावृत्तं नवगुणं विधाय तदेव त्रिसरं कृत्वा ग्रन्थिमेकं विदध्यात्।

यज्ञोपवीत में गांठ देने के लिये निबन्ध-ग्रन्थों में 'तस्यैको ग्रन्थिरिष्यते' इस वचन के अतिरिक्त एक से इतर ग्रन्थियों के संबन्ध में वचन नहीं मिलते। किन्तु वृद्धाचार से प्रवरसंख्यानुसार ग्रन्थि देने की प्रथा अविच्छिन्नरूप से प्रचलित है। निबन्धकारों ने वृद्धाचार को स्मृतितुल्य बतलाया है। अतः निबन्धों में प्रत्यक्ष वचन न मिलने पर भी यहां एक शब्द प्रवर-संख्या का उपलक्षण है।

'सिद्धे मन्त्राः प्रयोक्तव्याः' इति न्यायेन सिद्धं यज्ञोपवीतं त्रिगुणीकरणादिमन्त्रैरभिमन्त्र्य यज्ञोपवीतं परममिति मन्त्रेण धारयेत्। तद्यथा—गायत्र्या त्रिगुणीकृत्यापोहिष्ठेति तिसृभिः प्रक्षाल्य पुनर्गायत्र्या त्रिगुणीकृत्य ग्रन्थौ विष्णुब्रह्मरुद्रान्नमेत्। केचिन्नवतन्तुषु नवदेवतान्यासमाहुः। ततो गायत्र्या दशवारमभिमन्त्रिताभिरद्भिर्यज्ञोपवीतं प्रक्षाल्योदुत्यमिति। त्यृचेन सूर्याय प्रदर्श्य यज्ञोपवीतमिति मन्त्रेण प्रथमं दक्षिणं बाहुमुद्धृत्य पश्चात्कण्ठे धारयेदिति।

उपवीतं ब्रह्मसूत्रं प्रोद्धृते दक्षिणे करे।
प्राचीनावीतमन्यस्मिन्निवीतं कण्ठलम्बितम्॥

'सिद्ध होने पर मन्त्रों का प्रयोग करना चाहिये' इस न्याय से बने हुए यज्ञोपवीत को तिगुना करना आदि, मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर 'यज्ञोपवीतं परमं' इस मन्त्र से उसे धारण करे। वह इस प्रकार है—गायत्री से तिगुना करके 'आपोहिष्ठा' इन तीन ऋचाओं से प्रक्षालन करके फिर गायत्री से त्रिगुण करके ग्रन्थि में विष्णु, ब्रह्मा और शंकर को नमस्कार करे। कोई नौ तागों में नौ देवता का का न्यास कहते हैं। तदनन्तर दस बार गायत्री से अभिमन्त्रित जल से यज्ञोपवीत का प्रक्षालन कर 'उदुत्यं' इन तीन ऋचाओं से सूर्य को दिखाकर 'यज्ञोपवीतं' इस मन्त्र से पहिले दाहिने बाहु को उठाकर पीछे कण्ठ में धारण करे। यज्ञोपवीत में दाहिना हाथ निकले रहने पर 'उपवीत' बायां हाथ निकले रहने पर 'प्राचीनावीत' और केवल गले में रहने से 'निवीत' कहलाता है।

चितिकाष्ठचितिधूमचण्डालरजस्वलाशवसूतिकास्पर्शे स्नात्वा यज्ञोपवीतत्यागः। कण्ठलम्बितत्वाद्यकृत्वा मलमूत्रोत्सर्गे च तत्त्यागः। मासचतुष्टयोत्तरं च यज्ञोपवीतत्यागः। केचिज्जननशावाशौचयोरन्तेपि तत्त्यागमाहुः।

चिता की लकड़ी, चिता का धुआँ, चाण्डाल, रजस्वला, मुर्दा और प्रसूति के स्पर्श होने पर स्नान करके यज्ञोपवीत का त्याग करे। कण्ठलंबित आदि न करके मलमूत्र करने में भी उसका त्याग करे। चार महीने के बाद यज्ञोपवीत का त्याग किया करे। कोई जननमरणाशौच के अन्त में भी यज्ञोपवीत का त्याग कहते हैं।

अथ जीर्णयज्ञोपवीतत्यागमन्त्रः

समुद्रं गच्छ स्वाहेति मन्त्रेण सप्रणवव्याहृतिभिर्वा जीर्णयज्ञोपवीतत्यागः।

'समुद्रं गच्छ स्वाहा' इस मंत्र से या प्रणवसहित व्याहृतियों से पुराने यज्ञोपवीत का त्याग करे।

उपलक्षण का लक्षण है–'स्वबोधकत्वे सति स्वेतरबोधकत्वम्' अर्थात् अपना बोध कराते हुये अपने से भिन्न का भी जो बोध करावे।

'तस्यैको ग्रन्थिरिष्यते' में एक-शब्द नानात्व-ग्रन्थियों का निषेधक नहीं, अपि तु प्रवर-संख्या का उपलक्षण ही है अतः 'एको ग्रन्थि' का 'प्रवरसंख्याको ग्रन्थिः' यह अर्थ करना चाहिये। अर्थात् जिसके जितने प्रवर हैं, एक-शब्द प्रवरसंख्यानुसार उतनी ग्रन्थियों का बोधक है। जैसे भाष्यकारों ने 'तद्ग्रन्थयस्त्रयः कार्याः पंच वा सप्त वा पुनः' इस वचन से मेखला में प्रवरसंख्यानुसार ग्रन्थि बतलायी है वैसे यज्ञोपवीत में भी प्रवरसंख्यानुसार ग्रन्थि देनी चाहिये। आगे मेखला-विचार की सुधा-विवृति में उद्धृत गदाधरभाष्य देखें।

अथ यज्ञोपवीताभावे प्रायश्चित्तादि

यज्ञोपवीतं प्रमादाद् गतं चेत्तूष्णीं लौकिकं धृत्वा मनोज्योतिरिति अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यतां १ वायो व्रतपते० २ आदित्य व्रतपते० ३ व्रतानां व्रतपते व्र० ४ इत्यादिमन्त्रचतुष्टयेन चतस्र आज्याहुतीर्हुत्वा विधिवन्नूतनं धारयेत्।

यज्ञोपवीत प्रमाद से यदि नष्ट हो जाय तो मौन होकर लौकिक यज्ञोपवीत धारण करके 'मनो ज्योतिः' 'अग्ने व्रतपते०' 'आदित्य व्रतपते०' 'व्रतानां व्रतपते०' इत्यादि चार मन्त्रों से चार घृताहुतियों का होम कर विधिपूर्वक नया यज्ञोपवीत धारण करे।

अथवा 'यज्ञोपवीतनाशजन्यदोषनिरासार्थं प्रायश्चित्तं करिष्ये' इति संकल्प्य आचार्यवरणाग्निप्रतिष्ठाद्याज्यभागान्ते सवितारं गायत्र्या तिलैराज्येन चाष्टोत्तरं शतं सहस्रं वा जुहुयात्। नूतनं धृत्वाऽतिक्रान्तं संध्याद्याचरेदिति। यज्ञोपवीतहीनः क्षणं तिष्ठेच्चेच्छतगायत्रीजपः। यज्ञोपवीतं विना[1] भोजने विण्मूत्रकरणे वा गायत्र्यष्टसहस्रं जपः। वामस्कन्धात्कूर्परे मणिबन्धान्ते वा पतिते यथास्थानं धृत्वा त्रीन् षड् वा यथाक्रमं प्राणायामान्कृत्वा नवं धारयेत्।

अथवा 'यज्ञोपवीत-नाशजन्य-दोष हटाने के लिये प्रायश्चित्त करूँगा' ऐसा संकल्प करके आचार्य का वरण अग्निस्थापन आदि आज्यभागपर्यन्त कर्म करके गायत्रीमन्त्र से तिल और घी से एक सौ आठ या एक हजार बार सूर्य का होम करे। नया यज्ञोपवीत धारण करके व्यतीत सन्ध्या आदि करे। यज्ञोपवीतरहित क्षण भर रहे तो सौ बार गायत्री जप करे। यज्ञोपवीत के बिना भोजन करने पर आठ हजार गायत्री का जप करे। बायें कन्धे से नीचे मणिबन्ध तक यदि गिर जाय तो यज्ञोपवीत को यथास्थान धारण कर क्रमसे तीन या छ प्राणायाम करके नया उपवीत धारण करे।

कोपादिना स्वयं यज्ञोपवीतत्यागे पूर्ववल्लौकिकं धृत्वा प्रायश्चित्तान्ते नवं धारयेत्। ब्रह्मचारिण एकं यज्ञोपवीतं स्नातकस्य द्वे। [2]उत्तरीयाभावे तृतीयकम्।

क्रोध आदि से स्वयं यज्ञोपवीत का त्याग करे तो पूर्ववत् लौकिक यज्ञोपवीत धारण करके प्रायश्चित्त के अन्त में नया धारण करे। ब्रह्मचारी का एक और स्नातक का दो यज्ञोपवीत होता है। दुपट्टा न रहने पर तीन यज्ञोपवीत धारण करे।

जीवत्पितृकेण जीवज्ज्येष्ठभ्रातृकेण चोत्तरीयं तत्स्थाने तृतीयं यज्ञोपवीतं न धार्यम्। आयुष्कामस्य त्र्यधिकानि बहूनि यज्ञोपवीतानि।

अभ्यङ्गे चोदधिस्नाने मातापित्रोर्मृतेऽह्नि।
तैत्तिरीयाः कठाः कण्वाश्चरका वाजसनेयिनः॥
कण्ठादुतार्यं सूत्रं तु कुर्युर्वै क्षालनं द्विजाः।

अन्ययाजुषैर्बह्वृचैः सामगैश्च कण्ठादुत्तारणे तत्त्यक्त्वा नवं धार्यम्।

---

१. मरीचिः—'ब्रह्मसूत्रं विना भुङ्क्ते विण्मूत्रे कुरुतेऽथवा। गायत्र्यष्टसहस्रेण प्राणायामेन शुद्ध्यति॥' इति।

२. हेमाद्रिः—'यज्ञोपवीते द्वे धार्ये श्रौते स्मार्ते च कर्मणि। तृतीयमुत्तरीयार्थे वस्त्राभावे तदिष्यते॥' इति।

जिसके पिता जीते हों और जेठा भाई जीता हो वह उत्तरीय या उसके स्थान पर तीसरा यज्ञोपवीत न धारण करे। आयुष्य की कामना से तीन से अधिक यज्ञोपवीत धारण करे। तैलपूर्वक स्नान में, समुद्र-स्नान में, माता पिता के मृताह में, तैत्तिरीय, कठ, कण्व, चरक और वाजसनेयी शाखा वाले कण्ठ से उतार कर यज्ञोपवीत का क्षालन करें। यजुर्वेदी, बह्वृच और सामवेदी कण्ठ से यज्ञोपवीत उतारें तो उसका त्याग कर नया धारण करें।

अथ मेखलाविचारः

मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य [1]मेखला।
त्रिवृत्ता ग्रन्थिनैकेन त्रिभिः पञ्चभिरेव वा॥
मुञ्जाभावे तु कर्तव्या कुशाश्मन्तकबल्वजैः।

ब्राह्मण की मेखला मूंज की तिगुनी की हुई बराबर और चिकनी बनानी चाहिये। उसमें एक गांठ या तीन गांठ या पांच गांठ डाले। मूंज के अभाव में कुश, अश्मन्तक औ वल्व का बनावे।

अथ दण्डवेद्यादिसंपादनम्

ब्राह्मणस्य भवेद्दण्डः[2] पालाशः केशसंमितः।
सर्वेषां यज्ञियो वा स्यादूर्ध्वनासाग्रसंमितः॥

बटुहस्तेन चतुर्हस्ता हस्तोच्छ्रिता चतुरस्रा सोपानाङ्किता प्रागुदक्प्रवणा कदलीस्तम्भाद्यलंकृता [3]वेदिः संपाद्या। अथोपनयनान्तर्गतपदार्थेषु विशेष उच्यते—वासःपरिधानोत्तरं लौकिकमाचमनम्। यज्ञोपवीतधारणोत्तरं तु यथाविधि आचमनविधिर्वक्ष्यते। एवमाज्यपात्रादुत्तरभागे बटुमाचमय्य प्रणीतापश्चिमदेशरूपतीर्थेन

---

१. मिह्यते सिच्यते वीर्यादिकमनेनेति मेहनमानन्देन्द्रियं तस्योपरि नाभेरधो भागेयत् खं तस्य मालेत्यर्थ इति भाष्यम्। बौधायनगृह्ये—'अथैनं मौञ्जीं मेखलां त्रिः प्रदक्षिणं परिव्ययन् नाभिदेशे बध्नाति' 'त्रिर्मेखलां प्रदक्षिणं त्रिः परिवेष्टय ग्रन्थिरेकस्त्रयोऽपि वा पञ्च वेति।' रेणुकारिका—'त्रिवृता मेखला कार्या त्रिवारं स्यात्समावृता। तद्ग्रन्थयस्त्रयः कार्याः पञ्च वा सप्त वा पुनः॥' निर्णयामृते—'मेखला त्रिगुणीकृत्य कर्तव्या साम्प्रदायिकैः॥ मेखला सप्तहस्ता स्यादजिनं तु द्विहस्तकम्॥' इति।

आचार्य वटु के कटिप्रदेश में त्रिगुण-मेखला को प्रदक्षिण-क्रम से तीन बार वेष्टित करे और तृतीय वेष्टन में प्रवर-संख्या के अनुसार तीन पांच या सात ग्रन्थि दे। गदाधरभाष्ये—'अत्र प्रवरसंख्यया नियमः। त्र्यार्षेयस्य ग्रन्थित्रयं पञ्चार्षेयस्य पञ्च सप्तार्षेयस्य सप्तेति गर्गपद्धतौ। वृद्धाचारोऽप्येवमेव' इति। 'त्रिवृता' 'त्रिगुणीकृत्य' 'त्रिगुणां' इस कथन से नवगुण मेखला का निर्माण भ्रान्तिपूर्ण है। मेखला-मन्त्र का पाठ आचार्य का ही है। कारिकायाम्—'बध्नीयात्त्रिगुणां श्लक्ष्णामियं दुरुक्तमुच्चरन्। आचार्यस्यैव मन्त्रोऽयं न वटोरात्मनेपदात्॥' इति।

२. मनुः—'ब्राह्मणो बैल्वपालाशौ क्षत्रियो वाटखादिरौ। पैलवौदुम्बरौ वैश्यो दण्डानर्हन्ति धर्मतः॥' गौतम ने इसके अभाव में कहा—'यज्ञियो वा सर्वेषां मूर्धललाटनासाग्रप्रमाणः।' यज्ञियवृक्ष ये हैं—'अश्वत्थोदुम्बरौ बिल्वश्चन्दनः सरलस्तथा। शालश्च देवदारुश्च खदिरश्चेति याज्ञिकाः॥' इति।

३. संस्काररत्नमाला—'बटुहस्तमिता वेदिः' मण्डप का निर्माण तो आचार्य के हस्तमान से ही विहित है—'आचार्यहस्तमानेन मण्डपे निर्मिते शुभे। मध्ये वेदिः प्रकर्तव्या चतुरस्रा समन्ततः॥' इति।

प्रवेश्याचार्याग्न्योर्मध्येन नीत्वाचार्यदक्षिणत उपवेशयेत्। ततो [1]बर्हिरास्तरणादि स्रुवसंमार्गान्ते यज्ञोपवीतदानाद्याचमनान्तम्।

ब्राह्मण का दण्ड पलाश का सिर के बालों तक हो या सबका यज्ञिय-वृक्ष का ऊँचा नासाग्र प्रमाण का हो। बटु के हाथ से चार हाथ की ऊँची चौकोन सीढ़ी युक्त पूरब उत्तर की ओर ढालू और केले के खम्भे आदि से अलंकृत वेदी बनानी चाहिये। उपनयनान्तर्गत पदार्थों में विशेष कहते हैं। वस्त्र पहिनने के बाद लौकिक आचमन करे। यज्ञोपवीत धारण के बाद तो यथाविधि आचमन-विधि कहेंगे। एवं घृतपात्र से उत्तर भाग में बटु को आचमन कराके प्रणीता के पश्चिम-रूप तीर्थ से प्रवेश कराके आचार्य और अग्नि के मध्य से ले जाकर आचार्य के दक्षिण ओर बैठावे। तदनन्तर कुश का आस्तरण आदि स्रुव का सम्मार्जनपर्यन्त, यज्ञोपवीत का दान आदि आचमनान्त कृत्य करे।

ततः शिष्याञ्जलौ जलावक्षारणादि समिदाधानान्तं गायत्र्युपदेशाङ्गं बटोः शुचित्वसिद्धये अग्नये समिधमिति मन्त्र एकश्रुत्या प्रयोक्तव्यः। ततः परिदानाभिवादनान्ते आचारप्राप्तं गायत्रीपूजनं कृत्वाग्नेरुत्तरदेशे[2] गायत्र्युपदेशः कार्यः। अवक्षारणमप्युत्तरदेशे उक्तम्। प्राङ्मुख आचार्यः प्रत्यङ्मुखायोपविष्टाय बटवे गायत्रीमुपदिशेत्।

पश्चात् शिष्य की अञ्जली में गायत्री के उपदेश का अङ्ग जलावक्षारण आदि समिधाधान पर्यन्त बटु की पवित्रत्व सिद्धि के लिये 'अग्नये समिधं' इस मन्त्र का एकश्रुति से प्रयोग करे। उसके बाद परिदान और अभिवादन के आचार-प्राप्त गायत्रीपूजन करके अग्नि के उत्तरप्रदेश में गायत्री का उपदेश करे। जलका अवक्षारण भी उत्तरप्रदेश में कहा है। पूर्वाभिमुख आचार्य पश्चिमाभिमुख बैठे बटु को गायत्री का उपदेश करे।

अथोपसंग्रहणप्रकारः

उपसंग्रहणं नाम—अमुकप्रवरान्वितामुकगोत्रोमुकशर्माहं भो अभिवादये इत्युक्त्वा दक्षिणोत्तरकर्णौ वामदक्षिणपाणिभ्यां स्पृष्ट्वा दक्षिणहस्तेन [3]गुरोर्दक्षिणपादं

१. प्रयोगचिन्तामणौ—'वह्नितस्तु परित्यज्य द्वादशाङ्गुलतो बहिः। परिस्तरणदर्भास्तु षोडश द्वादशापि वा॥' अपि च—'ईशानकोणमारभ्य पुनरीशानकोणगा। कुशैस्त्रिभिस्त्रिभिः कुर्यात् सव्येनाग्नेः परिस्तृतिः॥' इति।

२. उत्तरदेशे = उत्तरस्यां दिशि। पारस्करगृह्यसूत्रे—'अथास्मै सावित्रीमन्वाहोत्तरतोऽग्नेः प्रत्यङ्मुखायोपविष्टायोपसन्नाय समीक्षमाणाय समीक्षिताय। दक्षिणतस्तिष्ठत आसीनाय वैके॥' इति। कारिका—'ॐ भूर्भुवः स्वः पूर्वां तु सावित्रीं वाचयेदथ। पादं पादं च सावित्र्याः स्वयमुक्त्वाऽथ वाचयेत्॥ ततस्त्वर्धर्चमर्द्धर्चं सर्वां तामथ वाचयेत्। एवं वक्तुमशक्तं तु तं यथाशक्ति वाचयेत्॥'इति।

३. लिङ्गपुराणे—'जनिता चोपनेता च यस्तु विद्यां प्रयच्छति। श्वशुरश्चाग्रजो भ्राता पञ्चैते गुरवः स्मृताः॥' 'मन्त्रोपदेष्टा वेदानां तथा धर्मनिबोधकः। सन्मार्गदायी बुद्धीनामाचार्यो व्रतबन्धने॥ पुराणसंहिता वक्ता नित्यं शास्त्रोपदेशकृत्॥' इत्यादयो गुरवो बोध्याः। हाथों को उत्तान करके अपने दक्षिण हाथ से गुरु के दक्षिण चरण और वाम हाथ से वाम चरण का स्पर्शपूर्वक अभिवादन करे, जैसा मनु ने कहा है—'व्यत्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्रहणं गुरोः। सव्येन सव्यः स्प्रष्टव्यो दक्षिणेन च दक्षिणः॥' 'वामेन वामं संस्पृश्य दक्षिणेन तु दक्षिणम्। हस्तेन हस्तकर्णाभ्यां गुरूणामभिवादनम्॥' इति।

वामेन वामं स्पृष्ट्वा शिरोऽवनमनमिति। एवं गुरुषु मातापित्रादिषु च अभिवादन-पूर्वकपादस्पर्शात्मकमुपसंग्रहणम्। वृद्धतरेषु त्वभिवादनमात्रम्। वृद्धेषु नमस्कारः।

उपसंग्रहण का प्रकार—अमुक प्रवरयुक्त अमुक गोत्र अमुक शर्मा मैं आप को प्रणाम करता हूँ, ऐसा कहके दाहिना और बायां कान बायें दाहिने हाथ से स्पर्श करके दाहिने हाथ से गुरु के दाहिना पैर और बायें से बायां पैर स्पर्श करके सिर का नवाना उपसंग्रहण कहलाता है। इसी प्रकार गुरु माता पिता आदि का भी अभिवादन-पूर्वक चरण-स्पर्श उपसंग्रहण कहलाता है। अत्यन्त वृद्धों का तो अभिवादन मात्र ही किया जाता है। वृद्धों को नमस्कार किया जाता है।

अथ अभिवादननिषेधः

अशुचिं वमन्तमभ्यक्तं स्नानं कुर्वन्तं जपादिरतं पुष्पजलभैक्षादिभारवाहं न[1] नमेत्। तन्नमने उपवासः। शूद्रनतौ त्रिरात्रम्। अन्त्यजे कृच्छ्रम्। देवतागुरुयतिन-मनाकरणे उपवासः।

अशुचि, वमन करते हुए, तैल-स्नान करते हुए, जपादि में लगे हुए और पुष्प-जल-भिक्षा आदि के भार को ढोते हुए को नमस्कार न करे। उसको प्रणाम करने पर उपवास करे। शूद्र को प्रणाम करने पर त्रिरात्र उपवास करे। अन्त्यज को प्रणाम करने पर कृच्छ्रव्रत करे। देवता, गुरु और यति को प्रणाम न करने पर उपवास करे।

अथ प्रत्यभिवादनम्

[2]तत्रान्त्यस्वरः प्लुतः कार्यः। तद्यथा—आयुष्मान् भव सौम्य देवदत्ता ३। एकारौकारान्ते नाम्नि हरा ३ इ शम्भा ३ उ इति संध्यक्षरविश्लेषेण पूर्वभागा-कारः प्लुत इति। अनुप्रवचनीयार्थभिक्षायां भिक्षां भवान्ददातु भिक्षां भवती ददात्विति वा [3]भवच्छब्दमध्यकभिक्षावाक्यप्रयोगः। अन्यभिक्षायामादावन्ते वा भवच्छब्द इति।

इसमें अन्त्य-स्वर प्लुत करना चाहिये। जैसे—'आयुष्मान् भव सौम्य देवदत्ता ३। एकार और औकार के अन्त में नाम के 'हरा ३ इ शम्भा ३ उ' इस प्रकार सन्धि के अक्षरों को अलग करने से पूर्वभाग का अकार प्लुत होता है। अनुप्रवचनीय के लिये भिक्षा में 'भिक्षां भवान् ददातु'। या 'भिक्षां भवती ददातु' इस प्रकार मध्य में भवत् शब्द युक्त भिक्षा वाक्य का प्रयोग करे। अन्य भिक्षा में आदि या अन्त में 'भवति' शब्द का प्रयोग करे।

---

१. आपस्तम्बः—'समित्पुष्पकुशाज्याम्बुमृदन्नाक्षतपाणिकम्। जपं होमं च कुर्वाणं नाभि-वादेत वै द्विजम्॥' इति।

२. तत्र=प्रत्यभिवादने, अभिवादक के प्रति आशीर्वचन में मनु ने कहा है—'आयुष्मान् भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने। अकारश्चास्य नाम्नोऽन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरः प्लुतः॥' भविष्यपुराणे—'ब्राह्मणः सर्ववर्णानां स्वस्ति कुर्यादिति स्मृतिः।' इति।

३. मनुः—'भवत्पूर्वं चरेद् भैक्षमुपनीतो द्विजोत्तमः। भवन्मध्यं तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदु-त्तरम्॥' अर्थात् ब्राह्मण ब्रह्मचारी—'भवति भिक्षां देहि' क्षत्रिय—'भिक्षां भवति देहि' और वैश्य—'भिक्षां देहि भवति' ऐसा कहकर भिक्षा की याचना करे।

अथ विनायकशान्तिविचारः

अथोपनयनविवाहादौ निर्विघ्नफलप्राप्त्यर्थमुपसर्गनिरासाय वा सपिण्डमरणादिनिमित्तकप्रतिकूलनिवृत्त्यर्थं वा विनायकशान्तिः कार्या। तत्र कालः—शुक्लपक्षचतुर्थीगुरुवारः पुष्यश्रवणोत्तरारोहिणीहस्ताश्विनीमृगनक्षत्राणि शस्तानि। उपनयनादौ तु प्रधानकालानुरोधेन यथासंभवकालो ग्राह्यः। तत्रामुककर्मणो निर्विघ्नफलसिद्ध्यर्थमिति वा उपसर्गनिवृत्त्यर्थमिति वाऽमुकसपिण्डमरणनिमित्तकाशुचित्वप्रातिकूल्यनिरासार्थमिति वा संकल्प ऊह्यः। अवशिष्टप्रयोगोऽन्यत्र ज्ञेयः।

उपनयन और विवाह आदि में निर्विघ्नफलकी प्राप्तिके लिये या उपसर्ग हटाने के लिये अथवा सपिण्ड-मरण आदि निमित्त के प्रतिकूल की निवृत्ति के लिये विनायक शान्ति करनी चाहिये। उसका समय शुक्लपक्ष की चतुर्थी, गुरुवार और पुष्य, श्रवण, उत्तरा, रोहिणी, हस्त, अश्विनी और मृगशिरा नक्षत्र प्रशस्त है। उपनयन आदि में तो प्रधान काल के अनुरोध से यथासंभव काल का ग्रहण है। उसमें अमुक कर्म के निर्विघ्न फल की सिद्धि के लिये ऐसा या उपसर्गों की निवृत्ति के लिये या अमुक सपिण्डमरण-निमित्तक-अशुचित्व-प्रातिकूल्य के हटाने के लिये, ऐसा संकल्प की कल्पना कर लेनी चाहिये। उपनयन का शेष प्रयोग अन्य ग्रन्थों से ज्ञातव्य है।

अथ ग्रहयज्ञविचारः

विवाहोपनयनादिष्वाभ्युदयकर्मस्वादौ ग्रहयज्ञं कुर्यात्। श्राद्धातिरिक्तेष्वनाभ्युदयिकेष्वपि शान्त्यादिकर्मसु ग्रहानुकूल्यकामो ग्रहयज्ञं कुर्यात्। अरिष्टनिरासार्थमुत्पातेषु शान्तिस्थानेष्वप्रधानोऽपि ग्रहमख उक्तः। प्रधानकर्मणः पूर्वमव्यवहिते व्यवहिते वा काले कुर्यात्। व्यवहितपक्षे सप्तदिनाधिकव्यवधानं न कार्यम्।

विवाह उपनयन आदि आभ्युदयिक कर्मों के आदि में ग्रहयज्ञ करे। श्राद्ध के अतिरिक्त आभ्युदयिक-भिन्न कर्मों में भी शान्ति आदि कर्मों में ग्रहों को अनुकूल करने की इच्छा से ग्रहयज्ञ करे। अरिष्ट के लिये, उत्पातों में, शान्ति के स्थानों में, अप्रधान भी ग्रहयज्ञ कहा है। प्रधान-कर्म के पहिले व्यवधानरहित या व्यवधानयुक्त काल में करे। व्यवहित-पक्ष में सात दिन से अधिक का व्यवधान न करे।

अथ ऋत्विक्संख्याविचारः

प्रतिग्रहं दशावरप्रधानाहुतिसंख्यायामेक एव ऋत्विक्। दशाधिकपञ्चाशत्पर्यन्तसंख्यायां चत्वार ऋत्विजः। तत ऊर्ध्वं शतावरहोमेऽष्टौ ऋत्विजो नवम आचार्यः। तत्राचार्य आचार्यकर्म कृत्वा आदित्याय जुहुयात्। अष्टभ्यः सोमादिभ्योऽष्टौ ऋत्विजो जुहुयुः। ऋत्विक्चतुष्टयपक्षे द्वाभ्यां ग्रहाभ्यामेकैको जुहुयात्, आचार्योऽर्काय। ताम्रादिमयीषु प्रतिमासु सर्वासु सौवर्णीषु वा फलेष्वक्षतपुञ्जेषु वा आदित्यादिपूजनम्।

प्रत्येक ग्रह की दस से कम प्रधानाहुति की संख्या में एक ही ऋत्विज् होना चाहिये। दस से अधिक पचास तक की संख्या में चार ऋत्विज्, इसके आगे सौ से कम के होम में आठ ऋत्विज्

और नवम आचार्य होता है। इसमें आचार्य, आचार्य-कर्म करके सूर्य के लिये होम करे। सोम आदि आठ के लिये आठ ऋत्विज् होम करे। चार ऋत्विज् के पक्ष में दोनों ग्रहों के लिये एक ऋत्विज् होम करे और आचार्य सूर्य के लिये। तामे आदि की प्रतिमा में या सोने की सभी प्रतिमाओं में या फलों में या अक्षत-पुंज पर सूर्यादि का पूजन करे।

अथ कुण्डस्थण्डिलनिर्णयः

होमसंख्यानुसारेण [1]कुण्डस्य [2]स्थण्डिलस्य वा ग्रहवेदेश्च हस्तादिमानम्। तत्र प्रधानाङ्गाहुतीनां पञ्चाशदवरसंख्यत्वे रत्निमितं कुण्डम्। शतावरत्वे अरत्निमि-

---

१. देवप्रतिष्ठा आदि वेदीप्रधान यागों में मण्डप के मध्य में मण्डप के नवांश से वेदी और वेदी के अग्निकोण या उत्तर में कुण्ड का निर्माण और महारुद्रादि होमप्रधान यागों में मण्डप के मध्य में वेदी का निर्माण करना चाहिये।

कुण्ड का खात, विस्तार के समान हो। कुण्ड का हस्तमान (दीर्घ विस्तार) होमानुसार मूल में अङ्कित है। कण्ठ को छोड़कर चतुर्विंशांश मेखलात्रय का निर्माण करे। अधोमेखला का उत्सेध विस्तार दो अंगुल उसके ऊपर (बीच) का तीन अंगुल और उसके ऊपर का चार अंगुल होना चाहिये। इस प्रकार इसके उत्सेध और विस्तार में नवांश सम्पन्न होंगे। यहाँ कुण्ड-निर्माण में कुण्डव्यास का चतुर्विंशांश और वेदीनिर्माण में हस्त का चतुर्विंशांश अंगुल का प्रमाण मान्य है। मेखला के विषय में कुण्डार्क में 'नन्दाङ्गत्र्युचवेदत्रिकरविततयः' ऐसा मतान्तर है।

योनि की रचना कुण्ड के पश्चिम भाग में भूमि से आरम्भ करे। वह पश्चिम मेखला के ऊपर मध्य भाग में लम्बाई में कुण्डविस्तार के आधी और चौड़ाई में कुण्डविस्तार के तृतीयांश पीपलपत्र की आकृतिवाली या गज के ओष्ठ सदृश हो। उसका अग्रभाग कुण्ड के मध्य में प्रविष्ट पश्चिम से उन्नत मेखला के ऊपर का भाग चतुर्विंशांश उत्सेध और दो मृत्पिण्डों से युक्त हो। उसमें मध्य मेखला में चारो ओर से वेणीरूप उपयमन कुशा के परिस्तरणार्थ छिद्र बनावे। भूमि में स्थूलता की अपेक्षा ऊपर के भाग की स्थूलता कुछ कम हो।

कुण्ड के मध्य में नाभि नीचे दो अंश से उच्च और चार अंश से विस्तृत बनावे। कुण्डार्क में मतान्तर से एक अंश से उच्च और दो अंश से विस्तृत बनाना लिखा है।

प्रधान वेदी एक हाथ ऊँची तीन वप्रसे युक्त और कुण्ड के समान विस्तृत हो। ग्रहादि-की अन्य वेदियां एक हाथ ऊँची, एक हाथ विस्तृत और तीन वप्रों से युक्त हों। प्रथम वप्र का उच्छ्राय और विस्तार दो अङ्गुल, द्वितीय तृतीय वप्र का उच्छ्राय तीन तीन अङ्गुल और विस्तार दो दो अङ्गुल का हो। कुण्ड और वेदी का अन्तर सवा हाथ और मतान्तर से तेरह अङ्गुल का हो।

सौन्दर्य के लिये पहले कुण्ड को चूना से पोतकर मध्य मेखला, योनि और नाभि को लाल रंग से तथा नीचे की मेखला को काला रंग से रंगे। इसी तरह सभी वेदियों को रक्तवर्णादि से रंग कर उन्हें सुन्दर बनावे।

२. सूतसंहिता में स्थण्डिल का निर्माण प्रकार—'स्थण्डिले मेखलाः कार्याः कुण्डोक्तस्थण्डिलाकृतिः। योनिस्तत्र प्रकर्तव्या कुण्डवत्तत्र वेदिभिः॥ समेखलं स्थण्डिलं तु प्रशस्ते होमकर्मणि। कण्ठं तु वर्जयेत्तत्र खाते कण्ठः प्रकीर्तितः॥' तन्त्रान्तरे—'मृदा सुवर्णया वापि सूक्ष्मवालुकयाऽपि वा। अङ्गुलोच्चं तथा वेदाङ्गुलोच्चं स्थण्डिलं विदुः॥ चतुष्कोणमुदक्प्राचीप्लवमल्पाहुतौ शुभम्। पंचाङ्गुलोच्चमथवा वस्वङ्गुलसमुन्नतम्॥' इति। विशेष जानकारी के लिये कुण्डार्क-कुण्डरत्नावली-प्रभृति ग्रन्थों को देखें।

तम्। सहस्रावरत्वे हस्तमितम्। अयुतादिहोमे हस्तद्वयम्। लक्षहोमे चतुर्हस्तम्। तत्र कृतमुष्टिः करो रत्निः। मुक्तकनिष्ठिकः करः अरत्निः। चतुर्विंशत्यङ्गुलो हस्तः। यवोनचतुर्स्त्रिंशदङ्गुलानि हस्तद्वयम्। अष्टचत्वारिंशदङ्गुलानि हस्तचतुष्टयम्। कुण्डे मेखलायोनिनाभिखातादिमानं ग्रन्थान्तरेभ्यो ज्ञेयम्। इदं कुण्डादिमानं सर्वत्र ज्ञेयम्।

होम की संख्या के अनुसार कुण्ड या स्थण्डिल का और ग्रहवेदी का हस्त आदि मान होता है। उसमें प्रधान की अंगाहुतियों का पचास से कम संख्या होने पर रत्निमित और सौ से कम होने पर अरत्निमित कुण्ड होता है। हजार से कम में हस्त-मित और दस हजार आदि के होम में दो हाथ का और लक्ष होम में चार हाथ का कुण्ड होता है। उसमें मुट्ठी बांधे हुए हाथ को 'रत्नि' और खुली कनिष्ठिका के हाथ को 'अरत्नि' कहते हैं। हाथ चौबीस अंगुली का होता है। जौ भर कम चौतीस अंगुली के दो हाथ होते हैं। अड़तालिस अंगुलियों के चार हाथ होते हैं। कुण्ड में मेखला, योनि, नाभि और खात आदि का मान दूसरे ग्रन्थों से जानना चाहिये। यह कुण्ड आदि का मान सर्वत्र ज्ञातव्य है।

अथ होमद्रव्याणि

समिच्चर्वाज्यं द्रव्यम्।

अर्कः पलाशः खदिरश्चापामार्गोऽथ पिप्पलः।
औदुम्बरः शमी दूर्वा कुशोऽर्कादेः क्रमात्समित्[१]॥

केचित्तिलानप्याहुः। अर्कादिप्रधानहोमसंख्यादशांशेनाधिदेवताप्रत्यधिदेवतानां होमः। अधिदेवताद्यर्धसंख्यया क्रतुसंरक्षकक्रतुसाद्गुण्यदेवतानां शान्त्यङ्गभूते ग्रहयज्ञे बलिदानं कुर्वन्ति। अन्यत्र ग्रहमखे बलिदानं न कुर्वन्ति। प्रधानभूताया एकाहुतेरेकविप्रभोजनं श्रेष्ठम्। शताहुतेरेकविप्रभोजनं मध्यमम्। सहस्राहुतेरेकविप्रभोजनं जघन्यम्। सुविस्तरप्रयोगादिकमन्यत्र। इति ग्रहयज्ञः।

समिधा, चरु और घृत, द्रव्य कहलाता है। सूर्य आदिकी समिधा क्रम से ये हैं—अर्क, पलाश, खदिर, अपामार्ग, पीपल, गूलर, शमी, दूब और कुश। कुछ लोग तिलों को भी कहते हैं। सूर्यादि प्रधान होम की संख्या के दशांश से अधिदेवता प्रत्यधिदेवता का होम होता है। शान्ति का अङ्गभूत ग्रहयज्ञ में अधिदेवता की आधी संख्या से यज्ञ-संरक्षक और यज्ञ-साद्गुण्य-देवताओं बलिदान करते हैं। अन्यत्र ग्रहयज्ञ में बलिदान नहीं करते। प्रधानभूत एक आहुति का एक ब्राह्मणभोजन श्रेष्ठ है। सौ आहुति का एक ब्राह्मणभोजन मध्यम है। हजार आहुति का एक ब्राह्मणभोजन अधम है। इससे विस्तृत प्रयोग दूसरे ग्रन्थों में है। ग्रहयज्ञ समाप्त।

अथ बृहस्पतिशान्तिप्रयोगः

कुमारस्योपनयनकाले कन्याया विवाहे वा बृहस्पत्यानुकूल्याभावे शौन-

१. अन्यत्र—'समिदर्कमयी भानोः पालाशी शशिनस्तथा। खादिरी भूमिपुत्रस्य अपामार्गी बुधस्य च॥ शमीजा तु शनेः प्रोक्ता राहोर्दूर्वामयी तथा।' सर्वेषामभावे पालाशीर्वा। होम में ईश्वर-संहितोक्त तिल और आज्य का महत्त्व—'सर्वथा होमकर्मार्थं तिलमाज्यं न लोपयेत्। तिलाज्ययोरभावे तु हवनं स्यान्निरर्थकम्॥' इति।

काद्युक्ता शान्तिः कार्या। 'अस्य कुमारस्योपनयने अस्याः कन्यकाया विवाहे वा बृहस्पत्यानुकूल्यसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं बृहस्पतिशान्तिं करिष्ये' इति संकल्प्याचार्यं वृणुयात्। स्थण्डिले ईशान्यां यथाविधि स्थापिते श्वेतकलशे पञ्चगव्यकुशोदकविष्णुक्रान्ताशतावरीप्रमुखौषधिप्रक्षेपपूर्णपात्रनिधानान्ते हरिताक्षतनिर्मितदीर्घचतुरस्रपीठे हैमीं गुरुप्रतिमां प्रतिष्ठाप्य स्थण्डिलेऽग्निस्थापनादि।

कुमार के उपनयन या कन्या के विवाह काल में बृहस्पति के अनुकूल न रहने पर शौनक आदि की कही हुई शान्ति आदि करनी चाहिये। 'इस कुमार के उपनयन में अथवा इस कन्या के विवाह में बृहस्पति की अनुकूलता-सिद्धि द्वारा श्रीपरमेश्वर की प्रसन्नता के लिये बृहस्पति की शान्ति करूँगा' ऐसा संकल्प कर आचार्य का वरण करे। स्थण्डिल में ईशान दिशा में यथाविधि स्थापित श्वेत कलश में पंचगव्य, कुशोदक, विष्णुक्रान्ता और शतावरी, प्रमुख औषधि का प्रक्षेप करके पूर्णपात्र रखने के अन्त में हरित अक्षत से बनाये बड़े चौकोने आसन पर सोने की बृहस्पति की प्रतिमा को स्थापित कर स्थण्डिल में अग्नि-स्थापनादि करे।

अन्वाधाने बृहस्पतिमश्वत्थसमिदाज्यसर्पिर्मिश्रपायसैः साज्येन मिश्रितयवव्रीहितिलेन[1] च प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशताहुतिभिः शेषेण स्विष्टकृतमित्यादि। आज्यभागान्ते प्रतिमायां षोडशोपचारैर्गुरुपूजा। तत्र पीतवस्त्रयुग्मपीतयज्ञोपवीतपीतचन्दनपीताक्षतपीतपुष्पघृतदीपदध्योदननैवेद्यार्पणान्ते माणिक्यं सुवर्णं वा दक्षिणां दत्त्वा ग्रहमखोक्तरीत्या कुम्भानुमन्त्रणान्ते बृहस्पतिमन्त्रेण दधिमध्वक्तसमिदाज्यगृहसिद्धपायसमिश्रितयवाद्यैर्यथान्वाधानं होमः। होमशेषं समाप्य गन्धादिभिर्बृहस्पतिं संपूज्य पीतगन्धाक्षतपुष्पयुतताम्रपात्रस्थजलेनार्घ्यं[2] दद्यात्। तत्र मन्त्रः—

अन्वाधान में पीपल की समिधा घृत और घी मिले हुए पायस से घृतमिश्रित जव व्रीहि और तिल से प्रत्येक द्रव्य की एक सौ आठ आहुतियों से बृहस्पति का होम करे शेष से स्विष्टकृत् इत्यादि। आज्यभाग के अन्त में प्रतिमा में सोलहो उपचार से बृहस्पति की पूजा करे। उसमें पीला जोड़ा वस्त्र, पीत यज्ञोपवीत, पीत चन्दन, पीत अक्षत, पीत पुष्प, घी का दिया, दही भात और नैवेद्य अर्पण करने के बाद माणिक्य या सुवर्ण की यज्ञदक्षिणा देकर ग्रह में कही रीति से कुम्भ के अनुमन्त्रण के बाद बृहस्पति के मन्त्र से दही मधु में भिगोई समिधा और घृत तथा घर के बने पायस-मिश्रित जव आदि से अन्वाधान होम करे। होम शेष को समाप्त कर गन्ध आदि से बृहस्पति की पूजा करके पीला गन्ध, अक्षत-पुष्प-युक्त-तामे के पात्र में स्थित जल से अर्घ्य दे। उसके मन्त्र का यह आशय है—

गम्भीरदृढरूपाङ्ग देवेज्य सुमते प्रभो।
नमस्ते वाक्पते शान्त गृहाणार्घ्यं नमोस्तु ते॥ प्रार्थयेत्—

---

१. यवादि का मान—'यवार्धं तण्डुलाः प्रोक्तास्तण्डुलार्धं तिलाः स्मृताः। तिलार्धं शर्कराः प्रोक्ता आज्यं भागचतुष्टयम्॥' आनन्दरामायण में मतान्तर—'तिलार्धं तण्डुला देयास्तण्डुलार्धं यवास्तथा। यवार्धं शर्कराः प्रोक्ताः सर्वार्धं च घृतं स्मृतम्॥' इति।

२. अर्घ में प्रक्षेप की वस्तु—'आपः क्षीरं कुशाग्राणि दधिदूर्वाऽक्षतास्तथा। फलं सिद्धार्थकश्चैव अर्घोऽष्टाङ्गः प्रकीर्तितः॥' 'अर्घो मूर्ध्नि प्रदातव्यः' इस वचन से अर्घ शिर पर ही देना चाहिये।

भक्त्या यत्ते सुराचार्य होमपूजादिसत्कृतम् ।
तत्त्वं गृहाण शान्त्यर्थं बृहस्पते नमो नमः ॥
जीवो बृहस्पतिः सूरिराचार्यो गुरुरङ्गिराः ।
वाचस्पतिर्देवमन्त्री शुभं कुर्यात्सदा मम ॥ इति ।

विसर्जनप्रतिमादानान्ते कुमारादियुतयजमानाभिषेकः । तत्र मन्त्राः— आपोहिष्ठेति तिस्रः ३ । तत्त्वायामि० १ । स्वादिष्ठया० ४ । समुद्रज्येष्ठाः० ४ । इदमापः प्रवह० १ । तामग्निवर्णां० १ । या ओषधीः० १ । अश्वावतीर्गोमतीर्न० १ यद्देवा देवहेडनमित्याद्याः कूश्माण्डमन्त्राः पुनर्मनः पुनरायुरित्यन्तास्तैत्तिरीयशाखायां प्रसिद्धाः कौस्तुभादौ लिखिता एतैरभिषिच्य विप्रान्भोजयेदिति । इति बृहस्पतिशान्तिः ।

हे प्रभो ! हे सुबुद्धे ! गंभीर और दृढ़-अंग वाले हे देवेज्य ! हे बृहस्पते ! आप को नमस्कार है । हे शान्त ! हमारे अर्घ्य को ग्रहण करें, आपको नमस्कार है । प्रार्थना करे—हे सुराचार्य ! भक्तिपूर्वक मैंने जो आप का होम पूजा आदि से सत्कार किया है उसे आप शान्ति के लिये ग्रहण करें, आप को नमस्कार है । जीव, बृहस्पति, सूरि, आचार्य, गुरु अंगिरा, वाचस्पति और देवमन्त्री मेरा सदा शुभ करें । विसर्जन और प्रतिमादान के बाद कुमार आदि से युक्त यजमान का अभिषेक करे । उसमें मन्त्र ये हैं—'आपोहिष्ठा' ये तीन 'तत्वायामि१' 'स्वादिष्ठया'०४ 'समुद्रज्येष्ठा'०४ 'इदमापः प्रवह०१' 'तामग्निवर्णां'०१ 'या ओषधी०१' 'अश्वावतीर्गोमतीर्न०१' 'यद्देवा देवहेडनं' इत्यादि कूष्माण्ड-मन्त्र 'पुनर्मनः पुनरायुः' इतने तैत्तिरीय शाखा में प्रसिद्ध और कौस्तुभ आदि में लिखित इन मन्त्रों से अभिषेक करके ब्राह्मणों को भोजन करावे । बृहस्पतिशान्ति समाप्त ।

अथोपनयनादौ संकल्पाः

तत्रोपनयनात्पूर्वेद्युराचार्यो 'ममोपनेतृत्वयोग्यतासिद्ध्यर्थं कृच्छ्रत्रयं तत्प्रत्याम्नायगोनिष्क्रयीभूतयथाशक्तिरजतद्रव्यदानेनाऽहमाचरिष्ये, तथा द्वादशाधिकसहस्रगायत्रीजपमुपनेतृत्वयोग्यतासिद्ध्यर्थं करिष्ये' इति संकल्पयेत् ।

इसमें उपनयन के पूर्व दिन आचार्य 'मेरे उपनेतृत्व की योग्यता-सिद्धि के लिये तीन कृच्छ्र या उसके बदले में गोनिष्क्रयीभूत यथाशक्ति रजत-द्रव्य के दान से करूँगा और एक हजार बारह गायत्री जप उपनयन की योग्यता-सिद्धि के लिये करूँगा' ऐसा संकल्प करे ।

अथ संस्कारलोपे प्रायश्चित्तम्

यदि पूर्वसंस्कारा अतीतास्तदा 'अस्य कुमारस्य पुंसवनादीनामथवा जातकर्मादीनां चौलान्तानां संस्काराणां कालातिपत्तिजनितप्रत्यवायपरिहारद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं प्रतिसंस्कारमेकैकां ॐ भूर्भुवः स्वःस्वाहेति समस्तव्याहृत्याज्याहुतिं होष्यामि' इति संकल्प्याग्निस्थापनेध्माधानादिपाकयज्ञतन्त्रसहिता वह्निस्थापनाज्यसंस्कारपात्रसंमार्गमात्रसहिता वाऽतीतसंस्कारसमसंख्यया समस्तव्याहृत्याज्याहुतीर्जुहुयात् ।

यदि इसके पहिले के संस्कार बीत गये हों तब 'इस कुमार का पुंसवन आदि का अथवा जातकर्म आदि चौलपर्यन्त संस्कारों का कालातिपत्ति से उत्पन्न पाप का परिहारपूर्वक भगवान्

की प्रसन्नता के लिये प्रत्येक संस्कार के लिये एक एक घृताहुति 'ॐभूर्भुवः स्वः स्वाहा' इस समस्त व्याहृति से करूँगा' ऐसा संकल्प कर अग्निस्थापन समिदाधान आदि पाकयज्ञ तन्त्रसहित अग्निस्थापन घृतसंस्कार पात्रसंमार्जनमात्र सहित या बीते हुए संस्कार के समान संख्या से समस्त व्याहृतियों से घृत का होम करे।

ततः 'अस्य कुमारस्य पुंसवनानवलोभनसीमन्तोन्नयनजातकर्मनामकर्मसूर्यावलोकननिष्क्रमणोपवेशनाऽन्नप्राशनचौलसंस्काराणां लोपनिमित्तप्रत्यवायपरिहारार्थं प्रतिसंस्कारं 'पादकृच्छ्रं प्रायश्चित्तं चौलस्यार्धकृच्छ्रं, बुद्धिपूर्वकलोपे प्रतिसंस्कारमर्द्धकृच्छ्रं चूडायाः कृच्छ्रं तत्प्रत्याम्नायगोनिष्क्रयीभूतयथाशक्तिरजतद्रव्यदानेनाहमाचरिष्ये।' चौलस्योपनीत्या सह करणस्य कुलधर्मप्राप्तत्वे कालातिपत्तिहोमं चौललोपप्रायश्चित्तं च न कार्यम्। केचित्संस्कारलोपप्रायश्चित्तं बटुना कारयन्ति। ततो बटुः 'मम कामचारकामवादकामभक्षादिदोषपरिहारद्वारोपनेयत्वयोग्यतासिद्ध्यर्थं कृच्छ्रत्रयप्रायश्चित्तं तत्प्रत्याम्नायगोनिष्क्रयीभूतयथाशक्तिरजतदानद्वारा आचरिष्ये' इति संकल्पयेत्।

इसके बाद 'इस कुमार के पुंसवन, अनवलोभन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकर्म, सूर्यावलोकन, निष्क्रमण, उपवेशन, अन्नप्राशन और चौल संस्कारों का लोप-निमित्त-प्रत्यवाय-परिहार के लिये, प्रत्येक संस्कार का पादकृच्छ्र प्रायश्चित चौल का अर्धकृच्छ्र, बुद्धिपूर्वक लोप होने पर प्रत्येक संस्कार का अर्धकृच्छ्र, चौल का कृच्छ्र, उसके बदले में गोनिष्क्रयीभूत यथाशक्ति रजतद्रव्य के दान से करूँगा।' जनेऊ के साथ चूड़ाकर्म करना कुलधर्म हो तो कालातिपत्ति होम और चौललोप का प्रायश्चित्त न करे। कुछ लोग संस्कारलोप का प्रायश्चित्त बटु से कराते हैं। तब बटु— 'मेरे कामचार कामबाद और कामभक्षणादि दोष के परिहारद्वारा उपनेयत्व की योग्यता-सिद्धि के लिये तीन कृच्छ्र प्रायश्चित्त उसके बदले में गोनिष्क्रयीभूत यथाशक्ति रजतदान के द्वारा करूँगा' ऐसा संकल्प करे।

निष्कं निष्कार्धं निष्कपादं निष्कपादार्धं वा रजतं [2]गोमूल्यं देयं, न तु न्यूनम्। अष्टगुञ्जमाषरीत्या चत्वारिंशन्माषो निष्क इत्युक्तम्। ततः—

प्रायश्चित्ते कृते पश्चादतीतमपि कर्म वै।
कार्यमित्येक आचार्या नेत्यन्ये तु विपश्चितः॥

इति वचनाज्जातकर्मादिसंस्काराः कार्या न कार्या इति [3]पक्षद्वयम्। तत्र

---

१. शौनकः—'आरभ्याधानमाचौलात्कालेऽतीते तु कर्मणाम्। व्याहृत्याग्निं तु संस्कृत्य हुत्वा कर्म यथाक्रमम्॥ एतेष्वेकैकलोपे तु पादकृच्छ्रं समाचरेत्॥ चूडायामर्धकृच्छ्रं स्यादापदि त्वेवमीरितम्। अनापदि तु सर्वत्र द्विगुणं द्विगुणं चरेत्॥' कृच्छ्र का प्रत्याम्नाय—'कृच्छ्रो देव्ययुतं चैव प्राणायामशतद्वयम्।' इत्यादि जानना चाहिये।

२. स्मृतिः—'धेनुः पञ्चभिराढ्यानां मध्यानां त्रिपुराणिका। कार्षापणैकमूल्या हि दरिद्राणां प्रकीर्तिता॥ इति।

३. कात्यायनः—'लुप्ते कर्मणि सर्वत्र प्रायश्चित्तं विधीयते। प्रायश्चित्ते कृते पश्चाल्लुप्तं कर्म समाचरेत्॥' कारिका—'प्रायश्चित्ते कृतेऽतीते लुप्तं कर्म कृताकृतम्॥' इति।

प्रायश्चित्तेन प्रत्यवायपरिहारेऽपि संस्कारजन्यापूर्वोत्पत्त्यर्थं संस्कारानुष्ठानपक्षे संकल्पः ।

एक निष्क, आधा निष्क, चौथाई निष्क या चौथाई निष्क के आधा रजत का गोमूल्य देना चाहिये, न कि कम । आठ गुंजा का एक माशा होता है इस रीति से चालिस माशे का एक निष्क होता है, यह कह चुके हैं । एक आचार्य का मत है कि प्रायश्चित्त करने के पश्चात् बीते हुए कर्म को भी करे, अन्य विद्वान् कहते हैं नहीं । इस आशय के वचन से जातकर्म आदि संस्कार करे या नहीं करे ये दो पक्ष हैं । उसमें प्रायश्चित्त से प्रत्यवाय का परिहार होने पर भी संस्कार करने से अपूर्व की उत्पत्ति के लिये संस्कार करने के पक्ष में यह संकल्प है —

पत्न्या कुमारेण च सहोपविश्य देशकालौ संकीर्त्य 'अस्य कुमारस्य गर्भाम्बुपानजनितदोषनिबर्हणायुर्मेधाभिवृद्धिबीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थम् अतिक्रान्तं जातकर्म तथा बीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणायुरभिवृद्धिव्यवहारसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं नामकर्म आयुरभिवृद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं सूर्यावलोकनम् आयुःश्रीवृद्धिबीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणद्वारा श्रीपर० निष्क्रमणम् आयुरभिवृद्धिद्वारा श्रीपर० उपवेशनं मातृगर्भमलप्राशनशुद्ध्यन्नाद्यब्रह्मवर्चसतेजइन्द्रियायुरभिवृद्धिबीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणद्वारा श्रीपरमे० अन्नप्राशनं चाद्य करिष्ये,

पत्नी और कुमार के साथ बैठ देश काल को कह कर 'कुमार का गर्भ के जलपान-जन्य-दोष हटाने के लिये और आयु मेधा के अभिवृद्ध्यर्थ तथा बीजगर्भ-जनित-पाप-निवृत्तिपूर्वक श्रीपरमेश्वर की प्रसन्नता के लिये बीते हुये जातकर्म को तथा बीजगर्भ-जात-पाप-निवृत्त्यर्थ और आयुष्य की अभिवृद्धि व्यवहार-सिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं नामकर्म-आयु-अभिवृद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वर की प्रसन्नता के लिये सूर्यावलोकन आयु और श्रीवृद्धि एवं बीजगर्भ-उत्पन्न-पाप-निबर्हणद्वारा श्रीपरमेश्वर के प्रीत्यर्थ निष्क्रमण तथा आयुवृद्धिद्वारा भगवत्प्रीत्यर्थ उपवेशन माता के गर्भ में मलप्राशन की शुद्धि, अन्नाद्य ब्रह्मवर्चस तेज, इन्द्रिय और आयु को अभिवृद्धि एवं बीजगर्भ-जन्य-पाप के निबर्हणद्वारा भगवत्प्रीत्यर्थ अन्नप्राशन आज करूँगा,

बीजगर्भसमुद्भवैनोनिबर्हणबलायुर्वर्चोभिवृद्धिद्वारा श्रीपर० चूडाकर्म द्विजत्वसिद्ध्या वेदाध्ययनाधिकारार्थम् उपनयनं च श्वः करिष्ये, जातादिसर्वसंस्काराङ्गत्वेन पुण्याहवाचनं मातृकापूजनं नान्दीश्राद्धं करिष्ये, उपनयनाङ्गत्वेन मण्डपदेवतास्थापनं कुलदेवतास्थापनं च करिष्ये ।' इति स्वस्वगृह्यग्रन्थानुसारेण संकल्प्य नान्दीश्राद्धान्तं 'तन्त्रेण[1] कृत्वा मण्डपदेवतास्थापनादिकं बटुपितृभ्यां सुहृत्कृतवस्त्रदानान्तं कृत्वाऽन्नप्राशनान्ताः संस्कारा यथागृह्यं पूर्वदिने कार्याः । चौलोपनयने परदिने कार्ये ।

बीजगर्भ-जन्य-पाप-निबर्हण-पूर्वक आयु और तेज को अभिवृद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थ चूड़ाकर्म और द्विजत्व सिद्धि से वेदाध्ययन के अधिकार के लिये कल उपनयन करूँगा, जात आदि

१. 'कर्मणां युगपद्भावस्तन्त्रम्' अर्थात् अनेक कर्मों के एक समय में एक साथ अनुष्ठान करना तन्त्र कहलाता है ।

सम्पूर्ण संस्कार का अंग होने से पुण्याहवाचन, मातृकापूजन और नान्दीश्राद्ध करूँगा, जातकर्मादि सम्पूर्ण संस्कार का अङ्ग होने से पुण्याहवाचन, मातृकापूजन और नान्दीश्राद्ध करूँगा उपनयनाङ्गत्वेन मण्डपदेवता-स्थापन और कुलदेवता का स्थापना भी करूँगा।' अपने गृह्य-ग्रन्थों के अनुसार संकल्प करके नान्दीश्राद्धपर्यन्त तन्त्र से करके मण्डपदेवता-स्थापनादि बटु के माता पिता और मित्र वस्त्रदान करके अन्त में अन्नप्राशनपर्यन्त संस्कार अपने गृह्य के अनुसार पहले दिन करे। चौल और उपनयन दोनों दूसरे दिन करे।

सर्वेषां सद्यःकरणे पूर्वोक्तसर्वसंकल्पवाक्यान्ते 'उपनयनं चाद्य करिष्ये' इति संकल्पः। संस्काराणामकरणपक्षे चूडाकर्मोपनयने संकल्प्य 'उभयाङ्गत्वेन पुण्याहवाचनं नान्दीश्राद्धम् उपनयनाङ्गत्वेन मण्डपदेवतास्थापनं च करिष्ये' इति संकल्पः। नान्दीश्राद्धान्ते पूर्वपूजितमातृकासहितमण्डपदेवतास्थापनम्। ततः पूर्वोक्तरीत्या वेदिनिर्माणम्। इति पूर्वदिनकृत्यम्।

सब संस्कारों को सद्यः करने के पक्ष में पहिले कहे हुए सब संकल्पों के वाक्य के अन्त में 'उपनयन आज करूँगा' ऐसा संकल्प है। संस्कारों के न करने के पक्ष में चूड़ाकर्म और उपनयन में संकल्प कर 'दोनों के अंगभूत पुण्याहवाचन, नान्दीश्राद्ध, उपनयनांग-मण्डपदेवता-स्थापन और कुलदेवता-स्थापन करूँगा' ऐसा संकल्प करे। नान्दीश्राद्ध के अन्त में पूर्व में पूजित मातृकासहित मण्डपदेवता का स्थापन करे। तदनन्तर पहिले कही हुई रीति से वेदी बनावे। पूर्वदिनकृत्य समाप्त।

अथ उपनयनदिने कृत्यम्

ततः परदिनेऽतिक्रान्तं चौलं कृत्वा पूर्वं जातचौलं त्वभ्यङ्गस्नानेन स्नापयित्वा मात्रा सह भोजयेत्। तदा ब्रह्मचारिभ्यो भोजनं देयमित्याचारः। ततो देशकालौ संकीर्त्य 'अस्य कुमारस्य द्विजत्वसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं गायत्र्युपदेशं कर्तुं तत्प्राच्याङ्गभूतं वापनादि करिष्ये' इति संकल्प्य वापनादि कुर्यात्। मुख्यशिखाऽन्यशिखानां चौले धृतानामत्र वापनम्।

तदनन्तर दूसरे दिन नहीं किये हुए चौल को करके पहिले जिसका चौल हो गया है उसको तो अभ्यंग-स्नान से नहलाकर माता के साथ भोजन करावे। उस समय ब्रह्मचारियों को भोजन देने का आचार है। इसके पश्चात् देशकाल को कहकर 'इस कुमार की द्विजत्व-सिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वर प्रीत्यर्थ गायत्री उपदेश करने के लिये उसके पहिले के अंगभूत वपन आदि करूँगा' ऐसा संकल्प कर मुंडन आदि करे। चूड़ाकर्म में रखी गई मुख्य शिखा से अन्य शिखा का यहां वापन करे।

ततः स्नातमहतवस्त्रं[1] बद्धशिखं कृतमङ्गलतिलकं बटुं कुर्युः। मौहूर्तिकं संपूज्य तदुक्ते सुमुहूर्ते आचार्यो वेद्यां प्राङ्मुख उपविष्टोऽन्तःपटमपसार्य[2] बटुमुखमीक्षेत कृतनमस्कारं तं स्वाङ्के कुर्वीत। ततो विप्रा यथाचारं मन्त्रैरुभयोः

---

१. अहत-वस्त्र का कश्यपोक्त लक्षण है—'अहतं यन्त्रनिर्मुक्तं वासः प्रोक्तं स्वयम्भुवा। मांगल्येषु प्रशस्तं तत् तावत्कालं न सर्वदा॥' अन्यत्र—'ईषद्धौतं नवं श्वेतं सदशं यन्न धारितम्। अहतं तद्विजानीयात्सर्वकर्मसु पावनम्॥' ईषद्धौतमित्यत्र सकृद्धौतमिति पाठान्तरम्।

२. अन्यत्र तु—'उपदेशे तु गायत्र्या वाससाऽऽच्छादयेद् बटुम्।' अर्थात् गायत्री-उपदेश के समय में वस्त्र से बटुको ढांक दे।

शिरस्यक्षतान् क्षिपेयुः । एवं यथागृह्यमुपनयनप्रयोगं ज्ञात्वानुष्ठेयम् । सर्वत्र बटुना गायत्र्यादिमन्त्रान्वाचयन् संधिकृतं वर्णविकारं नान्यथा कुर्यात् । प्रयोगशेषं समाप्य द्वे शते शतं यथाशक्ति वा ब्राह्मणभोजनं संकल्प्य विप्रेभ्यो भूयसीं दक्षिणां दद्यात् ।

तदनन्तर बटु का स्नान, अहत वस्त्र का धारण, शिखाबन्धन एवं मंगलतिलक करे । ज्योतिषी की पूजा कर उसके कहे सुन्दर मुहूर्त्त में आचार्य पूर्वाभिमुख वेदी पर बैठे । अन्तःपट को हटाकर बटु के मुख को देखे । बटुद्वारा नमस्कार करने पर बटु को अपने गोदी में कर ले । तदनन्तर ब्राह्मण लोग आचारानुसार मन्त्रों से दोनों के सिर पर अक्षत छिड़के एवं गृह्य के अनुसार जानकर उपनयन प्रयोग को करे । सब जगह बटु के द्वारा गायत्री आदि मन्त्रों को कहलाते हुए सन्धिकृत वर्णविकार को अन्यथा न करे । शेष प्रयोग को समाप्त करके दो सौ या एक सौ यथाशक्ति ब्राह्मणभोजन का संकल्प कर ब्राह्मणों को भूयसीदक्षिणा दे ।

ततो ब्रह्मचारी नूतनभिक्षाभाजने मातरं मातृष्वस्रादिकां वा [1]'भिक्षां भवती ददात्विति अनुप्रवचनीयार्थं तण्डुलान्याचेत । पितरं भिक्षां भवान् ददात्विति याचेत । भैक्ष्यमाचार्याय निवेद्य मध्याह्नसंध्यामुपास्य गुरुसन्निधावहःशेषं नयेत् । तद्दिने मध्याह्नसंध्या विकल्पितेत्यन्ये । ब्रह्मयज्ञस्तु द्वितीयदिनमारभ्य [2]गायत्र्या कार्यः ।

इसके बाद ब्रह्मचारी नये भिक्षा-पात्र में माता या मौसी आदि से 'आप भिक्षा दें' ऐसा अनुप्रवचनीय के लिये तण्डुलों को मांगे । पिता से 'आप भिक्षा दें' ऐसी याचना करे । आचार्य को मांगी गई भिक्षा देकर मध्याह्न का सन्ध्योपासन करके गुरु की सन्निधि में शेष दिन बितावे । उस दिन मध्याह्न सन्ध्या विकल्पित है, ऐसा अन्य कहते हैं । ब्रह्मयज्ञ तो दूसरे दिन से गायत्री से करे ।

अथ गर्जितादिशान्तिः

अनुप्रवचनीयहोमारम्भात्पूर्वं गर्जितवृष्ट्यादिसंभावनायां दिवैव चरुश्रपणान्तं कृत्वाऽस्तमिते जुहुयात् । पाकाभावे गर्जितादिनिमित्ते तु [3]शान्तिं कृत्वा पाकः कार्यः ।

---

१. अत्रिः—'हस्तदत्ता तु या भिक्षा लवणव्यञ्जनानि च । भुक्त्वा ह्यशुचितां याति दाता स्वर्गं न गच्छति ॥' मनुः—'मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं निजाम् । भिक्षेत भिक्षां प्रथमं या चैनं नावमानयेत् ॥ 'भवत्पूर्वं चरेद् भैक्षमुपनीतो द्विजोत्तमः । भवन्मध्यं तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदुत्तरम् ॥' याज्ञवल्क्यः—'कृताग्निकार्यो भुञ्जीत वाग्यतो गुर्वनुज्ञया । आपोशानक्रियापूर्वं सत्कृत्यान्नमकुत्सयन् ॥' अन्न के अतिरिक्त संभव हो तो भिक्षा में ब्रह्मचारी को सुवर्णादि भी दे जैसा वसिष्ठ ने कहा है—'सुवर्णं रजतं रत्नं सा पात्रेऽस्य निवेदयेत् ॥' इति ।

२. जैमिनिः—'अनुपाकृतवेदस्य कर्तव्यो ब्रह्मयज्ञकः । वेदस्थाने तु सावित्री गृह्यते तत्समायतः ॥' इति ।

३. नृसिंहप्रसादे—'ब्रह्मौदनविधेः पूर्वं प्रदोषे गर्जितं यदि । तदा विघ्नकरं ज्ञेयं बटोरध्ययनस्य यत् ॥ तस्य शान्तिप्रकारं तु वक्ष्ये शास्त्रानुसारतः । प्रधानं पायसं साज्यं द्रव्यं शान्तियज्ञौ भवेत् ॥ सूक्तं बृहस्पतेर्विद्वान् पठेत् प्रज्ञाविवृद्धये । गायत्री चैव मन्त्रः स्यात् प्रायश्चित्तं तु सर्पिषा ॥ धेनुं सवत्सकां दद्यादाचार्याय पयस्विनीम् । ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चात्ततो ब्रह्मौदनं चरेत् ॥' इति ।

अनुप्रवचनीय होम के प्रारम्भ से पहिले गर्जित वर्षा आदि की सम्भावना में दिन में ही चरु-श्रपणान्त करके अस्त होने के बाद होम करे। पाक न करने पर गर्जित आदि निमित्त में तो शान्ति करके पाक करे।

अथ शान्तिप्रयोगः

ब्रह्मौदनपाकात्पूर्वं 'गर्जितेन सूचितस्य ब्रह्मचारिकर्तृकाध्ययनविघ्नस्य निरासद्वारा श्रीपर० शान्तिं करिष्ये' इति संकल्प्य स्वस्तिवाचनाचार्यवरणे कृते आचार्योऽग्निं प्रतिष्ठाप्य चक्षुषी आज्येनेत्यन्ते सवितारमष्टोत्तरशतसंख्यसाज्यपायसाहुतिभिर्गायत्रीमन्त्रेण शेषेण स्विष्टकृतमित्यादि। प्रायश्चित्तहोमान्ते गायत्र्या सवितारमाज्येनेत्यन्वाधाय गृहसिद्धपायसहोमान्ते बृहस्पतिसूक्तजपः। अन्ते आचार्याय धेनुं दत्त्वा 'शतं यथाशक्ति वा विप्रान् भोजयिष्ये' इति संकल्पयेत्।

ब्रह्मौदन पाक से पहिले 'गर्जन से सूचित ब्रह्मचारिकर्तृक अध्ययन के विघ्न-निराकरणद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं शान्ति करूँगा' ऐसा संकल्प कर स्वस्तिवाचन और आचार्यवरण करने के बाद आचार्य अग्नि की स्थापना करके 'चक्षुषी आज्येन' इसके बाद गायत्री-मन्त्र से सूर्य भगवान् को १०७ घृतसहित पायस की आहुति दे। शेष से स्विष्टकृत् होम इत्यादि करे। प्रायश्चित्त-होम के अन्त में गायत्री से सूर्य नारायण को 'आज्येन' इससे अन्वाधान कर घर में बने हुए पायस से होम के बाद बृहस्पति-सूक्त का जप करे। अन्त में आचार्य को धेनु देकर 'सौ या यथाशक्ति ब्राह्मणों को भोजन कराऊँगा' ऐसा संकल्प करे।

अथ अग्निनाशे निर्णयः

मेधाजननात्पूर्वकालिकाग्निकार्यं यावत् उपनयनाग्निनाशे उपनयनाहुतिभिः कटिसूत्रधारणादिमाणवकसंस्कारावक्षारणाग्निकार्यगायत्र्युपदेशरहिताभिः पूर्वोत्तरतन्त्रसहिताभिरग्निमुत्पाद्य तत्रानुप्रवचनीयपूर्वभाव्यग्निकार्यं कृत्वाऽनुप्रवचनीयहोमं कृत्वा मेधाजननात्प्राक्तनान्यग्निकार्याणि कृत्वा मेधाजननं कार्यमिति कौस्तुभे उपपादितम्। नष्टस्योपनयनाग्नेः पुनरुत्पत्तिहोमे विनियोग इति विशेष इति चोक्तम्। मम तु उपनयनाहुतिभिरग्निमुत्पाद्य तत्र मेधाजननं कार्यम्। अनुप्रवचनपूर्वभाव्यग्निकार्यमनुप्रवचनीयहोमश्च न कार्यं इति भाति।

कौस्तुभ में प्रतिपादन किया है कि मेधाजनन से पूर्व अग्निनाशपर्यन्त उपनयन की अग्नि के नष्ट होने पर कटिसूत्र-धारण आदि माणवकसंस्कार, अवक्षारण, अग्निकार्य गायत्री का उपदेशरहित पूर्वोत्तर तन्त्रसहित उपनयन की आहुतियों से अग्नि का उत्पादन कर उसमें अनुप्रवचनीय से पूर्व होने वाले अग्निकार्य को करके अनुप्रवचनीय होम करके मेधाजनन से पहिले के अग्निकार्य करके मेधाजनन करे। इसमें 'नष्ट हुये उपनयन-अग्नि के पुनरुत्पत्ति होम में विनियोग है' यह भी वहाँ विशेष कहा है। मुझे तो उपनयन की आहुतियों से अग्नि का उत्पादन कर उसमें मेधाजनन के पूर्व भावी अग्निकार्यों को करके मेधाजनन करे अनुप्रवचन से पूर्व होनेवाला अग्निकार्य और अनुप्रवचनीय होम नहीं करे, यह अच्छा लगता है।

गायत्र्युपदेशानुप्रवचनीयमेधाजननानां त्रयाणां समप्रधानभावेनाध्ययनाङ्गत्वादग्नेस्त्रितयाङ्गत्वात् कौस्तुभोक्तरीत्या गायत्र्युपदेशतत्पूर्वाग्निकार्यावृत्त्यभाव-

वदनुप्रवचनीयतत्पूर्वाग्निकार्ययोरावृत्त्यभावौचित्यात्, न ह्यग्निष्टोमाङ्गपशुत्रयस्याङ्गे यूपे पशुद्वयानुष्ठानानन्तरं नष्टे तृतीयपश्वर्थं यूपोत्पादने द्वितीयपश्वनुष्ठानमप्यावर्तते। अत्र सदसत्सद्भिर्विचार्यानुष्ठेयम्। सायं सन्ध्याग्निकार्ये कृतेऽनुप्रवचनीयहोमं ब्रह्मचारी कुर्यात्। बटोरशक्तौ चरुश्रपणान्तमन्यः कुर्यात् होममात्रं बटुः कुर्यात्। हुतचरुशेषेण त्र्यवरब्राह्मणभोजनम्।

गायत्री का उपदेश, अनुप्रवचनीय और मेधाजनन, ये तीनों समान प्रधानभाव से वेदाध्ययःनांग हैं और अग्नि इन तीनों का अंग है इससे जैसे कौस्तुभ की कही हुई रीति से गायत्री का उपदेश और इसके पूर्व होनेवाला अग्निकार्य नहीं होता उसी प्रकार अनुप्रवचनीय और तत्पूर्व अग्निकार्य की आवृत्ति के अभाव का औचित्य है। क्योंकि अग्निष्टोमांग पशुत्रय के अङ्गीभूत-यूप में दो पशु के अनुष्ठान के बाद अग्निनाश होने पर तीसरे पशु के लिये यूप के उत्पादन में उन दोनों पशुओं के अनुष्ठान की आवृत्ति नहीं होती वैसे ही उपनयनाग्नि में अनुप्रवचनीय और इसका होम कर लेने पर अग्नि का नाश हो जाय तो अग्नि का प्रकटन करके पूर्वकृत कर्म की आवृत्ति युक्त नहीं है। इसमें उचित अनुचित का विचार कर सज्जनो को अनुष्ठान करना चाहिये। सायं संन्ध्या और अग्निकार्य करने के बाद अनुप्रवचनीय होम ब्रह्मचारी करे। बटु के असमर्थ होने पर चरुश्रपणान्त कृत्य दूसरा करे बटु केवल होम करे। बचे हुए चरु से कम से कम तीन ब्राह्मणों को भोजन करावे।

अथ बटुव्रतम्

क्षारादिवर्जमश्नीयाद् ब्रह्मचारी दिनत्रयम्।
शयीताधश्चतुर्थेऽह्नि मेधाजननमाचरेत्॥
यद्वा द्वादशरात्रं स्यादब्दव्रतमथापि वा।
मेधाजननविधिरन्यत्र।

ब्रह्मचारी तीन दिन तक क्षारादि को छोड़कर भोजन करे और जमीनपर सोवे। चौथे दिन मेधाजनन करे। अथवा बारह दिन या सालभर का व्रत करे। मेधाजनन-विधि दूसरी जगह से जानना चाहिये।

अथ मण्डपदेवतोत्थापनम्

तच्च स्थापनदिनात्समदिवसे पञ्चमसप्तमदिनयोश्च शुभम्। 'षष्ठदिने विषमदिने चाशुभम्।

वह मंडपदेवता का उत्थापन स्थापन-दिन से समदिन में और पांचवें सातवें दिन में भी शुभप्रद होता है। छठे दिन या विषम दिन में अशुभ होता है।

अथ मण्डपोद्वासनपर्यन्तं निषेधाः

नान्दीश्राद्धे कृते पश्चाद्यावन्मातृविसर्जनम्।
दर्शश्राद्धं क्षयश्राद्धं स्नानं शीतोदकेन च॥

---

१. नारदः—'समे तु दिवसे कुर्याद्देवकोत्थापनं बुधः। षष्ठं च विषमं नेष्टं मुक्त्वा पञ्चमसप्तमौ॥' इति। समेषु षष्ठं विषमेषु च पंचमसप्तमव्यतिरिक्तं दिनं नेष्टमित्यर्थः।

अपसव्यं स्वधाकारं नित्यश्राद्धं तथैव च।
ब्रह्मयज्ञं चाध्ययनं नदीसीमाऽतिलङ्घनम् ॥
उपवासव्रतं चैव श्राद्धभोजनमेव च।
नैव कुर्युः सपिण्डाश्च मण्डपोद्वासनावधि ॥

अत्र स्वधाकारग्रहणं तत्सहचरितवैश्वदेवनिषेधार्थम्। अत्र सपिण्डास्त्रिपुरुषपर्यन्ता इति पुरुषार्थचिन्तामणौ।

अभ्यङ्गे सूतके चैव विवाहे पुत्रजन्मनि।
माङ्गल्येषु च सर्वेषु न धार्यं गोपिचन्दनम् ॥

एतेषु भस्मधारणमपि न कुर्वन्ति। जननाशौचे भस्मगोपीचन्दने निषिद्धे। मृतके भस्म धार्यम्।

नान्दीश्राद्ध करने के बाद मातृविसर्जनपर्यन्त सपिण्ड वाले दर्शश्राद्ध, क्षयश्राद्ध, ठंडे जल से स्नान, अपसव्य, स्वधाकरण, नित्यश्राद्ध, ब्रह्मयज्ञ, वेदाध्ययन, नदी और सीमा का उल्लंघन, उपवास-व्रत तथा श्राद्धभोजन, ये कार्य मण्डपोद्वासनतक नहीं करें। इसमें स्वधाकार का ग्रहण तत्सहचरित-वैश्वदेव के निषेध के लिये है। यहां सपिण्ड तीन पुरुषपर्यन्त का ग्रहण है, ऐसा पुरुषार्थचिन्तामणि में कहा है। अभ्यंग, सूतक, विवाह, पुत्रजन्म और सभी मांगल्य कार्यों में गोपीचन्दन का धारण नहीं करे। इन सब कार्यों में भस्म का धारण भी नहीं करते हैं। जननाशौच में भस्म और गोपीचन्दन भी निषिद्ध है। मरणाशौच में भस्म धारण करना चाहिये।

अथ विकलाङ्गोपनयनादिविचारः

[1]षण्ढान्धबधिरमूकपङ्गुकुब्जवामनादयः संस्कार्याः। मत्तोन्मत्तौ न संस्कार्यावित्येके। पातित्यं तु नास्ति कर्माऽनधिकारात्। तदपत्यं संस्कार्यम्, ब्राह्मण्यां ब्राह्मणादुत्पन्नो ब्राह्मण एवेति श्रुतेः। अन्ये तु मत्तोन्मत्तावपि संस्कार्यावित्याहुः। अत्र होममाचार्यः करोति।

नपुंसक, बहिरा, गूंगा, अन्धा, पादविकल, कुबड़ा और बौना आदि संस्कार-योग्य होते हैं। एक आचार्य का मत है कि मत्त और उन्मत्त संस्कार योग्य नहीं होते। कर्म में अनधिकार होने से पातित्य तो नहीं होता। इनके सन्तान संस्कार्य होते हैं, क्योंकि श्रुति है कि ब्राह्मणी में ब्राह्मण से उत्पन्न ब्राह्मण ही होता है। अन्य आचार्य तो कहते हैं कि मत्त और उन्मत्त भी संस्कार-योग्य हैं। इसमें होम आचार्य करते हैं।

उपनयनं चाचार्यसमीपनयनमग्निसमीपनयनं वा गायत्रीवाचनं वा विकलाङ्गविषये प्रधानम्। एतत्त्रयान्यतममात्रं विकलाङ्गे संपाद्यम्। अन्यदङ्गं यथा-

१. ब्रह्मपुराणे—'ब्राह्मण्यां ब्राह्मणाज्जातो ब्राह्मणः स इति श्रुतिः। तस्माच्च षण्डबधिरं कुब्जवामनपङ्गुषु ॥ जडगद्गदरोगार्तशुष्काङ्गविकलाङ्गिषु। मत्तोन्मत्तेषु मूकेषु शयनस्थे निरिन्द्रिये ॥ ध्वस्तपुंस्त्वेषु चैतेषु संस्काराः स्युर्यथोचितम्। मत्तोन्मत्तौ न संस्कार्याविति केचित् प्रचक्षते। कर्मस्वनधिकाराच्च पातित्यं नास्ति चैतयोः। तदपत्यं च संस्कार्यमपरे त्वाहुरन्यथा ॥ संस्कारमन्त्रहोमादीन् करोत्याचार्य एव तु। उपनेयाश्च विधिवदाचार्यस्य समीपतः ॥ आनीयाग्निसमीपं वा सावित्रीं स्पृश्य वा जपेत्। कन्यास्वीकरणादन्यत् सर्वं विप्रेण कारयेत् ॥ एवमेव द्विजैर्जातौ संस्कार्यौ कुण्डगोलकौ।' इति।

संभवं कार्यम्। मूकबधिरादेः सावित्रीवाचनासंभवे स्पृष्ट्वा सावित्रीजपः कार्यः। संस्कारमन्त्रावासः परिधानमन्त्राश्चाचार्येण वाच्याः। केचित्तूष्णीं वासः परिधानादिकमित्याहुः। एवं विवाहेऽपि, 'कन्यास्वीकरणादन्यत्सर्वं विप्रेण कारयेत्' इत्यादिवचनात्। इति विकलाङ्गोपनयनादिविचारः।

उपनयन में आचार्य या अग्नि के समीप ले जाना या गायत्रीवाचन विकलांगों के विषय में प्रधान है। इन तीनों में से कोई एक विकलांग का सम्पादनीय है। अन्य अंग को यथा सम्भव करना चाहिये। गूंगा और बहिरा आदि का सावित्रीवाचन के असम्भव में स्पर्श करके सावित्री जपे। संस्कार और वस्त्र पहिनने के मन्त्र आचार्य को कहना चाहिये। कोई आचार्य चुपचाप वस्त्र पहिनना आदि कहते हैं। इसी प्रकार विवाह में भी करे, क्योंकि वचन है कि कन्या स्वीकार से अन्य सब कार्य ब्राह्मण से करावे। विकलांगों का उपनयन आदि का विचार समाप्त।

अथ कुण्डगोलककनिष्ठसंस्कारनिषेधः

अमृते जारजः कुण्डो मृते भर्तरि गोलकः। एतयोः कुण्डगोलकयोः संस्कार्यत्ववचनं युगान्तरविषयम्। तस्य क्षेत्रजपुत्रविषयत्वात्। कलियुगे दत्तौरसातिरिक्तपुत्राणां निषेधात्।

ज्येष्ठे त्वकृतसंस्कारे गर्भाधानादिकर्मभिः।
कनिष्ठो नैव संस्कार्यं इति शातातपोऽब्रवीत्॥

इदं चौलोपनयनान्तसंस्कारविषयम्। विवाहविषये तु विकलाङ्गेषु नायं नियमः। कन्यास्वपि ज्येष्ठाविवाहानन्तरमेव कनिष्ठाया विवाहः। ज्येष्ठपुत्रविवाहाभावेऽपि कनिष्ठा कन्या संस्कार्या। ज्येष्ठस्योपनयनाभावे कनिष्ठा न विवाह्या।

पति के जीवितावस्था में पत्नी दूसरे पुरुष से जो सन्तान पैदा करती है वह कुण्ड और पति के मरने पर उत्पन्न गोलक कहलाती है। इन दोनों के संस्कार्यत्व का वचन अन्य युगसम्बन्धी है, क्योंकि वह वचन क्षेत्रजपुत्र-विषयक है। कलियुग में दत्तक तथा औरस-पुत्र के अतिरिक्त पुत्रों का निषेध है। शातातप का कथन है कि ज्येष्ठ पुत्र का यदि गर्भाधान आदि संस्कार नहीं किया गया हो तो कनिष्ठ का संस्कार नहीं करे। यह चौल उपनयनपर्यन्त संस्कार-विषयक है। विवाह के विषय में तो विकलांगों का यह नियम नहीं है। कन्याओं में भी ज्येष्ठा कन्या के विवाह के बाद ही कनिष्ठा का विवाह करे। ज्येष्ठपुत्र के विवाह नहीं करने पर भी कनिष्ठ कन्या का संस्कार करे। ज्येष्ठ पुत्र के उपनयन न होने पर कनिष्ठ कन्या का विवाह नहीं करना चाहिये।

अथ पुनरुपनयनम्

तच्च त्रिविधम्—प्रत्यवायनिमित्तकं प्रायश्चित्तभूतं पुनरुपनयनमाद्यम्। तच्च जातकर्मादिसहितं तद्रहितं प्रायश्चितान्तरसहितं केवलं चेत्यनेकविधम्। कृतस्योपनयनस्योक्तकालाद्यङ्गवैगुण्येन वैफल्यापत्तावपरम्। वेदान्तराध्ययनार्थं तृतीयम्। तत्र प्रथमं यथा अमत्या औषधान्तरा नाश्यरोगनाशार्थं पैष्ट्याः सुरायाः पाने त्रिमासं कृच्छ्राचरणं पुनरुपनयनं च। मत्या पैष्ट्यन्यसुराया औषधार्थं पाने कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ पुनरुपनयनं च।

वह तीन प्रकार का होता है—किसी प्रत्यवाय की निवृत्ति के लिये प्रायश्चित्तस्वरूप पुनः उपनयन पहिला है। यह जातकर्म आदि के सहित तथा जातकर्मादिरहित और दूसरे प्रायश्चित्त के सहित और केवल भी, इस तरह अनेक प्रकार का है। किये हुए उपनयन के कहे हुए काल आदि अङ्ग की विगुणता से वैफल्य की आपत्ति होने पर दूसरा पुनः उपनयन है। दूसरे वेद के पढ़ने के लिये तीसरा पुनः उपनयन है। उसमें पहिला—जैसे बिना जाने दूसरी औषध से नाश्य-रोग के नाश के लिये पैष्टी-सुरा के पीने से तो तीन महीने तक कृच्छ्राचरण और पुनः उपनयन भी करे। जानकर औषधि के लिये लिये पैष्टी से भिन्न सुरा का पान करने पर कृच्छ्र और पुनः उपनयन करे।

पैष्टीपाने द्वादशाब्दम्। अज्ञानाद्वारुणी गौडी माध्वी सुरा पीता चेत्पुनरुपनयनं तप्तकृच्छ्रं च। अज्ञानाद्रेतोविण्मूत्राणामशने [1]सुरासंसृष्टान्नजलादिभक्षणे च पुनःसंस्कारस्तप्तकृच्छ्रं च। ज्ञात्वा विण्मूत्राद्यशने चान्द्रायणपुनःसंस्कारौ। [2]लशुनपलाण्डुगृञ्जनविड्वराहग्रामकुक्कुटनरगोमांसभक्षणे द्विजातीनां तत्तत्प्रायश्चित्तान्ते पुनरुपनयनम्। अविखरोष्ट्रमानुषीक्षीरपाने हस्तिनीवडवाक्षीरपाने च तप्तकृच्छ्रं पुनःसंस्कारश्च। रासभोष्ट्राद्यारोहणे कृच्छ्रः पुनःसंस्कारश्च। इदं हेमाद्रिमतमिति सिन्धौ।

पैष्टी-सुरा के पीने में बारह वर्ष। अज्ञान से वारुणी, गौड़ी और माध्वी सुरा यदि पी ले तो पुनः उपनयन और तप्तकृच्छ्र व्रत करे। अज्ञान से वीर्य, विष्ठा और मूत्र के खा लेने और सुरा मिले हुए अन्न जलादि के खा लेने में भी पुनः उपनयन और तप्तकृच्छ्र करे। जानबूझ कर विष्ठा मूत्र आदि के खाने में चान्द्रायण और पुनःसंस्कार दोनों करे। लशुन, प्याज, गृंजन, विड्वराह, ग्राम कुक्कुट, मनुष्य तथा गौ का मांस खाने में द्विजातियों को उन-उन के प्रायश्चित्तों के अन्त में पुनः उपनयन करे। मेड़, गदहा, ऊँट और मनुष्य-स्त्री के दूध पीने में तथा हथिनी और घोड़ी के दूध पीने में तप्तकृच्छ्र और पुनः उपनयन करे। गदहा ऊँट आदि पर चढ़ने में कृच्छ्र और पुनःसंस्कार करे। यह हेमाद्रि का मत है, ऐसा निर्णयसिन्धु में कहा है।

क्वचित् मिताक्षरास्मृत्यर्थसारादिमते रासभोष्ट्रारोहे उपवासत्रयादिमात्रं, न तु पुनःसंस्कारः। कौस्तुभाशयोप्येवम्। वृषभारोहणे अमत्या कृच्छ्रं मत्या कृच्छ्रत्रयादि। केचिद् वृषारोहे पुनःसंस्कारं कुर्वन्ति तत्र मूलं मृग्यम्। एवमजबस्तमहिषारोहेऽपि। मांसभक्षकपशोर्विट्भक्षणे पुनरुपनयनमात्रम्। केचिन्मानुषमलभक्षणेऽपि पुनःसंस्कारमात्रमाहुः। प्रेतशय्याप्रतिग्राही पुनःसंस्कारमर्हति।

कहीं मिताक्षरा स्मृत्यर्थसार आदि के मत में गदहा और ऊँट पर चढ़ने में केवल तीन उपवास कहा है पुनःसंस्कार नहीं कहा है। कौस्तुभ का भी यही आशय है। बैल पर चढ़ने में अज्ञान से कृच्छ्र और ज्ञान से तीन कृच्छ्र आदि करे। कुछ लोग कहते हैं कि बैल पर चढ़ने में पुनःसंस्कार करे, उसमें मूल अन्वेषणीय है। इसी प्रकार बकरा बकरी और भैंसे पर चढ़ने में भी। मांस खाने वाले पशु के विष्ठा खाने में केवल पुनः उपनयन करे। कुछ लोग मनुष्य के मलमात्र-भक्षण में भी केवल पुनः उपनयन कहते हैं। प्रेतशय्या लेने वाला पुनःसंस्कार के योग्य होता है।

---

१. मनुः—'अज्ञानात् प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंसृष्टमेव च। पुनःसंस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः॥' इति।

२. शातातपः—'लशुनं गृञ्जनं जग्ध्वा पलाण्डुं च तथा शुनः। उष्ट्रमानुषकेभाश्वरासभीक्षीरभोजनात्॥ उपायनं पुनः कुर्यात्तप्तकृच्छ्रं चरेन्मुहुः।' इति।

जीवतो मृतवार्तां श्रुत्वाऽन्त्यकर्मकरणे—तं घृतकुम्भे निमज्ज्योद्धृत्य स्नापयित्वा जातकर्माद्युपनयनान्तसंस्कारान् कृत्वा त्रिरात्रव्रतान्ते पूर्वभार्यया तस्यां मृतायामन्यभार्यया वा विवाहः कार्यः। आहिताग्निश्चेत्पुनराधानायुष्मदिष्ट्यादि।

जीते हुए के मरने की वार्ता सुनकर अन्त्य-कर्म करने में उसको घृत-कलश में डुबाकर निकाल कर स्नान कराके जातकर्म से लेकर उपनयन तक संस्कारों को करके तीन रात के व्रत के अन्त में पहिली स्त्री से, उसके मरने पर अन्य स्त्री से विवाह करे। यदि आहिताग्नि हो तो पुनः आधान और आयुष्मत् इष्टि आदि करे।

तीर्थयात्रां विना [1]कलिङ्गाङ्गवङ्गान्ध्रसिन्धुसौवीरप्रत्यन्तवासिदेशगमने पुनःसंस्कारः। चाण्डालान्नभक्षणे चान्द्रायणम्। बुद्धिपूर्वं भक्षणे कृच्छ्राब्दम्। उभयत्र पुनःसंस्कारः।

अजिनं मेखला दण्डो भैक्ष्यचर्या व्रतानि च।
निवर्तन्ते द्विजातीनां पुनःसंस्कारकर्मणि॥

वपनं मेखलेति स्मृत्यन्तरे पाठः। ब्रह्मचारिणो मधुमांसाशने पुनरुपनयनं प्राजापत्यं त्रिरात्रोपवासो वा। मत्या भक्षणे पराकः। अभ्यासे द्विगुणं पुनःसंस्कारश्च। पितृमातृगुरुभ्यो भिन्नस्य प्रेतस्यान्त्यकर्मकरणे ब्रह्मचारिणः पुनरुपनयनम्। हस्तमथितदधिभक्षणे बहिर्वेदिपुरोडाशाशनेऽभ्यासे कृच्छ्रः पुनःसंस्कारश्च।

तीर्थयात्रा के विना कलिंग, अंग, वंग, आन्ध्र, सिन्धु, सौवीर और म्लेच्छ देश में जाने पर पुनःसंस्कार करे। चाण्डाल का अन्न खाने में चान्द्रायण-व्रत करे। ज्ञानपूर्वक खाने में वर्षपर्यन्त कृच्छ्रव्रत करे। दोनों में पुनःसंस्कार करे। द्विजातियों के पुनःसंस्कार करने में मृगचर्म, मेखला-धारण, दण्ड और भैक्षचर्याव्रत नहीं होते। दूसरी स्मृति में 'अजिनं मेखला' के स्थान में 'वपनं मेखला' ऐसा पाठ है। ब्रह्मचारी को मधु और मांस खाने में पुनः उपनयन, प्राजापत्यव्रत या तीन रात का उपवास है। ज्ञानपूर्वक खाने में पराकव्रत करे। अभ्यास में द्विगुण पराक और पुनःसंस्कार भी होता है। पिता माता और गुरु से भिन्न के मरे हुए का अन्त्य-कर्म करने में ब्रह्मचारी का पुनः उपनयन है। हाथ से महा हुआ दही के खाने तथा वेदी के बाहर पुरोडाश के भक्षण और इसके अभ्यास में कृच्छ्रव्रत और पुनःउपनयन करना चाहिये।

यः संन्यासं गृहीत्वा ततो निवृत्य [2]गार्हस्थ्यं चिकीर्षति स षण्मासं कृच्छ्रान्

---

१. बौधायनः—'सिन्धुसौवीरसौराष्ट्रांस्तथा प्रत्यन्तवासिनः। अङ्गवंगकलिङ्गान्ध्रान् गत्वा संस्कारमर्हन्ति॥' प्रत्यन्तवासी=म्लेच्छदेशः। 'अङ्गवङ्गकलिङ्गेषु सौराष्ट्रमगधेषु च। तीर्थयात्रां विना गच्छन् पुनःसंस्कारमर्हति॥'इति।

२. पराशरः—'यः प्रत्यवसितो विप्रः प्रव्रज्यातो विनिर्गतः। अनाशकनिवृत्तश्च गार्हस्थ्यं चेच्चिकीर्षति॥ स चरेत्त्रीणि कृच्छ्राणि त्रीणि चान्द्रायणानि च। जातकर्मादिभिः सर्वैः संस्कृतः शुद्धिमाप्नुयात्॥' इति।

कृत्वा जातकर्मादिसंस्कारैः संस्कृतः शुद्धो गार्हस्थ्यं कुर्यात्। एवमनशनं मरणार्थं संकल्प्य निवृत्तोऽपि कुर्यात्।

कर्मनाशाजलस्पर्शात्करतोयाविलंघनात्।
गण्डकीबाहुतरणात्पुनःसंस्कारमर्हति ॥

जो संन्यास ग्रहण करके उससे निवृत्त होकर गार्हस्थ्य करना चाहता है वह छ महीने तक कृच्छ्र-व्रत करके जातकर्म आदि संस्कारों से संस्कृत होकर शुद्ध होने पर गार्हस्थ्य करे। इसी प्रकार मरने के लिये अनशन का संकल्प करके अनशन से निवृत्त हुआ व्यक्ति भी करे। कर्मनाशा नदी के जल-स्पर्श, करतोया-नदी के लंघन और गण्डकी-नदी के तैरने से पुनःसंस्कार के योग्य होता है।

अथ मुहूर्तादिवैगुण्ये द्वितीयं पुनरुपनयनम्

प्रदोषे निश्यनध्याये मन्दे कृष्णे गलग्रहे।
अपराह्णे चोपनीतः पुनःसंस्कारमर्हति ॥

अत्र [1]प्रदोषः प्रदोषदिनं कृष्णः कृष्णपक्ष एकादश्यादिरन्त्यत्रिकरूपः अपराह्णश्च दिनतृतीयभागरूप इत्युक्तम्। अनध्याया अपि नित्या एव पौर्णिमाप्रतिपदादयः पुनरुपनयननिमित्तम्, न तु नैमित्तिका अकालवृष्ट्यादिनिमित्तकत्रिरात्रादयः। नैमित्तिकेषु प्रातर्गर्जितनिमित्तानध्याय एव पुनःसंस्कारनिमित्तम्। अत्र विस्तरः कौस्तुभे। अंसाभिमर्शनपूर्वकं बटोः समीपमानयनं प्रधानकर्म। तस्य विस्मरणे पुनरुपनयनम्। एवं गायत्र्युपदेशविस्मरणेऽपि।

प्रदोष, रात, अनध्याय, शनिवार, कृष्णपक्ष, गलग्रह और अपराह्ण में उपनयन हो तो पुनःउपनयन करना चाहिये। यहाँ प्रदोष शब्द से प्रदोष-दिन, कृष्ण से कृष्णपक्ष की एकादशी आदि अन्त के तीन दिन और अपराह्ण दिन का तृतीय भाग, यह कह चुके हैं। अनध्याय भी पूर्णिमा, प्रतिपदा आदि नित्य पुनरुपनयन के निमित्त हैं, न कि नैमित्तिक अकालवृष्टि आदि निमित्तक त्रिरात्र आदि। नैमित्तिकों में प्रातर्गर्जित-निमित्त-अनध्याय ही पुनःसंस्कार का निमित्त है। इसमें विस्तार से विचार कौस्तुभ में है। कन्धे का स्पर्शपूर्वक वटु को समीप लाना प्रधान कर्म है। उसके भूलने में पुनरुपनयन होता है। इसी प्रकार गायत्री उपदेश के भूलने में भी।

अथ तृतीयः पुनरुपनयननिमित्तप्रकारः

एकं वेदमधीत्य वेदान्तराध्ययनचिकीर्षायां प्रतिवेदं[2] पुनरुपनयनमित्येके। अन्यवेदिनामृग्वेदाध्ययनार्थमुपनयनमित्यपरे। अन्ये तु एकेन वोपनयनेन वेदत्रया-

---

१. प्रजापति ने प्रदोष का स्पष्टीकरण किया है—'षष्ठी च द्वादशी चैव अर्धरात्रोननाडिका। प्रदोषे न त्वधीयीत तृतीया नवनाडिका ॥' गर्ग का विचार—'रात्रौ यामद्वयादर्वाक् सप्तमी वा त्रयोदशी। प्रदोषः स तु विज्ञेयः सर्वविद्याविगर्हितः ॥ रात्रौ नवसु नाडीषु चतुर्थी यदि दृश्यते। प्रदोषः स तु विज्ञेयः सर्वविद्याविगर्हितः ॥' अन्त्यत्रिकरूपः = कृष्णपक्ष का तीन विभाग करके अन्त्य का पंचदिनात्मक तृतीयभाग। कौस्तुभ में स्मृत्यन्तर—'शुक्लपक्षः शुभः प्रोक्तः कृष्णपक्षे त्रिधाकृते। अन्त्यभागं विना यौ द्वौ गणितौ मध्यमाधमौ ॥' इति।

२. हरदत्त ने कहा है—'य एकं वेदमधीत्यान्यं वेदमध्येतुमिच्छति तस्य पुनरुपनयनम्; तेन प्रतिवेदमुपनयनं कर्तव्यम्।' दूसरे लोग आपस्तम्ब की—'सर्वेभ्यो वै वेदेभ्यः सावित्र्यनूच्यते' इस उक्ति

ध्ययनाधिकारः, अथर्ववेदाध्ययनार्थं द्वितीयमुपनयनमित्याहुः । तेन ऋगादिवेदत्रयाध्यायिनो मुण्डमाण्डूक्याद्याथर्वणोपनिषदो विना पुनःसंस्कारं पठन्ति ते चिन्त्याः ।

कोई आचार्य कहते हैं कि एक वेद के पढ़ लेने पर दूसरे वेद को पढ़ने की इच्छा में प्रतिवेद पुनःउपनयन करे। दूसरे आचार्य कहते हैं कि दूसरे वेद वालों का ऋग्वेद पढ़ने के लिए फिर उपनयन है। अन्य आचार्य कहते हैं कि एक ही उपनयन से तीनों वेद के पढ़ने का अधिकार होता है, अथर्ववेद पढ़ने के लिए द्वितीय उपनयन करे। इससे ऋक् आदि तीनों वेद के पढ़ने वाले मुण्ड माण्डूक्य आदि अथर्ववेद के उपनिषदों को पुनःसंस्कार के विना पढ़ते हैं, वे चिन्ता के पात्र हैं।

युगपदनेकवेदारम्भे नोपनयनावृत्त्यपेक्षेति सकृदुपनीत्या युगपत्सकलवेदारम्भः सिद्ध्यतीति परे। तत्र एकवेदाध्ययनानन्तरं यद्वेदाध्ययनचिकीर्षा तद्वेदेतिकर्तव्यताकं पुनरुपनयनम्। तत्र वपनं ब्रह्मौदनं मेधाजननं दीक्षा च कृताकृता। परिदानान्ता क्रिया भवति। अनध्यायादिके द्वितीये पुनरुपनयननिमित्ते सर्वमविकृतं यथोक्तकाले उपनयनम्।

दूसरे आचार्य कहते हैं एक काल में अनेक वेदों के आरम्भ में उपनयन की आवृत्ति की अपेक्षा नहीं है। अतः एक बार के उपनयन से एक काल में सम्पूर्ण वेदों का आरम्भ सिद्ध होता है। उसमें एक वेद के पढ़ने के बाद जिस वेद को पढ़ने की इच्छा हो उस वेद का पुनरुपनयन करे, यही कर्त्तव्यता है। उसमें वपन, ब्रह्मौदन, मेधाजनन और दीक्षा कृताकृत है। परिदान (गायत्र्युपदेश) पर्यन्त क्रिया होती है। अनध्याय आदि में दूसरे पुनरुपनयन-निमित्त में यथोक्त काल में सब अविकृत उपनयन करे।

अथ प्रायश्चित्तार्थे व्रतबन्धे विशेषः

तत्र निमित्तानन्तरमेव करणे उदगयनपुण्यनक्षत्राद्युक्तकालो नापेक्ष्यते। अन्यथा तु यथोक्तकालापेक्षा। तत्र कर्ता पिता। तदभावे पितृव्यादिः सपिण्डः तदभावेऽन्यः कश्चित्। यत्र पुनरुपनयनं प्रायश्चित्तत्वेनोक्तं तत्र पर्षदुपदिष्टविधिना तदेव कार्यम्। यत्र तु प्रायश्चित्तान्तरसहितं विहितं तत्रोक्तविधिना प्रायश्चित्तं संस्कार्येण कारयित्वाऽऽचार्येण तस्योपनयनं कार्यम्। यत्र जातकर्मादिसंस्कारसहितमुपनयनं विहितं तत्र जातादिचौलान्तसंस्कारान्कृत्वा कार्यम्।

उसमें निमित्त के बाद ही प्रायश्चित्त करने में उत्तरायण पुण्य नक्षत्र आदि के उक्त काल की अपेक्षा नहीं की जाती। अन्यथा यथोक्त काल की अपेक्षा की जाती है। उसमें कर्ता पिता है। उसके अभाव में पितृव्य सपिण्ड, उसके अभाव में अन्य कोई। जिसमें पुनः उपनयन प्रायश्चित्त रूप में कहा है उसमें धर्म सभा की उपदिष्ट-विधि से वही करे। जिसमें तो दूसरे प्रायश्चित्त के सहित विधि है उसमें उक्त विधि से जिसका संस्कार करना है उसके द्वारा कराकर आचार्य से उसका उपनयन

से इसे नहीं मानते। क्योंकि मनु के—'त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादं पादमदूदुहत्। तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः॥' इस कथन से गायत्री सभी वेदों से निकाली गई है और उपनयन में उस गायत्री के उपदेश से तीनों वेद गतार्थ हैं। गायत्री तीन ही वेद से निकली है इसलिये अथर्ववेदाध्ययन के लिये द्वितीय उपनयन कर्तव्य है, ऐसा कहते हैं।

कराना चाहिये। जिसमें जातकर्म आदि संस्कार से उपनयन कहा है उसमें जातकर्मादि चौलपर्यन्त संस्कारों को करके उपनयन करे।

पुनरुपनयने तत्सवितुर्वृणीमह इत्यस्या उपदेशाचार्येणास्या एव ऋचो द्वादशोत्तरसहस्रजपः कृच्छ्रत्रयं चोपनेतृत्वाधिकारार्थं कार्यम्। तत्र 'अस्य कृतौर्ध्वदेहिकस्य पुनःसंस्कारद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं जातकर्माद्युपनयनान्तसंस्कारान् करिष्ये।' एवं निमित्तान्तरेपि संकल्प ऊह्यः। सर्वसंस्कारोद्देशेन तन्त्रेण नान्दीश्राद्धादि श्मश्रुवपनानन्तरं चौलकेशवपनम्। मनुष्यादिक्षीरपानादिनिमित्तान्तरे तु संस्कार्यः 'अमुकदोषपरिहारार्थं पर्षदुपदिष्टममुकप्रायश्चित्तं करिष्ये' इति संकल्प्य तत्कुर्यात्। आचार्यस्तु 'अस्यामुकदोषपरिहारार्थं पुनःसंस्कारसिद्धिद्वारा श्री० पुनरुपनयनं करिष्ये' इति संकल्प्योपनयनमात्रं कुर्यात्।

पुनः उपनयन में गायत्री की जगह 'तत्सवितुर्वृणीमहे' इस ऋचा का उपदेश होने से आचार्य को इसी ऋचा का एक हजार बारह वार जप और उपनेतृत्व के अधिकार के लिये तीन कृच्छ्र भी करना चाहिये। उसमें 'और्ध्वदेहिक किये हुये का पुनः संस्कार के द्वारा श्रीपरमेश्वर के प्रीत्यर्थ जातकर्म आदि उपनयनपर्यन्त संस्कारों को करूंगा' इसी प्रकार दूसरे निमित्त में भी संकल्प की कल्पना करे। सब संस्कारों के उद्देश्य से तन्त्र से नान्दीश्राद्ध आदि होता है। दाढ़ी बनाने के बाद चूड़ा के केश का वपन करे। स्त्री आदि के क्षीरपान आदि दूसरे निमित्तों में तो संस्कार्य 'अमुक दोष परिहार के लिये सभाद्वारा उपदिष्ट अमुक प्रायश्चित्त करूंगा' ऐसा संकल्प करके उसे करे। आचार्य तो 'इसके अमुक दोष हटाने के लिये पुनःसंस्कार-सिद्धि-द्वारा श्रीपरमेश्वर के प्रीत्यर्थ पुनः उपनयन करूंगा' ऐसा संकल्प करके केवल उपनयन करे।

यत्रोपनयनमात्रोक्तिस्तत्र संस्कार्यस्य न संकल्पः, किंत्वाचार्यस्यैव। पुनरुपनयनं ग्रामाद्बहिः प्राच्यामुदीच्यां वा गत्वा कार्यम्। नान्दीश्राद्धान्ते मण्डपदेवतास्थापनम्। 'कृतमङ्गलस्नानं संस्कार्यं भोजयित्वा वपनपक्षे वपनस्नाने कारयित्वा 'अस्य प्रायश्चित्तार्थंपुनरुपनयनहोमे देवतापरिग्रहार्थमन्वाधानं करिष्ये' अस्मिन्नन्वाहितेग्नावित्यादिनित्यवत्। ब्रह्मचारिणः पुनरुपनयने समन्त्रकं वासोधारणं नित्यम्, अन्यस्य वैकल्पिकम्। ब्रह्मसूत्रधारणादिसूर्येक्षणान्तं नित्यवत्। ततो युवासुवासा इत्येतन्मन्त्रकं प्रदक्षिणमावर्तनादि वासोबद्धाञ्जलिग्रहणान्ते प्रणवव्याहृतीनां ऋष्यादि स्मृत्वा तत्सवितुर्वृणीमह इत्यस्य श्यावाश्वः सविताऽनुष्टुप् पुनरुपनयने उपदेशे विनियोगः। पादशोऽर्धर्चशः सर्वामिति त्रिर्वाचयेत्।

जहां केवल उपनयन कहा है उसमें संस्कार्य का संकल्प नहीं है किन्तु आचार्य ही का है। पुनः उपनयन गांव से बाहर पूरब या उत्तर दिशा में जाकर करे। नान्दीश्राद्ध के बाद मण्डप देवता का स्थापन करे। मंगलस्नान किये हुए उपनयनयोग्य व्यक्ति को भोजन कराकर वपन के पक्ष में वपन और स्नान कराकर 'इसके प्रायश्चित्त के लिये पुनः उपनयन के होम में देवता-परिग्रह

१. परशुरामः—'पातादिवर्जिते प्रातर्नित्यं कर्म समाचरेत्। नद्यां वाऽथ तडागे वा देवखाते ह्रदेऽथवा॥ सूत्रोक्तविधिना शौचपूर्वं स्नानं समाचरेत्। ततः स्वगृहमागत्य मङ्गलस्नानमाचरेत्॥ सर्वौषधीगन्धचूर्णयुतैः कृष्णातिलामलैः। उद्वर्त्याङ्गानि तैलेन चम्पकादिसुगन्धिना॥' इति।

के लिये अन्वाधान करूंगा।' इस अन्वाहित-अग्नि में इत्यादि नित्यवत् करे। ब्रह्मचारी के पुनः उपनयन में मन्त्रसहित वस्त्र का धारण नित्य और दूसरे का विकल्प से है। ब्रह्मसूत्रधारण आदि सूर्य दर्शनपर्यन्त कृत्य नित्य के समान हैं। तदनन्तर 'युवासुवासा' इस मन्त्र से प्रदक्षिण, आवर्तन आदि तथा बद्धाञ्जलि वस्त्रग्रहणपर्यन्त प्रणव आदि व्याहृतियों के ऋषि आदि का स्मरण करके 'तत्सवितुर्वृणीमहे' इस मन्त्र का श्यावाश्व सविता ऋषि और अनुष्टुप् छन्द पुनः उपनयन में विनियोग है। पहिले एक पाद, बाद में आधी ऋचा, अन्त में सम्पूर्ण ऋचा को इस प्रकार तीन बार कहलावे।

ब्रह्मचारिणो मेखलादानादि नित्यवत्। ब्रह्मचर्योपदेशान्तम् अन्यस्य मेखलाजिनदण्डधारणं पाक्षिकम्। ब्रह्मचर्योपदेशो दिवा मा स्वाप्सीरित्यन्तः। वेदमधीष्वेत्यादिकं न। ततः स्विष्टकृदादि। मेधाजननपक्षे तत्पर्यन्ताग्निधारणं भिक्षापूर्वकानुप्रवचनीयः। गायत्र्याः स्थाने तत्सवितुर्वृणीमह इति होमः। त्रिरात्रव्रतान्ते यस्मिन्नाश्रमे पुनरुपनयनं तदाश्रमधर्मान्कुर्यात्। यत्र पुनरुपनयनान्ते पुनर्विवाहः कृतौर्ध्वदेहिकादेः श्रूयते तत्र मेखलादिधारणपूर्वकं कतिचिद्दिनानि ब्रह्मचर्यं कृत्वोचितकाले समाप्य पूर्वभार्ययाऽन्यया वा विवाहं कुर्यात्। इति ऋग्वेदिनां पुनःसंस्कारः।

ब्रह्मचारी का मेखलादान आदि ब्रह्मचर्योपदेशपर्यन्त नित्य के समान है। दूसरों का मेखला मृगचर्म और दण्डधारण पाक्षिक है। ब्रह्मचर्य का उपदेश 'दिन में मत सोवो' यहाँ तक है। वेद को पढ़ो इत्यादि नहीं है। पश्चात् स्विष्टकृत् आदि है। मेधाजनन के पक्ष में मेधाजनन तक अग्निधारण, भिक्षापूर्वक अनुप्रवचनीय है। गायत्री के स्थान में 'तत्सवितुर्वृणीमहे' इससे होम करे। त्रिरात्र व्रत के अनन्तर जिस आश्रम में पुनः उपनयन हुआ है उस आश्रम के धर्मों को करे। जहां पुनः उपनयन के अन्त में और्ध्वदेहिक क्रिया है जिसमें उसका पुनर्विवाह सुनते हैं उसमें मेखला आदि के धारणपूर्वक कुछ दिनों तक ब्रह्मचर्य करके उचित समय में समाप्त कर पहिली स्त्री से या दूसरी स्त्री से विवाह करे। ऋग्वेदियों का पुनःसंस्कार समाप्त।

अथ यजुर्वेदिनां पुनरुपनयनम्

तत्र बौधायनो ब्रह्मचारिणः पितृज्येष्ठाभ्यामन्योच्छिष्टभक्षणे स्त्रिया सह भोजने मधुमांसश्राद्धसूतकान्नगणान्नगणिकान्नाशने पुनरुपनयनमित्यादि उक्त्वा अग्निमुखं कृत्वाज्याक्तपालाशसमिधमादाय वाचयति ओं पुनस्त्वादित्या० कामाः स्वाहेति ओं यन्म आत्मनो मिंदाभूदग्निः० ओं पुनरग्निश्चक्षुरदादिति द्वाभ्यां हुत्वा चरुं पक्त्वा जुहोति ओं सप्त ते अग्ने० घृतेन स्वाहेति। ततो येन देवाः पवित्रेणेति तिसृभिरुपहोमस्ततः स्विष्टकृत्प्रभृतिसिद्धमाधेनुवरप्रदानात्।

उसमें बौधायन ने कहा है कि ब्रह्मचारी के पिता और जेठा भाई के द्वारा दूसरे के जूठा खाने और स्त्री के साथ भोजन करने में मधु, मांस, श्राद्धान्न, सूतकान्न, गणान्न और वेश्या का अन्न खाने में पुनः उपनयन करे इत्यादि कह कर अग्नि के सामने करके घृताक्त पलाश समिधा को लेकर 'ॐ पुनस्त्वादित्या' कामाः स्वाहा' इन दो मन्त्रों को कहलावे फिर ॐ 'यन्म आत्मनो मिन्दाभूदग्निः' 'ॐ पुनरग्निश्चक्षुरदात्' इन दो मन्त्रों से होम करके चरु पका कर 'ॐ सप्तते अग्ने० घृतेन स्वाहा'

इससे होम करे। तदनन्तर 'येन देवाः पवित्रेण' इन तीन ऋचाओं से उपहोम करे। तदनन्तर स्विष्ट-कृत् आदि धेनु-दक्षिणा-प्रदान करे।

अथापरमापरिदानात्कृत्वा पालाशीं समिधमादाय व्रात्यप्रायश्चित्तं जुहोति व्याहृतीर्जुहोति। अथापरो ब्राह्मणवचनात् सावित्र्या शतकृत्वोऽभिमन्त्रितं घृतं प्राश्य कृतप्रायश्चितो भवतीत्यादिकमवदत्। अत्रोक्तपक्षाणां शक्ताशक्तभेदेन व्यवस्था। इदं कौस्तुभे द्रष्टव्यम्। एवं शाखान्तरेष्वपि वपनमेखलाजिनदण्डभैक्ष्यचर्याव्रतादिकं वैकल्पिकं व्यवस्थयाऽनुष्ठाय स्वस्वशाखोक्तोपनयनं कार्यम्।

इसके बाद दूसरे परिदानपर्यन्त करके पलाश की समिधा लेकर व्रात्य-प्रायश्चित्त का और व्याहृति का होम करे। दूसरे आचार्य कहते हैं कि ब्राह्मण के वचन से सावित्री से सौ बार अभिमन्त्रित किया घृत का प्राशन करके प्रायश्चित्त किया हुआ होता है इत्यादि। यहां कहे हुए पक्षों में समर्थ असमर्थ के भेद से व्यवस्था है। इसे कौस्तुभ में देखना चाहिये। इस प्रकार अन्य शाखाओं में भी वपन, मेखला, मृगचर्म, दण्ड और भिक्षाचरण-व्रतादिक वैकल्पिक-व्यवस्था से करके अपनी अपनी शाखा में कहे हुए उपनयन को करे।

अथ ब्रह्मचारिधर्माः

तत्र संध्यात्रयमग्निपरिचरणं भैक्षं च नित्यम्। तत्राग्निकार्यं प्रातः सायं च। सायमेव सकृद्वा। तत्र [1]'पलाशखदिराश्वत्थशमीसमिधः श्रेष्ठास्तदलाभेऽर्कवेतसानाम्। भवच्छब्दपूर्विकाभिक्षा विप्राणाम्। सा च विप्रगृहेष्वेव। आपदि शूद्रगृहेषु आमान्नं गृह्णीयात्। हव्ये श्राद्धभिन्नकव्ये चाभ्यर्थितो भुञ्जीत। अस्य ब्रह्मयज्ञोऽपि नित्यः। स चोपाकरणात्पूर्वं गायत्र्या कार्यः। गुरूच्छिष्टं मध्वादिकं निषिद्धमपि तदन्यापहार्यरोगनिवृत्त्यर्थं भक्षणीयम्।

तीनों सन्ध्या, अग्निसेवा और भिक्षाचरण नित्य है। उसमें प्रातः सायं अग्निकार्य या एक बार सायंकाल ही में करे। उसमें पलाश, खैर, पीपल और शमी की समिधा श्रेष्ठ है उसके न मिलने पर अर्क और वेतस की। ब्राह्मणों की भिक्षा भवत्-शब्द-पूर्विका होती है, वह ब्राह्मणों के घरों में ही। आपत्ति-काल में शूद्र के घर में कच्चा अन्न ग्रहण करे। हव्य में या श्राद्ध-भिन्न कव्य में प्रार्थना करने पर भोजन करे। ब्रह्मचारी का यज्ञ भी नित्य है। वह उपाकर्म से पहिले गायत्री से करे। गुरु का जूठा दूसरी औषधि से नहीं छूटने वाले रोग की निवृत्ति के लिये मधु आदि निषिद्ध को भी खाना चाहिये।

निषिद्धान्यद् गुरूच्छिष्टं त्वनौषधमपि भक्ष्यम्। एवं ज्येष्ठभ्रातुः पितुश्चोच्छिष्टेषु ज्ञेयम्। दिवास्वापो नेत्रे [2]कज्जलमुपानहौ छत्रं मञ्चादौ शयनं च वर्ज्यम्।

---

१. स्मृतिः—'पालाश्यः समिधः कार्याः खादिर्यस्तदभावतः। शमीरोहितकाश्वत्थास्तदभावेऽर्कवेतसौ॥ नाङ्गुष्ठादधिका कार्या समित् स्थूलतया क्वचित्। न वियुक्ता त्वचा चैव न सकीटा न पाटिता॥ प्रादेशान्नाधिका नोना तथा नैव द्विशाखिका। न सपर्णा न निर्वीर्या होमेषु च विजानता॥ विकर्णा विदला रम्या वक्राः ससुषिराः कृशाः। दीर्घाः स्थूला घुणैर्जुष्टाः कर्मसिद्धिविनाशिकाः॥' इति।

२. याज्ञवल्क्यः—'मधुमांसाञ्जनोच्छिष्टशुक्तस्त्रीप्राणिहिंसनम्। भास्करालोकनाश्लीलपरिवादादि वर्जयेत्॥' मनुः—'अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम्।' वर्जयेदिति प्रकृतम्। कूर्म-

ताम्बूलाभ्यञ्जनं चैव कांस्यपात्रे च भोजनम् ।
यतिश्च ब्रह्मचारी च विधवा च विवर्जयेत् ॥

मधुमांससूतकान्नश्राद्धान्नादेर्निषेधाः । पुनःसंस्कारप्रकरणोक्ता अनुसन्धेयाः ।

निषिद्ध से भिन्न गुरु का उच्छिष्ट तो औषध से भिन्न भी भक्ष्य है । इसी प्रकार ज्येष्ठ भाई और पिता के उच्छिष्ट में भी जानना चाहिये । दिन का सोना, आँख में काजल, जूता, छाता और खटिया आदि पर सोना भी वर्जित है । ताम्बूल, अभ्यंगस्नान और कांसे के पात्र में भोजन, यति ब्रह्मचारी और विधवा का भी त्याज्य है । मधु, मांस, सूतक का अन्न और श्राद्धान्न आदि का निषेध पुनःसंस्कार-प्रकरण में कहे हुए का अनुसन्धेय है ।

मेखलामजिनं दण्डमुपवीतं च नित्यशः ।
कौपीनं कटिसूत्रं च ब्रह्मचारी विधारयेत् ॥

मेखलोपवीतादौ त्रुटिते 'जले प्रास्यान्यद्धारयेत् । यज्ञोपवीतनाशे मनोज्योतिरित्यनेन व्रातपतिभिश्चेति चतस्र[2] आज्याहुतीर्जुहुयादित्युक्तम् । अस्य गुरुपरिचर्याप्रकारोऽन्यत्र ज्ञेयः ।

मेखला, मृगचर्म, दंड, उपवीत, कौपीन तथा कटिसूत्र को ब्रह्मचारी नित्य धारण करे । मेखला और उपवीत आदि के टूटने पर उसे जल में फेंक कर दूसरा धारण करे । यज्ञोपवीत के नष्ट होने पर 'मनोज्योति' और 'व्रातपतिभिश्च' इस मन्त्र से घृत की चार आहुति से होम करे, ऐसा कहा है । ब्रह्मचारी का गुरु-परिचर्या-प्रकार दूसरे ग्रन्थों से जानना चाहिये ।

अथ ब्रह्मचारिव्रतलोपे प्रायश्चित्तम्

संध्याग्निकार्यलोपेऽष्टसहस्रगायत्रीजपः[3] । क्वचित्सकृल्लोपे मानस्तोक इति मन्त्रस्य शतं जप उक्तः । भिक्षालोपेऽष्टशतमभ्यासे द्विगुणं पुनःसंस्कारश्च । मधुमांसाद्यशने उक्तम् । स्त्रीसंगे गर्दभपशुः । एकानेकव्रतलोपसाधारणमृग्विधाने ।

तं वोधिया जपेन्मन्त्रं लक्षं चैव शिवालये ।
ब्रह्मचारी स्वधर्मेषु न्यूनं चेत्पूर्णमेति तत् ॥

पुराणे—'नादर्शं चैव वीक्षेत नाचरेद्दन्तधावनम् । गुरूच्छिष्टं भेषजार्थं प्रयुञ्जीत, न कामतः ॥' वसिष्ठः—'स चेद् व्याधीयीत कामं गुरोरुच्छिष्टं भेषजार्थं सर्वं प्राश्नीयात् ॥' इति ।

१. मनुः—'मेखलामजिनं दण्डमुपवीतं कमण्डलुम् । अप्सु प्रास्य विनष्टानि गृह्णीतान्यानि मन्त्रवत् ॥' इति ।

२. चतसृणामाहुतीनामेते चत्वारो मन्त्राः—अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि० १, वायो व्रतपते० २, आदित्य व्रतपते० ३, व्रतानां व्रतपते० ४ इति ।

३. अपरार्क में संवर्त का वचन है—'यः सन्ध्यां चैव नोपास्ते अग्निकार्यं यथाविधि । गायत्र्यष्टसहस्रं तु जपेत् स्नात्वा समाहितः ॥' ऋग्विधान में एकबार के लोप में—'मानस्तोके जपेन्मन्त्रं शतसंख्यं शिवालये । अग्निकार्यं विना भुक्तौ न पापं ब्रह्मचारिणः ॥' स्त्रीसंग में मनु ने कहा है—'अवकीर्णी तु काणेन गर्दभेन चतुष्पथे । स्थालीपाकविधानेन यजेद्वै निर्ऋतिं निशि ॥' विना यज्ञोपवीत के भोजन एवं विण्मूत्र करने पर मरीचि ने कहा—'ब्रह्मसूत्रं विना भुङ्क्ते विण्मूत्रं कुरुतेऽथवा । गायत्र्यष्टसहस्रेण प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥' इति । विस्तृत जानकारी मिताक्षरादि ग्रन्थों से करें ।

उपाकर्म कृत्वा प्रागुक्तविद्यारम्भकालेऽक्षरारम्भोक्तविष्ण्वादिपूजाप्रकारेण वेदारम्भः कार्यः। द्विजस्त्रीणां युगान्तरे मौञ्जीबन्धो वेदाध्ययनं चासीत्। कलियुगे तु नैतद्द्वयम्। अतः स्त्रीणां वेदोच्चारादौ दोषः।

ब्रह्मचारी सन्ध्या और अग्निकार्य के लोप होने पर आठ हजार गायत्री का जप करे। कहीं एक बार लोप होने पर 'मानस्तोक' इस मन्त्र का सौ बार जप कहा है। भिक्षा का लोप होने पर आठ सौ गायत्री जपे। अभ्यास में दुगुना जप और पुनःसंस्कार भी करे। मधु और मांस के खाने में कह चुके हैं। स्त्री-प्रसंग में गर्दभपशुयज्ञ करे। ऋग्विधान में एक या अनेक व्रत लोप साधारण कहा है 'तं वोधिया' इस मन्त्र को शिवालय में लाख बार जपे। इससे अपने धर्मों में जो कमी हो वह पूर्ण हो जाता है। उपाकर्म करके पहिले कहे हुए विद्यारम्भ के समय तथा अक्षरारम्भ में कहे विष्णु आदि की पूजा के प्रकार से वेद का आरम्भ करना चाहिये। द्विजों की स्त्रियों को दूसरे युगों में उपनयन और वेदाध्ययन भी था। कलियुग में तो ये दोनों नहीं होते। इसलिये स्त्रियों को वेद के उच्चारण आदि में दोष होता है।

अथानध्यायाः

ते च नित्या नैमित्तिकाश्च प्रायेण मौञ्जीप्रकरणे उक्ताः। ततोऽन्येपि उभयविधाऽनध्याया बहवो निबन्धेषूक्तास्तेऽत्र न प्रपञ्च्यन्ते। कलिकालेऽसमस्तावदनध्यायपालनस्य दुर्मेधसामशक्यत्वात्। तथा च हेमाद्रौ स्मृतिः—

चतुर्दश्यष्टमीपर्वप्रतिपत्स्वेव सर्वदा।
दुर्मेधसामनध्यायास्त्वन्तरागमनेषु च॥ इति।

अतः कलौ 'प्रतिपद्द्वयमष्टमीद्वयं चतुर्दशीद्वयं पूर्णिमादर्शोऽयनसंक्रान्तिरित्येतावत एवानध्यायांस्त्यक्त्वा वेदशास्त्रादिकमध्येतव्यम्। पुंसां प्रायोल्पप्रज्ञत्वात्। शिष्टाचारोऽप्येवमेव। पूर्वदिने सायं परत्र प्रातश्च त्रिमुहूर्तानध्यायतिथिसत्त्वे उदयेऽस्तमये वाऽपीत्यनेन दिनद्वयेऽनध्यायप्राप्तौ वचनान्तरं केचिदाहुः।

नित्य और नैमित्तिक अनध्याय प्रायः उपनयन प्रकरण में कह चुके हैं। उससे भिन्न भी दोनों प्रकार के अनध्याय बहुत से निबन्धों में कहा है। उनका प्रपंच यहां नहीं करते हैं, क्योंकि इस कलिकाल में अनध्याय का पालन दुर्बुद्धियों की शक्ति के बाहर है। ऐसा हेमाद्रि में स्मृति की उक्ति है कि दुर्बुद्धियों का चतुर्दशी, अष्टमी, पर्व और प्रतिपदा में ही सर्वदा अनध्याय है और अन्तरागमन में भी। इसलिये कलियुग में दो प्रतिपदा, दो अष्टमी, दो चतुर्दशी तथा पूर्णिमा, अमावास्या, अयन-संक्रान्ति बस इतने ही अनध्यायों को छोड़कर वेद और शास्त्र आदि का अध्ययन करे। क्योंकि पुरुष प्रायः अल्पबुद्धि के होते हैं। शिष्टाचार भी ऐसा ही है। पहिले दिन सायंकाल दूसरे दिन प्रातःकाल तीन मुहूर्त अनध्याय तिथि के रहने पर 'उदयेऽस्तमये वापि' इस वचन से दोनों दिन अनध्याय प्राप्त होने पर कोई दूसरा वचन कहते हैं।

---

१. रामायण में श्रीहनुमान ने राम से कहा है—'सा स्वभावेन तन्वङ्गी त्वद्वियोगाच्च कर्शिता। प्रतिपत्पाठशीलस्य विद्येव तनुतां गता॥' यमः—'अष्टमी हन्त्युपाध्यायं शिष्यं हन्ति चतुर्दशी। हन्ति पञ्चदशी मेधां तस्मात्सर्वाणि वर्जयेत्॥' स्मृत्यन्तरम्—'अमावास्या गुरुं हन्ति शिष्यं हन्ति चतुर्दशी। ब्रह्माष्टमी पौर्णमास्यौ तस्मात्ताः परिवर्जयेत्॥' हेमाद्रिः—'अष्टमी हन्त्युपाध्यायं शिष्यं हन्ति चतुर्दशी। अमावास्योभयं हन्ति प्रतिपत्पाठनाशिनी॥' इति।

क्वचिद्देशे यावत्तद्दिननाडिकाः । तावदेव त्वनध्यायो न तन्मिश्रे दिनान्तर इति । इदमप्यल्पप्रज्ञविषयम् । चतुर्थीसप्तम्यादौ प्रदोषनिर्णय उक्तः । प्रदोषेषु न स्मरेन्न च कीर्तयेदित्युक्तेरितरानध्यायतो दोषाधिक्यम् ।

अनध्यायस्तु नाङ्गेषु नेतिहासपुराणयोः ।
न धर्मशास्त्रेष्वन्येषु पर्वण्येतानि वर्जयेत् ॥
नित्ये जपे च काम्ये च क्रतौ पारायणेऽपि च ।
नानध्यायोऽस्ति वेदानां ग्रहणे ग्राहणे स्मृतः ॥

किसी देश में उस दिन की जितनी घड़ियां अनध्याय की हों तब तक ही अनध्याय है । दूसरे दिन में उससे मिश्र होने पर नहीं होता । यह भी अल्पबुद्धि वाले के लिये अनध्याय है । चतुर्थी और सप्तमी आदि में प्रदोषनिर्णय कह चुके हैं । 'प्रदोषों में न स्मरण करे और न कहे' इस उक्ति से अनध्यायों से प्रदोष में अधिक दोष है । अनध्याय तो वेदांग, इतिहास, पुराण और अन्य धर्मशास्त्रों में नहीं है । पर्व में ही अध्ययन का त्याग करे । नित्य और काम्य जप में, यज्ञ में, पारायण में भी पढ़ने पढ़ाने में वेदों का अनध्याय नहीं है ।

अथाध्ययनधर्माः

वेदारम्भेऽवसाने गुरोः पादोपसंग्रहणम्[1] । आदौ प्रणवमुच्चार्य वेदमधीत्यान्ते प्रणवमुच्चार्य भूमिं स्पृष्ट्वा विरमेत् । रात्रेः प्रथमयामे चरमयामे च वेदाध्ययनम् । यामद्वयं शयानस्तु ब्रह्मभूयाय कल्पते । [2]गुरुं पितरं मातरं च मन्येत कदापि न द्रुह्येत ।

---

१. मनूक्त गुरु के अभिवादन की विधि—'व्यत्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्रहणं गुरोः । सव्येन सव्यः स्प्रष्टव्यो दक्षिणेन च दक्षिणः ॥' अर्थात् अपने हाथों को हेरफेर करके दाहिने हाथ से गुरु का दाहिना पैर और बायें हाथ से गुरु का बायाँ पैर स्पर्श करे । गुरु के चरण-स्पर्श करते समय हाथों को उत्तान (चित्त) रखे, जैसा पैठीनसि ने बतलाया है—'उत्तानाभ्यां हस्ताभ्यां दक्षिणेन दक्षिणं सव्येन सव्यं पादावभिवादयेत् ।' हाथों को हेरफेर करते समय दाहिने हाथ को ऊपर और उसके नीचे बायें हाथ को रखे ।

अध्यापन की विधि—'वेदारम्भेऽवसाने च पादौ ग्राह्यौ गुरोः सदा । प्रणवं प्राक् प्रयुञ्जीत व्याहृतीस्तदनन्तरम् ॥ सावित्रीं चानुपूर्व्येण ततो वेदान् समारभेत् ।' ओंकारं प्रथमं कृत्वा ततो ब्रह्म प्रवर्तयेत् ॥ ओङ्कारं च पुनः कृत्वा भूमिं स्पृष्ट्वा समापयेत् । शाट्यायनः—'दानयज्ञतपःस्वाध्याय-ध्यान-सन्ध्योपासन-प्राणायाम-होम-दैवपित्र्य-मन्त्रोच्चारण-ब्रह्मारम्भादीनि प्रणवमुच्चार्य प्रवर्तयेदिति । अतश्च मन्त्रमात्रोच्चारणे आदावोङ्कारः कार्यः ।' पहले अपने वेद का ही अध्ययनारम्भ करे, जैसा वसिष्ठ ने कहा है—'यच्छाखीयैस्तु संस्कारैः संस्कृतो ब्राह्मणो भवेत् । तच्छाखाऽध्ययनं कार्यमन्यथा पतितो भवेत् ॥ ...... तच्छाखं कर्म कुर्वीत तच्छाखाध्ययनं तथा । एवमध्ययनं कुर्वन् ब्रह्मसायुज्य माप्नुयात् ॥ अधीत्य शाखामात्मीयां परशाखां ततः पठेत् ।' इति ।

२. मनुः—'वेदप्रदानादाचार्यं पितरं परिचक्षते । न ह्यस्मिन् युज्यते कर्म किञ्चिदामौञ्जिबन्धनात् ॥' चिदम्बररहस्ये—'गुरुः पिता गुरुर्माता गुरुर्देवो गुरुर्गतिः । शिवरुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन ॥' इति ।

अध्यापिता ये गुरुं नाद्रियन्ते शिष्या वाचा मनसा कर्मणा वा ।
यथैव ते न गुरोर्भोजनीयास्तथैव तान्न भुनक्ति श्रुतं तत् ॥

इत्यध्ययनधर्माः ।

वेद पढ़ने के आरम्भ और समाप्ति में गुरु के चरणों का उपसंग्रहण करे । आदि में प्रणव का उच्चारण करके वेद पढ़ लेने के अनन्तर प्रणव का उच्चारण कर भूमिस्पर्श करके विराम करे । रात्रि के पहले पहर में और रात के अन्तिम पहर में वेद का अध्ययन करे । दो प्रहरमात्र सोने वाला ब्रह्मचारी तो ब्रह्म ही होता है । गुरु, माता और पिता को माने और उनसे द्रोह कदापि न करे । पढ़ाये हुए छात्र जो मन से वचन से और कर्म से गुरु का आदर नहीं करते तो जैसे वे गुरु के काम में नहीं आते वैसे शास्त्र भी उनका सफल नहीं होता । अध्ययनधर्म समाप्त ।

अथ व्रतानि

तानि [1]महानाम्नीव्रतमहाव्रतोपनिषद्व्रतगोदानव्रताख्यानि चत्वारि क्रमेण जन्मतस्त्रयोदशादिषु वर्षेषूत्तरायणे चौलोक्ततिथिनक्षत्रवारादिषु कार्याणि । अत्र विस्तृतप्रयोगाः कौस्तुभादौ स्वस्वगृह्येषु च द्रष्टव्याः । एतेषां लोपे प्रत्येकमेकैक-कृच्छ्रं चरित्वा गायत्र्या शताहुतीर्जुहुयात् । त्रीन् षड् द्वादश वा कृच्छ्रान्कुर्या-दित्यन्यत्र ।

महानाम्नीव्रत, महाव्रत, उपनिषद्व्रत और गोदानव्रत इस प्रकार चार व्रत होते हैं । ये क्रम से जन्म से तेरहवें आदि वर्षों में तथा उत्तरायण में चौल में कहे गये तिथि, नक्षत्र और वार आदि में करना चाहिये । इनके विस्तृत-प्रयोग कौस्तुभ आदि में तथा अपने अपने गृह्य-ग्रन्थों में देखना चाहिये । इन व्रतों के लुप्त होने पर प्रत्येक व्रत के लिये एक एक कृच्छ्र करके गायत्री से सौ आहुति का होम करे । अन्यत्र तो तीन छ या बारह कृच्छ्र व्रत करे, ऐसा कहा है ।

अथ समावर्तनम्

गुरवे क्षेत्राद्यन्यतमं दत्त्वा तदनुज्ञया स्नायात् । स्नानं नाम [2]समावर्तनम् ।

---

१. यथा आह आश्वलायनः—'प्रथमं स्यान्महानाम्नी द्वितीयं च महाव्रतम् । तृतीयं स्यादुपनिषद् गोदानं च ततः परम् ॥' अत्र गोदानस्य महानाम्न्यादिव्रतपूर्वकत्वात् तानि प्रागनुष्ठाय ततो गोदानं विधेयम् । अतो जन्मतस्त्रयोदशे वर्षे महानाम्नी, चतुर्दशे महाव्रतं, पञ्चदशे उपनिषद्व्रतम्, षोडशे गोदानमित्युक्तम् । एवं क्षत्रियविशोरपि उक्तं गोदानात् प्राक् वर्षचतुष्टयं क्रमेण महानाम्न्यादि भवति । अत्रापि चौलवदेव मुहूर्तविचारः । तदुक्तं श्रीधरीये—'तिथिनक्षत्रवाराश्च वर्गोदयनिरीक्षणम् । चौलवत् सर्वमाख्यातं सगोदानव्रतेषु च ॥' यदि दैवादतीतकालानि महानाम्न्यादिव्रतानि स्युस्तदा समावर्तनेन सह कार्याणि इति ।

२. यद्यपि समावर्तन-संस्कार का समय विद्याध्ययन के अनन्तर ही है तथापि 'अनाश्रमी न तिष्ठेत दिनमेकमपि द्विजः' इस प्रत्यवाय की अपेक्षा ब्रह्मचर्यव्रत-लोप-जन्य-प्रत्यवाय-परिहार-प्रायश्चित्त के गुरुतर होने से संस्कारभास्करोक्त—'सावित्री ग्रहणादूर्ध्वं तद्दिने वा चतुर्थके । तृतीये द्वादशे वाऽपि वत्सरे व्रतमुत्सृजेत् ॥' इस वचन से कालापकर्ष करके उपनयन के दिन ही वेदारम्भ-पूर्वक समावर्तन-संस्कार कर लेना श्रेयस्कर है । क्योंकि अध्यननकालपर्यन्त ब्रह्मचर्य की रक्षा करना कठिन है और ब्रह्मचर्य के भंग होने पर प्रायश्चित्त है । ब्रह्मचर्य-निवर्तक-कर्म का नाम समावर्तन है । सुरेश्वरोक्त समावर्तनकाल—'भौममानुजयोर्वारे नक्षत्रे च व्रतोदिते । ताराचन्द्रविशुद्धौ च स्यात्समा-वर्तनक्रिया ॥' इति ।

तानि च क्षेत्रं हेमगौरश्वश्छत्रमुपानहौ धान्यं वस्त्रत्रयं शाकमित्येतानि। एषु यद्गुरोः प्रियं तद्देयम्। दानं विनैव गुरुप्रीतौ तदनुज्ञयैव स्नायात्। क्षेत्रादिनापि न विद्यानिष्क्रयः।

एकैकमक्षरं यस्तु गुरुः शिष्ये निवेदयेत्।
पृथिव्यां नास्ति तद् द्रव्यं यद्दत्त्वा त्वनृणी भवेत्॥ इत्युक्तेः।

गुरु को क्षेत्र आदि में से कोई एक देकर उनकी अनुज्ञा से स्नान करे। स्नान समावर्तन को कहते हैं। गुरु-दक्षिणा की वस्तु—खेत, सोना, गौ, घोड़ा, छाता, जूता, धान्य, तीन वस्त्र और शाक हैं। इनमें से गुरु को जो प्रिय हो वह देना चाहिये। दान के विना ही गुरु के प्रसन्न होने पर उनकी अनुज्ञा से ही समावर्तन करे। खेत आदि से भी विद्या का निष्क्रय नहीं होता, क्योंकि कहा है—जो गुरु एक एक अक्षर शिष्य को देता है पृथिवी में वह द्रव्य नहीं है जिसे देकर शिष्य ऋण रहित हो।

अथ स्नातकस्य त्रैविध्यम्

स च स्नातकस्त्रिविधः—'विद्यास्नातको व्रतस्नातक उभयस्नातक इति। तत्रैकं द्वौ त्रींश्चतुरो वा वेदान्वेदैकदेशं वाऽधीत्य तदर्थं च ज्ञात्वा द्वादशवर्षादिब्रह्मचर्यकालावधेः प्रागेव स्नाति स विद्यास्नातकः। उपनयनव्रतसावित्रीव्रतवेदव्रतान्यनुष्ठाय वेदसमाप्तेः पूर्वमेव स्नातो व्रतस्नातकः। द्वादशवर्षादिब्रह्मचर्यसमाप्त्या वेदं समाप्य स्नातो विद्याव्रतोभयस्नातकः। तत्रोपनयनोत्तरं मेधाजननपर्यन्तं त्रिरात्रद्वादशरात्रादिव्रतमुपनयनव्रतम्। मेधाजननोत्तरमुपाकर्मान्तं ब्रह्मचारिधर्मानुष्ठानं सावित्रीव्रतम्। तदुत्तरं वेदाध्ययनार्थं द्वादशवर्षादिकालावच्छिन्नं व्रतं वेदव्रतम्।

वह स्नातक तीन प्रकार का होता है—विद्यास्नातक, व्रतस्नातक और उभयस्नातक। उनमें विद्यास्नातक वह है जो एक दो तीन या चारो वेदों को अथवा वेदके एकदेश को पढ़कर और उसके अर्थ को जानकर बारह वर्ष आदि ब्रह्मचर्य-काल की अवधि से पहिले ही समावृत्त होता है। व्रतस्नातक वह है जो उपनयनव्रत, सावित्रीव्रत और वेदव्रतों का अनुष्ठान कर वेद के समाप्त होने से पहिले ही समावर्तन करता है। विद्या-व्रत-उभयस्नातक वह है जो बारह वर्ष आदि ब्रह्मचर्य की समाप्ति से वेद समाप्त कर समावृत्त होता है। उसमें उपनयन के बाद मेधाजनन तक त्रिरात्र द्वादशरात्र आदि व्रत को उपनयनव्रत कहते हैं। मेधाजनन के अनन्तर उपाकर्मपर्यन्त ब्रह्मचर्य का जो अनुष्ठान करता है वह सावित्रीव्रत है। तत् पश्चात् वेदाध्ययन के लिये बारह वर्ष आदि काल के व्रत को वेदव्रत कहते हैं।

'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः' इति विधेरर्थज्ञानपर्यन्तत्वाद्वेदार्थज्ञानं विना वेदाध्ययनमात्रेण समावर्तनेऽधिकारो नेति पूर्वमीमांसकाः। वेदग्रहणमेव विधिफलं पूर्वका-

---

१. तदुक्तं स्मृत्यन्तरे—'समाप्य वेदमसमाप्य व्रतं यः समावर्तते स विद्यास्नातकः। समाप्य व्रतमसमाप्य वेदं यः समावर्तते स व्रतस्नातकः। उभयं समाप्य यः समावर्तते स विद्याव्रतस्नातकः।' इति।

ण्डार्थज्ञानं कर्मानुष्ठानाक्षिप्तम्। उत्तरकाण्डार्थज्ञानं काम्यश्रोतव्यविधिप्राप्तमित्युत्तरमीमांसकाः। तत्र संहिता ब्राह्मणं च मिलित्वैको वेदः। आरण्यकाण्डं ब्राह्मणान्तर्गतमेव।'संपूर्णैकवेदाध्ययनेष्वशक्तो वेदैकदेशं पठेत्। अत्यशक्तेन संहितायाः प्रथमचरमसूक्तेः कतिपयसूक्तानां प्रथमा ऋचः सर्वसूक्तानां प्रथमा ऋचो वाऽध्येतव्याः।

'वेद को पढ़ना चाहिये' इस विधि-वचन के वेदार्थज्ञान-पर्यन्त होने से वेद के अर्थज्ञान के विना केवल वेद के पढ़ने मात्र से समावर्तन में अधिकार नहीं होता, ऐसा पूर्वमीमांसक कहते हैं। वेद का ग्रहण ही विधि का फल है, पूर्व काण्ड का अर्थज्ञान कर्म के अनुष्ठान से आक्षिप्त है और उत्तरकाण्ड का अर्थज्ञान काम्य और श्रोतव्य-विधि से प्राप्त है, ऐसा उत्तर मीमांसकों का मत है। उसमें संहिता और ब्राह्मण मिलकर एक वेद होता है। आरण्यकाण्ड ब्राह्मणग्रन्थ के अन्तर्गत ही है। सम्पूर्ण एक वेद को पढ़ने में असमर्थ-व्यक्ति वेद के एकदेश को पढ़े। अत्यन्त अशक्त के लिये संहिता का प्रथम और अंत के सूक्त को पढ़ना चाहिये अथवा कई सूक्तों की पहिली ऋचायें या सब सूक्तों की पहिली ऋचायें पढ़नी चाहिये।

एवं वेदैकदेशाध्ययनोत्तरं समावृत्तो विवाहितो वा ब्रह्मचर्योक्तनियमेन वेदाध्ययनं कुर्यात्। तत्र ऋतौ भार्यागमनं[१] कार्यम्। ब्रह्मचारिव्रतलोपप्रायश्चित्तं कृच्छ्रत्रयं कृत्वा महाव्याहृतिहोमं च कृत्वा समावर्तनं कार्यम्। एतच्च संध्याऽग्निकार्यभिक्षालोपशूद्रादिस्पर्शकटिसूत्रमेखलाऽजिनत्यागदिवास्वापाञ्जनपर्युषितभोजनादिव्रतभङ्गेषु अल्पकालमल्पव्रतभङ्गे ज्ञेयम्। बहुधर्मलोपे तु तं वोधियानव्यस्या शविष्ठमिति मन्त्रस्य लक्षजपः शिवालये इत्युक्तम्। एवं च महानाम्न्यादिव्रतलोपस्य ब्रह्मचर्यव्रतलोपस्य च प्रायश्चित्तोत्तरं समावर्तनाधिकारः।

इस तरह वेद के एकदेश का अध्ययन करने के बाद समावृत्त अथवा विवाहित ब्रह्मचर्य के उक्त नियम से वेदाध्ययन करे। उसमें ऋतु में स्त्री-प्रसंग करे। ब्रह्मचारी के व्रतलोप का प्रायश्चित्त तीन कृच्छ्र और महाव्याहृति से होम करके समावर्तन करे। इसे सन्ध्या, अग्निकार्य, भिक्षालोप, शूद्र आदि का स्पर्श, कटिसूत्र, मेखला और मृगचर्म का त्याग, दिवाशयन, उपांजन तथा बासी भोजन आदि व्रतभंग में और अल्पकाल में अल्प-व्रतभंग में जानना चाहिये। अधिक धर्मलोप में तो 'तंवोधियान व्यस्या शविष्ठं' इस मन्त्र का शिवमन्दिर में एक लाख जप करे, यह कह चुके हैं। इसी प्रकार महानाम्नी आदि व्रतलोप और ब्रह्मचर्यव्रत-लोप का प्रायश्चित्त के पश्चात् समावर्तन का अधिकार है।

अथ समावर्तनकालः

तत्रोपनयनोक्तकाले समावर्तनमिति बहवो ज्योतिर्ग्रन्थाः। तेनानध्याये प्रदोषदिने भौमशनिवारयोः पौषाषाढ्योर्दक्षिणायने च न भवति। मार्गशीर्षे विवाहप्रसक्तौ दक्षिणायनेऽपि भवति। अन्यथा 'अनाश्रमी न तिष्ठेत दिनमेकमपि द्विजः' इति निषेधातिक्रमापत्तेः। अन्ये तु मौञ्ज्युक्तकालोपादाने मूलाभावात्

१. अगमने दोषश्रवणात्, यथा—'ऋतुस्नातां तु यो भार्यां सन्निधौ नोपगच्छति। घोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः॥' इति।

रिक्तात्रयपूर्णिमामावास्याष्टमीप्रतिपद्भिन्नतिथिषु शुक्लेऽन्त्यत्रिकभिन्नकृष्णे च गुरुशुक्रास्तादिदिनक्षयभद्राव्यतीपातादिदोषशून्ये शुभवारे समावर्तनं कार्यम्। नात्र प्रदोषसोपपदादितिथिवर्जनमावश्यकमित्याहुः। पुष्यपुनर्वसुमृगरेवतीहस्तानूराधोत्तरात्रयरोहिणीश्रवणविशाखाचित्राः श्रेष्ठाः। एतदलाभे मौञ्ज्युक्तभानि। क्वचिद्भौमशनिवारौ सिन्धावुक्तौ।

उसमें बहुत से ज्योतिषग्रन्थ में लिखा है कि उपनयन में कहे हुये समय में समावर्तन करे। इससे अनध्याय, प्रदोष के दिन, मंगल, शनिवार, पौष, आषाढ़ मास तथा दक्षिणायन में समावर्तन नहीं करे। अगहन में विवाह का प्रसंग हो तो दक्षिणायन में भी होता है। अन्यथा 'द्विज विना आश्रम के एक दिन भी न रहे' इस निषेध का अतिक्रमण होगा। अन्य आचार्य कहते हैं कि उपनयन काल के ग्रहण करने में प्रमाण के अभाव से तीनों रिक्ता, पूर्णिमा, अमावास्या, अष्टमी और प्रतिपदा से भिन्न तिथियों में, शुक्लपक्ष में, अन्त के तीन दिन से भिन्न कृष्णपक्ष में और गुरु शुक्र के अस्त आदि, दिनक्षय, भद्रा और व्यतीपात आदि दोष से रहित शुभवार में समावर्तन करना चाहिये। इसमें प्रदोष तथा सोपपदा आदि तिथि का त्याग आवश्यक नहीं है। पुष्य, पुनर्वसु, मृगशिरा, रेवती, हस्त, अनुराधा, तीनों उत्तरा, रोहिणी, श्रवण, विशाखा और चित्रा नक्षत्र श्रेष्ठ हैं। इसके नहीं मिलने पर उपनयन में कहे हुए नक्षत्र में करे। कहीं मंगल और शनिवार समावर्तन में ग्राह्य है, यह निर्णय सिन्धु में कहा है।

अथ 'मणिकुण्डलवस्त्रयुगच्छत्रोपानद्युगदण्डस्रगुन्मर्दनानुलेपाञ्जनोष्णीषाणि आत्मने आचार्याय च संपाद्यालाभे आचार्यायैव वा संपादयेत्[1]। देशकालौ संकीर्त्य 'मम ब्रह्मचर्यनियमलोपजनितसंभावितदोषपरिहारेण समावर्तनाधिकारसंपादनद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थमाज्यहोमपूर्वकं कृच्छ्रत्रयं महानाम्न्यादिव्रतचतुष्टयलोपजनितप्रत्यवायपरिहारार्थं प्रतिसंस्कारमेकैकं कृच्छ्रं[2] च गायत्र्याज्यहोमपूर्वकं तन्त्रेणाहमाचरिष्ये' इति संकल्प्याग्निप्रतिष्ठादि।

मणि, कुण्डल, जोड़ा वस्त्र, छाता, जोड़ा जूता, दण्ड, माला, उन्मर्दन, अनुलेप, अंजन और पगड़ी अपने और आचार्य के लिये भी सम्पादन कर, नहीं मिलने पर आचार्य ही के लिये सम्पादन करे। देशकाल को कहकर 'मेरे ब्रह्मचर्य-नियम का लोप-जन्य-सम्भावित-दोष के परिहार तथा समावर्तन के अधिकार सम्पादनद्वारा श्रीपरमेश्वर की प्रीति के लिये घृतहोमपूर्वक तीन कृच्छ्र और महानाम्नी आदि चार व्रत के लोप से उत्पन्न प्रत्यवाय-परिहार के लिये प्रत्येक संस्कार के लिये गायत्री से घृतहोमपूर्वक एक-एक कृच्छ्र तन्त्र से करूँगा' ऐसा संकल्प कर अग्नि की स्थापना आदि करे।

---

१. आश्वलायनः—'अथोपकल्पयीत समावर्त्यमानो मणिकुण्डले वस्त्रयुग्मं छत्रमुपानद्युगं दण्डं स्रगुद्वर्तनमनुलेपनमञ्जनमुष्णीषमित्यात्मने चाचार्याय च यद्युभयोर्न विन्देदाचार्याय वा।' याज्ञवल्क्यः—'गुरवे तु वरं दत्त्वा स्नायीत तदनुज्ञया।' वरं= आचार्यस्य अभिलषितद्रव्यम्।

२. शौनक ने इसके लोप होने पर कहा है—'व्रतानि विधिना कृत्वा स्वशाखाध्ययनं चरेत्। अकृत्वाऽभ्यस्यते येन स पापी विधिघातकः॥ प्रत्येकं कृच्छ्रमेकैकं चरित्वाऽऽज्याहुतीः शतम्। हुत्वा चैव तु गायत्र्या स्नायादित्याह शौनकः॥' स्मृत्यर्थसार में अधिक कृच्छ्र का निर्देश किया है—'त्रीन् षड् द्वादश वा कृच्छ्रान् कृत्वा पुनर्व्रतं चरेत्।' इति।

चक्षुषी आज्येनात्र प्रधानम् अग्निं वायुं सूर्यं प्रजापतिं च चतसृभिराज्याहुतिभिः, अग्निं पृथ्वीं महान्तमेकयाज्याहुत्या वायुमन्तरिक्षं महान्तमेकया०, आदित्यं दिवं महान्तमेकया०, चन्द्रमसं नक्षत्राणि दिशो महान्तमेकया०, अग्निं द्विः विभावसुं शतक्रतुम् अग्निम् अग्निम् अग्निं वायुं सूर्यं प्रजापतिं चेत्यष्टावेकैकयाज्याहुत्या । शेषेणेत्यादि ।

'चक्षुषी आज्येन' इससे प्रधान अग्नि वायु सूर्य और प्रजापति को भी चार घृताहुतियों से, अग्नि पृथिवी और महान को एक घृत की अहुति से, वायु अन्तरिक्ष और महान् को एक घृत की आहुति से, सूर्य दिव और महान् को, चन्द्रमा नक्षत्रगण और दिशाओं को तथा महान् को एक एक घृत की आहुति से, अग्नि को दो आहुति से, सूर्य इन्द्र तीनों अग्नि वायु सूर्य और प्रजापति, इन आठों को एक एक घृताहुति से होम करे । शेष से स्विष्टकृत् होम करे ।

आज्यभागान्ते व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिर्हुत्वा ओं भूरग्नये च पृथिव्यै च महते च स्वाहा । अग्नये पृथिव्यै महत इदमित्यादि यथान्वाधानं त्यागः । ओं भुवो वायवे चान्तरिक्षाय च महते च स्वाहा । ओं सुवरादित्याय च दिवे च महते च स्वाहा । ओं भूर्भुवः सुवश्चन्द्रमसे च नक्षत्रेभ्यश्च दिग्भ्यश्च महते च स्वाहा । चन्द्रमसे नक्षत्रेभ्यो दिग्भ्यो महत इदं पाहिनो अग्न एनसे स्वाहा । ओं पाहि नो अग्न एनसे स्वाहा । ओं पाहि नो विश्ववेदसे स्वाहा । ओं यज्ञं पाहि विभावसो स्वाहा । ओं सर्वं पाहिशतक्रतो स्वाहा । ओं पुनरूर्जानिवर्तस्व पुनरग्न इषायुषा । पुनर्नः पाह्यंहसः स्वाहा । ओं सहरय्या निवर्तस्वाग्ने पिन्वस्वधारया । विश्वप्स्नियाविश्वतस्परि स्वाहा ।

आज्यभाग के अन्त में व्यस्त तथा समस्त व्याहृतियों से होम करके 'ॐभूरग्नये च पृथिव्यै' इससे अग्नि, पृथ्वी और महान् को इदमित्यादि कहकर अन्वाधानपूर्वक त्याग करे । 'ॐभुवो वायवे' 'ॐसुवरादित्याय' 'ॐ भूर्भुवः सुवश्चन्द्रमसे' 'ॐ पाहि नो अग्न' 'ॐ पाहि नो विश्व' 'ॐयज्ञं पाहि' 'ॐसर्वं पाहि' 'ॐपुनरूर्जा निवर्तस्व' 'ॐसहरय्या निवर्तस्वाग्ने, इत्यादि मन्त्र मूल में देखें ।

पुनर्व्यस्तसमस्तव्याहृतिचतुष्टयम् । ततः व्रतचतुष्टयार्थं गायत्र्याज्यहोमः । कृच्छ्रत्रयगोनिष्क्रयं दत्त्वा होमशेषं समापयेत् । महानाम्न्यादिलोपे प्रत्येकमष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिमष्टौ वा गायत्र्याऽऽज्याहुतीर्हुत्वा एकैकं कृच्छ्रं चरेत् । इति प्रायश्चित्तप्रयोगः ।

व्यस्त और समस्त व्याहृतियों से चार आहुति पुनः दे । तदनन्तर चार व्रतों के लिये गायत्री से घृत का होम करे । तीन कृच्छ्र के लिये गोनिष्क्रय देकर होम-शेष को समाप्त करे । महानाम्नी आदि के लोप में प्रत्येक के लिये एक सौ आठ या अट्ठाईस या आठ घृत की आहुति गायत्री से देकर एक एक कृच्छ्र करे । प्रायश्चित्तप्रयोग समाप्त ।

अथ समावर्तनसंकल्पादि

'मम गृहस्थाश्रमार्हतासिद्धिद्वारा श्रीपर० समावर्तनं करिष्ये' इति संकल्प्य नान्दीश्राद्धान्तं बटुरेव कुर्यात् । ब्रह्मचारी जीवत्पितृकश्चेत्पितुर्मात्राद्युद्देशः । ब्रह्म-

चार्यशक्तश्चेत्पित्रादिस्तत्प्रतिनिधित्वेन नान्दीश्राद्धं कुर्यात्। समावर्तनं उपनयनादाविव पित्रादिरेव नान्दीश्राद्धकर्तेति मतान्तरेण प्रागुक्तम्। अवशिष्टप्रयोगः स्वस्वगृह्यानुसारेण। दश त्रीन् वा विप्रान् भोजयेत्। दास्यन्ति मधुपर्कं ये तत्रैतां रजनीं वसेत्। ततो व्रतानि संकल्पयेत्। तानि च स्वसूत्रोक्तानि स्मृत्युक्तानि चेति द्विविधानि। सर्वाण्यपि पुरुषार्थान्येव न तु समावर्तनाङ्गानि। तत्राशक्तः सूत्रोक्तान्येव व्रतानि कुर्यात्। शक्तस्तु स्मृत्युक्तान्यपि।

'मेरे गृहस्थ आश्रम की योग्यतासिद्धिद्वारा परमात्मप्रीत्यर्थं समावर्तन करूंगा' ऐसा संकल्प करके नान्दीश्राद्धपर्यन्त कर्म ब्रह्मचारी ही करे। ब्रह्मचारी यदि जीवत्पितृक हो तो पिता की माता आदि के उद्देश्य से नान्दीश्राद्ध करे। ब्रह्मचारी यदि अशक्त हो तो उसके पिता आदि ब्रह्मचारी के प्रातिनिध्य से नान्दीश्राद्ध करे। दूसरे मतों से समावर्तन और उपनयन आदि की तरह पिता आदि ही नान्दीश्राद्ध के कर्त्ता होते हैं, यह पहिले कह चुके हैं। बाकी प्रयोग अपने अपने गृह्य के अनुसार करे। दस अथवा तीन ब्राह्मणों को भोजन करावे और जो मधुपर्क दे, वहीं वहां उस रात में वास करे। तदनन्तर व्रतों का संकल्प करे। वे व्रत अपने-अपने सूत्र के कहे और स्मृति के कहे हुए, इस तरह दो प्रकार के होते हैं। सभी पुरुषार्थ ही हैं, समावर्तन के अंग नहीं हैं। उसमें असमर्थ पुरुष सूत्रों में कहे हुए ही व्रतों को करे। समर्थ तो स्मृति में कहे हुए भी स्नातकव्रत को करे।

अथ स्नातकव्रतानि

तानि यथा—निमित्तं विना न नक्तं स्नास्यामि। न नग्नः स्नास्यामि। न नग्नः शयिष्ये। न नग्नां स्त्रियमीक्षिष्येऽन्यत्र मैथुनात्। वर्षति न धाविष्ये। न वृक्षमारोहिष्ये। न कूपमवरोहिष्ये। न बाहुभ्यां नदीं तरिष्यामि। न प्राणसंशयमभ्यापत्स्ये। इति सूत्रोक्तानि।

वे जैसे—विना निमित्त के रात में स्नान नहीं करूंगा। न नंगा होकर स्नान करूंगा। नंगे होकर नहीं शयन करूंगा। मैथुन से अन्यत्र नंगी स्त्री को नहीं देखूंगा। वर्षा होने में नहीं दौड़ूंगा। न पेड़ पर चढ़ूंगा। न कुएं में उतरूंगा। बाहु से नदी नहीं तैरूंगा। प्राणसंशय का कार्य नहीं करूंगा। ये सूत्र के कहे व्रत हैं।

अथ स्मृत्युक्तानि

नित्यं [१]यज्ञोपवीतद्वयं धारयिष्ये। सोदककमण्डलुं छत्रमुष्णीषं पादुके उपा-

१. व्यासः—'यज्ञोपवीतद्वितयं सोदकं च कमण्डलुम्। छत्रं चोष्णीषममलं पादुके चाप्युपानहौ॥ रौक्मे च कुण्डले वेदः कृत्तकेशनखः शुचिः।' मनुः—'सर्वान् परित्यजेदर्थान् स्वाध्यायस्य विरोधिनः। यथा तथाऽध्यापयंस्तु स ह्यस्य कृतकृत्यता॥ बुद्धिवृद्धिकराण्याशु धन्यानि च हितानि च। नित्यं शास्त्राण्यवेक्षेत नियमांश्चैव वैदिकान्॥ क्लृप्तकेशनखश्मश्रुर्दान्तः शुक्लाम्बरः शुचिः। स्वाध्याये चैव युक्तः स्यान्नित्यमात्महितेषु च॥ नान्नमद्यादेकवासा न नग्नः स्नानमाचरेत्। न मूत्रं पथि कुर्वीत न भस्मनि न गोव्रजे॥ न फालकृष्टे न जले न चित्यां न च पर्वते। न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदाचन॥ नाश्नीयात्सन्धिवेलायां न गच्छेन्नापि संविशेत्। न चैव प्रलिखेद् भूमिं नात्मनोपहरेत् स्रजम्॥ उपानहौ च वासश्च धृतमन्यैर्न धारयेत्। उपवीतमलङ्कारं स्रजं करकमेव च॥' इत्यादयो नियमा मन्वादिस्मृतिषु द्रष्टव्याः।

नहौ सुवर्णकुण्डले दर्भमुष्टिं च धारयिष्ये। कर्तनेन ह्रस्वीकृतकेशश्मश्रुनखः स्याम्। निमित्तं विना मुण्डनं न करिष्ये इत्यर्थः। न समावृत्ता मुण्डेरन्निति निषेधात्। नित्यमध्ययनरतः स्याम्। स्वशरीरादुद्धृतं स्वनिर्माल्यं पुष्पचन्दनादि पुनर्न धारयिष्ये। शुक्लाम्बरधरः स्याम्। सुगन्धीप्रियदर्शनः स्याम्।

स्मृत्युक्त व्रत—नित्य दो यज्ञोपवीत धारण करूंगा। सजल-कमण्डल, छाता, पगड़ी, खड़ाऊँ, जूता, सोने के कुण्डल और मुट्ठी भर कुश धारण करूँगा। कैंची से काटकर केश, दाढ़ी और नख को छोटा बनाकर रहूँगा। विना किसी निमित्त के मुण्डन नहीं करूँगा। क्योंकि समावृत्त मुण्डन नहीं करे ऐसा निषेध है। नित्य अध्ययन में लगा रहूँगा। अपने शरीर से उतारा हुआ अपना निर्माल्य पुष्प चन्दन आदि दुबारा नहीं धारण करूँगा। शुक्ल वस्त्र धारण करूँगा। सुगन्धयुक्त और प्रियदर्शी रहूँगा।

विभवे सति जीर्णवासा मलवद्वासाश्च न स्याम्। रक्तं वासः शरीरपीडावहं वा वस्त्रं न धारयिष्ये। गुरुं विनान्यैर्धृतं वस्त्रमलंकारं स्रजं च न धारयिष्ये। अशक्तस्तु अन्यधृतमपि वस्त्रादि प्रक्षाल्य धारयेत्। अन्यधृतोपवीतमुपानहौ च न धारये। कन्थां न धारयिष्ये। न स्वरूपमुदके निरीक्षिष्ये। न भार्यया साकमेकपात्रे एककाले वाऽश्नीयाम्। एतद्विवाहभिन्नविषयम्।

धन रहने पर पुराना या मैला वस्त्रधारी नहीं रहूँगा। लालवस्त्र या शरीर को पीड़ा देनेवाला वस्त्र नहीं धारण करूंगा। गुरु के अतिरिक्त दूसरों का धारण किया हुआ वस्त्र, आभूषण और माला नहीं धारण करूँगा। असमर्थ तो दूसरे के धारण किये हुए वस्त्र आदि को पानी से धोकर धारण करे। दूसरे का धारण किया हुआ यज्ञोपवीत और जूते भी नहीं धारण करूँगा। कथरी नहीं धारण करूँगा। अपने रूप को पानी में नहीं देखूँगा। अपनी स्त्री के साथ एक बर्तन में या एक समय में भोजन नहीं करूँगा। यह विवाह से भिन्न विषय का है।

शूद्राय धर्मज्ञानं नीतिज्ञानं व्रतकल्पं च नोपदिशामि। एतत्साक्षादुपदेशपरम्। 'कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः' इति ब्राह्मणद्वारकोपदेशे दोषाभावात्। गृहमेधिशूद्राय स्वोच्छिष्टं न दास्ये। शूद्राय होमशेषं न दास्ये। उद्धृतोदकेन तिष्ठन्नाचमनं न करिष्ये। जानुमात्रे तदधिके वा जले तिष्ठदाचमने दोषाभावात्। अशुचिना एकहस्तेन वा आनीतजलैर्नाचमिष्ये।

धर्म और नीति का ज्ञान तथा व्रतकल्प का उपदेश शूद्र को नहीं दूँगा। यह साक्षात् उपदेश-विषयक है। 'कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः' इस वचन से ब्राह्मण के द्वारा उपदेश देने में दोष नहीं है। गृहस्थ-शूद्र को अपना जूठा नहीं दूंगा। होम-शेष शूद्र को नहीं दूँगा। कुएँ से निकाले हुए जल से खड़े होकर आचमन नहीं करूंगा। ठेहुने भर या उससे अधिक जल में खड़े होकर आचमन करने में दोष नहीं है। अपवित्र या एक हाथवाले व्यक्तिद्वारा लाये हुए जल से आचमन नहीं करूंगा।

पादेन पादधावनं न करिष्ये। अकल्पां स्त्रियं न गमिष्यामि। न प्रावृतमस्तकोऽह्नि पर्यटिष्यामि। रात्रौ मलमूत्रोत्सर्गे च प्रावृतशिराः स्याम्। सोपानत्कोऽशनाभिवादननमस्कारान्न करिष्ये। पादेनासनं नापकर्षिष्यामि। एवमन्यान्यपि

स्मृत्युक्तानि ज्ञेयानि। एतेषु व्रतेषु यानि कर्तुं शक्नुयात्तावन्त्येव संकल्पयेत्। अत्र संकल्पितव्रतोल्लङ्घने मत्या कृते त्र्यहमभोजनम्। अमत्या कृते एकरात्रमभोजनं प्रायश्चित्तम्। अशक्तस्त्रीनेकं वा विप्रं भोजयेत्। इति स्नातकव्रतानि।

पैर से पैर नहीं धोऊंगा। अयोग्य स्त्री से गमन नहीं करूंगा। दिन में सिर ढककर नहीं घूमूंगा। रात और मलमूत्र करने में सिर ढके रहूँगा। जूता पहिन कर भोजन, अभिवादन और नमस्कार नहीं करूंगा। पैर से आसन नहीं खीचूंगा। इस प्रकार स्मृत्युक्त अन्यान्य व्रत को जानना चाहिये। इन व्रतों में जितने को कर सके उतने ही का संकल्प करे। इसमें संकल्प किये हुए व्रतों के उल्लंघन में ज्ञानपूर्वक उल्लंघन करने पर तीन दिन का उपवास और अज्ञान से करने पर एक दिन का उपवास प्रायश्चित्त है। असमर्थ तीन या एक ब्राह्मण को भोजन करावे। स्नातकव्रत समाप्त।

अथ आतुरसमावर्तनम्

आतुरदशायां यथोक्तसमावर्तनासंभवे संक्षेपतस्तत्कार्यम्। तत्प्रयोगः—संकल्प्य ब्रह्मचारिलिङ्गानि मेखलादीनि त्यक्त्वा पवनं कृत्वा तीर्थे स्नात्वा वासःपरिधानाचमनतिलकधारणानि कृत्वाऽग्निं प्रतिष्ठाप्य तत्र प्रजापतिं मनसा ध्यायंस्तूष्णीं समिधमादध्यात्। अन्यदपि अविरोधि तूष्णीमेव कर्तव्यमिति। इति समावर्तनानुकल्पः।

बीमारी की दशा में जैसा समावर्तन में कहा है उसके न करने पर संक्षेप से उसे करे। उसका प्रयोग—संकल्प करके ब्रह्मचारी के चिह्न मेखला आदि का त्याग और मुण्डन करके तीर्थ में नहाकर वस्त्र परिधान, आचमन, तिलकधारण और अग्निस्थापन करके उसमें प्रजापति का मन से ध्यान करते हुए चुपचाप समिधा का आधान करे। अन्य भी अविरोधी कर्त्तव्य चुपचाप करे। समावर्तन का अनुकल्प समाप्त।

अथ ब्रह्मचारिण आशौचनिर्णयः

ब्रह्मचर्यदशायां दशाहाशौचहेतुसपिण्डमरणे समावर्तनोत्तरमुदकदानपूर्वकं त्रिरात्रमतिक्रान्ताशौचं कार्यम्। अनुपनीतसपिण्डे मातुलादौ च मृतेऽतिक्रान्ताशौचं न। एवं जननाशौचेऽप्यतिक्रान्ताशौचं न। ततश्च दशाहाशौचापादकसपिण्डमृतौ समावर्तनोत्तरं त्रिरात्रमध्ये विवाहो न कार्यः। कस्यचिन्मरणाभावे तु न विवाहे दोषः।

इत्थं व्रतान्तकर्माण्यनन्तोपाध्यायसूनुना।
निर्णीय श्रीविट्ठलाङ्घ्रचोर्वाग्विलासः समर्पितः॥

ब्रह्मचर्यावस्था में दशाहाशौच वाले सपिण्ड के मरने में समावर्तन के अनन्तर उनका जलदान कर त्रिरात्राशौच करे। जिसका उपनयन नहीं हुआ हो ऐसे सपिण्ड के मरने और मातुल आदि के मरने में बीते हुए अशौच को न करे। इसी तरह जननाशौच में भी बीते हुये आशौच को न करे। इसके बाद दशाह अशौच वाले सपिण्ड की मृत्यु में समावर्तन के बाद तीन दिन के बीच में विवाह न करे। कोई मरा न हो तो विवाह में दोष नहीं है। इस प्रकार व्रतपर्यन्त कर्मों का निर्णय कर श्री अनन्तोपाध्याय के पुत्र ने श्री विट्ठल भगवान् के चरणों में इस वाग्विलास का समर्पण किया।

अथ विवाहविवेचनम्

अथ श्रीभगवत्पादौ पुण्डरीकवरप्रदौ ।
श्रीगुरून्पितरौ नत्वा विवाहं वक्तुमुद्यतः ॥
उद्वहेत्तु द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणैर्युताम् ।
अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं मृद्वङ्गीं च मनोहराम् ॥

भाविशुभाशुभज्ञानहेतुलक्षणविचारोऽष्टौ पिण्डान् कृत्वेत्यादिरूप [1]आश्वलायनसूत्रे उक्तः । ज्योतिःशास्त्रोक्तः राशिनक्षत्रादिघटितविचारोऽपि शुभादिज्ञानहेतुः । स च [2]संक्षेपेणोच्यते ।

श्री भगवान् के वर देने वाले चरण-कमलों तथा माता पिता के चरणों को प्रणाम करके विवाह के सम्बन्ध में कहना प्रारम्भ कर रहा हूँ। द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) अपने वर्ण की, लक्षणों से युक्त, सुन्दर अंगों वाली, शुभ नाम वाली, कोमलांगी और मन को हरण करने वाली भार्या से विवाह करे। होने वाले शुभ और अशुभ के ज्ञान के लिये 'आठ पिण्ड बनाकर' इत्यादि लक्षण का विचार आश्वलायन सूत्र में कहा है। ज्योतिषशास्त्र में कहे हुए राशि नक्षत्र आदि के द्वारा जो विचार है वह भी शुभाशुभ-ज्ञान का कारण है। उसको संक्षेप से कह रहा हूँ।

अथ विवाहे घटितविचारः

तत्र मेषादिराशिस्वामिनः—

भौमः शुक्रो बुधश्चन्द्रः सूर्यः सौम्यो भृगुः कुजः ।
गुरुः शनैश्चरो मन्दः सुरेज्यो राशिपाः स्मृताः ॥

उसमें मेष आदि बारह राशियों के स्वामी—मंगल, शुक्र, बुध, चन्द्रमा, सूर्य, बुध, शुक्र, मंगल, बृहस्पति, शनैश्चर, शनैश्चर और बृहस्पति, ये क्रम से हैं। जैसे—मेष का स्वामी मंगल, वृषका शुक्र, मिथुन का बुध इत्यादि।

---

१. आभ्यन्तर लक्षणों की जानकारी के लिये आश्वलायन ने इस प्रकार बतलाया है—'दुर्विज्ञेयानि लक्षणान्यष्टौ पिण्डान् कृत्वा 'ऋतमग्रे प्रथमं जज्ञे ऋते सत्यं प्रतिष्ठितं यदियं कुमार्यभिजाता तदियमिह प्रतिपद्यतां यत्सत्यं तद् दृश्यताम्' इति पिण्डानभिमन्त्र्य कुमारी ब्रूयादेषामेकं गृहाणेति । क्षेत्राच्चेदुभयतः सस्याद् गृह्णीयाद् अन्नवत्यस्याः प्रजा भविष्यति इति विद्यात्, गोष्ठात् पशुमती, वेदि-पुरीषात् ब्रह्मवर्चस्विनी, अविदासिनो ह्रदात्सर्वसम्पन्ना, देवनात् कितविनी चतुष्पथाद्विप्रव्राजिनी, ईरिणादधन्या श्मशानात् पतिघ्नी ।' इति । उभयतः सस्यक्षेत्र का अर्थ है—वर्ष में दो बार होने वाला क्षेत्र, वेदिपुरीषात्=अपकर्म के लिये बनाई हुई वेदी से, अविदासिनो ह्रदात्=सर्वदा जलयुक्त तालाब से, देवनात्=जुआ खेलने के स्थान से, चतुष्पथाद्विप्रव्राजिनी=चौराहे से अनेक पुरुषों से संपर्क करने वाली, ईरिणात्=ऊसर से।

२. मुहूर्तचिन्तामणि के सर्वदेशप्रसिद्ध—'वर्णो वश्यं तथा तारा योनिश्च ग्रहमैत्रकम् । ग्रहमैत्रं भकूटं च नाडी चैते गुणाधिकाः ॥' इन आठ कूटों में जिनके अधिक गुण और जो विवाह-विघटक हैं उन्हीं का ग्रन्थकार संक्षिप्त-विचार दिखा रहे हैं। दैवज्ञमनोहर में आठ कूटों का गुणभेद—'नाडीभेदे गुणा अष्टौ सप्त सद्राशिकूटके । षड्गुणा ग्रहमैत्र्यां च सौहार्दे पंच खेटयोः । योनिमैत्र्यां च चत्वारस्त्रयस्तारावले गुणाः । वश्यत्वे द्वौ गुणौ प्रोक्तौ वर्ण एकः प्रकीर्तितः ॥' इति ।

अथ ग्रहमैत्री

अथ ग्रहाणां [1]शत्रुमित्रादि—रवेर्गुरुभौमचन्द्रा मित्राणि, शनिशुक्रौ शत्रू, बुधः समः। इन्दोः सूर्यबुधौ मित्रे, भौमगुरुशुक्रशनयः समाः, अस्य शत्रुर्न। कुजस्य बुधो रिपुः, सूर्यगुरुचन्द्रा मित्राणि, शनिशुक्रौ समौ। बुधस्यार्कशुक्रौ मित्रे, चन्द्रोऽरिः, शनिभौमगुरवः समाः। गुरोः सूर्यभौमचन्द्रा मित्राणि, शुक्रबुधौ शत्रू, शनिः समः। शुक्रस्य शनिबुधौ मित्रे, सूर्यचन्द्रावरी, भौमगुरू समौ। शनेः शुक्रबुधौ मित्रे, कुजसूर्यचन्द्रा अरयः, गुरुः समः।

ग्रहों के शत्रु मित्रादि इस प्रकार हैं—सूर्य के बृहस्पति, मंगल और चन्द्रमा मित्र हैं, शनि और शुक्र शत्रु हैं, बुध सम हैं। चन्द्रमा के सूर्य और बुध मित्र हैं, मंगल, बृहस्पति, शुक्र और शनि सम हैं, चन्द्रमा का शत्रु नहीं है। मंगल के बुध शत्रु हैं, सूर्य बृहस्पति और चन्द्रमा मित्र हैं, शनि और शुक्र सम हैं। बुध के सूर्य और शुक्र मित्र हैं, चन्द्रमा शत्रु हैं, शनि मंगल और बृहस्पति सम हैं। बृहस्पति के सूर्य मंगल और चन्द्रमा मित्र हैं, शुक्र और बुध शत्रु हैं, शनि सम हैं। शुक्र के शनि और बुध मित्र हैं, सूर्य और चन्द्रमा शत्रु हैं, मंगल वृहस्पति सम हैं। शनि के शुक्र और बुध मित्र हैं, मंगल सूर्य और चन्द्रमा शत्रु हैं, वृहस्पति सम हैं।

अथ गुणविचारः

राश्योरेकाधिपत्ये राशिपत्योर्मित्रत्वे च पञ्च गुणाः। राशिपत्योः समत्वशत्रुत्वेऽर्धो गुणः। समत्वमित्रत्वे चत्वारः। शत्रुत्वमित्रत्वे एकः। द्वयोः समत्वे त्रयः। द्वयोः शत्रुत्वे गुणाभावः।

वरवधू की राशियों का स्वामी एक हो या उनके स्वामियों की मित्रता हो तो पांच गुण होते हैं। दो राशि स्वामियों के परस्पर समत्व और शत्रुत्व में आधा गुण होता है। समत्व और मित्रत्व दोनों का हो तो चार गुण होते हैं। शत्रुत्व और मित्रत्व में एक गुण होता है। दोनों के समत्व में तीन गुण होते हैं। दोनों के शत्रुत्व में गुण नहीं होता।

अथ गणविचारः

पूर्वात्रयोत्तरात्रयभरणीरोहिण्यार्द्रामनुष्यगणः। हस्तरेवतीपुनर्वसुपुष्यस्वातीमृगश्रवणाश्विन्यनूराधादेवगणः। कृत्तिकाश्लेषामघाचित्राविशाखाज्येष्ठामूलधनिष्ठाशततारकाराक्षसगणः। [2]गणैक्ये शुभम्। देवमनुष्ययोर्मध्यमम्। देवरक्षसोर्वैरम्। राक्षसमनुष्ययोर्मरणम् अतो मनुष्यराक्षसयोर्विवाहो न कार्यः।

---

१. ग्रहमैत्री में वसिष्ठोक्त शत्रुमित्रादि का फल—'अन्योन्यमित्रं शस्तं स्यात् सममित्रं तु मध्यमम्। उदासीनं कनिष्ठं स्यान्मृतिदं शात्रवं स्मृतम्॥ शत्रुमित्रं च विज्ञेयं दम्पत्योः कलहप्रदम्। अन्योन्यसमशत्रुत्वं दम्पत्योर्विरहप्रदम्॥' इति।

२. गणकूट का नारदोक्त फल—'दम्पत्योर्जन्मभे चैकगणे प्रीतिरनेकधा। मध्यमा देवमर्त्यानां राक्षसानां तयोर्मृतिः॥' कश्यपः—स्वगणे चोत्तमा प्रीतिर्मध्यमाऽमरमर्त्ययोः। मर्त्यराक्षसयोर्वैरमसुरासुरयोरपि॥' 'राक्षसी यदि वा नारी नरो भवति मानुषः। मृत्युस्तत्र न संदेहो विपरीतः शुभावहः॥' 'रक्षोगणः पुमान् स्याच्चेत्कन्या भवति मानवी। केऽपीच्छन्ति तदोद्वाहं व्यस्तं कोऽपीह नेच्छति॥' यह विचार देवराक्षस में भी तुल्य न्याय से करना चाहिये।

अत्र गुणाः—गणैक्ये षड्गुणाः। वरो देवो नृगणा कन्याऽत्रापि षट्। वैपरीत्ये राक्षसः कन्या देवगणा अत्रैकः। वैपरीत्ये गुणाभावः। मनुष्यराक्षसत्वेऽपि गुणाभावः।

तीनों पूर्वा, तीनों उत्तरा, भरणी, रोहिणी और आर्द्रा मनुष्यगण हैं। हस्त, रेवती, पुनर्वसु, पुष्य, स्वाती, मृगशिरा, श्रवण, अश्विनी और अनुराधा देवगण हैं। कृत्तिका, आश्लेषा, मघा, चित्रा, विशाखा, ज्येष्ठा, मूल, धनिष्ठा और शतभिषा राक्षसगण हैं। एक गण होने में शुभ होता है। देवता और मनुष्य में मध्यम होता है। देवता और राक्षस में वैरभाव होता है। राक्षस और मनुष्य में मरण होता है इसलिये मनुष्य और राक्षस में विवाह नहीं करना चाहिये। इसमें गुणों को कहते हैं—एक गण होने में छ गुण होते हैं। वर देवगण का हो और मनुष्यगण की कन्या हो तो इसमें भी छ गुण होते हैं। कन्या देवगण हो और वर मनुष्यगण हो तो पांच गुण होते हैं। वर राक्षसगण कन्या देवगण हो तो इसमें एक गुण होता है। वर देवगण और कन्या राक्षसगण हो तो गुण नहीं होता। वर मनुष्यगण और कन्या राक्षसगण हो तब भी गुण नहीं होता।

अथ राशिकूटम्

द्विर्द्वादशके निर्धनत्वम्। नवपञ्चमत्वे निःपुत्रता। षट्काष्टके मरणं विपत्तिर्वा। उभयसप्तमे तृतीयैकादशे चतुर्थदशमे च शुभम्। नक्षत्रैक्ये चरणभेदे शुभम्। अत्र राश्यैक्ये अतिशुभम्। राशिभेदेऽपि कूटदोषो न। नक्षत्रभेदे च शुभम्। अत्र नाडीगणादिदोषो न। चरणैक्यं 'षट्काष्टकं च वर्ज्यम्। द्विर्द्वादशके नवपञ्चमे च मध्यमम्। शेषे शुभम्। अत्र गुणाः—सत्कूटे सप्त दुःकूटे ग्रहमैत्रीसत्त्वे चत्वारः, अन्यथा एकः। चरणैक्ये गुणाभावः।

वधू वर की राशि दूसरी या बारहवीं हो तो निर्धन होता है। नवीं पांचवीं राशि हो तो पुत्र का अभाव, छठी आठवीं राशि हो तो मरण या विपत्ति होती है। दोनों की सातवीं, तीसरी, ग्यारहवीं, चौथी और दसवीं राशि शुभप्रद है। नक्षत्र एक हो पाद में भेद हो तो शुभ होता है। इसमें राशि एक हो तो अति शुभ है। राशिभेद में कूटदोष नहीं होता। नक्षत्रभेद में और राशि के ऐक्य में भी शुभ होता है। इसमें नाड़ी और गण आदि का दोष नहीं होता। छठे आठवें में चरणैक्य वर्जित है। दूसरे, बारहवें नवें और पांचवें में भी मध्यम है। शेष में शुभ है। सत्कूट में सात गुण, दुष्कूटमें ग्रहमैत्री होनेपर चार गुण और नहीं तो एक गुण। चरणैक्य में गुण नहीं होता।

---

१. वर कन्या के परस्पर षडष्टक आदि राशि के होने पर नारद का कहा फल—'षष्ठाष्टके मृतिर्नन्दनवमे त्वनपत्यता। नैःस्वं द्विर्द्वादशेऽन्येषु दम्पत्योः प्रीतिरुत्तमा॥' ज्योतिःप्रकाश में विशेषोक्ति—'पुंसो गृहात्सुतगृहे सुतहा च कन्या धर्मे स्थिता धनवती पतिपल्लभा च। द्विर्द्वादशे धनगृहे धनहा च कन्या रिष्फे स्थिता धनवती पतिवल्लभा च॥' वचनान्तरम्—'मृगः कुलीरेण घटेन सिंहो वैरप्रदः स्यात् समसप्तकोऽयम्। तुला वृषेणाथ वृषेण सिंहो मेषेण कीटो मिथुनेन मीनः॥ चापेन कन्या घटमेन चालिर्दौर्भाग्यदैन्ये दशतुर्यकेऽस्मिन्।'

वसिष्ठकश्यपोक्त दुष्टराशिकूट का परिहार—'द्विर्द्वादशं शुभं प्रोक्तं मीनादौ युग्मराशिषु। मेषादौ युग्मराशौ तु निर्धनत्वं न संशयः॥ आयुष्यसम्पत्सुतभोगसम्पत्पुत्रार्थसम्पत्पतिसौख्यसम्पत्। सौभाग्यसम्पद्धनधान्यसम्पज्झषादियुग्मे क्रमतः फलानि। अजादियुग्मे क्रमतः फलानि वैधव्यमृत्युर्वधबन्धनानि। वियोगसन्तापमतीव दुःखं वसिष्ठगर्गप्रमुखैः स्मृतानि॥' इति। परिहार के विशेष वचन मुहूर्तचिन्तामणि की पीयूषधारा में देखें।

अथ नाडीविचारः

अश्विन्यार्द्रापुनर्वसूत्तराफल्गुनीहस्तज्येष्ठामूलशततारकापूर्वाभाद्रपदेति प्रथमनाडी। भरणीमृगपुष्यपूर्वाफल्गुनीचित्रानूराधापूर्वाषाढाधनिष्ठोत्तराभाद्रपदेति मध्यमनाडी। कृत्तिकारोहिण्याश्लेषामघास्वातीविशाखोत्तराषाढाश्रवणरेवतीति चरमनाडी। अत्र नाड्यैक्ये मृत्युः। नाडीभेदेऽष्टौ गुणाः। नाड्यैक्यं[1] सर्वथा वर्ज्यम्। शूद्रादौ पार्श्वैकनाडीद्वयं संकटे शुभम्। अत्र [2]वर्णवश्यभकूटयोनिकूटानामल्पगुणत्वाद् विवाहविघटकत्वाभावाच्च स्वरूपं नोक्तम्।

अश्विनी, आर्द्रा, पुनर्वसु, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, ज्येष्ठा, मूल, शतभिष और पूर्वाभाद्रपदा, ये प्रथम नाड़ी हैं। भरणी, मृगशिर, पुष्य, पूर्वाफाल्गुनी, चित्रा, अनुराधा, पूर्वाषाढा धनिष्ठा और उत्तराभाद्रपदा, ये मध्यम नाड़ी हैं। कृत्तिका, रोहिणी, आश्लेषा, मघा, स्वाती, विशाखा, उत्तराषाढ़ा, श्रवण और रेवती, ये अन्त्य नाड़ी हैं। नाड़ी एक होने से मृत्यु होती है। नाड़ी-भेद में आठ गुण होते हैं। नाड़ी का एक होना सर्वथा वर्जित है। शूद्र आदि में पार्श्व की एक नाड़ी में दो (अश्विनी रोहिणी) संकट में शुभ हैं। इसमें वर्ण, वश्य, भकूट और योनिकूटों के अल्पगुण होने से विवाह-विघटन के अभाव से स्वरूप नहीं कहा है।

---

१. जगन्मोहन में नारद ने कहा है—'एका नाडी विवाहश्च गुणैः सर्वैः समन्वितः। वर्जनीयः प्रयत्नेन दम्पत्योर्निधनं यतः॥' गोदावरी नदी के दक्षिण में सभी वर्णों के लिये पार्श्वैकनाडी शुभावह है-'गोदादक्षिणतः क्वचिन्नृपमुखे पार्श्वैकनाडी हिता' इति। विवाह आवश्यक होने पर गुरु ने नाडी दोष में जपादि का निर्देश किया है—'दोषापनुत्तये नाड्या मृत्युञ्जयजपादिकम्। विधाय ब्राह्मणांश्चैव तर्पयेत् काञ्चनादिना॥ हिरण्मयीं दक्षिणां च दद्याद् वर्णादिकूटके। गावोऽन्नं वसनं हेम सर्वदोषापहारकम्॥' इति। विशेष पीयूषधारा में देखें।

२. अवशिष्ट वर्णादि-चतुष्टय का संक्षिप्त विचार दैवज्ञमनोहर में है। सर्वप्रथम वर्ण का गुण-विभाग—'एको गुणः सदृग्वर्णे तथा वर्णोत्तमे वरे। हीनवर्णे वरे शून्यं केऽप्याहुः सदृशे दलम्॥' यहां दल का आधा अर्थ है। वश्य का गुण-विभाग—'सख्यं वैरं च भक्ष्यं च वश्यमाहुस्त्रिधा बुधः। वैरे भक्ष्यगुणाभावो द्वयोः सख्ये गुणद्वयम्। वश्यवैरे गुणस्त्वेको वश्यभक्ष्ये गुणोऽधिकः।' इति।

ताराकूट—'कन्यर्क्षाद् वरभं यावत् कन्याभं वरमादपि। गणयेन्नवहृच्छेषे त्रीष्वमद्रिमसत् स्मृतम्॥' अर्थात् कन्या के जन्मनक्षत्र से वर के जन्मनक्षत्र और वर के जन्मनक्षत्र से कन्या के जन्मनक्षत्र पर्यन्त गिने, जो संख्या हो उसको नव से भाग दे ३, ५, ७ के शेष होने पर अशुभ और २, ४, ६, ८, ९ के शेष होने पर शुभ है।

ताराकूट का गुण-विभाग—'एकतो लभ्यते तारा शुभा चैवाशुभान्यतः। तदा सार्द्धो गुणश्चैव ताराशुद्धया मिथः स्त्रियः॥ उभयोर्न शुभा तारा तदा शून्यं समादिशेत्।' इति। अश्विनी आदि के क्रम से वसिष्ठोक्त योनिकूट—'अश्वेभमेषभुजगद्वयकुक्कुरौ तु मेषौ तु मूषकमयोन्दुरगोतुलायाः। शार्दूलमाहिषगवारिमृगद्वयं श्वा कीशोऽथ बभ्रयुगकीशगवाश्वसिंहाः॥'

योनिदोष का अपवादसहित फल—'एकयोनिषु सम्पत्यै दम्पत्योः सङ्गमः सदा। भिन्नयोनिषु मध्या स्यादरिभावो न चेत्तयोः॥ योनेरभावे नोद्वाहः स तु कार्यो वियोगदः। राशिर्वश्यं च यद्यस्ति कारयेन्न तु दोषभाक्॥'

योनिकूट का गुणविभाग—'अष्टाविंशतिताराणां योनयस्तु चतुर्दश। मैत्रं चैवातिमैत्रं च विवाहे नरयोषितोः॥ महद्वैरे च वैरे च स्वभावे च यथाक्रमम्। मैत्रे चैवातिमैत्रे च खेऽदुद्वित्रिचतुर्गुणाः॥' इति।

अत्र सर्वगुणमेलनेन विंशतिगुणसंभवे मध्यमम् । विंशत्यधिकगुणत्वेऽतिशुभम् । विंशत्यूनत्वे त्वशुभम् । इति नक्षत्रादिघटितविचारः ।

इसमें सब गुणों के मिलाने से बीस गुण हो तो मध्यम होता है । बीस से अधिक गुण होने पर अत्यन्त शुभ है । बीस से कम होने पर अशुभ है । नक्षत्रादिघटितविचार समाप्त ।

कन्याया अनन्यपूर्विकात्वम्

'अनन्यपूर्विकां कान्तामसपिण्डां यवीयसीम् ।
अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानार्षगोत्रजाम् ॥

इति याज्ञवल्क्याद्युक्तकन्याविशेषणेषु कान्तत्वनीरोगत्वभ्रातृमत्त्वभिन्नविशेषणानामभावे इह परत्र पातित्यात्तानि प्रपञ्च्यन्ते ।

कन्या अनन्यपूर्विका (पहले कोई अन्यपतिवाली नहीं), सुन्दरी हो, सपिण्ड की न हो, अवस्था और नाप में भी छोटी हो, असाध्य व्याधि वाली न हो, भाई वाली हो तथा समान-प्रवर-गोत्र की न हो, याज्ञवल्क्य आदि के कहे हुए इन सात विशेषणों में कान्तत्व नीरोगत्व भ्रातृमत्त्व से भिन्न विशेषणों के न रहने पर इस लोक और परलोक में पातित्य होने से उन विशेषणों का विस्तारपूर्वक निर्णय कहते हैं ।

तत्रान्यपूर्विका—पुरुषान्तरपूर्विका मनोदत्ता वाचा दत्ताऽग्निं परिगता सप्तमं पदं नीता भुक्ता गृहीतगर्भा प्रसूतेति सप्तविधपुनर्भूस्तद्भिन्नामनन्यपूर्विकाम् । सप्तपदीविधेः पूर्वमाद्यानां तिसृणां संकटेऽन्येन विवाहो भवति । सप्तपदीविधौ जाते बलाद्विवाहितापि नान्यत्र देया ।

उनमें अन्यपूर्विका जिसका दूसरा पुरुष पहिले हो, मन से दी हुई, वाणी से दी हुई, अग्नि के पास गई, सप्तपदी में सप्तपद तक गई हुई, भोग की हुई, गर्भवाली और प्रसव की हुई, ये सात प्रकार की पुनर्भू होती हैं इससे भिन्न को अनन्यपूर्विका कहते हैं । सप्तपदीविधि के पहिले पहिली तीन (मन से वाणी से दी हुई और अग्नि के पास गई) कन्याओं का संकट में दूसरे से विवाह होता है । सप्तपदीविधि हो जाने पर बल से कोई विवाह कर ले तब भी अन्य किसी को नहीं दे ।

अथ विवाहोपयोगिसापिण्ड्यनिर्णयः

असपिण्डां—समानः एकः पिण्डः पिण्डदानक्रिया मूलपुरुषशरीरं वा यस्याः सा सपिण्डा तद्भिन्नाम्[२] । तत्र—

---

१. अनन्यपूर्विकां = दानेन उपभोगेन वा पुरुषान्तरापरिग्रहीताम्, कान्तां = कमनीयां वोढुर्मनोनयनानन्दकारिणीम् । 'यस्यां मनश्चक्षुषोर्निबन्धस्तस्यामृद्धिः' इत्यापस्तम्बस्मरणात् । असमानार्षगोत्रजाम्—ऋषेरिदमार्षं नाम प्रवर इत्यर्थः । गोत्रं वंशपरम्पराप्रसिद्धम् । आर्षं च गोत्रं च आर्षगोत्रे, समाने आर्षगोत्रे यस्यासौ समानार्षगोत्रस्तस्माज्जाता समानार्षगोत्रजा, न समानार्षगोत्रजा असमानार्षगोत्रजा ताम् । अर्थात् समानप्रवर और समानगोत्र की जो नहीं हो । विष्णुपुराण में अविवाह्य कन्या का अन्यान्य-लक्षण हैं—'न श्मश्रुव्यञ्जनवतीं न चैव पुरुषाकृतिम् । नातिबद्धेक्षणां तद्वत्कृशाङ्गीं नोद्वहेत् स्त्रियम् । यस्यातिरोमशे जङ्घे गुल्फौ यस्यास्तथोन्नतौ । गण्डयोः कूपको यस्या हसन्त्याश्चैव जायते । नोद्वहेत्तादृशीं कन्यां प्राज्ञः कार्यविचक्षणः ।' इति ।

२. मनुः—'असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः । सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥' इति । देवलः—'पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतः क्रमात् । सपिण्डता निवर्तेत सर्ववर्णे-

लेपभाजश्चतुर्थाद्याः पित्राद्याः पिण्डभागिनः ।
पिण्डदः सप्तमस्तेषां सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम् ॥

इति मात्स्योक्तैरेकस्यां पिण्डदानक्रियायां दातृत्वपिण्डभाक्त्वलेपभाक्त्वान्यतमसंबन्धेन प्रवेशो निर्वाप्यसापिण्ड्यमिति केषांचिन्मतम्। अत्र स्त्रीणामपि पतिभिः सह कर्तृत्वात्सापिण्ड्यसिद्धिः ।

जिसका एक साथ पिण्डदान हो अथवा मूलपुरुष एक हो वह सपिण्डा कहलाती है, उससे भिन्न असपिण्डा हुई । चौथे पुरुष आदि लेपभागी होते हैं । पिण्डभागी पिता आदि होते हैं । उनमें सप्तम, पिण्ड देने वाला होता है । अतः साप्तपौरुष सापिण्ड्य होता है । इस मत्स्यपुराण के वचन से एक पिण्डदान क्रिया में पिण्डदातृत्व, पिण्डभाक्त्व और लेपभाक्त्व में से किसी एक के सम्बन्ध से प्रवेश को निर्वाप्य-सापिण्ड्य कहते हैं, यह किसी का मत है । इसमें स्त्रियों को भी पतियों के साथ कर्तृत्व होने से सापिण्ड्य की सिद्धि होती है ।

मूलपुरुषैकशरीरावयवान्वयेनावयवसापिण्ड्यमित्यपरं मतम्। यद्यपि भ्रातृपत्नीनां परस्परं नैतत्संभवति तथाप्याधारत्वेनैकशरीरान्वयः । एकमूलपुरुषावयवानां पुत्रद्वारा तास्वाधानादिति ज्ञेयम् ।

दूसरा मत यह है कि मूलपुरुष के एक शरीरावयव से अन्वय होने पर अवयव-सापिण्ड्य होता है । यद्यपि भाईकी स्त्रियों का आपस में यह सापिण्ड्य सम्भव नहीं है, फिर भी आधारत्व से एक शरीर का अन्वय होता है । क्योंकि उनके मूलपुरुष पृथक् पृथक् हैं फिर भी मूलपुरुषों के अवयवों का पुत्र द्वारा उन स्त्रियों में आधान होता है ।

उभयत्रापि गयादौ मित्रादेरपि पिण्डभाक्त्वादेकशरीरान्वयस्य सप्तमात्परेषु परश्शतेष्वपि सत्त्वाच्चातिप्रसङ्गप्राप्तेः ।

वध्वा वरस्य वा तातः कूटस्थाद्यदि सप्तमः ।
पञ्चमी चेत्तयोर्माता तत्सापिण्ड्यं निवर्तते ॥

इत्यादिवचनैर्निरासः । मातृत्वपितृत्वादिसंबन्धे सत्येव पञ्चमसप्तमपर्यन्तमेवेत्युभयनियमस्वीकारात् । तथा च पितृद्वारकसापिण्ड्यविचारे सप्तमादूर्ध्वं सापिण्ड्यनिवृत्तिः । मातृद्वारकसापिण्ड्यविचारे तु पञ्चमादूर्ध्वं तन्निवृत्तिरिति निर्णयः ।

ष्वयं विधिः ।' हारलता में शङ्खलिखितोक्तसापिण्ड्य—'सपिण्डता तु सर्वेषां गोत्रतः साप्तपौरुषी । पिण्डश्चोदकदानं च आशौचं च तदानुगम् ॥' ब्रह्मपुराणे—'सर्वेषामेव वर्णानां विज्ञेया साप्तपौरुषी । सपिण्डता, ततः पश्चात् समानोदकधर्मता ॥' नारदः—'आसप्तमात्पञ्चमाच्च बन्धुभ्यः पितृमातृतः । अविवाह्या सगोत्रा च समानप्रवरा तथा ॥' याज्ञवल्क्यः—'पञ्चमात् सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा ।' अर्थात् माता के संतान में पंचम से आगे और पिता के सन्तान में सप्तम से आगे सापिण्ड्य नहीं रहता । माता से आरम्भ करके माता और माता के पितृपितामहादि की गणना करने पर पंचम संतान माता से पांचवीं हुई । इसीतरह पिता से आरम्भ करके पिता और पिता के पितृपितामहादि की गणना करने पर सप्तम सन्तान पिता से सातवीं हुई । सभी स्मृतियों की एकवाक्यता के लिये पैठीनसिका—'त्रीनतीत्य मातृतः पञ्चातीत्य च पितृतः' यह वचन उसके पूर्व का निषेध के लिये है, न कि विधान के लिये । अतः सभी स्मृति-वचनों का पर्यालोचन से यह सिद्ध है कि माता से पांच और पिता से सात पीढ़ी छोड़कर विवाह करना चाहिये ।

दोनों जगह गया आदि में भिन्न आदि को भी पिण्ड दिया जाता है इससे एक शरीरान्वय का सप्तम पुरुष के बाद सैकड़ों में सपिण्ड होने के अतिप्रसंग की प्राप्ति में कहते हैं—वधू या वर का पिता कूटस्थ-पुरुष से यदि सातवां है और वधू वर की माता पांचवीं है तो उसका सापिण्डय-निवृत्त हो जाता है, इत्यादि वचनों से सप्तम पुरुष के बाद वाले सैकड़ों की अतिप्रसक्ति का निराकरण होता है, क्योंकि इन दोनों नियमों के स्वीकार से मातृत्व पितृत्व आदि सम्बन्ध के रहने पर ही पंचम सप्तम तक ही सापिण्डय होता है। इससे सिद्ध हुआ कि पितृद्वारक सापिण्ड्य के विचार में सप्तम के बाद साण्डियकी निवृत्ति होती है। मातृद्वारक साविण्ड्य के विचार में तो पांचवें के बाद साण्डिय की निवृत्ति होती है, यह निर्णय है।

अत्रोदाहरणानि

विष्णुर्मूलभूतः

कान्तिः	२	गौरी	२
सुधीः	३	हरः	३
बुधः	४	मैत्रः	४
चैत्रः	५	शिवः	५
गणः	६	भूपः	६
मृडः	७	अच्युतः	७
रतिः	८	कामः	८

अत्र रतिकामयोरष्टमयोर्विवाहः पितृद्वारकत्वात् ।

विष्णुर्मूलभूतः

दत्तः	२	चैत्रः	२
सोमः	३	मैत्रः	३
सुधीः	४	बुधः	४
श्यामा	५	रतिः	५
शिवः	६	गौरी	६

अत्र गौरीशिवयोः षष्ठयोर्विवाहः मातृद्वारकत्वात् ।

विष्णुर्मूलभूतः

दत्तः	२	चैत्रः	२
सोमः	३	मैत्रः	३
सुधीः	४	बुधः	४
श्यामा	५	नर्मदा	५
शिवः	६	कामः	६
रमा	७	कविः	७

अत्र रमाकव्योर्न विवाहः मण्डूकप्लुत्या साण्डिचानुवृत्तेः ।

विष्णुर्मूलभूतः

दत्तः	२	चैत्रः	२
सोमः	३	मैत्रः	३
सुधीः	४	बुधः	४
श्यामा	५	शिवः	५
कान्तिः	६	हरः	६

अत्र कान्तिहरयोर्न विवाहः एकतो निवृत्तावपि अन्यतोऽनुवृत्तेः ।

मूलपुरुष-विष्णु

कान्ति	२	गौरी	२
सुधी	३	हर	३
बुध	४	मैत्र	४
चैत्र	५	शिव	५
गण	६	भूपः	६
मृड	७	अच्युत	७
रति	८	काम	८

इनमें रति और काम आठवीं पीढ़ी का विवाह होता है क्योंकि यहां पिता के द्वारा सपिंड की निवृत्ति हो गयी है।

मूलपुरुष-विष्णु

दत्त	२	चैत्र	२
सोम	३	मैत्र	३
सुधी	४	बुध	४
श्यामा	५	रति	५
शिव	६	गौरी	६

इनमें गौरी और शिव छठे का विवाह होता है क्योंकि माता के द्वारा साण्डिय निवृत्त हो गया है।

मूलपुरुष-विष्णु

दत्त	२	चैत्र	२
सोम	३	मैत्र	३
सुधी	४	बुध	४
श्यामा	५	नर्मदा	५
शिव	६	काम	६
रमा	७	कवि	७

इनमें रमा और कवि का विवाह नहीं होता क्योंकि यहां मण्डूकप्लुति से सापिण्डय का अनुवर्तन होता है।

मूलपुरुष-विष्णु

दत्त	२	चैत्र	२
सोम	३	मैत्र	३
सुधी	४	बुध	४
श्यामा	५	शिव	५
कान्ति	६	हर	६

इनमें कान्ति हर का विवाह नहीं होता क्योंकि एक ओर से साण्डिय की निवृत्ति होने पर भी दूसरी ओर से साण्डिय का अनुवर्तन होता है।

विष्णोर्मूलात्कान्तिगौर्यौ जातौ ताभ्यां सुधीहरौ ।
बुधमैत्रौ चैत्रशिवौ गणभूपौ मृडाच्युतौ ॥
तज्जातयोरष्टमयोर्विवाहो रतिकामयोः ।

मूलपुरुष विष्णु से कान्ति और गौरी पैदा हुईं। कान्ति से सुधी और गौरी से हर उत्पन्न हुए। सुधी से बुध हुए और बुध से चैत्र और मैत्र से शिव उत्पन्न हुए। चैत्र से गण और शिव से भूप हुए। एवं गण से मृड और भूप से अच्युत हुए तथा मृड से रति और अच्युत से काम उत्पन्न हुए। इनमें आठवें काम और रति का विवाह होता है, क्योंकि वहां पिता के द्वारा सापिण्ड्य निवृत्त है।

विष्णोर्मूलाद्दत्तचैत्रौ सोममैत्रौ सुधीबुधौ ॥
ताभ्यां श्यामारती तज्जशिवगौर्योः करग्रहः ।

विष्णु से दत्त और चैत्र उत्पन्न हुए। दत्त से सोम और चैत्र से मैत्र हुए। सोम से सुधी और मैत्र से बुध उत्पन्न हुए। सुधी से श्यामा और बुध से रति हुई। श्यामा से शिव और रति से गौरी उत्पन्न हुईं। इनमें छठे गौरी-शिव से विवाह होगा, क्योंकि माता के द्वारा सापिण्ड्य निवृत्त हो गया है।

विष्णोर्मूलाद्दत्तचैत्रौ सोममैत्रौ सुधीबुधौ ॥
ताभ्यां श्यामा नर्मदा च शिवकामौ रमाकवी ।
मण्डूकप्लुतिसापिण्ड्यं रमाकव्योर्विवाहहृत् ॥

मूलपुरुष विष्णु से दत्त-चैत्र-सोम-मैत्र, इनसे सुधी बुध, इनसे श्यामा और नर्मदा, फिर इनसे शिव-काम, फिर उनसे रमा और कवि, ये पुत्री और पुत्र हुये। इनमें रमा और कवि का विवाह नहीं होगा, क्योंकि यहाँ मंडूकप्लुति से सापिण्ड्य की अनुवृत्ति होती है। यद्यपि माता का सापिण्ड्य निवृत्त हो चुका है फिर भी पिता के छठी पीढ़ी पर होने से पिता के द्वारा सापिण्ड्य है।

विष्णोर्मूलाद्दत्तचैत्रौ सोममैत्रौ सुधीबुधौ ।
श्यामाशिवौ कान्तिहरौ हरकान्ती न दम्पती ॥
निवृत्तमप्येकतस्तदन्यतस्त्वनुवर्तते ।
दिङ्मात्रेणोदाहृतात्र सेयं सापिण्ड्यपद्धतिः ॥

मूलपुरुष विष्णु उनसे दत्त और चैत्र उत्पन्न हुए। दत्त से सोम और चैत्र से मैत्र हुए। सोम से सुधी और मैत्र से बुध उत्पन्न हुए। एवं सुधी से श्यामा और बुध से शिव हुये तथा श्यामा से कान्ति और शिव से हर उत्पन्न हुए। इनमें कान्ति हर का विवाह नहीं हो सकता। क्योंकि एक पक्ष से सापिण्ड्य की निवृत्ति होने पर भी दूसरे से सापिण्ड्य की अनुवृत्ति होती है। यहां दिङ्मात्र से सापिण्ड्य-पद्धति का उदाहरण दिखलाया है।

अथ मण्डूकप्लुतिसापिण्ड्यम्

कूटस्थात्पंचम्योः कन्ययोः संततौ मातृद्वारकत्वात्सापिण्ड्यनिवृत्तिः। पंचम्योः कन्ययोर्यौ पुत्रौ तयोः संततौ पितृद्वारकत्वात्सापिण्ड्यमनुवर्तते इतीदं मण्डूकप्लुति-सापिण्ड्यम्। पंचम्याः कन्यायाः पुत्रस्य षष्ठस्य कूटस्थात् पञ्चमादिः सपिण्डो न भवति तथापि द्वितीयसंततिपंक्तौ पञ्चमषष्ठादेः पितृद्वारकत्वादिना सापिण्ड्यसत्त्वा-

देकतो निवृत्तावप्यन्यतोनुवृत्त्या पञ्चमषष्ठादिना पञ्चम्याः कन्यायाः संततिर्न विवाह्या। एवं कूटस्थमारभ्याष्टमादेः कूटस्थमारभ्य द्वितीयादेश्चैकतो निवृत्ति-परतोऽनुवृत्त्योः सत्त्वमूह्यम्। एवमाशौचविषयकसापिण्ड्येऽपि एकतोऽनुवृत्त्यादिकं यथासंभवं सर्वमूह्यम्।

मूलपुरुष से पांचवीं कन्याओं की सन्तति में मातृद्वारक होने से सापिण्डय की निवृति होती है। पांचवीं कन्याओं के जो दो पुत्र हैं उनकी सन्तति में पितृद्वारक होने से सापिण्डय की अनुवृत्ति होती है। इसी को मण्डूकप्लुति सापिण्डय कहते हैं। पांचवी कन्या का छठे पुत्र का मूलपुरुष से पांचवीं आदि सन्तति सपिण्ड नही होती तब भी दूसरी सन्तति की पक्ति में पांचवें छठे आदि के पितृद्वारकत्व आदि होने से सापिण्ड्य रहने के कारण एक ओर से सापिण्ड्य की निवृत्ति होने पर भी दूसरी ओर से सापिण्ड्य की अनुवृत्ति होने से पांचवें छठे आदि से पांचवीं कन्या की सन्तान विवाहयोग्य नहीं होती। इसी प्रकार कूटस्थ पुरुष से आरंभ कर आठवीं आदि सन्तति का और कूटस्थ से आरंभ कर दूसरी आदि सन्तति का एक तरफ से निवृत्ति और दूसरी तरफ से अनुवृत्ति का होना कल्प्य है। तथा आशौच-विषयक-सापिण्ड्य में भी एक तरफ से अनुवृत्ति आदि यथासम्भव सब कल्पनीय है।

एवं पितृद्वारकसापिण्ड्यं सप्तमादूर्ध्वं निवर्तते। मातृद्वारकं तु पञ्चमादूर्ध्वमिति मुख्यकल्पेन वर्जनीयानां कन्यानां संख्या चेत्थं संपद्यते—पितृकुले षोडशाधिकद्वि-साहस्री २०१६ मातृकुले पञ्चोत्तरशतम् १०५ कुलद्वये मेलनेनैकविंशत्युत्तर-शताधिकसहस्रद्वयसंख्या २१२१ कन्या वर्ज्याः संपद्यन्ते। अत्र गणनाप्रकारस्तत्र मूलश्लोकास्तद्व्याख्या च कौस्तुभे स्पष्टा बालानां दुर्बोधतया नेहोच्यते।

इस प्रकार पितृद्वारक सापिण्डय सातवें के बाद निवृत्त होता है और मातृद्वारक सापिण्डय तो पांचवें के वाद निवृत्त होता है इस मुख्य कल्प से अविवाह्य कन्याओं की संख्या इस प्रकार से सम्पन्न होती है—पितृकुल में दो हजार सोलह, मातृकुल में एक सौ पांच, दोनों कुल में मिलाने से दो हजार एक सौ इक्कीस वर्ज्य कन्या होती हैं। इसमें गणना का प्रकार और मूल श्लोक और उसकी व्याख्या भी कौस्तुभ में स्पष्ट है, अल्पज्ञ वालकों के दुर्बोध होने से यह नही कहता हूँ।

तथा च मुख्यकल्पेन कुलद्वये एतावत्यो वर्जनीया एव न त्वनुकल्पानुसरणेन सप्तमात्पञ्चमादर्वाग्विवाहः कार्यः,

> पञ्चमे सप्तमे चैव येषां वैवाहिकी क्रिया।
> क्रियापरा अपि हिते पतिताः शूद्रतां गताः॥
> सप्तमात्पञ्चमाद्धीमान्यः कन्यामुद्वहेद् द्विजः।
> गुरुतल्पी स विज्ञेयः सगोत्रां चैवमुद्वहन्॥ इत्यादिस्मृतिभ्यः।

यानि तु—

> चतुर्थीमुद्वहेत्कन्यां चतुर्थः पञ्चमो वरः।
> तृतीयां वा चतुर्थीं वा पक्षयोरुभयोरपि॥

इत्यादिवचनानि तेषु कानिचिन्निर्मूलानि कानिचिद्दत्तकसापत्न्यादिसंबन्ध-विषयतया विप्राणां क्षत्रियादिषु सापिण्ड्यविषयतया वा नेयानीति निर्णय-सिन्धुमतम्।

इससे यह सिद्ध हुआ कि मुख्य कल्प से दोनों कुल में इतनी संख्या की कन्या वर्जनीय ही हैं न कि कल्प का अनुसरण करके, सप्तम और पंचम से पहले विवाह करना चाहिये। स्मृतियों के अनुसार—पांचवे सातवें में जिनकी विवाह-क्रिया होती है क्रियानिष्ठ भी वे पतित हैं और शूद्रता के पात्र हैं। जो बुद्धिमान् द्विज सातवीं पाचवीं और सगोत्रा कन्या से विवाह करते हैं उन्हें गुरुपत्नीगमन करने वाला जानना चाहिये। सातवें और पांचवें से पहिले विवाह नहीं करे। जो वचन—चौथा और पांचवां वर का तीसरी और चौथी कन्या से दोनों पक्षों में विवाह करने को कहते हैं, इन वचनों में कुछ तो निर्मूल हैं और कुछ दत्तक सापत्न्यादि सम्बन्ध से ब्राह्मणों के क्षत्रियादि सापिण्ड्य-विषयक लगाने चाहिये, यह निर्णयसिन्धु का मत है।

अथ सापिण्ड्यसंकोचविचारः

कौस्तुभे तु—

उद्वहेत्सप्तमादूर्ध्वं तदभावे तु सप्तमीम्।
पञ्चमीं तदभावे तु पितृपक्षेऽप्ययं विधिः॥
सप्तमीं च तथा षष्ठीं पञ्चमीं च तथैव च।
एवमुद्वाहयेत्कन्यां न दोषः शाकटायनः॥
तृतीयां वा चतुर्थीं वा पक्षयोरुभयोरपि।
विवाहयेन्मनुः प्राह पाराशर्यो यमोऽङ्गिराः॥
यस्तु देशानुरूप्येण कुलमार्गेण चोद्वहेत्।
नित्यं स व्यवहार्यः स्याद् वेदाच्चैतत्प्रतीयते॥

इत्यादिवचनानां चतुर्विंशतिमतषट्त्रिंशन्मतादिषूपलभ्यमानत्वात् सापिण्ड्यसंकोचेन विवाहस्य बहुदेशेषु दर्शनाच्च।

कौस्तुभ में तो सप्तम के बाद विवाह करे, उसके अभाव में सातवीं, उसके अभाव में पांचवीं से भी विवाह करे यह पितृपक्ष की विधि है। सातवीं, छठी और पांचवीं कन्या से विवाह करने में दोष नहीं है, ऐसा शाकटायन का वचन है। दोनों पक्ष में तीसरी या चौथी कन्या का विवाह करे, ऐसा मनु, व्यास, यम और अंगिरा कहते हैं। जो देश-धर्मानुसार और कुल परम्परा के अनुसार ऐसा विवाह करता है वह व्यवहार्य होता है वेद से भी यह बात जानी जाती है। क्योंकि ये वचन चतुर्विंशतिस्मृति और षट्त्रिंशत्स्मृति आदि में उपलब्ध होते हैं और सापिण्ड्य संकोच से बहुत देशों में विवाह देखे जाते हैं।

येषां कुले देशे चानुकल्पत्वेन सापिण्ड्यसंकोचः परंपरया समागतस्तेषां सापिण्ड्यसंकोचेन विवाहो न दोषाय। स्वकुलदेशविरुद्धेन सापिण्ड्यसंकोचेन विवाहे दोषो भवत्येव। जनपदधर्मा ग्रामधर्माश्च तान्विवाहे प्रतीयात्।

येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः।
तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न दुष्यति॥

इत्यादिवाक्यैः स्वकुलदेशाचाराविरुद्धस्यैव शास्त्रस्य विवाहेऽनुसर्तव्यत्वात्।

जिनके कुल या देश में अनुकल्पत्व से सापिण्ड्य-संकोच से विवाह करने में दोष नहीं है। अपने कुल और देश के विरुद्ध सापिण्ड्य-संकोच से विवाह करने में तो दोष होता ही है। जनपदधर्म

और ग्रामधर्म विवाह में मानना चाहिए। क्योंकि जिस मार्ग से पिता और पितामह चले उन सज्जनों के मार्ग से चलने में दोष नहीं होता, इत्यादि वाक्य से विवाह में कुलाचार और देशाचार के अविरुद्ध ही शास्त्र अनुसरणीय होता है।

एवं मातुलकन्यापरिणयनेऽपि 'तृप्तां जुहुर्मातुलस्येव योषा भागस्ते पैतृष्वसेयी वपामि वा' इति 'मन्त्रलिङ्गैः—

मातुलस्य सुतामूढ्वामातृगोत्रां तथैव च।
समानप्रवरां चैव त्यक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥

इत्यादिस्मृतीनां बाधाद् येषां कुले मातुलकन्यापरिणयः परंपराप्राप्तस्तैः स कार्यः। 'गोत्रान्मातुः सपिण्डाच्च विवाहो गोवधस्तथा' इति मातुलकन्याविवाहस्य कलिवर्ज्यत्ववचनमपि येषां कुले देशे मातुलकन्याविवाहो नास्ति तत्परम्। मातुलकन्यापरिणयनस्यानेकश्रुतिस्मृतिसिद्धत्वात्।

इसी प्रकार मामा की कन्या से विवाह करने में भी जानना चाहिये। क्योंकि 'तृप्तां जुहुर्मातुलस्येव योषा भागस्ते पैतृष्वसेयी वपामि वा' इस मन्त्र के प्रमाण से मामा की लड़की से तथा मातृ-गोत्रा से और एक प्रवर की कन्या से विवाह करके उसका त्याग कर चान्द्रायण-प्रायश्चित्त करे इत्यादि स्मृतियों का बाध होता है। जिनके कुल में मामा की कन्या से विवाह परम्परा से होता आया है उनको वह करना चाहिये। 'माता के गोत्र की कन्या और सपिण्ड कन्या से विवाह तथा गोवध' यह मामा की कन्या से कलि वर्ज्यत्व का स्मृति-वचन जिनके कुल और देश में मामा की कन्या से विवाह नहीं होता उन्हीं के लिये है। क्योंकि मामा की कन्यासे विवाह अनेक श्रुति-स्मृतियों से सिद्ध है।

अत एव मातुलकन्योद्वाहिनां श्राद्धे निमन्त्रणनिषेधोऽपि स्वकुलाचारादिविरोधेन तदुद्वाहिपरः। उक्तविधसापिण्डयसंकोचेन विवाहं कुर्वतां शिष्टैः श्राद्धादौ भोजनाद्याचारादित्यादिबहूपपादितम्। परं तु सापिण्डयसंकोचस्वीकारेपि कतिथी कन्या कतिथेन पुरुषेण विवाह्या कतिथेन न विवाह्येति व्यवस्था नोपपादिता।

इसलिये मामा की कन्या से विवाह करने वालों का श्राद्ध में निमन्त्रण का निषेध भी अपने कुलाचार आदि के विरोध से उससे विवाह करने वालों के लिये है। कहे हुए प्रकार से सापिण्ड्यका का संकोच कर विवाह करने वालों का श्राद्ध आदि में भोजन आदि का आचार शिष्ट लोगों के यहां भी है इत्यादि बहुत उपपादन किया है। सापिण्ड्यसंकोच के स्वीकार में भी किस कन्याको किस पुरुष से विवाह करना चाहिये और किस से नहीं करना चाहिए, इस व्यवस्था का उपपादन नहीं किया है।

---

१. और 'गर्भे नु नौ जनिता दम्पतीकः' इस मन्त्र से तथा शातातप के—'मातृष्वसृसुतां केचित् पितृष्वसृसुतां तथा। विवहन्ति क्वचिद्देशे संकोच्यापि सपिण्डताम्।' इस वचन से कोई मातृष्वसृसुता (मौसी की लड़की) और पितृष्वसृसुता (फूआ की लड़की) से विवाह करते हैं वह दूषित है। तृप्तां जुहुरित्यादिमन्त्रस्यार्थः—'हे इन्द्र ! ईडितैः प्रशस्तैः पथिभिर्मार्गैर्नोऽस्माकं यज्ञमायाहि आगत्य च तृप्ताज्यप्लुतां वपां भागधेयं जुषस्व सेवस्व। तत्र दृष्टान्तद्वयम् —मातुलस्य जुहुः अपत्यं योषा स्त्री भागिनेयस्य भाग इव, पैतृष्वसेयी च मातुलपुत्रस्य भाग इव चेति।

अथ सापिण्ड्यसंकोचव्यवस्था

सापिण्ड्यदीपिकाकारादयोऽर्वाचीनास्तु—

चतुर्थीमुद्वहेत्कन्यां चतुर्थः पञ्चमो वरः।
पराशरमते षष्ठी पञ्चमो न तु पञ्चमीम्॥

इत्यादिवचनानां समूलत्वं निश्चित्य अशक्तैः संकटे समाश्रयणीयस्य सापिण्ड्यसंकोचस्य व्यवस्थामूचुः। तथा हि—चतुर्थी कन्या पितृपक्षे मातृपक्षे च चतुर्थेन पञ्चमेन वा पुंसा विवाह्या। द्वितीयतृतीयषष्ठाद्यैश्चतुर्थी नोद्वाह्या।

सापिण्ड्यदीपिका की रचना करने वाले आजकल के लोग तो पराशर के मतमें चौथा और पांचवां वर चौथी कन्या से विवाह करे और पांचवां छठी से, पंचम वर पांचवीं कन्या से न करे इत्यादि वचनों के समूलत्व का निश्चय करके संकट में सापिण्ड्य-संकोच का आश्रयण कर अशक्त लोगों के लिये ऐसी व्यवस्था कहते हैं। वह इस प्रकार है—पितृपक्ष में चौथी कन्या मातृपक्ष के चौथे या पांचवें पुरुष से विवाह-योग्या होती है। दूसरे तीसरे और छठे आदि पुरुष से चौथी का विवाह न करे।

पराशरमते पञ्चमः षष्ठीमुद्वहेत्। द्वितीयतृतीयचतुर्थादिः षष्ठीं नोद्वहेत्। पञ्चमः पञ्चमीं नोद्वहेत्। 'मातृतः पितृतश्चापि षष्ठः षष्ठीं समुद्वहेत्' इति वचनान्तरात् षष्ठेनापि षष्ठी विवाह्या। पञ्चमषष्ठभिन्नैः षष्ठी न विवाह्येति पर्यवसन्नम्। तथा पितृपक्षे सप्तमी मातृपक्षे पञ्चमी च तृतीयाद्यैः सर्वैः परिणेया। पितृपक्षाच्च सप्तमीं मातृपक्षात्तु पञ्चमीमिति व्यासवचनात्।

उद्वहेत्सप्तमादूर्ध्वं तदभावे तु सप्तमीम्।
पञ्चमीं तदभावे तु पितृपक्षेऽप्ययं विधिः॥

इति चतुर्विंशतिमतोक्तेश्च।

पराशर के मत में पंचम वर छठी कन्या से विवाह करे। दूसरा, तीसरा और चौथा आदि पुरुष छठी कन्या से विवाह न करे। पांचवां पांचवीं से विवाह न करे। माता और पिता से छठा पुरुष छठी कन्या से विवाह करे इस दूसरे वचन से छठा भी छठी कन्या से विवाह करे। इससे सिद्ध हुआ कि पांचवें छठे से भिन्न पुरुष छठी कन्या विवाह-योग्या नहीं है। एवं पितृपक्ष में सातवीं, मातृपक्ष में पांचवीं तृतीय आदि सबसे विवाह-योग्या है। क्योंकि व्यास का वचन है—पितृपक्ष से सातवीं मातृपक्ष से तो पांचवीं विवाह-योग्या है और चतुर्विंशतिमत की उक्ति है—सातवें के बाद विवाह करना चाहिये इसके अभाव में तो सातवीं से, इसके अभाव में भी पांचवीं से करे। पितृपक्ष में भी यह विधि है।

पितृपक्षेऽपि पञ्चमी तृतीयाद्यैः परिणेया। तत्रापि मातृपक्षे पितृपक्षेऽपि पञ्चमेन पञ्चमी नोद्वाह्या। पञ्चमो न तु पञ्चमीति सर्वत्र निषेधात्। तृतीयां वा चतुर्थीं वा पक्षयोरुभयोरपीति वचनात्तु तृतीया विवाह्या प्राप्नोति।

पितृपक्ष में भी पांचवीं कन्या तीसरे आदि से विवाह-योग्या है। उसमें भी मातृपक्ष और पितृपक्ष में भी पांचवें वर से पांचवीं कन्या विवाह-योग्या नहीं है। क्योंकि इसका निषेध सर्वत्र है—

पाचवां पांचवीं से विवाह न करे। तीसरी या चौथी से दोनों पक्षों में, इस वचन से तो तीसरी भी विवाह-योग्या हो जाती है।

तत्र व्यवस्थोच्यते—मातृपक्षे तावत्तृतीया मातुलकन्या मातृष्वसृकन्या वा संभवति। पितृपक्षे तु तृतीया पितृव्यकन्या पितृष्वसृकन्या वा। तत्र पितृव्यकन्या सगोत्रत्वात्त्याज्या—

पैतृष्वसेयीं भगिनीं स्वस्रीयां मातुरेव च।
एतास्तिस्रस्तु भार्यार्थे नोपयच्छेत बुद्धिमान्॥ इति मनूक्तेः।

पितृष्वसृमातृष्वसृकन्ये अपि त्याज्ये। पितृष्वसृकन्यां मातुर्भगिनीं मातृष्वसारं मातुःस्वस्रीयां मातृष्वसृकन्यामेतास्तिस्रो नोद्वहेदिति तदर्थात्।

उसमें व्यवस्था कहते हैं—मातृपक्षमें तीसरी मामा की लड़की या मौसी की लड़की हो सकती है। पितृपक्ष में तो तीसरी चाचा की कन्या या बुआ की कन्या उसमें चाचा की कन्या सगोत्र होने से त्याज्य है। मनु के—बुआ की कन्या बहिन होती है और मौसी की कन्या भी, इन तीनों को स्त्री बनाने के लिये बुद्धिमान् ग्रहण न करे। इस आशय के वचन से मौसी और बुआ की लड़की भी त्याज्य है। क्योंकि बुआ की लड़की मौसी और मौसी की लड़की ये ही तीनों विवाह में वर्ज्य हैं, यही इसका अर्थ है।

अथ सापिंडचसंकोचसंग्रहः

मातुलकन्यैव तृतीया पूर्वोक्तरीत्या कुलपरंपरागतत्वे परिणेया। एवं च तृतीयापि तृतीयेनैव मातुलकन्यैव परिणेया, न चतुर्थादिना केनापि। केचित्संकटे पितृष्वसृकन्यापरिणयनमाहुः। तत्र [1]देशकुलाचाराद्व्यवस्था ज्ञातव्या।

मामा की कन्या ही तीसरी है, पूर्वोक्त रीति से कुलपरम्परागत है तो विवाह-योग्या है। इसी प्रकार तीसरी भी तीसरे ही पुरुष से मामा की कन्या की तरह विवाह-योग्या है, किसी चतुर्थादि से नहीं। कुछ लोग संकट में बुआ की कन्या से विवाह करने को कहते हैं। उसमें देशाचार और कुलाचार से व्यवस्था जाननी चाहिये।

अत्रायं सापिण्ड्यदीपिकादिसिद्धार्थसंग्रहः—तृतीया मातुलकन्यैवोद्वाह्या। चतुर्थी चतुर्थपञ्चमाभ्यामेव, पञ्चमी पञ्चमभिन्नैस्तृतीयाद्यैः सप्तमान्तैः, षष्ठी पञ्चमषष्ठाभ्यामेव, सप्तमी तृतीयाद्यैः सप्तमान्तैरिति। अयं सापिंडचसंकोचेन विवाहः संकटेष्वशक्तेन कार्यः। कन्यान्तरलाभे शक्तैर्न कार्यः, गुरुतल्पादिदोषस्मृतेः। सापिंडचसंकोचवाक्यानामशक्तविषयत्वस्य स्पष्टत्वात्। 'प्रभुः प्रथमकल्पस्य योऽनुकल्पेन वर्तते। स नाप्नोति फलं चेह' इति शक्तैरनुकल्पस्वीकारे दोषोक्तेः। दत्तकसापिंडचं दत्तकनिर्णये प्रागेवोक्तम्।

यहाँ सापिण्ड्यदीपिका आदि से सिद्ध अर्थ का संग्रह है—तीसरी मामा की कन्या ही विवाहयोग्या है। चौथी चौथे और पांचवें वर से, पांचवी पांचवें से भिन्न तीसरे आदि से सातवें तक और छठी पांचवें छठे ही से और सातवीं तीसरे आदि से सातवें तक सापिण्ड्य-संकोच से विवाह्य है।

---

१. संस्कारकौस्तुभे—'कलावपि येषां कुले देशे अनुकल्पत्वेन सापिण्ड्यसंकोचः परम्परया समागतः, तेषां तादृशसङ्कोचेन विवाहे न दोषः। अस्ति च भार्यात्वोपपत्तिः। अन्येषां तैः सह व्यवहारे नैव दोषः।' इति।

यह विवाह अशक्त-पुरुष द्वारा संकटों में करणीय है। दूसरी कन्या के मिलने पर समर्थ को नहीं करना चाहिये। क्योंकि गुरुतल्प आदि दोष की स्मृति है और सापिण्ड्य-संकोच के वाक्यों का असमर्थ विषयत्व की स्पष्टता है। क्योंकि प्रथमकल्प को जो कर सकता है वह यदि अनुकल्प से व्यवहार करता है तो इस लोक में फल नहीं पाता। इससे समर्थों के लिये अनुकल्प के स्वीकार में दोष कहा है। दत्तक का सापिण्ड्य दत्तक के निर्णय में पहिले ही कह चुके हैं।

अथ सापत्नमातृसापिण्ड्यविचारः

अथ सापत्नमातृकुले सापिण्ड्यप्रकारं सुमंतुराह—'पितृपत्न्यः सर्वा मातरस्तद्भ्रातरो मातुलाः तद्भगिन्यो मातृष्वसारः तद्दुहितरश्च भगिन्यः तदपत्यानि भागिनेयानि अन्यथा संकरकारिणः स्युः'रति। अत्र लक्षणया सापत्नमातृकुले चतुःपुरुषसापिण्ड्यं विवाहनिषेधाय विधीयत इति केचित्।

सौतेले मातृकुल में सापिण्ड्य का प्रकार सुमन्तु ने कहा है—पिता की सभी पत्नियां माता हैं। माताओं के भाई मामा हैं। उनकी मां की बहिनें मौसी हैं। मौसी की लड़कियां बहिनें हैं। बहिनों के सन्तान भानजे भानजी हैं। इन्हें सपिण्ड नहीं मानने पर ये संकर करने वाले होंगे। कोई कहते हैं कि इसमें लक्षणा से सापत्न मातृकुल में चार पुस्त का सापिण्ड्य विवाह-निषेध के लिये विहित है।

अपरे तु विवाहमात्रविषयत्वे मानाभावादाशौचादिविषयकत्वस्यापि संभवाद् यावद्वाचनिकं प्रमाणमिति न्यायेन परिगणितेष्वेव सापिण्ड्यमिति वदन्ति। तथा च 'सुमन्तुवाक्ये वाक्यभेदाश्रयणेनैवं वाक्यार्थाः पर्यवस्यन्ति। पितृपत्न्यः सर्वा मातर इति प्रथमवाक्ये सापत्नमातरि मुख्यमातृवत् संमाननं तद्वधे मातृवधप्रायश्चित्तं तद्गमने मातृगमनप्रायश्चित्तादिकं चातिदिश्यते। नात्रातिक्रान्तविषये दशाहाशौचातिदेशः, त्रिरात्रविधिना बाधात्। तद्भ्रातरो मातुला इत्यत्र मातुलत्वप्रयुक्तमाशौचादिकं मातुलस्य स्वभगिनीसपत्न्याः कन्योद्वाहनिषेधश्च।

दूसरे कहते हैं कि केवल विवाह के लिये है इसमें प्रमाण के अभाव से आशौचादि विषय भी सम्भव है 'जितना वाचनिक है वही प्रमाण है' इस न्याय से परिगणितों ही में सापिण्ड्य होता है, इसी तरह सुमंतु-वाक्य में वाक्यभेद के आश्रयण से इस प्रकार वाक्यार्थ सिद्ध होते हैं। पिता की पत्नियां सभी माता हैं इस पहिले वाक्य में सौतेली माता में मुख्य माता के समान सम्मान है। उसके मारने में मातृवध का प्रायश्चित्त है। उससे गमन करने में मातृगमन प्रायश्चित्त आदि का भी अतिदेश है। इसमें अतिक्रान्त-आशौच के विषय में दशाहाशौच का अतिदेश नहीं करते, क्योंकि उसका त्रिरात्रविधि से बाध होता है। उसके भाई मामा होते हैं इसमें मातुलत्व-प्रयुक्त आशौच आदि का और मामा की अपनी बहिन की सौत की कन्या के विवाह का निषेध होता है।

अत्र मातुलत्वातिदेशेऽपि न तत्पुत्रादिषु मातुलपुत्रत्वाद्यतिदेशः। तेन बन्धुत्रयत्वप्रयुक्तमाशौचं न मातुलकन्यादौ विवाहविधिनिषेधावपि न। एवं मातुल-

---

१. सुमन्तुवाक्यम्—'मातृपितृसम्बद्धा आसप्तमादविवाह्या भवन्ति। आपञ्चमादन्येषां, पितृपत्न्यः सर्वा मातरस्तद्भ्रातरो मातुलास्तद्भगिन्यो मातृष्वसारस्तद्दुहितरश्च भगिन्यस्तदपत्यानि भागिनेयानि। अन्यथा संकरकारिणः स्युस्तथाऽध्यापयितुरेतदेव।' इति।

कन्यादौ पितुर्भगिनीत्वातिदेशाभावेन तत्पुत्रं प्रत्यपि पितृष्वसृत्वाद्यतिदेशो न भवति। तद्भगिन्यो मातृष्वसार इत्यत्राशौचं विवाहनिषेधश्च मातृष्वसृपुत्रे बन्धुत्रयत्वं च न। सापत्नमातृष्वसृकन्याविवाहनिषेधस्तु विरुद्धसंबन्धत्वादेव वक्ष्यते।

इसमें मातुलत्व के अतिदेश में मामा के पुत्र आदि में मातुल-पुत्रत्व का अतिदेश नहीं होता। इसलिये बन्धुत्रय प्रयुक्त आशौच नहीं होता और मामा की कन्या आदि में विवाह की विधि और निषेध भी नहीं होता। इसी प्रकार मामा की कन्या आदि में पिता के भगिनीत्व के अतिदेश के अभाव से उसके पुत्र के प्रति भी पितृष्वसृत्व आदि का अतिदेश नहीं होता। उसकी बहिनें मौसी हैं, इसमें आशौच और विवाह का निषेध एवं मौसी के लड़के में बन्धुत्रयत्व भी नहीं होता। सौतेली मौसी की लड़की से विवाह का निषेध तो विरुद्ध-सम्बन्धत्व से ही नहीं होता, यह आगे कहेंगे।

तद्दुहितरश्च भगिन्य इत्यत्राशौचं संमाननादिकं च। नात्र विवाहप्रसक्तिः सगोत्रत्वात्। अत्र सापत्नमातुलसापत्नभ्रातृसापत्नमातृष्वसृसापत्नभगिनीनां स्वमातुलसोदरभ्रात्राद्यनन्तरं तर्पणं महालयादावुद्देशोऽप्यत एव वचनादावश्यक इति भाति। तदपत्यानि भागिनेयानि इत्यत्राशौचं विवाहनिषेधश्च। भागिनेयीत्वातिदेशेऽपि तत्कन्यासु भागिनेयीकन्यात्वातिदेशो न यावदुक्तं प्रमाणमिति न्यायादिति दिक्। क्वचित्सापिण्ड्याभावेऽपि वचनादविवाहः।

मौसी की लड़कियां बहिनें होती हैं इसमें आशौच और सम्मान आदि भी होता है। सगोत्र होने से इसमें विवाह की प्रसक्ति नहीं होती। इसमें सौतेले मामा, सौतेले भाई, सौतेली मौसी और सौतेली बहिनों का अपने मामा और सहोदर भाई आदि के बाद महालय आदि के उद्देश्य से तर्पण इसलिए वचन से आवश्यक प्रतीत होता है। उसकी सन्तान भानजे भानजी होते हैं। इसमें आशौच और विवाह का निषेध है। भागिनेयीत्व के अतिदेश में भी उसकी कन्याओं में भागिनेयी कन्यात्व का अतिदेश नहीं होता। क्योंकि 'यावदुक्तं प्रमाणं' यह न्याय है। अर्थात् जितना कहा है वही प्रमाण है। कहीं साpिण्डय न होने में भी वचन-बल से विवाह नहीं होता।

अथ विरुद्धसम्बन्धनिषेधः

अविरुद्धसम्बन्धामुपयच्छेत दम्पत्योर्मिथः पितृमातृसाम्ये विरुद्धसंबन्धः। यथा भार्या स्वसुर्दुहिता पितृव्यपत्नी स्वसा चेति परिशिष्टोक्तेः। बौधायनः—

मातुः सपत्न्या भगिनीं तत्सुतां च विवर्जयेत्।
पितृव्यपत्नीभगिनीं तत्सुतां च विवर्जयेत्॥

केचिज्ज्येष्ठभ्राता पितुः सम इत्युक्तेर्ज्येष्ठभ्रातृपत्न्या भगिनी मातृष्वसृतुल्यत्वान्न विवाह्येत्याहुः।

जिसके साथ विरुद्ध-सम्बन्ध न हो उसके साथ विवाह करे। पति पत्नी का आपस में पिता-माता के साम्य होने पर विरुद्ध-सम्बन्ध होता है। जैसे परिशिष्ट में कहा कि स्त्री की बहिन की लड़की पुत्री के समान और चाचा की पत्नी की बहिन, इन दोनों का संबन्ध एक पक्ष में स्त्रीका पति पिता तुल्य और दूसरे पक्ष में स्त्री का पति पुत्र सदृश होता है। यही विरुद्ध संबन्ध है। बौधायन ने कहा है कि माता की सौत की बहिन और उसकी लड़की का भी त्याग उचित है। यह विरुद्ध-सम्बन्ध है।

कुछ लोग कहते हैं कि ज्येष्ठ भाई पिता के समान है, इस आशय के वचन से जेठे भाई की स्त्री की बहिन मौसी के तुल्य होने से विवाह के योग्य नहीं है।

अथ विवाह्यकन्याविचारः

यवीयसीं स्वापेक्षया वयसा वपुषा च न्यूनामुद्वहेत्। 'असमानार्षगोत्रजाम्, आर्षं प्रवरः स्वसमाने आर्षगोत्रे यस्य तज्जा न भवति या ताम् असमानगोत्रामसमानप्रवरां चोद्वहेदित्यर्थः।

'यवीयसीं' का अभिप्राय है अपनी अपेक्षा उमर और शरीर से न्यून कन्या से विवाह करे। 'असमानार्षगोत्रजां' का तात्पर्य है आर्ष प्रवर को कहते हैं अपने से जो समान गोत्र और प्रवर वाली न हो उस कन्या से विवाह करे। इससे यह सिद्ध हुआ जिस कन्या का अपने समान गोत्र और प्रवर न हो ऐसी कन्या से विवाह करे।

अथ संक्षेपतो गोत्रप्रवरनिर्णयः

तत्र गोत्रलक्षणम्—

विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजोऽथ गौतमः।
अत्रिर्वसिष्ठः कश्यप इत्येते सप्तऋषयः॥

सप्तानामृषीणामागस्त्याष्टमानां यदपत्यं तद्गोत्रमित्याचक्षते। यद्यपि केवलभार्गवेष्वार्ष्टिषेणादिषु केवलाङ्गिरसेषु हारीतादिषु च नैतल्लक्षणं भृग्वङ्गिरसोरष्टऋषिष्वनन्तर्गतत्वात्। तथाप्यत्र प्रवरैक्यादेवाविवाहः[2]। यद्यपि गोत्राणि अनन्तानि 'गोत्राणां तु सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च' इत्युक्तेस्तथापि [3]ऊनपञ्चाशदेव गोत्रभेदाः, व्यावर्तकप्रवरभेदानां तावतामेव दर्शनात्।

उसमें गोत्र का लक्षण कहते हैं—विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, वशिष्ठ और कश्यप ये सातों ऋषि हैं। इन सातों ऋषियों और आठवें अगस्त्य के जो अपत्य हैं उन्हीं को आचार्य लोग गोत्र कहते हैं। यद्यपि केवल भार्गवमें आर्ष्टिषेण आदि में और केवल आंगिरसों में तथा हारीत अदि में ये लक्षण नहीं घटते, क्योंकि भृगु और अंगिरा ये दोनों आठ ऋषियों के अन्तर्गत नहीं होते। फिर भी प्रवर एक होने से ही विवाह नहीं होता। यद्यपि उक्ति है कि गोत्र अनन्त हैं, गोत्रों के तो हजारों लाखों और अरबों भेद हैं। तथापि गोत्र के भेद ऊनचास ही हैं, क्योंकि व्यावर्तक प्रवर के भेद उतने ही है।

---

१. ऋषेरिदमार्षं नाम प्रवर इत्यर्थः। गोत्रं वंशपरम्पराप्रसिद्धम्। आर्षं च गोत्रं च आर्षगोत्रे, समाने आर्षगोत्रे यस्यासौ समानार्षगोत्रः, तस्माज्जाता समानार्षगोत्रजा, न समानार्षगोत्रजा असमानार्षगोत्रजा ताम् असमानार्षगोत्रजाम्। असमानप्रवरामसमानगोत्रामित्यर्थः। मनुः—'असपिण्डा च या मातुरसपिण्डा च या पितुः। सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने॥' इति।

२. उक्तः स्मृत्यर्थसारे इति शेषः। 'यद्यपि वसिष्ठादीनां न गोत्रत्वं युक्तम्, तेषां सप्तर्षित्वे तदपत्यत्वाभावात्, तथाऽपि तत्पूर्वभाविवासिष्ठाद्यपत्यत्वेन गोत्रत्वं युक्तम्। अत एव पूर्वेषां परेषां चैतद् गोत्रम्।' इति।

३. अयं बौधायनोक्तस्य—'गोत्राणां तु सहस्राणि' इत्यादेर्वचनस्य उत्तरार्द्धस्य पाठांशः—'ऊनपञ्चाशदेवेषां प्रवरा ऋषिदर्शनात्।' इति।

प्रवरलक्षणं तु—गोत्रवंशप्रवर्तकर्षीणां[1] व्यावर्तका ऋषिविशेषाः प्रवरा इत्येव संक्षेपतो ज्ञेयम्। समानगोत्रत्वं समानप्रवरत्वं च पृथक् पृथक् विवाह-प्रतिबन्धकम्।

प्रवर का लक्षण तो यह है कि गोत्र और वंश के प्रवर्तक ऋषियों के व्यावर्तक ऋषि-विशेष को प्रवर कहते हैं। इतना ही संक्षेप से प्रवर का लक्षण जानना चाहिये। समान गोत्रत्व और समान प्रवरत्व भी अलग अलग विवाह के प्रतिबन्धक हैं।

तत्र प्रवरसाम्यं द्विविधम्—एकप्रवरसाम्यं द्वित्रिप्रवरसाम्यं च। तत्र भृग्वङ्गिरोगणेतरेषु एकप्रवरसाम्यमपि विवाहप्रतिबन्धकं केवलभृगुगणेषु केवलाङ्गिरोगणेषु चैकप्रवरसाम्यं न विवाहबाधकम्, किंतु त्रिप्रवरेषु द्विप्रवरसाम्यमेव पञ्चप्रवरेषु त्रिप्रवरसाम्यमेव च विवाहबाधकम्[2]।

पञ्चानां त्रिषु सामान्यादविवाहस्त्रिषु द्वयोः।
भृग्वङ्गिरोगणेष्वेवं शेषेष्वेकोऽपि वारयेत्॥ इत्यादिवचनात्।

जामदग्न्यभृगुगणेषु गौतमाङ्गिरसेषु भारद्वाजाङ्गिरसेषु चैकप्रवरसाम्येऽपि क्वचित् प्रवरसाम्याभावेऽपि च सगोत्रत्वादेवाविवाहः।

उसमें प्रवर-साम्य दो प्रकार का होता है—एक प्रवर से समानता या दो तीन प्रवर से समानता, उसमें भृगु और अंगिरा के गण से भिन्न में एक प्रवर का साम्य भी विवाह का प्रतिबन्धक है। केवल भृगुगणों में और केवल अंगिरागणों में एक प्रवर की समता का विवाह बाधिका नहीं है किन्तु तीन प्रवरों में दो प्रवरका साम्य ही और पांच प्रवरोंमें तीन प्रवर का साम्य ही विवाह की बाधिका है, क्योंकि वचन है कि पांच प्रवरों में तीन के साम्य होने से और तीन प्रवरों में दो की समता से विवाह नहीं होता। यह भृगु और अंगिरागण ही में है। इससे भिन्न में तो एक प्रवर-साम्य भी विवाह में बाधक है। जमदग्नि-भृगु-गणों में और गौतम-अंगिरस-गणों में तथा भारद्वाज-अंगिरसों में तो एक प्रवर की समता में भी, कहीं प्रवर की समता न होने पर भी सगोत्र होने से विवाह नहीं होता।

अथ गोत्रगणना

गोत्राणां प्रवराणां च गणना प्रोच्यतेऽधुना।
संक्षेपात्सुखबोधाय भगवत्प्रीतयेऽपि च॥

अब संक्षेप से सुखपूर्वक ज्ञान के लिये और भगवत्-प्रीत्यर्थ गोत्रों और प्रवरों की गणना कहता हूँ।

भृगुगणाः—सप्त भृगवः, सप्तदशाङ्गिरसः, चत्वारोऽत्रयः, दश विश्वामित्राः, त्रयः कश्यपाः, चत्वारो वसिष्ठाः, चत्वारोऽगस्तयः। इत्येकोनपञ्चाशद्गणास्तत्रापि सर्वग्रन्थमतसंग्रहेणाधिकास्तत्र तत्र वक्ष्यन्ते। तत्र सप्त भृगुगणाः—वत्साः विदाः एतौ जामदग्न्यौ। आर्ष्टिषेणाः यस्काः मित्रयवः वैन्याः

१. गोत्रप्रवर्तकानां विश्वामित्रादीनां वंशप्रवर्तकानां भृग्वादीनामृषीणामित्यर्थः।

२. भृग्वङ्गिरसावधिकृत्य बौधायनेनोक्तम्—'द्व्यार्षेयसन्निपातेऽविवाहस्त्र्यार्षेयाणां, त्र्यार्षेयसन्निपातेऽविवाहः पञ्चार्षेयाणाम्।' भृग्वङ्गिरोगणेष्वपि जमदग्निगौतमभरद्वाजेष्वेकप्रवरसाम्ये सर्वेषामप्यसाम्ये वा सगोत्रत्वादविवाहः' इति।

शुनकाः एते च पञ्च केवलभृगवः एवं सप्त[1]। तत्र वत्साः मार्कण्डेयाः माण्डूकेयाः इत्यादयः शतद्वयाधिका वत्सगोत्रभेदाः। एतेषां पञ्चप्रवराः—भार्गवच्यावनाप्नवानौर्वजामदग्न्येति। भार्गवौर्वजामदग्न्येति त्रयो वा। भार्गवच्यावनाप्नवानेति त्रयो वा। विदाः शैलाः अवटाः इत्यादयो विंशत्यधिका बिदास्तेषां पञ्चप्रवराः—भार्गवच्यावनाप्नवानौर्वबैदेति। भार्गवौर्वजामदग्न्येति वा। आर्ष्टिषेणाः नैर्ऋतयः याम्यायणाः इत्यादयो विंशत्यधिका आर्ष्टिषेणाः। एषां भार्गवच्यावनाप्नवानार्ष्टिषेणानूपेति पञ्च। भार्गवार्ष्टिषेणानूपेति त्रयो वा।

भृगुगण—७ भृगुगण, १७ आंगिरस, ४ अत्रि, १० विश्वामित्र, ३ कश्यप, ४ वशिष्ठ और ४ अगस्त्य। यह ऊनचास गण हैं तथापि सब ग्रन्थों के मत-संग्रह से इससे अधिकों को वहां वहां कहेंगे। उसमें सात भृगुगण ये हैं—वत्स, विद ये दोनों जामदग्नि-गण हैं। आर्ष्टिषेण, यस्क, मित्रयु, वैन्य और शुनक ये पांच केवल भृगु हैं, इस प्रकार सात हैं। उनमें वत्स मार्कण्डेय और माण्डूकेय इत्यादि दो सौ से अधिक वत्सगोत्र के भेद हैं। इन लोगों के प्रवर—भार्गव, च्यावन, आप्नवान, और्व और जामदग्न्य ये पांच हैं। अथवा भार्गव, और्व और जामदग्न्य इस प्रकार तीन प्रवर हैं। या भार्गव, च्यावन और आप्नवान इस प्रकार तीन प्रवर हैं। बिद, शैल और अवट इत्यादि बीस से अधिक विदगोत्र हैं इनके पांच प्रवर—भार्गव, च्यावन, आप्नवान, और्व और बैद इस प्रकार हैं। या भार्गव, और्व और जामदग्न्य इस प्रकार तीन प्रवर हैं। आर्ष्टिषेण, नैर्ऋति और याम्यायण इत्यादि

---

१. भृगुगण में—वत्सा विदा आर्ष्टिषेणा यस्का मित्रयुवो वैन्याः शुनकाः ये सात गोत्र हैं। सरलता से जानकारी के लिये इनके प्रवरों के नाम और प्रवरसंख्या निम्नांकित हैं। इनमें यस्कादिका अपने गण को छोड़कर सबके साथ विवाह होता है। स्मृत्यर्थसारे—'यस्का मित्रयुवो वैन्याः शुनकाः प्रवरैक्यतः। स्वं स्वं हित्वा गणं सर्वे विवहेयुः परावरैः॥' इति।

१ वत्साः—इनके भार्गव-च्यावन-आप्नवान-और्व-जामदग्न्य नाम के ये पांच या भार्गव-और्व-जामदग्न्य नाम के तीन या भार्गव-च्यावन-आप्नवान नाम के ये तीन प्रवर हैं।

२ बिदाः—इनके भार्गव-च्यावन-आप्नवान-और्व-वैद नाम के ये पांच या भार्गव-और्व-जामदग्न्य नाम के ये तीन प्रवर हैं।

३ आर्ष्टिषेणाः—इनके भार्गव-च्यावन-आप्नवान-आर्ष्टिषेण-अनूप नाम के ये पांच या भार्गव आर्ष्टिषेण-अनूप नाम के ये तीन प्रवर हैं।

वात्स्याः—इनके भार्गव-च्यावन-आप्नवान नाम के ये तीन प्रवर हैं।

वत्सपुरोधसौ—इन दोनों के भार्गव-च्यावन-आप्नवान-वात्स्य-पौरोधस नाम के पांच प्रवर हैं।

वैजमथितौ—इन दोनों के भार्गव-च्यावन-आप्नवान-बैज-मथित नाम के पांच प्रवर हैं।

४ यस्काः—इनके भार्गव-वैतहव्य-सावेतस नामक ये तीन प्रवर हैं।

५ मित्रयवः—इनके भार्गव-वाध्र्यश्व-दैवोदास नाम के तीन या भार्गव-च्यावन-दैवोदास नाम के तीन या वाध्र्यश्व नाम के एक प्रवर है।

६ वैन्याः—इनके भार्गव-वैन्य-पार्थ नाम के तीन प्रवर हैं।

७ शुनकाः—इनके शौनक नाम के एक या गार्त्समद नाम के एक या भार्गव-गार्त्समद नाम के दो या भार्गव-शौनहोत्र-गार्त्समद नामके ये तीन प्रवर हैं।

कहीं ये दो गण अधिक हैं—

वेदविश्वज्योतिषः—इनके भार्गव-वेदवैश्व-ज्योतिष नाम के ये तीन प्रवर हैं।

शाठरमाठराः—इनके भार्गव-शाठर-माठर नाम के ये तीन प्रवर हैं।

बीस से अधिक आर्ष्टिषेण हैं। इनका—भार्गव, च्यावन, आप्नवान, आर्ष्टिषेण और अनूप इसप्रकार पांच प्रवर हैं। या भार्गव, आर्ष्टिषेण और अनूप ये तीन प्रवर हैं।

एतेषां त्रयाणां वत्सबिदार्ष्टिषेणानां परस्परमविवाहः, द्वित्रिप्रवरसाम्यात् आद्ययोर्जामदग्न्यत्वेन सगोत्रत्वाच्च। यद्यपि त्रिप्रवरार्ष्टिषेणानां वत्सबिदैः सह न द्विप्रवरसाम्यं नापि सगोत्रत्वं जामदग्न्यत्वाभावात्। तथापि पञ्चप्रवरपक्षगतमपि त्रिप्रवरसाम्यं विवाहबाधकम्। एवमग्रेऽपि ज्ञेयम्। वात्स्यानां भार्गवच्यावनाप्नवानेति त्रयः। वत्सपुरोधसोर्भार्गवच्यावनाप्नवानवत्सपौरोधसेति पंच। बैजमथितयोर्भार्गवच्यावनाप्नवानबैजमथितेति पञ्च। एते त्रयः क्वचित्।

वत्स, विद और आर्ष्टिषेण इन तीनों का दो तीन प्रवरों की समानता और आदि के दोनों का जामदग्न्यत्व और सगोत्रत्व से परस्पर विवाह नहीं होता। यद्यपि जामदग्न्यत्व के अभाव से तीन प्रवर वाले आर्ष्टिषेणों का वत्स और विदों के साथ न दो प्रवर का साम्य है और न सगोत्रत्व है तथापि पंच प्रवर पक्षगत भी तीन प्रवर की समता विवाह की बाधिका है। इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिये। वात्स्यों का भार्गव, च्यावन और आप्नवान ये तीन प्रवर हैं। वत्स और पुरोधा का भार्गव, च्यावन, आप्नवान, वत्स और पुरोधा इस प्रकार पांच प्रवर हैं। बैज और मथित का भार्गव, च्यावन, आप्नवान, बैज और मथित, इस प्रकार पांच प्रवर हैं। कहीं पर तीन प्रवर भी हैं।

एतेषां परस्परं पूर्वोक्तैश्च त्रिभिर्न विवाहः, त्रिप्रवरसाम्यात्। यस्काः मौनाः मूकाः इत्यादयस्त्रिपञ्चाशदधिका यस्काः। एषां भार्गववैतहव्यसावेतसेति त्रयः। मित्रयवः रौष्टयायनाः सापिण्डिनाः इत्यादयस्त्रिंशदधिका मित्रयवः। तेषां भार्गववाध्र्यश्वदैवोदासेति त्रयः। भार्गवच्यावनदैवोदासेति वा। वाध्र्यश्वेत्येको वा। वैन्याः पार्थाः बाष्कलाः श्येता इत्येते वैन्याः। एषां भार्गववैन्यपार्थेति त्रयः। शुनकाः गार्त्समदाः यज्ञपतयः इत्यादयः सप्तदशाधिकाः शुनकाः। एषां शौनकेत्येकः। गार्त्समदेति वा। भार्गवगार्त्समदेति द्वौ वा। भार्गवशौनहोत्रगार्त्समदेति त्रयो वा।

इन सब का परस्पर और पहिले कहे हुए तीन प्रवर के साम्य होने से विवाह नहीं होता। यस्क, मौन और मूक इत्यादि तिरपन से अधिक यस्क हैं। इनका भार्गव, वैतहव्य और सावेतस इस प्रकार तीन प्रवर हैं। मित्रयु, रौष्ट्यायन और सापिण्डिन इत्यादि तीस से अधिक मित्रयु हैं। इनका भार्गव वाध्र्यश्व और दैवोदास इस तरह तीन प्रवर हैं। अथवा भार्गव, च्यावन और दैवोदास तीन प्रवर। या वाध्र्यश्व इस प्रकार एक प्रवर हैं। वैन्य, पार्थ, बाष्कल और श्येत ये वैन्य हैं। इनका भार्गव, वैन्य और पार्थ ये तीन प्रवर हैं। शुनक, गार्त्समद और यज्ञपति आदि सत्रह से अधिक शुनक हैं। इनका शौनक मात्र एक प्रवर है। अथवा गार्त्समद है। या भार्गव, गार्त्समद इस प्रकार दो प्रवर हैं। तथा भार्गव, शौनहोत्र और गार्त्समद इस प्रकार तीन प्रवर हैं।

यस्कादीनां चतुर्णां स्वस्वगणं हित्वा परस्परं पूर्वैर्जामदग्न्यवत्सादिभिश्च सह विवाहो भवति। एकप्रवरसाम्येऽपि द्वित्रिप्रवरसाम्याभावात्। भृगुगणेषु एकप्रवरसाम्यस्य दूषकत्वाभावात्। अजामदग्न्यत्वेनासगोत्रत्वात्। मित्रयूनां

पाक्षिकद्विप्रवरसाम्यात् त्रिप्रवरैर्वत्सादिभिः सह न विवाह इति केचित्। तत्प्रवरपक्षग्राहिणामविवाहः। पक्षान्तरग्राहिणां मित्रयूनां विवाह एवेत्यन्ये। क्वचिदधिकं गणद्वयमुक्तम्। वेदविश्वज्योतिषां भार्गववेदवैश्वज्योतिषेति त्रयः। शाठरमाठराणां भार्गवशाठरमाठरेति त्रयः। अनयोः परस्परं पूर्वैश्च सर्वैर्विवाहः। इति भृगुगणाः।

यस्क आदि चार का अपने-अपने गण को छोड़कर परस्पर जामदग्न्य, वत्स आदि पहिले वालों के साथ विवाह होता है, क्योंकि एक प्रवर की समता में भी दो तीन प्रवर की समता और भृगुगणों में एक प्रवर की समानता का दोषाभाव तथा जामदग्न्य से भिन्न होने से असगोत्रता है। कोई कहते हैं मित्रयु का पाक्षिक दो प्रवर की समानता से तीन प्रवर वाले वत्सादिकों के साथ विवाह नहीं होता। उस प्रवरपक्ष के ग्रहण करने वालों का नहीं होता। अन्य कहते हैं कि दूसरे पक्ष के ग्रहण करने वाले मित्रयु का ही विवाह होता है। कहीं दो गण अधिक कहे हैं। वेद और विश्वज्योति का भार्गव, वेद और वैश्वज्योति ये तीन प्रवर हैं। शाठर और माठरों का भार्गव, शाठर और माठर इस प्रकार तीन प्रवर हैं। इन दोनों का आपस में और पहिले के सभी से विवाह होता है। भृगुगण समाप्त।

अथाङ्गिरसः

ते त्रिविधाः—गौतमाः भरद्वाजाः केवलाश्चेति। तत्र गौतमाङ्गिरसो दश[१]—आयास्याः शारद्वताः कौमण्डाः दीर्घतमसः करेणुपालयः वामदेवाः औशनसाः राहूगणाः सोमराजकाः बृहदुक्थाश्चेति।

---

१. गौतमाङ्गिरस गण में दस हैं। सरलता से जानकारीके लिये इनके प्रवरों के नाम और प्रवर संख्या निम्नांकित हैं। सगोत्र और प्रायः द्वित्रि प्रवर के साम्य से सभी गौतम परस्पर में अविवाह्य हैं।

१ आयस्याः—इनके आङ्गिरस-आयास्य-गौतम नाम के ये तीन प्रवर हैं।

२ शारद्वताः—इनके आङ्गिरस-गौतम शारद्वत नाम के ये तीन प्रवर हैं।

३ कौमण्डाः—इनके आङ्गिरस-औतथ्य-काक्षीवत-गौतम-कौमण्ड नाम के ये पांच या आंगिरस-औतथ्य गौतम-औशिज-काक्षीवत नाम के ये पांच या आंगिरस-आयास्य औशिज-गौतम-काक्षीवत नाम के ये पांच या आंगिरस-औशिज-काक्षीवत नाम के ये तीन या आंगिरस-औतथ्य-काक्षीवत नाम के ये तीन या औतथ्य-गौतम-कौमण्ड नाम के ये तीन प्रवर हैं।

४ दीर्घतमसः—इनके आङ्गिरस-औतथ्य-काक्षीवत-गौतम-दैर्घतमस नाम के ये पांच या आंगिरस औतथ्य-दैर्घतमस नाम के ये तीन प्रवर हैं।

५ करेणुपालयः—इनके आंगिरस-गौतम-कारेणुपाल नाम के ये तीन प्रवर हैं।

६ वामदेवाः—इनके आङ्गिरस-वामदेव्य-गौतम नाम के ये तीन या आङ्गिरस-वामदेव्य-बार्हदुक्थ नाम के ये तीन प्रवर हैं।

७ औशनसाः—इनके आङ्गिरस-गौतम-औशनस नाम के ये तीन प्रवर हैं।

८ रहूगणाः—इनके आङ्गिरस-राहूगण-गौतम नाम के ये तीन प्रवर हैं।

९ सोमराजकाः—इनके आङ्गिरस-सौमराज्य-गौतम नाम के ये तीन प्रवर हैं।

१० बृहदुक्थाः—इनके आङ्गिरस-बार्हदुक्थ-गौतम नाम के ये तीन प्रवर हैं।

कहीं दो गण अधिक हैं—

उतथ्याः—इनके आङ्गिरस-औतथ्य-गौतम नाम के तीन प्रवर हैं।

राघुवाः—इनके आङ्गिरस-राघुव-गौतम नाम के ये तीन प्रवर हैं।

अंगिरस तीन प्रकार के हैं—गौतम, भरद्वाज और केवल। उनमें गौतम अंगिरस दस हैं—आयास्य १, शारद्वत २, कौमण्ड ३, दीर्घतमा ४, करेणुपालि ५, वामदेव ६, औशनस ७, राहूगण ८, सोमराजक ९, और बृहदुक्थ १०।

तत्र आयास्याः श्रोणिवेधाः मूढरथा इत्यादयोऽष्टादशाधिका आयास्याः। तेषामाङ्गिरसायास्यगौतमेति त्रयः। शारद्वताः आभिजिताः रौहिण्यः इत्यादयः सप्तत्यधिकाः शारद्वतास्तेषामाङ्गिरसगौतमशारद्वतेति त्रयः। कौमण्डाः मामन्थरेषणाः भासुराक्षा इत्यादयो दशाधिकाः कौमण्डास्तेषामाङ्गिरसौतथ्यकाक्षीवतगौतमकौमण्डेति पञ्च। आङ्गिरसौतथ्यगौतमौशिजकाक्षीवतेति वा। आङ्गिरसायास्यौशिजगौतमकाक्षीवतेति वा। आङ्गिरसौशिजकाक्षीवतेति त्रयो वा। आङ्गिरसौतथ्यकाक्षीवतेति वा। औतथ्यगौतमकौमण्डेति वा। अथ दीर्घतमसो गौतमास्तेषामाङ्गिरसौतथ्यकाक्षीवतगौतमदैर्घतमसेति पञ्च। आङ्गिरसौतथ्यदैर्घतमसेति त्रयो वा।

उनमें आयास्य, श्रोणिवेधा और मूढ़रथ इत्यादि अठारह से अधिक आयास्य हैं। इनमें आंगिरस आयास्य और गौतम तीन हैं। शारद्वत आभिजित और रौहिण्य इत्यादि सत्तर से अधिक शारद्वत हैं उनका आंगिरस, गौतम और शारद्वत ये तीन प्रवर हैं। कौमण्ड मामंथरेषण और भासुराक्ष इत्यादि दस से अधिक कौमण्ड हैं इनका आंगिरस, उतथ्य, काक्षीवत, गौतम और कौमण्ड इस प्रकार पांच प्रकार हैं। या आंगिरस, औतथ्य, गौतम, औशिज और काक्षीवत। अथवा आंगिरस आयास्य औशिज, गौतम और काक्षीवत। अथवा आंगिरस, औशिज और काक्षीवत ये तीन प्रवर हैं। या आंगिरस, औतथ्य, काक्षीवत किंवा औतथ्य, गौतम और कौमण्ड हैं। दीर्घतमा के गौतम, उनका आंगिरस, औतथ्य काक्षीवत, गौतम और दैर्घतमस ये पांच प्रवर हैं। या आंगिरस, औतथ्य दैर्घ्यतमस ये तीन प्रवर हैं।

करेणुपालयः वास्तव्याः श्वेतीया इत्यादयः सप्ताधिका करेणुपालयस्तेषामाङ्गिरसगौतमकारेणुपालेति त्रयः। वामदेवानामाङ्गिरसवामदेव्यगौतमेति त्रयः। आङ्गिरसवामदेव्यबार्हदुक्थेति वा। औशनसाः दिश्याः प्रशस्ताः इत्यादिका नवाधिका औशनसास्तेषामाङ्गिरसगौतमौशनसेति त्रयः। रहूगणानामाङ्गिरसराहूगणगौतमेति त्रयः। सोमराजकानामाङ्गिरससौमराज्यगौतमेति त्रयः। बृहदुक्थानामाङ्गिरसबार्हदुक्थगौतमेति त्रयः॥ १०॥

करेणुपालि, वास्तव्य और श्वेतीय इत्यादि सात से अधिक करेणुपालि हैं। इनका आंगिरस गौतम, कारेणुपाल ये तीन प्रवर हैं। वामदेवों का आंगिरस, वामदेव्य और गौतम ये तीन प्रवर हैं। अथवा आंगिरस, वामदेव्य और बार्हदुक्थ हैं। औशनस, दिश्य और प्रशस्त इत्यादि नव से अधिक औशनस हैं उनका आंगिरस, गौतम और औशनस ये तीन प्रवर हैं। रहूगणों का आंगिरस, राहूगण और गौतम ये तीन प्रवर हैं। सोमराजकों का आंगिरस, सौमराज्य और गौतम ये तीन प्रवर हैं। बृहदुक्थों का आंगिरस, बार्हदुक्थ और गौतम ये तीन प्रवर हैं।

क्वचिद् गणद्वयमधिकमुक्तम्। उतथ्यानामाङ्गिरसौतथ्यगौतमेति। राघुवानामाङ्गिरसराघुवगौतमेति। गौतमानां सर्वेषां परस्परमविवाहः, सगोत्रत्वात्प्रायेण द्वित्रिप्रवरसाम्याच्च।

कहीं पर दो गण अधिक हैं। उतथ्यों का आंगिरस औतथ्य और गौतम। राघुवों का आंगिरस, राघुव और गौतम ये तीन प्रवर हैं। सब गौतमों का सगोत्रत्व एवं प्रायः दो तीन प्रवरों की समता से परस्पर विवाह नहीं होता।

अथ भारद्वाजाङ्गिरसः

ते [1]चत्वारः—भरद्वाजाः गर्गाः ऋक्षाः कपयश्चेति। भरद्वाजाः क्षाम्यायणाः देवाश्वा इत्यादयः षष्ट्युत्तरशताधिका भरद्वाजास्तेषामाङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजेति त्रयः। गर्गाः सांभरायणाः सखीनय इत्यादयः पञ्चाशदधिका गर्गास्तेषामाङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजशैन्यगार्ग्येति पञ्च। आङ्गिरसशैन्यगार्ग्येति त्रयो वा। अन्त्ययोर्व्यत्ययो वा। भारद्वाजगार्ग्यशैन्येति वा। गर्गभेदानामाङ्गिरसतैत्तिरिकापिभुवेति।

वे भरद्वाज चार हैं—भरद्वाज, गर्ग, ऋक्ष और कपि। भरद्वाज, क्षाम्यायण, देवाश्व, इत्यादि एक सौ साठ से अधिक भारद्वाज हैं। उनका आंगिरस, बार्हस्पत्य और भारद्वाज इस प्रकार तीन प्रवर हैं। गर्ग, साम्भरायण और सखीनय इत्यादि पचास से अधिक गर्ग हैं उनका आंगिरस, बार्हस्पत्य, भारद्वाज, शैन्य और गार्ग्य इस प्रकार पांच प्रवर हैं। अथवा आंगिरस, शैन्य, गार्ग्य, इस तरह तीन प्रवर हैं। या अन्त के दो का व्यत्यय है। या भारद्वाज, गार्ग्य और शैन्य। गर्ग के भेदों का आंगिरस, तैत्तिरि और कापिभुव।

ऋक्षाः रौक्षायणाः कपिलाः इत्यादयो नवाधिका ऋक्षास्तेषामाङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजवान्दनमातवचसेति पञ्च। आङ्गिरसवान्दनमातवचसेति त्रयो वा। कपयः स्वस्तितरयः दण्डिन इत्यादयः पञ्चविंशत्यधिकाः कपयस्तेषामाङ्गिरसामहय्यौरुक्षय्येति त्रयः। आङ्गिरसामहीयवौरुक्षयसेत्याश्वलायनपाठः। आत्मभुवामाङ्गिरसभारद्वाजबार्हस्पत्यवरात्मभुवेति पञ्च। अयं गणः क्वचित्।

ऋक्ष, रौक्षायण और कपिल इत्यादि नव से अधिक ऋक्ष हैं उनका आंगिरस, बार्हस्पत्य, भारद्वाज, वांदन और मातवचस ये पांच प्रवर हैं। या आंगिरस, वांदन और मातवचस ये तीन प्रवर हैं। कपि, स्वस्तितरि और दण्डी इत्यादि पचीस से अधिक कपि हैं उनका आंगिरस, आम-

---

१. भरद्वाजाङ्गिरसगण में चार हैं—सरलता से जानकारी के लिये इनके प्रवरों के नाम और प्रवर संख्या निम्नांकित हैं। गोत्र और दो तीन प्रवर के साम्य से सभी भारद्वाज परस्पर अविवाह्य हैं। ऋक्षान्तर्गत कपिलों का विश्वामित्र के साथ विवाह उचित नहीं है।

१ भरद्वाजाः—इनके आङ्गिरस–बार्हस्पत्य–भारद्वाज नाम के ये तीन प्रवर हैं।

२ गर्गाः—इनके आंगिरस–बार्हस्पत्य–भरद्वाज-शैन्य-गार्ग्य नाम के ये पांच या आंगिरस–शैन्य–गार्ग्य नाम के ये तीन या आङ्गिरस-गार्ग्य–शैन्य नाम के ये तीन या भारद्वाज-गार्ग्य–शैन्य नाम के ये तीन प्रवर हैं। 'सैन्य' यह दन्त्यादि पाठ भी है।

३ ऋक्षाः—इनके आङ्गिरस–बार्हस्पत्य–भारद्वाज–वान्दन–मातवचस नाम के ये पांच या आङ्गिरस वान्दन–मातवचस नाम के ये तीन प्रवर हैं।

४ कपयः—इनके आङ्गिरस-सामहय्य-औरुक्षय्य नाम के ये तीन या आङ्गिरस-आमहय्य-औरुक्षय्य नाम के ये तीन प्रवर हैं। आश्वलायन में 'आङ्गिरसामहीय वौरुक्षयस' ऐसा पाठ है। आत्मभुवः—इनके आङ्गिरस–भारद्वाज–बार्हस्पत्य–वर-आत्मभुव नाम के ये पांच प्रवर हैं।

हृय्य और उरुक्षय ये तीन प्रवर हैं। आश्वलायन का पाठ आंगिरस, आमहीयव और उरुक्षयस ऐसा है। आत्मभुवों का आंगिरस, भारद्वाज, बार्हस्पत्य वर और आत्मभुव यह पांच प्रवर हैं। यह गण कहीं पर है।

भरद्वाजानां सर्वेषां परस्परमविवाहः, सगोत्रत्वात् प्रायेण द्वित्रिप्रवर-साम्याच्च। ऋक्षान्तर्गतानां कपिलानां विश्वामित्रैरप्यविवाहः। इति भार-द्वाजाङ्गिरसः।

सब भरद्वाजों का सगोत्र होने से और प्रायः दो तीन प्रवर के साम्य से परस्पर विवाह नहीं होता। ऋक्षान्तर्गत कपिलों का विश्वामित्रों से भी विवाह नहीं होता। भरद्वाजांगिरस समाप्त।

अथ केवलाङ्गिरसः

ते च षट्[1]—हरिताः कुत्साः कण्वाः रथीतराः विष्णुवृद्धाः मुद्गलाश्चेति। हरिताः सौभगाः नैय्यगवा इत्यादयो द्वात्रिंशदधिका हरितास्तेषामाङ्गिरसांबरी-षयौवनाश्वेति। आद्यो मान्धाता वा। कुत्सानामाङ्गिरसमांधात्रकौत्सेति त्रयः। कण्वाः औपमर्कटाः बाष्कलायना इत्यादय एकविंशत्यधिकाः कण्वास्तेषामाङ्गि-रसाजमीढकण्वेति त्रयः। आङ्गिरसघौरकाण्वेति वा।

वे केवलांगिरस छ हैं—हरित, कुत्स, कण्व, रथीतर, विष्णुवृद्ध और मुद्गल। हरित, सौभग, नैय्यगव इत्यादि बत्तीस से अधिक हरित हैं उनका आंगिरस, अम्बरीष और यौवनाश्व ये तीन प्रवर हैं। या पहिला मान्धाता है। कुत्सों का आंगिरस, मान्धात्र और कौत्स ये तीन प्रवर हैं। कण्व, औपमर्कट और वास्कलायन इत्यादि इक्कीस से अधिक कण्व हैं उनके प्रवर--आंगिरस, आजमीढ़ और कण्व ये तीन हैं। अथवा आंगिरस घौर और काण्व।

रथीतराः हस्तिदाः नैतिरक्षयः इत्यादयश्चतुर्दशाधिका रथीतरास्तेषामाङ्गि-रसवैरूपरथीतरेति त्रयः। आङ्गिरसवैरूपपार्षदश्वेति वा। अष्टादंष्ट्रवैरूपपार्षद-श्वेति वा। अन्त्ययोर्व्यत्ययो वा। विष्णुवृद्धाः शठाः मरणा इत्यादयः पञ्च-

---

१. केवल आङ्गिरस छ हैं। सरलता से जानकारी के लिये इनके प्रवरों के नाम और प्रवर संख्या निम्नाङ्कित हैं। इन छ केवल आंगिरसों का अपने गण को छोड़कर पूर्व सभी के साथ परस्पर विवाह होता है। पाक्षिक प्रवरद्वय के साम्य से हरित और कुत्स परस्पर में अविवाह्य हैं।

१ हरिताः—इनके आङ्गिरस-अम्बरीय-यौवनाश्व नाम के ये तीन प्रवर हैं। या आंगिरस के स्थान में मान्धाता है।

२ कुत्साः—इनके आङ्गिरस-मान्धातृ-कौत्स नाम के तीन प्रवर हैं।

३ कण्वाः—इनके आङ्गिरस-आजमीढ-काण्व नाम के ये तीन या आंगिरस-घौर-काण्व नाम के तीन प्रवर हैं।

४ रथीतराः—इनके आङ्गिरस-वैरूप-राथीतर नाम के ये तीन या आङ्गिरस-वैरूप-पार्षदश्व नाम के ये तीन या अष्टादंष्ट्र-वैरूप-पार्षदश्व नाम के ये तीन या अष्टादंष्ट्र-पार्षदश्व-वैरूप नाम के ये तीन प्रवर हैं।

५ विष्णुवृद्धाः—इनके आङ्गिरस-पौरुकुत्स्य-त्रासदस्यव नाम के ये तीन प्रवर हैं।

६ मुद्गलाः—इनके आङ्गिरस-भार्म्याश्व-मौद्गल्य नाम के ये तीन या आङ्गिरस के स्थान में तार्क्ष्य या आंगिरस-तार्क्ष्य-मौद्गल्य नाम के ये तीन प्रवर हैं।

विंशत्यधिका विष्णुवृद्धास्तेषामाङ्गिरसपौरुकुत्स्यत्रासदस्यवेति त्रयः । मुद्गलाः सात्यमुग्रियः हिरण्यस्तम्बयः इत्यादिका अष्टादशाधिकास्तेषामाङ्गिरसभार्म्यश्वमौद्गल्येति त्रयः । आद्यस्तार्क्ष्यो वा । आङ्गिरसतार्क्ष्यमौद्गल्येति वा ।

रथीतर, हस्तिद और नैतिरक्षय इत्यादि चौदह से अधिक रथीतर हैं। उनके प्रवर आंगिरस, वैरूप और रथीतर ये तीन हैं। यद्वा आंगिरस, वैरूप और पार्श्वदश्व हैं। अथवा अष्टादंष्ट्र, वैरूप और पार्श्वदश्व हैं। या अन्तके दोनों का व्यत्यय है। विष्णुवृद्ध, शठ और मरण इत्यादि पच्चीस से अधिक विष्णुवृद्ध गोत्र हैं उनके प्रवर—आंगिरस, पौरुकुत्स्य और त्रासदस्यव ये तीन हैं। मुद्गल, सात्यमुग्रिय, हिरण्यस्तम्बय इत्यादि अठारह से अधिक हैं उनके आंगिरस, भार्म्याश्व और मौद्गल्य ये तीन प्रवर हैं। या पहिला तार्क्ष्य है। आंगिरस, तार्क्ष्य और मौद्गल्य इस प्रकार भी तीन प्रवर हैं।

एषां षण्णां केवलाङ्गिरसानां स्वस्वगणं हित्वा परस्परं पूर्वैश्च सर्वैर्विवाहो भवति, अङ्गिरसोऽगस्त्याष्टमसप्तर्षिभिन्नत्वेन तदपत्यानां सगोत्रत्वाभावात् द्वित्रिप्रवरसाम्याभावाच्च । हरितकुत्सयोस्तु न विवाहः, पाक्षिकद्विप्रवरसाम्यात् ।

इन छ केवलांगिरसों का अपने-अपने गणों को छोड़कर पहिले के सबसे परस्पर विवाह होता है, क्योंकि अंगिरा का अगस्त्याष्टम सप्तर्षि से भिन्न होने के कारण उनकी सन्तानों का सगोत्रत्व का अभाव है और दो तीन प्रवरों की समानता भी नहीं है। पाक्षिक दो प्रवर की समता से हरित और कुत्स का परस्पर विवाह नहीं होता।

अथात्रयः

ते 'चत्वारः[1]— अत्रयः गविष्ठिराः वाद्भुतकाः मुद्गलाश्चेति । अत्रयो भूरयः छान्दय इत्यादयश्चतुर्नवत्यधिका अत्रयस्तेषामात्रेयार्चनानसश्यावाश्वेति त्रयः । गविष्ठिराः दक्षयः भलन्दना इत्यादयश्चतुर्विंशत्यधिका गविष्ठिरास्तेषामात्रेयार्चनानसगाविष्ठिरेति त्रयः । आत्रेयगाविष्ठिरपौर्वातिथेति वा । वाद्भुतकानामात्रे-

---

१. अत्रि चार हैं—इनके प्रवरों के नाम तथा प्रवरसंख्या निम्नाङ्कित है। गोत्र और प्रवर के साम्य से अत्रियों का परस्पर विवाह सम्बन्ध नहीं होता। 'चत्वारोऽत्रय आद्यत्रिवाद्भूतकगविष्ठिराः। मुद्गलाश्चेति गोत्रैक्यात्प्रवरैक्याच्च नान्वियुः॥' अत्रि के वामरथ्यादि पुत्रिकापुत्रों का वासिष्ठ विश्वामित्रों के साथ विवाह नहीं होता।

१ अत्रयः—इनके आत्रेय-आर्चनानस-श्यावाश्व नाम के ये तीन प्रवर हैं।

२ गविष्ठिराः—इनके आत्रेय-आर्चनानस-गाविष्ठिर नाम के ये तीन या आत्रेय गाविष्ठिर-पौर्वातिथ नाम के ये तीन प्रवर हैं।

३ वाद्भुतकाः—इनके आत्रेय-आर्चनानस-सवाद्भुतक नाम के ये तीन प्रवर हैं।

४ मुद्गलाः—इनके आत्रेय-आर्चनानस-पौर्वातिथ नाम के ये तीन प्रवर हैं।

कहीं निम्नांकित ये गण अधिक हैं—

अतिथय—इनके आत्रेय-आर्चनानस-आतिथ नाम के ये तीन या आत्रेय-आर्चनानस-गाविष्ठिर नाम के ये तीन प्रवर हैं।

वामरथ्याः—इनके उपर्युक्त प्रवर हैं।

यार्चनानसवाद्भुतकेति त्रयः। मुद्गलाः शालिसंधयः अर्णवाः इत्यादयो दशावरा मुद्गलास्तेषामात्रेयार्चनानसपौर्वातिथेति त्रयः।

वे अत्रि चार हैं—अत्रि, गविष्ठिर, वादभुतक और मुद्गल। अत्रि, भूरि और छान्दि इत्यादि चौरानवे से अधिक अत्रि हैं उनका प्रवर—आत्रेय, अर्चनानस और श्यावाश्व ये तीन हैं। गविष्ठिर, दक्षि और मलन्दन इत्यादि चौबीस से अधिक गविष्ठिर हैं। उनका आत्रेय, अर्चनानस और गविष्ठिर ये तीन प्रवर हैं। अथवा आत्रेय, गविष्ठिर और पौर्वातिथि हैं। वादभुतकों का आत्रेय, अर्चनानस और वाद्भुतक ये तीन प्रवर हैं। मुद्गल, शालिसन्धि और अर्णव इत्यादि कम से कम दस मुद्गल हैं उनका आत्रेय, अर्चनानस और पौर्वातिथ ये तीन प्रवर हैं।

क्वचिद् अतिथयो वामरथ्याः सुमङ्गला बीजवापा धनञ्जयाश्चेति पञ्च गणा अधिकाः। तत्राद्यचतुर्णामात्रेयार्चनानसातिथेति त्रयः। आत्रेयार्चनानसगाविष्ठिरेति वा। सुमङ्गलानामत्रिसुमङ्गलश्यावाश्वेति वा। धनञ्जयानामात्रेयार्चनानसधानञ्जयेति। वालेयाः कौन्द्रेयाः शौभ्रेयाः वामरथ्या इत्यादय अत्रेः पुत्रिकापुत्रास्तेषामात्रेयवामरथ्यपौत्रिकेति त्रयः।

कहीं पर अतिथि, वामरथ्य, सुमंगल, बीजवाप और धनंजय ये पांच गण अधिक हैं। उनमें पहिले चार का आत्रेय, आर्चनानस और आतिथ ये तीन प्रवर हैं। या आत्रेय, आर्चनानस और गविष्ठिर हैं। या सुमंगलों का अत्रि, सुमंगल और श्यावाश्व। धनंजयों का आत्रेय, आर्चनानस और धानंजय हैं। वालेय, कौंद्रेय शौभ्रेय और वामरथ्य इत्यादि अत्रि के पुत्रिकापुत्र हैं उनके आत्रेय, वामरथ्य और पौत्रिक ये तीन प्रवर हैं।

अत्रीणां सर्वेषामविवाहः, सगोत्रत्वात्सप्रवरत्वाच्च। अत्रेः पुत्रिकापुत्राणां वामरथ्यादीनां च वसिष्ठविश्वामित्राभ्यामप्यविवाहः। इत्यत्रयः।

अत्रियों का सब के समान गोत्र और समान प्रवर होने से विवाह नहीं होता। अत्रि का पुत्रिकापुत्र-वामरथ्य आदि का वसिष्ठ और विश्वामित्र गोत्रों से विवाह नहीं होता। अत्रिगोत्र समाप्त।

अथ विश्वामित्राः

ते दश[1]—कुशिकाः लोहिताः रौक्षका कामकायनाः अजाः कताः धनञ्जयाः अघमर्षणाः पूरणा इन्द्रकौशिकाश्चेति। कुशिकाः पर्णजङ्घाः वारक्या इत्यादयः

सुमङ्गलाः—इनके भी उपर्युक्त प्रवर हैं। या अत्रि-सुमंगल-श्यावाश्व नामके ये तीन प्रवर हैं।

बीजवापाः—इनके आत्रेय-आर्चनानस-आतिथ नाम के ये तीन या आत्रेय-आर्चनानस-गविष्ठिर नाम के ये तीन प्रवर हैं।

धनंजयाः—इसके आत्रेय-आर्चनानस-धानंजय नाम के ये तीन प्रवर हैं।

बालेयादि—अत्रि के पुत्रिकापुत्रों के आत्रेय-वामरथ्य-पौत्रिक नाम के ये तीन प्रवर हैं।

१. विश्वामित्र गण में दस हैं। सरलता से जानकारी के लिये इनके प्रवर्गों के नाम तथा प्रवर संख्या निम्नांकित हैं। विश्वामित्रों का परस्पर विवाह नहीं होता।

१ कुशिकाः—इनके वैश्वामित्र देवरात-औदल नाम के ये तीन प्रवर हैं।

२ लोहिताः—इनके वैश्वामित्र-आष्टक-लौहित नाम के ये तीन या वैश्वामित्र-लौहित-आष्टक नाम के तीन या वैश्वामित्र-माधुच्छन्दस-आष्टक नाम के ये तीन या विश्वामित्र-आष्टक नाम के ये दो प्रवर हैं। कहीं रोहिताः पाठ है।

सप्तत्यधिकाः कुशिकास्तेषां वैश्वामित्रदेवरातौदलेति त्रयः १ । लोहिताः कुडक्याश्चाक्रवर्णायना इत्यादयः पञ्चाधिका लोहिताः । रोहिता इति केचित् । तेषां वैश्वामित्राष्टकलौहितेति त्रयः । अन्त्ययोर्व्यत्ययो वा । वैश्वामित्रमाधुच्छन्दसाष्टकेति वा । विश्वामित्राष्टकेति द्वौ वा २ । रौक्षकाणां वैश्वामित्रगाथिनरैवणेति त्रयः । वैश्वामित्ररौक्षकरैवणेति वा । एते रेवणा वा ३ । कामकायनाः देवश्रवसः देवतरसा इत्यादयः पञ्चावराः कामकायनाः । श्रौमता वा । तेषां वैश्वामित्रदेवश्रवसदैवतरसेति त्रयः ४ । अजानां वैश्वामित्रमाधुच्छन्दसाजेति त्रयः ५ ।

ये दश हैं—कुशिक, लोहित, रौक्षक, कामकायन, अज, कत, धनंजय, अघमर्षण, पूरण और इन्द्रकौशिक । कुशिक, पर्णजंघ, वारक्य इत्यादि सत्तर से अधिक कुशिक हैं । उनके वैश्वामित्र, देवरात और औदल ये तीन प्रवर हैं । लोहित, कुडक्य और चाक्रवर्णायन इत्यादि पांचसे अधिक लोहित हैं । कोई लोहित को रोहित भी कहते हैं । उनका प्रवर—वैश्वामित्र, अष्टक और लोहित ये तीन हैं । या अन्त के दोनों का व्यत्यय है । अथवा वैश्वामित्र, माधुच्छन्दस और अष्टक हैं । यद्वा विश्वामित्र और अष्टक ये दो प्रवर हैं । रौक्षकों का वैश्वामित्र, गाथिन और रैवण ये तीन प्रवर हैं । या वैश्वामित्र, रौक्षक और रैवण हैं । या ये रेवण भी हैं । कामकायन, देवश्रवस और देवतरस इत्यादि कम से कम पांच कामकायन हैं । या श्रौमत हैं । इनके प्रवर—वैश्वामित्र, देवश्रवस और दैवतरस ये तीन हैं । अजों का प्रवर वैश्वामित्र माधुच्छन्दस और आज ये तीन हैं ।

---

३ रौक्षकाः—इनके विश्वामित्र-गाथिन-रैवण नाम के ये तीन या वैश्वामित्र-रौक्षक-रैवण नाम के ये तीन प्रवर हैं ।

४ कामकायनाः—इनके वैश्वामित्र-देवश्रवस-दैवतरस नाम के ये तीन प्रवर हैं ।

५ अजाः—इनके वैश्वामित्र-माधुच्छन्दस-आज नाम के ये तीन प्रवर हैं ।

६ कताः—इनके वैश्वामित्र-कात्य-आत्कील नाम के ये तीन प्रवर हैं ।

७ धनंजयाः—इनके वैश्वामित्र-माधुच्छन्दस-धानंजय नाम के ये तीन या वैश्वामित्र-माधुच्छन्दस-आघमर्षण नाम के ये तीन प्रवर हैं ।

८ अघमर्षणाः—इनके वैश्वामित्र-आघमर्षण-कौशिक नाम के ये तीन प्रवर हैं ।

९ पूरणाः—इनके वैश्वामित्र-पूरण नाम के ये दो या वैश्वामित्र-देवरात-पौरण नाम के ये तीन प्रवर हैं ।

१० इन्द्रकौशिकाः—इनके वैश्वामित्र-इन्द्रकौशिक नाम के ये दो प्रवर हैं ।

कहीं निम्नाङ्कित ग्यारह भेद हैं—

आश्मरथ्याः—इनके वैश्वामित्र-आश्मरथ्य-वाधुल नाम के ये तीन प्रवर हैं ।

साहुलाः—इनके वैश्वामित्र-साहुल-माहुल नाम के ये तीन प्रवर हैं ।

गाथिनाः—इनके वैश्वामित्र-गाथिन-रेणव नाम के ये तीन प्रवर हैं ।

वैणवाः—इनके वैश्वामित्र-गाथिन-वैणव नाम के ये तीन प्रवर हैं ।

हिरण्यरेतसः—इनके वैश्वामित्र-हैरण्यरेतस नाम के ये दो प्रवर हैं ।

सुवर्णरेतसः—इनके वैश्वामित्र-सौवर्णरेतस नाम के ये दो प्रवर हैं ।

कपोतरेतसः—इनके वैश्वामित्र-कापोतरेतस नाम के ये दो प्रवर हैं ।

शालङ्कायनाः—इनके वैश्वामित्र-शालङ्कायन-कौशिक नाम के ये तीन प्रवर हैं ।

घृतकौशिकाः—इनके वैश्वामित्र-घृतकौशिक नाम के ये दो प्रवर हैं ।

कथकाः—इनके वैश्वामित्र-काथक नाम के ये दो प्रवर हैं ।

रौहिणाः—इनके वैश्वामित्र-माधुच्छन्दस-रौहिण नाम के ये तीन प्रवर हैं ।

कताः औदुम्बरयः शैशिरयः इत्यादयो विंशत्यधिकाः कतास्तेषां वैश्वामित्रकात्यात्कीलेति त्रयः ६ । धनञ्जयाः पार्थिवाः बन्धुला इत्यादयः सप्तावरा धनञ्जयास्तेषां वैश्वामित्रमाधुच्छन्दसधानञ्जयेति त्रयः । वैश्वामित्रमाधुच्छन्दसाघमर्षणेति वा ७ । अघमर्षणानां वैश्वामित्राघमर्षणकौशिकेति त्रयः ८ । पूरणानां वैश्वामित्रपूरणेति द्वौ । वैश्वामित्रदेवरातपारणेति वा ९ । इन्द्रकौशिकानां वैश्वामित्रेन्द्रकौशिकेति द्वौ १० ।

कत, औदुम्बरि, शैशिरि इत्यादि बीस से अधिक कत हैं उनके वैश्वामित्र, कात्य और आत्कील ये तीन प्रवर हैं । धनंजय पार्थिव और बन्धुल इत्यादि कम से कम सात धनंजय हैं उनके प्रवर—वैश्वामित्र, माधुच्छन्दस और धानंजय ये तीन हैं । या वैश्वामित्र, माधुच्छन्दस और अघमर्षण । अघमर्षणों के वैश्वामित्र, आघमर्षण और कौशिक ये तीन प्रवर हैं । पूरणों के वैश्वामित्र और पूरण ये दो प्रवर हैं । अथवा वैश्वामित्र, देवरात और पारण । इन्द्रकौशिकों का वैश्वामित्र और इन्द्रकौशिक ये दो प्रवर हैं ।

क्वचिदन्येप्येकादशोक्ताः—आश्मरथ्याः साहुलाः गाथिनाः वैणबाः हिरण्यरेतसः सुवर्णरेसतः कपोतरेतसः शालङ्कायनाः घृतकौशिकाः कथकाः रौहिणा इति । आश्मरथ्यानां वैश्वामित्राश्मरथ्यवाधुलेति त्रयः १ । साहुलानां वैश्वामित्रसाहुलमाहुलेति त्रयः २ । गाथिनानां वैश्वामित्रगाथिनरैवणेति त्रयः ३ । वैणुवेति क्वचित्पाठः । एते एव रेणव इति उदवेणव इति चोच्यन्ते ३ । वैणवानां वैश्वामित्रगाथिनवैणवेति ४ ।

कहीं और भी ग्यारह गोत्र कहे हैं—आश्मरथ्य, साहुल, गाथिन, वैणव, हिरण्यरेता, सुवर्णरेता, कपोतरेता, शालंकायन, घृतकौशिक, कथक, और रौहिण । आश्मरथ्यों के वैश्वामित्र, आश्मरथ्य और वाधुल ये तीन प्रवर हैं । साहुलों के वैश्वामित्र, साहुल और माहुल ये तीन प्रवर हैं । गाथिनों के वैश्वामित्र, गाथिन और रैवण ये तीन प्रवर हैं । कहीं पर रैणव के स्थान में वैणुव पाठ है । ये ही रेणव और उदवेणव भी कहे जाते हैं । वैणवों के वैश्वामित्र गाथिन और वैणव ये तीन प्रवर हैं ।

हिरण्यरेतसां वैश्वामित्रहैरण्यरेतसेति द्वौ ५ । सुवर्णरेतसां वैश्वामित्रसौवर्णरेतसेति द्वौ ६ । कपोतरेतसां वैश्वामित्रकपोतरेतसेति द्वौ ७ । शालङ्कायनानां वैश्वामित्रशालङ्कायनकौशिकेति त्रयः । एते एव कौशिका इति जह्नुव इति चोच्यन्ते ८ । घृतकौशिकानां वैश्वामित्रघृतकौशिकेति द्वौ ९ । कथकानां वैश्वामित्रकाथकेति १० । रौहिणानां वैश्वामित्रमाधुच्छन्दसरौहिणेति त्रयः ११ ।

हिरण्यरेतसों के वैश्वामित्र और हैरण्यरेतस ये दो प्रवर हैं । सुवर्णरेतसों के वैश्वामित्र और सौवर्णरेतस ये दो प्रवर हैं । कपोतरेतसों के वैश्वामित्र और कपोतरेतस ये दो प्रवर हैं । शालंकायनों के वैश्वामित्र, शालंकायन और कौशिक ये तीन प्रवर हैं । ये ही कौशिक और जह्नुव भी कहे जाते हैं । घृतकौशिकों के वैश्वामित्र और घृतकौशिक ये दो प्रवर है । कथकों के वैश्वामित्र और काथक ये दो प्रवर हैं । रौहिणों के वैश्वामित्र, माधुच्छन्दस और रौहिण ये तीन प्रवर हैं ।

विश्वामित्रगणानां सर्वेषां परस्परमविवाहः, सगोत्रत्वात्सप्रवरत्वाच्च ।

कुशिकानां देवरातप्रवरसाम्येन देवराताद्भेदानिर्णयाद्वक्ष्यमाणदेवरातवदेव जामदग्न्यैरप्यविवाह इति भाति। धनञ्जयानां विश्वामित्रैरत्रिभिश्चाविवाहः। कतानां भरद्वाजैर्विश्वामित्रैश्चाविवाहः, द्विगोत्रत्वात्। इति विश्वामित्राः।

सभी विश्वामित्र-गणोंका परस्पर विवाह नहीं होता, क्योंकि इनका एक गोत्र और एक प्रवर है। कुशिकों का देवरात से एक प्रवर होने के कारण देवरात से भेद का निर्णय न होने से आगे कहे जाने वाले देवरात के समान ही जामदग्न्यों से भी विवाह नहीं होता, ऐसा मुझे ठीक लगता है। धनंजय गोत्र वालों का विश्वामित्र और अत्रिगोत्रवालों से विवाह नहीं होता। द्विगोत्र होने से कतों का भरद्वाज और विश्वामित्र गोत्र वालों से भी विवाह नहीं होता। विश्वामित्रगोत्र समाप्त।

अथ कश्यपाः

ते [1]त्रयः—निध्रुवाः रेभाः शण्डिलाश्चेति। तत्र निध्रुवाः कश्यपाः अष्टाङ्गिरसः इत्यादयश्चत्वारिंशदधिकशतावरा निध्रुवास्तेषां काश्यपावत्सारनैध्रुवेति त्रयः। निर्णयसिन्धौ तु निध्रुवगणोत्तरं कश्यपगणमुक्त्वा कश्यपानां काश्यपावत्सारासितेति प्रवरत्रयमुक्तम्। अत्र शिष्टाचारोपि दृश्यते १। रेभाणां काश्यपावत्साररैभ्येति त्रयः २।

वे तीन हैं—निध्रुव, रेभ और शण्डिल। उनमें निध्रुव, कश्यप और अष्टांगिरस इत्यादि चालीस से अधिक सौ से कम निध्रुव हैं उनके काश्यप, अवत्सार और नैध्रुव ये तीन प्रवर हैं। निर्णय सिन्धु में तो निध्रुव गण के बाद कश्यप गण कहकर कश्यपों के काश्यप, अवत्सार और असित ये ही तीन प्रवर कहे हैं। ऐसा शिष्टाचार भी देखा जाता है। रेभों के काश्यप, अवत्सार और रैभ्य ये तीन प्रवर हैं।

शण्डिलाः कोहलाः उदमेधा इत्यादयः षष्ट्यवराः शण्डिलास्तेषां काश्यपावत्सारशाण्डिल्येति त्रयः। अन्त्यस्थाने देवलो वा असितो वा ३। काश्यपासितदेवलेति वा। अन्त्ययोर्व्यत्ययो वा। देवलासितेति द्वौ वा ३। एषां कश्यपानां परस्परमविवाहः, सगोत्रत्वात्सप्रवरत्वाच्च।

शण्डिल, कोहल और उदमेधा साठ से कम शण्डिल हैं उनके काश्यप, अवत्सार और शाण्डिल्य ये तीन प्रवर हैं। या अन्त के स्थान में देवल या असित हैं। अथवा काश्यप, असित और देवल, इस प्रकार तीन प्रवर हैं। या अन्त्य दो का व्यत्यय है। या देवल और असित ये दो प्रवर हैं। एक गोत्र और एक प्रवर होने से इन कश्यपों का परस्पर विवाह नहीं होता।

---

१. आश्वलायनसूत्र और निर्णयसिन्धु में कश्यपगण पृथक् निर्दिष्ट है तदनुसार ही यहां निर्देश किया गया है। कश्यप तीन है। इनके नाम और प्रवर संख्या नीचे निर्दिष्ट है। गोत्र और प्रवर के साम्य से कश्यपों का परस्पर विवाह नहीं होता। निर्णयसिन्धु में कश्यप के पांच गण लिखे हैं।

१ निध्रुवाः—इनके काश्यप-अवत्सार-नैध्रुव नाम के ये तीन प्रवर हैं।

२ रेभाः—इनके काश्यप-अवत्सार-रैभ्य नाम के ये तीन प्रवर हैं।

३ शण्डिलाः—इनके काश्यप-अवत्सार-शाण्डिल्य नाम के ये तीन या काश्यप-असित-देवल ये तीन प्रवर हैं। नामों का व्यत्यय मूल में देखें।

अथ वसिष्ठाः

ते [1]चत्वारः—वसिष्ठाः कुण्डिनाः उपमन्यवः पराशराश्च । वसिष्ठाः वैतालकवयः रकय इत्यादयः षष्ट्यधिकाः वसिष्ठास्तेषां वासिष्ठेन्द्रप्रमदाभरद्वस्विति त्रयः । वासिष्ठेत्येको वा १ । कुण्डिनाः लोहितायनाः गुग्गुलयः इत्यादयः पञ्चविंशत्यवराः कुण्डिनास्तेषां वासिष्ठमैत्रावरुणकौण्डिन्येति त्रयः २ ।

ये चार हैं—वसिष्ठ, कुण्डिन, उपमन्यु और पराशर । वसिष्ठ, वैतालकवि, रकय इत्यादि साठ से अधिक वशिष्ठ हैं उनके वासिष्ठ, इन्द्रप्रमद और आभरद्वसु ये तीन प्रवर हैं । अथवा वाशिष्ठ यह एक प्रवर है । कुण्डिन लोहितायन और गुग्गुलि इत्यादि कम से कम पच्चीस कुण्डिन हैं उनके वाशिष्ठ मैत्रावरुण और कौण्डिन्य ये तीन प्रवर हैं ।

उपमन्यवः औदलयः माण्डलेखय इत्यादयः सप्तत्यवरा उपमन्यवस्तेषां वासिष्ठेन्द्रप्रमदाभरद्वस्विति त्रयः । आभरद्वसव्येति पाठान्तरम् । वासिष्ठाभरद्वस्विन्द्रप्रमदेति वा । आद्ययोर्व्यत्ययो वा ३ । पराशराः काण्डूशयाः वाजय इत्यादयः सप्तचत्वारिंशदवराः पराशरास्तेषां वासिष्ठशाक्त्यपाराशर्येति त्रयः ४ । एषां वसिष्ठानां परस्परमविवाहः । इति वसिष्ठाः ।

उपमन्यु, औदलि और माण्डलेखि इत्यादि सत्तर से कम उपमन्यु हैं उनके वासिष्ठ, इन्द्रप्रमद और आभरद्वसु ये तीन प्रवर हैं । आभरद्वसव्य यह कहीं पाठ है । या वासिष्ठ, आभरद्वसु और इन्द्रप्रमद ये तीन प्रवर हैं । आदि के दो व्यत्यय हैं । पराशर, काण्डूशय और वाजि इत्यादि सैंतालिस से कम पराशर हैं उनके वासिष्ठ, शाक्त्य और पाराशर्य ये तीन प्रवर हैं । इन वसिष्ठ गोत्र वालों का परस्पर विवाह नहीं होता । वसिष्ठगोत्र समाप्त ।

अथागस्त्याः

ते [2]दश—इध्मवाहाः साम्भवाहाः सोमवाहाः यज्ञवाहाः दर्भवाहाः सारवाहाः अगस्तयः पूर्णमासाः हिमोदकाः पाणिकाश्चेति । इध्मवाहाः विशा-

---

१. वसिष्ठ चार हैं । इनके नाम और प्रवर संख्या निम्नाङ्कित हैं । सभी वसिष्ठ परस्पर अविवाह्य हैं । निर्णयसिन्धु में वसिष्ठ पांच हैं ।

१ वसिष्ठाः—इनके वसिष्ठ-इन्द्रप्रमद-आभरद्वसु नाम के तीन या वासिष्ठ यह एक ही प्रवर है ।

२ कुण्डिनाः—इनके वासिष्ठ मैत्रावरुण-कौण्डिन्य नाम के ये तीन प्रवर हैं ।

३ उपमन्यवः—इनके वासिष्ठ-इन्द्रप्रमद-आभरद्वसु नाम के ये तीन प्रवर या वासिष्ठ-आभरद्वसु-इन्द्रप्रमद नाम के ये तीन प्रवर हैं । यहां आदि में दो का व्यत्यय है । आभरद्वसु का आभरद्वसव्य यह पाठान्तर है ।

४ पराशराः—इनके वासिष्ठ-शाक्त्य-पाराशर्य नाम के ये तीन प्रवर हैं ।

२. अगस्त्य गण में दस हैं । इनके नाम और प्रवरसंख्या निम्नाङ्कित हैं । गोत्र और प्रवर के साम्य होने से इनका परस्पर विवाह अविहित है ।

१ इध्मवाहाः—इनके आगस्त्य-दार्ढ्यच्युत-इध्मवाह नाम के ये तीन या आगस्त्य नाम का एक प्रवर है ।

२ साम्भवाहाः—इनके आगस्त्य-दार्ढ्यच्युत-साम्भवाह नाम के ये तीन प्रवर हैं ।

३ सोमवाहाः—इनके आगस्त्य-दार्ढ्यच्युत-सोमवाह नाम के ये तीन प्रवर हैं ।

लाद्याः स्फालायनाः इत्यादयः पञ्चाशदधिका इध्मवाहास्तेषामागस्त्यदाढर्च्यच्युतेध्मवाहेति त्रयः। आगस्त्येत्येको वा १। साम्भवाहानामागस्त्यदाढर्च्यच्युतसाम्भवाहेति त्रयः २। सोमवाहानां सोमवाहोऽन्त्यः आद्यौ पूर्वोक्तावेव ३।

ये दस हैं—इध्मवाह, सांभवाह, यज्ञवाह, दर्भवाह, सारवाह, अगस्ति, पूर्णमास, हिमोदक और पाणिक। इध्मवाह, विशालाद्य और स्फालायन इत्यादि पचास से अधिक इध्मवाह हैं उनके आगस्त्य, दाढर्च्यच्युत और इध्मवाह ये तीन प्रवर हैं। अथवा आगस्त्य एक प्रवर है। साम्भवाहों के अगस्त्य दाढर्च्यच्युत और साम्भवाह ये तीन प्रवर हैं। सोमवाहों के अन्तिम सोमवाह हैं और पूर्वोक्त आदि के दो हैं।

एवं यज्ञवाहानां यज्ञवाहोऽन्त्यः ४। दर्भवाहानां दर्भवाहोऽन्त्यः ५। सारवाहानां सारवाहोऽन्त्यः ६। अगस्तीनामागस्त्यमाहेन्द्रमायोभुवेति ७। पूर्णमासानामागस्त्यपौर्णमासपारणेति त्रयः ८। हिमोदकानामागस्त्यहैमवर्चिहैमोदकेति त्रयः ९। पाणिकानामागस्त्यपैनायकपाणिकेति त्रयः १०। अगस्तीनां सर्वेषामविवाहः सगोत्रत्वात्सप्रवरत्वाच्च। इत्यगस्तयः।

इसी प्रकार यज्ञवाहों के यज्ञवाह ही अन्त्य हैं। दर्भवाहों के दर्भवाह ही अन्त्य हैं। सारवाहों के सारवाह अन्त्य हैं। अगस्ति के आगस्त्यं, माहेन्द्र और मायोभुव ये तीन प्रवर हैं। पूर्णमासों के आगस्त्य, पौर्णमास और पारण ये तीन प्रवर हैं। हिमोदकों के आगस्त्य, हैमवर्चि और हैमोदक ये तीन प्रवर है। पाणिकों के आगस्त्य, पैनायक और पाणिक ये तीन प्रवर हैं। समान गोत्र और समान प्रवर होने से सब अगस्ति गोत्र वालों का परस्पर विवाह नहीं होता। अगस्त्यगोत्र समाप्त।

अथ द्विगोत्राः

तत्र भारद्वाजाच्छुङ्गाद् वैश्वामित्रस्य शैशिरेः क्षेत्रे जातः 'शौङ्गशैशिरि-

---

४ यज्ञवाहाः—इनके आगस्त्य-दाढर्च्यच्युत-यज्ञवाह नाम के ये तीन प्रवर हैं।
५ दर्भवाहाः—इनके आगस्त्य-दाढर्च्यच्युत-दर्भवाह नाम के ये तीन प्रवर हैं।
६ सारवाहाः—इनके आगस्त्य-दाढर्च्यच्युत-सारवाह नाम के ये तीन प्रवर हैं।
७ अगस्तयः—इनके आगस्त्य-माहेन्द्र-मायोभव नाम के ये तीन प्रवर हैं।
८ पूर्णमासाः—इनके आगस्त्य-पौर्णमास-पारण नाम के ये तीन प्रवर हैं।
९ हिमोदकाः—इनके आगस्त्य-हैमवर्चि-हैमोदक नाम के ये तीन प्रवर हैं।
१० पाणिकाः—इनके आगस्त्य-पैनायक-पाणिक नाम के ये तीन प्रवर हैं।

१. दो गोत्र वाले तीन हैं। इनके नाम और प्रवर संख्या अधोनिर्दिष्ट हैं। विवाह-विषयक विचार मूल में देखें।

शौंगशैशिरयः—इनके आंगिरस-बार्हस्पत्य-भारद्वाज-शौंग-शैशिर नाम के ये पांच या आंगिरस-बार्हस्पत्य-भारद्वाज-कात्य-आत्कील नाम के पांच या आंगिरस-कात्य-आत्कील नाम के ये तीन या भारद्वाज-कात्य-आत्कील नाम के ये तीन प्रवर हैं।

संकृतयः—इनके आंगिरस-गौरिवीति-सांकृत्य नाम के ये तीन या शाक्त्य-गौरिवीति-सांकृत्य नाम के ये तीन या शाक्त्य-गौरिवीति-सांकृत्य नाम के ये तीन प्रवर हैं। अन्त्य में दोनों का व्यत्यय है।

लौगाक्षयः—इनके काश्यप-अवत्सार-वासिष्ठ नाम के ये तीन या काश्यप-अवत्सार-असित नामक ये तीन प्रवर हैं।

र्नमऋषिः तस्य गोत्रलक्षणाक्रान्तत्वाद् गोत्रत्वम्। तद्गोत्राणामाङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजशौङ्गशैशिरेति पञ्च। आङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजकात्यात्कीलेति वा। आङ्गिरसकात्यात्कीलेतित्रयो वा। आद्यो भारद्वाजो वा।

उसमें भारद्वाज-शुंग से वैश्वामित्र शैशिरि के क्षेत्र में उत्पन्न शौंग शैशिरि नाम के ऋषि हैं उनका गोत्रलक्षणाक्रान्त होने से गोत्रत्व है। उनके गोत्रों का आंगिरस, बार्हस्पत्य, भारद्वाज, शौंग और शैशिर ये पांच प्रवर हैं। अथवा आंगिरस, बार्हस्पत्य, भारद्वाज कात्य और आत्कील हैं। या आंगिरस, कात्य और आत्कील इस प्रकार तीन प्रवर हैं। या पहला भारद्वाज है।

एषां सर्वभरद्वाजैः सर्वैर्विश्वामित्रैश्चाविवाहः। संकृतयः पूतिमाषाः तण्डय इत्यादयोऽष्टाविंशत्यवराः संकृतयस्तेषामाङ्गिरसगौरिवीतिसांकृत्येति त्रयः। शाक्त्यगौरिवीति सांकृत्येति वा। अन्त्ययोर्व्यत्ययो वा।

इनका सब भरद्वाजों से तथा सब विश्वामित्रों से विवाह नहीं होता। संकृति, पूतिमाष और तण्डि इत्यादि अट्ठाइस से कम संकृति हैं इनके आंगिरस, गौरिवीति और सांकृत्य ये तीन प्रवर हैं। या शाक्त्य, गौरिवीति और सांकृत्य ये तीन प्रवर हैं। अथवा अन्त्य दोनों का व्यत्यय है।

एषां स्वगणस्थैः पूतिमाषादिभिः सर्ववसिष्ठगणैश्चाहर्वसिष्ठसंज्ञकवक्ष्यमाणलौगाक्षिभिश्चाविवाहः। केवलाङ्गिरोगणैस्तु विवाहो भवत्येव, आङ्गिरसत्वेपि सगोत्रत्वाभावाद् द्वित्रिप्रवरसाम्याभावाच्च। केचिद्भारद्वाजाङ्गिरसत्वमाश्रित्य भारद्वाजशौङ्गशैशिरैः सहाविवाहमाहुः। तन्न, भारद्वाजत्वे दृढप्रमाणाभावात्।

इनके अपने गणों पूतिमाषादिक से तथा सब वसिष्ठ-गणों से अहर्वसिष्ठ नामक आगे कहे जाने वाले लौगाक्षियों से भी विवाह नहीं होता। केवल अंगिरा गण से तो विवाह होता ही है, क्योंकि आंगिरसत्व होने पर भी सगोत्रत्व का अभाव और दो तीन प्रवर के साम्य का अभाव है। कोई भारद्वाजांगिरसत्व का अनुसरण कर भारद्वाज, शौंग शैशिरों के साथ विवाह नहीं करे ऐसा कहते हैं। यह ठीक नहीं है, क्योंकि भारद्वाज होने में दृढ प्रमाण का अभाव है।

प्रयोगपारिजाते काश्यपैः सहैषामविवाह इत्युक्तं तत्र हेतुश्चिन्त्य इति कौस्तुभे। लौगाक्षयः दार्भायणा इत्यादयोऽष्टात्रिंशदधिका लौगाक्षयस्तेषां काश्यपावत्सारवासिष्ठेति त्रयः। काश्यपावत्साराासितेति वा। एते अहर्वसिष्ठाः नक्तं कश्यपाः दिनकर्मणि वासिष्ठत्वप्रयुक्तकार्यभाजः। रात्रिकर्मणि काश्यपत्वप्रयुक्तकार्यभाज इत्यर्थः। एतेषां सर्वैः काश्यपैः सर्वैश्च वसिष्ठैः संकृतिभिश्चाविवाहः।

प्रयोगपारिजात में कश्यपों के साथ उनका विवाह नहीं होता, ऐसा कहा है उसमें कारण चिन्तनीय है,ऐसा कौस्तुभ में है। लौगाक्षि दार्भायण इत्यादि अड़तीस से अधिक लौगाक्षि हैं उनके काश्यप, अवत्सार और वासिष्ठ ये तीन प्रवर हैं। अथवा काश्यप, अवत्सार और असित ये तीन हैं। ये अहर्वसिष्ठ दिन में वशिष्ठ और नक्त-कश्यप रात में काश्यप अर्थात् दिन के काम में वशिष्ठ-प्रयुक्त काम करने वाले और रात के काम में काश्यपत्वप्रयुक्त काम करने वाले हैं। इनका सब काश्यप और सब वशिष्ठगोत्रों तथा संकृति गोत्रों से विवाह नहीं होता।

अथ [1]स्मृत्यर्थसाराद्युक्ता द्विगोत्राः—देवरातानां वैश्वामित्रदेवरातौदलेति त्रयः। एतेषां सर्वैर्जामदग्न्यैर्विश्वामित्रैश्चाविवाहः। धनञ्जयानां वैश्वामित्रमाधुच्छन्दसधानञ्जयेति त्रयः। एषां सर्वैर्विश्वामित्रैरत्रिभिश्चाविवाहः। अयं विश्वामित्रगणे प्रागुक्तः। जातूकर्ण्यानां वासिष्ठात्रेयजातूकर्ण्येति।

स्मृतिसारादि में प्रतिपादित द्विगोत्र—देवरातों के वैश्वामित्र, देवरात और औदलीय तीन प्रवर हैं। इनका सब जामदग्न्यों से और विश्वामित्रों से भी विवाह नहीं होता। धनंजयों के वैश्वामित्र, माधुच्छन्दस और धानंजय ये तीन प्रवर हैं। इनका सब विश्वामित्रों और गोत्रों से भी विवाह नहीं होता। यह विश्वामित्र गण में पहिले कहा है। जातूकर्ण्य के वासिष्ठ, आत्रेय और जातूकर्ण्य ये तीन प्रवर हैं।

एषां वसिष्ठैरत्रिभिश्चाविवाहः। अयं वसिष्ठगणे सिन्धावुक्तः। पूर्वमत्रिगणेषूक्तानां वामरथ्यादीनामत्रिपुत्रिकापुत्राणां च वसिष्ठात्रिभ्यामविवाहः। अत्रिविश्वामित्राभ्यामिति केचित्। पूर्वं भरद्वाजगणस्थऋक्षान्तर्गणत्वेनोक्तानां कपिलानामाङ्गिरसबार्हस्पत्यभारद्वाजवान्दनमातवचसेति पञ्चप्रवराणां विश्वामित्रभरद्वाजाभ्यामविवाहः। पूर्वं विश्वामित्रेषूक्तानां कतानां वैश्वामित्रकात्यात्कीलेति त्रिप्रवराणां विश्वामित्रभरद्वाजाभ्यामविवाहः।

इनका वसिष्ठ और अत्रि से भी विवाह नहीं होता। इसे सिन्धु में वसिष्ठगण में कहा है। पहले अत्रिगणों में कहे हुए वामरथ्यादिकों और अत्रिपुत्रिकापुत्रों का भी वसिष्ठ और अत्रिगोत्र से विवाह नहीं होता। कोई कहते हैं—अत्रि और विश्वामित्र से विवाह नहीं होता। पहिले भारद्वाजगण में ऋक्षगोत्र के अन्तर्गणत्व से कहे हुए कपिलों की आंगिरस, बार्हस्पत्य भारद्वाज, वान्दन, और मातवचस इन पांच प्रवरों का विश्वामित्र और भारद्वाजगोत्र से विवाह नहीं होता। पहिले विश्वामित्रों में कहे हुए कतों का वैश्वामित्र, कात्यात् और कील इन तीन प्रवर वालों का विश्वामित्र और भारद्वाज गोत्र वालों से विवाह नहीं होता।

अनेनैव न्यायेन परगोत्रोत्पन्नदत्तकादीनामिदानींतनानामपि द्विगोत्रत्वाज्जनकप्रतिग्रहीतृपित्रोर्द्वयोरपि सगोत्रैः सह अविवाहो ज्ञेयः। नात्र पुरुषसंख्या।

---

१. स्मृतिसारोक्त द्विगोत्र छ हैं। इनके नाम, प्रवरसंख्या निम्नाङ्कित हैं। विवाहविषयक विचार मूल में अंकित है।

देवराताः—इनके वैश्वामित्र-देवरात-औदल नाम के तीन प्रवर हैं।

धनञ्जयाः—इनके वैश्वामित्र-माधुच्छन्दस-धानञ्जय नाम के तीन प्रवर हैं।

जातूकर्ण्याः—इनके वासिष्ठ-आत्रेय-जातूकर्ण्य नाम के ये तीन प्रवर हैं।

वामरथ्यादयः—इनके पूर्वोक्त तीन प्रवर हैं।

कपिलाः—इनके आंगिरस-बार्हस्पत्य-भारद्वाज-वान्दन-मातवचस नाम के भरद्वाजगणस्थित ऋक्षान्तर्गत गण के पांच प्रवर हैं।

कताः—इनके विश्वामित्रान्तर्गत वैश्वामित्र-कात्य-आत्कील नाम के तीन प्रवर हैं।

तेन शतपुरुषोत्तरमपि द्विगोत्रत्वं नापैति । क्षत्रियवैश्यौ तु 'पुरोहितगोत्रप्रवराविति सर्वसिद्धान्तः ।

इसी न्याय से दूसरे गोत्र से उत्पन्न दत्तकादिक का इस समय भी द्विगोत्रत्व होने से जनक और प्रतिग्रहीता दोनों पिताओं के भी सगोत्रों के साथ विवाह नहीं होता । ऐसा जानना चाहिये, इसमें पुरुष की संख्या नहीं ली जाती । इससे सौ पुरुष के बाद भी द्विगोत्रत्व नहीं हटता । क्षत्रिय और वैश्य तो पुरोहित के गोत्र और प्रवर वाले होते हैं यह सबका सिद्धान्त है ।

अथ आचार्यगोत्रस्य विषयः

अथ स्वगोत्राज्ञाने उपनयने य आचार्यस्तद्गोत्रप्रवरैरेव कर्माणि विवाहाविवाहौ चेति । आचार्यगोत्राज्ञाने तु [२]'दत्त्वात्मानं तु कस्मैचित्तद्गोत्रप्रवरो भवेत् ।'

अपने गोत्र का ज्ञान न रहने पर उपनयन में जो आचार्य हो उसी के गोत्र-प्रवरों से कर्म विवाह, अविवाह आदि जानना चाहिये । आचार्य गोत्र के न जानने में तो अपने को किसी को देकर उसी के गोत्र प्रवर वाला हो जाय ।

अथ मातृगोत्रवर्जननिर्णयः

तत्र [३]मातृगोत्रपदेन मातामहगोत्रमेव वर्ज्यम् तच्च गान्धर्वादिविवाहोढापुत्राणां सर्वेषां वर्ज्यम् । ब्राह्मविवाहोढापुत्राणां तु सर्वेषां मातामहगोत्रं न वर्ज्यं किंतु माध्यन्दिनानामेव । मातृगोत्रं माध्यन्दिनीयानामिति सत्याषाढवचनात् तथैव सर्वत्र शिष्टाचाराच्च ।

इसमें मातृगोत्र पद से मातामह का गोत्र ही वर्जनीय है । वह भी गान्धर्वादि विवाह से व्याही के सभी पुत्रों का वर्जनीय है । ब्राह्म विवाह से व्याही हुई के पुत्रों का सबका मातामह गोत्र वर्जनीय नहीं है, किन्तु माध्यन्दिनों का ही क्योंकि मातृगोत्र 'माध्यन्दिनीयों' के लिए है इस आशय का सत्याषाढ का वचन है और ऐसा ही सब जगह शिष्टाचार है भी ।

अथ सगोत्रादिविवाहादौ प्रायश्चित्तम्

तत्राज्ञानतः सगोत्रसप्रवरविवाहे कन्यां त्यक्त्वा चान्द्रायणं प्रायश्चित्तं कार्यम् । ज्ञानतो द्विगुणम् । एवं कन्याया एतदर्धम् । एवं सपिण्डाया विवाहेऽपि

---

१. सत्याषाढः—'अथाज्ञातबन्धोः पुरोहितप्रवरेणाचार्यप्रवरेण वा' इति । चन्द्रिका में स्मृत्यन्तर का—'गोत्रस्य त्वपरिज्ञाने काश्यपं गोत्रमुच्यते । यस्मादाह श्रुतिः सर्वाः प्रजाः कश्यपसम्भवाः ॥' यह वचन श्राद्ध-परक और पूर्वोक्त सत्याषाढ का विवाहपरक है ।

२. निर्णयसिन्धौ—'आचार्यगोत्रप्रवरानभिज्ञस्तु द्विजः स्वयम् । दत्त्वात्मानं तु कस्मैचित्तद्गोत्रप्रवरो भवेत् ॥ यद्वा स्वगोत्रप्रवरविधुरो जामदग्निजः । विवाहं च न तेनैव गोत्रेण तु समाचरेत् ॥' दिवोदासीये—'स्वगोत्रप्रवराज्ञाने जमदग्निमुपाश्रयेत् ॥' इति ।

३. विवाहात्पूर्वं मातुर्यद् गोत्रं मातामहगोत्रमिति भावः । प्रवरमञ्जरीकार ने सभी के लिये मातृगोत्र में विवाह वर्ज्य कहा—'दोषस्यातिगुरुत्वात् सर्वेषां मातृगोत्रं वर्ज्यम्' इति । शातातपः—'मातुलस्य सुतामूढ्वा मातृगोत्रां तथैव च । समानप्रवरां चैव गत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥' इति ।

त्यागश्च ब्राह्मण्याः संभोगधर्मकार्ययोरेव [1]मातृवत् परिपालयेदित्यत्रादिना पालनोक्तेः। यस्तु सगोत्रादिकां विवाह्योपगच्छति तस्याज्ञाने विवाहप्रयुक्तचान्द्रायणं सगोत्रागमनप्रयुक्तचान्द्रायणद्वयाधिकं ज्ञानतस्तु अधिकं कल्प्यमिति केचित्।

इसमें अज्ञान से, एक गोत्र और एक प्रवर के विवाह में कन्या का त्याग कर चान्द्रायण प्रायश्चित्त करना चाहिये। जान बूझ कर ऐसा करने पर दूना प्रायश्चित्त करे। इसी प्रकार कन्या को इससे आधा प्रायश्चित्त करना चाहिये। इसी प्रकार सपिण्डा के विवाह में भी त्याग, संभोग और धर्मकार्य में ही है, माता की तरह अन्न आदि से पालन की उक्ति से। जो सगोत्र कन्या से विवाह करके उससे संगम करता है उसको अज्ञान में विवाह करने से विवाहप्रयुक्त चान्द्रायण और सगोत्रा-गमनप्रयुक्त अधिक दो चान्द्रायण तथा ज्ञानपूर्वक ऐसा करने पर इसके लिये अधिकाधिक प्रायश्चित्त की कल्पना करनी चाहिये, यह किसी का मत है।

अन्ये तु गुरुतल्पव्रताच्छुद्ध्येदिति [2]गुरुतल्पसाम्योक्तेः षडब्दं प्रायश्चित्तम्। अज्ञानतस्त्र्यब्दं चान्द्रायणत्रयं वेत्याहुः। अज्ञानतः सगोत्रादिषूत्पन्नानां जनकप्राय-श्चित्तोत्तरं काश्यपगोत्रेण व्यवहारः कार्यो न तु त्यागः। ज्ञानतस्तु सगोत्राद्युत्पन्नानां चाण्डालत्वमेव।

आरूढपतितापत्यं ब्राह्मण्यां यश्च शूद्रजः।
सगोत्रोढासुतश्चैव चाण्डालास्त्रय ईरिताः॥ इति यमस्मृतेः।

इनसे भिन्न मतवाले तो 'गुरुतल्पव्रत से शुद्धि होगी यह गुरुतल्प समान है ऐसा कहने से छः वर्ष का प्रायश्चित्त करें और अनजाने करें तो तीन वर्ष का गुरुतल्पव्रत अथवा तीन चान्द्रायण करें, ऐसा कहते हैं। अज्ञान से सगोत्रादिकों में उत्पन्न होने वालों को उत्पादक प्रायश्चित्त के बाद काश्यप गोत्र से व्यवहार करें न कि उसका त्याग करें। ज्ञानपूर्वक सगोत्रा आदि में उत्पन्नों का चाण्डालत्व ही है। यमस्मृति में कहा है, कि तीन प्रकार के चाण्डाल होते हैं, एक तो वह जो कि संन्यास का त्याग कर गार्हस्थ्य स्वीकार कर सन्तान उत्पन्न करता है वह सन्तान चाण्डाल है, दूसरा ब्राह्मणी में शूद्रद्वारा उत्पन्न सन्तान और तीसरा वह चाण्डाल है जो सगोत्रा से विवाह कर पैदा किया गया हो।

अथान्येऽपि विवाहनिषेधाः

[3]प्रत्युद्वाहो नैव कार्यो नैकस्मै दुहितृद्वयम्।

---

१. स्मृत्यर्थसारे—'इत्थं सगोत्रसम्बन्धविवाहविषये स्थिते। यदि कश्चिज्ज्ञानतस्तां कन्या-मूढ्वोपगच्छति॥ गुरुतल्पव्रताच्छुद्ध्येद् गर्भस्तज्जोऽन्त्यतां व्रजेत्। भोगतस्तां परित्यज्य पालयेज्जननी-मिव॥ अज्ञानादैन्दवैः शुद्ध्येत् त्रिभिर्गर्भस्तु काश्यपः॥' बौधायनः—'सपिण्डां सगोत्रां चेदमत्योपय-च्छेन्मातृवदेनां बिभृयात्।' इति।

२. जैसा कि याज्ञवल्क्यने सगोत्रा के साथ विवाह-सम्बन्ध गुरुतल्पसम बतलाया है—'सखि-भार्याकुमारीषु स्वयोनिष्वन्त्यजासु च। सगोत्रासु सुतस्त्रीषु गुरुतल्पसमं स्मृतम्॥' नारदः—'मातुः मातृष्वसा श्वश्रूर्मातुलानी पितृष्वसा। पितृव्यसखिशिष्यस्त्री भगिनी तत्सखी स्नुषा॥ दुहिताचार्यभार्या च सगोत्रा शरणागता। राज्ञी प्रव्रजिता धात्री साध्वी वर्णोत्तमा च या॥ आसामन्यतमां गच्छन् गुरु-तल्पग उच्यते। शिश्नस्योत्कर्तनात्तत्र नान्यो दण्डो विधीयते॥' इति।

३. प्रत्युद्वाहः—विनिमयविवाहः, अर्थात् यदि आप मेरे पुत्र को कन्या देंगे तो मैं भी आपके पुत्र को कन्या दूँगा इस प्रकार का पणबन्धरूप।

न चैकजन्ययोः पुंसोरेकजन्ये तु कन्यके ॥

अत्रापवादः—सोदरयोः सोदरकन्यके वत्सरादिकालव्यवधाने महानद्यादिव्यवधाने वा देये। पूर्वंकन्याया दत्तायाः मृतौ तस्यैव वरस्य द्वितीया कन्या देया। प्रत्युद्वाहो दारिद्र्यादिसंकटे कार्यः।

अपनी कन्या जिसके पुत्र को दी उसकी कन्या का अपने पुत्र से विवाह करने को प्रत्युद्वाह कहते हैं। ऐसे विवाह का निषेध है वा एक वर को दो लड़की नहीं दे और न एक से उत्पन्न दो लड़कों से एक से पैदा दो लड़कियों का विवाह करे। इसका अपवाद यह है—एक पेट के दो लड़कों से एक पेट की दो लड़कियों का एक वर्ष आदि के व्यवधान में या महानदी आदि के व्यवधान में विवाह करे। पहले जो कन्या दी गई हो उसके मरने पर उसी वर को दूसरी कन्या देना। प्रत्युद्वाह दरिद्रता आदि संकट में करे।

सोदराणां तुल्यसंस्कारो वर्षमध्ये निषिद्धः। गृहनिर्माणविवाहो वर्षान्तर्न कार्यौ। गृहप्रवेशस्य निषेधाभावाद्गृहप्रवेशोत्तरं विवाहः कार्यः। सोदरयोः पुत्रयोः कन्यापुत्रयोर्वा कन्ययोर्वा विवाहौ षण्मासाभ्यन्तरे [1]विशेषतो निषिद्धौ पुरुषत्रयात्मककुले विवाहान्मौञ्जीबन्धः षण्मासे निषिद्धः।

सहोदर भाइओं का समान संस्कार साल भीतर निषिद्ध है। मकान का बनाना और विवाह वर्ष के मध्य में न करे। गृहप्रवेश के निषेध न होने से गृहप्रवेश के बाद विवाह करना चाहिये। सहोदर दो पुत्रों का या कन्या और पुत्र का अथवा दो लड़कियों का विवाह छ महीने के भीतर विशेषतः निषेध है। कुल में तीन पुस्त के भीतर विवाह से उपनयन छ महीने में निषिद्ध है।

षण्मासे शुभकार्यत्रयं न कार्यम्। अत्र शुभकार्यपदेन मौञ्जीविवाहावेव। तेन गर्भाधाननामकर्मादिसंस्काराणां न त्रित्वनिषेधः। न वा गर्भाधानादिना चतुष्ट्वादिसंपादनम्। नाग्निकार्य्यत्रयं भवेदित्यनेनैकवाक्यतालाघवादितिभाति। भिन्नोदराणामग्निकार्यत्रयं न दोषायेति कश्चित्।

छ महीने के भीतर तीन शुभ कार्य न करे। यहाँ शुभ कार्य पद से उपनयन और विवाह ही ग्राह्य है। इससे गर्भाधान, नामकरण आदि संस्कार के तीन होने का निषेध नहीं है। और न

---

१. वृद्धमनुः—'एकमातृजयोरेकवासरे पुरुषस्त्रियोः। न समानक्रियां कुर्यान्मातृभेदे विधीयते ॥' वराहः—'विवाहस्त्वेकजातानां षण्मासाभ्यन्तरे यदि। असंशयं त्रिभिर्वर्षैस्तत्रैका विधवा भवेत् ॥' वसिष्ठ का अपवादवचन—ऋतुत्रयस्य मध्ये चेदन्याब्दस्य प्रवेशनम्। तदा ह्येकोदरस्यापि विवाहस्तु प्रशस्यते ॥' मदनरत्न में वशिष्ठ—एकोदरप्रसूतानां नाग्निकार्यत्रयं भवेत्। भिन्नोदरप्रसूतानां नेति शातातपोऽब्रवीत् ॥' स्मृतिसारावल्याम्—भ्रातृयुगे स्वसृयुगे भ्रातृस्वसृयुगे तथा। एकस्मिन् मण्डपे चैव न कुर्यान्मण्डनद्वयम् ॥' गार्ग्यः—भ्रातृयुगे भ्रातृस्वसृयुगे स्वसृयुगे तथा। न कुर्यान्मङ्गलं किञ्चिदेकस्मिन् मण्डपेऽहनि ॥'

कात्यायनः—'कुले ऋतुत्रयादर्वाङ् मण्डनान्न तु मुण्डनम्। प्रवेशान्निर्गमो नेष्टो न कुर्यान्मंगलत्रयम् ॥ कुर्वन्ति मुनयः केचिदन्यस्मिन् वत्सरे लघु। लघु वा गुरु वा कार्यं प्राप्तं नैमित्तिकं तु यत् ॥ पुत्रोद्वाहः प्रवेशाख्यः कन्योद्वाहस्तु निर्गमः। मुण्डनं चौलमित्युक्तं व्रतोद्वाहौ तु मंगलम् ॥ चौलमुण्डनमेवोक्तं वर्जयेन्मण्डनात्परम्। मौञ्जी चोभयतः कार्या यतो मौञ्जी न मुण्डनम् ॥ अभिन्नवत्सरेऽपि स्यात्तदहस्तत्र भेदयेत्। अभेदे तु विनाशः स्यान्न कुर्यादेकमण्डपे ॥' इति।

गर्भाधान आदि से चार शुभ सम्पादन करे। तीन अग्निकार्य नहीं होते अर्थात् तीन उपनयन और तीन विवाह न करे। भिन्न उदर से उत्पन्नों का तीन अग्निकार्य में दोष नहीं होता ऐसा कोई कहते हैं।

केचिन्न कुर्यान्मङ्गलत्रयमित्यस्य भिन्नार्थत्वं स्वीकृत्य यत्किंचिच्छुभकार्याणामपि त्रित्वं न शुभमित्याहुः। पुरुषोद्वाहात् स्त्र्युद्वाहः षण्मासाभ्यन्तरे निषिद्धः ज्येष्ठमङ्गलाल्लघुमंगलं न कार्यम्। बहिर्मण्डपे विहितं ज्येष्ठमंगलम्। तद्भिन्नं लघु गर्भाधानादिकस्य प्राप्तकालस्य न निषेधः।

कोई 'तीन मङ्गल कार्य न करे' इसका दूसरा अर्थ स्वीकार कर कोई भी शुभ कार्यों का तीन होना शुभ नहीं होता' ऐसा कहते हैं। लड़के के विवाह से छ महीने के भीतर लड़की का विवाह निषिद्ध है। बड़े मंगल के बाद छोटा मंगल न करे। मण्डप के बाहर विहित ज्येष्ठ मंगल है उससे भिन्न लघु मंगल है। प्रातःकाल गर्भाधान आदि का निषेध नहीं है।

एवं शान्त्यादेरपि नैमित्तिकस्य प्राप्तकालस्य न निषेधः। अतिपन्नस्य त्वयं निषेधः। एवं व्रतोद्यापनादीनां वास्तुप्रवेशादीनां च लघुत्वादेव विवाहाद्युत्तरं निषेधः। इदं निषेधचतुष्टयं त्रिपुरुषात्मककुले षण्मासाभ्यन्तर एव। एवं मुण्डनद्वयनिषेधं व्रतबन्धाच्चौलनिषेधं च केचिदाहुः।

इसी प्रकार प्रातःकाल नैमित्तिक शान्ति आदि का भी निषेध नहीं है। बीते हुए का तो निषेध है। इसी तरह व्रत और उद्यापन आदि का और वास्तुप्रवेश आदि का लघुमंगल होने से ही विवाह आदि बाद निषेध है। यह चार निषेध तीन पुरुष के कुल में छ महीने के भीतर ही है एवं मुण्डनद्वय का निषेध और उपनयन से चूड़ाकरण का निषेध कोई कहते हैं।

अथ विवाहादौ निषेधापवादः

अथैषामपवादाः—सोदराणामपि समानसंस्कारौ विवाहौ च संकटे [२]अब्द-

---

१. कश्यपः—'मौञ्जीबन्धस्तथोद्वाहः षण्मासाभ्यन्तरेऽपि वा। पुत्र्युद्वाहं न कुर्वीत, विभक्तानां न दोषकृत्॥' वसिष्ठः—'न पुंविवाहोर्ध्वमृतुत्रयेऽपि विवाहकार्यं दुहितुः प्रकुर्यात्। न मण्डनाच्चापि हि मुण्डनं च गोत्रैकतायां यदि नाब्दभेदः॥ वराहमिहिरः—'उद्वाह्य पुत्रीं न पिता विदध्यात् पुत्र्यन्तरस्योद्वहनं कदाचित्। यावच्चतुर्थं दिनमत्र पूर्वं समाप्य चान्योद्वहनं विदध्यात्॥' ज्योतिर्विदाभरणे—'ऊर्ध्वं विवाहाच्छुभदो नरस्य नारीविवाहो न ऋतुत्रयं स्यात्। नारीविवाहात्तदहेऽपि शस्तं नरस्य पाणिग्रहमाहुरार्याः॥' इति।

२. सारावल्याम्—'फाल्गुने चैत्रमासे तु पुत्रोद्वाहोपनायने। भेदादब्दस्य कुर्वीत नर्तुत्रयविलङ्घनम्॥' वसिष्ठः—'द्विशोभनं त्वेकगृहेऽपि नेष्टं शुभं तु पश्चान्नवभिर्दिनैस्तु। आवश्यकं शोभनमुत्सवो वा द्वारेऽथवाचार्यविभेदतो वा॥

भट्टकारिका में यमलद्वय का समान संस्कार एक काल और एक मण्डप में करने का वचन—'एकस्मिन् वत्सरे चैकवासरे मण्डपे तथा। कर्तव्यं मंगलं स्वस्रोर्भ्रात्रोर्यमलजातयोः॥' पराशरः—'एकस्मिन् वत्सरे प्राप्ते कुर्याद्यमलजातयोः। क्षौरं चैव विवाहं च मौञ्जीबन्धनमेव च॥'

यमलों का संस्कार मनु ने ज्येष्ठ-क्रम से प्रतिपादित किया है—'जन्मज्येष्ठे न चाह्वानं सुब्रह्मण्यास्वपि स्मृतम्। यमयोश्चैव गर्भेषु जन्मतो ज्येष्ठता मता॥' देवल ने भी कहा है—'यस्य जातस्य यमयोः पश्यति प्रथमं मुखम्। सन्तानः प्रथमश्चैव तस्मिञ्ज्यैष्ठ्यं प्रतिष्ठितम्॥' इति।

इसी प्रकार मेधातिथि ने मातृभेदमें समान संस्कार एक काल और एक मण्डपमें विहित कहा है—'पृथङ्मातृजयोः कार्यो विवाहस्त्वेकवासरे। एकस्मिन् मण्डपे कार्यः पृथग्वेदिकयोस्तथा॥' इति।

भेदात्कार्यौं चतुर्दिनव्यवधानादेकदिनव्यवधानाद्वा कार्यौं। अतिसंकटे एकदिने कर्तृभेदेन मण्डपभेदेन वा कार्यौं। द्वाभ्यां कर्तृभ्यां एकस्मिन्नपि लग्ने एकस्मिन्नपि गृहे भिन्नोदरयोर्विवाहः कार्यः। एवं पूर्वोक्तनिषेधचतुष्टयेऽपि वर्षभेदे दोषाभावः।

सहोदरों का भी समान संस्कार और विवाह भी संकट में वर्षभेद से करना चाहिये। अथवा चार दिन या एक दिन के व्यवधान से करना चाहिये। अत्यन्त संकट में एक दिन में कर्ता के भेद से या मण्डपभेद से करना चाहिये। दो कर्ताओं के द्वारा एक लग्न में भी और एक घर में भी भिन्नोदर दो का विवाह करना चाहिये। इसी प्रकार पहले कहे हुए चार निषेधों में भी वर्षभेद से दोष नहीं होता।

यमलयोरेककाले एकमण्डपे वा समानसंस्काराणां न दोषः। एवं मातृभेदेऽपि षण्मासाभ्यन्तरे समानसंस्कारे दोषो न। मातृभेदे एकजातकन्ययोरेकदिने एक-मण्डपेऽपि वेदीभेदेन विवाहो न दोषायेति केचित्।

जोडुआं (यमल) बच्चों का एक समय में और एक मण्डप में भी समान संस्कार में दोष नहीं है। इसी प्रकार मातृभेद में भी छ महीने के भीतर समान संस्कार करने में दोष नहीं है। कोई कहते हैं कि मातृभेद से एक के द्वारा उत्पन्न दो लड़कियों का एक दिन में एक मण्डप में भी वेदीभेद से विवाह करने में दोष नहीं है।

अथ मण्डनमुण्डननिर्णयः

पुरुषत्रयात्मककुले मंगलकार्योत्तरं षण्मासाभ्यन्तरे मुण्डनयुक्तं कर्म न कार्यम्। अत्र सर्वत्र पुरुषत्रयगणनाप्रकारः प्रतिकूलविचारे स्पष्टीकरिष्यते।

तीन पुश्त के कुल में मंगलकृत्य के बाद छ महीने के भीतर मुण्डन वाला कर्म नहीं करना चाहिये। यहाँ सब जगह तीन पुश्त के गिनने का प्रकार प्रतिकूल के विचार के समय स्पष्ट करेंगे।

अथ मुण्डनोदाहरणम्

मुण्डनकर्म तु चौलं नागसंस्कारादिकमाधानादिकमभ्युदयार्थमैच्छिकसर्वप्रायश्चित्तादिकं क्षौरप्रापकतीर्थयात्रादिकं चोह्यम्। व्रतबन्धस्तु कात्यायनमते मङ्गलरूपत्वाद्विवाहाद्युत्तरं कार्यः। अन्येषां मते मुण्डनरूपत्वान्न कार्यः। पित्रो-रन्त्यक्रियादिप्राप्तमुण्डनमाकस्मिकप्राप्तप्रायश्चित्तमुण्डनमासन्नमरणेन सर्वप्राय-श्चित्तीयमुण्डनं च कर्तव्यमेव। नित्यत्वाद्दर्शपूर्णमासचातुर्मास्यादिमुण्डनेपि न दोषः।

मुण्डन कर्म तो चूडाकरण, नाम संस्कार आदि, आधान आदि, अभ्युदय के लिये सब काम्य प्रायश्चित्त आदि और जिनमें मुण्डन प्राप्त हैं ऐसे तीर्थयात्रा आदि की कल्पना करनी चाहिये। उपनयन तो कात्यायन के मत से मंगल रूप होने से विवाह आदि के बाद करना चाहिये। दूसरों के मत से मुण्डन रूप होने से नहीं करना चाहिये। पिता-माता की अन्त्येष्टि क्रिया आदि से प्राप्त मुण्डन, अकस्मात्प्राप्त प्रायश्चित्त का मुण्डन और मरने के समय सर्वप्रायश्चित्तीय मुण्डन भी करणीय ही है। दर्श और पूर्णमास तथा चातुर्मास्य आदि के मुण्डन भी नित्य होने से कोई दोष नहीं है।

न च मुण्डनं चौलमित्युक्तं व्रतोद्वाहौ तु मङ्गलमिति वचसा मण्डन-मुण्डनयोः परिगणनादाधानादीनां न दोष इति वाच्यम्। वाक्यस्योदाहरणार्थ-

त्वात्। अन्यथा व्रतोद्वाहान्न चौलकर्मित्येव वक्तव्ये मण्डनान्न तु मुण्डनमिति सामान्येन वचनरचनानर्थक्यापातात्। तस्माद् गर्भाधानादिलघुमङ्गलादुद्वाहादि-ज्येष्ठमङ्गलाच्चाधानादिमुण्डनमपि वर्ज्यमिति भाति ।

यह कहो कि मुण्डन चूडा को कहते हैं। उपनयन और विवाह तो मंगल है, इस आशय के वचन से, मण्डन और मुण्डन में गणना होने से आधान आदि में दोष नहीं है तो ऐसा नहीं कहना चाहिये क्योंकि वाक्य उदाहरण के लिये है, नहीं तो उपनयन और विवाह के बाद चौल कर्म न करे, इतने ही से कार्य हो जाता पुनः मण्डन के बाद मुण्डन नहीं करना यह सामान्य वचन की रचना व्यर्थ हो जायगी। अतः गर्भाधान आदि छोटे मंगल से और विवाह आदि बड़े मंगल से भी आधान आदि का मुण्डन भी वर्जनीय है ऐसा प्रतीत होता है।

एवं सति कुले बहुकर्मोपरोधः स्यादिति चेत्। विवाहव्रतचूडोत्तरमङ्गलेषु पिण्डदानादौ मासाद्यल्पकालप्रतिबन्धवत्पित्राद्यन्यमरणेऽल्पकालप्रतिकूलनिर्णय-वच्च लघुमङ्गलोत्तरं मासाद्यल्पकालमुण्डननिषेधकल्पनं युक्तिबलादाश्रयणीय-मिति भाति। अत्र विषये प्राचीननिबन्धेषु विशेषो न दृश्यते। तथापि धार्ष्ट्येन मयोक्तो विशेषो युक्तश्चेद् ग्राह्यः। इति मण्डनमुण्डननिर्णयः।

ऐसा होने से कुल में बहुत से कर्मों की रुकावट हो जायगी, यदि ऐसा है तो विवाह उपनयन और चौल के बाद वाले मङ्गलों में और पिण्डदान आदि में मासादि थोड़े काल के प्रतिबन्ध के समान पिता आदि से भिन्न के मरने में अल्पकाल के प्रतिकूल निर्णय के समान भी छोटे मङ्गल के बाद मासादि अल्पकालिक मुण्डन के निषेध की कल्पना युक्तिबल से आश्रयणीय है ऐसा ठीक प्रतीत होता है। इस विषय में प्राचीन निबन्धों में विशेष कुछ नहीं दिखाई देता फिर भी ढिठाई से मेरा कहा विशेष यदि ठीक है तो ग्रहण योग्य है। मण्डन और मुण्डन का निर्णय समाप्त।

अथ प्रतिकूलविचारः

विवाहनिश्चयोत्तरं वरस्य कन्याया वा[1]सगोत्रत्रिपुरुषात्मककुले कस्यचिन्मरणे प्रतिकूलदोषः। विवाहनिश्चयश्च वैदिको लौकिको वा ग्राह्यः। तत्र वैदिको वाग्दा-नाख्यविधिना कृतो मुख्यः। लौकिको लग्नतिथिनिश्चयादिर्वरवध्वोः शुल्कभाषा-बन्धपूगीफलदानादिश्च। सगोत्रत्रिपुरुषेत्युक्त्या मातामहकुलादिव्यावृत्तिः।

विवाह के ठीक हो जाने पर वर या कन्या के सगोत्र तीन पुस्तवाले कुल में मृत्यु होने पर प्रतिकूल का दोष होता है। विवाह का निश्चय वैदिक अथवा लौकिक ग्राह्य है। उसमें वैदिक, वाग्दान नामक विधि से किया हुआ मुख्य है और लौकिक लग्न और तिथि का निश्चय तथा वर-वधू का शुल्क (दहेज) का निश्चय या लग्नपत्रिका का लेख तथा नारियल सुपारी फल का देना आदि कहलाता है। सगोत्र त्रिपुरुषों के कहने से मातामह (नाना) आदि के कुल की निवृत्ति होती है।

---

१. मेधातिथिः—'पुरुषत्रयपर्यन्तं प्रतिकूलं स्वगोत्रिणाम्। प्रवेशान्निर्गमस्तद्वत्तथा मण्डन-मुण्डने॥ प्रेतकर्माण्यनिर्वर्त्य चरेन्नाभ्युदयिक्रियाम्। आचतुर्थं ततः पुंसि पञ्चमे शुभदं भवेत्॥' विवाह-निश्चय के अनन्तर किसी की मृत्यु होने पर गर्ग—'कृते तु निश्चये पश्चान्मृत्युर्भवति कस्यचित्। तदा न मङ्गलं कुर्यात् कृते वैधव्यमाप्नुयात्॥' स्मृतिचन्द्रिका—'कृते वाङ्निश्चये पश्चान्मृत्युर्भवति गोत्रिणः। तदा न मङ्गलं कार्यं नारीवैधव्यदं ध्रुवम्॥' भृगुः—'वाग्दानानन्तरं यत्र कुलयोः कस्य-चिन्मृतिः। तदोद्वाहो नैव कार्यः स्ववंशक्षयदोषतः॥'

तथा च वरस्तत्पूर्वपत्नी वरमातापितरौ वरपितामहपितामह्यावनूढा पितृष्वसा चेति पूर्वत्रिपुरुषी। वरस्तस्य भ्राता पत्नीपुत्रानूढकन्यासहितो वरस्यानूढाभगिनी वरस्य स्नुषापुत्रौ अनूढा कन्या च पौत्रस्तद्भार्या चानूढा पौत्री चेति परत्रिपुरुषी। पितृव्यतत्पत्न्यौ पितृव्यपुत्रतत्पत्न्यावनूढा पितृव्यकन्या चेति संतानभेदे त्रिपुरुषी चेति सगोत्रत्रिपुरुषी पुरुषपरिगणना। एतेषामन्यतममरणे प्रतिकूलमिति पर्यवसितोऽर्थः। अत्र भ्राता पुत्रपौत्रादिश्चानुपनीतोऽपि त्रिवर्षाधिकवया ग्राह्यः। एवमनूढभगिन्यादेरपि त्रिवर्षाधिकत्वं युक्तं भाति। एवं वधूकुलेऽप्यूह्यम्।

सगोत्र त्रिपुरुष की गणना का प्रकार यह है– वर और उसकी पहली स्त्री, वर की माता तथा पिता, वर की पितामही (दादी) और पितामह (दादा) तथा बिना व्याही फूआ (बुआ) ये पहिली तीन पीढ़ी है,। वर उसका भाई, स्त्री, पुत्र, अविवाहिता कन्या के सहित वर की बिना व्याही बहिन और वर की पतोहू तथा पुत्र, अविवाहिता कन्या भी और पौत्र, पौत्र की स्त्री, और विवाहरहिता पौत्री भी ये परत्रिपुरुषी हैं। चाचा और चाचा की स्त्री तथा चाचा का पुत्र और पुत्र की स्त्री अविवाहिता चाचा की लड़की ये सन्तानभेद में त्रिपुरुषी भी यह सगोत्र त्रिपुरुषी पुरुष गणना का प्रकार है। इनमें से किसी के मरने में प्रतिकूल होता है यह निष्कर्ष हुआ। इसमें भाई, पुत्र और पौत्र आदि उपनयनरहित भी तीन वर्ष से अधिक अवस्था का लेना चाहिये। इसी प्रकार अविवाहिता बहिन आदि का भी तीन वर्ष से अधिक वय का ग्राह्यत्व युक्त प्रतीत होता है। इसी तरह वधूकुल में भी कल्पना करनी चाहिये।

एवमेव मण्डनमुण्डनादावपि त्रिपुरुषगणनोह्या। अत्र विशेषः पिता माता पितामहः पितामही पितृव्यः पूर्वपत्नी पूर्वस्त्रियाः पुत्रो भ्रातानूढा भगिनी चैतेषां मरणे विशेषतः 'प्रतिकूलदोषान्नैव कर्तव्यो विवाहः। एतदन्यत्रिपुरुषसपिण्डमरणे शान्त्यादिना दोषं परिहृत्य विवाहः कार्यः।

इसी तरह ही मण्डन-मुण्डन आदि में भी त्रिपुरुषी-गणना की कल्पना करनी चाहिये। इसमें विशेष है– पिता, माता, पितामह, पितामही, पितृव्य (चाचा), पहली स्त्री, पहिली स्त्री का पुत्र, भाई, और अविवाहिता बहिनके मरने में विशेष प्रतिकूल दोष होने से विवाह नहीं करना चाहिये। इससे भिन्न त्रिपुरुष सपिण्ड के मरने में शान्ति आदि से दोष हटाकर विवाह करना चाहिये।

संकटे तु पित्रादिमरणेऽपि कालप्रतीक्षाशान्तिभ्यां दोषं निर्हृत्य विवाहः कार्यः। तत्र व्यवस्था निश्चयोत्तरं मातापित्रोर्द्वयोरपि मरणे कालप्रतीक्षाशान्ति-

१. शौनकः—'वरवध्वोः पिता माता पितृव्यश्च सहोदरः। एतेषां प्रतिकूलं च महाविघ्नप्रदं भवेत्॥ पिता पितामहश्चैव माता चैव पितामही। पितृव्यः स्त्रीसुतौ भ्राता भगिनी चाविवाहिता॥ एभिरत्र विपन्नैश्च प्रतिकूलं बुधैः स्मृतम्। अन्यैरपि विपन्नैस्तु केचिदूचुर्न तद्भवेत्॥' ज्योतिःप्रकाशे—'प्रतिकूलेपि कर्तव्यो विवाहो मासतः परम्। शान्तिं विधाय गां दत्त्वा वाग्दानादि चरेत् पुनः॥' मेधातिथिः—'सङ्कटे समनुप्राप्ते याज्ञवल्क्येन योगिना। शान्तिरुक्ता गणेशस्य कृत्वा तां शुभमाचरेत्॥' इति।

भ्यामपि दोषशान्त्यभावान्न कार्यो विवाहः। मातापित्रोरेकैकमरणे तु शान्त्यादिना विवाहः। तत्र—

पितुरब्दमिहाशौचं तदर्धं मातुरेव च ।
मासत्रयं तु भार्यायास्तदर्धं भ्रातृपुत्रयोः ॥
अन्येषां तु सपिण्डानामाशौचं माससंमितम् ।
तदन्ते शान्तिकं कृत्वा ततो लग्नं विधीयते ॥
प्रतिकूले न कर्तव्यं लग्नं यावदृतुत्रयम् ।
प्रतिकूले सपिण्डस्य मासमेकं विवर्जयेत् ॥

इत्यादिवाक्याश्रयेण व्यवस्थोच्यते ।

संकट में तो पिता आदि के मरने में भी समय को प्रतीक्षा और शान्ति से दोषपरिहरण करके विवाह करना चाहिये। इसमें व्यवस्था यह है—विवाह-निश्चय के बाद, माता और पिता के या दोनों के भी मरने में काल की प्रतीक्षा और शान्ति से भी दोषशान्ति न होने से विवाह नहीं करे। माता और पिता इनमें किसी एक के मरने में तो शान्ति आदि से विवाह होता है। इसमें पिता का आशौच एक वर्ष, माता का छ महीने, स्त्री का तीन मास, डेढ़ महीना भाई और पुत्र का, इनसे भिन्न सपिण्डों का तो एक महीने का आशौच कहा है। इसके अन्त में शान्ति करके तब लग्न का विधान करे। प्रतिकूल में छ महीने तक लग्न न करे। प्रतिकूल में सपिण्डों को एक महीने समय त्याग कर विवाह करे इत्यादि वाक्य के आश्रय से व्यवस्था कहते हैं—

अत्राशौचपदेन प्रतिकूलकृतं विवाहानधिकारमात्रं कालप्रतीक्षार्थमुच्यते। अतः पितृमरणे 'वर्षोत्तरं विनायकशान्तिं कृत्वा संकटे विवाहः कार्यः। अतिसंकटे षण्मासोत्तरं विनायकशान्तिं श्रीपूजनादिशान्तिं च कृत्वा विवाहः। ततोऽप्यतिसंकटे मासोत्तरं शान्तिद्वयान्ते विवाह इति संकटतारतम्येन पक्षत्रयम्। मातुर्मरणे षण्मासान्ते विनायकशान्त्या विवाहः। अतिसंकटे मासान्ते शान्तिद्वयं कृत्वोद्वाहः। यत्तु—

यहां आशौच पद से प्रतिकूलकृत विवाह का अधिकाराभावमात्र [काल]प्रतीक्षा के लिये कहते हैं इसलिये पिता के मरने में वर्ष के बाद विनायक-शान्ति करके संकट में विवाह करना चाहिये। अत्यन्त संकट में छ महीने के बाद विनायक-शान्ति और लक्ष्मीपूजन आदि शान्ति भी करके विवाह करे। इससे भी अधिक संकट में महीने भर बाद दोनों शान्ति के अन्त में विवाह करे। इस प्रकार संकट के तारतम्य से तीन पक्ष हैं। माता के मरने में छ महीने के बाद विनायक-शान्ति से विवाह करे। अति संकट में महीने भर के बाद दोनों शान्ति करके विवाह किया जाय। जो तो—

---

१. माता और पिता का मरणाशौच वर्षपर्यन्त रहता है—'पित्रोरब्दमशौचं स्यात् षण्मासं मातुरेव च। त्रैमासिकं तु भार्यायास्तदर्धं भ्रातृपुत्रयोः॥' यहाँ 'मातुः षण्मासं' से सौतेली माता के छ मास का आशौच जानना चाहिये। वर्ष के पूर्व अपकर्ष करके सपिण्डन कर लेने पर भी वर्षान्त में ही पितृत्व की प्राप्ति होती है, जैसा कि विष्णुधर्म की उक्ति है—'कृते सपिण्डीकरणे नरः संवत्सरात्परम्। प्रेतदेहं परित्यज्य भोगदेहं प्रपद्यते॥' अग्निपुराणे—'अर्वाक् संवत्सराद्यस्य सपिण्डीकरणं भवेत्। प्रेतत्वमिह तस्यापि विज्ञेयं वत्सरं नृप॥' इसलिये वृद्धि, दैव और पितृकर्म में अधिकार नहीं होता।

प्रमीतौ पितरौ यस्य देहस्तस्याऽशुचिर्भवेत् ।
न दैवं नापि वा पित्र्यं यावत्पूर्णो न वत्सरः ॥

इति पित्रोर्मृतौ वर्षपर्यन्तं सर्वशुभकर्मनिषेधवचनं तत्प्राङ्निश्चयात्पित्रोर्मृतौ संकटाभावे वा ज्ञेयम् । भार्यामरणे मासत्रयान्ते मासान्ते वा श्रीपूजनादि-शान्तिः । भ्रातृमरणे सार्धमासान्ते मासान्ते वा विनायकशान्तिः । पुत्रमृतौ सार्धमासं मासं वा प्रतीक्ष्य श्रीपूजनादिशान्तिः । पितृव्यमरणे मासान्ते विना-यकशान्तिः । पितामह्या अनूढभगिन्याश्च मरणे मासान्ते श्रीपूजनादिशान्तिः । एतदन्यत्रिपुरुषसपिण्डमरणे मासान्ते श्रीपूजनादिशान्तिः । ततो विवाहः । गुण-वत्तरमातुर्मृतौ षण्मासेन मनःखेदानपगमे वर्षप्रतीक्षा । एवं गुणवत्तरभार्यायाः षण्मासपर्यन्तं प्रतीक्षा ।

'जिसके माता-पिता मर गये हों उसका शरीर अपवित्र हो जाता है जब तक वर्ष पूरा बीत न जाय' इस आशय के वचन से उसे दैव वा पित्र्य कर्म नहीं करना चाहिये इससे वर्ष पर्यन्त सभी शुभ कर्मों का निषेध कहा है, उसे पहिले निश्चय हो जाने से या माता-पिता के मरने से संकट के न होने पर जानना चाहिये । स्त्री के मरने पर तीन मास के बाद अथवा महीने भर के पश्चात् श्रीपूजन आदि शान्ति से विवाह करे । भाई के मरने में डेढ़ महीने के अनन्तर या महीने के बाद विनायक-शान्ति से विवाह कर्तव्य है । पुत्र के मरने पर डेढ़ महीना या महीना भर प्रतीक्षा करके श्रीपूजन आदि शान्ति करे । चाचा के मरने पर मास के अन्त में विनायक-शान्ति करे । पितामही (दादी) और अविवाहिता भगिनी के भी मरने में मास के अन्त में श्रीपूजन आदि शान्ति करे । इससे भिन्न तीन पीढ़ी सपिण्ड के मरने पर मास के अन्त में श्रीपूजन आदि शान्ति इसके अनन्तर विवाह करे । अतिशय गुणवती माता के मरने में छ महीने से मन का दुःख न हटने पर वर्ष तक प्रतीक्षा करे । इसी प्रकार अति गुणवती स्त्री की मृत्यु में छ महीना पर्यन्त प्रतीक्षा करे ।

अथ प्रतिकूलापवादः

ज्योतिःप्रकाशे तु—अतिसंकटवशेन मात्रादिमरणे मासाधिकप्रतीक्षाया असं-भवे मासमध्येपि दशाहोत्तरं कंचित्कालं प्रतीक्ष्योक्तव्यवस्थया विनायकशान्तिं श्रीपूजनादिशान्तिं च कृत्वा गां दत्त्वा पुनर्वाग्दानादि चरेदित्युक्तम् । सर्वोऽप्यय-मपवादः संकटेषु तारतम्येन बुधैर्योज्यः । अल्पसंकटविषये महासंकटविषयकविधि-कथने वक्तुः कर्तुश्च दोष एव । दुर्भिक्षराष्ट्रभङ्गादिभये पित्रोर्मरणाशङ्कायां च न प्रतिकूलम् । दीर्घरोगिदूरदेशस्थविरक्तानां कन्यायाः प्रौढत्वे[1] च प्रतिकूलदोषो नेत्यपवादः ।

ज्योतिःप्रकाश में तो अतिसंकटावस्था में माता आदि के मरने में मास आदि की प्रतीक्षा सम्भव न हो तो महीने के भीतर भी दस दिन के बाद कुछ समय प्रतीक्षा करके कथित व्यवस्था से विनायक-शान्ति और श्रीपूजन आदि शान्ति भी करके गाय देकर पुनः वाग्दान आदि करे । सभी

१. ज्योतिःसागरे—'दुर्भिक्षे राष्ट्रभङ्गे च पित्रोर्वा प्राणसंशये । प्रौढायामपि कन्यायां नानुकूल्यं प्रतीक्ष्यते ॥' इति ।

यह अपवाद संकट में तारतम्य बैठाकर पण्डितों को ठीक करना चाहिये। थोड़े संकट में महासंकट की विधि कहने पर वक्ता और कर्ता दोनों को दोष ही है। दुर्भिक्ष और राज्यविप्लव आदि की भीति में पिता-माता के मरने की आशङ्का में भी प्रतिकूल नहीं होता। दीर्घरोग वाले, दूर देश में रहनेवाले तथा विरक्तों को एवं कन्या की प्रौढावस्था में भी प्रतिकूल का दोष नहीं होता। यह अपवाद है।

अथ श्रीपूजनादिशान्तिः

श्रीपूजनादिशान्तिश्च श्रिये जात इति श्रियं इदंविष्णुरिति विष्णुं गौरीर्मिमायेति गौरीत्र्यम्बकमिति रुद्रं परंमृत्यो इति यमं च संपूज्याऽष्टोत्तरशतं तिलाज्यं जुहुयात्। ॐभूः स्वाहा मृत्युर्नश्यतां स्नुषाये सुखं वर्धतां स्वाहेति। ततो होमं समाप्याथ गोद्वयं दक्षिणा भवेदिति कौस्तुभे द्रष्टव्या। इति प्रतिकूलविचारः।

श्रीपूजन आदि शान्ति भी "श्रिये जात" इससे श्री को, "इदं विष्णुः" इससे विष्णु को, "गौरीर्मिमाय" इससे गौरी को, "त्र्यम्बकं" इस मन्त्र से त्र्यम्बक रुद्र को, "परंमृत्यो" इससे यमराज को पूजकर एक सौ आठ तिल-घृत से होम करे। "ओं भूः स्वाहा मृत्युर्नश्यताम् स्नुषायै सुखं वर्धताम् स्वाहा" इसके बाद होम समाप्तकर दो गौ की दक्षिणा होती है ऐसा कौस्तुभ में देखना चाहिये। प्रतिकूल का विचार समाप्त।

अथान्त्यकर्माभावप्रतिबन्धनिर्णयः

प्रेतकर्माण्यनिर्वर्त्य चरेन्नाभ्युदयक्रियाम्।
आचतुर्थं ततः पुंसि पञ्चमे शुभदं भवेत्॥

अत्र प्रेतकर्मपदेन सपिण्डीकरणात्पूर्वंभाविकर्माणि सपिण्डीकरणं च सपिण्डीकरणोत्तरं पार्वणविधिनोक्तानि मासिकानि चोच्यन्ते।

सपिण्डीकरणादर्वागपकृष्य कृतान्यपि।
पुनरप्यपकृष्यन्ते वृद्धयुत्तरनिषेधनात्॥

'इत्यनुमासिकानामप्यपकर्षोक्तेः। अभ्युदयपदेन नान्दीश्राद्धयुक्तं कर्ममात्रं ग्राह्यम्।

चौथी पीढ़ी तक प्रेतकर्म सम्पन्न न होने पर किसी प्रकार का आभ्युदयिक कृत्य न करे। इसके बाद पांचवीं पीढ़ी में शुभ कर्म करने का अधिकार है। यहां प्रेतकर्म पद से सपिण्डीकरण से पहिले होने वाले कर्म और सपिण्डीकरण भी तथा सपिण्डीकरण के अनन्तर पार्वण विधि से कहे गये मासिक भी कहे जाते हैं। सपिण्डीकरण से पूर्व अपकर्ष करके किये गये भी वृद्धि के बाद निषेध के कारण पुनः अपकर्ष किया जाता है। क्योंकि यह अनुमासिकों के भी अपकर्ष करने की उक्ति है। अभ्युदय पद से नान्दीश्राद्धयुक्त कर्ममात्र ग्राह्य है।

कैश्चिद्विवाहाद्येव ग्राह्यमित्युक्तम्। आचतुर्थमिति नान्दीश्राद्धकर्तारं पुरुषमारभ्य जनकचतुःपुरुषी जन्यचतुःपुरुषी सन्तानभेदे च चतुःपुरुषी सगोत्रा गृह्यते तथाच नान्दीश्राद्धकर्तुः पितृपितामहप्रपितामहाः पत्नीसहिताः। कर्तुर्भार्यापुत्र-

---

१. सपिण्डीकरण के अनन्तर प्रतिमास किये जाने वाले मासिक श्राद्ध को 'अनुमासिक' कहते हैं।

पौत्रप्रपौत्रास्तद्भार्याश्च भ्राता तत्पुत्रपौत्रास्तद्भार्याः पितृव्यतत्पुत्रपौत्रास्तद्भार्याश्च प्रपितामहस्य पुत्रपौत्रप्रपौत्रास्तद्भार्याश्चेतेषां मृतानामनुमासिकान्तप्रेतकर्माकरणे मङ्गलं न कार्यमित्यर्थः ।

कुछ लोग विवाह आदि ही ग्राह्य है ऐसा कहते हैं । आचतुर्थं इससे नान्दीश्राद्ध करनेवाले पुरुष से लेकर जनक की चौथी पीढ़ी तथा जन्य सन्तानकी चौथी पीढ़ी सन्तानभेदमें भी चार पीढ़ी सगोत्री ली जाती है । इससे नान्दीश्राद्ध करनेवालेके पिता, पितामह और प्रपितामह सपत्नीक, करनेवाले की स्त्र पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र सपत्नीक, भाई, भाई का पुत्र और पौत्र और इनकी पत्नियां, पितृव्य (चाचा) इनके पुत्र और पौत्र पत्नीसहित, प्रपितामह के पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र पत्नीसहित, इन मरे हुए के अनुमासिक पर्यन्त प्रेतकर्म के अभाव में मङ्गल नहीं करना करना चाहिये, यह अर्थ है ।

नान्दीश्राद्धकर्ताऽत्र मुख्य एवं ग्राह्यो न तु मातुलादिर्गौणः । मृतपितृकस्योपनयनादौ संस्कार्यमारभ्यैव चतुःपुरुषीगणना । मातामहादेर्भिन्नगोत्रत्वेऽपि नान्दीश्राद्धदेवतात्वात् प्रेतकर्माभावे मङ्गलं न भवति । मातामह्यादेः स्वातन्त्र्येण देवतात्वाभावात् दशाहान्त्यकर्माभावेऽपि मङ्गलप्रतिबन्धो नास्ति । इत्यन्त्यकर्माभावनिमित्तकमङ्गलप्रतिबन्धनिर्णयः ।

इसमें नान्दीश्राद्ध करनेवाला मुख्य लिया ज ता है न कि मामा आदि गौण जिसका पिता मर गया है उसके यज्ञोपवीत आदि में जिसका संस्कार किया जाता है उससे ही चार पुस्त की गिनती की जाती है । नाना आदि के अन्यगोत्र होने से भी नान्दीश्राद्ध के देवता होने से प्रेतकर्म न होने से मङ्गल नहीं होता । नानी आदि के स्वतन्त्र देवता न होने से दशाह अन्त्य कर्म न होने पर भी मङ्गल कर्म करने में कोई रुकावट नहीं है । अन्त्यक-र्माभावनिमित्तक मङ्गलकार्य प्रतिबन्धा निर्णय समाप्त ।

अथ चतुर्थीकर्ममध्ये दर्शादिनिर्णयः

मौञ्जीविवाहयोर्नान्दीश्राद्धमारभ्य मण्डपोद्वासनपर्यन्तं मध्ये दर्शदिनं यथा न पतेत्तथा कार्यम् । दर्शान्यत्पित्रोः क्षयाहादिश्राद्धदिनं यदि ज्ञानादज्ञानाद्वा पतति तदा त्रिपुरुषसपिण्डैर्विवाहादिमङ्गलसमाप्त्युत्तरं श्राद्धं कार्यम् । एवं च दर्शान्यश्राद्धस्यैव स्वरूपतो विवाहमध्ये निषेधः । ननु दर्शवच्छ्राद्धरहितस्यापि श्राद्धतिथिमात्रस्य वृत्ते विवाहे परतस्तु कुर्याच्छ्राद्धमित्याद्युक्तेः ।

उपनयन और विवाह-निमित्त नान्दीश्राद्ध से लेकर मण्डप के हटाने तक के बीच में जिस प्रकार दर्शश्राद्ध दिन न पड़े वैसा करे । दर्श के अतिरिक्त माता-पिता के क्षयाह आदि श्राद्ध दिन जाने या विना जाने पड़ जाय तब तीन पीढ़ी के सपिण्डों को विवाह आदि मङ्गलकृत्य के समाप्ति के अनन्तर श्राद्ध करना चाहिये । इससे दर्श से भिन्न श्राद्ध का ही स्वरूपतः विवाह के बीच में निषेध है न कि दर्श की तरह श्राद्धरहित का भी श्राद्धतिथि मात्र का निषेध है विवाह समाप्त हो जाने के बाद श्राद्ध करे इत्यादि कथन से ।

एतेन संक्रान्तिमन्वाद्यष्टकादिदिनानां श्राद्धदिनत्वाद्दर्शवन्मध्ये पातो निषिद्ध इति शङ्का निरस्ता । तेन षण्णवतिश्राद्धकर्तृभिः सपिण्डैर्मध्यपतितमन्वादेः प्रायश्चित्तादिना संपत्तिः संपाद्या । इति चतुर्थीकर्ममध्ये दर्शादिनिर्णयः ।

इससे संक्रान्ति, मन्वादि और अष्टका आदि दिनका श्राद्धतिथियि होने से दर्श की तरह विवाह के बीच में पड़ना निषिद्ध है यह शङ्का भी दूर हो गई। इससे छानवे श्राद्ध करने वाले सपिण्डों को बीच में पड़े मन्वादि का प्रायश्चित्त आदि से संपत्ति का सम्पादन करे। चतुर्थी कर्म के मध्य में दर्श आदि का निर्णय समाप्त।

अथ विवाहादौ रजोदोषसूतकनिर्णयः

'प्रारम्भात्प्रागारम्भोत्तरं वा मातुः पितृव्यादेः कर्त्रन्तरस्य पत्न्या वा रजोदोषे यद्वक्तव्यं तद्व्रतबन्धप्रकरणे विस्तरेणोक्तं तत एव ज्ञेयम्। रजोदोष-जननाशौचादिसंभावनायां नान्दीश्राद्धस्यापकृष्यानुष्ठाने दिनावधिः।

एकविंशत्यहर्यज्ञे विवाहे दश वासराः।
त्रिषट्चौलोपनयने नान्दीश्राद्धं विधीयते॥

दशदिनाद्यतिक्रमे पुनर्नान्दीश्राद्धमित्यर्थात्सिद्धम्। नान्दीश्राद्धोत्तरं सूतक-मृतकयोः प्राप्तौ न विवाहादिप्रतिबन्धः।

मङ्गल के आरम्भ से पहिले या बाद में माता या दूसरे मङ्गलकृत्य करने वाले चाचा आदि की पत्नी को रजोदोष होने पर जो कहना था वह ग्रन्थकार ने उपनयन प्रकरण में विस्तार पूर्वक कह दिया है, वहीं से जानना चाहिये। रजोदोष और आशौच आदि की सम्भावना में नान्दी-श्राद्ध का अपकर्ष कर करने में दिन की अवधि कहते हैं—यज्ञ में एकईस दिन, विवाह में दस, चौल में तीन और उपनयन में छ दिन में नान्दीश्राद्ध किया जाता है। दश दिन आदि के बीत जाने पर पुनः नान्दीश्राद्ध अर्थात् सिद्ध है। नान्दीश्राद्ध के बाद जनन-मरण के प्राप्त होने पर विवाह आदि में रुकावट नहीं होती।

विवाहव्रतयज्ञेषु श्राद्धे होमेऽर्चने जपे।
आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम्॥
प्रारम्भो वरणं यज्ञे संकल्पो व्रतसत्रयोः।
नान्दीमुखं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया॥ इत्युक्तेः।

विवाह, व्रत, यज्ञ, श्राद्ध, होम, पूजन और जप के आरम्भ हो जाने पर सूतक नहीं होता, अनारब्ध में सूतक होता है। यज्ञ में वरण से, व्रत और सत्र में संकल्प से विवाह आदि में नान्दीमुख से, श्राद्ध में पाक से प्रारम्भ होना माना जाता है, इस आशय की उक्ति है।

इदं सन्निहितमुहूर्तान्तराभावादिसंकटे एव ज्ञेयम्। संकटाभावे तु नान्दी-श्राद्धे जातेऽपि सूतकान्ते मुहूर्तान्तरे एव मङ्गलम्। सर्वोप्याशौचापवादोऽनन्य-

---

१. प्रारम्भात्—नान्दी-श्राद्धात् 'नान्दीमुखं विवाहादौ' इत्यादिना तस्यैव प्रारम्भोक्तेः। माधवीये—'प्रारम्भात् प्राग्विवाहस्य माता यदि रजस्वला। निवृत्तिस्तस्य कर्तव्या सहत्वश्रुतिचोद-नात्॥' मेधातिथिः—'चौले च व्रतबन्धे च विवाहे यज्ञकर्मणि। भार्या रजस्वला यस्य प्रायस्तस्य न शोभनम्॥ वधूवरान्यतमयोर्जननी चेद्रजस्वला। तस्याः शुद्धेः परं कार्यं माङ्गल्यं मनुरब्रवीत्॥' वृद्धमनुः—'विवाहव्रतचूडासु माता यदि रजस्वला। तदा न मङ्गलं कार्यं शुद्धौ कार्यं शुभे-प्सुभिः॥' इति।

गतिकत्वे आर्तौ च ज्ञेय इति सिन्धूक्तेः। तेन व्रते संकल्पोत्तरमाशौचेऽपि विप्रद्वारैव पूजादि।

इसे समीप में दूसरे मुहूर्त नहीं मिलने आदि संकट में ही जानना चाहिये। संकट न होने पर तो नान्दीश्राद्ध होने पर भी सूतक समाप्त होने पर दूसरे मुहूर्त में ही मङ्गल कर्म करना चाहिये। सभी आशौचों के अपवाद जिसकी कोई गति न हो और कष्ट में ही जानना चाहिये ऐसी निर्णयसिन्धु की उक्ति है। इससे व्रत में संकल्प के बाद भी आशौच होने पर भी ब्राह्मण द्वारा ही पूजा आदि किया जाता है।

यज्ञादौ मधुपर्कविधिना वरणोत्तरमपि ऋत्विगन्तरालाभादिकेऽनन्यगतौ संकटे एव च मधुपर्कविधिना वृतस्याशौचाभावः। एवं जपहोमादावप्यूह्यम्। श्राद्धे पाकपरिक्रिया पाकप्रोक्षणम् एतदप्यार्तिसत्त्वे।

यज्ञ आदि में मधुपर्क विधि से वरण होने के बाद भी दूसरे ऋत्विक् के नहीं मिलने आदि संकट में ही अन्य गति न होने पर मधुपर्क विधि से वरण किये हुए के आशौच का अभाव होता है। इसी प्रकार की कल्पना जप-होम आदि में भी करनी चाहिये। श्राद्ध में पाकपरिक्रिया का तात्पर्य पाक के प्रोक्षण से है। यह भी कष्ट की सम्भावना में ही।

महासंकटे[1] प्रारम्भात्प्रागपि सूतकप्राप्तौ कूष्माण्डमन्त्रैर्घृतहोमं कृत्वा पयस्विनीं गां दत्त्वा पञ्चगव्यं प्राश्य शुद्धश्चूडोपनयनोद्वाहप्रतिष्ठादिकमाचरेत्। उपकल्पितबहुसंभारस्य सन्निहितलग्नान्तराभावेन नाशाद्यापत्तावप्येवं शुद्धिः। इदं जननाशौचमात्रविषयमिति [1]मार्तण्डादौ।

महासंकट में प्रारम्भ से पहिले भी सूतक पड़ने पर कूष्माण्ड मन्त्रों से घृत से होम करके दूध देने वाली गाय का दान कर और पञ्चगव्य के प्राशन से शुद्ध होकर चौल, उपनयन, विवाह और प्रतिष्ठा आदि को करे। दूसरे लग्न के समीप में न होने से इकट्ठी की हुई बहुत सी सामग्री के खराब होने की आपत्ति में भी इसी प्रकार शुद्धि करे। यह शुद्धि जननाशौचमात्र में है ऐसा मार्तण्ड आदि में है।

अथ सूतक्यन्नभोजने दोषाभावविचारः

कूष्माण्डहोमादिना शुद्धिपूर्वकं सूतकमृतकयोर्मध्ये आरब्धे विवाहादौ विप्राणां पूर्वसंकल्पितान्नभोजने दोषो न। पाकपरिवेषणादिकमपि सूतकिभिः कार्यं होमादिविधिना शुद्धिसंपादनादिति कौस्तुभे स्थितम्। नैतद्युक्तं लोकविद्विष्टत्वात्। अतः परगोत्रैरेवान्नदानं [2]युक्तं भाति।

---

१. संग्रह में प्रायश्चित्त—सङ्कटे समनुप्राप्ते सूतके समुपागते। कूष्माण्डीभिर्घृतं हुत्वा गां च दद्यात् पयस्विनीम्॥ चूडोपनयनोद्वाहप्रतिष्ठादिकमाचरेत्। तदैव सूतकप्राप्तिस्तदैवाभ्युदयक्रिया॥' विष्णुरपि—'अनारब्धविशुद्ध्यर्थं कूष्माण्डैर्जुहुयाद् घृतम्। गां दद्यात् पञ्चगव्याशी ततः शुद्ध्यति सूतकी॥' कूष्माण्डीभिर्घृतं हुत्वा—'यद्देवादेवहेडनम्, इत्यादि कूष्माण्डसंज्ञक मंत्रों से घृतहोम करके।

२. षट्त्रिंशन्मते—'विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्तरामृतसूतके। परैरन्नं प्रदातव्यं, भोक्तव्यं च द्विजोत्तमैः॥' बृहस्पतिः—'विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्तरा मृतसूतके। पूर्वसंकल्पितान्नेषु न दोषः परिकीर्तितः॥' इति।

कूष्माण्ड होम आदि से शुद्धि कर जनन-मरण के बीच में आरम्भ विवाह आदि में पहिले से संकल्प किये हुए अन्न खाने में ब्राह्मणों को दोष नहीं है। कौस्तुभ में लिखा है कि अन्न परोसने आदि का भी काम सूतकवाले करें। होम आदि विधि से शुद्धि हो जाने से, किन्तु लोकविरुद्ध होने से यह ठीक नहीं इसलिये दूसरे गोत्रवालों से परोसने का कार्य करवायें यह ठीक लगता है।

नान्दीश्राद्धोत्तरं सूतकमृतकयोः प्राप्तौ पूर्वमन्नसंकल्पाभावेऽपि विवाहोत्तरकालसंकल्पितान्न भोजनं विप्रैः कार्यम्। अत्रापि परैरन्नं प्रदातव्यं भोक्तव्यं च द्विजोत्तमैरिति सर्वसंमतम्। परैरसगोत्रैरिति सिन्धुमयूखादौ व्याख्यानात्। पूर्वसंकल्पितान्नस्यापि भोजनसमये सूतकप्राप्तौ भोक्तृभिर्भुक्तशेषं त्यक्त्वा परगृहोदकैराचान्ततादि विधेयम्। पाकशेषः सूतकिभिर्भोक्तव्यः।

भुञ्जानेषु च विप्रेषु त्वन्तरा मृतसूतके।
अन्यगेहोदकाचान्ता इति स्मृतेः।

नान्दीश्राद्ध के बाद जनन-मरण आशौच पड़ने पर पहले अन्न संकल्प न होने पर भी विवाह के बाद संकल्पित अन्न ब्राह्मणों को खाना चाहिये इसमें भी दूसरे गोत्रवाले परोसें और ब्राह्मणों को भोजन करना चाहिये क्योंकि परैः पद का, निर्णयसिन्धुकार और मयूखकार ने असमान गोत्र वाले ऐसी व्याख्या की है। पहिले संकल्प किये हुए अन्न के भोजन के समय में भी सूतक पड़ने पर भोजन करने वाले भोजन से बचे हुए अन्न का त्याग करके दूसरे के घरके जल से मुख-शुद्धि आदि करें। बने अन्न का ब्राह्मणभोजन से बचे हुए का सूतकवाले भोजन करें। ब्राह्मणों के भोजन के मध्य में यदि जनन-मरण आशौच हो जाय तो दूसरे के घर के जल से कुल्ला आदि करें, ऐसे स्मृति-वचन से।

नान्दीश्राद्धोत्तरं भोजनादन्यकाले सूतकप्राप्तौ सूतकिगृहे भोक्तव्यम्। भुञ्जानेषु सूतकप्राप्तौ भोक्तृभिः पात्रस्थमप्यन्नं त्याज्यमिति वाचनिक एव विशेषः। नहि वचनस्यातिभार इति न्यायात्। मम तु भुञ्जानेष्विति वाक्यमारब्धानारब्धसर्वकर्मसु असंकल्पितान्नविषयमिति भाति। इति विवाहादौ रजोदोषसूतकप्राप्तिनिर्णयः।

नान्दीश्राद्ध के बाद भोजन विधान से, दूसरे समयमें सूतक पड़ने पर सूतकवाले के घर भोजन करना चाहिये। खाते हुए ब्राह्मणों के यदि सूतक की प्राप्ति हो तो भोजन करनेवाले पात्र स्थित अन्नत्याग दें यह वाचनिक ही विशेष है। वचन का अतिशय भार नहीं इस न्याय से। मुझे तो "भोजन करते हुए ब्राह्मणों में" इस आशय के वाक्य आरम्भ किये हुए और नहीं आरम्भ किये हुए सभी कर्मोंमें, नहीं संकल्प किये हुए अन्न के विषय में हैं ऐसा ठीक मालूम होता है। विवाह आदि में रजोदोष के सूतक का निर्णय समाप्त।

अथ कन्यारजोदोषनिर्णयः

विवाहात्पूर्वं कन्याया रजोदर्शने मातापितृभ्रातृणां [1]नरकपातः। कन्याया

---

१. अपरार्क में संवर्त--'माता चैव पिता चैव ज्येष्ठभ्राता तथैव च। त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्॥' हारीतः--'पितुर्गृहे तु या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता। सा कन्या वृषली ज्ञेया, तत्पतिर्वृषलीपतिः॥' यमः--'कन्या द्वादशवर्षाणि याऽप्रदत्ता वसेद् गृहे। भ्रूणहत्या पितुस्तस्याः सा कन्या वरयेत् स्वयम्॥ एवं चोपनतां पत्नीं नावमन्येत् कदाचन। न तु तां बन्धकीं विद्यान्मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत्॥' इति।

वृषलीत्वं तद्भर्तुर्वृषलीपतित्वम् । अत्र शुद्धिप्रकारः कन्यादाता ऋतुसंख्यया गोदानानि[1] एकं वा गोदानं यथाशक्ति ब्राह्मणभोजनं वा कृत्वा कन्यादाने योग्यो भवेत् । कन्या तूपवासत्रयान्ते गव्यपयःपानं कृत्वा विप्रकुमार्यै सरत्नभूषणं दत्त्वोद्वाहयोग्या भवति । वरश्च कूष्माण्डहोमपूर्वकं तामुद्वहन्न दोषी स्यादिति ।

विवाह से पहिले कन्या के रजोदर्शन होने में माता-पिता का नरकपात होता है। कन्या को शूद्रात्व और उसके पतिको शूद्रापतित्व होता है। इसमें शुद्धिका प्रकार कहते हैं। कन्यादान करनेवाला ऋतु की गिनती से गोदानों को करके अथवा एक गोदान करके या यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन कराने से कन्यादान के योग्य होता है। कन्या तो तीन उपवास के अन्त में गाय का दूध पीकर ब्राह्मण-कन्या को रत्न सहित आभूषण देकर विवाह योग्य होती है। वर भी कूष्माण्ड होमपूर्वक उससे विवाह करे तो दोष नहीं है।

विवाहहोमकाले रजोदोषे तां स्नापयित्वा युञ्जान इति तैत्तिरीयमन्त्रेण प्रायश्चित्तं हुत्वा होमतन्त्रं समापयेत् । यदा तु दात्रभावाद्रजोदर्शनं तदा कन्या वर्षत्रयं प्रतीक्ष्य स्वयं वरं वृणुयात् । नात्र वरस्यापि दोषः । इति कन्यारजोदोषनिर्णयः ।

विवाह-होम के समय रजोदोष होने पर उसको नहलाकर "युञ्जान" इस तैत्तिरीय मन्त्र से प्रायश्चित्त होम करके होम तन्त्र समाप्त करे। जब कि कन्यादाता के अभावसे रजोदर्शन हो जाय तब कन्या तीन वर्ष दाता की प्रतीक्षा करके स्वयं वर का वरण करे। इसमें वरको दोष नहीं होता। कन्या रजोदर्शन का निर्णय समाप्त।

अथ क्षयपक्षादिविचारः

पक्षमध्ये तिथिद्वयस्य क्षयेण यस्त्रयोदशदिनात्मकः पक्षः स[2]क्षयपक्षः । तदा बहुप्रजासंहारो राजसंहारो वा । क्षयपक्षे चौलोपनयनोद्वाहादिवास्तुकर्मादिशुभं

१. आश्वलायनोक्त प्रायश्चित्त—कन्यामृतुमतीं शुद्धां कृत्वा निष्कृतिमात्मनः । शुचिं च कारयित्वा तामुद्वहेदानृशंस्यधीः ॥ पिता ऋतून् स्वपुत्र्यास्तु गणयेदादितः सुधीः । दानावधि गृहे यत्नात् पालयेच्च रजोवतीम् ॥ दद्यात्तदृतुसंख्या गाः शक्तः कन्यापिता यदि । दातव्यैकापि निःस्वेन दाने तस्या यथाविधि ॥ दद्याद्वा ब्राह्मणेष्वन्नमतिनिःस्वः सदक्षिणम् । तस्यातीततुसंख्येषु वराय प्रतिपादयेत् ॥ उपोष्य त्रिदिनं कन्या रात्रौ पीत्वा गवां पयः । अदृष्टरजसे दद्यात् कन्यायै रत्नभूषणम् ॥ तामुद्वहन् वरश्चापि कूष्माण्डैर्जुहुयाद् द्विजः ।' मदनपारिजात में यज्ञपार्श्व—'विवाहे वितते तन्त्रे होमकाल उपस्थिते । कन्यामृतुमतीं दृष्ट्वा कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः । स्नापयित्वा तु तां कन्यामर्चयित्वा यथाविधि ॥ युञ्जानामाहुतिं हुत्वा ततस्तन्त्रं प्रवर्तयेत् ।' इति ।

२. जिस पक्ष में दो तिथियों का ह्रास हो वह तेरह दिन का पक्ष है और वह अतिनिन्दित हैं। ज्योतिर्निबन्ध में बतलाया गया है—'पक्षस्य मध्ये द्वितिथी पतेतां तदा भवेद् रौरवकालयोगः । पक्षे विनष्टे सकलं विनष्टमित्याहुराचार्यवराः समस्ताः ॥' तथा—'त्रयोदशदिने पक्षे तदा संहरते जगत् । अपि वर्षसहस्रेण कालयोगः प्रकीर्तितः ॥' इसमें सभी शुभ कर्म त्याज्य हैं, जैसा कि व्यवहारचण्डेश्वर में निर्दिष्ट है—'त्रयोदशदिने पक्षे विवाहादि न कारयेत् । गर्गादिमुनयः प्राहुः कृते मृत्युस्तदा भवेत् ॥' ज्योतिर्निबन्धेऽपि—'उपनयनं परिणयनं वेश्मारम्भादि कर्माणि । यात्रां द्विक्षयपक्षे कुर्यान्न जिजीविषुः पुरुषः ॥' इति ।

न कार्यम्। क्षयमासाधिमासगुरुशुक्रास्तादौ विवाहनिषेधः प्रथमपरिच्छेदे। एवं सिंहस्थगुरुनिषेधनिर्णयोऽपि प्रथमपरिच्छेदे द्रष्टव्यः।

पक्ष के बीच में दो तिथियों के क्षयसे जो तेरह दिन का पक्ष होता है उसे क्षयपक्ष कहते हैं। तब बहुत सी प्रजा या राजा का संहार होता है। क्षयपक्ष में चौल, उपनयन और विवाह आदि तथा वास्तुकर्म आदि शुभ कर्म नहीं करना चाहिये। क्षयमास, अधिमास, गुर्वस्त तथा शुक्रास्त आदि में विवाह का निषेध इसी प्रकार सिंहस्थ गुरु का निषेध भी प्रथम परिच्छेद में देखना चाहिये।

[1]क्षयसंवत्सरोऽपि निषिद्धः। शीघ्रगत्या पूर्वराशिशेषमतिक्रम्य राश्यन्तर-संचारोऽतिचारस्तं प्राप्तो गुरुः पुनः पूर्वराशिं वक्रगत्या यदि नायाति तदा स क्षयसंवत्सरः सर्वकर्मसु वर्ज्यः। तत्र मेषवृषभवृश्चिककुम्भमीनराशिषु न दोषः। केचिद् गोदादक्षिणदेशे कोऽप्यतिचारादिगुरुदोषो नेत्याहुः। इति क्षयपक्षादि-विचारः।

क्षयवर्ष भी निषिद्ध है। शीघ्र गति से पहली राशि के शेष को अतिक्रमण करके दूसरी राशि पर सञ्चारण करने से अतिचार होता है उसपर बृहस्पति प्राप्त होते हैं, तत्पश्चात् फिर पहिली राशि पर वक्रगति से यदि नहीं आते हैं तब वह क्षय संवत्सर सब कर्मों में वर्जनीय हैं। उसमें मेष, वृष, वृश्चिक, कुम्भ और मीन राशि में दोष नहीं है। कुछ लोग गोदा नदी के दक्षिण देश में कोई भी अतिचार आदि गुरुदोष नहीं होता ऐसा कहते हैं। क्षयपक्षका विचार समाप्त।

अथ वधूवरयोर्गुरुरविबलविचारः

मुख्यं गुरुबलं[2] वध्वा वरस्येष्टं रवेर्बलम्। द्विपञ्चसप्तनवैकादशस्थो गुरुः कन्यायाः शुभः। जन्मतृतीयषष्ठदशमस्थानेषु पूजा होमात्मकशान्त्या शुभः।

---

१. लल्लः—अतिचारगतो जीवस्तं राशिं नैव चेत्पुनः। लुप्तः संवत्सरो ज्ञेयः सर्वकर्मबहिष्कृतः॥ इति। ज्योतिःसागर में सिंहराशिस्थितादि गुरु का निषेध—'बाले शुक्रे वृद्धे शुक्रे वृद्धे जीवे नष्टे जीवे। बाले जीवे जीवे सिंहे सिंहादित्ये जीवादित्ये॥ तथा मलिम्लुचे मासि सुराचार्येऽतिचारगे। वापीकूप-विवाहादिक्रियाः प्रागुदितास्त्यजेत्॥ सिंहस्थं मकरस्थं च गुरुं यत्नेन वर्जयेत्।'

पराशरोक्त सिंहस्थ गुरु का अपवाद—'गोदाभागीरथीमध्ये नोद्वाहः सिंहगे गुरौ। मघास्थे सर्वदेशेषु तथा मीनगते रवौ॥' वसिष्ठ ने भी कहा है—'विवाहो दक्षिणे कूले गौतम्यां नेतरत्र तु। भागीरथ्युत्तरे कूले गौतम्या दक्षिणे तथा। विवाहो व्रतबन्धश्च सिंहस्थेज्ये न दुष्यति॥' इति।

शौनकोक्त बृहस्पतिशान्ति—'कन्यकोद्वाहकाले तु आनुकूल्यं न विद्यते। ब्राह्मणस्योपनयने गुरोर्विधिरुदाहृतः॥ सुवर्णेन गुरुं कृत्वा पीतवस्त्रेण वेष्टयेत्। ईशान्यां धवलं कुम्भं धान्योपरि निधाय च॥ दमनं मधुपुष्पं च पलाशं चैव सर्षपान्। मांसी गुडूच्यपामार्गौ विडङ्गी शङ्खिनी वचा। सहदेवी हरिक्रान्ता सर्वौषधिशतावरी। बला च सहदेवी च निशाद्वितयमेव च॥ कृत्वाज्यभाग-पर्यन्तं स्वशाखोक्तविधानतः। ग्रहोक्तमण्डलेऽभ्यर्च्य पीतपुष्पाक्षतादिभिः॥ देवपूजोत्तरे काले ततः कुम्भानुमन्त्रणम्। अश्वत्थसमिधश्चाज्यं पायसं सर्पिषा युतम्॥ यवव्रीहितिलाः साज्या मन्त्रेणैव बृहस्पतेः। अष्टोत्तरशतं सर्वं होमशेषं समापयेत्॥ पुत्रदारसमेतस्य अभिषेकं समाचरेत्। कुम्भाभिमन्त्रणोक्तैश्च समुद्रज्येष्ठमन्त्रतः॥ प्रतिमां कुम्भवस्त्रं च आचार्याय निवेदयेत्। ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चाच्छुभदः स्यान्न संशयः॥' इति।

२. गर्गः—'स्त्रीणां गुरुबलं श्रेष्ठं पुरुषाणां रवेर्बलम्। तयोश्चन्द्रबलं श्रेष्ठमिति गर्गेण भाषितम्॥ जन्मत्रिदशमारिस्थः पूजया शुभदो गुरुः। विवाहेऽथ चतुर्थाष्टद्वादशस्थो मृतिप्रदः॥'

चतुर्थाष्टमद्वादशस्थानेषु दुष्टफलः। कर्कधनुर्मीनगश्चतुर्थादिस्थानेऽपि न दुष्टः। संकटे चतुर्थद्वादशस्थो द्विवारमष्टमस्त्रिवारं होमादिरूपपूजयाऽर्चितः शुभः। वरराशेस्त्रिषड्दशैकादशस्थानेषु रविः शुभः। अन्यत्र ग्रहमखोक्तपूजया शुभः। गुरुपूजाप्रकार उपनयनप्रकरणे उक्तः।

वधू का गुरु-बल मुख्य है और वर को सूर्य का बल इष्ट है। कन्या का वृहस्पति दूसरे पांचवें, सातवें और ग्यारहवें स्थान में शुभदायक हैं। जन्म से तीसरे, छठे और दसवें स्थान में पूजा और होमात्मक शान्ति से शुभ होते हैं। चौथे, आठवें और बारहवें स्थान में दुष्ट फल देते हैं। कर्क धनु और मीन का गुरु चौथे आदि स्थानमें दुष्ट नहीं है। संकट में चौथा और बारहवां दो वार तथा आठवां तीन वार होम आदि रूप पूजा से पूजित होने पर शुभप्रद हैं। वरकी राशि से तीसरे, छठे, दसवें और ग्यारहवें स्थान में सूर्य शुभ हैं। इससे भिन्न में ग्रहयज्ञ की कही पूजा से शुभ होते हैं। गुरुपूजा का प्रकार उपनयन प्रकरण में कह चुके हैं।

अथ कन्याविवाहकालः

जन्मतो गर्भतो वा पञ्चमवर्षप्रभृति अष्टमवर्षपर्यन्तं कन्याविवाहे उचितः कालः। षड्वर्षोत्तरं वर्षद्वयं प्रशस्ततरः।

षडब्दमध्ये नोद्वाह्या कन्या वर्षद्वयं यतः।
सोमो भुङ्क्ते ततस्तद्वद्गन्धर्वश्च ततोऽनलः॥ इत्युक्तेः।

नवमदशमयोर्मध्यमः। एकादशवर्षेऽधमः। [१]द्वादशादौ प्रायश्चित्तावहः।

मुहूर्तचिन्तामणौ—'वटुकन्याजन्मराशेस्त्रिकोणायद्विसप्तगः। श्रेष्ठो गुरुः खषट्त्र्याद्ये पूजयाऽन्यत्र निन्दितः। अर्थात् वटुकन्याके जन्मराशि से नवम-पंचम-एकादश-द्वितीय-सप्तमस्थान में स्थित गुरु श्रेष्ठ, दशम-षट्-तृतीय-प्रथमस्थान में स्थित पूज्य और चतुर्थ-द्वादश-अष्टम स्थानमें स्थित निन्द्य हैं।

वसिष्ठ की विशेषोक्ति—'बन्धौ तृतीये रिपुराशिसंस्थे वाञ्छन्ति पूजां दशमे सुरेज्ये। नेच्छन्ति पूजां ब्निगे व्ययस्थे पुरातना अष्टमगेऽपि राशौ॥' वृहस्पतिः—'झषचापकुलीरस्थो जीवोऽप्यशुभगोचरः। अतिशोभनतां दद्याद् विवाहोपनयादिषु॥' लल्लः—'सर्वत्रापि शुभं दद्याद् द्वादशाब्दात् परं गुरुः। पञ्चषष्ठाब्दयोरेव शुभगोचरता मता॥ सप्तमात् पञ्चवर्षेषु स्वोच्चस्वर्क्षगतो यदि। अशुभोऽपि शुभं दद्याच्छुभर्क्षेषु किं पुनः॥

रजस्वलायाः कन्याया गुरुशुद्धिं न चिन्तयेत्। अष्टमेऽपि प्रकर्तव्यो विवाहस्त्रिगुणार्चनात्। अर्कगुर्वोर्बलं गौर्या रोहिण्यर्कबला स्मृता। कन्या चन्द्रबला प्रोक्ता वृषली लग्नतो बला॥ अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी। दशवर्षा भवेत् कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला॥' इति।

राजमार्तण्ड में वर के लिये रवि की शुद्धि—'रविशुद्धौ ग्रहकरणं रविगुरुशुद्धौ व्रतोद्वाहौ। क्षौरं ताराशुद्धौ शेषं चन्द्राश्रितं कर्म॥' वर के राशि से रवि का श्रेष्ठ स्थान—'तृतीयः षष्ठगश्चैव दशमैकादशस्थितः। रविः शुद्धो निगदितो वरस्यैव करग्रहे॥' पूज्य-स्थान—'जन्मस्थे च द्वितीयस्थे पञ्चमे सप्तमेऽपि वा। नवमे भास्करे पूजां कुर्यात्पाणिग्रहोत्सवे॥' निन्द्य-स्थान—'चतुर्थे वाऽष्टमे चैव द्वादशे भास्करे स्थिते। वरः पञ्चत्वमाप्नोति कृते पाणिग्रहोत्सवे॥' इति।

१. मनुः—'त्रिंशद्वर्षो वहेद् भार्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकीम्। त्र्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां वा धर्मे सीदति सत्वरः॥ महाभारते—'त्रिंशद्वर्षः षोडशाब्दां भार्यां विन्देत नग्निकाम्। द्व्यष्टवर्षोऽष्टवर्षां

जन्म से या गर्भ से पांचवें से आठवें वर्ष तक कन्या के विवाह में उचित समय है। छ वर्ष के बाद दो वर्ष तक अतिशय प्रशस्त है। छ वर्ष के मध्य में–कन्या विवाह-योग्य नहीं होती, क्योंकि दो वर्ष सोम भोग करते हैं। इसी तरह गन्धर्व और अग्नि भोगते हैं, यह वचन है। नवम और दशम वर्ष में विवाह मध्यम श्रेणी का है। ग्यारहवें में अधम और बारहवें आदि में प्रायश्चित्त योग्य है।

अथ विवाहभेदाः

ब्राह्मो दैव आर्षः प्राजापत्य आसुरो गान्धर्वो राक्षसः पैशाच इत्यष्टौ[1] विवाहाः। योग्यवरमाहूयालंकृत्य कन्यादानविधिना तस्मै दानं ब्राह्मो विवाहः। यज्ञे ऋत्विक्कर्मकुर्वतेऽलंकृत्य कन्यार्पणं दैवः। वरादेकं गोमिथुनं द्वे वा गृहीत्वा तस्मै कन्याऽर्पणमार्षः। इदं गोमिथुनग्रहणं न निन्दितम्, तस्य कुमारीपूजनार्थत्वेन कन्याविक्रयाभावात्। त्वयैतयैव सह गृहधर्म आचरणीय एतस्या जीवनपर्यन्तं विवाहानन्तरं चतुर्थाश्रमो वा न कार्य इत्याभाष्य कन्यादानं प्राजापत्यः। ज्ञातिभ्यो यथेच्छं धनं दत्त्वा विवाह आसुरः। वरवध्वोरिच्छयान्योन्यसंयोगो गान्धर्वः। युद्धादिना बलाद्धरणं राक्षसः। चौर्येण कन्याहरणं पैशाचः।

वा धर्मे सीदति सत्वरः॥ अतो प्रवृत्ते रजसि कन्यां दद्यात् पिता सकृत्।' यहां नग्निका का गृह्यसंग्रहोक्त-लक्षण है—'नग्निकां तु वदेत् कन्यां यावन्नर्तुमती भवेत्। ऋतुमती त्वनग्निका तां प्रयच्छेत्तु नग्निकाम्॥ अप्राप्ता रजसो गौरी प्राप्ते रजसि रोहिणी। अव्यञ्जिता भवेत् कन्या कुचहीना च नग्निका॥'

रजोदर्शन के पहले विवाह का कारण गृह्यसंग्रह में ही बतलाया गया है–'व्यञ्जनैस्तु समुत्पन्नैः सोमो भुञ्जीत कन्यकाम्। पयोधरैस्तु गन्धर्वा रजसाऽग्निः प्रकीर्तितः॥ तस्मादव्यञ्जनोपेतामरजसामपयोधराम्। अभुक्तां चैव सोमाद्यैः कन्यकां तु प्रशस्यते॥' यमः—'कन्या द्वादशवर्षाणि याऽप्रदत्ता वसेद् गृहे। ब्रह्महत्या पितुस्तस्याः सा कन्या वरयेत्स्वयम्॥'

आयुर्वेदीय दृष्टि से सुश्रुत में धन्वन्तरि–'अथास्मै पञ्चविंशतिवर्षाय द्वादशवर्षां पत्नीमावहेत्। पित्र्यधर्मार्थकामप्रजाः प्राप्स्यतीति।' इन वचनों से रजोदर्शन के पूर्व कन्या का विवाहकाल सिद्ध होता है। धर्मशास्त्रों में रजोदर्शन के अनन्तर कन्या का विवाह निन्द्य बतलाया गया है–'प्राप्ते तु द्वादशे वर्षे यः कन्यां न प्रयच्छति। मासि मासि रजस्तस्याः पिता पिबति शोणितम्॥' इत्यादि।

वर्तमान समय में कन्याओं के विवाह का समय श्रुति की—'ब्रह्मचर्येण तपसा युवानं विन्दते पतिम्।' इस उक्ति के अनुसार उपयुक्त प्रतीत होता है।

१. मनुः—'ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथाऽऽसुरः। गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः॥ आठों विवाहों के याज्ञवल्क्योक्त लक्षण—'ब्राह्मो विवाह आहूय दीयते शक्त्यलंकृता। तज्जः पुनात्युभयतः पुरुषानेकविंशतिम्॥ यज्ञस्थ ऋत्विजे दैव आदायार्षस्तु गोद्वयम्। चतुर्दश प्रथमजः पुनात्युत्तरजश्च षट्॥ इत्युक्त्वा चरतां धर्मं सह वा दीयतेऽर्थिने। स कायः पावयेत्तज्जः षट् षड् वंश्यान् सहात्मना॥ आसुरो द्रविणादानाद् गान्धर्वः समयान्मिथः। राक्षसो युद्धहरणात् पैशाचः कन्यकाच्छलात्॥'

नारद ने ब्राह्म आदि चार विवाहों में ही काल का नियम बतलाया है––'प्राजापत्यब्राह्मदैवविवाहा ऋषिसंज्ञकाः। उक्तकालेषु कर्तव्याश्चत्वारः फलदायकाः॥ गान्धर्वासुरपैशाच्यराक्षसाख्याश्च सर्वदा।' गृह्यपरिशिष्ट में भी कहा है—'धर्म्येषु विवाहेषु कालपरीक्षणं नाधर्म्येषु' इसलिये ग्रन्थकार

ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच ये आठ प्रकार के विवाह होते हैं। योग्य वर को बुलाकर अलंकृत करके कन्यादान विधि से उसे देनेको ब्राह्म विवाह कहते हैं। यज्ञ में ऋत्विक् के कार्य करने वाले को अलंकृत करके कन्या के अर्पण को दैव कहते हैं। वर से एक जोड़ी या दो जोड़ी गाय और बैल लेकर उसे कन्या के अर्पण को आर्ष विवाह कहते हैं। यह गाय बैल की जोड़ी लेना निन्दित नहीं है, क्योंकि वह कुमारी-पूजन के निमित्त होने से कन्या विक्रय नहीं है। आप इसी के साथ जीवन पर्यन्त गृहस्थ धर्म का आचरण करें तथा विवाहके बाद संन्यास आश्रम में न जायँ ऐसा कह कर जो कन्यादान किया जाय उसे प्राजापत्य विवाह कहते हैं। कन्या के भाई बन्धु को इच्छानुसार धन देकर विवाह करने को आसुर कहते हैं। वर और वधू की इच्छा से परस्पर संयोग को गान्धर्व विवाह कहते हैं। युद्ध आदि से जबर्दस्ती कन्या लेने को राक्षस विवाह कहते हैं। चोरी से कन्या-हरण को पैशाच विवाह कहते हैं।

पूर्वंचतुर्षु पूर्वः पूर्वः श्रेष्ठः। उत्तरेषूत्तर उत्तरो निन्द्यः। तत्र विप्रस्य ब्राह्म-दैवौ प्रशस्तौ। क्षत्रियस्य गान्धर्वराक्षसौ। आसुरो वैश्यस्य। आर्षप्राजापत्य-पैशाचाः सर्वेषाम्। संकटे राक्षसभिन्नाः सप्त विप्रस्य। ब्राह्मदैवेतरे षट् क्षत्रियस्य। वैश्यशूद्रयोर्ब्राह्मदैवराक्षसभिन्नाः पञ्च। सर्वेष्वपि विवाहेषु तत्तत्प्रकारैः कन्या-परिग्रहोत्तरं स्वस्वगृह्यरीत्या विवाहहोमादिविधिरावश्यकः। दानविधिना दानं सर्वत्र न भवति।

पहले चार विवाहों में पहले पहले विवाह श्रेष्ठ हैं। बाद वालों में उत्तरोत्तर निन्दनीय हैं। उसमें ब्राह्म और दैव विवाह उत्तम होते हैं। क्षत्रिय का गान्धर्व और राक्षस तथा वैश्य का आसुर। आर्ष प्राजापत्य और पैशाच सबके लिये हैं। संकट में राक्षस को छोड़ ब्राह्मण के सात, ब्राह्म और दैव को छोड़ क्षत्रिय के छ और वैश्य तथा शूद्र के ब्राह्म दैव और राक्षस को छोड़ पांच विवाह हैं। सभी विवाहों में उस उस प्रकार से ग्रहण के बाद अपनी अपनी गृह्य रीति के अनुसार विवाह और होम आदि विधि आवश्यक है। दान की विधि से सर्वत्र दान नहीं होता।

अथ सप्तपदीतः पूर्वं कन्याऽन्यस्मै देया।

पैशाचादौ सप्तपदीविधेः पूर्वमन्यस्मै कन्या देया। ब्राह्मादिष्वपि कन्यादानो-त्तरमपि सप्तपदीविधेः पूर्वं वरस्य षण्ढत्वादिदोषज्ञाने वरमृतौ वा कन्याऽन्यस्मै देया। ब्राह्मविवाहोढायां जातः पुत्रो दशपूर्वान्दशपरान् पितॄंस्तारयते। दैवोढापुत्रः सप्त सप्त, प्राजापत्योढापुत्रः षट् षट्, आर्षोढापुत्रस्त्रींस्त्रीन्।

पैशाच आदि विवाह में सप्तपदी विधि के पहले दूसरे को कन्या दातव्य है। ब्राह्म आदि विवाहों में भी कन्यादान के अनन्तर भी सप्तपदी विधि से पहिले वरके नपुंसकत्व आदि दोष जानने पर अथवा वर के मरने पर दूसरे को कन्या देय है। ब्राह्मविवाह से ब्याही हुई स्त्री से उत्पन्न पुत्र दस पहले के और दस पर पितरों को तारता है। दैव-विधि से ब्याही का पुत्र सात-सात, प्राजापत्य

का—'सार्वकालमेके विवाहम्' यह वचन गान्धर्वादि चार विवाहों अथवा अत्यासन्न ऋतुकाल वाली कन्या के लिये है।

बल से अपहृत कन्याओं के सम्बन्ध में वसिष्ठ बौधायन ने कहा है—'बलादपहृता कन्या मन्त्रैर्यदि न संस्कृता। अन्यस्मै विधिवद्देया यथा कन्या तथैव सा॥' इति।

विधि से ब्याही का पुत्र छ-छ और आर्ष विधि से ब्याही का पुत्र तीन पूर्व और तीन पर पितरों को तारता है।

आश्वलायनसूत्रे तु ब्राह्मादिषु द्वादशदशाष्टौ सप्त च पूर्वान् परांश्च पुत्रस्तारयत इत्युक्तम्। अन्येषु दुर्विवाहेषु ब्रह्मधर्मद्विषः सुताः। वाग्दानोत्तरं वरस्य देशान्तरगमने षण्मासं प्रतीक्ष्यान्यस्मै देया। कन्यायाः शुल्कं प्रदाय गमने [1]वर्षंप्रतीक्षा। यत्तु बलाद्विवाहे सगोत्रत्वक्लीबत्वादिवरदोषे वा कन्या सप्तपदीविध्युत्तरमप्यन्यस्म देयेति तत्कलियुगे निषिद्धम्।

आश्वलायन सूत्र में तो ब्राह्म आदि विवाहों में बारह, दस, आठ और सात पर पितरों को पुत्र तारता है, ऐसा कहा है। दूसरे बुरे विवाहों से उत्पन्न पुत्र ब्राह्मण और धर्म के शत्रु होते हैं। वाग्दान के बाद वर के दूसरे देश में जाने पर छ महीने की बाट जोहकर दूसरे वर से विवाह कर दे। कन्या को शुल्क देकर देशान्तर चले जाने पर एक वर्ष की प्रतीक्षा करे। जो जबर्दस्ती विवाह में अथवा सगोत्रत्व नपुंसकत्व आदि वर के दोष में सप्तपदी विधि के बाद भी दूसरे वर को कन्या देने की बात कहा है उसका कलियुग में निषेध है।

वाग्दानोत्तरं पातित्यादिदोषाभावेऽपि कन्यामदातुर्दण्ड उक्तः। एवं कन्याया अपस्मारदोषमनुक्त्वा दातापि दण्डयः। अधर्म्योद्वाहेषु द्विजैर्भोजनादौ कृते आसुरे एकरात्रमुपवासो गान्धर्वे त्रिरात्रं राक्षसपैशाचयोश्चान्द्रायणं प्रायश्चित्तम्। इति विवाहभेदाः।

वाग्दान के बाद पातित्य आदि दोष के न रहनेपर भी कन्या नहीं देने वाले को दण्ड कहा है। इसी प्रकार कन्या का अपस्मार (मिर्गी) दोष न कहकर कन्या देने वाला भी दण्डनीय है। अधर्म्य विवाहों में ब्राह्मणों के भोजन आदि करने पर आसुर में एक दिन उपवास, गान्धर्व में तीन दिन, राक्षस और पैशाच में चान्द्रायण प्रायश्चित्त है।

अथ परिवेत्रादिविचारः

दाराऽग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते। स कनिष्ठः परिवेत्ता ज्येष्ठः परिवित्तिः। एवं ज्येष्ठायामनूढायां कनिष्ठकन्योद्वाहे ज्येष्ठाकन्या [2]दिधिषुः, कनिष्ठाऽग्रेदिधिषुः।

बड़े भाई के रहते जो विवाह या अग्निहोत्र करता है वह छोटा भाई परिवेत्ता कहलाता है और बड़ा भाई परिवित्ति कहलता है। इसी प्रकार बड़ी लड़की के अविवाहिता रहने पर छोटी लड़की का विवाह हो तो बड़ी लड़की दिधिषु और छोटी अग्रेदिधिषु कहलाती है।

---

१. कात्यायनः—'प्रदाय शुल्कं गच्छेद्यः कन्यायाः स्त्रीधनं तथा। धार्या सा वर्षमेकं तु देयाऽन्यस्मै विधानतः॥ अनेकेभ्यो हि दत्तायामनूढायां तु तत्र वै। पूर्वागतश्च सर्वेषां लभेताद्यवरस्तु ताम्॥ पश्चाद् वरेण यद्दत्तं तस्याः प्रतिलभेत सः। अथागच्छेन्नवोढायां दत्तं पूर्ववरो हरेत्॥' इति।

२. दिधिषु का लक्षण—'ज्येष्ठायां यद्यनूढायां कन्यायामुह्यतेऽनुजा। सा चाग्रेदिधिषूर्ज्ञेया पूर्वा च दिधिषूः स्मृता॥' इति।

अथात्र प्रायश्चित्तम्

अज्ञानतः पित्रादिदत्तोद्वाहे भ्रात्रोः परिवेत्तृपरिवित्तिसंज्ञयोः कृच्छ्रद्वयं कन्यायाः कृच्छ्रं दातुरतिकृच्छ्रं याजकस्य चांद्रायणम्। ज्ञानतः पित्राद्यदत्तोद्वाहे सर्वेषां वत्सरं कृच्छ्राचरणम्। कामतः पित्रादिदत्तोद्वाहे त्रैमासिकम्। अज्ञानेनादत्तोद्वाहे चान्द्रायणादि। [1]दिधिष्वादिपतेरतिकृच्छ्रकृच्छ्रौ।

इसमें प्रायश्चित्त निम्नलिखित है—अज्ञान से पिता आदि द्वारा विवाह करने पर परिवेत्ता और परिवित्ति नामक दोनों भाइयों का दो कृच्छ्र तथा कन्या का एक कृच्छ्र दाता का अतिकृच्छ्र और यज्ञ कराने वाले का चान्द्रायण प्रायश्चित्त होता है। जानकर पिता आदि द्वारा विवाह न करने पर सबको वर्ष पर्यन्त कृच्छ्र व्रत करना चाहिये। इच्छानुसार पिता आदि से किये गये विवाह में तीन मास का कृच्छ्र व्रत करे। अज्ञान से पिता आदि के द्वारा विवाह न करने पर स्वयं करने पर चान्द्रायण आदि करे। दिधिषु आदि के पति को अतिकृच्छ्र और कृच्छ्र ज्ञान-अज्ञान के भेद से करे।

अत्रापवादः—सापत्ने दत्तके वा ज्येष्ठ कनिष्ठस्य दाराग्निहोत्रग्रहणे दोषो न। सोदरेपि क्लीबे मूकबधिरवामनभग्नपादत्वादिदोषयुते [2]देशान्तरस्थे वेश्यासक्ते पतिते महारोगिण्यतिवृद्धे कृषिसक्ते धनवृद्धिराजसेवादिव्यापारासक्ते चौर्यासक्ते उन्मत्ते विवाहाग्निहोत्रेच्छानिवृत्ते च ज्येष्ठे कनिष्ठस्य दाराग्निहोत्रग्रहणे दोषो न।

इसमें अपवाद यह है—सौतेले या दत्तक पुत्र जेठे के रहते छोटे का विवाह या अग्निहोत्र करने में दोष नहीं है। सहोदर जेठे के भी नपुंसक, गूंगा, बहिरा, बौना, पैर टूटने आदि दोष से युक्त होने, दूसरे देश में रहने, वेश्या में आसक्त होने, पतित होने, महारोगयुक्त होने, अत्यन्त वृद्ध होने, खेती में लगे रहने धनवृद्धि के लिये राजसेवा आदि व्यापार में लगे रहने, चोरी में लगे रहने, पागल होने, विवाह तथा अग्निहोत्र करने की इच्छा से निवृत्त होने पर छोटे का विवाह और अग्निहोत्र करने में दोष नहीं है।

देशान्तरगतं ज्येष्ठमष्टौ द्वादश वा वर्षाणि कनिष्ठः प्रतीक्षेत्। एवं कन्याया अपि ज्येष्ठाया भिन्नमातृजत्वे कनिष्ठाया विवाहे दोषो न। एवं मूकत्वादिदोषयुतायां ज्येष्ठायामूह्यम्। इति परिवेत्रादिनिर्णयः।

दूसरे देश में जेठे को जाने पर छोटा भाई आठ या बारह वर्ष की प्रतीक्षा करे। इसी प्रकार कन्या का भी दूसरी माता से उत्पन्न जेठी के रहते छोटी के विवाह में दोष नहीं है। इसी तरह गूंगेपन, बहिरेपन आदि दोष युक्त जेठी लड़की में भी कल्पना करनी चाहिये। परिवेत्ता आदि का निर्णय समाप्त।

---

१. दिधिषूपति का लक्षण मनु ने बतलाया है—'भ्रातुर्मृतस्य भार्यायां योऽनुरज्येत कामतः। धर्मेणापि नियुक्तायां स ज्ञेयो दिधिषूपतिः॥' अर्थात् दिधिषूपति वह पुरुष है जो धर्म से नियुक्त अपने भाई की विधवा से कामवश अनुरक्त (मैथुन में प्रवृत्त) हुआ हो।

२. बृहस्पति ने देशान्तर का लक्षण बतलाया है—'महानद्यन्तरं यत्र गिरिर्वा व्यवधायकः। वाचो यत्र विभिद्यन्ते तद्देशान्तरमुच्यते॥ देशान्तरं वदन्त्येके षष्टियोजनमायतम्। चत्वारिंशद् वदन्त्यन्ये त्रिंशदन्ये तथैव च॥' इति।

अथ कन्यादातृक्रमः

'पिता पितामहो भ्राता पितृकुलस्थः पितृव्यादिर्मातृकुलस्थो मातामहमातुलादिः। सर्वाभावे जननीत्येवं पूर्वाभावे परः परः। भ्रातॄणामुपनीतानामेवाधिकारः। अनुपनीतभ्रातुर्मात्रादेश्च सत्त्वे मात्रादेरेवाधिकारो न त्वनुपनीतभ्रातुः।

पिता, पितामह, भाई, पितृकुल में स्थित पितृव्य आदि, मातृकुल में स्थित मातामह मातुल आदि, सबके अभाव में माता इस प्रकार पूर्व के अभाव में पर पर कन्यादाता का क्रम हैं। भाइयों में उपनीत भाई का ही अधिकार है। अनुपनीत भाई और माता आदि के रहते माता आदि का ही अधिकार है न कि अनुपनीत भाई का।

अथ सर्वाभावे कन्यावरयोर्नान्दीमुखाधिकारः

सर्वाभावे कन्या स्वयं वरं वृणुयात्। कन्या स्वयंवरे मातुर्दातृत्वे च ताभ्यामेव नान्दीश्राद्धं कार्यम्। तत्र माता कन्या वा स्वयं प्रधानसंकल्पमात्रं कृत्वाऽन्यद्ब्राह्मणद्वारा कारयेत्। वरस्तु संस्कृतभ्रात्राद्यभावे स्वयमेव नान्दीश्राद्धं कुर्यान्न माता। उपनयनेन कर्माधिकारस्य जातत्वाद् द्वितीयादिविवाहे वरः स्वयमेव नान्दीश्राद्धं कुर्यात्।

इन सब के न रहने पर कन्या स्वयं वर का वरण करे। कन्या के स्वयं वर-वरण में और माता के कन्यादान करने में इन्हीं दोनों को नान्दीश्राद्ध करना चाहिये। इसमें माता या कन्या स्वयं प्रधान संकल्पमात्र करके और पूजनादि कार्य ब्राह्मण द्वारा करावे। वर तो उपनीत भाई आदि के न होने पर स्वयं ही नान्दीश्राद्ध करे न कि माता। क्योंकि उपनयन से कार्य का अधिकार उत्पन्न हो जाता है। दूसरे आदि विवाह में वर स्वयं नान्दीश्राद्ध करे।

अथ परकीयकन्यादाने विशेषः

आत्मीकृत्य सुवर्णेन परकीयां तु कन्यकाम्।
धर्मेण विधिना दानमसगोत्रेऽपि युज्यते॥

इति दातृनिर्णये वरवध्वोरपि नान्दीश्राद्धकर्तृत्वनिर्णयः।

दूसरे की कन्या के दान में विशेष है—दूसरे की कन्या को सुवर्ण से अपनी बनाकर धर्मविधि से दान परकीय गोत्रा का भी युक्त होता है। कन्यादाता के निर्णय में वर-वधू का नान्दीश्राद्ध के कर्तृत्व का निर्णय समाप्त।

---

१. याज्ञवल्क्यः—'पिता पितामहो भ्राता सकुल्यो जननी तथा। कन्याप्रदः पूर्वनाशे प्रकृतिस्थः परः परः॥' अपरार्क में नारद—'पिता दद्यात् स्वयं कन्यां भ्राता वाऽनुमते पितुः। मातामहो मातुलश्च सकुल्यो बान्धवस्तथा॥ माता त्वभावे सर्वेषां प्रकृतौ यदि वर्तते। तस्यामप्रकृतिस्थायां कन्यां दद्युः स्वजातयः॥ सकुल्यः पितृपक्षीयो बान्धवो मातृवंशजः।'

कात्यायन का अपवाद-वचन—'दीर्घप्रवासयुक्तेषु पौगण्डेषु च बन्धुषु। माता तु समये दद्यादौरसीमपि कन्यकाम्॥' किसी के न रहने पर मनु ने कहा है—'यदा तु नैव कश्चित्स्यात् कन्या राजानमाव्रजेत्॥' इति।

अथ वधूवरयोर्मूलजत्वादिगुणदोषाः

'मूलनक्षत्राद्यपादत्रयजातौ वधूवरौ स्वस्वश्वशुरं नाशयतः। आश्लेषान्त्यपादत्रयजातौ श्वश्रूम्। ज्येष्ठान्त्यपादजातावन्योऽन्यज्येष्ठभ्रातरम्। विशाखान्त्यपादजातावन्योन्यकनिष्ठभ्रातरम्। मघाप्रथमपादे मूलवत्फलं केचिदाहुः।

मूल नक्षत्र के पहिले तीन चरणों में उत्पन्न वधू और वर अपने-अपने श्वशुर का नाश करते हैं। आश्लेषा के अन्तवाले तीन चरणों में उत्पन्न वधू-वर अपनी-अपनी सास का नाश करते हैं। ज्येष्ठा के अन्त्य चरण में उत्पन्न परस्पर ज्येष्ठ भाई का, विशाखा के अन्त्य चरण उत्पन्न अन्योन्य छोटे भाई का नाश करते हैं। मघा के प्रथम पाद में मूल के समान फल कुछ लोग कहते हैं।

केचिदुपनयनस्य द्वितीयजन्मरूपत्वात्तेन च द्वितीयजन्मना पूर्वजन्मसंभवमूलादिदोषस्य निरस्तत्वाद्वरस्य श्वशुरघातित्वादिदोषो नेत्यपवादं संकटे वदन्ति। श्वशुराद्यभावे वध्वा अपि न दोषः।

नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम्।
न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न विभीषणनामिकाम्॥ उद्वहेदिति।

कुछ लोग, उपनयन को द्वितीय जन्मरूप होने से और उस द्वितीय जन्म से पूर्वजन्म से उत्पन्न मूल आदि के दोषों के निकल जाने से वर को श्वशुरहननत्व आदि दोष नहीं होता ऐसा अपवाद संकट में कहते हैं। श्वशुर आदि के अभाव में वधू को भी दोष नहीं। पक्षी के नाम वाली, नक्षत्र, वृक्ष और नदी के नाम वाली और अन्त्य तथा पर्वत के नाम वाली एवं सर्प तथा प्रेष्य (चपरासी) के नाम वाली और न भयङ्कर नाम वाली कन्या से विवाह न करे।

वराय पुंस्त्वं परीक्ष्य कन्या देया 'यस्याप्सु प्लवते बीजं ह्लादि मूत्रं च फेनिलम्' इत्यादि पुंस्त्वपरीक्षा[2]।

कुलं च शीलं च वपुर्वयश्च विद्यां च वित्तं च सनाथतां च।
एतान्गुणान् सप्त परीक्ष्य देया कन्या बुधैः शेषमचिन्तनीयम्॥

इति वधूवरयोर्मूलजातत्वादिगुणदोषनिर्णयः।

---

१. कश्यपः—'मूलाद्यपादजो हन्ति पितरं तु द्वितीयजः। मातरं स्वां तृतीयोऽर्थान् शु भदस्तु तुरीयजः॥ फलं तदेव सार्पर्क्षेष्वप्रतीपं त्वन्त्यपादतः।' वसिष्ठः—'ज्येष्ठान्ते घटिका चैका मूलादौ घटिकाद्वयम्। अभुक्तमूलमित्याहुर्जातं तत्र विवर्जयेत्॥'

वसिष्ठसंहिता में दिन-रात्रि के भेद से मूलजात का दोषपरिहार—'मूलाद्यपादो दिवसे यदि स्यात्तज्जः पितुर्नाशनकारणं स्यात्। द्वितीयभागो यदि रात्रिभागे तदुद्भवो मातृविनाशकः स्यात्॥ मूलाद्यभागो यदि रात्रिभागे तदात्मनो नास्ति पुनर्विनाशः। द्वितीयभागो दिनगो यदि स्यान्न मातुरल्पोऽपि तदास्ति दोषः॥' नारदसंहिता—'दिवाजातस्तु पितरं रात्रौ तु जननीं तथा आत्मानं सन्ध्ययोर्हन्ति ततो गण्डं विवर्जयेत्॥' इति।

२. पुंस्त्वपरीक्षा का उपाय नारद ने यह बतलाया है—'यस्याप्सु प्लवते बीजं ह्लादि मूत्रं च फेनिलम्। पुमान् स्याल्लक्षणैरेतैर्विपरीतैस्तु षण्डकः॥ ह्लादिफेनिलमूत्रश्च गुरुशुक्रर्षभस्वरः। पुमान् स्यादन्यथा पाण्डुदुश्चिकित्स्यो मुखेभगः॥ शुभबीजवति क्षेत्रे पुत्राः सन्तानवर्धनाः। निष्ठा विवाहमन्त्राणां तासां स्यात्सप्तमे पदे॥' इति।

वर को पुंस्त्व की परीक्षा करके कन्या देनी चाहिये। जिसका वीर्य जल में तैरने लगे और मूत्र शब्द एवं फेन युक्त हो इत्यादि पुंस्त्वपरीक्षा है। कुल, शील, शरीर, अवस्था, विद्या, धन और संरक्षक इन सात गुणों की परीक्षा कर पण्डित कन्या को दे, अन्य सब बातों का विचार नहीं करना चाहिए। वधूवर के मूल में उत्पन्न होने आदि गुण और दोष का निर्णय समाप्त।

अथ विवाहे मासादिनिर्णयः

'माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासाः शुभप्रदाः।
मार्गशीर्षो मध्यमः स्यात्क्वचिदाषाढकार्तिकौ॥

अत्र मिथुनेऽर्के आषाढो वृश्चिके कार्तिकश्च देशाचारानुरोधेन ग्राह्यौ न सर्वदेशे। एवं मकरस्थपौषो मेषस्थचैत्रोऽपि।

विवाह में माघ, फाल्गुन, वैशाख और ज्येष्ठ मास शुभ देने वाले हैं। अगहन मास मध्यम है। कहीं आषाढ़ और कार्तिक में भी विवाह होता है। इसमें मिथुन के सूर्य में कार्तिक देशाचार के अनुरोध से ग्रहणयोग्य हैं न कि सब देश में। इसी प्रकार मकर के सूर्य में पौष मास और मेष के सूर्य में चैत्र मास में भी।

अथ ज्येष्ठस्य ज्येष्ठमासनिषेधस्तदपवादश्च

ज्येष्ठयोर्वधूवरयोर्ज्येष्ठे मासि विवाहो न शुभः। मासान्तरे मध्यमः।
न ज्येष्ठयोर्विवाहः स्याज्ज्येष्ठे [2]मासि विशेषतः।
द्वौ ज्येष्ठौ मध्यमौ प्रोक्तावेकं ज्यैष्ठ्यं सुखावहम्॥
ज्येष्ठत्रयं न कुर्वीत विवाहे सर्वसंमतम्॥ इत्युक्तेः।

तथा च ज्येष्ठमासो ज्येष्ठगर्भस्य मङ्गले मध्यमः। [3]जन्ममासजन्मनक्षत्रादिकं ज्येष्ठापत्यस्य निषिद्धम्। सार्वकालमेके विवाहमिति त्वासुराद्यधर्मविवाहविषयम्[4]।

---

१. नारदः—'माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासाः शुभप्रदाः। कार्तिको मार्गशीर्षश्च मध्यमौ निन्दिताः परे॥' वसिष्ठः—'पौषेऽपि कुर्यान्मकरस्थितेऽर्के चैत्रे भवेन्मेषगतो यदा स्यात्। प्रशस्तमाषाढकृतं विवाहं वदन्ति गर्गा मिथुनस्थितेऽर्के॥' ज्योतिर्गर्ग और राजमार्तण्ड में विवाह के दस मास की प्रशस्ति है—'माङ्गल्येषु विवाहेषु कन्यासंवरणेषु च। दशमासाः प्रशस्यन्ते चैत्रपौषविवर्जिताः॥' आपस्तम्ब के—'सर्वऋतवो विवाहस्य शैशिरौ मासौ परिहाप्योत्तमं च नैदाघम्' तथा बौधायनसूत्र के—'सर्वे मासा विवाहस्य शुचिस्तपस्तपस्यवर्जम्' इन वचनों की व्यवस्था देशाचारानुसार करनी चाहिये।

२. पराशरः—'अज्येष्ठा कन्यका यत्र ज्येष्ठपुत्रो वरो यदि। व्यत्ययो वा तयोस्तत्र ज्येष्ठमासः शुभप्रदः॥' चण्डेश्वरः—'कृत्तिकास्थं रविं त्यक्त्वा ज्येष्ठपुत्रस्य कारयेत्। उत्सवादिषु कार्येषु दिनानि दश वर्जयेत्॥' कृत्तिका-स्थित सूर्य को छोड़कर ज्येष्ठमास का विधान मुहूर्तमाला में आपत्तिकालिक बतलाया गया है—'न ज्येष्ठयोर्विवाहः स्यान्मिथो ज्येष्ठे विशेषतः। ज्येष्ठेऽप्यन्यतमस्य स्यात्कृत्तिकार्कं विनाऽऽपदि॥' इति।

३. वृद्धगार्ग्य ने जन्म-मास का यह लक्षण बतलाया है—'आरभ्य जन्मदिवसाद्यावत् त्रिंशद्दिनं भवेत्। जन्ममासः स विज्ञेयः सर्वकर्मसु गर्हितः॥' रत्नकोशी—'जन्मर्क्षे जन्मदिवसे जन्ममासे शुभं त्यजेत्। ज्येष्ठे मास्याद्यगर्भस्य शुभं वर्ज्यं स्त्रिया अपि॥' इति।

४. अथवा कन्या के अत्यासन्न ऋतुकाल विषयक 'सार्वकालमेके विवाहम्' यह वचन है।

ज्येष्ठमास का निषेध और उसका परिहार है—जेठे वर-वधू का ज्येष्ठ मास में विवाह शुभप्रद नहीं है। दूसरे महीने में मध्यम है। जेठे वरवधू का विवाह नहीं होता, विशेष कर ज्येष्ठ मास में। दो ज्येष्ठ मध्यम कहे गये हैं, एक ज्येष्ठ सुखद है। तीन ज्येष्ठ का विवाह न करे यह सर्वसंमत है इस उक्ति से। इस प्रकार जेठे गर्भ के मङ्गल-कृत्य में ज्येष्ठ मास मध्यम होता है। जन्म का महीना और जन्मनक्षत्र आदि ज्येष्ठ सन्तान के लिए निषिद्ध है। विवाह सब काल में होता है यह किसी का मत तो आसुर आदि अधर्म-विवाह-विषय का है।

अथ आर्द्राप्रवेशविचारः

मयूखे आर्द्रादिदशनक्षत्रेषु सूर्याधिष्ठितेषु विवाहमौञ्ज्यादिकं वसिष्ठादिभिर्निषिद्धमित्युक्तम्। नैतत्कौस्तुभसिन्ध्वादिग्रन्थे मार्तण्डादिज्योतिर्ग्रन्थेऽपीति बहवः शिष्टा आर्द्रादिप्रवेशदोषं न मन्यन्ते।

मयूख में आर्द्रा आदि दस नक्षत्रों के सूर्य में विवाह, उपनयन आदि वसिष्ठ आदि ऋषियों ने निषेध किया है, ऐसा कहा है। किन्तु यह बात कौस्तुभ और निर्णयसिन्धु आदि ग्रन्थों में तथा मार्तण्ड आदि ज्यौतिष के ग्रन्थों में भी नहीं है इससे बहुत से शिष्ट लोग आर्द्रा आदि प्रवेश दोष को नहीं मानते।

अथ तिथिनक्षत्रनिर्णयः

अमावास्या निषिद्धा। रिक्ताष्टमीषष्ठचोऽल्पफलाः। अन्यास्तिथयो बहुफलाः। शुक्लपक्षः श्रेष्ठः। कृष्णस्त्रयोदशोपर्यन्तो मध्यमः। सोमबुधगुरुशुक्रवाराः शुभाः। अन्ये मध्यमाः। रोहिणीमृगमघास्तिस्र उत्तराहस्तस्वातीमूलानुराधारेवत्यः सर्वसंमतनक्षत्राणि।

अमावास्या का निषेध है। रिक्ता-तिथि अष्टमी और षष्ठी अल्प फल देने वाली है। अन्य तिथियां बहुफलद हैं। शुक्लपक्ष श्रेष्ठ है। कृष्णपक्ष त्रयोदशीतक मध्यम है। सोम, बुध, बृहस्पति और शुक्रवार शुभ हैं। शेष वार मध्यम हैं। रोहिणी, मृगशिर, मघा, तीनों उत्तरा, हस्त, स्वाती, मूल, अनुराधा और रेवती विवाह में सर्वसम्मत नक्षत्र हैं।

अथ ज्योतिःशास्त्रातिरिक्तचित्रादिनक्षत्राणि

[1]हरदत्तमते चित्राश्रवणधनिष्ठाश्विन्य इत्यधिकानि चत्वारि। तत्रापि खलग्रहयुतं नक्षत्रं वर्ज्यम्। चन्द्रताराबलं कन्यावरयोरुभयोरपि। अन्यतरस्य चन्द्रबलाभावे रजतादिदानं कार्यम्।

हरदत्त के मत में चित्रा, श्रवण, धनिष्ठा और अश्विनी ये चार नक्षत्र अधिक हैं। इनमें भी खल-ग्रह से युक्त नक्षत्र वर्जित हैं। चन्द्रमा और तारा का बल वर और वधू दोनों को होना चाहिये। दोनों में से किसी एक के चन्द्रबल न होने पर चाँदी आदि का दान करना चाहिये।

---

१. पारस्करगृह्यसूत्रेऽपि—'त्रिषु त्रिषूत्तरादिषु' अत्र गदाधरभाष्यम्—'उत्तरा आदिर्येषां तान्युत्तरादीनि तेषु तेषु त्रिषु। अयमर्थः—उत्तराफल्गुन्यां हस्ते चित्रायां च, एवमुत्तराषाढायां श्रवणे धनिष्ठायां च, एवमुत्तराप्रोष्ठपदि रेवत्यामश्विन्यां च···विवाहो भवतीत्यर्थः' इति।

अथ घातचन्द्रविचारः

मेषः कन्या घटः सिंहो नक्रं युग्मं धनुर्वृषः ।
मीनः सिंहो धनुः कुम्भोऽजादीनां घातचन्द्रमाः ॥
यात्रायां युद्धकार्येषु घातचन्द्रं विवर्जयेत् ।
विवाहे सर्वमाङ्गल्ये चौलादौ व्रतबन्धने ॥
घातचन्द्रो नैव चिन्त्यो यज्ञे सीमन्तजातयोः ।

मेष आदि राशिवालों का घात चन्द्रमा इस प्रकार होता है—मेष, कन्या, कुम्भ, सिंह, मकर, मिथुन, धनु, वृष, मीन, सिंह, धनु और कुम्भ के चन्द्रमा घातक होते हैं, जैसे—मेषराशि वाले को मेष का, वृषराशिवाले को कन्या का और मिथुन राशिवाले को कुम्भ का इत्यादि रीति से घात चन्द्र करें। घात चन्द्रमा, यात्रा और युद्ध कार्य में वर्जित है। विवाह में सम्पूर्ण मङ्गल-कृत्य चौल आदि और उपनयन में घात चन्द्रमा का विचार वर्जित है। यज्ञ में सीमन्त और जातकर्म में घात चन्द्र का विचार नहीं होता।

अथ विवाहादौ वर्ज्याः

मृत्युयोगे परिघार्धे भद्रायां पातवैधृतौ ।
विष्कम्भादेर्दुष्टभागे तिथिवृद्धिक्षयेऽपि च ॥
यामार्धकुलिकादौ च गण्डान्ते रविसंक्रमे ।
केतूद्गमे भूमिकम्पे विवाहाद्यं विवर्जयेत् ॥

मृत्युयोग में, परिघ के आधे अंश में, भद्रा में, व्यतीपात में, वैधृति में, विष्कम्भ आदि के दुष्ट अंश में, तिथिवृद्धि और तिथिक्षय में, यामार्द्ध कुलिक आदि में, गण्डान्त में, सूर्यसंक्रान्ति में, केतु के निकलने में और भूकम्प में, विवाह आदि शुभ कृत्य का त्याग करे।

ग्रहणे पादादिग्रासे त्रिचतुःषडष्टदिवसाः प्रागर्धिता[1] वर्ज्याः । भूकम्पे उल्कापाते च त्रिदिनं वज्रपाते चैकं दिनं वर्ज्यम् । यावत्केतूद्गमस्तावदशुभः समयो भवेत् ।

ग्रहण के पादग्रास में तीन दिन, आधे ग्रहण में चार दिन, तीन भाग ग्रहण में छ दिन और सम्पूर्ण ग्रहण में आठ दिन ग्रहण के बाद शुभ कर्म का वर्जन करे। ग्रहण के पहिले एक पाद में ९० घड़ियाँ, आधे ग्रहण में दो दिन, तीन पाद ग्रहण में तीन दिन और सम्पूर्ण ग्रहण में चार दिन ग्रहण के पहिले त्याज्य हैं। भूकम्प और उल्कापात में तीन दिन, वज्रपात में एक दिन वर्जनीय है। जब तक केतु का उदय रहे तबतक अशुभ समय होता है।

---

१. ग्रहण के अनन्तर पादग्रास में तीन, अर्धग्रास में चार, त्रिपादग्रास में छ तथा सर्वग्रास में आठ दिन त्याज्य है और ग्रहण के पूर्व इनके अर्धित (आधा) त्याज्य है (अर्थात् एक पादग्रास में नब्बे घड़ी, अर्धग्रास में दो दिन, त्रिपादग्रास में तीन दिन और सर्वग्रास में चार दिन ग्रहण के पूर्व में वर्जित हैं।) गर्गः—'दिग्दाहे दिनमेकं च ग्रहे सप्तदिनानि तु। भूकम्पे च समुत्पन्ने त्र्यहमेव तु वर्जयेत् ॥ उल्कापाते त्रिदिवसं धूमे पञ्च दिनानि च। वज्रपाते चैकदिनं वर्जयेत् सर्वकर्मसु। दर्शनादर्शनाद् राहुकेत्वोः सप्तदिनं त्यजेत् ॥ यावत्केतूद्गमस्तावदशुभः समयो भवेत्।' इसका अपवाद अद्भुतसागर में है—'अथ दिवसत्रयमध्ये मृदु पानीयं यदा भवति। उत्पातदोषशमनं तदेव सम्प्राहुराचार्याः ॥' सम्बन्धतत्त्वे—'भूकम्पादेर्न दोषोऽस्ति वृद्धिश्राद्धे कृते सति।' इति।

अस्यापवादः—भूकम्पादेर्न दोषोऽस्ति वृद्धिश्राद्धे कृते सति। दिवाविवाहः प्रशस्तः। रात्रावपि कन्यादानं हेमाद्र्यादिमते प्रशस्तं भवति।

इसका परिहार यह है—नान्दीश्राद्ध करने पर भूकम्प आदि का दोष नहीं होता। दिन में विवाह उत्तम होता है। रात में भी कन्यादान हेमाद्रि आदि के मत में प्रशस्त होता है।

अथ मुहूर्तविचारः

तत्र लग्ने ग्रहबलम्—

त्रिषष्ठाऽष्टस्वर्कस्त्रिजलधनगोऽब्जः क्षितिसुत-
स्त्रिषष्ठस्थो ज्ञेज्यौ व्ययनिधनवर्ज्यौ भृगुसुतः।
द्वितीयाब्धीष्वङ्काभ्रतनुषु रिपुत्र्यष्टसुशनि-
स्तमः केतुश्चाये भवति सुखहेतुश्च सकलः।

लग्न से तीसरे छठे आठवें स्थान में सूर्य, तीसरे चौथे और दूसरे स्थान में चन्द्रमा, तीसरे छठे स्थान में मङ्गल, द्वादश और आठवें स्थान को छोड़ दूसरे स्थान में बुध तथा बृहस्पति, दूसरे चौथे पाचवें नवें दसवें और प्रथम में शुक्र, छठे आठवें स्थान में शनि तथा एकादश स्थान में राहु और केतु हों तो समस्त सुख देने वाले हैं।

अथ लग्ने वर्ज्यग्रहाः

रविर्लग्ने चन्द्रस्तनुरिपुमृतिस्थः क्षितिसुतोऽ-
ष्टलग्नाभ्रे ज्ञेज्यौ निधन उशनास्त्र्यष्टरिपुषु।
शनिः शेषौ लग्ने तनुपतिरथार्यष्टमगृहे
विवाहे स्युः सर्वे मदनसदनेनैव शुभदाः॥ शेषौ राहुकेतू।
अन्ये द्वादशगं चन्द्रं दृक्केशनवमांशपौ।
षष्ठाष्टगौ बुधं चाभ्रे वर्ज्यानाहुर्मनीषिणः॥
मेषान्नक्रात्तुलात्कर्कात्त्रिर्गण्या नवमांशकाः।
शस्ता वृषनृयुक्कर्ककन्यातुलधनुर्झषाः॥

लग्न में सूर्य, प्रथम षष्ठ और अष्टम में चन्द्रमा, अष्टम प्रथम और दशम में मङ्गल, अष्टम बुध और बृहस्पति, तृतीय अष्टम और षष्ठ में शुक्र और शनि, राहु तथा केतु लग्न में हों, लग्न के स्वामी षष्ठ अष्टम गृह में हों, कोई भी ग्रह सप्तम में हों तो वर्ज्य है। दूसरे पण्डित लोग द्वादश स्थान में चन्द्रमा को तथा द्रेष्काण और नवमांश के स्वामी, षष्ठ और अष्टम स्थान में एवं दशम स्थान में बुध हों तो अनेक निषेध कहते हैं। मेष, मकर, तुला, कर्क, इनसे तीन बार गिनने से मेष आदि का नवमांश निकलता है। इनमें वृष, मिथुन, कर्क, कन्या, तुला, धन और मीन का नवमांश हो तो प्रशस्त है।

अथैकविंशतिमहादोषाः

दुःपञ्चाङ्गव्यष्टमोऽसृक्सविधुखलतनुः षण्मृतीन्दुः सितोरौ
संक्रान्तिर्गण्डदोषः[1] सखलभदिनजौ चक्रचक्रार्धपातौ।

---

१. गण्डान्त सन्धिविशेष है। वह नक्षत्रसन्धि-तिथिसन्धि-लग्नसन्धि-योगसन्धि-करणसन्धि-वर्षसन्धि-अयनसन्धि-ऋतुसन्धि-माससन्धि-पक्षसन्धि-दिनसन्धि-रात्रिसन्धि-मध्याह्नसन्धि-प्रातःसन्धि-सायं-

रन्ध्रे लग्नं कुवर्गोऽस्तगखल उदयास्ताशुचिः क्रूरवेधः
कर्तर्येकार्गलांघ्रिर्ग्रहणभकुलवौ दुःक्षणोत्पातभे च ॥

दुष्ट तिथि, वार, नक्षत्र, योग तथा करण ये विवाह में त्याज्य हैं। लग्न से अष्टम में मङ्गल हो और लग्न चन्द्रमा तथा पाप ग्रह से संयुत हो एवं चन्द्रमा लग्न से षष्ठ अष्टम में हो, शुक्र लग्न से षष्ठ में एवं सूर्य संक्रान्ति का दिन, लग्नगण्डान्त, तिथिगण्डान्त और नक्षत्रगण्डान्त हो, नक्षत्र पापग्रहयुक्त हो, वारज, कुलिक तथा अर्द्धयामादि दोष, एवं वैधृति व्यतीपात नामक चन्द्रमा और सूर्य का क्रान्तिसाम्य, जन्मराशि एवं जन्मलग्न से अष्टम लग्न, षड्वर्गों में पापग्रहों का आधिक्य हो, पापग्रह लग्न से सप्तम स्थान में हो, लग्न एवं नवांश अपने-अपने अधिप से युक्त तथा दृष्ट हों, उदयशुद्धि तथा लग्नांश से सप्तम लग्न और नवांश स्व स्व पतियुक्त या दृष्ट हों, अस्तशुद्धि के सदृश उदयास्त शुद्धि नहीं हो, नक्षत्र पापग्रहविद्ध हो, चन्द्रगा या लग्न से पापग्रह दूसरे एवं बारहवें में हो, विष्कम्भ, अतिगण्ड, व्याघात, वज्र, व्यतीपात, परिघ, वैधृति, शूल और गण्ड ये दुर्योग, दिनके नक्षत्र से अभिजित् के सहित गणना करने पर विषम नक्षत्र पर सूर्य न होने से एकार्गल योग होता है उससे विद्ध नक्षत्र चरण हो, जिस नक्षत्र पर ग्रहण हो वह नक्षत्र जो नहीं कहा हुआ वह नवांश, दुर्मुहूर्त में हुआ हो, एवं शुक्र तथा सोमवार को नवम मुहूर्त गुरुवार को बारहवां मुहूर्त, शनिवार को प्रथम मुहूर्त दिनमें होने वाले और मङ्गलवार को सप्तम मुहूर्त इस प्रकार ये इक्कीस महादोष हैं जो शुभ में त्याज्य हैं।

अथ संकटे गोधूलम्

गोधूलं पदजातके शुभकरं पञ्चाङ्गशुद्धौ रवे-
रर्धास्तात्परपूर्वतोऽर्धघटिकं तत्रेन्दुमष्टारिगम्।
सोग्राङ्गं कुजमष्टमं गुरुयमाह्पातमर्कक्रमं
जह्याद्विप्रमुखेऽतिसंकट इदं सद्यौवनाढ्ये क्वचित् ॥

शूद्र आदि में गोधूलि लग्न शुभ होता है। पञ्चाङ्गशुद्ध गोधूलि लग्न हो तो सूर्य के आधे अस्त से परे और पहले आधी घड़ी में षष्ठ और अष्टम में चन्द्रमा नहीं हो और षष्ठ स्थान में क्रूर ग्रह न हो, एवं अष्टम में मङ्गल न हो और बृहस्पति तथा शनि का पात, सूर्यसंक्रान्ति, इन सबका गोधूलि लग्न में त्याग करे। ब्राह्मणादि वर्णों में तो अतिशय संकट में ही गोधूलि लग्न रक्खे। कहीं यौवन दशा में इसका प्रयोग कहा है।

सन्धि-निशीथसन्धि भेद से अनेकविध है। इनमें तिथि, नक्षत्र और लग्न की सन्धि नियतकाल है। इसलिये इन्हीं तीनों का दिग्दर्शन समुचित है। जैसे—

तिथियों का—पंचमी-दशमी-पंचदशी के अन्त की एक घड़ी, प्रतिपदा-षष्ठी-एकादशी के आदि की एक घड़ी अर्थात् पंचमी षष्ठी, दशमी-एकादशी, पंचदशी-प्रतिपदा इन दो-दो तिथियों के अन्तरालवर्ती सन्धिभूत दो घड़ी तिथि-गण्डान्त अशुभ है।

नक्षत्रों का—आश्लेषा-ज्येष्ठा-रेवती नक्षत्र के अंत की दो घड़ी तदुत्तर नक्षत्र मघा-मूल-अश्विनीके आदि की दो घड़ी अर्थात् रेवती-अश्विनी, आश्लेषा-मघा, ज्येष्ठा-मूल इन दो दो नक्षत्रों के अन्तरालवर्ती सन्धिभूत चार घड़ी नक्षत्र-गण्डान्त है और यह अशुभप्रद है।

लग्नों का—कर्क-वृश्चिक-मीन लग्नों के अन्त की आधी घड़ी, सिंह-धनु-मेष लग्न के आदि की आधी घड़ी अर्थात् कर्क-सिंह, वृश्चिक-धनु, मीन-मेष इन दो-दो लग्नों के अन्तरालवर्ती सन्धिभूत एक-एक घड़ी लग्न-गण्डान्त अशुभ है। अन्यान्य दोषों का विचार ज्योतिष ग्रन्थों में देखें।

अथ यथोक्तचन्द्रताराद्यभावे दानानि

चन्द्रे च शंखं लवणं च तारे तिथौ विरुद्धे त्वथ तण्डुलांश्च ।
धान्यं च दद्यात्करणे च वारे योगे विरुद्धे कनकं च देयम् ॥

षड्वर्गशुद्ध्यादिविचारः कालसाधनादिप्रकारः कुलिकादिस्वरूपाणि च ज्योतिर्ग्रन्थेभ्यो ज्ञातव्यानि विस्तरभयान्नेहोच्यन्ते । इति मुहूर्तविचारसंक्षेपः ।

उक्त चन्द्रतारा आदि के न होने पर दान—चन्द्रमा अनुकूल न हो तो शंख, तारा के प्रातिकूल्य में लवण, तिथि की प्रतिकूलता में चावल, करण तथा वार की प्रतिकूलता में अन्न एवं योग के अनुकूल न होने पर सुवर्ण दान किया जाय। षड्वर्गशुद्धि आदि का विचार काल साधन आदि का प्रकार और कुलिक आदि का स्वरूप ज्यौतिष के ग्रन्थों से ज्ञेय है विस्तार के डर से यहां नहीं कहे गये हैं। संक्षिप्त मुहूर्तविचार समाप्त ।

अथ विवाहाङ्गमण्डपादिविचारः

मण्डपनिर्माणाद्यङ्गजातमङ्गिनो विवाहादेरुक्तनक्षत्रादौ कार्यम् ।
कण्डनदलनयवारकमण्डपमृद्वेदिवर्णकाद्यखिलम् ।
तत्संबन्धिगतागतमृक्षे वैवाहिके कुर्यात् ॥ इत्युक्तेः ।

यवारकं चिकसा इति भाषायाम्। एवं हरिद्रादिष्वङ्गेषु चन्द्रबलं नापेक्ष्यम् । विवाहाङ्गं विवाहात्प्राक् तृतीयषष्ठनवमदिनेषु [1]न कार्यम् ।

मण्डप का निर्माण आदि विवाह के अङ्गसमूह अंगी-विवाह आदि के हुए नक्षत्र आदि में करना चाहिये, कूटना, पीसना, मण्डप की मिट्टी की वेदी रंगना, आदि विवाह सम्बन्धी सभी कार्य विवाह के नक्षत्रों में करे। इसी प्रकार हरदी आदि विवाह के अंगों में चन्द्रबल की अपेक्षा नहीं है। विवाह के पहिले तीसरे, छठे, नवें दिनों में विवाह के अङ्ग न करे ।

तत्र मण्डपः—षोडशद्वादशदशाष्टान्यतमसंख्यहस्तश्चतुर्द्वारः कार्यः । मण्डपे चतुर्वरकरां पञ्चवधूकरां वा वेदीं[2] चतुरस्रां सोपानयुतां प्राक्प्रवणां रम्भास्तंभादिभिः सर्वतः सुशोभितां गृहनिर्गमाद्वामभागे कुर्यात् ।

---

१. शार्ङ्गीय में विवाह के पूर्व तृतीय-षष्ठानवमदिन में वर्ज्य—'दलनकण्डनमण्डपवेदिकागृहसुमार्जनवारकमण्डपाः । करतलग्रहमध्यगतागतं तदखिलं विदधीत विवाहभे ॥ विवाहकृत्यं निखिलं विवाहभे विलोकयेन्नात्र बलं हिमद्युतेः । नवत्रिषष्ठेऽह्नि विवाहपूर्वतो नवर्णको मण्डपतैलमङ्गलम् ॥' दैवज्ञमनोहर में निषिद्ध-नक्षत्र—'चित्रा विशाखा शततारकाऽश्विनी ज्येष्ठाभरण्यौ शिवभाच्चतुष्टयम् । हित्वा प्रशस्तं फलतैलवेदिकाप्रदानकं कण्डनमण्डपादिकम् ॥' इति ।

२. नारदोक्त वेदीनिर्माण का प्रमाण—'हस्तोच्छ्रितां चतुर्हस्तैश्चतुरस्रां समन्ततः । स्तम्भैश्चतुर्भिः सुश्लक्ष्णैर्वामभागे स्वसद्मनः । समण्डपां चतुर्दिक्षु सोपानैरुपशोभिताम् । प्रागुदक्प्रवणारम्भां स्तम्भैर्हंसशुकादिभिः । विचित्रितां चित्रकुम्भैर्विचित्रैस्तोरणाङ्कुरैः । एवंविधां समारोहेन्मिथुनं साग्निवेदिकाम् ॥'

विवाहपटल में मण्डपनिर्माण का प्रमाण—'मङ्गलेषु च सर्वेषु मण्डपो गृहमानतः । कार्यः षोडशहस्तो वा द्विषड्हस्तो दशावधि । स्तम्भैश्चतुर्भिरेवात्र वेदी मध्ये प्रतिष्ठिता । शोभिता चित्रिता कुम्भैरासमन्ताच्चतुर्दिशम् ॥' इति ।

उसमें मण्डप इस प्रकार करे। सोलह, बारह, दस और आठ इनमें से किसी एक संख्या के हस्त प्रमाण से ४ दरवाजे वाला मण्डप बनाना चाहिये। मण्डप में वर के हाथ से ४ हाथ की या वधू के हाथ से ५ हाथ की चौकोर सीढ़ी से युक्त पूरब की तरफ द्वारवाली केले के खम्भे आदि से सुशोभित वेदी घर से निकलने के स्थान से बाईं ओर बनावे।

अथ कन्यावैधव्यहर-मूर्तिदानम्

अथ कन्याया जन्मकालीनग्रहादियोगसूचितवैधव्यपरिहारोपायः। तत्र [२]मूर्तिदानम्—कन्यादेशकालौ संकीर्त्य 'वैधव्यहरं श्रीविष्णुप्रतिमादानं करिष्ये' इति संकल्प्य पलतदर्धतदर्धान्यतमप्रमाणहेमनिर्मितां विष्णुप्रतिमां चतुर्भुजां सायुधां वृतेनाचार्येणाग्न्युत्तारणादिपूर्वकं षोडशोपचारैः पूजयेत्। वस्त्रार्पणकाले पीतवस्त्रे पुष्पार्पणकाले कुमुदोत्पलमालां च दद्यात्। पूजान्ते कन्या देवं प्रणम्य मन्त्रेण दद्यात्—

कन्या के जन्मकालीन ग्रह आदि के योग से ज्ञात वैधव्य के परिहार का उपाय। उसमें मूर्त्ति का दान इस प्रकार करे। कन्या देशकाल को कह करके 'वैधव्य हरण करने वाला विष्णु प्रतिमा का दान करूँगी' ऐसा संकल्प करके एक पल या आधा पल या चौथाई पल तौल की सोने की बनाई हुई विष्णु की ४ बाहुवाली आयुधवाली प्रतिमा कीवरण किये हुए आचार्य के द्वारा अग्न्युत्तारण आदि पूर्वक षोडशोपचार से पूजा करे। वस्त्र चढ़ाने के समय पीले दो वस्त्र और पुष्प अर्पण के समय में कमल की माला दे। पूजा के अन्त में कन्या भगवान् को प्रणाम कर मन्त्र द्वारा दान करे।

यन्मया प्राचि जनुषि घ्नन्त्या पतिसमागमम्।
विषोपविषशस्त्राद्यैर्हतो वापि विरक्तया॥
प्राप्यमाणं महाघोरं यशःसौख्यधनापहम्।
वैधव्याद्यतिदुःखौघं तन्नाशय सुखाप्तये॥
बहुसौभाग्यवृद्ध्यै च महाविष्णोरिमां तनुम्।
सौवर्णीं निर्मितां शक्त्या तुभ्यं संप्रददे द्विज॥ इति।

ततो यथाशक्ति हेमदक्षिणां दत्त्वा अनघाद्याहमस्मीति त्रिर्वदेत्। एवमस्त्विति विप्रोऽपि त्रिः। ततो विप्रभोजनम्।

संस्काररत्नमाला के—'आचार्यहस्तमानेन मण्डपे निर्मिते शुभे। मध्ये वेदिः प्रकर्तव्या चतुरस्रा समन्ततः॥' 'वटुहस्तमिता वेदिः' इन वचनों से व्रतबन्ध में वटु के हाथ से और विवाह में कन्या के हाथ से वेदीनिर्माण उपयुक्त है। मण्डप का निर्माण तो 'पितुरेवाचार्यत्वं नेतरस्य' इस कर्कभाष्य के अनुसार आचार्य (पिता) के हाथ से होना शास्त्रसम्मत है, वटु या कन्या के हाथ से नहीं।

२. 'विष्णुप्रतिमया सौवर्ण्या सह विवाहे विधाय प्रतिमादानं विधेयमिति पीयूषधारा। मार्कण्डेयपुराण में प्रतिमादानविधि—'शुभे मासि सिते पक्षे सानुकूलग्रहे दिने। ब्राह्मणं साधुमामन्त्र्य सम्पूज्य विविधार्हणैः। तस्मै दद्याद् विधानेन विष्णोर्मूर्तिं चतुर्भुजाम्॥ शुद्धवर्णसुवर्णेन वित्तशक्त्याऽथवा पुनः। निर्मितां रुचिरां शङ्खगदाचक्राब्जसंयुताम्। दधानां वाससी पीते कुमुदोत्पलमालिनीम्। सदक्षिणां च तां दद्यान्मन्त्रमेतमुदीरयेत्॥' इति।

मैंने पहले जन्म में पति से समागम का हनन किया अथवा पति से विरक्त होकर उन्हें विष और शस्त्र आदि से मार डाला, उससे यश, सुख और धन का अपहरण करने वाला वैधव्य आदि अत्यन्त दुःख-समूह को प्राप्त किया है, सुख और अधिक सौभाग्यवृद्धि के लिये उसका नाश कीजिये। और सोने की बनाई हुई इस महाविष्णु की प्रतिमा आपको देती हूँ। तदनन्तर यथाशक्ति सुवर्ण दक्षिणा देकर आज मैं पापरहित हो गई, ऐसा तीन बार कहे। ब्राह्मण ऐसा ही हो तीन बार कहे। उसके बाद ब्राह्मण-भोजन करावे।

अथ वैधव्यहरः कुम्भविवाहः

विवाहकर्ता पित्रादिः 'कन्यावैधव्यहरं कुम्भविवाहं करिष्ये' इति संकल्प्य नान्दीश्राद्धान्तं कृत्वा महीद्यौरित्यादिना कुम्भस्थापनान्ते तत्र वरुणप्रतिमायां वरुणं संपूज्य तत्र कलशमध्ये विष्णुप्रतिमायां विष्णुं षोडशोपचारैः संपूज्य प्रार्थयेत्—

वरुणाङ्गस्वरूपाय जीवनानां समाश्रय।
पतिं जीवय कन्यायाश्चिरं पुत्रसुखं कुरु॥
देहि विष्णो वरं देव कन्यां पालय दुःखतः। इति।

विवाह करने वाला पिता आदि 'कन्या का वैधव्य हरण करने वाला कुम्भ विवाह करूँगा' ऐसा संकल्प कर नान्दीश्राद्ध करके 'महीद्यौः' इत्यादि मन्त्र से कलशस्थापन के अन्त में उसमें वरुण की प्रतिमा में वरुण को पूजकर कलश के मध्य में विष्णुप्रतिमा में षोडशोपचार से विष्णु की पूजा कर प्रार्थना करे वरुण के अंगस्वरूप जीवन के आधार मेरी कन्या के पति को बहुत काल तक जीवन और पुत्रसुख दीजिये। हे विष्णु भगवान्! यह वर दीजिये और कन्या की दुःख से रक्षा कीजिये।

---

१. मार्कण्डेयपुराणे—'बालवैधव्ययोगे तु कुम्भद्रुप्रतिमादिभिः। कृत्वा लग्नं रहः पश्चात् कन्योद्वाहयेति चापरे॥' विधानखण्ड में—'स्वर्णाम्बुपिप्पलानां च प्रतिमा विष्णुरूपिणी। तया सह विवाहे तु पुनर्भूत्वं न जायते॥' इस वचन से पुनर्भूत्व दोष का अभाव प्रतिपादन किया है।

सूर्यारुणसंवाद में कुम्भविवाह का प्रकार—'विवाहात् पूर्वकाले च चन्द्रतारावलान्विते। विवाहोक्ते च तां कन्यां कुम्भेन सह चोद्वहेत्। सूत्रेण वेष्टयेत्पश्चाद्दशतन्तुविधानतः। कुङ्कुमालङ्कृतं देहं तयोरेकान्तमन्दिरे। ततः कुम्भं च निस्सार्य प्रभज्य सलिलाशये। ततोऽभिषेचनं कुर्यात् पञ्चपल्लववारिभिः॥' इति। कुम्भद्रुप्रतिमादिभिः में पीयूषधाराकार ने लिखा है—'कुम्भ इत्युपलक्षणम्। तेन मन्थन्यपि ग्राह्या' इति।

सूर्यारुणसंवाद में बालवैधव्यहर अश्वत्थविवाह का प्रकार—'सुहृद्द्विजगुरून्नारीं मङ्गलोच्चारणैः समम्। आहूयोद्वाहकाले च रम्यभूमौ सुमण्डपे। गत्वा प्रणम्य गौरीं च गणनाथं च भूरुहम्। भवानीं चैव मन्थानीं पिता मन्त्रमुदीरयेत्। उद्वाहयिष्ये विधिवदश्वत्थेन मनोहराम्। कन्यां सौभाग्यसौख्यार्थहेतवेऽहं द्विजोत्तम। नमस्ते विष्णुरूपाय जगदानन्दहेतवे। पितृदेवमनुष्याणामाश्रमाय नमो नमः। वनानां पतये तुभ्यं विष्णुरूपाय भूरुह॥ नमो निखिलपापौघनाशनाय नमो नमः। पूर्वजन्मकृतं पापं बालवैधव्यकारकम्। नाशयाशु सुखं देहि कन्यायां मम भूरुह।' इत्यश्वत्थेन सह विवाहसंकल्पप्रार्थने। विवाहस्तु कुम्भविवाहवद् विधेयः।

ततो विष्णुरूपिणे कुम्भायेमां कन्यां श्रीरूपिणीं समर्पयामीति समर्प्य परित्वे-त्यादिमन्त्रैरधस्तादुपरि च कुम्भं कन्यां च मन्त्रावृत्त्या परिवेष्ट्य ततः कुम्भं निःसार्य जलाशये प्रभज्य शुद्धजलेन समुद्रज्येष्ठा इत्यादिमन्त्रैः पञ्चपल्लवैः कन्यामभिषिच्य विप्रान् भोजयेदिति। इति कुम्भविवाहः।

तदनन्तर विष्णु रूपी कलश को लक्ष्मीरूपिणी इस कन्या को समर्पण करता हूँ। इस तरह समर्पण करके 'परित्वा' इत्यादि मन्त्रों से नीचे से ऊपर तक कलश और कन्या को मन्त्र की आवृत्ति से परिवेष्टन करके उससे कलश को निकाल कर किसी जलाशय में फोड़कर शुद्ध जल से 'समुद्र-ज्येष्ठा' इत्यादि मन्त्रों से पंचपल्लव द्वारा कन्या का अभिषेक कर ब्राह्मणभोजन करावे। कुम्भ-विवाह समाप्त।

अथ वरस्य मृतभार्यात्वपरिहारोपायः

तत्र 'परिवेत्तृत्वपापान्मृतभार्यात्वं तत्पापपरिहाराय प्राजापत्यत्रयं चान्द्रा-यणत्रयं कृत्वा असकृन्मृतभार्यात्वयोगे तदुभयत्रयमावृत्त्या कृत्वा 'मृतभार्यात्व-निरासद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थम् अयुतसंख्यचर्वाज्यहोमं करिष्ये' इति संकल्प्या-ग्निस्थापनान्तेऽन्वाधानम्। दुर्गाग्निविष्णून् अष्टाधिकायुतसंख्याभिश्चर्वाज्याहुतिभिः शेषेण स्विष्टकृतमित्यादि।

इसमें परिवेत्ता के पाप से स्त्री मरती है। इस पाप के परिहार के लिये तीन प्राजापत्य और तीन चान्द्रायण करके बार-बार स्त्री के मरने के योग में दोनों में प्राजापत्य और चान्द्रायण की आवृत्ति करके 'मृतभार्यात्व दोष हटाने और परमेश्वर की प्रसन्नता के लिये दस हजार चरु और आज्य का होम करूँगा' ऐसा संकल्प कर अग्निस्थापन के बाद अन्वाधान करे। दुर्गा, अग्नि और विष्णु को दस हजार आठ चरु और घृत की आहुति दे। शेष से स्विष्टकृत् इत्यादि करे।

प्रतिदैवतं तूष्णीं निरूप्य प्रोक्ष्य च त्यागकाले अष्टोत्तरायुतसंख्याहुति-पर्याप्तं चर्वाज्यद्रव्यं यथामन्त्रलिङ्गं दुर्गायै अग्नये विष्णवे च न ममेति त्यजेत्। जातवेदसे इत्यनुवाकस्य उपनिषद ऋषयः दुर्गाग्निविष्णवो देवताः त्रिष्टुप्छन्दः चर्वाज्यहोमे विनियोगः। अनुवाकानुवृत्त्या प्रत्यृचं होमः। तत्र प्रथमं चतुरधिक-पञ्चसहस्रसंख्यश्चरुहोमस्ततश्चतुरधिकपञ्चसहस्राज्यहोम इत्येवमयुतहोमः। होम-शेषं समाप्य दशविप्रान् भोजयेदिति। अथवा कस्यचिद् ब्राह्मणस्य विवाहं कुर्यात्।

---

१. परिवेत्ता का मनूक्त लक्षण—'दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते। परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः।' अर्थात् बड़े भाई के अविवाहित रहने और अग्निहोत्र नहीं लेने पर जो छोटा भाई अपना विवाह और अग्निहोत्र का ग्रहण कर लेता है वह छोटा भाई परिवेत्ता और बड़ा भाई परिवित्ति कहलाता है। मनु ने परिवेत्ता आदि को नरकगामी बतलाया है—'परिवित्तिः परिवेत्ता यया च परिविद्यते। सर्वे ते नरकं यान्ति दातृयाजकपञ्चमाः॥' अर्थात् परिवेत्ता, परिवित्ति, जिस कन्या से विवाह होता है वह कन्या, कन्यादाता और विवाह में होमादि कराने वाला, ये पांचों नरक जाते हैं।

प्रत्येक देवता को चुपचाप निरूपण और प्रोक्षण करके त्याग के समय दस हजार आठ आहुति के लिये पर्याप्त चरु घृत द्रव्य उन-उनके मन्त्रों से दुर्गा, अग्नि और विष्णु के लिये है मेरा नहीं, ऐसा कहकर त्याग करे। 'जातवेदसे' इत्यादि मूलोक्त विनियोग करे। अनुवाक की प्रत्येक ऋचा से हवन करे। उसमें पहले ५००४ संख्या से चरु का तदनन्तर ५००४ बार घृत का, इस प्रकार दस हजार होम करे। होम शेष को समाप्त कर दस ब्राह्मणों का भोजन करावे। अथवा किसी ब्राह्मण का विवाह करावे।

अथ मृतपुत्रत्वदोषपरिहारोपायः

अथ मृतपुत्रत्वदोषे – ब्राह्मणोद्वाहनं हरिवंशश्रवणं महारुद्रजपश्चेति त्रीणि व्यस्तानि समस्तानि वा शक्त्यपेक्षया कुर्यात्। रुद्रजपे दशांशेनाज्याक्तदूर्वाहोमः। हरिवंशश्रवणविधिरन्येऽपि विधयो विस्तरेण प्रागुक्ताः[१]।

ब्राह्मण का विवाह कराना, हरिवंश का श्रवण करना और महारुद्र का जप; ये तीन अलग अलग या सबको एक साथ अपनी शक्ति के अनुसार करे। रुद्र जप में दशांश से घी में मिले हुए दूब से होम करे। हरिवंश-श्रवण की विधि और भी अनेक विधियां पहिले विस्तारपूर्वक कह चुके हैं।

अथ कन्यादानप्रशंसा

यथाशक्तिभूषणालंकृतकन्याप्रदाताऽश्वमेधयाजी भयेषु प्राणदाता चेति त्रयः समपुण्याः।

श्रुत्वा कन्याप्रदातारं पितरः सपितामहाः।
विमुक्ताः सर्वपापेभ्यो ब्रह्मलोकं व्रजन्ति ते॥

इति कन्यादानप्रशंसा।

यथाशक्ति भूषणों से अलंकृत कन्या का देने वाला, अश्वमेध यज्ञ करने वाला और भय से प्राण बचाने वाला इस प्रकार ये तीनों समान पुण्य वाले हैं। पितामहों के सहित पितर लोग कन्या दान देने वाले से अपने वंश को सुनकर सब पापों से मुक्त होकर ब्रह्मलोक को जाते हैं। यह कन्या-दान की प्रशंसा है।

अथ कन्यागृहे स्त्रिया सह च भोजननिषेधः

विष्णुं जामातरं मत्वा तस्य कोपं न कारयेत्।
अप्रजायां तु कन्यायां नाश्नीयात्तस्य वै गृहे॥

इति कन्यागृहे पित्रोर्भोजननिषेधः। विवाहमध्ये स्त्रिया सह भोजनेऽपि न दोषः। अन्यदा पत्न्या सह भोजने चान्द्रायणं प्रायश्चित्तम्।

अपने दामाद को विष्णु जानकर उसको क्रुद्ध न करे। कन्या को सन्तान न हुई हो तो उसके घर भोजन न करे। इस वाक्य से कन्या के घर में माता पिता के भोजन का निषेध है। विवाह में स्त्री के साथ भोजन में भी दोष नहीं है। अन्य समय में स्त्री के साथ भोजन करने पर चान्द्रायण प्रायश्चित्त करना चाहिये।

---

१. पुत्रोत्पत्ति न होने पर पहले गर्भाधान प्रकरण में कहा गया कर्मविपाक ग्रन्थ का विधान द्रष्टव्य है।

अथ वाग्दानादिविचारः

विवाहनक्षत्रादियुते सुदिने वरस्य पित्रादिः कन्यागृहं गत्वा 'कन्यापूजनं करिष्ये, तदङ्गत्वेन गणपतिपूजनं वरुणपूजनं च करिष्ये, इति संकल्पयेत्। कन्यापिता तु 'करिष्यमाणकन्यादानाङ्गभूतं वाग्दानं करिष्ये, तदङ्गं गणपतिपूजनं वरुणपूजनं च करिष्ये' इति सङ्कल्पयेत्। अवशिष्टं प्रयोगोऽन्यत्र ज्ञेयः।

विवाह नक्षत्र आदि से युक्त शुभदिन में वर का पिता आदि कन्या के घर जाकर 'कन्या का पूजन करूँगा, उसके अंग होने से गणेशपूजन और वरुणपूजन करूंगा' ऐसा संकल्प करे। कन्या का पिता तो 'किये जाने वाले कन्यादान के अंग वाग्दान करूँगा और उसके अंग गणपतिपूजन और वरुण पूजन करूँगा' ऐसा संकल्प करे। शेष प्रयोग दूसरे ग्रन्थों से जानना चाहिये।

अथ विवाहसंकल्पादि

अथ विवाहदिने तत्पूर्वदिने[1] वा वध्वा हरिद्रातैलादिना मङ्गलस्नानं कारयित्वा तच्छेषहरिद्रादिना वरस्य मङ्गलस्नानं कारणीयमित्याचारः। एवं वरस्य पित्रादिः पत्न्या संस्कार्येण च सहकृताभ्यङ्गस्नानोऽहतवासाः[2] प्राङ्मुख उपविश्य स्वदक्षिणे पत्नीं तद्दक्षिणे संस्कार्यमुपवेश्य देशकालौ संकीर्त्य 'ममास्य पुत्रस्य दैवपित्र्यऋणापाकरणहेतुधर्मप्रजोत्पादनसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं विवाहाख्यं संस्कारकर्म करिष्ये, तदङ्गत्वेन स्वस्तिवाचनं मातृकापूजनं नान्दीश्राद्धं नन्दिन्यादिमण्डपदेवतास्थापनं च करिष्ये' तदादौ निर्विघ्नतासिद्धयर्थं गणपतिपूजां करिष्ये' इति पुत्रविवाहे संकल्पः।

अब विवाह के दिन या विवाह से पहिले दिन वधू को हरदी तेल आदि से मंगलस्नान कराके

---

१. निर्णयसिन्धौ ज्योतिर्निबन्धे नारदः—'कर्तव्यं मङ्गलेष्वादौ मङ्गलायाङ्कुरार्पणम्। नवमे सप्तमे वाऽपि पञ्चमे दिवसेऽपि वा॥ तृतीये बीजनक्षत्रे शुभवारे शुभोदये। सम्यग्गृहाण्यलङ्कृत्य वितानध्वजतोरणैः॥ सह वादित्रनृत्याद्यैर्गत्वा प्रागुत्तरां दिशम्। तत्र मृत्सिकतां श्लक्ष्णां गृहीत्वा पुनरागतः॥ मृन्मयेष्वथवा वैणवेषु पात्रेषु योजयेत्। अनेकबीजसंयुक्तां तोयपुष्पोपशोभिताम्॥' शौनकः—'आधानं गर्भसंस्कारं जातकर्म च नाम च। हित्वाऽन्यत्र विधातव्यं मङ्गलेऽङ्कुरवापनम्॥' बृहस्पतिः—'आत्यन्तिकेषु कार्येषु कार्यं सद्योऽङ्कुरार्पणम्।' तत्रैव वाग्दानं हरिद्रावन्दनं च कार्यम्।' इति विशेषः।

२. अहत का कश्यपोक्त लक्षण—'अहतं यन्त्रनिर्मुक्तं वासः प्रोक्तं स्वयंभुवा। शस्तं तन्माङ्गलिक्येषु तावत्कालं न सर्वदा॥' गृह्यपरिशिष्टे—'सकृद्धौतं नवं श्वेतं सदशं यन्न धारितम्। अहतं तद् विजानीयात्सर्वकर्मसु पावनम्॥' इति।

दक्षिण भाग में पत्नी का उपवेशन करे—'व्रतबन्धे विवाहे च चतुर्थीसहभोजने करे। व्रते दाने मखेश्राद्धे पत्नी तिष्ठति दक्षिणे॥ सर्वेषु धर्मकार्येषु पत्नी दक्षिणतः शुभा। अभिषेके विप्रपादक्षालने चैव वामतः॥' धर्मप्रवृत्तौ—'जातके नामके चैव ह्यन्नप्राशनकर्मणि। तथा निष्क्रमणे चैव पत्नी पुत्रश्च दक्षिणे॥ गर्भाधाने पुंसवने सीमन्तोन्नयने तथा। वधूप्रवेशने चैव पुनःसन्धान एव च॥ प्रदाने मधुपर्कस्य कन्यादाने तथैव च। कर्मस्वेतेषु भार्यां वै दक्षिणे तूपवेशयेत्॥' इति। यहाँ 'पत्नी पुत्रश्च दक्षिणे' में पुत्र शब्द के उपलक्षण होने से वह कन्या का भी बोधक है।

बचे हुए हलदी आदि से वर का मंगलस्नान करावे, यह आचार है। इसी प्रकार वर के पिता आदि पत्नी का और जिसके साथ विवाह संस्कार करते हैं उस वर का साथ ही अभ्यंग स्नान करा के नया वस्त्र पहिन पूरब मुख बैठकर अपने दक्षिण ओर पत्नी और उसके दक्षिण तरफ जिसका संस्कार करना है ऐसे वर को बैठा देशकाल को कहकर 'मेरे इस पुत्र का दैव और पितृ ऋण हटाने के लिये तथा धर्म-प्रजोत्पादनसिद्धि के द्वारा परमेश्वर की प्रसन्नता के लिये विवाह नामक संस्कार करूँगा, उसके अंग स्वस्तिवाचन, मातृकापूजन, नान्दीश्राद्ध और नन्दिनी आदि मण्डप देवता का स्थापना करूंगा, उसके पहले निर्विघ्नता के लिये गणेश की पूजा करूँगा' ऐसा संकल्प पुत्रविवाह में करे।

कन्याविवाहे तु जातकर्मादिलोपे 'ममास्याः कन्यायाः जातकर्मनामकर्मसूर्यावलोकननिष्क्रमणोपवेशनान्नप्राशनचौलसंस्काराणां बुद्धिपूर्वकलोपजन्यप्रत्यवायपरिहारार्थं प्रतिसंस्कारमर्धकृच्छ्रं चूडायाः कृच्छ्रं तत्प्रत्याम्नायगोनिष्क्रयीभूतयथाशक्तिरजतदानेनाहमाचरिष्ये।' गर्भाधानसीमन्तयोर्लोपे तयोरप्यूहः। ततो 'ममास्याः कन्यायाः भर्त्रा सह धर्मप्रजोत्पादनद्रव्यपरिग्रहधर्माचरणेष्वधिकारसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं विवाहाख्यं संस्कारं करिष्ये, इति विशेषः। शेषं पूर्ववत्।

कन्या के विवाह में तो जातकर्म आदि संस्कार न होने पर 'मेरी इस कन्या के जातकर्म, नामकर्म, सूर्यावलोकन, निष्क्रमण, उपवेशन, अन्नप्राशन और चौल संस्कारों के जानबूझकर न करने से उस पाप को हटाने के लिये प्रत्येक संस्कार के लिये अर्द्धकृच्छ्र, चूड़ा के लिए एक कृच्छ्र या इसके बदले में उसका मूल्य यथाशक्ति चांदी के दान से मैं करूँगा।' गर्भाधान और सीमन्त के न होने पर इन दोनों की भी संकल्प में योजना करे। तदनन्तर 'मेरी इस कन्या का पति के साथ धर्म-प्रजोत्पादन, द्रव्य का परिग्रहण, धर्माचरणों में अधिकारसिद्धि के द्वारा श्रीपरमेश्वर प्रीत्यर्थ विवाह नामक संस्कार करूँगा' इतना विशेष है। शेष पूर्ववत्।

भ्राता मम भ्रातुरिति भगिन्या इति वा। पितृव्यादिः कर्ता मम भ्रातृसुतस्य भ्रातृकन्याया इति वा संकल्पोहं कुर्यात्। वरवध्वोः स्वयंकर्तृत्वे मम दैवपित्र्यऋणेत्यादि मम भर्त्रा सहेत्यादि च संकल्पः।

अपने भाई की कन्या का संस्कार यदि भाई करता है तो 'मम भ्रातुः' ऐसी संकल्प में योजना करे। भाई यदि बहिन का संस्कार करता है तो 'मम भगिन्याः' ऐसा संकल्प करे। चाचा आदि भतीजा या भतीजी का संस्कार करता है तो 'मम भ्रातृसुतस्य' या 'भ्रातृकन्यायाः' ऐसी संकल्प की कल्पना करे। वर वधू यदि स्वयं अपना विवाह करे तो 'मम दैवपित्र्यऋणापाकरणाय' इत्यादि और 'भर्त्रा सह' इत्यादि संकल्प करे।

केचित्स्वस्तिवाचनकाले कन्यादानादिकाले वा प्रधानविवाहसंस्कारसंकल्पं न कुर्वन्ति स प्रमाद इति बहवः। अन्ये तु कन्यादानविवाहहोमादिसंकल्प एव प्रधानसंकल्पस्तदतिरिक्तविवाहपदार्थाभावादित्याहुः।

कुछ लोग स्वस्तिवाचन के समय या कन्यादान आदि काल में प्रधान विवाहसंस्कार का संकल्प नहीं करते हैं, यह उनकी गलती है, ऐसा बहुत से कहते हैं। अन्य लोग तो कन्यादान, विवाह-होम आदि का संकल्प ही प्रधान संकल्प है, क्योंकि उसके अतिरिक्त विवाह पदार्थ ही कोई नहीं है, ऐसा कहते हैं।

अथ नान्दीश्राद्धे देवताविचारः

'मातृकापूजान्ते मृतपितृमातृमातामहो वरवध्वोः पिता स्वपित्राद्युद्देश्यक-पार्वणत्रययुतं नान्दीश्राद्धं कुर्यादित्यसंदिग्धम्।

मातृकापूजा के अन्त में वर वधू के पिता जिनके पिता, माता और नाना मर गये हैं वे अपने पिता आदि के उद्देश्य से तीन पार्वण से युक्त नान्दीश्राद्ध करें, इसमें सन्देह नहीं है।

अथ जीवत्पित्रादीनां नान्दीश्राद्धे निर्णयः

मातर्यंव जीवन्त्यां तत्पार्वणलोपः। मातामहमात्रजीवने तत्पार्वणमात्रलोपः। तथा चोभयत्र पार्वणद्वयेनैव नान्दीश्राद्धसिद्धिः। मातृमातामहयोर्जीवने पितृपार्व-

---

१. शातातपः—'अकृत्वा मातृयागं तु यः श्राद्धं परिवेषयेत्। तस्य क्रोधसमाविष्टा हिंसामिच्छन्ति मातरः॥' कूर्मपुराणे—'पुष्पैर्धूपैः सनैवेद्यैर्गन्धाद्यैर्भूषणैरपि। पूजयित्वा मातृगणं कुर्याच्छ्राद्धत्रयं बुधः॥' छन्दोगपरिशिष्टे—'कर्मादिषु तु सर्वेषु मातरः सगणाधिपाः। पूजनीयाः प्रयत्नेन पूजिताः पूजयन्ति ताः॥ प्रतिमासु च शुद्धासु लिखिता वा पटादिषु। अपि वाक्षतपुञ्जेषु नैवेद्यैश्च पृथग्विधैः।' रेणुकारिकायाम्—'उक्तकाले विवाहाङ्गं कुर्यान्नान्दीमुखं पिता। देशान्तरे विवाहश्चेत्तत्र भवेदिदम्॥'

ब्रह्मपुराण में नान्दीश्राद्ध के निमित्त—'जन्मन्यथोपनयने विवाहे पुत्रकस्य च। पितॄन्नान्दीमुखान्नाम तर्पयेद्विधिपूर्वकम्॥ वेदव्रतेषु चाधानयज्ञपुंसवनेषु च। नवान्नभोजने स्नाने ऊढायाः प्रथमार्तवे॥ देवारामतडागादिप्रतिष्ठासूत्सवेषु च। राजाभिषेके बालान्नभोजने वृद्धिसंज्ञकान्॥ वनस्थाद्याश्रमं गच्छन् पूर्वेद्युः सद्य एव वा॥ पितॄन् पूर्वोक्तविधिना तर्पयेत् कर्मसिद्धये॥' शातातपः-'मातृश्राद्धं तु पूर्वं स्यात् पितॄणां तदनन्तरम्। ततो मातामहानां च वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम्॥' निर्णयसिन्धु में नान्दीश्राद्ध करने का दिन-निर्देश—'एकविंशत्यहर्यज्ञे विवाहे दश वासराः। त्रिषट् चौलोपनयने नान्दीश्राद्धं विधीयते॥'

नान्दीश्राद्ध का गार्ग्योक्त काल—'मातृश्राद्धं तु पूर्वेद्युः कर्माहनि तु पैतृकम्। मातामहं चोत्तरेद्युर्वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम्॥' अशक्ति में वृद्धशातातपोक्त काल—'पूर्वाह्णे मातृकं श्राद्धं मध्याह्ने पैतृकं तथा। ततो मातामहानां च वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम्॥' इसमें भी अशक्तता हो तो गार्ग्यने कहा है-'पृथग् दिनेष्वशक्तश्चेदेकस्मिन् पूर्ववासरे। श्राद्धत्रयं प्रकुर्वीत वैश्वदेवं तु तान्त्रिकम्॥' वृद्धमनुः—'अलाभे भिन्नकालानां नान्दीश्राद्धत्रयं बुधः। पूर्वेद्युर्वै प्रकुर्वीत पूर्वाह्णे मातृपूर्वकम्॥'

सांकल्पिक नान्दीश्राद्ध में गोत्रनामाद्युच्चारण का भविष्योक्त निषेध वचन है—'शुभार्थी प्रथमान्तेन वृद्धौ संकल्पमाचरेत्। अनस्मद्वृद्धशब्दानामरूपाणामगोत्रिणाम्॥ अनाम्नामतिलाद्यैश्च नान्दीश्राद्धं च सव्यवत्॥'

एक ही दिन अनेक पुत्रों के संस्कार करने में एक स्थान, काल और कर्ता के ऐक्य से नान्दीश्राद्ध एक तन्त्र से एक ही बार करने का छन्दोगपरिशिष्ट में विधान है—'गणशः क्रियमाणानां मातृभ्यः पूजनं सकृत्। सकृदेव भवेच्छ्राद्धमादौ न पृथगादिषु॥' भविष्यपुराण के—'पिण्डनिर्वपणं कुर्यान्नवा कुर्याद्विचक्षणः। वृद्धिश्राद्धे महाबाहो कुलधर्मानवेक्ष्य तु॥' इस वचन से पाक्षिक सपिण्डक नान्दीश्राद्ध में गोत्रनामाद्युच्चारण का छन्दोगपरिशिष्टोक्त विधान है—'गोत्रनामभिरामन्त्र्य पितृभ्योऽर्घ्यं प्रदापयेत्। नात्रापसव्यकरणं न पित्र्यं तीर्थमिष्यते॥' वसिष्ठः—'प्राङ्मुखो दैवतीर्थेन प्राक्कूलेषु कुशेषु च। दत्त्वा पिण्डान्न कुर्वीत पिण्डपात्रमधो मुखम्॥' इति। गर्भाधान प्रकरण में नान्दीश्राद्ध सम्बन्धी अवशिष्ट वचन सुधाविवृति में देखें।

णेनैव तत्सिद्धिः। पितृप्रपितामहमृतौ पितामहजीवने च पितृप्रपितामहतत्पितृनुद्दिश्य पितृपार्वणम्। तथा च पितृप्रपितामहतत्पितरो नान्दीमुखा इदं वः पाद्यमित्यादिप्रयोगः। प्रपितामहमात्रजीवने पितृपितामहतत्पितामहा इत्युद्देशः। पितृमृतौ पितामहप्रपितामहजीवने पितुः पितामहस्य पितामहप्रपितामहौ च नान्दीमुखा इत्युच्चारः।

माता के जीते रहने पर उनका पार्वण नहीं होगा। केवल नाना के जीवित रहने पर उनका केवल पार्वण न होगा। इस प्रकार दोनों जगह दो पार्वण से ही नान्दीश्राद्ध की सिद्धि होती है। माता और नाना दोनों के जीवित रहने पर पिता के पार्वण से ही नान्दीश्राद्धकी सिद्धि होती है। पिता और प्रपितामह के मरने पर और पितामह के जीते हुए भी पिता, प्रपितामह और उनके पिता के उद्देश्य से पितृपार्वण होता है। इस प्रकार पिता पितामह और उनके पितृगण नान्दीमुख यह आप सब का पाद्य है इत्यादि प्रयोग होता है। प्रपितामह केवल जीते रहें तो पिता पितामह और उनके पितामह इस उद्देश्य से पार्वण करे। पिता मर गये हों, पितामह और प्रपितामह जीते हों तो पिता के पितामह का और पितामह; प्रपितामह का 'नान्दीमुखा' ऐसा उच्चारण करना चाहिये।

एवं मातृमरणे पितामहीमात्रजीवने मातुः पितुः पितामहीप्रपितामह्यौ च नान्दीमुख्य इत्युच्चारः। प्रपितामहीमात्रजीवने मातृपितामह्यौ पितुः प्रपितामही च नान्दीमुख्य इत्युच्चारः। पितामहीप्रपितामह्योर्जीवने मातुः पितामहस्य पितामहीप्रपितामह्यौ चेत्युच्चारः। मुख्यमातृजीवने सापत्नमातृमरणेऽपि न मातृपार्वणम्।

इसी तरह माता के मरने पर केवल पितामही के जीते रहने पर 'मातुः पितुः पितामहीप्रपितामह्यौ च नान्दीमुख्यः' ऐसा उच्चारण करे। केवल प्रपितामही के जीते रहने पर 'मातृपितामह्यौ पितुः प्रपितामही च नान्दीमुख्यः' ऐसा उच्चारण करे। पितामही प्रपितामही के जीते रहने पर 'मातः पितामहस्य पितामहीप्रपितामह्यौ च' ऐसा उच्चारण करे। मुख्य माता के जीते रहने पर सौतेली माता के मरने पर भी मातृपार्वण नहीं होता।

एवं मुख्यपितामहीजीवने पितामह्याः सपत्नीमृतावपि तया सह न मातृपार्वणं, किंतु पूर्वोक्त एवोच्चारः। एवं प्रपितामहीसपत्नीविषयेऽपि। एवं मुख्यमातामहीजीवने तत्सपत्न्यादिमरणेऽपि न मातामहादीनां सपत्नीकत्वेनोच्चारः, किंतु केवलानामेव। दर्शादौ मातृजीवने सापत्नमातुर्मृतौ केवलानामेव पित्रादीनामुद्देश इति सिद्धान्तात्।

इसी प्रकार मुख्य पितामही के जीते रहने पर पितामही की सौत के मरने पर भी उसके साथ पार्वण नहीं होता, किन्तु पहले कहे हुए के अनुसार उच्चारण करे। इसी तरह प्रपितामही की सौत के विषय में भी। एवं मुख्य मातामही की जीते हुए उसकी सौत के मरने पर भी मातामह आदि का सपत्नीकत्व से उच्चारण नहीं होगा, किन्तु केवल मातामह आदि का उच्चारण होगा। कारण कि दर्शादि श्राद्ध में माता के जीवित रहने और सौतेली माँ के मरने पर केवल पिता आदि के ही उच्चारण करने का सिद्धान्त है।

अथ मातामहमृतौ मातुः पितामहजीवने मातामहतत्पितामहप्रपितामहा इत्युच्चारः। मातुः प्रपितामहमात्रजीवने मातामहमातृपितामहौ मातामहस्य प्रपितामहश्च नान्दीमुखा इत्युच्चारः। द्वयोर्जीवने मातामहमातुः पितामहस्य पितामहप्रपितामहौ च नान्दीमुखा इत्युच्चारः।

मातामह (नाना) के मरने और माता के पितामह के जीवित रहने पर मातामह उसके पितामह प्रपितामह नान्दीमुख का उच्चारण करे। माता के केवल प्रपितामह के जीते रहने पर मातामह और माता का पितामह और मातामह का प्रपितामह नान्दीमुख ऐसा उच्चारण करे। दोनों के जीवित रहने पर मातामह और माता का पितामह प्रपितामह नान्दीमुख का उच्चारण करे।

अथ जीवत्पितृकादिदेवताविचारः

अथ जीवत्पितृको मृतमातृमातामहश्च विवाहोपनयनजातकर्मादिषु पुत्रसंस्कारेषु मातृमातामहपार्वणद्वयमेव कुर्यात्। मातर्यपि जीवत्यां 'मातामहपार्वणमेव। मातामहजीवने मातृमरणे जीवत्पितृकः सुतसंस्कारे मातृपार्वणमेव देवरहितं कुर्यात्। त्रिष्वपि जीवत्सु सुतसंस्कारे पितुः पित्रादीनुद्दिश्य पार्वणत्रयं कुर्यात्। त्रिष्वपि जीवत्सु सुतसंस्कारे नान्दीश्राद्धलोप एवेति पक्षान्तरं ग्रन्थारम्भे उक्तम्।

जिसके पिता जीते हों, माता और नाना मर गये हों तो विवाह, उपनयन और जातकर्म आदि पुत्र-संस्कारों में माता और मातामह का दो पार्वण ही करे। माता यदि जीवित हो तो मातामह का पार्वण ही करे। मातामह के जीते रहने और माता के मर जाने पर जीवत्पितृक अपने पुत्र-संस्कार में देवरहित मातृपार्वण ही करे। तीनों के जीते रहने पर अपने पुत्र के संस्कार में पिता के पिता आदि तीन के उद्देश्य से तीन पार्वण करे। तीनों के जीते रहने पर अपने पुत्र के संस्कार में नान्दीश्राद्ध का लोप ही होता है, इस दूसरे पक्ष को ग्रन्थ के आरंभ ही में कहा है।

द्वितीयविवाहसमावर्तनाधानादिषु स्वसंस्कारेषु नान्दीश्राद्धं कुर्वन् जीवत्पितृकः पितुः पित्रादीनुद्दिश्य पार्वणत्रयं कुर्यात्। पितुर्मातृपितामहीप्रपितामह्यः पितुः पितृपितामहप्रपितामहाः पितुर्मातामहमातुः पितामहमातुः प्रपितामहा नान्दीमुखा इति तत्रोच्चारः। अत्र पितुर्मात्रादिजीवने तत्पार्वणलोपः। मृतपितृकस्तु स्वपित्रादीनुद्दिश्येति त्वसंदिग्धम्। पितृपितामहयोर्जीवने पितामहस्य मात्रादिपार्वणत्रयोद्देशः। त्रयाणां जीवने पितृपार्वणलोपः। तत्र सुतसंस्कार इव स्वसंस्कारे मातृमातामहयोः पार्वणाभ्यामेव नान्दीश्राद्धसिद्धिः। पित्रादित्रयजीवने मातृमातामहयोश्च जीवने प्रपितामहस्य पित्रादिपार्वणत्रयोद्देशेन नान्दीश्राद्धम्।

द्वितीय विवाह, समावर्तन और आधान आदि अपने संस्कारों में नान्दीश्राद्ध करता हुआ जीवत्पितृक अपने पिता के पिता आदि तीन के उद्देश्य से तीन पार्वण करे। पिता की माता, पितामही

---

१. गृह्यपरिशिष्टे—'जीवत्पितृकः सुतसंस्कारेषु मातृमातामहयोः कुर्यात्तस्यां जीवन्त्यां मातामहस्यैव कुर्यात्' इति।

और प्रपितामही, पिता के पिता पितामह और प्रपितामह, पिता के मातामह, माता के पितामह, माता के प्रपितामह ऐसा नान्दीमुखमें उच्चारण करे। इसमें पिता की माता आदि के जीते रहने पर उनके पार्वण का लोप होता है। मृतपितृक तो अपने पिता आदि तीन के उद्देश्य से नान्दीश्राद्ध करे, इसमें सन्देह नहीं है। पिता पितामह के जीते रहने पर पितामह की माता आदि का तीन पार्वण के उद्देश्य से उच्चारण करे। तीनों के जीते रहने पर पितृपार्वण का लोप होता है। उसमें पुत्रसंस्कार की तरह अपने संस्कार में माता और मातामह के दो पार्वण ही से नान्दीश्राद्ध की सिद्धि होती है। पिता आदि तीनों के जीते रहने और माता तथा मातामह के जीते रहने पर प्रपितामह के पिता आदि तीन के उद्देश्य से नान्दीश्राद्ध होता है।

एवं प्रथमविवाहेऽपि कर्त्रन्तराभावाद्वर एव नान्दीश्राद्धं कुर्वन् मृतपितृकः स्वपित्रादीनुद्दिश्य' 'जीवत्पितृकस्तु पितुः पित्रादीनुद्दिश्य कुर्यात्। जीवत्पितृपितामहस्तु पितामहस्य पित्रादिपार्वणत्रयोद्देशेन, प्रपितामहस्यापि जीवने प्रपितामहस्य पित्रादिपार्वणत्रयोद्देशेन वा पितृपार्वणलोपेन वा नान्दीश्राद्धम्। अत्र सर्वत्र पितुः पितामहादेर्वा पित्रादिपार्वणोद्देशपक्षे स्वमातृमातामहयोर्मरणेऽपि न स्वमातृमातामहयोः पार्वणं, किंतु पित्रादेर्मातृमातामहयोरेवेति ज्ञेयम्। इति जीवत्पितृकनान्दीश्राद्धप्रयोगः।

इसी प्रकार प्रथम विवाह में भी दूसरे करने वाले के अभाव से वर ही नान्दीश्राद्ध करता हुआ मृतपितृक अपने पिता आदि तीन के उद्देश्य से उच्चारण करे। जीवत्पितृक तो अपने पिता के पिता आदि के उद्देश्य से करे। जिसके पिता पितामह दोनों जीते हों वह तो पितामह के पिता आदि तीन के उद्देश्य से करे। प्रपितामह के भी जीते रहने पर प्रपितामह के पिता आदि तीन का तीन पार्वण के उद्देश्य से अथवा पितृपार्वण के लोप करके नान्दीश्राद्ध करे। यहाँ सर्वत्र पिता और पितामह आदि के पिता आदि के पार्वण के उद्देश्य पक्ष में अपनी माता और मातामह के मरने पर भी अपनी माता और मातामह का पार्वण न करे, किन्तु पिता आदि की माता और मातामह ही का करे, यह जानना चाहिये। जीवत्पितृक नान्दीश्राद्ध का प्रयोग समाप्त।

अथ पित्रन्यकर्तृकनान्दीश्राद्धम्

यदा तु कन्याविवाहं पुत्रस्योपनयनं प्रथमविवाहं च पितृव्यमातुलादिः करोति तदा संस्कार्यस्य मृतपितृकत्वे अस्य संस्कार्यस्य पितृपितामहप्रपितामहा

१. हेमाद्रि में विष्णु का वचन है—'पितरि जीवति यः श्राद्धं कुर्याद्येषां पिता कुर्यात्तेषां, पितरि पितामहे च जीवति येषां पितामहः, पितरि पितामहे प्रपितामहे च जीवति नैव कुर्यात्। यस्य पिता प्रेतः स्यात्स पित्रे पिण्डं निधाय प्रपितामहात्पराभ्यां दद्यात्। यस्य पिता पितामहश्च प्रेतौ स्यातां स ताभ्यां पिण्डौ दत्त्वा पितामहप्रपितामहाय दद्यात्।' 'मातामहानामप्येवं श्राद्धं कुर्याद् विचक्षणः। मन्त्रोहेन यथान्यायं शेषाणां मन्त्रवर्जितम्॥'

यज्ञपार्श्वे—'जीवेत् पितामहो यस्य पिता चान्तरितो भवेत्। पितुरेकस्य दातव्यमेवमाहुर्मनीषिणः॥' जीवित पितामह के विषय में सत्यव्रत ने कहा है—'पितामहे स्थिते यस्य पिता यदि विपद्यते। द्वौ पिण्डावेकनामानावेकश्च प्रपितामहे॥ द्वौ पिण्डौ पितृनाम्नैव दद्याज्जीवत्पितामहः। प्रपितामहस्य चैवेकं पितुः प्रत्याब्दिकादिषु॥' इति।

इत्यादिप्रयोगं कुर्यात्। सोदरभ्रातुर्नोच्चारे विशेषः, भ्रातुः पित्रादीनां संस्कार्यपित्रादीनां चैक्यात्। सापत्नभ्राता तु संस्कार्यस्य मातृपितामहीप्रपितामह्य इत्याद्युच्चारयेत्। संस्कार्यमातृजीवने तत्पार्वणलोपः।

जब कन्या का विवाह, पुत्र का उपनयन और प्रथम विवाह चाचा या मामा इत्यादि करते हों तब जिसका संस्कार किया जा रहा हो उसके पिता मर गये हों तो ऐसी स्थिति में इस संस्कार्य का पिता-पितामह-प्रपितामह ऐसा प्रयोग करे। सहोदर भाई कर्ता हो तो उच्चारण में कोई विशेषता नहीं है, क्योंकि भाई और संस्कार्य के पिता आदि का ऐक्य है। सौतेला भाई तो जिसका संस्कार किया जा रहा है उसकी माता, पितामही, प्रपितामही इत्यादि उच्चारण करे। संस्कार वाले की माता के जीते रहने पर उसके पार्वण का लोप होता है।

संस्कार्यस्य जीवत्पितृकत्वे मातुलादिः कर्ता संस्कार्यपितुः मातृपितामहीप्रपितामह्यः संस्कार्यपितुः पितृपितामहप्रपितामहा इत्याद्युच्चार्य तत्पितुः पित्रादिपार्वणत्रयं कुर्यात्। संस्कार्यस्य पितृपितामहयोर्जीवने मातुलादिः संस्कार्यस्य पितुर्मात्रादीन् मातामहादींश्चोद्दिश्य पार्वणद्वयं कुर्यात्। पितुर्वर्गद्वयाद्यजीवने एकैकवर्गपार्वणम्। पितुर्वर्गत्रयाद्यजीवने मातुलादिः पितामहस्य मात्रादिपार्वणत्रयोद्देशं कुर्यात्।

संस्कार्य के पिता जीते हों और संस्कार करने वाला मामा आदि हो तो संस्कार्य के पिता की माता, पितामही, प्रपितामही तथा संस्कार्य के पिता के पिता, पितामह, प्रपितामह इत्यादि उच्चारण करके उसके पिता के पिता आदि का तीन पार्वण करे। संस्कार्य के पिता, पितामह के जीते रहने पर मामा आदि संस्कार वाले के पिता माता आदि और मातामहादि के उद्देश्य से दो पार्वण करे। पिता के वर्गद्वय के नहीं जीते रहने पर एक एक वर्ग का पार्वण करे। पिता के तीनों वर्ग आदि के नहीं जीते रहने पर मातुल आदि—पितामह की माता आदि का तीन पार्वण के उद्देश्य से करे।

पितामहस्य मात्रादिजीवने तत्पार्वणलोपः पूर्ववत्। पितृव्ये जीवत्पितृकसंस्कारकर्तरि नोच्चारे विशेषः, संस्कार्यपितुः पित्रादीनां पितृव्यस्य पित्रादीनां चैक्यात्। पितामहस्य संस्कर्तृत्वे संस्कार्यपितृमरणे संस्कार्यस्य पितः मम पितृपितामहौ च नान्दीमुखाः संस्कार्यस्य मात्रादयो मातामहादयश्चेत्याद्युच्चारः। संस्कार्यपितृजीवने पितामहः कर्ता स्वमातृपितृमातामहपार्वणानि ममेति पदरहितानि तत्सहितानि वोच्चारयेत्। एवं प्रपितामहे कर्तर्यपि योज्यम्।

पितामह की माता आदि के जीते रहने पर उसके पार्वण का लोप पहले की तरह होगा। जीवत्पितृक का संस्कार यदि चाचा करता हो तो उसके उच्चारण में कोई विशेषता नहीं है, क्योंकि संस्कार किये जाने वाले के पिता के पिता आदि का और चाचा के पिता आदि का ऐक्य है। जिसका संस्कार किया जा रहा है उसके पिता के मरने पर पितामह संस्कार करने वाला हो तो संस्कार्य का मेरे पिता पितामह नान्दीमुख हैं संस्कार वाले के माता आदि और मातामह आदि, ऐसा उच्चारण करे। संस्कार वाले के पिता के जीते रहने पर पितामह कर्ता हों तो अपने माता पिता और नाना के पार्वण में 'मम' इस पद से रहित या सहित का उच्चारण करे। इस प्रकार प्रपितामह के कर्ता होने पर भी योजना कर ले।

दातुमशक्नुवता कन्यादानाधिकारिणा त्वं कन्यादानं कुर्विति [1]प्रार्थितो यः परकीयकन्यां दातुमिच्छति यश्च सुवर्णेनात्मीयां कृत्वा अनाथां ज्ञात्वा वाऽन्यकन्यां दातुमिच्छति सोऽपि संस्कार्यायाः कन्यायाः पित्रादीनुच्चारयेत्। तस्याः पितृजीवने तदीयमात्रादीन् तस्या वर्गत्रयाद्यजीवने पितुः पित्रादीनिति यथासंभवमूह्यम्। इति पित्रन्यकर्तृकनान्दीश्राद्धप्रयोगः।

कन्यादान का अधिकारी दान करने में असमर्थ होकर किसी अन्य से प्रार्थना करता है कि तुम कन्यादान करो तो वह प्रार्थित-व्यक्ति जो दूसरे की कन्या का दान करना चाहता है और जो सोना देकर अपनी कन्या बनाकर अथवा अनाथ जानकर अन्य कन्या का दान करना चाहता है वह भी संस्कार्य कन्या के पिता आदि का उच्चारण करे। उस कन्या के पिता के जीते रहने पर उसकी माता आदि का उसके तीनों वर्ग के पुरुष के नहीं जीते रहने पर पिता के पिता आदि की जैसा उचित हो कल्पना कर ले। पिता से भिन्न कर्ता के नान्दीश्राद्ध का प्रयोग समाप्त।

अथ दत्तककर्तृत्वे व्यवस्था

दत्तकन्याया विवाहं कुर्वन् प्रतिग्रहीता पिता स्वपित्रादीनुद्दिश्यैव कुर्यात्। दत्तकस्तु पुत्रो यदि अधिकार्यन्तराभावाल्लब्धजनकपितृधनस्तदा जनकपित्रादीन् प्रतिग्रहीतृपित्रादींश्च पितरौ पितामहौ प्रपितामहौ च नान्दीमुखा इत्येवमुच्चार्य श्राद्धं कुर्यात्। एवं मातृपार्वणे मातामहपार्वणे च द्विवचनप्रयोग ऊह्यः।

दत्त कन्या का विवाह करने वाला प्रतिग्रहीता पिता अपने पिता आदि के उद्देश्य से ही करे। दत्तक पुत्र तो दूसरे अधिकारी के न होने से पिता से यदि धन प्राप्त किया हो तो वह अपने पैदा करने वाले पिता आदि का और प्रतिग्रहीता के पिता आदि का 'पितरौ पितामहौ प्रपितामहौ च नान्दीमुखाः' ऐसे ही उच्चारण करके श्राद्ध करे। ऐसे ही मातृपार्वण और नाना के पार्वण में द्विवचन का प्रयोग कल्पनीय है।

यदि तु जनकधनग्रहणेऽधिकार्यन्तरसत्त्वादलब्धजनकधनस्तदा प्रतिग्रहीतृपित्रादीनेवोद्दिश्य कुर्यान्न पितृद्वयोद्देशेन। अत्र सर्वत्र संभ्रमेण क्वचित्क्वचिन्मातृपार्वणपितृपार्वणयोः क्रमवैपरीत्यपातेऽपि स क्रमो न विवक्षितः।

यदि पिता के धन लेने में दूसरा कोई अधिकारी हो इस कारण पिता का धन नहीं प्राप्त किया हो तब प्रतिग्रहीता के पिता आदि के उद्देश्य से श्राद्ध करे, दोनों पिताओं के उद्देश्य से न करे। यहाँ सर्वत्र कहीं-कहीं मातृपार्वण और पितृपार्वण में भ्रम से विपरीत क्रम हो गया हो वह क्रम विवक्षित नहीं है।

अथ पार्वणक्रमादिकम्

सर्वत्र नान्दीश्राद्धेषु [2]पूर्वं मातृपार्वणं ततः पितुः पार्वणं ततो मातामह-

---

१. प्रार्थित व्यक्ति यदि वह असगोत्र भी हो तो धर्मबुद्धि से उस परकीय-कन्या का दान करे जैसा मदनरत्न में स्कन्द का वचन है—'आत्मीकृत्य सुवर्णेन परकीयां तु कन्यकाम्। धर्मेण विधिना दानमसगोत्रेऽपि युज्यते॥' इति।

२. नान्दीश्राद्ध में शातातपोक्त मातृपूर्वक श्राद्ध का निर्देश है—'मातृश्राद्धं तु पूर्वं स्यात् पितॄणां तदनन्तरम्। ततो मातामहानां च वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम्॥' इति।

स्येति क्रमस्य निश्चितत्वात्। बह्वृचकात्यायनैर्मातृपितामहीप्रपितामह्य इत्यादिनाऽऽनुलोम्येन पार्वणत्रयेऽप्युच्चारः। तैत्तिरीयादिभिस्तु प्रपितामहपितामहपितर इत्येवमादिना व्युत्क्रमेणोच्चारः कार्यः।

सब नान्दीश्राद्धों में पहले मातृपार्वण, उसके बाद पितृपार्वण, उसके बाद नाना का पार्वण, इस क्रम का निश्चय है। बह्वृच कात्यायन वाले माता-पितामही-प्रपितामही इत्यादि आनुलोम्य से तीनों पार्वण में उच्चारण करें। तैत्तिरीय आदि वाले तो प्रपितामह, पितामह और पिता इस प्रकार विपरीत से उच्चारण करें।

एकसंस्कार्यस्यानेकसंस्काराणां सहानुष्ठाने नान्दीश्राद्धं सकृदेव। एवं यमलयोर्द्वयोः पुत्रयोः कन्ययोर्वा विवाहोपनयनादिसंस्काराणां सहैवानुष्ठानेऽपि नान्दीश्राद्धं सकृदेव। यमलयोः संस्काराणामेकमण्डपे एककाले एकेन कर्त्रा सहकरणे दोषो[1] नेत्युक्तम्।

एक संस्कार वाले के स्थान में अनेक संस्कारों को साथ करने में एक ही बार नान्दीश्राद्ध होता है। इसीतरह यमल (जोड़ुवां) पुत्र और यमल कन्या के विवाह आदि संस्कारों को साथ ही करने पर नान्दीश्राद्ध एक ही बार करे। जोड़ुवां के संस्कारों को एक मण्डप में एक समय और एक ही कर्ता द्वारा साथ करने में दोष नहीं है, ऐसा कह चुके हैं।

अथ नान्दीश्राद्धेऽन्नाद्यनुकल्पाः

नान्दीश्राद्धे अन्नाभावे[2] आममामाभावे हिरण्यं दद्यात्। हिरण्याभावे युग्मब्राह्मणभोजनपर्याप्तान्ननिष्क्रयीभूतं यथाशक्ति किंचिद् द्रव्यं स्वाहा न ममेति वदेत्। अन्यः सर्वोऽपि विशेषो गर्भाधानप्रकरणे विस्तरेणोक्तस्तत एवानुसन्धेयः। इति नान्दीश्राद्धम्।

नान्दीश्राद्ध में अन्न के अभाव में कच्चा अन्न, कच्चा अन्न के अभाव में सुवर्ण दे। सुवर्ण के न होने पर 'युग्म-ब्राह्मणभोजन-पर्याप्तमान्न-निष्क्रयीभूतं यथाशक्ति किञ्चिद् द्रव्यं स्वाहा न मम' ऐसा कहे। अन्य सब विशेषताएं गर्भाधान प्रकरण में विस्तार से कहा है वहीं से जानना चाहिये। नान्दीश्राद्ध समाप्त।

ततो मण्डपदेवतास्थापनं ग्रहयज्ञश्च स्वस्तिवाचनात्पूर्वं नान्दीश्राद्धोत्तरं वा कार्यः।

इसके बाद मण्डप देवता का स्थापन और ग्रहयज्ञ स्वस्तिवाचन के पहिले या नान्दी-श्राद्ध के बाद करे।

अथ सीमान्तपूजनम्

अथ कन्यादाता वरगृहं गतः 'करिष्यमाणकन्याविवाहाङ्गत्वेन वरस्य सीमान्तपूजां करिष्ये' इति संकल्प्य गणेशवरुणौ संपूज्य वरं पादप्रक्षालनवस्त्रगन्ध-

---

१. पराशरः—'एकस्मिन् वत्सरे प्राप्ते कुर्याद् यमलजातयोः। क्षौरं चैव विवाहं च मौञ्जीबन्धनमेव च ॥' भट्टकारिकायाम्—'एकस्मिन् वत्सरे चैव वासरे मण्डपे तथा। कर्तव्यं मङ्गलं स्वस्रोर्भ्रात्रोर्यमलजातयोः ॥' इति।

२. विशेष मूलवचन गर्भाधान प्रकरण की सुधाविवृति में देखें।

पुष्पनीराजनैः संपूज्य यथाचारं दुग्धादि प्राशयेत्। ततो वरो 'मङ्गलघोषैर्वाहनारूढो वधूगृहं गच्छेत्। वरपिता वधूं वस्त्रादिना पूजयेदिति यथाचारम्।

कन्या देने वाला वर के घर जाकर 'किये जाने वाले कन्या-विवाह के अंग होने से वर की सीमान्तपूजा करूँगा' ऐसा संकल्प करके गणेश वरुण को पूजकर वर का पादप्रक्षालन, वस्त्र, गन्ध, पुष्प और नीराजन से पूजा कर आचार के अनुसार दूध आदि का प्राशन करावे। उसके बाद वर मंगल शब्दों से सवारी पर चढ़कर वधू के घर जाय। वर का पिता बहू की पूजा वस्त्रादि से जैसा कुलाचार हो करे।

लग्नदिने कन्यापिता कन्या वा अन्योन्यालिङ्गितगौरीहरयोः प्रतिमां सुवर्णरौप्यादिनिर्मितां कात्यायनीमहालक्ष्मीशचीभिः सह पूजयेत्। तत्र कोणचतुष्टयस्थापितकलशश्रेणीनां मध्ये उपलयुतदृषदि वस्त्रे वा तण्डुलपूर्णे गौरीहरौ मन्त्रेण पूजयेत्। तत्र—

सिंहासनस्थां देवेशीं सर्वालंकारसंयुताम्।
पीतांबरधरं देवं चन्द्रार्धकृतशेखरम्॥
करेणाधः सुधापूर्णं कलशं दक्षिणेन तु।
वरदं चाभयं वामेनाश्लिष्य च तनुप्रियाम्॥ इति ध्यानमन्त्रः।
गौरीहर महेशान सर्वमङ्गलदायक।
पूजां गृहाण देवेश सर्वदा मङ्गलं कुरु॥ इति पूजामन्त्रः।

कन्यादेहप्रमाणेन सप्तविंशतितन्तुभिः कृतया वर्तिकया दीपं प्रज्वाल्य सुवासिनीब्राह्मणान् भोजयेत्। इति गौरहरपूजा।

लग्न के दिन कन्या का पिता अथवा कन्या परस्पर आलिंगन करती हुई पार्वती-शंकर की प्रतिमा को जो सुवर्ण और चान्दी आदि से निर्मित हो, कात्यायनी-महालक्ष्मी-सती के साथ पूजा करे। वहां चारो कोने में स्थापित चारो कलशों के बीच में लोढ़ा और सिलवट पर या तण्डुलपूर्ण वस्त्र में गौरी और हर की मन्त्र से पूजा करे। उसमें सब अलंकारों से युक्त सिंहासन पर बैठी हुई देवेशी को पीताम्बर धारण करने वाले देवता अर्धचन्द्र को सिर में लगाने वाले शंकर भगवान् को दहिने हाथ से अमृत भरा कलश लिये हुए अभय और वर देने वाले तथा बाएं हाथ से पार्वती का आलिंगन करते हुए शंकर का ध्यान करे। हे गौरीहर! महेशान! सम्पूर्ण मंगलों को देने वाले हे देवेश! मेरी पूजा को ग्रहण करें। कन्या के शरीर के नाप से २७ गुना डोरे का दीप जलाकर सौभाग्यवती और ब्राह्मणों को भोजन करावे। गौरीहरपूजा समाप्त।

अथ विष्टरलक्षणम्

पञ्चविंशतिदर्भाणां वेण्यग्रग्रन्थिसंयुतो लम्बाग्रो विष्टरः संपाद्यः।

---

१. मङ्गलघोषैः = वाद्यस्त्रीगीतादिमङ्गलघोषैरित्यर्थः। मात्स्ये—'मङ्गल्यानि च वाद्यानि ब्रह्मघोषं च गीतकम्। ऋद्ध्यर्थं कारयेद् विद्वानमङ्गलविनाशनम्॥ वलिकर्मणि यात्रायां प्रवेशे नववेश्मनः। महोत्सवे च मङ्गल्ये तत्र स्त्रीणां शुभध्वनिः॥' वधूगृहं = कन्यागृहम्। तदुक्तं वैखानसगृह्ये—'कन्यागृहं सह बान्धवैर्गत्वा' इति।

२. स्मृतिः—'पञ्चविंशतिदर्भाणां वेण्यग्रे ग्रन्थिभूषिता। विष्टरे सर्वयज्ञेषु लक्षणं परिकीर्तितम्॥' परिशिष्ट में विष्टर का लक्षण है—'पञ्चाशद्भिर्भवेद् ब्रह्मा तदर्धेन तु विष्टरः। ऊर्ध्वकेशो

पच्चीस कुशों की वेणी बनाकर आगे गांठ देकर अग्रभाग लम्बा बनावे, उसी को विष्टर कहते हैं।

अथ मधुपर्कविचारः

वरस्य या भवेच्छाखा[1] तच्छाखागृह्यचोदितः।
मधुपर्कः प्रदातव्यो ह्यन्यशाखेऽपि दातरि॥

दधिमधुमिश्रं मधुपर्कः। तत्र दध्यलाभे पयो जलं वा, मध्वलाभे सर्पिर्गुडो वा प्रतिनिधिः।[2] "गृहागतं स्नातकं वरं मधुपर्केणार्हयिष्ये' इति संकल्पः। वरस्य द्वितीयोद्वाहे तु स्नातकमिति पदलोपः। ततो यथागृह्यं मधुपर्कप्रयोगो ज्ञातव्यः। एवं गुरुः श्रेष्ठविप्राः राजा चेति गृहागता यज्ञे वृता ऋत्विजश्च मधुपर्केण पूजनीयाः। ऋत्विगादीनामपि अर्च्यशाखयैव मधुपर्को न तु दातृशाखया।

वर की जो शाखा हो उस शाखा और गृह्य से प्रेरित होकर अन्य-शाखीय-दाता के रहने पर भी मधुपर्क देना चाहिये। दही और मधु मिला हुआ मधुपर्क होता है। उसमें दही न मिलने पर दूध या जल डाले। मधु के न मिलने पर घी या गुड़ डाले। 'घर में आये हुए स्नातक वर को मधुपर्क से मैं पूजा करूँगा' ऐसा संकल्प करे। वर के दूसरे विवाह में तो स्नातक इस पद को हटा दे। उसके बाद जैसा गृह्य में मधुपर्क का प्रयोग हो वह करे। इसी प्रकार घर में आने पर गुरु, श्रेष्ठ-ब्राह्मणों और राजा की तथा यज्ञ में वृत होने पर ऋत्विक् की मधुपर्क से पूजा करनी चाहिये। ऋत्विक् आदि का भी पूजनीय की शाखा से ही मधुपर्क करे, दाता की शाखा से नहीं।

जयन्तस्तु—सर्वत्र यजमानशाखयैव मधुपर्क इत्याह। अत्र गन्धपुष्पधूपदीपपूजान्ते उपहारो माषविकारसहितो भोजनार्थं देयः। एवं मधुपर्के तत्पूर्वं वा कृतभोजनायैव वरायोपोषितो दाता कन्यां दद्यात्।

जयन्त तो—सब जगह यजमान की शाखा से ही मधुपर्क दे, ऐसा कहते हैं। इसमें गन्ध, पुष्प, धूप और दीप से पूजा करने के बाद भोजन के लिये उर्द के विकार के सहित दे। इसी प्रकार मधुपर्क में या उसके पूर्व में भोजन किए हुए ही वर को उपवास किया हुआ दाता कन्या को दे।

भवेद् ब्रह्मा लम्बकेशस्तु विष्टरः॥ दक्षिणावर्तब्रह्मा च वामावर्तस्तु विष्टरः।' 'विष्टरस्त्रिवृदरत्निमात्रः कौशो रज्जुविशेषः' इति भर्तृयज्ञः। 'प्रादेशमात्रं त्रिवृतं कौशं वा काशनिर्मितम्' इति रेणुकः। 'पञ्चविंशतिदर्भतरुणमयं कूर्चम्' इति हरिहरः। स्मृत्यन्तर में कुशसंख्या का नियम नहीं कहा है—'यज्ञवास्तुनि मुष्टौ च स्तम्बे दर्भवटौ तथा। दर्भसंख्या न विहिता विष्टरास्तरणेषु च॥' इति।

१ गृह्यपरिशिष्ट में वर की शाखा से ही मधुपर्क का निर्देश है—'वरस्य या भवेच्छाखा तच्छाखा गृह्यचोदितः। मधुपर्कः प्रदातव्यो ह्यन्यशाखेऽपि दातरि। 'यः स्वशाखां परित्यज्य परशाखां समाश्रयेत्। दुर्मेधाः स तु विज्ञेयो मोघं तत्तस्य चेष्टितम्॥' अत्र उच्छिष्टस्यैव मन्त्रोच्चारणं युक्तम्, तदाह स्मृतिः—'ताम्बूलेक्षुफले चैव भुक्तस्नेहानुलेपने। मधुपर्के च सोमे च नोच्छिष्टं मनुरब्रवीत्॥' इति।

२. विष्णुधर्मोत्तरे—'दध्यलाभे पयः कार्यं मध्वलाभे तथा गुडः। घृतप्रतिनिधिं कुर्यात् पयो वा दधि वा नृप॥' इति।

अथ लग्नघटीस्थापनम्

दशपलमितताम्रघटितं षडङ्गुलोन्नतं द्वादशाङ्गुलविस्तृतं घटीयन्त्रं कुर्यादिति सिन्धुः।

द्वादशार्धपलोन्मानं चतुर्भिश्चतुरङ्गुलैः।
स्वर्णमाषैः कृतच्छिद्रं यावत्प्रस्थजलप्लुतम्॥

इति तु श्रीभागवते तृतीयस्कन्धे उक्तम्। अस्यार्थः अशीतिगुञ्जात्मकः कर्षः, अस्यैव सुवर्णसंज्ञा। कर्षचतुष्टयं पलम्। तथा च षट्पलताम्रविरचितं पात्रं विंशतिगुञ्जोन्मितसुवर्णनिर्मितचतुरङ्गुलदीर्घशलाकया मूले कृतच्छिद्रं कुर्यात्। तेन छिद्रेण यावत्प्रस्थपरिमितं जलं प्रविशति तेन च प्रस्थजलपूरणेन तत्पात्रं जले मग्नं भवति तत्पात्रं घटीकालप्रमाणम्। तत्र प्रस्थमानं तु षोडशपलात्मकम्,

पलं सुवर्णाश्चत्वारः कुडवः प्रस्थमाढकम्।
द्रोणं च खारिका चेति पूर्वंपूर्वंचतुर्गुणम्॥ इत्युक्तेः।

दस पल ताम्बे का बनाया हुआ छ अंगुल ऊंचा, बारह अंगुल चौड़ा घटी-यन्त्र बनावे, यह निर्णयसिन्धु में हैं। तृतीयस्कन्ध भागवत में कहा है कि ८० गुंजा का कर्ष होता है। इसी का सुवर्ण नाम है। ४कर्ष का एक पल होता है। इससे ६ पलके ताम्बे का बनाया हुआ पात्र बीस गुंजा परिमित सुवर्णनिर्मित चार अंगुल की लम्बी शलाका से बीच में छेद करे। उस छेद से जब तक सेर भर जल उस पात्र में प्रवेश करता है और उससे सेर भर जल भरने से वह पात्र जल में डूब जाता है, वही पात्र घटी काल का प्रमाण है। प्रस्थ का मान तो षोडश पल का होता है क्योंकि चार सुवर्ण का पल होता है। कुड़व, प्रस्थ, आढ़क, द्रोण और खारिका, ये पूर्व-पूर्व से चौगुने होते हैं। इस प्रकार छ पल का ऊँचा पात्र चार अंगुल लम्बी स्वर्ण-शलाका से छेद करने पर जितने समय में सेर भर जल से भर जाय वही घटी काल का प्रमाण है।

ग्रन्थान्तरे चतुर्मुष्टिः कुडवश्चत्वारः कुडवाः प्रस्थ इति। केचित्षष्टिसंख्याकगुरुवर्णोच्चारे पलसंज्ञः कालः, षष्टिपलकाला नाडिकेत्याहुः। एवं प्रमाणीकृतं घटीयन्त्रं सूर्यमण्डलस्यार्धोदयेऽर्धास्ते वा जलपूर्णे ताम्रपात्रे मृत्पात्रे वा क्षिपेत्। तत्र मन्त्रः—

मुख्यं त्वमसि यन्त्राणां ब्रह्मणा निर्मितं पुरा।
भव भावाय दम्पत्योः कालसाधनकारणम्॥

दूसरे ग्रन्थों में ४ मुट्ठी का एक कुड़व होता है, ४ कुड़व का एक प्रस्थ होता है। कुछ लोग तो ६० दीर्घ वर्ण के उच्चारण में पल नामक काल होता है, ६० पल की एक घटी होती है, ऐसा कहते हैं। इस प्रकार प्रमाणीकृत घटी-यन्त्र सूर्यमण्डल के आधा उदय लेने पर अथवा आधा अस्त होने पर जलपूर्ण ताम्रपात्र या मिट्टीपात्र में छोड़े। उसके मन्त्र का आशय है—यन्त्रों में मुख्य यन्त्र आप हैं आपको ब्रह्मा ने बनाया है। आप पति-पत्नी के काल-साधन के कारण बनें।

अनेन मन्त्रेण गणेशवरुणपूजनपूर्वकं घटीयन्त्रं स्थापयेत्। एवं स्थापिता घटी आग्नेययाम्यनैर्ऋतवायव्यदिग्गता न शुभा। मध्यस्थिताऽन्यदिग्गता च शुभा। एवमाग्नेयादिपञ्चदिक्षु पूर्णा न शुभा। इति घटीविचारः।

इस मन्त्र से गणेश और वरुण का पूजनपूर्वक घटीयन्त्र की स्थापना करे। इस प्रकार स्थापित की हुई घटी आग्नेय, याम्य, नैर्ऋत और वायव्य दिशा में जाती है तो शुभ नहीं है। बीच में रहती है या अन्य दिशा में जाती है तो शुभ है। इसी प्रकार आग्नेय आदि पांच दिशाओं में भर कर नीचे चली जाती है तो शुभ नहीं है। घटीविचार समाप्त।

अथ अन्तःपटधारणविधिः

अथ ज्योतिर्विदादिष्टे शुभकाले हस्तान्तराले तन्दुलराशी पूर्वापरौ कृत्वा पूर्वराशौ प्रत्यङ्मुखं वरमपरस्मिन्प्राङ्मुखीं कन्यामवस्थाप्य तयोर्मध्ये कुङ्कुमादिकृतस्वस्तिकाङ्कितमन्तःपटमुदग्दशं धारयेयुः। कन्यावरयोः पित्रादिर्ज्योतिर्विदं संपूज्य तद्दत्ताक्षतान् फलयुतान् कन्यावरयोरञ्जलौ दद्यात्।

ज्योतिषी के कहे हुए शुभ समय में हाथ भर के अन्तराल में चावल की राशि दो जगह रख कर पहिली राशि में पश्चिम मुख वर दूसरे चावल की राशि पर पूर्वमुखी कन्या को बैठाकर कन्या वर के बीच में कुंकुम आदि से स्वस्तिक से चिह्नित अन्तःपट को जिसकी किनारी उत्तर तरफ की हो धारण करे। कन्या और वर का पिता आदि ज्योतिषी की पूजा करके उसके दिये हुए फलसहित अक्षतों को कन्या और वर की अंजुली में दें।

कन्यावरौ साक्षतहस्तौ स्वस्तिकालोकनपरौ अमुकदेवतायै नम इति स्वस्वकुलदेवतां ध्यायन्तौ तिष्ठतः। ज्योतिर्विदा मङ्गलपद्याष्टकपाठान्ते स्वोक्तकाले तदेव लग्नमिति पठित्वा सुमुहूर्तमस्तु ॐ प्रतिष्ठेत्युक्ते अन्तःपटमुत्तरतोऽपसारयेयुः।

कन्या और वर हाथ में अक्षत लिये हुए अन्तःपट में चिह्नित स्वस्तिक को देखते हुए अपने-अपने कुलदेवता को प्रणामपूर्वक ध्यान करते हुए बैठे रहें। ज्योतिषी के द्वारा ८ मंगलश्लोकों को पढ़ने के बाद उक्त समय में 'तदेव लग्नं' इसे पढ़ कर 'सुमुहूर्तमस्तु ॐ प्रतिष्ठा' ऐसा कहने के अनन्तर अन्तःपट को उत्तर दिशा में हटा दे।

ततः कन्यावरौ परस्परशिरसोरक्षतप्रक्षेपं परस्परेक्षणं च कुर्याताम्। वरो वध्वा भ्रूमध्ये दर्भाग्रेण ॐभूर्भुवःस्वरिति परिमृज्य दर्भं निरस्यापः स्पृशेत्। वैदिकैः पठ्यमानब्राह्मणखण्डवाक्यान्ते कन्यापूर्वकं ताभ्यामक्षतारोपणं प्रतिवाक्यं कार्यम्।

इसके बाद कन्या और वर परस्पर सिर में अक्षत का प्रक्षेप और परस्पर देखें। वर वधू के भौंह के बीच में कुश के अग्रभाग से 'ॐ भूर्भुव स्वः' इससे परिमार्जन करके कुश को हटा कर जल का स्पर्श करे। वैदिकों द्वारा पढ़े हुए ब्राह्मण खण्ड वाक्य के अन्त में वे दोनों प्रतिवाक्य में कन्यापूर्वक अक्षतारोपण करें।

अथ कन्यादानप्रयोगः

ततः प्राङ्मुखं वरं प्रत्यङ्मुखीं कन्यां कृत्वा दाता दक्षिणे सपत्नीक उपविश्य

१. कन्यादान के समय दाता का पश्चिमाभिमुख और वर का पूर्वाभिमुख रहने का गृह्यपरि-

वरदत्तालंकारादिरहितामहतवस्त्रस्वदेयालंकारमात्रयुतां कनकयुक्ताञ्जलिं वरपूजावशिष्टगन्धलिप्तहस्तपादां कन्यामेवं दद्यात् ।

पूर्वाभिमुख वर और पश्चिमाभिमुखी कन्या को करके दाता दाहिनी तरफ पत्नीसहित बैठकर वर के दिये हुए आभूषण आदि से रहित नवीन वस्त्र और अपने दिये जाने वाले केवल अलंकार से युक्त, सुवर्णयुक्त अंजुली में वर की पूजा से बचे हुए गन्ध से लिप्त हाथ पैर वाली कन्या को इस प्रकार देवे ।

कुशहस्तो देशकालौ संकीर्त्य 'अमुकप्रवरामुकगोत्रोऽमुकशर्माहं मम समस्तपितॄणां निरतिशयानन्दब्रह्मलोकावाप्त्यादिकन्यादानकल्पोक्तफलावाप्तये अनेन वरेणास्यां कन्यायामुत्पादयिष्यमाणसन्तत्या द्वादशावरान्द्वादशपरान् पुरुषांश्च पवित्रीकर्तुमात्मनश्च श्रीलक्ष्मीनारायणप्रीतये ब्राह्मविवाहविधिना कन्यादानं करिष्ये' इति कुशाक्षतजलेन संकल्प्य 'उत्थाय कन्यां संप्रगृह्य—

कन्यां कनकसंपन्नां कनकाभरणैर्युताम् ।
दास्यामि विष्णवे तुभ्यं ब्रह्मलोकजिगीषया ॥
विश्वंभरः सर्वभूतः साक्षिण्यः सर्वदेवताः ।
इमां कन्यां प्रदास्यामि पितॄणां तारणाय च ॥

हाथ में कुश लेकर देशकाल को कह कर 'अमुकप्रवर अमुकगोत्र अमुकशर्मा मैं मेरे सम्पूर्ण पितरों की निरतिशयानन्द ब्रह्मलोक प्राप्ति आदि कन्यादान-कल्प के कहे हुए फल-प्राप्ति के लिये इस वर से इस कन्या में उत्पन्न होने वाली संतति से १२ अवर और १२ पर पुरुषों और अपने को पवित्र करने के लिये तथा श्रीलक्ष्मीनारायण की प्रसन्नता के लिये विवाहविधि से कन्यादान करूँगा' इस प्रकार कुश अक्षत जल से संकल्प करके उठकर कन्या को पकड़ के सुवर्ण से सम्पन्न स्वर्णाभरणों से युक्त कन्या को ब्रह्मलोक जीतने की इच्छा से आप विष्णु को देता हूँ। इसके साक्षी सब देवता, सब जीव और विश्वंभर हैं। पितरों के तारने के लिये इस कन्या को देता हूँ ।

इत्युक्त्वा कांस्यपात्रस्थकन्याञ्जलेरुपरि वराञ्जलिं निधाय दक्षिणस्थितपत्न्या सन्ततां क्रियमाणां शुद्धोदकधारां सहिरण्ये वरहस्ते निक्षिपेत् । कन्या तारयतु पुण्यं वर्धयतु शान्तिः पुष्टिस्तुष्टिश्चास्तु पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्तु इत्यादिवाक्य-

---

शिष्टोक्त वचन है—'कन्यां वरयमाणानामेष धर्मो विधीयते । प्रत्यङ्मुखा वरयन्ति प्रतिगृह्णन्ति प्राङ्मुखाः ॥' हिरण्यकेशीयगृह्ये—'प्राङ्मुखः प्रत्यङ्मुख्या हस्तं गृह्णीयात्, प्रत्यङ्मुखः प्रत्यङ्मुख्यां वा' । अपि च—'तिष्ठेदुदङ्मुखो दाता प्राङ्मुखोऽपि वरो भवेत् ।' ऋष्यशृङ्गः—'वरगोत्रं समुच्चार्य प्रपितामहपूर्वकम् । नाम संकीर्तयेद् विद्वान् कन्यायाश्चैवमेव हि ॥ तिष्ठेत्पूर्वमुखो दाता वरः प्रत्यङ्मुखो भवेत् । मधुपर्कार्चितायैनां तस्मै दद्यात् सदक्षिणाम् ॥ उदपात्रं ततो गृह्य मन्त्रेणानेन दापयेत् ।' मत्स्यपुराणे—'तुलापुरुषदाने च हाटकस्याचले तथा । कन्यादाने तथोत्सर्गे कीर्तयेत्प्रवरादिकम् ॥' इति ।

१. वर के हाथ में कन्या के हाथ का अर्पण उठ कर करे—'कन्यादानं च गोदानमुत्तराधारमेव च । प्रातःसन्ध्याजपं चैव तिष्ठन्नेव हि कारयेत् ॥' विधानपारिजात में बृहस्पति ने कहा है—'चतुष्पादं गृहं कन्यां दासीं छत्रं रथं तरुम् । तिष्ठन्नेतां द्विजो दद्याद् भूम्यादीनुपविश्य च ॥' यहाँ आदि पद से सुवर्णादि का ग्रहण है ।

चतुष्टयान्ते अमुकप्रवरामुकगोत्रोमुकशर्माहं मम समस्तेत्यादिप्रीतये इत्यन्तमुक्त्वा 'अमुकप्रवरोपेतामुकगोत्रायामुकशर्मणः प्रपौत्रायामुकशर्मणः पौत्रायामुकशर्मणः पुत्रायामुकशर्मणे श्रीधररूपिणे वराय अमुकप्रवरामुकगोत्राममुकशर्मणः प्रपौत्रीम् अमुकशर्मणः पौत्रीम् अमुकशर्मणः मम पुत्रीम् अमुकनाम्नीं कन्यां श्रीरूपिणीं प्रजापतिदैवत्यां प्रजोत्पादनार्थं तुभ्यमहं संप्रददे' इति सहिरण्यहस्ते साक्षतजलं क्षिपेत्। प्रजापतिः प्रीयतां कन्यां प्रतिगृह्णातु भवानिति वदेत्।

यह कह कर कांसे के पात्र में रखे कन्या की अंजली के ऊपर वर की अंजली रख कर दक्षिण स्थित पत्नी के द्वारा सुवर्णसहित वर के हाथ में निरंतर शुद्ध जल की धारा गिराते हुए छोड़ दे। 'कन्या तारयतु पुण्यं वर्धयतु शान्तिः पुष्टिस्तुष्टिश्चास्तु पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्तु' इत्यादि चार वाक्य के बाद 'अमुकप्रवर अमुकगोत्र अमुकशर्मा मम समस्तेत्यादि प्रीतये' यहां तक कह कर 'अमुकप्रवरोपेताय अमुकगोत्राय' इत्यादि मूलोक्त संकल्प कह कर हिरण्यसहित हाथ में अक्षतसहित जल छोड़े। 'प्रजापतिः प्रीयतां कन्यां प्रतिगृह्णातु भवान्' ऐसा कहे।

एवं त्रिवारं कन्या तारयत्वित्यादिना कन्यादानं कार्यम्। वरः ॐ स्वस्ति इत्युक्त्वा कन्यादक्षिणांसं स्पृष्ट्वा ॐ क इदं कस्मा अदात्० पृथिवी प्रतिगृह्णात्विति त्रिरुक्त्वा धर्मप्रजासिद्ध्यर्थं प्रतिगृह्णामीति वदेत्। दाता—

गौरीकन्यामिमां विप्र यथाशक्तिविभूषिताम्।
गोत्राय शर्मणे तुभ्यं दत्तां विप्र समाश्रय॥
कन्ये ममाग्रतो भूयाः कन्ये मे देवि पार्श्वयोः।
कन्ये मे पृष्ठतो भूयास्त्वद्दानान्मोक्षमाप्नुयाम्॥
मम वंशकुले जाता पालिता वत्सराष्टकम्।
तुभ्यं विप्र मया दत्ता पुत्रपौत्रप्रवर्धिनी॥

धर्मे चार्थे च कामे च नातिचरितव्या त्वयेयम्। वरो नातिचरामीति। दाता उपविश्य[1] कन्यादानप्रतिष्ठासिद्ध्यर्थम् इदं सुवर्णमग्निदैवत्यं दक्षिणात्वेन संप्रददे ॐ स्वस्तीति वरः। ततो भोजनपात्रजलपात्रादिदानानि।

इस प्रकार तीन बार 'कन्या तारयतु' इत्यादि से कन्यादान करे। वर—'ॐ स्वस्ति' यह कह कर कन्या के दाहिने कन्धे को स्पर्श करके 'ॐ क इदं कस्मा अदात्० पृथिवी प्रतिगृह्णातु' इसे तीन बार कह कर धर्मप्रजा-सिद्धि के लिए प्रतिग्रहण करता हूँ, ऐसा कहे। दाता कहे कि हे विप्र! यथाशक्ति भूषणों से अलंकृत इस गौरी-रूप-कन्या को अमुकगोत्र अमुकशर्मा तुझे देता हूँ, तू इसे ग्रहण करो। हे कन्ये! तू मेरे आगे हो, हे कन्ये देवि! तू मेरे अगल बगल में रहो, हे कन्ये! तू मेरे पीछे हो, तेरे दान से मैं मोक्षप्राप्त करूँ। हे विप्र! यह मेरे वंश में उत्पन्न हुई और आठ वर्ष तक पाली गयी और यह पुत्रपौत्र को बढ़ाने वाली है, इसे तुझे मैंने दिया। धर्म, अर्थ और काम में इसका त्याग नहीं करना। वर कहे—'नातिचरामि'। दाता बैठकर 'कन्यादान की प्रतिष्ठासिद्धि के लिये अग्निदैवत

१. सुवर्णादि का दा। तो बैठकर ही करना चाहिये, जैसा इसके पूर्व सुधाविवृति में बृहस्पति के वचन में 'भूम्यादीनुपविश्य च' कहा है। भूम्यादीन् में आदि पद से सुवर्णादि का ग्रहण है।

यह सुवर्णदक्षिणा देता हूँ।' 'ॐ स्वस्ति' ऐसा वर कहे। इसके बाद भोजनपात्र जलपात्र आदि का दान करे।

पितामहो दानकर्ता चेत्पौत्रीमित्यतः पूर्वं ममेति वदेत्। पुत्रीमित्यतः पूर्वं न वदेत्। भ्रात्रादिः पुरुषत्रयकीर्तनमेव कुर्यात् क्वापि ममेति न वदेत्। प्रपितामहः प्रप्रौत्रीमित्यत्र ममेति वदेत्। मातुलादिरन्यो वा दाता स्वगोत्रं स्वविशेषणत्वेनोक्त्वाऽमुकशर्मणः समस्त पितॄणामिति कन्यापितृनाम षष्ठचन्तमुक्त्वा कन्याविशेषणत्वेन तद्गोत्रादि वदेत्। मम वंशकुले जातेत्यत्र ममेति स्थाने कन्यापितृनाम वदेत्। दत्तकन्यादाने मम वंशकुले दत्तेति ऊहः।

दान करने वाला यदि पितामह हो तो 'पौत्री' इसके पहले 'मम' ऐसा कहे। इससे पहले 'पुत्री' न कहे। भाई आदि दानकर्ता तीन पुस्त ही का नाम ले कहीं भी 'मम' ऐसा न कहे। प्रपितामह प्रपौत्री इस स्थान में 'मम' ऐसा कहे। मामा आदि या अन्य कोई दाता अपने विशेषण से अपने गोत्र को कह कर अमुकशर्मा के समस्त पितरों की ऐसा पिता का नाम षष्ठयन्त से कहकर कन्या विशेषणत्व से उस गोत्र आदि को कहे। 'मम वंशकुले जाता' यहां पर 'मम' के स्थान में कन्या के पिता का नाम कहे। दत्त-कन्या के दान में 'मम वंश कुले जाता' की जगह पर 'मम' वंश कुले दत्ता' ऐसी कल्पना करे।

अथ कन्यादानाङ्गत्वेन गवादिदाने मन्त्राः

यज्ञसाधनभूता या विश्वस्याघौघनाशिनी।
विश्वरूपधरो देवः प्रीयतामनया गवा॥ इति गोः।
हिरण्यगर्भसम्भूतं सौवर्णं चाङ्गुलीयकम्।
सर्वप्रदं प्रयच्छामि प्रीणातु कमलापतिः॥ इत्यङ्गुलीयस्य।
क्षीरोदमथने पूर्वमुद्धृतं कुण्डलद्वयम्।
श्रिया सह समुद्भूतं ददे श्रीः प्रीयतामिति॥ इति कुण्डलयोः।
काञ्चनं हस्तवलयं रूपकान्तिसुखप्रदम्।
विभूषणं प्रदास्यामि विभूषयतु मे सदा॥ इति वलययोः।
परापवादपैशुन्यादभक्ष्यस्य च भक्षणात्।
उत्पन्नपापं दानेन ताम्रपात्रस्य नश्यतु॥ इति ताम्रजलपात्रस्य।
यानि पापानि काम्यानि काम्योत्थानि कृतानि च।
कांस्यपात्रप्रदानेन तानि नश्यन्तु मे सदा॥
इति भोजनार्थकांस्यपात्रस्य।

यज्ञ के होमादि का साधनभूत और संसार के पापों को नाश करने वाली इस गौ के दान से विश्वरूपधारी विष्णु प्रसन्न हों। यह गोदान का मन्त्राशय है। हिरण्यगर्भ से उत्पन्न सुवर्ण की अंगूठी जो सब कुछ देने वाली है इसे देता हूँ, विष्णु प्रसन्न हों। यह अंगूठी देने के मन्त्रका आशय है। पहले क्षीरमथन के समय लक्ष्मी के साथ दो कुण्डल उत्पन्न हुये, इन्हें देता हूँ इससे लक्ष्मी प्रसन्न हों। यह कुण्डलदान के मन्त्र का आशय है। रूप, कान्ति और सुख का प्रदायक इस सुवर्ण

के हस्त-वलय को देता हूँ, यह मुझे भूषित करे। यह हाथ के कंकण के दान का मन्त्राशय है। दूसरे की निन्दा या चुगुली और अभक्ष्यभक्षण से जो पाप हुये हैं वे इस ताम्रपात्र के दान से नष्ट हों। यह तामे के जलपात्रदान का मन्त्राशय है। जो पाप मैंने इच्छा से या प्रमादवश किये हैं वे कांस्यपात्र के दान से नष्ट हों। यह भोजन के लिये कांस्यपात्र के दान का मन्त्राशय है।

अगम्यागमनं चैव परदाराभिमर्शनम्।
रौप्यपात्रप्रदानेन तानि नश्यन्तु मे सदा॥

इति जलार्थस्य भोजनार्थस्य च रौप्यपात्रस्य।

पूरितं पूगपूगेन नागवल्लीदलान्वितम्।
पूर्णेन चूर्णपात्रेण कर्पूरपिष्टकेन च।
सपूगखण्डनं दिव्यं गन्धर्वाप्सरसां प्रियम्।
ददे देव निरातङ्कं त्वत्प्रसादात्कुरुष्व माम॥ इति ताम्बूलस्य।

मैंने गमन के अयोग्य स्त्री में गमन और दूसरे की स्त्री से संपर्क किया हो वह चान्दी के पात्र के दान से नष्ट हों। यह जल या भोजन के लिये चांदी के पात्र के दान का मन्त्राशय है। सुपारी के चूर्ण, पान के दल और कपूर के पिष्ट से युक्त गन्धर्व और अप्सराओं के प्रिय तांबूल को मैं देता हूँ, हे देव! अपनी प्रसन्नता से मुझे निर्भय करें। यह ताम्बूल देने के मन्त्र का आशय है।

एवं दासीमहिषीगजाश्वभूमिस्वर्णपात्रपुस्तकशय्यागृहरजतवृषभानां दानमन्त्राः कौस्तुभे द्रष्टव्याः।

इस प्रकार दासी, भैंस, गज, घोड़ा, भूमि, सोने के पात्र, पुस्तक, शय्या, घर, चांदी और बैलों के दान के मन्त्र कौस्तुभ में देखें।

अथ ऋग्वेदिनामनुष्ठानक्रमः

अन्तःपटधारणादिकन्यादानान्तं केचिदग्निप्रतिष्ठापनोत्तरं कुर्वन्ति। केचित्पूर्वाङ्गहोमोत्तरं केचिदाज्यसंस्कारोत्तरमित्यनेके पक्षास्तत्र स्वस्वगृह्यानुसारेणाचारानुसारेण च व्यवस्था। ततो वधूवराभिषेकः।

कोई अन्तःपट का धारण आदि कन्यादान तक अग्निप्रतिष्ठा के बाद करते हैं। कोई पूर्वांग होम के बाद, कोई घृत संस्कार के बाद, इस प्रकार अनेक पक्ष हैं। उसमें अपने-अपने गृह्य और आचार के अनुसार व्यवस्था है। इसके अनन्तर वधू वर का अभिषेक करे।

अथ कंकणबंधनादिकम्

ततः कङ्कणबन्धनम्। अथाक्षतारोपणम्। वधूवराभ्यामन्योन्यतिलककरणम्। मालाबन्धनम्। अष्टपुत्रीकञ्चुकीमाङ्गल्यतन्त्वादिदानम्। गणेशपूजा। लड्डुकबन्धनम्। उत्तरीयवस्त्रान्तग्रन्थियोजनम्। लक्ष्म्यादिपूजादि। इति कन्यादानानुक्रमः प्रायो बह्वृचानामन्येषां च यथागृह्यं ज्ञेयः।

तदनन्तर कंकणबंधन, अक्षतारोपण, वधूवर को परस्पर तिलक करना, मालाबन्धन, अष्टपुत्री (पेटारी), कंचुकी और मांगल्य सूत्र आदि का दान, गणेशपूजा, लड्डू आदि का बांधना, दुपट्टे से गांठ जोड़ना, लक्ष्मी आदि की पूजा आदि करे। यह कन्यादान का अनुक्रम प्रायः बह्वृचों और दूसरों को गृह्य के अनुसार जानना चाहिये।

अथ विवाहहोमः

वधूवरौ पूर्वोक्तलक्षणां वेदीं मन्त्रघोषेणारुह्य वरः स्वासने उपविश्य वधूं दक्षिणत[1] उपवेश्य देशकालौ संकीर्त्य 'प्रतिगृहीतायामस्यां वध्वां भार्यात्वसिद्धये विवाहहोमं करिष्ये' इति संकल्प्य यथागृह्यं विवाहहोमं कुर्यात्। एतदादिविवाहाग्निं रक्षेत्। रक्षितोऽग्निश्चतुर्थीकर्मपर्यन्तं गृहप्रवेशनीयहोमात्पूर्वमनुगतश्चेद्विवाहहोमः पुनः कार्यः। गृहप्रवेशनीयोत्तरं गतौ होमद्वयमपि पुनः कार्यम्। केचित्तु द्वादशरात्रपर्यन्तं वृत्त्युक्तायाश्चेत्याज्याहुतेः सार्वत्रिकत्वमाश्रित्यात्रापि अयाश्चेत्याहुतिमेवाहुः।

वधू और वर पहले कहे हुए लक्षण वाली वेदी पर मन्त्रघोष से चढ़ कर वर अपने आसन पर बैठ कर वधू को अपने दक्षिण तरफ बैठाकर देश काल को कहकर 'प्रतिग्रह की गई इस वधू में भार्यात्वसिद्धि के लिये विवाहहोम करूंगा' ऐसा संकल्प कर गृह्य के अनुसार विवाहहोम करे। यहाँ तक विवाहाग्नि की रक्षा करे। रक्षित अग्नि चतुर्थीकर्मपर्यन्त गृहप्रवेशनीय होम से पहले अग्नि नष्ट हो जाय तो विवाहहोम पुनः करे। गृहप्रवेशनीय के बाद भी अग्नि नहीं रहे तो दो होम फिर करे। कुछ लोग तो १२ रात्रि तक वृत्ति में कही गई 'अयाश्च' इस घृताहुति को सार्वत्रिक मान कर यहाँ भी 'अयाश्च' इससे आहुति ही कहते हैं।

अथ गृहप्रवेशनीयहोमः

स च वध्वा सह स्वगृहं गतस्य विहितस्तथापि शिष्टाः श्वशुरगृहे एव कुर्वन्ति। तत्रार्धरात्रोत्तरं विवाहहोमे परेद्युः[2] प्रातस्तिथ्यादि संकीर्त्य 'ममाग्नेर्गृह्याग्नित्वसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं गृहप्रवेशनीयाख्यं होमं करिष्ये' इति संकल्प्य कार्यः। अर्धरात्रात्पूर्वं विवाहहोमे तदैव होमोत्तरं पुनस्तिथ्यादि संकीर्त्य संकल्पपूर्वकं रात्रावपि गृहप्रवेशनीयहोमकरणे दोषो न।

यह तो बधू के साथ अपने घर जाने वाले वर के लिये कहा है तब भी शिष्टजन ससुर के घर में ही करते हैं। उसमें आधी रात के बाद विवाहहोम करने पर दूसरे दिन प्रातःकाल तिथि आदि कह कर 'मेरी अग्नि को गृह्याग्नित्व-सिद्धि के द्वारा परमेश्वर की प्रसन्नता के लिये गृहप्रवेशनीय नामक होम करूँगा' ऐसा संकल्प करे। अर्धरात्रि के पहले विवाहहोम होने पर उसी समय होम के बाद फिर तिथि आदि कहकर संकल्पपूर्वक रात में भी गृहप्रवेशनीय होम करने में दोष नहीं है।

---

१. स्मृत्यन्तरे—'व्रतबन्धे विवाहे च चतुर्थ्यां सह भोजने। व्रते दाने मखे श्राद्धे पत्नी तिष्ठति दक्षिणे॥ सर्वेषु धर्मकार्येषु पत्नी दक्षिणतः शुभा। अभिषेके विप्रपादक्षालने चैव वामतः॥' धर्मप्रवृत्तौ—'जातके नामके चैव ह्यन्नप्राशनकर्मणि। तथा निष्क्रमणे चैव पत्नी पुत्रश्च दक्षिणे॥ गर्भाधाने पुंसवने सीमन्तोन्नयने तथा। वधूप्रवेशने चैव पुनःसन्धान एव च॥ प्रदाने मधुपर्कस्य कन्यादाने तथैव च। कर्मस्वेतेषु भार्या वै दक्षिणे तूपवेशयेत्॥' अपि च—'संस्कार्यः पुरुषो वाऽपि स्त्री वा दक्षिणतः सदा। संस्कारकर्ता सर्वत्र तिष्ठेदुत्तरतः सदा॥' इति।

२. आश्वलायनः—'अर्धरात्र्यतीते तु परेद्युः प्रातरेव हि। गृहप्रवेशनीयः स्यादिति यज्ञविदो विदुः॥' इति।

यत्तु विवाहहोमगृहप्रवेशनीयहोमयोरेकतन्त्रेणानुष्ठानं कुर्वन्ति तन्न युक्तम्। विवाहाग्नेरेव गृहप्रवेशनीयहोमोत्तरं गृह्यत्वसिद्धिराश्वलायनतैत्तिरीयादीनां भवति। तैत्तिरीयकात्यायनादीनां पुनराधाने प्रकारान्तरमस्ति।

जो विवाहहोम और गृहप्रवेशनीय होम को एक तन्त्र से अनुष्ठान करते हैं, यह ठीक नहीं है। विवाहाग्नि का ही गृहप्रवेशनीय होम के बाद गृह्यत्वसिद्धि आश्वलायन और तैत्तिरीय आदि के यहाँ होती है। तैत्तिरीय और कात्यायन आदि का तो पुनः आधान में दूसरा प्रकार है।

अथ औपासनहोमः

यदि रात्रौ षट्घटीमध्येऽग्न्युत्पत्तिस्तदा गृहप्रवेशनीयाभावेऽपि व्यतीपातादिसंभवेऽपि तदैवोपासनहोमारम्भः। तदुत्तरं चेत्परदिने 'सायमौपासनारम्भः। स चेत्थम्—सायं संध्यामुपास्य विवाहाग्निं प्रज्वाल्य प्राणानायम्य देशकालौ संकीर्त्य 'अस्मिन्विवाहाग्नौ यथोक्तकाले श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं यावज्जीवमुपासनं करिष्ये' इति संकल्प्य पुनर्देशकालौ संकीर्त्य 'श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं सायं प्रातरौपासनहोमौ करिष्ये, तत्रेदानीं सायमौपासनहोमं करिष्ये'। प्रातस्तु 'पूर्वसंकल्पितं प्रातरौपासहोमं करिष्ये' इति संकल्प्य होमः कार्यः। अथ त्रिरात्रं वधूवरौ ब्रह्मचारिणावलंकुर्वाणावधःशायिनावक्षारालवणाशिनौ तिष्ठताम्।

यदि रात में ६ घड़ी के बीच अग्नि की उत्पत्ति हो तो गृहप्रवेशनीय अग्नि के अभाव में भी व्यतीपात आदि के रहने पर भी उसी समय औपासन होम का आरंभ करे। उसके बाद यदि दूसरे दिन सायंकाल में औपासन का आरंभ हो तो वह इस प्रकार से करे। सायं सन्ध्या करके विवाह की अग्नि को प्रज्वलित तथा प्राणायाम कर देश काल को कहकर 'इस विवाहाग्नि में कहे हुए समय में श्रीपरमेश्वर की प्रीति के लिये जीवनपर्यन्त औपासन करूंगा' ऐसा संकल्प कर पुनः देश काल को कहकर 'परमेश्वर की प्रीति के लिये सायं और प्रातः औपासन होम करूंगा'। उसमें 'इस समय सायं औपासन होम करूंगा'। प्रातःकाल तो 'पूर्व संकल्पित प्रातः औपासन होम करूंगा' ऐसा संकल्प कर होम करे। पश्चात् वधूवर तीन रात तक ब्रह्मचर्य से रहें, जमीन पर सोवें, नमक न खायं।

अथ चतुर्थदिवसे ऐरिणीदानम्

तच्च वधूपितृभ्यामुपोषिताभ्यामुपोषितायै वरमात्रे कार्यम्। वरमातू रजोदोषे तस्याः शुद्धिप्रतीक्षाकरणासंभवे मनसा पात्रमुद्दिश्येति रीत्या तां मनसोद्दिश्यैरिणीदानम्।

वह वधू के उपवास किये हुए माता पिता उपवास की हुई वर की माता को ऐरिणीदान करें। वर की माता रजस्वला हो और उसकी ५ दिन शुद्धि की प्रतीक्षा करना असंभव हो तो 'मनसा पात्रमुद्दिश्य' इस रीति से मन से उद्देश्य करके ऐरिणीदान करे।

---

१. शौनकः—'यदि रात्रौ विवाहाग्निरुत्पन्नः स्यात्तथा सति। उपक्रम्योत्तरस्याह्नः सायं परिचरेदमुम् ॥' इति। सुदर्शनभाष्ये उक्तम्—'यदि रात्रौ नवनाडीमध्येऽग्न्युत्पत्तिस्तदा तदैव होमारम्भः, तदुत्तरं चेत्परदिने सायमारम्भः' इति। तदुक्तम्—'प्रातर्होमे सङ्गवान्तःकाले त्वनुदितेऽथवा। सायमस्तमिते होमः कालस्तु नवनाडिकाः ॥' इति। संगव = प्रातःस्नान के तीन मुहूर्त बाद का समय जो दिन के पांच भागों में से दूसरा है।

अथ विवाहोत्तरं मात्रादे रजोदोषे विधिः

वधूवरमात्रोर्विवाहोत्तरं देवकोत्थापनात्प्राग् रजोदोषे पूर्वोक्तां शान्ति कृत्वा शुद्धयन्ते संकटे शुद्धेः प्रागपि देवकोत्थापनं[1] कार्यम्। मातुलादेः कर्त्रन्तरस्य पत्न्या रजसि मौञ्जीप्रकरणे उक्तम्।

वधू और वर की माता विवाह के बाद देवता के उठाने के पहिले रजस्वला हो तो पहले कही हुई शान्ति करके शुद्धि के अन्त में संकट में शुद्धि के पहले भी देवकोत्थापन करे। मामा आदि दूसरे करने वाले की पत्नी रजस्वला हो तो उसके लिये उपनयन के प्रकरण में कह चुके हैं।

अथ रजोदोषाशौचादिप्राप्तौ निर्णयः

एवं विवाहोत्तरमाशौचपाते चतुर्थीकर्मपर्यन्तं प्राप्तकर्मकरणे दातुर्वरस्य कन्यायाश्च नाशौचम्। आशौचान्ते देवकोत्थापनम्[1]। असंभवे आशौचमध्ये एव देवकोत्थापनं कृत्वा आशौचं कार्यम्। विवाहात्पूर्वमाशौचरजोदोषयोस्तु प्रागुक्तम्। चतुर्थीकर्महोमः कौस्तुभे उक्तः। एनं केचित् ऋक्शाखिनो न कुर्वन्ति।

एवं विवाह के बाद आशौच पड़ने पर चतुर्थीकर्म तक प्राप्त कर्म करने में रजोदोष और आशौच प्राप्त होने पर दाता, वर तथा कन्या को आशौच नहीं होता। आशौच के अन्त में देवकोत्थापन करे। ऐसा न हो सकने पर आशौच में ही देवकोत्थापन करके आशौच करे। विवाह के पहले आशौच और रजोदोष में तो पहले कह चुके हैं। चतुर्थीकर्म का होम कौस्तुभ में कहा है। इसको कुछ ऋक्शाखा वाले नहीं करते।

अथ मण्डपोद्वासनादि

मण्डपोद्वासनदिननिर्णयो मण्डपोद्वासनपर्यन्तं [2]कर्तव्याकर्तव्यनिर्णयश्चोपनयनप्रकरणे उक्तस्तत्रैव द्रष्टव्यः।

मण्डपोद्वासन दिन का निर्णय और मण्डपोद्वासन तक कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय उपनयन प्रकरण में कहा है वहीं देखें।

अथ मण्डपोद्वासनोत्तरं कार्याकार्यविचारः

न स्नायादुत्सवेऽतीते मङ्गलं विनिवर्त्य च।
अनुव्रज्य सुहृद्बन्धूनर्चयित्वेष्टदेवताम्॥
स्नानं सचैलं तिलमिश्रकर्मप्रेतानुयानं कलशप्रदानम्।
अपूर्वतीर्थामरदर्शनं च विवर्जयेन्मङ्गलतोऽब्दमेकम्॥

---

१. देवकोत्थापनं=मण्डपोद्वासनमित्यर्थः। नारदः—'समे तु दिवसे कुर्याद्देवकोत्थापनं बुधः। षष्ठं च विषमं नेष्टं मुक्त्वा पञ्चमसप्तमौ॥' इति।

२. निर्णयदीपे गार्ग्यः—'नान्दीश्राद्धे कृते पश्चाद्यावन्मातृविसर्जनम्। दर्शश्राद्धं क्षयश्राद्धं स्नानं शीतोदकेन च। अपसव्यं स्वधाकारं नित्यश्राद्धं तथैव च॥ ब्रह्मयज्ञं चाध्ययनं नदीसीमातिलङ्घनम्। उपवासं व्रतं चैव श्राद्धभोजनमेव च॥ नैव कुर्युः सपिण्डाश्च मण्डपोद्वासनावधि।' बृहस्पतिः—तीर्थे विवाहे यात्रायां संग्रामे देशविप्लवे। नगरग्रामदाहे च स्पृष्टास्पृष्टिर्न दुष्यति॥' इति।

मासषट्कं विवाहादौ व्रतप्रारम्भणेऽपि च ।
जीर्णभाण्डादि न त्याज्यं गृहसंमार्जनं तथा ॥
ऊर्ध्वं विवाहात्पुत्रस्य तथा च व्रतबन्धनात् ।
आत्मनो मुण्डनं नैव वर्षं वर्षार्धमेव च ॥
मासमन्यत्र संस्कारे त्रिमासं चौलकर्मणि ।
पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥

उत्सव समाप्त होने पर, मंगलकृत्य को विना निवृत्त किये, मित्र बन्धुओं को बिदा कर, इष्ट-देवता की पूजा कर स्नान न करे। वस्त्रसहित स्नान, तिलमिश्रित कर्म, शवानुगमन, कलश-प्रदान, अपूर्व तीर्थ और देवता का दर्शन, मंगल कार्य से वर्षपर्यन्त वर्जन करे। विवाह के प्रारंभ और उपनयन के प्रारंभ से भी ६ महीने तक फूटे बर्तनों और घर के झाड़ू लगाने का त्याग न करे। पुत्र के विवाह तथा उपनयन के बाद अपना मुण्डन वर्ष या ६ महीने तक न करे। अन्य संस्कारों में एक महीना, चूड़ाकर्म में तीन माह तक पिण्डदान, मिट्टी से स्नान और तिल से तर्पण न करे।

अयं विवाहव्रतबन्धचौलोत्तरं वर्षषण्मासत्रिमासेषु अन्यवृद्धिश्राद्धयुतमङ्गलोत्तरं च मासमेकं पिण्डदानतिलतर्पणनिषेधस्त्रिपुरुषसपिण्डानामेव। एवं मुण्डननिषेधोऽपि व्रतोद्वाहौ तु मङ्गलमिति पक्षे मौञ्ज्युत्तरं मुण्डननिषेधः। व्रतबन्धस्य मुण्डनरूपत्वपक्षे तु न निषेधः। आत्मनो मुण्डनमिति कर्माङ्गतया प्राप्तं रागप्राप्तं च मुण्डनं निषिद्धयते। अत्रापवादः—

विवाह, उपनयन और चूड़ाकरण के बाद एक वर्ष, छ महीना, तीन महीना में दूसरे वृद्धिश्राद्ध युक्त मंगल के बाद एक महीने तक पिण्डदान और तिलतर्पण का जो यह निषेध है वह तीन पुरुष तक सपिण्डों ही के लिये है। इसी प्रकार मुण्डन-निषेध भी 'उपनयन और विवाह तो मंगल है' इस पक्ष में उपनयन के बाद मुण्डन का निषेध है। 'उपनयन मुण्डनरूप है' इस पक्ष में तो निषेध नहीं है। किसी कर्म के अंग से अपना मुण्डन प्राप्त होने पर तथा रागप्राप्त मुण्डन का निषेध किया है। इसका अपवाद है—

गङ्गायां भास्करक्षेत्रे मातापित्रोर्मृताहनि ।
आधाने सोमयागादौ दर्शादौ क्षौरमिष्यते ॥
महालये गयाश्राद्धे पित्रोः प्रत्याब्दिके तथा ।
सपिण्डयन्तप्रेतकर्मश्राद्धषोडशकेष्वपि ॥
कृतोद्वाहादिकः कुर्यात् पिण्डदानं च तर्पणम् ।
केचिद् भ्रातृपितृव्यादेराब्दिकेऽप्येवमूचिरे ।

एवं पिण्डपितृयज्ञे अष्टकाऽन्वष्टकापूर्वेद्युःश्राद्धेषु न पिण्डदाननिषेधः। दर्शश्राद्धं त्वपिण्डकमेव। तेन बह्वृचानां व्यतिषङ्गो न। इति मण्डपोद्वासनोत्तरं कार्याकार्यनिर्णयः।

गंगा में, भास्करक्षेत्र में, माता पिता के मरण-दिवस में, सोमयाग आदि के आधान में तथा दर्श आदि में मुण्डन विहित है। महालय, गयाश्राद्ध, मातापिता के वार्षिक श्राद्ध, सपिण्डीपर्यन्त प्रेतकर्म और सोलह श्राद्धों में भी विवाहित पुरुष तर्पण और पिण्डदान करे। कोई तो भाई और चाचा आदि के वार्षिक श्राद्ध में भी ऐसा ही कहते हैं। इसी प्रकार पिण्डपितृयज्ञ, अष्टका, अन्वष्टका और पूर्वेद्युःश्राद्ध में पिण्डदान का निषेध नहीं है। दर्शश्राद्ध तो बिना पिण्ड का होता ही है। इससे बह्वृचों का व्यतिषंग नहीं है। मण्डपोद्वासन के बाद कार्याकार्य का निर्णय समाप्त।

अथ वधूप्रवेशः

विवाहात्षोडशदिनान्तःसमदिनेषु पञ्चमसप्तमनवमदिनेषु च रात्रौ स्थिरलग्ने नूतनभिन्नगृहे [1]वधूप्रवेशः शुभः। प्रथमदिनेऽपि क्वचित्। षष्ठदिननिषेधः प्रयोगरत्नोक्तो निर्मूलः। षोडशदिनमध्ये पूर्वोक्तदिनेषु प्रवेशोक्तनक्षत्रतिथिवारगोचरस्थचन्द्रबलाद्यभावेऽपि गुरुशुक्रास्तादावपि न दोषः।

व्यतीपाते क्षयतिथौ ग्रहणे वैधृतौ तथा।
अमासंक्रान्तिविष्टयादौ प्राप्तकालेऽपि नाचरेत्॥

विवाह से सोलह दिन के भीतर समदिनों में, पांचवें, सातवें और नवें दिन में, रात में, स्थिर लग्न और पुराने घर में वधूप्रवेश शुभ है। कहीं पर पहले दिन भी होता है। प्रयोगरत्न में कहा हुआ छठे दिन का निषेध निर्मूल है। सोलह दिन के भीतर पहले कहे हुए दिनों में प्रवेश में कहे हुए नक्षत्र, तिथि, वार और गोचर के चन्द्रबल आदि के अभाव तथा गुरु शुक्र के अस्त में भी दोष नहीं है। व्यतीपात, क्षयतिथि, ग्रहण, वैधृति, अमावास्या, संक्रान्ति और भद्रा आदि में समय रहते भी प्रवेश न करे।

---

१. वधूप्रवेशो नाम नूतनपरिणीतायाः कन्यायाः प्रथमतः करिष्यमाणो भर्तृगृहप्रवेशो वधूप्रवेशशब्दवाच्य इति पीयूषधारा। ज्योतिर्निबन्धे—'वधूप्रवेशनं कार्यं पञ्चमे सप्तमे दिने। नवमे च शुभे वारे सुलग्ने शशिनो बले॥' संग्रहे—'विवाहमारभ्य वधूप्रवेशो युग्मे दिने षोडशवासरान्तः। ऊर्ध्वं ततोऽब्देऽयुजि पञ्चमान्तादतः परस्तान्नियमो न चास्ति॥'

नारद ने सम दिन का निर्देश किया है—'आरम्भोद्वाहदिवसात्षष्ठे वाऽप्यष्टमे दिने। वधूप्रवेशः सम्पत्त्यै दशमेऽथ समे दिने॥' वृद्ध वसिष्ठ ने भी सम दिन का निर्देश किया—'षष्ठाष्टमे वा दशमे दिने वा विवाहमारभ्य वधूप्रवेशः। पञ्चाङ्गसंशुद्धदिनं विनाऽपि विधावसद्गोचरगेऽपि कार्यः॥' लल्लः—'स्वभवनपुरप्रवेशे देशानां विप्लवे तथोद्वाहे। नववध्वा गृहगमने प्रतिशुक्रविचारणा नास्ति॥' माण्डव्यः—'नित्ययाने गृहे जीर्णे प्राशनान्तेषु सप्तसु। वधूप्रवेशे माङ्गल्ये न मौढ्यं गुरुशुक्रयोः॥'

सोलह दिन के भीतर वधूप्रवेश नहीं हो सके तो विलम्बित वधूप्रवेश में विषम मास और विषम वर्ष का निर्देश विवाहपटल में किया है—'वधूप्रवेशः प्रथमेऽत्र वर्षे तथा तृतीयेऽप्यथ पञ्चमे वा। सूर्येन्दुदेवेज्यबलेन कुर्यात् पुंसो मुनिर्गौतम आह सत्यम्॥' सम मास या सम वर्ष में करने पर दोष बतलाया है—'समे वर्षे समे मासे यदि नारी गृहं व्रजेत्। आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी मरणं व्रजेत्॥'

ज्योतिःसारसंग्रहे—'विवाहे मासि प्रथमं वध्वा नागमनं यदि। तदा सर्वमिदं चिन्त्यं युग्माब्दं विचक्षणैः॥ नखप्रक्षालने कार्यें विषमे वत्सरे शुभे। पत्या सह समावेशी युग्माब्दं हि शुभं स्मृतम्॥' जगन्मोहनः—'प्रथमाब्दे कृतं यस्या नखरञ्जनकं स्त्रियाः। तस्याः समाब्दे यात्रायां वर्षदोषो न विद्यते॥' स्मृत्यर्थसारे—'राजप्रवेशो न निशि प्रशस्तो वधूप्रवेशो न दिवा प्रशस्तः। दिवा च रात्रौ च गृहप्रवेशः सुकीर्तिदः स्यात् त्रिविधः प्रवेशः॥' इति।

प्रथमनववधूप्रवेशे विवाहार्थंगमने च प्रतिशुक्रदोषो नास्ति । द्विरागमने एव संमुखशुक्रदोषः । षोडशदिनोत्तरं मासपर्यन्तं विषमदिनेषु मासोत्तरं विषममासेषु वर्षोत्तरं वधूप्रवेशः शुभः । समेष्वेतेषु वैधव्यादिदोषः ।

प्रथम नववधू के प्रवेश में और विवाह के लिये जाने में प्रतिशुक्र का दोष नहीं होता । द्विरागमन में ही सम्मुख शुक्र का दोष होता है । सोलह दिन के बाद महीने भर तक विषम दिनों में, महीने के बाद विषम मासों में, वर्ष के बाद विषम वर्षों में वधूप्रवेश शुभ है । इन सबों के सम होने में वैधव्य आदि दोष होता है ।

पञ्चमवर्षोत्तरं समविषमविचारो नास्ति । षोडशदिनोत्तरं वधूप्रवेशे नक्षत्राणि अश्विनीरोहिणीमृगपुष्यमघोत्तरात्रयहस्तचित्रास्वात्यनूराधामूलश्रवणघनिष्ठारेवत्यः शुभाः । मासोत्तरं मार्गशीर्षमाघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासाः शुभाः । चतुर्थीनवमीचतुर्दशीपञ्चदशीभिन्नतिथयो रविभौमेतरवाराश्च शुभाः । इति नववधूप्रवेशः ।

पांच वर्ष के बाद समविषम का विचार नहीं होता । सोलह दिन के बाद वधूप्रवेश करने में अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुष्य, मघा, तीनों उत्तरा, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, मूल, श्रवण, धनिष्ठा और रेवती नक्षत्र शुभ हैं । महीने भर के बाद अगहन, माघ, फागुन, वैशाख और ज्येष्ठ महीना शुभ हैं । चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी और पूर्णिमा से भिन्न तिथियां, रविवार और मंगलवार से भिन्न वार भी शुभ हैं । नववधूप्रवेश समाप्त ।

अथ द्विरागमनम्

तत्र माघफाल्गुनवैशाखाः शुक्लपक्षश्च शुभाः । अश्विनीरोहिणीपुनर्वसुपुष्योत्तरात्रयानूराधाज्येष्ठाहस्तस्वातीचित्राश्रवणशततारकानक्षत्रेषु चन्द्रबुधगुरुशुक्रवारेषु गुरुशुक्रास्तादिरहिते स्थिरलग्नादिशुभकाले द्वितीयवधूप्रवेशः[1] शुभः ।

---

१. द्वितीयवधूप्रवेशः = पुनर्वधूप्रवेशः, द्विरागमनमित्यर्थः । पूर्वं नववधूप्रवेशे जाते तदनन्तरं परावृत्त्यापि पितृगृहप्राप्ताया अपि वध्वा यथेष्टवर्षाणि स्थितायाः पुनर्भर्तृगृहप्रवेशो द्विरागमशब्दवाच्य इति पीयूषधारा । नारायणपद्धतौ—'वृत्ते पाणिग्रहे गेहात् पितुः पतिगृहं प्रति । पुनरागमनं वध्वास्तद् द्विरागमनं विदुः ॥' संग्रहे—'उद्वाहिता समायाता स्वीयोद्वाहाङ्गसिद्धये । कृत्वा कृत्यान्यशेषाणि भर्तृगेहाद्व्रजान्यपि ॥ परावृत्य पितुर्गेहे समागत्य नवाङ्गना । तत्कालावर्तनतया नवोढा नाम भूषिता ॥ स्थित्वा यथेष्टवर्षाणि पितृवेश्मनि सा वधूः । पुनर्भर्तृगृहावेशो द्विरागमनसंज्ञकः ॥' ऋक्षोच्चये—'माघफाल्गुनवैशाखे शुक्लपक्षे शुभे दिने । गुर्वादित्यविशुद्धौ स्यान्नित्यं पत्नीद्विरागमः ॥'

द्विरागमन के समय शुक्र के अस्त या दक्षिण सम्मुख रहने पर बादरायणोक्त दोष है—'अस्तं गते भृगोः पुत्रे तथा सम्मुखमागते । नष्टे जीवे निरंशे वा नैव सञ्चालयेद् वधूम् ॥ गर्भिण्या बालकेनापि नववध्वा द्विरागमे । पदमेकं न गन्तव्यं शुक्रे दक्षिणसम्मुखे ॥ गुर्विणी स्रवते गर्भं बालो वा मरणं व्रजेत् । न वा वधूर्भवेद् बन्ध्या शुक्रे सम्मुखदक्षिणे ॥' संग्रहे—'पूर्वस्थे भार्गवे यायान्नवोढा राक्षसेऽनले । पश्चिमस्थे भृगौ यायात्तद्वदीशानवातयोः ॥'

मुहूर्तचिन्तामणि में प्रतिशुक्र का अपवाद है—'नगरप्रवेशविषयाद्युपद्रवे करपीडने विबुधतीर्थयात्रयोः । नृपपीडने नववधूप्रवेशने प्रतिभार्गवो भवति दोषकृन्न हि ॥' चण्डेश्वरः—'पित्रागारे कुचकुसुमयोः सम्भवो वै यदा स्यात्पत्युः शुद्धिर्न भवति रवेः सम्मुखो वाऽपि शुक्रः । तुले लग्ने गुणवति

इसमें माघ, फागुन, वैशाख और शुक्लपक्ष भी शुभ हैं। अश्विनी, रोहिणी, पुनर्वसु, पुष्य, तीनों उत्तरा, अनुराधा, ज्येष्ठा, हस्त, स्वाती, चित्रा, श्रवण और शतभिषा नक्षत्रों में सोम, बुध, गुरु और शुक्रवार में, गुरुशुक्रास्त से रहित स्थिर लग्न आदि शुभ काल में द्वितीय वधूप्रवेश शुभ है।

अथ द्विरागमने वर्ज्यानि तदपवादश्च

द्विरागमनेऽधिमासविष्णुशयनमासाः समवत्सराः प्रतिशुक्रादिदोषाश्च वर्ज्याः। द्विरागमोऽपि यदि विवाहमारभ्य षोडशदिनमध्ये क्रियते तदा प्रतिशुक्रादिदोषश्च नास्ति।

द्विरागमन में अधिमास, विष्णुशयन के महीने, सम वर्ष और प्रतिशुक्रादि का दोष भी वर्जनीय है। द्विरागमन यदि विवाह से सोलह दिन के बीच में किया जाय तो प्रतिशुक्रादि का दोष और अस्त आदि का दोष नहीं होता।

द्विरागमे षोडशवासरान्तरे एकादशाहे समवासरेषु।
न चात्र ऋक्षं न तिथिर्न योगो न वारशुद्ध्यादि विचारणीयम्॥

केवलाङ्गिरसकेवलभृगुभरद्वाजवसिष्ठकश्यपात्रिवत्सगोत्राणां प्रतिशुक्रदोषो न। रेवत्यश्विनीभरणीकृत्तिकाद्यचरणेषु चन्द्रे सति शुक्रस्यान्धत्वात्प्रतिशुक्रदोषो न। दुर्भिक्षे देवविप्लवे विवाहे तीर्थगमने एकनगरग्रामयोश्च प्रतिशुक्रदोषो न। इति द्विरागमः।

तिथौ चन्द्रताराविशुद्धौ स्त्रीणां यात्रा भवति सफला सेवितुं स्वामिसद्म॥' बादरायणः—'कश्यपेषु वसिष्ठेषु चात्रिभृग्वङ्गिरःसु च। भारद्वाजेषु वात्स्येषु प्रतिशुक्रो न दुष्यति॥' संग्रहे—'विलम्बिता समायाता भर्तुर्गेहे भृगोर्बलात्। तस्या द्विरागमे शुक्रप्रातिकूल्यं पुनर्न हि॥'

नवोढागमन ग्रन्थ में अब्ददोष का परिहार—'समाब्ददोषो न हि विद्यते तदा ग्रन्थेर्निबन्धं हि भवेन्नराणाम्। विन्ध्योत्तरे चैव वदन्ति विज्ञास्तद्दक्षिणे चाब्दसमं न शस्तम्॥' अन्यच्च—'ग्रन्थिर्निबन्धनादूर्ध्वमब्ददोषो न विद्यते। विन्ध्यस्योत्तरभागे तु दक्षिणे परिवर्जयेत्॥' नवोढागमन में सिद्धान्त-प्रतिपादन—'विलम्बिते वधूवेशे नवोढाया द्विरागमे। विलम्बिता गता प्रौढा तस्या नैव द्विरागमे॥ सानुकूल्यं भृगोश्चिन्त्यं राहोरत्र प्रकल्पनम्।' इति।

राहु का विचार—'प्रथमे गुरुशुद्धिः स्याच्छुक्रशुद्धिर्द्विरागमे। त्रिगमे राहुशुद्धिश्च चन्द्रशुद्धिश्चतुर्गमे॥' इस उक्ति से वधू के पिता के घर से पति के घर तृतीय वार के आगमन में करना चाहिये। 'पुनः सपूर्वयात्रायां प्रातिकूल्यं भृगोर्न हि। यथा भृगुस्तथा राहुः सदाचारे व्यवस्थितः॥' संग्रहे—'यथा भृगुर्दक्षिणसम्मुखस्थो मृगीदृशीनामशुभो गमे सदा। तथैव राहुः परिकल्पनीयो द्व्यङ्गेन कार्यं भृगुवाद् विलोमम्॥'

गंगा के उत्तरदेश में ही राहु का विचार है—'जह्नुजायाम्यकूले कुरङ्गीदृशां दक्षपृष्ठस्थितः सैंहिकेयः शुभः। सम्मुखे वामभागे भवेच्चाशुभो त्वन्यदेशे न सद्दक्षिणे सम्मुखे॥' राहु का दिग्ज्ञान—वृश्चिकादिं समारभ्य त्रित्रिभस्थे दिवाकरे। द्व्यङ्गे त्रैमासिको राहुः पूर्वयाम्यपरोत्तरे॥ प्राचीने संग्रहे चैवं त्वर्वाचीनेष्यजात् क्रमात्। त्रिभ्रमान्मासिको राहुः पूर्वादिष्वर्कसंक्रमात्॥ यथा भृगोस्तथा राहोः सानुकूल्यावलोकनम्। शिष्टाचरणमत्रास्ति न निबन्धे पुरातने॥' इति।

द्विरागमन में सोलह दिन के बीच में ग्यारहवें दिन सम वारों में प्रवेश करे। इसमें नक्षत्र-तिथि-योग-वार की शुद्धि आदिका विचार नहीं करे। केवल आंगिरस, केवल भृगु, भारद्वाज, वशिष्ठ, कश्यप, अत्रि और वत्स गोत्र वालों को प्रतिशुक्र का दोष नहीं होता। रेवती, अश्विनी, भरणी और कृत्तिका के प्रथम चरण में चन्द्रमा रहने पर शुक्र के अन्धा होने से प्रतिशुक्र का दोष नहीं होता। दुर्भिक्ष, देश के उपद्रव, विवाह, तीर्थयात्रा और एक शहर या एक गांव में प्रतिशुक्र का दोष नहीं होता। द्विरागमन समाप्त।

अथ वध्वाः प्रथमाब्दे निवासः

उद्वाहात्प्रथमे[1] शुचौ यदि वसेद्भर्तुर्गृहे कन्यका
हन्यात्तज्जननीं क्षये निजतनुं ज्येष्ठे पतिं ज्येष्ठकम्।
पौषे च श्वशुरं पतिं च मलिने चैत्रे स्वपित्रालये
तिष्ठन्ती पितरं निहन्ति न भयं तेषामभावे भवेत्॥

इति वध्वाः प्रथमाब्दे निवासविचारः।

विवाह से पहिले आषाढ़ में यदि पतिगृह में बहू रहे तो अपनी सास को मारती है। क्षय मास में अपने शरीर का, ज्येष्ठमास में पति के जेठे भाई का, पूस में श्वशुर का, मलमास चैत्र में पतिका और इन महीनों में अपने नैहर रहती हुई पिता का नाश करती है। इन सबों के न रहने पर कोई भय नहीं है। वधू के प्रथम वर्ष में निवास का विचार समाप्त।

अथ पुनर्विवाहः

दुष्टलग्ने यथोक्तग्रहताराद्यभावेऽन्यत्रापि दुष्टयोगाद्यशुभकाले कूष्माण्डीघृत-होमादि यथोक्तविधिं विना सूतकादौ च विवाहे जाते तयोरेव दम्पत्योः सुमुहूर्ते पुनर्विवाहः[2] कर्तव्यः।

दुष्ट लग्न में जैसा कहा गया है, वैसे तारादि के न होने पर अन्यत्र भी दुष्ट योग आदि अशुभ समय में कुष्माण्डी-घृत-होम आदि कही हुई विधि के विना सूतक आदि में भी विवाह हो जाने पर उन्हीं पति-पत्नी को अच्छे मुहूर्त में फिर विवाह करना चाहिये।

अथ पुनर्विवाहनिमित्तानि

सुरापी व्याधिता धूर्ता वंध्याऽर्थघ्न्यप्रियंवदा।
स्त्रीप्रसूश्चाधिवेत्तव्या पुरुषद्वेषिणी तथा॥

अधिवेदनं भार्यान्तरकरणम्।

अप्रजां दशमे वर्षे स्त्रीप्रजां द्वादशे त्यजेत्।
मृतप्रजां पञ्चदशे सद्यस्त्वप्रियवादिनीम्॥

---

१. यह ज्योतिर्निबन्ध का वचन है। निबन्ध में—'विवाहात् प्रथमे पौषे आषाढे चाधिमास-के। न सा भर्तृगृहे तिष्ठेच्चैत्रे पितृगृहे तथा॥' इति।

२. श्रीधरीये—'पुनर्विवाहं वक्ष्यामि दम्पत्योः शुभवृद्धिदम्। लग्नेन्दुलग्नयोर्दोषे ग्रहतारा-दिसम्भवे॥ अन्येष्वशुभकालेषु दुष्टयोगादिसम्भवे। विवाहे चापि दम्पत्योराशौचादिसमुद्भवे॥ तस्य दोषस्य शान्त्यर्थं पुनर्वैवाह्यमिष्यते।' इति।

अत्राप्रियवादो व्यभिचारः। प्रतिकूलभाषणरूपस्य तस्य प्रायः कलौ सार्वत्रिकत्वात्।

जो स्त्री मद्य पीने वाली, व्याधिग्रस्ता, धूर्ता, बन्ध्या, पैसे को नष्ट करनेवाली, अप्रिय बोलनेवाली, कन्या पैदा करने वाली, पति से द्वेष करने वाली हो, ऐसी स्थिति में पति दूसरी स्त्री से विवाह कर ले। जिसको सन्तान न हो ऐसी स्त्री को दसवें वर्ष में, कन्यासन्तान वाली को बारहवें वर्ष में, जिसके संतान न जीते हों उसे पन्द्रहवें वर्ष में त्याग दे। अप्रियवादिनी को तुरन्त त्याग दे। यहाँ अप्रिय बोलना व्यभिचार से तात्पर्य है। प्रतिकूल भाषण रूप तो कलियुग में सार्वत्रिक है।

'आज्ञासम्पादिनीं दक्षां वीरसूं प्रियवादिनीं पत्नीं त्यक्त्वा भोगार्थमन्योद्वाही पूर्वभार्यायै स्वधनस्य तृतीयांशं दद्याद् निर्धनश्चेत्तां पोषयेत्। मनुः—

अधिविन्ना तु या नारी निर्गच्छेद्रुषिता गृहात्।
सा सद्यः सन्निरोद्धव्या त्याज्या वा कुलसन्निधौ॥

आज्ञा करने वाली, गृहकार्य में दक्ष, पुत्रप्रसव करने वाली, प्रियभाषिणी पत्नी को छोड़कर भोग के लिये दूसरी स्त्री से विवाह करने वाला पहिली स्त्री को अपने धन का तृतीय भाग दे। यदि निर्धन हो तो उसका पोषण पालन करे। मनु कहते हैं कि जो दूसरी स्त्री कुपित होकर घर से निकल जाय उसको तुरन्त रोक दे अथवा कुल के सन्निधि में त्याग करे।

अथ धर्मकार्य्ये ज्येष्ठकनिष्ठस्त्रीव्यवस्था

अग्निशुश्रूषादिधर्माचरणं ज्येष्ठया सह कार्यं न तु कनिष्ठया। इदं ज्येष्ठाया आज्ञासंपादिनीत्वे। यदि तु रोषादिशीलेन समनन्तरोक्तमनुवाक्याज्ज्येष्ठा कुलसन्निधौ त्यागार्हा गृहान्तरे निरोधार्हा वा तर्हि कनिष्ठयापि सह धर्मं चरेदन्यथा धर्मभ्रंशापातात्।

तथा वीरसुता या स्यादाज्ञासंपादिनी च या।
दक्षा प्रियंवदा शुद्धा तामत्र विनियोजयेत्॥ इति माधवीयस्मृतेश्च।

अग्निशुश्रूषा आदि धर्माचरण ज्येष्ठा स्त्री के साथ करे छोटी के साथ न करे। यह ज्येष्ठा स्त्री आज्ञा करने वाली हो तब करे। यदि क्रोध आदि वाली हो तो अभी कहे हुए मनुवचन से कुल के सन्निधि में त्याग के योग्य हो या दूसरे घर में निरोध के योग्य हो तब तो छोटी के भी साथ धर्माचरण करे नहीं तो धर्मभ्रंश हो सकता है। वैसे ही पुत्र पैदा करने वाली, आज्ञा करने वाली, प्रिय बोलने वाली और गृहकार्य में चतुर जो शुद्ध स्त्री हो उसे अग्निसेवा आदि धर्माचरण में लगावे, ऐसा माधवीय स्मृति में कहा है।

अथ द्वितीयविवाहे अग्निविचारः

द्वितीयविवाहहोमः पूर्वविवाहसंबन्धिगृह्याग्नावेव[2] कार्यः। तदसंभवे लौकि-

---

१. यह याज्ञवल्क्य का वचन है और इसके आगे का पाठ है—'त्यजन् दाप्यस्तृतीयांशम-द्रव्यो भरणं स्त्रियाः।' भरणं = शरीरपोषणार्थमन्नवस्त्रादि। समर्थ के लिए तो—'एकामुत्क्रम्य कामार्थमन्यां लब्धुं य इच्छति। समर्थस्तोषयित्वाऽर्थैः पूर्वोढामपरां व्रजेत्॥' इति।

२. कात्यायनः—'सदारोऽन्यान् पुनर्दारानुद्वोढुं कारणान्तरात्। यदीच्छेदग्निमान् कर्तुं क्व होमोऽस्य विधीयते॥ स्वेऽग्नावेव भवेद्धोमो लौकिके न कदाचन। त्रिकाण्डमण्डन ने भी कहा है—'आद्यायां विद्यमानायां द्वितीयामुद्वहेद्यदि। तदा वैवाहिकं कर्म कुर्यादावसथेऽग्निमान्॥ इसके सुदर्शन-

कासौ कार्यः। लौकिकाग्नौ करणपक्षे द्वितीयविवाहहोमादिनोत्पन्नाग्नेर्गृह्यासित्वाद् द्वयोर्गृह्याग्न्योः संसर्गः कार्यः।

दूसरे विवाह का होम पहले विवाह सम्बन्धी गृह्य अग्नि में ही करे। ऐसा सम्भव न होने से लौकिक अग्नि में करे। लौकिकाग्नि में करने के पक्ष में द्वितीय विवाह के होम आदि से उत्पन्न अग्नि का गृह्याग्नि होने से दोनों गृह्याग्नियों का संसर्ग करे।

अथाग्निद्वयसंसर्गप्रयोगः

देशकालौ संकीर्त्य 'मम द्वाभ्यां भार्याभ्यां सह निष्पन्नगृह्याग्न्योस्ताभ्यां सहाधिकारसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं संसर्गं करिष्ये' इति संकल्प्य स्वस्तिवाचनं कृत्वा उदगपवर्गे स्थण्डिले कृत्वा दक्षिणे स्थण्डिले ज्येष्ठाया गृह्याग्निमुत्तरे कनिष्ठाया गृह्याग्निं प्रतिष्ठाप्य प्रथमाग्नौ ज्येष्ठपत्न्यान्वारब्धोऽन्वाधानं कुर्यात्। 'अग्निद्वयसंसर्गार्थे प्रथमाग्निहोमकर्मणि देवतापरिग्रहार्थमन्वाधानं करिष्ये' चक्षुषी आज्येनेत्यन्ते अग्निं नवभिराज्याहुतिभिः शेषेणेत्यादि अग्निमीडे इति नवानां मधुच्छन्दा अग्निर्गायत्री अग्निद्वयसंसर्गार्थं प्रथमाग्नौ प्रधानाज्यहोमे वि०। अग्नमीडे इत्यादि नवभिर्ऋग्भिः प्रत्यृचं स्रुवेण नवाज्याहुतीर्जुहुयात्। अग्नय इदमिति सर्वत्र त्यागः।

देश काल कह कर 'मेरी दो पत्नियों के साथ दो गृह्याग्नियों के सम्पन्न होने पर उन दोनों अग्नियों के साथ अधिकार-सिद्धि-द्वारा परमात्मा की प्रीति के लिये संसर्ग करूंगा' ऐसा संकल्प और स्वस्तिवाचन करके उत्तर की ओर ढले दो स्थण्डिल बनाकर दक्षिण स्थण्डिल में ज्येष्ठा पत्नी की और उत्तर स्थण्डिल में कनिष्ठा पत्नी की गृह्याग्नि की प्रतिष्ठा कर पहली अग्नि में ज्येष्ठा स्त्री के साथ अन्वाधान करे।

संकल्प करे—'दो अग्नि के संसर्ग के लिये प्रथम अग्नि के होमकर्म में देवता-परिग्रह के लिये अन्वाधान करूंगा'। चक्षुषी आज्येन इसके अन्त में अग्नि में नव घृताहुतियों से, शेषेण इत्यादि से होम करके 'अग्निमीडे' इन नव मन्त्रों का मधुच्छन्दा अग्नि ऋषि गायत्रीच्छन्द दो अग्नियों के संसर्ग के लिये प्रथम अग्नि में प्रधान घृत होम में विनियोग है। 'अग्निमीडे' इत्यादि नव ऋचाओं से प्रत्येक ऋचा कहकर स्रुवा से नव घृत की आहुति से होम करे। यह अग्नि के लिये है, ऐसा कहकर सर्वत्र त्याग करना चाहिये।

होमशेषं समाप्य अयं ते योनिरिति मन्त्रेण ज्येष्ठाग्निं समिधि समारोप्य प्रत्यवरोहेति मन्त्रेण तं द्वितीयाग्नौ प्रत्यवरोह्य ध्यात्वा पत्नीद्वयान्वारब्धोऽन्वाधानं कुर्यात्। 'अग्निद्वयसंसर्गार्थे प्रथमसंसृष्टद्वितीयाग्नौ विहितहोमे देवतापरिग्रहार्थमन्वाधानं करिष्ये'।

होमशेष समाप्त करके 'अयं ते योनिः' इस मन्त्र से ज्येष्ठा स्त्री की अग्नि को समिधा में रख कर 'प्रत्यवरोह' इस मन्त्र से उस अग्नि को दूसरी अग्नि में प्रत्यवरोह करके ध्यान कर दोनों

भाष्य में कहा है—'द्वितीयविवाहहोमो लौकिक एव न पूर्वौपासने'। परन्तु इसे औपासन के असम्भव में जानना चाहिये।

पत्नियों के साथ अन्वाधान करे। 'दोनों अग्नियों के संसर्ग के लिये प्रथम मिली हुई दूसरी अग्नि में विहित होम में देवतापरिग्रह के लिये अन्वाधान करूंगा'।

आज्यभागान्ते अग्निं प्रधानं षड्वारमाज्येन शेषेणेत्यादि। प्रोक्षणीं कुशान् दर्वीस्रुवौ प्रणीताज्यपात्रे इध्माबर्हिषी इत्यष्टौ पात्राणि स्रुचि चतुर्गृहीतमाज्यं गृहीत्वा पत्नीद्वयान्वारब्धो जुहुयात्। अग्नावग्निरित्यस्य हिरण्यगर्भोग्निरऋषिः अग्निद्वयसंसर्गार्थे संसृष्टाग्नौ प्रधानाज्यहोमे विनि०। ॐ अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट ऋषीणां पुत्रो अधिराज एषः। तस्मै जुहोमि हविषा घृतेन मा देवानां मोमुहद्भागधेयं स्वाहा अग्नय इदं०।

आज्यभाग के अन्त में प्रधान अग्नि को छ बार घृत की आहुति दे शेष से होम करे। प्रोक्षणी कुशा, दर्वी, स्रुवा, प्रणीता, घृतपात्र, इध्मा, बर्हिषी इस प्रकार ८ पात्र होते हैं। स्रुवा में ४ वार घृत को ग्रहण कर दोनों पत्नियों के साथ आहुति दे। ओं अग्नावग्निः इस मन्त्र का हिरण्यगर्भ अग्नि दो अग्नि के संसर्ग के लिये मिली हुई अग्नि में प्रधान घृतहोम का विनियोग है। ॐ अग्नावग्निश्चरति इत्यादि मूलोक्त मंत्र से होम करे।

एवमग्रेऽपि आज्यस्य स्रुचि चतुर्ग्रहणं विनियोगस्त्यागश्च। अग्निनाग्निर्मेधातिथिः काण्वोऽग्निर्गायत्री। ॐ अग्निनाग्निः समिध्यते०। अस्तीदमिति तिसृणां विश्वामित्रोग्निरनुष्टुप् अन्त्ये त्रिष्टुभौ। ॐ अस्तीदमधि०। ॐ अरण्यो०। ॐ उत्तानायाम०। पाहि नो अग्न इत्यस्य भर्गः प्रगाथोऽग्निर्बृहती। ॐ पाहि नो० भिर्वसोस्वाहा। होमशेषं समाप्याहिताग्नये गोयुग्मं दत्त्वा विप्रान् भोजयेत्। इत्यग्निद्वयसंसर्गप्रयोगः।

इसी प्रकार आगे भी घृत को स्रुवा में चार बार ग्रहण विनियोग और त्याग करे। अग्निना अग्निः इन ऋचाओं के मेधातिथि काण्व अग्नि ऋषि, गायत्री छन्द दोनों अग्नियों के आज्यहोम का विनियोग है। ॐ अग्निना अग्निः समिध्यते० 'अस्तीदम्' इन तीन ऋचाओं के विश्वामित्र अग्नि ऋषि अनुष्टुप् छन्द और अन्त की दो त्रिष्टुभ। ॐ 'अस्तीदमधि०'। 'ॐ अरण्यो०'। 'ॐ उत्तानायाम०। पाहि नो अग्न इसका भर्ग प्रगाथ अग्नि ऋषि बृहती छन्द और आज्यहोम का विनियोग है। पश्चात् ॐ पाहि नो० भिर्वसु स्वाहा यह कहकर आहुति दे। होमशेष समाप्त करके अग्निहोत्री को दो गाय देकर ब्राह्मणों को भोजन करावे। अग्निद्वय संसर्गप्रयोग समाप्त।

पत्न्योरेका यदि मृता दग्ध्वा तेनैव तां पुनः।
आदधीतान्यया सार्धमाधानविधिना गृही॥

दो पत्नियों में से एक यदि मर गई हो तो उसको उसी अग्नि से जलाकर उसको पुनः दूसरी के साथ आधान विधि से गृहस्थ आधान करे।

अथ द्वितीयादिविवाहकालः

प्रमदामृतिवासरादितः पुनरुद्वाहविधिर्वरस्य च।
विषमे परिवत्सरे शुभो युगले चापि मृतिप्रदो भवेत्॥

संकटे महारुद्राभिषेकं मृत्युंजयमन्त्रजपं वा कृत्वा विवाहः कार्यं इति भाति।

तृतीया मानुषी कन्या [1]नोद्वाह्या म्रियते हि सा।
विधवा वा भवेत्तस्मात्तृतीयेऽर्कं समुद्वहेत्॥

स्त्री के मरने के दिन से वर की पुनर्विवाह विधि विषम वर्ष में शुभ है। सम वर्ष में मरणप्रद होता है। संकट में महारुद्राभिषेक या मृत्युञ्जय जप करके विवाह करे, यह ठीक मालूम होता है। तीसरी मनुष्य की कन्या से विवाह न करे, क्योंकि वह मर जाती है या विधवा हो जाती है। इस लिये तीसरे विवाह में अर्क से विवाह करे।

अथार्कविवाहः

रविशन्योर्वारे हस्तर्क्षे वान्यत्र शुभदिने वा पुष्पफलयुतमर्कं गत्वा अर्ककन्यादातारमाचार्यं कृत्वा रक्तगन्धादिभूषितो देशकालौ स्मृत्वा 'मम तृतीयमानुषीविवाहजन्यदोषपरिहारार्थं तृतीयमर्कविवाहं करिष्ये'। आचार्यं वृत्वा नान्दीश्राद्धान्तं कुर्यात्। दाता मधुपर्कयज्ञोपवीतवस्त्रगन्धमाल्यादिभिर्वरं पूजयेत्। अर्कस्य पुरतः स्थित्वा—

त्रिलोकवासिन् सप्ताश्वच्छायया सहितो रवे।
तृतीयोद्वाहजं दोषं निवारय सुखं कुरु॥ इति प्रार्थ्यं,

रवि-शनि के दिन में हस्त नक्षत्र में या दूसरे शुभ दिन में पुष्प-फल-युक्त अर्क के पास जाकर अर्क कन्या दाता आचार्य को करके रक्त गन्ध आदि से भूषित हो देश काल का स्मरण करके 'मेरे तीसरे मानुषी-विवाहसे उत्पन्न दोष परिहार के लिये तीसरा अर्क विवाह करूंगा आचार्य का वरण कर नान्दीश्राद्धपर्यन्त कर्म करे। दाता मधुपर्क, यज्ञोपवीत, वस्त्र, गन्ध और माला आदि से वर की पूजा करे।

---

१. मत्स्यपुराण में तृतीय विवाह का निषेध किया है-'उद्वहेद्रतिसिद्ध्यर्थं तृतीयां न कदाचन। मोहादज्ञानतो वाऽपि यदि गच्छेत्तु मानुषीम्॥ नश्यत्येव न सन्देहो गर्गस्य वचनं यथा।' संग्रह में—'तृतीयां यदि चोद्वाहेत्तर्हि सा विधवा भवेत्। चतुर्थादिविवाहार्थं तृतीयेऽर्कं समुद्वहेत्॥' इति।

गदाधरभाष्यादि में अर्कविवाह के ब्रह्मपुराणोक्त मूलवचन हैं—'आदित्यदिवसे वाऽपि हस्तर्क्षे वा शनैश्चरे। शुभे दिने वा पूर्वाह्णे कुर्यादर्कविवाहकम्॥' विवाह का प्रदेश—'ग्रामाद् प्राच्यामुदीच्यां वा सपुष्पफलसंयुतम्। परीक्ष्यार्कं ततोऽधस्तात् स्थण्डिलादि यथाविधि॥ कृत्वाऽर्कं पुरतस्तिष्ठन् प्रार्थयेत द्विजोत्तमः। त्रिलोकवासिन्०······सुखं कुरु॥ तत्राध्यारोप्य देवेशं छायया सहितं रविम्। वस्त्रैर्माल्यैस्तथा गन्धैस्तन्मन्त्रेणैव पूजयेत्॥ स्मृत्यन्तरे—'श्वेतवस्त्रेण संवेष्ट्य तथा कार्पासतन्तुभिः। गन्धपुष्पैः समभ्यर्च्य अब्लिङ्गैरभिषिच्य च॥ गुडौदनं च नैवेद्यं ताम्बूलं च समर्पयेत्।'

ततः—'अर्ककन्याप्रदानार्थमाचार्यं कल्पयेत्पुरा। अर्कसन्निधिमागत्य तत्र स्वस्त्यादि वाचयेत्॥ नान्दीश्राद्धे हिरण्येन अष्टवर्गान् प्रपूजयेत्। पूजयेन्मधुपर्केण वरं विप्रस्य हस्ततः॥ अर्कं प्रदक्षिणं कुर्वन् जपेन्मन्त्रमिमं पुनः। मम प्रीतिकरा चेयं०···मृत्युं चाशु विनाशय॥ ततश्च कन्यावरणं त्रिपुरुषं कुलमुच्चरेत्। आदित्यः सविता सूर्यः पुत्री पौत्री च नप्त्रिका॥ गोत्रं काश्यप इत्युक्तं लोके लौकिकमाचरेत्। सुमुहूर्तेऽर्कमीक्षेत स्वस्तिसूक्तमुदीरयन्॥ आशीर्भिः सहितैः कुर्यादाचार्यप्रमुखैर्द्विजैः। अथाचार्यं समाहूय विधिना तन्मुखाच्च ताम्॥ प्रतिगृह्य ततो होमं गृह्योक्तविधिनाऽऽचरेत्।' अवशिष्ट वचन और विशिष्ट विधि अन्यत्र देखें।

अर्क के आगे खड़ा होकर प्रार्थना करे—हे त्रिलोकवासिन् ! सात घोड़े वाले हैं सूर्य ! छाया के सहित आप तीसरे विवाह से उत्पन्न दोष का निवारण करें और सुखी करें ।

छायायुतं रविमर्के ध्यात्वाऽब्लिङ्गैरभिषिच्य वस्त्रादिभिराकृष्णेनेति मन्त्रेण[१] संपूज्य श्वेतवस्त्रेण सूत्रेण चावेष्ट्य गुडौदनं निवेद्य ताम्बूलं दद्यात् ।

मम प्रीतिकरा येयं मया स्पृष्टा पुरातनी ।
अर्कजा ब्रह्मणा सृष्टाऽद्यास्मान्संप्रति रक्षतु ॥ इत्यर्कं प्रदक्षिणीकृत्य,
नमस्ते मङ्गले देवि नमः सवितुरात्मजे ।
त्राहि मां कृपया देवि पत्नीत्वं म इहागता ॥
अर्क त्वं ब्रह्मणा सृष्टः सर्वंप्राणिहिताय वै ।
वृक्षाणामधिभूतस्त्वं देवानां प्रीतिवर्धन ॥
तृतीयोद्वाहजं पापं मृत्युं चाशु विनाशय । इति च प्रदक्षिणीकुर्यात् ।

छायायुक्त सूर्य को अर्क में ध्यान करके अब्लिंग मन्त्रों से अभिषेक कर वस्त्र आदि से 'आकृष्णेन' इस मन्त्र से पूजा कर श्वेत वस्त्र या सूत से वेष्टित कर गुड़ और भात निवेदन करके ताम्बूल दे । जो मेरी प्रीति करने वाली यह है मुझसे स्पर्श की हुई पुरातनी सूर्य से उत्पन्न ब्रह्मा से सृष्टि की गई आज हम लोगों की रक्षा करें । इस प्रकार आक की प्रदक्षिणा करके हे मंगले देवि ! सूर्य की पुत्रि ! तुमको नमस्कार है कृपा करके मेरी पत्नी होकर यहां आई हो, मेरी रक्षा करो । हे अर्क ! सब जीवों के हित के लिये ब्रह्मा से बनाये गये तुम देवताओं की प्रीति बढ़ाने वाले वृक्षों के जीव तीसरे विवाह से उत्पन्न पाप और मृत्यु को शीघ्र नष्ट करो । इसको कह कर प्रदक्षिणा करे ।

अन्तःपटधारणादिकन्यादानपर्यन्तं विधिं कृत्वा कन्यादाता—'आदित्यस्य प्रपौत्रीं सवितुः पौत्रीमर्कस्य पुत्रीं काश्यपगोत्रामर्ककन्याममुकगोत्राय वराय तुभ्यं सम्प्रददे' ।

अर्ककन्यामिमां विप्र यथाशक्ति विभूषिताम् ।
गोत्राय शर्मणे तुभ्यं दत्तां विप्र समाश्रय ॥

दक्षिणां दत्त्वा गायत्र्या वेष्टितसूत्रेण बृहत्सामेति मन्त्रेण अर्कवरयोः कङ्कणं वध्वाऽर्कस्य चतुर्दिक्षु कुम्भेषु विष्णुं नाममन्त्रेण षोडशोपचारैः संपूज्य अर्कस्योत्तरेऽर्कपत्न्यान्वारब्धो वरः 'अस्याः सम्यग् भार्यात्वसिद्ध्यर्थं पाणिग्रहहोमं करिष्ये' ।

अन्तःपट धारण से लेकर कन्यादानपर्यन्त विधि करके कन्यादाता 'सूर्य की प्रपौत्री सविता की पौत्री, अर्क की पुत्री काश्यप गोत्र वाली अर्ककन्या को अमुक गोत्र वर को तुझे देता हूँ' । हे ब्राह्मण ! अमुक शर्मा अमुक गोत्र तुझको मुझसे दी हुई यथाशक्ति विभूषित इस अर्ककन्या को अपने आश्रय में रखो । दक्षिणा देकर गायत्री से सूत से वेष्टित कर 'बृहत्साम' इस मन्त्र से अर्क और वर को कंकण बांध कर अर्क के चारो दिशाओं में कलशों में विष्णु को नाममन्त्रों से षोडशोपचार से पूजकर अर्क के उत्तर अर्क की पत्नी के पास वर कहे—'इसके सम्यक् भार्यात्वसिद्धि के लिये विवाह होम करता हूँ' ।

---

१. यजुर्वेद का पूर्ण मन्त्र यों है—'आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च । हिरण्ययेन सविता रथेनादेवो याति भुवनानि पश्यन् ॥' इति ।

[1]आधारदेवते आज्येनेत्यन्ते बृहस्पतिम् अग्निम् अग्नि वायुं सूर्यं प्रजापतिः चाज्यद्रव्येण, शेषेण स्विष्टकृतम् आघारान्तं कृत्वा, संगोभिरित्यस्याङ्गिरसो बृहस्पतिस्त्रिष्टुप् आज्यहोमे विनियोगः। ॐ संगोभिराङ्गिरसो०, बृहस्पतय इदं०। यस्मै त्वेति वामदेवोऽग्निस्त्रिष्टुप्। यस्मै त्वाकामकामाय वयं सम्राड् यजामहे। तमस्मभ्यं कामं दत्त्वाथेदं त्वं घृतं पिब स्वाहा, अग्नय इदं०। ततो व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिर्हुत्वा होमशेषं समाप्य,

मयाकृतमिदं कर्म स्थावरेषु जरायुणा।
अर्कापत्यानि नो देहि तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि॥

इति प्रार्थ्य शांतिसूक्तपाठान्ते गोयुग्ममाचार्याय दत्त्वा स्वधृतवस्त्राणि गुरवे दत्त्वाऽन्यानि धारयेत्। दश त्रयो वा विप्रा भोज्याः। इत्यर्कविवाहः।

आघार देवता को घृत से आहुति देकर अन्त में बृहस्पति, अग्नि, अग्नि वायु, सूर्य और प्रजापति को घृतद्रव्य से आहुति दे। बचे हुऐ से स्विष्टकृत् आघार तक करके 'संगोभिः' इस मंत्र के आंगिरस बृहस्पति देवता, त्रिष्टुप् छन्द घृतहोम में विनियोग करे। 'ॐ संगोभिरांगिरसो०' बृहस्पतये इदं०। 'यस्मै त्वा' इसका वामदेवोग्नि ऋषि त्रिष्टुप् छन्द घृतहोम में विनियोग है। 'ॐयस्मै त्वा कामकामाय०' इत्यादि मूलोक्त मन्त्र से आहुति दे। तदनन्तर व्यस्त समस्त व्याहृतियों से होम करके शेष होम को समाप्त कर प्रार्थना करे—हे अर्क! मैंने स्थावरों में इस कर्म को किया मुझे सन्तान दो अपराधों को क्षमा करो। ऐसी प्रार्थना कर शान्ति-सूक्त पढ़ने के बाद आचार्य को दो गाय देकरसमस्त अपने धारण किये हुए वस्त्रों को गुरु को देकर स्वयं अन्य वस्त्र पहने। दस या तीन ब्राह्मणों का भोजन करावे। अर्कविवाह समाप्त।

अथाह्निकप्रारम्भः

श्रीमन्नाथाङ्घ्रिकमलं दीनानाथदयार्णवम्।
स्मारं स्मारं कामपूरमाह्निकाचरणं ब्रुवे॥ १॥
प्रथमोक्तो बह्वृचानां प्रकारः स तु याजुषैः।
ग्राह्यो यत्र स्वसूत्रोक्तो विशेषः स्यान्न बाधकः॥ २॥

दीन और अनाथों के दयासमुद्र, कामना को पूर्ण करनेवाले श्रीनाथ के चरण-कमलों को स्मरण करके आह्निक-आचार कहता हूँ। बह्वृचों का आह्निक-प्रकार जो पहिले कहा है वह यजुर्वेदियों को ग्रहण करना चाहिये, जिसमें अपने सूत्र का कहा हुआ विशेष बाधक न हो॥ १-२॥

[2]ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय श्रीविष्णुं स्मृत्वा गजेन्द्रमोक्षादि पठित्वा इष्टदेवतादि- स्मरेत्।

---

१. इसके पहले मूल में लिखा 'बृहत्साम' यह तैत्तिरीय मन्त्र पूरा यों है—'बृहत्साम क्षत्रभृद्वृद्धवृष्ण्यं त्रिष्टुभौजः शुभितमुग्रवीरम्। इन्द्र स्तोमेन पञ्चदशेन मध्यमिदं वातेन सगरेण रक्ष॥' इति।

२. विष्णुपुराणोक्त ब्राह्ममुहूर्त—'रात्रेः पश्चिमयामस्य मुहूर्तो यस्तृतीयकः। स ब्राह्म इति विज्ञेयो विहितः स प्रबोधने॥ पञ्चपञ्च उषःकालः सप्तपञ्चारुणोदयः। अष्टपञ्च भवेत् प्रातस्ततः सूर्योदयः स्मृतः॥' रत्नावली में ब्राह्ममुहूर्त में नहीं उठने पर दोष कहा है—'ब्राह्मे मुहूर्ते या निद्रा सा पुण्यक्षयकारिणी। तां करोति द्विजो मोहात् पादकृच्छ्रेण शुद्धयति॥' इति।

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डिते ।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे ॥

इति भूमिं प्रार्थ्य गवादिमङ्गलानि[1] पश्येत् ।

ब्राह्म-मुहूर्त्त में उठकर श्रीविष्णु का स्मरणपूर्वक गजेन्द्रमोक्ष आदि का पाठ कर अपने इष्ट-देवता आदि का स्मरण करे। हे विष्णुपत्नि! हे देवि! आपका वस्त्र समुद्र है। पर्वतरूप स्तनों से भूषित हैं। आपको नमस्कार है। मेरे चरण का स्पर्श क्षम्य है। इस प्रकार भूमि की प्रार्थना कर गौ आदि मांगलिक द्रव्य का दर्शन करे।

अथ मूत्रपुरीषोत्सर्गादिविधिः

तृणाद्यन्तर्हितभूमौ शिरः प्रावृत्य यज्ञोपवीतं निवीतं पृष्ठतः कर्णे[1] वा कृत्वा घ्राणपिधानं कृत्वा दिवासंध्ययोरुदङ्मुखो रात्रौ दक्षिणामुखो मौनी अनुपानत्क आसीनो मूत्रपुरीषोत्सर्गं कुर्यात् । यज्ञोपवीतस्य [2]निवीतत्वं विनैव कर्णे धारण-मनाचारः । मार्गजलदेवालयनदीतीरादौ मलोत्सर्गो निषिद्धः ।

पृथ्वी को तृण आदि से और अपने सिर को वस्त्र से ढककर यज्ञोपवीत को गले में करके पीछे या कान पर रख कर नाक को ढककर दिन में और दोनों सन्ध्या में उत्तरमुख होकर तथा रात में दक्षिणमुख मौन होकर बिना जूते के बैठकर मूत्र और मल का त्याग करे। जनेऊ को गले में नहीं करके कान पर चढ़ाना आचारविरुद्ध है। रास्ता, जल, देवालय और नदीतट आदि में मल का त्याग निषिद्ध है।

हस्तान्द्वादश संत्यज्य मूत्रं कुर्याज्जलाशयात् ।
अवकाशे षोडश वा पुरीषे तु चतुर्गुणम् ॥

प्रत्यर्कादिमेहने स्वशकृद्दर्शने च सूर्यं गां वा पश्येत् । ततो गृहीतशिश्न

---

१. आदि पद से प्रभात में स्वकरतलादि का अवलोकन है—'कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वती । करमूले स्थितो ब्रह्मा प्रभाते करदर्शनम् ॥' कात्यायनः—'रोचनं चन्दनं हेम मृदङ्गं दर्पणं मणिम् । गुरुमग्निं तथा सूर्यं प्रातः पश्येत् सदा बुधः ॥' नागदेवः—'पूर्वं च सर्पिर्दधिसर्षपांश्च धेनुं सवत्सां वृषभं सुवर्णम् । मृद्गोमयं स्वस्तिकमक्षतांश्च वह्निं मधु ब्राह्मणकन्यकाश्च ॥ श्वेतानि वस्त्राणि तथा शमिं च हुताशनं चन्दनकल्पबीजम् । अश्वत्थवृक्षं च समालभेत ततश्च कुर्यान्निजधर्मकार्यम् ॥ लोकेऽस्मिन्मङ्गलान्यष्टौ ब्राह्मणो गौर्हुताशनः । हिरण्यं सर्पिरादित्य आपो राजा तथाऽष्टमः ॥ एतानि सततं पश्येन्नमस्येदर्चयेद् बुधः । प्रदक्षिणानि कुर्वीत तस्यायुर्न च हीयते ॥' आचार प्रदीप में नागदेव—'श्रोत्रियं सुभगां गां च अग्निमग्निचितं तथा । प्रातरुत्थाय यः पश्येदापद्भ्यः स प्रमुच्यते ॥' अन्यच्च—'भारद्वाजमयूराणां चाषस्य नकुलस्य च । प्रभाते दर्शनं श्रेष्ठं वामपृष्ठे विशेषतः ॥'

अदर्शनयोग्य पदार्थ—'पापिष्ठं दुर्भगं चान्धं नग्नमुत्कृत्तनासिकम् । प्रातरुत्थाय यः पश्येत्तत्कलेरुपलक्षणम् ॥ भल्लातकं कर्षफलं काकमार्जारमूषकान् । क्लीबं च गर्दभं चैव न पश्येत् प्रातरेव हि ॥' इति ।

२. यज्ञोपवीत को माला की तरह किये बिना 'निवीतं कण्ठलम्बितम्' । अङ्गिराः—'कृत्वा यज्ञोपवीतं तु पृष्ठतः कण्ठलम्बितम् । विण्मूत्रे तु गृही कुर्याद् वामकर्णे समाहितः ॥' सायणीये—'मलमूत्रं त्यजेद् विप्रो विस्मृत्यैवोपवीतधृक् । उपवीतं तदुत्सृज्य धार्यमन्यन्नवं तदा ॥' इति ।

उत्थाय शौचं कुर्यात्। मूत्रोत्सर्गे शुद्धमृदं सकृत् लिङ्गे त्रिधारं वामकरे द्विवारमुभयोः करयोर्दत्त्वा तावद्वारं जलेन क्षालयेत्।

मूत्रात्तु द्विगुणं शुक्रे मैथुने त्रिगुणं स्मृतम्। पुरीषे तु—
एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथा वामकरे दश॥
उभयोः करयोः सप्त सप्त त्रिर्वापि पादयोः।
द्विगुणं ब्रह्मचर्ये स्याद्यतीनां च चतुर्गुणम्॥
एवं मृद्भिर्जलैः शौचं तदर्धं निशि कीर्तितम्।
तदर्धमातुरे शूद्रस्त्रीबालानां तदर्धतः॥

जलाशय से १२ हाथ जमीन छोड़ कर मूत्रत्याग करे। यदि जगह हो तो १६ हाथ छोड़ कर करे। मलत्याग करने में चौगुना अवकाश छोड़े। सूर्य आदि के सामने मलमूत्र करने और अपने मल को देखने में भी सूर्य या गौ को देखे। तदनन्तर मूत्रेन्द्रिय पकड़ कर उठकर शौच करे। मूत्रत्याग में शुद्ध मिट्टी एक बार लिंग में, तीन बार बायें हाथ में, दो बार दोनों हाथों में देकर उतनी ही बार जल से धोवे। मूत्र से दूना शौच वीर्य के त्याग में, मैथुन में तिगुना कहा है। मलत्याग में तो लिंग में एक बार, गुदा में तीन बार, बायें हाथ में दस बार, दोनों हाथों में सात सात बार, पैरों में तीन बार मिट्टी लगाकर धोवे। उक्त मिट्टी की शुद्धि से ब्रह्मचर्य में दूनी, संन्यासी को चौगुनी शुद्धि करनी चाहिये। इस प्रकार मिट्टी और जल से जो शुद्धि कही है वह रात में उसकी आधी करनी चाहिये। उसको आधी बीमारी में और इसकी आधी शूद्र, स्त्री और बालकों की होती है।

उक्तसंख्यया गन्धलेपक्षयाभावे यावता तत्क्षयस्तावच्छौचम्। मृदार्द्रामलकमात्रा जलालाभेन शौचविलम्बे सचैलं स्नानम्। यथोक्तशौचाकरणे तु—'गायत्र्यष्टशतं जप्त्वा प्राणायामत्रयं चरेत्'। अथ मूत्रे चत्वारो गण्डूषाः पुरीषे द्वादशाष्टौ वा भोजनान्ते षोडश कार्याः।

कही हुई संख्या से मल आदि का गन्ध और लेप नष्ट न हो तो जितने से वह हटे उतनी बार शुद्धि करे। गीले आंवले के बराबर मिट्टीका प्रमाण है। जल न मिलने से शौच में विलम्ब हो तो वस्त्रसहित स्नान करे। जैसा कहा गया है शुद्धि के न करने पर तो १०८ गायत्रीजप और तीन प्राणायाम करे। मूत्रत्याग में चार, मलत्याग में बारह या आठ कुल्ला करे। भोजन के अन्त में सोलह कुल्ला करना चाहिये।

अथाचमनविधिः

अप्रावृतशिरःकण्ठ उपविष्टः उपवीती प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा अंगुष्ठमूलेन मुक्ताङ्गुष्ठकनिष्ठहस्तेनानुष्णं फेनादिरहितं जलं हृदयगतं[1] त्रिः पिबेत्।

---

१. मनुः—'हृद्गाभिः पूयते विप्रः कण्ठगाभिस्तु भूमिपः। वैश्योऽद्भिः प्राशिताभिस्तु शूद्रः स्पृष्टाभिरन्ततः॥' अर्थात् आचमन करते समय ब्राह्मण हृदयपर्यन्त क्षत्रिय कण्ठ तक वैश्य मुख तक पहुँचे हुये तथा शूद्र ओष्ठ तक स्पर्श हुये जल से शुद्ध हो जाता है। 'देवार्चनादिकार्याणि तथा गुर्वभिवादनम्। कुर्वीत सम्यगाचम्य प्रयतोऽपि सदा द्विजः॥'—

केशवाद्यैस्त्रिभिः पीत्वैकेन दक्षकरं मृजेत् ।
द्वाभ्यामोष्ठौ च संमृज्य एकेनोन्मार्जयेच्च तौ ॥
जलमेकेन संमन्त्र्यैकेन वामकरं मृजेत् ।
एकेन दक्षिणं पादं वाममेकेन चैव हि ॥
संप्रोक्ष्यैकेन मूर्धानमूर्ध्वोष्ठं नासिकाद्वयम् ।
नेत्रयुग्मं श्रोत्रयुग्मं दक्षिणोपक्रमं क्रमात् ॥
नाभि हृदयमूर्धानौ दक्षवामभुजौ स्पृशेत् ।

बिना कंठ और सिर ढके बैठ कर बाएं कन्धे पर यज्ञोपवीत करके पूरब या उत्तर मुख होकर अंगुष्ठ-मूल से अंगुष्ठ-कनिष्ठा-मुक्त हाथ से ठंढे फेन आदि से रहित हृदयपर्यन्त जाने वाले जल को तीन बार पीये। केशव आदि तीन नामों से पीकर एक से दाहिना हाथ धोवे। दो से दोनों ओठ

विश्वामित्र कल्प में आचमन के छ प्रकार हैं—'शुद्धं स्मार्तं तथा चैव पौराणं वैदिकं तथा। तान्त्रिकं श्रौतस्मार्तं च षड्विधं श्रुतिनोदितम् ॥ विण्मूत्रादिकशौचेषु शुद्धं च परिकीर्तितम् । स्मार्ते पौराणिके कर्मण्याचमेद् विधिपूर्वकम् ॥ वैदिकं श्रौतमित्यादि ब्रह्मयज्ञादिपूर्वकम् । अस्त्रविद्यादिकार्याणां तान्त्रिको विधिरुच्यते ॥'—

आह्निककारिका में श्रौताचमन—'प्रणवं पूर्वमुच्चार्य सावित्रीं तदनन्तरम् । तथैव व्याहृतीस्तिस्रः श्रौताचमनमुच्यते ॥' आचारतिलक में वैदिकाचमन—'कर्माङ्गे तु त्रिराचम्य प्राणायामत्रयं स्मृतम् । प्राङ्मुखो वाऽपि कर्तव्यं कर्म कुर्यात् प्रयत्नतः ॥'—

दक्षस्मृत्युक्त स्मार्ताचमन—'प्रक्षाल्य पाणी पादौ च त्रिः पिबेदम्बु वीक्षितम् । संवृत्याङ्गुष्ठमूलेन द्विः प्रमृज्यात्ततो मुखम् ॥ संहृत्य तिसृभिः पूर्वमास्यमेवमुपमुपस्पृशेत् । अङ्गुष्ठेन प्रदेशिन्या घ्राणं पश्चादनन्तरम् ॥ अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां च चक्षुःश्रोत्रे पुनः पुनः । नाभिं कनिष्ठाङ्गुष्ठेन हृदयं तु तलेन वै ॥ सर्वाभिश्च शिरः पश्चाद् बाहू चाग्रेण संस्पृशेत् ॥'—

स्मार्ताचमनप्रयोगः—प्रथमं जलेन करौ प्रक्षाल्य अङ्गुष्ठमूलेन ओष्ठौ सम्मृज्य तेनैव मुखमुन्मार्ज्य जलेन वामकरं सम्प्रोक्ष्य पादौ मूर्धानं च प्रोक्षयेत् । ततः संहतमध्यमाङ्गुलित्रयेण आस्यं संपृश्य द्वाभ्यामङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां नासापुटं संस्पृशेत् । ततो द्वाभ्यामङ्गुष्ठानामिकाभ्यां चक्षुषी संस्पृश्य ताभ्यामेव श्रोत्रे संस्पृश्य कनिष्ठाङ्गुष्ठाभ्यां नाभिं संस्पृश्य पाणितलेन हृदयं शिरः दक्षिणेन बाहुमूले च स्पृशेत् । इदं स्मार्ताचमनं 'द्विराचामः क्रियादिषु' इति वचनाद् द्विराचमने सम्पूर्णमावर्तनीयम् । अशक्तौ आचारार्कः—'त्रिः पीत्वा हस्तं प्रक्षाल्य श्रोत्रं स्पृशेत् ।'—

नित्यकृत्यार्णवे पौराणमाचमनम्—ॐ गोविन्दाय नमः, ॐ विष्णवे नमः, इति द्वाभ्यां करौ प्रक्षाल्य ॐ मधुसूदनाय नमः, ॐ त्रिविक्रमाय नमः इति द्वाभ्यां अङ्गुष्ठमूलेन ओष्ठौ सम्मृज्य ॐ वामनाय नमः, ॐ श्रीधराय नमः इति द्वाभ्यामङ्गुष्ठमूलेन मुखमुन्मर्ज्य ॐ हृषीकेशाय नमः, इति वामकरं प्रोक्ष्य ॐ पद्मनाभाय नमः इति पादौ सम्प्रोक्ष्य ॐ दामोदराय नमः इति मूर्धानं प्रोक्षयेत् । ततः संहतमध्यमाङ्गुलित्रयेण ॐ सङ्कर्षणाय नमः इति आस्यं संस्पृश्य ॐ वासुदेवाय नमः, ॐ प्रद्युम्नाय नमः इति द्वाभ्यामङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां नासापुटे संस्पृश्य ॐ अनिरुद्धाय नमः, ॐ पुरुषोत्तमाय नमः इति द्वाभ्यामङ्गुष्ठानामिकाभ्यां चक्षुषी संस्पृश्य ॐ अधोक्षजाय नमः, ॐ नारसिंहाय नमः इति द्वाभ्यामङ्गुष्ठानामिकाभ्यां श्रोत्रे संस्पृश्य ॐ अच्युताय नमः इति कनिष्ठाङ्गुष्ठाभ्यां नाभिं संस्पृश्य ॐ जनार्दनाय नमः इति पाणितलेन हृदयं स्पृष्ट्वा ॐ उपेन्द्राय नमः इति शिरः संस्पृश्य ॐ हरये नमः, ॐ कृष्णाय नमः इति द्वाभ्यां दक्षिणवामबाहुमूले च स्पृशेत् । इति ।

धोकर एक से दोनों ओठ शुद्ध करे। एक से जल को अभिमन्त्रण कर एक से बायां हाथ शुद्ध करे। एक से दाहिना और एक से बायां पैर शुद्ध करे। अच्छी प्रकार पोंछ कर एक से सिर को ऊपर के ओठ को, दोनों नाक के छेद को, दोनों नेत्र को और दोनों कानों को क्रम से दक्षिण से प्रारम्भ कर नाभि हृदय, सिर, दाहिने और बाएं हाथ का स्पर्श करे।

केचित्—केशवाद्यैस्त्रिभिः पीत्वा द्वाभ्यां प्रक्षालयेत्करौ।
गण्डोष्ठौ मार्जयेद् द्विर्द्विरेकैकं पाणिपादयोः॥ यद्वा
ओष्ठं मार्ज्योन्मृजेद् द्विर्द्विरेकैकं पाणिपादयोः। शेषं प्राग्वदित्याहुः।

तत्रोर्ध्वोष्ठस्यांगुल्यग्रैः स्पर्शः, अंगुष्ठतर्जनीभ्यां नासिकयोः, अंगुष्ठानामिकाभ्यां नेत्रयोः, अंगुष्ठकनिष्ठिकाभ्यां कर्णयोर्नाभेश्च, तलेन हृदयस्य, पाणिना मूर्ध्नः, अंगुल्यग्रैर्भुजयोः, एतावदाचमनविधावशक्तस्त्रिः पीत्वा करं प्रक्षाल्य दक्षिणकर्णं स्पृशेत्। कांस्यायःसीसत्रपुपित्तलपात्रैर्नाचामेत्। श्रौताचमनं तु देव्यास्त्रयः पादा आपोहिष्ठेति नवपादाः सप्तव्याहृतयो देवीपादत्रयं द्वेधा विभक्तं देवीशिरश्चेति चतुर्विंशतिस्थानानि।

कुछ लोग—केशव आदि तीन मन्त्रों से जल पीकर और केशव आदि दो मन्त्रों से हाथ धोकर गाल और ओठ की दो दो बार शुद्धि करे और हाथ पैर की एक एक बार। अथवा ओठ की शुद्धि करके दो दो बार फिर धोवे और एक एक बार हाथ पैर को धोवे, शेष पहिले के समान है, ऐसा कहते हैं। उसमें ऊपर के ओठ को अंगुली के अग्रभागसे स्पर्श करे। अंगूठा तथा तर्जनी से नाक का स्पर्श करे। अंगुष्ठ और अनामिका से नेत्र का स्पर्श करे। अंगुष्ठ तथा कनिष्ठिका से कान और नाभि का स्पर्श करे। हृदय का अंगुष्ठ-तल से स्पर्श करे। हाथ से सिर का स्पर्श करे। अंगुली के अग्रभाग से दोनों हाथों का स्पर्श करे। इतना आचमन करने में अशक्त जन तीन बार जलपीकर हाथ धोकर दाहिने कान का स्पर्श करें। कांसा, लोहा, शीशा, त्रपु तथा पित्तल के पात्रों से आचमन न करे। श्रौत-आचमन तो देवी के तीन पाद, आपोहिष्ठा के नव पाद, सातों व्याहृतियाँ देवी के तीन पाद और इनको दो विभाग करके देवी का सिर; ये चौबीस स्थान हैं।

अथाचमननिमित्तानि

कर्म कुर्वन्नधोवायुनिःसरणेऽश्रुपाते क्रोधे मार्जारस्पर्शे क्षुते वस्त्रपरिधाने रजकाद्यन्त्यजदर्शने आचामेत्। स्नात्वा पीत्वा भुक्त्वा सुप्त्वा चाचामेत्[1]। विण्मूत्ररेतःशौचान्ते आचामेत्। सर्वत्राचमनासंभवे दक्षिणकर्णस्पर्शः। दन्तलग्नान्नं मृदूपायेन निर्हरेत्, रक्तनिर्गमे दोषोक्तेः। दन्तलग्नं च दन्तवत्। तस्यान्नस्य कालान्तरे निर्गमे आचमनम्।

---

१. आह्निककारिकायाम्—'प्रणवं पूर्वमुच्चार्य चतुर्विंशतिसंख्यया। स्वाहान्तं प्राशयेद्वारि नमोऽन्तं स्पर्शयेत्तथा॥ स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्त्वा रथ्यापसर्पणे। आचान्तः पुनराचामेद् वासस परिधाय च॥ दक्षिणेनोदकं पेयं दक्षं वामेन संस्पृशेत्। तावन्न शुद्ध्यते तोयं यावद्वामो न युज्यते॥ गोकर्णाकृतिहस्तेन माषमात्रं जलं पिबेत्।' इति।

वामहस्तस्थिते दर्भे दक्षिणेन न चाचमेत् ।
करद्वयस्थिते दर्भे आचामेत्सोमपो भवेत् ॥
न चोच्छिष्टं पवित्रं तद्भुक्ते पित्र्ये च संत्यजेत् । विण्मूत्रोत्सर्गे च त्यजेत् ।

कर्म करते हुए अधोवायु के निकलने पर आंसू गिरने पर क्रोध में बिलार के स्पर्श में, छींकने, धोती पहनने और रजक आदि अन्त्यज के देखने पर आचमन करे । सब जगह आचमन संभव न हो तो दाहिने कान का स्पर्श करे । स्नान करने, जल पीने, भोजन करने और सोने के बाद आचमन करे । दांत में लगा हुआ अन्न कोमल उपाय से निकाले, क्योंकि खून निकलने पर दोष कहा है । दांत में लगा हुआ दांत की तरह होता है । उस अन्न के दूसरे समय में निकलने पर आचमन करे । बाएं हाथ में कुश रहे तो दाहिने हाथ से आचमन करे । दोनों हाथ में कुश रक्खे आचमन करे तो वह सोम पीने वाला होता है और वह पवित्र उच्छिष्ट नहीं होता । भोजन में और पितृकर्म में उसका त्याग करे । मल-मूत्र त्याग में भी उसका त्याग करे ।

अथ दन्तधावनम्

'कण्टकिक्षीरवृक्षापामार्गादिकाष्ठैः कार्यम् । काष्ठालाभे श्राद्धोपवासादिनिषिद्धदिने च पर्णादिना प्रदेशिनीवर्ज्याङ्गुल्या वा द्वादशगण्डूषैर्वा दन्तान् शोधयेत् ।

कांटे और दूध वाले वृक्ष तथा अपामार्ग आदि काष्ठ से दन्तधावन करे । काष्ठ न मिलने पर श्राद्ध में, उपवास आदि निषिद्ध दिनों में पत्ते आदि से या प्रदेशिनी को छोड़ कर भिन्न अंगुली से या बारह कुल्ला करके दांतों को शुद्ध करे ।

अथ संक्षेपतः स्नानविधिः

नद्यादौ गत्वा शिखां[2] बध्वा जानूर्ध्वंजले तिष्ठन्नन्यथा तूपविश्याचम्य 'मम

---

१. नागदेवोक्त दन्तधावनकाष्ठ—'करञ्जोदुम्बरौ चूतः कदम्बो लोध्रचम्पकौ । बदरीति द्रुमाश्चैते प्रोक्ता दन्तप्रधावने ॥' वाचस्पतिः—'अथो मुखविशुद्ध्यर्थं गृह्णीयाद्दन्तधावनम् । आचान्तोऽप्यशुचिर्यस्मादकृत्वा दन्तधावनम् ॥ आम्राम्रातकधात्रीजमङ्कोटखदिरोद्भवम् । शम्यपामार्गखर्जूरीशेलुश्रीपर्णिपीलुजम् ॥ राजादनं च नारङ्गं कषायं कटुकण्टकम् । क्षीरवृक्षोद्भवं वाऽपि प्रशस्तं दन्तधावने ॥'

दन्तधावन काष्ठ के नृसिंहपुराणोक्त गुण—'तिन्तिणिर्वेणुपृष्ठं च आम्रनिम्बौ तथैव च । सर्जे धैर्यं वटे दीप्तिः करञ्जे विजयो रणे ॥ प्लक्षजे चार्थसम्पत्तिर्बदर्यां मधुरः स्वरः । खादिरे चैव सौभाग्यं बिल्वे तु विपुलं धनम् ॥ उदुम्बरे च वाक्सिद्धिर्बन्धूके च दृढा मतिः । रौध्रे च कीर्तिः सौभाग्यं पालाशे सिद्धिरुत्तमा ॥ कदम्बे सकला लक्ष्मीराम्रे आरोग्यमेव च । अपामार्गे स्मृतिर्मेधा प्रज्ञा वाणी वपुर्धृतिः ॥ आयुः शीलं यशो लक्ष्मीः सौभाग्यं च प्रजायते । अर्केण हन्ति रोगांस्तु बीजपूरेण तु व्यथाम् ॥ दाडिमे सिन्दुवारे च उटजे कुटजे तथा । जाती च करमर्द्दा च दुःस्वप्नं नाशयेदिति ॥ ककुभेन तथाऽऽयुष्मान् भवेत् पलितवर्जितः । तस्माच्छुष्कं तथार्द्रं वा भक्षयेद्दन्तधावनम् ॥'

दन्तधावन का वर्ज्य काल—'श्राद्धे जन्मदिने चैव विवाहेऽजीर्णसम्भवे । व्रते चैवोपवासे च वर्जयेद्दन्तधावनम् ॥' विष्णुः—'प्रतिपद्दर्शषष्ठीषु चतुर्दश्यष्टमीषु च । नवम्यां भानुवारे च दन्तकाष्ठं विवर्जयेत् ॥' नारदः—'चतुर्दश्यष्टमी पौर्णमासी संक्रमणेषु च । नन्दासु च नवम्यां च दन्तकाष्ठं विवर्जयेत् ॥ वसिष्ठः—'शन्यर्कशुक्रवारेषु कुजादे व्रतवासरे । जन्माहे श्राद्धदिवसे दन्तकाष्ठं विवर्जयेत् ॥' व्यासः—'अलाभे दन्तकाष्ठानां निषिद्धायां तथा तिथौ । अपां द्वादशगण्डूषैर्विदध्याद्दन्तधावनम् ॥' यद्वा 'तृणपर्णोदकैरङ्गुल्या वा दन्तान् धावयेत् ॥' इति ।

२. स्नानादि में ग्रन्थान्तरोक्त शिखाबन्धन का विचार—'स्नाने दाने जपे होमे सन्ध्यायां

कायिकवाचिकमानसिकदोषनिरसनपूर्वकं सर्वकर्मसुशुद्धिसिद्ध्यर्थं प्रातःस्नानं[1] करिष्ये' इति संकल्प्य जलं नत्वा प्राङ्मुखः प्रवाहाभिमुखो वा त्रिरवगाह्याङ्गानि निमृज्य स्नात्वा द्विराचम्यापोहिष्ठेति मार्जनं कृत्वा इमं मे गंगे इति त्रिर्जलमालोड्याघमर्षणं त्रिरावृत्तेन ऋतं चेति सूक्तेन कात्यायनैर्द्रुपदेति ऋचा जलनिमग्नतया कृत्वाऽऽप्लुत्याचम्य जलतर्पणं कुर्यान्न वा।

नदी आदि में जाकर शिखा बांध कर ठेहुनी भर से अधिक जल में खड़े होकर, नहीं तो बैठकर आचमन करके 'मेरे कायिक वाचिक और मानसिक दोष निवृत्तिपूर्वक सब कर्मों में शुद्धि के लिये प्रातःस्नान करूँगा' ऐसा संकल्प कर जल को प्रणाम कर पूर्वाभिमुख अथवा प्रवाहाभिमुख तीन बार डुबकी लगाकर अंगों को मल कर स्नान करके दो बार आचमन करके 'आपोहिष्ठा' इस मन्त्र से मार्जन करके 'इमं मे गंगे' इस मन्त्र से तीन बार जल का आलोड़न और 'ऋतं च' इस सूक्त से तीन आवृत्ति करके अघमर्षण करें। कात्यायन वाले 'द्रुपदा' इस ऋचा से जल में गोता लगा निकल कर आचमन करके जल से तर्पण करे या न करे।

तदित्थम्—उपवीती ब्रह्मादयो ये देवास्तान्देवांस्त० भूर्देवानित्यादि। निवीती कृष्णद्वैपायनादयो ये ऋषयस्तानित्यादि। प्राचीनावीती सोमः पितृमान्यमोऽङ्गिरस्वानग्निष्वात्तादयो ये पितरस्तानित्यादि। एकनद्यां स्नाने अन्यां

देवतार्चने। शिखाग्रन्थिं विना कर्म न कुर्याद्वै कदाचन॥' शिखामुक्ति का विचार—'शौचेऽथ शयने सङ्गे भोजने दन्तधावने। शिखामुक्तिं सदा कुर्यादित्येतन्मनुरब्रवीत्॥' इति।

१. हरिहरभाष्ये—'नदीषु देवखातेषु प्रातः स्नायाद्दिने दिने। तदभावे तडागे वा कूपे स्नानं समाचरेत्॥ उत्तमं तु नदीस्नानं तडागे मध्यमं स्मृतम्। कूपस्नानं तु सामान्यं भाण्डस्नानं वृथा वृथा॥' अग्निपुराणे—'नदीदेवनिखातेषु तडागेषु सरस्सु च। स्नानं समाचरेन्नित्यं गर्तप्रस्रवणेषु च॥ निपानादुद्धृतं पुण्यं ततः प्रस्रवणोदकम्। ततोऽपि सारसं पुण्यं ततो नादेयमुच्यते॥ तीर्थतोयं ततः पुण्यं गङ्गातोयं ततोऽधिकम्।'—

दक्षोक्त स्नानकाल—'प्रातःस्नानं चरित्वाऽथ शुद्धे तीर्थे विशेषतः। प्रातःस्नानाद् यतः शुद्ध्येत् कायोऽयं मलिनः सदा॥ नोपसर्पन्ति वै दुष्टाः प्रातःस्नायिजनं क्वचित्। दृष्टादृष्टफलं तस्मात् प्रातःस्नानं समाचरेत्॥'—

याज्ञवल्क्योक्त प्रातःस्नान का फल—'गुणा दश स्नानपरस्य साधो रूपं च तेजश्च बलं च शौचम्। आयुष्यमारोग्यमलोलुपत्वं दुःस्वप्ननाशश्च यशश्च मेधा॥ नागदेवः—'अगम्यागमनाच्चैव पापेभ्यश्च परिग्रहात्। रहस्यचरितात् पापान्मुच्यते स्नानयोगतः॥' प्रातः स्नान के विशेष फल आयुर्वेदीय ग्रन्थों में देखें।—

प्रातःस्नान नहीं करने पर योगियाज्ञवल्क्योक्त दोष—'स्नानमूलाः क्रियाः सर्वाः श्रुतिस्मृत्युदिता नृणाम्। तस्मात् स्नानं निषेवेत श्रीपुष्ट्यारोग्यवर्धनम्॥' मार्कण्डेयपुराण में शिरःस्नान के विषय—'शिरःस्नानं प्रकुर्वीत दैवं पित्र्यमथापि वा। उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा'। पारस्कर के हरिहर भाष्य में आकण्ठ स्नान के विषय—'जटिलस्य शिरोरोगिणश्चाकण्ठमज्जनं स्नानम्। सभर्तृकयोषितां च ग्रहणादिनिमित्तं गङ्गादितीर्थेषु संक्रान्त्यादिपर्वनिमित्तं च फलप्रदम्।' स्मृत्यन्तर में मङ्गल स्नान—'सर्वौषधी कृष्णतिलागन्धमामलकैस्तथा। सुगन्धिना चम्पकादि तैलं युक्तं सचूर्णकैः। उद्वर्त्याङ्गानि चूर्णं तद् मङ्गलस्नानमाचरेत्।' विष्णुः—'माङ्गल्यं विद्यते स्नानं वृद्धिपूर्तमहोत्सवे। स्नेहमात्रसमायुक्तं मध्याह्नात्प्राक् तदिष्यते॥'

नदीं न स्मरेत्। अत्र तैत्तिरीयादिभिस्तर्पणे ऋष्यादीनां नामान्तराण्युक्तानि। संक्षेपविधौ तस्य तर्पणस्य कृताकृतत्वान्नोक्तानि।

वह इस प्रकार करे—सव्य होकर ब्रह्मा आदि जो देवता हैं उन देवताओं का तर्पण करता हूँ। 'भूर्देवान्' इत्यादि करे। गले में यज्ञोपवीत करके द्वैपायन आदि जो ऋषि हैं उनका तर्पण करता हूँ इत्यादि। अपसव्य होकर सोमः पितृमान्, यमोंगिरस्वान्, अग्निष्वात्ता आदि जो पितर हैं उनका तर्पण करता हूँ इत्यादि। एक नदी में स्नान करे तो दूसरी नदी का स्मरण न करे। इसमें तैत्तिरीय आदि के द्वारा ऋषि आदि के दूसरे नाम कहे हैं। संक्षिप्त-विधि में उस तर्पण का करना न करना समान होने से नहीं कहा है।

अथ गृहे उष्णोदकेन स्नानं न तु शीतोदकेन। तद्विधिश्च—पात्रे शीतोदकं प्रक्षिप्य तदुपरि उष्णोदकेनापूर्य ॐ शंनो देवी०। ॐ आपः पुनंतु०। ॐ द्रुपदादिव०। ॐ ऋतं च०। ॐ आपोहिष्ठेति पंचभिर्ऋग्भिरभिमन्त्र्य इमं मे इत्यादिना तीर्थानि स्मरन् स्नायात्। गृहे स्नाने संकल्प आचमनमघमर्षणं तर्पणं च न। अन्ते आचमनं मार्जनं च कार्यम्।

घर में गर्म जल से स्नान करे न कि ठंढे जल से। उसकी विधि—पात्र में ठंढा जल रख कर उसके ऊपर गर्म जल से भर कर उसको 'ॐ शन्नो देवी०, ॐ आपः पुनन्तु०, ॐ द्रुपदादिव०, ॐ ऋतं च० और 'ॐ आपोहिष्ठा' इन पांच ऋचाओं से अभिमन्त्रित करके 'इमं मे' इत्यादि मन्त्र से तीर्थों का स्मरण करते हुए स्नान करे। घर में स्नान करने में संकल्प, आचमन, अघमर्षण और तर्पण नहीं है। स्नान के अन्त में आचमन और मार्जन करे।

अथ वस्त्रधारणविधिः

एवं स्नात्वा वस्त्रेण पाणिना वा जलापनयनमकृत्वा शुष्कं शुभ्रकार्पासवस्त्रं परिधाय स्नानार्द्रवस्त्रमूर्ध्वंत उत्तारयेत्[१]। विकच्छोऽनुत्तरीयश्च नग्नश्चावस्त्र एव च श्रौतस्मार्तं नैव कुर्यात्। द्विगुणवस्त्रो [२]दग्धवस्त्रः स्यूतग्रथितवस्त्रः काषायवस्त्रा-

---

१. आह्निककारिकासु – 'गृहस्नानं यदा कुर्याद् वस्त्रमूर्ध्वं परित्यजेत्। अधोग्रेण च सम्पीड्य पराशरवचो यथा॥ स्नानं कृत्वार्द्रवस्त्रं च ऊर्ध्वमुत्तारयेद् द्विजः। आर्द्रवस्त्रमधः क्षिप्त्वा पुनः स्नानेन शुद्ध्यति॥' इति।

२. आपस्तम्बः—'न स्यूतेन न दग्धेन पारक्येण विशेषतः। मूषकोत्कीर्णजीर्णेन कर्म कुर्याद् विचक्षणः॥' दक्षः—'ईषद्धौतं स्त्रिया धौतं शूद्रधौतं तथैव च। प्रसारितं यमदिशि गर्हितं सर्वकर्मसु॥' आह्निककारिकासु—'आर्द्रवासा जले कुर्यात्तर्पणाचमनं जपम्। शुष्कवासाः स्थले कुर्यात्तर्पणाचमनं जपम्॥ नानारङ्गविराजितं गतदशं कौशोद्भवं वासितं नीलीरङ्गसमन्वितं च समलं नैवायतं चास्ति यत्। दग्धं चैव च खण्डितं च बहुधा युद्धादिकैश्चित्रितं तद्वर्ज्यं खलु देवपूजनविधौ वस्त्रं कुसुम्भारुणम्॥ 'नीलीरक्तं च यद्वस्त्रं दूरतः परिवर्जयेत्। द्रव्यान्तरयुतानीली न दुष्यति कदाचन॥' 'कम्बले पट्टवस्त्रे च नीलीदोषो न विद्यते। स्त्रिया वस्त्रं सदा त्याज्यमन्यवस्त्रं विवर्जयेत्॥' वृद्धमनुः—'खण्डवस्त्रावृतश्चैव वस्त्रार्धालम्बितस्तथा। उत्तरीयव्यपेतश्च तत्कृतं निष्फलं भवेत्॥' गौतमः—'एकवस्त्रो न भुञ्जीत श्रौते स्मार्ते च कर्मणि। न कुर्याद्देवकार्याणि दानं होमं जपं तथा॥' आपस्तम्बः—'आर्द्रवासा तु यः कुर्याज्जपहोमप्रतिग्रहान्। सर्वं तद् राक्षसं विद्याद् बहिर्जानु च यत्कृतम्॥' इति।

दयो दिगम्बरश्च नग्नाः। निष्पीडितं वस्त्रं न स्कन्धे क्षिपेत्। चतुर्गुणीकृत्य वस्त्रं गृहेऽधोदशं नद्यामूर्ध्वदशं स्थले निष्पीडयेद, न तु त्रिगुणम्। उत्तरीयं जीवत्पितृकजीवज्ज्येष्ठभ्रातृकैर्नं धार्यम्। प्रावारवस्त्रं तु सर्वैर्धार्यम्। इति प्रातर्नित्यस्नानम्।

इस प्रकार स्नान करके वस्त्र से या हाथ से जल न हटाते हुए सूखे श्वेत कपास का वस्त्र पहिन कर स्नान से गीले वस्त्र को ऊपर से उतार ले। विना कच्छ के, विना उत्तरीय के, नंगे होकर वस्त्र न पहनते हुए श्रौत तथा स्मार्त कर्म न करे। दोहरा वस्त्र, जला हुआ, सीया हुआ, गांठ दिया हुआ, काषाय से रंगा हुआ वस्त्र आदि और दिगम्बर नंगे ही कहलाते हैं। निचोड़ा हुआ वस्त्र कन्धे पर न रखे। वस्त्र को दोहरा कर नीचे किनारी करके घर या नदी में स्नान करने पर ऊपर किनारी करके स्थल में निचोड़े, तेहरा न करे। जिसके पिता और जेठे भाई जीते हों उसको उत्तरीय (दुपट्टा) नहीं धारण करना चाहिये। कमर के ऊपर के वस्त्र तो सबको धारण करना चाहिये। प्रातः नित्यस्नान समाप्त।

अथ स्नाननिमित्तानि

मध्याह्नस्नानमपि नित्यमित्यन्ये। चण्डालसूतकिसूतिकोदक्याचितिकाष्ठशवचण्डालच्छायादिस्पर्शे स्नानम्। चाण्डालादिस्पर्शिनमारभ्य तत्स्पृष्टस्पृष्टेषु तृतीयपर्यन्तं सचैलं स्नानम्। चतुर्थस्याचमनमात्रम्। तदूर्ध्वं प्रोक्षणम्। द्वितीयादेर्दण्डतृणाद्यन्तरितस्पर्शे त्वाचमनमेव। वस्त्रान्तरितः साक्षात्स्पर्श एवेति तत्र चतुर्थस्यैवाचमनम्। नैमित्तिकस्नानं रात्रावपि।

मध्याह्न-स्नान भी नित्य है, ऐसा कोई कहते हैं। चाण्डाल, सूतकी, प्रसूती, रजस्वला, चिता का काष्ठ, मुर्दा और चाण्डाल आदि की छाया के स्पर्श में स्नान करे। चाण्डाल आदि को स्पर्श करने वाले से लेकर उसको स्पर्श करने वाला और उसको भी स्पर्श करने वाला इस प्रकार तृतीयपर्यन्त वस्त्रसहित स्नान करे। चौथे को केवल आचमन करना चाहिये। उसके बाद वाले प्रोक्षण करें। दूसरे आदि का छड़ी-तृण आदि के अन्तर से स्पर्श करने पर आचमन ही है। वस्त्र से अन्तर होने पर साक्षात् स्पर्श ही होता है इसलिये उसमें चौथे ही को आचमन है। नैमित्तिकस्नान रात में भी होता है।

मृते जन्मनि संक्रान्तौ श्राद्धे जन्मदिने तथा।
अस्पृश्यस्पर्शने चैव न स्नायादुष्णवारिणा[1]॥

नैमित्तिके जलतर्पणादिविधिर्न। नित्यस्नानमकृत्वा भुक्तौ उपवासः। ग्रहसंक्रान्त्यादिनैमित्तिकस्नानमकृत्वा भोजने पाने अष्टसहस्रजपः। शूद्रादिस्पर्शनिमित्ते उपवासः। श्वकाकचण्डालादिस्पर्शे स्नानमकृत्वा भुक्तौ पाने च त्रिरात्रम्। रजकादिस्पर्शे तदर्धम्। इति नैमित्तिकस्नानम्।

---

१. वृद्ध मनु की विशेषोक्ति है—'संक्रान्त्यां रविवारे च सप्तम्यां राहुदर्शने। आरोग्ये पुत्रमित्रार्थे न स्नायादुष्णवारिणा॥' रोगग्रस्त हो तो ग्रहण में उष्ण जल से स्नान करे जैसा व्याघ्र ने बतलाया है—'आदित्यकिरणैः पूतं पुनः पूतं च वह्निना। अतो व्याध्यातुरः स्नायाद् ग्रहणेऽप्युष्णवारिणा॥' इति।

मरण, जन्म, संक्रान्ति, श्राद्ध, जन्मदिन और अस्पृश्य के स्पर्श करने में गर्म जल से न नहाये। नैमित्तिक-स्नान में जलतर्पण आदि विधि नहीं है। नित्य-स्नान न करके भोजन करने पर उपवास करे। ग्रहण, संक्रान्ति आदि नैमित्तिक-स्नान न करके खाने पीने में आठ हजार जप करे। शूद्र आदि के स्पर्श-निमित्त में उपवास करे। कुत्ता, कौवा, चाण्डाल आदि के स्पर्श में विना नहाये खाने पीने में तीन रात्रि का उपवास है। धोबी आदि के स्पर्श में उसका आधा डेढ़ दिन उपवास है। नैमित्तिकस्नान समाप्त।

अथ काम्यस्नानम्

दर्शव्यतीपातरथसप्तम्यादौ स्नानं कार्तिकस्नानमाघस्नानादिकं च काम्यम्। इति जलावगाहादिरूपवारुणस्नानानि।

अमावास्या, व्यतीपात, रथसप्तमी आदि में स्नान और कार्तिक माघ स्नान आदि काम्य स्नान है। यह जल में अवगाह आदि रूप वारुण-स्नान है।

अथ गौणस्नानानि

आपोहिष्ठादिभिर्मन्त्रैः प्रोक्षणं [1]मन्त्रस्नानम्। गायत्र्या दशकृत्वो जलमभिमन्त्र्य तेन सर्वाङ्गप्रोक्षणं गायत्रम्। भस्मस्नानमाग्नेयम्। आर्द्रवस्त्रेणाङ्गमार्जनं कापिलम्। विष्णुपादोदकविप्रपादोदकप्रोक्षणविष्णुध्यानादिभिश्च स्नानान्तराणि। गौणस्नानैर्जपसंध्यादौ शुद्धिर्न तु श्राद्धदेवार्चनादौ। ब्रह्मयज्ञे विकल्पः।

'आपोहिष्ठा' इत्यादि मन्त्रों से अंग का पोछना 'मन्त्र' स्नान होता है। गायत्री से दस बार जल का अभिमन्त्रण कर उस जल से सर्वांग का प्रोक्षण 'गायत्र' स्नान कहलाता है। भस्म से स्नान करना 'आग्नेय' स्नान है। गीले वस्त्र से अंग का मार्जन 'कापिल' स्नान है। विष्णु के चरणोदक और ब्राह्मण के पादोदक से प्रोक्षण करना तथा विष्णु के ध्यान आदि से भी अन्य स्नान कहे गये हैं। गौण स्नान से जप सन्ध्या आदि में शुद्धि होती है, श्राद्ध और देवपूजन आदि में शुद्धि नहीं नहीं होती। ब्रह्मयज्ञ में विकल्प है।

अथ तिलकविधिः

प्रातः पुण्ड्रं मृदा कुर्याद्धुत्वा चैव तु भस्मना। मृदश्च गोपीचन्दनतुलसीमूल-

---

१. प्रत्यक्ष स्नान के अभाव में नागदेवोक्त मन्त्रादि स्नान—'असामर्थ्याच्छरीरस्य देशकालाद्यपेक्षया। मन्त्रस्नानादिकाः सप्त केचिदिच्छन्ति सूरयः॥' योगि-याज्ञवल्क्यः—'मान्त्रं भौमं तथाऽऽग्नेयं वायव्यं दिव्यमेव च। वारुणं मानसं चैव सप्त स्नानान्यनुक्रमात्॥ आपोहिष्ठादिभि'र्मान्त्रं' मृदालम्भं च 'पार्थिवम्'। 'आग्नेयं' भस्मना स्नानं 'वायव्यं' गोरजः स्मृतम्॥ यत्तु सातपवर्षेण स्नानं त'द्दिव्य'मुच्यते। 'वारुणं' चावगाहं त 'मानसं' ह्यात्मचिन्तनम्॥' व्याससंहितायाम्—'आर्द्रेण वाससा वाङ्गमार्जनं 'कापिलं' स्मृतम्। अप्राशस्त्ये समुत्पन्ने स्नानमेव समाचरेत्॥ 'ब्राह्मं' तु मार्जनं मन्त्रैः कुशैः सोदकबिन्दुभिः। 'यौगिकं' स्नानमाख्यातं योगोऽयं विष्णुचिन्तनम्॥'—

जाबालिः—'अशिरस्कं भवेत् स्नानं स्नानाशक्तौ तु कर्मिणाम्। आर्द्रेण वाससा वाऽपि मार्जनं दैहिकं विदुः॥ ज्वराभिभूता या नारी रजसा च परिप्लुता। कथं तस्या भवेच्छौचं शुद्धिः स्यात्केन कर्मणा॥ चतुर्थेऽहनि सम्प्राप्ते स्पृशेदन्यां तु तां स्त्रियम्। सा सचैलाऽवगाह्यापः स्नात्वा स्नात्वा पुनः स्पृशेत्॥ दशद्वादशकृत्वो वा आचामेच्च पुनः पुनः। अन्ते च वाससां त्यागस्तथा शुद्धा भवेत्तु सा॥' इति।

सिन्धुतीरजाह्नवीतीरवल्मीकादिस्थाः । 'ललाटोदरहृदयकण्ठे दक्षिणपार्श्वबाहुकर्णदेशे पृष्ठे ककुदि चेति द्वादशस्थानेषु शुक्ले केशवादिनामभिः कृष्णपक्षे संकर्षणादिनामभिः शिरसि वासुदेवेति मृदा तिलको विधेयः ।

प्रातःकाल मिट्टी से और होम के बाद भस्म से पुण्ड्र करे । गोपीचन्दन, तुलसी की जड़ की, समुद्र के तीर की, भागीरथी-तट की और बल्मीक की मिट्टी से ललाट, पेट, छाती, कण्ठ, दाहिने तरफ के बाहु-कान, बायें तरफ के बाहु और कान, पीठ और ककुत् में इस प्रकार बारह स्थानों में तिलक करे । शुक्लपक्ष में केशव आदि नामों से और कृष्णपक्ष में संकर्षण आदि नामों से, सिर में वासुदेव इस नाम से मृत्तिका से तिलक करना चाहिये ।

अथ भस्मत्रिपुण्ड्रः

श्राद्धे यज्ञे जपे होमे वैश्वदेवे सुरार्चने ।
भस्मत्रिपुण्ड्रैः पूतात्मा मृत्युं जयति मानवः ।[1]

भस्म गृहीत्वा अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म व्योमेति भस्म सर्वँ् हवा इदं भस्म मन एतानि चक्षुँ्षि भस्मानीति मन्त्रेणाभिमन्त्र्य जलमिश्रितेन मध्यमाङ्गुलित्रयगृहीतेन ललाटहृदयनाभिगलांसबाहुसंधिपृष्ठशिरःस्थानेषु शिवमन्त्रेण नारायणाष्टाक्षरेण वा गायत्र्या वा प्रणवेन वा त्रिपुण्ड्रान्कुर्यात् ।

श्राद्ध, यज्ञ, जप, होम, वैश्वदेव और देवपूजा में भस्म के त्रिपुण्ड्र लगाने से पवित्रात्मा मनुष्य मृत्यु को जीतता है । भस्म को लेकर 'अग्निरिति भस्म, वायुरिति भस्म' इत्यादि मूलोक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित कर जल से मिली हुई मध्यमा आदि तीन अंगुलियों से भस्म लेकर ललाट, हृदय, नाभि, गला, कन्धा, बाहु की सन्धि, पीठ और सिर में शिव के मन्त्र से या अष्टाक्षर नारायण मन्त्र से या गायत्री से या प्रणव से, किसी एक से त्रिपुण्ड्र करे ।

अथ संध्याकालः

उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततारका ।
अधमा सूर्यसहिता प्रातःसंध्या त्रिधा[2] मता ॥

---

१. स्मृतिरत्नावल्याम्—'ललाटे हृदये नाभौ गलेऽसे बाहुसन्धिषु । पृष्ठदेशे शिरस्येवं स्थानेष्वेतेषु धारयेत् ॥' काशीखण्डे—'भ्रुवोर्मध्यं समारभ्य यावदन्तो भवेद् भ्रुवोः । मध्यमानामिकाङ्गुल्योर्मध्ये तु प्रतिलोमतः ॥ अङ्गुष्ठेन कृता रेखा त्रिपुण्ड्रः सोऽभिधीयते ।' कात्यायनः—'ऊर्ध्वपुण्ड्रं मृदा कुर्याद् भस्मना तु त्रिपुण्ड्रकम् । उभयं चन्दनेनैव अभ्यङ्गोत्सवरात्रिषु ॥ तिलकं कुङ्कुमेनैव सदा मङ्गलकर्मणि । कारयित्वा सुमतिमान् न श्वेतचन्दनादिना ॥' प्रयोगपारिजाते—'मृद्भस्म चन्दनं प्रोक्तं तोयं चैव चतुर्थकम् । स्नात्वा पुण्ड्रं मृदा कुर्यात् प्रक्षाल्यैव तु भस्मना ॥ देवानभ्यर्च्य गन्धेन जलमध्ये जलेन तु ।' इति ।

२. नागदेवोक्त सन्ध्याकाल—'सूर्योदयात् पूर्वं द्वे घटिके सन्ध्याकालः ।' अत्रिस्मृतौ—'सन्ध्याकालः प्रागुदयाद् विप्रस्य द्विमुहूर्तकः । क्षत्रियस्य तदर्धं स्यात्तदर्धं स्याद्विशोऽप्युत ॥' याज्ञवल्क्योक्त सन्ध्या का मन्त्रक्रम—'ओङ्कारो व्याहृतिश्चैव गायत्री सशिरा तथा । आपोहिष्ठा ऋच-

उत्तमा सूर्यसहिता मध्यमा लुप्तभास्करा ।
अधमा तारकोपेता सायं संध्या त्रिधा मता ॥
अध्यर्धयामादासायं संध्या माध्याह्निकीष्यते ।

सर्वेषां संध्यात्रयं नद्यादौ बहिरेव प्रशस्तम्। साग्निकस्य तु प्रादुष्करणाद्यनुरोधेन सायं प्रातःसंध्ये गृहे कर्तव्ये ।

प्रातःसन्ध्या-ताराओं से युक्त उत्तमा, तारे लुप्त हो जाने पर मध्यमा और सूर्योदय हो जाने पर अधमा कहलाती है। इसी प्रकार सायंसन्ध्या सूर्य के रहते उत्तमा, सूर्यास्त हो जाने पर मध्यमा, और तारा उग जाने पर अधमा कहलाती है। मध्याह्न सन्ध्या आधे प्रहर से सायं काल तक होती है। सभी के तीनों काल की सन्ध्या नदी आदि में बाहर ही उत्तम होती है। अग्निहोत्री को तो अग्नि का उत्पादन आदि के अनुरोध से सायं प्रातः दोनों सन्ध्याएं घर में करनी चाहिये।

अथ संक्षेपतः सन्ध्याप्रयोगो बह्वृचानाम्

दर्भद्वयकृते पवित्रे ग्रन्थियुते ग्रन्थिरहिते वा हस्तयोर्धृत्वा द्विराचम्य ¹प्राणायामं कुर्यात् । प्रणवस्य परब्रह्मऋषिः परमात्मा देवता दैवीगायत्रीच्छन्दः, सप्तानां

स्तिस्रः सूक्तमेवाघमर्षणम् ॥ आदित्यरक्षणार्थं तु सायं प्रातर्दिने दिने । सृष्टाः स्वयम्भुवा पूर्वं ब्रह्मणस्तन्मुखं स्मृतम् ॥'—

विश्वामित्र कल्प में सन्ध्या का महत्त्व—'विप्रो वृक्षस्तस्य मूलं च सन्ध्या वेदाः शाखा धर्मकर्माणि पत्रम् । तस्मान्मूलं यत्नतो रक्षणीयं छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम् ॥' अत्रि का कहा हुआ सन्ध्या का फल—'सन्ध्यामुपासते ये तु सततं शंसितव्रताः । विधूतपापास्ते यान्ति ब्रह्मलोकं सनातनम् ॥' याज्ञवल्क्यः—'यावन्तोऽस्यां पृथिव्यां हि विकर्मस्थास्तु वै द्विजाः । तेषां वै पावनार्थाय सन्ध्या सृष्टा स्वयम्भुवा ॥ निशायां वा दिवा वाऽपि यदज्ञानकृतं भवेत् । त्रिकालसन्ध्याकरणात् तत्सर्वं हि प्रणश्यति ॥'—

दक्ष ने सन्ध्योपासन नहीं करने वाले का सभी कर्म निष्फल बतलाया है—'सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु । यदन्यत्कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत् ॥' मरीचिः—'सन्ध्या येन न विज्ञाता सन्ध्या येनानुपासिता । जीवमानो भवेच्छूद्रो मृतः श्वा चाभिजायते ॥' मनुः—'न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् । स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥' इति ।

१. याज्ञवल्क्य का कहा प्राणायाम का लक्षण—'सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह । त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥' शौनकः—'नासिकामङ्गुलीभिस्तु तर्जनीमध्यमाहृते । सव्येन तु समाकृष्य दक्षिणेन विसर्जयेत् ॥ प्रणवं व्याहृतीः सप्त गायत्रीं शिरसा सह । त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥' अगस्त्यसंहिता में—'प्राणायामैर्विना यद्यत्कृतं कर्म निरर्थकम् । अतो यत्नेन कर्तव्यः प्राणायामः शुभार्थिना ॥' देवीपुराण में—'श्रुतिस्मृत्यादिकर्मादौ सगर्भः प्राणसंयमः । अगर्भो ध्यानमात्रं तु स चामन्त्रः प्रकीर्तितः ॥' और भी—'प्राणानायम्य कुर्वीत सर्वकर्माणि संयतः । प्राणायामैस्त्रिभिः पूतस्तत ओङ्कारमर्हति ॥'—

अङ्गिराः—'दह्यमानोऽनुतापेन कृत्वा पापानि मानवः । शोचमानस्त्वहोरात्रं प्राणायामैर्विशुद्ध्यति ॥ पीडयेद्दक्षिणां नाडीमङ्गुष्ठेन तथोत्तराम् । कनिष्ठिकानामिकाभ्यां मध्यमां तर्जनीं त्यजेत् ॥ नीलोत्पलदलश्यामं नाभिमध्ये प्रतिष्ठितम् । चतुर्भुजं महात्मानं पूरके चिन्तयेद्धरिम् ॥' याज्ञवल्क्योक्त प्राणायाम की विधि—'नासापुटेनानिलमेव बाह्यमाकृष्य तेनैव शनैः समस्तम् । नाडीषु सर्वासु च पूरयेद्यः स 'पूरको' नाम महान्निरोधः ॥ न रेचकं नैव तु पूरकं वा नासाग्रभागे स्थितमेव

व्याहृतीनां विश्वामित्रजमदग्निभरद्वाजगौतमात्रिवसिष्ठकश्यपा ऋषयः, अग्निवाय्वादित्यबृहस्पतिवरुणेंद्रविश्वेदेवा देवताः, गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपंक्तित्रिष्टुब्जगत्यश्छन्दांसि, गायत्र्या विश्वामित्रऋषिः सवितादेवता गायत्रीच्छन्दः, गायत्रीशिरसः प्रजापतिर्ऋषिः ब्रह्माग्निवाय्वादित्या देवताः यजुश्छन्दः प्राणायामे विनियोगः।

दो कुश के बनाये पवित्र में ग्रन्थियुक्त हो या ग्रन्थिरहित हो दोनों होथों में धारण कर दो आचमन करके प्राणायाम करे। प्रणव का परब्रह्म ऋषि, परमात्मा देवता, दैवी गायत्री छन्द है, सातों व्याहृतियों के विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, वशिष्ठ और कश्यप ऋषि हैं, अग्नि, वायु, सूर्य, बृहस्पति, वरुण, इन्द्र और विश्वेदेवा देवता हैं। गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप् और जगती छन्द हैं। गायत्री के विश्वामित्र ऋषि, सूर्य देवता, गायत्री छन्द हैं। गायत्री सिर के प्रजापति ऋषि, ब्रह्मा, अग्नि, वायु और सूर्य देवता, यजुःछन्द हैं; प्राणायाम में यह विनियोग है।

सर्वांगुलीभिस्तर्जनीमध्यमाभिन्नाभिर्वा नासां धृत्वा दक्षिणेन वायुमाकृष्य रोधयेत्—ओं भूः ओं भुवः ओं स्वः ओं महः ओं जनः ओं तपः ओं सत्यम् ओं तत्सवितुर्वरेण्यं० यात् ओं आपोज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् इति सप्रणवसप्तव्याहृतिगायत्रीशिरस्त्रिः पठित्वा वामनासया वायुं विसृजेदिति प्राणायामः सर्वशाखासाधारणः। 'ममोपात्त दुरितक्षयद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं प्रातःसंध्यामुपासिष्ये'। आपोहिष्ठेति त्र्यृचस्याम्बरीषः सिन्धुद्वीप आपो गायत्री मार्जने विनियोगः।

सब अंगुलियों से या तर्जनी और मध्यमा से रहित अंगुलियों से नाक पकड़ कर दक्षिण से वायु खींचकर रोके और 'ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः' इत्यादि मूलोक्त प्रणवसहित सात व्याहृति गायत्री सिर के सहित तीन वार पढ़कर बाईं नाक से वायु को छोड़े, यह सब शाखाओं का साधारण प्राणामय है। 'मेरे गृहीत पापनाश के द्वारा श्रीपरमेश्वर की प्रसन्नता के लिये प्रातःसन्ध्या की उपासना करूँगा' ऐसा संकल्प करे। 'आपोहिष्ठा' इन तीनों ऋचाओं के अम्बरीष ऋषि, सिन्धुद्वीप, जलः देवता, गायत्री छन्द यह मार्जन का विनियोग है।

आपोहिष्ठेति नवभिः पादैः सप्रणवैः कुशोदकेन मूर्ध्नि नवकृत्वो मार्जयेत्। यस्य क्षयायेत्यधो मार्जयेत्। नद्यादौ तीर्थस्थं ताम्रमृन्मयादिभूमिष्ठपात्रस्थं वा वामकरस्थं वा जलं दर्भादिनाऽऽदाय मार्जनं सर्वत्र न तु धाराच्युतजलेन।

वायुम्। सुनिश्चलं धारयति क्रमेण 'कुम्भाख्य'मेतं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः॥ निःसार्य नासाविवरादशेषं प्राणं बहिः शून्य इवानलेन। निरुच्छ्वसंस्तिष्ठति चोर्ध्ववायुः स 'रेचको' नाम महान्निरोधः॥ नासिकाविष्ट उच्छ्वासो ध्मातः 'पूरक' उच्यते। 'कुम्भो' निश्चलनिःश्वासो रिच्यमानस्तु 'रेचकः'॥ न प्राणेनाप्यपानेन वेगाद् वायुं समुत्सृजेत्। येन सक्तून् करस्थांश्च निःश्वासो नैव चालयेत्॥ शनैर्नासापुटाद् वायुमुत्सृजेन्न तु वेगतः।' विशेष अन्यत्र द्रष्टव्य है।

१. छन्दोगपरिशिष्ट में मार्जन का प्रयोजन—'रक्षार्थं वारिणाऽऽत्मानं परिक्षिप्य समन्ततः। शिरसो मार्जनं कुर्यात् कुशैः सोदकबिन्दुभिः॥' याज्ञवल्क्यः—'अधोभागे विसृष्टाभिरसुरा यान्ति संक्षयम्। सर्वतीर्थाभिषेकं च ऊर्ध्वसम्मार्जनाद् भवेत्॥' इति।

'आपोहिष्ठा' इस मन्त्र के प्रणवसहित नवों चरणों से कुश के जल से नव बार सिर में मार्जन करे। 'यस्य क्षयाय' इस मन्त्र से नीचे मार्जन करे। नदी आदि तीर्थ में स्थित, तांमे मिट्टी या भूमिस्थित पात्र के या बायें हाथ में स्थित जल से कुश आदि से सर्वत्र मार्जन करे। धारा की तरह गिरते जल से न करे।

अथ मन्त्राचमनम्

सूर्यश्चेति मन्त्रस्य याज्ञवल्क्य उपनिषद ऋषिः सूर्यमन्युपतयो रात्रिश्च देवताः प्रकृतिश्छन्दः मन्त्राचमने विनियोगः। ॐ सूर्यश्च मामन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यद्रात्र्या पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना रात्रिस्तदवलुम्पतु यत्किञ्च दुरितं मयि इदमहं माममृतयोनौ सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा इति जलं पिबेत्।

'सूर्यश्च' इस मन्त्र का याज्ञवल्क्य उपनिषद् ऋषि, सूर्य मन्युपति और रात्रि देवता, प्रकृति छन्द, यह मन्त्राचमन का विनियोग है। 'ॐ सूयश्च मा मन्युश्च' इत्यादि मूलोक्त मन्त्र से आचमन करे।

आचम्य आपोहिष्ठेति नवर्चस्याम्बरीषः सिन्धुद्वीप आपो गायत्री पञ्चमी वर्धमाना सप्तमी प्रतिष्ठा अन्त्ये द्वे अनुष्टुभौ मार्जने विनियोगः।

प्रणवेन व्याहृतिभिर्गायत्र्या प्रणवान्तया।
आपोहिष्ठेति सूक्तेन मार्जनं च चतुर्थकम्॥
ऋगन्तेऽर्धर्चान्ते वा पादान्ते वाऽपि मार्जयेत्।
गायत्रीशिरसा चान्ते मार्जयित्वाऽघमर्षणम्[1]॥

ऋतं चेति त्र्यृचस्य माधुच्छन्दसोऽघमर्षणो भाववृत्तमनुष्टुप् अघमर्षणे विनियोगः। दक्षिणहस्ते जलं कृत्वा ऋतं चेति ऋक्त्रयं [2]द्रुपदेति ऋचं वा जप्त्वा दक्षिणनासया पापपुरुषं निरस्य तज्जलं नावलोक्य वामभागे क्षितौ क्षिपेत्।

आचमन के अनन्तर 'आपोहिष्ठा' इन नव ऋचाओं के अम्बरीष-सिन्धुद्वीप-जलऋषि, गायत्री छन्द, पंचमी वर्द्धमाना सप्तमी प्रतिष्ठा अन्त की दो ऋचाओं का अनुष्टुप् छन्द मार्जन में विनियोग है। चौथा मार्जन प्रणव से व्याहृति से और प्रणवसहित गायत्री से 'आपोहिष्ठा' इस सूक्त से ऋचा के अन्त में या आधी ऋचा के अन्त में अथवा चरण के अन्त में करे। गायत्री सिर से अन्त में मार्जन करके अघमर्षण करे। 'ऋतञ्च' इन तीन ऋचाओं के माधुच्छन्दस-अघमर्षण-भाववृत्त ऋषि अनुष्टुप्

---

१. शौनकोक्त अघमर्षण-विधि—'उद्धृत्य दक्षिणे हस्ते जलं गोकर्णवत् कृते। निःश्वासं नासिकाग्रे तु पाप्मानं पुरुषं स्मरेत्। ऋतं चेति त्र्यृचं वाऽपि द्रुपदां वा जपेद् ऋचम्॥ दक्षनासापुटेनैव पाप्मानमपसारयेत्॥ तज्जलं नावलोक्याथ वामभागे क्षितौ क्षिपेत्।' स्मृत्यन्तरे—'तत्संयोगिपदद्वन्द्वमङ्गप्रत्यङ्गपातकम्। उपपातकरोमाणं रक्तश्मश्रुविलोचनम्॥ खड्गचर्मधरं कृष्णं कुक्षौ पापं विचिन्तयेत्।' इति।

२. याज्ञवल्क्योक्त द्रुपदागायत्री का महत्त्व—'द्रुपदा नाम सा देवी यजुर्वेदे प्रतिष्ठिता। अन्तर्जले त्रिरावर्त्य मुच्यते ब्रह्महत्यया॥' बृहस्पतिः—'द्रुपदा नाम यो मन्त्रो वेदे वाजसनेयके। अन्तर्जले त्रिरावर्त्य सर्वपापैः प्रमुच्यते॥' इति।

छंद अघमर्षण में विनियोग है। दाहिने हाथ में जल लेकर 'ऋतं च' इत्यादि इन तीन ऋचाओं को अथवा 'द्रुपदा दिव' इत्यादि एक ऋचा को जप कर दाहिने नाक से पाप-पुरुष को निकाल कर उस जल को बिना देखे बाईं ओर जमीन पर फेंक दे।

अथार्घ्यदानम्

आचम्य गायत्र्या विश्वामित्रः सविता गायत्री श्रीसूर्यायार्घ्यदाने वि०। प्रणवव्याहृतिपूर्वया गायत्र्या तिष्ठन्सूर्योन्मुखः[1] जलाञ्जलिं त्रिः क्षिपेत्। कालातिक्रमे प्रायश्चित्तार्थं चतुर्थम्। असावादित्यो ब्रह्मेति प्रदक्षिणं भ्रमन् जलं सिञ्चेत्। अर्घ्याञ्जलौ तर्जन्यङ्गुष्ठयोगो न कार्यः। इदमर्घ्यदानं प्रधानमित्येके। अङ्गमिति परे।

आचमन के पश्चात् गायत्री का विश्वामित्र ऋषि, सविता देवता, गायत्री छन्द है। सूर्य को अर्घ्य देने में विनियोग है। प्रणव और व्याहृतिसहित गायत्री मंत्र से सूर्य की ओर खड़े होकर तीन अंजुलि-जल गिरावे। समय बीतने पर प्रायश्चित्त के लिए चौथी अंजुलि से जल गिरावे। 'असावादित्यो ब्रह्म' इससे प्रदक्षिण क्रम से घूमते हुए जल को गिरावे। अर्घ्य की अंजुलि में तर्जनी और अंगुष्ठ का योग न करे। यह अर्घ्यदान प्रधान है, ऐसा कोई कहते हैं। दूसरे अंग कहते हैं।

अथ गायत्रीजपः

प्राणायामं कृत्वा गायत्र्या विश्वामित्रः सविता गायत्रीजपे वि०। तत्सवितुर्हृदयाय नमः, वरेण्यं शिरसे स्वाहा, भर्गो देवस्य शिखायै वषट्, धीमहि कवचाय हुम्, धियो यो नो नेत्रत्रयाय वौषट्, प्रचोदयात् अस्त्रायफट्, इति षडङ्गन्यासः कार्यः न वा कार्यो न्यासविधेरवैदिकत्वादिति गृह्यपरिशिष्टे स्पष्टम्। एतेनाक्षरन्यासपादन्यासादीनां मुद्रादिविधेः शापमोचनादिविधेश्च तान्त्रिकत्वेनावैदिकत्वादनावश्यकत्वं वेदितव्यम्। मन्त्रदेवतां ध्यायेत्।

प्राणायाम करके गायत्री का विश्वामित्रऋषि सविता देवता गायत्री छन्द जप में विनियोग है। 'तत्स वितु' इससे हृदय का, 'वरेण्यं शिरसे स्वाहा' इससे सिर का, 'भर्गो देवस्य शिखायै वषट्' इससे शिखा का, 'धीमहि कवचाय हुँ' इससे एक साथ दोनों हाथों से कन्धे का, 'यो नो नेत्रत्रयाय वौषट्' इससे तीनों नेत्र का, 'प्रचोदयात् अस्त्राय फट्' इससे अस्त्र मुद्रा से थपौड़ी बजावे। इस प्रकार षडंगन्यास करे या न करे, क्योंकि न्यास-विधि वैदिक नहीं है, ऐसा गृह्यपरिशिष्ट में स्पष्ट है। इससे अक्षरन्यास, पदन्यास आदि, मुद्रा आदि विधि और शाप मोचन आदि विधि की अवैदिक होने से आवश्यकता नहीं है, यह जानना चाहिये। मन्त्रदेवता का ध्यान करे।

केचिद् गायत्र्यादिध्यानं वदन्ति—

आगच्छ वरदे देवि जपे मे सन्निधौ भव।
गायन्तं त्रायसे यस्माद् गायत्री त्वं ततः स्मृता॥ इति तामावाह्य,
यो देवः सवितास्माकं धियो धर्मादिगोचरे।
प्रेरयेत्तस्य तद्भर्गस्तद्वरेण्यमुपास्महे॥

---

१. व्यासः—'कराभ्यां तोयमादाय गायत्र्या चाभिमन्त्रितम्। आदित्याभिमुखस्तिष्ठंस्त्रिरूर्ध्वं सन्ध्ययोः क्षिपेत्॥' शौनकः—'ईषन्नम्रः प्रभाते तु मध्याह्ने ऋजुसंस्थितः। द्विजोऽर्घ्यं प्रक्षिपेद्देव्या सायं तूपविशन् भुवि॥' इति।

इति मन्त्रार्थं चिन्तयन् मौनी प्रातः सूर्याभिमुखस्तिष्ठन्नामण्डलदर्शनात्सप्रणव्याहृतिकायाः गायत्र्या अष्टशतमष्टाविंशतिं दशकं वा ¹जपेत्। सायं वायव्याभिमुख आनक्षत्रदर्शनादिति विशेषः।

कुछ लोग गायत्री आदि का ध्यान कहते हैं—हे देवि! वर देने वाली आइये आप मेरे जप की सन्निधि में रहें। जपकर्त्ता की आप रक्षा करती हैं इसलिये आप का नाम गायत्री है। इस प्रकार गायत्री का आवाहन कर, जो सूर्य-देव हमारी बुद्धि को धर्मादि में प्रेरित करते हैं, उनके उस श्रेष्ठ तेज की हम उपासना करते हैं। इस आशय के गायत्री मन्त्र के अर्थ को सोचते हुए मौन होकर प्रातः सूर्य के सामने खड़ा होकर सूर्यमण्डल दर्शनपर्यन्त प्रणव-व्याहृति-सहित गायत्री का १०८ या २८ अथवा १० बार जप करे। सायं काल वायव्य दिशा की ओर मुख करके नक्षत्र-दर्शन पर्यन्त जप करे, इतनी विशेषता है।

अनध्यायेऽष्टाविंशतिं प्रदोषे दशैव जपेदिति कारिकायाम्। रुद्राक्षविद्रुमादिमालाभिरङ्गुलीपर्वभिर्वा जपः। अष्टशतं चतुःपञ्चाशत् सप्तविंशतिर्वा मालामणयः। उत्तरन्यासं कृत्वोपस्थानम्—ओं जातवेदसे०, ओं तच्छं यो०, ओं नमो ब्रह्मणे, इति मन्त्रैः सायं प्रातश्चोपतिष्ठेदिति परिशिष्टमतम्। स्मृत्यन्तरे मित्रस्य चर्षणीत्यादिमित्रदेवताकैः प्रातः, इमं मे वरुणेत्यादिभिर्वरुणपदोपेतैः सायं सूर्योपस्थानमुक्तम्।

अनध्याय में २८ बार, प्रदोष में १० बार ही जपे, ऐसा कारिका में लिखा है। रुद्राक्ष, मूंगा आदि की मालाओं से या अंगुलि के पर्व से अथवा सत्ताइस दाने की माला से जप एक सौ या चौवन बार करे। उत्तर-न्यास करके 'ओं जातवेदसे०, ओं तच्छं यो०, ओं नमो ब्रह्मणे, इत्यादि मन्त्रों से सायंकाल प्रातःकाल उपस्थान करे, ऐसा परिशिष्ट का मत है। दूसरी स्मृतियों में 'मित्रस्य चर्षणी' इत्यादि मित्रदेवताक मन्त्रों से प्रातःकाल और 'इमं मे वरुण' इत्यादि वरुण-पदयुक्त मन्त्रों से सायंकालीन सूर्योपस्थान कहा है।

---

१. व्यासोक्त जपसंख्या—'अष्टोत्तरशतं नित्यमष्टाविंशतिरेव वा। विधिना दशकं वाऽपि त्रिकालेषु जपेद् बुधः॥' अन्यत्र—'सकृज्जपश्च गायत्र्याः पापं दिनभवं हरेत्। दशवारं जपेनैव नश्येत् पापं दिवानिशम्॥ शतवारं जपश्चैव पापं मासार्जितं हरेत्। सहस्रधा जपश्चैव कल्मषं वत्सरार्जितम्॥ लक्षो जन्मकृतं पापं दशलक्षान्यजन्मभम्। सर्वजन्मकृतं पापं शतलक्षाद् विनश्यति॥ करोति मुक्तिं विप्राणां जपो दशगुणस्ततः।' जप का महत्त्व—'विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः। उपांशुः स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः॥'—

विश्वामित्रोक्त वाचिक आदि जप का लक्षण—'यदुच्चनीचस्वरितैः शब्दैः स्पष्टपदाक्षरैः। मन्त्रमुच्चारयेद् वाचा 'वाचिको'ऽयं जपः स्मृतः॥ शनैरुच्चारयेन्मन्त्रमीषदोष्ठौ च चालयेत्। अपरैर्न श्रुतः किञ्चित्स 'उपांशु'र्जपः स्मृतः॥ धिया यदक्षरश्रेण्या वर्णाद् वर्णं पदात्पदम्। शब्दार्थचिन्तनं भूप कथ्यते 'मानसो'जपः॥'

मनु ने गायत्री के जानकार विप्र की श्रेष्ठता बतलायी है—'गायत्रीमात्रसारोऽपि वरं विप्रः सुयन्त्रितः। नायन्त्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वाशी सर्वविक्रयी॥' छन्दोगपरिशिष्टे—'सर्वेषामेव वेदानां गुह्योपनिषदां तथा। सारभूता तु गायत्री निर्गता ब्रह्मणो मुखात्॥ बृहद्यमः—'न तथा वेदजपतः पापं निर्दहति द्विजः। यथा सावित्रीं जपतः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥'—

प्राच्यै दिशे नमः इन्द्राय नमः, आग्नेय्यै दिशे० अग्नये नमः, इत्यादिना दशदिग्वन्दनाते संध्यायै नमः, गायत्र्यै नमः, सावित्र्यै०, सरस्वत्यै०, सर्वाभ्यो देवताभ्यो नम इति नत्वा—

उत्तमे शिखरे जाते भूम्यां पर्वतमूर्धनि ।
ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम् ॥

इति विसृज्य भद्रन्नो अपि वातयमनः इति त्रिरुक्त्वा प्रदक्षिणं भ्रमन्—

आसत्यलोकादापातालादालोकालोकपर्वतात् ।
ये सन्ति ब्राह्मणा देवास्तेभ्यो नित्यं नमो नमः ॥

इति भूम्युपसंग्रहं नमस्कृत्य द्विराचामेदिति ।

प्राच्यै दिशे नमः इन्द्राय नमः, आग्नेय्यै दिशे नमः अग्नये नमः, इत्यादि से दसों दिशाओं की वन्दना के बाद सन्ध्यायै नमः, 'गायत्र्यै नमः, सावित्र्यै नमः, सर्वाभ्यो देवताभ्यो नमः' इस प्रकार नमस्कार करके—उत्तम शिखर पर उत्पन्न होने वाली भूमि और पर्वत शिखर पर बसने वाली हे गायत्री देवि ! ब्राह्मणों की आज्ञा से सुखपूर्वक जाओ । इस आशय के मन्त्र से विसर्जन करके 'भद्रन्नो अपि वातयमनः' इसको तीन बार कह कर प्रदक्षिण क्रम से घूमते हुए सत्यलोक, पाताल-लोक और लोकालोक पर्वत तक के जो ब्राह्मण देवता हैं उनको नित्य नमस्कार है । इसके अनन्तर भूमि का उपसंग्रह कर नमस्कार करके दो बार आचमन करे ।

अथ तैत्तिरीयाणां सन्ध्या

संकल्पान्तं पूर्ववत् गायत्रीं ध्यात्वा—

आयातु वरदा देवी अक्षरं ब्रह्मसंमितम् ।
गायत्री छन्दसां मातरिदं ब्रह्म जुषस्व मे ॥
सर्ववर्णे महादेवि संध्याविद्ये सरस्वति ।
अजरे अमरे देवि सर्वदेवि नमोस्तु ते ॥

ओजोसि सहोसि बलमसि भ्राजोऽसि देवानां धामनामासि विश्वमसि विश्वायुः सर्वमसि सर्वायुः अभिभूरोम् गायत्रीमावाहयामि सावित्रीमावाहयामि

कूर्मपुराणे—'गायत्रीं चैव वेदांश्च तुलया समतोलयत् । वेदा एकत्र साङ्गास्तु गायत्री चैकतः स्मृता ॥' याज्ञवल्क्योक्त जपविधि—'ध्यायेत्तु मनसा मन्त्रं जिह्वोष्ठौ न विचालयेत् । न कम्पयेच्छिरो ग्रीवां दन्तान्नैव प्रकाशयेत् ॥ यक्षरक्षःपिशाचाश्च सिद्धविद्याधरा गणाः । यस्मात्प्रभावं गृह्णन्ति तस्माद् गुह्यं तु कारयेत् ॥' वृद्धमनुः—'वस्त्रेणाच्छाद्य तु करं दक्षिणं यः सदा जपेत् । तस्य स्यात् सफलं जाप्यं तद्धीनमफलं स्मृतम् ॥'—

गायत्रीकल्प में करजप का प्रकार—'पर्वभिस्तु जपेद्देवीं माला काम्यजपे स्मृता । गायत्री वेदमूला स्याद् वेदः पर्वसु गीयते ॥ आरभ्यानामिकामध्यं पर्वाण्युक्तान्यनुक्रमात् । तर्जनीमूलपर्यन्तं जपेद्दशसु पर्वसु ॥ मध्यमाङ्गुलिमूले तु यत्पर्वद्वितयं भवेत् । तं वै मेरुं विजानीयाज्जपे तं नातिलङ्घयेत् ॥' श्रीकूर्मतंत्र में शक्तिमन्त्र-जप के विषय में तर्जनी के मध्य और अग्रपर्व को मेरु बतलाते हुये कहा है—'अनामिकात्रय पर्व कनिष्ठादित्रिपर्विका । मध्यमायाश्च त्रितयं तर्जनीमूलपर्वणि ॥ तर्जन्यग्रे तथा मध्ये यो जपेत् स तु पापकृत् ।' इति ।

सरस्वतीमावाहया० छन्दऋषीनावाह० श्रियमा० ह्रियमावाहयामि इत्यावाह्य मार्जनं पूर्ववत्। ओं आपो वा इदꣳसर्वं विश्वाभूतान्यापः प्राणा वा आपः पशव आपोऽन्नमापोऽमृतमापः सम्राडापो विराडापः स्वराडापश्छन्दाꣳस्यापो ज्योतीꣳष्यापो यजूꣳष्यापः सत्यमापः सर्वा देवता आपो भूर्भुवः सुवराप आप ओमिति जलमभिमन्त्र्य सूर्यश्चेति पूर्ववन्मन्त्राचमनम्। दधिक्राव्णो अकारिषमिति ऋचमुक्त्वा आपोहिष्ठेति तिसृभिः हिरण्यवर्णा इति पवमानः सुवर्जन इत्यनुवाकेन च ऋगन्ते मार्जनान्तेऽघमर्षणं कृत्वा न कृत्वा वार्घ्यदानादि गायत्रीजपान्तमावाहनमन्त्रवर्ज्यं पूर्ववत्।

तैत्तिरीयों का संकल्पपर्यन्त पहिले ही की तरह से है। गायत्री का ध्यान करके 'आयातु वरदा देवी' इत्यादि मूलोक्त मंत्र पढ़कर गायत्री का आवाहन करता हूँ, सावित्री का आवाहन करता हूँ, सरस्वती का आवाहन करता हूं, छन्द ऋषियों का आवाहन करता हूँ, श्री का आवाहन करता हूँ, ह्री का आवाहन करता हूँ, इस प्रकार आवाहन करके पहिले की तरह मार्जन करे। 'ॐ आपो वा इदं सर्वं' इत्यादि मूलोक्त मंत्र पढ़कर जल का अभिमन्त्रण करके 'सूर्यश्च' इत्यादि मन्त्र से पूर्ववत् मन्त्राचमन करे। 'दधिक्राव्णो अकारिषं' इस ऋचा को कहकर 'आपोहिष्ठा' इन तीन ऋचाओं से 'हिरण्यवर्णा' इससे और 'पवमानः सुवर्जन' इस अनुवाक से ऋचा के अन्त तथा मार्जन के अन्त में अघमर्षण करके या न करके अर्घ्यदान आदि गायत्री-जप-पर्यन्त आवाहन-मन्त्र को छोड़ कर पहिले के समान है।

न्यासविधेरवैदिकत्वमुक्तमेव। जपान्ते उपस्थानम्—ओं मित्रस्य चर्षणी०, ओं मित्रो जनान्०, ओं प्रसमित्र०, ओं यच्चिद्धिते०, ओं यत्किंचेदं०, ओं कितवासो यद्रि०, इति षड्भिरुपस्थाय प्राच्यै दिशे याश्च देवता एतस्यां प्रतिवसन्त्येताभ्यश्च नमो नम इत्यादिना अधरान्ताः षट् नत्वा अवान्तरायै दिशे याश्च देवता इति च नत्वा नमो गङ्गायमुनयोर्मध्ये इत्यादिना मुनिदेवान्नत्वा सꣳस्रवंतु दिशो० इति मन्त्रं पठित्वा गोत्राद्युच्चार्य पूर्ववद् भूम्युपसंग्रहं नत्वा पूर्ववत्संध्यां विसृजेदिति।

न्यासविधि को अवैदिक कह ही चुके हैं। जप के अन्त में उपस्थान करे—'ॐ मित्रस्य चर्षणी०' 'ॐ मित्रो जनान्०' 'ॐ प्रसमित्र०' 'ॐ यच्चिद्धिते' 'ॐ यत्किञ्चेदं०' 'ॐ कितवासो यद्रि०' इन छ मन्त्रों से उपस्थान करके पूरब की दिशा के जो देवता इसमें रहते हैं उनको नमस्कार है इत्यादि से अधरपर्यन्त छ देवताओं को और अवान्तर दिशा वाले देवताओं को प्रणाम करके 'नमो गंगायमुनयोर्मध्ये' इत्यादि से मुनि और देवताओं को प्रणाम करके 'सꣳस्रवन्तु दिशो' इस मन्त्र को पढ़कर अपना गोत्र आदि का उच्चारण करके पहिले के समान भूमि का उपसंग्रहपूर्वक प्रणाम कर पहिले के समान सन्ध्या का विसर्जन करे।

अथ कात्यायनानां सन्ध्याप्रयोगः

आचम्य 'भूः पुनातु भुवः पुनातु स्वः पुनातु भूर्भुवः स्वः पुनात्वित्यादिना

१. भू आदि तीनों व्याहृतियों का व्यापक अर्थ है—'भवन्ति चास्मिन् भूतानि स्थावराणि चराणि च। तस्माद् भूरिति विज्ञेया प्रथमा व्याहृतिः स्मृता॥ भवन्ति भूयो भूतानि उपभोगक्षये पुनः।

पावनं कृत्वा अपवित्रः पवित्रो वेति विष्णुं स्मृत्वा आसनादिविधिं कृत्वा द्विराचम्य प्राणानायम्य पूर्ववत्संकल्प्य—

गायत्रीं त्र्यक्षरां बालां साक्षसूत्रकमण्डलुम् ।
रक्तवस्त्रां चतुर्वक्त्रां हंसवाहनसंस्थिताम् ॥
ब्रह्माणीं ब्रह्मदैवत्यां ब्रह्मलोकनिवासिनीम् ।
आवाहयाम्यहं देवीमायान्तीं सूर्यमण्डलात् ॥
आगच्छ वरदे देवि त्र्यक्षरे ब्रह्मवादिनि ।
गायत्री छन्दसां मातर्ब्रह्मयोने नमोस्तु ते ॥

कात्यायन वाले आचमन करके 'भूः पुनातु' 'भुवः पुनातु' इत्यादि व्यस्त समस्त व्याहृतियों से अपने को पवित्र करके 'अपवित्रः पवित्रो वा' इससे विष्णु का स्मरण करके आसनादि विधि कर दो बार आचमन और प्राणायाम करके पूर्ववत् संकल्प कर तीन अक्षर वाली, अक्षसूत्र और कमण्डलुसहित रक्तवस्त्रधारिणी, चतुर्मुखी, हंसवाहन पर स्थित, ब्रह्मदेवता वाली और सूर्यमण्डल से आती हुई ब्रह्माणी गायत्री देवी का मैं आवाहन करता हूँ । हे ब्रह्मवादिनि ! वेदों की माता, ब्रह्मयोनि, वरदायिनी, तीन अक्षर वाली गायत्री देवि ! आइये आपको प्रणाम है ।

इत्यावाह्य पूर्ववद् आपोहिष्ठेति त्र्यृचेन मार्जयेत् । सूर्यश्चेति मन्त्रस्य नारायणऋषिः सूर्यो देवता अनुष्टुप्छन्दः आचमने विनियोगः । सूर्यश्चेति जलं प्राश्याचम्य आपोहिष्ठेति नवऋग्भिर्मार्जनं कुर्यादिति केचिदाहुः । बहवस्तु संकल्पाद्यन्ते सूर्यश्चेति मन्त्राचमनं कृत्वाऽऽपोहिष्ठेति तिसृभिः प्रतिपादं मार्जनान्तेऽघमर्षणं कार्यं न तु मार्जनद्वयमित्याहुः । सुमित्र्या दुर्मित्र्या इति द्वयोः प्रजापतिर्ऋषिः आपोदेवता यजुश्छंदः आदानप्रक्षेपे वि० । ॐ सुमित्रियान आप ओषधयः सन्तु इति जलमादाय दुर्मित्र्यास्तस्मै सन्तु योस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म इति वामभुवि क्षिपेत् ।

इस आशय के मन्त्र से आवाहन कर 'आपोहिष्ठा' इत्यादि तीन ऋचाओं से पहिले के समान मार्जन करे । 'सूर्यश्च' इस मन्त्र का नारायण ऋषि, सूर्य देवता, अनुष्टुप् छन्द, इसका आचमन में विनियोग है । 'सूर्यश्च' इस मन्त्र से जल का प्राशन तथा आचमन कर 'आपोहिष्ठा' इन नव ऋचाओं से मार्जन करे, ऐसा कोई कहते हैं । बहुत लोग तो संकल्प आदि के बाद 'सूर्यश्च' इस मन्त्र से आचमन करके 'आपोहिष्ठा' इन तीन ऋचाओं के प्रत्येक चरण से मार्जन करके अघमर्षण करे न कि दो मार्जन करे, ऐसा कहते हैं । 'सुमित्र्या' 'दुर्मित्र्या' इन दोनों के प्रजापति ऋषि, जल देवता, यजुः छन्द, और आदान के प्रक्षेप में विनियोग है । 'ॐ सुमित्रियान आप ओषधयः सन्तु' इस मन्त्र से जल लेकर 'दुर्मित्र्यास्तस्मै सन्तु' इस मन्त्र से अथवा 'योस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म' इस मन्त्र से बाईं ओर भूमि में छोड़ दे ।

ततः ऋतं चेति त्र्यृचेन द्रुपदेति त्रिरुक्तऋचा वाघमर्षणं पूर्ववत् । सायं प्रातश्च त्रिरर्घ्यदानं पुष्पयुतजलेन पूर्ववत् । मध्याह्ने सकृद् गायत्र्या परित उक्ष-

---

कल्पान्ते उपभोगाय भुवस्तस्मात् प्रकीर्तिता ॥ शीतोष्णवृष्टितेजांसि जायन्ते तानि वै सदा । प्रलयः सुकृतीनां च स्वर्लोकः स उदाहृतः ॥' इति ।

णम् । अथोपस्थानम्[१]—उद्वयमुदुत्यमिति द्वयोः प्रस्कण्वः सूर्योनुष्टुप्गायत्र्यौ, चित्रं देवानामाङ्गिरसः कुत्सः सूर्यस्त्रिष्टुप्, तच्चक्षुर्दध्यङ्ङाथर्वणः सूर्यः पुर उष्णिक्, उपस्थाने० । ॐ उद्वयं तमस०, ॐ उदुत्यं जातवेदसं०, ॐ चित्रं देवानां०, ॐ तच्चक्षुर्देवहितं० इति ऊर्ध्वबाहुः सूर्यमुदीक्षमाणो यथाशाखं पठेत् ।

इसके बाद 'ऋतं च' इन तीन ऋचाओं से अथवा 'द्रुपदा' इस मन्त्र को तीन बार कह कर पूर्ववत् अघमर्षण करे। सायं प्रातः-काल तीन बार पुष्पयुक्त जल से अर्घ्य दान करे। पहिले की तरह मध्याह्न में एक बार अर्घ्य प्रदान करे। गायत्री से चारो ओर जल छोड़े। 'उद्वयं' और 'उदुत्यं' इन दोनों मन्त्रों का क्रम से प्रकण्व-सूर्य-देवता, अनुष्टुप्-गायत्री-छन्द, 'चित्रं देवानां' इसके आंगिरस-कुत्स-ऋषि, सूर्य देवता, त्रिष्टुप् छन्द, 'तच्चक्षुः' इस मन्त्र का दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि, सूर्य देवता, पुर उष्णिक् छन्द और इनका उपस्थान में विनियोग है। 'ॐ उद्वयं तमस०' 'ॐ उदुत्यं जात०' 'ॐचित्रं दे०' 'ओं तच्चक्षुर्देवहितं०' इन मन्त्रों को ऊपर की ओर दोनों बाहु उठाये और सूर्य को देखते हुए अपनी शाखा के अनुसार पढ़े।

प्राणायामादि विधाय न्यासमुद्रातर्पणादिविधिः कृताकृतः । तेजोऽसीति परमेष्ठी प्रजापतिराज्यं यजुः आवाहने० । ओं तेजोसि शुक्रमस्य मृतमसि धामनामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि । परोरजस इति । विमलः परमात्मानुष्टुप् गायत्र्युपस्था० । ओं गायत्र्यस्येकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्यपदसि न हि पद्यसे नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परोरजसेऽसावदोम् । ततो गायत्रीजपान्तं पूर्ववत् ।

प्राणायाम आदि करके न्यास-मुद्रा-तर्पण आदि विधि करना न करना समान है। 'तेजोसि' इस मन्त्र का परमेष्ठी ऋषि, प्रजापति देवता, यजुः छन्द आवाहन में विनियोग है। 'ओं तेजोसि शुक्रमस्यमृतमसि' इत्यादि मूल में मंत्र है। 'गायत्र्यस्येकपदी' इस मंत्र का विमल ऋषि, परमात्मा देवता, अनुष्टुप् छन्द, गायत्री के उपस्थान में विनियोग है। 'ओं गायत्र्यस्येकपदी' इत्यादि मंत्र मूल में है। इसके बाद गायत्री जप तो पहिले ही के समान करे।

ततः शक्तेन विभ्राडित्यनुवाकेन पुरुषसूक्तेन वा शिवसंकल्पेन वा मण्डलब्राह्मणेन वोपस्थानं कार्यम् । अत्र ऋक्शाखोक्तवद् दिग्वन्दनं केचित्कुर्वन्ति । तत उत्तमे शिखरे० देवागातु विदोगातुमिति मन्त्राभ्यां विसर्जनम् । भूम्युपसंग्रहं नमस्कारादि पूर्ववत् । इति कात्यायनसंध्या ।

तदनन्तर समर्थ-पुरुष 'विभ्राड्' इस अनुवाक, पुरुषसूक्त, शिवसंकल्प, मण्डल ब्राह्मण, इनमें किसी एक से उपस्थान करे। इसमें ऋक् शाखा में कहे हुए के समान दिशाओं का वन्दन,

---

१. उपस्थान के याज्ञवल्क्योक्त मन्त्र और उसकी विधि है—'गायत्र्यास्तु जपं कृत्वा पूर्वं चैव यथाविधि । उपस्थानं स्वकैर्मन्त्रैरादित्यस्य तु कारयेत् ॥ उदुत्यं चित्रं देवानामुद्वयन्तमसस्परि । तच्चक्षुर्देव इति च एकचक्रेति वैधि च ॥ उदगादित्ययं मन्त्र आकृष्णेनेति वै ऋचा । तृप्तात्मा सम्प्रयुञ्जीत शक्त्याऽन्यानि जपेत् सदा ॥ सन्ध्याद्वयेऽप्युपस्थानमेवमाहुर्मनीषिणः । मध्याह्ने उदये चैव विभ्राडादीच्छया भवेत् ॥ तदसंयुक्तपार्ष्णिर्वा एकपादो द्विपादपि । जपेत् कृताञ्जलिर्वाऽपि ऊर्ध्वबाहुस्थापि वा ॥' इति ।

कुछ लोग कहते हैं। इसके अनन्तर 'उत्तमे शिखरे' 'देवागातु विदोगातु' इन दो मन्त्रों से विसर्जन करे। भूमि का उपसंग्रहपूर्वक प्रणाम आदि पहले के समान है। कात्यायनसंध्या समाप्त।

अथ संध्याफलं तल्लोपप्रायश्चित्तादि च

संध्यामुपासते ये ते निष्पापा ब्रह्मलोकगाः।
अन्यकर्मफलं नास्ति संध्याहीनेऽशुचित्वतः॥
जीवमानो भवेच्छूद्रो[1] मृतः श्वा जायते ध्रुवम्।

संध्यात्रये कालातिक्रमे प्रायश्चित्तार्थमेकमर्घ्यमधिकं दत्त्वा रात्रौ प्रहरपर्यन्तं दिनोक्तकर्माणि कुर्यात्। ब्रह्मयज्ञं सौरं च वर्जयेत्। सर्वथा संध्यालोपे प्रतिसंध्यमेकोपवासोऽयुतमष्टोत्तरसहस्रं वा गायत्रीजपः। अत्यशक्तौ प्रतिसंध्यालोपं शतगायत्रीजपः। द्व्यहं त्र्यहं लोपे तदावृत्तिः। ततः परं कृच्छ्रादिकल्प्यम्।

जो लोग सन्ध्या की उपासना करते हैं वे पापरहित होकर ब्रह्मलोक में जाते हैं, सन्ध्यारहित होने की अपवित्रता से अन्य कोई कर्म का फल नहीं होता। सन्ध्या नहीं करने से जीते हुए शूद्र और मरने पर अवश्य कुत्ता होता है। तीनों सन्ध्या में समय का अतिक्रमण होने पर प्रायश्चित्त के लिये एक अधिक अर्घ्य देकर दिन का कर्म एक पहर रात तक करे। ब्रह्मयज्ञ और सौरकर्म का वर्जन करे। सब प्रकार से सन्ध्या न करने पर प्रतिसन्ध्या के लिये एक उपवास अथवा दस हजार या एक हजार आठ गायत्री का जप करे। अत्यन्त अशक्त होने पर सन्ध्या के लोप होने पर प्रतिसंध्या एक सौ बार गायत्री जप करे। दो तीन दिन सन्ध्या नहीं करने पर उपवास और जप की आवृत्ति करे। इससे अधिक होने पर कृच्छ्र आदि व्रत की कल्पना करे।

अथौपासनहोमे अधिकारिणः

[2]स्वयं होमो मुख्यः। अशक्तौ पत्नी पुत्रः कुमारी भ्राता शिष्यो भागिनेयो जामाता ऋत्विग्वा। पुत्रादिर्दम्पत्योः संनिधाने एकतरसंनिधाने वा जुहुयात्। त्यागं यजमानः पत्नी वा कुर्यात्। तस्या असंनिधौ तदाज्ञया ऋत्विगादिरपि। पत्न्या ऋतुप्रसवोन्मादादिदोषे तु तदाज्ञां विनापि ऋत्विगादिस्त्यागं कुर्यात्। स्वयं होमे फलं यत्स्यादन्यैर्होमे तदर्धकम्।

---

१. मनु ने भी सन्ध्योपासन नहीं करने पर सभी द्विजकर्मों से शूद्रवत् बहिष्करणीय बतलाया है—'न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्। स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥ याज्ञवल्क्यः—'यावन्तोऽस्यां पृथिव्यां हि विकर्मस्थास्तु वै द्विजाः। तेषां वै पावनार्थाय सन्ध्या सृष्टा स्वयम्भुवा॥ निशायां वा दिवा वाऽपि यदज्ञानकृतं भवेत्। त्रिकालसन्ध्याकरणात्तत्सर्वं हि प्रणश्यति॥' अत्रिः—'सन्ध्यामुपासते ये तु सततं शंसितव्रताः। विधूतपापास्ते यान्ति ब्रह्मलोकं सनातनम्॥' दक्षः—'सन्ध्याहीनोऽशुचिर्विप्रो ह्यनर्हः सर्वकर्मसु। यदन्यत्कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत्॥' इति।

२. स्मृतियों में स्वयं होम करने का महत्त्व—'अन्यैः शतहुताद्धोमादेकदा स्वहुतो वरम्। शिष्यैः शतहुताद्धोमादेकः पुत्रहुतो वरम्॥ पुत्रैः शतहुताद्धोमादेक आत्महुतो वरम्। तस्मात् सदैव होमं तु प्रकुर्वीत स्वयं द्विजः॥' कात्यायनः—'असमक्षं तु दम्पत्योर्होतव्यं नर्त्विगादिना। द्वयोरप्यसमक्षं तु भवेद् हुतमनर्थकम्॥' इति।

अपने से होम करना मुख्य है। असमर्थ होने पर पत्नी, पुत्र, कुमारी, भाई, शिष्य, भानजा, दामाद या ऋत्विक् करे। पुत्र आदि पति-पत्नी के रहने पर अथवा एक किसी के रहने पर होम करे। त्याग, यजमान अथवा पत्नी करे। उसके सन्निधि में नहीं रहने पर उसकी आज्ञा से ऋत्विक् आदि भी करें। पत्नी के रजस्वला, प्रसव और पागल आदि होने पर तो उसकी आज्ञा के विना भी ऋत्विक् आदि त्याग करें। अपने से होम करने पर जो फल होता है, वह दूसरों से कराने पर आधा फल होता है।

पर्वणि तु स्वयमेव जुहुयात्। तत्र प्रातः सूर्योदयात्प्राक् सायं सूर्यास्तात्प्राग्[1] अग्नीनां गृह्याग्नेर्वा प्रादुष्करणं[2] कृत्वा सूर्योदयास्तोत्तरं होमः कार्यः। प्रादुष्करणकालातिक्रमे ओं भूर्भुवः स्वः स्वाहेति मन्त्रेण स्रुवाज्याहुतिरूपं सर्वप्रायश्चित्तमाज्यसंस्कारपूर्वकं कृत्वा होमः। सूर्योदयोत्तरं दशघटिकापर्यन्तं प्रातर्होमकालो मुख्यः, तत आसायं गौणः। सायं नवनाडिकापर्यन्तं मुख्यः। तत आप्रातर्गौणः।

पर्व में तो स्वयं ही होम करे। उसमें प्रातःकाल सूर्योदय से पहिले, सायंकाल सूर्यास्त से से पहिले, अग्नियों का या गृह्याग्नि का उत्पादन कर सूर्योदय के बाद और सूर्यास्त के बाद होम करे। अग्निप्रज्वलन का समयातिक्रमण होने पर 'ओं भूर्भुवः स्वः स्वाहा' इस मन्त्र से स्रुवा से घी की आहुतिरूप घृत-संस्कार-पूर्वक सर्वप्रायश्चित्त करके होम करे। सूर्योदय के बाद दस घटी तक होम का समय मुख्य उसके बाद सायंकाल तक गौण है। सायंकाल नव घड़ी तक मुख्य काल है। तदनन्तर प्रातःकाल तक गौण समय है।

मुख्यकालातिक्रमे कालातिक्रमनिमित्तप्रायश्चित्तपूर्वकम् 'अमुकहोमं करिष्ये' इति संकल्प्याज्यं संस्कृत्य स्रुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वा सायंकाले दोषावस्तर्नमः स्वाहेति हुत्वा प्रातस्तु प्रातर्वस्तर्नमः स्वाहेति हुत्वा हौम्यं संस्कृत्य नित्यहोमः। श्रौतहोमं कृत्वा स्मार्तहोमः। केचित् स्मार्तहोमं पूर्वमाहुः। आधाने पुनराधाने सायमुपक्रमो होमः। सायं प्रातर्होमयोर्द्रव्यैक्यं कर्त्रैक्यं च। प्रातर्यजमानः कर्ता चेत्कर्तृभेदो न दोषाय।

मुख्य समय के अतिक्रमण होने पर 'समयातिक्रमण निमित्त प्रायश्चित्तपूर्वक अमुक होम करूँगा' ऐसा संकल्प कर घृत का संस्कार करके स्रुवा में चार बार घृत ग्रहण कर सायंकाल में 'दोषावस्तर्नमः

---

१. कात्यायनः 'यावन्नापैति लौहित्यं तावत्सायं तु हूयते। प्रातः सूर्योदयात् पूर्वं प्रायश्चित्तमतः परम् ॥' जहाँ प्रायश्चित्त का विशेष विधान नहीं है वहां आचारार्क में व्याहृति से होम करने का निर्देश किया है—'प्रायश्चित्तविशेषेण यत्र नोक्तो भवेद्विधिः। होतव्याज्याहुतिस्तत्र भूर्भुवः स्वरितीति च ॥' तीनों व्याहृतियों की महत्ता—'भवन्ति चास्मिन् भूतानि स्थावराणि चराणि च। तस्माद् भूरिति विज्ञेया प्रथमा व्याहृतिः स्मृता ॥ भवन्ति भूयो भूतानि उपभोगक्षये पुनः। कल्पान्ते उपभोगाय भुवस्तस्मात् प्रकीर्तिता ॥ शीतोष्णवृष्टितेजांसि जायन्ते तानि वै सदा। प्रलयः सुकृतीनां च स्वर्लोकः स उदाहृतः ॥' इति।

२. प्रादुष्करणं = प्रज्वलनम्। अग्नि प्रज्वलनादि कार्य के अनुकल्पवर्ग—'दुहित्रा स्नुषया वाऽग्निविहारो न विरुध्यते। निर्लेपनं च पात्राणामुपलेपनमर्चनम् ॥' यहां आचारार्क में विहार शब्द का प्रादुष्करण (अग्निप्रज्वलन) अर्थ किया है।

स्वाहा' इस मन्त्र से होम करके होम की सामग्री का संस्कार कर नित्य होम करे। श्रौत-होम करके स्मार्त-होम करना चाहिये। कुछ लोग स्मार्त-होम पहिले करने की बात कहते हैं। आधान और पुनः आधान में सायंकाल आरंभ किया गया होम सायं-प्रातः-काल द्रव्यैक्य और कर्त्रैक्य से होना चाहिये। प्रातःकाल यदि यजमान करने वाला हो तो कर्ता के भेद होने में दोष नहीं है।

अथाश्वलायनस्मार्तहोमः

आचम्य प्राणानायम्य देशकालौ संकीर्त्य 'श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं सायमौपासनहोमं प्रातरौपासनहोमं वामुकद्रव्येण करिष्ये'। चत्वारिशृङ्गेति ध्यात्वा सोदकहस्तेन त्रिः परिसमुह्य 'परिस्तीर्य त्रिः पर्युक्ष्य होमद्रव्यं समिद्युतमुत्तरतः स्थितं दर्भेणावज्वल्य प्रोक्ष्य त्रिः पर्यग्नि कृत्वाऽग्नेः पश्चिमतो दर्भेषु निधाय विश्वानि न इत्यभ्यर्च्य प्रजापतिं मनसा ध्यायन् समिधमग्नौ प्रक्षिप्य तथैव त्यक्त्वा समिधि दीप्तायां शततण्डुलैरग्नये स्वाहेति सायं प्रथमाहुतिः, सूर्याय स्वाहेति प्रातः प्रथमाहुतिः।

आचमन प्राणायाम कर देश काल को कह कर 'श्रीपरमेश्वर की प्रीति के लिए सायंकालीन औपासन होम अथवा प्रातःकाल का औपासन होम अमुक द्रव्य से करूँगा'। 'चत्वारिशृंगा' इत्यादि मन्त्र से ध्यान कर हाथ में जल लेकर तीन बार परिसमूहन और परिस्तरण कर तीन बार पर्युक्षण कर समिधा से युक्त उत्तर की ओर रखे हुए होम द्रव्य को कुश से प्रज्वलित और प्रोक्षण कर तीन पर्यग्नि करके अग्नि के पश्चिम की ओर कुशों पर रखकर 'विश्वानि न' इस मन्त्र से पूजन कर प्रजापति का मन से ध्यान करते हुए समिधा को अग्नि में छोड़कर उसी प्रकार त्याग कर समिधा के प्रज्वलित हो जाने पर सौ चावलों से 'अग्नये स्वाहा' इस मन्त्र से सायंकाल पहिली आहुति दे। प्रातःकाल 'सूर्याय स्वाहा' इस मन्त्र से पहिली आहुति दे।

शताधिकतण्डुलैः प्रजापतय इति मनसोच्चार्य होमत्यागाभ्यां द्वितीयाहुतिरुभयकाले। परिस्तरणं विसृज्य परिसमूहनपर्युक्षणे कृत्वोपस्थानम्। अग्न आयुंषीति तिसृणां शतं वैखानसा अग्निः पवमानो गायत्री अग्न्युपस्थाने विनियोगः। अग्ने त्वन्न इति चतसृणां गौपायनो लौपायनो वा बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्चाग्निर्द्विपदा विराट् अग्न्युपस्थाने वि०। प्रजापते हिरण्यगर्भः प्रजापतिस्त्रिष्टुप् प्राजापत्युपस्थाने विनियोगः। तन्तुं तन्वन्देवा अग्निर्जगती, यद्वा देवाः प्रजापतिर्जगती, उपस्थाने विनियोगः। हिरण्यगर्भो हिरण्यगर्भः प्रजापतिस्त्रिष्टुप् प्राजापत्युप०। इति वायव्यदेशे तिष्ठन्नुपस्थाय उपविश्य मानस्तोक इत्यादिना विभूतिधारणं क्वचिदुक्तम्। विष्णुं स्मृत्वा अनेन होमकर्मणा परमेश्वरः प्रीयतामित्यर्पयेत्।

सौ से अधिक चावलों से 'प्रजापतये' इस मन्त्र को मन से उच्चारण कर दोनों समय में दूसरी आहुति दे। परिस्तरण को छोड़कर परिसमूहन और पर्युक्षण करके अग्नि का उपस्थान करे।

---

१. प्रयोगपारिजात में परिस्तरण कुश की संख्या—'वह्नितस्तु परित्यज्य द्वादशाङ्गुलतो बहिः। परिस्तणदर्भास्तु षोडश द्वादशापि वा॥' अपि च—'ईशानकोणमारभ्य पुनरीशानकोणगा। कुशैस्त्रिभिस्त्रिभिः कुर्यात् सव्येनाग्नेः परिस्तृतिः॥' इति।

'अग्न आयूंषि' इन तीन ऋचाओं का शतं वैखानस ऋषि, अग्नि पवमान देवता, गायत्री छन्द, अग्नि के उपस्थान में विनियोग है। 'अग्ने त्वन्न' इन चार ऋचाओं का गौपायन या लौपायन बन्धु-सुबन्धु-श्रुतबन्धु और विप्रबन्धु ये ऋषि, अग्नि देवता, द्विपदा विराट् छन्द, अग्नि के उपस्थान में विनियोग है। 'प्रजापते हिरण्यगर्भः' इस मन्त्र का हिरण्यगर्भ ऋषि, प्रजापति देवता, त्रिष्टुप् छन्द, उपस्थान में विनियोग है। 'तन्तुं तन्वन्देवा' इस मंत्र का अग्नि देवता, जगती छन्द, उपस्थान में विनियोग है। 'हिरण्यगर्भो हिरण्यगर्भः' इस मन्त्र का हिरण्यगर्भ ऋषि, प्रजापति देवता, त्रिष्टुप् छन्द, प्रजापति के उपस्थान का विनियोग है। इन मन्त्रों से वायव्य दिशा में खड़े होकर उपस्थान करके बैठकर 'मानस्तोक' इत्यादि मन्त्र से विभूति का धारण कहीं कहा है। विष्णु का स्मरण कर इस होम कर्म से परमेश्वर प्रसन्न हों यह कह कर अर्पण करे।

प्रातस्तु—सूर्यो नो दिवः सौर्यश्चक्षुः सूर्यो गायत्री सूर्योप० । उदुत्यं काण्वः प्रस्कण्वः सूर्यो गायत्री सूर्योप० । चित्रं देवानामाङ्गिरसः कुत्सः सूर्यस्त्रिष्टुप् सूर्योप० । नमो मित्रस्य सौर्योऽभितपाः सूर्यो जगती सूर्यो० । इति चतुर्भिः पूर्वोक्तैस्त्रिभिः प्राजापत्यैश्चोपस्थानम्। केचित्प्रातस्तंतुं तन्वन्निति न पठन्ति। पत्नीकुमारीकर्तृकहोमे ध्यानोपस्थानादौ मन्त्रा वर्ज्याः।

प्रातःकाल में तो—'सूर्यो नो दिवः' इस मंत्र का सौर्यश्चक्षुः ऋषि, सूर्य देवता, गायत्री छन्द, यह सूर्योपस्थान का विनियोग है। 'उदुत्यं' इस मंत्र का काण्व-प्रस्कण्व-ऋषि, सूर्य देवता, गायत्री छन्द, यह सूर्योपस्थान का विनियोग है। 'चित्रं देवानां' इस मंत्र का आंगिरस-कुत्स-ऋषि, सूर्य देवता, त्रिष्टुप् छन्द, यह सूर्योपस्थान का विनियोग है। 'नमो मित्रस्य' इस मन्त्र का सौर्याभितपा ऋषि, सूर्य देवता, जगती छन्द, यह सूर्योपस्थान का विनियोग है। इन चारो से और पहिले कहे हुए तीन प्राजापत्यों से उपस्थान करे। कोई प्रातः 'तन्तुं तन्वन्' इस मन्त्र को नहीं पढ़ते। पत्नी और कुमारी होम करने वाली हो तो उस होम में ध्यान और उपस्थान आदि में मंत्रोच्चारण न करे।

अथ हिरण्यकेशीयानां होमः

पूर्वोक्तसंकल्पाद्यन्ते यथाह तद्वसव इति परिसमुह्य परिस्तीर्य अदितेऽनुमन्यस्वेति दक्षिणतः प्राचीनं पर्युक्षेत्। अनुमतेऽनुमन्यस्वेति पश्चादुदीचीनम्। सरस्वतेऽनुमन्यस्वेति उत्तरतः प्राचीनम्। देवसवितः प्रसुवेति सर्वतः। तूष्णीं समिधमाधाय होमादिप्राग्वत्। अदितेऽन्वमꣳस्थाः, अनुमतेऽन्वमꣳस्थाः, सरस्वतेऽन्वमꣳस्थाः, देवसवितः प्रासावीरिति पूर्ववत्परिषेचनम्। उदुत्यं चित्रं देवानामिति प्रातरुपस्थानम्। अग्निर्मूर्धादिव इति त्वामग्ने पुष्करादधीति द्वाभ्यां सायमुपस्थानम्।

पहिले कहे हुए संकल्प आदि के बाद 'यथाह तद्वसव' इस मन्त्र से परिसमूहन और परिस्तरण करके 'अदितेऽनुमन्यस्व' इससे दक्षिण से पूर्वपर्यन्त पर्युक्षण करे। 'अनुमतेऽनुमन्यस्व' इस मंत्र से पश्चिम से उत्तर तक पर्युक्षण करे। 'सरस्वतेऽनुमन्यस्व' इससे उत्तर की ओर से पूर्व तक, और 'देवसवितः प्रसुव' इससे चारो ओर पर्युक्षण करे। चुपचाप समिधा लेकर होम आदि पहिले के समान है। 'अदितेऽन्वमस्थाः, अनुमतेन्व०, सरस्वतेन्व०, देवसवितः प्रासावीः' इससे पहिले के समान परिषेचन करे। 'उदुत्यं' और 'चित्रं देवानां' इत्यादि मन्त्र से प्रातःकाल उपस्थान करे। 'अग्निर्मूर्धादिवः' और 'त्वामग्ने पुष्करादधि' इन दो मन्त्रों से सायंकाल में उपस्थान करे।

अथ आपस्तम्बानां होमः

आपस्तम्बानां सायमग्नये स्वाहाऽग्नये स्विष्टकृते स्वाहेति द्वे आहुती। प्रातस्तु सूर्याय स्वाहाऽग्नये स्विष्टकृते स्वाहेति विशेषः। शेषं हिरण्यकेशीयवत्।

आपस्तम्बों की सायंकाल में 'अग्नये स्वाहा' और 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' इन दो मन्त्रों से दो आहुति है। प्रातःकाल तो 'सूर्याय स्वाहा' और 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' इतना विशेष है। बाकी हिरण्यकेशीय की तरह है।

अथ कात्यायनानां होमः

कात्यायनानां सायमस्तमिते होमः। प्रातः सूर्येऽनुदिते[1] होमः। तत्र प्रातरुपस्थानान्तां संध्यां कृत्वा होमान्ते गायत्रीजपादिसंध्यासमापनम्। तत्र पूर्ववत्संकल्पान्ते उपयमनान्कुशानादाय सव्ये कृत्वा दक्षिणकरेण तिस्रः समिधोऽग्नावाधाय मणिकोदकेन पर्युक्ष्याग्निमर्चयित्वाऽग्नये स्वाहा प्रजापतये स्वाहेति सायं दध्ना तण्डुलैर्वा हुत्वा प्रातस्तथैव सूर्याय प्रजापतये च जुहुयात्। समास्त्वेत्यनुवाकेन सायमुपस्थानं, प्रातस्तु विभ्राडित्यनुवाकेन। अत्र दधिहोमादौ संस्रावप्राशनमाहुः। होमलोपेऽष्टोत्तरसहस्रगायत्रीजपः। मुख्यकालातिक्रमे अनादिष्टहोमः।

कात्यायनों का होम सायंकाल सूर्यास्त में और प्रातःकाल सूर्योदय के पहिले होता है। उसमें प्रातःकाल उपस्थान तक सन्ध्या करके होम के बाद गायत्रीजप आदि सन्ध्या की समाप्ति होती है। पहिले की तरह संकल्प के बाद उपयमन से कुशों को लेकर सव्य होकर दाहिने हाथ से तीन समिधाओं को अग्नि में डाल कर मणिक-जल से पर्युक्षण करके अग्नि का पूजन कर 'अग्नये स्वाहा' 'प्रजापतये स्वाहा' इससे सायंकाल दही या चावल से होम करके प्रातःकाल उसी प्रकार सूर्य और प्रजापति का होम करे। 'समास्त्वा' इस अनुवाक से सायंकालीन उपस्थान करे। प्रातःकाल तो 'विभ्राट्' इस अनुवाक से उपस्थान करे। यहां दधि से होम आदि में संस्रवप्राशन कहा है। होम न होने पर १००८ गायत्री का जप करे। मुख्य काल के अतिक्रमण होने पर अनादिष्ट होम करे।

अथ होमद्रव्याणि

[2]व्रीहिश्यामाकयवानां तण्डुलाः पयोदधिसर्पिर्यवव्रीहिगोधूमप्रियंगवः स्वरूपेणापि होम्याः। तिलास्तु स्वरूपेणैव। तण्डुलादयः शतसंख्या हस्तेन होतव्याः।

---

१. मनुः—'उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा। सर्वथा वर्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः ॥' अर्थात् सूर्योदय होने पर सूर्योदय के न होने पर और अध्युषित समय में अग्निहोत्र सम्बन्धी होम करना चाहिये। अनुदित शब्द का भाव है। जब पूर्व दिशा में लालिमा हो जाय और छिट फुट एक दो तारे दिखाई पड़ते हों तथा अध्युषित का तात्पर्य है कि न तो सूर्योदय हुआ हो और न तो छिट-फुट तारे ही दिखाई पड़ते हों।

२. कात्यायनः—'कृतमोदनसक्त्वादि तण्डुलादि कृताकृतम्। व्रीह्यादि चाकृतं प्रोक्तमिति वेद्यं त्रिधा बुधैः ॥' स्मृत्यन्तरे —'हविष्यान्नं तिला माषा नीवारा व्रीहयो यवाः। इक्षवः शालयो मुद्गाः पयो दधि घृतं मधु ॥ हविष्येषु यवा मुख्यास्तदनुव्रीहयः स्मृताः। व्रीहीणामप्यभावे तु दध्ना वा पयसाऽपि वा ॥ यथोक्तवस्त्वसम्पत्तौ ग्राह्यं तदनुकल्पतः। यवानामिव गोधूमा व्रीहीणामिव शालयः ॥'

दध्यादिद्रवद्रव्यं स्रुवेण। सर्वत्रोत्तराहुतिः पूर्वतो भूयसी। 'समिधश्चार्कपलाशखदिरापामार्गपिप्पलोदुम्बरशमीदूर्वादर्भमया दश द्वादशाङ्गुलाः सत्वचः वटप्लक्षबिल्वादिजा हेमाद्रौ। होमाहुत्योः संसर्गे यत्र वेत्थेति मन्त्रेणाग्नये समिद्धोमः।

धान, सावां और जौ के चावल, दूध, दही, घी, जौ, धान, गेहूँ, ककुनी, ये भी अपने स्वरूप से होम के योग्य हैं। तिल तो स्वरूप से ही होम के योग्य है। चावल आदि का शतसंख्यक होम हाथ से करने योग्य है। दही आदि द्रव-द्रव्य का होम स्रुवा से करे। सब जगह बाद वाली आहुति पहिले से अधिक मात्रा में हों। समिधायें—अर्क, पलाश, खैर, अपामार्ग, (चिड़चिड़ी) पीपल, गूलर, शमी, दूब और कुश की, दस या बारह अंगुल की लम्बी, छिलके के साथ बड़, पाकड़ और बेल आदि की हेमाद्रि में कहा है। होम और आहुति के संसर्ग में 'यत्र वेत्थ' इस मन्त्र से अग्नि के लिये समिधा से होम करे।

अथ होमलोपे प्रायश्चित्तादि

नित्यहोमे त्वतिक्रान्ते आज्यं संस्कृत्य चतुर्गृहीत्वा मनोज्योतिर्जुषतामिति जुहुयात्। द्वादशदिनपर्यन्तं होमलोपे इदमेव प्रायश्चित्तं, ततः परमग्निनाशः। एवं होमलोपप्रायश्चित्तं कृत्वातिक्रान्तहोमार्थं द्रव्यं संस्कृत्य सायं प्रातः क्रमेण द्वे द्वे आहुती दिनगणनया जुहुयात्। अग्निसूर्यप्रजापतीनुपतिष्ठेन्न वा जुहुयात्, प्रायश्चित्तेन चारितार्थ्यात्। सूतकादिना होमलोपेऽप्येवम्।

नित्य होम के अतिक्रमण होने पर घृत का संस्कार करके स्रुवा से घृत को चार बार ग्रहण कर 'मनोज्योतिर्जुषतां' इस मन्त्र से होम करे। बारह दिन तक नित्य होम न होने पर यही प्रायश्चित्त है, इसके बाद अग्नि का नाश हो जाता है। इस प्रकार होम-लोप का प्रायश्चित्त करके अति-

---

बौधायनः—'व्रीहीणां वा यवानां वा शतमाहुतिरिष्यते।' संग्रहे—'द्रवं हविः स्रुवेणैव पाणिना कठिनं हविः। अङ्गुल्यग्रैर्न होतव्यं न कृत्वाऽङ्गुलिमेदनम्। अङ्गुल्युत्तरपार्श्वेन होतव्यमिति तु स्थितिः।'—

हरिहरभाष्य में होम का निषेध—'क्षुत्तृट्क्रोधसमायुक्तो हीनमन्त्रो जुहोति यः। अप्रवृद्धे सधूमे वा सोऽन्धः स्यादन्यजन्मनि॥ स्वल्पे रूक्षे सस्फुलिङ्गे वामावर्ते भयानके। ऊर्ध्वं काष्ठैश्च संपूर्णे फूत्कारवति पावके॥ कृष्णार्चिषि सुदुर्गन्धे तथा लिहति मेदिनीम्। आहुतिर्जुहुयाद्यस्तु तस्य नाशो भवेद् ध्रुवम्॥' इति।

१. होम में पलाश की समिधा मुख्य है उसके अभाव में खदिरादि की लेनी चाहिये—'पालाश्यः समिधः कार्याः खादिर्य्यस्तदभावतः। शमीरोहितकाश्वत्थास्तदभावेऽर्कवेतसौ॥' कात्यायनोक्त-ग्राह्य-समिधा—'प्रागग्राः समिधो देयास्ताश्च योगेषु पातिताः। शान्त्यर्थेषु प्रशस्तार्द्रा विपरीता जिघांसति॥ होतव्या मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना क्षीरेण संयुताः। प्रादेशमात्राः समिधो ग्राह्याः सर्वत्र चैव वा॥' अग्राह्य-समिधा—'नाङ्गुष्ठादधिका कार्या समित् स्थूलतया क्वचित्। न वियुक्ता त्वचा चैव न सकीटा न पाटिता॥ प्रादेशान्नाधिका नोना तथा नैव द्विशाखिका। न सपर्णा न निर्वीर्या होमेषु च विजानता॥ विकर्णा विदलाऽरम्या वक्रा ससुषिरा कृशा। दीर्घा स्थूला घुणैर्जुष्टा कर्मसिद्धिविनाशिका॥' और भी—'विशीर्णा विदला ह्रस्वा वक्राः स्थूला द्विजा कृताः। कृमिदष्टाश्च दीर्घाश्च समिधो नैव कारयेत्॥' अग्राह्य समिधा से होम करने पर दोष—'विशीर्णायुःक्षयं कुर्याद् विदला पुत्रनाशिनी। ह्रस्वा नाशयते पत्नीं वक्रा बन्धुविनाशिनी॥ कृमिदष्टा रोगकरी विद्वेषकरणी द्विधा। पशून् मारयते दीर्घा स्थूला चार्थविनाशिनी॥' इति।

क्रमण हुए होम के लिये द्रव्य का संस्कार करके सायं और प्रातःकाल क्रम से दो दो आहुति दिन गिन कर होम करे। अग्नि, सूर्य और प्रजापति का उपस्थान करे होम न करे, क्योंकि वह प्रायश्चित्त से ही चरितार्थ है। आशौच आदि से होम-लोप होने पर भी ऐसा ही करे।

हिरण्यकेशीयानामप्येवम्। आपस्तम्बादीनां त्रिरात्रात्परमग्निनाशो भवतीति सूतकेऽपि स्वयं होमः कार्यः। समारोपोत्तरं सूतकपाते प्रत्यवरोहासंभवेन त्रिरात्रं होमलोपे पुनराधानम्।

हिरण्यकेशियों का भी इसी प्रकार होता है। आपस्तम्ब आदि का तीन रात के बाद अग्नि का नाश होता है। अतः आशौच में भी उन्हें स्वयं होम करना चाहिये। समारोप के बाद आशौच होने पर प्रत्यवरोह के असम्भव होने से तीन रात होम के लोप में पुनः अग्नि का आधान करना चाहिये।

अथ समस्यहोमः

'सायंप्रातर्होमौ समस्य करिष्ये'। पूर्ववत्सायंकालहोमान्तं कृत्वा पर्युक्ष्य पुनर्द्रव्यं संस्कृत्य समिधं प्रक्षिप्य सूर्यप्रजापत्याहुतीर्दत्त्वा हविष्पांतमित्युपतिष्ठेत्। हविष्पांतमिति पञ्चर्चस्य वामदेवः सूर्यवैश्वानरौ त्रिष्टुप्। नित्यवत्प्रजापत्युपस्थानम्।

'सायं और प्रातः काल के दोनों होम समस्य करूँगा' पहिले की तरह सायंकाल का होम तक करके पर्युक्षण कर द्रव्य का पुनःसंस्कार करके समिधा छोड़कर सूर्य और प्रजापति की एक एक आहुति देकर 'हविष्पान्तं' इस मन्त्र से उपस्थान करे। 'हविष्पान्तं' इन पांच ऋचाओं के वामदेव सूर्य और वैश्वानर देवता, त्रिष्टुप् छन्द है। नित्य की तरह प्रजापति का उपस्थान करे।

अथ पक्षहोमशेषहोमौ

प्रतिपदि 'अद्य सायमारभ्य चतुर्दशीसायमवधिकान् पक्षहोमांस्तन्त्रेण करिष्ये'। सायं तण्डुलान् पात्रद्वये वृद्धिक्षयानुसारेण चतुर्दशादिवारं गृहीत्वा होमकालेऽग्नये स्वाहेति सर्वान् पूर्वपात्रस्थानेकदैव हुत्वा द्वितीयपात्रस्थान् प्रजापतये तथैव जुहुयात्।

प्रतिपदा के दिन 'आज सायंकाल से आरंभ कर चतुर्दशी के सायंकाल तक पक्षहोमों को तन्त्र से करूंगा।' सायंकाल चावलों को दो पात्रों में वृद्धि-क्षय के अनुसार चौदह आदि बार ग्रहण करके होम काल में 'अग्नये स्वाहा' इस मन्त्र से सब को पहिले पात्र में स्थित एक ही बार होम करके दूसरे पात्र वाले चावल से प्रजापति के लिये वैसे ही होम करे।

एवं द्वितीयायां प्रातः'अद्यावधि पर्वप्रातरवधिकान् पक्षहोमांस्तन्त्रेण करिष्ये' इत्यादि सायंवत्। विशेषस्तु प्रथमपात्रस्थान्सूर्याय स्वाहेति जुहुयात्। द्वितीयपात्रस्थान्प्रजापतये हुत्वोभयत्र समिदेकोपस्थानादि सकृत्।

इसी प्रकार द्वितीया के दिन प्रातः काल 'आज तक पर्व के प्रातः तक पक्षहोमों को तन्त्र से करूंगा' इत्यादि सायंकाल की तरह होम करे। विशेष तो पहिले पात्र वाले चावलों को 'सूर्याय स्वाहा' इस मन्त्र से होम करे दूसरे पात्र वाले चावलों का प्रजापति के लिये होम करके दोनों जगह एक ही समिधा रहेगी और एक ही बार उपस्थान होगा।

पक्षमध्ये आपत्प्राप्तौ तत्सायंकालाच्चतुर्दशीसायंपर्यन्तान् शेषहोमान्सायं पक्षहोमवद् हुत्वा पर्वप्रातर्होमान्तान्प्रातर्जुहुयात्। सर्वथा पर्वसायंहोमः प्रतिपत्प्रातर्होमश्च पृथगेव। इति पक्षहोमशेषहोमौ।

पक्ष के मध्य में आपत्ति प्राप्त होने पर उसके सायंकाल से चतुर्दशी के सायंकाल तक शेष होमों को सायं पक्षहोम की तरह होम करके पर्व के प्रातःकाल होम तक प्रातःकाल में होम करे। सब प्रकार पर्व का सायं होम और प्रतिपद् का प्रातः होम भी अलग होगा। पक्षहोम शेषहोम समाप्त।

पक्षमध्ये आपन्निवृत्तावपकृष्टहोमाः पुनः कार्याः। संततपक्षहोमत्रयेऽग्निनाशात्तृतीये पक्षे प्रतिदिनं होमः। सर्वथापन्निवृत्त्यभावे यावज्जीवं पक्षहोमाः।

पक्ष के मध्य में आपत्ति के निवृत्त होने पर बचे हुए होम फिर से करे। संतत पक्ष के तीन होमों में अग्नि के नाश होने से तीसरे पक्ष में प्रतिदिन होम करे। सब प्रकार से आपत्ति की निवृत्ति न हो तो जीवनपर्यन्त पक्षहोम करे।

अथ समारोपः

अयं ते योनिरित्यस्य विश्वामित्रोऽग्निरनुष्टुप्, अग्निसमारोपे वि०। अनेन मन्त्रेण होमोत्तरमरणीमश्वत्थसमिधं वा प्रताप्याग्निसमारोहं तत्र भावयेत्। होमादिकाले 'अरणीं निर्मथ्य प्रत्यवरोहेति मन्त्रेण स्थण्डिलेऽग्निं प्रतिष्ठापयेत्। समित्समारोपे श्रोत्रियागारादग्निं प्रतिष्ठाप्य प्रत्यवरोहेति मन्त्रेण तां समिधमग्नावादध्यात्। सूत्रान्तरे आजुह्वान उद्बुध्यस्वेति मन्त्राभ्यां प्रत्यवरोहणम्।

'अयं ते योनिः' इस मंत्र का विश्वामित्र ऋषि, अग्नि देवता, अनुष्टुप् छन्द, अग्नि समारोप में इसका विनियोग है। इस मन्त्र से होम के बाद अरणी को अथवा पीपल की समिधा को तपाकर उसमें अग्नि समारोह की भावना करे। होम आदि काल में अरणी का निर्मन्थन कर 'प्रत्यवरोह' इस मन्त्र से स्थण्डिल में अग्नि की स्थापना करे। समिधा के समारोप में श्रोत्रिय के घर से अग्नि की स्थापना कर 'प्रत्यवरोह' इस मन्त्र से उस समिधा को अग्नि में आधान करे। दूसरे सूत्रों में 'आजुह्वान' और 'उद्बुध्यस्व' इन दो मन्त्रों से प्रत्यवरोहण करे।

प्रत्यहं समारोपादिद्वादशदिनमेव। पर्वणि सायंतनहोमकालपर्यन्तं प्रत्यवरोहणाभावेऽग्निनाश इति केचित्। समारोपप्रत्यवरोहौ यजमानकर्तृकावेव। तेन समारोपोत्तरं पर्वण्याशौचप्राप्तौ प्रत्यवरोहासंभवादग्निनाशः। इदमापस्तम्बादिपरम्। आश्वलायनानां तु द्वादशरात्रमध्ये पर्वणि प्रत्यवरोहाभावेऽपि नाग्निनाशः, किन्तु द्वादशरात्रोत्तरं होमलोप एवेत्यपरे। राजक्रान्त्यादिसंकटे ऋत्विग्द्वारापि समारोपादि।

प्रतिदिन समारोप आदि बारह दिन ही करे। पर्व में सायंकाल होमकालपर्यन्त प्रत्यवरोहण न होने पर अग्नि का नाश होता है, ऐसा कोई कहते हैं। समारोप और प्रत्यवरोह का कर्ता यज-

---

1. जिस यन्त्र-विशेष के घर्षण से अग्नि का प्रकटन किया जाता है उसका नाम 'अरणि' या 'अरणी' है। अग्नि-प्रकटन के लिये अरणि-उत्तरारणि चात्र-ओविली-प्रमन्थ-नेत्र इन छ यन्त्रों की आवश्यकता पड़ती है। इनका लक्षणादि आगे 'अथ अग्निनाशकानि' शीर्षक की सुधा-विवृति में देखें।

मान ही होता है। इससे समारोप के अनन्तर पर्व में आशौच प्राप्त होने पर प्रत्यवरोह के सम्भव न होने से अग्नि का नाश होता है, यह आपस्तम्ब आदि के लिये है। आश्वलायनों का तो बारह दिन के बीच में पर्व में प्रत्यवरोह न होने पर भी अग्नि का नाश होता है। दूसरे कहते हैं कि बारह दिन के बाद होम का लोप होता है। राज्यक्रान्ति आदि संकट में ऋत्विक् के द्वारा भी समारोप आदि होता है।

केचिदृत्विगाद्यभावेनानन्यगतिकत्वे आशौचपातात्पूर्वं पर्वहोमसहितानपि होमानपकृष्य कृत्वा न कृत्वा वा समारोपं कृत्वा सूतकान्ते प्रत्यवरोहः कार्यो नात्र पर्वोल्लङ्घनदोष इत्याहुः।

कुछ लोग ऋत्विक् आदि के न होने से अनन्यगति की स्थिति में आशौच आने के पहिले पर्वहोम के सहित भी होमों का अपकर्ष करे अथवा न करे समारोप करके आशौच के बाद प्रत्यवरोह करना चाहिये। इसमें पर्व के उल्लंघन का दोष नहीं होता, ऐसा कहते हैं।

अथ दम्पत्योः प्रवासे विधिः

समारोपोत्तरं दम्पत्योः प्रवासे सीमानद्योरुल्लङ्घनकाले उभाभ्यामन्यतरेण वा समिदाद्यन्वारम्भः कार्यः, अन्यथाऽग्निनाशः।

समारोप के अनन्तर पति-पत्नी के परदेश जाने के समय सीमा तथा नदी के उल्लंघन के समय में दोनों के द्वारा अथवा दो में से किसी एक के द्वारा समिधा का अन्वारम्भ करना चाहिये नहीं तो अग्नि का नाश होता है।

यजमानस्यैव प्रवासे कृत्यम्—अभयं वोभयं मेस्त्विति अग्निमुपस्थाय प्रवासं गच्छेत्। तत आगत्य गृहामाबिभीतो पवः स्वस्त्येवास्मासु च प्रजायध्वं मा च वो गोपतीरिषदिति मन्त्रेण स्वगृहं निरीक्ष्य गृहानहं सुमनसः प्रपद्ये वीरघ्नो वीवतः सुवीरान्। इरांवहंतो घृतमुक्षमाणास्तेष्वहं सुमनाः संविशामीति गृहं प्रविश्य शिवं शग्मं शंयोः शंयोरिति पुनस्त्रिरनुवीक्ष्य नित्यहोमान्ते अभयं वोभयं मेस्त्वित्यग्निमुपतिष्ठेत्।

यजमान ही के परदेश जाने पर यह कर्तव्य है—'अभयं वोभयं मेस्तु' इस मन्त्र से अग्नि का उपस्थान कर परदेश जाय। वहाँ से आकर 'गृहामाबिभीतो पवः' इत्यादि मूलोक्त मन्त्र से अपने घर का निरीक्षण कर 'गृहानहं सुमनसः प्रपद्ये०' इत्यादि मूलोक्तमन्त्र से घर में प्रवेश कर 'शिव शग्मं शंयोः' इत्यादि मन्त्र से पुनः तीन बार देखकर नित्य होम के अन्त में 'अभयं वोभयं मेस्तु' इत्यादि मन्त्र से अग्नि का उपस्थान करे।

ज्येष्ठपुत्रशिरः पाणिभ्यां परिगृह्य अङ्गादङ्गात्संभवसीति मन्त्रं जपित्वा मूर्धानं त्रिर्जिघ्रेत्। एवमितरपुत्राणामप्रत्तकन्यानां तूष्णीं जिघ्रेत्। प्रवासादागतं प्रतिज्ञातमपि अप्रियं तद्दिने न वदेयुः। प्रोषिते पत्यौ पत्नी स्मार्तहोमौ स्वयं कृत्वा दर्शपूर्णमासस्थालीपाकपिण्डपितृयज्ञान्विप्रेण कारयेत्। अनुगतप्रायश्चित्तादि पत्न्यां रजस्वलायामपि ऋत्विक्कुर्यात्। पुनः संधानं तु पत्यौ प्रोषिते न भवेत्। नैमित्तिका जातेष्टिगृहदाहेष्टयोपि न भवन्ति। प्रायश्चित्तेष्टेः पूर्णाहुतिः।

ज्येष्ठ पुत्र के सिर को दोनों हाथों से पकड़ कर 'अंगादगात् संभवसि' इस मन्त्र को जप कर सिर को तीन बार सूंघे। इसी प्रकार दूसरे पुत्रों और अविवाहिता कन्याओं का चुपचाप सूंघे। प्रवास से आये हुए के प्रति जानी हुई भी अप्रिय बात उस दिन न कहे। पति के परदेश जाने पर पत्नी स्मार्त दोनों होमों को स्वयं करके दर्शपूर्णमास स्थालीपाक और पिण्डपितृयज्ञ को ब्राह्मण से करावे। अनुगत प्रायश्चित्त आदि पत्नी के रजस्वला अवस्था में भी ऋत्विक् करे। पुनःसंधान तो पति के प्रवास में नहीं होता। नैमित्तिक जातेष्टि और गृहदाहेष्टि भी नहीं होती। प्रायश्चित्तेष्टि की पूर्णाहुति होती है।

अथाग्न्यनुगमने प्रायश्चित्तादिविचारः

अथौपासनाग्न्यनुगमने 'गृह्याग्नेरनुगमप्रायश्चित्तं करिष्ये' इति संकल्प्य आयतनस्थं भस्म दूरीकृत्योपलेपादि कृत्वाग्निं प्रतिष्ठाप्याज्यं संस्कृत्य अयाश्चेति मन्त्रेणैकामाज्याहुतिं सर्वप्रायश्चित्तं च हुत्वा दम्पत्योरन्यतरेणापरहोमकालपर्यन्तमुपोषितेन स्थातव्यम्। एवं द्वादशरात्रपर्यन्तम्। केचिदुपवासमयाश्चेति होमं वा कुर्यात्, न द्वयमित्याहुः। एतद्वृत्तिकारमतम्।

औपासनाग्निके अनुगमन में 'गृह्याग्नि के अनुगमन का प्रायश्चित्त करूंगा' ऐसा संकल्प कर आयतन में स्थित भस्म को हटाकर उसका उपलेपन आदि करके स्थापना और घृत का संस्कार करके 'अयाश्च' इस मन्त्र से एक घृत की आहुति और सर्वप्रायश्चित्त का हवन कर पति-पत्नी में से कोई एक दूसरे होमकालपर्यन्त उपवास रहें। इसी प्रकार बारह दिन तक रहें। कोई कहते हैं—उपवास अथवा 'अयाश्च' इस मन्त्र से होम करें, दोनों नहीं करें। यह वृत्तिकार का मत है।

केचित्तु यद्यग्न्यनुगमने होमकालद्वयातिक्रमस्तदा नष्टाग्निसंधानम्। तत्र त्रिरात्रमग्निनाशे प्राणायामशतम्। तत आविंशतिरात्रमेकदिनोपवासः[१]। तत आमासद्वयं त्रिरात्रोपवासः। तत ऊर्ध्वं संवत्सरपर्यन्तं प्राजापत्यकृच्छ्रम्। ततः प्रतिवर्षं कृच्छ्रावृत्तिः। एवं प्रायश्चित्तं कृत्वा आधानोक्तसंभारान्निधाय 'नष्टस्य गृह्याग्नेः प्रायश्चित्तं करिष्ये' इति संकल्प्यायाश्चेत्याज्येन स्रुवाहुतिपत्न्युपवासादि पूर्ववत्। लाजहोमादिकं वा। एवं द्वादशरात्रपर्यन्तमग्न्युत्पत्तिरित्याहुः।

कुछ लोग तो यदि अग्नि के अनुगमन में दोनों होमकाल का अतिक्रमण होता हो तब नष्ट अग्नि का संधान करे। उसमें तीन दिन अग्नि का नाश होने पर सौ प्राणायाम करे। उसके बाद बीस दिन तक अग्नि का नाश होने पर एक दिन उपवास करे। तदनन्तर दो महीने तक तीन दिन का उपवास करे। इसके बाद वर्षपर्यन्त अग्निनाश की स्थिति में प्राजापत्य कृच्छ्र करे। तदनन्तर प्रतिवर्ष कृच्छ्र की आवृत्ति करे। इस प्रकार प्रायश्चित्त करके आधान में कहे हुए सामग्री को रख कर 'नष्ट हुई अग्नि का प्रायश्चित्त करूंगा' ऐसा संकल्प कर 'अयाश्च' इस मन्त्र से घी से स्रुवा के द्वारा आहुति, पत्नी का उपवास आदि पहिले के समान है। अथवा लाजाहोम आदि करे। इस प्रकार बारह दिन तक करने से अग्नि की उत्पत्ति होती है, ऐसा कहते हैं।

द्वादशदिनोत्तरं विच्छेदप्रायश्चित्तं होमादिद्रव्यदानं च कृत्वा विवाहहोमादिविधिना यथास्वस्वगृह्यं पुनःसंधानम्। अथान्वाहिताग्नेः प्राग् यागादनुगतौ अयाश्चेति पूर्ववदग्निमुत्पाद्य पुनरन्वाधानं कृत्वा भूर्भुवः स्वरित्युपस्थाय सर्व-

---

१. स्मृत्यर्थसारे विशेषः—'द्वादशाहातिक्रमे त्र्यहमुपवासः, मासातिक्रमे द्वादशाहमुपवासः, संवत्सरातिक्रमे मासमुपवासः, पयोभक्षणं वा' इति।

प्रायश्चित्तं हुत्वा स्थालीपाकं कुर्यात्। अन्वाधानोत्तरं प्रयाणप्राप्तौ तुभ्यं ता अंगिरस्तम इत्याज्याहुतिमग्नये हुत्वा सर्वप्रायश्चित्तं हुत्वाग्निं समारोप्य गच्छेत्।

बारह दिन के बाद विच्छेद-प्रायश्चित्त और होम आदि के द्रव्य का दान करके विवाह होम आदि की विधि से अपने गृह्य के अनुसार अग्नि का पुनः सन्धान करे। अन्वाहिताग्नि का याग से पहिले 'अयाश्च' इस मन्त्र से पहिले के समान अग्नि का उत्पादन और पुनः अन्वाधान करके 'भूर्भुवः स्वः' इस व्याहृति से उपस्थान करके सर्वप्रायश्चित्त का होम कर स्थालीपाक करे। अन्वाधान के बाद कहीं जाना पड़े तो 'तुभ्यं ता अंगिरस्तमः' इस मन्त्र से अग्नि के लिये घी की आहुति और सर्वप्रायश्चित्त होम के अनन्तर अग्नि का समारोप करके जाये।

अथ पुनराधेयप्रायश्चित्तादिविचारः

समारूढसमिन्नाशे पुनराधेयमिष्यते। उपलेपादिकं कृत्वा नष्टाग्निप्रायश्चित्तं पुनराधेयं च संकल्प्य आधानोक्तसंभारान्निधायाग्निं प्रतिष्ठाप्य अयाश्चेति स्रुवाज्याहुतिं सर्वप्रायश्चित्तं च जुहुयादिति पुनराधेयम्। स्वाग्निभ्रमेणान्याग्नौ स्वयं यजने स्वाग्नावन्ययजने वा 'पथिकृत्स्थालीपाकं करिष्ये' इति संकल्प्य चरुः कार्योऽथवा 'पथिकृत्स्थाने पूर्णाहुतिं होष्यामि' इति संकल्प्य स्रुचि द्वादशवारं चतुर्वारं वाज्यं गृहीत्वा अग्नये पथिकृते स्वाहेति जुहुयात्।

अग्नि में दी हुई समिधा के नष्ट होने को पुनराधेय कहते हैं। स्थान का उपलेपन कर नष्टाग्नि का प्रायश्चित्त और पुनराधेय का संकल्प करके आधान में कहे हुए सामग्री को रख कर अग्नि की स्थापना कर 'अयाश्च' इत्यादि मन्त्र से स्रुवा के द्वारा घी की आहुति और सर्वप्रायश्चित्त का होम करे, यह पुनराधेय है। अपनी अग्नि के भ्रम से दूसरे की अग्नि में स्वयं यज्ञ करने अथवा अपनी अग्निमें दूसरे के द्वारा यज्ञ करने पर 'पथिकृत् स्थालीपाक करूंगा' ऐसा संकल्प कर चरु बनावे अथवा 'पथिकृत् के स्थान में पूर्णाहुति का होम करूंगा' ऐसा संकल्प कर स्रुवा में बारह बार या चार बार घृत लेकर 'अग्नये पथिकृते स्वाहा' इस मन्त्र से होम करे।

विवाहोत्तरमाधानोत्तरं वा पौर्णमास्यां स्थालीपाकारम्भः। प्रतिपदि यागोऽतिक्रान्तश्चेदागामिपर्वपूर्वतिथिषु चतुर्थीनवमीचतुर्दशीद्वितीयापञ्चम्यष्टमीविहाय कार्यः। नात्र कालातिक्रमप्रायश्चित्तम्। अन्वाधानोत्तरं प्रतिपदीष्ट्यकरणे तृतीयादितिथिषु सर्वप्रायश्चित्तं हुत्वा पुनरन्वाधाय यागः। द्वितीयपर्वप्राप्तावतीतेष्टिः पथिकृच्चरुपूर्वकं पर्वणि कार्या।

विवाह या आधान के बाद पूर्णिमा में स्थालीपाक का आरंभ होता है। प्रतिपदा का यज्ञ यदि बीत जाय तो आने वाले पर्व की पहिली तिथियों में चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, द्वितीया, पंचमी तथा अष्टमी को छोड़ कर करे। इसमें समयातिक्रमण का प्रायश्चित्त नहीं होता। अन्वाधान के बाद प्रतिपदा में इष्टि नहीं करने पर तृतीया आदि तिथियों में सर्वप्रायश्चित्त का होम कर पुनः अन्वाधान करके याग करे। दूसरे पर्व की प्राप्ति होने पर अतीतेष्टि और पथिकृत् की चरुपूर्वक पर्व में करे।

तत्राप्यतिक्रमे द्वितीयप्रतिपदि लुप्तेष्टेः पादकृच्छ्रं कृत्वा प्राप्तकालयागः। द्वितीययागस्यापि आगामितिथिषु लोपे तत्पर्वणि पादकृच्छ्रपथिकृत्पूर्वकं द्वितीययागः।

इस समय के भी बीतने पर दूसरी प्रतिपदा में लुप्तेष्टि के लिये पादकृच्छ्र प्रायश्चित्त करके प्राप्त काल में याग करे। दूसरे याग का भी आने वाली तिथियों में न होने पर वह पर्व में पादकृच्छ्र और पथिकृत् का होम कर दूसरा याग करे।

तत्राप्यतिक्रमे तृतीयप्रतिपदि अर्धकृच्छ्रं यागद्वयस्य कृत्वा प्राप्तयागः। तृतीययागस्योक्ततिथावर्धकृच्छ्रपथिकृत्पूर्वकं चतुर्थपर्वणि वा अकरणे अग्निनाशात्पुनराधेयम्। अत्र पुनराधेयस्वरूपं सम्भारनिधानपूर्वकमयाश्चेति स्रुवाज्याहुतिरित्यन्वारूढसमिन्नाशस्थले उक्तमेव। पुनराधानं तु विवाहहोमादिरूपं पुनराधेयाद्भिन्नम्। आयतनाद्बहिः शम्यापरासात्प्राग् वह्निपाते इदं त एकमित्यृचा तमायतने प्रक्षिप्य सर्वप्रायश्चित्तं जुहुयात्।

उसके भी अतिक्रमण होने पर तीसरी प्रतिपदा में दोनों यागों के लिये अर्धकृच्छ्र करके समय पर याग करे। तृतीय याग की कही हुई तिथि में अर्धकृच्छ्र और पथिकृत् करके या चौथे पर्व के न करने पर अग्नि के नाश होने में पुनराधेय करे। इसमें पुनराधेय का स्वरूप उसकी सामग्री का रखना 'अयाश्च' इस मन्त्र से स्रुवा के द्वारा घृत की आहुति इत्यादि समिधा के नाश-स्थल में कहा ही है। पुनराधान तो पुनराधेय से भिन्न विवाह होम आदि रूप है। घर से बाहर शम्यापरास से पहिले अग्निपात होने पर 'इदं त एकं' इस ऋचा से उसको घर में फेंक कर सर्वप्रायश्चित्त का होम करे।

अथ पर्वणि व्रतलोपेऽश्रुपाते च विधिः

पर्वणि व्रतलोपेऽग्नये व्रतपतये चरुः पूर्णाहुतिर्वा। पर्वणि दम्पत्योरन्यतराश्रुपातेऽग्नये व्रतभृते चरुः पूर्णाहुतिर्वा। पवित्रनाशेऽग्नये पवित्रवते चरुः पूर्णाहुतिर्वा। अन्वाधानेष्टिमध्ये चन्द्रग्रहणे अत्राह गोरिति चन्द्रायाज्यं हुत्वा नवो नवो इत्युपस्थायेध्माधानादियागः। सूर्योपरागे उद्वयमिति सूर्यायाज्यं हुत्वा चित्रं देवानामित्युपस्थानम्। अन्वाधानोत्तरं स्वप्ने रेतोविसर्गे इमं मे वरुण तत्त्वायामीति वरुणाय द्वे आज्याहुती रविपूजा, पुनर्मामैत्विति सौत्रमन्त्रयोर्जपश्च।

पर्व में व्रत का लोप होने पर अग्नि व्रतपति के लिये चरु अथवा पूर्णाहुति दे। पर्व में पति-पत्नी में से किसी एक के आंसू गिरने पर अग्नि व्रतभृत् के लिये चरु अथवा पूर्णाहुति दे। पवित्र के नष्ट होने पर पवित्र के लिये चरु या पूर्णाहुति करे। अन्वाधानेष्टि के मध्य में चन्द्रग्रहण पड़ने पर इसमें 'अत्राह गोः' इस से चन्द्रमा को घृत की आहुति देकर 'नवो नवो' इस मन्त्र से उपस्थान कर इध्माधानादि याग करे। सूर्यग्रहण में 'उद्वयं' इस मन्त्र से सूर्य के लिये घृत का होम करके 'चित्रं देवानां' इस मन्त्र से उपस्थान करे। अन्वाधान के बाद स्वप्नदोष होने पर 'इमं मे वरुण' 'तत्त्वायामि' इनसे वरुण को दो घी की आहुति, रविपूजा और 'पुनर्मामैति' दो सौत्र-मन्त्रों का जप करे।

बुद्ध्या रेतोविसर्गेऽग्निव्रतपतिचरुः। अन्यदा स्वप्ने रेतोविसर्गे सूर्यनमस्कारत्रयम्। इध्माधानोत्तरं हविर्दोषे दुष्टस्थाने आज्यं प्रतिनिधिं कृत्वा यागं समाप्य दुष्टं जले त्यक्त्वान्वाधानादिस्तद्देवताकः पुनर्यागः। इध्माधानात्पूर्वं हविर्दोषे तद्देवताकं हविः पुनरुत्पाद्य यागः। स्विष्टकृदर्थहविर्दोषे आज्येन स्विष्टकृतं कुर्यात्। अङ्गहविर्दोषे तदाज्यं पुनरुत्पादयेत्।

जान बूझकर वीर्यपात करने पर व्रतपति अग्नि को चरु दे। अन्य समय स्वप्न में वीर्यपात होने पर सूर्य को तीन नमस्कार करे। अग्नि में लकड़ी डालने पर हवि में दोष होने पर दुष्ट स्थान में घी को प्रतिनिधि करके याग को समाप्त कर दोषयुक्त हवि को जल में छोड़कर उस देवता का अन्वाधानादि पुनः याग करे। लकड़ी छोड़ने के पहले हविष्य में दोष होने पर उस देवता की हवि को फिर बनाकर याग करे। स्विष्टकृत् के लिये हविष्य में दोष होने पर घी से स्विष्टकृत् करे। अङ्ग-हवि में दोष होने पर दूसरा घी लेकर करे।

हविर्दोषास्तु—प्रच्युतनखकेशैः कीटैः रक्तास्थिविण्मूत्रश्लेष्माद्यैर्बीभत्सितैश्च मार्जारनकुलकाकैर्मुखजलबिन्दुघर्मनासिकामलाश्रुकर्णमलैः सूतिकारजस्वला-चाण्डालादिदृष्टिभिश्च संसर्गाः। देवताहविर्मन्त्रादिविपर्यासे यद्वो देवा इति मरुद्भ्य आज्यहोमः। कृत्स्नहविर्दाहे तद्धविरुत्पाद्य स एव यागो न पुनर्यागः।

हविष्य के दोष तो—गिरे हुए नख, केश, कीड़े, खून, हड्डी, विष्ठा, मूत्र और कफ आदि से, तथा बीभत्स बिलार, नेवला, कौआ, मुख के जलबिन्दु, पसीना, नाक के मल, आँसू, कान के मल से, एवं सूतिका रजस्वला और चाण्डाल आदि की दृष्टि के संसर्ग से होता है। देवता, हवि और मन्त्रों के उलटफेर से दोष हो तो 'यद्वो देवा' इस मन्त्र से मरुतों को घृत की आहुति दे। सम्पूर्ण हवि के जल जाने पर उस हवि को बनाकर उसी का याग करे, पुनर्याग नहीं करे।

अथ निमित्तविशेषेण प्रायश्चित्तानि

पूर्वादिचतुर्दिक्षु चरूत्सेके अग्नये यमाय वरुणाय सोमायेति क्रमेण हुत्वा सर्वत उत्सेके चतुर्भ्योऽपि हुत्वा कोणेषूत्सेके व्याहृतीर्हुत्वा चरुमाप्यायस्वसन्ते पयांसीति मन्त्राभ्यामाज्येनाप्याययति, अग्नौ मिन्दाहुती च द्वे इति केचित्। स्वगृह्याग्नेरन्यगृह्याग्निना संसर्गे उभौ यजमानौ युगपत्तमग्निं समारोप्योभौ प्रत्यवरोहणं कृत्वाऽग्नये विविचये चरुं कुर्याताम्।

पूर्व आदि चारों दिशाओं में चरु के उत्सेक होने पर अग्नि, यम, वरुण और सोम को क्रम से आहुति देकर सर्वत्र उत्सेक होने पर चारों देवताओं के लिये होम करके कोने में उत्सेक होने पर व्याहृति से होम करके चरु को 'आप्यायस्व' 'सन्ते पयांसि' इन दो मन्त्रों से घृत से पूर्ण करे और अग्नि में दो मिन्दाहुति दे, ऐसा कोई कहते हैं। अपने गृह्याग्नि से अन्य की गृह्याग्नि के सम्पर्क होने पर दोनों यजमान एक काल में ही अग्नि का समारोप कर दोनों प्रत्यवरोहण करके विविचि नामक अग्नि के लिये चरु का होम करे।

शवाग्निना संसर्गेऽग्नये शुचये चरुः। पचनाग्निना संसर्गे संवर्गायाग्नये चरुः। सर्वत्र संसर्गे समारोपप्रत्यवरोहणोत्तरं चरुः। स्वयमग्निप्रज्वलने उद्दीप्यस्व जातवेदो० मानो हिꣳसीर्जातवेदो गामश्वं पुरुषं जगत्। अबिभ्रदग्न आगहि श्रिया-मा परिपातयेति द्वाभ्यां द्वे समिधावग्नये जुहुयात्।

मुर्दे की अग्नि से संसर्ग होने पर 'शुचि' अग्नि के लिये चरु होम करे। भोजनवाली अग्नि से संसर्ग होने पर संवर्ग नामक अग्नि के लिये चरु दे। सर्वत्र संसर्ग होने पर समारोप और प्रत्यव-रोहण करने के बाद चरु से होम करे। स्वयं अग्नि के प्रज्वलित होने पर 'उद्दीप्यस्व जातवेदो०' 'मानो हिꣳसीर्जातवेदो०' इन दो मन्त्रों से दो समिधाओं का अग्नि में होम करे।

सर्वत्र विध्यपराधे साङ्गतार्थं सर्वप्रायश्चित्तम् । गृहदाहेऽग्नये क्षामवते चरुः । एवमन्यान्यपि प्रायश्चित्तानि बह्वृचब्राह्मणादिषूक्तानि ज्ञेयानि । यत्र तु प्रायश्चित्तविशेषो नोक्तस्तत्र सर्वप्रायश्चित्तम् । भूर्भुवःस्वरित्यनेनाज्याहुतेः सर्वप्रायश्चित्तसंज्ञा ।

सब जगह विधि के अपराध में सांगता के लिये सर्वप्रायश्चित्त करे । घर जलने पर क्षामवत् अग्नि के लिये चरु होम करे । इसी प्रकार बह्वृच आदि ब्राह्मणों में कहे हुए अन्य प्रायश्चित्तों को जानना चाहिये । जहाँ प्रायश्चित्त विशेष नहीं कहा है वहाँ सर्वप्रायश्चित्त करे । भूर्भुवः स्वः इस व्याहृति से घृत की आहुति का नाम सर्वप्रायश्चित्त है ।

अथाग्न्युपघातनिमित्तानि

श्वशूकररासभकाकसृगालमर्कटशूद्रान्त्यजपतितकुणपसूतिकारजस्वलाभिः पुरीषमूत्ररेतोऽश्रुपूयश्लेष्मशोणिताऽस्थिमांसादिभिरन्यैर्वा जुगुप्सितैरारोपितारणिस्पर्शेऽग्नेः स्पर्शे वाऽग्निनाशः । तत्रारणिगते वह्नौ नष्टे पुनराधेयमग्नेः स्पर्शे [१]पुनराधानम् । यद्वा—ओं पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः समिन्धतां पुनर्ब्रह्माणो वसुनीथयज्ञैः । घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः स्वाहा । आदित्यरुद्रवसुब्रह्मभ्य इदं न ममेति समिद्धोमः स्रुवेणाज्याहुतिर्वा । अग्नौ जलोपघातेऽपीदमेव । स्वस्य जीविनो मृतशब्दश्रवणेऽग्नये सुरभिमते चरुः पूर्णाहुतिर्वा । प्रधानाहुतीनां स्विष्टकृता संसर्गे सर्वप्रायश्चित्तम् । पिण्डपितृयज्ञे अतिप्रणीतनाशे तत्राहोमपक्षे सर्वप्रायश्चित्तम्, होमपक्षे पुनः प्रणयनमपि ।

कुत्ता-सूअर-गदहा-कौवा-सियार-बानर-शूद्र-अन्त्यज-पतित-कुणप-सूतिका रजस्वला से, विष्ठा-मूत्र-वीर्य आँसू-पीब-कफ-रक्त-हड्डी-मांस आदि से, अथवा अन्य निन्दित वस्तुओं से, आरोपित अरणी के स्पर्श या अग्नि के स्पर्श में अग्नि का नाश होता है । वहां अरणिगत अग्नि के नष्ट होने पर पुनराधेय करे और अग्नि के स्पर्श में पुनराधान करे । अथवा 'ॐ पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः' इत्यादि मन्त्र से आदित्य, रुद्र, वसु और ब्रह्मा के लिये समिधा से होम करे अथवा स्रुवा से घृत की आहुति दे । जल से अग्नि के नष्ट होने पर भी यही करे । जीते हुए अपने को मृत शब्द सुनने पर सुरभिमान् अग्नि के लिये चरु अथवा पूर्णाहुति करे । प्रधान आहुतियों का स्विष्टकृत् आहुति के संसर्ग होने पर सर्वप्रायश्चित्त करे । पिण्डपितृयज्ञ में अतिप्रणीत अग्नि के नाश होने पर उसमें होम न करने के पक्ष में सर्वप्रायश्चित्त करे और होम पक्ष में पुनः प्रणयन भी ।

---

१. कारिकायाम्—'श्वशूकररासभकाकशृगालैः कुक्कुटमर्कटशूद्रैः । अन्त्यजपातकिभिः कुणपैर्वा सूतकयाऽपि रजस्वलया वा ॥ रेतोविण्मूत्रपुरीषैर्वा पूयाश्रुश्लेष्मशोणितैः । दुष्टास्थिमांसमज्जाभिरन्यैर्वापि जुगुप्सितैः ॥ आरोपितारणिस्पर्शे कृतेऽग्नौ स्पर्शनेऽपि वा । आत्मारूढेषु मज्जेद्वा वदेद्वा पतितादिभिः ॥ अथवा योषितं गच्छेदनृतौ काममोहितः । वदन्त्येषु निमित्तेषु केचिदग्निविनाशनम् ॥ तत्रारणिगते वह्नौ नष्टे स्यात्पुनराहितिः । इतरेषु निमित्तेष्वग्न्याधेयं परिचक्षते ॥ यद्वा सर्वोपघातेषु पुनस्त्वेति समिन्धनम् ।' इत्यादयो गृह्यसूत्रभाष्ये द्रष्टव्याः, इति ।

आपस्तम्बानां प्रायश्चित्तान्ते प्रणयनमेव नित्यम्। पिण्डपितृयज्ञलोपे वैश्वानरश्चरुः सप्तहोत्राख्यमहाहविर्होतेत्यादिमन्त्रैः पूर्णाहुतिर्वा। श्रवणाकर्मसर्पबल्याश्वयुज्याग्रयणप्रत्यवरोहणकर्मणामन्यतमलोपे प्राजापत्यकृच्छ्रम्। अकृताग्रयणस्य नवान्नभक्षणेऽग्नये वैश्वानराय चरुः। अष्टकालोपे उपवासः। पूर्वेद्युःश्राद्धलोपेऽप्युपवासः, उपवासप्रत्याम्नाय एकविप्रभोजनं वा। अन्वष्टक्यालोपे एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिरिति ऋचः शतं जपः। सर्वत्र चरुस्थाने पूर्णाहुतिः।

आपस्तम्बियों को प्रायश्चित्त के अन्त में प्रणयन ही नित्य है। पिण्डपितृयज्ञ के लोप होने पर वैश्वानर चरु सप्तहोत्राख्य महाहवि की या 'होता' इत्यादि मन्त्रों से पूर्णाहुति दे। श्रवणाकर्म, सर्पबलि, आश्वयुजी, आग्रयण और प्रत्यवरोहण कर्मों में किसी एक के न करने पर प्राजापत्यकृच्छ्र करे। जिसने आग्रयण नहीं किया है उसके नवान्न-भक्षण में अग्नि के लिये वैश्वानर चरु दे। अष्टका न करने पर उपवास करे। पूर्वेद्युःश्राद्ध न करने पर भी उपवास या उपवास के बदले में एक ब्राह्मण को भोजन करावे। अन्वष्टका के न करने पर 'एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिः' इस ऋचा का सौ बार जप करे। सब जगह चरु के स्थान में पूर्णाहुति करे।

दर्शपूर्णमासानारम्भे आलस्यादिना पूर्णाहुतिकरणे तु यागपर्याप्तं व्रीह्याज्यं देयमिति गृह्याग्निसागरे। निषिद्धतिथ्यादौ स्वभार्यागमने अयाज्ययाजने लशुनादिगणिकान्नाद्यभोज्यभोजने निषिद्धप्रतिग्रहे पुनर्मामैत्विन्द्रियं० इमे ये धिष्ण्यास० इति द्वाभ्यामाज्यहोमः समिद्धोमो वा जपो वा।

दर्शपूर्णमास के आरंभ न करने पर आलस्य आदि से पूर्णाहुति करने पर तो याग के लिये धान और घी देना चाहिये, ऐसा गृह्याग्निसागर में कहा है। निषिद्ध तिथि आदि में अपनी स्त्री से संगम करने में, जिसको यज्ञ नहीं कराना चाहिये उसका यज्ञ कराने में, लहसुन आदि-वेश्या का अन्न आदि-अभोज्य भोजन करने में और निषिद्ध के प्रतिग्रह में 'पुनर्मामैत्विन्द्रियं०' 'इमे ये धिष्ण्यास०' इन दो मन्त्रों से घी अथवा समिधा से होम या जप करे।

गृहोपरि[1] कपोतोपवेशने देवाः कपोत इति पञ्चर्चंसूक्तजपः प्रत्यृचमाज्यहोमो वा पाकयज्ञतन्त्रेण। दुःस्वप्नदर्शने यो मे राजन्युज्यो वेति ऋचा सूर्योपस्थानम्। आतुरत्वनाशाय यक्ष्मरोगनाशाय वा मुञ्चामि त्वेति सूक्तेन प्रत्यृचं चरोर्होमः। यक्ष्मनाशायेदं न ममेति पञ्चसु त्यागः। षष्ठं स्विष्टकृदिति। प्रोक्षणीप्रणीता-

---

१. घर के ऊपर गृध्रादि के बैठने का शान्तिग्रन्थों में फल यों है—'गृध्रः कङ्कः कपोतश्च उलूकः श्येन एव च। चिल्लश्च चर्मचिल्लश्च भासः पाण्डर एव च॥ गृहे यस्य पतन्त्येते गेहं तस्य विपद्यते। पक्षान्मासात्तथा वर्षान्मृत्युः स्याद् गृहमेधिनः॥' लोक में गृध्र और उलूक के बैठने पर दोष मानते हैं इससे भिन्न पक्षियों के बैठने पर दोष नहीं मानते।

गृह्यसूत्र का गदाधरभाष्य—'एतदेव ग्रहोत्पातनिमित्तेषूलूकः कङ्कः कपोतो गृध्रः श्येनो वा गृहं प्रविशेत् स्तम्भं प्ररोहेद् वल्मीकं मधुजालं वा भवेदुदकुम्भप्रज्वलनासनयानभङ्गेषु गृहगोधिकाकृकलासशरीरसर्पणे छत्रध्वजविनाशे सार्पे नैर्ऋते गण्डयोगेष्वन्येष्वप्युत्पातेषु भूकम्पोल्कापातकाकसर्पसङ्गमप्रेक्षणादिष्वेतदेव प्रायश्चित्तं ग्रहशान्त्युक्तेन विधिना कृत्वाऽऽचार्याय वरं दत्वा ब्राह्मणान् भोजयित्वा स्वस्ति वाच्याशिषः प्रतिगृह्य शान्तिर्भवति।' इति।

स्थजलानां बिन्दुपाते स्रावे वा आपोहिष्ठेति त्र्यृचेन पुनः पूरणं, ततं मे अपस्तदुतायते इत्यृचाऽऽज्याहुतिः।

घर के ऊपर कबूतर बैठने पर 'देवाः कपोत' इस पांच ऋचा वाले सूक्त का जप अथवा प्रत्येक ऋचा से पाकयज्ञ तन्त्र से घृत का होम करे। दुःस्वप्न देखने में 'यो मे राजन्युज्यो वा' इस ऋचा से सूर्योपस्थान करे। रोग के नाश के लिये या यक्ष्मरोग के नाश के लिये 'मुञ्चामि त्वा' इस सूक्त की प्रत्येक ऋचा से चरु का होम करे। 'यक्ष्मनाशाय इदं न मम' यह कहकर पाँच आहुति का त्याग करे। छठा स्विष्टकृत् करे। प्रोक्षणी और प्रणीता के जल के बिन्दु गिरने पर या चूने पर 'आपोहिष्ठा' इन तीन ऋचाओं से पुनः पूर्ण करे और 'ततं मे अपस्तदुतायते' इस ऋचा से घृत की आहुति दे।

इध्माधानलोपे तस्याज्यभागोत्तरं स्मरणे विपर्यासप्रायश्चित्तं कृत्वेध्माधानं च कृत्वा प्रधानयागः। प्रधानयागोत्तरं स्मरणेऽग्निसमिन्धनरूपद्वारस्याभावाल्लोप एवेति प्रायश्चित्तेनैव सिद्धिः। अन्याङ्गेष्वप्येवमूह्यम्।

समिदाधान न करने पर उसके आज्यभाग के बाद स्मरण होने पर विपर्यास प्रायश्चित्त और समिदाधान करके प्रधानयाग करे। प्रधानयाग के बाद स्मरण होने पर अग्निसमिन्धनरूप द्वार के अभाव से लोप ही है इसलिये इसकी सिद्धि प्रायश्चित्त ही से होगी। अन्य अंगों में भी ऐसी ही कल्पना कर लेनी चाहिये।

अथाग्निनाशकानि

दम्पत्योरन्यतरोऽग्निसमीपे उदयास्तमयकाले वसेत्। उभौ दम्पती गृहसीमां ग्रामसीमां वा नदीं वोल्लङ्घ्य होमकाले बहिर्वसेतां तदा पुनराधानम्। अग्नीनामजस्रहरणे शम्यापरासात्प्रागुच्छ्वासेऽग्निनाशः। कर्माहरणेऽग्नीनां नानुच्छ्वासादि चोद्यते। आत्मसमारोपणपक्षेऽप्सु मज्जने मैथुने शूद्रादिस्पर्शनेऽग्निनाशः। पत्न्यनेकत्वेऽपि एकस्यामपि होमकाले गृहसीम्नोर्बहिर्गतायामग्निनाशः।

पति-पत्नी में से कोई एक उदय और अस्त के समय में अग्नि के समीप में रहे। दोनों पति-पत्नी गृह की सीमा या ग्राम की सीमा या नदी का उल्लंघन कर होमकाल में बाहर निवास करें तब पुनराधान करें। अग्नियों के निरन्तर हरण में शम्यापरास से पहिले उच्छ्वास में अग्नि का नाश होता है। अग्नियों के कर्म के लिये आहरण में अनुच्छ्वास आदि की प्रेरणा नहीं हैं। आत्म-समारोपण पक्ष में जल में मज्जन करने, मैथुन करने और शूद्र आदि से स्पर्श करने में अग्नि का नाश होता है। अनेक पत्नी के होने पर भी एक पत्नी भी होमकाल में गृह की सीमा से बाहर चली जाय तब अग्नि का नाश होता है।

ज्येष्ठायामग्निसमीपस्थायां कनिष्ठया सह यजमानप्रवासो न दोषाय। दम्पती उभावपि ग्रामगृहयोः सीम्नोर्बहिर्गत्वा होमकालात्पूर्वमागतौ चेन्न दोषः। यजमानेऽग्निसमीपस्थेऽपि होमकाले पत्न्या ग्रामान्तरस्थितौ पुनराधानमाहुः। प्रवासेऽन्यतरेण समारूढाग्नेरन्वारम्भासत्त्वे नदीसीम्नोरुल्लङ्घने पुनराधानम्।

अग्नि के समीप जेठी स्त्री के रहने पर छोटी के साथ यजमान के प्रवास करने में दोष नहीं है। यदि पति पत्नी दोनों ही ग्राम और गृह की सीमा से बाहर जाकर होमकाल से पहिले दोनों आ जायें

तब दोष नहीं है। यजमान के अग्नि के समीप रहने पर भी होमकाल में पत्नी के दूसरे ग्राम में रहने पर पुनराधान करना कहते हैं। प्रवास में पति-पत्नी में से एक समारूढाग्नि के अन्वारम्भ के विना नदी के उल्लंघन करने पर पुनराधान करे।

अग्निं विहाय यजमानस्य शतयोजनगमने वर्षपर्यन्तं स्वयं होमाभावे वाग्निनाशः। तत्र पुनराधानं पवित्रेष्टिर्वा।

विनाग्निभिर्यदा पत्नी नदीमम्बुधिगामिनीम्।
अतिक्रमेत्तदाग्नीनां विनाशः स्यादिति श्रुतिः॥

अग्निसमीपे पत्यौ पत्न्यन्तरे वा पत्न्या नदीलङ्घने दोषो न।

अग्नि को छोड़कर यजमान के चार सौ कोस जाने अथवा एक वर्ष तक स्वयं होम न करने पर अग्नि का नाश होता है। उसमें पुनराधान या पवित्रेष्टि करे। यदि पत्नी अग्नियों के विना समुद्र-गामिनी नदी को पार करे तब अग्नि का नाश होता है, ऐसा श्रुति कहती है। अग्नि के समीप पति अथवा दूसरी पत्नी के रहने पर पत्नी को नदी-लंघन का दोष नहीं होता।

पतिप्रवासे पत्न्या अग्निभिः सह सीमोल्लङ्घनेऽग्निनाशः। एवं पत्युरपि पत्नी-प्रवासे। जलेन हेतुनाग्निरुपशान्तश्चेत्पुनराधेयम्।

तदैव पुनराधेयमग्नावनुगते सति।
असमाधाय चेत्स्वामी सीमामुल्लङ्घ्य गच्छति॥

समारोपणं विना शम्यापरासादूर्ध्वमग्नीनां हरणे नाशः।

रजोदोषे समुत्पन्ने सूतके मृतकेऽपि वा।
प्रवसन्नग्निमान्विप्रः पुनराधानमर्हति॥
बह्वीनामपि चैकस्यामुदक्यायां न तु व्रजेत्।
एकादशे चतुर्थेऽह्नि गन्तुमिच्छेन्निमित्ततः॥
न चाग्निहोमवेलायां प्रवसेन्न च पर्वणि।

पति के प्रवास में पत्नी के अग्नियों के साथ सीमा उल्लंघन करने पर अग्नि का नाश होता है। इसी प्रकार पत्नी के परदेश रहने पर पति का भी। जल के कारण अग्नि यदि शान्त हो जाय तो पुनराधेय करे। समारोपण के विना शम्यापरास से अधिक अग्नियों को ले जाने में अग्नियों का नाश होता है। रजोदोष होने और जन्म मरण के आशौच में भी अग्निमान् ब्राह्मण यदि प्रवास करता है तो पुनराधान के योग्य होता है। बहुत सी पत्नियों में से किसी एक के रजस्वला होने पर प्रवास न करे। किसी निमित्त से ग्यारहवें चौथे दिन जाना चाहे तो अग्निहोम के समय में और पर्व में प्रवास नहीं करे।

होमाद्वयात्यये दर्शपूर्णमासात्यये पुनराधेयमापस्तम्बादिविषयम्।

पचानाग्नौ पचेदन्नं सूतके मृतकेऽपि वा।
अपक्त्वा तु वसेद्रात्रिं पुनराधानमर्हति॥ इदं कात्यायनादिपरम्।

पत्नीप्रवासे पुनराधानमुक्तं तदेकभार्यस्य। बहुभार्यस्य तु ज्येष्ठाप्रवास एव पुनराधानमिति केचित्। एतेषु निमित्तेषु स्थितानग्नीनुत्सृज्यान्येषामाधा-

नम्। आरादुपकारकाङ्गलोपे कर्मसमाप्तेः प्राक् प्रायश्चित्तं कृत्वा तदङ्गं कुर्यात्। कर्मसमाप्तौ प्रायश्चित्तमेव नाङ्गावृत्तिः। सन्निपत्त्योपकारकाङ्गस्य द्रव्यसंस्काररूपस्य लोपे प्रधानात्प्राक् तत्कार्यम्। प्रधानोत्तरं प्रायश्चित्तमेव नावृत्तिः।

दो होम के नाश होने पर, दर्शपूर्णमास होम के न होने पर, पुनराधेय आपस्तम्ब आदि के लिये है। अन्न बनाने वाली अग्नि में जननाशौच मरणाशौच में भी पकावे। बिना पकाये यदि रात भर कहीं निवास करता है तो पुनराधान के योग्य होता है, यह कात्यायन आदि के लिये है। पत्नी के प्रवास में जो पुनराधान कहा है वह एक पत्नी वाले के लिये है। अनेक पत्नी वाले को तो जेठी स्त्री के प्रवास में ही पुनराधान करे, ऐसा कोई कहते हैं। इन निमित्तों में स्थित अग्नियों का त्याग कर दूसरी अग्नियों का आधान करे। समीप के उपकारक अंग के लोप होने पर कर्मसमाप्ति से पहिले प्रायश्चित्त करके उस अंग को करे। कर्मसमाप्ति में प्रायश्चित्त ही करे, अंग की आवृत्ति न करे। सम्पर्क योग्य द्रव्यसंस्काररूप उपकारक अंग के लोप होने पर प्रधान से पहले उसे करे। प्रधान के बाद प्रायश्चित्त ही होता है, आवृत्ति नहीं होती।

अथ पूर्वं भार्यामृतौ अग्निदाहविचारः

मृतायै पत्न्यै दाहायार्धाग्निं दत्त्वाऽवशिष्टाग्नौ सायंप्रातर्होमस्थालीपाकाग्रयणानि कुर्यात्। कौस्तुभे तु अर्धाग्निदानादिकमुक्त्वा विधुरस्यापूर्वाधानप्रकारस्तस्य विच्छेदे पुनराधानप्रकारश्चोक्तः। तत्राधानप्रकारोऽवशिष्टाग्नेः प्राग् होमान्नाशपरः। यद्वा श्रौताग्निषु भार्यायै अर्धाग्निदानं कृत्वा उत्सर्गेष्ट्या पूर्वाग्नीन् परित्यज्य पुनराधानं कृत्वाऽग्निहोत्रं कार्यमित्युक्तम्। तद्वदत्रापि उत्सर्गेष्ट्या पूर्वाग्नित्यागोत्तरमपूर्वाधानं कौस्तुभे उक्तमिति योज्यमिति भाति।

मृत पत्नी के दाह के लिये आधी अग्नि देकर बची हुई अग्नि में सायं-प्रातः-होम, स्थालीपाक और आग्रयण करे। कौस्तुभ में तो आधी अग्नि के देने आदि को कह कर मृतभार्य को अपूर्व आधान प्रकार और उसके विच्छेदों में पुनराधान प्रकार भी कहा है। उसमें आधान का प्रकार बची हुई अग्नि के पहिले होम करने से नाश का बोधक है। अथवा श्रौताग्नि में से पत्नी के लिये आधी अग्नि देकर उत्सर्गेष्टि से पहले अग्नियों का परित्याग कर पुनराधान करके अग्निहोत्र करना चाहिये, ऐसा कहा है। उसी प्रकार यहाँ भी उत्सर्गेष्टि द्वारा प्रथम अग्नियों के त्याग के बाद अपूर्व अग्नि का आधान करे ऐसा कौस्तुभ में कहा है, यह योजना उचित मालूम होती है।

अरणिस्रुवादिपात्राणां[1] लक्षणं वृक्षादिविचारोऽन्यत्र ज्ञेयः। एतेषां विधीनां संकल्पादिविस्तरयुक्ताः प्रयोगा गृह्याग्निसागरे। प्रायश्चित्तादिविषयः प्रायः सर्वसूत्रेषु समाना एव। कचित्कचित्स्वस्वसूत्रोक्ता विशेषा ऊह्याः। विवाहहोमो

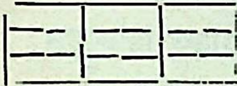
१. अग्नि-प्रकटन के लिये अरणि आदि यन्त्रों के परिचयार्थ चित्र एवं उन यन्त्रों का संक्षिप्त विवरण निम्नाङ्कित है—



—इस आकृति की 'अरणि' होती है। इसकी लम्बाई २४ अङ्गुल, चौड़ाई ६ अङ्गुल और ऊंचाई ४ अङ्गुल की होती है। इसके मूल से आठ अंगुल और अग्रभाग से बारह अंगुल के मध्य में गोल बिंदु देकर 'देवयोनि' का स्थान निर्दिष्ट है जिसमें प्रथम बार ही अग्नि प्रकटन के लिये मन्थन करने का नियम है।—

गृहप्रवेशनीयहोमेन समानतन्त्रोऽनुष्ठीयमानो बह्वृचानां पुनराधानम्। अन्येषां विवाहहोमाद्भिन्नमेवेति विशेषः।

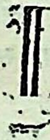
अरणी, स्रुवा आदि पात्रों के लक्षण और वृक्ष आदि का विचार अन्य ग्रन्थों से जानना चाहिये। इन विधियों का संकल्प आदि और विस्तृत प्रयोग गृह्याग्निसागर में है। प्रायश्चित्त आदि विधियां प्रायः सब सूत्रों में समान ही हैं। कहीं-कहीं अपने-अपने सूत्रों के कहे विशेष कल्पनीय हैं। गृह प्रवेशनीय होम के समान तन्त्र से किया गया विवाहहोम बह्वृचों का पुनराधान कहलाता है। दूसरों का विवाहहोम से भिन्न ही होता है, इतना विशेष है।



—ऐसी आकृति 'उत्तरारणि' की होती है। इसकी लंबाई, चौड़ाई और ऊंचाई अरणि की ही तरह होती है।

—इसका नाम 'चात्र' है। यह लंबाई में बारह अंगुल का होता है और इसमें नेत्र (रस्सी) लपेट कर मन्थन किया जाता है। इसमें यहां रस्सी लपेट कर दिखाया गया है। इसके नीचे के हिस्से में चौकोना स्थूल छिद्र होता है जिसमें प्रमन्थ लगाया जाता है। यन्त्र के नीचे घिसा हुआ छोटा सा प्रमन्थ लगा हुआ दिखाई पड़ रहा है।

—इस आकृति की 'ओविली' होती है। इसकी भी लंबाई बारह अंगुल की होती है। चात्र के ऊपर कील में समाने के लिये छिद्र बना रहता है जिसे बीच में गोल बिन्दु देकर दिखाया गया है।



—ऐसी आकृति 'प्रमन्थ' की होती है।—पूर्व प्रमन्थ के घिस जानेपर उत्तरारणि में बने चिह्न के अनुसार एक भाग पृथक् करके 'चात्र' के नीचे छिद्र में उसे लगाया जाता है।

रस्सी —इसे नेत्र कहते हैं। इसकी लम्बाई व्याम—(दोनों ओर अंगुलि के साथ फैलाये हुये दोनों हाथों के बीच)—मात्र है। यह नेत्र यहां चात्र में लपेटकर दिखलाया गया है।

विशेष—अग्नि-प्रकटन के समय अरणि को कम्बल या मृगचर्म आदि पर रखकर मन्थन करना चाहिये।

यज्ञपार्श्वसंग्रहकारिका में अरणि आदि का विशेष विवेचन है—'अश्वत्थो यः शमीगर्भः प्रशस्तोर्वीसमुद्भवः। तस्य या प्राङ्मुखी शाखा उदीची चोर्ध्वगापि वा॥ अरणिस्तन्मयी ज्ञेया तन्मय्येवोत्तरारणिः। सारवद्दारवं चात्रमोविलो च प्रशस्यते॥ संसक्तमूलो यः शम्याः स शमीगर्भ उच्यते। अलाभे त्वशमीगर्भादाहरेदविलम्बितः। चतुर्विंशाङ्गुला दीर्घा विस्तारेण षडङ्गुला। चतुरङ्गुलमुत्सेधा अरणिर्याज्ञिकैः स्मृता॥ मूलादष्टाङ्गुलं त्यक्त्वा अग्राच्च द्वादशाङ्गुलम्। अन्तरं देवयोनिः स्यात्तत्र मथ्यो हुताशनः॥ मूर्धाक्षिकर्णवक्त्राणि कन्धरा चापि पञ्चमी। अङ्गुष्ठमात्राण्येतानि द्व्यङ्गुष्ठं वक्ष उच्यते॥ अङ्गुष्ठमात्रं हृदयमङ्गुष्ठमुदरं तथा। एकाङ्गुष्ठा कटिर्ज्ञेया द्वौ बस्तिर्द्वौ च गुह्यके॥ ऊरू जङ्घे च पादौ च चतुस्त्र्येकैर्यथाक्रमम्। अरण्यवयवा ह्येते याज्ञिकैः परिकीर्तिताः॥—

यत्तद्गुह्यमिति प्रोक्तं देवयोनिः स उच्यते। तस्यां यो जायते वह्निः स कल्याणकृदुच्यते॥ प्रथमे मन्थने ह्येष नियमो नेतरेषु च। अष्टाङ्गुलः प्रमन्थः स्याच्चात्रं स्याद् द्वादशाङ्गुलम्॥ ओविली द्वादशैव स्यादेतन्मन्थनयन्त्रकम्। गोबालैः शणसम्मिश्रैस्त्रिवृद्वृत्तमनंशुकम्॥ व्यामप्रमाणं नेत्रं स्यात्तेन मथ्यो हुताशनः। चात्रबुध्ने प्रमन्थाग्रं गाढं कृत्वा विचक्षणः॥'—

बहुत बार मन्थनादि के कारण प्रमन्थ के घिस जाने या नष्ट हो जाने पर—'उत्तराया अभावाद्धि ग्राह्यो मन्थोऽधरारणेः। व्याख्यातं कैश्चिदेवं तन्निर्मूलत्वादुपेक्ष्यते॥'—

अथ पराग्निपक्वनिषेधः

अथ कात्यायनोपयोगि किंचिदुच्यते—

पराग्निपक्वं नाश्नीयाद् गुडगोरसमन्तरा ।
आहिताग्नेरयं धर्मो याज्ञिकानां तु संमतः ॥
इक्षुक्षीरविकाराश्च भ्राष्ट्रभृष्टयवा अपि ।
पराग्निपक्वं न ज्ञेयं प्रवासे चाग्निहोत्रिणः ॥
यदन्नं वारिहीनं च पक्वं केवलपावके ।
तदन्नं फलवद् ग्राह्यमन्नदोषो न विद्यते ॥

गुड़ और गोरस को छोड़कर दूसरे की अग्नि में पकाया हुआ न खाय। यह धर्म याज्ञिकों के सम्मत अग्निहोत्री के लिये है। अग्निहोत्री के प्रवास में ऊख और दूध के बने (चीनी-पेड़ा आदि)

यज्ञपार्श्व में मान प्रकार—'शिरः चक्षुः कर्णमास्यं प्रथमेंऽशे प्रकीर्तितम्। द्वितीये कन्धरा वक्षो तृतीये ह्युदरं स्मृतम् ॥ चतुर्थे चैव योनिः स्यादूरुद्वन्द्वं च पञ्चमे। षष्ठे जङ्घे तथा पादौ पूर्णा चारणिरङ्गतः ॥ यदि मन्थेच्छिरस्यग्निं शिरोरोगैः प्रमीयते ॥ यजमानस्तथा कण्ठे ह्यंसे चैव विशेषतः ॥ मन्थेद्यो यजमानस्तु पक्षहीनो भवेद् ध्रुवम्। यो मन्थत्युदरे कर्ता क्षुधया म्रियते तु सः ॥ देवयोन्यां तु यो मन्थेद् देवसिद्धिः प्रजायते।—

मन्थेदूरुद्वये यस्तु राक्षसं कर्म तस्य तत्। जङ्घायां यातुधानेभ्यः पादयोः स्यात् पिशाचके ॥ प्रथमे मन्थने ज्ञेयं द्वितीयादौ न शोधयेत्। अष्टाङ्गुलः प्रमन्थः स्याद्दीर्घो द्व्यङ्गुलविस्तृतः ॥ उत्सेधो द्व्यङ्गुलस्तस्य त्वैशानपूर्व ऊर्ध्वगः। एवमष्टादश प्रोक्ताः प्रमन्था ह्युत्तरारणेः ॥ पादौ तस्याः स्मृतं मूलमग्रस्तु शिर उच्यते। अध्वर्युः प्राङ्मुखो मन्थेत् प्रत्यग्दिक्चरणा हि सा ॥—

ओविली यजमानेन धृत्वा गाढं च मन्थयेत्। मथ्नीयात् प्रथमं पत्नी यद्वा कश्चिद् दृढो द्विजः ॥ मूलादष्टाङ्गुलं त्यक्त्वा अग्राच्च द्वादशाङ्गुलम्। अन्तरा देवयोनिः स्यात्तत्र मथ्यो हुताशनः ॥ मूलादङ्गुलमुत्सृज्य अग्रात् सार्धाङ्गुलं तथा। योनिमध्ये पुनर्मानं कृत्वा मथ्यो हुताशनः ॥ नान्यवृक्षेण मथ्नीयान्न कुर्याद्योनिसङ्करम्। क्लेदिता स्फाटिता चैव सुषिरा ग्रन्थिमस्तका ॥ चतुर्विधाऽरणिस्त्याज्या श्रेयस्कामैर्द्विजातिभिः। क्लेदिता हरते पुत्रान् स्फाटिता शोकमावहेत् ॥ ग्रन्थिमूर्धा हरेत् पत्नीं सुषिरा पतिमारिणी।—

इतरेषु च संस्कारेष्वरणिर्द्वादशाङ्गुला। मूलात्त्रिभागजननिस्तदर्धेनोत्तरारणिः। वक्ष्ये जातारणेः पक्षं कुमाराग्नेः प्रसिद्धये। निर्माय यन्त्रविहितं पिता संस्थाप्य यत्नतः। जाते कुमारे मथ्नीयादग्निं यथाविधि स्वयम् ॥ आयुष्यहोमान् जुहुयात्तस्मिन्नग्नौ समाहितः। तत्रान्नप्राशनं चौलं मौञ्जीबन्धनमेकं च ॥ व्रतादेशश्च कर्तव्यस्तस्मिन् गोदानिकाः क्रियाः। कुर्याद् वैवाहिको होमो वह्नौ तस्मिन् समाहितः ॥ शालाऽग्निकर्म तत्रैव कुर्यात् पक्तिं च नैत्यकीम्। नित्यहोमं पञ्चयज्ञान् कुर्यात्तस्मिन्ननाहितः ॥ स्मार्तसंस्थादिकं यच्च तत्सर्वं तत्र गद्यते।' इति। 'अश्वत्थस्यारणी ग्राह्या नान्यस्मादेव वृक्षतः' इति स्मृत्यन्तरे।

प्रणीता— 

 —प्रोक्षणी

यज्ञपार्श्वसंग्रहकारिका में यज्ञपात्रों का विचार यों है—'खादिरः स्फ्याकृतिर्वज्रोऽरत्निमात्रः प्रशस्यते। आसनं ब्रह्मणः कार्यं वारणं वा विकङ्कतम् ॥ हस्तमात्रं चतुःस्रक्तिमूलदण्डसमन्वितम्। द्विषडङ्गुलसंख्याको मूलदण्डो विकङ्कतः ॥ प्रस्थमात्रोदकग्राही प्रणीताचमसो भवेत्। वैकङ्कतं पाणिमात्रं प्रोक्षणीपात्रमुच्यते ॥ हंसमुखप्रसेकं च त्वग्बिलं चतुरङ्गुलम्।—

और भाड़ में भूंजे हुए जौ भी दूसरे की अग्नि में पके हुए न समझे। जो अन्न-जल के बिना केवल अग्नि में पकाया हुआ हो वह अन्न फल के समान ग्राह्य है, इसमें अन्न का दोष नहीं होता।

अथ गृह्याग्नौ पाकविचारः

प्रातर्होमं तु निर्वर्त्य समुद्धृत्य हुताशनात्।
शेषं महानसे कृत्वा तत्र पाकं समाचरेत् ॥
पूर्वेण योजयित्वा तं तस्मिन्होमो विधीयते।
अतोऽस्मिन्वैश्वदेवादिकर्म कुर्यादतन्द्रितः ॥

बह्वृचकारिकायाम्—

नित्यं पाकाय शालाग्नेरेकदेशस्य कार्यतः।
पाकार्थमुल्मुकं हृत्वा तत्र पक्त्वा महानसे ॥
वैश्वदेवोऽन्यगारे स्यात्पाकार्थोऽग्निश्च लौकिकः।

प्रातःकाल का होम समाप्त करके अग्नि में से निकाल कर बाकी रसोई घर में रख कर उससे पाक बनावे। उसे पहिली अग्नि में मिला कर उसमें होम किया जाता है। अतः उस अग्नि में वैश्वदेव आदि कर्म आलस्य छोड़कर करे। बह्वृचकारिका में लिखा है—प्रतिदिन भोजन बनाने के लिये अग्निशाला के एकदेश से भोजन पकाने के लिये बरती हुई लकड़ी लेकर उससे रसोई घर में भोजन पकाकर अग्निशाला में वैश्वदेव करे और भोजन बनाने के लिये लौकिक अग्नि ले।

भूरिपाको भवेद्यत्र श्राद्धादावुत्सवेषु च ॥
कृते च वैश्वदेवेऽथ लौकिको नैव कार्यतः।
दीपको धूपकश्चैव तापार्थं यश्च नीयते ॥

आज्यस्थाली तु कर्तव्या तैजसद्रव्यसम्भवा ॥ माहेयी वाऽपि कर्तव्या नित्यं सर्वाग्निकर्मसु। आज्यस्थाल्याः प्रमाणं तु यथाकामं तु कारयेत् ॥ मृन्मय्यौदुम्बरी वापि चरुस्थाली प्रशस्यते। तिर्यगूर्ध्वं समिन्मात्रदृढा नातिवृहन्मुखी ॥ कुलालचक्रघटितमासुरं मृन्मयं स्मृतम्। तदेव हस्तघटितं स्थाल्यादि खलु दैविकम् ॥ यज्ञवास्तुनि मुष्टौ च स्तम्बे दर्भवटौ तथा। दर्भसंख्या न विहिता विस्तरास्तरणेषु च ॥ – अङ्गुष्ठपर्ववृत्तश्चारत्निमात्रः स्रुवो भवेत्। पुष्करार्धं भवेत् खातं पिण्डकार्धं स्रुचस्तथा ॥ पिण्डकार्ध=मुष्ट्यर्धम्। यावताऽन्नेन भोक्तुस्तु तृप्तिः पूर्णैव जायते। तं वरार्थमतः कुर्यात् पूर्णपात्र-मिति स्थितिः ॥ यवैर्वा व्रीहिभिः पूर्णं भवेत्तत्पूर्णपात्रकम्। वरोऽभिलषितं द्रव्यं सारभूतं तदुच्यते ॥ अष्टमुष्टि भवेत् किञ्चित् किञ्चिदष्टौ च पुष्कलम्। पुष्कलानि च चत्वारि पूर्णपात्रं विधीयते ॥' इति। शूर्पादि अन्य पात्रों के लक्षण गृह्यसूत्र भाष्य में देखें।



स्रुक्स्रुवादि-निर्माण के विशेष यज्ञीय-काष्ठों का निर्देश है 'रक्तचन्दनकाष्ठैश्च खदिराश्व-त्थकिंशुकैः। अन्यैश्चैवापि यज्ञीयैः कर्तव्यं स्रुक्स्रुवादिकम् ॥' संक्षिप्त होम में वसिष्ठ ने पलाश-पत्रादि से स्रुक्स्रुवा का विधान बतलाया है—'पलाशपत्रैर्निश्छिद्रैरुच्चिरो स्रुक्स्रुवौ मतौ। विदध्याद् वाऽश्व-त्थपत्रैः संक्षिप्ते होमकर्मणि ॥' यहां पलाशपत्रैः में पलाश-पद यज्ञीयवृक्षों का उपलक्षण है इसलिये आम्रादि यज्ञीय-वृक्षों के पत्रों का भी बोधक होगा।

सर्वे ते लौकिका ज्ञेयास्तावन्मात्रापवर्गतः ।
बहुधा विहृतो ह्यग्निरावसथ्यात्कथंचन ॥
यावदेकोऽपि तिष्ठेत तावदन्यो न मथ्यते ।
वैश्वदेवात्तथा होमात्प्राग् ज्ञेयं नैव मन्थनम् ॥
पचनाग्नावपक्त्वाहः पुनराधानमर्हति ।
आरोपितारणी चोभे एका वा यदि नश्यति ॥
तत्राग्न्याधेयमिच्छन्ति पुनराधेयमेव वा ।

जहां श्राद्ध आदि और उत्सवों में अधिक भोजन बनाना पड़े वैश्वदेव करने पर कार्यतः लौकिक अग्नि नहीं ले। दीया और धूप देने तथा जल गर्म करने के लिये जो अग्नि ली जाती है उन सबको लौकिक अग्नि जाने। आवसथ्य अग्नि से किसी प्रकार लाई गई अग्नि जब तक एक भी रहे तब तक दूसरी अग्नि का मन्थन न करे। वैश्वदेव तथा होम के पहिले मन्थन न करे। पचनाग्नि में नहीं पकाकर वह दिन पुनराधान का योग्य होता है। आरोपित दोनों अरणियों में से एक नष्ट हो जाती है तो उसमें अग्न्याधेय या पुनराधेय करना चाहिये।

अथ अरणिनाशे विधिः

अथानारोपितारण्योः क्षये ग्राह्ये नवे पुनः ॥
तदलाभे यदोद्वायादत्र स्यात्पुनराहितिः ।
शूद्रोदक्यान्त्यजैश्चैव पतितामेध्यरासभैः ॥
अनारूढारणिस्पर्शे ते विहायान्ययोर्ग्रहः ।

आरूढारणिस्पर्शे पुनराधेयमुक्तम्—

भवन्नः समेत्यप्सु मज्जयेद् दूषितारणी ॥
एकारण्येव दुष्टा चेत्तामेवाप्सु निमज्जयेत् ।
तत्रान्यारणिलाभात्प्रागुद्वाते पुनराहितिः ॥ उद्वाते=अग्नौ नष्टे ।
नष्टायामरणौ यावदग्निस्तिष्ठति वेश्मनि ।
तावद्धोमादिकं कृत्वा तन्नाशे पुनराहरेत् ॥

अनारोपित दोनों अरणियों के नाश होने पर दो नवीन अरणियों को ग्रहण करे। उसके न मिलने पर जब बुझ जाय तो पुनः अग्न्याहरण करे। शूद्र, रजस्वला अन्त्यज और अपवित्र गदहा आदि से अनारूढ़ अरणी के स्पर्श होने पर उन अरणियों को त्यागकर दूसरी अरणी को ग्रहण करे। चढ़ी हुई अरणी के स्पर्श में पुनराधेय कहा है। दूषित अरणी को 'भवतन्नः सल' इस मन्त्र से जल में डुबा दे। यदि एक ही अरणी खराब हो गई हो तो उसी को जल में डुबा दे। उसमें दूसरी अरणी के मिलने के पहिले अग्नि के बुझ जाने पर पुनराधान करे। अरणी के नष्ट हो जाने पर अग्निशाला में जब तक अग्नि बची हो तब तक होम आदि करे, उसके नष्ट हो जाने पर पुनः अग्न्याहरण करे।

अत्रैकारणिनाशेऽन्यामेकां [1]मन्त्रेणोपादायोभाभ्यां मन्थनमिति केचित् ।

---

१. यज्ञपार्श्वसंग्रहकारिकायाम्—'एकारण्यां विनष्टायामस्ति चदितरारणिः । तां छित्त्वा मन्थनं प्रोक्तं भाष्ये बौधायनीयके ॥ अरणी मन्थनाशक्ते जन्तुभिर्मथनेन वा । स्यातां चेदरणी नूत्ने

अवशिष्टां तामेव छित्त्वा मन्थनमित्यपरे। एकस्याः दोषेऽप्यरणिद्वयं त्यक्त्वा नूतनद्वयोपादानमिति नारायणवृत्त्याशयः। अयमरणिविचारः श्रौतस्मार्तसाधारणः सर्वशाखासाधारणश्च। अग्निसमारोपे कातीयैर्वैश्वदेवः पाकश्च लौकिकेऽग्नौ कार्य इत्याहुः।

इसमें एक अरणी के नाश होने पर अन्य एक अरणी को मन्त्र से ग्रहण कर उन दोनों से मन्थन करे, यह कोई कहते हैं। दूसरे कहते हैं—बची हुई उसी अरणी को छील कर मन्थन करे। एक अरणी के दुष्ट होने पर दोनों को त्याग कर नई दोनों अरणियों का परिग्रह करे, ऐसा नारायणवृत्ति का आशय है। यह अरणी का विचार श्रौत और स्मार्त दोनों के लिये और सब शाखाओं के लिये साधारण है। अग्नि के समारोप में कातीय-वैश्वदेव और पाक लौकिक अग्नि में करे, ऐसा कहते हैं।

यस्य वेदश्च वेदी च विच्छिद्येते त्रिपूरुषम्।
स वै दुर्ब्राह्मणो ज्ञेयः सर्वकर्मसु गर्हितः॥
अग्निहोत्रं प्रकुर्वीत ज्ञानवाञ्छ्रद्धयान्वितः।
अग्निहोत्रात्परो धर्मो न भूतो न भविष्यति॥
श्रौते कर्मणि नो शक्तो ज्ञानद्रव्याद्यभावतः।
स्मार्तं कुर्याद्यथाशक्तोऽत्राप्याचारं लभेत्सदा॥

जिस ब्राह्मण का वेद और वेदी तीन पुस्त तक विच्छिन्न हो जाती है, उसको दुर्ब्राह्मण जानना चाहिये। वह सब कर्मों में निन्दित है। ज्ञानवान् पुरुष श्रद्धायुक्त अग्निहोत्र करे। अग्निहोत्र से उत्कृष्ट धर्म न हुआ और न होगा। ज्ञानद्रव्य आदि के न रहने से यदि श्रौतकर्म करने में अशक्त हो तो जितनी शक्ति हो स्मार्तकर्म करे। इसमें भी सदा आचार से रहे।

कृतदारो न तिष्ठेत क्षणमप्यग्निना विना।
तिष्ठेत चेद् द्विजो व्रात्यस्तथा च पतितो भवेत्॥
न गृह्णीयाद्विवाहाग्निं गृहस्थ इति मन्यते।
अन्नं तस्य न भोक्तव्यं वृथापाको हि स स्मृतः॥
यो दद्यात्काञ्चनं मेरुं पृथिवीं च ससागराम्।
तत्सायं प्रातर्होमस्य तुल्यं भवति वा न वा॥ इति होमप्रकरणम्।

विवाहित पुरुष क्षण भर भी अग्नि के विना न रहे। यदि विना अग्नि के रहता है तो वह व्रात्य और पतित हो जाता है। अपने को गृहस्थ मानते हुए विवाहाग्नि का ग्रहण और उसका अन्न नहीं खाय, क्योंकि वह वृथापाक कहलाता है। जो पुरुष सुवर्ण का मेरु और ससुद्रसहित पृथ्वी का दान करता है वह सायं-प्रातः-होम के समान होता है या नहीं, इसमें सन्देह है। होमप्रकरण समाप्त।

ग्राह्ये शास्त्रोक्तलक्षणे॥ श्वोभूतेऽनुष्ठिते दर्शे तस्मिञ्जीर्णारणिद्वयम्। शकलीकृत्य पाश्चात्ये वह्नौ निक्षिप्य दीपयेत्॥ ततो दक्षिणहस्तेन नूतनामुत्तरारणिम्। गृहीत्वा सव्यहस्तेन गृह्णीयादधरारणिम्॥ ते उभे अरणी तत्र दीप्तेऽग्नौ धारयन् जपेत्। उद्बुध्यस्वाग्न इत्येतदन्ते योनिरित्यपि॥ उद्बुध्यस्वाग्ने प्रविशस्व योनिमन्यां देवयज्यायै बोढवे जातवेदः। अरण्योररणिमनुसंक्रमस्व जीर्णां तनुमजीर्णया निर्णुदस्व॥' इत्यादयोऽन्यत्र द्रष्टव्याः।

अथ नित्यदानम्

एकस्मिन्नप्यतिक्रान्ते दिने दानविवर्जिते ।
दस्युभिर्मुषितस्येव युक्तमाक्रन्दितुं भृशम् ॥

तस्माद्विभवानुसारेण धनधान्यादि[1]देयमसंभवे पूगीफलादिकमपि प्रत्यहं देयम् । ततो गोब्राह्मणादिमङ्गलदर्शनम्[2] । इत्यष्टधाविभक्तदिनस्य प्रथमभागकृत्यम् ।

एक भी दिन दान से रहित बीत जाय तो डाकुओं के डाका डालने की तरह वह निरन्तर रोने के योग्य है । इसलिये अपने धन के अनुसार धन-धान्य आदि का देना असम्भव हो तो एक सुपारी भी प्रतिदिन दे । तदनन्तर गौ ब्राह्मण आदि मंगल वस्तु का दर्शन करे । यह आठ प्रकार से विभक्त दिन के प्रथम भाग का कृत्य है ।

अथ दिनद्वितीयभागे वेदशास्त्राभ्यसनं देवार्चनं च

द्वितीयभागे वेदशास्त्राभ्यासः ।

पठेदध्यापयेद्वेदान् जपेच्चैव विचारयेत् ।
अवेक्षेत च शास्त्राणि धर्मादीनि द्विजोत्तमः ॥

देवार्चनमपि प्रातर्होमोत्तरं वा चतुर्थभागे ब्रह्मयज्ञोत्तरं वा कार्यम् ।

विधाय देवतापूजां प्रातर्होमादनन्तरम् ।
कुर्वीत देवतापूजां जपयज्ञादनन्तरम् ॥ इत्यादिद्विविधस्मृतेः ।

---

१. सभी दान में अन्न दान का महत्त्व, संवर्तः—'सर्वेषामेव दानानामन्नदानं परं स्मृतम् । सर्वेषामेव जन्तूनां यतस्तज्जीवितं फलम् । यस्मादन्नात् प्रजाः सर्वाः कल्पे कल्पेऽसृजत् प्रभुः । तस्मादन्नात् परं दानं न भूतं न भविष्यति ॥' स्कान्दे—'सर्वेषामेव दानानामन्नदानं परं स्मृतम् । सद्यः प्रीतिकरं दिव्यं बलबुद्धिविवर्धनम् ॥ नान्नदानसमं दानं त्रिषु लोकेषु विद्यते । अन्नाद् भवन्ति भूतानि म्रियन्ते तदभावतः ॥ गर्भस्था जायमानाश्च बाला वृद्धाश्च मध्यमाः । आहारमभिकाङ्क्षन्ति देवदानवतापसाः ॥ क्षुधा हि सर्वरोगाणां व्याधिः श्रेष्ठतमः स्मृतः । तस्यान्नौषधयोगेन प्रतीकारः प्रकीर्तितः ॥ अन्नदः प्राणदः प्रोक्तः प्राणदश्चापि सर्वदः । तस्मादन्नप्रदानेन सर्वदानफलं लभेत् ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां देहः परमसाधनम् । स्थितिस्तस्यान्नपानाभ्यामतस्तत्सर्वसाधनम् ॥ अन्नं प्रजापतिः साक्षादन्नं विष्णुः शिवः स्वयम् । तस्मादन्नसमं दानं न भूतं न भविष्यति ॥'—

सभी दान में पात्र की अपेक्षा होती है परन्तु अन्नदान में नहीं होती, जैसा कि विष्णुधर्मोत्तर में कहा है—'अन्नदानेन कर्तव्यं पात्रापेक्षणमण्वपि । सदोषेऽपि तु निर्दोषं सगुणेऽपि गुणावहम् ॥' इसी प्रकार जलदान की भी महत्ता देखें, हेमाद्रिः—'कपिलाकोटिदानस्य यत्पुण्यं हि विधीयते । तत्पुण्यफलमाप्नोति पानीयं यः प्रयच्छति ॥' बृहत्पाराशरीये—'यो द्विजान् पाययेत्तोयमन्यानपि पिपासुकान् । प्रपाश्च भावयेद् ग्रीष्मे देवलोकमवाप्नुयात् ॥' अन्नदानादि सम्बन्धी सभी प्रकार का विवेचन मत्कृत 'दानदीपिका' ग्रन्थ में देखें ।

२. नागदेवः—'लोकेऽस्मिन्मङ्गलान्यष्टौ ब्राह्मणो गौर्हुताशनः । हिरण्यं सर्पिरादित्यं आपो राजा तथाऽष्टमः ॥ एतानि सततं पश्येन्नमस्येदर्चयेद् बुधः । प्रदक्षिणानि कुर्वीत तस्यायुर्न च हीयते ॥' आयुर्वेदे—'आदर्शालोकनं प्रोक्तं मङ्गल्यं कान्तिकारकम् । पौष्टिकं बलमायुष्यं पापालक्ष्मिविनाशनम् ॥' कात्यायनः—'रोचनं चन्दनं हेम मृदं गां दर्पणं मणिम् । गुरुमग्निं तथा सूर्यं प्रातः पश्येत्सदा बुधः ॥' इति ।

देवार्चनं प्रकर्तव्यं त्रिकालेपि यथाक्रमम्।
अशक्तौ विस्तरात्प्रातर्मध्याह्ने गन्धमादितः॥
सायं नीराजनं कुर्यात्त्रिकाले तुलसीदलम्।
यथा संध्या तथा पूजा त्रिकाले मोक्षदा स्मृता॥ इति कमलाकरः।

दूसरे भाग में वेद और शास्त्रों का अभ्यास करे। ब्राह्मण वेदों को पढ़े पढ़ावे, जप करे विचार करे, धर्म आदि शास्त्रों को देखे। देवार्चन—प्रातःकालिक होम के बाद अथवा चतुर्थ भाग में ब्रह्मयज्ञ के बाद—करे। प्रातः होम के अनन्तर देवतापूजा करके जपयज्ञ के बाद देवता की पूजा करे। इत्यादि दो प्रकार का स्मृतिवचन है। तीनों काल में भी क्रम से देवार्चन करे। विस्तारपूर्वक करने में असमर्थ हो तो प्रातः और मध्याह्न में गन्धादिक से पूजा करे। सायंकाल में आरती करे और तीनों काल में तुलसीदल चढ़ावे। जैसी सन्ध्या है वैसी ही तीनों काल की पूजा मोक्ष देने वाली कही गई है, यह कमलाकर कहते हैं।

अथ पूज्यप्रतिमादिविचारः

तत्र विष्णुशिवब्रह्मसूर्यशक्तिविनायकादिष्वभिमतां[1] देवतामर्चयेत्। तत्रापि कलौ [2]हरिहरयोः पूजा प्रशस्ता—

न विष्णवाराधनात्पुण्यं विद्यते कर्मवैदिकम्।
तस्मादनादिमध्यान्तं नित्यमाराधयेद्धरिम्॥
अथवा देवमीशानं भगवन्तं सनातनम्।
प्रणवेनाथवा रुद्रगायत्र्या त्र्यम्बकेन वा॥
तथोन्नमः शिवायेति मन्त्रेणानेन वा यजेत्।

तत्रापि प्रतिमास्थण्डिलादिभ्यः शालग्रामे बाणलिङ्गे च प्रशस्ता, आवाहनादिकं विना[3] सदा देवतासन्निधानात्। श्रीमद्भागवते—

---

१. कूर्मपुराणे—'ब्रह्माणं शंकरं सूर्यं तथैव मधुसूदनम्। अन्यांश्चाभिमतान् देवान् भक्त्या त्वक्रोधनो नरः॥ स्वमन्त्रैस्त्वर्चयेन्नित्यं पत्रैः पुष्पैस्तथाऽम्बुभिः।' इति।

२. अग्निपुराण में हरिपूजा की महत्ता—'नास्ति श्रेयस्करं नृणां विष्णोराराधनात् परम्। युगेऽस्मिंस्तामसे घोरे यज्ञवेदविवर्जिते॥ कलौ कलिमलध्वंसं सर्वपापहरं हरिम्। येऽर्चयन्ति नरा नित्यं तेऽपि वन्द्या यथा हरिः॥ धन्यं कलौ भवेद् विप्र अल्पक्लेशं महत्फलम्।'—

महाभारत में शिवपूजा का महत्त्व—'यस्त्वोन्नमः शिवायेति मन्त्रेणानेन शंकरम्। सकृत्कालं समभ्यर्च्य सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ सर्वावस्थां गतो वाऽपि युक्तो वा सर्वपातकैः। यस्त्वोन्नमः शिवायेति मुच्यते स कलौ नरः॥ शाठ्येनापि नमस्कारः प्रयुक्तः शूलपाणये। संसारदोषसंघानामुक्तो नाशकरः कलौ॥ सदा तं यजते यस्तु श्रद्धया मुनिपुंगव। लिङ्गे वा स्थण्डिले वाऽपि कौतुकाद् विधिपूर्वकम्॥ युगदोषं विनिर्जित्य रुद्रलोके महीयते॥' इति।

३. भरतमाला में शालग्राम और नर्मदेश्वर की प्राणप्रतिष्ठा का निषेध है—'कम्बुश्चक्रं शैलभवा नार्मदेयाऽब्जिनीपती। बाणो विष्णुशिला चैषां प्रतिष्ठां नैव कारयेत्॥' भविष्य में—'बाणलिङ्गानि राजेन्द्र ख्यातानि भुवनत्रये। न प्रतिष्ठा न संस्कारस्तेषां चावाहनं तथा॥' स्कन्दपुराण में—'शालग्रामशिलायास्तु प्रतिष्ठा नैव विद्यते॥' इति।

उद्वासावाहने न स्तः स्थिरायामुद्धवार्चने ।

अस्थिरायां विकल्पः स्यात्स्थण्डिले तु भवेद् द्वयम् ॥

उसमें विष्णु, शिव, ब्रह्मा, सूर्य, शक्ति और गणेश आदिमें जो देवता अपने को अभिमत हों उस उस देवताकी पूजा करे । उसमें भी कलियुगमें विष्णु-शिव की पूजा अत्यन्त प्रशस्त है। विष्णुके आराधनसे अधिक पुण्यदायक वैदिककर्म नहीं है। इसलिये आदि, मध्य और अन्तसे रहित भगवान्‌की नित्य आराधना करे । अथवा सनातन भगवान् ईशानदेव का पूजन प्रणव से या रुद्र गायत्री से या त्र्यम्बक मन्त्र से करे । उसी प्रकार 'ॐ नमः शिवाय' इस मन्त्र से पूजा करे । उसमें भी प्रतिमा और स्थण्डिल आदि की अपेक्षा शालग्राम और बाणलिंग में पूजन प्रशस्त है, क्योंकि आवाहन आदि के बिना इनमें सदा देवता का सान्निध्य रहता है । श्रीमद्भागवत में लिखा है—विसर्जन और आवाहन स्थिर मूर्तिपूजा में नहीं होता । अस्थिर मूर्ति में विकल्प है । अर्थात् विसर्जन और आवाहनादि कर भी सकते हैं और नहीं भी । स्थण्डिल में तो आवाहन और विसर्जन दोनों करने पड़ते हैं ।

तत्र संक्षेपतः पूजाप्रयोग उच्यते। विशेषविचारस्तु मूर्तिप्रतिष्ठाप्रसङ्गेन वक्ष्यते। तत्रोदयात्पूर्वं निर्माल्यमपसार्य यथाकाले पूजारम्भः । ओं येभ्यो माता० ओं एवापित्रे० इति पठन् घण्टानादं कृत्वाऽऽचम्य प्राणानायम्य[1] देशकालादिसंकीर्तनान्ते 'श्रीमहाविष्णुपूजां करिष्ये' इति । पञ्चायतनपक्षे 'श्रीरुद्रविनायकसूर्यशक्तिपरिवृतश्रीमहाविष्णुपूजां करिष्ये' इति संकल्प्यासनादि विधाय सहस्रशीर्षेति षोडशर्चस्य नारायणः पुरुषोऽनुष्टुप् अन्त्या त्रिष्टुप् न्यासे पूजायां च विनि० ।

संक्षिप्त पूजा प्रयोग कहता हूँ । विशेष विचार तो मूर्ति-प्रतिष्ठा के प्रसंग से आगे कहूँगा । उसमें सूर्योदय से पहले निर्माल्य हटाकर उचित समय में पूजा आरम्भ करे । 'ॐ येभ्यो माता०' 'ॐ एवापित्रे०' इसे पढ़ते हुए घंटा बजाकर आचमन और प्राणायाम तथा देशकाल आदि कहने के बाद 'श्रीमहाविष्णु की पूजा करूँगा' ऐसा संकल्प करे । पंचायतन पक्ष में—'श्रीशंकर-गणेश सूर्य और शक्ति से युक्त श्रीमहाविष्णु की पूजा करूँगा' इस प्रकार संकल्प कर आसन आदि विधि करके 'सहस्रशीर्षा' इस षोडश ऋचाओं के सूक्त का नारायण ऋषि, पुरुष देवता, अनुष्टुप् छन्द और अन्त्य का त्रिष्टुप् छन्द, न्यास तथा पूजा में विनियोग करे ।

ततः प्रथमामृचं वामे करे द्वितीयां दक्षिणे न्यसेत्। तृतीयां वामे पादे, चतुर्थीं दक्षिणे, पञ्चमीं वामे जानुनि, षष्ठीं दक्षिणे, सप्तमीं वामकटौ, अष्टमीं दक्षिणे, नवमीं नाभौ, दशमीं हृदि, एकादशीं कण्ठे, द्वादशीं वामबाहौ, त्रयोदशीं दक्षिणे, चतुर्दशीं मुखे, पञ्चदशीमक्ष्णोः, षोडशीं मूर्ध्नि ।

एवं देहे च देवे च न्यासं[2] कुर्याद्विधानतः ।

अन्त्याभिः पञ्चभिर्ऋग्भिर्हृदयाद्यङ्गपञ्चके ॥

---

१. स्मृत्यन्तर में प्राणायाम का लक्षण—'प्राणानायम्य कुर्वीत सर्वकर्माणि संयतः । सव्याहृतिकां सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह ॥ त्रिः पठेदायतः प्राणः प्राणायामः स उच्यते । कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्यन्नासापुटधारणम् ॥ प्राणायामः स विज्ञेयस्तर्जनीमध्यमे विना ॥' इति ।

२. स्मृत्यन्तर में न्यास के अङ्गों का निर्देश—'करपज्जानुकटिषु नाभिहृत्कण्ठबाहुषु । मुखाक्षिमस्तके चैववामादौ पौरुषं न्यसेत् ॥' इति ।

कलशं शङ्खघण्टे च पाद्यार्घ्याचमनीयकम् ।
संपूज्य प्रोक्ष्य चात्मानं पूजासंभारमेव च ॥
ध्यायेदभिमतां विष्णुमूर्तिं संपूजयेत्ततः ।

तदनन्तर पहली ऋचा से बाम हाथ, दूसरी ऋचा से दक्षिण हाथ, तीसरी ऋचा से बायां पैर, चौथी से दाहिना पैर, पांचवीं से बाम जानु, छठी से दक्षिण जानु, सातवीं से बाम कटि, आठवीं से दक्षिण कटि, नवमी से नाभि, दसवीं से हृदय, ग्यारहवीं से कण्ठ, बारहवीं से बाम बाहु, तेरहवीं से दाहिना बाहु, चौदहवीं से मुख, पन्द्रहवीं से दोनों आंखों और सोलहवीं ऋचा से सिर में न्यास करे। इस प्रकार अपने देह में और देवता में विधानपूर्वक न्यास करे। अन्तिम पांच ऋचाओं से हृदय आदि पांच अङ्गों में न्यास करे। कलश, शंख, घंटा, पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय से पूजकर अपना और पूजा-सामग्री का संप्रोक्षण करके अपने अभिमत विष्णु की मूर्ति का ध्यान कर तदनन्तर पूजा करे।

प्रथमया पुरुषसूक्तस्य ऋचाऽऽवाहनं शालग्रामादौ आवाहनाभावान्मन्त्रपुष्पम्[1]। ऋगन्ते श्रीमहाविष्णवे श्रीकृष्णायेत्येवमभिमतमूर्तिं चतुर्थ्योद्दिश्य सर्वोपचारार्पणम्। पञ्चायतने तु श्रीविष्णवे शिवविनायकसूर्यशक्तिभ्यश्चेत्येवं यथोपास्यमुच्चारः। नैवेद्यादौ पार्थक्याभावे यथांशत इति वदेत्। द्वितीययासनं[2] दद्यात्, तृतीयया पाद्यम्, चतुर्थ्यार्घ्यम्, पञ्चम्याचमनम्, षष्ठ्या स्नानम्, संभवे पञ्चामृतस्नानान्याप्यायस्वेत्यादिमन्त्रैः। चन्दनोशीरकर्पूरकुङ्कुमागरुवासितजलैः सुवर्णघर्मानुवाक-महापुरुषविद्या-पुरुषसूक्त-राजन-सामभिरभिषेकः।

पुरुषसूक्त की पहिली ऋचा से आवाहन, शालग्राम आदि में आवाहन के अभाव से मन्त्रपुष्प समर्पण करे। ऋचा कहने के बाद 'श्रीमहाविष्णवे' 'श्री कृष्णाय' इस प्रकार मनचाही मूर्त्ति को चतुर्थी के प्रयोग से सब उपचारों का समर्पण करे। पंचायतन में तो 'श्रीविष्णवे शिवविनायकपुसूर्यशक्तिभ्यः' इस प्रकार उपास्य देवता का उच्चारण करे। नैवेद्य आदि पृथक्-पृथक् न हो तो 'यथाभागतः' ऐसा कहे। द्वितीय ऋचा से आसन, तीसरी से पाद्य, चौथी से अर्घ्य, पांचवीं से आचमन, छठी से स्नान, संभव हो तो 'आप्यायस्व' इस मन्त्र से पंचामृत स्नान, चन्दन, खश, कपूर, कुंकुम और अगरु से सुवासित जल से सुवर्णघर्मानुवाक, महापुरुषविद्या, पुरुषसूक्त और राजन साम से अभिषेक करे।

---

१. कुलोड्डीशे–'उपचारेषु सर्वेषु यत्किञ्चिद् दुर्लभं भवेत्। तत्सर्वं मनसा ध्यात्वा पुष्पक्षेपेण कल्पयेत् ॥ तत्र तत्र जलं दद्यादुपचारान्तरान्तरा ।' इति ।

२. बृहत्पाराशरसंहितायाम्—'आद्ययावाहयेद् देवमृचा तु पुरुषोत्तमम् । द्वितीययासनं दद्यात्पाद्यं चैव तृतीयया ॥ अर्घ्यश्चतुर्थ्या दातव्यः पञ्चम्याचमनं तथा। षष्ठ्या स्नानं प्रकुर्वीत सप्तम्या धौतवस्त्रकम् ॥ यज्ञोपवीतं चाष्टम्या नवम्या गन्धमेव च। पुष्पं देयं दशम्या तु एकादश्या च धूपकम् ॥ द्वादश्या दीपकं दद्यात् त्रयोदश्या निवेदनम्। चतुर्दश्या नमस्कारं पञ्चदश्या प्रदक्षिणाः ॥ षोडश्योद्वासनं कुर्याच्छेषकर्माणि पूर्ववत्। तच्च सर्वं जपेद् भूयः पौरुषं सूक्तमेव च ॥' श्रावणमाहात्म्ये–'जपः पुरुषसूक्तस्य अधिकं फलदो भवेत्। ग्रहयज्ञः कोटिहोमो लक्षहोमोऽयुतस्तथा। कृतः फलति सद्योऽत्र वाञ्छितार्थफलप्रदः ।' इति । आसन-पाद्य-अर्घ्य-आचमन-स्नान-पंचामृतस्नान-वस्त्र-यज्ञोपवीत-गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्य-ताम्बूल-फल-दक्षिणा-नीराजन-पुष्पाञ्जलि का विवेचन एवं मूलवचन कृष्णजन्माष्टमी की व्रत-विधि में द्रष्टव्य है।

सप्तम्या वस्त्रम्, अष्टम्या यज्ञोपवीतम्, नवम्या गन्धम्, दशम्या पुष्पाणि, एकादश्या धूपम्, द्वादश्या दीपम्, स्नाने धूपे च दीपे च घण्टादेर्नादमाचरेत्[1]। त्रयोदश्या नैवेद्यम्, संभवे ताम्बूलफलदक्षिणा नीराजनं च। चतुर्दश्या नमनम्, पञ्चदश्या प्रदक्षिणा, षोडश्या विसर्जनं पुष्पाञ्जलिर्वा।

स्नाने वस्त्रे च नैवेद्ये दद्यादाचमनं तथा।
दत्वा षोडशभिर्ऋग्भिः षोडशान्नस्य चाहुतीः॥
सूक्तेन प्रत्यृचं पुष्पं दत्त्वा सूक्तेन संस्तुयात्।

सातवीं से वस्त्र, आठवीं से यज्ञोपवीत, नवमी से गन्ध, दसवीं से पुष्प, ग्यारहवीं से धूप, बारहवीं से दीप, स्नान, धूप और दीप के समय घंटा आदि बजावे। तेरहवीं से नैवेद्य, सम्भव हो तो ताम्बूल, फल, दक्षिणा और नीराजन भी करे। चौदहवीं से प्रणाम, पन्द्रहवीं से प्रदक्षिणा, सोलहवीं से विसर्जन या पुष्पाजलि, स्नान, वस्त्र और नैवेद्य के समय एक-एक आचमन देकर सोलहों ऋचाओं से सोलह अन्न की आहुति देकर पुरुषसूक्त की प्रत्येक ऋचा से पुष्प दे और पुरुषसूक्त ही से स्तुति करे।

ततः पौराणैः प्राकृतैश्च स्तुत्वा—

शिरो मत्पादयोः कृत्वा बाहुभ्यां च परस्परम्।
प्रपन्नं पाहि मामीश भीतं मृत्युग्रहार्णवात्॥ इति वदन्नमेत्।

निर्माल्यं देवदत्तं भावयित्वा शिरसि धारयेत्। विष्णुमूर्ध्नि स्थितं पुष्पं शिरसा न वहेन्नरः। शङ्खोदकं शिरसि धृत्वा देवतीर्थं पूजान्ते वैश्वदेवान्ते वा शिरसि धार्यं पेयं च। तत्र क्रमः—

विप्रपादोदकं[2] पीत्वा विष्णुपादोदकं[3] पिबेत्।
शालग्रामशिलातोयमपीत्वा यस्तु मस्तके॥
प्रक्षेपणं च कुरुते ब्रह्महा स निगद्यते।
पात्रान्तरेण वै ग्राह्यं न करेण कदाचन॥ इति कमलाकरः।

क्षालनेनैकस्यैव वस्त्रस्य प्रतिदिने दाने दोषो न। एवं स्वर्णादिभूषणानामपि। सुवर्णमययज्ञोपवीतेऽप्येवमाचारः।

तदनन्तर पुराण और प्राकृत से स्तुति करके सिर को मेरे पैरों पर रख कर दोनों बाहुओं को परस्पर मिलाकर कहे—हे ईश! मृत्युग्रहसमुद्र से शरणागत भययुक्त मेरी रक्षा करें, ऐसा कहता हुआ

---

१. तदुक्तम्—'स्नाने धूपे तथा दीपे नैवेद्ये भूषणे तथा। घण्टानादं प्रकुर्वीत तथा नीराजनेऽपि च॥' इति।

२. पद्मपुराण में विप्रपादोदक की महत्ता—'नश्यन्ति सर्वपापानि द्विजहत्यादिकानि च। कणमात्रं भजेद्यस्तु विप्रांघ्रिसलिलं नरः॥' तत्रैव—'ब्रह्माण्डे यानि तीर्थानि यानि तीर्थानि चाम्बरे। उदधौ यानि तीर्थानि तिष्ठन्ति द्विजपादयोः॥' इति।

३. आचारार्क में विष्णुपादोदकपान का मन्त्र—'अकालमृत्युहरणं ब्रह्महत्याविनाशनम्। रोगघ्नं पुण्यदं पास्ये सुरपादावनेजनम्॥' इति।

प्रणाम करे। निर्माल्य को देवता के दिये हुए की भावना करके सिर पर धारण करे। विष्णु के सिर पर रक्खा हुआ पुष्प अपने सिर पर न रखे। शंख का जल देवतीर्थ से सिर पर धारण कर पूजा के अन्त या वैश्वदेव के अन्त में सिर पर धारण करे और पिये भी। इसमें क्रम यह है—ब्राह्मण का चरणोदक पीकर विष्णु का पादोदक पिये। शालग्राम शिला के जल को न पीकर जो मस्तक पर फेंकता है वह ब्रह्मघाती कहलाता है। चरणोदक दूसरे पात्र से ग्राह्य होता है हाथ से कभी ग्राह्य नहीं है, ऐसा कमलाकर कहते हैं। एक ही वस्त्र को प्रतिदिन फींच देने से पूजा में उपयोग करने पर दोष नहीं है। इसी प्रकार सुवर्ण आदि के भूषणों का भी। सुवर्णमय यज्ञोपवीत में भी यही आचार है।

अथ पूजाफलम्

एवं पूजायाः फलं स्कान्दे—

कामासक्तोऽथवा क्रुद्धः शालग्रामशिलार्चनात्।
भक्त्या वा यदि वाऽभक्त्या कलौ मुक्तिमवाप्नुयात्॥
कथां यः कुरुते विष्णोः शालग्रामशिलाग्रतः।
वैवस्वतभयं नास्ति तथा च कलिकालजम्॥
प्रायश्चित्तं हि पापानां कलौ पादोदकं हरेः।
धृते शिरसि पीते च सर्वास्तुष्यन्ति देवताः॥

बौधायनोक्तो हरिहरयोः पूजाविधिः पराशरमाधवे। मया तु शिवपूजाविधिः शिवरात्रिप्रकरणे द्वितीयपरिच्छेदे उक्त इति नेहोच्यते।

इस प्रकार पूजा करने का फल स्कन्दपुराण में लिखा है—काम से आसक्त अथवा क्रोधित होकर भक्ति से या भक्तिरहित होकर शालग्राम शिला के पूजन से कलियुग में मुक्ति की प्राप्ति होती है। शालग्राम शिला के आगे जो विष्णु की कथा कहता है उसे कलिकाल से उत्पन्न तथा यम का भय नहीं होता। कलियुग में पापों का प्रायश्चित्त भगवान् का चरणोदक है उसे सिर पर रखने और पीने से सब देवता तुष्ट होते हैं। बौधायन की कही हुई विष्णु-शिव की पूजा-विधि पाराशर माधव में लिखी है। मैंने तो शिव की पूजाविधि शिवरात्रि प्रकरण के द्वितीय परिच्छेद में कही है इसलिये यहां नहीं कहते।

अथ पूजालोपे दोषः

कौर्मे—यो मोहादथवालस्यादकृत्वा देवतार्चनम्।
भुङ्क्ते स याति नरकं सूकरेष्वभिजायते॥

एवं देवं संपूज्य[1] मातापितृप्रमुखान् गुरून् पूयेत्। यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ इति श्रुतेरिति माधवः।

---

१. सुमन्तुः—'आयुः पुमान् यशः स्वर्गं कीर्तिं पुष्टिं बलं श्रियम्। पशुं सुखं धनं धान्यं प्राप्नुयात् पितृवन्दनात्॥ मनुः—'यं मातापितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम्। न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि॥ इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमम्। गुरुशुश्रूषया त्वेवं ब्रह्मलोकं समश्नुते॥' इति।

कूर्मपुराण में लिखा है—जो व्यक्ति मोह या आलस्य से बिना देवपूजा किये भोजन करता है वह नरक जाता है और उसका जन्म सूअरयोनि में होता है। इस प्रकार देवपूजा कर माता पिता आदि गुरुओं की पूजा करे। श्रुति के अनुसार माधव कहते हैं—जिसकी देवता में उत्तम भक्ति होती है और जैसी देवता में होती है वैसी ही गुरु में भी होनी चाहिये।

अथ दिनतृतीयभागे जीविकाविचारः

तृतीयभागे [1]पोष्यवर्गार्थं धनार्जनम्। यजनाध्ययनदानयाजनाध्यापनप्रतिग्रहाः षड् विप्रकर्माणि—

षण्णां तु कर्मणामस्य त्रीणि कर्माणि जीविका।
याजनाध्यापने चैव विशुद्धाच्च [2]प्रतिग्रहः॥

श्रीभागवते—

प्रतिग्रहं मन्यमानस्तपस्तेजोयशोनुदम्।
अन्याभ्यामेव जीवेत शिलैर्वा दोषदृक् तयोः॥ इति।

तथा—वार्ता विचित्रा शालीनयायावरशिलोञ्छनम्।

विचित्रा वार्ता कृष्यादिः, शालीनमयाचितम्, यायावरं प्रत्यहं धान्ययाञ्चा, कणिशोपादानं कणोपादानं च शिलोञ्छनम्, अत्रोत्तरोत्तरा प्रशस्ता।

दिन के तृतीय भाग में पालन-पोषण-योग्य वर्ग के लिये धन का अर्जन करे। यज्ञ, अध्ययन, दान, यज्ञ कराना, पढ़ाना और प्रतिग्रह, ये छ कर्म ब्राह्मण के हैं। छ कर्मों में ब्राह्मण के तीन कर्म जीविका के हैं—याजन, अध्यापन और विशुद्ध कुल से प्रतिग्रह। भागवत में कहा है—प्रतिग्रह को तप, तेज और यश का नाशक मानता हुआ अन्य दो कर्मों (याजन अध्यापन) से ही जीविका करे या याजन अध्यापन में दोष-दृष्टि रखता हुआ शिलवृत्ति से जीविका चलावे। ऐसे ही विचित्र वार्ता (कृषि) शालीन (अयाचित) यायावर (प्रतिदिन अन्न की याचना) और शिलोञ्छन कण-कण बीनना और कण का लेना इनमें उत्तरोत्तर प्रशस्त हैं।

शिलोञ्छनं कलौ निषिद्धम्—

[3]कुसूलकुम्भीधान्यो वा त्र्याहिकोऽश्वस्तनोऽपि वा।

---

१. दक्षः—'पिता माता गुरुर्भार्या प्रजा दीनाः समाश्रिताः। ज्ञातिर्बन्धुजनः क्षीणस्तथाऽनाथः समाश्रितः॥ अन्येऽप्यधनयुक्ताश्च पोष्यवर्ग उदाहृतः।' न्यायागत धर्मार्जित और स्वकष्टसम्पादित द्रव्य से कुटुम्बियों का उदर-भरण करना चाहये—'न्यायार्जितधनस्तत्त्वज्ञाननिष्ठोऽतिथिप्रियः। श्राद्धवत् सत्यवादी च गृहस्थोऽपि विमुच्यते॥' पराशरः—'गृहस्थस्तु यदा युक्तो धर्ममेवानुचिन्तयेत्। पोष्यधर्मार्थसिद्ध्यर्थं न्यायवर्ती सुबुद्धिमान्। न्यायोपार्जितवित्तेन कर्तव्यं जीवरक्षणम्। अन्यायेन तु यो जीवेत् सर्वकर्मबहिष्कृतः॥' इति।

२. याज्ञवल्क्यः—'इज्याध्ययनदानानि वैश्यस्य क्षत्रियस्य च। प्रतिग्रहोऽधिको विप्रे याजनाध्यापने तथा॥' इनमें प्रतिग्रह को छोड़कर अवशिष्ट सनियम अवश्य कर्तव्य हैं। गौतमः—'द्विजातीनामध्ययनमिज्यादानं च ब्राह्मणस्याधिकाः, प्रवचनयाजनप्रतिग्रहाः पूर्वेषु नियमः' इति।

३. कुसूलं कोष्ठकं कुम्भी उष्ट्रिका, कुसूलं च कुम्भी च कुसूलकुम्भ्यौ ताभ्यां परिमितं धान्यं यस्य सः, कुसूलधान्यः कुम्भीधान्यो वा स्यादित्यर्थः। 'कुसूलकुम्भीधान्यो वा त्र्याहिकोऽश्वस्तनोऽपि वा' इति याज्ञवल्क्यः।

कुटुम्बपोषणे द्वादशाहपर्याप्तधान्यः कुसूलधान्यः, षडहपर्याप्तधान्यः कुम्भीधान्यः।

न कुर्यात्कृषिवाणिज्यं [1]सेवावृत्तिं तथैव च।
ब्राह्मण्याद्धीयते तेन तस्मात्तानि विवर्जयेत्॥

इत्युक्तेर्वार्तावृत्तिरापद्विषया। पुत्रमांसं वरं भोक्तुं न तु राजप्रतिग्रह इति वाक्यमधर्मवर्तिराजप्रतिग्रहविषयम्।

कलियुग में शिलोञ्छन निषिद्ध है। कुसूलकुम्भीधान्य हो या तीन दिन खाने योग्य अन्न का संग्रह करने वाला हो अथवा आज के लिए रखे कल के लिये देखा जायगा ऐसा हो। कुटुम्ब के भरणार्थ बारह दिन पर्यन्त धान्य का संग्रह करनेवाला कुसूलधान्य कहलाता है। छ दिन के योग्य धान्य का संग्रह करने वाला कुम्भीधान्य कहलाता है। कृषि, वाणिज्य उसी प्रकार सेवा वृत्ति नहीं करे, क्योंकि इससे ब्राह्मणत्व से हीन होता है इसलिये इसका वर्जन करे। इस वचन से वार्ता वृत्ति आपत्ति समय के लिये है। पुत्र का मांसखाना श्रेष्ठ है किन्तु राजा का प्रतिग्रह श्रेष्ठ नहीं है, यह वाक्य अधर्मी राजा का प्रतिग्रह विषयक है।

अथ आपद्वृत्तिः पक्वान्नभिक्षा च

वृद्धौ च मातापितरौ साध्वी भार्या शिशुः सुतश्चायाज्ययाजनशूद्रप्रति ग्रहादिनापि पोषणीया इत्यप्यापदि। शाकपयोदधिपुष्पजलकुशभूमयः कुलटाषण्ढपतितभिन्नात् नीचादप्ययाचितप्राप्तग्राह्याः।

ब्रह्मचारी यतिश्चैव विद्यार्थी गुरुपोषकः।
अध्वगः क्षीणवृत्तिश्च षट् पक्वान्नस्य भिक्षुकाः॥

शूद्रस्य [2]द्विजशुश्रूषावृत्तिः। आपदि कृष्यादिः।

वृद्ध माता-पिता, पतिव्रता स्त्री, बालक पुत्र भी अयाज्ययाजन और शूद्र के प्रतिग्रह आदि से, भी पालन के योग्य हैं, यह भी वचन आपत् समय का है। साग, दूध, दही, पुष्प, बल, कुश, भूमि कुलटा तथा नपुंसक और पतित से भिन्न नीच से भी बिना मांगे मिलने पर ग्राह्य है। ब्रह्मचारी, संन्यासी, गुरु, पोषक, विद्यार्थी, राही, नष्ट वृत्ति, ये छ पक्वान्न के भक्षक हैं। शूद्र की द्विज-शुश्रूषा वृत्ति है। आपत्ति में खेती आदि है।

अथ दिनचतुर्थभागे स्नानम्

चतुर्थभागे मध्याह्नस्नानम्। प्रातर्गोमयस्नानम्। मध्याह्ने मृत्तिकास्नानम्।

---

१. सेवा का तात्पर्य है वेतन लेकर परिचर्या (टहल) करना, इसे मनु ने निन्द्य बतलाया है—'सेवा श्ववृत्तिराख्याता तस्मात्तां परिवर्जयेत्।' आपत्ति काल में मनु ने सेवा आदि को विहित बतलाया है—'विद्याः शिल्पं भृतिः सेवा गोरक्षा विपणिः कृषिः। गिरिर्भैक्षं कुसीदं च दश जीवन हेतवः॥' याज्ञवल्क्यः—'आपद्गतः संप्रगृह्णन् भुञ्जानो वा यतस्ततः। न लिप्येतैनसा विप्रो ज्वलनार्कसमा हि सः॥ कृषिः शिल्पं भृतिर्विद्या कुसीदं शकटं गिरिः। सेवानूपं नृपो भैक्षमापत्तौ जीवनानि तु॥' इति।

२. मनुः—'विप्रसेवैव शूद्रस्य विशिष्टं कर्म कीर्त्यते।' जब द्विजों की शुश्रूषा से जीवन-यापन में कठिनाई हो तो देवलोक्त कृष्यादि कर्म करे—'शूद्रधर्मो द्विजातिशुश्रूषा पापवर्जनं कलत्रादिपोषणं कर्षणपशुपालनभारोद्वहनपण्यव्यवहारचित्रकर्मनृत्यगीतवेणुवीणामुरजमृदङ्गवादनादीनि।' इति।

अनयोर्विधिः प्रायश्चित्ते उक्तः। शेषविधिः प्रातःस्नानवत्। ब्रह्मयज्ञाङ्गतर्पणात्प्राग् वस्त्रं न निष्पीड्यमिति विशेषः। ततो धृतपुण्ड्रो मध्याह्नसंध्यां कुर्यात्।

अथ ऋग्वेदिनां मध्याह्नसन्ध्या

अध्यर्धयामादासायं संध्या माध्याह्निकीष्यते। तत्र विशेषः—सूर्यश्चेति स्थाने आपः पुनन्त्विति मन्त्राचमनम्। आपः पुनन्त्वित्यस्य नारायणयाज्ञवल्क्य आपः पृथिवीब्राह्मणस्पतिरष्टिः मन्त्राचमने विनियोगः।

ॐआपः पुनन्तु पृथिवीं पृथिवी पूता पुनातु माम्।
पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मपूता पुनातु माम्॥
यदुच्छिष्टमभोज्यं यद्वा दुश्चरितं मम।
सर्वं पुनन्तु मामापो सतां च प्रतिग्रहꣳस्वाहा॥ इति पिबेत्।

चौथे भाग में मध्याह्न स्नान करे। प्रातः गोबर लगा कर मध्याह्न में मिट्टी लगा कर स्नान करे, इन दोनों की विधि प्रायश्चित्त में कही है। शेष विधि प्रातः स्नान की तरह है। ब्रह्मयज्ञांग तर्पण के पहिले वस्त्र को नहीं निचोड़ना चाहिये, इतना विशेष है। तदनन्तर पुण्ड्र धारण कर मध्याह्न सन्ध्या करे। आधे पहर से सायंकाल तक माध्याह्निकी सन्ध्या इष्ट है। उसमें विशेष यह है– 'सूर्यश्च' इस मन्त्र के स्थान में 'आपः पुनन्तु' इस मन्त्र से आचमन करे। 'आपः पुनन्तु' इस मन्त्र का नारायण याज्ञवल्क्य ऋषि, आपः पृथिवी ब्रह्मणस्पति देवता, रष्टि छन्द, यह मन्त्राचमन का विनियोग है। 'ॐ आपः पुनन्तु पृथिवीं पृथिवी' इत्यादि मन्त्र से आचमन करे।

अघमर्षणान्ते तिष्ठन् हंसः शुचिषदित्यस्य गौतमः सूर्यो जगती सूर्यार्घ्यदाने विनियोगः। ॐ हंसः शुचिषत्० एकार्घ्यम् अर्घ्यान्ते उपस्थानम्। ऊर्ध्वबाहुः उदुत्यमिति त्रयोदशर्चस्य प्रस्कण्वः सूर्यो गायत्री अन्त्याश्चतस्रोऽनुष्टुभः सूर्योपस्थाने०। केचिच्चित्रं देवानामिति षड्भिरप्युपतिष्ठन्ते। शेषमुपस्थानवर्ज्यं प्रातःसंध्यावत्। रात्रौ मध्याह्नसंध्यायाम् आकृष्णेनेत्यर्घ्यदानम्। गायत्र्या प्रायश्चित्तार्थं द्वितीयं दत्त्वा हविष्पान्तमिति पञ्चर्चोपस्थानम्।

अघमर्षण के अन्त में खड़ा होकर 'हंसः शुचिषत्' इस मन्त्र का गौतम ऋषि, सूर्य देवता, जगती छन्द, सूर्यार्घ्य दान में इसका विनियोग है। 'ॐ हंसः शुचिषत्' इससे एक अर्घ्य दे। अर्घ्य के अन्त में ऊपर हाथ उठाकर उपस्थान करे। 'उदुत्यं' इन तेरह ऋचाओं का प्रस्कण्व ऋषि, सूर्य देवता, गायत्री छन्द और अन्त की चार ऋचाओं का अनुष्टुप् छन्द है, सूर्योपस्थान में इसका विनियोग है। कुछ लोग 'चित्रं देवानां' इन छ ऋचाओं से भी उपस्थान करते हैं। बाकी उपस्थान को छोड़कर प्रातः सन्ध्या के सदृश है। रात्रि में मध्याह्न सन्ध्या करने पर 'आकृष्णेन' इस मन्त्र से अर्घ्यदान करे। प्रायश्चित्त के लिये गायत्री से दूसरा अर्घ्य देकर 'हविष्पान्तम्' इन पांच ऋचाओं से उपस्थान करे।

अथ तैत्तिरीयाणां मध्याह्नसंध्या

आपः पुनन्त्वित्यपः पीत्वा दधिक्राव्णेति पूर्ववत्कृत्वा सूर्यायैकमर्घ्यं गायत्र्या

दत्त्वोर्ध्वबाहुस्तिष्ठन्नुपतिष्ठेत्। ॐ उद्वयं० ॐ उदुत्यं जातवेदसं० ॐ चित्रं देवानां० ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्तात्० ॐ य उदगान्महतो०। ततो जपादि उपस्थानवर्ज्यं प्राग्वत्।

तैत्तिरीयों का—'आपः पुनन्तु' इस मन्त्र से आचमन कर 'दधिक्राव्ण' इस मन्त्र से पहिले की तरह करके सूर्य को गायत्री से एक अर्घ्य देकर ऊपर की ओर हाथ उठाकर खड़ा होकर उपस्थान करे। मंत्र ये हैं—'ॐ उद्वयं' 'ॐ उदुत्यं जातवेदसं०' 'ॐ चित्रं देवानां०' 'ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्तात्०' 'ॐ य उदगान् महतो०'। इसके बाद उपस्थान को छोड़कर जप आदि पूर्ववत् है।

अथ कातीयानां मध्याह्नसन्ध्या

आपः पुनन्त्विति प्राग्वत्। गायत्र्या एकार्घ्यम्। उद्वयमित्यादिचतुर्भिरुपस्थानम्। जपान्ते शक्तस्य पूर्वोक्तैर्विभ्राडित्यनुवाकादिभिरुपस्थानम्। शेषं प्राग्वत्।

कातीयों का—'आपः पुनन्तु' इस मन्त्र से पूर्ववत्, गायत्री से एक अर्घ्य तथा 'उद्वयं' इत्यादि चार मन्त्रों से उपस्थान है। जप के अन्त में शक्त पुरुष को पहिले कहे हुए 'विभ्राट्' इस अनुवाक आदि से उपस्थान करना चाहिये। शेष पूर्ववत् है।

अथ ब्रह्मयज्ञः

'स च प्रातर्होमोत्तरं वा मध्याह्नसंध्योत्तरं वा वैश्वदेवान्ते वा सकृदेव कार्यः। भट्टोजिदीक्षितीये तु प्रातराहुतेरनन्तरकालः शाखान्तरविषयः। आश्वलायनैस्तु मध्याह्नसंध्योत्तरमेवानुष्ठेय[2] इत्युक्तम्।

ब्रह्मयज्ञ—प्रातः होम या मध्याह्न सन्ध्या के बाद अथवा वैश्वदेव के अन्त में एक बार करे। भट्टोजिदीक्षित के ग्रन्थ में तो प्रातः आहुति के अनन्तर काल कहा है, वह दूसरी शाखा वालों के लिये है। आश्वलायनों का तो मध्याह्न सन्ध्या के बाद ही अनुष्ठेय है, यह कहा है।

अथ बह्वृचां ब्रह्मयज्ञः

शुष्कं वासस्तदभावे आर्द्रं त्रिर्विधुन्वन् परिधायाचम्य प्राणानायम्य 'श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं ब्रह्मयज्ञं करिष्ये, तदङ्गतया देवर्ष्याचार्यतर्पणं करिष्ये' मृतपितृकैः 'पितृतर्पणं च करिष्ये' इति संकल्प्य दर्भेषु दर्भपाणिः प्राङ्मुख एवोपविश्य वामजङ्घोपरि मूलदेशे दक्षिणपादं निधायाथ वा वामपादाङ्गुष्ठोपरि दक्षिणपादाङ्गुष्ठं निधायैवमुपस्थं कृत्वा दक्षिणजानुस्थे वामे करे उत्ताने प्रागग्राङ्गुलौ प्रागग्रे

---

१. ब्रह्मयज्ञ प्रातः होम के पश्चात् तर्पण के पूर्व अथवा वैश्वदेव के अन्त में करना चाहिये। बृहस्पतिः—'यश्च श्रुतिजपः प्रोक्तो ब्रह्मयज्ञस्तु स स्मृतः। स चार्वाक् तर्पणात् कार्यः पश्चाद्वा प्रातराहुतेः॥ वैश्वदेवावसाने वा नान्यत्र ह्यनिमित्तकात्। याज्ञवल्क्यः—'हुत्वाऽग्नीन् सूर्यदैवत्यान् जपेन्मन्त्रान् समाहितः। वेदार्थानधिगच्छेच्च शास्त्राणि विविधानि च॥ वेदाथर्वपुराणानि सेतिहासानि शक्तितः। जपयज्ञप्रसिद्ध्यर्थं विद्यां चाध्यात्मिकीं जपेत्॥' इति।

२. आश्वलायनः—'स्वगृह्यविधिना कृत्वा ब्रह्मयज्ञं पुरो द्विजः। स्वाध्यायतर्पणाभ्यां च गृहमेत्याचरेत् परान्॥' इति।

द्वे पवित्रे धृत्वा दक्षिणकरेण तथैव संपुटीकृत्य द्यावापृथिव्योः संधिमीक्षमाणो निमीलिताक्षो वा ॐकारव्याहृतीः सकृदुच्चार्य गायत्रीं पच्छोर्धर्चशः सर्वामनवानामिति त्रिर्जपेत्।

सूखा वस्त्र इसके अभाव में गीला वस्त्र तीन बार फटकार के पहिनकर आचमन और प्राणायाम करके 'श्री परमेश्वर की प्रीति के लिये ब्रह्मयज्ञ करूँगा' उसका अंगभूत देवता ऋषि और आचार्य का तर्पण करूँगा' तथा जिनके पिता मर गये हैं वे 'और पितृतर्पण करूँगा' ऐसा संकल्प कर कुशों पर पूरब मुख ही बैठकर हाथ में कुश लेकर बायीं जंघा के ऊपर मूल देश में दाहिना पैर रखकर अथवा बायें पैर के अंगूठे के ऊपर दक्षिण पैर के अंगूठे को रखकर इस प्रकार उपस्थ को करके दक्षिण जानु पर उत्तान बायां हाथ करके पूर्वाग्र अंगुली में पूरब की ओर अग्रभाग वाले दो पवित्र धारण कर दाहिने हाथ से उसी प्रकार संपुट करके द्यावापृथिवी की संधि को देखते हुए अथवा आखें मूंदकर 'ॐकार व्याहृति' का एक बार उच्चारण कर गायत्री का एक-एक पाद आधी ऋचा तदनन्तर सब को 'अनवानाम्' इस मन्त्र को तीन बार जपे।

ततोग्निमीळ इति सूक्तं पठित्वा संहिताब्राह्मणषडङ्गानि। एकं समाप्यापरमिति अध्यायं सूक्तमृचं वा यथाशक्ति क्रमशः[1]पठेत्। मन्त्रब्राह्मणादीनि भागशः सर्वाणि यथाशक्ति प्रतिदिनं पठेदिति केचित्। एवं चतुर्वेदाध्यायी क्रमशश्चतुर्वेदान् भागशः सर्वानेव वा ऋग्वेदपूर्वकान् पठेत्। एकैकशाखाध्यायी तु स्वशाखामेव। शाखाध्ययनाभावे सूक्तमृचं वा पठित्वैकं यजुः साम चोपनिषदश्चेतिहासपुराणादींश्च पठेत्[2]।

तदनन्तर 'अग्निमीडे' इस सूक्त को पढ़कर संहिता, ब्राह्मण और षडंगों में एक को समाप्त कर दूसरे अध्याय अथवा ऋचा को यथाशक्ति क्रमशः पढ़े। कोई कहते हैं—मन्त्र ब्राह्मण आदि को भागशः सबको यथाशक्ति प्रतिदिन पढ़े। इसी प्रकार चारो वेद का पढ़ने वाला क्रमशः चारो वेदों को अंशतः या सम्पूर्ण को ऋग्वेदपूर्वक पढ़े। एक एक शाखा के पढ़ने वाले तो अपनी शाखा को ही पढ़ें। शाखाध्ययन के अभाव में सूक्त या ऋचा को पढ़कर एक यजुः, साम, उपनिषदों और इतिहास पुराण आदि को पढ़े।

पुरुषसूक्तमुक्त्वा नमो ब्रह्मणे नमो अस्त्वग्नय इति ऋचं त्रिः पठेत्। नात्र ऋष्यादिस्मरणम्। विद्युदसीत्यादेराद्यन्ते पाठस्तैत्तिरीयविषयः। उपविश्य पाठाशक्तस्तिष्ठन् व्रजन् शयानो वा पठेदित्याश्वलायनः। अनध्यायेष्वल्पं पठेत्।

पुरुषसूक्त कहकर 'नमो ब्रह्मणे नमो अस्त्वग्नय' इस ऋचा को तीन बार पढ़े। यहां ऋषि आदि के स्मरण की आवश्यकता नहीं है। 'विद्युदसि' इस मन्त्र का आदि अन्त में पढ़ना तैत्तिरीयों के लिये है। बैठकर पाठ करने में अशक्त पुरुष खड़ा होकर बैठकर चलता हुआ अथवा सोता हुआ पढ़े, ऐसा आश्वलायन का मत है। अनध्यायों में थोड़ा पढ़े।

---

१. याज्ञवल्क्यः—'यं यं क्रतुमधीतेऽसौ तस्य तस्याप्नुयात् फलम्।' अर्थात् जिस-जिस याग का प्रतिपादक वेद के एकदेश का प्रतिदिन स्वाध्याय करता है उस-उस याग का फल पाता है। 'नास्ति नित्येष्वनध्यायः' इस वचनसे इसमें अनध्याय नहीं है।

१. याज्ञवल्क्यः—'वेदाथर्वपुराणानि सेतिहासानि शक्तितः। जपयज्ञप्रसिद्ध्यर्थं विद्यां चात्मिकीं जपेत्॥'इति।

अथ तर्पणम्

तत्र[1] सव्येन देवतीर्थेन दर्भाग्रैर्देवतर्पणम्। तद्यथा—साक्षतजलैर्देवर्षितर्पणम्। सतिलजलैराचार्यपितृतर्पणम्। प्रजापतिस्तृप्यतु ब्रह्मा तृप्य० वेदास्तृप्यन्तु देवास्तृप्यन्तु ऋषयस्तृप्यन्तु सर्वाणिच्छन्दांसि तृप्यन्तु ॐकारस्तृप्य० वषट्कारस्तृप्यं० व्याहृतयस्तृप्यं० सावित्री तृप्य० यज्ञास्तृप्यं० द्यावापृथिवी तृप्यताम् अन्तरिक्षं तृप्य० अहोरात्राणि तृप्यंतु सांख्यास्तृप्यं० सिद्धास्तृप्यं० समुद्रास्तृप्यं० नद्यस्तृप्यं० गिरयस्तृप्यं० क्षेत्रौषधिवनस्पतिगन्धर्वाप्सरसस्तृप्यं० नागास्तृप्यं० वयांसि तृप्यं० गावस्तृप्यं० साध्यास्तृप्यं० विप्रास्तृप्यं० यक्षास्तृप्यं० रक्षांसि तृप्यं० भूतानि तृप्यं० एवमन्तानि तृप्यंतु० २९।

उसमें देवतर्पण सव्य, देवतीर्थ और कुश के अग्रभाग से करे। वह इस प्रकार है—अक्षत और जल से देवर्षि तर्पण करे। तिलसहित जल से आचार्य तथा पितृ का तर्पण करे। प्रजापतिस्तृप्यतु, ब्रह्मा तृप्यतु, इत्यादि २९ देवताओं आदि के नामों के तर्पण के वाक्य मूल में पढ़ें।

अथ ऋषयः—निवीती कनिष्ठिकामूलेन दर्भमध्यैः—शर्तर्चिनस्तृप्यं० माध्यमास्तृप्यं० गृत्समदस्तृप्य० विश्वामित्रस्तृप्य० वामदेवस्तृप्य० अत्रिस्तृप्य० भरद्वाजस्तृप्य० वसिष्ठस्तृप्य० प्रगाथास्तृप्यं पावमान्यस्तृप्यं० क्षुद्रसूक्तास्तृप्यं० महासूक्तास्तृप्यं० १२ एकत्वद्वित्वबहुत्वेषु तृप्यतु तृप्यतां तृप्यंतु इति यथायथं वदेत्।

गले में यज्ञोपवीत करके कनिष्ठिका अंगुली के मूल में कुश रखकर शतर्चिनस्तृप्यन्तु, माध्यमास्तृप्यन्तु, इत्यादि मूलोक्त ऋषियों के १२ नामों में एकवचन द्विवचन और बहुवचन में 'तृप्यतु, तृप्यताम्, तृप्यन्तु' इस प्रकार जहां जैसा उचित हो कहे।

अथ प्राचीनावीती पितृतीर्थेन द्विगुणीकृतदर्भमूलाग्रैः सुमन्तुजैमिनिवैशंपायनपैलसूत्रभाष्यभारतमहाभारतधर्माचार्यास्तृप्यंतु जानन्तिबाहविगार्ग्यगौतमशाकल्यबाभ्रव्यमाण्डव्यमाण्डुकेयास्तृप्यंतु गर्गीवाचक्नवी तृप्य० वडवाप्रातीथेयी तृप्य० सुलभा मैत्रेयी तृप्य० कहोळं तर्पयामि० कौषीतकं त० महाकौषीतकं त० पैङ्ग्यं त० महापैङ्ग्यं त० सुयज्ञं तर्पया० सांख्यायनं त० ऐतरेयं त० महैतरेयं त० शाकलं त० बाष्कलं त० सुजातवक्त्रं त० औदवाहिं त० महौदवाहिं त० सौजामिं त० शौनकं त० आश्वलायनं त० ये चान्ये आचार्यास्ते

---

१ यज्ञोपवीतका सव्य उपवीति, अपसव्य प्राचीनावीती और माला की तरह रहना निवीती कहलाता है। मनुः—'उद्धृते दक्षिणे पाणावुपवीत्युच्यते द्विजः। सव्ये प्राचीन आवीती निवीती कण्ठसज्जने॥' द्विज दाहिना हाथ उठाकर पहने गये अर्थात् बायें कंधे के ऊपर से दाहिनी कांख के नीचे लटकते हुये यज्ञोपवीत को 'उपवीति' (सव्य) बायां हाथ उठाकर पहने गये याने दाहिने कंधे के ऊपर से बांये कांख के नीचे लटकते हुये यज्ञोपवीत को 'प्राचीनावीती' (अपसव्य) और कंठ में माला की तरह लटकते हुये यज्ञोपवीत को 'निवीती' कहते हैं।

सर्वे तृप्यंतु २३ । ततो मृतपितृकः '[1]पितृत्रयीं मातृत्रयीं सपत्नीकमातामहत्रयीं पत्न्याद्येकोद्दिष्टगणांश्च महालयप्रकरणोक्तान्मृतांस्तर्पयेत् ।

अत्र अपसव्य होकर पितृतीर्थ से दुगुने किये कुशमूलाग्र से सुमन्तु-वैशंपायन-पैलसूत्र-भाष्य-भारत-महाभारत-धर्माचार्याःतृप्यन्तु इत्यादि २३ नामों के तर्पणवाक्य मूल में पढ़ें । इसके बाद जिसके पिता मर गये हों पितृत्रयी (पिता, पितामह, प्रपितामह) मातृत्रयी (माता, पितामही, प्रपितामही) सपत्नीक मातामहत्रयी (नाना परनाना, वृद्ध परनाना सपत्नीक) पत्नी आदि एकोद्दिष्ट गण महालय प्रकरण में कहे हुए मृतकों का तर्पण करे ।

अथ तर्पणादिविचारः

सम्बन्धं[2] प्रथमं ब्रूयान्नामगोत्रमनन्तरम् ।
पश्चाद्रूपं विजानीयात्क्रम एष सनातनः ॥

[3]एकैकमञ्जलिं देवेभ्यो द्वौ द्वौ ऋषिभ्यस्त्रींस्त्रीन्पितृभ्य इति संख्याविशेषः आश्वलायनानां वैकल्पिकः, तत्सूत्रे संख्यानुक्तेः । येषां सूत्रे संख्योक्तिस्तेषां नित्य इति माधवः । मातृत्रयीभिन्नस्त्रीभ्य एकाञ्जलिः ।

तर्पण में पहले सम्बन्ध उसके बाद नाम और गोत्र कहे । इसके पीछे रूप का ज्ञान करे यह सनातन क्रम है । एक एक अंजुलि देवताओं को, दो दो ऋषियों को, तीन तीन पितरों को, यह संख्या विशेष आश्वलायनों के लिये वैकल्पिक है क्योंकि उनके सूत्र में संख्या नहीं कही गई है । जिनके सूत्र में संख्या कही गई है उनका नित्य है, ऐसा माधव कहते हैं । मातृत्रयी से भिन्न स्त्रियों को एक अंजुलि दे ।

एतावद्भिस्तत्तत्तर्पणाशक्तौ—

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः ।

---

१. सङ्ग्रहे—'तातास्म्बात्रितयं सपत्नजननी मातामहादित्रयं सस्त्रि स्त्रीतनयादि तातजननी स्वभ्रातरः सस्त्रियः । तातास्म्बात्मभगिन्यपत्यधवयुक् जायापिता सद्गुरुः शिष्याप्ताः पितरो महालयविधौ तीर्थे तथा तर्पणे ॥' अर्थात् पित्रादित्रय मात्रादित्रय सौतेली माता, सस्त्रीक मातामहादित्रय, स्त्री पुत्र, अविवाहित पुत्री, स्त्रीसहित पितामही का भाई, पिता माता की सन्तान और पतिसहित अपनी बहन, श्वशुर-गुरु-शिष्य और आप्त, ये महालय-तीर्थ और तर्पण में पितर हैं । स्मृत्यन्तर में सप्तगोत्र हैं—'पितुर्मातुश्च भार्याया भगिन्या दुहितुस्तथा । पितृष्वसामातृष्वस्रोर्गोत्राणां सप्तकं स्मृतम् ॥' इति ।

२. वसिष्ठोऽपि—'सम्बन्धमनुकीर्त्यैव नामगोत्रमनन्तरम् । वस्वादिरूपं सङ्कीर्त्य स्वधाकारेण तर्पयेत् ॥' बौधायनः—'शर्मान्तं ब्राह्मणस्योक्तं वर्मान्तं क्षत्रियस्य तु । गुप्तान्तं चैव वैश्यस्य दासान्तं शूद्रजन्मनः ॥ चतुर्णामपि वर्णानां गोत्रत्वे पितृगोत्रता । पितृगोत्रं कुमारीणामूढानां भर्तृगोत्रता ॥' वृद्धयाज्ञवल्क्यः—'अन्वारम्भेन सव्येन पाणिना दक्षिणेन तु । सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्यामथवा तर्पणं भवेत् ॥ तृप्यतामिति वक्तव्यं नाम्ना तु प्रणवादिना । आवाह्य पूर्ववन्मन्त्रैरास्तीर्य च कुशांश्च तान् ॥ सव्यजानुं तथा स्थाप्य पाणिभ्यां दक्षिणामुखः । तल्लिङ्गैस्तर्पयेन्मन्त्रैः सर्वान् पितृगणांस्तथा ॥' इति ।

३. व्यासोक्त अञ्जलि-दान का विचार—'एकैकमञ्जलिं देवा द्वौ द्वौ तु सनकादयः । अर्हन्ति पितरस्त्रींस्त्रीन् स्त्रियमेकैकमञ्जलिम् ॥' शाङ्खायनः—'मातृमुख्यास्तु यास्तिस्रस्तासां त्रींस्त्रीन् जलाञ्जलीन् । सपत्न्याचार्यपत्नीनां द्वौ द्वौ दद्याज्जलाञ्जली ॥' इति ।

तृप्यन्तु पितरः सर्वे मातृमातामहादयः ॥
अतीतकुलकोटीनां सप्तद्वीपनिवासिनाम् ।
आब्रह्मभुवनाल्लोकादिदमस्तु तिलोदकम् ॥

इति त्रिस्त्रिर्दद्यात्। ततो—

ये के चास्मत्कुले जाता अपुत्रा गोत्रिणो मृताः ।
ते गृह्णन्तु मया दत्तं वस्त्रनिष्पीडनोदकम् ॥

इति परिधानवस्त्रं भूमौ निष्पीड्य[1] दद्यात् ।

इतना बड़ा विस्तृत तर्पण करने में अशक्त हो तो 'आ ब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षि पितृमानवाः तृप्यन्तु पितरः सर्वे मातृमातामहादयः ॥' इत्यादि मूलोक्त श्लोक पढकर तीन तीन बार दे। तदनन्तर 'ये के चास्मत्कुले जाता' इत्यादि से पहिनने के वस्त्र को भूमि में निचोड़ कर जल दे।

अत्र बह्वृचानां प्राचीनावीती अन्येषां निवीती। इदं गृहे निषिद्धम्। ब्रह्मयज्ञो ग्रामाद्बहिरुदकसमीपे विहितः। ग्रामे मनसाधीयीत। सव्यान्वारब्धदक्षिणेन वा अञ्जलिना वा तर्पणम्। तर्पणं बर्हिषाच्छन्ने स्थले[2] कार्यं न तु जले।

पात्राद्वा जलमादाय शुभे पात्रान्तरे क्षिपेत् ।
जलपूर्णेऽथवा गर्ते न स्थले तु विबर्हिषि ॥
हेमरौप्यताम्रकांस्यमये [3]पात्रे न मृन्मये ।
यत्राशुचिस्थलं तत्र तर्पणं स्यान्नदीजले ॥
अनामिकाधृतं हेम तर्जन्यां रौप्यमेव च ।
कनिष्ठिकाधृतं खड्गं तेन पूतो भवेन्नरः ॥

---

१. याज्ञवल्क्यः—'वस्त्रनिष्पीडितं तोयं स्नातस्योच्छिष्टभागिनः। भागधेयं श्रुतिः प्राह तस्मान्निष्पीडयेत् स्थले ॥' स्मृत्यन्तरे—'वस्त्रं चतुर्गुणीकृत्य पीडयेच्च जलाद्बहिः। वामप्रकोष्ठे निक्षिप्य द्विराचम्य शुचिर्भवेत् ॥' 'यावद्देवानृषींश्चैव पितृंश्चापि न तर्पयेत्। तावन्न पीडयेद् वस्त्रं येन स्नातो भवेन्नरः ॥' 'निष्पीडयति यः पूर्वं स्नानवस्त्रमतर्पिताः। निराशाः पितरो यान्ति शापं दत्त्वा सुदारुणम् ॥ द्वादश्यां पञ्चदश्यां च सङ्क्रान्तौ श्राद्धवासरे। वस्त्रं निष्पीडयेन्नैव न च क्षारेण योजयेत् ॥' इति।

२. हारीतः—'वसित्वा वसनं शुष्कं स्थले विस्तीर्णबर्हिषि। विधिज्ञस्तर्पणं कुर्यान्न पात्रेषु कदाचन ॥ पात्राद्वा जलमादाय शुभे पात्रान्तरे क्षिपेत्। जलपूर्णेऽथवा गर्ते न स्थले तु विबर्हिषि ॥' शङ्खः—'उदके नोदकं दद्यात् पितृभ्यश्च कदाचन। उत्तीर्य च शुचौ देशे कुर्यादुदकतर्पणम् ॥'—

योगियाज्ञवल्क्य तो स्थल या जल में यथेच्छ तर्पण को विहित बतलाया है—'यथा शुचिस्थलं वा स्यादुदके देवताः पितॄन्। तर्पयेच्च यथाकाममप्सु सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥' जहां शुचिस्थल उपलब्ध न हो वहां यह वचन चरितार्थ होगा। इसप्रकार भिन्न मतों की एकवाक्यता होगी।

३. मरीचिः—'सौवर्णेन तु पात्रेण ताम्ररूप्यमयेन वा। औदुम्बरेण खड्गेन पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥ विना रूप्यसुवर्णेन विना ताम्रमयेन वा। विना तिलैश्च दर्भैश्च पितॄणां नोपतिष्ठते ॥ यावद्भिस्तर्पयेद्देवान् सतिलाभिः पितॄंस्तथा।' इति।

अङ्गुल्यग्रे तीर्थं दैवं स्वल्पाङ्गुल्योर्मूले कायम् ।
मध्येऽङ्गुष्ठाङ्गुल्योः पित्र्यं मूले त्वङ्गुष्ठस्य ब्राह्मम् ॥

उद्धृतजलेन[1] पितृतर्पणे तिलान् संमिश्रयेज्जले । अनुद्धृतजलेन तर्पणे वामहस्ते तिला ग्राह्याः ।

इसमें बहृचों को अपसव्य से और दूसरों को गले में यज्ञोपवीत को माला की तरह करके तर्पण करना चाहिये । यह तर्पण घर में करना निषिद्ध है । ब्रह्मयज्ञ गांव से बाहर जल के समीप विहित है । ग्राम में मन से पढ़े । सव्य से आरम्भ कर या अंजलि से तर्पण करे । तर्पण, कुश बिछाये हुए जगह में करे जल में नहीं । अथवा पात्र से जल लेकर दूसरे शुभ पात्र में छोड़े । अथवा जलपूर्ण गड्ढे में छोड़े । बिना कुश के स्थल में न छोड़े । सोना, चांदी, तामा और कांस्यपात्र में तर्पण करे, मिट्टी के पात्र में नहीं । जहां अपवित्र स्थल हो वहां नदी-जल में तर्पण करे । अनामिका में सुवर्ण, तर्जनी में चांदी, कनिष्ठिका में खड्ग के धारण से मनुष्य पवित्र होता है । अंगुलियों के अग्रभाग में दैवतीर्थ, छोटी दोनों अंगुलियों के मूल में काय (प्रजापति) तीर्थ, अंगुष्ठ और अंगुलियों के मध्य में पितृ तीर्थ और अंगुष्ठ के मूल में तो ब्राह्म तीर्थ है । खींचे हुए जल से पितृतर्पण में जल में तिल मिला ले । बिना खींचे हुए जल से तर्पण में बायें हाथ में तिल रखे ।

अथ तिलतर्पणनिषेधः

तिलतर्पणं गृहे निषिद्धम् । रविभृगुवारे सप्तमीनन्दासु कृत्तिकामघाभरणीषु मन्वादौ युगादौ च पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् । पित्रोः श्राद्धदिने नित्यतर्पणे तिला[2] निषिद्धाः । पर्वदिने[3] निषिद्धतिथिवारादिष्वपि तिलतर्पणम् ।

---

१ याज्ञवल्क्यः—'यद्युद्धृतं निषिञ्चेत्तु तिलान् सम्मिश्रयेज्जले । अतोऽन्यथा तु सव्येन तिला ग्राह्या विचक्षणैः ॥ शुक्लैस्तु तर्पयेद्देवान् मनुष्याञ्छवलैस्तिलैः । पितॄंस्तु तर्पयेत् कृष्णैस्तर्पणे सर्वदा द्विजः ॥' इति ।

२. मरीचिः—'सप्तम्यां रविवारे च गृहे जन्मदिने तथा । निशासन्ध्यासु पुत्रार्थी न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥' गार्ग्यः—'भानौ भौमे त्रयोदश्यां नन्दाभृगुमघासु च । पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥' बौधायनः—'विवाहे चोपनयने चौले सति यथाक्रमम् । वर्षमर्द्धं तदर्द्धं च नेत्येके तिलतर्पणम् ॥' वह्निपुराणे—'दर्शश्राद्धं गयाश्राद्धं तिलैस्तर्पणमेव च । न जीवत्पितृको भूप कुर्यात् कृत्वाऽवमाप्नुयात् ॥' कालादर्शे—'मन्वाद्यासु युगाद्यासु प्रदत्तः सतिलोऽञ्जलिः । सहस्रवार्षिकीं तृप्तिं पितॄणामावहेत्सदा ॥' अपि च—'आसु तोयमपि स्नात्वा तिलदर्भविमिश्रितम् । पितॄनुद्दिश्य यो दद्यात् स गतिं परमां लभेत् ॥'—

अतः संग्रह का—'नन्दायां भार्गवदिने कृत्तिकासु मघासु च । भरण्यां भानुवारे च गजच्छायाह्वये तथा ॥ अयने द्वितये चैव मन्वादिषु युगादिषु । पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥' यह वचन चिन्त्य है ।

३. कात्यायनः—'उपरागे पितृश्राद्धे पातेऽमायां च सङ्क्रमे । निषेधेऽपीह सर्वत्र तिलैस्तर्पणमाचरेत् ॥' गर्गः—'कृष्णे भाद्रपदे मासि श्राद्धं प्रतिदिनं भवेत् । पितॄणां प्रत्यहं कार्यं निषिद्धाहेऽपि तर्पणम् ॥' स्नानसूत्रभाष्ये—'कठाः काण्वाश्च जाबाला ये च वाजसनेयिनः । निषिद्धेऽपि दिने कुर्युस्तर्पणं तिलमिश्रितम् ॥' पृथ्वीचन्द्रोदये—'तीर्थे तिथिविशेषे च गङ्गायां प्रेतपक्षके । निषिद्धेऽपि दिने कुर्यात्तर्पणं तिलमिश्रितम् ॥' याज्ञवल्क्यः—'तिलानामप्यभावे तु सुवर्णरजतान्वितम् । तदभावे निषिञ्चेत्तु दर्भैस्तोयैर्न चान्यथा ॥' इति ।

विकिरे पिण्डदाने च तर्पणे स्नानकर्मणि ।
आचान्तः सम्प्रकुर्वीत दर्भसंत्याजनं बुधः ॥ दर्भत्यागमन्त्रस्तु—
येषां पिता न च भ्राता न पुत्रो नान्यगोत्रिणः ।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु मयोत्सृष्टैः कुशैस्तथा ॥ इति ।

तिल-तर्पण घर में निषिद्ध है । रवि-शुक्रवार में, सप्तमी और नन्दातिथियों में, कृत्तिका मघा और भरणी नक्षत्रों में, मन्वादि और युगादि तिथियों में, पिण्डदान मृत्तिका से स्नान और तिल-तर्पण न करे । माता पिता के श्राद्धदिन और तर्पण में तिल निषिद्ध है । पर्वदिन और निषिद्ध-तिथि-वारादि में भी तिल-तर्पण निषिद्ध है । विकिर, पिण्डदान, तर्पण और स्नान में आचमन करके कुश का त्याग करे । कुश त्याग का मन्त्र तो 'येषां पिता न च भ्राता' इत्यादि मूल में देखें ।

अथ हिरण्यकेशीयब्रह्मयज्ञस्तर्पणं च

अथ हिरण्यकेशीयानां संकल्पादित्रिर्गायत्रीजपान्तं प्राग्वत् । तत इषेत्वोर्जेत्वेति अध्यायमनुवाकं वा यथाशक्ति पठित्वा ऋचं सामषडङ्गेतिहासपुराणादीनि[1] पठित्वा नमो ब्रह्मण इत्येतया त्रिः परिदधाति ।

हिरण्यकेशियों को संकल्प से लेकर तीन बार गायत्री जप पर्यन्त पूर्ववत् है । तदनन्तर 'इषेत्वोर्जेत्वा' इस अध्याय या अनुवाक को यथाशक्ति पढ़कर सामवेद की ऋचा और षडंग-इतिहास-पुराणादि को पढ़कर 'नमो ब्रह्मणे' इस ऋचा से तीनवार परिधान करे ।

अथ तर्पणम्—तच्च तैत्तिरीयाणां ब्रह्मयज्ञाङ्गं न भवति । तेन ब्रह्मयज्ञोत्तरं व्यवहितकालेऽपि ब्रह्मयज्ञात्प्रागपि भवति । एवं काण्वमाध्यन्दिनामपि । अतो 'देवर्ष्याचार्यपितृतृप्तिद्वारा श्रीपरमेश्वर० देवर्ष्याचार्यपितृतर्पणं करिष्ये' इति पृथगेव संकल्पः ।

वह तर्पण तैत्तिरीयों के ब्रह्मयज्ञ का अंग नहीं होता । इससे ब्रह्मयज्ञ के बाद व्यवहित काल में भी और ब्रह्मयज्ञ के पहिले भी होता है । इसी प्रकार काण्व माध्यन्दिनों का भी । अतः 'देव-ऋषि-आचार्य और पितृतृप्ति द्वारा श्रीपरमेश्वर की प्रसन्नता के लिये देव-ऋषि-आचार्य और पितरों का तर्पण करूँगा' ऐसा अलग ही संकल्प है ।

पूर्ववदेकैकाञ्जलिना देवतर्पणम्—ब्रह्माणं तर्पयामि प्रजापतिं तर्प० बृहस्पतिं० अग्निं० वायुं० सूर्यं० चन्द्रमसं० नक्षत्राणि० इन्द्रꣳराजानं० यमꣳराजानं वरुणꣳराजानं सोमꣳराजानं० वैश्रवणꣳराजानं० वसून्० रुद्रान्० आदित्यान्० विश्वा-

१. याज्ञवल्क्यः—'वाकोवाक्यं पुराणं च नाराशंसीश्च गाथिकाः । इतिहासांस्तथा विद्याः शक्त्याऽधीते हि योऽन्वहम् ॥ मांसक्षीरौदनमधुतर्पणं स दिवौकसाम् । करोति तृप्तिं कुर्याच्च पितृणां मधुसर्पिषा ॥ ते तृप्तास्तर्पयन्त्येनं सर्वकामफलैः शुभैः । यं यं क्रतुमधीते च तस्य तस्याप्नुयात् फलम् ॥' वाकोवाक्यं = प्रश्नोत्तररूपं वेदवाक्यम् , पुराणं = ब्राह्माद्यष्टादशपुराणम् , नाराशंसीः = रुद्रदैवत्यान्मन्त्रान् , गाथिकाः = यज्ञगाथेन्द्रगाथाद्याः, इतिहासान् = महाभारतादीन् , विद्याः = वारुणाद्याः । तर्पणसम्बन्धी विवेचन के अन्यान्य मूलवचन इसके पूर्व सुधाविवृति में अङ्कित देखें ।

न्देवान्० साध्यान्० ऋभून्० भृगून्० मरुतः० अथर्वणः० अग्निरसस्तर्पया-
मीति २३ ।

पहिले की तरह एक एक अंगुलि से देवता का तर्पण करे—ब्रह्माणं तर्पयामि, प्रजापतिं त० इत्यादि २३ नामों के तर्पण वाक्य मूल में पढ़ें ।

निवीती उदङ्मुखः विश्वामित्रं० जमदग्निं० भरद्वाजं गौतमं० अत्रिं० वसिष्ठं० कश्यपं० अरुन्धतीं० अगस्त्यं० कृष्णद्वैपायनं० जातूकर्ण्यं० तरुक्षं० तृणबिन्दुं० वर्मिणं० वरूथिनं० वाजिनं० वाजिश्रवसं त० सत्यश्रवसं त० सुश्रवसं त० सुतश्रवसं० सोमशुष्मायणं० सत्त्ववन्तं० बृहदुक्थं० वामदेवं० वाजिरत्नं० हर्यज्ञायनं० उदमयं० गौतमं० ऋणंजयं० ऋतंजयं० कृतंजयं० धनंजयं० बभ्रुं० त्र्यरुणं० त्रिवर्षं० त्रिधातुं० शिबिं० पराशरं० विष्णुं० रुद्रं० स्कन्दं० काशीश्वरं० ज्वरं० धर्मं० अर्थं० कामं० क्रोधं० वशिष्ठं० इन्द्रं० त्वष्टारं० कर्तारं० धर्तारं० धातारं० मृत्युं० सवितारं० सावित्रीं तर्पं० ऋग्वेदं त० यजुर्वेदं० सामवेदं० अथर्ववेदं० इतिहासपुराणं त० ६१ इति द्वौ द्वावञ्जली ।

कण्ठ में यज्ञोपवीत करके उत्तर मुख बैठकर विश्वामित्रं० जमदग्निं० इत्यादि ६१ नामों से दो दो अंजलि दें । तर्पण-वाक्य मूल में पढ़ें ।

प्राचीनावीती दक्षिणामुखः—वैशम्पायनं० पिलिगुं० तित्तिरं त० उखं त० आत्रेयं पदकारं० कौण्डिण्यं वृत्तिकारं० सूत्रकारान्० सत्याषाढं त० प्रवचनकर्तॄन्० आचार्यान्० ऋषीन्० वानप्रस्थान्० ऊर्ध्वरेतसः० एकपत्नीस्तर्पयामीति १४ त्रींस्त्रीनञ्जलीनिति विशेषः । शेषं पितृतर्पणादिसर्वं प्रागुक्तमेव ।

अपसव्य होकर दक्षिण की ओर मुख करके वैशंपायनं० पिलिंगुं० इत्यादि मूलोक्त १४ नामों से तीन तीन अंजलि दे, इतना विशेष है । शेष पितृ तर्पण आदि सब पहिले कह ही चुके हैं ।

अथापस्तम्बादीनां तर्पणम्

ब्रह्मादयो ये देवाः तांस्त० सर्वान्देवांस्त० सर्वान्देवगणांस्त० सर्वा देवपत्नीः० सर्वान्पुत्रां० सर्वान्पौत्रांस्त० भूर्देवां० भुवर्देवां० सुवर्देवां० भूर्भुवः सुवर्देवां० कृष्णद्वैपायनादयो ये ऋषयः तानृषीं० सर्वानृषीं० सर्वानृषिगणान्० सर्वा ऋषिपत्नीः० सर्वानृषिपुत्रां० सर्वानृषिपौत्रां० भूर्ऋषी० । एवं सोमः पितृमान्यमोऽङ्गिरस्वानग्निष्वात्ताः० तान्पितॄनित्यादयो दश पितृपर्याया ऊह्याः । एवमन्येषामप्यूह्यम् ।

आपस्तम्बादिकों का ब्रह्मादयो ये देवास्तान्० सर्वान् देवगणान्० इत्यादि भूर्ऋषीन् पर्यन्त नामों से तर्पण करे । इस प्रकार 'सोमः पितृमान् यमोऽङ्गिरस्वान् अग्निष्वात्ताः० तान् पितॄन्' इत्यादि दस पितृपर्यायों की कल्पना करे । एवं अन्य की भी कल्पना करे ।

अथ कात्यायनानां ब्रह्मयज्ञस्तर्पणं च

प्राङ्मुख आचम्य 'पवित्रे धृत्वा प्राणानायम्य 'श्रीपर०र्थं ब्रह्मयज्ञेन यक्ष्ये' दर्भाञ्जलौ धृत्वा दक्षिणजानौ धृत्वा सूत्रान्तराद्गायत्रीं त्रिरुच्चार्यं इषेत्वेत्यादि आरभ्य संहिता ब्राह्मणं च पूर्वोक्तरीत्या पठेत्। अन्ते उपनिषदितिहासपुराणादि पठित्वा अन्ते[2] ॐ स्वस्तीति वदेत्। सूत्रान्तरोक्तत्वात् नमो ब्रह्मण इति त्रिः पठन्ति केचित्।

कात्यायनों का ब्रह्मयज्ञ—पूर्वाभिमुख बैठ आचमन कर दो पवित्री धारण कर प्राणायाम करके 'श्रीपरमेश्वर की प्रीति के लिये ब्रह्मयज्ञ से पूजन करूंगा'। कुशों की अंजलि और दक्षिण जानु में धारण कर दूसरे सूत्रों के अनुसार तीन बार गायत्री उच्चारण करके 'इषे त्वा' इत्यादि का आरंभ कर संहिता और ब्राह्मण को पहिले की रीति से पढ़े। अन्त में उपनिषत्, इतिहास, पुराण आदि को पढ़कर अन्त में 'स्वस्ति' ऐसा कहे। कोई—दूसरे सूत्रों के कहने से 'नमो ब्रह्मण' इस मन्त्र को तीन बार पढ़ते हैं।

अथ तर्पणम्—एतच्च प्रातः संध्योत्तरं वा मध्याह्ने ब्रह्मयज्ञोत्तरं वा सकृदेव कार्यम्। ब्रह्मयज्ञस्य वैकल्पिकं [3]कालत्रयमुक्तम्। तत्र 'देवर्षिपितृतर्पणं करिष्ये' इति संकल्प्यादौ पूर्वोक्तधर्मेण देवतर्पणम्। भूमौ ताम्रादिपात्रे वा दर्भानास्तीर्य विश्वेदेवास आगतेति देवानावाह्य विश्वेदेवाः शृणुतेममिति जपित्वा त्रीन्प्रागग्रान्[4]द-

---

१. लघुहारीतः—'जपे होमे तथा दाने स्वाध्याये पितृकर्मणि। अशून्यं तु करं कुर्यात् सुवर्णरजतैः कुशैः॥' हारीतः – 'द्वयोस्तु पर्वणोर्मध्ये पवित्रं धारयेद् बुधः।' अन्यत्र—'अनामिकामूलदेशे पवित्रं धारयेद् बुधः।' पवित्र में मार्कण्डेयोक्त दर्भ की संख्या—'चतुर्भिर्दर्भपिञ्जूलैर्ब्राह्मणस्य पवित्रकम्। एकैकं न्यूनमुद्दिष्टं वर्णे वर्णे यथाक्रमम्॥ सर्वेषां वा भवेद् द्वाभ्यां पवित्रं ग्रथितं न वा। चतुर्भिः शान्तिके कार्यं पौष्टिके पञ्चभिस्तथा॥ पैतृके तु त्रयो दर्भा द्वौ दर्भौ नित्यकर्मणि।' हारीतस्मृतिः—'आचामेत् प्रयतो नित्यं पवित्रेण द्विजोत्तमः। नोच्छिष्टस्तु भवेत्तत्र भुक्तोच्छिष्टं विवर्जयेत्॥'—

शारदातिलक में ताम्रादि के पवित्र की निर्माण-विधि यों है—'ताम्रतारसुवर्णानामर्कषोडशखेन्दुभिः। कृता त्रिशक्तिमुद्रेयं तीव्रदारिद्र्यनाशिनी॥ माषाणां षोडशादूर्ध्वं कुर्याद् हेमपवित्रकम्।' अर्थात् ताम्र के १२ चान्दी के १६ और सुवर्ण के १० भाग से निर्मित यह त्रिशक्ति की अंगूठी (पवित्र) तीव्र दरिद्रता को नाश करती है। केवल सुवर्ण का पवित्र (अंगूठी) सोलह माशे से अधिक का बनावे। कहीं 'कृता त्रिशक्तिमुद्रेयं तीव्रदारिद्र्यनाशिनी' का 'पुष्यार्करचिता मुद्रा दुःखदारिद्र्यनाशिनी' यह पाठान्तर है।

२. मनुः—'ब्राह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा। स्रवत्यनोङ्कृतं सर्वं पुरस्ताच्च विशीर्यति॥' अर्थात् वेद के स्वाध्याय में आरम्भ और अन्त में 'ॐ' का उच्चारण करना चाहिये। पूर्व में उसका उच्चारण नहीं करने पर अध्ययन नष्ट हो जाता है और अन्त में उच्चारण नहीं करने पर भी नष्ट हो जाता है।

३. याज्ञवल्क्यः—'स चार्वाक् तर्पणात् कार्यः पश्चाद्वा प्रातराहुतेः। वैश्वदेवावसाने वा नान्यत्र ह्यनिमित्तकात्॥' इति।

४. अग्निपुराणे—'प्रागग्रेषु सुरांस्तृप्येन्मनुष्यांश्चैव मध्यतः। पितॄंश्च दक्षिणाग्रेषु दद्यादिति जलाञ्जलीन्॥' दक्षः—'प्रादेशमात्रमुद्धृत्य सलिलं प्राङ्मुखः सुरान्। उदङ् मनुष्यांस्तृप्येत्तु पितॄन् दक्षिणतस्तथा॥ अग्रैस्तु तर्पयेद्देवान् मनुष्यान् कुशमध्यतः। पितॄंस्तु कुशमूलाग्रैर्विधिः कौशो यथाक्रमम्॥' इति।

भन्धृत्वा देवतीर्थेन ओंम् ब्रह्मा तृप्यतां विष्णुस्तृप्य० रुद्र० प्रजापतिः० देवास्तृ० छन्दांसि० वेदा० ऋषयः० पुराणाचार्या० गन्धर्वा० इतराचार्या० संवत्सरः सावयव० देव्यस्तृप्यन्तां० अप्सरसः० देवानुगा० नागा० सागरा० पर्वता० सरित० मनुष्या० यक्षा० रक्षांसि० पिशाचा० सुपर्णा० भूतानि० पशव० वनस्पतय० ओषधय० भूतग्रामश्चतुर्विधस्तृप्यतामिति २९ ।

यह तर्पण—प्रातः सन्ध्या के बाद या मध्याह्न में ब्रह्मयज्ञ के बाद एक बार करे। ब्रह्मयज्ञ का वैकल्पिक काल तीन कहा है। उसमें 'देवता ऋषि पितृ तर्पण करूंगा' ऐसा संकल्प कर आरंभ में पहिले कहे हुए प्रकार से देव-तर्पण करे। भूमि में या तामा आदि के पात्र में कुशों को बिछाकर 'विश्वेदेवास आगत' इस मन्त्र से देवताओं का आवाहन करके 'विश्वेदेवाः श्रृणुतेमम्' इस मन्त्र का जप करके तीन पूर्वाग्र कुशों को रख कर देवतीर्थ से 'ॐ ब्रह्मा तृप्यताम् विष्णुस्तृ०' इत्यादि मूलोक्त २९ नामों से तर्पण करे।

सर्वत्र सप्रणवं[1] प्रथमान्तं नामोच्चार्य तर्पयेत्। सप्तऋषय इति मन्त्रेणर्षीनावाह्य निवीती द्विर्द्विः सनकस्तृप्यतु सनन्दन० सनातन० कपिल० आसुरि० वोढुस्तृ० पञ्चशिख० ७ ।

यहां सर्वत्र प्रणव-सहित प्रथमान्त नाम का उच्चारण कर तर्पण करे। 'सप्त ऋषय' इस मन्त्र से ऋषियों का आवाहन कर कण्ठ में यज्ञोपवीत धारण करके दो दो अंजलि जल दे। सनकस्तृप्यतु सनन्दनः इत्यादि ७ नाम मूल में देखें।

अपसव्यम् उशन्तस्त्वेति पितॄनावाह्य आयन्तु नः पितर इति जपित्वा पितृतीर्थेन त्रिस्त्रिः कव्यवाडनलस्तृप्यताम् सोम० यम० अर्यमा० अग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यन्ताम् सोमपाः पितरः० बर्हिषदः० यमाय नमस्तर्पयामि धर्मराजाय० मृत्यवे० अन्तकाय० वैवस्वताय० कालाय० सर्वभूतक्षयाय० औदुम्बराय० दध्नाय० नीलाय० परमेष्ठिने० वृकोदराय० चित्राय० चित्रगुप्ताय० २१ ।

अपसव्य होकर 'उशन्तस्त्वा' इस मन्त्र से पितरों का आवाहन कर 'आयन्तु नः पितरः' इसको जप कर पितृतीर्थ से तीन तीन अंजलि जल दे। 'कव्यवाडनलः तृप्यतां सोमस्तृ०' इत्यादि चित्रगुप्त पर्यन्त २१ नाम मूल में देखें।

यमतर्पणं वैकल्पिकं, सूत्रे एके इत्युक्तेः। जीवत्पितृकस्य[2] मणिबन्धपर्यन्तमपसव्यं सर्वत्र। ततो मृतपितृकः पित्रादित्रयीं मात्रादित्रयीं च तर्पयित्वा उदी-

---

१. गोभिलः—'बह्वृचा देवपित्रर्षीस्तर्पयन्ति द्वितीयया। कात्यायनानां सर्वत्र तर्पणे प्रथमा मता ॥' कात्यायनानां = वाजसनेयब्राह्मणानाम्। 'ब्रह्माद्यानुपवीती तु देवतीर्थेन तर्पयेत्। निवीती कायतीर्थेन मनुष्यान् सनकादिकान् ॥' इति।

२. जीवन् विद्यमानः पिता जनको यस्य स तस्य जीवत्पितृकस्य मणिबन्धपर्यन्तमपसव्यं विहितम्। 'जीवत्पितृकोऽप्येतान्' इति पारस्करः। मणिबन्धपर्यन्त = कलाई तक। अर्थात् जीवित पिता वाले भी पूर्वोक्त ब्रह्मादि से चित्रगुप्तपर्यन्त का तर्पण करें। जीवत्पितृकव्यक्ति का इनके तर्पण में मणिबन्धपर्यन्त आधा ही अपसव्य कर्तव्य है।

रतामिति नवभिर्ऋग्भिस्तर्पणं जलस्थाने अञ्जलिना धारां निषिञ्चेत्। उदीरतां० अङ्गिरसोनः पितरो० आयन्तु नः० ऊर्जं वहन्तीरमृतं० पितृभ्यः स्वधा नमः० ये चेह० मधुवाता इति तिस्र इति ९ प्रत्यृचं प्रत्येकं कुर्यात् तृप्यध्वमिति च त्रिः सिञ्चेत्।

यम का तर्पण वैकल्पिक है, क्योंकि सूत्र में 'एके' ऐसा कहा है। जिसका पिता जीता हो उसका मणिवन्धपर्यन्त सर्वत्र अपसव्य है। तदनन्तर जिसके पिता मरे हों वह पित्रादित्रयी और मात्रादित्रयी को तर्पण करके 'उदीरता' इन नवों ऋचाओं से जल स्थान में अंजलि से धारा गिरावे। 'उदीरता०' 'अंगिरसो नः पितरो' 'आयन्तु न०ः' 'ऊर्जं वहन्तीरमृतं०' 'पितृभ्यः स्वधा नमः०' 'ये चेह०' और 'मधुव्वाता०' इन तीन प्रत्येक ऋचाओं से प्रत्येक का तर्पण करे और 'तृप्यध्वं' इसे तीन बार कह कर जल गिरावे।

ततो नमो वः पितर इत्यष्टौ यजूंषि पठित्वा मातामहादीनेकोद्दिष्टगणांश्च तर्पयेत्। देवागातु विद इति विसर्जयेत्। स्नानवस्त्रनिष्पीडनोदकदानादि प्राग्वत्। प्रातर्होमोत्तरं देवतार्चनं न कृतं चेच्चतुर्थभागे ब्रह्मयज्ञोत्तरं कार्यम्।

इसके बाद 'नमो वः पितर०' इन आठ यजुर्वेद मन्त्रों को पढ़कर मातामह आदि और एकोद्दिष्ट गणों का तर्पण करे। 'देवागातु विद' इस मन्त्र से विसर्जन करे। स्नान-वस्त्र का निचोड़ना और उदक-दान आदि पूर्ववत् करे। प्रातर्होम के बाद देवार्चन न किया हो तो चतुर्थ भाग में ब्रह्मयज्ञ के बाद करे।

अथ दिनपञ्चमभागे वैश्वदेवः

वैश्वदेवः प्रकर्तव्यः पञ्चसूनापनुत्तये।
कण्डनी पेषणी चुल्ली जलकुम्भोऽथ मार्जनी॥

इति पञ्च हिंसास्थानानि पञ्च [1]सूनाः। वैश्वदेवस्य प्रातरेव प्रारम्भो न त्व-

१. सूनाः = जीव-हिंसा के स्थान। क्षारलवणरहित पकान्न से बलिवैश्वदेव कर्म करे। मनुः—'पञ्च सूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करी। कण्डनी चोदकुम्भी च तासां पापस्य शान्तये॥ पञ्च क्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम्। पञ्चैतान् यो महायज्ञान् हापयति शक्तितः॥ स गृहेऽपि वसन्नित्यं सूनादोषैर्न लिप्यते। वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्येऽग्नौ विधिपूर्वकम्॥ आभ्यः कुर्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम्।' अङ्गिराः—'शालाऽग्नौ च पचेदन्नं लौकिके वाऽपि नित्यशः। यस्मिन्नग्नौ पचेदन्नं तस्मिन् होमो विधीयते॥' अत्रिः—'वैदिके लौकिके वाऽपि हुतोच्छिष्टे जले क्षितौ। वैश्वदेवं प्रकुर्वीत पञ्चसूनाऽपनुत्तये॥' बृहत्पाराशरः—'लौकिके पापनाशाय वैदिके स्वर्गमाप्नुयात्।' छन्दोगपरिशिष्टे—'यस्मिन्नग्नौ भवेत्पाको वैश्वदेवस्तु तत्र वै।' मनुः—'शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम्। वायसानां कृमीणां च शनकैर्निक्षिपेद् भुवि॥' आश्वलायन के—'अथ सायं प्रातः सिद्धस्य हविष्यस्य जुहुयात्' इस वचन से वैश्वदेव का होम कात्यायन से भिन्न लोग सायं प्रातः काल में करें।—

गृह्ययज्ञकल्पावलि में वैश्वदेव के पात्र तथा कुण्ड का विचार यों है—'न चुल्ल्यामायसे पात्रे न भूमौ न च खर्परे। वैश्वदेवं प्रकुर्वीत कुण्डे वा स्थण्डिलेऽपि वा॥ षडङ्गुलमथोच्छ्रायं गर्ते च चतुरङ्गुलम्। द्वादशाङ्गुलदीर्घं स्यात्कुण्डं तद्वैश्वदेविकम्॥ अपि ताम्रमयं प्रोक्तं कुण्डमत्र मनीषिभिः।' यज्ञपार्श्वे—'दशाङ्गुलं तु दैर्घ्येण विस्तारे चतुरङ्गुलम्। षडङ्गुलं तु उच्छ्राये मेखला द्व्यङ्गुला मता॥ वृत्तं वा चतुरस्रं वा कुण्डं स्याद् वैश्वदेविकम्।' इति।

ग्निहोत्रादिवत्सायम् । तेन प्रातः सायं वैश्वदेवेत्यादिरेव संकल्पः । पञ्चमहायज्ञा अहरहः कर्तव्याः । ते च ब्रह्मयज्ञदेवयज्ञभूतयज्ञपितृयज्ञमनुष्ययज्ञाख्याः । तत्र ब्रह्मयज्ञ उक्तः ।

पंचम भाग का कृत्य—पांच प्रकार के जीव वध की निवृत्ति के लिये वैश्वदेव करना चाहिये । कण्डनी, पेषणी, चुल्ही, जलकुम्भ और झाड़ू ये पांच हिंसा के स्थान पंचसूना कहे जाते हैं । वैश्वदेव का प्रातःकाल ही प्रारंभ होता है, अग्निहोत्र आदि की तरह सायंकाल नहीं होता । इससे प्रातः सायं वैश्वदेव इत्यादि का ही संकल्प करे। पंच महायज्ञ प्रतिदिन का कर्त्तव्य है । वे ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ और मनुष्ययज्ञ नाम के हैं । उसमें ब्रह्मयज्ञ कह चुके ।

बह्वृचादीनां वैश्वदेवो देवयज्ञादियज्ञत्रयरूपः । मनुष्ययज्ञस्तु मनुष्येभ्योऽन्नदानम् ।

गृहपक्वहविष्यान्नैस्तैलक्षारादिवर्जितैः ।
जुहुयात्सर्पिषाभ्यक्तैर्गृह्येऽग्नौ लौकिकेऽपि वा ॥
यस्मिन्नग्नौ पचेदन्नं तस्मिन्होमो विधीयते ।

वैश्वदेवान्तर्गतपितृयज्ञेनैव नित्यश्राद्धसिद्धेर्न नित्यश्राद्धार्थं विप्रभोजनम् । अनेनैव दर्शश्राद्धस्यापि सिद्धया दर्शश्राद्धमप्यशक्तैः संवत्सरमध्ये सकृदेव कार्यमिति भट्टोजीये । सूतके पञ्चमहायज्ञानां लोप इत्युक्तम् ।

बह्वृचादि का वैश्वदेव—देवयज्ञ-भूतयज्ञ-पितृयज्ञ स्वरूप है । मनुष्ययज्ञ तो मनुष्यों को अन्न देना है । तेल क्षार आदि से वर्जित घी मिलाकर गृह में पके हुए हविष्यान्न से गृह्य अग्नि अथवा लौकिक अग्नि में होम करे । जिस अग्नि में अन्न पकाया जाता है उसी में होम होता है । वैश्वदेव के अन्तर्गत पितृयज्ञ से नित्य श्राद्ध की सिद्धि होने से ब्राह्मणभोजन की आवश्यकता नहीं है । इसी से दर्शश्राद्ध की भी सिद्धि होने से दर्शश्राद्ध भी असमर्थ को साल में एक ही बार करना पड़ता है, ऐसा भट्टोजिदीक्षित के ग्रन्थ में लिखा है । सूतक में पंचमहायज्ञों का लोप होता है, यह कह चुके हैं ।

स चायं वैश्वदेव आत्मसंस्कारार्थोऽन्नसंस्कारार्थश्च[1] । तेनाविभक्तानां पाकैक्ये पृथग्वैश्वदेवो न । विभक्तानां तु पाकैक्येपि हविष्यान्तरेण पृथगेव । अविभक्तानां पाकभेदे पृथग् वैश्वदेवः कृताकृत इति भट्टोजीये । पाकासंभवे एकादश्यादौ

---

१. अत्र विज्ञानेश्वरः—इह केचिद् वैश्वदेवाख्यस्य कर्मणः पुरुषार्थत्वमन्नसंस्कारकर्मत्वं चेच्छन्ति 'अथ सायं प्रातः सिद्धस्य हविष्यस्य जुहुयात्' इत्यन्नसंस्कारकर्मकता प्रतीयते ।' 'अथातः पञ्चमहायज्ञाः' इत्युपक्रम्य 'तानेतान् यज्ञानहरहः कुर्वीत' इति नित्यत्वाभिधानात्पुरुषार्थत्वं चावगम्यते' इति । तदयुक्तम् , पुरुषार्थत्वेऽन्नसंस्कारकर्मत्वानुपपत्तेः । तथा हि—द्रव्यसंस्कारकर्मत्वपक्षेऽन्नार्थता वैश्वदेवकर्मणः, पुरुषार्थत्वे वैश्वदेवकर्मार्थता द्रव्यस्येति परस्परविरोधात् पुरुषार्थत्वमेव युक्तम्—'महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः' इति ।

तण्डुलैर्वा पयोदधिघृतफलोदकादिभिर्वा[1] कार्यः।

हस्तेनान्नादिभिः कुर्यादद्भिरञ्जलिना जले।
कोद्रवं चणकं माषं मसूरं च कुलित्थकम्॥
क्षारं च लवणं सर्वं वैश्वदेवे विवर्जयेत्[2]।

यह वैश्वदेव अपने संस्कार और अन्न संस्कार के लिये भी है। उससे एक में रहने वाले भाइयों के एक पाक होने के कारण अलग वैश्वदेव नहीं करना होता। अलग हुये भाइयों का तो एक पाक होने पर भी दूसरे हविष्य से वैश्वदेव अलग ही होता है। जो अलग नहीं हुए हैं उनका पाकभेद से वैश्वदेव करना न करना बराबर है, ऐसा भट्टोजि का कथन है। रसोई न होने पर एकादशी आदि में चावल से या दूध, दही, घी, फल और जल आदि से वैश्वदेव करना चाहिये। अन्न आदि से हाथ से वैश्वदेव करे। जल से करना हो तो अंजलि से जल में करे। वैश्वदेव में कोदो, चना, उर्द, मसूर और कुरथी तथा सब प्रकार के क्षार, लवण का वर्जन करे।

प्रवसता गृहे पुत्रर्त्विगादिद्वारा वैश्वदेवः कारयितव्यः। गृहे कर्त्रन्तराभावे प्रवासे स्वयं कार्यः। वैश्वदेवो बह्वृचैस्तैत्तिरीयैश्च दिवा रात्रौ चेति द्विवारं कार्यः।

परदेश में रहने वालों को—घर में पुत्र, ऋत्विक् आदि के द्वारा कराना चाहिये। घर में कोई वैश्वदेव करने वाला न हो तो परदेश में स्वयं करे। बह्वृचों और तैत्तिरीयों को वैश्वदेव दिन और रात में दो बार करना चाहिये।

अशक्तैस्त्वेककाले एव द्विरावृत्त्या सह वा कार्यः। बह्वृचतैत्तिरीययोर्लौकिकाग्नौ पाको वैश्वदेवश्चेति प्रायेणाचारः।

असमर्थ तो एक कालमें भी दो आवृत्ति से या साथ ही करे। बह्वृच और तैत्तिरीय का लौकिकाग्नि में रसोई और वैश्वदेव दोनों होता है, प्रायः ऐसा आचार है।

अथ प्रातः सायं वैश्वदेवस्य सहकरणपक्षे तन्त्रप्रयोगः

तत्र वैष्णवैर्भगवते [3]षोडशोपचारेषु दीपान्तानुपचारान्समर्प्य सर्वान्नात्पु-

---

१. विश्वामित्रकल्प में हवनीय द्रव्य—'फलैर्दधिघृतैः कुर्यान्मूलशाकोदकादिभिः। अलाभे येन केनापि काष्ठैर्मूलतृणादिभिः॥ जुहुयात्सर्पिषाऽभ्यक्तं तैलक्षारविवर्जितम्। दध्यक्तं पायसाक्तं वा तदभावेऽम्भसाऽपि वा॥ शाकं वा यदि वा पत्रं मूलं वा यदि वा फलम्। संकल्पयेद्यमाहारं तेनाग्नौ जुहुयादपि॥' श्रौतोल्लासे—'घृतं वा यदि वा तैलं पयो वा यदि वा दधि। घृतस्थाने नियुक्तानां घृतशब्दो विधीयते॥' इति।

२. आह्निककारिकासु—'अन्नं पर्युषितं चैव परान्नं दूषितं तथा। दग्धमन्नं तथोच्छिष्टं वैश्वदेवे विवर्जयेत्॥' वैश्वदेव कर्म के न करने पर बृहत्पाराशरोक्त दोष यह है—'यदग्नौ हूयते नैव यस्य ग्रासो न दीयते। अभोज्यं तद् द्विजातीनां भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्॥' इति।

३. रुद्रकल्पद्रुमादि में षोडशोपचारक्रम यह है—'आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्। मधुपर्काचमनस्नानं वसनाभरणानि च॥ सुगन्धिः सुमनोधूपदीपनैवेद्य एव च॥ माल्यानुलेपने चैव नमस्कारो विसर्जनम्॥' विष्णुपुराणोक्त क्रम—'आवाहनासने पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्। स्नानं वस्त्रोपवीते च गन्धमाल्यान्यनुक्रमात्॥ धूपो दीपश्च नैवेद्यं ताम्बूलं च प्रदक्षिणा। पुष्पाञ्जलिरिति प्रोक्ता उपचारास्तु षोडश॥ फलेन सफलावाप्तिः साङ्गता दक्षिणार्पणम्।' तन्त्रग्रंथों में अनेक प्रकार का षोडशोपचारक्रम निर्दिष्ट है। उपचारों में कोई वस्तु दुर्लभ हो तो कुलोड्डीश तन्त्र में बतलाया है—'उपचारेषु सर्वेषु यत्किञ्चिद्दुर्लभं भवेत्। तत्सर्वं मनसा ध्यात्वा पुष्पक्षेपेण कल्पयेत्॥' इति।

रुषाहारपर्याप्तं नैवेद्यं समर्प्य शेषान्नेन वैश्वदेवः कार्यः। वैष्णवभिन्नैस्तु वैश्वदेवान्ते तच्छेषेण नैवेद्यः कार्यः।

विष्णोर्निवेदितान्नेन यष्टव्यं देवतान्तरम्।
पितृभ्यश्चापि तद्देयं तदानन्त्याय कल्पते।

इत्यादिवचनानां वैष्णवविषयकत्वस्य निबन्धकारैरुक्तत्वात्।

उसमें वैष्णवों को भगवान् के लिये सोलहो उपचारों में दीपपर्यन्त उपचारों को समर्पण कर बचे हुए अन्न से वैश्वदेव करना चाहिये। वैष्णवेतर तो वैश्वदेव के अन्त में उससे बचे हुए का नैवेद्य करे। विष्णु को निवेदित अन्न से दूसरे देवता की पूजा करनी चाहिये। वह पितरों को भी दिया जाय तो अनन्त फल देने वाला होता है, क्योंकि इन वचनों को निबन्धकारों ने वैष्णव विषयक कहा है।

अथ वैष्णवस्वरूपम्

अत्र वैष्णवा नारायणाष्टाक्षरादिवैष्णवमन्त्रदीक्षोपदेशजपवन्तो मुख्याः। 'उपदेशः कलौ युगे' इति स्मृत्योपदेशमात्रस्यापि दीक्षासमफलत्वात्। गौणश्च पारंपर्यागतारुणोदयविद्धैकादश्यनुपवासशुक्लकृष्णैकादश्युपवासादिर्यत्किंचिद्धर्ममात्रपरा मन्त्रोपदेशादिरहिताः।

यहां वैष्णव नारायण के अष्टाक्षर मन्त्र के दीक्षायुक्त और अष्टाक्षर मन्त्र के जापक मुख्य हैं, क्योंकि कलियुग में उपदेशमात्र से दीक्षा के समान फल होता है। गौण भी वैष्णव परम्परा से अरुणोदयविद्धा एकादशी में उपवास न करने वाले और शुक्ल कृष्ण एकादशी में उपवास आदि यत्किंचित् धर्ममात्र करने वाले मन्त्रोपदेश से रहित होते हैं।

ननु 'पञ्चरात्राद्यागमोक्तदीक्षां प्राप्तो हि वैष्णवः' इत्युक्तेः किंचिद्धर्ममात्रानुष्ठानेन कथं वैष्णवत्वमिति चेत्? गायत्र्यध्ययनादिक्षत्रियवैश्यसाधारणधर्मवतां याजनाध्यापनप्रतिग्रहरूपासाधारणधर्मशून्यानां पित्रादिपरंपरया वैश्यादिवृत्तिपराणामप्यव्यभिचरितैकगोत्रत्वादिर्यत्किंचिद्ब्राह्मणधर्ममात्रेण यथा ब्राह्मणत्वं तदुचितसूतकाद्याचारश्च, तथा कलियुगे किंचिद्धर्मेणापि वैष्णवत्वं तदुचिताचारश्च युज्यते।

पंचरात्र आदि आगम की कही हुई दीक्षा पाने वाले ही वैष्णव हैं, इस उक्ति से यत्किंचित् धर्ममात्र के अनुष्ठान से वैष्णवत्व कैसे होगा? इस शंका का समाधान है कि गायत्री अध्ययन आदि क्षत्रिय वैश्य साधारण धर्म से युक्त और यज्ञ कराना, पढ़ाना तथा प्रतिग्रह रूप असाधारण धर्म से रहित को पिता आदिकी परम्परा से वैश्य आदि वृत्तिमें तत्पर रहते हुये भी एक गोत्रत्वादि यत्किंचित् ब्राह्मणधर्ममात्र से जैसे ब्राह्मणत्व है एवं ब्राह्मणोचित आशौच आदि का पालन करते हैं वैसे कलियुग में किंचित् धर्म से भी वैष्णवत्व और वैष्णवोचित आचार भी युक्त है।

क्षत्रियाणां हि [1]पुरोहितभेदेन गोत्रभेदस्तेन यदुवंशेषु परस्परं विवाहो, नैवं ब्राह्मणेष्विति स्पष्टम्। एवं श्राद्धेऽपि नैवेद्यं समर्प्य पितृभ्योऽन्ननिवेदनं ज्ञेयम्।

---

१. 'क्षत्रियवैश्ययोस्तु पुरोहितगोत्रप्रवरावेवेति सर्वसिद्धान्त' इति निर्णयसिन्धुः। स्वगोत्राज्ञाने सत्याषाढः—'अथाज्ञातबन्धोः पुरोहितप्रवरेणाचार्यप्रवरेण वा' इति।

क्षत्रियों का पुरोहित के भेद से गोत्र भेद होता है। इससे यदुवंशियों में परस्पर विवाह होता है, ऐसा ब्राह्मणों में नहीं है, यह स्पष्ट है। उसी प्रकार श्राद्ध में भगवान् को नैवेद्य समर्पण करके पितरों को अन्न निवेदन करना जानना चाहिये।

अथ आश्वलायननानां वैश्वदेवः

'ममात्मान्नसंस्कारपञ्चसूनाजनितदोषपरिहारद्वारा श्रीपर० प्रातर्वैश्वदेवं सायं वैश्वदेवं च सह तन्त्रेण करिष्ये'। कुण्डे स्थण्डिलादौ वा पचनाग्निं व्याहृतिभिः पावकनामानं प्रतिष्ठाप्य चत्वारि शृंगेति ध्यात्वा परिसमुह्य पर्युक्ष्य विश्वानि न इत्यर्चनादि विधाय घृताक्तमन्नमधिश्रित्य प्रोक्ष्योद्वास्याग्नेः पश्चान्निधाय त्रिधा विभज्य प्रथमभागं देवेभ्यो जुहुयात्।

'मेरे अपने अन्नसंस्कार और पंचसूना से उत्पन्न दोष की निवृत्ति द्वारा श्रीपरमात्मा की प्रीति के लिये प्रातःकालीन वैश्वदेव और सायंकालीन वैश्वदेव को तन्त्र से करूंगा'। कुण्ड अथवा स्थण्डिल आदि में व्याहृतियों से पावक नामक पचनाग्नि की स्थापना करके 'चत्वारि शृंगा' इत्यादि मन्त्र से ध्यान कर परिसमूहन पर्युक्षण करके 'विश्वानि न' इस मन्त्र से अर्चन आदि करके घृताक्त अन्न को अग्नि में पकाकर प्रोक्षण करके अग्नि से हटाकर अग्नि के पीछे रख तीन विभाग कर प्रथम भाग से देवताओं का होम करे।

तद्यथा—हृदि सव्यं करं निधायोत्तानहस्तेन सूर्याय स्वाहा सूर्यायेदं न मम प्रजापतये० सोमाय० वनस्पतये० अग्निषोमाभ्यां० इन्द्राग्निभ्यां० द्यावापृथिवीभ्यां० धन्वन्तरये० इन्द्राय० विश्वेभ्यो देवेभ्यः० ब्रह्मणे० इति दश प्रातर्वैश्वदेवाहुतयः। अथ सायं वैश्वदेवीयाः—अग्नये स्वाहेति हुत्वा प्रजापतय इत्यादि पुनर्नव जुहुयात्। एवं विंशत्याहुतीर्हुत्वा प्रायश्चित्तार्थं व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिर्हुत्वा न हुत्वा वा परिसमूहनपर्युक्षणे कुर्यात्। ओं चम इत्युपतिष्ठेत्। इति देवयज्ञः।

वह इस प्रकार है—हृदय में बायां हाथ धरकर दक्षिण हाथ उत्तान करके 'सूर्याय स्वाहा, सूर्याय इदं न मम'। इत्यादि मूलोक्त इन मन्त्रों से प्रातःकाल में वैश्वदेव की ये दस आहुतियां हैं। सायंकाल में वैश्वदेव की आहुतियां—'अग्नये स्वाहा' इससे देकर प्रजापतये इत्यादि नव मन्त्रों से देवे। इस प्रकार बीस आहुति देने के बाद प्रायश्चित्त के लिये व्यस्त और समस्त व्याहृतियों से होम करके या न करके परिसमूहन और पर्युक्षण करे। 'ॐ चमे' इस मन्त्र से उपस्थान करे। देवयज्ञ समाप्त।

अथ बलिहरणाख्यो भूतयज्ञः

द्वितीयभागाद्[1] गृहीत्वा शुद्धभूमौ सूर्याय स्वाहा सूर्यायेदं न ममेत्येवं दशाहुतीः प्राक्संस्था निरन्तरा हुत्वा मध्येऽन्तरालं त्यक्त्वा अद्भ्यः स्वाहा ओषधिवनस्पतिभ्यः० गृहाय० गृहदेवताभ्यः० वास्तुदेव० इति प्राक्संस्था हुत्वा अङ्घ्य आहुतेः पश्चात् इन्द्राय० तदुत्तरे इन्द्रपुरुषेभ्यः० अन्तरालस्य दक्षिणे यमाय०

---

१. याज्ञवल्क्यः—'देवेभ्यश्च हुतादन्नाच्छेषाद् भूतबलिं हरेत्।' अर्थात् स्वगृह्योक्त विधि से वैश्वदेव होम करके अवशिष्ट अन्न से भूतबलि दे।

तदुत्तरे यमपुरुषेभ्यः०, ब्रह्मण आहुतेः प्राक् वरुणाय० तदुत्तरे वरुणपुरुषेभ्यः० अन्तरालस्योत्तरे सोमाय० तदुत्तरे सोमपुरुषेभ्यः अन्तराले ब्रह्मणे० ब्रह्मपुरुषेभ्यः० विश्वेभ्यो देवेभ्यः० सर्वेभ्यो भूतेभ्यः० दिवाचारिभ्यः० सोमपुरुषोत्तरे रक्षोभ्यः० ।

द्वितीय भाग से अन्नग्रहण करके शुद्ध भूमि में 'सूर्याय स्वाहा, सूर्याय इदं न मम'। इस प्रकार प्राक्संस्थ निरन्तर दस आहुति से होम करके पुनः मध्य में अन्तराल का त्याग करके 'अद्भ्यः स्वाहा, ओषधिवनस्पतिभ्य०ः' इत्यादि से प्राक्संस्थ होम करके जल की आहुति के बाद इन्द्र के लिये आहुति दे। उसके उत्तर इन्द्र के पुरुषों को दे। अन्तराल के दक्षिण में यम और उसके उत्तर यमपुरुषों को आहुति दे। ब्रह्मा की आहुति के पहिले वरुण और उसके उत्तर की ओर वरुणपुरुषों, अन्तराल के उत्तर में सोम को, उसके उत्तर में सोमपुरुषों को, विश्वेदेवताओं को, सब जीवों को, दिन के चलने वालों को, सोम-पुरुष के उत्तर राक्षसों को आहुति दे।

एवमेव सूर्यस्थाने प्रथममग्नये हुत्वा प्रजापतय इत्यादि पूर्ववत्। सायं वैश्वदेवसम्बन्धि द्वितीयबलिहरणं कुर्यात्। तत्र दिवाचारिभ्य इत्यस्य स्थाने नक्तंचारिभ्यः स्वाहेति जुहुयादिति विशेषः। इति भूतयज्ञः।

इसी प्रकार सूर्य के स्थान में पहिले अग्नि के लिये होम करके प्रजापति इत्यादि के लिये पूर्ववत् करे। सायंकाल के वैश्वदेव सम्बन्धी द्वितीय बलिहरण करे। उसमें 'दिवाचारिभ्यः' के स्थान में 'नक्तंचारिभ्यः स्वाहा' इससे होम करे, इतना विशेष है। भूतयज्ञ समाप्त।

अथ पितृयज्ञः

प्राचीनावीती तृतीयभागादादाय स्वधा पितृभ्यः इति यमबलेर्दक्षिणतो दत्त्वा पितृभ्य इदं न ममेति त्यक्त्वा द्वितीयबलेर्दक्षिणतः द्वितीयपितृयज्ञमेवं कुर्यात्। इति पितृयज्ञः।

अपसव्य होकर तीसरे भाग से अन्न लेकर 'स्वधा पितृभ्यः' इससे यम बलि के दक्षिण में देकर 'पितृभ्यः इदं न मम' इससे त्याग कर द्वितीय बलि के दक्षिण द्वितीय पितृयज्ञ इसीतरह करे। पितृयज्ञ समाप्त।

अपरे चक्राकारं बलिमाहुः। बलावनुद्धृतेनाद्यान्नोद्धरेच्च स्वयं बलिम्। ततो गृहाङ्गणे भूमावप आसिच्य—

ऐन्द्रवारुणवायव्यां याम्यां नैर्ऋतिकाश्च ये।
ते काकाः प्रतिगृह्णन्तु भूम्यां पिण्डं मयोज्झितम्॥ इति पितृयज्ञशेषेण दत्त्वा,
वैवस्वतकुले जातौ द्वौ श्यामशबलौ शुनौ।
ताभ्यां पिण्डो मया दत्तो रक्षेतां पथि मां सदा॥
ये भूताः प्रचरन्ति० इति द्वयं भूतयज्ञशेषेण दद्यात्।

अन्य लोग-बलि का आकार चक्र की तरह कहते हैं। बलि विना किये भोजन नहीं करे और न बलि का उद्धार स्वयं करे। इसके बाद घर के आंगन की भूमि में जल सींचकर ऐन्द्र वारुण वायव्य याम्य के जो राक्षस हैं और काक हैं वे मुझसे त्यक्त पिण्ड को ग्रहण करें। इस प्रकार पितृयज्ञ से बचे हुए को देकर वैवस्वत कुल में उत्पन्न काले और चितकबरे रंग के दो कुत्ते हैं उन्हें मैंने पिण्ड दिया, वे रास्ते में मेरी रक्षा करें। 'ये भूताः प्रचरन्ति' इससे दोनों को भूतयज्ञ के शेष अन्न से दे।

ये भूता इति मन्त्रे तन्त्रेण वैश्वदेवप्रयोगे दिवानक्तं बलिमिति पाठः। अह्नि रात्रौ च पृथक् प्रयोगे दिवाबलिमिच्छन्तो नक्तं बलिमिच्छन्त इति विभागेन पाठः। प्रक्षालितपाणिपाद आचम्य गृहं प्रविश्य शान्ता पृथिवीत्यादि जपित्वा विष्णुं स्मृत्वा कर्मार्पयेत्।

'ये भूता' इस मन्त्र में तन्त्र से वैश्वदेव प्रयोग करने पर 'दिवा नक्तं बलिं' ऐसा पढ़े। दिन और रात में वैश्वदेव बलि का पृथक्-पृथक् प्रयोग करने पर 'दिवा बलिमिच्छन्तः' और 'नक्तं बलिमिच्छन्तः' इस विभाग से पढना चाहिये। हाथ पैर धोकर आचमन करके घर में प्रवेश कर 'शान्ता पृथिवी' इत्यादि मन्त्र जप कर विष्णु का स्मरण करके कर्म का समर्पण करे।

अथ मनुष्ययज्ञः

'अतिथिभोजनपर्याप्तं वा षोडशग्रासमितं वा ग्रासचतुष्टयं वा ग्रासमितं वान्नं सनकादिमनुष्येभ्यो हन्त इदं न ममेति दद्यात्। बहुषु भिक्षुकेष्वागतेष्वशक्तः त्रिभ्यो ग्रासत्रयं देयम्।

अतिथि के भोजन के लिये पर्याप्त अन्न या सोलह ग्रास या चार ग्रास या एक ग्रास अन्न 'सनकादिमनुष्येभ्यो हन्त इदं न मम' ऐसा कह कर दे। बहुत से भिक्षुकों के आने पर अशक्त पुरुष तीन भिक्षुक को तीन ग्रास दे।

अथ तैत्तिरीयवैश्वदेवादयः

अथ तैत्तिरीयाणां श्राद्धदिने भिन्नपाकेनादौ वैश्वदेवः देवयज्ञादिचतुष्टयं च भवति। अपरे आदौ वैश्वदेवोऽन्ते पञ्च महायज्ञा इत्याहुः।

याजुषाः सामगाः पूर्वं मध्ये कुर्वन्त्यथर्वणाः।
बह्वृचाः श्राद्धशेषेण तत्राप्यादौ तु साग्निकाः॥

'स्वर्गपुष्ट्यर्थमात्मसंस्कारार्थं प्रातः सायं वैश्वदेवौ तन्त्रेण करिष्ये' औपासनाग्निं पचनाग्निं वा प्रतिष्ठापितमौपासनहोमवत्परिसमुह्य परिषिच्यान्नमग्नावधिश्रित्य प्रोक्ष्योद्वास्याभिघार्याग्निं संपूज्यान्नं त्रेधा विभज्य हस्तेन जुहुयात्—अग्नये स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः० ध्रुवाय भूमाय० ध्रुवक्षितये० अच्युतक्षितये० अग्नये स्विष्टकृते०। परिसमुह्य पर्युक्ष्य अग्नेः पश्चादेकत्रैव देशे व्यजनाकारश्चक्राकारो वा बलिः।

तैत्तिरीयों के यहां श्राद्ध के दिन भिन्न पाक से आरंभ में वैश्वदेव और देवयज्ञ आदि चतुष्टय होते हैं। दूसरे लोग—आदि में वैश्वदेव अन्त में पंचमहायज्ञ करे, ऐसा कहते हैं। यजुर्वेदी,

---

१. मनुस्मृति में अतिथि का लक्षण है—'एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः। अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते॥ संप्राप्ताय त्वतिथये प्रदद्यादासनोदके। अन्नं चैव यथाशक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम्॥ तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सूनृता। एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन॥' याज्ञवल्क्यः—'अतिथित्वेन वर्णानां देयं शक्त्यानुपूर्वशः। अप्रणोद्योऽतिथिः सायमपि वाग्भूतृणोदकैः॥ सत्कृत्य भिक्षवे भिक्षा दातव्या सुव्रताय च। भोजयेच्चागतान् काले सखिसम्बन्धिबान्धवान्॥' इति।

सामवेदी और अथर्ववेदी पहिले मध्य में करते हैं और बह्वृच बचे हुए से, उसमें भी साग्निक आदि में करते हैं। 'स्वर्ग पुष्टि एवं आत्मसंस्कार के लिए प्रातः सायं दोनों वैश्वदेवों को तन्त्र से करूँगा'। औपासन अग्नि या पचनाग्नि को स्थापित कर औपासन होम की तरह परिसमूहन, अन्न का परिषेचन, अग्नि में अधिश्रयण, प्रोक्षण, उद्वासन, अभिघारण, अग्निपूजन और अन्न का तीन विभाग करके हाथ से होम करे—अग्नये स्वाहा विश्वेभ्यो देवभ्यः० ध्रुवाय भूमाय० ध्रुवक्षितये० अच्युतक्षितये० अग्नये स्विष्टकृते०। परिसमूहन पर्युक्षण करके अग्नि के पश्चिम एकदेश में व्यजनाकार या चक्राकार बलि दे।

तत्र देवता:—धर्माय स्वाहा धर्मायेदं० अधर्माय० अद्भ्यः० ओषधिवनस्पतिभ्यः० रक्षोदेवजनेभ्यः० गृह्याभ्यः० अवसानेभ्यः० अवसानपतिभ्यः० सर्वभूतेभ्यः० कामाय० अन्तरिक्षाय० यदेजति जगति यच्च चेष्टति नाम्नो भागो यन्नाम्ने स्वाहा नाम्न इदं०। केचिद्वायव इदमिति त्यागमाहुः। पृथिव्यै स्वाहा अन्तरिक्षाय० दिवे० सूयय० चन्द्रमसे० नक्षत्रेभ्यः० इन्द्राय० बृहस्पतये० प्रजापतये० ब्रह्मणे० सर्वान्सकृत्परिषिच्य, पृथक् परिषेचनपक्षे—

द्वावेकं द्वे च चत्वारि प्रत्येकं त्रीणि चैव हि।
पृथिव्यादिदशस्वेकमत ऊर्ध्वं पृथक् क्रमात्॥ इति ज्ञेयम्।

प्राचीनावीती तद्दक्षिणतः स्वधा पितृभ्यः स्वाहा, तदुत्तरत उपवीती नमो रुद्राय पशुपतये स्वाहा, पितृरुद्रबली पृथक् परिषिञ्चेत्। इति वैश्वदेवः।

उसमें देवता—'धर्माय स्वाहा, धर्मायेदं० अधर्माय० अद्भ्यः० ओषधिवनस्पतिभ्यः० रक्षोदेवजनेभ्यः० गृह्याभ्यः० अवसानेभ्यः० अवसानपतिभ्यः० सर्वभूतेभ्य.० कामाय० अन्तरिक्षाय० यदेजति जगति यच्च चेष्टति नाम्नो भागो यन्नाम्ने स्वाहा दाम्न इदं०'। कोई 'वायवे इदं' ऐसा कहकर त्याग कहते हैं। पृथिव्यै स्वाहा अन्तरिक्षाय० दिवे० सूर्याय० चन्द्रमसे० नक्षत्रेभ्यः० इन्द्राय० बृहस्पतये० प्रजापतये० ब्रह्मणे०, सबको एकबार परिषेचन करे। अलग अलग परिषेचन पक्ष में एक को दो, चार को दो और प्रत्येक को तीन, पृथिवी आदि दस में से एक को, इसके बाद क्रम अलग अलग जानना चाहिये। अपसव्य होकर उसके दक्षिण से 'स्वधा पितृभ्यः स्वाहा' उसके उत्तर सव्य होकर 'नमो रुद्राय पशुपतये स्वाहा', पृथिवी और रुद्र बलि का अलग परिषेचन करे। वैश्वदेव समाप्त।

अथ देवयज्ञादिचतुष्टयम्

'देवयज्ञेन यक्ष्ये' इति संकल्प्याग्निं परिषिच्य देवेभ्यः स्वाहेत्यग्नौ हुत्वोत्तरपरिषेकः। प्राचीनावीती 'पितृयज्ञेन यक्ष्ये' दक्षिणतो भूमौ पितृभ्यः स्वधास्तु इति दत्त्वा त्यक्त्वा परिषिच्य, यज्ञोपवीती अपः स्पृष्ट्वा 'भूतयज्ञेन यक्ष्ये' भूतेभ्यो नम इति भूमौ दत्त्वा परिषिच्य, निवीती 'मनुष्ययज्ञेन यक्ष्ये' उक्तप्रमाणमन्नं मनुष्येभ्यो हन्तेति दद्यात्। सर्वयज्ञेषु आद्यन्तयोः क्रमेण विद्युदसि वृष्टिरसीति मन्त्रयोः पाठः प्रायेणैषाम्। बलिशिष्टमन्नं ये भूताः प्रचरन्तीति गृहाङ्गणे गत्वाकाशे उत्क्षिपेत्। ततो यथाचारं श्ववायसादिबलिः।

'देवयज्ञ से यजन करूँगा' ऐसा संकल्प करके अग्नि का परिषेचन कर 'देवेभ्यः स्वाहा' ऐसा कहकर अग्नि में होम के बाद उत्तर परिषेक करे। अपसव्य होकर 'पितृयज्ञ से पूजन करूँगा' ऐसा कहकर दक्षिण की भूमि में 'पितृभ्यः स्वधाऽस्तु' इससे देकर त्यागपूर्वक परिषेक करके सव्य होकर जल का स्पर्श कर 'भूतयज्ञ से पूजन करूँगा' 'भूतेभ्यो नमः' इससे भूमि में देकर और परिषेक कर गले में यज्ञोपवीत करके 'मनुष्य यज्ञ से पूजन करूँगा' उक्त प्रमाण के अन्न को 'मनुष्येभ्यो हन्त' ऐसा कहकर दे दे। सब यज्ञों में आदि और अन्त में क्रम से 'विद्युदसि विद्यरसि' इन दोनों मन्त्रों का पाठ करे। प्रायः पिण्डयज्ञों के बलि से बचा हुआ अन्न 'ये भूताः प्रचरन्ति' इस मन्त्र से घर के आंगन में जाकर आकाश में फेंक दे। पश्चात् आचार के अनुसार कुत्ता कौवा आदि को बलि दे।

अथ कातीयानां वैश्वदेवः

तत्र 'साग्निकानामेकपाकेनैव श्राद्धदिने आदौ वैश्वदेवः, अन्येषामन्ते। आवसथ्योल्मुकं महानसे कृत्वा तत्र पाकं विधाय महानसस्थाङ्गारान् गृह्याग्नौ निधाय पाकादन्नं घृताक्तमादाय पूर्ववद् 'आत्म० संस्कारार्थं वैश्वदेवाख्यं कर्म करिष्ये' इति संकल्पः। अथवा 'देवभूतपितृमनुष्यान् वैश्वदेवान्नेन यक्ष्ये'। गृह्याग्निं मणिकोदकेन पर्युक्ष्य हस्तेनाग्नौ जुहुयात्—ब्रह्मणे स्वाहा इदं ब्रह्मणे न मम। एवमग्रेऽपि प्रजापतये० गृह्याभ्यः० कश्यपाय० अनुमतये०। इति देवयज्ञः।

उसमें साग्निक कातीयों का एक ही पाक से श्राद्ध के दिन पहिले वैश्वदेव होता है, अन्य का अन्त में। आवसथ्य अग्नि से जलती हुई लकड़ी रसोई घर में रखकर उसमें पाक बनाकर रसोई घर के अंगारों को गृह्याग्नि में रखकर पाक से घृताक्त अन्न लेकर पहिले की तरह 'आत्मादि संस्कारार्थ वैश्वदेवनामक संस्कार करूँगा' ऐसा संकल्प करे। अथवा 'देव-भूत-पितृ-मनुष्यों का वैश्वदेव अन्न से पूजन करूँगा'। गृह्य अग्नि को मणिक के जल से पर्युक्षण करके हाथ से अग्नि में होम करे—ब्रह्मणे स्वाहा इदं ब्रह्मणे न मम। इसी प्रकार आगे भी 'प्रजापतये० गृह्याभ्यः० कश्यपाय० अनुमतये०'। देवयज्ञ समाप्त।

---

१. हेमाद्रि में सालङ्कायनका वचन है—'श्राद्धात्प्रागेव कुर्वीत वैश्वदेवं तु साग्निकः। एकादशादिकं मुक्त्वा तत्र ह्यन्ते विधीयते ॥' परिशिष्ट में—'सम्प्राप्ते पार्वणश्राद्धे एकोद्दिष्टे तथैव च। अग्रतो वैश्वदेवः स्यात् पश्चादेकादशेऽहनि ॥' निरग्निक के लिये वसिष्ठ ने कहा है—'वैश्वदेवमकृत्वैव श्राद्धं कुर्यादनग्निकः। लौकिकेऽग्नौ हुते शेषः पितॄणां नोपतिष्ठते ॥' गौतमः—'पितृश्राद्धमकृत्वा तु वैश्वदेवं करोति यः। अकृतं तद् भवेच्छ्राद्धं पितॄणां नोपतिष्ठते ॥' फिर भी साङ्खायन के—'आदौ वृद्धौ क्षये चान्ते दर्शे मध्ये महालये। एकोद्दिष्टे निवृत्ते तु वैश्वदेवो विधीयते ॥' इस वचन से निरग्निक को आभ्युदयिक श्राद्ध के पूर्व ही में वैश्वदेव करना चाहिये। रेणुकारिका में भी है—'निर्णेजनान्तं निर्वर्त्य वैश्वदेवं ततो द्विजः। श्राद्धं करिष्ये संकल्प्य तत्कृत्वा पूर्ववत् स्थितः ॥'—

इन वचनों से प्रधान संकल्प के पूर्व ही वैश्वदेव का कर्तव्य प्रतीत होता है। यहां ऐसी व्यवस्था जाननी चाहिये—नान्दीश्राद्ध का पृथक् संकल्प करने पर मातृपूजा के अनन्तर वैश्वदेव करके तब नान्दीश्राद्ध करे। पुण्याहवाचनादि के साथ इसका संकल्प करने पर पुण्याहवाचन या गणपतिपूजन के पूर्व श्राद्धपाक से ही सभी को वैश्वदेव करना चाहिये। विस्तृत विचार कर्कभाष्यादि में देखें।

ततो मणिकसमीपे बलित्रयमुदक्संस्थम्—पर्जन्याय नमः स्वाहा इदं पर्जन्याय न मम अद्भ्यो न० पृथिव्यै न० । अथ द्वार्यंशाखयोः प्राक्संस्थं बलिद्वयम्-धात्रे० विधात्रे० । उदकेन चतुरस्रं कृत्वा तत्र पूर्वे वायवे० दक्षिणे वायवे० पश्चिमे वायवे० उत्तरे वायवे० । प्रागादिषु वायुबलेः प्रागुदग्वा प्राच्यै दिशे० दक्षिणस्यै दि० प्रतीच्यै दि० उदीच्यै दि० । मध्ये प्राक्संस्थं ब्रह्मणे० अन्तरिक्षाय० सूर्याय० । एषामुत्तरे विश्वेभ्यो देवेभ्यो० विश्वेभ्यो भूतेभ्यो० । अनयोरुत्तरे उषसे० भूतानां च पतये० । इति भूतयज्ञः ।

तदनन्तर मणिक के समीप में उत्तर तरफ तीन बलि रक्खे—'पर्जन्याय नमः स्वाहा, इदं पर्जन्याय न मम, अद्भ्यो न०, पृथिव्यै न० । अब दरवाजे के दोनों चौखटों पर पूर्व की तरफ दो बलि दे—धात्रे०, विधात्रे० । जल से चतुरस्र करके वहाँ पूर्व में-वायवे०, दक्षिण में-वायवे०, पश्चिम में-वायवे०, उत्तर में-वायवे० । पूर्व आदि में वायु-बलि से पूर्व या उत्तर प्राच्यै दिशे०, दक्षिणस्यै दिशे०, प्रतीच्यै दिशे०, उदीच्यै दिशे । बीच में प्राक्संस्थ ब्रह्मणे० अन्तरिक्षाय० सूर्याय० । इन सबके उत्तर में 'विश्वेभ्यो देवेभ्यो०' 'विश्वेभ्यो भूतेभ्यः०' । इन दोनों के उत्तर में 'उषसे०' 'भूतानां च पतये'० । भूतयज्ञ समाप्त ।

प्राचीनावीती ब्रह्मादिबलित्रयस्य दक्षिणे पितृतीर्थेन पितृभ्यः स्वधा नम इदं पितृभ्यो न ममेति दद्यात् । इति पितृयज्ञः ।

अपसव्य होकर ब्रह्मा आदि तीन बलि के दक्षिण में पितृतीर्थ से 'पितृभ्यः स्वधा नमः, पितृभ्यो न मम' यह कह कर जल दे । पितृयज्ञ समाप्त ।

पात्रं प्रक्षाल्य सव्येन ब्रह्मादिबलितो वायव्यां यक्ष्मैतत्ते निर्णेजनमिति तज्जलं निनयेत् । पूर्ववन्मनुष्ययज्ञः । निरग्निकस्तु लौकिकाग्निमाहृत्य पृष्टोदिवीति प्रतिष्ठाप्य तत्सवितु० ताꣳसवितु० विश्वानि देव० इति त्रिभिः सावित्रैः प्रज्वाल्य तत्र नित्योपासनहोमं कृत्वा पाकं पचेद्वैश्वदेवं च कुर्यादिति गदाधरः ।

पात्र का प्रक्षालन करके सव्य से ब्रह्मा आदि की बलि से वायव्य में 'यक्ष्मैतत्ते निर्णेजनं' यह कहकर उस जल को गिरा दे । पूर्ववत् मनुष्ययज्ञ करे । निरग्निक तो लौकिकाग्नि का आहरण करके 'पृष्टोदिवि' इस मन्त्र से स्थापन कर 'तत्सवितु०' 'ताꣳ सवितु'० 'विश्वानि देव०' इन तीन सावित्र मन्त्रों से अग्नि को प्रज्वलितकर उसमें नित्योपासनहोम करके पाक बनावे और वैश्वदेव करे, ऐसा गदाधर कहते हैं ।

अत्राप्यशक्तौ बह्वृचाद्युक्तरीत्या पचनाग्निं प्रतिष्ठाप्य ध्यात्वा संपूज्य तत्र पूर्वोक्तरीत्या वैश्वदेवस्तत्र अग्नये स्विष्टकृते स्वाहेति पञ्चाहुतीनामुत्तरं होमः । सर्वत्र निरग्नेरिति विशेषः । शेषं प्राग्वत् । कात्यायनानां दिवैवैको वैश्वदेवो न द्वितीयो रात्रौ । सामगाथर्वणैरपि स्वगृह्योक्तरीत्या [1]पञ्चमहायज्ञाः कार्याः ।

---

१. कात्यायनः—'देवभूतपितृब्रह्ममनुष्याणामनुक्रमात् । महासत्राणि जानीयात्त एवेह महामखाः ॥' 'यत्फलं सोमयागेन प्राप्नोति धनवान् द्विजः । सम्यक् पञ्चमहायज्ञैर्दारिद्र्यथं नश्यते क्षणात् ॥' मनुः—'ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा । नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत् ॥'

इसमें भी अशक्त होने पर बह्वृच आदि के कहे प्रकार से पचनाग्नि की स्थापना कर ध्यान और पूजनकर उसमें पहले कहे प्रकार से वैश्वदेव करे। उसमें 'अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा' इससे पांच आहुतियों के बाद होम करे। सर्वत्र निरग्निक के लिये इतना विशेष है। अवशिष्ट पहिले की तरह है। कात्यायनों को दिन में एक ही वैश्वदेव है, रात में दूसरा वैश्वदेव नहीं। सामवेदी और अथर्ववेदी को भी अपने गृह्य के कहे प्रकार से पंचमहायज्ञ करना चाहिये।

स्वगृह्यानुपलम्भे बह्वृचोक्तरीत्योपनयनादिसंस्काराः। पञ्चमहायज्ञादयश्च कार्याः।

शाखान्तरमतं सम्यगनालोच्य स्वधाष्टर्चतः।
शाखान्तराह्निकं प्रोक्तं ज्ञात्वा शोध्यं स्वशाखिभिः॥

अपने गृह्य के नहीं मिलने पर बह्वृचों के कहे प्रकार से यज्ञोपवीत आदि संस्कार और पंचमहायज्ञादि करना चाहिये। अपनी ढिठाई से दूसरे शाखा वालों के मत अच्छी तरह विना देखे अपनी शाखा वालों को दूसरे शाखा वालों के आह्निक का कहा जानकर शोधना चाहिये।

अथ फलादिभक्षणे कृतेऽपि पञ्चमहायज्ञादिकरणे दोषाभावः

इक्षूनपः फलं मूलं ताम्बूलं पय औषधम्।
भक्षयित्वाऽपि कर्तव्याः स्नानदानादिकाः क्रियाः॥

पञ्चमहायज्ञेष्वन्यतमस्य लोपे उपवासः। धनिकस्यातुरस्य च प्रतियज्ञं कृच्छ्रार्धम्। अन्ये त्वेकाहं लोपे मनस्वत्याहुतिः, द्व्यहं त्र्यहं लोपे तिसृभिस्तन्तुमतीभिर्होमो वारुणीनां चतसृणां जपो, द्वादशाहं लोपे तन्तुमतीस्थालीपाको वारुणीभिराज्यहोमश्चेत्याहुः।

ऊख, जल, फल, मूल, ताम्बूल, दूध और औषध खाकर भी स्नान दान आदि क्रियायें करनी चाहिये। पंचमहायज्ञों में किसी एक के न करने पर उपवास करे। बीमार और धनिक को प्रत्येक यज्ञ के लिये अर्धकृच्छ्र करना चाहिये। अन्य लोग तो एक दिन पंचमहायज्ञ नहीं करने पर मनस्वत्याहुति करें, दो तीन दिन नहीं करने पर तीन 'तन्तुमती' ऋचाओं से होम करे और चार

हमेशा वेदादिस्वाध्याय ऋषियज्ञ, पार्वणश्राद्धादि देवयज्ञ, बलिवैश्वदेवादि भूतयज्ञ, अतिथिभोजनादि मनुष्ययज्ञ और तर्पणश्राद्धादि पितृयज्ञ का यथाशक्ति त्याग न करे। 'एतानेके महायज्ञान् यज्ञशास्त्रविदो जनाः। अनीहमानाः सततमिन्द्रियेष्वेव जुह्वति॥'—

अर्थात् यज्ञशास्त्रवेत्ता ऋषि यज्ञादि पंचमहायज्ञों को नहीं करते हुये नेत्र-जिह्वा-नासिका-त्वचा और कान इन पांच ज्ञानेन्द्रियों में होम करते हैं याने नेत्रादि पांच ज्ञानेन्द्रियों के विषय क्रमशः रूप-रस-गन्ध-स्पर्श और शब्द का ग्रहण है। नेत्रेन्द्रिय से सुन्दर या विकृत रूप को देखते हुये भी उसमें आसक्ति या घृणा नहीं करना ही नेत्रेन्द्रिय या इसी प्रकार अन्य इन्द्रियों का संयम करना ही इन्द्रियों में होम करना है। 'वाच्येके जुह्वति प्राणं प्राणे वाचं च सर्वथा। वाचि प्राणे च पश्यन्तो यज्ञनिर्वृत्तिमक्षयाम्॥' अर्थात् वचन तथा प्राणों में यज्ञ के अक्षय फल का ज्ञाता कुछ गृहाश्रमी सर्वदा वचन में प्राणों का एवं प्राणों में वचनका होम करते हैं। 'ज्ञानेनैवापरे विप्रा यजन्त्येतैर्मखैः सदा। ज्ञानमूलां क्रियामेषां पश्यन्तो ज्ञानचक्षुषा॥' अर्थात् दूसरे कुछ गृहाश्रमी सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म है इस प्रकार के ज्ञान से इन पंचमहायज्ञों को भी ब्रह्मरूप से देखते हुये यज्ञों का फल प्राप्त करते हैं।

'वारुणी' ऋचाओं का जप करे, बारह दिन न करने पर 'तन्तुमती' ऋचा से स्थालीपाक और 'वारुणी' से घृतहोम करे, ऐसा कहते हैं।

अथ सर्वसाधारणो भोजनादिविधिः

हैमे राजते पात्रे आम्रादिपत्रे वा भोजनं शस्तम्। 'एक एव तु भुञ्जीत-कांस्यपात्रे नान्योच्छिष्टे।

ताम्बूलाभ्यञ्जनं चैव कांस्यपात्रे च भोजनम्।
यतिश्च ब्रह्मचारी च विधवा च विवर्जयेत्॥

पलाशपर्णेषु यत्यादेः प्रशस्तम्। गृहिणस्तु चान्द्रायणम्[2]। इदं वल्लीपलाश-विषयमिति स्मृत्यर्थसारे। कदलीकुटजमधुजम्बूपनसाम्रचम्पकोदुम्बरपत्राणि शस्तानि। अर्काश्वत्थवटादिपत्राणि निषिद्धानि[3]।

सोने चांदी के पात्र अथवा आम आदि के पत्तों में भोजन करना अच्छा है। कांस्यपात्र में अकेला भोजन करे। अन्य के उच्छिष्ट पात्र में भोजन वर्जित है। ताम्बूल, अभ्यंजन और कांस्यपात्र में भोजन संन्यासी, ब्रह्मचारी और विधवा त्याग दे। पलाश के पत्तों में संन्यासी आदि का भोजन प्रशस्त है। गृहस्थ इनमें भोजन करे तो चान्द्रायण करे, यह वल्ली पलाश के विषयमें है; ऐसा स्मृत्यर्थसार में कहा है। केला, कुटज, महुआ, जामुन, कटहल, आम, चम्पा और गूलर के पत्तों में भोजन करना ठीक है। अर्क, पीपल, वड़ आदि के पत्ते निषिद्ध हैं।

चतुरस्रमण्डले[4] प्रक्षालितपात्रं निधाय पञ्चयज्ञावशिष्टं घृतादियुतं परिविष्ट-मन्नमस्माकं नित्यमस्त्वेतदिति वदन्नत्वा[5] ग्रन्थिरहितपवित्रयुतदक्षिणपाणिः

---

१. व्यासः—एक एव तु यो भुङ्क्ते गृहस्थः कांस्यभाजने। चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुः प्रज्ञा यशो बलम्॥ भूमौ पात्रं प्रतिष्ठाप्य यो भुङ्क्ते वाग्यतः शुचिः। भोजने भोजने चैव त्रिरात्रं फलमश्नुते॥' पैठीनसिः—'सौवर्णे राजते ताम्रे पद्मपालाशपत्रयोः। भाजने भोजने चैव त्रिरात्रं फलमश्नुते॥ पालाशपद्मपत्रेषु गृही भोजनमाचरेत्।' इति।

२. आह्निककारिकासु—'ब्रह्मपत्रेषु यो भुङ्क्ते मासमेकं निरन्तरम्। चान्द्रायणसमं पुण्यं कृतस्यापि चतुर्गुणम्॥' इति।

३. पैठीनसिः—'वटार्काश्वत्थपत्रेषु कुम्भीतिन्दुकजेषु च। श्रीकामो न तु भुञ्जीत कोविदार-करञ्जयोः॥' व्यासः—'मृन्मये पत्रपृष्ठे वा आयसे ताम्रभाजने। नाश्नीयादपि चेद् भुङ्क्ते नरकं प्रतिपद्यते॥' अत्रिः—'अपात्रे ह्यपि यद्दत्तं दहत्यासप्तमं कुलम्। हव्यं देवा न गृह्णन्ति कव्यं च पितरस्तथा॥ आयसेन तु पात्रेण यदन्नमुपदीयते। यदन्नमपवित्रं स्यात्त्याज्यं वै सर्वकर्मणि।' इति।

४. ब्रह्मपुराणे—'उपलिप्ते समे स्थाने शुचौ श्लक्ष्णसमन्विते। चतुरस्रं त्रिकोणं च वर्तुलं चार्धचन्द्रकम्॥ कर्तव्यमानुपूर्व्येण ब्राह्मणादिषु मण्डलम्।' शंखः—आदित्या वसवो रुद्रा ब्रह्मा चैव पितामहः। मण्डले तूपजीवन्ति तस्मात् कुर्वीत मण्डलम्॥' मण्डल का प्रमाण है—'वितस्तिमात्रं चतुरङ्गुलं वा कोणैश्चतुर्भिर्विदधीत मण्डलम्। प्राणाग्निहोत्रार्थमिदं समुक्तं महानुभावेन हि हारितेन॥ द्वादशाङ्गुलमानं तु व्रतिनां योगिनां सदा। चतुरङ्गुलं विधातव्यं त्रिकोणं प्रेतकर्मणि।' मण्डल नहीं करने पर मार्कण्डेयपुराण में दोष कहा है—'यातुधानाः पिशाचाश्च क्रूराश्चैव तु राक्षसाः। हरन्ति रस-मन्नं च मण्डलेन विवर्जितम्॥' इति।

५. ब्राह्मे—'अन्नं दृष्ट्वा प्रणम्यादौ प्राञ्जलिं कारयेत्ततः। अस्माकं नित्यमस्त्वेतदिति भक्त्याऽथ वन्दयेत्॥' इति।

पादाभ्यां पादेन वा भुवं स्पृशन् व्याहृतिभिर्गायत्र्या चाभिमन्त्र्य सत्यं त्वर्तेन परिषिञ्चामि इति दिवा, ऋतं त्वा सत्येन परिषिञ्चामीति रात्रौ परिषेचनं कृत्वा,

अन्तश्चरति भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वं विष्णुः पुरुषः परः॥

पात्राद्दक्षिणे भूपतये नमः भुवनपतये नमः भूतानां पतये० इति त्रीन्बलीन्दद्यात्। यद्वा चित्राय० चित्रगुप्ताय० यमाय० यमधर्माय० सर्वेभ्यो भूतेभ्यः० इति वा व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिर्वा चत्वारः धर्मराजाय चित्रगुप्तायेति द्वौ वा भूपत्यादित्रययुतावेताविति पञ्च वा देयाः।

चौकोन मण्डल में मांजा हुआ पात्र रख कर पंचमहायज्ञ से बचे हुए घृत आदि से युक्त परोसा हुआ अन्न हम लोगों को नित्य मिले, ऐसा कहता हुआ प्रणाम करके बिना गांठ के पवित्र को दाहिने हाथ में धारण किये दोनों पैरों से या एक पैर से पृथिवी का स्पर्श करता हुआ व्याहृति और गायत्री से अभिमन्त्रित कर दिन में 'सत्यं त्वर्तेन परिषिञ्चामि' इससे और रात्रि में 'ऋतं त्वा सत्येन परिषिंचामि' इससे परिषेचन करके 'अन्तश्चरति भूतेषु०' इत्यादि मूलोक्त मन्त्र पढ़ें। पात्र से दाहिनी ओर भूमि में भूपतये नमः, भुवनपतये नमः, भूतानां पतये नमः, इन मंत्रो से तीन बलियां दे। अथवा चित्राय०, चित्रगुप्ताय०, यमाय०, यमधर्माय०, सर्वेभ्यो भूतेभ्यः०, इनसे अथवा व्यस्त समस्त व्याहृतियों से चार बलि दे, अथवा धर्मराज और चित्रगुप्त के लिये दो बलि दे, या भूपति आदि तीन से युक्त इन्हीं दोनों से पांच बलि दे।

हस्तपादमुखार्द्रः[1] आपोशनार्थं जलमादाय अन्नं ब्रह्मरसो विष्णुः० अहं वैश्वानरो भूत्वेत्यर्थं ध्यात्वा वामकरेण पात्रं धृत्वा [2]अमृतोपस्तरणमसीत्यपः प्राश्य मौनी ॐ प्राणाय स्वाहा ॐ अपानाय स्वाहा ॐ व्यानाय० ॐ उदानाय० ॐ समानाय० इति सघृताः सक्षीरा वा पञ्चाहुतीः सर्वाङ्गुलिभिः सर्वं ग्रासं ग्रसन् मुखे जुहुयात्[3]। ॐ ब्रह्मणे स्वाहेति षष्ठी क्वचित्। प्राणाहुतिपर्यन्तं पात्रालम्भो मौनं च नियतमग्रे ऐच्छिकं द्वयम्।

---

१. व्यासः—'पञ्चार्द्रो भोजनं कुर्यात्प्राङ्मुखो मौनमाश्रितः। हस्तौ पादौ तथैवास्यमेषु पञ्चार्द्रता मता॥' ग्रन्थान्तरे—'हस्तौ पादौ मुखं पात्रं मण्डलं चार्द्रपञ्चकः। प्रकुर्याद् भोजनं राजन् गृहस्थाश्रमतत्परः। दैवे कार्येऽथवा पित्र्ये उक्तवान् कमलापतिः॥' इति।

२. ब्राह्मे—'अमृतोपस्तरणमसि स्वाहेत्यपः पिबेत्। करेण सलिले विष्णुं ध्यात्वा ब्रह्म पिबेदपः॥ प्राणाग्निहोत्रं जुहुयाच्छेषं भुङ्क्ते द्विजोत्तमः। स्वाहान्ताः प्रणवाद्याश्च नाम्ना ,मंत्राः प्रकीर्तिताः॥ जिह्वया च ग्रसेदन्नं दन्तान्नैस्तन्न संस्पृशेत्। अनिन्द्यं भक्षयेदन्नं वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन्॥ पञ्च ग्रासान्महामौनं प्राणाद्यांश्च समाचरेत्।' इति।

३. शौनकः—'तर्जनीमध्यमाङ्गुष्ठैर्लग्नात्प्राणाहुतिर्भवेत्। कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैरपाने जुहुयाद्धविः॥ मध्यमाऽनामिकाऽङ्गुष्ठैर्व्यानाय जुहुयाद् बुधः। कनिष्ठातर्जन्यङ्गुष्ठैरुदानाय मुदाहृतम्। सर्वाङ्गुलीभिरादाय समानायाहुतं बुधैः। तथैव षष्ठीं दद्यात्तु चैतन्याय सदा बुधः॥' शंखः—'प्राणार्थं मनसा ध्यायेत्समासं पूजयेत् सदा। वामेन पाणिना पात्रं गृहीत्वा भुवि संस्थितम्॥'—

विश्वामित्रकल्प में प्राणाग्निहोत्र का फल है—'प्राणाग्निहोत्रं वक्ष्यामि सर्वयज्ञेषु दुर्लभम्। ये

हाथ पैर और मुख को जल से गीला करके आपोशन के लिये जल लेकर 'अन्नं ब्रह्म रसो विष्णुः०' 'अहं वैश्वानरो भूत्वा' इत्यादि के अर्थ को ध्यान करके बाएं हाथ से पात्र को पकड़ कर 'अमृतोपस्तरणमसि' इससे जलप्राशन करके मौन होकर 'ॐ प्राणाय स्वाहा' 'ॐ अपानाय स्वाहा' 'ॐ व्यानाय०' 'ॐ उदानाय०' 'ॐ समानाय०' इस प्रकार घी या दूध के साथ पांच आहुतियां सब अंगुलियों से ग्रास को निगलते हुए मुख में पांच आहुति दे। कहीं पर 'ब्रह्मणे स्वाहा' कह कर छठी आहुति भी कही है। प्राणाहुति तक पात्र का स्पर्श और मौन नियत है। उसके बाद दोनों ऐच्छिक हैं।

भोजनं प्राङ्मुखं प्रत्यङ्मुखं[1] वा शस्तं, दक्षिणामुखं यशः फलं काम्यम्, उदङ्मुखमधमं विदिङ्मुखं निषिद्धम्। कृत्स्नं ग्रासं ग्रसन्द्वात्रिंशदादिनियतग्रासमनियतग्रासं वा भुक्त्वा[2] अमृतापिधानमसीति गण्डूषार्धं भूमौ निनीय पवित्रं त्यक्त्वा मुखहस्तोच्छिष्टं सम्यक् प्रक्षालयेत्। तर्जन्या मुखं न शोधयेत्। किंचिद्गण्डूषोत्तरं हस्तप्रक्षालनं षोडशगण्डूषान्ते द्विराचामेत्।

भोजन पूर्वमुख या पश्चिममुख होकर करना अच्छा है। यश-फल के लिये दक्षिणमुख भोजन करना काम्य है। उत्तरमुख भोजन अधम है। कोण में भोजन निषिद्ध है। सम्पूर्ण ग्रास निगलते हुए बत्तीस आदि नियत ग्रास या अनियत ग्रास भोजन करके 'अमृतापिधानमसि' ऐसा कहते हुये आधा कुल्ला जल पीकर आधा भूमि में गिरा करके कुश-पवित्र को छोड़कर मुख और हाथ के उच्छिष्ट को सम्यक् प्रक्षालन करे। तर्जनी से मुंह को साफ नहीं करे। कुछ कुल्लों के बाद हस्त-प्रक्षालन और सोलह कुल्ला के बाद दो बार आचमन करना चाहिये।

अथ भोजने विधिनिषेधाः

भोजनगृहे च नाचामेत्। अनाचान्तो मूत्रपुरीषौ न कुर्यात्। उत्तरापोश-

---

ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुर्जन्ममृत्युजरादिभिः॥ विधिना भुज्यते येन मुच्यते च ऋणत्रयात्। कुलानुद्धरते विप्रो नरकानेकविंशतिः॥ सर्वयज्ञफलप्राप्तिः सर्वलोकेषु गच्छति। हृत्पुण्डरीकमरणिं मथेन्मथनसंज्ञकम्॥ वायुरज्ज्वा मथेदग्निमात्माऽध्वर्युः प्रकीर्तितः।' इति।

१. मनुः—'आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुखः। श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुङ्क्ते ऋतं भुङ्क्ते ह्युदङ्मुखः॥' अर्थात् आयु की कामना से पूर्वमुख, यश की कामना से दक्षिणमुख, श्री की कामना से पश्चिममुख और सत्य की कामना से उत्तरमुख होकर भोजन करना चाहिये। स्मृत्यन्तरे—'पुत्रवांस्तु गृहे नित्यं नाश्नीयादुत्तरामुखः। सोमवारे तथाऽभ्यङ्गं वर्जयेत्तु सदा बुधः॥ प्रयोगपारिजाते—'पितरौ जीवमानौ चेन्नाश्नीयाद्दक्षिणामुखः। तयोस्तु जीवतोरेकस्तथैव नियमः स्मृतः॥ अनिशं मातृहीनानां यशस्यं दक्षिणामुखम्।'—

भोजन की आलोचना नहीं करे प्रत्युत प्रशंसापूर्वक उसे स्वीकार करे—'पूजयेदशनं नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन्। दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः॥' इसका फल मनु ने ही बतलाया है—'पूजितं ह्यशनं नित्यं बलमूर्जं च यच्छति। अपूजितं तु तद्भुक्तमुभयं नाशयेदिदम्॥' इति।

२. देवलः—'भुक्तोच्छिष्टं समाघ्राय सर्वेभ्यो घृतवर्जितम्। उच्छिष्टभागधेयेभ्यः सोदकं निर्वपेद् भुवि॥ अमृतापिधानमसीत्यपः प्राप्य भुवि क्षिपेत्। अनन्तरं शिखां चैव बध्नीयाद् वामपाणिना॥ उत्थाय बहिरागत्य मुखहस्तादि शोधयेत्। आचम्य च ततः कुर्याद्दन्तकाष्ठस्य भक्षणम्॥ दन्तलग्नमसंहार्यं लेपं मन्येत दन्तवत्। न तत्र बहुशः कुर्याद्यत्नमुद्धरणं प्रति॥' इति।

नमकृत्वोत्थाने स्नात्वा शुद्धिः। हस्तौ संमृज्य प्रस्राव्याङ्गुष्ठेन नेत्रयोर्निषिञ्च्येष्ट-देवतां स्मरेत्। नाञ्जलिना पिबेत्। पालाशं दग्धमयोबद्धं च पीठं वर्जयेत्[1]। न शिशुभिः सह भुञ्जीत। भार्यया सह विवाहवर्जं न भुञ्जीत।

भोजन के घर में आचमन नहीं करे। विना आचमन किये पेशाब पाखाना नहीं करे। उत्तरा-पोशन नहीं करके उठने पर स्नान से शुद्धि होती है। दोनों हाथ अच्छी तरह से साफ करके हाथ का पानी पोंछ कर अंगूठे से दोनों आखों को साफ करके अपने इष्ट देवता का स्मरण करे। अंजलि से जल न पिये। पलाश के जले हुये और लोहे से बद्ध पीढ़े पर न बैठे। लड़कों के साथ नहीं खाय। विवाह को छोड़कर स्त्री के साथ भोजन न करे।

बालवृद्धेभ्योऽन्नमदत्त्वा न भुञ्जीत। न प्रौढपादो [2]नासनारूढपादो न प्रसा-रितपादो न विदिक्तुण्डो न दुष्टैकपंक्तौ न शून्याग्निपाकगृहे न देवालये भुञ्जीत। न संध्ययोर्न महानिशायां न यज्ञोपवीतहीनो न वामहस्तेन न शूद्रशेषं भुञ्जीत।

बालक और वृद्धों को अन्न न देकर भोजन न करे। पैर फैला कर आसन पर आरुढ़ होकर पैर पसार कर, कोने की ओर मुंह कर, दुष्ट की पंक्ति में, सूने रसोई घर में, देव मन्दिर में, भोजन न करे। दोनों सन्ध्याओं में, आधी रात में, विना यज्ञोपवीत के बाएं हाथ से और शूद्र से बचा हुआ भोजन न करे।

आदौ मधुरं[3] मध्ये लवणाम्लमन्ते तिक्तादि पूर्वं द्रवं मध्ये कठिनमन्ते द्रवम्। अष्टौ ग्रासा यतेः षोडश द्वात्रिंशद्वा गृहिणो वनस्थस्य षोडश यथेष्टं ब्रह्म-चारिणः। सर्वं सशेषमश्नीयान्निःशेषं घृतपायसम्। क्षीरं दधि मधु भुञ्जीत। दिवा रात्रौ चेति द्विवारमेव नान्तरा भोजनम्।

भोजनके प्रारम्भ में मीठा, बीच में नमकीन और खट्टा अन्त में तीता खाय। पहले रस वाला, बीच में कड़ा, अन्त में गीला भोजन करे। संन्यासी आठ ग्रास खाय, गृहस्थ को सोलह या बत्तीस ग्रास खाना चाहिये। वानप्रस्थ को सोलह ग्रास और ब्रह्मचारी को यथेष्ट भोजन करना चाहिये। घी दूध सब खा जाय, अन्य सब चीजों में से कुछ बचा दे। दूध, दही और मधु विना बचाये खाय। दिन और रात में दो बार ही खाय, दिन रात के मध्य में नहीं।

अर्कपर्वद्वये रात्रौ चतुर्दश्यष्टमी दिवा।
एकादश्यामहोरात्रं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्॥

---

१. प्रचेताः—'गोशकृन्मृन्मयं भिन्नं तथा पालाशपिप्पलम्। लोहबद्धं तथैवार्कं वर्जयेदासनं बुधः॥' इति।

२. पराशरः—'पादुकास्थो न भुञ्जीत पर्यङ्के संस्थितोऽपि वा। शुना चाण्डालदृष्टो वा भोजनं परिवर्जयेत्॥' लघुव्याससंहितायाम्—'यो भुङ्क्ते वेष्टितशिरा यस्तु भुङ्क्ते विदिङ्मुखः। सोपानत्कश्च यो भुङ्क्ते सर्वं विद्यात्तदासुरम्॥ नार्द्धरात्रे न मध्याह्ने नाजीर्णे नार्द्रवस्त्रधृक्। न च भिन्नासनगतो न शयानः स्थितोऽपि वा॥ नोपानत्पादुकी चापि न च संविलपन्नपि॥' इति।

३. पुलस्त्यः—'अश्नीयात्तन्मना भूत्वा पूर्वं तु मधुरान्नकम्। लवणाम्लौ तथा मध्ये कटुतिक्ता-दिकं ततः॥' विष्णुपुराणे—'प्राग्द्रवं पुरुषोऽश्नीयान्मध्ये च कठिनाशनः। अन्ते पुनर्द्रवाशी तु बला-रोग्यैर्न मुञ्चति॥ जठरं पूरयेदर्धमन्नैर्भागं जलस्य च। वायोः सञ्चरणार्थाय चतुर्थमवशेषयेत्॥' इति।

यस्तु पाणितले भुङ्क्ते यश्च फूत्कारसंयुतम् ।
प्रसृताङ्गुलिभिर्यश्च तस्य गोमांसवच्च तत् ॥
नाजीर्णे भोजनं कुर्यात्कुर्यान्नातिबुभुक्षितः ।
नार्द्रवासा नार्द्रशिरा न पादारोपिते करे ॥

द्वादशी, अमावस्या और पूर्णिमा की रात में चतुर्दशी अष्टमी के दिन में और एकादशी को दिन रात में भोजन करने से चान्द्रायण प्रायश्चित्त से शुद्धि होती है। जो हाथ में लेकर खाता है, जो फूक फूक कर खाता है, जो फैलाई हुई अंगुलियों से खाता है उसका भोजन गोमांस के तुल्य है। अजीर्ण में भोजन न करे। बहुत भूख लगने पर भी भोजन नहीं करे। गीले वस्त्र पहिन कर, सिर गीला करके, पैर पर हाथ रख कर न खाय।

ग्रासशेषं च नाश्नीयात्पीतशेषं पिबेन्न च ।
शाकमूलफलादीनि दन्तच्छेदैर्न भक्षयेत् ॥
नोच्छिष्टो घृतमादद्यान्न पदा भाजनं स्पृशेत् ।
पिबतो यत्पतेत्तोयं भाजने मुखनिःसृतम् ॥ अभोज्यं तत् ।

पीतावशिष्टतोयपाने चान्द्रायणम् । हस्तनखस्पृष्टजलपाने वामहस्तोद्धृतजलपाने[1] च सुरापानसमम् । एकपंक्त्युपविष्टानां विप्राणां भुञ्जानानामेकस्मिन्नभ्युत्थिते आचान्ते वाऽन्यैर्न भोज्यम् । अत्रोत्थितस्य भोक्तुश्च दोषः । गुरोर्न दोषः ।

लवणं व्यञ्जनं चैव घृतं तैलं तथैव च ।
लेह्यं पेयं च विविधं हस्तदत्तं न भक्षयेत् ॥

ग्रास में से बचे हुए को न खाय। पीने से बचे हुये को न पिये। शाक मूल, फल आदि को दाँत से काट कर न खाय। जूठे रहने पर घी न ले। पैर से भोजन पात्र का स्पर्श न करे। पानी पीते हुए जो जल मुख से पात्र में गिरे वह भोजन के अयोग्य है। पीने से बचे हुए जल के पीने में चान्द्रायण करना चाहिये। हाथ के नख से छुए हुए और बाँए हाथ से निकाले हुए जल को पीना मद्यपान के समान है। एक पांति में बैठकर भोजन करते हुए ब्राह्मणों में एक भी यदि उठ जाता है या अन्तिम आचमन कर लेता है तो अन्य को नहीं खाना चाहिए। इसमें उठने वाले और और खाने वाले दोनों को दोष है। गुरु को दोष नहीं है। नमक, तरकारी, घी, तेल, चाटने और पीने वाली विविध प्रकार की चीजें हाथ से दी हुई हों तो न खाय।

ताम्रे गव्यं कांस्ये नारीकेलेक्षुरसौ सगुडं दधि सगुडमार्द्रकं च मद्यसमम् । सैन्धवसामुद्रभिन्नप्रत्यक्षलवणभक्षणं मृद्भक्षणं च गोमांससमम् ।

---

१. आह्निककारिकायां विशेषः—'वामहस्ते जलं धृत्वा मणिबन्धे निधाय च । भुञ्जमानः पिबन् वारि नोच्छिष्टं मनुरब्रवीत् ॥' मणिबन्ध=कलाई । बृहस्पतिः—'न स्पृशेद्वामहस्तेन भुञ्जानोऽन्नं कदाचन । न पादौ न शिरो वस्तिं न पदा भाजनं स्पृशेत् ॥' पराशरः—'एकपङ्क्त्युपविष्टानां विप्राणां सहभोजने । यद्येकोऽपि त्यजेत्पात्रं शेषमन्नं न भोजयेत् ॥ करमध्ये स्थिता देवाः करपृष्ठे तु राक्षसाः । तस्मात्तु करपृष्ठेन नान्नं कुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥' इति ।

उदक्यामपि चाण्डालं श्वानं कुक्कुटमेव च ।
भुञ्जानो यदि पश्येत्तु तदन्नं तु परित्यजेत् ॥

भुञ्जानस्य गुदस्रावे उपवासः पञ्चगव्यं च । आपोशनोत्तरं प्राणाहुतेः प्राक् तत्स्रावे स्नानं षट् प्राणायामाः ।

ताम्रपात्र में गाय का दूध-दही-घी, कांसे के पात्र में नारियल और ऊख का रस, गुड़ के साथ दही और गुड़ के साथ आदी मद्य के समान है । सैंधव और सामुद्रिक से भिन्न लवण और मिट्टी का खाना गोमांस के समान है । भोजन करते हुए रजस्वला, चाण्डाल, कुत्ता, मुर्गा को देख ले तो उस अन्न का त्याग कर दे । भोजन करते समय पतला पाखाना हो जाय तो उपवास करे और पंचगव्य पिये । आपोशन के बाद प्राणाहुति के पहिले गुदस्राव हो जाय तो स्नान करके छ प्राणायाम करे ।

भुञ्जानस्याशौचप्राप्तौ ग्रासं त्यक्त्वा स्नानम् । ग्रासाशने उपवासः । सर्वाशने त्रिरात्रम् । विष्ठादिस्पर्शे स्नानं प्राणायामत्रयं च । चाण्डालपतितोदक्या वाक्यं श्रुत्वा भोजने एकोपवासः । स्नात्वा शतगायत्रीजपो वा । कलहघरट्टोलूखलमुसलानां यावच्छब्दस्तावदभोजनम् ।

अप्येकपंक्त्यां नाश्नीयाद् ब्राह्मणैः स्वजनैरपि ।
कोऽपि जानाति किं कस्य प्रच्छन्नं पातकं भवेत् ॥
ततोऽग्निना भस्मना च स्तम्भेन सलिलेन च ।
द्वारेणैव च मार्गेण पंक्तिभेदं चरेद् बुधः[१] ॥

भोजन करते हुए आशौच लग जाय तो मुँह का ग्रास त्याग कर स्नान करे । ग्रास खा लेने पर उपवास करे । सम्पूर्ण भोजन करने पर त्रिरात्र उपवास करे । विष्ठा आदि के छू जाने पर स्नान और तीन प्राणायाम करे । चाण्डाल, पतित और रजस्वला का वाक्य सुनकर भोजन करने में एक उपवास या स्नान करके सौ गायत्री का जप करे । झगड़ा, चर्खा, ओखल, और मूसर का शब्द जब तक होता रहे तब तक भोजन न करे । एक पंक्ति में भी बैठ कर ब्राह्मणों के साथ या अपने भाई बन्धु के साथ भोजन नहीं करे, क्या कोई किसी के छिपे हुए पाप को जानता है ? इसलिये विद्वान् अग्नि, भस्म, खम्भे, जल, द्वार या मार्ग से पंक्ति-भेद कर ले ।

केशपिपीलिकामक्षिकाभिः सह पक्वमन्नं त्यजेदेव । पाकोत्तरं केशपिपीलिकादिकीटकमक्षिकासंसृष्टे गवाघ्राते वान्ने सलिलं भस्म मृद्वापि प्रक्षेप्तव्यं विशुद्धये इति विज्ञानेश्वरः । शूद्रान्नं शूद्रदत्तब्राह्मणान्नं रात्रिपर्युषितं [२]रजस्वला-

---

१. गोभिलस्य वचनमेतत् । नागदेवः—'प्रक्षाल्य पाणी पात्रं तु भस्मना पंक्तिवारणम् ॥' इति ।

२. याज्ञवल्क्यः—'अनर्चितं वृथामांसं केशकीटसमन्वितम् । शुक्तं पर्युषितोच्छिष्टं श्वस्पृष्टं पतितेक्षितम् ॥ उदक्यास्पृष्टसंघुष्टं पर्यायान्नं च वर्जयेत् । गोघ्रातं शकुनोच्छिष्टं पदा स्पृष्टं च कामतः ॥' अत्र उदक्याग्रहणं चण्डालाद्युपलक्षणार्थम्, तथा च शंखः—'अमेध्यपतितचण्डालपुल्कसरजस्वलाकुनखिकुष्ठिसंस्पृष्टान्नं वर्जयेत्' ॥—

पर्यायान्नं तु अन्यसम्बन्ध्यन्यव्यपदेशेन यद्दीयते तदुच्यते—'ब्राह्मणान्नं ददच्छूद्रः शूद्रान्नं ब्राह्मणो ददत् । उभावेतावभोज्यान्नौ भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥' इति ।

चाण्डालपतितादिदृष्टं काकादिपक्ष्युच्छिष्टमभोज्यम्। स्नेहपक्वं [1]मण्डकादि च पर्युषितं ग्राह्यम्।

केश, चींटी और मक्खियों के साथ पका हुआ अन्न अवश्य त्याग दे। पकने के बाद केश, चींटी आदि कीड़े और मक्खी के संसर्ग से या गाय के सूंघने से, जल भस्म या मिट्टी शुद्धि के लिये उसमें डाल दे, ऐसा विज्ञानेश्वर कहते हैं। शूद्र का दिया हुआ ब्राह्मण का अन्न, रात का बासी, रजस्वला-चाण्डाल-पतित आदि से देखा हुआ तथा कौवा आदि पक्षी का जूठा अन्न भोजन योग्य नहीं है। तेल में पकाया हुआ मंडक (बारा) आदि बासी ग्राह्य होता है।

अथ वर्ज्यक्षीराणि

अवत्साया गोरनिर्दशानां[2] गोमहिष्यजानां गर्भिण्या एककालान्तरितदोहाया यमलसूस्रवत्स्तन्योरजवर्जंद्विस्तनीनामुष्ट्रीवडवयोरारण्यकमृगादेरवेश्च क्षीराणि वर्ज्यानि। शिग्रुं हिङ्गुवर्ज्यं रक्तं वृक्षनिर्यासं[3]पुरीषस्थानोत्पन्नतण्डुलीयकादिकं देवाद्युद्देशं विना[4] कृतं संयावपायसापूपशष्कुलीकृसरं वर्जयेत्। शणकुसुम्भालावुवार्ताककोविदारवटादिफलानि मातुलिङ्गं च वर्ज्यम्।

बिना बछड़े की गाय का, दस दिन के भीतर ब्याई हुई गाय-भैंस-बकरी का, गाभिन का, एक समय दुही जाने वाली का, जिसके स्तन से अपने आप दूध चूता हो ऐसी गाय का, बकरी को छोड़ कर दो थन वाली का, ऊँटनी का, घोड़ी का, जंगली मृग आदि का और भेड़ का दूध वर्ज्य है। सहिजन और हींग को छोड़कर लाल रंग के वृक्ष का गोंद, पाखाने के स्थान पर उत्पन्न चावल आदि, देवता आदि के उद्देश्य के बिना बनाया हुआ हलुआ-खीर-पूआ-कचौड़ी-खिचड़ी का वर्जन करे। सन, कुसुम्भ, गोल लौकी, बैगन, कोविदार और बड़ आदि के फलों तथा बिजौरा नीबू का त्याग करे।

पलाण्डुलशुनगृञ्जनभक्षणे चान्द्रायणम। भुञ्जानेषु परस्परस्पर्शे पात्रस्थान्नभक्षणे स्नात्वाष्टोत्तरशतगायत्रीजपः। अधिकभोजने सहस्रम्। भुञ्जानस्याशुचिना

---

१. मण्डकसक्तुकिलाटकूर्चिकाद्या अस्नेहा अपि चिरकालसंस्थिता भोज्याः। तथा च याज्ञवल्क्यः—'अन्नं पर्युषितं भोज्यं स्नेहाक्तं चिरसंस्थितम्। अस्नेहा अपि गोधूमयवगोरसविक्रियाः॥' मनुः—'चिरस्थितमपि त्वाद्यमस्नेहाक्तं द्विजातिभिः। यवगोधूमजं सर्वं पयसश्चैव विक्रिया॥' इति।

२. मनु ने कहा है—'अनिर्दशाया गोः क्षीरमौष्ट्रमैकशफं तथा। आविकं सन्धिनीक्षीरं विवत्सायाश्च गोः पयः॥' यहां 'विवत्सायाश्च'से जिस गौ का बच्चा मर गया हो उसी गाय के दूध छोड़ देने की विधि है, भैंस, बकरी आदि का दूध नहीं, इत्यादि मन्वर्थमुक्तावलीकार का अभिप्राय है।

३. मनु ने पांचवें अध्याय में बतलाया है—'लोहितान् वृक्षनिर्यासान् वृश्चनप्रभवांस्तथा। शेलुं गव्यं च पेयूषं प्रयत्नेन विवर्जयेत्॥'

४. मनुः—'वृथा कृसरसंयावं पायसापूपमेव च। अनुपाकृतमांसानि देवान्नानि हवींषि च॥' यहां देवान्न को देवता के अर्पण के पश्चात् नैवेद्य रूप में और हविष्य को अग्नि में होम करके ग्रहण करने में दोष नहीं है। इस श्लोक में 'वृथा' का अर्थ है अपने उद्देश्य से बनाया गया। वृथा शब्द का कृसर से अपूपपर्यन्त सभी के साथ अन्वय है।

विप्रेण स्पर्शेऽन्नत्यागः। भुक्तोच्छिष्टस्पर्शे सवर्णे स्नानं जपो वा। असवर्णे तूपवासः। भुक्तोच्छिष्टस्य श्वशूद्रादिस्पर्शे उपोष्य पञ्चगव्यम्। रजकादिस्पर्शे त्रिरात्रम्। परिवेषणं कुर्वन्नुच्छिष्टस्पर्शे पयोदधिघृतादिलघुद्रव्यमत्यजन्नाचान्तः शुचिः। भक्ष्याद्यन्नस्य त्याग एव। वस्त्रे विकल्पः।

प्याज, लहसुन और गाजर के खाने में चान्द्रायण करे। भोजन करने वालों में परस्पर स्पर्श होने पर पात्रस्थित अन्न के खाने पर एक सौ आठ बार गायत्री का जप करे। अधिक भोजन करने पर सहस्र गायत्री का जप करे। भोजन करते समय अपवित्र ब्राह्मणसे स्पर्श होने पर अन्न का त्याग करे। भोजन के बाद उच्छिष्ट अवस्था में समान वर्ण से स्पर्श होने पर स्नान या जप करे। असवर्ण से स्पर्श होने पर उपवास करे। भोजनानन्तर उच्छिष्ट अवस्था में कुत्ता शूद्र आदि से स्पर्श होने पर उपवास करके पंचगव्य प्राशन करे। रजक आदिसे स्पर्श होने पर त्रिरात्र उपवास करे। परोसते हुए उच्छिष्ट के स्पर्श होने पर दूध, दही, घी आदि थोड़े द्रव्य का त्याग न कर आचमन करने से पवित्र हो जाता है। भक्ष्य आदि अन्न का तो त्याग ही है। वस्त्र में विकल्प है।

परिवेषणादिकाले रजोदृष्टौ तत्स्पृष्टान्नत्यागः। भोजनान्ते उच्छिष्टशेषान्नम्—

रौरवे पूयनिलये पद्मार्बुदनिवासिनाम्।
प्राणिनां सर्वभूतानामक्षय्यमुपतिष्ठतु ॥ इति दद्यात्।
आचान्तोप्यशुचिस्तावद्यावत्पात्रमनुद्धृतम्[१]।
उद्धृतेप्यशुचिस्तावद्यावन्नोन्मृज्यते मही ॥

परोसने के समय में रज दिखाईं देने पर उससे छुये हुए अन्न का त्याग करे। भोजन के अन्त में उच्छिष्ट बचे हुए अन्न को—पूय का निलय रौरव-नरक में पद्म और अर्बुद वर्ष तक निवास करने वाले प्राणियों और सब जीवों को अक्षय उपस्थित हो, ऐसा कह कर दे दे। आचमन करने पर भी तब तक अपवित्र रहता है जब तक पात्र हटाया न जाय। हटाने पर भी तबतक अशुचि रहता है जब तक पृथिवी का शोधन नहीं किया जाय।

अथ ताम्बूलभक्षणशैली

पर्णस्याग्रं च मूलं च शिरां चैव विशेषतः।
चूर्णपर्णं वर्जयित्वा[२]ताम्बूलं खादयेद् बुधः।
अनिधाय मुखे पर्णं पूगं वै भक्षयेन्न च ॥ इति पञ्चमभागकृत्यम्।

विद्वान् को चाहिये कि पान का अगला हिस्सा और मूल विशेषतः उसकी शिरा तथा चूर्णपर्ण को छोड़कर ताम्बूल खाय। मुख में ताम्बूल को न रखकर सुपारी नहीं खाय। पंचम भाग कृत्य समाप्त।

---

१. अत्रेर्वचनमेतत्। अस्य श्लोकस्याग्रे—'भूमावपि हि लिप्तायां तावत्स्यादशुचिः पुमान्। आसनादुत्थितस्तस्माद्यावन्न स्पृशते महीम् ॥' इति।

२. पीयूषधारा में ताम्बूल दान का फलादि—'ताम्बूलं सुष्ठु यो दद्याद् ब्राह्मणेभ्योऽतिभक्तितः। मेधावी सुभगः प्राज्ञो दर्शनाभश्च जायते ॥ फलेन तृप्यते ब्रह्मा पत्रेण भगवान् हरिः। चूर्णमीश्वरतृप्त्यै स्यात्ताम्बूलाशनदानतः ॥ एकद्वित्रिचतुःपञ्चषड्भिः पूगैः फलानि च। लाभालाभौ सुखं दुःखमायुर्मरणमेव च। पर्णमूले भवेद् व्याधिः पर्णाग्रे धनसंक्षयः। चूर्णपर्णं हरत्यायुः शिरा बुद्धिविनाशिनी ॥ पर्णाग्रं पर्णपृष्ठं वा चूर्णपर्णं द्विपर्णकम्। रात्रौ खदिरताम्बूलं शक्रस्यापि श्रियं

अथ षष्ठभागादिकृत्यविचारः

इतिहासपुराणाद्यैः षष्ठसप्तमकौ [1]नयेत् ।
अष्टमे लोकयात्रा [2] तु बहिः संध्या ततः पुनः ॥

इतिहास और पुराण आदि से दिनके छठे सातवें भाग को बितावे। आठवें भाग में लोकयात्रा और उसके बाद बाहर में सन्ध्या करे।

अथ सायं सन्ध्यादिविचारः

[3]सायंसंध्या प्रातःसंध्यावत्। ॐ अग्निश्च मामन्युश्च० यदह्ना पापमकार्षं० अहस्तदवलुम्पतु० सत्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहेति मन्त्राचमने विशेषः। पश्चिमाभिमुखस्तिष्ठन् [4]अर्घ्यं दद्यात्। ऊर्ध्वजानुरुपविश्य प्रत्यङ्मुख एव गायत्रीं जपेत्। सायं होमस्तूक्त एव। सायं वैश्वदेवे पुनःपाकः।

हरेत् ॥ अशास्त्रविधिना पर्णपूगं खादति यो नरः। सप्तजन्मदरिद्रः स्यादन्ते विष्णुं न संस्मरेत् ॥' भोजनान्त में सौ पग चल लेने के बाद तांबूल खाने वालों को ताम्बूलभक्षण करना चाहिये—'भोजनान्ते शतपदं गत्वा ताम्बूलभक्षणम्। शयनं वामकुक्षौ चेद् भैषज्यं किं प्रयोजनम् ॥' भोजनानन्तर ताम्बूलभक्षण का गुण आयुर्वेदग्रन्थों में देखें। धन्वन्तरि ने शतपद गमन के सम्बन्ध में कहा है—'भुक्त्वा राजवदासीत यावदन्नक्लमो गतः। ततः शतपदं गत्वा वामपार्श्वे तु संविशेत् ॥' इति।

नारद ने भोजनानन्तर स्मरण योग्यों का निर्देश किया है—'अगस्त्यं कुम्भकर्णं च शनिं च वडवानलम्। आहारपचनार्थाय स्मरेद् भीमं च पञ्चमम् ॥ आतापी मारितो येन वातापी च निपातितः। समुद्रः शोषितो येन स मेऽगस्त्यः प्रसीदतु ॥ इत्युक्त्वा तु स्वहस्तेन परिमार्ज्यं निजोदरम्। अनायासप्रदायीनि कुर्यात् कर्माण्यतन्द्रितः ॥' इति।

१. दक्षस्य वचनमेतत्। अत्रिः—'इतिहासपुराणानि धर्मशास्त्राणि चाभ्यसेत्। वृथा विवादवाक्यानि परिवादांश्च वर्जयेत् ॥' इति।

२. ग्रन्थान्तरे—'ग्रामे च यान्यगाराणि देवतानां तदीक्षणात्। लोकयात्रेति कथिता तां कुर्वन् पुण्यभाग्भवेत् ॥' इति।

३. यमोक्त सायंसन्ध्या का काल—'रवेरस्तमयात्पूर्वं घटिकैका यदा भवेत्। सायं सन्ध्यानुपासीत कुर्याद्धोमं च पूर्ववत् ॥'भविष्ये—'शौचं कृत्वा यथान्यायमर्द्धास्तमितभास्करे। सायंसंध्यामुपस्थाय आसीनस्त्वथ वाग्यतः ॥' काल के अतिक्रमण होने पर जमदग्नि ने कहा है—'एकाहं चाप्यतिक्रम्य सन्ध्यावन्दनकर्म च। अहोरात्रोषितो भुक्त्वा गायत्र्या अयुतं जपेत् ॥ द्विरात्रे द्विगुणं प्रोक्तं त्रिरात्रे त्रिगुणं भवेत्। त्रिरात्रानन्तरं चेत्स्याच्छूद्र एव न संशयः ॥' मनूक्त सायंसन्ध्या की अवधि—'पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत् सावित्रीमार्कदर्शनात्। पश्चिमां तु समासीनः सम्यगृक्षविभावनात् ॥'—

सायंसन्ध्या में शौनकोक्त दिशा का विचार यों है—'दिशोऽष्टधा विभक्तायाः प्रतीच्या भागसप्तकम्। हित्वा दक्षिणतोऽन्यस्तु योऽष्टमो भाग उत्तरः ॥ अस्याभिमुखतो विप्रो भूत्वा प्रयतमानसः। जपन्नासीत सावित्री सन्ध्यां कृत्स्नामतन्द्रितः ॥' शौनक-निर्दिष्ट सायंसन्ध्या का आचमनमन्त्र है—'अग्निश्चेत्यनुवाकेन सायंकाले पिबेदपः।' बौधायनोक्त सायंसन्ध्या का फल—'यदुपस्थकृतं पापं यच्च योनिकृतं भवेत्। सायंसन्ध्यामुपस्थाय तेन तस्मात्प्रमुच्यते ॥' इति।

४. गृह्यपरिशिष्टे—'अथाचम्य दर्भपाणिः पूर्णमुदकाञ्जलिमुद्धृत्यादित्याभिमुखः स्थित्वा प्रणवव्याहृतिपूर्वया सावित्र्या त्रिरर्घ्यं निवेद्य क्षिपेत्'। वसिष्ठः—'कालातिक्रमणे चैव त्रिसन्ध्यमपि सर्वदा। चतुर्थार्घ्यं प्रकुर्वीत भानोर्व्याहृतिपूर्वकम् ॥' इति।

सायंसन्ध्या प्रातःसन्ध्या के समान है। 'ॐ अग्निश्च मा मन्युश्च०' 'यदह्ना पापमकार्षं' 'अहस्तदवलुम्पतु' 'सत्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा' ये मन्त्राचमन में विशेष हैं। पश्चिमाभिमुख बैठकर अर्घ्य दे। ठेहुना ऊपर करके बैठकर पश्चिमाभिमुख ही गायत्री जपे। सायं होम तो कह ही चुका हूँ। सायं वैश्वदेव करने पर पुनःपाक आवश्यक है।

अतिथिं संपूज्य घटीत्रयानन्तरं सार्धयामात्प्राग् भुक्त्वा शयीत। भोजनकाले दीपनाशे पात्रमालभ्य सूर्यं स्मृत्वा पुनर्दीपं दृष्ट्वा पात्रस्थं भुञ्जीत नान्यत्। श्राद्धतत्पूर्वदिने पातधृतिसंक्रान्त्यादिषु न निशि भोजनम्।

चतुर्थप्रथमौ यामौ विद्याभ्यासैर्नयेन्निशि।
प्रहरद्वयशायी तु ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

अतिथि की पूजा कर तीन घड़ी के बाद डेढ़ पहर से पहिले भोजन करके सोवे। भोजन के समय में दीप बुझ जाने पर पात्र का स्पर्श करके सूर्य का स्मरण कर पुनः दीप जलाकर पात्र में स्थित अन्न का भोजन करे, अन्य कुछ नहीं। श्राद्ध में और उसके पहिले दिन व्यतीपात, वैधृति और संक्रान्ति आदि में रात का भोजन नहीं करे। रात में विद्याभ्यास से चौथे और पहिले पहरों को बितावे। केवल दो प्रहर सोने वाला तो ब्रह्म हो जाता है।

[1]प्राक् प्रत्यग् दक्षिणस्यां शिरः कृत्वा शयीत, न कदाचिदुदक्शिराः। रात्रिसूक्तं[2] जप्त्वा सुखशायिनः स्मृत्वा विष्णुं नत्वा स्वप्यात्।

अगस्तिर्माधवश्चैव मुचुकुन्दो महामुनिः।
कपिलो मुनिरास्तीकः पञ्चैते सुखशायिनः॥

---

१. मार्कण्डेयः—'प्राक्शिराः शयने विन्द्याद्धनमायुश्च दक्षिणे। पश्चिमे प्रबला चिन्ता हानिर्मृत्युरथोत्तरे॥' गार्ग्यः—'स्वगृहे प्राक्शिराः शेते श्वाशुर्ये दक्षिणाशिराः। प्रत्यक्शिराः प्रवासे तु न कदाचिदुदक्शिराः॥' विष्णुपुराणे—'प्राच्यां दिशि शिरः शस्तं याम्यायामथवा नृप। सदैव स्वपतः पुंसो विपरीतं तु रोगदम्॥'—

याज्ञवल्क्योक्त शयनकाल—'उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां हुत्वाऽग्नींस्तानुपास्य च। भृत्यैः परिवृतो भुक्त्वा नातितृप्याथ संविशेत्॥' धन्वन्तरिः—'पूर्वदेहानुभूतांस्तु भूतात्मा स्वपतः प्रभुः। रजोयुक्तेन मनसा गृह्णात्यर्थान् शुभाशुभान्॥' मत्स्यपुराण में शयन की भूमि—'शुचिदेशं विविक्तं तु गोमयेनोपलेपयेत्। वैदिकैर्गारुडैर्मन्त्रैरभिमन्त्र्य स्वपेत्ततः॥ माङ्गल्यं पूर्णकुम्भं च शिरःस्थाने निधापयेत्। रात्रिसूक्तं जपन् रात्रौ रात्रिक्षेमो भवेन्नरः॥' अन्यच्च—'उपानहौ वेणुदण्डमम्बुपात्रं तथैव च। ताम्बूलादीनि सर्वाणि समीपे स्थापयेन्निशि॥'—

शिल्पशास्त्र में शय्या का विचार—'चतुरशीतिपर्वाणि दैर्घ्येण परिकल्पयेत्। षष्ट्यङ्गुलानि विस्तारं मञ्चकं हस्तसम्मितम्॥ एवं शय्या विधातव्या सर्वेषां शयनोचिता। मानाधिक्ये दरिद्रः स्यान्मानहीने सुखक्षयः॥' विष्णुपुराण में अयोग्य शय्या—'न विशालां न वा भग्नां नासमां मलिनां न च। न च जन्तुमयीं शय्यामधितिष्ठेदनास्तृताम्॥' मार्कण्डेयपुराण में निषिद्ध शय्यागार—'नार्द्रवासा न नग्नश्च नोत्तरापरमस्तकः। नाकाशे सर्वतः शून्ये न च चैत्यद्रुमे तथा॥' इति।

२. मार्कण्डेयः—'रात्रिसूक्तं जपन् स्मृत्वा देवांश्च सुखशायिनः। नमस्कृत्याव्ययं विष्णुं समाधिस्थं स्वपेन्निशि॥' सुखशायिनः—'अगस्तिर्माधवश्चैव मुचुकुन्दो महाबलः। कपिलो मुनिरास्तीकः पञ्चैते सुखशायिनः॥' इति गोभिलः।

न संध्यायां न धान्ये न गोगृहे न [1]देवविप्रगुरूणामुपरि नोच्छिष्टो न दिवा न नग्नः शयीत । निद्राकाले[2] ताम्बूलं मुखात् स्त्रियं शयनाद् भालात्तिलकं शिरसः पुष्पं च त्यजेत् ।

पूरब, पच्छिम और दक्षिण की ओर सिर करके सोवे, उत्तर की ओर सिर करके कभी नहीं। रात्रिसूक्त जप कर सुखशायियों का स्मरण कर विष्णु को प्रणाम करके सो जाय। अगस्ति, माधव, मुचुकुन्द, कपिलमुनि और आस्तीक, ये पांच सुखशायी कहे जाते हैं। सन्ध्या में, धान पर, गौ के घर में, देवता-ब्राह्मण-गुरु के ऊपर भाग में, उच्छिष्टावस्था में, दिन में और नंगे होकर नहीं सोवे। निद्रा के समय मुंह से ताम्बूल, खटिया से स्त्री, माथे पर से तिलक और सिर से पुष्प त्याग दे।

गर्भाधानप्रकरणोक्तकाले सार्धयामोत्तरं दीपे सत्यसति वा निवीतं यज्ञोपवीतं कण्ठादौ कृत्वा पत्नीं गच्छेत्[3] ।

---

१. गार्ग्यः—'शून्यालये श्मशाने च एकवृक्षे चतुष्पथे। महादेवगृहे वाऽपि मातृवेश्मनि न स्वपेत् ॥ न यक्षनागायतने स्कन्दस्यायतने तथा। कूलच्छायासु च तथा शर्करालोष्ठपांसुषु ॥ न स्वपेच्च तथा भूमौ विना दीक्षां कथञ्चन। धान्यगोधनविप्राणां गुरूणां च तथोपरि ॥ मृतदन्तमये चैव विद्युद्दग्धे पलाशजे। न शयीत नरो धान्ये शयने पञ्चदारुजे ॥' इति।

२. दक्षः—'निद्रासमयमासाद्य ताम्बूलं वदनात्त्यजेत्। पर्यङ्कात् प्रमदां भालात् पुण्ड्रं पुष्पाणि मस्तकात् ॥' गार्ग्यः—'यानि कानि च पुष्पाणि यत्किञ्चिदनुलेपनम्। अलक्ष्मीपरिहारार्थं नित्यं त्यज युधिष्ठिर ॥' इति।

३. स्त्रीगमन का याज्ञवल्क्योक्त फल है—'लोकानन्त्यं दिवः प्राप्तिः पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः। यस्मात्तस्मात् स्त्रियः सेव्या भर्तव्याश्च सुरक्षिताः ॥' स्त्रीगमन का काल—'षोडशर्तुनिशाः स्त्रीणां तस्मिन् युग्मासु संविशेत्। ब्रह्मचार्येव पर्वाण्याद्याश्चतस्रस्तु वर्जयेत् ॥' ऋतुकाल में स्त्रीगमन नहीं करने पर पराशर ने पुरुष के लिये दोष बतलाया है—'ऋतौ स्नातां तु यो भार्यां सन्निधौ नोपगच्छति। घोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः ॥ अदुष्टां पतितां भार्यां यौवने यः परित्यजेत्। सप्तजन्म भवेत् स्त्रीत्वं वैधव्यं च पुनः ॥'—

इसी प्रकार स्त्री भी यदि पुरुष के पास न जाय तो उन्होंने स्त्री के लिये दोष बतलाया है—'ऋतुस्नाता तु या नारी भर्तारं नोपसर्पति। सा मृता नरकं याति विधवा च पुनः पुनः ॥' आचारार्क में—'धौतवस्त्रं च ताम्बूलं संयोगे च सुखावहम्। भर्तुः पादौ नमस्कृत्य पश्चाच्छय्यां समाविशेत् ॥ संस्मृत्य परमात्मानं पत्न्या जंघे प्रसारयेत्। रेतः सिञ्चेत्ततो योन्यां तस्माद् गर्भं बिभर्तिवति ॥' अन्यत्र—'उपचारक्रिया केलि स्पर्शो भूषणवाससाम्। एकशय्यासनक्रीडाश्चुम्बनालिङ्गने तथा ॥ कोपो रोषश्च निर्भर्त्सः सम्भोगे च न दोषभाक्। कञ्चुकेन समं नारी भर्तुः सङ्गं समाचरेत् ॥ त्रिभिर्वर्षैश्च मध्ये वा विधवा भवति ध्रुवम्।' शम्भुरहस्य में—'गवां पश्चाद् द्विजस्याङ्घ्रिर्योगिनां हृत्कवेर्वचः। परं शुद्धं विजानीयाद् मुखं स्त्रीवह्निशञ्जिनाम् ॥'—

स्त्रियों का शङ्खोक्त आचार है—'नानुक्त्वा गृहान्निर्गच्छेन्नानुत्तरीया न त्वरितं व्रजेन्न परपुरुषमभिभाषेतान्यत्र वणिक्प्रव्रजितवृद्धवैद्येभ्यो न नाभिं दर्शयेदागुल्फाद्वासः परिदध्यान्न स्तनौ विवृतौ कुर्यान्न हसेदपावृता भर्तारं तद्बन्धून् वा न द्विष्यान्न गणिकाधूर्ताभिसारिणीप्रव्रजिताप्रेक्षणिकामायामूलकुट्टककारिकादुःशीलादिभिः सहैकत्र तिष्ठेत्संसर्गेण हि कुलस्त्रीणां चारित्रं दुष्यति' इति। सुश्रुतोक्तवर्ज्य स्त्री—'स्तोकां न तु स्त्रियं गच्छेन्नातुरां न रजस्वलाम्। नातिबालां न कुपितामप्रशस्तां च गर्भिणीम् ॥' शिवसंहितायाम्—'मासे षष्ठे सप्तमे वाऽष्टमे वा प्राप्ते पत्न्या नैव कुर्यात् कदाचित्। होमं यानं देवयात्रां तथैव तस्या हस्तेनाशनं विप्रपुण्यम् ॥' इति।

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां दिवा [1]पर्वणि मैथुनम् ।
कृत्वा सचैलं स्नात्वा तु वारुणीभिश्च मार्जयेत् ॥

पुनर्मामैत्विति जपश्चोक्त एव ।

गर्भाधान के प्रकरण के कहे हुए समय में डेढ़ पहर के बाद दीप रहे या न रहे यज्ञोपवीत को कण्ठ में करके स्त्रीगमन करे । अष्टमी और चतुर्दशी में दिन और पर्व में मैथुन करने पर वस्त्रसहित स्नान करके वारुणी ऋचाओं से मार्जन करे । और 'पुनर्मामैतु' इस मंत्र का जप तो कहा ही है ।

अथ विधिनिषेधातिक्रमणे प्रायश्चित्तम्

एवं स्नानभोजनादिके बहुविधविधिनिषेधाकुले आह्निककर्मणि न्यूनाधिकदोषविधिनिषेधातिक्रमदोषपरिहारार्थं प्रायश्चित्ताज्ञाने तत्साङ्गतार्थं प्रायश्चित्तसाङ्गतार्थं च [2]श्रीविष्णुनामोच्चारणादिकं कार्यम् ।

प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तपःकर्मात्मकानि च ।
यानि तेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम् ॥
यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ।
न्यूनं संपूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥

इसी प्रकार स्नान भोजन आदि में अनेक प्रकार के विधिनिषेध से आकुल आह्निक कर्म में न्यूनाधिक दोष विधि-निषेध का अतिक्रमण रूप दोष की निवृत्ति के लिये प्रायश्चित्त नहीं जानने पर उसकी सांगता और प्रायश्चित्त की सांगता के लिये श्रीविष्णु आदि का नाम उच्चारण करे । तपः कर्मात्मक सम्पूर्ण जो प्रायश्चित्त हैं उन सबका परम प्रायश्चित्त श्रीकृष्ण का स्मरण करना है । जिसके स्मरण और नाम-कीर्तन से तप-यज्ञ-क्रिया आदि की कमी पूरी हो जाती है, उस अच्युत भगवान् को मैं सद्यः वन्दना करता हूँ ।

नाम्नोऽस्ति यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः ।
तावत्कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः ॥

---

१. पर्व ये हैं—'चतुर्दश्यष्टमी चैव अमावास्याऽथ पूर्णिमा । पर्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसंक्रान्तिरेव च ॥' मनुस्मृति में रतिवर्ज्य दिन हैं—'तासामाद्याश्चतस्रस्तु निन्दितैकादशी तथा । त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्तास्त्वत्र रात्रयः ॥ अमावास्याष्टमी चैव पौर्णमासी चतुर्दशी । ब्रह्मचारी भवेन्नित्यमप्यृतौ स्नातको द्विजः ॥'—

ऋतुकाल के अतिरिक्त समय में स्त्री के इच्छानुसार याज्ञवल्क्य ने स्त्रीगमन का निर्देश किया है—'यथाकामी भवेद्वाऽपि स्त्रीणां वरमनुस्मरन् । स्वदारनिरतश्चैव स्त्रियो रक्ष्या यतः स्मृताः ॥' अर्थात् स्त्री रक्षणीय है इसलिये तन्मनस्क होकर इन्द्र के—'भवतीनां कामविहन्ता पातकी स्यात्' इस वर का स्मरण करते हुये भार्या की इच्छा का विघात न करे ।

२. गृह्यपरिशिष्टे—'प्रवृत्तमन्यथा कुर्याद्यदि मोहात्कथञ्चन । यतस्तदन्यथाभूतं तत एव समापयेत् । समाप्ते यदि जानीयान्मयैतदयथाकृतम् । तावदेव पुनः कुर्यान्नावृत्तिः सर्वकर्मणः ॥ प्रधानस्याक्रिया यत्र साङ्गं तत् क्रियते पुनः । तदङ्गस्याक्रियायां तु नावृत्तिर्न च तत्क्रिया ॥' पुनरनुष्ठानासम्भवे याज्ञवल्क्य आह—'अज्ञानाद्यदि वा मोहात् प्रच्यवेताध्वरेषु यत् । स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः ॥' इति ।

लौकिकं वैदिकं कर्मेश्वरेऽर्पणीयम् ।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ इत्युक्तेः ।

पाप को हटाने के लिये भगवान् के नाम में जितनी शक्ति है उतना पाप पातकी पुरुष नहीं कर सकता । भगवान् को लौकिक और वैदिक कर्म का अर्पण करे । गीता में अर्जुन से भगवान् ने कहा है कि जो कुछ करो, जो कुछ खाओ, जो होम करो, जो दो और जो तपस्या करो उन सबका हे अर्जुन ! मुझे अर्पण कर दो ।

युगपत्सर्वकर्मार्पणे मन्त्रः—

कामतोऽकामतो वापि यत्करोमि शुभाशुभम् ।
तत्सर्वं त्वयि संन्यस्तं त्वत्प्रयुक्तः करोम्यहम् ॥
अपारमाह्निकं कर्म गहनं बहुभेदयुक् ।
निःशेषमक्षमो वक्तुं यथामत्यवदल्लघु ॥
अनन्तोपाध्यायजनिः काशीनाथाभिधः सुधीः ।
तुष्यतां तेन भगवाञ्छ्रीनाथो विट्ठलः प्रभुः ॥

इति आह्निकाचारप्रकरणं समाप्तम् ।

एक ही काल में सब कर्मों के अर्पण में मन्त्र का यह आशय है—जानकर या बिना जाने शुभ-अशुभ जो कुछ करता हूँ वह आपको अर्पण करता हूँ, क्योंकि जितने काम करता हूँ आप ही की प्रेरणा से करता हूँ । आह्निक कर्म बहुत भेदयुक्त गहन और अपार है । अनन्तोपाध्यायात्मज काशीनाथ नामक पण्डित मैंने उसको सम्पूर्ण कहने में असमर्थ होकर अपनी बुद्धि के अनुसार थोड़ा कहा है, इससे लक्ष्मीनाथ प्रभु विट्ठल भगवान् प्रसन्न हों । आह्निकाचारप्रकरण समाप्त ।

अथ काम्यनैमित्तिकविचारः

अवश्यं प्रत्यहं कृत्यमुक्त्वा तच्छेष उच्यते ।
काम्यं नैमित्तिकं चापि प्रायः सिन्धुक्रमादथ ॥

आवश्यक दैनिक कृत्य कह कर अब उसका शेष प्रायः निर्णयसिन्धु के क्रम से काम्य एवं नैमित्तिक कह रहा हूँ ।

अथाधानविचारः

तत्राधाननक्षत्रादिकालविचारः प्रथमपरिच्छेदे उक्तः । [1]आवसथ्याधानं तु दारकाले दायविभागकाले वा ।

---

१. आवसथं गृहं तत्रस्थोऽग्निः आवसथ्य इत्युच्यते । तस्याधानं स्थापनमात्मसात्करणमात्म-निष्ठफलसाधनकर्मानुष्ठानसम्पादकसंस्कारविशिष्टत्वेन सम्पादनमिति यावत् । तद्दारकाले भवति । दार-कालशब्देन स्त्रियाः पाणिग्रहणमुच्यते । चतुर्थ्युत्तरकालं दारकाल इति सम्प्रदायः । पित्रा प्रत्तामादाय निष्क्रामतीत्येष दारकाल इति भर्तृयज्ञभाष्ये । दायविभागकाले वा=पैतृकद्रव्यस्य भ्रातृभिः सह धन-विभजनसमये वा, आवसथ्याधानं-गृह्याग्निस्थापनं कर्तव्यमित्यर्थः ।

अग्निर्वैवाहिको येन न गृहीतः प्रमादिना ।
पितर्युपरते[1] तेन गृहीतव्यः प्रयत्नतः ॥

गृह्याग्निहीनस्यान्नमभोज्यम् । पितरि ज्येष्ठभ्रातरि वा साग्निके कनिष्ठादेरविभक्तस्य निरग्निकत्वदोषो न । एवं ज्ञानाध्ययनादिनिष्ठस्यापि न दोषः, गृहस्थस्याप्यध्ययनोक्तेः । स्मार्ताधानमपि ज्येष्ठे भ्रातरि अकृताधाने सति न कार्यमिति निर्णयसिन्ध्वादौ [2]गार्ग्योक्तिः ।

उसमें आधान के नक्षत्र आदि काल का विचार प्रथम परिच्छेद में कहा हूँ । आवसथ्य अग्नि का आधान तो विवाह काल या दाय विभाग काल में होता है । विवाह काल की अग्नि को जिस प्रमादी ने नहीं ग्रहण किया वह प्रयत्न से उसका ग्रहण पिता के मरने के बाद करे, क्योंकि गृह्याग्नि हीन का अन्न भक्षणीय नहीं होता । पिता के साग्निक होने पर या बड़े भाई के साग्निक होने पर छोटा भाई आदि जो पृथक् नहीं हुआ हो उसका निरग्निकत्व दोष नहीं होता । इसी प्रकार ज्ञान अध्ययन आदि में तत्पर को भी दोष नहीं होता, क्योंकि गृहस्थ का भी अध्ययन कहा है । स्मार्त आधान भी जेठे भाई के आधान न करने पर नहीं करना चाहिये, यह गार्ग्य का कथन निर्णयसिन्धु आदि में है ।

अत्रैवं निर्णयो भाति—यत्र ज्येष्ठेन दायाद्यपक्षमवलम्ब्य 'विवाहकाले यावज्जीवमौपासनं करिष्ये' इत्येवं संकल्पपूर्वकं विवाहाग्निर्न गृहीतस्तद्विषयोऽयं कनिष्ठस्य निषेधः । येन ज्येष्ठेन विवाहकाले तथा संकल्पपूर्वकमग्निः परिगृहीतः स पश्चात्परिचरणाभावेनाविद्यमानाग्निकोऽपि उच्छिन्नाग्निरेव न त्वकृताधान इति तत्र कनिष्ठस्याधाने दोषो नेति ।

यहां ऐसा निर्णय उचित प्रतीत होता है कि—जहाँ जेठे भाई ने अग्न्याधान के लिये दायाद्य पक्ष का अवलम्बन कर विवाह काल में यावज्जीवन औपासनाग्नि का संकल्प कर विवाहाग्नि ग्रहण नहीं किया है उस छोटे भाई के लिये स्मार्त अग्न्याधान का निषेध है और जिस जेठे भाई ने विवाह काल में ऐसा संकल्पपूर्वक अग्नि का परिग्रहण किया है वह बाद में अग्नि का परिचरण नहीं करने से

---

१. यह आधान पिता के मरने पर ग्यारहवें अथवा बारहवें दिन करना चाहिये, ऐसा रेणुक दीक्षित ने कहा है—'एतद् गृहपतौ प्रेते कुर्यादेकादशेऽहनि । प्रागेवैकादशश्राद्धाद् वृद्धिश्राद्धविवर्जितम् ॥ एवं ज्येष्ठः समादध्यात् कनीयांश्च विवर्जयेत् । एकादशेऽह्नि कुर्वन्ति द्वादशे वा विचक्षणाः ॥'

मूल में उद्धृत—'पितर्युपरते तेन गृहीतव्यः प्रयत्नतः' के आगे कारिका का वचन है—'कृतदारो न तिष्ठेच्च क्षणमप्यग्निना विना । तिष्ठन् भवेद् द्विजो व्रात्यस्तथा च पतितो भवेत् ॥ पितृपाकोपजीवी स्याद् भ्रातृपाकोपजीवकः । ज्ञानाध्ययननिष्ठो वा न दुष्येताग्निना विना ॥ यथा सन्ध्या यथा स्नानं वेदस्याध्ययनं यथा । तथैवोपासनं प्रोक्तं न स्थितिस्तद्वियोगतः ॥ योऽग्निं स्मार्तमनादृत्य कर्म स्नानजपादिकम् । होमान् समाचारेद्विप्रो न स पुण्येन युज्यते ॥ यो दद्यात् काञ्चनं मेरुं पृथिवीं चससागराम् । तत्सायं प्रातर्होमस्य तुल्यं भवति वा न वा ॥ योऽगृहीत्वा विवाहाग्निं गृहस्थ इति मन्यते । अन्नं तस्य न भोक्तव्यं वृथापाको हि स स्मृतः ॥ वृथापाकस्य भुञ्जानः प्रायश्चित्तं समाचरेत् । प्राणायामत्रयं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥' तथा—'कालद्वयेऽपि चेद्येन नाधानं तु कृतं पुरा । स कृत्वाऽन्यतमं कृच्छ्रमग्निमध्याहरेत्ततः ॥' इति ।

२. तत्र गार्ग्यवचनं यथा—'सोदर्ये तिष्ठति ज्येष्ठे न कुर्याद्दारसंग्रहम् । आवसथ्यं तथाऽऽधानं पतितस्तु तथा भवेत् ॥' इति ।

अविद्यमानाग्निक भी उच्छिन्नाग्निक ही है, न कि अकृताधान। इसलिये कनिष्ठ को आधान में दोष नहीं है।

अत्राधिकारिणोऽपि भ्रातुरनुज्ञया[1] कनिष्ठस्याधानं भवति, विवाहस्तु अनुज्ञयापि न। एवं पितुरनुज्ञयाप्याधानम्।

संन्यस्ते[2] छिन्नहस्तादौ यद्वा षण्ढादिदूषणे।
जनके सोदरे ज्येष्ठे कुर्यादेवेतरः क्रियाम्॥

इत्यादिविशेषः विवाहप्रकरणे परिवेत्तृप्रसङ्गे उक्तः।

इसमें भाई की आज्ञा से कनिष्ठ का अग्न्याधानाधिकार होता है। विवाह तो अनुज्ञा से भी नहीं होता। ऐसे ही पिता की अनुज्ञा से भी आधान होता है। संन्यासी होने और हाथ आदि के कट जाने या पिता के नपुंसक आदि दोष से दूषित होने पर पिता और सहोदर जेठे भाई के रहते कोई दूसरा क्रिया करे ही, इत्यादि विशेष विवाह प्रकरण में परिवेत्ता के प्रसंग में कहा है।

अथ शूद्रसंस्कारविचारः

गर्भाधानपुंसवनानवलोभनसीमन्तोन्नयनजातकर्मनिष्क्रमणान्नप्राशनचौलोपनयनमहानाम्न्यादिव्रतचतुष्टयसमावर्तनविवाहा इति [3]षोडशसंस्कारा द्विजानाम्। जातकर्मनामकर्मनिष्क्रमणान्नप्राशनचूडाविवाहा इति षड् द्विजस्त्रीणाम्। तत्र विवाहः समन्त्रकोऽन्ये मन्त्ररहिताः। गर्भाधानसीमन्तौ स्त्रीपुरुषसाधारणौ।

गर्भाधान, पुंसवन, अनवलोभन, सीमन्त, उन्नयन, जातकर्म, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चौलकर्म, उपनयन, महानाम्नी आदि चार व्रत, समावर्तन और विवाह, ये सोलह संस्कार द्विजों के हैं। इनमें जातकर्म, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ा और विवाह, ये छ संस्कार द्विज की स्त्रियों के हैं। उनमें विवाह मन्त्र से होता है, अन्य पांच संस्कार विना मन्त्र के होते हैं। गर्भाधान और सीमन्त स्त्री और पुरुष दोनों के लिये साधारण हैं।

चूडान्ता नवविवाहश्चेति [4]दशामन्त्रकाः शूद्राणामिति बहुसंमतम्। शूद्र-

---

१. सुमन्तुः—'ज्येष्ठो भ्राता यदा तिष्ठेदाधानं नैव चाश्रयेत्। अनुज्ञातस्तु कुर्वीत शङ्खस्य वचनं यथा॥' वृद्धवसिष्ठः—'अग्रजस्तु यदाऽनग्निरादध्यादनुजः कथम्। अग्रजानुमतः कुर्यादग्निहोत्रं यथाविधि।' इति।

२. इसके पूर्व का त्रिकाण्डमण्डनोक्त वचनांश यों है—'दर्शेष्टिं पौर्णमासेष्टिं सोमेज्यामग्निसंग्रहम्। अग्निहोत्रं विवाहं च प्रयोगे प्रथमे स्थितम्॥ न कुर्याज्जनके ज्येष्ठे सोदरे चाप्यकुर्वति। क्षेत्रजादावनीजाने विद्यमानेऽपि सोदरे॥ नाधिकारविघातोऽस्ति भिन्नोदर्येऽपि चौरसे। पङ्ग्वन्धमूकबधिरपतितोन्माददूषणे॥ संन्यस्ते छिन्नहस्तादौ...' अत्र क्षेत्रजादौ ज्येष्ठेऽनीजाने विद्यमाने जीवति एकमातृतया सोदरे तत्कनिष्ठभ्रातरि नाधिकारविघातोऽस्तीति सम्बन्धः। अनीजानेऽयागमकुर्वाणे इत्यर्थः।

३. इन सोलह संस्कारों में अनवलोभन गर्भ से तीसरे मास में किया जाने वाला एक संस्कार और महानाम्नी तेरहवें वर्ष में किया जाने वाला एक व्रत है। महानाम्न्यादि में आदि पद से महाव्रत, उपनिषद्व्रत और गोदान व्रत का ग्रहण है। इन तीनों का विचार 'व्रतानि' शीर्षक में देखें।

४. व्यासः—'नवैताः कर्णवेधान्ता मन्त्रवर्जं स्त्रियाः क्रियाः। विवाहो मन्त्रतस्तस्याः शूद्रस्यामन्त्रतो दश॥' शार्ङ्गधरस्तु—'द्विजानां षोडशैव स्युः शूद्राणां द्वादशैव हि। पञ्चैव मिश्रजातीनां

कमलाकरे तु शूद्राणां पञ्चमहायज्ञा अप्युक्ताः। केचिदवैदिकमन्त्रेणोपनयनमप्याहुः। ब्राह्मे तु—'विवाहमात्रं संस्कारं शूद्रोऽपि लभतां सदा' इत्युक्तम्। अत्र सदसच्छूद्र-गोचरत्वेन वा परम्पराप्राप्तप्रकारेण व्यवस्था।

चूड़ापर्यन्त नौ संस्कार और दसवां विवाह इसी प्रकार दस संस्कार विना मन्त्र के शूद्रों के होते हैं, यह बहु सम्मत है। शूद्रकमलाकर में शूद्रों के पञ्चमहायज्ञ भी कहे हैं। कुछ लोग शूद्रों का वेदरहित मन्त्रों से उपनयन भी कहते हैं। ब्रह्मपुराण में तो–शूद्र केवल विवाहमात्र संस्कार प्राप्त करे, ऐसा कहा है। इसमें सच्छूद्र और असच्छूद्र के भेद से या परम्परा से प्राप्त प्रकार की व्यवस्था करनी चाहिये।

अथ शूद्रधर्मविचारः

अस्य द्विजसेवावृत्तिः। आपदि वाणिज्यशिल्पादि। शूद्रेण लवणादि विक्रेयं, मद्यं मासं च न।

कपिलाक्षीरपानेन ब्राह्मणीगमनेन च।
वेदाक्षरविचारेण शूद्रश्चाण्डालतां व्रजेत्॥
शूद्रो वर्णश्चतुर्थोऽपि वर्णत्वाद्धर्ममर्हति।
वेदमन्त्रस्वधास्वाहावषट्कारादिभिर्विना॥

इसकी जीविका द्विज की सेवा है। आपत्काल में वाणिज्य वृत्ति तथा शिल्प का अधिकारी है। शूद्र लवण आदि का विक्रय करे, मद्य मांस का विक्रय नहीं। कपिला गाय के दूध पीने, ब्राह्मणी-गमन और वेदाक्षरों के विचार करने से शूद्र चाण्डाल हो जाता है। शूद्र चौथा वर्ण होने से वेद-मन्त्र, स्वधा, स्वाहा और वषट्कार आदि के विना धर्म के योग्य है।

स्त्रीशूद्रधर्मेषु व्रतादिषु सर्वत्र विप्रेण मन्त्रः पठनीयः। सोऽपि पौराण एव। भारतपुराणयोः 'श्रवणे स्त्रीशूद्रयोरधिकारो न त्वध्ययने। श्रावयेच्चतुरो वर्णान् कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः। शूद्रस्य पञ्चयज्ञश्राद्धादिकर्माणि कातीयसूत्रानुसारेणेति मयूखे। आगमोक्ता विष्णुशिवादिमन्त्रा नमोन्ताः प्रणवरहिताः। पुराणादिना श्रवणनिदि-ध्यासनादि कृत्वा ब्रह्मज्ञानमपि स्त्रीशूद्रैः संपाद्यम्।

स्त्री-शूद्र के धर्मों में और व्रत आदि में ब्राह्मण को मन्त्र पढ़ना चाहिये, वह भी पुराण का ही। क्योंकि भारत और पुराण के सुनने में स्त्री और शूद्र का अधिकार है, उसके पढ़ने का नहीं। ब्राह्मण को आगे करके चारो वर्णों को भारत आदि सुनावे। शूद्र को पंचमहायज्ञ और श्राद्धादि कर्म कातीयसूत्र के अनुसार प्राप्त है, ऐसा मयूख में लिखा है। आगम के कहे हुए विष्णु शिव आदि के ऐसे मन्त्र हैं, जिनके अन्त में नमः और जो प्रणव से रहित हैं। पुराण आदि का श्रवण और निदिध्यासन आदि करके स्त्री शूद्र ब्रह्मज्ञान का भी संपादन करें।

संस्काराः कुलधर्मतः॥ वेदव्रतोपनयनमहानाम्नीमहाव्रतम्। विना द्वादश शूद्राणां संस्कारा नाम-मन्त्रतः॥' व्यासः—'शूद्रो वर्णश्चतुर्थोऽपि वर्णत्वाद्धर्ममर्हति। वेदमन्त्रस्वधास्वाहावषट्कारादिभि-र्विना॥' इति।

१. तदुक्तम्—'स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचराः। इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम्॥' द्विजबन्धुः=संकरः।

उपनिषच्छ्रवणे तु नाधिकार इति शूद्रस्य तदनादरश्रवणादित्यधिकरणे। शूद्रस्य सर्वश्राद्धान्यामेनैव[1]। केचित्सर्वप्रजानां काश्यपत्वात्सर्वशूद्राणां काश्यपगोत्रं तच्च श्राद्ध एव कीर्तनीयं नान्यत्रेत्याहुः। एवं शान्तिकादावधिकारो विप्रद्वारैव।

उपनिषद् श्रवण में तो शूद्र का अधिकार नहीं है यह 'शूद्रस्य तदनादरश्रवणात्' ऐसा अधिकरण में है। शूद्र के सब श्राद्ध आमान्न ही से होते हैं। कुछ लोग तो सब प्रजा काश्यप की है और सब शूद्र का काश्यप गोत्र है और वह श्राद्ध ही में कहा जाता है अन्यत्र नहीं, ऐसा कहते हैं। इस प्रकार शान्ति आदि में ब्राह्मण के द्वारा ही शूद्र का अधिकार है।

यदि विप्रः शूद्रदक्षिणामादाय वैदिकमन्त्रैस्तदीयहोमाभिषेकादि करोति तदा तत्र शूद्रस्तत्पुण्यफलभाक्, विप्रस्तु महाप्रत्यवायीति माधवः। अहिंसासत्यास्तेयशौचेन्द्रियनिग्रहदानशमदमक्षमादयः शूद्रादिसर्वसाधारणा[2] धर्माः परपदप्रापकाः। स्वस्तिवाचनादिशूद्रकर्मणां प्रयोगास्तु शूद्रकमलाकरे ज्ञेयाः।

यदि ब्राह्मण शूद्र से दक्षिणा लेकर वैदिक मन्त्रों से उसका होम अभिषेक आदि करता है तब उसमें शूद्र उस पुण्य फल को पाता है, ब्राह्मण तो महाप्रायश्चित्ती होता है, ऐसा माधव कहते हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, दान, शम, दम, क्षमा आदि सबके लिए साधारण धर्म हैं तथा परम पद को पहुँचाने वाले हैं। स्वस्तिवाचन आदि शूद्र कर्मों के प्रयोग तो शूद्रकमलाकर में जानने योग्य हैं।

अथ वापीकूपाद्युत्सर्गादिकालः

गृहग्रामयोराग्नेयदक्षिणनैर्ऋत्यवायव्येषु मध्ये च दुष्टफलः कूपः, शेषदिक्षु शुभः। वापीकूपतडागाद्युत्सर्गं उत्तरायणे माघादिमासषट्कस्य शुक्लपक्षेषु प्रशस्तः। जलक्षयसंभावनाया कार्तिकमार्गशीर्षयोरपि। 'न [3]कालनियमस्तत्र सलिलं तत्र कारणम्' इत्युक्तेः।

---

१. सुमन्तुः—'सदा चैव तु शूद्राणामामश्राद्धं विधीयते।' वृद्धपराशरः—'आमान्नेन तु शूद्रस्य तूष्णीं तु द्विजपूजनम्। कृत्वा श्राद्धं तु निर्वाप्य सजातीनाशयेदथ॥' स एव—'आमं शूद्रस्य पक्वान्नं पक्वमुच्छिष्टमुच्यते॥' भविष्ये—'शूद्रस्तु गृहपाकेन न पिण्डान्निर्वपेत्तथा। सक्तु मूलं फलं तस्य पायसं वा भवेत् स्मृतम्॥' इति।

२. याज्ञवल्क्यः—'अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। दानं दमो दया क्षान्तिः सर्वेषां धर्मसाधनम्॥' अर्थात् प्राणियों को पीडित नहीं करना अहिंसा, कोई—प्राणिप्राणवियोगानुकूल व्यापार हिंसा और उसका अभाव अहिंसा यह अर्थ करते हैं। प्राणियों को पीडित नहीं करने वाला वचन सत्य, अदत्त वस्तु का अग्रहण अस्तेय, बाहरी और भीतरी शुद्धि शौच, ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रियों का नियत विषय में रहना इन्द्रियनिग्रह, प्राणियों का यथाशक्ति अन्नोदकादि के दान से पीडापरिहरण करना दान, अन्तःकरण का संयम दम, आपत्ति में पड़े हुये का रक्षण दया और अपकार करने पर भी चित्त का अविकृत न होना क्षान्ति, ये नव ब्राह्मणादि चाण्डालपर्यन्त पुरुषों के धर्म के साधन हैं।

३. मदनोद्धृत भविष्यपुराण में इसके पूर्व का वचनांश है—'तस्मिन् सतिलसम्पूर्णे कार्तिके च विशेषतः। तडागस्य विधिः कार्यः स्थिरनक्षत्रयोगतः॥ मुनयः केचिदिच्छन्ति व्यतीतेऽप्युत्तरायणे। न कालनियमस्तत्र...... ।' वह्निपुराण में—'वापीकूपतडागानां तस्मिन् काले विधिः

घर और गांव से आग्नेय, दक्षिण, नैर्ऋत्य और वायव्य दिशा में तथा मध्य में कूआं बनवाना दुष्टफल देने वाला है, शेष दिशाओं में अच्छा है। बावली, कूआं और तालाव आदि का उत्सर्ग उत्तरायण में माघ आदि छ महीनों के शुक्लपक्ष में प्रशस्त है। जल के न होने की सम्भावना में कार्तिक अगहन में भी अच्छा है। उसमें काल का कोई नियम नहीं है उसमें कारण जल है, ऐसा वचन है।

चतुर्षु विष्णुशयनमासेषु शुक्रास्तादौ च वर्ज्यम्। अश्विनीरोहिणीमृगपुष्यमघात्र्युत्तरामूलश्रवणादित्रयहस्तज्येष्ठानूराधारेवतीषु, द्वितीयातृतीयापञ्चमीसप्तमीदशम्येकादशीत्रयोदशीतिथिषु, बुधगुरुशुक्रसोमवारेषु जलोत्सर्गः शुभः। उत्सर्गाभावे जलं न ग्राह्यम्।

वापीकूपतडागादौ यज्जलं स्यादसंस्कृतम्।
न [1]स्पृष्टव्यं न पेयं च पीत्वा चान्द्रायणं चरेत्॥

[2]उत्सर्गप्रयोगोऽन्यतो ज्ञेयः।

विष्णुशयन के चारो महीने में और शुक्रास्त आदि में वर्जित है। अश्विनी-रोहिणी-पुष्य-मृगशिरा पुष्य-मघा-तीनों उत्तरा-मूल-श्रवण आदि तीन-हस्त-ज्येष्ठा-अनुराधा-रेवती नक्षत्रों में, द्वितीया-तृतीया-पंचमी-सप्तमी-दशमी-एकादशी-त्रयोदशी तिथियों में, बुध-गुरु-शुक्र सोमवार में, जलोत्सर्ग

स्मृतः। सुदिने शुभनक्षत्रे प्रतिष्ठा शुभदा स्मृता॥ कर्कटे पुत्रलाभश्च सौख्यं तु मकरे भवेत्। मीने यशोऽर्थऽर्थलाभश्च कुम्भे वसुबहूदकम्॥ वृषे च मिथुने वृद्धिर्वृश्चिकेऽल्पजलं भवेत्। पितृतृप्तिस्तु कन्यायां तुलायां शाश्वती गतिः॥ सिंहो मेषो धनुर्नाशं लक्ष्म्याश्च द्विज यच्छति।' इति॥

१. भविष्ये—'सदा जलं पवित्रं स्यादपवित्रमसंस्कृतम्। कुशाग्रेणापि राजेन्द्र न स्प्रष्टव्यमसंस्कृतम्॥' इति।

२. इसके उत्सर्ग में पराशरोक्त देय-द्रव्य ये हैं—'वस्त्रयुग्मानि विप्रेभ्यछत्रिका मुद्रिकाः शुभाः। दद्याद् विप्रेभ्यः संतोष्य छत्रोपानहमेव च॥ सुहेमपुरुषसंयुक्तां शय्यां दद्याच्च शक्तितः। आसनानि च शस्तानि भाजनानि निवेदयेत्॥ प्रसादयेद् द्विजान् भक्त्या इच्छन् पूर्तफलं नरः। कृताञ्जलिपुटो भूत्वा विप्राणामग्रतः स्थितः॥ ब्रूयादेवं भवन्तोऽत्र सर्वे विप्रवपुर्धराः। तटं यूयं तारयध्वं ससारार्णवतो द्विजाः॥ आगता मम पुण्येन पूर्तधर्मप्रसाधकाः।' अत्र सुहेमपुरुषः = लक्ष्मीनारायणप्रतिमा।

वापी कूपादि के उत्सर्ग में वारुण मण्डल का निर्माण करना चाहिये। उसकी निर्माणविधि दानचन्द्रिका में यों है—'तत्राचार्यो वेद्यां मध्ये त्रिहस्तव्यासं चतुरस्रं प्रसाध्य प्रागपरदक्षिणोत्तरनवनवरेखाश्चतुष्षष्टिकोष्ठं कुर्यात्। तत्र कोष्ठानि प्रत्येकं नवनवाङ्गुलानि सम्पद्यन्ते। ततो बहिरन्त्यपंक्तिषु चतुर्दिक्षु मध्यकोष्ठानि चत्वारि चत्वारि मार्जयित्वा तदुपरि उपान्त्यपंक्तिषु पार्श्वयोस्तत्त्रयं त्यक्त्वा प्रतिदिशं मध्ये कोष्ठद्वयमार्जनेन चतुर्दिक्षु षट्षट्कोष्ठानि चत्वारि द्वाराणि सिद्ध्यन्ति। ततो मध्यस्थितषोडशकोष्ठानि मार्जयेत्। तथा च मध्यचतुरस्रपीठपादाः सिद्ध्यन्ति। ततो मध्याच्चत्वारि वृत्तानि कुर्यात्। तत्राद्ये चत्वार्यङ्गुलानि व्यासः, द्वितीयेऽष्टौ, तृतीये चतुर्विंशतिः, चतुर्थे षड्विंशतिरिति।

तच्चतुरङ्गुलं वृत्तं कर्णिकारूपं पीतेन रजसा पूरयित्वा कर्णिकावधिरेखां सितेन रजसा निर्माय तद्बहिरष्टात्मके वृत्ते पीतरक्तसितरजोभिः सम्पादितमूलमध्याग्राणि षोडशकेसराणि सम्पाद्य तत्केसरावधि रेखां सितेनैव रजसा अङ्गुलोन्नतां सम्पाद्य चतुर्विंशाङ्गुलात्मके तद्बहिर्वृत्ते सितेन रजसा अष्टदिक्षु अष्टौ पत्राणि रक्ताग्राणि कुर्यात्। ततो दलान्तररेखां सितेन रजसा विधाय दलान्तराणि कृष्णेन रजसा पूरयित्वा तद्बहिरेकाङ्गुलान्तरा बहिर्वृत्तरेखां सितेन रजसा सम्पाद्य वृत्तद्वयान्तरं परितोऽष्टदलाग्रतन्मध्य-

शुभ है। उत्सर्ग नहीं करने पर जल ग्रहण नहीं करे। बावली, कुंआं, तालाब आदि का जो जल संस्काररहित है उसका न तो स्पर्श करे न पिये और करर चान्द्रायण करे। उत्सर्ग का प्रयोग दूसरे ग्रन्थों से जानना चाहिये।

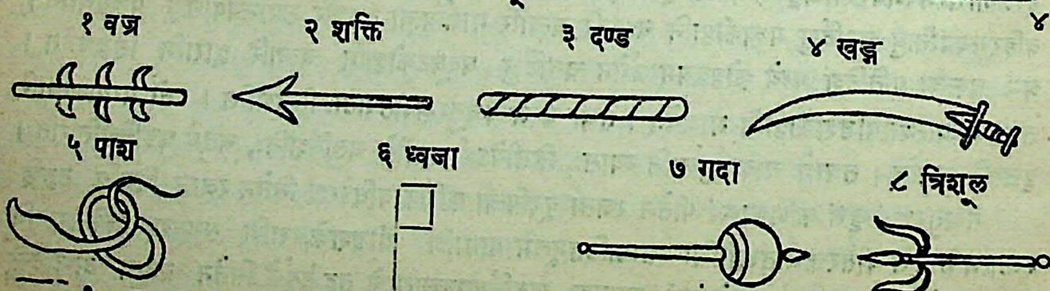
चिह्नैः षोडशधा विभज्य प्रतिभागं यवाकारान् श्यामपीतारुणश्वेतरजोभिः कल्पयित्वा तदन्तरा यथायोग्यं रजोभिः पूरयित्वा तद्बहिः सितपीतारुणश्यामहरिताः पंच रेखाः लिखेत्। तद्बहिः पीठक्षेत्रं चतुरस्रं यथा-

वारुणमण्डलम्

८ १ २

७ ३

६ ५ ४



पूर्व आदि आठ दिशाओं में १ आदि संख्या के अनुसार वज्र आदि आठ आयुधों का और त्रिशूल के वामभाग में चक्र एवं दक्षिण भाग में पद्म का विन्यास करे। स्थानाभाव से यहां नहीं रखा है।

अथ वृक्षादिरोपणकालः

अश्विनीरोहिणीमृगपुष्यमघोत्तरात्रयंहस्तचित्राविशाखानूराधामूलशततारका-रेवतीषु सत्तिथिवारेषु वृक्षलतारोपः [1]प्रशस्तः ।

आश्लेषायां सोमवारः सोमो लग्ने बलान्वितः ।
योगेऽस्मिन् रोपयेदिक्षुकदलीक्रमुकादिकान् ॥
नारीकेलान् वपेद् भूमावश्विन्यां लग्नगे रवौ ।
नागवल्लीं गुरौ लग्ने चन्द्रे स्वांशस्थिते सति ॥

अश्विनी-रोहिणी-मृगशिरा-पुष्य-मघा-तीनों उत्तरा-हस्त-चित्रा-विशाखा-अनुराधा-मूल-शतभिषा-रेवती नक्षत्रों में, शुभ तिथि तथा वार में, वृक्ष और लता का लगाना उत्तम है। आश्लेषा नक्षत्र में सोमवार हो और चन्द्रमा लग्न में बलयुक्त हो तो ऐसे योग में ऊख, केला, सुपारी आदि लगाना चाहिये । अश्विनी में लग्न के सूर्य हो तो भूमि में नारियल बोवे । गुरुवार को अपने अंश में चन्द्रमा के रहने पर पांन की लता लगावे ।

अथ मूर्तिप्रतिष्ठाकालः

[2]प्रतिष्ठा सर्वदेवानां वैशाखज्येष्ठफाल्गुने ।
चैत्रे तु स्याद्विकल्पेन माघे विष्णवन्यमूर्तिषु ॥

शोभं रजोभिरलंकृत्य पीठावधिरेखां सितेन रजसा चतुरस्रां रचयेत् । द्वारक्षेत्राणि पूर्वादितः पीतश्या-मसितहरितरजोभिः पूरयेत् । आग्नेयादिकोष्ठचतुष्टय लोहितहरितश्यामधवलैः रजोभिः पूरयेत् । आग्ने-यादिपीठपादचतुष्टयं पंचकोष्ठात्मकं तु क्रमात् सितरक्तपीतकृष्णरजोभिः पूरयेत् । ततः सितेन रजसा अङ्गुलोन्नतेन बहिश्चतुरस्ररेखां कुर्यादिति मदनरत्नादयः ।

ठक्कुरमते तु चतुरस्रं चतुर्हस्तं, तत्र प्रत्येकं द्वादशाङ्गुलानि नवकोष्ठानि, वृत्तानि तु पञ्च । तथाद्यवृत्ते चत्वार्यङ्गुलव्यासः, द्वितीयेऽष्टौ, तृतीये विंशतिः, चतुर्थे चतुर्विंशतिः, पंचमेऽन्तश्चतुरस्र-बहिस्तनेऽष्टत्रिंशदिति पंचकोष्ठात्मकं पीठपादचतुष्टयम् आग्नेयादिक्रमेण रक्तहरितश्यामसितैः रजो-भिः पूरणीयम् । कोणकोष्ठचतुष्टयं प्रत्येकं त्रिभिस्त्रिभिर्वर्णैरिति विशेषः । इदमेव वारुणमण्डलं जलाशयो-त्सर्गादौ ज्ञेयम् । पुनस्तत्रैव—वज्रं प्रागुत्तरे भागे आग्नेय्यां शक्तिमुज्ज्वलाम् । आलिखेद्दक्षिणे दण्डं नैर्ऋत्यां खड्गमालिखेत् ॥ पाशं तु वारुणे लेख्यं ध्वजं वै वायुगोचरे । कौवेर्यां तु गदा लेख्या ईशान्यां शूलमालिखेत् ॥ शूलस्य वामदेशे तु चक्रं पद्मं च दक्षिणे । ततो महावेद्युपरि पञ्चवर्णं फलपुष्पोप-शोभितं वितानं कूटमण्डपे बध्नीयात् ॥' इति ।

१. चण्डेश्वरः—आदित्यचान्द्रपितृतिष्यविशाखपौष्णमूलोत्तरात्रयतुरङ्गमवारुणाश्च । एतेषु तारकगणेषु हितं नराणां वृक्षादिरोपणमिहोपदिशन्ति धीराः ॥' यहाँ आदि पद से लतौषधिपादप-रोपण का ग्रहण है, श्रीपतिः—'सावित्रतिष्याश्विनवारुणानि मूलं विशाखा च मृदुध्रुवाणि । लतौ-षधीपादपरोपणेषु शुभानि भानि प्रतिपादितानि ॥' इति ।

२. मात्स्ये-'चैत्रे वा फाल्गुने वाऽपि ज्येष्ठे वा माधवे तथा। माघे वा सर्वदेवानां प्रतिष्ठा शुभदा भवेत् ॥' वसिष्ठः—'आषाढमासादिचतुष्टयेऽपि कलत्रसन्तानविनाशदा स्यात् । ऊर्जे च कर्तुर्निधनप्रदा च सौम्ये सपौषेऽखिलदुःखदा स्यात् ॥ वलक्षपक्षः शुभदः समस्तः सदैव तत्राद्यदिनं विहाय । अन्त्य-त्रिभागं परिहृत्य कृष्णपक्षोऽपि शस्तः खलु पक्षयोश्च ॥ रिक्तामा त्यक्तदिनेष्वनन्वययोगेषु वैनाशक-वर्जितेषु । दिने महादोषविवर्जिते च शशाङ्कताराबलसंयुते च ॥'इति ।

प्रतिष्ठा में प्रतिपदादि तिथि-विशेष का मात्स्योक्त फल है—'दृढा धनकरी स्फीता तथा प्रतिपदि स्मृता । द्वितीयायां धनोपेता तृतीयायां धनप्रदा॥ चतुर्थ्यां नाशमाप्नोति यमस्य स्यात् सुखावहा। विनाय-

सौम्यायने शुभा प्रोक्ता निन्दिता [1]दक्षिणायने ।
मातृभैरववाराहनरसिंहत्रिविक्रमाः ॥
दक्षिणेऽप्ययने स्थाप्या देव्यश्चेत्यूचिरे परे ।
विष्णोः[2] शस्ताश्चैत्रमासाश्विनश्रावणका अपि ॥
माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठाषाढसहःसु च ।
श्रावणे च नभस्ये च [3]लिङ्गस्थापनमुत्तमम ॥
देव्या[4] माघेऽश्विने मासेप्युत्तमा सर्वकामदा ।

सब देवताओं की प्रतिष्ठा वैशाख, ज्येष्ठ और फाल्गुन में होती है। चैत्र में तो विकल्प से होती है। विष्णु को छोड़कर अन्य देवताओं की प्रतिष्ठा माघ में होती है। देव-प्रतिष्ठा उत्तरायण में शुभ है। दक्षिणायन में निन्दित है। मातृ, भैरव, वाराह, नरसिंह और त्रिविक्रम की प्रतिष्ठा दक्षिणायन में भी होती है और देवी की भी, ऐसा दूसरे कहते हैं। विष्णु क प्रतिष्ठा चैत्र, आश्विन, श्रावण, माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ और पूस में होती है। श्रावण और भाद्रपद में लिंग की स्थापना उत्तम है। माघ और आश्विन मास में देवीप्रतिष्ठा सवकामनाओं की देने वाली और उत्तम है।

अश्विनीरोहिण्युत्तरात्रयमृगपुनर्वसुपुष्यहस्तचित्रास्वात्यनूराधाश्रवणत्रयरेवतीषु शनिभौमान्यवासरे दर्शरिक्तान्यतिथौ सर्वदेवप्रतिष्ठा शुभा। श्रवणे कृत्तिकादि-विशाखान्तेषु च द्वादश्यां च [5]विष्णोः प्रशस्ता। चतुर्थी गणेशस्योक्ता। नवमी

कस्य देवस्य तथा तत्र हितप्रदा॥ पञ्चम्यां श्रीयुता कर्तुर्वरदा च तथा भवेत्। षष्ठयां लक्ष्मीयुता नित्यं सप्तम्यां रोगनाशिनी॥ अष्टम्यां धान्यबहुला नवम्यां च विनश्यति। भद्रकाल्याः कृता तत्र कर्तुर्भवति तुष्टये॥ धर्मवृद्धिकरी ज्ञेया दशम्यां तु तथा तिथौ। एकादश्यां तथा युक्ता द्वादश्यां सर्वकामदा। त्रयोदश्यां तथा ज्ञेया चतुर्दश्यां विनश्यति। कृष्णपक्षे पञ्चदश्यां कर्तुः क्षयकरी भवेत्॥ पञ्चदश्यां तथा शुक्ले सर्वकामकरी भवेत्। आषाढ़े द्वे तथा मूलमुत्तरात्रयमेव च॥ ज्येष्ठाश्रवणरोहिण्यः पूर्वाभाद्रपदा तथा। हस्तोऽश्विनी रेवती च पुष्यो मृगशिरस्तथा॥ अनूराधा तथा स्वाती प्रतिष्ठासु प्रशस्यते॥' इति।

१. शैवसिद्धान्तशेखर में मुक्ति की कामना वाले व्यक्तियों के लिए दक्षिणायन को श्रेष्ठ बतलाया है—'श्रेष्ठोत्तरे प्रतिष्ठा स्यादयने मुक्तिमिच्छताम्। दक्षिणे तु मुमुक्षूणां मलमासे न सा द्वयोः॥' वैखानस ने दक्षिणायन में उग्र देवता-देवी की प्रतिष्ठा को विहित बतलाया है—'मातृभैरववाराहनरसिंहत्रिविक्रमाः। महिषासुरहन्त्र्यश्च स्थाप्या वै दक्षिणायने॥' इति।

२. विष्णु की प्रतिष्ठा के लिये वैखानसोक्त मास ये हैं—'मार्गशीर्षादिमासौ द्वौ निन्दितौ ब्रह्मणा पुरा। मासेषु फाल्गुनः श्रेष्ठश्चैत्रो वैशाख एव च॥ वृषे वाऽप्यश्वयुङ्मासे श्रावणे मासि वा भवेत्।'इति।

३. रत्नावलि में—'माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठाषाढेषु पञ्चसु। मासेषु शुक्लपक्षेषु लिङ्गस्थापन-मुत्तमम्॥'इति।

४. देवीपुराण का यह वचन है, इसके आगे का अंश है—'न तिथिर्न च नक्षत्रं नोपवासोऽत्र कारणम्। सर्वकालं प्रकर्तव्यं कृष्णपक्षे विशेषतः॥' इति।

५. विष्णुप्रतिष्ठा के उपक्रम में बौधायनसूत्र में कहा है—'द्वादश्यां श्रोणायां वा यानि चान्यानि पुण्यनक्षत्राणि' इति। विष्णु आदि देवताओं के भेद से श्रीपति-कथित नक्षत्र ये हैं—'रोहिण्युत्तरपौष्णवैष्णवकरादित्याश्विनी वासवानूराधैन्दवजीवभेषु गदितं विष्णोः प्रतिष्ठापनम्। पुष्यश्रुत्यभिजित्सुरेश्वरकयोर्बिडौजसो घपस्कन्दयोर्मैत्रे तिग्मरुचेः करे निर्ऋतिभे दुर्गादिकानां शुभम्॥ गणपरिवृढरक्षोयक्षभूतासुराणां

मूलभं च देव्याः । तथा स्वस्वनक्षत्राणि सर्वेषाम् । यथार्द्रा शिवस्य [1]हस्तः सूर्यस्येत्यादि ।

अश्विनी-रोहिणी-तीनों उत्तरा-मृगशिरा-पुनर्वसु-पुष्य-हस्त-चित्रा-स्वाती-अनुराधा-श्रवण से तीन नक्षत्र और रेवती में, शनि मंगल को छोड़कर अन्य वार में, अमावस्या रिक्ता को छोड़कर अन्य तिथियों में, सब देवताओं की प्रतिष्ठा शुभप्रद है। श्रवण में, कृत्तिका आदि विशाखापर्यन्त नक्षत्रों में, द्वादशी तिथि में, विष्णु-प्रतिष्ठा प्रशस्त है। चतुर्थी गणेश के लिये कही गई है। नवमी तिथि और मूल नक्षत्र देवी के लिये है। तथा सब देवताओं के अपने-अपने नक्षत्र हैं। जैसे शिव का आर्द्रा सूर्य का हस्त इत्यादि।

हन्त्यर्थहीना कर्तारं मन्त्रहीना तु ऋत्विजम् ।
स्त्रियं लक्षणहीना तु न प्रतिष्ठासमो रिपुः ॥

अथ प्रतिष्ठाधिकारिणः

ब्रह्मा तु ब्राह्मणैः स्थाप्यो गायत्रीसहितः प्रभुः ।
सर्ववर्णैस्तथा विष्णुः प्रतिष्ठाप्यः सुखार्थिभिः ॥

मातृभैरवाद्याः[2] सर्वैः । शिवलिङ्गं यतिनापि । पुराणप्रसिद्धजीर्णलिङ्गं स्त्रीशूद्रैरपि पूज्यम् । नूतनस्थापितं लिङ्गं स्त्री शूद्रो वापि न स्पृशेत् । शिवादिप्रतिष्ठायां स्त्रीशूद्र देर्नाधिकारः[3] ।

शूद्रो वाऽनुपनीतो वा स्त्रियो वा पतितोऽपि वा ।
केशवं वा शिवं वापि स्पृष्ट्वा नरकमश्नुते ॥

स्थिरप्रतिमाः प्राङ्मुखीरुदङ्मुखो[4] यजेत । चलप्रतिमासु प्राङ्मुखः ।

प्रथमफणिसरस्वत्यादिकानां च पौष्णे । 'श्रवसि सुगतनाम्नो वासवे लोकपानां निगदितमखिलानां स्थापनं च स्थिरेषु ॥ तेजस्विनी क्षेमकृदग्निदाहविधायिनी स्याद्धनदा दृढा च । आनन्दकृत्कल्पविनाशिनी च सूर्यादिवारेषु भवेत् प्रतिष्ठा ॥' इति ।

१. जैसे—अश्विनी अश्विनीकुमार का, भरणी यम का, कृत्तिका अग्नि का, रोहिणी ब्रह्मा का, मृगशिरा चन्द्रमा का, आर्द्रा शिव का, पुनर्वसु देवमाता अदिति का, पुष्य बृहस्पति का, आश्लेषा सर्प का, मघा पितर का, पूर्वा फाल्गुनी सूर्यविशेष भग का, उत्तरा फाल्गुनी सूर्यविशेष अर्यमा का, हस्त सूर्य का, चित्रा विश्वकर्मा का, स्वाती वायु का, विशाखा समुदित देवता अग्नि का, अनुराधा सूर्यविशेष मित्र का, ज्येष्ठा इन्द्र का, मूल निर्ऋति-राक्षस का, पूर्वाषाढ़ा उदक का, उत्तराषाढा विश्वेदेवा का, अभिजित् विधि का, श्रवण विष्णु का, धनिष्ठा अष्टवसु का, शतभिषा वरुण का, पूर्वाभाद्रपदा सूर्यविशेष अजचरण का, उत्तराभाद्रपदा सूर्यविशेष अहिर्बुध्न्य का और रेवती सूर्यविशेष पूषा का अपना-अपना नक्षत्र है।

२. देवीपुराण में—'चतुर्वर्णैस्तथा विष्णुः प्रतिष्ठाप्यः सुखार्थिभिः । भैरवोऽपि चतुर्वर्णैरन्त्यजानां तथा मतः ॥ मातरः सर्वलोकैस्तु स्थाप्याः पूज्याः सुरोत्तमाः । लिङ्गं गृही यतिर्वापि संस्थाप्य तु यजेत् सदा ॥' इति ॥

३. बृहन्नारदीय में स्कान्दोक्तिः—'स्त्रीणामनुपनीतानां शूद्राणां च जनेश्वर । स्थापने नाधिकारोऽस्ति विष्णोर्वा शङ्करस्य वा ॥ यः शूद्रसंस्कृतं लिङ्गं विष्णुं वाऽपि नमेन्नरः । इहैवानन्तदुःखानि पश्यत्यामुष्मिके किमु ॥' इति ।

४ गौतमः— 'शिवार्चनं सदाप्येवं शुचिः कुर्यादुदङ्मुखः ।' गृह्यपरिशिष्टे—'प्रतिमाः प्राङ्मुखीरुदङ्मुखो यजेतान्यत्र प्राङ्मुखः' इति । अचल-प्रतिमा की पूजा उत्तरमुख और अन्य प्रतिमा की पूजा पूर्वमुख होकर करे, इस प्रकार इन दोनों वचनों की एकवाक्यता है।

अर्थ से हीन प्रतिष्ठा यजमान को मारती है, मन्त्र से हीन ऋत्विज को, लक्षण से हीन स्त्री को, प्रतिष्ठा के समान दूसरा शत्रु नहीं है। ब्राह्मणों को गायत्री के साथ ब्रह्मा की स्थापना करनी चाहिये। इसी प्रकार सुख चाहने वाले सब वर्णों को विष्णु की प्रतिष्ठा करनी चाहिये। मातृ भैरव आदि की प्रतिष्ठा सभी करें। शिवलिंग की स्थापना संन्यासी भी कर सकते हैं। पुराण-प्रसिद्ध जीर्ण-लिंग का पूजन स्त्री शूद्र भी कर सकते हैं। नये स्थापित लिंग का स्पर्श स्त्री शूद्र न करें। शिव आदि की प्रतिष्ठा में स्त्री शूद्र आदि का अधिकार नहीं है। शूद्र या अनुपनीत, स्त्री अथवा पतित, केशव या शिव का स्पर्श करके नरक प्राप्त करते हैं। पूरबमुख वाली स्थिर प्रतिमा का पूजन उत्तरमुख होकर करे। चल प्रतिमा में पूरबमुख होकर पूजन करे।

अथ प्रतिमानिर्माणविचारः

सौवर्णी राजती ताम्री मृन्मयी प्रतिमा भवेत्।
पाषाणधातुमुक्ता[1] वा कांस्यपित्तलयोरपि ॥
अङ्गुष्ठपर्वमानात्सा वितस्तिं यावदेव तु।
गृहेषु प्रतिमा कार्या नाधिका शस्यते बुधैः ॥

मृद्दारुलाक्षागोमेदमधूच्छिष्टेन च क्वचित्।

प्रतिमा—सोना, चांदी, तामा और मिट्टी की होती है। अथवा धातु, पाषाण, मोती या कांसा और पीतल की होती है। अंगूठे की ग्रंथि से लेकर एक बित्ता तक की मिट्टी की प्रतिमा होती है। बित्तेभर से अधिक प्रतिमा को पण्डित लोग अच्छा नहीं कहते। कहीं मिट्टी, लकड़ी, लाख, गोमेद और मोम से प्रतिमा बनाना कहा है।

श्रीमद्भागवते तु—

शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती।
मनोमयी मणिमयी प्रतिमाऽष्टविधा स्मृता ॥

लौही सौवर्णी, दारु[2] मधूकवृक्षस्यैव। सप्ताङ्गुलाधिका द्वादशाङ्गुलपर्यन्ता गृहे प्रतिमेति देवीपुराणे[3]।

अर्चकस्य तपोयोगादर्चनस्यातिशायनात्।
आभिरूप्याच्च बिम्बानां देवः सान्निध्यमृच्छति ॥
प्रतिमापट्टयन्त्राणां[4] नित्यं स्नानं न कारयेत्।
कारयेत्पर्वदिवसे यदा च मलधारणम् ॥

पार्थिवलिङ्गपूजादिविचारो द्वितीयपरिच्छेदे उक्तः।

---

१. भविष्यपुराण का यह वचन है पाठ में थोड़ा भेद है—'सौवर्णी राजती ताम्री मृन्मयी च तथा भवेत्। पाषाणधातुयुक्ता वा रीतिकांस्यमयी तथा ॥ शुद्धदारुमयी वापि देवतार्चा प्रशस्यते।' इसके आगे 'अङ्गुष्ठपर्वादारम्य' से समान पाठ है।

२. वाराहपुराण में—'तत्र काष्ठेषु मधुकमानीय च वसुन्धरे। कृत्वा तत्प्रतिमां चैव प्रतिष्ठाविधिनाऽर्चयेत् ॥' इति ॥

३ देवीपुराण का वचन यों है—'सप्ताङ्गुलं समारभ्य यावच्च द्वादशाङ्गुलम्। गृहेष्वर्चा समाख्याता प्रासादे वा शुभाधिका ॥' इति।

४. प्रतिमापट्ट से प्रतिमा का धारण किये वस्त्रों और यन्त्र से देवी-देवताओं के तन्त्रोक्त यन्त्रों का, यह अर्थ है।

श्रीमद्भागवत में पत्थर, लकड़ी, लोहे, लेप्य, लेख्य, बालू, मनोमयी और मणि की, इस प्रकार आठ प्रकार की प्रतिमा कही गई है। देवीपुराण में लोहे, सोने और महुये की लकड़ी की ही प्रतिमा सात अंगुल से लेकर बारह अंगुल तक की घर में उत्तम होती है, ऐसा कहा है। पूजा करने वाले के तपोयोग से पूजा के आतिशय्य और बिम्बों के अभिरूपता से प्रतिमा में देवता का सान्निध्य प्राप्त होता है। पट्ट और यन्त्रों की प्रतिमा का स्नान प्रतिदिन नहीं करावे। जब ज्यादा मैली हो जाय तो पर्व के दिन स्नान करावे। पार्थिवलिंग के पूजा आदि का विचार द्वितीय परिच्छद में कह चुका हूँ।

अथ पञ्चसूत्रीनिर्णयः

लिङ्गोच्चता लिङ्गविस्तारो लिङ्गस्थौल्यं पीठविस्तारः प्रनालिकामानं चेति पञ्चसूत्राणि। तत्र लिङ्गमस्तकविस्तारं लिङ्गोच्चतातुल्यं कृत्वा तद्द्विगुणसूत्रवेष्टनार्हं लिङ्गस्थौल्यं कृत्वा लिङ्गात्सर्वतो लिङ्गसमविस्तारं पीठं वर्तुलं कुर्यात्। पीठोच्चता लिङ्गोच्चद्विगुणा, पीठाद्बहिः पीठोत्तरभागे लिङ्गसमदीर्घा, मूले दैर्घ्यसमविस्तारा, अग्रे तदर्धविस्तारा प्रनालिका। लिङ्गोच्चत्वत्रिगुणा पीठोच्चतेति केचित्।

लिंग की ऊँचाई, लिंग का विस्तार, लिंग की स्थूलता, आसन का विस्तार तथा नाली का मान, ये ही पंचसूत्र हैं। उसमें लिंग के मस्तक का विस्तार लिंग की ऊँचाई के समान करके उसके दुगुने सूत के लपेटने योग्य लिंग की स्थूलता करके लिंग से चारो ओर लिंग के समान विस्तृत गोल पीठ बनावे। पीठ की ऊँचाई लिंग की ऊँचाई से दुगुनी, पीठ से बाहर पीठ के उत्तरभाग में लिंग के समान लम्बी, मूल में लम्बाई के समान चौड़ाई, आगे उसके आधे विस्तार की नाली बनावे। कोई कहते है कि लिंग की ऊँचाई से तिगुनी पीठ की ऊंचाई हो।

अथ पीठमध्यभागे लिङ्गाद् द्विगुणस्थूलं पीठोच्चतातृतीयांशेन कण्ठं कुर्यात्। कण्ठस्योर्ध्वाधोभागयोः समं वप्रद्वयं कृत्वा पीठोपरि लिङ्गविस्तारषष्ठांशेन मेखलां कृत्वा तदन्तः संलग्नं तत्समं खातं कुर्यात्। प्रनालिकायामपि विस्तारतृतीयांशेन खातः पीठवन्मेखला च कार्येति[1]।

पीठ के मध्यभाग में लिंग से दुगुना मोटा पीठ की ऊंचाई के तृतीय भाग से कण्ठ बनावे। कंठ के ऊपर तथा नीचे वाले भाग के समान दो वप्र बनाकर पीठ के ऊपर लिंग के विस्तार के छठे भाग से मेखला बनाकर उसके मध्य से लगा हुआ उसी के समान खात करे। नाली में भी विस्तार के तीसरे भाग से खात और पीठ के सदृश मेखला बनावे।

अथ लिङ्गशालग्रामादिपूजाविचारः

गृहे लिङ्गद्वयं नार्च्यं शालग्रामद्वयं तथा।
द्वे चक्रे द्वारकायास्तु नार्च्ये सूर्यद्वयं तथा॥

---

१. गौतमी तन्त्र में पंचसूत्र का विधान—'लिङ्गमस्तकविस्तारो लिङ्गोच्छ्रायसमो मतः। परिधिस्तत्त्रिगुणितस्तद्वत्पीठं व्यवस्थितम्॥ प्रणालिका तथैव स्यात्पंचसूत्रविनिर्णयः।' पार्थिवलिंग में पंचसूत्र विधान अविचारणीय है—'पञ्चसूत्रविधानं च पार्थिवे न विचारयेत्। यथाकथञ्चिद्विधिना रमणीयं प्रकल्पयेत्।' इसके अतिरिक्त अन्य विस्तृत विवेचन एवं पार्थिवलिंग पर अर्पित नैवेद्यादि निर्माल्य के ग्राह्यत्व का वचन सिद्धान्तशेखर आदि ग्रन्थों में द्रष्टव्य है।

शक्तित्रयं त्रिविघ्नेशं द्वौ शङ्खौ नार्चयेत्सुधीः। अन्यत्र तु—
चक्राङ्कमिथुनं पूज्यं नैकं चक्राङ्कमर्चयेत्। इत्युक्तं तेन विकल्पः।

नार्चयेच्च तथा मत्स्यकूर्मादिदशकं गृहे।
अग्निदग्धाश्च भग्नाश्च न पूज्याः प्रतिमा गृहे॥
भग्ना वा स्फुटिता वापि शालग्रामशिला शुभा।
शालग्रामाः समाः पूज्याः समेषु द्वितयं न हि॥
विषमा नैव पूज्यन्ते विषमेष्वेक एव हि।

घर में दो लिंग या दो शालग्राम की पूजा नहीं करे। द्वारका के दो चक्र तथा दो सूर्य का पूजन नहीं करे। तीन गणेश तथा तीन शक्ति का और दो शंखों का पूजन न करे। दूसरी जगह तो—चक्र चिह्नित जोड़े की पूजा करे और चक्रांकित एक की पूजा नहीं करे ऐसा कहा है, इसलिये विकल्प है। इसी प्रकार मत्स्य, कूर्म आदि दस अवतारों का घर में पूजन न करे। आग से जले और टूटो हुई प्रतिमा की पूजा घर में न करे। किन्तु टूटी फूटी भी शालग्राम की शिला पूज्य है। सम शालग्राम की पूजा होती है, सम में दो की नहीं। विषम की पूजा नहीं की जाती, किन्तु विषम में एक की पूजा होती है।

ससुवर्णशालग्रामदाने[1] पृथ्वीदानफलम्। शतशालग्रामपूजनेऽनन्तफलम्। अविभक्तानामपि भ्रातॄणां देवतार्चनमग्निहोत्रं संध्या ब्रह्मयज्ञश्च पृथगेव[2]। स्त्री शूद्रो वा स्पर्शसहितं[3] शालग्रामचक्राङ्कितबाणलिङ्गानि नार्चयेत्।

शूद्रो वाऽनुपनीतो वा सधवा विधवाङ्गना।
दूरादेवास्पृशन् पूजां प्रकुर्याच्छिवकृष्णयोः॥

सुवर्णसहित शालग्राम का दान करने पर पृथिवीदान का फल होता है। सौ शालग्राम की पूजा करने में अनन्त फल होता है। एक में रहने वाले भी भाइयों का देवपूजन, अग्निहोत्र, सन्ध्या और ब्रह्मयज्ञ अलग ही होता है। स्त्री या शूद्र स्पर्श करके शालग्राम-चक्रांकित-बाणलिंग की पूजा न करे। शूद्र या अनुपनीत द्विज तथा सधवा या विधवा स्त्री स्पर्श नहीं करते हुए दूर ही से शिव और कृष्ण की पूजा करे।

शालग्रामबाणयोरेव स्पर्शननिषेधो न तु प्रतिमादौ।

---

१. वाराहे—'दद्याद् भक्ताय यो देवि शालग्रामशिलां नरः। सुवर्णसहितां दिव्यां पृथ्वीदानफलं लभेत्॥' तत्रैव—'यः पुनः पूजयेद् भक्त्या शालग्रामशिलाशतम्। तत्फलं नैव शक्तोऽहं वक्तुं वर्षशतैरपि॥' इति।

२. प्रयोगपारिजात में आश्वलायन ने कहा है—'पृथगप्येकपाकानां ब्रह्मयज्ञो द्विजातिनाम्। अग्निहोत्रं सुरार्चा च सन्ध्या नित्यं भवेत् पृथक्॥' इति।

३. वाराह के कथन से स्त्री शूद्रों को स्पर्शरहित पूजा करनी ही चाहिये—'शालग्रामं न स्पृशेत्तु हीनवर्णो वसुन्धरे। स्त्रीशूद्रकरसंस्पर्शो वज्रस्पर्शाधिको मतः॥ मोहाद्यः संस्पृशेच्छूद्रो योषिद्वाऽपि कदाचन। स्वपते नरके घोरे यावदाभूतसंप्लवम्॥। यदि भक्तिर्भवेत्तस्य स्त्रीणां वापि वसुन्धरे। दूरादेवास्पृशन् पूजां कारयेत् सुसमाहितः॥' इति।

सर्ववर्णैस्तु संपूज्याः प्रतिमाः सर्वदेवताः ।
लिङ्गान्यपि तु पूज्यानि मणिभिः[1] कल्पितानि च ॥ इत्युक्तेः ।
शालग्रामशिला क्रीता मध्यमा याचिताऽधमा ।
उक्तलक्षणसंपन्ना पारंपर्यक्रमागता ॥
उत्तमा सा तु विज्ञेया गुरुदत्ता तु तत्समा ।
तत्राप्यामलकीतुल्या पूज्या सूक्ष्मैव या भवेत् ॥
यथा यथा शिला सूक्ष्मा तथा स्यात्तु महत्फलम् ।
यवमात्रं तु गर्तः स्याद्यवार्धं लिङ्गमुच्यते ॥
शिवनाभिरिति ख्यातस्त्रिषु लोकेषु दुर्लभः ।

शालग्राम और बाणलिंग की ही पूजा में स्पर्श का निषेध है, प्रतिमा आदि में नहीं। सब देवताओं की प्रतिमाएँ सब वर्णों के लिये पूज्य हैं और मणियों से बनाए हुये लिंग पूजा के योग्य हैं, ऐसा वचन है। खरीदी हुई शालग्राम की शिला मध्यम, मांगी हुई अधम और कहे हुये लक्षणों से सम्पन्न एवं परंपरा से आई हुई शिला उत्तमा होती है। गुरु की दी हुई तो उत्तम के समान होती है। उसमें भी आंवला के समान छोटी ही शालग्राम की शिला पूजनीय होती है। जैसे-जैसे शालग्राम शिला छोटी होगी वैसे-वैसे उसका फल अधिक होगा। गर्त जौ के बराबर होता है। जव का आधा लिंग कहा जाता है, वह शिवनाभि नाम से विख्यात तीनों लोक में दुर्लभ है।

शालग्रामशिलायास्तु प्रतिष्ठा नैव विद्यते ॥
महापूजां तु कृत्वादौ पूजयेत्तां ततो बुधः ।
बाणलिङ्गानि[2] राजेन्द्र ख्यातानि भुवनत्रये ॥
न प्रतिष्ठा न संस्कारस्तेषामावाहनं तथा ।

वासुदेवसंकर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धा विप्राद्यैः क्रमेण पूज्याः । तल्लक्षणं तु—पञ्चचक्रो वासुदेवः, षड्भिश्चक्रैः प्रद्युम्नः, सप्तभिः संकर्षणः, एकादशभिरनिरुद्ध इति ।

प्रणवोच्चारणाच्चैव शालग्रामशिलार्चनात् ।
ब्राह्मणीगमनाच्चैव शूद्रश्चाण्डालतां व्रजेत् ॥

शालग्राम शिला की तो प्रतिष्ठा नहीं होती। आरंभ में उसकी महापूजा करके नित्यपूजा की जाती है। हे राजेन्द्र! बाणलिंगों की तो ख्याति तीनों भुवन में है। इसकी प्रतिष्ठा, संस्कार और

---

१. विष्णुधर्म में नव प्रकार की प्रतिमायें—'तयोरसम्भवेऽर्चा वै सा चेह नवधा स्मृता। रत्नजा हेमजा चैव राजती ताम्रजा तथा। रैतिक्यर्चा तथा लौही शैलजा द्रुमजा तथा। अधमाऽधमा च विज्ञेया मृन्मयी प्रतिमा च या ॥' वृद्धपराशरः—'शैलीं दारुमयीं हैमीं धात्वाद्याकारसम्भवाम्। प्रतिष्ठां वै प्रकुर्वीत प्रासादे वा गृहे नृप ॥' इति।

२. भविष्यपुराण का 'बाणलिङ्गानि०' और स्कन्दपुराण का 'शालग्रामशिलायास्तु०' यह वचन है। भरतमाला में मार्कण्डेयका वचन है—'कम्बुश्चक्रं शैलभवा नार्मदेयाऽब्जिनीपती। बाणो विष्णुशिला चैषां प्रतिष्ठां नैव कारयेत् ॥' पुराणसंग्रह में बाणलिङ्ग का स्वरूप बतलाया है—'पक्वजम्बुफलाकारं कुक्कुटाण्डसमाकृति। भुक्तिमुक्तिप्रदं चैव बाणलिङ्गमुदाहृतम् ॥' इति।

आवाहन नहीं होता। ब्राह्मण आदि के क्रम से वासुदेव, संकर्षण,प्रद्युम्न और अनिरुद्ध पूज्य होते हैं। उनका लक्षण तो—पांच चक्र वाले वासुदेव, छः चक्र वाले प्रद्युम्न, सात चक्रों से युक्त संकर्षण और ग्यारह चक्रों वाले अनिरुद्ध होते हैं। प्रणव के उच्चारण से, शालग्राम शिला के पूजन और ब्राह्मणी गमन से शूद्र चाण्डालत्व प्राप्त करता है।

अथ शूद्रस्य विप्रद्वारा शालग्रामपूजा

दीक्षायुक्तैस्तथा शूद्रैर्मद्यपानविवर्जितैः।
कर्तव्यं ब्राह्मणद्वारा शालग्रामशिलार्चनम्॥
विष्णुप्रीतिकरं नित्यं तुलसीकाष्ठचन्दनम्।
कार्तिके केतकीपुष्पं येन दत्तं हरेः कलौ॥
दीपदानं च देवर्षे तारितं तेन वै कुलम्।

मद्य नहीं पीने वाले और दीक्षायुक्त शूद्र, शालग्राम शिला का पूजन ब्राह्मण के द्वारा करावें। तुलसी काष्ठ और चन्दन प्रतिदिन विष्णु को प्रसन्न करने वाले हैं। जिसने कार्तिक के महीने में केवड़े का पुष्प तथा भगवान् को दीप अर्पित किया उसने कलियुग में अपने कुल को तार दिया।

शालग्रामसम्बन्धि तोयवच्चक्राङ्कशिलातोयस्यापि पानविधानात्सापि शालग्रामसन्निधौ पूज्या।

अग्राह्यं शिवनिर्माल्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम्।
शालग्रामस्य संस्पर्शात्सर्वं याति पवित्रताम्॥
मध्यमानामिकामध्ये पुष्पं संगृह्य पूजयेत्।
अङ्गुष्ठतर्जन्यग्राभ्यां निर्माल्यमपनोदयेत्॥
विना भस्मत्रिपुण्ड्रेण विना रुद्राक्षमालया।
पूजितोऽपि महादेवो न स्यात्तस्य फलप्रदः॥

शालग्राम सम्बन्धी जल की तरह चक्रचिह्नित शिला जल का भी पीने का विधान होने से वह शिला भी शालग्राम के समीप पूजा योग्य है। शिवनिर्माल्य—पत्र, पुष्प, फल और जल जो अग्राह्य हैं वे शालग्राम के स्पर्श से पवित्र हो जाते हैं। मध्यमा और अनामिका के बीच में पुष्प रख कर पूजा करे। अंगुष्ठ और तर्जनी के अग्रभाग से निर्माल्य को हटावे। त्रिपुण्ड्र भस्म तथा रुद्राक्ष की माला के विना पूजित भी महादेव पूजा करने वाले को फलप्रद नहीं होते।

विना मन्त्रं न बिभृयाद् रुद्राक्षान् भुवि मानवः।
पञ्चामृतं पञ्चगव्यं स्नानकाले प्रयोजयेत्॥
रुद्राक्षस्य प्रतिष्ठायां मन्त्रं पञ्चाक्षरं तथा।
त्र्यम्बकादिकमन्त्रं च तथा तत्र प्रयोजयेत्॥
अष्टोत्तरशतं कुर्याच्चतुःपञ्चाशदेव तु।
सप्तविंशतिमाना वा माला हीना न युज्यते॥

[1]सप्तविंशतिरुद्राक्षमालया देहसंस्थया ।
यः करोति नरः पुण्यं सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥

मनुष्य, भूलोक में बिना मन्त्र के रुद्राक्ष धारण न करे । स्नान समय में पंचामृत और पंचगव्य का प्रयोग करे । रुद्राक्ष की प्रतिष्ठा में पंचाक्षर मन्त्र अथवा त्र्यम्बक आदि मन्त्र का प्रयोग करे । रुद्राक्षमाला एक सौ आठ या पचास अथवा सत्ताईस दाने की बनावे, इससे हीन दानों की माला ठीक नहीं है । सत्ताईस रुद्राक्ष की माला को जो देह में धारण करता है वह पुरुष जो भी पुण्य करता है वह कोटिगुण फल देता है ।

अथ रुद्राक्षतुलस्यादिसर्वजपमालानां संस्कारः

कुशोदकसहितैः पञ्चगव्यैर्मालां प्रक्षाल्य ॐ ह्रीं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं इत्येतानि पञ्चाशन्मातृकाक्षराणि अश्वत्थपत्रस्थापितमालायां विन्यस्य ओं सद्यो जातं० ओं वामदेवाय० ओं अघोरेभ्यो० ओं तत्पुरुषाय० ओं ईशानः सर्वविद्यानां० इति पञ्च मन्त्रान् जपित्वा सद्योजातमिति मन्त्रेण मालां पञ्चगव्येन प्रोक्ष्य शीतजलेन प्रक्षाल्य वामदेवायेति चंदनेनाघृष्याघोरेति मालां धूपयित्वा तत्पुरुषायेति चन्दनकस्तूर्यादिना लेप-

---

१. यहाँ प्रजापति-कथित कामना विशेष से रुद्राक्ष की संख्या यों है—'मोक्षार्थी पंचविंशत्या धनार्थी त्रिंशता जपेत् । पुष्ट्यर्थी पंचविंशत्या पंचदश्याभिचारिके ॥ सप्तविंशतिरुद्राक्षमालया देहसंस्थया । यत्करोति नरः पुण्यं सर्वं कोटिगुणं भवेत् ।। कहीं 'सप्तविंशति' की जगह 'सप्तविंशतिमाना वा ततो हीनाऽधमाः स्मृताः' ऐसा पाठान्तर है ।

शिवरहस्य में एकमुखी द्विमुखी आदि रुद्राक्ष धारण की विशेषता बतलायी है—'एकवक्त्रः शिवः साक्षाद् ब्रह्महत्यां व्यपोहति । अवध्यत्वं प्रतिस्रोतो वह्निस्तम्भं करोति च ॥ द्विवक्त्रो हरगौरी स्याद् गोवधाद्यघनाशकृत् । त्रिवक्त्रो ह्यग्निजन्माथ पापराशिं प्रणाशयेत् ॥ चतुर्वक्त्रः स्वयं ब्रह्मा नरहत्यां व्यपोहति । पञ्चवक्त्रस्तु कालाग्निरगम्याभक्ष्यपापनुत् ॥ षड्वक्त्रस्तु गुहो ज्ञेयो भ्रूणहत्यादि नाशयेत् । सप्तवक्त्रस्त्वनन्तः स्यात् स्वर्णस्तेयादिपापहृत् ॥ विनायकोऽष्टवक्त्रः स्यात् सर्वानृतविनाशकृत् । भैरवो नववक्त्रस्तु शिवसायुज्यकारकः॥ दशवक्त्रः स्मृतो विष्णुर्भूतप्रेतभयापहः । एकादशमुखो रुद्रो नानायज्ञफलप्रदः ॥ द्वादशास्यस्तथादित्यः सर्वरोगनिबर्हणः । त्रयोदशमुखः कामः सर्वकामफलप्रदः ॥ चतुर्दशास्यः श्रीकण्ठो वंशोद्धारकरः परः ।'—

रुद्राक्षगुटिका का प्रमाण—'जातीफलप्रमाणेन जप्यं मद्दुदाहृतम् । बदरास्थिप्रमाणेन स्वल्पकं तदुदाहृतम् ॥' व्यासोक्त जप का प्रकार—'तर्जन्या न स्पृशेदक्षं जपयेन्न विधूनयेत् । अङ्गुष्ठस्य तु मध्यस्य परिवर्तं समाचरेत् ॥ मध्यमाकर्षणं त्वस्याः सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।' आह्निककारिका में 'मध्यमादिद्वयं पूर्वं जपकाले तु वर्जयेत् । तं वै मेरु विजानीयात् कथितं ब्रह्मणा पुरा ॥'—

सम्मोहनतन्त्र में माला का स्थापन—'गोमुखादौ ततो मालां गोपयेन्मातृजारवत् । कौशेयं रक्तवर्णं च पीतवस्त्रं सुरेश्वरि ॥ अथ कार्पासवस्त्रेण यत्नतो गोपयेत् सुधीः । वाससाऽऽच्छादयेन्मालां सर्वमन्त्रं महेश्वरि ॥ न कुर्यात् कृष्णवर्णं तु न कुर्याद्बहुवर्णकम् । न कुर्याद्रोमजं वस्त्रमुक्तवस्त्रेण गोपयेत ॥' माला के स्पर्शादि का नियम है—'वामेन न स्पृशेन्मालां न स्पृशेत्तामदीक्षितः । भूमौ न विन्यसेन्मालां नान्यमन्त्रं जपेत्तथा । अनामाङ्गुष्ठमाक्रम्य जपं कुर्यादुपांशुकम् ।' इति ।

यित्वेशान इति मन्त्रेण प्रतिमणिं शतवारं दशवारं वाभिमन्त्र्य अघोर इति मन्त्रेण मेरुं शतवारमभिमन्त्रयेत्। तत एतैरेव पञ्चभिर्मन्त्रैर्मालां पञ्चोपचारैः पूजयेदिति बोपदेवः।

कुशजलसहित पंचगव्य से माला का प्रक्षालन करके 'ॐ ह्रीं अं आं इं ईं इत्यादि मूल में लिखे पचास मातृकाक्षर का पीपल के पत्ते पर स्थापित माला में न्यास करके 'ॐ सद्यो जातं०' 'ॐ वामदेवाय०', 'ॐ अघोरेभ्य०', 'ॐ तत्पुरुषाय०', 'ॐ ईशानः सर्व०' इन पांचों मन्त्रों को जपकर 'सद्योजातं' इस मन्त्र से माला को पंचगव्य से प्रोक्षण करके ठंढे जल से प्रक्षालन करके 'वामदेवाय' इस मन्त्र से चन्दन से घर्षण करके 'अघोरेभ्यो' इस मन्त्र से माला को धूपित करके 'तत्पुरुषाय' इस मन्त्र से चन्दन कस्तूरी आदि का लेपन करके 'ईशान' मन्त्र से प्रत्येक मनियों को सौ बार या दस बार अभिमंत्रित करके माला-मेरु का 'अघोरेभ्यो' इस मन्त्र से सौ बार अभिमन्त्रण करे। तदनन्तर इन्हीं पाचों मन्त्रों से माला की पांचों उपचार से पूजा करे, यह बोपदेव का कथन है।

अथ रुद्राक्षधारणसंख्या

रुद्राक्षान्कण्ठदेशे दशनपरिमितान्मस्तके विंशती द्वे
षट्षट्कर्णप्रदेशे करयुगुलकृते द्वादश द्वादशैव।
बाह्वोरिन्दोः कलाभिर्नयनयुगकृते एकमेकं शिखायां
वक्षस्यष्टाधिकं यः कलयति शतकं स स्वयं नीलकण्ठः॥

रुद्राक्षदानाद्[1] रुद्रपदप्राप्तिः।

कंठ में रुद्राक्ष की माला बत्तीस दाने की, मस्तक पर चालिस की, दोनों कानों पर छ छ दाने की, दोनों हाथों में बारह बारह दाने की, दोनों बाहुओं में सोलह दाने की, दोनों आंखों के लिये एक एक दाना, शिखा में एक और छाती पर एक सौ आठ की जो पहनता है वह स्वयं नीलकण्ठ हो जाता है। रुद्राक्ष के दाने से रुद्रपद की प्राप्ति होती है।

अथ शिवविष्णुस्नानविचारः

पञ्चविंशत्पलं लिङ्गेष्वभ्यङ्गं कारयेदथ।
स्नापयेत्तिलतैलैश्च करयन्त्रोद्भवैः शिवम्॥
स्नानं पलशतं ज्ञेयमभ्यङ्गः पञ्चविंशतिः॥
पलानां द्विसहस्रेण महास्नानं जलेन तत्।
पयोदधिघृतक्षौद्रशर्कराद्यैस्ततः क्रमात्॥

---

१. प्रजापतिः—'यो ददाति द्विजेभ्यश्च रुद्राक्षं भुवि सन्मुखम्। तस्य प्रीतो भवेद्रुद्रः स्वपदं च प्रयच्छति॥' वाचस्पति में रुद्राक्षधारण का फल है—'रुद्राक्षा यस्य गात्रेषु ललाटे च त्रिपुण्ड्रकम्। स चाण्डालोऽपि सम्पूज्यः सर्ववर्णोत्तमो भवेत्॥ अभक्तो वा विभक्तो वा नीचो नीचतरोऽपि वा। रुद्राक्षान् धारयेद्यस्तु मुच्यते सर्वपातकैः॥ सहस्रं धारयेद्यस्तु रुद्राक्षाणां धृतव्रतः। तं नमन्ति सुराः सर्वे यथा रुद्रस्तथैव सः॥'—

रुद्राक्षधारण नहीं करने पर दोष बतलाया है—'अरुद्राक्षो जपः पुंसां तावन्मात्रफलप्रदः। यस्याङ्गे ह्यस्ति रुद्राक्ष एकोऽपि बहुपुण्यदः॥ विभूतिर्यस्य नो भाले नाङ्गे रुद्राक्षधारणम्। न हि वाण्यां शिवोचारस्तं त्यजेदन्त्यजं यथा॥' इति।

शिवस्य सर्पिषा स्नानं प्रोक्तं पलशतेन वै।
तावता मधुना चैव दध्ना च पयसापि च॥
पलसार्धसहस्रेण रसेनैवैक्षवेण च।
भक्त्या चोष्णोदकैः शीतोदकैः संस्नापयेच्छिवम्।
श्रीविष्णुं क्षीरदध्याद्यैः क्रमाद्दशगुणोत्तरैः[1]।
स्नापयेत्केचिदूचुश्च क्षीराद्यैः पञ्चभिः समैः॥

पच्चीस पल का अभ्यंग लिंगों में करे। शंकर को कोल्हू में पेरे हुए तिल के तेल से नहवावे। सौ पल तेल से स्नान और पच्चीस पल तेल से अभ्यंग करावे। दो हजार पल जल से महास्नान करावे। उसके बाद क्रम से दूध, दही, घी, मधु और शक्कर आदि से स्नान करावे। भक्तिपूर्वक शंकर का सौ पल घृत से तथा उतने ही मधु, दूध, दही से एवं डेढ़ हजार पल ऊख के रस से गरम और ठंडे जल से स्नान करावे। श्रीविष्णु को उत्तरोत्तर क्रम से दशगुणित दूध दही आदि से नहवावे। कुछ लोग कहते हैं कि दूध आदि पांचों सम भाग से स्नान करावे।

अथ श्रीविष्ण्वादिपञ्चायतनानि

विष्णुर्मध्ये शिवेभास्यसूर्यार्या ईशदिक्क्रमात्।
शम्भौ मध्ये विष्णुसूर्यगजास्यार्यास्तथा क्रमात्॥
रवौ मध्यगते रुद्रगणेशाच्युतशक्तयः।
मध्ये देवीविष्णुशिवगणेशरवयः क्रमात्॥
मध्ये गणपतिर्विष्णुशिवसूर्याम्बिकास्तथा।
ईशानदिक्क्रमेणैव[2] पञ्चायतनपञ्चकम्॥

---

१. स्कान्दे—'क्षीराद्दशगुणं दध्ना घृतेनैव दशोत्तरम्। घृताद्दशगुणं क्षौद्रं क्षौद्राच्चैक्षवजं तथा॥' ब्राह्मे—'देवानां प्रतिमा यत्र घृताभ्यङ्गक्षमा भवेत्। पलानि तत्र देयानि श्रद्धया पञ्चविंशतिः॥' इति।

२. वाचस्पति में पञ्चायतन देवता ये हैं—'आदित्यं गणनाथं च देवीं रुद्रं च केशवम्। पञ्चदैवत्यमित्युक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत्॥' पंचायतनसन्निवेश का वोपदेवोक्त क्रम है—'शम्भौ मध्यगते हरीनहरभूदेव्यो हरौ शङ्करेभास्येनागसुता रवौ हरगणेशाजाम्बिकाः स्थापिताः। देव्यां विष्णुहरेभवक्त्ररवयो लम्बोदरेऽजेश्वरेनाम्बाः शङ्करभागतोऽतिसुखदा व्यस्तास्तु हानिप्रदाः॥'—

ज्ञानमालायाम्—

शिवपंचायन

विष्णु		सूर्य
	शिव	
देवी		गणेश

—'यदा तु शंकरं मध्ये ऐशान्यां श्रीपतिं यजेत्। आग्नेय्यां च तथा हंसं नैर्ऋत्यां पार्वतीसुतम्॥ वायव्यां च सदा पूज्या भवानी भक्तवत्सला।' अर्थात् शिवपंचायन हो तो—मध्य में शंकर, ईशान में विष्णु, अग्निकोण में सूर्य, नैर्ऋत्य में गणेश और वायव्य में पार्वती को स्थापित करे।

विष्णुपंचायतन

शिव		गणेश
	विष्णु	
देवी		सूर्य

—'यदा तु मध्ये गोविन्दमीशान्यां शंकरं यजेत्। आग्नेय्यां गणनाथं च नैर्ऋत्यां तपनं तथा॥ वायव्यामम्बिकां चैव यजेन्नित्यं समाहितः।' अर्थात् विष्णुपंचायतन हो तो—मध्य में विष्णु, ईशान में शिव, अग्निकोण में गणेश, निर्ऋति में सूर्य और वायव्य में देवी को स्थापित करे।

यदि मध्य में विष्णु हैं तो ईशान कोण के क्रम से शंकर-सूर्य-देवी-गणेश, शंकर मध्य में हैं तो ईशान कोण के क्रम से विष्णु-सूर्य-गणेश-देवी, सूर्य मध्य में हों तो ईशानादि क्रम से शिव-गणेश-विष्णु-देवी, मध्य में देवी रहें तो ईशानादि क्रम से विष्णु-शिव-गणेश-सूर्य और मध्य में गणेश रहें तो ईशानादि क्रम से विष्णु-शिव-सूर्य-देवी की स्थापना करे। ईशानादि दिशा के क्रम से ये पांच पंचायतन होते हैं।

सूर्यपंचायतन



—'सहस्रांशुर्यदा मध्ये ऐशान्यां पार्वतीपतिम्। आग्नेय्यामेकदन्तं च नैर्ऋत्यामच्युतं तथा॥ वायव्यां पूजयेद्देवीं भोगमोक्षैकमूलिकाम्।' अर्थात् सूर्यपंचायतन हो तो—मध्य में सूर्य, ईशान में शिव, अग्निकोण में गणेश, निर्ऋति में विष्णु और वायव्य में देवी को स्थापित करे।

देवीपंचायतन



—'भवानीं तु यदा मध्ये ऐशान्यां माधवं यजेत्। आग्नेय्यां पार्वतीनाथं नैर्ऋत्यां गणनायकम्। प्रद्योतनं तु वायव्यामाचार्यस्तु प्रपूजयेत्।' अर्थात् देवीपंचायतन हो तो—मध्य में देवी, ईशान में विष्णु, अग्निकोण में शिव, निर्ऋति में गणेश और वायव्य में सूर्य को स्थापित करे।

गणेशपंचायतन



—'हेरम्बं तु यदा मध्ये ऐशान्यामच्युतं यजेत्। आग्नेय्यां पंचवक्त्रं तु नैर्ऋत्यां द्युमणिं यजेत्॥ वायव्यामम्बिकां चैव यजेन्नित्यमतन्द्रितः।' अर्थात् गणेशपंचायतन हो तो—मध्य में गणेश, ईशान में विष्णु, अग्निकोण में शिव, निर्ऋति में सूर्य और वायव्य में देवी को स्थापित करे।

रामपंचायतन



रामार्चनचन्द्रिकायाम्—'रामचन्द्रं यजेन्मध्ये वामे जनकनन्दिनीम्। दक्षिणे लक्ष्मणं चैव अग्रतो मारुतिं तथा॥' अर्थात् श्रीराम को बीच में, इनके वामभाग में श्रीसीता और शत्रुघ्न, दक्षिणभाग में लक्ष्मण और भरत को स्थापित कर पूजे। कहीं राम-सीता के पीछे की ओर सेवकभाव से लक्ष्मण और भरत को स्थापित कर पूजते हैं।

इस प्रकार स्थापित एवं पूजित होने पर ये सुखदायक और व्यतिक्रम से स्थापित एवं पूजित होने पर हानिकारक होते हैं।

ग्रन्थान्तर में शंकर के पारिपार्श्वक—'बाणरावणचण्डीशनन्दीभृङ्गीरिटादयः। सदाशिवप्रसादं ते सर्वे गृह्णन्तु शाम्भवाः॥' विष्णु के पारिपार्श्वक—'विष्वक्सेनोद्धवाक्रूराः सनकाद्याः शुकादयः। महाविष्णुप्रसादं ते सर्वे गृह्णन्तु वैष्णवाः॥' सूर्य के पारिपार्श्वक—'माठरः पिङ्गलो दण्डः चण्डांशोः पारिपार्श्वकाः। प्रभाकरप्रसादं ते सर्वे गृह्णन्तु पार्षदाः॥' देवी के पारिपार्श्वक—'शक्तिरुच्छिष्टचाण्डाली गणेशः सविता शची। महादेवीप्रसादं ते सर्वे गृह्णन्तु पार्षदाः॥' गणेश के पारिपार्श्वक—'गणेशो गालवो गार्ग्यो मङ्गलश्च सुधाकरः। गणेशस्य प्रसादं ते सर्वे गृह्णन्तु गाणपाः॥' इति।

अथ केशवादिचतुर्विंशतिमूर्तिलक्षणानि

अथ केशवादिचतुर्विंशतिमूर्तिनिर्णायकबोपदेवश्लोकः सिन्धौ व्याख्यातः, तस्यायं संग्रहः—

केशवादेश्चतुर्बाहोर्दक्षिणोर्ध्वकरक्रमात् ।
शङ्खचक्रगदापद्मायुधैः केशव उच्यते ॥
नारायणः पद्मगदाचक्रशङ्खायुधैः क्रमात् ।
माधवश्चक्रशङ्खाभ्यां पद्मेन गदया भवेत् ॥
गोविन्दो गदया पद्मशङ्खचक्रैः क्रमाद्भवेत् ।
विष्णुः पद्मेन शङ्खेन चक्रेण गदया क्रमात् ॥
शङ्खपद्मगदाचक्रैर्मधुसूदन ईरितः ।
त्रिविक्रमो गदाचक्रशङ्खपद्मैरनुक्रमात् ॥
वामनः शङ्खचक्राभ्यां पद्मेन गदयापि च ।
चक्रेण गदया शङ्खपद्माभ्यां श्रीधरः स्मृतः ॥
हृषीकेशः स्मृतश्चक्रपद्मशङ्खगदायुधैः ।
पद्मनाभः पद्मचक्रगदाशङ्खैः क्रमात्स्मृतः ॥

केशव आदि चौबीस मूर्त्ति का निर्णय करने वाला बोपदेव का श्लोक निर्णयसिन्धु में विख्यात है, उसका यह संग्रह है—चार बाहु वाले केशव आदि के दाहिने ऊपर वाले हाथ के क्रम से शंख चक्र, गदा, पद्म के आयुधों से केशव कहलाते हैं। पद्म, गदा, चक्र और शंख के आयुधों के क्रम से नारायण कहलाते हैं। चक्र, शंख, पद्म और गदा धारण से माधव कहलाते हैं। गदा, पद्म, शंख और चक्र के क्रम से धारण करने पर गोविन्द नाम वाले होते हैं। पद्म, शंख, चक्र और गदा क्रम से धारण करने पर विष्णु नाम से ख्यात होते हैं। शंख, पद्म, गदा और चक्र धारण करने से मधुसूदन कहलाते हैं। क्रमानुसार गदा, चक्र, शख और पद्म के धारण से त्रिविक्रम नाम पड़ा है। शंख, चक्र, पद्म तथा गदा से वामन भगवान् होते हैं। चक्र, गदा, शंख और पद्म से श्रीधर नामधारी होते हैं। चक्र, पद्म, शंख और गदायुध होने से हृषीकेश नाम होता है। पद्म, चक्र, गदा और शंख से पद्मनाभ भगवान् होते हैं।

दामोदरः शङ्खगदाचक्रपद्मैरुदीर्यते ।
संकर्षणः शङ्खपद्मचक्रायुधगदायुधैः ॥
वासुदेवश्चक्रगदापद्मशङ्खाख्यलक्षणैः ।
प्रद्युम्नः स्याच्छङ्खगदापद्मचक्रैः क्रमाद्धृतैः ॥
अनिरुद्धो गदाशङ्खपद्मचक्रैरनुक्रमात् ।
पद्मशङ्खगदाचक्रायुधैः स्यात्पुरुषोत्तमः ॥
अधोक्षजो गदाशङ्खचक्रपद्मैः करस्थितैः ।
नरसिंहः पद्मगदाशङ्खचक्रायुधैर्भवेत् ॥

अच्युतः पद्मचक्राभ्यां शङ्खेन गदया क्रमात् ।
जनार्दनश्चक्रशङ्खगदापद्माढ्यबाहुभिः ॥
उपेन्द्रो गदया चक्रपद्मशङ्खान्वितैः करैः ।
चक्रपद्मगदाशङ्खैः करस्थैः स्यात् क्रमाद्धरिः ॥
श्रीकृष्णाख्यो गदापद्मचक्रशङ्खैर्मतो विभुः ।
इति प्रोक्ताः केशवादिचतुर्विंशतिमूर्तयः ॥

शंख, गदा, चक्र और पद्म से दामोदर नाम होता है। शंख, पद्म, चक्र और गदायुध होने से संकर्षण नाम वाले होते हैं। चक्र, गदा, पद्म और शंख के लक्षण से वासुदेव कहलाते हैं। शंख, गदा, पद्म और चक्र को क्रम से धारण करने पर प्रद्युम्न संज्ञा होती है। क्रम से गदा, शंख, पद्म और चक्र से भूषित अनिरुद्ध नाम वाले होते हैं। पद्म, शंख, गदा और चक्रायुध से पुरुषोत्तम संज्ञा होती है। गदा, शंख, चक्र और कमल के हाथ में रहने से भगवान् को अधोक्षज नाम से पुकारते हैं। पद्म, गदा, शंख और चक्रायुध होने से नरसिंह नाम होता है। क्रम से पद्म, चक्र, शंख और गदा से अच्युत होते हैं। चक्र, शंख, गदा और पद्म से सुशोभित बाहु वाले जनार्दन होते हैं। गदा, चक्र, पद्म और शंख युक्त हाथों से उपेन्द्र संज्ञा होती है। क्रम से हाथों में चक्र, पद्म, गदा और शंख के रहने पर प्रभु का नाम हरि होता है। गदा, पद्म, चक्र और शंख वाले विभु की श्रीकृष्ण ऐसी आख्या होती है। केशव आदि चौबीस मूर्तियों के ये लक्षण कहे हैं।

अथ सिन्ध्वनुसारेण देवप्रतिष्ठाप्रयोगः

यजमानो द्वादशादिहस्तं 'मण्डपं कृत्वा आग्नेये पूर्वतो वा हस्तमात्रं कुण्डं स्थण्डिलं वा कृत्वा मध्ये वेदीं तदुपरि सर्वतोभद्रं ग्रहचिकीर्षायां पूर्वत ईशान्यां वा ग्रहवेदीं प्रासादसंस्कारे मण्डपसंस्कारे वा चिकीर्षिते नैर्ऋते वास्तुपीठं कृत्वा 'अस्यां मूर्तौ लिङ्गे वा देवतासान्निध्यार्थं दीर्घायुर्लक्ष्मीसर्वकामसमृद्ध्यक्षय्यसुखकामोऽमुकदेवमूर्तिप्रतिष्ठां करिष्ये' इति संकल्प्य स्वस्तिवाचनादिनान्दीश्राद्धान्ते आचार्यं वृत्वाष्टौ चतुरो वा ऋत्विजो वृत्वा पूजयेत् ।

---

१. देवप्रतिष्ठा-जलाशयाद्युत्सर्ग-महारुद्रादि याग-तुलादानादि में कर्मोपयुक्त ८, १०, १२, १४, १६, १८, २०, २४, २८, ३२ आदि हाथ की लम्बाई चौड़ाई का बाहर में बारह मध्य में चार स्तम्भयुक्त मध्य में ऊच्च चारो दिशाओं में जिसका पटल ढलता हुआ चतुरस्र और वितान ध्वजपताकादियुक्त मण्डप बनाना चाहिये। कोटिहोम में मण्डप का स्तम्भप्रमाण—'मण्डपे मध्यमाः स्तम्भा मण्डपार्धप्रमाणतः। समन्ततस्त्रिभागेन परितो द्वादशापरे॥ शालवृक्षोद्भवाः स्तम्भाः मण्डपार्धप्रमाणतः। समन्ततस्त्रिभागेन द्वादशान्ये च वेदितः॥' पंचरात्रे—'मण्डपाः कर्मसु प्रोक्ता अल्पा मध्या तथोत्तमाः। यथादेशं यथाकालं प्रयोज्यास्ते विचक्षणैः॥' 'गृहे देवालये वापि संकीर्णं यत्र दृश्यते। तत्र कार्यं मण्डपज्ञैः सश्लिष्टं मण्डपद्वयम्॥' सिद्धान्तशेखरे—'स्थलादर्काङ्गुलोच्छ्रायं मण्डपस्थलमीरितम्।' महाकपिलपञ्चरात्रे तु—'उच्छ्राये हस्तमात्रं स्यात्सुसमं च सुशोभनम्॥' मात्स्ये समभूमौ मण्डपरचनोक्ता अतो मण्डपभूम्युच्छ्रितेः कृताकृतमिति प्रतिष्ठेन्दुः। गोविन्दार्चनचन्द्रिकायाम्—'मण्डपोपरि बध्नीयादतिश्वेतं वितानकम्। अलंकुर्यात्पुष्पमालादिभिरेनं तु वेष्टयेत्॥ अंशैः समुन्नतां वाऽपि तारतम्यं विलोक्य च। सामग्र्यादेः समावेशो यथा स्यादिति मण्डपः॥' अलङ्करणासम्भवे पुष्पमालापल्लवैर्वा मण्डपालङ्कारोऽवश्यं सम्पादनीय इति रुद्रकल्पद्रुमः। मण्डपादिसम्बन्धी विशेषविचार अन्यत्र देखें।

यजमान बारह आदि हाथ का मण्डप और आग्नेय या पूर्व दिशा में एक हाथ का कुण्ड या स्थण्डिल बनाकर बीच में वेदी उसके ऊपर सर्वतोभद्र, ग्रहों के पूजन करने की इच्छा हो तो पूर्व या ईशान में ग्रहवेदी, प्रसाद संस्कार या मण्डप-संस्कार की इच्छा हो तो नैर्ऋत्य दिशा में वास्तुपीठ बनाकर 'इस मूर्ति या लिंग में देवतासान्निध्य के लिये दीर्घ आयु, लक्ष्मी, सम्पूर्ण कामनाओं की समृद्धि और अक्षय सुख की कामना से अमुक देवमूर्ति की प्रतिष्ठा करूँगा' ऐसा संकल्पपूर्वक स्वस्तिवाचन आदि नान्दीश्राद्धपर्यन्त करके आचार्य और आठ या चार ऋत्विजों का वरण कर पूजा करे।

आचार्यो यदत्रेति सर्षपान् विकीर्यापोहिष्ठेति कुशोदकैर्भूमिं प्रोक्ष्य देवा आयान्तु यातुधाना अपयान्तु विष्णो देवयजनं रक्षस्वेति भूमौ प्रादेशं कृत्वा मण्डप-प्रतिष्ठां कृत्वा न कृत्वा वा मूर्तिं पञ्चगव्यहिरण्ययवदूर्वाश्वत्थपलाशपर्णान्युदकुम्भे प्रक्षिप्य ताभिरद्भिरापोहिष्ठेति तिसृभिः,

आचार्य 'यदत्र' इस मन्त्र से सरसों को बिखेर कर 'आपोहिष्ठा' इस मन्त्र से कुशोदक से भूमि का प्रोक्षण कर 'देवा आयान्तु, यातुधाना अपयान्तु, विष्णो देवयजनं रक्षस्व' इस मन्त्र से भूमि में प्रादेशमात्र रेखा खींच कर मण्डप प्रतिष्ठा करके या न करके मूर्त्ति को पंचगव्य, सुवर्ण, जव, दूब और पीपल के पत्तों को जल-कुम्भ में छोड़कर उस जल से, 'आपोहिष्ठा' इन तीन ऋचाओं से,

हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका यासु जातः कश्यपो यास्विन्द्रः। अग्निं या गर्भं दधिरे विरूपास्ता न आपः शꣳस्योना भवन्तु ॥१॥

यासाꣳराजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यं जनानाम्। मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता० ॥ २ ॥

यासां देवादि विकृण्वन्ति भक्षं या अन्तरिक्षे बहुधा भवन्ति। याः पृथिवीं पयसोन्दन्ति शुक्रास्तान० ॥ ३ ॥

शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः शिवया तनुवोपस्पृशत त्वचं मे। सर्वाꣳअग्नी-ꣳरप्सुषदो हुवे वो मयि वर्चो बलमोजो निधत्त ॥ ४ ॥

पवमानः सुवर्जनः। पवित्रेण विचर्षणिः। यः पोता स पुनातु मा। पुनन्तु मा देवजनाः। पुनन्तु मनवो धिया। पुनन्तु विश्व आयवः। जातवेदः पवित्रवत्। पवित्रेण पुनाहि मा। शुक्रेण देवदीद्यत्। अग्ने क्रत्वाक्रतूꣳरनु ॥ १ ॥

यत्ते पवित्रमर्चिषि। अग्ने विततमन्तरा। ब्रह्म तेन पुनीमहे। उभाभ्यां देव-सवितः। पवित्रेण सवेन च। इदं ब्रह्म पुनीमहे। वैश्वदेवी पुनती देव्यागात्। यस्यै बह्वीस्तनुवो वीतपृष्ठाः। तया मदन्तः सधमाद्येषु। वयꣳस्याम पतयो रयीणाम् ॥२॥

वैश्वानरो रश्मिभिर्मा पुनातु। वातः प्राणेनेषिरो मयोभूः। द्यावापृथिवी पयसा पयोभिः। ऋतावरी यज्ञिये मा पुनीताम्। बृहद्भिः सवितस्तृभिः। वर्षिष्ठै-र्देवमन्मभिः। अग्ने दक्षैः पुनाहि मा। येन देवा अपुनत। येनापो दिव्यंकशः। तेन दिव्येन ब्रह्मणा ॥ ३ ॥

इदं ब्रह्म पुनीमहे । यः पावमानीरध्येति । ऋषिभिः संभृतꣳरसम् । सर्वꣳस-पूतमश्नाति । स्वदितं मातरिश्वना । पावमानीर्यो अध्येति । ऋषिभिः संभृतꣳर-सम् । तस्मै सरस्वतीदुहे । क्षीरꣳसर्पिर्मधूदकम् । पावमानीः स्वस्त्ययनीः ॥ ४ ॥

सुदुघाहि पयस्वतीः । ऋषिभिः संभृतो रसः । ब्राह्मणेष्वमृतꣳहितम् । पाव-मानीर्दिशंतु नः । इमं लोकमथो अमुम् । कामान्त्समर्धयन्तु नः । देवीर्देवैः समाभृ-ताः । पावमानीः स्वस्त्ययनीः । सुदुघाहि घृतश्चुतः । ऋषिभिः संभृतो रसः ॥ ५ ॥

ब्राह्मणेष्वमृतꣳहितम् । येन देवाः पवित्रेण । आत्मानं पुनते सदा । तेन सहस्रधारेण । पावमान्यः पुनंतु मा । प्राजापत्यं पवित्रम् । शतोद्यामꣳहिरण्मयम् । तेन ब्रह्मविदो वयम् । पूतं ब्रह्म पुनीमहे । इन्द्रः सुनीती सह मा पुनातु । सोमः स्वस्त्या वरुणः समीच्या । यमो राजा प्रमृणाभिः पुनातु मा । जातवेदा मोर्जयन्त्या पुनातु ॥ ६ ॥

इत्यनुवाकेन चाभिषिच्य व्याहृतिभिरिदं विष्णुरिति च फलयवदूर्वाः समर्प्य रक्षोहणमिति देवहस्ते कङ्कणं बध्वा वाससाच्छाद्य अवते हेळो उदुत्तम-मिति जलेऽधिवासयेत् ।

तथा 'हिरण्यवर्णाः शुचयः०' 'या सा०राजा वरुणो०' 'या सां देवादि विकुण्वन्ति' 'शिवेन मा चक्षुषा' 'पवमानः सुवर्जनः' 'यत्ते पवित्रमर्चिषि' 'वैश्वानरो रश्मिभिर्मा पुनातु' 'इदं ब्रह्म पुनीमहे' 'सुदुघाहि पयस्वतीः' 'ब्राह्मणेष्वमृतꣳ हितं' मूलोक्त इन अनुवाकों से अभिषेक करके व्याहृतियों और 'इदं विष्णु' से फल, यव और दूर्वा समर्पण करके 'रक्षोहणं' इस मन्त्र से देवता के हाथ में कंकण बांधकर वस्त्र से आच्छादन करके 'अवते हेडो उदुत्तमं' इससे जलाधिवासन करे ।

अथ चलप्रतिष्ठायामग्निं प्रतिष्ठाप्य ध्यात्वा ग्रहादिपक्षे ग्रहान् वास्तुदेवताश्च प्रतिष्ठाप्यान्वादध्यात् । चक्षुषी आज्येनेत्यन्ते ग्रहादिहोमपक्षे ग्रहानधिदेवतादींश्च समिच्चर्वाज्येन वास्तुपीठदेवताश्चान्वाधाने उद्दिश्य इन्द्रं पृथिवीं शर्वम् अग्निम् अग्निमूर्तिं पशुपतिं यमं यजमानमूर्तिम् उग्रं निर्ऋतिं सूर्यमूर्तिं रुद्रं वरुणं जलमूर्तिं भवं वायुं वायुमूर्तिम् ईशानं कुबेरं सोममूर्तिं महादेवम् ईशानम् आकाशं भीमम् एताः लोकपालमूर्तिमूर्तिपतिदेवताः, पलाशोदुम्बराश्वत्थशम्यपामार्गसमिद्भिराज्या-हुतिभिस्तिलाहुतिभिश्च प्रतिदैवतं प्रतिद्रव्यमष्टाष्टसंख्याकाभिः, स्थाप्यदेवताममुकां पलाशोदुम्बराश्वत्थशम्यपामार्गसमित्तिलचर्वाज्यैः प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरसहस्रमष्टोत्तर-शतमष्टाविंशतिसंख्यया वा अग्निर्यजुर्भिरित्यनुवाकेन विश्वान्देवांस्तिलाज्यभ्यां दशदशाहुतिभिः ।

चलप्रतिष्ठा में अग्नि की स्थापना कर ध्यान करके ग्रहादि पक्ष में ग्रहों और वास्तुदेवता की भी प्रतिष्ठा कर अन्वाधान करे । चक्षुषी आज्येन के बाद ग्रहादि होम पक्ष में ग्रहों और ग्रहों के अधिदेवता आदि को समिधा, चरु और घी से और वास्तुपीठ देवता को अन्वाधान का उद्देश कर

इन, पृथिवी, शर्व, अग्नि और अग्निमूर्ति, पशुपति, यम, यजमान मूर्ति, उग्र, निर्ऋति, सूर्यमूर्ति, रुद्र, वरुण, जलमूर्ति, भव, वायु, वायुमूर्ति, ईशान, कुबेर, सोममूर्ति, महादेव, ईशान, आकाश और भीम, इन सब को और लोकपाल मूर्ति मूर्तिपति देवता को पलाश, गूलर, शमी और अपामार्ग की समिधा से, घृत की आहुति और तिल की आहुतियों से प्रतिदेवता को प्रत्येक द्रव्य की आठ संख्याओं से, स्थाप्य देवता को पलाश, गूलर, पीपल, शमी, अपामार्ग की समिधा, तिल, चरु और घृत से, प्रतिद्रव्य एक सौ आठ, एक हजार आठ या अट्ठाइस संख्या से 'अग्निर्यजुर्भिः' इस अनुवाक से सम्पूर्ण देवताओं को तिल घृत से दस दस आहुति दे।

एवं द्वितीये पर्याये एता एव देवतास्तत्तत्संख्याकैस्तैरेव द्रव्यैः। एवं तृतीये पर्याये एता एव देवतास्तत्तत्संख्याकैस्तैरेव द्रव्यैर्ब्रह्मादिमण्डलदेवतास्तिलाज्याहुतिभिः प्रतिदैवतं दश दश संख्याकाभिः। शेषेण स्विष्टकृतमित्यादि।

इसी प्रकार दूसरे पर्याय में इतने ही देवता को पूर्वोक्त संख्या और उन्हीं द्रव्यों से एवं तीसरे पर्याय में इन्हीं सब देवताओं को उन्हीं-उन्हीं संख्या और द्रव्यों से ब्रह्मादिमण्डलदेवता को तिल घृत की आहुतियों से प्रत्येक देवता को दस दस संख्या से आहुति दे। शेष से स्विष्टकृत् आदि करे।

शूर्पे प्रधानदेवतार्थं तूष्णीं चतुरो मुष्टीन्निरुप्य होमपर्याप्तं गृहीत्वा तथैव प्रोक्ष्य गोक्षीरे नीवारचरुं श्रपयेदाज्यभागान्ते यजमानः इदमुपकल्पितमन्वाधानोक्तद्रव्यजातमन्वाधानोक्ताहुतिसंख्यापर्याप्तमन्वाधानोक्ताभ्यो यक्ष्यमाणाभ्यो देवताभ्योस्तु न ममेति त्यागं कुर्यात्। गृहसिद्धान्नादिना ग्रहादिहोमं विधाय लोकपालमूर्तिमूर्तिपतिभ्यः समित्पञ्चकं तिलाज्ये[1] च जुहुयात्।

सूप में प्रधान देवता को मौन होकर चार मुट्ठी रख कर होम के योग्य लेकर उसी प्रकार प्रोक्षण कर गाय के दूध में नीवार का चरु पकावे। आज्य भाग के अन्तमें यजमान-'यह सामने रखा हुआ अन्वाधानोक्त द्रव्य समूह अन्वाधानोक्त संख्या के पर्याप्त अन्वाधानोक्त देवताओं के लिये हैं मेरा नहीं' इस प्रकार त्याग करे। घर में बने हुए अन्न आदि से ग्रह आदि का होम करके लोकपाल मूर्ति और मूर्तिपति के लिये पांच समिधा, तिल और घृत से होम करे।

प्रतिद्रव्यहोमान्ते देवं पादनाभिशिरःसु स्पृशेत्। आज्यहोमे चोत्तरतः सजलकुम्भे संपातान्नयेत्। तेषां मन्त्राः—इन्द्रायेन्दो इतीन्द्रस्य, स्योनेति पृथिवीमूर्तेः, अघोरेभ्य इति तत्पतेः शर्वस्य, अग्न आयाहीत्यग्नेः, अग्निं दूतमित्यग्निमूर्तेः, नमः शर्वाय च पशुपतये चेति पशुपतेः, यमाय सोममिति यमस्य, असिहि वीरेति यजमानमूर्तेः, स्तुहि श्रुतमिति तत्पतेरुग्रस्य, असुन्वन्तमिति निर्ऋतेः, आकृष्णेनेति सूर्यमूर्तेः।

प्रत्येक द्रव्य के होम के बाद देवता के पैर, नाभि और सिर का अच्छी तरह से स्पर्श करे। घृतहोम में उत्तर की ओर जलसहित कुम्भ में संपातों को छोड़े। उनके मन्त्र ये हैं—

---

१. होम में ईश्वरसंहितोक्त तिल आज्यका महत्त्व—'सर्वथा होमकर्मार्थं तिलमाज्यं न लोपयेत्। तिलाज्ययोरभावे तु हवनं स्यान्निरर्थकम्॥' इति।

'इन्द्रायेन्दो' यह इन्द्र का, 'स्योना' यह पृथिवीमूर्त्ति का, 'अघोरेभ्यः' यह मूर्त्तिपति शर्व का, 'अग्न आयाहि' यह अग्नि का, 'अग्निन्दूतं' यह अग्निमूर्त्ति का, 'नमः शर्वाय च पशुपतये च' यह पशुपति का, 'यमाय सोमं' यह यम का, 'असिहि वीर' यह यजमान मूर्त्तिका, 'स्तुहि श्रुतं' यह मूर्त्तिपति उग्रका, 'असुन्वन्तं' यह निर्ऋति का और 'आकृष्णेन' यह सूर्यमूर्त्ति का मंत्र है।

यो रुद्रो अग्नाविति तत्पते रुद्रस्य, इमं मे० वायोः वरुणस्य, शन्नोदेवी० जलमूर्तेः, नमो भवाय चेति भवस्य, आनो नियुद्भिः० वायोः, वात आवातु० वायुमूर्तेः, तमीशानं० ईशानस्य, आप्यायस्व० कुबेरस्य, वयं सोम० सोममूर्तेः, तत्पुरुषाय० महादेवस्य, अभित्वादे० ईशानस्य, आदित्प्रत्नस्य० आकाशस्य, नम उग्राय चेति भीमस्य।

'यो रुद्रो अग्नौ' यह मूर्त्तिपति रुद्र का, 'इमं मे०' यह वरुण का, 'शन्नो देवी०' यह जलमूर्त्ति का, 'नमो भवाय च' यह भव का, 'आनो नियुद्भिः' यह वायु का, 'वात आवातु०' यह वायुमूर्ति का, 'तमीशानं०' यह ईशान का, 'आप्यायस्व' यह कुबेर का, 'वयं सोम०' यह सोममूर्ति का, 'तत्पुरुषाय०' यह महादेव का, 'अभित्वादे०' यह ईशान का, 'आदित्प्रत्नस्य' यह आकाश का और 'नम उग्राय च' यह भीम का मन्त्र है।

ततः स्थाप्यदेवमन्त्रेण समित्पञ्चकपायसचरुतिलाज्यहोमः। प्रतिद्रव्यहोमान्ते देवे पादनाभिशिरःस्पर्शः। देवमन्त्रश्च तान्त्रिको मूलमन्त्रो देवगायत्री वा वैदिको वा ग्राह्यः। ॐ अग्निर्यजुर्भिः सवितास्तोमैः इन्द्र उक्थामदैः मित्रावरुणा वाशिषा अङ्गिरसो धिष्णियैरग्निभिः मरुतः सदो हविर्धानाभ्यां आपः प्रोक्षणीभिः ओषधयो बर्हिषा अदितिर्वेद्या सोमो दीक्षया त्वष्टेध्मेन विष्णुर्यज्ञेन वसव आज्येन आदित्या दक्षिणाभिः विश्वेदेवा ऊर्जा पूषा स्वधाकारेण बृहस्पतिः पुरोधसा प्रजापतिरुद्गीथेन अन्तरिक्षं पवित्रेण वायुः पात्रैः अहꣳश्रद्धया स्वाहेत्यनुवाकेन तिलाज्ययोर्दश दशाहुतयः।

तदनन्तर स्थापना की जाने वाली देवता के मन्त्र से पांच समिधा से खीर-चरु-तिल-घृत से होम करे। प्रत्येक द्रव्य के होम के बाद देवता के पैर, नाभि और सिर का स्पर्श करे। देवता का मन्त्र तान्त्रिक, मूलमन्त्र, देवगायत्री या वैदिक ग्राह्य है। 'ॐअग्निर्यजुर्भिः सविता स्तोमैः' इत्यादि मूलोक्त अनुवाक से तिल घृत की दस दस आहुति दे।

ततो देवस्य पादौ स्पृशेत्। संपातजलेन देवमभिषिञ्चेत्। एवमेव द्वितीयपर्यायेण हुत्वा देवस्य नाभिं स्पृशेत्। एवं तृतीयपर्यायेण हुत्वा शिरः स्पृशेत्। प्रतिपर्यायं संपाताभिषेकः। एकपर्याये आहुतिसंख्या पलाशसमिधः १९२ उदुम्बर. १९२ अश्वत्थ. १९२ शमी. १९२ अपामार्ग. १९२ आज्यम्. १९२ तिलाः १९२। स्थाप्यदेवस्याष्टाविंशतिपक्षे समित्पञ्चकं १४० चर्वाज्यतिलाः ८४ अनुवाक २० मिलिताः १५८८ पर्यायत्रये ४७६४।

तदनन्तर देवता के चरणों का स्पर्श करे और संपातजल से देवता का अभिषेक करे। इसी प्रकार दूसरे पर्याय से होम करके देवता की नाभि का स्पर्श करे। तीसरे पर्याय में भी होम करके

सिर का स्पर्श करे। प्रति पर्याय में संपात से अभिषेक करे। एक पर्याय में आहुति की संख्या पलाश समिधा की १९२, गूलर की १९२, पीपल की १९२, शमी की १९२, अपामार्ग की १९२, घृत की १९२, तिल की १९२। स्थाप्य देवता के अट्ठाइस संख्या के पक्ष में पांचों समिधा की १४०, चरु-घृत-तिल की ८४, अनुवाक २०, सबका जोड़ १५८८ और तीनों पर्याय में ४४६४ हुआ।

एवं हुत्वार्चां शोधयेत्, देवं नत्वा—

स्वागतं देव देवेश विश्वरूप नमोस्तु ते।
शुद्धेऽपि त्वदधिष्ठाने शुद्धिं कुर्मः सहस्व ताम्॥

इति प्रार्थ्य उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पत इति सर्त्विगुत्थाप्याग्न्युत्तारणं कुर्यात्। अग्निः सप्तिमिति सूक्तमग्निपदहीनं पठित्वा तत्सहितं पुनः पठेत्। एवमष्टशतमष्टाविंशतिवारं वा पठन् जलं पातयेत्।

इस प्रकार होम करके अर्चा का शोधन करे। देवता को प्रणाम करके हे देव देवेश! हे विश्वरूप! आपको प्रणाम और आपका स्वागत करता हूँ। आपका स्थान यद्यपि शुद्ध है फिर भी मैं शुद्धि करता हूँ इसको सहन कीजिये। इस प्रकार प्रार्थना कर 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते' इस मन्त्र से ऋत्विज सहित मूर्ति को उठाकर अग्न्युत्तारण करे। 'अग्निस्सप्तिम्' इस सूक्त को अग्नि पद से रहित पढ़कर पुनः अग्निपद सहित पढ़े। इस प्रकार एक सौ आठ बार या अट्ठाइस बार पढ़ते हुए जल गिरा दे।

ततोऽर्चां द्वादशवारं मृदा जलेन च प्रक्षाल्य मन्त्रैः 'पञ्चगव्यं कृत्वा—

पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयोधाः।
पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम्॥

आवो राजानमिति च संस्नाप्य आप्यायस्वेति पञ्चमन्त्रैः[2] पञ्चामृतेन संस्नाप्य लिङ्गं चेन्नमस्ते रुद्र इत्यष्टाभिः संस्नाप्य घृताभ्यङ्गमुद्वर्तनम्[3] उष्णोदकेन क्षालनं च कृत्वा गन्धं दत्त्वा संपातोदकैरभिषिच्य सपल्लवैश्चतुर्भिः कुम्भैः क्रमेण ॐआपो हिष्ठा० ॐ योवः० ॐ तस्मा० ॐ आकलशेषु० इति संस्नाप्य समुद्रज्येष्ठा इति चतसृभिराकलशेष्विति च मिलितचतुःकुम्भैः संस्नाप्य औदुम्बरादिपीठेऽर्चामुपवेश्य परितोऽष्टदिक्षु सजलकुम्भेषु गन्धपुष्पदूर्वाः क्षिप्त्वा,

---

१. कृत्यकल्पतरौ—'पञ्चगव्यं पवित्रं तु आहरेत्ताम्रभाजने। गायत्र्या चैव गोमूत्रं गन्धद्वारेण गोमयम्॥ आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णेति वै दधि। तेजोसि शुक्रमित्याज्यं देवस्यत्वा कुशोदकम्॥' इति।

२. धन्वन्तरि का कहा हुआ मिलित पंचामृत—'गव्यमाज्यं दधि क्षीरं माक्षिकं शर्कराऽन्वितम्। एकत्र मिलितं ज्ञेयं दिव्यं पञ्चामृतं परम्॥' अथवा—'दुग्धं दधि क्षौद्रमाज्यं शर्करा च तथैव हि। तस्य तस्य च मन्त्रेण तत्तद् द्रव्यं समर्पयेत्॥' इस वचन के अनुसार प्रत्येक वस्तु से पृथक् पृथक् स्नान करावे।

३. उद्वर्तन की औषधियाँ—'रजनी सहदेवी च शिरीषं लक्ष्मणाऽपि च। सहभद्रा कुशाग्राणि उद्वर्तनमिहोच्यते॥' इति।

इसके बाद प्रतिमा को बारह बार मिट्टी और जल से प्रक्षालन कर मन्त्रों से पंचगव्य बनाकर 'पयः पृथिव्यां पय०' इस मन्त्र से और 'आवो राजानं०' इससे स्नान कराकर 'आप्यायस्व' इन पांच मन्त्रों से पंचामृत से स्नान कराकर यदि लिंग की प्रतिष्ठा हो तो 'नमस्ते रुद्र' इन आठ ऋचाओं से स्नान कराकर घृताभ्यंग और उबटन लगा तथा गर्म जल से प्रक्षालन करके गन्ध देकर संपात के जल से अभिषेक कर पल्लवसहित चारो कुम्भों से क्रमशः 'ॐ आपोहिष्ठा०' 'ॐ योवः०' 'ॐ तस्मा०' 'ॐ आकलशेषु०' इन मन्त्रों से स्नान कराकर 'समुद्रज्येष्ठा०' इन चार ऋचाओं से और 'आकलशेषु' इस मन्त्र से मिलित चारो कुम्भों से नहलाकर गूलर आदि के आसन पर प्रतिमा को बैठाकर सब ओर आठों दिशाओं में जलयुक्त कुम्भों में गन्ध, पुष्प और दूर्वा छोड़े।

आद्यकुम्भे [1]सप्तमृदः, द्वितीये पुष्करपर्णशमीविकङ्कताश्मन्तकत्वचः पल्लवांश्च, तृतीये [2]सप्तधान्यानि, चतुर्थे [3]पञ्चरत्नानि, पञ्चमे फलपुष्पाणि[4], षष्ठे कुशदूर्वालोचनाः, सप्तमे संपातोदकम्, अष्टमे [5]सर्वौषधीः क्षिप्त्वा क्रमेणापोहिष्ठेति त्रिभिः हिरण्यवर्णाः शुचय इति चतुर्भिः पवमानानुवाकेन चाभिषिच्य एककुम्भे शमीपलाशवटखदिरबिल्वाश्वत्थविकङ्कतपनसाम्रशिरीषोदुम्बराणां पल्लवान् कषायांश्च क्षिप्त्वाऽश्वत्थे व इत्यभिषिच्य पञ्चरत्नोदकेन हिरण्यवर्णाः शुचय इति संस्नाप्य वाससी दत्त्वोपरि वितानं बध्नन्ति केचित्।

पहिले कुम्भ में सप्तमृत्तिका, दूसरे में कमल के पत्ते, शमी, विकंकत और अश्मन्तक की छाल और पल्लव, तीसरे में सप्तधान्य, चौथे में पंचरत्न, पाँचवें में फल-पुष्प, छठे में कुश-दूर्वा-गोरोचन, सातवें में संपात जल और आठवें में सर्वौषधि छोड़कर क्रम से 'आपोहिष्ठा' इन तीन ऋचाओं से 'हिरण्यवर्णाः शुचयः०' इन चार मन्त्रों से और पवमान अनुवाक

---

१. सप्तमृत्तिका—'अश्वस्थानाद् गजस्थानाद् वल्मीकात् सङ्गमाद् ह्रदात्। राजद्वाराच्च गोष्ठाच्च मृद आनीय निक्षिपेत् ॥' कोई पञ्चमृत्प्रक्षेपण मानते हैं, उनके मत में ह्रदान्त मृत्तिका का प्रक्षेप है।

२. सप्तधान्यम्—'यवगोधूमधान्यानि तिलाः कङ्गुस्तथैव च। श्यामाकाश्चणकाश्चैव सप्तधान्यानि संविदुः ॥' मतान्तर में—यव-व्रीहि-तिल उड़द-कंगु-सांवा-मूंग ये सप्तधान्य हैं।

३. कालिकापुराण में पंचरत्न ये हैं—'कनकं कुलिशं नीलं पद्मरागं च मौक्तिकम्। एतानि पञ्चरत्नानि रत्नशास्त्रविदो विदुः ॥' मदनरत्नोक्त पंचरत्न ये हैं—'सुवर्णं रजतं मुक्ता लाजावर्तं प्रवालकम्। रत्नपञ्चकमाख्यातं समस्तसुरवल्लभम् ॥' धन्वन्तरिनिघण्टु में—'नीलकं वज्रकं चेति पद्मरागश्च मौक्तिकम्। प्रवालं चेति विज्ञेयं पञ्चरत्नं मनीषिभिः ॥' पंचरत्न के अभाव में मदन रत्न में कहा है—'अभावे सर्वरत्नानां हेम सर्वत्र योजयेत्।' इति।

४. पुष्पशब्द से देवीपुराणोक्त पंचपुष्प का ग्रहण करना चाहिये—'चम्पकाम्रशमीपद्मकरवीरं च पञ्चकम्।' पुष्प के अभाव में भविष्यपुराण में कहा है—'अलाभे तु सुपुष्पाणां पत्राण्यपि निवेदयेत्। पत्राणामप्यलाभे तु तृणगुल्मौषधीरपि ॥ औषधीनामलाभे तु भक्त्या भवति पूजनम्। यत्पुण्यं प्रतिपुष्पे तद्दशा स्वर्णविनिर्मिते ॥' इति।

५. सर्वौषधिः—'मुरा मांसी वचा कुष्ठं शैलेयं रजनीद्वयम्। शटी चम्पकमुस्ते च सर्वौषध्यो दश स्मृताः ॥' अर्थात् मोरवेल-जटामांसी-वच-कूट-छरीला-हल्दी-दारुहल्दी-कचूर-चम्पा-नागरमोथा, ये दस सर्वौषधि हैं।

से अभिषेक करके एक कुम्भ में शमी, पलाश, बड़, खैर, बेल, पीपल, विकंकत, कटहल, आम, शिरीष और गूलर के पत्तों को तथा सब प्रकार के कषायों को छोड़कर 'अश्वत्थे वो०' इस मन्त्र से अभिषेक करके 'हिरण्यवर्णाः शुचयः' इस मन्त्र से पंचरत्न के जल से स्नान कराकर जोड़ा वस्त्र देवे। कुछ लोग ऊपर चंदवा भी बांधते हैं।

यज्ञोपवीतगन्धपुष्पधूपदीपान् दत्त्वा ॐ हिरण्यगर्भः० १ ॐ य आत्मदा० २ ॐ यः प्राणतो० ३ ॐ यस्येमे० ४ ॐ येन द्यौ० ५ ॐ यं क्रन्दसी० ६ ओं आपोहयत्० ७ ओं यश्चिदापो० ८ इत्यष्टौ पीठदीपान्दत्त्वा सुवर्णशलाकया तैजसपात्रस्थं मधुघृतं च गृहीत्वा ओं चित्रं देवाना० ओं तेजोसि शुक्रमस्यमृतमसि धामनामासि। प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि॥ इति मन्त्राभ्याम्, ओं नमो भगवते तुभ्यं शिवाय हरये नमः। हिरण्यरेतसे विष्णो विश्वरूपाय ते नम इति च दक्षिणसव्ये देवनेत्रे मन्त्रावृत्त्या लिखेत्।

यज्ञोपवीत, गन्ध, पुष्प, धूप और दीप देकर 'हिरण्यगर्भः०' 'ॐ य आत्मदा०' 'ॐ यः प्राणतो०' 'ॐ यस्येमे०' 'ॐ येन द्यौ०' 'ॐ यं क्रन्दसी०' 'ॐ आपोहयत्०' 'ॐ यश्चिदापो०' इस प्रकार आठ पीठ-दीपों को देकर सोने की शलाका से तैजस पात्र में रखा हुआ मधु घृत को लेकर 'ॐ चित्रं देवानां०' 'ॐ तेजोसि शुक्रमस्यमृतमसि' इन दोनों मन्त्रों से और 'नमो भगवते तुभ्यं शिवाय' इत्यादि से देवता के दाहिने बाएं नेत्र को मन्त्र की आवृत्ति करके लिखे।

ओं अञ्जन्ति त्वेत्यञ्जनेनाङ्क्त्वा ओं देवस्यत्वा सवितुः प्रसवे० इन्द्रस्येन्द्रियेणानज्मीति मध्वाज्यशर्कराभिरङ्क्त्वा अञ्जनेन पुनरञ्जयेत्। तत आदर्शभक्ष्यादि दर्शयेत्। अत्र कर्ताऽऽचार्याय गामृत्विग्भ्यो [1]दक्षिणां दद्यात्।

'ॐ अञ्जन्ति त्वा' इस मन्त्र से आंजन लगा कर 'ॐ देवस्यत्वा सवितुः प्रसवे०' 'इन्द्रस्येन्द्रियेणानज्मि' इस मन्त्र से मधु, घी, शक्कर से अंजन करके, अंजन से फिर अंजन करे। तदनन्तर ऐनक और खाने पीने की वस्तु दिखावे। इसमें यजमान आचार्य को गौ और ऋत्विजों को दक्षिणा दे।

आचार्यः प्रत्यृचमादौ प्रणवं वदन्पुरुषसूक्तेन स्तुत्वा वंशपात्रस्थपञ्चवर्णौदनेन देवं नीराजयित्वा रुद्राय चतुष्पथादौ दद्यात्। मन्त्रस्तु—ओं नमो रुद्राय सर्वभूताधिपतये दीप्तशूलधरायोमादयिताय विश्वाधिपतये रुद्राय वै नमो नमः। शिवमगर्हितं कर्मास्तु स्वाहा' इति अश्वत्थपर्णे भूतेभ्यो नम इति।

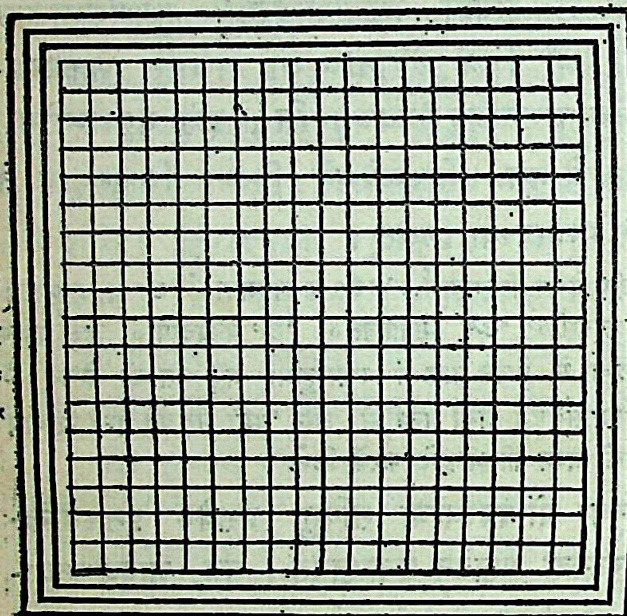
आचार्य प्रति ऋचा के आदि में प्रणव कहते हुए पुरुषसूक्त से स्तुति करके बांस के पात्र में रखे हुए पांच रंग के भात से देवता का नीराजन करके रुद्र के लिये चौराहे आदि में दे दे। इसका मन्त्र तो—'ॐ नमो रुद्राय सर्वभूताधिपतये०' इत्यादि मूल में है। 'शिवमगर्हितं कर्मास्तु' इस मन्त्र से पीपल के पत्ते पर 'भूतेभ्यो नमः' कहकर दे।

---

१. आचार्य की दक्षिणा—'दातव्या धेनुरेका वै हेमशृङ्गादिसंयुता। आचार्याय सुवर्णं च तथाऽन्नवसनादिकम्॥' ब्रह्मवैवर्ते—'दक्षिणां विप्रमुद्दिश्य तत्कालं चेन्न दीयते। एकरात्रे व्यतीते तु तद्दानं द्विगुणं भवेत्॥' तथा—'न ददाति यदा दाता ग्रहीता नैव याचते। उभौ तौ नरकं यातो यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥' इति।

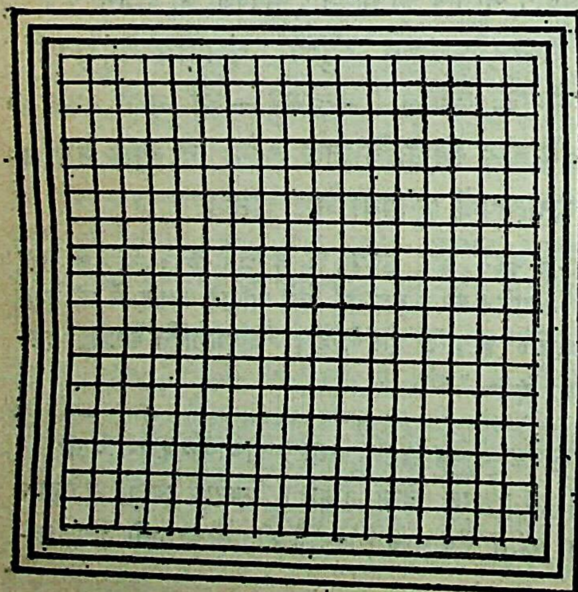
अथाचार्यः 'सर्वतोभद्रे देवता आवाहयेत्—मध्ये ब्रह्माणम्, पूर्वादिदिक्षु इन्द्रादिलोकपालान्, ईशानेन्द्राद्यन्तरालेषु वसून् १ रुद्रान् २ आदित्यान् ३ अश्विनौ ४ विश्वान् देवान् ५ पितॄन् ६ नागान् ७ स्कन्दवृषौ ८ ब्रह्मेशानाद्यन्तरालेषु दक्षं १ विष्णुं २ दुर्गां ३ स्वधाकारं ४ मृत्युरोगान् ५ समुद्रान् सरितः ६

सर्वतोभद्र



१. स्कन्दपुराण में सर्वतोभद्र-मण्डल का निर्माण प्रकार—'प्रागुदीच्यायता रेखाः कुर्यादेकोनविंशतिः। खण्डेन्दुस्त्रिपदः कोणे शृङ्खलाः पञ्चभिः पदैः॥ एकादशपदा वल्ली भद्रं तु नवभिः पदैः। चतुर्विंशत्पदा वापी परिधिर्विंशतिः पदैः॥ मध्ये षोडभिः कोष्ठैः पद्ममष्टदलं स्मृतम्। श्वेतेन्दुः शृङ्खला कृष्णा वल्ली नीलेन पूरयेत्॥ भद्रारुणा सिता वापी परिधिः पीतवर्णकः। बाह्यान्तरदलश्वेता कर्णिका पीतवर्णिका॥ परिध्या वेष्टितं पद्मं बाह्ये सत्त्वं रजस्तमः। तन्मध्ये स्थापयेद्देवान् ब्रह्माद्यांश्च सुरोत्तमान्॥' इति।

चतुर्-
लिंगतोभद्र



चतुर्लिङ्गतोभद्र का निर्माण प्रकार—'रेखास्त्वष्टादश प्रोक्ताश्चतुर्लिङ्गसमुद्भवे। कोणेन्दुस्त्रिपदः श्वेत स्त्रिपदैः कृष्णशृङ्खला॥ वल्ली सप्तपदा नीला भद्रं रक्तचतुष्पदम्। भद्रपार्श्वे महारुद्रं कृष्णमष्टादशैः पदैः॥ शिवस्य पार्श्वतो वापीं कुर्यात् पञ्चपदां सिताम्। पदमेकं तथा पीतं भद्रं वाप्योस्तु मध्यतः॥ शिरसि शृङ्खलाश्चैव कुर्यात् पीतं पदत्रयम्। लिङ्गानां स्कन्धतः कोष्ठा विंशतिः रक्तवर्णकाः॥ परिधिः पीतवर्णैस्तु पदैः षोडशभिः स्मृतः। पदैस्तु नवभिः पश्चाद्रक्तं वर्णं सकर्णिकम्॥'इति। लिङ्गोद्भव मण्डल का एकलिङ्गतोभद्र-द्वादशलिङ्गतोभद्र आदि अन्य प्रकार भद्रमार्तण्ड में देखें।

मरुतः ७ गणपतिं ८ मध्ये पृथिवीं मेरुं स्थाप्यदेवं चावाह्य प्रागादिषु वज्रं शक्तिं दंडं खड्गं पाशम् अंकुशं गदां शूलम् ।

इसके बाद आचार्य सर्वतोभद्र में देवता का आवाहन करे—बीच में ब्रह्मा का, पूर्वादि दिशाओं में इन्द्रादि देवताओं का, ईशान इन्द्रादि के अन्तराल में वसु, रुद्र, आदित्य, अश्विनी-

---

पंचरात्र में सर्वतोभद्रादि के कोष्ठ को भरने के लिये वर्ण का विनिर्णय—'रजांसि पञ्चवर्णानि मण्डलार्थं हि कारयेत् । शालितण्डुलचूर्णेन शुक्लं वा यवसम्भवम् ॥ रक्तं कुसुम्भसिन्दूरगैरिकादिसमुद्भवम् । हरितालोद्भवं पीतं रजसा सम्भवं क्वचित् ॥ कृष्णं दग्धयवैः कार्यं हरितं पीतकृष्णजम् ।' अथवा—'श्वेतत्वे तण्डुलाः प्रोक्ताश्चणकान्नं तु पीतके । रक्तवर्णे मसूराश्च गोधूमा वा स्मृता बुधैः ॥ अथवा रक्तवर्णं तु कुङ्कुमाक्ताक्षताः स्मृताः । हरिद्वर्णे च मुद्गान्नं माषान्नं कृष्णवर्णके ॥ वर्गत्रयेण परिधिः कार्यो न्यूनाधिको न हि ।' अन्यत्र—'शालिचूर्णोद्भवं श्वेतं कौसुम्भं लोहितं भवेत् । पीतं निशाभवं ज्ञेयं कृष्णं त्रैदेयसम्भवम् ॥ हरितं बिल्वपत्रोत्थं मण्डले च रजः स्मृतम् ।' ये वर्ण असमर्थों के लिये हैं । समर्थ तो मोती-मूंगा-पुखराज-नीलम आदि रत्नों से या इनके चूर्ण से भरें ।

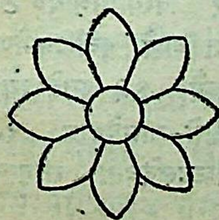
भद्रमार्तण्ड में देवताभेद से भद्र का विचार करते हुये उन-उन देवताओं के अपने-अपने भद्रमण्डल के अलाभ आदिमें सर्वतोभद्रमण्डल का विधान बतलाया है—'ग्रहस्य मण्डलं भानोः सर्वतोभद्रमर्चने । लक्ष्म्याश्च सर्वतोभद्रं पूजने मण्डलं तथा ॥ शैवव्रतं विना सर्वव्रतोद्यापनकर्मसु । कार्यं सुधाखद्दष्ट्या च सर्वतोभद्रमण्डलम् ॥ गणपतिव्रते प्रोक्तं भद्रं वैनायकाभिधम् । देव्या व्रते गौरीभद्रं सूर्ये सूर्यस्य मण्डलम् ॥ शैवे च लिङ्गतोभद्रं सर्वतोभद्रकं हरेः । स्वस्वभद्रालाभके तु कार्यं वै हरिमण्डलम् ॥' इति । हरिमण्डलं=सर्वतोभद्रमण्डलम् ।—

हेमाद्रि कालोत्तर में शिवरात्रि व्रत के प्रसंग में लिङ्गतोभद्र अथवा सर्वतोभद्र के निर्माण का विकल्प से निर्देश किया है—'ईश्वर उवाच—श्रृणु षण्मुख तत्त्वेन लोकानां हितकाम्यया । चतुर्दशाब्दं कर्तव्यं शिवरात्रिव्रतं शुभम् ॥ एकभक्तं त्रयोदश्यां चतुर्दश्यामुपोषणम् । सम्पाद्य सर्वसम्भारान् मण्डपं तत्र कारयेत् ॥ वस्त्रैः पुष्पैः समाच्छन्नं पट्टकूलैश्च शोभितम् । तन्मध्ये लेखयेद्दिव्यं लिङ्गतोभद्रमण्डलम् ॥ अथवा सर्वतोभद्रं मण्डपान्तः प्रकल्पयेत् । शोभोपशोभासंयुक्तं दीपैः सर्वत्र सोज्ज्वलम् ॥' —

भद्रमार्तण्ड में सर्वतोभद्रमण्डलादि पूजन के असामर्थ्य में अष्टदल का विधान है—'भद्रेण पूजनाशक्तौ कार्यमष्टदलं शुभम् । गोधूमान्नेन तत्कार्यं तण्डुलेनाथवा शुभम् ॥ मध्ये पितामहं सम्पूज्योत्तरादिक्रमेण च । अष्टदिक्षु न्यसेद्देवान् पंचपंचाशतः परम् ॥ ततश्च सर्वतोभद्रदेवतापूजनं भवेत् ।' वहीं अष्टदलमण्डल का प्रकार बतलाया है-'आद्यात्तृतीयं तृतीयाच्च भूतं भूताद् द्वितीयं द्वितीयाच्चतुर्थम् । तुरीयात्तथाद्यं पुनरेव कृत्वा दलाष्टकं तण्डुलपूरितं च ॥' इति ।

अष्टदल में देवता का क्रम—मध्ये ॐ ब्रह्मणे नमः १ मध्यादुत्तरे—सोमाय० २ ध्रुवाय० ३ अनिलाय० ४ अजैकपदे० ५ कुबेराय० ६, मध्यादीशान्याम्—महारुद्राय ७ धात्रे० ८ भृगाय० ९

अष्टदल कमल



पूष्णे० १० मित्राय० ११, मध्यात्पूर्वे-पर्जन्याय० १२ विवस्वते० १३ त्वष्ट्रे० १४ विष्णवे० १५ वासवाय० १६, मध्यादाग्नेय्याम्—प्रत्युषे० १७ क्रतवे०१८ सत्याय० १९ कालाय० २० भृशाय० २१, मध्याद्दक्षिणे—शूलपाणये० २२ यमाय० २३ प्रचेतसे० २४ अद्भ्यो० २५ धर्माय० २६, मध्यान्नैर्ऋत्ये--सर्पाय० २७ वास्तोष्पतये० २८ सवित्रे० २९ पितृभ्यो० ३० कमलासनाय० ३१, मध्यात्पश्चिमे—अंशुमते० ३२ वरुणाय० ३३ चित्रगुप्ताय० ३४ त्रिविक्रमाय० ३५ शेषाय ३६, मध्याद् वायव्ये—अहिर्बुध्न्याय० ३७ विरूपाक्षाय० ३८ ईश्वराय० ३९ प्रभासाय० ४० हरये० ४१ । ब्रह्मणः पादमूले कर्णिकाधः—पृथिव्यै०

कुमार, विश्वेदेव, पितर, नागों, स्कन्द और वृष का, ब्रह्मा और ईशान आदिके अन्तरालमें दक्ष, विष्णु, दुर्गा, स्वधाकार, मृत्युरोग, समुद्र और नदियां, मरुत और गणपति का, मध्य में पृथिवी और मेरु का। इन स्थाप्य देवताओं का आवाहन कर पूर्व आदि में वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अंकुश, गदा और शूल का आवाहन करे।

तद्बाह्ये गौतमं भरद्वाजं विश्वामित्रं कश्यपं जमदग्निं वसिष्ठमत्रिम् अरुन्धतीं च। तद्बाह्ये नवग्रहान्। तद्बाह्ये ऐन्द्रीं कौमारीं ब्राह्मीं वाराहीं चामुण्डां वैष्णवीं माहेश्वरीं वैनायकीम्। एता नामभिरावाह्य सम्पूज्य प्रतिमायां देवं तन्मन्त्रेणावाह्य मण्डलमध्ये प्रतिमां सुप्रतिष्ठितो भवेति निवेश्य संपूज्य वह्नौ मण्डलदेवतानां नामभिस्तिलाज्येन[1] दशदशाहुतीर्हुत्वा पुष्पाञ्जलिं समर्प्य नमो महदिति देवं नत्वा मण्डलादुत्तरतः स्वस्तिके मञ्चकं तदुपरि शय्यां कृत्वा उत्तिष्ठेति देवमुत्थाप्य मङ्गलघोषैः शय्यायां देवमुपवेश्य पुरुषसूक्तोत्तरनारायणाभ्यां स्तुत्वा देवे न्यासं कुर्यात्।

उसके बाहर में गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, कश्यप, जमदग्नि, वशिष्ठ, अत्रि और अरुन्धती का, उसके बाहर नवग्रहों का, उससे बाह्य में ऐन्द्री, कौमारी, ब्राह्मी, वाराही, चामुण्डा, वैष्णवी, माहेश्वरी और वैनायकी का, इनके नामों से आवाहन और पूजा करके प्रतिमा में देवता का उनके मन्त्र से आवाहन कर मण्डल के मध्य में प्रतिमा को 'सुप्रतिष्ठितो भव' यह कहके रखकर पूजा करके अग्नि में मण्डल देवताओं को उनके नामों से, तिल घृत से दस दस आहुति होम करके पुष्पांजलि समर्पण कर 'नमो महत्' इससे देवता को नमस्कार करके मण्डल के उत्तर स्वस्तिक पर मंचक, उसके ऊपर शय्या रखकर 'उत्तिष्ठ' इससे देवता को उठाकर मङ्गल शब्दों से शय्या पर देवता को बैठाकर पुरुषसूक्त और उत्तर नारायण से स्तुति करके देवता में न्यास करे।

---

४२ सप्तसागरेभ्यो० ४३ सप्तसरिद्भ्यो० ४४ मेरुपर्वताय० ४५, पूर्वादिक्रमेण – इन्द्राय० ४६ अग्नये० ४७ यमाय० ४८ निर्ऋतये० ४९ वरुणाय० ५० वायवे० ५१ कुवेराय० ५२ ईश्वराय० ५३, ऊर्ध्वं-ब्रह्मणे० ५४ अधः–अनन्ताय० ५५, ईशानेन्द्रयोर्मध्ये–द्वादशादित्येभ्यो० ५६, इन्द्राग्निमध्ये–अश्विभ्यां० ५७, अग्नियममध्ये–विश्वेभ्यो देवेभ्यो० ५८, यमनिर्ऋतिमध्ये–सप्तयक्षेभ्यो० ५९ निर्ऋतिवरुणमध्ये–भूतनागेभ्यो० ६० वरुणवायुमध्ये–गन्धर्वाप्सरोभ्यो० ६१ वायुसोममध्ये–अष्टवसुभ्यो० ६२ सोमेशानमध्ये–एकादशरुद्रेभ्यो० ६३ ब्रह्मेन्द्रमध्ये–दुर्गायै० ६४ ब्रह्माग्निमध्ये–स्वधायै० ६५ ब्रह्मयममध्ये–मृत्युरोगाय० ६६ ब्रह्मनिर्ऋतिमध्ये–गणपतये ६७ ब्रह्मवरुणमध्ये–अद्भ्यो० ६८ ब्रह्मवायुमध्ये-मरुद्भ्यो० ६९ ब्रह्मसोममध्ये–स्कन्दाय० ७० ब्रह्मेशानमध्ये–दक्षादिसप्तगणेभ्यो० ७१ पूर्वादिक्रमेण-वज्राय० ७२ शक्त्यै० ७३ दण्डाय० ७४ खड्गाय० ७५ पाशाय० ७६ अङ्कुशाय० ७७ गदायै० ७८ त्रिशूलाय० ७९, ततो बाह्ये उत्तरादिक्रमेण–गौतमाय० ८० भरद्वाजाय० ८१ विश्वामित्राय० ८२ कश्यपाय० ८३ जमदग्नये० ८४ वसिष्ठाय० ८५ अत्रये० ८६ अरुन्धत्यै० ८७, तद्बाह्ये पूर्वादिक्रमेण-ऐन्द्र्यै० ८८ कौमार्यै० ८९ ब्राह्म्यै० ९० वाराह्यै० ९१ चामुण्डायै० ९२ वैष्णव्यै० ९३ माहेश्वर्यै० ९४ वैनायक्यै० ९५, पुनः पूर्वे–ऋग्वेदाय० ९६ दक्षिणे-यजुर्वेदाय० ९७ पश्चिमे–सामवेदाय० ९८ उत्तरे-अथर्ववेदाय० ९९, मण्डलमध्ये-सर्वव्यापिश्रीपरब्रह्मणे नमः १०० इति अष्टदलदेवताः संस्थाप्य मध्ये प्रधानदेवतां संस्थाप्य षोडशोपचारैः पूजयेत्।

१. आज्यमिश्रिततिलैरित्यर्थः। ईश्वरसंहिता में तिल और आज्य की प्रधानता—'सर्वथा होमकर्मार्थं तिलमाज्यं न लोपयेत्। तिलाज्ययोरभावे तु हवनं स्यान्निरर्थकम्॥' इति।

तथा हि—ओं पुरुषात्मने नमः ओं प्राणात्मने० ओं प्रकृतितत्त्वाय० ओं बुद्धितत्त्वाय० ओं अहंकारतत्त्वाय० ओं मनस्तत्त्वाय० इति सर्वाङ्गेषु ओं प्रकृतितत्त्वाय० ओं बुद्धितत्त्वाय० हृदि, ओं शब्दतत्त्वाय० शिरसि, ओं स्पर्शतत्त्वाय० त्वचि, ओं रूपतत्त्वाय० हृदि। एवं हृद्येव रसगन्धश्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थपृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशसत्त्वरजस्तमोदेहतत्त्वानि विन्यसेत्।

वह ऐसे—'ॐ पुरुषात्मने नमः' 'ॐ प्राणात्मने०' ॐ प्रकृतितत्त्वाय०' 'ॐ बुद्धितत्त्वाय० 'ओं अहंकारतत्त्वाय०' 'ओं मनस्तत्त्वाय०' इनसे सब अंगों में, 'ओं प्रकृतितत्त्वाय०' 'ओं बुद्धितत्त्वाय०' हृदय में, 'ॐ शब्दतत्त्वाय०' सिर में, 'ॐ स्पर्शतत्त्वाय०' त्वचा में, 'ॐ रूपतत्त्वाय०' हृदय में। इसी प्रकार हृदय में ही रस, गन्ध, श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ, पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, आकाश, सत्त्व, रज, तम, इन देहतत्त्वों का विन्यास करे।

ततः पुरुषसूक्ताद्यं ऋग्द्वयं करयोः, तदुत्तरद्वयं पादयोः, तदुत्तरद्वयं जानुनोः, तदुत्तरद्वयं कट्योः, ततस्तिस्रो नाभिहृत्कण्ठेषु। ततो द्वयं बाह्वोः, तत एकां नासयोः, तत एकामक्ष्णोः, अन्त्यां शिरसि, ततः सुखशायी भवेति शय्यायां देवं स्वापयित्वा मण्डलशय्ययोरन्तरा न गन्तव्यमिति प्रैषं दत्त्वा स्विष्टकृदादिहोमशेषं समाप्य मण्डलदेवताभ्यो नामभिश्चरुणा बलीन्दद्यात्। नीवारचरुशेषेण दिग्बलिम्। ततो धामन्त इति पूर्णाहुतिं जुहुयात्। इत्यधिवासनम्।

तदनन्तर पुरुषसूक्त के आदि की दो ऋचाओं से दोनों हाथों में, उसके बाद की दो ऋचाओं से दोनों पैरों में, उसके बाद की दो ऋचाओं से दोनों जानुओं में, उसके बाद की दो ऋचाओं से दोनों कटि में, उसके बाद की तीन ऋचाओं से नाभि, हृदय और कण्ठ में, उसके बाद की दो ऋचाओं से दोनों बाहों में, तदनन्तर एक ऋचा से नाक के दोनों छिद्रों में, इसके बाद एक ऋचा से दोनों आखों में, अन्त वाली ऋचा से सिर में न्यास करे। इसके अनन्तर 'सुखपूर्वक शयन करें' ऐसा कहकर शय्या पर देवता को शयन कराकर 'मण्डल और शय्या के बीच से नहीं जायं' ऐसा आदेश देकर स्विष्टकृत् आदि शेष होम को समाप्त कर मण्डलदेवताओंके नामोंसे चरु से बलि देवे। नीवार चरु के शेष से दिशाओं को बलि दे। पश्चात् 'धामन्त' इस मन्त्र से पूर्णाहुति होम करे। अधिवासन समाप्त।

अथ स्थिरार्चायां क्रमो विशेषश्च

संकल्पादि जलाधिवासान्तं कृत्वा देवं नत्वा स्वागतं देवदेवेशेत्यादिप्रार्थनोत्थापनाग्न्युत्तारणादिनेत्रोन्मीलनान्तं पूर्ववत्। तत्र स्थिरे शिवलिङ्गे स्वर्णसूच्या गन्धेन। ओं नमो भगवते रुद्राय हिरण्यरेतसे पराय परमात्मने विश्वरूपायोमाप्रियाय नम इत्युक्त्वा अञ्जनादिनाञ्जयेदिति नेत्रोन्मीलने लिङ्गे विशेषः। ततः सूक्तस्तुत्यादिमण्डलदेवतास्थापनान्तम्। ततो मण्डले मूर्तिनिवेशस्ततः शय्यायां देवतारोहणं ततः स्तुतिः पूर्वोक्तन्यासाः ततः शय्यायां देवशयनम्।

संकल्प से जलाधिवास तक करके देवता को नमस्कार कर 'स्वागतं देवदेवेश' इत्यादि प्रार्थना से उत्थापन अग्न्युत्तारण आदि नेत्रोन्मीलनपर्यन्त कर्म पहिले के समान है। उसमें स्थिर शिवलिंग में सोने की सूई और गन्ध से ॐ नमो भगवते रुद्राय हिरण्यरेतसे पराय परमात्मने। विश्वरूपायोमाप्रियाय नम' इससे अंजन आदि से अंजन करे, इतना लिंग के नेत्रोन्मीलन में विशेष है। तदनन्तर सूक्त से स्तुति आदि मण्डलदेवता के स्थापन तक कर्म करे। पश्चात् मण्डल में मूर्ति का निवेश, इसके बाद शय्यापर देवता का आरोहण, उसके बाद स्तुति, पहिले का कहा हुआ न्यास, तत्पश्चात् शय्यापर देवता को शयन करावे।

ततोऽग्निस्थापनादि। पूर्वोक्तान्वाधाने विष्णौ नारायणं षोडशाज्याहुतिभिः, शिवश्चेत् यात इषुः द्रापे सहस्राणीत्यनुवाकस्थऋग्भी रुद्रमाज्येनेति प्रधानोत्तरमूह इति विशेषः। लोकपालमूर्तिमूर्तिपतिहोमान्तं पूर्ववत्। स्थाप्यदेवताहोमे नैवारश्चरुर्नास्ति सप्तैव हवींषि। ततश्च विष्णोः स्थिरार्चायां पूर्वोक्तसमित्तिलाज्यहोमोत्तरं पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचमाज्यं हुत्वा इदं विष्णुरिति पादौ स्पृष्ट्वा पुनस्ता एव हुत्वा अतो देवा इति शिरः स्पृष्ट्वा पुनस्ता एव हुत्वा पुरुषसूक्तेन सर्वाङ्गं स्पृशेत्।

तदनन्तर अग्निस्थापन आदि करे। पहिले कहे हुए अन्वाधान में विष्णु में नारायण को सोलह घृताहुतियों से, यदि शिव हों तो 'यात इषुः, द्रापे, सहस्राणि' इन अनुवाकों की ऋचाओं से रुद्र को घृत से, इतना प्रधान के बाद ऊह करे, यह विशेष है। लोकपाल मूर्ति और मूर्तिपति होम तक कर्म पूर्ववत् है। स्थाप्य देवता के होम में नीवार चरु नहीं है, सात ही हवि है। इसके बाद विष्णु की स्थिर प्रतिमा में पहिले कहे समिधा-घृत-तिल-होम के बाद पुरुषसूक्त की प्रत्येक ऋचा से घृत की आहुति देकर 'इदं विष्णुः' इस मन्त्र से पैरों का स्पर्श करके पुनः उन्हीं का होम करके 'अतो देवाः' इससे सिर का स्पर्श करके पुनः उन्हीं का होम करके पुरुषसूक्त से सब अंगों का स्पर्श करे।

स्थिरं लिङ्गं चेत्समिदाज्यतिलहोमान्ते यात इषुरित्यनुवाकान्ते द्रापे इति सहस्राणीत्यनुवाकाभ्यां च प्रत्यृचमाज्यं हुत्वा सर्वो वै रुद्र इति मूलं स्पृशेत्। पुनस्ता एव हुत्वा कद्रुद्रायेति मध्यं पुनस्ता एव हुत्वा नमो हिरण्यबाहव इत्यग्रं स्पृशेत्। पुनस्ता एव हुत्वा सर्वरुद्रेण सर्वाङ्गं स्पृशेत्, इत्यधिवासने विशेषः।

यदि स्थिर लिंग हो तो समिधा-घृत-तिल से होम के अन्त में 'यात इषुः' इस अनुवाक के अन्त में 'द्रापे' और 'सहस्राणि' इन दोनों अनुवाकों की प्रत्येक ऋचा से घृत से होम करके 'सर्वो वै रुद्र' इससे लिंग-मूल का स्पर्श करे। फिर उन्हीं का होम करके 'कद्रुद्राय' इससे लिंग के मध्य का स्पर्श करके फिर उन्हीं का होम करके 'नमो हिरण्यबाहवे' इससे लिंगाग्र का स्पर्श करे। फिर उसी का होम कर सब रुद्री से सम्पूर्ण अंग का स्पर्श करे, इतना अधिवासन में विशेष है।

परेद्युः पीठिकां स्नापयित्वा ओं महीमूष्वित्यावाहय ओं अदितिर्द्यौरिति स्तुत्वा ओं ह्रीं नम इति संपूज्य तेनैव पूर्णाहुतिं हुत्वा उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पत इति देवमुत्थाप्य पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा पुरुषसूक्तेन स्तुत्वा उदुत्यमित्युत्थाप्य कनिक्रददिति सूक्तेन विष्णुं, सद्योजातमिति पञ्चानुवाकैर्लिङ्गं गृहं प्रवेश्य पीठिकायामिन्द्रादिनामभिरष्टरत्नानि क्षिप्त्वा सप्तधान्यरौप्यमनःशिलाः क्षिप्त्वा पायसेन संलिप्य प्रणवेनाङ्गन्यासं कृत्वा सुवर्णशलाकामन्तरितां कृत्वा सुलग्ने ओं प्रतितिष्ठ पर-

मेश्वरेति उक्त्वाऽतो देवेति विष्णुं रुद्रेण लिङ्गं च स्थापयेत्। ततश्चरुहोमप्राण-प्रतिष्ठादि, इति स्थिरार्चायामधिवासने परेद्युःकृत्ये च विशेषोऽन्यत्सर्वमुक्त-वक्ष्यमाणचलार्चावदेव।

दूसरे दिन पीठिका को नहलाकर 'ॐ महीमूषु' इससे आवाहन कर 'ॐ अदितिर्द्यौः' इससे स्तुति कर 'ॐ ह्रीं नमः' इससे पूजकर उसी से पूर्णाहुति होम करके 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते' इस मन्त्र से देवता को उठाकर पुष्पांजलि देकर पुरुषसूक्त से स्तुति कर 'उदुत्यं' इससे उठाकर 'कनिक्रदत्' इस सूक्त से विष्णु को और 'सद्योजातं' इन पांचों अनुवाकों से लिंग को गृह में प्रवेश कराकर पीठिका में इन्द्रादि के नामों से अष्टरत्न, सप्तधान्य, मैनसिल डालकर खीर से लेपकर प्रणव से अंगन्याय करके सुवर्ण शलाका बीच में रखकर शुभ लग्न में 'ॐ प्रतितिष्ठ परमेश्वर' ऐसा कहकर 'अतो देवा' इससे विष्णु की और 'रुद्रेण' इससे लिंग की स्थापना करे। तदनन्तर चरु से होम और प्राणप्रतिष्ठा आदि करे, यह स्थिरार्चा के अधिवासन में और दूसरे दिन के कृत्य में विशेष है अन्य सब कहे हुये और कहे जाने वाली चल प्रतिमा के समान है।

अथ चलप्रतिष्ठायामधिवासनान्ते परेद्युरेकाहपक्षे सद्यो वा उत्तिष्ठ ब्रह्मण इति देवमुत्थाप्य पुरुषसूक्तोत्तरनारायणाभ्यां स्तूयात्।

चल प्रतिष्ठा में अधिवासन के अन्त में एक दिन की प्रतिष्ठा के पक्ष में दूसरे दिन या तुरन्त ही 'उत्तिष्ठ ब्रह्मणः' इस मन्त्र से देवता को उठाकर पुरुषसूक्त और उत्तरनारायण से स्तुति करे।

अथ प्रायः स्थिरचलार्चयोः साधारणः प्रयोगः

'प्रतिष्ठाङ्गं परेद्युर्होमं करिष्ये' इति संकल्प्य चक्षुषी आज्येनेत्यन्ते स्थाप्यदेवं तन्मन्त्रेण घृतपक्वव्रीहिचरुणा दशाहुतिभिरग्निं सोमं धन्वन्तरिं कुहूमनुमतिं पर-मेष्ठिनं ब्रह्माणमग्निं सोमम् अग्निमन्नादम् अग्निमन्नपतिं प्रजापतिं विश्वान्देवान् सर्वान्देवानग्निं स्विष्टकृतम्। पूजाङ्गहोमे विष्णुश्चेत्संकर्षणादिद्वादशदेवताः शार्ङ्गिणं श्रियं सरस्वतीं विष्णुं कृसरेणैकैकयाहुत्या विष्णुं षड्वारं कृसरेण।

'प्रतिष्ठा का अंगभूत दूसरे दिन होम करूंगा' ऐसा संकल्प करके चक्षुषी आज्येन इसके अन्त में स्थाप्य देवता को उनके मन्त्र से घृतपक्व व्रीहिचरु की दस आहुतियों से अग्नि, सोम, धन्व-न्तरि, कुहू, अनुमति, परमेष्ठी, ब्रह्मा, अग्नि, अन्नाद, अग्नि, अन्नपति, प्रजापति, विश्वेदेव, सब देवता, अग्नि और स्विष्टकृत् का होम करे। पूजा के अंग होम में यदि विष्णु हों तो संकर्षण आदि बारह देवताओं को और शार्ङ्गी, श्री, सरस्वती, विष्णु को खिचड़ी की एक-एक आहुति से और विष्णु को छ बार खिचड़ी से होम करे।

शिवश्चेद्भवं शर्वम् ईशानं पशुपतिं रुद्रमुग्रं भीमं महान्तं कृसरेणैकैकया०। भवस्य देवस्य पत्नीमित्याद्यष्टौ गुडौदनेनैकैकया०। भवस्य देवस्य सुतमित्यादि ८ हरिद्रौदनेन एकै०। रुद्रं सप्तदशवारं शिवं शंकरं सहमानं शितिकण्ठं कपर्दिनं ताम्रमरुणमपगुरमाणं हिरण्यबाहुं सस्पिञ्जरं बभ्लुशं हिरण्यमेताः कृसरेणैकैकया०। शेषेण स्विष्टकृतमित्यादि। शूर्पे तूष्णीं स्थाप्यदेवतायै चतुर्मुष्टीनग्न्यादिषोडशदेवता-भ्यो नाम्ना चतुश्चतुर्मुष्टीन्निरुप्य तथैव प्रोक्ष्य सघृतजले श्रपयित्वा स्रुच्यावदानध-र्मेण स्थाप्यदेवमन्त्रेण दशाहुतीर्हुत्वा नामभिर्जुहुयात्।

यदि शिव हों तो भव, शर्व, ईशान, पशुपति, रुद्र, उग्र, भीम और महान् को खिचड़ी की एक एक आहुतिसे 'भवस्य देवस्य पत्नी' इत्यादि आठ को गुड़ भात की एक-एक आहुति दे। 'भवस्य देवस्य सुतं' इत्यादि आठ को हरदी और भात की एक-एक आहुति दे। रुद्र को सत्रह बार, शिव, शंकर, सहमान, शितिकण्ठ, कपर्दी, ताम्र, अरुण, अपगुरमाण, हिंरण्यबाहु, सस्पिंजर, बभ्लुश, और हिरण्य, इन सब को खिचड़ी की एक-एक आहुति दे। शेष से स्विष्टकृत् इत्यादि करे। सूप में चुप चाप स्थाप्य देवता के लिये चार मुट्ठी औरअग्नि आदि सोलह देवताओं के नाम से चार-चार मुट्ठी रखकर उसी प्रकार प्रोक्षण कर घृतसहित जल में पका कर स्रुची से अवदान धर्म से स्थाप्य देवता के मन्त्र से दस आहुति देकर उनके नामों से होम करे।

अग्नये स्वाहा १ सोमाय० २ धन्वन्तरये० ३ कुह्वै० ४ अनुमत्यै० ५ प्रजापतये० ६ परमेष्ठिने० ७ ब्रह्मणे० ८ अग्नये० ९ सोमाय० १० अग्नयेऽन्नादाय० ११ अग्नयेऽन्नपतये० १२ प्रजापतये० १३ विश्वेभ्यो देवेभ्यः १४ सर्वेभ्यो देवेभ्यः० १५ भूर्भुवः स्वः अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा १६ इति।

सप्त ते अग्ने समिधः सप्तजिह्वाः सप्तधामप्रियाणि।
सप्त होत्राः सप्त धात्वा यजन्ति सप्त योनीरापृणस्वाघृतेन॥
पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः समिन्धतां पुनर्ब्रह्माणो वसुनीथयज्ञैः।
घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः॥

इति मन्त्राभ्यां पूर्णाहुतिं कृत्वाचार्यो या ओषधीरिति पुष्पफलसर्वौषधीः समर्प्य संपातोदकं ताम्रपात्रे आदाय देवमन्त्रेण शतवारमभिमन्त्र्य तेन देवशिरसि सिञ्चेत्।

'अग्नये स्वाहा' (इत्यादि होम के १६ नाममन्त्र मूल में देखें) 'सप्त ते अग्ने समिधः' 'पुनस्त्वादित्या रुद्रा' इत्यादि मूलोक्त इन दोनों मन्त्रों से पूर्णाहुति करके आचार्य 'या ओषधीः' इस मन्त्र से पुष्प, फल और सर्वौषधि को समर्पण कर संपात के जल को ताम्रपात्र में लेकर देवता के मन्त्र से सौ वार अभिमन्त्रण करके उसे देवता के सिर पर सिंचन करे।

तत उत्तिष्ठ ब्रह्मण इति देवमुत्थाप्य विश्वतश्चक्षुरित्युपतिष्ठेत्। एते उत्थापनोपस्थाने चलार्चायामेव। देवं ध्यात्वा जपेत्—ब्रह्मणे नमः विष्णवे नमः रुद्राय० इन्द्रादीनष्टौ० ८ वसुभ्यो० रुद्रेभ्यो० आदित्येभ्यो० अश्विभ्यां० मरुद्भ्यो० कुबेराय० गङ्गादिमहानदीभ्यो० अग्नीषोमाभ्यां० इन्द्राग्निभ्यां० द्यावापृथिवीभ्यां० धन्वन्तरये० सर्वेशाय० विश्वेभ्यो देवेभ्यो० ब्रह्मण इति।

इसके बाद 'उत्तिष्ठ ब्रह्मण' इस मन्त्र से देवता को उठाकर 'विश्वतश्चक्षुः' इससे उपस्थान करे। ये उत्थापन और उपस्थान, चलार्चा में ही होते हैं। देवता का ध्यान कर जप करे—ब्रह्मणे नमः विष्णवे नमः (इत्यादि ब्रह्मणे नमः पर्यन्त मंत्र मूल में देखें।

ततः संपातोदकेन यजमानाभिषेकः। देवं ध्यात्वा प्रतितिष्ठ परमेश्वरेति पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा—सच्चिदानन्दं ब्रह्मैव भक्तानुग्रहाय गृहीतविग्रहं स्वायुधाढ्यं निजवाहनाद्युपेतं निजहृत्कमलेऽवस्थितं सर्वलोकसाक्षिणमणीयांसं परमेष्ठ्यसि परमां

श्रियं गमयेति मन्त्रेण पुष्पाञ्जलावागतं विभाव्यार्चायां विन्यस्य प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् ।

तदनन्तर संपात के जल से यजमान का अभिषेक करे। देवता का ध्यान करके 'प्रतितिष्ठ परमेश्वर' ऐसा कह कर पुष्पांजलि देकर—सच्चिदानन्द ब्रह्म ही भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये स्वरूप ग्रहण किये हैं, अपने आयुधों से आढय, अपने वाहनों से युक्त, अपने हृदय कमल में स्थित, सब लोगों के साक्षी सूक्ष्म से सूक्ष्म आप परमेष्ठी हैं। उत्कृष्ट लक्ष्मी को मुझे प्राप्त करावें' इस आशय के मन्त्र से पुष्पांजलि में आये हुए देव की भावना कर प्रतिमा में विन्यास करके प्राणप्रतिष्ठा करे।

यथा—श्रीप्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः, ऋग्यजुःसामानिच्छदांसि, क्रियामयवपुः, प्राणाख्या देवता, आं बीजं क्रौं शक्तिः प्राणप्रतिष्ठायां विनियोगः। ब्रह्मविष्णुरुद्रऋषिभ्यो नमः शिरसि, ऋग्यजुःसामच्छन्दोभ्यो० मुखे, प्राणाख्यदेवतायै० हृदि, आं बीजाय० गुह्ये, क्रौं शक्त्यै० पादयोः।

जैसे—इस श्री प्राण प्रतिष्ठा मन्त्र का ब्रह्मा विष्णु और रुद्र ऋषि, ऋग् यजुः और साम छन्द, क्रियामय शरीर, प्राण नाम की देवता, आम् बीज, क्रौं शक्ति, प्राण प्रतिष्ठा में इसका विनियोग करे। 'ब्रह्मविष्णुरुद्रऋषिभ्यो नमः' सिर में, ऋग्यजुःसामच्छन्देभ्यो नमः' मुख में, 'प्राणाख्यदेवतायै नमः' हृदय में, 'आं बीजाय नमः' गुह्य में, 'क्रौं शक्त्यै नमः' पैरों में, स्पर्श करे।

ॐ कं खं गं घं ङं अं पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशात्मने आं हृदयाय०। ओं चं छं जं झं ञं इं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मने ईं शिरसे स्वाहा। ओं टं ठं डं ढं णं उं श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणात्मने ऊं शिखायै वषट्। ओं तं थं दं धं नं एं वाक्पाणिपादपायूपस्थात्मने ऐं कवचाय हुम्। ओं पं फं बं भं मं ओं वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दात्मने औं नेत्रत्रयाय वौषट्। ओं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं अं मनोबुद्ध्यहंकारचित्तात्मने अः अस्त्राय फट्।

'ॐ कं खं गं घं ङं अं पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशात्मने आं हृदयाय नमः' इससे हृदय का, 'ॐ चं छं जं झं ञं इं शब्दरसरूपगन्धात्मने ईं शिरसे स्वाहा' इससे शिर का, 'ॐ टं ठं डं ढं णं उं श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणात्मने उं शिखायै वषट्' इससे शिखा का, 'ॐ तं थं दं धं नं एं वाक्पाणिपादपायूपस्थात्मने ऐं कवचाय हुम्' इससे दोनों बाहुओं का, 'ओं पं फं बं भं मं ओं वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दात्मने औं नेत्रत्रयाय वौषट्' इससे तीनों नेत्र का स्पर्श करे। 'ॐ यं रं लं वं षं सं हं क्षं अं मनोबुद्ध्यहंकारचित्तात्मने अः अस्त्राय फट्' इससे अस्त्रमुद्रा से थपोड़ी बजावे।

एवमात्मनि देवे च कृत्वा देवं स्पृष्ट्वा जपेत्—ओं आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हं सः देवस्य प्राणाः। आं ह्रीं० हंसः देवस्य जीव इह स्थितः। ओं आं ह्रीं० हंसः देवस्य सर्वेन्द्रियाणि। ओं आं ह्रीं० हं सः देवस्य वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रघ्राणप्राणा इहागत्य स्वस्तये सुखेन सुचिरं तिष्ठन्तु स्वाहा। अर्चाहृद्यङ्गुष्ठं दत्वा जपेत्।

अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः क्षरन्तु च।
अस्यै देवत्वमर्चायै मामहेति च कश्चन॥

इसी प्रकार अपने और देवता में न्यास करके देवता का स्पर्श करके जपे–ॐ आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हं सः देवस्य प्राणाः इह प्राणाः। आं ह्रीं हं सः देवस्य जीव इह स्थितः। ओं आं ह्रीं० हं सः देवस्य सर्वेन्द्रियाणि। ॐ आं ह्रीं० हं सः देवस्य वाङ्मनस्त्वक्चक्षुः-श्रोत्रघ्राणप्राणा इहागत्य स्वस्तये सुखेन सुचिरं तिष्ठन्तु स्वाहा'। प्रतिमा के हृदय में अंगुष्ठ लगाकर जपे—'अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु०' इत्यादि मूल में देखें।

प्रणवेन संरुद्धय सजीवं ध्यात्वा ध्रुवाद्यौरिति त्यृचं जप्त्वा कर्णे गायत्रीं देवमन्त्रं च जप्त्वा पुरुषसूक्तेनोपस्थाय पादनाभिशिरः स्पृष्ट्वा इहैवैधीति त्रिर्जपेत्। ततः कर्ता—

स्वागतं देवदेवेश मद्भाग्यात्त्वमिहागतः।
प्राकृतं त्वमदृष्ट्वा मां बालवत्परिपालय॥
धर्मार्थकामसिद्ध्यर्थं स्थिरो भव शिवाय नः।
सान्निध्यं तु सदा देव स्वार्चायां परिकल्पय॥
यावच्चन्द्रावनीसूर्यास्तिष्ठन्त्यप्रतिघातिनः।
तावत्त्वयात्र देवेश स्थेयं भक्तानुकम्पया॥
भगवन्देवदेवेश त्वं पिता सर्वदेहिनाम्।
येन रूपेण भगवंस्त्वया व्याप्तं चराचरम्॥
तेन रूपेण देवेश स्वार्चायां सन्निधो भव। इति नमेत्।

प्रणव से प्राण वायु को रोककर सजीव का ध्यान कर 'ध्रुवा द्यौः' इन तीन ऋचाओं को जप कर देवता के कान में गायत्री और देवमन्त्र को जप कर पुरुषसूक्त से उपस्थान कर पैर नाभि और सिरको स्पर्श करके 'इहैवैधि' इसको तीन बार जपे। तदनन्तर कर्ता कहे—हे देवदेवेश! मेरे भाग्य से आप यहाँ आये हैं, आप का स्वागत है। आप मुझे प्राकृत न देखकर बालक की तरह मेरा पालन करें। धर्मार्थकाम की सिद्धि और मेरे कल्याण के लिये स्थिर हों। अपनी प्रतिमा में सदैव सान्निध्य करें। बिना प्रतिघात के जब तक चन्द्रमा, पृथिवी और सूर्य यहां ठहरें, हे देवेश! भक्त पर दया कर आप यहां रहें। हे भगवन् देवदेवेश! सब जीवों के आप पिता हैं। हे भगवन्! जिस रूप से आप चराचर में व्याप्त हैं हे देवेश! उस रूप से आप अपनी प्रतिमा में सन्निहित हों। इस आशय के मन्त्र को कह कर प्रणाम करे।

अथाचार्यः कर्ता वा लिङ्गमर्चां वा ओं भूः पुरुषमावाहयामि,[1] ओं भुवः पुरुषमा०, ओं स्वः पुरुषः०, ओं भूर्भुवः स्वः पुरुष०, इत्यावाह्य प्रणवेनासनं दत्त्वा दूर्वाश्यामाकविष्णुक्रान्तापद्ममिश्रं पाद्यम्। ओं इमा आपः शिवसमाः पूताः पूततमा मेध्या मेध्यतमा अमृता अमृतरसाः पाद्यास्ता जुषतां प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्णातु भगवान् महाविष्णुर्विष्णवे नम इति पाद्यम्। भगवान् महादेवो रुद्राय नम इति लिङ्गे। एवं देवतान्तरेषूह्यम्।

---

१. आवाहनादिषोडशोपचार सम्बन्धी विचार के मूलवचन कृष्णजन्माष्टमी पूजा प्रयोगः की सुधाविवृति में देखें।

आचार्य या कर्ता लिंग या प्रतिमा में 'ॐ भूः पुरुषमावाहयामि' 'ॐ भुवः पुरुषमा०' 'ॐ स्वः पुरुष०' 'ॐ भूर्भुवः स्वः पुरुष०' इससे आवाहन कर प्रणव से आसन देकर दूब, सावां, विष्णुक्रान्ता और कमल से मिले हुए पाद्य को 'ॐ० इमा आपः शिवतमाः पूताः पूततमा मेध्या मेध्यतमा अमृता अमृतरसाः पाद्यास्ता जुषतां प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्णातु भगवान् महाविष्णुर्विष्णवे नमः' यह कह कर पाद्य दे। लिंग में 'भगवान्महादेवो रुद्राय नमः' ऐसा कहे। इसी प्रकार अन्य देवताओं में कल्पना करे।

इमा आपः शिव० आचमनीयास्ता जुषतां प्रतिगृह्य० इत्याचमनम्। इमा आ० अर्घ्यास्ता इत्यर्घ्यम्। [1]पञ्चामृतस्नानम्। देवमन्त्रैः संस्नाप्य इदं विष्णुरिति विष्णौ, नमो अस्तु नीलग्रीवायेति लिङ्गे। कङ्कणं विसृज्य वस्त्रं यज्ञोपवीतं च दत्त्वा,

इमे गन्धाः शुभा दिव्याः सर्वगन्धैरलंकृताः।
पूता ब्रह्मपवित्रेण पूताः सूर्यस्य रश्मिभिः॥ इति गंधम्।

इमे माल्याः शुभा दिव्याः सर्वमाल्यैरलंकृताः। पूता इत्यादि, इति मालाः। इमे पुष्पा इति पुष्पाणि।

'इमा आपः शिव० आचमनीयास्ता जुषतां प्रतिगृह्य०' इससे आचमन दे। 'इमा आ० अर्घ्यास्ता' इससे अर्घ्य दे। पंचामृत से स्नान करावे। देवमन्त्रों से नहलाकर 'इदं विष्णुः' इससे विष्णु में और 'नमो अस्तु नीलग्रीवाय' इससे लिंग में। कंकण का विसर्जन कर वस्त्र और यज्ञोपवीत को देकर—सब गन्धोंसे अलंकृत, दिव्य, शुभ, पवित्र, पवित्र वेद से सूर्य की किरणों से पूत ये गन्ध हैं, इस आशय के मंत्र से गन्ध दे। सब माल्योंसे अलंकृत दिव्य शुभ पवित्र इत्यादि आशय के मंत्र से माला अर्पण करे। 'इमे पुष्पा' इससे पुष्प का अर्पण करे।

वनस्पतिरसो धूपो० धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्। प्रतिगृह्णातु भगवानित्यादि। ज्योतिः शुक्रं च तेजश्च देवानां सततं प्रियम। भास्करः सर्वभूतानां दीपो०ताम्। प्रतिगृह्णातु भगवानिति दीपं दत्त्वा, विष्णौ संकर्षणादिद्वादशनामभिः पुष्पाणि समर्प्य तैरेव तर्पणं कृत्वा पायसगुडौदनचित्रौदनानि पवित्रं ते विततमिति निवेद्य संकर्षणादिनामभिर्द्वादशगृहसिद्धान्नकृसराहुतीर्हुत्वा, कृसरेणैव शार्ङ्गिणे० श्रियै० सरस्वत्यै० विष्णवे० इति हुत्वा, ॐ विष्णोर्नुकं० ॐ तदस्य प्रियम० ॐ प्रतद्विष्णु० ॐ परो मात्रया० ॐ विचक्रमे० ॐ त्रिर्देवः पृथिवीं० इति षड् मन्त्रैर्जुहुयात्।

वनस्पतिरसो धूपो० इत्यादि मंत्र से धूप दे। सब जीवों का सूर्य, ज्योतिरूप, देवताओं का शुक्र और तेज, देवताओं का निरंतर प्रिय, इस दीप को आप ग्रहण करें, इस प्रकार दीप देकर विष्णु में संकर्षण आदि बारह नामों से पुष्प का समर्पण कर उन्हीं नामों से तर्पण करके खीर गुड़ भात और चित्र विचित्र भात को 'पवित्रं ते विततं' इससे निवेदन कर संकर्षण आदि नामों से गृह सिद्ध अन्न खिचड़ी से बारह आहुति होम करके खिचड़ी ही से

---

१. कौलावलीनिर्णये—'घृतं क्षीरं तथा नीरं शर्करामधुसंयुतम्। पञ्चामृतमिदं ख्यातं प्रत्येकं तु पलं पलम्॥' महानिर्वाणतन्त्रे—'शर्करा मधु दुग्धं च घृतं दधि समांशकम्। पञ्चामृतमिदं प्रोक्तं देहशुद्धौ विधीयते॥' इति।

शार्ङ्गिणे० श्रियै० सरस्वत्यै० विष्णवे० इनसे होम करके 'ॐ विष्णोर्नुकं' 'ॐ तदस्य प्रियम०' 'ॐ प्रतद्विष्णु०' 'ॐ परो मात्रया०' 'ॐ विचक्रमे०' 'ॐ त्रिर्देवः पृथिवीं०' इन मन्त्रों से छ आहुति दे।

लिङ्गे तु दीपान्तं कृत्वा भवाय देवाय० शर्वाय देवाय० ईशानाय देवाय० पशुपतये देवाय० रुद्राय देवाय० उग्राय देवाय० भीमाय देवाय० महते देवाय नम इति पुष्पाणि दत्त्वा तैरेव तर्पणं कृत्वा पवित्रं ते इति पायसं गुडौदनं च निवेद्य भवाय देवाय स्वाहेत्याद्यष्टभिः [1]कृसरं जुहुयात्। तिलमिश्रौदनः कृसरः। भवस्य देवस्य पत्न्यै स्वाहेत्याद्यष्टभिर्गुडौदनं हुत्वा भवस्य देवस्य सुताय स्वाहेत्याद्यष्टभिर्हरिद्रौदनं हुत्वा, ओं त्र्यम्बकं० ओं मानो महान्तं० ओं मानस्तोके० ओं आरात्ते० ओं विकिरिद० ओं सहस्राणि सहस्र० इति [2]द्वादशऋचः। एतैः कृसरं हुत्वा शिवाय० शंकराय० सहमानाय० शितिकण्ठाय० कपर्दिने० ताम्राय० अरुणाय० अपगुरमाणाय० हिरण्यबाहवे० सस्पिञ्जराय० बभ्लुशाय० हिरण्यायेति द्वादशनामभिर्हरिद्रौदनं जुहुयात्।

लिंग में तो दीप पर्यन्त करके 'भवाय देवाय०' 'शर्वाय देवाय०' 'ईशानाय देवाय०' 'पशुपतये देवाय०' 'रुद्राय देवाय०' 'उग्राय देवाय०' 'भीमाय देवाय०' 'महते देवाय नमः' इस प्रकार पुष्प देकर उन्हीं मन्त्रों से तर्पण करके 'पवित्रं ते' इससे खीर और गुड़ भात निवेदन कर 'भवाय देवाय स्वाहा' इत्यादि आठ मन्त्रों से खिचड़ी का होम करे। तिल मिले हुए भात को कृसर कहते हैं। 'भवस्य देवस्य पत्न्यै स्वाहा' इत्यादि आठ मन्त्रों से गुड़ भातसे होम करके 'भवस्य देवस्य सुताय स्वाहा' इन आठ से हरदी भात का होम करके 'ॐ त्र्यम्बकं०' 'ओं मानो महान्तं०' ॐ मानस्तोके०' 'ओं आरात्ते०' 'ओं विकिरिद०' 'ओं सहस्राणि सहस्र०' ये बारह ऋचायें हैं। इनसे कृसर (तिल मिले हुए भात) का होम करके शिवाय० शंकराय० सहमानाय० शितिकण्ठाय० कपर्दिने० ताम्राय० अरुणाय० अपगुरमाणाय० हिरण्यबाहवे० सस्पिंजराय० बभ्लुशाय० हिरण्याय० इन बारह नामों से हरदी भात का होम करे।

स्विष्टकृदादिहोमशेषं समाप्य पूर्वोक्तसर्वहविर्भिर्विष्णवे लिङ्गाय वा बलिं दद्यात्। मन्त्रस्तु—

त्वामेकमाद्यं पुरुषं पुरातनं नारायणं विश्वसृजं यजामहे।
त्वमेव यज्ञो विहितो विधेयस्त्वमात्मनात्मन्प्रतिगृह्णीष्व हव्यम्॥

---

१. कृसर का स्वरूप—'ओदनस्तिलमिश्रस्तु कृसरः परिकीर्तितः। तिलकल्कान् विनिक्षिप्य श्रृतो वा कृसरो भवेत्॥' अन्यत्र—'तिलतण्डुलसम्मिश्रः कृसरः सोऽभिधीयते॥ इति।

२. प्रचलितरुद्राध्याये दशऋच एव, द्वादशऋचो न सन्ति। हस्तलिखितरुद्राध्याये मदनमहार्णवे च ऋग्द्वयमधिकमवलोक्यते, अतस्तद्द्वयमधो विलिख्यते। 'ये तीर्थानि प्रचरन्ति० तेषाᳩ सहस्रयोजने० इत्यस्याग्रे—'ये वनान्युपसर्पन्ति तेभ्यो वृष्टिरुदायते। तेषाᳩ सहस्रयोजने वधन्वानि तन्मसि॥ ११॥ ये ग्राम्यानुपसर्पन्ति यो व्युष्टिमुपासते। तेषाᳩ सहस्रयोजने वधन्वानि तन्मसि॥१२॥' इति निर्णयसिन्धुटिप्पणीकाराः श्रीकृष्णशास्त्रिणः।

लिङ्गे तु नारायणपदे रुद्रं शिवमिति वदेत्। अश्वत्थपर्णे भूर्भुवः स्वरोमिति हुतशेषं निधाय प्रदक्षिणीकृत्य, विश्वभुजे नमः सर्वभुजे० आत्मने० परमात्मने नम इति नत्वाचार्याय द्वादश तिस्र एकां वा गां दत्त्वा ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दत्त्वा शतं द्वादश वा विप्रान्भोजयेदिति। प्रासादे नूतने जलाशयोक्तप्रतिष्ठाविधिः कार्यः। तत्र गोरुत्तारणपात्रीप्रक्षेपादि न कुर्यात्। वारुणहोमस्थाने वास्तुहोमः। इति स्थिरार्चाचलार्चयोः प्रतिष्ठाप्रयोगः।

स्विष्टकृत् आदि होम को समाप्त कर पहिले कहे सब हवि से विष्णु अथवा लिंग को बलि दे। मन्त्र है–एक, आद्य, पुरातन पुरुष, विश्वसृज नारायण की हम लोग पूजा करते हैं। आप ही विहित-यज्ञ हैं, आप ही विधेय हैं, आप अपने से अपने हव्य को ग्रहण करें, इस आशय के मन्त्र से बलि दे। लिंग में तो पूर्वोक्त मंत्र में नारायण पद के स्थान में 'रुद्र' अथवा 'शिव' कहे। पीपल के पत्ते पर 'भूर्भुवः स्वरोम्' इससे होम का शेष रख कर प्रदक्षिणा करके 'विश्वभुजे नमः, सर्वभुजे नमः, आत्मने नमः, परमात्मने नमः' इस प्रकार नमस्कार कर आचार्य को बारह, तीन अथवा एक गाय और ऋत्विजों को दक्षिणा देकर सौ या बारह ब्राह्मणों को भोजन करावे। नये प्रासाद में जलाशय की कही हुई प्रतिष्ठा विधि करनी चाहिये उसमें गायका उत्तारण पात्री प्रक्षेप आदि न करे। वारुण होम के स्थान में वास्तु होम करे। स्थिरार्चा चलार्चा प्रतिष्ठा का प्रयोग समाप्त।

अथातोपि संक्षिप्त एकाध्वरविधानेन चलप्रतिष्ठाप्रयोगः

संकल्पादिनान्दीश्राद्धान्तं प्राग्वत्। एकमाचार्यं वृणुयात्। आचार्यः'अमुकदेवप्रतिष्ठाकर्म करिष्ये' इत्यादिसर्षपविकिरणान्ते सर्वतोभद्रमण्डले प्राग्वन्नामभिर्ब्रह्मादि मण्डलदेवता आवाह्य संपूज्य यथागृह्यमग्निं प्रतिष्ठाप्यान्वादध्यात्।

संकल्प से लेकर नान्दीश्राद्ध पर्यन्त पूर्ववत् करे। एक आचार्य का वरण करे। आचार्य 'अमुक देवता की प्रतिष्ठा करूंगा' इत्यादि संकल्प करे। सरसों का विकिरण करके सर्वतोभद्रमण्डल में पहिले की तरह नाम मन्त्रों से ब्रह्मादिमण्डलदेवता का आवाहन करके पूजाकर गृह्य के अनुसार अग्नि की स्थापना करके आधान करे।

आज्यभागान्ते स्थाप्यदेवतां सहस्रमष्टोत्तरशतं वा समिदाज्यचरुतिलद्रव्यैर्ब्रह्मादिमण्डलदेवताः प्रत्येकं दशदशतिलाज्याहुतिभिः, शेषेणेत्यादि। तूष्णीं निर्वापप्रोक्षणे। आज्यभागान्ते तडागनदीतीरगोष्ठचत्वरपर्वतगजाश्वह्रदवल्मीकसंगमेति दशमृद्भिरष्टवारं देवं संस्नाप्य पञ्चगव्यैः क्रमेण स्नापयित्वा दूर्वासिद्धार्थपल्लवोपेतैरष्टकलशैरापोहिष्ठादिमन्त्रैरभिषिच्याग्न्युत्तारणं कुर्यात्।

आज्यभाग के अन्त में स्थाप्य देवता का एक हजार आठ या एक सौ आठ बार समिधा, घृत, चरु और तिल द्रव्यों से और ब्रह्मादिमण्डलदेवता को प्रत्येक को तिल घृत से दस-दस आहुति दे। शेषेण इत्यादि पूर्ववत् है। विना मन्त्र के निर्वाप और प्रोक्षण करके आज्यभाग के अन्त में तालाब, नदी, तीर, गोष्ठ, चौराहा, पर्वत, गजस्थान, अश्वस्थान, ह्रद, वल्मीक और नदीसंगम की मिट्टी से आठ बार देवता को नहलाकर पंचगव्य से क्रम से स्नान कराकर दूब, सरसो के पल्लवों से युक्त आठ कलशों से 'आपोहिष्ठा' आदि मन्त्रों से अभिषेक करके अग्न्युत्तारण करे।

सर्वतोभद्रपीठे देवमुपवेश्य नाम्ना वस्त्रगन्धधूपादि दत्त्वाऽष्टदिक्षु पल्लवादियुतोदकुम्भानष्टौ [1]दीपांश्च संस्थाप्य प्राग्वन्नेत्रोन्मीलनम्। चित्रान्नेन बलिं दत्त्वा पुरुषसूक्तेन स्तुत्वोक्तद्रव्यचतुष्टयं स्थाप्यदेवमन्त्रेण हुत्वा एकैकद्रव्यहोमान्ते देवं स्पृशेत्। आज्यहोमे कुम्भे सम्पातान् क्षिपेत्। मण्डलदेवताभ्यो हुत्वा होमशेषं समाप्य पूर्णाहुतिं कुर्यात्।

सर्वतोभद्रपीठ पर देवता को बैठा कर नाम से वस्त्र-गन्ध-धूप देकर आठों दिशाओं में पल्लवादियुक्त सजलकुम्भों और आठ दीपों को स्थापित करके पहिले के समान नेत्रोन्मीलन करे। चित्रान्न से बलि देकर पुरुषसूक्त से स्तुति करके कहे हुए चार द्रव्यों से स्थाप्य देवता के मन्त्र से होम करके एक एक द्रव्य के होम के अन्त में देवता को स्पर्श करे। घृत होम में कुम्भ में संपातों को छोड़े। मण्डलदेवता के लिये होम करके होम शेष को समाप्त करके पूर्णाहुति करे।

ततः पूर्वोक्तरीत्या सूक्तन्यासावाहनप्राणप्रतिष्ठान्तं कृत्वा इहैवैधीति त्र्यृचं पुरुषसूक्तं च जप्त्वा [2]मूलमन्त्रादिनावाहनादिपञ्चामृतस्नानान्ते संपातोदकैरिमा आपः शिवतमा इत्यादिनाभिषेकः। वस्त्रादिनैवेद्यान्तं प्राग्वत्। ताम्बूलफलदक्षिणानीराजननमस्कारप्रदक्षिणादि विधाय पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा साचार्यः कर्ता देवं नत्वा क्षमाप्याचार्यदक्षिणान्तेऽष्टकुम्भोदकैर्यजमानाभिषेकः। विष्णुं स्मृत्वा कर्मेश्वरेऽर्पयेदिति संक्षेपः।

तदनन्तर पहिले की रीति से सूक्त, न्यास, आवाहन और प्राणप्रतिष्ठा पर्यन्त करके 'इहैवैधि' इन तीनों ऋचाओं और पुरुषसूक्त को जप कर मूल मन्त्र आदिसे आवाहन आदि पंचामृत स्नान तक संपात के जल से 'इमा आपः शिवतमा' इत्यादि मन्त्र से अभिषेक करे। वस्त्र आदि नैवेद्यपर्यन्त पूर्ववत् करे। ताम्बूल, फल, दक्षिणा, नीराजन, नमस्कार और प्रदक्षिणा आदि करके पुष्पांजलि देकर आचार्य सहित कर्ता देवता को नमस्कारपूर्वक अपराध क्षमापन कर दक्षिणा के अन्त में आचार्य आठ कुम्भों के जल से यजमान का अभिषेक और विष्णु का स्मरण कर कर्म को ईश्वरार्पण करे, यह संक्षेप है।

अथ पुनः प्रतिष्ठा

[3]मद्यचाण्डालस्पृष्टा वह्निदग्धा विप्ररक्तदूषिता शवपापिस्पृष्टा च प्रतिमा पुनः संस्कार्या। खण्डिते स्फुटिते स्थानभ्रंशे पूजनाभावेऽश्वगर्दभादिस्पर्शे पतितरजस्व-

---

१. कालिकापुराणे—'न मिश्रीकृत्य दद्यात्तु दीपं स्नेहे घृतादिकम्। घृतेन दीपकं नित्यं तिलतैलेन वा पुनः॥ ज्वालयेन्मुनिशार्दूल सन्निधौ जगदीशितुः। कार्पासवर्तिका ग्राह्या न दीर्घा न च सूक्ष्मका॥' मन्त्रमहोदधौ—'घृतदीपो दक्षिणे स्यात्तैलदीपस्तु वामतः। सितवर्तियुतो दक्षे वामेऽङ्गे रक्तवर्तिकः॥' अपि च—'दीपं न स्थापयेद् भूमौ घृततैले न मिश्रयेत्। पात्रं तस्य न भग्नं स्याद् वर्तिका चाप्यदूषिता॥ देवस्य दक्षिणे पार्श्वे दीपं दद्याद् यथाविधि। साधारं स्थापयेद्दीपमन्यथा ह्यशुभं भवेत्॥'इति।

२. पाद्मे—'प्रणवादिनमोऽन्तं तच्चतुर्थ्यन्तं च सत्तम। देवतायाः स्वकं नाम मूलमन्त्र उदाहृतः॥' जैसे-'ओं कृष्णाय नमः, ओं रामाय नमः' आदि। मन्त्रों में प्रणव का महत्त्व—'प्रणवेन विहीनं यत्तन्मन्त्रं प्राणहीनकम्। सर्वमन्त्रेषु मन्त्राणां प्राणः प्रणव उच्यते॥' इति।

३. हयशीर्षपञ्चरात्रे—'चाण्डालमद्यसंस्पर्शदूषिता वह्निनाऽथवा। अपुण्यजनसंस्पृष्टा विप्रक्ष-

लाचोरैः स्पर्शे च पुनःप्रतिष्ठा । खण्डितां भग्नां विधिनोद्धृत्यान्यां संस्थाप्य 'अर्चाया भङ्गचौर्यादौ तद्दिने उपवासः । ताम्रादिधातुमूर्तीनां चोरचाण्डालादिस्पर्शे ताम्रादिधातूक्तशुद्धिं[2] कृत्वा पुनःप्रतिष्ठा । पूर्वं प्रतिष्ठितस्याबुद्धिपूर्वकमेकरात्रमेकमासं द्विमासं वार्चनादिविच्छेदे शूद्ररजस्वलाद्युपस्पर्शने वा जलाधिवासं कृत्वा कलशेन स्नापयेत् ।

मद्य और चाण्डाल से स्पर्श की हुई, आग से जली हुई, ब्राह्मण के रक्त से दूषित, मुर्दा और पापी से स्पर्श की हुई प्रतिमा का पुनः संस्कार करना चाहिये । खण्डित होने, फूट जाने, स्थान-भ्रंश होने, पूजा नहीं करने, घोड़ा गदहा आदिसे स्पर्श होने और पतित रजस्वला तथा चोर से स्पर्श होने पर भी पुनः प्रतिष्ठा की जाती है । खण्डित और भग्न प्रतिमा को विधि से हटा करके दूसरी प्रतिमा की स्थापना करे और प्रतिमा के भंग तथा चोरी हो जाने आदि में उस दिन उपवास करे । ताम्र आदि धातु की मूर्त्तियों के चोर और चाण्डाल आदि के स्पर्श में ताम्र आदि धातु की कही हुई शुद्धि करके पुनः प्रतिष्ठा करे । पूर्व प्रतिष्ठित मूर्ति का अज्ञानपूर्वक एक रात एक महीना या दो महीना तक पूजा आदि न होने पर अथवा शूद्र रजस्वला आदि से स्पर्श होने पर जलाधिवास करके कलश से नहवावे ।

ततः पंचगव्येन स्नापयित्वाऽष्टसहस्रमष्टशतमष्टाविंशतिसंख्यं वा कलशैः शुद्धोदकेन पुरुषसूक्तेन स्नापयेत् । गन्धपुष्पादिना पूजयित्वा गुडौदनं निवेदयेदिति शुद्धिः । बुद्धिपूर्वं पूजनविच्छेदे शूद्रस्पर्शादौ च पुनःप्रतिष्ठयैव शुद्धिः । अन्ये तु—

एकाहपूजाविहतौ कुर्याद् द्विगुणमर्चनम् ।
द्विरात्रे तु महापूजां संप्रोक्षणमतः परम् ॥

तजदूषिता ॥' अपि च—'अग्निदग्धे तु दम्भोलिपतने देवमन्दिरे । पुनः प्रतिष्ठा कर्तव्या आर्ते च निःस्वनेऽपि वा ॥ सम्प्रोक्षणविधानेन कुर्यादेवमतन्द्रितः । स्थानसंचलने वाऽपि शवसूतकिसंस्पृशे ॥ चण्डालपुल्कसोदक्यापतिताद्यभिमर्शने । एवमाद्येषु जातेषु तदा सम्प्रोक्षयेद् गुरुः ॥ सम्प्रोक्षणविधाने तु न कालनियमस्तथा । पुण्याहं वाचयित्वा च ब्राह्मणैरुच्चारयेत् ॥' इति ।

पञ्चरात्रे—'खण्डिता स्फुटिता दग्धा यस्मादर्चा भयावहा । तस्मात्समुद्धरेत्तां तु पूर्वोक्तविधिना नरः ॥' पदार्थादर्शे—'खण्डिते स्फुटिते दग्धे भ्रष्टे मानविवर्जिते । यागहीने पशुस्पृष्टे पतिते दुष्टभूमिषु ॥ अन्यमन्त्रार्चिते चैव पतितस्पर्शदूषिते । दशस्वेतेषु नो चक्रुः सन्निधानं दिवौकसः ॥' पशुः=गर्दभादिः । सिद्धान्तशेखरे—'चौरचण्डालपतितश्वोदक्यास्पर्शने सति । शवाद्युपहतौ चैव प्रतिष्ठां पुनराचरेत् ॥' इति ।

१. अर्चायाः—प्रतिमायाः, विष्णुधर्मोक्तिः—'न राज्ञो विप्लवेऽश्नीयात् सुरार्चाविप्लवे तथा ।' इति ।

२. शुद्धिविवेक में विष्णु का वचन है—'द्रव्यवत्कृतशौचानां देवतार्चानां भूयः प्रतिष्ठापनेन शुद्धिः' तद्द्रव्यस्य ताम्रादेरुक्तशौचं कृत्वा पुनः प्रतिष्ठां कुर्यादित्यर्थः । ताम्रादि की शुद्धि—'ताम्रायःकांस्यरैत्यानां त्रपुणः सीसकस्य च । शौचं यथार्हं कर्तव्यं क्षाराम्लोदकवारिभिः ॥' मनु के इस वचन में अम्लोदकादि से ताम्रादि का शुद्धि-कथन नियमार्थक नहीं है इसीलिये अन्यत्र सामान्यतः कहा है—'मलसंयोगजं तज्जं यस्य येनोपहन्यते । तस्य तच्छोधनं प्रोक्तं सामान्यं द्रव्यशुद्धिकृत् ॥' इति ।

मासादूर्ध्वं पूजाविहतौ पुनःप्रतिष्ठा प्रोक्षणविधिर्वा कार्यं इत्याहुः। पुनःप्रतिष्ठादि मलमासशुक्रास्तादावपि कार्यम्।

उसके बाद पंचगव्य से नहला कर एक हजार आठ या एक सौ आठ, अथवा अट्ठाइस कलशों से शुद्धोदक के द्वारा पुरुषसूक्त से नहवावे। गन्ध पुष्प आदि से पूजा करके गुड़ भात निवेदन करे, इस प्रकार शुद्धि होती है। ज्ञानपूर्वक पूजा नहीं होने पर शूद्र से स्पर्श आदि में पुनः प्रतिष्ठा से ही शुद्धि होती है। अन्य लोग तो एक दिन पूजा न होने पर द्विगुण पूजा करे, दो रात्रि पूजा नहीं करने पर महापूजा करे, इसके बाद प्रोक्षण करे, महीने से ऊपर पूजा न होने पर पुनः प्रतिष्ठा या प्रोक्षण विधि करे, ऐसा कहते हैं। पुनःप्रतिष्ठा आदि मलमास और शुक्रास्तादि में भी करना चाहिये।

अथ देवालयादिभङ्गे विचारः

देवालयवापीकूपतडागभेदने आरामसेतुसभाभङ्गे इदं विष्णुर्मानस्तोके विष्णोः कर्माणि पादोस्येति चतस्र आज्याहुतीर्हुत्वा ब्राह्मणान् भोजयेदिति।

देवमन्दिर, बावली, कुआं और तालाब के टूटने पर, बगीचा पुल और सभा के भंग होने पर 'इदं विष्णु' 'मानस्तोके' 'विष्णोः कर्माणि' और 'पादोस्य' इन चार ऋचाओं से घृत की आहुति से होम करके ब्राह्मणों को खिलावे।

अथ प्रोक्षणविधिः

देवमुद्वास्य पञ्चवारं मृज्जलैः प्रक्षाल्य पंचगव्यैः स्नापयित्वा कुशोदकैर्विशोध्य मूलेनाष्टोत्तरशतवारं प्रोक्ष्य मूलेन मूर्धादिपीठान्तं संस्पृश्य तत्त्वन्यासलिपिन्यासमन्त्रन्यासपूर्वकं प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा महापूजां कुर्यात्। पूजाहीनादिषु ह्येष संप्रोक्षणविधिः स्मृतः।

देवता का उद्वासन कर मिट्टी जल से प्रक्षालन करके पंचगव्य से स्नान कराके कुश जल से शोधन करके मूल मन्त्र से एक सौ आठ बार प्रोक्षण कर मूर्धादि पीठपर्यन्त स्पर्श करके तत्त्वन्यास, लिपिन्यास और मन्त्रन्यासपूर्वक प्राणप्रतिष्ठा करके महापूजा करे। पूजाहीन आदि में यह सप्रोक्षण विधि कही गई है।

अथ जीर्णोद्धारविधिः

स च लिङ्गादौ भग्ने दग्धे वा कार्यः। अयं चानादिसिद्धप्रतिष्ठितलिङ्गादौ भङ्गादिदोषेऽपि न कार्यः, तत्र तु महाभिषेकः कार्यः। कर्ता 'अमुकदेवस्य जीर्णोद्धारं करिष्ये' इत्युक्त्वा नान्दीश्राद्धान्तं कृत्वाचार्यं वृत्वा पीठे मण्डलदेवता आवाह्य लिङ्गे ओं व्यापकेश्वरहृदयाय नमः ओं व्यापकेश्वरशिरसे स्वाहेत्यादि षडङ्गं कृत्वा देवतान्तरे [2]मूलमन्त्रेण षडङ्गं कृत्वाऽर्चयेत्।

---

१. शङ्ख और लिखित ने विशेष कहा है—'प्रतिमारामकूपसंक्रमध्वजसेतुनिपानभङ्गेषु तत्समुत्थानं प्रतिसंस्कारोऽष्टशतं च निपातितानाम्' इति। समुत्थानं = प्रतिक्रिया, प्रतिसंस्कारः = पुनःप्रतिष्ठा, अष्टशतं पणा दण्डश्चेत्यर्थः।

२. पद्मपुराण के—'प्रणवादिनमोऽन्तं तच्चतुर्थ्यन्तं च सत्तम। देवतायाः स्वकं नाम मूलमन्त्र उदाहृतः॥' इस वचन के अनुसार 'ॐ विष्णवे नमः, ॐ विश्वनाथाय नमः' इत्यादि मूलमन्त्र का स्वरूप जानना चाहिये।

जीर्णोद्धार—लिंग आदि के फूटने पर या जलने पर किया जाता है। इसे अनादि-सिद्ध प्रतिष्ठित लिंग आदि के टूटने आदि दोष में भी नहीं करे। उसमें तो महाभिषेक करना चाहिये। कर्ता 'अमुक देवता का जीर्णोद्धार करूंगा' ऐसा कहकर नान्दीश्राद्धपर्यन्त करके आचार्यवरण और पीठ में मण्डलदेवता का आवाहन कर लिंग में 'ॐ व्यापकेश्वरहृदयाय नमः' 'ॐ व्यापकेश्वरशिरसे स्वाहा' इत्यादि षडंगन्यास करके दूसरे देवताओं में मूलमन्त्र से षडंगन्यास करके पूजा करे।

अघोरेति मन्त्रमष्टोत्तरशतं जप्त्वाग्निं प्रतिष्ठाप्य अघोरेण घृताक्तसर्षपैः सहस्रं हुत्वेन्द्रादिभ्यो नाम्ना बलिं दत्त्वा जीर्णं देवं प्रणवेन संपूज्य साज्यतिलैर्मण्डलदेवताहोमं कृत्वा प्रार्थयेत्—

'अघोर' इस मन्त्र को एक सौ आठ बार जप कर अग्नि की स्थापना करके अघोर मन्त्र से घृताक्त किये सरसो से एक हजार आहुति देकर इन्द्र आदि को नाम मंत्र से वलि देकर जीर्ण देव को प्रणव से पूजा कर मन्त्रसहित तिलों से मण्डल देवता को होम करके प्रार्थना करे—

जीर्णंभग्नमिदं चैव सर्वदोषावहं नृणाम्।
भस्योद्धारे कृते शान्तिः शास्त्रेऽस्मिन्कथिता त्वया ॥
जीर्णोद्धारविधानं च नृपराष्ट्रहितावहम्।
तदधस्तिष्ठतां देव प्रहरामि तवाज्ञया ॥

जीर्ण और भग्न आपका यह शरीर मनुष्यों के सब दोष को देने वाली है। इसके उद्धारार्थ इस शास्त्र में आपने शान्ति कही है। जीर्णोद्धार का विधान राजा और राष्ट्रहित के लिये होता है। आप नीचे रहें, हे देव! आप की आज्ञा से प्रहार करता हूँ।

क्षीराज्यमधुदूर्वासमिद्भिर्देवमन्त्रेणाष्टोत्तरशतं हुत्वा तिलैः सहस्रं हुत्वा पायसेन शतं हुत्वा लिङ्गं प्रार्थयेत्—

लिङ्गरूपं समागत्य येनेदं समधिष्ठितम्।
यायास्त्वं संमितं स्थानं संत्यज्यैव शिवाज्ञया ॥
अत्र स्थाने च या विद्या सर्वविद्येश्वरैर्युता। शिवेन सह संतिष्ठ...

इति मन्त्रितजलेनाभिषिच्य विसर्जयेत्। अस्त्रमन्त्रितेन खनित्रेण खात्वा लिङ्गमादाय वामदेवमन्त्रेण नद्यादौ क्षिपेत्। मूर्तिं प्रणवेन क्षिपेत्।

दूध, घी, मधु और दूब की समिधा से देवता के मन्त्र से एक सौ आठ और तिलों से एक हजार तथा खीर से सौ बार होम करके लिंग की प्रार्थना करे—जिसने लिंगरूप में आकर इसको अधिष्ठित किया है ऐसे शंकर की आज्ञा से सम्मित-स्थान को छोड़कर आप जायं। इस स्थान में सब विद्येश्वरों से युक्त जो विद्या है शिव के साथ रहें। इस प्रकार अभिमन्त्रित जल से अभिषेक कर विसर्जन करे। अस्त्रमन्त्रित इस खनित्र (कुदाल, खनती) से लिंग को खोदकर लिंग को लेकर वामदेव के मन्त्र से नदी आदि में फेंक दे। मूर्ति हो तो प्रणव से फेंके।

दारुजं मधुनाभ्यज्याघोरेण दहेत्। हेमादिमयं योग्यं कृत्वा तत्रैव स्थापयेत्। ततः शान्त्यर्थमघोरेण घृतक्षीरमध्वक्तैस्तिलैः सहस्रं हुत्वा प्रार्थयेत्—

भगवन्भूतभव्येश लोकनाथ जगत्पते ।
जीर्णलिङ्गसमुद्धारः कृतस्तवाज्ञया मया ॥
असिना दारुजं दग्धं क्षिप्तं शैलादिकं जले ।
प्रायश्चित्ताय देवेश अघोरास्त्रेण तर्पितम् ॥
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि यथोक्तं न कृतं यदि ।
तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥

लकड़ी की मूर्ति हो तो मधु लगाकर 'अघोर' मन्त्र से जला दे। सुवर्ण आदि से योग्य मूर्ति बनाकर उसी स्थान में स्थापित करे। उसके बाद शान्ति के लिये 'अघोर' मंन्त्र से घी, दूध, मधु से भीगे हुए तिलों से एक हजार आहुति देकर प्रार्थना करे—हे भगवन्! भूतभव्य के प्रभु! हे जगत्पते! हे लोकनाथ! मैंने जीर्ण लिंग का समुद्धार आपकी आज्ञा से किया है। लकड़ी की मूर्ति आग से जला दी है। पत्थर आदि की मूर्ति को जल में फेंक दिया है। हे देवेश! प्रायश्चित्त के लिये 'अघोर' अस्त्र से तर्पित किया है। ज्ञान अथवा अज्ञान से जैसा कहा है वैसा मैंने यदि नहीं किया है तो हे महेश्वर! वह आपके प्रसाद से पूर्ण हो।

अथ यजमानः प्रार्थयेत्—

गोविप्रशिल्पिभूपानामाचार्यस्य च यज्वनः ।
शान्तिर्भवतु देवेश अच्छिद्रं जायतामिदम् ॥ मूर्तौ तु विशेषः—
त्वत्प्रसादेन निर्विघ्नं देहं निर्मापयत्यसौ ।
वासं कुरु सुरश्रेष्ठ तावत्त्वं चाल्पके गृहे ॥
वस क्लेशं सहित्वेह मूर्तिं वै तव पूर्ववत् ।
यावत्कारयते भक्तः कुरु तस्य च वाञ्छितम् ॥

ततो नवां मूर्तिं लिङ्गं वा कृत्वोक्तविधिना प्रतिष्ठाकालानपेक्षया मासादर्वाक् स्थापयेत्। इति जीर्णोद्धारः।

तदनन्तर यजमान प्रार्थना करे—गौ-ब्राह्मण-शिल्पी और राजा, यज्ञ कराने वाले तथा आचार्य की हे देवेश! शान्ति हो यह कार्य दोषरहित हो। मूर्ति में तो यह विशेष है—आपके प्रसादसे शिल्पी विघ्नरहित देह निर्माण करे। हे सुरश्रेष्ठ! तब तक इस छोटे गृह में आप निवास करें। कष्ट सहकर यहां आप रहें जब तक भक्त आपकी पूर्ववत् मूर्ति नहीं बनवा लेता भक्त के मनोभिलाषा को पूरा करें। इसके बाद नई मूर्ति या नया लिंग बनवाकर उक्त विधि से प्रतिष्ठा काल की अपेक्षा न करके महीने पर से पूर्व ही स्थापित कर दे। जीर्णोद्धार समाप्त।

अथ प्रतिमादिभंगे शान्तिः

प्रतिमाशिवलिङ्गे प्रासादकलशादिभङ्गे स्वामिनो मरणं भवेत्। तत्र शान्तिः—

कुण्डं कृत्वा विधानेन ततो होमं समाचरेत् ।
चरुं च यमदैवत्यं साधयित्वा विधानतः ॥
दधिक्षौद्रघृताक्तानामश्वत्थसमिधां ततः ।

जुहुयादष्टशतं प्राज्ञ इमा रुद्रेति मन्त्रवित् ॥
माषैर्मुद्गैस्तिलैश्चैव घृतेन मधुनापि च ।
एभिः पञ्च सहस्राणि शक्तिबीजेन होमयेत् ॥ शक्तिबीजं ह्रीं बीजम् ।
भूमिं धेनुमनड्वाहं स्वर्णं धान्यं सदक्षिणम् ।
दत्वाथ पञ्चगव्येन स्नायाद्देवालये द्विजः ॥
बलिं दद्याद्यमायाथ कृसरैः पायसैस्तथा ।
ईशानाय बलिं दत्त्वा कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥ अत्र मूलं कमलाकरे ।

प्रतिमा-शिवलिंग-प्रासाद-कलश आदि के भंग होने पर स्वामी का मरण होता है । उसमें शान्ति करे—विधान से कुण्ड बनवाकर तब होम करे । यम देवता के चरु को विधान से बना कर दही, मधु, घृत से भिगोकर पीपल की समिधा से 'इमा रुद्र' इत्यादि मन्त्र से एक सौ आठ बार आहुति दे । उर्द, मूंग, तिल, घी और मधु, इन पांचों से शक्तिबीज से पांच हजार होम करे । शक्ति का बीज 'ह्रीं' है । भूमि, धेनु, बैल, सोना और दक्षिणासहित धान्य देकर पंचगव्य से देव-मन्दिर में ब्राह्मण स्नान करे । यम को खिचड़ी से बलि दे । खीर से ईशान को बलि देकर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है । इसका मूल कमलाकर में है ।

अथ पुष्पाणां ग्राह्याग्राह्यविचारः

[1]अपर्युषितनिश्छिद्रैः प्रोक्षितैर्जन्तुवर्जितैः ।
आत्मारामोद्भवैर्मुख्यैर्भक्त्या संपूजयेत्सुरान् ॥
त्यजेत्कीटावपन्नानि शीर्णपर्युषितानि च ।
स्वयंपतितपुष्पाणि मलाद्युपहतानि च ॥
मुकुलैर्नार्चयेद्देवमपक्वैः कृमियुक्फलैः ।
पुष्पाभावे पत्रपूजा पत्रालाभे फलैरपि ॥
निवेदयेत्फलालाभे [2]तृणगुल्मौषधीरपि ।
समित्पुष्पकुशादीनि ब्राह्मणः स्वयमाहरेत् ॥
शूद्रानीतैः क्रयक्रीतैः कर्म कुर्वन् पतत्यधः ।
लक्षपुष्पार्चनं क्रयक्रीतैरपि ।

---

१. स्मृत्यन्तर में अपर्युषित होने की दिन संख्या—'पङ्कजं पञ्चरात्रं स्याद्दशरात्रं च बिल्वकम् । एकादशाहं तुलसी नैव पर्युषिता भवेत् ॥' स्कान्दे—'पालाशं दिनमेकं तु पंकजं च दिनत्रयम् । पञ्चाहं बिल्वपत्रं च दशाहं तुलसीदलम् ॥' पाद्मे—'तुलसी पर्युषिता नैव बिल्वं तु त्रिदिनावधि । पद्मं पञ्चदिनात्त्याज्यं शेषं पर्युषितं विदुः ॥' भविष्ये—'प्रहरं तिष्ठते जाती करवीरमहर्निशम् । तुलस्यां बिल्वपत्रेषु सर्वेषु जलजेषु च ॥ न पर्युषितदोषोऽस्ति मालाकारगृहेऽपि च ।' मात्स्ये—'बिल्वपत्रं च माध्यं च तमालामलकीदले । कह्लारं तुलसी चैव पद्मं च मुनिपुष्पकम् ॥ एतत्पर्युषितं न स्यात् कुशाश्च कलिकास्तथा ।' इति ।

२. भविष्ये—'अलाभे तु सुपुष्पाणां पत्राण्यपि निवेदयेत् । पत्राणामप्यलाभे तु तृणगुल्मौषधीरपि ॥ औषधीनामलाभे तु भक्त्या भवति पूजनम् ॥' इति ।

ताजे, छिद्ररहित, जीवों से वर्जित, धोये हुए, अपने बगीचे में पैदा हुए, मुख्य फूलों से भक्तिपूर्वक देवताओं की पूजा करे। कीड़े लगे हुए, जमीन में गिरे हुए, बासी, मल आदि लगे हुए और कली से देवता की पूजा नहीं करे। बिना पके और कीड़े लगे हुए फलों से देवता की पूजा नहीं करे। फूल के अभाव में पत्ते से पूजा करे। पत्ता न मिलने पर फलों से पूजा करे। फल न मिलने पर तृण, गुल्म और औषधियों को भी निवेदित करे। समिधा, पुष्प, कुश आदि को ब्राह्मण स्वयं लावे। शूद्र से लाये हुए और खरीदे हुए फूलों से कर्म करता हुआ पतित होता है। लाख फूलों से खरीदे हुए फूलों से भी पूजन होता है।

केचित्तु—

धर्मार्जितधनक्रीतैर्यः कुर्यात्केशवार्चनम्।
न पर्युषितदोषोऽस्ति मालाकारगृहेषु च॥

इत्याद्युक्तेर्मालाकारानीतैः क्रयक्रीतैपि पुष्पपत्रैः पूजयन्ति। नित्यपूजार्थं परोपवनादेरपि पुष्पादिग्रहे चौर्यदोषो न। पूजार्थं पुष्पादि न याचेत्।

समित्पुष्पकुशादीनि वहन्तं नाभिवादयेत्।
तद्धारी चैव नान्यान् हि निर्माल्यं तद्भवेत्तयोः॥

देवोपरि धृतं वामहस्तेऽधोवस्त्रे च धृतं जलेऽन्तःक्षालितं च पुष्पं [1]निर्माल्यम्।

वर्ज्यं पर्युषितं पुष्पं वर्ज्यं पर्युषितं जलम्।
न वर्ज्यं तुलसीपत्रं न वर्ज्यं तीर्थजं जलम्॥
प्रहरं तिष्ठते जाती करवीरमहर्निशम्।
नैव पर्युषितं पद्मं तुलसीबिल्वपत्रकम्॥
कुन्दं च दमनं चैवागस्त्यं च कलिका तथा।

कोई-धर्म से अर्जित धन से खरीदे हुए पुष्पों से जो भगवान् की पूजा करते हैं उसमें बासी का दोष और माली के घर का दोष नहीं लगता इत्यादि वचन से माली के लाये और खरीदे हुए पुष्पों पत्रों से भी पूजा करते हैं। नित्य पूजा के लिये दूसरे के बगीचे आदि से भी पुष्प आदि लेने में चोरी आदि का दोष नहीं होता। पूजा आदि के लिये फूल आदि की याचना नहीं करे। समिधा, पुष्प और कुश आदि लिये हुए को प्रणाम नहीं करे और उनको स्वयं लिये हुये दूसरे को प्रणाम नहीं करे, क्योंकि उन दोनों का वह निर्माल्य हो जाता है। देवता के ऊपर चढ़ाया हुआ, बाएं हाथ या धोती में रखा हुआ और जल में धोया हुआ पुष्प निर्माल्य है। बासी फूल, बासी जल वर्जित है। बासी तुलसी और बासी तीर्थका जल वर्जित नहीं है। जूही का फूल एक पहर ठहरता है। करवीर दिन रात ठहरता है। कमल, तुलसी, बिल्वपत्र, कुन्द, दमन, अगस्त का फूल तथा कली, ये बासी नहीं होते।

बिल्वादेरपर्युषितत्वदिनसंख्या—बिल्वः ३० अपामार्गः ३ जाती १ तुलसी ६ शमी ६ शतावरी ११ केतकी ४ भृङ्गराजः ९ दूर्वा ८ मन्दारः १ पद्मं १

---

१. भविष्ये—'तथा देवोपरि धृतं वामहस्ते धृतं च यत्। अधोवस्त्रधृतं चैव जलेन क्षालितं च यत्॥ देवतास्तन्न गृह्णन्ति पुष्पं निर्माल्यतां गतम्।' अपि च—'वस्त्रानीतं करानीतं स्वयं पतितमेव च। एरण्डपत्रैरानीतं न तस्य फलभाग्भवेत्॥' इति।

नागकेसरः २ दर्भाः ३० अगस्त्यः ३ तिलः १ मल्लिका ४ चम्पकः ९ करवीरं ८। एतेषामेतद्दिनोत्तरं पर्युषितत्वम्।

बेल आदि के बासी नहीं होने की दिन-संख्या यह है—बेल ३० दिन, अपामार्ग ३ दिन, जूही १ दिन, तुलसी ६ दिन, शमी ६ दिन, शतावरी ११ दिन, केवड़ा ४ दिन, भृंगराज ९ दिन, दूर्वा ८ दिन, मन्दार १ दिन, कमल १ दिन, नागकेशर २ दिन, कुश ३० दिन, अगस्त ३ दिन, तिल १ दिन, मल्लिका ४ दिन, चम्पा ९ दिन, करवीर ८ दिन। इन सब का उक्त दिनों के बाद बासीपन हो जाता है।

अथ तुलसीग्रहणकालः

वैधृतौ च व्यतीपाते भौमभार्गवभानुषु।
पर्वद्वये च संक्रान्तौ द्वादश्यां सूतकद्वये॥
तुलसीं[1] ये विचिन्वन्ति ते छिन्दन्ति हरेः शिरः।
नैव च्छिन्द्याद्रवौ दूर्वां तुलसीं निशि संध्ययोः॥
धात्रीपत्रं कार्तिके च पुण्यार्थी मतिमान्नरः।
द्वादश्यां च दिवास्वापस्तुलस्यवचयस्तथा॥
विष्णोश्चैव दिवास्नानं वर्जनीयं सदा बुधैः।

अत्र दिवानिषेधाद्रात्रौ स्नानादिषोडशोपचारैः पूजा कार्या। दिवा तु गन्धादिपुष्पाञ्जल्यन्ता एवोपचारा इति कमलाकराह्निके।

वैधृति और व्यतीपात में, मंगल-शुक्र-रविवार को, अमा पूर्णिमा दोनों पर्व में, संक्रान्ति में, द्वादशी में, जनन मरण दोनों सूतक में, जो तुलसी को तोड़ते हैं वे भगवान् के सिर को काटते हैं। दूब रविवार को न तोड़े। तुलसी रात और दोनों सन्ध्या में न तोड़े। आवलें का पत्ता कार्तिक में न तोड़े। द्वादशी को दिन में न सोवे और तुलसी का पत्ता न तोड़े तथा विष्णु का दिन में स्नान विज्ञजनों से सदा त्याज्य हैं। यहां दिन में निषेध है इसलिये रातमें स्नान आदि षोडशोपचार से पूजा करे। दिन में तो गन्ध आदि पुष्पांजलिपर्यन्त ही उपचार हैं, यह कमलाकर के आह्निक में लिखा है।

विष्णोर्द्वादश्यां निर्माल्यापनयनमपि न कार्यमिति तन्त्रान्तरे स्मर्यते। एतदपवादः पुरुषार्थचिन्तामणौ नारदीये—

पञ्चामृतेन संस्नाप्य एकादश्यां जनार्दनम्।
द्वादश्यां पयसा स्नाप्य हरिसायुज्यमश्नुते॥
देवार्थे तुलसीछेदो होमार्थे समिधां तथा।
इन्दुक्षये न दुष्येत गवार्थं तु तृणस्य च॥

द्वादशी के दिन विष्णु का निर्माल्य भी नहीं हटाना चाहिये, ऐसा दूसरे तन्त्रों में कहा है। इसका अपवाद पुरुषार्थचिन्तामणि के नारदीय में यह कहा है—भगवान् को एकादशी

---

१. पाद्मे–'द्वादश्यां तुलसीपत्रं धात्रीपत्रं च कार्तिके। लुनाति स नरो गच्छेन्निरयानविगर्हितान्॥' विष्णुधर्मोत्तरे—'संक्रान्तावर्कपक्षान्ते द्वादश्यां निशि सन्ध्ययोः। यैश्छिन्नं तुलसीपत्रं तैश्छिन्नं हरिमस्तकम्॥' इति।

में पंचामृत से और द्वादशी में दूध से नहलाकर विष्णु का सादृश्य प्राप्त करता है। देवता के लिये तुलसी तोड़ने, होम के लिये समिधा तोड़ने और गाय के लिये तृण काटने में अमावस्या का दोष नहीं होता है।

अथ तुलसीग्रहणमन्त्रः

तुलस्यमृतजन्मासि सदा त्वं केशवप्रिये।
केशवार्थं विचिन्वामि वरदा भव शोभने॥

जातिमल्लिकाकरवीराशोकोत्पलचम्पकबकुलबिल्वशमीकुशा 'एतानि सर्वदेवतानां विहितानि[1]। अथ विहितप्रतिषिद्धत्वाद्वैकल्पिकानि[2]—पाटला शमीपत्रं च दुर्गायाः। कुन्दपलाशबकुलदूर्वाः शिवस्य। कुमुदतगरे सूर्यस्य। तुलसीभृङ्गराजतमालपत्राणि शिवदुर्गयोः। अगस्तिमाधवीलतालोध्रपुष्पं विष्णुशिवयोः। धत्तूरमन्दारौ विष्णुसूर्ययोः। इति विकल्पतानि।

तुलसी ग्रहण का मन्त्रार्थ यह है--हे केशवप्रिये तुलसि! अमृत से तुम्हारा जन्म है। केशव के लिये तुमको तोड़ता हूँ। हे शोभने! आप वर देने वाली हो। जाती, मल्लिका, करवीर, अशोक, कमल, चम्पा, मौलसिरी, बेल, शमी और कुश, इतने सब देवताओंको विहित हैं। विहित और प्रतिषिद्ध होने से वैकल्पिक हैं—पाटल और शमी का पत्र दुर्गा के लिये, कुन्द-पलाश-मौलसिरी-दूब, शिव के लिये, कुमुद और तगर सूर्य के लिये, तुलसी-भृंगराज-तमालपत्र शिव और दुर्गा के लिये, अगस्त-माधवीलता-लोध्र पुष्प विष्णु और शिव के लिये, धत्तूर-मन्दार विष्णु और सूर्य के लिये हैं। ये वैकल्पिक हैं।

अथ विष्णोः प्रियपुष्पाणि

मालतीजातीकेतकीमल्लिकाशोकचम्पकपुन्नागबकुलोत्पलकुन्दकरवीरपाटलातगरपुष्पाणि अन्यानि च सुरभीणि विष्णोः प्रियाणि। अपामार्गभृङ्गराजखदिरशमीदूर्वाकुशदमनकबिल्वतुलसीपत्राण्युत्तरोत्तराधिकप्रियाणि। तुलसी सर्वाधिका। जातिपुष्पसहस्रेण मालार्पणे कल्पकोटिसहस्रं विष्णुपुरे वासः। आम्रमञ्जर्या पूजने गोकोटिदानफलम्।

विष्णु के प्रिय पुष्प ये हैं—मालती, जाती, केतकी, मल्लिका, अशोक, चम्पक, पुन्नाग, मौलसिरी, कमल, कुन्द, करवीर, पाटला और तगर। अन्य भी सुगन्धित पुष्प विष्णु को प्रिय हैं। अपामार्ग, भृंगराज, खदिर, शमी, दूर्वा, कुश, दमनक, बेल और तुलसीपत्र उत्तरोत्तर अधिक प्रिय हैं। तुलसी सबसे अधिक प्रिय है। हजार जाती पुष्प की माला अर्पण करने वाले का कल्प-कोटि-सहस्र विष्णुपुर में वास होता है। आम की मंजरी से पूजन में कोटि गोदान का फल होता है।

---

१. स्मृत्यन्तर में सभी देवताओं के लिये समानरूप से विहित पुष्प ये हैं—'जाती शमी कुशाः कङ्कु मल्लिका करवीरजम्। नागपुन्नागकाशोकरक्तनीलोत्पलानि च॥ चम्पकं बकुलं चैव पद्मं बिल्वं पवित्रकम्। एतानि सर्वदेवानां संग्राह्याणि समानि च॥' इति।

२. ज्ञानमालायाम्—'नाक्षतैरर्चयेद् विष्णुं न तुलस्या गणाधिपम्। न दूर्वया यजेद् देवीं बिल्वपत्रैश्च भास्करम्॥ उन्मत्तमर्कपुष्पं च विष्णोर्वर्ज्यं सदा बुधैः। फलं च कृमिसंयुक्तं प्रयत्नात्तद् विवर्जयेत्॥' इति।

अथ शिवस्य प्रियपुष्पाणि

चतुर्णां पुष्पजातीनां गन्धमाघ्राति शंकरः ।
अर्कस्य करवीरस्य बिल्वस्य बकुलस्य च ॥

दशसुवर्णदानफलं श्वेतार्कपुष्पम् । ततः सहस्रगुणं बकुलपुष्पम् । एवं धत्तूरशमीपुष्पद्रोणपुष्पनीलोत्पलानामुत्तरोत्तराणां सहस्रगुणत्वम् ।

मणिमुक्ताप्रवालैस्तु रत्नैरप्यर्चनं कृतम् ।
न गृह्णामि विना देवि बिल्वपत्रैर्वरानने ॥
सर्वकामप्रदं बिल्वं दारिद्र्यस्य विनाशनम् ।

श्रीशंकर चार जाति अर्क, करवीर, बेल और मौलसिरी के फूलों के गन्ध को ग्रहण करते हैं । दस सुवर्ण दान का फल श्वेत अर्कपुष्प को चढ़ाने से होता है । इसी प्रकार धत्तूर, शमीपुष्प, द्रोणपुष्प और नीलकमल उत्तरोत्तर सहस्र-गुण-फल देते है । श्रीशंकर पार्वती से कहते हैं—मणि, मोती, मूंगा और रत्नों से मेरा पूजन किया जाय फिर भी हे वरानने देवी ! मैं विना बिल्व पत्र के उन्हें ग्रहण नहीं करता । बिल्वपत्र दारिद्र्य का विनाशक और सब मनोरथ देने वाला होता है ।

नीलोत्पलसहस्रेण मालार्पणे कल्पकोटिसहस्रं शिवपुरे वासः । धत्तूरैर्बृहतीपुष्पैश्च पूजने गोलक्षफलम् । पाटलामन्दारापामार्गजातीचम्पकोशीरतगरनागकेसरपुन्नागजपामल्लिसहकारकुसुम्भपुष्पाणि शिवप्रियाणि ।

धत्तूराणि कदम्बानि रात्रौ देयानि शंकरे ।
मदनरत्ने केतकानि कदम्बानीति पाठः ।

अभावे पुष्पपत्राणामन्नाद्येनाभिपूजयेत् ।
शालितण्डुलगोधूमयवैर्वापि समाचरेत् ॥

हजार नीले कमल की माला चढ़ाने से कल्प-कोटि-सहस्र शिवपुर में वास होता है । धत्तूर और बृहती के फूलों से पूजा करने से लाख गोदान का फल होता है । शिव के प्रिय पुष्प ये हैं—पाटला, मन्दार अपामार्ग, जाती, चम्पक, उशीर, तगर, नागकेशर पुन्नाग, जपा, मल्लिका, सहकार और कुसुम्भ । धत्तूर और कदम्ब के पुष्प रात में शंकर को अर्पण करना चाहिये । मदनरत्न में 'धत्तूराणि' की जगह 'केतकानि कदम्बानि' ऐसा पाठ है । पुष्प पत्र के नहीं मिलने पर खाने लायक अन्नों से भी पूजा करे । साठी का चावल गेहूँ और जव से भी पूजा करे ।

अथ निषिद्धपुष्पाणि

बन्धूककुन्दातिमुक्तकेतकीकपित्थबकुलशिरीषनिम्बानि ।
'पुष्पपत्रादिकं स्वाभिमुखमुत्तानमर्पयेत् ।
पत्रं पुष्पं फलं चैव यथोत्पन्नं तथाऽर्पयेत् ॥ इति वचनात् ।

---

१. पाद्मे—'पत्रं वा यदि वा पुष्पं फलं नेष्टमधोमुखम् । यथोत्पन्नं तथा देयं बिल्वपत्रमधोमुखम् ॥' इति ।

बिल्वपत्रं तु स्वाभिमुखाग्रं न्युब्जमर्पयेत्। पक्वाम्रफलस्य शिवार्पणे वर्षायुतं शिवपुरे वासः। 'सव्यं व्रजेत्ततोऽसव्यं प्रणालीं नैव लङ्घयेदित्यादिस्थिरलिङ्गे प्रदक्षिणाप्रकारः, चरे तु सव्येनैव।

निषिद्ध पुष्प ये हैं—बन्धूक, कुन्द, अतिमुक्त, केतकी, कपित्थ, बकुल, शिरीष और निम्ब। पुष्प पत्र आदि अपने सम्मुख उत्तान अर्पित करे, क्योंकि पुष्प और फल जैसे उत्पन्न होते हैं वे वैसे अर्पित करे, ऐसा वचन है। बिल्वपत्र तो अपने संमुख औंधा करके अर्पण करे। श्रीशिव को पके आम के फल को अर्पण करने पर दस हजार वर्ष शिवपुर में वास होता है। बाएं से चले फिर बाएं से लौट आवे शिव के प्रणाल (जल मार्ग के बहने) का लंघन न करे इत्यादि। यह स्थिर लिंग में प्रदक्षिणा का प्रकार है। चर में तो सव्य ही से प्रदक्षिणा करे।

अथ देवीप्रियपुष्पाणि

देव्या अपि बकुलकुन्दादिसहितान्येतान्येव प्रियाणि।

धान्यानां सर्वपत्रैश्च पुष्पैर्देवीं प्रपूजयेत्।
दूर्वाकुन्दैः सिन्दुवारैर्बन्धूकागस्तिसंभवैः॥

देवी को भी बकुलकुन्दसहित ये ही पुष्प प्रिय हैं। देवी की पूजा धान्य के सब पत्तों और पुष्पों से, दूर्वा, कुन्द, सिन्दुवार, बन्धूक तथा अगस्त के फूलों से करे।

अथ राजसूयादियज्ञफलदायकानि

बिल्वपत्रैः पूजने राजसूयफलम्। करवीरस्रजाऽग्निष्टोमस्य। बकुलस्रजा वाजपेयस्य। द्रोणस्रजा राजसूयस्येति। एवं सूर्यविघ्नेशादेरपि प्रायो विष्णुवत् ज्ञेयानि।

बिल्वपत्रों से पूजन करने पर राजसूय का फल होता है। करवीर की माला से अग्निष्टोम का, मौलसिरी की माला से वाजपेय का और द्रोण की माला से राजसूय यज्ञ का फल मिलता है। इसी प्रकार सूर्य और गणेश आदि के भी पुष्प प्रायः विष्णु की तरह जानना चाहिये।

अथ शिवनिर्माल्यग्रहणविचारः

[2]अग्राह्यं शिवनैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम्।
शालग्रामशिलासंगात्सर्वं याति पवित्रताम्॥

शैवसौरनैवेद्यभक्षणे चान्द्रायणम्। अभ्यासे द्विगुणम्। मत्याऽभ्यासे सांतपनम्।

---

१. यह अग्निपुराण का वचन है। बह्वृचपरिशिष्ट में प्रदक्षिणा का विचार यों है—'एकां विनायके कुर्याद् द्वे सूर्ये तिस्र ईश्वरे। चतस्रः केशवे कुर्यात् सप्ताश्वत्थे प्रदक्षिणाः॥' अन्यत्र—'एका चण्ड्या रवेः सप्त तिस्रः कार्या विनायके। हरेश्चतस्रः कर्तव्याः शिवस्यार्धं प्रदक्षिणाः॥ वृषं चण्डं वृषं चैव सोमसूत्रं पुनर्वृषम्। चण्डं च सोमसूत्रं च पुनश्चण्डं पुनर्वृषम्॥ अपसव्यं यतीनां तु सव्यं तु ब्रह्मचारिणाम्॥' 'सव्यापसव्यं गृहिणामेवं शम्भोः प्रदक्षिणा।' इति।

२. हेमाद्रिपरिशिष्टोद्धृत तिथितत्त्व में यह वचन है। शिवपुराणे—'ये वीरभद्रशपिताः शिवभक्तिपराङ्मुखाः। शम्भोरन्यत्र देवेषु ये भक्ता ये न दीक्षिताः॥ तेषामनर्हमीशस्य तत्प्रसादचतुष्टयम्।'

अन्यनिर्माल्येप्यनापद्येवम् । इदं ज्योतिर्लिङ्गस्वयंभूलिङ्गसिद्धप्रतिष्ठातिरिक्तस्थावरलिङ्गविषयम्[१] ।

शिव का नैवेद्य–पत्र, पुष्प, फल और जल अग्राह्य हैं किंतु शालग्राम शिला में संग से सब पवित्र हो जाते हैं। शिव और सूर्य का नैवेद्य खाने में चान्द्रायण करे। अभ्यास में दूना चान्द्रायण करे। ज्ञानपूर्वक अभ्यास में सान्तपन करे। अन्य के निर्माल्य में भी आपद् रहित काल में ऐसा ही जानना चाहिये। यह ज्योतिर्लिंग,स्वयम्भूलिंग और सिद्धों से प्रतिष्ठापित लिंग के अतिरिक्त स्थावर लिंग के विषय में है।

ज्योतिर्लिङ्गादौ तु पूजकेन दत्तं फलतीर्थादिकं भक्त्या शुद्ध्यर्थं ग्राह्यं न लोभेन। पञ्चायतनस्थितलिङ्गेषु चरेषु प्रतिमासु चान्नादेरपि स्वयंग्रहणेऽपि न दोषः। ज्योतिर्लिङ्गाद्यन्यस्थिरलिङ्गेषु तीर्थोदकचन्दनमात्रं श्रद्धावद्भिः शिवोपासकैरेव ग्राह्यम्। ज्योतिर्लिङ्गादौ पूजकदत्तमन्नमपि भक्ष्यमिति केचित्।

ज्योतिर्लिंगादि में तो पूजक का दिया हुआ फल तीर्थ जल आदि शुद्धि के लिये भक्ति से ग्रहण करे, लोभ से नहीं। पंचायतनस्थित चर लिंगों में और प्रतिमाओं में अन्न आदि का भी स्वयं ग्रहण करने में दोष नहीं है। ज्योतिर्लिंगादि से भिन्न स्थिर लिंगों में तीर्थोदक और चन्दनमात्र श्रद्धालु शिव के उपासक ही ग्रहण करें। ज्योतिर्लिंगादि में पूजक का दिया अन्न भी भक्षणीय है, ऐसा कुछ लोग कहते हैं।

अथ नक्षत्रसंज्ञा

त्र्युत्तरा रोहिणी ध्रुवम्। मघा भरणी पूर्वात्रयं क्रूरम्। श्रवणत्रयपुनर्वसुस्वात्यश्चरम्। अश्विनीहस्तपुष्यं क्षिप्रम्। अनूराधारेवतीमृगचित्रं मृदु। कृत्तिकाविशाखे मिश्रम्। मूलाश्लेषाज्येष्ठार्द्रास्तीक्ष्णम्। इति नक्षत्रसंज्ञाः।

यत्र नोक्ता तिथिस्तत्र ग्राह्या रिक्तामामां विना।
वारोऽपि यत्र न प्रोक्तस्तत्रार्कार्किकुजान्विना॥

तीनों उत्तरा और रोहिणी ध्रुवसंज्ञक हैं। मघा, भरणी और तीनों पूर्वा क्रूरसंज्ञक हैं। श्रवण से तीन नक्षत्र, पुनर्वसु और स्वाती नक्षत्र चरसंज्ञक हैं। अश्विनी, हस्त और पुष्य क्षिप्रसंज्ञक हैं। अनुराधा, रेवती, मृगशिरा और चित्रा, ये मृदुसंज्ञक हैं। कृत्तिका और विशाखा मिश्रसंज्ञक हैं। मूल, आश्लेषा, ज्येष्ठा और आर्द्रा तीक्ष्णसंज्ञक हैं। ये नक्षत्र की संज्ञायें हैं। जहां तिथि नहीं कही गई है वहां रिक्ता और अमावास्या को छोड़कर तिथि ग्राह्य है। वार भी जहां नहीं कहा है वहां रवि-शनि-मंगलवार को छोड़कर ग्रहण करना चाहिये।

---

१. भविष्ये—'ज्योतिर्लिङ्गं विना लिङ्गं यः पूजयति सत्तमः। तस्य नैवेद्यनिर्माल्यभक्षणात्तसकृच्छ्रकम्॥ शालग्रामोद्भवे लिङ्गे बाणलिङ्गे स्वयंभुवि। रसलिङ्गे तथार्षे च सुरसिद्धप्रतिष्ठिते॥ हृदये चन्द्रकान्ते च स्वर्णरौप्यादिनिर्मिते। शिवदीक्षावता भक्तेनेदं भक्ष्यमितीर्यते॥' यहां स्वर्णरौप्यादि में आदि पद से पार्थिवलिङ्ग का ग्रहण है अतः पार्थिवलिंग का नैवेद्यादि ग्राह्य है। तथा—'बाणलिङ्गे स्वयंभूते चन्द्रकान्ते हृदि स्थिते। चान्द्रायणसमं ज्ञेयं शम्भोर्नैवेद्यभक्षणम्॥ लिङ्गे स्वयंभुवे बाणे रत्नजे रसनिर्मिते। सिद्धप्रतिष्ठिते चैव न चण्डाधिकृतिर्भवेत्॥ यत्र चण्डाधिकारोऽस्ति तद्भोक्तव्यं न मानवैः। चण्डाधिकारो नो यत्र भोक्तव्यं तत्र भक्तितः॥' त्रैविक्रम्याम्—'बाणलिङ्गे च लौहे च सिद्धलिङ्गे स्वयंभुवि। प्रतिमासु च सर्वासु न चण्डोऽधिकृतो भवेत्॥' इति।

अथ कृषिमुहूर्ताः

चरमृदुक्षिप्रध्रुवमूलविशाखामघासु सकुजे शुभवारे भूकर्षणं हितम्। सूर्यत्यक्तनक्षत्रात्त्र्यष्टनवाष्टसु अशुभं शुभमशुभं शुभमिति हलचक्रम्। अत्रैव नक्षत्रे शनिभौमभिन्नवारे बीजवापः सस्यारोपणं च धान्यच्छेदश्च । क्षीरवृक्षजन्यः खलमध्ये स्तम्भः। धान्यानां मर्दनं ज्येष्ठामूलमघाश्रवणरेवतीरोहिण्यनूराधाफल्गुनीद्वये शुभम्। धान्यसंग्रहः क्षिप्रध्रुवचरमृदुमूलेषु ज्ञगुरुशुक्रेषु चरभिन्नलग्ने शुभः।

चर, मृदु, क्षिप्र, ध्रुव, मूल, विशाखा और मघा में मंगलसहित शुभवार में भूकर्षण (हल चलाना) शुभ होता है। सूर्य के छोड़े हुए नक्षत्र से तीसरे, आठवें, नवें और आठवें नक्षत्र में, अशुभ, शुभ, अशुभ, शुभ इस प्रकार हलचक्र होता है। इसी नक्षत्र में शनि भौम से भिन्न वार में बीज बोना, धान रोपना और धान काटना विहित है। दूध वाले वृक्ष का खलिहान के बीच में खम्भा गाड़ना तथा धान्यों का मर्दन करना ज्येष्ठा, मूल, मघा, श्रवण, रेवती, रोहिणी, अनुराधा और दोनों फाल्गुनी में शुभप्रद है। धान्य का संग्रह—क्षिप्र, ध्रुव, चर और मृदु नक्षत्र और मूल में, बुध, गुरु और शुक्रवार में, चर से भिन्न लग्नों में शुभप्रद है।

अथ धान्यवृद्धिकरणमन्त्रः

ॐ धनदाय सर्वलोकहिताय देहि मे धान्यं स्वाहेति मन्त्रं लिखित्वा धान्यागारे क्षिपेत्, तेन 'धान्यवृद्धिः।

'ॐ धनदाय सर्वलोकहिताय देहि मे धान्यं स्वाहा' इस मन्त्र को लिखकर कोठार में डाल दे। इससे धान्य की वृद्धि होती है।

बुधमन्ददिने नैव धनधान्यव्ययः शुभः।
अद्यान्नवान्नं सद्वारे मृदुक्षिप्रचरे दिवा।

बुध और शनि के दिन धन धान्य का खर्च शुभकारक नहीं है। नया अन्न शुभ वार और मृदु क्षिप्र-चर नक्षत्र में दिन में खाय।

अथ वस्त्रभूषणादिधारणविचारः

वस्त्रभूषणविधिर्ध्रुवाश्विनीहस्तपञ्चकपुनर्वसुद्वये ।
पौष्णवासवभयोश्च सत्तिथौ मन्दभौमशशिवासरान्विना ॥
अनुक्तेऽपीष्टदं वस्त्रं विप्राज्ञोत्सवलब्धिषु।
ध्रुवपुष्यादितौ योषिद्धत्ते या वस्त्रभूषणे।
न प्राप्नोति पतिप्रीतिं स्नाति वारुणभे च या।
पादुकासनशय्यादेर्भोगः सत्तिथिवासरे ॥
ध्रुवक्षिप्रमृदुश्रोत्रभरणीषु पुनर्वसौ।
चेन्नव्यवस्त्रं मध्यांशे दग्धस्फुटितपङ्क्तिम ॥

---

१. चण्डेश्वरः—'लेखयित्वा इमं मन्त्रं धान्यागारे निधापयेत्। सस्यवृद्धिं परां कुर्यात् पूजितां प्रतिपूजयेत् ॥' इति।

तत्यजेच्छान्तिकं कुर्यात्त्यजेदेवान्त्यभागयोः ।
विज्ञेयमेतच्छय्यायामास्तृतौ पादुकास्वपि ॥

वस्त्र और भूषण का धारण—ध्रुव, अश्विनी, हस्त से पांच नक्षत्र और पुनर्वसु से दो नक्षत्रों में, रेवती-धनिष्ठा नक्षत्रों में, शुभ तिथियों में, शनि मंगल और सोमवार को छोड़कर शुभ है। नहीं कहे हुए नक्षत्रों में भी ब्राह्मण की आज्ञा से तथा उत्सव में वस्त्र धारण करना अभीष्टदायकहै। जो स्त्री ध्रुव नक्षत्र, पुष्य और अदिति नक्षत्र में वस्त्र और भूषण धारण करती है और वारुण नक्षत्र में नहाती है वह पति को प्रीति नहीं प्राप्त करती। खड़ाऊँ, आसन तथा शय्या आदि का उपभोग शुभ तिथि और वार में तथा ध्रुव, क्षिप्र, मृदु, श्रवण, भरणी और पुनर्वसु में होता है। यदि नया वस्त्र मध्यभाग में जल जाय फट जाय और पंकयुक्त हो जाय तो उसका त्याग करे, शान्ति करे और अन्त्यके दोनों भाग का त्याग ही कर दे। यही बात शय्या के बिछौने और पादुकाओं में भी जानना चाहिये।

सूचीकर्मानुराधाश्विचित्रामृगपुनर्वसौ ।
वस्त्रं क्षाल्यं धारणोक्ते काले बुधदिनं विना ॥
भोजनं भाजने रौप्यस्वर्णकांस्यादिनिर्मिते ।
कुर्यादमृतयोगेषु चरक्षिप्रमृदुध्रुवैः ॥
स्याद् भूषणानां घटनं चरक्षिप्रमृदुध्रुवैः ।
शुभवारे रत्नवतां मिश्रभेऽपि रवौ कुजे ॥ इति वस्त्रादिविचारः ।

सीने का काम—अनुराधा, अश्विनी, चित्रा, मृगशिरा और पुनर्वसु नक्षत्र में करे। वस्त्र धारण के कहे समय में बुध दिन को छोड़कर वस्त्र का प्रक्षालन करे। चांदी, सोने, कांसे आदि के बने वर्तन में चर-क्षिप्र-ध्रुव-मृदु संज्ञक-नक्षत्रों में तथा अमृत योगों में भोजन करे। चर-क्षिप्र-मृदु-ध्रुव-संज्ञक नक्षत्रों में गहनों का बनवाना शुभप्रद है। रत्नवाले भूषणों का बनवाना शुभवार में और मिश्र नक्षत्र तथा रविवार मंगलवार को भी होता है। यह वस्त्रादि का विचार है।

अथ शस्त्रघटनधारणमुहूर्तः

शस्त्राणां घटनं क्रूरमिश्राश्विमृगतीक्ष्णभे ।
शस्त्रं धार्यं ध्रुवक्षिप्रमृदुज्येष्ठाविशाखके ॥

शस्त्र का बनवाना—क्रूर-मिश्र-संज्ञक-नक्षत्र तथा अश्विनी, मृगशिरा, तीक्ष्णसंज्ञक नक्षत्र में ठीक है। शस्त्र धारण—ध्रुव, क्षिप्र और मृदु नक्षत्रों में तथा ज्येष्ठा और विशाखा में करे।

अथ सेवाकरणमुहूर्तः

सेवा कार्या क्षिप्रमैत्रध्रुवैर्ज्ञेज्यार्कभार्गवे ।
मन्देऽपि चेत्सेवकर्क्षं स्वामिभान्न द्वितीयकम् ॥

क्षिप्र, अनुराधा, ध्रुव नक्षत्रों में बुध, बृहस्पति, रवि और शुक्रवार में सेवा (नौकरी) करे। यदि सेवक का नक्षत्र स्वामी के नक्षत्र से दूसरा न हो तो शनिवार में भी सेवा करे।

अथ वाहनारोहणमुहूर्तः

हस्तषट्कध्रुवश्रोत्ररेवतीपुष्यभे शुभम् ।
पुनर्वसौ च शिबिकागजाश्वादिषु रोहणम् ॥

हस्त से छ नक्षत्र, ध्रुव नक्षत्र, श्रवण, रेवती, पुष्य और पुनर्वसु में पालकी, हाथी और घोड़ा आदि पर चढ़ना शुभ है।

अथ राजदर्शननृत्यमुहूर्तः

राज्ञां विलोकनं क्षिप्रश्रुतिद्वयमृदुध्रुवे ।
नृत्यारम्भः पुष्यमृगध्रुवज्येष्ठाधनिष्ठयोः ॥

क्षिप्र-मृदु-ध्रुव-नक्षत्रों में, श्रवण से दो नक्षत्रों में, पुष्य, मृगशिर, ध्रुवसंज्ञक नक्षत्र, ज्येष्ठा और धनिष्ठा में राजदर्शन करे। अनुराधा, शतभिषा, हस्त नक्षत्र तथा शुभवार में नृत्य-शिक्षण का आरंभ करे।

अथ विपणिक्रयविक्रयमुहूर्तः

अनूराधाशतभिषग्घस्ते स्याच्छुभवासरे ।
विपणिः स्यान्मृदुक्षिप्रध्रुवै रिक्ताकुजान्विना ॥
क्रयः कार्योऽश्विनीस्वातीश्रवश्चित्राशतान्त्यभे ।
विक्रयो भरणीपूर्वात्रयाश्लेषासु मिश्रभे ॥

मृदु-क्षिप्र-ध्रुव नक्षत्र में, रिक्ता तिथि और मंगलवार को छोड़कर व्यापार करे। अश्विनी, स्वाती, चित्रा, शतभिषा और रेवती में खरीदने का काम करे। भरणी, तीनों पूर्वा, आश्लेषा तथा मिश्र नक्षत्र में बेचने का काम करे।

अथ सेतुबन्धपशुक्रयादिमुहूर्तः

सेतुबन्धो ध्रुवे स्वात्यां जीवार्कशनिवासरे ।
नानापशुक्रिया हस्तपुष्यार्द्रामृगमिश्रभे ॥
पुनर्वसौ धनिष्ठाश्विपूर्वाज्येष्ठाशतान्त्यभे ।
त्यक्त्वार्कभौमेन्दुशनीन् श्रुतिचित्राध्रुवाणि च ॥
अमारिक्ताष्टमीश्चापि गतिक्रयमुखाः शुभाः ।

ध्रुव नक्षत्र और स्वाती में, गुरु-रवि-शनिवार में पुल बनावे। हस्त, पुष्य, आर्द्रा, मृगशिरा तथा मिश्र नक्षत्र में अनेक प्रकार की पशुक्रिया करे। पुनर्वसु, धनिष्ठा, अश्विनी, तीनों पूर्वा, ज्येष्ठा, शतभिषा और रेवती में श्रवण, चित्रा, ध्रुव नक्षत्र, रवि-भौम-सोम-शनिवार, अमावास्या और रिक्ता अष्टमी को छोड़कर पशु का खरीदना और ले जाना शुभ है।

अथ धनग्रहणादिमुहूर्तः

द्रव्यं लघुचरैर्योज्यं वृद्ध्यर्थं चरलग्नके ॥
ऋणं भौमे न गृह्णीयाद्वृद्धियोगेऽर्कसंक्रमे ।
धनिष्ठापञ्चके हस्ते त्रिपुष्करद्विपुष्करे ॥
भौमादिषु ऋणच्छेदं कुर्याच्च धनसंग्रहम् ।
बुधे धनं न प्रदेयं संग्रहस्तु बुधे शुभः ॥

लघु और चर नक्षत्रों में चर लग्न में वृद्धि के लिये द्रव्य को लगावे। मंगल को ऋण ग्रहण न करे। वृद्धियोग, रवि-संक्रान्ति, धनिष्ठा से पांच नक्षत्र तथा हस्त में त्रिपुष्कर और द्विपुष्कर योग में ऋण न ले। भौमवार आदि में ऋण का चुकता और धन का संग्रह करे। बुध को धन नहीं दे। धन का संग्रह बुध को शुभ है।

अथ त्रिपुष्करद्विपुष्करयोगस्तत्फलं च

शन्यर्कारैस्त्रिपादर्क्षे भद्रातिथ्यां त्रिपुष्करः ।
मृगचित्राधनिष्ठासु तत्तिथ्यह्नि द्विपुष्करः ॥
शुभाशुभेषु त्रिगुणं द्विगुणं च फलं क्रमात् ।

शनि, रवि और मंगलवार को त्रिपाद नक्षत्र और भद्रातिथि (द्वितीया, द्वादशी, सप्तमी) में त्रिपुष्कर योग होता है। मृगशिरा-चित्रा-धनिष्ठा नक्षत्र और पूर्वोक्त तिथि के दिन में द्विपुष्कर योग होता है। त्रिपुष्कर में शुभ और अशुभ कर्म का फल तिगुना और द्विपुष्कर में दूना होता है।

अथ नष्टवस्तुलाभालाभविचारः

मिश्रक्रूरेषु तीक्ष्णेषु स्वात्यां द्रव्यं न लभ्यते ॥
दत्तं प्रयुक्तं निक्षिप्तं नष्टं चेत्याह नारदः ।
अन्धं मन्दं च चिबिटं सुलोचनमिति क्रमात् ॥
गणनीयं रोहिणीभादन्धे नष्टं लभेद् द्रुतम् ।
मन्दे यत्नाल्लभेतैव चिबिटस्वक्षयोर्न हि ।
अन्विष्यं पूर्वतोन्धेषु नन्दसंज्ञेषु दक्षिणे ।
प्रतीच्यां चिबिटाख्येषु सुलोचन उदग्दिशि ॥

मिश्र, क्रूर और तीक्ष्ण नक्षत्र तथा स्वाती में दिया हुआ, प्रयोग में लगाया हुआ, निक्षेप किया हुआ और खोया हुआ द्रव्य नहीं मिलता, ऐसा नारद ने कहा है। रोहिणी नक्षत्र से क्रमशः गिनने से अन्ध, मन्द, चिबिट और सुलोचनसंज्ञक नक्षत्र होते हैं। अन्ध नक्षत्र में नष्ट धन शीघ्र मिलता है। मन्द में यत्न से मिलता है। चिबिट और सुलोचन में नष्ट हुआ धन नहीं मिलता। अन्ध में पूरब, मन्दसंज्ञक नक्षत्र में दक्षिण, चिबिट नाम के नक्षत्र में पश्चिम और सुलोचन में उत्तर दिशा की ओर ढूँढ़े।

अथ नृपाभिषेकमुहूर्तः

राजाभिषेकः श्रवणे ध्रुवर्क्षे ज्येष्ठामृदुक्षिप्र उदग्रवौ स्यात् ।
त्यक्त्वाररिक्ताधिकचैत्ररात्रीश्चन्द्रेज्यशुक्राभ्युदये शुभाय ॥

श्रवण नक्षत्र, ध्रुव, मृदु, क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्रों और ज्येष्ठा में, उत्तरायण में, मंगलवार, रिक्ता तिथि, अधिक चैत्र और रात्रि को छोड़कर सोमवार गुरुवार, और शुक्रवार को राज्याभिषेक अभ्युदय और शुभ के लिये होता है।

अथ जलाशयखननमुहूर्तः

जलाशयानां खननं मघापुष्यध्रुवे मृगे ।
पूर्वाषाढानुराधान्त्यधनिष्ठाशतहस्तभे ॥
जलराशिगते चन्द्रे लग्नस्थे च बुधे गुरौ ।

जल राशि में चन्द्रमा हो, लग्न में बुध और गुरु हों, मघा, पुष्य, ध्रुव नक्षत्र, मृगशिरा, पूर्वाषाढ़ा, अनुराधा, रेवती, धनिष्ठा, शतभिषा और हस्त नक्षत्र में जलाशयों का खोदना शुभ है।

अथ क्षौरकर्मविचारः

क्षौरं चौलोक्तनक्षत्रवारादिषु शुभं जगुः ॥
पञ्चमे पञ्चमे राज्ञां दिनेऽन्येषां यदृच्छया ।
श्मश्रुकर्म भवेन्नैव नवमे दिवसे क्वचित् ॥
क्षौरं भूते रतं दर्शे वर्जयेच्च जिजीविषुः ।
क्षौरं न कुर्युरभ्यक्तभुक्तस्नातविभूषिताः ॥
प्रयाणसमरारम्भे न रात्रौ न च सन्ध्ययोः ।
श्राद्धाहप्रतिपद्रिक्ताव्रताह्नि च न वैधृतौ ॥
प्रशस्तं[१] जन्मनक्षत्रं सर्वकर्मसु कीर्तितम् ।
क्षौरप्रयाणभैषज्यविवादेषु न शोभनम् ॥
षष्ठ्यमापूर्णिमापातचतुर्दश्यष्टमी तथा ।
आसु सन्निहितं पापं तैलेषु स्त्रीभगे क्षुरे ॥

चौल के कहे नक्षत्रों और वारों में क्षौर कर्म शुभ कहा है । राजा का क्षौर कर्म पांचवें पांचवें दिन में और दूसरों का स्वेच्छा से होता है । श्मश्रु कर्म नवमें दिन कभी नहीं होता । जीने की इच्छा करने वाला पुरुष चतुर्दशी को क्षौर और अमावास्या को स्त्रीप्रसंग त्याग दे । तेल लगाकर, भोजन के बाद, स्नान करके, भूषित होकर, यात्रा के समय, लड़ाई के आरंभ में, रात में और दोनों सन्ध्याओं में, श्राद्ध के दिन, प्रतिपदा में, रिक्ता तिथि में, व्रत के दिन और वैधृति में क्षौर न करावे । जन्म नक्षत्र सब कर्मों में प्रशस्त कहा है किन्तु क्षौर, यात्रा, औषध और विवाद में अच्छा नहीं है । षष्ठी, अमावास्या, पूर्णिमा, व्यतीपात, चतुर्दशी तथा अष्टमी, इन तिथियों में तेल, स्त्री के भग और छुरे में पाप सन्निहित रहता है ।

राजकार्यनियुक्तानां नराणां भूपजीविनाम् ।
श्मश्रुलोमनखच्छेदे नास्ति कालविशोधनम् ॥
क्षौरं नैमित्तिकं कार्यं निषेधे सत्यपि ध्रुवम् ।
यज्ञे मृतौ बन्धमोक्षे नृपविप्राज्ञयापि च ॥

राजकार्य में नियुक्त पुरुषों और राजा से जीने वाले पुरुषों को दाढ़ी, बाल और नख कटवाने में समय की शुद्धि अपेक्षित नहीं है । नैमित्तिक में क्षौर का निषेध रहते हुए भी क्षौर अवश्य करावे । यज्ञ में, मरने में, जेल से छूटने में, राजा और ब्राह्मण की आज्ञा से निषेध में भी क्षौर करावे ।

प्राग्वयस्कैः सपितृकैर्न कार्यं मुण्डनं सदा ।
मुण्डनस्य निषेधेऽपि कर्तनं तु विधीयते ॥
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा वपनं कारयेत्सुधीः ।
केशश्मश्रुलोमनखान्युदक्संस्थानि वापयेत् ॥

---

१. राजमार्तण्ड में जन्मनक्षत्रादि का निषेध—'देवकार्ये पितुः श्राद्धे स्वेरंशपरिक्षये । क्षौर-कर्म न कुर्वीत जन्ममासे च जन्मभे ॥' त्रिस्थलीसेतु में वृद्धगार्ग्योक्त निषिद्ध वारादि—'रव्यारसौरवारेषु रात्रौ पाते व्रताहनि । श्राद्धाहः प्रतिपद्रिक्ताभद्राः क्षौरेषु वर्जयेत् ॥' इति ।

आनर्तोहिच्छत्रः पाटलिपुत्रोऽदितिर्दितिः श्रीशः ।
क्षौरे स्मरणादेषां दोषा नश्यन्ति निःशेषाः ॥

पितृजीवी जवान सदा मुण्डन न करावे। मुण्डन के निषेध होते हुए भी कर्तन विहित है। बुद्धिमान् पुरुष उत्तर मुंह या पूर्व मुंह बैठकर मुण्डन करावे। केश, दाढ़ी, नख, उत्तरसंस्थ करके मुड़वावे। आनर्त, अहिच्छत्र, पाटलिपुत्र, अदिति, दिति और लक्ष्मीश्वर विष्णु के स्मरण से क्षौर के समस्त दोष नष्ट होते हैं।

अथ रोगोत्पत्तौ नक्षत्रफलम्

अश्विन्यां[1] रोगोत्पत्तौ एकाहं नवदिनानि वा पञ्चविंशतिदिनानि वा पीडा १। भरण्यामेकादशैकविंशतिर्वा मासं वा मृत्युर्वा २। कृत्तिकायां दश नव वैकविंशतिर्वा ३। रोहिण्यां दश वा नव वा सप्त वा त्रीणि वाहानि ४। मृगे पञ्च नव वा त्रिंशद्वा ५। आर्द्रायां मृत्युर्वा दशाहं वा मासं वा ६। पुनर्वसौ सप्त नव वा मृत्युर्वा ७। पुष्ये सप्त वा मृत्युर्वा ८। आश्लेषायां मृत्युर्विंशतिस्त्रिंशद्वा नव वा दिनानि पीडा ९।

अश्विनी नक्षत्र में रोग की उत्पत्ति होने पर एक दिन या नव दिन अथवा पच्चीस दिन पीड़ा होती है १। भरणी में ग्यारह या इक्कीस या महीना भर अथवा मृत्यु होती है २। कृत्तिका में दस दिन या नव दिन अथवा इक्कीस दिन ३, रोहिणी में दस या नव या सात या तीन दिन ४, मृगशिरामें पांच या नव या तीस दिन ५, आर्द्रा में मृत्यु या दस दिन या महीने भर ६, पुनर्वसु में सात, नौ या मृत्यु ७, पुष्य में सात दिन या मृत्यु ८, आश्लेषा में मृत्यु या बीस दिन या तीस दिन या नव दिन पीड़ा होती है ९।

मघायां मृत्युर्वा सार्धमासं वा मासं वा विंशतिदिनानि वा पीडा १०। पूर्वाफल्गुन्यां मृत्युर्वाब्दं मासं वा पीडा पञ्चदश वा षष्टिर्वा दिनानि ११। उत्तरायां सप्तविंशतिः पञ्चदश सप्त वा दिनानि १२। हस्ते मृत्युरष्ट वा नव वा सप्त वा पञ्चदश वाहानि १३। चित्रायां पक्षमष्ट वा दश वा एकादश वाहानि १४।

मघा में मृत्यु या डेढ़ माह या एक माह या बीस दिन १०, पूर्वा फाल्गुनी में मृत्यु या वर्षभर या महीने भर या पन्द्रह दिन या साठ दिन ११, उत्तरा में सत्ताईस दिन या पन्द्रह दिन या सात दिन १२, हस्त में मृत्यु या आठ दिन या नव दिन या सात या पन्द्रह दिन १३, चित्रा में एक पक्ष या आठ या दस या ग्यारह दिन पीड़ा होती है १४।

---

१. श्रीपतिः—'स्वात्याश्लेषारौद्रपूर्वासु शाक्रे रोगोत्पत्तिर्जायते यस्य पुंसः। तद्भैषज्यव्यापृतो निष्प्रयत्नः स्याद् दुग्धाब्धेर्लब्धजन्मापि वैद्यः॥ व्याध्युत्पत्तिर्यस्य पौष्णे समैत्रे प्राणत्राणं जायते तस्य कृच्छ्रात्। वैश्वे सौम्ये रोगमुक्तिस्तु मासाद् विंशत्या स्याद् वासराणां मघासु॥ पक्षाद् हस्ते वासवे सद्विदैवे मूलाश्विन्योरग्निधिष्ण्ये नवाहात्। याम्ये त्वाष्ट्रे वैष्णवे वारुणे च नैरुज्यं स्यान्नूनमेकादशाहात्॥ आहिर्बुध्न्ये तिष्यसंज्ञे यमाख्ये प्राजापत्यादित्ययोः सप्तरात्रात्। रोगान्मुक्तिर्जायते मानवानां निःसन्दिग्धं जल्पितं गर्गमुख्यैः॥' इति।

स्वात्यां मृत्युर्वैकद्वित्रिचतुःपञ्चमासैर्वा दशदिनैर्वा रोगनाशः १५। विशाखायां मासं वा पक्षं वाष्टदिनं विंशतिदिनं वा पीडा १६। अनूराधायां दशरात्रमष्टाविंशतिरात्रं वा १७। ज्येष्ठायां मृत्युर्वा पक्षं वा मासं वैकविंशतिरात्रं वा पीडा १८। मूले मृत्युः पक्षं नवरात्रं विंशतिरात्रं वा पीडा १९।

स्वाती में मृत्यु या एक, दो, तीन, चार या पांच महीने या दस दिनों में रोग का नाश होता है १५। विशाखा में एक महीना, एकपक्ष या आठ दिन या बीस दिन पीड़ा होती है १६। अनुराधा में दस रात या अट्ठाइस रात १७, ज्येष्ठा में मृत्यु या एक पक्ष या एक मास या बीस रात तक पीड़ा होती है १८। मूल में मृत्यु या एक पक्ष या नव रात या बीस रात तक पीड़ा होती है १९।

पूर्वाषाढायां मृत्युर्वा द्वित्रिषडादिमासैर्विंशतिदिनैः पक्षेण वा रोगनाशः २०। उत्तराषाढायां सार्धमासं विंशतिरात्रं वा मासं वा २१। श्रवणे पञ्चविंशतिं दश वा एकादश वा षष्टिर्वाहानि २२। धनिष्ठायां दशरात्रं पक्षं मासं त्रयोदशरात्रं वा २३। शततारायां द्वादशैकादश वा २४। पूर्वाभाद्रपदायां मृत्युर्वा द्वित्र्यादिमासं वा दशरात्रं वा २५। उत्तराभाद्रपदायां सार्धमासं पक्षं सप्ताहं दशाहं वा २६। रेवत्यां ज्वराद्युत्पत्तौ दशाहमष्टाविंशतिरात्रं वा पीडा २७।

पूर्वाषाढ़ा में मरण या दो, तीन, छ आदि महीनों में, बीस दिन या एक पक्ष में, रोग का नाश होता है २०। उत्तराषाड़ा में डेढ़ माह या बीस रात या महीने भर में रोग का नाश होता है २१। श्रवण में पचीस या दस या ग्यारह या साठ दिन २२, धनिष्ठा में दस रात, एक पक्ष या एक महीना या तेरह रात २३, शतभिषा में बारह या ग्यारह दिन २४, पूर्वाभाद्रपदा में मृत्यु, या दो तीन आदि महीने या दस रात २५, उत्तराभाद्रपदा में डेढ़ महीना, एक पक्ष, एक सप्ताह या दस दिन २६, रेवती में ज्वर आदि की उत्पत्ति होने पर दस दिन या अट्ठाइस रात तक पीड़ा होती है २७।

जन्मनक्षत्रे जन्मराशौ अष्टमचन्द्रे रोगोत्पत्तौ मृत्युः। 'अर्कादिवारे क्रमेण मघाद्वादश्यौ विशाखैकादश्यौ पञ्चम्यार्द्रे तृतीयोत्तराषाढे शततारापष्ठ्यौ अष्टम्यश्विन्यौ पूर्वाषाढानवम्यौ चेति त्रयाणां योगे मृत्युः।

जन्मनक्षत्र, जन्मराशि और अष्टम चन्द्रमा में रोग का आरंभ होने पर मृत्यु होती है। रविवार आदि में क्रम से अर्थात् रविवार को मघा द्वादशी, सोमवार को विशाखा एकादशी, मंगलवार को पंचमी आर्द्रा, बुधवार को तृतीया उत्तराषाढ़ा, बृहस्पतिवार को शतभिषा षष्ठी, शुक्रवार को अष्टमी अश्विनी, शनिवार को पूर्वाषाढ़ा नवमी इन तीन तीन के योग में रोगी की मृत्यु होती है।

एवमकादौ अनूराधाभरण्यौ आर्द्रोत्तराषाढे मघाशततारे विशाखाश्विन्यौ ज्येष्ठामृगौ श्रवणाश्लेषे पूर्वाभाद्रपदाहस्तौ चेन्मृत्युयोगः। अत्रोक्तास्तिथिवारनक्ष-

---

१. दैवज्ञमनोहर में मरणयोग कहा है—'उरगवरुणरौद्रा वासवेन्द्रत्रिपूर्वा यमदहनविशाखाः पापवारेण युक्ताः। तिथिषु नवमिषष्ठी द्वादशी वा चतुर्थी भवति मरणयोगो रोगिणां कालहेतुः॥' यहां चतुर्थी चतुर्दशी का उपलक्षण है। यथाह वसिष्ठः—'आश्लेषार्द्रात्रिपूर्वायमवरुणमरुच्छक्रतारानलाः स्युर्द्वादश्यां स्कन्दरिक्तातिथिषु च रविजार्कारवारेषु येषाम्। रोगः संजायते ते यमपुरमचिरात् प्राप्नुवन्त्येव चन्द्रे जन्मन्यष्टाख्यबन्धुव्ययभवनगते मृत्युलग्ने च राशौ॥' इति।

त्रशान्तयो विस्तृताः कार्याः। येषु नक्षत्रेषु मरणमुक्तं तत्र शान्तिरावश्यकी। अन्यत्र कृताकृता।

इसी तरह रविवार आदि में क्रम से अर्थात् रविवार को अनुराधा-भरणी, सोमवार को आर्द्रा-उत्तराषाढ़, मंगलवार को मघा-शतभिषा, बुध को विशाखा-अश्विनी, गुरुवार को ज्येष्ठा मृगशिरा, शुक्रवार को श्रवण आश्लेषा, शनि को पूर्वाभाद्रपदा-हस्त हो तो मृत्यु हो। इसमें कही हुई, तिथिवार और नक्षत्र की शान्ति विस्तार से करनी चाहिये। जिन नक्षत्रों में मरण कहा है उसमें शान्ति आवश्यक है। अन्यत्र शान्ति करे या नहीं करे।

अथ सर्वनक्षत्रसाधारणः शान्तिप्रयोगः

देशकालौ संकीर्त्य 'ममोत्पन्नव्याधेर्जीवच्छरीराविरोधेन समूलनाशार्थममुक-नक्षत्रशान्तिं करिष्ये' इति संकल्प्य गणेशपूजादि आचार्यं वृत्वा कुम्भोपरि पूर्णपात्रे द्वादशदले नक्षत्रदेवताप्रतिमां सौवर्णीं संपूज्य द्वादशदलेषु संकर्षणादि-द्वादशमूर्तीर्द्वादशादित्यान्वा संपूज्य दूर्वासमित्तिलक्षीराज्यैर्गायत्र्या तत्तद्देवतायै अष्टोत्तरशतं हुत्वा मरणादिपीडाधिक्योक्तौ सहस्रं हुत्वा दध्योदनबलिं दत्त्वाऽऽ-चार्याय गां प्रतिमां च दद्यादिति [1]संक्षेपः।

देशकाल को कहकर 'मेरे उत्पन्न व्याधि के जीते हुए शरीर के अविरोध से समूल नाश के लिए मैं अमुक नक्षत्र की शान्ति करूँगा' ऐसा संकल्प करके गणेश-पूजा आदि आचार्यवरणपर्यन्त करके कलश पर पूर्णपात्र में बारह दल में नक्षत्र की सोने की देवप्रतिमा में पूजा कर बारहों दलों में संकर्षण आदि बारहों मूर्ति या बारह सूर्यों की पूजा कर दूब, समिधा, तिल, दूध और घृत से गायत्री-मन्त्र से उन-उन देवताओं के लिए एक सौ आठ हवन करे। मरण आदि पीड़ा जहां अधिक कही गई है वहां हजार आहुति देकर दही भात की बलि देकर आचार्य को गौ और प्रतिमा दे यह संक्षेप से कहा है।

शान्तिमयूखादौ नक्षत्रभेदेन हविर्मन्त्रबलिधूपादिभेदस्तिथिवारदेवतामन्त्रादि-भेद इत्यादिविस्तरो द्रष्टव्यः। कर्मविपाके जातवेद इत्यृचोऽयुतं लक्षं वा जपो रुद्रे नमकानुवाकैः सहस्रकलशस्नानं वा विष्णौ सहस्रावृत्तपुरुषसूक्तेन सहस्रघट-स्नानं वा ज्वरनाशकम्। यद्वा श्रीभागवतस्थज्वरस्तोत्रजपः[2]।

---

१. वसिष्ठोक्त संक्षिप्त शान्ति यों है—'ऋक्षेशरूपं कनकेन कृत्वा तल्लिङ्गमन्त्रैश्च सुगन्धिपुष्पैः। वस्त्राक्षतैर्गुग्गुलुधूपदीपनैवेद्यताम्बूलफलैश्च सम्यक्॥ पूजां च कृत्वाऽऽमयनाशनाय द्विजाय दद्याद्वलं शिवाय।' विस्तृत शान्ति शान्तिसारादि ग्रन्थों में देखें।

२. वैष्णवज्वर से भयभीत होकर माहेश्वरज्वर श्रीविष्णु के शरण में गया और उसने उनकी स्तुति की, यही ज्वरस्तोत्र है जैसे—'ज्वर उवाच, नमामि त्वानन्तशक्तिं परेशं सर्वात्मानं केवलं ज्ञप्तिमात्रम्। विश्वोत्पत्तिस्थानसंरोधहेतुं यत्तद् ब्रह्म ब्रह्मलिङ्गं प्रशान्तम्॥१॥ कालो दैवं कर्म जीवः स्वभावो द्रव्यं क्षेत्रं प्राण आत्मा विकारः। तत्संघातो बीजरोहप्रवाहस्त्वन्मायैषा तन्निषेधं प्रपद्ये॥२॥ नानाभावैर्लीलयैवोपपन्नैर्देवान् साधूँल्लोकसेतून् बिभर्षि। हंस्युन्मार्गान् हिंसया वर्तमानान् जन्मैतत्ते भारहाराय भूमेः॥३॥ तप्तोऽहं ते तेजसा दुःसहेन शान्तोग्रेणात्युल्बणेन ज्वरेण। तावत्तापो

शान्तिमयूख आदि में नक्षत्र के भेद से हविष्य-मन्त्र-बलि-धूप आदि का और तिथि-वार-देवता तथा मन्त्र आदि का भेद इत्यादि विस्तार से देखना चाहिये। कर्मविपाक में 'जातवेद' इस ऋचा का दस हजार या एक लाख जप, नमकानुवाक से एक हजार कलश से रुद्र का स्नान अथवा हजार आवृत्ति पुरुषसूक्त से हजार घड़े से विष्णु का स्नान ज्वरनाशक है। अथवा भागवत में स्थित ज्वरस्तोत्र का जप करे।

अथ सर्वरोगनाशकानि

रोगानुसारेण लघुरुद्रमहारुद्रातिरुद्राणां जपोऽभिषेको[1] वा। विष्णुसहस्रनामस्तोत्रस्य शतं सहस्रमयुतं वा जपः। [2]सौरजपः सूर्यनमस्काराद्यर्घ्यदानानि मुञ्चामि त्वेति सूक्तजपोऽच्युतानन्तगोविन्देति नामत्रयजपो मृत्युंजयजपश्च रोगानुसारेणेति सर्वरोगहराणि।

रोग के अनुसार लघुरुद्र, महारुद्र और अतिरुद्र का जप या अभिषेक, विष्णुसहस्रनामस्तोत्र का सौ बार या हजार बार जप, सूर्य मन्त्र का जप, सूर्यनमस्कार, सूर्य को अर्घ्य देना, 'मुञ्चामि त्वा' इस सूक्त का जप, अच्युतानन्द गोविन्द इन तीन नामों का जप और मृत्युंजयजप रोग के अनुसार करे। ये सब रोगों के हरण करने वाले हैं।

देहिनां तेऽङ्घ्रिमूलं नो सेवेरन् यावदाशानुबद्धाः ॥४॥ श्रीभगवानुवाच, त्रिशिरस्ते प्रसन्नोऽस्मि व्येतु ते मज्ज्वराद् भयम्। यो नौ स्मरति संवादं तस्य त्वन्नो भवेद् भयम् ॥ ५ ॥ इति। भा० दश० उत्त० अ० ६३ श्लो० २५–२९)

१. शिव ने पार्वती से रुद्राभिषेक का माहात्म्य बतलाते हुये कहा है—'सर्वकर्माणि सन्त्यज्य सुशान्तमनसो यदा। रुद्राभिषेकं कुर्वन्ति दुःखनाशो भवेद् ध्रुवम् ॥ जलेन वृष्टिमाप्नोति व्याधिशान्त्यै कुशोदकैः। दध्ना च पशुकामाय श्रियै इक्षुरसेन च ॥ मध्वाज्येन धनार्थी स्यान्मुमुक्षुस्तीर्थवारिणा। पुत्रार्थी पुत्रमाप्नोति पयसां चाभिषेचनात् ॥ वन्ध्या वा काकवन्ध्या वा मृतवत्सा च याऽङ्गना। सद्यः पुत्रमवाप्नोति पयसां चाभिषेचनात् ॥ श्रीरुद्रस्य प्रसादेन बद्धो मुच्येत बन्धनात्। भीतो भयात् प्रमुच्येत वन्ध्या पुत्रमवाप्नुयात् ॥ मूर्खो वाचामधीशः स्याद्दरिद्रो धनिनां वरः। मूको वक्ता भवेत् पङ्गुर्गिरिं लंघयते द्रुतम् ॥ मनसा कर्मणा वाचा शुचिः संगविवर्जितः। कुर्याद्रुद्राभिषेकं च प्रीतये शूलपाणिनः ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति लभते परमां गतिम्। नन्दते च कुलं पुंसां श्रीमच्छम्भुप्रसादतः ॥ रुद्राभिषेककर्तॄणां विप्राणां प्रीतिहेतवे। गोभूहिरण्यवासांसि सशक्यं प्रतिपादयेत् ॥ वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं कर्मण्यस्मिन् द्विजातिभिः। दातव्यं द्विजवर्येभ्यो गृह्णीयादाशिषः शुभाः। एवं कृते मनुष्याणां वाञ्छासिद्धिः सुनिश्चिता। मोदन्ते बन्धुभिर्लोके लभन्ते परमं पदम् ॥' इति। पूर्वजन्मकृत पाप ही रोग का रूप धारण कर प्राणी को पीडित करता है—'पूर्वजन्मकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते'। रुद्रजपादि से पाप का नाश निश्चित है—'रुद्राध्यायी मुच्यते सर्वपापैः'। पाप के नाश होने पर रोग का नाश स्वतः हो जाता है। रुद्र, रुद्री, लघुरुद्र, महारुद्र और अतिरुद्र—जपात्मक, अभिषेकात्मक और होमात्मक, इस तरह पांच प्रकार का होता है। इनका विधान रुद्रकल्पद्रुमादि ग्रन्थों में देखें।

२. सूर्याथर्वशीर्ष में सूर्यमन्त्र के जप का फल है—'सूर्याभिमुखं जप्त्वा महाव्याधिभयात्प्रमुच्यते। अलक्ष्मीर्नश्यति। अभक्ष्यभक्षणात्पूतो भवति। अपेयपानात्पूतो भवति। अगम्यागमनात्पूतो भवति। व्रात्यसम्भाषणात्पूतो भवति। मध्याह्ने सूर्याभिमुखं पठेत्। सद्यः पञ्चमहापापात् प्रमुच्यते।'''हस्तादित्ये जपति स महामृत्युं तरति।' इत्यादि उपनिषद् वाक्यों के अनुसार सौर मन्त्र के जप से पाप के नाश होने पर रोग का विनाश अवश्य होता है। 'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्' इति।

अथ भेषजभक्षणे नक्षत्राणि

ज्येष्ठामूलश्रुतिस्वातीमृदुक्षिप्रपुनर्वसौ ।
गुरुशुक्रेन्दुवारेषु शस्तं भेषजभक्षणम् ॥

ज्येष्ठा, मूल, श्रवण, स्वाती, मृदु-क्षिप्र-संज्ञक-नक्षत्र, पुनर्वसु, गुरु, शुक्र और सोमवार को औषधि का भक्षण उत्तम है।

अथ रोगमुक्तस्नानमुहूर्तः

रिक्तायां चरलग्ने मिश्रक्षिप्रेन्द्रमूलपूर्वासु ।
चित्राभरणीश्रवणत्रयभे रविकुजबुधार्कजे स्नायात् ॥
वैधृतौ च व्यतीपाते भद्रायां संक्रमे तथा ।
रोगमुक्तस्नानमत्र चन्द्रताराबलं न वा ॥

रोग से मुक्त—रिक्ता चरलग्न में, मिश्र-क्षिप्र-ज्येष्ठा-मूल और पूर्वा में, चित्रा-भरणी, श्रवण से तीन नक्षत्र में, रवि-मंगल बुध और शनिवार को स्नान करे। वैधृति, व्यतिपात, भद्रा तथा संक्रान्ति में रोग से मुक्त का स्नान है। इसमें चन्द्रबल और ताराबल रहे चाहे न रहे।

अथाभ्यङ्गविचारः

भद्रासंक्रमपातवैधृतिसितेज्यार्कारषष्ठ्यादिषु
श्राद्धाहे प्रतिपद्द्वये परिहरेद्धेतुं विनाभ्यञ्जनम्[1]।
माङ्गल्यं विजयोत्सवोऽब्दवदनं दीपावलीहेतवो-
ऽभ्यङ्गस्याथ बुधाम्बुपर्क्षपितृभाभ्यङ्गात्पतिघ्न्यङ्गना ॥

अस्यापवादः—

सार्षपं गन्धतैलं च यत्तैलं पुष्पवासितम् ।
द्रव्यान्तरयुतं तैलं पक्वतैलं न दुष्यति ॥
किंचिद्गोघृतयुक्तं वा विप्रपादरजोन्वितम् ।
नित्याभ्यङ्गे च नो दुष्टं तैलं निन्द्येऽह्नि सर्वदा ॥
रवौ पुष्पं गुरौ दूर्वां भौमवारे च मृत्तिकाम् ।
भार्गवे गोमयं क्षिप्त्वा तैलस्नानं सुखावहम् ॥

भद्रा, संक्रान्ति, व्यतिपात, वैधृति, शुक्लपक्ष, रविवार, मंगलवार, षष्ठी आदि में, श्राद्ध आदि के दिन, दोनों प्रतिपदा में विना कारण के अभ्यंग का त्याग करे। मंगलकार्य, विजयोत्सव, वर्ष का

---

१. अभ्यञ्जनं = तेल की मालिश। व्यासः—'पञ्चमी दशमी चैव तृतीया च त्रयोदशी। अभ्यङ्गात्स्पर्शनात् पानाद्यस्तु तैलं निषेवते। चतुर्णां तस्य वृद्धिः स्याद्धनापत्यबलायुषाम्।' कात्यायनः—'पक्षादौ च रवौ षष्ठ्यां रिक्तायां च तथा तिथौ। तैलेनाभ्यज्यमानस्तु चतुर्भिः परिहीयते ॥' गार्ग्यः—'सप्तम्यां न स्पृशेत्तैलं नवम्यां प्रतिपद्यपि। दर्शे च पौर्णमास्यां च पञ्चस्वपि च पर्वसु ॥' इसका अपवाद प्रचेता का—'सार्षपं गन्धतैलं च' इत्यादि वचन मूल में अंकित है। इसी प्रकार मंगल कार्य में तैलाभ्यङ्ग का दोष नहीं होता—'माङ्गल्यं विद्यते स्नानं वृद्धिपूर्वोत्सवेषु च। स्नेहपात्रसमायुक्तं मध्याह्नात् प्राक् तदिष्यते ॥' इति।

आरम्भ और दीपावली, ये अभ्यंग के कारण हैं, यानी इनमें अभ्यंग अवश्य करे । बुध, वरुण नक्षत्र, पितृनक्षत्र में स्त्री अभ्यंग करे तो पति का नाश करती है । इसका अपवाद है —सरसों का तेल, गन्धयुक्त तेल, पुष्पों से वासित तेल, दूसरे द्रव्यों से मिला हुआ तेल और पकाया हुआ तेल, इनमें दोष नहीं है । थोड़ा गोघृत से मिला हुआ या ब्राह्मण के चरणरेणु से युक्त तेल नित्य लगाने में दूषित नहीं है । निन्द्य दिन में सर्वदा लगाना हो तो रविवार को पुष्प, गुरुवार को दूर्वा, भौमवार को मिट्टी और शुक्रवार को गोवर डालकर उस तेल को लगाकर स्नान करना सुखदायक होता है ।

अथ गृहारम्भविचारः

वैशाखे फाल्गुने पौषे श्रावणे मार्गशीर्षके ।
गृहारम्भप्रवेशौ[1] स्तः स्तम्भोच्छ्रायश्च शस्यते ॥
ज्येष्ठकार्तिकमाघांश्च शुभदान् प्राह नारदः ।
तृणगेहं[2] सर्वमासे पौषे मुख्यगृहं न हि ॥
हस्तत्रयध्रुवमृदुधनिष्ठाद्वयपुष्यभे ।
रिक्ता अर्ककुजौ त्यक्त्वा गृहं कुर्याद्विशेदपि ॥
शिलान्यासं च [3]खातं च श्रुत्यधिक्रूरमित्रभैः ।
आश्लेषामूलपुष्यार्कमृगान्त्यध्रुवभैरपि ॥

वैशाख-फाल्गुन-पूस-श्रावण और अगहन में गृहारम्भ और गृहप्रवेश दोनों होते हैं तथा खम्भेका गाड़ना भी उत्तम होता है । ज्येष्ठ कार्तिक और माघमास को नारद ने शुभ कहा है । फूस का घर सब महीनों में बनता है । मुख्य गृह पौषमास में नहीं बनाना चाहिये । हस्त से तीन नक्षत्र ध्रुव-मृदु-संज्ञक-नक्षत्र तथा धनिष्ठा से दो नक्षत्र और पुष्य में, रिक्ता तिथि, रविवार तथा मङ्गलवार को छोड़ कर गृहनिर्माण और गृहप्रवेश करे । शिलान्यास, नेव की खुदाई, श्रवण और अश्विनी क्रूर-मित्र-नक्षत्र, आश्लेषा-मूल-पुष्य-हस्त और मृगशिरा नक्षत्रों में उत्तम होता है ।

केन्द्राष्टमे पापहीने वेश्मकृत्यं स्थिरोदये ।
धनिष्ठापञ्चके वर्ज्यः स्तम्भोच्छ्रायः सदा बुधैः ॥
नेष्टानि सप्त सूर्यर्क्षादिष्टान्येकादशाष्टमात् ।

---

१. ज्योतिर्निबन्ध में बादरायण का वचन है—'वैशाखे फाल्गुने पौषे श्रावणे मार्गशीर्षके । सूत्रारम्भः शिलान्यासः स्तम्भारम्भः प्रशस्यते ॥' नारदः—'सौम्यफाल्गुनवैशाखमाघश्रावणकार्तिकाः । मासाः स्युर्गृहनिर्माणे पुत्रारोग्यधनप्रदाः ॥' अत्र वृषसिंहवृश्चिकाः वैशाखश्रावणकार्तिकाः सौरा ज्ञेयाः इति कालादर्शः । दैवज्ञवल्लभे—'शोकं धान्यं पञ्चतां निःपशुत्वं स्वापं नैःस्वं संगरं भृत्यनाशम् । स्वं श्रीप्राप्तिं वह्निभीतिं च लक्ष्मीं कुर्युश्चैत्राद्या गृहारम्भकाले ॥' इति ।

२. राजमार्तण्डेऽपि—'आयव्ययौ मासशुद्धिं तृणागारे न चिन्तयेत् । शिलान्यासादि नो कुर्यात्तथागारे पुरातने ॥' व्यवहारतत्त्वे—'निषिद्धेष्वपि कालेषु स्वानुकूले शुभे दिने । तृणकाष्ठगृहारम्भे मासदोषो न विद्यते ॥' इति ।

३. शिल्पशास्त्रे—'कन्यासिंहे तुलायां भुजगपतिमुखं शम्भुकोणेऽग्निखातं वायव्ये स्यात्तदास्यं त्वलिधनमकरे ईशखातं वदन्ति । कुम्भे मीने च मेषे निर्ऋतिदिशि मुखं खातवायव्यकोणे चाग्नेः कोणे मुखं वै वृषमिथुनगते कर्कटे रक्ष खातम् । ॥' इति ।

दशशिष्टानि नेष्टानि चक्रे स्युर्वृषवास्तुनि[1] ॥
यद्वा तुर्यात्पञ्चदशात् त्रयोविंशतिसंख्यकात् ।
वेदाब्धिपञ्च नेष्टानि गृहारम्भप्रवेशयोः ॥
स्नानपाकस्वापवस्त्रभुजीनां पशुकोशयोः ।
देवानां च गृहान्कुर्यात्पूर्वादौ मुख्यवेश्मनः ॥

केन्द्र, अष्टम पापग्रह से रहित हो और स्थिर लग्न का उदय हो तो गृहनिर्माण कार्य शुभकर होता है। धनिष्ठा से रेवती नक्षत्र तक पञ्चक में बुद्धिमान् पुरुष खम्भे का गाड़ना सदा त्याग दे। सूर्य के नक्षत्र से सात नक्षत्र अनिष्टकर और ग्यारह नक्षत्र इष्टप्रद हैं एवं शेष दस अनिष्टकर होते हैं। यह वृष वास्तुचक्र में होता है। अथवा सूर्य के चौथे नक्षत्र से चार, पन्द्रह में से चार और तेईस में से पांच नक्षत्र, गृहारम्भ और गृहप्रवेश में उत्तम हैं। स्नान, पाक, शयन, वस्त्र, भोजन, पशु, कोश और देवता का घर मुख्य गृह से पूर्वादि दिशा में बनवावे।

उदग्दिशं ध्रुवमुखाज्ज्ञात्वा प्राचीं प्रसाधयेत् ।
कोणाध्वभ्रमकूपद्वाःपङ्कस्तम्भद्रुमामरैः ॥
विद्धा दुष्टा द्वार्न दोषो गृहोच्चद्विगुणान्तरे ।
सूत्रं भित्तिशिलान्यासं[2] स्तम्भस्यारोपणं तथा ॥
आग्नेयीं दिशमारभ्य कुर्यादित्याह कश्यपः ।
अन्यवेश्मस्थितं दारु नान्ये वेश्मनि योजयेत् ॥
नूतने नूतनं काष्ठं जीर्णे जीर्णं प्रशस्यते ।
द्वात्रिंशाधिकहस्ते च तृणागारे चतुर्मुखे ॥
न तत्र चिन्तयेद्धीमान् गुणानायव्ययादिकान् ।

ध्रुव के मुख से उत्तर दिग्ज्ञान कर पूर्व दिशा का निश्चय करे। कोण, रास्ता भ्रम, कुँआं, द्वार, कीच, खम्भा, वृक्ष और देवमन्दिर से विद्ध हो तो वह द्वार दोषयुक्त होता है। घर की ऊँचाई से दूने अन्तर पर हो तो कोई दोष नहीं होता। कश्यप जी कहते हैं कि सूत, भीति, शिलान्यास और खम्भे का गाड़ना, यह सब अग्निदिशा से प्रारम्भ करे। दूसरे घर की लकड़ी दूसरे घर में न लगावे। नये घर में नई लकड़ी का प्रयोग करे और पुराने घर में पुरानी लकड़ी का। बत्तीस हाथ से अधिक वाले चौमुखे फूस के घर में बुद्धिमान् पुरुष आय-व्यय आदि गुणों की चिन्ता न करे।

अथ गृहप्रवेशः

वास्तुपूजाविधिः कार्यः पूर्वमेव प्रवेशतः ।
मैत्रध्रुवक्षिप्रचरमूलभैर्धनपुत्रकृत् ॥

---

१. वास्तुशास्त्र में वृषवास्तु चक्र की प्रशस्ति यों है—'खाते चैव शिलान्यासे वृषचक्रं प्रशस्यते ।' इति ।

२. तदुक्तं शान्तिरत्ने—'चतुर्हस्तप्रमाणं तु खात्वा गर्तं समन्ततः । कुम्भोदकैः सेचयेयुः शान्तिपाठपुरस्सरम् ॥ तत ईशानदिग्भागे साक्षतं रत्नपञ्चकम् । साज्यं कुम्भं स्थिरं मुक्त्वा वास्तुपूजनपूर्वकम् ॥ कुम्भोपरि शिलान्यासः कर्तव्यस्तदनन्तरम् ।' इति ।

'वास्तुशान्तिप्रयोगोऽन्यतो ज्ञेयः ।

वास्तुशान्तिर्दिवैवोक्ता प्रवेशस्तु निशि क्वचित् ।
गृहप्रवेशः[2] प्रारम्भोदितमासादिकैः शुभः ॥
क्वचिन्माघोर्जशुक्रेषु कैश्चिदुक्तो मृदुध्रुवे ।
श्रेष्ठः क्षिप्रैश्चरैर्मध्यो निन्द्यस्तीक्ष्णोग्रमिश्रभैः ॥
त्रिषडाये खलैः सद्भिः षडष्टव्ययवर्जितैः ।
शुद्धेऽम्बुरन्ध्रे च तनौ विजनुर्लग्नभाष्टमे ॥

---

१. मत्स्यपुराणे—'जीर्णोद्धारे तथोद्याने तथा गृहनिवेशने । नवप्रासादभवने प्रासादपरिवर्तने ॥ द्वाराभिवर्तने तद्वत्प्रासादेषु गृहेषु च । वास्तूपशमनं कुर्यात् पूर्वमेव विचक्षणः ॥ कृत्वाग्रतो द्विजवरानथ पूर्णकुम्भं दध्यक्षताम्रदलपुष्पफलोपशोभम् । दत्त्वा हिरण्यवसनानि तथा द्विजेभ्यो माङ्गल्यशान्तिनिलयं स्वगृहं विशेच्च ॥ गृह्योक्तहोमविधिना बलिकर्म कुर्यात् प्रासादवास्तुशमने च विधिर्य उक्तः । संतर्पयेद् द्विजवरानथ भक्ष्यभोज्यैः शुक्लाम्बरः स्वभवनं प्रविशेत् सुरूपम् ॥' इति ।

२. नारदः—'माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासेषु शोभनः । प्रवेशो मध्यमो ज्ञेयः सौम्यकार्तिकमासयोः ॥ अकपाटमनाच्छन्नमदत्तबलिभोजनम् । गृहं न प्रविशेद्धीमानापदामाकरो हि तत् ॥' सौम्यः= अगहन । गृहप्रवेश में चान्द्रमास का फल, जैसा वसिष्ठ ने कहा है—'माघेऽर्थलाभः प्रथमप्रवेशे पुत्रार्थलाभः खलु फाल्गुने च । चैत्रेऽर्थहानिर्धनधान्यलाभो वैशाखमासे पशुपुत्रलाभः ॥ ज्येष्ठे च मासेषु परेषु नूनं हानिप्रदः शत्रुभयप्रदश्च । शुक्ले च पक्षे सुतरां विवृद्धयै कृष्णे च यावद्दशमीं च तावत् ॥'—

गृहप्रवेश में वसिष्ठ ने सौरमान को अग्राह्य बतलाया है—'मृगादिषड्राशिषु संस्थितेऽर्के नवप्रवेशः शुभदः सदैव । कुम्भं विनान्येष्वपि केचिदूचुर्न सौरमिष्टं खलु सन्निवेशे ॥' अर्थात् मकर आदि छ राशियों में सूर्य के रहने पर नूतन गृहप्रवेश सदा शुभदायक है ।—

कोई आचार्य कुम्भ को छोड़कर अन्य (कर्कादि छ) राशियों में सूर्य के स्थित होने पर नव गृहप्रवेश करे, ऐसा कहते हैं । विरुद्ध फल वाले पौष चैत्रादि-चान्द्रमासों में यदि विहित संक्रान्ति हो तो सौरमान गृहप्रवेश में शुभप्रद नहीं है । कुम्भसंक्रान्ति का निषेध फाल्गुन पूर्णिमा के बाद कृष्णादि चान्द्रमास की गणना से चैत्रमासविषयक और मतान्तर में कर्कादि संक्रान्ति का निर्देश सुपूर्वगृहप्रवेशविषयक या तृणागारप्रवेशविषयक—जानना चाहिये ।—

वसिष्ठ ने त्रिविध गृहप्रवेश का लक्षण बतलाया है—'अपूर्वसंज्ञः प्रथमः प्रवेशो यात्रावसाने तु सुपूर्वसंज्ञः । द्वन्द्वाभयस्त्वग्निभयादिजातः प्रवेश एवं त्रिविधः प्रदिष्टः ॥' ब्राह्मणों के वेदध्वनि के साथ पुष्प तोरणादि से सुशोभित गृह में प्रवेश करे, जैसा कि राजमार्तण्ड में बतलाया है—'भूरिपुष्पनिकरं सतोरणं तोयपूर्णकलशोपशोभितम् । गन्धपुष्पबलिपूजितामरं ब्राह्मणध्वनियुतं विशेद् गृहम् ॥'—

वसिष्ठ ने प्रवेश के अयोग्य गृह का निर्देश किया है—'यद्वास्तुपूजारहितं त्वदत्तबलिं त्वनाच्छन्नगृहं विरूपम् । कपाटहीनं न विशेद्यतस्तत्सर्वापदामालय एव तत्स्यात् ॥' नारद ने भी कहा है—'अकपाटमनाच्छन्नमदत्तबलिभोजनम् । गृहं न प्रविशेद् धीमान् विपदामालयो हि तत् ॥'—

श्रीपति ने प्रवेश के बाद की विधि बतलायी है—'ततो नृपो विप्रसुहृत्पुरोधसः शिल्पज्ञभूगोलविदश्च लिङ्गिनः । धनैश्च रत्नैः पशुभिः समर्चयेत् सहान्धदीनान् पुरवासिनस्तथा ॥' इति । विशेष जानकारी ज्योतिष-ग्रन्थों से करें ।

ऋक्षाणि पञ्च सूर्यर्क्षान्नेष्टान्यष्टचतुर्दशात् ।
शेषभानि शुभान्येवं प्रवेशे घटचक्रकम् ॥ इति वास्तुप्रकरणम् ।

गृहप्रवेश से पहिले ही वास्तुपूजा की विधि कर लेनी चाहिये। अनुराधा, ध्रुव-क्षिप्र-चर-संज्ञक-नक्षत्र, एवं मूल नक्षत्र में गृह का प्रवेश धन-पुत्र-दायक होता है। वास्तुशान्ति विधि ग्रन्थान्तर से जाननी चाहिये। वास्तुशान्ति दिन में ही करनी चाहिये। प्रवेश तो कहीं रात में कहा हैं। गृह-प्रवेश प्रारम्भ में कहे हुए महीनों में शुभकारक है। कहीं किसी ने माघ कार्तिक और ज्येष्ठ में गृह-प्रवेश कहा है। गृहप्रवेश मृदु-ध्रुव-संज्ञक नक्षत्रों में श्रेष्ठ, क्षिप्र-चर-संज्ञक नक्षत्र में मध्यम, तीक्ष्ण-उग्र और मिश्रसंज्ञक नक्षत्रों में निन्द्य है। तृतीय षष्ठ और एकादश में पापग्रह हों तथा सौम्यग्रह षष्ठ अष्टम और द्वादश स्थान में नहीं हों और चतुर्थ सप्तम शुद्ध, ऐसा लग्न हो तथा जन्म लग्न एवं जन्म राशि से अष्टम लग्न न हो। सूर्य नक्षत्र से पांच नक्षत्र और चौदहवें नक्षत्र से आठ नक्षत्र अनिष्टकर होते हैं, बाकी नक्षत्र शुभकारक होते हैं, इस तरह गृहप्रवेश में घटचक्र कहा है। वास्तु-प्रकरण समाप्त।

अथ धनाद्यर्थंगमनम्

श्रुतिद्वयाश्विपुष्यान्त्यानुराधामृगहस्तभे ।
पुनर्वसौ गोचरेष्टप्रदवारे व्रजेन्नरः ॥
अभिजिद्भं गमे श्रेष्ठं दक्षिणाशां विना क्षणः ।
मघाचित्रात्रयाश्लेषाभरण्यार्द्राः सकृत्तिकाः ॥
पूर्वाभाद्रा च नेष्टाः स्युः प्रयाणे जन्मभं तथा ।
त्यजेद्रिक्तापर्वषष्ठयष्टमीद्वादशिकास्तिथीः[1] ॥

श्रवण से दो नक्षत्र, अश्विनी, पुष्य, रेवती, अनुराधा, मृगशीर्ष, हस्त और पुनर्वसु में तथा गोचर में इष्ट देने वाले वार में, धन आदि के लिये यात्रा करनी चाहिये। दक्षिण दिशा को छोड़कर अभिजित् नक्षत्र और अभिजित् मुहूर्त यात्रा में उत्तम है। मघा चित्रा से तीन, आश्लेषा-भरणी-आर्द्रा-कृत्तिका-पूर्वभाद्रपदा तथा जन्मनक्षत्र यात्रा में शुभकारक नहीं है। रिक्ता-पर्व-षष्ठी-अष्टमी-द्वादशी, ये तिथियां यात्रा में नेष्ट हैं।

कृत्तिकाभरणीपूर्वामघानां घटिकाः क्रमात् ।
एकविंशतिसप्ताथ षोडशैकादश त्यजेत् ॥
ज्येष्ठाश्लेषाविशाखासु स्वात्यां चापि चतुर्दश ।

---

१. प्रत्येक तिथियों के वसिष्ठोक्त फल यों है—'वलक्षपक्षे प्रतिपत्प्रयाणे मङ्गप्रदा वा निधनप्रदा वा। यशस्करी भूरिधनप्रदा च या पञ्चमी मृत्युकरी च षष्ठी ॥ सप्तमी विजयदा ह्यथाष्टमी शोक-दुःखभयदामयप्रदा। सर्वदुःखशमनी यशस्करी लाभदा च दशमी निरन्तरम् ॥ पशुप्रदा मानकरी सुगन्धरक्ताम्बरानेकशुभप्रदा स्यात्। एकादशी चित्रमृगप्रभूता धान्याकरा ह्युत्तमवस्तुदा स्यात् ॥ भूरि-भूतिनाशिनी भूरिशर्महारिणी भूरिभीतिदायिनी द्वादशी प्रभञ्जदा। त्रयोदशी सुभोगदा विपक्षपक्ष-नाशिनी विनाशदाथ पूर्णिमा यशःक्षयं करोत्यमा ॥' वलक्षपक्षः=शुक्लपक्षः। कृष्णपक्ष की प्रतिपदा यात्रा में उत्तम है, जैसा कि कहा है—'प्रतिपत्सु प्रयातानां सिद्धिरेव न संशयः' इति।

मृगोमंते संकटेऽपि सर्वां स्वातीं मघां [1]त्यजेत् ॥
भरण्याः पूर्वमर्धं च चित्राश्लेषान्तकोत्तरम् ।

कृत्तिका, भरणी, तीनों पूर्वा, मघा, इन नक्षत्रों की क्रम से इक्कीस, सात, सोलह और ग्यारह घड़ियां वर्जित हैं। ज्येष्ठा, आश्लेषा, विशाखा, स्वाती, इन नक्षत्रों की चौदह घड़ियां भी वर्जित हैं। भृगु के मत से संकट में भी समस्त स्वाती और मघा यात्रा में त्याग योग्य है। भरणी का पूर्वार्ध, चित्रा एवं आश्लेषा का उत्तरार्ध यात्रा में त्याज्य है।

अथ वारशून्यविचारः

वारशूलः[2] सोमशनी प्राच्यामीज्यस्तु दक्षिणे ॥
रविशुक्रौ प्रतीच्यां स्यादुदीच्यां बुधमङ्गलौ ।
पूर्वादिदिक्षु मेषाद्याः क्रमात् त्रिश्चन्द्रराशयः ॥
सम्मुखो[3]दक्षिणोऽब्जः सन् पृष्ठे वामेऽतिनिन्दितः ।

सोम और शनिवार को पूर्व, गुरुवार को दक्षिण, रविवार तथा शुक्रवार को पश्चिम, बुधवार एवं मङ्गलवार को उत्तर दिशा का शूल होता है। पूर्व दिशा के क्रम से मेष आदि चन्द्र राशि को तीन आवृत्ति करके जानना चाहिये—अर्थात् मेष का चन्द्रमा पूर्व में, वृष का दक्षिण दिशा में, मिथुन का पश्चिम में, कर्क का उत्तर में, इसी प्रकार फिर आवृत्ति करके जानें। चन्द्रमा सम्मुख एवं दक्षिण हो तो यात्रा में उत्तम है। पीठ की ओर और वाम भाग में हो तो निन्द्य जानें।

---

१. इन नक्षत्रों में घड़ियों का त्याग आवश्यक यात्रा के लिये है, जैसा कि भारद्वाज ने कहा है—'निषिद्धेष्वपि ऋक्षेषु त्यक्त्वा दुष्टघटीः क्रमात् । तदन्त्या घटिका ग्राह्या आवश्यगमने सति ॥' इति ।

२. नारदः—'न मन्देन्दुदिने प्राचीं न व्रजेद्दक्षिणां गुरौ । सिताकर्योर्न प्रतीचीं नोदीचीं ज्ञारयोरपि ॥' वशिष्ठोक्त नक्षत्रशूल—'पुरुहूतदिशं पुरन्दरर्क्षे नेयाद्याम्यदिशं त्वजाङ्घ्रिधिष्ण्ये । ज्वलनाप्यदिशं पितामहर्क्षे शूलाख्यान्यथ सौम्यमर्यमर्क्षे ॥' पितामहर्क्षे = रोहिणीनक्षत्रे, सौम्यं=सोम देवताकमुत्तरदिशम् । वसिष्ठ ने शूलसंज्ञक वार और नक्षत्र का फल बतलाया है—'शूलसंज्ञानि धिष्ण्यानि शूलसंज्ञाश्च वासराः । यायिनां मृत्युदाः शीघ्रमथवा चार्थहानिदाः ॥'—

वारशूल का गुरूक्त परिहार—'सूर्यवारे घृतं प्राश्य सोमवारे पयस्तथा । गुडमङ्गारके वारे बुधवारे तिलानपि ॥ गुरुवारे दधि प्राश्य शुक्रवारे यवानपि । माषान् भुक्त्वा शनेर्वारे गच्छञ्शूले न दोषभाक् ॥' तथा—'ताम्बूलं चन्दनं मृच्च पुष्पं दधि घृतं तिलाः । वारशूलहराण्यर्काद्दानाद्धारणतोऽदनात् ॥' इति ।

३. कृत्यामृत में सम्मुख चन्द्रमा का फल है—'करणभगणदोषं वारसंक्रान्तिदोषं तिथिजकुलिकदोषं योगिनीशूलदोषम् । रविसितकुजदोषं यामयामार्द्धदोषं हरति सकलदोषं चन्द्रमाः सम्मुखस्थः ॥' यात्रा में नारदोक्त शुभ शकुन — 'प्रज्वलाग्निश्च तुरगनृपासनपुराङ्गनाः । गन्धपुष्पाक्षतच्छत्रचामरान्दोलिका गजाः ॥ भक्ष्येक्षवङ्कुग्यमृत्सान्नमध्वाज्यदधिगोघृताः । मत्स्यकांसुराधौतवस्त्रशङ्खरवस्वनाः ॥ पण्यस्त्रीपूर्णकलशरत्नभृङ्गारदर्पणम् । भेरीमृदङ्गपटहशङ्खवीणादिनिःस्वनाः । वेदमङ्गलघोषाः स्युर्यानि वै कार्यसिद्धिदाः ॥' कश्यपोक्त अशुभसूचक शकुन — 'औषधक्लीबबधिरैर्जटिलोन्मत्तपावकैः । अभ्यक्ताङ्गारकाष्ठास्थिचर्मान्धचिररोगिभिः ॥ तैलकार्पासलवणगुडतक्रतृणोरगैः । पङ्ककुब्जैःकपदकमुक्तकेशबुभुक्षितैः ॥ सनग्नमुण्डैर्दृष्टस्तु यात्रा नैव फलप्रदा ।' इति ।

अथ शुक्रविचारः

दिशि यत्रोदेति शुक्रस्तां दिशं न[1] व्रजेन्नरः ॥
न व्रजेत्सम्मुखे ज्ञेऽपि शुभपृष्ठोऽपि वामतः ।
रेवती मेषगे चन्द्रे शुक्रान्ध्यात्सम्मुखं व्रजेत् ॥

जिस दिशा में शुक्र का उदय हो, उस दिशा में यात्रा वर्ज्य है । बुध के सामने होने पर भी यात्रा नेष्ट है । बुध यदि पीछे या बायें हो तो उत्तम है । रेवती नक्षत्र तथा मेष राशि पर चन्द्रमा हो तो शुक्रान्ध होता है । ऐसी स्थिति में शुक्र के सम्मुख यात्रा नेष्ट नहीं होती ।

प्रयाणे शुभाः केन्द्रकोणेषु शस्ताः
खलास्त्र्यायषट्खेष्वनिष्टः शनिः खे ।
कविः सप्तमे ग्लौः षडष्टान्त्यलग्ने
विलग्नेश्वरोप्यस्तषष्ठाष्टमान्त्ये ॥

यात्रा काल में यदि शुभग्रह के एक चार सात दस और कोण नव पाचवें में हो तो उत्तम है । पापग्रह तृतीय एकादश षष्ठ और दशम स्थान में हो तो नेष्ट है । दशम स्थान में शनि, सप्तम में शुक्र तथा षष्ठ अष्टम और द्वादश स्थान में चन्द्रमा हो तथा लग्न में और लग्न का स्वामी सप्तम षष्ठ और अष्टम में हो और द्वादश स्थान में हो तो अशुभ जानना चाहिये ।

केन्द्रे वक्री वक्रिवर्गो लग्ने वारश्च वक्रिणः ।
कुम्भः कुम्भनवांशश्च लग्ने त्याज्यः प्रयत्नतः ॥
मीनलग्ने तदंशे वा यातुर्मार्गोऽतिदुःखदः ।
शत्रुर्लग्नभतः षष्ठं तत्पतिर्वा मृतिप्रदः ॥
शत्रुक्षेत्रे तदंशे वा तद्दृष्टे गमनं न सत् ।
लग्नेऽस्तंगतराशिश्च जन्मराशिश्च नो शुभः ॥
शशी वर्गोत्तमे लग्ने वर्गोत्तमयुते जयः ।
शुक्रादितिथिवारर्क्षयोगोऽश्वैरष्टभिस्त्रिभिः ॥
त्रिस्थस्तष्टोऽवशिष्टश्चेत्सर्वाङ्कः सार्वकामिकः ।
त्रिषु क्रमाद्भवेच्छून्यं दुःखदारिद्र्यमृत्युदम् ॥

केन्द्र में वक्री ग्रह हो और लग्न में वक्री ग्रह का वार हो एवं कुम्भ लग्न और कुम्भ के नवांश यात्रा में त्याज्य है । मीन लग्न अथवा नवांश में यात्री को मार्ग में अत्यन्त कष्ट होता है । जन्म लग्न या जन्म राशि के स्वामी का शत्रु अथवा जन्म लग्न अथवा जन्मराशिसे षष्ठ लग्न और उसका स्वामी यात्रा का मृत्युकारक होता है । शत्रु के क्षेत्र या उसके नवांश में अथवा शत्रु लग्न को देखता हो तो यात्रा अच्छी नहीं होती । लग्न में सप्तम राशि एवं जन्म की राशि भी ठीक नहीं होती । वर्गोत्तम में

---

१. वसिष्ठः—'प्रतिशुक्रं प्रतिबुधं प्रतिभौमं गतो नृपः । बलेन शक्रतुल्योऽपि हतसैन्यो निवर्तते ॥' प्रतिशुक्रादिका विचार मनुष्यों की प्रथम यात्रा और राजाओं की विजय यात्रा में ही करना चाहिये, जैसा रैभ्य ने बतलाया है—'प्रतिशुक्रादिदोषोऽयं नूतने गमने नृणाम् । राज्ञां विजययात्रायां नान्यथा दोषमावहेत् ॥' यहाँ आदि शब्द से शुक्रास्त, प्रतिबुध और प्रतिभौम का ग्रहण है ।

या वर्गोत्तम से युक्त चन्द्रमा हो तो यात्रा में विजय होता है। शुक्लपक्ष से तिथि वार और नक्षत्रके योग को तीन स्थान पर रख कर क्रम से सात, आठ और तीनका भाग देने से जो अंक शेष रहे तो सम्पूर्ण कामना सिद्ध होती है। यदि तीनों में शून्य रहे तब कष्ट, दरिद्रता और मृत्यु होती है।

यद्येकस्मिन्नेव दिने पुरा गच्छेत्पुरान्तरम्।
प्रावेशिकी कालशुद्धिस्तदा ज्ञेया न यात्रिकी॥
प्रवेशान्निर्गमो नेष्टः प्रवेशो निर्गमादपि।
जिष्णोः कदापि नवमे धिष्ण्ये वारे तिथौ तथा॥
याम्यदिग्गमनं शय्या वितानं छादनं गृहे।
न [1]कुम्भमीनगे चन्द्रे तृणकाष्ठस्य संग्रहः॥
तर्पिताग्निसुहृद्विप्रभार्यादिस्तृप्तिमान् व्रजेत्।
स्वकीयां परकीयां वा स्त्रियं पुरुषमेव वा॥
ताडयित्वा तु यो गच्छेद् ब्राह्मणानवमान्य च।
व्याधितः क्षुधितो वापि तदन्तं तस्य जीवितम्॥

एक दिन में एक नगर से दूसरे नगर में जाय तो प्रवेश की शुद्धि का विचार करे, यात्राकाल की शुद्धि का विचार नहीं करे। जय चाहने वाले मनुष्यको प्रवेशसे नवम दिन में यात्रा और यात्रा दिनसे नवम दिन में प्रवेश इष्ट नहीं है। एवं नवम नक्षत्र, वार और तिथि भी इष्ट नहीं है। कुम्भ मीनके चन्द्रमा में दक्षिण दिशा में जाना, शय्या वितान, गृहाच्छादन और तृण एवं लकड़ी का संग्रह नहीं करे। यात्रा के समय अग्नि, मित्र, ब्राह्मण तथा स्त्री आदि को तृप्त कर गमन करे। अपनी अथवा दूसरे की स्त्री या पुरुष को प्रतारण एवं ब्राह्मणों का अपमान कर जो यात्रा करता है और स्वयं रुग्ण एवं बुभुक्षितावस्था में यात्रा करता है तो उसका जीवन उसी समय तक का होता है।

क्रोधं क्षौरं तथा वान्तिं तैलाभ्यङ्गाश्रुमोचनम्।
मद्यं मांसं गुडं तैलं सितान्यतिलकं तथा॥
श्वेतभिन्नं च वसनं प्रयाणे [2]परिवर्जयेत्।

---

१. नारदः—'वस्वन्त्यार्द्धादिपञ्चर्क्षे संग्रहं तृणकाष्ठयोः। याम्यदिग्गमनं शय्यां न कुर्याद् गृहगोपनम्॥' श्रीपतिने पंचकमें प्रेतदाह का भी निषेध किया है—'वासवोत्तरदलादिपञ्चके याम्यदिग्गमनगेहगोपनम्। प्रेतदाहतृणकाष्ठसंग्रहं शय्यकावितननं च वर्जयेत्॥ पंचक में मरने पर ब्रह्मपुराण का विचार—'कुम्भमीनस्थिते चन्द्रे मरणं यस्य जायते।···पञ्चकानन्तरं कार्यं कार्यं दाहादिकं खलु। अथवा तद्दिने कार्यो दाहस्तु विधिपूर्वकम्॥'—

ब्रह्मपुराण में दाह की विधि—'दाहदेशे शवं नीत्वा स्नापयेच्च प्रयत्नतः। दर्भाणां प्रतिमाः कार्याः पञ्चोर्णासूत्रवेष्टिताः॥ यवपिष्टेनानुलिप्तास्ताभिः सह शवं दहेत्। प्रेतदाहः प्रेतसखः प्रेतपः प्रेतभूमिपः॥ प्रेतहर्ता पञ्चमश्च नामान्येतानि च क्रमात्।' इति। विशेष अन्त्येष्टि पद्धतियों में देखें।

२. इन वस्तुओं को सेवन कर यात्रा करने पर मुहूर्तचिन्तामणि में दोष बतलाया है—'भुक्त्वा गच्छति यदि चेत्तैलगुडक्षारपक्वमांसानि। विनिवर्तते स रुग्णः स्त्रीद्विजमवमान्य गच्छतो मरणम्॥' गर्ग ने भी कहा है—'कटुतैलगुडक्षारपक्वमांसाशनं तथा। भुक्त्वा यो यात्यसौ मोहाद् व्याधितः सन्निवर्तते॥' इति।

क्षौरं पञ्चदिनं दुग्धं त्रिदिनं सप्तरात्रकम्।
मैथुनं चापरं तैलं मध्वाज्यं तद्दिने त्यजेत्॥
स्त्र्यार्तवं बीजदानान्तं तथा कुशकुनांस्त्यजेत्॥

क्रोध, क्षौर, वमन, तैलस्नान, रोना, मद्य, मांस, गुड, तेल, श्वेत तिलक से भिन्न तिलक तथा श्वेत वस्त्र से भिन्न वस्त्र यात्रा में वर्जित है। पांच दिन पूर्व हजामत एवं तीन दिन पहिले दूध तथा सात दिन पूर्व स्त्रीप्रसङ्ग और तेल-मधु-घृत यात्रा के दिन वर्जित करे। बीजदानपर्यन्त स्त्री का आर्तव और कुशकुन का भी त्याग करे।

अथ प्रस्थानविचारः

सुमुहूर्ते स्वयं गमनासंभवे [1]प्रस्थानं कार्यम्। प्रस्थानं नामाभीष्टवस्तुचालनम्।

यज्ञोपवीतकं शस्त्रं मधु च स्थापयेत्फलम्।
विप्रादिः क्रमतः सर्वैः स्वर्णधान्याम्बरादिकम्॥
राजा दशाहं पञ्चाहमन्यो न प्रस्थितो वसेत्।

अच्छे मुहूर्त में यात्रा असम्भव हो तो प्रस्थान कर देना चाहिये। अभीष्ट वस्तु का चलाना प्रस्थान कहलाता है। यज्ञोपवीत, शस्त्र, मधु और फल को प्रस्थान में ब्राह्मण आदि वर्ण क्रम से रखे। सोना, धान्य, वस्त्र आदि भी रख सकते हैं। प्रस्थान रखने पर राजा दस दिन, अन्य पुरुष पांच दिन तक ठहर सकते हैं।

स्वयं गमनाद्वस्तुस्थापनाख्यप्रस्थानेऽर्धफलम्। प्रस्थानदेशावधिः—

गेहाद् गेहान्तरं गर्गः सीम्नः सीमान्तरं भृगुः।
बाणक्षेपं भरद्वाजो वासिष्ठो नगराद्बहिः॥
प्रस्थानेऽपि कृते नेयान्महादोषान्विते दिने।

प्रस्थानदिनेऽपि क्रोधादिकं वर्जयेत्। शकुनापशकुनप्रपञ्चोऽन्यत्र। इति यात्राप्रकरणम्।

---

१. किसी आवश्यक कार्यवश यात्रामुहूर्त में नहीं जा सके तो उस मुहूर्त में गन्तव्य दिशा की ओर अभीष्ट वस्तु का प्रस्थापन कर दे, जैसा वसिष्ठ ने बतलाया है—'तस्मिन् मुहूर्ते स्वयमप्रयाणे प्रयोजनापेक्षितया च दैवात्। तत्रैव तान्निर्गमनं च कार्यं स्वीयासनाच्चापि तदुच्यमानम्॥' नारदः—'अप्रयाणे स्वकं कार्यमपेक्षी भूपतिस्तथा। कुर्यान्निर्गमनं छत्रध्वजवाहनसंयुतम्॥' अथवा ब्राह्मणादि वर्णों के अनुसार वस्तु-प्रस्थापन का प्रकारान्तर, राजमार्तण्ड में यों है—'प्रस्थाने ब्राह्मणादीनां यज्ञसूत्रमथायुधम्। मध्वामलफलं चैव प्रशस्तं वृद्धिकारणम्॥' अर्थात् ब्राह्मण यज्ञोपवीत को, क्षत्रिय शस्त्रास्त्र को, वैश्य मधु को और शूद्र आंवला नारियल आदि फल को प्रस्थापित करे।—

राजमार्तण्ड में गन्तव्य दिशा की ओर वस्तु-प्रस्थापन का निर्देश किया है—'गन्तव्यदेशाभिमुखे प्रदेशे प्रस्थानमाहुः शुभदं नराणाम्।' पूर्वादि दिशाओं में प्रस्थान दिन का नियम—'प्राच्यामहानि मुनयः प्रवदन्ति सप्त याम्यामतीव शुभदानि दिनानि पञ्च। त्रीण्येव पश्चिमदिशि क्षितिनायकानां प्रस्थानकेषु दिवसद्वयमुत्तरस्याम्॥' राजमार्तण्ड में ही वस्तु को प्रस्थापित नहीं करके स्वयं प्रस्थान करने का महत्त्व बतलाया है—'स्वशरीरेण यः कश्चिन्निर्गच्छेच्छ्रद्धयाऽन्वितः। तस्य यात्राफलं सर्वं सम्पूर्णं पथि सिद्ध्यति॥' इति।

स्वयंगमन से प्रस्थान सम्बन्धी वस्तु के रखने में आधा फल होता है। प्रस्थान देश की अवधि-गर्ग ने एक घर से दूसरे घर तक, भृगु ने अपनी सीमा से दूसरी सीमा तक, भारद्वाज ने छोड़े हुए बाण के पहुँचने तक, वशिष्ठ ने नगर से बाहर रखना बतायी है। प्रस्थान रखने पर भी महादोषयुक्त दिन में यात्रा नहीं करे। प्रस्थान के दिन क्रोध आदि का त्याग करे। अच्छे बुरे शकुन का प्रपञ्च ग्रन्थान्तर में देखें। यात्राप्रकरण समाप्त।

अथ गोचरप्रकरणम्

जन्मराशेः क्रूरचन्द्रास्त्रिषट्दशमगाः[1] शुभाः।
सप्ताद्यगश्चापि चन्द्रः शुक्ले द्विनवपञ्चसु॥
बुधो व्यन्त्यसमे जीवो द्विपञ्चनवसप्तसु।
जन्मादिपञ्चसु तथा नवाष्टद्वादशे भृगुः॥
एकादशे सर्वखेटाः शुभाः स्युरिति संग्रहः।

जन्म राशि से क्रूर ग्रह एवं चन्द्रमा तीसरे, छठे, दसवें में और चन्द्रमा सातवें तथा लग्न में, शुक्लपक्ष में द्वितीय-नवम-पंचम में हो बुध मीन को छोड़ कर सम राशि (२,४,६,८,१०,) में हो, गुरु द्वितीय-पंचम-सप्तम में हो, शुक्र जन्म से पांच तक और नव-आठ-बारहवें हो, ग्यारहवें में सब ग्रह हों तो शुभदायक है, यह गोचर का संग्रह है।

जन्मसंपद्विपत्क्षेमं प्रत्यरिः साधिका वधः।
मैत्रातिमैत्राः स्युस्तारास्त्रिरावृत्त्या स्वजन्मभात्॥
क्रमतः सूर्यादिबलं नृपदर्शनसर्वकार्ययुद्धेषु।
शास्त्रकरग्रहयात्रादीक्षासूद्यं विशेषेण॥
अनिष्टसूर्यादीनां[2] दानानि द्वितीयपरिच्छेदान्ते।

---

१. ग्रहाणां गोचरफलं शुभरूपमशुभरूपं च। जन्मराशितः प्रोक्तनिषिद्धस्थानस्थितेदानीन्तन-ग्रहवशेन शुभाशुभनिरूपणं 'गोचर' इत्युच्यते।

२. अनिष्टकारक ग्रहों की तुष्टि के लिये कश्यप ने रत्नधारण का निर्देश किया है—'सूर्यादीनां च सन्तुष्ट्यै माणिक्यं मौक्तिकं तथा। सुविद्रुमं मारकतं पुष्परागं च वज्रकम्॥ नीलगोमेदवैदूर्यं धार्यं स्वस्वदक्रमात्।' यथा—सूर्यप्रीत्यर्थं माणिक्यं, चन्द्रप्रीत्यर्थं मौक्तिकं, भौमप्रीत्यर्थं विद्रुमं, बुधप्रीत्यर्थं मारकतं, गुरुप्रीत्यर्थं पुष्परागं, शुक्रप्रीत्यर्थं वज्रं, शनिप्रीत्यर्थं नीलं, राहुप्रीत्यर्थं गोमेदं, केतुप्रीत्यर्थं वैदूर्यं च धार्यम्।--

अधिक मूल्य वाले रत्नों के धारण करने की शक्ति न हो तो अल्पमूल्य वाले रत्नों के धारण का निर्देश श्रीपति ने किया है—'धार्यं तुष्ट्यै विद्रुमं भौमभान्वो रूप्यं शुक्रेन्द्वोश्च हेमेन्दुजस्य। मुक्ता सूरेर्लौहमर्कात्मजस्य लाजावर्तः कीर्तितः शेषयोश्च॥'—

रत्नधारण के असामर्थ्य में दीपिकाकार ने औषधमूल के धारण का निर्देश किया है—'मूलं धार्यं त्रिशूल्याः सवितरि त्रिगुणक्षीरिकामूलमिन्दौ जिह्वाहेर्भूमिपुत्रे रजनिकरसुते वृद्धदारोश्च मूलम्। भार्ङ्गी जीवेऽथ शुक्रे भवति शुभकरं सिंहपुच्छस्य मूलं विच्छोलं चार्कपुत्रे तमसि मलयजं केतुदोषेऽश्वगन्धम्॥' अर्थात् सूर्यप्रीतये त्रिशूल्याः बिल्वस्य मूलं, चन्द्रप्रीतये क्षीरिकायाः 'खीरी' इति ख्यातस्य, भौमप्रीतये नागजिह्वायाः, बुधप्रीतये वृद्धदारोः 'विधारा' इति ख्यातस्य, गुरुप्रीतये भार्ङ्ग्याः 'भारंगी' इति

जन्म, सम्पत्, विपत्, क्षेम, प्रत्यरि, साधक, वध, मैत्र, अतिमैत्र, ये नाम अपने नक्षत्र से तीन आवृत्ति करने पर होते हैं और ये अपने नाम के समान फल देते हैं। क्रम से सूर्य आदि का बल राजदर्शन, समस्त कार्य और युद्ध में शस्त्र ग्रहण, करग्रहण, यात्रा और दीक्षा में विशेषतः विचारणीय हैं। अनिष्ट सूर्यादि के दानादिक द्वितीय परिच्छेद के अन्त में कह चुका हूँ।

अथ पल्लीसरटफलम्

दक्षांगोदरनाभिहृत्सु पतिता पल्ली वराङ्गे हनुं
मुक्त्वा नुः शुभदा स्त्रियाः फलमिदं [1]वामेतरव्यत्ययात्।
इत्याहुः सरटप्ररोहणफलं पातेऽन्यथैके वृथा
पल्ल्यारोहणकेऽपि वस्त्रसहितं स्नात्वा चरेच्छान्तिकम्॥

मनुष्य के दाहिने अंग, दाढ़ी को छोड़कर पेट, हृदय, नाभि और मुख पर छिपकिली गिरे तो सुखदायक है। यही फल स्त्री को उल्टा अर्थात् बायें अंग में शुभप्रद है। गिरगिट के चढ़ने का भी यही फल है। गिरगिट के गिरने पर पहिले कहे हुए से उल्टा है। कोई आचार्य कहते हैं गिरगिट के गिरने पर न कोई फल है न दोष। छिपकिली के चढ़ने पर भी सचैल स्नान और शान्ति करे।

अथ पल्लीसरटशान्तिः

तयोः स्पर्शमात्रे स्नानं कृत्वा पञ्चगव्यं प्राश्याज्यमवलोक्याशुभनाशार्थं शुभवृद्धचर्थं वा शान्तिः कार्या। पल्ल्याः सरटस्य वा हेम्ना प्रतिमां कृत्वा रक्त-वस्त्रेण संवेष्टच संपूज्य कलशे रुद्रं संपूज्य मृत्युञ्जयमन्त्रेण खादिरसमिद्भिरष्टोत्तर-शतं तिलैर्व्याहृतिभिरष्टोत्तरसहस्रं शतं वा हुत्वा स्विष्टकृदाद्यभिषेकान्ते स्वर्ण-वस्त्रतिलदानम्।

छिपकिली और गिरगिट के केवल स्पर्श होने पर स्नान करके पंचगव्य पान कर घृत देखकर अशुभ नाश के लिये या शुभ की वृद्धि के लिये शान्ति करनी चाहिये। छिपीकिली और गिरगिट के सोने की प्रतिमा बनाकर रक्त वस्त्र से लपेट कर पूजा करे। कलश पर रुद्र की पूजा करके मृत्युंजय मन्त्र से खैर की समिधाओं से तिल का एक सौ आठ या व्याहृति से एक हजार आठ या एक सौ संख्या से होम करके स्विष्टकृत् आदि और कलश जल से अभिषेक के बाद सोना कपड़ा और तिल का दान करे।

अथ कपोतप्रवेशादिशान्तिः

अथ [2]कपोतप्रवेशमधुवल्मीकोत्पत्तिपिङ्गलास्वरकाकवैकृतग्राम्यारण्यादिमृग-

---

ख्यातस्य, शुक्रप्रीतये सिंहपुच्छयाः, शनिप्रीतये विच्छोलस्य, राहुप्रीतये चन्दनस्य, केतुप्रीतये च अश्वगन्धाया 'असगन्ध' इति ख्यातस्य मूलं धार्यम्। दानद्रव्य और दानद्रव्यदेवताओं की जानकारी द्वितीयपरिच्छेद के अन्त में सुधाविवृति से करें। अवशिष्ट-विषय अन्यत्र देखें।

१. वामेतरव्यत्ययात् = वामाङ्गदक्षिणाङ्गविपर्यासात्, अर्थात् स्त्रियों के वामांग में छिपकिली का गिरना शुभदायक और दक्षिणांग में अशुभदायक है।

२. वसन्तराजः—'उलूकश्चैव गृध्रश्च कपोतः श्येन एव च। पतन्ति भवने यस्य तस्य प्राहुर्महद्भयम्॥ पक्षान्मासात्तथा वर्षान्मृत्युः स्याद् गृहमेधिनः। पत्न्याः पुत्रस्य वा मृत्युर्द्रव्यं चैव प्रणश्यति॥ ब्राह्मणाय गृहं दद्याद् दत्त्वा तन्मूल्यमेव च। गृह्णीयाद् यदि रोचेत शान्तिं चैतां प्रयो-

पक्षिविकारे शान्तिः[1]—देवाः कपोत इति पञ्चर्चं सूक्तं सहस्रं शतं वा जपित्वा यत इन्द्र भयामहे स्वस्तिदा विशस्त्र्यम्बकमिति मन्त्रैर्हुत्वा व्याहृतिभिरष्टोत्तरशतं तिलहोमं कुर्यात्। अथवा पञ्चविप्रैः क्रमेण देवाः कपोत इति सूक्तं सुदेवो असीत्यृचं कनिक्रददिति शाकुन्तसूक्तं नमो ब्रह्मणे नमो इति मन्त्रं च सहस्रादिसंख्यया जप्त्वोपनिषदश्च पठित्वा व्याहृतिभिस्तिलहोमं कुर्यात्।

कबूतर का प्रवेश, मधु और वल्मीक की उत्पत्ति, पिंगला का शब्द, काक का मैथुन, ग्राम और वन के मृग पक्षियों के विकार की शान्ति इस प्रकार है—'देवाः कपोत' इस पांच ऋचा वाले सूक्त का एक हजार अथवा एक सौ जप करके समिधा घृत और चरु से प्रत्येक को 'यत इन्द्र भयामहे स्वस्तिदा विशः त्र्यम्बकं' इन मन्त्रों से एक सौ आठ होम करके व्याहृतियों से तिल का एक सौ आठ होम करे। अथवा पांच ब्राह्मण क्रम से 'देवाः कपोत' इस सूक्त का 'सुदेवो असि' इस ऋचा का 'कनिक्रदत्' इस शाकुन्त सूक्त और 'नमो ब्रह्मणे नमो' इस मन्त्र का एक हजार जप तथा उपनिषदों का पाठ करके व्याहृतियों से तिल का होम करे।

अथ काकमैथुनदर्शनादिशान्तिः

अथ काकस्पर्शमैथुनदर्शनादि शान्तिः[2]—संकल्पाग्निप्रतिष्ठापनान्ते कुम्भे सौवर्णमिन्द्रं लोकपालांश्च संपूज्याग्नौ चरुं श्रपयित्वा पलाशसमिच्चर्वाज्यव्रीहिभिः प्रत्येकमष्टोत्तरसहस्रं शतं वा यत इन्द्रेति मन्त्रेण हुत्वा लोकपालेभ्यस्तैरेव द्रव्यैर्दश कृत्वो हुत्वा लोकपालबलिं कुम्भाग्रे वायसेभ्यो बलिमैन्द्रवारुणेति मन्त्रेण दत्त्वा यजमानोऽभिषेकान्ते शतं दश वा विप्रान्भोजयेत्।

कौआ से स्पर्श और उसके मैथुनदर्शन आदि में शान्ति करे—संकल्प से अग्निस्थापनपर्यन्त कर्म करके कलश पर सोने के इन्द्र और लोकपालों की पूजा कर अग्नि में चरु पका कर पलाश की समिधा, चरु, घृत और धान्य से प्रत्येक के लिये एक हजार आठ या एक सौ संख्या से 'यत इन्द्र' इस मन्त्र से होम करके उन्हीं द्रव्यों से लोकपालों को दस बार या एक बार होम करके

जयेत् ॥ चरुं यवमयं कृत्वा अश्वत्थसमिधोऽयुतम्। मनसः काममित्येतद् हुत्वा जप्त्वा सुखी भवेत् ॥ यदि वा वर्धनी चेति तया शान्तिः प्रदिश्यते। ऐन्द्रीं शान्तिं ततः कुर्यात् त्रातारमिति मन्त्रतः ॥ औदुम्बरीश्च समिधो जुहुयाद् घृतसंयुताः। अष्टोत्तरसहस्राणि पञ्च तच्छान्तिकाम्यया ॥ चरुकर्माशनं चास्य विप्रान् दधिगुडौदनैः। तर्पयित्वा वरं हेम दद्याद् धेनुं च दक्षिणाम् ॥' अत्र लोके गृध्रस्य उलूकस्य च गृहोपवेशने दोषविचारस्तच्छान्तिश्च क्रियते ॥' इति।

१. औशनसे—'गौरश्वं वडवा गावो यस्मिन् देशे प्रसूयते। अभ्यन्तरेण वर्षात्तु राज्ञो मरणमादिशेत् ॥ व्यजायन्त खरा गोषु करभाश्वतरीषु च। शुनीषु हि विडालाश्च मूषिका नकुलीषु च ॥ देशे वा यदि वा ग्रामे योनिव्यतिकरो भवेत्। अजः शुनीमजां श्वा वा संसर्गं यत्र गच्छति ॥ अभ्यन्तरेण तत्राब्दाद् राष्ट्रे मरणमादिशेत्।' शान्तिः—'तर्पयेद् ब्राह्मणांश्चात्र जपहोमांश्च कारयेत्। स्थालीपाकेन धातारं पशुना च पुरोहितः ॥ प्राजापत्येन मन्त्रेण जपेद् बह्वन्नदक्षिणाम्।' इति।

२. गर्गसंहितायाम्—'काकस्य मैथुनं पश्येत् काकः शिरसि चेद् विशेत्। शिरस्युपरि वा कुर्यात् पक्षघातं नखैस्तथा ॥ विदारणं च कुरुते शयानं च स्पृशेद् यदि। तथा वहेत्तु मरणं महारिष्टमथापि वा ॥ शान्तिं तत्र प्रकुर्वीत विधानेन यथोदिताम्। मध्यरात्रे यदा काको वसते हेतुना विना ॥ तद्गृहारिष्टमाचष्टे ग्रामारिष्टमथापि वा। शान्तिं तत्रापि कुर्वीत विधानेन यथोदिताम् ॥' इति।

लोकपालों की बलि और कलश के अग्रभाग में कौओं की बलि 'ऐन्द्र वारुण' इस मन्त्र से देकर यजमान अभिषेक के अन्त में सौ या दस ब्राह्मणों को भोजन करावे।

अथ घरट्टादिभेदने कर्तव्यता

घरट्टोलूखलमुसलदृषदासनमञ्चकादेरकस्मात्स्फोटने घृताक्तमधुयुताश्वत्थसमिधः प्रजापतये हुत्वा गायत्र्याष्टोत्तरसहस्रेणाभिमन्त्रयेत्।

घरट्ट, ऊखल, मूसल, शिला, आसन और मंचक आदि के अकस्मात् टूटने फूटने पर पीपल की समिधा से प्रजापति के लिये घृत-मधु-युक्त होम करके गायत्री के मन्त्र से एक हजार आठ बार अभिमन्त्रण करे।

अथ नानाविधदिव्यभौमान्तरिक्षोत्पातेषु शान्तिः

संकल्पादि कृत्वा कुम्भे इन्द्ररुद्रौ सम्पूज्य यत इन्द्र स्वस्तिदा विशस्पतिः अघोरेभ्योथेति मन्त्रैः समिदाज्यचरुव्रीहितिलान्प्रतिद्रव्यमष्टोत्तरशतं हुत्वा व्याहृतिभिः कोटिहोमं लक्षहोममयुतहोमं तत्पादहोमं वा तिलैर्वित्तानुसारेण निमित्तानुसारेण च सप्तरात्रं त्रिरात्रमेकरात्रं वा कृत्वा सूर्यगणेशक्षेत्रपालदुर्गामन्त्राणां जपं कृत्वा पायसादिना ब्राह्मणभोजनं कार्यम्। यद्वा चण्डीसप्तशतीजपः। अथवा रुद्रैर्जपोऽभिषेको[1] वा। अश्वत्थप्रदक्षिणाशिवपूजागोविप्रपूजादि वा। इति [2]नानोत्पातसामान्यशान्तयः।

---

१. स्कन्दपुराणे—'रुद्राध्यायेन ये देवं स्नापयन्ति महेश्वरम्। तज्जलैः कुर्वतः स्नानं ते मृत्युं सन्तरन्ति च॥ रुद्राध्यायाभिजप्तेन स्नानं कुर्वन्ति येऽम्भसा। तेषां मृत्युभयं नास्ति शिवलोके महीयते॥ शतरुद्राभिषेकेण शतायुर्जायते नरः। रुद्राध्यायजपं सम्यक् कुर्वन्तु विमलाशयाः। तेषां जपानुभावेन सद्यः श्रेयो भविष्यति॥' अपि च—'रुद्राभिषेकं कुर्वाणस्तत्रत्याक्षरसंख्यया। प्रत्यक्षरं कोटिवर्षं रुद्रलोके महीयते॥' रुद्राभिषेक में विभिन्न कार्यों के लिये विभिन्न वस्तुओं का निर्देश 'सर्वरोगनाशकानि' शीर्षक की 'सुधाविवृति' में देखें।

२. शान्तिसारोद्धृत वसिष्ठसंहिता में उत्पात का लक्षण—'अन्यत्वं प्रकृतेर्यत्तदसावुत्पातसंज्ञकः। अधर्मतस्त्वसत्याच्च नास्तिक्यादतिलोभतः॥ अनाचारान्नृणां नित्यमुपसर्गः प्रजायते।' उत्पात के भेद—'दिव्यान्तरिक्षक्षितिजा विकारा घोररूपिणः। ग्रहर्क्षजाः केतवश्च उत्पाता दिव्यसंज्ञकाः॥ निर्घाता परिवेषोल्का पुरन्दरधनुर्ध्वजाः। एवमाद्या महोत्पाता अन्तरिक्षाह्वयाः स्मृताः॥ उत्पद्यते क्षितौ यच्च स्थावरं वाथ जङ्गमम्। तदेकदेशिकं भौम उत्पातः परिकीर्तितः॥ भौमाः स्युस्तुच्छफलदा आन्तरिक्षास्तु मध्यमाः। सम्पूर्णफलदा दिव्या वर्षादर्धाच्चदर्धतः॥' अत्र उत्पात उपसर्ग अद्भुतं चेति पर्यायवाचिनः शब्दाः।—

उत्पात के कुछ उदाहरण नारद ने बतलाया है—'आदित्यचन्द्रयोर्मध्ये छिद्रं पश्यति यो नरः। उत्पातमीदृशं दृष्ट्वा मासमेकं स जीवति॥ इमा रुद्रेति मन्त्रेण जुहुयात् सर्पिषाहुतिम्। आहुती द्वे सहस्रे तु होमश्च कथितो भवेत्॥ वृषभं दक्षिणां दद्यात् ततः सम्पद्यते शुभम्।' 'रात्रौ चेन्द्रधनुर्यत्र दृश्यते दिवि सत्तम। अद्भुतं तत्र विज्ञेयं शान्तिं चेमां समारभेत्॥ औदुम्बर्याः सहस्राणि अष्टौ च जुहुयाद् द्विजः। मध्वक्तानि घृताक्तानि जातवेदांसि मन्त्रवित्॥ विप्राय दक्षिणां दद्याद् धेनुं च वृषभं तथा।

संकल्प आदि करके कुम्भ पर इन्द्र रुद्र की पूजा करके 'यत इन्द्र' 'स्वस्तिदा विशस्पतिः' 'अघोरेभ्योऽथ' इन मन्त्रों से समिधा, घृत, चरु, व्रीहि और तिल के प्रत्येक द्रव्य से एक सौ आठ होम करके व्याहृतियों से कोटिहोम, लक्ष होम, दस हजार होम, या कोटि लक्ष अथवा दस हजार का चतुर्थांश होम अपने वित्त और निमित्त के अनुसार तिलों से सात रात, तीन रात, अथवा एक रात देकर सूर्य, गणेश, क्षेत्रपाल और दुर्गा मन्त्र का जप करके खीर आदि मिष्टान्न से ब्राह्मणभोजन करावे या चण्डी सप्तशती का जप अथवा रुद्र मन्त्रों का जप या अभिषेक करावे। पीपल की प्रदक्षिणा, शिव की पूजा, अथवा गौ ब्राह्मण की पूजा आदि अनेक उत्पातों की सामान्य-शान्ति है।

अथ गायत्रीपुरश्चरणप्रयोगः

देशकालौ संकीर्त्य 'करिष्यमाणगायत्रीपुरश्चरणेऽधिकारसिद्धयर्थं कृच्छ्रत्रयममुकप्रत्याम्नायेनाहमाचरिष्ये' इति संकल्प्य होमादि प्रत्याम्नायविधिना कृच्छ्राण्यनुष्ठाय 'अमुकशर्मणो मम गायत्रीपुरश्चरणेऽनेन कृच्छ्रत्रयानुष्ठानेनाधिकारसिद्धिरस्तु' इति विप्रान्वदेत्। विप्रा अधिकारसिद्धिरस्त्विति ब्रूयुः। ततः 'करिष्यमाण पुरश्चरणाङ्गत्वेन विहितं गायत्रीजपादि करिष्ये' इति संकल्प्य स्वयं विप्रद्वारा वा कुर्यात् तद्यथा—

देश काल को कह कर 'किये जाने वाले गायत्री पुरश्चरण में अधिकार की सिद्धि के लिये मैं तीन कृच्छ्र व्रत अमुक प्रत्याम्नाय से करूंगा' ऐसा संकल्प कर होम आदि के बदले में कृच्छ्र व्रतों को करके 'अमुक शर्मा मेरे गायत्री पुरश्चरण में इस तीन कृच्छ्र के अनुष्ठान से अधिकार की सिद्धि हो' ऐसा ब्राह्मणों से कहे। ब्राह्मण लोग 'अधिकार की सिद्धि हो' ऐसा कहें। तदनन्तर 'किये जाने वाले पुरश्चरण का अंग गायत्री जप आदि करूंगा' ऐसा संकल्प कर स्वयं या ब्राह्मण द्वारा गायत्री का पुरश्चरण करे। वह इस प्रकार है—

सप्रणवव्याहृतिकगायत्र्या अयुतं जप्त्वा आपोहिष्ठेति सूक्तं एतोन्विन्द्रमिति चतस्रः ऋतं चेति सूक्तं स्वस्तिन इत्याद्याः स्वस्तिमतीः स्वादिष्ठयेत्याद्याः पावमामानीश्च सर्वाः प्रत्येकं दशवारं स्वयमन्यद्वारा वा जपित्वा तत्सवितुरित्यस्या-

---

एकरात्रोषितो भूत्वा ततः सम्पद्यते सुखम् ॥'—

अद्भुतसागरे—'यस्मिन् देशे दिवा तारा दृश्यते दिवि कर्हिचित्। तस्य देशस्य यो राजा सराष्ट्रः स विनश्यति ॥' पराशरः—'कदाचिद् दृश्यते यत्र दिवा देवपुरोहितः। राजा च म्रियते तत्र सर्वदेशो विनश्यति ॥ अह्नः सर्वं यदा शुक्रो दृश्यते तु महाग्रहः। तदा चागन्तुभिर्ग्रामा वध्यन्ते नगराणि च ॥'—

यामले—'चतुर्ग्रहसमायोगे दुर्भिक्षादिभयं भवेत्। महारोगभयं राष्ट्रक्षयो वृष्टिक्षयोऽपि च ॥ पञ्चग्रहसमायोगे दुर्भिक्षं संकरादिकम्। जनक्षयो भूपवैरं गर्भनाशस्तु जायते ॥ ग्रहषट्कसमायोगे मन्त्रिणो मरणं भवेत्। पश्वश्वादिभयं सर्वं संकरादिजनक्षयः ॥ पट्टराज्ञीविनाशो वा महाभयमथापि वा। सप्तग्रहसमायोगे क्षितीशमरणं ध्रुवम् ॥ जगत्प्रलयमेवापि तदा निर्मानुषं जगत्। अत ऊर्ध्वं महोत्पातनानादुःखमहाकुलम् ॥ सूर्यः स्याद् व्यतिरिक्तश्चेत्तदा योगो महाद्भुतः। विना चन्द्रेण योगोऽपि जगत्प्रलयकारणम् ॥ तद्देशजातजन्तूनां महारोगो महाभयम्। अर्थनाशः स्थाननाशो मानहानिर्नृपीडनम्। वातपित्तादिसम्भूतमहापीडा महद्भयम्। समायोगग्रहा नृणां दोषान् कुर्वन्ति सर्वदा ॥ षण्मासाभ्यन्तरे वापि आयुर्हानिः श्रियस्तथा।' इति। विशेष शान्तिसारादि ग्रन्थों में देखें।

चार्यमृषि विश्वामित्रं तर्पयामि गायत्रीच्छन्दस्त० सवितारं देवतां० इति तर्पणं कृत्वा रुद्रं नमस्कृत्य कद्रुद्रायेत्यादीनि रुद्रसूक्तानि जपेत्।

प्रणव-व्याहृति-सहित गायत्री का दस हजार जप करके 'आपोहिष्ठा' इस सूक्त को 'पतोन्विन्द्र' इन चार ऋचाओं, 'ऋतं च' इस सूक्त, 'स्वस्ति न' इत्यादि ऋचा, 'स्वस्तिमतीः' 'स्वादिष्ठया' इत्यादि ऋचा और 'पावमानी' ऋचाओं को प्रत्येक को दस-दस वार स्वयं या अन्य के द्वारा जप करके 'तत्सवितुः' इस मन्त्र के आचार्य ऋषि और विश्वामित्र का तर्पण करता हूँ। गायत्री छन्द और सविता देवता का तर्पण करके रुद्र को नमस्कार कर 'कद्रुद्राय' इत्यादि रुद्रसूक्तों को जपे।

ततो दिनान्तरे देशकालौ संकीर्त्य 'मम सकलपापक्षयद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं चतुर्विंशतिलक्षात्मकगायत्रीपुरश्चरणं स्वयं विप्रद्वारा वा करिष्ये, तदङ्गत्वेन स्वस्तिवाचनं मातृकापूजनं नान्दीश्राद्धं–विप्रद्वारा जपे–'जपकर्तृवरणं च करिष्ये' इति [1]संकल्पः। संकल्पस्यापि ऋत्विक्कर्तृकत्वे 'अमुकशर्मणो यजमानस्य सकलपापक्षयेत्यादि यजमानानुज्ञया करिष्ये'। एवं पूर्वत्रापि संकल्प ऊह्यः। नान्दीश्राद्धान्ते सविता प्रीयतामिति [2]'गायत्रीपुरश्चरणे जपकर्तारं त्वां वृणे' इति विप्रमेकैकं वृणुयात्। वस्त्रादिभिः पूजयेत्।

---

१. संकल्प प्रत्येक कर्म के आदि में आवश्यक है, जैसा कि वचन है—'संकल्पेन विना विप्र यत्किञ्चित् कुरुते नरः। फलं चाप्यल्पकं तस्य धर्मस्यार्धक्षयो भवेत्॥' संकल्प में मासादि और निमित्त का निर्देश आवश्यक है, जैसा कि ब्रह्माण्ड में कहा है—'मासपक्षतिथीनां च निमित्तानां च सर्वशः। उल्लेखनमकुर्वाणो न तस्य फलभाग् भवेत्॥' इति।

२. गायत्री की उत्पत्ति मनु ने बतलायी है—'त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादं पादमदूदुहत्। तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः॥' छन्दोगपरिशिष्टे—'सर्वेषामेव वेदानां गुह्योपनिषदां तथा। सारभूता तु गायत्री निर्गता ब्रह्मणो मुखात्॥' मनुः–'गायत्रीमात्रसारोऽपि वरं विप्रः सुयन्त्रितः। नायन्त्रितस्त्रिवेदोऽपि सर्वाशी सर्वविक्रयी॥' नागदेव ने गायत्री शब्द का अर्थ बतलाया है—'गायन्तं त्रायते यस्माद् गायत्री तेन सोच्यते।'—

गायत्री जप का फल मनु ने बतलाया है—'सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत्त्रिकं द्विजः। महतोऽप्येनसो मासात्त्वचेवाहिर्विमुच्यते॥' अर्थात् नदी आदि पवित्र स्थान में एक मास तक प्रतिदिन एक हजार गायत्री जपने वाला द्विज बड़े पाप से छूट जाने पर उसी प्रकार हो जाता है जैसे केंचुल से छूट जाने पर सर्प। बृहद्यमः—'न तथा वेदजपतः पापं निर्दहति द्विजः। यथा सावित्रीं जपतः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥' कूर्मपुराणे—'गायत्रीं चैव वेदांश्च तुलया समतोलयत्। वेदा एकत्र साङ्गास्तु गायत्री चैकतः स्मृता॥'—

योगियाज्ञवल्क्योक्त गायत्री-अक्षरों के देवता—'अक्षराणां तु दैवत्यं संप्रवक्ष्याम्यतः परम्। आग्नेयं प्रथमं 'तत्' ज्ञेयं वायव्यं च द्वितीयकम् 'स'॥ तृतीयं 'वि' सूर्यदैवत्यं चतुर्थं 'तु' वैद्युतं तथा। पंचमं 'व' यमदैवत्यं वारुणं 'रे' षष्ठमुच्यते॥ बार्हस्पत्यं सप्तमं 'ण' तु पार्जन्यमष्टमं 'यम्' विदुः। ऐन्द्रं तु नवमं 'भ' ज्ञेयं गान्धर्वं दशमं 'र्गः' तथा॥ पौष्णमेकादशं 'दे' प्रोक्तं मैत्रावरुणं द्वादशम् 'व'। त्वाष्ट्रं त्रयोदशं 'स्य' ज्ञेयं वासवं तु चतुर्दशम् 'धी'॥ मारुतं पञ्चदशकं 'म' सौम्यं षोडशकं 'हि' स्मृतम्। सप्तदशं 'धि' त्वाङ्गिरसं वैश्वदेवमतः परम् 'यः'॥ आश्विनं चैकोनविंशं 'यः' प्राजापत्यं तु विंशकम् 'नः'। सर्वदेवमयं प्रोक्तमेकविंशं 'प्र' मतः परम्॥ रौद्रं द्वाविंशकं 'चो' प्रोक्तं त्रयोविंश 'द' तु

तदनन्तर दूसरे दिन देश काल को कहकर 'मेरे समस्त पापक्षय द्वारा श्रीपरमेश्वर के प्रीत्यर्थ चौबीस लाख रूप गायत्री पुरश्चरण स्वयं अथवा ब्राह्मण द्वारा करूंगा, उसके अंगभूत स्वस्तिवाचन, मातृकापूजन और नान्दीश्राद्ध करूंगा, ब्राह्मणद्वारा जप कराना हो तो 'जप कर्ताओं का वरण भी करूंगा' ऐसा संकल्प करे। यदि संकल्प ऋत्विक् ही करें तो 'अमुक यजमान का सम्पूर्ण पापक्षय द्वारा श्रीपरमेश्वर प्रीत्यर्थ चतुर्विंशति लक्षात्मक गायत्री का पुरश्चरण यजमान की आज्ञा से करूंगा' ऐसा कहे। इसी प्रकार पहिले में भी संकल्प की कल्पना करे। नान्दीश्राद्ध के अन्त में 'सविता प्रीयताम्' ऐसा कहे। 'गायत्री पुरश्चरण में जप करने वाले आपका मैं वरण करता हूँ' इस तरह कहकर एक एक ब्राह्मण का वरण करे। वस्त्र आदि से उनकी पूजा करे।

अथ नित्यकर्म—एकैको विप्रः स्वयं वा [1]कुशाद्यासनोपविष्टः [2]पवित्रपाणिराचम्य प्राणानायम्य देवताः प्रार्थयेत्—

सूर्यः सोमो यमः कालः सन्ध्ये भूतान्यहः क्षपा।
पवमानो दिक्पतिर्भूराकाशं खेचरामराः।
ब्रह्मशासनमास्थाय कल्पध्वमिह सन्निधिम्॥ इति।

जपकर्ता ब्राह्मणों का नित्यकर्म इस प्रकार है—एक एक ब्राह्मण अथवा स्वयं कुश आदि के आसन पर बैठ कर पवित्र हाथ से आचमन और प्राणायाम करके देवताओं की प्रार्थना करे-सूर्य, चन्द्रमा, यम, काल, दोनों सन्ध्या, भूत, दिन, रात्रि, पवमान, दिशाओं के पति, भूमि, आकाश, खेचर और देवता, ब्रह्मा की आज्ञा को मानकर इस गायत्री पुरश्चरण में सान्निध्य करें।

ततो देशकालौ संकीर्त्य प्रत्याह्निकजपं संकल्प्य गुरवे नमः गणपतये० दुर्गायै० मातृभ्यो० इति नत्वा त्रिः प्राणानायम्य तत्सवितुरिति गायत्र्या विश्वामित्र ऋषिः सवितादेवता गायत्रीछन्दः जपे वि०। विश्वामित्रऋषये नमः शिरसि,

---

ब्राह्मकम्। वैष्णवं तु चतुर्विंश 'यात्'मेता ह्यक्षरदेवताः॥ जपकाले तु संस्मृत्य तासां सायुज्यतां व्रजेत्। गायत्री वेदजननी गायत्री पापनाशिनी॥ गायत्र्यास्तु परं नास्ति दिवि चेह च पावनम्। हस्तत्राणप्रदा देवी पततां नरकार्णवे॥ तस्मात्तामभ्यसेन्नित्यं ब्राह्मणोऽनुदये शुचिः। गायत्रीनिरतं हव्यकव्येषु विनियोजयेत्॥ तस्मिन्न लिप्यते पापमब्बिन्दुरिव पुष्करे।' जप के स्थान—'गृहे जपः समं विद्याद् गोष्ठे शतगुणं भवेत्। नद्यां शतसहस्रं तु अनन्तं शिवसन्निधौ। समुद्रतीरे देवह्रदे गिरौ देवालयेषु च। पुण्याश्रमेषु सर्वेषु जपः कोटिगुणो भवेत्॥ शिवस्य सन्निधाने च सूर्यस्याग्रे गुरोरपि। दीपस्य गोर्जलस्यापि जपकर्म प्रशस्यते॥' विशेष सन्ध्या प्रकरण की सुत्राविवृति में देखें।

१. बौधायनः—'दर्भेष्वासीनो दर्भान् धारयमाणः प्राङ्मुखः सावित्रीमावर्तयेत्।' शङ्खः—'कुशमयासनासीनः कुशोत्तरीयवान् कुशपवित्रपाणिः प्राङ्मुखः सूर्याभिमुखो वाक्षमालामादाय शिरःशिखास्थानानि मार्जयेत्॥' 'कुशाद्यासनोपविष्टः' में आदि पद से कम्बलादि का आसन ग्राह्य है। कम्बलादि आसन का फल—'काम्यार्थं कम्बलं चैव श्रेष्ठं तद्रक्तकम्बलम्। कृष्णाजिने ज्ञानसिद्धिर्मोक्षश्रीर्व्याघ्रचर्मणि॥ कुशासने मन्त्रसिद्धिश्चात्र कार्या विचारणा। धरण्यां दुःखसम्भूतिर्दौर्भाग्यं दारुजासने॥ वंशासने तु दारिद्र्यं पाषाणे व्याधिपीडनम्। तृणासने यशोहानिः पल्लवे चित्तविभ्रमः॥ जपध्यानतपोहानिर्वस्त्रासनमितीरितम्।' इति।

२. प्रयोगपारिजाते—'स्नाने होमे जपे दाने स्वाध्याये पितृकर्मणि। करौ सदर्भौ कुर्वीत तथा सन्ध्याभिवादने॥' लघुहारीतः—'जपे होमे तथा दाने स्वाध्याये पितृतर्पणे। अशून्यं तु करं कुर्यात् सुवर्णरजतैः कुशैः॥' इति।

गायत्रीछन्दसे नमो मुखे, सवितृदेवतायै नमो हृदि, इति न्यस्य तत्सवितुरङ्गुष्ठाभ्यां०, वरेण्यं तर्जनीभ्यां०, भर्गो देवस्य मध्यमाभ्यां०, धीमह्यनामिकाभ्यां०, धियो यो नः कनिष्ठिकाभ्यां०, प्रचोदयात् करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः, इति करन्यासं कृत्वैवं हृदादिषडङ्गन्यासं कुर्यात्।

तदनन्तर देश काल को कहकर प्रतिदिन के जप का संकल्प कर 'गुरवे नमः, गणपतये नमः, दुर्गायै नमः, मातृभ्यो नमः' इस तरह नमस्कार करके तीन वार प्राणायाम कर तत्सवितुः इस गायत्री मन्त्र के विश्वामित्र ऋषि, सविता देवता, गायत्री छन्द, जप में विनियोग करे। 'विश्वामित्र ऋषये नमः' इससे सिर स्पर्श, 'गायत्रीछन्दसे नमः' इससे मुखस्पर्श, 'सवितृदेवतायै नमः' इससे हृदय का स्पर्श करके 'तत्सवितुः' इससे दोनों अंगुष्ठों का, 'वरेण्यं' से दोनों तर्जनी का, 'भर्गो देवस्य' इससे दोनों मध्यमांगुलियों का, 'धीमहि' से दोनों अनामिका का, 'धियो यो नः' इससे दोनों कनिष्ठिका का और 'प्रचोदयात्' इससे करतलकरपृष्ठों का स्पर्श करे। इस प्रकार करन्यास करके इसी तरह हृदय आदि छ अंगों का न्यास करे।

पूर्वोक्तरीत्या [1]संस्कृतां जपमालां पात्रे निधाय संप्रोक्ष्य—

ॐ महामाये महामाले सर्वशक्तिस्वरूपिणि।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मां सिद्धिदा भव॥

इति प्रार्थ्य ओं अविघ्नं कुरु माले त्वमिति तामादाय मन्त्रदेवतां सवितारं ध्यायन् मन्त्रार्थं स्मरन्मध्यं दिनावधि जपेत्। अतित्वरायां सार्धत्रयप्रहरावधि। [2]जपान्ते पुनः प्रणवमुक्त्वा—

त्वं माले सर्वदेवानां प्रीतिदा शुभदा भव।
शिवं कुरुष्व मे भद्रे यशो वीर्यं च सर्वदा॥

इति मालां शिरसि निधाय त्रिः प्राणानायम्य न्यासत्रयं कृत्वा जपमीश्वरार्पणं कुर्यात्।

पहिले कही हुई रीति से संस्कार की गई जपमाला को पात्र में रखकर संप्रोक्षण करके 'ॐ महामाये महामाले' इत्यादि मंत्र से प्रार्थना कर 'हे माले तू मुझे विघ्नरहित करो' ऐसा कह माला

---

१. ग्रन्थान्तर में माला का संस्कार—'संस्थाप्य मालामश्वत्थपत्रे पत्रे च संयतः। कृत्वा गोरोचनाक्तां च गायत्र्या स्नापयेत् सुधीः॥ गायत्रीशतकं तस्यां जपेच्च विधिपूर्वकम्। अथवा पञ्चगव्येन स्नात्वा मालां सुसंस्कृताम्॥ अथ गङ्गोदकेनैव स्नात्वा वाऽतिसुसंस्कृताम्।' कुर्यादिति शेषः। नागदेवने विभिन्न मालाओं की महत्ता बतलायी है—'अरिष्टपत्रं बीजं च शङ्खपद्मौ मणिस्तथा। कुशग्रन्थिश्च रुद्राक्ष उत्तमं चोत्तरोत्तरम्॥ प्रवालमुक्तास्फटिकैर्जपः कोटिफलप्रदः। तुलसीमणिभिर्येन गणितं चाक्षयं फलम्॥' अपि च—'यावन्तो वैदिका मन्त्राः पौराणाश्चागमोद्भवाः। सर्वं रुद्राक्षमालायां कथितं मोक्षदायकम्॥' इति।

१. आदि अन्त में प्रणव के उच्चारण नहीं करने पर जपादि नष्ट हो जाता है, जैसा कि मनु ने बतलाया है—'ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा। स्रवत्यनोङ्कृतं पूर्वं पुरस्ताच्च विशीर्यति॥' इति।

लेकर मन्त्र देवता सविता का ध्यान करते हुये हृदय में माला धारण और मन्त्रार्थ का स्मरण करते हुये दोपहर तक जपे। अधिक शीघ्रता हो तो साढ़े तीन पहर तक जपे। जप के अन्त में पुनः प्रणव कह कर हे माले! आप सब देवताओं को प्रीति और शुभ देने वाली हो। हे भद्रे! मेरा कल्याण करो और सर्वदा यशस्वी वीर्यवान् बनाओ, ऐसा कह कर माला को सिर पर रख के तीन बार प्राणायाम कर तीन न्यासों को करके जप को ईश्वरार्पण करे।

प्रत्यहं समानसंख्य एव जपो न तु न्यूनाधिकः। एवं पुरश्चरणजपसमाप्तौ होमः। 'पुरश्चरणसाङ्गतासिद्ध्यर्थं होमविधिं करिष्ये' इति संकल्प्याग्निं प्रतिष्ठाप्य पीठे सूर्यादिनवग्रहपूजनादि [1]कलशस्थापनान्ते अन्वादध्यात्। चक्षुषी आज्येनेत्यन्ते ग्रहपीठदेवतान्वाधानमर्कादिसमिच्चर्वाज्याहुतिभिः कृत्वा प्रधानदेवतां सवितारं चतुर्विंशतिसहस्रतिलाहुतिभिस्त्रिसहस्रसंख्याकाभिः [2]पायसाहुतिभिर्घृतमिश्रतिलाहुतिभिर्दूर्वाहुतिभिः क्षीरद्रुमसमिदाहुतिभिश्च शेषेण स्विष्टकृतमित्यादि। चरुपायसतिलैः सहाज्यस्य पर्यग्निकरणादि। आज्यभागान्ते इदं हवनीयद्रव्यमन्वाधानोक्तदेवताभ्यः अस्तु न ममेति यजमानस्त्यागं कुर्यात्।

प्रतिदिन समान संख्यक ही जप करे, कम अधिक नहीं करे। इस प्रकार पुरश्चरण जप के समाप्त होने पर होम करे। 'पुरश्चरण सांगता की सिद्धि के लिये होम विधि करूँगा' ऐसा संकल्प कर अग्निस्थापना करके पीढ़े पर सूर्यादि नवग्रह का पूजनादि कलशस्थापनपर्यन्त कर्म करके अन्वाधान करे। 'चक्षुषी आज्येन' इस आहुति के अन्त में ग्रहपीठ देवता का अन्वाधान—अर्क आदि की समिधा, चरु और घृताहुतियों से करके प्रधान देवता सविता को चौबीस हजार तिल की आहुतियों से, तीन हजार खीर की आहुतियों से, घी मिले तिल की आहुतियों से, दूब की आहुतियों से, दूध वाले वृक्ष की समिधा की आहुतियों से और बाकी बचे से स्विष्टकृत् होम करे। चरु, पायस और तिलों के साथ घी का पर्यग्निकरण आदि करे। यजमान आज्यभाग के अन्त में 'यह हवनीय द्रव्य अन्वाधान में कहे गये देवताओं के लिये है मेरा नहीं' ऐसा कह कर त्याग करे।

होमे सप्रणवा व्याहृतिरहिता स्वाहान्ता गायत्री। दूर्वात्रयस्यैकाहुतिः दूर्वासमिधां दधिमध्वाज्याञ्जनम्। स्विष्टकृदादिबलिदानान्ते समुद्रज्येष्ठा इत्यादिभिर्यजमानाभिषेकः। प्रतिलक्षं सुवर्णनिष्कत्रयं तदर्धं वा शक्त्या वा [3]दक्षिणा।

---

१. पञ्चरात्र में कलश का विचार—'सौवर्णं कलशं रम्यं रौप्यं ताम्रमथापि वा। निर्दोषं मृन्मयं वापि चन्दनेन विलेपितम्॥ गन्धपुष्पाक्षताकीर्णं कुशदूर्वाङ्कुरार्चितम्। सितसूत्रावृतं कण्ठे नववस्त्रयुगावृतम्॥ कन्याकर्तितसूत्रेण त्रिगुणेन च कर्मणा। गुणत्रयात्मकेनैव वेष्टयेदभितः स्वयम्॥' इति।

२. डामरतन्त्रे—'पायसं सर्पिषा युक्तं तिलैः शुक्लैर्विमिश्रितम्। होमयेद् विधिवद् भक्त्या दशांशेन नृपोत्तम॥' ईश्वरसंहितायाम्—'सर्वथा होमकर्मार्थं तिलमाज्यं न लोपयेत्। तिलाज्ययोरभावे तु हवनं स्यान्निरर्थकम्॥' इति।

३. स्वयम्भूपुराणे—'धर्मार्थकाममोक्षं च प्राप्नुवन्ति च मानवाः। दक्षिणायुक्तपूजायाः फलं सर्वं समुद्भवेत्। दक्षिणाऽयुक्तपूजायाः फलं स्वल्पं प्रकथ्यते। दानकर्मविवाहेषु देवार्चने विशेषतः। यज्ञे तीर्थेऽभिषेके च कर्तव्या दक्षिणा सदा। आयुरारोग्यकल्याणं शुभं च सुखसम्पदम्। सर्वत्र सर्वदा भद्रं ददाति दक्षिणा शुभा॥' ब्रह्मवैवर्ते—'दक्षिणां विप्रमुद्दिश्य तत्कालं चेन्न दीयते। एकरात्रे व्यतीते तु तद्दानं द्विगुणं भवेत्॥' अपि च—'न ददाति यदा दाता ग्रहीता न च याचते। उभौ तौ नरकं यातो यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥' इति।

होमान्ते जले देवं सवितारं संपूज्य होमसंख्यादशांशेन २४०० गायत्र्यन्ते सवितारं तर्पयामीत्युक्त्वा तर्पणं कार्यम्। तर्पणदशांशेन २४० गायत्र्यन्ते आत्मानमभिषिञ्चामि नम इति स्वमूर्ध्न्यभिषेकः।

होम में प्रणव के साथ व्याहृति के विना अन्त में स्वाहा युक्त गायत्री का प्रयोग करे। तीन दूब की एक आहुति होती है। दूब की समिधा दही-मधु घृत से भिगी हो। स्विष्टकृत् आदि बलिदान के अन्त में 'समुद्रज्येष्ठा' इत्यादि मन्त्रों से यजमान का अभिषेक करे। प्रत्येक लक्ष की दक्षिणा सोने की तीन अशर्फी या इसके आधी अथवा यथाशक्ति दे। होम के अन्त में जल में सविता देवता की पूजा कर 'होम संख्या के दशांश से चौबीस हजार गायत्री के अन्त में सविता देवता का तर्पण करता हूँ' ऐसा कह कर तर्पण करे। 'तर्पण के दशांश से दो सौ चालिस गायत्री के अन्त में अपने को अभिषिक्त करता हूँ' यह कह कर अपने मस्तक पर अभिषेक करे।

होमतर्पणाभिषेकाणां मध्ये यदेव न सम्भवति तत्स्थाने तद्द्विगुणो जपः कार्यः। अभिषेकसंख्यादशांशेनाधिकं वा विप्रभोजनम्। पुरश्चरणं पूर्णमस्त्विति विप्रान्वाचयित्वेश्वरार्पणं कार्यम्। प्रत्यहं यज्जाग्रत इति शिवसंकल्पमन्त्रस्य त्रिः पाठः। कर्ता ब्राह्मणैः सह हविष्याशी सत्यवागधःशायी परगृहीतभूप्रदेशानतिचारी च भवेत्। इत्यनन्तदेवीयानुसारेण चतुर्विंशतिलक्षपुरश्चरणप्रयोगः।

होम तर्पण और अभिषेक में से जिसे नहीं किया हो उसके स्थान में उसका दूना जप कर दे। अभिषेक की संख्या के दशांश से या अधिक ब्राह्मणभोजन करावे। 'पुरश्चरण पूर्ण हो' ऐसा ब्राह्मणों से कहवा कर पुरश्चरण को इश्वरार्पण करे। प्रतिदिन 'यज्जाग्रतो' इस शिवसंकल्प मन्त्र का तीन बार पाठ करे। कर्ता ब्राह्मणों के साथ हविष्य भोजन करे, सत्य बोले,भूमि में शयन करे,दूसरे के भूप्रदेश में गमन न करे। यह अनन्तदेव के अनुसार गायत्री के चौबीस लक्ष पुरश्चरण का प्रयोग है।

ऋग्विधाने तु—'मध्याह्ने मितभुङ्मौनी त्रिः स्नानार्चनतत्परः। लक्षत्रयं जपेद्धीमान्' इति त्रिलक्षं पुरश्चरणमुक्तम्। जपशतांशस्त्रिसहस्रं होमः। 'कलौ चतुर्गुणं प्रोक्तम्' इति पक्षे द्वादशलक्षजपः द्वादशसहस्रहोम इत्याद्यूह्यम्। विष्णुशयनमासेषु पुरश्चरणं न कार्यम्। तीर्थादौ शीघ्रं सिद्धिः। बिल्ववृक्षाश्रयेण जपे एकाहात्सिद्धिरिति सर्वमन्त्रप्रक्रिया। इति गायत्रीपुरश्चरणम्।

ऋग्विधान में तो मध्याह्न में मितभोजी, मौनव्रती, त्रिकाल स्नान और देवार्चनपूर्वक तीन लाखगायत्री जपे, इस तरह तीन लाख का पुरश्चरण कहा है। जप का शतांश तीन हजार होम करे। कलियुग में चौगुना करना चाहिये, इस पक्ष में बारह लाख जप, बारह हजार का होम इत्यादि कल्पना करे। विष्णुशयन के महीनों में पुरश्चरण नहीं करना चाहिये। तीर्थ आदि में पुरश्चरण की सिद्धि शीघ्र होती है। बिल्व वृक्ष के नीचे जप करने से एक ही दिन में सिद्धि मिलती है ऐसी सब मन्त्रों प्रक्रिया है। गायत्रीपुरश्चरण समाप्त।

अथ अश्वत्थोपनयनम्

अथ पूर्तकमलाकरे अश्वत्थोपनयनम्। तच्च वर्णैः क्रमेण वृक्षस्थापनादष्टमे एकादशे द्वादशे वर्षे उपनयनोक्तमुहूर्ते पूर्वाह्णे कार्यम्। शूद्रस्थापिताश्वत्थे पौराणिकमन्त्रैरारामप्रतिष्ठामात्रं कार्यं नोपनयनम्।

पूर्तकमलाकर में अश्वत्थ का उपनयन कहा है उसे ब्राह्मणादि तीनों वर्ण क्रम से वृक्ष के स्थापन से अष्टम, एकादश और द्वादश वर्ष में पूर्वाह्न में और उपनयनोक्त मुहूर्त्त में करे। शूद्र के लगाये अश्वत्थ में पौराणिक मन्त्रों से बगीचे का प्रतिष्ठामात्र करे उपनयन नहीं करे।

अथ प्रयोगः—कर्ता देशकालौ संकीर्त्य 'सर्वपापक्षयकुलकोटिसमुद्धरणपूर्वकविष्णुसायुज्यप्राप्तिकामोऽश्वत्थोपनयनं करिष्ये' इति संकल्प्य नान्दीश्राद्धान्ते आचार्यं वृणुयात्। आचार्यः पञ्चामृतैः शुद्धोदकैः सर्वौषधिजलैश्चाश्वत्थमभिषिञ्च्य पिष्टातकेनालंकृत्य तत्पूर्वे स्थण्डिलेऽग्निं प्रतिष्ठाप्यान्वाधाने अग्निं वायुं सूर्यं त्रिरग्निं पवमानं प्रजापतिं द्विरोषधीर्वनस्पतिं पिप्पलं प्रजापतिं च पालाशसमिच्चर्वाज्यैः प्रत्येकमेकैकयाहुत्या शेषेणेत्यादि। अष्टचत्वारिंशन्मुष्टीनां तूष्णीं निर्वापप्रोक्षणे।

अश्वत्थोपनयनकर्ता देशकाल को कह कर 'सम्पूर्ण पापक्षय, करोड़ों कुल के उद्धार और विष्णु-सायुज्य-प्राप्ति की कामना के लिये अश्वत्थ का उपनयन करूँगा' ऐसा संकल्प कर नान्दीश्राद्ध के बाद आचार्य का वरण करे। आचार्य पंचामृत, शुद्ध जल और सर्वौषधि के जल से अश्वत्थ का अभिषेक और पिष्टातक (ऐपन) से अलंकृत कर अश्वत्थ से पूर्व की ओर स्थण्डिल में अग्निस्थापन करके अन्वाधान में अग्नि, वायु, सूर्य, तीनों अग्नि, पवमान, प्रजापति, दो औषधि, वनस्पति, पीपल और प्रजापति को पलाश की समिधा, चरु और घृत से प्रत्येक को एक-एक आहुति तथा शेष से स्विष्टकृत् आदि करे। मौन होकर अड़तालिस मुट्ठियों का निर्वाप और प्रोक्षण करे।

श्रपणाद्याज्यभागान्ते युवं वस्त्राणीत्यश्वत्थं वस्त्रयुग्मेनावेष्ट्य यज्ञोपवीतमिति यज्ञोपवीतं दत्त्वा प्रावेपामेति मेखलां त्रिरावेष्ट्य अजिनं दण्डं च तूष्णीं दत्त्वा अश्वत्थे व इत्यृचा गन्धपुष्पैः संपूज्य देवस्य त्वेति मन्त्रान्ते हस्तं गृह्णाम्यश्वत्थेति स्पृष्ट्वा सप्रणवव्याहृतिकां गायत्रीं त्रिर्जपित्वा अश्वत्थे वो निषदनसूक्तेन 'व्याहृतिभिश्चाश्वत्थं स्थापयामीति स्वर्णशलाकया स्पृष्ट्वाऽऽज्यपलाशसमिच्चरुभिः प्रत्येकं द्वादशमन्त्रैर्द्वादशाहुतीर्जुहुयात्। मन्त्रास्तु—

श्रपण आदि आज्यभाग के अन्त में 'युवं वस्त्राणि' इस मन्त्र से अश्वत्थ वृक्ष को जोड़े वस्त्र से लपेट कर 'यज्ञोपवीतं' इस मन्त्र से यज्ञोपवीत देकर 'प्रावेपाम' इस मन्त्र से मेखला को तीन बार लपेट कर मृगचर्म और दण्ड को विना मन्त्र के देकर 'अश्वत्थे व' इस ऋचा से गंध पुष्प से पूजकर 'देवस्य त्वा' इस मंत्र के अन्त में 'हस्तं गृह्णाम्यश्वत्थ' इस मंत्र से स्पर्श करके प्रणवसहित गायत्री को तीन बार जप कर 'अश्वत्थे वो निषदनं' इस सूक्त और व्याहृतियों से 'अश्वत्थ की स्थापना करता हूँ' इस प्रकार सोने की शलाका से अश्वत्थ का स्पर्श कर घी पलास की समिधा और चरु की प्रत्येक को बारह मंत्रों से बारह आहुति दे। मंत्र तो—

---

१. भूः भुवः स्वः, ये तीन व्याहृतियां हैं। इन तीनों की व्यापकता है—'भवन्ति चास्मिन् भूतानि स्थावराणि चराणि च। तस्माद् भूरिति विज्ञेया प्रथमा व्याहृतिः स्मृता। भवन्ति भूयो भूतानि उपभोगक्षये पुनः। कल्पान्ते उपभोगाय भुवस्तस्मात् प्रकीर्तिता। शीतोष्णवृष्टितेजांसि जायन्ते तानि वै सदा। प्रलयः सुकृतीनां च स्वर्लोकः स उदाहृतः ॥' इति।

ॐ भूः स्वाहा अग्नय इदं० । ॐ भुवः स्वा० वायव० । ॐ स्वः स्वा० सूर्याय० । ॐ अग्न आयूंषि० ॐ अग्निर्ऋषिः० ॐ अग्ने पवस्वेति त्रिभिरग्नये पवमानायेदं० । ॐ प्रजापते नत्व० प्रजापतय० । ॐ ओषधयः संवदन्ते० । ॐ अश्वत्थे वो० ओषधीभ्य इदं० । ॐ वनस्पते शत० वनस्पत इ० । ॐ द्वासुपर्णा० पिप्पलायेदं० । समस्तव्याहृतिभिः ओं भूर्भुवःस्व० प्रजापतय इदं० । स्विष्टकृदादिहोमशेषं समाप्याश्वत्थे व इति गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यफलताम्बूलाद्यैः संपूज्याश्वत्थं स्पृष्ट्वाचार्याय गामन्येभ्यो दक्षिणां दत्त्वाश्वत्थवस्त्रादिकमाचार्याय दत्त्वाष्टौ विप्रान् भोजयेदिति ।

'भूः स्वाहा अग्नये न मम, भुवः स्वाहा वायवे०' इत्यादि मूल में हैं । स्विष्टकृत् आदि होम को समाप्त कर 'अश्वत्थे व' इस मंत्र से गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, फल और ताम्बूल आदि से पूजा कर अश्वत्थ को स्पर्श करके आचार्य को गाय और अन्य को दक्षिणा देकर अश्वत्थ पर अर्पित वस्त्रादि आचार्य को देकर आठ ब्राह्मणों को भोजन करावे ।

अथ अपुत्रस्य वटादितरुपुत्रविधिः

'अपुत्रेण पुंसा स्त्रिया वा वटप्लक्षाम्रादेः पुत्रत्वेन प्रतिग्रहः कार्यः । देशकालौ संकीर्त्य 'महापापक्षयकुलत्रयसमुद्धरणप्रजापतिपुरगमननिरयस्थपितृद्धारमधुधारातृप्तिसिद्ध्यर्थं सपुत्रत्वसिद्ध्यर्थममुकवृक्षं प्रतिग्रहीष्ये' इति संकल्प्योपवासं कृत्वा रात्रौ अष्टविप्रानाहूय चन्द्रं संपूज्य जागरं भूशयनं वा कृत्वा प्रातर्वृक्षं संपूज्य तच्छायायां विप्रान्संभोज्य पुण्याहं वाचयित्वा प्रार्थयेत् ।

पुत्ररहित स्त्री या पुरुष को बड़, पाकड़ और आम आदि को पुत्ररूप से प्रतिग्रह करना चाहिये । देश काल को कह कर 'महापापों के नाश, तीनों कुलों के उद्धार, प्रजापतिपुरगमन, नरकस्थित पितरों के उद्धार, मधुधारा से तृप्ति की सिद्धि और पुत्रत्वसिद्धि के लिये अमुक वृक्ष का प्रतिग्रह करूँगा' ऐसा संकल्प कर उपवास करके रात में आठ ब्राह्मणों को बुलाकर चन्द्रमा की पूजा करके जागरण वा भूमिशयन करके प्रातःकाल वृक्ष की पूजा कर उसकी छाया में ब्राह्मणों को भोजन और पुण्याहवाचन कराकर प्रार्थना करे ।

अपुत्रो भगवन्तोऽत्र पुत्रप्रतिकृतिं तरुम् ।
ग्रहीष्यामि ममानुज्ञां कर्तुमर्हथ सत्तमाः ॥

ताम्रपात्रे पञ्चसौवर्णफलानि बीजपञ्चरत्नयुतान्यधिवास्य लोकपालबलीन्द्-

---

१. 'अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गं नैव च नैव च' अर्थात् जिनके पुत्र नहीं हैं उनकी सद्गति और स्वर्ग नहीं होता ऐसा बहुत सा वचन आर्षग्रन्थों में देखा गया है उसके दोष-शमन का उपाय भविष्योत्तर पुराण में व्यास जी ने बतलाया हैं—'पुत्रैर्विना शुभगतिर्न भवेन्नराणां दुष्पुत्रकैरिति तथोभयलोकनाशः । एतद्विचार्य सुधिया परिपाल्य वृक्षान् पुत्राः पुराणविधिना परिकल्पनीयाः ॥ बहुभिर्मृतकैर्जातैः पुत्रधर्मार्थवर्जितैः । वरमेकं पथि तरुर्यत्र विश्रमते जनः॥ पुत्राः संवत्सरस्यान्ते श्राद्धं कुर्वन्ति वा न वा । प्रत्यहं पादपाः पुष्टिं श्रेयोऽर्थं जनयन्ति हि ॥' इन वचनों से पुत्रप्रतिग्रह के अभाव में मार्ग के निकट में वृक्षों का लगाना पुत्ररहित व्यक्ति का और अन्यान्य प्राणिमात्र का कल्याणकारक है ।

द्यात् । परेद्युस्तिलाज्यचरुभिरष्टशतं वनस्पतिमन्त्रेण हुत्वा जातकर्मादिविवाहान्तसंस्कारान्कृत्वाऽभिषिक्तः कर्ता पुष्पाञ्जलिमादाय प्रार्थयेत् ।

पुत्ररहित मैं पुत्र-प्रतिनिधि-वृक्ष को ग्रहण करूँगा, आप लोग अनुज्ञा करने के योग्य हैं। तामे के पात्र में पांच सुवर्ण के फलों को पंचरत्न के बीज से युक्त कर अधिवासन करके लोकपालों को बलि दे । दूसरे दिन तिल, घृत और चरु से वनस्पति मन्त्र से एक सौ आठ बार होम करने के बाद जातकर्म से विवाहपर्यन्त संस्कारों को करके अभिषिक्त यजमान पुष्पांजलि लेकर प्रार्थना करे ।

ये शाखिनः शिखरिणां शिरसा विभूषा ये नन्दनादिषु वनेषु कृतप्रतिष्ठाः ।
ये कामदाः सुरनरोरगकिन्नराणां ते मे नतस्य दुरितार्तिहरा भवन्तु ॥
एते द्विजा विधिवदत्र हुतो हुताशः पश्यत्यसौ च हिमदीधितिरन्तरस्थः ।
त्वं वृक्ष पुत्रपरिकल्पनया वृतोऽसि कार्यं सदैव भवता मम पुत्रकार्यम् ॥

अङ्गादङ्गादिति स्पृष्ट्वा विप्रेभ्यो दक्षिणां दत्त्वा विसृजेत् । इति वटादितरुपुत्रविधिः ।

जो वृक्ष पर्वतों के शिखर पर सुशोभित हैं, जिनकी नन्दन वनों में प्रतिष्ठा की जाती है । जो देवता, मनुष्य, सर्प और किन्नरों के इष्टदायक हैं, वे प्रणत मेरे पाप और कष्ट को हरण करने वाले हों। ये ब्राह्मण जिन्होंने विधिपूर्वक अग्नि का होम किया है, वह अग्नि और चन्द्रमा साक्षी हैं । हे वृक्ष ! तुमको मैं अपने पुत्र की कल्पना से वरण किया हूँ आप मेरे पुत्र का कार्य सदैव करें । 'अंगादंगाद्' इस मन्त्र से वृक्ष का स्पर्श कर ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर विसर्जन करे । वटादिवृक्ष की पुत्रविधि समाप्त ।

अथ सकलकर्मसाधारणपरिभाषा

सर्वेषु पाकयज्ञेषु भवेद् ब्रह्मा [1]कृताकृतः ।
पात्रासादनमिच्छात आज्यादि श्रपणादि च ॥
स्रुवादिमार्जनं चेध्मरज्जुप्रहरणं तथा ।
पूर्णपात्रं[2] भवेन्नित्यमाज्यस्योत्पवने तथा ॥

---

१. यज्ञों में ब्रह्मा का उपवेशन अग्नि के दक्षिण की ओर होता है जैसा कि खादिरगृह्य में लिखा है—'दक्षिणतोऽग्नेरुदङ्मुखस्तूष्णीमास्ते ब्रह्माऽऽहोमात् प्रागग्रेषु' इति । पात्रों का आसादनादि अग्नि के उत्तर की ओर होता है । ब्रह्मा का दक्षिण की ओर उपवेशन का कारण यह है—'उत्तरे सर्वपात्राणि उत्तरे सर्वदेवताः । उत्तरेऽपां प्रणयनं किमत्र ब्रह्म दक्षिणे ॥ यमो वैवस्वतो राजा वसते दक्षिणादिशि । तस्य संरक्षणार्थाय ब्रह्मा तिष्ठति दक्षिणे॥' 'अर्थवदासाद्य' इस सूत्र के अनुसार प्रयोजनवश जिस पात्र का जिस क्रम से उपयोग होता है उसी क्रम से आसादन पात्रासादन कहलाता है । पात्रासादन अग्नि से पश्चिम या उत्तर को ओर करना चाहिये—'पश्चादुत्तरतो वा स्यात् पात्रासादनमग्नितः । उत्तरे चेदुदक्संस्थं प्राक्संस्थं पश्चिमे भवेत् ॥' 'प्राग्बिलान्युदगग्राणि प्राक्संस्थान्यग्नितो यदि । प्रागग्रोदग्बिलान्यग्नेरुदक्संस्थानि चैव हि ॥' इति ।

२. यज्ञपार्श्वकारिकायाम्—'यावताऽन्नेन भोक्तुस्तु तृप्तिः पूर्णैव जायते । तं वरार्थमतः कुर्यात् पूर्णपात्रमिति स्थितिः ॥ यवैर्वा व्रीहिभिः पूर्णं भवेत्तत्पूर्णपात्रकम् । वरोऽभिलषितं द्रव्यं सारभूतं तदुच्यते ॥ अष्टमुष्टि भवेत् किञ्चित् किञ्चिदष्टौ च पुष्कलम् । पुष्कलानि च चत्वारि पूर्णपात्रं विधीयते ॥'

व्रीहीणामवघातश्च तण्डुलेषु कृताकृतः ।
द्रवीभूतघृतस्यापि विलापनविधिस्तथा ॥

सब पाकयज्ञों में ब्रह्मा का वरण करे या नहीं करे। आज्य आदि का पाक और पात्र आदि का आसादन यह भी इच्छा पर निर्भर है। स्रुवा आदि का संशोधन लकड़ी और रज्जु का ग्रहण भी ऐच्छिक है। पूर्णपात्र तथा घृत का उत्पवन नित्य है। चावलों के लिये व्रीहि का अवघात करे या नहीं करे। पिघले हुए घी को पिघलाने की विधि भी करे या नहीं करे।

प्रतिपदोक्ताज्यहोमे [1]परिस्तरणं विकल्पितम्। अनादिष्टाज्यहोमे तु नित्यम्। आज्यभागसहिततद्रहितकर्मणोस्तन्त्रप्रयोगे आज्यभागाननुष्ठानमेव युक्तम्, सर्वत्राज्यभागयोर्विकल्पनात् । [2]अनेकपाकयज्ञानामेककालानुष्ठाने समानतन्त्रता । तेन स्विष्टकृदाद्येकमेव ।

प्रतिपदोक्त घृत के होम में परिस्तरण वैकल्पिक है। अनादिष्ट घृत होम में परिस्तरण तो नित्य है। आज्यभाग के सहित और उससे रहित कर्म में तन्त्र से प्रयोग करने पर आज्यभाग न करना ही ठीक है, क्योंकि सर्वत्र आज्यभाग की दोनों आहुतियों में विकल्प है। अनेक पाकयज्ञों के एक काल में करने पर समान तन्त्रता है। इससे स्विष्टकृत् आदि एक ही होता है।

यत्र द्रव्यं नोक्तं तत्राज्यं ग्राह्यम्।
मन्त्रान्ते कर्म कर्तव्यं मन्त्रस्य करणत्वतः ।

पुरश्चर्यार्णवे—'द्वात्रिंशत्पलमानेन निर्मितं ताम्रपात्रकम्। तण्डुलैस्तत्समापूर्य सहिरण्यं सदक्षिणम् ॥' गोभिलगृह्ये—'कंसं वा चमसं वाऽन्नस्य पूरयित्वा कृतस्य वाऽकृतस्यापि फलानामेवैतत् पूर्णपात्रमित्याचक्षते'। ग्रन्थान्तरे—'योऽश्रद्धया प्रदत्तेन पूर्णपात्रं न कारयेत्। अधनोऽसौ कुलद्वेषी कुष्ठरोगी भवेत् कुधीः ॥ तस्माच्च श्रद्धया भक्त्या पूर्णपात्रं प्रदापयेत्। पूर्णपात्रप्रदानेन गृहे लक्ष्मीः सुनिश्चला ॥ आरोग्यं सुखकल्याणं पुत्रपौत्रप्रवर्धनम् ॥' इति।

१. प्रयोगचिन्तामणि में परिस्तरण कुश की संख्या-'वह्नितस्तु परित्यज्य द्वादशाङ्गुलतो बहिः। परिस्तरणदर्भास्तु षोडश द्वादशापि वा ॥' ईशानकोणमारभ्य पुनरीशानकोणगा। कुशैस्त्रिभिस्त्रिभिः कुर्यात् सव्येनाग्नेः परिस्तृतिः ॥' परिस्तरण में कुश के अग्रभाग का विचार-'चतुर्दिक्ष्वथवा दीर्घैः पूर्वपश्चिमयोर्दिशोः। उदगग्रैरितरयोः प्रागग्रैर्यज्ञियैस्तृणैः ॥' कात्यायनश्रौतसूत्रे-'परिस्तरणं वा सर्वेषां प्रागुदग्भिः'। हिरण्यकेशीयगृह्यसूत्र में तो चारो दिशाओं में प्रागग्रकुशों से ही परिस्तरण का निर्देश किया है-'प्रागग्रैर्दर्भैरग्निं परिस्तृणाति'। यद्यपि सत्याषाढगृह्य में १०८ कुशों का विवरण बतलाते हुये सोलह परिस्तरण कुशों का निर्देश है—'सर्वत्र दर्विहोमानामष्टोत्तरशतं दर्भाः—चत्वारि हस्तपवित्रे, द्विपञ्चाशदासने, षोडश परिस्तरणे, पात्राणां पञ्च, सप्तदश ब्रह्मासने, प्रणीताप्रणयने द्वे द्वे, आज्यपवित्रे द्वे, अभिद्योतने द्वे, दर्भाग्रे द्वे, पर्यग्निकरणे स्रुवसम्मार्जने चत्वारि' फिर भी गृह्यसूत्रों में 'दर्भैः' इस पद से कपिञ्जलाधिकरणन्याय से तीन-तीन कुशों का ही ग्रहण युक्त है। 'बर्हिषश्चतुर्थभागमादाय' में बर्हिःपद से ६४ कुश नहीं किन्तु-'इध्मोऽरत्निप्रमाणः स्याद् बर्हिः स्यान्मुष्टिसम्मितम्' इस वचन से बर्हिः का मुष्टिप्रमाण अर्थ है। कहीं 'एकाशीतिकुशा बर्हिः' इत्यादि भी मिलता है।

२. पाकयज्ञशब्द से 'यच्च किञ्चान्यत्र विहाराद् हूयते सर्वास्ताः पाकयज्ञसंस्थाः लौकिकानां पाकयज्ञशब्दः' इत्यादि आपस्तम्बगृह्यसूत्र की उक्ति से श्रौतातिरिक्त स्मार्त या लौकिक होम का ग्रहण है। अष्टका, पार्वण, श्राद्ध, श्रावणी, मार्गी, चैत्री, आश्विनी, ये पाकयज्ञसंस्था हैं।

कर्मावृत्तौ तु मन्त्रस्याप्यावृत्तिर्गृह्यकर्मणि ॥

समन्त्रकहोमे तूष्णीं निर्वापः, नाम्ना होमे नाम्नैव निर्वापादि ।

जहाँ किसी द्रव्य का नाम नहीं कहा है वहाँ घृत का ग्रहण करे । मन्त्र के अन्त में कर्म करना चाहिये, मन्त्र ही उसका साधन है । गृह्य कर्म में कर्म की आवृत्ति करने पर मन्त्र की भी आवृत्ति होती है । समन्त्रक होम करने पर उसका निर्वाप विना मन्त्र का करे । नाम से होम करने पर निर्वाप आदि नाम ही से होता है ।

यत्र मन्त्रेण नाम्ना वा होमो नोक्तस्तत्र नाम्नैव होमः । समन्त्रकहोमे सहैवानेकदैवत्यचरुपाकेऽपि न विभागो नाभिमर्शश्च । अनुक्तौ दक्षिणकरः । दिशामनुक्तौ प्राच्युदीचीशान्यः । तिष्ठन्नासीन इत्याद्यनुक्तावासीनतैव । अनादेशे स्वयं कर्ता ।

जहाँ मन्त्र या नाम से होम नहीं कहा है वहाँ नाम ही से होम करे । मन्त्रसहित होम में साथ ही अनेक देवताओं के चरु पाक में भी विभाग और अभिमर्श नहीं होता । जहाँ हाथ नहीं कहा हो वहाँ दक्षिण हस्त ले । दिशा का निर्देश नहीं होने पर पूर्व उत्तर और ईशान दिशा ले । खड़े होकर या बैठकर इत्यादि न कहा हो तो बैठकर ही करे । कर्ता के आदेश न होने पर स्वयं कर्ता होता है ।

अविज्ञातस्वरो मन्त्रः सौत्र एकश्रुतिर्भवेत् ।
होमेषु मन्त्रं स्वाहान्तं प्रणवाद्यं च कारयेत् ॥
विप्रादीनां द्विदर्भं स्यात्पवित्रं ग्रथितं न वा ।

जिस मन्त्र और सूत्र का स्वर न जाना हो उसको विना स्वर के पढ़े । होम में मन्त्र के आदि में प्रणव और अन्त में स्वाहा करना चाहिये । ब्राह्मण आदि की पवित्री दो कुश की होती है, चाहे उसमें ग्रन्थि हो या न हो ।

आहुतिप्रमाणम्—

कर्षप्रमाणमाज्यादि लाजा मुष्टिमिता मताः ।
अन्नं ग्राससमं ग्राह्यं कन्दानामष्टमोंशकः ॥
तिलसक्तुकणादीनां मृगीमुद्राप्रमाणतः ।
ताम्रपात्रेण पिहिते ताम्रपात्रादिके शुभे ॥
अग्निप्रणयनं कार्यं मृन्मये राजतादिके ।
उत्तमः श्रोत्रियागारान्मध्यमः स्वगृहादितः ॥

नाप्रोक्षितमिन्धनमग्नावादध्यात् । 'सदोपवीतिना भाव्यं सदा'बद्धशिखेन च ।'

१. यदि गंजेपन आदि के कारण शिखा के सब केश गिर गये हों तो सन्ध्यावन्दनादि कर्म में दाहिने कान पर कुश को रख लेवे, जैसा कि संस्कारभास्कर में लिखा है—'खल्वाटत्वादिदोषेण विशिखश्चेन्नरो भवेत् । कौशीं तदा धारयीत ब्रह्मग्रन्थियुतां शिखाम् ॥' क्योंकि कात्यायन ने कहा है—'विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम्' । प्रमाद से शिखा के कट जाने पर काठकगृह्य में कहा है—'अथ चेत्प्रमादान्निःशिखं वपनं स्यात्तदा कौशीं शिखां ब्रह्मग्रन्थिसमन्वितां दक्षिणकर्णोपर्याशिखाबन्धाद्धधारयेत् ।' इस प्रकार शिखा का प्रतिनिधित्व कुश को प्राप्त है ।

आहुति का प्रमाण—घृत आदि एक कर्ष और लावा एक मुट्ठी है। अन्न एक ग्रास के बराबर और कन्दों का आठवां भाग ले। तिल, सत्तू और कण आदि मृगी मुद्रा के प्रमाण से ग्रहण करे। शुद्ध तामे के पात्र से ढके तामे के पात्र में या मृन्मय या चाँदी आदि के पात्र में अग्नि का प्रणयन करे। श्रोत्रिय के घर से अग्नि का लाना उत्तम और अपने घर आदि से लाना मध्यम है। विना प्रोक्षण किये इन्धन को अग्नि में न डाले। यज्ञोपवीत सदा धारण किये रहे और शिखा सदा बंधी रहे।

सदेति कर्माङ्गता पुरुषार्थता च। तेन कर्मकाले शिखाबन्धाद्यभावे प्रायश्चित्तद्वयमन्यदैकमेव। [1]दशविधा दर्भा उक्ताः। वटप्लक्षबिल्ववैकङ्कतचन्दनदेवदारुसरलवृक्षजा अपि [2]क्वचित् समिधः।

प्रभुः प्रथमकल्पस्य योऽनुकल्पेन वर्तते।
स नाप्नोति फलं तस्य परत्रेति श्रुतिः स्मृतिः॥
बह्वल्पं वा स्वगृह्योक्तं यस्य यत्कर्म चोदितम्।
तस्य तावति शास्त्रार्थे कृते सर्वः कृतो भवेत्॥

यहाँ सदा शब्द कर्मांग और पुरुषार्थ का द्योतक है। इससे कर्म काल में शिखाबन्धन के न होने पर दो प्रायश्चित्त करने पड़ते हैं, अन्य समय में एक ही प्रायश्चित्त होता है। दस प्रकार के कुश कहे गये हैं। कहीं पर समिधा—बड़, पाकड़, वेल, वैकंकत, चंदन, देवदारु तथा अर्जुन वृक्ष की भी कही है। जो आदमी मुख्य कल्प से कर्म करने में समर्थ है, वह यदि अनुकल्प से कर्म करता है तो वह उसका फल परलोक में भी नहीं पाता, ऐसा श्रुति स्मृति का कहना है। अपने गृह्य का कहा हुआ बहुत या थोड़ा जिसके लिये जो कर्म विहित है उसको उतना ही करने में शास्त्र का प्रयोजन है। उतना ही करने से सब किया माना जाता है।

अथ कर्मविशेषेऽग्निनामानि

अग्निस्तु मरुतो नाम गर्भाधाने विधीयते।
पवमानः पुंसवने सीमन्ते मङ्गलाभिधः॥
प्रबलो जातसंस्कारे पार्थिवो नामकर्मणि।
अन्नाशने शुचिः प्रोक्तः सभ्यः स्याच्चौलकर्मणि॥

व्रतादेशे समुद्भवः, [3]गोदानादौ सूर्यः, विवाहे योजकः, आवसथ्ये द्विजनामा,

---

१. ग्रन्थकार ने दर्भाहरण के प्रसंग में दशविध दर्भ का निर्देश किया है—'कुशाः काशा यवा दूर्वा उशीराश्च सकुन्दकाः। गोधूमा व्रीहयो मौञ्जा दश दर्भाः सबल्वजाः॥' विशेष वहाँ की सुधाविवृति में देखें।

२. वायुपुराण में समिधा का विचार—'पलाशफल्गुन्यग्रोधाः प्लक्षाश्वत्थविकङ्कताः। उदुम्बरस्तथा बिल्वश्चन्दनो यज्ञियाश्च ये॥ सरलो देवदारुश्च शालश्च खदिरस्तथा। समिदर्थे प्रशस्ताः स्युरेते वृक्षा विशेषतः॥ ग्राह्याः कण्टकिनश्चैवं यज्ञिया एव केचन। पूजिताः समिदर्थेषु पितॄणां वचनं यथा॥' इति।

३. 'गोदानादौ सूर्यः' इस सामान्य उक्ति से समावर्तन में कोई सूर्यनामक अग्नि की स्थापना करते हैं किन्तु गृह्यसंग्रहादि के 'वैश्वानरो विसर्गे तु' इस वचन से समावर्तन में वैश्वानर नामक अग्नि की स्थापना करनी चाहिये। श्रीनित्यानन्दपन्तजी ने लिखा है—'व्रतमध्ये हरिर्नाम व्रतान्ते

प्रायश्चित्ते विटः, पाकयज्ञेषु पावकः, पित्र्ये कव्यवाहनः, दैवे हव्यवाहनः, शान्तिके वरदः प्रोक्तः, पौष्टिके बलवर्धनः, मृतदाहे क्रव्यादः ।

ज्ञात्वैवमग्निनामानि गृह्यकर्म समारभेत् ।
पलाशेन जुहूः कार्या खदिरेण स्रुवः स्रुचः ॥

तदभावे यथालाभयज्ञियवृक्षजाः । तदभावे [1]पलाशमध्यपर्णैर्वा पिप्पलपर्णैर्वा होमः । एवं चमसादयोऽपि खदिरादियज्ञियवृक्षजाः ।

गर्भाधान में अग्नि का नाम मरुत, पुंसवन में पवमान, सीमंत में मंगल, जातकर्म में प्रबल, नामकर्म में पार्थिव, अन्नप्राशन में शुचि, चौलकर्म में सभ्य, यज्ञोपवीत में समुद्भव, गोदान आदि में सूर्य, विवाह में योजक, आवसथ्य में द्विज,प्रायश्चित्त में विट, पाकयज्ञ में पावक, पित्र्यकर्म में कव्यवाहन, दैवकर्म में हव्यवाहन, शान्तिकर्म में वरद, पौष्टिक में बलवर्द्धन और मरे के दाह में क्रव्याद नाम है । इस प्रकार अग्नि के नामों को जान कर गृह्यकर्म का आरंभ करे । पलाश की जुहू, खैर की स्रुवा और स्रुची, इनके अभाव में किसी यज्ञीयवृक्ष से बनावे । इसके अभाव में पलाश के मध्यम पत्तों या पीपल के पत्तों से होम करे । इसी प्रकार चमस आदि यज्ञपात्र भी खैर आदि यज्ञसम्बन्धी वृक्ष का ग्राह्य है ।

काम्ये प्रतिनिधिर्नास्ति नित्ये नैमित्तिके हि सः ।
काम्येऽप्युपक्रमादूर्ध्वमन्ये प्रतिनिधिं विदुः ॥
न स्यात्प्रतिनिधिर्मन्त्रकर्मदेवाग्निकर्तृषु ।
न देशारणिकालेषु त्रिषु प्रतिनिधिर्मतः ॥

काम्य कर्म में प्रतिनिधि नहीं होता, वह नित्य और नैमित्तिक में होता है । कोई काम्य में भी प्रारंभ के अनन्तर प्रतिनिधि को मानते हैं । मन्त्र, कर्म, देवता, अग्नि और कर्ता के प्रतिनिधि नहीं होते और न देश, अरणी, काल, इन तीनों में प्रतिनिधि होते हैं ।

नापि प्रतिनिधातव्यं निषिद्धं वस्तु कुत्रचित् ।
स्वकालादुत्तरो गौणः कालः सर्वस्य कर्मणः ॥
तर्पणेष्वासने श्राद्धे भुक्तौ मूत्रपुरीषयोः ।
षट्सु निर्माल्यका दर्भा दर्व्याद्या आभिचारके ॥
मन्त्रोऽपि यश्च शूद्रार्थे ब्राह्मणः [2]प्रेतभोजने ।

राजपुत्रकः' इति लिखितपर्वतीयपद्धतिपुस्तककारिकावचनमाश्रित्य वेदारम्भे हरिनामाग्निः समावर्तने च राजपुत्रनामाग्निः निर्दिष्टः ।' अग्नि की प्रतिष्ठा के पश्चात् गोभिल ने अग्नि का ध्यान आवश्यक बताया है—'होष्यन्नग्नेर्विजानीयात् स्वरूपं श्रुतिचोदितम् । अजानता कृतं कर्म तदल्पफलमिष्यते ॥' शारदातिलक में विशेष कहा है—'वैश्वानरं स्थितं ध्यायेत् समिद्धोमेषु दैशिकः । शयानमाज्यहोमेषु विषण्णं शेषवस्तुषु ॥' इति ।

१. स्रुक्स्रुवा के अभाव या संक्षिप्त होम में वशिष्ठ ने कहा है—'पलाशपत्रैर्निश्छिद्रै रुचिरौ स्रुक्स्रुवौ मतौ । विदध्याद् वाऽश्वत्थपत्रैः संक्षिप्ते होमकर्मणि ॥' इति ।

२. प्रेतश्राद्धभोजी ब्राह्मण अग्राह्य है । मिताक्षरा में नवश्राद्ध (प्रेतश्राद्ध) भोजन का निषेधक वचन है–'नवश्राद्धेषु यच्छिष्टं गृहे पर्युषितं च यत् । दम्पत्योर्भुक्तशिष्टं च न भुञ्जीत कदाचन ॥

कहीं भी निषिद्ध वस्तु का प्रातिनिध्य नहीं होता। अपने समय के बाद का समय सब कर्मों में गौण होता है। तर्पण, आसन, श्राद्ध, भोजन, पेशाब और पाखाना इन छ में कुश निर्माल्य हो जाते हैं। मारण कर्म में दर्वी आदि, शूद्र के लिये प्रयुक्त मन्त्र और प्रेतभोजन में ब्राह्मण निर्माल्य हो जाते हैं।

अथ कर्माङ्गदेवताः

विवाहस्याग्निर्देवता। तेन विवाहाङ्गभूतस्वस्तिवाचनाद्यन्ते कर्माङ्गदेवताग्निः प्रीयतामिति वदेत्। औपासनेऽग्निसूर्यप्रजापतयः,स्थालीपाकेऽग्निः गर्भाधाने ब्रह्मा, पुंसवने प्रजापतिः, सीमन्ते धाता, जातकर्मणि मृत्युः, नामकर्मनिष्क्रमणान्नप्राशनेषु सविता, चौले केशिनः, उपनयने इन्द्रः श्रद्धा मेधाः, अन्ते सुश्रवाः।

विवाह का देवता अग्नि है। इससे विवाह के अंगभूत स्वस्तिवाचन आदि के अन्त में कर्मांग देवता अग्नि प्रसन्न हों, ऐसा कहे। औपासन में देवता-अग्नि, सूर्य और प्रजापति, स्थालीपाक में अग्नि, गर्भाधान में ब्रह्मा, पुंसवन में प्रजापति, सीमन्त में धाता, जातकर्म में मृत्यु, नामकर्म, निष्क्रमण और अन्नप्राशन में सविता, चौल में केशी, उपनयन में इन्द्र, श्रद्धा और मेधा, उपनयन के अन्त में सुश्रवा हैं।

पुनरुपनयनेऽग्निः, समावर्तनस्येन्द्रः, उपाकर्मणि व्रतेषु च सविता, वास्तुहोमे वास्तोष्पतिरन्ते प्रजापतिः, आग्रयणे आग्रयणदेवताः, सर्पबलेः सर्पाः, तडागादीनां वरुणः, ग्रहयज्ञे आदित्यादिनवग्रहाः, कूष्माण्डहोमे चान्द्रायणे अग्न्याधाने चाग्न्यादयः, अग्निष्टोमस्याग्निः, अन्येष्विष्टकर्मसु प्रजापतिरिति।

दुबारा उपनयन में अग्नि, समावर्तन का इन्द्र, उपाकर्म और व्रतों में सविता, वास्तुहोम में वास्तोष्पति, अन्त में प्रजापति, आग्रयण में आग्रयण, सर्पबलि का सर्प, तालाब आदि का वरुण, ग्रहयज्ञ में आदित्य आदि नवग्रह, कूष्माण्ड होम, चान्द्रायण और अग्न्याधान में अग्न्यादि, अग्निष्टोम का अग्नि और दूसरे इष्ट कर्मों में प्रजापति देवता हैं।

अथ कलियुगे कार्याकार्यविवेकः

गीता गङ्गा तथा विष्णुः कपिलाश्वत्थसेवनम्।
एकादशीव्रतं चैव सप्तमं न कलौ युगे॥
विष्णुं शिवं वा भजतां गुरोः पित्रोश्च सेविनाम्।
गोवैष्णवमहाशैवतुलसीसेविनामपि॥

नवश्राद्ध ये हैं—'प्रथमेऽह्नि तृतीयेऽह्नि पञ्चमे सप्तमे तथा। नवमैकादशे चैव तन्नवश्राद्धमुच्यते॥' प्रेतश्राद्धमें भोजन करने पर विष्णु ने प्रायश्चित्त बतलाया है—'प्राजापत्यं नवश्राद्धे पादोनं चाद्यमासिके। त्रैपक्षिके तदर्धं तु पञ्चगव्यं द्विमासिके॥' हारीतने कहा है—'एकादशाहे भुक्त्वाऽन्नं भुक्त्वा संचयने तथा। उपोष्य विधिवत् स्नात्वा कूष्माण्डैर्जुहुयाद् घृतम्॥' यह वचन आपद्विषयक है। आपत्ति का विषय न रहने पर हारीत ने ही कहा है—'चान्द्रायणं नवश्राद्धे प्राजापत्यं तु मिश्रके (मासिके)। एकाहस्तु पुराणेषु प्राजापत्यं विधीयते॥' कूष्माण्डैः—कूष्माण्डसंज्ञकसूक्तैः। विष्णु ने कूष्माण्डसूक्तका निर्देश किया—'यद्देवेति ऋक्सूक्तं कूष्माण्डं परिकीर्तितम्। नवावृत्त्या हुवेदाज्यं होमः कूष्माण्ड ईडितः॥' इति।

न स्यात्कलिकृतो दोषः काश्यां निवसतामपि ।
कलौ गुरूणां भजनमीशभक्त्यधिकं स्मृतम् ॥
जपादौ यत्र या संख्या कलौ सा स्याच्चतुर्गुणा[1] ।
कलौ दानं महाश्रेष्ठं शिवविष्णोश्च [2]कीर्तनम् ॥
कृते यद्दशभिर्वर्षैस्त्रेतायां हायनेन तु ।
द्वापरे तत्तु मासेन अहोरात्रेण [3]तत्कलौ ॥

कलियुग में गीता, गंगा तथा विष्णु, कपिला गाय, अश्वत्थसेवन और एकादशी व्रत, ये ही धर्म हैं सातवां धर्म नहीं है। विष्णु और शिव का भजन करने वाले, गुरु और माता-पिता की सेवा करने वाले, गौ-वैष्णव-महाशैव-तुलसी की सेवा करने वालों को भी कलिकृत दोष नहीं होता। काशी में रहने वालों को भी कलिकृत दोष नहीं होता। कलि में गुरुसेवा, ईश्वर भक्ति से अधिक कहा है। जप आदि में जो संख्या जहां कही है वह कलि में चौगुनी होती है। शिव और विष्णु का कीर्त्तन और दान कलि में महाश्रेष्ठ है। सत्ययुग में जो कार्य दस वर्षों में होता है वह त्रेता में एक वर्ष में होता है। वही काम द्वापर में एक महीने में और कलि में एक दिन रात में होता है।

प्रथमस्कन्धे—'कुशलान्याशु सिद्धयन्ति नेतराणि कृतानि यत्' इति कलौ पुण्यकर्मणां संकल्पेऽपि सिद्धिः। पापानां त्वाचरणादेवेत्युक्तम्।

स्मृत्यन्तरविरोधे तु कलौ [4]पाराशरस्मृतिः ।
ध्यायन्कृते यजन्यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन् ॥
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ॥

इति हेमाद्रौ व्यासवचनम्। अत्र कृतयुगाद्यधिकरणकध्यानादि फलार्थे कल्यधिकरणकं कीर्तनं विधीयत इति वाक्यार्थः कौस्तुभकर्तृपितामहैर्भक्तिनिर्णये विस्तरेण निरूपितः।

प्रथम स्कन्ध में लिखा है कि शुभ कर्म शीघ्र सिद्ध होते हैं और इतर कर्म करने पर भी सिद्ध नहीं होते। इस लिये कलि में पुण्य कर्म की सिद्धि संकल्प से भी होती है। पाप कर्मों के तो आचरण ही से सिद्धि होती है, ऐसा कहा है। दूसरी स्मृतियों के विरोध में पराशर की स्मृति

---

१. पुरश्चरणचन्द्रिकायां वैशम्पायनः—'यस्मिंश्च निगदेनैव मन्त्रे संख्या निगद्यते। तत्र सर्वत्र मन्त्राणां संख्यावृद्धिर्युगक्रमात् ॥ कल्पोक्तैव कृते संख्या त्रेतायां द्विगुणा भवेत्। द्वापरे त्रिगुणा प्रोक्ता कलौ संख्या चतुर्गुणा ॥' इति।

२. ब्रह्माण्डपुराण में कहा कि कलियुग में मनुष्यों का भगवान् के नामकीर्तन के अतिरिक्त दूसरा कोई सर्वोत्तम सहारा नहीं है—'कलौ पापैकबहुले धर्मानुष्ठानवर्जिते। नामानुकीर्तनं मुक्त्वा नृणां नान्यत्परायणम् ॥' इति।

३. ब्रह्माण्डपुराणेऽपि—'त्रेतायामाब्दिको धर्मो द्वापरे मासिकः स्मृतः। यथाशक्ति चरन् प्राज्ञस्तदह्ना प्राप्नुयात् कलौ ॥' मनुबृहस्पती—'कृते यदब्दाद् धर्मः स्यात्स त्रेतायामृतुत्रये। द्वापरे तु त्रिपक्षेण कलावह्ना तु तद्भवेत् ॥' इति।

४. पराशरः—'कृते तु मानवो धर्मस्त्रेतायां गौतमः स्मृतः। 'द्वापरे शंखलिखितौ कलौ पाराशरः स्मृतः ॥' इति।

ग्राह्य है। कलियुग में ध्यान करने से, त्रेता में यज्ञ करने से और द्वापर में पूजन करने से जो फल प्राप्त होता है कलियुग में वही फल केशव के कीर्तन से प्राप्त होता है, ऐसा हेमाद्रि में व्यास का वचन है। यहां कृतयुग आदि में फल के लिये जो ध्यान आदि कहा है, उस फल के लिये कलियुग में केशव का कीर्तन है, यह वाक्यार्थ कौस्तुभ रचयिता के पितामह ने भक्तिनिर्णय ग्रन्थ में विस्तार से कहा है।

हेमाद्रौ तु—

कलिं सभाजयन्त्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः।
यत्र संकीर्तनेनैव सर्वः स्वार्थोऽभिलभ्यते॥

इति श्रीभागवतवचनमुदाहृत्य संकीर्तनेन हरिसंकीर्तनेनेत्यर्थ इति हेमाद्रावेव व्याख्यातम्।

कृष्णवर्णं त्विषा कृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्।
यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः॥

यज्ञादिस्वस्वाचारमाचरद्भिरपि कालेषु संकीर्तननिष्ठैर्भाव्यमित्याशय इति कौस्तुभे।

हेमाद्रि में तो—श्रेष्ठ, गुणज्ञ और सारग्राही लोगों ने कलि की प्रशंसा इसलिये किया है कि कलियुग में कीर्तनमात्र से सभी स्वार्थों की प्राप्ति होती है। श्रीमद्भागवत के इस वचन का उदाहरण देकर हेमाद्रि में ही 'संकीर्तनेन' का 'हरिसंकीर्तनेन' ऐसी व्याख्या है। जो बुद्धिमान् पुरुष कृष्ण वर्ण और कान्ति से कृष्ण सांगोपांग अस्त्र और पार्षदों सहित संकीर्तनरूप यज्ञों से पूजन करते हैं। यानी अपने-अपने आचारानुसार यज्ञादि करते हुए भी यथासमय हरिसंकीर्तन में निष्ठा अवश्य होनी चाहिये यह आशय है, ऐसा कौस्तुभ में लिखा है।

अनेन चतुर्वर्गफलं नारायणाश्रयणमात्रेण भवतीति सिद्धम्।

या वै साधनसंपत्तिः पुरुषार्थचतुष्टये।
तया विना तदाप्नोति नरो नारायणाश्रयः॥ इति भारतोक्तेः।

श्रीभागवतेऽपि—

धर्मार्थकाममोक्षाख्यं य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः।
एकं ह्येव हरेस्तत्र कारणं पादसेवनम्॥ इति।

इससे यह बात सिद्ध हुई कि भगवान् के आश्रयमात्र से धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष का फल होता है। क्योंकि महाभारत में लिखा है कि धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष रूप चारो पुरुषार्थ की जो साधन-रूप सम्पत्ति है उसके विना ही नारायण के आश्रय में रहने वाला पुरुष उन चारो पुरुषार्थों को प्राप्त करता है। श्रीभागवत में भी लिखा है कि धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष इनमें से जिस श्रेय को अपने लिये चाहे वह केवल हरिचरण-सेवन से ही प्राप्त कर लेता है।

अत्र एकपदावधारणादिपदै रन्यसाधनानपेक्षत्वं भक्तियोगस्योच्यते। ज्ञानयोगादेश्च हरिपादसेवनसापेक्षत्वं ध्वन्यते। तथा च स्पष्टमेकादशादौ—

तस्मान्मद्भक्तियुक्तस्य योगिनो वै मदात्मनः।
न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेदिह॥

यत्कर्मभिर्यत्तपसा ज्ञानवैराग्यतश्च यत्।
योगेन दानधर्मेण श्रेयोभिरितरैरपि ॥
सर्वं मद्भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेऽञ्जसा।
स्वर्गापवर्गं मद्धाम कथंचिद्यदि वाञ्छति ॥ इति ।

श्रेयः स्रुतिं भक्तिमुदस्यते विभो क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते नान्यद्यथास्थूलतुषावघातिनाम ॥

इत्यादिपरस्सहस्रवचनानि ।

इस श्लोक में एक पद और अवधारण एव पद से भक्तियोग में दूसरे किसी साधन की अपेक्षा नहीं होती। इससे यह भी ध्वनि होती है कि ज्ञानयोग आदि को भी हरिचरणसेवन की अपेक्षा होती है। इस प्रकार एकादश आदि स्कन्धों में स्पष्ट है जिसका आशय यह है कि हमारी भक्ति से युक्त योगियों को जो मेरी आत्मा है प्रायः ज्ञान वैराग्य के विना भी कलियुग में कल्याण होता है। कर्म, तपस्या, ज्ञान, वैराग्य से योग, दान, धर्म और दूसरे कल्याण कार्यों से जो प्राप्त होता है वह सब मेरा भक्त मुझमें भक्तियोग के द्वारा शीघ्र प्राप्त करता है। कथंचित् वह स्वर्ग चाहता हो, मुक्ति चाहता हो या मेरे धाम की प्राप्ति चाहता हो तो मेरी भक्ति के योग से प्राप्त करता है। जो श्रेय को देने वाली मेरी भक्ति को छोड़कर केवल ज्ञान की प्राप्ति के लिये कष्ट उठाते हैं उन्हें केवल वह क्लेश ही शेष रहता है। भक्ति के विना कलि में दूसरा मोक्ष साधन नहीं, यही तात्पर्य है। शास्त्रों में इसके समर्थक अनेक वचन उपलब्ध हैं।

ज्ञानयोगस्य भगवदाराधनं तत्प्रसादं च विनैव सिद्धिरिति कापि केनाप्यनुक्तेश्च। सर्वापेक्षा च यज्ञादिश्रुतेरश्ववदित्यधिकरणे ज्ञानोत्पत्तौ यज्ञादिसर्वसाधनापेक्षोक्तेश्च। किं च भक्तियोगे दुराचारिणोऽपि दृढवैराग्यरहितस्याप्यधिकारो गम्यते,

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥
न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः। इत्यादिवचनेभ्यः।

यह कहीं भी नहीं कहा है कि ज्ञानयोग की उपलब्धि भगवान् की सेवा, शुश्रूषा तथा उसकी प्रसन्नता विना प्राप्त होती है। यज्ञादि श्रुति से सम्पूर्ण साधनों की अपेक्षा 'अश्ववत्' इस अधिकरण में ज्ञानोत्पत्ति में यज्ञादि सब साधनों की अत्यावश्यकता बताई है। और भक्तियोग में तो दुराचारी को भी और दृढ़ वैराग्य से रहित व्यक्ति को भी अनेक वचनों से अधिकार बोधित होता है। महापाप करने वाला भी जो अनन्यचित्त से भगवद्भक्ति करता हो उसे साधु ही मानना चाहिये, क्योंकि वह समीचीन ज्ञानी है। भगवान् ने अर्जुन से कहा है कि मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि मेरे भक्त का विनाश नहीं होता। जो न अत्यन्त विरक्त और न अत्यन्त आसक्त हो उसका भक्तियोग सिद्धिदायक है।

नैवं दुराचारिणापि दृढवैराग्यादिसाधनचतुष्टयसंपत्त्यभावेऽपि वेदान्तश्रवणाद्यनुष्ठितौ ज्ञानोत्पत्तिर्भवतीति क्वाप्युपलभ्यते। न च यथोक्ताधिकारसम्पत्तिं विना-

नुष्ठितं साधनं किमपि फलाय कल्पते। तस्मात्सर्वथा सर्वैः कलौ श्रीहरिपादसेवनादिभक्तियोगाश्रयणमेव कर्तव्यमिति सिद्धम्।

यह कहीं नहीं मिलता कि जो दुराचारी तथा दृढ़ वैराग्यशून्य हो उसे वेदान्त वाक्यों के श्रवण आदि से ज्ञानोत्पत्ति होती है। अधिकार के विना कोई भी कर्म फलप्रद नहीं होता। इन सब शास्त्र वचनों से यह सिद्ध है कि कलि में हरिचरणसेवन आदि भक्तियोग ही स्वीकरणीय है। अतः यह सिद्ध हुआ कि कलियुग में हरिचरणसेवन आदि भक्तियोग का आश्रयण ही सबको करना चाहिये।

अथ कलौ निषिद्धानि।

समुद्रयात्रास्वीकारः [1]कमण्डलुविधारणम्।
द्विजानामसवर्णासु [2]कन्यासूपयमस्तथा॥
देवराद्यैः सुतोत्पत्तिर्मधुपर्के पशोर्वधः।
मांसदानं तथा श्राद्धे वानप्रस्थाश्रमस्तथा॥
दत्ताक्षतायाः कन्यायाः पुनर्दानं परस्य च।
दीर्घकालं ब्रह्मचर्यं नरमेधाश्वमेधकौ॥
महाप्रस्थानगमनं गोमेधश्च तथा मखः।
इमान्धर्मान् कलियुगे वर्ज्यानाहुर्मनीषिणः॥

समुद्रयात्रा, संन्यासग्रहण, द्विजों का असवर्ण कन्याओं से विवाह, देवर आदि से सुतोत्पत्ति (नियोग), मधुपर्क में पशु का वध, श्राद्ध में मांस का दान, वानप्रस्थ आश्रम का ग्रहण, ब्याही हुई अक्षता कन्या का दूसरे को पुनर्दान, अधिक समय तक ब्रह्मचर्य, नरमेध, अश्वमेध, मृत्यु के लिये गमन और गोमेध यज्ञ, इन धर्मों को पण्डितों ने कलियुग में वर्जित कहा है।

मद्यं वर्ज्यं महापापे मरणान्तविशोधनम्।
सौत्रामण्यादियज्ञेऽपि सुरापात्रग्रहस्तथा॥
मद्यभक्षादिवामाद्यागमस्य तु न मानता।
मीमांसाद्वितये सर्वशिष्टैश्च तदनादरात्॥
औरसो दत्तकश्चैतौ पुत्रौ कलियुगे स्मृतौ।
अन्यान् दशविधान् पुत्रान्क्रीताद्यान्वर्जयेत्कलौ॥

मद्यपान से भिन्न, महापाप में मरणान्त प्रायश्चित्त, सौत्रामणि आदि यज्ञ में भी सुरापात्र ग्रहण या मद्यभक्षण आदि वाममार्गियों के आगम का सम्मान वर्जित है, क्योंकि पूर्वोत्तर मीमांसा

---

१. मनु ने स्नातक धर्म में—'वैणवीं धारयेद् यष्टिं सोदकं च कमण्डलुम्। यज्ञोपवीतं वेदं च शुभे रौक्मे च कुण्डले॥' जो यह कहा है उसका कलियुग में यज्ञोपवीत की तरह सदा धारण का निषेध है।

२. द्विजातियों का—'असवर्णासु कन्यासु विवाहश्च द्विजातिषु। वृत्तस्वाध्यायसापेक्षमघसंकोचनं तथा॥ तिस्रो वर्णानुपूर्व्येण द्वे तथैका यथाक्रमम्। ब्राह्मणक्षत्रियविशां भार्या स्वा शूद्रजन्मनः॥' इस स्मृतिवचन के अनुसार असवर्ण कन्याओं के साथ जो विवाह विहित था वह कलियुग में निषिद्ध है।

में और सब शिष्टजनों ने उसका अनादर किया है। औरस और दत्तक दो ही पुत्र कलियुग में स्वीकृत हैं। क्रीत आदि दशविध पुत्रों का कलि में वर्जन करे।

कौस्तुभे तु—स्वयं दत्तस्तृतीयोऽपि कलौ विहित इति नवैव कलौ निषिद्धा इत्युक्तम्। कलियुगे ब्रह्महन्त्रादेरेवाव्यवहार्यत्वादिरूपं पातित्यम्। तत्संसर्गिणस्तु नरकहेतुदोषसत्त्वेऽपि पातित्यं नास्ति 'संसर्गदोषः पापेषु'[2] इति कलिवर्ज्येषु वचनात्।

कृते संभाष्य पतति त्रेतायां स्पर्शनेन तु।
द्वापरे त्वन्नमादाय कलौ पतति कर्मणा॥

इति वचनाच्च ब्रह्महननादिकर्मणैव पातित्यं न संसर्गमात्रेणेति तदर्थात्।

कौस्तुभ में तो—स्वयं दत्त पुत्र कलि में विहित है इसलिये नव ही पुत्र कलियुग में निषिद्ध है ऐसा कहा है। कलियुग में ब्राह्मणघाती आदि का ही अव्यवहार्यरूप पातित्य होता है। उसके संसर्गी को तो नरक हेतु दोष के रहने पर भी पातित्य नहीं होता। क्योंकि संसर्ग का दोष पापों में ही होता है ऐसा कलिवर्ज्य में वचन है और यह भी वचन है कि सत्ययुग में पापी के साथ सम्भाषण से, त्रेता में स्पर्श करने से, द्वापर में महापापी का अन्न लेने से और कलि में कर्म करने से पतित होता है। अर्थात् ब्रह्मघात आदि कर्म करने से ही पातित्य होता है, केवल संसर्ग से नहीं होता यह उसका अर्थ है।

इदं च लोकेष्वबहिष्कृतपातकिषु लोकविद्विष्टत्वेनापरिहार्यसंसर्गे पातित्याभावपरम्। न हि लोकेष्वबहिष्कृतानां प्रच्छन्नाभक्ष्यभक्षणापेयपानागम्यागमनादिपातकवतां तज्ज्ञानवतातिशिष्टेनापि संभाषणादिसंसर्गो नरकहेतुरपि परिहर्तुं शक्यते, लोकविद्वेषापातात्। लोकबहिष्कृतपापिनां संसर्गस्तु पातित्यहेतुरेव तथैव शिष्टाचारादिति मे भाति।

यह वचन लोक विद्वेष से जिन पातकियों का बहिष्कार नहीं किया गया है उनसे भी संसर्ग होने पर पातित्य का अभाव परक है। लोक में जिनका बहिष्कार नहीं किया गया है ऐसे छिपकर अभक्ष्य भक्षण, अपेय मद्यादि पान और अगम्यागमन आदि पातक वालों के नरक का कारण सम्भाषणादि संसर्ग उस पाप के जानकार अतिशिष्ट जनों को भी त्याग देना चाहिये, क्योंकि लोक में निन्दा होने की सम्भावना है। लोक बहिष्कृत पापियों का संसर्ग तो पातित्य का कारण है ही, क्योंकि ऐसा ही शिष्टाचार है यह प्रतीत होता है।

अत एव—

त्यजेद्देशं कृतयुगे त्रेतायां ग्राममुत्सृजेत्।
द्वापरे कुलमेकं तु कर्तारं तु कलौ युगे॥

इति वाक्ये कर्तृत्यागो विधीयते। त्यागो हि संसर्गपरिहार एव। किं चानेनवाक्येन यत्र कुलादौ ब्रह्महत्यादिपातकी निष्पद्यते तत्कुलादिकं द्वापरादावेव बहिष्कार्यं न तु कलौ कुलादेर्बहिष्कारः, किन्तु कर्तुरेव कलौ बहिष्कार इति प्रतिपाद्यते। न चैतद्वाक्यविरोधिवाक्यान्तरं पतितसगोत्रसपिण्डादीनां कर्मानर्हत्वासंव्यवहार्यत्वप्रतिपादकं क्वापि ग्रन्थे उपलभ्यते।

इसीलिये कृतयुग में देश का, त्रेता में ग्राम का, द्वापर में एक कुल का और कलियुग में तो केवल पाप करने वाले का त्याग करे। इस वचन में कर्ता का त्याग विहित है। त्याग संसर्ग का परिहारमात्र है और इस वाक्य से जिस कुल आदि में ब्रह्महत्या आदि का पापी होता है उस कुल आदि का द्वापर आदि में ही बहिष्कार था, कलियुग में कुल आदि का बहिष्कार नहीं होता किन्तु कर्ता का ही बहिष्कार होता है, यह प्रतिपादित होता है। किसी ग्रन्थ में पतित के सगोत्र सपिण्ड आदि का कर्म निर्हत्व असंव्यवहार्यत्व का प्रतिपादन करने वाला इस वाक्य का विरोधी दूसरा वाक्य उपलब्ध नहीं है।

यत्तु निर्णयसिन्धौ घटस्फोटप्रकरणे 'गृहेषु स्वैरमापद्येरन्' इति वसिष्ठवचनसामर्थ्यात् पात्रनिनयनात्प्राक् पतितज्ञातीनां धर्मकार्येष्वधिकारो नास्तीत्यपरार्कव्याख्यानमुपन्यस्तं तन्न सर्वपतितविषयं किन्तु घटस्फोटार्हंप्रायश्चित्तानिच्छुपतितविषयम्। अन्यथा पात्रनिनयनात्प्रागिति न वदेत् प्रायश्चित्तात्प्रागित्येव वदेत्। 'कर्तारं तु कलौ युगे' इत्यादिप्रत्यक्षवचनेन विरोधेऽर्थापत्तिमूलकस्य सर्वपतितविषयककुलबहिष्कारवर्णनस्य पुरुषव्याख्यानरूपस्याप्रामाण्यापाताच्चेति भातीति संक्षेपः।

निर्णयसिन्धु में जो घटस्फोट प्रकरण में 'गृहेषु स्वैरमापद्येरन्' अर्थात् घर में पतित के साथ यथेच्छ आचरण करे, इस वशिष्ठ वचन के सामर्थ्य से पात्रनिनयन (त्याग) से पहिले पतित के भाई बन्धुओं को भी धर्म कार्य में अधिकार नहीं है इस अपरार्क व्याख्या का उपन्यास किया है वह सब पतितों के विषय में नहीं है किन्तु घटस्फोट के योग्य प्रायश्चित्तों के अनिच्छुक पतितों के विषय में है। नहीं तो पात्रनिनयन के पहले ऐसा नहीं कहते, प्रायश्चित्त से पहिले इतना ही कहते। क्योंकि 'कर्तारं तु कलौ युगे' इत्यादि पूर्वोक्त प्रत्यक्ष वचन से विरोध होने पर अर्थापत्तिमूलक समस्त पतितों के कुल से बहिष्कार करने के वचन को पुरुष व्याख्यानरूप का अप्रामाण्य हो जायगा ऐसा मुझे ठीक मालूम होता है यह संक्षेप है।

न चैवं घटस्फोटविधिर्व्यर्थं इति वाच्यम्? तस्य पारलौकिकदोषपरिहारार्थत्वात्। लोकबहिष्कृतपातकिविषये संभाषणादिसंसर्गस्य पातित्यहेतुत्वाभावेपि परत्र नरकजनकदोषहेतुत्ववत्पतितेन सहैककुलत्वसंसर्गस्यापीह पातित्यादिदोषहेतुत्वाभावेऽपि पारत्रिकदोषहेतुत्वात्। अत्र च घटस्फोटविधेरेवार्थापत्तिविधायमानत्वात्। तथा च पारत्रिकदोषपरिहारार्थं घटस्फोटविधिरिति न तद्विधिबलेन पतितमात्रस्य कुले बहिष्कार इति भातीति संक्षेपः।

यदि शंका हो कि इस तरह घटस्फोट विधि व्यर्थ हो जायगी तो वह ठीक नहीं है क्योंकि घटस्फोट विधि परलौकिक दोष की निवृत्ति के लिये है। लोक बहिष्कृत पातकी के विषय में परस्पर संभाषण आदि संसर्ग पातित्य का कारण नहीं है फिर भी परलोक में नरकजनक दोष के हेतु की तरह पतित के साथ एक कुलके व्यवहार का संसर्ग भी पातित्य दोष का कारण न हो तो भी परलोकगत दोष का कारण है ही। इसमें घटस्फोट विधि ही अर्थापत्ति के प्रकार से प्रमाण है। इस प्रकार परलोकगत दोष के परिहार के लिये घटस्फोट-विधि है इसलिये उस विधि के बल से पतितमात्र को कुल से बहिष्कार नहीं होता ऐसा मुझे प्रतीत होता है, यह संक्षेप है।

सत्राख्ययज्ञः कलौ वर्ज्यः। ब्रह्महत्यादिमहापातकेषु प्रायश्चित्तेन नरकनिवृत्तिर्न भवति किन्त्विह लोके व्यवहार्यतामात्रं कलौ भवति। स्वर्णस्तेयादिषु तु प्रायश्चित्तेन नरकनिवृत्तिर्व्यवहार्यता च। केचित्तु रहस्यकृतेषु महापापेषु रहस्यप्रायश्चित्तं कलौ नोपदेष्टव्यमित्याहुः।

अधिक समय साध्य सत्र नामक यज्ञ कलि में वर्ज्य है। ब्रह्महत्यादि महापातकों में प्रायश्चित्त से नरक की निवृत्ति नहीं होती, किन्तु इस लोक में व्यवहार्यतामात्र कलि में होता है। सुवर्ण चुराने आदि पाप में तो प्रायश्चित्त से नरक की निवृत्ति और व्यवहार्यता भी होती है। कुछ लोग तो रहस्यकृत महापापों का रहस्य प्रायश्चित्त का उपदेश कलि में नहीं करे, ऐसा कहते हैं।

विप्रादिस्त्रीसम्भोगेन भ्रष्टानां शूद्रादीनां प्रायश्चित्तेऽपि संसर्गो निषिद्धः। यज्ञे पशुमारणं सोमविक्रयश्च विप्राणां कलौ वर्ज्यः।

ज्येष्ठादिसर्वभ्रातॄणां समभागः कलौ स्मृतः।
आततायिद्विजानां नो धर्मयुद्धेऽपि हिंसनम्॥

अब्धौ नौयातुर्द्विजस्य प्रायश्चित्तेऽपि संसर्गो न।

ब्राह्मण आदि की स्त्री के साथ संभोग करने से भ्रष्ट हुये शूद्रादि को प्रायश्चित्त करने पर भी उनका संसर्ग निषिद्ध है। यज्ञ में ब्राह्मणों को पशु का मारना और सोम का वेचना कलि में वर्जित है। कलि में बड़े छोटे सभी भाइयों का समान भाग है, ज्येष्ठांश आदि नहीं। आततायी द्विजों की धर्मयुद्ध में भी हिंसा नहीं करे। समुद्र में नौका से यात्रा करने वाले द्विज से प्रायश्चित्त करने पर भी संसर्ग नहीं करे।

गवार्थे ब्राह्मणार्थे च प्राणत्यागः कलौ न हि।
द्विजानां गोपशूद्रादौ भोज्यान्नत्वं कलौ न हि॥
शिष्यस्य गुरुपत्नीषु न चिरं वासशीलता।
आपदि क्षत्रवैश्यादिवृत्तिं विप्रः कलौ त्यजेत्॥
कलौ द्विजो न हि भवेदश्वस्तनिकजीविकः।

गौ और ब्राह्मण के लिये प्राणत्याग कलि में नहीं होता। कलि में ग्वाले आदि शूद्रों के यहां द्विजों को अन्नभोजन नहीं करना चाहिये। कलि में शिष्य, गुरुपत्नी के निकट चिरकाल तक निवास नहीं करे। ब्राह्मण आपत्ति काल में क्षत्रिय वैश्य आदि की वृत्ति का कलि में त्याग करे। कलि में द्विज को अश्वस्तनिक वृत्ति (कलके लिये अन्नादि प्रबन्ध नहीं रखने वाला) नहीं होना चाहिये।

द्वादशाब्दं गुरौ वासं [1]मुखाग्निधमनक्रियाम्॥
यतेर्भिक्षां सर्ववर्णे कलौ त्रीणि विवर्जयेत्।
नवोदकनिषेधं च दक्षिणां गुरुवाञ्छिताम्॥

---

१. 'मुखेनैव धमेदग्निं मुखाद्ध्येषो ह्यजायत। नाग्निं मुखेनेति तु यल्लौकिके योजयेत्तु तत्॥' इस वचन के अनुसार मुख से अग्नि को फूंकने का जो विधान है, उसका कलियुग में निषेध है। कहीं 'मुखेनैव' इत्यादि पूर्वार्ध की जगह 'मुखेनैव धमेदग्निं यतो वेदा विनिस्सृताः' यह पाठान्तर है।

वृद्धरुग्णादिमरणं जलाग्निपतनादिभिः ।
गोतृप्तिमात्रे भूमिष्ठे पयस्याचमनक्रियाम् ॥
पितृवादे साक्षिदण्डं कलौ पञ्च विवर्जयेत् ।

बारहवर्षपर्यन्त गुरु के यहां निवास, मुंह से अग्नि को फूकना, सब वर्णों में संन्यासी की भिक्षा, ये तीन कलि में वर्जित हैं। नये जल का निषेध, गुरु की मनचाही दक्षिणा, वृद्ध रोगी आदि का जल में डूब कर आग में जल कर पहाड़ आदि से गिर कर मरना, जमीन पर स्थित गोतृप्तिमात्र जल से आचमन करना, पिता से विवाद में गवाह को दण्ड देना, ये पांच कलि में वर्जित हैं।

[1]घृतदुग्धादिभिः पक्वमन्नं शूद्रात्कलौ त्यजेत् ।
भिक्षामटन् यती रात्रौ न वसेद् गृहिणां गृहे ।
विधूमे सन्नमुसले काले भिक्षां कलौ त्यजेत् ॥
चत्वार्यब्दसहस्राणि चत्वार्यब्दशतानि च ।
कलेर्यदा गमिष्यन्ति तदा त्रेतापरिग्रहः ॥
संन्यासश्च न कर्तव्यो ब्राह्मणेन विजानता ।

त्रेतापरिग्रहः सर्वाधानम् ।

अर्धाधानं स्मृतं श्रौतस्मार्ताग्न्योस्तु पृथक्कृतिः ।
सर्वाधानं तयोरैक्यकृतिः पूर्वयुगाश्रया ॥

घी दूध आदि से पकाया शूद्र का अन्न कलि में वर्जित है। कलि में भिक्षाटन करता हुआ संन्यासी रात में गृहस्थ के घर में रात में निवास त्याग दे। धुआं और मूसल आदि के शब्द समाप्त होने पर कलि में भिक्षा का त्याग करे। जब चार हजार चार सौ वर्ष कलि के बीत जायेंगे तब त्रेतापरिग्रह और संन्यास विज्ञ ब्राह्मण को नहीं करना चाहिये। यहां त्रेतापरिग्रह शब्दका सर्वाधान यानी तीनों अग्नियों का आधान अर्थ है। श्रौत-स्मार्त-अग्नियों का पृथक्करण अर्धाधान तथा श्रौत-स्मार्त-अग्नियों का एकीकरण सर्वाधान कहलाता है। यह दूसरे युगों के लिये है कलियुग के लिये नहीं।

अस्यापवादः—

यावद्वर्णविभागोऽस्ति यावद्वेदः प्रवर्तते ।
संन्यासं चाग्निहोत्रं च तावत्कुर्यात्कलौ युगे ॥ इति ।
शपथाः शकुनाः स्वप्नाः सामुद्रिकमुपश्रुतिः ।
देवपूजोपहारादेः संकल्पः कार्यसिद्धये ॥
प्रश्नोत्तरं कालविदां संभवन्ति कलौ क्वचित् ।

इति कलौ कार्याकार्यनिर्णयः ।

इसका अपवाद है—कि जब तक वर्ण विभाग और जब तक वेद माना जाता है, तब तक संन्यास और अग्निहोत्र को कलियुग में करे। शपथ, शकुन, स्वप्न, सामुद्रिक का फल, कार्यसिद्धि

---

१. 'घृतपक्वं पयःपक्वं पक्वं केवलवह्निना' इत्यादि वचन के अनुसार विहित का कलियुग में निषेध है।

के लिये देवता की पूजा और उपहारादि का संकल्प, ज्योतिषियों के प्रश्नोत्तर, ये कलि में कहीं होते हैं। कलि में कार्य अकार्य का निर्णय समाप्त।

अथ स्वप्नविचारः

स्वप्नो द्विविधः—इष्टफलोऽनिष्टफलश्चेति। तत्र सामान्यत इष्टफलो यथा—

नदीसमुद्रतरणमाकाशगमनं तथा।
गृहनक्षत्रमार्तण्डचन्द्रमण्डलदर्शनम्॥
हर्म्यस्यारोहणं चैव प्रासादशिरसोपि वा।
स्वप्ने च मदिरापानं वसामांसस्य भक्षणम्॥
कृमिविष्ठानुलेपश्च रुधिरेणाभिषेचनम्।
भोजनं दधिभक्तस्य श्वेतवस्त्रानुलेपनम्॥
रत्नान्याभरणादीनि स्वप्ने दृष्ट्वा प्रसिद्ध्यति।
देवताविप्रपृथ्वीशान्प्रशस्ताभरणाङ्गनाः॥
वृषेभपर्वतक्षीरिफलिवृक्षाधिरोहणम्।
दर्पणामिषमाल्याप्ति शुक्लपुष्पाम्बराश्रितान्।
द्रष्टुः स्वप्नेऽर्थलाभः स्याद् व्याधिमोक्षश्च जायते॥

स्वप्न दो प्रकार का होता है—एक इष्ट फल देने वाला, दूसरा अनिष्ट फल देने वाला। उसमें सामान्यतः इष्ट फल देने वाला जैसे—नदी और समुद्र का तैरना, आकाश में चलना, गृहदर्शन, नक्षत्रदर्शन, सूर्यदर्शन, चन्द्रमण्डल का दर्शन, महल पर चढ़ना, छत के ऊपर चढ़ना, मद्य पीना, चर्बी और मांस का खाना, कीड़े और विष्ठा का शरीर में लेपन करना, रक्त स्नान, दही भात का भोजन, सफेद वस्त्र का परिधान, रत्न और आभरणों को देखना, ऐसे स्वप्न से शीघ्र कार्य की सिद्धि होती है। देवता, ब्राह्मण, नरेश, अच्छे आभूषण, उत्तम स्त्री का दर्शन, बैल, हाथी, पर्वत और दूध फल वाले वृक्ष पर चढ़ना, दर्पण, मांस और माला की प्राप्ति, श्वेत पुष्प, श्वेत वस्त्रधारी पुरुष को स्वप्न में देखने से धन की प्राप्ति और रोग से मुक्ति होती है।

अथानिष्टफलस्वप्नाः

दुष्टं किंशुकवल्मीकपारिभद्राधिरोहणम्।
तैलकार्पासपिण्याकलोहप्राप्तिर्विपत्तये॥
विवाहकरणं स्वप्ने रक्तस्रग्वस्त्रधारणम्।
स्रोतसाहरणं नेष्टं पक्वमांसस्य भोजनम्॥
आदित्यस्याथ चन्द्रस्य निष्प्रभस्यावलोकनम्।
नक्षत्रादेश्च पातस्य स्वप्ने मरणशोककृत्॥

पलाश वल्मीक और नीम वृक्ष पर चढ़ना, तेल कपास खली और लोहे की प्राप्ति, ऐसे स्वप्न को देखने से विपत्ति होती है। स्वप्न में विवाह करना, लाल माला और लाल वस्त्र का पहिनना, सोते में बहना, पके मांस का भोजन करना, ये स्वप्न अनिष्ट फल देने वाले होते हैं। प्रभारहित सूर्य चन्द्र को देखना, नक्षत्र आदि का गिरना, ये स्वप्न मरण और शोक करने वाले होते हैं।

अशोककरवीरपलाशानां पुष्पितानां स्वप्ने दर्शने शोकः । नौकारोहणे प्रवासः । रक्तवस्त्रगन्धधारिण्या स्त्रियाऽऽलिङ्गने मृत्युः । घृततैलादिनाभ्यङ्गे व्याधिः । केशदन्तपाते धननाशः पुत्रशोको वा । खरोष्ट्रमहिषैर्याने तद्युक्तरथारोहणे वा मृत्युः । कर्णनासाकरादिच्छेदे पङ्कमज्जने तैलाभ्यङ्गे विषभक्षणे प्रेतालिङ्गने नलदमालिनो दिगम्बरस्य याने कृष्णपुरुषदर्शने च मृत्युः ।

फूले हुए अशोक करवीर और पलाश को स्वप्न में देखने से शोक होता है । नाव पर चढ़ना, इससे परदेश में यात्रा होती है । लाल वस्त्र और गन्धधारण करने वाली स्त्री का आलिंगन, इससे मृत्यु होती है । घी तेल लगाना स्वप्न में देखने पर रोग होता है । केश और दांतों का गिरना देखने से धन का नाश या पुत्र शोक होता है । गदहा, ऊँट, भैंसे पर चढ़कर या खर, ऊँट, भैंसे रथ में जुड़ा हुआ देखने पर मृत्यु होती है । कान नाक और हाथ का कटना, कीचड़ में फँसना, तेल लगाना, विष खाना, प्रेत का आलिंगन करना नलद की माला पहिनने वाले नंगे का गमन और काले पुरुष का दर्शन हो तो मृत्यु होती है ।

अथ जागृतावनिष्टानि

अरुन्धतीं ध्रुवं चैव नभोमन्दाकिनीं तथा ।
स्वनासाग्रं च चन्द्राङ्कमायुर्हीनो न पश्यति ॥
पांसुपङ्कादिषु न्यस्तचरणं खण्डितं यदि ।
स्नानाम्बुलिप्तगात्रस्य यस्यास्यं प्राक् प्रशुष्यति ॥
गात्रेष्वार्द्रेषु सर्वेषु सूर्यादिद्वयदर्शनम् ।
स्वर्णप्रतीतिर्वृक्षेषु स्वपदानामदर्शनम् ॥
पिहिते कर्णयुगुले यस्य घोषाऽनुपश्रुतिः ।
अदर्शनं स्वशिरसः प्रतिबिम्बे जलादिषु ॥
छिद्रप्रतीतिश्छायायां स चिरं नैव जीवति ।

अरुन्धती का तारा, ध्रुव, आकाश गंगा, अपनी नासिका का अग्रभाग और चन्द्रमा का कलंक, इनको आयुष्यहीन पुरुष नहीं देखता । धूल या कीचड़ आदि में रखा हुआ पैर यदि खण्डित दिखाई दे, नहाने और सब शरीर के गीले होने पर भी जिसका मुंह पहिले सूख जाता है । सूर्य आदि एक को दो देखना, वृक्षों में सुवर्ण की प्रतीति होना, अपने पैरों को नहीं देखना, दोनों कान बन्द करने पर शब्द नहीं सुनना, जल आदि का प्रतिबिम्ब, अपना सिर आदि न देखना, अपनी छाया में छिद्र देखना, ऐसे लक्षण वाले पुरुष अधिक दिन तक नहीं जीते ।

अथ विशेषत इष्टफलाः स्वप्नाः

यस्तु पश्यति वै स्वप्ने राजानं कुञ्जरं हयम् ।
सुवर्णं वृषभं गां वा कुटुम्बं तस्य वर्धते ॥

वृषं वृक्षं वारुह्य तत्रस्थस्य जागरे धनाप्तिः । श्वेतसर्पेण दक्षिणभुजदंशे दशदिने सहस्रधनलाभः । जलस्थस्य वृश्चिकोरगग्रासे जयपुत्रधनानि । प्रासाद-शैलारोहणे समुद्रतरणे राज्यम् । तडागमध्ये पद्मपत्रेषु घृतपायसभोजने राज्यम् ।

बलाकाकुक्कुटीक्रौञ्चीदर्शने भार्याप्राप्तिः। निगडैर्बन्धे बहुपाशबन्धे वा पुत्रधनादि ।

जो आदमी स्वप्न में राजा, हाथी, घोड़ा, सोना, बैल या गाय को देखता है उसका कुटुम्ब बढ़ता है। बैल या पेड़ पर चढ़ कर उन पर स्थित हुआ ही जग जाता है उसको धन मिलता है। सफेद सांप से दाहिने हाथ में काटने पर दस दिन के भीतर हजार रुपये का लाभ होता है। जल में रहने पर विच्छू या सांप के काटने का स्वप्न देखे तो धन, पुत्र और जय होता है। कोठा और पर्वत पर चढ़ने तथा समुद्र के तैरने में राज्य की प्राप्ति होती है। तालाब के बीच में कमल के पत्तों पर घी और खीर भोजन करने में राज्य की प्राप्ति होती है। बलाका, मुर्गी और कुररी को स्वप्न में देखने पर स्त्री की प्राप्ति होती है। स्वप्न में हथकड़ी से बंधने या बहुत रस्सियों से बंधने में पुत्र धनादि का लाभ होता है।

आसने शयने याने शरीरे वाहने गृहे ।
ज्वलमाने विबुध्येत तस्य श्रीः सर्वतोमुखी ॥

सूर्यचन्द्रमण्डलदर्शने रोगिणो रोगनाशोऽन्यस्य धनम्। सुरारुधिरयोः पाने विप्रस्य विद्या शूद्रादेर्धनम्। शुक्लाम्बरगन्धधारिण्या सुभगस्त्रियालिङ्गने संपत्तिः। छत्रपादुकोपानत्खड्गलाभे धनम्। वृषभयुक्तरथारोहणे धनम्। दधिलाभे वेदाप्तिः। दधिपयःपाने घृतलाभे च यशः। घृतभक्षणे क्लेशः। अन्त्रैर्वेष्टने राज्यम्।

आसन, पलंग, सवारी, शरीर, वाहन, घर, इन्हें स्वप्न में जलते हुए देखकर जग जाय तो उसको चारो ओर से लक्ष्मी मिलती है। सूर्यमण्डल और चन्द्रमण्डल को देखने से रोगी को रोग-नाश और स्वस्थ को धनलाभ होता है। स्वप्न में मद्य और रक्त पीना देखने में ब्राह्मण को विद्या लाभ तथा शूद्रादि को धन-लाभ होता है। श्वेत वस्त्र और गन्ध-धारण करने वाली सौभाग्यवती स्त्री से आलिंगन करने में सम्पत्ति की प्राप्ति होती है। छाता, खड़ाऊं, जूता और तलवार स्वप्न में मिले तो धनलाभ होता है। बैल से युक्त रथ पर चढ़ना स्वप्न में देखे तो धन मिलता है। स्वप्न में दही मिलने पर वेद की प्राप्ति होती है। स्वप्न में दही, दूध का पीना और घृत मिले तो यश होता है। स्वप्न में घी खाना क्लेशदायक है। आंतों से लिपटा हुआ अपने को देखे तो राज्य मिलता है।

मनुष्यस्य चरणमांसभक्षणे शतं लाभः। बाहुभक्षणे सहस्रम्। शीर्षमांसभक्षणे राज्यं वा, सहस्रधनं वा। सफेनक्षीरपाने सोमपानम्। गोधूमदर्शने धनलाभः। यवदर्शने यज्ञः। गौरसर्षपदर्शने लाभः।

नागपत्रं लभेत्स्वप्ने कर्पूरागमनं तथा ।
चन्दनं पाण्डुरं पुष्पं तस्य श्रीः सर्वतोमुखी ॥

मनुष्य के पैर का मांस खाना देखने में सौ रुपये का लाभ होता है। बाहु का मांस खाने में हजार का लाभ, सिर का मांस खाने में राज्य-प्राप्ति या हजारों का धन मिले। फेन-युक्त दूध पीने में सोम पान का फल होता है। गेंहूं देखने में धन का लाभ, जौ के देखने में यज्ञ होता है। सफेद सरसो के देखने में लाभ होता है। स्वप्न में नागपत्र का पाना तथा कपूर का आना, चन्दन और पाण्डुर वर्ण का पुष्प पाना, सब ओर से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

सर्वाणि शुक्लान्यतिशोभनानि कार्पासभस्मौदनतक्रवर्ज्यम् ।
सर्वाणि कृष्णान्यतिनिन्दितानि गोहस्तिदेवद्विजवाजिवर्ज्यम् ॥

स्वप्नस्तु प्रथमे यामे वत्सरान्ते फलप्रदः । द्वितीयेऽष्टमासैः, तृतीये त्रिमासान्ते, चतुर्थे यामे मासान्ते, अरुणोदये दशाहान्ते । सूर्योदये सद्यःफलम् ।

कपास, भस्म, भात और मट्ठा को छोड़कर जितनी सफेद चीजें स्वप्न में देखता है अत्यन्त सुन्दर फलदायक है । गाय, हाथी, देवता, द्विज और घोड़े को छोड़कर सभी काली चीजें स्वप्न में अत्यन्त निन्दित हैं। रात के पहिले प्रहर में देखा हुआ स्वप्न सालभर के बाद फलप्रद है । दूसरे प्रहर में देखा हुआ आठ महीने के बाद, तीसरे प्रहर में तीन महीने के बाद, चौथे प्रहर में महीने भर के बाद और अरुणोदय में देखा हुआ स्वप्न दस दिन बाद शुभाशुभ फल देता है । सूर्योदय में तुरन्त फल देने वाला होता है ।

अथ दुःस्वप्नदर्शने कृत्यम्

यो मे राजन्नित्यृचा सूर्योपस्थाने दुःस्वप्ननाशः, अधःस्वप्नस्येति जपाद्वा । क्वचिद्दर्शवच्छ्राद्धेन दुःस्वप्ननाशः, चण्डीसप्तशतीपाठेन वा । यद्वा श्रीविष्णु-सहस्रनामस्तोत्रजपः कार्यः । अथवा श्रीभारतस्थस्य श्रीमद्भागवतस्थस्य वा गजेन्द्रमोक्षस्य श्रवणं पाठो[1] वा । इति दुःस्वप्ननाशकविधिः ।

'यो मे राजन्' इस ऋचा से सूर्योपस्थान करने अथवा 'अधः स्वप्नस्य' इस मन्त्र के जप से दुःस्वप्न का नाश होता है । कहीं पर दर्शश्राद्ध करने से भी दुःस्वप्न का नाश होना कहा है । चण्डी सप्तशती के पाठ या विष्णुसहस्रनामस्तोत्र के जप से भी दुःस्वप्न दूर होता है । अथवा महाभारतस्थित या भागवतस्थित गजेन्द्रमोक्ष का सुनना या पाठ करना भी दुःस्वप्ननाशक है । दुःस्वप्ननाशकविधि समाप्त ।

इत्थं गर्भाधानादुद्वाहान्ताः समस्तसंस्काराः ।
सपरिकरा[2] निर्णीता अस्मिस्तार्तीयपूर्वार्धे ॥ १ ॥
तत आह्निक आचारस्तत आधानादिकाः प्रकीर्णार्थाः ।
शान्तिकपौष्टिकमुख्या नित्या नैमित्तिकाश्चोक्ताः ॥ २ ॥
पूर्वपरिच्छेदकयोः कालः सामान्यतो विशेषाच्च ।
निर्णीतः सह कृत्यैस्तिथिमासाद्येषु विध्युक्तैः ॥ ३ ॥
नानापापे प्रायश्चित्तं व्यवहारविस्तरश्चापि ।
उपदानमहादानादिविधिश्चोक्तो मयूखादौ ॥ ४ ॥

इस प्रकार इस तृतीय परिच्छेद के पूर्वार्द्ध में गर्भाधान से विवाहपर्यन्त समस्त संस्कार का सांगोपांग निर्णय किया है । इसके बाद आह्निक आचार, तदनन्तर आधान आदि, शान्तिक-पौष्टिक

---

१. कुक्कुट नामक ब्राह्मण के स्मरण से भी दुःस्वप्न सुखदायक होता है, जैसा कि कहा है—'वाराणस्यां दक्षिणे भागे कुक्कुटो नाम ब्राह्मणः । तस्य स्मरणमात्रेण दुःस्वप्नः सुखदो भवेत् ॥' इति ।

२. परिकरेण विचारेण सहिताः सपरिकराः, 'भवेत् परिकरो व्राते पर्यङ्कपरिवारयोः । प्रगाढ-गात्रिकाबन्धे विवेकारम्भयोरपि' ॥' ति इविश्वः ।

मुख्य नित्यनैमित्तिक कर्म कहा है । पूर्व परिच्छेद के सामान्य और विशेष रूप से काल का कृत्यों के सहित तिथि मास के आदि में शास्त्रोक्त निर्णय किया है । नाना प्रकार के पापों का प्रायश्चित्त व्यवहार का विस्तार और उपदान महादान आदि की विधि मयूख आदि में कही है ॥ १-४ ॥

श्राद्धविधिः साङ्गोऽप्याशौचे निर्णीतिरन्त्यसंस्कारः ।
तार्तीयकस्योत्तरखण्डेऽग्रे संप्रवक्ष्यन्ते ॥ ५ ॥

मूलभूतानि पद्यानि विकृतानि क्वचित्क्वचित् ।
निर्विकाराण्यपि नवान्यप्युक्तान्यत्र कानिचित् ॥ ६ ॥

मीमांसाधर्मशास्त्रज्ञाः सुधियोऽनलसा बुधाः ।
कृतकार्याः प्राङ्निबन्धैस्तदर्थं नायमुद्यमः ॥ ७ ॥

ये पुनर्मन्दमतयोऽलसा अज्ञाश्च निर्णयम् ।
धर्मे वेदितुमिच्छन्ति रचितस्तदपेक्षया ॥ ८ ॥

निबन्धोऽयं धर्मसिन्धुसारनामा सुबोधनः ।
अमुना प्रीयतां श्रीमद्विठ्ठलो भक्तवत्सलः ॥ ९ ॥

प्रेम्णा सद्भिर्ग्रन्थः सेव्यः शब्दार्थतः सदोषोऽपि ।
संशोध्य वापि हरिणा [1]सुदाममुनिसतुषपृथुकमुष्टिरिव ॥ १० ॥

अंगों के सहित श्राद्ध की विधि, आशौच का निर्णय और अन्त्य संस्कार तृतीय परिच्छेद के उत्तरार्द्ध में कहूँगा । मूलभूत पद्य कहीं विकृत, कहीं कुछ अविकृत और नये भी कहे हैं । मीमांसा धर्मशास्त्र के जानने वाले आलस्यशून्य पण्डितगण पहिले के निबन्धों से जो कृतकार्य हैं, उनके लिये यह प्रयास नहीं है । आलसी, अल्पज्ञ और मन्द बुद्धि जो धर्म को जानने की इच्छा करते हैं, उनके लिये इस निबन्ध को बनाया हूँ । यह धर्मसिन्धुसार नामक निबन्ध सुबोध है, इससे भक्तप्रिय श्रीविट्ठल भगवान् प्रसन्न हों । शब्द और अर्थ से दोषयुक्त भी इस ग्रन्थ का संशोधन कर प्रेम से सज्जनों को पढ़ना चाहिये, जैसे भगवान् ने सुदामा मुनि के मुट्ठी भर चिउड़े को प्रेम से अपनाया ॥ ५-१० ॥

श्रीकाश्युपाध्यायवरो महात्मा बभूव विद्वद्द्विजसार्वभौमः ।
तस्मादुपाध्यायकुलावतंसौ यज्ञेश्वरोऽनन्त इमावभूताम् ॥ ११ ॥

यज्ञेश्वरो यज्ञविधानदक्षो देवज्ञवेदाङ्गसुशास्त्रशिक्षः ।
भक्तोत्तमोऽनन्तगुणैकधामानन्ताह्वयोऽनन्तकलावतारः ॥ १२ ॥

---

१. सुदाममुनेः सतुषो धान्यत्वग्युक्तः पृथुकः चिपिटः 'चिउडा' इति ख्याततस्य मुष्टिः, 'पृथुकः पुंसि चिपिटे शिशौ स्यादभिधेयवत्' इति मेदिनी । यथा श्रीकृष्णः प्रियसुहृदः श्रीसुदाममुनेस्तुषयुक्तमपि चिपिटान्नं प्रेम्णा स्वीकृतवान् तथैव सज्जनाः शब्दतोऽर्थतश्च दोषयुक्तमपि धर्मसिन्धुसाराख्यं ग्रन्थं प्रेम्णा स्वीकुर्युः संशोध्य वा पठेयुः । एवं सत्पुरुषाः सुदाममिश्रस्य ममैतां कृतिं सुधाविवृतिमपि दोषान् संशोध्य स्वीकुर्वन्तु ।

एषोऽत्यजज्जन्मभुवं स्वकीयां तां [1]कौङ्कणाख्यां सुविरक्तिशाली ।
श्रीपाण्डुरंगे वसतिं विधाय भीमातटे मुक्तिमगात्सुभक्त्या ॥ १३ ॥

तस्यानन्ताभिधानस्योपाध्यायस्य सुतः कृती ।
काशीनाथाभिधो धर्मसिन्धुसारं समातनोत् ॥ १४ ॥

इति धर्मसिन्धुसारे तृतीयपरिच्छेदपूर्वार्धं समाप्तम् ।

श्रीकाशी उपाध्याय विद्वान् द्विज का सार्वभौम महात्मा हुए। उनसे उपाध्याय कुलावतंस यज्ञेश्वर और अनन्त नामक दो पुत्र हुए। यज्ञेश्वर यज्ञ विधान-कुशल, ज्योतिषी, वेदांग शास्त्रों में सुस्थिर, उत्तम भक्त हुए। भक्तों में उत्तम, अनन्त गुणों का एक स्थान और अनन्त कलाओं का अवतार श्रीअनन्तोपाध्याय ने अपनी कोंकणनामक जन्मभूमि को त्याग दिया और विरक्तिवश पाण्डुरंग में भीमा नदी के तट पर पर निवास बनाकर सुन्दर भक्ति से मुक्ति को प्राप्त किया। उस अनन्तोपाध्याय के पुत्र, कुशल काशीनाथोपाध्याय ने इस धर्मसिन्धुसार को बनाया ॥ ११-१४ ॥

तृतीय परिच्छेद का पूर्वार्ध समाप्त।



१. कोङ्कण एव कौङ्कणः स्वार्थे अणूप्रत्ययः। कौङ्कणः आख्या नामधेयं यस्याः सा तां कौङ्कणाख्याम्। सह्याद्रि और समुद्र के मध्यवर्ती भूखण्ड को कोङ्कण कहते हैं।

तृतीयपरिच्छेदपूर्वार्द्धे सुधा-विवृतिः समाप्ता।

तृतीयः परिच्छेदः

उत्तरार्द्धम्

श्रीरुक्मिणीं पाण्डुरङ्गं प्रणम्य पितरौ गुरून् ।
तृतीयच्छेदोत्तरार्धं तनोमि [1]श्रीशतुष्टये ॥ १ ॥
श्रीनाथः करुणासिन्धुरिन्दिराशंकरः[2] सती ।
विघ्नेशो भास्करेन्द्राद्या विघ्नान्घ्नन्तु सदैव मे ॥ २ ॥

श्रीरुक्मिणी को पाण्डुरंग (श्रीकृष्ण) को, माता पिता तथा गुरुओं को प्रणाम कर लक्ष्मीपति भगवान् के प्रसन्नार्थं तृतीय परिच्छेद का उत्तरार्द्ध बनाता हूँ। कृपा का समुद्र लक्ष्मी, शंकर, सती पार्वती, गणेश, सूर्य, इन्द्र आदि देवतागण, सदैव मेरे विघ्नों का नाश करें ॥ १-२ ॥

अथ जीवत्पितृकाधिकारनिर्णयः

तत्र तावच्छ्राद्धादिनिर्णयं वक्तुमधिकारनिर्णयाय जीवत्पितृकाधिकारो विविच्यते ।

पादुके चोत्तरीयं च तर्जन्यां रूप्यधारणम् ।
न जीवत्पितृकः कुर्याज्ज्येष्ठे भ्रातरि जीवति ॥

अत्र पादुके काष्ठमय्यौ उत्तरीयं सग्रन्थिपरिमण्डलं वस्त्रमेकद्व्यंगुलादिविस्तृतं सूत्रकृतं परिमण्डलरूपं वा उत्तरीयस्थानापन्नं स्मृत्युक्तं [3]तृतीययज्ञोपवीतं वा जीवत्पितृकेण जीवज्ज्येष्ठभ्रातृकेण च न धार्यमिति तात्पर्यम्। प्रावरणरूपं द्वितीयवस्त्रं तु जीवत्पितृकादिभिः सर्वैर्धार्यम्, 'एकवस्त्रो न भुञ्जीत न कुर्याद्देवतार्चनम्' इत्यादिना सर्वकर्मस्वेकवस्त्रत्वनिषेधात् ।

पहले श्राद्धादि के निर्णय कहने के लिये अधिकार-निर्णयार्थं जीवत्पितृक के अधिकार का विवेचन करता हूँ। जीवत्पितृक—जेठे भाई के जीते खड़ाऊं, दुपट्टा और तर्जनी अंगुली में चान्दीका

---

१. श्रियो लक्ष्म्याः ईशः स्वामी विष्णुस्तस्य तुष्टये प्रीतये इति श्रीशतुष्टये, 'लक्ष्मीः पद्मालया पद्मा कमला श्रीर्हरिप्रिया' इत्यमरः । 'ईशः स्वामिनि रुद्रे च' इति हैमः ।

२. इन्दिराया रमायाः शं कल्याणं करोतीति इन्दिराशङ्करः । 'इन्दिरा लोकमाता मा क्षीरोदतनया रमा' इत्यमरः । भगवान् विष्णु केवल इन्दिरा का ही नहीं, अपितु सभी प्राणियों का कल्याणकर्ता हैं । स्कन्दपुराण में कहा है—'शं करोमि सदा ध्यानात् परमं यन्निरामयम् । भूतानामसकृद्यस्मात्तेनाहं शङ्करः स्मृतः ॥' बृहन्नारदीय में विष्णु और शिव का अभेद-प्रतिपादन करते हुये कहा है—'हरिरेव हरः साक्षात् हर एव हरिः स्वयम् । तयोरन्तरकृद्याति नरकं कोटि-कोटिशः ॥' इति ।

३. हेमाद्रि में—'यज्ञोपवीते द्वे धार्ये श्रौते स्मार्ते च कर्मणि । तृतीयमुत्तरीयार्थे वस्त्राभावे तदिष्यते ॥' इस वचन से जो तीसरा यज्ञोपवीत-धारण का विधान है उसका यहाँ निषेध है, जिनके पिता और बड़ा भाई जीवित हों ।

धारण नहीं करे। यहाँ पादुका से काठ की बनी हुई और उत्तरीय ग्रन्थिसहित एक दो अंगुल आदि विस्तृत सूत्र का बनाया हुआ परिमण्डल रूप या उत्तरीय-स्थानापन्न स्मृति-प्रोक्त तृतीय यज्ञोपवीत जीवत्पितृक और जीवत् ज्येष्ठभ्रातृक को नहीं धारण करना चाहिये, यह तात्पर्य है। प्रावरणरूप-द्वितीय वस्त्र तो जीवत्पितृक आदि सबको धारण करना चाहिये, क्योंकि—वस्त्र धारण कर न भोजन करे और न देवता का पूजन—इत्यादि वचन से सभी कर्म में एक वस्त्र का निषेध है।

अथ आधानविवाहसोमाधिकारविचारः

पितरि पितामहे ज्येष्ठभ्रातरि चाकृताधाने जीवति पुत्रपौत्रकनिष्ठभ्रातृभिराधानं[1] न कार्यम्। ज्येष्ठभ्रातर्यकृतविवाहे कनिष्ठेन विवाहो न कार्यः। अत्र विशेषः पूर्वार्धे उक्तः। एवं पित्रादिष्वकृतसोमयागेषु जीवत्सु पुत्रादेः सोमे नाधिकारः। एवं पूर्णमासेष्टौ दर्शेष्टावग्निहोत्रहोमे च पित्राद्यैरनारब्धे पुत्रादेर्नाधिकारः।

पिता पितामह और जेठे भाई के आधान न करने पर जीते हुए पुत्र पौत्र और छोटे भाई आधान न करे। जेठे भाई के विवाह न करने पर छोटे भाई को विवाह न करना चाहिये। इसमें विशेष पूर्वार्द्ध में कहा है। इसी प्रकार पिता आदि के सोमयाग नहीं करने पर पुत्रादि को सोमयाग का अधिकार नहीं है। इसी तरह पूर्णमासेष्टि, दर्शेष्टि और अग्निहोत्र में भी पिता आदि के आरम्भ नहीं करने पर पुत्रादि का अधिकार नहीं है।

अथ संन्यासविचारः

एवं संन्यासेऽपि कनिष्ठस्य सोदरस्यैव दोषो न भिन्नोदरस्य भ्रातुः। पित्रादेराज्ञायां पुत्रादेर्न दोष इति केचित्। अधिकारिणि पितरि सत्याज्ञायामपि दोषः। पातित्यजात्यन्धत्वादिदोषैरनधिकारिण्याज्ञया न दोषः। पातित्यादावाज्ञां विनापि न दोष इत्यपरे। तथा जीवत्पितृकस्य [2]पितृकृत्येषु दर्शादिश्राद्धतर्पणपैतृकदानेषु नाधिकारः।

इसी तरह संन्यास में भी छोटे सहोदर को ही दोष होता है, भिन्नोदर भाई को नहीं। कुछ लोग कहते हैं कि—पिता आदि की आज्ञा से पुत्रादिक को दोष नहीं होता। दूसरे कहते हैं—अधिकारी पिता के रहते हुए आज्ञा देने पर भी दोष होता है। पातित्य जन्मान्धत्व आदि दोषों से अनधिकारी को आज्ञा देने में दोष नहीं है। पातित्य आदि में आज्ञा के बिना भी दोष नहीं है। उसी प्रकार जीवत्पितृक को पितृकृत्यों में दर्शादि श्राद्ध, तर्पण और पैतृकदानों में अधिकार नहीं है।

अत्र विशेषः—स्वापत्यसंस्कारस्वद्वितीयविवाहादिनिमित्तकनान्दीश्राद्धे चातुर्मास्यान्तर्गतपितृयज्ञे सोमाङ्गतृतीयसवनस्थपितृयज्ञे जीवत्पितुरधिकारः। पिण्ड-

---

१. जैसा गार्ग्य ने निषेध किया है—'सोदर्ये तिष्ठति ज्येष्ठे न कुर्याद्दारसङ्ग्रहम्। आवसथ्यं तथाऽऽधानं पतितस्तु तथा भवेत्॥' इति। विशेष वचन पूर्वार्ध सुधाविवृति में देखें।

२. कात्यायन ने कहा है—'सपितुः पितृकृत्येषु अधिकारो न विद्यते।' हारीत ने भी कहा है—'जीवे पितरि वै पुत्रः श्राद्धकालं विवर्जयेत्' इति।

हेमाद्रि में कौण्डिन्य का दर्शश्राद्ध का निषेधक वचन यों है—'दर्शश्राद्धं गयाश्राद्धं श्राद्धं चापरपक्षिकम्। न जीवत्पितृकः कुर्यात्तिलतर्पणमेव च॥' इति।

पितृयज्ञे होमान्तः पिण्डपितृयज्ञोऽनारम्भो वा पिण्डपितृयज्ञस्येति 'पक्षद्वयम्। पितुः पित्राद्युद्देशेन पिण्डदानमिति तृतीयः पक्षः क्वचित्। एवमष्टकादिविकृतिष्वपि पक्षत्रयम्।

इसमें विशेष यह है—अपने अपत्य का संस्कार अपने द्वितीय विवाह आदि निमित्तक नान्दीश्राद्ध में, चातुर्मास्यान्तर्गत पितृयज्ञ में, सोमांग और तृतीय सवनस्थ पितृयज्ञ में, जीवत्पितृक का अधिकार है। पिण्डपितृयज्ञ में होमान्त पिण्डपितृयज्ञ, या अनारम्भ पिण्डपितृयज्ञ ये दो पक्ष हैं। कहीं पर पिता के पिता आदि के उद्देश्य से पिण्डदान, यह तीसरा पक्ष है। इसी प्रकार अष्टका आदि विकृति में भी तीन पक्ष हैं।

अथ गयादिश्राद्धविचारः

गयां प्रसङ्गतो गत्वा मातुः श्राद्धं सुतश्चरेत्। जीवत्पिता मातुः श्राद्धमुद्दिश्य गयां न गच्छेत्। महानदीषु सर्वासु तीर्थे च प्राप्ते जीवत्पितृकः पितुः पितृमात्राद्युद्देशेन श्राद्धं कुर्यात्। नवम्यामन्वष्टकाश्राद्धं क्षयाहे मातुः प्रत्यब्दश्राद्धं च सपिण्डकमेव जीवत्पितृकः कुर्यात्। तथा संन्यस्ते ताते पतिते च ताते जीवत्यपि सति दर्शश्राद्धमहालयसंक्रान्तिग्रहणादिश्राद्धानि सर्वाणि पितुः पित्राद्युद्देशेन जीवत्पितृकेण कार्याणि। एतानि च सांकल्पिकविधिना पिण्डरहितानि कार्याणि। अन्वष्टक्यादाविव पिण्डदाने विशेषवचनाभावात्।

प्रसंग से गया जाकर पुत्र माता का श्राद्ध करे। जीवत्पितृक माता के श्राद्ध के उद्देश्य से गया न जाय। जीवत्पितृक सम्पूर्ण महानदियों में और तीर्थ प्राप्त होने पर पिता के पिता-माता के उद्देश्य से श्राद्ध करे। नवमी में अन्वष्टका श्राद्ध और मृताह में माता का प्रत्यब्द श्राद्ध सपिण्डक ही करे। इसी प्रकार संन्यस्त पिता अथवा पतित पिता के जीते हुए भी दर्शश्राद्ध-महालय-संक्रान्ति-ग्रहण आदि सब श्राद्धों को पिता के पिता आदि के उद्देश्य से जीवत्पितृक करे। ये सब श्राद्ध सांकल्पिक विधि से पिण्डरहित करना चाहिये, क्योंकि अन्वष्टका आदि की तरह पिण्डदान में विशेष वचन का अभाव है।

अथ दौहित्रप्रतिपच्छ्राद्धम्

आश्विनशुक्लप्रतिपदि दौहित्रो जीवत्पितृकः सपिण्डकं मातामहश्राद्धं कुर्यात्।

---

१. जैसा कात्यायन ने बतलाया है—'होमान्तमनारम्भो वा' इति। 'जीवन्तं पितरं भोजयित्वा परयोः श्राद्धं कुर्यात्' यह भी पक्ष है, जैसा यज्ञपार्श्व की उक्ति है—'होमान्तः पितृयज्ञः स्याज्जीवे पितरि जानतः। पितरं भोजयित्वा वा पिण्डौ निपृणुयात् परौ॥ येभ्यः पिण्डान् पिता दद्यात्तेभ्यः पुत्रोऽपि वा ददेत्।' जीवतां पिण्डानग्नौ हुत्वा परेभ्यो देयम्' इस पक्ष में प्रमाण है—'जुहुयाज्जीवेभ्यः' यह आश्वलायन की उक्ति। 'जीवतामजीवतां च पिण्डदानम्' इस पक्ष की पुष्टि में निगमोक्त वचन है—'जीवतामजीवतां वा देयमेवेति हिरण्यकेतुः' इति। 'तस्माज्जीवत्पिता कुर्याद् द्वाभ्यामेव न संशयः' इस भविष्य की उक्ति से दो का श्राद्ध करे, यह भी पक्ष है।—

इस प्रकार निर्णयसिन्धुकार ने अनेक पक्ष बतलाते हुये कहा है—'एते पक्षाः कलौ निषिद्धाः, 'प्रत्यक्षमर्चनं श्राद्धे निषिद्धं मनुरब्रवीत्। पिण्डनिर्वपणं चापि महापातकसम्मितम्॥' इति पृथ्वीचन्द्रोदये भविष्योक्तेः।' इसलिये पिता के जीते श्राद्ध का आरम्भ ही नहीं करे यही एक पक्ष है, जैसा कात्यायन ने हो कहा है—'सपितुः पितृकृत्येषु अधिकारो न विद्यते' इति।

आश्विन शुक्ल प्रतिपदा में जीवत्पितृक दौहित्र (लड़की का लड़का) पिण्डसहित मातामह (नाना) का श्राद्ध करे।

अथ पितृव्यादीनां प्रतिवर्षं क्षयाहश्राद्धविचारः

तथा भ्रातृपुत्रोऽपुत्रस्य पितृव्यस्य प्रत्यब्दश्राद्धं सपिण्डं कुर्यात्। एवं कनिष्ठ-भ्राताप्यपुत्रज्येष्ठभ्रातुः प्रत्यब्दम्। तथा सपत्नीपुत्रः सापत्नमातुः श्राद्धम्। एवं दौहित्रोऽपुत्रस्य मातामहस्य प्रत्यब्दम्। इत्थं च पितृव्यादिश्राद्धचतुष्टये जीवत्पितृकस्याप्यधिकारः। पितृव्यभ्रात्रादीनामपुत्राणां पत्नीसत्त्वे सैवाधिकारिणी न तु भ्रातृपुत्रादेः श्राद्धाधिकारः। एवं पतिरेव पुत्राभावे भार्याश्राद्धं कुर्यात्। सपत्नी-पुत्रसत्त्वे तु स एव कुर्यान्न भर्ता।

इसी प्रकार भतीजा पुत्ररहित चाचा का प्रत्यब्द श्राद्ध पिण्डसहित करे। इसी तरह छोटा भाई भी पुत्ररहित जेठे भाई का प्रतिवार्षिक श्राद्ध करे। और सौतेली माता का पुत्र सौतेली माता का श्राद्ध करे। एवं लड़की का लड़का पुत्ररहित नाना का प्रत्यब्द श्राद्ध करे। इस रीति से पितृव्य आदि चारो श्राद्धों में जीवत्पितृक का भी अधिकार है। पुत्ररहित पितृव्य भ्रात्रादि की पत्नी के रहने पर वही श्राद्धा-धिकारिणी है, भ्रातृपुत्रादि को श्राद्ध का अधिकार नहीं है। पुत्र के नहीं रहने पर पति ही भार्या का श्राद्ध करे। सौतेले पुत्र के रहने पर तो सौतेली माता का वही श्राद्ध करे, पति न करे।

दौहित्रभ्रातृपुत्रयोः सत्त्वे मृतस्य विभक्तत्वे दौहित्र एव, अविभक्तत्वे भ्रातृ-पुत्रः। केचिद् [1]भ्रातृतत्पुत्रयोः सत्त्वे भ्रात्रैव श्राद्धं कार्यमित्याहुः। तथा जीवत्पितृ-कस्य पितृपितामहादिमनुष्यपितृतर्पणनिषेधेऽपि [2]अग्निष्वात्तादिदेवपितृतर्पणनिषेधा-भावात्स्नानाङ्गपितृतर्पणे ब्रह्मयज्ञाङ्गभूतदेवरूपिपितृतर्पणे चाधिकारोऽस्त्येव। एवं यदीयश्राद्धेऽधिकारस्तदीयश्राद्धाङ्गतर्पणेऽप्यधिकारः।

लड़की का लड़का और भतीजा के रहने पर विभक्त मरने वाले का लड़की का लड़का ही श्राद्ध करे, विभक्त न हो तो भातृपुत्र श्राद्ध करे। कुछ लोग—भाई और भतीजे के रहते भाई को ही श्राद्ध करना चाहिये, ऐसा कहते हैं। इसी प्रकार जीवत्पितृक को पितृ-पितामहादि-मनुष्य-पितृतर्पण के निषेध होने पर भी अग्निष्वात्तादि देव-पितृ-तर्पण का निषेध न होने से स्नानांग पितृ-तर्पण में ब्रह्मयज्ञांगभूत देवरूपी पितृतर्पण में अधिकार है ही। इसी तरह जिसके श्राद्ध में अधिकार है उसका श्राद्धांग तर्पण में भी अधिकार है।

---

१. हारलतादि में ब्रह्मपुराण के—'भ्रातुर्भ्राता स्वयं चक्रे तद्भार्या चेन्न विद्यते। तस्य भ्रातृ-सुतश्चक्रे यस्य नास्ति सहोदरः॥' इस वचन से और कूर्मपुराण के—'पत्नी कुर्यात् सुताभावे पत्न्यभावे सहोदरः' इस वचन से बड़ा भाई ही करे उसका पुत्र नहीं, ऐसा कहा है।

२. अग्निष्वात्त मरीचि के पुत्र और देवताओं के पितर हैं, जैसा मनु ने बतलाया है—'विराट्सुताः सोमसदः साध्यानां पितरः स्मृताः। अग्निष्वात्ताश्च देवानां मारीचा लोकविश्रुताः॥' अर्थात् विराट् के पुत्र सोमसद, साध्यों और मरीचि के पुत्र अग्निष्वात्त देवताओं के पितर हैं। मरीचि उन दस महर्षियों में हैं जिन्हें सर्व प्रथम मनु ने उत्पन्न किया। मनु ने उन दसों के नाम बतलाये हैं—'मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्। प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदमेव च॥' इनमें अत्रि के पुत्र बर्हिषद्—दैत्य-दानवादि के पितर हैं—'दैत्यदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम्। सुपर्णकिन्नराणां च स्मृता बर्हिषदोऽत्रिजाः॥' इति।

अथ भीष्मतर्पणम्

जीवत्पितापि कुर्वीत तर्पणं यमभीष्मयोः। श्राद्धाङ्गतर्पणभिन्नतर्पणं जीवत्पितृकेण तिलैर्न कार्यम्। श्राद्धप्रयोगमध्ये वामजानुन्यग्भावो नीवीबन्धश्च न कार्यः। नद्यादौ स्नात्वा तर्पणान्ते समन्त्रकं वस्त्रनिष्पीडनं विहितं[1] तन्न कार्यम्। तथा 'खड्गमौक्तिकहस्तेन कर्तव्यं पितृतर्पणम्' इति विहितं खड्गधारणं न कार्यम्।

अपसव्यं द्विजाग्र्याणां पित्र्ये कर्मणि कीर्तितम्।
आप्रकोष्ठात्तु कर्तव्यमेतत्पितरि जीवति॥

यम और भीष्म का तर्पण जीवत्पितृक भी करे। श्राद्धांग तर्पण से भिन्न तर्पण तिल से जीवत्पितृक को नहीं करना चाहिये। श्राद्ध प्रयोग के मध्य में बाएं जंघे का झुकाना और नीवी-बन्धन नहीं करना चाहिये। नदी आदि में स्नान करके तर्पण के अन्त में समन्त्रक वस्त्रनिष्पीडन जो विहित है उसे न करे। तथा गेंडा और मोती को हाथ में धारण कर पितृतर्पण करना चाहिये, इस वचन से विहित खड्ग (गेंडा) का धारण न करे। पितृकर्म में ब्राह्मणों को अपसव्य से कर्म करना कहा है वह अपसव्य पिता के जीवित रहते प्रकोष्ठपर्यन्त कर्तव्य है।

अथ पितरि जीवति महालयादौ वाक्यकल्पना

जीवति संन्यस्तादिरूपे पितरि मृतमातृमातामहकोऽपि पुत्रः पितुः पितृपितामहप्रपितामहानां पितुर्मातृपितामहीप्रपितामहीनां पितुर्मातामहमातृपितामहमातृप्रपितामहानामिति पार्वणत्रयमेकोद्दिष्टगणं च स्वमातरं पितुः पत्न्या इति स्वपितृव्यं पितुर्भ्रातुरिति स्वमातामहं च पितुः श्वशुरस्येत्येवमादिना पितृसंबन्धपुरस्कारेणैवोद्दिश्य महालयश्राद्धं कुर्यात्। एवं दर्शादिषूह्यम्। पितुः संन्यासाभावेऽपि तीर्थश्राद्धं जीवत्पितुरेवमेव। एवं वृद्धिश्राद्धेऽप्यूह्यम्। ब्रह्मयज्ञान्ते नित्यं पितृतर्पणमपि संन्यस्तादिरूपजीवत्पितृकेणैवमेव कार्यमित्याहुः।

संन्यस्त आदि के रूप में पिता के जीते रहते, माता और मातामह के मरने पर भी पुत्र पिता के पितृ-पितामह-प्रपितामहों का, पिता की माता-पितामही-प्रपितामही का और पिता के मातामह और माता के पितामह तथा माता के प्रपितामह का यह पार्वणत्रय और एकोद्दिष्टगण—अपनी माता का—पिता की पत्नी, अपने पितृव्य का—पिता का भाई और अपने नाना का—पिता का श्वशुर इत्यादि वाक्य से पिता का सम्बन्ध प्रदर्शन करके ही महालय श्राद्ध करे। इसी प्रकार दर्श आदि में कल्पना करे। जीवत्पितृक पिता के संन्यास के अभाव में भी इसी प्रकार तीर्थश्राद्ध करे। इसी प्रकार वृद्धिश्राद्ध में भी कल्पना करे। ब्रह्मयज्ञ के अन्त में नित्य पितृतर्पण भी संन्यस्तादिरूप पिता वाले जीवत्पितृक को इसी प्रकार करना चाहिये, ऐसा कोई कहते हैं।

अथ मात्रादीनां वार्षिकादौ वाक्यकल्पना

यदा तु मातुर्वार्षिकमपुत्रमातामहवार्षिकमपुत्रपितृव्यवार्षिकं वा क्रियते तदा क्रमेण मातृपितामहीप्रपितामहीनां मातामहमातृपितामहमातृप्रपितामहानां

---

१. वृहत्पराशर के—'निःपीडयेत्स्नानवस्त्रं तिलदर्भसमन्वितम्। न पूर्वं तर्पणाद्वस्त्रं नैवाम्भसि न पादयोः॥' इस वचन से विहित का जीवत्पितृकों के लिये निषेध है।

पितृव्यपितामहप्रपितामहानामित्येवोद्देशः। यदा च पित्रादिभिः स्वाशक्त्यादिना नियोजितः पित्रादिकरणीयं श्राद्धं स्वयं पित्रादेः [1]प्रतिनिधिभूय करोति तदा पितुरमुकशर्मणो यजमानस्य पितृपितामहप्रपितामहानामित्येवं यथाश्राद्धमुद्देशः।

जब माता का वार्षिक, पुत्रहीन मातामह का या पुत्रहीन पितृव्य का वार्षिक करे तब क्रम से माता-पितामही-प्रपितामही का, मातामह माता के पितामह और माता के प्रपितामह का, पितृव्य के पितामह और प्रपितामह का, यही उद्देश्य से करे। जब अपनी असमर्थता से पिता द्वारा नियुक्त पुत्र पिता आदि के करने योग्य श्राद्ध को पिता आदि का प्रतिनिधि होकर स्वयं करता है तब अमुक शर्मा पिता यजमान के पिता पितामह और प्रपितामह का, इस प्रकार श्राद्ध के अनुसार उद्देश करे।

अथ ज्येष्ठाधिकारविचारः

सर्वत्र पितृकृत्ये भ्रातृष्वविभक्तेषु [2]ज्येष्ठस्यैवाधिकारः। विभक्तेषु पृथक् पृथक्। सापत्नभ्रातरि ज्येष्ठे सत्यपि कनिष्ठ एव स्वमातृवार्षिकान्वष्टक्यादि कुर्यात्।

सर्वत्र पितृकृत्य में अविभक्त भाइयों में ज्येष्ठ ही का अधिकार है। विभक्त भाइयों में अलग-अलग श्राद्ध होता है। सौतेले भाई के जेठे रहने पर भी छोटा भाई ही अपनी माता का वार्षिक अन्वष्टक्यादि श्राद्ध करे।

अथ पितृपितामहयोर्जीवने विचारः

जीवत्पितृपितामहकस्य संन्यस्तपितृपितामहकस्य च पितामहस्य पित्राद्युद्देशेन वृद्धिश्राद्धं तीर्थश्राद्धं दर्शादिश्राद्धं वा भवति। पित्रादिषु त्रिषु जीवत्सु सत्सु संन्यस्तेषु च न किमपि श्राद्धं कार्यम्। केचित्तु पित्रादित्रयात्परेभ्यः श्राद्धं देयमाहुः।

जिसके पिता पितामह जीते हों वह और जिसके पिता पितामह संन्यासी हो गये हों, उसका पितामह के पिता आदि के उद्देश्य से वृद्धिश्राद्ध तीर्थश्राद्ध या दर्शादि श्राद्ध होता है। पिता आदि

---

१. प्रतिनिधि को उन सभी नियमों का पालन करना चाहिये, जो कर्ता के लिये श्राद्ध में विहित हैं, जैसा हेमाद्रि में वाराह की उक्ति है—'न शक्नोति स्वयं कर्तुं यदा ह्यनवकाशतः। श्राद्धं शिष्येण पुत्रेण तदाऽन्येनापि कारयेत्॥ नियमानाचरेत् सोऽपि नियमांश्च वसुन्धरे। यजमानोऽपि तान्सर्वानाचरेत् सुसमाहितः॥' इति।

२. पृथ्वीचन्द्रोदय में मरीचि ने अविभक्त भाइयों में बड़े भाई के लिये कहा है—'बहवः स्युर्यदा पुत्राः पितुरेकत्र वासिनः। सर्वेषां तु मतं कृत्वा ज्येष्ठेनैव तु यत्कृतम्॥ द्रव्येण चाविभक्तेन सर्वैरेव कृतं भवेत्।' अर्थात् बड़े भाई के करने पर भी सभी भाई श्राद्ध-फल का भागी होते हैं।

उशना ने विभक्त भाइयों के सम्बन्ध में कहा है—'नवश्राद्धं सपिण्डत्वं श्राद्धान्यपि च षोडश। एकेनैव तु कार्याणि संविभक्तधनेष्वपि॥' लघुहारीतः—'सपिण्डीकरणान्तानि यानि श्राद्धानि षोडश। पृथङ्नैव सुताः कुर्युः पृथग्द्रव्या अपि क्वचित्॥ ऊर्ध्वं सपिण्डीकरणात् सर्वे कुर्युः पृथक् पृथक्।' मदनरत्ने—'विभक्तास्तु पृथक् कुर्युः प्रतिसंवत्सरादिकम्। एकेनैवाविभक्तेषु कृते सर्वैस्तु तत्कृतम्॥' इति।

तीन के जीते रहने पर या संन्यासी होने पर कोई श्राद्ध नहीं करे। कुछ लोग तो—पिता आदि तीन से परे का श्राद्ध करना चाहिये—ऐसा कहते हैं।

अथ पितरि मृते पितामहे जीवति विचारः

मृते पितरि पितामहजीवने पित्रे पितामहात्पराभ्यां च श्राद्धं देयम्। एवं पितृपितामहमरणे प्रपितामहजीवनेऽप्यूह्यम्[1]।

पिता के मरने और पितामह के जीवित रहने पर पिता के पितामह से परे दो का श्राद्ध करे। इसी प्रकार पिता पितामह के मरने और प्रपितामह के जीवित रहने में भी कल्पना कर ले।

अथ गृह्याग्निश्रौताग्निमतोर्विशेषः

यस्तु गृह्याग्निमान् जीवन्मातृपितृकः पितुः पित्रादिभ्यः पिण्डदानमिति तृतीयपक्षाश्रयेणारब्धपिण्डपितृयज्ञाष्टकान्वष्टकाश्राद्धोऽन्वष्टकायां च पितुः पित्रादिमात्रादिमातामहादिभ्यः पिण्डादिकं ददान आसीदनन्तरं च माता मृता सोऽन्वष्टकायां स्वमात्रादिभ्यः पितुः पित्रादिभ्यश्च दद्यात्। यदा च पिण्डपितृयज्ञान्वष्टकाद्यनारम्भपक्षो जीवत्पितृकस्य तदापि संन्यस्तादिपितृकस्य दर्शादिश्राद्धं पितुः पित्राद्युद्देशेन व्यतिषङ्गभिन्नप्रयोगेण सांकल्पिकेन भवत्येव।

जिस गृह्याग्नि वाले का माता पिता जीते हैं वह पिता के पिता आदि का पिण्डदान करे, इस तृतीय पक्ष के आश्रयण से पिण्डपितृयज्ञ, अष्टका और अन्वष्टका का श्राद्ध आरंभ कर दिया है और अन्वष्टका में भी पिता के पिता आदि, माता आदि मातामह आदि का पिण्ड आदि देता रहा हो और बाद में माता मर जाय तो वह अन्वष्टका में अपनी माता आदि और पिता के पिता आदि के लिये पिण्ड दे। जब पिण्डपितृयज्ञ और अन्वष्टका आदि के आरंभ न करने का पक्ष है, तब जीवत्पितृक को भी जिसके पिता संन्यासी आदि हो गये हैं उसका दर्श आदि श्राद्ध पिता के पिता के उद्देश और व्यतिषंग (परस्पर सम्बन्ध) से भिन्न प्रयोग करके सांकल्पिक श्राद्ध होता ही है।

अथ जीवत्पितृकस्य वैश्वदेवविचारः

पितुरविभक्तैः पुत्रैः पृथग्वैश्वदेवो न कार्यः। 'पितृपाकोपजीवी स्याद् भ्रातृपाकोपजीवकः' इत्युक्तेः। अत एव गृह्याग्नौ पाकवैश्वदेवकरणपक्षेऽपि साग्निके पितरि साग्निकैरप्यविभक्तैः पुत्रैः पृथग्वैश्वदेवो न कार्यः। येषां पाकाभावेऽग्नेर्लौकिकत्वं मतं तैः पाकमात्रमग्निसंस्कारार्थं कार्यमिति भाति।

पिता से अविभक्त पुत्र अलग वैश्वदेव नहीं करे, क्योंकि लिखा है कि एक में रहने वाले लड़के पिता के पाक से या भाई के पाक से जीने वाले हों। इसी लिये गृह्याग्नि में पाक वैश्वदेव

---

१. हेमाद्रि में विष्णु की उक्ति है—'पितरि जीवति यः श्राद्धं कुर्याद्येषां पिता कुर्यात्तेषां, पितरि पितामहे च जीवति येषां पितामहः, पितरि पितामहे प्रपितामहे च जीवति नैव कुर्यात्। यस्य पिता प्रेतः स्यात् स पित्रे पिण्डं निधाय पितामहात् पराभ्यां द्वाभ्यां दद्यात्। यस्य पितामहः प्रेतः स्यात्स तस्मै पिण्डं निधाय प्रपितामहाभ्यां दद्यात्। यस्य पिता पितामहश्च प्रेतौ स्यातां स ताभ्यां पिण्डौ दत्त्वा पितापितामहाय दद्यात्।' 'मातामहानामप्येवं श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः। मन्त्रोहेन यथान्यायं शेषाणां मन्त्रवर्जितम्॥' इति।

करने के पक्ष में भी साग्निक पिता के रहते साग्निक अविभक्त पुत्र अलग वैश्वदेव नहीं करे। जिनको पाक के अभाव में अग्नि का लौकिकत्व सिद्ध है उनको अग्निसंस्कार के लिये पाकमात्र करना चाहिये, यह मुझे अच्छा प्रतीत होता है।

[1]विभक्तैस्तु पृथग्वैश्वदेवः कार्यः। तत्र वैश्वदेवस्य देवयज्ञभूतयज्ञपितृयज्ञात्मकत्वाज्जीवत्पितृकैरपि पञ्चमहायज्ञान्तर्गतः पितृयज्ञः कार्यः। वैश्वदेवाद्भिन्नाः पञ्चमहायज्ञास्तैत्तिरीयाणां तैरपि विभक्तैर्जीवत्पितृकैः पितृयज्ञः कार्यः, तस्य देवरूपिपितृदेवताकत्वेन पितृपितामहादिमनुष्यरूपिपितृदेवताकत्वाभावात्।

विभक्त पुत्रों को तो पृथक् वैश्वदेव करना चाहिये। उसमें वैश्वदेव का देवयज्ञ-भूतयज्ञ-पितृयज्ञात्मक होने से जीवत्पितृक भी पंच महायज्ञान्तर्गत पितृयज्ञ करे। तैत्तिरीयों का वैश्वदेव से भिन्न पंचमहायज्ञ है वे भी विभक्त जीवत्पितृक पितृयज्ञ करे, क्योंकि उनको देवरूपी पितृदेवताकत्व होने से पितृपितामहादि मनुष्यरूपी पितृदेवताकत्व का अभाव है।

अथ मुण्डनादिनिषेधविचारः

'मुण्डनं पिण्डदानं च प्रेतकर्म च सर्वशः।
न जीवत्पितृकः कुर्याद् गुर्विणीपतिरेव च॥

अत्र मुण्डनं क्षुरेण शिरसो वपनं, तेन कर्तनं[2] सिद्ध्यति। सर्वं प्रेतकर्म प्रेतदहनवहनसपिण्डीकरणान्तौर्ध्वदेहिकादिकमित्यर्थः। मुण्डनं रागप्राप्तमेव निषिद्ध्यते, तेन चौलोपनयनादिषु आधानदर्शपौर्णमासज्योतिष्टोमादिषु नित्यप्राप्तं तीर्थप्रायश्चित्तमातृमरणादौ नैमित्तिकप्राप्तं च भवत्येव[3]। केचित्काम्यनागबल्यादिषु काम्यमपि भवतीत्याहुः।

गङ्गायां भास्करक्षेत्रे मातापित्रोर्गुरोर्मृतौ।
आधाने सोमपाने च वपनं सप्तसु स्मृतम्॥

गुरोरिति दत्तकस्य पूर्वापरपित्रोरित्यर्थः। वाक्यान्तरे तीर्थमात्रे क्षौरोक्तेर्गङ्गाभास्करक्षेत्रग्रहणं जीवत्पितृकस्य तत्र विशेषतः क्षौरविधानार्थम्।

जीवत्पितृक एवं गर्भिणीपति—मुण्डन, पिण्डदान और सभी प्रेत कर्म नहीं करें। इसमें मुण्डन का तात्पर्य छुरे से सिर का मुड़ाना है, इससे कर्तन सिद्ध होता है। सम्पूर्ण प्रेत कर्म का तात्पर्य प्रेत का जलाना, ढोना और सपिण्डीकरणपर्यन्त और्ध्वदेहिक कर्म है। इसमें रागप्राप्त मुण्डन ही निषिद्ध

---

१. मिताक्षरा में नारद की उक्ति है—'भ्रातृणामविभक्तानामेको धर्मः प्रवर्तते। विभागे सति धर्मोऽपि भवेत्तेषां पृथक्-पृथक्॥' बृहस्पति ने भी कहा है—'एकपाकेन वसतां पितृदेवद्विजार्चनम्। एकं भवेद्विभक्तानां तदेव स्याद् गृहे गृहे॥' हारीतः—'भ्रातृणामविभक्तानां पृथक्पाको भवेद्यदि। वैश्वदेवादिकं श्राद्धं कुर्युस्ते वै पृथक्पृथक्॥' इति।

२. स्मृत्यन्तर में कहा है—'मुण्डनस्य निषेधेऽपि कर्तनं तु विधीयते।' यानी मुंडन के निषेध होने पर भी कैंची से केश का कटाना विहित है।

३. जैसा बृहस्पति ने कहा है—'क्षौरं नैमित्तिकं कार्यं निषेधे सत्यपि ध्रुवम्। पित्रादिमृतिदीक्षासु प्रायश्चित्तेऽथ तीर्थके॥' इति।

है, इससे चूड़ाकरण-उपनयन आदि में और आधान-दर्श-पौर्णमास-ज्योतिष्टोम आदि में नित्य प्राप्त एवं तीर्थ, प्रायश्चित्त और मातृमरण आदि में नैमित्तिक मुण्डन होता ही है। कुछ लोग—काम्य नागबलि आदि में काम्य मुण्डन भी होता है--ऐसा कहते हैं। गंगा में, भास्कर क्षेत्र में, माता पिता और गुरु के मरने में, आधान में एवं सोमपान में, इन सातों में मुण्डन कहा है। 'गुरोः' शब्द से दत्तक का पहले पिछले दोनों पिता का, ऐसा अर्थ है। दूसरे वचनों से तीर्थमात्र में मुण्डनोक्ति से गंगा-भास्करक्षेत्र का ग्रहण जीवत्पितृक को उनमें विशेषतः क्षौर-विधानार्थ है।

जीवत्पितृकस्य पिण्डदाननिषेधः नान्दीश्राद्धतीर्थश्राद्धयोः संन्यस्तादिपितृकस्य दर्शमहालयादिश्राद्धेषु च पिण्डरहितसांकल्पिकश्राद्धबोधनार्थः। महापितृयज्ञे सोमयागे मातृमातामहादेर्वार्षिकश्राद्धेषु गयायामन्वष्टक्यादौ च पिण्डदानं भवत्येवेत्युक्तम्।

जीवत्पितृक को पिण्डदान का निषेध नान्दीश्राद्ध और तीर्थश्राद्ध में है और जिसके पिता संन्यासी हो गये हैं उनका दर्श और महालयादि श्राद्धों में पिण्डरहित सांकल्पिक श्राद्ध बोधनार्थ है। महा पितृयज्ञ में, सोमयाग में, माता मातामहादि के वार्षिक श्राद्धों में, गया में और अन्वष्टक्यादि में पिण्डदान होता ही है, यह कहा है।

अथ पित्रोर्वार्षिके गर्भिणीपतिना पिण्डदानम्

'पिण्डदानं प्रकुर्वीत मातापित्रोः क्षयाहनि' इति श्राद्धविधिना पिण्डदाने सिद्धे पुनः पिण्डविधिः पित्रोर्वार्षिके गर्भिणीपतित्वनिषिद्धकालादिप्रयुक्तनिषेधबाधनार्थम्। तेन—

विवाहव्रतचूडासु वर्षमर्धं तदर्धकम्।
पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम्॥

इति निषेधस्यापि बाधः। क्षयाहग्रहणं सपिण्डीकरणमासिकेष्वपि पिण्डदानोपलक्षणपरम्।

माता पिता के मृत तिथि में पिण्डदान करे, इस श्राद्ध की विधि से पिण्डदान के सिद्ध होते हुए पुनः पिण्ड की विधि पिता माता के वार्षिक में गर्भिणीपतित्व एवं निषिद्ध कालादिप्रयुक्त निषेध के बाधन के लिये है। इससे—विवाह उपनयन और चूड़ाकर्म में क्रम से एक वर्ष, छ मास और तीन मास तक पिण्डदान, मृत्तिका से स्नान और तिल से तर्पण नहीं करे, इस निषेध का भी बाध होता है। क्षयाह का ग्रहण सपिण्डीकरण और मासिक श्राद्ध में पिण्डदान के उपलक्षण के लिये है।

अथ प्रेतकर्मप्रतिप्रसवः

जीवत्पितृकः स्वमातुरपुत्रसापत्नमातुः स्वपुत्रसपत्नीपुत्ररहितभार्याया अपुत्रपितृव्यस्यापुत्रमातामहमातामह्योश्च दाहादिप्रेतकर्माणि कुर्यात्। अत्रापुत्रपदेन मुख्यगौणपुत्रपौत्रप्रपौत्राभावो विवक्षितः।

जीवत्पितृक अपनी माता का, पुत्ररहित सौतेली माता का, अपने पुत्र और सौतेली पुत्ररहित भार्या का, पुत्रहीन पितृव्य का, पुत्रहीन नाना और नानी का, दाह आदि प्रेतकर्म करे। यहां अपुत्र पद से मुख्य गौण पुत्र-पौत्र-प्रपौत्र का अभाव विवक्षित है।

अथ अनुपनीतस्य पित्रोरन्त्यकर्मनिर्णयः

मातुरौर्ध्वदेहिकमनुपनीतोऽपि जीवत्पितृकः कुर्यात् । तत्र विशेषः—ऊनत्रिवर्षश्चूडारहितश्चेद्दाहमात्रं समन्त्रकं कृत्वान्यदन्येन कारयेत् । यदा तु कृतचूडः पूर्णत्रिवर्षो वा तदा सर्वं समन्त्रकं प्रेतकर्म कुर्यात् । ब्रह्मचारी तु पित्रोर्मातामहस्य चान्त्यकर्म[१] कुर्यान्नान्यस्य ।

पितृजीवी अनुपनीत भी माता का औध्र्वदेहिक श्राद्ध करे। उसमें यह विशेष है कि तीन वर्ष से कम चूड़ारहित पुत्र हो तो समन्त्रक दाहमात्र करके बाकी कार्य दूसरे से करावे। जब चूड़ाकरण से संस्कृत पूरे तीन वर्ष का पुत्र हो तब समन्त्रक सब प्रेतकर्म करे। ब्रह्मचारी तो माता पिता और नाना का प्रेतकर्म करे, अन्य का नहीं।

अथ भर्त्रादिकर्तृसंपाते पत्न्या दाहादिनिर्णयः

भर्तृदौहित्रयोः सत्त्वे भर्तैव पत्न्या दाहादि कुर्यात् । मुण्डनं तु भर्तुर्न । एवमपुत्रस्य पत्नीदौहित्रयोः सत्त्वे पत्न्येव पत्युः कुर्यात् । तत्र दाहमात्रं समन्त्रकं कृत्वान्यत्संकल्पमात्रं स्वयं विधाय ब्राह्मणद्वारा कारयेत् । भर्तृसपत्नीपुत्रयोः सत्त्वे सापत्नपुत्र एव कुर्यान्न भर्ता । सपत्नीपुत्रदौहित्रयोः सत्त्वे सपत्नीपुत्र एव । अपुत्रयोर्विधवाविधुरयोर्भ्रातृपुत्रदौहित्रयोः सत्त्वे दौहित्र एवाधिकारीति बहवः । विधवाया भर्तुर्भ्रातृपुत्र एव, विधुरस्य स्वभ्रातृपुत्र एवेति जीवत्पितृकनिर्णये भट्टाः । अपुत्रस्य पत्नीभ्रातृपुत्रयोः सत्त्वे पत्न्येव ।

पति और लड़की के लड़के के रहने पर पति ही पत्नी का दाह आदि करे, किन्तु पति का मुण्डन नहीं होता। इसी प्रकार पुत्ररहित का पत्नी और लड़की के लड़के के रहते हुए पति का प्रेतकर्म पत्नी ही करे। उसमें समन्त्रक दाहमात्र करके बाकी स्वयं संकल्प करके ब्राह्मणद्वारा करावे! पति और सौतेले पुत्र के रहते सौतेला पुत्र ही करे पति न करे। सौतेले पुत्र और लड़की के लड़के के रहते सौतेला पुत्र ही करे पति न करे। पुत्ररहित विधवा और विधुर के, भतीजा और लड़की के लड़के के रहने पर दौहित्र ही अधिकारी होता है, ऐसा बहुतों का कहना है। विधवा का, पतिका भतीजा ही प्रेत कर्म करे और विधुर का, अपने भाई का पुत्र ही अधिकारी है, ऐसा जीवत्पितृक निर्णय में भट्टने कहा है। पुत्ररहित का, पत्नी और भतीजे के रहते पत्नी ही अधिकारिणी है।

अथ पुत्रासन्निधौ पौत्रस्याधिकारः

एवं पुत्रासन्निधौ पौत्रादेः पितामहपितामह्याद्यौर्ध्वदेहिकाद्यधिकारः । इत्थं पित्र्यकर्ममुण्डनप्रेतकर्माद्यधिकारानधिकारौ जीवत्पितृकस्य प्रपञ्चितौ । अत्र विषयभेदाद्बालबोधार्थत्वाच्च पुनरुक्तिर्नातिदोषाय ।

---

१. शुद्धिविवेक और पृथ्वीचन्द्रोदय में ब्रह्मपुराण का वचन है—'असमाप्तव्रतस्यापि कर्तव्यं ब्रह्मचारिणः । श्राद्धं तु मातापितृभिर्न तु तेषां करोति सः ॥' यहाँ श्राद्धपद से मासिक वार्षिकादि सभी श्राद्ध ग्राह्य हैं। माता पिता से अन्य का श्राद्ध करने पर ब्रह्मचारी का व्रतभंग हो जाता है, जैसा वसिष्ठ ने कहा है—'ब्रह्मचारिणः शवकर्मिणो व्रतान्निवृत्तिरन्यत्र मातापित्रोः ।' वृद्धमनु ने आचार्य, माता और पिता के सम्बन्ध में कहा है—'आचार्यपित्रुपाध्यायान्निर्हृत्यापि व्रती व्रती । संकटान्नं च नाश्नीयान्न च तैः सह संवसेत् ॥' इति ।

इसी प्रकार पुत्र के असान्निध्य में पौत्र आदि को पितामह पितामही आदि के और्ध्वदेहिक आदि श्राद्ध का अधिकार है। इस प्रकार पित्र्य कर्म, मुण्डन और प्रेत कर्म का अधिकार और अनधिकार जीवत्पितृक का प्रपंचित है। इसमें विषय भेद से और बालबोध के लिये होने से पुनरुक्ति अतिदोष के लिये नहीं है।

अथ सपिण्डमरणे तिलाञ्जलिदानम्

सपिण्डानां सगोत्रसपिण्डमरणे सकृत्सकृत्तिलाञ्जलिदानं विहितं तज्जीवत्पितृकेणापि कार्यम्। एवं मातामहाचार्यादिभ्योऽपि। इति जीवत्पितृकनिर्णयः।

सगोत्र सपिण्ड के मरने में सपिण्डों को एक-एक बार तिलांजलि का दान विहित है, यह जीवत्पितृक को भी करना चाहिये। इसी प्रकार नाना और आचार्यादि को भी दे। जीवत्पितृक-निर्णय समाप्त।

अथ श्राद्धाद्यधिकारिनिर्णयः

तत्र सांवत्सरिकादिश्राद्धेषु दाहाद्यौर्ध्वदेहिकक्रियायां चौरसः[1] पुत्रो मुख्योऽधिकारी। औरसपुत्राणां बहुत्वे ज्येष्ठ एवाधिकारी। ज्येष्ठस्याभावेऽसन्निधाने वा पातित्यादिनाधिकाराभावे वा ज्येष्ठानुजः। यत्तु ज्येष्ठासन्निधौ सर्वतः कनिष्ठोऽधिकारी न तु मध्यमा इति तन्निर्मूलम्। तत्र पुत्राणां विभक्तत्वे कनिष्ठेभ्यो धनं गृहीत्वा [2]ज्येष्ठेनैव सपिण्डीकरणान्ता क्रिया कार्या। सांवत्सरिकादिकं तु पृथक्-पृथक्। अविभक्तत्वे तु सांवत्सरिकादिकमप्येकेनैव कार्यम्।

वार्षिक आदि श्राद्धों में और दाह आदि और्ध्वदेहिक कृत्यों में मुख्य अधिकारी औरस पुत्र होता है। बहुत औरस पुत्रों के रहते ज्येष्ठ ही अधिकारी होता है। ज्येष्ठ के न रहने पर या दूर रहने पर या पातित्य आदि से अनधिकारी होने पर जेठे का अनुज अधिकारी होता है। किसी का मत है कि ज्येष्ठ के असान्निध्य में, सबसे छोटा अधिकारी होता है न कि मध्यम, वह निर्मूल है। पुत्रों के अलग होने पर छोटों से धन लेकर ज्येष्ठ ही सपिण्डीकरण पर्यन्त क्रिया करे। वार्षिकादि श्राद्ध तो अलग अलग करे। भाइयों के एक में रहने पर तो वार्षिकादि भी एक ही को करना चाहिये।

---

१. चन्द्रिका में सुमन्तु की उक्ति है—'मातुः पितुः प्रकुर्वीत संस्थितस्यौरसः सुतः। पैतृमेधिकसंस्कारं मन्त्रपूर्वकमादृतः॥' हेमाद्रि में शंख का वचन है—'पितुः पुत्रेण कर्तव्या पिण्डदानोदकक्रिया। पुत्राभावे तु पत्नी स्यात्तदभावे तु सोदरः॥' इति।

२. पृथ्वीचन्द्रोदय में मरीचि का वचन है—'बहवः स्युर्यदा पुत्राः पितुरेकत्र वासिनः। सर्वेषां तु मतं कृत्वा ज्येष्ठेनैव तु यत्कृतम्॥ द्रव्येण चाविभक्तेन सर्वैरेव कृतं भवेत्।' यानी अविभक्त जेठे भाई के कृत्य करने पर भी सभी छोटे भाई फलभागी होते हैं।

उशना ने विभक्त भाइयों के लिये विशेष कहा है—'नवश्राद्धं सपिण्डत्वं श्राद्धान्यपि च षोडश। एकेनैव तु कार्याणि संविभक्तधनेष्वपि॥' लघुहारीत ने कहा है—'सपिण्डीकरणान्तानि यानि श्राद्धानि षोडश। पृथङ् नैव सुताः कुर्युः पृथग्द्रव्या अपि क्वचित्॥ ऊर्ध्वं सपिण्डीकरणात्सर्वे कुर्युः पृथक् पृथक्॥' मदनरत्न में—'विभक्तास्तु पृथक्कुर्युः प्रतिसंवत्सरादिकम्। एकेनैवाविभक्तेषु कृते सर्वैस्तु तत्कृतम्॥' इति।

एकेन कृतेऽपि सर्वेषां फलभागित्वात्सर्वैः पुत्रैर्ब्रह्मचर्यपरान्नवर्जनादयो नियमाः कार्याः। पुत्राणामेकदेशस्थित्यभावे देशान्तरे गृहान्तरे वा स्थितैस्तैरविभक्तैरपि पृथगेव वार्षिकादिकं कार्यम्। तत्र यदा ज्येष्ठासन्निधौ कनिष्ठो दाहादिकं करोति तदा षोडशश्राद्धान्तमेव कुर्यान्न सपिण्डीकरणम्। वर्षपर्यन्तं ज्येष्ठप्रतीक्षां कुर्यात्। तन्मध्ये ज्ञाते ज्येष्ठेनैव कार्यम्। नोचेद्वर्षान्ते कनिष्ठेनापि कार्यम्। वर्षात्प्राक् पुत्रभिन्नेन कृतमपि मासिकानुमासिकसपिण्डीकरणं पुत्रेण पुनः कार्यम्। एवं कनिष्ठेन कृतमपि ज्येष्ठपुत्रेण पुनः कार्यम्। विशेषस्त्वग्रे वक्ष्यते। कनिष्ठस्य साग्निकत्वे सपिण्डीकरणमपि द्वादशेह्नि कनिष्ठेन कार्यम्।

एक के करने से भी सब फलभागी होते हैं, इससे सभी पुत्र ब्रह्मचर्य और परान्नवर्जन आदि नियम करें। पुत्रों के एक जगह न रहने या देशान्तर में अथवा गृहान्तर में रहने पर वे एक में भी हों तो भी वार्षिकादि श्राद्ध अलग ही करें। उनमें ज्येष्ठ सन्निधि में नहीं हो और छोटा दाहादिक करता है तब षोडश श्राद्धपर्यन्त छोटा ही करे, सपिण्डीकरण नहीं करे। एक वर्ष तक ज्येष्ठ की प्रतीक्षा करे। इसके भीतर जानने पर जेठे को ही करना चाहिये। नहीं तो वर्ष के अन्त में छोटा भी करे। वर्ष से पहिले पुत्र से भिन्न का किया हुआ भी मासिक, अनुमासिक और सपिण्डीकरण, पुत्र को पुनः करना चाहिये। इसी प्रकार कनिष्ठ का किया हुआ भी ज्येष्ठ पुत्र को पुनः करना चाहिये। विशेष तो आगे कहूँगा। यदि कनिष्ठ साग्निक हो तो सपिण्डीकरण भी बारहवें दिन कनिष्ठ को करना चाहिये।

अथ औरसपुत्राभावेऽधिकारिविचारः

औरसपुत्राभावे पुत्रिकासुतक्षेत्रजादयो[1] द्वादशविधाः पुत्रा उक्तास्तथापि कलौ तेषां पुत्राणां निषेधादौरसपुत्राभावे दत्तक एवाधिकारी। मातापितृभ्यामन्यतरेण वा विधिपूर्वं दत्तः प्रतिग्रहीतृसवर्णो दत्तकः। भार्यानुमत्या पत्युः पुत्रदातृत्वं तदप्यापदि। अत्यन्तापदि तु भार्यानुमत्यभावेऽपि, पत्न्याः पत्यनुमत्यैव। अत्र विशेषविचारः प्रागुक्तः। दत्तकाभावे पौत्रः, पौत्राभावे प्रपौत्रः। अन्ये त्वौरसाभावे[2]

---

१. याज्ञवल्क्योक्त बारह प्रकार के ये पुत्र हैं—'औरसो धर्मपत्नीजस्तत्समः पुत्रिकासुतः। क्षेत्रजः क्षेत्रजातस्तु सगोत्रेणेतरेण वा॥ गृहे प्रच्छन्न उत्पन्नो गूढजस्तु सुतः स्मृतः। कानीनः कन्यकाजातो मातामहसुतो मतः॥ अक्षतायां क्षतायां वा जातः पौनर्भवः सुतः। दद्यान्माता पिता वा यं स पुत्रो दत्तको भवेत्॥ क्रीतश्च ताभ्यां विक्रीतः कृत्रिमः स्यात् स्वयं कृतः। दत्तात्मा तु स्वयं दत्तो गर्भे विन्नः सहोढजः॥ उत्सृष्टो गृह्यते यस्तु सोऽपविद्धो भवेत्सुतः। पिण्डदोंऽशहरश्चैषां पूर्वाभावे परः परः॥'—

नारदस्मृति में भिन्न क्रम का निर्देश है—'औरसः क्षेत्रजश्चैव पुत्रिकापुत्र एव च। कानीनश्च सहोढश्च गूढोत्पन्नस्तथैव च॥ पौनर्भवोऽपविद्धश्च दत्तः क्रीतः कृतस्तथा। स्वयं चोपागतः पुत्रा द्वादशैते प्रकीर्तिताः॥' इन दोनों स्मृतियों में उन क्रम की व्यवस्था विकल्प से करनी चाहिये। आदित्यपुराण के अनुसार कलियुग में इतर पुत्रों के पुत्रत्व के निषेध होने से औरस और दत्तक ही श्राद्ध का अधिकारी हैं। औरस पुत्र के न रहने पर दत्तक का अधिकार है।

२. कालादर्श में—'दाहादिमन्त्रवत्पित्रोर्विदध्यादौरसः सुतः। तदभावे तु पौत्रश्च प्रपौत्रः पुत्रिकासुतः॥ दौहित्रो धनहारी च भ्राता तत्पुत्र एव च। पिता माता स्नुषा चैव स्वसा तत्पुत्र एव

पौत्रः तदभावे प्रपौत्रः प्रपौत्राभावे दत्तक इत्याहुः ।

औरस पुत्र के न रहने पर पुत्रिकासुत और क्षेत्रज आदि बारह प्रकार के पुत्र कहे हैं, फिर भी कलियुग में उन पुत्रों के निषेध होने से औरस पुत्र के न रहने पर दत्तक पुत्र ही अधिकारी है। माता या पिता के द्वारा विधिपूर्वक दिया हुआ प्रतिग्रहीता का सवर्ण दत्तक होता है। स्त्री की अनुमति से पति को पुत्रदान का अधिकार है वह भी आपत्तिकाल में। अत्यन्त आपत्ति में तो स्त्री की अनुमति न होने पर भी पति को और पति की अनुमति से ही पत्नी को पुत्रपान का अधिकार है। इसमें विशेष विचार पहिले कहा है। दत्तक के अभाव में पौत्र और पौत्र के अभाव में प्रपौत्र अधिकारी है। अन्य लोग तो—औरस के अभाव में पौत्र और पौत्र के अभाव में प्रपौत्र और प्रपौत्र के अभाव में दत्तक अधिकारी है—ऐसा कहते हैं।

उपनीतपौत्रसत्त्वेऽप्यनुपनीतस्याप्यौरसपुत्रस्यैवाधिकारः। स च कृतचूडस्यैव वर्षाधिकवयसः। पूर्णत्रिवर्षस्य त्वकृतचूडस्यापि। अनुपनीतेनापि [1]मन्त्रपाठपूर्वकमेव पित्रोरौर्ध्वदेहिकं सांवत्सरिकादिकं श्राद्धं च कार्यम्। अशक्तौ त्वग्निदानमात्रं [2]समन्त्रकमनुपनीतेन कार्यम् अन्यत्त्वन्यद्वारा। एवं श्राद्धेऽपि दर्शमहालयादौ संकल्पमात्रं कार्यम् अन्यदितरेण। केचित्तूनत्रिवर्षेण चूडारहितेनापि दाहमात्रं समन्त्रकं कार्यं शेषमन्येनेत्याहुः।

उपनीत पौत्र के रहते हुए भी अनुपनीत औरस पुत्र ही का अधिकार है। वह भी चूड़ाकरण से संस्कृत एक वर्ष से अधिक अवस्था का हो। चूड़ाकरण नहीं किया हुआ भी यदि तीन वर्ष का हो तो वही अधिकारी है। अनुपनीत को भी मन्त्रपाठपूर्वक ही माता पिता का औध्वंदेहिक और सांवत्सरिकादि श्राद्ध करना चाहिये। असमर्थ होने पर तो अनुपनीत को केवल अग्निदान समन्त्रक करना चाहिये और सब कार्य दूसरे के द्वारा। इसी प्रकार दर्श महालयादि श्राद्ध में भी केवल संकल्प करना चाहिये अन्य सब कृत्य दूसरे से कराना चाहिये। कोई तो-तीन वर्ष से कम चूड़ासंस्कार से रहित से भी समन्त्रक दाहमात्र करावे, बाकी कर्म दूसरे से-ऐसा कहते है।

च ॥ सपिण्डः सोदको मातुः सपिण्डश्च सहोदकः। स्त्री च शिष्यर्त्विगाचार्या जामाता च सखाऽपि च ॥ उत्सन्नबन्धो रिक्थेन कारयेदवनीपतिः।' यह क्रम है।

विष्णुपुराण में क्रम का निर्देश यों है—'पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रो वा तद्वद्वा भ्रातृसन्ततिः। सपिण्डसन्ततिर्वापि क्रियार्हा नृप जायते ॥ तेषामभावे सर्वेषां समानोदकसन्ततिः। मातृपक्षसपिण्डेन सम्बन्धो यो जलेन वा ॥ कुलद्वयेऽपि चोच्छिन्ने स्त्रीभिः कार्या क्रिया नृप। तत्संघातगतैर्वापि तद्रिक्थात् कारयेन्नृपः ॥' इति।

१. अनुपनीत भी पुत्र पिता माता के मन्त्रोच्चारणपूर्वक औध्वंदेहिक कर्म का अधिकारी है जैसा मनु ने कहा है—'न ह्यस्मिन् युज्यते कर्म किञ्चिदामौञ्जिबन्धनात्। नाभिव्याहारयेद् ब्रह्म स्वधानिनयनादृते ॥' अर्थात् ब्राह्मणादि बालक यज्ञोपवीत संस्कार के पहले श्राद्धकर्म के अतिरिक्त किसी श्रौत-स्मार्त-कर्म में वेदमन्त्र का उच्चारण नहीं करे। सुमन्तुः—'अनुपेतोऽपि कुर्वीत मन्त्रवत्पैतृमेधिकम्। यद्यसौ कृतचूडः स्याद्यदि स्याच्च त्रिवत्सरः ॥' व्याघ्र ने तो—'कृतचूडस्तु कुर्वीत उदकं पिण्डमेव च। स्वधाकारं प्रयुञ्जीत वेदोच्चारं न कारयेत् ॥' ऐसा कहा। व्याघ्र के इस वचन को मन्त्रोच्चारण में असमर्थ पुत्र के लिये मानकर मन्वादि-स्मृतिवचनों की एकवाक्यता करनी चाहिये।

२. जैसा कात्यायन ने बतलाया है—'असंस्कृतेन पत्न्या च ह्यग्निदानं समन्त्रकम्। कर्तव्यमितरत् सर्वं कारयेदन्यमेव हि ॥' इति।

दत्तकस्तूपनीत[1] एवाधिकारी। दत्तकाभावे प्रपौत्राभावे च भर्तुः पत्नी पत्न्या भर्ता च दाहाद्यौर्ध्वदेहिकं सांवत्सरिकश्राद्धादिकं च कुर्यात्। भर्तुरपि सपत्नीपुत्र-सत्त्वेऽधिकारो न,'विदध्यादौरसः पुत्रो जनन्या और्ध्वदेहिकम्। तदभावे सपत्नीज' इत्युक्तेः। भार्ययापि समन्त्रकमेवौर्ध्वदेहिकादिकं कार्यम्। अशक्तौ त्वग्निदानमात्रं समन्त्रकं[2] कृत्वा शेषमन्येन कार्यम्। श्राद्धे संकल्पमात्रं कृत्वा शेषमन्येन।

दत्तक तो उपनीत ही अधिकारी होता है। दत्तक और प्रपौत्र के अभाव में भी पति की पत्नी और पत्नी का पति दाह आदि और्ध्वदेहिक और सांवत्सरिक श्राद्ध करे। सौतेले पुत्र के रहते पति को भी अधिकार नहीं है, क्योंकि—'विदध्यादौरसः पुत्रो जनन्या और्ध्वदेहिकम्। तदभावे सपत्नीज' यानी माता का और्ध्वदेहिक औरस पुत्र करे, औरस के अभाव में सौतेला पुत्र, इस आशय का वचन है। स्त्री भी समन्त्रक ही और्ध्वदेहिक आदि करे। असमर्थता में तो समन्त्रक अग्निदानमात्र करके बाकी कर्म दूसरे से करावे। श्राद्ध में केवल संकल्प करके शेष दूसरे से करावे।

यद्यप्यविभक्तस्य संसृष्टस्य वा भ्रातुरेव धनग्रहाधिकारस्तथापि क्रियाधिकारः पत्न्या एव। विभक्तासंसृष्टे तु भ्रातरि धनाधिकारोऽपि पत्न्या एव। पत्न्यभावे विभक्तासंसृष्टस्य कन्या पिण्डदा धनहारिणी च। तत्रापि विवाहितैव पिण्डदा। धनहरा त्वनूढाऽपि। दुहितुरभावे दौहित्रो धनहारी पिण्डदश्च। दौहित्राभावे भ्राता, भ्रातुरभावे भ्रातुः पुत्रः।

यद्यपि अविभक्त या संसृष्ट भाई को ही धनग्रहण का अधिकार है,फिर भी क्रिया का अधिकार पत्नी को ही है। अलग हुए असंसृष्ट भाई में तो धनाधिकार भी पत्नी का ही है। पत्नी के न रहने पर विभक्त केवल असंसृष्ट भाई की कन्या पिण्डदान करने वाली और धन की भी अधिकारिणी होती है। इसमें भी विवाहित कन्या ही पिण्ड देने की अधिकारिणी होती है। धनग्रहण करने वाली तो अविवाहिता भी होती है। लड़की के अभाव में लड़की का लड़का धनहारी और पिण्ड देने वाला है। लड़की के लड़का के नहीं रहने पर भाई, भाई के अभाव में भतीजा अधिकारी होता है।

अविभक्तस्य संसृष्टस्य च पत्न्यभावे भ्राता। संसृष्टो नाम पूर्वं विभक्तो भूत्वा पुनः स्वधनं भ्रातृधनैरेकीकृत्यैकपाकाद्युपजीवनः। तत्र सोदरासोदरसमवाये सोदर एव। तत्रापि ज्येष्ठकनिष्ठयोः सत्त्वे कनिष्ठ एव। कनिष्ठभ्रातुरभावे ज्येष्ठभ्रातैव। कनिष्ठबहुत्वे मृतानन्तरस्तदभावे तदनन्तरादयः। एवं ज्येष्ठ-

---

१. 'दत्तकादीनां तूपनीतानामेवाधिकारः' इति कालादर्शः। स्कन्दपुराणे—'पित्रोरनुपनीतोऽपि विदध्यादौरसः सुतः। और्ध्वदेहिकमन्ये तु संस्कृताः श्राद्धकारिणः ॥' इति।

२. प्रयोगपारिजात में—'द्विजस्त्रियस्तु संकल्पमात्रं स्वयं कृत्वा वैदिकमन्त्रयुक्तं सर्वं ब्राह्मणद्वारा कारयेयुः' इस प्रकार लिखा है यह चिन्त्य है, क्योंकि गार्गी-मैत्रेयी-प्रभृति द्विजस्त्रियों की अपनी-अपनी शाखाओं का अध्ययन और गृह्यसूत्रों में यजमान की पत्नी का उन-उन मन्त्रों के पाठ का विधान है। अशक्ततावश सभी कार्य नहीं कर सके तो अग्निदानमात्र समन्त्रक करना ही चाहिये, इसमें कात्यायन का—'असंस्कृतेन पत्न्या च ह्यग्निदानं समन्त्रकम्। कर्तव्यमितरत् सर्वं कारयेदन्यमेव हि ॥' यह वचन है।

बहुत्वे मृतानन्तरक्रमेणैव । सोदरभ्रातुरभावे सापत्नभ्राता । अत्रापि ज्येष्ठत्वादिविचारः पूर्ववदेव ।

अविभक्त संसृष्ट भाई की पत्नी के न रहने पर भाई अधिकारी होता है । संसृष्ट उसे कहते हैं जो पहिले अलग होकर फिर अपने धन को भाई के धनमें मिलाकर एक ही पाक आदि से जीने वाला हो । उसमें सोदर भिन्नोदर के समवाय में सोदर ही, उसमें भी ज्येष्ठ और कनिष्ठ के रहने पर कनिष्ठ ही अधिकारी होता है । छोटे भाई के न रहने पर जेठा भाई अधिकारी होता है । बहुत कनिष्ठ के होने पर मरने वाले के बाद वाला और उसके अभाव में उससे छोटे,क्रम से अधिकारी हैं । इसी प्रकार बहुत से जेठे के रहने पर मरने वाले के बाद वाले क्रम से ही हैं । सहोदर भाई के न रहने पर सौतेला भाई अधिकारी होता है । इसमें भी ज्येष्ठत्व आदि का विचार पहिले जैसा है ।

केचित्तु दुहितृदौहित्रयोर्धनहारित्वेऽपि विभक्तासंसृष्टस्य दाहादिकं भ्रात्रैव कार्यम् , सगोत्रसद्भावे भिन्नगोत्रस्य तदनधिकारादित्याहुः । भ्रातुरभावे भ्रातृपुत्रः, तत्रापि सोदरभ्रातृपुत्रो मुख्यः । तदभावे सापत्नभ्रातृपुत्रः, तदभावे पिता, पितुरभावे माता, मात्रभावे स्नुषा, तदभावे भगिनी, तत्रानुजाग्रजसोदराणां समवाये भ्रातृवत् । भगिन्यभावे भगिनीपुत्रः, समवाये तद्वदेव । तदभावे पितृव्यतत्पुत्रादयः सपिण्डाः । तदभावे सोदकाः, तदभावे गोत्रजाः, तदभावे मातामहमातुलतत्पुत्रादयो मातृसपिण्डा अनुक्रमेण । मातृसपिण्डाभावे स्वपितृष्वसृमातृष्वसृपुत्राः, तदभावे पितुः पितृष्वसृमातृष्वसृमातुलपुत्ररूपाः पितृबन्धवः ।

कुछ लोग तो— लड़की और लड़कीके पुत्र के धनहरण करने में भी विभक्त और असंसृष्ट का दाह आदि भाई को करना चाहिये, क्योंकि सगोत्र के रहते भिन्न गोत्र का उसका अधिकार नहीं है— ऐसा कहते हैं । भाई के अभाव में भाई का पुत्र, उसमें भी सोदर भाई का पुत्र मुख्य है । उसके अभाव में सौतेला भतीजा, उसके अभाव में पिता, पिता के अभाव में माता, माता के अभाव में पतोहू, पतोहू के अभाव में बहिन, उसमें छोटी बड़ी सोदर भिन्नोदर के समवाय में भाई की तरह विचार है । बहिन के अभाव में बहिन का लड़का, समवाय में उसी तरह से है । उसके अभाव में पितृव्य और पितृव्य के पुत्र आदि सपिण्ड अधिकारी होते हैं । इसके अभाव में सोदक, इसके अभाव में गोत्रज, गोत्रज के अभाव में नाना-मामा उनके पुत्र आदि मातृसपिण्ड क्रम से अधिकारी होते हैं । मातृसपिण्ड के अभाव में अपनी फुआ और मौसी के पुत्र, इसके अभाव में पिता की फुआ-मौसी-मामा के पुत्ररूप पितृबन्धु अधिकारी होते हैं ।

एवं मातुः पितृष्वस्रादिपुत्ररूपमातृबन्धवः पितृबन्धूनामभावेऽधिकारिणः । तदभावे शिष्यः, शिष्याभावे जामाता श्वशुरस्य, श्वशुरो जामातुः । तदभावे सखा, तदभावे विप्रस्य कश्चिद्धनहारी । विप्रभिन्नस्य राज्ञा धनं गृहीत्वा तेन धनेनान्यद्वारा कारणीयम् । अथवा विप्राद्यैर्मरणोन्मुखैर्धर्मपुत्रः कार्यः ।

इसी प्रकार माता की फुआ के पुत्ररूप मातृबन्धुगण पितृबन्धुओं के अभाव में अधिकारी होते हैं । उसके अभाव में शिष्य, शिष्य के अभाव में ससुर का दामाद, दामाद का ससुर अधिकारी है । इनके अभाव में मित्र, मित्रके अभाव में ब्राह्मण का कोई धनहारी होता है । विप्र से भिन्न का राजा धन ग्रहण करके उस धन से दूसरे के द्वारा उसका श्राद्ध करावे । अथवा विप्र आदि, मरणोन्मुखावस्था में धर्मपुत्र करे ।

अथ स्त्रीणां दाहाद्यधिकारिणः

अनूढायाः स्त्रियाः [1]पिता, तदभावे भ्रात्रादिः। ऊढायास्तत्पुत्राभावे सपत्नीपुत्रः, तदभावे पौत्रप्रपौत्राः, तदभावे पतिः, तदभावे दुहिता, तदभावे दौहित्रः, तदभावे पत्युर्भ्राता, तदभावे पत्युर्भ्रातृपुत्रः, तदभावे स्नुषा, तदभावे पिता, पितुरभावे भ्राता, तदभावे भ्रातृपुत्रादयः पूर्वोक्ताः। अत्र सर्वत्र पुत्रभिन्नानां पुत्रासन्निधानात्पुत्राभावाद्वा कर्तृत्वमिति स्थितम्।

विना ब्याही स्त्री के दाह का अधिकारी पिता, उसके अभाव में भाई आदि अधिकारी है। ब्याही हुई स्त्री के पुत्र के अभाव में सौतेला पुत्र, उसके अभाव में पौत्र-प्रपौत्र, उसके अभाव में पति, उसके अभाव में लड़की, उसके अभाव में लड़की का लड़का, उसके अभाव में पति का भाई, उसके अभाव में पति का भतीजा, उसके अभाव में पतोहू, पतोहू के न रहने पर पिता, पिताके अभाव में भाई, भाई के न होने पर भतीजा आदि पूर्व में कहे हुए अधिकारी होते हैं। यहां सब जगह पुत्रभिन्नों का पुत्र के असान्निध्य से अथवा पुत्र के अभाव से कर्तृत्व है, यह स्थित हुआ।

अथ पुत्रभिन्नानां दाहकर्तव्याकर्तव्यनिर्णयः

तत्र यदि पुत्रासन्निधानात्कर्तृत्वं तदा पुत्रभिन्नैर्दाहमारभ्य सपिण्डीकरणात्प्राचीनकर्मैव कार्यम्, न तु पुत्रभिन्नैः सपिण्डीकरणं कार्यम्। पुत्राभावे त्वन्यैः सपिण्डीकरणमपि कार्यम्। तत्रापि सपिण्डादिभिर्नृपान्तैर्दाहमारभ्य दशाहक्रियाः कार्या एव, ता एव पूर्वाः इत्युच्यन्ते। तत एकादशाहमारभ्य सपिण्डीकरणान्ता मध्यमसंज्ञास्तासु सपिण्डादीनां कृताकृतत्वम्। तदूर्ध्वा अनुमासिकसांवत्सरिकाद्यास्ता उत्तराख्याः, सपिण्डादिभिर्न कार्या एव।

इसमें यदि पुत्र के असान्निध्य से कर्तृत्व है तो पुत्र से भिन्न लोग दाह से लेकर सपिण्डीकरण तक प्राचीन कर्म ही करें न कि पुत्र से भिन्न लोगों के द्वारा सपिण्डीकरण कराया जाय। पुत्र के अभाव में तो अन्य से सपिण्डीकरण भी कराना चाहिये। उसमें भी सपिण्ड आदि से लेकर राजा आदि पर्यन्त से दाह से दशाह क्रिया करानी ही चाहिये, इसी को पूर्वा क्रिया कहते हैं। इसके बाद एकादशाह से सपिण्डीकरणपर्यन्त मध्यम संज्ञा है, उनमें सपिण्ड आदि का करना न करना समान है। उसके बाद वाली अनुमासिक सांवत्सरिक आदि उत्तरा क्रिया कहलाती है, उसे सपिण्डादिकों से नहीं ही करावे।

इदं च तदीयवृत्त्यादिस्थावरधनस्य चरधनस्य वा ग्रहणाभावे। तदन्यतरधनग्रहणे तु सपिण्डादिभिरपि मध्यमोत्तराख्या अपि क्रियाः कार्या एव। राज्ञा तु मृतधनसत्त्वे तद्धनद्वारा तत्सजातीयवर्णहस्तेन सर्वा अपि क्रियाः कारणीया एव। धनाभावे तु पूर्वान्ता एवावश्यं कारणीया नान्याः। सपिण्डादिनृपान्त-

---

१. शुद्धिविवेक और पृथ्वीचन्द्रोदय में ब्रह्मपुराण का वचन है—'दत्तानां वाऽप्यदत्तानां कन्यानां कुरुते पिता। चतुर्थेऽहनि तास्तेषां कुर्वीरन् सुसमाहिताः॥' इति।

भिन्नानां तु मृतस्य धनाभावऽपि स्वधनेनैव सपिण्डीकरणान्तक्रियाकरणमावश्यकम्।

यह उसकी वृत्ति आदि स्थावर धन या चर धन के ग्रहण के अभाव में है। उससे अन्यतर धन ग्रहण में तो सपिण्डादि भी मध्यमा और उत्तरा नाम की भी क्रिया करें ही। राजा तो मृतकधन के रहते, उस धन के द्वारा मृतक के सजातीय वर्ण के हाथ से सम्पूर्ण क्रियाएं करवावें ही। मृतकधन के अभाव में तो पूर्वा और उत्तरा क्रिया अवश्य करवावें अन्य नहीं। सपिण्ड आदि से लेकर राजा पर्यन्त से जो भिन्न हैं, उनको तो मृतक के धन के अभाव में भी अपने धन से ही सपिण्डीकरणान्त क्रिया को करना आवश्यक है।

अथ धनग्राहिणा प्रेतकृत्याकरणे विचारः

मृतस्य धनं गृहीत्वा प्रेतकार्याकरणे नृपान्तानां तद्वर्णवधप्रायश्चित्तम्। पुत्राद्यैर्भ्रातृसन्तत्यन्तैर्दौहित्रैश्च तत्पुत्रैश्च त्रिविधा अपि क्रिया धनग्रहणसत्त्वे तदसत्त्वे वापि कार्या एव। तत्र स्त्रीणामुत्तराः क्रिया मृताहन्येव न तु दर्शादौ, भर्तृश्राद्धेनैव निर्वाहस्मृतेः। पूर्वमध्यमाख्यास्तु पृथगेव स्त्रीणाम्।

मृतक का धन लेकर प्रेत कार्य न करने में नृपपर्यन्तों को उस वर्ण के वध का प्रायश्चित्त होता है। पुत्र आदि भाई की सन्तति तक, लड़की के लड़के और उनके पुत्रों से भी तीनों ही क्रियायें धन ग्रहण करने और न करने पर भी करावे ही। उसमें स्त्रियों की उत्तर क्रिया मृत दिन में ही है न कि दर्श आदि में, क्योंकि पति के श्राद्ध से ही निर्वाह होने की स्मृति है। स्त्रियों की पूर्वा और मध्यमा क्रिया तो पृथक् होती है।

केचित्पुत्रपत्योरभावे स्त्रीणां दौहित्रादिभिः सपिण्डीकरणरहिता एवोत्तराः क्रियाः कार्याः। सपिण्डीकरणं तु तासां न कार्यम्। सपिण्डीकरणाभावेऽपि एकोद्दिष्टविधिना वार्षिकादिकं कार्यमित्याहुः।

ब्राह्मणस्त्वन्यवर्णानां न कुर्यात्कर्म पैतृकम्।
कामाल्लोभाद्भयान्मोहात्कृत्वा तज्जातितां व्रजेत्॥
शूद्रेणापि ब्राह्मणस्य न कार्यं पैतृकं क्वचित्।

कोई—स्त्रियों की क्रिया पुत्र और पति के अभाव में दौहित्र आदि से सपिण्डीकरणरहित उत्तरा क्रिया कर्तव्य है। उनका सपिण्डीकरण तो नहीं करना चाहिये। सपिण्डीकरण के अभाव में भी एकोद्दिष्टविधि से वार्षिक आदि करना चाहिये—ऐसा कहते हैं। ब्राह्मण तो दूसरे वर्णों का पैतृक कर्म न करे। यदि काम से, लोभ से, भय से और मोह से करता है तो उसी जाति का हो जाता है। शूद्र से भी ब्राह्मण का पैतृक कर्म न करावे।

अथ दत्तककर्तव्यनिर्णयः

दत्तकस्तु जनकपितुः पुत्राद्यभावे जनकपितुः श्राद्धं कुर्याद्धनं च गृह्णीयात्। जनकपालकयोरुभयोः पित्रोः सन्तत्यभावे दत्तको जनकपालकयोरुभयोरपि धनं हरेत् श्राद्धं च प्रतिवार्षिकमुभयोः कुर्यात्। दर्शमहालयादौ तु द्वयोः पित्राद्योः

श्राद्धं देयम्। तत्र द्वयोः पित्राद्योः पृथक् पिण्डदानं पित्रादिद्वयद्वयोद्देशेनैकैको वा पिण्डः।

दत्तक तो उत्पादक पिता के पुत्र आदि के न रहने पर उत्पादक पिता श्राद्ध करे और धनग्रहण करे। उत्पादक एवं पालक दोनों पिता के सन्तान न रहने पर दत्तक दोनों का धन हरण करे और श्राद्ध भी प्रतिवार्षिक दोनों का करे। दर्श महालय आदि में तो दोनों पिता आदि को श्राद्ध दे। उसमें दोनों पिता आदि को पृथक्-पृथक् पिण्डदान करे या दोनों पिता आदि के दो-दो के उद्देश्य से एक पिण्ड दे।

एवं दत्तकस्य पुत्रोऽपि दत्तकजनकस्य पुत्राद्यभावे स्वपितरं पितामहद्वयं प्रपितामहद्वयं चोच्चार्य दर्शादिकं कुर्यात् तथैव धनं हरेत्। एवं दत्तकपौत्रोऽपि तज्जनककुले प्रपितामहस्य पुत्राद्यभावे पितरं पितामहं चैकमुच्चार्य प्रपितामहद्वयमुच्चार्य दर्शादिश्राद्धं कुर्यात्प्रपितामहस्य धनं च हरेत्। यद्येषां स्वासु भार्यास्वपत्यं न स्याद्रिक्थं हरेयुः पिण्डं चैभ्यस्त्रिपुरुषं दद्युरित्यादेरेकपिण्डे द्वावनुकीर्तयेद् ग्रहीतारं चोत्पादयितारं चातृतीयात्पुरुषादित्यादेश्च लौगाक्ष्यादिस्मृतिवचनात्।

इसी प्रकार दत्तक का पुत्र भी दत्तकजनक के पुत्र आदि के अभाव में अपने पिता और दोनों पितामह प्रपितामह का उच्चारण करके दर्श आदि श्राद्ध करे और इसी प्रकार धन ग्रहण करे। एवं दत्तक का पौत्र भी उसके जनककुल में प्रपितामह के पुत्र आदि के नहीं रहने पर पिता और पितामह में से एक का उच्चारण कर और दोनों प्रपितामह का उच्चारण कर दर्श आदि श्राद्ध करे और प्रपितामह के धन को भी ग्रहण करे। यदि इन लोगों को अपनी भार्याओं में सन्तान न हो तो उनका धनग्रहण करे और इनके तीन पुरुषों को पिण्ड दे, क्योंकि लौगाक्षि आदि का स्मृति वचन है कि एक पिण्ड में ग्रहीता और उत्पादक दोनों का उच्चारण तीन पीढी पर्यन्त करे।

यदि जनकपालकयोरुभयोरपि पुत्रादिसन्ततिसत्त्वं तदा दत्तक उभयोरप्यौर्ध्वदेहिकं वार्षिकादिकं च न कुर्यात्। पालकपितुरौरसपुत्राद्विभक्तेन दत्तकेन दर्शमहालयादिश्राद्धमात्रं पालकपित्रादिपार्वणोद्देशेन कार्यम्। अविभक्तस्य तु तदौरसकृतदर्शादिनैव दत्तकस्य दर्शादिसिद्धिरिति भाति।

यदि जनक और पालक दोनों को पुत्र आदि सन्तति रहे तब दत्तक दोनों का और्ध्वदेहिक वार्षिकादि श्राद्ध नहीं करे। पालक पिता के औरस पुत्र से अलग हुए दत्तक को केवल दर्श महालयादि श्राद्ध पालक पिता आदि के पार्वण के उद्देश्य से करना चाहिये। अविभक्त दत्तक का तो उनके औरस पुत्र से किये दर्शादि से दत्तक की दर्शादि सिद्ध होती है, ऐसा युक्त प्रतीत होता है।

अथ ब्रह्मचारिविषयकश्राद्धादिनिर्णयः

ब्रह्मचारिणो मासिकाब्दिकादिश्राद्धं मातापितृभिः कार्यम्। ब्रह्मचारिणा तु मातृपितृमातामहोपाध्यायाचार्यभिन्नानां शवनिर्हरणं दाहाद्यन्त्यकर्म च न कार्यम्। अन्याधिकार्यभावे मातृपितृमातामहाचार्याणां दाहादिकं ब्रह्मचारिणा

कार्यम्[1]। तत्र दशाहकर्मकरणे दशाहमाशौचम्। दाहमात्रकरणे एकाहम्। तदाप्यस्य नित्यकर्मलोपो नास्ति अशुचित्वेऽप्याशौचिनामन्नं तेन न भोक्तव्यं तैः सह न वस्तव्यम्। तदुभयकरणे प्रायश्चित्तपुनरुपनयने वक्ष्येते। अन्येषां दाहादौ कृच्छ्रत्रयं पुनरुपययनं च।[2]धर्मार्थं केनचित्कस्यचित्सवर्णस्य दाहादिश्राद्धादिकरणे सम्पत्त्यादिफलम्।

ब्रह्मचारी का मासिक एवं वार्षिकादि श्राद्ध माता पिता द्वारा होना चाहिये। ब्रह्मचारी तो माता, पिता, मातामह, उपाध्याय और आचार्य से भिन्न का शव-निर्हरण दाह आदि अन्त्य कर्म नहीं करे। अन्य अधिकारी के न होने पर माता, पिता, मातामह और आचार्य का दाह आदि ब्रह्मचारी को करना चाहिये। उसमें दशाह कर्म करने पर दस दिन का आशौच होता है। केवल दाह करने पर एक दिन का आशौच है। तब भी ब्रह्मचारी के नित्य कर्म का लोप नहीं है। अशुचि होने पर भी आशौचियों का अन्न ब्रह्मचारी को नहीं खाना चाहिये और न उनके साथ निवास करना चाहिये। इन दोनों के करने पर प्रायश्चित्त और पुनः उपनयन आगे कहूँगा। अन्य के दाह आदि में तीन कृच्छ्र व्रत तथा पुनः उपनयन करे। धर्मार्थ कोई किसी सवर्ण का दाह आदि श्राद्ध आदि करे तो सम्पत्ति आदि का फल मिलता है।

अथ स्त्रीशूद्राद्यैः श्राद्धमन्त्रादिविचारः

अयं सर्वोऽपि श्राद्धविधिः शूद्राणाममन्त्रकः[3] कार्यः। अत्र केचिद्वैदिकमन्त्रपाठ एव शूद्राणां[4]वर्ज्यः पौराणमन्त्रास्तु पठनीया इत्याहुः। पौराणमन्त्रा अपि शूद्रेण स्वयं न पठनीयाः किन्तु विप्रद्वारा पठनीयाः। वेदमन्त्रास्तु न विप्रद्वारापीति सिन्धुः।

यह सभी श्राद्ध-विधि शूद्रों को मन्त्ररहित करना चाहिये। इसमें कुछ लोग—शूद्रों को वैदिक मन्त्र पाठ ही वर्जित है, पौराणिक मन्त्र तो पठनीय है—ऐसा कहते हैं। पौराणिक मन्त्र भी शूद्र को स्वयं नहीं पढ़ना चाहिये, किन्तु ब्राह्मणद्वारा पढ़ना चाहिये। वेदमन्त्र तो ब्राह्मणद्वारा भी नहीं पढे, ऐसा निर्णयसिन्धु का मत है।

---

१. चन्द्रिका में वृद्ध मनु की उक्ति है—'मातापित्रोरुपाध्यायाचार्ययोरौर्ध्वदेहिकम्। कुर्वन् मातामहस्यापि व्रती न भ्रश्यते व्रतात्॥' इति।

२. शातातप ने धर्मार्थ श्राद्ध करने का फल बतलाया है—'प्रीत्या श्राद्धं तु कर्तव्यं सर्वेषां वर्णलिङ्गिनाम्। एवं कुर्वन्नरः सम्यङ् महतीं श्रियमाप्नुयात्॥' इति।

३. ब्रह्मपुराणे—'अयमेव विधिः प्रोक्तः शूद्राणां मन्त्रवर्जितः। अमन्त्रस्य तु शूद्रस्य विप्रो मन्त्रेण गृह्यते॥' मरीचिः—'स्त्रीणाममन्त्रकं श्राद्धं तथा शूद्रासुतस्य च। प्राग्द्विजाश्च व्रतादेशात्ते च कुर्युस्तथैव तत्॥' इति।

४. इनके मत में पद्मपुराण का वचन है—'न हि वेदेष्वधिकारः क्वचिच्छूद्रस्य विद्यते। पुराणेष्वधिकारो मे दर्शितो ब्राह्मणैरिह॥' इसके खण्डन में निर्णयसिन्धुकार के भविष्यपुराण का वचन है—'अध्येतव्यं ब्राह्मणेन वैश्येन क्षत्रियेण च। श्रोतव्यमेव शूद्रेण नाध्येतव्यं कदाचन॥ श्रौतं स्मार्तं च वै धर्मं प्रोक्तमस्मिन्नृपोत्तम। तस्माच्छूद्रैर्विना विप्रं न श्रोतव्यं कदाचन॥' इति।

एवं[1]द्विजस्त्रियोऽपि व्रतोद्यापनादाविव संकल्पमात्रं स्वयं कृत्वा वैदिकमन्त्रादिप्रयुक्तं सर्वं श्राद्धं विप्रद्वारा कारयेयुरिति पारिजातकारमतम्। शूद्रस्य[2]सदाऽऽमश्राद्धमेव। पित्रे नमः पितामहाय नम इत्येवमादिना[3]नमोन्तनाममन्त्रेण निमन्त्रणपाद्यासनगन्धपुष्पादिना विप्रान् संपूज्याऽऽमं निवेद्य[4]सक्तुना पिण्डदानादि कृत्वा दक्षिणादानादिना श्राद्धं समाप्य सजातीयान्गृहसिद्धपक्वान्नेन भोजयेत्।

इसी प्रकार द्विजपत्नियां भी व्रत और उद्यापन आदि की तरह संकल्पमात्र स्वयं करके वैदिक मन्त्र आदि प्रयुक्त सब श्राद्ध ब्राह्मण द्वारा करावें, ऐसा 'पारिजात' कार का मत है। शूद्र को सदा आम श्राद्ध ही करना चाहिये। 'पित्रे नमः' 'पितामहाय नमः' इस प्रकार नमोन्त नाम-मन्त्र से निमन्त्रण, पाद्य, आसन, गन्ध और पुष्प आदि से ब्राह्मणों की पूजाकर कच्चा अन्न निवेदन कर सतुआ से पिण्डदान आदि करके दक्षिणा दान आदि से श्राद्ध को समाप्त कर अपने समान जातिवालों को घर में बने हुए पक्वान्न से भोजन करावे।

अथ सच्छूद्रविषयकविचारः

यत्तु सिन्धौ[5]नाममन्त्रेणावाहनाग्नौकरणकाश्यपगोत्रोच्चारपूर्वकपिण्डदानादिकं तर्पणादिकं पाकेन पिण्डदानादिकं चोक्तं तत्सच्छूद्रविषयम्। सप्तपुरुषं त्रिपुरुषं वा परंपरया स्नानवैश्वदेवतर्पणादिकं शूद्रकमलाकरादिग्रन्थसंगृहीतं धर्मं नियमेनाचरन् सच्छूद्र उच्यते।

जो कि निर्णयसिन्धु में नाममन्त्र से आवाहन, अग्नौकरण और काश्यपगोत्र का उच्चारण कर पिण्डदानादि तर्पण आदि और पाक के द्वारा पिण्डदानादि कहा है वह सब सच्छूद्र के लिये हैं। सच्छूद्र उसको कहते हैं, जो सात पुश्त की परम्परा से स्नान, वैश्वदेव और तर्पण आदि 'शूद्रकमलाकर' आदि ग्रन्थों में संगृहीत धर्म का नियम से आचरण करता है।

---

१. किन्तु गार्गी-मैत्रेयी-प्रभृति द्विजस्त्रियों की अपनी-अपनी शाखाओं में पारंगत होने और गृह्यसूत्रों में यजमान की पत्नी के उन-उन मन्त्रों की पाठ-विधि से यह चिन्त्य है।

२. सुमन्तुः—'सदा चैव तु शूद्राणामामश्राद्धं विधीयते।' वृद्धपराशरः—'आमान्नेन तु शूद्रस्य तूष्णीं तु द्विजपूजनम्। कृत्वा श्राद्धं तु निर्वाप्य सजातीनाशयेदथ॥' इति।

३. जैसा गौतम ने बतलाया है—'अनुमतोऽस्य नमस्कारो मन्त्रः' इति। देवताओं के नाममन्त्र तो अन्त में नमः और आदि में प्रणव (ओंकार) युक्त होने चाहिये, जैसा पद्मपुराण में कहा है—'प्रणवादि नमोन्तं च चतुर्थ्यन्तं च सत्तम। देवतायाः स्वकं नाम मूलमन्त्र उदाहृतः॥' जैसे—'ॐ रामाय नमः' 'ॐ कृष्णाय नमः' इत्यादि।

४. भविष्यपुराणे—'शूद्रस्तु गृहपाकेन न पिण्डान्निर्वपेत्तथा। सक्तु मूलं फलं तस्य पायसं वा भवेत्स्मृतम्॥' इति।

५. भविष्यपुराणे—'धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञा यदि शूद्राः प्रकुर्वते। अग्नौकरणमन्त्रश्च नमस्कारो विधीयते॥ आवाहनादि कर्तव्यं यथा शूद्रेण तच्छृणु। देवानां देवनाम्ना तु पितॄणां नामगोत्रतः॥ पिण्डादीन्निर्वपेद् वीर नामतो गोत्रतस्तथा।' शूद्रों का गोत्रज्ञान के अभाव में—'तस्मादाहुः सर्वाः प्रजाः काश्यप्यः' इस श्रुति और 'गोत्रनाशे तु काश्यपः' इस व्याघ्रपाद के वचन से कश्यप गोत्र है।

अथ हीनजातीयविषयकविचारः

एवं किरातयवनादिहीनजातीयानां विप्रेभ्य[1] आमदानदक्षिणादानपूर्वकं स्वस्वजातीयभोजनात्मकमेव श्राद्धम्।

इसी प्रकार किरात यवन आदि हीन जातियों में ब्राह्मण को कच्चे अन्न का दान, एवं दक्षिणा दान करके अपनी-अपनी जाति वालों को भोजन कराना, यही उनका श्राद्ध है।

अथ राजकार्यनियुक्तादीनां निर्णयः

राजकार्ये नियुक्तस्य बन्धनिग्रहवर्तिनः।
व्यसनेषु च सर्वेषु श्राद्धं विप्रेण कारयेत्॥

अत्र प्रथमं जीवत्पितृकनिर्णय उक्तस्तत्र प्रसङ्गात्किंचिदधिकारविचारोऽप्युक्तः। इदानीं तु सर्वोप्यधिकारक्रमविचारः सविस्तर उक्त इति तेनात्र पुनरुक्तिर्बालबोधनार्थत्वान्न दोषाय। इति श्राद्धाधिकारदाहाद्यधिकारनिर्णयः।

राजकार्य में नियुक्त का, कारागार में रहने वाले का और सभी व्यसनों में ब्राह्मण से श्राद्ध करावे। इसमें पहिले जीवत्पितृक का निर्णय और प्रसंग से कुछ अधिकार का विचार भी कहा है। इस समय तो सभी अधिकार-क्रम का विचार विस्तार के साथ कहा है। इससे यहां पुनरुक्ति बालबोधनार्थ होने से दोषप्रद नहीं है। श्राद्ध और दाह आदि का अधिकारनिर्णय समाप्त।

अथ श्राद्धशब्दार्थः

पित्रादीन्मृतानुद्दिश्य विहिते काले देशे पक्वान्नामान्नहिरण्यान्यतमद्रव्यस्य विधिना दानं [2]श्राद्धम्। तत्राग्नौकरणं पिण्डदानं ब्राह्मणभोजनं च प्रधानम्। तदुक्तम्—

---

१. महाभारत राजधर्म में कहा है—'यवनाः किराता गान्धाराश्चीनाः शबरबर्बराः। शकास्तुषाराः कङ्काश्च पह्लवाश्चान्ध्रमद्रकाः॥ ·· ··· ··· ···वेदधर्मक्रियाश्चैव तेषां धर्मो विधीयते। पितृयज्ञास्तथा कूपाः प्रपाश्च शयनानि च॥ दानानि च यथाकालं द्विजेभ्यो विसृजेत् सदा।' तथा—'दक्षिणा सर्वयज्ञानां दातव्या भूतिमिच्छता। पाकयज्ञा महार्हाश्च कर्तव्याः सर्वदस्युभिः॥' इति।

२. मरीचि ने श्राद्ध का स्वरूप-निर्देश यों किया है—'प्रेतान् पितॄनप्युद्दिश्य भोज्यं यत्प्रियमात्मनः। श्रद्धया दीयते यत्तु तच्छ्राद्धं परिकीर्तितम्॥' ब्रह्मपुराणे—'देशे काले च पात्रे च श्रद्धया विधिना च यत्। पितॄनुद्दिश्य विप्रेभ्यो दत्तं श्राद्धमुदाहृतम्॥' बृहस्पतिः—'संस्कृतं व्यञ्जनाद्यं च पयो मधु घृतान्वितम्। श्रद्धया दीयते यस्माच्छ्राद्धं तेन निगद्यते॥'—

ब्रह्मपुराण में श्राद्ध की प्रशंसा—'यो वा विधानतः श्राद्धं कुर्यात् स्वविभवोचितम्। आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगत् प्रीणाति मानवः॥' नागरखण्ड में—'श्राद्धे तु क्रियमाणे वै न किञ्चिद् व्यर्थतां व्रजेत्। उच्छिष्टमपि राजेन्द्र तस्माच्छ्राद्धं समाचरेत्॥' यम की उक्ति है—'ये यजन्ति पितॄन् देवान् ब्राह्मणांश्च हुताशनान्। सर्वभूतान्तरात्मानं विष्णुमेव यजन्ति ते॥' ब्रह्मवैवर्त में—'देवकार्यादपि सदा पितृकार्यं विशिष्यते। देवताभ्यः पितॄणां हि पूर्वमाप्यायनं शुभम्॥' ब्रह्मपुराण में श्राद्ध की कर्तव्यता—'तस्माच्छ्राद्धं नरो भक्त्या शाकैरपि यथाविधि। कुर्वीत श्रद्धया तस्य कुले कश्चिन्न सीदति॥' इति।

होमश्च पिण्डदानं च तथा ब्राह्मणभोजनम् ।
श्राद्धशब्दाभिधेयं स्यादेकस्मिन्नौपचारिकम् ॥ इति ।

क्वचिद्वचनादशक्त्या वा पिण्डदानाद्यकरणे ब्राह्मणभोजनादिमात्रमपि श्राद्धपदार्थः सम्पद्यत इति चतुर्थपादार्थः । तथा च वचनान्तरम्—

यजुषां पिण्डदानं तु बह्वृचानां द्विजार्चनम् ।
श्राद्धशब्दाभिधेयं स्यादुभयं सामवेदिनाम् ॥

अश्रद्धया पितरो न सन्तीति मत्वा श्राद्धमकुर्वाणस्य [1]रक्तं पितरः पिबन्ति ।

मरे हुए पिता आदि के उद्देश्य से विहित काल और देश में पक्वान्न, आमान्न और सुवर्ण में से किसी एक द्रव्य के विधिपूर्वक दान को श्राद्ध कहते हैं । इसमें अग्नौकरण, पिण्डदान तथा ब्राह्मणभोजन प्रधान हैं । यह कहा है—होम, पिण्डदान तथा ब्राह्मणभोजन, ये श्राद्ध शब्द से अभिहित हैं । एक में औपचारिक है । कहीं वचन से या असामर्थ्य से पिण्डदान आदि के न करने पर केवल ब्राह्मणभोजन आदि भी श्राद्धपद का अर्थ सम्पन्न करता है यह पूर्वोक्त 'होमश्च पिण्डदानं च' इस वचन के चतुर्थपाद का अर्थ है । वैसा वचनान्तर भी है—यजुर्वेदियों के लिये पिण्डदान बह्वृचों के लिये ब्राह्मणपूजन श्राद्धशब्दाभिधेय है और सामवेदियों के लिये पिण्डदान, ब्राह्मणार्चन दोनों श्राद्धशब्द पदवाच्य हैं । अश्रद्धा से 'पितृगण नहीं हैं' ऐसा मानकर श्राद्ध नहीं करने वाले का रक्त पितृगण पीते हैं ।

अथ श्राद्धभेदाः

तत्र श्राद्धं [2]चतुर्विधम्—पार्वणश्राद्धमेकोद्दिष्टश्राद्धं नान्दीश्राद्धं सपिण्डीकरणश्राद्धं चेति भेदात् ।

श्राद्ध चार प्रकार का है—पार्वण, एकोद्दिष्ट, नान्दीश्राद्ध और सपिण्डीकरण, इस भेद से ।

अथ पार्वणविचारः

पित्रादित्रयोद्देशेन विहितं पिण्डत्रययुतं पार्वणम् । तच्चैकपार्वणकद्विपार्वणकत्रिपार्वणकमिति त्रिविधम् । तत्र पित्रादेर्मृततिथौ क्रियमाणं प्रतिसांवत्सरिक-

---

१ आदित्यपुराणे—'न सन्ति पितरश्चेति कृत्वा मनसि यो नरः । श्राद्धं न कुरुते तत्र तस्य रक्तं पिबन्ति ते ॥' इति ।

२ विश्वामित्र ने श्राद्ध के बारह भेद बतलाये हैं—'नित्यं नैमित्तिकं काम्यं वृद्धिश्राद्धं सपिण्डनम् । पार्वणं चेति विज्ञेयं गोष्ठ्यां शुद्ध्यर्थमष्टमम् ॥ कर्माङ्गं नवमं प्रोक्तं दैविकं दशमं स्मृतम् । यात्रास्वेकादशं प्रोक्तं पुष्ट्यर्थं द्वादशं स्मृतम् ॥' इनके लक्षण भविष्यपुराण में यों हैं—'अहन्यहनि यच्छ्राद्धं तन्नित्यमिति कीर्तितम् । वैश्वदेवविहीनं तदशक्तावुदकेन तु ॥ एकोद्दिष्टं तु यच्छ्राद्धं तन्नैमित्तिकमुच्यते । तदप्यदैवं कर्तव्यमयुग्मान् भोजयेद् द्विजान् । कामाय विहितं काम्यमभिप्रेतार्थसिद्धये । वृद्धौ यत्क्रियते श्राद्धं वृद्धिश्राद्धं तदुच्यते ॥ गन्धोदकतिलैर्मिश्रं कुर्यात् पात्रचतुष्टयम् । अर्घ्यार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसेचयेत् ॥ ये समाना इति द्वाभ्यामेतज्ज्ञेयं सपिण्डनम् । नित्येन तुल्यं शेषं स्यादेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपि ॥' इन प्रभेदों के लक्षण निर्णयसिन्धु-वीरमित्रोदयादि निबन्धग्रन्थों में देखें । कूर्मपुराण में—'अहन्यहनि नित्यं स्यात् काम्यं नैमित्तिकं पुनः । एकोद्दिष्टं च विज्ञेयं वृद्धिश्राद्धं च पार्वणम् ॥ एतत्पञ्चविधं श्राद्धं मनुना परिकीर्तितम् । इस प्रकार श्राद्ध के जो पांच भेद बतलाये हैं, इन्हें गोष्ठ्यादि-श्राद्धों का पार्वण-एकोद्दिष्ट में अन्तर्भाव के आश्रयण से जानना चाहिये ।

मेकपार्वणकम् । [1]अमावास्यादिषण्णवतिश्राद्धनित्यश्राद्धानि महालयान्वष्टक्य-भिन्नानि द्विपार्वणकानि । एतेषु सपत्नीकपित्रादित्रयसपत्नीकमातामहादित्रययोरे-वोद्देशात् । अन्वष्टकाश्राद्धं त्रिपार्वणकं पित्रादित्रयमात्रादित्रयसपत्नीकमाता-महादित्रयाणामुद्देशात् ।

पार्वण का विचार—पिता आदि तीन के उद्देश्य से विहित तीन पिण्ड से युक्त पार्वण होता है। और वह एकपार्वण, द्विपार्वण और त्रिपार्वण, इस तरह तीन प्रकार का होता है। उसमें पिता आदि की मृत तिथि में किया जाने वाला प्रतिवार्षिक श्राद्ध एक पार्वणक होता है। अमावास्या आदि छियानबे नित्यश्राद्ध, महालय और अन्वष्टका से भिन्न द्विपार्वणक श्राद्ध है, क्योंकि इनमें सपत्नीक पिता आदि तीन और सपत्नीक मातामह आदि तीन ही के उद्देश्य से श्राद्ध होता है। अन्वष्टका श्राद्ध त्रिपार्वणक होता है, क्योंकि इनमें पिता आदि तीन, माता आदि तीन और सपत्नीक मातामह आदि तीन के उद्देश्य से श्राद्ध होता है।

महालयश्राद्धं तीर्थश्राद्धं च पार्वणैकोद्दिष्टरूपम् । पित्रादिपार्वणत्रयस्य पत्न्याद्येकोद्दिष्टगणस्य चोद्देशात् । केचिदेतद्द्वयं मातामहमातामह्योः पार्वण-भेदेन पार्वणचतुष्टययुतं कुर्वन्ति । केषांचित्सूत्रे दर्शोऽपि त्रिपार्वणकश्चतुःपार्वणको वेति हेमाद्रौ ।

महालयश्राद्ध और तीर्थश्राद्ध पार्वण और एकोद्दिष्ट उभय रूप है, क्योंकि पिता आदि तीन पार्वण का और पत्नी आदि एकोद्दिष्ट गण का उद्देश्य होता है। कुछ लोग-इन दोनों को मातामही के पार्वण भेद से चार पार्वण से युक्त करते हैं। किन्हीं लोगों के सूत्र में दर्शश्राद्ध भी त्रिपार्वणक या चतुःपार्वणक होता है, ऐसा हेमाद्रि में कहा है।

अथ एकोद्दिष्टादिविचारः

एकोद्देशेन क्रियमाणमेकपिण्डयुतमेकोद्दिष्टम् । तदपि त्रिविधम्—नवसंज्ञं नवमिश्रसंज्ञं पुराणसंज्ञं चेति । मृतस्य प्रथमदिनमारभ्य दशाहान्तं विहितानि [2]नवसंज्ञानि । एकादशाहादिन्यूनाब्दान्तानि नवमिश्राणि । एतानि विश्वदेवही-

---

१. अमावास्यादि छयानबे श्राद्धों के नाम ये हैं—'अमायुगमनुक्रान्तिधृतिपातमहालयाः । अष्टकाऽन्वष्टकोपूर्वेद्युःश्राद्धैर्नवतिश्च षट् ॥' अर्थात् प्रतिमास की अमावस्यायें (दर्श) १२। युगादि ४—यानी माघकृष्णअमावास्या-भाद्रकृष्णत्रयोदशी-वैशाखशुक्लतृतीया-कार्तिकशुक्ल-नवमी । मन्वादि १४—यानी चैत्रशुक्लतृतीया-चैत्रपूर्णिमा-ज्येष्ठपूर्णिमा-आषाढशुक्लदशमी-आषाढ़पूर्णिमा-श्रावणकृष्णअष्टमी-भाद्रशुक्लतृतीया-आश्विनशुक्लनवमी-कार्तिकशुक्लद्वादशी-कार्तिकपूर्णिमा-पौष-शुक्लैकादशी-माघशुक्लसप्तमी-फाल्गुनपूर्णिमा-फाल्गुनअमावस्या । संक्रान्ति १२ प्रसिद्ध । वैधृति १३ । व्यतीपात १३ । महालय १६ । अष्टका (अष्टमी) ४—मार्गकृष्णअष्टमी-पौषकृष्णअष्टमी माघकृष्ण-अष्टमी-भाद्रकृष्णअष्टमी । अन्वष्टका (अष्टमी के उत्तर दिन नवमी) ४—मार्गकृष्णनवमी-पौष-कृष्णनवमी-माघकृष्णनवमी-भाद्रकृष्णनवमी । पूर्वेद्युःश्राद्ध (अष्टमी के पूर्वदिन किया जाने वाला श्राद्ध) ४—माघकृष्णसप्तमी-पौषकृष्णसप्तमी-माघकृष्णसप्तमी-भाद्रकृष्णसप्तमी, इस प्रकार १२+४+१४+१२+१३+१३+१६+४+४=९६ श्राद्ध हुए ।

२. अङ्गिराः—'प्रथमेऽह्नि तृतीये च पंचमे सप्तमे तथा । नवमैकादशे चैव तन्नवश्राद्धमुच्यते ॥' 'नवश्राद्धानि पञ्चाहुराश्वलायनशाखिनः । आपस्तम्बाः षडित्याहुर्विभाषा त्वितरेषु हि ।' यहाँ आश्वला-

नानि। ततः पराणि कनिष्ठभ्रातृवार्षिकशस्त्रहतचतुर्दशीश्राद्धादीनि पुराणसंज्ञानि। केचित्सपिण्डयुत्तरं क्रियमाणानां पार्वणानामपि पुराणसंज्ञामाहुः।

एक के उद्देश्य से किया जाने वाला श्राद्ध जो एक पिण्डयुक्त होता है, उसे एकोद्दिष्ट कहते हैं। वह भी तीन प्रकार का है—नवसंज्ञक, नवमिश्रसंज्ञक और पुराणसंज्ञक। मरे हुए का पहिले दिन से आरंभ कर दशाहपर्यन्त विहित श्राद्ध नवसंज्ञक एकोद्दिष्ट हैं। एकादशाह आदि न्यूनाब्दपर्यन्त नवमिश्रसंज्ञक एकोद्दिष्ट हैं। ये विश्वदेवरहित होते हैं। इसके बाद वाले छोटे भाई का वार्षिकश्राद्ध, शस्त्र से मरे का चतुर्दशी श्राद्ध आदि पुराणसंज्ञक एकोद्दिष्ट हैं। कुछ लोग—सपिण्डन के बाद किये जाने वाले पार्वणों को भी पुराणसंज्ञक—कहते हैं।

अथ नान्दीश्राद्धविचारः

पुत्रजन्मविवाहादौ क्रियमाणं वृद्धिश्राद्धं नान्दीश्राद्धम्। इदं पूर्वार्धे विस्तरेण प्रपञ्चितम्। एतदेव गर्भाधानपुंसवनसीमन्तेषु आधाने सोमे च क्रियमाणं कर्माङ्गमिष्टिश्राद्धमिति चोच्यते। अत्र क्रतुदक्षौ विश्वेदेवाः। अन्यकर्मसु वृद्धिसंज्ञम्। तत्र सत्यवसू विश्वेदेवा इति नामभेदो देवभेदश्चान्यत्समानम्। एतच्च पार्वणत्रययुतत्वात्पार्वणभेदान्तर्गतमपि दर्शादितो बहुधर्मभेदात्पृथगुद्दिष्टम्।

पुत्रजन्म, विवाहादि में किये जाने वाले वृद्धिश्राद्ध को नान्दीश्राद्ध कहते हैं। इसका पूर्वार्द्ध में विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। इसे ही गर्भाधान-पुंसवन-सीमन्त में, आधान और सोमयाग में किया जाने वाला कर्मांग और इष्टि श्राद्ध कहते हैं। इसमें क्रतु और दक्ष विश्वेदेव हैं। अन्य कर्मों में वृद्धिसंज्ञक हैं। उसमें सत्य और वसु विश्वेदेव, इतना ही नामभेद और देवभेद है, अन्य सब समान है। तीन पार्वण से युक्त होने के कारण पार्वण भेदों के अन्तर्गत भी दर्शश्राद्धादि से अधिक धर्मभेद होने के कारण इसे अलग कहा है।

मृतस्य द्वादशाहादिकाले पिण्डार्घ्यसंयोजनादिरूपं सपिण्डीकरणम्। एतदपि पार्वणैकोद्दिष्टविकाररूपम्। अत्र विशेषो वक्ष्यते। एवं च पार्वणमेकोद्दिष्टमिति द्विविधमेव श्राद्धम्।

मरे हुए का द्वादशाह आदि काल में पिण्ड और अर्घ्यसंयोजन आदि रूप सपिण्डीकरण होता है। यह भी पार्वण और एकोद्दिष्ट का विकृति रूप है। इसमें विशेष कहूँगा। इस प्रकार पार्वण और एकोद्दिष्ट दो ही प्रकार का श्राद्ध है।

अथ पार्वणैकोद्दिष्टयोर्भेदाः

एतत्पुनस्त्रिविधम्—नित्यं नैमित्तिकं काम्यं चेति। नियतनिमित्ते विहितं

यनशाखियों का एकादशाह को छोड़ देने पर पाँच ही होता है, जैसा मदनरत्न में बौधायन की उक्ति है—'मरणाद्विषमेषु दिनेष्वेकैकं नवश्राद्धं कुर्यादानवमात्। यदि नवमं विच्छिद्येतैकादशे तत्कुर्यात्।' हेमाद्रि में वृद्ध वसिष्ठ का वचन है—'अलब्ध्वा तु नवश्राद्धं प्रेतत्वान्नैव मुच्यते। अर्वाक् तु द्वादशाहस्य लब्ध्वा तरति दुष्कृतम्।' बह्वृचों का नारायणवृत्ति में कहा है—'नवश्राद्धं दशाहानि नवमिश्रं तु षड्ऋतून्। अतः परं पुराणं वै त्रिविधं श्राद्धमुच्यते॥' यहाँ शाखाभेद से व्यवस्था है। भविष्यपुराणे—'नवश्राद्धं त्रिपक्षं च षण्मासं मासकानि च। न करोति सुतो यस्तु तस्याधः पितरो गताः॥' इति।

नित्यम्[1], यथा दर्शादि। प्रत्यहं विहितमपि श्राद्धं नित्यसंज्ञं पार्वणद्वययुतं विश्वदेवहीनमुक्तम्। अनियतनिमित्ते विहितं नैमित्तिकम्[2], यथा सूर्यचन्द्रग्रहणादौ। एतदपि षड्दैवतम्। फलकामनोपाधिकं काम्यम्[3], यथा पञ्चम्यादितिथौ कृत्तिकादिनक्षत्रे च।

यह फिर तीन प्रकार का है—नित्य नैमित्तिक और काम्य। नियत निमित्त में विहित को नित्य कहते हैं, जैसे दर्शश्राद्धादि। प्रतिदिन विहित भी नित्यनामक श्राद्ध दो पार्वणों से युक्त विश्वेदेवरहित कहा है। अनियत निमित्त में विहित को नैमित्तिक कहते हैं, जैसे सूर्यचन्द्रग्रहणादि में। यह भी षड्दैवत होता है। फल की कामना से क्रियमाण श्राद्ध काम्य कहलाता है, जैसे पंचमी आदि तिथि और कृत्तिका आदि नक्षत्र में।

अथ श्राद्धदेशाः

दक्षिणाप्रवणे[4] गोमयोपलिप्ते कृमिकेशास्थिश्लेष्मादिवर्जिते कृत्रिमभूमिवर्जिते रजस्वलादर्शनादिवर्जिते श्राद्धं कार्यम्। [5]कुरुक्षेत्रप्रभासपुष्करप्रयागकाशीगङ्गा-यमुनानर्मदादितीरनैमिषगङ्गाद्वारगयाशीर्षाक्षय्यवटादिषु श्राद्धं महाफलम्।

दक्षिण की ओर ढालू और गोबर से लीपे हुए स्थान में जो कृमि-केश-हड्डी-कफ आदिसे रहित और जो कृत्रिम भूमि न हो तथा रजस्वला आदि के दर्शन से रहित हो वहां श्राद्ध करना चाहिये। कुरुक्षेत्र प्रभास-पुष्कर-प्रयाग-काशीक्षेत्र में और गंगा-यमुना-नर्मदा आदि के तीर पर नैमिषारण्य-गंगाद्वार-गयाशिर-अक्षयवट आदि में किया जाने वाला श्राद्ध महाफलदायक होता है।

अथ गयाशिरसि पिण्डप्रमाणं सप्तगोत्राणि च

शमीपत्रप्रमाणेन पिण्डं दद्याद्गयाशिरे[6]।

---

१. विष्णु ने नित्य श्राद्ध का निर्देश किया है—'अमावस्यास्तिस्रोऽष्टकास्तिस्रोऽन्वष्टका मघा प्रौष्ठपद्यूर्ध्वं कृष्णत्रयोदशी व्रीहियवपाकौ च' इति। कूर्मपुराण के—'अहन्यहनि नित्यं स्यात्' इस वचन से प्रतिदिन का विहितश्राद्ध भी नित्य है।

२. गालव ने नैमित्तिक श्राद्ध का निर्देश किया है—'प्रेतश्राद्धं सपिण्डान्तं संक्रान्तौ ग्रहणेषु च। संवत्सरोदकुम्भं च वृद्धिश्राद्धं निमित्ततः॥' इति।

३. गालव ने ही काम्यश्राद्ध को कहा है—'तिथ्यादिषु च यः श्राद्धं मन्वादिषु युगादिषु। अलभ्येषु च योगेषु तत्काम्यं समुदाहृतम्॥' इति।

४. विष्णुधर्मोत्तरे—'दक्षिणाप्रवणे देशे तीर्थादौ वा गृहेऽथवा। भूसंस्कारादिसंयुक्ते श्राद्धं कुर्यात् प्रयत्नतः॥' गोमयेनोपलिप्तेषु विविक्तेषु गृहेषु च। कुर्याच्छ्राद्धमथैतेषु नित्यमेव यथाविधि॥' दक्षिणाप्रवणे=दक्षिणतो निम्नीकृते। भूसंस्कारादिसंयुक्ते=मार्जनादिना भूशुद्धियुते। याज्ञवल्क्य ने भूसंस्कार यों बतलाया है—'भूशुद्धिर्मार्जनाद्दाहात्कालाद् गोक्रमणात्तथा। सेकादुल्लेखनाल्लेपाद् गृहं मार्जनलेपनात्॥' इति।

५. महाभारते—'तस्य देशाः कुरुक्षेत्रं गया गङ्गा सरस्वती। प्रभासं पुष्करं चेति तेषु श्राद्धं महाफलम्॥' शङ्खः—'गंगायमुनयोस्तीरे पयोष्ण्यमरकण्टके। नर्मदा बाहुदातीरे भृगुलिङ्गे हिमालये॥ गङ्गाद्वारे प्रयागे च नैमिषे पुष्करे तथा। सन्निहत्यां गयायां च दत्तमक्षय्यतां व्रजेत्॥ अपि जायेत सोऽस्माकं कुले कश्चिन्नरोत्तमः। गयाशीर्षे वटे श्राद्धं यो नो दद्यात्समाहितः॥' इति।

६. गयाशिरे=गयाशिरसि, 'ये सान्तास्ते अदन्ता अपि' इत्युक्त्या समावेयम्। आदित्य-

उद्धरेत्सप्तगोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम् ॥
पिता माता च भार्या च भगिनी दुहिता तथा ।
पितृमातृष्वसा चैव सप्तगोत्राणि वै विदुः ॥

एषां गोत्राणां पुरुषाः क्रमेण 'चतुर्विंशतिर्विंशतिषोडशद्वादशैकादशाष्टावित्येकोत्तरशतसंख्यास्तेषामुद्धार इत्यर्थः । तत्र पितृकुले द्वादश पूर्वा द्वादश परा इति चतुर्विंशतिः । एवमग्रेऽपि ।

[2]तुलसीकाननच्छाया शालग्रामस्य सन्निधिः ।
चक्राङ्कितस्य सान्निध्यमेषु यत्क्रियते नरैः ॥
स्नानं दानं तपः श्राद्धं सर्वमक्षय्यतां व्रजेत् ।

शमी के पत्ते के बराबर गया में दिया हुआ पिण्ड सात गोत्र और एक सौ एक कुल का उद्धार करता है । पिता, माता, स्त्री, बहिन, लड़की, बुआ, मौसी, इन्हीं सात को आचार्य लोग सप्त गोत्र कहते हैं । इन गोत्रों के क्रम से चौबीस, बीस, सोलह, बारह, ग्यारह, दस और आठ इस प्रकार पुरुष की एक सौ एक संख्या होती है, उन्हीं का उद्धार करता है । उसमें पितृकुल के बारह पूर्व और बारह पर, इस प्रकार चौबीस हुए । ऐसे ही आगे भी समझें । तुलसी वन की छाया, शालग्राम का सन्निधान और चक्रांकित के सान्निध्य में पुरुषों द्वारा जो स्नान, दान, तप और श्राद्ध किया जाता है वह सब अक्षय होता है ।

अथ श्राद्धे निषिद्धस्थानानि

[3]गोगजाश्वादिजुष्टप्रदेशे म्लेच्छदेशे च श्राद्धं न कार्यम् । परकीयगृहादौ

पुराण में गयाशिर का प्रमाण—'पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्रं क्रोशमेकं गयाशिरः । महानद्याः पश्चिमेन यावद् गृध्रेश्वरो गिरिः ॥ उत्तरे ब्रह्मयूपस्य यावद्दक्षिणमासनम् । एतद्गयाशिरो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥' बृहस्पतिः—'गयायां धर्मपृष्ठे च सरसि ब्रह्मणस्तथा । गयाशीर्षेऽक्षयवटे पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥ धर्मारण्यं धर्मपृष्ठं धेनुकारण्यमेव च । दृष्ट्वैतानि पितॄंश्चार्चन् वंश्यान् विंशतिमुद्धरेत् ॥' इति ।

१. वायुपुराणे—'तत्त्वानि विंशतिर्नृपा द्वादशैकादशा दश । अष्टाविति च गोत्राणां कुलमेकोत्तरं शतम् ॥' इति । नृपाः = षोडश ।

२. स्कन्दपुराणे—'तुलसीकाननच्छाया यत्र यत्र भवेद् द्विज । तत्र श्राद्धं प्रदातव्यं पितॄणां तृप्तिहेतवे ॥' प्रयोगपरिजात में पद्मपुराण का वचन है—'शालग्राममयी मुद्रा संस्थिता यत्र कुत्रचित् । वाराणस्या यवाधिक्यं समन्ताद्योजनत्रयम् ।''''''यत्किञ्चित्पैतृकं कुर्यात् सपिण्डं वा तदन्तिके । विष्णुलोकं स गच्छेत्तु लभते शाश्वतं पदम् ॥' इति ।

३. शङ्ख ने निषिद्ध देश का निर्देश यों किया है—'गोगजाश्वादिजुष्टेषु कृत्रिमायां तथा भुवि । न कुर्याच्छ्राद्धमेतेषु पारक्यासु च भूमिषु ॥' यमः—'परकीयप्रदेशेषु पितॄणां निर्वपेत्तु यः । तद्भूमिस्वामिपितृभिः श्राद्धकर्म विहन्यते ॥' वायुपुराणे—'त्रिशङ्कोर्वर्जयेद्देशं सर्वं द्वादशयोजनम् । उत्तरेण महानद्या दक्षिणेन तु कीकटम् ॥ देशस्त्रैशङ्कवो नाम श्राद्धकर्मणि वर्जितः । कारस्कराः कलिङ्गाश्च सिन्धोरुत्तरमेव च ॥ प्रणष्टाश्रमवर्णाश्च देशा वर्ज्याः प्रयत्नतः ।' विष्णुः—'न म्लेच्छविषये श्राद्धं कुर्यान्न च गच्छेत्' इति । महाभारत और ब्रह्मपुराण में—'परकीयगृहे यस्तु स्वान् पितॄंस्तर्पयेद्यदि । तद्भूमिस्वामिनस्तस्य हरन्ति पितरो बलात् ॥ अग्रभागं ततस्तेभ्यो दद्यान्मूल्यं च जीवताम् । अग्र-

श्राद्धकरणे तद्भूमिस्वामिपितरो भागं हरन्ति। तेन गृहस्वामिने मूल्यं दत्त्वा कार्यम्। स्वाम्यनुज्ञया वा कार्यम्।

वनानि गिरयो नद्यस्तीराण्यायतनानि च।
देवखाताश्च गर्ताश्च न स्वाम्यं तेषु कस्यचित्॥
नैकवासा न च द्वीपे नान्तरिक्षे कदाचन।
श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म न कुर्यादशुचिः क्वचित्॥

गाय, हाथी और घोड़ा आदि से सेवित प्रदेश में तथा म्लेच्छदेश में श्राद्ध नहीं करे। दूसरे के घर आदि में श्राद्ध करने से उस भूमि के स्वामी पितर लोग भाग ले लेते हैं। इससे घर के स्वामी को मूल्य देकर श्राद्ध करे या स्वामी की आज्ञा से श्राद्ध करे। वन, पर्वत, नदियां, तीर, गृह, देवकुण्ड, देवगर्त, इनमें किसी का स्वामित्व नहीं होता। एक वस्त्र से, द्वीप में, अन्तरिक्ष में और अपवित्र होकर श्रुति-स्मृति-विहित कर्म न करे।

अथ श्राद्धकालाः

ते च प्रायेणामासंक्रान्तियुगादिमन्वादिमहालयादयः पूर्वपरिच्छेद उक्ता एव। केचित्तूच्यन्ते—महातीर्थप्राप्तिर्व्यतीपातो मृताहो ग्रहणद्वयं श्राद्धं प्रति रुचिः श्रोत्रियादिब्राह्मणसंपत्तिरर्धोदयकपिलाषष्ठयाद्यलभ्ययोगा ग्रहपीडा दुःस्वप्नदर्शनं नवान्नप्राप्तिर्नवोदकप्राप्तिर्गृहप्रच्छादनादिनिमित्तं च श्राद्धकालाः[१]।

वे समय—अमावास्या, संक्रान्ति, युगादि, मन्वादि और महालय आदि पूर्व परिच्छेद में प्रायः कहे गये हैं। कुछ को कह रहा हूँ—महातीर्थ की प्राप्ति, व्यतिपात योग, मृत्युदिन, चन्द्र-सूर्य-ग्रहण, श्राद्ध के प्रति रुचि, श्रोत्रिय आदि ब्राह्मणसम्पत्ति, अर्धोदय, कपिला षष्ठी आदि अलभ्य योग, ग्रहपीड़ा, दुःस्वप्नदर्शन, नवान्नप्राप्ति, नवोदकप्राप्ति और गृहप्रच्छादन आदि निमित्त श्राद्ध-काल हैं।

अथ पद्मकयोगलक्षणम्

यदा विष्टिर्व्यतीपातो भानुवारस्तथैव च।
पद्मको नाम योगोयमयनादेश्चतुर्गुणः॥

भागं = श्राद्धीयद्रव्यस्य प्रथममेकदेशमुद्धृत्य भूमिस्वामिपितृभ्यो दद्यात्। जीवताम् = जीवत्सु भूमिस्वामिपितृषु मूल्यं दद्यादिति शूलपाण्यादयः। 'परकीयगृहे०' यह वचन स्वामी के आदेश न होने पर है। स्वामी के आदेश मिलने पर ब्रह्मपुराण में श्राद्ध करना बतलाया है—'स्वनुलिप्तेषु गेहेषु स्वेष्वनुज्ञापितेषु च। श्राद्धमेतेषु दातव्यं वर्ज्यमेतेषु नोच्यते॥' इति।

१. याज्ञवल्क्यः—'अमावस्याष्टका वृद्धिः कृष्णपक्षोऽयनद्वयम्। द्रव्यं ब्राह्मणसम्पत्तिर्विषुवत्सूर्यसंक्रमः॥ व्यतीपातो गजच्छाया ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः। श्राद्धं प्रतिरुचिश्चैव श्राद्धकालाः प्रकीर्तिताः॥' मार्कण्डेयः—'यदा च श्रोत्रियोऽभ्येति गृहं वेदविदग्निचित्। तेनैकेनापि कर्तव्यं श्राद्धं च विषुवच्छुभे॥' हेमाद्रि ने इसे पिण्डरहित बतलाया है। मार्कण्डेयपुराण में—'श्राद्धार्हद्रव्यसम्पत्तौ तथा दुःस्वप्नदर्शने। जन्मर्क्षे ग्रहपीडासु श्राद्धं कुर्वीत चेच्छया॥' वृद्धपराशरः—श्राद्धं वृद्धावचन्द्रेभच्छायाग्रहणसंक्रमे। नवोदके नवान्ने च नवच्छन्ने तथा गृहे॥ नवैक्ष्वेषु चेहन्ते पितरो हि मघास्वपि॥' इति।

सर्वमासानां कृष्णपक्षेषु श्राद्धमुक्तम्[1] । अत्र प्रत्यहं पञ्चम्यादि वा यदहः संपत्तिर्वेति त्रयः पक्षाः । एकदिनपक्षे दर्श एव । नारायणवृत्तौ तु दर्शश्राद्धेनैव पक्षश्राद्धसिद्धिरुक्ता ।

जिस दिन भद्रा, व्यतीपात तथा रविवार हो यह पद्मक नाम का योग अयन आदि से चौगुना फलदायक है । सब महीने के कृष्णपक्ष में श्राद्ध कहा है । इसमें प्रतिदिन, अथवा पंचमी आदि, अथवा जिस दिन श्राद्ध की सम्पत्ति हो, ये तीन पक्ष हैं । एक दिन वाले पक्ष में दर्श श्राद्ध ही है । नारायणवृत्ति में तो दर्शश्राद्ध से ही पक्षश्राद्ध की सिद्धि कही है ।

अथ दर्शश्राद्धानुकल्पाः

सर्वमासेषु दर्शश्राद्धाशक्तौ [2]कन्याकुम्भवृषस्थेऽर्के सति दर्शत्रये एकत्र दर्शे वा श्राद्धम् । साग्निकस्य त्वशक्तस्य पिण्डपितृयज्ञमात्रेण दर्शसिद्धिः । निरग्निकस्य ब्राह्मणभोजनमात्रेण धान्यादिद्रव्यदानेन वा दर्शसिद्धिः । कृष्णपक्षेषु महालयापरपक्षस्य श्रेष्ठत्वम् । तत्रापि पञ्चदशाहादिपक्षा अन्योऽपि बहुविस्तरो द्वितीयपरिच्छेदे उक्तः । अत्र विशेषान्तरं कालतत्त्वविवेचने । पञ्चदशाहव्यापिमहालयप्रयोगारम्भोत्तरमाशौचपाते कृतमहालयानां वैफल्यम् । तेन शुद्धयन्ते कस्यांचित्तिथौ सकृन्महालयमात्रमनुष्ठेयम् । एवं पञ्चम्यादिपक्षेऽपि प्रतिबन्धान्तरे प्रतिनिधिद्वारा शेषमहालयानुष्ठानम् ॥

सभी महीनों में दर्शश्राद्ध करने में असमर्थ होने पर कन्या कुंभ और वृष के सूर्य के रहते, तीनों दर्श में या एक दर्श में श्राद्ध करे । अशक्त साग्निक का तो केवल पिण्डपितृयज्ञ दर्शश्राद्ध की सिद्धि होती है । निरग्निक को केवल ब्राह्मणभोजनमात्र से या धान्यादि द्रव्य के दान से दर्श की सिद्धि होती है । कृष्ण पक्षों में महालय के अपरपक्ष की श्रेष्ठता है । उसमें भी पन्द्रह दिन आदि के पक्ष अन्य भी बहुत सा विस्तार द्वितीय परिच्छेद में कह चुका हूँ । इसमें अन्य विशेषता कालतत्त्वविवेचन में है । पन्द्रह दिनव्यापी महालय प्रयोगारंभ के बाद यदि आशौच पड़ जाय तो किये हुए महालयों की विफलता होती है । इससे आशौच की शुद्धि के बाद किसी तिथि में केवल एक बार महालय का अनुष्ठान करे । इसी तरह पंचमी आदि पक्ष में भी दूसरे किसी प्रतिबन्ध के होने से प्रतिनिधिद्वारा बाकी महालय श्राद्ध करे ।

अथ पितृव्यादीनां महालयप्रकारः

पितृव्यज्येष्ठभ्रात्रादीनामपुत्राणां महालयापरपक्षे तत्तन्मृततिथौ तदेकपार्वणकमहालयश्राद्धं [3]जीवत्पितृकेणापि कार्यमिति । द्वादशपौर्णमास्योरसंभवे माघीश्रावणीप्रौष्ठपद्यो नित्याः ।

---

१. आपस्तम्ब ने कहा है—'मासि मासि कार्यम्, अपरपक्षस्यापराह्णः श्रेयान्' । 'शाकेनाप्यपरपक्षं नातिक्रमेत्, मासि मासि वाऽशनम्' इति श्रुतिः ।

२. मत्स्यपुराणे—'अनेन विधिना श्राद्धं त्रिरब्दस्येह निर्वपेत् । कन्याकुम्भवृषस्थेऽर्के कृष्णपक्षे च सर्वदा ॥' निगमः—'कृष्णपक्षे यदहः सम्पद्यते अमावास्यायां तु विशेषेण' 'अशक्तौ दर्शेनापि मासि श्राद्धसिद्धिः' इति नारायणवृत्तिः ।

३. मैत्रायणीयपरिशिष्टे—'उद्वाहे पुत्रजनने पित्र्येष्ट्यां सौमिके मखे । तीर्थे ब्राह्मण आयाते षडेते जीवतः पितुः ॥' इति ।

पुत्ररहित चाचा और जेठे भाई आदि का श्राद्ध महालय के अपर पक्ष में उन-उन मृत तिथि में एक पार्वण वाला महालय श्राद्ध जीवत्पितृक को भी करना चाहिये। बारहो पूर्णिमा श्राद्ध के असम्भव में माघी, श्रावणी और भाद्रपदी नित्य हैं।

अथ काम्यश्राद्धकालाः

कस्मिंश्चित्कृष्णपक्षे प्रतिपदादिपञ्चदशतिथिषु[1] कृत्तिकादिभरण्यन्तनक्षत्रेषु विष्कम्भादियोगेषु सूर्यादिवारेषु बवादिकरणेषु च श्राद्धे फलविशेषोक्तेरेते तिथ्यादयः काम्यश्राद्धकाला ज्ञेयाः। इति सामान्यकालः।

किसी कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा आदि पन्द्रह तिथियों में, कृत्तिका से भरणीपर्यन्त नक्षत्रों में, विष्कुम्भ आदि योग में, सूर्य आदि वारों में और बव आदि करणों में श्राद्ध करने से फल विशेष कहा है, इससे ये तिथ्यादि काम्य श्राद्ध के काल हैं। सामान्य काल समाप्त।

अथापराह्णादिकालविशेषनिर्णयः

दिनस्य पञ्चविभागास्त्रित्रिमुहूर्तकास्तत्राद्यो भागः प्रातःसंज्ञः द्वितीयः संगवः तृतीयो मध्याह्नः चतुर्थोऽपराह्णः पञ्चमो भागः सायाह्नः। दिनस्य पञ्चदशो भागो मुहूर्तः। तत्र सप्तमो गन्धर्वोऽष्टमो मुहूर्तः कुतुपः नवमो रौहिणः। तत्र दर्शादिश्राद्धानां निर्णयः पूर्वपरिच्छेदयोः प्रायेणोक्तः, विशेषस्तूच्यते—साग्निकानां कात्यायनादीनामन्वाधानपिण्डपितृयज्ञदर्शश्राद्धानामेकदिनकर्तव्यत्वनियमात् त्रेधाविभक्तदिनतृतीयभागरूपापराह्णव्यापिन्याममायां दर्शश्राद्धं कर्तव्यम्।

दिन का पांच विभाग तीन-तीन मुहूर्त्त के होते हैं। उनमें पहिले भाग की संज्ञा प्रातः है, दूसरे की संगव, तीसरे भाग की मध्याह्न, चौथे की अपराह्ण और पंचम भाग की संज्ञा सायाह्न है। दिन के पन्द्रहवें भाग को मुहूर्त्त कहते हैं। उसमें सप्तम का नाम गन्धर्व, आठवें का कुतुप और नवम का रौहिण है। उसमें दर्श आदि श्राद्धों का निर्णय दोनों पूर्व परिच्छेदों में प्रायः कहा है, विशेष तो कह रहा हूँ—साग्निक कात्यायन आदि का अन्वाधान, पिण्डपितृयज्ञ और दर्शश्राद्ध एक दिन करने का नियम है, इससे दिन को तीन भागों में विभाग कर तीसरे भागरूप अपराह्णव्यापिनी अमावास्या में उन्हें दर्शश्राद्ध करना चाहिये।

अथ एकोद्दिष्टश्राद्धे तिथिनिर्णयः

अथ प्रतिसांवत्सरिकमासिकादिनिर्णय उच्यते—तत्रैकोद्दिष्टं मध्याह्ने सप्तमाष्टमनवममुहूर्तरूपे[2] कार्यम्। तत्रापि कुतुपरौहिणसंज्ञकावष्टमनवममुहूर्तौ मुख्यः

---

१. याज्ञवल्क्य ने–'कन्यां कन्यावेदिनश्च पशून्वै सत्सुतानपि' इत्यादि से तिथियों और 'स्वर्गं ह्यपत्यमोजश्च शौर्यं क्षेत्रं बलं तथा' इत्यादि से नक्षत्रों का फलविशेष कहा है। कृत्तिकादि भरणीपर्यन्त नक्षत्रों के फल के समान ही विष्कम्भादि योगों का भी फल है। बृहस्पति ने रविवारादि का फल यों बतलाया है—'आरोग्यं चैव सौभाग्यं शत्रूणां च पराजयम्। सर्वान् कामान् प्रियां विद्यां धनमायुर्यथाक्रमम्॥ सूर्यादिदिवसेष्वेतच्छ्राद्धकृल्लभते फलम्। बवादिकरणेष्वेतच्छ्राद्धकृल्लभते फलम्॥' इति।

२. वृद्धगौतमः—'मध्याह्नव्यापिनी या स्यात्सैकोद्दिष्टे तिथिर्भवेत्।' गौतमः—'प्रारभ्य कुतपे श्राद्धं कुर्यादारौहिणं बुधः। विधिज्ञो विधिमास्थाय रौहिणं तु न लङ्घयेत्॥' माधवीये व्यासोऽपि—'कुतपप्रथमे भागे एकोद्दिष्टमुपक्रमेत्। आवर्तनसमीपे वा तत्रैव नियतात्मवान्॥' इति।

कालः। तत्र पूर्वत्रैव परत्रैव वा दिने मध्याह्नव्याप्तौ सैव तिथिर्ग्राह्या। दिनद्वये मध्याह्नव्याप्तौ मध्याह्नास्पर्शे वा पूर्वत्रैव। दिनद्वये साम्येनैकदेशव्याप्तौ [1]पूर्वा। खर्वदर्पादिैर्व्यवस्थेत्यन्ये। वैषम्येणैकदेशव्याप्तावाधिक्येन निर्णयः।

प्रति सांवत्सरिक और मासिकादि श्राद्ध का निर्णय कह रहा हूँ--एकोद्दिष्ट श्राद्ध मध्याह्न में सप्तम अष्टम और नवम मुहूर्त में करे। उसमें भी कुतुप-रौहिण नामक अष्टम और नवम, ये दोनों मुख्य काल हैं। उसमें पहिले और दूसरे ही दिन में मध्याह्नव्यापिनी हो तो वही तिथि ग्राह्य है। दोनों दिन मध्याह्नव्याप्ति में या मध्याह्न से स्पर्श न होने पर पहिले ही दिन करे। दोनों दिन समता से एक देश में व्याप्ति होने पर पूर्वा तिथि लेनी चाहिये। दूसरे कहते हैं—खर्व दर्प आदि से व्यवस्था करे। विषमता से एकदेश में व्याप्ति होने पर जो अधिक हो उससे निर्णय करे।

अथ पार्वणश्राद्धे तिथिनिर्णयः

पार्वणे त्वपराह्णव्यापिनी[2] ग्राह्या। पूर्वत्रैव परत्रैव वाऽपराह्णव्याप्तौ सैव ग्राह्या। दिनद्वये तद्व्याप्तौ तदस्पर्शे वांशतः समव्याप्तौ वा पूर्वा। विषमव्याप्तौ त्वधिका ग्राह्या[3]। माधवाचार्यास्तु दिनद्वये पूर्णापराह्णव्याप्तावंशतः समव्याप्तौ चोत्तरतिथेः क्षये पूर्वा वृद्धौ परा, उत्तरतिथेः क्षयवृद्ध्यभावेऽपि परेत्याहुः[4]। अयं क्षयाहनिर्णयः प्रत्याब्दिके मासिके सकृन्महालये च ज्ञेयः। 'श्राद्धे भरण्यादिनक्षत्रं व्यतीपातादियोगश्चापराह्णव्यापीत्युक्तं द्वितीये।

पार्वण में तो अपराह्नव्यापिनी तिथि लेनी चाहिये। पहिले दिन या दूसरे दिन जिस दिन अपराह्न-व्यापिनी हो वही ग्राह्य है। दोनों दिन अपराह्न में व्याप्ति हो या उसका स्पर्श न हो अथवा अंशतः समता से व्याप्ति हो तो पूर्वा तिथि ले। विषमव्याप्ति में तो अधिक वाली ग्राह्य है। माधवाचार्य तो—दोनों दिन पूर्ण अपराह्नव्याप्ति में और अंशतः सम व्याप्ति में भी उत्तर तिथि के क्षय में पूर्वा और उत्तरा तिथि के वृद्धि में परा ग्राह्य है, उत्तर तिथि के क्षय-वृद्धि दोनों के न होने पर भी परा ले—ऐसा कहते हैं। यह क्षयाह निर्णय प्रत्याब्दिक, मासिक और सकृन्महालय में जानना चाहिये। श्राद्ध में भरणी आदि नक्षत्र और व्यतिपात आदि योग भी अपराह्नव्यापी ले, ऐसा द्वितीय परिच्छेद में कहा है।

केचिच्छुक्लपक्षे उदयव्यापिनक्षत्रं कृष्णपक्षेऽस्तमयव्यापि, योगस्तु कुतुपादि-व्यापीत्याहुः। एतच्च पार्वणश्राद्धं कुतुपादिमुहूर्तपञ्चके कार्यं न सायाह्ने न रात्रौ

---

१. अपरार्क में नारद की उक्ति है—'दर्शं च पूर्णमासं च पितुः सांवत्सरं दिनम्। पूर्व-विद्धमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ॥' इति।

२. पृथ्वीचन्द्रोदय में वृद्ध गौतम की उक्ति है—'अपराह्नव्यापिनी या पार्वणे सा तिथिर्भ-वेत्।' इति।

३. जैसा मरीचि स्मृति में मरीचि ने कहा है—'द्व्यपराह्नव्यापिनी स्यादाब्दिकस्य यदा तिथिः। महती यत्र तद्विद्धां प्रशंसन्ति महर्षयः ॥' इति।

४. माधवाचार्यादि के निर्णय में बौधायन का वचन है—'अपराह्नद्वयव्यापिन्यतीतस्य च या तिथिः। क्षये पूर्वा च कर्तव्या वृद्धौ कार्या तयोत्तरा ॥' इसी प्रकार बृहन्नारदीय की उक्ति है—'क्षया-हस्य तिथिर्या तु अपराह्नद्वये यदि। पूर्वा क्षये तु कर्तव्या वृद्धौ कार्या तयोत्तरा ॥' इति।

न प्रातःसंगवयोः । पिण्डपितृयज्ञदिने सायाह्नेऽपि पार्वणमनुज्ञायते । यदा विघ्नवशाद्दिने सांवत्सरिकश्राद्धं न कृतं तदा [1]रात्रावपि प्रथमप्रहरपर्यन्तं कार्यम् । मृताहातिक्रमे चाण्डालत्वादिदोषोक्तेः ।

कुछ लोग—शुक्ल पक्ष में नक्षत्र उदयव्यापी और कृष्णपक्ष में अस्तव्यापी, योग तो कुतुपादि व्यापी ले—ऐसा कहते हैं । यह पार्वण श्राद्ध कुतुप आदि पांच मुहूर्त्तों में करना चाहिये । सायाह्न और रात्रि में तथा प्रातः और संगव में नहीं करे । पिण्डपितृयज्ञ के दिन सायाह्न में भी पार्वण की अनुज्ञा है । जिस दिन किसी विघ्न के कारण सांवत्सरिक श्राद्ध नहीं किया हो तब रात्रि में भी पहिले पहर तक करे, क्योंकि मरणदिन के अतिक्रमण होने पर चाण्डालत्वादि दोष कहा है ।

अथ ग्रहणादिने वार्षिकादिप्राप्तौ निर्णयः

ग्रहणदिने दर्शमासिकप्रतिवार्षिकादिश्राद्धप्राप्तौ तद्दिने एवान्नेनामेन वा हेम्ना वा कुर्यान्नोत्तरदिने ।

ग्रहण के दिन दर्श, मासिक और प्रतिवार्षिक आदि श्राद्ध के पड़ने पर ग्रहण दिन में ही अन्न से या कच्चे अन्न से अथवा सुवर्ण से करे, दूसरे दिन नहीं ।

अथ मलमासे प्रथमवार्षिकविचारः

प्रथमाब्दिकं त्रयोदशे मलमासे [2]कार्यमित्युक्तम् । तेन यत्र द्वादशमासिकं शुद्धमासे भवति तत्र त्रयोदशेऽधिक एव प्रथमाब्दिकं कार्यम् । यदा त्वधिकमध्ये द्वादशं मासिकं तदा द्वादशमासिकस्य द्विरावृत्तिं कृत्वा चतुर्दशे शुद्धमासे प्रथमाब्दिकम् । एवं द्वितीयादिमासिकस्यापि मलमासे प्राप्तस्य द्विरावृत्तिर्ज्ञेया । द्वितीयाद्याब्दिकं तु शुद्धमासे एव ।

प्रथमाब्दिक श्राद्ध तेरहवें मलमास में करे, ऐसा कहा है । इससे जहां द्वादशमासिक शुद्ध मास में होता है वहां तेरहवें मलमास में ही प्रथमाब्दिक करे । जब अधिक मास के मध्य में बारहवां मासिक पड़े तब द्वादशमासिक की दो आवृत्ति करके चौदहवें शुद्ध मास में प्रथमाब्दिक करे । इसी प्रकार द्वितीयादि मासिक की भी मलमास में पड़ने से दो आवृत्ति जाननी चाहिये । द्वितीय आदि वार्षिक तो शुद्ध मास में ही होता है ।

एवं महालयोऽपि शुद्धे एव नाधिके मासे किंचिदपि । मलमासमृतानां तु यदा स एव मलमासो भवति तदाधिक एव सांवत्सरिकं न [3]शुद्धे । दर्शदिने

---

१. क्योंकि मरीचि ने क्षयाह तिथि के अतिक्रमण होने पर दोष-प्रतिपादन किया है—'मृताहं समतिक्रम्य चण्डालेष्वभिजायते ।' माधव ने आपस्तम्ब के—'न च नक्तं श्राद्धं कुर्वीत आरब्धे वा भोजनसमापनम्' इस वचन से रात्रिश्राद्ध को गौणकाल बतलाया है ।

२. अन्यथा नहीं करे । जैसा लघुहारीत की उक्ति है—'प्रत्यब्दं द्वादशे मासि कार्या पिण्डक्रिया सुतैः । क्वचित्त्रयोदशेऽपि स्यादाद्यं मुक्त्वा तु वत्सरम् ॥' इति ।

३. निर्णयसिन्धुकार ने लिखा है—'मलमासमृतानां तु यदा स एवाधिकः स्यात्तदा तत्रैव कार्यमन्यथा शुद्धे एव' इति, मलमास में मरे हुए का सौरमास ग्राह्य है, जैसा हेमाद्रि में वचन है—'मलमासमृतानां तु सौरं मानं समाश्रयेत्' इति ।

वार्षिकप्राप्तौ 'पूर्वं वार्षिकं कृत्वा ततः पिण्डपितृयज्ञं पाकान्तरेण दर्शश्राद्धं च कुर्यात्। परे तु आदौ पिण्डपितृयज्ञस्ततो वार्षिकं ततो दर्शं इति क्रममाहुः। एवं मासिकादिष्वपि ज्ञेयम्।

इसी तरह महालय भी शुद्ध ही में होता है, अधिक मास में कुछ नहीं। मलमास में मरे हुए का तो जब वही मलमास होता है तब अधिक मास में ही सांवत्सरिक होता है, शुद्ध मास में नहीं। दर्श के दिन वार्षिक पड़ने पर पहले वार्षिक करके इसके बाद पिण्डपितृयज्ञ और दूसरे पाक से दर्शश्राद्ध करे। दूसरे तो—पहिले पिण्डपितृयज्ञ उसके बाद वार्षिक तदनन्तर दर्शश्राद्ध यह क्रम—कहते हैं। इसी प्रकार मासिकादि में भी जानना चाहिये।

अथ सपिण्डीकरणानन्तरं यावद्वर्षत्रयं श्राद्धभोजननिषेधः।

सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यावदब्दत्रयं भवेत्।
तावदेव न भोक्तव्यं तदीये श्राद्धमात्रके॥
प्रथमाब्देऽस्थ्यादिभोजी द्वितीये मांसभक्षकः।
तृतीये रक्तभोजी स्याच्छुद्धं श्राद्धं चतुर्थके॥

इत्यास्तां प्रासङ्गिकं प्रकृतमनुसरामः।

सपिण्डीकरण के बाद तीन वर्ष तक उसके श्राद्धमात्र में भोजन नहीं करे। पहिले वर्ष में श्राद्ध-भोजन करनेवाला अस्थि आदि का भोजन करता है। दूसरे में मांसभक्षक और तीसरे में रक्त भोजन करने वाला होता है। इस प्रकार चौथे वर्ष में श्राद्ध शुद्ध होता है। यह प्रसंग से कहा है अब प्रकृत का अनुसरण कर रहा हूं।

अथ आमहेमश्राद्धकालः

पार्वणमपि हेमश्राद्धमामश्राद्धं च द्वेधाविभक्तदिनपूर्वभागे एव कार्यम्। सर्वं च श्राद्धं तत्तन्निर्णीतकाले यत्तत्तिथ्यभावेपि कर्तव्यं साकल्यवचनादिना शास्त्रतस्तत्र तत्तत्तिथिसत्त्वादिति कालतत्त्वविवेचने।

पार्वण श्राद्ध भी सुवर्ण तथा आमान्न से किया जाता है। उसे दिन के दो विभाग करके पहिले भाग में ही करना चाहिये। सभी श्राद्ध उन-उन के निर्णीत काल में उन-उन तिथियों के न रहने पर भी करें, क्योंकि साकल्य वचन आदि शास्त्र से वे-वे तिथियां रहती हैं, ऐसा 'काल-तत्त्वविवेचन' में लिखा है।

अथ वृद्धिश्राद्धकालः

वृद्धिश्राद्धं प्रातःसङ्गवयोः कार्यम्। मध्याह्नो गौणः। अपराह्णसायाह्नरात्रयो निषिद्धाः। रात्रौ विवाहे प्रातर्वृद्धिश्राद्धं न कृतं तदा रात्रावपि कार्यमिति क्वचित्। ग्रहणनिमित्तकं पार्वणश्राद्धं पुत्रजन्मनिमित्तकं जातकर्माङ्गवृद्धिश्राद्धं च [2]रात्रावपि कार्यम्। इति कालनिर्णयः।

---

१. निर्णयदीप में यह निर्णय है। इसी प्रकार स्मृतिसार में भी कहा है—'दर्शे क्षयाहे सम्प्राप्ते कथं कुर्वन्ति याज्ञिकाः। आदौ क्षयाहं निर्वर्त्य पश्चाद्दर्शो विधीयते॥' इति।

२. अपरार्क में व्यास का वचन है—'ग्रहणोद्वाहसंक्रान्तियात्रार्तिप्रसवेषु च। दानं नैमित्तिकं ज्ञेयं रात्रावपि तदिष्यते॥' देवल ने भी कहा है—'चन्द्रग्रहे तथा रात्रौ स्नानं दानं प्रशस्यते।' इति।

वृद्धिश्राद्ध प्रातःकाल और संगवकाल में करे। मध्याह्न गौण काल है। अपराह्ण सायाह्न और रात्रि का निषेध है। रात्रिमें विवाह करने पर प्रातःकाल वृद्धिश्राद्ध न किया हो तब रात में भी करे ऐसा कहीं लिखा है। ग्रहणनिमित्त पार्वण श्राद्ध और पुत्रजन्मनिमित्तक जातकर्म का अंग वृद्धिश्राद्ध रात में भी करे। कालनिर्णय समाप्त।

अथ पितॄणामन्नप्राप्तिप्रकारः

पुत्रादिभिः पितृमात्राद्युद्देशेन श्राद्धे क्रियमाणे नाम गोत्रं मन्त्राश्च तत्तदन्नं तान्पितॄन्प्रापयन्ति। तत्र पित्रादीनां देवरूपत्वे तदन्नममृतरूपं भूत्वा तत्रोपतिष्ठते। गन्धर्वत्वे भोग्यरूपेण पशुत्वे तृणरूपेण सर्पत्वे वायुरूपेण यक्षत्वे पानरूपेण दानवादित्वे मांसत्वेन प्रेतत्वे रुधिरत्वेन मनुष्यत्वेऽन्नादिरूपेणेति [1]ग्रन्थान्तरे।

पुत्र आदि के द्वारा पिता माता आदि के उद्देश से श्राद्ध किये जाने पर नाम गोत्र तथा मन्त्र उस-उस अन्न को उन-उन पितरों को पहुँचाते हैं। वहां पिता आदि के देवरूप होने पर वह अन्न अमृतरूप होकर वहां उपस्थित होता है। गन्धर्व होने पर भोग्यरूप से, पशुत्व में तृणरूप से, सर्पत्व में वायुरूप से, यक्षत्व में पानरूप से, दानवादित्व में मांसरूप से, प्रेतत्व में रुधिररूप से और मनुष्यत्व में अन्नादिरूप से पहुँचाते हैं, ऐसा ग्रन्थान्तर में लिखा है।

तस्य ते पितरः श्रुत्वा श्राद्धकालमुपस्थितम्।
अन्योऽन्यं मनसा ध्यात्वा संपतन्ति मनोजवाः॥
ते ब्राह्मणैः सहाश्नन्ति पितरो वायुरूपिणः।

अत एव श्रीरामेण श्राद्धे क्रियमाणे सीता विप्रेषु दशरथादीन्ददर्शेति कथा श्रूयते।

---

१. मृत माता पिता के उद्देश्य से श्राद्ध करने पर नाम, गोत्र और मन्त्र श्राद्धान्न को परलोकगत उन पितरों को किस प्रकार पहुँचाते हैं इसका सुन्दर वर्णन शास्त्रों में मिलता है। जैसा हेमाद्रि में मत्स्यपुराण और देवल का वचन है 'नामगोत्रं पितॄणां तु प्रापकं हव्यकव्ययोः। अग्निष्वात्तादयस्तेषामाधिपत्ये व्यवस्थिताः॥ नाम मन्त्रास्तदादेशा भवान्तरगतानपि। प्राणिनः प्रीणयन्त्येव तदाहारत्वमागतान्॥ देवो यदि पिता जातः शुभकर्मानुयोगतः। तस्यान्नममृतं भूत्वा देवत्वेऽप्यनुगच्छति॥ गान्धर्वे भोगरूपेण पशुत्वे च तृणं भवेत्। श्राद्धान्नं वायुरूपेण नागत्वेऽप्युपतिष्ठति॥पानं भवति यक्षत्वे राक्षसत्वे तथाऽऽमिषम्। दनुजत्वे तथा मद्यं प्रेतत्वे रुधिरोदकम्॥ मनुष्यत्वेऽन्नपानादि नानाभोगकरं भवेत्।'

अर्थात् अपने कर्म के अनुसार पितर जिस योनि में गये हैं उस योनि के अनुरूप प्रिय खाद्य के रूप में परिवर्तित होकर श्राद्ध में दिया गया वह हव्य कव्य (श्राद्धान्न) पितरों को मिलता है और वे उससे तृप्त होते हैं। अपने शुभकर्म के योग से पिता मरकर देवयोनि में गये हों तो वह अन्न अमृतरूप होकर मिलता है। गन्धर्वयोनि में भोग्यरूप, पशुयोनि में तृणरूप, सर्पयोनि में वायुरूप, यक्षयोनि में पानरूप, राक्षसयोनि में मांसरूप, दनुजयोनि में मद्यरूप, प्रेतयोनि में रुधिरजलरूप और मनुष्ययोनि में अन्न-जल के रूप में परिवर्तित होकर उन्हें मिलता रहता है। इसे इस उदाहरण से समझें, जैसे—विदेश में रहनेवाले अपने किसी व्यक्ति के नाम से वहाँ भेजे गये रुपये भारतीय रुपये के रूप में नहीं मिल कर अमेरिका में डालर, इंगलैंड में पौंड-शिलिंग-पेंस, रूस में रुबल, इटली में लीरा और फ्रांस में फ्रैंक आदि के रूप में परिवर्तित होकर मिलते हैं।

प्रावृष्यन्ते यमः प्रेतान्पितॄंश्चाथ यमालयात् ।
विसर्जयति भूलोकं कृत्वा शून्यं स्वकं पुरम् ॥
ते पुत्रादेः प्रकांक्षन्ति पायसं मधुसंयुतम् ।
कन्यागते सवितरि पितरो यान्ति वै सुतान् ॥
अमावास्यादिने प्राप्ते गृहद्वारं समाश्रिताः ।
श्राद्धाभावे स्वभवनं शापं दत्त्वा व्रजन्ति ते ॥
अतो मूलैः फलैर्वापि तथाप्युदकतर्पणैः ।
पितृतृप्तिं प्रकुर्वीत नैव श्राद्धं विवर्जयेत् ॥

श्राद्धकर्ता के पितृगण श्राद्ध-काल को उपस्थित सुनकर अन्योन्य मन से ध्यान कर मन के समान वेग से आते हैं और उन श्राद्धीय ब्राह्मणों के साथ वायुरूप होकर भोजन करते हैं। इसी से राम के द्वारा दशरथ के श्राद्ध करते समय सीता ने श्राद्धीय ब्राह्मणों में दशरथ आदि को देखा, यह कथा सुनी जाती है। यमराज वर्षा काल के अन्त में यमपुर से प्रेत और पितरों को अपने पुर को शून्य करके भूलोक में भेजते हैं। वे पितर लोग पुत्र आदि से मधुयुक्त खीर की आकांक्षा करते हैं। कन्या के सूर्य में पितृगण अमावास्या के दिन पुत्रों के यहां जाते हैं। यदि श्राद्ध नहीं हुआ रहता है तो शाप देकर अपने घर लौट जाते हैं। इसलिये मूल-फल और जल-तर्पण से पितरों की तृप्ति करे। श्राद्ध का वर्जन नहीं करे।

किंच श्राद्धेन ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं सकलभूततृप्तिः श्रूयते। तत्र पिशाचादिरूपाणां विकिरादिभिस्तृप्तिर्वृक्षादिरूपाणां स्नानवस्त्रोदकादिना[1] केषांचिदुच्छिष्टपिण्डादिनेति। अतो ब्रह्मीभूतपितृकेणापि श्राद्धं कार्यम्।

किंच श्राद्ध से ब्रह्मा से लेकर स्तम्बपर्यन्त सम्पूर्ण जीवों की तृप्ति सुनते हैं। उसमें पिशाचादि रूप वालों की विकिर आदि से तृप्ति होती है, वृक्षादिरूपों की स्नान के वस्त्रोदक आदि से और कुछ की उच्छिष्ट पिण्ड आदि से तृप्ति होती है। इसलिये जिसके पिता आदि ब्रह्म में मिल गये हों उनका भी श्राद्ध करना चाहिये।

अथ श्राद्धदेवताविचारः

तत्र पितृपितामहप्रपितामहादिरूपमेकैकं पार्वणं वसुरुद्रादित्यादिभेदेन ध्येयम्। एकोद्दिष्टं वसुरूपेणेति सर्वत्र। केचित्तु पितृपितामहप्रपितामहाः प्रद्युम्नसंकर्षणवासुदेवात्मना ध्येयाः कर्त्रानिरुद्धात्मनेत्याहुः। एवं वरुणप्रजापत्यग्निरूपेण क्वचित्। क्वचिन्मासऋतुवत्सररूपेणेति। तत्र यथाचारं समुच्चयेन विकल्पेन वा ध्यानमिति व्यवस्था।

---

१. वस्त्रोदक = वस्त्रनिष्पीडनोदक, जिसे आब्रह्मस्तम्बपर्यन्त की तृप्ति के लिये तर्पण के समय दिया जाता है। मन्त्र में स्पष्ट है—'आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः। तृप्यन्तु पितरः सर्वे मातृमातामहादयः ॥' इत्यादि। वस्त्रनिष्पीडनके सम्बन्ध में योगियाज्ञवल्क्य ने कहा है—'वस्त्रनिष्पीडितं तोयं स्नातस्योच्छिष्टभागिनः। भागधेयं श्रुतिः प्राह तस्मान्निष्पीडयेत्स्थले ॥' स्मृत्यन्तरमें वस्त्रनिष्पीडन का प्रकार—'वस्त्रं चतुर्गुणीकृत्य पीडयेच्च जलाद्बहिः। वामप्रकोष्ठे निक्षिप्य द्विराचम्य शुचिर्भवेत् ॥' इति।

उसमें पिता-पितामह-प्रपितामह आदिरूप एक-एक पार्वण में क्रम से वसु-रुद्र-आदित्यादि के भेद से ध्यान करे। एकोद्दिष्ट में सबका वसुरूप से ध्यान करे। कुछ लोग तो कहते हैं कि अनिरुद्धरूप कर्ता प्रद्युम्न-संकर्षण-वासुदेवरूप भेद से पिता-पितामह-प्रपितामह का ध्यान करे। इसी प्रकार कहीं पिता आदि का वरुण-प्रजापति-अग्निरूप से, कहीं मास-ऋतु-वत्सर रूप से ध्यान करना कहा है। वहां आचार के अनुसार समुच्चय या विकल्प से ध्यान की व्यवस्था करे।

पित्रादिपार्वणं यत्र तत्र मातामहादयः ।
सर्वत्रैव हि कर्तव्या नाब्दिके मासिके पुनः ॥
मासिकेषु त्वाब्दिके च त्रिदैवत्यं प्रकीर्तितम् ।
वृद्धौ तीर्थेऽन्वष्टकासु गयायां च महालये ॥
त्रिपार्वणकमत्रेष्टं शेषं षाट्पौरुषं विदुः ।
सपत्नीकं पित्रादित्रयं सपत्नीकं मातामहादित्रयमिति षाट्पौरुषत्वम् ।
क्षयाहं वर्जयित्वैकं स्त्रीणां नास्ति पृथक् क्रिया ।
अन्वष्टकासु वृद्धौ च गयायां च क्षयेऽहनि ॥
अत्र मातुः पृथक् श्राद्धमन्यत्र पतिना सह ।

जहां पिता आदि का पार्वण होता है वहां सर्वत्र मातामह आदि का भी करे। वार्षिक और मासिक में नहीं करे। मासिकों में तो आब्दिक में भी त्रिदैवत्य कहा है। वृद्धिश्राद्ध, तीर्थश्राद्ध, अन्वष्टकाश्राद्ध, गया श्राद्ध और महालय श्राद्ध में त्रिपार्वणक श्राद्ध इष्ट है। शेष में षाट्पौरुष श्राद्ध जानना चाहिये। सपत्नीक पिता आदि तीन, एवं सपत्नीक मातामह आदि तीन, इस प्रकार षाट्पौरुष श्राद्ध हुआ। एक क्षयाह को छोड़कर स्त्रियों का पृथक् श्राद्ध नहीं होता। अन्वष्टका, वृद्धि, गया और क्षयाह में, माता का पृथक् श्राद्ध होता है इनके अतिरिक्त पति के साथ होता है।

अथ विश्वेदेवाः

यत्र विशेषो नोच्यते तत्र सर्वत्र पार्वणश्राद्धे पुरूरवार्द्रवसंज्ञका विश्वेदेवाः[1]। काम्यश्राद्धे महालये च धूरिलोचनसंज्ञकाः। नैमित्तिकेऽष्टकाख्याऽष्टमीश्राद्धे च कामकालसंज्ञकाः। एकोद्दिष्टं सपिण्डीकरणं वा नैमित्तिकसंज्ञम्। नान्दीश्राद्धे सत्यवसुसंज्ञकाः। तत्रापि गर्भाधानपुंसवनसीमन्तोन्नयनेतिसंस्कारत्रयाङ्गमग्न्याधानसोमयागाङ्गं च नान्दीश्राद्धमिष्टिश्राद्धसंज्ञकं कर्माङ्गश्राद्धसंज्ञकं च। तत्र क्रतुदक्षसंज्ञका विश्वेदेवाः।

---

१. हेमाद्रि में शंख और बृहस्पति का वचन है—'इष्टिश्राद्धे क्रतुदक्षौ सत्यौ नान्दीमुखे वसू। नैमित्तिके कामकालौ काम्ये च धूरिलोचनौ ॥ पुरूरवार्द्रवौ चैव पार्वणे समुदाहृतौ। नैमित्तिक एकोद्दिष्ट श्राद्ध है, जैसा भविष्य में कहा है—'एकोद्दिष्टं तु यच्छ्राद्धं तन्नैमित्तिकमुच्यते। हेमाद्रि में आदित्यपुराण का वचन है—'विश्वेदेवौ क्रतुर्दक्षः सर्वास्विष्टिषु कीर्तितौ। नित्ये नान्दीमुखे श्राद्धे वसू सत्यौ च पैतृके ॥ नवान्नलम्भने देवौ कामकालौ सदैव हि। अपि कन्यागते सूर्ये काम्ये च धूरिलोचनौ ॥ पुरूरवार्द्रवौ चैव विश्वेदेवौ तु पार्वणे।' शातातपः—'नित्यं श्राद्धमदैवं स्यादेकोद्दिष्टं तथैव च। मातुः श्राद्धं च युग्मैः स्याददैवं प्राङ्मुखैः पृथक् ॥ योजयेद्दैवपूर्वाणि श्राद्धान्यन्यानि यत्नतः।' इससे सिद्ध है कि एकोद्दिष्ट और उसके विकृति श्राद्धों में विश्वेदेवा नहीं होते, तदितर श्राद्धों में होते हैं। महालयादि द्विपार्वण में एवं त्रिपार्वण-चतुःपार्वण में पृथक्-पृथक् विश्वेदेवा हैं। 'तन्त्रं वा वैश्वदेविकं' इससे अशक्ति में एक से भी काम चलता है।

जहां विशेष नहीं कहा है वहां सर्वत्र पार्वण श्राद्ध में पुरूरवा और आर्द्रव नामक विश्वेदेवा हैं। काम्य श्राद्ध और महालय में धूरिलोचन नामक हैं। नैमित्तिक और अष्टकानामक अष्टमी श्राद्ध में कामकालनामक विश्वेदेवा हैं। एकोद्दिष्ट या सपिण्डीकरण में नैमित्तिकसंज्ञक है। नान्दीश्राद्ध में सत्यवसुनामक हैं। गर्भाधान, पुंसवन और सीमन्तोन्नयन, इन तीन संस्कारों के अंग, अग्न्याधान और सोमयाग के अंग, इष्टिश्राद्ध और कर्मांगश्राद्ध में क्रतु और दक्षनामक विश्वेदेवा हैं।

पार्वणद्वयाद्ययोर्जीवनान्मातृपार्वणकमेव क्रियमाणं नान्दीश्राद्धं देवरहितं कार्यम्। एवं पार्वणत्रयस्य भिन्नत्वेनानुष्ठीयमाने नान्दीश्राद्धेऽपि मातृपार्वणं देवहीनम्। नान्दीश्राद्धे हि दिनत्रये क्रमेण पार्वणत्रयं कार्यम्, एकस्मिन्दिने पृथक् पृथक् पार्वणत्रयं, सहतन्त्रेण वा पार्वणत्रयमिति त्रयः पक्षाः। नित्यश्राद्धं देवरहितं कार्यम्। एवं सपिण्डीकरणात्प्राक्तनान्येकोद्दिष्टश्राद्धान्यपि देवहीनानि। इति श्राद्धदेवतानिर्णयः।

दो पार्वण वालों के जीते रहने से मातृपार्वण में किया जाने वाला नान्दीश्राद्ध देवता से रहित करना चाहिये। इस प्रकार तीन पार्वण अलग-अलग करने की स्थिति में नान्दीश्राद्ध में भी मातृपार्वण देवहीन करे। नान्दीश्राद्ध में तीन दिन में क्रम से तीन पार्वण करे, अथवा एक दिन में अलग-अलग तीन पार्वण करे, अथवा एकसंग तन्त्र से एक दिन में करे, ये तीन पक्ष हैं। नित्य श्राद्ध देवरहित करना चाहिये। इसी प्रकार सपिण्डीकरण से प्राक्तन एकोद्दिष्ट श्राद्धों को भी देवरहित करना चाहिये। श्राद्धदेवता का निर्णय समाप्त।

अथ श्राद्धे ब्राह्मणाः

तत्र—

जातकर्मादिसंस्कारैः संस्कृतः सत्यवाक् शुचिः।
वेदाध्ययनसम्पन्नः षट्सु कर्मस्ववस्थितः॥
पुरुषत्रयविख्यातः स वै [1]ब्राह्मण उच्यते।

---

१. वह्निपुराण में ब्राह्मण का लक्षण—'सत्यं दमस्तपो दानमहिंसेन्द्रियनिग्रहः। दृश्यन्ते यत्र राजेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतः॥' ब्राह्मण का बौधायनोक्त लक्षण है—'विद्या तपश्च योनिश्च एतद् ब्राह्मणलक्षणम्। विद्यातपोभ्यां यो हीनो जातिब्राह्मण एव सः॥'—

सृष्टि के आरम्भ में एक ही ब्राह्मण जाति थी, जैसा ब्राह्मणोत्पत्तिमार्तण्ड में लिखा है—'सृष्ट्यारम्भे ब्राह्मणस्य जातिरेका प्रकीर्तिता।' उस विराट् पुरुष भगवान् के मुख से ब्राह्मण की उत्पत्ति हुई, ब्राह्मण के वर्तमान किसी भेद की नहीं। भागवत में लिखा है—'पुरुषस्य मुखं ब्रह्म क्षत्रमेतस्य बाहवः। ऊर्वोर्वैश्यो भगवतः पद्भ्यां शूद्रोऽभ्यजायत॥' वेदों के अनेक मन्त्रों में केवल ब्राह्मण शब्द का ही निर्देश है, किसी ब्राह्मण भेद का नहीं, जैसे शुक्ल यजुर्वेद में ब्राह्मणमात्र के लिये कहा है—'रुचं ब्राह्मञ्जनयन्तो देवाऽअग्रे तदब्रुवन्। यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा असन् वशे॥' यानी ऐसे देदीप्यमान आदित्य को देखकर देवताओं ने कहा—हे आदित्य! (सूर्य) जो ब्राह्मण आप को प्रोक्त प्रकार से ज्योतिःस्वरूप जानता है आप की नित्य पूजा करता है अथवा ध्यान द्वारा अपने अन्तःकरण में अनुभव करता है वह संसार में सबसे पूजित होता है, क्योंकि उस दिव्य पुरुष के ज्ञान से ब्रह्मादि देवता भी उसके वश में रहते हैं और उसकी मनोकामना पूर्ण करते रहते हैं। इसी

इति ब्राह्मणसामान्यलक्षणम् । तत्रोत्तममध्यमाधमभेदेन त्रिविधा ब्राह्मणाः ।

जातकर्म आदि संस्कारों से संस्कृत, सत्यवादी, पवित्र, वेदाध्ययन सम्पन्न, छ कर्मों में अवस्थित, तीन पुस्त में विख्यात, जो हो वही श्राद्धयोग्य ब्राह्मण है । यह ब्राह्मण का सामान्य लक्षण है । उत्तम, मध्यम और अधम भेद से तीन प्रकार के ब्राह्मण होते हैं ।

तरह मन्वादि समस्त स्मृतियों में ब्राह्मणों के वर्तमान भेद दृष्टिगोचर नहीं होते । ब्राह्मणों का—'सारस्वताः कान्यकुब्जाः' इत्यादि भेद पौराणिक काल के हैं । स्मृतिकाल में दशविध ब्राह्मणों का भेद कश्यपसंहिता में यों बतलाया है—

'देवो मुनिर्द्विजो राजा वैश्यः शूद्रो विडालकः । पशुर्म्लेच्छश्च चाण्डालो विप्रा दशविधाः स्मृताः ॥' इनके लक्षण—'यती चैव तपस्वी चासत्यं नैव प्रभाषते । उपवासं कार्तिके माघे स विप्रो देव उच्यते ॥ चतुरः पठते वेदानग्निहोत्रे रतः सदा । क्रोधं चैव न जानाति स विप्रो मुनिरुच्यते ॥ त्रिसन्ध्यां वन्दते नित्यं परनिन्दां न कारयेत् । कुशलो यज्ञकार्ये च स विप्रो द्विज उच्यते । प्रतिग्रहेषु संकोचं दानं वित्तानुसारतः । पवित्रः सत्यभाषी च स विप्रो नृप उच्यते । क्रयविक्रयवाणिज्ये वार्षिके चान्न एव च । अतिप्रीतिश्च व्यापारे स विप्रो वैश्य उच्यते ।—

—नीली मद्यं च मासं च बहुवारं च भक्षयेत् । पतितो वृषलीगर्भात् स विप्रः शूद्र उच्यते । सर्ववर्णप्रतिग्राही सर्वेषामन्नभक्षकः । भोजने लम्पटश्चैव स विप्रश्च विडालकः । अन्नादिद्रव्यविक्रेता कृषिकर्मरतः सदा । आदत्तश्चलपक्षश्च स विप्रः पशुरुच्यते ॥ श्वानं च पालयेद् विप्रः संग्रहः सर्वजन्तुषु । अजाश्च पालयेद्यस्तु स विप्रो म्लेच्छ उच्यते । कारयेत् परनिन्दां वै सर्वकर्मदरिद्रता । कन्याविक्रीयते येन विप्रश्चाण्डाल उच्यते ॥'—

स्मृतिकाल के बाद पौराणिक काल में ब्राह्मण का दशविध भेद इस प्रकार हुआ—'सारस्वताः कान्यकुब्जा गौडा उत्कलमैथिलाः । पञ्च गौडा इति ख्याता विन्ध्यस्योत्तरवासिनः ॥' स्कन्दपुराण में 'गौडा उत्कलमैथिलाः' की जगह 'गौडमैथिलकोत्कलाः' ऐसा पाठ है । 'कर्णाटकाश्च तैलङ्गा द्राविडा महाराष्ट्रकाः । गुर्जराश्चेति पञ्चैव विख्याता विन्ध्यदक्षिणे ॥'. ये नाम उन-उन देशों में बसने के कारण पड़े । जैसे—कर्णाटक देश के राजा ने महाराष्ट्र से ब्राह्मणों को बुलाकर बसाया, जिससे वहां बसने से ब्राह्मण का कर्णाटक-ब्राह्मण यह संज्ञा हुई । विन्ध्य के उत्तरभाग से द्राविडदेश में आये हुए कुछ ब्राह्मणों को पाण्ड्य राजा ने बसाया, जिससे वे द्राविड-ब्राह्मण हुये । महाराष्ट्रनामक राजा ने विन्ध्य के उत्तर रहने वाले ब्राह्मणों को बुलाकर उनसे यज्ञ कराया और अपने देश में बसाया, जिससे उस राजा के नाम से ही उस देश का नाम महाराष्ट्र और वहां ये बसने वाले ब्राह्मण महाराष्ट्र-ब्राह्मण हुये ।

इसी तरह सरस्वतीनदीतट निकटवर्ती प्रदेश में बसने से सारस्वत-ब्राह्मण, सरयूपार-पार्श्ववर्ती प्रदेश में बसने से सरयूपारीण-ब्राह्मण, कन्नौज में बसने से कान्यकुब्ज-ब्राह्मण, मिथिला में बसने से मैथिलब्राह्मण, जैसे राजा निमिने शरीर को क्षणभंगुर जानकर गुरु वसिष्ठ जी की अनुपस्थिति में बाहर से आये हुये ब्राह्मणों से यज्ञारम्भ कराया । इन्द्र के यज्ञ से आने पर कुपित हो वसिष्ठ ने निमि को मरने का शाप दे दिया । निमि ने भी लोभवश शाप देने वाले वसिष्ठ को मरने का शाप दे दिया । पीछे वसिष्ठ मित्रावरुण के वीर्य से उर्वशी में उत्पन्न हुए और यज्ञ के ऋत्विज ब्राह्मणों ने योगमार्ग से मृत निमि के देह को मथा, जिससे दिव्यदेहधारी जनक की उत्पत्ति हुई । जनक का विदेह से उत्पन्न होने से विदेह और मथन से उत्पन्न होने से मैथिल नाम पड़ा । उन्होंने अपने नाम से मिथिला नगरी का निर्माण किया और निमि के यज्ञ में जितने ब्राह्मण आये थे उन्हें ग्राम देकर बसाया, वे ब्राह्मण मैथिल-ब्राह्मण हुए ।

इसी प्रकार क्रौञ्चद्वीप में बसने से क्रौञ्चद्वीपीय ब्राह्मण और शाकद्वीप में बसने से शाकद्वीपीय (मग) ब्राह्मण नाम पड़ा । भगवान् कृष्ण ने शाकद्वीप से शाकद्वीपीय मगब्राह्मणों को यहां बुलाया,

अथ तत्र उत्तमा विप्राः

वेदाध्ययनसंपन्ना वेदाङ्गाध्यायिनोऽपि च ।
ये [1]वैयाकरणा ये च मीमांसाऽध्ययने रताः ॥
पौराणिकश्च वेदान्ती धर्मशास्त्ररतोऽपि च ।
एतेषामपि ये पुत्रा ब्रह्मवेत्ता तथैव च ॥
वेदार्थज्ञः कर्मनिष्ठस्तपोनिष्ठश्च योगिनः ।
पितृमातृपरश्चैव स्वधर्मनिरतस्तथा ॥
शिशुरप्यग्निहोत्री च सोमादिश्रौतकर्मवित् ।
शिवभक्तो विष्णुभक्तो भार्यायामृतुकालगः ॥
गुरुभक्तो ज्ञाननिष्ठः सोमयाजी च सत्यवाक् ।
सुशीलस्नातकयतिब्रह्मचारिण उत्तमाः ॥
एते सर्वे [2]सपत्नीका युवत्वादिगुणान्विताः ।

---

१. ब्रह्माण्डपुराणे—

'ये च भाष्यविदः केचिद् ये च व्याकरणे रताः ।
अधीयानाः पुराणं वै धर्मशास्त्रमथापि वा ॥
ये च पुण्येषु तीर्थेषु कृतस्नानाः कृतश्रमाः ।
मखेषु चैव सर्वेषु भवन्त्यवभृथप्लुताः ॥
अक्रोधनाः शान्तिपरास्तान् श्राद्धेषु नियोजयेत् ।' इति ।

२. ब्रह्मवैवर्ते—

'पत्नीपुत्रसमायुक्तान् श्राद्धकर्मणि योजयेत् ।
देहस्यार्द्धं स्मृता पत्नी न समग्रो तया विना ॥
न चापुत्रस्य लोकोऽस्ति श्रुतिरेषा सनातनी ।'

लोकः=अदृष्टजन्यः अभ्युदयः ।

संवर्तः—

'प्रयत्नाद् हव्यकव्यानि पात्रीपुत्रे द्विजन्मनि ।
प्रतिष्ठाप्यानि विद्वद्भिः फलानन्त्यममीप्सुभिः ॥

पात्र का वृद्धशातातपोक्त लक्षण—

'स्वाध्यायवान्नियमवांस्तपस्वी ज्ञानविच्च यः ।
क्षान्तो दान्तः सत्यवादी विप्रः पात्रमिहोच्यते ॥'

बृहस्पतिः—

'ब्रह्मचारी भवेत् पात्रं पात्रं वेदस्य पारगः ।'
तथा—'पात्राणामुत्तमं पात्रं शूद्रान्नं यस्य नोदरे ।'

पात्र का याज्ञवल्क्योक्त लक्षण—

'न विद्यया केवलया तपसा वाऽपि पात्रता ।
यत्र वृत्तमिमे चोभे तद्धि पात्रं प्रकीर्तितम् ॥'

ऋष्यश्रृङ्गः—

'अतिथिश्च तथा पात्रं तत्पात्रं परमं विदुः ।'

साpिण्ड्ययोनिशिष्यत्वादिसम्बन्धैश्च वर्जिताः ॥
कुष्ठापस्मारादिदोषैर्हीनाश्चेदुत्तमाः स्मृताः ।

श्राद्ध में उत्तम ब्राह्मण—

वेदांगाध्ययनसम्पन्न, वेदांगाध्यायी, जो वैयाकरण हैं और जो मीमांसाध्ययन में तत्पर हैं, पौराणिक, वेदान्ती, धर्मशास्त्रज्ञ, इनके भी जो पुत्र ब्रह्मवेत्ता हैं, वेदार्थ के जानने वाले, कर्मनिष्ठ, तपोनिष्ठ, योगी, पितृमातृसेवक, स्वधर्मनिरत, बालक होता हुआ भी अग्निहोत्री, सोमादि श्रौत कर्म जानने वाला, शिवभक्त, विष्णुभक्त, ऋतुकाल में भार्यागमन करने वाला, गुरुभक्त, ज्ञाननिष्ठ, सोमयज्ञ करने वाला, सत्यवादी, सुशील, स्नातक, यति और ब्रह्मचारी—ये उत्तम ब्राह्मण हैं। ये सब सपत्नीक, युवत्वादिगुणयुक्त, सपिण्ड्य-योनि-शिष्यत्वादि-सम्बन्धों से वर्जित तथा कुष्ठ अपस्मार आदि दोषों से हीन हों तो श्राद्ध में उत्तम ब्राह्मण कहे जाते हैं।

तत्र दशाहादिसूतकादिप्रयोजकसापिण्ड्यसगोत्रसोदकत्वरूपसंबन्धः सापिण्ड्यपदाभिधेयः। योनिसम्बन्धो मातुलत्वश्वशुरत्वशालकत्वादिः। आदिना गुरुत्वसहाध्यायित्वमित्रत्वादयः। तथा च सपत्नीकत्वादिगुणयुक्ता उक्तसम्बन्धहीना अपस्मारान्धत्वादिदोषहीना वेदाध्यायित्वादिसप्तविंशतिप्रकारा विप्रा उत्तमा इति सिद्धम्।

सापिण्ड्य पद से दशाहादि सूतक आदि का प्रयोजक सापिण्ड्य सगोत्रत्व और सोदकत्वरूप सम्बन्ध ग्राह्य है। योनिसम्बन्ध से मातुलत्व श्वशुरत्व-शालकत्व आदि सम्बन्ध ग्राह्य है। आदि पद से गुरुत्व, सहाध्यायित्व और मित्रत्व आदि का ग्रहण है। इस प्रकार सपत्नीकत्वादि गुणयुक्त उक्त सम्बन्धों से हीन, अपस्मार-अन्धत्वादि-दोषरहित वेदाध्यायित्व आदि गुणवाले सत्ताइस प्रकार के ब्राह्मण उत्तम होते हैं, यह सिद्ध हुआ।

तत्र विशेषः—

यद्येकं भोजयेच्छ्राद्धे छन्दोगं तत्र पूजयेत्।
ऋचो यजूंषि सामानि त्रितयं तत्र विद्यते ॥
ऋग्वेदिनं च पित्रर्थे याजुषं तु पितामहे।

अतिथिका मनूक्त लक्षण—

एकरात्रं तु निवसन्नतिथिः ब्राह्मणः स्मृतः।
अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥ इति।

१. आपस्तम्बः—

'ब्राह्मणान् भोजयेद्योनिगोत्रमन्त्रान्ते वास्य सम्बन्धिनः।
गुणहान्यां तु परेषां समुदितः सोदर्योऽपि भोजयितव्यः ॥'

अत्रिः—

'पिता पितामहो भ्राता पुत्रो वाऽथ सपिण्डकः।
न परस्परमर्घ्याः स्युर्न श्राद्धे ऋत्विजस्तथा ॥
ऋत्विक्पुत्रादयोऽप्येते सकुल्या ब्राह्मणाः स्मृताः।
वैश्वदेवे नियोक्तव्या यद्येते गुणवत्तराः ॥
सगोत्रा न नियोक्तव्याः श्रियश्चैव विशेषतः।' इति।

प्रपितामहे सामगं च भोजयेच्छ्राद्धकर्मणि ॥
अथर्ववेदिनं वैश्वदेवे पित्र्ये च भोजयेत् ।

एतेन 'स्वशाखीयद्विजाभावे द्विजानन्यान्निमन्त्रयेत्' इति निरस्तम् ।

उसमें विशेष यह है कि—

यदि श्राद्ध में एक ब्राह्मण को खिलाना हो तो उसमें वेदज्ञ का स्थान है। क्योंकि उसमें ऋग्वेद, यजुर्वेदसामवेद ये तीनों विद्यमान हैं। पिता के निमित्त ऋग्वेदी को, पितामह के निमित्त यजुर्वेदी को और प्रपितामह के निमित्त सामवेदी को भोजन करावे। अथर्ववेदी को वैश्वदेव और पितृकर्म में भोजन करावे। इससे—अपनी शाखा के ब्राह्मणों के न मिलने पर अन्य ब्राह्मणों को निमन्त्रित करे—यह विचार खंडित हो गया।

केचिद् 'यथा कन्या तथा हविः' इति नियमाद् यैः सह योनिसम्बन्धस्तएव परशाखीयाः श्राद्धार्हा इत्याहुस्तन्निर्मूलम्। केचिच्छ्राद्धकर्तृसगोत्रसप्रवरा 'वर्ज्याः,

पितृपुत्रौ भ्रातरौ द्वौ निरग्निं गुर्विणीपतिम् ।
सगोत्रप्रवरं चैव वर्जयेच्छ्राद्धकर्मणि ॥ इति वचनादित्याहुः ।
विना मांसेन मधुना विना दक्षिणयाशिषा ।
परिपूर्णं भवेच्छ्राद्धं 'यतिषु श्राद्धभोजिषु ॥ इति यतिप्रशंसा ।

कोई लोग तो—जैसी कन्या वैसा ही हवि होता है—इस नियम से जिनके साथ योनि-सम्बन्ध है वही परशाखीय श्राद्ध के योग्य हैं ऐसा कहते हैं, वह निर्मूल है। कुछ लोग—श्राद्ध करने वाले के सगोत्र और समान प्रवर को—पिता पुत्र, भाई-भाई अग्निहीन, गर्भिणीपति और-समान गोत्र तथा समान प्रवर को श्राद्ध में वर्जित करे—इस आशय के वचन से वर्ज्य कहते हैं। मांस, मधु, दक्षिणा और आशीर्वाद के बिना भी श्राद्ध में संन्यासी के भोजन करने से श्राद्ध परिपूर्ण होता है। यह यति की प्रशंसा है।

अथ मध्यमा विप्राः

मातामहो[3] मातुलो भागिनेयो दौहित्रो जामाता गुरुः शिष्यो याज्यः

---

१. अन्य गोत्र के अभाव में सगोत्र को भी भोजन कराना कूर्मपुराण में कहा है—

अभावे ह्यन्यगोत्राणां सगोत्रानपि भोजयेत् ।'

गर्ग ने अन्य गोत्र के अभाव में समान प्रवर-गोत्र वालों को भी भोजन कराना कहा है—

'नैकगोत्रे हविर्दद्याद् यथा कन्या तथा हविः ।
अभावे ह्यन्नगोत्राणामेकगोत्रांस्तु भोजयेत् ॥
असमप्रवराभावे समानप्रवरांस्तथा ॥'

पर ये गोत्रवाले छ पीढ़ी के बाद के हों, जैसा अत्रि ने कहा है—

'षड्भ्यस्तु परतो भोज्याः श्राद्धे स्युर्गोत्रजा अपि ।' इति ।

२. नन्दिपुराणे—

'यतीन् वा बालखिल्यान् वा भोजयेच्छ्राद्धकर्मणि ।
वानप्रस्थोपकुर्वाणौ पूजयेत्परितोषयेत् ॥' इति ।

३. जो सम्बन्धी नहीं हैं वे श्राद्ध में मुख्य हैं, उनके अभाव में मनु ने कहा है—

'मातामहं मातुलं च स्वस्रीयं श्वशुरं गुरुम् ।
दौहित्रं विट्पतिं बन्धुमृत्विग्याज्यास्तु भोजयेत् ॥

श्वशुर ऋत्विक् शालकः पितृष्वसृपुत्रो मातृष्वसृपुत्रो मातुलपुत्रोऽतिथिः सगोत्रो मित्रमित्येते मध्यमाः। दौहित्रजामातृस्वस्रीयादीनां 'विद्यादिगुणवतां श्राद्धे निमन्त्रणाभावे दोषः। गुणहीनत्वे तु न दोषः।

[२]षड्भ्यस्तु पुरुषेभ्योऽर्वाक् श्राद्धार्हा नैव गोत्रिणः।
षड्भ्यस्तु परतो भोज्या अलाभे गोत्रजा अपि॥

श्राद्ध में मध्यम ब्राह्मण—

नाना, मामा, भानजा, लड़की का लड़का, दामाद, गुरु, शिष्य, यजमान, श्वशुर, ऋत्विज, साला, फुफेरा और मौसेरा भाई, अतिथि, सगोत्र और मित्र—ये श्राद्ध में मध्यम ब्राह्मण हैं। लड़की का लड़का, दामाद और बहिन के लड़के आदि का, विद्या आदि गुण से युक्त का, श्राद्ध में निमन्त्रण न करने से दोष होता है। यदि गुणहीन हों तो दोष नहीं होता। छ पुरुषों से पहिले गोत्र वाले श्राद्ध के योग्य नहीं होते छ के बाद के गोत्र वालों को भी श्राद्धयोग्य ब्राह्मण के अभाव में भोजन करावे।

विष्णुपुराणे—

'ऋत्विक्स्वस्रीयदौहित्रजामातृश्वशुरास्तथा।
मातुलोऽथ तपोनिष्ठः पितृमातृस्वसुः पतिः॥
शिष्याः सम्बन्धिनश्चैव मातापितृरतश्च यः।
एतान् नियोजयेच्छ्राद्धे पूर्वोक्तान् प्रथमं नृप॥
ब्राह्मणान् पितृतुष्ट्यर्थमनुकल्पेष्वनन्तरान्।' इति।

१. विद्यादि- गुणयुक्त ब्राह्मणों के अतिक्रमण से शातातप और पराशर ने दोष बतलाया है—

'सन्निकृष्टमधीयानं ब्राह्मणं यस्त्वतिक्रमेत्।
भोजने चैव दाने च दहत्यासप्तमं कुलम्॥'

भविष्य पुराण में—

'सन्निकृष्टं द्विजं यस्तु शुक्लजातिं प्रियंवदम्।
मूर्खं वा पण्डितं वाऽपि वृत्तहीनमथापि वा॥
नातिक्रामेन्नरो विद्वान् दारिद्र्याभिहतं तथा।
अतिक्रम्य द्विजो घोरे नरके पातयेत् स्वकान्॥
तस्मान्नातिक्रमेत् प्राज्ञो ब्राह्मणान् प्रातिवेश्यकान्।
सम्बन्धिनस्तथा सर्वान् दौहित्रं विट्पतिं तथा॥
भागिनेयं विशेषेण तथा सम्बन्धिनः खग।'

इस वचन से सन्निकृष्ट मूर्ख को भी अनतिक्रमणीय बतलाया है, किन्तु इस वचन को गुणयुक्त सन्निहित ब्राह्मण के अलाभ में जानना चाहिये, इसीलिये बौधायन ने कहा है—

'यस्य त्वेकगृहे मूर्खो दूरे वाऽपि बहुश्रुतः।
बहुश्रुताय दातव्यं नास्ति मूर्खे व्यतिक्रमः॥'

वेद विहीन ब्राह्मण यदि सन्निहित हो तो उसके अतिक्रमण में व्यास, वशिष्ठ और शातातप ने दोषाभाव कहा है—

'ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विप्रे वेदविवर्जिते। ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते॥' इति।

२. षड्भ्यः=स्ववंशजेभ्यः। इससे सिद्ध हुआ कि जो गोत्रवाले सात पीढ़ी के ऊपर के हैं, वे ही श्राद्धकर्म में निमन्त्रणीय एवं भोजनीय हैं।

अत्र विशेषः—

ऋत्विजः सपिण्डाः सम्बन्धिनः शिष्याश्च वैश्वदेवस्थाने नियोज्या न तु पित्र्ये। एवमन्येऽपि विगुणा विप्रा देवस्थाने योज्याः।

पिता पितामहो भ्राता पुत्रो वाथ सपिण्डकाः।
न परस्परमर्घ्याः स्युर्न श्राद्धे ऋत्विजस्तथा॥
वैश्वदेवे नियोक्तव्या यद्येते गुणवत्तराः।

इसमें विशेष है—

ऋत्विज, सपिण्ड, सम्बन्धी और शिष्य वैश्वदेव के स्थान में नियोजनीय हैं, पित्र्य में नहीं। इसी प्रकार विगुण ब्राह्मण, देवता के स्थान में नियोज्य हैं। पिता, पितामह, भाई, पुत्र और सपिण्ड परस्पर पूजनीय नहीं हैं तथा श्राद्ध में ऋत्विज भी पूज्य नहीं है। यदि ये लोग अतिशय गुणवान् हों तो उन्हें वैश्वदेव में नियुक्त करे।

अथ वर्ज्या विप्राः

क्षयश्वासमूत्रकृच्छ्रभगन्दरादिमहारोगी हीनाङ्गोऽधिकाङ्गः काणो बधिरो मूकः शत्रुः कितवो [1]भृतकाध्यापको मित्रद्रोही पिशुनः कुनखी कृष्णदन्तः क्लीबो मातापितृगुरुत्यागी चोरो नास्तिकः पापकर्मा विहितकर्मत्यागी नक्षत्रोपजीवी वैद्यो राजभृत्यो गायको लेखकः कुसीदजीवी[2] वेदविक्रयी कवित्वजीवी देवार्चनजीवी नटो गृहदाही[3] समुद्रगामी शस्त्रकर्ता सोमविक्रयी पक्षिपोषकः [4]परिवेत्ता

---

१. भृतकाध्यापकः=वेतन लेकर पढ़ानेवाला, भृतकाध्यापितः=वेतन देकर पढ़नेवाला। मनु ने कहा है—

'भृतकाध्यापको यश्च भृतकाध्यापितश्च यः।
शूद्रशिष्यो गुरुश्चैव वाग्दुष्टाः कुण्डगोलकौ॥'

मनुस्मृति के तीसरे अध्याय में श्लोक १५०–१६७ तक पंक्ति को दूषित करनेवाले ब्राह्मणों का निर्देश किया है जो द्रष्टव्य है

२. कुसीदजीवी=वार्धुषिकः, ब्याज से जीविका चलाने वाला। इसका लक्षण वसिष्ठ ने यों बतलाया है—

'समर्घं धनमुद्धृत्य महर्घं यः प्रयच्छति।
स वै वार्धुषिको नाम ब्रह्मवादिषु गर्हितः॥'

देवल का कहा लक्षण है—

'विप्रं वार्धुषिकं विद्यादन्नवृद्ध्युपजीविनम्।' इति।

३. गृहदाही = आगारदाही, इसका लक्षण देवल ने यों बतलाया है—

आगारदाही स ज्ञेयः प्रे[illegible] दग्ध्वा ह्यनेकशः।
स चाप्यागारदाही स्याद् द्वेषाद् यो वेश्मदाहकः॥' इति।

४. परिवेत्ता तथा परिवित्ति का मनूक्त लक्षण है—

'दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते।
परिवेत्ता स विज्ञेयः, परिवित्तिस्तु पूर्वजः॥'

दिधिषूपतिः कुमाराध्यापकः पुत्रात्प्राप्तविद्यो द्रव्यप्राप्त्यर्थं वेदघोषकारी ग्रामयाजी केशपशुविक्रयी शिल्पी पित्रा विवादकारी शूद्रयाजको जटी श्मश्रुहीनो-निर्दयो रजस्वलापतिर्गर्भिणीपतिः कुब्जो वामनो रक्तनेत्रो वाणिज्योपजीवी छिन्नोष्ठश्छिन्नलिङ्गो गडुमान् ज्वरितो [1]देवलको विधुरो निरग्निः शूद्रशिष्यो दाम्भिको गोविक्रयी रसविक्रयी वेदनिन्दको वृक्षरोपकः [2]कदर्यः सदायाचकः कृषिजीवी साधुनिन्दितो मेषमहिषयोः पोषकः कपिलकेशो विस्मृतवेदी निष्ठुरवा-गित्यादयो[3] विप्रा हव्यकव्ययोर्वर्ज्याः।

बड़े भाई के अविवाहित रहते छोटा भाई का विवाह करना और बड़े भाई के अग्निहोत्रारम्भ किये बिना छोटा का अग्निहोत्रारम्भ करना दोष है, यदि करता है तो छोटा भाई परिवेत्ता और और बड़ा भाई परिवित्ति है। दिधिषूपति का मनूक्त लक्षण है—

'भ्रातुर्मृतस्य भार्यायां योऽनुरज्येत कामतः।
धर्मेणापि नियुक्तायां स ज्ञेयो दिधिषूपतिः॥'

कुमाराध्यापकः = गांव में बालकों को पढ़ाने वाला, पुत्रात्प्राप्तविद्यः = पुत्राचार्यः, जिसने अपने पुत्र से विद्या पढ़ी हो। नारद ने इसका लक्षण बताया है—

'पुत्राचार्यः स विज्ञेयो ग्रामे यो बालपाठकः।
पुत्रादवाप्तविद्यो वा पुत्राचार्यः स उच्यते॥' इति।

१. देवल ने देवलक का लक्षण यों बताया है—

'देवार्चनपरो नित्यं वित्तार्थं वत्सरत्रयात्।
असौ देवलको नाम हव्यकव्येषु गर्हितः॥
देवकोशोपजीवी च नाम्ना देवलको भवेत्।
अपांक्तेयः स विज्ञेयः सर्वकर्मसु गर्हितः॥'

भविष्यपुराणे—

'जम्बूद्वीपोद्भवा विप्रा देवस्वं वर्तयन्ति ये।
ते वै देवलकाः प्रोक्ताः सर्वकर्मबहिष्कृताः॥' इति।

२. कदर्यः = कृपण- कंजूस। इसका लक्षण गौतम ने बताया है।—

आत्मनं धर्मकृत्यं च पुत्रं दारांश्च पीडयेत्।
मोहान्धः प्रचिनोत्यर्थान् स कदर्य इति स्मृतः॥' इति।

३. आदि पद से निराकृत-वाग्दुष्ट वान्ताशी आदि का ग्रहण है। इनमें निराकृति का लक्षण कात्यायन ने कहा है—

'य आधायाग्निमालस्याद्देवादीनेभिरिष्टवान्।
निराकर्ताऽमरादीनां स वै ज्ञेयो निराकृतिः॥'

देवलः—

'अधीत्य विस्मृते वेदे भवेद् विप्रो निराकृतिः।'

वाग्दुष्ट का कात्यायनोक्त लक्षण है—

'हुङ्कारं चासनं चैव लोके यच्च विगर्हितम्।
अनुकुर्यादनुब्रूयाद् वाग्दुष्टं तं विवर्जयेत्॥'

वर्ज्य ब्राह्मण—

क्षय, श्वास, मूत्रकृच्छ्र और भगन्दर आदि का महारोगी, अंगहीन, अधिक अंग वाला, काना, बहिरा, गूंगा, शत्रु, धूर्त, भृतकाध्यापक, मित्रद्रोही, चुगलखोर, कुत्सित नख वाला, काले दांत वाला, नपुंसक, माता पिता और गुरु को छोड़ने वाला, चोर, नास्तिक, पाप करने वाला, विहित कर्म को छोड़ने वाला, नक्षत्र आदि बताकर जीविका करने वाला, वैद्य, राजा का नौकर, गाने वाला, लिखने वाला, सूद से जीने वाला वेदविक्रयी, कवित्वजीवी, देवार्चनजीवी, नट, घर जलाने वाला, समुद्रयात्री, शस्त्रकर्ता, सोमविक्रयी, पक्षी पोसने वाला, परिवेत्ता, दिधिषूपति, बच्चों को पढ़ाने वाला, पुत्र से विद्या प्राप्त करने वाला, द्रव्यप्राप्ति के लिये वेद पाठ करने वाला, गांव का यज्ञ कराने वाला, केश और पशु का विक्रय करने वाला' शिल्प कर्म करने वाला, पिता से विवाद करने वाला, शूद्र का यज्ञ कराने वाला, जटाधारी, श्मश्रुहीन, निर्दय, रजस्वलापति, गर्भिणीपति, कुबड़ा, बौना, लाल नेत्र वाला, वाणिज्य से जीने वाला, ओठ कटा, छिन्न लिंग, घेघ वाला, ज्वर-पीड़ित, तीन वर्ष से अधिक देवता का पूजन वृति वाला, विधुर, निरग्नि, शूद्र का गुरु, शूद्र का शिष्य, पाखण्डी, गोविक्रेता, रसविक्रेता, वेद का निन्दक, वृक्ष लगा के जीविका चलाने वाला, कृपण, सदा मांगने वाला, कृषिजीवी, साधुनिन्दक, मेंड़-भैंसा को पोसने वाला, कपिल केश, विस्मृत वेद और निष्ठुर बोलने वाला इत्यादि—ये ब्राह्मण हव्य—कव्य में त्याज्य हैं।

धर्मार्थमुदरार्थं वौषधकारी विगर्हितः ।
देवार्चनपरो नित्यं वित्तार्थी वत्सरत्रयम् ॥
असौ देवलको नाम देवस्वग्राहकोऽपि च ।
वर्जनीयः स विज्ञेयः सर्वकर्मसु सर्वदा ॥

इदं मनुष्यस्थापितदेवताविषयमिति भाति ।

दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते ।
परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु अग्रजः ॥

वान्ताशी का विष्णूक्त लक्षण है—

देशं गोत्रं कुलं विद्यामन्नार्थं यो निवेदयेत् ।
वैवस्वतेषु धर्मेषु वान्ताशी स प्रकीर्तितः ॥'—

चन्द्रिका में यम का वचन है—

काणाः कुब्जाश्च षण्ढाश्च कृतघ्ना गुरुतल्पगाः ।
मानकूटास्तुलाकूटाः शिल्पिनो ग्रामयाजकाः ॥
राजभृत्यान्धबधिरमूकखल्वाटपङ्गवः ।
वणिजो मधुहर्तारो गरदा वनदाहकाः ॥
समयानां च भेत्तारः प्रदाने ये निवारकाः ।
प्रव्रज्योपनिवृत्ताश्च वृथा प्रव्रजिताश्च ये ॥
यश्च प्रव्रजिताज्जातः प्रवज्यावसितश्च यः ।
अवकीर्णी च वीरघ्नो गुरुघ्नः पितृदूषकः ॥'

इत्यादि श्राद्ध में निषिद्ध ब्राह्मणों के मूलवचन एवं अन्यान्य विस्तृत विवेचन हेमाद्रि-कृत्य कल्पतरु-वीरमित्रोदय तथा जयसिंहकल्पद्रुम-निर्णयसिन्धु आदि प्रामाणिक निबन्धों में देखिये।

'अग्रजानुज्ञादौ न दोष इत्युक्तम्।

ज्येष्ठायां यद्यनूढायां कन्यायामूह्यतेऽनुजा।
सा चाग्रेदिधिषूर्ज्ञेया पूर्वा तु दिधिषूर्मता॥
प्रतिमाविक्रयं यो वै करोति पतितस्तु सः।
जीवनार्थं परास्थीनि नयते पतितः स च॥

गाननृत्यादिकमुदरार्थं निषिद्धं न तु भगवदर्थम्।

धर्मार्थ या पेट के लिये औषधि करने वाला निन्दित है। धन के लिये तीन वर्ष तक नित्य देवार्चन करने वाला यह देवलक नाम का ब्राह्मण और देव-द्रव्य का ग्रहण करने वाला सभी कर्म में सर्वदा वर्जनीय है। यह निषेध मनुष्य द्वारा स्थापित देवता के विषय में है, ऐसा प्रतीत होता है। जो बड़े भाई के रहते छोटा भाई विवाह और अग्निहोत्र करता है, उसे परिवेत्ता कहते हैं। बड़ा भाई परिवित्ति होता है। बड़े भाई की अनुमति से विवाह और अग्निहोत्र करना दोषकारक नहीं होता, यह पहिले कहा है। जेठी लड़की के बिना ब्याहे छोटी लड़की का विवाह किया जाता है वह आग्रेदिधिषू और पहिली दिधिषू कहलाती है। प्रतिमा का जो विक्रय करता है वह पतित है। वह भी पतित है जो जीवन के लिये दूसरों की हड्डियों को काशी आदि तीर्थ में प्रवाहार्थ ले जाता है। पेट के लिये गाना नाचना आदि निषिद्ध है, भगवान् के लिये नहीं।

अत्र विप्राणां ग्राह्यत्वोक्त्यैव तद्भिन्नानां वर्ज्यत्वे सिद्धे पुनर्वर्ज्यपरिगणनं वर्ज्यभिन्नानां निर्गुणानामपि ग्राह्यत्वार्थम्। विद्याशीलादिगुणवत्त्वे कुष्ठित्वकाणत्वादिशारीरदोषाणां न दूषकत्वम्। गयायां तु निर्गुणा अपि ते एव [2]भोज्याः।

न विचार्यं कुलं शीलं विद्या च तप एव च।
पूजितैस्तैस्तु संतुष्टा देवाः सपितृगुह्यकाः॥ इत्युक्तेः।

---

१. वशिष्ठ ने कहा है—

'अग्रजश्च यदानग्निरादध्यादनुजः कथम्। अग्रजानुमतः कुर्यादग्निहोत्रं यथाविधि॥'

आदि पद से अपवाद वचन के अनुसार विवाहादि करने में कनिष्ठ को दोष नहीं होता, जैसा शातातप ने कहा है—

'पितृव्यपुत्रसापत्नपरनारीसुतेषु च। ज्येष्ठेष्वपि हि तिष्ठत्सु भ्रातॄणां तु कनीयसाम्॥
दाराग्निहोत्रसंयोगे न दोषः परिवेदने।'

तथा—

क्लीबे देशान्तरस्थे च पतिते भिक्षुके तथा। योगशास्त्राभियुक्ते च न दोषः परिवेदने॥'
योगशास्त्राभियुक्ताः=अतिविरक्ताः।

२. यह हेमाद्रि का निर्णय है। अग्निपुराण में—

'यदि पुत्रो गयां गच्छेत् कदाचित्कालपर्ययात्।
तानेव भोजयेद् विप्रान् ब्रह्मणा ये प्रकल्पिताः॥
ब्रह्मणा कृतसंस्थाना विप्रा ब्रह्मसमाः स्मृताः।
अमानुषा गयाविप्रा ब्राह्मणा ये प्रकल्पिताः॥
तेषु तुष्टेषु सन्तुष्टाः पितृभिः सह देवताः।' इति।

ब्राह्मणान्न परीक्षेत तीर्थे क्षेत्रनिवासिनः ।

इसमें ग्राह्य-ब्राह्मणों के कहने ही से उससे भिन्न ब्राह्मणों का वर्जनीय सिद्ध होने पर भी पुनः वर्जनीयों का परिगणन, वर्ज्य-भिन्न निर्गुणों का भी ग्रहण के लिये है । विद्या, शील आदि गुणयुक्त ब्राह्मण का श्राद्ध में कुष्ठित्व काणत्वादि शारीरदोष दूषक नहीं है । गया में तो निर्गुण भी विप्र भोजनीय हैं, क्योंकि वचन है कि—कुल, शील, विद्या और तप का विचार न कर ब्राह्मणों को पूजने से तो उनसे पितर और गुह्यक के साथ देवता सन्तुष्ट होते हैं ।

तीर्थ में क्षेत्रनिवासी ब्राह्मणों की परीक्षा न करे ।

यत्तु—

न ब्राह्मणं परीक्षेत दैवे कर्मणि धर्मवित् ।
पितृकर्मणि तु प्राप्ते परीक्षेत प्रयत्नतः ॥ इति तदसम्भवपरम् ।
गायत्रीसारमात्रोऽपि वरं विप्रः सुयन्त्रितः ।
नायन्त्रितश्चतुर्वेदी सर्वाशी सर्वविक्रयी ॥ इति हेमाद्रौ व्यासः ।
श्राद्धे काणादयो भोज्या मिश्रिता वेदपारगैः ।

विप्रा निमन्त्रणात्पूर्वमेव परीक्षणीया न तु निमन्त्रणोत्तरम् । इति ब्राह्मणविचारः ।

किसी का मत है कि—धर्मवेत्ता देव कर्म में ब्राह्मण की परीक्षा न करे और पितृकर्म में प्रयत्न पूर्वक परीक्षा करे ।

किन्तु उनका यह कथन असम्भव परक है ।

केवल गायत्री जाननेवाला ब्राह्मण जितेन्द्रिय हो तो अच्छा है । किन्तु निषिद्ध अन्नादि का खाने वाला, सब कुछ वेचने वाला, अजितेन्द्रिय चारों वेद का जानकार अच्छा नहीं है । यह हेमाद्रि में व्यास का वचन है । श्राद्ध में वेद पारगामियों के साथ काने आदि मिले हुए हों तो वे भोजनीय-हैं । निमन्त्रण के पहिले ही ब्राह्मण परीक्षणीय होते हैं, निमन्त्रण के बाद नहीं । ब्राह्मण-विचार समाप्त ।

अथ श्राद्धार्हद्रव्याणि

तत्र [1]दर्भाः—दर्भग्रहणे कालो मन्त्रो दर्भभेदाश्च द्वितीयपरिच्छेदे उक्ताः । विशेषस्तूच्यते—कुशा मुख्याः, कुशाभावे काशदूर्वोशीरतृणादयः । तत्र [2]काशैर्दूर्वाभिर्वा कृतपवित्रहस्तो नाचामेत् ।

द्वाभ्यामनामिकाभ्यां तु धार्ये दर्भपवित्रके ।
एकानामिकया वापि द्वयोर्मध्ये तु पर्वणोः ॥

---

१. दर्भ का लक्षण—'सप्तपत्राः शुभा दर्भास्तिलक्षेत्रसमुद्भवाः । अप्रसूता स्मृता दर्भाः प्रसूतास्तु कुशाः स्मृताः ॥ समूलाः कुतपाः प्रोक्ताश्छिन्नाग्रास्तृणसंज्ञिताः ।' कुशके अभाव में सुमन्तु का वचन है—'कुशाः काशाः शरो गुन्द्रो यवा दूर्वाऽथ बल्वजाः । गोकेशमुञ्जकुन्दाश्च पूर्वाभावे परः परः ॥' यमः—'मासि मास्युद्धृता दर्भा मासि मास्येव चोदिताः ।' षट्त्रिंशन्मते—मासे नभस्यमाया हि दर्भो ग्राह्यो नवो मतः ।' इति ।

२. काशादि के पवित्र धारण करने पर शङ्ख ने स्पष्ट कहा है—'काशहस्तस्तु नाचामेत् कदाचिद्विधिशङ्कया । प्रायश्चित्तेन युज्येत दूर्वाहस्तस्तथैव च ॥' इति ।

साग्रौ विगर्भौ तु कुशौ कार्यं ताभ्यां पवित्रकम् ।
द्वाभ्यां तत्स्याच्चतुर्भिर्वा ग्रन्थियुक्तं न वा भवेत् ॥
स्नाने दाने जपे होमे स्वाध्याये पितृकर्मणि ।
सपवित्रौ सदर्भौ वा करौ कुर्वीत नान्यथा ॥
ब्रह्मग्रन्थिपवित्राढ्यो नाचामेच्च बुधः सदा ।

श्राद्ध में दर्भ-दर्भग्रहण का समय, मन्त्र और कुश के भेद, द्वितीय परिच्छेद में कहा है। विशेष कहता हूँ—कुश मुख्य है, कुश के अभाव में कास, दूब और खश तृण आदि हैं। उसमें कास या दूब से बने पवित्र को हाथ में धारण करे आचमन नहीं करे। दो अनामिका अंगुलियों में अथवा एक अनामिका अंगुली में दो कुश पवित्र को धारण करना चाहिये। पवित्री का धारण दो पर्व के मध्य में करे। अग्रभागसहित गर्भसहित दो कुशों से पवित्री बनावे या चार कुशों से बनावे, गांठ रहे या न रहे। स्नान में, दान में, होम में, स्वाध्याय में, पितृकर्म में, पवित्रसहित अथवा दो कुशों से युक्त हाथ करे, अन्यथा न करे। विद्वान्-ब्रह्मग्रन्थि से युक्त पवित्री धारण कर आचमन नहीं करे।

केचिद्ग्रन्थितपवित्राभावे 'साग्रदर्भौ द्वौ दक्षिणकरे, वामे तु त्रीन् द्वौ वा विभृयादित्याहुः। आसने[2] द्वौ दर्भौ पितृकर्मणि समूला द्विगुणा दर्भाः। दैवे साग्रा ऋजवः, पित्र्येऽपि सपिण्डीकरणपर्यन्तमृजुदर्भास्तदूर्ध्वं द्विगुणभुग्ना[3] इति।

ये च पिण्डाश्रिता दर्भा यैः कृतं पितृतर्पणम् ।
मलमूत्रोत्सर्गधृता मलमूत्राद्यमेध्यगाः ॥
मार्गे[4] चितौ यज्ञभूमौ स्थिता ये स्तरणासने ।
ब्रह्मयज्ञे च ये दर्भास्त्यागार्हाः सर्व एव ते ॥
अन्यानि च ये पवित्राणि कुशदूर्वात्मकानि च ।
हेमात्मकपवित्रस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥

पञ्चगुञ्जमाषमानेन षोडशमाषं हेममयं पवित्रकमित्याहुः।

---

१. सुमन्तु ने कहा है—'समूलाग्रौ विगर्भौ तु कुशौ द्वौ दक्षिणे करे। सव्ये चैव तथा त्रीन् वै बिभृयात्सर्वकर्मसु ॥' हारीतः—'पवित्रं ब्राह्मणस्यैव चतुर्भिर्दर्भपिञ्जुलैः। एकैकं न्यूनमुद्दिष्टं वर्णे वर्णे यथाक्रमम् ॥' स्मृत्यर्थसारे—'सर्वेषां वा भवेद् द्वाभ्यां पवित्रं ग्रन्थितं नवम् ॥' रत्नावल्याम्—द्वयोस्तु पर्वणोर्मध्ये पवित्रं धारयेद् बुधः ॥' इति।

२. बौधायनः—'हस्तयोरुभयोर्द्वौ द्वावासनेऽपि तथैव च।' श्राद्ध में समूल कुश ग्राह्य है, जैसा पृथ्वीचन्द्रोदय में यम की उक्ति उद्धृत है—'समूलस्तु भवेद्दर्भः पितृणां श्राद्धकर्मणि। मूलेन लोकान् जयति शक्रस्य सुमहात्मनः ॥' इति।

३. शालङ्कायन का वचन है—सपिण्डीकरणं यावदृजुदर्भैः पितृक्रिया। सपिण्डीकरणादूर्ध्वं द्विगुणैर्विधिवद् भवेत् ॥' इति।

४. पाठ भेद से लघुहारीत का भी ऐसा ही वचन है—पथि दर्भाश्चितौ दर्भा ये दर्भा यज्ञभूमिषु। स्तरणासनपिण्डेषु षट् कुशान् परिवर्जयेत् ॥' ब्रह्मयज्ञे च ये दर्भा ये दर्भाः पितृतर्पणे। हता मूत्रपुरीषाभ्यां तेषां त्यागो विधीयते ॥' इति।

कोई—ग्रन्थि की पवित्री न रहने पर अग्रभागसहित दो कुश दाहिने हाथ में और तीन या दो कुश बायें में धारण करे—ऐसा कहते हैं। आसन में दो कुश, पितृकर्म में मूलसहित द्विगुण-भुग्न कुश, देवकर्म में अग्रभागसहित कोमल कुश, पितृकर्म में भी सपिण्डीकरणपर्यन्त ऋजु कुश, उसके बाद द्विगुण-भुग्न-कुश रहना चाहिये। जो पिण्ड के नीचे कुश रखे गये हैं, जिन कुशों से पितृतर्पण किया है जो कुश मलमूत्रोत्सर्ग में धारण किया गया है, वे सब अपवित्र हैं। मार्ग में, चिता में, यज्ञ-भूमि में, आसन में, आस्तरण में, और ब्रह्मयज्ञ में जो कुश व्यवहृत हैं वे सब त्याज्य हैं। जो पवित्र, कुश और दूर्वा के बनाये हों वे सुवर्ण के पवित्र की सोलहवीं कला के समान भी नहीं हैं। कोई-पांच गुंजा के माशा के मान से सोलह माशे का सुवर्णमय पवित्र होता है—ऐसा कहते हैं।

अथ हविः

व्रीहियवतिलमाषगोधूमश्यामाकप्रियंगुमुद्गसर्षपाः श्राद्धे प्रशस्ताः। चणको विकल्पितः[1]। यावनालोऽपि विकल्पितः।

> इष्टापूर्ते मृताहे च दर्शवृद्ध्यष्टकासु च।
> पात्रेभ्यस्त्वेषु कालेषु देयं नैव कुभोजनम्॥
> अगोधूमं च यच्छ्राद्धं माषमुद्गविवर्जितम्।
> तैलपक्वेन रहितं कृतमप्यकृतं भवेत्॥
> राजमाषाश्च निष्पावा अपि शस्ताः सतीनकाः।

राजमाषा महाराष्ट्रभाषया 'चवळी'ति प्रसिद्धाः, निष्पावाः 'पावटे' इति, सतीनकाः 'वाटाणे' इति, [2]कदलीफलमाम्रफलं सूरणः पनसः त्रिविधं कर्कटीफलम्, कोशातकी 'दोडका' इति प्रसिद्धा। कुस्तुम्बुरुवैकल्पिकम्। पटोलं बदरमा-

---

१. ब्रह्मपुराणादिके वचन से चना ग्राह्य और मरीचि आदि के वचन से अग्राह्य होने से विकल्प है। मरीचि का वचन-'कुलत्थाश्चणका श्राद्धे न देयाश्चैव कोद्रवाः। कटुकानि च सर्वाणि विरसानि तथैव च॥' मार्कण्डेयः—गोधूमैरिक्षुभिर्मुद्गैः सतीनैश्चणकैरपि। श्राद्धेषु दत्तैः प्रीयन्ते मासमेकं पितामहाः॥ 'कृष्णमाषास्तिलाश्चैव श्रेष्ठाः स्युर्यवशालयः। महायवा व्रीहियवास्तथैव च मधूलिकाः॥ कृष्णाः श्वेताश्च लोहाश्च ग्राह्याः स्युः श्राद्धकर्मणि।' ब्रह्मपुराणे—'यवैर्व्रीहितिलैर्माषैर्गोधूमैश्चणकैस्तथा। सन्तर्पयेत् पितॄन् मुद्गैः श्यामाकैः सर्षपद्रवैः॥ नीवारैर्हस्तिश्यामाकैः प्रियङ्गुभिरथार्चयेत्।' चतुर्विंशतिमते— 'कोद्रवा राजमाषाश्च कुलत्था वरकास्तथा। निष्पावाश्च विशेषेण पञ्चैतांस्तु विवर्जयेत्॥ यावनालानपि तथा वर्जयन्ति विपश्चितः॥' इति।

२. आश्वलायनः—'कदल्यादिफलैः शस्तैर्मूलैरार्द्रादिकैरपि। गोरसैर्मधुना दध्ना श्राद्धे संतर्पयेत् पितॄन्॥' कार्ष्णाजिनिः—'यदिष्टं जीवतश्चासीत्तद्द्यात्तस्य यत्नतः। स तृप्तो दुस्तरं मार्गं ततो याति न संशयः॥' वायुपुराणे—'कालशाकं महाशाकं द्रोणशाकं तथार्द्रकम्। बिल्वामलकमृद्वीकापनसाम्रातदाडिमम्॥ चव्यं पालिवताक्षोटं खर्जूरं च कसेरुकम्। कोविदारश्च कन्दश्च पटोलं बृहतीफलम्। पिप्पली मरिचं चैव एला शुण्ठी च सैन्धवम्। शर्करागुडकर्पूरबदरीद्रोणपत्रकम्॥' तथा—'मधुकं रामठं चैव कर्पूरं गुडमेव च। श्राद्धकर्मणि शस्तानि सैन्धवं त्रपुसं तथा॥ ब्रह्मपुराणे—'आम्रमाम्रातकं बिल्वं दाडिमं बीजपूरकम्। चीणाकं लकुचं जम्बु भव्यं भूतं तथारुकम्॥ प्राचीनामलकं क्षीरं नालिकेरं परूषकम्। नारङ्गं च सखर्जूरं द्राक्षानीलकपित्थकम्॥ एतानि फलजातानि श्राद्धे देयानि यत्नतः।' इति।

मलकं खर्जूरीफलं चिचार्द्रकं शुण्ठीमूलकं द्राक्षालवंगैलापत्रकाणि जीरकं हिंगु दाडिमफलमिक्षुः शर्करा गुडः कर्पूरः सैन्धवसामुद्रे लवणे पूगीफलं ताम्बूलपत्रमिति श्राद्धे प्रोक्तानि हवींषि। गव्ये दधिदुग्धे, घृतं गव्यं माहिषं च।

धान, जौ, तिल, उर्द, गेहूँ, सावां, ककुनी, मूंग, सरसो—ये श्राद्ध में प्रशस्त हैं। चना विकल्प से है। यावनाल भी विकल्प से है। इष्टापूर्त कर्म में, मृताह में, दर्श, वृद्धि और अष्टकाओं में इन कालों में पात्रों को कुभोजन नहीं दे। गेहूँ-उर्द-मूंग-तैलपक्व से रहित किया हुआ श्राद्ध नहीं किये के समान है। राजमाष (चोड़ा का बीज), निष्पाव, सतीनक, (मटर, कबिली) प्रशस्त है। राजमाष महाराष्ट्र भाषा में 'चवळी' नाम से प्रसिद्ध है। निष्पाव 'पावटे' और सतीनक 'वाटाणे' नाम से प्रसिद्ध है। केले का फल, आम का फल, सूरन, कटहल, तीन प्रकार के ककड़ी फल, कोशातकी महाराष्ट्र में 'दोड़का' नाम से प्रसिद्ध है। कुस्तुम्बुरु (धनिया) विकल्प से है। परबल, बैर, आँवला, खजूर का फल, इमली, अदरख, सोंठ, मूली, दाख, लौंग, इलायची, तेजपत्ता, जीरा, हींग, अनार, गन्ना, चीनी, गुड़, कपूर, सेंधानमक, समुद्रनमक, सुपारी और पान ये श्राद्ध में हवि कहे गये हैं। गाय का दही-दूध तथा गाय और भैंस दोनों का घी हवि है।

केचिन्माहिषं तक्रं सद्यःकृतमनुद्धृतनवनीतं ग्राह्यमाहुः। केचिन्महिषीक्षीरं [2]शर्करादियुतं ग्राह्यमाहुः मथितं निर्जलं दधि सर्वं निषिद्धम। जम्बीरफलं विहितप्रतिषिद्धत्वाद्विकल्पितम्। आक्षोटः 'अक्रोड' इति प्रसिद्धः। शृंगाटकः 'शिंगाडे' इति प्रसिद्धः। चिर्भट 'खबूंज' इति प्रसिद्धम्। शीतकंदली रताली' इति प्रसिद्धम् एते श्राद्धे विहिताः। आम्रातकः 'आंबाडा' इति प्रसिद्धः। तण्डुलीयो 'माठ इति प्रसिद्धः। एतौ द्वौ विहितप्रतिषिद्धौ।

कोई—भैंस का मट्ठा, तुरन्त का बना हुआ जिसमें मक्खन नहीं निकाला गया हो—ग्राह्य कहते हैं। कोई—चीनी आदि युक्त भैंस के दूध को ग्राह्य—कहते हैं। मथा हुआ निर्जल दही सब निषिद्ध हैं। जंबीरी नीबू विहित और निषिद्ध होने से विकल्पित है। अखरोट, सिंघाड़ा, खरबूजा, शीतकंदली 'रातळी' ये श्राद्ध में विहित हैं। आम्रातक 'आंवड़ा' और तण्डुलीय 'माठ' इस नाम से प्रसिद्ध है। अमड़ा, तंडुलीय-ये दोनों विहित और निषिद्ध हैं।

केचिद्राजमाषं कृष्णेतरमुद्गं कृष्णनिष्पावं च निषिद्धमाहुः।

कथंचिद्यदि विप्रेभ्यो न दत्तं भोजने मधु।
पिण्डास्तु नैव दातव्याः कदाचिन्मधुना[3] विना॥

---

१. सुमन्तुः—'पयो दधि घृतं चैव गवां श्राद्धेषु पावनम्। महिषीणां घृतं प्राहुः श्रेष्ठं न तु पयः क्वचित्॥' देवलः—'अजाविमहिषीणां तु पयः श्राद्धेषु वर्जयेत्। विकारान् पयसश्चैव माहिषं तु घृतं हितम्॥' भविष्यपुराणे—'श्राद्धे तु महिषीक्षीरं अजाक्षीरं च वर्जयेत्। गवां चानिर्दशाहानां सन्धिनीनां पयस्त्यजेत्॥' इति।

२. अपरार्क में ब्रह्मपुराण का वचन—'देयं तक्रं तु सद्यस्कं नवनीतादनुधृतम्। आरण्यमहिषीक्षीरं शर्कराद्युतिसंयुतम्॥ मध्वक्तं तु हितं चैव दद्याच्चदमृतं यतः।' इति।

३. हेमाद्रि में ब्रह्मपुराण का वचन—अणुमात्रमपि श्राद्धे यदि न स्याच्चम ाक्षिकम्। नामापि कीर्तनीयं स्यात् पितॄणां प्रीतये तत्॥' मात्स्यसूक्ते—'मध्वभावे गुडो देय क्षीरस्य च तथा दधि। न लभ्यते घृतं यत्र कुर्यात् घृतवतीजपम्॥' इति।

अक्षता गोपशुश्चैव श्राद्धे मांसं तथा मधु।
देवराच्च सुतोत्पत्तिः कलौ पञ्च विवर्जयेत्॥

इति वचनद्वयान्मधुनि ऐच्छिकविकल्पः। केचित् 'यथाचारं प्रदेयं तु मधुमांसादिकं तथा' इति वचनाद्देशाचारानुसारेण व्यवस्थितविकल्पमाहुः। मांसं श्राद्धेषु नैव देयं कलिवर्ज्यत्वात्, 'न दद्यादामिषं श्राद्धे न चाद्याद्धर्मतत्त्ववित्' इत्यादि श्रीभागवतवचनाच्च। अन्यानि मुञ्जातचव्यकसेरुकालेयादिद्रव्याणि बहूनि महानिबन्धेषूक्तानि तान्यप्रसिद्धत्वाच्छ्राद्धेऽवश्यापेक्षोपयोगयोरभावाच्च नोच्यते।

कुछ लोग—राजमाष, कृष्ण वर्ण से भिन्न मूंग और कृष्ण निष्पाव को निषिद्ध कहते हैं। किसी तरह यदि ब्राह्मणों को भोजन में मधु नहीं दिया हो तो पिण्ड तो मधु के विना कमी न दे। अक्षत, गोपशु, मांस, मधु, देवर से पुत्रोत्पत्ति, कलियुग में इन पांचों का वर्जन करे, इन दो वचनों से मधु में ऐच्छिक विकल्प है। कुछ लोग कहते हैं—आचार के अनुसार मधुमांस आदि भोजन में देना चाहिये, इस वचन से देशाचार के अनुसार व्यवस्थित विकल्प है। श्राद्ध में मांस नहीं दे, क्योंकि कलिवर्ज्य है और भागवत में—श्राद्ध में मांस न दे तथा धर्मतत्त्व का जाननेवाला स्वयं भी न खाय—इस वचन से निषेध है। अन्य भी-मुंजात, चव्य, कसेरु और कालेय आदि बहुत से द्रव्य महानिबन्धों में कहे हैं, उनकी प्रसिद्धि नहीं होने से श्राद्ध में अवश्य अपेक्षा और उपयोग के अभाव से नहीं कहा है।

अथ वर्ज्यानि

यद्यपि विहितोक्त्यैव तद्भिन्नानामग्राह्यत्वं प्राप्तं तथापि विशेषदोषप्रदर्शनायाप्राप्तनिषेधज्ञापनाय च तानि संगृह्यन्ते। [2]उत्कोचादिना प्राप्तं पतितान्त्यजादेः प्राप्तमन्यायार्जितं कन्याविक्रयादिलब्धं धनं निन्द्यम्। पित्रर्थं मे देहीति याचनार्जितमपि निषिद्धम्। आढकीकुलित्थमसूरकोद्रवराजसर्षपा निषिद्धाः। लांकेति प्रसिद्धाः मर्कटकाश्च वर्ज्याः। [3]शिग्रूकूष्माण्डोभयविधालाबुकरमर्दार्द्रमरीचपिण्डमूलककुसुम्भशणवंशांकुराः दशविधा लशुनादिपलाण्डुभेदाः कृत्रिमलवणानि रक्तबिल्वं श्वेतं कृष्णं वृन्ताकं गाजरापरपर्यायं गृंजनं भोकरसंज्ञः श्लेष्मातको रक्तनिर्यासाश्च वर्ज्याः।

---

१. इसका उत्तरार्ध है—'मुन्यन्नैः स्यात्परा प्रीतिर्यथा न पशुहिंसया॥' तथेति शेषः। वृहत्पराशर ने भी कहा है—'यस्तु प्राणिवधं कृत्वा मांसैस्तर्पयते पितॄन्। स विद्वांश्चन्दनं दग्ध्वा कुर्यादङ्गारविक्रयम्॥ क्षिप्त्वा कूपे यथा किंचिद् बाल आदातुमिच्छति। पतत्यज्ञानतः सोऽपि मांसेन श्राद्धकृत्तथा॥' इति।

२. मार्कण्डेयपुराणे—'यच्चोत्कोचादिना प्राप्तं पतिताद्यदुपार्जितम्। अन्यायकन्याशुल्कार्थं द्रव्यं चात्र विगर्हितम्॥ पित्रर्थं मे प्रयच्छस्वेत्युक्त्वा यच्चाप्युपाहृतम्॥' इति।

३. चन्द्रोदय में शंख की उक्ति—'भूस्तृणं सुरसा शिग्रु पालङ्की मृचुकं तथा। कूष्माण्डालाबुवार्ताककोविदारांश्च वर्जयेत्॥ पिप्पलीं मरिचं चैव तथा वै पिण्डमूलकम्। कृतं च लवणं सर्वं वंशाग्रं च विवर्जयेत्॥ राजमाषान् मसूरांश्च कोद्रवान् कोरदूषकान्। लोहितान् वृक्षनिर्यासान् श्राद्धकर्मणि वर्जयेत्॥' तथा—'पिण्डालकं च तुण्डीरं करमर्दं च नालिकाम्। कूष्माण्डं बहुबीजानि श्राद्धे दत्त्वा व्रजत्यधः॥' इति।

श्राद्ध में वर्ज्य द्रव्य—यद्यपि विहित के कहने से ही उससे भिन्न का अग्राह्यत्व प्राप्त था, तब भी विशेष दोष दिखाने के लिये और अप्राप्त निषेध के ज्ञापन के लिये उनका संग्रह करते हैं। घूस आदि से पाया हुआ, पतित और अंत्यज से पाया, अन्याय से पैदा किया हुआ, कन्या विक्रय आदि से पाया हुआ धन निन्द्य होता है। 'पितरों के लिये मुझे दीजिये' ऐसी याचना से अर्जित धन भी निषिद्ध है। आढ़की, कुलत्थ (कुलथी), मसूर, कोदो और राजसर्षप निषिद्ध है। सहिजन, कूष्माण्ड, दोनों प्रकार की लौकी, करौंदा, आदी, मरिच, लालमूली, कुसुम्भ सन और बांस के अंकुर, दस प्रकार के लहसुन आदि प्याज के भेद, कृत्रिम लवण, लाल वेल, सफेद और काला बैंगन गाजर का दूसरा पर्याय गृंजन जिसको मोकर कहते हैं वह, लिसोढ़ा और लाल रसवाले शाक श्राद्ध में वर्जित हैं।

सामुद्रसैन्धवे भक्ष्ये प्रत्यक्षं लवणे बुधैः।
विडालोच्छिष्टमाघ्रातं श्राद्धे द्रव्यं विवर्जयेत्॥
करीरफलपुष्पाणि विडङ्गमरिचानि च।
बीजपूरं पटोलं च श्राद्धे दत्त्वा पतत्यधः॥
कृष्णधान्यानि सर्वाणि वर्जयेच्छ्राद्धकर्मणि।
न वर्जयेत्तिलांश्चैव मुद्गमाषांस्तथैव च॥
दातुर्यद्यत्प्रियं तत्तद्देयं निन्द्यं न चेद्धि तत्।
अजाविमहिषीक्षीरं[१] तद्विकारांश्च वर्जयेत्॥
बालुकाकीटपाषाणैः केशैर्यच्चाप्युपद्रुतम्।
वस्त्रेण वीजितं चान्नं वर्जयेच्छ्राद्धकर्मणि॥
अमेध्यैर्जङ्गमैः स्पृष्टं शुष्कं पर्युषितं च यत्।
द्विःपक्वं परिदग्धं च सिद्धभक्षांश्च वर्जयेत्॥

सामुद्र और सैन्धव नमक भक्ष्य है। बिल्ली का जूठा और सूंघा हुआ द्रव्य श्राद्ध में वर्ज्य हैं। करीर का फल, फूल, वायविडंग, मरिच, बीजपूर और परवल श्राद्ध में देने से नरक होता है। श्राद्ध-कर्म में तिल, मूंग और उर्द को छोड़कर सब प्रकार के काले अन्न वर्जित हैं। दाता को जो-जो प्रिय हो वह-वह दे यदि वह निन्द्य न हो। बकरी, भेंड़ और भैंस का दूध और उनके विकार वर्जित हैं। बालू, कीड़ा, पत्थर और केश जिस अन्न में पड़ जायं और वस्त्र से हवा किया हुआ अन्न श्राद्ध में वर्जित है। अपवित्र पशुओं से छुआ हुआ, सूखा और बासी, दो बार का पकाया हुआ और जला हुआ अन्न वर्जित है।

यत्सकृत्पाकेन भक्षणार्हमपि हिंगुजीरकादि संस्कारार्थं पुनः पच्यते तद्विःपक्वं वर्ज्यम्। यत्तु द्विःपाकेनैव भक्षणार्हं तन्न निषिद्धमिति सिन्धुः। 'यदन्नैकदेशः

---

१. चन्द्रिका में शङ्ख का वचन—'कूष्माण्डं महिषीक्षीरमाढक्यो राजसर्षपः। चणकाः राजमाषाश्च घ्नन्ति श्राद्धं न संशयः॥' इस वचन में चना का निषेध और—'श्यामाकैश्चणकैः शाकै-र्नीवारैश्च प्रियङ्गुभिः। गोधूमैरिक्षुभिर्मुद्गैः सतीनैश्चणकैरपि॥' इन वचनों में चना का ग्रहण है, इसलिये इसका ग्राह्याग्राह्य में विकल्प है।

केनचित्पूर्वमास्वादितस्तदन्नं श्राद्धे वर्ज्यम् । मारीषं 'राजगिरे'ति प्रसिद्धं शाकं धान्यं च वर्ज्यम् । वटप्लक्षोदुम्बरकपित्थनीपमातुलिंगफलानि न भक्षयेत् ।

क्षीरं च लवणैर्मिश्रं ताम्रे गव्यं सुरासमम्[1] । अस्यापवादः—

पयोनुद्धृतसारं च पयसा संयुतं दधि ।
घृतं चैतानि गव्यानि नैव दुष्टानि ताम्रके ॥

जो एक बार पकाने से भक्षणयोग्य हींग जीरा आदि हैं वे संस्कार के लिये दुबारा पकायें जांय तो दो बार के पकाये हुए होने से वर्जित हैं। और जो दो बार पकाने से ही भक्षण योग्य हों, उनका निषेध नहीं है ऐसा निर्णय सिन्धुकार का कथन है। जिस अन्न का एक देश किसी ने पहिले चख लिया हो वह अन्न श्राद्ध में वर्जित है। राजगिरि नाम से प्रसिद्ध, मारीष शाक (मड़सा, लालसाग और धान्य वर्जित है। बड़, पाकड़, गूलर, कैंत, कदंब, और धतूर के फलों को न खाय। लवण मिला दूध और तामे के पात्र में गव्य मद्य के समान है। इसका अपवाद है।— मक्खन निकाला हुआ दूध और दूध में मिला हुआ दही और गाय का घी तामे के पात्र में रखने पर दूषित नहीं होता।

पिप्पली वर्तुलमरीचादेः प्रत्यक्षस्य निषेधो न त्वन्यद्रव्यमिश्रितस्य । [2]नारिकेलं विहितप्रतिषिद्धम् । यच्च पौतिकशाकादिकं जीर्णतक्रं सन्धिन्यादिक्षीरमनिर्दशायाः क्षीरं मृग्यादिक्षीरं फेनिलतक्रादिकंहस्तदत्तस्नेहलवणादिकं च नित्यभोजने निषिद्धं तत्सर्वं श्राद्धेपि वर्जयेत् ।

पीपल और गोल मरिच आदि-प्रत्यक्ष का निषेध है दूसरे द्रव्य में मिले हुए का नहीं। नारियल विहित भी है और निषिद्ध भी। जो—पोई का शाक आदि, पुराना मट्ठा, गाभिन गाय का दूध, बिआने से दस दिन के भीतर का दूध, मृगी आदि का दूध, फेनिल मट्ठा आदि, हाथ से दिया हुआ तेल और नमक नित्य भोजन में निषिद्ध है—वे सब श्राद्ध में भी वर्जित हैं।

अथ मक्षिकादिदूषितान्नव्यवस्था

माधवीये—मृतैर्मक्षिकाकृमिजन्तुभिः केशरोमनखादिभिश्च दूषितं सति संभवे वर्जयेत् । असंभवे तु केशादिकमुद्धृत्य संप्रोक्ष्य हिरण्यस्पर्शं कृत्वा भुञ्जीत । श्वमार्जारमूषकादिभिरालीढादिकं त्वापद्यपि वर्ज्यमित्युक्तम् । यत्तु मण्डकवटकसक्तुपायसापूपकृसरादीनां स्नेहसिद्धानां च पर्युषितत्वदोषो नास्तीति वचनं तन्नित्यभोजनपरं न तु श्राद्धपरमिति शिष्टाः । यदग्निपक्वं सदेकात्रिद्विरात्राद्यन्तरितं तत्पर्युषितमुच्यते ।

---

१. स्मृतिसार में भी कहा है—'क्षीरे तु लवणं दत्त्वा उच्छिष्टेऽपि च यद् घृतम् । स्नानं रजकतीर्थेषु ताम्रे गव्यं सुरासमम् ॥' गौडनिबन्धसागरे—'नारिकेरोदकं कांस्ये ताम्रपात्रे स्थितं मधु । गव्यं च ताम्रपात्रस्थं मद्यतुल्यं घृतं विना ॥' इति ।

२. नारिकेल विहित है इसका मूलवचन पूर्व में दिखाया गया है। निषेध का वचन विश्वामित्र का यों है—'कपित्थं कुरुकं चैव नारिकेलं च पैनिकम् । जम्बूफलादि पक्वं च पिण्याकं तन्दुलीयकम् ॥' वर्जयेदिति शेषः । इसलिये इसका ग्राह्य और अग्राह्य में विकल्प है।

माधवीय में—मृत मक्षिका-क्रिमि-जन्तुओं और केश-रोम-नख आदि से दूषित अन्न सम्भव हो तो त्याग दे। असम्भव में तो केश आदि को सिद्ध अन्न से निकाल कर प्रोक्षण करके सोने का स्पर्श कराके खाय। कुत्ता, बिल्ली और चूहों आदि से चाटा हुआ तो आपत्काल में भी वर्जित है—ऐसा कहा है। जो कि—मण्डक, बड़ा, सतुआ, खीर, पूआ और खिचडी आदि जो तेल से सिद्ध हुए हों; उनमें बासी होने का दोष नहीं है ऐसा वचन है वह नित्य भोजनपरक है। श्राद्ध के लिये नहीं, ऐसा शिष्टजन का कथन है। जो अग्नि से पका हुआ एक दो रात का अन्तरित होता है उनको बासी कहते हैं।

अथ कदर्याद्यन्ननिषेधः

कदर्यादीनामन्नं नित्यभोजने श्राद्धकर्मणि च न ग्राह्यम्। ते च कदर्यश्चोरो नटो वीणोपजीवी वार्धुषिकोऽभिशस्तो गणिका चिकित्सकः क्रुद्धः पुंश्चली मत्तः क्रूरः शत्रुः पतितो दाम्भिकः पतिपुत्रहिता स्त्री स्वर्णकारः स्त्रीजितो ग्रामयाजको घातुकः कर्मारस्तन्तुवायः कृतघ्नो वस्त्रक्षालनोपजीवी दारोपजीवी सोमविक्रयी चित्रकर्मा गायक इत्यादयस्त्रैवर्णिका अपि अग्राह्यान्नाः।

कृपण आदि का अन्न नित्य भोजन और श्राद्ध कर्म में अग्राह्य है। वे कदर्य आदि चोर नट, वीणा से जीविका करने वाला, सूदखोर, अभिशस्त वेश्या, वैद्य क्रोधी, पुंश्चली. नशे में मत्त क्रूर शत्रु, पतित, दाम्भिक, पतिपुत्र से हीन स्त्री सोनार, सोनार स्त्री के वश में रहने वाला, गांव भर का यज्ञ कराने वाला, घात करने वाला, लोहार, कपड़ा बुनने वाला, कृतघ्न, कपड़ा कचार कर जीने वाला, स्त्री से जीविका चलाने वाला, सोमविक्रयी. चित्र बनाने वाला और गायक इत्यादि त्रैवर्णिक भी हों तो उनके अन्न अग्राह्य है

आत्मानं धर्मकृत्यं च पुत्रदारांश्च पीडयेत्।
लोभाद्यः पितरौ भृत्यान् स कदर्य इति स्मृतः॥
द्वावेवाश्रमिणौ भोज्यौ ब्रह्मचारी गृही तथा।
वानप्रस्थो यती लिङ्गी न भोज्यान्नाः प्रकीर्तिताः॥
षण्मासं यो द्विजो भुङ्क्ते शूद्रस्यान्नं विगर्हितम्।
स तु जीवन्भवेच्छूद्रो मृतः श्वा चाभिजायते॥

अन्यानि द्रव्याणि निबन्धेषु बहूनि निषिद्धानि तानि विहितोक्त्यर्थसिद्धत्वादप्रसिद्धत्वाच्च नोक्तानि।

कदर्य की परिभाषा—जो लोभ से पिता माता और भृत्यों को, अपने को, धर्म कृत्य एवं पुत्र स्त्री को पीड़ित करता है। दो ही आश्रम वालों को भोजन करना चाहिये—ब्रह्मचारी या गृहस्थ। वानप्रस्थ, यति लिंगी–इन तीनों को भोजन नहीं करावे। जो ब्राह्मण शूद्र के निन्दित अन्न को छ महीने तक खाता है वह जीता हुआ शूद्र और मरने पर कुत्ता होता है। अन्य बहुत से द्रव्य निबन्धों में निषिद्ध बतलाये हैं। उन्हें विहित वचन से अर्थसिद्ध और अप्रसिद्ध होने से नहीं कहा है।

अथ वर्ज्यावर्ज्यजलादिविचारः

दुर्गन्धि फेनिलं क्षारं पङ्किलं पल्वलोदकम्।
न भवेद्यत्र गोतृप्तिर्नक्तं यच्चाप्युपाहृतम्॥

न ग्राह्यं तज्जलं श्राद्धे यच्चाभोज्यनिपानजम् ।
स्नानमाचमनं दानं देवतापितृतर्पणम् ॥
शूद्रोदकैर्न कुर्वीत तथा मेघाद्विनिःसृतैः ।
नाहरेदुदकं रात्रौ तुलसीं गोमयं मृदम् ॥

[1]तुलसीबिल्वजाह्नवीजलभिन्नं पर्युषितं जलं पुष्पं च त्यजेत् ।

दौहित्रः [2]कुतपः कालश्छागः कृष्णाजिनं तथा ।
रौप्यं दर्भास्तिला गावः खड्गपात्रं पितृप्रियम् ॥

आरण्याः [3]कृष्णतिला मुख्याः । तदभावे ग्राम्या गौराः कृष्णाश्च । छागसान्निध्यं श्राद्धेऽतिप्रशस्तम् ।

दुर्गन्ध, फेनिल, खारा, कीचड़युक्त, छोटे जलाशय का जल जिसमें गाय की तृप्ति नहीं होती; रात में लाया गया जल, और जो अभोज्य के कुएं का जल है वह श्राद्ध में ग्राह्य नहीं है। शूद्र के जल तथा मेघ से निकले जल से स्नान, आचमन, दान, देवता और पितरों का तर्पण नहीं करे। रात में जल, तुलसी, गोबर और मिट्टी न लावे। तुलसी, बेल और गंगाजल से भिन्न बासी जल और फूल का त्याग करे। लड़की का लड़का, कुतप-मुहूर्त, काला बकरा, कृष्ण मृगचर्म तथा चाँदी, कुश, तिल, गाय और गेंडे का पात्र पितरों को प्रिय होता है। वन के काले तिल मुख्य हैं। उनके अभाव में ग्राम के सफेद और काले तिल ग्राह्य हैं। बकरे का सान्निध्य श्राद्ध में अत्यन्त प्रशस्त है।

कुक्कुटविड्वराहकाकमार्जारशूद्रषण्ढरजस्वलासान्निध्यमतिनिन्द्यम्। चाण्डालरजस्वलाखञ्जश्वित्रिन्यूनाङ्गातिरिक्ताङ्गादिभिर्वीक्षितमन्नमभोज्यम् । आपदि मृद्भस्महिरण्योदकस्पर्शाद्भोज्यम् । [4]पावमानीतरत्समन्दीमन्त्रैर्गायत्र्यादिभिश्च दर्भजलप्रोक्षणे दुष्टान्नशुद्धिः ।

---

१. नारदीये—'त्यजेत् पर्युषितं पुष्पं त्यजेत् पर्युषितं जलम्। न त्यजेज्जाह्नवीतोयं तुलसीबिल्वपङ्कजम् ॥' इति ।

२. मत्स्यपुराण में कहा है—'मध्याह्नः खड्गपात्रं च तथा नेपालकम्बलः । रौप्यं दर्भास्तिला गावो दौहित्रश्चाष्टमः स्मृतः ॥ पापं कुत्सितमित्याहुस्तस्य सन्तापकारिणः । अष्टावेते यतस्तस्मात् कुतपा इति विश्रुताः ॥' ब्रह्मपुराण में—'यतिस्त्रिदण्डः करुणा राजतं पात्रमेव च । दौहित्रं कुतपः कालश्छागः कृष्णाजिनं तथा ॥' शस्तानीति शेषः। अपरार्क में स्मृत्यन्तर के अनुसार ये दौहित्र हैं—'अपत्यं दुहितुश्चैव खड्गपात्रं तथैव च । घृतं च कपिलाया गोर्दौहित्रमिति कीर्तितम् ॥' ब्रह्माण्ड में—'अमावास्यागते सोमे या तु खादति गौस्तृणम् । तस्या गोर्यद्भवेत् क्षीरं तद्दौहित्रमुदाहृतम् ॥' स्मृतिसंग्रह में—'उच्छिष्टं शिवनिर्माल्यं वान्तं च मृतकर्पटम् । श्राद्धे सप्त पवित्राणि दौहित्रः कुतपस्तिलाः ॥' उच्छिष्ट = वत्सपीतशेषदुग्ध, शिवनिर्माल्य = गङ्गोदक, वान्त=मधु ।

३. आपस्तम्बः—'अटव्यां ये समुत्पन्ना अकृष्टफलितास्तथा । ते वै श्राद्धे पवित्राः स्युस्तिलास्तेन तिलास्तिलाः॥' ब्रह्मपुराणे—'गौराः कृष्णास्तथाऽरण्यास्तथैव त्रिविधास्तिलाः' । आरण्य तिल के अभाव में ग्राम्य तिल ग्राह्य है ।

४. वायुपुराणे—'अन्नं पदयेयुरेते तु यदि वै हव्यकव्ययोः । उत्सृष्टव्यं प्रधानार्थं संस्कारस्त्वा-

पादुकोपानहौ छत्रं रक्तचित्राम्बरं तथा ।
रक्तपुष्पं च मार्जारं श्राद्धभूमौ विवर्जयेत् ॥

[१]'घण्टानादोऽश्वधत्तूरशङ्खशुक्तिसान्निध्यं च वर्ज्यम् ।

मुर्गा, विड्वराह, कौवा, बिल्ली, शूद्र, नपुंसक और रजस्वला का सान्निध्य अत्यन्त निन्द्य है। चाण्डाल, रजस्वला, लंगड़ा, सफेद कोढ़वाले, न्यूनांग और अतिरिक्त अंगादि वाले से देखा हुआ अन्न अभोज्य है। आपत्ति में मिट्टी-भस्म-सुवर्ण-जल के स्पर्श से भोजनीय होता है। पावमानी तरत्समन्दी मन्त्रों और गायत्र्यादि मन्त्रों से कुशजल द्वारा प्रोक्षण करके दूषित अन्न की शुद्धि होती है। श्राद्ध भूमि में खड़ाऊं, जूता, छाता, लाल-चितकबरा-वस्त्र, लाल फूल और बिल्ली का त्याग करे। घंटा का शब्द, घोड़ा, धतूर, शंख और सितुही का सान्निध्य वर्जित है।

अथ श्राद्धदिनकृत्यं पाकविचारश्च

[२]गोमयादिभिर्भूमिभाण्डशुद्धिः । देवताब्रह्मचारियतिशिशूनां पिण्डदानपर्यन्तमन्नं देयम् । अतिशिशवस्तु गृहान्तरे भोजनीयाः । तिलानवकिरेत्तत्र सर्वतो बन्धयेदजान् । पाकः श्राद्धकर्त्रा स्वयमेव कार्यः ।

तदभावे शुद्धपत्न्या तदभावे तु बान्धवैः ।
सगोत्रैर्वा सपिण्डैर्वा मित्रैर्वा सुगुणान्वितैः ॥
पुंश्चलीं च तथा वन्ध्यां विधवां चान्यगोत्रजाम् ।
वर्जयेच्छ्राद्धपाकार्थममातृपितृवंशजाम् ॥
न पाकं कारयेत्पुत्रीं गर्भिणीं चापि दुर्मुखीम् ।

गोबर आदि से भूमि और भाण्ड की शुद्धि करे। देवता, ब्रह्मचारी, यति और बच्चों को पिण्डदान तक अन्न नहीं दे। बहुत छोटे बच्चों को दूसरे के घर में भोजन करावे। श्राद्ध-भूमि में तिल बिखेरे। चारो ओर बकरों को बांधे। श्राद्धकर्ता पाक अपने ही बनावे। स्वयं न बना सके तो शुद्ध

पदि स्मृतः ॥' जमदग्निः—'शुद्धवत्योऽथ कूष्माण्डयः पावमान्यस्तरत्समाः । पूतेन वारिणा दर्भैरन्नदोषमपानुदेत् ॥' इति ।

१. निर्णयदीपे—'घण्टानिनादो हयसन्निधानं शम्बूकशङ्खौ कदलीदलं च । उन्मत्तजात्यर्कहयारिजानि श्राद्धस्य वैगुण्यकराण्यमूनि ॥' हयारिजं=महिषीक्षीरादिकम् ।

२. दन्तधावन को छोड़कर प्रातः सन्ध्यावन्दनादि नित्यकर्म समाप्त करके श्राद्धभूमि आदि की शुद्धि करे, जैसा उशना ने कहा है—'गोमयोदकैर्भूमिभाजनशौचं कुर्यात्' । ब्रह्मपुराणे—'श्राद्धे भूमिः पञ्चगव्यैर्लिप्ता शोध्या तथोल्मुकैः । गौरमृत्तिकया छन्ना प्रकीर्णा तिलसर्षपैः ॥' भूमि की शुद्धि तथा तिल-सर्षप-विकिरण और पाक-पात्र का यथोक्त प्रक्षालन के बाद पाकारम्भ करे, जैसा देवल ने कहा है—'तथैव यन्त्रितो दाता प्रातः स्नात्वा सहाम्बरः । आरभेत नवैः पात्रैरन्वारम्भं च बान्धवैः ॥'—

स्वयं पाक करने में असमर्थ हो तो पत्नी से पाक करावे। पत्नी के पाककर्तृत्व का उदाहरण पद्म और लिङ्गपुराण में यों है—'ततस्तानि पपाचाशु सीता जनकनन्दिनी ।' चमत्कारखण्डे—'ततश्च श्रपयामास तदर्थं जनकोद्भवा । रामादेशात्स्वयं साध्वी विनयेन समन्विता ॥' व्यासः—'गृहिणी चैव सुस्नाता पाकं कुर्यात्प्रयत्नतः । निष्पन्नेषु च पाकेषु पुनः स्नानं समाचरेत् ॥' इति ।

पत्नी से, उसके अभाव में बान्धव से, अथवा सगोत्र या सपिण्डों से, या गुणान्वित मित्रों से बनवावे। श्राद्ध-पाक के लिये पुंश्चली, वन्ध्या, विधवा, अन्य गोत्र की और माता-पिता से भिन्न वंश वाली स्त्री का वर्जन करे। पुत्री से, गर्भिणी और दुर्मुखी से पाक न बनवावे।

अथ पाकपात्रादिविचारः

पाकभाण्डानि सौवर्णरौप्यताम्रोद्भवानि च ॥
कांस्यानि [1]मृन्मयं तूक्तं नव्यमेव मनीषिभिः।
पैत्तलं रङ्गजातं च विहितं नो न निन्दितम् ॥
न कदाचित्पचेदन्नमयस्थालीषु पैतृकम्।

फलशाकादिच्छेदनार्थंभिन्नानामायसानां शस्त्राणां भाण्डानां च दर्शनमपि पाकादिस्थाने निषिद्धम्[2]। पक्वान्नस्थापनार्थं तु शस्यन्ते दारुजान्यपि[3]।

पाक पात्र—सोना-चांदी-तामा-कांसा और मृन्मय का नवीन ही पण्डितों ने कहा है। पीतल रांगे का न विहित हैं न निन्दित। लोहे के वर्तन में श्राद्धान्न कभी नहीं पकावे। फल-शाक आदि काटने के शस्त्र से भिन्न लोहे के शस्त्र और पात्र का दर्शन भी पाक आदि स्थानों में निषिद्ध है। पक्वान्न रखने के लिये लकड़ी के पात्र भी प्रशस्त हैं।

गृह्याग्नौ तु पचेदन्नं श्राद्धीयं लौकिकेपि वा ॥
यस्मिन्नग्नौ पचेदन्नं तस्मिन् होमो विधीयते।

तत्र गृह्याग्नौ पाके विशेषः—प्रातर्होमं कृत्वा तदेकदेशं महानसे कृत्वा पाकं कुर्यात्। पाकान्ते पाचकाग्न्येकदेशं गृह्याग्नौ संयोज्य गृह्येऽग्नौकरणवैश्वदेवादि कार्यम्[4]। अत्रैवं व्यवस्था—कात्यायनादीनां गृह्याग्नौ पाकः। आश्वलायनानां तु नैत्यके पचनाग्नौ। अग्नौकरणं त्वाश्वलायनानां व्यतिषङ्गेण श्राद्धे गृह्याग्निपक्वचरुणा गृह्ये एव। व्यतिषङ्गाभावे पाणिहोमः। अन्यशाखीयस्य गृह्याग्नावग्नौकरणम्। विधुरस्योच्छिन्नाग्निकस्य च पृष्टोदिविविधानाग्निसम्पादनम्। तच्च पूर्वार्धे उक्तम्।

गृह्याग्नि में श्राद्धीय अन्न पकावे या लौकिकाग्नि में। जिस अग्निमें अन्न पकावे उसमें होम करे। गृह्याग्नि में पाक करने पर विशेष कहा है—प्रातः होम करके उस अग्निका एक अंश रसोइयां घर में ले जाकर पाक बनावे। पाक के अन्त में पाचकाग्नि का एक भाग लेकर गृहाग्नि में मिलाकर गृह्य

---

१. वायुपुराण में तैजस-पात्र के अभाव में मृन्मय पात्र का निर्देश किया है—'तैजसानामभावे तु पिठरे मृन्मयेऽपि वा। नवे शुचौ प्रकुर्वीत पाकं पित्रर्थमादरात् ॥' इति।

२. वायुपुराण में—'न कदाचित्पचेदन्नमयःस्थालीषु पैतृकम्। अयसो दर्शनादेव पितरोऽपि द्रवन्ति हि ॥ कालायसं विशेषेण निन्दति पितृकर्मणि। फलानां चैव शाकानां छेदनार्थानि यानि तु ॥ महानसेऽपि शस्त्राणि तेषामेव हि सन्निधिः। इष्यते नेतरस्यात्र शस्त्रमात्रस्य दर्शनम् ॥ श्राद्धदेशे तु विदुषा पितॄणां प्रीतिमिच्छता। महानसेऽपि युक्तानामपि कार्यं न दर्शनम् ॥' इति।

३. आदित्यपुराण में इसका उत्तरार्द्ध यों है—'दर्व्यादीन्यपि कार्याणि यज्ञियैरपि दारुभिः।' इति।

४. कर्मप्रदीपे—'प्रातर्होमं तु निर्वर्त्य समुद्धृत्य हुताशनात्। शेषं महानसे कृत्वा तत्र पाकं समाचरेत् ॥ पाकान्तेऽग्निं तमाहृत्य गृह्याग्नौ तु पुनः क्षिपेत्। ततोऽस्मिन् वैश्वदेवादि कर्म कुर्यादतन्द्रितः ॥' इति।

अग्नि में अग्नौकरण और वैश्वदेव आदि करे। इसमें इस प्रकार व्यवस्था है—कात्यायन आदि वालों का गृह्याग्नि में और आश्वलायनों का तो नित्य पकाने वाली अग्नि में पाक है। अग्नौकरण तो आश्वलायनों का व्यतिषंग (अन्योन्यसम्बन्ध) से श्राद्ध में गृह्याग्नि में पकाये हुये चरु से गृह्य में ही करे। व्यतिषंग के अभावमें ब्राह्मणोंके हाथ में होम करे। दूसरी शाखा वालों का अग्नौकरण गृह्याग्नि में होता है। विधुर और उच्छिन्नाग्निक का पृष्ठोदिविविधान आदि से अग्नि का सम्पादन होता है, उसे पूर्वार्द्ध में कहा है।

अथ भोजनपात्राणि

भोजनपात्राणि तु हेमरौप्यकांस्यजानि वा पलाशकमलकदलीमधूकपत्रनिमितानि वा।

भोजन-पात्र—तो सोने-चांदी-कांसे के अथवा पलाश-कमल-केला-महुए के पत्तों से बने हुये हों।

अथ श्राद्धकर्तुः श्राद्धभोक्तुश्च धर्माः

अथ निमन्त्रणादिश्राद्धाहे भुक्तान्नपरिणामपर्यन्तं कर्तुर्विप्राणां च नियमाः—स्त्रीसङ्गपुनर्भोजनानृतभाषणाध्यापनद्यूतायासभारोद्वहनहिंसादानप्रतिग्रहचौर्याध्वगमनदिवास्वापकलहादिवर्जनं कर्तृभोक्त्रुभयधर्माः। स्त्रीसङ्गश्च श्राद्धदिने तत्पूर्वदिने च ऋतुकालेऽपि वर्ज्यः। 'ताम्बूलक्षुरकर्माभ्यङ्गदन्तधावनवर्जनं कर्तृधर्माः। भोक्तृविप्राणां तैलाभ्यङ्गे उद्वर्तने क्षौरे च विकल्पः[2]। कर्तुर्भोक्तुश्च मुख्यवारुणस्नानेनैवाधिकारो न तु गौणस्नानेन।

अब निमन्त्रणादि से लेकर श्राद्ध दिन में खाया हुआ अन्न पच जाने तक कर्ता और ब्राह्मणों का नियम कहता हूँ—स्त्रीप्रसंग, दुबारा भोजन, असत्य भाषण, पढ़ाना, जुआ खेलना, श्रम करना, बोझा ढोना, हिंसा, दान, प्रतिग्रह, चोरी, रास्ता चलना, दिन में सोना और झगड़ा आदि का वर्जन कर्ता और भोक्ता दोनों का धर्म है। स्त्रीप्रसंग श्राद्ध के दिन और श्राद्ध के पूर्व दिन भी ऋतुकाल में वर्जित है। ताम्बूल, हजामत, तैल लगाकर स्नान और दंतधावन का त्याग, ये कर्ता के धर्म हैं। खाने वाले ब्राह्मणों का तैलाभ्यंग, उबटन और क्षौर में विकल्प है। कर्ता और भोक्ता का मुख्य वारुणस्नान से ही (श्राद्ध करने और भोजन करने का) अधिकार है, न कि गौण-स्नान से।

श्राद्धकृच्छुक्लवासाः स्यान्मौनी च विजितेन्द्रियः।
उपवासं परान्नं च औषधं च विवर्जयेत्॥

अवस्त्रत्वं मलवद्वस्त्रत्वं कौपीनवस्त्रं, कच्छहीनत्वमनुत्तरीयत्वं काषायवस्त्रत्वमार्द्रवस्त्रत्वं द्विगुणवस्त्रत्वं रक्तवस्त्रत्वं दग्धवस्त्रत्वं स्यूतवस्त्रत्वमित्येकादशविधन-

---

१. हेमाद्रि में जाबाल की उक्ति है—'ताम्बूलं दन्तकाष्ठं च स्नेहस्नानमभोजनम्। रत्यौषधपरान्नानि श्राद्धकर्ता विवर्जयेत्॥' अभ्यङ्ग के सम्बन्ध में कात्यायन ने कहा है—'तैलमुद्वर्तने देयं ब्राह्मणेभ्यः प्रयत्नतः। तैरभ्यङ्गश्च कर्तव्यो वर्ज्यं कालं न चिन्तयेत्॥' इति।

२. तैलोद्वर्तनादि पूर्वोक्त कात्यायन के वचन से विहित और प्रचेता के वचन से निषिद्ध होने से विकल्प है। प्रचेता का वचन है—'तैलमुद्वर्तनं स्नानं दद्यात् पूर्वाह्ण एव तु। श्राद्धभुग्भ्यो नखश्मश्रुच्छेदनं तु न कारयेत्॥' इति।

ग्नत्वं कर्तृभोक्तृभ्यां वर्ज्यम्[1]। कर्तुर्ललाटे ऊर्ध्वपुण्ड्रादेर्विकल्पः[2]। भोक्तुस्तु भवत्येव। चन्दनतिलकस्तु पिण्डदानात्प्राक्[3] कर्तुर्वर्ज्यः। भोक्तुस्तु भोजनकालात्प्राक् वर्ज्यः। सदर्भहस्तेन[4] तिलको न कार्यः। करणे आचमनं दर्भत्यागश्च।

श्राद्धकर्ता श्वेतवस्त्रधारी, मौनी और जितेन्द्रिय हो। श्राद्ध के दिन उपवास, दूसरे का अन्न और औषधि का त्याग करे। विना वस्त्र, मैला वस्त्र, कौपीन, कच्छहीन, उत्तरीय का न रहना, काषाय वस्त्र, गीला वस्त्र, द्विगुण वस्त्र, लाल वस्त्र, जला वस्त्र, और सिला हुआ वस्त्र धारण करना, ये ग्यारह प्रकार के नग्नत्व कर्ता और भोक्ता दोनों के वर्जनीय हैं। कर्ता के ललाट में उर्ध्वपुण्ड्र आदि का विकल्प है। भोक्ता का तो होता ही है। चन्दन का तिलक तो पिण्ड-दान से पहिले कर्ता का वर्जित है। भोक्ता का तो भोजन काल के पहिले त्याज्य है। कुश-हस्त से तिलक नहीं करना चाहिये। करने पर आचमन और कुश का त्याग करे।

अथ निमन्त्रितविप्रत्यागे विचारः

कर्त्रा निमन्त्रितविप्रत्यागो[5] न कार्यः। प्रमादेन त्यागे यत्नेन विप्रः प्रसादनीयः। बुद्धिपूर्वकत्यागे यतिचान्द्रायणं प्रायश्चित्तम्।

श्राद्धकर्ता निमन्त्रित ब्राह्मण का त्याग नहीं करे। प्रमाद से त्याग करने पर यत्नपूर्वक ब्राह्मण को प्रसन्न करे। जानबूझ कर त्याग करने पर यतिचान्द्रायण प्रायश्चित्त करे।

---

१. नग्नत्वसूचक वस्त्र का निर्देश भृगु ने यों किया है—'नग्नः स्यान्मलवद्वासा नग्नः कौपीनकेवलः। द्विकच्छोऽनुत्तरीयश्च अकच्छोऽवस्त्र एव च॥ नग्नः काषायवासाः स्यान्नग्नश्चार्द्रपटस्तथा। नग्नो द्विगुणवस्त्रः स्यान्नग्नो रक्तपटः स्मृतः॥ नग्नस्तु स्निग्धवस्त्रः स्यान्नग्नः स्यूतपटस्तथा॥' इस लिये श्राद्धकर्ता और श्राद्धभोक्ता को ऐसे वस्त्र का त्याग करना चाहिये।

२. ऊर्ध्वपुण्ड्र करने का विकल्प इसलिये है कि कुछ वचन से उसका निषेध है और कुछ से विधान। जैसे ऊर्ध्वपुण्ड्र करने का निर्देश बृहन्नारदीय में यों है—'यज्ञो दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृकर्म च। वृथा भवति विप्रेन्द्रा उर्ध्वपुण्ड्रं विना कृतम्॥' बृहत्पराशर ने भी कहा है—'ऊर्ध्वं च तिलकं कुर्याद् दैवे पित्र्ये च कर्मणि'। निषेध का वचन विश्वप्रकाश में है—'ऊर्ध्वपुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रं वा चन्द्राकारमथापि वा। श्राद्धकर्ता न कुर्वीत यावत्पिण्डान्न निर्वपेत्॥' संग्रहे—'ऊर्ध्वपुण्ड्रं द्विजातीनामग्निहोत्रसमो विधिः। श्राद्धकाले तु सम्प्राप्ते कर्ता भोक्ता च तत्त्यजेत्॥' व्यास ने विकल्प का स्पष्ट प्रतिपादन किया है—'वर्जयेत्तिलकं भाले श्राद्धकाले च सर्वदा। तिर्यग्वाप्यूर्ध्वपुण्ड्रं वा धारयेत्तु प्रयत्नतः॥' इति।

३. आश्वलायन ने कहा है—'प्राक् पिण्डदानाद् गन्धाद्यैर्नालंकुर्यात् स्वविग्रहम्।' देवल का—'ललाटे पुण्ड्रकं दृष्ट्वा स्कन्धे माल्यं तथैव च। निराशाः पितरो यान्ति दृष्ट्वा च वृषलीपतिम्॥' यह वचन भी गन्ध से त्रिपुण्ड नहीं करने के विषय में ही है।

४. पृथ्वीचन्द्रोदय में ब्रह्मपुराण का वचन है—'सदर्भेण तु हस्तेन यः कुर्यात्तिलकं बुधः। आचम्य स विशुद्ध्येत दर्भत्यागेन चैव हि॥' इति।

५. अपरार्क में यम का वचन है—'केतनं कारयित्वा तु योऽतिपातयति द्विजम्। ब्रह्महत्यामवाप्नोति शूद्रयोनौ च जायते॥ आमन्त्र्य ब्राह्मणं यस्तु यथान्यायं न पूजयेत्। अतिकृच्छ्रासु घोरासु तिर्यग्योनिषु जायते॥' प्रमाद से त्याग करने पर हारीत की उक्ति है—'प्रमादाद्विस्मृतं ज्ञात्वा प्रसाद्यैनं प्रयत्नतः। तर्पयित्वा यथान्यायं सर्वं तत्फलमश्नुते॥' प्रमादाभाव में नारायण का वचन है—'एतस्मिन्नेनसि प्राप्ते ब्राह्मणे नियतः शुचिः। यतिचान्द्रायणं कृत्वा तस्मात्पापात्प्रमुच्यते॥' इति।

आमन्त्रितस्तु यो विप्रो भोक्तुमन्यत्र गच्छति ।
नरकाणां शतं गत्वा चाण्डालेष्वभिजायते ॥
आमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे विलम्बं कुरुते द्विजः ।
देवद्रोही पितृद्रोही पच्यते नरकेषु सः ॥

स्त्रीसङ्गः[1] पुनर्भोजनं च श्राद्धपूर्वरात्रावपि कर्तृभोक्तृभ्यां वर्ज्यम् ।

दशकृत्वः पिबेदापो गायत्र्या श्राद्धभुग् द्विजः ।
सायं संध्यामुपासीत जपेच्च जुहुयादपि ॥
सूतके च प्रवासे च अशक्तौ श्राद्धभोजने ।
औपासनादिकं होमं न कुर्यात् किंतु कारयेत् ॥
निमन्त्रितस्तु न श्राद्धे कुर्याद्भार्यादिताडनम् ।

भोजन के लिये जो आमन्त्रित ब्राह्मण दूसरे के यहां भोजन के लिये चला जाता है वह सैकड़ों नरकों में जाकर चाण्डालयोनि में उत्पन्न होता है। जो आमन्त्रित ब्राह्मण श्राद्ध में विलम्ब करता है वह देवद्रोही पितृद्रोही नरकों में पकाया जाता है। स्त्रीप्रसंग और पुनर्भोजन श्राद्ध के पूर्व रात्रि में कर्ता और भोक्ता त्याग दे। श्राद्धभोजी ब्राह्मण गायत्री-मन्त्र से दस बार जल पिये। सायं सन्ध्योपासन जप और होम करे। सूतक में, परदेश में, श्राद्धभोजन में असमर्थ होने पर औपासन आदि होम नहीं करे, किन्तु दूसरे से करा दे। श्राद्ध में निमन्त्रित ब्राह्मण भार्या आदि का ताड़न नहीं करे।

अपराह्णाख्यमुहूर्तत्रये वनस्पतिच्छेदं दधिमन्थनं सर्वैर्न कार्यम् । यदा कर्तुरशक्त्या तत्पुत्रशिष्यादिः[2] प्रतिनिधिः श्राद्धं करोति तदा यजमानप्रतिनिधिभ्यामुभाभ्यां पूर्वोक्ताः सर्वे कर्तृनियमाः कार्याः ।

मुक्तकच्छा तु या नारी मुक्तकेशी तथैव च ।
हसते वदतेऽत्यन्तं निराशाः पितरो गताः ॥
सवर्णं प्रेषयेदाप्तं द्विजानां तु निमन्त्रणे ।
अभोज्यं ब्राह्मणस्यान्नं वृषलेन निमन्त्रितम् ॥
तथैव वृषलस्यान्नं ब्राह्मणेन निमन्त्रितम् । वृषलः = शूद्रः ।

---

१. आश्वलायनः—'श्राद्धं करिष्यन् कृत्वा वा भुक्त्वा वाऽपि निमन्त्रितः । उपोष्य च तथा भुक्त्वा नोपेयाच्च ऋतावपि ॥ भोक्ष्यन् करिष्यन् श्वः श्राद्धं पूर्वरात्रौ प्रयत्नतः । व्यवायं भोजनं चापि ऋतावपि विवर्जयेत् ॥' विज्ञानेश्वर ने श्राद्ध में ऋतुकाल में पत्नीगमन का दोषाभाव कहा है, उसे अगतिकगति में जानना चाहिये। बृहस्पति ने विशेष कहा है—'द्विनिशं ब्रह्मचारी स्याच्छ्राद्धकृद् ब्राह्मणैः सह । अन्यथा वर्तमानौ तु स्यातां निरयगामिनौ ॥ पुनर्भोजनमध्वानं भारमायासमैथुनम् । श्राद्धकृच्छ्राद्धभुक् चैव सर्वमेतद् विवर्जयेत् ॥ स्वाध्यायं कलहं चैव दिवास्वापं तथैव च ।' इति ।

२. हेमाद्रि में वाराहकी उक्ति है—'न शक्नोति स्वयं कर्तुं यदा ह्यनवकाशतः । श्राद्धं शिष्येण पुत्रेण तदाऽन्येनापि कारयेत् ॥ नियमानाचरेत् सोऽपि नियतांश्च वसुन्धरे । यजमानोऽपि तान् सर्वानाचरेत् सुसमाहितः ॥' आदिपद से ब्राह्मण का ग्रहण है, जैसा स्कन्दपुराण में कहा है—'राजकार्ये नियुक्तस्य बन्धनिग्रहवर्तिनः । व्यसनेषु च सर्वेषु श्राद्धं विप्रेण कारयेत् ॥' इति ।

अपराह्न के तीन मुहूर्त में वनस्पति का छेदन तथा दधिमन्थन सभी को नहीं करना चाहिये। जब जपकर्ता श्राद्ध करने में अशक्त हो तो उसके पुत्र-शिष्य आदि प्रतिनिधि होकर श्राद्ध करता है तब यजमान और प्रतिनिधि दोनों को कर्ता के पूर्वोक्त सभी नियम पालन करना चाहिये। मुक्तकक्षा नारी तथा मुक्तकेशी स्त्री हंसती और बोलती है तब पितृगण निराश होकर चले जाते हैं। ब्राह्मणों को निमन्त्रण देने के लिये आप्त सवर्ण ब्राह्मण को भेजे। शूद्र के द्वारा निमन्त्रित ब्राह्मण का अन्न भोज्य नहीं होता। उसी प्रकार ब्राह्मण के द्वारा निमन्त्रित शूद्र का अन्न भोजनयोग्य नहीं होता। यहां वृषल का शूद्र अर्थ है।

अथ श्राद्धे ब्राह्मणसंख्या

वैश्वदेवे समाः पित्र्ये विषमाः। तेन द्वौ वैश्वदेवे त्रयः पितृपार्वणे इति पञ्च-विप्राः, अथवा चत्वारो दैवे पार्वणे तु पित्रादीनामेकैकस्य त्रयस्त्रय इति त्रयोद-शविप्राः। यद्वा पित्रादेरेकैकस्य पञ्चेत्येकोनविंशतिः। किं वा एकैकस्य सप्तेति पञ्च-विंशतिः। एवं दर्शादौ पार्वणाधिक्ये विप्राधिक्यमूह्यम्। तथा च वैश्वदेवे द्वौ चतुरो वोपवेश्य पित्रादिष्वेकैकस्य स्थाने एकं त्रीन् पञ्च सप्त नव वोपवेश-येदिति निष्कर्षः।

वैश्वदेव में सम और पित्र्य में विषम ब्राह्मण होते हैं। इसलिये वैश्वदेव में दो और पितृपार्वण में तीन अर्थात् पांच ब्राह्मण, अथवा विश्वेदेव में चार और पिता आदि एक-एक के लिये तीन-तीन ब्राह्मण, इस प्रकार तेरह ब्राह्मण होते हैं। अथवा पिता आदि एक-एक के लिये पांच-पांच, इस प्रकार उन्नीस ब्राह्मण होते हैं। या एक-एक के लिये सात-सात रहें तो पच्चीस ब्राह्मण होते हैं। इसी प्रकार दर्श आदि श्राद्ध में पार्वण के आधिक्य से ब्राह्मणों के आधिक्य की कल्पना कर ले। इससे यह निष्कर्ष निकला कि वैश्वदेव में दो या चार को बैठावे और पिता आदि एक-एक के स्थान में एक-तीन-पांच-सात अथवा नव बैठावे।

'सत्क्रियां देशकालौ च द्रव्यब्राह्मणसंपदम्। शौचं च विस्तरो हन्ति' इति पक्षे अशक्तौ वा दैवे एकः पितृपार्वणे चैक इति द्वौ विप्रौ। तदुक्तं श्रीभागवते—

द्वौ दैवे पितृकार्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा।
भोजयेत्सुसमृद्धोऽपि श्राद्धे कुर्यान्न विस्तरम्[1]॥
देशकालोचितश्रद्धाद्रव्यपात्रार्हणानि च।
सम्यग्भवन्ति नैतानि विस्तरात्स्वजनार्पणात्॥ इति।

एतेन द्वौ दैवे एकः पित्र्ये इति विप्रत्रयपक्षो निर्मूलो वेदितव्यः।

द्वौ दैवेऽथर्वणौ विप्रौ प्राङ्मुखावुपवेशयेत्।
पित्र्ये तूदङ्मुखांस्त्रींश्च ऋग्यजुःसामवेदिनः॥

---

१. मनु ने भी कहा है—'द्वौ दैवे पितृकार्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा। भोजयेत् सुसमृद्धोऽपि न प्रसज्जेत विस्तरे॥ सत्क्रियां देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसम्पदः। पञ्चैतान् विस्तरो हन्ति तस्मान्नेहेत विस्तरम्॥' इति।

सत्कार, देश, काल, द्रव्य, ब्राह्मणसम्पत्ति, शौच—ये विस्तार करने से नष्ट होते हैं। इस पक्ष में या असमर्थावस्थामें दैव में एक और पितृपार्वण में एक, इस प्रकार दो ब्राह्मण बैठावे। इसे श्रीमद्भागवत में लिखा है कि दैव में दो, पितृकार्य में तीन, अथवा दोनों जगह एक एक ब्राह्मण समृद्ध भी हो तो खिलावें, श्राद्ध में विस्तार न करे। देश, काल, उचित श्रद्धा, द्रव्य, पात्रोंकी पूजा—ये सब विस्तार से तथा स्वजनों के अधीन करने से अच्छी तरह नहीं होते। इससे दैव में दो, पित्र्य में एक, यह विप्रत्रय-पक्ष निर्मूल जानना चाहिये। दैव में दो अथर्ववेत्ता ब्राह्मणों को पूर्वमुख बैठावे और पित्र्य में तो उत्तराभिमुख तीन ऋग्वेदी-यजुर्वेदी-सामवेदियों को बैठावे।

अत्यशक्तौ[1] पार्वणद्वये एको विप्रः। यदैक एव विप्रस्तदा विश्वेदेव-स्थाने शिवलिङ्गं शालग्रामं संस्थाप्य सर्वं श्राद्धं समाचरेत्। देवान्नं तत्क्षिपेदग्नौ दद्याद्वा ब्रह्मचारिणे। स्थानत्रये एको विप्र इति पक्षः सपिण्डीकरणादन्यत्र[2]। सपिण्डीकरणे तु पार्वणे त्रय एव विप्राः। वृद्धिश्राद्धे तु दैवे द्वौ प्रतिपार्वणं द्वावेवमष्टौ निकृष्टपक्षे। संपदि दैवे चत्वारः प्रतिपार्वणं चत्वार इति षोडशेत्येवं दैवे पित्र्ये च समा विप्रा इति विशेषः।

सर्वथा ब्राह्मणालाभे कृत्वा दर्भमयान्बटून्[3]।
प्रेषानुप्रेषसंयुक्तं सर्वं श्राद्धं प्रकल्पयेत्॥

अत्यन्त अशक्त होने पर दो पार्वण में एक ब्राह्मण को निमन्त्रित करे। जब एक ही ब्राह्मण है तो विश्वेदेवके स्थान में शिवलिंग या शालग्राम को स्थापित कर सब श्राद्ध करे। देवान्न को अग्नि में छोड़ दे या ब्रह्मचारी को दे दे। तीन के स्थान में एक ब्राह्मण वाला पक्ष सपिण्डीकरण श्राद्ध से भिन्न का है। सपिण्डीकरण में तो पार्वण में तीन ही ब्राह्मण होने चाहिये। वृद्धि-श्राद्ध में तो दैव में दो ब्राह्मण और प्रतिपार्वण में दो-दो, इस तरह आठ हुए यह निकृष्ट पक्ष में है। सम्पत्ति हो तो दैव में चार और प्रतिपार्वण में चार, इस प्रकार सोलह होते हैं अर्थात् दैव-पितृ-कर्म में सम ब्राह्मण होते हैं, यह विशेष है। सर्वथा ब्राह्मण के न मिलने पर कुशमय बटुओं को बनाकर प्रेष अनुप्रेष से युक्त सभी श्राद्धों की कल्पना कर ले।

---

१. हेमाद्रि में देवल की उक्ति है—'एकेनापि हि विप्रेण षट्पिण्डं श्राद्धमाचरेत्। षडर्घ्यान् दापयेत्तत्र षड्भ्यो दद्यात्तथा हविः॥' गोभिलः—'यद्येकं भोजयेच्छ्राद्धे छन्दोगं तत्र भोजयेत्। ऋचो यजूंषि सामानि त्रितयं तत्र विद्यते॥' इति।

२. आश्वलायन का कथन है—'न त्वेवैकं सर्वेषां काममनाद्ये' इसका अर्थ नारायणवृत्ति में यों हैं—'आद्यं सपिण्डीकरणं तद्वर्ज्येषु श्राद्धेषु कामं त्रयाणामेकं भोजयेत्, सपिण्डीकरणे तु नियतं त्रिभिर्भवितव्यम्'। कारिका में भी कहा है—'दैवे पित्र्येऽथ वैकैकं सपिण्डीकरणं विना।' इति।

३. मनुष्यप्रतिकृतिः कुशसमूहो वटुः। यहाँ कुश के अग्रभाग से मुख की कल्पना करके दैवश्राद्ध में पूर्वमुख और पितृश्राद्ध में उत्तरमुख करके रखना चाहिये। कुशवटु में हाथ पैर आदि अवयवों का होना सम्भव नहीं है, फिर भी कर्मकाल में स्मरण के लिये उल्लेख है। प्रेषानुप्रेषसंयुक्त श्राद्धेतिकर्तव्यताकाण्ड स्वयमेव करे। हेमाद्रि में सत्यव्रत ने भी कहा है—'निधाय दर्भनिचयमासनेषु समाहितः। प्रेषानुप्रेषसंयुक्तं सर्वं श्राद्धं प्रकल्पयेत्॥' दर्भवटु में दर्भ की संख्या निश्चित नहीं है, जैसा कात्यायन ने कहा है—'यज्ञवास्तुनि मुष्टौ च स्तम्भे दर्भवटौ तथा। दर्भसंख्या न विहिता विष्टरास्तरणेषु च॥' इति।

अत्र विप्रानुकूल्यरूपदृष्टप्रयोजनाभावेऽप्यदृष्टार्थं दक्षिणा देया। एवं यतेः श्राद्धोपवेशनेऽपि। सा च दक्षिणा कालान्तरेऽन्यस्मै[1] प्रतिपादनीया।

अथवाभ्यर्चितं लिंगं शालग्राममथापि वा।
संस्थाप्य देवपित्रर्थं पीठे श्राद्धं चरेन्नरः॥
पितरस्तस्य तिष्ठन्ति कल्पकोटिशतं दिवि।
निमन्त्रणं तु विप्राणां पूर्वेद्युः सद्य एव वा॥
कुर्याद्विप्रांश्च नियमाञ्छ्रावयेत् पैतृकान् बुधः।
अक्रोधनैः शौचपरैः सततं ब्रह्मचारिभिः॥
भवितव्यं भवद्भिश्च मया च श्राद्धकारिणा। इति।

इसमें ब्राह्मण का आनुकूल्यरूप दृष्टप्रयोजन के न होने पर भी अदृष्ट के लिये दक्षिणा देनी चाहिये। एवं यति को श्राद्ध में बैठाने पर भी दक्षिणा दे और वह दक्षिणा दूसरे समय में दूसरे को दे दे। अथवा पूजित-लिंग या शालग्राम को स्थापित कर देव-पितृ के लिये पीठ पर श्राद्ध करे। उनके पितर इस श्राद्ध से कल्पकोटिपर्यन्त स्वर्ग में रहते हैं। ब्राह्मणों का निमन्त्रण तो पहिले दिन या तुरन्त करे और ब्राह्मणों को पैतृक-श्राद्ध के नियमों को सुना दे—क्रोधरहित, शौचयुक्त और निरन्तर ब्रह्मचारी, आप लोगों को और श्राद्धकर्ता मुझे भी होना चाहिये।

अथ सामान्यतः श्राद्धपरिभाषा

निपात्य दक्षिणं जानुं देवान् परिचरेत्सदा।
पितॄणां परिचर्या तु वामजानुनिपातनात्॥
प्रदक्षिणं तु देवानां पितॄणामप्रदक्षिणम्।
पितॄणां द्विगुणा भुग्ना दर्भा दैवे ऋजुत्वगाः॥
दैवे तूदङ्मुखः कर्त्ता पित्र्ये स्याद्दक्षिणामुखः।

संकल्पे[2] क्षणदाने पाद्ये आसने आवाहनेऽर्घ्यदाने गन्धाद्याच्छादनान्तपञ्चोपचारेऽन्नदाने पिण्डदानेऽञ्जनाभ्यञ्जनयोरक्षय्ये स्वधावाचने च सम्बन्धगोत्रनामोच्चारणमावश्यकमन्यत्र कृताकृतम्।

---

१. कात्यायन ने माता, पिता, पति, बहिन, गुरु आदि और राजा को दक्षिणादान का निषेध किया है और कहा है कि इन लोगों की शुश्रूषा ही दक्षिणा है—'पितृमातृपतिभ्रातृस्वसृगुर्वादिभूभुजाम्। दक्षिणा न हि दातव्या शुश्रूषा विहिता च सा॥' यहां आदि पद से यति आदि ग्राह्य हैं। विप्र के उद्देश्य से दी गयी दक्षिणा तत्काल दे देनी चाहिये, कालान्तर में देने पर द्विगुणित करके देना ब्रह्मवैवर्त में कहा है—'दक्षिणा विप्रमुद्दिश्य तत्कालं चेन्न दीयते। एकरात्रे व्यतीते तु तद्दानं द्विगुणं भवेत्॥' इति।

२. परिशिष्टे—'क्षणे च पिण्डदाने च गन्धधूपाक्षये तथा। संकल्पे चासने दीपे अञ्जनाभ्यञ्जने तथा॥ अन्नार्घ्यदानाद्यन्तेषु गोत्रं नाम च कीर्तयेत्।' संग्रहे—'आसनावाहने पाद्ये अन्नदाने तथैव च। अक्षय्ये पिण्डदाने च षट्सु नामानि कीर्तयेत्॥' मत्स्यपुराणे—'सम्बन्धं प्रथमं ब्रूयाद् गोत्रं नाम तथैव च। पश्चाद् रूपं विजानीयात् क्रम एष सनातनः॥' इति।

दाहिना ठेहुना गिराकर सदा देवता की पूजा करे। पितरों की परिचर्या तो बायें ठेहुने को गिराकर करे। देवताओं का कृत्य प्रदक्षिणक्रम से और पितरों का वामक्रम से होता है। पितरों के कुश द्विगुण भुग्न और विश्वेदेव के सीधे होते हैं। दैवकृत्य में कर्ता उत्तरमुख और पितृकर्म में दक्षिणाभिमुख बैठे। संकल्प-क्षणदान-पाद्य-आसन-आवाहन-अर्घ्यदान में, गन्धादि आच्छादनपर्यन्त पंचोपचार में, अन्नदान में, पिण्डदान में, अंजन और अभ्यंजन में, अक्षय्य में और स्वधावाचन में, सम्बन्ध-गोत्र-नामका उच्चारण आवश्यक है और अन्यत्र करना न करना बराबर है।

संबन्धगोत्रनामरूपाणीति संबन्धनामगोत्ररूपाणीति वोच्चारणे क्रमः। तत्र 'सकारेण तु वक्तव्यं गोत्रं सर्वत्र 'धीमता' इति वाक्यात्काश्यपसगोत्रस्य काश्यपगोत्रस्येति वोच्चारः। केचिच्छाखाभेदाद् व्यवस्थामाहुः।

गोत्रस्य त्वपरिज्ञाने [2]काश्यपं गोत्रमुच्यते।
शर्मान्तं विप्रनामोक्तं वर्मान्तं क्षत्रियस्य तु॥
गुप्तान्तं चैव वैश्यस्य दासान्तं शूद्रजन्मनः।

पित्रादिनामाज्ञाने तु तातपितामहप्रपितामहेत्येवं ब्रूयात्, न नामोच्चारयेदित्याश्वलायनः[3]। शाखान्तरे तु पितुर्नाम्नः स्थाने पृथिवीषदिति पितामहस्यान्तरिक्षसदिति प्रपितामहस्य दिविषदिति[4] नामोच्चार्यम्। स्त्रीणां दान्तं नाम सावित्रीदेत्येवमुच्चार्यम्। केचिद्देवीशब्दान्तमाहुः। अन्ये देवीदापदयोः समुच्चयमूचुः।

उच्चारण में सम्बन्ध-गोत्र-नाम-रूप यह, अथवा सम्बन्ध-नाम गोत्र-रूप, यह क्रम है। वहां—बुद्धिमान् सर्वत्र सकार के साथ गोत्र का उच्चारण करे—इस वाक्य के अनुसार 'काश्यपसगोत्रस्य' या 'काश्यपगोत्रस्य' ऐसा कहे। कुछ लोग शाखाभेद से व्यवस्था बतलाते हैं। गोत्र के न जानने पर काश्यप-गोत्र कहे। शर्मान्त ब्राह्मण का नाम, वर्मान्त क्षत्रिय का, गुप्तान्त वैश्य का और दासान्त शूद्र का नाम कहे। पिता आदि के नाम न जानने पर तो तात-पितामह-प्रपितामह ऐसा ही कहे नाम का उच्चारण न करे, यह आश्वलायन कहते हैं। दूसरी शाखा में तो पिता के नाम के स्थान में 'पृथिवीषत्' पितामह के नाम के स्थान में 'अन्तरिक्षसत्' और प्रपितामह के नाम के स्थान में 'दिविषत्' ऐसा उच्चारण करे। स्त्रियों का दकारान्त नाम—'सावित्रीदा' ऐसा ही उच्चारण करे। कुछ लोग देवीशब्दान्त नाम कहते हैं। अन्य लोग देवी और दा-पद का समुच्चय बतलाते हैं।

---

१. मत्स्यपुराण के इस वचन का उत्तरार्ध यों है—'सकारः कुतपो ज्ञेयस्तस्माद्यत्नेन तं वदेत्।' जैसे उदाहरण है—'पराशर-सगोत्रस्य वृद्धस्य तु महात्मनः। भिक्षोः पञ्चशिखस्याहं शिष्यः परमधार्मिकः॥' इति।

२. स्मृत्यन्तर का पूरा वचन इस प्रकार है—'गोत्रस्य त्वपरिज्ञाने काश्यपं गोत्रमुच्यते। यस्मादाह श्रुतिः सर्वाः प्रजाः काश्यपसम्भवाः॥' सत्याषाढ का—'अज्ञातबन्धोः पुरोहितगोत्रेणाचार्यगोत्रेण वा' यह वचन तो विवाहपरक है।

३. आश्वलायन का सूत्र है—'यदि नामान्यविद्वांस्ततपितामहप्रपितामहेति ब्रूयात्। कारिका में भी कहा है—'नामानि चेन्न जानीयाचतेत्यादि वदेत् क्रमात्॥' इति।

४. बौधायनः—'पृथिवीषत् पिता वाच्यस्तत्पिता चान्तरिक्षसत्। अभिधानापरिज्ञाने दिविषत् प्रपितामहः॥ पित्रादीनां यदा पुत्रैर्नाम न ज्ञायते तदा।' इति।

अथ संकल्पादौ विभक्तिविचारः

विभक्तिभिस्तु यत्किंचिद्दीयते पितृकर्मणि।
तत्सर्वं सफलं ज्ञेयं विपरीतं निरर्थकम्॥
षष्ठीविभक्त्या संकल्पः क्षणश्चाक्षय्यकर्म[1] च।
षष्ठ्या वा स्याच्चतुर्थ्या वासनदानं द्विजातये॥
द्वितीययावाहनं स्याद्विभक्तिस्तु चतुर्थिका॥
अन्नदाने पिण्डपूजास्वधास्वस्तीति वाचने।
पिण्डदाने तु संबुद्धिर्ये च त्वेत्यादितः पुरा॥
ततः परं चतुर्थी चेत्युभयं सर्वसंमतम्।
शेषाणि सर्वकर्माणि संबुद्धयन्ते यथायथम्॥
इदं ते वा इदं वो वा प्रयुज्यैव समाचरेत्।

विभक्तियों से तो जो कुछ पितृकर्म में दिया जाता है उन सब को सफल जानना चाहिये, इसके विपरीत निरर्थक होता है। संकल्प, क्षण और अक्षय्य कर्म, षष्ठी विभक्ति से होता है। द्विजाति के लिये षष्ठी या चतुर्थी विभक्ति से आसनदान और द्वितीया विभक्ति से आवाहन होता है। अन्नदान, पिण्डपूजा, स्वधावाचन और स्वस्तिवाचन में चतुर्थी विभक्ति होती है। पिण्डदान में सम्बुद्धि 'ये च त्वा' इत्यादि से पहिले और उसके बाद चतुर्थी होती है। ये दोनों प्रकार सर्वसम्मत है। इसके अतिरिक्त सब कर्मों में सम्बोधन के अन्त में 'हे पितः' इत्यादि यथोचित कहे। 'इदं ते' अथवा 'इदं वः' ऐसा प्रयोग करके कर्म करे।

अथ सव्यापसव्यविचारः

सव्येन[2] दैवं कर्म स्यादपसव्येन पैतृकम्॥
विप्रप्रदक्षिणाविप्रस्वागतं चार्घ्यदानकम्।
सूक्तस्तोत्रजपोऽन्नस्य पात्रेषु परिवेषणम्॥
आह्वानमन्नस्याघ्राणं तथा च स्वस्तिवाचनम्।
ताम्बूलदानमारभ्यासमाप्तेरिति पैतृकम्॥
प्रदक्षिणाद्येतदुक्तं सव्येनैव समाचरेत्।
देवार्चा दक्षिणादिः स्यात् पादजान्वंसमूर्धसु॥
शिरोंसजानुपादेषु वामाङ्गादिषु पैतृके।

अक्षय्यासनार्घ्यवर्ज्यं स्वधाकारेण पितृभ्यः सर्वं दानम्। देवेभ्यः स्वाहापदेन। दैवतीर्थेन दैवं तत्पितृतीर्थेन पैतृकम्।

---

१. चन्द्रिका और स्मृत्यर्थसार में नारदीय वचन है—'अक्षय्यासनयोः षष्ठी द्वितीयावाहने तथा। अन्नदाने चतुर्थी स्याच्छेषाः सम्बुद्धयः स्मृताः॥' इति।

२. जमदग्निः—'सूक्तस्तोत्रजपं त्यक्त्वा पिण्डाघ्राणं च दक्षिणाम्। आह्वानं स्वागतं चार्घ्यं विना च परिवेषणम्॥ विसर्जनं सौमनस्यमाशिषां प्रार्थनं तथा। विप्रप्रदक्षिणां चैव स्वस्तिवाचनकं विना॥ पितॄनुद्दिश्य कर्तव्यं प्राचीनावीतिना सदा।' इति।

सव्य से दैवकर्म और अपसव्य से पितृकर्म होता है। ब्राह्मण की प्रदक्षिणा, ब्राह्मण का स्वागत और अर्घ्यदान तथा सूक्त-स्तोत्र का जप, अन्न को पात्रों में परोसना, आवाहन, अन्न का सूंघना और स्वस्तिवाचन, ताम्बूलदान से लेकर समाप्ति तक पैतृक कर्म है। यह प्रदक्षिणा आदि सव्य से ही करे। देवताओं की पूजा, दक्षिण पैर, जानु, कन्धा और सिर में तथा पितृकर्म की पूजा--सिर, कन्धा, जानु और पैरों में वामांग आदि में होती है। अक्षय्य, आसन और अर्घ्य को छोड़कर स्वधाकार से पितरों का सब दान होता है। स्वाहाशब्द से देवताओं का सब दान किया जाता है। दैवतीर्थ से दैवकर्म और पितृतीर्थ से पितृकर्म होता है।

अथाचमनविचारः

श्राद्धारम्भे[1] द्विराचमनं विप्रपादक्षालनान्ते स्वपादक्षालनपूर्वकं द्विराचमनम्। देवार्चनान्ते पित्रर्चनान्ते चैकैकमाचमनमाघ्राणान्ते एकं विकिरदानान्ते द्विरेकं वा श्राद्धान्ते स्वपादक्षालनपूर्वकं द्विराचमनमिति। अन्ये भस्ममर्यादान्ते करशुद्धयन्ते उच्छिष्टचालनान्ते चाप्येकैकमाहुः। अथ भोक्तुः पादशौचान्ते द्विराचमनं पाणिहोमान्ते एकं भोजनान्ते द्विरिति।

श्राद्ध के आरम्भ में दो आचमन और ब्राह्मण के पैर धोने के बाद अपना पैर धोकर दो आचमन करे। देवार्चन और पितृपूजन के अन्त में एक-एक आचमन पिण्ड, सूंघने के अन्त में एक, विकिरदान के अन्त में दो या एक, श्राद्ध के अन्त में अपना पैर धोने के बाद दो आचमन करे। अन्य लोग—भस्म मर्यादा के अन्त में, करशुद्धि के अन्त में और उच्छिष्ट-चालने के अन्त में एक-एक आचमन करे—ऐसा कहते हैं। भोक्ता का पादप्रक्षालन के अन्त में दो, पाणिहोम के अन्त में एक और भोजनान्त में दो आचमन है।

अथ दर्भत्यागविचारः

आचान्तः प्राक्कुशांस्त्यक्त्वा पाणावन्यांश्च धारयेत्। तथा च—श्राद्धारम्भे धृतान्दर्भान्पाद्यान्ते च विसर्जयेत्[2]। ततो देवार्चनान्ते पित्रर्चनान्ते पिण्डशेषाघ्राणान्ते विकिरदानान्ते श्राद्धान्ते च पूर्वधृतदर्भांस्त्यजेत्। श्राद्धसागरादिप्रयोगे तु पित्रर्चनान्ते दर्भत्यागो न दृश्यते। तेन क्वचिदाचमनेऽपि दर्भत्यागो नेति भाति।

---

१. हेमाद्रि में संग्रह का वचन है—'श्राद्धारम्भेऽवसाने च पादशौचार्चनान्तयोः। विकिरे पिण्डदाने च षट्स्वाचमनमिष्यते॥' तत्रैव—'आदौ विप्राङ्घ्रिशौचान्तेऽभ्यर्चने विकिरे कृते। पिण्डान्तुप्यार्चयित्वा च विसर्ज्य ब्राह्मणांस्तथा॥ आचामेच्छ्राद्धकर्ता च स्थानेष्वेतेषु सप्तसु। आद्यन्तयोर्द्विराचामेच्छेषेषु तु सकृत्सकृत्॥' इति।

२. कालिका में स्मृत्यन्तर वचन से स्पष्ट है—'श्राद्धारम्भे तु ये दर्भाः पादशौचे विसर्जयेत्। अर्चनादौ तु ये दर्भा उच्छिष्टान्ते विसर्जयेत्॥ मार्जनादौ तु ये दर्भाः पिण्डोत्थाने विसर्जयेत्। उत्थानादौ तु ये दर्भा दक्षिणान्ते विसर्जयेत्॥ प्रार्थनादौ तु ये दर्भा नमस्कारे विसर्जयेत्।' श्राद्ध में हरे कुशों का अधिक महत्त्व है इसलिये जिस दिन श्राद्ध हो उसी दिन के उखाड़े गये कुशों से श्राद्ध-कृत्य सुसम्पन्न करना चाहिये। कुश का ग्राह्य, अग्राह्य और भेदसम्बन्धी वचन पहले यथास्थान दिखाये गये हैं वहाँ देखें।

आचमन करने के पहिले पुराने कुशों को त्याग कर दूसरे कुशों को धारण करे। कहा है—श्राद्ध के आरम्भ में धृत कुशों को पाद्य के अन्त में त्याग दे। इसी प्रकार देवार्चन के अन्त में, पितृपूजन के अन्त में, पिण्डशेष सूंघने के अन्त में, विकिरदान के अन्त में और श्राद्ध के अन्त में, पहिले के धारण किये हुए कुशों को त्याग दे। श्राद्धसागर आदि प्रयोग में तो पितृपूजन के अन्त में कुश का त्याग नहीं दिखाई देता। इससे आचमन में दर्भत्याग नहीं होता, ऐसा प्रतीत होता है।

अथ ऊहविचारः

यत्र बहुवचनान्तः पितृशब्दस्तत्र पितृशब्दस्य सर्वपितृवाचित्वादूहो न। यथार्घ्यपात्रे पितृनिमान्प्रीणयेत्यत्र मात्रादिश्राद्धे मातृनिति न वदेत्। तत्रापि शुन्धनमन्त्रेषु शुन्धन्तां पितरः शुन्धन्तां पितामहा इत्यादि शुन्धन्तां मातरः इत्यादि चोह एव। बहुवचनं तु नोह्यते प्रथममन्त्रे एव पूज्यत्वार्थकत्वात्। ऋचं नोहेदिति निषेधादृङ्मन्त्रेषु नोहः। पिण्डदाने ये च त्वामत्रानु तेभ्यश्चेत्यत्र मातृश्राद्धे याश्च त्वामत्रानु ताभ्यश्चेति न वदेत्। स्त्रीणां स्त्रियः पुरुषाश्चानुगा इति पुमान्स्त्रियेति पुंल्लिङ्गशेषादिति वृत्तिकृत्। अन्ये तु याश्चेत्याद्यूहमाहुः।

जहां बहुवचनान्त पितृशब्द है वहां पितृशब्द का सब पितृवाची होने से ऊह नहीं होता। जैसे अर्घ्यपात्र में 'पितृन् इमान्प्रीणय' यहां पर माता आदि के श्राद्ध में 'मातृन्' ऐसा न कहे। वहां भी शुन्धनमन्त्रों में 'शुन्धन्तां पितरः' 'शुन्धन्तां पितामहाः' इत्यादि और 'शुन्धन्तां मातरः' इत्यादि ऊह होता ही है। बहुवचन का तो ऊह नहीं होता, क्योंकि वह पहिले मन्त्र में ही पूज्यत्व के लिये है। 'ऋचं नोहेत' अर्थात् ऋचा में ऊह न करे, इस निषेध से ऋक्-मन्त्रों में ऊह नहीं होता। पिण्डदान में 'ये च त्वामत्रानु तेभ्यश्च' यहां पर मातृश्राद्ध में 'याश्च त्वामत्रानु ताभ्यश्च' ऐसा न कहे। स्त्रियों के स्त्रियां और पुरुष अनुगामी होते हैं अतः 'पुमान् स्त्रिया' इस सूत्र से पुल्लिंग का शेष होनेसे ऊह करने की आवश्यकता नहीं, ऐसा वृत्तिकार का मत है। अन्य लोग तो 'याश्च' इत्यादि ऊह करना कहते हैं।

मात्रादिद्वित्वे पिण्डदाने एतद्वामस्मन्मातरौ यज्ञदाश्रीदे ये च युवामत्रान्वित्येकं पिण्डं दत्त्वाऽस्मन्मातृभ्यां० अयं पिं० इत्यादि। अभ्यञ्जनेऽस्मन्मातरौ० अभ्यञ्जाथां०, अञ्जने अञ्जाथाम्। एवं पितामहीप्रपितामहीद्वित्वेऽप्यूहः। अथ बहुत्वे एतद्वोऽस्मन्मातरो यज्ञदे श्रीदे रुद्रदे यथानामगोत्रा ये च युष्मानत्रान्वित्येकपिण्डदानादि। अभ्यञ्जनेऽभ्यङ्ध्वम्, अञ्जने अङ्ध्वमित्यादि। एकनामत्वे एकमेव नाम द्विवचनान्तं बहुवचनान्तं वा वदेत्।

माता आदि के दो होने पर भी पिण्डदान में 'एतद् वामस्मन्मातरौ यज्ञदाश्रीदे ये च युवां' यहां अन्वित एक पिण्ड देकर 'अस्मन्मातृभ्यां० अयं पिण्ड०' इत्यादि ऊह करे। अभ्यञ्जन में अस्मन्मातरौ० अभ्यंजाथां०' और अञ्जन में अञ्जाथां' ऐसा कहे। इसी प्रकार पितामही-प्रपितामही के दो होने पर भी ऊह होता है। बहुत के होने पर 'एतद् वो अस्मन्मातरो यज्ञदे श्रीदे रुद्रदे यथानामगोत्रा ये च युष्मान्' ऐसा अन्वित एक पिण्डदानादि करे। अभ्यञ्जन में 'अभ्यङ्ध्वम्' तथा अंजन में 'अंङ्ध्वम्' इत्यादि ऊह करे। एक नाम होने पर भी एक ही नाम द्विवचनान्त या बहुवचनान्त कहे।

एवमर्घ्यदानकालेऽप्यस्मन्मातरावित्याद्यूहेन संबोध्य इदं वामर्घ्यमिदं वोऽर्घ्यमित्यूहो बोद्धव्यः। तथा च आयन्तु नः पितरः सो० तिलोसि सोमदेवत्यो०

उशन्तस्त्वा नि० । पिण्डानुमन्त्रणदशादानोपस्थानप्रवाहणप्राशनादिमन्त्रेषु बहुवचनान्तपितृपदयुक्तत्वादिहेतोर्नोह[1] इति सिद्धम् ।

इसी प्रकार अर्घ्यदान काल में भी 'अस्मन्मातरौ' इत्यादि ऊह से सम्बोधित करके 'इदं वाम् अर्घ्यं' 'इदं वोर्घ्यं' इत्यादि ऊह जानना चाहिये । इसी तरह 'आयन्तु नः पितरः सो०, तिलोसि सोमदैवत्यो०, उशन्तस्त्वा नि०' । पिण्डानुमन्त्रण, दशादान, उपस्थान, प्रवाहण और प्राशन आदि मन्त्रों में बहुवचनान्त पितृपदयुक्त आदि हेतु से ऊह नहीं होता, यह सिद्ध हुआ ।

नाप्रोक्षितं स्पृशेद्वस्तु न वदेन्मानुषीं गिरम् ।
न चोद्वीक्षेत भुञ्जानं न चैवाश्रूणि पातयेत् ॥
दैवे पित्र्ये च सर्वत्र जपहोमादिकर्मसु ।
मौनं कुर्यात्प्रयत्नेन सकलं फलमाप्नुयात् ॥
यदि मौनस्य लोपः स्याज्जपहोमार्चनादिषु ।
व्याहरेद्वैष्णवं[2] मन्त्रं स्मरेद्वा विष्णुमव्ययम् ॥
यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥
आदिमध्यावसानेषु श्राद्धस्येदमुदाहरेत् ।

विना प्रोक्षण किये किसी वस्तु का स्पर्श न करे और मनुष्यवाणी न बोले । भोजन करने वाले को देखे नहीं और न आंसू गिरावे । दैव-पितृ-कर्म तथा जप-होम आदि कर्म में सब जगह प्रयत्न से मौन धारण करे तो सम्पूर्ण फल प्राप्त होता है । यदि जप-होम और पूजनादि में मौन का लोप हो तो विष्णु का मन्त्र कहे या अक्षय-विष्णु का स्मरण करे । जिसके स्मरण और नाम के उच्चारण से तप, यज्ञ और क्रिया आदि की न्यूनता, सम्पूर्णता को प्राप्त होती है ऐसे अच्युत भगवान् को मैं तत्काल बन्दना करता हूँ । ऐसा श्राद्ध के आदि, मध्य और अन्त में कहे ।

अथ संक्षेपत आश्वलायनादीनां प्रयोगक्रमः

सव्येनापसव्येन वा देशकालौ संकीर्त्यापसव्येन तत्तच्छ्राद्धार्हपितॄणां षष्ठीविभक्त्या 'एतेषाममुकश्राद्धं सदैवं सपिण्डं पार्वणविधिनैकोद्दिष्टेन वान्नेनामेन वा हिरण्येन वाश्वः सद्यो वा करिष्ये' इति संकल्पो यथासम्भवं कार्यः । सर्वत्र कुरुष्वेत्यादि यथोचितं ब्राह्मणैः प्रतिवचनं देयमेव । ततो दैवधर्मेण विप्रस्य दक्षिणजानुं स्पृष्ट्वाऽमुकपितॄणाममुकश्राद्धे अमुकविश्वेदेवार्थं त्वया क्षणः क्रियतामिति क्षणं दद्यात् । ओं तथेति विप्रो वदेत् । कर्ता प्राप्नोतु भवानिति, विप्रः प्राप्तवा-

१. स्मृत्यन्तरे—'मातुः श्राद्धेऽप्यनूहेन कुर्यात् पिण्डानुमन्त्रणम् । दशादानमुपस्थानं तद्वत्कार्यमिति स्थितिः ॥ प्रवाहणमनूहेन तद्वत्प्राशनमिष्यते ।' तथा—'आयन्तु नस्तिलोऽसीति उशन्तस्त्वेति यानि तु । अनूह्यः पितृशब्दोऽत्र पितृसामान्यवाचकः ॥' इति ।

२. पराशरः—'तद्विष्णोरिति मन्त्रेण गायत्र्या च प्रयत्नतः । प्रोक्षयेदन्नजातं तु शूद्रदृष्ट्यादिशुद्धये ॥' वसिष्ठः—'शुद्धवतीभिः कूष्माण्डीभिः पावमानीभिश्च पाकादि प्रोक्षयेत् ।' इति ।

नीति। एवं पैतृधर्मेण वामजानुस्पर्शेनामुकश्राद्धेऽमुकस्य स्थाने त्वया क्षण इत्यादि पूर्ववत्। त्रयस्थाने एकविप्रत्वे पितृपितामहप्रपितामहानां स्थाने इत्यादि। अक्रोधनैरित्यादि प्रार्थना। अत्र सर्वत्र देवपूर्वत्वम्। क्वचित्पितृपूर्वकत्वं वक्ष्यते।

सव्य से या अपसव्य से देश और काल को कहकर अपसव्य से उन-उन श्राद्धयोग्य पितरों का षष्ठी विभक्ति से 'इन लोगों का अमुक श्राद्ध सदैव सपिण्ड पार्वणविधि से अथवा एकोद्दिष्ट विधि से कच्चे अन्न या सुवर्ण से कल्ह या तुरन्त करूंगा' ऐसा यथासम्भव संकल्प करे। सर्वत्र 'कुरुष्व' इत्यादि जैसा उचित हो ब्राह्मण प्रतिवचन दे ही। तदनन्तर दैवधर्म से ब्राह्मण के दाहिने जानु का स्पर्श करके 'अमुक-पितृणाममुक-श्राद्धे अमुक-विश्वेदेवार्थं त्वया क्षणः क्रियताम्' ऐसा कहकर निमन्त्रण दे। ब्राह्मण—'ॐ तथा' ऐसा कहे। श्राद्धकर्ता 'प्राप्नोतु भवान्' ऐसा कहे। ब्राह्मण—'प्राप्तवानि' ऐसा कहे। इसी प्रकार पितृधर्म से बाएं ठेहुने का स्पर्श करके 'अमुक-श्राद्धे अमुकस्य स्थाने त्वया क्षणः क्रियताम्' इत्यादि पूर्ववत् कहे। तीन के स्थान में एक ब्राह्मण के रहने पर 'पितृपितामहप्रपितामहानां स्थाने' इत्यादि कहे और 'अक्रोधनैः' इत्यादि प्रार्थना करे। यहां सब जगह देवपूर्वक ही श्राद्ध होता है कहीं पितृपूर्वक कहेंगे।

इदं संकल्पक्षणदानादि पूर्वेद्युः सद्यो वा कार्यम्। ततः 'कुतपे स्नातः स्नातान् धौतपादान् विप्रान्सन्निधापयेत्। ततः सव्येन तिलोदकयवोदके आचारात्कार्ये। ततः सव्येन शुद्धयर्थं प्रायश्चित्तार्थसूक्तजपः प्रदक्षिणा च। समस्तसम्पदिति नमस्कारः। अपसव्येनाचारादधिकारवाचनम्। तत आचमनप्राणायामौ सव्येन कृत्वा अपसव्येन द्वितीयः संकल्पः। केचित्सद्यःकरणपक्षे द्वितीयसंकल्पं नेच्छन्ति। ततस्तिष्ठन् सव्येनैव दैवे पित्र्ये च भवतां स्वागतमिति प्रतिविप्रं प्रश्नः पूर्ववद् द्वितीयं क्षणदानम्।

यह संकल्प क्षणदानादि पहिले दिन या उसी दिन करना चाहिये। इसके बाद दिन के आठवें मुहूर्त कुतप में स्नान करके नहाये और पैर धोये हुए ब्राह्मणों को अपने समीप में बैठावे। तदनन्तर सव्य से तिलोदक या यवोदक आचार के अनुसार करे। तत्पश्चात् सव्य से शुद्धि के लिये प्रायश्चित्तार्थ सूक्त का जप तथा प्रदक्षिणा करे। 'समस्तसम्पत्' से नमस्कार करे। अपसव्य से आचार होने से अधिकार-वाचन करे। तदनन्तर सव्य से आचमन और प्राणायाम करके अपसव्य से दूसरा संकल्प करे। कोई—सद्यःकरण पक्ष में द्वितीय संकल्प नहीं चाहते। इसके बाद खड़े होकर सव्य से ही दैव और पितृ कर्म में 'भवतां स्वागतं' ऐसा प्रत्येक ब्राह्मण से प्रश्न और पहिले की तरह द्वितीय क्षणदान करे।

अत्र बह्वृचानां गृह्याग्निमतां दर्शश्राद्धान्वष्टकापूर्वेद्युःश्राद्धेषु पिण्डपितृयज्ञव्यतिषङ्गेण श्राद्धप्रयोगो नान्येषां नापि श्राद्धान्तरेषु। स च द्वितीयक्षणदानान्तं श्राद्धतन्त्रं कृत्वा परिसमूहनादीध्माधानान्ते पिण्डपितृयज्ञतन्त्रान्ते पादक्षालनादिभस्ममर्यादान्तमग्नावग्नौकरणं कृत्वा परिवेषणादिसंपन्नवचनान्ते पिण्डदानादि पात्रोत्सर्गपर्यन्तं कृत्वा विकिरादिश्राद्धशेषं समापनीयमित्येवंरूपः। एवं

१. दिन का आठवां मुहूर्त कुतप कहलाता है—'अह्नो मुहूर्ता विख्याता दश पञ्च च सर्वदा। तत्राष्टमो मुहूर्तो यः स कालः कुतपः स्मृतः ॥' इति।

हिरण्यकेशीयादीनामपि प्रथमसंकल्पोत्तरमग्न्युपसमाधानान्वाधानाद्याज्यसंस्कारान्ते पाद्यादिपूजान्ते तत्तन्मन्त्रोहयुतः सविस्तरोऽग्नौकरणहोमो ज्ञेयः।

यहां बह्वृच गृह्याग्नि वालों को दर्शश्राद्ध, अन्वष्टका और पूर्वेद्युःश्राद्ध में पिण्डपितृयज्ञ के व्यतिषंग (अन्योन्य सम्बन्ध) से श्राद्ध प्रयोग होता है अन्य का नहीं, और श्राद्धान्तर में भी नहीं होता। और वह—द्वितीय क्षणदानपर्यन्त श्राद्धतन्त्र को करके परिसमूहन आदि इध्माधान के अन्त में पिण्डपितृयज्ञतन्त्र के अन्त में पादप्रक्षालन आदि भस्ममर्यादान्त तथा अग्नि में अग्नौकरण करके परोसने आदि से लेकर सम्पन्नवचन के अन्त में पिण्डदान आदि पात्रोत्सर्ग करके विकिरा आदिश्राद्ध को समाप्त करे—इसी रूप का है। इसी प्रकार हिरण्यकेशीय आदि का भी प्रथम संकल्प के बाद अग्नि का उपसमाधान-अन्वाधान आदि घृतसंस्कार के अन्त में और पाद्य आदि की पूजा के अन्त में उन-उन मन्त्रों का ऊहयुक्त विस्तृत अग्नौकरणहोम जानना चाहिये।

अथ पाद्यविवेचनम्

अङ्गणे श्राद्धदेशद्वारे वा चतुरस्रं द्विहस्तं प्रादेशमात्रं वोदक्प्लवं देवमण्डलं[1] कृत्वा ततो दक्षिणे षडंगुलं त्यक्त्वा दक्षिणाप्लवं चतुर्हस्तं वितस्तिमात्रं वा पितृमण्डलं वर्तुलं सव्यापसव्यप्रादक्षिण्यादिदैवपैतृधर्मेण गोमूत्रगोमयाभ्यां कार्यम्। यथायथं दर्भयवतिलगन्धपुष्पैस्तदर्चनम्। मण्डलसमीपे पीठे उपविष्टस्यैव प्राङ्मुखस्य विप्रस्य पादयोरुदङ्मुखः प्रत्यङ्मुखो वा कर्ताऽमुकसंज्ञका विश्वेदेवा इदं वः पाद्यं स्वाहा नम इति यवगन्धपुष्पयुतजलमञ्जलिना प्रक्षिप्य [2]शन्नो देवीरिति शुद्धोदकेन पादावुपर्येव प्रक्षालयेत्[3], नाधोभागे नापि सग्रन्थिकपवित्रहस्तेन।

आंगन में या श्राद्धदेश के दरवाजे पर चतुरस्र दो हाथ या प्रादेशमात्र उत्तर की ओर ढालू देवमण्डल बनाकर उससे दक्षिण में छ अंगुल छोड़कर दक्षिण ढालू चार हाथ का या बित्ताभर का पितृमण्डल गोल सव्य-अपसव्य, प्रदक्षिण-अप्रदक्षिण आदि दैव और पितृधर्म से गोमूत्र और गोमय से बनावे। यथोचित्त कुश, जौ, तिल, गन्ध और पुष्प से उसका पूजन करे। मण्डल के समीप

---

१. देवमण्डलं = वैश्वदेविक ब्राह्मणों के पादप्रक्षालन के लिये मण्डल, जैसा लौगाक्षि ने उसका आकार बतलाया है—'हस्तद्वयमितं कार्यं वैश्वदेविकमण्डलम्। दक्षिणे च चतुर्हस्तं पितृणामङ्घ्रिशोधने ॥' संग्रह में तो—'प्रादेशमात्रं देवानां चतुरस्रं तु मण्डलम्। त्यक्त्वा षडङ्गुलं तस्माद्दक्षिणे वर्तुलं तथा ॥' ऐसा कहा। मण्डल कहां और कैसा हो, इसका हेमाद्रि में शम्भु के वचन से स्पष्ट है—'सम्मार्जितोपलिप्ते तु द्वारि कुर्वीत मण्डले। उदक्प्लवमुदीच्यं स्याद्दक्षिणं दक्षिणाप्लवम् ॥' हेमाद्रि में भृगु का वचन है—'अत्यन्तजीर्णदेहाया वन्ध्यायाश्च विशेषतः। आर्ताया नवसूताया न गोर्गोमयमाहरेत् ॥' व्याघ्रः—'उत्तरेऽक्षतसंयुक्तान् पूर्वाग्रान् विन्यसेत् कुशान्। दक्षिणे दक्षिणाग्रांस्तु सतिलान् विन्यसेत् कुशान् ॥' बौधायनः—'चतुरस्रं त्रिकोणं च वर्तुलं चार्धचन्द्रकम्। कर्तव्यमानुपूर्व्येण ब्राह्मणादिषु मण्डलम् ॥' इति।

२. भविष्ये—'प्रक्षाल्येद् विप्रपादान् शन्नोदेवीरिति त्र्यृचा।' मात्स्ये—'अक्षताभिः सपुष्पाभिस्तदभ्यर्चापसव्यवत्। विप्राणां क्षालयेत् पादावभिवन्द्य पुनः पुनः ॥ प्रत्यङ्मुखस्थितः कुर्याद्विप्रपादाभिषेचनम्।' इति।

३. संग्रहे—'ततः प्रक्षालयेत् पादौ भार्यास्राविताम्बुवारिणा। नाधः प्रक्षालयेत्पादौ कर्ता पित्रादिकर्मसु ॥' वृद्धवसिष्ठः—'न कुशग्रन्थिहस्तस्तु पाद्यं दद्याद् विचक्षणः।' तथा—'श्राद्धकाले यदा पत्नी वामे नीरप्रदा भवेत्। आसुरं तद् भवेच्छ्राद्धं पितृणां नोपतिष्ठते ॥' इति।

में पीढ़े पर बैठे हुए पूर्वमुख ब्राह्मण के दोनों पैरों पर उत्तरमुख वा पश्चिममुख श्राद्धकर्ता 'अमुक संज्ञका विश्वेदेवा इदं वः पाद्यं स्वाहा नमः' यह कहकर जौ, गन्ध और पुष्पयुक्त जल का अंजलि से प्रक्षेप करके शुद्ध जल से 'शन्नोदेवी' इस मन्त्र से दोनों पैरों के ऊपर ही प्रक्षालन करे, अधोभाग में नहीं और न ग्रन्थिसहित पवित्री के हाथ से।

पितृमण्डले उदङ्मुखस्योपविष्टस्य पादयोर्दक्षिणामुखस्तिलगन्धादिजलमञ्जलिना पितृतीर्थेन पितरमुकनामरूपगोत्र इदं ते पाद्यं स्वधा नम इति। त्रयस्थाने एकविप्रत्वे पितृपितामहप्रपितामहा इदं वः पाद्यमिति बहुवचनान्तेन प्रक्षिप्य शन्नोदेवीरित्यादि पूर्ववत्। एवमग्रेऽपि पित्रादित्रये ब्राह्मणत्रयपक्षे इदं ते इति, एकविप्रपक्षे इदं व इति वचनोहो ज्ञेयः। एवं मातामहादिपार्वणेऽपि बोध्यम्। अत्र पाद्यात्पूर्वं पादार्घ्यः पाद्योत्तरं च गन्धपुष्पाक्षतैः पादादिमूर्धान्तिमर्चनपूर्वकं दैवे एष वः पादार्घ्यं इति दत्त्वा पित्र्येऽपि तिलैर्मूर्धाद्यर्चनपूर्वकं पादार्घ्यदानमुक्तं तत्कात्यायनादीनामेवाचारात्तेषामेव। बह्वृचानां तु नैष आचारः।

पितृमण्डल में उत्तराभिमुख बैठे हुए ब्राह्मणों के पैरों पर दक्षिणमुख होकर तिलगन्धादियुक्त जल को अंजलि से लेकर पितृतीर्थ से 'पितः अमुकनाम-रूप-गोत्र इदं ते पाद्यं स्वधा नमः' ऐसा कह कर दे। तीन के स्थान में एक ब्राह्मण होने पर 'पितृ-पितामह-प्रपितामहा इदं वः पाद्यं' ऐसा बहुवचनान्त से जल गिराकर 'शन्नोदेवी' इत्यादि पूर्ववत् करे। इसी प्रकार आगे भी पिता आदि तीन के लिये ब्राह्मणत्रयपक्ष में 'इदं ते' यह और एक ब्राह्मणपक्ष में 'इदं वः' यह बहुवचन का ऊह जानना चाहिये। इसी प्रकार मातामहादि के पार्वण में भी जानना चाहिये। यहां पाद्य से पहिले पादार्घ्य और पाद्य के बाद गन्ध-पुष्प-अक्षत से पैर से लेकर सिरपर्यन्त अर्चनपूर्वक देव में 'एष वः पादार्घ्यः' इससे देकर पित्र्यकर्म में भी तिलों से सिर आदि का अर्चनपूर्वक पाद्य अर्घ्य का जो दान कहा है, वह कात्यायनादिकों के आचार से उन्हीं लोगों के लिये है। बह्वृचों का तो यह आचार नहीं है।

ततः पाद्यशेषं गन्धयवतिलादि सव्यापसव्याभ्यां मण्डलयोस्त्यक्त्वा स्वपादक्षालनं पवित्रत्यागं च कृत्वाऽऽचम्य पवित्रे धृत्वा देवमण्डलोत्तरे स्वयं विप्राश्च द्विराचम्य श्राद्धदेशे गच्छेयुः। पादक्षालनोदकाचमनोदकयोः संसर्गो न कार्यः। अपसव्येनामुकश्राद्धसिद्धिरस्त्विति वदेत्तैः प्रत्युक्तः निरंगुष्ठं विप्रदक्षिणहस्तं धृत्वा सव्यापसव्याभ्यां भूर्भुवः स्वः समाध्वमिति सदर्भेषु पीठेष्वविलम्बेनोपवेशयेत्। तत्र दैवे प्राङ्मुखो विप्रः पित्र्ये तूदङ्मुखः। असंभवे दक्षिणान्यदिङ्मुखः।

इसके बाद पाद्यशेष को गन्ध-यव-तिल आदि और सव्य-अपसव्य से दोनों मण्डलों में छोड़कर पादप्रक्षालन और पवित्र त्याग करके आचमन एवं पवित्रधारण कर देवमण्डल के उत्तर स्वयं ब्राह्मण लोग भी दो बार आचमन कर श्राद्धदेश में चले जायं। पादप्रक्षालन-जल का और आचमन-जल का संसर्ग नहीं करें। अपसव्य से 'अमुकश्राद्धसिद्धिरस्तु' ऐसा कहे। ब्राह्मणों से 'अस्तु' ऐसा प्रत्युत्तर पाने पर अंगुष्ठरहित ब्राह्मण के दक्षिण हाथ को पकड़ कर सव्य और अपसव्य से 'भूर्भुवः स्वः समाध्वं' इस से कुशसहित पीढ़ों पर अविलम्ब बैठावे। उसमें ब्राह्मण दैवकर्म में पूर्वाभिमुख और पितृकर्म में उत्तराभिमुख बैठें। यदि ऐसा संभव न हो तो दक्षिण दिशा को छोड़ कर अन्य किसी दिशा में मुख करके बैठें।

अथ आसनविचारः

हैमं राजतं ताम्रं वा दुकूलं कम्बलं वा दारुजं तृणमयं पर्णमयं वाऽऽसनं[1] प्रशस्तम्। दारुजेषु श्रीपर्णीजम्बूकदम्बाम्रबकुलशमीश्लेष्मातकशालवृक्षजन्यान्यासनानि [2]शस्तानि।

अयःशंकुमयं पीठं प्रदेयं नोपवेशने।
[3]अग्निदग्धान्यासनानि भग्नानि च विवर्जयेत्॥
प्राक्संस्था दक्षिणासंस्था भोक्तृपङ्क्तिस्तु पैतृके।

तत्र देवासने प्रागग्रौ द्वौ दर्भौ पित्र्ये दक्षिणाग्रैकैकं दर्भं स्थापयेत्।

घृतैस्तिलादितैलैर्वा स्थापयेच्च प्रतिद्विजम्।
दीपं सव्यापसव्याभ्यां दीपमेकं तु सव्यतः॥

ब्राह्मणाश्चेतःप्रभृत्या श्राद्धसमाप्तेर्मौनिनः पवित्रहस्ता उच्छिष्टोच्छिष्टस्पर्शं [4]वर्जयन्तो वर्तेरन्।

आसन—सोना चांदी या तांबे का, दुकूल या कम्बल का, लकड़ी तृण या पत्तों का उत्तम है। लकड़ी के आसन में श्रीपर्णी, जामुन, कदम्ब, आम, मौलसरी, शमी, लिसोढा और सखुआ से बने प्रशस्त हैं। लोहे की कील लगे हुए काष्ठासन ब्राह्मणों को बैठने के लिये नहीं दे। आग से जले हुए और टूटे हुए आसन का त्याग करे। पितृकर्म में भोजन वालों की पंक्ति प्राक्संस्थ और दक्षिणसंस्थ होनी चाहिये। उसमें विश्वेदेव के आसन में पूर्व अग्रभाग वाले दो कुश और पित्र्य में दक्षिण अग्रभाग वाला एक-एक कुश स्थापित करे। प्रतिब्राह्मण घी या तेल का एक-एक दीप स्थापित करे। सव्य-अपसव्य से एक-एक दीप रहना चाहिये। एक (रक्षा) दीप तो सव्य से रखे। ब्राह्मणगण इसके आगे श्राद्ध-समाप्ति तक मौन रहें। हाथ में पवित्र धारण करें। उच्छिष्टोच्छिष्ट का स्पर्श-वर्जन करते हुए रहें।

अत्र यथालक्षणम् [5]अतिथिरागतश्चेत्सव्येन विप्रपङ्क्तौ विष्णूद्देशेन पूजयेत्। सव्येनापवित्रः पवित्रो वेति मन्त्रं पठित्वा वैष्णव्यै नमः काश्यप्यै नमः क्षमायै०

---

१. पृथ्वीचन्द्रोदय में यम की उक्ति है—'आसनं कुतपं दद्यादितरद्वा पवित्रकम्।' चमत्कारखण्ड में स्वर्णादिघटित आसन का महत्त्व यों बतलाया है—'पितॄणां घटितं हैमं राजतं वापि चासनम्। येन ताम्रमयं दत्तमासनं पितृकर्मणि॥ स वै दिव्यासनारूढो न हि प्रच्यवते दिवः।' इति।

२. पुलस्त्यः—'श्रीपर्णी वारुणी क्षीरी जम्बुकाम्रकदम्बकम्। सप्तमं वाकुलं पीठं पितॄणां दत्तमक्षयम्॥' संग्रहे—'शमी च काश्मरी शल्लुः कदम्बो वारुणस्तथा। पञ्चासनानि शस्तानि श्राद्धे देवार्चने तथा॥' इति।

३. संग्रह में—'अग्निदग्धान्यासनानि' के पूर्व का वचन है—'क्षौमं दुकूलं नैपालमाविकं दारुजं तथा। ताम्रं पार्णं बृसीं चैव विष्टरादि च विन्यसेत्॥' इति।

४. माधवीय में ब्राह्मण का नियम बतलाया है—'पवित्रपाणयः सर्वे ते च मौनव्रतान्विताः। उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पर्शं वर्जयन्तः परस्परम्॥' इति।

५. मनुः—'सम्प्राप्ताय त्वतिथये प्रदद्यादासनोदके। अन्नं चैव यथाशक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम्॥' कूर्मपुराणे—'अतिथिर्यस्य नाश्नाति न तच्छ्राद्धं प्रचक्षते।' अतिथि का लक्षण मनु ने

इति भूमिं नत्वा 'मेदिनी लोकमाता त्वम्' इत्यादिश्लोकैः स्तुत्वा च 'श्राद्धभूमिं गयां ध्यात्वा ध्यात्वा देवं गदाधरम्।' प्राचीनावीती तद्विष्णोः परमं पदं० तद्विप्रासो० गायत्रीं च जपित्वा सव्येन प्राणायामतिथ्यादिसंकीर्तनान्तेऽपसव्येन 'अमुकपितृणामुपक्रान्तममुकश्राद्धं करिष्ये' इति संकल्प्यात्रादौ मध्येऽन्ते च 'देवताभ्यः पितृभ्यश्च० अमूर्तानां च० चतुर्भिश्च० यस्य स्मृत्येति च त्रिःपठेत्।

श्राद्ध में यदि यथालक्षण अतिथि आ जाय तो उसे सव्य से विप्र की पंक्ति में विष्णु के उद्देश्य से पूजा करे। सव्य से 'अपवित्रः पवित्रो वा' इस मन्त्रको पढ़कर वैष्णव्यै नमः, काश्यप्यै नमः, क्षमायै नमः, यह कहकर भूमि को नमस्कार करके 'मेदिनी लोकमाता त्वं' इत्यादि श्लोकों से स्तुति करके श्राद्ध-भूमि और गदाधर भगवान् का ध्यान करके प्राचीनावीती होकर 'तद्विष्णुः परमं पदं' 'तद् विप्रासो' इन मन्त्रों और गायत्री को जप कर सव्य से प्राणायाम और तिथि आदि कहने के बाद अपसव्य से 'अमुक पितृगणों का प्रारब्ध अमुक-श्राद्ध करूंगा' ऐसा संकल्प कर आदि मध्य और अन्त में 'देवताभ्यः पितृभ्यश्च० अमूर्तानां च० और यस्य स्मृत्या' इनको तीन बार पढ़े।

अथ नीवीबन्धविचारः

अथ दक्षिणे वामे वा कुक्षौ तिलैः सह कुशत्रयं परिहितवस्त्राञ्चलबद्धं कृत्वा कटिसंलग्नवस्त्रबहिर्भागेन संवेष्ट्य रक्षणाख्यो [2]नीवीबन्धो निहन्मि सर्वं यदमेध्यवद्भवेदिति श्लोकमन्त्रेण कार्यः।

सर्वतश्चापसव्येनापहतेत्यप्रदक्षिणम्।
तिलान्क्षिप्त्वोदीरतेति सव्येन प्रोक्षणं स्मृतम्॥
तिला रक्षन्तु मन्त्रेण द्वारे कुशतिलान्[3] क्षिपेत्।

कहा है—'एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः। अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते॥' यहां रात्रिशब्द दिन और ब्राह्मणशब्द मनुष्यमात्र का उपलक्षण है। उपलक्षण का अर्थ है—जो अपना बोध कराते हुये दूसरे का भी बोध करावे—स्वबोधकत्वे सति स्वेतरबोधकत्वम्। विशेष मनुस्मृति के तीसरे अध्याय में देखें।

१. ब्रह्माण्डपुराण में—'देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च। नमः स्वाहायै स्वधायै नित्यमेव नमो नमः॥ आदिमध्यावसानेषु त्रिरावृत्तं जपेद् बुधः। पितरः क्षिप्रमायान्ति राक्षसाः प्रद्रवन्ति च॥' इति।

२. वृद्धयाज्ञवल्क्यः—'दक्षिणे कटिदेशे तु तिलैः सह कुशत्रयम्। तर्जयन्तीह दैत्यानां यथा नृणामयस्तथा॥' आश्वलायनः—'नीवीं वासोदशान्तेन स्वरक्षार्थं प्रबन्धयेत्।' स्मृत्यन्तरे—'पितृणां दक्षिणे पार्श्वे विपरीता तु दैविके।' मदनपारिजात में लिखा है—'वामे दक्षिणे वेति आचाराद् व्यवस्था' श्राद्धसूत्रभाष्य में गदाधर ने 'दक्षिणत इव हीयं नीविरिति लिङ्गम्' इस श्रुति-प्रमाण से 'तस्माद्दक्षिणाङ्गे एव नीवीबन्ध इति सिद्धम्' ऐसा कहा है। 'अथ नीवीमुद्धृत्य नमस्करोति' इस कण्डिका की व्याख्या में नाभि के दक्षिण भाग में ही नीवीस्थान माना है। नीवीबन्धन का पराशरोक्त मंत्र है—'निहन्मि सर्वं यदमेध्यवद् भवेद्धताश्च सर्वेऽसुरदानवा मया। यक्षांसि रक्षांसि पिशाचगुह्यका हता मया यातुधानाश्च सर्वे॥' इति।

३. ब्रह्मपुराणे—'ततस्तिलान् गृहे तस्मिन् विकिरेच्चाप्रदक्षिणम्। श्रद्धया परया युक्तो

तरत्समन्दीसूक्तेन पावमानीभिरेव च ।
अभिमन्त्र्य जलं तेन पाकादि प्रोक्षयेत्सुधीः ।
यद्वा तद्विष्णोर्मन्त्रेण गायत्र्या वाभिमन्त्रितम् ॥
यद्देवा इति मन्त्राणां त्रयेणैवान्यशाखिनः ।
वाचयेत्पाकपूतत्वं पुष्पाद्यं सर्वमुक्षयेत् ॥
नाप्रोक्षितं स्पृशेच्छ्राद्धकालेत्येतं जपेत्ततः ।
पदार्थयोग्यतां वाचयित्वा देवार्चनं चरेत् ॥

इसके बाद दाहिनी या बायीं कुक्षि में तिल के साथ तीन कुश पहने हुए वस्त्र के अंचल में बांध कर कटि से सटे हुए वस्त्र के बाहरी भाग से लपेट कर रक्षणार्थ नीवीबन्ध—'निहन्मि सर्वं यदमेध्यवद् भवेत्' इस मन्त्र से करे। सर्वत्र अपसव्य से 'अपहता' इससे अप्रदक्षिण क्रम से तिलों को छीटकर 'उदीरता' इस मन्त्र से सव्य होकर प्रोक्षण करें। 'तिला रक्षन्तु' इससे द्वारपर कुश और तिल को छीटे। 'तरत्समन्दी' इस सूक्त से और पावमानी ऋचाओं से जल का अभिमन्त्रण कर उससे पाक आदि का प्रोक्षण करे। अथवा 'तद्विष्णोः' इस मन्त्र से या गायत्री से अभिमन्त्रित जल से प्रोक्षण करे। अन्यशाखा वाले 'यद्देवा' इन तीन मन्त्रों से पाक का पवित्रत्व कहवावे और पुष्प आदि सब सामग्री का अभिमन्त्रित जल से प्रोक्षण करे। अप्रोक्षित वस्तु का श्राद्धकाल में स्पर्श न करे इसी का जप करे। पदार्थों की योग्यता ब्राह्मणों से कहवाकर देवार्चन करे।

तत्र प्रत्युपचारं दैवे पित्र्ये चाद्यं तयोरपो दद्यात्। देवद्विजसन्निधावुदङ्मुख उपविश्य तद्दक्षिणकरमुत्तानं वामकरेण धृत्वा दक्षिणेन सयवं दर्भद्वयममुकेषां विश्वेषां देवानां भूर्भुवः स्वरिदमासनं स्वाहेति दक्षिणहस्ते जलमासिच्य दक्षिणभागे आसने क्षिपेन्न हस्ते दर्भदानम्।

आसनेष्वासनं दद्यान्न तु पाणौ कदाचन ।
पितृकर्मणि वामे च दैवे दद्यात्तु दक्षिणे ॥

विप्रो 'धर्मोसि[१] विशि राजा प्रतिष्ठित' इति मन्त्रेण गृहीत्वा स्वासनमिति वदेत्। कर्तासनं स्पृशन्नपो दत्त्वास्यतामिति विप्रो धर्मोऽसीति वदेत्। अपो दत्त्वा दैवे [२]क्षणः क्रियतामिति निरंगुष्ठं करं गृह्णीयात् तथेत्यादि प्राग्वत्। इदं तृतीयनिमन्त्रणम्।

जपेदपहता इति ॥' स्मृत्यर्थसारे—'अपहता इति तिलान् विकीर्य उदीरतामित्यृचा प्रोक्षेत् ॥' तिलादि विकिरण का मन्त्र—'तिला रक्षन्त्वसुरान् दर्भा रक्षन्तु राक्षसान्। पंक्तिं वै श्रोत्रियो रक्षेदतिथिः सर्वरक्षकः ॥' इति।

१. प्रचेताः—'धर्मोऽसीत्यथ मन्त्रेण गृह्णीयुस्ते तु तान् कुशान्'। ते=विप्राः।

२. गालवः—'दर्भानादाय हस्ताभ्यां गृहीत्वा दक्षिणे करे। दैवे क्षणः क्रियतां तु निरंगुष्ठं करं ततः ॥ ओं तथेति द्विजा ब्रूयुस्ते प्राप्नोतु भवानिति। कर्ता ब्रूयात्ततो विप्रः प्राप्तवानीति वै वदेत् ॥' यहां क्षण शब्द—'निर्व्यापारस्थितौ कालविशेषोत्सवयोः क्षणः' इस अमरकोश से निर्व्यापारस्थिति-काल अभिप्रेत है।

यहां प्रत्येक उपचार में देवकर्म और पितृकर्म के आदि और अन्त में जल देवे। विश्वेदेव ब्राह्मण की सन्निधि में उत्तरमुख बैठकर ब्राह्मण के उत्तान दक्षिण हाथ को बायें हाथ से धर कर दाहिने हाथ से यवसहित दो कुश को 'अमुकेषां विश्वेदेवानां भूर्भुवः स्वः इदमासनं स्वाहा' इससे ब्राह्मण के दक्षिण हाथ में जल देकर दक्षिण भाग में आसन पर छोड़ दे, हाथ में कुश न दे। आसन पर आसन दे हाथ में आसन कभी न दे। पितृकर्म में बाएँ और दैवकर्म में दाहिने दे। ब्राह्मण—'धर्मोऽसि विश्वि राजा प्रतिष्ठित' इस मन्त्र से आसन-ग्रहण कर 'सुन्दर आसन है' ऐसा कहे। श्राद्ध कर्ता आसन का स्पर्श करते हुए जल देकर 'बैठिये' ऐसा कहे। ब्राह्मण—'धर्मोऽसि'—ऐसा कहे। जल देकर देवकर्म में 'क्षणः क्रियताम्' ऐसा कहकर अंगूठे को छोड़कर हाथ का ग्रहण करे। 'ॐ तथा' इत्यादि पहिले की तरह करे। यह तृतीय निमन्त्रण है।

अथ अर्घ्यकल्पना

तत्र पात्राणि हैमं रौप्यं ताम्रमयं वा दारुजं वा पलाशादिपर्णमयं वा कांस्यं वा शङ्खशुक्तिजं वा खड्गपात्रं वार्घ्यपात्रं[1] प्रशस्तम्। अत्र विप्रैकत्व-द्वित्वचतुष्टयत्वादावपि दैवेऽर्घ्यपात्रद्वयमेव। यत्तु दैवे द्वे अर्घ्यपात्रे पित्र्ये त्रीण्यु-भयत्रैकैकं वेत्येकपात्रत्वपक्षान्तरं तदशक्तिपरम्। एवं पात्रद्वयं प्रोक्षितायां भुवि प्रागग्रकुशेषु न्युब्जमुत्तानं वासाद्य प्रोक्ष्य न्युब्जपक्षे उत्तानीकृत्य तयोर्द्विकुशे द्वे द्वे पवित्रे निधाय शन्नोदेवीरिति मन्त्रावृत्त्याऽप आसिच्य यवोसीति मन्त्रेणावृत्त्या यवानोप्य तूष्णीं[2] गन्धपुष्पाणि क्षिपेत्।

अर्घ्यपात्र—सोना चांदी या ताम्र का, या काष्ठ का, अथवा पलाशादि के पत्तों का बनाया हुआ, या कांसे का, शंख और शुक्ति का बना, या गेंडे का प्रशस्त है। यहां विश्वेदेव में ब्राह्मण के एक दो-या चार आदि में भी अर्घ्यपात्र दो ही होते हैं। जो कि दैव में दो अर्घ्यपात्र और पित्र्य में तीन या दोनों में एक पात्र का दूसरा पक्ष है, वह अशक्त-परक है। इस प्रकार प्रोक्षित भूमि में प्रागग्र कुशों पर दो अर्घ्यपात्र औंधाया हुआ या सीधा रखकर प्रोक्षण करके औंधाये हुए पक्ष में सीधा करके दोनों में दो कुश और दो-दो पवित्र रखकर 'शन्नोदेवी' इस मन्त्र की आवृत्ति से जल और 'यवोसि' इस मन्त्र की आवृत्ति से जव डाल कर बिना मंत्र के गन्ध-पुष्प छोड़े।

केचिद्गन्धद्वाराम् ओषधीः प्रतिमोदध्वमित्यृग्भ्यां गन्धपुष्पाणि क्षिपन्ति। देवार्घ्यपात्रे संपन्ने इत्युक्त्वा सुसम्पन्ने इति प्रत्युक्तो वामकरं विप्रदक्षिणजानुनि न्यस्यामुकविश्वान्देवान् भवत्सु आवाहयिष्ये इति पृष्ट्वावाहयेत्यनुज्ञातो विश्वेदेवास

---

१. हेमाद्रि में प्रजापति की उक्ति है—'सौवर्णं राजतं ताम्रं खाड्गं मणिमयं तथा। यज्ञियं चमसं वाऽपि अर्घ्यार्थं पूरयेद् बुधः॥' मात्स्ये पाद्मे च—'पात्रं वनस्पतिमयं तथा पर्णमयं पुनः। जलजं वापि कुर्वीत तथा सागरसम्भवम्॥' पुराणसमुच्चये—'मृत्स्नाभवं तथा कांस्यमारक्तं जन्तुसम्भवम्। त्रपुसीसलोहमयं सदा पात्रं विवर्जयेत्॥' मृन्मयपात्र यदि हस्तनिर्मित हो तो निषिद्ध नहीं है, जैसा छन्दोगपरिशिष्ट में कहा है—'कुलालचक्रनिष्पन्नमासुरं मृन्मयं स्मृतम्। तदेव हस्तघटितं स्थाल्यादि दैविकं भवेत्॥' विहित प्रतिषिद्ध से पत्रपुटपात्र ही श्रेयस्कर है।

२. वृद्धपराशरः—'पात्रद्वयमथार्घ्यार्थं तैजसं चैकवस्तुनः। प्राङ्मुखोऽमरतीर्थेन शन्नो देव्योदकं क्षिपेत्॥ यवोऽसीति यवांस्तत्र तूष्णीं पुष्पाणि चन्दनम्।' इति।

आगतेत्यृचा प्रतिविप्रं दक्षिणपादादियुग्मक्रमेण जान्वंसमूर्धान्तं यवान्विकिरेत्। विश्वेदेवाः शृणुतेत्यृचोपस्थाय भूमौ शिष्टान्यवान्विकिरेत्।

कुछ लोग—'गन्धद्वारां' और 'ओषधीः प्रतिमोदध्वं' इन दो ऋचाओं से गन्ध-पुष्प छोड़ते हैं। 'देवार्घपात्रे सम्पन्ने' ऐसा कहकर ब्राह्मण के 'सुसम्पन्ने' ऐसा कहने पर बाएँ हाथ को ब्राह्मण के दाहिने ठेहुने पर रखकर 'अमुक विश्वान् देवान् भवत्सु आवाहयिष्ये' अर्थात् अमुक विश्वेदेवों को आप लोगों में आवाहन करूंगा, ऐसा पूछकर ब्राह्मण से 'आवाहय' यह आज्ञा मिलने पर 'विश्वेदेवा स आगत' इस ऋचा से प्रतिविप्र दक्षिण पाद आदि युग्म-क्रम से जानु, कन्धा और सिरपर्यन्त जव बिखेरे। 'विश्वेदेवाः शृणुत' इससे उपस्थान कर बचे हुए जवों को भूमि पर बिखेरे।

हिरण्यकेशीयादयस्त्वर्घ्यदानगन्धादिपूजोत्तरमग्नौकरणकाले ये देवास इत्यायात पितर इति मन्त्राभ्यामग्निदक्षिणतो देवपित्रावाहनं कुर्वन्ति।

हिरण्यकेशीय आदि तो अर्घ्यदान और गन्धादि पूजन के बाद अग्नौकरण के काल में 'ये देवास' तथा 'आयात पितर' इन दो मन्त्रों से अग्नि के दक्षिण की ओर विश्वेदेव और पितरों का आवाहन करते हैं।

कातीयैस्त्वर्घ्यपात्रासादनात्प्रागेव[1] देवपित्रावाहनं कार्यम्, तथैव कात्यायनसूत्रात्।

ततोऽर्घ्यपात्रसपत्तिं वाचयित्वा द्विजोत्तमान्।
तदग्रे चार्घ्यपात्रे तु स्वाहार्घ्यमिति विन्यसेत्॥
अपो दत्त्वा विप्रहस्ते दद्यादर्घ्यपवित्रके।
या दिव्या इति मन्त्रेण हस्तेष्वर्घ्यं विनिक्षिपेत्॥
विश्वेदेवा इदं वोऽर्घ्यं स्वाहा नम इतीरयन्।

प्रतिविप्रं या दिव्येत्यावृत्तिः। केचित्तु या दिव्या इत्यनेन दत्तार्घ्यानुमन्त्रणमाहुः।

कातीय तो अर्घ्यपात्रासादन के पहले ही देव-पितृ का आवाहन करते हैं, क्योंकि कात्यायनसूत्र में ऐसा ही लिखा है। तदनन्तर ब्राह्मणों से अर्घ्यपात्र-सम्पत्ति कहलाकर उनके आगे अर्घ्यपात्रों में 'स्वाहार्घ्यं' यह कहकर अर्घ्यपात्र रख दे। ब्राह्मण के हाथ में जल देकर अर्घ्य कापवित्र दे। 'या दिव्या' इस मन्त्र से ब्राह्मण के हाथ में 'विश्वेदेवा इदं वोऽर्घ्यं स्वाहा नमः' ऐसा कहता हुआ अर्घ्य छोड़ दे। प्रतिविप्र 'या दिव्या' इस मन्त्र की आवृत्ति करे। कुछ लोग तो—'या दिव्या' इस मन्त्र से दिये हुए अर्घ्य का अनुमन्त्रण कहते हैं।

मयूखे कातीयप्रयोगे विप्रहस्तेऽर्घ्यपवित्रदानान्ते आवाहनवदङ्गेष्वर्चनं कृत्वार्घ्यदानमित्युक्तम्। एकविप्रत्वे एकस्यैव हस्ते द्विरर्घ्यदानम्। विप्रचतुष्टय-

---

१. याज्ञवल्क्य ने भी आवाहन के अनन्तर ही अर्घ्य कहा है—'पाणिप्रक्षालनं दत्त्वा विष्टरार्थान् कुशानपि। आवाहयेदनुज्ञातो विश्वेदेवास इत्यृचा॥ यवैरन्ववकीर्याथ भाजने सपवित्रके। शन्नो देव्या पयः क्षिप्त्वा यवोऽसीति यवांस्तथा॥ या दिव्या इति मन्त्रेण हस्तेष्वर्घं विनिक्षिपेत्।' सूत्रकारोऽप्यावाहयार्घं पूरयति।' इति। विशेष श्राद्धसूत्रभाष्य में देखें।

पक्षे एकैकं पात्रं विभज्य द्वयोर्द्वयोर्देयम्। कूर्चस्तु तत्तत्पात्रस्थ एव। क्वचित्[1] क्षीर-दधिघृततिलतण्डुलसर्षपकुशाग्रपुष्पेतिद्रव्याष्टकमर्घ्यपात्रे प्रक्षिप्यमित्युक्तम्।

मयूख में कातीयप्रयोग में ब्राह्मण के हाथ पर अर्घ्य और पवित्र देने के बाद आवाहन की तरह अंगों में भी पूजन करके अर्घ्यदान कहा है। एक ब्राह्मण के रहते एक ही के हाथ में दो बार अर्घ्य दे। चार ब्राह्मण के पक्ष में एक एक पात्र का विभाग करके दो-दो को दे। कूर्च को तो उन-उन पात्रों में ही रहने दे। कहीं पर दूध, दही, घी, तिल, चावल, सरसो, कुशाग्र और पुष्प, इस प्रकार आठ द्रव्य अर्घ्यपात्र में छोड़े ऐसा कहा है।

अथ दैवे गन्धाद्यर्चनम्

'आद्यन्तयोरपो यच्छन्गन्धाद्यैरर्चनं[2] चरेत्'। अमुकविश्वेदेवा अयं वो गन्धः स्वाहा नम इति करेणैव विप्रहस्तेष्वेव द्विर्द्विर्दानम्। एवं सर्वत्र दैवे स्वाहा नम इत्यन्तमुच्चार्योपचारदानम्।

चन्दनागरुकर्पूरकुङ्कुमानि प्रदापयेत्।
गन्धद्वारेति वै गन्धमायने ते च पुष्पकम्॥
धूरसीत्यमुना धूपमुद्दीप्यस्वेति दीपकम्।
युवं वस्त्राणि मन्त्रेण वस्त्रं दद्यात्प्रयत्नतः।
आसने स्वासनं ब्रूयादर्घ्येऽस्त्वर्घ्यं द्विजोत्तमः।
सुगन्धश्च सुपुष्पाणि सुमाल्यानि सुधूपकः॥
सुज्योतिश्चैव दीपश्च स्वाच्छादनमिति क्रमः।

देवकर्म के आदि अन्त में जल देते हुए गन्धादि से पूजन करे। 'अमुक-विश्वेदेवा अयं वो गन्धः स्वाहा नमः' ऐसा कहकर हाथ से ही ब्राह्मण के हाथ में दो-दो बार देवे। इसी प्रकार देव-कर्म में सर्वत्र 'स्वाहा नमः' एतत्पर्यन्त कहकर उपचार दे। चन्दन, अगरु, कपूर और कुंकुम चढ़ावे। 'गन्धद्वारां' इस मन्त्र से गन्ध, 'आयने ते' इससे पुष्प, 'धूरसि' इत्यादि मन्त्रों से धूप दे। 'उद्दीप्यस्व' इस मन्त्र से दीप दे। 'युवं वस्त्राणि' इस से यत्नपूर्वक वस्त्र दे। आसन में 'स्वासनं' कहे और अर्घ्य में ब्राह्मण 'अस्त्वर्घ्यं' कहे। सुगन्धः, सुपुष्पं, सुमाल्यं, सुधूपः, सुज्योतिः, सुदीपः और स्वाच्छा-दनं, ऐसा क्रम है।

कर्ता स्कन्धधृतोत्तरीयो विगतपवित्रकरो[3] विप्रहस्तदत्तगन्धैर्विप्रभालाद्य-ङ्गेषु लिम्पेत्। विप्रभाले वर्तुलपुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रं वा [4]न कुर्यात्। अत्र विप्राणां कस्तूरी

---

१. अन्यत्र अर्घ में जल, दूध, कुशाग्र, दही, दूब, अक्षत, फल और सरसो, इन आठ वस्तुओं का निर्देश है—'आपः क्षीरं कुशाग्राणि दधि दूर्वाऽक्षतास्तथा। फलं सिद्धार्थकश्चैव अर्घोऽष्टाङ्गः प्रकीर्तितः॥' इति।

२. हेमाद्रि विष्णुधर्म में—'गन्धैः पुष्पैश्च धूपैश्च वस्त्रैश्चाप्यथ भूषणैः। अर्चयेद् ब्राह्मणान् शक्त्या श्रद्धधानः समाहितः॥' विष्णुः—'चन्दनकुङ्कुमकर्पूरागरुपद्मकान्यनुलेपनाय' इति।

३. वृद्धशातातप ने कहा है—'पवित्रं तु करे कृत्वा यः समालभते द्विजान्। राक्षसानां भवेच्छ्राद्धं निराशैः पितृभिर्गतैः॥' इति।

४. हेमाद्रि में देवल का वचन है—'ललाटे पुण्ड्रकं दृष्ट्वा स्कन्धे मालां तथैव च। निराशाः

विकल्पिता । आयने ते इति वौषधीः प्रतिमोदध्वमिति वा गन्धदानवद्धस्तेष्वेवेदं वः पुष्पमिति पुष्पदानं कार्यम् ।

श्राद्धकर्ता कन्धे पर दुपट्टा धारण करके हाथ से पवित्री निकाल कर ब्राह्मण के हाथ में दिये हुए गन्धों को ब्राह्मण के ललाट आदि अंगों में लगा दे । ब्राह्मण के ललाट में गोल पुण्ड्र या त्रिपुण्ड्र नहीं लगावे । इसमें ब्राह्मणों के लिए कस्तूरी विकल्प से है। 'आयने ते' इस मन्त्र में अथवा 'ओषधीः प्रतिमोदध्वं' इस मन्त्र से गन्धदान के समान हाथ में ही 'इदं वः पुष्पाणि' ऐसा कह कर पुष्पदान करे ।

अथ तत्र विहितपुष्पाणि

आगस्त्यं भृङ्गराजं च तुलसी कमलं तथा ।
चम्पकं तिलपुष्पं च दूर्वाश्च पितृवल्लभाः ॥
विहिता प्रतिषिद्धा च [1]तुलसी पिण्डपूजने ।
सुकुमारैः किसलयैर्यवदूर्वाङ्कुरैरपि ॥
जलोद्भवैश्च कुसुमैर्मल्लिकाचूतपुष्पकैः ।
अतिमुक्तैश्च तगरैः संपूज्याः पितरः सदा ॥
जातीपुष्पैर्विप्रपूजां कुर्यात्पिण्डार्चनं तु न[2] ।

पितरो यान्ति दृष्ट्वा च वृषलीपतिम् ॥' यहां पुण्ड्रकशब्द का अपरार्क में वर्तुल और मदनरत्न में 'पुण्ड्र त्रिपुण्ड्र वर्तुलचन्द्रं च' यह अर्थ किया और वृद्ध पराशर का वचन प्रमाण में रखा है—'ऊर्ध्वं च तिलकं कुर्यान्न कुर्याद्वै त्रिपुण्ड्रकम् । ऊर्ध्वं च तिलकं कुर्याद् दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥ निराशाः पितरो यान्ति दृष्ट्वा चैव त्रिपुण्ड्रकम् ।' पृथ्वीचन्द्रोदय में व्यास की उक्ति है—'वर्जयेत्तिलकं भाले श्राद्धकाले च सर्वदा । तिर्यगप्यूर्ध्वपुण्ड्रं वा धारयेत्तु प्रयत्नतः ॥' इति ।

१. श्राद्धसूत्र की व्याख्या श्राद्धकाशिका में कहा है—'तुलसी निषिद्धेति स्मृत्यर्थसारः । तत्रार्घादौ निषेधः, पिण्डार्चायां विधिरित्यविरोधः ।' भविष्यपुराण के वचन से तुलसी निषिद्ध है—'केतकी तुलसीपत्रं बिल्वपत्रं च वर्जयेत् । द्रोणं च करवीरं च धत्तूरं किंशुकं तथा ॥' मार्कण्डेय की उक्ति से तुलसी विहित है—'पितृपिण्डार्चनं श्राद्धे यैः कृतं तुलसीदलैः । प्रीणिताः पितरस्तैस्तु यावच्चन्द्रार्कमेदिनी ॥' वृद्ध याज्ञवल्क्य ने भी विहित बतलाया है—'तुलसीं भृङ्गराजं च अपामार्गं शमीं तथा । पितृमूर्धनि यो दद्यात् स याति परमां गतिम् ॥ स्मृतिसारे—'आगस्त्यं भृङ्गराजं च तुलसी शतपत्रिका । चम्पकं तिलपुष्पं च वर्जयेत् पितृवल्लभाः ॥' प्रयोगपारिजात में पद्मपुराण का वचन है—'तुलसीगन्धमाघ्राय पितरस्तुष्टमानसाः । प्रयान्ति गरुडारूढास्तत्पदं चक्रपाणिनः ॥' इस प्रकार तुलसी के विहित होने में अनेक वचन हैं । 'तुलसीनिषेधो निर्मूलः' ऐसा हेमाद्रि ने भी कहा है ।

२. वृद्ध याज्ञवल्क्य ने जातीपुष्पों से पिण्डपूजन का निषेध किया है—'कुन्दं शम्भौ च नो दद्यान्नोन्मत्तं गरुडध्वजे । पिण्डे जातीं च नो दद्याद्देवीमर्केण नार्चयेत् ॥' जाती = चमेली का फूल । स्मृतिसार में भी निषिद्ध है—'केतकीं करवीरं च बकुलं कुन्दकं तथा । पाटलां चैव जातीं च श्राद्धे यत्नेन वर्जयेत् ॥' वीरमित्रोदय में मार्कण्डेयपुराण के—'जात्यश्च सर्वा दातव्या मल्लिका श्वेतयूथिका । जलोद्भवानि सर्वाणि कुसुमानि च चम्पकम् ॥' इस विधान-वचन और स्मृत्यन्तर के—'जातीदर्शनमात्रेण निराशाः पितरो गताः ।' इस निषेध-वचन को उद्धृत कर जातीपुष्प को विकल्प माना है ।

विहित पुष्प—अगस्त, भंगरैया, तुलसी, कमल, चम्पा, तिल का फूल और दूब, पितरों को प्रिय है। पिण्डपूजन में तुलसी विहित और निषिद्ध हैं। कोमल पत्तों से, यव और दूब के अंकुर से, जल से पैदा हुए फूलों से, मल्लिका तथा आम के फूलों से, अतिमुक्त और तगर से पितरों की सदा पूजा करे। जूही के फूल से ब्राह्मण का पूजन करे पिण्ड का पूजन न करे।

अथ वर्ज्यपुष्पाणि

करवीरं च धत्तूरं बिल्वपत्रं च केतकीम्।
बकुलं कुन्दपुष्पं च किंशुकं च कुरण्टिकाम्॥
सर्वाणि रक्तपुष्पाणि वर्जयेच्छ्राद्धकर्मणि।
जलोद्भवानि देयानि रक्तान्यपि विशेषतः॥

त्याज्य पुष्प—कनेर, धतूर, बेलपत्र, केवडा, मौलसरी, कुन्द, सेमर, पीतपुष्प का कटसरैया और सब लाल पुष्प श्राद्ध में वर्जित करे। जल से उत्पन्न होने वाले लाल भी फूल विशेष करके दे।

अथ धूपविचारः

धूपस्तु गुग्गुलुर्देयस्तथा चन्दनसारजः।
अगरुश्च सकर्पूरो घृतमध्वादिसंयुतः॥
ये तु प्राण्यङ्गजा धूपा हस्तवाताहताश्च ये।
न ते श्राद्धे नियोक्तव्या ये च के चोग्रगन्धयः॥
घृतं न केवलं दद्याद् दुष्टं वा तृणगुग्गुलुम्।
पाददेशेऽयं वो धूप इति दानम्।

धूप तो गुग्गुल या चन्दनसार का दे। घी, मधु, कपूर आदि से युक्त अगरु का धूप दे। जो धूप प्राणी के अङ्ग से उत्पन्न हों, हाथ के वायु से आहत और उग्रगन्ध के हों श्राद्ध में उनका योग नहीं करे। केवल घी से धूप न दे या दूषित तृणयुक्त गुग्गुल न दे। पादप्रदेश में 'अयं वो धूपः' ऐसा कह कर धूप दे।

अथ दीपविचारः

'घृतेन दीपो दातव्यस्तिलतैलेन वा पुनः'। वसामेदादिदीपो वर्ज्यः। इदं वो ज्योतिरिति वाऽयं वो दीपप्रकाश इति वा मुखसमीपे दीपः।

दीप घी या तिल के तेल से दे। चर्बी मेदा आदि का दीप वर्जित है। 'इदं वो ज्योतिः' या 'अयं वो दीप प्रकाशः' इससे मुंह के समीप दीप दे।

अथ वस्त्रयज्ञोपवीतविचारः

कौशेयं कार्पासं वा 'वस्त्रं विहितम्। कृष्णं मलिनमुपभुक्तं छिद्रितं निर्दशं

---

१. ब्रह्मपुराण में वस्त्र का विचार—'कौशेयं क्षौमकार्पासं दुकूलमहतं तथा। श्राद्धेष्वेतानि यो दद्यात् कामानाप्नोति चोत्तमान्॥' ब्रह्मवैवर्ते—'यज्ञोपवीतं दातव्यं वस्त्राभावे विजानता। पितृभ्यो वस्त्रदानस्य फलं तेनाश्नुतेऽखिलम्॥' पद्मपुराणे—'निष्क्रियो वा यथाशक्ति वस्त्राभावे प्रदीयते।' भगवतीपुराणे—'अधरीयोत्तरीयार्थे उद्दिश्यैकैकमादरात्। वासोयुगं प्रदातव्यं पितृकृत्ये विपश्चितैः॥ निष्क्रयो वा यथाशक्ति वस्त्रालाभे प्रदीयते।' वायुपुराणे—'वस्त्रं हि सर्वदैवत्यं सर्वदेवैरभिष्टुतम्।

[1]रजकधौतं च निषिद्धम्।

यज्ञोपवीतं दातव्यं वस्त्राभावे विजानता।
निष्क्रयो वा यथाशक्ति वस्त्रालाभे प्रदीयते॥
पितॄन्सत्कृत्य वासोभिर्दद्याद्यज्ञोपवीतकम्[2]।
यज्ञोपवीतदानेन विना श्राद्धं तु निष्फलम्॥

यज्ञोपवीतं यतिस्त्रीशूद्रश्राद्धेष्वपि देयम्।

रेशम या कपास का वस्त्र विहित है। काला, मैला, पहिना हुआ, छेद वाला, विना किनारी का और धोबी का धोया हुआ वस्त्र निषिद्ध है। विहित वस्त्र के अभाव में यज्ञोपवीत या वस्त्र का निष्क्रय यथाशक्ति दे। वस्त्र से पितरों का सत्कार कर यज्ञोपवीत दे। विना यज्ञोपवीत का श्राद्ध निष्फल होता है। यति, स्त्री और शूद्र के श्राद्ध में भी यज्ञोपवीत देना चाहिये।

अथान्यान्यपि देयानि

धातुमयानि धूपदीपपात्राणि।

कमण्डलुं ताम्रमयं काष्ठजं वापि मृन्मयम्।
नारिकेलमयं वापि श्राद्धे दद्यात्प्रयत्नतः॥

छत्रोपानदासनशयनदर्पणचामरव्यजनपादुकाकेशप्रसाधनीपटवासादिसुगन्धचूर्णाङ्गारधानिकायष्टिकम्बलाञ्जनशलाकाश्च देयाः।

अलंकाराश्च दातव्या यथाशक्ति हिरण्मया।
केयूरहारकटकमुद्रिकाकुण्डलादयः॥
स्त्रीभ्यो योषिदलंकारा देयाः श्राद्धेषु योषिताम्।
मञ्जीरमेखलादामकर्णिकाकङ्कणादयः॥
सौवर्णं राजतं कांस्यं दद्याद्भोजनभाजनम्[3]।
कर्पूरादेश्च भाण्डानि ताम्बूलायतनं तथा॥

वस्त्राभावे क्रिया न स्युर्यज्ञदानादिकाः क्वचित्॥ तस्माद् वस्त्राणि देयानि श्राद्धकाले विशेषतः।' स्कन्दपुराणोक्त विविध प्रकार के वस्त्रों के दान का फल वीरमित्रोदयादि महानिबन्ध-ग्रन्थों में देखें।

१. वृद्धमनुः—'स्वयं धौतेन कर्तव्याः क्रिया धर्म्या विपश्चिता। न निर्णेजकधौतेन नोपयुक्तेन वा क्वचित्॥' आदित्यपुराणे—'न कृष्णवर्णं दातव्यं वासः कार्पाससम्भवम्। पितृभ्यो वाऽपि मलिनं नोपयुक्तं कदाचन॥ न च्छिद्रितं नापदशं न धौतं कारुणापि च।' ब्रह्मपुराणे—'कार्पासं नैव दातव्यं पितृभ्यः काममंशुकम्। कृष्णं चापि प्रदातव्यमन्यत्कार्पाससम्भवात्॥ नामापि न ग्रहीतव्यं नीलीरक्तस्य वाससः। दर्शनात् कीर्तनात् भीत्या निराशाः पितरो गताः॥' इति।

२. यह आदित्यपुराण का वचन है। इसके आगे का अंश हैं—'तस्माद्यज्ञोपवीतस्य दानमावश्यकं स्मृतम्।' वायुपुराणे—'उपवीतं तु यो दद्याच्छ्राद्धकर्मणि धर्मवित्। पावनं सर्वविप्राणां ब्रह्मदानस्य तत्फलम्।' इति। अत्र शूद्रकर्तृकश्राद्धे यज्ञोपवीतस्य श्राद्धाङ्गत्वेन देयत्वावगमाद्दानं भवत्येवेति हेमाद्रिः। एवं स्त्र्याद्युद्देश्यकश्राद्धेऽपीति वीरमित्रोदयकारः।

३. स्कन्दपुराणे—'सौवर्णं राजतं वाऽपि कांस्येनाप्यथ निर्मितम्। दत्त्वा भोजनपात्रं तु सम्राड् भवति भूतले॥' सौवर्णादि मुख्य पात्रों के अभाव में स्मृतिसंग्रह में कहा है—'कदलीचूतपनसजम्बू-

अन्यान्य देनेवाली चीजें—धातु के बने धूप और दीप के पात्र, तांबा, लकड़ी, मिट्टी या नारियल का कमण्डलु, श्राद्ध में यत्नपूर्वक दे। छाता, जूता, आसन, खटिया, दर्पण, चँवर, पंखा, खड़ाऊँ, कंघी, पटवास आदि सुगन्धचूर्ण, अंगीठी, छड़ी, कम्बल और अंजन की शलाका दे। यथाशक्ति सोने के आभूषण, केयूर, हार, कड़ा, अंगूठी और कुण्डल आदि तथा स्त्रियों को स्त्री के आभूषण मंजीर, मेखला, दाम, कान के आभूषण, कंकण, आदि दे। सोने, चाँदी और कांसे के भोजनपात्र दे। कपूर आदि के पात्र और पानदान दे।

स्वयमन्येन वा बन्दीकृतानां केनाप्युपायेन मोचने पितॄणां ¹ब्रह्मपदम्। इत्थं चोक्तवचनादाच्छादनदानान्ते पृथग्यज्ञोपवीतं दत्त्वा शक्तिसत्त्वे छत्रालंकारादिकं दत्त्वा तत्काले स्पर्शायोग्यानां संकल्पं कृत्वा पूजनं पूर्णमस्तु संकल्पसिद्धिरस्त्वित्युक्त्वा प्रत्युक्तः,

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं संपद्धीनं द्विजोत्तमाः।
श्राद्धं संपूर्णतां यातु प्रसादाद्भवतां मम॥

यस्य स्मृत्या० देवताभ्यः० इति जपेत्।

अपने से या दूसरे से कैद किये हुओं का किसी उपाय से मुक्त करने पर पितरों को ब्रह्मपद प्राप्त होता है, इस प्रकार कहे वचन से वस्त्रदान के बाद अलग यज्ञोपवीत देकर शक्ति रहते छाता और अलंकार आदि देकर इस काल में स्पर्श के अयोग्य वस्तुओं का संकल्प करके 'पूजनं पूर्णमस्तु' 'संकल्पसिद्धिरस्तु' ऐसा कह कर ब्राह्मण से प्रत्युत्तर पाकर 'मन्त्रहीनं क्रियाहीनं०' 'यस्य स्मृत्या' 'देवताभ्यः०' इन मन्त्रों को जपे।

अथ काण्डानुसमयपदार्थानुसमयविचारः

एवमासनादिसर्वपूजाकाण्डं दैवं समाप्य पैतृकमासनप्रभृतिपूजाकाण्डमारभेदिति काण्डानुसमयक्रम एव माधवसंमतः। कातीयास्त्वासनक्षणावाहनार्घ्यपर्यन्तं पाद्यान्तप्रयोगवत्पदार्थानुसमयक्रमेणैव दैवे पित्र्ये च कृत्वा गन्धादिपूजामेव काण्डानुसमयेन कुर्वन्ति। एकं पदार्थं दैवपित्र्यादिषु सर्वत्रानुष्ठाय तेनैव क्रमेण द्वितीयादिपदार्था अनुष्ठेया इत्ययं पदार्थानुसमयः। एकत्रैव सर्वपदार्थान् समाप्यान्यत्र सर्वपदार्थानुष्ठानमिति काण्डानुसमयः।

इसी प्रकार आसन आदि सब देवपूजा के देवकाण्ड को समाप्त करके पितरों का आसन आदि पूजाकाण्ड आरम्भ करे, यह काण्डानुसमय-क्रम अर्थात् एक कांड को समाप्त करके दूसरे काण्ड का आरम्भ ही माधवाचार्य-सम्मत है। कातीय तो आसन, क्षण, आवाहन और अर्घ्य पर्यन्त पाद्यान्त प्रयोग की तरह पदार्थानुसमय क्रम से ही देव और पितृकर्म करके गन्ध आदि पूजा को ही काण्डानुसमय से करते हैं। एक पदार्थ को देव पित्र्य आदि सर्वत्र अनुष्ठित करके उसी क्रम

पत्रार्कचम्पकाः। अलाभे मुख्यपात्राणां ग्राह्याः स्युः पितृकर्मणि॥' स्मृतिसंग्रह का यह वचन अंगिरा के—'न जातीकुसुमानि दद्यात् न कदलीपत्रम्' इस वचन के अपवाद में है। अत्रि ने कहा है—'पलाशेभ्यो विना न स्युरन्यपात्राणि भोजने'। इति।

१. वामनपुराणे—'बन्दीकृतास्तु ये केचित् स्वयं वा यदि वा परैः। येन केनाप्युपायेन यस्तान् मोचयते नरः॥ पितरस्तस्य गच्छन्ति शाश्वतं पदमव्ययम्॥' इति।

से द्वितीय आदि पदार्थों का अनुष्ठान करना, यही पदार्थानुसमय कहलाता है। एक ही जगह सब पदार्थों को समाप्त करके दूसरी जगह सब पदार्थों के अनुष्ठान को काण्डानुसमय कहते हैं।

अथान्यपवित्रे धृत्वा पित्रर्चनं संकल्प्यासनाद्याच्छादनान्तपूजा वैश्वदेवोक्तरीत्यैव पितृधर्मेण कार्या। विशेषस्तूच्यते।

अन्य पवित्र को धारण करके पितृपूजन का संकल्प कर आसन आदि से लेकर वस्त्रान्त पूजा वैश्वदेव में कहे हुए प्रकार से अपसव्यादि पितृधर्म से करे। विशेष यह है।

अथ पित्रासनादि

द्विगुणभुग्नं कुशत्रयं विप्रवामे क्षिपेत्। पार्वणस्थाने विप्रत्रयपक्षे पितुर्यथानामगोत्रस्येदमासनमित्यादि पृथगुच्चारः। एकविप्रत्वे पितृपितामहप्रपितामहानामिदमासनमित्युच्चारः। एवमग्रिमोपचारेष्वप्यूह्यम्। शेषं प्राग्वत्। ततस्तृतीयनिमन्त्रणमपि प्राग्वद्धस्तधारणपूर्वकं कार्यम्।

पित्रासन आदि के सम्बन्ध में द्विगुंण-भुग्न तीन कुश ब्राह्मण के बाएँ रखे। पार्वण के स्थान में तीन ब्राह्मण के पक्ष में 'पितुर्यथानामगोत्रस्येदमासनम्' इत्यादि अलग ही उच्चारण करे। एक ब्राह्मण के पक्ष में 'पितृपितामहप्रपितामहानामिदमासनम्' ऐसा उच्चारण करे। ऐसे ही आगे के उपचारों में भी कल्पना कर ले। शेष पूर्ववत् है। इसके अनन्तर तृतीय निमन्त्रण भी पहले ही की तरह हस्तधारण पूर्वक करना चाहिये।

अथार्घ्यासादनम्

द्विजाग्रे दक्षिणाग्रांस्त्रींस्त्रीन् दर्भानास्तीर्य तेष्वाग्नेयीसंस्थानि प्रतिपार्वणं पात्राणि त्रीण्येवासाद्य पितृपात्रपश्चिमे मातामहादिपार्वणस्य प्रतिपार्वणमेकविप्रत्वे नवविप्रत्वादिपक्षेऽपि 'त्रीण्येव पात्राणि। एकविप्रत्वे तद्धस्ते एवार्घ्यत्रयम्। नवविप्रत्वादिपक्षे एकैकं पात्रं विभज्य त्रिषु त्रिषु देयम्। प्रतिपात्रोपरि दक्षिणाग्रा द्विगुणाः साग्रा निरग्रा वा त्रयस्त्रयः कुशाः। पितृतीर्थेन पात्रेषु जलमापूर्य शन्नो देवीरिति सर्वपात्रेषु सकृदनुमन्त्रणमाश्वलायनानाम्[2]।

अर्घ्यासादन—श्राद्धीय ब्राह्मणों के आगे दक्षिणाग्र तीन-तीन कुशों को बिछाकर उनपर अग्निकोणसंस्थ प्रतिपार्वण तीन ही पात्र रखकर पितृपात्र के पश्चिम में मातामह आदि के पार्वण का प्रतिपार्वण एक-एक ब्राह्मण के और नौ ब्राह्मणादि के पक्ष में भी तीन ही पात्र होते हैं। एक ब्राह्मण

---

१. मनुः—'अन्नाभावे द्विजाभावे यद्येको ब्राह्मणो भवेत्। पात्राण्यासादयेत्त्रीणि न तु ब्राह्मणसंख्यया॥' दत्तकादेः कर्तुर्द्विपितृत्वादावपि वचनात् त्रीण्येव पात्राणीति हरिहरः। माधवीये बैजवापः—'अर्घ्ये पितॄणां त्रीण्येव कुर्यात् पात्राणि धर्मवित्। एकस्मिन् वा बहुषु वा ब्राह्मणेषु यथाविधि॥ इति।

२. आश्वलायन ने कहा है—'तैजसाश्ममयमृन्मयेषु त्रिषु पात्रेष्वेकद्रव्येषु वा दर्भान्तर्हितेष्वप आसिच्य, शन्नोदेवीरभिष्टयेत्यनुमन्त्रितासु तिलानावपति—'तिलोसि सोमदेवत्यो गोसवे देवनिर्मितः। प्रत्नवद्भिः प्रत्तः स्वधया पितॄनिमाँल्लोकान् प्रीणयाहि नः स्वधा नमः' इति। अश्ममयं = स्फाटिकादि, मृन्मयं = हस्तकृतम्, जैसा छन्दोगपरिशिष्ट में कहा है—'कुलालचक्रनिष्पन्नमासुरं मृन्मयं स्मृतम्। तदेव हस्तघटितं स्थाल्यादि दैविकं भवेत्॥' इति।

तो उसके हाथ में ही तीन अर्घ्य दे। नौ विप्रादि पक्ष में एक-एक पात्र का विभाग करके तीनों-तीनों में दे। प्रतिपात्र के ऊपर दक्षिणाग्र तीन कुश अग्रभाग के सहित या रहित रखे। पितृतीर्थ से पात्रों में जल भरके 'शन्नोदेवी' इस मन्त्र से सब पात्रों में एक बार अनुमन्त्रण आश्वलायनों के मत में है।

तद्भिन्नैः कातीयादिभिः शन्नोदेवीरिति मन्त्रेण प्रतिपात्रं मन्त्रावृत्त्या जलमापूर्यं, हिरण्यकेशीयास्तु शन्नोदेवीरिति मन्त्रं नेच्छन्ति। सर्वमते तिलोसीति मन्त्रावृत्त्या प्रतिपात्रं तिलावापः। अत्र पितृशब्दस्यानूह इत्युक्तम्। गन्धादिप्रक्षेपः प्राग्वत्। ततः पित्रर्घ्यपात्रं सम्पन्नं पितामहार्घ्यपात्रं सम्पन्नमित्यादि यथालिङ्गं संपत्ति वाचयित्वापो दत्त्वा दक्षिणामुखस्तिष्ठन् सव्यं करं कुशतिलयुतं विप्रवामजानुनि न्यस्य पितृपितामहादीन् द्वितीयान्तानुच्चार्य भवत्सु आवाहयिष्ये इति पंक्तिमूर्धन्यमेकं विप्रं पृच्छेत्। सर्वत्र पंक्तिमूर्धन्यं प्रत्येव प्रश्नः। आवाहयेत्यनुज्ञात उशन्तस्त्वेति मन्त्रावृत्त्याऽमुकममुकनामगोत्ररूपमावाहयामीति प्रतिविप्रं मूर्धादिपादान्तमंसादियुग्माङ्गेषु तिलविकिरणेनावाह्य सर्वविप्रावाहनान्ते [1]आयन्तु नः पितर इति सकृदुपतिष्ठेत्।

आश्वलायन-भिन्न कातीय आदि 'शन्नोदेवी' इस मन्त्र से प्रत्येक पात्र में मन्त्र की आवृत्ति करके जल भरें। हिरण्यकेशीय तो 'शन्नोदेवी' इस मन्त्र को नहीं चाहते। सब के मत में 'तिलोसि' इस मन्त्र की आवृत्ति कर प्रतिपात्र में पिण्ड छोड़े। इसमें पितृशब्द का ऊह नहीं होता, ऐसा कहा है। गन्धादि का प्रक्षेप पहले की तरह है। इसके बाद 'पित्रर्घ्यपात्रं संपन्नं' 'पितामहार्घ्यपात्रं सम्पन्नं' इत्यादि यथालिंग सम्पत्ति कहवाकर जल देकर दक्षिणमुख बैठा हुआ श्राद्धकर्ता कुशतिलसहित सव्य हाथ को ब्राह्मण के बायें जानु पर रखकर द्वितीयान्त पितृ-पितामह आदि का उच्चारण करके 'भवत्सु आवाहयिष्ये' ऐसा कहकर ब्राह्मणपंक्ति में सबसे श्रेष्ठ ब्राह्मण से पूछे। सर्वत्र पंक्तिमूर्धन्य से ही प्रश्न करे। 'आवाहय' ऐसी आज्ञा पाकर 'उशन्तस्त्वा' इस मन्त्र की आवृत्ति से 'अमुक-नाम-गोत्र-रूपमावाहयामि' ऐसा कहकर प्रतिब्राह्मण को सिर से पैर तक कन्धा आदि जोड़े-अंगों में तिल बिखेर कर आवाहन करके सब ब्राह्मणों के आवाहन के अन्त में 'आयन्तु नः पितरः' इससे एक बार उपस्थान करे।

अत्र कातीयैर्नमो वः पितर इत्यादि इह सन्तः स्यामेत्यन्तेनार्चनमुक्तम्। आवाहने सव्यापसव्ययोर्विकल्पः। हस्तशिष्टतिलान् विप्राग्रे भूमौ विकीर्य पित्रर्घ्यपात्रसम्पत्तिरस्त्वित्युक्त्वा प्रत्युक्तः सव्यं कृत्वाऽधःस्थदर्भैः सहार्घ्यपात्रमेकैकं पाणिभ्यामुद्धृत्य विप्राग्रे स्वधार्घ्या इति मन्त्रावृत्त्या स्थापयेत्। एकविप्रत्वे एकाग्रे एव पात्रत्रयं मन्त्रावृत्त्या नवविप्रत्वे पितृविप्रत्रयमुख्याग्रे पात्रन्यासो मन्त्रेण। एवं पितामहादिषु मुख्याग्रे एव। एवं च त्रिरेव स्वधार्घ्या इति मन्त्रोच्चारः प्रतिपार्वणे। अथर्ववेदिनां प्रपितामहादिपित्रन्तं प्रातिलोम्येन सर्वप्रयोगः।

इसमें कातीयों का 'नमो वः पितरः' इत्यादि 'इह सन्तः स्याम' यहाँ तक पूजन कहा है।

---

[1] कूर्मपुराणे—'अपसव्यं ततः कृत्वा पितॄणां दक्षिणामुखः। आवाहनं ततः कुर्यादुशन्तस्त्वेत्यृचा बुधः॥ आवाह्य तदनुज्ञातो जपेदायन्तु नस्ततः॥' इति।

आवाहन शब्द में सव्यापसव्य का विकल्प है। हाथ में बचे तिलों को ब्राह्मण के आगे भूमि में बिखेर कर 'पित्र्यर्घ्यपात्रसम्पत्तिरस्तु' ऐसा कहकर ब्राह्मण से 'अस्तु' यह प्रत्युत्तर पाकर सव्य करके नीचे रखे कुशों के साथ एक-एक अर्घ्यपात्र को दोनों हाथों से उठाकर ब्राह्मण के आगे 'स्वधार्घ्या' इस मन्त्र की आवृत्ति से स्थापित करे। एक ब्राह्मण पक्ष में एक के आगे ही तीनों पात्रों को मन्त्र की आवृत्ति से और नौ विप्र के पक्ष में पितृ के तीन ब्राह्मणों में मुख्य के आगे मन्त्र से पात्र का स्थापन करे। इसी प्रकार पितामह आदि में मुख्य के आगे ही रखे। इस तरह तीन बार ही 'स्वधार्घ्या' इस मन्त्र का उच्चारण प्रतिपार्वण में करे। अथर्ववेदियों का प्रपितामह से आरंभ करके पितृपर्यन्त प्रतिलोम ही से सब प्रयोग होता है।

ततः सन्त्वर्घ्या इति प्रत्युक्तोऽपो दत्त्वा पात्रस्थं पवित्रं विप्रहस्तेषु दत्त्वा प्रथमपात्रोदकं सशेषं खड्गपात्रे पात्रान्तरे वा गृहीत्वा पितरिदं ते अर्घ्यं पितामहेदं ते अर्घ्यमित्यादि यथालिङ्गं प्रत्येकमर्घ्यं देयम्। पित्रादित्रयाणामेकविप्रत्वे त्रिभिः पात्रैरेकस्यैव हस्तेऽर्घ्यं देयम्। षण्णामेकविप्रत्वे षट्पात्राण्येकहस्ते। पितुः स्थाने विप्रत्रयादिपक्षे एकार्घ्यं विभज्य तेषु देयम्। अर्घ्यान्ते जलदानं पितरिदं ते अर्घ्यमित्यर्घ्यमन्त्रश्च प्रतिविप्रमावर्तते। एवं पितामहादिविप्रेष्वपि एवमर्घ्यं दत्त्वा विप्रहस्तात्स्रवन्तीरपो या दिव्या इति मन्त्रेण प्रतिविप्रमनुमन्त्रयेदिति बह्वृचः।

तदनन्तर ब्राह्मण से 'सन्त्वर्घ्या' ऐसा उत्तर पाकर जल देकर पात्रस्थित पवित्र को ब्राह्मणों के हाथ में देकर प्रथम पात्र के जल को कुछ बचाकर गेंडे के पात्र में या दूसरे पात्र में लेकर 'पितरिदं ते अर्घ्यं' 'पितामहेदं ते अर्घ्यं' इत्यादि यथालिंग प्रत्येक को अर्घ्य दे। पित्रादि तीनोंके एक विप्र पक्ष में तीनों पात्रों से एक ही के हाथ में अर्घ्य दे। छ का एक ब्राह्मण हो तो छ पात्र एक के हाथ में दे। पिता के स्थान में विप्रत्रय आदि पक्ष में एक अर्घ्य को विभाग करके उनमें दे। अर्घ्य के अन्त में जलदान 'पितरिदं ते अर्घ्यं' इस अर्घ्य मन्त्र की आवृत्ति प्रतिब्राह्मण होती है। इसी प्रकार पितामह आदि के ब्राह्मणों में भी ऐसे ही अर्घ्य देकर ब्राह्मण के हाथ से गिरते हुये जल का "या दिव्या' इस मन्त्र से प्रत्येक ब्राह्मण का अनुमन्त्रण करे, ऐसा बह्वृच शाखा वाले कहते हैं।

अन्यशाखिनां तु या दिव्या इति मन्त्रेणार्घ्यदानम्। अर्घ्यदानान्ते प्रतिविप्रमपो दानम्। तथा चैकविप्रत्वेऽनुमन्त्रणमपो दानं चान्ते सकृदेव। विप्रभेदे त्वावर्तते। अर्घ्यदाने नामगोत्राद्युच्चारो न क्रियते। श्राद्धसागरकारैस्तु कार्य इति युक्तं भातीत्युक्तम्।

अन्य शाखा वालों का तो 'या दिव्या' इस मन्त्र से अर्घ्यदान होता है। अर्घ्यदान के अन्त में प्रतिविप्र को जलदान करे। इस तरह एक ब्राह्मणपक्ष में अनुमन्त्रण और जल का दान अन्त में एक बार ही होता है। विप्रभेद में तो आवृत्ति होती है। अर्घ्यदान में नाम गोत्र आदि का उच्चारण नहीं किया जाता। श्राद्धसागरकार तो उच्चारण करना कहते हैं, यह युक्त प्रतीत होता है यह कहा है।

अथ संस्रावमुखाञ्जनादिविचारः

अथ शेषजलयुतप्रथमार्घ्यपात्रे पात्रद्वयस्थशेषोदकमेकीकृत्य तेन जलेन मुखाञ्जनं कार्यम्। आयुःकामेन नेत्रसेचनं कार्यम्। संस्रवान्समवनीयेत्याद्याश्वला-

यनसूत्रात्। केचिद्विप्रहस्तगलिताम्बुसंस्रावस्तस्यैकीकरणमाहुः। दर्शादौ मातामहपात्रोदके तत्पात्रद्वयोदकं समवनीय मातामहपात्रोदकं पितृपात्रस्थसंस्रावे संनयेत्। मातृपार्वणभेदे मातामहपात्रसमवनीतोदकं मातृपात्रस्थसमवनीतोदके तदुदकं पितृपात्रस्थैकीकृतोदक इति तत्संस्रावपात्रं दैविकविप्रादुत्तरतोऽरत्निमात्रे प्रोक्षिते दर्भेषु न्युब्जं सकूर्चं पितृभ्यः स्थानमसीत्यासादयेत्।

अवशिष्ट जलयुक्त दो अर्घ्यपात्रों का बचा हुआ जल मिला कर उस जल से मुखाञ्जन करे। आयुष्य चाहने वाले को उससे आंख धोना चाहिये, क्योंकि आश्वलायन सूत्र में 'संस्रवान् समवनीय' संस्रव को लेकर सींचे इत्यादि कहा है। कुछ लोग ब्राह्मण के हाथ से गिरा हुआ जल संस्राव है उसको मिलाने को कहते हैं। दर्श आदि में मातामह-पात्र के जल में दो पात्रों का जल मिलाकर मातामह-पात्र का जल पितृपात्रस्थित संस्राव में मिलावे। मातृपार्वण के भेद में मातामह के पात्र में मिलाया हुआ जल मातृपात्रस्थित मिले हुए जल में वह जल पितृपात्रस्थित एक किये जल में मिला दे। उस संस्राव-पात्र को दैविक ब्राह्मण से उत्तर की ओर अरत्निमात्र प्रोक्षित भूमि में कुशाओं पर कूर्चसहित उलटा करके 'पितृभ्यः स्थानमसि' ऐसा कहके रख दे।

यद्वा प्रथमपात्रमुत्तानं संस्रावोदकसहितं मन्त्रेणासाद्य तृतीयपात्रेण सकूर्चपवित्रं तदाच्छादयेत्। पक्षद्वयेऽपि गन्धादिनाभ्यर्च्यासमाप्तेर्न चालयेन्न च स्पृशेत्। कातीयास्तु शुन्धन्तामिति भूमिं प्रोक्ष्य पितृषदनमसीति कुशानास्तीर्य पितृभ्यः स्थानमसीति प्रथमं न्युब्जं कृत्वा गन्धादिदीपान्तैरर्चन्ति।

अथवा संस्राव के जल-सहित प्रथम पात्र को मन्त्र से उत्तान रखकर कूर्चसहित पवित्र को तीसरे पात्र से ढक दे। दोनों पक्षों में भी गन्ध आदि से पूजन करके समाप्ति तक न उसे चलावे न स्पर्श करे। कातीय तो—'शुन्धन्तां' इस मन्त्र से भूमि का प्रोक्षण करके 'पितृषदनमसि' इस मन्त्र से कुशा बिछा कर 'पितृभ्यः स्थानमसि' यह कहके प्रथम पात्र को उल्टा करके गन्ध से लेकर दीपपर्यन्त पूजन करते हैं।

अथ पितॄणां गन्धाद्यैः पूजनम्

अथ प्राचीनावीती आद्यन्तयोरपो यच्छन् गन्धाद्यैः पूजनं चरेत्—अमुकशर्मन् यथानामगोत्र अयं ते गन्धः स्वधा नम इति। एकविप्रत्वे शर्माणोऽयं गन्ध इत्यादिना त्रिस्त्रिर्गन्धदानम्। शेषं प्राग्वत्। केचिदमी ते गन्धा इति बहुत्वं गन्धे प्राहुः। अर्घ्यदानभिन्ने सर्वत्र स्वधा नम इत्यन्तेन दानम्।

प्राचीनावीती होकर आदि अन्त में जल देते हुए गन्ध आदि से पूजन करे—'अमुक-शर्मन् यथानाम-गोत्र अयं गन्धः स्वधा नमः'। एक विप्र पक्ष में 'शर्माणः अयं वो गन्धः' इत्यादि कहकर तीन-तीन बार गन्धदान करे। शेष पूर्ववत् है। कुछ लोग—'अमी ते गन्धा' ऐसा गन्ध में बहुवचन का प्रयोग करते हैं। अर्घ्यदान के अतिरिक्त सर्वत्र 'स्वधा नमः' इसके अन्त में दान करे।

---

१. यमः—'पैतृकं प्रथमं पात्रं तस्मै पैतामहं न्यसेत्। प्रपितामहं ततो न्यस्य नोद्धरेन्न च चालयेत्॥ स्पृष्टमुत्तानमन्यत्र नीतमुद्घाटितं तथा। पात्रं दृष्ट्वा व्रजन्त्याशु पितरस्तं शपन्ति च॥' उशनाः—'उत्तानं विवृतं वापि पितृपात्रं न तद्भवेत्।' वैश्वदेवे उत्तानमिति मदनपारिजातः।

अत्र पित्र्यविप्रपूजने गन्धादेः पदार्थानुसमयः काण्डानुसमयो वा। संपूर्णवाचनादि प्राग्वत्कृत्वा चतुष्कोणं वर्तुलं च यथाक्रमं वारिणा गोमयभस्मादिना वा [1]मण्डलानि सव्यापसव्याभ्यां कुर्यात्। तत्र नैर्ऋतीमारभ्येशानोपर्यन्तं दैवे, ईशानीतो नैर्ऋतीपर्यन्तं पित्र्ये च प्रादक्षिण्याप्रादक्षिण्याभ्यां कार्याणि। तत्र पूर्वोक्तपात्राण्यासादयेत्।

इसमें पितृब्राह्मण के पूजन में गन्ध आदि का पदार्थानुसमय या काण्डानुसमय समस्त वाचनादि पूर्ववत् करके चौकोना और गोल यथाक्रम जल से अथवा गोबर-भस्म आदि से सव्य-अपसव्य होकर मण्डल बनावे। यहां मंडल देव में नैर्ऋत्य दिशा से आरंभ करके ईशान दिशा तक और पित्र्य में ईशान से नैर्ऋत्यदिशा पर्यन्त प्रदक्षिण और अप्रदक्षिण क्रमसे करे। उसमें पूर्वोक्त पात्रों को रखे।

अथ पात्रासादनादि

नायसान्यपि पात्राणि पैत्तलानि न तु क्वचित्।
न च सीसमयानीह शस्यन्ते त्रपुजान्यपि॥

कांस्यपात्रं विकल्पितम्[2]। पर्णपात्रेषु पलाशमधूकोदुम्बरकुटजप्लक्षजानि शस्तानि। कदलीचूतपनसजम्बुचम्पकानि मध्यमानि[3]। एवं पात्राण्यासाद्य पितृपूर्वकं परितो भस्ममर्यादां पितृपूर्वकविप्राणां [4]करशुद्धिं च सव्यापसव्याभ्यां कुर्यात्। तत्र पिशङ्ग इति रक्षाण इति मन्त्रद्वयं केचिदाहुः। आचम्य करशुद्धिजलं पादक्षालनमण्डले[5] क्षिपेत्।

पात्रासादन—लोहे के पात्र न रखे। कहीं पीतल के पात्रों का भी निषेध है। शीशा तथा रांगे के भी पात्र प्रशस्त नहीं होते। कांस्य-पात्र में विकल्प है। पत्ते के पात्रों में—पलाश, महुआ, गूलर,

---

१. मण्डल के अभाव में मार्कण्डेय ने दोष कहा है—'यातुधानाः पिशाचाश्च क्रूरा ये चैव राक्षसाः। हरन्ति रसमन्नस्य मण्डलेन विवर्जितम्॥' ब्रह्मपुराणे—'मण्डलानि च कार्याणि नैवारैश्चूर्णकैः शुभैः। गौरमृत्तिकया वापि कारयेन्मण्डलं ततः। चतुःकोणं द्विजाग्रचस्य त्रिकोणं क्षत्रियस्य तु। मण्डलाकृति वैश्यस्य शूद्रस्याभ्युक्षणं स्मृतम्॥' बह्वृचपरिशिष्ट में प्रकारान्तर है—'दैवे चतुरस्रं पित्र्ये वृत्तं मण्डलं कृत्वा क्रमेण सयवान् सतिलांश्च दर्भान् दद्यात्' इति।

२. वाराहपुराण के—'सौवर्णानीह रौप्याणि कांस्यानि तदसम्भवे' इस विधायक वचन और ब्रह्मपुराण के—'कांस्यपात्रे हविर्दृष्ट्वा निराशाः पितरो गताः' इस निषेधक वचन से कांस्यपात्र वैकल्पिक है।

३. अङ्गिरा के—'न जातीकुसुमानि दद्यान्न कदलीपत्रम्' इस वचन के अपवाद में स्मृतिसंग्रहोक्त—'श्राद्धे पलाशपात्राणि मधुकौदुम्बराणि च। पारिकाकुटजप्लक्षककचानि क्रमाज्जगुः॥ कदलीचूतपनसजम्बुपुन्नागचम्पकाः। अलाभे मुख्यपात्राणां ग्राह्याः स्युः पितृकर्मणि॥' इस वचन से मुख्यपात्रों के अलाभ में ग्राह्य होने से कदलीपत्रादि मध्यम हैं।

४. मत्स्यपुराणे—'अकृत्वा भस्ममर्यादां यः कुर्यात् पाणिशोधनम्। आसुरं तद् भवेच्छ्राद्धं पितॄणां नोपतिष्ठते॥' इति।

५. ब्रह्माण्डे—'प्रक्षाल्य हस्तपादादि पश्चादद्भिर्विधानवत्। प्रक्षालनजलं दर्भैस्तिलैर्मिश्रं क्षिपेच्छुचौ॥' मण्डलोपरीति हेमाद्रिः।

कुरैया और पाकड़ के प्रशस्त होते हैं। केला, आम, कटहल, जामुन और चम्पा के मध्यम होते हैं। इस प्रकार पात्रासादन करके पितृपूर्वक चारो तरफ से भस्म-मर्यादा और पितृपूर्वक ब्राह्मणों की हस्त-शुद्धि सव्य-अपसव्य से करे। उसमें कोई 'पिशंग' और 'रक्षाण' इन दो मन्त्रों को कहते हैं। आचमन करके कर-शुद्धि के जल को पादक्षालन मण्डल में फेंक दे।

अथ अग्नौकरणम्

तत्राश्वलायनानां गृह्याग्निमतां व्यतिषङ्गेण श्राद्धप्रयोगे गृह्याग्निपक्वचरुणा गृह्याग्नावेव कार्यम्। व्यतिषंगाभावे पाणिहोमः। श्रौताग्निमतां दर्शे व्यतिषङ्गाभावात्पाणिहोम एव। पूर्वेद्युरन्वष्टक्ययोर्दक्षिणाग्नौ श्रपणं होमश्च। निरग्निकानां तु सर्वत्र पाणिहोम एव।

अग्नौकरण—गृह्याग्नि वाले आश्वलायनों को व्यतिषंग (अन्योन्यसंबन्ध) से श्राद्धप्रयोग में गृह्याग्नि में पके हुए चरु से गृह्याग्नि में ही करना चाहिये। व्यतिषंग के अभाव में पाणिहोम करे। श्रौताग्नि वालों का दर्श में व्यतिषंग का अभाव होने से पाणिहोम ही होता है। पहले दिन दो अन्वष्टकाओं में दक्षिणाग्नि में श्रपण और होम होता है। निरग्निकों का तो सर्वत्र पाणिहोम ही होता है।

आपस्तम्बादीनां श्रौताग्निमतां सर्वाधानिनां दक्षिणाग्नौ, अर्धाधानिनां गृह्याग्निमात्रवतां च गृह्याग्नावेव। प्रवासस्थानां निरग्निकानां च अयाश्चाग्ने मनोज्योतिरुद्बुध्यव्याहृतिहोमेनोत्पादिते लौकिकाग्नौ हुत्वाग्नेरुत्सर्गः, न त्वेषां कापि पाणिहोमः। पाकस्तु सर्वत्र पचनाग्नावेव।

श्रौताग्निवाले आपस्तम्ब आदि सर्वाधानियों का दक्षिणाग्नि में और केवल गृह्याग्नि वाले अर्धाधानियों का गृह्याग्नि में ही होम होता है। परदेशस्थित निरग्निकों का 'अयाश्चाग्ने' 'मनोज्योति' 'उद्बुध्यस्व' और व्याहृति के होम से उत्पादित लौकिकाग्नि में होम करके अग्नि का त्याग करे। इनके यहां कहीं भी पाणिहोम नहीं होता। पाक तो सब जगह पचनाग्नि में ही होता है।

कातीयानां गृह्याग्निमतां गृह्याग्निविहृतपचनाग्नौ पाकोऽग्नौकरणं तु गृह्याग्नावेव। श्रौताग्निमतां सर्वाधानपक्षे दक्षिणाग्नावर्धाधानपक्षे औपासनाग्नाविति काशिकायामुक्तम्। कातीयानामर्धाधानपक्ष एव युक्त इति भाति। निरग्नीनां कातीयानामपसव्यादिना पित्र्यादिद्विजहस्त एवाग्नौकरणम्। तत्र पक्षद्वयम्—देवद्विजकरे एव सव्येन होमः, यद्वाऽपसव्येन पित्र्यद्विजपंक्तौ प्रथमद्विजकरे इति। बह्वृचानां तु पित्र्यद्विजकरेष्वेव प्रतिविप्रं होमः।

गृह्याग्नि वाले कातीयों का गृह्याग्निविहृत पचनाग्नि में पाक और अग्नौकरण तो गृह्याग्नि में ही होता है। काशिका में कहा है—श्रौताग्नि वालों का सर्वाधान पक्ष में दक्षिणाग्नि में और अर्धाधान पक्ष में औपासनाग्नि में होम होता है। कातीयों का अर्धाधान पक्ष ही ठीक है ऐसा युक्त प्रतीत होता है। निरग्निककातीयों का अपसव्य आदि से पित्र्यादि ब्राह्मण के हाथ ही में अग्नौकरण होता है। उसमें दो पक्ष हैं—देव-ब्राह्मण के हाथ में ही सव्य से होम अथवा अपसव्य से पितृब्राह्मण की पंक्ति में प्रथम ब्राह्मण के हाथ में होता है। बह्वृचों का तो पितृब्राह्मण के हाथ में ही प्रतिविप्र होम होता है।

वाजसनेयिनां त्वेकहोम एवेति श्राद्धकाशिकायां कातीयसूत्रवृत्तौ। केचित्तु पृष्टोदिविविधानेनाग्निमुत्पाद्याग्नावेव जुह्वति। सामगादीनां साग्नीनामग्नावग्ने-

रसन्निधाने दैवकरे पित्र्यकरे वा। निरग्नीनां तु देवद्विजकर एव। मृतभार्यस्यापत्नीकस्य प्रथमदेवद्विजकर एव होमो न पित्र्ये इति सर्वसाधारणम्।

वाजसनेयियों का तो एक होम ही होता है, ऐसा श्राद्धकाशिका कातीयसूत्रवृत्ति में कहा है। कोई तो पृष्ठोदिविविधान से अग्नि का उत्पादन करके अग्नि में ही होम करते हैं। साग्निक सामवेदियों के यहां अग्नि में और अग्नि की असन्निधि में देव या पितृ-ब्राह्मणों के हाथ में होम होता है। निरग्निकोंका देवब्राह्मण के हाथ में ही होम होता है। जिसकी स्त्री मर चुकी है उस पत्नीरहित का प्रथम देवब्राह्मण के हाथ में होम होता है पितृ-ब्राह्मण के हाथ में नहीं, यह सर्वसाधारण है।

अथ होमप्रकारः

बह्वृचानां व्यतिषङ्गपक्षे 'अग्नावग्नौकरणं करिष्ये' इति पृष्ट्वा क्रियतामिति अनुज्ञातो गृह्यपक्वं चरुमुद्धृत्य द्विधा विभज्यापसव्येनोत्तरभागादवदानसम्पदामेक्षणेऽवदाय सोमाय पितृमते स्वधा नमः सोमाय पितृमत इदं न ममेति होमत्यागौ कृत्वा दक्षिणभागात्पुनस्तथैवावदाय अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नम इति होमत्यागौ कुर्यात्। सव्येनापसव्येन वा मेक्षणमग्नावनुप्रहरेत्। यद्वा सव्येन 'स्वाहान्तोक्तमन्त्रेणाहुतिद्वयं सोमाग्न्योर्व्यत्यासेनादाय जुहुयादिति।

बह्वृचों का व्यतिषंग पक्ष में 'अग्नावग्नौकरणं करिष्ये' यह पूछकर 'क्रियताम्' ऐसी अनुज्ञा पाकर गृह्याग्नि में पकाये हुए चरु को निकाल कर दो विभाग करके अपसव्य से उत्तर भाग से अवदानसम्पदा, मेक्षण इन दोनों को लेकर 'सोमाय पितृमते स्वधा नमः इदं न मम' इससे होम और त्याग करके दक्षिणभाग से पुनः उसी तरह 'अग्नये कव्यवाहनाय स्वधा नमः' इससे होम और त्याग करें। सव्य से अथवा अपसव्य से मेक्षण को अग्नि में छोड़ दे। अथवा सव्य से स्वाहान्त उक्त मन्त्र से दो आहुति लेकर व्यत्यास से सोम और अग्नि के लिये होम करे।

कातीयानां तु गृह्ये श्रपणमकृत्वैव पचनाग्निपक्वमन्नमादाय घृताक्तं कृत्वा पूर्ववत्प्रश्नानुज्ञाऽनन्तरं स्मार्ताद्यग्निं परिस्तीर्य तिस्रः समिध आधाय सव्येनाग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहेति मेक्षणेनाहुतिद्वयं जुहुयादपसव्येन वा पाणिहोमेऽपीत्थमेव प्रकार ऊह्यो विशेषस्तूक्तः।

कातीयों का तो गृह्याग्नि में पकाये विना ही पचनाग्नि में पकाया हुआ अन्न लेकर उसे घृताक्त करके पहले के समान प्रश्न और अनुज्ञा के बाद स्मार्त आदि अग्नि का कुश परिस्तरण करके तीन समिधा लेकर सव्य से 'अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा' 'सोमाय पितृमते स्वाहा' ऐसा कहकर मेक्षण से दो आहुति दे अथवा अपसव्य से पाणिहोम में भी इसी प्रकार ऊह करे। विशेष तो कहा है।

आपस्तम्बानां तु आज्यभागान्ते उद्ध्रियतामग्नौ च क्रियतामिति प्रश्ने काममुद्ध्रियतामिति अनुज्ञानम्। हिरण्यकेशीयानामुद्धरिष्याम्यग्नौ करिष्यामीति

---

१. शौनकः—'स्वाहाकारेण होमे तु भवेद्यज्ञोपवीतवान्। तत्र प्रागग्नये हुत्वा पश्चात् सोमाय हूयते॥ अग्नौ यज्ञोपवीत्येव प्रक्षिपेन्मेक्षणं ततः॥' छन्दोगपरिशिष्टे—'अग्नौकरणहोमश्च कर्तव्य उपवीतिना। अपसव्येन वा कार्यो दक्षिणाभिमुखेन च॥' इति।

प्रश्नः। यन्मे मातेत्यादिमन्त्रैः सप्तान्नाहुतयः षडाज्याहुतय इति त्रयोदशाहुतयः। मन्त्रास्तु विस्तरभयान्नोक्ताः।

आपस्तम्बों का तो आज्यभाग के अन्त में 'उद्ध्रियतामग्नौ च क्रियतां' इस प्रश्न में 'काममुद्ध्रियतां' यह अनुज्ञा होती है। हिरण्यकेशियों का 'उद्धरिष्यामि, अग्नौ करिष्यामि' यह प्रश्न होता है। 'यन्मे माता' इत्यादि मन्त्रों से अन्न की सात आहुति और घी की छ आहुति, इस प्रकार तेरह आहुतियां होती हैं। विस्तार के भय से मन्त्र नहीं कहे।

हिरण्यकेशीयानामाज्यभागान्ते सोमाय पितृमते इत्यादि षोडशमन्त्रैः षोडशाज्याहुतयः षोडशान्नाहुतयश्च प्रतिपार्वणं बोध्याः। मन्त्रेषु पित्रादिपदोह आज्यान्नपदयोरूहश्च तद्ग्रन्थेष्वेव ज्ञेयोऽतिविस्तृतत्वान्नोच्यते।

हिरण्यकेशियों का आज्यभाग के अन्त में 'सोमाय पितृमते' इत्यादि सोलह मन्त्रों से घी की सोलह और अन्न की सोलह आहुतियां प्रत्येक पार्वण में जानना चाहिये। मन्त्रों में पिता आदि पद का ऊह और आज्यान्न पद का ऊह उनके ग्रन्थों से ही जानना चाहिये, अतिविस्तृत होने से नहीं कहता हूँ।

अथ पाणिहोमप्रकारः

तत्र 'विप्रपाणावग्नौकरणं करिष्ये' इति प्रश्नः, क्रियतामित्यनुज्ञा। करिष्ये इति प्रश्ने कुरुष्वेत्यनुज्ञा न भवतीति सर्वत्राश्वलायनमतम्। कातीयादीनां तु भवत्येव। आश्वलायनसूत्रवृत्तौ तु पाणिहोमे कथमपि प्रश्नः प्रतिवचनं च न कार्यमिति द्योतितम्। सदर्भं पित्र्यविप्रपाणिं सव्येन परिसमुह्य पर्युक्ष्य मेक्षणेन करेण वा पूर्ववदाहुतिद्वयं सोमायेत्यादिमन्त्राभ्यां प्राचीनावीत्येव जुहुयात्। तत्र करेण होमपक्षे वामहस्तेन दर्भेण दक्षिणकरे उपस्तीर्य दक्षिणेन द्विरवदाय वामेनाभिघार्य चतुरवत्तित्वादि संपाद्यम्।

पाणिहोम में 'विप्रपाणौ अग्नौकरणं करिष्ये' यह प्रश्न है, 'क्रियताम्' यह आज्ञा है। 'करिष्ये' इस प्रश्न में 'कुरुष्व' ऐसी आज्ञा नहीं होती यह सर्वत्र आश्वलायन का मत है। कातीयों का तो होता ही है। आश्वलायनसूत्र की वृत्ति में तो पाणिहोम में किसी प्रकार का प्रश्न या प्रतिवचन नहीं करे, ऐसा प्रकट किया है। कुशसहित पितृ-ब्राह्मण के हाथ का सव्य से परिसमूहन और पर्युक्षण करके मेक्षण से या हाथ से पूर्ववत् दो आहुति यों का होम 'सोमाय' इत्यादि दो मन्त्रों से प्राचीनावीती होकर ही करे। उसमें हाथ से होम के पक्ष में बाएं हाथ से कुश लेकर और दाहिने हाथ में उपस्तरण करके दक्षिण हाथ से दो बार अवदान करके और बाएं हाथ से अभिघारण कर चतुरवत्तित्वादि का सम्पादन करे।

बह्वृचानां सर्वपित्र्यकरेषु होमः। एकोद्दिष्टविप्रकरे होमः कृताकृतः। होमान्ते सव्येन परिसमूहनोक्षणे। पाणिहोमे मेक्षणानुप्रहरणं न। केचित्पाणिहोमे परिसमूहनादिकं मेक्षणं च नेच्छन्ति। विप्राश्च पाणिहुतान्नं कर्त्रा देवपूर्वं सव्येनैवामासुपकमिति मन्त्राभिघारिते स्वस्वपात्रे संस्थाप्य भोजनस्थानादन्यत्राचम्य यथास्थानमुपाशेयुः।

बह्वृचों का सब पितृ-ब्राह्मणों के हाथों में होम होता है। एकोद्दिष्ट-ब्राह्मण के हाथ में होम करे या नहीं करे। होम के अन्त में सव्य से परिसमूहन और उक्षण करे। पाणिहोम में मेक्षण का अनुप्रहरण नहीं करे। कुछ लोग पाणिहोम में परिसमूहन आदि और मेक्षण को नहीं चाहते। ब्राह्मण भीपाणि में होम किये अन्न को कर्ता के द्वारा देवपूर्वक सव्य से ही 'आमासुपक्वं' इस मन्त्र से अभिघारित अपने-अपने पात्रों में रख कर भोजनस्थान से दूसरी जगह आचमन करके अपने-अपने स्थान पर बैठें।

अथ हुतशेषविचारः

अग्नौकरणशेषं पिण्डार्थमवस्थाप्य पित्र्यपात्रेष्वेव सर्वान्नपरिवेषणान्ते परिवेषणीयम्। केचिदग्नौकरणशेषपरिवेषणोत्तरं सर्वान्नपरिवेषणमाहुः। अग्नौकरणशेषं [1]देवपात्रेषु न देयम्। कातीयानां तु साग्नीनामग्नौ होमे देवपूर्वं सर्वपात्रेषु शेषदानम्। निरग्नेर्देवविप्रकरे होमे पितृपात्रेष्वेव पित्र्यकरे होमे देवादिसर्वपात्रेषु हुतशेषदानमिति काशिका।

अन्नं पाणौ हुतं यच्च यच्चान्यत्परिवेषितम्।
एकीकृत्यैव भोक्तव्यं पृथग्भक्षो न विद्यते॥

बौधायनानां तु पाणिहुतेऽन्ने भक्षितेऽन्यान्नपरिवेषणमुक्तम्।

अग्नौकरण के बचे हुए अन्न को पिण्ड के लिये रखकर पितृपात्रों में ही सब अन्न परोसने के बाद परोसे। कुछ लोग अग्नौकरण-शेष का परिवेषण करने के बाद सब अन्न का परिवेषण कहते हैं। अग्नौकरण-शेष को देवपात्रों में नहीं दे। साग्निक कातीयों का तो अग्नि के होम में देवपूर्वक सब पात्रों में शेष-दान होता है। निरग्निक का देवब्राह्मण के हाथ में होम करने पर पितृपात्रों में ही पितृब्राह्मण के हाथ में देव आदि सभी पात्रों में होम-शेष का दान होता है, ऐसा काशिका का मत है। जिस अन्न का होम पाणि में किया गया है और जो परोसा गया है उसको मिलाकर ही भक्षण करे उसका अलग भक्षण नहीं करे। बौधायनों का तो पाणिहुत अन्न-भक्षण के बाद दूसरे अन्न का परिवेषण कहा है।

अथ अन्नपरिवेषणम्

अथ पूर्वोक्तवद्देवपूर्वं घृताभिघारितपात्रेषु पूर्वोक्तहविष्यान्नपरिवेषणं [2]स्वयं पत्नी वान्यो वा कुर्यात्।

नापवित्रेण नैकेन हस्तेन च विना कुशम्।
नायसेनापि पात्रेण श्राद्धेषु परिवेषयेत्॥

---

१. हुतावशिष्ट के सम्बन्ध में यम ने कहा है—'दैवविप्रकरेऽनग्निः कृत्वाऽग्नौकरणं द्विजः। शेषयेत् पितृविप्रेभ्यः पिण्डार्थं शेषयेत्तथा॥ अग्नौकरणशेषं तु पित्र्येषु प्रतिपादयेत्। हुतशेषं न दद्याच्च कदाचिद् वैश्वदेविके॥' वायुपुराणे—'हुत्वा दैवकरेऽनग्निः शेषं पित्र्ये निवेदयेत्। न हि स्मृताः शेषभाजो विश्वेदेवाः पुराणगैः॥' इति।

२. धर्म का कथन है—'फलस्यानन्तता प्रोक्ता स्वयं च परिवेषणे।' वायुपुराण और भविष्यपुराण में कहा है—'भार्यया श्राद्धकाले तु प्रशस्तं परिवेषणम्।' हारीतः—'सौवर्णराजताभ्यां च खड्गेनौदुम्बरेण वा। दत्तमक्षय्यतां याति फल्गुपात्रेण वा पुनः॥' फल्गुपात्रं = कठूमर काठ का बना पात्र।

व्यञ्जनादिकं[१] पर्णाद्यन्तर्हितहस्तैर्देयम् ।

दर्व्या देयं घृतं चान्नं समस्तव्यञ्जनानि च ।
उदकं चैव पक्वान्नं नो दर्व्या तु कदाचन ॥
हस्तदत्तं तु नाश्नीयाल्लवणव्यञ्जनादिकम् ।
अपक्वं तैलपक्वं च हस्तेनैव प्रदीयते ॥

इसके बाद पहले कहे हुए के समान देवपूर्वक घृताभिघारित पात्रों में पहले कहे हुए हविष्यान्न का परिवेषण स्वयं वा पत्नी अथवा अन्य कोई करे। अपवित्र होकर एक हाथ से, विना कुश के, लोहे के पात्र से, श्राद्ध में परिवेषण न करे। तरकारी आदि को पत्ते आदि से ढककर हाथ से दे। घृत अन्न और समस्त व्यंजन कलछुल से दे। जल और पकाया हुआ अन्न कलछुल से कभी न दे। हाथ का दिया हुआ लवण व्यंजनादिक न खाय। विना पका हुआ और तेल से पका हुआ हाथ ही से दिया जाता है।

घृतादिपात्राणि भूमौ स्थापयेन्न भोजनपात्रे। ओदने परमान्ने च पात्रमासाद्य तत्र घृतपूरणे रुधिरतुल्यता।

पंक्तौ विषमदातुश्च निष्कृतिर्नैव विद्यते।
सर्वदा च तिला ग्राह्याः पितृकृत्ये विशेषतः ॥
भोज्यपात्रे तिलान्दृष्ट्वा निराशाः पितरो गताः ।

हिंगुशुण्ठीपिप्पलीमरीचकानि शाकादिसंस्कारार्थान्येव न तु साक्षाद्भक्षयेत्। परिवेषणकाले एव तत्सर्वप्रकारमन्नं *पिण्डार्थं पिण्डपात्रे* परिवेषणीयमिति सागरे।

घृत आदि के पात्रों को भूमि पर रखें, भोजन-पात्र में नहीं। ओदन और परमान्न को पात्र में परोसकर उसमें घी भर दे तो रुधिर के समान है। भोजन की पंक्ति में कम ज्यादा परोसने वालों का कोई निस्तार नहीं है। तिल सदा ग्राह्य है विशेषतः पितृकृत्य में। भोज्य पात्र में तिलों को देखकर पितर लोग निराश होकर चले जाते हैं। हींग, सोंठ, पीपर और मरिच, शाक आदि संस्कार के लिये ही हैं, न कि साक्षात् खाने के लिये। परोसने के समय में ही सब प्रकार के उस अन्न को पिण्ड के लिये पिण्डपात्र में परोसे, ऐसा श्राद्धसागर में लिखा है।

अथ अन्ननिवेदनम्

अथोपवीती दैवे पात्रे परितः कुशयवान्विकीर्य पित्र्ये तु तिलान्विकीर्यान्नं गायत्र्या प्रोक्ष्य तूष्णीं परिषिच्य दक्षिणहस्त उपरि वामोधो दैवे, पित्र्ये तु विप-

---

१. आदि-पद से लवणादि ग्राह्य है, जैसा वसिष्ठ ने कहा है—'हस्तदत्ताश्च ये स्नेहा लवणं व्यञ्जनानि च। दातारं नोपतिष्ठन्ति भोक्ता भुङ्क्ते च किल्बिषम् ॥ तस्मादन्तरिते देयं पर्णेनाथ तृणेन वा ॥' सङ्ग्रहे—'हस्तदत्तं तु नाश्नीयाल्लवणव्यञ्जनादिकम्। अपक्वं तैलपक्वं च हस्तेनैव प्रदीयते ॥' इति।

रीत इत्येवं स्वस्तिकाकारकराभ्यां पात्रमालभेत्[1]। तत्र मन्त्रः—पृथिवी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्त्वामुखेऽमृतं जुहोमि। ब्राह्मणानां त्वा विद्यावतां प्राणापानयोर्जुहोम्यक्षितमसि मैषां क्षेष्ठा अमुत्रामुष्मिँल्लोके इति। अयं मन्त्र आपस्तम्बकात्यायनादिभिर्नानाविधः पठितो यथासंप्रदायं वाच्यः। इत्यभिमन्त्र्य अतो देवा इति वा इदं विष्णुरिति वा ऋचमुक्त्वा विष्णो हव्यं रक्षस्वेति, पित्र्ये तु कव्यं रक्षस्वेति न्युब्जेन करेण न्युब्जं [2]द्विजांगुष्ठमनखमन्ने निवेश्य प्रदक्षिणं भ्रामयेत्, पित्र्ये त्वप्रदक्षिणम्।

इसके बाद उपवीती होकर देव पात्र में चारो ओर कुश-जव को और पितृ में तो तिलों को बिखेर कर गायत्री से अन्न का प्रोक्षण कर विना मन्त्र के जल से सींच कर देव में दाहिना हाथ ऊपर बायां हाथ नीचे, पितृ में तो इसके विपरीत, इस प्रकार स्वस्तिकाकार दोनों हाथों से पात्र का स्पर्श करे। उसमें मन्त्र है—'पृथिवी ते पात्रं द्यौरपि धानं०' इत्यादि। यह मन्त्र आपस्तम्ब और कात्यायन आदि ने अनेक प्रकार का कहा है उसे अपने सम्प्रदायानुसार कहे। इस मंत्र से अभिमन्त्रण करके 'अतो देवा' या 'इदं विष्णुः' इस ऋचा को कहकर देव में 'विष्णो हव्यं रक्षस्व', पित्र्य में तो 'कव्यं रक्षस्व' इस प्रकार उलटे हाथ से नखरहित ब्राह्मण के अंगूठे को अन्न पर रख कर प्रदक्षिण-क्रम से और पित्र्य में तो अप्रदक्षिण क्रम से घुमावे।

अत्र कातीयानामपहता इति यवानां दैवे तिलानां पित्र्ये पात्रपरितोऽवकिरणमुक्तम्। ततो वामकरेण पात्रं स्पृशन्नमुके विश्वेदेवा देवता इदमन्नं हव्यमयं ब्राह्मण आवहनीयार्थे इयं भूर्गया अयं भोक्ता गदाधर इदमन्नं ब्रह्म इदं सौवर्णपात्रमक्षय्यवटच्छायेयम् अमुकदेवेभ्य इदमन्नं सोपस्करममृतरूपं परिविष्टं परिवेक्ष्यमाणं चातृप्तेः स्वाहा हव्यं नमो न मम ओं तत्सदिति सयवदर्भजलं दक्षिणकरेण पात्रवामभागे भूमौ क्षिपेत्। एवं दैविकविप्रान्तरेऽपि। ततो ये देवास इत्युपस्थानम्।

यहां कातीयों का देवश्राद्ध में 'अपहता' इस मन्त्र से जवों का और पित्र्य में तिलों का पात्र के चारो ओर अवकिरण (बिखेरना) कहा है। तदनन्तर पात्र को बाएं हाथ से स्पर्श करते हुए 'अमुके विश्वेदेवा देवता इदमन्नं हव्यमयं०' इत्यादि मूलोक्त वाक्य से जवसहित कुश-जल को दक्षिण हाथ से पात्र के वामभाग की भूमि में छोड़ दे। इसी प्रकार दैविक अन्य ब्राह्मणों में भी करे। इसके बाद 'ये देवास' इस मन्त्र से उपस्थान करे।

---

१. चतुर्विंशतिमत में पात्रालम्भन का प्रकार—'उत्तानं दक्षिणं सव्यं नीचं पात्राण्युपस्पृशेत्।' याज्ञवल्क्यः—'दत्त्वान्नं पृथिवीपात्रमिति पात्राभिमन्त्रणम्। कृत्वेदं विष्णुरित्यन्ते द्विजाङ्गुष्ठं निवेशयेत्॥' इति।

२. हारीत ने अङ्गुष्ठनिवेशन आवश्यक कहा है—'निरङ्गुष्ठं च यच्छ्राद्धं न तत्प्रीणाति वै पितॄन्।' वीरमित्रोदय में बौधायनोक्त अङ्गुष्ठनिवेशन की विशेषता—'परिवर्त्य न चाङ्गुष्ठं द्विजस्यान्ने निवेशयेत्। राक्षसं तद्भवेद्दैवं पितॄणां नोपतिष्ठते॥ उत्तानेन तु हस्तेन द्विजाङ्गुष्ठनिवेशनम्। यः करोति द्विजो मोहात्तद् वै रक्षांसि भुञ्जते॥' इति।

ततः पित्र्यधर्मेण पितृपात्रालम्भांगुष्ठनिवेशनाद्यन्ते वामेन पात्रमालभ्य पिता देवता एकविप्रत्वे पित्रादयो यथानामगोत्रा देवता इदमन्नं कव्यमित्यादि०, इदं राजतं पात्रमक्षय्यवटच्छायेयम् अस्मत्पित्रेऽमुकनामगोत्ररूपाय, त्रयस्थाने विप्रैक्येऽस्मत्पितृपितामहप्रपितामहेभ्योऽमुकगोत्रनामरूपेभ्यः इदमन्नं सोपस्करममृतरूपं परिविष्टं परिवेक्ष्यमाणं चातृप्तेः स्वधा कव्यं नमो न मम ॐ तत्सदिति तिलकुशजलं पितृतीर्थेन वामकराधोनीतेन दक्षिणकरेण पात्रदक्षिणे भूमौ[1] क्षिपेत्। एवमन्यत्रापि यथादैवतमूहः।

तदनन्तर पित्र्य धर्म से पितृ-पात्र का स्पर्श और अंगुष्ठनिवेशन आदि के अन्त में बायें हाथ से पात्र का स्पर्श कर पितृदेवता और एक विप्रपक्ष में 'पित्रादयो यथानामगोत्रा देवता इदमन्नं कव्यमित्यादि०, इदं राजतं पात्रम् अक्षय्यवटच्छायेयम् अस्मत्पित्रे अमुकनामगोत्ररूपाय'। तीन के स्थान में एक ब्राह्मण के रहने पर 'अस्मत्पितृपितामहप्रपितामहेभ्यः अमुकगोत्रनामरूपेभ्यः इदमन्नं०' ॐ तत्सत्' पर्यन्त मूल में लिखा वाक्य पढ़कर तिल-कुश-जल को पितृ-तीर्थ से बाएं हाथ के नीचे लाकर दक्षिण हाथ से पात्र के दक्षिण भूमि में छोड़ दे। ऐसे ही अन्यत्र भी यथादैवत ऊह करे।

पितृस्थानेऽनेकविप्रत्वे त्रिषु विप्रेषु पित्रे इत्यादिनैकवचनान्तेन त्यागः। एवमग्रेऽपि त्रिषु त्रिषूह्यम्। ततो ये चेहेति सकृदुपस्थानम्। अतिथिश्चेद्देवधर्मेण स्वेष्टदेवतायै इदमन्नमित्यादि ये देवास इत्यादि। अपसव्यम्, देवताभ्यः पितृभ्यः० सप्तव्या० अमूर्तानां० ब्रह्मार्पणं० हरिर्दाता० चतुर्भिश्च० ओं तत्सद् ब्रह्मार्पणमस्तु येषामुद्दिष्टं तेषामक्षय्या प्रीतिरस्तु इति तिलोदकमुत्सृजेत्। सव्यम्, एको विष्णु० अन्नहीनं क्रियाहीनं मन्त्रहीनं च यद्भवेत् तत्सर्वमच्छिद्रं जायतामित्युक्त्वा विप्रैर्जायतां सर्वमच्छिद्रमित्युक्ते अनेन पितृयज्ञेन पितृरूपी जनार्दनवासुदेवः प्रीयतामिति तिलकुशजलमुत्सृजेदित्याचारः।

पितृस्थान में अनेक विप्र के रहने पर तीनों ब्राह्मणों में 'पित्रे' इत्यादि एकवचनान्त से त्याग करे। एवं आगे भी तीन-तीन में ऊह करे। इसके बाद 'ये चेह' इस मन्त्र से एक बार उपस्थान करे। यदि कोई अतिथि हो तो देवधर्म से अपने इष्ट देवता को 'इदमन्नं' इत्यादि 'ये देवासः' इत्यादि पढ़े। अपसव्य होकर 'देवताभ्यः पितृभ्यः० सप्तव्या० अमूर्तानां० ब्रह्मार्पणं० हरिर्दाता० चतुर्भिश्च० ॐ तत्सद् ब्रह्मार्पणमस्तु। येषामुद्दिष्टं तेषां अक्षय्या प्रीतिरस्तु' यह कहकर तिलोदक का त्याग करे। सव्य होकर 'एको विष्णुः०, अन्नहीनं क्रियाहीनं मन्त्रहीनं च यद् भवेत् तत्सर्वमच्छिद्रं जायताम्' ऐसा कह कर ब्राह्मण के 'जायतां सर्वमच्छिद्रं' ऐसा कहने पर 'अनेन पितृयज्ञेन पितृरूपी जनार्दनवासुदेवः प्रीयताम्' ऐसा कहकर तिल-कुश-जल का त्याग करे, यह आचार है।

केचिद् ब्रह्मार्पणमित्यादिसङ्कल्पोत्सर्गे सव्यमेको विष्णुरित्यादावपसव्यं कुर्वन्ति। तत्र ब्रह्मार्पणेति एको विष्णुरित्यनयोः सङ्कल्पयोर्विभागे सव्यापसव्यविभागे च

१. धर्मप्रदीपे—'श्राद्धीयान्नस्य संकल्पो भूमावेव प्रदीयते। हस्तेषु दीयमानं तु पितॄणां नोपतिष्ठते॥ वैश्वदेवस्य वामे तु पितृपात्रस्य दक्षिणे। संकल्पोदकदानं स्यान्नित्यश्राद्धे यथारुचि॥' इति।

प्रत्यक्षवचनानुपलम्भाद्यथाचारं कार्यम्। अकृते सङ्कल्पेऽन्नं विप्रा न [1]स्पृशेयुः। ईशानविष्णवे० गयायै० गदाधराय० पुण्डरीकाक्षा० इति नत्वा पितृपूर्वं विप्रकरेषु जले दत्ते विप्रास्तेनान्नं प्रोक्ष्य त्रिर्गायत्र्याभिमन्त्रयेयुः।

कोई—ब्रह्मार्पण इत्यादि संकल्पोत्सर्ग में सव्य, एको विष्णुः इत्यादि में अपसव्य करते हैं। उसमें ब्रह्मार्पण और एको विष्णुः इन दोनों संकल्पों के विभाग में सव्य और अपसव्य के विभाग में प्रत्यक्ष वचन के नहीं मिलने से यथाचार करना चाहिये। संकल्प नहीं करने पर अन्न का स्पर्श ब्राह्मण नहीं करे। ईशानविष्णु-गया-गदाधर-पुंडरीकाक्ष, इनको नमस्कार करके पितृपूर्वक ब्राह्मणों के हाथों में जल देने के बाद ब्राह्मण उस जल से अन्न का प्रोक्षण कर तीन बार गायत्री से अभिमन्त्रित करे।

अथ ब्राह्मणभोजनादि

कर्ता सव्येन पितृपूर्वमापोशनार्थमुदकं दत्त्वा सव्याहृतिकां गायत्रीं[2] त्रिः सकृद्वोक्त्वा मधुवाता इति त्र्यृचमुक्त्वा मधु मधु मध्विति त्रिरुक्त्वा ॐ तत्सद्यथासुखं जुषध्वमिति वदेत्। विप्राश्च बलिदानवर्ज्यं नित्यवदापोशनं कृत्वा कर्त्रा श्रद्धायां प्राणे निविष्टोमृतं जुहोमि शिवो माविशाप्रदाहाय प्राणाय स्वाहेत्यादि पञ्च मन्त्रेषूच्यमानेषु पञ्च प्राणाहुतीः कृत्वा ब्रह्मणि आत्मामृतत्वायेत्युच्यमाने षष्ठीं कुर्युः।

श्राद्धकर्ता सव्य से पितृपूर्वक आपोशन के लिये जल देकर तीन बार या एक बार व्याहृतिसहित गायत्री मधुव्वाता इन तीन ऋचाओं को पढ़कर मधु-मधु-मधु ऐसे तीन बार कहकर 'ॐ तत्सद् यथासुखं जुषध्वं' ऐसा कहे। ब्राह्मण भी बलिदानवर्जित नित्य की तरह आपोशन करके कर्ता से 'श्रद्धायां प्राणे निविष्टोमृतं जुहोमि शिवो माविशाप्रदाहाय प्राणाय स्वाहा' इत्यादि पांच मन्त्रों के कहने पर पंच प्राणाहुति करके 'ब्रह्मणि आत्मामृतत्वाय' ऐसा कहें। इस मन्त्र में ब्राह्मण षष्ठी विभक्ति का (ब्रह्मणः) उच्चारण करें।

अथ भोजनकालधर्माः

ततो मौनिनो मुखशब्दं चापल्यं वर्जयन्तः सशेषं भुञ्जीरन्। दधिक्षीरघृतपायसानि तु निःशेषम्[3]। 'आपोशनकरे विप्रे सङ्कल्पाच्छिद्रभाषणात्। निराशाः

---

१. अत्रिः—'असंकल्पितमन्नाद्यं पाणिभ्यां यद्युपस्पृशेत्। अभोज्यं तद् भवेदन्नं पितॄणां नोपतिष्ठते॥ अन्नं दत्तं न गृह्णीयाद्यावत्तोयं न संपिबेत्॥' इति।

२. प्रचेताः—'आपोशनं प्रदायाथ सावित्रीं त्रिर्जपेदथ। मधुवाता इति त्र्यृचं मध्वित्येतत्त्रिकं तथा॥' मिताक्षरा में पारस्कर का वचन है—'संकल्प्य पितृदेवेभ्यः सावित्रीमधुमज्जपः। श्राद्धं निवेद्यापोशनं जुषप्रैषोऽथ भोजनम्॥ गायत्रीं त्रिः सकृद्वापि जपेद् व्याहृतिपूर्विकाम्। मधुवाता इति त्र्यृचं मध्वित्येतत्त्रिकं तथा॥' इति।

३. उशनाः—'भोजनं तु न निःशेषं कुर्यात्प्राज्ञः कथंचन। अन्यत्र दध्नः क्षीराद्वा क्षौद्रात् सक्तुभ्य एवं च॥' इति।

पितरो यान्ति'। आपोशनं दक्षिणभागे कार्यं न तु वामभागे[1]। पुनरापूर्यापोशनं सुरापानसमम्, 'आपोशनमकृत्वान्नं मर्दयेन्नैव कर्हिचित्। विप्रैर्बलिदानं न कार्यम्। केचिदाज्येन कुर्वन्ति तन्न, पायसाज्यमाषान्नैर्बलिदाननिषेधात्।

तदनन्तर ब्राह्मण मौन होकर मुख-शब्द और चपलता का त्याग करते हुए कुछ शेष करके भोजन करे। दही, दूध, घी और पायस सब खा जाय, उच्छिष्ट नहीं छोड़े। जब ब्राह्मण के हाथ में आपोशन हो तो संकल्प से और दोष कहने से पितृगण निराश होकर चले जाते हैं। आपोशन दक्षिण भाग में करे, वामभाग में नहीं। दुबारा जल भर के आपोशन करना मद्य के समान है। आपोशन विना किये अन्न-भक्षण कभी नहीं करे। ब्राह्मणों को बलिदान नहीं करना चाहिये। कोई घृत से बलिदान करते है वह ठीक नहीं, क्योंकि पायस, घी और माषान्न से बलि का निषेध है।

विप्राश्च [2]'वामकरेणान्नं न स्पृशेयुर्न पदा भाजनं स्पृशेयुः। संपादितमेव वस्तु करादिना याचेयुर्नासंपादितम्। अन्नगुणदोषान्न कीर्तयेयुः। कर्ता चानिषिद्धान्नं भोक्तुः पितुश्चात्मनश्च प्रियं प्रयच्छन् तत्तदन्नमाधुर्यादिगुणकीर्तनेन प्ररोचयन् ददामीत्यवदन् याचितं यच्छन् भुञ्जानानपश्यन् हविर्गुणानपृच्छन् दैन्याश्रुपात-क्रोधादिकमकुर्वन् जलं पाययन् शनैर्भोजयेत्। [3]'उच्छिष्टाः पितरो यान्ति पृच्छतो लवणादिकम्'।

ब्राह्मण बायें हाथ से अन्न का स्पर्श और पैर से भोजनपात्र का स्पर्श नहीं करे। बनायी हुई वस्तुओं को ही हाथ आदि से मांगे, न बनाई हुई वस्तु को नहीं। अन्न के गुण-दोषों को न कहे। कर्ता अनिषिद्ध अन्न को भोक्ता की पिता की और अपनी जो प्रिय वस्तु हो उसे देता हुआ उस उस अन्न के माधुर्य आदि गुण के कीर्तन से रुचि पैदा करता हुआ 'देता हूँ' ऐसा नहीं कहता हुआ मांगी हुई वस्तु को देता हुआ भोजन करनेवालों को नहीं देखता हुआ हवि के गुण को नहीं पूछता हुआ, दीनता से अश्रुपात और क्रोध आदि नहीं करता हुआ, जल पिलाता हुआ धीरे-धीरे भोजन करावे। नमक आदि कैसा है यह पूछने वाले के पितर लोग उच्छिष्ट हो निराश हो कर चले जाते हैं।

अथ श्रवणसूक्तानि

अथ सव्येनैव सव्याहृतिगायत्रीं[4] त्रिरुक्त्वा पौरुषं सूक्तं कृणुष्वपाजो रक्षोह-

---

१. स्मृतिसमुच्चय में कहा है—'आपोशनं वामभागे सुरापानसमं भवेत्। दक्षभागे तु यः कुर्यात् सोमपानसमं भवेत्॥' तथा—'पुनरापूर्यापोशनं सुरापानसमं भवेत्।' इति।

२. प्रचेता ने कहा है—'न स्पृशेद् वामहस्तेन भुञ्जानोऽन्नं कदाचन। न पादौ न शिरो बस्तिं न पदा भाजनं स्पृशेत्॥' इति।

३. यह शंख-वचन का उत्तरार्द्ध है। शंख का पूरा वचन इस प्रकार है—'श्राद्धे नियुक्तान् भुञ्जानान्न पृच्छेल्लवणादि तु। उच्छिष्टाः पितरो यान्ति पृच्छतो नात्र संशयः॥' इति।

४. कात्यायन ने कहा है—'अश्नुवत्सु जपेत् सव्याहृतिकां गायत्रीं सकृत् त्रिर्वा राक्षोघ्नीः पौरुषं सूक्तमप्रतिरथम्'। सौरपुराण में—'ऐन्द्रं च पौरुषं सूक्तं श्रावयेद् ब्राह्मणांस्ततः।' मत्स्य-पुराण और पद्मपुराण में—'ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्राणां स्तोत्राणि विविधानि च। इन्द्रेशसोमसूक्तानि पावमानीश्च शक्तितः॥ मण्डलं ब्राह्मणं तद्वत् प्रीतिकारि च यत्पुनः। अभावे सर्वविद्यानां गायत्री-जपमाचरेत्॥' प्रचेताः—'भुञ्जानेषु तु विप्रेषु ऋग्यजुःसामलक्षणम्। जपेदभिमुखो भूत्वा पित्र्यं चैव विशेषतः॥ यजूंषि चैव रुद्रं च रक्षोघ्नीर्ऋचं एव च।' इति।

णमित्याद्या रक्षोघ्नीः पितृलिङ्गकान् इन्द्रेशसोमसूक्तपावमानीसूक्तानि अप्रतिरथसंज्ञमाशुःशिशानसूक्तं विष्णुब्रह्मरुद्रार्कस्तोत्रादिकं[1] भोक्तृविप्रान् श्रावयेत् । असंभवे गायत्रीजपं कुर्यात् ।

इसके बाद सव्य ही से व्याहृतिसहित गायत्री तीन बार कहकर पुरुषसूक्त, कृणुष्वपाजो, रक्षोहणं, इत्यादि रक्षोघ्नी ऋचाएं पितृनाम वाले इन्द्र, ईश, सोमसूक्त और पावमानीसूक्त, अप्रतिरथसंज्ञक आशुःशिशानसूक्त को विष्णु-ब्रह्मा-शिव और सूर्य के स्तोत्रादि को भोजनकरने वाले ब्राह्मणों को सुनावे। ऐसा न होने पर गायत्री का जप करे।

वीणावंशध्वनिं चापि विप्रेभ्यः सन्निवेदयेत् ।
मण्डलब्राह्मणं पाठ्यं नाचिकेतत्रयं तथा ॥
त्रिमधु त्रिसुपर्णं च पावमानयजूंषि च ।
आशुःशिशानसूक्तं च अग्नये कव्यवाहनम् ॥
प्रौढपादो बहिःकक्षो बहिर्जानुकरोऽपि वा ।
अंगुष्ठेन विनाश्नाति मुखशब्देन वा पुनः ॥
पीतावशिष्टतो यानि पुनरुद्धृत्य वा पिबेत् ।
खादितार्धं पुनः खादेन्मोदकादि फलादिकम् ॥
मुखेन वा धमेदन्नं निष्ठीवेद्भाजनेऽपि च ।
इत्थमश्नन् द्विजः श्राद्धं हत्वा गच्छत्यधोगतिम् ॥
श्राद्धपंक्तौ तु भुञ्जानो ब्राह्मणो ब्राह्मणं स्पृशेत् ।
तदन्नमत्यजन्भुक्त्वा गायत्र्यष्टशतं जपेत् ॥

वीणा तथा वंशी आदि के शब्द ब्राह्मणों के लिये निवेदित करे। मण्डलब्राह्मण तथा तीन नाचिकेत का पाठ करावे। त्रिमधु, त्रिसुपर्ण, यजुर्वेद के पावमान मन्त्र और आशुःशिशानसूक्त तथा अग्नये कव्यवाहन को पढ़े। पैर फैलाकर बहिःकक्ष होकर जानु के बाहर हाथ करके विना अंगुष्ठ मिलाये, और मुख से शब्द करके भोजन करे, पीने से बचे जल को पुनः पिये, आधे खाये हुए पर पुनः मोदक फलादि को खाय, मुँह से अन्न फूंके और पात्र में थूके, इस प्रकार भोजन करता हुआ ब्राह्मण श्राद्ध का नाश करता हुआ अधोगति को प्राप्त होता है। श्राद्धपंक्ति में तो भोजन करने वाला जो ब्राह्मण, ब्राह्मण का स्पर्श करता है, श्राद्धीय अन्न को विना छोड़े खाता है उसे आठ सौ गायत्री जपना चाहिये।

पात्रे विप्रान्तरोच्छिष्टसंसर्गे तन्निरस्य हस्तं प्रक्षाल्य भुक्त्वा स्नात्वा द्विशतं जपेत् । उच्छिष्टभोजने सहस्रं जपेत् ।

भुञ्जानेषु तु विप्रेषु प्रमादात्स्रवते गुदम् ।
पादकृच्छ्रं ततः कृत्वा अन्यं विप्रं नियोजयेत् ॥

---

१. आदि पद से पुराणादि का ग्रहण है, मनु ने कहा है—'स्वाध्यायं श्रावयेत् पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि । आख्यानानीतिहासांश्च पुराणानि खिलानि च ॥' इति ।

भोजन-पात्र में दूसरे ब्राह्मण के उच्छिष्ट का स्पर्श हो जाय तो उसे हटाकर हाथ धोकर भोजन और स्नान करके दो सौ गायत्री जपे। उच्छिष्ट भोजन करने पर हजार बार गायत्री जप करे। भोजन करते समय ब्राह्मणों का प्रमाद से गुदस्राव हो जाय तो पादकृच्छ्र करके दूसरे ब्राह्मण को बैठावे।

अथ विप्रवमने विधिः

तत्र पित्रादिविप्रवमने लौकिकाग्निस्थापनचरुनिर्वापाज्यभागान्ते नामगोत्रपूर्वकमग्नौ पितॄनावाह्य वैश्वदेविकवमने देवानावाह्य संपूज्यान्नत्यागं कृत्वा प्राणाय स्वाहेत्यादिमन्त्रैर्द्वात्रिंशदाहुतीर्जुहुयात्पुनः श्राद्धं वा कुर्यादिति पक्षद्वयम्। पक्षद्वयेऽपीन्द्राय सामेति सूक्तजपो नित्यः। अनयोः पक्षयोर्व्यवस्थोच्यते—वैश्वदेविकविप्रवमने होम एव न पुनः श्राद्धम्। पित्र्यविप्रेष्वपि पिण्डदानोत्तरं वान्तौ होम[1] एव न पुनः श्राद्धम्।

पिता आदि ब्राह्मण के वमन में लौकिकाग्नि का स्थापन, चरुनिर्वाप और आज्यभाग के अन्त में नाम-गोत्र-पूर्वक अग्नि में पितरों का आवाहन कर और वैश्वदेविक ब्राह्मण के वमन करने पर विश्वेदेवताओं का आवाहन तथा पूजन कर अन्न त्याग करके 'प्राणाय स्वाहा' इत्यादि मन्त्रों से बत्तीस आहुति का होम करे अथवा फिर से श्राद्ध करे, ये दो पक्ष हैं। दोनों पक्ष में 'इन्द्राय साम' इस सूक्त का जप नित्य है। इन दोनों पक्ष की व्यवस्था कहता हूं—वैश्वदेविक ब्राह्मण के वमन करने पर होम ही होता है पुनः श्राद्ध नहीं। पितृ-ब्राह्मण में भी पिण्डदान के अनन्तर वमन होने पर होम ही होता है पुनः श्राद्ध नहीं।

पिण्डदानात्प्राक् पित्र्यविप्रवान्तौ तद्दिने उपवासं कृत्वा [2]परेद्युः पुनः श्राद्धं कार्यम्। इदं सपिण्डीकरणमहैकोद्दिष्टमासिकाब्दिकप्रत्याब्दिकश्राद्धेष्वेव। दर्शादौ तु वमने तद्दिने एवामेन[3] श्राद्धं कार्यम्। एवमष्टकान्वष्टकापूर्वेद्युःश्राद्धेष्वपि। तत्रामश्राद्धे साग्नेर्बह्वृचस्य व्यतिषङ्गादियथोक्तप्रयोगासंभवात्सांकल्पिकविधिना दर्शान्वष्टकापूर्वेद्युःश्राद्धान्यामेन कार्याणि तत्तल्लोपप्रायश्चित्तं वा निबन्धोक्तं कर्तव्यमिति भाति।

पिण्डदान से पहले पितृ-ब्राह्मण के वमन होने पर उस दिन उपवास करके दूसरे दिन पुनः श्राद्ध करे। यह सपिण्डीकरण, महैकोद्दिष्ट, मासिक, आब्दिक और प्रत्याब्दिक श्राद्धों में ही है। दर्श आदि में तो वमन होने पर उसी दिन आमान्न से श्राद्ध करे। इसी प्रकार अष्टका, अन्वष्टका और पूर्वेद्युःश्राद्धों में भी करे। उसमें आम-श्राद्ध में साग्निक बह्वृच को व्यतिषंग आदि यथोक्त प्रयोग

---

१. ऋग्विधान में इसका प्रमाण है—'तदेवाग्निं समाधाय होमं कुर्याद्यथाविधि।' इति।

२. स्मृतिसंग्रहे—'अकृते पिण्डदाने तु पिता यदि वमेत्तदा। पुनः पाकं प्रकुर्वीत श्राद्धं कुर्याद्यथाविधि॥' तथा—'पित्रर्थानां त्रयाणां च पिता च वमते यदि। तद्दिने चोपवासः स्यात् पुनः श्राद्धं परेऽहनि॥ वमने वा विरेके वा तद्दिनं परिवर्जयेत्।' इति।

३. मरीचि ने कहा है—'श्राद्धविघ्ने द्विजातीनामामश्राद्धं प्रकीर्तितम्। अमावास्यादिनियतं माससंवत्सरादृते॥' इति।

का संभव न हो तो सांकल्पिक विधि से दर्श, अन्वष्टका, पूर्वेद्युःश्राद्ध को आमान्न से करे अथवा उसके लोप का निबन्धों में कहा हुआ प्रायश्चित्त करना चाहिये, यह ठीक प्रतीत होता है।

वृद्धिश्राद्धे पिण्डरहितसंक्रान्त्यादिश्राद्धे नित्यश्राद्धे च वमने [1]आवृत्तिरेव। तीर्थश्राद्धे दर्शवदामेनैव। महालयश्राद्धे पार्वणस्थानीयविप्रवमने पुनरावृत्तिः। एकोद्दिष्टस्थानीयविप्रवमने होम एवेति भाति। वैश्वदेविकविप्रवमने सर्वश्राद्धेषु होम एवेत्युक्तमेव। होमपक्षे आवृत्तिपक्षे च सर्वत्र सूक्तजपो नित्य इत्यप्युक्तम्।

वृद्धिश्राद्ध में पिण्डरहित संक्रान्त्यादि-श्राद्ध में और नित्यश्राद्ध में वमन होने पर पुनः श्राद्ध ही करे। तीर्थश्राद्ध में दर्श की तरह आमान्न ही से श्राद्ध करे। महालयश्राद्ध में पार्वणस्थानीय ब्राह्मण के वमन करने पर पुनः श्राद्ध करे। एकोद्दिष्टस्थानीय ब्राह्मण के वमन करने पर होम ही होता है, यह ठीक प्रतीत होता है। वैश्वदेविक ब्राह्मण के वमन करने पर सब श्राद्धों में होम ही होता है, यह कहा ही है। होमपक्ष और आवृत्तिपक्ष में सर्वत्र सूक्त का जप नित्य है, यह भी कहा है।

अथ भोजनान्ते कृत्यम्

भोजनान्ते प्राचीनावीती तृप्ताः स्थेति विप्रान्पृष्ट्वा तृप्ताः स्म इति प्रत्युक्तो गायत्रीं मधुवाता इति त्र्यृचमक्षन्नमीति च श्रावयित्वा अथवा अक्षन्नमीत्येतदन्ते तृप्तिप्रश्नं कृत्वा श्राद्धं सम्पन्नमिति पृष्ट्वा सुसम्पन्नमित्युक्तः परिवेषणकालेऽनुद्धरणेऽधुना पिण्डार्थं सर्वान्नादुद्धृत्य विकिरार्थं चोद्धृत्य,

अन्नशेषैश्च किं कार्यमिति पृच्छेत्तु स द्विजान्।
ते इष्टैः सह भोक्तव्यमिति प्रत्युक्तिपूर्वकम्॥
प्रदद्युः सकलं तस्मै स्वीकुर्युर्वा यथारुचि।

भोजन के अन्त में प्राचीनावीती होकर ब्राह्मणों से पूछे कि आप लोग तृप्त हो गये ? तब ब्राह्मण लोग कहें कि हम लोग तृप्त हो गये। तब 'मधुवाता' इन तीन ऋचाओं को 'अक्षन्नमी' इस मंत्र को सुनाकर अथवा 'अक्षन्नमी' इस मंत्र के अन्त में तृप्तिप्रश्न करके 'श्राद्धं सम्पन्नं' ऐसा पूछकर 'सुसम्पन्नं' ऐसा ब्राह्मण के कहने पर परोसने के समय में उद्धरण न करने पर इस समय पिण्ड के लिये सब अन्नों में से निकाल कर और विकिर के लिये निकाल कर, कर्ता ब्राह्मणों से पूछे कि 'बचे हुए अन्न को क्या किया जाय' तब वे लोग कहें कि 'इष्ट-मित्रों के साथ आप लोग भोजन करें' यह कहकर शेष सब अन्न श्राद्धकर्ता को दे दें, यथारुचि वे लोग स्वीकार करें।

कातीयैस्तु तृप्तान् ज्ञात्वा वक्ष्यमाणप्रकारेण विकिरं दैवे पित्र्ये च दत्त्वा विप्रेभ्यः पितृपूर्वकं सकृदपो दत्त्वा गायत्रीं मधुमतीश्च श्रावयित्वा तृप्तिप्रश्नः सम्पत्तिप्रश्नश्च कार्यः। एवं शाखान्तरेऽप्युत्तरापोशनात्पूर्वमेव विकिरदानम्[2]।

---

१. वृद्धिश्राद्धादि में भोजन की ही प्रधानता है इसलिये आवृत्ति करना स्मृतिसंग्रह में कहा है—'भुक्तिक्रियायाः प्राधान्यं श्राद्धे संकल्पसंज्ञके। तत्रैव पित्र्यविप्रस्य तूपघाते पुनः क्रिया॥' तथा—'वृद्धिश्राद्धे विकल्पेन पिण्डदानं बुधैः स्मृतम्। नित्यश्राद्धमदैवं स्यात् पिण्डदानविवर्जितम्॥' इति।

२. मनुः—'उच्छेषणं भूमिगतमजिह्मस्याशठस्य च। दासवर्गस्य तत्पित्र्ये भागधेयं प्रचक्षते॥' श्राद्धकारिकायाम्—'यजमानस्य दासादीनुद्दिश्य द्विजसत्तम। तस्मादन्नं त्यजेद् भूमौ वाम-

कातीय लोग तो ब्राह्मणों को तृप्त जानकर आगे कहे जाने वाले प्रकार से दैव और पित्र्य में विकिर को देकर ब्राह्मणों को पितृपूर्वक एकबार जल देकर गायत्री और मधुमती ऋचाओं को सुनाकर तृप्तिप्रश्न और सम्पत्ति प्रश्न भी करे। इसी प्रकार दूसरी शाखाओं में भी उत्तरापोशन से पूर्व ही विकिरदान है।

बह्वृचानां तु पिण्डान्ते एव विकिरः। हिरण्यकेशीयैराचान्ते उक्तः। तत उच्छिष्टभाग्भ्योऽन्नं दीयतामित्युक्ता विप्राः पात्रस्थं भुक्तशेषं दैविकं दक्षिणे पैतृकं वामे बहिःकृत्य पितृपूर्वं दत्तमुत्तरापोशनममृतापिधानमसीति कुर्युः। पिण्डदानं त्वाचान्तेष्वनाचान्तेषु वा विप्रेषु कार्यम्। विप्राश्च मुखप्रक्षालनपूर्वकहस्त-प्रक्षालनादि शरावादौ कुर्युर्न कांस्यताम्रपात्रयोः। शुद्धोदकेनाचम्य कया न इति त्र्यृचं जपेयुः।

बह्वृचों का पिण्ड के अन्त में विकिर होता है। हिरण्यकेशीयों का आचमन के बाद कहा है। अनन्तर 'उच्छिष्ट खाने वालों को अन्न दीजिये' यह श्राद्धकर्ता के कहने पर ब्राह्मणगण पात्रस्थित भुक्त-शेष देवताओं के अन्न को दाहिने और पैतृक अन्न को बाएं भाग में बाहर कर पितृपूर्वक दिये हुए उत्तरापोशन को 'अमृतापिधानमसि' यह कहकर करें। पिण्डदान तो आचमन करने पर वा आचमन के पहले करना चाहिये। ब्राह्मण लोग मुँह धोने के बाद हस्तप्रक्षालन आदि मिट्टी के कसोरा आदि में करें, कांसे या तामे के पात्र में नहीं करें। और शुद्ध जल से आचमन कर 'कया न' इन तीन ऋचाओं का जप करें।

अथ पिण्डदानम्

तच्चार्चनोत्तरमग्नौकरणोत्तरं भोजनोत्तरं विकिरोत्तरं स्वधावाचनोत्तरं विप्रविसर्जनोत्तरमिति षट् पक्षाः स्मृत्युक्ताः। तेषां शाखाभेदेन व्यवस्थेति सिन्धुः। तत्राश्वलायनानां भुक्तवत्स्वनाचान्तेष्वाचान्तेषु वा विप्रेषु पिण्डदानं ततो विकिरः। आपस्तम्बहिरण्यकेशीयादीनां विप्रविसर्जनान्ते पिण्डदानम्।

पिण्डदान — पूजन, अग्नौकरण, भोजन, विकिर, स्वधावाचन और विप्रविसर्जन के बाद करने के ये छ पक्ष स्मृतियों में कहे हैं। इन सब पक्षों की व्यवस्था शाखाभेद से करे, यह निर्णयसिन्धु-कार कहते हैं। उसमें आश्वलायनों का भोजनकर्ता ब्राह्मणों के आचमन नहीं करने पर या आचमन करने पर पिण्डदान होता है इसके बाद विकिर। आपस्तम्ब-हिरण्यकेशीय आदि का ब्राह्मणविसर्जन के बाद पिण्डदान होता है।

कातीयानां विकिरोत्तरमाचान्तेष्वनाचान्तेषु वा। तत्राग्निहोमेऽग्निसमीपे पाणिहोमे विप्रसमीपे बह्वृचानां पिण्डदानम्। अन्येषां प्रायो विप्रसमीप एव। तत्र द्विजोच्छिष्टादुत्तरतो व्याममात्रेऽरत्निमात्रे वा पिण्डदानं संकल्प्य बह्व-

---

भागेषु पैतृके॥' याज्ञवल्क्यः—'अन्नमादाय तृप्ताः स्थ शेषं चैवानुमान्य च। तदन्नं प्रकिरेद् भूमौ दद्यादापः सकृत्सकृत्॥' देवलः—'ततः सर्वाशनं पात्रे गृहीत्वा विविधं पुनः। तेषामुच्छेषणस्थाने विकिरं भुवि निक्षिपेत्॥' विकिर का अन्न कुशपर देना चाहिये, क्योंकि 'दर्भेषु विकिरश्च यः' ऐसा वचन है।

चानामेककरेणान्येषां कराभ्यां घृतेन स्फ्येन खादिरकाष्ठेन दर्भमूलेन वा अपहता असुरा इति मन्त्रं प्रतिलेखां पठन्नाग्नेय्यग्रं प्रत्यगपवर्गं पार्वणसंख्यया रेखामेकां द्वित्र्यादिकां वोल्लिख्य प्रत्येकमभ्युक्षेत्। पिण्डसंकल्पे रेखाकरणे च सव्यापसव्ययोर्विकल्पः।

कातीयों का पिण्डदान विकिर के बाद आचमन करने या न करने पर होता है। बह्वृचों का पिण्डदान, अग्निहोम में अग्निके समीप में पाणिहोम में ब्राह्मण के समीप में होता है। अन्य का प्रायः ब्राह्मण के समीप में ही होता है। उसमें ब्राह्मणों के उच्छिष्ट से उत्तर की ओर व्याममात्र में या अरत्निमात्र में पिण्डदान का संकल्प कर बह्वृचों को एक हाथ से अन्य का दोनों हाथों से पकड़े हुए 'स्फ्य' से या खैर की लकड़ी से या कुशमूल से 'अपहता असुरा' इस मन्त्र को प्रत्येक रेखा में पढ़ते हुए आग्नेयी दिशा में अग्र हो जिसकी और पश्चिम दिशा में समाप्ति हो जिसकी ऐसी एक दो, तीन आदि रेखाओं का पार्वण की संख्या के अनुसार उल्लेखन कर जल से प्रत्येक का अभ्युक्षण करे। पिण्ड-संकल्प में और रेखा करने में सव्य एवं अपसव्य का विकल्प है।

अत्र कातीयैर्ये रूपाणीति मन्त्रेणाग्नौकरणाग्नेरुल्मुकं रेखादक्षिणतो निधेयम्। रेखासु सकृदाच्छिन्नं बर्हिर्दक्षिणाग्रमास्तीर्य शुन्धन्तां पितरः शुन्धन्तां पितामहा इत्यादिमन्त्रैस्तिलोदकं बर्हिष्यासिञ्चेत्। अत्र कातीयानां पितरममुकनामगोत्रावनेनिक्ष्वेत्यादिमन्त्राः। अन्येषां मार्जयन्तां पितरः सोम्यास इत्यादयो मन्त्राः। अग्नौकरणशेषयुतसर्वान्नेन [1]मधुसर्पिस्तिलमिश्रेण पिण्डान् पत्न्या कारयित्वा रेखायां पराचीनपाणिना पितृतीर्थेन पित्रादिभ्यो दद्यात्—एतत्तेऽस्मत्पितर्यथानामगोत्ररूप ये च त्वामत्रानुपित्रे अमुकनामगोत्ररूपायायं पिण्डः स्वधा नमस्तेभ्यश्च गयायां श्रीरुद्रपदे दत्तमस्त्वित्यादिमन्त्रैरूहेन।

इसमें कातीयगण 'ये रूपाणि' इस मन्त्र से अग्नौकरण की अग्नि के उल्मुक को रेखा से दक्षिण की ओर रखे। एकबार काटे हुए कुश जिनका अग्रभाग दक्षिण की ओर हो उसे रेखाओं में बिछाकर 'शुन्धन्तां पितरः' 'शुन्धन्तां पितामहाः' इत्यादि मन्त्रों से तिल-जल से कुश पर सिंचन करे। इसमें कातीयों का 'पितरमुक-नाम-गोत्रावनेनिक्ष्व' इत्यादि मन्त्र है। दूसरों का 'मार्जयन्तां पितरः सोम्यास' इत्यादि मन्त्र हैं। अग्नौकरण के शेषयुक्त सब अन्न से जिसमें मधु, घृत और तिल मिले हों ऐसे पिण्डों को पत्नी से बनवाकर रेखा में दाहिने हाथ से पितृतीर्थ द्वारा पिता आदि को पिण्डदान करे—'एतत्तेऽस्मत्पितर्यथानामगोत्ररूप०' इत्यादि मूलोक्त मन्त्रों के ऊह से।

अत्र केषांचित्पिण्डपात्रावनेजनं पात्रन्युब्जीकरणं च। केचित्पिण्डेषु माषान्नं [2]वर्जयन्ति। ततो लेपभाक्तृप्तये हस्तलेपं पिण्डदर्भमूलेषु निमृज्यात्र पितरो माद-

---

१. वायुपुराणे—'मधुसर्पिस्तिलयुतांस्त्रीन् पिण्डान्निर्वपेद् बुधः।' त्रिस्थलीसेतौ—'तिलमन्नं च पानीयं धूपं दीपं पयस्तथा। मधुसर्पिःखण्डयुतं पिण्डमष्टाङ्गमुच्यते॥' इति।

२. इनके मत में स्मृतिसार का प्रमाण है—'माषाः श्राद्धेषु वै ग्राह्या वर्ज्याश्चैवाग्निपिण्डयोः। ब्राह्मणेषु यथा मद्यं तथा माषोऽग्निपिण्डयोः॥' तथा—'माषान् सर्वत्र वै दद्यात् पिण्डेऽग्नौ च विवर्जयेत्।' इति।

यध्वं यथाभागमावृषायध्वमिति पिण्डान्सकृदनुमन्त्र्य सव्यपार्श्वेनोदङ्ङावृत्त्य यथाशक्ति प्राणान्नियम्य पर्यावृत्त्यामीमदन्त पितर इति तथैवानुमन्त्र्य सव्येन पिण्डशेषमाघ्रायाचम्यान्यपवित्रे धृत्वाऽपसव्येन शुन्धन्तामित्यादि यथासूत्रं जल-निनयनं पूर्ववत्कुर्यात्। अत्र भुक्तशेषान्नाभावे द्रव्यान्तरेण पिण्डदानं कार्यम्।

इसमें कुछ लोगों का पिण्डपात्रावनेजन और पात्र का न्युब्जीकरण होता है। कोई पिण्डों में उर्द अन्न का वर्जन करते हैं। इसके अनन्तर लेपभाक् की तृप्ति के लिये हाथ में लगे हुए को पिंड के कुश-मूलों से स्वच्छ कर 'अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वं' इस मन्त्र से पिण्डों का एकबार अनुमन्त्रण कर वामपार्श्व से उत्तर की ओर मुख घुमाकर शक्ति के अनुसार प्राणायाम कर मुंह फेर कर 'अमीमदन्त' इससे वैसे ही अनुमन्त्रण कर सव्य से पिण्डशेष को सूँघकर और आचमन कर अन्य दो पवित्र को धारण कर अपसव्य से 'शुन्धन्ताम्' इत्यादि सूत्रानुसार जल-निनयन पूर्ववत् करे। इसमें भोजन से बचे हुए अन्न के न रहने पर दूसरे द्रव्य से पिण्डदान करे।

अथ पिण्डप्रमाणम्

कपित्थबिल्वकुक्कुटाण्डामलकबदराणां मध्ये शक्तितोऽन्यतमप्रमाणाः [1]पिण्डाः। केचित्पार्वणपिण्डत्रये यथोत्तरं प्रमाणाधिक्यमाहुः। तथा हस्तलेपाभावेऽपि दर्भेषु हस्तं निमृज्यादेवेति मेधातिथिः। एकोद्दिष्टश्राद्धेषु दर्भलेपो नेति [2]सुमन्तुः। अत्र नीवीं विस्रस्याभ्यञ्जनादीति केचित्। पिण्डपूजनान्ते उपस्थानात्प्राङ् नीवी-विस्रंस इति श्राद्धसागरे।

पिण्ड का प्रमाण—कपित्थ (कैंत) बेल, मुर्गी का अण्डा, आँवला, बैर के फल, इनमें से यथाशक्ति कोई एक के बराबर होना चाहिये। कुछ लोग पार्वण के तीन पिण्डों को पहले पिण्ड के नाप से दूसरा बड़ा और दूसरे से तीसरे का बड़ा होना कहते हैं। एवं हस्तक्षेप नहीं होने पर भी कुशाओं से हाथ स्वच्छ करे ही, ऐसा मेधातिथि कहते हैं। सुमन्तु का यह कहना है कि एकोद्दिष्ट श्राद्धों में दर्भलेप नहीं होता। कुछ तो इसमें नीवीविस्रंसन करके अभ्यञ्जन आदि कहते हैं। पिण्ड-पूजन के अन्त में उपस्थान से पहले नीवीविस्रंसन करना यह 'श्राद्धसागर' में है।

अथ पिण्डेऽभ्यञ्जनादिकम्

अथास्मत्पितरमुकनामगोत्ररूपाभ्यङ्क्ष्वेति यथालिङ्गमन्त्रावृत्त्या पिण्डेषु तैलं

---

१. हेमाद्रि में अङ्गिरा की उक्ति है—'कपित्थबिल्वमात्रान् वा पिण्डान् दद्याद् विधानतः। कुक्कुटाण्डप्रमाणान् वाऽऽमलकैर्बदरैः समान्॥' धूम्रः—'कपित्थस्य प्रमाणेन पिण्डान् दद्यात् समाहितः। तत्समं विकिरं दद्यात् पिण्डान्ते तु षडङ्गुले॥' अन्त्येष्टिपद्धति में भट्ट ने कहा है—'एकोद्दिष्टे सपिण्डे तु कपित्थं तु विधीयते। नारिकेलप्रमाणं तु प्रत्यब्दे मासिके तथा॥ तीर्थे दर्शे च सम्प्राप्ते कुक्कुटाण्डप्रमाणतः। महालये गयाश्राद्धे कुर्यादामलकोपमम्॥ कलिका में आचार्य ने कहा है—'यत्र स्युर्बहवः पिण्डास्तत्र बिल्वफलोपमाः। यत्र चैको भवेत् पिण्डस्तत्र खर्जूरसन्निभः॥ प्रेतपिण्डस्तु दैर्घ्येण द्वादशाङ्गुल उच्यते।' लौगाक्षिः—'महालये गयायां च प्रेतश्राद्धे दशाहिके। पिण्डशब्दप्रयोगः स्यादन्नमन्यत्र कीर्तयेत्॥' वायुपुराणे—'पत्नी पिण्डांस्तु मृद्गीयात् त्रिवर्गस्य सहायिनी।' इति।

२. कलिका में सुमन्तु का कथन है—'एकोद्दिष्टेषु वर्षासु दर्भलेपो न विद्यते। सपिण्डी-करणादौ तु लेपः सर्वत्र शस्यते॥' इति।

घृतं वाऽभ्यञ्जनं दर्भैर्दत्त्वा तथैवाङ्क्ष्वेति कज्जलं दद्यात्। आपस्तम्बानामादावञ्जनं ततोऽभ्यञ्जनम्। एतद्वः पितरो वास इति मन्त्रं प्रतिपिण्डं पठन् वासोदशां वा त्रिगुणसूत्रं वा प्रतिपिण्डे दद्यादिति हेमाद्रिः। सकृन्मन्त्रं पठन्सकृदेव दद्यादित्यन्ये। कातीयैस्तु मन्त्रेण प्रतिपिण्डं नामगोत्राद्युच्चार्य त्रिगुणं सूत्रं देयम्।

इसके बाद 'मेरे पिता अमुक-नाम-गोत्र रूप अभ्यञ्जन कीजिये' इस प्रकार यथालिङ्ग मन्त्र की आहुति से पिण्डों पर तेल वा घृत का अभ्यञ्जन कुशों से देकर इसी प्रकार 'अङ्क्ष्व' ऐसा कहकर काजल दे। आपस्तम्बों के यहां आदि में अञ्जन इसके बाद अभ्यञ्जन होता है। 'हे पितृगण यह आप के लिये वस्त्र है' ऐसा प्रत्येक पिण्ड के लिये पढ़ता हुआ वस्त्र का किनारा या तिगुना सूत प्रतिपिण्ड पर चढ़ावे, ऐसा हेमाद्रि कहते हैं। एकबार मन्त्र पढ़ते हुए एकबार ही दे, ऐसा दूसरे कहते हैं। कातीय तो मन्त्र से प्रतिपिण्ड के लिये नाम-गोत्रादि का उच्चारण कर तिगुना सूत दें।

ततः कशिपूपबर्हणे निवेद्यास्मत्पितृभ्य इति चतुर्थ्याक्षतगन्धपुष्पधूपदीपसर्वप्रकारकनैवेद्यताम्बूलदक्षिणादिभिः पिण्डपूजां [2]सव्येनापसव्येन वा कुर्यात्।

यत्किंचित्पच्यते भक्ष्यं भोज्यमन्नमगर्हितम्।
अनिवेद्य न भोक्तव्यं पिण्डमूले कथंचन॥

ततो नमो वः पितर इषे इत्यादिमन्त्रैः पिण्डानुपस्थायोत्तानहस्तेन परेतन इति मन्त्रेण सकृदुक्तेन युगपत्प्रवाहयेत्।

इसके बाद तकिया बिछौना निवेदन कर हमारे पितरों के लिये हैं ऐसा चतुर्थी विभक्ति से अक्षत, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और सब प्रकार के नैवेद्य, ताम्बूल तथा दक्षिणा आदि से सव्य या अपसव्य से पिण्डपूजा करे। अनिन्दित जो कुछ भी भक्ष्य अन्न बने पिण्डमूल में बिना निवेदन किये स्वयं भोजन नहीं करे। तदनन्तर 'नमो वः पितर' और 'इषे' इत्यादि मन्त्रों से पिण्डों का उपस्थान कर उत्तान हाथ से 'परेतन' इस मन्त्र से एकबार कहकर एक ही समय में प्रवाहित करे।

ततो दक्षिणाग्निहोमपक्षेऽग्ने तमद्याश्वमित्यग्निसमीपमागत्य यदन्तरिक्षमिति मन्त्रेण गार्हपत्योपस्थानम्। औपासने होमपक्षे गार्हपत्यपदरहिततन्मन्त्रेणोपस्थानमिदं बह्वृचानामेव। पाणिहोमे तु तेषामपि नास्त्येव।

इसके अनन्तर दक्षिणाग्नि-होमपक्ष में 'अग्ने तमद्याश्व' इससे अग्नि के समीप आकर 'यदन्तरिक्षं' इस मन्त्र से गार्हपत्य का उपस्थान करे। औपासन-होमपक्ष में गार्हपत्यपदरहित उस मन्त्र से उपस्थान करे, यह बह्वृचों ही के लिये है। पाणिहोम में तो उनके यहाँ भी नहीं ही है।

---

१. हेमाद्रि में ब्रह्मपुराण का वचन है—'श्रेष्ठमाहुस्त्रैककुदमञ्जनं नित्यमेव हि। तैलं कृष्णतिलेभ्यश्च दद्यादभ्यञ्जनं हितम्॥' त्रैककुदं='सुरमा' इति प्रसिद्धम्।

२. माधव-मत से पितरों के उद्देश से अपसव्य और विप्रों के उद्देश से सव्य होकर दक्षिणा देनी चाहिये। व्याघ्रः—'गन्धपुष्पाणि धूपं च दीपं च विनिवेदयेत्।' देवलः—'दक्षिणां सर्वभोगांश्च प्रतिपिण्डं प्रदापयेत्। भक्ष्याण्यपूपानिक्षूंश्च व्यञ्जनान्यशनानि च॥' नागरखण्डे—'उत्तानमर्घ्यपात्रं तु कृत्वा दद्याच्च दक्षिणाम्। हिरण्यं देवतानां च पितॄणां रजतं तथा॥' बृहस्पतिः—'तस्मात् पणं काकिणीं वा फलं पुष्पमथापि वा। प्रदद्याद्दक्षिणां यज्ञे तया स सफलो भवेत्॥' इति।

अथ पुत्रकामनया पत्न्यै पिण्डदानम्

वीरं मे दत्तपितर इति मन्त्रेण मध्यममेकपिण्डं पार्वणद्वये मध्यपिण्डद्वयमन्वष्टक्यादौ मध्यपिण्डत्रयमादाय पत्न्यै दद्यात्। पत्नी आधत्त पितर इति मन्त्रेण सकृत्पठितेनैव पिण्डमेकमनेकं वा प्राशयेत्। आपस्तम्बस्तु अपां त्वौषधीनां रसं प्राशयामि भूतकृतं गर्भं धस्त्वेति मध्यपिण्डं पत्न्यै प्रयच्छति। प्राशनमन्त्रः स एव। यथेह पुरुषो असदिति पाठमात्रं भिद्यते। इत्थमेव कातीयानाम्। इदं भार्यायाः पिण्डप्राशनं प्रजाकामत्व एव। केचिन्नित्यमाहुः। भार्यानेकत्वे पिण्डं विभज्य प्रतिपत्नि मन्त्रेण प्राशयेत्। पार्वणद्वये पिण्डद्वयं द्वाभ्यां देयम्। पत्नीबहुत्वे गुणतो वयसा च योग्यायै पिण्डो देयः। बह्वीनां योग्यत्वे एकस्मिन् दर्शे एकस्यै अन्यस्मिन्नपरस्यै इति।

'वीरं मे दत्त पितरः' इस मन्त्र से मध्यम एक पिण्ड को, दो पार्वण में दो मध्य पिण्ड को, अन्वष्टका आदि में तीन मध्य पिण्ड को लेकर पत्नी को दे दे। पत्नी 'आधत्त पितर' इस मन्त्र को एक बार पढ़ कर एक अथवा अनेक पिण्ड का भक्षण करे। आपस्तम्ब तो 'अपां त्वौषधीनां रसं प्राशयामि भूतकृतं गर्भं धत्स्व' इस मंत्र से पत्नी को मध्यमपिण्ड देते हैं। प्राशन का मन्त्र वही है। 'यथेह पुरुषो असत्' ऐसा पाठमात्र का भेद है। इसी प्रकार कातीयों का है। पत्नी का पिण्डप्राशन सन्तान की कामना होने पर ही होता है। कुछ लोग इसे नित्य कहते हैं। अनेक पत्नी के होने पर पिण्ड का विभाजन करके प्रत्येक पत्नी को मन्त्र से खिलावे। दो पार्वण में दो पिण्ड दो पत्नियों को दे। बहुत पत्नी हो तो गुण और अवस्था से जो योग्य हो उसे पिण्ड दे। बहुत सी पत्नियां योग्य हों तो एक अमावास्था में एक को, दूसरी अमावास्या में दूसरी को दे।

> पत्नी रुग्णान्यदेशस्था गुर्विणी सूतिकापि वा।
> तदा तं जीर्णवृषभश्छागो वा भोक्तुमर्हति॥

इतरौ जले क्षिपेत्।

> पुत्रादिकामनाऽभावे क्षिपेदग्नौ जलेपि वा।
> पिण्डांस्तु गोऽजविप्रेभ्यो वायसेभ्यः [1]प्रदापयेत्॥
> तीर्थश्राद्धे सदा पिण्डान्क्षिपेत्तीर्थे समाहितः।

यदि पत्नी रुग्णा हो, या दूसरे देश में हो, गर्भिणी हो, या प्रसूता हो तो उस पिण्ड को भक्षण करने योग्य बूढा बैल या बकरा होता है। दो अन्य पिण्डों को जलमें फेंक दे। पुत्र आदि की कामना न होने पर अग्नि में या जल में डाल दे, या गाय को बकरे को ब्राह्मण को, या कौवे को दिला दे। तीर्थ श्राद्ध में पिण्डों को समाहित चित्त से सदैव तीर्थ में प्रक्षेप करे।

---

१. ब्रह्माण्ड में कामना से पिण्ड-प्रतिपत्ति का महत्त्व—'पिण्डमग्नौ सदा दद्याद् भोगार्थी प्रथमं नरः। पत्न्यै प्रजार्थी दद्याद् वै मध्यमं मन्त्रपूर्वकम्॥ उत्तमां गतिमन्विच्छन् गोषु नित्यं प्रयच्छति। आज्ञां प्रज्ञां यशः कीर्तिमप्सु पिण्डं प्रवेशयेत्॥ प्रार्थयन् दीर्घमायुष्यं वायसेभ्यः प्रयच्छति। आकाशं गमयेदप्सु स्थितो वा दक्षिणामुखः॥' इति।

अथ पिण्डोपघाते निर्णयः

श्वसृगालखरैः स्पृष्टः पिण्डो भिन्नः प्रमादतः ।
मार्जारमूषकैः स्पृष्टश्चाण्डालपतितादिभिः ॥
प्राजापत्यं चरेत्स्नात्वा पुनः पिण्डान् यथाविधि ।

'पाकान्तरेण तेन पाकेन वा पिण्डदानमात्रं पुनः कार्यं न सर्वश्राद्धावृत्ति-रिति सर्वसम्मतम् । काकस्पर्शे तु न दोषः ।

कुत्ता, स्यार और गदहा से स्पर्श होने पर या प्रमाद से पिण्ड के भिन्न होने पर, बिलार, चूहा, चाण्डाल और पतित आदि से स्पर्श होने पर प्राजापत्य व्रत करके स्नान करके दूसरे पाक से या उसी पाक से पिण्ड बनाकर यथाविधि केवल पुनः पिण्डदान करे न कि सम्पूर्ण श्राद्ध की आवृत्ति करे, यह सम्मत है। कौवे के स्पर्श में तो दोष नहीं है।

अथ पिण्डनिषेधनिमित्तानि

विवाहव्रतचूडासु वर्षमर्धं तदर्धकम् ।
संस्कारेषु तथान्येषु वृद्धिमात्रे च मासकम् ॥
पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम् ।

श्राद्धाङ्गतर्पणं नित्यतर्पणं च तिलैर्न कार्यमित्यर्थः । महालये गयायां पित्रोः प्रत्यब्दे यस्य कस्यापि मृतस्य सपिण्डीषोडशमासिकान्तेषु प्रेतकृत्येषु कृतमङ्ग-लोऽपि पिण्डान् दद्यात्[2] । केचिद् भ्रात्रादिवार्षिकेऽप्याहुः । पिण्डयज्ञे च यज्ञे च सपिण्डयां दद्युरेव च । तथा विकृतावन्वष्टकादौ यत्र पुनः पिण्डदानविधिः यत्र वा पूर्वेद्युःश्राद्धादौ पिण्डपितृयज्ञविकृतित्वं तत्रापि न पिण्डदाननिषेध इति सिन्धुः । तेनाष्टकाश्राद्धेऽपि न निषेध इति भाति । अयं च मङ्गलोत्तरं पिण्डदान-तिलतर्पणनिषेधस्त्रिपुरुषसपिण्डानामिति भाति ।

विवाह में एक वर्ष, उपनयन में छ महीने चूड़ा में तीन महीने तक तथा अन्य संस्कारों और वृद्धिमात्र में एक महीना तक पिण्डदान, मृत्तिकास्नान एवं तिल से तर्पण नहीं करें। श्राद्धाङ्ग तर्पण और नित्य तर्पण तिल से नहीं करे। महालय में, गया में, माता-पिता के प्रतिवार्षिक श्राद्ध में जिस किसी मरे हुए के सपिण्डी सोलह मासिकान्त प्रेतकर्मों में, जिसने मङ्गल-कृत्य किया हो वह भी पिण्डदान करे। कुछ लोग भाई आदि के वार्षिक श्राद्ध में भी पिण्डदान करना कहते हैं। पिण्ड-यज्ञ, यज्ञ और सपिण्डी में अवश्य दे। वैसे विकृति और अन्वष्टका आदि में जहां पुनः पिण्डदान की

---

१. आपस्तम्ब के—'न च नक्तं श्राद्धं कुर्वीतारब्धे चाऽऽभोजनसमापनात्' इस सूत्र की व्याख्या में हरदत्त ने लिखा है—'रात्रौ भोजनमात्रं पूर्वेद्युः कार्यम् । श्राद्धसमाप्तिस्तु परदिने एव । समाप्तिपर्यन्तं कर्तुरुपवासश्च' इसलिये दूसरे पाक से पिण्डदानमात्र करे। अथवा स्मृतिदर्पण में अत्रि के—'मार्जारमूषकस्पर्शे पिण्डे च द्विदलीकृते । पुनः पिण्डाः प्रदातव्यास्तेन पाकेन तत्क्षणात् ॥' इस वचन के अनुसार उसी पाक से तत्क्षण पिण्डदानमात्र करना चाहिये।

२. हेमाद्रौ—'महालये गयाश्राद्धे मातापित्रोः क्षयेऽहनि । यस्य कस्यापि मर्त्यस्य सपिण्डीकरणे तथा ॥ कृतोद्वाहोऽपि कुर्वीत पिण्डनिर्वापणं सदा । निर्णयामृत में कहा है—'सपिण्डीकरणं नवश्राद्ध-षोडशश्राद्धोपलक्षणार्थम्' इति ।

विधि है या जहां पूर्वेद्युःश्राद्ध आदिमें पिण्डपितृयज्ञ का विकृतित्व है वहां भी पिण्डदान का निषेध नहीं, ऐसा निर्णयसिन्धुकार कहते हैं। इससे अष्टकाश्राद्ध में भी पिण्डदान का निषेध नहीं होता, ऐसा उचित प्रतीत होता है। मङ्गलकृत्य के बाद जो यह पिण्डदान और तिलतर्पण का निषेध है वह तीन पीढ़ी के सपिण्डों के लिये है, यह युक्त प्रतीत होता है।

अथ विकिरदानप्रकारः

अथ पिण्डोद्वासनान्ते[1] विकिरो देयः। उपवीती दैविकद्विजसन्निधौ सदर्भभुवि [2]असोमपाश्च ये देवा इति मन्त्रेण सजलयवमन्नं विकिरेत्। प्राचीनावीती पित्र्यद्विजसन्निधौ सदर्भभुवि ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धेति ऋचा सतिलमन्नं विकीर्य,

अग्निदग्धाश्च ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम।
भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परां गतिम्॥

इति कातीयसौत्रमन्त्रेण सतिलजलेन प्लावयेत्। पिण्डवद्विकिरोऽपि सार्ववर्णिकान्नस्यैव।

पिण्ड-विसर्जन के बाद विकिर देना चाहिये। सव्य होकर दैविक ब्राह्मण की सन्निधि में कुशयुक्त भूमि में 'असोमपाश्च ये देवा' इस मन्त्र से जल-यव-सहित अन्न का विकिरण करे। अपसव्य से पित्र्य-ब्राह्मण के समीप कुशयुक्त भूमि में 'ये अग्निदग्धा' इस ऋचा से तिलसहित अन्न का विकिरण करके—अग्नि से दग्ध या अदग्ध जो प्राणी मेरे कुल में हैं वे भूमि में दिये अन्न से तृप्त होकर परम गति को प्राप्त करें—इस आशय के 'अग्निदग्धाश्च ये जीवा' इत्यादि इस कातीय सौत्र मन्त्र से तिलसहित जल से उस अन्न का सिञ्चन करें। पिण्ड की तरह विकिर भी सर्वविध अन्न ही का होता है।

केचिदसोमपा इति दैवे विकिरं दत्त्वा [3]असंस्कृतप्रमीता येति पौराणमन्त्रेण पित्रे दत्त्वा ये अग्निदग्धा इत्यृचा पृथगुच्छिष्टपिण्डं कुशोपरि दद्यादित्याहुः। हस्तौ प्रक्षाल्य द्विराचम्यान्यपवित्रे धृत्वा हरिं स्मरेत्। विकिरं पृथगेव निष्कास्य काकेभ्य उत्सृजेदिति काशिका। देवद्विजहस्ते शिवा आपः सन्त्वित्यादिभिरपो गन्धपुष्पयवान्दत्त्वा भूमौ तेषु त्यक्तेष्वन्येऽक्षता आशीरर्थं देयाः।

कुछ लोग 'असोमपा' इससे देव में विकिर देकर 'असंस्कृतप्रमीता ये' पुराण के इस मन्त्र से पिता को देकर 'ये अग्निदग्धा' इस ऋचा से उच्छिष्ट पिण्ड को कुश के ऊपर दे, ऐसा कहते हैं। दोनों हाथ का प्रक्षालन करके दो बार आचमन करके दोनों पवित्र को धारण कर विष्णु का स्मरण

---

१. पिण्ड के अन्त में विकिर का अन्नदान आश्वलायनों के लिये है, क्योंकि सूत्रकार ने ऐसा लिखा है। विशेष पूर्व में कहा है।

२. हेमाद्रि में देवश्राद्ध के विकिर का यह गोभिलोक्त मन्त्र है—'असोमपाश्च ये देवा यज्ञभागविवर्जिताः। तेषामन्नं प्रदास्यामि विकिरं वैश्वदेविकम्॥' इति।

३. इनके अनुसार पितृश्राद्ध में विकिर का अग्निपुराणोक्त मन्त्र है—'असंस्कृतप्रमीता ये त्यागिन्यो याः कुलस्त्रियः। दास्यामि तेभ्यो विकिरमन्नं ताभ्यश्च पैतृकम्॥' ये दोनों मन्त्र कातीयेतर वालों के लिये हैं। विकिर का अन्न दर्भयुक्त भूमि में देना चाहिये, क्योंकि वचन है—'दर्भेषु विकिरश्च यः' इति।

करे। विकिर को अलग ही निकालकर कौवों को दे, ऐसा काशिका में कहा है। देवब्राह्मण के हाथ में 'शिवा आपः सन्तु' इत्यादि से जल, गन्ध, पुष्प और यव देकर भूमि में इन सबको छोड़ देने पर दूसरे अक्षत आशीर्वाद के लिये देवे।

अथ आशिषः प्रार्थनादि

एवं पित्र्यहस्तेष्वपसव्येनापो गन्धपुष्पतिलदानादि कृत्वा सव्येनामुकगोत्रशर्माहमभिवादयामि अस्मद्गोत्रं वर्धतामित्यादि। केचिदत्र पित्र्यहस्ते गन्धतिलादिदानं सव्येनाहुः। कातीयास्तु हस्तेऽक्षतदानान्ते अक्षय्योदकं दत्त्वा अघोराः पितरः सन्त्वित्युक्त्वाऽभिवादनं दातारो नोभिवर्धन्तामित्यादिकमाहुः।

इसी प्रकार पित्र्यब्राह्मण के हाथों में अपसव्य से जल, गन्ध, पुष्प और तिल आदि देकर सव्य से अमुक गोत्रशर्मा मैं आपको अभिवादन करता हूँ हमारा गोत्र बढ़े इत्यादि कहे। कुछ लोग यहां पित्र्य-विप्र के हाथ में गन्ध, तिल आदि का दान सव्य से कहते हैं। कातीय तो हाथ में अक्षत-दान के अन्त में अक्षय्योदक देकर 'अघोराः पितरः सन्तु' ऐसा कहकर अभिवादन और 'दातारो नोभिवर्द्धन्ताम्' इत्यादि कहते हैं।

अथ पात्रचालनम्

एवमाशिषो गृहीत्वाक्षतान् मूर्धनि धृत्वा स्वयं शिष्यादिभिर्वा भोजनपात्राणि चालयित्वाचामेत्। अनुपनीतो नारी चासजातिश्च न [1]चालयेत्। सव्येन दैवे पित्र्ये च स्वस्तिवाचनम्—देवेभ्यः स्वस्तीति ब्रूत पितृभ्योऽमुकनामगोत्रादिभ्यः स्वस्तीति ब्रूतेति। ततः सव्यापसव्याभ्यां तत्तदुच्चारपूर्वकमक्षय्योदकदानम्।

इसी प्रकार आशीर्वाद ग्रहण कर अक्षतों को सिर पर धारण कर स्वयं या शिष्य आदि से भोजनपात्र हटवाकर आचमन करे। अनुपनीत बालक, स्त्री और असमान जाति, ये पात्रों का चालन न करें। सव्य होकर दैव और पित्र्य में स्वस्तिवाचन करावे—देवताओं के लिये 'स्वस्ति' ऐसा कहें, अमुक नाम-गोत्र आदि पितरों के लिये 'स्वस्ति' ऐसा कहें। इसके बाद सव्य और अपसव्य से उन-उनके उच्चारणपूर्वक अक्षय्योदकदान करे।

ततो न्युब्जपात्रमुत्तानं कृत्वा ततः परं सर्वमुपवीत्येव कुर्यात्। द्विजेभ्यः सकर्पूरताम्बूलादि दत्त्वा पितृपूर्वकं नामगोत्राद्युच्चार्य [2]दक्षिणां दद्यात्—'अमुकशर्माहममुकनामगोत्रपित्रादिस्थानोपविष्टाय विप्राय रजतदक्षिणां प्रतिपादयामि' इत्यादि। दैवे सुवर्णम्। अशक्तावुभयत्र यज्ञोपवीतं दक्षिणा।

तदनन्तर उलटे पात्र को सीधा करके इसके बाद सब कृत्य सव्य होकर ही करे। ब्राह्मणों को कपूरसहित ताम्बूल आदि देकर पितृपूर्वक नाम-गोत्र आदि का उच्चारण कर दक्षिणा दे—'अमुक

---

१. कात्यायन ने कहा है—'पात्राणि चालयेच्छ्राद्धे स्वयं शिष्योऽथवा सुतः। न स्त्रीभिर्न च बालेन नासजात्या कथंचन ॥' इति।

२. नागरखण्ड में कहा है—'उत्तानमर्घ्यपात्रं तु कृत्वा दद्याच्च दक्षिणाम्। हिरण्यं देवतानां च पितॄणां रजतं तथा ॥' बृहस्पतिः—'तस्मात् पणं काकिणीं वा फलं पुष्पमथापि वा। प्रदद्याद्दक्षिणां यज्ञे तया स सफलो भवेत् ॥' माधव ने कहा है पितरों के उद्देश से अपसव्य और ब्राह्मणों के उद्देश से सव्य होकर दक्षिणा देवे।

शर्मा मैं अमुक नाम-गोत्र पिता आदि के स्थान में बैठे हुए आप ब्राह्मण को चांदी की दक्षिणा देता हूँ, दैव में सुवर्ण दक्षिणा दे। असमर्थता में दोनों जगह यज्ञोपवीत दक्षिणा दे।

अथ स्वस्तिवाचनविसर्जनादि

दक्षिणाः पान्त्वित्युक्त्वा स्वधां वाचयिष्ये इति पृष्ट्वा वाच्यतामित्युक्ते पितृ-पितामहेत्याद्युच्चार्य स्वधोच्यतामित्युक्त्वाऽस्तु स्वधेति तैरुक्ते पिण्डसमीपे जलं निषिच्य स्वधा संपद्यतामिति सम्पत्ति वाचयेत्। कातीयसूत्रे दातारो नोभिवर्धन्तामित्याशिषोऽर्थनं स्वधावाचनं न्युब्जपात्रोत्तानीकरणं दक्षिणादानं चेति क्रमः। ततो देवादिप्रीतिं वाचयित्वा पिण्डस्थानेऽक्षतादि क्षिप्त्वा सव्येनैव वाजे वाजे इति मन्त्रेणोत्तिष्ठन्तु पितरो विश्वेदेवैः सहेति युगपद्दर्भेण पितृपूर्वं विप्रान्स्पृशन् विसृजेत्।

'दक्षिणाः पान्तु' ऐसा कहके 'स्वधां वाचयिष्ये' ऐसा पूछकर 'वाच्यतां' ऐसा ब्राह्मण के कहने पर पितृ-पितामह इत्यादि का उच्चारण कर 'स्वधोच्यताम्' ऐसा कहकर 'अस्तु स्वधा' ऐसा उन ब्राह्मणों के कहने पर पिण्ड के समीप जल से सिंचन करके 'स्वधा सम्पद्यताम्' इससे सम्पत्ति-वाचन करावे। कातीय सूत्र में—'दातारो नोभिवर्द्धन्ताम्' इससे आशीः-प्रार्थना, स्वधावाचन, उलटे पात्र का उत्तानीकरण और दक्षिणादान—यह क्रम है। इसके बाद देवादि की प्रीति का वाचन कहवाकर पिण्ड के स्थान में अक्षत आदि छीट कर सव्य ही से 'वाजे वाजे' इस मन्त्र से 'उत्तिष्ठन्तु पितरो विश्वदेवैः सह' इससे एककाल में कुश से पितृपूर्वक ब्राह्मणों का स्पर्श करते हुए विसर्जन करे।

आमा वाजस्येति प्रदक्षिणीकृत्य ततो दातारो नोभिवर्धन्तामित्यादि वरयाचनम्। येषां विसर्जनान्ते पिण्डदानं तेषामाचान्तेषु सौमनस्यदक्षिणादिकाक्षय्य-स्वधावाचनान्ते दातारो नोभिवर्धन्तामित्यादि ततः पिण्डदानादीति क्रमः। हिरण्यकेशीयानां पिण्डदानादिप्रयोगो विस्तृतत्वान्नोक्तः। विप्रैर्वरे दत्ते स्वादुषं सदः० ब्राह्मणासः पितरः० इति मन्त्रौ पठेत्। विप्राः इहैवस्तं० आयुः प्रजामिति वदेयुः। आशीर्भिर्नन्दितो विप्रान्पादाभ्यङ्गादिना संतोष्य नत्वा अद्य मे सफलं जन्म० मन्त्रहीनं० यस्य स्मृत्येत्यादिविष्णुस्मरणपूर्वकं कर्मार्पयित्वा विप्रान्क्षमापयेत्।

'आमा वाजस्य' इस मन्त्र से प्रदक्षिणा करके इसके बाद 'दातारो नोभिवर्द्धन्ताम्' इत्यादि से वर की याचना करे। जिनका विसर्जन के अन्त में पिण्डदान होता है उनका आचमन करने पर सौमनस्य दक्षिणा आदि अक्षय्य स्वधावाचन के अन्त में 'दातारो नोभिवर्द्धन्ताम्' इत्यादि तदनन्तर पिंडदान आदि ऐसा क्रम है। हिरण्यकेशियों का पिण्डदान आदि का प्रयोग विस्तृत होने से नहीं कहा है। ब्राह्मणों के वर देने पर 'स्वादुषं स०' 'ब्राह्मणासः पितरः' इन दो मन्त्रों को पढ़े। सब ब्राह्मण 'इहैवस्तं' 'आयुः प्रजाम्' इन दो मन्त्रों को पढ़े। आशीर्वाद से प्रसन्न होकर ब्राह्मणों के चरणों को अभ्यङ्ग आदि से सन्तुष्ट कर प्रणाम करके 'अद्य मे सफ ं जन्म०' 'मन्त्रहीनं०' 'यस्य स्मृत्या' इत्यादि से विष्णुस्मरणपूर्वक कर्म का अर्पण करके ब्राह्मणों से क्षमा-याचना करे।

अष्टौ पदान्यनुव्रज्य दक्षिणीकृत्य चागतः।
दीपं हस्तेन निर्वाप्य पवित्रत्यागपूर्वकम्॥

पादशुद्धिर्द्विराचामेदुच्छिष्टोद्वासनं ततः ।
बह्वृचो वैश्वदेवं तु यथाविधि चरेत्ततः ॥
ततस्तु वश्वदेवान्ते सभृत्यसुतबान्धवः ।
भुञ्जीतातिथिसंयुक्तः सर्वं पितृनिषेवितम् ।

आठ पग ब्राह्मणों के पीछे चलकर ब्राह्मणों के दाहिनी ओर से लौटकर पवित्रत्यागपूर्वक हाथ से दीप बुझाकर जल से पैर शुद्ध कर दो बार आचमन करे। इसके बाद जूठ को हटावे। तदनन्तर बह्वृच विधि से वैश्वदेव करे। वैश्वदेव करने के बाद भृत्य, पुत्र, बन्धु और अतिथियों के साथ-पितृ प्रसादीकृत अन्न का भोजन करे।

अथ श्राद्धशेषभोजनविचारः

श्राद्धशेषान्नं शिष्याय[1] ज्ञातिभ्यश्च देयं न शूद्राय। द्विजभुक्तावशिष्टं तु शुचिभूमौ निखानयेत्। अत्र पर्वादौ निषिद्धं माषाद्यपि भोक्तव्यं वैधत्वेन[2] निषेधाप्रवृत्तेरिति केचित्। अनिषिद्धभोजनेनापि श्राद्धशेषभोजनविधिसिद्धिरित्यन्ये। श्राद्धशेषभोजनाकरणे दोषः[3]। श्राद्धदिने उपवासनिषेधाच्छ्राद्धशेषाभावे पाकान्तरेण भोजनम्। एकादश्यादाववघ्राणम्। यत्र तूपवासो नावश्यकस्तत्रैकभक्तम्। श्राद्धशेषं दिवैव भोक्तव्यं न रात्रौ, तेन नक्तव्रतेऽवघ्राणमेव।

श्राद्ध से बचे अन्न को शिष्य और ज्ञाति-बान्धवों को दे, शूद्र को न दे। ब्राह्मणों के भोजन से बचे हुए अन्न को पवित्र भूमि में गड़वा दे। इसमें पर्व आदि में निषिद्ध उर्द आदि का भी भोजन करना चाहिये, वैध होने से निषेध की प्रवृत्ति नहीं होती ऐसा कुछ लोग कहते हैं। अनिषिद्ध भोजन से भी श्राद्धशेष भोजन-विधि की सिद्धि होती है, ऐसा दूसरे लोग कहते हैं। श्राद्धशेष का भोजन न करने में दोष होता है। श्राद्ध के दिन उपवास का निषेध होने से श्राद्धशेष के न रहने पर दूसरे पाक से भोजन करे। एकादशी आदि में श्राद्धशेष को सूँघे। जहां उपवास आवश्यक न हो वहां एकभक्त करे। श्राद्ध से बचे अन्न को दिन में ही भोजन करे रात में नहीं, इससे नक्तव्रत में सूँघना ही चाहिये।

अथ श्राद्धशेषभोजने प्रायश्चित्तम्

श्राद्धावशिष्टभोक्तारस्ते वै निरयगामिनः ।
सगोत्राणां सकुल्यानां ज्ञातीनां च न दोषकृत् ॥

ब्रह्मचारियतिविधवानां नित्यं निषिद्धम्। ज्ञातिगोत्रसंबन्धिभिन्नगृहे श्राद्ध-

---

१. ब्रह्माण्डपुराणे—'कामं दद्याच्च सर्वं तु शिष्याय च सुताय च'। तथा—'शूद्राय चानुपेताय श्राद्धोच्छिष्टं न दापयेत्'। जातूकर्ण्यः—'द्विजभुक्तावशिष्टं तु शुचिभूमौ निखानयेत्'। इति।

२. स्मृतिसार में कहा है—'माषाः श्राद्धेषु वै ग्राह्या वर्ज्याश्चैवाग्निपिण्डयोः। ब्राह्मणेषु यथा मद्यं तथा माषोऽग्निपिण्डयोः॥' स्मृत्यन्तरे—'माषान् सर्वत्र वै दद्यात् पिण्डेऽग्नौ च विवर्जयेत्।'

३. देवल ने कहा है—'श्राद्धं कृत्वा तु यो मर्त्यो न भुङ्क्तेऽथ कदाचन। देवा हव्यं न गृह्णन्ति कव्यानि पितरस्तथा॥' श्राद्ध के दिन दूसरे के घर भोजन करना शातातप ने निषिद्ध किया है—'श्राद्धं कृत्वा परगृहे यो भुङ्क्ते मदविह्वलः। पतन्ति पितरस्तस्य लुप्तपिण्डोदकक्रियाः॥' इति।

शेषभोजने[1] प्राजापत्यं प्रायश्चित्तम्। यतीनां वपनं लक्षप्रणवजपश्च। गुरोर्योगिनो वा श्राद्धशेषं गृहिणो न दोषाय।

न शूद्रं भोजयेत्तस्मिन्गृहे यत्नेन तद्दिने।
श्राद्धशेषं न शूद्रेभ्यः प्रदद्यादखिलेष्वपि॥ इति पार्वणश्राद्धप्रक्रिया।

श्राद्ध से बचे अन्न का भोजन करने वाले नरकगामी होते हैं। सगोत्र और सकुल्य ज्ञातियों को श्राद्धावशिष्ट भोजन में दोष नहीं है। ब्रह्मचारी, संन्यासी और विधवा का नित्य निषेध है। ज्ञाति-गोत्र-सम्बन्धी से भिन्न के घर में श्राद्धशेष भोजन करने से प्राजापत्य प्रायश्चित्त होता है। यतियों का श्राद्धशेष भोजन में मुण्डन और एक लाख प्रणव का जप प्रायश्चित्त है। गुरु अथवा योगी के श्राद्धशेष का भोजन गृहस्थ को दूषित नहीं है। श्राद्ध के दिन उस घर में यत्नपूर्वक शूद्र को भोजन न करावे। सम्पूर्ण कर्मों में श्राद्ध-शेष शूद्रों को न दे। पार्वणश्राद्ध की प्रक्रिया समाप्त।

अथ श्राद्धदिने वैश्वदेवनिर्णयः

तत्र तावच्छ्रौताग्निमतां च बह्वृचानां श्राद्धात्पूर्वं पृथक्पाकेन [2]वैश्वदेवः। स्मार्ताग्निमतां निरग्निकानां च बह्वृचानां श्राद्धान्त एव श्राद्धशेषेण पृथक्पाकेन वा। कातीयानां तु स्मार्तश्रौताग्निमतां श्राद्धीयपाकेन पूर्वमेव। निरग्निकानामन्ते श्राद्धशेषेण पृथक्पाकेन वा। तैत्तिरीयाणां तु साग्निकानां सर्वत्रादौ वैश्वदेवः।

१, हेमाद्रि में जाबालि का वचन है—'विप्रस्त्वन्यगृहे श्राद्धशिष्टान्नं भोजनं चरेत्। प्राजापत्येन शुद्धिः स्याज्ज्ञातिगोत्रे न दोषकृत्॥' आपत्तिग्रस्त होने पर नवश्राद्धादि श्राद्धभोजन का प्रायश्चित्त विष्णु ने कहा है—'प्राजापत्यं नवश्राद्धे पादोनं चाद्यमासिके। त्रैपक्षिके तदर्धं तु पञ्चगव्यं द्विमासिके॥'—

आपत्तिग्रस्त न होने पर यदि श्राद्ध में भोजन करे तो हारीत ने कहा है—'चान्द्रायणं नवश्राद्धे प्राजापत्यं तु मिश्रके। एकाहस्तु पुराणेषु प्राजापत्यं विधीयते॥' द्वितीयादि में षट्त्रिंशन्मतोक्त यह वचन है—'प्राजापत्यं नवश्राद्धे पादोनं चाद्यमासिके। त्रैपक्षिके तदर्धं स्यात् पादो द्वैमासिके तथा॥ पादोनकृच्छ्रमुद्दिष्टं षण्मासे च तथाऽऽब्दिके। त्रिरात्रं चान्यमासेषु प्रत्यहं चेदहः स्मृतम्॥' मिताक्षरा—'नवश्राद्धेषु यच्छिष्टं गृहे पर्युषितं च यत्। दम्पत्योर्भुक्तशिष्टं च न भुञ्जीत कदाचन॥' नवश्राद्ध से इतने श्राद्ध ग्राह्य हैं—'प्रथमेऽह्नि तृतीयेऽह्नि पञ्चमे सप्तमे तथा। नवमैकादशे चैव तन्नवश्राद्धमुच्यते॥' मिश्रक-पुराण-संज्ञक-श्राद्ध के वचन पूर्व में लिखे गये हैं।—

जाबालि ने अपवाद किया है—'श्वशुरस्य गुरोर्वापि मातुलस्य महात्मनः। ज्येष्ठभ्रातुश्च पुत्रस्य ब्रह्मनिष्ठस्य योगिनः॥ एतेषां श्राद्धशिष्टान्नं भुक्त्वा दोषो न विद्यते। इति केचित्प्रशंसन्ति मुनयस्तदसाम्प्रतम्॥' इति।

२.लौगाक्षिः—'पक्षान्तं कर्म निर्वर्त्य वैश्वदेवं च साग्निकः। पिण्डयज्ञं ततः कुर्यात्ततोऽन्वाहार्यकं बुधः॥ पित्रर्थं निर्वपेत् पाकं वैश्वदेवार्थमेव च। वैश्वदेवं न पित्रर्थं न दार्शं वैश्वदेविकम्॥' शालङ्कायनः—श्राद्धात्प्रागेव कुर्वीत वैश्वदेवं तु साग्निकः। एकादशाहिकं मुक्त्वा तत्र ह्यन्ते विधीयते॥' परिशिष्टे—'सम्प्राप्ते पार्वणश्राद्धे एकोद्दिष्टे तथैव च। अग्रतो वैश्वदेवः स्यात् पश्चादेकादशेऽहनि॥' 'आदौ वृद्धौ क्षये चान्ते दर्शे मध्ये महालये। एकोद्दिष्टे निवृत्ते तु वैश्वदेवो विधीयते॥' इति।

उसमें श्रौताग्नि वाले बह्वृचों का श्राद्ध से पहले पृथक् पाक से वैश्वदेव होता है। स्मार्ताग्नि वाले और निरग्निकों का बह्वृचों के श्राद्ध के अन्त में श्राद्ध-शेष से या पृथक्पाक से वैश्वदेव होता है। स्मार्त-श्रौत अग्नि वाले कातीयों का ब्राह्मण-भोजन से पहले श्राद्धीय पाक से वैश्वदेव होता है और निरग्निक कातीयों का अन्त में श्राद्धशेष या पृथक्पाक से होता है। साग्निक तैत्तिरीयों का तो सर्वत्र आदि में वैश्वदेव होता है।

पञ्चमहायज्ञास्त्वन्ते। अन्येषामादावन्ते वेति विकल्पः। तैत्तिरीयाणामेव वैश्वदेवात्पञ्चयज्ञा भिन्नाः। सर्वशाखिनां वृद्धिश्राद्धे पाकेन क्रियमाणे पूर्वमेव वैश्वदेवः। बह्वृचानामन्ते वा पूर्वं वा। आमादिना वृद्धिश्राद्धे सर्वेषां पूर्वमन्ते वेति भाति। नित्यश्राद्धे पूर्वमेव। एकादशाहाद्येकोद्दिष्टेषु साग्निरनग्निश्च सर्वोऽपि श्राद्धशेषं द्विजाधीनं कृत्वा पाकान्तरेणैव वैश्वदेवादि कुर्यात्।

पञ्चमहायज्ञ तो अन्त में होता है। दूसरों का आदि या अन्त में विकल्प है। तैत्तिरीयों का ही वैश्वदेव से पञ्चमहायज्ञ भिन्न है। सब शाखा वालों का वृद्धिश्राद्ध में पाक करने से पहले ही वैश्वदेव होता है। बह्वृचों का पहले या अन्त में होता है। कच्चे अन्न आदि से वृद्धिश्राद्ध में सब का पूर्व या अन्त में करे, ऐसा युक्त मालूम होता है। नित्य श्राद्ध में पहले ही होता है। एकादशाह आदि एकोद्दिष्ट साग्निक व निरग्निक सभी श्राद्ध-शेष को ब्राह्मणाधीन करके दूसरे पाक से ही वैश्वदेव आदि करे।

अथ नित्यश्राद्धम्

वार्षिकादिश्राद्धदिने श्राद्धात्पश्चात्तेनैव पाकेन पाकान्तरेण वा 'नित्यश्राद्धं कार्यम्। नित्यश्राद्धीयसर्वदेवतानां प्रथमश्राद्धे प्रवेशे प्रसङ्गसिद्धिरेव। तथा च दर्शादिषु महालयान्वष्टकादिषु नित्यश्राद्धलोप एव। एतच्च देवहीनं दर्शवत् षड्दैवतं द्वावेकं वा विप्रं निमन्त्र्य देशकालान्ननियमहीनं पुनर्भोजनब्रह्मचर्यादिकर्तृभोक्तृनियमरहितं[2] यादृशतादृशेनैवानिषिद्धान्नेन दिवैव रात्रौ प्रहरपर्यन्तं वा कार्यम्। स्वस्याशक्तौ पुत्रादिना। सूतके दर्शादिवल्लोपः। वृद्ध्युत्तरं मण्डपोत्थानावधि सपिण्डैर्न कार्यम्। नित्यवैश्वदेवान्तर्गतपितृयज्ञोत्तरं मनुष्ययज्ञात्प्रागेव भाति। तत्र दर्शवत् षट्पितॄन् देवहीनानुच्चार्यं 'नित्यश्राद्धं करिष्ये' इति।

वार्षिक आदि श्राद्ध दिन में श्राद्ध के बाद उसी पाक से या दूसरे पाक से नित्यश्राद्ध करना चाहिये। नित्यश्राद्धीय सब देवताओं का प्रथम श्राद्ध में प्रवेश होने पर प्रसङ्ग-सिद्धि ही है। दर्श आदि में महालय और अन्वष्टका आदि में नित्यश्राद्ध का लोप ही है। इस नित्यश्राद्ध को देवहीन दर्श के सदृश षड्दैवत दो या एक ब्राह्मण को निमन्त्रित कर देश-काल-अन्न के नियम से हीन, पुनर्भोजन-ब्रह्म-

१. प्रचेता ने बतलाया कि नित्यश्राद्ध में क्या-क्या नहीं करना चाहिये—'नामन्त्रणं न होमं च नाह्वानं न विसर्जनम्। न पिण्डदानं विकिरं न दद्यादत्र दक्षिणाम्॥' इति।

२. भविष्ये—'आवाहनं स्वधाकारं पिण्डाग्नौकरणादिकम्। ब्रह्मचर्यादिनियमा विश्वेदेवा न चैव हि॥ दातॄणामथ भोक्तॄणां नियमो न च विद्यते।' बृहन्नारदीय में बताया कि यह श्राद्ध दिन में नहीं कर सके तो रात्रि में प्रथमप्रहरपर्यन्त में कर ले—'दिवोदितानि कर्माणि प्रमादादकृतानि वै। यामिन्याः प्रहरं यावत्तावत् कर्माणि कारयेत्॥' संग्रहेऽपि—'रात्रौ प्रहरपर्यन्तं दिवाकृत्यानि कारयेत्। ब्रह्मयज्ञं च सौरं च वर्जयित्वा विशेषतः॥' इति।

चर्य आदि कर्ता और भोक्ता के नियम से रहित जिस किसी अनिषिद्ध अन्न से दिन में ही अथवा एक प्रहरपर्यन्त रात में करना चाहिये। स्वयं अशक्त हो तो पुत्र आदि से करावे। सूतक में दर्श आदि की तरह लोप होता है। वृद्धि के बाद मण्डपोत्थानपर्यन्त सपिण्डों को नहीं करना चाहिये। नित्य वैश्वदेव के अन्तर्गत पितृयज्ञ के बाद मनुष्ययज्ञ से पहले ही करना ठीक प्रतीत होता है। उसमें दर्श की तरह देवहीन छ पितरों का उच्चारण करके 'नित्य श्राद्ध करूँगा' ऐसा संकल्प है।

शिष्यादिश्चेद्यजमानस्य पितृपितामहेत्याद्युच्चार्य संकल्पयेत्। पितॄणामिदमासनमित्यासनं, नित्यश्राद्धे क्षणः क्रियतामिति क्षणः। पूर्वोच्चारिताः पितरः अयं वो गन्ध इत्येवं गन्धादिभिर्विप्रमभ्यर्च्य वर्तुले चतुरस्रे वा मण्डले पात्रेऽन्नं परिविष्य पृथ्वी ते पात्रमित्यादि ब्रह्मार्पणान्तं दर्शवत्। भोजनान्ते दक्षिणां दत्त्वा न वा दत्त्वा नमस्कारेण विसर्जयेत्। विप्रस्यान्नादेर्वाऽभावे यथाशक्त्यन्नमुद्धृत्य षोढा विभज्यास्मत्पितृपितामहेत्यादि चतुर्थ्यन्तं षड्देवता उच्चार्येदमन्नं स्वधा न ममेति त्यजेत्। तदन्नं विप्राय गोभ्यो वा देयं जलादौ वा त्याज्यम्। अन्नत्यागस्यापि लोपे आर्चन्नत्र मरुत इति ऋचो दशवारं जपेत्। इति नित्यश्राद्धविधिः।

यदि शिष्य आदि हो तो यजमान के पिता-पितामह इत्यादि का उच्चारण कर संकल्प करे। पितरों का यह आसन है यह कह कर आसन, नित्यश्राद्ध में क्षण कीजिये ऐसा कहकर क्षण दे। पहले उच्चारण किये गये पितृगण यह आपका गन्ध है इस प्रकार गन्धादिक से ब्राह्मण का पूजन करके गोल या चौकोन मण्डल में अन्न परोस कर 'पृथ्वी ते पात्रं' इत्यादि ब्रह्मार्पणपर्यन्त दर्श की तरह करे। भोजन के अन्त में दक्षिणा देकर या न देकर नमस्कार करके विसर्जन करे। ब्राह्मण या अन्न आदि के अभाव में शक्त्यनुसार अन्न को निकाल कर छ विभाग करके चतुर्थी विभक्ति से हमारे पिता-पितामह इत्यादि छ देवता का उच्चारण कर 'इदमन्नं स्वधा न मम' ऐसा कहकर त्याग करे। उस अन्न को ब्राह्मण या गाय को दे अथवा जल आदि में छोड़ दे। अन्न-त्याग का भी लोप होने पर 'आर्चन्नत्र मरुत' इस ऋचा का दसबार जप करे। नित्यश्राद्धविधि समाप्त।

अथ श्राद्धानुकल्पाः

अनेकविप्रालाभे देवस्थाने शालग्रामादिकं [1]स्थापयित्वैकविप्रे पित्रादित्रयं मातामहादिसहितदेवताषट्कं चावाह्य सर्वं श्राद्धं कार्यमित्युक्तम्। सर्वथा विप्रालाभे [2]दर्भबटुश्राद्धमित्याद्यप्युक्तम्।

अनेक ब्राह्मणों के न मिलने पर देवता के मन्दिर में शालग्राम आदि की स्थापना करके एक ब्राह्मण में पिता आदि तीन और मातामह आदि के सहित छ देवता का आवाहन कर सब श्राद्ध करे, ऐसा कहा है। सर्वथा ब्राह्मण के न मिलने पर कुश का बटु बनाकर श्राद्ध करे इत्यादि भी कहा है।

---

१. पद्मपुराण उत्तरखण्ड में—'सकृदभ्यर्चितं लिङ्गं शालग्रामशिलां च यः। पीठे संस्थापयित्वा तु श्राद्धं च कुरुते नरः॥ पितरस्तस्य तिष्ठन्ति कल्पकोटिशतं दिवि।' इति।

२. देवल का वचन है—'निधाय वा दर्भबटूनासनेषु समाहितः। प्रैषानुप्रैषसंयुक्तं विधानं प्रतिपादयेत्॥' योग्य ब्राह्मण के अलाभ में कुशबटु स्थापित करने पर प्रैषानुप्रैष स्वयं करना चाहिये।

अथ आमश्राद्धम्

तत्र केनचित्संकटेन पाकासम्भवे जातकर्मणि च 'ग्रहणनिमित्तकश्राद्धे चामश्राद्धं कार्यम्। सपिण्डनश्राद्धं मासिकं प्रतिवार्षिकं महालयाष्टकान्वष्टकादिश्राद्धं चामेन न कार्यम्। शूद्रस्य तु दशाहपिण्डादिश्राद्धमात्रमामेन[2], न कदापि पाकेन। तत्र पितॄनुद्दिश्य 'अमुकश्राद्धं सदैवं सपिण्डमामेन हविषा करिष्ये' इति संकल्पः। अन्यः प्रयोगः पूर्वोक्त एव। पाकप्रोक्षणस्थाने आमप्रोक्षणम्।

आमश्राद्ध में किसी संकट से पाक न होने पर और जातकर्म तथा ग्रहणनिमित्त श्राद्ध में आमश्राद्ध करे। सपिण्डनश्राद्ध, मासिक, प्रतिवार्षिक, महालय और अन्वष्टकाश्राद्ध आदि भी कच्चे अन्न से नहीं करे। शूद्र का तो दशाह पिण्ड आदि श्राद्ध केवल आमान्न से करे पाकान्न से कभी न करे। उसमें पितरों के उद्देश्य से 'अमुक श्राद्ध दैव और पिण्डसहित आम हविष्य से करूँगा' ऐसा संकल्प है। अन्य प्रयोग पहिले कहा हुआ ही है। पाक प्रोक्षण की जगह आमान्न प्रोक्षण करे।

आवाहने उशन्तस्त्वेति मन्त्रे हविषे अत्तवे इत्यत्र हविषे स्वीकर्तवे इत्यूहः। भस्ममर्यादान्तं प्राग्वत्। विप्रहस्तेषु तण्डुलैरग्नौकरणम्। अन्नाच्चतुर्गुणं[3] द्विगुणं समं वा तत्तदामं पात्रेषु संस्थाप्य पाणिहोमशेषं पिण्डार्थं संस्थाप्य पात्रेषु दत्त्वा पृथ्वी ते पात्रमित्यादि, इदमामं हव्यं कव्यमित्यादि, इदमाममृतरूपं स्वाहेत्यादि, यथाधर्मं मध्वित्यन्तं प्राकृतम्। यथासुखं जुषध्वमित्यस्यापोशनप्राणाहुतितृप्तिप्रश्नानां लोपः। सम्पन्नवाचनान्तेऽन्नशेषप्रश्नलोपः।

आवाहन में 'उशन्तः' इस मन्त्र में 'हविष्ये अत्तवे' यहां पर 'हविषे स्वीकर्तवे' ऐसा ऊह करे। भस्म-मर्यादा तक पहले के सदृश है। ब्राह्मण के हाथों में चावल से अग्नौकरण करे। अन्न से चौगुना, दुगुना या बराबर उस-उस कच्चे अन्न को पात्रों में स्थापित कर पाणिहोम के शेष को पिण्ड के लिये रखकर पात्रों में देकर 'पृथ्वी ते पात्रम्' इत्यादि, यह हव्य-कव्य-स्वरूप आमान्न आदि, अमृतरूप आमान्न स्वाहा इत्यादि, यथाधर्म मधुपर्यन्त पहले किया हुआ जानें। 'यथासुखं जुषध्वम्' इसका आपोशन, प्राणाहुति और तृप्तिप्रश्न, आमश्राद्ध में नहीं होते। सम्पन्न-वाचन के अन्त में अन्नशेषप्रश्न नहीं होता।

---

१. विष्णु और उशना ने कहा है—'आत्मनो देशकालाभ्यां विप्लवे समुपस्थिते। आपद्यनग्नौ तीर्थे च प्रवासे पत्न्यसम्भवे॥ चन्द्रसूर्यग्रहे चैव दद्यादामं विशेषतः। न पक्वं भोजयेद् विद्वान् सच्छूद्रोऽपि कदाचन॥ भोजयन् प्रत्यवायी स्यान्न च तस्य फलं भवेत्।' कात्यायनः—'आपद्यनग्नौ तीर्थे च प्रवासे पुत्रजन्मनि। आमश्राद्धं प्रकुर्वीत भार्यारजसि संक्रमे॥' कूर्मपुराणे—'अनग्निरधनो वाऽपि तथैव व्यसनान्वितः। आमश्राद्धं द्विजः कुर्याद् वृषलस्तु सदैव हि॥' स्मृतिदर्पणे—'मृताहं च सपिण्डं च गयाश्राद्धं महालयम्। आपन्नोऽपि न कुर्वीत श्राद्धमामेन कर्हिचित्॥' इति।

२. प्रचेताः—'स्त्री शूद्रः स्वपचश्चैव जातकर्मणि चाप्यथ। आमश्राद्धं सदा कुर्याद्विधिना पार्वणेन तु॥' स्वयं पचतीति स्वपचः अपत्नीक इत्यर्थः।

३. व्यासः—'आमं ददतु कौन्तेय दद्यादामं चतुर्गुणम्। द्विगुणं त्रिगुणं वाऽपि न त्वेकगुणमर्पयेत्॥ सिद्धान्ने तु विधिर्यः स्यादामश्राद्धेऽप्यसौ विधिः। आवाहनादि सर्वं स्यात् पिण्डदानं च भारत॥ दद्याच्च द्विजातिभ्यः श्रुतं वाऽश्रुतमेव वा। तेनाग्नौकरणं कुर्यात् पिण्डांस्तेनैव निर्वपेत्॥'

सर्वमते तण्डुलैः सक्तुभिर्वा पिण्डदानम्। केचिद् गृहसिद्धान्नेन पायसेन वा पिण्डानाहुः। एवं विप्रसमीपे पिण्डदानान्ते नमो वः पितर इषे इत्यत्रोपस्थानमन्त्र इषेस्थाने आमद्रव्यायेत्यूहः। पिण्डोद्वासनान्ते पिण्डजातीयद्रव्येण विकिरदानम्। आमश्राद्धे स्वस्तीति ब्रूतेति वर्ज्यम्। वाजे वाजे इति मन्त्रे तृप्ता यातेति स्थाने तर्प्स्यंथ यातेत्यूहः। ततः प्राग्वच्छेषं समापयेत्। आमश्राद्धं द्विजैः पूर्वाह्णे कार्यं शूद्रैरपराह्ण एव।

सब के मत में चावल अथवा सत्तू से पिण्डदान है। कुछ लोग घर में बने अन्न से या खीर से पिण्डदान करना बतलाते हैं। इसी प्रकार ब्राह्मण के समीप में पिण्डदान के अन्त में 'नमो वः पितरः इषे' यहां पर उपस्थान मन्त्र में 'इषे' के स्थानमें 'आमद्रव्याय' ऐसा ऊह है। पिण्ड विसर्जन के अन्त में पिण्डजाति के द्रव्य से विकिरदान करे। आमश्राद्ध में, 'स्वस्तीति ब्रूत' इस अंश का त्याग करे। 'वाजे वाजे' इस मन्त्र में 'तृप्ता यात' के स्थान में 'तर्प्स्यंथ यात' ऐसा ऊह है। तदनन्तर पहले की तरह शेष की समाप्ति करे। ब्राह्मण आमश्राद्ध को पूर्वाह्ण में और शूद्र अपराह्ण में ही करें।

अथ हिरण्यश्राद्धप्रकारः

आमान्नाभावे[1] हिरण्यश्राद्धमप्येवमेव। संकल्पादौ सर्वत्र हिरण्यपदमामपदस्थाने योज्यम्। आमवद्धेमप्रोक्षणम। अत्तव इत्यादिमन्त्रत्रयोहः प्राग्वदेव। तण्डुलादिभिर्हस्तेऽग्नौकरणम्। हिरण्यमन्नादष्टगुणं [2]चतुर्गुणं द्विगुणं समं वा देयम्। हिरण्यश्राद्धे दक्षिणास्त्येव। श्राद्धीयमामं हेम वा द्विजदत्तं यथेष्टं विनियोज्यम्। शूद्रदत्तं तु भोजनादन्यत्र विनियोज्यम्। श्राद्धीयामेन पञ्चयज्ञाः श्राद्धं च न कार्यम्।

व्यास ने पक्षान्तर का निर्देश किया है—'आमं ददद्धि कौन्तेय तदामं द्विगुणं चरेत्। त्रिगुणं चतुर्गुणं वाऽपि न त्वेकगुणमर्पयेत्॥'—

षट्त्रिंशन्मत में—'आमश्राद्धं यदा कुर्यात् पिण्डदानं कथं भवेत्। गृहपाकात् समुद्धृत्य सक्तुभिः पायसेन वा॥ पिण्डान् दद्याद्यथालाभं तिलैः सह विमत्सरः।' आमश्राद्ध का कर्तव्याकर्तव्य धर्मप्रदीप में इस प्रकार बतलाया है—'आमे हैमे तथा नित्ये नान्दीश्राद्धे तथैव च। व्यतीपातादिके श्राद्धे नियमान् परिवर्जयेत्॥ गृहपाकात्समुद्धृत्य सक्तुभिः पायसेन वा। पिण्डदानं प्रकुर्वीत आमे हैमे कृते सति॥ आमश्राद्धे च वृद्धौ च प्रेतश्राद्धे तथैव च। विकिरं नैव कुर्वीत मुनिः कात्यायनोऽब्रवीत्॥ आमश्राद्धमनङ्गुष्ठमग्नौकरणवर्जितम्। तृप्तिप्रश्नविहीनं तु कर्तव्यं मानवैर्ध्रुवम्॥ आवाहनाग्नौकरणं विकिरं पात्रपूरणम्। तृप्तिप्रश्नं न कुर्वीत आमे हैमे कदाचन॥' स्मृत्यन्तरे—'तृप्तिप्रश्नोऽवगाहश्च क्षुत्प्रश्नो यथासुखम्। आमश्राद्धे भवेन्नैतदपोशानं च पञ्चमम्॥' इति।

१. मरीचि ने हेमश्राद्ध के सम्बन्ध में कहा है—'आमान्नस्याप्यभावे तु श्राद्धं कुर्वीत बुद्धिमान्। धान्याच्चतुर्गुणेनैव हिरण्येन सुरोचिषा॥' इति।

२. स्मृत्यर्थसारे—'हिरण्यमष्टगुणं चतुर्गुणं समं वा दद्यात्।' पुत्र जन्म में संवर्त ने हेमश्राद्ध ही का निर्देश किया है—'पुत्रजन्मनि कुर्वीत श्राद्धं हेम्नैव बुद्धिमान्। न पक्वेन न चामेन कल्याणान्यभिकामयन्॥' इति।

आमान्न के अभाव में सुवर्ण-श्राद्ध भी इसी प्रकार होता है। संकल्प आदि में सब जगह आम पद के स्थान में सुवर्ण पद की योजना करे। आमान्न के सदृश सुवर्ण का प्रोक्षण करे। 'अत्तवे' इत्यादि तीन मन्त्र का ऊह पहले के समान है। चावल आदि से हाथ में अग्नौकरण करे। सोना—अन्न से अठगुना, चौगुना, दुगुना या समान देना चाहिये। सुवर्ण-श्राद्ध में दक्षिणा है ही। द्विजदत्त श्राद्धीय आमान्न या सुवर्ण का यथेष्ट उपयोग करे। शूद्र का दिया हुआ तो भोजन से भिन्न कार्य में लगाने योग्य है। श्राद्ध के आमान्न से पञ्चयज्ञ और श्राद्ध नहीं करे।

हेमश्राद्धे आमश्राद्धे च पिण्डदानविकल्पात्सांकल्पिकविधिनाप्येतद्द्वयम्। सांकल्पिके च समन्त्रकावाहनार्घ्याग्नौकरणपिण्डदानविकिराक्षय्यस्वधावाचनप्रश्ने-त्येतत्सप्तकं [1]वर्ज्यम्। तत्र 'अमुकश्राद्धमामेन हविषा हिरण्येन वा सांकल्पिकविधिना करिष्ये' इति संकल्पः। शूद्रगृहेऽन्यदीयमपि क्षीराद्यपि न भक्ष्यं किमुत तदीयमामादि। तद्गृहे पक्त्वा न भक्ष्यमिति। तस्माच्छूद्राल्लब्धं द्विजगृहे पक्त्वा भक्ष्यम्। इत्यामश्राद्धहेमश्राद्धविधिः।

सुवर्ण-श्राद्ध और आमश्राद्ध में पिण्डदान के विकल्प होने से सांकल्पिक-विधि से भी ये दोनों होते हैं। सांकल्पिक में मन्त्रसहित आवाहन, अर्घ्य, अग्नौकरण, पिण्डदान, विकिर, अक्षय्य, स्वधा-वाचन, प्रश्न, ये सात वर्जनीय हैं। उसमें 'अमुक श्राद्ध आमहवि या सुवर्ण से सांकल्पिकविधि से करूँगा' ऐसा संकल्प है। शूद्र के घर में दूसरे का भी दूध आदि भक्षण नहीं करे फिर उसका आमान्न आदि कैसे भक्ष्य होगा। शूद्र के घर में पकाकर भी भक्षण नहीं करे। इसलिये शूद्र से प्राप्त आमान्न द्विज के घर में पकाकर भक्ष्य होता है। आमहेमश्राद्धविधि समाप्त।

अथ पक्वान्नद्रव्यकसांकल्पिकश्राद्धविधिः

तत्र येषु संक्रान्तियुगमन्वादिषु वृद्ध्युत्तरकालिकदर्शादिषु वा पिण्डदानं निषिद्धं[2] तत्र सर्वत्र सांकल्पिकविधिः। यश्च पिण्डदानादि बहुविस्तृतं श्राद्धमनुष्ठातुमशक्तः सोऽपि [3]सांकल्पिकं कुर्यात्। तद्यथा—'अमुकं श्राद्धं सांकल्पिकविधिनान्नेन हविषा करिष्ये' इति संकल्प्य तृतीयक्षणदानान्तं पूर्ववत्कृत्वार्घ्यदानसमन्त्रकावाहनं च वर्जयेत्। देवानावाहयामीति पितॄनावाहयामीत्येवावाह्य

१. पृथ्वीचन्द्रोदय में वसिष्ठ का वचन है—'आवाहनं स्वधाशब्दं पिण्डाग्नौकरणं तथा। विकिरं चार्घ्यदानं च सांकल्पे षड् विवर्जयेत् ॥' स्मृत्यन्तरे—'त्यजेदावाहनं चार्घ्यमग्नौकरणमेव च। पिण्डांश्च विकिराक्षय्ये श्राद्धे सांकल्पसंज्ञके ॥' विकिर में विकल्प है क्योंकि उसका विधायक वचन वृद्धशातातप का है—'पिण्डनिर्वापरहितं यत्तु श्राद्धं विधीयते। स्वधावाचनलोपोऽत्र विकिरस्तु न लुप्यते ॥' इति।

२. छागलेयः—'पिण्डो यत्र निवर्तेत मघादिषु कथंचन। सांकल्पं तु तदा कार्यं नियमाद् ब्रह्मवादिभिः ॥' कार्ष्णाजिनिः—'मौञ्जीबन्धाद् वत्सरार्धं वत्सरं पाणिपीडनात्। पिण्डान् सपिण्डा नो दद्युः प्रेतपिण्डं विनाऽत्र तु ॥' इति।

३. सपिण्डश्राद्ध करने की असमर्थता में संवर्त की उक्ति है—'समग्रं यस्तु शक्नोति कर्तुं नैवेह पार्वणम्। अपि संकल्पविधिना काले तस्य विधीयते ॥ पात्रे भोज्यस्य चान्नस्य त्यागः संकल्प उच्यते ॥' इति।

गन्धादिपूजनादिभस्ममर्यादान्तेऽग्नौकरणं वर्जयित्वा परिवेषणादिसम्पन्नवचनान्ते उत्तरापोशनं विकिरपिंडदानवर्जमक्षय्यवचनान्तं कृत्वा स्वधां वाचयिष्ये स्वधोच्यतामिति वाक्यरहितं सर्वं पूर्ववत्समापयेत् । इति सांकल्पिकप्रयोगः ।

उसमें जिन संक्रान्ति, युगादि, मन्वादि और वृद्धि के उत्तरकालिक दर्श आदि में पिण्डदान का निषेध है उसमें सब जगह सांकल्पिक विधि है। पिण्डदान आदि बहुत विस्तृत श्राद्ध करने में असमर्थ हो तो वह भी सांकल्पिक विधि से करे। वह जैसे—'अमुक श्राद्ध सांकल्पिक विधि से अन्न हवि से करूंगा' ऐसा संकल्प कर तीसरे क्षणदान तक पहले की तरह करके अर्घ्यदान और मन्त्रसहित आवाहन नहीं करे। देवताओं का आवाहन करता हूँ या पितरों का आवाहन करता हूँ इस प्रकार आवाहन कर गन्ध आदि पूजन भस्ममर्यादा के अन्त में अग्नौकरण को छोड़कर परिवेषण आदि सम्पन्न-वचन के अन्त में विकिर पिण्डदान को छोड़कर उत्तरापोशन से अक्षय्य-वचनपर्यन्त कर्म करके 'स्वधां वाचयिष्ये' 'स्वधोच्यताम्' इस वाक्य से रहित सब पूर्व की तरह समापन करे। सांकल्पिक प्रयोग समाप्त।

अथान्येऽप्यनुकल्पाः

तत्र द्विजाद्यभावे दर्भबटुविधानेन पिण्डदानमात्रमुक्तम् । अथवा द्रव्यविप्रयोरभावे पक्वान्नस्य पैतृकसूक्तेन[1] होमः कार्यः ।

यद्वा श्राद्धदिने प्राप्ते भवेन्निरशनः पुमान् ।
किंचिद्दद्यादशक्तो वा उदकुम्भादिकं द्विजे ॥
तृणानि वा गवे दद्यात्पिण्डान्वाप्यथ निर्वपेत् ।
तिलदर्भैः पितॄन्वापि तर्पयेत्स्नानपूर्वकम् ॥

अथवा तृणभारं दहेद्, धान्यं वा तिलान्वा स्वल्पां दक्षिणां वा द्विजाय दद्यात् । अथवा संकल्पादिसर्वश्राद्धप्रयोगं पठेत् ।

उसमें ब्राह्मण आदि के अभाव में कुशबटु के विधान से पिण्डदानमात्र कहा है। अथवा द्रव्य और ब्राह्मण के अभाव में पक्वान्न का पैतृकसूक्त से होम करे। अथवा श्राद्ध का दिन आने पर पुरुष भोजन न करे, या असमर्थ पुरुष जलपूर्ण कुम्भ आदि ब्राह्मण को दे, या उस दिन गाय को घास दे, या पिण्ड का निर्वाप अथवा स्नान करके पितरों को तिल कुशा से तृप्त करे, या तृण के बोझा को जला दे, या धान्य या तिल या अल्प दक्षिणा ब्राह्मण को दे, या संकल्प से लेकर सम्पूर्ण श्राद्ध-प्रयोग का पाठ करे।

सर्वाभावे वनं गत्वोर्ध्वबाहुः स्वकक्षं दर्शयन्निदं पठेत्—

न मेऽस्ति वित्तं न धनं न चान्यच्छ्राद्धोपयोगिस्वपितॄन्नतोऽस्मि ।
तृप्यन्तु भक्त्या पितरो मयैतौ भुजौ कृतौ वर्त्मनि मारुतस्य[2] ॥

इति प्रभासखण्डेऽन्येपि मन्त्रा उक्ताः । इत्यनुकल्पाः ।

---

१. बृहन्नारदीये—'द्रव्याभावे द्विजाभावे अन्नमात्रं तु पाचयेत् । पैतृकेन तु सूक्तेन होमं कुर्याद् विचक्षणः ॥' देवलः—'पिण्डमात्रं प्रदातव्यमभावे द्रव्यविप्रयोः । श्राद्धीयाहनि सम्प्राप्ते भवेन्निरशनोऽपि वा ॥' इति ।

२. इसके आगे का श्लोक है—'श्राद्धर्णमेतद्भवतां प्रदत्तं मह्यं दयध्वं पितृदेवताद्याः ॥'

सब के अभाव में वन में जाकर ऊपर दोनों बाहु उठाकर अपनी कुक्षि को दिखाकर यह पढ़े—मेरे पास न वित्त है न श्राद्धोपयोगी धन न अन्य कुछ है। अपने पितरों को मैं प्रणाम करता हूँ। मेरी भक्ति से पितृगण तृप्त हों। मैंने दोनों बाहु वायु के मार्ग में किये हैं। इस प्रकार प्रभासखंड में इस आशय के अन्य भी मन्त्र कहे हैं। अनुकल्प समाप्त।

अथ श्राद्धभोजने प्रायश्चित्तानि

दर्शश्राद्धे षट् प्राणायामाः, महालयादिश्राद्धेषु त्रिवर्षोर्ध्वं प्रतिवार्षिकेषु च षट् प्राणायामाः, गायत्र्या दशकृत्वोभिमन्त्रितस्य जलस्य पानं वा। एवमन्येष्वप्यनुक्तप्रायश्चित्तश्राद्धे षूक्तजलपानमेव[1]। वृद्धिश्राद्धे प्राणायामत्रयम्। जातकर्मादिचूडान्तसंस्काराङ्गवृद्धिश्राद्धे सान्तपनकृच्छ्रम्। जातकर्माङ्गश्राद्धे चान्द्रायणं वा। अन्यसंस्काराङ्गश्राद्धे उपवासः। सीमन्तसंस्कारे तत्संस्काराङ्गश्राद्धे च चान्द्रायणम्।

दर्श श्राद्ध में भोजन करने पर छ प्राणायाम, महालय आदि श्राद्धों में तीन वर्ष के बाद प्रतिवार्षिक में छ प्राणायाम, अथवा गायत्री से दस बार अभिमन्त्रित जल का पान प्रायश्चित्त है। इसी प्रकार अन्य श्राद्धों में भी जिनके प्रायश्चित्त नहीं कहे गये हैं उनमें गायत्री से दस बार अभिमन्त्रित जल का पान ही है। वृद्धिश्राद्ध में तीन प्राणायाम करे। जातकर्म आदि चूड़ापर्यन्त संस्कारों के अङ्गभूत वृद्धिश्राद्ध में सान्तपनकृच्छ्र प्रायश्चित्त करे। या जातकर्माङ्ग श्राद्ध में चान्द्रायण व्रत करे। अन्य संस्काराङ्ग श्राद्ध में उपवास प्रायश्चित्त करे। सीमन्त संस्कार में और सीमन्तसंस्काराङ्ग श्राद्ध में चान्द्रायण व्रत प्रायश्चित्त करे।

आपदि दशाहान्तर्नवसंज्ञकश्राद्धेषु एकादशाहे च श्राद्धभोजने प्राजापत्यकृच्छ्रम्। द्वादशाहिकसपिण्डीश्राद्धे ऊनमासे च पादोनकृच्छ्रः। द्वितीयमासिकत्रैपक्षिकोनषाण्मासिकोनाब्दिकेष्वर्धकृच्छ्रः। अन्यमासिकेषु प्रथमाब्दिके वर्षान्तसपिण्डश्राद्धे च पादकृच्छ्रः, उपवासो वा। गुरवे द्रव्यं दातुं श्राद्धभोजने सर्वत्रोक्तार्धम्। जपशीले तदर्धम्।

आपत्ति में दशाहान्त नवसंज्ञक श्राद्धों में और एकादशाह में श्राद्ध-भोजन करने पर प्राजापत्य कृच्छ्र करे। बारह दिन के सपिण्डी श्राद्ध में और ऊनमासिक श्राद्ध में एकपाद-कम कृच्छ्र प्रायश्चित्त करे। द्वितीय मासिक, त्रैपक्षिक, ऊनषाण्मासिक और ऊनाब्दिक में कृच्छ्र करे। अन्य मासिक श्राद्ध, प्रथमाब्दिक और वर्षान्त सपिण्ड श्राद्ध में पादकृच्छ्र, अथवा उपवास करे। गुरु को द्रव्य देने के

आख्याय चोत्क्षिप्य भुजो ततो वै दिवा च रात्रिं समुपोष्य तिष्ठेत्॥ भवेत् स वै तेन कृतेन तेषामृणेन मुक्तः पितृदेवतानाम्।' विष्णुपुराण और वाराहपुराण में भी कहा है—'असमर्थोऽन्नदानस्य धान्यमामं स्वशक्तितः। प्रदास्यति तिलान् वापि स्वल्पां वाऽपि च दक्षिणाम्॥ सर्वाभावे वनं गत्वा कक्षामूलप्रदर्शकः। सूर्यादिलोकपालानामिदमुच्चैः पठिष्यति॥ न मेऽस्ति वित्तं न धनं न चान्नं श्राद्धोपयोगि स्वपितॄन्नतोऽस्मि। तृप्यन्तु भक्त्या पितरो मयैतौ भुजौ कृतौ वर्त्मनि मारुतस्य॥ इत्येतत्पितृभिर्गीतं भावाभावप्रयोजनम्। यः करोति कृतं तेन श्राद्धं भवति भारत॥' इति।

१. जहां श्राद्ध के भोजन में प्रायश्चित्त नहीं कहा है वहां के लिये मिताक्षरा में विज्ञानेश्वर ने उशना का यह वचन उद्धृत किया है—'दशकृत्वः पिबेदापो गायत्र्या श्राद्धभुग् द्विजः।' इति।

लिये श्राद्धभोजन करने में सब जगह कहे हुए प्रायश्चित्त का आधा करे। जपशील हो तो आधे का आधा प्रायश्चित्त करे।

अनापद्यूनमासान्तेषु चान्द्रायणं प्राजापत्यं च। द्विमासाद्युक्तचतुर्षु पादोनकृच्छ्रः। त्रिमासादिषु पूर्वोक्तेष्वर्धकृच्छ्रः। प्रथमाब्दिके पादोनकृच्छ्रः। द्वितीयतृतीयाब्दिके एकोपवासः। क्षत्रियश्राद्धे एतद्द्विगुणम्, वैश्यश्राद्धे त्रिगुणम्, शूद्रश्राद्धे सर्वत्र चतुर्गुणम्, चाण्डालविषजलसर्पपश्वादिहतपतितक्लीबादिनवश्राद्धे चान्द्रायणम्। एकादशाहान्तं पराकश्चान्द्रं च। द्वादशाहादौ पराकः, द्विमासादिचतुर्ष्वतिकृच्छ्रः, अन्यमासिकेषु कृच्छ्रः, आब्दिके पादः। अभ्यासे सर्वत्र सर्वं द्विगुणम्। आमहेमश्राद्धे सांकल्पिके च तत्तदुक्तप्रायश्चित्तार्धम्।

आपत्ति न रहने पर ऊनमासिकपर्यन्त श्राद्ध-भोजन में चान्द्रायण और प्राजापत्य करे। दो महीने आदि कहे हुए चार श्राद्धों में पादोन-कृच्छ्र करे। पहले कहे हुए त्रिमासादि श्राद्धों में अर्धकृच्छ्र करे। प्रथमाब्दिक श्राद्ध में पादोन-कृच्छ्र करे। दूसरे और तीसरे वार्षिक श्राद्ध में एक उपवास करे। क्षत्रिय के श्राद्ध में इससे द्विगुण, वैश्य के श्राद्ध में तिगुना, शूद्र के श्राद्ध में सब जगह चौगुना, चाण्डाल, विष, जल, सर्प और पशु आदि से मरे हुए तथा पतित, नपुंसक आदि के नवसंज्ञक श्राद्ध में भोजन करने पर चान्द्रायण व्रत करे। एकादशाहपर्यन्त भोजन में पराक और चान्द्रायण करे। द्वादशाह आदि में पराक, द्विमास आदि चारो श्राद्ध में अतिकृच्छ्र, अन्य मासिक श्राद्धों में कृच्छ्र और वार्षिक श्राद्ध में पादकृच्छ्र करे। अभ्यास में सब जगह सब प्रायश्चित दुगुना करे। आमश्राद्ध और सुवर्ण श्राद्ध में तथा सांकल्पिक में उन-उनमें कहे हुए प्रायश्चित्त का आधा करे।

यतिश्च ब्रह्मचारी च पूर्वोक्तप्रायश्चित्तं कृत्वोपवासत्रयं प्राणायामशतं घृतप्राशनं चाधिकं चरेत्। अनापदि द्विगुणं चरेत्। दर्शादौ गृहिवदेव। ब्रह्मचारिणश्चौलसंस्कारे भोजने कृच्छ्रः, सीमन्ते चान्द्रम्, अन्येषूपवासः, एकादशाहश्राद्धभोजने चान्द्रं पुनःसंस्कारश्चेति हेमाद्रिः।

यति और ब्रह्मचारी पहले कहा हुआ प्रायश्चित्त करके तीन उपवास, सौ प्राणायाम और घृतप्राशन अधिक करे। आपत्काल न होने पर दुगुना करे। दर्शश्राद्ध आदि में गृहस्थ ही के सदृश करे। ब्रह्मचारी को चौल-संस्कार में भोजन करने पर कृच्छ्र, सीमन्त में चान्द्रायण, अन्य में उपवास, एकादशाह श्राद्ध में भोजन करने पर चान्द्रायण और पुनःसंस्कार करे, ऐसा हेमाद्रि कहते हैं।

अथ क्षयाहश्राद्धे विशेषः

तत्र यस्य पित्रादेर्मरणं यन्मासे यत्पक्षे यत्तिथौ तद्दिनं तस्य 'मृताहस्तत्र

१. मृताहः=क्षयाहः। क्षयाह का स्वरूप व्यास ने कहा है—'मासपक्षतिथिस्पृष्टे यो यस्मिन् म्रियतेऽहनि। प्रत्यब्दं तु तथाभूतं क्षयाहं तस्य तं विदुः॥' नारदीय में लिखा है—'पारणे मरणे नृणां तिथिस्तात्कालिकी स्मृता।' गर्ग के वचन से यहां मास चान्द्रमान से ही माननीय है—'आब्दिके पितृकार्ये च चान्द्रो मासः प्रशस्यते।' मलमास में मरने पर सौर मास ग्राह्य है जैसा हेमाद्रि में कहा है—'मलमासमृतानां तु सौरं मानं समाश्रयेत्।' इति।

पित्रादित्रिदैवत्यं वार्षिकश्राद्धं पुरूरवार्द्रवदेवसहितं कार्यम्। न चात्र सपत्नीकत्वं पित्रादीनाम्। नाप्यत्र मातामहादित्रयम्। अत्र तिथिद्वैधे निर्णयो रात्रावपि कार्यत्वम्। ग्रहणदिने तत्प्राप्तौ निर्णयो मलमासादिनिर्णयो दर्शदिने तत्प्राप्तौ निर्णयः शुद्धिश्राद्धनिर्णयश्च श्राद्धकालनिर्णयप्रसङ्गेन पूर्वोक्तोऽनुसन्धेयः। 'पारणे मरणे चैव तिथिस्तात्कालिकी मता' इति वचनात्। मरणकालिकतिथेरपराह्णादिव्याप्त्याब्दिकश्राद्धनिर्णयो ज्ञेयः। पित्रोः प्रथमाब्दिकश्राद्धं विभक्तैर्भ्रातृभिः पृथक्कार्यम्। अविभक्तत्वे ज्येष्ठेनैव। मातृमृताहे मात्रादित्रिदैवत्यं श्राद्धम्।

उसमें जिस पिता आदि की मृत्यु जिस महीने में, जिस पक्ष में, जिस तिथि में हो वह उसका मृताह कहलाता है उसमें पिता आदि का त्रिदैवत्य वार्षिक श्राद्ध, पुरूरव और आर्द्रव देव सहित करे। इसमें पिता आदि का सपत्नीकत्व नहीं होता और न इसमें मातामह आदि तीन का होता है। इसमें दो तिथि के होने पर रात में भी करने का निर्णय है। ग्रहण के दिन में क्षयाह-श्राद्ध-प्राप्ति का निर्णय, मलमास आदि का निर्णय, दर्श के दिन उसकी प्राप्ति का और शुद्धि-श्राद्ध का निर्णय श्राद्ध-काल के निर्णय के प्रसंग से पहले कहे हुए का अनुसन्धान योग्य है। पारण और मरण में तात्कालिक तिथि ली जाती है, इस आशय के वचन से मरणकालिक तिथि का अपराह्ण आदि की व्याप्ति से वार्षिक श्राद्ध का निर्णय जानना चाहिये। माता और पिता का प्रथमाब्दिक श्राद्ध अलग हुए भाइयों को अलग करना चाहिये। इकट्ठे रहने पर ज्येष्ठ ही करे। माता के क्षयाह में माता आदि का त्रिदैवत्य श्राद्ध होता है।

अथ मातापित्रोर्मृताहैक्ये निर्णयः

मातापित्रोर्मृताहैक्ये पूर्वं पितुः श्राद्धं कृत्वा स्नात्वा मातुः श्राद्धं कार्यम्। एवमेकदिने पित्रोर्मरणेन मातुर्भर्त्रा सह दाहकरणेऽपि ज्ञेयम्। सहगमने त्वेकमेव पाकं कृत्वा पितृमातृपार्वणद्वययुतं श्राद्धम्। षट्पिंडा अर्घ्याश्च। विश्वेदेवास्तु न भिन्नाः।

माता-पिता का क्षयाह एक ही दिन पड़ जाय तो पहले पिता का श्राद्ध करके स्नान कर माता का श्राद्ध करे। इसी प्रकार एक दिन माता-पिता के मरने से माता का पति के साथ दाह करने में भी जानना चाहिये। एक साथ मरने में तो एक ही पाक करके माता-पिता का दो पार्वणयुक्त श्राद्ध करे। छ पिण्ड और छ अर्घ्य होते हैं। विश्वेदेव भिन्न नहीं होते।

अथ सहगमने सुवासिनीमरणे च कृत्यम्

सहगमने सुवासिनीमरणे च विप्रपंक्तौ सुवासिनीमधिकां भोजयेत्। सुवासिन्यै कुंकुमादिस्त्र्यलंकारान् दद्यात्। सर्वत्र स्त्रीणां श्राद्धे वस्त्रयज्ञोपवीतगन्धादिकमेव विप्रेभ्यो देयं न कुङ्कुमादि।

पति-पत्नी के साथ मरने पर और सौभाग्यवती के मरने पर ब्राह्मण की पंक्ति में एक सुहागिन को अधिक भोजन करावे। सुहागिन के लिये स्त्री के कुङ्कुम आदि अलङ्कारों को दे। स्त्रियों के श्राद्ध में सर्वत्र वस्त्र यज्ञोपवीत गन्ध आदि ही ब्राह्मणों को दे, कुङ्कुम आदि नहीं दे।

अथ सापत्नमात्रादीनां श्राद्धनिर्णयः

एवं सापत्नमातुर्मातामहतत्पत्न्योर्मातुलस्य पितृव्यतत्पत्न्योर्भ्रातुः श्वश्रूश्वशुरयोर्गुरोः पितृष्वसुर्मातृष्वसुर्भार्याया भर्तुर्भगिन्यादेश्चैतेषामपुत्रत्वे[1] पार्वणविधिनैव प्रतिवार्षिकं श्राद्धं कार्यम्। केचित्पितृमातृमातामहमातामहीव्यतिरिक्तानां सर्वेषामेकोद्दिष्टविधानेनैवेत्याहुः। अत्र देशाचारानुसारेण[2] व्यवस्था।

इसी प्रकार सौतेली माता का, मातामह और उसकी पत्नियों का, मांमा-चाचा और इनकी स्त्रियों का, भाई के सास-ससुर का, गुरु का, बुआ-मौसी-स्त्री-पति और बहिन आदि इन सब का पुत्र न रहने पर पार्वण-विधि से ही प्रतिवार्षिक श्राद्ध करना चाहिये। कुछ लोग पिता, माता, मातामह और मातामही को छोड़कर सब का प्रतिवार्षिक श्राद्ध एकोद्दिष्ट विधान ही से होता है, ऐसा कहते हैं। इसमें देशाचार से व्यवस्था करनी चाहिये।

पित्रादिवार्षिकदिने पितृव्यादिवार्षिकप्राप्तौ स्वयं पित्रादिश्राद्धं कार्यं पितृव्यादिश्राद्धं तु पुत्रशिष्यादिद्वारा कार्यं दिनान्तरे वा स्वयं कार्यम्। संन्यासिनोऽप्याब्दिकादि पुत्रः कुर्यात्सपार्वणम्[3]। प्रथमे वर्षे वर्षान्तसपिण्डनपक्षे मृताहात्पूर्वदिने सपिण्डनमब्दपूर्तिश्राद्धं च कृत्वा परेद्युर्वार्षिकं कार्यम्।

पिता आदि के वार्षिक श्राद्ध के दिन पितृव्य आदि के वार्षिक पड़ने पर पिता आदि का श्राद्ध स्वयं करे। पितृव्य आदि का श्राद्ध तो पुत्र या शिष्य के द्वारा करा दे, अथवा दूसरे दिन स्वयं करे। संन्यासी पिता का भी आब्दिक आदि पार्वणसहित श्राद्ध को पुत्र स्वयं करे। पहले वर्ष में वर्षान्त सपिण्डन पक्ष में मृताह से पहले दिन सपिण्डन और अब्द-पूर्ति श्राद्ध करके दूसरे दिन वार्षिक श्राद्ध करे।

अथ क्षयाहाज्ञाने निर्णयः

यस्य मृतस्य देशान्तरमरणादिना मासो ज्ञायते तिथिर्न ज्ञायते तस्य तन्मासे

---

१. अपुत्रों के लिये आपस्तम्ब ने कहा है—'अपुत्रा ये मृताः केचित् स्त्रियो वा पुरुषाश्च ये। तेषामपि च देयं स्यादेकोद्दिष्टं न पार्वणम्॥ मित्रबन्धुसपिण्डेभ्यः स्त्रीकुमारीभ्य एव च। दद्याद् वै मासिकं श्राद्धं सांवत्सरमतोऽन्यथा॥' चतुर्विंशतिमत में कहा है—'पितृव्यभ्रातृमातॄणां ज्येष्ठानां पार्वणं भवेत्। एकोद्दिष्टं कनिष्ठानां दम्पत्योः पार्वणं मिथः॥ अपुत्रस्य पितृव्यस्य भ्रातुश्चैवाग्रजन्मनः। पितामहस्य तत्पत्न्याः श्राद्धं पार्वणवद् भवेत्॥' इति।

२. निर्णयसिन्धुकार ने भी लिखा है—'वस्तुतस्तु सर्वेषां पार्वणैकोद्दिष्टयोर्व्रीहियववद् विकल्पः। स च देशाचाराद् व्यवस्थित इति सर्वनिबन्धसिद्धान्तः।' इसीलिये पृथ्वीचन्द्रोदय में वृद्धपराशर ने—'मातापित्रोः पृथक्कार्यमेकोद्दिष्टं मृतेऽहनि' यह कहकर कहा है—'देशधर्मं समाश्रित्य वंशधर्मं तथा परे। सूरयः श्राद्धमिच्छन्ति पार्वणं च क्षयाहयपि॥' जो एकोद्दिष्ट करते हैं उनके लिये भी कहीं पार्वण ही कर्तव्य है जैसा शंख का वचन है—'अमावास्यां क्षयो यस्य प्रेतपक्षेऽथवा पुनः। पार्वणं तस्य कर्तव्यं नैकोद्दिष्टं कदाचन॥' इति।

३. वायवीये—'संन्यासिनोऽप्याब्दिकादि पुत्रः कुर्याद् यथाविधि। महालये तु यच्छ्राद्धं द्वादश्यां पार्वणं हि तत्॥' प्रचेताः—'एकोद्दिष्टं यतेर्नास्ति त्रिदण्डग्रहणादिह। सपिण्डीकरणाभावात् पार्वणं तस्य सर्वदा॥' इति।

दर्शे[1] शुक्लैकादश्यां कृष्णैकादश्यां वा प्रतिवार्षिकश्राद्धम्। मृततिथिर्ज्ञाता मासो न ज्ञातस्तदा [2]मार्गशीर्षे माघे वा भाद्रे वाऽऽषाढे वा तत्तिथौ वार्षिकम्। तिथिमासयोरज्ञाने यद्दिने देशान्तरं प्रस्थितस्तन्मासदिवसौ ग्राह्यौ।

जिस मृतक का दूसरे देश में मरने आदि से मास का ज्ञान है किन्तु तिथि का ज्ञान नहीं हो, उसका उसी मासकी अमावास्या में अथवा शुक्ल या कृष्ण पक्ष की एकादशी में प्रतिवार्षिक श्राद्ध करे। मृत तिथि का ज्ञान हो मास का ज्ञान नहीं हो तब मार्गशीर्ष या माघ में अथवा भाद्रपद वा आषाढ़ की उस तिथि में वार्षिक करे। तिथि और मास दोनों के ज्ञान न होने पर जिस दिन परदेश गया हो उसी मास और तिथि में वार्षिक श्राद्ध करे।

प्रस्थानदिनादेरज्ञाने मृतवार्ताश्रवणतिथिमासौ। प्रस्थानवार्ताश्रवणयोर्मासज्ञाने तिथेरज्ञाने तन्मासे दर्शादौ। प्रस्थानादिमासविस्मरणे तिथिस्मरणे मार्गशीर्षादिषूक्तचतुर्षु तत्तिथौ वार्षिकम्। मरणतच्छ्रवणप्रस्थानानां दिनमासयोरज्ञाने माघस्य मार्गस्य वा दर्शे श्राद्धम्। [3]द्वादशादिवर्षप्रतीक्षोत्तरं प्रतिकृतिदाहे दाहदिने वार्षिकादि।

यात्रा दिन का भी ज्ञान न होने पर मरने की बात जिस दिन सुने वही तिथि और मास वार्षिक का जानना चाहिये। प्रस्थान दिन और मृतवार्ता-श्रवण से मास के ज्ञान होने और तिथिके ज्ञान न होने पर उसी मास के अमावास्या आदि में वार्षिक करे। प्रस्थान आदि के मास के भूलने पर तिथि के स्मरण होने पर मार्गशीर्ष आदि कहे हुए चारो मासों में किसी में उसी तिथि में वार्षिक करे। मरण, मरने की बात श्रवण और प्रस्थान का दिन-मास के न जानने पर माघ या अगहन मास की अमावास्या में श्राद्ध करे। बारह आदि वर्ष की प्रतीक्षा के बाद पुतला का दाह कर दाह के दिन वार्षिक आदि करे।

अथ श्राद्धविघ्ने निर्णयः

निमन्त्रणोत्तरं विप्रस्य सूतके मृतके वा प्राप्ते आशौचं न[4]। निमन्त्रणं च

---

१. मरीचिः—'श्राद्धविघ्ने समुत्पन्ने अविज्ञाते मृतेऽहनि। एकादश्यां तु कर्तव्यं कृष्णपक्षे विशेषतः॥' 'विशेषतः' इस कथन से शुक्ल एकादशी में भी करना चाहिये। बृहस्पतिः—'न ज्ञायते मृताहश्चेत् प्रमीते प्रोषिते सति। मासश्चेत्प्रतिविज्ञातस्तद्दर्शे स्यादथाब्दिकम्॥ दिनमासौ न विज्ञातौ मरणस्य यदा पुन । प्रस्थानमासदिवसौ ग्राह्यौ पूर्वोक्तया दिशा॥' इति।

२. भविष्यपुराणे—'मृताहं यो न जानाति मानवो विनतात्मज। तेन कार्यममावास्याश्राद्धं सांवत्सरं सदा॥ दिनमेव तु जानाति मासं नैव तु यो नरः। मार्गशीर्षेऽथवा भाद्रे माघे वा तद्दिनं भवेत्॥' निर्णयामृत में बृहस्पति का वचन है—'यदा मासो न विज्ञातो विज्ञातं दिनमेव तु। तदा चाषाढके मासि माघे या तद्दिनं भवेत्॥' इति।

३. यमः—'गतस्य न भवेद् वार्ता यावद् द्वादशवार्षिकी। प्रेतावधारणं तस्य कर्तव्यं सुतबान्धवैः॥ यन्मासि यदहर्यातस्तन्मासि तदहः क्रिया। दिनाज्ञाने कुहूस्तस्य आषाढस्याथवा कुहूः॥' इति।

४. निमन्त्रण के बाद ब्राह्मण को आशौच नहीं होता, ऐसा ब्रह्मपुराण में कहा है—'निमन्त्रितेषु विप्रेषु प्रारब्धे श्राद्धकर्मणि। निमन्त्रणाद्धि विप्रस्य स्वाध्यायाद्विरतस्य च॥ देहे पितृषु तिष्ठत्सु नाशौचं विद्यते क्वचित्॥' इति।

द्वितीयक्षणरूपं समन्त्रकं ग्राह्यं न लौकिकमिति भाति। कर्तुस्तु पाकपरिक्रियोत्तरमाशौचाभावः[1]। पाकपरिक्रिया च समन्त्रकं पाकप्रोक्षणमित्याहुः। कर्तुर्गृहे भोजनारम्भोत्तरं जनने मरणे वा भोजनशेषं त्यक्त्वा [2]परकीयजलेनाचामेत्। मम तु प्रतिभाति सर्वस्याप्याशौचापवादस्यानन्यगतिविषयत्वात्संकटाभावे पाकपरिक्रियोत्तरमपि कर्तुराशौचे तदन्ते श्राद्धम्।

निमन्त्रण के बाद ब्राह्मण के यहां जननाशौच या मरणाशौच हो जाने पर आशौच नहीं होता। निमन्त्रण मंत्रसहित द्वितीय क्षणरूप ग्राह्य है लौकिक नहीं, ऐसा युक्त प्रतीत होता है। श्राद्ध कर्ता का तो पाकपरिक्रिया के अनन्तर आशौच नहीं होता। कोई—मन्त्रसहित पाकप्रोक्षण को पाकपरिक्रिया कहते हैं। श्राद्धकर्ता के घरमें भोजन-प्रारम्भ के बाद जन्म या मरण का आशौच होने पर भोजन करने वाले शेष भोजन का त्याग कर दूसरे के जल से कुल्ला करें। मुझे तो यह ठीक मालूम होता है कि सभी आशौच के अपवाद का अनन्यगतिविषयक होने से संकट के न होने पर पाकपरिक्रिया के अनन्तर भी श्राद्धकर्ता के आशौच होने पर आशौचान्त में श्राद्ध होता है।

भोक्तुस्तु भोजनारम्भात्प्रागाशौचज्ञानेऽन्यो निमन्त्रणीयः। भोजनारम्भोत्तरमाशौचे तु कर्त्रा तथैव श्राद्धं समापनीयम्। भोक्त्रा तु भोजनान्ते आशौचप्रकरणे वक्ष्यमाणं[1] प्रायश्चित्तं कार्यम्। संकटे तु पूर्वोक्तमिति युक्तं चेद् ग्राह्यम्।

खाने वाले ब्राह्मण को तो प्रारम्भ से पूर्व आशौच के ज्ञान हो जाने पर दूसरे को निमन्त्रित करना चाहिये। भोजनारम्भ के बाद आशौच में तो श्राद्धकर्ता को उसी प्रकार श्राद्ध की समाप्ति करनी चाहिये। भोजन करने वाले विप्र को तो भोजन के अन्त में आशौच प्रकरण में कहे जाने वाले प्रायश्चित्त करना चाहिये। संकट में तो पहले कहा हुआ यदि ठीक हो तो वही करे।

अथ सिन्धौ पाकोत्तरमाशौचाभाववचनस्य कर्तृमात्रपरत्वाद्भोक्तुः प्रायश्चित्तमाशौचं चोक्तम्। तद्यथा—ब्राह्मणस्याशौचे श्राद्धे सकृत्कामतोऽन्नभोजने सान्तपनकृच्छ्रम्[3]। अभ्यासे मासं कृच्छ्रं चरेत्।

निर्णयसिन्धु में पाक के बाद आशौचाभाव वचन का कर्तृमात्रपरक होने से भोजन करने वाले को प्रायश्चित्त और आशौच भी कहा है। जैसे—ब्राह्मण को आशौच में श्राद्धान्न को जानकर एक बार भोजन करने में सान्तपन कृच्छ्र प्रायश्चित्त करना चाहिये। अभ्यास में एकमास तक कृच्छ्र करे।

---

१. कर्ता के लिये विष्णु ने कहा है—'व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमेऽर्चने जपे। आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम्॥' श्राद्ध का प्रारम्भ पाक-परिक्रिया से होता है, ऐसा विष्णु ने ही कहा है—'प्रारम्भो वरणं यज्ञे संकल्पो व्रतसत्रयोः। नान्दीमुखं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया॥' तिथितत्त्वादि में विष्णु के—'निमन्त्रणोत्तरं श्राद्धे प्रारम्भः स्यादिति श्रुतिः' इस वचन से निमंत्रण के अनन्तर कर्ता और भोक्ता दोनों को आशौच नहीं लगता ऐसा कहा है।

२. षट्त्रिंशन्मते—'भुञ्जानेषु तु विप्रेषु त्वन्तरा सूतसूतके। अन्यगेहोदकाचान्ताः सर्वे ते शुचयः स्मृताः॥' इति।

३. जानकर एकबार भोजन करने पर मार्कण्डेय ने कहा है—'भुक्त्वा तु ब्राह्मणाशौचे चरेत्सान्तपनं द्विजः।' पुनः भोजन करने पर शंख ने कहा है—'ब्राह्मणस्य तथा भुक्त्वा मासमेकं व्रती भवेत्।' इति।

अज्ञानाद्विप्रादीनां जाताशौचानामन्नभक्षणे[1] एकाहं त्र्यहं पञ्चाहं सप्ताहं क्रमेणाभोजनमन्ते पञ्चगव्याशनं च। अभ्यासे द्विगुणम्। आशौचं तु ब्राह्मणादीनामाशौचे यः सकृदेवान्नमश्नाति तस्य तावदाशौचं यावत्तेषामाशौचं तदन्ते प्रायश्चित्तं कुर्यादिति विष्णूक्तं ज्ञेयम्। श्राद्धकालेऽन्यकाले चैतत्सममेवेति ज्ञेयम्। दातृभोक्तृभ्यामुभाभ्यामाशौचं न ज्ञातं चेन्न दोषः।

अज्ञान से आशौच प्राप्त ब्राह्मण आदि चारो वर्णों के अन्न खाने में एक दिन, तीन दिन, पाँच दिन और सात दिन क्रम से अनशन और अन्त में पञ्चगव्य-प्राशन करे। अभ्यास में दुगुना करे। आशौच तो ब्राह्मण आदि के आशौच में जो एकवार भी अन्न खाता है उसको उतना ही आशौच होता है जितना उसका आशौच होता है, आशौच के बाद प्रायश्चित्त करे ऐसा विष्णुस्मृति में कहा हुआ जानें। श्राद्ध या अन्य काल में यह बराबर ही है ऐसा जानना चाहिये। देने वाला खाने वाला दोनों को आशौच का ज्ञान न हो तो दोष नहीं है।

अथ श्राद्धदिनातिक्रमे निर्णयः

आशौचमध्ये श्राद्धदिनपाते आशौचान्ते एकादशाहे कार्यम्। एकादशाहो मलमासे चेन्मलेऽपि कार्यम्। तत्रातिक्रमे शुद्धमासे। एतन्मासिके प्रतिवार्षिके च ज्ञेयम्। दर्शादीनां तु पञ्चमहायज्ञादिवल्लोप एव नाशौचान्ते कर्तव्यत्वं नापि प्रायश्चित्तम्। आशौचं विना दर्शादीनां लोपेऽप्युपवासादिरूपं प्रायश्चित्तमेव न कालान्तरेऽनुष्ठानम्। एकादशाहेऽसंभवेऽमावास्यायां[2] शुक्लकृष्णैकादश्योर्वार्षिकम्।

मासिकं चोदकुम्भं च यद्यदन्तरितं भवेत्।
तत्तदुत्तरसातन्त्र्यादनुष्ठेयं[3] प्रचक्षते ॥

आशौच में श्राद्ध दिन के पड़ने पर आशौच के अन्त में ग्यारहवें दिन श्राद्ध करे। एकादशाह यदि मलमास में पड़े तो मलमास में ही करे। उसमें अतिक्रमण होने पर शुद्ध मास में करे। यह मासिक और प्रतिवार्षिक में जानना चाहिये। दर्शश्राद्ध आदि का तो पञ्चमहायज्ञ आदि के समान

---

१. अज्ञान से ब्राह्मणादि वर्णों का अन्न खा लेने पर छागलेय ने वर्णक्रम से प्रायश्चित्त कहा है—'एकाहं च त्र्यहं पञ्चसप्तरात्रमभोजनम्। ततः शुचिर्भवेद् विप्रः पञ्चगव्यं पिबेन्नरः ॥' इति।

२. षट्त्रिंशन्मते—'मासिके चाब्दिके त्वह्नि सम्प्राप्ते मृतसूतके। वदन्ति शुद्धौ तत्कार्यं दर्शे वापि विचक्षणाः ॥' गोभिलः—'देये प्रत्याब्दिके श्राद्धे अन्तरा मृतसूतके। आशौचानन्तरं कुर्यात्तन्मासेन्दुक्षये तथा ॥' मरीचिः—'श्राद्धविघ्ने समुत्पन्ने अविज्ञाते मृतेऽहनि। एकादश्यां तु कर्तव्यं कृष्णपक्षे विशेषत. ॥' 'विशेषतः' इस उक्ति से शुक्ल एकादशी में भी करे।

३. यहां 'सातन्त्र्य' में तन्त्र शब्द का 'इतिकर्तव्यता' अर्थ है। 'तन्त्रं कुटुम्बकृत्ये स्यात् सिद्धान्ते चौषधोत्तमे। प्रधाने तन्तुवाये च शाखाभेदे परिच्छदे ॥ श्रुतिशाखान्तरे हेतावुभयार्थप्रयोजके। इतिकर्तव्यतायां च' इति मेदिनी। समानं तन्त्रं सतन्त्रं, सतन्त्रस्य भावस्तस्मात् सातन्त्र्यात्। नवश्राद्ध में विघ्न होने पर निर्णयसिन्धुमें निर्णयामृत के कण्व का इसी तरह का वचन उद्धृत किया है—'नवश्राद्धं मासिकं च यद्यदन्तरितं भवेत्। तत्तदुत्तरसातन्त्र्यादनुष्ठेयं प्रचक्षते ॥' इति। व्याधि आदि या विस्मरण के कारण श्राद्ध अन्तरित हो जाय तब इस वचन के अनुसार श्राद्ध की पूर्ति करे।

लोप ही होता है, न तो आशौच के अन्त में कर्तव्य है और न प्रायश्चित्त। आशौच के विना दर्श आदि के लोप में भी उपवास रूप प्रायश्चित्त ही होता है न कि दूसरे समय में उसका अनुष्ठान। एकादशाह में न हो सके तो अमावास्या या शुक्लपक्ष या कृष्णपक्ष की एकादशी में वार्षिक श्राद्ध करे। कहा है—मासिक और उदकुम्भ जो विघ्नवश न हुआ हो उसे आगे कर्म के साथ करे।

केचिदाब्दिकमप्यन्तरितं दर्शादिकालासंभवेऽग्रिममासे तत्तिथौ[१] कार्यमित्याहुः। आशौचेतरव्याध्याद्विविघ्ने विस्मृतौ चैवमेव। केचिद्व्याध्यादिविघ्ने पुत्रादिना तद्दिने एवान्नेनाब्दिकमाहु.।

कोई कहते हैं—आब्दिक श्राद्ध भी विघ्नवश न हो सका हो और दर्श के समय में असम्भव हो तो आगे वाले मास में उसी तिथि में करे। आशौच से भिन्न व्याधि आदि से विघ्न में या भूल से श्राद्ध नहीं हो सके तो इसी प्रकार से करे। कुछ लोग कहते हैं—व्याधि आदि से विघ्न में पुत्र आदि से उसी दिन अन्न से आब्दिक करा ले।

अथ भार्यारजोदोषे विचारः

तत्र दर्शयुगादिमन्वाद्यष्टकान्वष्टकादिश्राद्धानि[२] पाककर्त्रन्तरसत्त्वेऽन्नेन तद्दिने कार्याण्यन्यथाऽऽमादिद्रव्येण। कालादर्शो दर्शश्राद्धं पञ्चमेऽहनीति पक्षान्तरमाह। सकृन्महालयस्तु दर्शे भार्यारजसि मुख्यकालातिक्रमभिया तत्रैव कार्यः। एवमाश्विनशुक्लपञ्चम्यन्तकालेऽप्यूह्यम्। अष्टम्यादौ सकृन्महालयो भार्यारजोदोषे न कार्यः, कालान्तरसत्त्वादित्यादिमहालयप्रकरणोक्तमनुसंधेयम्।

वहां दूसरे पाक बनाने वाले के रहते दर्श, युगादि, मन्वादि, अष्टका और अन्वष्टका श्राद्ध अन्न से उसी दिन करे, नहीं हो तो कच्चे आदि द्रव्य से करे। 'कालादर्श' तो दर्श श्राद्ध पाचवें दिन करे ऐसा दूसरा पक्ष कहता है। एक दिन के महालय करने के पक्ष में तो पत्नी के रजस्वला होने पर मुख्य समय के व्यतिक्रमण के भय से उसी में करे। इसी प्रकार आश्विन शुक्ल पञ्चमीपर्यन्त समय में भी कल्पना करनी चाहिये। अष्टमी आदि में एकदिन का महालय पत्नी के रजोदोष में नहीं करे। क्योंकि उसके करने का दूसरा समय है इत्यादि महालय प्रकरण में कहे हुए का अनुसन्धान करना चाहिये।

प्रत्याब्दिकं मासिकं च रजोदोषेऽपि तद्दिन एव कार्यमित्येकः पक्षः। पञ्चमेऽहनि कार्यमित्यपरः। पक्षद्वयेऽपि ग्रन्थसंमतिः शिष्टाचारसंमतिश्च। भार्यान्तरसत्त्वे तद्दिन एवेति सर्वसंमतम्। तद्दिने करणपक्षे श्राद्धकाले रजस्वलादर्शनादिकं वर्ज्यम्। तेन तादृशगृहासंभवे योग्यपाककर्त्रसंभवे[२] च पञ्चमेऽहनीति पक्षः श्रेयान्। अपुत्रास्त्रीरजोदोषे भर्तुराब्दिकं पञ्चमेऽहनि कुर्यान्ति त्वन्यद्वारा तद्दिने।

---

१. इनके मत में देवल का वचन है—'एकोद्दिष्टे तु सम्प्राप्ते यदि विघ्नः प्रजायते। मासेऽन्यस्मिंस्तिथौ तस्मिन् श्राद्धं कुर्याद् प्रयत्नतः॥' इति।

२. सुमन्तु के—'पाकाभावे द्विजातीनामामश्राद्धं विधीयते' इस वचन से दूसरे पाककर्ता के रहने पर पक्वान्न से अन्यथा आमान्न से श्राद्ध करे 'मासिकानि सपिण्डानि अमावास्या तथाब्दिकम्। अन्नेनैव तु कर्तव्यं यस्य भार्या रजस्वला॥' इति। विशेष अन्यत्र देखें।

एक पक्ष यह है कि प्रत्याब्दिक और मासिक श्राद्ध, रजस्वला होने पर भी उसी दिन करना चाहिये। दूसरा पक्ष यह है कि पांचवें दिन रजःशुद्धि के बाद करे। दोनों पक्ष में ग्रन्थ और शिष्टाचार की सम्मति है। दूसरी पत्नी के रहने पर उसी दिन करे यह सर्व सम्मत है। उसी दिन करने के पक्ष में श्राद्ध-समय में रजस्वला को देखना आदि वर्जित है। इससे वैसे घरके न रहने पर और योग्य पाक बनाने वाले के न मिलने पर पाचवें दिन वाला पक्ष श्रेष्ठ है। विना पुत्र वाली स्त्री के रजोदोष में पतिका वार्षिक श्राद्ध पांचवें दिन करे न कि अन्य के द्वारा उस दिन करावे।

अथ पतिमुद्दिश्याग्निप्रवेशे विचारः

तत्र सहगमनमेव विप्राणाम्। क्षत्रियादेस्तु सहगमनमनुगमनं च। एकचित्यारोहेण दंपत्योः सहैव मन्त्रवद्दाहः सहगमनम्। भर्तुः समन्त्रकदाहोत्तरं पृथक्चितावग्निप्रवेशोऽनुगमनम्। तत्रोभयत्रापि तिथ्यैक्ये एकदिने एव [1]तन्त्रेण पाकादि कृत्वा दर्शवत्षट्पिण्डषडर्घ्यविप्रभेदयुतं पितृपार्वणमातृपार्वणविशिष्टं श्राद्धं कार्यम्। विश्वेदेवास्तु न भिन्ना भिन्ना वा। तिथिभेदेऽपि श्राद्धदिनैक्ये एवमेव। तिथिभेदाच्छ्राद्धदिनभेदे तु वार्षिकादि पृथगेव कार्यम्। केचित्तु सहगमने तिथिभेदेऽपि भर्तुः क्षयाहश्राद्धदिने एव पत्न्याः श्राद्धं न तु दिनान्तर इत्याहुस्तदल्पकालव्यवधाने योज्यं न तु द्वित्र्यादितिथिव्यवधाने।

उसमें ब्राह्मणों का सहगमन ही है। क्षत्रिय आदि का सहगमन और अनुगमन दोनों है। पति-पत्नी के एक चिता पर आरोहण करके मन्त्रों के साथ दाह को सहगमन कहते हैं। पति के मन्त्र सहित दाह के बाद दूसरी चिता पर अग्नि में प्रवेश को अनुगमन कहते हैं। उसमें दोनों स्थिति में एक तिथि हो तो एक दिन में ही तन्त्र से पाक आदि करके दर्श के समान छ पिण्ड, छ अर्घ्य ब्राह्मण-भेद से युक्त पितृपार्वण और मातृपार्वण-विशिष्ट श्राद्ध करना चाहिये। विश्वेदेवता भिन्न नहीं होते या भिन्न होते हैं। तिथि-भेद में भी श्राद्ध दिन एक होने पर इसी प्रकार श्राद्ध करे। तिथि-भेद से श्राद्ध दिन के भेद में तो वार्षिक आदि अलग ही करना चाहिये। कुछ लोग तो—सहगमन में तिथि-भेद के रहने पर भी पति के क्षयाह में ही स्त्री का श्राद्ध होता है न कि दूसरे दिन ऐसा कहते हैं, उसे थोड़े समय के व्यवधान में लगाना चाहिये न कि दो तीन दिन आदि के व्यवधान में।

अथ श्राद्धसम्पाते निर्णयः

तत्र पित्रोर्मृताहैक्ये [2]पूर्वं पितुः श्राद्धं ततः पाकभेदेन मातुरित्युक्तम्।

---

१. मदनरत्न में प्रचेता का वचन है कि सहगमन में सर्वत्र श्राद्ध के लिये एक पाक होगा—'एकचित्यां समारूढौ म्रियेत दम्पती यदि। तन्त्रेण श्रपणं कुर्यात् पृथक् पिण्डं समावपेत् ॥' विशेष विचार अन्य निबन्धों में देखें।

२. कार्ष्णाजिनिस्मृतिः—'पित्रोः श्राद्धे समं प्राप्ते नवे पर्युषितेऽपि वा। पितृपूर्वं सुतः कुर्यादन्यत्रासन्नियोगतः ॥' इस वचन के आधार पर माधवादि सर्वत्र पितृपूर्वक भिन्न प्रयोग कहते हैं। 'अन्यत्रासन्नियोगतः' में अन्यत्र का अर्थ है दोनों के भिन्न काल में मरने पर। पार्वण और एकोद्दिष्ट के संपात में जाबालि ने कहा है—'यद्येकत्र भवेयातामेकोद्दिष्टं च पार्वणम्। पार्वणं त्वभिनिर्वर्त्य एकोद्दिष्टं समाचरेत् ॥' इति।

[1]गृहदाहादिना सपिण्डानां युगपन्मरणे संबन्धसामीप्यक्रमेण श्राद्धानि पाकभेदेन पृथक्कुर्यात्। पृथक्पाकेन भिन्नश्राद्धाशक्तौ तन्त्रेण[2]श्रपणं कृत्वा श्राद्धं कुर्यात्पृथक्पृथक्। क्रमेणैकदिने मरणे मरणक्रमेण। तत्रैकदिने एकस्त्रयाणां श्राद्धानि न कुर्यात्। वार्षिकश्राद्धत्रयप्राप्तौ श्राद्धद्वयं स्वयं कुर्यात्। [3]तृतीयादि भ्रात्रादिना कारयेद्दिनान्तरे वा कुर्यात्। पित्रोः सपिण्डस्य च संपाते तूक्तम्—

श्राद्धं कृत्वा तु तस्यैव पुनः श्राद्धं न तद्दिने।
नैमित्तिकं तु कर्तव्यं निमित्तोत्पत्त्यनुक्रमात्।

उसमें माता-पिता के मृताह एक दिन पड़ने पर पहले पिता का श्राद्ध उसके बाद दूसरे पाक से माता का श्राद्ध करे यह कहा है। घर जलने आदि से एक काल में सपिण्डों के मरने पर समीप संबन्ध के क्रम से श्राद्धों को पाक भेद से अलग करना चाहिये। पृथक्-पृथक् पाक से भिन्न-भिन्न श्राद्ध करने में अशक्त हो तो तन्त्र से पाक बनाकर पृथक्-पृथक् श्राद्ध करे। क्रम से एक दिन में मरने पर मरने के क्रम से करे। एक दिन में एक पुरुष तीन श्राद्धों को नहीं करे। तीन वार्षिक श्राद्ध आ पड़ने पर दो श्राद्ध स्वयं करे। तीसरे आदि श्राद्धों को भाई आदि से करावे या दूसरे दिन करे। माता-पिता और सपिण्ड के श्राद्ध संपात में तो कहा है—श्राद्ध करके पुनः उसी का श्राद्ध तो उसी दिन न करे। नैमित्तिक श्राद्ध तो निमित्त की उत्पत्ति-क्रम से करना चाहिये।

तथा षण्णवतिश्राद्धेषु समानदेवताकत्वे तन्त्रेण श्राद्धानि। अधिकदेवताकत्वे पृथक्श्राद्धानि। वार्षिकमासिकोदकुम्भश्राद्धेषु नित्यश्राद्धं दर्शादिश्राद्धं च देवतानां [4]भेदात्पृथक्कार्यम्। महालये तीर्थश्राद्धे दर्शादिषण्णवतिषु च नित्यश्राद्धस्य प्रसङ्गसिद्धिः। मासिकेनोदकुम्भश्राद्धस्य प्रसङ्गसिद्धिः। तत्र प्रसङ्गसिद्धिस्थले दर्शादिकं प्रसङ्गिश्राद्धमेव संकल्पपूर्वकं साङ्गमनुष्ठेयम्।

---

१. गृहदाहादि से एक ही काल में मरने पर भृगु का कथन है—'एककाले गतासूनां बहूनामथवा द्वयोः। तन्त्रेण श्रपणं कृत्वा कुर्याच्छ्राद्धं पृथक् पृथक्॥ पूर्वकस्य मृतस्यादौ द्वितीयस्य ततः पुनः। तृतीयस्य ततः कुर्यात् सन्निपातेष्वयं क्रमः॥' ऋष्यशृंगः—'भवेद्यदि सपिण्डानां युगपन्मरणं तदा। सम्बन्धासत्तिमालोच्य तत्क्रमाच्छ्राद्धमाचरेत्॥' इति।

२. पृथक् पाक से श्राद्ध करने की असमर्थता के अभिप्राय से पुलस्त्य ने कहा है—'महालये गयाश्राद्धे गतासूनां क्षयेऽहनि। तन्त्रेण श्रपणं कृत्वा श्राद्धं कुर्यात् पृथक्-पृथक्॥' मुख्य पक्ष तो पृथक् पाक से श्राद्ध करना ही है।

३. एक ही दिन दो श्राद्ध पड़े तो आश्वलायन ने कहा है—'नैकस्मिन् दिवसे श्राद्धत्रयाणां कुत्रचिद् द्विजः। एकः कुर्यात्तथा प्राप्ते अन्यो भ्राता समाचरेत्॥ भ्रातर्यविद्यमाने तु तत्परेऽह्नि समाचरेत्। अन्यथा श्राद्धहन्ता स्याच्छ्राद्धसंकरकृद् भवेत्॥' इसी प्रकार तीन श्राद्ध में दो स्वयं करे और तीसरा भाई आदि से करावे या दूसरे दिन स्वयं करे।

४. निर्णयसिन्धु में देवताभेद से अपवाद का वचन है—'नित्यस्य चोदकुम्भस्य नित्यमासिकयोरपि। दर्शस्य चोदकुम्भस्य दर्शमासिकयोरपि॥ नित्यस्य चाब्दिकस्यापि दार्शिकाब्दिकयोरपि। युगाद्याब्दिकयोश्चैव मन्वाद्याब्दिकयोस्तथा॥ प्रत्याब्दिकस्य चाभ्युदयोगेषु विहितस्य च। सम्पाते देवताभेदाच्छ्राद्धयुग्मं समाचरेत्॥ निमित्तानियतिश्चात्र पूर्वानुष्ठानकारणम्। पित्रोस्तु पितृपूर्वत्वं सर्वत्र श्राद्धकर्मणि॥' इति।

उसी प्रकार छयानबे श्राद्धों में समान देवता होने से तन्त्र से श्राद्ध करे। अधिक देवता होने में अलग श्राद्ध करे। वार्षिक, मासिक और उदकुम्भ श्राद्धों में देवताओं के भेद से नित्यश्राद्ध और दर्श आदि श्राद्ध पृथक् करे। महालय में, तीर्थश्राद्ध में और दर्श आदि छयानबे श्राद्धों में भी नित्य श्राद्ध की प्रसङ्ग से सिद्धि होती है। मासिक से उदकुम्भ श्राद्ध की प्रसङ्गसिद्धि है। उसमें प्रसङ्ग-सिद्धि स्थल में दर्श आदि प्रसङ्गी श्राद्ध को ही संकल्पपूर्वक अङ्गसहित करना चाहिये।

प्रसङ्गसिद्धं तु नित्यादिकं न संकल्पादावुच्चार्यमिति लोपापरपर्याय एव प्रसङ्गसिद्धिपदेनोच्यते। तन्त्रसिद्धौ तु प्रकारद्वयं भाति। दर्शव्यतीपातश्राद्धयो-स्तन्त्रानुष्ठाने षट्पुरुषानुद्दिश्य 'दर्शश्राद्धं व्यतीपातश्राद्धं च तन्त्रेण करिष्ये' इति संकल्प्य दर्शपातश्राद्धयोः देवार्थे क्षणः करणीय इति दैवे निमन्त्र्य दर्शपातश्राद्धयोः पित्राद्यर्थे क्षणः करणीय इति वर्गद्वयार्थं विप्रद्वयादिकं निमन्त्र्यैकमेव श्राद्धं कार्य-मित्येकः प्रकारः।

प्रसंग से सिद्ध नित्य आदि श्राद्ध का तो संकल्प आदि में उच्चारण नहीं करे इस प्रकार लोप का दूसरा पर्याय ही प्रसङ्गसिद्धि-पद से कहा जाता है। तन्त्रसिद्धि में तो दो प्रकार ठीक प्रतीत होता है। दर्श और व्यतीपात श्राद्ध को तन्त्र से करने में छ पुरुषों के उद्देश से 'दर्श श्राद्ध और व्यतीपात श्राद्ध तन्त्र से करूँगा' ऐसा संकल्प करके दर्श और पात श्राद्ध में देवार्थ क्षण कीजिये इस प्रकार दैव में ब्राह्मण को निमन्त्रण देकर दर्श और पात श्राद्धों में पिता आदि के लिये क्षण कीजिये इस प्रकार दो वर्ग के लिये दो ब्राह्मण आदि को निमन्त्रित कर एक ही श्राद्ध करे, यह एक प्रकार है।

अथवा पूर्ववत्संकल्प्य दवे तन्त्रेणैकमेव विप्रं निमन्त्र्य षोडशमासिकतन्त्र-वद्दर्शश्राद्धे क्षणः करणीय इति दर्शविप्रनिमन्त्रणानन्तरं व्यतीपातश्राद्धे क्षण इति विप्रान्तरं निमन्त्र्य विप्रचतुष्टयादियुतं पातश्राद्धे पिण्डाभावात् षडर्घ्यपि-ण्डयुतं श्राद्धमेकेनैव पाकेन कार्यमित्यपरः प्रकारः। एवं त्रिचतुरादिश्राद्धानां तन्त्रे ऊह्यम्। अत्र पक्षद्वये विचार्य युक्ततरपक्षः सद्भिरनुष्ठेयः।

अथवा पहले के समान संकल्प करके दैव में तन्त्र से एक ही ब्राह्मण को निमन्त्रित कर षोडश मासिक तन्त्र की तरह करके दर्श श्राद्ध में क्षण कीजिये, इस प्रकार दर्श ब्राह्मण के निमन्त्रण के बाद व्यतीपात श्राद्ध में क्षण कीजिये, इस तरह दूसरे विप्र को निमन्त्रित कर चार ब्राह्मणों आदि से युक्त पात श्राद्ध में पिण्ड के न होने से छ अर्घ्य पिण्डों से युक्त दर्श श्राद्ध को एक ही पाक से करे, यह दूसरा प्रकार है। इस प्रकार तीन चार आदि श्राद्धों के तन्त्र में कल्पना कर ले। इन दोनों पक्षों में विचार कर जो अतिशय युक्त पक्ष हो उसका अनुष्ठान सज्जनगण करें।

मयूखे तु सपिण्डकेन दर्शश्राद्धेनापिण्डकस्य व्यतीपातादिश्राद्धस्यैकदेवता-कस्य प्रसङ्गसिद्धिरेव न तन्त्रसिद्धिस्तन्त्रोदाहरणं तु पातसंक्रान्त्यादिरित्युक्तम्। यत्त्वष्टक्येन पितृमातृवार्षिकमासिकयोः प्रसङ्गसिद्धिरित्युक्तं तन्महालयेन वार्षिक-सिद्ध्यापत्त्या बहुग्रन्थविरुद्धम्। यत्र च दर्शवार्षिकश्राद्धादौ देवताभेदाच्छ्राद्ध-भेदस्तत्र निमित्तानियतिश्चात्र पूर्वानुष्ठानकारणमिति वाक्यात् पूर्वं वार्षिकं ततो

दर्शः । यत्सर्वान्प्रत्येकरूप्येणकदा न प्राप्नोनि तदनियतनिमित्तकं वार्षिकं मासिकं वा पूर्वं कार्यमिति वाक्यार्थः ।

मयूख में तो सपिण्डक दर्श-श्राद्ध से एक देवता वाले अपिण्डक व्यतीपात आदि श्राद्ध की प्रसङ्गसिद्धि ही है तन्त्रसिद्धि नहीं, तन्त्र का उदाहरण तो पात और संक्रान्ति आदि है यह कहा है। जो किसी ने अष्टका से पिता माता के वार्षिक और मासिक की प्रसंगसिद्धि कहा है वह महालय से वार्षिक श्राद्ध की प्रसंगसिद्धि से की जानेवाली आपत्ति से बहुत ग्रन्थों के विरुद्ध है। क्योंकि जहाँ दर्श और वार्षिक श्राद्ध आदि में देवता-भेद से श्राद्ध भेद है वहां—निमित्त की अनियति यहां पूर्व अनुष्ठान का कारण है—इस वाक्य से पहिले वार्षिक तब दर्श होता है। जो सब को एक रूप से एक समय में नहीं प्राप्त हो वह अनियत निमित्तक वार्षिक या मासिक पहले करना चाहिये यह वाक्य का अर्थ है।

वार्षिकमासिकादीनां सम्पाते पितृपूर्वकत्वं संबन्धसामीप्यादिकं चानुपदमेवोक्तम्। दर्शमहालययोः सम्पाते पूर्वं महालयस्ततो दर्शः। दर्शे वार्षिकमहालययोः प्राप्तौ पूर्वं वार्षिकं ततो महालयस्ततो दर्श इति त्रयं पाकभेदेन विस्तरो महालयप्रकरणे। तथा काम्यतन्त्रेण नित्यस्य तन्त्रं श्राद्धस्य सिद्धयति।

वार्षिक और मासिक आदि के संपात में पितृपूर्वक और सम्बन्ध-सामीप्य आदि अभी ही कहा है। दर्श और महालय के सम्पात में पहले महालय बाद में दर्श श्राद्ध करे। दर्श में वार्षिक और महालय के प्राप्त होने पर पहले वार्षिक तब महालय इसके बाद दर्श श्राद्ध, इस तरह पाकभेद से तीनों करे, विस्तृत महालय प्रकरण में है। एवं काम्य श्राद्ध के तन्त्र से नित्यश्राद्ध का तन्त्र सिद्ध होता है।

अथ अपिण्डकश्राद्धपरिगणनम्

अथ संक्रान्त्ययनद्वयविषुवद्वययुगादिमन्वादिभाद्रकृष्णत्रयोदशीश्रोत्रियागमनप्रयुक्तमघाभरणीमघायुतत्रयोदशीवैधृतिव्यतीपातोपरागपुत्रोत्पत्तिनिमित्तकालभ्ययोगनिमित्तकश्राद्धानि प्रोष्ठपदीभिन्नसर्वपौर्णमासीश्राद्धानि चैतानि श्राद्धानि पिण्डरहितानि सांकल्पविधिना कार्याणि। एषु दर्शवत् षट्पुरुषोद्देशः। तेनैषामेककालसम्पाते तन्त्रेण सिद्धिः। नित्यश्राद्धस्य प्रसङ्गसिद्धिः।

अब संक्रान्ति, दोनों अयन, दोनों विषुव, युगादि, मन्वादि, भाद्रकृष्ण त्रयोदशी, श्रोत्रियागमन प्रयुक्त, मघा, भरणी, मघायुक्त त्रयोदशी, वैधृति, व्यतीपात, ग्रहण, पुत्रोत्पत्ति निमित्तक और अलभ्ययोग निमित्तक श्राद्ध, भाद्रपदी भिन्न सब पूर्णिमा श्राद्ध, ये सब श्राद्ध विना पिण्ड के सांकल्पिक विधि से करना चाहिये। इसमें दर्श के समान छ पुरुष के उद्देश से श्राद्ध होता है। इससे इनका एक समय में संपात होने पर तन्त्र से सिद्धि होती है और नित्य श्राद्ध की प्रसंगसिद्धि होती है।

उपरागश्राद्धस्य भिन्नकालत्वे पृथगनुष्ठानम्। उपरागश्राद्धेन संक्रान्तिदर्शादिश्राद्धानां प्रसङ्गसिद्धिरिति प्रथमपरिच्छेदे मतान्तरमुक्तम्। पुत्रोत्पत्तिनिमित्त-

कश्राद्धस्य नवदेवताकत्वात्पृथगनुष्ठानम्। तच्च 'हेम्नैव कार्यं न त्वामेन नाप्यन्नेनेति। इति श्राद्धसम्पाते निर्णयः।

ग्रहण-श्राद्ध का काल भिन्न होने से अलग करे। ग्रहण-श्राद्ध से संक्रान्ति और दर्श आदि श्राद्ध की प्रसङ्गसिद्धि होती है, यह पहले परिच्छेद में मतान्तर कहा है। पुत्रोत्पत्ति निमित्तक श्राद्ध का नव देवता होने से उसे पृथक् करे। इसे सुवर्ण ही से करे न कि आमान्न से और पक्वान्न से। श्राद्धसंपात का निर्णय समाप्त।

अथ तिलतर्पणम्

तच्च यच्छ्राद्धे यावन्तः पितरस्तर्पितास्तावत्पितृगणोद्देशेन तच्छ्राद्धाङ्गत्वेन तिलैस्तर्पणं कार्यम्। तत्र कालनियमः ''पूर्वं तिलोदकं दर्शे प्रत्यब्दे तु परेहनि' इत्यादि। तदयं निष्कर्षः—दर्शश्राद्धे श्राद्धात्पूर्वं श्राद्धाङ्गतिलतर्पणम्। तत्र विप्रनिमन्त्रणोत्तरं पाकारम्भोत्तरं वा ब्रह्मयज्ञकरणे ब्रह्मयज्ञाङ्गनित्यतर्पणेनैव दर्शाङ्गतिलतर्पणस्य सिद्धिः। ततः पूर्वं वैश्वदेवोत्तरं वा ब्रह्मयज्ञकरणे श्राद्धीयषट्पुरुषोद्देशेन श्राद्धाङ्गतर्पणं कृत्वा श्राद्धारम्भः कार्यः।

वह जिस श्राद्ध में जितने पितर तृप्त किये गये हैं उतने पितृगण के उद्देश्य से उस श्राद्ध के अंग होने से तिलों से तर्पण करना चाहिये। उसमें काल का नियम है—दर्श में पहले और प्रतिवार्षिक में दूसरे दिन तिल जल दे। इससे यह निष्कर्ष निकला—कि दर्श श्राद्ध में श्राद्ध से पहले श्राद्धाङ्ग तिल तर्पण करे। उसमें विप्रनिमन्त्रण के बाद या पाकारम्भ के पश्चात् ब्रह्मयज्ञ करने में ब्रह्मयज्ञ के अङ्गभूत नित्य तर्पण से ही दर्शाङ्ग तिल-तर्पण की सिद्धि होती है। उसके पहले या वैश्वदेव के पश्चात् ब्रह्मयज्ञ करने में श्राद्धीय छ पुरुषों के उद्देश्य से श्राद्धाङ्ग तर्पण करके श्राद्ध का आरम्भ करे।

प्रत्याहिकं सर्वपितृतर्पणं तु ब्रह्मयज्ञकाले कार्यम्। एवं युगादिमन्वादिसंक्रान्तिपौर्णमासीवैधृतिव्यतीपातश्राद्धेषु दर्शवत्पूर्वमेव। तीर्थश्राद्धे सर्वपित्रुद्देशेन पूर्वम्। वार्षिकश्राद्धे परेद्युरेव श्राद्धीयदेवतात्रयोद्देशेन। वार्षिकश्राद्धदिने नित्यतर्पणं तिलैर्न कार्यम्। सकृन्महालये सर्वपित्रुद्देशेन परेद्युरेव।

प्रतिदिन का सब पितृतर्पण तो ब्रह्मयज्ञ के समय में करना चाहिये। इसी प्रकार युगादि, मन्वादि, संक्रान्ति, पौर्णमासी, वैधृति और व्यतीपात श्राद्धों में दर्श के सदृश पहले ही करे। तीर्थ श्राद्ध में सब पितरों के उद्देश से पहले ही करे। वार्षिक श्राद्ध में श्राद्धीय तीन देवता के उद्देश से दूसरे ही दिन करे। वार्षिक श्राद्ध के दिन तिलों से नित्य तर्पण नहीं करें। सकृन्महालयों में सब पितरों के उद्देश से दूसरे ही दिन करे।

---

१. संवर्त ने कहा है—'पुत्रजन्मनि कुर्वीत श्राद्धं हेम्नैव बुद्धिमान्। न पक्वेन न चामेन कल्याणान्यभिकामयन्॥' भविष्ये—'अन्नाभावे द्विजाभावे प्रवासे पुत्रजन्मनि। हेमश्राद्धं सग्रहे च तथा स्त्रीशूद्रयोरपि॥' इति।

२. गर्ग का वचन इस प्रकार है—'पूर्वं तिलोदकं कृत्वा अमाश्राद्धं तु कारयेत्। प्रत्यब्दे न भवेत् पूर्वं परेऽहनि तिलोदकम्॥' कारयेत्=कुर्यादित्यर्थः। यहां णिच्प्रत्यय अविवक्षित है।

अन्येषु महालयपक्षेष्वष्टकान्वष्टकापूर्वेद्युःश्राद्धेषु माघ्यावर्षार्धोदयगजच्छायाषष्ठीभरणीमघाश्राद्धेषु हिरण्यश्राद्धे चानुव्रज्य तर्पणं श्राद्धीयदेवतोद्देशेन। श्राद्धसंपाते तु यदि तत्प्रसङ्गसिद्धिस्तदा तदीयमेव तर्पणम्।

अन्य महालय पक्षों में अष्टका, अन्वष्टका और पूर्वेद्युःश्राद्धों में माघ्यावर्ष, अर्धोदय, गजच्छाया, षष्ठी, भरणी और मघा श्राद्धों तथा सुवर्ण श्राद्ध में श्राद्धीय देवता के उद्देश से विप्रगण के पीछे चल कर तर्पण करे। श्राद्ध का संपात होने पर तो यदि उसकी प्रसङ्गसिद्धि हो तब उसका ही तर्पण करे।

तन्त्रत्वे तु पूर्वतर्पणवतां पश्चात्तर्पणवतां च श्राद्धानां समसंख्यत्वे आदावन्ते वा तर्पणम्। विषमसंख्यत्वे बह्वनुरोधेन संक्रान्तिषु ग्रहणे पित्रोः श्राद्धे दर्शे व्यतीपाते पितृव्यादिश्राद्धे महालये च निषिद्धेऽपि दिने श्राद्धाङ्गतिलतर्पणं कार्यमिति केचित्। अन्ये तु सर्वत्र श्राद्धाङ्गतर्पणे कोऽपि तिथ्यादिनिषेधो नेत्याहुः।

तन्त्र हो तो पहले और पीछे तर्पण वाले श्राद्धों की तुल्य संख्या की स्थिति में आदि अथवा अन्त में तर्पण करे। कोई कहते हैं कि—विषम संख्या हो तो बहुतों के अनुरोध से संक्रान्तियों, में ग्रहण, पिता-माता के श्राद्ध, दर्श, व्यतीपात पितृव्य आदि के श्राद्ध और महालय में तथा निषिद्ध दिन में भी श्राद्धाङ्ग तिलतर्पण करना चाहिये। अन्य लोग तो—सब जगह श्राद्धाङ्ग तर्पण में कोई भी तिथि आदि का निषेध नहीं होता है—ऐसा कहते हैं।

अथ श्राद्धाङ्गतर्पणनिषेधः

वृद्धिश्राद्धे सपिण्ड्यां च प्रेतश्राद्धेऽनुमासिके।
संवत्सरविमोके च न कुर्यात्तिलतर्पणम्॥

तत्र तर्पणप्रकारः—परेऽहनि तर्पणे स्नात्वा तर्पणं कृत्वा नित्यस्नानं प्रातःसंध्यां च कुर्यात्। यद्वा नित्यस्नानप्रातःसंध्योत्तरं श्राद्धाङ्गतर्पणं सम्बन्धनामगोत्ररूपाणि द्वितीयान्तान्युच्चार्य स्वधा नमस्तर्पयामीति बह्वृचैर्दक्षिणहस्तेनान्यैरञ्जलिना[1] त्रिस्त्रिस्तर्पयेत्। प्रत्यञ्जलि मन्त्रावृत्तिः। एवं नित्यतर्पणेऽपि ज्ञेयम्।

वृद्धिश्राद्ध, सपिण्डी, प्रेतश्राद्ध, अनुमासिक और वर्ष की समाप्ति में तिल से तर्पण न करे। उसमें तर्पण का प्रकार यह है—दूसरे दिन तर्पण में स्नान-तर्पण करके नित्य स्नान और प्रातः सन्ध्या करे। अथवा नित्य स्नान और प्रातःसन्ध्या के बाद श्राद्धाङ्ग का तर्पण द्वितीया विभक्त्यन्त सम्बन्ध-नाम-गोत्र-रूपों का उच्चारण कर 'स्वधानमस्तर्पयामि' ऐसा कह कर बह्वृच दाहिने हाथ से, तदितर अञ्जलि से तीन-तीन बार तर्पण करें। प्रत्येक अञ्जलि में मन्त्र की आवृत्ति करें। इसी प्रकार नित्य तर्पण भी जानना चाहिये।

---

१. यहां कातीयों को प्रत्येक अंजलि में मन्त्रावृत्ति करनी चाहिये। बह्वृचों को दाहिने हाथ से तर्पण कहा है—'अन्वारब्धेन सव्येन पाणिना दक्षिणेन तु। सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्यामथवा तर्पणं भवेत्॥' स्मृत्यर्थसार में पितरों के वस्वादि रूप का निर्देश किया है—'वसुरुद्रादितिसुतान् श्राद्धार्थे तर्पयेत् पितॄन्।' इति।

अथ तिलतर्पणनिषेधकालः

अथ ब्रह्मयज्ञाङ्गे नित्यतर्पणे तिलयुक्ततर्पणनिषेधकालः—रविभौमभृगुवारेषु प्रतिपत्षष्ठ्येकादशीसप्तमीत्रयोदशीषु, भरणीकृत्तिकामघासु निशि संध्यासु गृहे जन्मनक्षत्रे शुभकार्यदिनेऽन्यदीये शोभनयुतगृहे मन्वादिषु युगादिषु गजच्छायायामयनद्वये च तिलतर्पणं मृदा स्नानं पिण्डदानं च [1]न कार्यम्। केचिदयनद्वये युगादिमन्वादिषु तिलतर्पणं न दोषायेत्याहुः।

ब्रह्मयज्ञाङ्ग नित्य तर्पण में तिलयुक्त तर्पण का निषिद्ध समय है—रवि-मङ्गल-शुक्रवार में, प्रतिपदा-षष्ठी-एकादशी-सप्तमी-त्रयोदशी में, भरणी कृत्तिका-मघा नक्षत्र में, रात में, सन्ध्या में, घर में, जन्मनक्षत्र में, शुभ कार्य के दिन में, दूसरे के शोभनयुत घर में, मन्वादि में, युगादि में, गजच्छाया में, दोनों अयन में, तिल से तर्पण मिट्टी से स्नान और पिण्डदान नहीं करे। कुछ लोग—दोनों अयन में मन्वादि और युगादि में तिल से तर्पण करने में दोष नहीं है—ऐसा कहते हैं।

विवाहव्रतचूडासु वर्षमर्धं तदर्धकमन्यत्र संस्कारे मासं मासार्धं वा तिलतर्पणादिकं महालयगयाक्षयाहश्राद्धं विना न कार्यमित्युक्तम्। अत्र निषिद्धदिने तिलालाभे वा हेमरौप्ययुतहस्तेन दर्भयुतहस्तेन[2] वा नित्यतर्पणं कार्यम्।

महालय, गया और क्षयाह श्राद्ध को छोड़कर विवाह में एक वर्ष, उपनयन में छ महीने, चौल में तीन महीने, अन्य संस्कार में एक मास या १५ दिन तक तिल तर्पण आदि नहीं करे, यह कहा है। इसमें निषिद्ध दिन में या तिल न मिलने पर सोना चान्दीयुक्त हाथ से अथवा कुशयुक्त हाथ से नित्य तर्पण करना चाहिये।

अथ तिथ्यादिनिषेधापवादः

तीर्थे तिथिविशेषे च गयायां प्रेतपक्षके।
निषिद्धेऽपि दिने कुर्यात्तर्पणं तिलमिश्रतम्॥ इति।

तिथिविशेषोऽष्टकादिरिति मयूखे। अत्र कातीयानां केषांचिद्वार्षिकादौ परेऽहनि भरण्यादौ विसर्जनान्ते च श्राद्धाङ्गतर्पणाचारो न दृश्यते तत्र मूलं मृग्यम्। क्षयाहश्राद्धदिने नित्यतर्पणे तिलग्रहणं तु बहुग्रन्थविरुद्धम्।

तीर्थ में, तिथि-विशेष में, गया में और प्रेत-पक्ष में और निषिद्ध दिन में भी तिल मिलाकर तर्पण करना चाहिये। तिथिविशेष पद से अष्टका का ग्रहण है, ऐसा मयूख में लिखा है। इसमें किन्हीं कातीयों का वार्षिक आदि में दूसरे दिन भरणी आदि में और विसर्जन के अन्त में श्राद्धाङ्ग तर्पण का आचार नहीं देखा जाता, इसका मूल अन्वेषणीय है। क्षयाह श्राद्ध के दिन नित्य तर्पण में तिल का ग्रहण तो बहुत ग्रन्थों के विरुद्ध है।

---

१. गार्ग्यः—'भानौ भौमे त्रयोदश्यां नन्दाभृगुमघासु च। पिण्डदानं मृदा स्नानं न कुर्यात्तिलतर्पणम्॥' मरीचिः— सप्तम्यां रविवारे च गृहे जन्मदिने तथा। निशासन्ध्यासु पुत्रार्थी न कुर्यात्तिलतर्पणम्॥' स्मृत्यर्थसारे—'विवाहव्रतचूडासु वर्षमर्धं तदर्धकम्।' 'वृद्धौ सत्यां च तन्मासि नेत्याहुस्तिलतर्पणम्।' इति।

२. गोभिल ने कहा है—'तिलाभावे निषिद्धाहे सुवर्णरजतान्वितम्। तदभावे निषिञ्चेत्तु दर्भमन्त्रेण वा पुनः॥' इति।

अथ नान्दीश्राद्धसंकल्पादि

अथ नान्दीश्राद्धे यद्वक्तव्यं तत्पूर्वार्धे प्रपञ्चितम्। एतच्चोपनयनादिमहाकर्मसु पूर्वेद्युः[१] कार्यं जातकर्माद्यल्पकर्मसु तदहरेव। तत्र देशकालौ संकीर्त्य सत्यवसुसंज्ञका विश्वेदेवा नान्दीमुखाः मातृपितामहीप्रपितामह्यो नान्दीमुख्यः पितृपितामहप्रपितामहा नान्दीमु० मातामहमातु:० पत्नीसहिता नान्दी० एतानुद्दिश्य 'पार्वणविधानेन सपिण्डं नान्दीश्राद्धं करिष्ये' इति संकल्पः।

नान्दीश्राद्ध में जो कहना है वह पूर्वार्ध में कहा है। इसे उपनयन आदि बड़े कर्मों में पहले दिन और जातकर्मादि छोटे कर्मों में उसी दिन करे। उसमें देश-काल को कह कर सत्य-वसु-नामक विश्वेदेव-नान्दीमुख, माता-पितामही-प्रपितामही नान्दीमुखी, पिता-पितामह-प्रपितामह नान्दीमुख, मातामह-प्रमातामह-वृद्धप्रमातामह सपत्नीक नान्दीमुख, इन सब का उद्देश कर 'पार्वण विधि से सपिण्ड नान्दीश्राद्ध करूंगा' यह संकल्प है।

अर्घ्यकाले नवैव पात्राण्यासाद्य तेषु द्वौ द्वौ कुशौ निधाय यवोसि सोमदैवत्य इति पूर्वोक्तोहेन यवानोप्योशन्तस्त्वेति द्वयोर्द्वयोरावाह्यामुकविश्वेदेवाः प्रीयन्तां नान्दीमुखा मातरः प्रीयन्तां नान्दीमुखाः पितामह्यः प्रीयन्तामित्यादिना यथालिङ्गं पात्राणि पुरतो न्यसेत्। नान्दीमुखा मातर इदं वोऽर्घ्यमित्यादिना यथालिङ्गं द्वाभ्यामर्घ्यपात्रं विभज्य देयम्। द्विर्द्विर्गन्धदानम्। चतुर्थ्यन्तानुदिश्य स्वाहा हव्यं न ममेत्यादिदेववदन्नदानम्।

अर्घ्य काल में नव ही पात्र रखकर तथा उनमें दो-दो कुश रखकर 'यवोसि सोमदैवत्यो' ऐसा पूर्वोक्त ऊह करके यवों का प्रक्षेप कर 'उशन्तस्त्वा' इस मन्त्र से दो-दो अर्घ में आवाहन करके अमुक विश्वेदेवा प्रसन्न हों, नान्दीमुख मातायें प्रसन्न हों, नान्दीमुख पितामही प्रसन्न हों, इत्यादि यथालिङ्ग पात्रों को सामने रखे। 'नान्दीमुखा मातर इदं वोर्घ्यम्' इत्यादि से यथालिङ्ग दो-दो की बांट कर अर्घ्यपात्र दे। दो दो बार गन्ध दे। चतुर्थ्यन्त उद्देश करके 'स्वाहा हव्यं न मम' इत्यादि देवसदृश अन्नदान करे।

पिण्डदानकाले नान्दीमुखाभ्यो मातृभ्यः स्वाहा नान्दीमुखाभ्यः पितामहीभ्यः स्वाहेत्येवं प्रत्येकं द्वौ द्वावित्यष्टादश पिण्डान्दद्यात्। अत्रानुमन्त्रणं कृताकृतम्।

---

१. वृद्धमनुः—'अलाभे भिन्नकालानां नान्दीश्राद्धत्रयं बुधः। पूर्वेद्युर्वै प्रकुर्वीत पूर्वाह्णे मातृपूर्वकम्॥' यहां गृह्यपरिशिष्ट के—'महत्सु पूर्वेद्युस्तदहरल्पेषु' इस वचन से व्यवस्था जाननी चाहिये। शातातप के— पार्वणं चापराह्णे तु प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम्' इस वचन से प्रातः काल में करे। यहां गार्ग्य के—'प्रहरोऽप्यर्धसंयुक्तः प्रातरित्यभिधीयते' इस वचन से प्रातः का डेढ़ प्रहर (साढ़े चार घंटा) अर्थ है। पुत्र जन्म में तो अत्रि के—'पूर्वाह्णे वै भवेद् वृद्धिर्विना जन्मनिमित्तकम्। पुत्रजन्मनि कुर्वीत श्राद्धं तात्कालिकं बुधः॥' इस वचन से जिस समय जन्म हो उसी समय करना चाहिये।—

आधानाङ्ग नान्दीश्राद्ध अपराह्ण में कर्तव्य है, जैसा गालव का वचन है—'आमश्राद्धं तु पूर्वाह्णे सिद्धान्नेन तु मध्यतः। पार्वणं चापराह्णे तु वृद्धिश्राद्धं तथाग्निकम्॥' विष्णु ने भी कहा है—'नान्दीमुखाद्वयं प्रातराग्निकं त्वपराह्णतः।' इति। विशेष वचन पूर्वार्ध में सुधाविवृति में देखिये।

एवं सर्वं पित्र्यमपि सव्यादिना देवधर्मेणैव कार्यमित्यादि सर्वं पूर्वार्धतो ज्ञेयम्। तत्रानुक्तो विशेष एवात्रोक्तः।

पिण्डदान काल में नान्दीमुखी माताओं को स्वाहा, नान्दीमुखी पितामही को स्वाहा, इस प्रकार प्रत्येक को दो-दो पिण्ड, इस तरह अठारह पिण्ड देवे। इसमें अनुमन्त्रण करना न करना समान है। इसी प्रकार सब पितृकर्म सव्य आदि देव धर्म से ही करे, इत्यादि सब पूर्वार्ध से जानना चाहिये। वहाँ जो नहीं कहा था यहाँ विशेष कहा है।

अथ विभक्ताविभक्तनिर्णयः

तत्र जीवत्पितृकनिर्णये श्राद्धाधिकारिनिर्णये च प्रायेणोक्तं, विशेषस्तूच्यते। [1]विभक्तधनानां भ्रात्रादीनां सर्वे धर्माः पृथगेव। सपिण्डचन्तप्रेतकर्मषोडशमासिकानि [2]चैकस्यैवेत्यादि तु प्रागुक्तम्। अविभक्तानां तु धननिरपेक्षाणि स्नानसंध्याब्रह्मयज्ञमन्त्रजपोपवासपारायणादीनि नित्यनैमित्तिककाम्यानि पृथगेव। अग्निसाध्यं श्रौतस्मार्तनित्यकर्मापि पृथगेव। 'पितृपाकोपजीवी स्याद् भ्रातृपाकोपजीविकः' इति पक्षान्तरं कात्यायनादिपरम्।

उसमें जीवत्पितृकनिर्णय में और श्राद्धाधिकारी के निर्णय में विभक्ताविभक्त का निर्णय प्रायः कहा है, विशेष तो कह रहा हूँ—जिन भाइयों का धन बँट चुका है उनका सब धर्म अलग ही होते हैं। सपिण्डनान्त प्रेत कर्म और षोडशमासिक श्राद्ध एक को ही करना चाहिये, इत्यादि पहले कहा है। जो अलग नहीं हुए हैं उनका तो धन की अपेक्षा जिन कर्मों में नहीं है ऐसे कर्म जैसे स्नान, सन्ध्या, ब्रह्मयज्ञ, मन्त्रजप, उपवास और पारायण आदि नित्य नैमित्तिक तथा काम्य कर्म अलग ही होंगे। अग्निसाध्य श्रौत, स्मार्त और नित्य कर्म भी अलग ही होंगे। पिता के पाक से जीवे या भाई के पाक से जीवे, यह दूसरा पक्ष कात्यायनादि-परक है।

पञ्चमहायज्ञमध्ये देवभूतपितृमनुष्ययज्ञा ज्येष्ठस्यैव। पाकभेदे आश्वलायनानां वैश्वदेवभेदो विकल्पेन। ज्येष्ठेन कृते वैश्वदेवे कनिष्ठस्य पाकसिद्धौ तेन तूष्णीं किंचिदन्नमग्नौ क्षिप्त्वा विप्राय दत्त्वा भोक्तव्यमिति [3]केचित्। देवपूजा तु पृथगेकत्र वा। प्रतिवार्षिकदर्शसंक्रान्तिग्रहणादिश्राद्धानि ज्येष्ठस्यैव। तीर्थश्राद्धाद्यपि युगपत्सर्वेषामविभक्तानां प्राप्तावेकस्यैव। भेदेन प्राप्तौ भिन्नम्। एवं [4]गयाश्राद्धेऽपि

---

१. मिताक्षरा में नारद का वचन है—'भ्रातृणामविभक्तानामेको धर्मः प्रवर्तते। विभागे सति धर्मोऽपि भवेत्तेषां पृथक्पृथक्॥ बृहस्पति ने भी कहा है—'एकपाकेन वसतां पितृदेवद्विजार्चनम्। एकं भवेद् विभक्तानां तदेव स्याद् गृहे गृहे॥' इति।

२. लघुहारीतः—'सपिण्डीकरणान्तानि यानि श्राद्धानि षोडश। पृथङ् नैव सुताः कुर्युः पृथग्द्रव्या अपि क्वचित्॥' यहां सपिण्डन-शब्द मासिक का उपलक्षण है, व्यासः—'अर्वाक् संवत्सराज्ज्येष्ठः श्राद्धं कुर्यात् समेत्य तु। ऊर्ध्वं सपिण्डीकरणात् सर्वे कुर्युः पृथक्पृथक्॥' उशनाः—'नवश्राद्धं सपिण्डत्वं श्राद्धान्यपि च षोडश। एकेनैव तु कार्याणि संविभक्तधनेष्वपि॥' इति।

३. इनके मत में गोभिल का वचन है—'यस्य त्वेषामग्रतोऽन्नं सिद्ध्येत् स नियुक्तमग्नौ कृत्वाऽग्रं ब्राह्मणाय दत्त्वा भुञ्जीत' इति।

४. हेमाद्रि में कूर्मपुराण का वचन है—'एष्टव्या बहवः पुत्राः शीलवन्तो गुणान्विताः। तेषां तु समवेतानां यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्॥ तारिताः स्मो वयं तेन स याति परमां गतिम्॥' इति।

योज्यम् । काम्ये दानहोमादौ द्रव्यसाध्ये भ्रात्राद्यनुमत्याधिकारः । मघात्रयोदशी-श्राद्धं पृथगेवेत्युक्तम् ।

पंचमहायज्ञों के मध्य में देव-भूत-पितर-मनुष्य यज्ञ, ज्येष्ठ ही करे । पाकभेद में वैश्वदेवभेद विकल्प से आश्वलायनों का है । कोई कहते हैं—जेठे से किये वैश्वदेव में छोटा भाई पाक सिद्ध होने पर उससे चुपचाप कुछ अन्न अग्नि में छोड़कर ब्राह्मण को देकर भोजन करे । देवपूजन तो अलग करे या एक में । प्रतिवार्षिक-दर्श-संक्रान्ति-ग्रहण निमित्तक श्राद्ध आदि जेठा भाई ही करे । तीर्थ श्राद्ध आदि भी एक काल में सभी इकट्ठे भाइयों के प्राप्त होने पर एक ही करे । भेद से प्राप्त होने पर भिन्न-भिन्न करे । इसी प्रकार गया श्राद्ध में भी योजना कर ले । द्रव्य से होने वाले काम्य दान-होम आदि में भाई आदि की अनुमति से अधिकार है । मघा त्रयोदशी का श्राद्ध तो अलग ही होता है यह पहिले कहा है ।

अथ तीर्थश्राद्धम्

अत्र गङ्गादितीर्थप्राप्तावर्घ्यावाहनद्विजांगुष्ठनिवेशनतृप्तिप्रश्नविकिरविसर्जनदिग्बन्धवर्ज्यं सकृन्महालयवत्सर्वपितृगणोद्देशेन धूरिलोचनसंज्ञकविश्वेदेवसहितं तीर्थश्राद्धं कुर्यात् । अग्नौकरणं कृताकृतम् । करणपक्षे तीर्थजलसमीपे श्राद्धं चेत्तदा प्राकृतमन्त्रयुतं तीर्थजले कार्यम्, अन्यथा हस्तादौ । पिण्डानां तीर्थे प्रक्षेप एव प्रतिपत्तिः । अत्र तीर्थवासिन एव विप्रा विगुणा[1] अपि मुख्याः, तदभावेऽन्ये ।

गङ्गा आदि तीर्थ की प्राप्ति में अर्घ्य, आवाहन, विप्राङ्गुष्ठनिवेशन, तृप्तिप्रश्न, विकिर, विसर्जन और दिग्बन्ध को छोड़ महालय के समान सब पितृगण के उद्देश से धूरिलोचन नामक विश्वेदेव सहित तीर्थ श्राद्ध करे । अग्नौकरण कृताकृत है । करने के पक्ष में तीर्थ जल के समीप में यदि श्राद्ध हो तब प्राकृत मन्त्रयुक्त तीर्थ जल में करे, नहीं तो हाथ आदि में । तीर्थ में पिण्डों का प्रक्षेप ही प्रतिपत्ति है । इसमें विगुण भी तीर्थवासी ब्राह्मण मुख्य हैं, उनके अभाव में दूसरे ।

अत्र श्राद्धीये देशेऽन्नादिद्रव्ये च काकश्वादिभिर्दृष्टेऽपि न दोषः । तीर्थश्राद्धाङ्गतर्पणं दर्शवत्पूर्वं कार्यम् । देशकालौ संकीर्त्य सर्वपितृगणमुच्चार्य 'एतेषाममुकतीर्थप्राप्तिनिमित्तकं तीर्थश्राद्धं सपिण्डं सदैवं सद्यः करिष्ये' इति संकल्पः । धूरिलोचनविश्वेदेवादिसर्वं सकृन्महालयवत् । तीर्थयात्रायां साग्नेः[2] सपत्नीकस्यैवाधिकारः । निरग्निकस्य त्वपत्नीकस्यापि स्त्रियाः स्नानदानतीर्थयात्रा नामस्मरणादिकं पुत्राद्यनुमत्यैव । सधवाया यात्रादिकं पत्या सहैव ।

इसमें श्राद्धीय देश और अन्न आदि द्रव्यों में कौआ और कुत्ता आदि के देखने पर भी दोष नहीं है । तीर्थश्राद्धाङ्ग तर्पण दर्श की तरह पहले करना चाहिये । देशकाल को

---

१. पद्मपुराणे—'तीर्थेषु ब्राह्मणं नैव परीक्षेत कदाचन । अन्नार्थिनमनुप्राप्तं भोज्यं तं मनुरब्रवीत् ॥' स्कन्दपुराणे—'ब्राह्मणान्न परीक्षेत तीर्थे क्षेत्रनिवासिनः ।' इसी तरह गया के प्रसंग में अग्निपुराण में कहा है—'न विचार्यं कुलं शीलं विद्यां च तप एव च । पूजितैस्तैस्तु सन्तुष्टा देवाः सपितृगुह्यकाः ॥' इति ।

२. कूर्मपुराणे—'सहाग्निर्वा सपत्नीको गच्छेत्तीर्थानि संयतः । प्रायश्चित्ती व्रजेत्तीर्थं पत्नीविरहितोऽपि वा ॥ यज्ञेष्वनधिकारी वा यश्च वा मन्त्रसाधकः ।' इति ।

कहकर सब पितृगण का उच्चारण कर 'इनका अमुक तीर्थ प्राप्ति निमित्तक दैवसहित सपिण्ड तीर्थ श्राद्ध तुरंत करूँगा' यह संकल्प है। धूरिलोचन विश्वेदेवा आदि सब सकृन्महालय के तुल्य होता है। तीर्थयात्रा में सपत्नीक साग्निक का ही अधिकार है। निरग्निक का तो विना पत्नी के भी अधिकार है। स्त्री का स्नान, दान, तीर्थयात्रा और नामस्मरण आदि का अधिकार पुत्र आदि की अनुमति से ही है। सधवा स्त्री की यात्रा आदि पति के साथ ही होती है।

अथ तीर्थयात्राविधिः

तीर्थयात्रां चिकीर्षुः प्राग्विधायोपोषणं गृहे।
पारणाहे घृतश्राद्धं वृद्धिधर्मयुतं चरेत्॥

तथा च षड्दैवतं नवदैवतं वा द्वादशदैवतं वा [1]बहुसर्पिर्युतेनान्नेन श्राद्धं कुर्यात्। निवेदनकाले इदं घृतं सान्नं दत्तं दास्यमानं चेत्यादि वदेत्। गणेशं विप्रान्साधूंश्च शक्त्या संपूज्य यात्रासंकल्पं कृत्वा श्राद्धशेषेण पारणां [2]कृत्वा व्रजेदिति केचित्।

तीर्थ यात्रा करने का इच्छुक मनुष्य पहले घर में उपवास करके पारणा के दिन घृतश्राद्ध वृद्धिश्राद्ध की धर्मविधि से करे। षड्दैवत या नवदैवत या द्वादशदैवत श्राद्ध अधिक घृतयुक्त अन्न से करे। निवेदन के समय 'इदं सान्नं दत्तं दास्यमानं च' अर्थात् अन्न सहित यह घृत दिया या दिया जानेवाला आपको प्राप्त हो इत्यादि कहे। कुछ लोग कहते हैं—गणेश, ब्राह्मण और साधुओं का शक्ति के अनुसार सम्यक् पूजन कर यात्रा का संकल्प करके श्राद्ध से बचे अन्न का पारण कर यात्रा करे।

अन्ये तु श्राद्धान्ते यात्रासंकल्पं कृत्वा श्राद्धशेषघृतमात्रमादाय ग्रामान्तरं क्रोशन्यूनं गत्वा[3] तत्र श्राद्धशेषघृतसहितान्नान्तरेण पारणामित्याहुः। 'श्रीपरमेश्वरप्रीतिकामः पितृमुक्तिकामो वाऽमुकप्रायश्चित्तार्थं वामुकतीर्थयात्रां करिष्ये' इति यात्रासंकल्प ऊह्यः। उपवासात्पूर्वं [4]मुण्डनं कार्यमिति केचित्। अन्ये तु प्रायश्चित्तार्थयात्रायामेव मुण्डनमित्याहुः।

---

१. गौतम का वचन है—'तीर्थयात्रासमारम्भे तीर्थात्प्रत्यागमेऽपि च। वृद्धिश्राद्धं प्रकुर्वीत बहुसर्पिस्समन्वितम्॥' विष्णुपुराणे—'गच्छेद्देशान्तरं यस्तु श्राद्धं कुर्यात्स सर्पिषा।' इति।

२. स्कन्दपुराणे—'तीर्थयात्रां चिकीर्षुः प्राग् विधायोपोषणं गृहे। गणेशं च पितॄन् विप्रान् साधून् शक्त्या प्रपूज्य च॥ कृतपारणको हृष्टो गच्छेन्नियमधृक् पुनः। आगत्याभ्यर्च्य च पितॄन् यथोक्तफलभाग् भवेत्॥' इति।

३. वायुपुराण में गया के प्रसंग में कहा है—'उद्यतस्तु गयां गन्तुं श्राद्धं कृत्वा विधानतः। विधाय कार्पटीवेषं ग्रामं कृत्वा प्रदक्षिणम्॥ ततो ग्रामान्तरं गत्वा श्राद्धशेषस्य भोजनम्।' श्राद्धशेषस्य=घृतस्य इति।

४. विष्णु ने कहा है—'प्रयागे तीर्थयात्रायां पितृमातृवियोगतः। कचानां वपनं कुर्याद्यथा न विकचो भवेत्॥' इति।

दूसरे तो —श्राद्ध के अन्त में यात्रा का संकल्प करके श्राद्ध से बचे घृतमात्र को लेकर कोस भर से कम दूसरे ग्राम में जाकर वहां श्राद्ध से बचे घृत के साथ दूसरे अन्न से पारण करे—ऐसा कहते हैं। 'श्रीपरमेश्वर की प्रीति या पितरों की मुक्ति की कामना से अमुक प्रायश्चित्त के लिये अथवा अमुक तीर्थ की यात्रा करूंगा' ऐसा यात्रा-संकल्प का ऊह करे। कोई कहते हैं—उपवास से पहले मुण्डन करना चाहिये। दूसरे तो— प्रायश्चित्त के लिये यात्रा में ही मुण्डन करने को कहते हैं।

एवं गयोद्देश्यकयात्रायामपि मुण्डनविकल्पः।

उद्यतस्तु गयां गन्तुं श्राद्धं कृत्वा घृताधिकम्।
विधाय कार्पटीवेषं ग्रामं कृत्वा प्रदक्षिणम्॥
ततः प्रतिदिनं गच्छेत्प्रतिग्रहविवर्जितः।
यश्चान्यं कारयेच्छक्त्या तीर्थयात्रां नरेश्वरः॥
स्वकीयद्रव्ययानाभ्यां तस्य पुण्यं चतुर्गुणम्।

यात्रामध्ये आशौचे रजोदोषे वा शुद्धिपर्यन्तं[1] स्थित्वा तदन्ते गच्छेत्। विषममार्गे तु न दोषः।

इसी प्रकार गया के उद्देश से यात्रा करने में भी मुण्डन का विकल्प है। कहा है – गया जाने को उद्यत पुरुष तो अधिक घृत से श्राद्ध करके संन्यासी का वेष धारण कर तथा ग्राम की प्रदक्षिणा करके प्रतिग्रह न लेता हुआ प्रतिदिन चले। जो दूसरे को शक्ति के अनुसार अपने धन और सवारी से तीर्थयात्रा कराता है उसको चौगुना पुण्य होता है। यात्रा के बीच में आशौच या रजोदोष हो जाय तो उसकी शुद्धि तक ठहर कर उसके बाद यात्रा करे। कठिन मार्ग में तो दोष नहीं होता।

संकल्पितयात्रामध्ये तीर्थान्तरप्राप्तौ श्राद्धादिकं कार्यमेव। वाणिज्याद्यर्थं गतेनापि मुण्डनोपवासादि कार्यम्। कार्यान्तरप्रसंगेन तीर्थगमनेऽर्धं फलम्[2]। वाणिज्यार्थं गमने पादफलम्। मार्गे द्विर्भोजनादिकरणे छत्रोपानहसेवने च पादोनम्। यानमारुह्य गमनेऽर्धम्। अनुषङ्गेण तीर्थप्राप्तौ तीर्थस्नानात्स्नानजं फलं, न तीर्थयात्राफलम्।

मार्गेऽन्तरा नदीप्राप्तौ स्नानादि परपारतः।
अर्वागेव सरस्वत्या एष मार्गगतो विधिः॥

संकल्प की हुई यात्रा के बीच में दूसरे तीर्थ की प्राप्ति होने पर श्राद्ध आदि करना ही चाहिये। व्यापार आदि के लिये तीर्थ जाने वाले को भी मुण्डन और उपवास करना चाहिये। दूसरे कार्य के प्रसंग से तीर्थ जाने में आधा फल होता है। व्यापार के लिये तीर्थ जाने में चौथाई फल

---

१. रजोनिवृत्ति के अनन्तर पांचवें दिन यात्रा करे। कहा भी है—'दैवे कर्मणि पित्र्ये च पञ्चमेऽहनि शुद्ध्यति।' इति।

२. ब्रह्मपुराण में कहा है—'अर्धं तीर्थफलं तस्य यः प्रसङ्गेन गच्छति।' स्कन्दपुराणे—'द्विर्भोजनं तृतीयांशं हरेत्तीर्थफलस्य च। वाणिज्यं त्रींस्तथा भागान् हन्ति सर्वं प्रतिग्रहः॥ यानमर्धं चतुर्थांशं छत्रोपानहमेव च।' इति।

होता है। रास्ते में दो बार भोजन आदि करने में और छाता-जूता के उपयोग करने पर चौथाई से कम फल होता है। सवारी से जाने में आधा फल होता है। आनुषङ्गिक तीर्थ की प्राप्ति होने पर तीर्थ स्नान से स्नान का फल होता है, तीर्थयात्रा का फल नहीं होता। मार्ग के बीच में नदी पड़ने पर स्नान आदि उस पार में और सरस्वती नदी पड़े तो इसी पार में करे, यह मार्ग की विधि है।

अथ तीर्थसामीप्यप्राप्तौ विधिः

यानानि तु परित्यज्य भाव्यं पादचरैर्नरैः।
भक्त्या च विलुठेत्तत्र कुर्याद्वेषं च कार्पटम्॥

तीर्थप्राप्तिपूर्वदिने तीर्थप्राप्तिदिने [1]वोपवासः कार्यः। तीर्थे मुसलस्नानं कृत्वोदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा केशश्मश्रुलोमनखान्युदक्संस्थानि वापयेत्। ततः समन्त्रकं स्नानम्। तत्र [2]प्रणवेन जलमालोड्य तीर्थमवगाह्य,

ॐ नमो देवदेवाय शितिकण्ठाय दण्डिने।
रुद्राय चापहस्ताय चक्रिणे वेधसे नमः॥
सरस्वती च सावित्री वेदमाता गरीयसी।
सन्निधात्री भवत्वत्र तीर्थे पापप्रणाशिनी॥

इति मन्त्रेण स्नायात्। शेषः स्नानविधिर्नित्यवत्। ततस्तर्पणादितीर्थश्राद्धम्। श्राद्धोत्तरदिने ततो गमनं न श्राद्धदिने।

मुण्डनं चोपवासश्च सर्वतीर्थेष्वयं विधिः।
वर्जयित्वा कुरुक्षेत्रं विशालं विरजं गयाम्॥

सर्वतीर्थेष्विति प्रसिद्धमहातीर्थेष्वित्यर्थः। दशमासोत्तरं पुनस्तीर्थप्राप्तौ [3]मुण्डनादितीर्थविधिः।

सवारी छोड़कर पैदल चले और भक्ति से जमीन में लोटे और संन्यासी का वेष धारण करे। तीर्थ प्राप्ति के पहले दिन या उसी दिन उपवास करना चाहिये। तीर्थ में मुसल-स्नान (सिर को जल में पहले डालकर स्नान) करके उत्तरमुख या पूर्वमुख हो उत्तरसंस्थ बाल-दाढ़ी-मूछ-नख का वपन करावे। तदनन्तर मन्त्रसहित स्नान करे। उसमें प्रणव (ओं) से जल का आलोडन कर

---

१. काशीखण्ड के—'यदह्नि तीर्थप्राप्तिः स्यात्तदह्नः पूर्ववासरे। उपवासः प्रकर्तव्यः प्राप्तेऽह्नि श्राद्धदो भवेत्॥' इस वचन में तीर्थप्राप्ति के पूर्व दिन और 'उपवासं ततः कुर्यात्तस्मिन्नहनि सुव्रतः' यहाँ प्राप्ति-दिन में उपवास की विधि है अतः उपवास के लिये पूर्व-दिन या प्राप्ति-दिन का विकल्प है।

२. प्रभासखण्डे—'प्रथमं चालयेत्तीर्थं प्रणवेन जलं शुचि। अवगाह्य ततः स्नायाद्यथावन्मन्त्रयोगतः॥' इति।

३. स्मृत्यन्तरे—'ऊर्ध्वमब्दाद् द्विमासोनात् पुनस्तीर्थं व्रजेद्यदि। मुण्डनं चोपवासं च ततो यत्नेन कारयेत्॥ तदा तद्वपनं शस्तं प्रायश्चित्तमृते द्विज।' बृहस्पतिः—'क्षौरं नैमित्तिकं कार्यं निषेधे सत्यपि ध्रुवम्। पित्र्यादिमृतिदीक्षासु प्रायश्चित्तेऽथ तीर्थके॥' स्कन्दपुराणे—'उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा वपनं कारयेत् सुधीः। केशश्मश्रुलोमनखान्युदक्संस्थानि वापयेत्॥' इति।

और तीर्थ का अवगाहन कर—देव-देव दण्डधारी शितिकंठ पिनाक-हस्त शंकर को नमस्कार है। चक्रधारी विष्णु और ब्रह्मा को नमस्कार है। पाप का नाश करने वाली सरस्वती, सावित्री और पूज्य वेदमाता (गायत्री) इस तीर्थ में सन्निधान करें – इस आशय के मन्त्र से स्नान करे। बाकी स्नान-विधि नित्य के समान है। तदनन्तर तर्पण आदि तीर्थश्राद्ध करे। श्राद्ध के दूसरे दिन वहां से चले, श्राद्ध के दिन नहीं चले। कुरुक्षेत्र, विशाला, विरजा और गया को छोड़कर सभी प्रसिद्ध महातीर्थों में मुंडन और उपवास की यह विधि है। सर्वतीर्थेषु का प्रसिद्ध महा-तीर्थों में यह अर्थ है। दस मास के बाद फिर तीर्थ की प्राप्ति हो तो मुण्डन आदि तीर्थ की विधि करे।

अथ प्रयागे वेणीदानम्

प्रयागे तु योजनत्रयादागतस्य दशमासादर्वागपि। प्रयागे जीवत्पितृकगु-र्विणीपतिकृतचूडबालानामपि सभर्तृकस्त्रीणामपि प्रथमयात्रायां वपनम्। केचि-त्सभर्तृकस्त्रीणां 'सर्वान्केशान्समुद्धृत्य छेदयेदंगुलद्वयम्' इत्याहुः। तत्र वेणीदान-विधिर्द्वितीयपरिच्छेदे उक्तः।

प्रयाग में तो बारह कोस से आये हुए का दस महीने से पहले आने पर भी तीर्थ-विधि होती है। प्रयाग में जिसके पिता जीते हों, गर्भिणी का पति, चौलसंस्कारयुक्त बालक और पतिवाली सौभाग्यवती स्त्रियों का पहली यात्रा में मुण्डन होता है। कुछ लोग—पतिवाली स्त्रियों के सब बाल छोड़कर केवल दो अङ्गुल कटवा दे—ऐसा कहते हैं। उसमें वेणीदान की विधि द्वितीय परिच्छेद में कहा है।

यतिभिस्तु तीर्थेऽप्यृतुसंधिष्वेव कक्षोपस्थवर्जं वपनं कार्यम्। तीर्थप्राप्तावविलम्बेन स्नानपितृतर्पणश्राद्धादि कुर्यात्। न पर्वादिकालं विचारयेत्। आकस्मिकमहातीर्थप्राप्तौ द्वित्रिदिनादिवासासंभवे भुक्तेनापि रात्रावपि सूतकिनापि ग्रहण-पर्वणीव स्नानं हिरण्यादिना तीर्थश्राद्धं च कार्यम्। एवं मलमासेऽपि योज्यम्।

यतियों को तो तीर्थ में ऋतुसन्धियों में ही कांख और उपस्थ को छोड़कर सब बालों का मुंडन कराना चाहिये। तीर्थ में पहुँचने पर विना विलम्ब किये स्नान, तर्पण और पिता का श्राद्ध आदि करे। पर्व आदि के काल का विचार नहीं करना चाहिये। अकस्मात् महातीर्थ में पहुँचने पर दो तीन दिन आदि का निवास न हो सके तो भोजन करके भी रात में भी सूतकी को भी ग्रहण पर्व के समान स्नान और सुवर्ण आदि से तीर्थश्राद्ध करना चाहिये। इसी प्रकार मलमास में भी योजना कर ले।

अथ परार्थस्नानम्

मातरं पितरं जायां भ्रातरं सुहृदं गुरुम्।
तीर्थे स्नायाद्यमुद्दिश्य सोऽष्टमांशं लभेन्नरः॥
यद्वा प्रतिकृतिं दर्भमयीं सत्तीर्थवारिषु।
मज्जयेच्च यमुद्दिश्य सोऽष्टमांशं फलं लभेत्॥

'पक्वान्नेन तीर्थे श्राद्धे तेनैव पिण्डाः। हिरण्यादिना कृते पिण्डद्रव्याणि—

१. पद्मपुराणे— 'तीर्थश्राद्धं प्रकुर्वीत पक्वान्नेन विशेषतः। आमान्नेन हिरण्येन कन्द-मूलफलैरपि॥' इति।

[1]सक्तुसंयावपायसपिण्याकगुडान्यतमानि। पिण्डानां तीर्थे प्रक्षेप एव नान्याः प्रतिपत्तिः।

माता, पिता, स्त्री, भाई, मित्र और गुरु, इनमें से जिसके उद्देश से तीर्थ में स्नान करता है वह पुरुष तीर्थस्नान का आठवां भाग का फल पाता है। अथवा जिसकी कुश-प्रतिमा बनाकर उत्तम तीर्थ जल में स्नान करता है वह तीर्थ-फल का आठवां भाग पाता है। पक्कान्न से तीर्थ में श्राद्ध करे तो पक्कान्न से ही पिण्ड दे। सुवर्ण आदि से श्राद्ध करे तो पिण्ड द्रव्य ये हैं—सत्तू, हलुआ, खीर, पिण्याक (तिल की खली) और गुड इनमें से कोई एक द्रव्य। पिण्डों का तीर्थ में प्रक्षेप ही है दूसरी प्रतिपत्ति (विधि) नहीं है।

एतच्चापुत्रया विधवया कार्यम्। 'सपुत्रया न कर्तव्यं भर्तुः श्राद्धं कदाचन' इति स्मृतेः। अनुपनीतेनापि कार्यम्। यतिना तु [2]न कर्तव्यम्।

दण्डं प्रदर्शयेद्भिक्षुर्गयां गत्वा न पिण्डदः।
दण्डस्पर्शाद्विष्णुपदे पितृभिः सह मुच्यते॥

एवं कूपवटादिष्वपि दण्डप्रदर्शनमेव। तीर्थे वृत्तिदौर्बल्येन प्रतिग्रहे [3]दशमांशदानेन शुद्धिः।

इसे विना पुत्र वाली विधवा करे, क्योंकि पुत्रवती को पति का श्राद्ध कभी नहीं करना चाहिये, इस आशय की स्मृति है। अनुपनीत पुत्र भी पितृश्राद्ध करे। यति को तो नहीं करना चाहिये। यति तो गया में जाकर केवल दण्डप्रदर्शनमात्र करे, पिण्ड नहीं दे। विष्णुपद में दण्डस्पर्श से पितरों के साथ मुक्त हो जाता है। इसी प्रकार कुआं वट आदि में भी दण्डप्रदर्शन ही करे। तीर्थ में जीविका की कमी से दान लेने पर उसमें से दशमांश दान करने से शुद्धि होती है।

अथाशौचनिर्णयः

श्रीविठ्ठलं रुक्मिणीं च पितरौ दीनवत्सलौ।
ध्यात्वेष्टसिद्धये नत्वा वक्ष्येऽथाशौचनिर्णयम्॥

श्रीविट्ठल भगवान् और रुक्मिणी तथा दीनवत्सल माता-पिता का ध्यान कर और इष्टसिद्धि के लिये प्रणाम कर अब आशौच का निर्णय कहता हूँ।

तत्रादौ गर्भनाशजननाद्याशौचम्

आचतुर्थाद्भवेत् स्रावः पातः पञ्चमषष्ठयोः।
अत ऊर्ध्वं प्रसूतिः स्यात्तत्राशौचं विविच्यते॥

---

१. देवीपुराणे ब्रह्मपुराणे च—'सक्तुभिः पिण्डदानं च संयावैः पायसेन वा। कर्तव्यमृषिभिः प्रोक्तं पिण्याकेन गुडेन वा॥' इति।

२. स्मृत्यन्तरे—'न कुर्यात् सूतकं भिक्षुः श्राद्धपिण्डोदकक्रियाम्। त्यक्तं संन्यासयोगेन गृहधर्मादिकं व्रतम्॥ गोत्रादिचरणं सर्वं पितृमातृकुलं धनम्।' इति।

३. प्रभासखण्ड में कहा है—'तीर्थे चेत्प्रतिगृह्णाति ब्राह्मणो वृत्तिदुर्लभः। दशांशमर्जितं दद्यादेवं कुर्वन्न हीयते॥' इति।

तत्र गर्भस्रावे[1] आद्यमासत्रये मातुस्त्रिरात्रं चतुर्थमासे चतूरात्रमस्पृश्यत्वरूपमाशौचम्। पित्रादिसपिण्डानां स्रावमात्रे स्नानाच्छुद्धिः। पञ्चमषष्ठमासयोर्गर्भपाते गर्भिण्या [2]माससमसंख्यं क्रमेण पञ्चषड्दिनान्यस्पृश्यत्वलक्षणमाशौचम्। पित्रादिसपिण्डानां तु त्रिदिनं जननाशौचम्। मृताशौचं तु नास्ति। इदं स्रावपाताशौचं सर्ववर्णसाधारणम्।

चौथे मास तक गर्भनाश को स्राव कहते हैं और पांचवे छठे मास तक गर्भनाश को पात कहते हैं। इसके अनन्तर प्रसव होता है उसमें आशौच का विवेचन है। गर्भस्राव में पहले तीन महीने में माता का तीन रात, चौथे महीने में चार रात का स्पर्शायोग्यरूप आशौच होता है। पिता आदि सपिण्डों को केवल स्राव में स्नानमात्र से शुद्धि होती है। पाँचवें छठे मास के गर्भपात में गर्भिणी को पाँच मास के गर्भपात में पाँच दिन और छ महीने के पात में छ दिन स्पर्श का अयोग्यरूप आशौच होता है। पिता आदि सपिण्डों को तो तीन दिन का जननाशौच होता है। मरणाशौच तो नहीं है। यह स्राव और पात का आशौच सब वर्णों का साधारण है।

गर्भिण्याः सप्तममासप्रभृतिप्रसवे मातुः पित्रादिसपिण्डानां च संपूर्णजननाशौचम्। [3]तच्च विप्रे दशाहम्, क्षत्रिये द्वादशाहम्, वैश्ये पञ्चदशाहम्, शूद्रे मासः, सङ्करजातीनां शूद्रवत्। विज्ञानेश्वरस्तु नैषामाशौचं किंतु स्नानमात्रमित्याह। सर्ववर्णेषु दशाहं[4] वा। जननाशौचे गर्भिण्या दशाहमस्पृश्यत्वम्। [5]कर्मानधिकारस्तु कन्योत्पत्तौ मासं पुत्रोत्पत्तौ विंशतिरात्रम्। इदं स्वस्वाशौचोत्तरमिति विप्रस्त्रियाः क्रमेण चत्वारिंशत्त्रिंशद्दिनान्यनधिकारः।

गर्भिणी को सातवें आदि मास में प्रसव होने पर माता और पिता आदि सपिण्डों को संपूर्ण जननाशौच होता है। वह ब्राह्मण को दस दिन का, क्षत्रिय को बारह दिन का, वैश्य को पन्द्रह दिन का,

---

१. मरीचिः—'स्रावे मातुस्त्रिरात्रं स्यात् सपिण्डाशौचवर्जनम्। पाते मातुर्यथामासं पित्रादीनां दिनत्रयम्॥' इति।

२. आदिपुराणे—'षण्मासाभ्यन्तरं यावद् गर्भस्रावो भवेद्यदि। तदा माससमैस्तासां दिवसैः शुद्धिरिष्यते॥ अत ऊर्ध्वं स्वजात्युक्तं तासामाशौचमिष्यते। सद्यःशौचं सपिण्डानां गर्भस्य पतने सति॥' मनुः—'रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावे विशुद्ध्यति।' वृद्धवशिष्ठः—'गर्भस्रावे मासतुल्या रात्रयः स्त्रीणां, स्नानमात्रमेव पुरुषस्य' इति।

३. पराशरः—'जाते विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः। वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति॥' संवर्तः—'जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचैलं तु विधीयते। माता शुद्ध्येद्दशाहेन स्नानात्तु स्पर्शनं पितुः॥' इति।

४. हारलता में प्रचेता की उक्ति है—'सूतिका सर्ववर्णेषु दशरात्रेण शुद्ध्यति। ऋतौ च न पृथक् शौचं सर्ववर्णेष्वयं विधिः॥' अङ्गिराः—'सूतके सूतिकावर्जं संस्पर्शो न निषिध्यते। संस्पर्शे सूतिकायास्तु स्नानमेव विधीयते॥ नाशौचं सूतके पुंसः संसर्गं चेन्न गच्छति। रजस्तत्राशुचि ज्ञेयं तच्च पुंसि न विद्यते॥ संसर्गः = मैथुनम्। बृहस्पतिः—'यस्तैः सहासपिण्डोऽपि प्रकुर्याच्छयनासनम्। बान्धवो वा परो वापि स दशाहेन शुद्ध्यति॥' इति।

५. पैठीनसिः—'सूतिकां पुत्रवतीं विंशतिरात्रेण कर्माणि कारयेन्मासेन स्त्रीजननीम्' इति।

शूद्र कोएक मास का और संकर जातियों को शूद्र के समान आशौच होता है। विज्ञानेश्वर तो—इनको आशौच नहीं किन्तु स्नानमात्र होता है—ऐसा कहते हैं। अथवा सब वर्णों को दस दिन का आशौच होता है। जननाशौच में गर्भिणी दस दिन तक स्पर्श योग्य नहीं होती। कर्म का अधिकाराभाव तो कन्या की उत्पत्ति में एक महीना और पुत्र के जन्म में बीस दिन है। यह अपने-अपने आशौच के बाद है, इस प्रकार ब्राह्मण की स्त्री को क्रम से चालीस और तीस दिन तक कर्म का अधिकार नहीं होता है।

पितुः सापत्नमातुश्च कन्यायाः पुत्रस्य वोत्पत्तौ सचैलस्नानात्प्रागस्पृश्यत्वम्। पित्रादिसपिण्डानां जननाशौचे कर्मानधिकारमात्रम्। कर्माद्यतिरिक्तकाले स्पर्शे दोषो न। जातकर्मणि दाने च नालच्छेदनात्पूर्वं पितुरधिकारः। एवं पञ्चमषष्ठदशमदिनेषु दाने जन्मदादिपूजने चाधिकारः[1]। तत्र विप्राणां प्रतिग्रहेऽपि दोषो न।

पिता और सौतेली माता को लड़की या लड़के की उत्पत्ति में वस्त्रसहित स्नान के पहले स्पृश्यत्व नहीं होता। पिता आदि सपिण्डों को जननाशौच में कर्म का अधिकाराभाव मात्र है। कर्म आदि के अतिरिक्त समय में स्पर्श करने में दोष नहीं होता। जातकर्म और दान में नालच्छेदन से पहले पिता का अधिकार है। इसी प्रकार पाचवें छठे और दसवें दिन दान में तथा जन्मदा के पूजन में अधिकार है। इसमें ब्राह्मणों को दान लेने में भी दोष नहीं है।

अथ सपिण्डसमानोदकसगोत्रनिर्णयः

कूटस्थमारभ्य [2]सप्तमपुरुषपर्यन्ताः सपिण्डाः, ततः सप्त समानोदकाः, ततः सप्तैकविंशतिपर्यन्ताः सगोत्राः। तत्र सपिण्डानां दशाहमित्युक्तम्। सोदकानां त्रिरात्रं सगोत्राणामेकरात्रमिति नागोजीभट्टीये। अन्ये तु सगोत्राणां नाशौचमित्याहुः। अयं सपिण्डसोदकाद्याशौचविभागो जनने मरणे च समानः। मरणे त्वाशौचविच्छेदेऽपि स्नानमात्रं यावदेककुलत्वज्ञानं तावद्भवत्येवेति विशेषः।

मूल-पुरुष से सात पुरुष तक सपिण्ड, उसके बाद सात पुरुष तक समानोदक और सात से इक्कीस पुरुष तक सगोत्र कहलाते हैं। उसमें सपिण्डों को दस दिन का आशौच कहा है। समानोदकों को तीन रात का और सगोत्रों को एक दिन का आशौच है, ऐसा नागोजीभट्ट के ग्रन्थ में है। दूसरे तो—सगोत्रों को आशौच नहीं होता—ऐसा कहते हैं। यह सपिण्ड समानोदक आदि का आशौच-विभाग जन्म और मरण में समान है। मरने में तो आशौच के विच्छेद होने पर भी स्नान मात्र है, जब तक एक कुल का ज्ञान रहे तब तक तो होता ही है यह विशेष है।

अत्रेदं बोध्यम्—कूटस्थादारभ्य सन्ततिभेदे एकसन्ततौ कश्चिदष्टमोऽपरसन्ततौ च कश्चित्सप्तमस्तयोश्चैकतः सापिण्ड्यानुवृत्तिः परतो निवृत्तिरित्युक्तम्। तत्राष्टमेन

---

१. व्यासः—'प्रथमे दिवसे षष्ठे दशमे चैव सर्वदा। त्रिष्वेतेषु न कुर्वीत सूतकं पुत्रजन्मनि।।' अत्र पुत्रशब्दोऽपत्यमात्रपरः। ब्रह्मपुराणे—'देवाश्च पितरश्चैव पुत्रे जाते द्विजन्मनाम्। आयान्ति तस्मात्तदहः पुण्यं षष्ठं च सर्वदा।।' इति।

२. अग्निपुराणे—'सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते। समानोदकभावस्तु निवर्तेत चतुर्दशे।। जन्मनामस्मृतेर्वैके तत्परं गोत्रमुच्यते।' बृहस्पतिः—'दशाहेन सपिण्डास्तु शुद्ध्यन्ति प्रेतसूतके। त्रिरात्रेण सकुल्यास्तु स्नात्वा शुद्ध्यन्ति गोत्रजाः।।' इति।

निवृत्तसापिण्ड्यकेन सप्तमादीनां परसन्ततिस्थानां जनने मरणे त्रिदिनमाशौचं कार्यम्। सप्तमेन त्वनुवृत्तसापिण्ड्यकेनाष्टमादीनां जनने मरणे वा दशाहमेव कार्यम्। एवं सोदकत्रिरात्रादौ कन्याविषयकत्रिपुरुषसापिण्डये चोह्यम्। तत्राष्टमस्य मृतपितृकत्वे जीवत्पितृकत्वेपि च त्रिदिनमेव। त्र्यम्बकीये भट्टोजीये नागोजीये चाशौचप्रकरणेऽन्यत्र च पित्रादिजीवनाजीवनकृतविशेषादर्शनादिति केचित्।

यहां यह जानना चाहिये—मूल-पुरुष से लेकर सन्तान के भेद में एक सन्तति में कोई आठवां और दूसरी सन्तति में सातवां है, इन दोनों में एक ओर से सपिण्ड की अनुवृत्ति और दूसरी ओर से निवृत्ति होती है, यह कहा है। जिससे सापिण्ड्य की निवृत्ति हो गई है ऐसे आठवें को सातवें आदि दूसरी सन्तति में स्थितों के जनन और मरण में तीन दिन का आशौच करना चाहिये। जिससे सापिण्ड्य की अनुवृत्ति है ऐसे सातवें को तो आठवें आदि के जनन या मरण में दस दिन का ही आशौच करना चाहिये। इसी प्रकार सोदक के त्रिरात्र आदि में और कन्याविषयक तीन पुरुष के सापिण्ड्य में भी ऊह करे। उसमें आठवें के पिता के मरने या जीवित रहने पर भी तीन दिन का ही आशौच होता है। क्योंकि—त्र्यम्बक, भट्टोजी और नागोजी के आशौच-प्रकरण में एवं अन्यत्र भी पिता आदि के जीने न जीने में कोई विशेषता नहीं देखी जाती—ऐसा कुछ लोग कहते हैं।

अपरे तु निर्णयसिन्धौ सापिण्डचप्रकरणे आदशमाद्धर्मविच्छित्तिरित्यादिसुमन्तुवाक्यस्य शूलपाणिकृतव्याख्याने एकपिण्डदानक्रियान्वयित्वरूपसापिण्डचलक्षणमनुसृत्य जीवत्पित्रादित्रिकस्य प्रपितामहात्परे त्रयः पिण्डभाजस्तदूर्ध्वं त्रयो नवपुरुषपर्यन्ता लेपभाजः श्राद्धकर्ता च दशम इति दशमादूर्ध्वं सापिण्डचनिवृत्तिः। पितृपितामहजीवने नवपुरुषपर्यन्तं पितृजीवनेऽष्टपुरुषपर्यन्तं सापिण्डचमिति प्रतिपादनादष्टमादेः पित्रादिजीवनदशायां दशाहमाशौचं पित्रादिमरणोत्तरमेव त्रिदिनमिति वदन्ति। अत्र मम द्वितीयपक्ष एव युक्तो भाति।

दूसरे तो—निर्णयसिन्धु में सापिण्ड्य-प्रकरण में दसवें पुरुष तक धर्म-विच्छेद होता है इत्यादि सुमन्तु-वाक्य का शूलपाणि के व्याख्यान में एक पिण्डदान-क्रियान्वयित्वरूप सापिण्ड्य-लक्षण का अनुसरण कर जीवत्पित्रादि तीन का प्रपितामह से आगे के तीन पिण्डभागी हैं, इनके बाद के तीन नौ पुरुष तक लेपभागी हैं और श्राद्ध करने वाला दसवां इस तरह दसवें के बाद सापिण्ड्य की निवृत्ति होती है। पिता-पितामह के जीते रहने में नौ पुरुष तक, पिता के जीते रहने में आठ पुरुष तक सापिण्ड्य के प्रतिपादन करने से अष्टम आदि के पिता आदि की जीवन-दशा में दस दिन का आशौच और पिता आदि के मरने के अनन्तर ही तीन दिन का आशौच होता है—ऐसा कहते हैं। इसमें मुझे दूसरा पक्ष ही युक्त प्रतीत होता है।

अथ पित्रादिगृहे कन्याप्रसूतावाशौचम्

पितृगृहे कन्याप्रसूतौ पित्रोस्तद्गृहवर्तिभ्रातॄणां चैकाहः। पितृगृहवर्तिपितृव्यादीनां सर्वेषां पितृसपिण्डानामेकाह इति स्मृत्यर्थसारे। एवं भ्रात्रादिगृहे भगिन्यादिप्रसवेऽपि तेषामेकाहः। माधवस्तु पितृगृहे कन्यायाः प्रसूतौ पित्रोस्त्रि-

रात्रं[1] तद्गृहवर्तिभ्रातॄणामेकाह इत्याह। कन्यायाः पतिगृहे प्रसवे पित्रादीनां नाशौचम्।

पिता के घर में कन्या के प्रसव में पिता-माता और उस घर में रहने वाले भाइयों को एक दिन का आशौच होता है। स्मृत्यर्थसार में कहा है—पिता के घर में रहने वाले पितृव्य आदि सब पिता के सपिण्डों को एक दिन का आशौच होता है। इसी प्रकार भाई आदि के घर में बहिन आदि के प्रसव में भी उन लोगों को एक दिन का आशौच होता है। माधव तो—पिता के घर में कन्या के प्रसव होने पर माता-पिता को तीन दिन का और उस घर में रहने वाले भाइयों को एक दिन का आशौच है—ऐसा कहते हैं। कन्या का अपने पति के घर में प्रसव होने पर पिता आदि को आशौच नहीं है।

अथ मृतजाते जननोत्तरं मृते चाशौचम्

मृतजाते शिशौ सपिण्डानां सम्पूर्णमेव जननाशौचम्। मृताशौचं नास्ति। जननोत्तरं[2] नालच्छेदनात्पूर्वं शिशुमरणे पित्रादिसपिण्डानां त्रिदिनं जननाशौचम्। मातुस्तु दशाहमेव। मृताशौचं तु नास्ति। [3]नालच्छेदनोत्तरं दशाहाभ्यन्तरे शिशुमरणे सपिण्डादीनां सम्पूर्णमेव जननाशौचम्। मरणाशौचं तु नास्ति।

मरा बच्चा पैदा होने पर सपिण्डों को पूरा जननाशौच होता है। मरणाशौच नहीं है। जन्म के बाद नालच्छेदन से पहिले बच्चे के मरने पर पिता आदि के सपिण्डों को तीन दिन का जननाशौच होता है। माता को तो दस दिन का आशौच होता ही है। मरणाशौच तो नहीं है। नालच्छेदन के बाद दस दिन के भीतर बालक के मरने पर सपिण्ड आदि को पूरा ही जननाशौच होता है। मरणाशौच तो नहीं है।

अथ मृताशौचम्

तत्र मृताशौचवतामस्पृश्यत्वं कर्मानधिकारश्च। दशाहानन्तरं नामकरणात्प्राक् शिशुमरणे सपिण्डानां स्नानमात्रम्। मातापित्रोस्तु पुत्रमृतौ त्रिरात्रं कन्यामृतौ चैकाहः। सापत्नमातुः सर्वत्र पितृवत्। नाम्नः पूर्वं खननमेव नित्यम्।

---

१. पिता के घर में कन्या के प्रसव होने या मरने पर माधव-मत के अनुसार ही वाचस्पति ने निर्णय किया है—'विवाहिता स्त्री यदि पितृगृहे प्रसूयते म्रियते वा तदा मातापित्रोस्त्रिरात्रमाशौचम्। एकाश्रमवासिनां भ्रातृवैमात्रेयपितृव्यपुत्राणां तत्पुत्राणां पितृव्यस्य च एकरात्रं, पितुर्भिन्नाश्रमवासिनां पुत्रादीनामशौचं न भवति। पितुरभावे भ्रातृगृहे भगिन्याः प्रसवे मरणे वा भ्रात्रादीनामेकरात्रमशौचं भवति।' इसी तरह का निर्णय रुद्रधर का भी है।

२. नालच्छेदन के पूर्व मरने पर बृहन्मनु ने जननाशौच का दिन-निर्देश किया है—'जीवन् जातो यदि ततो मृतः सूतक एव तु। सूतकं सकलं मातुः पित्रादीनां त्रिरात्रकम्॥' बृहन्मनु ने कहा है—'दशाहाभ्यन्तरे बाले प्रमीते तस्य बान्धवैः। शावाशौचं न कर्तव्यं सूत्याशौचं विधीयते॥' इति।

३. जैमिनी के—'यावन्न छिद्यते नालं तावन्नाप्नोति सूतकम्। छिन्ने नाले ततः पश्चात्सूतकं तु विधीयते॥' इसी से हारीत ने नालच्छेदन के अनन्तर शिशु के मरने पर जननाशौच का दिन-निर्देश किया है—'जातमृते मृतजाते वा सपिण्डानां दशाहम्' इति।

नामकरणानन्तरं चूडाकरणपर्यन्तं तदभावे वर्षत्रयपूर्तिपर्यन्तं [1]दाहखननयोर्विकल्पः। नामकरणोत्तरं दन्तोत्पत्तेः प्राक् पुत्रमरणे दाहे सपिण्डानामेकाहः। खनने तु [2]स्नानाच्छुद्धिः। मातापित्रोरुभयत्रापि त्रिरात्रम्।

उसमें मरणाशौच वालों का स्पृश्यत्व और कर्म का अधिकार नहीं होता है। दस दिन के बाद और नामकरण के पहले बालक के मरने पर सपिण्डों को स्नानमात्र है। माता-पिता को तो पुत्र के मरने पर तीन दिन का और लड़की के मरने पर एक दिन का आशौच होता है। सौतेली माता को सर्वत्र पिता के समान आशौच है। नामकरण के पहले मरने पर गाड़ना ही नित्य है। नामकरण के बाद चूड़ाकरण पर्यन्त और चूड़ाकरण नहीं हुआ हो तो पूरे तीन वर्ष तक दाह और गाड़ने में विकल्प है। नामकरण के बाद दांत निकलने के पहले पुत्र के मरने में दाह करने पर सपिण्डों को एक दिन का आशौच है। गाड़ने में तो स्नानमात्र से शुद्धि होती है। माता-पिता को दोनों (दहन-खनन) में त्रिरात्र आशौच होता है।

कन्यामृतौ तु त्रिपुरुषसपिण्डानामुभयत्र स्नानाच्छुद्धिः। मातापित्रोः कन्यामृतौ दन्तोत्पत्तिपर्यन्तमुभयत्रैकाहः। अत्र नामकरणं द्वादशदिनोपलक्षणम्। दन्तजननं सप्तममासोपलक्षणम्। तेन द्वादशदिनमारभ्य षण्मासपर्यन्तमेकाहादि फलितम्। सप्तममासप्रभृतिचूडाकरणपर्यन्तं तदभावे तृतीयवर्षपूर्तिपर्यन्तं दाहे खनने वा सपिण्डानामेकाहः। केचित्खनने एकाहो दाहे त्रिरात्रमित्याहुः। मातापित्रोरुभयत्र त्रिरात्रम्। एतत्पुत्रमृतौ। कन्यामृतौ तु वर्षत्रयपर्यन्तं सपिण्डानां स्नानाच्छुद्धिः। मातापित्रोः सप्तममासप्रभृति कन्यामृतौ त्रिरात्रम्[3]।

कन्या के मरने में तो तीन पीढ़ी तक के सपिण्डों को दोनों में स्नान से शुद्धि होती है। माता-पिता को कन्या के मरने पर दांत जमने तक दोनों में एक दिन का आशौच है। यहां नामकरण बारह दिन का और दन्तजननं सातवें मास का उपलक्षण है। इससे बारह दिन से लेकर छ महीने तक एक दिन आदि का आशौच फलतः सिद्ध हुआ। सात मास से चूड़ाकरण तक और चूड़ाकरण न हुआ हो तो पूरे तीन वर्ष तक दाह अथवा गाड़ने में सपिण्डों को एक दिन का आशौच होता है। कोई— गाड़ने में एक दिन और दाह में त्रिरात्र—कहते हैं। माता-पिता को दोनों में त्रिरात्र आशौच है। यह पुत्र के मरने में है। कन्या के मरने पर तो तीन वर्ष तक सपिण्डों को स्नान से शुद्धि होती है। माता-पिता को सातवें मास से लेकर कन्या के मरने पर त्रिरात्र आशौच होता है।

विज्ञानेश्वरस्त्वेकादशदिनमारभ्य यावदुपनयनं पुत्रमृतौ, कन्यामृतौ तु यावद्वि-

---

१. दाह का विकल्प लौगाक्षि ने कहा है—'तूष्णीमेवोदकं कुर्याचूर्णीं संस्कारमेव च। सर्वेषां कृतचूडानामन्यत्रापीच्छया द्वयम् ॥' अन्यत्र=अकृतचूडे। मनु ने भी कहा है—'नात्रिवर्षस्य कर्तव्या बान्धवैरुदकक्रिया। जातदन्तस्य वा कुर्युर्नाम्नि वापि कृते सति ॥' इति।

२. नामकरण के बाद दन्तोत्पत्ति के पूर्व याज्ञवल्क्य ने सद्यःशौच कहा है—'आदन्तजननात्सद्यः'। दन्तोत्पत्ति के बाद तीन वर्ष तक के शिशु के मरने पर विष्णु ने अहोरात्र में शुद्धि कही है— दन्तजातेऽप्यकृतचूडे त्वहोरात्रेण शुद्धिः' इति।

३. कश्यप ने कहा है—'बालानामजातदन्तानां त्रिरात्रेण शुद्धिः'। मनु ने भी कहा है— 'बैजिकादभिसम्बन्धादनुरुध्यादघं त्र्यहम्।' इति।

वाहं मातापित्रोस्त्रिरात्रमेवेत्याह। प्रथमवर्षादौ कृतचूडस्य पुत्रस्य मरणे पित्रादीनां सर्वेषां त्रिदिनं नियतं दाहश्च नियतः। त्रिवर्षोर्ध्वं कृतचूडस्याकृतचूडस्य वा मरणे प्रागुपनयनात्पित्रादिसर्वसपिण्डानां त्रिदिनं[1] दाहो नियतः। सोदकानां त्वनुपनीतमरणेऽनूढकन्यामरणे च नाशौचं किंतु स्नानमात्रम्।

विज्ञानेश्वर तो—पुत्र के मरने में ग्यारह दिन से लेकर उपनयन तक और कन्या के मरने में तो विवाह तक माता-पिता को त्रिरात्र ही आशौच है—ऐसा कहते हैं। पहले वर्ष आदि में चूड़ा-संस्कार किये हुए पुत्र के मरने में पिता आदि सब को तीन दिन का आशौच और दाह भी नियत है। तीन वर्ष के बाद चूड़ा किये हुए या चूड़ा नहीं किये हुए बालक के मरने में उपनयन से पहले पिता आदि सब सपिण्डों को तीन दिन का आशौच और दाह नियत है। समानोदकों को तो अनुपनीत बालक के मरने में अविवाहित कन्या के मरने में आशौच नहीं है किन्तु स्नानमात्र है।

अनुपनीतभ्रातृमरणे भगिन्या नाशौचम्। ऊनद्विवर्षस्य [2]खननं मुख्यम्। अनुगमनं वैकल्पिकम्। पूर्णद्विवर्षस्य दाहो मुख्यः। अनुगमनं नित्यम्। अत्र दाहो-

---

१. तीन वर्ष के बाद चूडाकरण हुआ हो या नहीं हुआ हो उपनयन के पूर्व तक अङ्गिरा ने तीन दिन का आशौच कहा है—'यद्यप्यकृतचूडो वै जातदन्तस्तु संस्थितः। तथापि दाहयित्वैनमाशौचं त्र्यहमाचरेत्॥' त्रिरात्राशौच में पारस्करोक्त पिण्डदान विधि—'प्रथमे दिवसे देयास्त्रयः पिण्डाः समाहितैः। द्वितीये चतुरो दद्यादस्थिसंचयनं तथा॥ त्रींस्तु दद्यात्तृतीयेऽह्नि वस्त्रादि क्षालयेत्ततः।' इति।

वाचस्पति मिश्र के आशौचनिर्णय में बालाद्यशौच की व्यवस्था इस प्रकार है—'जन्म से छ मास के भीतर बालक के मरने पर सभी वर्णों का सद्यःशौच है। सप्तम मास से दो वर्ष तक के ब्राह्मण-बालक के मरने पर अहोरात्र, तीसरे वर्ष से छ वर्ष तक के तीन रात्र और इसके बाद अपनी जाति का कहा हुआ आशौच होता है। क्षत्रिय बालकों का सप्तम मास से दो वर्ष तक तीन दिन, तीन वर्ष से छ वर्ष तक छ दिन और इसके बाद अपनी जाति का आशौच होता है। वैश्य-बालक का सप्तम मास से दो वर्ष तक तीन दिन, इसके बाद छ वर्ष तक नव दिन, तदनन्तर अपनी जाति का आशौच होता है। शूद्र-बालक का सप्तम मास से दो वर्ष तक पांच दिन, इसके बाद सोलह वर्ष तक अविवाहित मरने पर बारह दिन, विवाहित मरने तर छ वर्ष के बाद ही एक मास का आशौच होता है। सत्-शूद्र जो द्विजों का उच्छिष्ट, शुश्रूषा और प्रतिमास मुण्डन करवाता हो उसका सात मास से वर्ष तक के बालक के मरने पर त्रिरात्र, सोलह वर्ष तक अविवाहित मरने पर बारह दिन, इसके बाद अपनी जाति का आशौच होता है।

वाचस्पति ने बालिकाओं के आशौच की व्यवस्था इस प्रकार की है—सभी वर्णों के दो वर्ष तक की कन्या के मरण में सद्यःशौच, तदनन्तर विवाह के पूर्व त्रिरात्र, विवाह के बाद पतिकुल में सम्पूर्णाशौच। जहाँ वाग्दान हो जाता है और वाग्दान के बाद बालिका मर जाय तो पितृकुल पतिकुल दोनों को त्रिरात्राशौच होता है। रुद्रधर के निर्णयानुसार विवाह के बाद पितृकुल में आशौच नहीं होता।

२. याज्ञवल्क्य ने कहा है—'ऊनद्विवर्षं निखनेन्न कुर्यादुदकं ततः।' यमः—'ऊनद्विवार्षिकं प्रेतं घृताक्तं निखनेद् भुवि। यमगाथां गायमानो यमसूक्तमनुस्मरन्॥' यमसूक्तं = 'ये ईयिवांसम्' इति षोडशर्चम्। ब्रह्मपुराणे—'स्त्रीणां तु पतितो गर्भः सद्यो जातो मृतोऽथवा। अजातदन्तो मासैर्वा मृतः षड्भिर्गतैर्बहिः॥ वस्त्राद्यैर्भूषितं कृत्वा निक्षिपेत्तं तु काष्ठवत्। खनित्वा शनकैर्भूमौ सद्यःशौचं विधीयते॥' इति।

दकदानादि तूष्णीमेव । कृतचूडाय पूर्णत्रिवर्षाय च [1]भूमौ पिण्डदानम् । दन्तजननपर्यन्तं तत्तुल्यवयस्केभ्यो द्वितीयदिने तदुद्देशेन [2]दुग्धदानम् । त्रिवर्षान्तं चौलान्तं वा पायसदानम् । तदूर्ध्वमुपनयनपर्यन्तमाशौचान्ते सवयोभ्यस्तदुद्देशेन भोजनादिदानम् ।

अनुपनीत भाई के मरने में बहिन को आशौच नहीं है । दो वर्ष से कम बालक के मरने पर उसे गाड़ना मुख्य है । अनुगमन में विकल्प है । पूरे दो वर्ष के बच्चे का दाह मुख्य है । अनुगमन नित्य है । इसमें दाह और जलदान चुपचाप ही है । जिसका चूड़ाकरण हो चुका है । जो पूरे तीन वर्ष का हो गया है उसका पिण्डदान भूमि में करे । दांत उत्पन्न हो जाने तक उसके समान अवस्था वाले बालक को दूसरे दिन उसके उद्देश से दूध दे । तीन वर्ष पर्यन्त या चूड़ाकरण तक खीर दे । उसके बाद उपनयन तक आशौच के अन्त में उसके समान अवस्था के बालक को उसके उद्देश से भोजन आदि दे ।

अथ शूद्रबालकस्य कन्यायाश्च मरणे आशौचम्

स्त्रीशूद्रयोस्तु कृतचूडयोरप्युदकदानादि वैकल्पिकम् । शूद्रस्य त्रिवर्षपर्यन्तमेतदेवाशौचम् । अस्योपनयनस्थाने विवाहः । तथा च त्रिवर्षोर्ध्वं विवाहपर्यन्तं तदभावे षोडशवर्षपर्यन्तं वा शूद्रस्य मरणे त्रिदिनं तदूर्ध्वं जात्याशौचम् । कन्याया वर्षत्रयानन्तरं वाग्दानात्प्राङ्मरणे त्रिपुरुषसपिण्डानामेकाहः[3] । मातापित्रोस्त्रिदिनम् । दाहादि तूष्णीम् । वाग्दानोत्तरं विवाहात्प्राक्कन्यामरणे पितृसपिण्डानां भर्तृसपिण्डानां च त्रिदिनम्[4] । अत्रोभयकुलेऽपि सप्तपुरुषं सापिण्डयम् । दाहादि तूष्णीमेव ।

---

१. प्रचेताः—'असंस्कृतानां भूमौ पिण्डं दद्यात् संस्कृतानां कुशेषु' । मरीचिरपि—'प्रेतपिण्डं बहिर्दद्याद्दर्भमन्त्रविवर्जितम् ।' इति ।

२. देवयाज्ञिकनिबन्धे—'गर्भे नष्टे क्रिया नास्ति दुग्धं देयं शिशौ मृते । परं च पायसं क्षीरं दद्याद् बालविपत्तितः ॥ एकादशं द्वादशाहं वृषोत्सर्गविधिं विना ।' तथा—'यत्र प्रमीयते बालस्तत्र प्रायः प्रदीयते । किञ्चित्समानवयसां संस्कृत्यान्नं यथाविधि ॥ भक्ष्यं भोज्यं च दातव्यं तथा च सुलभक्षिका । तद्वस्त्राणि प्रदेयानि सोपानत्कानि तत्समे ॥ कुमाराणां च बालानां भोजनं वस्त्रवेष्टनम् । यच्चोपजीवते बालस्तत्तद्विप्राय दीयते ॥—

शिशु-बाल आदि का विचार देवयाज्ञिकनिबन्ध में ही किया है—'शिशुरादन्तजननाद् बालः स्याद् यावदाशिखः । कथ्यते सर्वशास्त्रेषु कुमारो मौञ्जिबन्धनात् ॥ आपञ्चवर्षात् कौमारं पौगण्डो नवहायनः ।' इति ।

३. ब्रह्मपुराणे—'आजन्मनस्तु चौलान्तं कन्या यदि विपद्यते । सद्यःशौचं भवेत्तत्र सर्ववर्णेषु नित्यशः ॥ ततो वाग्दानपर्यन्तं यावदेकाहमेव हि । ततः परं प्रवृद्धायां त्रिरात्रमिति निश्चयः ॥ वाक्प्रदाने कृते तत्र ज्ञेयं चोभयतस्त्र्यहम् । पितुर्वरस्य च ततो दत्तानां भर्तुरेव हि ॥ स्वबात्युक्तमशौचं स्यान्मृतके जातके तथा ।' इति ।

४. मनुः—'स्त्रीणामसंस्कृतानां तु त्र्यहाच्छुद्धयन्ति बान्धवाः । यथोक्तेनैव कल्पेन शुद्धयन्ति तु सनाभयः ॥' सनाभयः = सपिण्डाः । शंखः—'प्रत्ताऽप्रत्तासु योषित्सु संस्कृताऽसंस्कृतासु च । मातापित्रोस्त्रिरात्रं स्यादितरेषां यथाविधि ॥' इति ।

चूड़ा किये हुए स्त्री-शूद्र का तो जलदान आदि देने में विकल्प है। तीन वर्ष तक के शूद्र का यही आशौच है। शूद्र का उपनयन की जगह विवाह है। इसलिये तीन वर्ष के बाद विवाह तक या इसके अभाव में सोलह वर्ष तक के शूद्र के मरने में तीन दिन, इसके बाद अपनी जाति का आशौच है। कन्या का तीन वर्ष के बाद वाग्दान के पहले मरने में तीन पीढ़ी के सपिण्डों को एक दिन का आशौच है। माता-पिता को तीन दिन का। दाह आदि चुपचाप करें। वाग्दान के अनन्तर विवाह के पहले कन्या के मरने में पिता के सपिण्डों और पति के सपिण्डों को तीन दिन का आशौच है। इसमें दोनों कुल में भी सात पीढ़ी का सापिण्ड्य होता है। दाह आदि मौन ही होता है।

जननेऽनुपनीतमरणे चातिक्रान्ताशौचं नास्ति। पितुरपत्यजननश्रवणे देशान्तरे कालान्तरे स्नानं भवत्येव। अनुपनीतमरणेऽतिक्रान्तेऽपि स्नानं भवत्येवेति स्मृत्यर्थसारः। अनुपनीतस्यानूढकन्यायाश्च मातापितृमरणे एव दशाहाशौचम्। अन्यमरणे तु न किमपि। उपनयनोत्तरं मरणे सपिण्डानां दशाहं सोदकानां त्रिरात्रं सगोत्राणामेकाहं स्नानाच्छुद्धिर्वेत्यादिविशेषः प्रागुक्तोऽत्रानुसन्धेयः। स्त्रीशूद्रयोर्विवाहोत्तरं मरणे दशाहः। शूद्रस्य विवाहाभावे षोडशवर्षोत्तरमित्युक्तम्।

जन्म में और अनुपनीत के मरने में अतिक्रान्ताशौच नहीं होता। पिता की सन्तति के जन्म को सुनने में दूसरे देश और दूसरे समय में स्नान तो होता ही है। अनुपनीत के मरने में अतिक्रान्ताशौच में भी स्नान होता ही है, ऐसा स्मृत्यर्थसार का कथन है। अनुपनीत बालक और अविवाहिता कन्या को माता-पिता के मरने में ही दस दिन का आशौच होता है। दूसरे के मरने में तो कुछ आशौच नहीं होता। उपनयन के बाद मरने में सपिण्डों को दस दिन का, सोदकों को तीन रात का और सगोत्रों को एक दिन का आशौच होता है या स्नान से शुद्धि होती है इत्यादि पूर्वोक्त विशेष का अनुसन्धान करें। स्त्री और शूद्र को विवाह के बाद मरने में दस दिन का आशौच है। विवाह नहीं होने पर शूद्र को सोलह वर्ष के बाद आशौच है, यह कहा है।

अथ विवाहितकन्यामरणाशौचम्

विवाहोर्ध्वं कन्यायाः [1]पितृगृहे मरणे मातापित्रोः सापत्नमातुः सापत्नभ्रातुः सोदरभ्रातुश्च त्रिरात्रम्। पितृव्यादीनां तद्गृहवर्तिनामेकाहः। तद्गृहवर्तिनामपि सपिण्डानामेकाह इति केचित्। ग्रामान्तरमृतौ पित्रोः पक्षिणीति केचित्। ऊढायाः कन्यायाः पतिगृहे मरणे पित्रोः सापत्नमातुश्च त्रिरात्रं भ्रातुः पक्षिणी। पितृव्यादीनामेकाह इति केचित्।

---

१. पिता के घर में कन्या के मरने पर रुद्रधर ने इसी तरह का निर्णय किया है—'विवाहिता स्त्री यदि पितृगृहे प्रसूयते म्रियते वा तदा मातापित्रोस्त्रिरात्रमशौचं भवति। एकाश्रमवासिनां भ्रातृवैमात्रेयपितृव्यतत्पुत्राणां चैकरात्रम्। पितृभिन्नाश्रमवासिनां भ्रात्रादीनामशौचं न भवति। पितुरभावे भ्रातृगृहे दुहितुर्मरणे प्रसवे वा मातुस्त्रिरात्रम्। पितुरभावे भ्रातृगृहे प्रसवे मरणे वा भ्रात्रादीनामेकरात्रमशौचं भवति।' इति। ब्रह्मपुराणे—'दत्ता नारी पितुर्गेहे सूयेताथ म्रियेत वा। तद्बन्धुवर्गस्त्वेकेन शुचिस्तज्जनकस्त्रिभिः॥' विष्णुः—'संस्कृतासु स्त्रीषु नाशौचं पितृपक्षे, तत्प्रसवमरणे चेत् पितृगृहे स्यातां तदैकरात्रं त्रिरात्रं च'। इसकी व्यवस्था विज्ञानेश्वर ने प्रसव में एकरात्र और मरण में त्रिरात्र आशौच होता है, इस प्रकार की है।

विवाह के बाद पिता के घर में कन्या के मरने पर माता-पिता को, सौतेली माता को, सौतेले भाई को और सहोदर भाई को तीन रात का आशौच होता है। उस घर में रहने वाले पितृव्य आदि को एक दिन का और उस घर में रहने वाले सपिण्डों को भी एक दिन का आशौच है, ऐसा कुछ लोग कहते हैं। कुछ लोग—दूसरे ग्राम में मरने पर पिता-माता को पक्षिणी आशौच होता है—ऐसा कहते हैं। ब्याही हुई कन्या का पति के घर में मरने पर पिता-माता और सौतेली माता का त्रिरात्राशौच होता है, भाई का पक्षिणी। कोई—पितृव्य आदि को एक दिन का आशौच कहते हैं।

अथ मातापित्रोर्मृतौ कन्याया आशौचम्

मातापित्रोर्मरणे सापत्नमातुर्मृतौ चोढकन्यायास्त्रिरात्रं दशाहान्तः। दशाहोर्ध्वं कालान्तरे वत्सरान्तरेऽपि पक्षिणी। भ्रातुरुपनीतस्य विवाहितभगिन्याश्च परस्परगृहमरणे परस्परस्य त्रिरात्रम्। गृहान्तरमृतौ परस्परस्य पक्षिणी। ग्रामान्तरे त्वेकाहः। अत्यन्तनिर्गुणत्वे एकग्रामेऽपि स्नानम्। एवं सापत्नभ्रातृभगिन्योरपि। भगिनीमृतौ भगिन्या अप्येवमेवेति भाति। ऊढकन्यायाः पितामहपितृव्यादिमरणे स्नानमेव।

माता-पिता और सौतेली माता के मरने में विवाहिता कन्या का दस दिन के भीतर सुनने में त्रिरात्र और दस दिन के बाद दूसरे समय दूसरे वर्ष में भी पक्षिणी आशौच है। उपनीत भाई और विवाहित बहिन के परस्पर घरमें मरने पर परस्पर दोनों को त्रिरात्र आशौच है। दूसरे घरमें मरने पर परस्पर दोनों को पक्षिणी। दूसरे ग्राम में मरने पर तो दोनों को एक दिन का आशौच होता है। दोनों अत्यन्त निर्गुण हों तो एक ग्राम में भी स्नानमात्र आशौच है। इसी प्रकार सौतेला भाई और सौतेली बहिनके मरने में भी आशौच है। बहिन के मरने में बहिन को भी ऐसा ही आशौच है, यह ठीक प्रतीत होता है। विवाहिता कन्या का पितामह और पितृव्य आदि के करने में केवल स्नान ही है।

अथ मातुलादिमरणाशौचम्

मातुलमरणे भगिनीपुत्रस्य भगिनीकन्यायाश्च पक्षिणी। उपकारमातुलमरणे स्वगृहे मातुलमरणे च त्रिरात्रम्। अनुपनीतमातुलमरणे ग्रामान्तरे मातुलमरणे चैकरात्रम्। एवं सापत्नमातुलमरणेऽपि। मातुलानीमरणे भर्तृभगिन्यपत्यस्य स्त्रीपुंसरूपस्य पक्षिणी। सापत्नमातुलानीमरणे तु नाशौचम्। उपनीतभागिनेयमरणे मातुलस्य मातुलभगिन्याश्च त्रिरात्रम्। एवं सापत्नभागिनेये मृतेऽपि। अनुपनीतभागिनेयमरणे मातुलस्य मातुलभगिन्याश्च पक्षिणी। एवं सापत्नभागिनेये मृतेऽपि। अनुपनीतपदेनावशिष्टोपनयनमात्रः कृतचूडश्चूडाया अभावे त्रिवर्षोर्ध्ववयस्को वा ग्राह्य इति भाति। एवमग्रेऽप्यनुपनीतपदस्यार्थो बोध्यः। भागिनेयीमरणे तु स्नानमात्रमिति भाति।

मामा के मरने में बहिन के पुत्र और बहिन की कन्या को पक्षिणी आशौच है। उपकार करने वाला मामा के मरने में और अपने घर में मामा के मरने में भी त्रिरात्र आशौच होता है। अनुपनीत मामा के मरने में और दूसरे ग्राम में मामा के मरने में भी एक रात का आशौच है। इसी प्रकार सौतेले मामा के मरने में भी आशौच है। मामी के मरने में पति की बहिन की स्त्रीपुरुषरूप सन्तति को पक्षिणी आशौच है। सौतेली मामी के मरने में तो आशौच नहीं है। उपनीत भानजा के

मरने में मामा और मामा की बहिन का त्रिरात्राशौच है। इसी प्रकार सौतेला भानजा के मरने में भी त्रिरात्राशौच है। अनुपनीत भानजा के मरने में मामा और मामा की बहिन को पक्षिणी आशौच है। इसी तरह सौतेला भानजा के मरने में भी पक्षिणी आशौच है। अनुपनीत पद से जिसका केवल उपनयन नहीं हुआ हो चूड़ाकरण हो गया हो या तीन वर्ष से ऊपर की अवस्था का हो इसका ग्रहण है, यह उचित प्रतीत होता है। इसी प्रकार आगे भी उपनीत पद का अर्थ जानना चाहिये। भानजी के मरने में तो स्नानमात्र ठीक प्रतीत होता है।

मातामहमरणे दुहित्रपत्यस्य पुत्ररूपस्य कन्यारूपस्य वा त्रिरात्रम्। ग्रामान्तरे पक्षिणी। मातामह्यां मृतायां दौहित्रस्य दौहित्र्याश्च पक्षिणी। अत्र सर्वत्र पुरुषस्योपनीतस्यैव स्त्रियाश्च विवाहिताया एव मातापित्रतिरिक्ताशौचेऽधिकार इत्युक्तम्। अत्र मातुलमातुलानीमातामहादिमृतौ स्त्र्यपत्यस्याशौचोक्तिस्त्र्यम्बकीयानुसारेणान्यत्र तु नैवं स्पष्टमुपलभ्यते।

नाना के मरने में लड़की की सन्तति पुत्ररूप या कन्यारूप को त्रिरात्र आशौच है। दूसरे ग्राम में मरने पर पक्षिणी आशौच होता है। नानी के मरने में नाती और नतिनी को पक्षिणी आशौच होता है। यहां सब जगह उपनीत पुरुष और विवाहिता स्त्री का ही माता-पिता से अतिरिक्त के आशौच में अधिकार है, यह कहा है। इसमें मामा-मामी और नाना आदि के मरने पर कन्या के लिये आशौच का कथन त्र्यम्बकीय निर्णय के अनुसार है दूसरी जगह तो ऐसा स्पष्ट नहीं मिलता।

उपनीतदौहित्रमरणे[1] मातामहस्य मातामह्याश्च त्रिरात्रम्। अनुपनीते दौहित्रे मृते मातामहस्य मातामह्याश्च पक्षिणी। दौहित्रीमरणे तु नाशौचमिति भाति। श्वश्रूश्वशुरयोर्मरणे जामातुः सन्निधौ त्रिरात्रम्। असन्निधौ तु पक्षिणी। उपकारकयोर्मरणे त्वसन्निधावपि त्रिरात्रमेव। ग्रामान्तरे एकरात्रम्। भार्यामरणेन निवृत्तसम्बन्धयोः श्वश्रूश्वशुरयोरनुपकारकयोर्मृते तु पक्षिण्येकाहो वेति भाति।

उपनीत नाती के मरने में नाना और नानी को तीन रात का आशौच है। अनुपनीत

---

१. वृद्ध मनु का वचन है—'संस्थिते पक्षिणीं रात्रिं दौहित्रे भगिनीसुते। संस्कृते तु त्रिरात्रं स्यादिति धर्मो व्यवस्थितः॥' मिताक्षरा में इसी प्रकार का वचन वृद्ध वसिष्ठ के नाम से उद्धृत है—'संस्थिते पक्षिणीं रात्रिं दौहित्रे भगिनीसुते। संस्कृते तु त्रिरात्रं स्यादिति धर्मो व्यवस्थितः॥ पित्रोरुपरमे स्त्रीणामूढानां तु कथं भवेत्। त्रिरात्रेणैव शुद्धिः स्यादित्याह भगवान् यमः॥ श्वशुरयोर्भगिन्यां च मातुलान्यां च मातुले। पित्रोः स्वसरि तद्वच्च पक्षिणीं क्षपयेन्निशाम्॥' तथा—'मातुले श्वशुरे मित्रे गुरौ गुर्वङ्गनासु च। आशौचं पक्षिणीं रात्रिं मृता मातामही यदि॥' गौतमः—'पक्षिणीमसपिण्डे योनिसम्बद्धे सहाध्यायिनि च'। योनिसम्बद्धाः = मातुलमातृष्वस्रीयपितृष्वस्रीयादयः।—

जाबालिः—'एकोदकानां तु त्र्यहो गोत्रजानामहः स्मृतम्। मातृबन्धौ गुरौ मित्रे मण्डलाधिपतौ तथा॥' विष्णुः—'असपिण्डे स्ववेश्मनि मृते एकरात्रम्'। तथा वृद्धः—'भगिन्यां संस्कृतायां तु भ्रातर्यपि च संस्कृते। मित्रे जामातरि प्रेते दौहित्रे भगिनीसुते॥ शालके तत्सुते चैव सद्यःस्नानेन शुद्धयति। ग्रामेश्वरे कुलपतौ श्रोत्रिये वा तपस्विनि॥ शिष्ये पञ्चत्वमापन्ने शुचिर्नक्षत्रदर्शनात्। ग्राममध्यगतो यावच्छवस्तिष्ठति कस्यचित्॥ ग्रामस्य तावदाशौचं निर्गते शुचितामियात्।' इत्यादि आशौचविशेषप्रतिपादक स्मृतियों के मूलवचन निबन्धग्रन्थों में देखिये।

नाती के मरने में नाना और नानी को पक्षिणी आशौच है। नतिनी के मरने में तो नाना-नानी को आशौच नहीं होता, ऐसा ठीक मालूम होता है। सास-ससुर के मरने में दामाद की सन्निधि में रहने पर तीन रात का आशौच है। सन्निधि में न रहने पर तो पक्षिणी आशौच है। उपकार करने वाले सास-ससुर के मरने में तो सन्निधि में न रहने पर भी त्रिरात्राशौच ही है। दूसरे ग्राम में मरने पर एकरात्राशौच है। पत्नी के मरने से सम्बन्ध छूटे हुए अनुपकारी सास-ससुर के मरने में तो पक्षिणी या एक रात का आशौच ही मुझे उचित प्रतीत होता है।

जामातरि मृते श्वश्रूश्वशुरयोरेकरात्रं स्नानाच्छुद्धिर्वा। स्वगृहे जामातृमरणे त्रिरात्रम्। उपनीते शालके मृतेभगिनीभर्तुरेकाहः। अनुपनीते शालके मृते तु स्नानम्। ग्रामान्तरे मृतेऽपि स्नानम्। भार्यामरणेन निवृत्तसंबन्धे शालके स्नानमिति नागोजीभट्टीये। शालकसुतमरणे स्नानम्। कश्चिच्छालिकायां मृतायां शालकवदेकाहादिकमाह। मातुः स्वसरि मृतायां स्वस्रपत्ययोः कन्यापुत्रयोः पक्षिणी। एवं सापत्नमातुः स्वसृमरणेऽपि। पितुः स्वसरि मृतायां भ्रात्रपत्ययोः कन्यापुत्रयोः पक्षिणी। पितुः सापत्नस्वसृमरणे तु स्नानमात्रम्। भ्रात्रपत्यमरणे तु पितृष्वसुः स्नानम्। स्वगृहे पितृष्वसृमातृष्वसृमरणे त्र्यहम्।

दामाद के मरने में सास-ससुर को एक दिन का आशौच है या स्नान से शुद्धि होती है। अपने घर में दामाद के मरने में त्रिरात्राशौच है। उपनीत साला के मरने में बहनोई को एक दिन का आशौच है। अनुपनीत साला के मरने में तो स्नान से शुद्धि है। दूसरे ग्राम में मरने में भी स्नान है। स्त्री के मरने पर सम्बन्ध छूटे हुये साले के मरने में स्नान है, ऐसा नागोजीभट्ट के ग्रन्थ में है। साला के पुत्र के मरने में स्नानमात्र है। कोई—साली के मरने में साला की तरह एक दिन आदि का आशौच—कहते है। मौसी के मरने में उसकी बहिन की सन्तति पुत्र या पुत्री को पक्षिणी आशौच है। इसी प्रकार सौतेली मौसी के मरने में भी है। पिता की बहिन (बुआ) के मरने में भाई की संतति कन्या-पुत्र को पक्षिणी है। पिता की सौतेली बहिन के मरने में तो स्नानमात्र है। भाई की सन्तान के मरने में तो बुआ का स्नानमात्र है। अपने घर में बुआ और मौसी के मरने में तीन दिन का आशौच है।

अथ बन्धुत्रयाशौचनिर्णयः

उपनीतबन्धुत्रयमरणे पक्षिणी। अनुपनीतस्य गुणहीनस्य वा बन्धुत्रयस्य मरणे एकाहः। स्वगृहे मरणे तु त्रिरात्रम्। अत्र बन्धुत्रयपदेनात्मबन्धुत्रयं पितृबन्धुत्रयं मातृबन्धुत्रयमिति नवबन्धवो ग्राह्याः। ते यथा—

आत्मपितृष्वसुः पुत्रा आत्ममातृष्वसुः सुताः।
आत्ममातुलपुत्राश्च विज्ञेया आत्मबान्धवाः॥
पितुः पितृष्वसुः पुत्राः पितुर्मातृष्वसुः सुताः।
पितुर्मातुलपुत्राश्च विज्ञेयाः पितृबान्धवाः॥
मातुः पितृष्वसुः पुत्रा मातुर्मातृष्वसुः सुताः।
मातुर्मातुलपुत्राश्च विज्ञेया मातृबान्धवाः॥ इति।

पितृष्वस्रादिकन्यानां तु विवाहितानां मरणे 'तद्बन्धुवर्गस्त्वेकेन' इति वचनबलादेकाहोऽनूढानां तु मरणे स्नानमात्रमिति निर्णयसिन्ध्वाशयः।

उपनीत तीनों बन्धुओं के मरने में पक्षिणी आशौच है। अनुपनीत या गुणहीन बन्धुत्रय के मरने में एक दिन का आशौच है। अपने घर में मरने में तो त्रिरात्राशौच है। यहां बन्धुत्रय पद से तीन आत्मबन्धु, तीन पितृबन्धु और तीन मातृबन्धु, इस प्रकार नौ बन्धु ग्राह्य हैं। वे जैसे—अपने पिता की बहिन के पुत्र, अपनी मौसी के पुत्र और मामा के पुत्र, ये आत्मबन्धु हैं। पिता की बुआ के पुत्र, पिता की मौसी के पुत्र और पिता के मामा के पुत्र, ये पितृबान्धव हैं। माता की बुआ के पुत्र, माता की मौसी के पुत्र और माता के मामा के पुत्र, ये मातृबान्धव हैं। बुआ आदि की विवाहिता कन्याओं के मरने में तो–उनका बन्धुवर्ग तो एक में दिन शुद्ध होता है—इत्यादि वचन के बल से एक दिन का आशौच है और अविवाहिता कन्या के मरने में तो स्नानमात्र है, यह निर्णयसिन्धु का आशय है।

नागोजीभट्टास्तु बन्धुत्रयवाक्ये पुत्रपदं कन्योपलक्षकमित्याहुः। तन्मते पितृष्वस्रादिकन्यानामूढानां मरणे पक्षिणी, अनूढानामेकाह इत्यादि। पितृष्वस्रादिकन्याभिस्तु बन्धुत्रयमरणे स्नानमात्रं कार्यमिति सिन्ध्वाशयेन सिद्ध्यति।

नागोजीभट्ट तो बन्धुत्रय वचन में पुत्रपद कन्या का बोधक है, ऐसा कहते हैं। उनके मत में बुआ आदि की विवाहिता कन्या के मरने में पक्षिणी और अविवाहिता के मरने में एक दिन का आशौच इत्यादि है। बुआ आदि की कन्याओं को तो बन्धुत्रय के मरने में स्नानमात्र करना चाहिये, यह निर्णयसिन्धु के आशय से सिद्ध होता है।

भट्टमते तु पुत्रपदवत्तद्वाक्यस्थात्मपदस्यापि कन्यापरत्वापत्त्या कन्याभिरपि बन्धुत्रयाशौचं कार्यमित्यापतति। तत्र च बहुशिष्टाचारविगानमिति सिन्ध्वाशयो युक्तो भाति। अत्रेदं तत्त्वम्—देवदत्तीयबन्धुनवकमध्ये आत्मबन्धुत्रये संबन्धसाम्यात्परस्परमाशौचम्। अवशिष्टबन्धुषट्के तु बन्धुषट्कमरणे देवदत्तस्य आशौचम्। देवदत्तस्य मरणे तु बन्धुषट्कस्य नाशौचं सम्बन्धाभावादिति सुधीभिरूह्यम्।

भट्ट के मत में तो पुत्रपद के समान उस वाक्य में स्थित आत्म पद का कन्यापरक हो जाने से कन्यायें भी बन्धुत्रय का आशौच करें, यह आता है। वह बहुशिष्टाचार से निन्द्य है, इससे निर्णयसिन्धु का आशय ठीक है। इसमें तत्त्व यह है—देवदत्त के नौ बन्धुओं के मध्य में आत्मबन्धुत्रय में संबन्ध के साम्य से परस्पर आशौच है। बचे हुए शेष छ बन्धुओं में तो छ बन्धुओं के मरने में देवदत्त को आशौच है। देवदत्त के मरने में तो छ बन्धुओं को सम्बन्ध के अभाव से आशौच नहीं है, यह पण्डितों को विचारणीय है।

अथ दत्तकादिमरणे आशौचम्

दत्तकस्य मरणे पूर्वापरपित्रोस्त्रिरात्रं सपिण्डानामेकाहमाशौचम्। नीलकण्ठीये दत्तकनिर्णये तूपनीतदत्तकमरणादौ पालकपित्रादिसपिण्डानां दशाहादिकमेवाशौचमित्युक्तम्। दत्तकेनापि पूर्वापरपित्रोर्मृतौ त्रिरात्रम्। पूर्वापरसपिण्डानां मरणे एकाहः। पित्रोरौर्ध्वदेहिककरणे तु कर्माङ्गं दशाहमेव। दत्तकस्य पुत्र-

पौत्रादेर्जनने मरणे वा पूर्वापरसपिण्डानामेकाहः। एवं पूर्वापरसपिण्डमरणादावपि दत्तकपुत्रपौत्रादेरेकाहः। इदं सपिण्डसमानोदकभिन्ने दत्तीकृते ज्ञेयम्। सगोत्रसपिण्डे सोदके च दत्तीकृते यथाक्रमं दशाहं त्रिरात्रं च यथाप्राप्तं भवत्येव।

दत्तक के मरने पर पहले और बाद के माता-पिता को तीन रात का और सपिण्डों को एक दिन का आशौच है। नीलकण्ठ के दत्तकनिर्णय में तो उपनीत दत्तक के मरण आदि में पालक पिता आदि के सपिण्डों को दस दिन का ही आशौच है, यह कह चुका हूँ। दत्तक को भी पहले और बाद वाले माता-पिता के मरने में त्रिरात्र तथा पहले और बाद वाले सपिण्डों के मरने में एक दिन का आशौच है। माता-पिता के और्ध्वदेहिक कर्म करने में तो कर्माङ्ग दस दिन का आशौच है ही। दत्तक के पुत्र-पौत्र आदि के जन्म या मरण में पहले और बाद वाले सपिण्डों को एक दिन का और इसी प्रकार पूर्व और बाद के सपिण्डों के मरने आदि में दत्तक के पुत्र-पौत्र आदि को एक दिन का आशौच होता है। यह निर्णय सपिण्ड और समानोदक से भिन्न दत्तक करने पर जानना चाहिये। सगोत्र, सपिण्ड और समानोदक के दत्तक करने पर यथाक्रम दस दिन और तीन रात का जैसा आशौच प्राप्त हो वैसा होता ही है।

अथ आचार्यादिमरणाशौचम्

आचार्ये[1] मृते त्रिरात्रम्। ग्रामान्तरे मृते पक्षिणी। उपनीय वेदाध्यापक आचार्यः। स्मार्तकर्मनिर्वाहकोऽप्याचार्यः। आचार्यभार्यासुतयोर्मरणे एकाहः। मन्त्रोपदेशकगुरुमरणे त्रिरात्रम्। ग्रामान्तरे पक्षिणी। शास्त्राध्यापको व्याकरणज्योतिःशास्त्राद्यङ्गाध्यापकश्चानूचानसंज्ञकस्तन्मरणे एकाहः। सकलवेदाध्यापकगुरुमरणे पक्षिणी। वेदैकदेशाध्यापक उपाध्यायस्तन्मरणे एकाहः। शिष्यस्योपनीयाध्यापितस्य मृतौ त्रिरात्रम्। निवृत्ताध्ययनस्य मृतौ पक्षिणी।

आचार्य के मरने पर त्रिरात्र आशौच है। दूसरे गांव में मरने पर पक्षिणी। उपनयन करके वेद पढ़ाने वाला आचार्य कहा जाता है। स्मार्त कर्म को कराने वाला भी आचार्य है। आचार्य की पत्नी और पुत्र के मरने में एक दिन का आशौच है। मन्त्र का उपदेश करने वाले गुरु के मरने में त्रिरात्र आशौच है। दूसरे ग्राम में मरने पर पक्षिणी। शास्त्र का अध्यापक और व्याकरण-ज्योतिष शास्त्र आदि अङ्गों का अध्यापक, अनूचान (वेद-वेदाङ्गों का पारंगत विद्वान्), इनके मरने पर एक दिन का आशौच है। सकल वेद के पढ़ाने वाले गुरु के मरने पर

---

१. मनुः—'त्रिरात्रमाहुराशौचमाचार्ये संस्थिते सति। तस्य पुत्रे च पत्न्यां च दिवारात्रमिति स्थितिः ॥' आचार्यादि के अन्त्यकर्म करने पर मनु ने दशरात्र का आशौच कहा है—'गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन्। प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुद्ध्यति ॥' संक्षेप में आशौच का प्रतिपादक त्रिंशच्छ्लोकी का यह पद्य स्मरण योग्य है—'प्रेतेष्वाचार्यमातामहदुहितृसुतश्रोत्रियर्त्विक्सयाज्यस्वस्रीयेषु त्रिरात्रं त्रिदिवसमशुचिः सोदकस्तूभयत्र। पक्षिण्याशौचमृत्विग्दुहितृसुतसहाध्यायिबन्धुत्रयान्तेवासिश्वश्रूसुमित्रश्वशुरभगिनिकाभागिनेयप्रयाणे ॥ मातामह्यां च पित्रोः स्वसरि च विरतौ मातुले मातुलान्यां चाथो सज्योतिरेव स्वविषयनृपतौ ग्रामनाथे च नष्टे। शिष्योपाध्यायबन्धुत्रयगुरुतनयाचार्यभार्यासगोत्रानूचानश्रोत्रियेषु स्वगृहपरमृतौ मातुले चैकरात्रम् ॥ रात्रिं सब्रह्मचारिण्यथ तु कथमपि स्वल्पसम्बन्धयुक्ते स्नानं वासोयुतं स्यादिदमपि सकलं सर्ववर्णेषु तुल्यम् ॥' यहाँ के मूल वचन इसके पूर्व सुधाविवृति में और अवशिष्ट वचन महानिबन्धों में देखें।

पक्षिणी आशौच है। वेद के एकदेश का पढ़ाने वाला उपाध्याय है, इसके मरने पर एक दिन का आशौच है। उपनयन करके पढ़ाये हुए छात्र के मरने पर त्रिरात्र। पढ़ने से निवृत्त हुए शिष्य के मरने पर पक्षिणी आशौच है।

परोपनीतस्य बहुकालमध्यापितस्य मरणे एकाहः। सहाध्यायिमृतौ पक्षिणी। ऋत्विज्यनिवृत्तर्त्विक्कर्मणि मृते त्रिरात्रम्। ग्रामान्तरे पक्षिणी। कर्मनिवृत्तौ ग्रामान्तरे एकाहः। एकग्रामे पक्षिणी। एवं याज्यमरणेऽपि। सार्थवेदाध्यायी श्रौतस्मार्तकर्मनिष्ठश्च श्रोत्रियस्तयोर्मरणे मैत्रीगृहानन्तर्यादिसंबन्धे त्रिरात्रम्। एकतरसंबन्धे पक्षिणी। संबन्धाभावे एकाहः। सवर्णमित्रमरणे एकाहः। यतिमरणे सर्वसपिण्डानां स्नानमात्रम्। स्वगृहे उदासीनासपिण्डमरणे एकाहः। स्वाधिष्ठितस्वगृहे[1] असपिण्डमरणे त्र्यहम्। आशौचप्रयोजकसंबन्धिनि स्वगृहे मृते त्रिरात्रम्। ग्रामाधिपदेशाधिपादेमृतौ सज्योतिः।

दूसरे से उपनीत बहुत दिन तक पढ़ाये हुए छात्र के मरने में एक दिन का आशौच है। साथ पढ़ने वाले के मरने में पक्षिणी है। ऋत्विज कर्म की समाप्ति से पहले ऋत्विजके मरने में तीन रात। दूसरे ग्राम में मरने में पक्षिणी। कर्मकी निवृत्ति के बाद दूसरे ग्राम में मरने पर एकदिन का आशौच है। एक ग्राम में पक्षिणी है। इसी प्रकार यजमान के मरने में भी है। अर्थ के साथ वेद पढ़ने वाले छात्र और श्रौत-स्मार्त-कर्म-निष्ठ श्रोत्रिय, इन दोनों के मरने में मित्रता और घर का सामीप्य आदि सम्बन्ध होने पर त्रिरात्र आशौच होता है। इनमें से कोई एक सम्बन्ध के न होने पर पक्षिणी है। कोई सम्बन्ध न होने पर एक दिन का आशौच है। सवर्ण मित्र के मरने में एक दिन का आशौच है। संन्यासी के मरने में सब सपिण्डों को स्नानमात्र है। अपने घर में उदासीन असपिण्ड के मरने में एक दिन और अपने निवास के घर में स्थित असपिण्ड के मरने में तीन दिन का आशौच होता है। आशौच प्रयोजक सम्बन्धी के अपने घर में मरने पर त्रिरात्र आशौच होता है। गांव का मालिक और देश का मालिक आदि के मरने में सज्योति आशौच है।

अथ सज्योतिःपक्षिणीशब्दयोरर्थः

दिवामरणे रात्रौ स्नानाच्छुद्धिः, रात्रिमरणे दिवाशुद्धिरिति सज्योतिःपदार्थः। पक्षिणीपदार्थस्तु दिवामरणे स दिवसः सा रात्रिर्द्वितीयदिवसे नक्षत्रदर्शनपर्यन्तमिति। आगामिवर्तमानाहर्द्वययुता मध्यगता रात्रिः। रात्रिमरणे सा रात्रिस्तदुत्तरमहोरात्रिश्चेति पक्षिणी। केचित्तु रात्रिमरणेऽपि मरणदिनाद् द्वितीयदिनस्थनक्षत्रपर्यन्तमेव पक्षिणीपदार्थं इत्याहुः। एवमतिक्रान्ते विषये दिवारात्रौ वा मरणज्ञानानुसारेण पक्षिणीव्यवस्था योज्या। आचार्यमातुलादीनां

---

१. कूर्मपुराणे—'त्रिरात्रमसपिण्डेषु स्वगृहे संस्थितेषु च।' अङ्गिरा ने कहा है—'गृहे यस्य मृतः कश्चिदसपिण्डः कथंचन। तस्याप्यशौचं विज्ञेयं त्रिरात्रं नात्र संशयः॥' संवर्त ने घर की शुद्धि बतलायी है—'गृहशुद्धिं प्रवक्ष्यामि अन्तःस्थशवदूषिते। प्रोत्सृज्य मृन्मयं भाण्डं सिद्धमन्नं तथैव च॥ गोमयेनोपलिप्याथ छागेन घ्रापयेद् बुधः। ब्राह्मणैर्मन्त्रपूतैश्च हिरण्यकुशवारिभिः॥ सर्वमभ्युक्षयेद् वेश्म ततः शुद्ध्यत्यसंशयम्।' इति।

त्रिरात्राद्याशौचमन्यस्मिन्नन्त्यकर्मकर्तरि ज्ञेयम्। शिष्यादीनामन्त्यकर्मकर्तृत्वे तु दशाहाद्येव।

दिन में मरने पर रात में स्नान करने से शुद्धि होती है तथा रात में मरने पर दिन में स्नान करने से शुद्धि होती है, यह सज्योति पदार्थ है। पक्षिणी पद का अर्थ तो—दिन में मृत्यु हो तो मृत्यु का दिन और उस दिन की रात तथा दूसरे दिन नक्षत्रदर्शन तक—यह है। आनेवाला और वर्तमान दिन, इन दोनों के बीच की रात पक्षिणी होती है। रात में मरने पर मरने वाली रात इसके बाद का दिन और रात यह पक्षिणी है। कोई तो—रात में मरने पर भी मरण दिन से दूसरे दिन स्थित नक्षत्र तक ही पक्षिणी पदार्थ है—यह कहते हैं। इसी प्रकार बीते हुए आशौच के विषय में दिन या रात में मरण-ज्ञान के अनुसार पक्षिणी की व्यवस्था करनी चाहिये। आचार्य और मामा आदि का त्रिरात्र आदि आशौच—शिष्य से भिन्न दूसरे अन्त्येष्टि कर्म करने वाले में जानना चाहिये। शिष्य आदि अन्त्येष्टि कर्म करने वाले हों तो दशाहादि आशौच ही होता है।

अथ ग्रामे शवस्थितौ विचारः

'ग्राममध्ये यावच्छवस्तिष्ठति तावद् ग्रामस्याशौचम्। नगरे तु नैवम्। ग्रामनगरलक्षणान्यन्यत्र। गृहे गवादिपशुमृतौ यावच्छवस्तिष्ठेत्तावदाशौचम्।[2] द्विजगृहे शुनो मृतौ गृहस्य दशरात्रमाशौचम्। शूद्रमरणे मासम्। पतितमृतौ मासद्वयम्। म्लेच्छादिमृतौ मासचतुष्टयम्। दासानां गृहजातक्रीतऋणमोक्षितलब्धत्वादिप्रकाराणां स्वामिमरणे स्वजातीयाशौचम्।

गांव में मुर्दा जब तक रहे तब तक गांव भर को आशौच होता है। नगर में तो ऐसा नहीं होता। गांव और नगर के लक्षण अन्य ग्रन्थों में हैं। घर में गाय आदि पशु के मरने में जब तक मृतपशु रहे तब तक आशौच है। द्विज के घर में कुत्ता के मरने पर घर को दस दिन का आशौच है। शूद्र के मरने में एक महीना का आशौच है। पतित के मरने पर दो महीना का आशौच है। म्लेच्छ आदि के मरने पर चार महीने का आशौच होता है। घर में पैदा हुए, खरीदे हुये, कर्ज से मुक्त किये गये और प्राप्त आदि भेद के दासों को मालिक के मरने में अपनी जाति का आशौच होता है।

अथ युद्धे मृतानामाशौचम्

युद्धे शस्त्रघातेन[3] सद्योमृते स्नानमात्रं नाशौचमन्त्यकर्मापि दशाहादिकं सद्य एव कर्तव्यम्। युद्धक्षतेन कालान्तरे मरणे एकाहः। त्र्यहादूर्ध्वं युद्धक्षतेन

---

१. बृहद्विष्णु ने कहा है—'ग्राममध्यगतो यावच्छवस्तिष्ठति कस्यचित्। ग्रामस्य तावदाशौचं निर्गते शुचितामियात्॥' इसी प्रकार घर में गवादि पशुओं के मरण में भी जानना चाहिये।

२. शुद्धितत्त्व में बृहन्मनु का वचन है—'श्वशूद्रपतिताश्चान्त्या मृताश्चेद् द्विजमन्दिरे। शौचं तत्र प्रवक्ष्यामि मनुना भाषितं यथा॥ दशरात्राच्छुनि मृते मासाच्छूद्रे भवेच्छुचिः। द्वाभ्यां तु पतिते गेहमन्त्ये मासचतुष्टयात्॥ अत्यन्त्ये वर्जयेद् गेहमित्येवं मनुरब्रवीत्।' अन्त्यः=म्लेच्छः, अत्यन्त्यः = श्वपाकः, इति वाचस्पतिः। तत्रैव—'द्विजस्य मरणे वेश्म विशुद्ध्यति दिनत्रयात्।' इति।

३. युद्ध में शस्त्रघात से तत्क्षण मरने पर मनु ने कहा है—'उद्यतैराहवे शस्त्रैः क्षत्रधर्महतस्य च। सद्यः सन्तिष्ठते यज्ञस्तथाशौचमिति स्थितिः॥' अतः स्नानमात्र से शुद्धि होती है। कालान्तर में मरने पर मिताक्षरा में वचन है—'ब्राह्मणार्थे विपन्नानां योषितां गोग्रहेऽपि च।

मरणे पराङ्मुखहते युद्धे कपटेन हते च त्रिरात्रम्। युद्धक्षतेन सप्तरात्रादूर्ध्वं मृतौ दशाहमित्याहुः। शिष्टास्तु युद्धे हतस्य सद्यःशौचादिकं [1]लोकविद्विष्टत्वान्न वदन्ति। प्रयागादौ काम्यमरणे स्नानमात्रम्। प्रायश्चित्तार्थमग्न्यादिमरणे एकाहः। महारोगपीडाक्षमाणां जलादिप्रवेशे त्रिरात्रम्। अत्रापि न शिष्टाचारसंमतिः। एवं कारागृहे मृतस्यैकरात्रेऽपि।

युद्ध में, हथियार के प्रहार से शीघ्र मरने में स्नानमात्र है, कोई आशौच नहीं और अन्त्य-कर्म भी दस दिन आदि का शीघ्र ही कर लेना चाहिये। युद्ध में घायल होने से दूसरे समय में मरने पर एक दिन का आशौच है। युद्ध में घायल होने से तीन दिन के बाद मरने पर पराङ्मुख होकर मरने पर और कपट से मारे जाने पर त्रिरात्र आशौच होता है। युद्ध में घायल होने से सात दिन बाद मरे तो उसका दस दिन का आशौच है, कोई ऐसा कहते हैं। शिष्टजन तो लोक में निन्द्य होने से युद्ध में मरे हुए का सद्यः शौच आदि को नहीं कहते हैं। प्रयाग आदि में कामना से मरण में स्नान मात्र है। प्रायश्चित्त के लिये अग्नि आदि से मरने में एक दिन का आशौच है। महारोगों की पीड़ा न सह कर जल आदि में प्रवेश करने में त्रिरात्र आशौच होता है। इसमें भी शिष्टाचार की संमति नहीं है। इसी प्रकार जेल में मरने वाले का एक दिन के आशौच में भी शिष्टाचार नहीं है।

अथ अतिक्रान्ताशौचम्

तत्र जननाशौचेऽतिक्रान्ताशौचं [2]नास्ति। पितुःस्नानमात्रं तत्रापि भवति। मृताशौचेऽप्यनुपनीतमरणादिनिमित्तेषु त्रिरात्रैकरात्रेषु मातुलादिपरगोत्रीयमरण-निमित्तकेषु पक्षिणीत्रिरात्रादिषु चातिक्रान्ताशौचं नास्ति। तत्रोढकन्यायाः पित्रोर्मरणे त्रिरात्रेऽतिक्रान्तेऽपि दशाहान्तस्त्र्यहम्। तदूर्ध्वं वत्सरान्तरेऽपि पक्षिणीत्युक्तम्।

जननाशौच में बीता हुआ आशौच नहीं होता। उसमें भी पिता का स्नानमात्र होता है। मरणाशौच में भी अनुपनीत के मरण आदि निमित्त वाले त्रिरात्र-एकरात्र के आशौच में और मामा आदि दूसरे गोत्र के मरण निमित्त वाले पक्षिणी-त्रिरात्र आदि आशौच में अतिक्रान्ताशौच नहीं होता। उसमें विवाहिता कन्या के माता-पिता के मरने में तीन रात बीतने पर भी दस दिन के भीतर सुने तो तीन दिन का आशौच है। इसके बाद दूसरे वर्ष में भी सुने तो पक्षिणी आशौच कहा है।

आहवेऽपि हतानां च एकरात्रमशौचकम्॥' व्याघ्र ने विशेष कहा है—'क्षतेन म्रियते यस्तु तस्याशौचं भवेद् द्विधा। आसप्ताहात् त्रिरात्रं स्याद् दशरात्रमतः परम्। शस्त्राघाते त्र्यहादूर्ध्वं यदि कश्चित् प्रमीयते। आशौचं प्राकृतं तस्य सर्ववर्णेषु नित्यशः॥' इति।

१. इसी लिये कर्णादि का श्राद्ध किया गया है, जिनका वर्णन महाभारत में है। महाभारत के राजधर्म में—'अशोच्यो हि हतः शूरः स्वर्गलोके महीयते। न ह्यन्नमुदकं तस्य न स्नानं नाप्यशौच-कम्॥' इस वचन से जो श्राद्धादिका निषेध है वह पुत्रादि का अभावपरक है।

२. देवल ने कहा है—'नाशुद्धिः प्रसवाशौचे व्यतीतेषु दिनेष्वपि।' पिता को तो स्नान करना चाहिये, जैसा मनु ने कहा है—'निर्दशं ज्ञातिमरणं श्रुत्वा पुत्रस्य जन्म च। सवासा जलमाप्लुत्य शुद्धो भवति मानवः॥' इति।

एवं सोदकादिविषयत्रिरात्रादिष्वतिक्रान्ताशौचं न। स्नानमात्रं त्वत्रापि कालान्तरेऽपि भवत्येव। किंतु दशाहादि मृताशौचविषयमेवातिक्रान्ताशौचं कर्तव्यम्। तत्र दशाहाद्याशौचानां त्रिरात्रादीनां च तत्तदाशौचमध्ये ज्ञानेऽवशिष्टदिनैः[1] शुद्धिः। पुत्रादेरपि शेषदिनैरेव शुद्धिः। अन्त्यकर्मापि शेषदिनैरेव समापनीयम्। एवमस्थिपर्णशरसंस्कारोऽपि शेषेणैव। एवं सोदकत्रिरात्रेऽपि शेषेण शुद्धिः।

इसी प्रकार समानोदक आदि विषयक त्रिरात्र में बीता हुआ आशौच नहीं होता। स्नानमात्र तो इसमें भी दूसरे समय में भी होता ही है। किन्तु दशाहादि मरणाशौच विषयक ही अतिक्रान्ताशौच करना चाहिये। उसमें दशाहादि और त्रिरात्र आदि आशौच का उस-उस आशौच के मध्य में ज्ञान होने पर शेष दिनों से शुद्धि होती है। पुत्र आदि का भी शेष दिनों ही से शुद्धि होती है। अन्त्यकर्म भी बचे दिनों से ही समाप्त करे। इसी प्रकार अस्थि और पर्णशर संस्कार भी शेष दिनों ही से करे। इसी तरह समानोदक के त्रिरात्र में भी शेष से शुद्धि होती है।

त्रिरात्राद्युत्तरं तु दशाहन्यूनाशौचानां दशाहमध्ये ज्ञानेऽपि नातिक्रान्ताशौचं किंतु स्नानमात्रम्। मातापित्रोर्मरणे दूरदेशेपि वत्सरान्तरेपि श्रवणे पुत्रस्य श्रवणप्रभृतिदशाहादिपूर्णमेवाशौचम्। दम्पत्योः परस्परं देशान्तरे कालान्तरेऽपि पूर्णं दशाहमेव। सपत्नीनां परस्परं देशकालविशेषानपेक्षं दशाहमेव। सापत्नमातुर्मरणे पुत्रस्य दशाहोर्ध्वं देशकालानपेक्षं त्रिरात्रम्।

त्रिरात्र आदि के बाद तो दशाह से कम आशौचों का दशाह के भीतर ज्ञान होने पर भी अतिक्रान्ताशौच नहीं होता किन्तु केवल स्नान होता है। माता-पिता के मरने में दूर देश में भी दूसरे वर्ष में भी सुनने पर पुत्र को सुनने के दिन से दशाह आदि पूर्ण ही आशौच होता है। पति-पत्नी के परस्पर दूसरे देश में और दूसरे समय में भी पूरा दस दिन का ही आशौच होता है। सौतों को परस्पर देश और काल विशेष की अपेक्षा के विना दस दिन का ही आशौच होता है। सौतेली माता के मरने में पुत्र को दस दिन के बाद देशकाल की अपेक्षा के विना त्रिरात्राशौच है।

औरसपुत्रमृतौ मातापित्रोर्वत्सरान्तरेऽपि त्रिरात्रम्। [2]दशाहोर्ध्वमेकदेशे सपिण्डमरणे ज्ञाते मासत्रयपर्यन्तं त्रिरात्रं, षण्मासपर्यन्तं पक्षिणी, नवमासपर्यन्तमेकरात्रं, ततो वर्षपर्यन्तं सज्योतिः, स्नानमात्रं वा। [3]माधवमते पक्षत्रयपर्यन्तं

१. मनु ने कहा है—'विगतं तु विदेशस्थं शृणुयाद् यो ह्यनिर्दशम्। यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत्॥' कोई कहते हैं कि 'विगतं तु' यह वचन पुत्र से भिन्न के लिये है और इसका अपवाद-वचन है—'पितरौ चेन्मृतौ स्यातां दूरस्थोऽपि हि पुत्रकः। श्रुत्वा तद्दिनमारभ्य दशाहं सूतकी भवेत्॥' इसलिये आशौच के मध्य में सुनने पर भी श्रवण-दिन से दशाहादि का आशौच लगेगा यह ठीक नहीं है, क्योंकि 'अनग्निमतः उत्क्रान्तेः' इत्यादि वचन से विरोध होगा और स्मृत्यर्थसार में पुत्रादि के लिये आशौच के शेष दिन से ही शुद्धि लिखी है—'जनने मरणे वा प्रथमदिनादूर्ध्वं ज्ञाते पुत्रादीनां शेषेणैव शुद्धिः' इति।

२. दशाह के बाद आशौच की जानकारी होने पर वृद्ध वशिष्ठ ने कहा है—'मासत्रये त्रिरात्रं स्यात् षण्मासे पक्षिणं तथा। अहस्तु नवमादर्वागूर्ध्वं स्नानेन शुद्ध्यति॥' इति।

३. माधवीय में देवल का वचन है—'आ त्रिपक्षात् त्रिरात्रं स्यात् षण्मासात् पक्षिणी ततः। परमेकाहमावर्षादूर्ध्वं स्नातो विशुद्ध्यति॥' इति।

त्रिरात्रं, षण्मासपर्यन्तं पक्षिणी, वर्षपर्यन्तमेकरात्रं, वर्षोर्ध्वं स्नानमात्रमिति। अत्रापदनापद्विषयत्वेन व्यवस्था।

औरस पुत्र के मरने पर माता-पिता को दूसरे वर्ष में भी त्रिरात्र आशौच है। दस दिन के बाद तीन महीने तक एक देश में सपिण्ड का मरण जानने पर त्रिरात्र, छ महीने तक पक्षिणी, नौ महीने तक एकरात्र, इसके बाद वर्ष पर्यन्त सज्योति या स्नानमात्र आशौच होता है। माधव के मत में तीन पक्ष तक त्रिरात्र, छ महीने तक पक्षिणी, वर्ष पर्यन्त एकरात्र और वर्ष के बाद स्नानमात्र आशौच है। इन दोनों पक्षों में आपत्ति-अनापत्ति विषय से व्यवस्था करनी चाहिये।

अथ देशान्तरे [1]सपिण्डमरणे दशाहोर्ध्वं ज्ञाते पक्षत्रयपर्यन्तं त्रिरात्रं, षण्मासपर्यन्तं पक्षिणी, नवमासपर्यन्तमेकाहः, वर्षपर्यन्तं सज्योतिरिति माधवमतम्। [2]विज्ञानेश्वरस्तु देशान्तरे सपिण्डमरणे दशाहोर्ध्वं ज्ञाते स्नानमात्रमित्याह। अत्र माधवमतमेव युक्तम्। अतिक्रान्ताशौचं वयोवस्थानिमित्तकाशौचं च सर्ववर्णसाधारणम्।

देशान्तर में दस दिन के बाद सपिण्ड का मरण ज्ञात होने पर तीन पक्ष तक त्रिरात्र, छ महीने तक पक्षिणी, नौ महीने तक एकरात्र, वर्ष तक सज्योति आशौच होता है, ऐसा माधव का मत है। विज्ञानेश्वर तो—देशान्तर में सपिण्ड का मरण दस दिन के बाद ज्ञात हो तो स्नानमात्र—कहते हैं। इसमें माधव का मत ही ठीक है। अतिक्रान्ताशौच और वयोवस्था निमित्तक आशौच सब वर्णों का साधारण है।

अथ देशान्तरलक्षणानि

देशान्तरं तु विप्रस्य विंशतियोजनात्परम्। क्षत्रियादेः क्रमेण चतुर्विंशतित्रिंशत्षष्टियोजनैः। केचिद्विप्रस्य त्रिंशद्योजनोत्तरं देशान्तरमाहुः। भाषाभेदसहितमहागिरिणा भाषाभेदसहितमहानद्या वा व्यवधानमपि [3]देशान्तरम्। यत्तु

---

१. माधव के मत में विष्णु का वचन है—'अर्वाक् त्रिपक्षात् त्रिनिशं षण्मासाच्च दिवानिशम्। अहः संवत्सरादर्वाग्देशान्तरमृतेष्वपि॥' यह वचन माता-पिता से भिन्न के लिये है। माता-पिता के लिये तो स्मृत्यर्थसार में दशाहादि पूर्णाशौच का ही निर्देश है—'मातापितृमरणे दूरदेशेऽपि संवत्सरोर्ध्वमपि पुत्रो दशाहादिकं पूर्णमाशौचं कुर्यात्। स्त्रीपुंसयोः परस्परं सपत्नीषु चैवम्' इति।

२. विज्ञानेश्वर के मत में पराशर का वचन है—'देशान्तरमृतं श्रुत्वा क्लीबे वैखानसे यतौ। मृते स्नानेन शुद्ध्यन्ति गर्भस्रावे च गोत्रिणः॥' यह वचन भी माता-पिता से भिन्न के लिये है। माता-पिता के लिये तो पुत्र का दशाहादि पूर्णाशौच ही है।

३. बृहस्पतिः—'महानद्यन्तरं यत्र गिरिर्वा व्यवधायकः। वाचो यत्र विभिद्यन्ते तद्देशान्तरमुच्यते॥ देशान्तरं वदन्त्येके षष्टियोजनमायतम्। चत्वारिंशद्वदन्त्यन्ये त्रिंशदन्ये तथैव च॥' वाचस्पति ने कहा है—'एकाहेन यत्रत्या वार्ता न श्रूयते स विदेश इति रत्नाकरः' अर्थात् रत्नाकर का मत है कि एक दिन में जहाँ की वार्ता न सुन सके उसे विदेश कहते हैं।

केचिद्भाषाभेदरहितमपि गिरिनदीव्यवधानं देशान्तरमाहुः, तद्योजनगतविंशत्यादि-संख्यायास्त्रिचतुरादिन्यूनत्वेऽपि देशान्तरत्वसंपादकतया योज्यमिति भाति । अन्यथा महानदीपरपूर्वतीरवासिनामेकयोजनमध्येऽपि देशान्तरत्वापत्तेः ।

देशान्तर तो ब्राह्मण का बीस योजन के बाद होता है । क्षत्रिय आदि का क्रम से चौबीस, तीस और साठ योजन है । कोई तो—ब्राह्मण का तीस योजन के बाद का देशान्तर होता है—ऐसा कहते हैं । भाषाभेद के साथ महापर्वत के या भाषाभेद के साथ महानदी के व्यवधान से भी देशान्तर है । कोई—भाषाभेदरहित भी पर्वत-नदी के व्यवधान को देशान्तर कहते हैं—वह योजनगत बीस आदि संख्या की तीन-चार आदि की कमी होने पर भी देशान्तर का बोधक मानकर लगाना चाहिये, ऐसा युक्त प्रतीत होता है । नहीं तो महानदी के उस पार इस पार रहने वालों को एक योजन के मध्य में भी देशान्तर होने की आपत्ति होगी ।

अत्र सगोत्रविषयाशौचान्येव भार्यापतिपुत्रादिभिः सर्वैरनुष्ठेयानि । यानि तु मातुलत्वभगिनीत्वादिप्रयुक्तानि भिन्नगोत्राशौचानि, तेषु जायापतिपुत्रादिषु मध्ये यत्संबन्धि यत्तत्तेनैवानुष्ठेयं न सर्वैः ।

इसमें सगोत्र विषयक आशौच ही स्त्री-पति-पुत्र आदि सब को करना चाहिये । जो तो मातुलत्व भगिनीत्व प्रयुक्त भिन्न गोत्र का आशौच हैं, उनमें स्त्री-पति-पुत्र आदि के मध्य में जिसके सम्बन्ध का जो आशौच है वह उसी को करना चाहिये, सब को नहीं ।

अथ रात्रौ जनने मरणे वा निर्णयः

रात्रौ जननमरणे रात्रौ मरणज्ञाने वा रात्रिं [1]त्रिभागां कृत्वा प्रथमभागद्वये पूर्वदिनं, तृतीयभागे उत्तरदिनमारभ्याशौचम् । यद्वाऽर्धरात्रात्प्राक् पूर्वदिनं परतः परदिनम् । अत्र देशाचारादिना व्यवस्था ।

रात में जन्म और मरण में या रात में मरण के ज्ञान होने पर रात को तीन भाग करके पहले दो भागों में पूर्व दिन और तीसरे भाग में बाद के दिन से आशौच होता है । अथवा आधी रात से पहले पूर्व दिन के बाद में दूसरे दिन से आशौच होता है । इसमें देशाचार आदि से व्यवस्था है ।

अथ आहिताग्नेर्दाहादिनिर्णयः

आहिताग्नेर्मन्त्रवद्दाहदिनमारभ्य [2]पुत्रादिभिराशौचं कार्यम् । अत्राहिताग्निपदेन श्रौताग्नित्रयवान् ग्राह्यः । तद्भिन्नो गृह्याग्निमानप्यनाहिताग्निपदेन ग्राह्यः । आहिताग्नेर्विदेशमरणे मन्त्रवद्दाहात्पूर्वं पुत्रादीनामाशौचं संध्यादिनित्यकर्मलोपश्च नास्ति । मन्त्रवद्दाहमारभ्य तु पुत्रादिसपिण्डानां दुहितृदौहित्रादिभिन्नगोत्राणां

---

१. यह निर्णय मिताक्षरा के अनुसार है । मिताक्षरा में लिखा है—'रात्रिं त्रिभागां कृत्वाऽऽद्यभागद्वये चेत्पूर्वदिनम्, अन्त्ये तूत्तरम्' इति । सभी आशौच आहिताग्नि का दाह दिन से और अनाहिताग्नि का मरण दिन से आरम्भ करना जानना चाहिये ।

२. पैठीनसि स्मृति में कहा है—'अनग्निमत उत्क्रान्तेराशौचादि द्विजातिषु । दाहादग्निमतो विद्याद् विदेशस्थे मृते सति ॥' ब्रह्मपुराण में भी कहा है—'दाहादेव तु कर्तव्यं यस्य वैतानिको विधिः ।' इति ।

चाशौचं भवत्येव, न त्वतिक्रान्तनिमित्तक आशौचाभावस्तस्य ह्रासो वा। अत एवाहिताग्नेः पर्णशरदाहेऽपि दशाहमेव देशान्तरे कालान्तरेऽपि सिद्धयति।

आहिताग्नि का मन्त्रसहित दाह के दिन से पुत्र आदि को आशौच करना चाहिये। यहां आहिताग्नि पद से तीन श्रौत अग्निवाला ग्राह्य है। उससे भिन्न गृह्य अग्नि वाला भी अनाहिताग्नि पद से ग्राह्य है। आहिताग्नि के परदेश में मरने पर मन्त्रसहित दाह से पहले पुत्र आदि को आशौच और संध्या आदि नित्यकर्म का लोप नहीं है। मंत्रसहित दाह से आरम्भ करके तो पुत्र आदि सपिण्डों का लड़की और नाती आदि से भिन्न गोत्रों का आशौच होता ही है, अतिक्रान्त निमित्तक आशौच का अभाव अथवा उसका ह्रास नहीं होता। इसीलिये आहिताग्नि का पर्णशरदाह में भी दस दिन का ही आशौच देशान्तर या कालान्तर में भी सिद्ध होता है।

अथ अनाहिताग्नेर्दाहादिनिर्णयः

अनाहिताग्नेर्मरणदिनादारभ्य पुत्रादिभिराशौचं कार्यम्। अनाहिताग्नेर्देशान्तरे मरणे अतिक्रान्ताशौचं मरणश्रवणानन्तरमेव पूर्वोक्तव्यवस्थया कार्यम्। अनाहिताग्नेरस्थिदाहपर्णशरदाहयोस्तु पूर्वमगृहीताशौचयोर्भार्यापुत्रयोर्दशाहमेव। गृहीताशौचयोस्तु संस्कारकर्तृभिन्नयोर्दाहकाले त्रिरात्रम्। सपत्न्योर्मिथश्चैवम्। पत्नीसंस्कारे पत्युश्चैवम्। एतद्भिन्नसपिण्डानां तु पूर्वमगृहीताशौचानामनाहिताग्निसंस्कारकाले त्रिरात्रम्। गृहीताशौचानां तु सपिण्डानां दाहकाले स्नानमात्रम्। इदं सपिण्डानां त्रिरात्रादिकं पुत्रादेर्दशाहादिकं च दशाहोर्ध्वं संस्कारकरणे ज्ञेयम्।

अनाहिताग्नि का आशौच पुत्र आदि को मरण दिन से करना चाहिये। अनाहिताग्नि के दूसरे देश में मरने पर अतिक्रान्ताशौच मरण सुनने के अनन्तर ही पहले कही व्यवस्था से करना चाहिये। अनाहिताग्नि के अस्थिदाह और पर्णशरदाह में तो पहले आशौच ग्रहण नहीं करने वाले स्त्री-पुत्र आदि को दस दिन का ही आशौच होता है। संस्कार करने वाले से भिन्न आशौच ग्रहण करने और न करने वाले का तो दाह-काल में त्रिरात्राशौच होता है। सौतों को परस्पर यही प्रकार है। स्त्री के संस्कार में पति को भी ऐसे ही करना चाहिये। इनसे भिन्न सपिण्डों को तो पहले जिन्होंने आशौच ग्रहण नहीं किया है उनको अनाहिताग्नि के संस्कार-काल में त्रिरात्राशौच होता है। आशौच ग्रहण करने वाले सपिण्डों को तो दाहकाल में स्नानमात्र है। यह सपिण्डों का त्रिरात्र आदि और पुत्र आदि का दशाह आदि आशौच दस दिन के बाद संस्कार करने में जानना चाहिये।

दशाहमध्ये संस्कारकरणे तु शेषदिनैरेव शुद्धिः कर्मसमाप्तिश्च। आहिताग्नेरेव दशाहमध्येऽपि शरीरदाहेऽस्थिदाहे पर्णशरदाहे वा शेषेण न शुद्धिः, समन्त्रकदाहदिनस्यैव प्रथमदिनत्वादित्युक्तम्। दशाहोर्ध्वं देशान्तरमृतानाहिताग्निवार्ताश्रवणदिनात्कृतत्रिरात्राशौचानां सपिण्डानां चतुर्थादिदिनेषु संस्कारारम्भे दाहकाले स्नानम्। अगृहीताशौचानां त्रिदिनमेव। भार्यापुत्रादेः[1] श्रवणदिनादा-

१. आदि पद से माता-पिता का ग्रहण है। तदुक्तम्—'पितरौ चेन्मृतौ स्यातां दूरस्थोऽपि हि पुत्रकः। श्रुत्वा तद्दिनमारभ्य दशाहं सूतकी भवेत्॥' स्मृत्यर्थसारे—'मातापितृमरणे दूरदेशेऽपि संवत्सरोर्ध्वमपि पुत्रो दशाहादिकं पूर्णमाशौचं कुर्यात्। स्त्रीपुंसयोः परस्परं सपत्नीषु चैवम्।' इति।

रभ्य दशाहम्। द्वितीयादावहन्यारम्भे चतुर्थदिने सपिण्डशुद्धिः। भार्यादेर्दशाहमेव श्रवणदिनादित्यूह्यम्।

दस दिन के भीतर संस्कार करने में तो शेष दिनों से ही शुद्धि और कर्म की समाप्ति होती है। आहिताग्नि को ही दस दिन के भीतर शरीर दाह-अस्थिदाह में अथवा पर्णशरदाह में शेष दिनों से शुद्धि नहीं होती। क्योंकि मन्त्रसहित दाह का दिन ही उनका प्रथम दिन है, यह कहा है। दस दिन के बाद दूसरे देश में मरे हुए अनाहिताग्नि के मरण की बात को सुनने के दिन से त्रिरात्र किये हुए सपिण्डों को चौथे आदि दिनों में संस्कार आरम्भ करने पर दाहकाल में स्नानमात्र है। जिन्होंने आशौच ग्रहण नहीं किया है उनका तीन दिन का ही आशौच है। स्त्री-पुत्र आदि को मरण की बात सुनने के दिन से दस दिन का आशौच होता है। दूसरे आदि दिन में आरम्भ करने पर चौथे दिन सपिण्डों की शुद्धि होती है। स्त्री आदि का सुनने के दिन से दशाह आशौच होता है, यह ऊह करना चाहिये।

अथ देशान्तरमृतस्य प्रतीक्षोत्तरं व्यवस्था

देशान्तरगतस्य द्वादशवर्षादिप्रतीक्षोत्तरं पर्णशरदाहेप्येवमेव पुत्रादेः सपिण्डानां च दशरात्रं त्रिरात्रादिकमूह्यम्। प्रतीक्षा च—यदारभ्य वार्ता न श्रूयते तदारभ्य पञ्चदशवर्षाणि मात्रापित्रोः, अन्येषां पूर्वे वयसि विंशतिः, मध्यमे पञ्चदश, उत्तरे वयसि द्वादश। प्रतीक्षा युक्त्यादिभिर्मरणनिश्चयासंभवे कार्या।

दूसरे देश में गये का बारह वर्ष की प्रतीक्षा के बाद पर्णशरदाह में भी इसी प्रकार पुत्र आदि और सपिण्डों को दशाह और त्रिरात्र आदि आशौच की कल्पना करनी चाहिये। प्रतीक्षा तो—जब से मरने की बात नहीं सुनी जाय तब से माता-पिता की पन्द्रह वर्ष तक, दूसरों की पहली अवस्था में बीस वर्ष तक, मध्यम अवस्था में पन्द्रह वर्ष तक और वृद्धावस्था में बारह वर्ष तक करे। प्रतीक्षा—युक्ति आदि से मरने का निश्चय नहीं हो सके तब करनी चाहिये।

अथ आशौचसंपाते निर्णयः

दशाहमृताशौचे दशाहस्य ततो न्यूनस्य वा मृताशौचस्य संपाते पूर्वप्रवृत्ताशौचसमाप्त्या शुद्धिः १। दशाहजननाशौचे दशाहं न्यूनं वा जननाशौचं पतति चेत्पूर्वप्रवृत्तसमाप्त्या शुद्धिः २। दशाहमृताशौचे जननाशौचं दशाहं त्र्यहं वा संपतेत्तदा मृताशौचसमाप्त्या शुद्धिः ३। त्र्यहमृताशौचे त्र्यहं ततो न्यूनं वा मृताशौचं त्र्यहं जननाशौचं वा संपतेत्तदा पूर्वप्रवृत्तान्ते शुद्धिः ४। त्रिदिनजननाशौचे त्रिदिनजननाशौचपाते पूर्वान्ते शुद्धिः ५।

दस दिन के मरणाशौच में दस दिन का या उससे कम का मरणाशौच पड़ने पर पहले लगे आशौच की समाप्ति से शुद्धि होती है १। दस दिन के जननाशौच में दस दिन का या उससे कम का जननाशौच यदि पड़े तो पहले लगे जननाशौच की समाप्ति से शुद्धि होती है २। दस दिन के मरणाशौच में दस दिन या तीन दिन का जननाशौच पड़े तो मरणाशौच की समाप्ति से शुद्धि होती है ३। तीन दिन के मरणाशौच में तीन दिन या इससे कम का मरणाशौच या तीन दिन का जननाशौच आ पड़े तो पहले लगे आशौच के अन्त में शुद्धि होती है ४। तीन दिन के जननाशौच में तीन दिन का जननाशौच लगे तो पहले के अन्त में शुद्धि होती है ५।

पक्षिणीमृताशौचे पक्षिण्येकाहान्यतरमृतकपाते पूर्वान्ते शुद्धिः। जननाशौचेन समेनाधिकेन वा मृताशौचं [1]नापैति। पक्षिण्यादिरूपमृतकेन त्रिदिनं दशाहं च जननाशौचं त्रिदिनमृताशौचेन दशाहं जाताशौचं च नापैतीति बहवः। कश्चित्तु न्यूनेनापि मृतकेनाधिकस्यापि जाताशौचस्य निवृत्तिरित्याह। त्रिदिनमृताशौचेन दशाहं मृतकं न[2] निवर्तते। एवं पक्षिण्या त्रिदिनमेकाहेन पक्षिणी च नापैति। त्रिदिनजाताशौचेन दशाहं जाताशौचं न निवर्तते।

पक्षिणी मरणाशौच में पक्षिणी और एक दिन के मरणाशौच में से कोई एक के पड़ने पर पहिले के अन्त में शुद्धि है। बराबर या अधिक दिन के जननाशौच से मरणाशौच दूर नहीं होता। बहुतों का कहना है कि पक्षिणी आदि रूप मरणाशौच से तीन दिन का और दस दिन का जननाशौच एवं तीन दिन के मरणाशौच से दस दिन का जननाशौच नहीं हटता। कोई तो—कम दिन के भी मरणाशौच से अधिक दिन के भी जननाशौच की निवृत्ति होती है—ऐसा कहते हैं। तीन दिन के मरणाशौच से दस दिन का मरणाशौच निवृत्त नहीं होता। इसी प्रकार पक्षिणी से तीन दिन का और एक दिन के आशौच से पक्षिणी-आशौच दूर नहीं होता। तीन दिन के जननाशौच से दस दिन का जननाशौच निवृत्त नहीं होता।

अत्रेदं बोध्यम्—संपातो नामाशौचिनामेकाशौचित्वज्ञाने पराशौचित्वज्ञानम्। तेन पूर्वाशौचमध्ये उत्पन्नमपि पराशौचं पूर्वाशौचान्ते ज्ञातं चेत्पूर्वेण न निवर्तते, संपाताभावात्। पूर्वत्वपरत्वे तूत्पत्तिकृतेन ज्ञानकृते। तेन पूर्वोत्पन्नस्य परोत्पन्नज्ञानोत्तरं ज्ञानेऽपि पूर्वोत्पन्नेन परोत्पन्नं तन्मध्ये ज्ञातं निवर्तत एव। संपात एव ज्ञानकृतो न तु पूर्वत्वादिकमिति सिद्धान्तादिति।

इसमें यह जानना चाहिये—संपात पदार्थ-आशौच वालों को एक आशौच का ज्ञान होने पर दूसरे आशौच का ज्ञान होता है। इससे पहले आशौच के मध्य में उत्पन्न भी दूसरा आशौच पहले आशौच के अन्त में यदि ज्ञात हो तो पहले के आशौच से निवृत्त नहीं होता, क्योंकि संपात का अभाव है। पूर्वत्व और परत्व तो उत्पत्ति से होता है ज्ञानकृत नहीं होता। इससे पहले उत्पन्न का दूसरे उत्पन्न ज्ञान के बाद ज्ञान होने पर भी पहले उत्पन्न से दूसरे उत्पन्न के मध्य में जाना जाय तब निवृत्त होता ही है, क्योंकि संपात ही ज्ञानकृत है पूर्वत्व आदि नहीं, यह सिद्धान्त है।

दशाहान्त्यरात्रौ[3] यदि निवृत्तियोग्यदशाहसंपातस्तदा दिनद्वयमधिकं कार्यम्। दशमरात्रेश्चतुर्थयामे निवृत्तियोग्यदशाहान्तरसंपाते दिनत्रयमधिकम्। दशाहान्त्य-

---

१. अङ्गिराः—'सूतके मृतकं चेत्स्यान्मृतके त्वथ सूतकम्। तत्राधिकृत्य मृतकं शौचं कुर्यान्न सूतकम्॥' षट्त्रिंशन्मते—'शावाशौचे समुत्पन्ने सूतकं तु यदा भवेत्। शावेन शुद्ध्यते सूतिर्न सूतिः शावशोधिनी॥' कूर्मपुराणे—'मरणोत्पत्तियोगे तु गरीयो मरणं भवेत्।' इति।

२. उशना ने कहा है—'स्वल्पाशौचस्य मध्ये तु दीर्घाशौचं भवेद्यदि। न पूर्वेण विशुद्धिः स्यात्स्वकालेनैव शुद्ध्यति॥' इति।

३. मनु आदि के—'अन्तर्दशाहे स्यातां चेत्पुनर्मरणजन्मनि। तावत्स्यादशुचिर्विप्रो यावत्तत्स्यादनिर्दशम्॥' इस कथन के अपवाद में गौतम का वचन है—'रात्रिशेषे सति द्वाभ्यां, प्रभाते सति तिसृभिः।' प्रभाते=अन्त्ययामे। शातातपः—'रात्रिशेषे द्वयहाच्छुद्धिर्यामशेषे शुचिस्त्र्यहात्।' बौधा-

रात्रौ चतुर्थयामे वा निवृत्तियोग्यत्रिरात्राशौचपाते तु पूर्वेण शुद्धिर्न द्व्यहादि-वृद्धिः। एवं त्र्यहाद्याशौचानां निर्वात्तियोग्यानां परस्परं तृतीयरात्रौ तृतीयरात्रि-शेषे वा संपाते पूर्वेण शुद्धिर्न द्व्यहादिवृद्धिः।

दशाह की अन्तिम रात में यदि निवृत्तियोग्य दशाह का संपात हो तब दो दिन अधिक आशौच करना चाहिये। दसवीं रात के चौथे पहर में निवृत्तियोग्य दूसरे दशाहाशौच के संपात होने पर तीन दिन अधिक आशौच करे। दशाह की आखिरी रात में या चौथे पहर में निवृत्तियोग्य त्रिरात्राशौच के संपात में तो पहले आशौच से शुद्धि होती है दो दिन आदि की वृद्धि नहीं होती। इसी प्रकार निवृत्ति-योग्य तीन दिन आदि वाले आशौचों का परस्पर तीसरी रात में या तीसरी रात के शेष में संपात हो तो पूर्वाशौच से शुद्धि होती है दो दिन आदि की वृद्धि नहीं होती।

वर्धितद्वित्रिदिने दशाहान्तरपाते पूर्वेण द्विरात्रेण त्रिरात्रेण वा न निवृत्तिः। वर्धितद्विरात्रेण पक्षिण्या निवृत्तिः। वर्धितत्रिरात्रेणान्यत्रिरात्रस्य निवृत्तिः। यदा तु भागिनेयादिर्मातुलादेरन्त्यकर्म करोति तदा तन्निमित्ते दशाहाद्याशौचे सति यदि सपिण्डमरणनिमित्तं दशाहादिकं पतति तदा तस्य पूर्वेण शुद्धिर्न भवति। कर्माङ्गाशौचस्यास्पृश्यतामात्रप्रयोजकत्वेन संध्यादिकर्मलोपाभावेन लघुत्वात्। लघुना

यनः—'अथ यदि दशरात्राः सन्निपतेयुराद्यं दशरात्रमाशौचमानवमाद्दिवसादत ऊर्ध्वं द्विरात्रेण व्युष्टायां त्रिरात्रेण'। देवलः—'पुनः पाते दशाहात्प्राक् पूर्वेण सह गच्छति। दशमेऽह्नि पतेद्यस्याहद्वयात्स विशुद्ध्यति॥' 'प्रभाते तु त्रिरात्रेण दशरात्रेष्वयं विधिः।' इत्यादि अनेक वचनों के आशय से वाचस्पति आदि ने संक्षेप में कहा है—

'दशाहाशौचे पञ्चमदिनपर्यन्तं यदि द्वितीयं सजातीयं दशाहाशौचमापतति तदा पूर्वाशौचव्यपगमेन शुद्धिः। पञ्चमदिनानन्तरं नवमदिनपर्यन्तं सजातीयं द्वितीयमापतति तदा द्वितीयाशौचव्यपगमेन शुद्धिः। दशमदिने सम्पूर्णाशौचनिपाते सति तद्दिनानन्तरं दिनद्वयेन शुद्धिः। दशमदिनरात्रिशेषे अरुणोदयवेलायां सम्पूर्णाशौचनिपाते सूर्योदयानन्तरं त्रिरात्रेण शुद्धिः। एवमेव क्षत्रियादीनां त्रयाणामपि बोध्यम्। त्र्यहाशौचे समकालिकाशौचान्तरोपनिपाते द्वितीयाशौचव्यपगमेन शुद्धिः। जनने मरणाशौचसन्निपाते अल्पदिनव्यापकेनापि मरणाशौचेनैव शुद्धिः।'

अर्थात् दशाहाशौच में पांच दिन के भीतर यदि उसी तरह का दूसरा आशौच आजाय तो पहला आशौच के साथ दूसरे आशौच की शुद्धि होती है। पांच दिन के बाद छठे दिन से नव दिन के भीतर यदि उसी तरह का दूसरा आ जाय तो दूसरे आशौच के साथ पहला आशौच की शुद्धि होती है। दसवां दिन उसी तरह का आशौच आ जाय तो उस दिन के बाद दो दिन में शुद्धि होती है। दशम दिन के रात्रिशेष (चार दंड सूर्योदय के पूर्व से सूर्योदय के निकट तक) में उसी तरह का सम्पूर्णाशौच आ जाय तो सूर्योदय के अनन्तर तीन दिन में शुद्धि होती है। इसी प्रकार क्षत्रिय वैश्य और शूद्रों के लिये भी जानना चाहिये। त्र्यहाशौच में यदि उसी तरह का त्र्यहाशौच आ जाय तो द्वितीय त्र्यहाशौच के बीतने पर पहले की शुद्धि होती है। जननाशौच में अल्प दिन वाला भी मरणाशौच आ जाय तो मरणाशौच की शुद्धि से ही जननाशौच की शुद्धि होती है। विशेष शुद्धि-विवेकादि में देखें।

गुरोर्निवृत्त्यभावात्[1]। एवं त्रिरात्रपातेऽपि जननत्रिरात्रस्य निवृत्तिर्मृतकत्रिरात्रस्य नेत्यादिकमूह्यम्।

बढाये गये दो-तीन दिन में दूसरे दशाहाशौच का सम्पात हो तो पहले द्विरात्र या त्रिरात्र से निवृत्ति नहीं होती। बढाये गये द्विरात्र से पक्षिणी की निवृत्ति होती है। बढ़ाये गये त्रिरात्र से दूसरे त्रिरात्र की निवृत्ति होती है। जब भागिनेय आदि मामा आदि का अन्त्य कर्म करता है तब उसके निमित्त दशाह आदि का आशौच होने पर यदि सपिण्ड के मरण निमित्त दशाहादि का आशौच पड़ जाय तब उसका पूर्वाशौच से शुद्धि नहीं होती है, क्योंकि कर्माङ्ग आशौच का अस्पृश्यता मात्र प्रयोजक होने से सन्ध्यादि कर्म के लोप न होने से लघु है। लघु से बड़े कर्म की निवृत्ति नहीं हो सकती। इसी प्रकार त्रिरात्राशौच के संपात होने पर भी जननसूतक त्रिरात्र की निवृत्ति होती है, मरण सम्बन्धी त्रिरात्र की निवृत्ति नहीं होती, इत्यादि का ऊह कर्तव्य है।

पुत्रस्य सपिण्डाशौचेन[2] मातापित्रोराशौचं नापैति। एवं भार्याया भर्त्राशौचं नापैति। केचित्पत्युर्भार्याशौचमपि नापैतीत्याहुः। मात्राशौचमध्ये पित्राशौचपाते पूर्वान्ते शुद्धिः। [3]स्मृत्यर्थसारादयस्तु पितुः संपूर्णमेवाशौचं कार्यमित्याहुः।

पुत्र को सपिण्ड के आशौच से माता-पिता का आशौच नहीं हटता। इसी तरह पत्नी को पति का आशौच निवृत्त नहीं होता। कुछ लोग—पति को पत्नी का आशौच भी निवृत्त नहीं होता—ऐसा कहते हैं। माता के आशौच के मध्य में पिता का आशौच पड़ जाय तो पहले आशौच के अन्त में शुद्धि होती है। स्मृत्यर्थसार आदि में कहा है कि पिता का सम्पूर्ण ही अशौच करे।

पित्राशौचे मातुर्मरणे पित्राशौचं समाप्य [4]पक्षिणीमधिकां कुर्यात्। इयं पक्षि-

---

१. हारीतः—'गुरुणा लघु शुद्ध्येत्तु लघुना नैव तद्गुरु।' उशनाः—'स्वल्पाशौचस्य मध्ये तु दीर्घाशौचं भवेद्यदि। न पूर्वेण विशुद्धिः स्यात् स्वकालेनैव शुद्ध्यति॥' तेन त्र्यहादिशावमध्ये दशाहादिसूतकेऽपि न पूर्वेण शुद्धिरित्यपरार्कः। इसी प्रकार लघु गुरु आशौच में जानना चाहिये।

२. मनु ने जो सपिण्डाशौच का निर्देश किया है—'विगतं तु विदेशस्थं शृणुयाद्यो ह्यनिर्दशम्। यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत्॥ अतिक्रान्ते दशाहे तु त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्। संवत्सरे व्यतीते तु स्पृष्ट्वैवापो विशुद्ध्यति॥' यह मनु-वचन माता-पिता के मरने पर पुत्र के लिये नहीं है। पुत्र के लिये तो पैठीनसि ने विशेष कहा है—'पितरौ चेन्मृतौ स्यातां दूरस्थोऽपि हि पुत्रकः। श्रुत्वा तद्दिनमारभ्य दशाहं सूतकी भवेत्॥' शातातप ने तो शेष दिन से ही शुद्धि बतलायी है—'असमीपे पितुः प्रेतं श्रुत्वा देशान्तरे सुतः। तिलमिश्रोदकं कृत्वा तच्छेषेण विशुद्ध्यति॥' इति।

३. स्मृत्यर्थसारे—'मातापितृमरणे दूरदेशेऽपि संवत्सरोर्ध्वमपि पुत्रो दशाहादिकं पूर्णमाशौचं कुर्यात्। स्त्रीपुंसयोः परस्परं सपत्नीषु चैवम्' इति।

४. शंख की उक्ति है—'मातर्यग्रे प्रमीतायामशुद्धौ म्रियते पिता। पितुः शेषेण शुद्धिः स्यान्मातुः कार्या तु पक्षिणी॥' इस वचन के तीन चरण का अर्थ स्पष्ट है। चतुर्थ चरण का अर्थ कमलाकर ने किया है—'पित्राशौचमध्ये मातृमृतौ पित्राशौचान्ते मातुः पक्षिणीमधिकां कुर्यात्' इति। इस वचन की व्याख्या मिताक्षराकार ने की है—'मातरि पूर्वं मृतायां तन्निमित्ताशौचमध्ये यदि पितुरुपरमः स्यात्तदा न पूर्वशेषेण शुद्धिः किन्तु पितुः प्रयाणनिमित्ताशौचकालेनैव शुद्धिः कार्या। तथा पितुः प्रयाणनिमित्ताशौचमध्ये मातरि स्वर्यातायामपि न पूर्वशेषमात्राच्छुद्धिः किन्तु पूर्वाशौचं समाप्य उपरि पक्षिणीं क्षिपेत्।—

णीवृद्धिर्दशमरात्रेरर्वाक् मरणे तज्ज्ञाने वा भवति। दशमरात्रौ तद्रात्रिचतुर्थयामे वा मातृमरणादौ तु द्विरात्रत्रिरात्रावेव न पक्षिणो। मातुरनाहिताग्निभर्तुर्मरणाद् द्वितीयादिदिनेषु सहगमनेऽपि नाधिका 'पक्षिणी, भर्त्राशौचान्ते शुद्धिः।

पिता के आशौच में माता के मरने पर पिता का आशौच समाप्त कर एक पक्षिणी आशौच अधिक करे। यह पक्षिणी की वृद्धि दसवीं रात के पहले मरने पर या उसके जानने पर होती है। दसवीं रात में या उस रात के चौथे पहर में माता के मरने आदि में तो दो रात और तीन रात ही बढावे, पक्षिणी नहीं। माता को अनाहिताग्नि पति के मरने से दूसरे आदि दिनों में सहगमन करने पर भी अधिक पक्षिणी नहीं होती, पति के आशौच के अन्त में शुद्धि होती है।

नवश्राद्धपिण्डादिकं युगपत्समापयेत्। भर्त्राशौचोत्तरमन्वारोहणे त्रिरात्रम्। एतत्त्रिरात्रं सपिण्डानामेव। पुत्रस्य तु मात्राशौचं संपूर्णमेवेति भाति। सहगमने सपिण्डानामपि पूर्णमेवाशौचं त्रिरात्रं त्वनुगमनपरमिति गौडाः। इदमेवयुक्तम्। इयं संपाते पूर्वेण शुद्धिः सूतिकाया अग्निदस्य च ²नास्ति।

नवश्राद्ध के पिण्ड आदि एक काल में समाप्त करे। पति को आशौच के अन्त में अन्वारोहण करने पर त्रिरात्राशौच होता है। यह त्रिरात्र सपिण्डों को ही है। पुत्र को तो माता का आशौच सम्पूर्ण ही होता है, यह ठीक प्रतीत होता है। सहगमन में सपिण्डों को भी पूर्ण ही आशौच है, त्रिरात्र तो अनुगमन में है, ऐसा गौडों का कथन है। यही ठीक है। संपात में पूर्व से यह शुद्धि सूतिका और अग्नि देने वाले की नहीं है।

यदा देशान्तरमृतपितुर्वार्तां श्रुत्वा पुत्रैर्दशाहमाशौचं कृतं संस्कारस्त्वस्थ्यलाभादिहेत्वन्तरवशान्न कृतो दशाहोत्तरं च संस्कार आरब्धस्तत्र संस्कारकर्तुः पुत्रस्य कर्माङ्गं दशाहमाशौचम्। तदाशौचमध्ये सपिण्डमरणे पूर्वान्ते शुद्धिर्न। मातुर्मरणेऽपि नाधिका पक्षिणी, किन्तु सपिण्डाशौचं मात्राशौचं च संपूर्णमेव कार्यम्, अतिक्रान्तकालाद्वर्तमानस्य बलवत्त्वात्।

जब दूसरे देश में मरे पिता की बात सुनकर पुत्रों ने दस दिन का आशौच किया हो, संस्कार तो अस्थि नहीं मिलने आदि दूसरे कारण से नहीं किया हो और दस दिन के बाद संस्कार आरम्भ

— अर्थात् पहले माता के मरने पर उसके आशौच के मध्य में यदि पिता की मृत्यु हो जाय तो माता के आशौच के शेष दिन से शुद्धि नहीं किन्तु पिता के मरण निमित्तक आशौचकाल से ही शुद्धि करनी चाहिये। इसी प्रकार पिता के मरणाशौच के मध्य में माता के मरने पर भी पिता के आशौच के शेष दिन से शुद्धि नहीं किन्तु पिता के आशौच की समाप्ति के बाद माता की पक्षिणी अधिक करे।—

दो दिन और एक रात्रि को पक्षिणी कहते हैं--'द्वावह्नावेकरात्रिश्च पक्षिणीत्यभिधीयते।' अमरः--'आगामिवर्तमानाहर्युक्तायां निशि पक्षिणी' इति।

१. षडशीतिमते—'मृतं पतिमनुव्रज्य पत्नी चेदनलं गता। न तत्र पक्षिणी कार्या पैतृकादेव शुद्धयति॥ पुत्रोऽन्यो वाऽग्निदस्तस्यास्तावदेवाशुचिस्तयोः। नवश्राद्धं सपिण्डं च युगपत्तु समापयेत्॥' इति।

२. षडशीत्याम्—'पूर्वाशौचेन या शुद्धिः सूतके मृतके च सा। सूतिकामग्निदं हित्वा प्रेतस्य च सुतानपि॥' निर्णयामृते—'इयं विशुद्धिरुदिता सूतिकामग्निदं विना।' इति।

किया हो उसमें संस्कारकर्ता पुत्र को कर्माङ्ग दस दिन का आशौच होता है। इस आशौच के मध्य में सपिण्ड के मरने पर पूर्वाशौच के अन्त में शुद्धि नहीं होती। माता के मरने में भी अधिक पक्षिणी नहीं होती, किन्तु सपिण्ड का और माता का आशौच सम्पूर्ण ही करना चाहिये, क्योंकि बीते काल से वर्तमान काल बलवान् होता है।

एवं द्वादशवर्षादिप्रतीक्षोत्तरं पुत्रादिभिः क्रियमाणपित्रादिसंस्काराङ्गदशाहाशौचेऽन्यसपिण्डादिमरणेऽपीति पूर्वशेषेण शुद्धेरपवादः सिन्धावुक्तः।

इसी प्रकार बारह वर्ष आदि की प्रतीक्षा के बाद पुत्र आदि द्वारा किया जाने वाला पिता आदि का संस्काराङ्ग दशाहाशौच में दूसरे सपिण्ड आदि के मरने पर भी, यह पूर्वशेष से शुद्धि का अपवाद निर्णयसिन्धु में कहा है।

जननाशौचे मृताशौचे वा मृतकसंपाते पिण्डदानाद्यन्त्यकर्मप्रतिबन्धो नास्ति। मृताशौचे जाताशौचे वा पुत्रजनने जातकर्मादिप्रतिबन्धो[1] नास्तीत्येके। पूर्वाशौचान्ते जातकर्मेत्यन्ये। मातुर्याऽधिका पक्षिणी तन्मध्ये पितुर्महैकोद्दिष्टश्राद्धं वृषोत्सर्गं शय्यादानादिकं च [2]कुर्यात्। अन्यसपिण्डाशौचे त्वेकादशाहकृत्यं न कार्यमिति बहवः। कार्यमिति कश्चित्।

जननाशौच या मरणाशौच में मृतक के संपात में पिण्डदान आदि अन्त्य कर्म का प्रतिबन्ध नहीं है। एक आचार्य यह कहते हैं—मरणाशौच या जननाशौच में पुत्र का जन्म होने पर जातकर्म आदि का प्रतिबन्ध नहीं है। दूसरे कहते हैं कि पहले आशौच के अन्त में जातकर्म करे। माता की जो अधिक पक्षिणी होती है उसके मध्य में पिता का महा एकोद्दिष्ट श्राद्ध, वृषोत्सर्ग और शय्यादान आदि करे। दूसरे सपिण्ड के आशौच में तो एकादशाह कर्म नहीं करे, ऐसा बहुतों का कहना है। करना चाहिये, यह किसी का मत है।

अथ संसर्गाशौच-शवस्पर्श-निर्णयः

संसर्गाशौचे[3] नित्यकर्मानधिकारो नास्ति किंत्वस्पृश्यत्वमात्रम्। तदपि तदीयभार्यापुत्रादीनां नास्ति किंतु संसर्गकर्तुरेव। एवं तद्गृहवर्तितत्स्वामिकान्नादिद्रव्याणां नाग्राह्यत्वम्। तत्र सजातीयशवस्पर्शे सज्योतिराशौचम्। हीनवर्णस्पर्शेऽधिकं कल्प्यम्।

---

१. जातकर्मादि करने का प्रतिबन्ध इसलिये नहीं है कि पुत्र के जन्म होने पर कर्ता की उस समय में शुद्धि रहती है जैसा प्रजापतिस्मृति में लिखा है—'आशौचे तु समुत्पन्ने पुत्रजन्म यदा भवेत्। कर्तुस्तात्कालिकीं शुद्धिः पूर्वाशौचेन शुद्ध्यति ॥' इति।

२. माता की पक्षिणी के मध्य में पिता का एकादशाह करना चाहिये—'आद्यश्राद्धमशुद्धोऽपि कुर्यादेकादशेऽहनि।' दोनों प्रकार के आशौच में शातातप ने कहा है—'अन्तर्दशाहे जननात्पश्चात्स्यान्मरणं यदि। प्रेतमुद्दिश्य कर्तव्यं पिण्डदानं यथाविधि ॥ प्रारब्धे प्रेतपिण्डे तु मध्ये चेज्जननं भवेत्। तथैवाशौचपिण्डांस्तु शेषान् दद्याद्यथाविधि ॥' इति।

३. अङ्गिरा ने कहा है—'आशौचं यस्य संसर्गादापतेद् गृहमेधिनः। क्रियास्तस्य न लुप्यन्ते गृह्याणां च न तद्भवेत् ॥' इति।

शवस्पर्श और अनुगमन आदि संसर्गाशौच में नित्य कर्म का अधिकाराभाव नहीं है, किन्तु अस्पृश्यतामात्र है। वह भी उसके स्त्री-पुत्र आदि को नहीं है, किन्तु संसर्ग करने वाले को ही है। इसी प्रकार उसके घर में रहने वाले उसके मालिक के अन्न आदि द्रव्यों का अग्राह्यत्व नहीं है। उसमें सजातीय शव के स्पर्श करने में सज्योति आशौच होता है। हीन वर्ण के शव के स्पर्श में अधिक की कल्पना करनी चाहिये।

अथ अनुगमने निर्णयः

सजातीयस्य विजातीयस्य शवस्यानुगमने स्नात्वाग्निसंस्पर्शं घृतप्राशनं च कृत्वा पुनः स्नात्वा प्राणायामं कुर्यात्। विप्रस्य [1]शूद्रानुगमने त्रिरात्रं नद्यां स्नानं घृतप्राशनं प्राणायामशतं च। नात्र नित्यकर्मलोपः।

सजातीय और विजातीय शव के अनुगमन में स्नान कर अग्निस्पर्श और घृतप्राशन करके दुबारा स्नान कर प्राणायाम करे। ब्राह्मण शूद्र-शव का अनुगमन करे तो वह त्रिरात्राशौच नदी-स्नान, घृतप्राशन और सौ प्राणायाम करे। इसमें नित्यकर्म का लोप नहीं होता।

अथ निर्हरणे निर्णयः

स्नेहेन सजातीयशवनिर्हरणे तदन्नाशने तद्गृहवासे च दशाहः। तद्गृहवास-मात्रेऽन्नाशनमात्रे वा त्रिरात्रम्। अन्नाशनगृहवासयोरभावे एकाहः। ग्रामान्तरस्थं शवं निर्हृत्य ग्रामान्तरवासे सज्योतिः। [2]मौल्यग्रहणेन सजातीयनिर्हरणे दशाहः। विजातीयनिर्हारे शवजातीयम्। भृतिग्रहणेन हीनजातीयनिर्हरणे शवजातीयद्विगुणम्[3]। सोदकशवनिर्हरणेऽपि दशाहः। शवालंकारकरणे [4]पादकृच्छ्रम्। अज्ञानादुपवासः। अशक्तौ स्नानम्।

स्नेह से सजातीय शव के ढोने में उसके अन्न खाने में और उसके घर में रहने पर दस दिन का आशौच होता है। उसके घर में रहने मात्र से अथवा अन्नभक्षणमात्र से त्रिरात्र आशौच होता है। अन्नभक्षण और उसके घर में निवास न करे तो एक दिन का आशौच होता है। दूसरे गाँव में स्थित शव का निर्हरण कर दूसरे गांव में रहने पर सज्योति आशौच है। मूल्य लेकर सजातीय शव के निर्हरण में दस दिन का आशौच होता है। विजातीय शव के निर्हरण में शव

---

१. पराशरः—'प्रेतीभूतं तु यः शूद्रं ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः। अनुगच्छेन्नीयमानं स त्रिरात्रेण शुद्ध्यति। त्रिरात्रे तु ततस्तीर्णे नदीं गत्वा समुद्रगाम्। प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति॥' क्षत्त्रियानुगमने त्वहोरात्रम्। वैश्यानुगमने पक्षिणी। तथा क्षत्त्रियस्य अनन्तरवैश्यानुगमने अहोरात्रम्, एकान्तरशूद्रानुगमने पक्षिणी। वैश्यस्य शूद्रानुगमने एकाह इत्यूहनीयम्।

२. द्रव्य लेकर शवनिर्हरण और दाह करने पर उस जाति का आशौच होता है, जैसा कूर्मपुराण में कहा है—'यदि निर्हरति प्रेतं प्रलोभाक्रान्तमानसः। दशाहेन द्विजः शुद्धयेद् द्वादशाहेन भूमिपः॥ मासार्धेन तु वैश्यस्तु शूद्रो मासेन शुद्ध्यति।' इति।

३. व्याघ्रः—'अवरश्चेद्वरं वर्णं वरो वाऽप्यवरं यदि। वहेच्छवं तदाशौचं द्रव्यार्थे द्विगुणं भवेत्॥' इति।

४. शङ्खः—'कृच्छ्रपादोऽसपिण्डस्य प्रेतालङ्करणे कृते। अज्ञानादुपवासः स्यादशक्तौ स्नानमिष्यते॥' इति।

की जाति का आशौच होता है। मूल्यग्रहण करके नीच जाति के शव ढोने में शवजातीय आशौच का दुगुना आशौच होता है। समानोदक के शवनिर्हरण में भी दस दिन का आशौच है। शव को अलङ्कृत करने में पादकृच्छ्र होता है। अज्ञान में उपवास और अशक्ति में स्नान करे।

धर्मार्थमनाथद्विजशवनिर्हरणे दाहकरणे चाश्वमेधादिपुण्यं[1] स्नानमात्राच्छुद्धिः। अग्निस्पर्शो घृताशनं चात्रापि। धर्मार्थमपि शूद्रशवनिर्हरणे द्विजस्यैकाहः। धर्मार्थमनाथशवानुगमनादौ न दोषः। ब्रह्मचारिणस्तु पितृमातृमातामहाचार्योपाध्यायभिन्नशवनिर्हरणादौ व्रतलोपः पूर्वोक्तरीत्याशौचं च। ततस्तेन[2] कृच्छ्रप्रायश्चित्तं पुनरुपनयनं च कार्यम्। पित्रादेर्निर्हरणेऽपि ब्रह्मचारिणा आशौचिनामन्नं न भक्ष्यं तेषां स्पर्शोऽपि न कार्यः। अत्रापि नित्यकर्मलोपो न।

धर्म के लिये अनाथ द्विज के शव का निर्हरण और दाह करने में अश्वमेध यज्ञ आदि का पुण्य और स्नानमात्र से शुद्धि है। यहां भी अग्निस्पर्श और घृतप्राशन करे। धर्म के लिये भी शूद्र के शव-निर्हरण में द्विज को एक दिन का आशौच होता है। धर्मार्थ अनाथ मृतक के अनुगमन आदि में दोष नहीं है। ब्रह्मचारी को तो पिता, माता, नाना, आचार्य और उपाध्याय के अतिरिक्त मृतक के ढोने आदि में व्रत का लोप और पहले कही रीति से आशौच होता है। ऐसा करने से उसे कृच्छ्र प्रायश्चित्त और पुनः यज्ञोपवीत करना चाहिये। पिता आदि के ढोने में भी ब्रह्मचारी आशौच वालों का अन्न नहीं खाय और उनका स्पर्श भी नहीं करे। यहां भी नित्य कर्म का लोप नहीं होता।

अथ दाहादौ निर्णयः

समोत्कृष्टवर्णप्रेतस्य स्नेहादिना दाहोदकदानादिसकलौर्ध्वदेहिककरणे तत्तज्जात्याशौचम्। तदन्ते स्नेहलोभाद्यनुसारेण गुरुलघुप्राजापत्यादीनां त्रयम्। स्नेहादिना सवर्णानां दाहमात्रकरणे तद्गृहवासे त्रिरात्रम्। तदन्नभक्षणे दशरात्रम्। तदुभयाभावे एकाहः। हीनवर्णेनोत्तमवर्णस्य दाहमात्रकरणे शवजात्याशौचम्। भृतिग्रहणेन सवर्णस्य दाहमात्रकरणेऽपि दशाहाद्येव। मौल्येनोत्तमवर्णदाहे द्विगुणम्।

समान और अपने से उत्कृष्टवर्ण के प्रेत का स्नेह आदि से दाह-जलदान आदि सम्पूर्ण और्ध्वदेहिक कर्म करने में उन-उन जातियों का आशौच करे। उसके अंत में स्नेह-लोभ आदि के अनुसार बड़े छोटे प्राजापत्य व्रत आदि का तीन प्रायश्चित्त करे। स्नेह आदि से समान वर्ण वालों के केवल दाह करने और उसके घर में रहने में त्रिरात्र आशौच होता है। उसके अन्न खाने में

---

१. अपरार्क में वृद्ध पराशर की उक्ति है—'प्रेतसंस्पर्शसंस्कारैर्ब्राह्मणो नैव दुष्यति। वोढा चैवाग्निदाता च सद्यः स्नात्वा विशुद्ध्यति ॥' कण्व ने यहाँ अग्निस्पर्श और घृतप्राशन कहा है—'अनुगम्य शवं बुद्ध्या स्नात्वा स्पृष्ट्वा हुताशनम्। सर्पिः प्राश्य पुनः स्नात्वा प्राणायामैर्विशुद्ध्यति ॥' इति।

२. तेन = ब्रह्मचारिणा। देवल ने कहा है—'ब्रह्मचारी न कुर्वीत शववाहादिकक्रियाम्। यदि कुर्याच्चरेत् कृच्छ्रं पुनःसंस्कारमेव च ॥' ब्रह्मचारी का पिता-माता आदि के शवनिर्हरण में व्रत-लोप नहीं होता, जैसा याज्ञवल्क्य ने कहा है—'आचार्यपित्रुपाध्यायान्निर्हृत्यापि व्रती व्रती।' कालादर्शे—'मातापित्रोरुपाध्यायाचार्ययोरौर्ध्वदेहिकम्। कुर्वन्मातामहस्यापि व्रती न भ्रश्यते व्रतात् ॥' इति।

दस दिन का आशौच होता है। इन दोनों के अभाव में एक दिन का आशौच है। हीन वर्ण के द्वारा उत्तम वर्ण का दाहमात्र करने में शव की जाति का आशौच होता है। मूल्यग्रहण करके सवर्ण का दाहमात्र करने में भी दशाह आदि आशौच होता है। मूल्य लेकर उत्तम वर्ण के दाह में दुगुना आशौच होता है।

उत्तमेनाधमवर्णदाहनिर्हरणकरणे तज्जात्याशौचं तदन्ते क्रमेण द्विगुणं त्रिगुणं चतुर्गुणं [1]प्रायश्चित्तम्। मौल्येन हीनवर्णदाहादौ तु प्रायश्चित्तमाशौचं चोक्तापेक्षया द्विगुणम्। धर्मार्थं समोत्कृष्टवर्णप्रेतस्य दाहादिसकलौर्ध्वदेहिककरणेऽपि नाशौचं नित्यपिण्डदानाद्यनन्तरं स्नानमात्राच्छुद्धिः। द्विजेन शूद्रस्य धर्मेणापि दाहादि न कार्यम्।

उत्तम वर्ण द्वारा अधम वर्ण के दाह और निर्हरण में उसकी जाति का आशौच और उसके अन्त में क्रम से दुगुना, तिगुना और चौगुना प्रायश्चित्त करे। मूल्य लेकर हीनवर्ण के दाह आदि में तो कहे हुए की अपेक्षा से दुगुना प्रायश्चित्त और आशौच करे। धर्मार्थ समान एवं उच्च वर्ण के मृतक के दाह आदि सम्पूर्ण और्ध्वदेहिक कृत्य करने में भी आशौच नहीं होता, नित्य पिण्डदान आदि के बाद स्नानमात्र से शुद्धि होती है। द्विज शूद्र का धर्मार्थ भी दाह आदि न करे।

अथ अन्यस्याधिकारिणोऽभावे ब्रह्मचारिणा कर्तव्यम्

अथ ब्रह्मचारिणा पितृमातृमातामहादीनामन्याधिकार्यभावे दाहाद्यन्त्यकर्म कार्यम्। तदा कर्माङ्गं दशाहमस्पृश्यत्वलक्षणमाशौचं च कार्यम्। तदापि तेषामाशौचिनामन्नं ब्रह्मचारिणा न भोक्तव्यम् आशौचिस्पृष्टतया वासश्च न कार्यः। तदुभयकरणे प्रायश्चित्तं पुनरुपनयनं च। ब्रह्मचारिणा पूर्वोक्तपित्रादिभिन्नानां दाहाद्यन्त्यकर्मकरणे [2]कृच्छ्रत्रयप्रायश्चित्तं पुनरुपनयनं चाशौचान्ते कार्यम्। पित्रादेर्दाहमात्रकरणे एकाहमाशौचं कार्यम्।

ब्रह्मचारी अन्य अधिकारी के अभाव में पिता-माता और मातामह आदि का दाह आदि अन्त्य कर्म करे। उस समय ब्रह्मचारी को कर्माङ्ग दशाह और अस्पृश्यत्व लक्षण आशौच करना चाहिये। तब भी आशौच वालों का अन्न ब्रह्मचारी नहीं खाये और न आशौचियों का जहां स्पर्श हो वहां वास ही करे। इन दोनों के करने में प्रायश्चित्त तथा पुनः उपनयन करे। ब्रह्मचारी को पहले कहे हुए पिता आदि से भिन्नों का दाह आदि अन्त्यकर्म करने पर आशौच के अन्त में कृच्छ्र प्रायश्चित्त और पुनः उपनयन करना चाहिये। पिता आदि के केवल दाह करने में एक दिन का आशौच है।

---

१. हीनवर्ण का दाहादि और्ध्वदेहिक कर्म करने में ब्रह्मपुराण में कहा है—'ब्राह्मणो हीनवर्णस्य न कुर्यादौर्ध्वदेहिकम्। कामाल्लोभात्तथा मोहात् कृत्वा तज्जातितां व्रजेत् ॥' मनुः—'व्रात्यानां याजनं कृत्वा परेषामन्त्यकर्म च। अभिचारमहीनं च त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति ॥' परेषां = सर्ववर्णानां, हीनेषु तद्द्वैगुण्यत्रैगुण्यचातुर्गुण्याद्यूह्यम्।

२. देवलः—'ब्रह्मचारी न कुर्वीत शववाहादिकक्रियाम्। यदि कुर्याच्चरेत् कृच्छ्रं पुनः संस्कारमेव च ॥' इति।

अत्र सर्वत्र ब्रह्मचारिणः संध्याग्निकार्यादिकर्मलोपो न[1]। ब्रह्मचारिभिन्न-स्यापि दाहादिनिमित्तकसंसर्गाशौचे ब्रह्मयज्ञादिनित्यकर्मलोपो नेत्युक्तम्। तत्र देवपूजावैश्वदेवादिकमन्येन कारणीयम्। स्वयं कर्तुं योग्यं तु स्वेनैव कार्यम्। ब्रह्मचारिणः पित्राद्यन्त्यकर्माकरणे तु पित्रादिमरणे आशौचं न। समावर्तनोत्तरं पूर्वमृतानां पित्रादिसपिण्डानां[2]त्रिरात्रमाशौचं कार्यम्।

यहाँ सब जगह ब्रह्मचारी के सन्ध्या और अग्निकार्य का लोप नहीं होता। ब्रह्मचारी से भिन्न का भी दाहादि निमित्तक संसर्गाशौच में ब्रह्मयज्ञ आदि नित्य कर्म का लोप नहीं होता, यह कहा है। उसमें देवपूजा और वैश्वदेव आदि दूसरे से करावे। अपने करने योग्य को तो स्वयं करे। ब्रह्मचारी का पिता आदि के अन्त्यकर्म नहीं करने में तो पिता आदि के मरने में आशौच नहीं होता। समावर्तन के बाद पहले मरे हुए पिता आदि सपिण्डों का त्रिरात्र आशौच करे।

अथ रोदने आशौचादिनिर्णयः

विप्रादिभिः सवर्णमरणविषयेऽस्थिसंचयनात्पूर्वं रोदने[3] स्नानं तदुत्तरमाचमनम्। विप्रस्य शूद्रविषयेऽस्थिसंचयनात्प्राक् त्रिरात्रं तदुत्तरमेकरात्रम्। शूद्रस्य विषये तद्गृहवासादिसम्बन्धेऽस्थिसंचयनात्प्रागेकरात्रं तदूर्ध्वं स्नानम्।[4]सपिण्डानां त्वनुगमनरोदनादौ न दोषः। नात्रापि कर्मलोपः। अत्र सर्वत्र यस्य यावानाशौच-कालस्तं निर्वाह्य स्नात्वैव स विशुद्धयति, न तु स्नानं विना तावत्कालमात्राति-क्रमेण शुद्धिः।

ब्राह्मण आदि वर्ण अपने समान वर्ण के मरने में अस्थिसंचयन के पहले रोवे तो स्नान और इसके बाद आचमन करे। शूद्र के मरने में अस्थिसंचयन के पूर्व ब्राह्मण रोवे तो त्रिरात्र आशौच, इसके बाद एकरात्र आशौच है। शूद्र के विषय में उसके घर में निवास आदि सम्बन्ध में अस्थिसंचयन के पहले एकरात्रि का आशौच इसके बाद स्नान है। सपिण्डों का तो अनुगमन और

---

१. संवर्त ने ब्रह्मचारी का सन्ध्याग्निकर्मादि का लोपाभाव बतलाया है—'पित्रोर्गुरोर्विपत्तौ तु ब्रह्मचार्यपि यः सुतः। सव्रतश्चापि कुर्वीत अग्निपिण्डोदकक्रियाम्॥ तेनाशौचं न कर्तव्यं सन्ध्या चैव न लुप्यते। अग्निकार्यं च कर्तव्यं सायं प्रातश्च नित्यशः॥' इति।

२. मनुः—'आदिष्टी नोदकं कुर्यादाव्रतस्य समापनात्। समाप्ते तूदकं दत्त्वा त्रिरात्रमशुचि-र्भवेत्॥' छन्दोगपरिशिष्ट में विकल्प से कहा है—'पितर्यपि मृते नैषां दोषो भवति कर्हिचित्। आशौचं कर्मणोऽन्ते स्यात् त्र्यहं वा ब्रह्मचारिणाम्॥' इति।

३. रोने में मुख और आंखों से निःसृत कफ एवं आंसू को अवश होकर प्रेत को खाना पड़ता है इसलिये याज्ञवल्क्य ने रोदन का निषेध किया है—'श्लेष्माश्रु बान्धवैर्मुक्तं प्रेतो भुंक्ते यतोऽवशः। अतो न रोदितव्यं हि क्रियाः कार्याः स्वशक्तितः॥' ब्रह्मपुराण में ब्राह्मण का क्षत्रियवैश्य के विषय में तो कहा है—'अस्थिसंचयने विप्रो रौति चेत्क्षत्रवैश्ययोः। तदा स्नातः सचैलस्तु द्वितीयेऽहनि शुद्धयति॥ कृते तु संचये विप्रः स्नानेनैव शुचिर्भवेत्॥' क्षत्रिय का वैश्य के विषय में भी यही कृत्य है। शूद्र के विषय में ब्राह्मण का त्रिरात्र और क्षत्रिय वैश्य का द्विरात्र आशौच है। अस्थिसंचयन के पश्चात् रोदन में द्विजों का एकाह आदि आशौच का विचार माधवीय में स्पष्ट है।

४. देवल ने कहा है—'विहितं हि सपिण्डानां प्रेतनिर्हरणादिकम्। तेषां करोति यः कश्चि-त्तस्याधिक्यं न विद्यते॥' हारीतः—'दोषः स्यात्त्वसपिण्डस्य तत्रानाथक्रियां विना॥' इति।

रोदन आदि में दोष नहीं है। इसमें भी कर्म का लोप नहीं है। यहां सब जगह जिसका जितना आशौचकाल है उसे पूरा करने के बाद स्नान करके ही वह शुद्ध होता है, स्नान के विना उतने समय के अतिक्रमण मात्र से शुद्धि नहीं होती।

अथ अन्त्यकर्मकर्तुः स्त्रीसङ्गे प्रायश्चित्तम्

अन्त्यकर्मकर्तुरस्थिसंचयनात्प्राक् स्त्रीसङ्गे चान्द्रायणं प्रायश्चित्तम्। ऊर्ध्वं प्राजापत्यत्रयम्। अन्येषां मृताशौचिनां संचयनात्प्राक् संगमे त्रिरात्रमुपवासः। ऊर्ध्वमेकरात्रम्।

अन्त्य कर्म करने वाले को अस्थिसंचयन से पहले स्त्रीसङ्गम करने पर चान्द्रायण प्रायश्चित्त है। इसके बाद तीन प्राजापत्य है। दूसरे मरणाशौचियों को अस्थिसंचयन से पहले स्त्रीसंगम में तीन रात्रि का उपवास है। इसके बाद एक रात का आशौच है।

अथाशौच्यन्नभक्षणे विचारः

असगोत्रोऽनापदि बुद्धिपूर्वं सकृदप्याशौचिस्वामिकं पक्वमन्नं यस्मिन् दिने भुङ्क्ते तदारभ्य तेन यावत्तेषामाशौचमवशिष्टं [1]तावदाशौचं कार्यम्। आशौचान्ते च विप्राशौचे सांतपनं प्रायश्चित्तम्। शूद्राशौचे चान्द्रायणम्। क्षत्रियादेः कलावभावान्न लिख्यते। क्वचिल्लेखस्तु व्युत्पादनमात्रार्थो नेदानीमुपयुज्यते इति प्राय उपेक्ष्यते। मत्याभ्यासे विप्रशूद्राशौचयोः क्रमेण मासं षण्मासं कृच्छ्रादिव्रताचरणम्।

असमान गोत्र वाले आपत्तिरहित अवस्था में जानबूझकर एकबार भी आशौच वाले का पक्वान्न जिस दिन खाता है तब से उसको जितना उसका आशौच दिन बचा है उतना आशौच करना चाहिये। आशौच के अन्त में ब्राह्मण के आशौच में सान्तपन प्रायश्चित्त है। शूद्र के आशौच में चान्द्रायण है। कलियुग में क्षत्रिय आदि के अभाव से इनका नहीं लिखा है। कहीं लेख तो कथनमात्र के लिये है इस समय उसका कोई उपयोग नहीं, इससे प्रायः उपेक्ष्य है। ज्ञानपूर्वक भोजन के अभ्यास में ब्राह्मण और शूद्र के आशौच में क्रम से एक मास, छ मास तक कृच्छ्र आदि व्रत करे।

[2]अमत्या भोजने यावदन्नपाकमाशौचं क्रमेणैकरात्रं सप्तरात्रं चोपोषणं दश शतं च प्राणायामाः। अमत्याभ्यासे द्विगुणम्। आपद्यमत्या भोजने तदहराशौच-

---

१. आशौचका अन्नभक्षण करने पर विष्णु ने कहा है—'ब्राह्मणादीनामाशौचे यः सकृदेवान्नमश्नाति तस्य तावदाशौचं यावत्तेषामाशौचव्यपगमे प्रायश्चित्तम्।' आशौच के अन्त में मार्कण्डेय ने प्रायश्चित्त बतलाया है—'भुक्त्वा ब्राह्मणाशौचे चरेत्सान्तपनं द्विजः। भुक्त्वा तु क्षत्रियाशौचे तप्तकृच्छ्रो विधीयते॥ वैश्याशौचे तथा भुक्त्वा महासान्तपनं चरेत्॥' इति।

२. अज्ञानतः भोजन करने पर अंगिरा ने आशौच कहा है—'अन्तर्दशाहे भुक्त्वाऽन्नं सूतके मृतकेऽपि वा। अस्याशौचं भवेत्तावद्यावदन्नं व्रजत्यधः॥' छागलेय ने कृत्य बतलाया है—'अज्ञानाद् भुञ्जते विप्राः सूतके मृतके तथा। प्राणायामशतं कृत्वा शुद्ध्यन्ते शूद्रसूतके॥ वैश्ये षड्भिर्वेदाग्नि विंशतिर्ब्राह्मणे दश। एकाहं च त्र्यहं पञ्च सप्तरात्रमभोजनम्॥ ततः शुद्धिर्भवत्येषां पञ्चगव्यं पिबेत्ततः॥' इति। विशेष मिताक्षरा आदि में देखें।

मेकः प्राणायामः । शूद्राशौचेऽष्टाधिकसहस्रगायत्रीजपः । ज्ञानत आपदि त्रिरघमर्षणमष्टोत्तरसहस्रगायत्रीजपः । शूद्राशौचे प्राजापत्यम् । शूद्रस्य द्विजाशौचे स्नानं पञ्चगव्याशनं च । सर्वमिदं जननाशौचे न्यूनं योज्या । एवमाहिताग्न्याशौचेऽपि न्यूनमिति स्मृत्यर्थसारे । सर्वमिदमाशौचिस्वामिकान्नभोजने । यदा तु तदस्वामिकमाशौचिस्पृष्टमात्रमन्नं भुङ्क्ते तदा मत्या भोजने कृच्छ्रम् अमत्यार्धमिति स्मृत्यर्थसारे उक्तम् ।

बिना जाने खाने में जब तक अन्न पाक हो तब तक आशौच और क्रम से एक रात सात रात का उपवास और एक हजार प्राणायाम करे। अज्ञानपूर्वक अभ्यास में दूना करे। आपत्ति में अनजाने भोजन करने में उस दिन का आशौच और एक प्राणायाम करे। शूद्र के आशौच में एक हजार आठ गायत्री जप करे। आपत्ति में ज्ञानपूर्वक भोजन करने पर तीन अघमर्षण और एक हजार आठ बार गायत्री जप करे। शूद्र के आशौच में प्राजापत्य करे। शूद्र को द्विज के आशौच में स्नान और पञ्चगव्य का प्राशन है। यह सब जननाशौच में कम करे। इसी प्रकार आहिताग्नि के आशौच में भी कमी करे, ऐसा स्मृत्यर्थसार में है। यह सब आशौच वाले के अन्न खाने में है। जब तो आशौची का अन्न न हो केवल आशौच वाले ने स्पर्श किया हो उसके ज्ञानपूर्वक भोजन करने पर कृच्छ्र और बिना जाने में अर्धकृच्छ्र करे, ऐसा स्मृत्यर्थसार में कहा है।

आशौचिस्पृष्टाशौचिस्वामिकान्नभोजी तु तत्स्वामिकान्नाशननिमित्तं तत्स्पृष्टान्नाशननिमित्तं चेति प्रायश्चित्तद्वयं समुच्चयेन कुर्यात् । आशौचिस्वामिकामान्नप्रतिग्रहे तूक्तप्रायश्चित्तार्धम् । आशौचं तु नास्ति । दातृभोक्तृभ्यामज्ञाते[1] जनने मरणे वा न दोषः । अन्यतरेण ज्ञाते दोषः । तत्र दातुर्ज्ञाने भोक्तुरज्ञाने भोक्तुरल्पं प्रायश्चित्तम् । दातुरज्ञानेऽपि भोक्तुर्ज्ञाने पूर्णमेव । भोजननिमित्तकाशौचेऽपि कर्मलोपो न ।

आशौच वाले के स्पर्श किये अन्न का और आशौची के अन्न का भोजन करने वाला तो आशौची का स्पर्श किया अन्नभक्षण निमित्त और आशौची का अन्नभक्षण, ये दो प्रायश्चित्त एकबार करे। आशौची का अन्न के प्रतिग्रह में तो पूर्वोक्त प्रायश्चित्त का आधा करे। आशौच तो नहीं होता। देने वाले और खाने वाले दोनों को ज्ञात न हो तो जननाशौच और मरणाशौच में दोष नहीं होता। किसी एक के जानकारी में दोष होता है। उसमें देने वाले के ज्ञात रहने पर और भोजन करने वाले के ज्ञात नहीं होने पर भोजन करने वाले को थोड़ा प्रायश्चित्त होता है। देने वाले का ज्ञान नहीं होने पर भी भोजन करने वाले के ज्ञान होने पर पूरा प्रायश्चित्त होता है। भोजन निमित्तक आशौच में भी कर्म का लोप नहीं होता।

अथ स्वल्पसम्बन्धविषयकाशौचम्

अथ तु कथमपि स्वल्पसंबन्धयुक्ते स्नानं वासोयुतं स्यादिति त्रिंशच्छ्लोकी । स्मृत्यर्थसारेऽप्येवम् । अयमस्यार्थः—स्वल्पेनापि एकाहाद्याशौचप्रयोजकेन संब-

---

१. षट्त्रिंशन्मते—'उभाभ्यामपरिज्ञाते सूतकं नैव दोषकृत् । एकेनापि परिज्ञाते भोक्तुर्दोषमुपावहेत् ॥ विवाहोत्सवयज्ञेषु त्वन्तरामृतसूतके । परैरन्नं प्रदातव्यं भोक्तव्यं च द्विजोत्तमैः ॥' इति ।

न्धेन युक्ते शालकजामात्रादौ मृते सचैलं स्नानं कार्यम्। सर्वत्र गुरुणो लघुनो वा मृताशौचस्य प्राप्तिकाले समाप्तिकाले च स्नातव्यमिति यावत्।

किसी प्रकार का अल्पसम्बन्ध होने पर वस्त्रसहित स्नान करे, यह 'त्रिंशत्श्लोकी' में कहा है। स्मृत्यर्थसार में भी ऐसा ही है। इसका यहां यह अर्थ है—थोड़ा भी एक दिन आदि आशौच का प्रयोजक सम्बन्ध से युक्त होने पर साला और दामाद आदि के मरने पर वस्त्रसहित स्नान करे। सर्वत्र बड़ा या छोटा मरणाशौच के प्राप्त होने और समाप्त होने पर स्नान करे।

अथवा स्वल्पैर्दशाहभिन्नपक्षिणीत्रिदिनाद्याशौचप्रयोजकैः सम्बन्धैर्युक्ते बन्धुत्रयमातुलानुपनीतसपिण्डादौ मृते देशान्तरे कालान्तरेऽपि स्नानं भवत्येव। तथा च यस्य सन्निहितकाले आशौचप्राप्तिस्तस्यातिक्रान्तकाले स्नानम्। यस्य तु सन्निहितकालेऽपि स्नानमात्रं तस्य कालान्तरे स्नानमपि नेत्यर्थः। यद्वा स्वल्प आशौचप्रयोजकसम्बन्धभिन्नः सम्बन्धः। यथा शालकसुतत्वम् ऊढकन्यायाः पितृव्यतत्पुत्रत्वादि भगिन्या भ्रातृपुत्रत्वादि तद्युक्ते आशौचाभावेऽपि स्नानमात्रं भवत्येव। यत्किंचित्संबन्धे आशौचाभावेऽपि स्नानमात्रं सन्निधौ सर्वत्र कार्यमित्यर्थः। पक्षत्रयमपि इदं शिष्टाचारे दृश्यते इति युक्तं भाति।

अथवा दस दिन से भिन्न पक्षिणी और तीन दिन आदि स्वल्प आशौच के प्रयोजक सम्बन्धों से युक्त होने पर तीनों बन्धु, मामा और अनुपनीत सपिण्ड आदि के मरने में दूसरे देश में या दूसरे समय में भी स्नान होता ही है। निष्कर्ष यह है कि जिसका सन्निहित समय में आशौच प्राप्त है, उसका अतिक्रान्त समय में स्नान होता है। जिसका तो सन्निहित काल में भी स्नान ही है उसका दूसरे समय में स्नान भी नहीं होता। अथवा आशौच प्रयोजक सम्बन्ध से भिन्न सम्बन्ध अल्प है। जैसे साले का बेटा, विवाहिता कन्या, चाचा या उसका पुत्र आदि, बहिन के भाई के पुत्र आदि हैं इनमें अल्प सम्बन्ध के योग होने से आशौच न होने पर भी स्नानमात्र तो होता ही है। यत्किञ्चित् सम्बन्ध में आशौच न होने पर भी सन्निधि में स्नानमात्र सर्वत्र यह अर्थ है। ये तीनों पक्ष भी शिष्टाचार में देखे जाते हैं, इसलिये युक्त प्रतीत होता है।

अथाशौचापवादः

स पञ्चधा—कर्तृतः, कर्मतः, द्रव्यतः, मृतदोषतः, विधानतः, इति। तत्र कर्तृतो यथा—यतीनां ब्रह्मचारिणां च सपिण्डजननमरणयोर्नाशौचम्[1]। मातापितृमरणे तु यतिब्रह्मचारिणोः सचैलं स्नानमात्रं भवत्येव। ब्रह्मचारिणः समावर्तनोत्तरं[2]

---

१. कूर्मपुराणे—'नैष्ठिकानां वनस्थानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम्। नाशौचं कीर्तितं सद्भिः पतिते च तथा मृते॥' यहाँ चौथे पाद का देवलोक्त—'शावे वापि तथैव च' यह पाठान्तर है। आशौच शब्द अन्त्यकर्म का उपलक्षण है। हारीतः—'मातापित्रोस्तु यत्प्रोक्तं व्रतचारी तु पुत्रकः। व्रतस्योऽपि हि कुर्वीत पिण्डदानोदकक्रियाम्॥ भवत्यशौचं नैवास्य नैवाग्निस्तस्य लुप्यते। स्वाध्यायं च प्रकुर्वीत पूर्ववद्विधिदर्शितम्॥' इति।

२. ब्रह्मचारी का आशौचाभाव ब्रह्मचर्य काल में ही है। समावर्तन के पश्चात् त्र्यहाशौच होगा, जैसा मनु ने कहा है—'आदिष्टी नोदकं कुर्यादाव्रतस्य समापनात्। समाप्ते तूदकं दत्त्वा त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्॥' इति।

ब्रह्मचर्यदशायां मृतानां पित्रादिसपिण्डानां त्रिरात्रमाशौचमुदकदानं च कार्यम्। अनुगमननिर्हरणनिमित्तकत्वाशौचं ब्रह्मचारिणोऽप्यस्त्येव। पित्राद्यन्त्यकर्मकरणे[1] ब्रह्मचारिण आशौचमप्यस्त्येव।

यह पाँच प्रकार का है—कर्ता से, कर्म से, द्रव्य से, मरण दोष से और विधान से। उसमें कर्ता से जैसे—यतियों और ब्रह्मचारियों को सपिण्ड के जन्म और मरण में आशौच नहीं होता। माता-पिता के मरने में तो यति तथा ब्रह्मचारी का सवस्त्र स्नानमात्र होता ही है। ब्रह्मचारी का समावर्तन के बाद ब्रह्मचर्यावस्था में मरे हुए पिता आदि सपिण्डों का त्रिरात्र आशौच और जलदान कर्तव्य है। अनुगमन और निर्हरण निमित्तक तो आशौच ब्रह्मचारी को भी है। पिता आदि के अन्त्यकर्म करने में ब्रह्मचारी को आशौच भी है ही।

आरब्धप्रायश्चित्तानां प्रायश्चित्तानुष्ठानसमये आशौचं न। समाप्ते तु प्रायश्चित्ते त्रिरात्रमतिक्रान्ताशौचम्। कृतकर्माङ्गनान्दीश्राद्धानां तत्कर्मसमाप्तिपर्यन्तं तत्कर्मोपयोगिकार्ये आर्त्यादिसंकटे आशौचं न। जाताशौचमृताशौचवतोर्मरणसमयप्राप्तौ[2] नाशौचम्। तेन दानादिकं सति वैराग्ये आतुरस्य संन्यासोऽपि भवतीति सिन्ध्वादयः। देशविप्लवदुर्भिक्षादिमहापदि[3] सद्यःशौचम्। आपदपगमे आशौचावशेषे अवशिष्टाशौचमस्त्येव।

आरम्भ किये हुये प्रायश्चित्तों का प्रायश्चित्त करने के समय में आशौच नहीं है। प्रायश्चित्त की समाप्ति में तो तीन रात का अतिक्रान्ताशौच होता है। कर्माङ्ग नान्दीश्राद्ध कर लेने पर उस कर्म की समाप्ति तक उस कर्म के उपयुक्त कार्य में और शारीरिक आदि के कष्ट में आशौच नहीं होता। जननाशौच और मरणाशौच वालों को मृत्युसमय प्राप्त होने पर आशौच नहीं होता। इससे वैराग्य होने पर बीमार का दान आदि और संन्यास भी होता है, ऐसा निर्णयसिन्धु आदि का मत है। देश-विप्लव और दुर्भिक्ष आदि बड़ी आपत्तियों में सद्यःशौच होता है। आपत्ति की समाप्ति में आशौच का शेष हो तो अवशिष्ट आशौच है ही।

अथ कर्मतः—[4]अन्नसत्रिणामन्नादिदानेषु नाशौचम्। प्रतिग्रहीतुस्तु आमान्नग्रहणे दोषो न। पक्वान्नभोजने तु त्रिरात्रं क्षीरपानम्। गृहीतेऽनन्तव्रतादावेकाद-

---

१. अन्त्यकर्मनिमित्तक दश दिन का अस्पृश्यत्व तो रहेगा ही, जैसा दिवोदास ने कहा है—'सगोत्रो वाऽसगोत्रो वा योऽग्निं दद्यात्सखे नरः। सोऽपि कुर्यान्नवश्राद्धं शुद्धयेत्तु दशमेऽहनि ॥' संवर्तः—'अन्यगोत्रोपसम्बन्धः प्रेतस्याऽग्निं ददाति यः। पिण्डं चोदकदानं च स दशाहं समाचरेत् ॥' इति।

२. शुद्धिरत्नाकर में दक्ष का वचन है—'स्वस्थकाले त्विदं सर्वं सूतकं परिकीर्तितम्। आपद्गतस्य सर्वस्य सूतकेऽपि न सूतकम् ॥' इति।

३. कूर्मपुराणे—'सद्यःशौचं समाख्यातं दुर्भिक्षे चाप्युपद्रवे। डिम्बाहवहतानां च विद्युता पार्थिवैर्द्विजैः ॥' याज्ञवल्क्यः—'आपद्यपि च कष्टायां सद्यःशौचं विधीयते।' पराशरः—'उपसर्गमृते चैव सद्यःशौचं विधीयते' उपसर्ग=अत्यन्तमरक इति शूलपाण्यादयः।

४. अङ्गिराः—'अन्नसत्रे प्रवृत्तानामाममन्नमगर्हितम्। भुक्त्वा पक्वान्नमेतेषां त्रिरात्रं तु व्रती भवेत् ॥' इति।

श्यादौ चारब्धकृच्छ्रादिव्रते च नाशौचम्। तत्र स्नानादिशारीरनियमाः स्वयं कार्याः। अनन्तपूजादिकमन्येन कारणीयम्। ब्राह्मणभोजनादिकमाशौचान्ते। राजादीनां प्रजापालनादौ नाशौचम्। [1]ऋत्विजां मधुपर्कपूजोत्तरं तत्कर्मणि नाशौचम्। तेन येष्वाधानपशुबन्धादिषु मधुपर्को नोक्तस्तेषु कृतेऽपि वरणे तांस्त्यक्त्वान्ये ऋत्विजः कार्याः।

कर्म से—अन्न क्षेत्र चलानेवालों को अन्न आदि दान करनेमें आशौच नहीं होता। प्रतिग्रह लेने वालों को आमान्न के लेने में दोष नहीं है। पक्कान्न खाने में तो तीन रात दूध का पान करे। अनन्तव्रत आदि एवं एकादशी आदि में और प्रारम्भ किये हुये कृच्छ्रव्रत आदि में आशौच नहीं है। उसमें स्नान आदि शरीर नियम स्वयं करे। अनन्त का पूजन आदि दूसरे से करावे। आशौच के अन्त में ब्राह्मण भोजन आदि करावे। राजा आदि का प्रजापालन आदि में आशौच नहीं होता। मधुपर्क पूजन के बाद ऋत्विजों को उस कर्म में आशौच नहीं है। इससे जिन आधान और पशु-बन्ध आदि में मधुपर्क नहीं कहा है उनमें वरण करने पर भी उन ऋत्विजों को छोड़कर दूसरे ऋत्विजों को करे।

[2]दीक्षितानां दीक्षणीयोत्तरमवभृथस्नानपर्यन्तं यज्ञकर्मणि नाशौचम्। दीक्षितर्त्विग्भ्यां स्नानमात्रं कर्ममध्ये कार्यम्। अवभृथात्पूर्वमेवाशौचाभावः। अवभृथं तु न भवत्येवेति सिन्धुः। कर्मान्ते तु त्रिरात्रं पूर्वन्यायात्। रोगभयराजभयादिनाशार्थे शान्तिकर्मणि नाशौचम्। क्षुत्पीडितकुटुम्बस्य प्रतिग्रहे नाशौचम्। विस्मरणशीलस्याधीतवेदशास्त्राध्ययनेऽपि नाशौचम्।

दीक्षितों की दीक्षा के बाद अवभृथ स्नान तक यज्ञकर्म में आशौच नहीं है। दीक्षित और ऋत्विज् दोनों को कर्म के मध्य में स्नानमात्र करना चाहिये। अवभृथ से पहले ही आशौच का अभाव है। अवभृथ तो नहीं होता ऐसा निर्णयसिन्धु का मत है। कर्म के अन्त में तो पूर्वोक्त न्याय से त्रिरात्र होता है। रोगभय और राजभय आदि के नाश के लिये शान्तिकर्म में आशौच नहीं है। क्षुधा से पीड़ित परिवार के लिए प्रतिग्रह लेने में आशौच नहीं होता। भुलक्कड़ विद्यार्थी को पढ़े हुए वेद और शास्त्रों के पढ़ने में भी आशौच नहीं होता।

[3]वैद्यस्य नाडीस्पर्शने नाशौचम्। श्राद्धे तूक्तम्। मूर्तिप्रतिष्ठाचौलोपनयनविवाहाद्युत्सवतडागाद्युत्सर्गकोटिहोमतुलापुरुषदानादिककर्मसु नान्दीश्राद्धोत्तरं नाशौचम्। संकल्पिते पुरश्चरणजपेऽविच्छेदेन संकल्पितहरिवंशश्रवणादौ[4] च प्रार-

---

१. ब्रह्मपुराणे—'गृहीतमधुपर्कस्य यजमानात्तु ऋत्विजः। पश्चादशौचे पतिते न भवेदिति निश्चयः॥' इति।

२. माधवीय में ब्रह्मपुराण का वचन है—'तद्वद्गृहीतदीक्षस्य त्रैविद्यस्य महामखे। स्नानं त्ववभृथे यावत्तावत्तस्य न सूतकम्॥' इति।

३. प्रचेताः—'कारवः शिल्पिनो वैद्या दासीदासास्तथैव च। राजानो राजभृत्याश्च सद्यःशौचाः प्रकीर्तिताः॥' इति।

४. हरिवंश की नवाह पारायणविधि गर्भाधान प्रकरण में, देवीभागवत की नवाह पारायणविधि आश्विन नवरात्र मे और भागवत की सप्ताह पारायणविधि कार्तिक मास में सुधाविवृति में देखिये।

म्भोत्तरं नाशौचम्। कालादिनियमाभावे तु स्तोत्रहरिवंशादिकमाशौचे हेयमेव। सर्वोऽप्ययमाशौचापवादोऽनन्यगतिकत्वे आर्तौ च ज्ञेय इति सिन्धौ नागोजीये चोक्तम्। तेनानन्यगतिकत्वादिकमालोच्यैवाशौचाभावो योज्यः। अत्र यद्वक्तव्यं तत्पूर्वार्धे तत्र तत्रोक्तमेव।

वैद्य को नाड़ी-स्पर्श करने में आशौच नहीं है। श्राद्ध में तो कहा है। मूर्ति की प्रतिष्ठा, चूड़ाकरण, यज्ञोपवीत, विवाह आदि उत्सव एवं तालाब आदि का उत्सर्ग, कोटिहोम, तुलापुरुष-दान आदि कर्मों में नान्दीश्राद्ध के बाद आशौच नहीं होता। संकल्पद्वारा पुरश्चरण में, जप में और अविच्छिन्न संकल्पित हरिवंशश्रवण आदि में प्रारम्भ के बाद आशौच नहीं है। काल आदि नियम के अभाव में तो स्तोत्र हरिवंश आदि का श्रवण आशौच में त्याग ही देना चाहिये। यह सभी आशौच का अपवाद दूसरी गति न होने पर और कष्ट में जानना चाहिये, ऐसा निर्णयसिन्धु और नागोजीय में कहा है। इससे अन्य गति के अभाव आदि को देखकर ही आशौचाभाव की योजना करनी चाहिये। यहाँ जो कहने योग्य है उसे पूर्वार्ध में वहाँ वहाँ कहा ही है।

केचित्तु व्रतेष्विव दीक्षितानामृत्विजामारब्धोत्सवादीनां च स्वरूपत आरम्भतश्चावश्यकत्वादार्त्याद्यभावेऽप्याशौचाभाव इत्याहुः। कन्याया ऋतुशङ्कादि-संकटे मुहूर्तान्तराभावे कूष्माण्डहोमादिना जाताशौचे विवाहारम्भोऽपि कार्य इत्युक्तम्।

कुछ लोग तो—व्रतों के समान दीक्षित ऋत्विजों का और आरम्भ किये उत्सव आदि का स्वरूप से और आरम्भ से अत्यावश्यक होने से कष्ट आदि के न रहने पर भी आशौच नहीं होता—ऐसा कहते हैं। कन्या के आर्तव शंका आदि संकट में दूसरे मुहूर्त के न होने पर कूष्माण्ड होम आदि करके जननाशौच में विवाह का आरम्भ भी करना चाहिये, यह कहा है।

'विवाहादिषु नान्दीश्राद्धोत्तरमाशौचपाते पूर्वसंकल्पितान्नमसगोत्रैर्दातव्यं भोक्तव्यं च। दातारं भोक्तारं सिद्धान्नं च सूतकी न स्पृशेत्। विवाहादौ तदन्यत्र वा भुञ्जानेषु दातुराशौचपाते पात्रस्थमप्यन्नं त्यक्त्वान्यगेहोदकाचान्ताः शुद्धयन्तीत्यादि पूर्वार्धे उक्तम्। एवं सहस्रभोजनादावपि पूर्वसंकल्पितान्नेषु ज्ञेयम्। पार्थिवशिवपूजायां नाशौचम्।

विवाह आदि में नान्दीश्राद्ध के बाद आशौच पड़ने पर पहले संकल्प किये हुए अन्न को भिन्नगोत्र वाले परोसें और खायें। दाता-भोक्ता और सिद्धान्न को आशौची स्पर्श न करे। विवाह आदि में या दूसरी जगह ब्राह्मणों के भोजन करते हुए दाता को आशौच पड़ जाय तो पात्र के भी अन्न को त्याग कर दूसरे के घर के जल से कुल्ला करने से शुद्ध होते हैं, इत्यादि पूर्वार्ध में कहा है। इसी प्रकार सहस्र भोजन आदि में भी पहले के संकल्पित अन्नों के विषय में जानना चाहिये। पार्थिव शिवलिङ्ग-पूजन में आशौच नहीं होता।

आशौचे [२]संध्याश्रौतस्मार्तहोमादिविषये पूर्वार्धे उक्तम्। अग्निसमारोपप्रत्य-

---

१. लघुविष्णुः—'व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमेऽर्चने जपे। आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम्॥ प्रारम्भो वरणं यज्ञे संकल्पो व्रतसत्रयोः। नान्दीश्राद्धं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिक्रिया॥' इति।

२. पुलस्त्यः—'सन्ध्यामिष्टिं चरुं होमं यावज्जीवं समाचरेत्। न त्यजेत् सूतके वाऽपि

वरोहावाशौचयोर्न कार्यौ। तेन समारोपोत्तरमाशौचपाते पुनराधानमेव। समारोपप्रत्यवरोहयोरन्यकर्तृकत्वस्याशौचापवादस्य चाभावात्। इदं बह्वृचानां द्वादशाहं होमलोपेऽन्येषां त्र्यहं होमलोपे एव पुनराधानं ज्ञेयम्। [1]ग्रहणनिमित्तके स्नानश्राद्धदानादौ नाशौचम्। कश्चित्स्नानमात्रं कार्यं न श्राद्धादीत्याह।

आशौच में सन्ध्या और श्रौत स्मार्त होम आदि के विषय में पूर्वार्ध में कहा है। अग्नि का समारोप और प्रत्यवरोह ये दोनों आशौच में नहीं करे। इससे समारोप के बाद आशौच पड़ने पर पुनः आधान ही होता है क्योंकि समारोप और प्रत्यवरोह का दूसरा कर्ता और आशौच का परिहार नहीं है। यह पुनः आधान बह्वृचों के बारह दिन और दूसरों के तीन दिन होम का लोप होने पर ही जानना चाहिये। ग्रहण निमित्तक स्नान, श्राद्ध और दान आदि में आशौच नहीं होता। कोई ग्रहण में स्नानमात्र कहते हैं, श्राद्ध आदि नहीं।

संक्रान्तिस्नानादावपि नाशौचम्। नित्यकृत्येषु स्नानाचमनभोजननियमास्पृश्यस्पर्शनादिनियमेषु नाशौचम्। अन्यद्वैश्वदेवब्रह्मयज्ञदेवपूजादि नित्यं नैमित्तिकं काम्यं चाशौचेषु न कार्यम्। [2]भोजनकाले आशौचापादकजननमरणश्रवणे मुखस्थं ग्रासं त्यक्त्वा स्नायात्। मुखस्थग्रासभक्षणे एकोपवासः। सर्वान्नभोजने त्रिरात्रोपवासः। इति कर्मतः आशौचसदसद्भावविचारः।

संक्रान्ति के स्नान-दान आदि में भी आशौच नहीं है। नित्य कृत्य—स्नान, आचमन, भोजन के नियम और अस्पृश्य के स्पर्श आदि नियमों में आशौच नहीं होता। अन्य वैश्वदेव, ब्रह्मयज्ञ, देवपूजन आदि नित्य नैमित्तिक और काम्य कर्म आशौच में नहीं करे। भोजन के समय में आशौच सम्पादक जनन-मरण के सुनने पर मुंह के ग्रास का त्याग कर स्नान करे। मुँह का ग्रास खा लेने पर एक दिन का उपवास करे। सब अन्न खा लेने पर तीन रात का उपवास करे। यह कर्म से आशौच के होने न होने का विचार है।

अथ द्रव्यतः—[3]पुष्पफलमूललवणमधुमांसशाकतृणकाष्ठोदकक्षीरदधिघृतौषधतिलतद्विकारेक्षुतद्विकाराणां लाजादिर्भर्जितान्नस्य लड्डुकादीनां चाशौचिस्वामि-

---

त्यजन् गच्छेदधो द्विजः॥ सूतके मृतके चैव सन्ध्याकर्म समाचरेत्। मनसोच्चारयेन्मन्त्रान् प्राणायाममृते द्विजः॥' भारद्वाजः—'सूतके मृतके कुर्यात् प्राणायाममन्त्रकम्। तथा मार्जनमन्त्रांस्तु मनसोच्चार्य मार्जयेत्॥ गायत्रीं सम्यगुच्चार्य सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत्। मार्जनं तु न वा कार्यमुपस्थानं न चैव हि॥' पैठीनसि ने भी अर्घ्य में मन्त्र का उच्चारण कहा है—'सूतके सावित्र्याऽञ्जलिं प्रक्षिप्य सूर्यं ध्यायन्नमस्कुर्यात्।' आशौच में सन्ध्या-त्याग के—'सूतके कर्मणां त्यागः सन्ध्यादीनां विधीयते' इत्यादि वचन पूर्णसन्ध्या का त्यागपरक है।

१. लिङ्गपुराणे—'सूतके मृतके चैव न दोषो राहुदर्शने। तावदेव भवेच्छुद्धिर्यावन्मुक्तिर्न दृश्यते॥' व्याघ्रः—'स्मार्तकर्मपरित्यागो राहोरन्यत्र सूतके।' इति।

२. वृद्धशातातपः—'यदा भोजनकाले तु अशुचिर्भवति द्विजः। भूमौ निक्षिप्य तं ग्रासं स्नात्वा विप्रो विशुद्ध्यति॥ भक्षयित्वा तु तं ग्रासमहोरात्रेण शुद्ध्यति। अशित्वा सर्वमेवान्नं त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति॥' इति।

३. पुष्प-फल-मूलादि में शाक शब्द से दशविध शाक का ग्रहण है, जैसे—'मूलपत्रकरीराग्रफलकाण्डाधिरूढकम्। त्वक् पुष्पं कवकं चैव शाकं दशविधं स्मृतम्॥' मूल मूली आदि का, पत्र

कानामाशौचिगृहस्थितानां च ग्रहणे दोषो न। आशौचिहस्तात्तु किमप्येतन्न ग्राह्यम्। 'पण्ये तु वणिजादेराशौचेऽपि तद्धस्ताल्लवणादेरामान्नस्य च क्रये न दोषः। जलदधिलाजादिकं तु क्रयेणापि तद्धस्तान्न ग्राह्यम्।

द्रव्य से—आशौच वाले को और आशौच वाले के घर में रखे हुए पुष्प-फल-मूल-नमक-मधु-मांस-साग-तृण-लकड़ी-जल-दूध-दही घी-औषध-तिल, तिल के विकार, ऊख, ऊख के विकार, लावा आदि भुने हुए अन्न और लड्डु आदि के ग्रहण में दोष नहीं है। आशौच वाले के हाथ से तो ये सब वस्तु कुछ भी नहीं ग्रहण करे। बाजार में तो बनिया आदि के आशौच में भी उसके हाथ से नमक आदि तथा कच्चा अन्न के खरीदने में दोष नहीं है। जल, दही और लावा आदि को तो खरीद कर भी उसके हाथ से नहीं लेना चाहिये।

अथ मृतदोषतः—शास्त्रानुज्ञां विना शस्त्राग्निविषजलपाषाणभृगुपातानशनादिभिर्बुद्धिपूर्वकं[2] स्वेच्छयात्मघातकानां नाशौचम्। तच्चात्मघातनं क्रोधात्परोद्देशेन वास्तु स्वत एवेष्टसाधनताभ्रमेण वा। तथा चौर्यादिदोषे राजहतानां पारदार्ये तत्पत्यादिहतानां विद्युद्धतानां च नाशौचम्। अन्यैर्निषिद्धोऽपि गर्वान्नदीतरणवृक्षाधिरोहकूपावरोहादौ प्रवृत्तो मृतस्तस्यापि नाशौचम्।

मृतदोष से—शास्त्र की आज्ञा के विना हथियार, आग, विष, जल, पत्थर, ऊंचे पर्वत आदि से गिरकर जानबूझकर अपनी इच्छा से आत्मघात करनेवालों का आशौच नहीं है। वह आत्मघात क्रोध से या दूसरे के उद्देश से हो अथवा इष्टसाधन के भ्रम से हो। और चोरी आदि करने के दोष में राजा द्वारा मारे हुए का आशौच नहीं होता। दूसरों से मना करने पर भी घमण्ड से नदी में तैरने, पेड़ पर चढ़ने, कुएं में उतरने आदि में लगा हुआ पुरुष मर जाय तो उसका भी आशौच नहीं होता है।

यो गवादिहरणार्थं तद्धननार्थं वा प्रवृत्तो गोसर्पनखिशृंगिदंष्ट्रिगजचोरविप्रान्त्यजादिभिर्हतस्तस्य नाशौचम्। महापातकिनां तत्संसर्गिणां च महापापितुल्या-

---

बथुवा पालक आदि का, करीर बाँस का अंकुर, अग्र बेंत आदि का, फल कोंहड़ा परवल आदि का, काण्ड कमलादि का नाल, अधिरूढक तालबीजांकुरादि, त्वक् विजौरा नीबू आदि का, पुष्प कचनार अगस्त आदि का, कवक = छत्राक, (कुकुरमुत्ता)। कोई शाक का छ प्रकार कहते हैं—'पत्रं पुष्पं फलं नालं कन्दं संस्वेदजं तथा। शाकं षड्विधमुद्दिष्टं गुरु विद्याद्यथोत्तरम्॥' संस्वेदजं=छत्राकम्।

१. मरीचिः—'लवणे मधुमांसे च पुष्पमूलफलेषु च। शाककाष्ठतृणेष्वप्सु दधिसर्पिःपयःसु च। तिलौषधाजिने चैव पक्वापक्वे स्वयं ग्रहः। पण्येषु चैव सर्वेषु नाशौचं मृतसूतके॥' पक्व लड्डू आदि, अपक्व तण्डुल आदि।

२. बुद्धिपूर्वक अपनी इच्छा से आत्मघात करने पर षट्त्रिंशन्मत और कूर्मपुराण में कहा है—'व्यापादयेऽद्य आत्मानं स्वयमग्न्युदकादिभिः। विहितं तस्य नाशौचं नापि कार्योदकक्रिया॥' भविष्ये—'स्वेच्छया मरणं विप्राच्छृङ्गिदंष्ट्रिसरीसृपैः। अन्त्यान्त्यजविषोद्बन्धैरात्मना चैव ताडनैः॥ पाखण्डमाश्रिताश्चैव महापातकिनस्तथा। स्त्रियश्च व्यभिचारिण्य आरूढपतितास्तथा॥ न तेषां स्नानसंस्कारो न श्राद्धं न सपिण्डनम्।' अङ्गिराः—'चण्डालादुदकात् सर्पाद् ब्राह्मणाद् वैद्युतादपि। दंष्ट्रिभ्यश्च पशुभ्यश्च मरणं पापकर्मणाम्॥ उदकं पिण्डदानं च प्रेतेभ्यो यत्प्रदीयते। नोपतिष्ठति तत्सर्वमन्तरिक्षे विनश्यति॥' इति।

नां च पतितानां नपुंसकानां च मरणे नाशौचम्। स्त्रीणां च पत्यादिहन्त्रीणां हीनजातिगामिनीनां गर्भघ्नीनां कुलटानां च पूर्वोक्तात्मघातादिपापयुक्तानां च मृतौ नाशौचम्। तत्रैषां शवानां स्पर्शाश्रुतपातवहनदहनान्त्यकर्माणि न कुर्यात्।

जो गाय आदि के चुराने या उसे मारने में प्रवृत्त हुआ पुरुष—गाय, बैल, सांप, नखवाले, सींगवाले दांत वाले, हाथी, चोर, ब्राह्मण और अन्त्यजादि द्वारा मारा गया है उसका आशौच नहीं होता। महापातकी और उससे संसर्ग करनेवालों के तथा महापापी के समानों के पतित और नपुंसकों के मरने में आशौच नहीं है। पति आदि को मारने वाली, नीच जाति से गमन करनेवाली, गर्भ का हनन करनेवाली, कुलटा और पूर्वोक्त आत्मघात आदि पापयुक्ता स्त्रियों के मरने में आशौच नहीं होता। उसमें इनके मुर्दे का स्पर्श, आंसू गिराना, ढोना और दाह रूप अन्त्य कर्मों को नहीं करे।

स्पर्शादिकरणे ज्ञानाज्ञानाभ्यासादितारतम्येन कृच्छ्रातिकृच्छ्रसांतपनचान्द्रायणादिप्रायश्चित्तानि सिन्धवादिग्रन्थान्तरतो ज्ञेयानि। तेनैषां मृतदेहस्य जले प्रक्षेपः। ततः संवत्सरोत्तरं पुत्रादिस्तदीयात्मघातादिपापानुसारेण प्रायश्चित्तं तस्य कृत्वा नारायणबलिं च कृत्वा पर्णशरदाहादिपूर्वकमाशौचमौर्ध्वदेहिकं च कुर्यात्।

स्पर्श आदि करने में ज्ञान, अज्ञान और अभ्यास आदि के तारतम्य से कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र, सान्तपन और चान्द्रायण आदि प्रायश्चित्तों को निर्णयसिन्धु आदि दूसरे ग्रन्थों से जानना चाहिये। इससे इनके मरे शरीर को जल में फेंक दें। उसके बाद साल भर के बाद उसके पुत्र आदि उसके आत्मघात आदि पाप के अनुसार उसका प्रायश्चित्त और नारायणबलि करके पर्णशरदाहादि पूर्वक आशौच और और्ध्वदेहिक करे।

केचित्प्रेतशरीरं दग्ध्वा दाहनिमित्तं चान्द्रायणत्रयं कृत्वाऽस्थीनि संस्थाप्याब्दान्ते पूर्वोक्तरीत्यौर्ध्वदेहिकमित्याहुः। अथवा लौकिकाग्निना तूष्णीं दग्ध्वा स्वजीवनसंदेहाद्वा भक्त्या वा पुत्रादयः संवत्सरादर्वागपि तत्तदात्मघातादिपापोक्तद्विगुणप्रायश्चित्तपूर्वकं नारायणबलिं कृत्वा पर्णशरदाहमस्थिदाहं वा कृत्वाशौचमौर्ध्वदेहिकं च कुर्युः। इदं च प्रायश्चित्तार्हाणामेव। प्रायश्चित्तानर्हाणां घटस्फोटेन बहिष्कृतानां च दासीद्वारा पतितोदकविध्यनन्तरं सपिण्डीकरणवर्जमौर्ध्वदेहिकम्। तेन सांवत्सरिकमप्येकोद्दिष्टविधिनैव।

कुछ लोग कहते हैं कि प्रेत के शरीर का दाह कर दाह के निमित्त तीन चान्द्रायण करके अस्थियों को स्थापित कर साल के अन्त में पूर्वोक्त रीति से और्ध्वदेहिक करे। अथवा लौकिक अग्नि से विना मन्त्र के चुपचाप दाह करके या अपने जीवन के सन्देह से या भक्ति से पुत्र आदि वर्ष से पूर्व भी उन-उन आत्मघात आदि पापों के पूर्वोक्त प्रायश्चित्त दुगुना करके एवं नारायण बलि करके पर्णशरदाह या अस्थिदाह कर आशौच और और्ध्वदेहिक करे। यह भी उन्हीं के लिये

१. मिताक्षरायाम्—'आत्मनस्त्यागिनां नास्ति पतितानां तथा क्रिया। तेषामपि तथा गङ्गातोये संस्थापनं हितम्॥' इति।

है जो प्रायश्चित्त योग्य हैं। जो प्रायश्चित्त के अयोग्य हैं और जो घटस्फोट-विधि से बहिष्कृत हैं उनका दासी द्वारा पतितोदक-विधि के बाद सपिण्डीकरण को छोड़कर और्ध्वदेहिक कर्म करे। इससे वार्षिक श्राद्ध एकोद्दिष्ट विधि से ही करे।

यद्वात्मघातिनां पुत्रादिर्मृतजातीयवधोक्तब्रह्महत्यादिप्रायश्चित्तसहितं चान्द्रायणं तप्तकृच्छ्रद्वयं च कृत्वा नारायणबलिपूर्वकं तं दहेत्। तथा चात्मघातिनां गोगजव्याघ्रादिहेतुकदुर्मरणवतां च पतितादीनां च पूर्वोक्तानां सर्वेषां न मरणदिनादारभ्याशौचं किंतु तत्तत्प्रायश्चित्तनारायणबलिपूर्वकसमन्त्रकदाहदिनमारभ्यैवाशौचम्।

या आत्मघात करनेवालों का पुत्र आदि मृत जाति के वध का कहे हुए ब्रह्महत्या आदि प्रायश्चित्त के साथ चान्द्रायण और दो तप्तकृच्छ्र तथा नारायण बलि करके उसे जलावे। इसलिये आत्मघात करनेवालों का बैल हाथी-बाघ आदि के द्वारा दुर्मरण होने वालों का, पतित आदि का और पूर्वोक्त सब का मरण दिन से आशौच नहीं होता किन्तु उन-उनके नारायण बलिपूर्वक प्रायश्चित्त और मन्त्रसहित दाह-दिन से ही आशौच होता है।

जलाग्न्यादिभिः [1]प्रमादमृतानां तु मरणदिनादारभ्याशौचादिकमस्त्येव। तच्च त्रिरात्रमिति केचित्। दशाहमिति बहवः। किंतु प्रमादमरणस्यापि दुर्मरणत्वात्तन्निमित्तप्रायश्चित्तपूर्वकमेव दाहादि कार्यम्। तदुक्तं स्मृत्यर्थसारे—'चण्डालगोब्राह्मणचोरपशुदंष्ट्रिसर्पाग्न्युदकादिभिः [2]प्रमादान्मरणे चान्द्रायणं तप्तकृच्छ्रद्वयं च तत्प्रायश्चित्तं कृत्वा पञ्चदश कृच्छ्राणि वा प्रायश्चित्तं कृत्वा विधिवद्दहनाशौचोदकदानादि सर्वं कार्यमेव' इति। प्राणान्तिकप्रायश्चित्तेन मृतस्य दशाहमाशौचं सर्वाणि प्रेतकार्याणि च कर्तव्यानि, प्रायश्चित्तेन तस्य शुद्धत्वात्। एवमारब्धप्रायश्चित्तमध्ये मरणेऽपि शुद्धत्वादिकं ज्ञेयम्।

जल और अग्नि आदि से और प्रमाद से मरे हुए का तो मरने के दिन से आशौच आदि है ही। वह आशौच त्रिरात्र होता है, ऐसा कोई कहते हैं। बहुत लोग दस दिन का आशौच कहते हैं। किन्तु प्रमाद से मरण भी दुर्मरण है इसलिये उसके निमित्त पहले प्रायश्चित्त करके ही दाह

---

१. प्रमादवश मरण में आशौचादि सभी कृत्य होंगे, जैसा अङ्गिरा ने कहा है—'अथ कश्चित्प्रमादेन म्रियेताग्न्युदकादिभिः। तस्याशौचं विधातव्यं कर्तव्या चोदकक्रिया॥' ब्राह्मे—'प्रमादादपि निःशङ्कस्त्वकस्माद्विधिचोदितः। शृङ्गिदंष्ट्रिनखिव्यालविषविद्युज्जलादिभिः॥ चण्डालैरथवा चौरैर्निहतो वापि कुत्रचित्। तस्य दाहादिकं कार्यं यस्मान्न पतितस्तु सः॥' इति।

२. ब्रह्मपुराण में भी कहा है—'प्रमादादपि निःशङ्कस्त्वकस्माद्विधिचोदितः। चाण्डालैर्ब्राह्मणैश्चौरैर्निहतो यत्र कुत्रचित्॥ तस्य दाहादिकं कार्यं यस्मान्न पतितस्तु सः। चान्द्रायणं तप्तकृच्छ्रद्वयं तस्य विशुद्धये॥ यद्वा कृच्छ्रान् पञ्चदश कृत्वा तु विधिना दहेत्। बुद्धिपूर्वमृतानां तु त्रिंशत्कृच्छ्रं समाचरेत्॥' स्मृतिरत्नावली में तो—'द्विगुणं प्रायश्चित्तं कृत्वार्वागप्यब्दात्सर्वं कार्यम्' ऐसा कहा है। 'आत्मनो घातशुद्ध्यर्थं चरेच्चान्द्रायणद्वयम्। तप्तकृच्छ्रचतुष्कं च त्रिंशत्कृच्छ्राणि वा पुनः। अर्वाक् संवत्सरात् कुर्याद्दहनादि यथोदितम्। कृत्वा नारायणबलिमनित्यत्वात्तदायुषः॥' इति।

आदि करे। इसे स्मृत्यर्थसार में कहा है— चाण्डाल, गाय, बैल, ब्राह्मण, चोर, पशु, दांत वाले, सांप, अग्नि और जल आदि से प्रमाद से मरने में चान्द्रायण, दो तप्तकृच्छ्र तथा उसका प्रायश्चित्त करके या पन्द्रह तप्तकृच्छ्रोंको करके विधि के साथ दाह, आशौच और जलदान आदि सब करे ही। प्राणान्तिक प्रायश्चित्त से मृतक के दस दिन का आशौच और सब प्रेतकार्यों को करना चाहिये, क्योंकि प्रायश्चित्त से वह शुद्ध हो जाता है। इसी प्रकार आरम्भ किये हुए प्रायश्चित्त वालों की प्रायश्चित्त के बीच में मरने पर भी शुद्धि आदि जाने।

आहिताग्नेस्तु पतितादेर्मरणे दर्पादिना चाण्डालशृङ्गिचोरादिहेतुके च मरणे विशेषः—

त्रेताग्नीन्प्रक्षिपेदप्सु आवसथ्यं चतुष्पथे।
पात्राणि तु दहेदग्नौ साग्निके पापकर्मणि॥

ततः प्रायश्चित्तार्हत्वानर्हत्वादिपूर्वोक्तव्यवस्थया निर्मथ्याग्निना दाहाद्यन्त्यकर्मेति।

महापातकसंयुक्तः साग्निको यदि जीवति।
पुत्रादिः पालयेदग्नीन्प्रायश्चित्तक्रियावधि॥
प्रायश्चित्तं न कुर्याद्यः कुर्वन्वा म्रियते यदि।
जलेऽग्नीन्प्रक्षिपेदग्नौ पात्राणि तु जलेषु वा॥

आहिताग्नि का तो जो पतित आदि हैं उस के मरने में और उसके अभिमान से चाण्डाल, सींग वाले पशु, चोर आदि के द्वारा मरने में विशेष है—आहिताग्नि के पातित्य आदि दुर्मरण में त्रेता अग्नि को जल में और आवसथ्य (गृह्य) अग्नि को चौराहे पर फेंक दे, पात्रों को तो आग में जला दे। तदनन्तर प्रायश्चित्त की योग्यता अयोग्यता आदि पूर्वोक्त व्यवस्था से मन्थन की हुई अग्नि से दाह आदि अन्त्य कर्म करे। महापातकी आहिताग्नि यदि जीवित है तो उसके पुत्र आदि प्रायश्चित्त पर्यन्त अग्नियों की रक्षा करें। जो प्रायश्चित्त करते हुए मर जाय तो उसकी अग्नियों को जल में फेंक दे और पात्रों को अग्नि में या जल में फेंक दे।

माधवीये आहिताग्नेर्दुर्मरणेऽप्यात्मघाते च तं लौकिकाग्निना तूष्णीं दग्ध्वा तदस्थीनि क्षीरेण प्रक्षाल्य तत्प्रायश्चित्तं कृत्वा श्रौताग्निभिः समन्त्रकं दाहादि कार्यमित्युक्तम्। इदं निरग्नेरपि दुर्मरणे योज्यम्।

माधवीय में आहिताग्नि के दुर्मरण में भी और आत्मघात में उसको लौकिक अग्नि से मौन जलाकर उसकी अस्थियों को दूध से धोकर और उसके प्रायश्चित्त को करके श्रौत अग्नि से मन्त्रसहित दाह आदि करे, यह कहा है। यह निरग्नि के भी दुर्मरण में योजना करे।

अथ सर्पहते विशेषः

प्रमादेन वा दर्पादिना वा सर्पतो मृतावाशौचादि न कार्यम्। वक्ष्यमाणं नागपूजाव्रतं कृत्वा नारायणबलिसौवर्णनागदानप्रत्यक्षगोदानानि[1] कृत्वा दाहा-

---

१. व्यासः—'सौवर्णभारनिष्पन्नं नागं कृत्वा तथैव गाम्। व्यासाय दत्त्वा विधिवत् पितुरानृण्यमाप्नुयात्।' भविष्ये—'पञ्चम्यां पन्नगं हैमं स्वर्णेनैकेन कारयेत्। क्षीराज्यपात्रमध्यस्थं पूज्य विप्राय दापयेत्॥ प्रायश्चित्तमिदं प्रोक्तं नागदष्टस्य शम्भुना॥' इति।

शौचादि कार्यम्। सर्वत्र दुर्मरणे पतितादिमरणे च तत्तत्प्रायश्चित्तादि कृत्वा दाहाशौचादि कार्यमित्युक्तम्।

प्रमाद से या घमंड आदि से या सांप से मरने में आशौच आदि नहीं करे। आगे कहा जाने वाला नागपूजाव्रत करके नारायणबलि, सोने के नाग का दान और प्रत्यक्ष गोदान करके दाह आशौच आदि करे। सब जगह दुर्मरण और पतित आदि के मरने में उन उनके प्रायश्चित्त आदि को करके दाह और आशौच आदि करे, ऐसा कहा है।

तत्र प्रायश्चित्तानि प्रसङ्गादुच्यन्ते—बुद्धिपूर्वकमात्मघातेन मृतानां त्रिंशत्कृच्छ्राणि प्रायश्चित्तम्। एतच्च जातिवधप्रायश्चित्तेन समुच्चितं कार्यम्। तद्यथा—ब्राह्मणेनात्मघाते कृते द्वादशाब्दं ब्रह्महत्याप्रायश्चित्तं त्रिंशत्कृच्छ्रमात्मघातप्रायश्चित्तं च तत्पुत्रादिः कुर्यात्। ब्राह्मणस्त्रियात्मघाते कृते ब्राह्मणस्त्रीवधप्रायश्चित्तं त्रिंशत्कृच्छ्राणि च। एवं शूद्राद्यात्मघातेऽप्यूह्यम्। अशक्तावात्मघाते चान्द्रायणद्वयं तप्तकृच्छ्रचतुष्कं च।

उसमें प्रसङ्ग से प्रायश्चित्तों को कहता हूँ। जानबूझ कर आत्मघात से मरे हुए का तीस कृच्छ्र प्रायश्चित्त है। इसे जातिवध के प्रायश्चित्त के साथ करे। वह इस प्रकार, जैसे—ब्राह्मण द्वारा आत्मघात करने पर बारह वर्ष का प्रायश्चित्त, ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त, तीस कृच्छ्र और आत्मघात का प्रायश्चित्त आत्मघाती का पुत्र आदि करे। ब्राह्मण की स्त्री के आत्मघात करने पर ब्राह्मण के स्त्री-वध का प्रायश्चित्त और तीस कृच्छ्र भी करे। इसी प्रकार शूद्र आदि के आत्मघात में भी कल्पना करनी चाहिये। असमर्थता में आत्मघात में दो चान्द्रायण और चार तप्तकृच्छ्र हैं।

प्रमादेन जलादिमरणे पञ्चदश कृच्छ्राणि, चान्द्रायणपूर्वकं तप्तकृच्छ्रद्वयं वा। पतितमृते षोडश कृच्छ्राणि। ब्रह्महत्यादिपापिनां प्रायश्चित्तात्पूर्वं मरणे तत्तत्पापप्रायश्चित्तं पुत्रेण कार्यम्। प्रायश्चित्तानर्हाणां तु पतितोदकदानविधिरेव न प्रायश्चित्तादीत्युक्तम्।

प्रमाद से जल आदि में मरने पर पन्द्रह कृच्छ्र करे, अथवा चान्द्रायण करके दो तप्तकृच्छ्र करे। पतित के मरने पर सोलह कृच्छ्र करे। ब्रह्महत्या आदि पापवालों का प्रायश्चित्त से पहले मरने पर उन-उन पापों का प्रायश्चित्त पुत्र को करना चाहिये। प्रायश्चित्त के अयोग्यों का तो पतित की जलदान विधि ही है प्रायश्चित्त आदि नहीं, यह कहा है।

सिन्धौ तु प्रायश्चित्तानर्हाणामपि पुत्रादिर्नारायणबलिपूर्वं सर्वमौर्ध्वदेहिकं सपिण्डीकरणं दर्शादिश्राद्धं गयादिश्राद्धं च कुर्यादेव। एवं म्लेच्छीकृतस्यापि पतितोदकविधिरपुत्रविषय इत्युक्तम्। इदमेव युक्तम्। यस्तु किंचित्कालं म्लेच्छीकृतः प्रायश्चित्तार्हस्तस्य षोडशकृच्छ्रादिप्रायश्चित्तं पुत्रेण कृत्वा पर्णशरदाहादि कार्यम्। प्रमादमरणभिन्नेषु चौर्यपारदार्यादिहेतुकेषु दुर्मरणे चान्द्रायणद्वयं तप्तकृच्छ्रं वेत्याकरतो विचार्य योज्यम्।

निर्णयसिन्धु में तो प्रायश्चित्त के अयोग्यों का भी पुत्र आदि नारायणबलि करके सब और्ध्वदेहिक, सपिण्डीकरण, दर्श आदि श्राद्ध और गया आदि श्राद्ध करे ही। एवं म्लेच्छ बनाये

हुए की भी पतितोदक-विधि अपुत्रविषयक है, यह कहा है। यही ठीक है। जो कि कुछ समय तक म्लेच्छ बनाया गया हो और प्रायश्चित्त के योग्य हो, उसका सोलह कृच्छ्र आदि प्रायश्चित्त पुत्र द्वारा करके पर्णशरदाह आदि करना चाहिये। प्रमाद से भिन्न चोरी परस्त्री आदि के कारण दुर्मरण में दो चान्द्रायण या तप्तकृच्छ्र की विशद ग्रन्थों से विचार कर योजना करे।

अथ दुर्मरणेषु दानादिविधिः

किं च व्याघ्रादिहेतुकदुर्मरणेषु [1]शातातपोक्तदानादिविधिरपि कार्यः। तथा हि—व्याघ्रहते विप्रकन्याविवाहनम्। गजहते चतुर्निष्कपरिमितहेमनिर्मितगजदानम्। राजहते सौवर्णपुरुषदानम्। चोरहते प्रत्यक्षधेनुदानम्। वैरिहते वृषदानम्। वृषभेण हते यथाशक्ति हेमदानम्। शय्यायां च मृते देया शय्या तूलीसमन्विता, निष्कहेमनिर्मितविष्णुप्रतिमाधिष्ठिता च।

और बाघ आदि के द्वारा हुए दुर्मरणों में शातातप कथित दान आदि की विधि करनी चाहिये। जैसे—बाघ से मरने पर ब्राह्मण की कन्या का विवाह करा दे। हाथी से मरने पर चार निष्क सुवर्ण के बने हाथी का दान करे। राजा से मरने पर सोने के पुरुष का दान करे। चोर से मरने पर प्रत्यक्ष गोदान करे। शत्रु से मरने पर बैल का दान करे। बैल से मरने पर यथाशक्ति सोने का दान करे। खटिया पर मरने से तोसकसहित खटिया का दान करे, जिस पर एक निष्क सोने की निर्मित विष्णुप्रतिमा रखी हुई हो।

शौचहीनमरणे द्विनिष्कहैमविष्णुदानम्। संस्कारहीनमरणे विप्रपुत्रोपनयनम्। अश्वहते निष्कत्रयहेमकृताश्वदानम्। शुना हते क्षेत्रपालस्थापनम्।

---

१. शातातपोक्त दुर्मरणनिमित्तक दान—'व्याघ्रेण निहते विप्रे विप्रकन्यां विवाहयेत्। सर्पदष्टे नागबलिर्देयः सर्पश्च काञ्चनः॥ चतुर्निष्कमितं हैमं गजं दद्याद् गजैर्हते। राज्ञा विनिहते दद्यात् पुरुषं तु हिरण्मयम्। चौरेण निहते धेनुं वैरिणा निहते वृषम्। वृषेण निहते दद्याद्यथाशक्त्या तु काञ्चनम्॥—

शय्यामृते प्रदातव्या शय्या तूलीसमन्विता। निष्कमात्रसुवर्णस्य विष्णुना समधिष्ठिता॥ शौचहीने मृते चैव द्विनिष्कं स्वर्णजं हरिम्। संस्कारहीने च मृते कुमारमुपनाययेत्॥ निष्कत्रयं स्वर्णमितं दद्यादश्वं हयाहते। शुना हते क्षेत्रपालं स्थापयेन्निजशक्तितः॥ सूकरेण हते दद्यान्महिषं दक्षिणान्वितम्। कृमिभिश्च मृते दद्याद् गोधूमान् पञ्चखारिकाः॥—

वृक्षं वृक्षहते दद्यात्सौवर्णं वस्त्रसंयुतम्। शृङ्गिणा निहते दद्याद् वृषभं वस्त्रसंयुतम्॥ शकटेन मृते दद्याद् द्रव्यं सोपस्करान्वितम्। भृगुपातमृते चैव प्रदद्याद् धान्यपर्वतम्॥ अग्निना निहते कार्यमुदपानं स्वशक्तितः। दारुणा निहते चैव कर्तव्या सदने सभा॥ शस्त्रेण निहते दद्यात् सवत्सां गां पयस्विनीम्॥ वृषेण च मृते दद्यान्मेदिनीं हेमनिर्मिताम्। उद्बन्धनेन च मृते कपिं कनकनिर्मितम्॥—

मृते जलेन वरुणं हैमं दद्याद् द्विनिष्कजम्। विषूचिका मृते स्वादु भोजयेच्च शतं द्विजान्॥ घृतधेनुः प्रदातव्या कण्ठान्नकवले मृते। कासरोगेण च मृते अष्टकृच्छ्रं व्रतं चरेत्॥ अतिसारमृते लक्षं गायत्र्याः प्रयतो जपेत्। शाकिन्यादिग्रहग्रस्ते जपेद् रुद्रं यथोदितम्॥ विद्युत्पातेन निहते विद्यादानं समाचरेत्। अन्तरिक्षमृते कार्यं वेदपारायणं तथा॥ सच्छास्त्रपुस्तकं दद्यादस्पृश्यस्पर्शतो मृते। पतिते च मृते कुर्यात्प्राजापत्यांस्तु षोडश॥ मृते चापत्यरहिते कृच्छ्राणां नवतिं चरेत्। एवं कृते विधाने तु विदध्यादौर्ध्वदेहिकम्॥' इति।

सूकरहते महिषदानम् । कृमिभिर्हते पञ्चखारीमितगोधूमदानम् । वृक्षहते वस्त्र-युतसौवर्णवृक्षदानम् । शृङ्गिणा हते वस्त्रयुतवृषभदानम् । शकटहते सोपस्करं किंचिद् द्रव्यदानम् । भृगुपातमृते धान्यपर्वतदानम् ।

अशुचि अवस्था में मरने पर दो निष्क सोने की विष्णुप्रतिमा का दान करे । संस्कार-रहित मरने में ब्राह्मण के पुत्र का यज्ञोपवीत करावे । घोड़े से मरने में तीन निष्क सुवर्ण का घोड़ा बना कर दान करे । कुत्ते से मरने पर क्षेत्रपाल का स्थापन करे । सूअर से मरने पर भैंसे का दान करे । कीड़ों से मरने में पांच खारी परिमित गेहूं का दान करे । (डेढ़ सूप की एक खारी होती है इसका पांच गुना) । वृक्ष से मरने पर वस्त्रसहित सुवर्ण-वृक्ष का दान करे । सींग वाले पशु से मरने पर वस्त्रयुक्त बैल का दान करे । गाड़ी से मरने पर सामग्रीसहित कुछ द्रव्य का दान करे । पहाड़ की समतल भूमि से गिरकर मरने में धान के पर्वत का दान करे ।

अग्निना मृते उदपानोत्सर्गविधिः । काष्ठहते धर्मार्थंसभाकरणम् । शस्त्रहते महिषीदानम् । अश्महते सवत्सपयस्विन्या गोदानम् । विषेण हते हेमनिर्मितपृथ्वीदानम् । उद्बन्धनेन मृते हेमकपिदानम् । जले मृते द्विनिष्कहेमनिर्मितवरुणदानम् ।

अग्नि से मरने पर कूपोत्सर्ग की विधि करे । काठ से मृत्यु होने पर धर्म के लिये सभा करे । शस्त्र से करने पर मैंस का दान करे । पत्थर से मरने पर बछड़े के साथ दूध वाली गाय का दान करे । विष से मरे तो सोने की पृथिवी का दान करे । फांसी लगाकर मरने में सोना का बन्दर बनाकर दान करे । जल में मरने से दो निष्क परिमित सोने के वरुण का दान करे ।

विषूचिकामृते स्वाद्वन्नेन शतविप्रभोजनम् । कण्ठस्थितकवलस्य मरणे घृतधेनुदानम् । कासरोगमृतेऽष्टकृच्छ्राणि । अतीसारमृते लक्षगायत्रीजपः । शाकिन्यादिग्रहैर्मृते रुद्रैकादशिनीजपः । विद्युत्पातमृते विद्यादानम् । अन्तरिक्षमृते वेदपारायणम् । पतिते मृते षोडशकृच्छ्राणि । अस्पृश्यस्पर्शयुक्तमरणे सच्छास्त्रपुस्तकदानमित्यादि ।

हैजे में मरने से स्वादिष्ट अन्न से सौ ब्राह्मणों को खिलावे । गले में रुके ग्रास से मरने में घृतधेनु का दान करे । खांसी के रोग से मरने में आठ कृच्छ्र करे । अतीसार से मरने में एक लाख गायत्री जपे । शाकिनी आदि ग्रहों से मरने पर रुद्रैकादशिनी का जप करे । बिजली गिरने से मरने पर विद्यादान करे । अन्तरिक्ष में मरने से वेद का पारायण करे । पतित के मरने पर सोलह कृच्छ्र व्रत करे । अस्पृश्य से स्पर्श करके मरने में अच्छे शास्त्रों की पुस्तकों का दान करे । इत्यादि (दान और प्रायश्चित्त है ।)

अत्र शय्यामरणे शौचहीनसंस्कारहीनमरणे कृमिविषूचिकाकण्ठकवलकासातिसाररोगग्रहग्रहणैर्मरणेऽन्तरिक्षमृतेऽस्पृश्यस्पर्शमरणे च दानादिविधिरेव न प्रायश्चित्तं नैव नारायणबलिविधिर्नापि वर्षादिकालप्रतीक्षा । व्याघ्रादिहेतुकं विषजलशस्त्रादिहेतुकं च मरणं प्रमादेन दर्पादिना बुद्धया चेत्यनेकधा संभवति । तत्रोक्तव्यवस्थया प्रायश्चित्तं नारायणबलिर्दानादिविधिश्चेति त्रयाणां समुच्चयः ।

यहां खटिया पर मरने में, शौचहीन-संस्कारहीन के मरने में, कृमि-विषूचिका-कण्ठकवल-कास-अतिसार, इन रोगों से एवं ग्रहों के ग्रहण करने से मरने में अन्तरिक्ष में और अस्पृश्यस्पर्श से मरने में दान आदि विधि ही है, न तो प्रायश्चित्त है न नारायणबलि और न वर्ष आदि काल की प्रतीक्षा। बाघ आदि, विष, जल और शस्त्र से तथा प्रमाद से अहंकार आदि से और जानकर, इस तरह अनेक प्रकार से मरना सम्भव है। उसमें कही गई व्यवस्था से प्रायश्चित्त, नारायणबलि और दान आदि विधि, इन तीनों का समुच्चय है।

यदि पुत्रादिः पितुर्जलादिदुर्मरणप्रायश्चित्तं ब्रह्महत्यादितत्तत्पापप्रायश्चित्तं वात्मघातप्रायश्चित्तं वा कर्तुं न शक्नोति तदोक्तदानादिविधिं नारायणबलिं च कृत्वाऽत्यशक्तौ नारायणबलिमात्रं कृत्वौर्ध्वदेहिकं कुर्यात्, तावता पुत्रादिसपिण्डानां शुद्धिसिद्धेः। पित्रादेस्तु पुत्रादिभिस्तत्तत्प्रायश्चित्ताकरणे नरकादिभोगः स्यादेवेति बोध्यम्।

यदि पुत्र आदि पिता के जल आदि से दुर्मरण प्रयुक्त प्रायश्चित्त या ब्रह्महत्या आदि उन-उन पापों का प्रायश्चित्त अथवा आत्मघात का प्रायश्चित्त नहीं कर सकता तब कही हुई दान आदि की विधि और नारायणबलि को करके अत्यन्त अशक्त अवस्था में केवल नारायणबलि करके और्ध्वदेहिक करे, क्योंकि इतने ही से पुत्र आदि सपिण्डों की शुद्धि की सिद्धि हो जाती है। पुत्र आदि से उन-उन प्रायश्चित्तों के नहीं करने से पिता आदि का तो नरक आदि का भोग होगा ही यह जानना चाहिये।

अथ विधिविहितजलादिमरणे

तत्र प्रयोगे सर्ववर्णानां रोगिणामरोगिणां च भागीरथीप्रवेशादिना मरणे कामिकमहाफलम्। शूद्रस्यारोगिणोऽपि प्रयागभिन्नेऽपि जलादिमरणमनुज्ञातम्।

व्याधितो भिषजा त्यक्तो विप्रो वृद्धोऽथवा युवा।
तनुं त्यजेज्जलाग्न्याद्यैः स यथेष्टं फलं लभेत्॥
दुश्चिकित्स्यैर्महारोगैः पीडितो जीवनाक्षमः।
प्रविशेज्ज्वलनं दीप्तं करोत्यनशनं तथा॥
अगाधतोयराशिं च भृगोः पतनमेव च।
गच्छेन्महापथं वापि तुषारगिरिमादरात्॥
प्रयागवटशाखाग्राद्देहत्यागं करोति च।
उत्तमान्प्राप्नुयाल्लोकान्नात्मघाती भवेत्क्वचित्॥
नराणामथ नारीणां सर्ववर्णेषु सर्वदा।
आशौचं स्यात्त्र्यहं तेषां वज्रानलहते तथा।
वाराणस्यां म्रियेद्यस्तु प्रत्याख्यातभिषक्क्रियः।
काष्ठपाषाणमध्यस्थो जाह्नवीजलमध्यगः॥
अविमुक्तोन्मुखस्तस्य कर्णमूलगतो हरः।

प्रणवं तारकं ब्रूते इत्यादिवचनोच्चयः ॥
पुराणस्थो माधवादिनिबन्धेषु ह्युदाहृतः ।

उस प्रयोग में सब वर्णों के रोगियों तथा नीरोगियों का भागीरथी में प्रवेश आदि से मरण होने पर ऐच्छिक महाफल होता है। रोगरहित शूद्र को भी प्रयाग से भिन्न जल आदि में मरने की आज्ञा है। व्याधि के कारण वैद्य के छोड़ देने पर ब्राह्मण बूढ़ा हो या जवान जल या अग्नि आदि से शरीर त्याग करे तो वह यथेच्छ फल पाता है। दुःख से चिकित्सा के योग्य महाव्याधियों से पीडित और जीने में असमर्थ व्यक्ति अग्नि में प्रवेश करे तथा अनशन करे, अथाह जलराशि में प्रवेश करे, पर्वत की समतल भूमि से गिरे अथवा महामार्ग में गमन करे, आदर से हिमपर्वत जाय या प्रयाग के वट की शाखाग्र से देह का त्याग करे तो वह उत्तम लोकों को प्राप्त करता है, आत्मघाती कभी नहीं होता। पुरुष हो या स्त्री हो सब वर्णों में सदा उनका तीन दिन का आशौच होता है तथा वज्र की अग्नि (बिजली) से मरने पर उनका त्रिरात्र आशौच होता है। जो वैद्य की चिकित्सा को त्याग कर वाराणसी में मरता है, काष्ठ-पाषाण के मध्य में और गंगाजल के मध्य में स्थित होकर अविमुक्त श्रीशङ्कर की ओर उन्मुख होकर मरता है उसके कान के मूल में आकर भगवान् शङ्कर तारक प्रणव (ओंकार) को कहते हैं इत्यादि वचनसमूह पुराणों में हैं तथा माधवाचार्य आदि के निबन्धों में उद्धृत है।

अत्रानुज्ञाते बुद्धिपूर्वकात्मघाते गृहस्थादीनामेवाधिकारः। यतेस्तु नाधिकारः, त्र्यहाद्याशौचविधानात्, यतेः काम्यकर्मण्यनधिकाराच्चेति निर्णयसिन्धुः। इदानींतनशिष्टास्तु रोगादिपीडां सोढुमशक्तौ संन्यासाश्रमं गृहीत्वा तीर्थादिनात्मघातं कुर्वन्ति, गृहस्थविधुरादयश्च न कुर्वन्ति।

इसमें शास्त्रविहित बुद्धिपूर्वक आत्मघात में गृहस्थ आदि का ही ऐसा करने का अधिकार है। संन्यासी का तो इसमें अधिकार नहीं है, क्योंकि इसमें तीन दिन आदि आशौच का विधान है और संन्यासी का काम्य कर्म में अधिकाराभाव है, ऐसा निर्णयसिन्धुकार का मत है। आजकल के शिष्ट लोग तो रोग आदि की पीडा को सहने में अशक्त होने पर संन्यास आश्रम को ग्रहण कर तीर्थ आदि से आत्मघात करते हैं, गृहस्थ और विधुर आदि नहीं करते।

केचित्त्वपरिहार्यरोगादिग्रस्तवृद्धादेर्जलादिना बुद्ध्यात्मघातः कलौ प्रयागभिन्नदेशे न भवति। भृग्वग्निपतनैश्चैव वृद्धादिमरणं तथेति कलिवर्ज्येषु परिगणनादित्याहुः। एतन्मते मरणान्तप्रायश्चित्तविधयः काशीखण्डादौ विप्रादेर्देहत्यागविधयश्च युगान्तरपराः।

कुछ लोग कहते हैं—नहीं छूटने वाले रोग से ग्रस्त वृद्ध आदि को जल आदि से जानकर आत्मघात कलियुग में प्रयाग के अतिरिक्त देश में नहीं होता, क्योंकि पर्वत की समतल भूमि से गिरकर, आग में जलकर, वृद्ध आदि के मरने का कलिवर्ज्य में परिगणन किया है। इस मत में मरणान्त प्रायश्चित्त विधियां और काशीखण्ड आदि में कही ब्राह्मण आदि के शरीरत्यागकी विधियां भी दूसरे युगों के लिये हैं।

'प्रयागमरणं स्त्रीणां सहगमनं च कलियुगे सर्वसम्मतम्। अत्र सर्वत्र सहगम-

---

१. कूर्मपुराणे—'व्याधितो यदि वा दीनो वृद्धो वाऽपि भवेन्नरः। गङ्गायमुनमासाद्य यस्तु प्राणान् परित्यजेत्॥ ईप्सितांल्लभते कामान् वदन्ति मुनिपुङ्गवाः। तथा—'या गतिर्योगयुक्तस्य

नभिन्ने विधिवाक्यानुंज्ञाते देहत्यागे त्रिरात्रमाशौचमिति बहवः। दशाहमिति केचित्। एवं फलकामनया विहितें काम्यप्रयागमरणेऽपि पक्षद्वयं ज्ञेयम्।

प्रयाग में मरना और स्त्रियों का सहगमन कलियुग में सब का सम्मत है। यहां सब जगह सहगमन के अतिरिक्त विधि-वचन से अनुज्ञात शरीरत्याग में त्रिरात्र आशौच होता है, ऐसा बहुत लोग कहते हैं। कोई—दस-दिन का आशौच कहते हैं। इसी तरह फल की इच्छा से विहित काम्य प्रयाग-मरण में भी दो पक्ष जानना चाहिये।

अथ पतितादिविचारस्तदुदकदानविधिश्च

अथ यः पतितो घटस्फोटेन बहिष्कृतो यश्च म्लेच्छीकृतो यश्च प्रायश्चित्तानर्हपापी तस्य त्रिविधस्य पितृमातृभिन्नस्य पतितोदकविध्यनन्तरं सपिण्डीकरणवर्ज्यमन्त्यकर्म पितुर्मातुश्च त्रिविधस्यापि नारायणबलिपूर्वकं सपिण्डीकरणसहितं सर्वं भवतीत्युक्तम्।

जो पतित घटस्फोटविधि से बहिष्कृत है, जो म्लेच्छ बना दिया गया है तथा जो प्रायश्चित्त के अयोग्य पापी है, इन तीनों का पिता-माता से भिन्न का पतितोदकविधि के बाद सपिण्डीकरण को छोड़कर अन्त्यकर्म और तीनों के माता-पिता का नारायणबलि करके सपिण्डीकरणसहित सब कर्म होते हैं, यह कहा है।

तत्र पतितोदकदानविधिर्यथा—सर्वगां दासीमाहूय तस्यै वेतनं दत्त्वा अशुद्धपूर्णघटहस्तां तां ब्रूयात् हे दासि गच्छ मूल्येन तिलान् तोयपूर्णमिमं घटं च शीघ्रमानय। ततो दक्षिणामुखी उपविश्य वामपादेन घटं सतिलं क्षिप। घटक्षेपणकाले चामुकसंज्ञक पतित प्रेत पिब पिबेति मुहुरुच्चारयेति। सा दासी तद्वाक्यं श्रुत्वा मूल्यं गृहीत्वा तथा कुर्यात्। एवं कृते पतिततृप्तिर्नान्यथा। एतच्च पतितस्य [1]मृतदिने कार्यम्। इति पतितोदकविधिः। इति मृतदोषत आशौचापवादः सप्रसङ्गः सविस्तरो निरूपितः।

उसमें पतितोदकदान की विधि, जैसे—सब से संगम करने वाली दासी को बुलाकर उसको द्रव्य देकर अशुद्ध पूर्ण घट हाथ में ली हुई उससे कहे—हे दासि! जा मूल्य से तिलों को और

सत्त्वस्थस्य मनीषिणः। सा गतिस्त्यजतः प्राणान् गङ्गायमुनसङ्गमे॥' स्कान्दे—'यथाकथञ्चित्तीर्थेऽस्मिन् प्राणत्यागं करोति यः। तस्यात्मघातदोषो न प्राप्नुयादीप्सितान्यपि॥' वाराहपुराणे—'तत्र यो मुञ्चति प्राणान् वटमूलेषु सुन्दरि। सर्वकामानतिक्रम्य मम लोकं प्रपद्यते॥' ब्राह्मे—'ध्यात्वा विष्णुपदाम्भोजं प्रयागे विष्णुतत्परः। तनुं त्यजति वै माघे तस्य मुक्तिर्न संशयः॥ दुष्कृतोऽपि दुराचारो ब्रह्महत्यादिपातकी। हरिं ध्यात्वा त्यजेद्देहं प्रायशो मुक्तिमान् भवेत्॥' इति।

१. विष्णु ने कहा है—'पतितस्य दासी मृताह्नि यदा घटमपवर्जयेदेतावतायमुपचरितो भवति' इति। हेमाद्रि-ब्रह्मपुराण में पतित की उदकविधि का मूल-वचन यों है—'पतितस्य तु कारुण्याद्यः तृप्तिं कर्तुमिच्छति। स हि दासीं समाहूय सर्वगां दत्तवेतनाम्॥ अशुद्धघटहस्तां तां यथावृत्तं ब्रवीत्यपि। हे दासि गच्छ मूल्येन तिलानानय सत्वरम्॥ तोयपूर्णं घटं चेमं सतिलं दक्षिणामुखी। उपविष्टा तु वामेन चरणेन ततः क्षिप॥ कीर्तयेः पातकीसंज्ञां त्वं पिबेति मुहुर्वद। निशम्य तस्य वाक्यं सा लब्धमूल्या करोति तत्॥ एवं कृते भवेत्तृप्तिः पतितानां च नान्यथा॥' इति।

जल से भरे इस घड़े को शीघ्र लाओ। फिर दक्षिण मुँह बैठकर बांए पैर से तिलसहित इस घड़े को गिरा दो। घड़ा गिराते समय अमुक नाम वाले पतित प्रेत पियो-पियो ऐसा बारंबार कहो। वह दासी उस वाक्य को सुनकर मूल्य लेकर वैसा करे। ऐसा करने से पतित तृप्त होता है, दूसरे प्रकार से नहीं। यह पतित के मरने वाले दिन में करे। यह पतितोदक विधि है। इस प्रकार मृतदोष से आशौच का प्रसंगसहित अपवाद विस्तार के साथ निरूपण किया।

अथ विधानतः—यतेर्मृतावाशौचं नास्ति, तस्य प्रेतक्रियोदकदानाशौच-सपिण्डीकरणादेर्निषिद्धत्वात्[1]। सपिण्डीस्थान एकादशेऽहनि पार्वणश्राद्धमात्रं कार्यम्। प्रतिसांवत्सरिकश्राद्धादिकं तु पार्वणविधिना सपिण्डकं भवत्येव। अत्र विस्तरो ग्रन्थान्तरे वक्ष्यते। एतच्च त्रिदण्डिनामेकदण्डिनां हंसपरमहंसादीनां सर्वेषामेव ज्ञेयम्। एवं वानप्रस्थमरणेऽपि नाशौचम्। कृतजीवच्छ्राद्धे मृते सपिण्डैराशौचादि कर्तव्यं न वेति [2]विकल्पः। ब्रह्मचारिमृतौ त्वाशौचमस्त्येव। युद्धमृतेऽप्याशौचं नेति सर्वग्रन्थेषूपलभ्यते न त्वेवं ब्राह्मणेषु शिष्टाचारः। इति पञ्चधाशौचापवादो निरूपितः।

विधान से—संन्यासी का मरणाशौच नहीं है; क्योंकि उसके प्रेतक्रिया-उदकदान-आशौच और सपिण्डीकरण आदि का निषेध है। सपिण्डीकरण की जगह ग्यारहवें दिन केवल पार्वण श्राद्ध करे। प्रतिसांवत्सरिक श्राद्धादि तो पार्वणविधि से पिण्डसहित होता ही है। इसमें विस्तार दूसरे ग्रन्थों में कहेंगे। यह त्रिदण्डी, एकदण्डी, हंस और परमहंस आदि सबके लिये जानना चाहिये। इसी प्रकार वानप्रस्थ के मरने में भी आशौच नहीं होता। जीवित श्राद्ध कर लेने पर मरने में सपिण्डों द्वारा आशौच करे या नहीं इसमें विकल्प है। ब्रह्मचारी के मरण में तो आशौच है ही। युद्ध में मरने पर भी आशौच नहीं होता, ऐसा सब ग्रन्थों में मिलता है, किन्तु ऐसा शिष्टाचार ब्राह्मणों में नहीं है। इस तरह पांच प्रकार के आशौच के अपवाद का निरूपण कर दिया।

अथ जीवतोऽप्याशौचम्—यथा पतितस्य घटस्फोटकाले सर्वसपिण्डानामेकाह-माशौचम्।

जीते हुए का भी आशौच है, जैसे पतितों के घटस्फोट के समय में सब सपिण्डों को एक दिन का आशौच होता है।

---

१. उशना ने कहा है—'एकोद्दिष्टं न कुर्वीत यतीनां चैव सर्वदा। अहन्येकादशे प्राप्ते पार्वणं तु विधीयते॥ सपिण्डीकरणं तेषां न कर्तव्यं सुतादिभिः। त्रिदण्डग्रहणादेव प्रेतत्वं नैव जायते॥'—

यहाँ शूलपाणि आदि का विचार है कि इस वचन में त्रिदण्डशब्द से त्रिदण्डियों की ही वार्षिकादि विधि है, एकदण्डि और परमहंसादि की कोई भी विधि नहीं करनी चाहिये। पृथ्वीचन्द्रोदय में प्रजापति का वचन है—'अहन्येकादशे प्राप्ते पार्वणं तु विधीयते। सपिण्डीकरणं तस्य न कर्तव्यं सुतादिभिः॥' इति।

२. विकल्प में हेमाद्रि-लिङ्गपुराण का वचन है—'मृते कुर्यान्न कुर्याद्वा जीवन्मुक्तो यतः स्वयम्। कालं गते द्विजे भूमौ खनेद्वाऽपि दहेत वा। पुत्रकृत्यमशेषं च कृत्वा दोषो न विद्यते।' जीवच्छ्राद्धकर्ता के जीवन काल का कर्तव्य वहीं कहा है—'नित्यं नैमित्तिकं यत्तु कुर्याद्वा संत्यजेत वा। बान्धवेऽपि मृते तस्य नैवाशौचं विधीयते॥ सूतकं च न संदेहः स्नानमात्रेण शुद्ध्यति।' इति।

इत्याशौचं सापवादं यथामति निरूपितम् ।
समर्पितं रुक्मिणीशश्रीमद्विठ्ठलपादयोः ॥ १ ॥

इति सापवादाशौचप्रकरणम्

यह अपवादसहित आशौच बुद्धि के अनुसार निरूपण किया है और इसे रुक्मिणीपति श्रीविठ्ठल भगवान् के चरणों में समर्पित किया । सापवाद आशौच प्रकरण समाप्त ।

अथ नारायणबल्यादिप्रयोगः

अथौर्ध्वदेहिकारम्भोपयोगिनारायणबल्यादिप्रकार उच्यते—तत्र दुर्मरणेष्वात्मघाते जलादिभिः प्रमादमरणे पतितादिमरणे च पूर्वोक्तव्यवस्थया 'अमुकगोत्रस्यामुकशर्मणोऽमुकदोषनाशार्थमौर्ध्वदेहिके संप्रदानत्वयोग्यतासिद्धयर्थममुकप्रायश्चित्तममुकदानं वा करिष्ये' इत्यादिसंकल्पपूर्वकं तत्तत्प्रायश्चित्तं दानं च कार्यम्। अशक्तौ दानमेव कार्यम् । ततः 'अमुकगोत्रामुकशर्मणोऽमुकदुर्मरणदोषनाशार्थमौर्ध्वदेहिकप्रदानत्वयोग्यतासिद्धयर्थं 'नारायणबलिं करिष्ये' इति संकल्प्य पूर्वार्धोक्तसंततिफलककाम्यनारायणबलिवत्सर्वं कुर्यात् । एतत्तु वर्षान्ते करणपक्षे ।

इसके बाद और्ध्वदेहिक के आरम्भ में उपयोगी नारायणबलि आदि का प्रकार कहता हूँ—उसमें दुर्मरणों में, आत्मघात में, जल आदि से प्रमादवश मरने में और पतित आदि के मरने में पूर्वोक्त व्यवस्था से 'अमुकगोत्र अमुकशर्मा के अमुकदोष के नाश के लिये और्ध्वदेहिक में संप्रदानत्व योग्यता की सिद्धि के लिये अमुक प्रायश्चित्त या अमुकदान करूँगा' इत्यादि संकल्प पूर्वक वह-वह प्रायश्चित्त और दान करे । असमर्थता में दान ही करना चाहिये । तदनन्तर 'अमुकगोत्रअमुकशर्मा के अमुक दुर्मरण-दोष नाश के लिये और्ध्वदेहिक प्रदानत्व योग्यता की सिद्धिके लिये नारायणबलि करूँगा' ऐसा संकल्प कर पूर्वार्ध में कहे सन्ततिफलक काम्य नारायणबलि के समान सब करे। यह तो वर्षा में करने के पक्ष में है ।

---

१. शौनकः—'शौनकोऽहं प्रवक्ष्यामि नारायणबलिं परम् । चण्डालादुदकात् सर्पाद् ब्राह्मणाद् वैद्युदादपि ॥ दंष्ट्रिभ्यश्च पशुभ्यश्च रज्जुशस्त्रविषादभिः । देशान्तरमृतानां च मृतानां वाऽन्यसाधनैः ॥ जीवच्छ्राद्धमृतानां च कनिष्ठानां तथैव च । यतीनां योगिनां पुंसामन्येषां मोक्षकाङ्क्षिणाम् ॥ पुण्यापक्षयार्थाय द्वादशेऽहनि कारयेत् । द्वादश्यां श्रवणेऽब्दान्ते पञ्चम्यां पर्वणोऽस्तु वा ॥' बौधायनने—'नारायणबलिश्चास्य कर्तव्यो द्वादशेऽहनि' इससे उपक्रम करके कहा है—'कृत्वा विष्णोर्महापूजां पायसं विनिवेदयेत्। अग्नौ हुत्वा तु तच्छेषं व्याहृतिभिः समाहितः ॥ यतीन् गृहस्थान् साधून् वा निमन्त्र्य द्वादशावरान् । अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्मन्त्रैर्द्वादशनामभिः ॥ संभोज्य हव्येनान्नेन दक्षिणां च निवेदयेत् । त्रयोदशं द्विजश्रेष्ठमात्मज्ञं संयतेन्द्रियम् ॥ विष्णुं यथा तथाऽभ्यर्च्य पाद्याद्यैश्च विधानतः । दद्यात् पुरुषसूक्तेन गन्धपुष्पादिकं क्रमात् ॥ वस्त्रालङ्करणादीनि यथाशक्ति प्रदापयेत् । उच्छिष्टसन्निधौ तस्य दर्भानास्तीर्य भूतले ॥ भूर्भुवःस्वःस्वधायुक्तैस्तस्मै दद्याद् बलित्रयम् । अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ॥ यत्फलं तल्लभेदेवं यः करोति यतिक्रियाम् ।' इति ।

सद्यःकरणपक्षे तु पूर्वोक्तद्विगुणप्रायश्चित्तं संकल्प्य शुक्लैकादश्यादिकालमनपेक्ष्यैव समनन्तरोक्तसंकल्पं कृत्वा विधिना स्थापिते कलशद्वये हेमप्रतिमयोर्विष्णुं वैवस्वतं यमं चावाह्य पुरुषसूक्तेन यमाय सोममिति च क्रमेण षोडशोपचारैः संपूज्य तत्पूर्वभागे रेखायां दक्षिणाग्रकुशानास्तीर्य शुन्धन्तां विष्णुरूप्यमुकप्रेत इति दशस्थानेष्वपो निनीय मधुघृततिलमिश्रानोदनपिण्डान् दशामुकगोत्रामुकशर्मन् प्रेत विष्णुदैवतायं ते पिण्ड इति दक्षिणसंस्थान् प्राचीनावीतीत्यादिपैतृकधर्मेण दद्यात् । गन्धादिभिरभ्यर्च्य प्रवाहणान्तं कृत्वा नद्यां क्षिपेत् ।

शीघ्र करने के पक्ष में तो पूर्वोक्त दूने प्रायश्चित्त का संकल्प कर शुक्ल एकादशी आदि समय की उपेक्षा कर पहले कहे हुए संकल्प को करके विधि से स्थापित दो कलशों में दो सोने की प्रतिमा में विष्णु और वैवस्वतयम का आवाहन कर पुरुषसूक्त से और 'यमाय सोमं' इससे क्रमशः षोडशोपचार से पूजन कर उसके पूर्वभाग में रेखा पर दक्षिणाग्र कुश बिछाकर 'शुन्धन्तां विष्णुरूपी अमुक प्रेत' यह कहकर दस स्थानों में जल गिराकर मधु, घी और तिल मिले भात के दस पिण्डों को 'अमुकगोत्र अमुकशर्मन् प्रेत विष्णुदैवत अयं ते पिण्डः' इस प्रकार दक्षिणसंस्थ अपसव्य इत्यादि पैतृकधर्म से दे । गन्ध आदि से पूजनकर प्रवाहण पर्यन्त करके नदी में फेंक दे ।

श्वः सद्यो वा पूर्वस्थापितं विष्णुमभ्यर्च्यैकविप्रे विप्रालाभे दर्भवटौ वा पादक्षालनादि तृप्तिप्रश्नान्तं विष्णुरूपप्रेतावाहनपूर्वकं कृत्वा विप्रसमीपे तूष्णीं रेखाः कृत्वा दर्भास्तरणे आपो निनयनं च कृत्वा दर्भेषु सव्येन विष्णवे ब्रह्मणे शिवाय च सपरिवाराय यमाय चेति चतुर्भ्यः पिण्डचतुष्टयं दत्त्वापसव्येन विष्णुरूपिप्रेतामुकगोत्रनामायं ते पिण्ड इत्येकं पञ्चमं पिण्डं दत्त्वा तथैवाभ्यर्च्य प्रवाहणान्ते विप्राचान्ततादिश्राद्धशेषसमापनान्ते प्रेतबुद्ध्या विप्राय वस्त्राभरणादि दत्त्वा विप्रेण प्रेताय तिलाञ्जलिं दापयेत्—अमुकगोत्रायामुकशर्मणे विष्णुरूपिणे प्रेतायायं तिलयोयाञ्जलिरिति मन्त्रेण । विप्रालाभे स्वयं दद्यात् ।

दूसरे दिन या तुरन्त पहले स्थापित विष्णु की पूजा कर एक ब्राह्मण में या ब्राह्मण नहीं मिलने पर कुशबटु में पैर धोने से लेकर विष्णुरूप प्रेत का आवाहन पूर्वक तृप्तिप्रश्नपर्यन्त कर्म करके और ब्राह्मण के समीप विना मंत्र के रेखा करके कुशास्तरण पर जल गिराकर कुशों में सव्य से विष्णु-ब्रह्मा-शिव और सपरिवार यम, इस प्रकार चारों को चार पिण्ड देकर और अपसव्य से 'विष्णुरूपी प्रेत अमुकगोत्र अमुकनामा यह आपका पिण्ड है' इससे एक को पांचवां पिण्ड देकर उसी प्रकार पूजन कर प्रवाहण के अन्त में ब्राह्मणों के आचमन आदि श्राद्धशेष की समाप्ति के अन्त में प्रेत बुद्धि से ब्राह्मण को वस्त्र और अलङ्कार आदि देकर ब्राह्मण से प्रेत के लिये तिलाञ्जलि दिलावे—'अमुकगोत्राय अमुकशर्मणे विष्णुरूपिणे प्रेताय अयं तिलतोयाञ्जलिः' इस मन्त्र से । विप्र के न मिलने पर स्वयं दे ।

ततो विप्रान्वाचयेत्—अनेन नारायणबलिकर्मणा भगवान्विष्णुरिमममुकं प्रेतं शुद्धमपापमहं करोत्विति । काम्यप्रयोगेऽस्मिन्प्रयोगे च संकल्पे नामगोत्रोच्चारे च विशेषः स्पष्ट एव । पूर्वत्र काश्यपगोत्र देवदत्तप्रेतेत्याद्युच्चारः । अत्र तु

गोत्रनामज्ञानसत्त्वाद् दुर्मरणेन मृतस्य यन्नामगोत्रं तदेवोच्चारयेदिति संकल्पविशेषेऽपि हेतुः स्पष्ट एवेति। इति दुर्मरणे और्ध्वदेहिकाधिकारार्थं नारायणबलेः प्रयोगः।

इसके बाद ब्राह्मणों से कहवावे कि इस नारायणबलि कर्म से भगवान् विष्णु इस अमुक प्रेत को शुद्ध, निष्पाप और योग्य करें। काम्य प्रयोग में और इस प्रयोग में संकल्प तथा नाम गोत्र के उच्चारण में विशेष स्पष्ट ही है। पहले में 'काश्यपगोत्र देवदत्त प्रेत' इत्यादि का उच्चारण करे। इसमें तो नाम और गोत्र के ज्ञान रहने से दुर्मरण से मरे हुए का जो नाम और गोत्र हो उसी का उच्चारण करे, ऐसा संकल्प विशेष में भी कारण स्पष्ट ही है। यह दुर्मरण में और्ध्वदेहिक के अधिकार के लिये नारायणबलि का प्रयोग है।

अथ सर्पहते व्रतम्

प्रतिमासं शुक्लपञ्चम्याम् उपवासं नक्तं वा कृत्वा पिष्टमयं नागं पञ्चफणमनन्तवासुकिशङ्खपद्मकम्बलकर्कोटकाश्वतरधृतराष्ट्रशङ्खपालकालियतक्षककपिलेति द्वादशनामभिर्द्वादशमासेषु संपूज्य पायसेन विप्रान् संभोज्य वत्सरान्ते हेमनागं प्रत्यक्षां गां च दत्त्वा नारायणबलिपूर्वकं दाहाशौचादिकं कार्यम्। अथवा 'नमोऽस्तु सर्पेभ्य इति तिस्र आज्याहुतीर्जुहुयात्।

पञ्चम्यां पन्नगं हैमं स्वर्णेनैकेन कारयेत्।
क्षीराज्यपात्रमध्यस्थं पूज्य विप्राय दापयेत्।
प्रायश्चित्तमिदं प्रोक्तं नागदष्टस्य शंभुना॥ इति।

ततो नारायणबल्यादि।

प्रतिमास शुक्ल पक्ष की पञ्चमी में उपवास या नक्तव्रत करके आटे का पांच फणा वाला नाग बनाकर अनन्त-वासुकी-शङ्ख-पद्म-कम्बल-कर्कोटक-अश्वतर-धृतराष्ट्र-शङ्खपाल कालिय-तक्षक-कपिल, इन बारह नामों से बारहों मास में पूजन कर ब्राह्मणों को खीर खिलाकर वर्ष के अन्त में सोने का नाग और प्रत्यक्ष गाय देकर नारायणबलि करके दाह और आशौच आदि करे। या 'नमोऽस्तु सर्पेभ्यः' इस मन्त्र से घृत की तीन आहुति दे। पञ्चमी में एक अशर्फी भर सोने का नाग बनवाकर उसे पात्र में रख दूध घी से पूजकर ब्राह्मण को देवे। शंकर भगवान् ने सांप से काटे हुए का यही प्रायश्चित्त कहा है। इसके अनन्तर नारायणबलि आदि करे।

अथ पालाशप्रतिकृतिदाहादिविधिः

तत्र देशान्तरमरणे पराकद्वयमष्टौ कृच्छ्रान् वा कृत्वास्थीनि दहेत्। अस्थ्नां चाण्डालश्वादिस्पर्शे पञ्चगव्योदकादिभिः प्रक्षाल्य दहेत्। यस्यास्थीनि सर्वथा न लभ्यन्ते तस्य पर्णशरदाहः।

---

१. बौधायनसूत्रे—'सर्पमृतानां नमोऽस्तु सर्पेभ्य तिस्र आहुतीर्हुत्वा, उदके मृतानां समुद्राय वयुनाय हुत्वेति क्रियां कुर्यात्'। व्यासः—'सौवर्णभारनिष्पन्नं नागं कृत्वा तथैव गाम्। व्यासाय दत्त्वा विधिवत् पितुरानृण्यमाप्नुयात्॥' इति।

कुर्याद्दर्भमयं[1] प्रेतं कुशैस्त्रिशतषष्टिभिः ।
पालाशीभिः समिद्भिर्वा संख्या चैवं प्रकीर्तिता ॥

तत्र भूमौ कृष्णाजिनमास्तीर्य तत्र शरं दक्षिणायतं निवेश्य तत्र पलाशवृन्तानि न्यसेत्—शिरसि चत्वारिंशत्, ग्रीवायां दश, बाह्वोः प्रत्येकं पञ्चाशत्, एवं शतम् । करांगुलीषु दश, उरसि विंशतिः, जठरे त्रिंशत्, शिश्ने चत्वारि, अण्डयोस्त्रयं त्रयम्, ऊर्वोः प्रत्येकं पञ्चाशदेवं शतम् । जङ्घातः पादतलान्तं प्रत्येकं पञ्चदशैवं त्रिंशत्, पादांगुलीषु दश । एवं षष्ट्यधिकशतत्रयमितैर्दर्भैः पालाशसमिद्भिर्वा शरीरं कृत्वा ऊर्णावस्त्रेण बध्वा जलमिश्रपिष्टेन लिम्पेत् । शक्तौ सत्यां[2] नारिकेलादीन्यपि । तथा हि—

उसमें दूसरे देश में मरने पर दो पराक या आठ कृच्छ्र करके अस्थियों को जलावे । चाण्डाल और कुत्ता आदि से अस्थियों के स्पर्श होने पर पञ्चगव्य-जल आदि से प्रक्षालन करके जलावे । जिसकी हड्डी किसी तरह न मिले उसका पर्णशरदाह करे । कुश का प्रेत ३६० कुशों से बनाकर या पालाश की समिधाओं से बनावे, संख्या यही कही गई है । जमीन पर काला मृगचर्म बिछाकर उस पर दक्षिण की ओर लम्बे शर को रखकर उसपर पलाश के पत्तों को रक्खे । सिर में ४०, गर्दन में १०, प्रत्येक बाहु में ५०, इस प्रकार सौ हुए । हाथ की अङ्गुलियों में १०, छाती में २०, पेट में ३०, लिङ्ग में ४, अण्डकोश में ३-३, प्रत्येक ऊरु में ५०, इस तरह सौ हुए । जांघ से पैर के तलुए तक प्रत्येक के १५ इस तरह ३०, पैर की अङ्गुलियों में १० । इस प्रकार ३६० कुशों से या पलाश की समिधा से शरीर बनाकर ऊन के वस्त्र से बांधकर जल मिले आटे से लेप करे । शक्ति रहने पर नारियल आदि भी लगावे । वह इस प्रकार—

शिरसि नारिकेलफलं वर्तुलालाबुं वा, ललाटे कदलीपत्रम्, दन्ते दाडिमबीजानि, कर्णयोः कङ्कणं ब्रह्मपत्रं वा, चक्षुषोः कपर्दौ २, नासिकायां तिलपुष्पम्, नाभावब्जम्, स्तनयोर्जम्बीरफलद्वयम्, वाते मनःशिलाम्, पित्ते हरितालम्, कफे समुद्रफेनम्, रुधिरे मधु, पुरीषे गोमयम्, मूत्रे गोमूत्रम्, रेतसि पारदम्,

---

१. यह षट्त्रिंशन्मत का वचन है । दर्भादि से पुत्तल का निर्माण अस्थि के अलाभ में है, जैसा छन्दोगपरिशिष्ट में कहा है—'विदेशमरणेऽस्थीनि आहृत्याभ्यज्य सर्पिषा । दाहयेद् बर्हिषाऽऽच्छाद्य पात्रन्यासादि पूर्ववत् ॥ अस्थ्नामलाभे पार्णानि शकलान्युक्तयावृता । दाहयेदस्थिसंख्यानि ततः प्रभृति सूतकम् ॥' भविष्य में पुत्तलनिर्माण की विधि—'चत्वारिंशच्छिरःस्थाने ग्रीवायां तु दशैव तु । बाह्वोश्चैव शतं दद्याद् विंशतिं च तथोरसि ॥ उदरे विंशतिं दद्यात् त्रिंशतं कटिदेशयोः । ऊर्वोश्चैव शतं दद्यात् त्रिंशतं जानुजङ्घयोः ॥ पादाङ्गुलीषु दश वै एषा च प्रेतकल्पना ।' इति ।

२. यज्ञपार्श्वः—'मस्तके नारिकेरं तु अलाबुं तालुके तथा । पञ्चरत्नं मुखे न्यस्य जिह्वायां कदलीफलम् ॥ चक्षुषोश्च कपर्दौ द्वौ नासिकायां तु कालकम् । कर्णयोर्ब्रह्मपत्राणि केशे वटप्ररोहकाः ॥ नालकं कमलानां तु अन्त्रस्थाने विनिक्षिपेत् । मृत्तिका तु वसां धातुर्हरितालकगन्धकौ ॥ शुक्रे तु पारदं दद्यात् पुरीषे पित्तले तथा । सन्धीषु तिलपिष्टं तु मांसे स्याद्यवपिष्टकम् ॥ मधु स्याल्लोहितस्थाने त्वचास्थाने मृगत्वचा । स्तनयोर्जम्बीरे देये नासायां शतपत्रकम् ॥ कमलं नाभिदेशे स्याद् वृन्ताके वृषणाश्रिते । लिङ्गे च रक्तमूलं तु परिधानं दुकूलकम् ॥ गोमूत्रं गोमयं गन्धं सर्वौषध्यादि सर्वतः ।' इति ।

वृषणयोर्वृन्ताकद्वयम्, शिश्ने गृञ्जनम्, केशेषु वनसूकरसटा वटप्ररोहा वा, लोमसु ऊर्णाम्, मांसे माषपिष्टलेपः, पञ्चगव्यः पञ्चामृतैश्च सर्वतः सिञ्चनम्। पुनर्नो असुं० असुनीते० इत्यृग्भ्यां प्राणप्रवेशं भावयेत् । यद्वा यत्तेयममिति सूक्तेन। शुक्रमसीति पारदं क्षिप्त्वा अक्षीभ्यामिति शरीरं स्पृशेत् ।

सिर में नारियल का फल या गोलकी लौकी, ललाट में केले का पत्ता, दांत में दाडिम के बीज, कानों में कङ्कण या ब्रह्मपत्र, आंखों में कौडी २ नाक में तिल का फूल, नाभि में कमल, स्तनों में दो जंबीर फल, वात में मैनसिल, पित्त में हरताल, कफ में समुद्रफेन, खून में मधु, पाखाने में गोबर, पेशाब में गोमूत्र, वीर्य में पारा, दोनों अण्डकोश में दो बैंगन, लिङ्ग में गजरा, केशों में वन सूकर की सटा या बड़ की जटा, रोमों में ऊन, मांस में उर्द का लेप और पञ्चगव्य-पञ्चामृत से सब अङ्गों का सिंचन करे। 'पुनर्नो असुं०' 'असुनीते०' इन दो ऋचाओं से प्राणप्रवेश की भावना करे। अथवा 'यत्तेयम्' इस सूक्त से प्राणप्रवेश की भावना करे। 'शुक्रमसि' इस मन्त्र से पारा डालकर 'अक्षीभ्यां' इससे शरीर का स्पर्श करे।

शरीरं स्नापयित्वा चन्दनमनुलिप्य वस्त्रोपवीते परिधाप्य अयं स देवदत्त इत्यभिमृश्य इदं चास्योपासनमिति ध्यात्वा विधिवद्दाहादि कार्यम्। अत्राहिताग्नेरस्थिदाहे पर्णशरदाहे वा दशाहमाशौचमनाहिताग्नेस्त्र्यहमित्यादि[1] प्रागुक्तमनुसन्धेयम्। द्वादशाब्दादिप्रतीक्षोत्तरं पर्णशरदाहादि क्रियते चेत्तदा[2] त्रिंशत्कृच्छ्राणि चान्द्रायणत्रयं वा कृत्वा कार्यम्।

शरीर को नहलाकर चन्दन का अनुलेपन कर वस्त्र और यज्ञोपवीत पहिनाकर यह वह देवदत्त है कहकर स्पर्श करके यह इसकी उपासना है ऐसा ध्यान कर विधिवत् दाह आदि करे। इसमें आहिताग्नि के अस्थिदाह या पर्णशरदाह में दस दिन का आशौच है और अनाहिताग्नि के तीन दिन का इत्यादि पूर्वोक्त का अनुसन्धान करे। यदि बारह वर्ष की प्रतीक्षा करने के बाद पर्णशरदाह आदि किया जाय तब तीस कृच्छ्र या तीन चान्द्रायण करके करना चाहिये।

अथातीतप्रेतसंस्कारकालः

प्रत्यक्षशवसंस्कारे दिनं नैव विशोधयेत्।
आशौचमध्ये संस्कारे दिनं शोध्यं तु संभवे॥

---

१. अनाहिताग्नि का अस्थिदाह या पर्णशरदाह करने पर ब्रह्मपुराण में त्रिरात्राशौच कहा है—'अनाहिताग्नेर्देहस्तु दाह्यो गृह्याग्निना स्वयम्। तदभावे पलाशानां वृन्तैः कार्यः पुमानपि॥ वेष्टितव्यस्तथा यत्नात् कृष्णसारस्य चर्मणा। ऊर्णासूत्रेण बध्वा तु प्रलेप्तव्यो यवैस्तथा॥ सुपिष्टैर्यवसम्मिश्रैर्दग्धव्यश्च तथाग्निना। असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेत्युक्त्वा सबान्धवैः॥ एवं पर्णशरं दग्ध्वा त्रिरात्रमशुचिर्भवेत्।' इति।

२. वृद्धमनुः—'प्रोषितस्य तथा कालो गतश्चेद् द्वादशाब्दिकः। प्राप्ते त्रयोदशे वर्षे प्रेतकार्याणि कारयेत्॥' ग्रह्यकारिकायाम्—'तस्य पूर्ववयस्कस्य विंशत्यब्दोर्ध्वतः क्रियाः। ऊर्ध्वं पञ्चदशाब्दात्तु मध्यमे वयसि स्मृता॥ द्वादशाद्वत्सरादूर्ध्वमुत्तरे वयसि स्मृता। चान्द्रायणत्रयं कृत्वा त्रिंशत्कृच्छ्राणि वा सुतैः॥ कुशैः प्रतिकृतिं दग्ध्वा कार्या शौचादिका क्रिया।' पराशरः—'देशान्तरगतो नष्टस्तिथिर्न ज्ञायते यदि। कृष्णाष्टमी ह्यमावास्या कृष्णा चैकादशी च या॥ उदकं पिण्डदानं च तत्र श्राद्धं च कारयेत्।' यह वचन मास की जानकारी रहने पर है।

दशाहोत्तरं तु दिनं संशोध्यैव ग्राह्यम्। तत्र वत्सरादूर्ध्वं[1] क्रियमाणप्रेतकर्मण्युत्तरायणमेव श्रेष्ठम्। तत्रापि कृष्णपक्ष एव। तत्र नन्दात्रयोदशीचतुर्दशीदिनक्षयान् वर्जयेत्। शुक्रशनिवारौ वर्ज्यौ। भौमवारोऽपि वर्ज्य इत्येके। नक्षत्रेषु भरणीकृत्तिकार्द्राश्लेषामघाज्येष्ठामूलं धनिष्ठोत्तरार्धं शततारकादिचतुष्टयं चेति नक्षत्राणि। त्रिपुष्करयोगश्चेत्यतिदुष्टानि सर्वथा त्यजेत्।

प्रत्यक्ष शव के संस्कार में दिन का शोधन नहीं करे। आशौच के मध्य में सम्भव हो तो दिन का शोधन करे। दस दिन के बाद तो दिन का संशोधन करके ही ग्रहण करे। इसमें वर्ष भर के बाद किये जाने वाले प्रेतकर्म में उत्तरायण ही उत्तम है। उसमें भी कृष्णपक्ष हीं श्रेष्ठ है। उसमें नन्दा (प्रतिपदा-षष्ठी-एकादशी) तिथि, त्रयोदशी, चतुर्दशी और दिनक्षय का त्याग करे। शुक्र और शनि का वर्जन करे। किसी एक का कहना है कि मङ्गलवार भी त्याज्य है। नक्षत्रों में भरणी-कृत्तिका-आर्द्रा-आश्लेषा-मघा-ज्येष्ठा-मूल-धनिष्ठा का उत्तरार्ध, तथा शतभिषा से चार नक्षत्र और त्रिपुष्कर योग, ये अति दुष्ट हैं, इनका सर्वथा त्याग करे।

कृत्तिकापुनर्वसूत्तराफल्गुनीविशाखोत्तराषाढापूर्वाभाद्रपदा चेति त्रिपादनक्षत्राणि। द्वितीया सप्तमी द्वादशी च तिथिः कुजशनिरविवाराश्चेति त्रयाणां योगे त्रिपुष्करः[2]। कैश्चिद्रविस्थाने गुरुवार उक्तः। एतेष्वेव तिथिवारेषु मृगचित्राधनिष्ठायोगे द्विपुष्करः। त्रिपुष्करयोगो वृद्धौ लाभे नष्टे हृते मृतौ च त्रिगुणफलदः। द्विपुष्करो द्विगुणफलदः। तेन प्रेतकार्ये द्वावपि त्याज्यौ। द्वयोर्योगे द्विपुष्कर इति कश्चित्।

कृत्तिका, पुनर्वसु, उत्तराफल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढा और पूर्वाभाद्रपदा, ये त्रिपादनक्षत्र हैं। द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी तिथि, मङ्गल शनि और रविवार इन तीनों के योग में त्रिपुष्कर होता है। किसी ने रवि की जगह गुरुवार कहा है। इन्हीं तिथि और वारों में मृगशिर, चित्रा और धनिष्ठा के योग में द्विपुष्कर योग होता है। त्रिपुष्करयोग, वृद्धि में, लाभ में, नष्ट हो जाने में, हरण और मरण में तिगुना फल देने वाला होता है। द्विपुष्कर योग दुगुना फल देने वाला है। इससे प्रेत कार्य में इन दोनों का त्याग करे। कोई दो के योग में द्विपुष्कर योग कहते हैं।

गुरुशुक्रास्तपौषमासमलमासा वैधृतिव्यतीपातपरिघयोगाः विष्टिः करणं [3]चतुर्थाष्टमद्वादशचन्द्रश्चेत्यपि सर्वथा त्यजेत्। रोहिणीमृगपुनर्वसुपूर्वोत्तराफल्गुनी-

---

१. गार्ग्यः—'संशोध्यैव दिनं ग्राह्यमूर्ध्वं संवत्सराद्यदि। प्रेतकार्याणि कुर्वीत श्रेष्ठं तत्रोत्तरायणम्॥ कृष्णपक्षश्च तत्रापि वर्जयेत्तु दिनक्षयम्।' ज्योतिर्नारदः—'चतुर्दशीं तिथिं नन्दां भद्रां शुक्रारवासरौ। सितेज्ययोरस्तमयं द्व्यङ्घ्रिभं विषमाङ्घ्रिभम्॥ शुक्लपक्षं च संत्यज्य पुनर्दहनमुत्तमम्। वसूत्तरार्धतः पञ्चनक्षत्रेषु त्रिजन्मसु॥ पौष्णब्रह्मर्क्षयोश्चैव दहनात्कुलनाशनम्।' इति।

२. ज्योतिषे—'त्रिपादर्क्षं तिथिर्भद्रा भौमेज्यरविभिः सह। तदा त्रिपुष्करो योगो द्वयोर्योगे द्विपुष्करः॥' इति।

३. वाराहे—'चतुर्थाष्टमगे चन्द्रे द्वादशे च विवर्जयेत्। प्रेतकृत्यं व्यतीपाते वैधृतौ परिघे तथा॥ करणे विष्टिसंज्ञे च शनैश्चरदिने तथा। त्रयोदश्यां विशेषेण जन्मताराश्रये तथा॥' जन्मदशमैकोनविंशानि जन्मताराः। विश्वप्रकाश में निषिद्धभद्रादि का दान कहा है—'भद्रायां भूमिदानं

चित्राविशाखाऽनूराधापूर्वोत्तराषाढाधनिष्ठेति किंचिद्दुष्टानि संभवे त्यजेत् । भौमवारोऽपि त्याज्य इत्येके । कर्तुस्तिसृषु जन्मतारासु प्रत्यरितारायां च पर्णशरादिदाहो नेष्टः । तथा चार्कगुरुचन्द्रवारा अश्विनीपुष्यहस्तस्वातीश्रवणभानि च प्रशस्तानि । मध्यमानि सर्वथा त्याज्यानि चोक्तानि ।

गुरु-शुक्र का अस्त, पौषमास, मलमास, वैधृति, व्यतीपात, परिघयोग, भद्रा और करण; चौथा, आठवां और बारहवां चन्द्रमा सर्वथा त्याज्य है। रोहिणी, मृगशिर, पुनर्वसु, पूर्वा-उत्तरा-फल्गुनी, चित्रा, विशाखा, अनूराधा, पूर्वा-उत्तराषाढ़ा और धनिष्ठा, ये कुछ दुष्ट हैं, सम्भव हो तो इनका त्याग कर दे। कोई कहते हैं कि मङ्गलवार भी त्याज्य है। कर्ता का तीनों जन्मताराओं में तथा प्रत्यरितारा में पर्णशर आदि से दाह करना अनिष्टकर है। इसी प्रकार रवि-बृहस्पति-सोमवार और अश्विनी-पुष्य-हस्त-स्वाती-श्रवण नक्षत्र, ये प्रशस्त हैं। मध्यम नक्षत्र और सर्वथा त्याज्य नक्षत्र कहा है।

नन्दायां शुक्रवारे चतुर्दश्यां त्रिजन्मताराप्रत्यरितारासु चैकोद्दिष्टश्राद्धमतिनिन्द्यम्। साक्षादेकादशाहे[1] न कोऽपि निषेधः। अस्य निषिद्धनक्षत्रादेरपवादः—

युगमन्वादिसंक्रान्तिदर्शे च प्रेतकर्मणि ।
पुनःसंस्कारादिकेऽपि नक्षत्रादि न शोधयेत् ॥
गुरुभार्गवयोर्मौढ्ये पौषमासे मलिम्लुचे ।
नातीतः पितृमेधः स्याद् गयागोदावरीं विना ॥

इति पुनः संस्कारकालः ।

नन्दा, शुक्रवार, चतुर्दशी, त्रिजन्मतारा और प्रत्यरिताराओं में एकोद्दिष्टश्राद्ध अत्यन्त निन्दित है। साक्षात् एकादशाह में कोई भी निषेध नहीं है। इस निषिद्ध नक्षत्र आदि का यह अपवाद है—युगादि, मन्वादि, संक्रान्ति, दर्शश्राद्ध, प्रेतकर्म और पुनःसंस्कार में नक्षत्र आदि का शोधन नहीं करे। गया गोदावरी को छोड़कर गुरु-शुक्र की मूढ़ता में और पौषमास एवं मलमास में बीती हुई प्रेतक्रिया नहीं होती है। पुनः संस्कार का समय समाप्त।

अथ पर्णशरदाहोत्तरं देहलाभे विचारः

साग्निकस्य पर्णशरदाहे कृते पश्चाद्देहलाभे[2] पर्णशरदाहीयार्धदग्धकाष्ठैस्तं दहेत् । तादृशकाष्ठालाभे लौकिकाग्निना दग्ध्वा तदस्थीनि महाजले क्षिपेत् । एवमन्येषां निरग्नीनामपि पर्णशरदाहोत्तरं शरीरलाभेऽस्थिलाभे वा योज्यम् ।

स्यात् त्रि॰ादर्क्षे हिरण्यदः । वारेषु तत्तद् वर्णं तु वासोदानं विधीयते ॥ धनिष्ठापञ्चकमृते पञ्चरत्नानि दापयेत् । एकाशीतिपलं कांस्यं तदर्धं वा तदर्धकम् ॥ नवषट्त्रिपलं वापि दद्याद् विप्राय शक्तितः ।' इति ।

१. बैजवापः—'प्रेतस्य साक्षाद्दग्धस्य प्राप्ते त्वेकादशेऽहनि । नक्षत्रतिथिवारादि शोधनीयं न किञ्चन ॥ युगमन्वादिसंक्रान्तिदर्शे प्रेतक्रिया यदि । दैवादापतिता तत्र नक्षत्रादि न शोधयेत्॥' इति ।

२. मदनरत्न में ब्रह्मपुराण का वचन है—'अथ पर्णशरे दग्धे पात्रन्यासे कृते सति । गतेष्वग्निषु तद्देहो यद्यूर्ध्वं लभ्यते क्वचित् ॥ तदार्धदग्धकाष्ठानि तानि निर्मन्थ्य तं दहेत् । यद्यर्धदग्धकाष्ठं तु तदीयं वै न लभ्यते ॥ तदा तदस्थिखण्डं तु निक्षिप्तव्यं महाजले ।' इति ।

साग्निक के पर्णशरदाह के पश्चात् शरीर मिलने पर पर्णशरदाह वाली अधजली लकड़ी से उसको जलावे। वैसी लकड़ी के न मिलने पर लौकिक अग्नि से जलाकर उसकी हड्डियों को अगाध जल में फेंक दे। इसी प्रकार अन्य निरग्नियों का भी पर्णशरदाह के बाद शरीर मिलने पर या अस्थि के मिलने पर दाह की योजना करे।

अथ जीवतोऽप्यौर्ध्वदेहिके कृते विचारः

अमृतं मृतमाकर्ण्य कृतं यस्यौर्ध्वदेहिकम्।
प्रायश्चित्तमसौ स्मार्तं कृत्वाग्नीनादधीत च ॥

अत्र पुनःसंस्कारादिप्रकारः[1] पूर्वार्धे उक्तः। आधानान्ते आयुष्मतीष्टिः। अनाहिताग्नेस्तु चरुः। भर्तरि जीवत्येव मरणवार्तां श्रुत्वा यदि स्त्रिया सहगमनं कृतं तदा तत्स्त्रीमरणमवैधमेव। ज्ञातमरणमेव हि सहगमने निमित्तं न तु मरण ज्ञानमात्रम्। अतस्तस्या भार्याया आत्मघातादिदोषप्रायश्चित्तं तत्पुत्रादिभिः कृत्वा नारायणबलिपूर्वकमौर्ध्वदेहिकं कार्यम्। भर्तुस्तु दाहाद्यौर्ध्वदेहिककरणनिमित्तमुक्तपुनःसंस्कारादि कार्यम्।

जीते हुए को मरा सुनकर जिसका और्ध्वदेहिक कर दिया गया हो वह स्मार्त प्रायश्चित्त करके अग्नि का आधान करे। इसमें पुनः संस्कार आदि का प्रकार पूर्वार्ध में कहा है। साग्निक आधान के अन्त में आयुष्मती इष्टि करे। अनाहिताग्नि का तो चरु है। पति के जीने में ही मरने की बात सुनकर यदि स्त्री ने सहगमन किया हो तब स्त्री का वह मरण अवैध ही है। क्योंकि जाना हुआ मरण ही सहगमन का निमित्त है, मरण का ज्ञानमात्र नहीं। इसलिये उसका पुत्रादि उस स्त्री का आत्मघात आदि दोष का प्रायश्चित्त करके नारायणबलि पूर्वक और्ध्वदेहिक कर्म करे। पति का तो दाह आदि और्ध्वदेहिक कर्म निमित्त कहा हुआ पुनः संस्कार आदि करे।

अथ घटस्फोटविधिः

कचिज्जीवतोऽप्यन्त्यकर्म विहितम्। यथा प्रायश्चित्तानिच्छोः पतितस्य [2]घटस्फोटे। तथा हि—महापातकेनोपपातकेन वा पतितो यदि प्रायश्चित्तं न करोति तदा तं गुरूणां बान्धवानां राज्ञश्च समक्षमाहूय तत्पापं प्रकटीकृत्य तं पुनःपुनरुपादिशेत्—प्रायश्चित्तं कुरु स्वाचारं लभस्वेति। स यद्येवमपि नाङ्गीकरोति

---

१. वृद्धमनुः—'जीवन् यदि समागच्छेद् घृतकुम्भे निमज्ज्य तम्। उद्धृत्य स्नापयित्वाऽस्य जातकर्मादि कारयेत् ॥ द्वादशाहं व्रतचर्या त्रिरात्रमथवाऽस्य तु। स्नात्वोद्वहेत तां भार्यामन्यां वा तदभावतः ॥ अग्नीनाधाय विधिवद् व्रात्यस्तोमेन वा यजेत्। अथेन्द्राग्नेन पशुना गिरिं गत्वा च तत्र तु ॥ इष्टिमायुष्मतीं कुर्यादीप्सितांश्च क्रतूंस्ततः।' इति।

२. मनु ने कहा है—'पतितस्योदकं कार्यं सपिण्डैर्बान्धवैः सह। निन्दितेऽहनि सायाह्ने ज्ञात्यृत्विग्गुरुसन्निधौ ॥ दासी घटमपां पूर्णं पर्यस्येत् प्रेतवत्तदा। अहोरात्रमुपासीरन्नाशौचं बान्धवैः सह ॥' अपरार्क में वसिष्ठ की उक्ति है—'वेदविप्लावकशूद्रयाजकोत्तमवर्णवर्गपतितास्तेषां पात्रनिनयनमपात्रसंस्कारादकृत्स्नं पात्रमादाय दासोऽसवर्णपुत्रो वा बन्धुरसदृशो वा गुणहीनः सव्येन पादेन प्रवृत्ताग्रान् दर्भान् लोहितान् वोपस्तीर्यापः पूर्णपात्रमस्मै निनयेन्निनेतारं चास्य प्रकीर्णकेशा ज्ञातयोऽन्वालभेरन्नपसव्यं कृत्वा गृहेषु स्वैरमापद्येरन्नत ऊर्ध्वं तेन तं धर्मयेयुस्तद्धर्माणस्तं धर्मयन्तः।'—

तदा रिक्तादिनिन्द्यतिथौ सायाह्ने सपिण्डा बान्धवाश्च सम्भूय दासीहस्तेनानीतममेध्यकुत्सितजलादिपूर्णं घटं सर्वतो दास्याद्यन्वारम्भं कुर्वन्तो दास्या दासस्य वा वामपादेन न्युब्जं छिन्नाग्रदर्भेषु कारयित्वा दासीसहिता वदेयुरमुमनुदकं करोमीति नामग्रहणपूर्वकं प्राचीनावीतिनो मुक्तशिखाश्च सन्तः। ततोधिकारी कर्ता दाहवर्ज्यं जीवन्तमेवोद्दिश्य पिण्डोदकदानादिप्रेतकार्याण्येकादशाहान्तानि नाम्नैव कुर्यात्।

कहीं जीवितावस्था में भी अन्त्य कर्म का विधान है। जैसे प्रायश्चित्त करने की इच्छा न करने वाले पतित के घटस्फोट में। वह इस प्रकार है—महापातक से या उपपातक से पतित यदि प्रायश्चित्त नहीं करता है तब उसको गुरुओं बान्धवों और राजा के समक्ष बुलाकर उसके पाप को प्रकट करके उसको बार-बार उपदेश करे कि प्रायश्चित्त करो अपना आचार प्राप्त करो। यदि वह इस पर भी स्वीकार नहीं करता तब रिक्ता आदि निन्द्य तिथि में सायंकाल सपिण्ड और बान्धव इकट्ठे होकर दासी के हाथ से लाये हुए अपवित्र कुत्सित जल आदि से भरे घड़े के चारो ओर से दासी आदि स्पर्श करते हुए कटे हुये अग्र भाग वाले कुशों पर दासी या दास के बायें पैर से उस घड़े को न्युब्ज (औंधा) करवाकर दासी के सहित कहें कि 'इसको जलसम्बन्ध से रहित करता हूँ' इस तरह उसका नामग्रहण करते हुए अपसव्य और मुक्त शिखा होते हुए कहे। तदनन्तर अधिकारी कर्ता दाह को छोड़ जीते हुए इसके उद्देश से पिण्ड-जलदान आदि एकादशाहान्त प्रेतकर्मों को इसके नाम से ही करे।

मिताक्षरायां प्रेतकार्योत्तरं घटनिनयनमुक्तम्। एकाहमाशौचं सर्वेषाम्। यस्य घटस्फोटः कृतस्तेन सह सम्भाषणस्पर्शादिसंसर्गो न केनापि कार्यः। करणे पतिततुल्यता। घटस्फोटप्रयोजनं तु पूर्वार्धान्ते उक्तम्। घटस्फोटनिश्चयोत्तरं घटस्फोटदिनात्प्राक् पतितज्ञातीनां धर्मकार्येष्वनधिकार इति कश्चित्।

मिताक्षरा में प्रेत कार्य के बाद घट-निनयन कहा है। सब को एक दिन का आशौच होता है। जिसका घटस्फोट किया है उसके साथ बोलना, स्पर्श आदि का संसर्ग किसी को भी नहीं करना चाहिये। करने में वह पतित समान होता है। घटस्फोट का प्रयोजन तो पूर्वार्ध के अन्त में कहा है। कोई कहते हैं—घटस्फोट निश्चय के बाद घटस्फोट दिन से पहले पतित के ज्ञातियों का धर्म कार्यों में अधिकार नहीं होता।

अथ कृतघटस्फोटस्य संग्रहविधिः

कृतघटस्फोटस्य पुंसोऽनुतापे तत्पापप्रायश्चित्तान्ते संग्रहविधिरुच्यते—तत्रादौ

—गौतम ने भी कहा है—'तस्य विद्यागुरून् योनिसम्बन्धांश्च सन्निपात्य सर्वाण्युदकादिप्रेतकार्याणि कुर्युः, पात्रं चास्य विपर्यस्येयुर्दासः कर्मकरो वाऽवकरादमेध्यं पात्रमानीय दासीघटान् पूरयित्वा दक्षिणामुखः पदा विपर्यस्येदमुमनुदकं करोमीति नामग्राहं सर्वेऽन्वालभेरन् प्राचीनावीतिनो मुक्तशिखा अप उपस्पृश्य ग्रामं प्रविशेयुः'। शङ्खः—'तस्य गुरोर्बान्धवानां राज्ञश्च समक्षं दोषानभिख्याप्य तमनुभाष्य पुनःपुनराचारं लभस्वेति स यद्येवमप्यनवस्थितमतिः स्यात्ततोऽस्य पात्रं विपर्यस्येत्।' इति।

शुद्धिपरीक्षा । कृतप्रायश्चित्तो ज्ञातिसमक्षं गोभ्यस्तृणभारं दद्यात् । गोभिस्तृणे[1]भक्षिते शुद्धिः । भक्षणाभावे पुनः प्रायश्चित्तं चरेत् ।

एवं निश्चितसंशुद्धौ समानेयुर्नवं घटम् ।
हैमं वा मृन्मयं वापि पवित्रजलपूरितम् ॥

ततः सपिण्डास्तं घटं संस्पृश्याभिमन्त्र्य तज्जलैः पावमानीभिरापोहिष्ठे-त्यादिभिस्तरत्समन्दीभिश्च पापिनमभिषिच्य तेन सह सर्वे स्नात्वा तं जलघट-मस्मै दद्युः ।

घटस्फोट किये हुए पुरुष का पश्चात्ताप करने पर उसके पाप के प्रायश्चित्त के अन्त में संग्रह की विधि कहता हूँ—इसमें आदि में शुद्धि की परीक्षा होती है । प्रायश्चित्त करके ज्ञाति के समक्ष गायों को तृण का बोझ दे । गायों के तृण खा लेने पर उसकी शुद्धि जाननी चाहिये । नहीं खाने पर फिर प्रायश्चित्त करे । इस प्रकार शुद्धि का निश्चय होने पर सुवर्ण या मिट्टी का नया घड़ा ले आवे उसे पवित्र जल से भर कर उस घड़े को सपिण्डलोग स्पर्श और अभिमन्त्रण करके उस जल से पावमानी, आपोहिष्ठा इत्यादि से तथा तरत्समन्दी ऋचाओं से पापी का अभिषेक करके उसके साथ स्नान कर उस जल के घड़े को इसे दे दे ।

स च शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तं विश्वमन्तरिक्षं यो रोचनस्तमिह गृह्णामीति यजुर्भिस्तं घटं गृह्णीयात् । ततस्तदुदकं तेनैव साकं सर्वे पिबेयुः । ततः स कूश्माण्डमन्त्रैराज्यहोमं कृत्वा सुवर्णं गां च दद्यात् । ततस्तस्य जातकर्मादिव्रत-बन्धान्ता विवाहान्ता वा संस्काराः कार्याः । एवं कृते शुद्धेन तेन संस्पर्शसंभोज-नादिव्यवहारं कुर्यात् । एवमुपपातके महापातके च कृतघटस्फोटस्य शुद्धिर्ज्ञेया । इति संक्षेपतः कृतघटस्फोटशुद्धिः ।

वह 'शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तं विश्वमन्तरिक्षं यो रोचनस्तमिह गृह्णामि' इस यजुर्मन्त्र से उस घड़े को ग्रहण करे । तदनन्तर उस जल को उस (पापी) के साथ सब ज्ञाति वाले पियें । इसके बाद वह कूष्माण्ड मन्त्रों से घी का होमकर सुवर्ण और गाय का दान करे । तदनन्तर उसका जातकर्म आदि यज्ञोपवीत पर्यन्त या विवाह पर्यन्त संस्कारों को करे । इस प्रकार शुद्ध करने पर उसके साथ स्पर्श और भोजन आदि का व्यवहार करे । इसी प्रकार उपपातक और महापातक में भी घटस्फोट किये हुए की शुद्धि जाननी चाहिये । घटस्फोट किये हुए की संक्षिप्त शुद्धि समाप्त ।

अथ अन्त्येष्टिनिर्णयः

वन्दे श्रीमदनन्ताभिधगुरुचरणौ सतां मताचरणौ ।
जननीमथान्नपूर्णां सम्पूर्णां सद्गुणैर्वन्द्याम् ॥
श्रीविठ्ठलं नमस्कृत्य विघ्नकक्षहुताशनम् ।
अन्त्येष्टिनिर्णयं वक्ष्ये सर्वशाखोपयोगिनम् ॥

१. मिताक्षरायाम्—'घटेऽपवर्जिते ज्ञातिमध्यस्थो यवसं गवाम् । प्रदद्यात् प्रथमं गोभिः सत्कृतस्य हि सत्क्रिया ॥' इति ।

सज्जनों के मत का आचरण करने वाले श्री अनन्तोपाध्याय नामक पिता के चरणों और सद्गुणों से पूर्ण एवं वन्दनीय माता अन्नपूर्णा को प्रणाम करता हूँ। विघ्नरूप कक्ष (तृणपुंज) के अग्निस्वरूप श्री विठ्ठल भगवान् को प्रणाम कर सब शाखाओं के उपयोगी अन्त्येष्टि का निर्णय कहता हूँ।

तत्रान्त्यक्रियाधिकारिणः श्राद्धारम्भे एवोक्ताः। सर्वाभावे [1]धर्मपुत्रः कार्यः।

उसमें अन्त्यक्रिया के अधिकारियों को श्राद्ध के प्रारम्भ में ही कहा है। सब अधिकारियों के अभाव में धर्मपुत्र बनावे।

अथ प्रायश्चित्तं दशदानानि च

तत्र पुत्राद्यधिकारिणा पित्रादिकमासन्नमरणं दृष्ट्वा सार्धाब्दादिप्रायश्चित्तं मोक्षधेन्वादिदानानि च तेन कारणीयानि स्वयं वा तमुद्दिश्य कर्तव्यानि। तत्र प्रायश्चित्तप्रयोगः प्रायश्चित्तप्रकरणे द्रष्टव्यः। शक्तौ सत्यां प्रायश्चित्तान्ते [2]दशदानानि कार्याणि। तत्र—

गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति इति गोदानमन्त्रः।

सर्वभूताश्रया भूमिर्वराहेण समुद्धृता।
अनन्तसस्यफलदा अतः शान्ति प्रयच्छ मे॥ इति भूमेः।
महर्षेर्गोत्रसम्भूताः काश्यपस्य तिलाः स्मृताः।
तस्मादेषां प्रदानेन मम पापं व्यपोहतु॥ इति तिलानाम्।

हिरण्यगर्भगर्भस्थमिति हिरण्यस्य।

कामधेनुषु सम्भूतं सर्वक्रतुषु संस्थितम्।
देवानामाज्यमाहारमतः शान्ति प्रयच्छ मे॥ इत्याज्यस्य।
शरणं सर्वलोकानां लज्जाया रक्षणं परम्।
सुवेषधारिवस्त्र त्वमतः० ॥ इति वस्त्रं देयम्।

उसमें पुत्र आदि अधिकारी मरणासन्न पिता आदि को देखकर डेढ़ वर्ष आदि प्रायश्चित्त और मोक्षधेनु आदि के दानों को उससे करावे या उसके उद्देश से स्वयं करे। उसमें प्रायश्चित्त का

---

१. व्यास ने कहा है—'अपुत्रेण सुतः कार्यो यादृक् तादृक् प्रयत्नतः। पिण्डोदकक्रियाहेतोर्नामसंकीर्तनस्य च॥' इस वचन में यादृक् तादृक् (जैसा-तैसा) कहा है फिर भी महारोगी और पतितादि से भिन्न को ही धर्मपुत्र बनाना चाहिये।

२. जातूकर्ण्य ने दशदान में वस्तुओं का इस प्रकार निर्देश किया है—'उत्क्रान्त्यादीनि दानानि दश दद्यान्मृतस्य तु। गोभूतिलहिरण्याज्यवासो धान्यं गुडानि च। रौप्यं लवणमित्याहुर्दश दानान्यनुक्रमात्॥ एतानि दश दानानि नराणां मृत्युजन्मनोः। कुर्यादभ्युदयार्थं तु प्रेतेऽपि हि परत्र वै॥' ब्रह्मपुराणे—'ताम्रपात्रं तिलैः पूर्णं प्रस्थमात्रैर्द्विजाय तु। सहिरण्यं च यो दद्याच्छ्रद्धावित्तानुसारतः॥ सर्वपापविशुद्धात्मा लभते गतिमुत्तमाम्। उत्क्रान्तिवैतरण्यौ च दश दानानि चैव हि॥ प्रेतेऽपि कृत्वा तं प्रेतं शवधर्मेण दाहयेत्।'—

गरुडपुराण में आठ दान कहा है—'तुलसीसन्निधौ कृत्वा शालग्रामशिलां तथा। तिला लोहं हिरण्यं च कार्पासं लवणं तथा॥ सप्तधान्यं क्षितिर्गाव एकैकं पावनं स्मृतम्।' इति।

प्रयोग प्रायश्चित्त प्रकरण में देखें। शक्ति होने पर प्रायश्चित्त के अन्त में दस दानों को करे। उसमें— 'गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति०' यह गोदान का मन्त्र है। सब जीवों की आश्रयभूता भूमि वराह से उद्धृत और अनन्त धान्य फल देने वाली हो इसलिये मुझे शान्ति प्रदान करो, इस अर्थ का 'सर्वभूताश्रया भूमिः०' यह भूमि दान का मन्त्र है। महर्षि काश्यप के गोत्र से तिल उत्पन्न हुए हैं इसलिये इनके दान से तिल मेरे पापों को दूर करे, इस अर्थ का 'महर्षेर्गोत्रसम्भूता' यह तिल दान का मन्त्र है। 'हिरण्यगर्भगर्भस्थं' यह सुवर्णदान का मन्त्र है। कामधेनु से उत्पन्न और सब यज्ञों में स्थित देवताओं का भोजन घृत है अतः मुझे शान्ति दे, इस अर्थ का 'कामधेनुसमुद्भूतं' यह घृत का मन्त्र है। सब लोगों का शरण और लज्जा का अत्यन्त रक्षक सुन्दर वेष धारण कराने वाला वस्त्र हो तू मुझे शान्ति प्रदान करो, इस आशय के 'शरणं सर्वलोकानां' इस मन्त्र से वस्त्र दे।

सर्वदेवमयं धान्यं सर्वोत्पत्तिकरं महत्।
प्राणिनां जीवनोपायमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ इति धान्यम्।
तथा रसानां प्रवरः सदैवेक्षुरसो मतः।
मम तस्मात्परां लक्ष्मीं ददस्व गुड सर्वदा ॥ इति गुडस्य।
प्रीतिर्यतः पितॄणां च विष्णुशंकरयोः सदा।
शिवनेत्रोद्भवं रूप्यमतः० ॥ इति रजतस्य।
यस्मादन्नरसाः सर्वे नोत्कृष्टा लवणं विना।
शंभोः प्रीतिकरं नित्यमतः० ॥ इति लवणस्य।

भूम्यादिप्रमाणानि तु जननशान्तिप्रकरणे उक्तानि। प्रायश्चित्तादिकर्मसु विष्ण्वादिनामकीर्तनात्साङ्गता।

धान्य सर्वदेवमय है और सब की उत्पत्ति करने वाला है। तथा प्राणियों के जीने का उपाय है इसलिये मुझे शान्ति दे, इस अर्थ का 'सर्वदेवमयं धान्यं०' यह धान्यदान का मन्त्र है। उसी प्रकार रसों में सर्वश्रेष्ठ ऊख का रस कहा है इसलिये हे गुड! मुझे तू सर्वदा उत्कृष्ट लक्ष्मी को दो, इस अर्थ का 'तथा रसानां प्रवरः०' यह गुड का मन्त्र है। जिससे पितरों, विष्णु और शंकर की सर्वदा प्रीति होती है तथा जो शिवनेत्र से उत्पन्न है अतः चान्दी मुझे शान्तिदे, इस अर्थ का 'प्रीतिर्यतः पितॄणां च०' यह चांदी का मंत्र है। जिससे सब अन्नरस नमक के विना अच्छे लगते तथा शङ्कर का प्रीतिदायक है इसलिये मुझे शान्ति दे, इस अर्थ का 'यस्मादन्नरसाः०' यह लवण का मन्त्र है। भूमि आदि के प्रमाण तो जन्मशान्ति प्रकरण में कहा है। प्रायश्चित्त आदि कर्मों में विष्णु आदि के नामकीर्तन से साङ्गता होती है।

अथ मरणसमये नामोच्चारणमहिमा

प्रायश्चित्ताद्यसंभवेऽपि मरणकाले विष्णुशिवनामकीर्तनमात्रात्सर्वपापक्षयो[1] मुक्तिश्चेति सर्वपुराणादिसिद्धान्तः। तथा च श्रीभागवते—

---

१. लिङ्गपुराणे—'कलौ रुद्रो महादेवः शंकरो नीललोहितः। प्रकाशते प्रतिष्ठार्थं धर्मस्य विकृताकृतिः॥ ये तं विप्रास्तु सेवन्ते येन केनापि शंकरम्। कलिदोषं विनिर्जित्य प्रयान्ति परमं पदम्॥' अग्निपुराणे—'नास्ति श्रेयस्करं नृणां विष्णोराराधनात्परम्। युगेऽस्मिंस्तामसे घोरे यज्ञवेदविवर्जिते॥ कलौ कलिमलध्वंसं सर्वपापहरं हरिम्।' इति।

यस्यावतारगुणकर्मविडम्बनानि नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति ।
तेऽनेकजन्मशमलं सहसैव हित्वा संयान्त्यपावृतमृतं तमजं प्रपद्ये ॥ इत्यादि ।

मुमूर्षुं पितरं पुत्रो यदि दानं प्रदापयेत् ।
तद्विशिष्टं गयाश्राद्धादश्वमेधशतादपि ॥

प्रायश्चित्त आदि के न करने पर भी मरने के समय विष्णु तथा शिव का नाम कीर्तन मात्र से सम्पूर्ण पापों का नाश और मुक्ति भी मिलती है यह सभी पुराण आदि का सिद्धान्त है। ऐसा ही श्रीमद्भागवत में कहा है—जिसके अवतार के गुण-कर्म का अनुकरण और नामों का जप जो प्राणान्त समय में विवश होकर करते हैं वे अनेक जन्म के पापों को तुरन्त नष्ट कर खुले वैकुण्ठ को प्राप्त करते हैं, उस जन्मरहित सत्य भगवान् की शरण में हूँ इत्यादि। यदि पुत्र मरते समय पिता से दान दिलावे तो वह गयाश्राद्ध और सौ अश्वमेध से बढ़ कर है।

अथ तिलपात्रादिदानानि

तानि च तिलपात्रदानम् ऋणधेनुमोक्षधेनुपापधेनुवैतरणीधेनूत्क्रान्तिधेनुदानादीनि ।

व्यतीपातोऽथ संक्रान्तिस्तथैव ग्रहणं रवेः ।
पुण्यकालास्तथा सर्वे यदा मृत्युरुपस्थितः ॥
आसन्नमृत्युना देया गौः सवत्सा तु पूर्ववत् ।
तदभावे तु गौरेव नरकोत्तारणाय वै ॥
शुक्लपक्षे दिवा भूमौ गङ्गायां चोत्तरायणे ।
धन्यास्तात मरिष्यन्ति हृदयस्थे जनार्दने ॥ इत्यादिवचनात् ।

मुमूर्षोर्दानादौ शक्त्यभावे पुत्रादिर्दद्यात् ।

वे दान ये हैं—तिलपात्र का दान, ऋणधेनु, मोक्षधेनु, पापधेनु, वैतरणीधेनु और उत्क्रान्तिधेनु आदि। जब मृत्यु उपस्थित हो तब व्यतीपात, संक्रान्ति, सूर्यग्रहण, तथा सभी पुण्य काल वैसे ही होते हैं। आसन्नमृत्यु पुरुष को बछड़ेसहित गौ पूर्ववत् देनी चाहिये। सवत्सा गौ के न रहने पर केवल गौ नरक से पार जाने के लिये दे। शुक्ल पक्ष में, दिन में, भूमि में, गङ्गातट पर और उत्तरायण, हे भाई हृदय में भगवान् के रहते जो मरेंगे वे धन्य हैं, इत्यादि वचन हैं। मुमूर्षु को दान आदि की शक्ति न रहने पर पुत्र आदि दान करे।

तत्र तिलपात्रदानविधिः—यथाशक्ति कांस्यपात्रे ताम्रपात्रे वा तिलान्क्षिप्त्वा सुवर्णं च प्रक्षिप्य 'मम जन्मप्रभृतिमरणान्तं कृतनानाविधपापप्रणाशार्थं तिलपात्रदानं करिष्ये' विप्रं संपूज्य 'मम जन्मप्रभृतिमरणान्तं कृतनानाविधपापनाशार्थमिदं तिलपात्रं ससुवर्णं सदक्षिणम् अमुकशर्मणे तुभ्यं संप्रददे'।

तिलाः पुण्याः पवित्राश्च तिलाः सर्वंकराः स्मृताः ।
शुक्ला वा यदि वा कृष्णा ऋषिगोत्रसमुद्भवाः ॥
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च ।
तिलपात्रप्रदानेन मम पापं व्यपोहतु ॥

न ममेति विप्रहस्ते जलं क्षिपेत् ।

तिलपात्रदान की विधि—शक्ति के अनुसार कांसे या तामे के पात्र में तिलों और सुवर्ण को रखकर 'मेरे जन्म से मरण पर्यन्त किये गये अनेक प्रकार के पापों के नाश के लिये तिल पात्र का दान करूँगा'। ब्राह्मण की पूजा करके 'मेरा जन्म से मरण पर्यन्त किये गये नाना प्रकार के पापों के नाश के लिये सुवर्ण और दक्षिणा के साथ यह तिलपात्र अमुक शर्मा आपको देता हूँ'। तिल पुण्य तथा पवित्र है। तिल सब कुछ करने वाला है। तिल शुक्ल हो या कृष्ण ऋषि गोत्र से उत्पन्न है। ब्रह्महत्या के समान जो कोई पाप हो वह तिलपात्र के दान से मेरे पाप को हटावे, मेरा नहीं है, ऐसा कहकर विप्र के हाथ में जल छोड़ दे।

पुत्रादिस्त्वस्य जन्मप्रभृत्यादिसंकल्पमस्य पापं व्यपोहत्विति मन्त्रं च वदेत् ।

ऐहिकामुष्मिकं यच्च सप्तजन्मार्जितं ऋणम् ।
तत्सर्वं शुद्धिमायातु गामेकां ददतो मम ॥ इति ऋणधेनुदानमन्त्रः ।

अन्यत्सर्वं सामान्यगोदानवत् । तद्विधिस्तु द्वितीयपरिच्छेदे उक्तः ।

मोक्षं देहि हृषीकेश मोक्षं देहि जनार्दन ।
मोक्षधेनुप्रदानेन मुकुन्दः प्रीयतां मम ॥ इति मोक्षधेनुमन्त्रः ।
आजन्मोपार्जितं पापं मनोवाक्कायकर्मभिः ।
तत्सर्वं नाशमायातु गोप्रदानेन केशव ॥ इति पापधेनुदानमन्त्रः ।

पुत्र आदि तो 'मेरे पिता के जन्म से लेकर' इत्यादि संकल्प और 'इनके पाप को हटा दे' यह मन्त्र पढ़े। इस जन्म या दूसरे जन्म का और जो सात जन्म का संचित ऋण है वह सब इस एक गौ के दान से शुद्ध हो जाय, यह ऋणधेनु दान का मन्त्रार्थ है। बाकी सब साधारण गोदान के समान है। इसकी विधि द्वितीय परिच्छेद में कहा है। हे हृषीकेश ! मोक्ष दीजिये। हे जनार्दन ! मोक्ष दीजिये। मोक्षधेनु के देने से भगवान् मुकुन्द मुझपर प्रसन्न हों। यह मोक्षधेनुदान का मन्त्रार्थ है। हे केशव ! जन्म से अब तक मन से, वाणी से और शरीर से जो पापार्जन किया है वह सब गोदान से नाश हो जाय। यह पापधेनुदान का मन्त्रार्थ है।

अथ वैतरणीविधिः—अद्येत्यादि 'अमुकस्य मम यमद्वारस्थितवैतरण्याख्यनद्युत्तारणार्थं गोदानं करिष्ये' विप्रं पादप्रक्षालनवस्त्रगन्धमाल्यादिभिरभ्यर्च्य तद्धस्ते शिवा आपः सन्तु सौमनस्यमस्तु अक्षतं चारिष्टं चास्तु यच्छ्रेयस्तदस्तु यत्पापं तत्प्रतिहतमस्त्विति कृत्वा,

धेनुके त्वं प्रतीक्षस्व यमद्वारे महापथे ।
उत्तितीर्षुरहं देवि वैतरण्यै नमोस्तु ते ॥ इति धेनुं प्रार्थ्य,
विष्णुरूप द्विजश्रेष्ठ भूदेव द्विजपावन ।
तर्तुं वैतरणीमेतां कृष्णां गां प्रददाम्यहम् ॥

इति विप्रं प्रार्थ्य 'वैतरणीसंतारणार्थमिमां गां कृष्णवस्त्ररक्तमाल्याद्यलंकृतां यथाशक्ति दक्षिणायुतां तुभ्यमहं संप्रददे'।

यमद्वारे पथे घोरे घोरा वैतरणी नदी ।
तां तर्तुकामो यच्छामि कृष्णां वैतरणीं तु गाम् ॥

न ममेति विप्रहस्ते जलं क्षिपेत् । कृष्णाया अभावेऽन्यवर्णा देया । गोरभावे द्रव्यं देयम् । पुत्रादिर्दाता चेत्प्रथमे मन्त्रे उत्तितीर्षु रयमिति पठेत् । द्वितीये ततुं वैतरणीमस्येति तृतीये तां ततुंमस्येति ।

वैतरणीविधि—अद्येत्यादि कहकर 'अमुक मेरे यमराज के द्वार में स्थित वैतरणी नदी के पार उतरने के लिये गोदान करूँगा' । ब्राह्मण का पाद-प्रक्षालन, वस्त्र, गन्ध और माला आदि से पूजन कर उसके हाथ में 'शिवा आपः सन्तु' इससे जल, 'सौमनस्यमस्तु' इससे पुष्प, 'अक्षतं चारिष्टं चास्तु' इससे अक्षत देकर 'यच्छ्रेयस्तदस्तु, यत्पापं तत्प्रतिहतमस्तु' ऐसा कहकर हे गौ ! महामार्ग यमराज द्वार पर मेरी प्रतीक्षा करो । हे वैतरणि ! मैं तुझे पार करना चाहता हूँ आपको नमस्कार है । इस तरह धेनु की प्रार्थना कर हे विष्णुस्वरूप द्विजश्रेष्ठ ! द्विजों को पवित्र करने वाले भूदेव ! इस वैतरणी को पार करने के लिये काली गौ आप को देता हूँ इस मंत्र से ब्राह्मणकी प्रार्थना कर वैतरणी पार करने के लिये कृष्ण वस्त्र और लाल माला आदि से भूषित यथाशक्ति दक्षिणा से युक्त इस गौ को आपको मैं देता हूँ । यमराज के भयङ्कर द्वार पर भयङ्कर वैतरणी नदी है उसको पार करने की इच्छा से आपको काली वैतरणी गौ देता हूँ । मेरी नहीं है ऐसा कहकर ब्राह्मण के हाथ में जल छोड़े । काली गौ के अभाव में दूसरे वर्ण की गौ देवे । गौ के अभाव में द्रव्य दे । पुत्र आदि यदि दान दे तो प्रथम मन्त्र में 'उत्तितीर्षु रहं' की जगह 'उत्तितीर्षु रयं' ऐसा कहे । दूसरे मन्त्र में 'ततुं वैतरणीमस्य' ऐसा कहे । तीसरे में 'तां ततुंमस्य' ऐसा कहे ।

अथ उत्क्रान्तिधेनुः—अद्येत्यादि 'अमुकस्य सुखेन प्राणोत्क्रमणप्रतिबन्धकसकलपापक्षयद्वारा सुखेन प्राणोत्क्रमणाय यथाशक्त्यलंकृतामिमामुत्क्रान्तिधेनुं रुद्रदैवत्याममुकशर्मणे तुभ्यं संप्रददे' गवामंगेष्विति मन्त्रान्ते न ममेति वदेत् । धेन्वभावे द्रव्यं देयम् । उक्तप्रायश्चित्तादिदानान्तविधिमकृत्वा पित्रादिमरण पुत्रादिना प्रायश्चित्तं कृत्वा दाहादि कर्तव्यम् । दानान्येकादशाहे कार्याणि । पितुः पापाभावनिश्चये प्रायश्चित्तं नावश्यकम् । केचिदुत्क्रान्तिवैतरण्यौ च दशदानानि चैव हि मृतेऽपि कृत्वा तं प्रेतं दहेदित्याहुः । तुलसीसन्निधौ कुर्याच्छालग्रामशिलां तथा । केचित्तिललोहहेमकार्पासलवणभूमिधेनुसप्तधान्येत्यष्टदानान्याहुः । क्वचिन्मुमूर्षोर्मधुपर्कदानमुक्तम्[१] ।

उत्क्रान्तिधेनु—अद्येत्यादि कहकर 'अमुक का सुख से प्राण निकलने का प्रतिबन्धक सम्पूर्ण पाप के नाश द्वारा सुख से प्राण निकलने के लिये यथाशक्ति अलंकृत रुद्र देवता वाली इस उत्क्रान्ति धेनु को अमुक शर्मा आप को देता हूँ' 'गवामङ्गेषु' इस मन्त्र के अन्त में 'मेरी नहीं' ऐसा कहे । धेनु के अभाव में द्रव्य दे । उक्त प्रायश्चित्त आदि दान पर्यन्त विधि को न करके पिता आदि के मरने में पुत्र आदि को प्रायश्चित्त करके दाह आदि करना चाहिये । दानों को एकादशाह में करे । पिता के पापाभाव के निश्चय होने पर प्रायश्चित्त आवश्यक नहीं है । कुछ लोग—उत्क्रान्ति-वैतरणी-धेनु तथा दस दानों को पिता के मर जाने पर भी करके उस प्रेत को जलावे—ऐसा कहते हैं ।

१. वाराहे—'दृष्ट्वा सुविह्वलं ह्येनं यममार्गानुसारिणम् । प्रयाणकाले तु नरो मन्त्रेण विधिपूर्वकम् । मधुपर्कं त्वरन् गृह्य इमं मन्त्रमुदाहरेत् ॥ ॐ गृहाण चेमं मधुपर्कमाद्यं संसारनाशनकरं त्वमृतेन तुल्यम् । नारायणेन रचितं भगवत्प्रियाणां दाहे च शान्तिकरणं सुरलोकपूज्यम् ॥ अनेनैव तु मन्त्रेण दद्याच्च मधुपर्ककम् । नरस्य मृत्युकाले तु परलोकसुखावहम् ॥' इति ।

तुलसी के समीप में तथा शालग्राम-शिला के समीप में करे। कुछ लोग—तिल, लोहा, सुवर्ण कपास, नमक, भूमि, धेनु और सप्तधान्य इनको आठ दान कहते हैं। कहीं मुमूर्षु को मधुपर्क दान कहा है।

अथ क्षौरनिर्णयः

पुत्रादिः कर्तान्त्यकर्माधिकारार्थं कृच्छ्रत्रयादिकं वपनं च कुर्यात्। तत्र मातापित्रोः सापत्नमातुः पितृव्यस्य ज्येष्ठभ्रात्रादेश्चान्त्यकर्मकरणे [1]क्षौरमावश्यकम्। पुत्राणां कर्तृभिन्नानामपि क्षौरं नित्यम्। एवं पत्न्या अपि प्रथमे दशमेऽह्नि वा क्षौरं नित्यम्। तथा दत्तकस्य पूर्वापरयोर्मात्रोः पित्रोर्मृतौ क्षौरम्।

रात्रौ तु दग्ध्वा पिण्डान्तं कृत्वा वपनवर्जितम्।
वपनं वर्जितं रात्रौ श्वस्तनी वपनक्रिया॥

पत्नीपुत्रकनिष्ठभ्रात्रादेरन्त्यकर्मणि क्षौरं न कार्यम्। अन्यत्र कृताकृतम्।

पुत्र आदि कर्ता अन्त्य कर्म के अधिकार के लिये तीन कृच्छ्र आदि और मुण्डन करे। माता-पिता, सौतेली माता, चाचा और ज्येष्ठ भाई आदि के अन्त्य कर्म करने में क्षौर आवश्यक है। कर्ता से भिन्न पुत्रों का भी क्षौर नित्य है। इसी प्रकार पत्नी का भी प्रथम या दशम दिन में क्षौर नित्य है। इसी तरह दत्तक के पहले और पीछे के दोनों माता-पिता के मरने में क्षौर नित्य है। रात में तो दाह करके क्षौर को छोड़ कर पिण्डान्त कर्म करे। क्योंकि रात में क्षौर वर्जित है इसलिये दूसरे दिन करे। पत्नी-पुत्र, छोटे भाई आदि के अन्त्य कर्म में क्षौर नहीं करे। अन्यत्र करे या नहीं करे।

अथ शवस्यास्पृश्यस्पर्शादौ प्रायश्चित्तादि

श्मशाने नीयमानशवस्य शूद्रस्पर्शे शूद्रेण वहने वा—

कुम्भे सलिलमादाय पञ्चगव्यं तथैव च।
सुमन्त्रैरभिमन्त्र्यापस्तेन संस्नाप्य दाहयेत्॥

कृच्छ्रत्रयं च कुर्यात्। [2]सूतिकारजस्वलयोः स्पर्शेऽप्येवमेव। प्रायश्चित्तं तु पञ्चदश कृच्छ्राः। शूद्रेण द्विजदाहे[3] तु चान्द्रायणपराकप्राजापत्यानि समुच्चयेन पुत्रादिः कृत्वास्थीनि पुनर्दहेत्। अस्थ्यभावे पालाशविधिः।

---

१. मिताक्षरायाम्—'गङ्गायां भास्करक्षेत्रे मातापित्रोर्गुरोर्मृतौ। आधाने सोमयागे च वपनं सप्तसु स्मृतम्॥' गालवः—'प्रथमेऽहनि कर्तव्यं वपनं चानुभाविनाम्। प्रेतस्य केशश्मश्रवादि वापयित्वाऽथ दाहयेत्॥' अनुभाविनां = सपिण्डानाम्, शावं दुःखमनुभवन्तीत्यनुभाविनः सपिण्डास्तेषामविशेषेण वपनम्। देवलः—'दशमेऽहनि सम्प्राप्ते स्नानं ग्रामाद् बहिर्भवेत्। तत्र त्याज्यानि वासांसि केशश्मश्रुनखानि च॥' अपि च देवलः—'क्रियां च कुरुते यस्तु तद्दिने तस्य मुण्डनम्। लघीयसां दशाहे तु पुत्राणां वपनं भवेत्॥' इति।

२. धर्मप्रदीपे—'चाण्डालसूतिकोदक्या स्पृष्टे प्रेते तथैव च। तस्य पापविशुद्ध्यर्थं कृच्छ्रान् पञ्चदशाचरेत्॥' इति।

३. जाबालिः—'शूद्रेण दग्धो यो विप्रो न लभेच्छाश्वतीं गतिम्। प्रायश्चित्तं प्रकुर्वीत ब्राह्मणः पापशुद्धये॥ चान्द्रायणं पराकं च प्राजापत्यं विशोधनम्॥' इति।

श्मशान में ले जाते हुए मृतक का शूद्र से स्पर्श होने या शूद्र से ढोने में—घड़े में जल लेकर उसमें पञ्चगव्य डालकर, मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके जल से शव का स्नान कराकर दाह करावे तथा तीन कृच्छ्र करे। प्रसूतिका और रजस्वला के स्पर्श में भी ऐसा ही करे। प्रायश्चित्त तो पन्द्रह कृच्छ्र है। शूद्र द्विज के शव का दाह करे तो पुत्रादि चान्द्रायण, पराक और प्राजापत्य व्रतों को समुच्चय से करके अस्थियों को पुनः जलावे। अस्थि के अभाव में पालाशविधि करे।

'ऊर्ध्वोच्छिष्टाधरोच्छिष्टोभयोच्छिष्टेषु कृच्छ्रत्रयम्। अस्पृश्यस्पर्शनेषट् कृच्छ्राः। अन्तरालमृतौ नव, खट्वामरणे द्वादश, निगडमृतौ पञ्चदश, रजकादिसप्तविधान्त्य जादिस्पृष्टमरणे त्वेकत्रिंशत्कृच्छ्राणि। देशान्तरमरणे पराकद्वयमष्टौ कृच्छ्रा वा। कृच्छ्रत्रयं प्रकुर्वीत आशौचमरणेऽपि च। अर्धदग्धे शवे चितेरस्पृश्यस्पर्शे[2]कृच्छ्रत्रयम्। एवं पुत्रादयः पित्रादेः पापिनः पापानुसारेण प्रायश्चित्तकाण्डोक्तं प्रायश्चित्तं दुर्मरणात्मघातादिनिमित्ते पूर्वोक्तप्रायश्चित्तं नारायणबल्यादिकं च कृत्वैवान्त्यकर्म कुर्युः। एवमुक्तप्रायश्चित्तं विना दाहादि कृतं व्यर्थं भवेद् उभयोश्च नरकः।

ऊपर के अङ्गों के उच्छिष्ट होने में, नीचे के अङ्गों के उच्छिष्ट होने में तथा दोनों अङ्गों के उच्छिष्ट होने में तीन कृच्छ्र करे। अस्पृश्य के स्पर्श में छ कृच्छ्र करे। कोठे पर मरने में नौ कृच्छ्र, खटिया पर मरने में बारह कृच्छ्र, हथकड़ी लगे मरने में पन्द्रह कृच्छ्र, धोबी आदि सात प्रकार के अन्त्यज से स्पर्श होकर मरने में तो एकतीस कृच्छ्र करे। दूसरे देश में मरने पर दो पराक या आठ कृच्छ्र करे। आशौच में मरने पर भी तीन कृच्छ्र करे। अधजले शव की चिता का अस्पृश्य से स्पर्श होने पर तीन कृच्छ्र करे। इसी प्रकार पुत्र आदि पापी पिता आदि के पाप के अनुसार प्रायश्चित्त काण्ड में कहे प्रायश्चित्त को दुर्मरण और आत्मघात आदि निमित्त में पूर्वोक्त प्रायश्चित्त और नारायणबलि आदि करके ही अन्त्यकर्म करे। इस प्रकार कहे प्रायश्चित्त को किये विना दाह आदि करना व्यर्थ हो जाता है और दोनों को नरक होता है।

पतिपत्न्योरेककाले दहने प्राप्ते भार्यायाः पत्या सह तद्द्विवचनान्तमन्त्रोहेन दाहं कृत्वा पिण्डादिकं पतिपूर्वकं [3]पृथक्कार्यम्। एवं सपत्नीनामेककाले मृतौ

---

१. मदनरत्न में स्मृत्यन्तर का वचन है—'ऊर्ध्वोच्छिष्टाधरोच्छिष्टोभयोच्छिष्टे तथैव च। अस्पृश्यस्पर्शने चैव खट्वादिमरणेऽपि च॥ श्वानक्रव्यादसंस्पर्शे क्रिमिकीटोद्भवेऽपि च। एतद्दोषानुसारेण प्रायश्चित्तं समाचरेत्। कृच्छ्रांस्त्रिषट्पञ्चदशाश्चान्द्रत्रयमथापि वा। शुद्ध्यै तदानीं सम्पाद्य शवधर्मेण दाहयेत्॥' इति।

२. गृह्यकारिकायाम्—'खट्वायां मरणे चैव त्रींस्त्रीन्कृच्छ्रान् प्रकल्पयेत्। सप्तान्त्यजैस्तु संस्पृष्टो मृतो दैवात् कथंचन। एकत्रिंशता कृच्छ्रैस्तु शुद्धिरुक्ता मनीषिभिः। कुणपे त्वर्धदग्धे तु चिता स्पृष्टाऽन्त्यजादिभिः॥ तत्स्पर्शने दूषणं च त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्यति।' इति।

३. मदनरत्ने—'एककालमृतौ भार्या भर्ता च यदि चेद् द्वयोः। तन्त्रेण दहनं कुर्यात् पिण्डश्राद्धं पृथक्पृथक्॥ एककाले मृतौ जायापती यदि तदा पितुः। विभज्याग्निं क्रियां कुर्यादिति मत्तदसाम्प्रतम्॥ दाहान्तमेकतन्त्रत्वमिति याज्ञिकसम्मतम्। मृतं पतिमनुव्रज्य या नारी ज्वलनं गता॥ अस्थिसंचयनान्तोऽस्याः कर्तुः संस्कार एव हि। कीकसानां तु संस्कारो न्यायसिद्धोऽपि यो मतः॥ एककाले मृतेऽप्येवं कीकसानां विधिः स्मृतः। नवश्राद्धं सपिण्डान्तं भिन्नकालमृतौ यथा॥' कपर्दिकारिका—'मृते भर्तरि तद्दाहात्प्राक् पत्नी म्रियते यदि। पत्न्यां वा प्राक्प्रमीतायां दाहादर्वाक्पतिर्मृतः॥ तत्र तन्त्रेण दाहः स्यान्मन्त्रेषु द्वित्वमूह्यते।' इत्यादि।

सहैव दाहः। पिण्डादिकं तु ज्येष्ठक्रमेण पृथगेव। एवं पितापुत्रयोर्भ्रात्रोश्च लौकिकाग्निदाह्ययोर्दाहः सहैव। पिण्डादि पितृपूर्वं ज्येष्ठपूर्वं च पृथक्। पुंबालानां स्त्रीबालानां च दहने खनने चैवमेवेति नागोजीभट्टीये। रजस्वलागर्भिण्यादिमरणे सहगमने च वक्ष्यते।

पति और पत्नी का एक काल में दाह प्राप्त होने पर स्त्री का पति के साथ वह द्विवचनान्त मन्त्र के ऊह से दाह करके पिण्ड आदि को पहले पति का बाद में स्त्री का अलग करे। इसी प्रकार सपत्नियों के एक काल में मरने पर साथ ही दाह होता है। पिण्ड आदि तो ज्येष्ठ क्रमसे अलग ही करे। इसी तरह पिता और पुत्र का, भाई-भाई का जो लौकिक अग्नि से दाहयोग्य है, साथ ही दाह करे। पिण्ड आदि पहले पिता का उसके बाद ज्येष्ठ क्रम से अलग-अलग करे। बालक और बालिकाओं को जलाने तथा गाड़ने में भी इसी प्रकार करे, ऐसा नागोजीभट्ट के ग्रन्थ में है। रजस्वला और गर्भिणी आदि के मरने में तथा सहगमन में कहूँगा।

अथ मुमूर्षोः पुण्यसूक्तादिश्रवणम्

अथ गोमयोपलिप्तभूमौ कुशेषूपविष्टो दक्षिणशिराः शयितो वा गोपीचन्दनादिमृदा कृततिलकः श्रीविष्णुं स्मरन् पुण्यसूक्तं गीतां सहस्रनामादिस्तोत्राणि पठेच्छृणुयाद्वा। 'अमृतत्वप्राप्त्यर्थं पुण्यसूक्तस्तोत्रादीनां पाठं श्रवणं वा करिष्ये' इति संकल्पः। श्रोतुः संकल्पाशक्तौ श्रावयिता 'अस्यामुकर्मणोऽमृतत्वप्राप्तयेऽमुकं श्रावयिष्ये' इति संकल्पयेत्। नानानमिति सूक्तं पुरुषसूक्तं विष्णुसूक्तमुपनिषद्भागा इत्यादिपुण्यसूक्तानि। रामकृष्णादिनामस्मरणे जातिमात्रस्याधिकारः।

गोबर से लीपी हुई भूमि में कुश पर बैठ दक्षिण सिर करके या सोये हुए गोपीचन्दन आदि मिट्टी से तिलक कर श्रीविष्णु को स्मरण करते हुए पुण्यसूक्त, गीता, विष्णुसहस्रनाम आदि स्तोत्रों को स्वयं पढ़े या सुने। 'अमृतत्व प्राप्ति के लिये पुण्यसूक्त और स्तोत्र आदिका पाठ या श्रवण करूंगा' ऐसा संकल्प करे। श्रोता के संकल्प करने में असमर्थ होने पर सुनाने वाला 'इस अमुक शर्मा के अमृतत्व प्राप्ति के लिये अमुक को सुनाऊँगा' ऐसा संकल्प करावे। 'नानानम्' यह सूक्त, पुरुषसूक्त और उपनिषद् भाग इत्यादि पुण्यसूक्त हैं। राम-कृष्ण आदि के स्मरण में सब जाति का अधिकार है।

अथ साग्नेर्विशेषः

गृह्याग्निमतो गृह्याग्निना श्रौताग्निमतस्त्रेताग्निभिर्दाहः कार्यः। तत्र गृह्याग्निमतः श्रौताग्निमतश्च [1]कृष्णपक्षे मरणे तदैव सायंकालाहुतीर्दर्शसायंकालपर्यन्ताः पक्षहोमवत्सकृद्ग्रहणेनैव हुत्वा पुनः संकल्पपूर्वकं प्रातराहुतीश्च प्रतिपत्प्रातर्होमान्तास्तद्वदेव हुत्वा दर्शयागं कुर्यात्। यागासंभवे आज्यं संस्कृत्य स्रुचि चतुर्वारं गृहीत्वा पुरोनुवाक्यायाज्याभ्यामेकैकां प्रधानाहुतिं जुहुयात्।

---

१. कारिकायाम्—'कृष्णपक्षे प्रमीयेत यद्यहि प्रातराहुतीः। शेषास्तु जुहुयाद्दर्शपर्यन्ताः पक्षहोमवत् ॥' 'तदानीमेव जुहुयात् प्रातःकालाहुतीरपि। सायं म्रियेत चेत्सायमाहुतीर्जुहुयादथ ॥ तदानीमेव जुहुयात्प्रातःकालाहुतीरपि। सकृद्ग्रहीतमन्त्रेष्टं भिन्नं तन्त्रं च होमयोः ॥ दर्शं चापि प्रकुर्वीत स्थालीपाकं तदैव तु।' इति।

गृह्य अग्नि वाले का गृह्य अग्नि से तथा श्रौत अग्नि वाले का त्रेता अग्नियों से दाह करे। गृह्य अग्नि वाले का और श्रौत अग्नि वाले का कृष्णपक्ष में मरने पर उसी समय सायंकाल की आहुति को अमावास्या के सायंकालपर्यन्त पक्षहोम के समान एकबार ग्रहण से ही होम करके और संकल्पपूर्वक प्रातःकाल की आहुति को प्रतिपदा के प्रातः होमपर्यन्त उसी प्रकार होम करके दर्श यज्ञ करे। यज्ञ न हो सके तो आज्य का संस्कार करके स्रुची में घी को चार बार लेकर पुरोनुवाक्या और याज्या से एक-एक प्रधान आहुति का होम करे।

स्मार्ते तु चतुर्गृहीताज्येनाग्नये स्वाहेन्द्राग्निभ्यां स्वाहेति नाम्नैव प्रधानाहुतिद्वयम्। शुक्लपक्षे रात्रौ मरणे सायं होमस्य कृतत्वात्प्रातर्होममात्रमाकृष्य तदैव कुर्यात्। नात्र पौर्णिमान्तानां दर्शान्तानां वा होमानामिष्टिप्रधानपूर्णाहुतीनां वा करणम्। शुक्लपक्षे दिवामरणे तु न कस्यापि होमस्याकर्षणम्। एवं कृष्णपक्षमरणेऽपि दैवात्पूर्णमासेष्ट्यतिक्रमे होमापकर्षप्रधानपूर्णाहुत्यादिकं च कृताकृतमनारब्धत्वादिति भाति।

स्मार्त में तो चार बार लिये गये घी 'अग्नये स्वाहा' 'इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा' इस नाम से ही दो प्रधान आहुति दे। शुक्लपक्ष में रात में मरने पर सायंकाल होम हो जाने से प्रातर्होममात्र का आकर्षण कर उसी समय करे। इसमें पौर्णिमान्त या दर्शान्त होमों का अथवा इष्टि प्रधान पूर्णाहुतियों का करना नहीं है। शुक्लपक्ष में दिन में मरने पर तो किसी भी होम का आकर्षण नहीं होता। इसी प्रकार कृष्णपक्ष में मरने में भी दैववश पूर्णमासेष्टि का अतिक्रम हो जाने में होम का अपकर्षण और प्रधान पूर्णाहुति इत्यादि करे या न करे। क्योंकि उनका आरम्भ नहीं हुआ, ऐसा ठीक मालूम होता है।

करणपक्षेऽतिक्रान्तपूर्णाहुतीर्हुत्वा पक्षहोमान्कृत्वा दर्शपूर्णाहुतयः कार्याः।

अग्नावरण्योरारूढे प्रमीयेत पतिर्यदि।
प्रेतं स्पृष्ट्वा मथित्वाग्निं जप्त्वा चोपावरोहणम्॥
घृतं च द्वादशोपात्तं तूष्णीं हुत्वा शवक्रिया।

विच्छिन्नश्रौताग्नेर्मृतौ तु प्रेताधानं कार्यम्। तद्यथा—प्रेतं स्वाम्यालये क्षित्वारणी संनिधाप्य,

यस्याग्नयो जुह्वतो मांसकामाः संकल्पयन्ते यजमानमांसं जायंतु ते हविषे सादिताय स्वर्गं लोकमिमं प्रेतं नयन्तु॥

इति यजुर्मन्त्रेण मथित्वाग्निमायतने प्रणीय द्वादशगृहीताज्येन तूष्णीं हुत्वा तेन दाहादि कार्यम्।

नष्टेष्वग्निष्वथारण्योर्नाशे स्वामी म्रियेत चेत्।
आहरेदरणिद्वन्द्वं मनोज्योतिरृचा ततः॥ शेषं प्राग्वत्।

करने के पक्ष में अतिक्रान्त पूर्णाहुतियों का होमकर पक्षहोमों को करके दर्शपूर्णाहुतियों को करे। अग्नि और अरणि के मध्य में आरूढ पति मर जाय तो प्रेत का स्पर्श कर अग्नि का मन्थन और जप करके उपावरोहण करे। उस अग्नि में घी को बारह बार लेकर बिना मंत्र का होम कर शव की क्रिया करे। छूटे हुए श्रौताग्नि वाले के मरने में तो प्रेताधान करे। वह इस प्रकार-'यस्याग्नयो

जुह्वतो मांसकामाः संकल्पयन्ते यजमानमांसं जायन्तु ते हविषे सादिताय स्वर्गं लोकमिमं प्रेतं नयन्तु' इस यजुर्वेद मन्त्र से मथ कर उस अग्नि को होम स्थान में लाकर बारह बार घी लेकर बिना मंत्र का होम कर उससे दाह आदि करे। अग्नि के नष्ट होने या अरणि के नाश होने पर यदि पति मर जाय तो 'मनोज्योति' इस मन्त्र से दो अरणियों का आहरण करे। शेष पूर्व के समान करे।

स्मार्ताग्निमतः स्मार्ताग्निर्यदि विच्छिन्नस्ततो यतो विच्छेदस्तावत्कालगणनया पूर्वार्धोक्तरीत्या प्रायश्चित्तं तदेव कुर्यात्संकल्पयेद्वा। प्रायश्चित्तान्ते होमद्रव्यं स्थालीपाकद्रव्यं च तावत्कालगणनया देयम्। ततोऽरणिपक्षे पूर्ववदरणीमन्थनम्। पक्षान्तरे 'अमुकशर्मणोऽग्निविच्छेदनिमित्तकं दाहायाग्निसिद्ध्यर्थं प्रेताधानं करिष्ये' इति संकल्प्यायतने संभारान्निक्षिप्य लौकिकाग्निं प्रतिष्ठाप्याज्यं संस्कृत्यायाश्चेति मन्त्रेण यस्याग्नय इति पूर्वोक्तमन्त्रेण च हुत्वा व्याहृतिचतुष्टयं जुहुयात्। एवमौपासनः सिद्धो भवति। पत्नीमरणेऽप्येवमेवेति भट्टाः। एवं विधुरस्यापि श्रौताग्निगृह्याग्निपरिग्रहसत्त्वे यथायथं तत्तदग्निभ्यां दाहः। विधुरस्याग्निपरिग्रहोत्तरं तद्विच्छेदे पूर्वोक्तरीतिभ्यां तत्तदग्न्योराधानम्।

स्मार्त अग्नि वाले की यदि स्मार्त अग्नि नष्ट हो जाय तो जब से विच्छेद हुआ हो उतने काल की संख्या से पूर्वार्ध में कही रीति से प्रायश्चित्त उसी समय करे या संकल्प करके दे। प्रायश्चित्त के अन्त में होमद्रव्य और स्थालीपाक द्रव्य उसी काल की गणना से देवे। इसके बाद अरणि पक्ष में पहले के समान अरणि मन्थन करे। दूसरे पक्षमें 'अमुक शर्मा के अग्नि-विच्छेद निमित्त दाहके लिये अग्नि की सिद्धि के लिये प्रेताधान करूंगा' ऐसा संकल्प करके अग्नि-स्थान में सम्भारों को लाकर लौकिकाग्नि की स्थापना करके घी का संस्कार कर 'अयाश्च' इस मन्त्र से 'यस्याग्नये' इस पहले कहे मन्त्र से होम करके चार आहुतियों से होम करे। इस तरह औपासन अग्नि की सिद्धि होती है। स्त्री के मरने में भी इसी प्रकार होता है, ऐसा भट्ट कहते हैं। इसी प्रकार विधुर का भी श्रौताग्नि और गृह्याग्नि के परिग्रह रहते यथायोग्य उन-उन अग्नियों से दाह करे। विधुर के अग्नि परिग्रह के बाद अग्नि के विच्छेद होने पर पहले कही दोनों रीतियों से उन-उन अग्नियों का आधान करे।

अगृहीतगृह्याग्निकयोः सभार्यविधुरयोर्ब्रह्मचारिसमावृत्तयोश्चानुपनीताविवाहितपुत्रकन्ययोश्च निरग्निकभार्याविधवयोश्च [1]कपालाग्निना लौकिकाग्निना वा दाहः। अग्निवर्णकपाले करीषादिनोत्पादितो भूर्भुवः स्वः स्वाहेत्याज्याहुत्या संस्कृतोऽग्निः कपालाग्निः। लौकिकाग्निश्चान्त्यजाग्निपतिताग्निसूतिकाग्निचिताग्न्यमेध्याग्निभिन्नो ग्राह्यः।

गृह्य अग्नि को नहीं ग्रहण करने वाले विधुर और सपत्नीक का, ब्रह्मचारी और समावृत्त का, अनुपनीत तथा अविवाहित पुत्र और कन्या का, निरग्निक स्त्री और विधवा का कपालग्नि से या

---

१. आशौचप्रकाश में क्रतु का वचन है—'विधुरं विधवां चैव कपालस्याग्निना दहेत्। ब्रह्मचारी यती चैव दहेदुत्तपनाग्निना॥ तुषाग्निना च दग्धव्यः कन्यका बाल एव च। अग्निवर्णं कपालं तु कृत्वा तत्र विनिक्षिपेत्॥ करीषादि ततो वह्निर्जातो यः स कपालजः।' स्मृत्यन्तरे—'गृहस्थो ब्रह्मचारी च विधुरो विधवाः स्त्रियः। औपासनश्चोत्तपनस्तुषाग्निस्तु कपालजः॥' उत्तपनस्तु—दर्भाग्निऽग्निं तु प्रज्वाल्य पुनर्दर्भैस्तु संयुतः। पुनर्दर्भैस्तृतीयोऽग्निरेष उत्तपनः स्मृतः॥' इति।

लौकिकाग्नि से दाह करे। अग्निवर्ण के कपाल में करीष (कँडरा) आदि से उत्पादित 'भूर्भुवः स्वः स्वाहा' इस घृत की आहुति से संस्कृत अग्नि को कपालाग्नि कहते हैं। लौकिकाग्नि को अन्त्यजाग्नि-पतिताग्नि-सूतिकाग्नि-चिताग्नि-अमेध्याग्नि से भिन्न लेना चाहिये।

यस्यानयति शूद्रोऽग्निं तृणकाष्ठहवींषि वा।
प्रेतत्वं च सदा तस्य शूद्रः पापेन लिप्यते॥

आहिताग्निदम्पत्योः पूर्वं पतिमरणे पत्युः सर्वाग्निभिर्दाहः। पश्चान्मृतभार्यायास्तु निर्मंथ्याग्निना कपालाग्निना वा। 'पूर्वं भार्यामरणे तु तस्या अपि सर्वाग्निभिर्दाहः कार्यः। सर्वपात्राण्यपि तस्यै देयानि। पश्चान्मृतस्य तु पत्युः पुनराधानेन त्रेताग्निसत्त्वे तेन दाहः। आधानाकरणे निर्मंथ्येन लौकिकाग्निना वेति केचित्। याज्ञिकाचारोऽपि प्रायेणैवमेव।

शूद्र जिसकी अग्नि, काठ, तृण और हविष्य को ले आता है उसका प्रेतत्व सदा बना रहता है एवं शूद्र पाप से लिप्त रहता है। आहिताग्नि पति-पत्नी के मध्य में पहले पति के मरने में पति का सब अग्नियों से दाह करे। पीछे मरी स्त्री का तो मन्थन की हुई अग्नि से या कपालाग्नि से दाह करे। पहले पत्नी के मरने पर तो उसका भी सब अग्नियों से दाह करना चाहिये। अग्नि के सभी पात्र भी उसे दे दे। पीछे मरे हुए पति का दाह तो पुनः आधान की अग्नि से त्रेताग्नि के रहते उससे करे। कुछ लोग कहते हैं—आधान नहीं करने पर मन्थन से उत्पन्न अग्नि से या लौकिक अग्नि से करे। याज्ञिकों का आचार भी प्रायः इसी प्रकार का है।

अत्र निर्णयसिन्धुः—साग्नेः पत्नीमृतौ द्वौपक्षौ पुनर्विवाहेच्छायां पूर्वाग्निभिर्भार्यां दग्ध्वा 'पुनर्दारक्रियां कुर्यात्पुनराधानमेव च'इत्येकः पक्षः। 'दाहयित्वाग्निहोत्रेण स्त्रियं वृत्तवतीं [2]पतिः'। इत्यादिवचनजातानि पुनर्विवाहेच्छुपराण्येव। पुनर्विवाहाशक्तौ निर्मंथ्याग्निना तां दग्ध्वा पूर्वाग्निष्वेवाग्निहोत्रहोमेष्टचादि चातुर्मास्यादि कार्यं सोमयागो न कार्यः। पूर्वाग्न्येकदेशेन दहेदिति यज्ञपार्श्वदेवयाज्ञिकादयः।

इसमें निर्णयसिन्धु का कथन है कि साग्निक की पत्नी के मरने पर दो पक्ष हैं, पुनः विवाह करने की इच्छा में पूर्व अग्नियों से स्त्री का दाह कर पुनः विवाह करे और पुनः आधान, यह एक

---

१. वृद्धयाज्ञवल्क्यः—'आहिताग्निर्यथान्यायं दग्धव्यस्त्रिभिरग्निभिः। अनाहिताग्निरेकेन लौकिकेनापरो जनः॥' क्रतुः—'एवं वृत्तां सवर्णां स्त्रीं द्विजातिः पूर्वमारिणीम्। दाहयेदग्निहोत्रेण यज्ञपात्रैश्च धर्मवित्॥' कारिकायाम्—'पत्नीमपि दहेदेवं भर्तुः पूर्वं मृता यदि। अनग्निकां दहेदेवं कपालेन हविर्भुजाम्॥' छन्दोगपरिशिष्टे—'अनयैवावृता नारी दग्धव्या या व्यवस्थिता। अग्निप्रदानमन्त्रोऽस्या न प्रयोज्य इति स्थितिः॥' तथा—'अग्निनैव दहेद् भार्यां स्वतन्त्रां पतिता न चेत्। तदुत्तरेण पात्राणि दाहयेत् पृथगन्तिके॥' इति।

२. यह याज्ञवल्क्य का वचन है, इसका उत्तरार्ध है—'आहरेद् विधिवद् दारानग्नींश्चैवाविलम्बयन्॥' इस श्लोक की मिताक्षरा है—'पूर्वोक्तवृत्तवतीमाचारवतीं विपन्नां स्त्रियमग्निहोत्रेण श्रौतेनाग्निना तदभावे स्मार्तेन दाहयित्वा पतिः भर्ता अनुत्पादितपुत्रोऽनिष्टयज्ञो वा आश्रमान्तरेष्वनधिकृतो वा स्त्र्यन्तराभावे पुनर्दारान् अग्नींश्च विधिवदाहरेत्। अविलम्बयन् शीघ्रमेव, 'अनाश्रमी न तिष्ठेत दिनमेकमपि द्विजः' इति दक्षस्मरणात्' इति।

पक्ष है। पति सच्चरित्रा पत्नी का अग्निहोत्र से दाह करा कर, इस आशय के वचन समूह पुनः विवाह करने के लिये ही हैं। पुनः विवाह की असमर्थता में मथित अग्नि से उसका दाह करके पूर्व अग्नियों ही में अग्निहोत्र-होम-इष्टि आदि और चातुर्मास्य आदि करे, सोमयाग नहीं करे। पूर्व अग्नि के एकदेश से दाह करे, यह यज्ञपार्श्वदेव याज्ञिक आदि कहते हैं।

यानि तु तस्मादपत्नीकोऽप्यग्निहोत्रमाहरेदिति श्रुतिस्मृत्यादिवचनानि तानि पूर्वाग्निष्वेवाग्निहोत्रपराणि न त्वपत्नीकस्याधानार्थानि, अपत्नीकस्याधानविधायकमूलवचनाभावात्। दारकर्मणि यद्यशक्त आत्मार्थमग्न्याधेयमित्यापस्तम्बसूत्रं तु पुनर्विवाहाशक्तौ पूर्वकृतमग्न्याधेयमात्मार्थमेव स्थाप्यं न पत्न्यै दद्यादित्येवं परम्। ब्राह्मणभाष्यापरार्काशार्करामाण्डारादिमतमप्येवमेव। ये त्वपत्नीकस्याधानमाहुस्तदाशयं न विद्म इति। इदं निर्णयसिन्धुमतमेव युक्तं भाति।

'इसलिये पत्नीरहित भी अग्निहोत्र का आहरण करे' ये जो श्रुति स्मृति आदि के वचन हैं वे पूर्वाग्नियों में ही अग्निहोत्र करने के लिये हैं न कि अपत्नीक के आधान के लिये, क्योंकि अपत्नीक के आधान विधायक मूल वचनों का अभाव है। विवाह करने में यदि अशक्त हो तो अपने लिये अग्नि का आधान करे, इस आशय का आपस्तम्बसूत्र तो पुनः विवाह की असमर्थता में पहले किया अग्न्याधेय अपने लिये ही स्थापित करे पत्नी के लिये नहीं दे, इस अभिप्राय का है। ब्राह्मणभाष्य, अपरार्क, आशार्क, रामाण्डार आदि का मत भी ऐसा ही है जो अपत्नीक का आधान कहते हैं उनका आशय हम लोग नहीं जानते। यह निर्णयसिन्धु का मत ही युक्त प्रतीत होता है।

याज्ञिकानामाचारस्त्वन्तर्गूढविवाहेच्छामूलको न प्रामाण्यापादकः। पुनर्विवाहाशया सर्वाग्निदाने पश्चाद्विवाहासम्भवे सिन्धुमते आधानाभावान्निर्मंथ्याग्निरेव शरणम्। केषांचिन्मते पुनराधानम्। अत्र निर्मंथ्यादिना पूर्वमृतभार्यादाहपक्षे पूर्वाग्नीनामुत्सर्गेष्ट्या त्यागं कृत्वा पुनराधानं कृत्वाग्निहोत्रं कार्यमिति केचिदाहुः। एवं स्मार्ताग्निमतः पूर्वं भार्यामरणेऽपि गृह्याग्न्येकदेशेन तां दहेदवशिष्टाग्नौ नित्यहोमस्थालीपाकाग्रयणानि कार्याणि। अत्र सर्वत्र श्रौते स्मार्ते च 'कुशपत्नीविधानेनैवाधानादिकर्माधिकारः।

याज्ञिकों का आचार तो मन में छिपी हुई विवाह की इच्छा मूलक है, प्रमाण का प्रकाशक नहीं। पुनः विवाह की आशा से सब अग्नियों को स्त्री को देने में पीछे विवाह न होने पर निर्णयसिन्धु के मत से आधान के न होने पर मथित अग्नि ही शरण है यानी उससे ही दाह करना होगा। कुछ लोगों के मत में पुनः आधान है। कुछ लोग कहते हैं—इसमें निर्मथ्य आदि से पहले मरी हुई स्त्री के मथित अग्नि से दाहपक्ष में पहली अग्नियों की उत्सर्गेष्टि से त्याग करके पुनः आधान कर

---

१. छन्दोगपरिशिष्टे—'मृतायामपि भार्यायां वैदिकाग्निं न हि त्यजेत्। उपाधिनाऽपि तत्कर्म यावज्जीवं समाचरेत्॥' उपाधिः = हेमकुशपत्न्यादिः, जैसा अपरार्क में स्मृत्यन्तर का वचन है—'अन्ये कुशमयीं पत्नीं कृत्वा तु गृहमेधिनः। अग्निहोत्रमुपासन्ते यावज्जीवमनुव्रताः॥' कात्यायनः—'रामोऽपि कृत्वा सौवर्णीं सीतां पत्नीं यशस्विनीम्। ईजे बहुविधैर्यज्ञैः सह भ्रातृभिरच्युतः॥' इति।

अग्निहोत्र करे। इसी प्रकार स्मार्त अग्नि वाले की पहले, स्त्री के मरने में भी गृह्य अग्नि के एकदेश से उसे जलावे बची हुई अग्नि में नित्य होम स्थालीपाक और आग्रयण करे। यहां सब जगह श्रौत और स्मार्त में कुश की पत्नी के विधान से ही आधान आदि कर्म का अधिकार है।

अनेकभार्यस्य ज्येष्ठायां जीवत्यां कनिष्ठभार्यामरणे निर्मथ्यादिना तां दहेद् न श्रौतस्मार्ताग्निभिः। केचित्पूर्वं सर्वाग्निभिः कनिष्ठां दग्ध्वा ज्येष्ठया सह पुनराधानं कार्यमित्याहुस्तदग्निद्वयसंसर्गपरं मतान्तरपरं वा बोध्यम्। दाहकालेऽग्निनाशे तु—

यजमाने चितारूढे पात्रन्यासे कृते सति।
वर्षाद्यभिहते वह्नौ चितादिस्थे कथंचन।
तदार्धदग्धकाष्ठानि तानि निर्मथ्य तं दहेत्॥

अनेक स्त्री वाले को जेठी स्त्री के जीते रहते छोटी स्त्री के मरने पर मथित अग्नि आदि से उसे जलावे, श्रौत और स्मार्त अग्नि से नहीं। कुछ लोग—पहले सब अग्नियों से छोटी स्त्री का दाह करके जेठी पत्नी के साथ पुनः आधान करे—ऐसा कहते हैं। इसे दो अग्नि के संसर्ग वालों के लिये या दूसरे मतवालों के लिये जानना चाहिये। दाह के समय अग्नि के नाश होने पर तो यजमान चिता पर चढ़ गया हो और उसके पास पात्र रख दिये गये हों, किसी प्रकार वर्षा आदि से चिता की अग्नि बुझ जाय तब अधजली लकड़ी के मन्थन से अग्नि उत्पन्न कर उससे दाह करे।

अथ गृहाच्छ्मशाने शवनयनादिप्रकारः

तत्र 'विप्रप्रेतं नगरपश्चिमद्वारेण शूद्रं दक्षिणद्वारेण निःसार्य सजातीयाः शवं प्रच्छादितमुखं प्राक्शिरसं दाहदेशं नयेयुः। पूर्वोक्तोऽग्निः शवाग्रेऽन्येन नेतव्यः। प्रेताग्न्योर्मध्येऽन्येन न गन्तव्यम्। सर्वे सपिण्डादयोऽधःकृतोपवीता मुक्तकेशा ज्येष्ठपुरःसराः प्रेतमनुगच्छेयुः। प्रेतश्च नग्नो न[२] दग्धव्यः निःशेषतश्च न दाह्यः। शववस्त्रं च श्मशानवासिभ्यो देयम्। प्रेतश्च केशनखादि वापयित्वा संस्नाप्य गन्धपुष्पाद्यैरलंकृत्य दग्धव्यः।

उसमें ब्राह्मण-शव को नगर के पश्चिम द्वार से और शूद्र-शव को दक्षिण द्वार से निकाल कर समान जाति वाले शव का मुँह ढक कर पूर्व की ओर सिर किये मृतक को दाह की जगह ले जाय। पूर्वोक्त अग्नि को शव के आगे-आगे कोई दूसरा पुरुष ले जाय। प्रेत और अग्नि के बीच में दूसरा कोई न जाय। सब सपिण्ड आदि यज्ञोपवीत को कंठ से नीचे किये, बाल खोले बड़ों को आगे करके मृतक के पीछे चलें। प्रेत को नंगा नहीं जलावे और उसे पूरा न जलावे यानी कुछ बचा ले।

---

१. मनुः—'दक्षिणेन मृतं शूद्रं पुरद्वारेण निर्हरेत्। पश्चिमोत्तरपूर्वैस्तु यथासंख्यं द्विजातयः। अपरार्कमें आदिपुराण के वचन से प्रातिलोम्यक्रम कहा है—'पूर्वामुखस्तु नेतव्यो ब्राह्मणो बान्धवैर्गृहात्। उत्तराभिमुखो राजा वैश्यः पश्चान्मुखस्तथा॥ दक्षिणाभिमुखः शूद्रो निर्हर्तव्यः स्वबान्धवैः।' इति।

२. प्रचेताः—'स्नानं प्रेतस्य पुत्राद्यैर्वस्त्राद्यैः पूजनं ततः। नग्नदेहं दहेन्नैव किंचिद्देयं परित्यजेत्॥' ब्राह्मे—'दरिद्रोऽपि न दग्धव्यो नग्नः कस्यांचिदापदि।' तथा—'निःशेषस्तु न दग्धव्यः शेषं किंचित्त्यजेन्नरः।' आश्वलायनसूत्रे—'संस्थिते प्रेतालङ्कारान् कुर्वन्ति केशश्मश्रुलोमनखानि वापयन्ति नलदेनानुलिम्पन्ति नलदमालां प्रतिमुञ्चन्ति' इति।

शव का वस्त्र श्मशान में रहने वालों को दे-दे। मृतक का केश नख आदि कटवा कर नहला कर गन्ध-माला आदि से भूषित कर दाह करे।

दिने मृतौ दिवैव दाहो रात्रिमृतस्य रात्रावेव। दिवा वा रात्रौ वा स्थितः शवः [1]पर्युषितः। पर्युषितशवं पञ्चगव्येन स्नापयित्वा प्राजापत्यत्रयं कृत्वा दहेत्। मुखस्थसप्तच्छिद्राणि हिरण्यशकलैराच्छादयेत्। अत्र पात्रन्यासो मन्त्रवद्दाहादिविधिश्च स्वस्वसूत्रानुसारिश्रौतस्मार्तान्त्येष्टिप्रयोगेषु ज्ञेयः। ततो दाहान्ते घटस्फोटादिकं कार्यम्। शिलाविपर्ययेऽपि घटस्फोटस्य नावृत्तिः। ततश्चितामप्रदक्षिणं सर्वे पर्यावृत्य सचैलं स्नात्वाचम्य सगोत्रसपिण्डसमानोदकानां मातामहीमातामहयोराचार्यादेश्च दुहितृभगिन्योश्चावश्यं तिलाञ्जलिं दद्युः।

दिन में मरे हुए का दिनमें और रातमें मरे हुए का रात में ही दाह करे। दिन में या रात में मृतक दाह के विना पड़ा रहे तो वह बासी हो जाता है। बासी मृतक को पञ्चगव्यसे नहला कर तीन प्राजापत्य करके दाह करे। मुख के सात छेदों को सुवर्ण के टुकड़े से ढक दे। इसमें पात्रों का न्यास और मन्त्रसहित दाह आदि की विधि अपने-अपने सूत्र के अनुसार श्रौत-स्मार्त अन्त्येष्टि के प्रयोगों से जानना चाहिये। उसके बाद दाह के अन्त में घटस्फोट आदि करे। शिला के विपर्यय में भी घटस्फोट दुहराया नहीं जाता। तदनन्तर चिता को अप्रदक्षिण क्रम से सब लोग चारो ओर घूम कर सवस्त्र स्नान और आचमन करके सगोत्र, सपिण्ड और समानोदकों को, नानी नाना को, आचार्य आदि को, लड़की और बहिन को अवश्य तिलाञ्जलि देवें।

तद्यथा—वृद्धपूर्वा दक्षिणामुखा अमुकगोत्रनामा प्रेतस्तृप्यत्विति मन्त्रेणाञ्जलिना सकृत्पाषाणे सिञ्चेयुः। अत्र स्नानोदकदानेऽप नः शोशुचदघमिति मन्त्रेण। स्नानमेव तेन मन्त्रेणेत्यन्ये। स्त्रीणां तु मन्त्रो नास्ति। मातुलपितृष्वसृमातृष्वसृस्वस्रीयश्वशुरमित्रयाजकादीनामुदकदानं कृताकृतम्। करणपक्षेऽपि नाश्मन्येवेति नियमः। व्रात्यब्रह्मचारिपतितव्रतिक्लीबचोराश्च नोदकं दद्युः। तत्र व्रात्या यथाकालमुपनयनहीनाः। व्रतिनः प्रकान्तप्रायश्चित्ताः। चोराः सुवर्णं तत्समद्रव्यापहारिणः। ब्रह्मचारिभिर्मातापितृपितामहमातामहगुर्वाचार्यादीनामुदकदानं कार्यम्।

वह इस प्रकार—पहले वृद्ध जन दक्षिणमुख होकर 'अमुक गोत्र नामा तृप्यतु' इस मन्त्र से अञ्जलि से एक बार पत्थर पर सिंचन करें। यहां स्नान तथा उदकदान 'अप नः शोशुचदघं' इस मन्त्र से करे। दूसरे कहते हैं कि उस मंत्र से स्नान ही करे। स्त्रियों को तो मन्त्र नहीं है। मामा, फूआ, मौसी, भानजा, ससुर, मित्र और याजक आदि का जलदान करे या नहीं करे। करने के पक्ष में भी पत्थर पर ही करे ऐसा नियम नहीं है। व्रात्य, ब्रह्मचारी, पतित, व्रती, नपुंसक और चोर को जल नहीं दें। उसमें जिनका समय पर उपनयन नहीं हुआ हो वे व्रात्य हैं। जिन्होंने प्रायश्चित्त प्रारम्भ

---

१. दिन में मरने पर रात्रि तक और रात्रि में मरने पर दिन तक शव यदि पड़ा रह जाय तो उसे गालव ने पर्युषित कहा है—'दिवा वा यदि वा रात्रौ शवस्तिष्ठति कर्हिचित्। तत्पर्युषितमित्याहुर्दहने तस्य का गतिः॥ पञ्चगव्येन संस्नाप्य प्राजापत्यत्रयं चरेत्।' स्मृतिरत्नावली में—'शवं रात्र्युषितं चेत् त्रीन् कृच्छ्रान् कृत्वा दहेत् सुतः।' अङ्गिराः—'ऊर्ध्वोच्छिष्टाधरोच्छिष्टे ह्यन्तरिक्षमृतेऽपि वा। कृच्छ्रत्रयं प्रकुर्वीत आशौचे मरणेऽपि च॥' इति।

किये हों वे व्रती हैं। चोर वे हैं जो सुवर्ण या सुवर्ण के समान दूसरा द्रव्य चुरावें। ब्रह्मचारी को माता-पिता-पितामह-मातामह-गुरु-आचार्य आदि का जलदान करना चाहिये।

प्रकान्तप्रायश्चित्तैस्तु तदन्ते उदकदानं त्रिरात्राशौचं च कार्यम्। [1]व्रात्यादिभिः प्रेतस्पर्शवहनदाहपिण्डादिकमपि न कार्यम्। अन्याभावे ब्रह्मचार्यपि पित्रादेर्दाहमाशौचं कुर्यात्। कर्मलोपस्तु नास्तीत्युक्तम्। इदं चोदकदानमेकवाससाऽपसव्येनैव। उदकदानोत्तरं पुनः स्नात्वा वस्त्राणि निष्पीडच कुलवृद्धाः पुत्रादीन्पूर्वेतिहासैः समाश्वास्य विप्रानुमत्या कनिष्ठानुक्रमेण गृहं गत्वा निम्बपत्राणि शनैर्भक्षयित्वाचम्याग्न्युदकगोमयादीन्[2] स्पृष्ट्वा द्वाराश्मनि पदं निधाय गृहं प्रविशेयुः। निम्बपत्रभक्षणं कृताकृतम्। ततस्तद्दिने उपवसेयुः। उपवासाशक्तावयाचितलब्धेनान्यगृहपक्वेन वैकेनैव हविष्यान्नेन वर्तेरन्।

प्रायश्चित्त प्रारम्भ करने वाले तो प्रायश्चित्त के बाद जलदान और तीन रात का आशौच करें। व्रात्य आदि को प्रेत का स्पर्श, ढोना, दाह और पिण्ड आदि भी न करना चाहिये। दूसरे के न रहने पर ब्रह्मचारी भी पिता आदि का दाह तथा आशौच करे। कर्म का लोप तो नहीं होता, यह कहा है। यह उदकदान एक वस्त्र और अपसव्य से ही करे। जलदान के बाद पुनः स्नान करके वस्त्रों को निचोड़ कर कुल के वृद्ध लोग पुत्र आदि को पुराने इतिहासों से समझा कर ब्राह्मण की अनुमति से छोटों के क्रम से घर जाकर नीम के पत्तों को धीरे-धीरे खाकर आचमन करके आग, जल और गोबर आदि का स्पर्श कर द्वार के पत्थर पर पैर रखके घर में प्रवेश करें। नीम के पत्तों का भक्षण करे या न करे। इसके बाद उस दिन सभी उपवास करें। उपवास करने की शक्ति न रहने पर विना याचना के प्राप्त या दूसरे के घर पके हुए एक ही हविष्य अन्न खाकर रहें।

अथ आशौचे भोजनादिनियमाः

तत्राशौचमध्ये माषमांसापूपमधुरलवणदुग्धाभ्यङ्गताम्बूलक्षाराणि[3] वर्ज्यानि। क्षाराणि तु—

> तिलमुद्गादृते शैम्ब्यं सस्ये गोधूमकोद्रवौ।
> धान्याकं देवधान्यं च शमीधान्यं तथैव च ॥
> स्विन्नधान्यं तथा पण्यं मूलं क्षारगणः स्मृतः।

केचित्सैन्धवं भक्ष्यमित्याहुः। आदर्शस्त्रीसङ्गद्यूतादिहसनरोदनोच्चासनानि

---

१. मनु ने व्रात्य का लक्षण बतलाया है—'अत ऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः। सावित्रीपतिता व्रात्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः ॥' इन्होंने व्रात्य के साथ व्यवहार का त्याग बतलाया है—'नैतैरपूतैर्विधिवदापद्यपि हि कर्हिचित्। ब्राह्मान् यौनांश्च सम्बन्धानाचरेद् ब्राह्मणः सह ॥' इति।

२. यहाँ आदि पद से 'दूर्वाप्रवालमग्निवृषभौ वा' इस शंख की उक्ति से दूर्वाङ्कुर और वृषभ का स्पर्श भी करे। याज्ञवल्क्यः—'इति संश्रुत्य गच्छेयुर्गृहं बालपुरस्सराः। विदश्य निम्बपत्राणि नियता द्वारि वेश्मनः ॥ आचम्याग्न्यादि सलिलं गोमयं गौरसर्षपान्। प्रविशेयुः समालभ्य कृत्वाऽश्मनि पदं शनैः ॥' इति।

३. कारिकायाम्—'लवणक्षीरमाषान्नापूपमांसानि पायसम्। वर्जयेदाहृतान्नेषु बालवृद्धातुरैर्विना ॥ उपवासो गुरौ प्रेते पत्न्याः पुत्रस्य वा भवेत्।' इति।

नित्यं त्यजेयुः। बालवृद्धातुरवर्जं तृणकटास्तीर्णभूमौ[1] पृथक् शयीरन्, न कम्बलाद्यास्तीर्णभूमौ। मार्जनादिरहितमेव स्नानम्। अस्थिसंचयनादूर्ध्वं भार्यापुत्रव्यतिरिक्तानां[2] शय्यासनादिभोगोऽस्त्येव, स्त्रीसंगस्तु नास्ति।

आशौच के मध्य में उर्द, मांस, पूआ, मीठा, नमक, दूध, तैल लगाना, पान खाना और क्षार पदार्थ का त्याग करे। क्षार पदार्थ तो—तिल-मूंगको छोड़ शिम्बीधान्य, सस्य में गेहूँ और कोदो, धनिया, देवधान्य (यव), शमी धान्य, स्विन्न धान्य, पण्य, मूल, यह क्षारों का गण कहा है। कुछ लोग सेन्धानमक भक्षण योग्य कहते हैं। दर्पण, स्त्री प्रसङ्ग, जूआ आदि, हँसना, रोना और ऊंचा आसन का प्रतिदिन त्याग करे। बालक, वृद्ध और बीमार को छोड़ कर पुआल या चटाईं बिछी हुई भूमि पर अलग-अलग सोवें, कम्बल आदि बिछाईं भूमि पर नहीं। मार्जन रहित ही स्नान करे। अस्थिसंचयन के बाद स्त्री-पुत्र से अतिरिक्तों को खटिया और आसन आदि का उपयोग होता ही है, स्त्री संगम तो नहीं है।

अस्थिसंचयनं[3] तु समन्त्राग्निदाहदिनादारभ्य प्रथमदिने द्वितीये तृतीये चतुर्थे सप्तमे नवमे वा गोत्रजैः सह स्वस्वसूत्रोक्तप्रकारेण कार्यम्। तत्र द्विपादत्रिपादनक्षत्राणि कर्तुर्जन्मनक्षत्रं च [4]वर्ज्यम्। सम्भवेऽर्कभौममन्दवारा वर्ज्याः। पालाशदाहास्थिदाहयोः सद्यः संचयनम्। अस्थ्नां गङ्गाम्भसि तीर्थान्तरे वा प्रक्षेपः। तद्विधिर्वक्ष्यते। अरण्ये वृक्षमूले निखननं वा। अस्थीन्यन्यकुलस्थस्य नीत्वा चान्द्रायणं चरेत्। दययान्यस्यापि नयने महापुण्यम्। अस्थ्नां श्वसूकरशूद्रादिस्पर्शे पंचगव्यशालग्रामतुलस्युदकैः प्रोक्षणम्। आशौचमध्ये [5]स्वगोत्रजैः सह

---

१. मनुः—'मांसाशनं च नाश्नीयुः शयीरंश्च पृथक् क्षितौ।' बृहस्पतिः—'अधःशय्यासना दीना मलिना भोगवर्जिताः। अक्षारलवणाश्च स्युर्लब्धक्रीताशनास्तथा॥' भोगः = अभ्यङ्गताम्बूलादिः।

२. विष्णुपुराण में कहा है—'शय्यासनोपभोगस्तु सपिण्डानामपीष्यते। अस्थिसंचयनादूर्ध्वं संयोगस्तु न योषिताम्॥' इति।

३. संवर्तः—'प्रथमेऽह्नि तृतीये वा सप्तमे नवमे तथा। अस्थिसंचयनं कार्यं दिने तद्गोत्रजैः सह॥' छन्दोगपरिशिष्ट में दूसरे दिन भी अस्थिसंचयन कहा है—'अपरेद्युस्तृतीये वा अस्थिसंचयनं भवेत्।' इति।

४. माधवीय में यम का वचन है—'भौमार्कमन्दवारेषु तिथियुग्मे विवर्जयेत्। वर्जयेदेकपादर्क्षे द्विपादर्क्षेऽस्थिसंचयम्॥ प्रदातृजन्मनक्षत्रे त्रिपादर्क्षे विशेषतः।' शौनकः—'पालाशेष्वस्थिदाहे च सद्यः संचयनं भवेत्।' नागरखण्डे—'त्रीणि संचयनस्यार्थे तानि वै शृणु साम्प्रतम्। यत्र स्थाने भवेन्मृत्युस्तत्र श्राद्धं प्रकल्पयेत्॥ एकोद्दिष्टं ततो मार्गे विश्रामो यत्र कारितः। ततः संचयनस्थार्थे तृतीयं श्राद्धमिष्यते॥' इति।

५. मरीचिः—'प्रथमेऽह्नि तृतीये च सप्तमे दशमे तथा। ज्ञातिभिः सह भोक्तव्यमेतत्प्रेतेषु दुर्लभम्॥ ब्राह्मे—'आशौचमध्ये यत्नेन भोजयेच्च स्वगोत्रजान्।' विष्णुपुराण में दिन में ही भोजन करना कहा है—'दिवा चैव तु भोक्तव्यममांसं मनुजर्षभ।' पारस्कर ने भी कहा है—'क्रीत्वा लब्ध्वा वा दिवाऽन्नमश्नीयुः' इति।

भोक्तव्यं तच्च दिवैव। 'भोजनं मृन्मयेषु पर्णपुटकेषु वा कार्यं न तु धातुपात्रेषु।

अस्थिसंचयन को तो मन्त्रसहित अग्निदाह के दिन से आरम्भ कर पहले, दूसरे, तीसरे चौथे, सातवें, या नौवें दिन गोत्रजों के साथ अपने-अपने सूत्रों में कहे प्रकार से करना चाहिये। उसमें द्विपाद-त्रिपाद-नक्षत्र और कर्ता का जन्मनक्षत्र त्याज्य है। सम्भव हो तो शनि रवि मंगलवार का त्याग करे। पालाशदाह और अस्थिदाह में तुरन्त अस्थिसंचयन करे। अस्थियों को गङ्गाजल में या दूसरे तीर्थ में फेंके। उसकी विधि कहूँगा। अथवा वन में किसी पेड़ की जड़ में खोद कर गाड़ दे। दूसरे कुल की अस्थियों को लाकर चान्द्रायण करे। दया से दूसरे कुल की भी अस्थि लाने में महापुण्य होता है। अस्थियों का कुत्ता, सूअर और शूद्र आदि से स्पर्श होने पर पञ्चगव्य और शालग्राम की तुलसी के जल से प्रोक्षण करे। आशौच के मध्य में अपने गोत्रजों के साथ भोजन करे, वह दिन में ही। भोजन मिट्टी के पात्र में या पत्ते के दोने में करे, धातु के पात्र में नहीं।

अथ दशाहकृत्यम्

दाहदिनादारभ्य दशपिण्डा दशदिनमध्ये दर्भास्तीर्णभूमावमन्त्रकं देयाः। क्षत्रियादीनां नवपिण्डा नवदिनान्तं दशमपिण्डस्त्वाशौचान्त्यदिने[2]। प्रथमेऽहनि यो देशो यश्च कर्ता यच्च तण्डुलादिद्रव्यं यच्चोत्तरीयशिलापाकपात्रादि [3]तदेव दशाहान्तम्। एतदन्यतमव्यत्यये यतो व्यत्ययस्ततः पुनरावृत्तिः। शिलाविपर्ययेऽपि घटस्फोटादेर्नावृत्तिरित्युक्तेर्लौकिकशिलाग्रहणम्। तेन पिण्डदानतिलाञ्जल्यादिकस्यैवावृत्तिर्न दाहस्य। केचिदाचार्यविपर्ययेऽप्यावृत्तिमाहुः।

दाह के दिन से आरम्भ कर दस पिण्ड दस दिन के बीच में भूमि में कुश बिछा कर विना मन्त्र के देवे। क्षत्रियादि को नौ पिण्ड नौ दिन तक और दसवां पिण्ड तो आशौच के अन्तिम दिन

---

१. मदनरत्न में हारीत का वचन है—'पाणिषु मृन्मयेषु पर्णपुटकेषु वाश्नीरन्' शङ्ख ने आशौच में त्याज्य बतलाया है—'दानं प्रतिग्रहो होमः स्वाध्यायः पितृकर्म च। प्रेतपिण्डक्रियावर्ज्यमाशौचे विनिवर्तते॥' विष्णु ने आशौच के अन्त्य दिन का कर्तव्य बतलाया है—'आशौचान्ते तिलकल्कैः स्नाता गृहं प्रविशेयुः।' आदिपुराणे—'आदौ वस्त्रं च प्रक्षाल्य तेनैवाच्छादितैस्ततः। कर्तव्यं तैः सचैलं तु स्नानं सर्वमलापहम्॥' आश्वलायनः—'सव्यावृतो व्रजन्त्यनीक्षमाणा यत्रोदकमवहद् भवति तत्प्राप्य सकृदुन्मज्ज्यैकाञ्जलिमुत्सृज्य तस्य गोत्रं नाम गृहीत्वा'। प्रचेता ने प्रतिदिन तीन अंजलिदान बतलाया है—'त्रिः प्रसेकं कुर्युः प्रेतस्तृप्यतु' इति। तथा—'दिने दिनेऽञ्जलीन् पूर्णान् प्रदद्यात्प्रेतकारणात्। तावद् वृद्धिश्च कर्तव्या यावत्पिण्डः समाप्यते॥' एकवृद्धित्रिकवृद्धिर्वेत्यर्थः।

२. यद्यपि हेमाद्रि में पारस्कर की उक्ति है—'ब्राह्मणे दश पिण्डास्तु क्षत्रिये द्वादश स्मृताः। वैश्ये पञ्चदश प्रोक्ताः शूद्रे त्रिंशत्प्रकीर्तिताः॥' फिर भी उन्हीं के—'प्रेतेभ्यः सर्ववर्णेभ्यः पिण्डान् दद्याद्दशैव तु।' इस वचन से सभी वर्णों के दस पिण्ड ही हैं। ब्रह्म और पद्मपुराण में—'जात्युक्ताशौचतुल्यांस्तु वर्णानां क्वचिदेव हि। देशधर्मान् पुरस्कृत्य प्रेतपिण्डान् वपन्त्यपि॥' ऐसा कह कर बतलाया है—'देयस्तु दशमः पिण्डो राज्ञां वै द्वादशेऽहनि। वैश्यानां त्रै पंचदशे देयस्तु दशमस्तथा॥ शूद्रस्य दशमः पिण्डो मासे पूर्णेऽह्नि दीयते।' इति।

३. शुनःपुच्छः—'फलमूलैश्च पयसा शाकेन च गुडेन च। तिलमिश्रं तु दर्भेषु पिण्डं दक्षिणतो हरेत्॥ तूष्णीं प्रसेकं पुष्पं च धूपं दीपं तथैव च। शालिनां सक्तुभिर्वाऽपि शाकैर्वाऽप्यथ निर्वपेत्॥ प्रथमेऽहनि यद्द्रव्यं तदेव स्याद्दशाहिकम्।' इति।

में देना चाहिये। पहले दिन जो देश हो, जो कर्ता हो, जो चावल आदि द्रव्य हो, जो उत्तरीय-शिला-पाकपात्र आदि हो वही सब दशाहपर्यन्त होना चाहिये। इनमें से जो किसी एक के व्यत्यय होने पर जहाँ से व्यत्यय हो वहाँ से फिर आवृत्ति करे। शिला के विपर्यय में भी घटस्फोट आदि की आवृत्ति नहीं होती, इस उक्ति से लौकिक शिला का ग्रहण करे। इससे पिंडदान और तिलाञ्जलि आदि की आवृत्ति होती है, दाह की नहीं। कुछ लोग आचार्य के विपर्यय में भी आवृत्ति कहते हैं।

अथ मुख्यकर्तृभिन्नेनारब्धे पिण्डादिके विचारः

यत्र पुत्रादिमुख्यकर्तुरसन्निधानादमुख्याधिकारिणा पिण्डदानक्रियाऽऽरब्धा तत्र मध्ये पुत्रादिसन्निधानेऽप्यमुख्यकर्त्रैव दशाहान्ता क्रिया समापनीया। एकादशाहादिकं तु पुत्रादिमुख्येनैव। समन्त्रकदाहमात्रेऽन्येन कृते तु पिण्डदानादिदशाह-कृत्यं सन्निकृष्टमुख्येनैव कार्यमिति मिताक्षरादयः।

जहाँ पुत्र आदि मुख्य कर्ता के समीप में नहीं रहने से मुख्य से भिन्न अधिकारी ने पिण्ड-दान क्रिया का आरम्भ कर दिया हो और इसके बीच में पुत्र आदि के आ जाने पर भी अमुख्य कर्ता ही दस दिन की क्रिया सम्पन्न करे। एकादशाह आदि तो मुख्य पुत्र आदि ही करे। दूसरे ने मन्त्रसहित दाहमात्र किया हो तो पिण्डदान आदि दशाह का कृत्य समीप में वर्तमान मुख्य ही को करना चाहिये, ऐसा मिताक्षरा का कथन है।

अन्ये तु—सगोत्रोऽसगोत्रो वा यः समन्त्रकदाहकर्ता स एव दशाहकृत्यं कुर्यादित्याहुः[1]। पत्न्याः कर्तृत्वे रजोदर्शने जाते सा तदन्ते कुर्यात्। कर्तुरस्वास्थ्येऽन्येन सर्वाः क्रियाः पुनः कार्याः।

दूसरे तो—सगोत्र या असगोत्र जो मन्त्रसहित दाह किया हो वही दशाह करे—ऐसा कहते हैं। स्त्री के कर्ता होने पर उसका रजोधर्म हो जाय तो वह स्त्री रजोधर्म के अन्त में दशाहकृत्य करे। कर्ता की अस्वस्थता में दूसरे को सब क्रिया फिर से करनी चाहिये।

अथ पिण्डद्रव्यादिविचारः

पिण्डद्रव्येषु तण्डुला मुख्याः, तदभावे फलमूलशाकतिलमिश्रसक्तवोऽपि। प्रेतश्राद्धेषु पितृशब्दस्वधाशब्दानुशब्दाः पुष्पधूपदीपदानादौ मन्त्राश्च न वाच्याः। त्र्यहाशौचे पर्णशरदाहादौ प्रथमे दिने एकः पिण्डः द्वितीये चत्वारः तृतीते पञ्चेति[2] क्रमो बोध्यः।

पिण्ड के द्रव्यों में चावल मुख्य है, उसके न रहने पर फल, मूल, साग और तिलमिश्रित सत्तू भी है। प्रेतश्राद्धों में पितृशब्द, स्वधाशब्द, अनुशब्द और पुष्प-धूप-दीप-दान आदि में मन्त्र नहीं कहे। तीन दिन के आशौच वाले पर्णशरदाह आदि में प्रथम दिन एक पिण्ड, दूसरे दिन चार और तीसरे दिन पांच, यही क्रम जानना चाहिये।

---

१. वायवीये—'असगोत्रः सगोत्रो वा यदि स्त्री यदि वा पुमान्। यश्चाग्निदाता प्रेतस्य पिण्डं दद्यात् स एव हि॥' इति।

२. सद्यःशौच और त्र्यहाशौच में पिण्डदान का क्रम यों है—'सद्यःशौचे प्रदातव्याः सर्वेऽपि युगपत्तथा। त्र्यहाशौचे प्रदातव्यः प्रथमेऽह्न्येक एव हि॥ द्वितीयेऽहनि चत्वारस्तृतीये पञ्च चैव हि।' शातातपः—'आशौचस्य ह्रासेऽपि पिण्डान् दद्याद्दशैव तु।' इति।

पुत्रेण पर्णशरदाहे कृते तस्य दशाहाशौचात्तेन त्र्यहमध्ये पिण्डसमाप्तिर्न कार्या। [1]शिरस्त्वाद्येनपिण्डेन प्रेतस्य क्रियते सदा। द्वितीयेन तु कर्णाक्षिनासिकाः, तृतीयेन कण्ठस्कन्धभुजवक्षांसि, चतुर्थेन नाभिलिङ्गगुदानि, पञ्चमेन जानुजङ्घ-पादम्, षष्ठेन मर्माणि, सप्तमेन नाड्यः, अष्टमेन दन्तलोमानि, नवमेन वीर्यम्।

दशमेन तु पूर्णत्वं तृप्तता क्षुद्विपर्ययः।
जलं दशाहमाकाशे स्थाप्यं क्षीरं च मृन्मये॥

प्रेतात्र स्नाहीत्युदकम्, इदं पिबेति च क्षीरम्। इदं च कृताकृतम्।

ततः प्रेतोपकृतये दशरात्रमखण्डितम्।
कुर्यात्प्रदीपं तैलेन वारिपात्रं च मार्तिकम्॥
भोज्याद्भोजनकाले तु भक्तमुष्टिं च निर्वपेत्।
नामगोत्रेण संबुद्ध्या धरित्र्यां पितृयज्ञवत्॥
भूर्लोकात्प्रेतलोकं तु गन्तुं श्राद्धं समाचरेत्।
तत्पाथेयं हि भवति मृतस्य मनुजस्य च॥

पुत्र पर्णशर दाह करे तो उसको दस दिन का आशौच होने से तीन दिन के मध्य में वह पिण्ड की समाप्ति नहीं करे। प्रथम पिण्ड से प्रेत का सिर बनता है। दूसरे से तो कान-आंख-नाक, तीसरे से कण्ठ-कन्धा बाहु-छाती, चौथे से नाभि-लिङ्ग-गुदा, पांचवें से जानु-जङ्घा-पैर, छठे से मर्म, सातवें से नाड़ियाँ, आठवें से दाँत और रोम, नववें से वीर्य बनता है। दसवें से पूर्णत्व, तृप्ति तथा भूख का विनाश होता है। दस दिन तक आकाश में मिट्टी के पात्र में जल और दूध रक्खे हे प्रेत! 'अत्र स्नाहि' यह कह कर जल और 'इदं पिब' यह कहकर दूध दे। इसे करे या नहीं करे। इसके बाद प्रेत के उपकारार्थ दस रात तक तेल का अखंड दीप और मिट्टी के पात्र में जल देवे। भोजन काल में भोज्य से मुठ्ठी भर भात नाम-गोत्र के सम्बोधन से पिण्डपितृयज्ञ के समान भूमि पर रख दे। भूमिलोक से प्रेतलोक में जाने के लिये श्राद्ध करे। वह मृत मनुष्य का राह खर्च होता है।

अथ दशाहमध्ये दर्शपाते निर्णयः

पिण्डदानादौ प्रारब्धे यदि मध्ये दर्शप्राप्तिस्तदा मातापितृव्यतिरिक्तानां सर्वं दशाहकृत्यमाकृष्य दर्श एव समापनीयम्। मातापितृविषये तु त्र्यहमध्ये दर्शपाते नापकर्षः। त्रिरात्रात्परं दर्शपाते तु पित्रोरपि सर्वं दर्शे एव समापनीयमिति केचित्। अन्ये तु त्रिरात्रोर्ध्वमपि दर्शपाते औरसपुत्रेण पित्रोस्तन्त्रसमाप्तिर्न कार्येत्याहुः। अत्र देशाचाराद् व्यवस्थेति सिन्ध्वादयः। यदि दैवाद्-

१. ब्रह्मपुराणे—'शिरस्त्वाद्येन पिण्डेन प्रेतस्य क्रियते सदा। द्वितीयेन तु कर्णाक्षिनासिकाश्च समासतः॥ गलांसभुजवक्षांसि तृतीयेन यथाक्रमम्। चतुर्थेन तु पिण्डेन नाभिलिङ्गगुदानि च॥ जानू जङ्घे तथा पादौ पञ्चमेन तु सर्वदा। सर्वमर्माणि षष्ठेन सप्तमेन तु नाड्यः॥ दन्तलोमान्यष्टमेन वीर्यं तु नवमेन च। दशमेन तु पूर्णत्वं तृप्तता क्षुद्विपर्ययः॥' इति।

र्शात्पूर्वं पिण्डदानादि तन्त्रं नारब्धं तदा दाहमात्रे समन्त्रके जातेऽपि न दर्शे तन्त्रसमाप्तिनियम इति भाति ।

पिण्डदान आदि प्रारम्भ होने पर यदि मध्य में दर्श की प्राप्ति हो तब माता-पिता से अतिरिक्तों का दशाह कर्म को घटा करके दर्श को ही समाप्त करे । माता-पिता के विषय में तो तीन दिन के बीच में दर्श पड़े तो अपकर्ष नहीं करे । कोई कहते हैं कि--तीन रात के बाद दर्श पड़े तो माता-पिता का भी सब कृत्य दर्श में ही समाप्त करे । दूसरे तो कहते हैं कि—तीन रात के बाद भी दर्श पड़े तो उसमें औरसपुत्र को माता-पिता के तन्त्र की समाप्ति नहीं करनी चाहिये। इसमें देशाचार से व्यवस्था करने का निर्णयसिन्धु आदि का कथन है। यदि दैववशात् पहले पिण्डदानादि तन्त्र का आरम्भ न किया हो तब मन्त्रसहित दाहमात्र के हो जाने पर भी दर्श में तन्त्र की समाप्ति का नियम नहीं है, ऐसा प्रतीत होता है।

दर्शोत्तरमेव तन्त्रारम्भसमाप्तिसम्भवेन 'द्विरैन्दवे' तु कुर्वाणः पुनः शावं समश्नुते' इत्युक्तदोषाप्रसक्तेः । एवं दर्शेऽपकृष्य तन्त्रसमाप्तावप्यग्निपिण्डदातुर्दशाहमाशौचमस्त्येव । पुत्रादेः सपिण्डस्य तु सुतराम् । दशाहं प्रेतपिण्डान्प्रदायास्नात्वा भुक्तावसपिण्डस्य त्रिरात्रोपवासः सपिण्डस्योपवास एकः, मत्या द्विगुणम् । प्रेतकृत्यं कुर्वता संचयनादर्वाक् स्त्रीसङ्गे कृते चान्द्रायणम् , ऊर्ध्वं कृच्छ्रत्रयम् । अन्येषामाशौचिनां संचयनादर्वाक् त्रिरात्रं तदुत्तरमेकोपवासः ।

दर्श के बाद ही तन्त्र का आरम्भ और समाप्ति होने से दर्श में दो बार श्राद्ध करने वाला पुनः शवकर्म को प्राप्त करता है, इस उक्ति से उक्त दोष की प्रसक्ति नहीं होगी। इसी प्रकार दर्श में भी अपकर्ष से तन्त्र की समाप्ति में भी अग्नि और पिण्ड देने वाले को दस दिन का आशौच है ही। पुत्र आदि सपिण्ड को तो सुतरां दस दिनका आशौच है। दस दिन तक प्रेत को पिण्ड देकर विना स्नान के भोजन करने पर असपिण्ड को तीन रात का उपवास और सपिण्डको एक उपवास है, जानकर भोजन करने में दूना है। प्रेत कृत्य करने वाले को संचयन के पहले स्त्रीप्रसंग करने पर चान्द्रायण और संचयन के बाद तीन कृच्छ्र व्रत करना चाहिये। अन्य आशौच वालों का अस्थि-संचयन के पूर्व त्रिरात्र, उसके बाद एक उपवास है।

अथ नवश्राद्धम्

प्रथमेऽह्नि तृतीये च पञ्चमे सप्तमे तथा ।
नवमैकादशे चैव तन्नवश्राद्धमुच्यते ॥

नवश्राद्धानि पञ्चाहुराश्वलायनशाखिनः ।
आपस्तम्बाः [2]षडित्याहुर्विभाषा त्वितरेषु हि ॥

---

१. यह पैठीनसि के वचन का उत्तरार्ध है, वचन का पूर्वार्ध यों है---'आद्येन्दावेव कर्तव्या प्रेतपिण्डोदकक्रिया ।' ऋष्यशृङ्गः—'आशौचमन्तरा दर्शो यदि स्यात्सर्ववर्णिनाम् । समाप्तिं प्रेततन्त्रस्य कुर्यादित्याह गौतमः ॥' गालवः—'पित्रोराशौचमध्ये तु यदि दर्शः समापतेत् । तावदेवोत्तरं तन्त्रं पर्यवस्येत् त्र्यहात्परम् ॥' कालादर्शे—'दर्शो दशाहमध्ये स्यादूर्ध्वं तन्त्रं समापयेत् । त्रिरात्रादुत्तरं पित्रोर्मृताविति विनिश्चयः ॥' इत्यादि मूल वचन अन्य-निबन्धों में देखें।

२. भविष्य में कहा है—'नव सप्त विशां राज्ञां नवश्राद्धान्यनुक्रमात् । आद्यन्तयोर्वर्णयोश्च षडित्याहुर्मनीषिणः ॥' नागरखण्डे—'पञ्चमे सप्तमे तद्वदष्टमे नवमे तथा । दशमैकादशे चैव नवश्रा-

पञ्चपक्षे एकादशाहे नवश्राद्धं न कार्यम्। एतान्येव विषमश्राद्धानीत्युच्यन्ते। नवश्राद्धानि दशाहान्तर्नवमिश्रं तु वत्सर इत्यन्यत्र।

अकृत्वा तु नवश्राद्धं प्रेतत्वान्नैव मुच्यते।
नवश्राद्धं त्रिपक्षं च षाण्मासं मासिकानि च।
न करोति सुतो यस्तु तस्याधः पितरो गताः॥

जो श्राद्ध पहले, तीसरे, पांचवें, सातवें, नौवें और ग्यारहवें दिन किया जाता है, वह नव श्राद्ध कहलाता है। आश्वलायन शाखा वाले पांच नव श्राद्ध कहते हैं, आपस्तम्ब छ कहते हैं, अन्य के मत में विकल्प है। पांच वाले पक्ष में एकादशाह में नव-श्राद्ध नहीं करे। इन्हें ही विषम श्राद्ध कहते हैं। दस दिन के भीतर नवश्राद्ध और वर्ष में नवमिश्र श्राद्ध होते हैं, ऐसा अन्यत्र कहा है। विना नवश्राद्ध किये प्रेतत्व से मुक्ति नहीं होती। जो पुत्र नव श्राद्ध, त्रिपाक्षिक श्राद्ध, षाण्मासिक श्राद्ध और मासिक श्राद्ध नहीं करता, उसके पितृगण नरक में जाते हैं।

अथ प्रेतश्राद्धे वर्ज्याः

अर्घ्यहीनमधूपं च गन्धमाल्यविवर्जितम्।
नवश्राद्धममन्त्रं स्यादवनेजनवर्जितम्॥
आशिषो द्विगुणा दर्भा जपाशीः स्वस्तिवाचनम्।
पितृशब्दः स्वसंबन्धः शर्मशब्दस्तथैव च॥
पात्रालम्भोऽवगाहश्च उल्मुकोल्लेखनादिकम्।
तृप्तिप्रश्नश्च विकिरः शेषप्रश्नस्तथैव च॥
प्रदक्षिणा विसर्गश्च सीमान्तगमनं तथा।
अष्टादशपदार्थाश्च प्रेतश्राद्धे विवर्जयेत्॥

नव-श्राद्ध—अर्घ्य, धूप, गन्ध, माला, मन्त्र और अवनेजनरहित होता है। आशीर्वाद, दुगुने कुश, जप, आशीः, स्वस्तिवाचन, पितृशब्द, अपना सम्बन्ध, शर्मशब्द, पात्रालम्भन, अवगाहन, उल्मुक, उल्लेखन आदि, तृप्तिप्रश्न, विकिर, शेषप्रश्न, प्रदक्षिणा, विसर्जन तथा सीमोल्लङ्घन ये अठारह पदार्थ प्रेतश्राद्ध में त्याज्य हैं।

तिलोसीति मन्त्रे स्वधानमःपितृशब्दा न वाच्याः, किंतु प्रेतशब्दोहेन तूष्णीं वा तिलावपनम्। तूष्णीमर्घ्यदानम्। अमुष्मै स्वाहेति प्रेतनाम्ना पाणिहोमः। बह्वृचानां सर्वैकोद्दिष्टेष्वग्नौकरणमस्त्येव। अन्यशाखिनां तु तन्निषेधः। नाम्नैकः पिण्डः निनयनमन्त्रे ऊहः। अनुमन्त्रणादिकं त्वमन्त्रकम्। अभिरम्यतामिति विसर्जनम्। एवं नवश्राद्धवर्ज्यैकोद्दिष्टेषु। नवश्राद्धं त्वमन्त्रकं सर्वमिति नारायणवृत्तिः।

द्धानि तानि च॥' कात्यायनः—'चतुर्थे पञ्चमे चैव नवमैकादशे तथा। यदत्र दीयते जन्तोस्तन्नवश्राद्धमुच्यते॥' इति।

तिलोसि इस मन्त्र में स्वधा, नमः और पितृशब्द नहीं कहे, किन्तु प्रेत शब्द का ऊह करके मौन होकर तिलावपन करे। विना मन्त्र के अर्घ्यदान करे। अमुष्मै स्वाहा इससे प्रेत के नाम से पाणि-होम करे। बह्वृचों के यहाँ सब एकोद्दिष्टों में अग्नौकरण है ही। दूसरे शाखा वालों को तो उसका निषेध है। नाम से एक पिंड और निनयन मन्त्र में ऊह है। अनुमन्त्रण आदि तो विना मन्त्र का होता है। 'अभिरम्यताम्' इससे विसर्जन होता है। इसी तरह नवश्राद्ध को छोड़कर एकोद्दिष्टों में जाननी चाहिये। नवश्राद्ध तो सम्पूर्ण विना मन्त्र का होता है, ऐसा नारायणवृत्ति में है।

उत्तानं स्थापयेत्पात्रमेकोद्दिष्टे सदा बुधः।
न्युब्जं तु पार्वणे कुर्यात्तस्योपरि कुशान् न्यसेत् ॥

सपिण्डीकरणान्तानि प्रेतश्राद्धानि लौकिकाग्नावित्याश्वलायनमतम्। नवश्राद्धानि संभवेऽन्नेन कुर्यादन्यथामान्नेन। विघ्ने तु [1]'नवश्राद्धं मासिकं च यद्यदन्तरितं भवेत्तत्तदुत्तरश्राद्धेन सहतन्त्रेण कार्यम्। शावे आशौचान्तरप्राप्तौ नवश्राद्धानि कुर्यादेव।

एकोद्दिष्ट श्राद्ध में पात्र सदा उत्तान स्थापित करे। पार्वण में तो न्युब्ज(औंधकर) रक्खे और उसके ऊपर कुश रख दे। आश्वलायन का मत है कि सपिण्डीकरण तक प्रेतश्राद्ध लौकिक अग्नि में करे। नव-श्राद्ध हो सके तो पक्वान्न से करे नहीं तो आमान्न से। विघ्न हो जाने पर तो नव श्राद्ध और मासिक श्राद्ध यदि बीच में छूट जाय तो उन्हें आगे वाले उस-उस श्राद्ध के साथ तन्त्र से करे। मरणाशौच में दूसरे आशौच के प्राप्त होने पर नव-श्राद्धों को करे ही।

सहगमने तु—

नवश्राद्धानि भिन्नानि सपिण्डीकरणं पृथक्।
एक एव वृषोत्सर्गो गौरेका तत्र दीयते ॥

शूद्रस्यामन्त्रकं सर्वं द्विजवन्नाम्नैव कार्यमिति स्मृत्यर्थसारः। अत्र वयोधिकमरणे तत्कनिष्ठानां सपिण्डानां दशमेऽहनि मुण्डनं केचिदाहुः। मातापित्राचार्येषु मृतेषु नियमेन [2]'दशमेऽहनि मुण्डनम्। एवं भर्तरि मृते स्त्रिया अपि मुण्डननियमः।

सहगमन में तो विभिन्न नव श्राद्ध और सपिण्डीकरण पृथक्-पृथक् होते हैं। एक ही वृषोत्सर्ग और उसमें एक गौ दी जाती है। शूद्र का विना मन्त्र के द्विज के समान सब नाम से ही करे, ऐसा स्मृत्यर्थसार में है। कोई कहते हैं कि इसमें अधिक अवस्था वाले के मरने में उससे छोटे सपिण्डों का दसवें दिन मुण्डन करे। माता-पिता और आचार्य के मरने में नियम से दसवें दिन मुण्डन करे। इसी तरह पति के मरने में स्त्री को भी मुण्डन का नियम है।

---

१. निर्णयामृत में कण्व का वचन है—'नवश्राद्धं मासिकं च यद्यदन्तरितं भवेत्। तत्तदुत्तरसातन्त्र्यादनुष्ठेयं प्रचक्षते ॥' इति।

२. देवलः—'दशमेऽहनि सम्प्राप्ते स्नानं ग्रामाद्बहिर्भवेत्। तत्र त्याज्यानि वासांसि केशश्मश्रुनखानि च ॥' व्यासः—'आशौचान्त्यदिने क्षौरं जनन्यां च गुरौ मृते।' इति।

पुत्राणां सर्वेषां दाहकर्तुश्च दाहाङ्गभूतं प्रथमदिने दशमदिने च मुण्डनम्। अत्र देशाचाराद् व्यवस्था। अत्र रात्रिमृतस्य रात्रौ दाहेऽपि [1]प्रातरेव मुण्डनमित्युक्तम्। ततो [2]दशमेऽहनि पूर्ववस्त्रशुद्धिं गृहशुद्धिं च कृत्वा गौरसर्षपतिलकल्केन सशिरःस्नानं कृत्वा नववस्त्रे परिधाय परिहितवस्त्राणि प्रेतवस्त्राणि चान्त्यजेभ्य आश्रितेभ्यश्च दत्त्वा सुवर्णादीनि मङ्गलवस्तूनि स्पृष्ट्वा गृहं प्रविशेत्।

सभी पुत्रों और दाहकर्ता को पहले दिन और दसवें दिन दाह का अंगभूत मुण्डन करना चाहिये। इसमें देशाचार से व्यवस्था करे। इसमें रात में मरे का रात में दाह करने पर भी प्रातः काल ही मुण्डन करे, ऐसा पहले कहा है। इसके बाद दसवें दिन पूर्व वस्त्र की शुद्धि और घर की शुद्धि करके पीली सरसो और तिल की खरी से सिरसहित स्नान करके नया वस्त्र पहन कर पहने हुए वस्त्रों तथा मृतक के वस्त्रों को अन्त्यजों और अपने आश्रितों को देकर सुवर्ण आदि मङ्गल वस्तुओं को स्पर्श करके घर में प्रवेश करे।

अथ अस्थिक्षेपविधिः

तत्रादौ संचयनदिनेऽस्थिस्थापनप्रकारः—

प्रेतस्थाने बलिं दत्त्वा क्षीरेणाभ्युक्ष्य वाग्यतः।
प्रेतस्यास्थीनि गृह्णीयात्प्रधानाङ्गोद्भवानि च॥
पञ्चगव्येन संस्नाप्य क्षौमवस्त्रेण वेष्टय च।
प्रक्षिप्य मृन्मये भाण्डे नवे साच्छादने शुभे॥
अरण्ये वृक्षमूले वा शुद्धे संस्थापयेदथ।
सूक्ष्माण्यस्थीनि तद्भस्म नीत्वा तोये विनिक्षिपेत्॥
ततः संमार्जनं भूमेः कर्तव्यं गोमयाम्बुभिः।
पूजां च पुष्पधूपाद्यैर्बलिभिः पूर्ववच्चरेत्॥
तत्स्थानाच्छनकैर्नीत्वा तीर्थे वा जाह्नवीजले।
कश्चिच्च प्रक्षिपेत्पुत्रो दौहित्रो वा सहोदरः॥

---

१. संग्रहे—'रात्रौ दग्ध्वा तु पिण्डान्तं कृत्वा वपनवर्जितम्। वपनं नेष्यते रात्रौ श्वस्तनी वापनक्रिया॥' इति।

२. मदनरत्न में विष्णु और हारीत का वचन है—'आशौचान्ते कृतश्मश्रुकर्माणस्तिलकल्कैः सर्षपकल्कैर्वा स्नाताः शुक्लवाससो गृहं प्रविशेयुस्तत्र शान्तिकं कृत्वा ब्राह्मणपूजनं कुर्युः'। ब्राह्मे—'यस्य यस्य तु वर्णस्य यद्यस्यात्पश्चिमं त्वहः। स तत्र वस्त्रशुद्धिं च गृहशुद्धिं करोत्यपि॥ समाप्य दशमं पिण्डं प्रेतस्पृष्टे तु वाससी। अन्त्यानामाश्रितानां च त्यक्त्वा स्नानं करोत्यपि॥ श्मश्रुलोमनखानां च यत्त्याज्यं तज्जहात्यपि। गौरसर्षपकल्केन तिलकल्केन संयुतम्॥ शिरःस्नानं ततः कृत्वा तोयेनाचम्य वाग्यतः। वृषभं गां सुवर्णं च स्पृष्ट्वा शुद्धो भवेन्नरः॥' प्रेतकृत्य के बाद मनु ने शुद्ध्यर्थ स्पृश्य-पदार्थ बतलाया है—'विप्रः शुद्ध्यत्यपः स्पृष्ट्वा क्षत्रियो वाहनायुधम्। वैश्यः प्रतोदं रश्मीन् वा यष्टिं शूद्रः कृतक्रियः॥' इति।

उसमें पहले अस्थिसंचयन के दिन अस्थि रखने का प्रकार यह है—प्रेत के स्थान में बलि देकर दूध से धोकर मौन होकर प्रेत के प्रधान अंगों की अस्थियों को लेकर पञ्चगव्य से नहला कर रेशमी वस्त्र से लपेट कर ढँकने के साथ मिट्टी के नये पात्र में रखकर जंगल में पेड़ के नीचे शुद्ध स्थान में रख दे। छोटी हड्डियां और उनका भस्म लेकर जल में छोड़ दे। इसके बाद गोबर और जल से अस्थि-भूमि को शुद्ध करे और पुष्प धूप आदि तथा बलि से पहले के समान पूजा करे। उस स्थान से धीरे से लेकर तीर्थ में या गङ्गा के जल में कोई पुत्र, दौहित्र या सहोदर फेंक दे।

मातुः कुलं पितृकुलं वर्जयित्वा नराधमः।
अस्थीन्यन्यकुलस्थस्य नीत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥
गङ्गातोयेषु यस्यास्थि क्षिप्यते शुभकर्मणः।
न तस्य पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात्सनातनात् ॥
अस्तंगते गुरौ शुक्रे तथा मासे मलिम्लुचे।
गङ्गायामस्थिनिक्षेपं न कुर्यादिति गौतमः ॥
दशाहान्तरस्थिप्रक्षेपे तु नास्तादिदोषः।
दशाहाभ्यन्तरे यस्य गङ्गातोयेऽस्थि मज्जति।
गङ्गायां मरणं यादृक् तादृक् फलमवाप्नुयात् ॥

मातृकुल और पितृकुल को छोड़कर जो नराधम दूसरे कुल वाले की अस्थि लेकर फेंकता है वह चान्द्रायण करे। जिस शुभकर्मा की अस्थि गङ्गा में फेंकी जाती है, उसका सनातन ब्रह्मलोक से पुनः आगमन नहीं होता। गौतम का कहना है कि गुरु और शुक्र के अस्त में तथा मलमास में अस्थि का गङ्गा में प्रक्षेप न करे। दस दिन के भीतर अस्थि के प्रक्षेप में तो अस्त आदि का दोष नहीं होता। दस दिन के भीतर गङ्गा में जिसकी अस्थि डुबाई जाती है उसको गङ्गा में मरने का जैसा फल है वैसा फल मिलता है।

अथ तीर्थेऽस्थिक्षेपं कर्तुं तत्पूर्वाङ्गविधिः

यत्रास्थीनि[1] निखातानि तां भूमिं सचैलस्नानपूर्वकं पृथग्गोमूत्रादिभिः प्रोक्षयेत्। तत्र गायत्र्या गोमूत्रेण, गन्धद्वारामिति गोमयेन, आप्यायस्वेति क्षीरेण, दधिक्राव्ण इति दध्ना, घृतं मिमिक्ष इति घृतेन। [2]उपसर्पेति चतसृणामृचां शंखः

१. ब्रह्माण्डपुराणे—'अस्थीनि मातापितृपूर्वजानां नयन्ति गङ्गामपि ये कथंचित्। सद्बान्धवस्यापि दयाभिभूतास्तेषां तु तीर्थानि फलप्रदानि ॥ स्नात्वा ततः पंचगव्येन सिक्त्वा हिरण्यमध्वाज्यतिलैश्च योज्यः। ततस्तु मृत्पिण्डपुटे निधाय पश्यन् दिशं प्रेतगणोपरूढाम्। नमोऽस्तु धर्माय वदेत् प्रविश्य जलं स मे प्रीत इति क्षिपेच्च ॥ उत्थाय भास्वन्तमवेक्ष्य सूर्यं स दक्षिणां विप्रमुखाय दद्यात्। एवं कृते प्रेतपुरःस्थितस्य स्वर्गे गतिः स्याच्च महेन्द्रतुल्या ॥' शौनकः—'शौनकोऽहं प्रवक्ष्यामि अस्थिक्षेपविधिं क्रमात्। आदौ ग्रामाद् बहिर्गत्वा स्नानं कुर्यात् सचैलकम् ॥ प्रोक्षयेत् पञ्चगव्येन भुवं मन्त्रैर्विचक्षणः।' इति।

२. शौनकः—'उपसर्पादिभिर्मन्त्रैः प्रार्थनं खननं तथा। मृत्तिकोद्धरणं चास्थ्नां ग्रहणं च यथाक्रमम् ॥' उपसर्पादि चार मन्त्रों से क्रम से भूमिप्रार्थन, भूखनन, मृदुद्धरण और अस्थिग्रहण करे।

पितरस्त्रिष्टुप् भूप्रार्थनखननमृदुद्धरणास्थिग्रहणेषु क्रमेण विनियोगः। ताभिर्ऋग्भिः क्रमेणास्थिग्रहणान्तानि कर्माणि कृत्वा स्वयं जलाशये गृह्योक्तविधिना स्नायात्।

जहाँ अस्थि गाड़ी गयी है उस भूमि को सवस्त्र स्नान करके गोमूत्र आदि से पृथक्-पृथक् प्रोक्षण करे। उसमें गायत्री पढकर गोमूत्र से, 'गन्धद्वारां' यह मन्त्र पढकर गोबर से, 'आप्यायस्व' यह मन्त्र पढकर दूध से, 'दधि क्राव्णो', यह मन्त्र पढकर दही से, 'घृतं मिमिक्षे' यह मन्त्र पढकर घी से प्रोक्षण करे। 'उंपसर्प' इन चार ऋचाओं का शङ्ख पितर देवता, त्रिष्टुप् छन्द, भूमिप्रार्थना, खनन मिट्टी का उद्धरण और अस्थियों के ग्रहण में क्रम से विनियोग है। उन ऋचाओं से क्रम से अस्थि ग्रहण पर्यन्त कर्मों को करके स्वयं जलाशय में गृह्य में कही विधि से स्नान करे।

ततोऽस्थिशुद्धिं[1] कुर्यात्। सा यथा—अस्थीनि स्पृष्ट्वैतोन्विन्द्रमिति त्र्यृचावृत्त्या पञ्चगव्यैः स्नात्वा स्पृष्ट्वैव दशस्नानानि कुर्यात्। तत्र गायत्र्यादिपञ्चमन्त्रैर्गोमूत्रगोमयक्षीरदधिसर्पिःस्नानानि कृत्वा देवस्यत्वेति कुशोदकेन, मानस्तोके इति भस्मना, अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते इति मृदा, मधुवाता इति मधुना, आपोहिष्ठेति शुद्धोदकेन च स्नायात्। एवं दशस्नानानि कृत्वाऽस्थ्नां कुशैर्मार्जनं कुर्यात्। तत्र मन्त्रः—अतो देवा इत्यृक्। अथ सप्तसूक्तानि—एतोन्विन्द्रं० ३, शुची वो० ३, नतमंहो न० ८, इति वा इति० १३, स्वादिष्ठया म० १०, ममाग्ने वर्चो० १०, कद्रुद्राय प्र० ९।

इसके बाद अस्थि की शुद्धि करे। वह शुद्धि इस प्रकार है—अस्थि को स्पर्श कर 'एतोन्विन्द्रं' इन तीन ऋचा की आवृत्ति करके पञ्चगव्य से स्नान कर स्पर्श किये हुए ही दस स्नानों को करे। उसमें गायत्री आदि पांच मन्त्रों को पढकर गोमूत्र-गोबर-दूध-दही-घी से स्नानों को करके 'देवस्यत्वा' यह मन्त्र पढकर कुशोदक से, 'मानस्तोके' यह मन्त्र पढकर भस्म से, 'अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते' यह मन्त्र पढकर मिट्टी से, 'मधुवाता' यह मन्त्र पढकर मधु से और 'आपोहिष्ठा' यह मन्त्र पढकर शुद्ध जल से नहाये। इस तरह दस स्नानों को करके अस्थियों का कुश से मार्जन करे। उसमें मन्त्र ये हैं—'अतोदेवा' यह ऋचा है। सात सूक्त हैं—एतोन्विन्द्रं० ३, शुची वो० ३, नतमंहो न० ८, इति वा इति० १३, स्वादिष्ठया म० १०, ममाग्ने वर्चो० १०, कद्रुद्राय प्र० ९।

ततो यदीयान्यस्थीनि तस्य कृतसपिण्डीकरणस्य पार्वणविधिना श्राद्धमस्थिप्रक्षेपाङ्गभूतं हिरण्येन कुर्यात् सक्तुना च पिण्डदानम्। दशाहान्तरस्थिप्रक्षेपकरणे एकोद्दिष्टविधिना श्राद्धम्। ततस्तिलतर्पणं कृत्वा पञ्चगव्यपञ्चामृतशुद्धोदकैरस्थीनि प्रक्षाल्य यक्षकर्दमेनालिप्य पुष्पैः प्रपूज्याऽजिनकम्बलदर्भभूर्जपत्रशाणपत्रपट्टवस्त्रताडपत्राणां क्रमेण [2]सप्तधा संवेष्ट्य ताम्रसम्पुटे स्थापयेत्।

---

१. शौनकः—'स्नात्वाऽस्थिशुद्धिं कुर्वीत एतोन्विन्द्रेति सूक्ततः। स्पृष्ट्वा स्पृष्ट्वा ततः स्नानं पञ्चगव्येन शुद्धयति॥ दश स्नानानि कुर्वीत तत्तन्मन्त्रैर्विचक्षणः। गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्॥ भस्म मृन्मधुवारीणि मन्त्रतस्तानि वै दश। कुशैः सम्मार्जयेदस्थीन्यतोदेवेति मन्त्रतः॥ एतोन्विन्द्रं शुचीवेति न.त मंह इतीति च। पावमानीर्ममाग्ने च रुद्रसूक्तं यथाक्रमम्॥ हेमश्राद्धं ततः कुर्यात् पितॄनुद्दिश्य यत्नतः। पिण्डदानं प्रकुर्वीत ततश्च तिलतर्पणम्॥' इति।

२. शौनकः—'अजिनं कम्बलं दर्भा गोकेशाः शाण एव च। भूर्जपत्रं ताडपत्रं सप्तधा

तदनन्तर जिसकी हड्डी है उसका सपिण्डीकरण कर लिया गया हो तो उसके अस्थिप्रक्षेप का अङ्गभूत पार्वण विधि से सुवर्ण से श्राद्ध करे और सत्तू से पिण्डदान। दशाह के भीतर अस्थिप्रक्षेप करने में एकोद्दिष्ट विधि से श्राद्ध करे। इसके बाद तिल से तर्पण करके पञ्चगव्य, पंचामृत तथा शुद्ध जल से अस्थियों का प्रक्षालन और यक्षकर्दम से लेप करके फूलों से पूजकर मृगचर्म, कम्बल, कुश, भोजपत्र, शाणपत्र, पट्टवस्त्र और ताड़पत्र से क्रमशः सात प्रकार से लपेट कर तांबे के सम्पुट में रक्खे।

तत्र यक्षकर्दमलक्षणम्—द्वादशकर्षं चन्दनं कुङ्कुमं च षट्कर्षः कर्पूरश्चतुः-कर्षा कस्तूरी चैतेषां मेलनाद्यक्षकर्दमः। ततोऽस्थिषु हेमरौप्यखण्डानि मौक्तिकप्रवालनीलमणींश्च [1]प्रक्षिप्य स्वसूत्रोक्तविधिना स्थण्डिलाग्निप्रतिष्ठादि कृत्वाऽष्टोत्तरशतं तिलाज्याहुतीर्जुहुयात्। उदीरतां शंखः पितरस्त्रिष्टुप् अस्थिप्रक्षेपाङ्गतिलाज्यहोमे विनियोगः। उदीरतामिति सूक्तस्य चतुर्दशऋग्भिः प्रत्यृचमाहुतिरित्येवं सूक्तस्य सप्तावृत्तिभिरवशिष्टदशाहुतीः प्रथमऋगावृत्त्येत्येवमष्टोत्तरशतं तिलाहुतीरष्टोत्तरशतमाज्याहुतीश्च जुहुयात्। सवेष्टनास्थिसमुच्चययुतं ताम्रसम्पुटमादाय तीर्थं गच्छेत्।

उसमें यक्षकर्दम का लक्षण यह है—चन्दन और कुङ्कुम बारह कर्ष (तोला) छ कर्ष कपूर, चार कर्ष कस्तूरी, इन सबको मिलाने से यक्षकर्दम बनता है। इसके बाद अस्थियों में सोना-चांदी के टुकड़े, मोती-मूँगा-नीलम डाल कर सूत्र में कही विधि से स्थण्डिल में अग्निस्थापन आदि करके एक सौ आठ तिल-घृत की आहुतियों से होम करे। 'उदीरतां' इस सूक्त का शंख-पितर देवता त्रिष्टुप् छन्द अस्थिप्रक्षेप के अङ्ग तिल-घृत के होम में विनियोग है। 'उदीरताम' इस सूक्त की चौदह ऋचाओं से प्रति ऋचा से आहुति होती है, इस तरह सूक्त की सात आवृत्ति से शेष दस आहुतियों को प्रथम ऋचा की आवृत्ति से करे, इस प्रकार एक सौ आठ तिल की आहुतियों से और एक सौ आठ घी की आहुतियों से होम करे। वेष्टनसहित अस्थिराशि से युक्त तामे के सम्पुट को लेकर तीर्थ में जाय।

तत्र नियमाः—मूत्रपुरीषोत्सर्गकाले आचमनकाले च नास्थीनि धारयेत्। शूद्रयवनान्त्यजादिकां स्वहीनजातिमस्थिधारणकाले न स्पृशेदिति काशीखण्डे। ततस्तीर्थं प्राप्य तीर्थप्राप्तिनिमित्तकं स्नानादि विधायास्थीनि स्नापयित्वा 'अमुकगोत्रस्यामुकशर्मणो ब्रह्मलोकादिप्राप्तयेऽमुकतीर्थेऽस्थिप्रक्षेपमहं करिष्ये' इति संकल्प्य पलाशपर्णपुटे पञ्चगव्येनास्थीन्यासिच्य हिरण्यशकलमाल्यघृततिलमिश्रितास्थीनि मृत्पिण्डे निधाय दक्षिणां दिशमवेक्षमाणो नमोस्तु धर्मायेति वदंस्तीर्थे

वेष्टनं स्मृतम्॥' व्यासः—'पट्टवस्त्रं च कौशेयं माञ्जिष्ठं श्वेतवस्त्रकम्। कम्बलं शाणपट्टं च अजिनं च तथोत्तरम्॥' इति।

१. शौनकः—'हैमं च मौक्तिकं रौप्यं प्रवालं नीलकं तथा। निक्षिपेदस्थिमध्ये तु शुद्धिर्भवति नान्यथा॥ ततो होमं प्रकुर्वीत तिलाज्येन विचक्षणः। उदीरतेति सूक्तेन हुनेदष्टोत्तरं शतम्॥ ततो गत्वा क्षिपेत्तीर्थे स्पर्शदोषो न विद्यते। मूत्रं पुरीषाचमनं कुर्वान्नास्थीनि धारयेत्॥' इति।

प्रविश्य नाभिमात्रजले स्थित्वा स मे प्रीतोस्त्वित्युक्त्वा तीर्थे क्षिपेत्। ततः स्नात्वा जलाद्बहिरागत्य सूर्यं दृष्ट्वा हरिं स्मृत्वा विप्राय यथाशक्ति रजतं दक्षिणां दद्यात्—'अमुकस्यास्थिक्षेपः कृतस्तत्साङ्गतार्थं रजतमिदं तुभ्यं संप्रददे' इति। इत्यस्थिप्रक्षेपप्रकारः।

उसमें नियम ये हैं—मूत्र-पुरीष के त्याग और आचमन काल में अस्थियों को धारण नहीं करे। अस्थिधारण के समय शूद्र, यवन और अन्त्यज आदि अपने से नीच जाति का स्पर्श नहीं करे, ऐसा काशीखण्ड में है। तदनन्तर तीर्थ में पहुंच कर तीर्थ-प्राप्ति-निमित्तक स्नान आदि करके अस्थियों को नहला कर 'अमुक गोत्र अमुक शर्मा के ब्रह्मलोक आदि प्राप्ति के लिये अमुक तीर्थ में मैं अस्थि का प्रक्षेप करूँगा' ऐसा संकल्प करके पलास के पत्ते के बने दोने में पञ्चगव्य से अस्थियों को सींचकर सोने के टुकड़े-माला-घी-तिलयुक्त अस्थियों को मिट्टी के पिण्ड पर रख कर दक्षिण दिशा की ओर देखता हुआ 'नमोस्तु धर्माय' ऐसा कहता हुआ तीर्थ में प्रवेश कर नाभि पर्यन्त जल में खड़ा होकर 'स मे प्रीतोऽस्तु' ऐसा कहकर तीर्थ में फेंक दे। इसके बाद नहाकर जल से बाहर आकर सूर्य को देखकर हरि का स्मरण कर ब्राह्मण को यथाशक्ति चाँदी की दक्षिणा दे—'अमुक का अस्थिप्रक्षेप किया है उसकी साङ्गता के लिए यह चान्दी की दक्षिणा आपको देता हूँ'। अस्थिप्रक्षेप का प्रकार समाप्त।

अथैकादशाहकृत्यम्

'एकादशाहे प्रातरुत्थाय गृहानुलेपनं कृत्वा स्पृष्टसर्ववस्त्रक्षालनपूर्वकं सर्वसपिण्डानां सचैलस्नानान्ते संध्यापञ्चमहायज्ञादिकर्मणि शुद्धिः। एकादशाहे सङ्गवकाले स्नानाच्छुद्धिरिति केचित्। एकादशाहे पुत्रादेः कर्तुरपि पञ्चमहायज्ञाद्यधिकारः। सपिण्डानां दर्शवार्षिकश्राद्धेष्वप्यधिकारः। नान्दीश्राद्धमात्रं चतुःपुरुषसपिण्डैः सपिण्डीकरणात्प्राङ् न कार्यम्। ततो दशाहकर्मकारी अमुख्यः कर्ता मुख्यो वा पुत्रादिः कर्ता वृषोत्सर्गाद्येकादशाहिकं सर्वं कर्म कुर्यात्।

ग्यारहवें दिन प्रातःकाल उठकर घर को लीप-पोतकर छुए हुए सब वस्त्रों को धोकर सब सपिण्डों की वस्त्रसहित स्नान के अन्त में संध्या और पञ्चमहायज्ञ कर्म में शुद्धि होती है। कुछ लोग कहते हैं कि एकादशाह में सङ्गव काल में स्नान से शुद्धि होती है। एकादशाह में पुत्र आदि और कर्ता को भी पञ्चमहायज्ञ आदि का अधिकार है। सपिण्डों को दर्श और वार्षिक श्राद्धों में भी अधिकार है। केवल नान्दीश्राद्ध चार पुरुष के सपिण्डों को सपिण्डीकरण से पूर्व नहीं करना चाहिये। इसके बाद दशाह कर्म करने वाला अमुख्य या मुख्य पुत्र आदि कर्ता वृषोत्सर्ग आदि एकादशाह के सब कर्म करे।

---

१. देवलः—'अघाहःसु निवृत्तेषु सुस्नाताः कृतमङ्गलाः। आशौचाद् विप्रमुच्यन्ते ब्राह्मणान् स्वस्ति वाच्य च ॥' क्षत्रियादि को ग्यारहवें दिन आशौच में भी श्राद्ध करना चाहिये, जैसा शंख का वचन है—'आद्यं श्राद्धमशुद्धोऽपि कुर्यादेकादशेऽहनि। कर्तुस्तात्कालिकी शुद्धिरशुद्धः पुनरेव सः ॥' पैठीनसिः—'एकादशेऽह्नि यच्छ्राद्धं तत्सामान्यमुदाहृतम्। चतुर्णामपि वर्णानां सूतकं तु पृथक्पृथक् ॥' इति।

अथ वृषोत्सर्गः

एकादशाहे प्रेतस्य यस्य नोत्सृज्यते वृषः ।
प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि ॥

अत्र स्वयमेव सर्वं कुर्यान्न तु काम्यवृषोत्सर्गवदाचार्यवरणम् । अयं [1]गृहे न कार्यः । अयं द्वादशाहेऽप्युक्तः । क्वचिन्मृताहेऽप्युक्तः । विषुवद्द्वितये चैव मृताहे बान्धवस्य चेति ।

वत्सराभ्यन्तरे पित्रोर्वृषस्योत्सर्गकर्मणि ।
वृद्धिश्राद्धं न कुर्वीत तदन्यत्र समारभेत् ॥

एकादशाह में जिस प्रेत के लिये सांढ नहीं छोड़ा जाता उसका प्रेतत्व सैकड़ों श्राद्ध करने पर भी स्थिर रहता है । इसमें स्वयं ही सब कर्म करे, काम्य वृषोत्सर्ग के समान आचार्य का वरण नहीं करे । यह घर में नहीं किया जाता । इसे द्वादशाह में भी करना कहा है । कहीं मृताह में भी कहा है । विषुव संक्रान्तियों में तथा बान्धव के मृताह में भी करे । वर्ष के भीतर माता-पिता के वृषोत्सर्ग कर्म में वृद्धि श्राद्ध नहीं करे, उसे अन्य समय में करे ।

अथ नीलवृषलक्षणम्

नीलवृषलक्षणं तु—

लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे च पाण्डुरः ।
श्वेतः खुरविषाणाभ्यां स नीलो वृष उच्यते ॥

अथवा श्वेतवर्णस्य मुखपुच्छादिश्यामत्वे नीलवृषत्वम् । यद्वा सर्वश्यामस्य मुखादिश्वेतत्वे नीलवृषत्वम् । [2]केचिद् वृषाभावे मृद्भिः पिष्टैर्वा वृषं कृत्वा होमादिविधिना वृषोत्सर्गं इत्याहुः । यथोक्तालाभे यथालाभो द्विवर्ष एकवर्षो वा वृषो वर्षाधिकाश्चतस्र एका वा वत्सतरी स्यात् । प्रयोगस्तु स्वस्वसूत्रानुसारी ग्राह्यः ।

---

१. जैसा कालिकापुराण में कहा है—'न गृहे मोचयेन्नीलं कामयन्पुष्कलं फलम् ।' भविष्यपुराण में द्वादशाह में करना बतलाया है—'चैत्र्यां वापि तृतीयायां वैशाख्यां द्वादशेऽह्नि वा ।' मरणतिथि में करना विष्णुधर्म में कहा है—'विषुवद्द्वितये चैव मृताहे बान्धवस्य च ।' इति । देवीपुराण और भविष्यादि में वृषोत्सर्ग करने का फल बतलाया है—'एवं कृत्वा ह्यवाप्नोति फलं वाजिमखोदितम् । यमुद्दिश्योत्सृजेन्नीलं स लभेत परां गतिम् ॥ वृषोत्सृष्टः पुनात्येव दशातीतान् दशापरान् ।' इति ।

२. जैसा निर्णयसिन्धु में उद्धृत वचन है—'वृषोत्सर्जनवेलायां वृषाभावे कथंचन । मृद्भिः पिष्टैश्च दर्भैर्वा वृषं कृत्वा विमोचयेत् । न शक्यते वृषोत्सर्गो होमं वा तत्र कारयेत् ।' इस समय त्यक्त वृष का संरक्षणाभाव और दूसरे के खेतों में जाने पर उसके प्रहारादिजन्य दुर्दशा को देखते हुए वर्तमान समय में यही पक्ष उपयुक्त प्रतीत होता है । इन्हीं विषयों पर विचार करके मेरे पूज्य प्रगुरु म० म० श्री शिवकुमार शास्त्रीजी ने वर्तमान समय में इस मत के अनुसार ही पिष्टादि से वृष बनाकर या उसका निष्क्रय देकर वृषोत्सर्ग कृत्य की पूर्ति करने की व्यवस्था दी थी ।

सव्येन पाणिना पुच्छं समादाय वृषस्य तु ।
दक्षिणेनाप आदाय सतिलाः सकुशास्ततः ॥

[1]'प्रेतगोत्रं समुच्चार्यामुकस्मै वृष एष मया दत्तस्तं तारयत्विति वदन् सहेमजलं भूमावुत्सृजेत् ।

विधारयेन्न तं कश्चिन्न च कश्चन वाहयेत् ।
न दोहयेच्च तां धेनुं न च कश्चन बन्धयेत् ॥

नील वृष का लक्षण तो यह है—जिसका वर्ण लाल हो, मुंह तथा पूंछ पाण्डुर वर्ण का हो, खुर और सींग श्वेत हो वह नील वृष कहलाता है । अथवा श्वेत वर्ण के वृषभ का मुंह और पूंछ श्याम वर्ण का हो वह नील वृष कहलाता है । या सब श्याम हो मुंह आदि श्वेत हो तो वह भी नील वृष कहलाता है । कुछ लोग कहते हैं कि वृष के अभाव में मिट्टी या आंटा से वृष बनाकर होम आदि विधि करके वृषोत्सर्ग करे । यथोक्त वृष के अलाभ में दो वर्ष या एक वर्ष का वृष जैसा मिले और एक वर्ष से अधिक अवस्था की चार या एक बछिया हो । प्रयोग तो अपने-अपने सूत्र के अनुसार ग्राह्य है । वाम हाथ से वृष की पूंछ पकड़ कर दाहिने हाथ से जल-तिल तथा कुश के साथ प्रेत के गोत्र का उच्चारण कर अमुक को यह वृष मैंने दिया है उसको यह संसार से पार करे, ऐसा कहता हुआ सुवर्ण और जल के साथ भूमि में छोड़ दे । उस वृष को न कोई रक्खे न कोई लादे या न हल आदि में जोते और उस धेनु को कोई न दूहे न कोई बांधे ।

[2]पतिपुत्रवत्याः सुवासिन्या न वृषोत्सर्गः । सहगमने तु स्त्रीणां वृषोत्सर्गस्थाने गौरेव । वृषोत्सर्गसाङ्गतार्थं तिलोदकुम्भधेनुवस्त्रहिरण्येति पञ्चदानानि । आशौचान्तरं चेदेकादशाहे प्राप्नोति तदा वृषोत्सर्गादिकमाद्यमासिकं [3]शय्यादिदानानि च कुर्यादेव ।

एवं कृते वृषोत्सर्गे फलवाजिमखोदितम् ।
यमुद्दिश्योत्सृजेन्नीलं स लभेत परां गतिम् ।
वृषोत्सर्गः पुनात्येव दशातीतान् दशापरान् ॥ इति वृषोत्सर्गः ।

पति और पुत्रवाली सौभाग्यवती का वृषोत्सर्ग नहीं करे । सहगमन में तो स्त्रियों के वृषोत्सर्ग के स्थान में गौ ही दे । वृषोत्सर्ग की साङ्गता के लिये तिल,उदकुम्भ, धेनु, वस्त्र और सुवर्ण, ये पांच दान होते हैं । यदि एकादशाह के दिन दूसरा आशौच पड़ जाय तब वृषोत्सर्ग आदि, आद्यमासिक और शय्यादान को करे ही । इस प्रकार वृषोत्सर्ग करने पर अश्वमेध का फल कहा है । जिसके

---

१. पारस्करः—'प्रेतगोत्रं समुच्चार्य अमुकस्मै इति ब्रुवन् । वृष एष मया दत्तस्तं तारयतु सर्वदा ॥ सहेम सतिलं भूमावित्युच्चार्य विनिक्षिपेत् । इसके पूर्व 'सव्येन पाणिना' यह भी पारस्कर का वचन है ।

२. संग्रहे—'पतिपुत्रवती नारी भर्तुरग्रे मृता यदि । वृषोत्सर्गं न कुर्वीत गां तु दद्यात् पयस्विनीम् ॥' इति ।

३. एकादशाह का श्राद्ध आद्यश्राद्ध है इसमें शय्यादान का निर्देश देवयाज्ञिकनिबन्ध में किया है—'एकादशतु विप्रेषु प्रेतमावाह्य भोजयेत् । तत्राद्याय च शय्यादि दद्यादाद्यमिति स्मृतम् ॥' इति ।

उद्देश से नील वृष का उत्सर्ग किया जाता है, वह परम गति को प्राप्त करता है। वृषोत्सर्ग, दस पिछले और दस आगे के पुरुषों को पवित्र करता है। वृषोत्सर्ग समाप्त।

अथ एकादशाहे महैकोद्दिष्टम्

इदं च महैकोद्दिष्टं षोडशश्राद्धेभ्यो भिन्नमेव। अत एवेदं करिष्यमाणसर्वैकोद्दिष्टप्रकृतिभूतमित्युच्यते। इदं च [1]पाकेनैव। अत्र सति सम्भवे विप्रो भोजयितव्यः। असंभवेऽग्नौ होमः, 'ब्राह्मणं भोजयेदाद्य होतव्यमनलेऽथवा' इत्युक्तेः।

श्मश्रुकर्म तु कर्तव्यं नखच्छेदस्तथैव च।
स्नपनाभ्यञ्जने दद्याद्विप्राय विधिपूर्वकम्॥

ततः क्षणपाद्यार्घ्यासनगन्धपुष्पाच्छादनान्येव दद्यात्। नात्र धूपदीपौ। [2]एकोद्दिष्टं देवहीनमित्युक्तेरेक एव विप्रः दिवैव च निमन्त्रणम्। एकमर्घ्यपात्रम्। स्वधाशब्दनमःशब्दपितृशब्दा न सन्ति। तेन प्रत्तः प्रेत इमाँल्लोकान्प्रीणयाहि न इति मन्त्रोहोऽर्घ्यपात्रे, नाभिश्रवणम्।

यह महा एकोद्दिष्ट सोलह श्राद्धों से भिन्न ही है। इसी लिए इसे किये जाने वाले सब एकोद्दिष्टों का प्रकृतिभूत कहा है। यह पाक से ही होता है। सम्भव हो तो इसमें विप्र को भोजन कराना चाहिये। सम्भव नहीं हो तो अग्नि में होम करे, क्योंकि वचन है कि आद्य श्राद्ध में ब्राह्मण को खिलावे या अग्नि में होम करे। श्मश्रु कर्म और नख कटाना चाहिये। ब्राह्मण को विधिपूर्वक स्नपन और अभ्यंजन दे। इसके बाद क्षण, पाद्य, अर्घ्य, आसन, गन्ध, पुष्प और वस्त्र दे। इसमें धूप और दीप न दे। एकोद्दिष्ट श्राद्ध देवरहित है, इस उक्ति से एक ही ब्राह्मण और दिन में ही निमन्त्रण होता है। इसमें एक अर्घ्य-पात्र रक्खे। स्वधा शब्द, नमः शब्द और पितृ शब्द नहीं है। इससे 'प्रत्तः प्रेत इमाँल्लोकान्प्रीणयाहि नः' इस मन्त्र का ऊह अर्घ्यपात्र में होता है। अभिश्रवण नहीं है।

सर्वं प्राचीनावीतिनैव कार्यम्, देवकार्याभावात्। अग्नौकरणविकल्पः। तत्र च पाणिहोमेऽपि न तस्य भक्षणं किन्त्वग्नौ प्रक्षेपः। एक एव पिण्डः। अनुमन्त्रणादिसर्वममन्त्रकम्। स्वदितमिति तृप्तिप्रश्नः कात्यायनानाम्। अक्षय्यस्थाने उपतिष्ठतामिति वदेत्। अभिरम्यतामिति विसर्जनम्। अभिरताः स्मेति विप्रप्रतिवचनम्। श्राद्धशेषभोजनं नास्ति। अन्ते स्नानम्। नवश्राद्धैकोद्दिष्टे तु सर्वममन्त्रकमित्युक्तम्।

---

१. लघुहारीतः—'एकोद्दिष्टं तु कुर्वीत पाकेनैव सदा स्वयम्। अभावे पाकपात्राणां तदहः समुपोषणम्।' इति।

२. एक उद्दिष्टो यस्मिन् श्राद्धे तदेकोद्दिष्टमिति कर्मनामधेयम्। याज्ञवल्क्यः—'एकोद्दिष्टं देवहीनमेकार्घ्यैकपवित्रकम्। आवाहनाग्नौकरणरहितं ह्यपसव्यवत्।' एकोद्दिष्ट का काल मध्याह्न है, जैसा देवल ने कहा है—'पूर्वाह्णे दैविकं कर्म अपराह्णे तु पैतृकम्। एकोद्दिष्टं तु मध्याह्ने प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम्॥' इति।

सब कर्म प्राचीनावीती (अपसव्य) से ही करे, क्योंकि इसमें विश्वेदेव कार्य का अभाव है। अग्नौकरण में विकल्प है। उसमें पाणि-होम में भी उसका भक्षण नहीं होता किन्तु अग्नि में प्रक्षेप होता है। एक ही पिण्ड होता है। अनुमन्त्रण आदि सब विना मन्त्र के होता है। कात्यायनों के मत में 'स्वदितं' ऐसा तृप्तिप्रश्न होता है। अक्षय्य के स्थान में 'उपतिष्ठताम्' ऐसा कहे। 'अभिरम्यताम्' इससे विसर्जन करे। ब्राह्मण का प्रतिवचन 'अभिरताः स्म' है। श्राद्ध शेष का भोजन नहीं होता। अन्त में स्नान है। नव श्राद्ध एकोद्दिष्ट में तो सब कर्म मन्त्ररहित होता है, यह कहा है।

विप्राभावे त्वग्नावेकोद्दिष्टं यथा—अग्नौ पायसं श्रपयित्वाज्यभागान्तेऽग्नेरग्रे श्राद्धप्रयोगं कृत्वाग्नौ प्रेतमावाह्य गन्धाद्यैः संपूज्य पृथ्वी ते पात्रमित्यादिनान्नं संकल्प्योदीरतामवर इत्यष्टाभिश्चतुरावृत्ताभिर्ऋग्भिर्द्वात्रिंशदाहुतीर्हुत्वा पिण्डदानादि श्राद्धं समापयेदिति। एवमेतदेकोद्दिष्टं स्त्रीणामपि।

ब्राह्मण के अभाव में तो अग्नि में ही एकोद्दिष्ट करे, जैसे—अग्नि में खीर बनाकर आज्य भाग के अन्त में अग्नि के आगे प्रेत का आवाहन कर गन्ध आदि से पूजन कर 'पृथ्वी ते पात्रं' इत्यादि से अन्न का संकल्प कर 'उदीरतामवर' इन आठ ऋचाओं की चार आवृत्तियों से बत्तिस आहुतियों से होम करके पिण्डदान आदि श्राद्ध को समाप्त करे। इसी प्रकार स्त्रियों का भी यह एकोद्दिष्ट होता है।

अथाद्यमासिकम्

तस्य मासादौ मासिकं कार्यमिति वचनान्मृताहो मुख्यः कालः। स चाशौचप्रतिबन्धादतिक्रान्त इति तदन्ते एकादशेऽह्नि तत्कार्यम्। अत एव—

ब्राह्मणं भोजयेदाद्ये होतव्यमनलेऽथवा।
पुनश्च भोजयेद्विप्रं द्विरावृत्तिर्भवेदिह॥

इति प्रथममासिकार्थं द्वितीयावृत्तिरुक्ता। अत्र च द्विरावृत्तिर्भवेदिहेत्युक्तिः षोडशमासिकानां सपिण्डयधिकारार्थमपकृष्य कर्तव्यानां द्वादशाहादौ करणपक्षे योज्या।

मास के आदि में मासिक श्राद्ध करना चाहिये, इस वचन से आद्य मासिक श्राद्ध का मरण दिन मुख्य काल है। वह आशौच के प्रतिबन्ध से व्यतीत हो गया. इससे अन्त में ग्यारहवें दिन उसे करना चाहिये। इसीलिये—आद्य श्राद्ध में ब्राह्मण को भोजन करावे या अग्नि में होम करे। पुनः ब्राह्मणों को भोजन करावे। इस वचन से प्रथम मासिक के लिये दूसरी आवृत्ति कही गई है। और यहाँ 'दो आवृत्ति इसमें हो जाय' यह उक्ति षोडश मासिकों का सपिण्डी के अधिकार के लिये अपकर्ष करके करने योग्य द्वादशाह आदि करने के पक्ष में लगानी चाहिये।

तेषामेकादशाह एव करणपक्षे तु षोडशमासिकानां षोडशावृत्तय एकं महैकोद्दिष्टमिति सप्तदशावृत्त्यापत्त्या द्विरावृत्तिर्भवेदिहेत्युक्तेरसङ्गतेः। तथा च सपिण्डयधिकारार्थापकृष्याणां मासिकानां द्वादशाहे करणे 'एकादशाहे महैकोद्दिष्टो-

त्तरमतिक्रान्तमाद्यमासिकं करिष्ये' इति संकल्प्याद्यमासिकमात्रमन्नेनामेन वा विप्रे दर्भबटौ वा प्रेतमावाह्य कार्यं, न त्वाद्यमासिकस्याग्नौ होमः; पुनश्च भोजयेद्विप्रमिति विशेषवचनात्। इत्थं च महैकोद्दिष्टमेकमाद्यमासिकमेकमित्ये-कोद्दिष्टस्य द्विरावृत्तिः स्पष्टैव। ये त्वाद्यमासिकातिरेकेण महैकोद्दिष्टस्यैव द्विरावृत्ति वदन्ति ते भ्रान्ताः।

उनका जब एकादशाह ही में करने का पक्ष है तो षोडश मासिकों के सोलह आवृत्ति के लिये एक महा एकोद्दिष्ट इस तरह सतरह आवृत्ति की आपत्ति होने से 'द्विरावृत्तिर्भवेदिह' इस उक्ति की असङ्गति होगी। अतः सपिण्डी के अधिकारार्थ अपकर्ष करने योग्य मासिकों का बारहवें दिन करने में 'एकादशाह में महा एकोद्दिष्ट के बाद अतिक्रान्त आद्य मासिक करूँगा' ऐसा संकल्प करके केवल आद्य मासिक पक्वान्न से अथवा आमान्न से ब्राह्मण या कुश बटु में प्रेत का आवाहन करके करे आद्य मासिक का होम अग्नि में नहीं करे, क्योंकि पुनः ब्राह्मण को भोजन करावे, यह विशेष वचन है। इस प्रकार एक महा एकोद्दिष्ट और एक आद्य मासिक इससे एको-द्दिष्ट की आवृत्ति स्पष्ट है। जो आद्य मासिक को छोड़कर महैकोद्दिष्ट ही की दो आवृत्ति करने को कहते हैं, वे भ्रम में हैं।

अत्र केचिदाद्याब्दिकस्यापि मृताह एव काल इति तस्याप्यतिक्रान्तत्वादे-कादशाहे 'आद्यमासिकमाद्याब्दिकं च तन्त्रेण करिष्ये' इति संकल्प्य द्वयमपि तन्त्रेण कार्यमित्याहुः। अन्ये तु 'मासादौ मासिकं कार्यमाब्दिकं वत्सरे गते' इति वचनाद् द्वितीयवर्षारम्भे प्रथमाब्दिकमिति नाब्दिकस्यैकादशाहेऽनुष्ठानमित्याहुः।

इसमें कुछ लोग कहते हैं कि आद्य वार्षिक का भी मृताह ही काल है अतः उसका भी अतिक्रान्त होने से एकादशाह में 'आद्य मासिक और आद्य आब्दिक तन्त्र से करूँगा' ऐसा संकल्प करके दोनों को तन्त्र से करे। दूसरे तो यह कहते हैं कि—'मास के आदि में मासिक तथा वर्ष के बीतने पर आब्दिक' इस आशय के वचन से दूसरे वर्ष के आरम्भ में प्रथमाब्दिक करे, इससे आब्दिक का एकादशाह में अनुष्ठान नहीं होता।

एवं त्रिपक्षे सपिण्डीकरणपक्षे एकादशाहे आद्यमासिकमूनमासे ऊनमासिकं द्वितीयमासारम्भे द्वितीयमासिकं पक्षत्रये त्रैपक्षिकं चैकोद्दिष्टविधिना कृत्वाव-शिष्टद्वादशमासिकान्यपकृष्य तथैव कृत्वा सपिण्डीकरणम्। एवं पक्षान्तरेषूह्यम्। एकादशाहे तन्त्रेण षोडशमासिकापकर्षपक्षे महैकोद्दिष्टोत्तरं देशकालौ संकीर्त्य 'अतिक्रान्तमाद्यमासिकं 'सपिण्डयधिकारार्थमपकृष्योनमासिकादीन्यूनाब्दिका-न्तानि पञ्चदशमासिकानि च तन्त्रेणैकोद्दिष्टेन विधिना करिष्ये' इति संकल्प्य

---

१. गोभिल और लौगाक्षि ने कहा है—'श्राद्धानि षोडशादत्त्वा नैवं कुर्यात् सपिण्डनम्। श्राद्धानि षोडशापाद्य विदधीत सपिण्डनम् ॥' जैसे षोडश मासिक श्राद्ध नहीं करने पर सपिण्डी श्राद्ध करने का अधिकार नहीं है, उसी तरह नवश्राद्ध नहीं करने पर मासिक श्राद्ध करने का अधिकार नहीं होता—'नवश्राद्धादिश्राद्धानि न कृतानि तु यस्य वै। नाधिकारी भवेत्तत्र मासषाण्मासिका-ब्दिके ॥' इति।

तन्त्रेण षोडशापि कुर्यात् । केचिन्मते त्वतिक्रान्ते आद्यमासिकाद्याब्दिके ऊनमासिकादीनि चेत्यादिसंकल्पः ।

इसी प्रकार त्रिपक्ष में सपिण्डी करने के पक्ष में एकादशाह में आद्य मासिक, ऊनमास में ऊनमासिक, दूसरे मास के आरम्भ में द्वितीय मासिक और तीन पक्ष में त्रैपक्षिक, एकोद्दिष्ट विधि से करके बाकी बचे द्वादश मासिकों का अपकर्ष करके उसी तरह करके सपिण्डीकरण करे। इसी तरह दूसरे पक्ष में भी कल्पना करे। एकादशाह में तन्त्र से षोडश मासिक के अपकर्ष पक्ष में महैकोद्दिष्ट के बाद देश काल कहकर 'व्यतीत आद्यमासिक और सपिण्डी के अधिकारार्थ अपकर्ष करके ऊनमासिक आदि ऊनाब्दिक पर्यन्त पन्द्रह मासिकों को तन्त्र से एकोद्दिष्ट विधि से करूँगा' ऐसा संकल्प करके षोडश श्राद्धों को भी तन्त्र से करे। कुछ के मत में तो अतिक्रान्त आद्यमासिक और आद्य आब्दिक में ऊन मासिक आदि ऐसा संकल्प है।

मासिकानि तु—आद्यमासिकम् १, ऊनमासिकम् २, द्वितीयमासिकम् ३, त्रैपक्षिकम् ४, तृतीयमासिकम् ५, चतुर्थमासिकम् ६, पंचममासिकम् ७, षष्ठम् ८, ऊनषाण्मासिकम् ९, सप्तममासिकम् १०, अष्टमम् ११, नवमम् १२, दशमम् १३, एकादशम् १४, द्वादशम् १५, ¹ऊनाब्दिकम् १६ चेति क्रमेण ज्ञेयानि ।

मासिक तो–आद्य मासिक १, ऊनमासिक २, द्वितीय मासिक ३, त्रैपक्षिक ४, तृतीय मासिक ५, चतुर्थ मासिक ६, पञ्चम मासिक ७, षष्ठ मासिक ८, ऊनषाण्मासिक ९, सप्तम मासिक १०, अष्टम ११, नवम १२, दशम १३, एकादश १४, द्वादश १५, ऊनाब्दिक १६, इस क्रम से जानना चाहिये।

अथैकादशाहे रुद्रगणश्राद्धम्

तच्चैकादशरुद्रोद्देशेन रुद्ररूपप्रेतोद्देशेन वा । रुद्रोद्देशपक्षे सव्येन रुद्ररूपप्रेतोद्देशे पक्षेऽपसव्येन । वीरभद्रः १, शम्भुः २, गिरीशः ३, अजैकपात् ४, अहिर्बुध्न्यः ५, पिनाकी ६, अपराजितः ७, भुवनाधीश्वरः ८, कपाली ९, स्थाणुः १०, भगः ११, इत्येकादशरुद्राः । अत्र शक्तेनैकैकरुद्रनाम्नैको विप्र इत्येकादशविप्रा भोज्याः । अशक्तेन तु सर्वोद्देशेनैक एव विप्रो भोज्यः । आमान्नान्येकादशैकं वामान्नं देयम् । अत्र श्राद्धे पिण्डदानार्घ्याग्नौकरणविकिराणामभावः ।

रुद्रगण का श्राद्ध ग्यारह रुद्र के उद्देश्य से या रुद्ररूप प्रेत के उद्देश्य से होता है। रुद्रोद्देश पक्ष में सव्य से और रुद्ररूप प्रेत के उद्देश पक्ष में अपसव्य से करे। वीरभद्र १, शम्भु २, गिरीश ३, अजैकपात् ४, अहिर्बुध्न्य ५, पिनाकी ६, अपराजित ७, भुवनाधीश्वर ८, कपाली ९, स्थाणु १०, भग ११, ये ग्यारह रुद्र हैं। इसमें समर्थ पुरुष एक-एक रुद्र के नाम से एक-एक ब्राह्मण, इस प्रकार ग्यारह ब्राह्मण को भोजन करावे। अशक्त हो तो सब के उद्देश से एक ही

---

१. गौतमः—'एकद्वित्रिदिनैरूने त्रिभागेनोन एव वा । श्राद्धान्यूनाब्दिकादीनि कुर्यादित्याह गौतमः ॥' जातूकर्ण्य ने षोडश श्राद्धों का निर्देश यों किया है—'द्वादश प्रतिमास्यानि आद्यषाण्मासिके तथा । त्रैपक्षिकाब्दिके चेति श्राद्धान्येतानि षोडश ॥' यहाँ आद्य, षाण्मासिक और आब्दिक शब्द ऊनमासिक, ऊनषाण्मासिक और ऊनाब्दिक परक है। हेमाद्रि में इस वचन के उत्तरार्ध का पाठान्तर है—'सपिण्डीकरणं चैव इत्येतच्छ्राद्धषोडशम् ।' विशेष विचार अन्य निबन्धों में देखें।

ब्राह्मण खिलावे। आमान्न ग्यारह या एक आमान्न दे। यहाँ श्राद्ध में पिण्डदान, अर्घ्य, अग्नौकरण और विकिर का अभाव है।

अथ वसुगणश्राद्धम्

एवमेवाष्टवसुश्राद्धम्। एतच्च कृताकृतम्। वसुनामान्यप्यन्यत्र। एतदेकादशाहकृत्यं त्र्यहाशौचे चतुर्थदिने कर्तव्यम्। द्वितीयदिने प्रथमदिने वास्थिसंचयनम्। पञ्चमदिने सपिण्डीकरणम्।

ऐसे ही आठ वसुओं का श्राद्ध है। इसे करे या नहीं करे। वसुओं के नाम भी अन्यत्र हैं। यह एकादशाह कर्म तीन दिन के आशौच में चौथे दिन करे। दूसरे दिन या प्रथम दिन अस्थिसंचयन होता है। पाचवें दिन सपिण्डीकरण होता है।

अथ पददानादि

अत्रैकादशाहे द्वादशाहे वा पददानानि कार्याणि। तेन प्रेतस्य मार्गे सुखगतिः।

आसनोपानहच्छत्रं मुद्रिका च कमण्डलुः।
यज्ञोपवीताज्यवस्त्रं भोजनं चान्नभाजनम्॥
दशकं पदमेतत्स्यात्पदान्येवं त्रयोदश।
देयानि वा यथाशक्ति तेनासौ प्रीणितो भवेत्॥
अन्नं चैवोदकुम्भं चोपानहौ च कमण्डलुः।
छत्रं वस्त्रं तथा यष्टिं लोहदण्डं च दापयेत्॥
अग्नीष्टिकां प्रदीपं च तिलांस्ताम्बूलमेव च।
चन्दनं पुष्पमालां चोपदानानि चतुर्दश॥

इसमें ग्यारहवें या बारहवें दिन पददान करे। इससे प्रेत को मार्ग में सुखपूर्वक गति होती है। आसन-जूता-छाता-अंगूठी-कमण्डलु-यज्ञोपवीत-घृत-वस्त्र-भोजन-अन्नपात्र, ये दस पद हैं। इसी प्रकार तेरह पद हैं। या यथाशक्ति दे, इससे प्रेत प्रसन्न होता है। ये चौदह उपपद हैं—अन्न-जल का घड़ा-जूता-कमण्डलु-छाता वस्त्र-छड़ी-लोहे का दण्ड अंगीठी-प्रदीप-तिल ताम्बूल-चन्दन-पुष्पमाला।

वैतरणीधेनूत्क्रान्तिधेनुमोक्षधेन्वादिदानानि गोभूम्यादिदशदानानि तिलपात्रदानादीनि मरणकाले न कृतानि चेदेकादशाहादौ पुत्रादिभिः प्रेतोद्देशेन कार्याणि।

अश्वं रथं गजं धेनुं महिषीं शिबिकादिकम्।
शालग्रामं पुस्तकं च कस्तूरीकुङ्कुमादिकम्॥

---

१. गरुडपुराण में एकादशाह के प्रसंग में कहा है—'तदह्नि दीयते सर्वं द्वादशाहे विशेषतः॥ पदानि सर्ववस्तूनि वरिष्ठानि त्रयोदश। यो ददाति मृतस्येह जीवतोऽप्यात्महेतवे॥ सुखी भूत्वा महामार्गे वैनतेय स गच्छति।' इति।

दासीं रत्नं भूषणादि शय्यां छत्रं च चामरम् ।
दद्याद्वित्तानुसारेण प्रेतस्तत्तत्सुखं लभेत् ॥

वैतरणीधेनु उत्क्रान्तिधेनु-मोक्षधेनु-आदि दानों को, गौ-भूमि-आदि दस दानों और तिलपात्र आदि दानों को मरण समय में न किये हों तो एकादशाह आदि में पुत्र आदि प्रेत के उद्देश से करे। घोड़ा-रथ-हाथी-धेनु भैंस-पालकी-आदि, शालग्राम-पुस्तक-कस्तूरी-कुङ्कुम-आदि, दासी रत्न-भूषण आदि, शय्या-छत्र-चामर ये, सब अपने धन के अनुसार दे, जिससे मृतक उन-उन वस्तुओं का सुखपूर्वक उपभोग करे।

अथ शय्यादानम्

एकादशाहे[1] शय्याया दाने एष विधिः स्मृतः ।
तेनोपभुक्तं यत्किचिद्वस्त्रवाहनभाजनम् ॥
यद्यदिष्टं च तस्यासीत्तत्सर्वं परिकल्पयेत् ।
प्रेतं च पुरुषं हैमं तस्यां संस्थापयेत्तदा ॥
पूजयित्वा प्रदातव्या मृतशय्या यथोदिता ।
तस्माच्छय्यां समासाद्य सारदारुमयीं दृढाम् ॥
दन्तपत्राचितां रम्यां हेमपट्टैरलंकृताम् ।
हंसतूलिप्रतिच्छन्नां शुभगण्डोपधानिकाम् ॥
प्रच्छादनपटीयुक्तां गन्धधूपादिवासिताम् ।
उच्छीर्षके घृतभृतं कलशं परिकल्पयेत् ।

एकादशाह में शय्यादान की यह विधि कही गयी है। उसने जो कुछ वस्त्र, सवारी और पात्र का उपभोग किया है और उसको जो-जो इष्ट था वे सभी चीजें शय्यादान में देवे। शय्या पर सोने का प्रेत-पुरुष रक्खे। मृत की शय्या का पूजन कर जैसा कहा गया है वैसी देनी चाहिये। इसलिये पकी दृढ लकड़ी की शय्या बनवावे। शय्या-हाथी दांत से बनी सुन्दर सोने के पत्र से सुशोभित, हंस के वर्ण की तरह रुई से भरी, तोसक तथा तकिया से भूषित, ऊपर से सफेद चादर बिछी, गन्ध-धूप से वासित एवं सिरहाने की ओर घृत से भरा कलश स्थापित हो।

ताम्बूलकुङ्कुमक्षोदकर्पूरागरुचन्दनम् ।
दीपिकोपानहच्छत्रचामरासनभाजनम् ॥
पार्श्वेषु स्थापयेद्भक्त्या सप्तधान्यानि चैव हि ।
शयनस्थस्य भवति यदन्यदुपकारकम् ॥
भृङ्गारकरकाद्यं तत्पञ्चवर्णं वितानकम् ।

---

१. मत्स्यपुराणे—'आशौचान्तद्वितीयेह्नि शय्यां दद्यात् सुलक्षणाम्। काञ्चनं पुरुषं तद्वत् फलपुष्पसमन्वितम् ॥ सम्पूज्य द्विजदाम्पत्यं नानाभरणभूषणैः। वृषोत्सर्गश्च कर्तव्यो देया च कपिला शुभा ॥' यहां 'द्विजदाम्पत्यं सम्पूज्य शय्यां दद्यात्' ऐसा अन्वय है। यद्यपि वचन में कपिलादान वृषोत्सर्ग के बाद निर्दिष्ट है फिर भी दान साजात्य से वृषोत्सर्ग के पहले करना चाहिये।

सम्पूज्य द्विजदांपत्यं नानाभरणभूषितम् ॥

उपवेश्य तु शय्यायां मधुपर्कं ततो वदेत् । दानमन्त्रस्तु—

यथा न कृष्णशयनं शून्यं सागरजातया ।

शय्या तस्याप्यशून्यास्तु तथा जन्मनि जन्मनि ॥

यस्मादशून्यशयनं केशवस्य शिवस्य च ।

शय्या तस्याप्यशून्यास्तु तथा जन्मनि जन्मनि ॥

दत्त्वैवं तस्य सकलं प्रणिपत्य विसर्जयेत् । पाद्मे तु—

ताम्बूल-कुङ्कुम-कपूर-चन्दन-अगरु से युक्त, दीपक जूता-छत्र-चामर-आसन-वर्तन और सप्तधान्य को भक्ति से शय्या के बगल में स्थापित करे । शय्या पर स्थित पुरुष का जो-जो उपकारक भृङ्गार (गडुआ) करक (करवा) आदि और पांच रंग का चँदवा रक्खे । अनेक भूषणों से भूषित कर ब्राह्मण पतिपत्नी का सम्यक् पूजनकर शय्या पर बैठाकर मधुपर्क दे । दान का मन्त्र यह है—जैसे श्रीकृष्ण भगवान् की शय्या लक्ष्मी से शून्य नहीं रहती वैसे ही उस प्रेत की शय्या जन्म-जन्म में शून्य न रहे । जैसे केशव और श्रीशंकर की शय्या अशून्य है वैसे जन्मजन्मान्तर में उस प्रेत की भी शय्या अशून्य रहे । इस प्रकार उस ब्राह्मण को शय्या आदि सम्पूर्ण वस्तु देकर प्रणाम करके विसर्जन करे । पद्मपुराण में तो ऐसा कहा है—

अस्थिललाटकं गृहच सूक्ष्मं कृत्वा सपायसम् ।

भोजयेद् द्विजदाम्पत्यं विधिरेष सनातनः ॥ इत्युक्तम् ।

नैतन्महाराष्ट्रदेशादिशिष्टैराद्रियते । यद्देशे तदाचारस्तत्रास्तु ।

मृत पुरुष के ललाट की हड्डी लेकर उसे खूब महीन पीसकर पायस (खीर) में द्विज-दम्पती को भोजन करावे, यह सनातन विधि है । इस विधि का महाराष्ट्र आदि देश के शिष्ट जन आदर नहीं करते । यह आचार जिस देश में हो वहीं रहे ।

स्वर्गे पुरंदरपुरे लोकपालालये तथा ।

सुखं वसत्यसौ जन्तुः शय्यादानप्रभावतः ।

आभूतसंप्लवं यावत्तिष्ठत्यातङ्कवर्जितः ॥

प्रेतशय्या प्रतिग्राही न भूयः पुरुषो भवेत् ।

गृहीतायां तु तस्यां वै पुनः संस्कारमर्हति ॥

शय्यादान के प्रभाव से यह जीव इन्द्रपुर स्वर्ग में लोकपालों के घर में सुखपूर्वक निवास करता है । निर्भय होकर प्रलयपर्यन्त ठहरता है । प्रेतशय्या लेने वाला पुनः पुरुष नहीं होता । प्रेतशय्या का प्रतिग्रह लेने वाला पुनः संस्कार के योग्य होता है ।

अथोदकुम्भदानम्

एकादशाहात्प्रभृति [1]घटस्तोयान्नसंयुतः ।

दिने दिने प्रदातव्यो यावत्संवत्सरं सुतैः ॥

---

१. गरुड़पुराण में उदकुम्भ के साथ दीपदान का भी विधान है—'प्रत्यहं दीपको देयो मार्गे तु विषमे नरैः । यावत्संवत्सरं वापि प्रेतस्य सुखलिप्सया ॥' इति ।

यस्य संवत्सरादर्वाक् सपिण्डीकरणं भवेत् ।
मासिकं चोदकुम्भं च देयं तस्यापि वत्सरम् ॥
अपि श्राद्धशतैर्दत्तैरुदकुम्भं विना नराः ।
दरिद्रा दुःखिनस्तात भ्रमन्ति च भवार्णवे ॥
यावदब्दं च यो दद्यादुदकुम्भं विमत्सरः ।
प्रेतायान्नसमायुक्तं सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥

इदं चोदकुम्भश्राद्ध[1] सपिण्डीकरणात्प्रागेकोद्दिष्टविधिना । सपिण्डयुत्तरं तु पार्वणविधिना । इदं त्रयोदशदिनादारभ्य कर्तव्यमिति भट्टाः ।

एकादशाह से लेकर वर्षपर्यन्त प्रतिदिन प्रेत के लिये पुत्र जल-अन्न से युक्त घट दे। जिसका वर्ष से पहले सपिण्डीकरण हो जाय उसको भी वर्ष तक मासिक और उदकुम्भ देना चाहिये। उदकुम्भ के विना सैकड़ों श्राद्ध देने से भी पुरुष भवसागर में दरिद्र दुखी होकर भ्रमण करते रहते हैं। मत्सररहित होकर वर्षपर्यन्त जो अन्नसहित उदकुम्भ प्रेत के लिये देता है, वह अश्वमेध का फल पाता है। यह उदकुम्भ श्राद्ध सपिण्डीकरण से पहले एकोद्दिष्ट विधि से करे। सपिण्डी के बाद तो पार्वण विधि से करे। इसे तेरहवें दिन से प्रारम्भ करके करे,ऐसा भट्ट कहते हैं।

अत्र पिण्डदानं कृताकृतम्। देवहीनं चैतत्,
अदैवं पार्वणश्राद्धं सोदकुम्भमधर्मकम् ।
कुर्यात्प्रत्याब्दिकाच्छ्राद्धात्संकल्पविधिनान्वहम् ॥ इति वचनात् ।

प्रायश्चित्ताङ्गविष्णुश्राद्धवदत्र श्राद्धे सर्वे श्राद्धधर्मा न सन्ति किंतु वाचनिकमात्राः । तेन सांकल्पविधिना संकल्पक्षणपाद्यासनगन्धाच्छादनान्तपूजनान्नपरिवेषणान्ते पृथ्वी ते पात्रमित्याद्युक्त्वा एष उदकुम्भ इदमन्नं दत्तं चेत्यादित्यागविधिः । अन्ते ताम्बूलदक्षिणादि । नात्र ब्रह्मचर्यापुनर्भोजनादिनियमाः । वृद्धिनिमित्तेन मासिकापकर्षे उदकुम्भश्राद्धानामप्यपकर्षः, प्रेतश्राद्धत्वात् ।

---

१. याज्ञवल्क्यः—'अर्वाक् सपिण्डीकरणं यस्य संवत्सराद् भवेत् । तस्याप्यन्नं सोदकुम्भं दद्यात्संवत्सरं द्विजे ॥' अर्थात् वर्ष के पूर्व जिसका सपिण्डन कर लिया गया है उसके उद्देश्य से प्रतिदिन या प्रतिमास वर्षपर्यन्त अपनी शक्ति के अनुसार जलपूर्ण घट के सहित अन्न ब्राह्मण को देना चाहिये। देवयाज्ञिकः—'सपिण्डनापकर्षे संवत्सरं यावदुदकुम्भं अर्वागेव दद्याद् नोर्ध्वम्'। स्कान्दे—'अन्नं चैव स्वशक्त्या तु संख्यां कृत्वाऽऽब्दिकावधि। दातव्यं ब्राह्मणे स्कन्द घटादौ निष्क्रयं तु वा ॥ अपि श्राद्धशतैर्दत्तैरुदकुम्भं विना नराः। दरिद्रा दुःखिनस्तात भ्रमन्ति च भवार्णवे ॥ तेनापकृष्य दातव्यं प्रेतस्याप्युदकुम्भकम् ।' मदनरत्न में गौतम का वचन है—'अदैवं पार्वणं श्राद्धं सोदकुम्भमधर्मकम् । कुर्यात् प्रत्याब्दिकाच्छ्राद्धात् संकल्पविधिनाऽन्वहम् ।' अधर्मकं = ब्रह्मचर्यादिनियमरहितम्। इसमें पिण्डदान कृताकृत है, हेमाद्रि में पारस्कर का वचन है—'अहरहरन्नमस्मै ब्राह्मणायोदकुम्भं च दद्यात् पिण्डमप्येके निपृणन्ति'। हारीतः—'मृते पितरि वै पुत्रः पिण्डमब्दं समाचरेत्। अन्नं कुम्भं च विप्राय प्रेतनिर्देशधर्मतः ॥' मत्स्यपुराण में कुम्भदान का महत्त्व—'यावदब्दं च यो दद्यादुदकुम्भं विमत्सरः। प्रेतायान्नसमायुक्तं सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥' इति

इसमें पिण्डदान करे या नहीं करे। यह देवहीन है, क्योंकि वचन है कि—विश्वदेवरहित पार्वण श्राद्ध उदकुम्भसहित श्राद्धधर्म के विना ही प्रतिवार्षिक श्राद्ध से प्रतिदिन संकल्प विधि से करे। प्रायश्चित्ताङ्ग विष्णुश्राद्ध की तरह इस श्राद्ध में सब श्राद्धधर्म नहीं है किन्तु केवल वाचनिक है। इससे संकल्प विधि से संकल्प, क्षण, पाद्य, आसन, गन्ध, वस्त्रान्त पूजन और परिवेषण के अन्त में 'पृथ्वी ते पात्रम्' इत्यादि कहकर यह उदकुम्भ और यह अन्न दे दिया इत्यादि त्याग की विधि है। अन्त में ताम्बूल और दक्षिणा आदि दे। इसमें ब्रह्मचर्य अपुनर्भोजन आदि का नियम नहीं है। वृद्धि के निमित्त से मासिक के अपकर्ष में उदकुम्भ-श्राद्धों का भी अपकर्ष होता है, क्योंकि ये प्रेत श्राद्ध हैं।

अथ उदकुम्भश्राद्धम्

प्रत्यहं सोदकुम्भान्नदानाशक्तेनाप्येकस्मिन्दिने तावद्भिरामान्नैरुदकुम्भैश्च तावदामान्नोदकुम्भनिष्क्रयेण वापकृष्योदकुम्भश्राद्धानि कार्याणि। अब्दमध्ये प्रत्यहमुदकुम्भश्राद्धं कुर्वतो मध्ये आशौचप्राप्तौ तावच्छ्राद्धानां लोप एव दर्शादिवत्। आशौचोत्तरं प्रतिबन्धादकरणे तदुत्तरोदकुम्भेन सह तन्त्रतयातिक्रान्तोदकुम्भानां प्रयोगः। 'अतिक्रान्तोदकुम्भश्राद्धान्यद्यतनोदकुम्भश्राद्धं च तन्त्रेण करिष्ये' इति संकल्पः।

प्रतिदिन उदकुम्भसहित अन्नदान में असमर्थ को भी एक दिन में उतने आमान्नों और उदकुम्भों से या उतने आमान्नोदक कुम्भ के निष्क्रय से अपकर्ष करके उदकुम्भ श्राद्धों को करना चाहिये। वर्ष के मध्य में प्रतिदिन उदकुम्भ श्राद्ध करते हुए मध्य में आशौच प्राप्त होने पर उतने श्राद्धों का दर्श आदि के समान लोप ही होता है। आशौच के बाद प्रतिबन्ध से नहीं करने पर उसके बाद वाले उदकुम्भ के साथ तन्त्र से बीते हुए उदकुम्भों का प्रयोग करे। 'बीते हुए उदकुम्भ श्राद्धों और आज के उदकुम्भ श्राद्ध को तन्त्र से करूँगा' ऐसा संकल्प करे।

अथ प्रथमवर्षे दीपदानम्

तथा प्रथमाब्दे दीपदानमुक्तम्—

प्रत्यहं दीपको देयो मार्गे तु विषमे नरैः।
यावत्संवत्सरं वापि प्रेतस्य सुखलिप्सया॥
प्राङ्मुखोदङ्मुखं दीपं देवागारे द्विजालये।
कुर्याद्याम्यमुखं पित्र्ये अद्भिः संकल्प्य सुस्थिरम्॥ इति।

उसी प्रकार प्रथम वर्ष में दीपदान कहा है—विषम मार्ग में प्रेत के सुख की लिप्सा से प्रतिदिन वर्षपर्यन्त दीप दे। देवमन्दिर या ब्राह्मण के घर में दीप का मुख पूरब या उत्तर की ओर तथा पितृकृत्य में दक्षिण की ओर करके जल से संकल्प कर स्थिर करे।

अथ षोडशमासिकानि

द्वादशप्रतिमास्यानि ऊनमासं त्रिपक्षकम्।
ऊनषाण्मासिकं चोनाब्दिकं चापीति षोडश॥

अत्र मतान्तराणि सिन्धौ।

प्रत्येक मास के बारह तथा ऊनमास, त्रिपक्षक और ऊन-षाण्मासिक एवं ऊनाब्दिक, इस तरह षोडश श्राद्ध हुए। इसमें दूसरे मत निर्णयसिन्धु में कहे हैं।

अथैषां कालः—

मासादौ मासिकं कार्यमाद्यं त्वेकादशेऽह्नि।
एकद्वित्रिदिनैरूने त्रिभागेनोन एव वा।
ऊनमासिकमूनाब्दमूनषाण्मासिकं चरेत्।
त्रैपक्षिकं त्रिपक्षे चोनमास्यं द्वादशेऽह्नि वा॥

तत्रोनमासिकोनषाण्मासिकोनाब्दिकानामेकदिनेनोनपक्षे पञ्चम्यां मृतस्य तृतीयायां, द्वाभ्यामूनत्वपक्षे द्वितीयायां, त्रिभिन्यूंने प्रतिपदायामनुष्ठानमिति केचित्।

इनका समय-मास के आदि में मासिक श्राद्ध करे। आद्य श्राद्ध तो ग्यारहवें दिन तथा एक-दो-तीन दिन कम या तीन भाग से कम में ही ऊनमासिक, ऊनाब्दिक और ऊनषाण्मासिक श्राद्ध करे। त्रैपक्षिक तीसरे पक्ष में या बारहवें दिन ऊनमासिक करे। ऊनमासिक, ऊनषाण्मासिक और ऊनवार्षिक का एक दिन से ऊन पक्ष में पञ्चमी में मृत का तृतीया में, दो दिन से ऊन पक्ष में द्वितीया में, तीन दिन से ऊन पक्ष में प्रतिपदा में करने को कुछ लोग कहते हैं।

[1]माधवस्तूनषाण्मासिकमूनाब्दिकं च मृताहात्पूर्वेद्युः कार्यमित्याह। त्रैपक्षिकं त्रिपक्षेऽतीते मृताहे कार्यम्।

माधवाचार्य ने तो-ऊनषाण्मासिक और ऊनाब्दिक मृत दिन से पूर्व दिन करे—ऐसा कहा है। त्रैपाक्षिक श्राद्ध को तीन पक्ष के बीत जाने पर मृताह में करना चाहिये।

अत्राहिताग्नेर्विशेषः—त्रैपक्षिकपर्यन्तानि संस्कारतिथौ ततः पराणि प्रत्याब्दिकं च मृततिथौ। तेनाद्यं दाहादेकादशेऽह्नि त्रिमासादूर्ध्वं संस्कारे त्वेवं भाति। त्रिपक्षपर्यन्तानि दाहतिथौ कृत्वा पराण्यतिक्रान्तानि मृततिथौ प्राप्तमासिकेन सह कार्याणीति।

इसमें आहिताग्नि का विशेष है—त्रैपाक्षिकपर्यन्त के श्राद्ध दाह-तिथि में और उसके बाद वाले श्राद्ध तथा प्रत्याब्दिक श्राद्ध मृत तिथि में करे। इससे आद्य श्राद्ध दाह से ग्यारहवें दिन करे, तीन मास के बाद संस्कार हो तो ऐसा युक्त ज्ञात होता है। त्रिपक्षपर्यन्त श्राद्धों को दाह-तिथि में करके दूसरे बीते हुए श्राद्धों को मृत तिथि में प्राप्त मासिक के साथ करे।

अथ ऊनश्राद्धेषु वर्ज्यानि

त्रिपुष्करेषु[2] नन्दासु सिनीवाल्यां भृगोर्दिने।
चतुर्दश्यां च नोनानि कृत्तिकासु द्विपुष्करे॥

---

१. माधव ने—'षाण्मासिकाब्दिके श्राद्धे स्यातां पूर्वेद्युरेव ते। मासिकानि स्वकीये तु दिवसे द्वादशेऽपि वा॥' पैठीनसि के इस वचन का अर्थ किया है कि ऊनषाण्मासिक और ऊनाब्दिक श्राद्ध मृत तिथि से पहले करे।

२. कृत्तिका, पुनर्वसु, उत्तराफल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढ़ा और पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र,

त्रिपुष्करद्विपुष्करयोगयोर्लक्षणं प्रागुक्तम्। आद्यमासिकमाद्याब्दिकं चैकादशेऽह्नीत्येकं मतम्। आद्यमासिकमेवैकादशेऽह्नि[1] प्रथमाब्दिकं तु द्वितीयवर्षारम्भ एवेत्यपरमतमित्युक्तम्। एतानि षोडशश्राद्धानि वर्षान्तसपिण्डनपक्षे उक्तेषु स्वस्वकालेष्वेकोद्दिष्टविधिना कार्याणि। [2]द्वादशाहादिकालेषु सपिण्डनापकर्षपक्षे एकदिने एवापकृष्य युगपदेकोद्दिष्टविधिना कार्याणि, 'श्राद्धानि षोडशादत्त्वा न तु कुर्यात्सपिण्डनम्' इति षोडशश्राद्धैर्विना सपिण्डनेऽधिकाराभावबोधनात्। एतानि पक्वान्नेनामान्नेन वा कार्याणि।

त्रिपुष्करों में नन्दा तिथियों में सिनीवाली अमावास्या (जिसमें चन्द्रदर्शन हो उस) में शुक्र के दिन, चतुर्दशी में कृत्तिका में द्विपुष्कर में ऊन श्राद्ध का त्याग करे। त्रिपुष्कर-द्विपुष्कर-योग का लक्षण पहले कहा है। आद्य मासिक और आद्य आब्दिक ग्यारहवें दिन करे, यह एक मत है। आद्य मासिक ही ग्यारहवें दिन करे, प्रथम आब्दिक तो दूसरे वर्ष के आरम्भ में ही करे, यह अन्य का मत है, यह कहा है। ये षोडश श्राद्ध वर्ष के अन्त में सपिण्डन के पक्ष में कहे हुए अपने-अपने काल में एकोद्दिष्ट विधि से करे। द्वादशाह आदि काल में सपिण्डन के अपकर्ष पक्ष में एक दिन में ही अपकर्ष करके एक काल में ही एकोद्दिष्ट विधि से करे, क्योंकि षोडश श्राद्ध विना किये सपिण्डन न करे, इस आशय के वचन से षोडश श्राद्धों के विना सपिण्डन करने के अधिकार का अभाव बोधित होता है। ये श्राद्ध पक्वान्न से या आमान्न से करे।

पाकपक्षे युगपत्करणे सर्वेषामेक एव पाको विप्रा अर्घ्याः पिण्डाश्च षोडश। एतानि द्वादशाहादौ सपिण्डनात्पूर्वं कृतान्यपि पुनः सपिण्ड्युत्तरं स्वस्वकाले पार्वणविधिना कार्याणि,

यस्य संवत्सरादर्वाग् विहिता तु सपिण्डता।
विधिवत्तानि कुर्वीत पुनः श्राद्धानि षोडश॥
अर्वाक् संवत्सराद्यस्य सपिण्डीकरणं कृतम्।

द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी तिथि, मंगलवार, शनिवार और रविवार, इन तीनों के योग होने पर त्रिपुष्कर और पूर्वोक्त तिथि और वार में मृगशिरा, चित्रा और धनिष्ठा नक्षत्र के योग होने पर द्विपुष्कर योग होता है।

१. याज्ञवल्क्यः—'मृतेऽहनि प्रकर्तव्यं प्रतिमासं तु वत्सरम्। प्रतिसंवत्सरं चैवमाद्यमेकादशेऽहनि॥' अर्थात् मृततिथि में प्रतिमास संवत्सरपर्यन्त एकोद्दिष्ट करना चाहिये। सपिण्डीकरण के बाद प्रतिवर्ष एकोद्दिष्ट ही करे और सब एकोद्दिष्ट का प्रकृतिभूत आद्य एकोद्दिष्ट ग्यारहवें दिन करे।

२. अशक्तावश सपिण्डनापकर्ष पक्ष में सपिण्डन जैसे बारहवें आदि दिनों में किया जाता है वैसे मासिक श्राद्धों का अपकर्ष करके बारहवें आदि दिनों में सपिण्डन के पूर्व मासिक श्राद्ध करे। हारीतः—'मुख्यं श्राद्धं मासि मासि अपर्याप्तावृतुं प्रति। द्वादशाहेन वा भोज्या एकाहे द्वादशापि वा॥' स्मृतिरत्नावल्याम्—'द्वादशाहे यदा कुर्यात् पितुः पुत्रः सपिण्डनम्। एकादशेऽह्नि कुर्वीत प्रेतश्राद्धानि षोडश॥' इत्यादि वचनों से देशाचारानुसार कहीं ग्यारहवें दिन आद्यश्राद्ध एवं बारहवें दिन मासिक श्राद्ध तथा सपिंडन और कहीं ग्यारहवें दिन आद्यश्राद्धादि सपिंडनान्त सभी श्राद्ध किये जाते हैं।

षोडशानां द्विरावृत्तिं कुर्यादित्याह गौतमः ॥ इत्यादिवचनात् । षोडशानां द्विरावृत्तित्वं चैकादशाहसपिण्डनपक्षे ज्ञेयम् , तत्राऽद्यमासिकस्य कालसत्त्वात् । द्वादशाहे सपिण्डनपक्षे तु पञ्चदशानां द्विरावृत्तिः ।

पाक के पक्ष में एक काल में करने पर सबों का एक ही पाक करे, ब्राह्मण, अर्घ्य और पिण्ड सोलह करे । ये श्राद्ध द्वादशाह आदि में सपिण्डन से पूर्व किये भी गये हों तो उनको पुनः सपिण्डी के बाद अपने-अपने समय में पार्वण विधि से करे, क्योंकि वचन है कि—जिसका वर्ष के पूर्व में सपिण्डन हो चुका हो उन्हें पुनः विधिपूर्वक सोलहों श्राद्ध करना चाहिये । वर्ष से पूर्व जिसका सपिण्डन कर दिया हो उसके सोलहों श्राद्धों की दो आवृत्ति करे, ऐसा गौतम ने कहा है । षोडश श्राद्धों की दो आवृत्ति एकादशाह में सपिण्डन के पक्ष में जानना चाहिये, क्योंकि उसमें आद्य मासिक का काल है । द्वादशाह में सपिण्डन पक्ष में तो पन्द्रह की दो आवृत्ति होती है ।

'त्रिपक्षे सपिण्डनपक्षे आद्यमासिकोनमासिकद्वितीयमासिकानां स्वकाले कृतत्वात्तदपकृष्य [2]कृतानामेव पुनरावृत्तिविधानात्तेषां कालाभावाच्च त्रयोदशानामेव पुनरावृत्तिः । एवमन्यपक्षेऽष्वपि यथासंभवमूह्यम् । ये तु द्वादशाहे सपिण्डनं कृत्वा त्रयोदशाहादावाद्यमासिकसहितानां षोडशानां पुनरावृत्तिं कुर्वन्ति ते भ्रान्ताः[3] ।

त्रिपक्ष में सपिण्डन पक्ष में आद्यमासिक, ऊनमासिक और द्वितीय मासिक का अपने-अपने काल में कर दिये जाने से उसका अपकर्ष कर किये हुओं का ही पुनः आवृत्ति के विधान होने से उनके समय का अभाव से तेरह की ही पुनः आवृत्ति होती है । इसी प्रकार अन्य पक्षों में भी यथासम्भव कल्पना करनी चाहिये । जो लोग द्वादशाह में सपिण्डन करके त्रयोदशाह आदि में आद्य मासिक के साथ सोलहों की पुनः आवृत्ति करते हैं वे भ्रान्त हैं ।

अथ अधिकमासे आवृत्तिविचारः

यदा मरणादारभ्य द्वादशमासमध्ये कश्चिदधिकमासः पतेत्तदा तन्मासस्थं मासिकश्राद्धमधिके शुद्धे मासे चेति द्विवारं कार्यमिति सप्तदशश्राद्धानि भवन्ति ।

---

१. सपिण्डन-समय को बतलाते हुए बौधायन ने त्रिपक्ष-पक्ष का निर्देश किया है—'अथ सपिंडीकरणं त्रिपक्षे वा तृतीये वा मासि षष्ठे वैकादशे वा द्वादशे द्वादशाहे वैकादशाहे वा' । त्रैपक्षिकश्राद्ध तो त्रिपक्ष के बीतने पर मृत तिथि में करे जैसा भविष्य में कहा है—'त्रैपक्षिकं भवेद् वृत्ते त्रिपक्षे तदनन्तरम् ।' कार्ष्णाजिनिः—'त्रैपक्षिकं त्रिपक्षे स्यान्मृताहे त्वितराणि तु ।' इति ।

२. मदनरत्न में अङ्गिरा का वचन है—'यस्य संवत्सरादर्वाक् सपिण्डीकरणं कृतम् । मासिकं चोदकुम्भं च देयं तस्यापि वत्सरम् ॥' माधवीय में गोभिल का वचन है—'यस्य संवत्सरादर्वाग्विहिता तु सपिण्डता । विधिवत्तानि कुर्वीत पुनः श्राद्धानि षोडश ॥' गालवः—'अर्वाक् संवत्सराद्यस्य सपिण्डीकरणं कृतम् । षोडशानां द्विरावृत्तिं कुर्यादित्याह गौतमः ॥' इति ।

३. क्योंकि अपकर्ष पक्ष में बारहवें दिन सपिण्डीश्राद्ध करने के बाद मासिक श्राद्ध प्रथम द्वितीयादि मास में अपने समय में होंगे जैसा कार्ष्णाजिनि ने कहा है—'अर्वागब्दाद्यत्र यत्र सपिण्डीकरणं कृतम् । तदूर्ध्वं मासिकानां स्याद्यथाकालमनुष्ठितिः ॥' इति ।

मलमासे मृतस्य तु एकादशाहे आद्यमासिकं कृत्वा द्वितीयमासमृततिथौ तत्पुनः कृत्वा किंचिदूने द्वितीयमासे ऊनमासिकं तृतीयमासारम्भे द्वितीयमासिकं सार्धद्विमासान्ते त्रैपक्षिकम् । सपिण्ड्युत्तराण्यवशिष्टमासिकानि स्वस्वकाले एव कार्याणि । चतुःपुरुषमध्ये सपिण्डेषु नान्दीश्राद्धप्राप्तौ तु तत्प्राप्तिमासे एवैकस्मिन्नेव दिने सर्वाण्यपकृष्य कार्याणि—

प्रेतश्राद्धानि सर्वाणि सपिण्डीकरणं तथा ।
अपकृष्यापि कुर्वीत कर्तुं नान्दीमुखं द्विजः ॥ इत्युक्तेः ।

तत्रैकः पाकः । [१]षोडशश्राद्धपक्षे षोडश ब्राह्मणा अष्टचत्वारिंशत्पिण्डाः पुरूरवार्द्रवविश्वेदेवार्थमेको विप्र इति सर्वेषामनुष्ठानम् । एवं पक्षान्तरेषु श्राद्धसंख्यानुसारेण विप्राद्यूह्यम् ।

जब मरण से आरम्भ कर बारह मास के बीच में कोई अधिक मास पड़े तब उस मास का मासिक श्राद्ध अधिक में और शुद्ध मास में भी दो बार करना चाहिये, इस प्रकार सतरह श्राद्ध होते हैं । मलमास में मरे का तो एकादशाह में आद्य मासिक करके दूसरे मास के मृत तिथि में उसे पुनः करके कुछ कम दूसरे मास में ऊनमासिक और तीसरे मास के आरम्भ में द्वितीय मासिक एवं अढ़ाई महीने के अन्त में त्रैपाक्षिक करे । सपिण्डी के बाद वाले बचे मासिकों को अपने समय में ही करे । चार पीढ़ी के मध्य के सपिण्डों में नान्दीश्राद्ध आ पड़े तो उसके पड़ने वाले मास में ही एक ही दिन में सब का अपकर्ष करके करे । क्योंकि यह वचन है कि नान्दीमुख कर्ता ब्राह्मण सपिण्डीकरण को अपकर्ष करके भी करे । उसमें एक पाक होता है । सोलह श्राद्ध के पक्ष में सोलह ब्राह्मण और अड़तालीस पिण्ड तथा पुरूरव-आर्द्रव-विश्वेदेव के लिये एक ब्राह्मण, इस तरह सब का अनुष्ठान करे । इसी प्रकार दूसरे पक्षों में श्राद्ध की संख्या के अनुसार ब्राह्मण आदि की कल्पना कर लेनी चाहिये ।

केचित्पाकभेदमाहुः । उदकुम्भश्राद्धानामप्यनुमासिकवत्प्रेतोद्देश्यकश्राद्धत्वात्तेषामप्यपकर्ष इत्युक्तम् । वृद्धिं विनानुमासिकापकर्षे तु दोषमाहोशनाः—

वृद्धिश्राद्धविहीनस्तु प्रेतश्राद्धानि यश्चरेत् ।
स श्राद्धी नरके घोरे पितृभिः सह मज्जति ॥ इति ।

चतुःपुरुषसपिण्डेष्वाधानादिप्राप्तिनिमित्तोऽप्यपकर्षः कार्यः । अत्र विशेषः पूर्वार्धे उक्तः । यद्यन्मासिकं सूतकादिनातिक्रान्तं भवेत्तत्तदुत्तरमासिकेन सह तन्त्रेण कार्यमित्युक्तम् ।

---

१. येषां मते प्रथममासिकं महैकोद्दिष्टाद् भिन्नं तेषां मते षोडश दाक्षिणात्यादीनाम् । येषां मते प्रथममासिकस्य महैकोद्दिष्टरूपाद आद्यश्राद्धाद् न पृथक् प्रयोगः, तेषां मते ऊनमासिकादीनि ऊनाब्दिकान्तानि पञ्चदशैव श्राद्धानि । आद्यश्राद्धेन मिलित्वा तु षोडश भवन्ति । इदमेव चोत्तमं षोडशकमिति गीयते । गारुडे—'द्वादश प्रतिमासेषु पाक्षिकं च त्रिपाक्षिकम् । न्यूनषाण्मासिकं पिण्डं दद्याद् न्यूनाब्दिकं तथा ॥ उत्तमं षोडशं चैतद् मया ते परिकीर्तितम् । श्रपयित्वा चरुं तार्क्ष्य कुर्यादेकादशेऽहनि ॥' इति ।

कुछ लोग पाक भेद कहते हैं। उदकुम्भ श्राद्धों का भी अनुमासिक के समान प्रेतोद्देश्यक श्राद्ध होने से उनका भी अपकर्ष होता है, यह कहा है। वृद्धि के विना अनुमासिक के अपकर्ष में तो उशना ने दोष बतलाया है-वृद्धिश्राद्ध से हीन तो जो प्रेतश्राद्धों को करता है वह श्राद्ध करने वाला पितरों के साथ घोर नरक में डूबता है। चार पुरुषों के सपिण्ड में भी आधान आदि की प्राप्ति के निमित्त से भी अपकर्ष करे। इसमें विशेष पूर्वार्ध में कहा है। जो-जो मासिक सूतक आदि से छूट जाय, उस-उस को बाद वाले मासिक के साथ तन्त्र से करे, यह कहा है।

अथ सपिण्डीकरणविचारः

तत्र सपिण्डनकालः—'नासपिण्ड्याग्निमान्पुत्रः पितृयज्ञं समाचरेत्' इति वचनात् पित्रादीनां मात्रादीनां त्रितयमध्येऽन्यतममरणे साग्निको द्वादशाहे सपिण्डनं कृत्वागामिदर्शे पिण्डपितृयज्ञादिकं[1] कुर्यात्। अत्र स्मार्ताग्निमानपि साग्निको ग्राह्य इति भाति। तस्यापि पिण्डपितृयज्ञावश्यकत्वात्। साग्नेः प्रेतस्य तु त्रिपक्षे एव—

प्रेतश्चेदाहिताग्निः स्यात्कर्तानग्निर्यदा भवेत्।
सपिण्डीकरणं तस्य कुर्यात्पक्षे तृतीयके ॥ इत्युक्तेः।

सपिण्डन का समय—असपिण्ड अग्निहोत्री पुत्र पितृयज्ञ न करे, इस वचन से पिता आदि तीन और माता आदि तीन में से किसी एक के मरने पर साग्निक द्वादशाह में सपिण्डन करके आने वाले दर्श में पिण्डपितृयज्ञ आदि करे। इसमें स्मार्त अग्निहोत्री भी साग्निक ग्राह्य है, यह प्रतीत होता है। क्योंकि उसको भी पिण्डपितृयज्ञ आवश्यक है। साग्निक प्रेत का तो सपिण्डीकरण त्रिपक्ष में ही होता है, क्योंकि यह वचन है कि—प्रेत यदि साग्निक हो और कर्ता निरग्निक हो तो उसका सपिण्डीकरण तीसरे पक्ष में करे।

अत्र साग्निः श्रौताग्निमानेव। द्वयोः साग्नित्वे द्वादशाह एव,

साग्निकस्तु यदा कर्ता प्रेतो वाप्यग्निमान्भवेत्।
द्वादशाहे तदा कुर्यात्सपिण्डीकरणं पितुः ॥ इत्युक्तेः।

द्वयोरप्यनग्नित्वे त्वनेके [2]कालाः—

१, गालव ने भी कहा है—'सपिण्डीकरणात् प्रेते पैतृकं पदमास्थिते। आहिताग्नेः सिनीवाल्यां पितृयज्ञः प्रवर्तते ॥' इति।

२. कालादर्श में सपिंडीकरण के आठ काल का निर्देश करते हुए इस प्रकार कहा है—'एकादशे द्वादशेऽह्नि त्रिपक्षे वा त्रिमासि वा। षष्ठे चैकादशे वाऽब्दे सम्पूर्णे वा शुभागमे ॥ सपिण्डीकरणस्येत्थमष्टौ कालाः प्रकीर्तिताः। साग्नौ कर्तर्युभावाद्यौ प्रेते साग्नौ तृतीयकः ॥ अनग्नेस्तु द्वितीयाद्याः सप्त काला मुनीरिताः। रोहिणीरौद्रहस्तेषु मैत्रमे वापि तच्चरेत् ॥' गरुडपुराण में साग्निक-निरग्निक सभी के लिये बारहवें दिन सपिंडीकरण का समय-निर्देश किया है—'द्वादशाहे त्रिपक्षे वा षण्मासे वत्सरेऽपि वा। सपिंडीकरणं प्रोक्तं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ मया तु प्रोच्यते तार्क्ष्य शास्त्रधर्मानुसारतः। चतुर्णामेव वर्णानां द्वादशाहे सपिण्डनम् ॥ कर्मलोपात् प्रत्यवायी भवेत्तस्मात् सपिण्डनम्। निरग्निकः साग्निको वा द्वादशाहे समाचरेत् ॥' इति।

सपिण्डीकरणं कुर्याद्यजमानस्त्वनग्निमान् ।
अनाहिताग्नेः प्रेतस्य पूर्णे संवत्सरेऽथवा ॥
एकादशे मासि षष्ठे त्रिमासे वा त्रिपक्षके ।
मासान्ते द्वादशे वाह्नि कुर्याद्वैकादशेऽह्नि ॥
यदहर्वृद्धिरापन्ना तदहर्वेति निश्चितम् ।

इसमें साग्नि, श्रौत अग्नि वाला ही ग्राह्य है। दोनों (प्रेत और कर्ता) साग्निक हों तो द्वादशाह ही में करे, क्योंकि वचन है कि जब साग्निक कर्ता हो और प्रेत भी अग्निमान् हो तो द्वादशाह में ही पिता का सपिण्डन करे। दोनों भी निरग्निक हों तो अनेक काल है। निरग्निक यजमान अनाहिताग्नि प्रेत का सपिण्डीकरण वर्ष पूरा होने पर या ग्यारहवें महीने, छठे तथा तीसरे महीने अथवा त्रिपक्ष में या मास के अन्त में या द्वादशाह में या एकादशाह में करे। अथवा जिस दिन वृद्धि प्राप्त हो उस दिन करे, यह निश्चित है।

अत्र वृद्धिनिमित्तापकर्षो निरग्नेरेवोक्तस्तथापि साग्नेरपि संभवे योज्यः। अत्र वृद्धिपदं चूडोपनयनविवाहमात्रपरम्। सीमन्तादिसंस्कारे वृद्धिश्राद्धस्य लोप एव कार्यो न तु तदर्थं सपिण्डनापकर्ष इति केचित्। अन्ये तु गर्भाधानपुंसवनादिष्वन्नप्राशनान्तेषु संस्कारेष्वकरणे दोषोक्तेरावश्यकेषु वृद्धिश्राद्धस्याप्यावश्यकत्वात्सपिण्डनापकर्षः कार्य एव। तथा च चतुःपुरुषसपिण्डेषु सपिण्डीकरणाभावे गर्भाधानादिकमपि न कार्यमित्याहुः। तेन पितामहमरणे पौत्रस्य वृद्धौ प्राप्तायामप्यपकर्षः सपिण्डीकरणानुमासिकादीनां सिद्धः।

इसमें यद्यपि वृद्धिनिमित्तक अपकर्ष निरग्निक के लिये ही कहा है तथापि संभव हो तो साग्निक के लिये भी योजना कर ले। यहां वृद्धि पद चूड़ा-उपनयन-विवाहमात्र परक है। कुछ लोग कहते हैं--सीमन्त आदि संस्कारों में वृद्धिश्राद्ध का लोप ही करे न कि उसके लिये सपिण्डन का अपकर्ष। दूसरे—गर्भाधान और पुंसवन आदि अन्नप्राशनपर्यन्त संस्कारों में वृद्धिश्राद्ध के न करने में दोष की उक्ति से आवश्यक श्राद्धों में वृद्धिश्राद्ध का भी आवश्यक होने से सपिण्डन का अपकर्ष करना ही चाहिये। अतः चार पुरुषों के सपिण्ड में सपिण्डीकरण के अभाव में गर्भाधान आदि भी नहीं करे—यह कहते हैं। इससे पितामह के मरने में पौत्र को वृद्धि प्राप्त होने पर भी सपिण्डीकरण तथा अनुमासिक आदि का अपकर्ष सिद्ध हुआ।

एवमावश्यकवृद्धियुतकर्मप्राप्तौ कनिष्ठः[१] पुत्रो वा भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वान्यः सपिण्डो वा शिष्यो वा गौणकर्तापि कुलप्राप्तवृद्धिसिद्ध्यर्थं सपिण्डनाद्यपकर्षं कुर्यात्। तत्र च कृते मुख्यस्य पुत्रादेर्न पुनः करणम्। वृद्धिनिमित्तापकर्षे पुनःकरणाभावात्। ये वा भद्रं दूषयन्ति स्वधाभिरिति दोषश्रुतेः वृद्धिं विना गौणाधिकारिणा सपिण्ड्यादिकरणे तु मुख्याधिकारिणा पुत्रादिना पुनरावर्तनी-

---

१. मदनरत्न में लघुहारीत का वचन है—'भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वा सपिण्डः शिष्य एव च। सह पिण्डक्रियां कृत्वा कुर्यादभ्युदयं ततः॥ तथैव काम्यं यत्कर्म वत्सरात्प्रथमादृते।' इति।

यम्। एकादशाहान्तकर्मणस्तु न पुनरावृत्तिरित्युक्तम्। तत्रावश्यकपदेनानन्यगतिकं वृद्धिकर्म ग्राह्यम्।

इस तरह आवश्यक वृद्धियुक्त कर्म की प्राप्ति में छोटा पुत्र या भाई अथवा भतीजा या दूसरा सपिण्ड वा शिष्य इनमें कोई गौण कर्ता भी कुलप्राप्त वृद्धि की सिद्धि के लिये सपिंडन आदि का अपकर्ष करे। उसके करने पर मुख्य पुत्र आदि पुनः नहीं करे, क्योंकि वृद्धि के निमित्त अपकर्ष में पुनः नहीं करना है। 'ये वा भद्रं दूषयन्ति स्वधाभिः' यानी जो स्वधा से मंगल को दूषित करते हैं वे अधम हैं, इस दोष की श्रुति से वृद्धि को छोड़कर गौण अधिकारी के द्वारा सपिण्डी आदि करने पर तो मुख्य अधिकारी पुत्र आदि को पुनः करना चाहिये। एकादशाहान्त कर्म का तो पुनः आवृत्ति न करे, यह कहा है। उसमें आवश्यक पद से अनन्यगतिक वृद्धिकर्म ग्राह्य है।

तेन सगतिकेष्टापूर्तादौ सगतिकोपनयनविवाहादौ च नापकर्षः। अगतिके च विवाहादावप्यपकर्ष इति व्यवस्था योज्या।

आनन्त्यात्कुलधर्माणां पुंसां चैवायुषः क्षयात्।
अस्थिरत्वाच्छरीरस्य [1]द्वादशाहः प्रशस्यते॥

अत्र कुलधर्मपदेन वृद्धिश्राद्धयुतं कर्म ग्राह्यं न तु पञ्चमहायज्ञदेवपूजाश्राद्धादि। अस्य वर्णधर्मत्वेन नित्यत्वात्सपिण्डीकरणनिमित्तकप्रतिबन्धायोगात्, सपिण्डीकरणात्पूर्वं पञ्चमहायज्ञादिधर्मो न कार्य इति क्वापि स्मृतिवचनेऽनुपलम्भाच्च। एतेन सपिण्डीकरणाभावे सपिण्डेषु देवपूजाश्राद्धादिधर्मलोपं वदन्तो निर्मूलत्वादुपेक्ष्याः।

इससे सगतिक इष्टापूर्ति आदि में और सगतिक उपनयन-विवाह आदि में अपकर्ष नहीं होता। अगतिक विवाह आदि में भी अपकर्ष करे, इस व्यवस्था की योजना कर लेनी चाहिये। कुल धर्मों के आनन्त्य से और पुरुषों के आयुःक्षय से तथा शरीर के स्थिर न रहने से सपिण्डीकरण के लिये द्वादशाह प्रशस्त है। यहाँ कुल-धर्म पद से वृद्धिश्राद्धयुक्त कर्म ग्राह्य है पञ्चमहायज्ञ-देवपूजा और श्राद्ध आदि नहीं, क्योंकि इसके वर्ण के धर्म होने से नित्य कर्म है फिर भी सपिण्डीकरण निमित्तक प्रतिबन्ध का योग नहीं है और सपिण्डीकरण के पहले पञ्चमहायज्ञ आदि धर्म नहीं करे, ऐसा कहीं भी स्मृतिवचन में उपलब्ध नहीं है। इससे सपिण्डीकरण के अभाव में सपिण्डों में देवार्चन, श्राद्ध आदि धर्म का लोप कहने वाले निष्प्रमाण होने से उपेक्षणीय हैं।

अत्र द्वादशाहपदेनाशौचसमाप्त्युत्तरदिनं ग्राह्यम्। तेन त्रिदिनाशौचे पञ्चमदिने सपिण्डीकरणम्।

द्वादशाहादिकालेषु प्रमादादननुष्ठितम्।
सपिण्डीकरणं कुर्यात्कालेषूत्तरभाविषु॥

---

१. किसी-किसी देश में 'सर्वेषामेव वर्णानामाशौचान्ते सपिण्डनम्।' कात्यायन के इस वचन से यहां द्वादशाह पद को आशौचान्त का उपलक्षण मानकर सपिण्डन का ग्यारहवां दिन प्रशस्त मानते हैं। चतुर्विंशतिमते—'सपिण्डीकरणं चाब्दे सम्पूर्णेऽभ्युदयेऽपि वा। द्वादशाहे तु केषांचिन्मतं चैकादशे तथा॥' इति।

इदमुत्तरकालविधानं साग्निनिरग्निसाधारणम्।

सपिण्डीकरणश्राद्धमुक्तकाले कृतं न चेत्।
हस्तार्द्रारोहिणीभे वानुराधायां च तच्चरेत्॥

इदमपि साधारणम्। स्मृत्यर्थसारे वर्षान्तसपिण्डनपक्षे वर्षान्त्यदिने पूर्वं संवत्सरविमोक्षश्राद्धं कृत्वा सपिण्डनं च कृत्वा परेद्युर्मृताहे वार्षिकं कार्यमित्युक्तम्। इति कालविचारः।

यहाँ द्वादशाह पद से आशौच समाप्ति के बाद वाला दिन ग्राह्य है। इससे तीन दिन के आशौच में पांचवें दिन सपिण्डीकरण करे। द्वादशाह आदि समय में भूल से सपिण्डीकरण नहीं किया हो तो आगे आने वाले समय में करे। यह उत्तर काल का विधान साग्निक और निरग्निक के लिये साधारण है। सपिण्डीकरण श्राद्ध उक्त काल में यदि न किया हो तो हस्त, आर्द्रा और रोहिणी नक्षत्र में या अनुराधा में उसे करे। यह भी साधारण साग्निक निरग्निक दोनों का है। स्मृत्यर्थसार में वर्षान्त सपिण्डन पक्ष में वर्ष के अन्तिम दिन में पहले संवत्सर का विमोक्ष श्राद्ध करके और सपिण्डन करके दूसरे दिन मृताह में वार्षिक करे, यह कहा है। कालविचार समाप्त।

अथ सपिण्डनाद्यधिकारिविचारः

तच्च सपिण्डनं पुत्रे विदेशस्थेऽपि सति नान्यः कुर्यात्। एवं ज्येष्ठपुत्रे विदेशस्थेऽपि न कनिष्ठः कुर्यात्। षोडशश्राद्धानि तु ज्येष्ठासन्निधाने कनिष्ठेन न कार्याणि। पुनर्ज्येष्ठेन न कार्याणि। आहिताग्निः कनिष्ठोऽपि सपिण्डनं कुर्यादेव। वृद्धिनिमित्ते तु कनिष्ठादिभिरपि [1]सपिण्डनं कार्यमित्युक्तम्। वृद्धिं विना कनिष्ठपुत्रेण कृते सपिडने ज्येष्ठपुत्रेण पुनः कार्यम्। आहिताग्निना पितृयज्ञार्थं कृते सपिडनेऽपि ज्येष्ठेन पुनः कार्यमिति भाति। तत्र पुनः करणे प्रेतशब्दो न वाच्यः।

देशान्तरस्थपुत्राणां श्रुत्वा तु वपनं भवेत्।
दशाहं सूतकं चैव तदन्ते च सपिडनम्॥

वह सपिण्डन पुत्र के परदेश में रहने पर दूसरा नहीं करे। इसी प्रकार ज्येष्ठ पुत्र के विदेश में रहने पर भी छोटा न करे। ज्येष्ठ के असान्निध्य में कनिष्ठ षोडश श्राद्धों को तो करे। दुबारा ज्येष्ठ नहीं करे। आहिताग्नि कनिष्ठ भी सपिण्डन करे ही। वृद्धिनिमित्त में तो कनिष्ठ आदि भी सपिण्डन करे यह कहा है। वृद्धि के विना छोटे पुत्र द्वारा सपिण्डन करने पर भी ज्येष्ठ पुत्र को पुनः सपिण्डन करना चाहिये। आहिताग्नि द्वारा पितृयज्ञ के लिये सपिण्डन करने पर भी जेठे को पुनः सपिण्डन करना चाहिये, यह ठीक लगता है। वहां पुनः करने में प्रेत शब्द नहीं कहे। दूसरे देश में रहने वाले पुत्रों को पित्रादि का मरण सुनने पर वपन होता है और दस दिन का आशौच तथा आशौच के अन्त में सपिण्डन होता है।

अथव्युत्क्रममृतौ निर्णयः

मृते पितरि यस्याथ विद्यते च पितामहः।
तेन देयास्त्रयः पिंडाः प्रपितामहपूर्वकाः॥

---

१. लघुहारीतः—'भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वा सपिण्डः शिष्य एव च। सह पिण्डक्रियां कृत्वा कुर्यादभ्युदयं ततः॥ तथैव काम्यं यत्कर्म वत्सरात्प्रथमाहृते।' इति।

तेभ्यश्च पैतृकः पिंडो नियोक्तव्यस्तु पूर्ववत् ।
मातर्यथ मृतायां तु विद्यते च पितामही ॥
प्रपितामहीपूर्वस्तु कार्यस्तत्राप्ययं विधिः ।

एवं प्रपितामहजीवने तत्पित्रादिभिः कार्यः । यत्तु 'व्युत्क्रमात्तु प्रमीतानां नैव कार्या सपिंडता'[1] इति तन्मातापितृभर्तृभिन्नविषयम्[1]। प्रपितामहादिभिः पितुः सपिंडने कृते पश्चात्पितामहमरणेऽपि पुनः पितामहेन सह पितुः सपिण्डनं[2]कार्यम्।

विपरीत क्रम से मरने में—यानी पितामह के जीते जिसका पिता मरता है, उसे प्रपितामहपूर्वक तीन पिण्ड देना चाहिये। उन्हीं तीनों के साथ पिता के पिण्ड को पहले के समान मिला दे। माता के मरने पर पितामही जीवित रहे तो प्रपितामहीपूर्वक पूर्वोक्त यही विधि करे। इसी प्रकार प्रपितामह के जीवन में उनके पिता आदि के साथ सपिण्डी करे। जो किसी ने कहा है—विपरीत क्रम से मरने वालों का तो सपिण्डन नहीं करे, वह माता-पिता और पति से भिन्न के लिये है। प्रपितामह आदि के साथ पिता के सपिण्डन करने पर पीछे पितामह के मरने पर भी पुनः पितामह के साथ पिता का सपिण्डन करे।

यदा तु पितुः सपिंडनात्प्राक् पितामहो मृतस्तदा पितामहसपिंडनं कृत्वा पितामहादिभिः सह पितृसपिंडनं कार्यम्। यदा च पितुर्मरणोत्तरं पितामहः प्रपितामहो वा मृतस्तयोश्च पुत्रान्तरं सपिंडनाधिकारी देशान्तरे तिष्ठति तदा दाहाद्येकादशाहान्तमात्रं कर्म कृत्वा सपिंडनहीनाभ्यामपि पितामहप्रपितामहाभ्यां सह पितुः सपिंडनं कुर्यात्। पितामहप्रपितामहयोः पुत्रान्तराभावे तु पौत्रः प्रपौत्रो वा तयोः सपिंडनं कृत्वैव पितुः सपिंडनं कुर्यात्।

जब कि पिता के सपिण्डन के पूर्व पितामह मर जायं तब पितामह का सपिण्डन करके पितामह आदि के साथ पिता का सपिण्डन करे। जब कि पिता के मरने के बाद पितामह या प्रपितामह मर जायं और इनके सपिण्डन का अधिकारी दूसरा पुत्र दूसरे देश में हो तब दाहादि एकादशाहान्त मात्र कर्म करके सपिण्डनरहित भी पितामह और प्रपितामह के साथ पिता का सपिण्डन करे। पितामह तथा प्रपितामह के दूसरे पुत्र के न रहने पर तो उनके पौत्र या प्रपौत्र उन दोनों का सपिण्डन करके ही पिता का सपिण्डन करे।

पितामहस्य पुत्रान्तराभावे [3]पौत्रेण सपिंडनषोडशानुमासिकान्तमेव कर्म कार्यम्। पितामहवार्षिकादिकं तु नावश्यकम्। इच्छया पितामहवार्षिकादिकरणे तु फलातिशयः। पितृदशाहं कुर्वन् यदि पुत्रो मृतस्तदा तत्पुत्रः स्वपितुरौर्ध्वदेहिकं

---

१. जैसा स्कन्दपुराण में कहा है—'व्युत्क्रमेण मृतानां न सपिण्डीकृतिरिष्यते। यदि माता यदि पिता भर्ता नैष विधिः स्मृतः ॥' इति।

२. यह हेमाद्रि मत से है। विष्णुधर्म आदि के वचन से इस मत को दूसरे नहीं मानते।

३. कात्यायनः—'पितामहः पितुः पश्चात् पञ्चत्वं यदि गच्छति। पौत्रेणैकादशाहादि कर्तव्यं श्राद्धषोडशम्। नैतत्पौत्रेण कर्तव्यं पुत्रवांश्चेत् पितामहः। पितुः सपिण्डतां कृत्वा कुर्यान्मासानुमासिकम् ॥' इति।

कृत्वा पितामहौर्ध्वदेहिकं पुनः सर्वमावर्तयेत्। अतीते दशाहे तु न पुनरावृत्तिः। पुत्रान्तराभावे पितामहसपिंडनोत्तरं पितृसपिंडनमित्युक्तम्। अशक्तिवशात्पित्रानुज्ञातेन पौत्रेण पितामहदशाहकर्मण्यारब्धे पश्चात्पितृमृतौ पित्राशौचं वहन्नेव पौत्रः पितामहौर्ध्वदेहिकं कुर्यात्, प्रक्रान्तत्वात्। पितृदशाहादि कर्मापि कुर्यात्प्राप्तत्वात्।

पितामह के दूसरे पुत्र के अभाव में पौत्र को सपिण्डन और षोडश अनुमासिकपर्यन्त ही कर्म करना चाहिये। पितामह का वार्षिक आदि तो आवश्यक नहीं है। इच्छा से पितामह का वार्षिक आदि के करने में तो अतिशय फल है। पिता का दशाह करता हुआ पुत्र यदि मर जाय तब उसका पुत्र अपने पिता का और्ध्वदेहिक करके पितामह के सब और्ध्वदेहिक कर्म का पुनः आवर्तन करे। दशाह बीत जाने पर तो पुनः आवृत्ति नहीं होती। दूसरे पुत्र के अभाव में पितामह के सपिण्डन के बाद पिता का सपिण्डन करे, यह कहा है। अशक्तिवश पिता की आज्ञा प्राप्त पौत्र पितामह के दशाह कर्म आरम्भ करने पर पीछे पिता के मरने में पिता के आशौच में ही पितामह का और्ध्वदेहिक करे, क्योंकि वह प्रारम्भ किया हुआ है। प्राप्त होने के कारण पिता के दशाह आदि कर्म को भी करे।

अथ स्त्रीषु विशेषः

अथ स्त्रीषूच्यते—'पितामह्यादिभिः सार्धं मातरं तु सपिण्डयेत्[1]। केचित्पितृमरणोत्तरं मातृमरणे पित्रैव सह मातृसपिण्डनमाहुः। दौहित्रः सपिंडनकर्ता चेन्मातामहेन सह सपिंडनमित्यपरे। सहगमने तु[2] भर्त्रैव सह सपिंडनम्। येन केनापि सपिंडनेऽप्यन्वष्टक्यप्रतिवार्षिकादिश्राद्धेषु पितामहयादिभिः सहैव मातुः पार्वणं कार्यम्। अत्र केचित्स्वपुत्रसपत्नीपुत्रयोः[3] पत्युश्चाभावे स्त्रीणां सपिंडनं नास्तीत्याहुः।

स्त्रियों के सम्बन्ध में कहता हूँ—पितामही आदि के साथ माता का सपिण्डन करे। कुछ लोग-पिता के मरने के बाद माता के मरने में पिता ही के साथ माता का सपिण्डन-कहते हैं। दूसरे

---

१. शङ्ख ने भी पितामही आदि के साथ माता का सपिण्डन कहा है—'मातुः सपिण्डीकरणं कथं कार्यं भवेत् सुतैः। पितामह्यादिभिः सार्धं सपिण्डीकरणं स्मृतम्॥' इति।

२. शातातपः—'मृता याऽनुगता नाथं सा तेन सह पिण्डताम्। अर्हति स्वर्गवासं च यावदाभूतसंप्लवम्॥'यमः—'पत्या चैकेन कर्तव्यं सपिण्डीकरणं स्त्रियाः। सा मृताऽपि हि तेनैक्यं गता मन्त्राहुतिव्रतैः॥' यहां एक शब्द पितामह्यादि पक्ष की निवृत्ति के लिये है। उशना ने मातामह के साथ सपिण्डन कहा है—'पितुः पितामहे यद्वत्पूर्णे संवत्सरे सुतैः। मातुर्मातामहे तद्वदेषा कार्या सपिण्डता॥' इस प्रकार अनेक वचनों के रहते हुए मिताक्षराकार ने कहा है—

'अपुत्रायां भार्यायां प्रमीतायां भर्ता स्वमात्रैव सापिण्ड्यं कुर्यात्। अन्वारोहणे तु पुत्रः स्वपित्रैव मातुः साण्डिय्यं कुर्यात्। आसुरादिविवाहोत्पन्नः पुत्रिकासुतश्च मातामहेनैव। ब्राह्मादिविवाहोत्पन्नः पित्रा मातामहेन पितामह्या वा विकल्पेन कुर्यात्। अत्रापि यदि नियतो वंशसमाचारस्तदानीं तथैव कुर्यात्। वंशसमाचारोऽप्यनियतश्चेत्तदा 'आत्मनस्तुष्टिरेव च' इति यथारुचि कुर्यात्।' इति।

३. मार्कण्डेयपुराण में कहा है—'सपिण्डीकरणं स्त्रीणां पुत्राभावे न विद्यते।' यहां पुत्र पद से सपत्नीपुत्र भी ग्राह्य है। मनुः—'बह्वीनामेकपत्नीनामेका चेत् पुत्रिणी भवेत्। सर्वास्तास्तेन पुत्रेण प्राह पुत्रवती मनुः॥' इति।

कहते हैं कि यदि दौहित्र (लड़की का लड़का) सपिण्डन करने वाला हो तो मातामह (नाना) के साथ सपिण्डन करे। सहगमन में तो पतिके साथ ही सपिण्डन करे। जिस किसी के साथ सपिण्डन करनेमें भी अन्वष्टक्य और प्रतिवार्षिक आदि श्राद्धों में पितामही आदि के साथ ही माता का पार्वण करना चाहिये। इसमें कुछ लोग—अपने पुत्र, सौत के पुत्र और पति के अभाव में स्त्री का सपिण्डन नहीं है-ऐसा कहते हैं।

अत्रान्वारोहणे भर्त्रा सह पत्नीसंयोजनमिति पक्षे मतद्वयम्—पितृपिंडस्य पितामहादिषु त्रिषु संयोजनं प्रथमं कृत्वा पश्चान्मातृपिंडं पितामहादिषु संयोजयेदित्येकः। प्रथमं मातृपिंडं पित्रैव संयोज्य मातृपिंडेनैकीकृतं पितृपिंडं पितामहादिषु संयोजयेदित्यपरः पक्षः। अत्र द्वितीयपक्ष एव युक्तः।

यहां अन्वारोहण में पति के साथ पत्नी का सपिण्डन होता है इस पक्ष में दो मत है—पिता के पिण्डका पितामह आदि तीनों के पिण्ड में पहले संयोजन करके पीछे माता के पिण्ड को पितामह आदि तीन में मिलावे, यह एक पक्ष है। पहले मातृपिण्ड को को पिता के पिण्ड से मिलाकर मातृपिण्ड से एक किये गये पितृपिण्ड को पितामह आदि के पिण्ड से मिलावे, यह दूसरा पक्ष है। इसमें दूसरा ही पक्ष ठीक है।

केचित्सहगमने एकदिनमरणे वा स्त्रियाः सपिण्डनं नास्ति। भर्तुः कृते सपिण्डने भार्याया अपि [1]कृतं भवतीति मतान्तरमाहुः।

सर्वाभावे स्वयं पत्न्यः स्वभर्तॄणाममन्त्रकम्।
सपिण्डीकरणं कुर्युस्ततः पार्वणमेव च॥

ब्रह्मचारिणामनपत्यानां च व्युत्क्रममृतानां च सपिण्डनं न कार्यमिति मतान्तरम्। अत्र सर्वत्र सपिण्डनाभावपक्षो [2]न शिष्टाचारे दृश्यते।

कुछ लोग—सहगमन में या एक दिन मरने में स्त्री का सपिण्डन नहीं होता। पति के सपिण्डन करने से पत्नी का भी सपिण्डन हो जाता है—यह मतान्तर कहते हैं। सब के अभाव में पत्नियां स्वयं विना मन्त्र के सपिण्डन करे और उसके बाद पार्वण करें। ब्रह्मचारियों, विना सन्तान वालों और विपरीत क्रम से मरे हुओं का सपिण्डन नहीं करे, यह दूसरा मत है। इन सब के सपिण्डन का अभाव पक्ष शिष्टाचार में नहीं दिखाई पडता।

यतीनां सपिण्डीकरणं नास्ति किन्तु तत्स्थाने एकादशेऽह्नि पार्वणं कार्यम्। इदं सपिण्डीकरणश्राद्धं पार्वणैकोद्दिष्टरूपं तेन पितामहादित्रयार्थं त्रयो विप्रा अर्घ्याः पिण्डाश्च त्रयः। प्रेतार्थमेको विप्रः पिण्डोऽर्घ्यश्च। देवार्थं द्वौ। यद्वा पार्वणे एकः प्रेते एको देवार्थमेको विप्रः। अत्र कामकालौ विश्वेदेवौ। प्रेतस्य पित्रादेरर्घ्यपात्रं पितामहाद्यर्घ्यपात्रत्रये संयोज्यम्। एवं प्रेतपिण्डोऽपि पिताम-

---

१. शातातप ने कहा है—'मृते पितरि मातुस्तु न कार्या सह पिण्डता। पितुरेव सपिण्डत्वे तस्या अपि कृतं भवेत्॥' इति।

२. स्मृत्यर्थसारे—'ब्रह्मचारिणामनपत्यानां च सपिण्डनं नास्ति, तेषां सदैकोद्दिष्टमेव, व्युत्क्रममृतानां सापिण्ड्यं कार्यं न वा।' इति।

हादिपिण्डत्रये संयोज्यः। पितृविप्रकरे होमः साग्नेरपि भवेदिह। सपिण्डीकरण-श्राद्धमन्नेनैव[1] कार्यं न त्वामादिना। अनुमासिकान्यप्यन्नेनैव कार्याणि।

यतियों का सपिण्डन नहीं है किन्तु उसकी जगह ग्यारहवें दिन पार्वण करना चाहिये। यह सपिण्डीकरण श्राद्ध पार्वण एकोद्दिष्टरूप है, इससे पितामह आदि तीन के लिये तीन विप्र-तीन अर्घ्य और तीन पिण्ड होता है। प्रेत के लिये एक विप्र एक पिंड और एक अर्घ्य होता है। देवता के लिये दो-दो सब होते हैं। या पार्वण में एक प्रेत में एक और देव के लिये एक विप्र होता है। इसमें काम-काल दो विश्वेदेव होते हैं। पिता आदि प्रेत के अर्घ्यपात्र को पितामह आदि के तीनों अर्घ्यपात्र में मिलावे। इसी प्रकार प्रेत-पिण्ड को भी पितामह आदि के तीनों पिंड में मिलावे। यहां साग्निक का भी पितृ-ब्राह्मण के हाथ में होम होता है। सपिंडीकरण श्राद्ध अन्न ही से करे, आमान्न आदि से नहीं। अनुमासिक भी अन्न ही से करे।

अथ पाथेयश्राद्धादिविचारः

प्रेतः सपिंडनादूर्ध्वं पितृलोकं स गच्छति।
कुर्यात्तस्य च [2]पाथेयं द्वितीयेऽह्नि सपिंडनात्॥

इति वचनात् त्रयोदशेऽह्नि पाथेयश्राद्धं कृत्वा पुण्याहवाचनादिकं कृत्वा वर्षपर्यन्तं प्रत्यहमुदकुम्भश्राद्धं कुर्यात्। अशक्तौ मासिकश्राद्धेष्वेकोदकुम्भो देयः। सपिंडनोत्तरानुमासिकानां पार्वणविधिनानुष्ठानम्। वृद्धिप्राप्तौ तेषामप्यपकर्षः। स च चतुःपुरुषसपिंडेष्वेवेत्युक्तम्। एवं वर्षपर्यन्तं कृत्वा वर्षान्त्यदिने संवत्सर-विमोक्षश्राद्धं पार्वणविधिना कार्यम्। इदमेवाब्दपूर्तिश्राद्धमित्युच्यते।

प्रेत सपिंडन के बाद पितृलोक में जाता है। सपिण्डन से दूसरे दिन उसके लिये पाथेय (राह की भोज्य सामग्री) करे, इस आशय के वचन से तेरहवें दिन पाथेय श्राद्ध और पुण्याहवाचन आदि करके वर्षपर्यन्त प्रतिदिन उदकुम्भ श्राद्ध करे। अशक्ति में मासिक श्राद्धों में एक उदकुम्भ दे। सपिंडन के बाद अनुमासिकों का अनुष्ठान पार्वण विधि से करे। वृद्धि प्राप्त होने पर उनका भी अपकर्ष होता है। वह चार पुरुष के सपिंडों में ही होता है, यह कहा है। इस प्रकार वर्षपर्यन्त करके वर्ष के अन्त्य दिन में संवत्सर विमोक्ष श्राद्ध को पार्वण विधि से करे। यही अब्द-पूर्ति श्राद्ध कहलाता है।

वृद्धिश्राद्धे सपिण्ड्यां च प्रेतश्राद्धेऽनुमासिके।
संवत्सरविमोके च न कुर्यात्तिलतर्पणम्॥

इदमूनाब्दिकान्तषोडशश्राद्धेभ्यो भिन्नमेव। अत एवास्य प्रेतश्राद्धत्वा-भावाद्वृद्धिप्राप्तावपि नापकर्षः। ततो वर्षान्त्यदिने शक्त्या भूरिब्राह्मणभोजनं च कार्यमित्यन्त्येष्टिपद्धतौ भट्टाः। युक्तं चैतत्।

---

१. शुद्धितत्त्व और कामधेनु में लघुहारीत का वचन है—'सपिण्डीकरणं यावत्प्रेतश्राद्धं तु षोडशम्। पक्वान्नेनैव कर्तव्यं सामिषेण द्विजातिभिः॥' गोभिल ने आमान्न से निषेध किया है—'आपन्नोऽपि न कुर्वीत श्राद्धमामेन कर्हिचित्।' इति।

२. शातातपः—'भूर्लोकात् प्रेतलोकं तु गन्तुं श्राद्धं समाचरेत्। तत्पाथेयं तु भवति मृतस्य मनुजस्य च॥' इति।

जीवतो वाक्यकरणात्प्रत्यब्दं भूरिभोजनात्।
गयायां पिंडदानाच्च त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता॥

इति वाक्येन भूरिभोजनपदेन प्रत्याब्दिकश्राद्धातिरिक्तस्यैव बहुविप्रभोजनस्य विहितत्वात्। श्राद्धे कुर्यान्न विस्तरमिति निषेधाच्छ्राद्धस्य भूरिभोजनपदाभिधेयत्वासम्भवात्।

वृद्धिश्राद्ध में सपिण्डी में प्रेत श्राद्ध में अनुमासिक में और संवत्सर विमोक में तिल से तर्पण न करे। यह ऊनाब्दिकान्त षोडश श्राद्धों से भिन्न ही है। इसीलिये इसका प्रेतश्राद्धत्व के अभाव होने से वृद्धिश्राद्ध की प्राप्ति में भी अपकर्ष नहीं होता। इसके बाद वर्ष के अन्त्य दिन में शक्ति से बहुत ब्राह्मणों को भोजन करावे, ऐसा अन्त्येष्टिपद्धति में भट्ट का मत है। यह ठीक भी है। तीन कार्यों से पुत्र की पुत्रता होती है। माता-पिता के जीवन में उन दोनों का वचन मानना, प्रतिवर्ष अधिक ब्राह्मण भोजन कराना और गया में पिंडदान करना, इस आशय के वचन से भूरि भोजन पद से प्रत्याब्दिक श्राद्ध के अतिरिक्त ही बहुत ब्राह्मणों का भोजन विहित है। श्राद्ध में विस्तार न करे, इस निषेध से श्राद्ध के भूरिभोजन पद का अभिधेयत्व असम्भव है।

अथ प्रथमाब्दे निषिद्धानि

मातापित्रोर्मरणे वर्षपर्यन्तं परान्नं गन्धमाल्यादिभोगं मैथुनमभ्यङ्गस्नानं च वर्जयेत्[1]। ऋतौ भार्यामुपेयादेव। आर्त्विज्यं[2] लक्षहोममहादानादिकाम्यकर्माणि तीर्थयात्राविवाहादि वृद्धिश्राद्धयुतं कर्ममात्रं शिवपूजां च वर्जयेत्। संध्योपासनदेवपूजापञ्चमहायज्ञातिरिक्तकर्ममात्रं वर्ज्यम्।

प्रमीतौ पितरौ यस्य देहस्तस्याशुचिर्भवेत्।
न दैवं नापि वा पित्र्यं यावत्पूर्णो न वत्सरः॥ इति केचित्।
महातीर्थस्य गमनमुपवासव्रतानि च।
सपिण्डीश्राद्धमन्येषां वर्जयेद्वत्सरं बुधः॥ अस्यापवादः—

माता-पिता के मरने में एक वर्ष तक दूसरे का अन्न भक्षण, गन्ध-माला आदि का भोग, मैथुन और तेल लगाकर स्नान न करे। ऋतु में पत्नी-संगम अवश्य करे। ऋत्विक् का कार्य, लक्षहोम, महादान आदि काम्यकर्म, तीर्थयात्रा, विवाह आदि, वृद्धिश्राद्धयुक्त सब कर्म और शिव-पूजन न करे। सन्ध्योपासन, देवपूजन और पञ्चमहायज्ञ के अतिरिक्त सभी कर्म वर्जित हैं। कुछ लोग—

१. श्राद्धकौमुदी में देवल का वचन है—'अन्यश्राद्धं परान्नं च गन्धमाल्यं च मैथुनम्। वर्जयेद् गुरुपाते तु यावत्पूर्णो न वत्सरः॥' इति।

२. हेमाद्रौ—'स्नानं चैव महादानं स्वाध्यायं चाग्नितर्पणम्। प्रथमाब्दे न कुर्वीत महागुरुनिपातने॥' अग्नितर्पणं=लक्षहोमादि। आधान तो प्रथम वर्ष में होता है, जैसा उशना ने कहा है—'पितुः सपिण्डीकरणं वार्षिके मृतवासरे। आधानाद्युपसम्प्राप्तावेतत्प्रागपि वत्सरात्॥' दिवोदासीये—'महातीर्थस्य गमनमुपवासव्रतानि च। संवत्सरं न कुर्वीत महागुरुनिपातने॥' श्राद्धकौमुदी में कालिकापुराण का वचन है—'विशेषतः शिवपूजां प्रमीतपितृको नरः। यावद्वत्सरपर्यन्तं मनसाऽपि न चाचरेत्॥' इति।

जिसके माता-पिता मर गये हैं उसका शरीर जबतक वर्ष पूरा नहीं हो जाता अपवित्र रहता है, वह देव या पित्र्य कर्म न करे—ऐसा कहते हैं। महा तीर्थयात्रा उपवास और व्रत दूसरों का सपिंडन श्राद्ध, बुद्धिमान् पुरुष वर्षपर्यन्त त्याग दे। इसका अपवाद है—

पत्नीपुत्रस्तथा पौत्रो भ्राता तत्तनयः स्नुषा।
मातापितृव्यश्चैतेषां महागुरुनिपातने॥
कुर्यात्सपिण्डनश्राद्धं नान्येषां तु कदाचन।
एकादशाहपर्यन्तं प्रेतश्राद्धं चरेत्सदा॥
पित्रोर्मृतौ च नान्येषां कुर्याच्छ्राद्धं तु पार्वणम्।
गयाश्राद्धं मृतानां तु पूर्णे त्वब्दे प्रशस्यते॥ गारुडे—
तीर्थश्राद्धं गयाश्राद्धं श्राद्धमन्यच्च पैतृकम्।
अब्दमध्ये न कुर्वीत महागुरुविपत्तिषु॥

केचिद्वर्षान्तसपिण्डनपक्षे एवैते सर्वे निषेधा न तु द्वादशाहसपिण्डनपक्ष इत्याहुः। अपरे तु द्वादशाहसपिडनपक्षेऽपि सर्वं एते निषेधा इत्याहुः।

पत्नी, पुत्र, पौत्र, भाई, भाई का लड़का, स्नुषा (पतोहू), माता, पितृव्य (पिता का भाई), इनके और महागुरु के मरने में सपिण्डन श्राद्ध करे, दूसरे के मरने में कभी न करे। प्रेतश्राद्ध एकादशाह तक सदा करे। माता पिता के मरने में अन्य का पार्वण श्राद्ध नहीं करे। वर्ष पूण होने पर मरे हुओं का गया श्राद्ध प्रशस्त होता है। गरुडपुराण में कहा है—महागुरु के मरने में तीर्थ श्राद्ध, गया श्राद्ध और पैतृक श्राद्ध वर्ष के भीतर न करे। कुछ लोग वर्ष के अन्त में सपिण्डन पक्ष में ही ये सब निषेध हैं, द्वादशाह सपिण्डन पक्ष में नहीं, ऐसा कहते हैं। दूसरे तो—द्वादशाह सपिण्डन पक्ष में भी ये सब निषेध हैं, ऐसा कहते हैं।

अत्रैवं व्यवस्था—वृद्धिप्राप्तिं विनाऽर्वाक्सपिडनापकर्षेऽपि प्रेतस्य पितृत्वप्राप्तिर्वर्षान्त एव,

कृते सपिंडीकरणे नरः संवत्सरात्परम्।
प्रेतदेहं परित्यज्य भोगदेहं प्रपद्यते॥ इत्यादिवचनात्।

तेन सपिंडीकरणसत्त्वेऽपि वृद्धिदैवपित्र्येष्वनधिकारः। वृद्धिनिमित्तापकर्षे तु वृद्ध्यादावधिकार इति। अत एव कालतत्त्वनिर्णये संकटादौ मृतपितृकापत्यानां संस्काराभ्युदयिकं मृतमातापितृकेण पुत्रेण स्वापत्यसंस्कारादिकं च प्रथमाब्देऽपि कार्यमित्युक्तम्। दर्शमहालयादिश्राद्धस्य नित्यतर्पणस्य चाप्येवमेव व्यवस्था ज्ञेया।

इसमें इस प्रकार व्यवस्था है—वृद्धि श्राद्ध की प्राप्ति के विना सपिण्डन के पहले अपकर्ष में भी प्रेत की पितृत्व प्राप्ति वर्ष के अन्त में ही होती है। क्योंकि वचन है कि—मनुष्य, सपिंडीकरण करने पर वर्ष के बाद प्रेत शरीर छोड़कर भोग देह पाता है। इससे सपिंडीकरण होने पर भी वृद्धि, देव और पितृकर्म में अधिकार नहीं है। वृद्धिनिमित्तक अपकर्ष में तो वृद्धि आदि में अधिकार है। इसीलिये कालतत्त्वनिर्णय में संकट आदि में जिनके पिता मर गये हैं उन सन्तानों के आभ्युदयिक

संस्कार और जिनके माता-पिता दोनों मर गये हैं ऐसे पुत्र द्वारा अपने अपत्य का संस्कार आदि प्रथम वर्ष में भी करे यह कहा है। दर्श महालय आदि श्राद्ध तथा नित्य तर्पण की भी इसी प्रकार व्यवस्था जाननी चाहिये।

अथ विधानानि

तत्र पञ्चकमृतौ—पञ्चकं नाम धनिष्ठोत्तरार्धमारभ्य रेवत्यन्तं सार्धनक्षत्रचतुष्टयम्। तत्र [1]दाहनिषेधाद्दर्भमयपुत्तलैर्यवपिष्टानुलिप्तैः पञ्चोर्णासूत्रवेष्टितैः सह शवं दहेत्। तत्र तिथ्यादि संकीर्त्य 'अमुकस्य धनिष्ठापञ्चकादिमरणसूचितवंशारिष्टविनाशार्थं पञ्चकविधिं करिष्ये' इति संकल्प्योक्तविधाः प्रतिमा नक्षत्रमन्त्रैरभिमन्त्र्य गन्धपुष्पैः संपूज्य दाहसमये प्रेतोपरि न्यसेत्—प्रथमां शिरसि द्वितीयां नेत्रयोः तृतीयां वामकुक्षौ चतुर्थीं नाभौ पञ्चमीं पादयोः तदुपरि नाममन्त्रैर्घृताहुतीर्जुहुयात्।

पञ्चक में मरने पर—धनिष्ठा के उत्तरार्ध से आरम्भ कर रेवती तक साढ़े चार नक्षत्र को पञ्चक कहते हैं। उसमें दाह का निषेध होने से यव के आंटा से लिप्त ऊन के सूत लपेटे हुए कुशा के पांच पुतलों के साथ मृतक को जलावे। उसमें तिथि आदि को कहकर 'अमुक का धनिष्ठा पंचक आदि मरण सूचित वंश के अरिष्ट विनाश के लिये पञ्चक विधि करूंगा' ऐसा संकल्प कर कहे हुए प्रकार की प्रतिमा को नक्षत्र मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर गन्ध-पुष्पों से पूजन कर दाह के समय प्रेत के ऊपर रख दे—पहली सिर में, दूसरी नेत्रों में, तीसरी बांई कुक्षि में, चौथी नाभि में, पांचवीं पैरों में उसके ऊपर नाम मन्त्रों से घृत की आहुति से होम करे।

तत्र नामानि क्रमेण—प्रेतवाहः प्रेतसखः प्रेतपः प्रेतभूमिपः प्रेतहर्ता चेति। तत उदकं दत्त्वा यमाय सोमं त्र्यम्बकमिति मन्त्राभ्यां प्रत्येकं प्रतिमास्वाज्याहुतीर्जुहुयात्। ततः [2]प्रेतमुखे पञ्चरत्नं दत्त्वा पुत्तलैः सह प्रेतं दहेत्। सूतकान्ते तिलहेमघृतानि दत्त्वा कांस्यपात्रे तैलं प्रक्षिप्य तत्रात्मप्रतिबिम्बं वीक्ष्य विप्राय दद्यात्, शान्तिं च कुर्यात्। अत्रायं विशेषः—नक्षत्रान्तरे मृतस्य पञ्चके दाहप्राप्तौ पुत्तलविधिरेव न शान्तिकम्। पञ्चकमृतस्याश्विन्यां दाहप्राप्तौ

---

१. गारुडे—'आदौ कृत्वा धनिष्ठार्धमेतन्नक्षत्रपञ्चकम्। रेवत्यन्तं सदा दूष्यमशुभं दाहकर्मणि ॥ शवस्य च समीपे तु क्षेप्तव्याः पुत्तलास्तदा। दर्भमयाश्च चत्वार ऋक्षमन्त्राभिमन्त्रिताः। ततो दाहः प्रकर्तव्यस्तैश्च पुत्तलकैः सह। सूतकान्ते ततः पुत्रैः कार्यं शान्तिकपौष्टिकम्। पञ्चकेषु मृतो यो वै न गतिं लभते नरः। तिलांश्चैव हिरण्यं च तमुद्दिश्य घृतं ददेत्। ब्राह्मे—'कुम्भमीनस्थिते चन्द्रे मरणं यस्य जायते। न तस्योर्ध्वगतिर्दृष्टा सन्ततौ न शुभं भवेत् ॥ न तस्य दाहः कर्तव्यो विनाशरूपेषु जन्तुषु। अथवा तद्दिने कार्यो दाहस्तु विधिपूर्वकम् ॥ धनिष्ठापञ्चके जीवो मृतो यदि कथञ्चन। त्रिपुष्करे याम्यभे वा कुलजान् मारयेद् ध्रुवम् ॥ तत्रानिष्टविनाशार्थं विधानं समुदीर्यते। दर्भाणां प्रतिमाः कार्याः पञ्चोर्णासूत्रवेष्टिताः ॥ यवपिष्टेनानुलिप्तास्ताभिः सह शवं दहेत्। प्रेतवाहः प्रेतसखः प्रेतपः प्रेतभूमिपः। प्रेतहर्ता पञ्चमस्तु नामान्येतानि च क्रमात् ॥' इति।

२. अपरार्के—'धनिष्ठापञ्चकमृते पञ्चरत्नानि तन्मुखे। प्रास्याहुतित्रयं तत्र जुहेद् बहवामिति ॥' इति।

शान्तिकमेव न पुत्तलविधिः। शान्तिश्च लक्षहोमरुद्रजपान्यतररूपा यथाविभवं कार्या ।

उसमें क्रम से ये नाम हैं—प्रेतवाह, प्रेतसखा, प्रेतप, प्रेतभूमिप और प्रेतहर्ता । इसके बाद जल देकर 'यमाय सोमं' और 'त्र्यम्बकम्' इन दो मन्त्रों से प्रत्येक प्रतिमाओं पर घृत की आहुति से होम करे । तदनन्तर प्रेत के मुंह में रत्न देकर पुत्तल के साथ प्रेत का दाह करे । सूतक के अन्त में तिल, सोना और घृत देकर कांसे के पात्र में तेल रखकर उसमें अपना प्रतिबिम्ब देखकर विप्र को दे दे और शान्ति करे । इसमें यह विशेष है—दूसरे नक्षत्र में मरे का पञ्चकमें दाह प्राप्त होने पर पुत्तल दाह विधि ही करे, शान्ति नहीं । पञ्चक में मरे का अश्विनी में दाह पड़ने पर शान्ति ही करे, पुत्तल विधि नहीं । और शान्ति यथावित्त लक्षहोम या रुद्रजप इनमें से कोई एक करे ।

अथवा कुम्भे यमप्रतिमां संपूज्य स्वगृह्योक्तविधिनाऽग्निप्रतिष्ठापनान्वाधानादिचरुश्रपणान्तं कृत्वाज्यभागान्ते नामभिश्चतुर्दश चर्वाहुतीर्जुहुयात्—यमाय स्वाहा १ धर्मराजाय० २ मृत्यवे० ३ अन्तकाय० ४ वैवस्वताय० ५ कालाय० ६ सर्वभूतक्षयाय० ७ औदुम्बराय० ८ दध्नाय० ९ नीलाय० १० परमेष्ठिने० ११ वृकोदराय० १२ चित्राय० १३ चित्रगुप्ताय० १४ । एवं हुत्वा होमशेषं समाप्य,

कृष्णां गां कृष्णवस्त्रं च हेमनिष्कसमन्विताम् ।
दद्याद्विप्राय शान्ताय यमो मे प्रीयतामिति ॥

या कलश में यम की प्रतिमा का पूजन कर गृह्य में कही विधि से अग्निस्थापन कर अन्वाधान आदि चरुश्रपणान्त करके आज्यभाग के अन्त में नामों से चौदह चरु की आहुतियों से होम करे—यमाय स्वाहा, धर्मराजाय०, मृत्यवे०, अन्तकाय०, वैवस्वताय०, कालाय०, सर्वभूतक्षयाय०, औदुम्बराय०, दध्नाय०, नीलाय०, परमेष्ठिने०, वृकोदराय०, मित्राय०, चित्रगुप्ताय० । इस प्रकार होम करके होम शेष समाप्त कर एक तोला सुवर्ण से युक्त काली गाय और काला वस्त्र 'यमराज प्रसन्न हों ऐसा कह कर शान्त ब्राह्मण को दे दे ।

अथ त्रिपादर्क्षे त्रिपुष्करादौ च मरणे शान्तिः

त्रिपादृक्षेऽप्येतदेव शान्तिकम् ।

यदि भद्रातिथीनां स्याद्भानुभौमशनैश्चरैः ।
त्रिपादृक्षैश्च संयोगस्तदा योगस्त्रिपुष्करः[1] ॥
द्विपुष्करो द्वयोर्योगेऽथवायं स्याद् द्विपादभैः ।

[2]त्रिपादनक्षत्राणि तु—

---

१. गार्ग्य ने त्रिपुष्करयोग में मरणादि का फल और उसका दोषशामक कृत्य बतलाया है—'द्वित्रिपुष्करयोगे तु मृतिर्मृत्यन्तरावहा । दहने मरणे चैव त्रिगुणं स्यात् त्रिपुष्करे ॥ खननेऽप्येवमेव स्यादेतद्दोषोपशान्तये । तिलपिष्टैर्यवैर्वाऽपि शरीरं कारयेत्ततः ॥ शूर्पे निधायालंकृत्य दाहयेत् पैतृकोपरि ॥' इति ।

२. अपरार्के—'पुनर्वसूत्तराषाढा कृत्तिकोत्तरफाल्गुनी । पूर्वाभाद्रा विशाखा च ज्ञेयमेतत्त्रिपादभम् ॥' इति ।

पुनर्वसूत्तराषाढाकृत्तिकोत्तरफाल्गुनी ।
पूर्वभाद्रा विशाखा च ज्ञेयमेतत्त्रिपादभम् ॥
मृगचित्रा धनिष्ठा च ज्ञेयमेतद्द्विपादभम् ।

त्रिपुष्करयोगे द्विपुष्करयोगे च मृतौ [1]कृच्छ्रत्रयं प्रायश्चित्तं कृत्वा यवपिष्टमयपुरुषत्रयेण सह प्रेतदाहः । पुरुषत्रयस्य प्रेते न्यास आज्याहुतयश्च पूर्ववत् ।

त्रिपाद नक्षत्र में भी यही शान्ति करे । यदि भद्रातिथियों का योग रवि-मंगल-शनि से तथा त्रिपाद नक्षत्र से हो तो त्रिपुष्कर योग होता है और दो के योग में अथवा द्विपाद नक्षत्र के योग में द्विपुष्कर योग होता है । त्रिपाद नक्षत्र तो—पुनर्वसु-उत्तराषाढ़ा-कृत्तिका-उत्तरफाल्गुनी-पूर्वभाद्रपदा-विशाखा, ये हैं । मृगशिर-चित्रा-धनिष्ठा, ये द्विपाद नक्षत्र हैं । त्रिपुष्कर या द्विपुष्कर योग में मृत्यु होने पर तीन कृच्छ्र प्रायश्चित्त करके जौ के आटे के तीन पुरुष बनाकर प्रेत के साथ दाह करे । तीनों पुरुषों का प्रेत के ऊपर न्यास (रखना) और घृत की आहुतियां पूर्व के समान हैं ।

कनकहीरकनीलपद्मरागमौक्तिकेति [2]पञ्चरत्नस्य मुखे प्रक्षेपोऽपि । रत्नाभावे कर्षार्धं स्वर्णम् । स्वर्णाभावे घृतम् । एवं पूर्वत्रापि ।

दहने मरणे त्रिद्विपुष्करे त्रिगुणं फलम् ।
द्विगुणं खननेऽप्येवमेतद्दोषोपशान्तये ॥
सुवर्णदक्षिणां दद्यात्कृष्णवस्त्रमथापि वा ।
शान्तिं कुर्यात्सूतकान्ते पूर्वोक्तां तेन मङ्गलम् ॥

सुवर्ण-हीरा-नीलम-पद्मराग-मोती, इस पञ्चरत्न का मुंह में प्रक्षेप भी करे । पञ्चरत्न के अभाव में आधा तोला सुवर्ण, सुवर्ण के अभाव में घृत डाले । इसी प्रकार पूर्व में भी जानना चाहिये । द्विपुष्कर और त्रिपुष्कर में दाह करने और मरने में दुगुना तिगुना फल होता है । गाड़ने में भी ऐसा ही है । इस दोष की शान्ति के लिये सुवर्ण दक्षिणा या काला वस्त्र दे । पहले कही शान्ति सूतक के में अन्त करे, इससे मङ्गल होता है ।

अथ श्मशाने नयनोत्तरं मृतस्य पुनर्जीवने विधिः

मृतस्य श्मशाने नयनोत्तरं [3]पुनर्जीवने सति यस्य गृहे स प्रविशति तस्य मरणम् । तत्र सक्षीरघृताक्तौदुम्बरसमिधां सावित्र्यष्टसहस्रेण होमः । अन्ते

---

१. बौधायनः—'अस्मात्त्वमिति मन्त्रेण तिलपिष्टं प्रदाहयेत् । द्वित्रिपुष्करयोर्दोषस्त्रिभिः कृच्छ्रैर्व्यपोहति ॥ वासवे मरणं चेत्स्याद् गृहे वाऽपि पुनर्मृतिः । सुवर्णं दक्षिणां दद्यात् कृष्णवस्त्रमथापि वा ॥' इति ।

२. अपरार्के—'कनकं हीरकं नीलं पद्मरागं च मौक्तिकम् । पञ्चरत्नमिदं प्रोक्तमृषिभिः पूर्वदर्शिभिः ॥ रत्नानां चाप्यभावे तु स्वर्णं कर्षार्धमेव च । सुवर्णस्याप्यभावे तु आज्यं ज्ञेयं विचक्षणैः ॥' इति ।

३. गर्गः—'मृतः श्मशानं यो नीत उपजीवति मानवः । गृहे यस्य प्रविष्टोऽसौ तिष्ठेदथ कदाचन ॥ अचिरान् मृत्युमायाति हृतदारपरिग्रहः । तत्र शान्तिं प्रवक्ष्यामि धर्मराजमतं यथा ॥ सक्षीराणां घृताक्तानामग्नेर्हुत्वा मुखे बुधः । औदुम्बराणां विधिवत्ततः शान्तिः कृता भवेत् ॥ सावित्र्यष्टसहस्रेण क्षीरशान्तिं च कारयेत् । कपिलां तिलकांस्यं च हुतान्ते भूरिदक्षिणा ॥' इति ।

कपिलादानं तिलपूर्णकांस्यपात्रदानं च ।

एकाशीतिपलं कांस्यं तदर्धं वा तदर्धकम् ।
नवषट्त्रिपलं वापि दद्याद्विप्राय शक्तितः ॥

मृतक को श्मशान ले जाने के बाद फिर जी जाने पर जिसके घरमें वह प्रवेश करता है उसका मरण होता है। उसमें दूध-घी से गूलर की समिधा भिगो कर आठ हजार गायत्री से होम करे। अन्त में कपिला गौ का दान और तिल भरे कांसे के पात्र का दान करे। शक्ति के अनुसार एकासी पल या साढ़े चालीस पल अथवा सवा बीस पल या नव, छ वा तीन पल कांसा ब्राह्मण को दे।

अथ ब्रह्मचारिमृतौ विधिः

ब्रह्मचारिमरणे द्वादशषट्त्रीणि वाब्दानि शक्त्या 'प्रायश्चित्तं कृत्वा देशकालौ स्मृत्वा 'अमुकगोत्रामुकनाम्नो ब्रह्मचारिणो मृतस्य व्रतविसर्गं करिष्ये, तदङ्ग-नान्दीश्राद्धं करिष्ये' इत्युक्त्वा हिरण्येन नान्दीश्राद्धं कृत्वाग्निप्रतिष्ठापनाद्याघारान्ते चतसृभिर्व्याहृतिभिराज्यं हुत्वा अग्नये व्रतपतये स्वाहा अग्नये व्रतानुष्ठानफलसंपादनाय स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहेति तिस्र आज्याहुतीर्हुत्वा स्विष्टकृदादि,समाप्य पुनर्देशकालौ स्मृत्वा 'अमुकस्यौर्ध्वदेहिकाधिकारार्थमर्कविवाहं करिष्ये' इत्यादि हिरण्येन नान्दीश्राद्धान्तेऽर्कसमीपे नीत्वार्कशाखां वा गृहीत्वार्क-ब्रह्मचारिणौ[2] हरिद्रयानुलिप्य पीतसूत्रेण संवेष्ट्य वस्त्रयुग्मेनाच्छाद्याग्निप्रतिष्ठा-द्याघारान्ते आज्यहोमः—अग्नये स्वाहा १ बृहस्पतये० २ विवाहविधियोजकाय० ३ यस्मै त्वा कामाय वयं सम्राड्व्रजामहे। तमस्मभ्यं कामं दत्त्वाथेदं त्वं घृतं पिब स्वाहा कामायेदं० ४।

ब्रह्मचारी के मरने में बारह छ या तीन अब्द प्रायश्चित्त करके देशकाल का स्मरण कर 'अमुक गोत्र अमुक नामक मृत ब्रह्मचारी के व्रत का विसर्जन और उसका अङ्गभूत नान्दीश्राद्ध करूंगा' ऐसा कहकर सुवर्ण से नान्दीश्राद्ध करके अग्निस्थापन आदि आघार के अन्त में चार व्याहृतियों से घृत का होम करके 'अग्नये व्रतपतये स्वाहा' 'अग्नये व्रतानुष्ठानसंपादनाय स्वाहा' 'विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा' इनसे तीन घृतकी आहुति से हवन करके स्विष्टकृत् आदि समाप्त करके फिर देश-काल का स्मरण कर 'अमुक के और्ध्वदेहिक अधिकारके लिये अर्क विवाह करूंगा' इत्यादि संकल्प करके सुवर्ण से नान्दीश्राद्ध के अन्तमें अर्क के समीप ले जाकर या अर्क की शाखा को लाकर अर्क और ब्रह्मचारी को हरिद्रा से अनुलेपन कर पीले सूत से लपेट कर जोड़े वस्त्र से ढंककर अग्निस्थापन आदि आघार के अन्त में घृत से होम करे—'अग्नये स्वाहा' 'बृहस्पतये स्वाहा' इत्यादि मंत्र मूल में देखें।

ततो व्यस्तसमस्तव्याहृतिहोमः। एवमष्टाहुत्यन्ते स्विष्टकृदादि कृत्वार्कशाखां ब्रह्मचारिशवं च तुषाग्निना विधिवद्दहेत्। स्नातकमरणेऽप्येवमिति

---

१. शौनकः—'ब्रह्मचारिमृतौ रीतिं कथयामि समासतः। तत्रावकीर्णदोषस्य प्रायश्चित्तं प्रशान्तये ॥ द्वादशाब्दं षडब्दं वा त्र्यब्दं शक्त्याऽथवा चरेत्।' इति।

२. शौनकः—'स्नातको ब्रह्मचारी च निधनं प्राप्नुयाद्यदि। संयोज्य चार्कविधिना संयोज्यौ तौ ततः परम् ॥' इति।

केचित् । एतन्निर्मूलमित्यन्ये । सूतकान्ते [1]त्रिंशद्ब्रह्मचारिभ्यः कौपीनकृष्णाजिन-कर्णभूषणादि पादुकाच्छत्रगोपीचन्दनमाल्यमणिविद्रुममालायज्ञोपवीतादि यथा-संभवं दद्यात् ।

इसके बाद व्यस्त-समस्त व्याहृति से होम करे । इस प्रकार आठ आहुतियों के अन्त में स्विष्टकृत् आदि करके अर्क की शाखा और ब्रह्मचारी के शव को भूसे की अग्नि से विधिवत् जलावे । कुछ लोग कहते हैं कि स्नातक के मरने पर भी ऐसा ही करे । यह प्रमाणरहित है ऐसा दूसरे कहते हैं । सूतक के बाद तीस ब्रह्मचारियों को कौपीन (लँगोटी), काला मृगचर्म, कान का भूषण आदि, खड़ाऊँ, छाता, गोपीचन्दन, माला, मणि, मूंगा, माला, यज्ञोपवीत आदि जैसा सम्भव हो दे ।

अथ कुष्ठिमृतौ कर्तव्यम्

मृतस्य कुष्ठिनो देहं तीर्थे वा भुवि वा क्षिपेत् ।
न दाहं नोदकं पिंडं न च दानं क्रियां चरेत् ॥
यदि स्नेहाच्चरेद्दाहं यतिचान्द्रायणं चरेत् ।

तथा च शक्त्यनुसारेण [2]षडब्दादिप्रायश्चित्तं कृत्वा कुष्ठादिमहारोगमृतस्य दाहादिक्रियां कुर्यान्नान्यथेति ।

कोढी के मरने में मृत कोढी का शरीर तीर्थ में या भूमि में फेंक दे । न दाह करे न जलदान न पिण्डदान और न क्रिया करे । यदि स्नेह से दाह करे तो यतिचान्द्रायण करे । वैसे ही शक्ति के अनुसार षडब्द आदि प्रायश्चित्त करके कुष्ठ आदि महारोग से मरे का दाह आदि क्रिया करे, अन्यथा नहीं करे ।

अथ रजस्वलादिमरणे विधिः

रजस्वलायाः प्रेतायाः संस्कारादीनि नाचरेत् ।
ऊर्ध्वं त्रिरात्रात्स्नातां तां शवधर्मेण दाहयेत् ॥

अथवा रजस्वलां सूतिकां च मलं प्रक्षाल्य स्नापयित्वा काष्ठवदमन्त्रकं दग्ध्वास्थीनि मन्त्राग्निना दहेत् । उभयत्र चान्द्रायणत्रयं प्रायश्चित्तमस्त्येव । तदैव मन्त्रवद्दाहकरणेच्छायां तु अद्येत्यादि 'अमुकगोत्राया रजस्वलावस्थाम-

---

१. विधानमालायाम्—'येषां कुले ब्रह्मचारी निधनं प्राप्नुयाद्यदि । तत्कुलं क्षयमाप्नोति सोऽपि दुर्गतिमाप्नुयात् ॥ मृतस्य म्रियमाणस्य षडब्दं व्रतमादिशेत् । त्रिंशद्भ्यो ब्रह्मचारिभ्यो दद्यात् कौपीनकान्नवान् । हस्तमात्रान् कर्णमात्रान् दद्यात् कृष्णाजिनानि च । पादुका छत्रमाल्यानि गोपीचन्दनमेव च ॥ मणिप्रवालमालाश्च भूषणादि समर्पयेत् । एवं कृते विधाने च विघ्नः कोऽपि न जायते ॥' इति ।

२. यमः—'षडब्दव्रतपूर्णेन विधिनाऽन्त्यं क्रतुं चरेत् । ततोऽस्थिसंचयं तस्य गङ्गायां प्रक्षिपेत्सुधीः ॥ मासि मासि ततः कुर्यान्मासि श्राद्धानि पार्वणान् ।' महारोगास्तु—'वातव्याध्यश्मरी-कुष्ठमेहोदरभगन्दराः । अर्शांसि ग्रहणीत्यष्टौ महारोगाः प्रकीर्तिताः ॥' इति ।

प्रद एवं धनपुत्र आदि का बढ़ाने वाला है। साढ़े तीस करोड़ शरीर के जितने बाल हैं उतने हजार वर्ष तक वह स्वर्गलोक में पूजित होती है। जो स्त्री पतिका अनुगमन करती है वह माता-पिता के कुल को और जिस कुल में दी जाती है इन तीनों कुल को पवित्र करती है। इत्यादि महिमा का विस्तार मिताक्षरा आदि से जानना चाहिये। इसमें निष्कामत्व में मुक्ति और सकामत्व में स्वर्ग आदि फल होता है, ऐसी व्यवस्था है।

अथ प्रयोगः—देशकालौ स्मृत्वा 'मातृपितृश्वशुरादिकुलपूतत्वब्रह्महत्यादिदोषदूषितपतिपूतत्वपत्यवियोगारुन्धतीसमाचारत्वसार्धकोटित्रयसहस्रसंवत्सरस्वर्महीयमानत्वादिपुराणोक्तानेकफलप्राप्तये श्रीलक्ष्मीनारायणप्रीतिद्वारा विमुक्तिप्राप्तये वा पतिचितान्वारोहणं करिष्ये' इति संकल्प्य हरिद्राकुङ्कुमवस्त्रफलादियुतानि शूर्पाणि सुवासिनीभ्यो दद्यात्। तत्र मन्त्रः—

इसका प्रयोग—देश काल का स्मरण करके 'माता-पिता और श्वशुर-कुल आदि की पवित्रता ब्रह्महत्या आदि दोष दूषित पति की पवित्रता, पति का अवियोग, अरुन्धती के समान आचारत्व, साढ़े तीन कोटि हजार वर्षपर्यन्त स्वर्ग के महीयमानत्व आदि पुराणोक्त फल की प्राप्ति के लिये श्रीलक्ष्मीनारायण की प्रीतिद्वारा विमुक्ति पाने के लिये पति की चिता का अन्वारोहण करूंगी' ऐसा संकल्प करके हलदी-कुङ्कुम-वस्त्र-फल-आदि-युक्त सूपों को सुवासिनियों को दे। उसमें मन्त्र यह है—

लक्ष्मीनारायणो देवो बलसत्त्वगुणाश्रयः।
गाढं सत्त्वं च मे देयाद्वायनैः परितोषितः॥
सोपस्कराणि शूर्पाणि वायनैः संयुतानि च।
लक्ष्मीनारायणप्रीत्यै सत्त्वकामा ददाम्यहम्॥

अनेन सोपस्करशूर्पदानेन लक्ष्मीनारायणौ प्रीयेताम्। ततोऽञ्चले पञ्चरत्नं नीलाञ्जनं च बध्वा मुखे मौक्तिकं न्यस्याग्निसमीपं गत्वाग्निप्रार्थनां कुर्यात्—

स्वाहासंश्लेषनिर्विण्ण शर्वगोत्रहुताशन।
सत्त्वमार्गप्रदानेन नय मां पत्युरन्तिकम्॥ इति।

अथाग्नावाज्येन जुहुयात्—अग्नये तेजोधिपतये स्वाहा १ विष्णवे सत्त्वाधिपतये स्वाहा २ कालाय धर्माधिपतये० ३ पृथिव्यै लोकाधिष्ठात्र्यै० ४ अद्भ्यो रसाधिष्ठात्रीभ्यः० ५ वायवे बलाधिपतये० ६ आकाशाय सर्वाधिपतये० ७ कालाय धर्माधिष्ठात्रे० ८ अद्भ्य सर्वसाक्षिणीभ्यः० ९ ब्रह्मणे वेदाधिपतये० १० रुद्राय श्मशानाधिपतये स्वाहा ११।

बल, सत्त्व और गुण का आश्रय श्रीलक्ष्मीनारायण वायन (उपहार) से सन्तुष्ट होकर गाढ़ सत्त्व मुझे दें। सत्त्व चाहने वाली मैं श्रीलक्ष्मीनारायण की प्रसन्नता के लिये वायन और सामग्री से युक्त सूपों को देती हूँ। इस सामग्रीसहित सूप के दान से श्री लक्ष्मी और नारायण दोनों प्रसन्न हों। इसके बाद अंचरा में पञ्चरत्न और नीला आँजन बांध कर मुंह में मोती रखकर अग्नि के समीप जाकर अग्नि की प्रार्थना करे—स्वाहा के संयोग से निर्विण्ण शर्वगोत्र हे अग्निदेव! सत्त्व मार्ग के प्रदान से मुझे पति के समीप पहुँचाइये। बाद में अग्नि में घृत से मूलोक्त 'अग्नये तेजोधिपतये स्वाहा' इत्यादि ग्यारह मन्त्रों से होम करे।

इत्येकादशाहुतीर्हुत्वाग्निं प्रदक्षिणीकृत्य दृषदमुपलां संपूज्य पुष्पांजलिं गृहीत्वाग्निं प्रार्थयेत्—

त्वमग्ने सर्वभूतानामन्तश्चरसि साक्षिवत् ।
त्वमेव देव जानीषे न विदुर्यानि मानुषाः ॥
अनुगच्छामि भर्तारं वैधव्यभवपीडिता ।
सत्त्वमार्गप्रदानेन नय मां भर्तुरन्तिकम् ॥
मन्त्रमुच्चार्य शनकैः प्रविशेच्च हुताशनम् ।

विप्राश्च इमा नारीरविधवा इत्यृचं,

इमाः पतिव्रताः पुण्याः स्त्रियो यायाः सुशोभनाः ।
सह भर्तृशरीरेण संविशन्तु विभावसुम् ॥ इति च पठेत् ।

इन ग्यारह आहुतियों से होम कर अग्नि की प्रदक्षिणा करके सिल लोढा की पूजा कर पुष्पाञ्जलि लेकर अग्नि की प्रार्थना करे—हे अग्ने ! आप सब जीवों के भीतर साक्षी के समान रहते हैं । हे देव ! जिसे मनुष्य नहीं जानते उसे आप जानते हैं । वैधव्य के भय से पीड़ित मैं पति का अनुगमन करती हूँ । आप सत्त्व मार्ग के प्रदान से मुझे पति के समीप ले चलिये । इस आशय के मन्त्र का उच्चारण कर धीरे से अग्नि में प्रवेश करे । विप्रगण 'इमा नारीरविधवा' इस ऋचा को और 'इमाः पतिव्रताः पुण्याः' इत्यादि मूलोक्त मन्त्र भी पढ़ें ।

कातरां तु प्रेतोत्तरतः सुप्तां देवरः शिष्यो वा उदीर्ष्वेति मन्त्राभ्यामुत्थापयेत् ।

अनुव्रजति भर्तारं श्मशानं या गृहान्मुदा ।
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति सा ध्रुवम् ॥ यत्तु—
या स्त्री ब्राह्मणजातीया मृतं पतिमनुव्रजेत् ।
सा स्वर्गमात्मघातेन नात्मानं न पतिं नयेत् ।

इत्यादि ब्राह्मण्या निषेधवचनजातं तत्पृथक्चितिपरम् । भर्तुर्मन्त्राग्निदाहोत्तरमनुगमनं पृथक्चितिः । मन्त्राग्निदाहात्पूर्वमस्थिभिः पर्णशरेण वा सहगमनमेकचितिरेव । अस्थ्यादेः पतिस्थानापत्त्या पतिशरीरतुल्यत्वात् । इयमेकचितिः सर्ववर्णानाम् । पृथक्चितिस्तु क्षत्रियवैश्यशूद्रादेरेव न तु [1]ब्राह्मणीनाम् ।

कातर (डरने वाली) को तो प्रेत के उत्तर की ओर सोई हुई को देवर या शिष्य 'उदीर्ष्व' इन दो मन्त्रों से उठा दे । जो स्त्री प्रसन्न होकर घर से श्मशान में पति का अनुगमन करती है वह निश्चय एक-एक कदम पर अश्वमेध का फल पाती है । जो ब्राह्मण जाति की स्त्री मृत पति का अनुगमन करती है वह आत्मघात से न अपनी आत्मा को और न पति को स्वर्ग में ले जाती है । इत्यादि ब्राह्मणी के सहगमन के जो निषेधक वचन हैं वे अलग चिता के विषय में हैं । पति के मन्त्रपूर्वक दाह के बाद अनुगमन करने को पृथक् चिति कहते हैं । मन्त्र और अग्निदाह से पूर्व

---

१. उशना ने ब्राह्मणी के लिये पृथक् चिता का निषेध किया है—'पृथक् चितिं समारुह्य न विप्रा गन्तुमर्हति । अन्यासां चैव नारीणां स्त्रीधर्मोऽयं परः स्मृतः ॥' इति ।

हड्डियों से या पर्णशर के दाह के साथ सहगमन करना एक चिति ही है। क्योंकि अस्थि आदि पति-स्थानापन्न होने से पतिशरीर के तुल्य ही है। यही एक चिति सब वर्णों की है। अगल चिता तो क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि की ही होती है न कि ब्राह्मणी की।

पृथक्चितिविधिस्तु—

देशान्तरमृते पत्यौ साध्वी तत्पादुकाद्वयम्।
निधायोरसि संशुद्धा प्रविशेज्जातवेदसम् ॥ इति।

तेन प्रायश्चित्तार्थं मृतेन वा भर्त्रा सहान्वारोहणं न भवति। यत्तु 'ब्रह्मघ्नो वा कृतघ्नो वा मित्रघ्नो वा भवेत्पतिः। पुनात्यविधवा नारी' इत्यादि वाक्यं तज्जन्मान्तरीयब्रह्महत्यादिपापशोधनपरम्।

दिनैकगम्यदेशस्था साध्वी चेत्कृतनिश्चया।
न दहेत्स्वामिनं तस्या यावदागमनं भवेत् ॥

पृथक् चिति विधि तो—दूसरे देश में पति के मरने पर साध्वी पत्नी पति के दोनों खड़ाऊँ छाती पर रख कर शुद्ध चित्त से अग्नि में प्रवेश करे। पतित या प्रायश्चित्त के लिये मृत पति के साथ अन्वारोहण नहीं होता। जो—विप्रहनन करने वाला, कृतघ्न या मित्रहन्ता पति हो तो अविधवा स्त्री अन्वारोहण से उसे पवित्र करती है, इस आशय के बहुत से वचन हैं, वे दूसरे जन्म के ब्रह्महत्या आदि पाप की शुद्धि के विषय में हैं। एक दिन में जाने योग्य स्थान में रहने वाली साध्वी स्त्री यदि सहगमन का निश्चय कर चुकी हो तो जबतक वह आ न जाय तबतक उसके मृत पति का दाह न करे।

अथ रजस्वलादिसहगमनविचारः

तृतीयेऽह्नि उदक्याया मृते भर्तरि वै द्विजाः।
तस्याः सहगमार्थं तं स्थापयेदेकरात्रकम् ॥

रजस्वलायाः प्रथमद्वितीयदिने पतिमृतौ लौकिकाग्निभिरमन्त्रकं तं दग्ध्वा पञ्चमेऽह्नि अस्थिभिः सहान्वारोहणम्। यदि रजस्वला देशकालवशादिना तदैवानुगन्तुमिच्छति न शुद्धिं प्रतीक्षते तदा सैकद्रोणमितव्रीहीन्मुसलैरवहत्य तदाघातैः सर्वंरजोनिवृत्तौ पञ्चमृत्तिकाभिः शौचं कृत्वा दिनक्रमेण त्रिंशद्विंशतिदश वा धेनूर्दत्त्वा विप्रवचनाच्छुद्धिं लब्ध्वा सहगमनं कुर्यात्। अत्रावहननेन रजोनिवृत्तिरतीन्द्रियेतीदं युगान्तरपरं योज्यमिति भाति। जननमृताशौचयोस्तु सहगमनं नेति केचित्।

द्विजो! रजस्वला स्त्री का पति तीसरे दिन मर जाय तो उसके सहगमन के लिये मृत पति को एक रात रक्खे, दाह न करे। रजस्वला के प्रथम दिन और द्वितीय दिन में पति के मरने पर मृत पति को लौकिक अग्नि से मन्त्ररहित उसे जलाकर पांचवें दिन पति के अस्थि के साथ अन्वारोहण करे। यदि देश काल वश आदि से उसी समय अनुगमन करना चाहती है और रजःशुद्धि की प्रतीक्षा नहीं करना चाहती तब एक द्रोण परिमित धान को मूसर से कूटकर उसकी चोट से सम्पूर्ण रजोनिवृत्ति होने पर पञ्चमृत्तिका से शुद्ध कर रज के दिनों के क्रम से तीस, बीस या दस धेनु देकर और

ब्राह्मण के वचन से शुद्धि पाकर सहगमन करे। इसमें अवहनन से रजोनिवृत्ति अतीन्द्रिय है इस लिये यह दूसरे युग के लिये होने की योजना करनी चाहिये, ऐसा ठीक जंचता है। कुछ लोग—जननाशौच और मरणाशौच में तो सहगमन नहीं होता—ऐसा कहते हैं।

कालतत्त्वविवेचने तु पूर्वप्रवृत्ताशौचमध्ये भर्तृमरणे आशौचवतीनामपि भार्याणां सहगमनं भवति सूतिकोदक्ययोस्तु नेत्युक्तम्। इदमेव युक्तं भाति। इदं च सहगमनं[1] गर्भिणीबालापत्यासूतिकाभिरदृष्टरजोभिः पतिताभिर्व्यभिचारिणीभिर्भर्तृदुष्टभावाभिश्च न कार्यम्। केचिदत्र [2]पतिव्रतानामेवाधिकारः।

वर्तन्ते याश्च सततं भर्तॄणां प्रतिकूलतः।
कामात्क्रोधाद्भयान्मोहात् सर्वाः पूता भवन्ति ताः॥

इत्यादि तु वाक्यमर्थवाद इत्याहुः।

कालतत्त्वविवेचन में तो—पूर्व प्रवृत्त आशौच के मध्य में पति के मरने पर आशौच वाली भी पत्नियों का सहगमन होता है किन्तु सूतिका और रजस्वला का नहीं होता—ऐसा कहा है। यही ठीक प्रतीत होता है। यह सहगमन—गर्भिणी जिसकी सन्तान बालक हो, सूतिका जिसका रजोधर्म दृष्ट नहीं हो, पतिता, व्यभिचारिणी और पति में जिसका दुष्ट भाव हो उसे नहीं करना चाहिये। कुछ लोग यहाँ—पतिव्रताओं ही का अधिकार है। जो स्त्रियाँ निरन्तर पति के प्रतिकूल रहती हैं। काल से क्रोध से, डर से और मोह से, बर्ताव करती हुई वे पवित्र हो जाती हैं, इत्यादि वाक्य तो अर्थवाद है—ऐसा कहते हैं।

अथ सहगमने पिण्डादिविचारः

तत्र पृथक्चित्यारोहणे भर्त्राशौचमध्ये तदूर्ध्वं वा कृते त्रिरात्रमाशौचं पिण्डाश्च। [3]सहगमने तु—

तस्याः पिण्डादिकं शौचं पतिपिण्डादितः क्रमात्।
अन्वारोहे तु नारीणां पत्युश्चैकोदकक्रिया॥
पिण्डदानक्रिया तद्वच्छ्राद्धं प्रत्याब्दिकं तथा।
अन्वारोहे कृते पत्न्याः पृथक् पिण्डांस्तिलाञ्जलीन्॥
पृथक्शिलेन कुर्वीत दद्यादेकशिले तथा।
तत्रावयवपिण्डार्थं पाकैक्यं भिन्नपिण्डता॥

---

१. मदनरत्न में स्मृतिसंग्रह का वचन है—'स्वैरिणीनां गर्भिणीनां पतितानां च योषिताम्। नास्ति पत्याग्निसंवेशः पतितौ हि तथा उभौ। बृहस्पतिः—'बालसंवर्धनं मुक्त्वा बालापत्या न गच्छति। व्रतोपवासनियता रक्षेद् गर्भं च गर्भिणी।' यहां तृतीय चरण में 'रजस्वला सूतिका च' ऐसा पाठान्तर है। बृहन्नारदीये—'बालापत्या च गर्भिण्यो ह्यदृष्टऋतवस्तथा। रजस्वलाराजसुते नारोहन्ति चितां तु ताः॥' इति।

२. सहगमन में पतिव्रता का ही अधिकार है, इसमें महाभारत का—'पतिव्रता सुदीप्तं प्रविशेद्या हुताशनम्' और ब्रह्मपुराण का—'ऋग्वेदवादात् साध्वी स्त्री' ये वचन प्रमाण हैं।

३. शुद्धितत्त्व में पैठीनसि का वचन है—'अन्वितायाः प्रदातव्या दश पिण्डास्त्र्यहेण तु। स्वाम्याशौचे व्यतीते तु तस्याः श्राद्धं प्रदीयते॥' इति।

नवश्राद्धानि भिन्नानि सपिण्डीकरणं पृथक् ।
एक एव वृषोत्सर्गो गौरेका तत्र दीयते ॥

सपिण्डीकरणं तु न कार्यम् । अथवा भर्त्रैव सह कार्यम् । यद्वा भर्त्रादिभिस्त्रिभिः सह कार्यमित्यादिपक्षा उक्ताः । मासिकसांवत्सरिकादौ पाकैक्यकालैक्यादिव्यवस्थापि श्राद्धप्रकरणे उक्ता । इति सहगमननिर्णयः ।

उसमें पति के आशौच के मध्य में या उसके बाद करने पर अलग चिति के आरोहण में तीन रात का आशौच और पिण्ड है। सहगमन में तो—उसका पिण्ड आदि और शौच पति के पिण्ड आदि के क्रम से, होते हैं। स्त्रियों के अन्वारोहण में तो–उदकक्रिया, पिण्डदान, श्राद्ध और प्रतिवार्षिक एक है, यानी पृथक् नहीं है। अन्वारोहण करने के बाद पत्नी के पृथक् पिण्ड और तिलाञ्जलि को पृथक् शिला पर या एक शिला पर वैसे ही करे। उसमें अङ्गपिण्ड के लिये एक पाक और पिण्ड पृथक् होते हैं। नव श्राद्ध तथा सपिण्डीकरण पृथक् पृथक् होता है। उसमें एक ही वृषोत्सर्ग होता है और एक गौ दी जाती है। सपिण्डीकरण तो नहीं करे, या पति के साथ ही सपिण्डन करे, अथवा पति आदि तीन के साथ करे, इत्यादि पक्षों को कहा है। मासिक और सांवत्सरिक आदि में पाक की एकता और काल की एकता आदि की व्यवस्था भी श्राद्ध प्रकरण में कहा है। सहगमन निर्णय समाप्त।

काशीनाथ उपाध्याय इत्थमन्त्यक्रियाविधिम् ।
निर्णीय भगवत्पादे चार्पयत्तद्विशुद्धये ॥

इत्यन्त्येष्टिनिर्णयः ।

श्री काशीनाथ उपाध्याय ने इस प्रकार अन्त्यक्रिया की विधि का निर्णय कर उसकी विशेष शुद्धि के लिये भगवान् के चरणों में अर्पण किया। अन्त्येष्टि-निर्णय समाप्त।

अथ विधवाधर्माः

पत्यौ मृते तु भार्याणां विधिद्वयमुदीरितम् ।
वैधव्यं पालयेत्सम्यक् सहाग्निगमनं तु वा ॥
पत्यौ मृते च या योषिद्वैधव्यं पालयेत्सदा ।
सा पुनः प्राप्य भर्तारं स्वर्गलोकं समश्नुते ॥
विधवा पालयेच्छीलं शीलभङ्गात्पतत्यधः ।
तद्वैगुण्यादपि स्वर्गात्पतिः पतति सर्वथा ॥
तस्याः पिता च माता च भ्रातृवर्गस्तथैव च ।
विधवा कबरीबन्धो भर्तृबन्धाय जायते ॥
शिरसो वपनं तस्मात्कार्यं विधवया सदा ।
एकवारं सदा भुक्तिरुपवासव्रतानि च ॥—

विधवा का धर्म–पति के मरने पर तो स्त्रियों को दो विधियाँ कही गयीं हैं। वैधव्य का भलीभाँति से पालन या साथ में अग्निप्रवेश। पति के मरने पर जो स्त्री सदा वैधव्य पालन करती है वह पुनः पति को प्राप्त कर स्वर्गलोक पाती है। विधवा शील का पालन करे। शील के भङ्ग से नरक

में गिरती है। स्त्री के इस शीलभङ्ग से पति भी स्वर्ग से सर्वथा गिर जाता है। उसके पिता-माता तथा भाई वर्ग भी उसी तरह स्वर्ग से च्युत हो जाता है। विधवा को चोटी बाँधने से पति का बन्धन होता है, इसलिए विधवा को सदा सिर मुँड़ाना चाहिये। एक बार भोजन और उपवास-व्रतों को करना चाहिये।—

पर्यङ्कशयना नारी विधवा पातयेत्पतिम्।
नैवाङ्गोद्वर्तनं कार्यं गन्धद्रव्यस्य सेवनम्॥
नाधिरोहेदनड्वाहं प्राणैः कण्ठगतैरपि।
कञ्चुकं न परीदध्याद्वासो न विकृतं वसेत्॥
वैशाखे कार्तिके माघे विशेषनियमं चरेत्।
ताम्बूलाभ्यञ्जने चैव कांस्यपात्रे च भोजनम्।
यतिश्च विधवा चैव वर्जयेच्चन्दनादिकम्॥

अपुत्रा विधवा भर्त्रादित्रयमुद्दिश्य प्रत्यहं तिलकुशोदकैस्तर्पणं कुर्यात्। श्राद्धादौ तु प्रागुक्तम्।

पलंग पर सोने वाली विधवा स्त्री पति को स्वर्ग से गिरा देती है। उसे उबटन नहीं लगाना चाहिये। कण्ठगत प्राण होने पर भी उसे गन्धद्रव्य का सेवन एवं बैलगाड़ी का आरोहण नहीं करना चाहिये। वह चोली नहीं पहने और विकृत वस्त्र धारण नहीं करे। वैशाख, कार्तिक और माघ में विशेष नियमों का पालन करे। पान, उबटन, कांसे के पात्र में भोजन, चन्दन आदि, संन्यासी तथा विधवा स्त्री त्याग दे। विना पुत्र वाली विधवा प्रतिदिन पति आदि तीन के उद्देश्य से तिलयुत कुश-जल से तर्पण करे। श्राद्ध आदि में तो पहले कहा है।

अथ संन्यासनिर्णयः

तत्र ब्रह्मचर्यं कृत्वा समावर्तनान्ते कृतदारः पुत्रानुत्पाद्य यज्ञैरिष्ट्वा वानप्रस्थाश्रमं च कृत्वा संन्यसेदित्याश्रमसमुच्चयपक्षः[1]। ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेद् गृहाद्वा वनाद्वा। अथ पुनरव्रती वा व्रती वा स्नातको वाऽस्नातको वोत्सन्नाग्निरनग्निको वा यदहरेव विजरेत्तदहरेव प्रव्रजेदित्याश्रमविकल्पपक्षः[2]।

प्रव्रजेद् ब्रह्मचर्याद्वा प्रव्रजेच्च गृहादपि।
वनाद्वा प्रव्रजेद्विद्वानातुरो वाथ दुःखितः॥

इति वाक्ये आतुरो मुमूर्षुः, दुःखितश्चोरव्याघ्रादिभीत इत्यर्थः।

---

१. आश्रमसमुच्चय पक्ष में याज्ञवल्क्य ने कहा है—'वनाद् गृहाद् वा कृत्वेष्टिं सार्ववेदसदक्षिणाम्। प्राजापत्यां तदन्ते तानग्नीनारोप्य चात्मनि॥ अधीतवेदो जपकृत्पुत्रवानन्नदोऽग्निमान्। शक्त्या च यज्ञकृन्मोक्षे मनः कुर्यात्तु नान्यथा॥' इति।

२. आश्रमविकल्प पक्ष में जाबालश्रुति में है—'ब्रह्मचर्यं परिसमाप्य गृही भवेद् गृही भूत्वा वनी भवेद् वनी भूत्वा प्रव्रजेत्। यदि वेतरथा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेद् गृहाद्वा वनाद्वा। अथ पुनरव्रती वा व्रती वा स्नातको वाऽस्नातको वोत्सन्नाग्निरनग्निको वा यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेत्' इति।

उसमें ब्रह्मचर्य करके समावर्तन के अन्त में विवाह करके पुत्रों को पैदा कर यज्ञों और वानप्रस्थाश्रम को करके संन्यास करे, यह आश्रमों का समुच्चय पक्ष है। ब्रह्मचर्य ही से या गृहस्थाश्रम से या वानप्रस्थाश्रम से संन्यास ग्रहण करे। फिर अव्रती या व्रती, स्नातक या अस्नातक, अग्नि का त्यागी या अग्निहोत्ररहित पुरुष जिस दिन विराग हो जाय उसी दिन संन्यास ले ले, यह आश्रमविकल्प पक्ष है। आतुर हो या दुःखी विद्वान् पुरुष ब्रह्मचर्य या गृहस्थाश्रम से या वानप्रस्थाश्रम से संन्यास ग्रहण करे। इस वाक्य में आतुर का अर्थ है मरने की इच्छा करने वाला, दुःखित का अर्थ है चोर बाघ आदि से डरा हुआ।

आतुराणां च संन्यासे न विधिर्नैव च क्रिया।
प्रेषमात्रं समुच्चार्य संन्यासं तत्र कारयेत्॥

संन्यासे दण्डग्रहणादिरूपे [1]विविदिषाख्ये विप्रस्यैवाधिकारः। विद्वत्संन्यासे तु [2]क्षत्रियवैश्ययोरपि। कलियुगे संन्यासनिषेधस्त्रिदण्डिसंन्यासपर इति प्राञ्चः।

आतुरों के संन्यास में न विधि है और न तो कोई क्रिया। प्रैषमात्र का उच्चारण कराके उसमें संन्यास करा दे। आत्मज्ञानेच्छारूप तथा दण्डग्रहण आदि रूप संन्यास में ब्राह्मण का ही अधिकार है। विद्वत्संन्यास में तो क्षत्रिय और वैश्य का भी अधिकार है। कलियुग में संन्यास का निषेध त्रिदण्डि संन्यास के लिये है, ऐसा प्राचीन लोग कहते हैं।

स च [3]संन्यासश्चतुर्धा—कुटीचको बहूदको हंसः परमहंसश्चेति। अत्रोत्तरोत्तरः श्रेष्ठः। बहिःकुट्यां गृहे वा वसन्काषायवासास्त्रिदण्डी[4] शिखायज्ञोपवीतवान्बन्धुषु गृहे वा भुञ्जान आत्मनिष्ठो भवेत्स कुटीचकः। पुत्रादीन्हित्वा सप्तागाराणि भैक्षं चरन्पूर्वोक्तकाषायवस्त्रादिवेषवान्बहूदकः। हंसस्तु पूर्वोक्तवेषोऽप्येकदण्डः। परमहंसस्तु शिखायज्ञोपवीतहीन एकदण्डी स्यात्। काषायवस्त्रं चतुर्णामपि।

वह संन्यास चार प्रकार का है—कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस। इनमें उत्तरोत्तर (बाद-बाद वाले) श्रेष्ठ होते हैं। ग्राम से बाहर कुटी में या घर में रहते हुए गेरुआ वस्त्र. तीन दण्ड,

---

१. बौधायनः—'मुखजानामयं धर्मो यद्विष्णोर्लिङ्गधारणम्। राजन्यवैश्ययोर्नेति दत्तात्रेयमुनेर्वचः॥' इति।

२. माधवमत में तीनों वर्णों का अधिकार है, जैसा कूर्मपुराणादि में कहा है—'ब्राह्मणः क्षत्रियो वाऽथ वैश्यो वा प्रव्रजेद् गृहात्' इति।

३. संन्यासी का लक्षण—'सदन्ने वा कदन्ने वा लोष्टे वा काञ्चने तथा। समबुद्धिर्यस्य शश्वत् स संन्यासीति कीर्तितः॥' चार प्रकार के संन्यासियों का भेद हारीत ने कहा है—'कुटीचको बहूदको हंसश्चैव तृतीयकः। चतुर्थः परमो हंसो यो यः पश्चात् स उत्तमः॥' इति।

४. त्रयो दण्डा अस्य सन्तीति त्रिदण्डी। मिताक्षरायाम्—'प्राजापत्येष्ट्यनन्तरं त्रीन् वैणवान् दण्डान् मूर्धप्रमाणान् दक्षिणेन पाणिना धारयेत्सव्येन सोदकं कमण्डलुम्' इति। अथवा एक दण्ड को धारण करे, जैसा चतुर्विंशति मत में कहा है—'चतुर्थमाश्रमं गच्छेद् ब्रह्मविद्यापरायणः। एकदण्डी त्रिदण्डी वा सर्वसंगविवर्जितः॥' अत्रि ने—'चतुर्धा भिक्षवः प्रोक्ताः सर्वे चैव त्रिदण्डिनः' इस वचन से जो सभी के लिये त्रिदण्ड ग्रहण का निर्देश किया है वह वाग्दण्डादि परक है, जैसा मनु ने कहा है—'वाग्दण्डोऽथ मनोदण्डः कर्मदण्डस्तथैव च। यस्यैते नियता दण्डाः स त्रिदण्डीति चोच्यते॥' इति।

शिखा और यज्ञोपवीत धारण किये बन्धुओं में या घर में भोजन करता हुआ जो आत्मज्ञाननिष्ठ हो, वह कुटीचक संन्यासी है। पुत्र आदि को छोड़ सात घरों से भिक्षाग्रहण करते हुए पूर्वोक्त गेरुआ आदि वेष वाला बहूदक संन्यासी होता है। हंस तो पूर्वोक्त वेष को धारण किये एक दण्डधारी संन्यासी है। परमहंस तो शिखा-यज्ञोपवीतरहित एकदण्डी होता है। गेरुआ वस्त्र चारों का है।

हंसपरमहंसयोः शिखायज्ञोपवीतसत्त्वासत्त्वाभ्यां भेदः। एकदण्डस्तु द्वयोरपि। परमहंसस्य दण्डधारणं विविदिषादशायां नित्यम्। विद्वत्तादशायां तु कृताकृतम्, 'न दण्डं न शिखां नाच्छादनं चरति परमहंस' इति श्रवणात्। वैराग्यं विना जीवनाद्यर्थं संन्यासे तु नरकः,

एकदण्डं समाश्रित्य जीवन्ति बहवो नराः।
नरके रौरवे घोरे कर्मत्यागात्पतन्ति ते॥
काष्ठदण्डो धृतो येन सर्वाशी ज्ञानवर्जितः।
स याति नरकान् घोरान् इत्यादिस्मरणात्।

हंस-परमहंस का भेद शिखा-यज्ञोपवीत को रखने और न रखने से है। एक दण्ड तो दोनों को है। परमहंस का दण्डधारण ज्ञान की इच्छा दशा में नित्य है। विद्वत्ता-दशा में तो करे या नहीं करे, क्योंकि श्रुति है कि परमहंस न दण्ड न शिखा न वस्त्रधारण करता है। वैराग्य के विना जीने खाने आदि के लिये संन्यास लेने में तो नरक होता है, क्योंकि स्मृति है कि एक दण्ड के समाश्रयण से बहुत से लोग जीते हैं, वे कर्म के त्याग से घोर रौरव नरक में गिरते हैं। सब कुछ खाने वाला ज्ञानरहित व्यक्ति जिसने काष्ठ-दण्ड को धारण किया वह घोर नरकों में जाता है।

अथ संन्यासग्रहणविधिः

तत्रोत्तरायणं प्रशस्तम्। आतुरस्य तु दक्षिणायनमपि। तत्रादौ गृह्याग्निमन्तं क्षाद्दशविधुरं प्रति च प्रयोगः—तत्र शान्त्यादिलक्षणं गुरुं संशोध्य तन्निकटे त्रिमासं यतिधर्मान् संवीक्ष्य गायत्रीजपरुद्रजपकूष्माण्डहोमादिभिः शुद्धिं लब्ध्वा रिक्तातिथौ देशकालौ स्मृत्वा 'अमुकस्य मम करिष्यमाणसंन्यासेऽधिकारार्थं चतुःकृच्छ्रात्मकं प्रायश्चित्तं प्रतिकृच्छ्रं तत्प्रत्याम्नायैकैकगोनिष्क्रयद्वाराहमाचरिष्ये, कृच्छ्रप्रत्याम्नायगोनिष्क्रयद्रव्यं विप्रेभ्यो दातुमहमुत्सृजे'[1] इति संकल्पपूर्वकं रजतनिष्कतदर्धतदर्धान्यतमं प्रतिधेनुं दद्यात्। एकादश्यां द्वादश्यां वा यथा ब्रह्मरात्रिः स्यात्तथा श्राद्धान्यारभेत्। अत्र [2]अनाश्रमिणश्चतुःकृच्छ्रमन्यस्य तप्तकृच्छ्र-

१. आत्मनेपदी 'सृज विसर्गे' यह धातु दिवादि का है। 'दिवादिभ्यः श्यन्' इस सूत्र से श्यन् होना अनिवार्य है इसलिये 'उत्सृज्ये' यह शुद्ध है। रघुवंश में कालिदास का प्रयुक्त उदाहरण देखें—'संसृज्यते सरसिजैररुणांशुभिन्नैः'। संसृज्यते में कर्ता में लकार है कर्म में नहीं, क्योंकि सृज-धातु अकर्मक है। संसृज्यते का संबध्नाति अर्थ है। कमलिनी पद का शेष है।

२. कात्यायनः—'कृच्छ्रांस्तु चतुरः कृत्वा पावनार्थमनाश्रमी। आश्रमी चेत्तप्तकृच्छ्रं तेनासौ योग्यतां व्रजेत्॥' इति।

मिति सिन्धुः । स्वस्य नवश्राद्धषोडशश्राद्धसपिण्डीकरणानि साग्निः पार्वणविधिना निरग्निरेकोद्दिष्टविधिना[1] कुर्यादिति केचित् । नेत्यन्ये ।

इसमें उत्तरायण प्रशस्त है । आतुर का तो दक्षिणायन में भी श्रेष्ठ है । उसमें आदि में गृह्य अग्नि वाले और अग्नि से विधुर के लिये प्रयोग— शान्ति आदि लक्षण वाले गुरु को समझ कर उनके समीप तीन महीने संन्यासी के धर्मों को अच्छे प्रकार से देख कर गायत्रीजप, रुद्रजप और कूष्माण्ड होम आदि से शुद्धि प्राप्त कर रिक्ता तिथि में देश-काल का स्मरण कर 'अमुक मेरे किये जाने वाले संन्यास में अधिकार के लिये चार कृच्छ्रस्वरूप प्रायश्चित्त को प्रतिकृच्छ्र के बदले में एक-एक गोनिष्क्रय द्वारा मैं करूंगा, कृच्छ्र के बदले में गोनिष्क्रय द्रव्य ब्राह्मणों को देने के लिये मैं त्याग करता हूँ' ऐसे संकल्पपूर्वक एक निष्क (तोला) चांदी या आधा निष्क या चौथाई तोला इनमें से कोई एक प्रतिधेनु का मूल्य दे । एकादशी या द्वादशी को जैसे ब्रह्मरात्रि हो वैसे श्राद्धों का आरम्भ करे । इसमें निराश्रमी को चार कृच्छ्र दूसरे को तप्तकृच्छ्र प्रायश्चित्त है, ऐसा निर्णयसिन्धु का मत है । कुछ लोग कहते हैं कि—अपने नव श्राद्ध, षोडश श्राद्ध और सपिण्डीकरण को साग्निक पार्वण विधि से और निरग्निक एकोद्दिष्ट विधि से करे । दूसरे कहते हैं नहीं ।

अथाष्टौ श्राद्धानि—तत्रापस्तम्बहिरण्यकेशीयादीनामग्नौकरणपिण्डादिरहितः सांकल्पिकः प्रयोगः । आश्वलायनादीनां सपिण्डकः पार्वणप्रयोगः । तत्रादौ सव्येन सयवजलेन श्राद्धाङ्गतर्पणम्—ब्रह्माणं तर्पयामि विष्णुं त० महेश्वरं त० देवर्षीन्० ब्रह्मर्षीन्० क्षत्रर्षीन्० वसून्० रुद्रान्० आदित्यान्० सनकं० सनन्दनं० सनातनं० पञ्चमहाभूतानि० चक्षुरादिकरणानि० भूतग्रामं० पितरं० पितामहं० प्रपितामहं० मातरं० पितामहीं० प्रपितामहीं० आत्मानं० पितरं० पितामहं० इति नद्यादौ कृत्वा गृहमागत्य देशकालौ स्मृत्वा 'करिष्यमाणसंन्यासाङ्गत्वेनाष्टौ[2] श्राद्धानि पार्वणविधिनान्नेनामेन वा करिष्ये' इति संकल्प्य क्षणं दद्यात् ।

आठ श्राद्ध—उसमें आपस्तम्ब और हिरण्यकेशीय आदि का अग्नौकरण पिण्ड आदि से रहित सांकल्पिक प्रयोग है । आश्वलायन आदि का पिण्डसहित पार्वण प्रयोग है । उसमें आरम्भ में सव्य से जौसहित जल से श्राद्धाङ्ग तर्पण करे—ब्रह्माणं तर्पयामि । विष्णुं० महेश्वरं० इत्यादि मन्त्र मूल में देखें । इस तरह नदी आदि में करके घर आकर देश-काल का स्मरण कर 'किये जाने वाले संन्यास के अंगस्वरूप श्राद्धों को पार्वण विधि से पक्वान्न या आमान्न से करूँगा' ऐसा संकल्प करके क्षण दे ।

अत्र सर्वं नान्दीश्राद्धवत् । तेन नापसव्यम् । तिलस्थाने यवाः, युग्मा विप्राः । तथा च देवस्थाने विप्रौ द्वौ श्राद्धाष्टके षोडशेत्यष्टादशविप्राः । तत्र

---

१. स्मृत्यर्थसारे—'एकोद्दिष्टविधानेन कुर्याच्छ्राद्धानि षोडश । अग्निमान् पार्वणेनैव विधिना निर्वपेत् स्वयम् ॥' बौधायनः—'कृत्वा श्राद्धानि सर्वाणि पित्रादिभ्योऽष्टकं पृथक् । वापयित्वा च केशादीन् मार्जयेन्मातृका इमाः ॥' सर्वाणि श्राद्धानि=स्वस्य नवश्राद्धषोडशश्राद्धादीनि ।

२. बौधायनः—'सदैवमार्षकं दिव्यं पित्र्यं मातृकमानुषे । भौतिकं चात्मनश्चान्ते अष्टौ श्राद्धानि निर्वपेत् ॥' इति ।

सत्यवसुसंज्ञका विश्वेदेवा नान्दीमुखाः स्थाने क्षणः कर्तव्यः इत्येकं वृत्वा द्वितीयं वृणुयात्। एवमग्रेऽपि प्रथमे देवश्राद्धे ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा नान्दीमुखाः स्थाने क्षणः० १। द्वितीये ऋषिश्राद्धे देवर्षिब्रह्मर्षिक्षत्रर्षयः नान्दी० २। तृतीये दिव्यश्राद्धे वसुरुद्रादित्या नान्दी० ३। मनुष्यश्राद्धे सनकसनन्दनसनातना नान्दी० ४। पञ्चमे भूतश्राद्धे पृथिव्यादिपञ्चमहाभूतान्येकादशचक्षुरादिकरणानि चतुर्विधभूतग्रामा नान्दी० ५। षष्ठे पितृश्राद्धे पितृपितामहप्रपितामहा नान्दी० ६। मातृश्राद्धे मातृपितामहीप्रपितामह्यो नान्दी० ७। अष्टमे आत्मश्राद्धे आत्मपितृपितामहा नान्दी० ८। आत्मान्तरात्मा परमात्मेति केचित्। इति द्वौ द्वौ विप्रौ वृणुयात्।

इसमें सब विधि नान्दीश्राद्ध की तरह है। इससे अपसव्य नहीं है। तिल के स्थान में जौ और दो ब्राह्मण हैं। विश्वेदेव के स्थान में दो विप्र और आठ श्राद्धों में सोलह, इस प्रकार अठारह ब्राह्मण हुए। उसमें नान्दीमुखरूपी सत्य-वसु नामक विश्वेदेवा! स्थान में क्षण कीजिये, इस प्रकार एक का वरण कर दूसरे का वरण करे। इसी प्रकार आगे भी प्रथम देव श्राद्ध में नान्दी-मुखरूपी ब्रह्म-विष्णु-महेश्वर! स्थान में क्षण कीजिये १। दूसरे ऋषि श्राद्ध में देवर्षि-ब्रह्मर्षि-क्षत्रर्षि नान्दी-मुखो! स्थान में क्षण करें २। तीसरे दिव्य श्राद्ध में वसु-रुद्र-आदित्य-नान्दीमुखो० ३। मनुष्य श्राद्ध में सनक-सनन्दन-सनातन नान्दीमुखो०४। पांचवें भूत श्राद्ध में पृथिवी आदि पांचो महाभूतो! ग्यारह चक्षु आदि इन्द्रियो! चार प्रकार के जीवसमूहो! नान्दी०५। छठे पितृश्राद्ध में पिता-पितामह-प्रपितामह नान्दीमुखो०! ६। मातृश्राद्ध में माता-पितामही-प्रपितामही नान्दीमुखियो! ७। आठवें आत्म श्राद्ध में आत्मा-पिता-पितामह नान्दीमुखो! स्थान में क्षण कीजिये ८। यहाँ आत्मा से अन्तरात्मा का ग्रहण है। कोई आत्मा से अन्तरात्मा परमात्मा का ग्रहण कहते हैं। इस प्रकार दो-दो ब्राह्मणों का वरण करे।

सर्वत्र नान्दीमुखत्वं विशेषणम्। युग्मा विप्राः। सत्यवसू दक्षक्रतू वा देवौ। ततः सर्वेषां पाद्यं दत्त्वा प्राङ्मुखानुदक्संस्थानुपवेश्य प्रार्थयेत्—

संन्यासार्थमहं श्राद्धं कुर्वे ब्रूत द्विजोत्तमाः।
अनुज्ञां प्राप्य युष्माकं सिद्धिं प्राप्स्यामि शाश्वतीम्॥

कुरु इति प्रत्युक्तः सयवऋजुदूर्वादियुग्मेनाब्दानपूर्वकं संबुद्ध्यन्ते इदमासनमित्यष्टादशस्वासनं दद्यात्। तत आश्वलायनानामर्घ्यपात्रासादनम्। आपस्तम्बादीनां सांकल्पिकत्वान्नार्घ्यम्। देवार्थमेकं पार्वणाष्टकार्थमष्टावित्येवं नव-पात्राणि।

सर्वत्र नान्दीमुख विशेषण है। युग्म ब्राह्मण हैं। सत्य-वसु या दक्ष-क्रतु नामक विश्वेदेव हैं। इसके बाद सबको पाद्य देकर पूर्वमुख करके उत्तरसंस्थ बैठाकर प्रार्थना करे—हे उत्तम ब्राह्मणो! मैं संन्यास के लिये श्राद्ध करता हूँ, आप लोगों से आज्ञा प्राप्त कर आप लोगों की नित्य सिद्धि प्राप्त करूँगा। ब्राह्मणों से 'करो' ऐसी आज्ञा पाकर जौसहित कोमल दूब के जोडे जलदान के बाद सम्बोधन के अन्त में 'यह आसन है' इस प्रकार अठारहों को आसन दे। इसके बाद आश्वलायनों का अर्घ्यपात्र का आसादन है। आपस्तम्ब आदि का सांकल्पिक होने से अर्घ्य नहीं है। देवों के लिये एक पात्र और आठ पार्वणों में आठ पात्र इस प्रकार नव पात्र हैं।

सर्वत्र पवित्रद्वयान्तर्हितेषु शंनोदेवीरित्यप आसिच्य विश्वेदेवपात्रे यवोसी॰ ति यवाः। अष्टपात्रेषु तिलोसीति मन्त्रस्योहेन यवानोप्य गन्धादिपूजनम्। ऊहस्तु—

यवोसि सोमदेवत्यो गोसवे देवनिर्मितः। प्रत्नवद्भिः प्रत्तः पुष्टया नान्दीमुखान् देवान्प्रीणयाहि नः स्वाहा नमः॥

इति प्रथमपात्रे। द्वितीये नान्दीमुखानृषीन्॰। तृतीये नान्दीमुखान् दिव्यान्प्री॰। चतुर्थे नान्दीमुखान्मनुष्यान्प्रीण॰। पञ्चमे नान्दीमुखानि भूतानि प्री॰। षष्ठसप्तमाष्टमेषु नान्दी॰ पितॄन्प्रीणयेत्यादि॰।

सर्वत्र दो पवित्र से ढके हुए सब पात्रों में 'शंनो देवी' इस मन्त्र से जल से आसेचन कर विश्वेदेव पात्र में 'यवोसि' इस मन्त्र से डाले। आठ पात्रों में 'तिलोसि' इस मन्त्र के ऊह से जौ को रखकर गन्ध आदि से पूजन करे। ऊह तो इस प्रकार है—यवोसि सोमदेवत्यो गोसवे देवनिर्मितः। प्रत्नवद्भिः प्रत्तः पुष्टया नान्दीमुखान्देवान् प्रीणयाहि नः स्वाहा नमः' इससे प्रथम पात्र में। दूसरे में नान्दीमुखानृषीन् प्री॰। तीसरे में 'नान्दीमुखान् दिव्यान् प्री॰'। चौथे में 'नान्दीमुखान्मनुष्यान् प्री॰। पांचवें में नान्दीमुखानि भूतानि प्री॰'। छठे सातवें और आठवें में नान्दीमुखान् पितॄन् प्रीणयाहि इत्यादि ऊह करे।

एकैकं पात्रं द्विधा विभज्य सर्वत्र या दिव्या इति मन्त्रान्ते विश्वेदेवा नान्दीमुखा इदं वोर्घ्यऽमिति दत्त्वा ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा नान्दीमुखा इदं वोऽर्घ्यं स्वाहा नम इत्यादिना यथायथं षोडशविप्रहस्तेषु दद्यात्। या दिव्या इति स्रवदनुमन्त्रणम्। पात्रं न्युब्जीकृत्य गन्धाद्याच्छादनान्तपूजा। तत्र सर्वत्र संबुद्ध्यन्तो नान्दीमुख विशेषणयुक्त उच्चारः। भोजनपात्राण्यासाद्य ब्रह्मादिषोडशविप्रकरेष्वग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहेति मन्त्राभ्यामाहुतिद्वयं दद्यात्। नेदमापस्तम्बादीनाम्।

एक-एक पात्र का दो विभाग करके सर्वत्र 'या दिव्या' इस मन्त्र के अन्त में विश्वेदेव नान्दीमुख 'यह आप का अर्घ्य है' इस प्रकार अर्घ्य देकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर नान्दीमुख यह आप लोगों का अर्घ्य है स्वाहा नमः इत्यादि से यथायोग सोलह ब्राह्मणों के हाथ में अर्घ्य दे। जल गिरते हुए 'या दिव्या' इस मन्त्र से अनुमन्त्रण करे। पात्र को उलट कर गन्धादि आच्छादनान्त पूजन करे। वहाँ सब जगह संबोधनान्त नान्दीमुख ऐसा विशेषणसहित उच्चारण करे। भोजन पात्र रखकर ब्रह्मा आदि सोलह ब्राह्मणों के हाथों में 'अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा' और 'सोमाय पितृमते स्वाहा' इन दो मन्त्रों से दो आहुति दे। यह आपस्तम्ब आदि के यहाँ नहीं होता।

उपस्तीर्यान्नं परिविष्यान्नाभावे आमं तन्निष्क्रयं वा प्रोक्ष्य पृथ्वी ते पात्रमित्यादिना यथादैवतमन्नस्यामादेर्वा त्यागः। ये देवासो॰ प्रजापते न॰ ब्रह्मार्पणं ब्रह्म॰। अनेनाष्टश्राद्धेन नान्दीमुखा देवादयः प्रीयन्ताम्। आपोशनदानान्ते बलिदानवर्ज्यं भुञ्जीयुः। तृप्तेषु उपास्मै॰ अक्षन्नमी॰। संपन्नमिति पृष्टे रुचिरमिति

सर्वे ब्रूयुः । नेदमामान्ने । आचान्तेषु यवलाजदधिबदरियुतान्नेनाष्टचत्वारिंशत्पिण्डान्कृत्वा प्रागायता उदक्संस्था अष्टौ रेखाः कृत्वाभ्युक्ष्य कुशान्दूर्वा वास्तीर्य पिण्डस्थानेषु चतुर्विंशतौ जलं सिञ्चेत् ।

उपस्तरण करके अन्न परोस कर अन्न के अभाव में कच्चा अन्न या उसके निष्क्रय द्रव्य का प्रोक्षण कर 'पृथ्वी ते पात्रम्' इत्यादि से यथादैवत पक्वान्न या आमान्न का त्याग करे। पश्चात् 'ये देवासो०' 'प्रजापते न०' 'ब्रह्मार्पणं ब्रह्म०' इन मन्त्रों को पढ़े । इन आठ श्राद्धों से नान्दीमुख देव आदि प्रसन्न हों । आपोशन देने के बाद बलिदान को छोड़कर ब्राह्मण भोजन करें । तृप्त होने पर 'उपास्मै' 'अक्षन्नमी' इन मन्त्रों को पढ़े । 'सपन्न हुआ' यह प्रश्न करने पर 'रुचिर है' ऐसा सब ब्राह्मण कहें । यह आमान्न श्राद्ध में नहीं होता । ब्राह्मणों के आचमन करने के बाद जौ-धान का लावा दही बैर से युक्त अन्न से अड़तालिस पिण्डों को बना कर पूर्व की ओर लम्बी उत्तरदिक्-संस्थ आठ रेखाओं को करके जल छिड़क कर उनपर कुश या दूब बिछाकर चौबीस पिण्ड के स्थानों में जल से सिंचन करे ।

तद्यथा—शुन्धन्तां ब्रह्माणो नान्दीमुखाः, शुन्धन्तां विष्णवो नान्दी०, शुन्धन्तां महेश्वरा नान्दी० इति प्रथमरेखायाम् । तदुत्तररेखासु शुन्धन्तां देवर्षयो नां०,शुन्धन्तां ब्रह्मर्षयो नां० इत्याद्यूहो ज्ञेयः । ततो ब्रह्मणे नान्दीमुखाय स्वाहेत्येकं पिण्डं दत्त्वा द्वितीय एवमेव देयस्तूष्णीं वेति प्रतिदैवतं पिण्डद्वयम् । एवमग्रेऽपि विष्णवे नान्दीमुखाय स्वाहेत्यादयः स्वाहान्ताः पिण्डदानमन्त्रा ऊह्याः । अत्र पितरो मादयध्वमित्यादि पुनः शुन्धन्तान्तं तन्त्रमञ्जनमभ्यञ्जनं च कृताकृतम् । पिण्डान् गन्धादिना संपूज्य नत्वोपसंपन्नमिति विसृज्य विप्रेभ्यो दक्षिणादि तन्त्रम् । नेदं पिण्डदानाद्यापस्तम्बादीनाम् । कात्यायनानामाश्वलायनवत् ।

वह ऐसे—नान्दीमुख ब्रह्मा शुद्ध हों, नान्दीमुख विष्णु शुद्ध हों, नान्दीमुख महेश्वर शुद्ध हों, यह प्रथम रेखा में । उसके बाद वाली रेखाओं में नान्दीमुख देवर्षि शुद्ध हों, नान्दीमुख ब्रह्मर्षि शुद्ध हों इत्यादि ऊह जानना चाहिये । तदनन्तर ब्रह्मा नान्दीमुख के लिये स्वाहा ऐसा कहके एक पिण्ड देकर ऐसे ही दूसरा पिण्ड या बिना मन्त्र के चुप चाप दे, इस प्रकार प्रत्येक देवता को दो पिण्ड दे । इसी प्रकार आगे भी नान्दीमुख विष्णु के लिये स्वाहा इत्यादि स्वाहान्त पिण्डदान मन्त्र का ऊह करना चाहिये । उसमें 'पितरो मादयध्वं' इत्यादि पुनः 'शुन्धन्ताम्' पर्यन्त कर्म तन्त्र से करे, अंजन और अभ्यञ्जन करे या नहीं करे । पिण्डों का गन्धादि से पूजन करके प्रणाम कर 'उपसम्पन्नं' ऐसा कहकर विसर्जन करके ब्राह्मणों को दक्षिणा आदि कृत्य करे । आपस्तम्ब आदि के यहां पिण्डदान आदि नहीं होता । कात्यायन आदि के यहाँ आश्वलायन के समान है ।

अष्टश्राद्धोत्तरं तद्दिने द्वितीये वा षट् शिखाकेशान्स्थापयित्वा कक्षोपस्थवर्जं केशश्मश्रुनखादि वापयित्वा स्नात्वा कौपीनाच्छादनादि होमद्रव्यं च विनान्यद्धनादि विप्रादिभ्यः पुत्रादिभ्यश्च त्यजेत् । कौपीनादिकं गैरिकरञ्जितं कृत्वा वैणवं [1]दण्डं सत्वचं शिरोभ्रूललाटान्यतमप्रमाणं समूलमंगुलिस्थूलं विप्रानीतमेका-

१. बौधायनः—'त्रीन् दण्डानङ्गुलीस्थूलान् वैणवान् मूर्धसम्मितान् । एकादशनवद्वित्रिचतुःसप्तान्यपर्वकान् ॥ वेष्टितान् कृष्णगोवालरज्ज्वा तु चतुरङ्गुलान् । एको वा तादृशो दण्डो गोवालसदृशो भवेत् ॥ अनग्निरग्निमुत्पाद्य नित्येन विधिना ततः ।' इति ।

दशनवचतुःसप्तान्यतमपर्वकं पर्वग्रन्थियुतं मुद्रायुतं संपाद्य शङ्खोदकेन प्रणवपुरुषसूक्तकेशवादिनामभिरभिषिच्य स्थापयेत्। ततः कमण्डलुकौपीनाच्छादनकन्थापादुकाः स्थापयेत्। शिक्यपात्रादिकमपि केचित्।

आठ श्राद्धों के अनन्तर उस दिन या दूसरे दिन शिखा के छ केशों को छोड़कर कांख और उपस्थ के विना केश-दाढ़ी-नख को मुड़ा कर स्नान करके कौपीन वस्त्रादि और होम द्रव्य के अतिरिक्त जो अन्य धनादि हैं ब्राह्मणादि तथा पुत्रादि के लिये त्याग दे। कौपीन आदि वस्त्र गेरु से रंग कर छालसहित बांस का दण्ड जो सिर-भौंह-ललाट पर्यन्त में किसी एक प्रमाण का, मूलसहित, अंगुलि के समान मोटा, ब्राह्मण का लाया हुआ, ग्यारह-नव-चार-सात पर्व में से कोई एक पर्व का, पर्व और गांठ से युक्त, मुद्रासहित हो, ऐसा सम्पादन करके उसे शङ्ख के जल से प्रणव-पुरुषसूक्त-केशव आदि के नामों से उस दंड का सिंचन कर रक्खे। इसके बाद कमण्डलु, कौपीन, वस्त्र, कन्था और खड़ाऊं को रक्खे। कोई कहते हैं शिक्य (छींका) और पात्र आदि रक्खे।

संन्यासग्रहणप्रयोगः—देशकालौ संकीर्त्य 'अशेषदुःखनिवृत्तिनिरतिशयानन्दप्राप्तिपरमपुरुषार्थप्राप्तये परमहंसाख्यसंन्यासग्रहणं करिष्ये, तदङ्गतया गणपतिपूजनपुण्याहवाचनमातृकापूजननान्दीश्राद्धानि करिष्ये'। तानि कृत्वा जपेत्—ब्रह्मणे नमः विष्णवे० रुद्राय० सूर्याय० सोमाय० आत्मने० अन्तरात्मने० परमात्मने० अग्निमीळे ऋक्, इषेत्वोर्जेत्वा० अग्न आयाहि ऋक्, शंनोदेवी ऋक्, जपित्वा सक्तुपिष्टं मुष्टित्रयं प्रणवेन त्रिः प्राश्य नाभिमालभेत्—आत्मने स्वाहा अन्तरात्मने० परमात्मने० प्रजापतये स्वाहेति मन्त्रैः। ततः पयोदधिमिश्रमाज्यं जलमेव वा त्रिवृदसीति प्रथमं प्राश्य प्रवृदसीति द्वितीयं विवृदसीति तृतीयं प्राश्यापः पुनन्त्विति जलं प्राश्याचम्योपवासं करिष्ये इति संकल्पयेत्।

संन्यास ग्रहण का प्रयोग—देश काल को कहकर सम्पूर्ण दुःख की निवृत्ति निरतिशय आनन्द की प्राप्ति और परम पुरुषार्थ के प्राप्त्यर्थ परमहंस नामक संन्यास का ग्रहण करूंगा, इसका अङ्गभूत गणपति पूजन, पुण्याहवाचन, मातृकापूजन और नान्दीश्राद्ध को करूंगा'। इनको करके जप करे—ब्रह्मणे नमः, विष्णवे नमः, रुद्राय०, सूर्याय०, सोमाय०, आत्मने०, अन्तरात्मने०, परमात्मने०, अग्निमीळे ऋचा; 'इषेत्वोर्जेत्वा०' 'अग्न आयाहि' ऋचा और 'शंनोदेवी' ऋचा का जप कर तीन मुट्ठी सत्तू प्रणव से तीन बार खा कर नाभि का इन मन्त्रों से स्पर्श करे—आत्मने स्वाहा, अन्तरात्मने स्वाहा, परमात्मने स्वाहा, प्रजापतये स्वाहा। इसके बाद दूध-दही मिले घृत का या जल ही का 'त्रिवृदसि' इस मन्त्र से प्रथम प्राशन करके 'प्रवृदसि' इससे द्वितीय और 'विवृदसि' इससे तृतीय प्राशन करके 'आपः पुनन्तु' इससे जल पीकर आचमन करके 'उपवास करूंगा' ऐसा संकल्प करे।

अथ सावित्रीप्रवेशः

ॐ भूः सावित्रीं प्रविशामि ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं ॐ भुवः सावित्रीं प्र० ॐ भर्गो देवस्य० ॐ स्वः सावित्रीं प्र० ॐ धियो यो० ॐ भूर्भुवःस्वः सावित्रीं ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं० ऋक्। ततोऽस्तात्प्राक् गृहचाग्निं समिध्य विच्छिन्नश्रे-

त्पुनः संधानविधिना निरग्निर्वा विधुरादिर्वा पृष्ठोदिविविधानेनाग्निं संपादयेत् ।
पृष्ठोदिविविधानं च कात्यायनवैश्वदेवप्रसङ्गे पूर्वार्धे उक्तम् ।

ओं भूः सावित्रीं प्रविशामि, ओं तत्सवितुर्वरेण्यं, ओं भुवः सावित्रीं प्रविशामि, ओं भर्गो देवस्य०, ओं स्वः सावित्रीं प्रविशामि, ओं धियो यो०, ओं भूर्भुवः स्वः सावित्रीं प्रविशामि, ओं तत्सवितुर्वरेण्यं० ऋचा पढ़े। अनन्तर सूर्यास्त से पहले गृह्य अग्नि को प्रज्वलित करके यदि अग्नि का विच्छेद हो तो पुनः संधान विधि से निरग्नि हो या विधुर आदि हो तो पृष्ठोदिवि विधान से अग्नि को प्रज्वलित करे। पृष्ठोदिवि विधान तो कात्यायन वैश्वदेव के प्रसङ्ग में पूर्वार्ध में कहा है।

अथास्तात्पूर्वं ब्रह्मान्वाधानम्—'संन्यासं कर्तुं ब्रह्मान्वाधानं करिष्ये' इति संकल्प्याग्निध्यानाद्याज्यं संस्कृत्य स्रुक्स्रुवौ संमृज्य स्रुचि चतुराज्यं गृहीत्वा ॐ स्वाहेति हुत्वा परमात्मन इदं० परिषेचनादि। इति ब्रह्मान्वाधानम्। ततः सायं संध्याहोमवैश्वदेवान्कृत्वाग्निसमीपे जागरं कुर्यात्। प्रातर्नित्यहोमान्ते वैश्वदेवादिकं कृत्वाग्नेयं वैश्वानरं वा स्थालीपाकं कुर्यात्। तत्र 'करिष्यमाणसंन्यासपूर्वाङ्गभूतमाग्नेयस्थालीपाकं करिष्ये' इति संकल्पः। ध्यात्वा चक्षुषी आज्येनेत्यन्तेऽत्र प्रधानमग्निं चरुणा शेषेणेत्यादि। अग्नये त्वा जुष्टं निर्वपामीत्यादिनाम्ना निर्वापादि। नाम्नैव प्रधानहोमः। एवं वैश्वानरपक्षेऽप्यूहचम्।

'संन्यास करने के लिये ब्रह्मान्वाधान करूंगा' ऐसा संकल्प कर अग्नि का ध्यान आदि घृत का संस्कार करके स्रुक्-स्रुवा का संमार्जन कर स्रुक् में चार बार घृत लेकर ओं स्वाहा इससे होम करके 'परमात्मने इदं०' इससे परिषेचन आदि करे। यह ब्रह्मान्वाधान है। इसके बाद सायंकाल संध्या, होम और वैश्वदेव करके अग्नि के समीप जागरण करे। प्रातःकाल नित्य होम के अन्त में वैश्वदेव आदि करके आग्नेय या वैश्वानर स्थालीपाक करे। उसमें 'किये जाने वाले संन्यास का पूर्वाङ्गभूत आग्नेय स्थालीपाक करूंगा' यह संकल्प है। ध्यान कर 'चक्षुषी आज्येन' इसके अन्त में यहाँ प्रधान अग्नि को चरु से होम करे और शेष से होम करे। 'अग्नये त्वा जुष्टं निर्वपामि' इत्यादि नाम से निर्वाप आदि करे। नाम ही से प्रधान होम करे। ऐसे ही वैश्वानर पक्ष में भी ऊह करे।

ततस्तरत्समन्दीति जपित्वा कुशहेमरूप्यजलैः स्नात्वा देशादि स्मृत्वा 'संन्यासाङ्गभूतं प्राणादिहोमं पुरुषसूक्तहोमं 'विरजाहोमं च तन्त्रेण करिष्ये' इति संकल्प्यान्वाधाने आज्येनेत्यन्ते प्राणादिपञ्चदेवताः समिच्चर्वाज्यैः पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचं षोडशवारं समिच्चर्वाज्यैः प्राणाद्येकोनविंशतिदेवता विरजामन्त्रैः प्रतिद्रव्यमेकैकसंख्यसमिच्चर्वाज्याहुतिभिः प्रजापतिं सकृदाज्येन शेषेणेत्यादि। षष्टयुत्तरशतवारं तूष्णीं निरूप्य तथैव प्रोक्ष्य श्रपयित्वाज्यभागान्ते प्राणाय स्वाहेत्यादि-

---

१. शिवगीता—'जुहुयाद् विरजामन्त्रैः प्राणापानादिभिस्ततः। अनुवाकान्तमेकाग्रः समिदाज्यचरून् पृथक्॥ आत्मन्यग्नीन् समारोप्य याते अग्नेति मन्त्रतः। भस्मादायाग्निरित्याद्यैर्विमृज्याङ्गानि संस्पृशेत्॥ पापैर्विमुच्यते सत्यं मुच्यते नात्र संशयः।' इति।

पञ्चमन्त्रैर्द्रव्यत्रयं सकृद्धुत्वा यथादैवं त्यक्त्वा सहस्रशीर्षेति षोडशर्चेन प्रत्यृचं पृथक्पृथग् द्रव्यत्रयं हुत्वा पुरुषायेदं न ममेति सर्वत्र त्यजेत्।

इसके बाद 'तरत्समन्दी' इस मन्त्र को जपकर कुश-सोना-चान्दी के जल से स्नान कर देश आदि का स्मरण कर 'संन्यासाङ्गभूत प्राण आदि का होम, पुरुषसूक्त का होम एवं विरजा होम तन्त्र से करूँगा' ऐसा संकल्प करके अन्वाधान करने पर 'आज्येन' इसके अन्त में प्राण आदि पाँच देवताओं का समिधा-चरु-घृत से, पुरुषसूक्त की प्रत्येक ऋचा से सोलह बार, समिधा-चरु-घृत से प्राण आदि उन्नीस देवता का, विरजा मन्त्रों से प्रत्येक द्रव्य से एक-एक की संख्या से समिधा-चरु-घृत से प्रजापति का होम करे। एक बार घृत से और शेष इत्यादि होम करे। एक सौ साठ बार मौन होकर होम करके उसी प्रकार प्रोक्षण कर पकाकर आज्य भाग के अन्त में 'प्राणाय स्वाहा' इत्यादि पाँच मन्त्रों से तीनों द्रव्यों का एक बार होम कर देवता के अनुसार त्याग कर 'सहस्रशीर्षा' इस सोलह ऋचा की प्रतिऋचा से अलग-अलग तीन द्रव्य का होम करके 'यह परमेश्वर के लिये है मेरा नहीं' इस प्रकार सब का त्याग करे।

अथ विरजाहोमः

प्राणापानव्यानोदानसमाना मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासँ स्वाहा, प्राणादिभ्य इदं०। वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रजिह्वाघ्राणरेतोबुद्ध्याकूतिः संकल्पा मे शुद्ध्यन्तां ज्योति०, वागादिभ्य इदं०। त्वक्चर्ममाँसरुधिरमेदोमज्जास्नायवोऽस्थीनि मे शुद्ध्यन्तां०, त्वगादिभ्य इदं०। शिरःपाणिपादपार्श्वपृष्ठोरूदरजङ्घशिश्नोपस्थपायवो मे शुद्ध्यं०, शिर आदिभ्य०। उत्तिष्ठपुरुषहरितपिङ्गललोहिताक्ष देहि देहि ददापयिता मे शुद्ध्यं०, पुरुषादिभ्य०। पृथिव्यापस्तेजोवाय्वाकाशा मे शुद्ध्यं०, पृथिव्यादिभ्य०। शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा मे शुद्ध्यं०, शब्दादिभ्य०। मनोवाक्कायकर्माणि मे शुद्ध्यन्तां०, मन आदिकर्मभ्य०। अव्यक्तभावैरहंकारैर्ज्योतिरहं०, अव्यक्तादिभ्य०। आत्मा मे शुद्ध्यन्तां ज्यो०, आत्मन इदं०।—

मेरे प्राण-अपान व्यान-उदान-समान शुद्ध हों, मैं ज्योति हूँ रजोरहित पापशून्य हो जाऊँ, ओं स्वाहा यह प्राण आदि के लिये है। मेरे वाणी-मन-आँख-कान-जीभ-नासिका-वीर्य-बुद्धि-आकृति-संकल्प शुद्ध हों, मैं ज्योति हूँ० यह स्वाहा वाणी आदि के लिये है मेरे नहीं। मेरे त्वक्-चर्म-मांस रक्त-मेदा-मज्जा-स्नायु अस्थि-शुद्ध हों मैं ज्योति हूँ, यह त्वक् आदि के लिये हैं०। मेरे सिर-हाथ-पैर-पार्श्व-पीठ-उरु-पेट-जांघ-मूत्रेन्द्रिय-उपस्थ-गुदा शुद्ध हों, यह सिर आदि के लिये है०। मेरे उत्तिष्ठपुरुष-हरित-पिङ्गल-लोहिताक्ष-देहि देहि-ददापयिता शुद्ध हों, यह पुरुष आदि के लिये है०। मेरे पृथिवी-जल तेज वायु-आकाश-शुद्ध हों, यह पृथिवीआदि के लिये है०। मेरे शब्द-रूप-रस-स्पर्श-गन्ध शुद्ध हों, यह शब्द आदि के लिये है०। मेरे मन-वाणी-काय-कर्म शुद्ध हों, यह मन आदि कर्मों के लिये है०। अव्यक्तभावों और अहङ्कारों से मैं ज्योतिरूप हूँ, यह अव्यक्त आदि के लिये है! मेरी आत्मा शुद्ध हो मैं ज्योतिरूप हूँ०, यह आत्मा के लिये है।

अंतरात्मा मे०, अंतरात्मन०। परमात्मा मे०परमात्मन०। क्षुधे स्वाहा क्षुध इदं०। क्षुत्पिपासाय स्वाहा, क्षुत्पिपासायेदं०। विविद्यायै स्वा०, विविद्या०। ऋग्विधा-

नाय० कषोत्काय स्वा०। क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्। अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे पाप्मानँ स्वाहा, अग्नय इदं०। अन्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयमानन्दमयमात्मा मे शुद्धचतां०, अन्नमयादिभ्य०। एवं समिच्चर्वाज्यैः प्रतिद्रव्यं चत्वारिंशदाहुतीर्हुत्वा यदिष्टं यच्च पूर्तं यच्चापद्यनापदि प्रजापतौ तन्मनसि जुहोमि विमुक्तोहं देवकिल्बिषात्स्वाहेत्याज्यं हुत्वा प्रजापतय इदमिति त्यजेत्।

मेरी अन्तरात्मा शुद्ध हो, यह अन्तरात्मा के लिये है। मेरे परमात्मा शुद्ध हों, यह परमात्मा के लिये है०। क्षुधे स्वाहा, यह भूख के लिये है० । क्षुत्पिपासाय स्वाहा, यह भूख प्यास के लिये है०। विविद्यायै स्वाहा, यह विविद्या के लिये है०। ऋग्विधानाय०, कषोत्काय स्वा० । क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम् । अभूतिमसमृद्धिञ्च सर्वां निर्णुद मे पाप्मानं स्वाहा, यह अग्नि के लिये है। अन्नमय-प्राणमय-मनोमय-विज्ञानमय और आनन्दमय आत्मा शुद्ध हो, यह अन्नमय आदि के लिये है०। इस प्रकार समिधा-चरु-घृत से प्रतिद्रव्य चालीस आहुति से होम करके यदिष्टं यच्च पूर्तं यच्चापद्य नापदि प्रजापतौ तन्मनसि जुहोमि विमुक्तोहं देवकिल्बिषात् स्वाहा' इससे घृत की आहुति देकर 'यह प्रजापति के लिये है' यह कहकर त्याग करे।

ततः पुरुषसूक्तम् अग्निमीळे इत्यादिचतुर्वेदादींश्च जपित्वा स्विष्टकृदादिहोमशेषं समाप्य ब्रह्माचार्यादिभ्यो गोहिरण्यवस्त्रादि दत्त्वा समासिञ्चन्तु मरुत इति मन्त्रेण गृह्याग्निमुपस्थाय तत्र दारुपात्राणि दहेत्तैजसानि गुरवे दद्यात्। तत 'आत्मन्यग्निसमारोपम् अयं ते योनिरित्यृचा याते अग्ने यज्ञिया तनूस्तये ह्यारोहात्मात्मानमित्यादि यजुषा च त्रिरुक्तेनाग्नेर्ज्वालां प्राश्नन्कुर्यात्। कृष्णाजिनमादाय गृहान्निष्क्रम्य,

सर्वे भवन्तु वेदाढ्याः सर्वे भवन्तु सोमपाः।
सर्वे पुत्रमुखं दृष्ट्वा सर्वे भवन्तु भिक्षुकाः॥

इति पुत्रादिभ्य आशिषं दत्त्वा न मे कश्चिन्नाहं कस्यचित् पुत्रादीनुक्त्वा विसृजेत्। जलाशयं गत्वाञ्जलिना जलमादायाशुः शिशान इति सूक्तेनाभिमन्त्र्य सर्वाभ्यो देवताभ्यः स्वाहेति त्यजेत्।

इसके बाद पुरुषसूक्त और 'अग्निमीडे' इत्यादि चारो वेद की आदि ऋचा को जप कर स्विष्टकृत् आदि होम शेष को समाप्त कर ब्रह्मा और आचार्य आदि को गौ-सुवर्ण-वस्त्रादि देकर 'समासिञ्चन्तु मरुत' इस मन्त्र से गृह्य अग्नि का उपस्थान कर उसमें लकड़ी का पात्र जला दे और धातु के पात्रों को गुरु को दे दे। तदनन्तर अपने में अग्नि का समारोप 'अयं ते योनिः' इस ऋचा को और 'याते अग्ने यज्ञिया तनूस्तये ह्यारोहात्मात्मानं' इत्यादि यजुर्मन्त्र को तीन बार कहकर

---

१. कात्यायनः—'आत्मन्यग्नीन् समारोप्य वेदिमध्ये स्थितो हरिम्। ध्यात्वा हृदि त्वनुज्ञातो गुरुणा प्रैषमीरयेत् ॥' इति।

इनसे अग्नि की ज्वाला का प्राशन करते हुए करे। कालामृग चर्म लेकर घर से निकलकर सब वेद से सम्पन्न हो, सब सोम के पीने वाले हों, सब पुत्र के मुख देखकर संन्यासी हों, इस प्रकार पुत्र आदि को आशीर्वाद देकर न मेरा कोई है न मैं किसी का हूँ, ऐसा कहकर पुत्र आदि को त्याग दे। जलाशय जाकर अञ्जलि से जल लेकर 'आशुः शिशान' इस सूक्त से अभिमन्त्रित करके 'सर्वाभ्यो देवताभ्यः स्वाहा' ऐसा कहकर छोड दे।

सर्वत्यागविधिः—तिथ्यादि स्मृत्वा 'अपरोक्षब्रह्मावाप्तये संन्यासं करोमि, इति संकल्प्य जलाञ्जलिं गृहीत्वा ॐ एष ह वा अग्निः सूर्यः प्राणं गच्छ स्वाहा, ॐ स्वां योनिं गच्छ स्वाहा, ओं आपो वै गच्छ स्वाहेति मन्त्रत्रयेण जलेष्वञ्जलित्रयं दद्यात्। पुत्रेषणा वित्तेषणा लोकेषणा सर्वेषणा मया परित्यक्ता '[1]अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा इत्यञ्जलिं जले क्षिपेत्। पुनरेवमभयं[2] दत्त्वा वदेत्—

यत्किंचिद्बन्धनं कर्म कृतमज्ञानतो मया।
प्रमादालस्यदोषोत्थं तत्सर्वं संत्यजाम्यहम्॥
त्यक्तसर्वो विशुद्धात्मा गतस्नेहशुभाशुभः।
एष त्यजाम्यहं सर्वं कामभोगसुखादिकम्॥
रोषं तोषं विवादं च गन्धमाल्यानुलेपनम्।
भूषणं नर्तनं गेयं दानमादानमेव च॥
नमस्कारं जपं होमं याश्च नित्याः क्रिया मम।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं वर्णधर्माश्रमाश्च ये।
सर्वमेव परित्यज्य ददाम्यभयदक्षिणाम्॥
पद्भ्यां कराभ्यां विहरन्नाहं वाक्कायमानसैः।
करिष्ये प्राणिनां पीडां प्राणिनः सन्तु निर्भयाः॥

सूर्यादिदेवान्विप्रांश्च साक्षित्वेन ध्यात्वा नाभिमात्रे जले प्राङ्मुखः सावित्रीप्रवेशं पूर्ववत्कृत्वा तरत्समन्दीति सूक्तं पठित्वा पुत्रेषणाया वित्तेषणाया लोकेषणायाश्च व्युत्थितोऽहं भिक्षाचर्यं चरामीति जले जलं जुहुयात्।

सर्वत्याग की विधि—तिथि आदि का स्मरण करके 'अपरोक्ष ब्रह्म की प्राप्ति के लिये संन्यास करता हूँ' ऐसा संकल्प कर अञ्जलि में जल लेकर 'ॐ एष ह वा अग्निः सूर्यः प्राणं गच्छ स्वाहा' 'ॐ स्वां योनिं गच्छ स्वाहा ॐ आपो वै गच्छ स्वाहा' इन तीन मन्त्रों से जल में तीनों अञ्जलि जल दे दे। 'पुत्रेषणा वित्तेषणा लोकेषणा सर्वेषणा मया परित्यक्ता अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः

---

१. कपिलः—'विधिवत्प्रैषमुक्त्वाऽथ त्रिरुपांशु त्रिरुच्चकैः। अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहेत्यपि भुवि॥ निनीय दण्डशिक्यादि गृहीत्वाऽथ बहिर्व्रजेत्।' इति।

२. मनु ने अभय दान का फल कहा है—'यो दत्त्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात्। तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः॥' अर्थात् जो स्थावरजङ्गमात्मक प्राणियों को अभय देकर घर से संन्यास ले लेता है उस ब्रह्मज्ञानी को तेजोमय लोक प्राप्त होता है।

स्वाहा' यानी पत्नी-पुत्र की इच्छा, धन की इच्छा, लोक की इच्छा, सब इच्छा मैंने छोड़ दी 'सब प्राणियों को अभय देता हूँ' ऐसा कहकर अञ्जलि को जल में त्याग दे। फिर इसी प्रकार अभय देकर कहे—जो कुछ मैंने बन्धन के कर्म अज्ञान से प्रमाद से किया है, आलस्यदोष से उत्पन्न उन सब का त्याग कर मैं विशुद्धात्मा हो गया। शुभ-अशुभ-स्नेहरहित मैं सब काम भोग सुख आदि का त्याग करता हूं। क्रोध, प्रसन्नता, विवाद, गंध, माला, अनुलेपन, भूषण, नाचना, गाना, देना, लेना, नमस्कार, जप, होम, जो मेरी नित्य क्रिया है, नित्य-नैमित्तिक काम्य-कर्म और वर्णधर्म, आश्रम धर्म, सब का परित्याग कर अभय दक्षिणा देता हूं। विहार करता हुआ मैं पैरों से हाथ से वाणी, शरीर और मन से, प्राणियों को पीड़ित नहीं करूँगा, इससे सब प्राणी मुझसे भयरहित हों। सूर्य आदि देवताओं और ब्राह्मणों को साक्षीरूप से ध्यान करके नाभिपर्यन्त जल में पूर्वमुख खड़े होकर सावित्री प्रवेश पहले के समान करके 'तरत्समन्दी' इस सूक्त को पढ़कर पुत्र की इच्छा धन की इच्छा तथा लोक की इच्छा निवृत्त हुआ मैं भिक्षाचरण करूंगा, इस प्रकार जल में जल का होम करे।

अथ प्रैषोच्चारः

ॐ भूः संन्यस्तं मया ॐ भुवः संन्यस्तं० ॐ स्वः संन्यस्तं० ओं भूर्भुवः स्वः संन्यस्तं मयेति त्रिर्मन्दमध्योच्चस्वरेणोक्त्वाऽभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहेति जलं जले क्षिपेत्। शिखामुत्पाट्य यज्ञोपवीतमुद्धृत्य करे गृहीत्वा आपो वै सर्वा देवताः सर्वाभ्यो देवताभ्यो जुहोमि स्वाहा ओं भूः स्वाहेति जले जलैः सह हुत्वा प्रार्थयेत्—

त्राहि मां सर्वलोकेश वासुदेव सनातन।
संन्यस्तं मे जगद्योने पुण्डरीकाक्ष मोक्षद ॥
युष्मच्छरणमापन्नं त्राहि मां पुरुषोत्तम।

'ओं भूः सन्यस्तं मया' 'ओं भुवः संन्यस्तं मया' 'ओं स्वः संन्यस्तं मया' ओं भूर्भुवः स्वः संन्यस्तं मया' ऐसा तीन बार मन्द, मध्य और ऊंचे स्वर से कहकर 'अभयं भूतेभ्यः स्वाहा' यह कहकर जल में जल छोड़े। शिखा का उत्पाटन कर और यज्ञोपवीत को उतार कर हाथ में लेकर 'आपो वै सर्वा देवताः सर्वाभ्यो देवताभ्यो जुहोमि स्वाहा ओं भूः स्वाहा' इससे जल में जल के साथ यज्ञोपवीत का होम कर प्रार्थना करे—हे सब लोकों के प्रभु! सनातन वासुदेव! जगत् का कारण मोक्षदाता पुण्डरीकाक्ष! मैंने संन्यास ले लिया है मेरी रक्षा कीजिये। हे पुरुषोत्तम! मैं आप के शरण में आया हूँ मेरी रक्षा करें।

ततो दिगम्बरः पञ्चपदान्युदङ्मुखो गच्छेत्। विविदिषुश्चेत्तस्मै आचार्यो नत्वा काषायकौपीनाच्छादने दत्त्वा दण्डं दद्यात्। स च कौपीनं वासश्च परिधाय ओं इन्द्रस्य वज्रोसि सखे मां गोपायेति दण्डं गृह्णीयात्। वार्त्रघ्नः शर्म मे भव यत्पापं तन्निवारय। प्रणवेन गायत्र्या वा कमण्डलुम्। इदं विष्णुरित्यासनम्।

इसके बाद नग्न होकर उत्तर मुख हो पांच कदम चले। ज्ञान की इच्छा की कामना हो तो उसे आचार्य नमस्कार कर काषाय कौपीन और वस्त्र देकर दण्ड दे। वह संन्यासी कौपीन और वस्त्र को पहन कर 'ओं इन्द्रस्य वज्रोसि सखे मां गोपाय' इस मन्त्र से दण्ड ग्रहण करे। फिर कहे इन्द्र मेरे लिये कल्याणप्रद हों, जो पाप हो उसका निवारण करें। प्रणव से या गायत्री से कमण्डलु और 'इदं विष्णुः' इस मन्त्र से आसन ले।

अथ वाक्योपदेशः

ततः समित्पाणिर्गुरुं नत्वा गरुडासनोपविष्टो गुरुं वदेत्—

त्रायस्व भो जगन्नाथ गुरो संसारवह्निना ।
दग्धं मां कालदष्टं च त्वामहं शरणागतः ॥
यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।
तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥

इति गुरुमुपस्थाय दक्षिणं जान्वाच्या पादावुपसंगृह्य अधीहि भगवो ब्रह्मेति वदेत् ।

इसके बाद समिधा हाथ में लेकर गुरु को नमस्कार कर गरुडासन से बैठ कर गुरु से कहे— जगत् के नाथ हे गुरुदेव ! संसाररूपी अग्नि से जले और काल से डंसे मुझ शरणागत की रक्षा कीजिये । जो ब्रह्मा को पहले रच कर उसे वेदों को देता है उस आत्म-बुद्धि के प्रकाशस्वरूप देव के शरण में मैं मुमुक्षु प्राप्त हुआ हूँ । इस प्रकार गुरु की स्तुति कर दाहिना जानु नीचा करके गुरु के चरणों को स्पर्श कर (दाहिने हाथ से दाहिना पैर तथा बायें हाथ से बायां चरण पकड़ कर) हे गुरो ! 'मुझे ब्रह्म का ज्ञान कराइये' ऐसा कहे ।

गुरुरात्मानं ब्रह्मरूपं ध्यात्वा जलपूर्णं शङ्खं द्वादशप्रणवैरभिमन्त्र्य तेन शिष्यमभिषिच्य शंनो मित्र इति शान्तिं पठित्वा तच्छिरसि हस्तं दत्त्वा पुरुषसूक्तं जपित्वा शिष्यहृदये हस्तं कृत्वा मम व्रते हृदयं ते दधामीत्यादि मन्त्रं जप्त्वा दक्षिणकर्णे प्रणवमुपदिश्य तदर्थं च पञ्चीकरणाद्यवबोध्य प्रज्ञानं ब्रह्म अयमात्मा ब्रह्म तत्त्वमसि अहं ब्रह्मास्मीति ऋग्वेदादिमहावाक्येष्वन्यतमं शिष्यशाखानुसारेणोपदिश्य तदर्थं बोधयेत् । ततस्तीर्थाश्रमादिसंप्रदायानुसारेण नाम दद्यात् । ततः पर्यङ्कशौचं कारयित्वा योगपट्टं दद्यात् ।

गुरु अपने को ब्रह्मरूप का ध्यान कर जल से भरे शङ्ख को बारह ओंकार से अभिमन्त्रित कर उससे शिष्य का अभिसिंचन कर 'शन्नो मित्र' इस शान्ति मन्त्र का पाठकर शिष्य के सिर पर हाथ रखकर पुरुषसूक्त को जप कर शिष्य के हृदय पर हाथ रखकर 'मम 'व्रते, हृदयं ते दधामि' इत्यादि मन्त्र को जप कर दाहिने कान में प्रणव और उसके अर्थ का उपदेश कर पञ्चीकरण आदि का ज्ञान करा कर 'प्रज्ञानं ब्रह्म' 'अयमात्मा ब्रह्म' 'तत्त्वमसि' 'अहं ब्रह्मास्मि' इन ऋग्वेद आदि के महा वाक्यों में से किसी एक का शिष्य की शाखा के अनुसार उपदेश कर उसके अर्थ का ज्ञान करावे । इसके अनन्तर तीर्थ आश्रम आदि सम्प्रदाय के अनुसार नाम दे । इसके बाद पर्यङ्कशौच कराकर योगपट्ट दे ।

अथ पर्यङ्कशौचप्रयोगः

कस्मिंश्चित्पुण्यदिने कश्चिद् गृहस्थः स्वाग्रे पीठादौ यतिमुपवेश्य 'गुर्वनुज्ञातो यतये पर्यङ्कशौचं करिष्ये' इति संकल्प्य वामभागे प्राक्संस्थान्पञ्चमृद्भागान्दक्षिणभागेऽपि तथैव पञ्च संस्थाप्योभयत्र शुद्धोदकं च संस्थाप्य वामप्रथममृद्भागेन, पञ्चवारं मृज्जलाभ्यां यतिजानुद्वयं कराभ्यां युगपत्क्षालयेत् । चरमक्षालने मृद्भा-

गसमाप्तिः । एवमग्रेऽपि । ततो दक्षिणभागस्थप्रथमभागार्धेन स्ववामकरं मृज्जलाभ्यां दशवारं प्रक्षाल्यापरार्धेन तेनैव जलेनोभौ करौ सप्तवारं क्षालयेत् । एवमग्रेऽपि योज्यम् ।

किसी पुण्य दिन में कोई गृहस्थ अपने आगे पीढा आदि पर संन्यासी को बैठाकर 'गुरु की आज्ञा पाकर संन्यासी के लिये पर्यङ्कशौच करूंगा' यह संकल्प करके बायें भाग में पूर्वसंस्थ मिट्टी के पांच भागों को दाहिने भाग में उसी प्रकार पांच रख कर और दोनों जगह शुद्ध जल रखकर बायीं ओर के प्रथम मिट्टी के भाग से पांच बार मिट्टी और जल से संन्यासी के दोनों जानु का दोनों हाथों से एक ही समय में प्रक्षालन करे। अन्तिम बार प्रक्षालन में मिट्टी के भाग की समाप्ति करे। इसी प्रकार आगे भी करे। इसके बाद दक्षिण-भाग-स्थित प्रथम भाग के आधे से अपने बायें हाथ को मिट्टी और जल से दस बार प्रक्षालन कर शेष आधे भाग से उसी जल से दोनों हाथों को सात बार प्रक्षालन करे। इसी प्रकार आगे भी करे।

संख्यायां विशेषस्तूच्यते —वामद्वितीयभागेन चतुर्वारं यतिजङ्घाद्वयं युगपत्प्रक्षाल्य दक्षिणद्वितीयभागार्धेन सप्तवारं वामकरमर्धान्तरेण चतुर्वारमुभौ च करौ क्षालयेत् । वामतृतीयेन यतिगुल्फौ त्रिवारं दक्षिणभागार्धेन वामकरं षड्वारमुभौ करौ चतुर्वारम् । वामचतुर्थेन यतिपादपृष्ठौ द्विवारं दक्षिणार्धेन स्ववामकरं चतुर्वारमुभौ द्विवारमवशिष्टार्धेन । वामपञ्चमेन यतिपादतले सकृद्दक्षिणपञ्चमार्धेन वामस्य द्विवारमुभयोश्चापरार्धेन सकृत्क्षालनमिति ।

संख्या में विशेष तो कहता हूँ—बायें के दूसरे भाग से यति के दोनों जांघ को चार बार एक काल में प्रक्षालन कर दाहिने के दूसरे भाग के आधे से सात बार बायें हाथ को और आधे के अन्तर से चार बार दोनों हाथों का प्रक्षालन करे। बायें के तीसरे भाग से यति के गुल्फों को तीन बार दाहिने भाग के आधे से बायें हाथ को छ बार और दोनों हाथों को चार बार प्रक्षालन करे। बायें के चौथे भाग से यति के पैर और पीठ को दो बार दाहिने के आधे से अपने बायें हाथ को चार बार और दोनों हाथों को अवशिष्ट आधे भाग से दो बार प्रक्षालन करे। बायें के पांचवें भाग से यति के पैर के तलवे में एक बार दाहिने के पांचवें के आधे भाग से बायें हाथ को दो बार और दोनों हाथों को दूसरे आधे भाग से एक बार प्रक्षालन करे।

अथ योगपट्टः

कारितपर्यङ्कशौचो यतिः कटिशौचं कृत्वा कटिसूत्रकौपीने धृत्वा वस्त्रेणावगुण्ठ्य गुर्वनुज्ञयोच्चासने उपविश्य सभ्यैः सह वेदान्तें किंचिदुपन्यसेत् । गुरुर्यतिः शिष्यं यतिं शिरसि शङ्खेन पुरुषसूक्तेनाभिषिच्य वस्त्रगन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यैः संपूज्य वस्त्रमुपरि धृत्वा यतिभिः सह विश्वरूपाध्यायं पश्यामि देवानित्यारभ्य भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धमित्यन्तं पठित्वा पूर्वकल्पितं नाम दद्यात् ।

जिस संन्यासी का पर्यङ्कशौच कर दिया गया है वह कटि शौच करके कटिसूत्र और कौपीन धारण कर वस्त्र से ढंक कर गुरु की आज्ञा से ऊंचे आसन पर बैठ सभ्यों के साथ वेदान्त में वार्तालाप करे। संन्यासी गुरु संन्यासी शिष्य के सिर में शङ्ख से पुरुषसूक्त से अभिषिंचन कर वस्त्र-

गन्ध-पुष्प धूप-दीप नैवेद्य से पूजन कर ऊपर वस्त्र रखकर संन्यासियों के साथ 'पश्यामि देवान्' यहाँ से आरम्भ कर 'भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धं' यहाँतक विश्वरूपाध्याय को पढ़कर पूर्व कल्पित नाम को रक्खे।

ततः शिष्यं वदेत्—इतः परं त्वया संन्यासाधिकारिणे[१]संन्यासो देयो दीक्षा योगपट्टादिकं च कार्यम्। ज्येष्ठयतयो नमस्कार्याः। ततो गुरुः कटिसूत्रं पञ्चमुद्रालंकृतं पूर्वंदण्डं च शिष्याय दत्त्वा शिष्यं यथासंप्रदायं नमस्कुर्यात्। अन्ये यतयो गृहिणश्च नमस्कुर्युः। शिष्यो नारायणेत्युक्त्वोच्चासनादुत्थाय तत्र गुरुमुपवेश्य यथाविधि नत्वाऽन्ययतीन्नमेत्। इति गृह्याग्निमतो विधुरादेश्च विविदिषासंन्यासप्रयोगः।

इसके बाद शिष्य से कहे—इससे आगे तुम्हें संन्यास के अधिकारी को संन्यास दो, दीक्षा और योगपट्ट आदि करो। ज्येष्ठ यतियों को नमस्कार करे। इसके बाद गुरु कटिसूत्र और पञ्च मुद्रा से विभूषित पूर्वोक्त दण्ड शिष्य को देकर सम्प्रदायानुसार शिष्य को नमस्कार करे। अन्य संन्यासी और गृहस्थ प्रणाम करें। शिष्य 'नारायण' ऐसा कह कर ऊँचे आसन से उठकर उस पर गुरु को बैठाकर विधि से नमस्कार कर अन्य यतियों को नमस्कार करे। गृह्याग्निमान् और विधुरादि का विविदिषा संन्यास प्रयोग समाप्त।

अथाग्निहोत्रिणो विशेषः

तत्र श्रौताग्नयो विच्छिन्नाश्चेत्पुनराधानं पावमानेष्ट्यन्तं पूर्णाहुत्यन्तं वा कृत्वा प्रायश्चित्तादि सावित्रीप्रवेशान्तं पूर्ववत्कुर्यात्।

उसमें श्रौताग्निवाले यदि विच्छिन्नाग्नि हों तो पुनः आधान पावमान इष्टि पर्यन्त या पूर्णाहुति पर्यन्त करके प्रायश्चित्त से सावित्री प्रवेश तक कर्म पूर्ववत् करे।

अथ ब्रह्मान्वाधानम्

अग्नित्रयं समिध्य संस्कृतमाज्यं स्रुचि चतुर्वारं गृहीत्वाहवनीये पूर्णाहुतिं ओं स्वाहा परमात्मन इदमिति कुर्यात्। सायंसंध्याग्निहोत्रहोमान्ते उत्तरेण गार्हपत्यं द्वन्द्वशः पात्राण्यासाद्याहवनीयदक्षिणतः कौपीनदण्डाद्यासादयेत्। रात्रिजागरान्ते प्रातर्होमादि कृत्वा पौर्णमास्यां ब्रह्मान्वाधानं चेत्पौर्णमासेष्टिं कृत्वा दर्श-

---

१. संन्यास का मनूक्त अधिकारी—'ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्। अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानो व्रजत्यधः॥' अर्थात् देव, ऋषि और पितृ इन तीन ऋणों को पूरा करके ही मन को मोक्ष में लगावे यानी संन्यास ग्रहण करे। उन ऋणों को विना पूरा किये मोक्ष (संन्यास) का सेवन करने वाला नरकगामी होता है। तीन ऋणों से छुटकारा पाने के लिये कहा है—'जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणैर्ऋणवान् जायते, यज्ञेन देवेभ्यः, प्रजया पितृभ्यः, स्वाध्यायेन ऋषिभ्यः।'—

अपि च—'अधीत्य विधिवद् वेदान् पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः। इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत्॥' अर्थात् द्विज सविधि वेदों को पढ़कर धर्म से पुत्र को उत्पन्न कर और यथाशक्ति यज्ञों का अनुष्ठान कर मोक्षसाधक संन्यास में मन लगावे। 'अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य तथा सुतान्। अनिष्ट्वा चैव यज्ञैश्च मोक्षमिच्छन् व्रजत्यधः॥' अर्थात् द्विज वेद का अध्ययन, पुत्रों का उत्पादन और अग्निष्टोमादि यज्ञों का अनुष्ठान किये विना मोक्षसाधक संन्यास की इच्छा करने पर नरक जाता है।

ष्टिमपि पक्षहोमापकर्षपूर्वकमपकृष्य तदैव कुर्यात्। दर्शे चेद्दर्शेष्टिरेव। अथ पौर्णमास्यां दर्शे वा देशकालौ स्मृत्वा 'संन्यासपूर्वाङ्गभूतया 'प्राजापत्येष्ट्या वैश्वानर्येष्ट्या च समानतन्त्रया यक्ष्ये' इति संकल्प्य समुच्चयेनेष्टिद्वयम्। अत्र वैश्वानरो द्वादशकपालः पुरोडाशः। प्राजापत्यश्चरुर्वैष्णवो नवकपालः पुरोडाशः। अथवा केवलप्राजापत्येष्टिः। अत्र प्रयोगः स्वस्वसूत्रानुसारेणोह्यः।

तीनों अग्नियों को प्रज्वलित करके संस्कार किये घृत को स्रुक् में चार बार ग्रहणकर आहवनीय अग्नि में 'ओं स्वाहा परमात्मने इदम्' इससे पूर्णाहुति करे। सायं संन्ध्या और अग्निहोत्र होम के अन्त में उत्तर की ओर गार्हपत्य अग्नि के दो-दो पात्रों को रख आहवनीय अग्नि के दक्षिण ओर कौपीन तथा दण्ड आदि को रक्खे। रात्रिजागरण के बाद प्रातः होम आदि करके पूर्णिमा में ब्रह्मान्वाधान यदि करना हो तो पौर्णमासेष्टि करके दर्शेष्टि भी पक्षहोम के अपकर्षपूर्वक उसी समय अपकर्ष करके करे। यदि दर्श में करना हो तो दर्शेष्टि ही करे। इसके बाद पूर्णिमा में या अमावास्या में देश काल का स्मरण करके 'संन्यास का पूर्वाङ्गस्वरूप प्राजापत्य इष्टि और वैश्वानर इष्टि से समान तन्त्र से यज्ञ करूंगा' यह संकल्प कर समुच्चय से दोनों इष्टि करे। यहाँ इसमें वैश्वानर यज्ञ में द्वादश कपाल पुरोडाश है। प्राजापत्य में वैष्णव चरु एवं नव कपाल पुरोडाश है। या केवल प्राजापत्य इष्टि करे। इसमें प्रयोग की कल्पना अपने-अपने सूत्र के अनुसार करे।

बौधायनसूत्रानुसारेण किंचिदुच्यते—पवनपावनपुण्याहवाचनादिपूर्वाङ्गान्ते केवलवैश्वानरेष्ट्याः केवलप्राजापत्याया वा संकल्पः। व्रीहिमयः पुरोडाशो द्रव्यं पञ्च प्रयाजाः। अग्निर्वैश्वानरः प्रजापतिर्वा देवता पञ्चदश सामिधेन्यः। व्रतग्रहणान्तेऽध्वर्युराज्यं संस्कृत्य स्रुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वा पृथिवी होतेत्यादि चतुर्होतृहोमं कूष्माण्डहोमसारस्वतहोमौ च कृत्वा निर्वापादि। वैश्वानरो द्वादशकपालः पुरोडाशः प्राजापत्यश्चरुः। वैश्वानराय प्रतिवेदयाम इति पुरोनुवाक्या। वैश्वानरः पवमानः पवित्रैरिति याज्या। प्राजापत्यायां प्रधानमुपांशुधर्मकं सुभूः स्वयंभूरित्याद्यनुवाक्याः। प्रजापते न त्वदेतानिति याज्या।

बौधायन सूत्र के अनुसार कुछ कहता हूँ—पवन-पावन-पुण्याहवाचनादिरूप पूर्वाङ्ग के अन्त में केवल वैश्वानर इष्टि का या केवल प्राजापत्य का संकल्प है। व्रीहिमय पुरोडाश द्रव्य और पांच प्रयाज हैं। वैश्वानर अग्नि या प्रजापति देवता और पन्द्रह सामिधेनी ऋचायें हैं। व्रत ग्रहण के अन्त में अध्वर्यु घृत का संस्कार करके स्रुक् में चार बार घृत को ग्रहण कर 'पृथिवी होता' इत्यादि चार होता का होम और कूष्माण्डहोम सारस्वतहोम करके निर्वाप आदि करे। वैश्वानर द्वादशकपाल पुरोडाश द्रव्य तथा प्राजापत्य चरु है। 'वैश्वानराय प्रतिवेदयाम' यह पुरोनुवाक्या है। 'वैश्वानरः पवमानः पवित्रैः' यह याज्या है। प्राजापत्येष्टि में प्रधान उपांशुधर्मक 'सुभूः स्वयंभूः' इत्यादि अनुवाक्या हैं। 'प्रजापते न त्वदेतान्' यह याज्या है।

---

१. मनु ने प्राजापत्य यज्ञानुष्ठान के बाद संन्यास ग्रहण कहा है—'प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम्। आत्मन्यग्नीन् समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात्॥' अर्थात् ब्राह्मण सर्वस्व दक्षिणा दिये जाने वाले प्राजापत्य यज्ञ का अनुष्ठान और अपने में अग्नि का समारोप करके संन्यास ग्रहण करे।

अथ स्रुवेणाष्टावुपहोमावुभयत्र—वैश्वानरो न ऊतय आप्रयातु परावतः। अग्निरुक्थेन वाहसा स्वाहा १। वैश्वानरायेदमिति त्यागः सर्वत्र। ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम्। अजस्रं घर्ममीमहे स्वाहा २, वैश्वानरस्य दस० ३, पृष्टोदिवि पृष्टो अग्निः ४, जातो यदग्ने० ५, त्वमग्ने शोचिषा० ६, अस्माकमग्ने०७, वैश्वानरस्य सुमतौ० ८। अथैनमुपतिष्ठेत सहस्रशीर्षेति सूक्तेन। ततः स्विष्टकृदादिशेषं समापयेत्। सर्वो वै रुद्रः० विश्वंभूतमिति द्वाभ्यामग्न्युत्सर्गः। आयुर्दा अग्ने इति मन्त्रेण दर्भस्तम्बस्थयजमानभागात्किंचिदादाय सहस्रशीर्षेत्यनुवाकेन प्राश्य ओमिति ब्रह्म ओमितीदं सर्वमित्यनुवाकेन हुतशेषमाहवनीये प्रक्षिपेत्।

इसके बाद स्रुवा से दोनों जगह आठ उपहोम करे—'वैश्वानरो न ऊतय आप्रयातु परावतः। अग्निरुक्थेन वाहसा स्वाहा, वैश्वानरायेदम्। इसी प्रकार सर्वत्र त्याग है। 'ऋतावानं वैश्वानर मृतस्य' इत्यादि शेष सात मन्त्र मूल में देखें। इसके बाद सहस्रशीर्षा सूक्त से इनका उपस्थान करे। इसके अनन्तर स्विष्टकृत् आदि होम शेष की समाप्ति करे। 'सर्वो वै रुद्रः०' और 'विश्वं भूतम्' इन दो मन्त्रों से अग्नि का उत्सर्ग (त्याग) करे। 'आयुर्दा०' इस मन्त्र से कुश स्तम्बस्थित यजमान भाग से कुछ लेकर 'सहस्रशीर्षा' इस अनुवाक से प्राशन कर 'ओमिति ब्रह्म' 'ओमितीदं सर्वम्' इस अनुवाक से हुत शेष का आहवनीय अग्नि में प्रक्षेप करे।

एवं वैश्वानर्याद्यन्यतरामिष्टिं कृत्वौपासनाग्नौ सर्वाधाने दक्षिणाग्नौ प्राणादिहोमादिविरजाहोमान्तं कार्यम्। अन्यत्प्राग्वत्। आहवनीये अरणीमुसलोलूखलातिरिक्तदारुपात्राणां दाहः। तत आत्मन्याहवनीयाग्निसमारोपः पूर्ववत्। अरणीद्वयं गार्हपत्ये प्रक्षिप्य तत्समारोपं कृत्वा दक्षिणाग्नौ मुसलोलूखले हुत्वा दक्षिणाग्नेरपि समारोपः। तत औपासनाग्नेः समारोपः इति क्रमः। अत्र विशेषोऽन्यत्र ज्ञातव्यः। इति साग्निकप्रयोगः। स्नातकं प्रति ब्रह्मान्वाधानविरजाहोमादिरहितो वा प्रयोगोऽग्न्यभावात्।

इसी प्रकार वैश्वानर आदि किसी एक इष्टि को करके औपासन अग्नि में सर्वाधान में दक्षिणाग्नि में प्राणादि होम से विरजा होमपर्यन्त करे। अन्य सब पहले के समान है। आहवनीय अग्नि में अरणी-मुसल, उलूखल से अतिरिक्त काष्ठ पात्रों को जला दे। इसके बाद पूर्ववत् अपने में आहवनीय अग्नि का समावेश करे। दोनों अरणी का गार्हपत्य अग्नि में प्रक्षेप कर तथा उसका समारोप कर दक्षिणाग्नि में मूसर और उखली का होम कर दक्षिणाग्नि का भी समारोप करे। इसके बाद औपासन अग्नि का समारोप करे यह क्रम है। इसमें विशेष अन्य ग्रन्थों से जानना चाहिये। यह साग्निक का प्रयोग है। स्नातक के प्रति ब्रह्मान्वाधान विरजा होमादिरहित प्रयोग उसके अग्नि के अभाव से है।

अथातुरसंन्यासः

[1]आतुरसंन्यासे संकल्पप्रेषोच्चाराभयदानेति त्रयं प्रधानमवश्यं कार्यम्।

---

१. जाबालश्रुतिः—'आतुराणां च संन्यासे न विधिर्नैव च क्रिया। प्रैषमात्रं च संन्यासं आतुराणां विधीयते॥ उत्पन्ने संकटे घोरे चौरव्याघ्रादिगोचरे। भयभीतस्य संन्यासमङ्गिरा मनुरब्र-

अष्टश्राद्धादिदण्डग्रहणान्तमङ्गभूतं यथासंभवं कार्यम्।

आतुर संन्यास में संकल्प, प्रेषोच्चारण और अभयदान, ये तीन प्रधान हैं, इन्हें अवश्य करे। अष्टश्राद्ध से दण्डग्रहणपर्यन्त संन्यास के अङ्गभूत को यथासंभव करे।

तत्प्रयोगः—मन्त्रस्नानं कृत्वा शुद्धवस्त्रं धृत्वा 'ज्ञानप्राप्तिद्वारा मोक्षसिद्धयर्थमातुरविधिना संन्यासमहं करिष्ये'। पञ्चशिखाकेशानवशेष्य वपनं कृत्वा स्नात्वा संध्याद्यौपासनहोमान्तं यथासंभवं संपाद्यात्मनि समारोपं कुर्यात्। अग्निहोत्री तु प्राजापत्यादिस्थाने पूर्णाहुतिं कृत्वा श्रौताग्निमात्मनि समारोपयेत्। उच्छिन्नाग्नीनां पुनराधानसंभवे समारोपोऽन्यथा तु न समारोपः। विधुरादीनामग्न्यभावादेव समारोपो नावश्यकः।

उसका प्रयोग यह है—मन्त्रस्नान करके शुद्ध वस्त्र धारण कर 'ज्ञान-प्राप्ति द्वारा मोक्ष सिद्धि के लिये आतुर-विधि से मैं संन्यास करूँगा। पांच शिखा के केशों को रखकर मुंडन और स्नान करके सन्ध्या आदि औपासन होम तक यथासम्भव संपादन कर आत्मा में समारोप करे। अग्निहोत्री तो प्राजापत्य आदि के स्थान में पूर्णाहुति करके श्रौत अग्नि को आत्मा में समारोप करे। उच्छिन्न अग्नि वालों का पुनः आधान के सम्भव होने पर समारोप होता है, नहीं तो समारोप नहीं होता। विधुर आदि का अग्नि के अभाव से ही समारोप आवश्यक नहीं है।

ततस्तोयमादायाप्सु जुहोति—एष ह वा अग्नेर्योनिर्यः प्राणः प्राणं गच्छ स्वाहा १, आपो वै सर्वा देवताः सर्वाभ्यो देवताभ्यो जुहोमि स्वाहा २, भूः स्वाहेति जले जलैर्हुत्वा हुतशेषं जलमाशुः शिशान इत्यनुवाकेनाभिमन्त्र्य पुत्रेषणा वित्तेषणा लोकेषणा मया त्यक्ताः स्वाहेति किंचित्पिबेत्। अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहेति द्वितीयं पिबेत्। 'संन्यस्तं मयेति निःशेषं तृतीयम्। ततः पूर्ववत्सावित्रीप्रवेशः। ततः प्राङ्मुख ऊर्ध्वबाहुः प्रेषोच्चारं पूर्ववत्कुर्यात्। अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहेति प्राच्यां जलं क्षिपेत्। शिखामुत्पाट्य यज्ञोपवीतं छित्त्वा भूःस्वाहेत्यप्सु हुत्वा पुत्रगृहे न तिष्ठेत्। अत्यन्तमातुरश्चेत्प्रेषमात्रं वा वदेत्। जीवति चेत्स्वस्थः सन्महावाक्योपदेशदण्डग्रहणादिसर्वं कुर्यात्। एवमातुरविधिना संन्यासे मृतस्य यतिवत्संस्कारः।

वीत् ॥ यद्यातुरः स्यान्मनसा वाचा वा संन्यसेद् द्विजः' । अपि च—'आतुराणां च संन्यासे न विधिर्नैव च क्रिया। प्रैषमात्रं समुच्चार्य संन्यासं तत्र कारयेत् ॥ संन्यस्तोऽहमिति ब्रूयात् सवनेषु त्रिषु क्रमात्। त्रिवारं च त्रिलोकात्मा शुभाशुभसुधाद्रवे ॥ यत्किञ्चिद् बाधकं कर्म कृतमज्ञानतो मया। प्रमादालस्यदोषाद्यत्तत्संत्यक्तवानहम् ॥ एवं संत्यज्य भूतेभ्यो दद्यादभयदक्षिणाम्। पद्भ्यां कराभ्यां विहरन्नाहं वाक्कायमानसैः ॥ करिष्ये प्राणिनां हिंसां प्राणिनः सन्तु निर्भयाः।' इति।

१. विष्णुः—'संन्यस्तमिति यो ब्रूयात् प्राणैः कण्ठगतैरपि। न तत्क्रतुशतैः पुण्यं प्राप्तुं शक्नोति मानवः।' अङ्गिराः—षष्टिः कुलान्यतीतानि षष्टीनामधिकानि च। कुलान्युद्धरते प्राज्ञः संन्यस्तमिति यो वदेत् ॥' इति।

इसके बाद जल लेकर जल में होम करे—एष ह वा अग्नेर्योनिर्यः प्राणः प्राणं गच्छ स्वाहा, आपो वै सर्वा देवताः सर्वाभ्यो देवताभ्यो जुहोमि स्वाहा २, भूः स्वाहा' इनसे जल में जलों से होम कर हुतशेष जल को 'आशुः शिशान' इस अनुवाक से अभिमन्त्रित कर 'पुत्रैषणा वित्तैषणा लोकैषणा मया त्यक्ताः स्वाहा' इससे कुछ पिये। 'अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा' इससे दूसरी बार पिये। 'संन्यस्तं मया' इससे तीसरी बार सब पी जाय। इसके बाद पूर्ववत् सावित्रीप्रवेश करे। इसके बाद पूर्व की ओर मुंह करके ऊपर बाहु उठाये पूर्ववत् प्रैषोच्चार करे। 'अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः स्वाहा' ऐसा कहकर पूर्व दिशा में जल फेंके। शिखा का उत्पाटन कर और यज्ञोपवीत को तोड़ करके 'भूःस्वाहा' इससे जल में होम करके पुत्र के घर में नहीं ठहरे। अधिक बीमार हो तो प्रैषमात्र का ही उच्चारण करे। स्वस्थ होकर यदि जी जाय तो महावाक्य का उपदेश तथा दण्डग्रहण आदि सब करे। इस प्रकार आतुर विधि से संन्यास लेने में मर जाने पर संन्यासी की तरह संस्कार करे।

अथ मृतयतिसंस्कारः

पुत्रः शिष्यो वा स्नात्वा वपनं कृच्छ्रत्रयं चाधिकारार्थं कुर्यात्। पुत्रातिरिक्तस्य वपनं कृताकृतम्। देशकालौ स्मृत्वा 'ब्रह्मीभूतस्य यतेः शौनकोक्तविधिना संस्कारं करिष्ये'। नवं कलशं तीर्थेनापूर्य गंगे च यमुने० नारायणः परं ब्रह्म० यच्च किंचिज्जगत्सर्वं० इति मन्त्रैरभिमन्त्र्य रुद्रसूक्तविष्णुसूक्तापोहिष्ठादिभिर्यतेः स्नानं विधाय चन्दनादिभिः कलेवरं संपूज्य माल्यादिभिरलंकृत्य वाद्यघोषादिभिः शुद्धदेशं नयेत्। जले स्थले वा समाहितं कुर्यात्।

पुत्र या शिष्य स्नान करके वपन और तीन कृच्छ्र अधिकार के लिये करे। पुत्र से अतिरिक्त का मुण्डन कृताकृत है। देशकाल का स्मरण कर 'ब्रह्मीभूत यति का शौनकोक्त विधि से संस्कार करूंगा'। नये कलश को तीर्थ का जल भरकर 'गङ्गे च यमुने०, नारायणः परं ब्रह्म०, यच्च किञ्चिज्जगत्सर्वं०' इन मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके रुद्रसूक्त, विष्णुसूक्त और 'आपोहिष्ठा' आदि से यति को स्नान कराकर चन्दन आदि से शरीर को पूजकर माला आदि से भूषित कर वाद्यघोष के साथ शुद्ध देश में ले जाय। जल या स्थल में समाधिस्थ कर दे।

स्थलपक्षे गर्तं व्याहृतिप्रोक्षितभुवि दण्डप्रमाणं कृत्वा मध्ये सूक्ष्मगर्तं सार्धहस्तं कृत्वा सप्तव्याहृतिभिः पञ्चगव्येन त्रिः प्रोक्ष्य जलपक्षे नद्यां पञ्चगव्यं प्रक्षिप्य कुशानास्तीर्य सावित्र्या देहं प्रोक्ष्य शङ्खोदकेन पुरुषसूक्तेनाष्टोत्तरशतावृत्तप्रणवैश्च संस्नाप्याष्टाक्षरेण षोडशोपचारैः संपूज्य तुलसीमालाद्यैरलंकृत्य विष्णो हव्यं रक्षस्वेति देहं गर्ते नद्यां वा क्षिपेत्। इदं विष्णुरिति दण्डं त्रेधाभग्नं दक्षिणहस्ते स्थापयेत्।

स्थल पक्ष में व्याहृति से प्रोक्षित भूमि में दण्ड के नाप का गड्ढा करके बीच में डेढ़ हाथ का छोटा गड्ढा बनाकर सात बार व्याहृति को पढ़कर पंचगव्य से तीन बार प्रोक्षण कर और जल पक्ष

---

१. बृहच्छौनकः—'यतिं पुरुषसूक्तेन स्नापयित्वाऽवटं ततः। प्रणवेनाष्टवारं तं प्रोक्षयेदथ सर्वतः। विष्णो हव्यं रक्षस्वेति यजुषा प्रणवेन च। गर्ते प्रेतं विनिक्षिप्य चेदं विष्णुर्विचक्रमे॥ इति मन्त्रेण दण्डं तु दद्याद् दक्षिणहस्तके। मूर्धानं भूर्भुवःस्वश्चेत्युक्त्वा शङ्खेन भेदयेत्। गर्तं पुरुषसूक्तेन लवणेन प्रपूरयेत्। सृगालश्वादिरक्षार्थं सम्यग्गर्तं प्रपूरयेत्॥' इति।

में नदी में पञ्चगव्य छोड़कर कुश बिछाकर सावित्री से देह का प्रोक्षण कर शङ्ख के जल से पुरुषसूक्त और एक सौ आठ बार प्रणव की आवृत्ति करके अच्छी तरह स्नान कराकर 'ॐ नमो नारायणाय' इस अष्टाक्षर मन्त्र से षोडशोपचार पूजन कर तुलसी की माला आदि से अलङ्कृत कर 'विष्णो हव्यं रक्षस्व' ऐसा कहकर देहको गड्ढे या नदी में छोड़ दे। 'इदं विष्णुः' इस मन्त्र से दण्ड का तीन टुकड़ा करके दाहिने हाथ में रख दे।

हंसः शुचिषदिति परेण नाकं निहितं गुहायां विभ्राजदेतद्यतयो विशन्ति। वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः॥ इति हृदये जपेत्। पुरुषसूक्तं भ्रुवोर्मध्ये जपेत्। ब्रह्मजज्ञानमिति मूर्धनि। मूर्धानं भूर्भुवःस्वश्चेत्युक्त्वा शङ्खेन भेदयेत्। अथवा भूमिर्भूमिमगान्माता मातरमप्यगात्। भूयास्मपुत्रैः पशुभिर्यो नो द्वेष्टि स भिद्यतामिति मन्त्रेण परश्वादिना भेदयेत्। शिरो भेत्तुमशक्तः शिरस्थापितं गुडपिण्डादिकं भिद्यात्। गर्तं पुरुषसूक्तेन लवणेन प्रपूरयेत्। सृगालश्वादिरक्षार्थं सिकतादिभिः प्रपूरयेत्।

'हंसः शुचिषत्' इसे तथा 'परेण नाकं निहितं गुहायां विभ्राजदेतद्यतयो विशन्ति। वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतय शुद्धसत्त्वाः' इसे हृदय में जप करे। भौंहों के बीच में पुरुषसूक्त को जपे। 'ब्रह्मजज्ञानं' इसे सिर में जपे। और सिर को 'भूर्भुवःस्वः' ऐसा कहकर शङ्खसे फोड दे। अथवा 'भूमिर्भूमिमगान्माता मातरमप्यगात्। भूयास्म पुत्रैः पशुभिर्यो नो द्वेष्टि स भिद्यताम्' इस मन्त्र से फरसा आदि से भेदन करे। सिर फोड़ने में असमर्थ हो तो सिर पर रखे गुड पिण्ड आदि का भेदन करे। गड्ढे को पुरुषसूक्त पढकर नमक से भर दे। स्यार और कुत्ते आदि से रक्षा के लिये बालू आदि से भर दे।

नद्यादौ चेच्छिरोभेदनोत्तरं दर्भैराच्छाद्य व्याहृतिभिरभिमन्त्र्य पाषाणं बध्वा ॐ स्वाहेति ह्रदे न्यसेत्। ततोऽग्निनाग्निः स० त्वं ह्यग्ने अग्निना० तं मर्जयंत सुक्रतुं० यज्ञेन यज्ञं० इत्यृक्चतुष्टयेन चित्तिः स्रुगित्यादिभिर्दशहोत्रादिसंज्ञकयजुर्मन्त्रैश्चाभिमन्त्रयेत्। अतो देवा इति जपित्वा पापैर्मुक्ता अश्वमेधादिफलभागिनो वयमिति भावयन्तोऽवभृथबुद्ध्या सर्वेऽनुगामिनः स्नात्वा गन्धादि धृत्वा सोत्सवा गृहं गच्छेयुः।

यदि नदी आदि में हो तो शिरोभेदन के बाद कुशों से ढककर व्याहृतियों से अभिमन्त्रित कर पत्थर बांधकर 'ॐस्वाहा' कह कर तालावमें छोड़ दे। इसके बाद 'अग्निनाग्निः स०, त्वं ह्यग्ने अग्निना०, तं मर्जयंत सुक्रतुं०, यज्ञेन यज्ञं०' इन चार ऋचाओं से 'चित्तिः स्रुक्' इत्यादि दश होत्रादि नामक यजुर्वेद मन्त्रों से अभिमन्त्रित करे। 'अतो देवा' इसे जप कर पापों से मुक्त होकर अश्वमेघ आदि के फलभागी हम लोग हैं ऐसी भावना करते हुए अवभृथ बुद्धि से सब पीछे चलने वाले स्नान कर गन्ध आदि धारण कर उत्सव के साथ घर को जायं।

अत्र परमहंसस्य स्थले समाधिर्मुख्यः, जले मध्यमः;

कुटीचकं तु प्रदहेत्पूरयेच्च बहूदकम्।
हंसो जले तु निक्षेप्यः परमहंसं प्रपूरयेत्। इति वचनात्।

अत्र परमहंसं प्रकीरयेदिति क्वचित्पाठः ।
एकोद्दिष्टं जलं पिण्डमाशौचं प्रेतसत्क्रियाम् ।
न[1] कुर्याद्वार्षिकादन्यद् ब्रह्मीभूताय भिक्षवे ।
कुटीचकातिरेकेण न दहेद्यतिनं क्वचित् ॥

ततः कर्ता स्नात्वाचम्य 'सिद्धि गतस्य ब्रह्मीभूतभिक्षोस्तृप्त्यर्थं तर्पणं करिष्ये' इति संकल्प्य सव्येन देवतीर्थेनैवात्मानमन्तरात्मानं परमात्मानमिति चतुश्चतुस्तर्पयित्वा शुक्लपक्षे मृतस्य केशवादिद्वादशनामभिः कृष्णपक्षे मृतस्य संकर्षणादिद्वादशनामभिः केशवं तर्पयामीत्येवं द्वितीयान्तैः कुर्यात् । इदं क्षीरेणेति केचित् ।

यहाँ स्थल में परमहंस की समाधि मुख्य है और जल में मध्यम है। क्योंकि वचन है कि कुटीचक को तो जला दे। बहूदक को गाड़ दे। हंस को तो जल में फेंक दे। परमहंस की समाधि कर दे। इसमें 'प्रपूरयेत्' के स्थान में 'प्रकीरयेत्' ऐसा कहीं पाठ है। संन्यासी के ब्रह्मीभूत होने पर एकोद्दिष्ट, जल, पिण्ड, आशौच और प्रेतक्रिया न करे, केवल वार्षिक करे। कुटीचक के अतिरिक्त संन्यासी का दाह न करे। इसके बाद कर्ता आचमन कर 'सिद्धिप्राप्त ब्रह्मीभूत यति की तृप्ति के लिये तर्पण करूँगा' ऐसा संकल्प कर सव्य होकर देवतीर्थ से आत्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा का चार-चार अञ्जलि तर्पण कर शुक्ल पक्ष में मरे का केशव आदि बारह नामों से और कृष्ण पक्ष में मरे का संकर्षण आदि बारह नामों से 'केशवं तर्पयामि' इस प्रकार द्वितीयान्त पद से तर्पण करे। यह दूध से करे ऐसा कुछ लोग कहते हैं।

ततः 'सिद्धि गतस्य भिक्षोस्तृप्त्यर्थं नारायणपूजनं बलिदानं घृतदीपदानं च करिष्ये' इति संकल्प्य देवयजनोपरि तीरे वा मृन्मयलिङ्गं कृत्वा पुरुषसूक्तेनाष्टाक्षरेण च षोडशोपचारपूजां कृत्वा घृतमिश्रपायसबलिं दत्त्वा घृतदीपं च समर्प्य पायसबलिं जले क्षिपेत् । ततः ॐ ब्रह्मणे नम इति शङ्खेनाष्टार्घ्यान् दत्त्वा गृहं व्रजेदिति प्रथमदिनकृत्यम् । एवं दशदिनान्तं प्रत्यहं तर्पणं लिङ्गपूजनं पायसबलिदीपदानानि कुर्यात् ।

इसके बाद 'सिद्धिप्राप्त यति की तृप्ति के लिये नारायण पूजन, बलिदान और घृत का दीपदान करूंगा' ऐसा संकल्प कर देवयजन के ऊपर या तटपर मिट्टी का लिङ्ग बनाकर पुरुषसूक्त और अष्टाक्षर मन्त्र से षोडशोपचार पूजा करके घृतमिलित पायस की बलि देकर घी का दीप समर्पण कर खीर की बलि जल में छोड़ दे। इसके बाद 'ओं ब्रह्मणे नमः' कहकर शङ्ख से आठ अर्घ्य देकर घर जाय, यह प्रथम दिन का कृत्य है। इस प्रकार प्रतिदिन दस दिन तक तर्पण, लिङ्गपूजन, पायसबलि और दीपदान करे।

अथैकादशेऽहनि पार्वणश्राद्धम्

तत्र मध्याह्ने नद्यादौ श्राद्धाङ्गतिलतर्पणं कृत्वा देशकालौ स्मृत्वा प्राचीनावीती 'अमुकगोत्रस्यामुकशर्मणो ब्रह्मीभूतस्यास्मत्पितुः करिष्यमाणदर्शादि सर्वं

१. क्योंकि उशना ने संन्यासी का प्रेतत्वाभाव कहा है—'त्रिदण्डग्रहणादेव प्रेतत्वं नैव जायते ।' इति ।

श्राद्धाधिकारार्थमद्य पार्वणश्राद्धं करिष्ये' इति पुत्रादिः संकल्पयेत्। शिष्यस्तु ब्रह्मीभूतगुरोः प्रत्यब्दादिश्राद्धाधिकारार्थं तत्पितृसम्बन्धिनामगोत्रोद्देश्यतासिद्धयर्थं च पार्वणश्राद्धमिति संकल्पयेत्। अन्यत्समानम्। पुरूरवार्द्रवसंज्ञका विश्वेदेवाः। पितृपितामहप्रपितामहानां नामगोत्रादिसहितानामुच्चारः। सर्वत्र पितुर्ब्रह्मीभूत इति विशेषणमात्रमधिकम्। शेषं प्रत्यब्दश्राद्धवत्। केचिच्छिष्यः कर्ता चेदात्मान्तरात्मपरमात्मन उद्दिश्य साधुरुरुसंज्ञकदेवयुतं सव्येन देवधर्मकं नान्दीश्राद्धवदेकादशाहे पार्वणश्राद्धं कुर्यादित्याहुः। अत्र सर्वत्र विस्तरस्तोरोकृतसंन्यासपद्धतौ द्रष्टव्यः।

पुत्रादि मध्याह्न में नदी आदि में श्राद्धाङ्ग तिल तर्पण करके देशकाल का स्मरण कर प्राचीनावीती होकर '(अमुक गोत्र अमुक शर्मा ब्रह्मीभूत मेरे पिता का किये जाने वाले दर्श आदि सब श्राद्धों की अधिकार प्राप्ति के लिये आज पार्वण श्राद्ध करूंगा' ऐसा संकल्प करे। शिष्य तो 'ब्रह्मीभूत गुरु का प्रतिवार्षिक आदि श्राद्ध के अधिकार के लिये उनके पितृसम्बन्धी नाम-गोत्र की उद्देश्यता सिद्धि के लिये पार्वण करूंगा ऐसा संकल्प करे। अन्य सब समान है। पुरूरवा और आर्द्रव नाम के विश्वेदेवा हैं। पिता-पितामह-प्रपितामह का नाम गोत्रादिसहित उच्चारण करे। सब जगह पिता का ब्रह्मीभूत यह विशेषणमात्र का उच्चारण अधिक है। बाकी प्रतिवार्षिक श्राद्ध के तुल्य है। कुछ लोगों का कहना है कि यदि कर्मकर्ता शिष्य हो तो आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा इन तीनों के उद्देश्य से साधुरुरुनामक देवयुक्त एकादशाह में सव्य से नान्दीश्राद्ध की भाँति देवधर्म से पार्वण श्राद्ध करे। यहाँ सब विस्तार तोरोकृत संन्यास पद्धति में देखने योग्य है।

अथ द्वादशाहे नारायणबलिः

देशादि स्मृत्वा 'सिद्धिं गतस्य भिक्षोः संभावितसर्वपापक्षयपूर्वकं विष्णुलोकावाप्तिद्वारा 'श्रीनारायणप्रीत्यर्थं नारायणबलिं करिष्ये' इति संकल्प्य त्रयोदशयतीन् विप्रान्वा निमन्त्र्य शुक्लपक्षे केशवरूपिगुर्वर्थे त्वया क्षणः कर्तव्य इत्येवं दामोदरान्तकेशवादिद्वादशनामभिः क्षणो देयः। कृष्णे तु संकर्षणादिद्वादशनामभिः त्रयोदशं विप्रं विष्णवर्थं त्वया क्षणः कर्तव्य इति निमन्त्र्य पादान्प्रक्षाल्य प्राङ्मुखानुपदेशयेत्।

देश आदि का स्मरण कर 'सिद्धिप्राप्त यति का संभावित सम्पूर्ण पाप का नाशपूर्वक विष्णुलोक के प्राप्ति द्वारा श्रीनारायण की प्रसन्नता के लिए नारायणबलि करूंगा' ऐसा संकल्प कर तेरह संन्यासी या ब्राह्मणों को निमन्त्रण देकर शुक्ल पक्ष में केशवरूपी गुरु के लिये आप क्षण करें इस प्रकार दामोदरान्त केशवादि बारह नामों से क्षण दे। कृष्ण पक्ष में तो संकर्षण आदि बारह नामों से और तेरहवें ब्राह्मण को विष्णु के लिये आप क्षण करें, ऐसा निमन्त्रण देकर चरणों को धोकर पूर्वाभिमुख बैठावे।

---

१. व्यासः—'नारायणं समुद्दिश्य शिवं वा यत्प्रदीयते। तस्य शुद्धिकरं कर्म तद्भवेन्नेतदन्यथा॥' छागलेयः—'नारायणबलिः कार्यो लोकगर्हाभयान्नरैः। तथा तेषां भवेच्छौचं नान्यथेत्यत्रवीद्यमः॥' इति।

विप्राग्रे स्थण्डिलेऽग्निप्रतिष्ठापनादि। अन्वाधाने चक्षुषी आज्येनेत्यन्तेऽग्निं वायुं सूर्यं प्रजापतिं च व्यस्तसमस्तव्याहृतिभिरेकैकपायसाहुत्या विष्णुमतो देवा इति षड्भिः प्रत्यृचमेकैकपायसाहुत्या नारायणं पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचमेकैकपायसाहुत्या शुक्ले केशवादिद्वादशदेवताः कृष्णे संकर्षणादिद्वादशदेवताः एकैकपायसाहुत्या शेषेणेत्यादि। द्विपञ्चाशदधिकशतमुष्टीन्निरूप्य बलिपर्याप्ततण्डुलानोप्याष्टत्रिंशदाहुतिपर्याप्तं पुरुषाहारमितविष्णुनैवेद्यपर्याप्तं च क्षीरे श्रपयित्वाज्यभागान्तेऽग्निपूर्वतः शालग्रामे विष्णुं पुरुषसूक्तेनाष्टाक्षरेण च षोडशोपचारैः संपूज्य स्रुचा हस्तेन वान्वाधानानुसारेण होमत्यागौ विदध्यात्।

विप्र के आगे स्थण्डिल में अग्निस्थापन आदि करे। अन्वाधान में 'चक्षुषी आज्येन' इसके अन्त में वायु, सूर्य और प्रजापति को व्यस्त तथा समस्त व्याहृतियों से एक-एक खीर की आहुति, विष्णु को 'अतो देवा' इत्यादि छ ऋचाओंसे प्रत्येक ऋचा से एक-एक खीर की आहुति, नारायण को पुरुषसूक्त की प्रति ऋचा से एक-एक खीर की आहुति, शुक्ल पक्ष में केशव आदि देवता को और कृष्ण पक्षमें संकर्षण आदि बारह देवता को एक-एक खीर की आहुति दे। फिर शेषेण इत्यादि। बलि के पर्याप्त एक सौ बावन मुट्ठी चावल लेकर अड़तिस आहुति के पर्याप्त पुरुष के आहारयोग्य विष्णु नैवेद्य के पर्याप्त और दूध में पकाकर आज्यभाग के अन्त में अग्नि के पूर्व की ओर शालग्राम में विष्णु को पुरुषसूक्त और अष्टाक्षर मन्त्र से षोडशोपचार पूजन कर स्रुवा से या हाथ से अन्वाधान के अनुसार होम तथा त्याग करे।

एवं शुक्लकृष्णभेदेन केशवादिद्वादशान्ताः संकर्षणाद्यन्ता वाऽष्टत्रिंशदाहुतीर्हुत्वा स्विष्टकृदादि शेषं समाप्य पुनः [1]शालग्रामं संपूज्य विष्णुगायत्र्या विष्णवेऽर्घ्यं दत्त्वा हुतशेषपायसेन विष्णवे बलिं दत्त्वा निमन्त्रितत्रयोदशविप्रान् केशवादिक्रमेण केशवरूपिगुरवे नम इदमासनमित्यादिनासनगन्धपुष्पधूपदीपाच्छादनानि दत्त्वा त्रयोदशे विप्रे पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचान्ते विष्णवे नम इत्येवमादिना विष्णुं दीपान्तोपचारैः पूजयेत्।

इसी प्रकार शुक्ल पक्ष कृष्ण पक्ष के भेद से केशवादि बारह या संकर्षणादि बारह देवताओं को अड़तिस आहुति से होमकर स्विष्टकृत् आदि शेष होम समाप्त कर पुनः शालग्राम का पूजन कर विष्णुगायत्री से विष्णु को अर्घ्य देकर होमावशिष्ट खीर से विष्णु को बलि देकर निमन्त्रित तेरह विप्रों को केशवादि क्रम से केशवरूपी गुरु को नमस्कार है, 'इदमासनम्' इत्यादि वाक्य से आसन गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और वस्त्र देकर तेरहवें ब्राह्मण में पुरुषसूक्त की प्रति ऋचा के अन्त में 'विष्णवे नमः इत्यादि कह कर विष्णु की दीपान्त उपचार से पूजा करे।

चतुरस्रमण्डलेषु त्रयोदशभोजनपात्राण्यासाद्योपस्तीर्यान्नं परिषिच्य पृथिवी ते पात्रमित्यादिना केशवादिद्वादशोद्देशेन विष्णूद्देशेन चान्नं त्यक्त्वा अतो

१. विष्णुपुराणे—'विष्णोरभ्यर्चनं कृत्वा विप्रांस्तानुपवेशयेत्। उदङ्मुखान् यथाज्येष्ठं पितृरूपमनुस्मरन्॥ मनो निवेश्य विष्णौ वै सर्वं कुर्यादतन्द्रितः। आवाहनादि यत्प्रोक्तं देवपूर्वं तदाचरेत्॥' इति।

देवा० ॐ तद्ब्रह्म ॐ तद्वायुर्ब्रह्मार्पणमित्याद्यापोशानादिप्राणाहुत्यन्ते नारायणाद्युपनिषद्भागान्पठेत् । तृप्तिप्रश्नान्ते आचान्तेषु प्रागग्रान्दर्भानास्तीर्याष्टाक्षरेणाक्षतोदकं दत्त्वा केशवरूपिणे गुरवेऽयं पिण्डः स्वाहा नम इत्येवं द्वादशपिण्डान् दद्यात् ।

चतुरस्र मण्डलों में भोजन के लिये तेरह पात्रों को रखकर उपस्तरण कर उस पर अन्न परोस कर 'पृथिवी ते पात्रम्' इत्यादि मंत्र से केशव आदि बारह देवताओं के उद्देश से और विष्णु के उद्देश से अन्नत्याग करके 'अतो देवा०, ओं तद्ब्रह्म, ओं तद्वायुर्ब्रह्मार्पणम्' इत्यादि आपोशन से प्राणाहुतिपर्यन्त कर्म के अन्त में नारायणादि उपनिषद् भागों को पढ़े। तृप्तिप्रश्न के अन्त में विप्रों के आचमन करने के बाद पूर्वाग्र कुशों को बिछाकर अष्टाक्षर मन्त्र से अक्षत-जल देकर 'केशवरूपिणे गुरवे अयं पिण्डः स्वाहा नमः' इस प्रकार बारह पिण्डों को देवे ।

कृष्णे तु संकर्षणादिनामभिरिति सर्वत्र पिण्डेषु विष्णुं संपूज्य पुरुषसूक्तेन स्तुत्वा विसर्जयेत् । विप्रेभ्यस्ताम्बूलदक्षिणादि[1] दत्त्वा त्रयोदशाय विप्राय नाभ्या आसीदित्याद्यृक्त्रयेण फलताम्बूलंदक्षिणां दत्वा नमस्कृत्य तां शालग्राममूर्तिमाचार्याय दद्यात् । इति नारायणबलिविधिः ।

कृष्ण पक्ष में तो संकर्षण आदि नामों से दे, इस प्रकार सब पिण्डों में विष्णु की पूजा कर पुरुषसूक्त से स्तुति कर विसर्जन करे । ब्राह्मणों को ताम्बूल-दक्षिणा आदि देकर तेरहवें विप्र को 'नाभ्या आसीत्' इत्यादि तीन ऋचाओं से फल-ताम्बूल-दक्षिणा देकर नमस्कार करके शालग्राम की मूर्ति आचार्य को दे देवे । नारायणबलि विधि समाप्त ।

अथाराधनविधिः

अथ द्वादशाहे त्रयोदशाहे वा यथाचारमाराधनम् । तत्र प्रयोगः—देशकालौ स्मृत्वा 'श्रीनारायणप्रीत्यर्थमाराधानं करिष्य'इति संकल्प्य गुर्वर्थे क्षणः कर्तव्यः । एवं परमगुर्वर्थे परमेष्ठिगुर्वर्थे परात्परगुर्वर्थे । एवं विप्रचतुष्टयं निमन्त्र्य शुक्ले केशवादिनामभिः कृष्णे संकर्षणादिनामभिः द्वादश विप्रान्निमन्त्रयेत् । एवं षोडश विप्राः यतयो वा । अशक्तौ यथाशक्ति विप्रान्निमन्त्र्य यथायथं षोडश क्षणा देयाः । षोडशानां पादक्षालनं कृत्वाचम्य पादक्षालनोदकं पात्रान्तरे गृहीत्वा गन्धपुष्पादिभिः पूजयेत् ।

द्वादशाह या त्रयोदशाह में आचारानुसार आराधना करे । देशकाल का स्मरण कर 'श्रीनारायण के प्रीत्यर्थ आराधन करूंगा' ऐसा संकल्प कर गुरु के लिये क्षण करे । इसी प्रकार परमगुरु-परमेष्ठिगुरु-परात्परगुरु के लिये करे । एवं चार विप्रों को निमन्त्रण कर शुक्ल पक्ष में केशव आदि नामों से, कृष्ण पक्ष में संकर्षण आदि नामों से बारह ब्राह्मणों का निमन्त्रण करे । इस प्रकार सोलह ब्राह्मणों या संन्यासियों का निमन्त्रण करे । अशक्ति में यथाशक्ति विप्रों को निमन्त्रण देकर सोलह क्षण दे । सोलहों का पैर धोकर आचमन कर पाद-प्रक्षालित जल को दूसरे पात्र में लेकर गन्ध-पुष्प आदि से पूजा करे ।

---

१. वैष्णवे—'विप्रानाचम्य विधिवद्दक्षिणाभिः समर्चयेत् । एकं वृद्धतमं विप्रं हिरण्येन समर्चयेत् ॥' इति ।

विप्रान्प्राङ्मुखानुदङ्मुखान्वोपवेश्य षोडशोपचारैर्गन्धादिपञ्चोपचारैर्वा सम्पूज्य सपरिकरमन्नं परिविष्य गायत्र्या प्रोक्ष्य गुरवे इदमन्नं परिविष्टं परिवेक्ष्यमाणं चातृप्तेः स्वाहा हव्यं नमम। एवं परमगुर्वादिभ्यः पञ्चदशभ्योऽन्नत्यागं कृत्वा ब्रह्मार्पणमित्यादि। भुक्तेष्वाचान्तेषु ताम्बूलदक्षिणावस्त्रादिभिः पूजयेत्। अत्र केचित्पूर्वस्थापितपादोदकतीर्थपूजां कुर्वन्ति। तद्यथा—तीर्थपात्रं तण्डुलादिकृतमण्डले संस्थाप्य पुरुषसूक्तेन तीर्थराजाय नम इति षोडशोपचारैः संपूज्य तत्पात्रं शिरसि धृत्वा बन्धुभिः सह विप्रान्प्रदक्षिणीकृत्य गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुरिति नत्वा प्रथमविप्रहस्तात्तत्तीर्थं पिबेत्। तत्र मन्त्रः—

ब्राह्मणों को पूर्वमुख या उत्तरमुख बैठाकर षोडशोपचार से या गन्ध आदि पञ्चोपचार से पूजन कर जलादिसहित अन्न को परोस कर गायत्री से प्रोक्षण कर 'गुरवे इदमन्नं परिविष्टं परिवेक्ष्यमाणं चातृप्तेः स्वाहा हव्यं न मम' ऐसा कहकर अन्न का त्याग करे। इसी प्रकार परमगुरु आदि पन्द्रह ब्राह्मणों के लिये अन्न का त्याग कर 'ब्रह्मार्पणं' इत्यादि मंत्र को पढ़े। भोजन के अनन्तर आचमन करने के बाद ब्राह्मणों को ताम्बूल-दक्षिणा-वस्त्र आदि से पूजन करे। यहाँ कुछ लोग पहले से रक्खे हुए चरणोदक में तीर्थ जल की बुद्धि से पूजा करते हैं। वह जैसे—तीर्थ पात्र को चावल आदि से बने मण्डलों में स्थापित कर पुरुषसूक्त से 'तीर्थराजाय नमः' इससे षोडशोपचार पूजन कर उस पात्र को शिर पर रखकर भाई बन्धुओं के साथ ब्राह्मणों की प्रदक्षिणा कर 'गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः' इससे नमस्कार कर प्रथम ब्राह्मण के हाथ से उस तीर्थ जल को पिये। उसमें इ मन्त्र है—

अविद्यामूलशमनं सर्वपापप्रणाशनम्।
पिबामि गुरुपत्तीर्थं पुत्रपौत्रप्रवर्धनम्॥

इति कर्मेश्वरार्पणं कृत्वा सुहृद्युतो भुञ्जीत। वर्षपर्यन्तं प्रतिमासं मृततिथावेवमेवाराधनं कार्यं न तु प्रतिमासिकश्राद्धम्। प्रत्यब्दं तु पार्वणश्राद्धं कृत्वाराधनमपि कार्यम्। ततो दर्शमहालयादिश्राद्धान्यपि सर्वसाधारण्येन कार्याणि न तत्र विशेषः। इत्याराधनविधिः।

अविद्या की जड़ को शमन करने वाले, सब पापों के नाशक तथा पुत्र-पौत्रों को बढ़ाने वाले श्रीगुरु के चरणतीर्थ को पीता हूँ। इस प्रकार कर्म को भगवदर्पण करके मित्रोंसहित भोजन करे। वर्ष भर प्रतिमास की मृत तिथि में ही इसी प्रकार आराधन करे न कि प्रतिमासिक श्राद्ध। प्रतिवर्ष पार्वण श्राद्ध करके आराधन भी करे। इसके बाद सर्व साधारण दर्श और महालयादि श्राद्धों को भी करे। उसमें विशेष नहीं है। आराधनविधि समाप्त।

अथ नारायणबलिपार्वणश्राद्धादिदिनविचारः

अत्र नारायणबलिपार्वणश्राद्धयोरेकदिनानुष्ठानपक्षे एकादशे द्वादशे वा दिने पूर्वं नारायणबलिं कृत्वा ततः पार्वणश्राद्धं कार्यम्। दिनद्वये करणपक्षे त्वेकादशे पार्वणं द्वादशे नारायणबलिः द्वादशे त्रयोदशे वा दिने आराधनम्। ऊनमासिका-

दिकालेष्वप्याराधनमिति केचित्। प्रतिमाससमाराधनमित्यन्ये । 'पार्वणश्राद्धं त्वेकादशाहप्रत्यब्दयोरेव । तच्च पुत्रादीनामेव नियतं शिष्यादीनां तु नावश्यकम्।

इसमें नारायण बलि और पार्वण श्राद्ध का एक दिन के अनुष्ठान के पक्ष में ग्यारहवें या बारहवें दिन में पहले नारायणबलि करके तब पार्वण श्राद्ध करे। दो दिन करने के पक्ष में तो ग्यारहवें दिन पार्वण, बारहवें दिन नारायण बलि और बारहवें या तेरहवें दिन आराधन करे। कुछ लोग—ऊन मासिक आदि समय में भी आराधन करे—ऐसा कहते हैं। कोई—प्रत्येक मास में आराधन करे—ऐसा कहते हैं। पार्वण श्राद्ध तो एकादशाह और प्रतिवार्षिक में ही करे। और वह पुत्र आदि को ही करना निश्चित है, शिष्य आदि को तो आवश्यक नहीं है।

अपुत्रयतेस्तु शिष्येणापि प्रत्यब्दं पार्वणश्राद्धं कार्यम्। तदर्थं च नामगोत्रोल्लेखाधिकारार्थमेकादशेऽपि शिष्येण पार्वणश्राद्धं कार्यम्। नारायणबल्यादेर्द्वादशाहादावसंभवे शुक्लपक्षस्थद्वादशीश्रवणपञ्चम्यः पूर्णिमामावास्या चेति गौणकालाः। अत्र पूर्वपूर्वः श्रेयान्।

बिना पुत्र वाले संन्यासी का तो शिष्य द्वारा भी प्रतिवर्ष पार्वण श्राद्ध करना चाहिये। इसके लिये नाम-गोत्र के उल्लेख के अधिकारार्थ शिष्य ग्यारहवें दिन भी पार्वण श्राद्ध करे। नारायण बलि आदि बारहवें आदि दिन में न हो सके तो शुक्ल पक्ष की द्वादशी, श्रवण, पञ्चमी, पूर्णिमा और अमावास्या—ये गौण काल हैं। इसमें पूर्व-पूर्व श्रेष्ठ हैं।

अथ यतिसंस्काराधिकारादिविचारः

भार्याकन्यास्नुषादेः स्त्रियाः यतिसंस्कारकर्तृत्वे तु विधवायाः वपनपूर्वकं कृच्छ्रत्रयाचरणम्। सधवायास्तु कृच्छ्राचरणमेव। देशान्तरस्थपुत्रः पितुर्यतेः सिद्धिवार्तां श्रुत्वा वपनपूर्वकं स्नात्वा क्षीरतर्पणपूजनादिदशाहान्तं कृत्वैकादशाहादौ पार्वणनारायणबल्यादि सर्वमविकृतं कुर्यात्। सन्निहितेन ज्येष्ठेन कृतं चेत्कनिष्ठो न कुर्यात्।

पत्नी-कन्या-पुत्र वधू आदि स्त्री संन्यासी के संस्कार करने वाली हों तो जो इनमें विधवा हो वह मुण्डन करके तीन कृच्छ्र करे। सधवा को तो केवल एक कृच्छ्र ही करना चाहिये। दूसरे देश में रहने वाला पुत्र संन्यासी पिता की सिद्धिवार्ता (मृत्यु) को सुन कर मुण्डनपूर्वक स्नान करके दूध से तर्पण पूजन आदि दशाहपर्यन्त कर्म करके एकादशाह आदि में पार्वण नारायणबलि आदि कर्म को अविकृत पूरा करे। समीप में रहने वाले ज्येष्ठपुत्र ने यदि किया हो तो छोटा पुत्र नहीं करे।

शुक्लकृष्णादिभेदेन केशवादिनामानि मृततिथ्यनुरोधेनैव ग्राह्याणि न तु वार्ताश्रवणतिथ्यनुरोधेन। मृततिथ्यज्ञाने तु वार्ताश्रवणानुरोधेनैव। यतिसंस्कारकरणेऽश्वमेधसहस्रादिफलम्।

---

१. प्रचेता ने कहा है—'एकोद्दिष्टं यतेर्नास्ति त्रिदण्डग्रहणादिह। सपिण्डीकरणाभावात् पार्वणं तस्य सर्वदा॥' वायुपुराणे—'संन्यासिनोऽप्याब्दिकादि पुत्रः कुर्याद्यथाविधि। महालये तु यच्छ्राद्धं द्वादश्यां पार्वणं हि तत्॥' शूलपाणि ने कहा है—'एकादशेऽह्नि पार्वणं तदपि त्रिदण्डिनः। हंसपरमहंसादीनां पार्वणादिकमपि न कार्यम्' इति।

असंस्कृतं विशीर्येत यतेर्यत्र कलेवरम् ।
धर्मलोपो भवेत्तत्र दुर्भिक्षं मरणं तथा ॥
दिवंगते गुरौ शिष्य उपवासं तदाचरेत् ।
न स्नानमाचरेद्भिक्षुः पुत्रादिनिधने श्रुते ।
पितृमातृक्षयं श्रुत्वा स्नानाच्छुद्धचति साम्बरात् ॥

शुक्ल पक्ष कृष्ण पक्ष आदि के भेद से केशव आदि नामों को मृत तिथि के अनुरोध से ही ग्रहण करे न कि वार्ताश्रवण तिथि से। मृत तिथि के अज्ञान में तो वार्ता सुनने के अनुरोधसे ही शुक्ल कृष्ण समझे। संन्यासी के संस्कार करने में हजार अश्वमेध करने का फल होता है। विना संस्कार किये संन्यासी का शरीर पड़ा जहाँ नष्ट हो जाय वहाँ धर्म का लोप दुर्भिक्ष एवं मरण होता है। गुरु के मरने पर शिष्य उपवास करे। संन्यासी अपने पुत्र आदि का मरण सुन कर स्नान न करे। पिता-माता का मरण सुन कर संन्यासी वस्त्रसहित स्नान करके शुद्ध होता है।

अथ प्रसंगाद्यतिधर्माः

प्रातरुत्थाय ब्रह्मणस्पत इति जपित्वा दण्डादीनि मृदं चादाय मूत्रपुरीषयोर्गृहस्थचतुर्गुणं शौचं कृत्वाचम्य [1]पर्वद्वादशीवर्ज्यं प्रणवेन दन्तधावनं कृत्वा मृदा बहिः कटिं प्रक्षाल्य जलतर्पणवर्ज्यं स्नात्वा पुनर्जङ्घे प्रक्षाल्य वस्त्रादीनि गृहीत्वा प्रणवेन [2]प्राणायाममार्जनादि कृत्वा केशवादिनमोन्तनामभिस्तर्पयित्वा भूस्तर्पयामीत्यादिव्यस्तसमस्तव्याहृतिभिर्महर्जनस्तर्पयामीति तर्पयेत् । अत्र विशेषो माधवादौ विश्वेश्वर्यादौ च ज्ञेयः । सूर्योपस्थानादिकं त्रिकालविष्णुपूजादिकं च सिन्धौ ज्ञेयम् ।

प्रातःकाल उठकर 'ब्रह्मणस्पते' इसे जप कर दण्ड आदि और मिट्टी को लेकर मूत्र और पुरीष में गृहस्थ से चौगुना शुद्धि करके आचमन कर पर्व और द्वादशी को छोड़ कर प्रणव से दतुअन कर मिट्टी से कटि के बाहर प्रक्षालन कर जलतर्पणरहित स्नान कर फिर दोनों जांघ का प्रक्षालन कर वस्त्र आदि लेकर प्रणव से प्राणायाम तथा मार्जन आदि करके केशवादि का 'केशवाय नमः' इस प्रकार नमोन्त नामों से तर्पण कर 'भूस्तर्पयामि' इत्यादि व्यस्त-समस्त व्याहृतियोंसे 'महर्जनस्तर्पयामि' इससे तर्पण करे। इसमें विशेष माधव आदि और विश्वेश्वरी आदि ग्रन्थों से जानना चाहिये। सूर्योपस्थान आदि और तीनों काल में विष्णुपूजा आदि निर्णयसिन्धु से जानना चाहिये।

---

१. चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या, पूर्णिमा और रविवार के दिन संक्रान्ति,—ये पर्व हैं जैसा पद्मपुराण में कहा है—'चतुर्दश्यष्टमी चैव अमावास्याऽथ पूर्णिमा। पर्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसंक्रान्तिरेव च ॥' इति।

२. प्राणायाम का वसिष्ठोक्त स्वरूप—'सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह। त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥' प्राणायाम की मनूक्त प्रशंसा—'प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोऽपि विधिवत्कृताः। व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः ॥' त्रयः—पूरक-कुम्भक-रेचकसंज्ञकाः। पूरकादि का स्वरूप योगि-याज्ञवल्क्य ने यों बताया है—'नासिकाकृष्ट उच्छ्वासो ध्मातः पूरक उच्यते। कुम्भको निश्चलश्वासो मुच्यमानस्तु रेचकः ॥' इति। मनुः—'दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः। तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥' अर्थात् अग्नि में तपाने से जिस प्रकार धातुओं के मल जल जाते हैं उसी प्रकार प्राणायाम करने से इन्द्रियों के दोष नष्ट हो जाते हैं।

विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने ।
कालेऽपराह्णभूयिष्ठे नित्यं भिक्षां यतिश्चरेत् ॥

अत्र भिक्षाभेदाः ग्रन्थान्तरे ज्ञेयाः । अत्र विविदिषोर्दण्डिनः माधुकरी मुख्या । दण्डवस्त्रादिपरिग्रहणरहितस्य तु करपात्रं मुख्यम् । अन्ये पक्षाः अशक्तविषयाः । तत्र [1]माधुकरीपक्षे दण्डादि गृहीत्वा पञ्चभ्यः [2]सप्तभ्यो वा गृहेभ्यो भिक्षां याचित्वान्नं प्रोक्ष्य भूः स्वधा नम इत्यादिव्यस्तसमस्तव्याहृतिभिः सूर्यादिदेवेभ्यो भूतेभ्यश्च भूमौ क्षिप्त्वा शेषमन्नं विष्णुनिवेदितं भुञ्जीत । चण्डीविनायकादिनैवेद्यं न भुञ्जीत । भुक्त्वाचम्य षोडशप्राणायामान् कुर्यादिति संक्षेपः ।

संन्यासी जब धुआं समाप्त हो जाय, मूसर का शब्द बन्द हो जाय, अग्नि बुझ जाय, घर के सब प्राणी भोजन कर लें तब अपराह्ण प्रधान काल में नित्य भिक्षाचरण करे । इसमें भिक्षा के भेद दूसरे ग्रन्थों से जानना चाहिये । इसमें ज्ञानाभिलाषी दण्डी को मधुकरी भिक्षा मुख्य है । दण्ड-वस्त्रादि परिग्रह से रहित संन्यासी का तो करपात्र ही मुख्य है । अन्य पक्ष असमर्थों के लिये हैं । उसमें मधुकरी भिक्षा लेने के पक्ष में दण्ड आदि को लेकर पाँच या सात घरों से भिक्षा मांगकर अन्न का प्रोक्षण कर 'भूः स्वधा नमः' इत्यादि व्यस्त-समस्त व्याहृतियों से सूर्य आदि देवताओं और जीवों के लिये भूमि में गिराकर शेष अन्न विष्णु को निवेदन करके भोजन करे । चण्डी और गणेश आदि के नैवेद्य का भोजन न करे । भोजन कर लेने पर आचमन करके सोलह प्राणायाम करे । यति धर्म का यह संक्षेप है ।

यतिहस्ते जलं दद्याद् भिक्षां दद्यात्पुनर्जलम् ।
भैक्ष्यं पर्वतमात्रं स्यात्तज्जलं सागरोपमम् ॥
एकरात्रं वसेद् ग्रामे नगरे पञ्चरात्रकम् ।
वर्षाभ्योऽन्यत्र वर्षासु मासांश्च चतुरो वसेत् ॥
अष्टौ मासान्विहारः स्याद्यतीनां संयतात्मनाम् ।
महाक्षेत्रप्रविष्टानां विहारस्तु न विद्यते ॥
भिक्षाटनं जपः स्नानं ध्यानं शौचं सुरार्चनम् ।
कर्तव्यानि षडेतानि सर्वथा नृपदण्डवत् ॥

---

१. जैसे मधुकर (मधुमक्खी) एक फूल से दूसरे फूल पर जाकर मधु इकट्ठा करता है, वैसे भिन्न-भिन्न पाँच-सात घरों से संन्यासियों की प्राप्त भिक्षा मधुकरी कहलाती है ।

२. वसिष्ठ ने कहा है—'सप्तागाराण्यसंकल्पितानि चरेत भैक्षम् ।' संवर्तः—'अष्टौ भिक्षाः समादाय मुनिः सप्त च पञ्च च । अद्भिः प्रक्षाल्य ताः सर्वास्ततोऽश्नीयाच्च वाग्यतः ॥' भिक्षा के न मिलने पर विषाद या मिलने पर हर्ष का त्याग मनु ने बताया है—'अलाभे न विषादी स्याल्लाभे चैव न हर्षयेत् । प्राणयात्रिकमात्रः स्यान्मात्रासङ्गाद्विनिर्गतः ॥' मनु ने सामान्यतः भिक्षापात्रों और उनकी शुद्धि का निर्देश किया है—'अतैजसानि पात्राणि तस्य स्युर्निर्व्रणानि च । तेषामद्भिः स्मृतं शौचं चमसानामिवाध्वरे ॥' इति ।

संन्यासी के हाथ में जल दे और भिक्षा दे तथा पुनः जल दे। यह भिक्षा पर्वत के समान और वह जल समुद्र के तुल्य है। वर्षाकाल से भिन्न काल में संन्यासी गांव में एक रात और शहर में पांच रात निवास करे। वर्षाकाल में तो चार मास एक ही स्थान में रहे। जितेन्द्रिय यतियों का विहार आठ महीने का होता है। काशी आदि महाक्षेत्र में प्रविष्ट यतियों का विहार नहीं है। भिक्षाटन-जप-स्नान-शौच-ध्यान-देवपूजन—ये छ सब प्रकार से नृपदण्ड के समान करे।

मञ्चकं शुक्लवस्त्रं च स्त्रीकथा लौल्यमेव च।
दिवास्वापश्च यानं च यतीनां पतनानि षट्॥
वृथाजल्पं पात्रलोभं संचयं शिष्यसंग्रहम्।
हव्यं कव्यं तथान्नं च वर्जयेच्च सदा यतिः॥
यतिपात्राणि[1] मृद्वेणुदार्वलाबुमयानि च।
न तीर्थवासी नित्यं स्यान्नोपवासपरो यतिः।
न चाध्ययनशीलः स्यान्न व्याख्यानपरो भवेत्॥

एतद्वेदार्थभिन्नपरम्[2]। एते संक्षेपतो यतिधर्माः। अन्येऽपि माधवीयमिताक्षरादौ ज्ञेयाः।

खटिया, सफेद वस्त्र, स्त्रियों की कथा, चंचलता, दिन का सोना, सवारी—ये छ यतियों को पतित कर देते हैं। व्यर्थ बोलना, पात्र का लोभ, संचय, शिष्य का संग्रह, हव्य, कव्य और अन्न—इन्हें यति सदा त्याग दे। संन्यासी के पात्र—मिट्टी, बांस, लकड़ी और तुमडी के होते हैं। यति सदा तीर्थवास न करे, न उपवास करे। और न अध्ययन शील हो, न व्याख्यान में तत्पर हो। यह वचन वेदार्थ से भिन्न व्याख्यान के लिये है। ये संक्षेप से यतियों के धर्म हैं। अन्य भी यति धर्म माधवीय एवं मिताक्षरा आदि से ज्ञेय हैं।

अथ ग्रन्थोपसंहारः

प्रथमेऽत्र परिच्छेदे कालसामान्यनिर्णयः।
द्वितीयेऽथ परिच्छेदे विशेषात्कालनिर्णयः॥ १॥
तृतीयस्य च पूर्वार्धे गर्भाधानादिसंस्क्रियाः।
आह्निकं च प्रकीर्णार्थो आधानाद्याः सविस्तराः॥ २॥
देवप्रतिष्ठाशान्त्यादि नित्यं नैमित्तिकं तथा।
तार्तीयकोत्तरार्धेऽस्मिन् जीवत्पितृकनिर्णयः॥ ३॥

---

१. मनु ने भी भिक्षाचरण का पात्र कहा है—'अलाबु दारुपात्रं च मृन्मयं वैदलं तथा। एतानि यतिपात्राणि मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत्॥' याज्ञवल्क्यः—'यतिपात्राणि मृद्वेणुदार्वलाबुमयानि च। सलिलं शुद्धिस्तेषां गोवालैश्चावघर्षणम्॥' इति।

२. वाष्कल ने कहा है—'कुटुम्बं पुत्रदारांश्च वेदाङ्गानि च सर्वशः। केशान् यज्ञोपवीतं च त्यक्त्वा गूढश्चरेन्मुनिः। संन्यासी के लिये वेदार्थचिन्तन तो परमावश्यक है, जैसा मनु ने कहा है—'अधियज्ञं ब्रह्म जपेदाधिदैविकमेव च। आध्यात्मिकं च सततं वेदान्ताभिहितं च यत्। इदं शरणमज्ञानामिदमेव विजानताम्। इदमन्विच्छतां स्वर्गमिदमानन्त्यमिच्छताम्॥' इति।

श्राद्धाधिकारकालादेर्निर्णयः श्राद्धपद्धतिः ।
सूतकादेर्निर्णयश्च निर्णयो दुर्मृतावपि ॥ ४ ॥
अन्त्येष्टिसंस्कारविधिः संन्यासः सहविस्तरः ।
प्रायश्चित्तं व्यवहृतिं सर्वदानविधिं विना ॥ ५ ॥
कृत्स्नोऽपि धर्मशास्त्रार्थः संक्षेपेणात्र निर्मितः ।
विबुधानां च बालानां तुष्टये कष्टहानये ॥ ६ ॥

इस प्रथम परिच्छेद में सामान्यतः काल का निर्णय किया है और दूसरे परिच्छेद में काल का विशेष निर्णय किया है । तीसरे परिच्छेद के पूर्वार्ध में गर्भाधान आदि संस्कार, आह्निक कृत्य एवं प्रकीर्ण विषय, अग्न्याधान आदि विस्तार के साथ कहे गये हैं। देवता की प्रतिष्ठा, शान्ति आदि, नित्य और नैमित्तिक कर्म बतलाये हैं। इस तृतीय परिच्छेद के उत्तरार्ध में जीवत्पितृक का निर्णय एवं श्राद्ध के अधिकार काल आदि का निर्णय और श्राद्ध के प्रयोग कहे गये हैं। सूतक आदि का निर्णय तथा दुर्मरण में भी कर्तव्य का निर्णय कहा है। अन्त्येष्टि संस्कार की विधि तथा विस्तृत संन्यास और प्रायश्चित्त एवं सर्वदान के विना व्यवहार, सम्पूर्ण धर्मशास्त्र का प्रयोजन संक्षेप से इसमें निर्मित है। यह निर्माण विद्वानों की तुष्टि और बालकों के कष्ट की हानि के लिए कहे गये हैं ॥ १-६ ॥

मूलभूतानि पद्यानि विकृतानि क्वचित्क्वचित् ।
निर्विकाराण्यपि नवान्यप्युक्तान्यत्र कानिचित् ॥ ७ ॥
मीमांसाधर्मशास्त्रज्ञाः सुधिजोऽनलसा बुधाः ।
कृतकार्याः प्राङ्निबन्धैस्तदर्थं नायमुद्यमः ॥ ८ ॥
ये पुनर्मन्दमतयोऽलसा अज्ञाश्च निर्णयम् ।
धर्मे वेदितुमिच्छन्ति रचितस्तदपेक्षया ॥ ९ ॥
निबन्धोऽयं धर्मसिन्धुसारनामा सुबोधनः ।
अमुना प्रीयतां श्रीमद्विट्ठलो भक्तवत्सलः ॥ १० ॥

इसमें मूल श्लोक और कहीं-कहीं विकृत कहीं अविकृत और नवीन पद्य भी कहे गये हैं। मीमांसा एवं धर्मशास्त्र के जानने वाले, आलस्यरहित अच्छी बुद्धि वाले विद्वज्जन पहले के निबन्धों से कृतकृत्य हैं, उनके लिये यह प्रयास नहीं है, यह तो उनके लिये है जो मन्दबुद्धि, आलसी और नहीं जानने वाले हैं और धर्म के निर्णय को जानना चाहते हैं उन्हीं के लिये इसकी रचना की गई है। यह धर्मसिन्धुसार नामक निबन्ध सुखपूर्वक ज्ञानप्राप्ति के लिये बनाया है। इससे भक्तप्रिय श्रीमान् विट्ठल भगवान् प्रसन्न हों ॥ ७-१० ॥

प्रेम्णा सद्भिर्ग्रन्थः सेव्यः शब्दार्थतः सदोषोऽपि ।
संशोध्य वापि हरिणा 'सुदाममुनिसतुषपृथुकमुष्टिरिव ॥ ११ ॥

---

१. जैसे भगवान् श्रीकृष्ण ने सुहृद्वर श्री सुदामसुनि के तुषयुक्त चिउड़ा को प्रेमपूर्वक स्वीकार किया वैसे सज्जन-गण सुदामा मिश्र कृत मेरी इस सुधाविवृति को अपनावें और सम्भावित दोषों का संशोधन करें।

श्रीकाश्युपाध्यायवरो महात्मा बभूव विद्वद्द्विजराजराजः ।
तस्मादुपाध्यायकुलावतंसौ यज्ञेश्वरोऽनन्त इमावभूताम् ॥ १२ ॥
यज्ञेश्वरो यज्ञविधानदक्षो दैवज्ञवेदाङ्गसुशास्त्रशिक्षः ।
भक्तोत्तमोऽनन्तगुणैकधामानन्ताह्वयोऽनन्तकलावतारः ॥ १३ ॥
एषोऽत्यजज्जन्मभुवं स्वकीयां तां कौङ्कणाख्यां सुविरक्तिशाली ।
श्रीपाण्डुरङ्गे वसतिं विधाय भीमातटे मुक्तिमगात्सुभक्त्या ॥ १४ ॥
तस्यानन्ताभिधानस्योपाध्यायस्य सुतः कृती ।
काशीनाथाभिधो धर्मसिन्धुसारं समातनोत् ॥ १५ ॥

इति श्रीमत्काश्युपाध्यायसूरिसूनुयज्ञेश्वरोपाध्यायानुजानन्तोपाध्याय-
सूरिसुत-काशीनाथोपाध्यायविरचिते धर्मसिन्धुसारे
तृतीयपरिच्छेदोत्तरार्धं समाप्तम् ।
समाप्तोऽयं धर्मसिन्धुः ।

शब्द और अर्थ से दोषयुक्त भी यह ग्रन्थ सज्जनों द्वारा प्रेम से संशोधन कर सेवनीय है जैसे भगवान् श्रीकृष्ण जी ने सुदामा मुनि के तुषयुक्त एक मुट्ठी चिउड़ा को सेवन किया था। विद्वान् द्विजराज के राजा श्री काशी उपाध्याय श्रेष्ठ महात्मा हुए थे उनसे उपाध्याय कुलभूषण यज्ञेश्वर एवं अनन्त नामक दो पुत्र हुए। यज्ञेश्वर जी यज्ञ विधान में निपुण और वेदाङ्ग ज्यौतिष शास्त्र में सुशिक्षित अनन्त गुणवान् उत्तम भक्त हुए। दूसरे अनन्त नामक पुत्र अनन्त गुणों के एक स्थान एवं अनन्त कला के अवतार यह वैराग्यशाली अपनी उस कौङ्कण नामक जन्मभूमि को त्याग कर भीमा नदी के तट पर श्रीपाण्डुरङ्ग में निवास कर अतिशय भक्ति से मुक्ति प्राप्त किये। उस श्री अनन्त उपाध्याय के कुशल पुत्र श्री काशीनाथ उपाध्याय ने धर्मसिन्धुसार नामक इस ग्रन्थ को बनाया है।

इति देवरियामण्डलान्तर्गत-मध्यपल्लीनरेशगुरुणा बलियामण्डलान्तर्गतमुनिछपरा-
ग्रामनिवासिना काशीहिन्दूविश्वविद्यालयस्य भूतपूर्वधर्मशास्त्र-
प्राध्यापकेन श्रीवशिष्ठदत्तमिश्रधर्मशास्त्राचार्येण
विरचिता 'धर्मदीपिका' व्याख्या समाप्ता

१. स्वार्थ में अण् प्रत्यय करने पर कोङ्कण से कौङ्कण बना है। सह्याद्रि और समुद्र के मध्यवर्ती भूखण्ड का नाम 'कोङ्कण' है।

इति मुजफ्फरपुरमण्डलान्तर्गत-लालगंज-नगरस्थित-श्रीविहारिशुक्लसंस्कृतविद्यालयस्य
प्रधानाध्यापकेन रायबरेलीमण्डलान्तर्गतटेकारीराज्यस्य श्रीचन्द्रभानुपाठशालाया
भूतपूर्वप्रधानाध्यापकेन उक्तराजभवने अनुष्ठेय-देवपितृकार्येषु
प्राप्ताचार्यकेण टेकारीराज्यचन्द्रभानुट्रस्टमन्त्रिणा
श्रीसुदामामिश्रशास्त्रिणा विरचिता
सुधाविवृतिः समाप्ता